हिन्दी

विश्वकोष

बंगला विश्वकोषके सम्पादक

श्रीनगेन्द्रनाथ वसु प्राच्यविद्यामहार्णव,

सिद्धान्त-वारिधि, शब्दरत्नाकर, तत्त्वचिन्तामणि, एम, आर, ए, एस

तथा हिन्दीके विद्वानों द्वारा सङ्कलित।

———*———

विंशति भाग

(रैणायन—वसुबन्धु)

THE

ENCYCLOPÆDIA INDICA

VOL. XX.

COMPILED WITH THE HELP OF HINDI EXPERTS

BY

NAGENDRANATH VASU, Prâchyavidyâmahârnava,

Siddhnâta-vâridhi, Sabda-ratnâkara, Tattva-chintâmani, M. R. A

Compiler of the Bengali Encyclopædia; the late Editor of Banglya Sâhitya Parisr and Kâyastha Patrikâ; author of Castes & Sects of Bengal, Mayurabhanja Archæological Survey Reports and Modern Buddhism; Hony. Archæological Secretary, Indian Research Society, Associate Member of the Asiatic Society of Bengal &c. &c. &c.

———

Printed by A. Sen. at the Visvakosha Press.
Published by

Nagendranath Vasu and Visvanath Vasu

9, Visvakosha Lane, Bagbazar Calcutta.

1929.

हिन्दी
विश्वकोष

विंशति भाग

रैण्वायन (सं० पु०) गोत्रभेद। (संस्कारकौमुदी)

रैहर (हिं० पु०) झगड़ा, लड़ाई।

रैहाँ (अ० पु०) एक प्रकारकी वनस्पति।

रोंग (हिं० पु०) शरीर परका बाल, लोम।

रोंगटा (हिं० पु०) मनुष्यके सिरको छोड़ कर और सारे शरीर परके बाल।

रोंगटी (हिं० स्त्री०) खेलमें बुरा मानना या बेईमानी करना।

रोंठा (हिं० पु०) कच्चे आमकी सुखाई हुई फाँक, आमलकी।

रो टामस (Sir Thomas Roe)—एक अङ्गरेज राजदूत। भारतवर्षमें वाणिज्य फैलानेकी आशासे इङ्गलैण्डेश्वर १म जेम्सने इन्हें मुगल बादशाह जहाङ्गीरकी सभामें भेजा था। इङ्गलैण्डेश्वरका सौजन्य देख कर तथा उपहारसे प्रसन्न हो कर बादशाहने टामस रो-का वाणिज्योन्नतिविषयक प्रस्ताव सुना। इस देशहितकर उद्देश्यसाधनके लिये वे अङ्गरेज दूतके साथ कई दिन तक परामर्श करते रहे। मौका देख कर राजदूत मीठी मीठी बातोंसे बादशाहको खुश करने लगे। दूतकी बातचीतसे प्रसन्न हो कर बादशाहने अङ्गरेज जातिको भारतवाणिज्यके बहुतसे विषयोंमें अधिकार दे दिया।

दिल्ली-राजदरबार और भारतवर्षमें रहते समय टामस रो दिल्ली और भारतके अन्यान्य स्थानोंका तत्कालीन विवरण अपने पत्रादिमें लिपिबद्ध कर गये हैं। उन सबकी आलोचना करनेसे उस समयके भारत-इतिहासका प्रकृत विवरण संग्रह किया जा सकता है।

रोइंसा (हिं० पु०) रूसा घास। इसकी जड़से सुगन्धित तेल निकलता है। रूसा देखो।

रोइया (हिं० पु०) जमीनमें गड़ा हुआ काठका कुंदा जिस पर रख कर गन्नेके टुकड़े काटते हैं।

रोक (सं० पु०) रुच-घञ् न्यङ्क्वादित्वात् कुत्वं। १ नकद रुपया, रोकड़। २ नकद व्यवहारका सौदा। ३ दीप्ति। (क्ली०) ४ छिद्र, छेद। ५ नौका, नाव। ६ चल, चलना, खिसकना।

रोक (हिं० स्त्री०) १ किसी कार्यमें प्रतिबन्ध, काममें बाधा। २ वह वस्तु जिससे आगे बढ़ना या चलना रुक जाय, रोकनेवाली वस्तु। ३ ऐसी स्थिति जिससे चल या बढ़ न सकें, गतिमें बाधा, अटकाव। ४ मनाही, निषेध।

रोकझोंक (हिं० स्त्री०) रोकटोक देखो।

रोकटोक (हिं० स्त्री०) १ बाधा, प्रतिबंध। २ मनाही, निषेध।

रोकड़ (हिं० स्त्री०) १ नगद रुपया पैसा आदि विशेषतः वह रकम जिसमेंसे आय-व्यय होता हो। २ जमा, पूंजी।

रोकड़ बही (हिं० स्त्री०) वह बही या किताब जिसमें नकद रुपयेका लेन देन लिखा रहता है।

रोकड़बिक्री (हिं० स्त्री०) नकद दाम पर की हुई बिक्री।

रोकड़िया (हिं० पु०) रोकड़ रखनेवाला, खजानची।

रोकना (हिं० क्रि०) १ गतिका अवरोध करना, चलते हुएको थामना। २ जाने न देना, कहीं जानेसे मना करना। ३ अड़चन डालना, बाधा डालना। ४ किसी क्रिया या व्यापारको स्थगित करना, जारी न रखना। ५ ऊपर लेना, ओढ़ना। ६ वशमें रखना, काबूमें रखना। ७ मार्गमें इस प्रकार पड़ना कि कोई वस्तु दूसरी ओर न जा सके, छेंकना। ८ बढ़ती हुई सेना या दलका सामना करना। ९ बाज रखना, मना करना।

रोग (सं० पु०) रुज्यतेऽनेनेति रोजनमिति वा रुज-घञ् यद्वा रुजतीति रुज-(पदरुजविशस्पृशो घञ्। पा ३।३।१६) इति कर्त्तरि घञ्। १ कुष्ठौषध। २ वह अवस्था जिससे अच्छी तरह न चले और जिसके बढ़ने पर जीवनमें संदेह हो, बीमारी, मर्ज। पर्याय—रुजा, रुक्, उपताप, व्याधि, गद, आमय, अपाटव, भंग, आतङ्क, मय, उपघात, मद्गु, आर्त्ति, तमोविकार, ग्लानि, क्षय, अनार्जव, मृत्युभृत्य, मन्द, मान्द्य, आकल्य। (हेम) पापका फल रोग है। पाप करनेसे रोग होता है पापकी कमी बेशी होनेसे रोग भी कमी बेशी हुआ करता है। पाप अतिपातक, महापातक और अनुपातकके भेदसे तीन प्रकारका है।

अतिपातकादि पापका अनुष्ठान करनेसे पहले नरक भुगतना होता है। पूर्वजन्मकृत यह पाप नरकभोगके बाद फिर व्याधिरूपमें देहको पीड़ित करता है। अतएव पाप ही एकमात्र रोगका कारण है। निष्पाप व्यक्तिके कभी रोग नहीं होता। रोग होनेसे रोगका कारण जो पाप है उसका प्रायश्चित्त करना होता है। पापका क्षय होनेसे रोगका भी क्षय होता है। स्वस्त्ययन, होम, दान और सुरार्चन आदि द्वारा भी रोगकी शान्ति होती है। अर्श आदि रोग अतिपातकज, कुष्ठ, राजयक्ष्मा, प्रमेह, ग्रहणी, मूत्रकृच्छ्र, अश्मरी, कास, भगन्दर, गण्डमाला, पक्षाघात, अक्षिनाश, महापातकज, जलोदर, यकृत्, प्लीहा, शूल, श्वास, अजीर्ण, ज्वर, छर्दि, रक्तार्बुद, विसर्प आदि रोग उपपातकज हैं। किस पापसे कौन रोग होता है उसका विषय कर्मविपाकमें लिखा जा चुका है।

कर्मविपाक शब्द देखो।

जो पथ्याशी, जितेन्द्रिय, देवद्विजभक्त और स्वधर्मानुष्ठानकारी हैं उन्हें रोग नहीं होता। वैद्यकके मतसे रोग और रोगके कारणादिका विषय संक्षेपमें नीचे लिखा गया है।

"रोगस्तु दोषवैषम्यं दोषसाम्यमरोगता।
रोगा दुःखस्य दातारो ज्वरप्रभृतयो हि ते॥" (वाग्भट)

दोषके वैषम्यको रोग कहते हैं। वायु, पित्त और कफ इन तीन दोषोंमें जब विषमता होती है तब ही रोग होता है। दोषके साम्य रहनेसे शरीर नीरोग रहता है। आहार विहारादि इस प्रकार करना होगा, जिसमें दोषमें विषमता न होने पावे। दोषमें विषमता होनेसे ही रोग होगा। रोग शरीरका दुःखदायक है।

निज और आगन्तुकके भेदसे रोग दो प्रकारका है। पहले वायु आदि दोष बिगड़ कर पीछे जहां रोग उत्पादन करता है वहां उसे निज और जहां रोग उत्पन्न हो कर पीछे वातादि दोष कुपित होता है वहां उसे आगन्तु रोग कहते हैं। इन सब रोगोंका अधिष्ठान देह और मन है। उनमेंसे ज्वर आदि रोगोंका अधिष्ठान देह तथा मद, मूर्च्छा, संन्यास आदिका आधार मन है।
(वाग्भट)

पहले ही लिखा जा चुका है, कि दोषकी विषमता रोग तथा समता ही आरोग्य है। रोगमात्र ही प्राणियोंका विशेष दुःखदायक है। यह रोग चार प्रकारका है, स्वाभाविक, आगुन्तक, मानसिक और कायिक। इनमेंसे जो रोग स्वभावजात है उसे स्वाभाविक कहते हैं, जैसे—क्षुधा, पिपासा, निद्रा, वार्द्धक्य और मृत्यु यह स्वभावजात रोग सभीको भोग करना होगा। फिर जन्मसे जो रोग उत्पन्न होता है उसे भी सहज रोग कहते हैं जैसे जन्मान्ध इत्यादि।

अभिघातादि जनित अथवा जन्मान्तर-आधिरोगका नाम आगन्तुक रोग है। जैसे—काम, क्रोध, लोभ, मोह, मद, अभिमान, दीनता, क्रूरता, शोक, विकार, ईर्षा,

असूया और मात्सर्य आदि। इसके सिवा अपस्मार, उन्माद, मूर्च्छा, भ्रम, मोह, तम और सन्यास आदि भी आगन्तुक है। पाण्डु प्रभृति रोगको कायिक कहते हैं।

यह रोग फिर कर्मज, दोषज और कर्मदोषजके भेदसे तीन प्रकारका कहा गया है।

कर्मज रोग—पूर्वजन्मकृत प्रबल दुष्कर्मसे जो सब उत्पन्न होता है उसे कर्मज रोग कहते हैं। यह कर्मज रोग तीन दोषोंके बिगड़नेसे उत्पन्न नहीं होता है। यह रोग केवल भोग और प्रायश्चित्तादिके द्वारा शान्त होता है। यह चिकित्साध्य नहीं। शास्त्रमें कहा है, कि शास्त्रानुसार यथाविधि रोगका निर्णय कर दवाई करनेसे भी जो रोग नहीं दबता उसे कर्मज रोग कहते हैं।

"यथाशास्त्रन्तु निर्णीतो यथा व्याधिचिकित्सितः।
न शमं याति यो व्याधिः स ज्ञेयो कर्मजो बुधैः॥"

(भावप्र०)

दोषज रोग—अनियमित आहार और विहारादि द्वारा वायु, पित्त और कफ कुपित हो कर जो सब रोग उत्पन्न करता है उसे दोषज रोग कहते हैं। इस पर कोई कोई प्रश्न करते हैं, कि पूर्वजन्मकृत प्रबल सुकृत रहनेसे आहार और विहारादिका नियम लङ्घन करने पर भी कोई रोग नहीं होता, ऐसा देखा जाता है। अतएव दोषज व्याधिका कारण भी पूर्वजन्मकृत कर्म है, इसमें जरा भी संदेह नहीं। तब फिर इसे दोषज व्याधि किसे तरह कह सकते? इस प्रश्नके उत्तरमें यही कहा जा सकता है, कि पूर्वजन्मकृत दुष्कर्म दोषज व्याधिका मूल कारण है सही, पर अनियमित आहार विहार द्वारा भी रोगोंकी उत्पत्ति देखी जाती है, इसी लिये उसको दोषज व्याधि कहते हैं।

कर्मदोषज रोग।—यदि दोष थोड़ा दूषित हो और उससे अति प्रबल रोगकी उत्पत्ति देखी जाय, तो उसे कर्मदोषज रोग कहते हैं। प्रबल दुष्कर्म ही इस रोगका मूल कारण है। दोषकी अल्पताके कारण रोगकी अल्पता होना उचित था, लेकिन ऐसा न हो कर प्रबल रोग उत्पन्न होता है। दुष्कृत क्षय होनेसे वह रोग भी क्षय होता है। इस रोगमें स्वल्प दोष ही उक्त दोषका कारण है। क्योंकि, अल्प दोषको भी रोगोत्पत्तिका कारण कहा गया है। अतएव दोष और कर्म इन दोनोंसे उत्पन्न होनेके कारण इसे कर्मदोषज रोग कहते हैं।

दुष्कर्मका क्षय होनेसे दुष्कर्मकृत रोगोंका, उपयुक्त औषधके सेवनसे दोषज रोगका तथा दुष्कर्म और रोगक्षय होनेसे कर्मदोषज रोगोंका क्षय होता है। उपयुक्त औषधके सेवनसे दोषज रोगोंका क्षय होता है, इसका तात्पर्य यह कि दोषज व्याधिका मूल कारण दुष्कर्म है, औषध बनानेमें जिन सब द्रव्योंकी आवश्यकता होती है। उनके अभावजनित क्लेश भोग द्वारा तथा कटु, तिक्त, कषाय आदि मनके अप्रीतिकर द्रव्य भक्षणादि जनित क्लेश भोग द्वारा दुष्कर्मका ह्रास होता है। इसके बाद औषधके सेवनसे रोगोंके प्रत्यक्षीभूत हेतुका अर्थात् कुपित दोषका क्षय हुआ करता है।

रोग साध्य, असाध्य और याप्यके भेदसे तीन प्रकारका है। इनमेंसे फिर साध्य रोगके भी दो भेद हैं, सुखसाध्य और कष्टसाध्य। जो रोग चिकित्सा द्वारा प्रशमित होता है उसे साध्य। जो चिकित्सासे आरोग्य नहीं होता उसे असाध्य और जो रोग चिकित्सा द्वारा स्थगित रहता है तथा चिकित्सा नहीं करनेसे प्राण नाश होता है उसे याप्य रोग कहते हैं। यत्नपूर्वक खंभे लगानेसे जिस प्रकार गिरता हुआ घर खड़ा रह जाता है, उसी प्रकार औषधादि द्वारा सुचिकित्सित होनेसे याप्य रोगीका भी शरीर रक्षा पाता है।

रोगोत्पादक दोषके प्रकोपसे अन्यान्य जो सब विकार उत्पन्न होते हैं उनका नाम उपद्रव है। (भावप्र० पूर्वख०)

रोग, रोगके कारण और उनके निरूपणादिका विषय सुश्रुतमें इस प्रकार लिखा है—

पुरुषमें सुख दुःखका संयोग होनेसे ही उसको रोग कहते हैं। यह दुःख तीन प्रकारका है, आध्यात्मिक, आधिभौतिक और आधिदैविक। यह तीन प्रकारका दुःख सात प्रकारके रोगोंमें परिणत होता है। सात प्रकारके रोग ये सब हैं—१ आदिबलजात, २ जन्मबलजात, ३ दोषबलजात, ४ संघातबलजात, ५ कालबलजात, ६ दैवबलजात और ७ स्वभावबलजात।

आदिबलजात रोग दो प्रकारका है,—मातृदोषजात

और पितृदोषजात। मातृदोषजयुक्त जन्मान्ध, बधिर, मूक, मिनमिन और वामन इत्यादि हैं। यह मातृदोष फिर दो प्रकारका है, रसजनित दोष और दौहृदजनितदोष। (गर्भावस्थामें स्त्रियोंको जो आहार विहारादिकी रुचि होती है उसे दौहृद कहते हैं) यह दौहृद पूर्ण नहीं होनेसे सन्तानमें दोष उत्पन्न होता है।

आतङ्क अथवा मिथ्या आहार-विहारजनित जो सब रोग उत्पन्न होते हैं, उन्हें दोषबलजात रोग कहते हैं। यह दोषबलजात रोग दो प्रकारका है, शारीरिक और मानसिक। शारीरिक दोषके भी फिर दो भेद हैं, आमाशय आधिज और पक्वाशय आधिज। पूर्वोक्त सभी रोगों को आध्यात्मिक रोग कहते हैं। आगन्तुक रोग ही संघात-बलजातरोग है। आगन्तुक रोग दो प्रकारका है, शस्त्राघातजनित और हिंस्रजन्तुकृत। यह आगन्तुक रोग आधिभौतिक रोग कहलाता है।

शीत, उष्ण, वात, वर्षा आदि कारणोंसे जो सब रोग उत्पन्न होते हैं उन्हें कालबलजात रोग कहते हैं। इस कालबलजात रोगके दो भेद हैं, ऋतुविपर्य्ययजात और स्वाभाविक ऋतुजनित। देवद्रोह और अभिशापादि जनित अथवा अथर्ववेदोक्त मारण आदि कार्य करनेसे नाना प्रकार उपसर्गजनित जो रोग होता है उसे दैवबल-जात रोग कहते हैं। यह दैवबलजनित रोग फिर दो प्रकारका है, विद्युत् या वज्राघातकृत और पिशाचादि-कृत। इनके भी फिर दो विभाग किये जा सकते हैं, आकस्मिक (जो घटनावशसे हो) और संसर्गजात।

क्षुधा, पिपासा, जरा, मृत्यु और निद्रा आदि स्वभावबलजात रोग भी दो प्रकारका है, कालकृत और अकालकृत। यथेष्ट यत्न करने पर भी जो आरोग्य नहीं होता उसे कालकृत और जो बिना यत्नके ही आरोग्य हो जाता है उसे अकालकृत कहते हैं।

वायु, पित्त और श्लेष्मा ही सभी प्रकारके रोगोंका मूल है। रोग होनेसे ही इनके थोड़े बहुत लक्षण दिखाई देते हैं। जिस प्रकार यह समस्त विश्व सत्त्व, रज और तम इन तीन गुणोंके बिना नहीं रह सकता, उसी प्रकार रोगसमूह भी वायु, पित्त और श्लेष्माके बिना रह नहीं सकता। वात, पित्त और श्लेष्मा रोगका एक मात्र आश्रय है। अतएव बिना उनका आश्रय लिये रोग रह नहीं सकता।

दोष धातु और मलके परस्पर संसर्गके कारण भेदसे अनेक प्रकारका हुआ करता है। रसधातु और दोष इन्हींके दूषित हो कर जो सब रोग उत्पन्न होते हैं उनके रसज, रक्तज, मांसज, मेदोज, अस्थिज, मज्जज और शुक्रज नाम रखे जा सकते हैं। इनमेंसे फिर रसधातुके दूषित होनेसे अन्नमें अरुचि, अश्रद्धा, अपाक, अङ्गमर्द, ज्वर, हृल्लास, तृप्ति (क्षुधाका अभाव), शरीरका गौरव, पाण्डु, हृद्रोग, मार्गोंका उपरोध, कृशता, मुखवैरस्य, अवसन्नता, अकालमें बालोंका पकना आदि विकार; शोणित दूषित होनेसे कुष्ठ, विसर्प, पीड़का, नीलिका, तिल, व्यङ्ग, न्यच्छ, इन्द्रलुप्त, प्लीहा, विद्रधि, गुल्म, वातरक्त, अर्श, अर्बुद, अङ्गमर्द, असृग्दर, रक्तपित्त तथा गुह्य, मलद्वार और मेढ्रदेशमें पाक आदि विकार, मांस दूषित होनेसे अधिमांस, अर्बुद, अर्श, अधिजिह्वा, उपकुश, गलशुण्डिका, अलजी और मांस संहति आदि विकार; मेद दूषित होनेसे ग्रन्थि, वृद्धि, गलगण्ड, अर्बुद, ओष्ठप्रकोप, मधुमेह, अति स्थूलता और अतिशय पसीना निकलना आदि विकार; अस्थि दूषित होनेसे अध्यस्थि, अधिदन्त, अस्थितोद और कुनख आदि विकार, मज्जा दूषित होनेसे तमोदृष्टि, मूर्च्छा, भ्रम, शरीरका गौरव, ऊरु और अङ्गोंकी स्थूलता, चक्षुके अभिष्यन्दी आदि रोग; शुक्र दूषित होनेसे क्लीबता, अहर्षण (लिंगके खड़ा हो जाना), शुक्राश्मरी और शुक्रमेह आदि विकार, मलाशय दूषित होनेसे त्वक् रोग, मलरोध या अत्यन्त मल निकलना आदि विकार उत्पन्न होते हैं। शारीरिक किसी इन्द्रियका स्थान दूषित होनेसे इन्द्रियकार्यकी अप्रवृत्ति अथवा अस्वाभाविक प्रवृत्ति होती है। सभी दोष दूषित हो कर तमाम शरीरमें फैल जाता है। उनमेंसे जहां उस दूषित दोषके संसर्गसे स्रोत दोष विगुण हो जाता है वहीं रोग हुआ करता है।

यहां पर यह संशय हो सकता है, कि ज्वर आदि रोग वायु, पित्त और कफ इन तीन दोषोंका हमेशा आश्रय किये हुए रहता है या उन्हें विराम भी है?

यदि हमेशा आश्रय किये हुए है, तो सर्वदा सभी प्राणीको पीड़ित रहना पड़ेगा। यदि वायु, पित्त और कफ भिन्न है तथा ज्वरादि रोग भी भिन्न है, ऐसा कहा जाय तो ज्वरके समय अन्य प्रकारका लक्षण न दिखाई दे कर केवल वायु, पित्त और कफका लक्षण ही क्यों दिखाई देता है? इसलिए वायु, पित्त और कफको ही ज्वरादि रोगका कारण कहा है। इसकी मीमांसामें कहा गया है कि वायु, पित्त और कफमें ही ज्वरादिरोग दिखाई देता है सही, पर उसमें हमेशा नहीं रहता। जिस प्रकार बिजली, हवा, वर्षा और वज्र आकाशके सिवा दूसरी जगह नहीं दिखाई देते यद्यपि ये आकाशमें हमेशा नहीं रहते, किसी कारण द्वारा आकाशमें उदय होते हैं, ज्वरादिरोग भी उसी प्रकार अन्य कारणसे वायु, पित्त और कफको आश्रय कर दिखाई देता है। तरङ्ग या बुद्बुद जिस प्रकार जलसे भिन्न नहीं है अथच जल रहने पर भी उसमें निरवच्छिन्न तरङ्ग या बुद्बुद नहीं रहता अन्य कारण द्वारा वह जलमें उत्पन्न होता है, ज्वरादिरोग भी उसी प्रकार अन्य कारण द्वारा वायु, पित्त और कफमें उत्पन्न होता है।

किसी प्रकार स्वाभाविक नियमका लङ्घन करने अथवा ऋतुके प्रभावसे वायु, पित्त और कफके मध्य एक या एकसे अधिक दोष बढ़ता है। वह वर्द्धित दोष उसी प्रकार किसी कारण द्वारा कुपित होता है। पीछे वह कुपित दोष जब शरीरके किसी एक देशका आश्रय लेता है, तब एक देशगत रोग उत्पन्न होता है। सर्वाङ्ग व्याप्त होनेसे ज्वर आदि सर्वाङ्गगतरोग हुआ करता है। दोष कुपित हो कर चाहे शरीरके एक देशका आश्रय करे चाहे सारे शरीरका, दोषका प्रकोपमात्र ही रक्तका प्रकोप होता है। रक्तके कुपित होनेसे ही वह और अधिक वेगवान् हो उठता है। इसी कारण प्रायः सभी रोगोंमें ज्वरका लक्षण दिखाई देता है अर्थात् शरीर उष्ण और धमनी वेगवती-सी मालूम होती है।

निदान, पूर्वरूप, रूप, उपशय और सम्प्राप्ति ये पांच रोगज्ञानके कारण हैं।

जिससे दोष कुपित हो कर रोगोत्पादन कर सकता है, उसे निदान कहते हैं। विप्रकृष्ट और सन्निकृष्टके भेदसे निदान दो प्रकार है। विरुद्ध आहार विहारादिको विप्रकृष्ट अर्थात् दूरवर्त्ति निदान तथा कुपित वातादि दोषको सन्निकृष्ट अर्थात् निकटवर्त्ती निदान कहते हैं।

रोग विशेष दिखाई देनेके पहले जिन सब लक्षणों द्वारा भावी रोग अनुमान किया जाता है उसका नाम पूर्वरूप है। पूर्वरूप भी दो भागोंमें विभक्त है, सामान्य और विशेष। जिस पूर्वरूप द्वारा वायु, पित्त और श्लेष्मा इन तीन दोषोंका कोई भी विशेष लक्षण न दिखाई दे कर किसी भावी रोगमात्रका अनुमान किया जाता है, उसे सामान्य पूर्वरूप कहते हैं। फिर जिस पूर्वरूप द्वारा भावी रोगका दोषभेद तक अनुमान किया जा सकता है उसे विशिष्ट पूर्वरूप कहते हैं। यह विशिष्ट पूर्वरूप स्पष्ट रूपमें दिखाई देनेसे उसे रूप कहते हैं। वस्तुतः जिन सब लक्षण द्वारा उत्पन्न रोग जाना जा सकता है उसका नाम रूप है।

निदान विपरीत या रोग विपरीत अथवा दोनोंके विपरीत कार्यकारक औषध विशेषके सेवन तथा उसी प्रकार आहार विहारादि द्वारा रोगका उपशम होनेसे उसको उपशय कहते हैं। इसके विपरीतका नाम अनुपशय है। इस उपशय और अनुपशय द्वारा रोगका गूढ़ लक्षण निर्णय करना होता है। दोष जब कुपित हो कर शारीरिक अवयव विशेषमें अवस्थान या विचरणपूर्वक रोगोत्पादन करता है, तब उसे सम्प्राप्ति कहते हैं। संख्या, विकल्प, प्राधान्य, बल और कालानुसार यह सम्प्राप्ति भिन्न भिन्न हुआ करती है। ८ प्रकारके ज्वर, ५ प्रकारके गुल्म और १८ प्रकारके कुष्ट आदि विभेदका नाम संख्या है। द्विदोषज और त्रिदोषज रोगके कुपित दोषोंमेंसे कौन दोष किस परिमाणमें कुपित हुआ है, यह जाननेके लिये प्रत्येक दोषका लक्षण विचार कर जो अल्पांश विभाग किया जाता है उसका नाम विकल्प है। ऐसे रोगोंके मिलित दोषोंमें जो दोष अपने निदान द्वारा कुपित होता है वही प्रधान है तथा उस कुपित दोषके संसर्गसे अन्य दो दोष जब कुपित होते हैं तब वह अप्रधान कहलाता है। जो रोग सभी निदानों द्वारा उत्पन्न होता है तथा

जिसका पूर्वरूप और रूप सम्पूर्णरूपसे दिखाई देता है वह रोग बलवान् है। फिर जो अल्प निदान द्वारा उत्पन्न हो कर अल्पमात्र पूर्वरूप और रूप प्रकाश करता है उसे दुर्बल समझना होगा।

ये सभी रोग साधारणतः दोषज और आगन्तुक दो भागोंमें विभक्त हैं। पहले जो सब भेद कह आये हैं वे इन्हीं दो भागोंके अन्तर्भुक्त हैं। जो सब रोग वायु, पित्त और कफ इन तीन दोषोंमेंसे पृथक् एक एक या मिलित दो अथवा तीन दोषसे उत्पन्न होते हैं, उन्हें दोषज कहते हैं। एक दोषके कुपित होनेसे वह दूसरे दोषको भी कुपित कर डालता है, इस कारण कोई भी रोग एक दोषज नहीं होता, यही साधारण नियम है। तब जो एक दो या तीन दोष रोगका प्रधान उत्पादक होता है, उसके अनुसार रोग भी एकदोषज, द्विदोषज या त्रिदोषज कहलाता है।

जो सब रोग अभिघात, अभिचार, अभिशाप और भूतावेश आदि कारणवशतः हठात् उत्पन्न होते हैं, उनका नाम आगन्तुक है। अपने अपने निदानानुसार दोष विशेषके कुपित हुए बिना दोषजरोगकी उत्पत्ति नहीं होती। किन्तु आगन्तुक रोगके आरम्भमें ही वेदना उत्पन्न होती है, पीछे उससे दोष विशेष कुपित होता है, यही दोनों प्रकारके रोगोंमें पृथक्ता है।

प्रकुपित वायु, पित्त और कफ यह त्रिदोष दोषज रोगोत्पत्ति विषयमें विप्रकृष्ट निदान है। विविध हितजनक आहार-विहारादि रूप निदान द्वारा ये तीन दोष कुपित हो कर रोगोत्पादन करते हैं। इसके सिवा कतिपय जन्यजन्य रोग और रोगविशेषका निदान होता है। जैसे—ज्वर सन्तापसे रक्तपित्त, रक्तपित्तसे ज्वर, ज्वर और रक्तपित्त इन दोनोंसे राजयक्ष्मा, प्लीहावृद्धिसे उदररोग, उदररोगसे शोथ, अर्शसे उदररोग वा गुल्म, प्रतिश्यायसे कास, काससे क्षयरोग तथा क्षयरोगसे धातुशोष आदि रोग उत्पन्न होते देखे जाते हैं। इन सब रोगोत्पादक रोगोंमेंसे कोई कोई रोग अन्य रोग उत्पादन करके भी स्वयं वर्तमान रहता है तथा कोई रोग अन्य रोगोत्पादन कर निवृत्त होता है।

रोगपरीक्षा।

रोग होनेसे पहले अच्छी तरह परीक्षा करनी होती है। परीक्षा करके पीछे उसकी यथाविधान चिकित्सा विधेय है। चिकित्साका प्रथम उपाय रोग परीक्षा है। अच्छी तरह रोगका पता न लगनेसे उसकी चिकित्सा हो नहीं सकती। अनिर्दिष्ट रोगका कोई भी औषध फलप्रद नहीं होता बल्कि उससे अनिष्ट ही होता है।

रोगपरीक्षाके शास्त्रमें तीन उपाय कहे गये हैं, शास्त्रोपदेश, प्रत्यक्ष और अनुमान। पहले रोगीसे कुल हालत सुन कर शास्त्रनिर्दिष्ट लक्षणके साथ उसे मिलाना होगा। पीछे अनुमान द्वारा रोगका आगन्तुक दोष और उसका बलाबल निश्चय कर लेना होगा। रोगीके निकट अवस्था जाननेके समय सभी इन्द्रिय द्वारा प्रत्यक्ष करना आवश्यक है। रोगीके वर्ण, आकृति, परिमाण अर्थात् क्षीणता या पुष्टता और कान्ति तथा मल, मूत्र, नेत्र आदि सभी देखने लायक विषय देख कर रोगीके मुखसे उसकी कुल हालत तथा अन्त्रकूजन, सन्धिस्थानोंमें या अंगुलियोंकी गिरहके स्फुटन आदि शारीरगत लक्षण सुनना आवश्यक है। पीछे गन्ध ठीक है या खराब हो गई है यह परीक्षाके लिये सर्वशरीरगत गन्ध तथा मल, मूत्र, मुख और भ्रान्त-पदार्थ आदिकी गन्ध सूंघ कर तथा सन्ताप और नाड़ीकी गति स्पर्श कर प्रत्यक्ष करना होता है। अग्निबल, शारीरिक बल, काल और व्यायाम आदि विषय कार्य विशेष द्वारा अनुमान करना होता है। क्षुधा, पिपासा, अरुचि, ग्लानि, निद्रा और स्वप्नदर्शन आदि रोगीसे पूछ लेना उचित है।

यदि दो या तीन रोगोंके मध्य कौन रोग हुआ है इसका पता न लगे तो पहले सामान्य औषधका प्रयोग करे। इससे उपकार या अपकार समझ कर रोगका निर्णय करना होगा। लक्षण विशेष द्वारा साध्यता, असाध्यता या याप्यता निश्चय करना होता है। रोगीके अरिष्टलक्षण उपस्थित होनेसे मृत्यु स्थिर करनी होती है। रोगीकी नाड़ी, मूत्र, नेत्र, जिह्वा आदिकी विशेष रूपसे परीक्षा करना आवश्यक है।

रोगोत्पादक दोष—सारे शरीरमें परिव्याप्त हो कर जो सब गूढ़ लक्षण दिखाई देते हैं उन्हें अरिष्टलक्षण

कहते हैं। यथार्थमें जिस किसी लक्षण द्वारा भावी मृत्युका अनुभव किया जा सकता है, उसीका नाम अरिष्ट चिह्न है। चिकित्सकको इस अरिष्ट चिह्नके प्रति विशेष लक्ष्य रखना चाहिये। यह अरिष्टलक्षण रोगभेदसे भिन्न भिन्न प्रकारका है। अरिष्टलक्षण दिखाई देनेसे रोगीके जीवनकी आशा नहीं रहती, किन्तु फिर भी रोगीका परित्याग करना उचित नहीं। जब तक रोगी जीता है तब तक उसकी चिकित्सा करनी चाहिये। किस किस रोगमें कैसा अरिष्टलक्षण दिखाई देनेसे रोगीकी मृत्युकी सम्भावना है उसका विषय वैद्यकशास्त्रमें इस प्रकार लिखा है—

अरिष्टलक्षण—शरीरके जो सब अङ्ग स्वभावतः जिस प्रकार रहते हैं उनकी अन्यथा होनेसे रोगीकी मृत्यु स्थिर करनी होगी। शुक्लवर्णकी कृष्णता, कृष्णवर्णकी शुक्लता, रक्त आदि वर्णोंका अन्य प्रकारका वर्ण होना, स्थिरकी अस्थिरता, अस्थिरकी स्थिरता, स्थूलकी कृशता इत्यादि प्रकारके स्वभावका विपरीत होनेसे अरिष्ट लक्षण स्थिर करने होते हैं। कहनेका मतलब यह कि शरीर या स्वभावकी कुछ भी विकृति होनेसे उसे अरिष्ट लक्षण कहा जाता है।

जिन सब रोगीके भोजन नहीं करने पर भी मलमूत्रकी वृद्धि या भोजन करने पर मलमूत्रका अभाव, स्तनमूल, हृदय या वक्षस्थलमें वेदना, किसी अङ्गका मध्यस्थल स्फीत और दोनों ओर कृश अथवा मध्यस्थल कृश और दोनों ओर स्फीत, अर्द्धाङ्गमें शोथ या सार, शरीर शुष्क तथा स्वर नष्ट, हीन, विकल या विकृत होना या दन्त, मुख, नख आदि स्थानोंमें विवर्ण पुष्पकी तरह चिह्न या दृष्टिमण्डलमें भिन्न प्रकारका विकृत रूप मालूम होना या अङ्ग तैलाभ्यङ्गकी तरह दिखाई देना, इत्यादि प्रकारको अरिष्ट चिह्न जानना होगा। अतिसार रोगमें अरुचि या दुर्बलता, कासरोगमें तृष्णाभिभूतता, क्षीणता, वमन, अरुचि, रक्तवमन, हाथ, पैर और मुंहका फड़कना आदि लक्षण विशेष अरिष्टजनक हैं।

असाध्य रोगका लक्षण—पहले लिखा जा चुका है, कि साध्य, असाध्य और याप्यके भेदसे रोग तीन प्रकारका है। साध्यरोगकी भी यदि अच्छी तरह चिकित्सा न की जाय, तो वह असाध्य हो जाता है। वातव्याधि, प्रमेह, कुष्ठ, अर्श, भगन्दर, अश्मरी, मूढ़गर्भ तथा उदरीरोग ये ८ प्रकारके रोग स्वाभाविक असाध्य हैं। बल और मांसक्षय, श्वास, तृष्णा, शोष, वमि और ज्वर ये सब उपद्रव या मूर्च्छा, अतिसार और हिक्का उपस्थित होनेसे रोग असाध्य होता है, जिस जिस रोगमें जो जो उपद्रव निर्दिष्ट हैं वे सब उपद्रव दिखाई देनेसे तथा प्रमेह रोगमें पित्तके अरिष्टकी तरह होने तथा अत्यन्त धातु गिरने और अतिशय यन्त्रणा होनेसे वह असाध्य है।

कुष्ठरोग—क्षत अङ्गका विदीर्ण हो कर रस निकलना, आंख लाल और स्वरभङ्ग होना तथा वमन, विरेचन, नस्य, निरूहवस्ति और उत्तरवस्ति इन पांच कर्मोंमें कोई फल न दिखाई देनेसे असाध्य तथा अर्शरोग, तृष्णा, अरुचि, अतिशय वेदना, बहुत रक्त गिरना, शोथ और अतिसार ये सब उपद्रव होनेसे, भगन्दररोगमें वायु, मूत्र, विष्ठा और शुक्र ये सब निकलनेसे, अश्मरीरोगमें नाभि और कोषके स्फीत होनेसे तथा पेशाब बंद और अत्यन्त वेदना होनेसे, मूढ़गर्भरोगमें गर्भकोषमें शूलवेदना, कुक्षिदेशमें रक्तके जमा होनेसे तथा योनिमुख समाच्छादित हो कर ये सब लक्षण दिखाई देनेसे वह असाध्य होता है। जो जो रोग जिस जिस उपद्रवसे असाध्य होता है वह उन्हीं शब्दोंमें लिखा जा चुका है।

रोग असाध्य होनेसे वह रोगीसे नहीं कहना चाहिये, बल्कि उसे सामान्य रोग कह कर आश्वासन देना उचित है। क्योंकि, रोगी यदि जीवनके प्रति हताश हो जाय, तो अनेक साध्य रोग भी असाध्य हो जाते हैं। रोगीके अनुगत, विश्वस्त और प्रिय व्यक्ति उसके पास रह कर आश्वासपूर्ण प्रियवाक्य द्वारा उसे संतुष्ट रखें। रोगीके निकट बहुत आदमियोंका रहना उचित नहीं। जो घर सूखा, साफ सुथरा हो और जिसमें हवा अच्छी तरह आती जाती हो, वैसे सुन्दर घरमें रोगीको रखना उचित है। रोगीका बिछावन सूखा और मुलायम रहे।

रोगके उत्पन्न होते ही उसकी यथाविधान चिकित्सा करे। दोष कम होने पर भी उसकी उपेक्षा करना उचित नहीं। क्योंकि रोग अल्प होने पर भी अग्नि, शत्रु और विषकी तरह विकार उपस्थित हो सकता है।

शरीर धारण करनेसे ही रोग भुगतना पड़ेगा, इसमें सन्देह नहीं। जिसे रोग हुआ है उसे रोगी कहते हैं। यह रोगी चिकित्स्य और अचिकित्स्यके भेदसे दो प्रकारका है। जिस रोगीकी प्रकृति, वर्ण और चक्षु आदि इन्द्रियां विकृत न हो कर स्वभावमें रहती हैं तथा जो रोगी सुख और दुःखजनक क्रियाओंसे विकृत नहीं होता और चिकित्सकका वाक्य एवं इन्द्रिय दमन करनेमें समर्थ होता है उसे चिकित्स्य रोगी कहते हैं। जो व्यक्ति अधिक क्रोधी, अविवेकी, डरपोक, व्याकुलचित्त, शोकाभिभूत, अनियमित इन्द्रियोंवाले तथा चिकित्सकके वाक्यानुसार न चल कर अपनी इच्छानुसार चलता है उसे अचिकित्स्य रोगी कहते हैं। अर्थात् चिकित्सक ऐसे रोगीकी चिकित्सा न करे। (सुश्रुत सूत्र०)

रोगकारक (सं० त्रि०) व्याधिजनक, बीमारी पैदा करनेवाला।

रोगकाष्ठ (सं० क्ली०) पत्राङ्गचन्दन, बकमकी लकड़ी।

रोगग्रस्त (सं० त्रि०) रोगसे पीड़ित, बीमारीमें पड़ा हुआ।

रोगघ्न (सं० क्ली०) रोगं हन्तीति हन्-टक्। १ औषध। (त्रि०) २ रोगनाशक, बीमारीको दूर करनेवाला।

रोगज्ञ (सं० पु०) रोगं जानातीति ज्ञा-क। वैद्य।

रोगज्ञान (सं० क्ली०) रोगविषयमें अभिज्ञता।

रोगद (सं० त्रि०) पीड़ादायक, दुःख देनेवाला।

रोगन (फा० पु०) १ तेल, चिकनाई। २ लाख आदिसे बना हुआ मसाला जिसे मिट्टीके बरतनों आदि पर चढ़ाते हैं। ३ चमड़ेको मुलायम करनेके लिये कुसुम या अरंडके तेलसे बनाया हुआ मसाला। ४ पतला लेप जिसे किसी वस्तु पर पोतनेसे चमक, चिकनाई और रंग आवे, वार्निश।

रोगनदार (फा० वि०) जिस पर रोगन किया गया हो, वार्निशदार।

रोगनाशक (सं० त्रि०) रोगहर, बीमारी दूर करनेवाला।

रोगनिदान (सं० क्ली०) रोगके लक्षण और उत्पत्तिके कारण आदिकी पहचान, तशखीस।

रोगनी (फा० वि०) रोगन किया हुआ, रोगनदार।

रोगपति (सं० पु०) रोगस्य पतिः। ज्वर। जो कोई कठिन रोग क्यों न हो, बिना ज्वरके वह प्रबल नहीं हो सकता। इसलिये ज्वरको रोगपति कहा है।

रोगपरिषह (सं० क्ली०) जब रोग होने पर कुछ ध्यान न करके उसका सहन।

रोगप्रद (सं० पु०) ज्वरदायक।

रोगभाज (सं० त्रि०) रोगं भजते भज-ण्वि। रोगयुक्त, रोगी।

रोगभू (सं० स्त्री०) रोगाणां भूः स्थानं व्याधिमन्दिरत्वात्। शरीर, देह।

रोगमार्ग (सं० पु०) रोगाणां मार्गः। शाखादि रोगायतन। यह रोगमार्ग तीन प्रकारका है, यथा—शाखा, मर्मास्थिसन्धि और कोष्ठ। इनमें शाखासे रक्तादि धातुसमूह और त्वक् समझा जाता है। यह बाह्यरोगमार्ग, मर्म अस्थिसन्धिस्थानके बीच रोगमार्ग तथा कोष्ठ अभ्यन्तर रोगमार्ग है। (चरक सूत्रस्था० ११ अ०) रोग देखो।

रोगमुक्त (सं० त्रि०) रोगात् मुक्तः। रोगसे मुक्त, बीमारीसे छुटकारा।

रोगमुरारि (सं० पु०) नवज्वराधिकारमें रसौषधविशेष। प्रस्तुत प्रणाली—पारा, गंधक, विष, सोहागा, हिङ्गु और तांबा प्रत्येक समभाग और मोथा अर्द्ध भाग ले कर पीस डाले और दो रत्तीकी गोलियां बनावें। अनुपान पान और अदरकका रस है। इसके सेवनसे नवज्वर शीघ्र ही प्रशमित होता है। (रसे०)

रोगराज (सं० पु०) रोगाणां राजा टच् समासान्तः। राजयक्ष्मरोग।

रोगलक्षण (सं० क्ली०) रोगाणां लक्षणं। निदानरोगज्ञापक चिह्न।

रोगविज्ञान (सं० क्ली०) रोगस्य विज्ञानं। जिन सब उपायोंसे रोगका कुछ ज्ञान होता है उसे रोगज्ञान कहते हैं। दर्शन, स्पर्श और प्रश्न इन तीन उपायोंसे रोगका ज्ञान होता है इसलिये यह तीन प्रकारका है। मूत्र और जिह्वा आदि देखने, नाड़ी आदि छूने और दुःख आदिको प्रश्न करनेसे सब मालूम होता है।

(भैषज्यरत्ना०) रोग देखो।

रोगविनिश्चय (सं० पु०) रोगस्य विनिश्चयं। १ रोगनिश्चय, रोगका निर्णय करना। २ माधवकृत रुग्विनिश्चायक ग्रन्थ।

रोगशान्तक (सं० पु०) रोगान् शान्तयतीति शान्ति-ण्वुल्। वैद्य, चिकित्सक। वैद्य रोगको शान्तिविधान करते हैं इसीसे उनका रोगशान्तक नाम हुआ। (शब्दच०)

रोगशान्ति (सं० स्त्री०) रोगमुक्ति, पीड़ाका अपनोदन।

रोगशिला (सं० स्त्री०) रोगाय रोगनिवृत्तये शिला। मनःशिला, मैनसिल।

रोगशिल्पिन् (सं० पु०) रोगे शिल्पीव। वृक्षविशेष, सोनालूका पेड़।

रोगश्रेष्ठ (सं० पु०) रोगेषु श्रेष्ठः। ज्वर।

रोगह (सं० क्ली०) रोगान् हन्तीति हन ड। औषध, दवाई।

रोगहृद्द्रव्य (सं० क्ली०) रोगहरं द्रव्यं। रोगनाशक वस्तु, वह वस्तु या चीज जिससे रोग विनष्ट हो।

रोगहारिन् (सं० पु०) रोगं हरति, हृ-णिनि। १ वैद्य। (त्रि०) २ रोगनाशक।

रोगहृत् (सं० त्रि०) रोगं हरति हृ क्विप् तुक् च। रोगनाशक।

रोगहेतु (सं० पु०) रोगस्य हेतुः। रोगका हेतु, बीमारीका कारण।

रोगाक्रान्त (सं० त्रि०) व्याधि-पीड़ित, रोगसे घिरा हुआ।

रोगातुर (सं० त्रि०) रोगसे घबराया हुआ, व्याधिसे पीड़ित।

रोगाधीश (सं० पु०) रोगस्य अधीशः। राजयक्ष्मरोग।

रोगार्त्त (सं० त्रि०) रोगसे दुःखी।

रोगासन (सं० पु०) ज्वर।

रोगाह्वय (सं० पु०) कुष्ठौषध, कुट।

रोगिणी (सं० त्रि० स्त्री०) रोगिन देखो।

रोगित (सं० त्रि०) १ पीड़ित, रोगयुक्त। (पु०) २ कुत्तेका पागलपन।

रोगितरु (सं० पु०) रोगिणां शोकनाशकस्तरुः अशोकवृक्ष।

रोगिन् (सं० त्रि०) रोगोऽस्यास्तीति रोग इनि। रोगयुक्त, पीड़ित। पर्याय—व्याधित, विकृत, ग्लान, म्लान, मन्द, आतुर, अभ्यान्त, अभ्यमित, रुग्न, सामय, अपटु, आमयावी, ग्लास्नु।

रोगिया (हिं० पु०) रोगी, बीमारी।

रोगिवल्लभ (सं० क्ली०) रोगिणां वल्लभं प्रियं। १ औषध। (त्रि०) २ रोगिप्रिय।

रोगोदक (सं० क्ली०) रोगजनक उदकं। मैला दुर्गन्धादियुक्त रोगजनक जल।

रोग्य (सं० त्रि०) १ अपथ्य, अहित। २ रोगसम्बन्धी।

रोच (सं० त्रि०) रुच्-घञ्। १ रुचिकर। २ आलोकित, देखा हुआ। (अथर्व १७।१।२१) (पु०) ३ राजभेद, एक राजाका नाम।

रोचक (सं० पु०) रोचयतीति रुच-णिच्-ण्वुल्। १ क्षुधा, भूख। पर्याय—बुभुक्षा, अशना, जिघत्सा, रुचि। (हेम) २ कदली, केला। ३ राजपलाण्डु। ४ मवदंश, गजक। ५ एक प्रकारकी ग्रन्थिपर्णी। इसे नेपालमें 'भंडेउर' कहते हैं। इसका पर्याय—निशाचर, धनहर, कितव, गणहासक। गुण—मधुर, तिक्त, कटु, लघु, तीक्ष्ण, हृद्य, शीतल, कण्डु, कुष्ठ, कफ, वायु, स्वरभेद, अस्रज्वर, विष और व्रणनाशक। (भावप्र०) ६ काचकुप्यादिकारक, कांचकी कुप्पी या शीशी बनानेवाला। (त्रि०) ७ रुचिकारक, रुचनेवाला। ८ मनोरञ्जक, दिलचस्प।

रोचकता (सं० स्त्री०) रोचक होनेका भाव, मनोहरता।

रोचकद्वय (सं० क्ली०) लवणद्वय, विट् लवण और सैंधव लवण। (वैद्यकनि०)

रोचकिन् (सं० त्रि०) १ क्षुधायुक्त, जिससे भूख लगी हो। २ इच्छाशील, इच्छा करनेवाला।

रोचन (सं० पु०) रोचयतीति रोचि-नन्द्यादित्वात् ल्यु। १ कूटशाल्मलि, काला सेमर। २ काम्पिल्ल, कमीला। ३ श्वेत शिग्रु, सफेद सहिजन। ४ पलाण्डु, प्याज। ५ आरग्वध, अमलतास। ६ करञ्ज, कंजा। ७ अङ्कोट, ढेरा। ८ दाड़िम, अनार। ९ रोगोंके अधिष्ठाता, एक प्रकारके देवता। (हरि० १६६।७५) १० विष्णुके औरससे दक्षिणाके पुत्रोंमेंसे दूसरा। ये स्वायम्भुव मन्वन्तरके एक देवता हैं। (भागवत ४।१।७) ११ स्वारोचिष मन्वन्तरके इन्द्र। (भाग० ८।१।२०) १२ भारतवर्षके अन्तर्गत एक

एक ग्रहका नाम। (मार्क० पु० ५२.१३) १३ कामदेवके पांच बाणोंमेंसे एक। १४ भागवतपुराणोक्त एक राजाका नाम। (भाग० ९।६।२) १५ रोचनी, रोचना। १६ रोचिकता। (त्रि०) १७ रोचक, रुचनेवाला। १८ दीप्तिशाली, शोभा देने- वाला। "तत्रैकस्य रोचकं मालतीनां महत्तरं धर्मविनाश- संज्ञं।" (देवीभा० ११।८।१२४) १९ शोभायमान, सुहावने- वाला। २० अनुराग कर दिव लगानेवाला। २१ स्वाद।

रोचक (सं० पु०) रोचयतीति रोचि-ण्वुल्, ततः स्वन्। १ मदीर, खेरीकी भांति। २ क्षुधाजनको, भूखकारा। ३ धनुर्वेदोक्त। ४ रोचक रोग।

रोचकफल (सं० पु०) रोचकं रुचिकरं फलमस्य। बीज- पूरक, बिजौरा नींबू।

रोचनफला (सं० स्त्री०) रोचनं रोचकं फलमस्याः। चिचिंडा, ककड़ी।

रोचनका (सं० स्त्री०) १ क्सौलीमें अपकव्याकरारी, यह सो प्रकारमें रहता है। २ कानमें बात करनेवाला।

रोचना (सं० स्त्री०) रोचते या रुच् (अनुदात्तेतश्च। उण्, २।७८) इति युच् टाप्। १ रक्तकमल, लाल कमल। २ गोचिन। ३ गोरोचना। ४ वर्णोपेत्र। ५ पुराणा- नुसार वसुदेवकी स्त्री। (भाग० ९।२४।४५) ६ आकाश, स्वर्ग। ७ कुलक्षणाजननी, काला सेमर। ८ वंशलोचन। ९ एक पर्वतका नाम। (जैन हरि० ५।२०७)

रोचनामुख (सं० पु०) एक दैत्यका नाम। (भाग० ६।१६।४५)

रोचमान (सं० त्रि०) मनोहरगुण, उज्ज्वल।

रोचनिका (सं० स्त्री०) रोचयति स्वार्थे कन्, टापि अत इत्वं। १ वंशलोचना। २ गुरुजात्यका, कगेरला।

रोचनी (सं० स्त्री०) रोचते इति रुच् 'अनुदात्तेतश्च हलादेः' इत्युच् ङीप्। १ आमलकी आंवला। २ गोरो- चना। ३ मनःशिला, मैनसिल। ४ लाल निसोथ, कबीर विशेष। ५ मुरदारसंग, कबीला। पर्याय— कम्पिल, कर्कश, चन्द्र, रक्ताङ्ग, रञ्जक, कालिन्द, कालिन्दी, रेचनी। (भाव०) ६ दन्ती। ७ रोचिमान, प्रकाश। (ऋग्वेद ९।१०७।२८) ८ शालक, आदा। ९ रागभेद।

रोचमान (सं० पु०) रोचते इति रुच् शानच्। १ अश्वग्रीवा विकल, रैंनाकमें, जिन्होंने सस्करके एक अंशको। कुरु- क्षेत्र। (भाग० ६।१०।२८) ३ स्कन्दके एक अनुचरका नाम। (त्रि०) ४ दीप्यमान, चमकीला।

रोचि (सं० स्त्री०) १ दीप्ति, प्रभा। २ प्रकट होनेवाली शोभा। ३ रश्मि, किरण।

रोचित (सं० त्रि०) शोभित।

रोचिन् (सं० त्रि०) रोचते इति रुच णिनि। रोचिष्णु, सामुद्रको आदिसे शोभायमान हुआ।

रोचिम् (सं० पु०) पुराणानुसार विभावसुके एक पुत्रका नाम। (भागवत ६।६।१६)

रोचिष्णु (सं० त्रि०) रोचते तच्छीलः रुच् (भ्राजभासि- इष्णुच्। पा ३।२।१३६) इति इष्णुच्। १ अलंकारादि द्वारा शोभमान हुआ। पर्याय—दिद्युत्, भ्राजिष्णु। २ क्षुधाकारक। ३ रोचक, रुचनेवाला।

रोचिस् (सं० क्ली०) रोचतेऽनेनेति रुच् बाहुलकात् इसिन्। (उण् २।११२) प्रभा, दीप्ति, चमक।

रोची (सं० स्त्री०) रोचते इति रुच-इन्, वा ङीप्। हिल- मोचिका।

रोच्य (सं० त्रि०) रुच् ण्यत् (चजोः कुघिण्ण्यतोः। पा ७।३।५२) इति कवर्गादेशो न। १ प्रकाश्य। २ प्रीतिविषय।

रोज़ (फा० पु०) १ दिन, दिवस। (अव्य०) २ प्रति दिन, नित्य।

रोज़ आफ़ताब (मासिक)—सम्राट् मुहम्मदशाहके शासन- काल एक अखबार। ये मुगल समय भारतमें प्रसिद्ध थे। इन्होंने १७४८ ई०में दिल्लीके निकटवर्ती शाहजहानाबाद- में 'रोज़ मासिक' नामकी एक प्रसिद्ध संवाद-पत्रिका बन- वाई थी।

रोज़गार (फा० पु०) १ जीविका या धन संचयके लिये हाथमें लिया हुआ काम जिसमें कोई बराबर लगा रहे, व्यवसाय, धंधा। २ कल विकरका आयोजन, तिजारत।

रोज़गारी (फा० पु०) व्यापारी, सौदागर।

रोज़नामचा (फा० पु०) १ वह किताब या बही जिस पर रोजका किया हुआ काम लिखा जाता है, दिनचर्याकी पुस्तक। २ प्रति दिनका जमा खर्च लिखनेकी बही, कच्चा चिट्ठा।

रोजमर्रा (फा० अव्य०) १ प्रति दिन, हर रोज। (पु०) २ नित्यके व्यवहारमें आनेवाली भाषा, बोलचाल।

रोजविहान् (शेख)—एक मशहूर मुसलमान पंडित और साधु। इन्होंने तफशीर आरायस नामकी कुरानकी टीका और सफयत् अल मसारिय् आदि कितने ग्रन्थ लिखे। १२०६ ई०में ये करालकालके गालमें पतित हुए।

रोज़ा (फा० पु०) १ व्रत, उपवास २ वह व्रत जो मुसलमान रमज़ानके महीनेमें ३० दिन तक रहते हैं और जिसका अन्त होने पर ईद होती है।

रोज़ाना (फा० क्रि० वि०) प्रति दिन, हर रोज।

रोज़ी (फा० स्त्री०) १ रोज़का खाना, नित्यका भोजन। २ एक प्रकारका पुराना कर या महसूल जिसके अनुसार व्यापारियोंके चौपायोंको एक दिन राज्यका काम करना पड़ता था। ३ वह जिसके सहारे किसीको भोजन वस्त्र प्राप्त हो, काम धंधा जिससे गुजर हो।

रोज़ी (हिं० स्त्री०) गुजरातमें होनेवाली एक प्रकारकी कपास। इसके फूल पीले होते हैं।

रोज़ीदार (फा० पु०) वह जिसको रोज़ाना खर्चके लिये कुछ मिलता है।

रोज़ीना (फा० पु०) १ रोज़का, नित्यका, । २ प्रतिदिनकी मजदूरी, वेतन या वृत्ति आदि।

रोज़ीबिगाड़ (फा० पु०) लगी हुई रोज़ीको बिगाड़नेवाला, जम कर कोई काम धंधा न करनेवाला।

रोझ (हिं० स्त्री०) गवय, नीलगाय।

रोझन—पञ्जावप्रदेशके डेरा गाज़ी खाँ जिलान्तर्गत एक नगर। यह अक्षा० २८°४१´ उ० तथा देशा० ६९°५८´ पू०के मध्य सिन्धुनदके बायें किनारे अवस्थित है। जनसंख्या ९ हजारसे ऊपर है। मजारी बलूच जातिके सरदार बेहरामखाँने १८२५ ई०में इस नगरको बसाया। वर्त्तमान सरदार द्वारा प्रतिष्ठित विचारगृह और उसके पिता तथा भतीजेका मकबरा देखने लायक है। पशमी रंग या आच्छादन वस्त्रके लिये यह स्थान प्रसिद्ध है।

रोझी—बम्बई-प्रदेशके काठियावाड़ विभागके नवानगर राज्यके अन्तर्गत एक द्वीप। यह कच्छउपसागरकी नवानगर खाड़ीके मुहाने पर नवानगरसे ४ कोस उत्तरमें अवस्थित है। यहां चारण-रमणीके उद्देशसे स्थापित एक मन्दिर है। कहते हैं, कि एक दिन नागरराज शिकार खेलने जंगल गये। वहां उन्होंने एक नीलगाय देख कर उसका पीछा किया। नीलगाय बड़ी तेजीसे भाग कर उसी चारण-रमणीके आश्रममें घुस गई। राजा भी उसका पीछा करते हुए वहां पहुंचे। वृद्धा चारण-रमणीको जब मृग दिखला देने कहा गया, तब वह बोली, 'आप चाहें मेरी गरदन ले लें, पर मैं उस आश्रित मृगको नहीं दे सकती।' इस पर राजाने मृगको बाहर निकाल कर मार डाला। वृद्धासे यह अन्याय देखा न गया, उसने राजाको शाप दे कर आत्महत्या कर ली। उसकी अक्षयकीर्त्तिका स्मरण रखनेके लिए समुद्रके किनारे जहां उसका आश्रम था एक मन्दिर बनवा दिया गया। यहां जो आलोकभवन है उसे १८६७ ई०में नवानगरके राजाने बनवाया था। आकाश परिच्छन्न रहने पर समुद्रके किनारेसे ७ मील दूरसे इसकी रोशनी दिखाई देती है।

रोट (सं० त्रि०) रुट (अन्येभ्योऽपि दृश्यते। पा ३।२।७५) इति विच्। हिंस्र, हिंसा करनेवाला। २ वधक, मारनेवाला।

रोट (हिं० पु०) १ गेहूंके आटेकी बहुत मोटी रोटी, लिट्ट। २ मीठी मोटी रोटी या पूआ जो हनुमान आदि देवताओंको चढ़ाया जाता है।

रोटकप्रत (सं० पक्ली०) मतभेद। (मतप्रकाश)

रोटरा (हिं० पु०) बाजरा।

रोटास (रोहितास)—पञ्जावप्रदेशके झेलम जिलान्तर्गत एक गिरिदुर्ग। लवण पर्वतके जिस स्थानसे कुहान नदी निकली है उसके समीपवर्त्ती एक शैलशृङ्ग पर यह अक्षा० ३२° ५५´ उ० तथा देशा० ७३° ४८´ पू०के मध्य अवस्थित है।

अफगान सरदार शेरशाहने जिस समय हुमायूंको भगा कर दिल्लीका सिंहासन अपनाया था उसी समय अर्थात् १५४० ई०में उसने गक्कर जातिका दमन करनेके अभिप्रायसे यह दुर्ग स्थापन किया। उस गिरिपथके सामने अवस्थित एक शैलशृङ्गको परिवेष्टित कर उसने दुर्गके चारों ओर प्रायः ३ मील विस्तृत एक लंबी दीवार खड़ी कर दी। उस दीवारको मजबूत रखनेके लिये जहां तहां उसकी मोटाई ३०से ४० फुट तक कर दी गई है। इसका प्रवेशद्वार आज भी ज्योंका त्यों दिखाई देता है।

किन्तु दुःखका विषय है, कि मोगलसम्राटोंने मन्दिरको चूर्णविचूर्ण कर दिया है। इस सुशोभित पूर्ण मूर्तिका परिमाण करीब २६० वर्ष हुआ। इस स्थानका प्राकृतिक चित्र बड़ा ही मनोरम है।

रोहतासगढ़ (रोहित स)—शाहाबाद जिलान्तर्गत एक गिरिदुर्ग। यह अक्षा० २४° ३७' उ० तथा देशा० ८३° ५५' पूर्वके मध्य ससेराम शहरसे ३० मील दक्षिणमें अवस्थित है। जनसंख्या २ हजारके करीब होगी।

शाहाबाद जिलेमें जगह जगह प्राचीन कीर्त्तिके अनेक निदर्शन रहने पर भी प्रत्नतत्त्वविदोंके लिये ऐसा स्थान और कहीं भी नहीं है। इस स्थानके प्राचीनत्वके सम्बन्धमें अनेक किंवदन्तियां प्रचलित हैं सही, पर वर्तमान दुर्गसे ही उसकी प्राचीन कीर्त्तिका स्पष्ट आभास मिलता है। सूर्यवंशावतंस राजा हरिश्चन्द्रके पुत्र रोहिताश्वके नामानुसार इस स्थानका नाम रोहिताश्वगढ़ हुआ था। पीछे मुसलमानोंने अपनी इच्छासे नाम बदल कर रोहतासगढ़ रखा गया। यहां रोहिताश्वकी मूर्ति प्रतिष्ठित थी। स्थानीय लोग भक्तिपूर्वक उस मूर्तिकी उपासना करते थे। बादशाह औरङ्गजेबने रोहतासगढ़को जीत कर मन्दिर नष्ट कर डाला।

उपरोक्त रामायण पुराणोंके भविष्यत् महाराज हरिश्चन्द्रसे उस वंशके किसी राजेने इस दुर्गनिर्माणकी स्थापना करते आ रहे थे, उसका कोई विवरण नहीं मिलता। ऐतिहासिकोंके १५३९ ई०में शेरशाहने इस स्थानको जीत कर दुर्गसंस्कार करना चाहा, किन्तु कुछ समय बाद ही वह उस स्थानका परित्याग कर रोहतासमें दुर्ग बना कर रहने लगे। बादशाह अकबर शाहके सेनापति और बङ्गालके शासनकर्त्ता राजा मानसिंहने १६वीं शताब्दीके शेष भागमें यह दुर्ग मजबूत करके यहां सेनादल रख दिया था। वे इस दुर्गका संस्कार कर और नये नये प्रासादवाटिका बनवा गये हैं। इनके प्रासादमें संस्कृत और फारसी भाषामें लिखे हुए दो शिलालेख हैं उनसे ऐतिहासिक विवरण जाना जाता है।

रोहतासगढ़ सोनके किनारे कैमूरपर्वतश्रेणीकी एक समतलभूमिके ऊपर निर्मित है। यह पूर्व-पश्चिममें ४ मील और उत्तर-दक्षिणमें ५ मील विस्तृत होगा। उसकी परिधि प्रायः २८ मील होगी। १८४८ ई०में डा० बुकानने इस स्थानकी ऊंचाई १४९० फुट स्थिर कर गये हैं।

इस पर्वत पर चढ़नेके ८३ घाटे हैं। उनमेंसे ४ बड़ा घाट और ७९ घाटी कहलाता है। दुर्गप्रतिष्ठाके समय जितनी प्राचीन कीर्त्तियां दिखाई देती हैं, उनमेंसे मानसिंहके प्रतिष्ठित दो हिन्दूमन्दिर, औरङ्गजेबकी बनाई मसजिद, महल्सराय नामक प्रासाद और 'बारहदरी' नामक राजकार्यालय स्थापत्य शिल्पका उत्कृष्ट निदर्शन है।

भविष्यब्रह्मखण्डमें गयाके अन्तर्गत रोहिताश्वनगरका उल्लेख है। भौगोलिक विवरणानुसार यह स्थान रोहतासगढ़के जैसा प्रतीत होता है। (भवि० ब्र० ३।३६०)

रोटिका (सं० स्त्री०) पिष्टकविशेष, रोटी। यह मैदा, बेसन, चने आदिकी बनाई जाती है। साधारणतः रोटी कहनेसे गेहूंकी ही रोटी समझी जाती है। भावप्रकाशमें रोटी बनानेका तरीका इस प्रकार लिखा है—सूखे गेहूंको चूर कर उसमें गूंधो। पीछे मोटी मोटी लोई बना कर उसे हाथसे चपटा करे। अनन्तर थोड़ेसे आगमें सेंक सेंकसे यह तैयार होती है। इसका गुण बलकारक, रुचिप्रद, अतिशय प्रमाणकारक, धातुवर्द्धक, वायुनाशक, और गुरु है। जिन व्यक्तियोंकी अग्नि प्रबल है उनके लिये यह विशेष उपकारी है।

मोटी रोटी—मोटी चूर कर उक्त प्रणालीसे रोटी बनाई जाती है, इसीको मोटी रोटी कहते हैं। इसका गुण बलिकर, मधुरस, गुरु, धातुवर्द्धक, गुरु और वातनाशक, कफकारक तथा कफरोग, पीनस, श्वास, कास, मेह, प्रमेह और मलविनाशक माना गया है।

उड़दकी रोटी—पूर्ण उड़दके आटेको मलते कहते हैं। इस मलनीसे जो रोटी बनाई जाती है उसे बल अड़िका या उड़दकी रोटी कहते हैं। इसका गुण गुरु, उष्णवीर्य, धातुवर्द्धक और बलकारक है। यह प्रसवान्त प्रसूतियोंके लिये हितकर है। उड़दको कुछ देर भिगो कर उसको चूर्ण पीस दे। पीछे उसे पूरी पूरा कर मोटी रोटी घीमें पूरियां कहते हैं। इन पूरियोंकी रोटी कह और स्निग्धता तथा कुछ वायुवर्द्धक है। इन रोटियोंका नाम कचौरियां है।

चनेकी रोटी रूखी, कफ और रक्तपित्तनाशक, भारी, विष्टम्भी तथा नेत्रोंको तकलीफ देनेवाली होती है। तिलकी रोटीमें भी वही सब गुण हैं।

रोटी (हिं० स्त्री०) १ गुंधे हुए आटेको आंच पर सेंकी हुई लोई या टिकिया। यह नित्यके खानेके काममें आती है। इसे फुलका भी कहते हैं। २ भोजन, रसोई।

रोटीफल (हिं० पु०) १ फल जो खानेमें बहुत अच्छा होता है। २ इस फलका पेड़ जो मझोले आकारका होता है और दक्षिणमें मन्द्राजकी ओर होता है। इसके पत्ते बड़े बड़े होते हैं।

रोडा (हिं० पु०) वाजरेकी एक जाति।

रोड़ (सं० त्रि०) १ तृप्त, संतुष्ट। २ क्षोद, चूर्ण किया हुआ।

रोड़—पञ्जाब और युक्तप्रदेशवासी कृषिजीवि जातिविशेष। पञ्जावके कर्नाल और अम्बाला जिलेके सोमान्तवर्त्ती तथा थानेश्वरके दक्षिणस्थ सुविस्तृत धाकजङ्गल प्रदेशमें इन लोगोंका वास है। भारतयुद्धके समय पाण्डवोंने कुरुकुलका समूल निर्मूल करनेकी आशासे जहां सेना इकट्ठी की थी वही आमरीन ग्राम इन लोगोंकी आदि वासभूमि है। इस स्थानसे ये लोग धीरे धीरे पश्चिम यमुनाखालके किनारे निम्न कर्णाल और झिन्द आदि नाना जिलोंमें जा कर बस गये हैं।

ये लोग मजबूत और सुडौल होते हैं। जाट और इनमें प्रभेद केवल इतना ही है, कि ये शान्त, नम्रप्रकृतिके और कृषिकार्यनिरत है। जाट जातिकी तरह ये लोग युद्धप्रिय वा परस्वापहारी नहीं होते।

इनकी उत्पत्तिके सम्बन्धमें कोई विशेष वंशोपाख्यान नहीं है। अरोड़ा (पूर्वपञ्जाबप्रदेशमें रोड़ा नामसे प्रसिद्ध) लोगोंकी तरह ये लोग भी अपनेको क्षत्रिय बतलाते हैं। परशुरामके भयसे इन लोगोंने 'आउर' (दूसरी) जाति कह कर परित्राण पाया था। इस कारण तभीसे इनकी एक स्वतन्त्र जातिमें गिनती हुई है। युक्तप्रदेशके अरोड़ा और पञ्जावके पूर्वाञ्चलवासी रोड़ासे थानेश्वरप्रान्तवासी रोड़ा सम्पूर्ण पृथक् जाति है, इसका कोई विश्वस्त प्रमाण नहीं मिलता। पाश्चात्य जातितत्त्वविदोंने पूर्वाञ्चलवासी रोड़ाजातिसे पश्चिम पञ्जाववासी रोड़ोंको अपेक्षाकृत मजबूत देख कर दोनोंको पृथक् जाति बतलाया है; किन्तु दोनोंके आचार आदि देखनेसे वे एक समझे जाते हैं। सामाजिक आचारमें जाटोंके साथ इनकी कोई विशेष पृथक्ता नहीं है।

मुरादाबादी आमोन ग्रामके रोड़ोंका कहना है, कि ये लोग भी स्थानीय चौहान राजपूतोंकी एक शाखा हैं और सम्भलसे यहां आ कर बस गये हैं। दूसरे रोड़ कहते हैं, कि रोहतक जिलेके झाझर तहसीलका बदली ग्राम ही इन लोगोंका आदि वासस्थान है। फिर कोई कोई राजपूतानेको अपना आदि स्थान बतलाते हैं।

इन लोगोंमें सागवाल, माइग्ना, जीवो और जगरान आदि कई थोक हैं। विधवा विवाह चलता है।

शाहरानपुरके रोड़ोंका कहना है, कि भारतयुद्धके समय श्रीकृष्णने योगबलसे कैथलग्राममें इनकी सृष्टि की थी। इन लोगोंको विवाहप्रथा जाट और गुजरजातिसी है; विधवाविवाह चलता है। विधवा देवरसे ही विवाह करती है। ये लोग मछली, मांस, बकरे और सूअरका मांस खाते हैं।

इनमेंसे कोई कोई दल अपनेको तोमर राजपूतवंशका बतलाता है। दिल्लीके तोमर-राजवंशका प्रभाव ह्रास होने पर वे लोग नाना स्थानोंमें जा कर बस गये। कोई कोई कहते है, कि मुगल बादशाह औरङ्गजेबके शासनसे उत्पीड़ित हो ये लोग दूसरी जगह जा कर बस गये हैं।

बिजनोर रोड़ कहते हैं, कि ये लोग श्रीरामचन्द्रके पुत्र कुशके वंशधर हैं। शत चार सदी पहले ये लोग कर्नाल जिलेके फतेपुर पुण्डो नामक स्थानसे यहां आये हैं। इस ग्राममें सैयदोंका वास था। आगे चल कर सैयद और रोड़ोंमें विवाद खड़ा हुआ। रोड़ अपने दलपति महोचांदके अधीन अम्थल जा कर बस गये।

ये लोग विवाह तथा दूसरे दूसरे क्रियाकलापादि सम्भ्रान्त हिन्दूके जैसे करते हैं। विधवा देवरसे विवाह कर सकती है, किन्तु यह विधवाके इच्छाधीन है। स्त्रीचरित्रके सम्बन्धमें संदेहजनक प्रमाण मिलने पर जातीय सभासे उसे जातिच्युत करनेकी व्यवस्था है, किन्तु

पर्व्वोपयोगका कोई नियम नहीं है। कभी कभी अपने समासमें अर्थगौरव दे कर यह व्यञ्जनामें रह जाती है।

रोड़ा (हिं॰ पु॰) १ ईंट या पत्थरका बड़ा ढेला, बड़ा कंकड़। २ एक प्रकारका पंजाबी धान जो बिना सींचे उत्पन्न होता है।

रोढ़ (सं॰ त्रि॰) उद्गमनीय, उत्पन्न होनेवाला।

रोण—१ बम्बईप्रदेशके धारवाड़ जिलान्तर्गत एक तालुक। यह अक्षा॰ १५° ३०′ से १५° ५०′ उ॰ तथा देशा॰ ७५° २१′ से ७६° २′ पू॰के मध्य अवस्थित है। भूपरिमाण ४३२ वर्गमील और जनसंख्या लाखसे ऊपर है। इसमें ५ शहर और ८४ ग्राम लगते हैं। इस तालुकमें दक्षिण-महाराष्ट्र रेलवेके मालूर और मल्लापुर नामक स्थानमें दो स्टेशन हैं।

२ उक्त तालुकका एक प्रधान नगर। यह अक्षा॰ १५° ४२′ उ॰ तथा देशा॰ ७५° ४४′ पू॰के मध्य धारवार शहरसे ५५ मील उत्तर पूर्वमें अवस्थित है। जनसंख्या ७ हजारसे ऊपर है। यहां काले पत्थरके बने ७ प्राचीन मन्दिर हैं। इनमेंसे एक मन्दिरमें उत्कीर्ण शिलालिपि पढ़नेसे मालूम होता है, कि ये सब मन्दिर ११८० ई॰में बनाये गये हैं।

रोणाहि—अयोध्याप्रदेशके फैजाबाद जिलान्तर्गत एक नगर। यह घाघरा नदीके तट पर अवस्थित है। यहां पांच हिन्दू और पांच जैन मन्दिर हैं। अयध-रोहिलखण्ड रेल पथ इस नगरको बगल हो कर दौड़ गया है।

रोणीक (सं॰ स्त्री॰) एक देशका नाम। (पा ४।२।१४१)

रोणीकीय (सं॰ पु॰) उक्त देशका मनुष्य।

रोद (सं॰ पु॰) १ क्रन्दन, रोना। २ शोक प्रकाशकरण, दुःख जाहिर करना।

रोदःकुहर (सं॰ क्ली॰) स्वर्गमण्डल, आकाशका अन्तराल।

रोदन (सं॰ क्ली॰) रुद-ल्युट्। १ क्रन्दन, रोना। क्योंकि रोदन ही बल है।

"दुर्बलस्य बलं राजा बालानां रोदनं बलम्।
बलं मूर्खस्य मौनित्वं चौरस्यानृतवं बलम्॥"

(चाणक्य १२)

२ अश्रुकलिका धेनु यदि क्रन्दन करे, तो उसके मालिकका मरण अवश्य होता है। मृत व्यक्तिके लिये नहीं रोना चाहिए। रोनेसे उसके नरक होता है। इसलिये रोना शास्त्रमें निषिद्ध कहा है।

"शाखिनो मा दहन्त्येव मा रोदी पुत्र शाश्वतम्।
रोदनाश्रुप्रपातात् मृतानां नरकं ध्रुवम्॥"

(ब्रह्मवै॰पु॰ गणपतिख॰ २७ अ॰)

"श्लेष्माश्रुबान्धवैर्मुक्तं प्रेतो भुङ्क्ते यतोऽवशः।
अतो न रोदितव्यं हि क्रियाः कार्या विधानतः॥"

(शुद्धितत्त्व)

रोदनिका (सं॰ स्त्री॰) रोदनं अश्रु पातयत्यनेनास्यमिति, रोदन ठन्। यवास।

रोदनी (सं॰ स्त्री॰) रुद्यतेऽनयेति रुद्-करणे-ल्युट् ङीप्। दुरालभा, जवासा।

रोदस (सं॰ क्ली॰) रुद्-असुन्। १ स्वर्ग। २ भूमि।

रोदसिप्रा (सं॰ त्रि॰) स्वर्ग और मर्त्यका पूरणकारी।

"यावा पृथिव्योः पूरयितृ" (ऋक् १।८८।५ सायण)

रोदसी (सं॰ स्त्री॰) रोदस् गौरादित्वात् ङीष्। १ स्वर्ग। २ भूमि।

रोदस्य (सं॰ क्ली॰) रोदसी देखो।

रोदा (हिं॰ पु॰) १ कमानकी डोरी, धनुषकी पतंचिका। २ सितारके परदे बांधनेकी बारीक तांत।

रोदितव्य (सं॰ क्लो) रुद तव्य। रोदनीय, रोने लायक।

रोद्ध (सं॰ त्रि॰) रुध तृण्। रोधकारी, रोकनेवाला।

रोद्धव्य (सं॰ त्रि॰) रुध-तव्य। रोधनीय, रोकने योग्य।

रोध (सं॰ पु॰) रुणद्धि जलमिति रुध पचाद्यच्। १ किनारा, तट। रुध-घञ्। २ रोधन, रुकावट। ३ बाधा।

रोधक (सं॰ त्रि॰) रुणद्धीति रुध ण्वुल्। रोधकर्त्ता, रोकनेवाला।

रोधकृत् (सं॰ त्रि॰) रोधं करोति कृ क्विप् तुक् च। १ रोध-कर्त्ता, रोकनेवाला। (पु॰) २ साठ संवत्सरोंमेंसे पैंतालीसवां संवत्सर। (संवत्सर देखो)

रोधवक्र (सं॰ त्रि॰) रोधवक्रोस्यास्ति स्यमति वायु। नदीके किनारेका हद या भंवरी।

रोधन (सं॰ त्रि॰) रुणद्धीति रुध ल्यु। १ रोधकर्त्ता, रोकनेवाला। (क्ली॰) रुध भावे ल्युट्। २ रोध, रुकावट। ३ दमन।

रोधवक्रा (सं० स्त्री०) रोधसे वक्रा । नदी ।

रोधस् (सं० क्ली०) रुणद्धि वार्यादिकमिति रुध (सर्वधातुभ्योऽसुन । उण् ४।१८८) इति असुन् । नदीतीर, नदीका किनारा ।

रोधस्वत् (सं० त्रि०) १ उभयकूलयुक्त । (पु०) २ नदी । (ऋक् १।३८।११)

रोधस्वती (सं० स्त्री०) नदी । (भागवत ५।१९।१८)

रोधिन् (सं० त्रि०) १ रोधनशील, रोकनेवाला । (पु०) २ वृक्षभेद ।

रोधोवक्रा (सं० स्त्री०) रोधसा वक्रा । नदी ।

रोधोवती (सं० स्त्री०) रोधोऽस्त्यस्याः रोधस्-मतुप् ङीप् । नदी ।

रोधोवप्र (सं० पु०) वेगवान् नद ।

रोध्य (सं० त्रि०) रोधयोग्य, रोधनीय ।

रोध्र (सं० क्ली०) रुध्यतेऽनेन रुध बाहुलकात् रन् । १ अपराध, कसूर । २ पाप । ३ लोध्र, लोध ।

रोध्रपुष्प (सं० पु०) रोध्रस्येव पुष्पमस्य । १ मधूकवृक्ष, महुएका पेड़ । (क्ली०) २ रोध्रफूल, लोधका फूल । ३ चक्रयुक्त सर्पभेद, एक प्रकारका सांप जिसके ऊपर चक्र-सा दाग हो ।

रोध्रपुष्पक (सं० पु०) १ लोधका फूल । २ शालिधान्य, शालि धान । ३ सर्पजातिभेद, एक प्रकारका सांप ।

रोध्रपुष्पिणी (सं० स्त्री०) रोध्र इव पुष्यतीति पुष्प णिनि ङीप् । धातकीवृक्ष, धौका पेड़ ।

रोध्रयुग्म (सं० क्ली०) शावर और पट्टिका नामक दो प्रकारका लोध ।

रोध्रशूक (सं० पु०) रोध्रपुष्पकार शूकशालि, लोधके फूलके आकारका जौ । (वाभट्ट० ६ अ०)

रोध्रादिगण (सं० पु०) लोध आदि करके गणभेद । द्विविध लोध्र, पलाश, कृष्णशाल्मली, सरलकाष्ठ, कट्फल, कदम्ब, अशोक, एलवालु, परिपेलव और मोचा ये सब रोध्रादिगण हैं । इसका गुण—मेद, कफ और योनिदोषनाशक, पुरीषादिका स्तम्भन, वर्ण्य और विषनाशक । (वाभट सूत्रस्था० १५ अ०)

रोना (हिं० क्रि०) १ रोदन करना, पीड़ा, दुःख या शोकसे व्याकुल हो कर मुंहसे विशेष प्रकारका स्वर निकालना और नेत्रोंसे जल छोड़ना । २ दुःख करना, पछताना । ३ चिढ़ना, बुरा मानना । (पु०) ४ रंज, दुःख । (वि०) ५ थोड़ी-सी बात पर भी दुःख माननेवाला, रोनेवाला । ६ रोनेका सा, मुहर्रमी । ७ बात बात पर बुरा माननेवाला, चिड़चिड़ा ।

रोनी धोनी (हिं० वि० स्त्री०) १ रोने धोनेवाली, शोक या दुःखकी चेष्टा बनाये रहनेवाली । (स्त्री०) २ रोने धोनेकी वृत्ति, शोक या दुःखकी चेष्टा, मनहूसी ।

रोप (सं० पु०) रूप्यतेऽनेनेति रुप विमोहे, घञ् । १ बाण, तीर । रुह णिच् घञ् । २ रोपण, स्थापित करना । ३ ठहराव, रुकावट । ४ मोहन, बुद्धि फेरना । ५ छिद्र, सूराख ।

रोप (हिं० पु०) हलकी एक लकड़ी जो हरिसके छोर पर जंघेके पार लगी रहती है ।

रोपक (सं० त्रि०) १ वृक्षरोपणकारी, पेड़ लगानेवाला । २ स्थापित करनेवाला, उठानेवाला । ३ स्थित करनेवाला । ४ सोने चांदीकी एक तौल या मान जो सुवर्णका ७०वां भाग होता है । रूपक देखो ।

रोपण (सं० क्ली०) रुप-ल्युट् । १ जनन, जमाना, लगाना । २ प्रादुर्भाव । ३ विमोहन, मोहित करना । ४ ऊपर रखना या स्थापित करना । ५ स्थापित करना, खड़ा करना । ६ अंजनविशेष । (पु०) ७ पारद, पारा । ८ पुसामन वृक्ष । ९ क्षतादिपूरण, घावका सूखना या उस पर पपड़ी बंधना । १० घाव पर किसी प्रकारका लेप लगाना । (त्रि०) ११ रोपक, लगानेवाला । रोपक देखो ।

रोपणचूर्ण (सं० क्ली०) रोपणस्य चूर्णं । नेत्राञ्जनविशेष । प्रस्तुत प्रणाली—खपड़ेको शिला पर अच्छी तरह पीस कर जलमें छोड़ दे । पीछे पेंदीमें जमे हुए चूरको फेंक कर जल ले ले । यह जल सूख कर जब पपड़ीकी तरह हो जाय, तब उसे चूर कर त्रिफलाके रसमें तीन बार भावना दे । अनन्तर दशवां भाग कपूर डालनेसे रोपणचूर्ण प्रस्तुत होता है । इस चूर्णका नेत्रमें अञ्जन देनेसे सभी प्रकारके नेत्ररोग नष्ट होते हैं । (भावप्र० रोगाधि०)

रोपणका (सं० स्त्री०) पक्षिभेद, मैना ।

रोपणाञ्जन (सं० क्ली०) १ कषाय और स्नेहसंयुक्त अंजन ।

२ लिप्त हुए द्वारा, सज्जन। (भरत० मल्लनाथ०)

रोपणी (सं० स्त्री०) नेत्राञ्जनविशेष। प्रस्तुत प्रणाली—रसाञ्जन, धूना, जातीपुष्प, मैनसिल, समुद्रफेन, सैन्धव, गेरूमिट्टी तथा मिर्च इनका समान भाग ले कर मधुके साथ पीसे। छिन्नपक्ष्मरोगीके नेत्रमें इसका अंजन देनेसे नेत्रस्राव, क्लेद और कण्डू नष्ट होता है तथा गिरे हुए नेत्ररोम फिरसे खड़े हो जाते हैं। पुनर्नवाको दूधमें पीस कर उसका अंजन देनेसे कण्डू, मधुमें पीस कर देनेसे नेत्रस्राव, घृतमें पीस कर पुष्पनेत्र द्वारा देनेसे तिमिर तथा कांजीके साथ देनेसे रतौंधी दोष दूर होता है। इन्हीं सब प्रक्रियाओंको रोपणी कहते हैं।

(भावप्र० नेत्ररोगाधि०)

रोपणीवटी (सं० स्त्री०) नेत्राञ्जनविशेष, आँखोंमें लगाने-का एक अंजन। इसके बनानेका तरीका—रसाञ्जन, हरिद्रा, दारुहरिद्रा, मालती तथा नीमका पत्ता, इन सबों-को गोबरके रसमें पीस कर बेर भर परिमाणकी गोली बनावें। इससे जो अंजन तैयार होता है उसके लगाने-से रतौंधी दूर होती है। (भाव० नेत्ररोगाधि०)

रोपणीवर्त्ति (सं० स्त्री०) कुसुमादिक नेत्राञ्जन वर्त्तिभेद।

रोपनीय (सं० त्रि०) रुह-अनीयर्, वा रुह-णिच् अनी-यर्। रोपणयोग्य, लगानेके काबिल।

रोपना (हिं० क्रि०) १ जमाना, लगाना। २ गाड़ना, ठहराना। ३ कोई वस्तु लेनेके लिये हथेली या कोई बरतन सामने करना। ४ पौधेको एक स्थानसे उखाड़ कर दूसरे स्थान पर जमाना, पौधा जमीनमें गाड़ना। ५ बीज डालना, बोना।

रोपनी (हिं० स्त्री०) रोपनेका काम, धान आदिके पौधों-को गाड़नेका काम।

रोपयितृ (सं० त्रि०) रुह-णिच्-तृच्, वा रुप-णिच् तृच्। रोपणकारी, लगानेवाला।

रोपि (सं० स्त्री०) दारुण पीड़ा, बहुत दर्द।

(ऋक् १।१०।१६)

रोपित (सं० त्रि०) १ लगाया हुआ। २ उठाया हुआ, खड़ा किया हुआ। ३ मोहित, भ्रान्त। ४ स्थापित, रखा हुआ।

रोपिन् (सं० त्रि०) स्थापनकारी, स्थापित करनेवाला। लगानेवाला, जमानेवाला।

रोपुषी (सं० स्त्री०) छेदयित्री। छेदी, सुराख करने-वाला, छेदनेवाला।

रोप्य (सं० त्रि०) रोपणयोग्य, रोपनेके लायक।

रोप्यातिरोप्य (सं० पु०) धान्यविशेष, एक प्रकारका धान।

रोब (अ० पु०) बड़प्पनकी धाक, दबदबा।

रोबदार (अ० वि०) जिसको चेहरेसे तेज और प्रताप प्रकट हो, रोबदाबवाला, प्रभावशाली।

रोम (सं० क्ली०) १ जल, पानी। २ तेजपत्र, तेजपत्ता। ३ लोम, देहके बाल, रोयाँ। ४ छिद्र, सूराख। ५ जन-पदविशेष। रोम साम्राज्य देखो।

रोमक (सं० क्ली०) रोमे कायतीति कै-क। १ पांशु लवण, सांभरी नमक। २ अयस्कान्तभेद, चुम्बक। रोमैव स्वार्थे कन्। (पु०) ३ रोमनगर। ४ इस देशका मनुष्य। ५ पञ्जाबके पश्चिम प्रान्तका एक प्राचीन नगर।

(भारत २।५०।१५)

"औष्णीकान्तर्वासांश्च रोमकान् पुरुषादकान्।"

(भारत २।५१।१५)

गरुड़पुराणमें (८।२०) तथा कुमारिकाखण्डमें (११६।१।२) इस देशके उत्पन्न रत्नका उल्लेख है। ५ महा-सिद्ध। (वैद्यक०) ६ एक ज्योतिःसिद्धान्त।

रोमकन्द (सं० पु०) रोमयुक्त कन्द, सूअरकन्द। पिण्डालु।

रोमकपत्तन (सं० स्त्री०) रोमकं पत्तनमिति कर्मधा०। एक नगरका नाम। कोई इसे अलेकसान्द्रिया और कोई कन्स्तान्तिनोपल मानते हैं।

रोमकर्णक (सं० पु०) शशक, खरगोश। (वैद्यकनि०)

रोमकसिद्धान्त (सं० पु०) रोमकाचार्यका लिखा हुआ एक ज्योतिष ग्रन्थ।

रोमकाचार्य (सं० पु०) एक प्राचीन ज्योतिर्विद्। ब्रह्मसंहिता और वराहमिहिरकृत ग्रन्थादिमें इनका उल्लेख है।

रोमकायन (सं० पु०) एक गोत्रकारका नाम।

(हरिवंश पु० ३।१७)

रोमकूप (सं० पु०) रोम्णां कूपः। लोमविवर, शरीरके वे छिद्र जिनमेंसे रोएं निकलते हुए होते हैं।

रोमकेशर (सं० पु०) रोम्णां केशरमिव। चामर, चंवर।

रोमगर्त्त (सं० पु०) रोम्णां गर्त्तः। रोमकूप, लोमछिद्र।

रोमगुच्छ (सं० पु०) रोम्णां गुच्छः। चामर, चंवर।

रोमगुच्छक (सं० पु०) चामर, चंवर।

रोमगुल्स (सं० पु०) चामर, चंवर।

रोमगावत् (सं० त्रि०) १ रोमयुक्त, रोएंवाला। २ पूंछ-वाला।

रोमतक्षरी (सं० स्त्री०) अरोमा स्त्री।

रोमत्यज् (सं० त्रि०) लोमनाशक।

रोमद्वार (सं० पु०) रोमकूप देखो।

रोमद्वीप (सं० पु०) कृमि, किरमिजी।

रोमन् (सं० क्ली०) रौतीति रु (नामन् सीमन् व्योमन् रोमन्निति। उण् ४।१५०) इति मनिन् प्रत्ययेन साधुः। १ शरीरजातांकुर, रोआं। पर्याय—लोम, अङ्गज, त्वगज, चर्मज, तनूरुह। (राजनि०)

शरीरके रहस्यस्थान अर्थात् गोपनीय स्थानमें जो रोआं उत्पन्न हो उसे स्पर्श नहीं करना चाहिये। (कूर्मपु० १५ अ०) २ जनपदविशेष। ३ उस देशका वासी। (पु०) ३ भूमि। (भारत ६।६।५५)

रोमन कैथलिक (अं० पु०) ईसाइयोंका प्राचीन सम्प्रदाय। इसमें ईसाकी माता मरियमकी तथा अनेक सन्त महात्माओंकी उपासना चलती है और गिरजोंमें मूर्त्तियां भी रखी जाती हैं।

रोमन्थ (सं० पु०) सींगवाले चौपायोंका निगले हुए चारेको फिरसे मुंहमें ला कर धीरे धीरे चबाना, पागुर।

रोमपाट (सं० पु०) ऊनी कपड़ा, दुशाला आदि।

रोमपाद (सं० पु०) अङ्ग देशके एक प्राचीन राजा। इनका उल्लेख वाल्मीकीय रामायणमें (बाल० सर्ग ६) है। कहते हैं, कि यह राजा बड़ा अन्यायी और अत्याचारी था। इनके पापोंसे एक बार भयंकर अनावृष्टि हुई। राजाने शास्त्रज्ञ ब्राह्मणोंको बुला कर उपाय पूछा। उत्तरमें सबने ऋष्यशृंग मुनिको लाकर उनके साथ राजकन्या शान्ताका विवाह कर देनेकी राय दी। वेश्याओंकी चेष्टासे ऋष्यशृंग मुनि लाये गये और खूब वृष्टि हुई। तब राजाने अपनी कन्या शान्ताका उनसे विवाह कर दिया।

रोमपुलक (सं० पु०) रोम्णां पुलकः। रोमहर्ष, रोमाञ्च।

रोमफला (सं० स्त्री०) तिन्तिश, डेंढ़सी।

रोमबद्ध (सं० त्रि०) १ जो रोयोंसे बंधा या बुना हो। (पु०) २ वह वस्त्र जो रोयोंसे बंधा या बुना हो।

रोमभूमि (सं० स्त्री०) रोम्णां भूमिरिव। त्वक्, चमड़ा।

रोममूर्द्धन् (सं० त्रि०) रोमयुक्त मस्तकविशिष्ट, जिसके शिरमें बाल हों।

रोमरतासार (सं० पु०) उदर, पेट।

रोमरन्ध्र (सं० क्ली०) रोमकूप, शरीरके वे छिद्र जिनमेंसे रोएं निकले हुए होते हैं।

रोमराजि (सं० स्त्री०) रोम्णां राजिः। १ रोमावलि, रोयोंकी पंक्ति। २ रोयोंकी वह पंक्ति जो पेटके बीचो बीच नाभिसे ऊपरकी ओर जाती है।

रोमलता (सं० स्त्री०) रोम्णां लतेव, रोमावलि, रोमराजि।

रोमलतिका (सं० स्त्री०) नाभिके ऊपर स्त्रियोंके लोमकी रेखा।

रोमलवण (सं० क्ली०) शाम्भर लवण, शाकंभरी नमक।

रोमवत् (सं० त्रि०) रोमन् अस्त्यर्थे मतुप् मस्य वः नस्य लोपः। रोमविशिष्ट, रोयेंवाला।

रोमवल्ली (सं० स्त्री०) कपिकच्छु, केवांच।

रोमवाहिन् (सं० त्रि०) रोआं काटनेके योग्य तेज धारवाला।

रोमविकार (सं० पु०) रोम्णां विकारः। रोमाञ्च।

रोमविक्रिया (सं० स्त्री०) रोमाञ्च, आनन्दसे रोओंका उभर आना।

रोमविध्वंस (सं० पु०) १ लोमनाशकारी। २ खटमल।

रोमविवर (सं० क्ली०) रोम्णां विवरं। लोमकूप।

रोमवेध (सं० पु०) एक प्राचीन ग्रन्थकार।

रोमश (सं० पु०) रोमाणि सन्त्यस्येति रोमन् (लोमादि पामादिपिच्छादिभ्यः शनेलचः। पा ५।२।१००) इति शः। १ मेष, भेड़ा। २ पिण्डालु, रतालु। ३ कुम्भी। ४ शूकर, सूअर। ५ ऋषिविशेष। इस ऋषिका एक पद्य

रोम गिरनेसे एक एक इन्द्रपात होता था। इस प्रकार इनके सब जमी रोम गिर जायेंगे, तब इनकी परमायु शेष होगी। अपनी परमायु थोड़े दिनोंके लिये जान कर इन्होंने रहनेके लिये कोई घर नहीं बनाया, केवल वर्षाकालमें ही धारापात रोकनेके लिये सिर पर कट (चटाई) रख कर तपस्या करते थे। (भागवत ६।१५) विशेष विवरण स्कन्दपुराणके श्रीकृष्णजन्मखण्डमें लिखा है।

(पु०) ६ उरश्छद, भेंड़ेका मध्य भाग। (त्रि०) ७ अत्यन्त रोमविशिष्ट, जिसके बहुत रोयें हों।

रोमशपत्रा (सं० स्त्री०) देवताड़वृक्ष, एक प्रकारका तृण या पौधा।

रोमशफल (सं० पु०) रोमशं फलमस्य। टिण्डिशवृक्ष, टेंडसी।

रोमशमूलिका (सं० स्त्री०) हरिद्रा, हल्दी।

रोमशसिद्धान्त—रोमशमुनिका बनाया हुआ एक ज्योतिष-ग्रन्थ।

रोमशा (सं० स्त्री०) रोमाणि सन्त्यस्या इति रोमन् श, टाप्। १ दुग्ध तृण। २ लोमशा, बृहस्पतिकी कन्या। (ऋक् १।१२६।७) ३ कर्कटिका, ककड़ी। ४ अन्नाद नामक एक विषैला कीड़ा। (सुश्रु०क० ८ अ०) ५ मांसरोहिणी।

रोमशातन (सं० क्ली०) रोम्णां शातनं। लोमका ध्वंसन, बाल काटना।

रोमशुक (सं० क्ली०) रोमयुक्तं शुकं वस्त्र। ऊर्णांशुक, दुशाला।

रोम साम्राज्य (रोमक-साम्राज्य)—पाश्चात्य-सभ्यताके आदर्श रोम सुप्राचीन रोम नगरमें रोम तथा लेटिन जातिकी सौभाग्योन्नतिके साथ साथ शौर्य वीर्य और राजनयके अभिज्ञताप्रभावसे राज्यसमृद्धिकी परिपुष्टिके साथ क्रमशः जो बड़ी राजशक्ति अर्जित हुई थी, वही ईसाकी १ली शताब्दीमें रोमसाम्राज्यके नामसे परिचित हुआ।

पुराने जमानेसे यह फैला हुआ रोमराज्य कई भागोंमें विभक्त था और इस समय वे सब विभिन्न देश भिन्न भिन्न राजाओंके द्वारा या प्रजातन्त्रके प्रतिनिधियोंके शासनसे परिचालित हुआ। उसकी सूची नीचे दी जाती है—

यूरोपीय राज्य।

लेटिन नाम — वर्त्तमान नाम

ब्रिटानिया— इङ्गलैण्ड और वेल्स।

गालिया—फ्रान्स, बेलजियम, हालैण्ड, और स्वीजरलैण्डका कुछ अंश।

हिसपानिया—स्पेन और पुर्त्तगाल।

बलियारिस—बेलियारिक द्वीपपुञ्ज।

सिसिलिया—सिसिली।

इटालिया—इटली।

रेटिया—स्वीजरलैण्ड और अष्ट्रो हङ्गरीका कुछ अंश।

भिण्डेलिसिया—जर्मनसाम्राज्यका दक्षिणांश।

जार्मानिया—विश्तुला नदीके पश्चिम किनारे तक जर्मन साम्राज्य और पोलण्डका कुछ अंश और डेनियूबके किनारे तक अष्ट्रिया राज्य।

पानोनिया—डेनियूब नदीके पश्चिम किनारे तक अष्ट्रो-हङ्गरी प्रदेश।

डासिया—थिस नदीके पूर्ववर्ती अष्ट्रो हङ्गरी प्रदेश और प्रूथ और डेनियूब नदीके बीचका रूमानिया राज्य।

नोरिकम—डेनियूब नदीके दक्षिण किनारेके वियना नगरके समीपवर्ती प्रदेशसे आड्रियाटिक समुद्र तक।

इलिरिकम्—आड्रियाटिक सागरोपकूलवर्ती अष्ट्रो-हङ्गरी प्रदेश, मण्टिनिग्रो और तुर्कीका कुछ अंश।

एपिरस—ग्रीस और इलिरिकमके मध्यवर्ती तुर्की प्रदेश।

कर्सिका, सार्डिनिया, साइप्रस और क्रीट द्वीप—भूमध्य सागरका मध्य।

आकाइया—ग्रीसराज्य।

मासिडोनिया—तुर्कीका कुछ अंश।

थ्रेसिया—बुलगेरिया और कनष्टाण्टिनोपल नामक तुर्की विभाग।

मोसिया—सर्विया और तुर्कीका कुछ अंश।

एशिया का अन्तर्भुक्त राज्य

मायसिया, लिडिया, कारिया,—ईजियन सागरतीर-वर्ती माइनर प्रदेश।

विथनिया और पेण्टस—कृष्णसागरके दक्षिण और पशियामाइनरके दोनों प्रदेश।

कार्सोनिससटोरिका—युरोपिय रसियाका क्रिमिया-विभाग।

कलकिस, इबेरिया, अलवानिया—काकेसस (कोहे-काफ) पहाड़के दक्षिण और अर्मेनियाके उत्तर और कृष्णसागरसे कास्पीय झील तक विस्तृत भूखण्ड।

फ्रिजिया, पिसिडिया, गेलेसिया, लाइकोनिया, कापाडोकिया और अर्मेनिया माइनर—पशिया माइनरके अन्तर्गत।

अर्मेनिया—असीरियाके उत्तर।

असीरिया, मेसोपोटामिया, वाविलोनिया, काल्डिया-राज्य, अरबिया पिट्रियाराज्य, सिरिया और पार्थिया—लिभाण्ट-उपसागरके किनारेसे पारसके पश्चिमार्द्ध, अरबके उत्तर और अर्मेनियाके दक्षिण तक फैला हुआ भूखण्ड।

अफ्रिकाके अन्तर्गत राज्य।

मौरिटानिया, न्यूमिडिया, अफ्रिका (राजधानी कार्थेज) लिबिया और इजिप्टस नामक भूमध्यसागरके किनारेके अफरिकाका तटीय प्रदेश। ये सब राज्य भाग इस समयके मोरोको, अलजिरिया, ट्यूनिसो, ट्रिपोली, वार्का और इजिप्ट (मिस्र) राज्यका कुछ अंश लेकर गठित हुआ था।

इस समय यूरोपके प्रदेशोंमें जो पर्वत और नदियां दिखाई देती हैं, उस समय भी वे सब उसी भावसे मौजूद थीं। विसुवियस, एट्म्बोली और एटना नामक आग्नेय गिरिके अभ्युद्गमने उस समय रोम-राजधानीको कम्पित कर दिया था। अत्यन्त प्राचीन हार्कुलेनियम और पम्पियाई नगर विसुवियसके उज्वलन्त धातव निस्रावसे और उत्तप्त भस्मोंसे भर गया था। दो वर्ष तक उसका चिन्ह तक न था। इस समयका रोमराज्य इमानुपेलके शासनेकालमें उस लुप्तप्राय दोनों नगरोंकी अतीत कीर्त्ति प्रकट हुई थी। कुछ दिनों तक यहां अग्न्युद्गम नहीं था। सन १६०५ ई०से फिर धीरे धीरे अग्न्युद्गम दिखाई देने लगा। गत सन १६२८ ई०में भी अग्न्य-स्फुरण हुआ था।

इस प्राचीन समृद्ध रोमराज्यके वाणिज्यप्रभावको याद करने पर मनमें अभूतपूर्व विस्मय जागरित हो उठता है। जिस समय जलद्वारा वाणिज्य करनेका कोई द्रुतगामी स्टीमर न था, उस समय रोमकने भूमध्य-सागरके वक्षस्थल पर नावों पर चढ़ मिस्रसे भारत और पारस्यकी चीजें अपने देशमें ले आते थे। गथ, हुण, भाण्डाल और वर्वर जिस समय पश्चिम पशिया-के पाश्चात्य जातिमात्रके लिये भयके कारण हो उठे थे, उस समय निडर रोमजाति अपने बाहुबलसे उस दुर्दम-नीय पशिया वासियोंका दमन कर अक्षुण्ण भावसे तुर्कोंके बीच खुश्कीकी राहसे कारोबार करते थे। युद्धकालमें जैसे रोमक क्षिप्रहस्त थे, वैसे ही अस्त्रशस्त्र चलानेमें भी वह कम न थे।

रोमराजधानीमें भारतीय मणिमुक्ताका यथेष्ट आदर था। यह बात पुस्तकोंके पढ़नेसे ज्ञात होती है, इसी कारण समुद्रमें चलनेवाली बड़ी बड़ी नावोंके चलानेमें भी यह बड़े कुशल और श्रमशील थे। उस समय डांड और पालकी सहायतासे जहाज समुद्रमें चलता था। कार्थेजिनीय सरदार हानिवलके रोम-आक्रमणके समय और रोम-सेनापति सिपियोके यूनानी-आक्रमण-कालमें ऐसी डांड और पालसे चलनेवाले जहाजें व्यवहृत हुए थे, ऐसा उल्लेख पाया जाता है। इतिहासमें रोमकोंकी कर्मोन्नतिका यथेष्ट परिचय दिया गया है।

इटलीके अन्तर्गत टायवर नदीके किनारे रोम (Roma) नगरी इस विस्तृत साम्राज्यकी राजधानी थी। यहां ईसासे दो शताब्दी पहले ईसाकी १४वीं शताब्दी तक कारीगरी, शिल्प, वाणिज्य और सङ्गीतादि कलाविद्याकी जैसी उन्नति हुई थी, वैसी यूरोपकी किसी राजधानीमें किसी विषयकी उन्नति देखी नहीं जाती। रोमका "कालोसियम" महल कारीगरी या स्थापत्य विद्याका चरम निदर्शन (नमूना) है। यह जगत्के साती आश्चर्योंमें एक है।

वर्त्तमान जगत्की उन्नतिके साथ साथ इटलीमें भी नाना विषयोंकी उन्नति हुई। किन्तु इस समय रोमनो-

का ऐसा सौभाग्य नहीं है। इस समय रोम निर्जीव है। इटलीकी राजधानी होनेसे इसकी शान और रोम-नगरमें शासित प्रकारके सब कुछ रहने पर भी पूर्व समृद्धिको लौटानेका कोई कार्य होता दिखाई नहीं दे रहा है।

इतिहास।

रोमका आदिम इतिहास नाना प्रकारकी अतिरञ्जित काल्पनिक किस्से कहानियोंसे परिपूर्ण है। इसमें सत्य-का पता निकालना बड़ा ही कठिन काम है। जो हो, इन सब किस्से कहानियोंसे जिनसे आजकल लेखक सब भरे पड़े हैं।

कहा गया है—एशिया माइनरके अन्तर्गत ट्रायनगर-का नाश हो जानेके बाद रोमकी सर्वप्रथम प्रतिष्ठा हुई। जब तक यूनानी वीरोंने ट्रायनगरको घेर डाला था, तब तक आफ्रोदाइटके औरससे ऐंकिसिसके गर्भसे उत्पन्न पुत्र इनिस (Aeneas) ट्रायनगरसे भाग निकला। उसीने इसके पहले रोमनगरमें आ कर यहां बस्ती कायम करनेकी कल्पना की। ट्रायनगरसे भागते समय वह अपने पिता आंकाइसिसको डिनेटस नामके गार्हस्थ्य देवताओंको और इनके युद्धविद्याके पालेडियम या मिनर्वा पल्लस (देवी) की मूर्तियोंको साथमें लाया था। जब वह लेटियमके किनारे पहुंचा, तब वह वहांके राजा लैटिनस द्वारा स्वागतित हुआ। पीछे लैटिनसने इनिसके साथ अपनी पुत्रीका विवाह कर दिया। इनिसने अपनी पत्नीका नाम अमर करनेके लिये उसीके नाम पर लैविनियम नगर बसाया।

इनिसके साथ विवाह होनेके पहले लैविनियाके रुटुलियनोंके अधिपति टर्नसके साथ विवाहकी बात पक्की हुई थी। टर्नसने उस विवाह सम्बन्ध हो जाने-से क्रोधित हो आकस्मिक रूपसे इनिस पर तुरन्त ही आक्रमण कर दिया। युद्धमें इनिसके हाथ टर्नस मारा गया; इसके कोई वर्ष बाद टर्नसके सम्बन्धियोंने फिर इनिस पर आक्रमण किया। इस समय एक दिन इनिस न्यूमिसियस नामक नदीके उस-में अदृश्य हो गया। उस स्थानों पर 'जुपिटर इन्डि-जिट' का नाम देवताके नामसे पूजित हुआ था।

उसके पुत्र आस्कानियस या यूलसने ३० वर्षके बाद लैविनियमसे रोमके १५ मील दक्षिण पूर्व अलबान पर्वत-शिखर पर "अल्बा लङ्गा" या लम्बी श्वेत पुरी नामसे एक नगरीका निर्माण किया। क्रमशः यह लेटियम प्रदेशमें एक विख्यात नगर हो उठा और सारे लेटिन नगरोंका शासन करने लगा। आस्कानियसके बाद इनिसवंशके १२ राजाओंने यहांका राज्य किया। इस वंशका अन्तिम राजा प्रोकास न्यूमीटर और अमु-लियस नामक दो पुत्रोंको छोड़ कर परलोकवासी हुआ। छोटे भाई अमुलियसने सिंहासन पर अधि-कार जमाया। बड़े भाई न्यूमीटर शान्त स्वभावका था, इससे उसने इसका कुछ विरोध नहीं किया।

इस आशङ्कासे, कि कहीं आगे चल कर बड़े भाई का एकलौता पुत्र राज छीन न लेवे, उसका प्राण संहार कर दिया। तौभी अमुलियसकी इस निष्ठुरा-चरणसे भी आशा पूर न हुई। इसके बाद बड़े भाईकी एकलौती पुत्री रियासिल्भियाको एक देव-मन्दिरमें वेस्टाके कुमारी रहनेके लिये नित्यकुमारी बना दिया। फलतः वह आजीवन अनूढ़ा ही रही। किन्तु मार्स (Mars) नामक देवताके औरससे इसके दो यमज पुत्र हुए। अमुलियसको क्रोध हो इसकी खबर लग गई। क्रोधावेश हो इसके अंतरमें रिया-सिल्भियाने अपने प्राण गंवा दिये, उसके दोनों पुत्र एक हिंडोलेमें रख नालेमें छोड़ दिये गये। वह हिंडोला पानीमें बहते बहते पलटाइन पर्वतके किनारे आ कर लगा। यहां अंजीरके पेड़में टकरा कर वह हिंडोला उलट गया। इससे दोनों लड़के किनारे गिर पड़े। इसी समय वहां एक वाविन जल पीनेके लिये किनारे पर आई। वाविन (भेड़नी) दोनों लड़कोंको अपनी मांदमें ले आई और उनको अपना दूध पिला पिला कर पालने लगी। फिर इसके मार्स देवताके वाहन एक चिड़िया भी लड़कोंको भोजन ला कर खिलाने लगी।

कालमें एक दिन फस्टुलास राजाके एक गड़रियेने इस अलौकिक विचित्र दृश्यको देख लिया और इन दोनों शिशुओंको उठा कर अपनी पत्नीको पालन करनेके लिये दे दिया। ये दोनों शिशु रोमुलस और रेमसके

नामसे प्रसिद्ध हुए। ये दोनों बालक उस गड़रिके बच्चोंके साथ पलने लगे। इन गड़रियोंके साथ न्यूमीटर-के गड़रियोंका झगड़ा हो गया। इस समय कौशलसे रेमाशको उसके पितामह न्यूमीटरके समीप उपस्थित कर दिया गया। किशोरवयस्क रेमशको देख कर न्यूमीटर-का हृदय वात्सल्य प्रेमसे परिपूरित हो गया। उम्र और चेहरा देख कर न्यूमीटरने रेमाशको अपना नाती होनेका सन्देह हुआ। अन्तमें उनकी जीवन-कथा सुन कर उनको विश्वास हो गया, कि यह निश्चय ही मेरा दौहित्र (नाती) है। अन्तमें रोमुलस भी अपने पालक पिता यानी उस भेड़िहारके साथ न्यूमीटरके सम्मुख उपस्थित हुआ।

न्यूमीटर दोनों नातियोंको पा कर खुश हुआ और उन दोनों कुमारोंने अपने भाईके किये हुए निष्ठुर आचरणका बदला चुकानेका संकल्प कर लिया। उन्होंने अपने विश्वासपात्र कर्मचारियोंके साहाय्यसे आमुलियसको मार डाला और अपने पितामह न्यूमीटरको उसकी गद्दी पर बैठाया।

रोमुलास और रेमासने अपने पहलेके वासस्थान अर्थात् शेरनीकी माँदके निकट एक नगर बसानेकी इच्छा प्रकट की। यह विचार होने लगा, कि नगर कहां और कैसे बनाया जाय। इस विषय पर दोनों भाइयोंमें वाद-विवाद होने लगा। रोमुलासने पेलेटाइन पर्वत पर और रेमासने आवेनटाइन पर्वत पर नगर निर्माण करनेकी इच्छा प्रकट की। अन्तमें यह निश्चित हुआ, कि इस झगड़ेका फैसला देवताओं द्वारा कराया जायगा। दोनों अपने इष्ट देवताके निकट जा कर मनमें प्रश्न उठा कर सारा दिन बैठे ही रह गये। अन्तमें एकने ६ गृध्र देखे और दूसरेने १२ देखे फिर भेड़िहारोंमें परामर्श कर निश्चय किया गया। जीत रोमुलासकी ही हुई।

रोमुलासका राजत्वकाल ७५३-७१७ ईसासे पूर्व।

इस तरह रोमुलासने देवताकी कृपा पा कर नगरको सीमा निर्द्धारित करनेके लिये वहांकी यात्रा की। उसने एक हलमें एक बैल और एक गायको जोत कर पेलेटाइन पर्वतके चारों ओर हराई फेराई या हलचिह्नसे चिह्नित किया। यही चिह्न रोमनगरीके चारों ओरकी सीमा निर्दिष्ट हुआ। हलचिह्नसे चिह्नित इस नगरका नाम हुआ "पमेरियम"।

पेलाटाइन पर्वत-शिखरके आदिम रोम नगरका नाम हुआ "रोमा कोयड्रेटा" या चौकोन रोम। पिछले समयमें इस नगरकी परिधि सात पर्वतोंके शिखरों पर फैली थी। जो हो, आदिम रोम नगर ईसासे ७५३ वर्ष पूर्व २१वीं अप्रेलको प्रतिष्ठित हुआ। इसके बाद रोमुलास रोमके चारों ओर चहारदीवारी उठाने लगा। यह चहारदीवारी बहुत छोटी थी। इस पर हंसी उड़ाते हुए रेमासने कहा—"इस तरहकी बालकोचित चहरदीवारीसे कोई लाभ नहीं।" यह कह रेमास कूद कर एक ही छलांगमें चहारदीवारीको पार कर गया। इस तरह रेमासको चहारदीवारी लांघते देख रोमुलास क्रोधसे अधीर हो उठा और उसने रेमासको प्राण दण्डकी आज्ञा दी और यह हुक्म जारी किया कि आजसे जो इस चहारदीवारीको लांघेगा उसे प्राण-दण्ड दिया जायेगा।

जो हो रोमुलासके बसाये इस चहारदीवारीसे घिरे रोम नगरमें अधिक आदमी नहीं बसे। यह देख रोमुलासने केपिटोलाइन पर्वतशिखर पर हत्यारे और भागे हुए अपराधियोंके रहनेके लिये एक जेलखाना बनवाया। यह जेलखाना अपराधियोंसे कुछ ही समयमें भर गया। किन्तु वंशवृद्धिके लिये उनको स्त्रियां न दी गई। क्योंकि कोई भी ऐसे अपराधके अपराधी दुष्टोंसे अपनी पुत्रीका विवाह करना नहीं चाहता था। अन्तमें इनके लिये बलपूर्वक कन्या लेनेका संकल्प होने लगा।

इसके अनुसार रोमुलासने कनसस नामके देवताके पूजोत्सवकी घोषणा कर दी। इसमें लेटिन् और सेबाइन सर्वसाधारण निमन्त्रित किये गये। सभी नर-नारी तमाशा देखनेके लिये इस उत्सवमें आने लगे। उत्सवमें खूब नर नारियोंके एकत्र होने पर उसमें आई सभी कुमारी अनुढ़ाओंको रोमक युवकोंने हरण कर लिया। कन्याओंके पिता इस काण्डसे अपमानित हो घर लौट राजाके साथ युद्धकी तय्यारी करने लगे।

किनानी, आण्टेमनी और क्रास्टुमेरियम नामक

सेंटिम नगरके अधिवासियोंने रोमनोंके विरुद्ध अस्त्र धारण किया, किन्तु शीघ्र ही वे पराजित हुए। रोमुलसने सिनाईनके राजा आक्रोनको अपने हाथों मार डाला और लूटी हुई सम्पत्तिको 'जुपिटर' के मन्दिरमें रख दिया।

इसमें सैबाइन राज्यके अन्तर्गत क्यूरेसके पराक्रमशाली राजा टाइटस्ने असंख्य योद्धाओंको ले कर युद्धकी यात्रा की। इस तरह ऐसे बहुसंख्यक सैनिकोंके साथ खुल्लमखुल्ला युद्ध करना असम्भव समझ रोमुलसने किलेमें प्रवेश किया। इससे पहले रोमुलसने केपिटोलाइन पर्वतके चारों ओर रक्षाका उचित प्रबन्ध किया था। टारपियस नामक एक सेनापतिको उसने केपिटोलाइनकी रक्षाका भार दे रखा था। किन्तु इस सेनापतिकी कन्या टार्पिया सैबाइन सैन्योंके हाथोंमें सोनेका कुण्डल पहने देख विमुग्ध हो गई। उसने सैबाइन सेनापतिके पास दूत भेज कर कहला दिया, कि "तुम लोग अपने हाथोंके कुण्डल देना स्वीकार करो तो मैं किलेमें घुस आनेका उपाय बतला दूंगी।" सेनापतिने टार्पियाकी बात स्वीकार कर ली। आधी रातके समय भूषणप्रिया टार्पियाने नगरका द्वार-पाटक खोल दिया। चींटियोंकी पंक्तिकी तरह सैबाइन सैन्य किलेमें घुस आई। जब टार्पियाने अपना पुरस्कार मांगा तो, फौजोंने ढाल फेंक कर उसे उचित पुरस्कार दिया। वह शीघ्र ही परलोकगामी हुई। उसी समयसे राजद्रोहियोंको इस पर्वतसे नीचे गिराया जाता था।

दूसरे दिन रोमनोंने केपिटोलाइनको लेनेके लिये अपनी फौजोंको उत्साहित किया। पेलेटाइन और केपेटोलाइनकी घाटीमें उभयपक्षमें घोर युद्ध प्रारम्भ हुआ। कुछ देर तक घोर युद्ध होनेके बाद जिस समय रोमीय सैनिक पीछे हटनेको थे, उस समय रोमुलसने इसकी मनौती की, यदि युद्धमें विजय पाऊंगा, तो जुपिटरका एक मन्दिर बनवा दूंगा। इसके बाद रोमन सैनिक दूने उत्साहसे युद्ध करने लगे। दोनों दलमें जिस समय घोर युद्ध हो रहा था वहां अपहृता कन्याएं आ कर युवतियोंने सैबाइन सैनिकोंसे युद्ध बन्द करनेका अनुरोध करने लगीं। रमणियोंकी प्रार्थना पर कौन ध्यान नहीं दे सकता? सैबाइनोंने रोमनोंके साले ससुर बन इस विवाह-बन्धनको और भी दृढ़ कर दिया। रोमन रोमुलसके अधीनमें पेलेटाइन पहाड़ पर रहने लगे। उधर सैबाइन टाइटस् टेसियसके अधीन केपिटोलाइन पर्वत पर रहने लगे। इन दोनों राज्योंके बीचकी उपत्यकामें सेनेटका अधिवेशन होता था। इसके साथ ही 'फोरम' की प्रतिष्ठा हुई। ये दोनों राज्य बहुत दिनों तक स्थायी न रह सके। कुछ आततायी लेरिनोंके हाथ टाइटस मारा गया। इसके बाद इन दोनों राज्यों पर अकेले रोमुलस ही शासन करने लगे। कुल ३६ वर्ष तक रोमुलसने राजत्व किया। एक दिन रोमुलस पेलस्कपुल नामक स्थानमें कम्पास मार्शियस् प्रजापुञ्जका निरीक्षण कर रहे थे, ऐसे समय आकाशमें सूर्यग्रहण दिखाई दिया। तुरत ही एक तूफान दिखाई दिया और उसी तूफानके साथ रोमुलसके पिता मार्स एक अग्निमय पुष्पक रथ पर रोमुलसको बैठा कर स्वर्गगामी हुए। दूसरे दिन कोई उसको देख न सका।

नुमा पम्पिलियसका राजत्वकाल।

(७१५-६७२ ईसवी पूर्व।)

रोमुलसकी मृत्युके बाद रोमनोंने सबाइनी और धार्मिकप्रवर नुमा पम्पिलियसको राजा मनोनीत किया। उन्होंने पत्नीरूपमें टाइटस टेसियसकी पुत्रीसे अपना विवाह किया। इन्होंने शान्तिके साथ ४३ वर्ष तक राजत्व किया। यह रोम साम्राज्यके सर्वोत्तम शान्तिप्रयोजक है।

नुमाने साम्राज्यके हितकर कितने ही काम किये। उसने पञ्चाङ्गको शुद्ध कर ज्योतिषशास्त्रकी उन्नति की। उसने सम्पत्तिकी सीमा निर्धारित कर उसे टर्मिनस नामक देवताके अधीन सौंप दिया। उसने जेनस नामक दोमुंहे एक देवताका मन्दिर बनवाया था। युद्धके समय ही इस मन्दिरका दरवाजा खुलता था और शान्तिके समय वह दरवाजा सदा बन्द रहता था।

टुलस हस्टिलियस।

(६७३-६४२ ई० पू०।)

नुमाकी मृत्युके बाद टुलस हस्टिलियस राजा मनोनीत

हुए। इसका राजत्वकाल शान्तिके बजाय युद्धविग्रहसे परिपूर्ण था। इनमें आलवा लङ्काका ध्वंस ही सर्वापेक्षा प्रसिद्ध घटना है।

रोमन सैनिकोंमें होरेशियस नामका एक आदमी था। एक ही गर्भसे इसके दो भाई और यह पैदा हुए थे। इसी तरह आलवान नामक सैन्यदलके क्युरिशियस नामक एक गर्भजात तीन भाई थे। ऐसा स्थिर हुआ कि इन तीन भाइयोंमें द्वन्द्व युद्ध होगा। इस द्वन्द्व युद्धमें होरेशियसके दोनों भाई मारे गये। अन्तमें होरेशियसने एक एक करके तीनों भाइयोंको धराशायी कर दिया।

जिस समय विजयोल्लासके साथ होरेशियस् अपने नगरमें प्रवेश कर रहे थे, ऐसे समय राहमें उसको देख उसकी बहन जोर जोरसे रोने लगी, क्योंकि मृतभाइयोंमें एक भाईसे उसका प्रेम हो गया था। इस समय नगरमें प्रवेश करते देख अपने प्रेमीको न देख वह चिन्तित हो उठी, यह जान कर वह रोमकवीर क्रोधित हो उठा। उसने तलवारकी चोटसे अपनी बहनको मार डाला। इस अपराधमें वहांके विचारकोंने उस रोमकवीरको फांसी पर चढ़ा दिया था। इस काण्डसे रोमनोंको भीषण शिक्षा मिली थी।

इसके बाद टाल्लासने फिडनी और एट्रास्कानोंके विरुद्ध युद्ध घोषणा की। अलवान रोमनोंके अधीन युद्धक्षेत्रमें गये। किन्तु जब तक रोमकसैन्य एट्रास्कानोंके साथ घोरतर युद्धमें प्रवृत्त था, तब तक अलवान पहाड़ पर छिपे खड़े थे। इस काण्डसे क्रोधित हो टाल्लासने अलवाको ध्वंस करनेका हुक्म दिया। शीघ्र ही अलवा-नगर ध्वंस हुआ। वहांके अधिवासी बाल-वृद्ध-वनिता-को ले फिलियन पर्वत पर रोमकोंकी प्रजा बन कर रहने लगे। इस तरह टाल्लासने युद्धमें फंसे रह कर ३१ वर्ष तक राजत्व किया था।

आस्कास मर्शियास (६४२-६१७ ई० पू०)

टाल्लासकी मृत्युके बाद नुमाका नाती सेवाइन-वासी अंकास-मर्शियास राजा मनोनित हुआ। उसने सिंहासनारूढ़ होते ही पदाङ्कधर्मानुसरण कर सर्वधर्मानुष्ठानको पुनर्जीवित किया। किन्तु लेटिन नगरके अधिवासियोंके साथ युद्धमें प्रवृत हो उसको शान्तिभङ्ग करना पड़ा। युद्धमें उसने कई लेटिन नगरों पर अधिकार कर लिया। २५ वर्ष तक राजत्व कर अंकास परलोकगामी हुआ। इसके बाद प्रिस्कास राजा हुआ।

ल्यूशियस टार्कुइनयास प्रिस्कास (६१७-५७९ ईसासे पूर्व)।

वह एल्डर (ज्येष्ठ) टार्कुइन नामसे विख्यात हुआ। रोमके पांचवां राजा टार्कुइन माता एट्रास्कन और पिता यूनानी था। उसके पिता डेमारेटस् करिन्थ नगरके एक धनशाली व्यक्ति थे। डेमारेटस्ने एट्रास्कानवंशकी एक कन्यासे विवाह कर एट्रास्कानमें टार्कुइन वंशकी प्रतिष्ठा की। डेमारेटस्के ज्येष्ठ पुत्र टार्कुइनने टानाक्विल नामी एक उच्चवंशीय रमणीके साथ विवाह किया। यह रमणी अत्यन्त उच्चाभिलाषिणी थी। टार्कुइन बहुत जल्द अङ्कास मर्शियस् और रोमवासी सर्वसाधारणके प्रियपात्र हो उठा। अङ्कास मर्शियसने उसके पुत्रोंके लिये शिक्षक नियुक्त किया। इसके बाद अङ्कास मर्शियस्की मृत्युके बाद रोमवासी प्रजाने टार्कुइनको सिंहासन पर बैठाया।

टार्कुइनका राजत्वकाल कई तरहकी प्रसिद्ध घटनाओंसे पूर्ण हुई। इसने सेवाइनोंको हटा कर उनके कलेशिया नामक नगर पर अधिकार कर लिया और अपने भतीजे इजेरियसको वहांका शासक नियुक्त किया। इसने लेटियम प्रदेशके कई नगरों पर भी अधिकार कर लिया था।

इन सब कामोंके सिवा इसने कितने ही लोकहितकर कार्य किये थे। इसने सबसे पहले केपिटा लाइन और अमेल्टाइन नामके दो पर्वतोंके बीचके जलाशयका जल निकलवा कर वहां पत्थरकी गंथाई कर फोरम और सार्कास नामके दो महल बनवाये। इसकी गंथाई ऐसी अच्छी हुई थी, कि हजारों वर्षके बाद आज उसका एक टुकड़ा भी टससे मस नहीं हुआ है। इसके बनाये 'सार्कास मेक्सियम" नामक रङ्गालयमें कई तरहके क्रीड़ा-कौशल दिखाये जाते थे। प्लिनिका कहना है, कि इसने केपिटोलाइन पर्वत-शिखर पर एक विराट सौध प्रस्तुत किया था। सिवा इसके इसने राज्यके शासन प्रणालीमें कई तरहका संस्कार किया था। इसी समय चार भेष्टल कुमारीके बदले ६ कुमारी नियुक्त हुई।

टार्कुइन सर्वियस टाल्लियस नामक गुलामके

पुत्रको बहुत प्यार करता था। इस लड़केका शैशवकाल अद्भुत घटनाओंसे पूर्ण है। एक दिन सर्वियसके बिछौनेमें आग लग गई। बिछौना जलने लगा। इसी पर यह बालक सोया हुआ था। बिछौनेसे आगकी लपट उठी सही, किन्तु लड़केको स्पर्श न कर सकी। यह देख कर टार्कुइनपत्नी टानाक्विलने विस्मित भावसे कहा, यह बालक अपनी अवस्थामें सम्राट् होगा। उस समयसे उस बालकको पोष्यपुत्रकी तरह पालन करने लगी और अपनी कन्याके साथ उसका विवाह कर दिया।

भूतपूर्व राजा अङ्कास मर्शियसके पुत्रोंने देखा, कि भविष्यत्में यही दामाद राजसिंहासन अधिकार करेगा। इसलिये उसने राजाको गुप्तरूपसे मार डालनेके लिये दो आदमी नियुक्त किये। इनमें एकके ही कुठाराघातसे टार्कुइन सांघातिक चोटसे आहत हुआ। किन्तु अङ्कास मर्शियसके पुत्र इस गुप्तहत्याका फल लाभ नहीं कर सके। बुद्धिमती रानी टानाकुइलने साधारण प्रजामें यह प्रचार कर दिया, कि टार्कुइनकी चोट सांघातिक नहीं है। यह शीघ्र ही आराम होगा। इधर अपने प्रिय-पोष्यपुत्र सर्वियसको राजकार्य्य करनेका हुक्म दिया। सर्वियस भी प्रजारञ्जनके गुणसे थोड़े ही समयमें प्रजाप्रिय हो उठा। किन्तु टार्कुइनकी मृत्युका संवाद अधिक दिन तक गुप्त न रह सका। जब टारकुइनका मृत्युसंवाद प्रकाशित हो गया, प्रकाश्यरूपसे सर्वियस राजसिंहासन पर बैठा।

सर्वियस टालियस (५७८-५३५ ई० पू०)

छठे राजा सर्वियसको साधारणके निर्वाचनके फलसे राजसिंहासन मिला। उसके सब संस्कारोंमें शासन-संस्कार सबसे उत्तम है। यहांका शासन पहले आभिजात्यवंशगत था, किन्तु इसके समयमें यह धनगत हुआ। यहांके लोगोंमें यह इच्छा बलवती हुई, कि धन कमानेसे मैं कुलीन न होऊंगा। रोमका धनभण्डार शिल्प वाणिज्य-कृषिसे उत्पन्न धनसे परिपूर्ण होने लगा। सर्वियसने रोमकोंको चार भागोंमें विभक्त किया। इसके बाद उसने सबसे पहले भू-सम्पत्ति कर सम्पत्तिका मूल्य निर्धारित किया। उक्त चारों विभाग धनगत थे। जिनके पास एक लाख या इससे अधिक रुपया था, वे सबसे धनी कहे जाते थे। पांचवीं श्रेणीके लोगोंके पास १२५००) रुपया रहता था।

इस शासन-संस्कारके बाद सर्वियसने रोम नगरकी सीमा वृद्धि की। पहले 'पमरियम' नगरकी निर्दिष्ट पवित्र परिधि थी। अब कुइरिनल, भिमिनेल और एस्क्वीलेन पर्वत इस नगरकी सीमाके अन्तर्गत आ गये। इस सीमाके चारों ओर पत्थरकी गैथाईकी चहारदीवारी उठा दी गई। इसको लोग सर्वियसकी चहारदीवारी कहते हैं। इस समय रोमकी परिधि ५ मीलकी हुई। नगरके बाहरी दरवाजे पर एक मील लम्बा एक प्रकाण्ड स्तूप तैयार हुआ और १०० फुट चौड़ी ३० फुट गहरी एक खाई खोदी गई। रोमके सम्राटोंके शासनकाल तक यही नगरकी सीमा निर्दिष्ट थी। इस घटनाके बाद सर्वियसने लाटियमके अन्यान्य प्रदेशोंके अधिवासियोंको रोममें मिला कर उनको समान अधिकार दिया।

पूर्वोक्त ज्येष्ठ टार्कुइनके दो पुत्रोंके साथ सर्वियसकी दो कन्याओंका विवाह हुआ। इनमें ज्येष्ठ पुत्र ल्यूशियस निष्ठुर प्रकृतिका था; किन्तु उसकी स्त्री अत्यन्त कोमल प्रकृतिकी थी। छोटा लड़का अर्णास अत्यन्त नम्र और धार्मिक था। फिर भी उसकी स्त्री टालिया अत्यन्त क्रूर प्रकृति तथा उच्चाभिलाषिणी थी। इस असदृश तथा विषम प्रकृतिका भीषण परिणाम हुआ। ल्यूशियसने अपनी धर्मशीला पत्नीको मार डाला। इधर टालियाने अपने पतिका प्राणहरण किया। अनन्तर ल्यूशियसने बड़ी खुशीके साथ अपनी अनुजपत्नी ल्यूशियसने टालियाके साथ विवाह किया। किसीने भी पति और पत्नीकी हत्या पर जरा भी शोक प्रकट न किया।

सर्वियसकी प्रिय पुत्री टालिया पतिकी हत्या और भैंसुरसे विवाह कर अपने पिताकी हत्याकी फिक्रमें लगी। अन्तमें इन दोनों पति पत्नीने सर्वियसका प्राणनाश कर दिया। जिस समय टालिया गाड़ी पर चढ़ कर घर लौट रही थी, उसी समय लहूलुहान सर्वियसकी लाश सड़क पर छटपटा रही थी। कोचवानने यह देख कर घोड़ेकी रस्सी रोक दी। किन्तु उपर्युक्त

कन्याने कोचवानको हुक्म दिया, कि तुम पिताकी शवदेह के ऊपरसे गाड़ी चला ले चलो। ऐसा ही हुआ, गाड़ी के चक्केसे शवदेहके दो खण्ड हुए। इससे निकले हुए रक्तके छींटोंसे टालियाकी पोशाक भींग गई। उसी समय-से इस सड़कका नाम (Wicked street) विकेड ष्ट्रीट अर्थात् निष्ठुरपथ रखा गया। सर्भियसके मृत-शरीरका कोई सत्कार न हुआ। इसने ४३ वर्ष तक राजत्व किया था।

ल्यूशियस टार्कुइनस सुपर्वास। (५३५-५१० ईसासे पूर्व)

ल्यूशियसको लोग अहङ्कारी टार्कुइन कहते हैं। इसने धनिकोंको देशसे निकाल कर उनकी धनसम्पत्ति पर अधिकार करना आरम्भ किया। इसने अपने जीवन नष्ट होनेकी आशङ्कासे देहरक्षक नियुक्त किया था। यह रोम पर भीषण अत्याचार करने पर भी विदेशमें एक पराक्रमशाली राजाके नामसे प्रसिद्ध हुआ। उसने अक्टे भियस मामेलियसके साथ अपनी कन्याका विवाह कर लाटियममें प्रभुत्व स्थापित किया। इसके बाद टार्कुइनने भलसियानोंके समृद्ध सुयेसा, पमेटिया नगर पर अधिकार कर बहुतसे धन-सम्पत्ति लूट ली और उसी धनसे कैपिटालाइन पर्वतके शिखर पर जुपिटर, जुनो, एवं मिनार्भा—इन तीन देवताओंके नाम पर केपिटालियम नामक एक विराट् मन्दिर बनवाया। मन्दिरकी बुनियाद खोदते समय एक ताजा नरमुण्ड कटा हुआ पाया गया था। इस मन्दिरमें एक भूगर्भस्थ कोठरीमें अनेक पवित्र हस्तलिखित पुस्तकें रखी हुई थीं।

इसके बाद टार्कुइनने गैबियाई नामक एक लेटिन नगर पर विश्वासघातकतापूर्वक अधिकार किया। इस समय एक दैवी घटनासे यह व्यथित हुआ। एक दिन एक सर्प पूजाकी वेदीसे निकल कर बलिदान किये हुए बैलकी अँतड़ी खाने लगा। यह देख टार्कुइनने इसका मर्म जाननेके लिये अपने दो पुत्र तथा बहनको यूनानाके डेलिफीके यहां भेजा। इधर टार्कुइन जब अर्डिया पर अधिकार करनेके लिये युद्धमें जा रहा था, उस समय उसके पुत्र सेक्टसने लेशियसकी पतिपरायणा स्त्री लुक्रेशियका सतीत्व नाश किया। एक आधी रात-को सेक्टसने हाथमें नङ्गी तलवार ले कर लुक्रेशियाकी कोठरीमें प्रवेश किया; और कहा—"यदि तुम मेरी बात न मानोगी, तो मैं तुमको मार डालूंगा और बाहर कहूंगा, कि तुम गुलामके साथ व्यभिचार कर रही थी, इसीसे तुमको मैंने मार डाला है।" लुक्रेशियाने प्राण-भयकी अपेक्षा कलङ्कका अधिक डर माना। सेक्टसके इस अमानुषिक काण्डके करनेके उपरान्त लुक्रेशियाने अपने पिता और पतिको बुला कर इसका बदला चुकाने-के लिये उत्तेजित किया और छातीमें छुरा मार कर इस कलङ्कमलिन असुखद जीवनलीलाका अन्त कर दिया। इस काण्डसे रोमके अधिवासी उत्तेजित हो उठे और उन्होंने राजा तथा उसके परिवारवर्गको देशनिकालका दण्ड दिया। उस समय टार्कुइन बाहर युद्धमें प्रवृत्त था। उसका भांजा एलब्रूटसने सैन्यका अधिनायक हो कर टार्कुइनके विरुद्ध युद्धकी घोषणा की। राजाकी फौजें अत्याचारी राजाकी अधीनता छोड़ कर ब्रूटसके अधीन हुई। टार्कुइन शीघ्रतासे रोम लौट आया; किन्तु किसीने नगरका दर-वाजा न खोला। उस समय यह डर कर अपने पुत्रोंके साथ कायेरी नामक स्थानमें जा बसे। यह २५ वर्ष तक राजत्व कर पुत्रके दोष तथा प्रजाकी ओरसे निर्वा-सित हुआ।

रोममें राजतंत्र प्रणालीकी जगह प्रजातंत्र-शासन कायम हुआ। इस घटनाको अमर करनेके लिये रोम-वासियोंने ईसाके ५१० पूर्वकी २४ फरवरीको रेजिफिउजियम या फिउगालिया नामक वार्षिकोत्सवका सूत्रपात किया। किन्तु प्रजातन्त्रप्रणालीके बदले शासनप्रणालीके मूलका परिवर्त्तन न हुआ। प्रजाके चुने हुए दो महामाण्डलिक नियुक्त हुए। उनका यह पद तीन वर्षके लिये स्थायी हुआ। वे ही साधारणकी सम्मतिसे राज्यशासन करने लगे। ये पिटर और पीछे कन्सल नामसे पुकारे गये।

सन् ५०९ ईसासे पूर्व एल-ब्रूटस और टार्कुइनस कोलेशियस पहले कन्सल नियुक्त हुए। किन्तु टार्कुइन वंशोद्भव होनेको वजह कोलेशियस पीछे रोम परि-त्याग करने पर बाध्य हुए और विमालेसियस उनकी जगह नियुक्त हुए।

इसी समय निर्वासित राजा टार्क्विन एट्रस्कनोंकी सहायतासे अपहृत राज्यको पुनः पानेका उद्योग करने लगा। टार्क्विनने अपनी निजी (*Private*) सम्पत्तिको पानेका दावा कर के दूतोंको रोम भेजा। कान्सलोंने यह प्रार्थना न्याय समझ कर पूरी कर दी। किन्तु दूतोंने कई रोमक युवकोंसे षड्यन्त्र कर टार्क्विनको राजा बनानेकी चेष्टा आरम्भ की। एक गुलामने इस चेष्टा या साजिशको प्रकट कर दिया। इन साजिश कारियोंमें एलब्रूटसके दो पुत्र भी शामिल थे। ब्रूटसने अपने पुत्रोंका अपराध क्षमा नहीं किया। इसने सभी साजिशकारियोंकी तरह अपने पुत्रोंके वध करनेका हुक्म जारी किया। इसलिये ब्रूटसका नाम रोम इतिहासमें अमर है।

टार्क्विनने अपनी साजिशको असफल होते देख एट्रस्कनोंकी सहायतासे रोमके विरुद्ध युद्धकी घोषणा कर दी। ब्रूटस और भालेरियस भी सैन्य ले कर आगे बढ़े। टार्क्विनका पुत्र आर्णास ब्रूटसके साथ द्वन्द्वयुद्ध करने लगा। दोनों सांघातिक रूपसे आहत हो घोड़ेसे गिर पड़े। इसके बाद घोरतर युद्ध आरम्भ हुआ। जय-पराजयका निर्णय करना कठिन हो गया। एकाएक आधी रातको दैववाणी हुई—"रोमन ही जयी हुए हैं।" यह सुन कर एट्रस्कन भाग चले। भलेरियस ब्रूटसकी मृत देहको ले कर रोम लौट आये। ब्रूटसके लिये सभी हाहाकार कर विलाप करने लगे। भलेरियस न्यायके गुणसे सबके प्रियपात्र हुए। इसीलिये उसका नाम पाब्लिकोला अर्थात् प्रजाप्रिय हुआ।

इसके बाद दूसरे वर्ष सन् ५०८ ईसासे पूर्व टार्क्विन एट्रस्कानके अन्तर्गत क्लूसियमके राजा लार्स पर्सेनाके शरणापन्न हुए। परसेनाने विराट सैन्य ले कर रोमके दूसरे हिस्सेके जेनिक्युलम नामक किले पर ठीक ठीक आक्रमण किया। सामने सामने युद्ध करना असम्भव समझ रोमक देशोद्धारके लिये टाइबर नदी परके बने पुलको तोड़ने लगे। होरेशियस कक्लीस नामक एक अलौकिक वीर असाधारण वीरताके साथ पुलके दूसरे ओर पर शत्रुसे मुकाबला करने लगा। इधर रोमक वीर पुल तोड़ने लगे। पुल टूट जानेके बाद होरेशियस शत्रुओंके सहस्र तीरोंकी वर्षासे प्रपीड़ित हो नदीमें कूद पड़ा और उसने कहा—"पिता टाइबर नद, मुझको निर्विघ्न रोम पहुंचा दे।" तैरनेमें कुशल होनेकी वजह वह तीरोंकी वर्षासे बचते हुए टाइबरके उस पार आ पहुंचा। इस घटनाको अमर बनानेके लिये रोमकी सरकारने उसकी एक प्रतिमूर्त्ति तय्यार कराई और सारा दिन वह जितना पैदल चल सके, उतनी भूमि उसको प्रदान की। रोमके इतिहासमें रेशियसकी यह कीर्त्ति स्वर्णाक्षरोंमें लिखी गई है।

इसके बाद पार्सेनाने रोम नगर पर घेरा डाला खाद्य वस्तुओंकी आमदनी बन्द हो जानेकी वजह रोमवासी घबरा उठे। उस समय म्यूशियस नामक एक स्वदेशवत्सल युवकने रोमकी रक्षाका भार अपने ऊपर लिया। उसने गुप्तहत्याकी चेष्टामें पार्सेनाके खेमेमें प्रवेश किया। किन्तु पार्सेनाको पहचान न सकनेके कारण उसने राजमन्त्रीका वध किया। इसके बाद वह पकड़े जा कर पार्सेनाके सामने उपस्थित किया गया। जिस समय पार्सेनाने कष्ट दे कर उसके प्राणनाशका हुक्म सुनाया, उस समय उसने अपने दाहने हाथको जलती हुई अग्निशिखा पर फैलाया और वह हंसने लगा। हाथ जल गया, किन्तु उसकी हास्यरेखा उसके मुंहसे विलीन न हुई। उस समय म्यूशियसने निर्भीकताके साथ पार्सेनासे कहा,—"मेरी तरह तुम्हारी गुप्तहत्याके लिये ६०० युवक नियत किये गये हैं, उनमें मैं ही पहला हूं। दूसरे दूसरे युवक भी एक एक करके आवेंगे।" इससे डर कर और उसकी कष्टसहिष्णुता तथा साहसको देख पार्सेनाने उसे सकुशल रोम पहुंचा दिया। इस अद्भुत कीर्त्तिके लिये म्यूसियसको 'स्कियोला' या 'वामबाहु' नामसे पुकारने लगे। इसके बाद रोमके साथ सन्धि कर पार्सेना घर लौट आये। रोमकने सन्धिके प्रतिभूस्वरूप १० युवक और १० कुमारियोंको पार्सेनाके पास भेजा। इनमें क्लिलिया नामकी एक कुमारी टाइबर नदको तैरते हुए पार कर घर लौट आई। रोमकोंने उसे पकड़ कर फिर पार्सेनाके पास भेजा। पार्सेनाने उसके असीम साहस तथा

प्रतिभा देख कर उसको और उसके साथियोंको छोड़ दिया।

इसके बाद टार्कुइनने लेटिन नगरवासियोंकी सहायतासे तीसरी बार रोम पर आक्रमण किया। रोमकोंने विपद्‌में फंस कर एक डिरेक्टर नियुक्त किया। कन्सल डिरेक्टर नियुक्त करते थे। छः महीने तक यह पद स्थायी रहता था। डिरेक्टरोंकी सर्वतोमुखी क्षमता रहती थी। पपस्टुमियस पहले डिक्टेटर हुए। दोनों ओरकी सेना रजिलास झीलके निकट युद्धसज्जासे सज्जित हुई। इस भयङ्कर युद्धमें रोमक जयी हुए। टार्कुइनके पुत्र टाइटस मारा गया। टार्कुइन जख्मी हो प्राण ले कर भागा।

इसके बाद टार्कुइनने राज्य पानेकी फिर चेष्टा न की। अबकी बार वह क्यूमी नामक स्थानमें भाग गया और ४९६ ईसाके पूर्व ई०में उसने इस संसारको परित्याग किया।

रजिलास झीलके युद्धसे डिसेम्विरेट तक ४९८—४५१ ईसासे पूर्व।

पेट्रे शियन या अभिज्ञातगण एवं प्लेबियन या निम्नश्रेणी विरोधसे परिपूर्ण हैं। रोमका राजतन्त्र लुप्त हो जानेके बाद शासनप्रणाली धनिकोंके हाथ आ गई। वे ही कन्सल बनते थे, वे ही विचार करते थे। क्रमशः प्लेबियनगण अत्याचारसे पीड़ित हो कर असन्तोष प्रकाश करने लगे। सिवा रोममें ऋण ग्रहण तथा वसूल करनेका नियम भी बड़ा बेढब था। प्लेबियनोंमें बहुतेरोंको दरिद्रतावश ऋणग्रस्त धनिकोंकी गुलामी करनी पड़ती थी। राजतन्त्र विलुप्त होनेके बाद राजाकी जो साधारण भूमि थी, उस पर भी पेट्रे शियन स्वेच्छापूर्वक दखल जमा कर उसका भोग कर रहे थे, प्लेबियनोंका उस पर कुछ भी अधिकार न था।

इन सब कारणोंसे प्लेबियनोंने ईसासे पूर्व सन् ४९४ ई०में रोमसे तीन मीलकी दूरी पर एक नया नगर निर्माण करनेका सङ्कल्प किया। किन्तु उन सबको फिरा लानेके लिये मेनेशियस एग्रिपा नामक एक मनुष्य प्रतिनिधि नियुक्त हुआ। उसने ईशपकी कथामालासे उदर और अन्यान्य अवयवोंका किस्सा सुना कर उन्हें शान्त किया। उन सबोंने कहा, 'हम लोग सब विषयोंमें यदि समान अधिकार पावें तो लौटें।' उन्होंने कंटिविउन (धर्माधिकार) स्थापित कर अपने प्रति किये गये अत्याचारोंके प्रतिविधानकी चेष्टा की।

इसी समय स्पिउरियस-काशियस नामक एक विख्यात पेट्रे शियनने प्लेबियनोंके अनुकूल "एग्रेरियन ला" या "कृषिविधि" नामका एक कानून तैयार करनेकी चेष्टा की। इस कानूनसे उनका कुछ उपकार हुआ। अर्थात् इस साधारण भूमिके कुछ अंशके प्लेबियन भी अधिकारी बन गये।

इस समयके रोमके इतिहासमें करिउलेनास और भलसियनोंको और किसी विशेष घटनाका उल्लेख नहीं है।

मर्शियास करिउलेनास नामक एक अहङ्कारी पेट्रे शियस युवक प्लेबियनोंसे घृणा करता था। सन् ४९८ ईसासे पूर्व एक बार दुर्भिक्षके समय रोमके सहायतार्थ एक जहाज अन्न आया। करिउलेनासने उस अन्नसे प्लेबियनोंको देनेसे मना किया। इस पर प्लेबियनोंने उसका संहार करनेकी चेष्टा की। किन्तु कन्सलोंकी चेष्टासे वह बच गया। किन्तु वह युवक उस अपराधमें देशसे निकाल दिया गया। करिउलेनासने निर्वासित हो कर भलसियनोंको रोम पर आक्रमण करनेके लिये उत्तेजित किया। उन्होंने उसको अपनी सेनापति बना कर युद्ध करनेके लिये रोम भेज दिया। करिउलेनासने कितने ग्रामको लूट कर प्रबल प्रतापान्वित हो कर रोम पर आक्रमण किया। रोमके पुरोहित और प्रधान प्रधान सम्भ्रान्त व्यक्ति करिउलेनासके पास रोमरक्षा करनेके लिये प्रार्थना करने गये। किंतु उसने उन सबोंकी प्रार्थना पर जरा भी ध्यान न दिया। अन्तमें रोमकी रमणियां करिउलेनासकी माता भेटुरिया और स्त्री भलामणियांको आगे कर रोमरक्षाके लिये करिउलेनासके खेमेमें गईं। इनके करुणक्रन्दनसे विचलित हो कर उसने कहा "मातः तुमने रोमकी रक्षा की सही, किन्तु अपने पुत्रको मार डाला।"

इसके बाद वे भलसियनोंको लौटा ले गये। कुछ लोगोंका कहना है, कि भलसियनोंने इस प्रकार्य कार्य

से उसकी हत्या कर डाली। कुछ लोगोंका कहना है, कि वह वृद्धावस्था तक जीता रहा और सदा यह यही कहता था—"विदेशियोंमें रहनेका कष्ट वृद्धके सिवा दूसरा कोई अनुभव नहीं कर सकता।"

ईसासे पूर्व ४७७ ई०में भियेनटाइनोंके साथ एक युद्ध हुआ। उसमें रोमक जीत गये और कन्सल टाइटमैनेलियासके हुक्मसे सारे भियाइ नगर समूल विनष्ट हुए। केवल उस वंशका एक बालक बच गया था। इसने आगे चल कर रोमके इतिहासमें ख्याति लाभ की।

ईसाके पूर्व सन् ४५८ ई०में एकुइयानोंके साथ एक भयङ्कर युद्ध हुआ। सिनसिनेटसके अद्वितीय रण कौशलसे रोमकोंने जय प्राप्त किया। जिस समय सिनसिनेटसको सेनापति चुननेके लिये लोग गये थे, उस समय वह खेतमें हल चला रहे थे। इसके बाद उनकी पत्नी रेसिलियाने उनको एक साधारण वस्त्र दिया। उसी वस्त्रको पहन कर वह राजसभामें पहुंचा और वहां डिक्टेटर या रोमका सर्वमय कर्त्ता नियुक्त हुआ। असामान्य प्रतिभाके बल तथा रणकौशलसे शत्रुसैन्यको पराजित कर जयमालासे भूषित हो कर वह रोम लौट आया।

डिसेम्विरेट या दश शासन ४५१-४४९ ई० पू०।

ईसासे पूर्व सन् ४५१ ई०में ट्रिब्यून पावलियस भलेराने पावलियन नामक कानून तैयार किया। इस कानूनके फलसे प्लेवियनोंकी स्वतन्त्रताकी वृद्धि हुई। इसके बाद ईसासे पूर्व ४६२ ई०में ट्रिब्यूनके..यासटेरेन्टिलियस अर्साके प्रस्ताव पर दश आदमियोंकी एक कमिटी संगठित हुई। किन्तु इसका पेट्रिसियनोंने बहुत विरोध किया। अन्तमें ८ वर्षों तक विरोध होनेके बाद तीन विद्व व्यक्तियोंको यूनान देशमें सोलनका कानून संग्रह करनेके लिये भेजा गया। वे वहां दो वर्ष तक रह कर रोम लौट आये। ईसासे पूर्व ४५२ ई०में दश आदमियोंकी एक कमिटी संगठित हुई। यह कमिटी सर्वमयी हो कर शासनकार्य परिचालन करने लगी। इसमें एपियस, क्लेडियस और टाइटस जेनिउनियस कन्सल नियुक्त हुए। इस समितिने दश धारायें तैयार कीं। ये सर्वसम्मतिसे कानूनके रूपमें परिणत हुईं। पूर्वोक्त आइनकी इस धाराओंमें दो और धारायें जोड़ दी गईं।

ईसाके ४४६ पूर्व एकुइयान और भेयाइयोंने फिर रोम पर आक्रमण किया। एपियस स्वयं युद्धक्षेत्रमें न आ कर रोममें रह गया। किन्तु उसकी साजिशसे निडर सेनापति डेन्टाटस गुप्तरूपसे मार डाला गया। इसने १२० बार युद्धमें जय प्राप्त किया था। इसके बाद एपियासने सुन्दर सेनापति भर्जिनियाकी अलौकिक रूपवती कन्याको बलपूर्वक हरण करनेके लिये नाना उपायोंका आश्रय लिया। दूसरा उपाय न देख भर्जीनियाने अपनी प्रिय पुत्रीके वक्षस्थलमें छूरा मार कर उसका उद्धार किया। एपियासके इस तरहके अत्याचारसे प्लेवियन उत्तेजित हो उठे और वे रोमनगरको परित्याग कर दूसरी ओर जा कर रहने लगे। यह काण्ड दूसरा है। इस समय पेट्रेशियन दलने निरुपाय हो कर एल् भालेरियन और एम॰ होरेशियन नामक दो मनुष्योंको प्लेवियनोंके साथ संधि करनेके लिये भेजा। इसके बाद इन दश आदमियोंकी यह सम्मति विलुप्त हुई और ये ही दोनों मनुष्य कन्सल नियुक्त हुए। उन्होंने फिरसे आइनका संस्कार कर प्लेवियनोंको बहुत सुविधायें दीं। इन दश आदमियोंमें एपियस कैद कर लिया गया। यह आत्महत्या कर मौतके मुखपतित हुआ। अन्यान्य लोगोंमें किसीने आत्महत्या की और कोई निर्वासित तथा कुछ लोग मार डाले गये। उनकी धनसम्पत्ति जब्त कर ली गई।

ईसाके ४४४ वर्ष पूर्व रोमकी शासन-प्रणालीमें पुनः परिवर्त्तन हुआ और इसके अनुसार ६ आदमी मिलिटरी ट्रिब्यून या सामरिक विचारक नियुक्त किये गये। पहले कन्सल पेट्रिशियनोंमें चुने जाते थे, इस समय प्लेवियन दलसे ही सामरिक विचारक मनोनीत हुए।

इतने दिनों तक रोमराज्यकी सीमा निर्दिष्ट थी। अब रोमकोंने पड़ोसियों पर अधिकार कर यहां और अन्यान्य जगहोंमें उपनिवेश कायम करनेके लिये चेष्टा करने लगे। अतएव राज्यकी परिधि फैलने लगी। ईसाके ३६४ वर्ष पूर्व रोमकोंने भियाइ राज्यको सम्पूर्णरूपसे नष्ट भ्रष्ट कर दिया। दश वर्ष तक भयङ्कर युद्ध करनेके बाद

रोमकोंने विजय प्राप्त की। इसी समय दैववाणी प्रचारित हुई, कि जो ६००० फुट सुरङ्ग खोद कर अलवान झीलके जलका संयोग समुद्र-जलसे करा देगा, उसीकी इस युद्धमें विजय होगी। इसके अनुसार रोमके डिरेकृर फिउरियस कामिल्लासने उक्त सुरङ्ग तैयार की। आज भी वह विद्यमान है। इसके बाद वइास्कान राज्यका ध्वंस हुआ। इस युद्धमें विजय प्राप्त कर कामिल्लासने महा आडम्बरके साथ सादे घोड़ेके रथ पर चढ़ कर रोमनगरमें प्रवेश किया। जुनो देवताकी प्रतिमूर्त्ति रोममें लाई गई। इस मूर्त्तिके रखनेके लिये एक विराट् मन्दिर बनवाया गया।

ईसाके ३६१ वर्ष पूर्व कामिल्लास निर्वासित हुआ और गलगण असंख्य सेनाओंको ले कर रोमको ध्वंस करनेके लिये चढ़ आये। अलिया नामक स्थानमें घोरतर युद्ध हुआ। इस युद्धमें सहस्र सहस्र सैनिक धराशायी हुए। ऐसे समय बचे खुचे लोग पुरोहित और भेष्टलकुमारियोंके साथ केपिटाल पर्वत पर चले गये। गलोंने रोमनगरमें प्रवेश कर मार काट मचाते आग लगा कर नगरको भस्म कर दिया। केवल मानिलियासकी सावधानतासे केपिटाल शत्रुहस्तसे बच गया। इससे यह घोर नामसे पुकारा गया।

अन्तमें १००० स्वर्णमुद्रा पा कर गलगण रोम छोड़ कर चले गये। किन्तु राहमें रोमक सैनिकों द्वारा आक्रान्त हो नष्ट भ्रष्ट हो गये। इसके बाद रोमवासी रोममें लौट कर घरद्वार बनाने लगे। कमिल्लास लौट कर फिर प्रजातन्त्रका डिरेक्टर नियुक्त हुआ। सन् ३६१ ई० पू०में गलोंने फिर रोम पर आक्रमण किया। किन्तु अर्गो नदीके किनारेके युद्धमें मानिलियासकी अद्भुत वीरतासे रोमकी रक्षा हुई। इसके लिये टार्काटस नामक गौरवान्वित उपाधि उसको मिली थी। किन्तु अकृतज्ञ रोमवासियोंने पीछे उसको मार डाला। इसी समय पेट्रिशियन और प्लेवियनोंमें स्वत्व और स्वामित्व पर घोर वाद विवाद उपस्थित हुआ। पीछे ईसासे पूर्व ३६७ ई०में प्लेबियन दलके एल सेक्सटियस सर्वप्रथम कन्सल हुआ और विचार-कार्यके लिये प्रिटर या एक नया मजिष्ट्रेट नियुक्त हुआ। कुछ समयके लिये प्लेबियन और प्रेटिशियनोंमें शान्ति स्थापित हुई।

लेटिन-युद्ध (३४०-३३० ई० पू०)।

इसके बाद लेटियमके प्राधान्य पर रोमके साथ सामनाइट और लेटिनोंके दो युद्ध हुए। प्रथम सामनाइट युद्धमें (३४३-३४१ ई० पू०) रोमकोंने जीते और सामनाइटोंने उनकी अधीनता स्वीकार कर ली। लेटिनोंने दूत भेज कर कहवाया, कि हम लोगोंमेंसे भी कन्सल और शासक नियुक्त किया जावे। किन्तु रोमवासियोंने इस पर आपत्ति की और इसके फलसे इन दोनोंमें फिर घमासान युद्ध हुआ। (३४० ईसासे पूर्व) भेसेरिस और ट्रेफानाम नामक स्थानके युद्धमें रोमक सम्पूर्णरूपसे विजयी हुए। इस युद्धमें तीन चौथाई लेटिन मार डाले गये। इस युद्धमें मानेलियास टर्कोटस् सामरिक नियम उल्लङ्घनके लिये ब्रुटसकी तरह अपने पुत्रका सर काट लेनेका हुक्म अम्लानवदनसे दिया था।

२रा सामनाइट महायुद्ध (३२६-३०४ ई० पू०)

ईसासे ३३० वर्ष पहले रोमकोंने भलसियानोंके साथ युद्धमें विजय प्राप्त किया। रोमकोंके पुनः पुनः श्रीवृद्धि होते देख सामनाइटोंने यूनानियोंकी सहायतासे फिर रोमके विरुद्ध युद्धकी घोषणा की। यह युद्ध २२ वर्ष तक चला था। पहले पांच वर्षों तक रोमन ही जीतते गये और सामनाइट हताश हो कर युद्धकी इच्छा परित्याग करनेका सङ्कल्प करने लगे। पीछे सी० पाण्टियस नामक एक सामनाइट वीरके अत्यन्त निपुण समरकौशलसे सामनाइटोंका भाग्यचक्र पलटा। उसने "कडाइन फर्क" नामक गिरिसङ्कटमें रोमकोंका इस तरहसे अपमान और वे इस तरह पराजित हुए, कि वैसा रोमक-इतिहासमें कभी दिखाई नहीं देता। पण्टियासके रणकौशलसे रोमकोंकी चारवाहिनियां पहाड़के पथमें सम्पूर्ण रूपसे घिर गईं। अवश्यम्भावी विनाश देख कर रोमकोंने बुद्धिपूर्वक आत्मसमर्पण किया। पण्टियासने भी दया कर रोमसैन्य और सेनापतियोंके प्रति सद्व्यवहार किया। दोनों कन्सलों और दोनों सेनापतियोंने स्वीकार किया, कि हम लोग सामनाइटोंको रोमकोंके साथ सब विषयोंमें समान अधिकार देंगे और

१०० रोमक घुड़सवार प्रतिभूस्वरूप सामनाइटोंके पास रहेंगे। जब यह समाचार रोममें पहुंचा, तब सेनेटके सदस्य इनकी की हुई प्रतिज्ञाके पालन करनेमें सम्मत न हुए। इन्होंने कहा, 'सेनापतियोंके स्वीकृत प्रस्ताव-के पालन करनेमें हम लोग बाध्य नहीं हैं।' फिर युद्ध होने लगा। रोमका भाग्य फिर चमकने लगा। ईसासे ३०४ वर्ष पूर्व रोमकोंने सम्पूर्णरूपसे विजय प्राप्त किया। इसी समय एट्रास्कनोंने पराजित हो कर रोमकी अधीनता स्वीकार कर ली। मध्य इटलीके अधिवासी भी रोमके साथ सम्मिलित हो गये। ईसासे ३०० वर्ष पहले रोमका प्रभुत्व मध्य इटली पर सम्पूर्ण रूपसे बद्धमूल हो गया।

३रा सामनाइट युद्ध (२९८-२९० ई० पू०)

रोमकी उत्तरोत्तर उन्नति देख कर सामनाइटोंने फिर युद्धकी घोषणा की। गलोंने चाहा, कि उनकी सहायतामें रोमकोंसे युद्ध करें। मक्सिमस और डेसियस नामके दो कन्सलोंने फौजोंके साथ रणक्षेत्रको यात्रा की। डेसियसने भयङ्कर युद्ध कर प्राणत्याग किया। मेक्सिमसने जयलाभ किया। सामनाइट फिर रोमकोंके साथ मिल गये।

इसके दस वर्ष बाद एट्रास्कन तथा गल भाडिमो-झीलके निकट युद्धमें पराजित हुए। अब रोमकी दक्षिणी सीमा बढ़ने लगी। दक्षिण इटली पूर्वकी ओर यूनानियों द्वारा उपनिविष्ट हुई थी। इससे यह स्थान माग्ना ग्रीशियाके नामसे परिचित था। इस स्थानके वासिन्दे लुकानियों द्वारा आक्रान्त हो रोमकोंकी सहायताके इच्छुक हुए। रोमकोंने उनकी सहायता कर लुकानियों-को मार भगाया और वहां रोमसैन्य कायम किया। इस समय रोमकोंको विकट युद्ध करना पड़ा था। यह ईसा-के २८२ वर्ष पहलेकी बात है।

रोमक कन्सल दस नावों पर जब हठात् टेरेण्टम नगरके सामनेके समुद्रमें रोम लौट रहे थे। टेरेण्टाइनोंने रङ्गालयकी ऊंची छत पर चढ़ कर इन्हें समुद्रपथमें जाते देखा। देर न लगी, मौका देख कर इन सबोंने जलयुद्धकी तय्यारी कर दी। ४ नावें डुबा दी गईं। कन्सल वालेरियस मारे गये। बाकी सब भाग निकले।

रोमकी सिनेटने इसका कारण जाननेके लिये एक दूत भेजा। किन्तु वह दूत अभद्रोचित अपमानित किया गया। टेरेण्टम और रोमके बीच युद्ध छिड़ गया। टेरेण्टा-इनोंने यूनानी एपिरसके राजा पिरहासके निकट साहाय्य प्रार्थनाकी पिरहास मन ही मन समूचे इटली देश पर अधिकार कर एक प्रकाण्ड हेलेनिक साम्राज्य स्थापित करनेका सङ्कल्प कर रहा था। मौका देख कर टेरेण्टाइनोंको सहायता देना स्वीकार कर वह एक बड़ी फौज एकत्र करने लगा। शीघ्र ही उसने मिलो नामक एक सेनापतिको ३००० पैदल सैनिकोंके साथ टेरेण्टम नगरको भेज दिया। अन्तमें (२८१ ई० पू०) उसने २०००० पैदल, ३००० घुड़सवार और २० हाथी ले कर रोमके विरुद्ध युद्धयात्रा की। टेरेण्टममें पहुंच कर उसने रङ्गालयका मौज़कौतुक बन्द कर दिया और सब युवकोंको युद्धविद्या सिखाने लगा।

रोमक कन्सल भलेरियस लिभिनास ससैन्य लुका-नियोंसे हो कर चले। पिरहासने कौशलसे रोमक कन्सल-के पास पत्र लिख कर समय मांगा। कन्सलने गर्वित-भावसे उनको स्वदेश लौट जानेका परामर्श दिया। उस समय पिरहासने युद्ध करनेके लिये ये यात्रा की। सिरिस नदीके किनारे हिराक्लिया नामक स्थानमें दोनों ओरकी फौजें आपसमें जुट गईं। पिरहासने पहले घुड़सवार सैन्य ले कर रोमसैन्यों पर आक्रमण किया। रोमक 'लीजन' भीमवेगसे आक्रमणको रोकने लगे। उस समय पिरहासने पैदल सैनिकोंको परिचालना की। भयङ्कर युद्ध होने लगा। ७ बार नया नया आक्रमण हुआ, किन्तु जय-पराजयका निर्णय किया जा न सका। इसके बाद पिरहासने रणहस्तियोंको आगे बढ़ाया। हाथियोंके पराक्रमको देख रोमक भाग गये। यह ईसाके २८० वर्ष पहलेकी बात है।

पिरहासने रोमकसैन्योंके वीरत्वको देख कर कहा था, कि ये रोमक सैन्य मेरे पास होते या मैं इनका नेतृत्व करता होता, तो मैं पृथ्वीको जीत लेता। उसने देखा, कि एक और युद्ध होनेसे उसकी अवस्था शोचनीय हो जायगी। इससे उसने रोम दूत भेज कर यूनानियोंमें सन्धि की प्रार्थना कराई। किन्तु यूनानियोंकी स्वाधीनता रक्षा पर इसका प्रस्ताव किया गया था।

युनानीदूत सिनियास पक्तृताच्छटासे सेनेटके सदस्य सन्धि कर लेनेके पक्षपाती थे; किन्तु स्वदेशवत्सल वृद्ध-क्लाडियास क्रिकसके उद्दीपनापूर्ण वाक्यसे सन्धि हो न सकी। उस समय पिरहास धीरे धीरे सैन्यके साथ रोमकी ओर अग्रसर हुआ। पीछे विपद्का ख्याल कर शीतकालके आश्रयके लिये टेरेण्टममें आ पहुंचे।

रोमवासियोंने कैदियोंके बदलनेका प्रस्ताव दूत द्वारा पिरहासके पास भेजा। पिरहासने राजोचित सम्मान दिखा कर रोमक दूतके फेब्रिशियसको अभिनन्दन किया। फेब्रिशियस अत्यन्त सत्यनिष्ठ और विक्रमशाली था। वह अपने हाथों हल चलाता था। पिरहासने उसको हाथ करनेके लिये साम, दाम, दण्ड और भेदसे काम लिया; किन्तु सफलीभूत हो न सका। फ्रिबिशियस मत्त गजराजके सूंड़के सामने भी अचलरूपसे खड़ा था। पिरहासने निरुपाय हो कर कहा, कि रोमक कैदियोंको वह साटार्नेलिया या शनि उत्सवमें शामिल होनेका हुक्म दिया और कहा, यदि 'सेनेट सन्धिके प्रस्ताव पर सम्मत न हो, तब कैदी फिर लौट आयेंगे।' सेनेटके सदस्योंने अविचलित भावसे सन्धिका प्रस्ताव अस्वीकार कर दिया। उत्सवके अन्तमें रोमक कैदी फिर पिरहासके खेमेमें भेज दिये गये।

ईसाके २७६ वर्ष पहले फिर युद्ध आरम्भ हुआ। अस्कुलम नामक स्थानके युद्धमें रोमक सैन्य फिर पराजित हो गए। ६००० रोमक सैनिक युद्धक्षेत्रमें काम आये। युद्धमें जयी होने पर भी पिरहासको सिवा नुकसानके कोई लाभ न हुआ। इसी समय पिरहासके राज्य पर गलोंका आक्रमण हुआ, अब वह बुरी बलामें फंसा। इधर सिसिली-वासियोंने भी उसकी सहायताकी प्रार्थना की। इससे घबड़ा कर पिरहासने रोमक कैदियोंको सम्मान रोम भेज कर सन्धिकी प्रार्थना की। किन्तु रोमकी सिनेटने उसे इनकार कर दिया।

पिरहासने सिसिलीमें जा कर आक्रमणकारी कार्थेजियोंको हराया। किन्तु सिसिलीवासी उसके अत्याचार से प्रपीड़ित हुए। इसके बाद ईसाके २७६ वर्ष पहले फिर इटलीमें वह लौट आया और शीघ्र ही रोमकोंके अधिकृत लेकिनगर पर अधिकार कर अर्थाभावसे पार्सिफोन देवीके मन्दिरका धनरत्न अपने व्यवहारमें लाया। इस काण्डमें उसका एक लदी लदाई नाव या जहाज डूब गया। इससे पिरहास पार्सिफोनका निग्रह समझ भग्नोत्साह हुआ।

दूसरे वर्ष कन्सल एम किउरियसने पिरहासके विरुद्ध युद्धयात्रा की। बेलिभेण्टम् नामक प्रसिद्ध स्थानमें दोनों ओरकी फौजें आ कर आपसमें जुट गईं। घोरतर युद्ध हुआ। इस युद्धमें पिरहासके दो हाथी मारे गये और चार हाथी रोमकोंके हाथ लगे। पिरहासकी फौजें रणक्षेत्रसे भाग खड़ी हुईं। पिरहास कई सेवक या कर्मचारियोंके साथ युनान भाग गया। अर्गस नगर पर अधिकार करते समय एक स्त्रीको चलाई एक ईंटसे उसकी मृत्यु हुई थी।

कुछ ही समयमें रोमकोंने समूचे इटली पर कब्जा कर लिया। सबकी दृष्टि रोम पर पड़ी। मिश्रके राजा टलेमी फिलाडेलफासने दूत भेज कर मित्रता स्थापित की। रोमके अधिकृत प्रदेशोंके अधिवासी तीन भागोंमें विभक्त हुए।

(१) रोमवासी या रोमनगरकी ३३ विभिन्न जातियां।

(२) रोमके औपनिवेशिक अधिवासी।

(३) रोमके अधिकारभुक्त म्यूनिसिपल (स्वायत्त-शासन) चालित नगर।

म्यूनिसिपल नगरवासियोंके सदस्योंका पूर्ण अधिकार था और वे रोमवासियोंके साथ वाणिज्य तथा अन्तर्विवाह करनेके अधिकारी थे, सिवा इसके मित्र और सहयोगी छोटे छोटे राज्योंको भी रोमकशासनकी सुविधा मिली थी। चारों ओर स्वाधीन राज्योंके साथ रोमकोंकी मित्रता स्थापित हुई। इस तरह रोमकोंका राज्यशासन दृढ़तर भित्ति पर कायम हुआ। सामाजिक विधि-व्यवस्थायें भी बहुत अंशमें सुधार प्रणालीक्रमसे प्रतिष्ठित हुईं। शिल्पी और व्यवसायी वोट देनेके अधिकारी हुए। गुलामोंको भी किसी किसी विषयमें सुविधा दी गई। इसी समय कानूनी और सरकारी कामोंमें सुधार होने लगा। उसके पहले पुरोहित ही कानून और धर्मशास्त्रका अनुशासन किया करते थे। किन्तु क्लडियसने इस समय सरकारी और सामाजिक कार्यों-

करके अनुशासन सम्बन्धी विधि व्यवस्थाको एक पुस्तक प्रकाशित की। इसमें यह भी लिखा गया था, कि किस किस दिन सरकारी या धर्माधिकरण आदि कार्य होंगे, या बन्द होंगे। पुरोहितोंका पवित्र अधिकार कम हुआ।

राज्यविस्तारके साथ साथ चारों ओर उपनिवेश स्थापित होने लगा। १२ नई जातियां रोमके शासनाधीन हुईं। लिविका कहना है:—ईसाके २०१ वर्ष पूर्व मनुष्यगणनासे जाना गया था, कि रोमकी जनसंख्यामें पुरुषोंकी संख्या ६२००० थी। स्त्रियोंकी संख्या निर्दिष्ट नहीं। रोमकी समृद्धि सुन कर नाना देशके विद्वद्गण रोममें आने लगे। धीरे धीरे लक्ष्मीकी वृद्धिके साथ साथ सरस्वतीकी कृपा हुई। यूनानी विद्वान् रोममें आ कर रहने लगे। मिस्रके विद्वान् भी रोमके परिदर्शन करनेके लिये रोम आने लगे।

भूमध्यसागरके चारों ओरके राज्योंके मध्यमें स्थापित इटलीराज्य इतने दिनों तक शक्ति और समृद्धि अर्जित कर राजकीय जगत्में यथार्थ केन्द्रस्व लाभ कर रहा था। उस सागरके किनारेके राज्यके अधिवासी राजा और प्रजा सभी इटलीके शीर्षस्थ रोमका प्राधान्य अनुभव कर रहे थे। पिरहासका आगमन और यूनानियोंके अधिकृत दक्षिण-इटलीके नगरोंमें रोमका आधिपत्य और वश्यता स्वीकार होनेके पहले भूमध्यजगत्में (Eastern Mediterranean world) इस इटली राज्यकी शक्ति और प्रभा विकसित हो आई। मिस्रने रोमसे मित्रताकी कामना कर आपसमें सद्भाव कर लिया। यूनानी विद्वत्समाज इस नवोद्भुत और दिग्दिगन्तमें व्याप्ति प्राप्त कर रोम-राज्यका इतिहास, राजतन्त्र और लैटिन प्रजातन्त्रके मूल विषयकी उन्नतिमें सहायता करने लगे। पिरहासके लौटने पर रोमका पूर्व सम्बन्ध उसी तरह था। उस समय ५० वर्ष तक फिर रोमकी क्रूर दृष्टि पूर्वाञ्चलमें न पड़ी।

रोममें जब प्रजातन्त्र कायम हुआ, तब रोम कार्थेजके साथ सन्धिसूत्रमें बद्ध था। जब पिरहास सिसिलीमें कार्थेजके साथ युद्धमें प्रवृत्त हुए तब भी कार्थेज रोमके साथ नई सन्धि कर मित्रताके पाशमें बंध गया था। किन्तु उस समय रोमकी श्रीवृद्धि उत्तरोत्तर होते देख कार्थेज ईर्षान्वित हो उठा। सिसिली द्वीपके ऊपर कार्थेजका रोमके साथ विवाद उठ खड़ा हुआ। सिसिलीके अन्तर्गत मेसनानगरमें बहुत दिनों तक मैमार्टिनो (या मङ्गलपुत्र) नामक एक प्रबल डाकूदलका वास था। साइराक्युजके राजा हीरो इनको जीत कर समूल नष्ट करनेका उद्योग करने लगे। इस समय इन्होंने रोमसे सहायताकी प्रार्थना की। रोमक हीरोके साथ मैत्री रहनेके कारण पहले सहायता करने पर राजी न हुए। पीछे कार्थेजीयनोंकी सहायतार्थ प्रवृत्त देख रोमक इनकी सहायता करने पर राजी हुए। पूर्वोक्त फ्लस हुडिवासके पुत्र पणियास क्लडियास सैन्यके साथ सिसिली चला। इसके पूर्व ही कार्थेजीयन सैन्य मैमार्टिनोंके सहायतार्थ मेसाना नगरमें आ पहुंचा था। हीरोने रोमक सैन्यको देख कार्थेजीयोंके साथ मिल कर जलपथ और स्थलसे मेसना पर घेरा डाल दिया। रोमक वीरोंने भी इस मिलित सैन्यदलसे युद्धकी घोषणा की। यह ईसासे २६४ वर्ष पहलेकी बात है। यहसे पिउनिक-युद्धका सूत्रपात हुआ।

कार्थेजवाले जलयुद्धमें प्रसिद्धि पा चुके थे। क्योंकि फिनिकोंने प्राचीनकालसे समुद्र वाणिज्यमें रत रहनेके कारण भारतीय शिल्पियोंसे जहाज बनाने सीख लिया था। इससे उस समय भी कार्थेजीयनोंके पास बड़े बड़े जहाज मौजूद थे, किन्तु रोमकोंके पास कुछ भी न था। फिर भी निर्भीक क्लडियास मेसानाके निकट स्थल युद्धमें प्रवृत्त हुए। रोमकसैन्यके पराक्रमसे यह सम्मिलित सैन्य बार बार पराजित हुआ। ईसाके २६३ वर्ष पहले रोमकवीर हीरोकी राजधानी साइराक्यूज पर आक्रमण करनेके उद्योगी हुए। बहुसंख्यक नगरोंको लूटपाट कर तथा जला कर भस्म कर साइराक्यूजके नहारदीवारीके निकट वे पहुंचे। हीरो रोमकोंके साथ सन्धि कर उनका साहाय्यकारी बनाया गया।

रोमक सैन्योंने हीरोके साथ मैत्री कर कार्थेजीय फौजोंके साथ युद्धार्थ एग्रीजेण्टम नगर पर घेरा डाला। इस नगरमें सिसिलीवासी यूनानियोंका किला था। ईसाके २६२ वर्ष पहले युद्धमें जयलाभ कर रोमीने इस

नगर पर अधिकार कर लिया। इस तरह युद्धके तीन वर्ष पहले ये जयलाभ कर सिसिलीके अधिकांश पर अधिकार कर बैठे। इस समय कार्थेजीय जङ्गी-जहाजसे इटलीके किनारे लूटपाट कर रोमकी विशेष क्षति करने लगे। यह देख निरुपाय हो कर रोमक जहाज बनानेमें प्रवृत्त हुए। नाना देशोंके लूटनेसे रोमकोंका धनागार भरा पूरा था। शीघ्र ही बड़े बड़े जङ्गीजहाज बनने लगे। पहलेके एक बड़ा फिनिक-जहाज इटलीके किनारे लगा था। इसीको देख कर रोमक शिल्पी जहाज बनाने लगे। जिस दिन इसकी लकड़ी काटी और चिरी गई, उसी दिनसे ६० दिनोंमें १३० जहाजें तैयार हो कर समुद्रमें तैरा दिये गये। शीघ्र ही मल्लाह, कप्तान आदि उसके चलानेवाले सिखाये गये। समुद्रवक्ष पर रोमके जङ्गीजहाज सर्व-प्रथम चलने लगे।

ईसाके २६० वर्ष पहले कन्सल कर्णिलियसने १७ सुसज्जित जङ्गीजहाज ले कर युद्धयात्रा की। किन्तु कार्थेजियोंके मुकाबले लिपारा नामक स्थानमें सम्पूर्ण-रूपसे पराजित हो कर कैद कर लिये गये। इसके बाद दूसरे कन्सल डुइलियस बकोये जङ्गी जहाजोंको ले कर युद्धके लिये चले। उसने असामान्य कौशलसे एक नई प्रथाका आविष्कार किया। उसके प्रत्येक जहाज पर एक एक २४ हाथ लम्बे पुल रखे हुए थे। ये पुल जहाजमें रस्सीसे बंधे रहते थे। शत्रुके जहाज जब समीप आता था, तब रस्सी खोल कर पुल जलमें तैरा कर सैकड़ों आदमी उस जहाज पर चढ़ जाते और उसका समस्त धन लूट लिया करते थे। इस नये आविष्कारके फलसे माइली नामक स्थानके युद्धमें रोमकोंको ३१ कार्थेजिय जङ्गीजहाज हाथ लगे थे और १४ जङ्गीजहाज नष्ट भ्रष्ट कर दिये गये। कितने ही जहाज रणस्थलसे भाग निकले। डुइलियस महाडम्बरसे रोममें पहुंचे। रोशनी की गई, राह फूल पत्तियोंसे सजाई गई थी और बाजे बज रहे थे। ऐसे सजधजसे कन्सलने रोममें प्रवेश किया। युद्धमें पकड़े हुए जहाजके उपकरणों द्वारा 'फोरम'-में एक स्तम्भ उसके सम्मानार्थ प्रतिष्ठित हुआ। इसका नाम रष्ट्राटा स्तम्भ है। रोमके कापिटोलाइन म्यूजियममें यह आज भी रखा हुआ है।

इसके कई वर्ष पीछे अर्थात् ईसासे २५६ वर्ष पूर्व रोमक दोनों कन्सल रेगुलस और मनेलियस-ने ३३० जङ्गी जहाजोंको सुसज्जित कर कार्थे-जिय सैन्यके विरुद्ध यात्रा की। इससे पहले प्राचीन समयमें किसी समुद्रमें इतने जङ्गी जहाजोंका समावेश नहीं हुआ था। पूर्वोक्त पुलके कौशलसे रोमक-सैन्यने कार्थेजियन जहाजोंको नष्ट भ्रष्ट कर दिया। इस युद्धमें केवल २४ जङ्गीजहाज नष्ट हुए थे। किन्तु रोमकों-ने ६३ जङ्गी जहाजोंको मालमत्ता समेत गिरफ्तार कर लिया था। युद्धमें जयलाभ कर रोमक कार्थेजिय नगरोंको लूटने पाटने लगे। इस लूटपाटमें उनको बहुत धनरत्न प्राप्त हुआ। कुछ दिनोंके बाद शीतकालमें माने-लियस अर्द्धक सैन्य ले कर रोममें लौट आये। रेगुलस युद्धक्षेत्रमें रहे। रेगुलस नित्य नये नगरों पर अधिकार करते कार्थेजिय नगरके समीप पहुंचे। कार्थेजिय भी हाथी, घोड़े और पैदल सैनिकोंको ले कर युद्धके लिये आगे बढ़े। इस युद्धमें भी रेगुलसने विजय पाई। कार्थेजियके १५००० सिपाहियोंने रणस्थल-में प्राण गवां दिये। इसके सिवा ५००० फौजें और १८ हाथी पकड़ लिये गये। रेगुलस कार्थेजिय नगरों-को लूट पाट कर कार्थेजनगर पर घेरा डालनेकी तरकीब सोचने लगे। उसने शीघ्र ही ट्यूनिस नगर पर अधि-कार कर उसे लूट लिया। ऐसे मौके पर न्यूमिडियगण कार्थेजकी अधीनता अस्वीकृत कर स्वाधीनता लाभ करने-की चेष्टा करने लगे। कार्थेजिय हताश हो रेगुलससे सन्धिकी प्रार्थना की। किन्तु जयसे उन्मत्त रेगुलसने उस प्रार्थना पर ध्यान न दिया, इसी समयसे कार्थेजियोंके भाग्यमें परिवर्तन दिखाई दिया। स्पार्ट-राज जण्टियस ४००० घुड़सवार, १०० हाथी और कई हजार पैदल सैन्य ले कर कार्थेजके सहायतार्थ आ गये। भयङ्कर युद्ध उपस्थित हुआ। ३००० रोमक-सैन्य रणक्षेत्रमें काम आये। रेगुलस ५०० सैनिकोंके साथ कैद हुए। बाकी २००० सैनिक अपने शिविरोंमें भागे। यह ईसासे २५५ वर्ष पहलेकी बात है। रोमकोंके दुर्भाग्य का यहां ही अन्त नहीं हुआ। भागी हुई रोमक फौजें जहाज पर चढ़ कर रोमकी यात्रा कर रही थी, ऐसे

भीषण तूफानमें पड़ कर सभी जङ्गीजहाज डूब गये। इनके जहाजियोंने भी सागरगर्भमें स्थान लिया। और जङ्गी जहाजोंमें केवल ८० जहाज रोम लौटे। इसके साथ कुछ फौजें भी आईं।

इस काण्डसे रोमक निरुत्साह नहीं हुए वर बड़े उत्साहसे जङ्गी जहाजोंके बनानेमें प्रवृत्त हुए। तीन महीनेमें २२० जहाज बने। रोमन फिर जलपथसे चले। ईसासे २५३ वर्ष पहले रोमक कन्सल कार्थेजके किनारे लूट पाट करने लगे। यह युद्धमें विजय प्राप्त कर लौट रहा था, ऐसे समय तूफानमें पड़ कर सब जहाज डूब गये। पालिनस अन्तरीपके किनारे यह काण्ड हुआ था।

रोमक सैन्य फिर सिसिलीमें युद्ध करने लगा। २०० वर्ष ईसासे पूर्व रोमक प्रोकन्सल मेटेल्लस पानार्मास नामक स्थानमें एक भीषण युद्धमें जयी हुआ। २०००० कार्थेजिय सैनिक रणस्थलमें मारे गये। १०४ हाथी रोमकोंके हाथ लगे। इस युद्धमें जयी हो कर बड़े उत्साहके साथ २०० जङ्गी-जहाज तैयार किये गये। अब कार्थेजिय रोमकोंके साथ सन्धि करने पर तैयार हुए। रेगुलस पहलेके युद्धमें यहां कैद था। रोमक-इतिहासमें इसकी वीरता, सत्यनिष्ठता तथा स्वदेशप्रेम स्वर्णाक्षरोंमें लिखे हुए हैं। कार्थेजियोंने अपने दूतोंके साथ रेगुलस को रोम भेज दिया और कहा,—यदि आप सन्धि न करा सकें तो फिर कार्थेजियन जेलमें चले आयें। निर्भीक रेगुलस रवाना हुआ। लज्जाके मारे पहले रेगुलस रोमकी चहारदीवारीके भीतर घुसता न था। किन्तु बादमें जाना पड़ा। वीरहृदय रेगुलसके पानेको ही सरदारने कार्थेजियोंके साथ सन्धि करने पर रोमक उसको परवाह न कर वह कार्थेज चला गया। वहां जानेसे उस पर जो अमानुषिक अत्याचार हुआ, उसका वर्णन करनेसे हृदय कांप उठता है, रोंगटे खड़े हो जाते हैं। कार्थेजिय क्रोधित हो घोर नृशंसताके साथ उसको मार डाला। पहले आंखोंकी पलनियां काट कर यह भीषण धूपमें डाल दिया गया। पीछे एक बड़े बक्समें चारों ओर सुइयां गाड़ कर उसमें वे उसको ढुका देते थे। स्वदेशवत्सल रेगुलसने ऐसे भीषण अत्याचारको सहन करते हुए अपने प्राण गंवा दिये।

इस निष्ठुरताकी बीभत्स कहानी सुन कर रोमक कार्थेजको ध्वंस करने पर प्रज्वलित हुए और शीघ्र ही उन्होंने इटलीके अन्तर्गत कार्थेजीय नगर लिलिबियम पर घेरा डाल दिया। दूसरी ओर कन्सल क्लाडियसने जलपथसे ड्रेपानन नामक स्थानमें कार्थेजिय जङ्गी-जहाजों पर आक्रमण किया। पहले युद्धमें रोमकोंके जय प्राप्त करने पर जलयुक्त क्लाडियसकी मूर्खतासे रोमकोंकी प्रायः हार हो गई। आर्टिनियस कलेटिनस उसकी जगह कान्सल नियुक्त हुआ। दूसरे कन्सल मि० जुनियस जङ्गीजहाज ले कर लिलिबियम नगरमें रोमक फौजोंके सहायतार्थ आ रहा था। राहमें तूफानमें पड़ कर उसके सब जङ्गीजहाजें डूब गये। केवल दो जहाजें बच गये थे। इस तरह दैवविडम्बनासे तीन बार रोमक जङ्गी-जहाज सागरगर्भमें डूब गये। अब रोमकोंने जलयुद्धकी ओरसे मन हटा कर स्थलयुद्धकी ओर ध्यान लगाया।

इस समय कार्थेजमें एक वीर पुरुषका जन्म हुआ। इसका नाम [illegible] बार्का। यही इतिहासके प्रसिद्ध हा[illegible] है। [illegible] पूर्व यह

अधिकार कर लिया। दो वर्षकी अक्लान्त चेष्टासे रोमक फौजें हामिलकरको एक पैर भी पीछे हटा न सकीं।

रोमक अब समझ गये कि वे जलयुद्धके बिना स्थल-युद्धमें कार्थेजियके साथ प्रतियोगिता कर नहीं सकेंगे। २४२ ईसाके पूर्व कन्सल लुटाटियसके कटेलससे २०० जहाज ले कर युद्ध करने चला। हानो नामक सेनापति कार्थेजीय जहाजोंके अध्यक्ष था। इगेट्स नामक द्वीपके निकटके युद्धमें रोमकोंने विजय पाई। इस युद्धमें रोमकोंको सब विषयमें सुविधा मिली। क्योंकि जल-पथ बन्द करने पर कार्थेजसे कुछ भी सहायता नहीं आ सकी। फलतः हामिलकरको ससैन्य भूखों ही मरना पड़ा।

कार्थेजियोंने निरुपाय हो कर हामिलकरको रोमके साथ सन्धि कर लेनेको कहा। ईसाके २४१ वर्ष पहले यह सन्धि हो गई। इससे कार्थेजियोंको सिसिलीका प्रभुत्व और निकटके द्वीपपुञ्जोंका आधिपत्य छोड़ देना पड़ा। कैदियोंको उन्होंने छोड़ दिया। सन्धिमें यह शर्त थी, कि कार्थेजिय १० वर्षके भीतर ३२०० तोला सोना रोमकोंको युद्धके क्षतिपूर्तिके रूपमें देंगे। कर्सिका और सार्डिनिया रोमके अधिकारमें आ गये। किस तरह सिसिली पर शासन करें, रोमक इस विषय पर चिन्ता करने लगे। रोमकी शासन-प्रणालीके अनुसार सिसिलीका शासन होना असम्भव समझ कर उन्होंने सिसिलीमें एक नई शासन-प्रणाली प्रतिष्ठित की। रोमसे एक शासक हर साल निर्वाचित कर भेजा जाने लगा। इसी शासक द्वारा सिसिली देश शासित होने लगा। इसी तरह रोम-साम्राज्यकी प्रथम नींव पड़ी।

इधर हामिलकर अपने देशमें लौट आया और बदला चुकानेकी फिक्र करने लगा तथा साथ ही स्पेनमें एक विपुल साम्राज्य-प्रतिष्ठाका आयोजन करने लगा। बहुत दिनोंके बाद रोममें शान्ति स्थापित हुई। नुमाके समयसे इतने दिनों तक रणदेवता जेनासका दरवाजा खुला था। रोमके इतिहासमें दूसरी बार इस मन्दिरका दरवाजा बन्द हुआ। किन्तु अधिक दिनों तक बन्द न रहा। रणभेरीके आह्वानसे फिर शीघ्र ही रण-देवताका मन्दिरद्वार खुला। पहले ३३ जातियां मिल कर रोमराज्यकी प्रतिष्ठा हुई थी। इस समय दो जातियों और इस जातिमें मिल कर ३५ जातियां हो गईं।

एड्रियाटिक सागरके पूर्वीय भागमें इल्लिरीय वास करते थे। वे जल-डाकैतीसे समृद्धशाली हुए थे। इनके उपद्रवोंसे इटलीका किनारा निरापद न था। रोमकी सेनेटने इल्लिरीय राजा अग्रनके पास दूत भेज कर इस उपद्रवोंको दूर करनेकी प्रार्थना की। राजाने इस प्रार्थना पर जरा भी ध्यान न दिया; वरं दूत मार डाला गया। शीघ्र ही रोमक फौजें वहां पहुंची। यह ईसाके २२९ वर्ष पहलेकी घटना है। उस समय वहांका राजा अग्रन मर गया था। उसकी विधवा रानी टिउटा डिमेट्रियस नामक एक यूनानीके साहाय्यसे राज्य-शासन कर रही थी। डिमेट्रियस रानीने टिउटाको छोड़ कर 'करसाइरा' नामक द्वीप रोमकोंको दिया। टिउटाने निरुपाय हो कर रोमकोंके प्रस्तावोंको स्वीकार कर लिया। इस तरह वहांकी जल-डकैती दूर हुई। इससे जितनी खुशी यूनानियोंको हुई, उतनी खुशी रोमकोंको न हुई। उन सबोंने रोमकोंको धन्यवाद-सूचक संवाद ले कर उनके पास दूत भेजा।

इस युद्धके समाप्त न होते होते गलोंसे फिर रोमकोंका युद्ध आरम्भ हुआ। इट्रिरियाके अन्तर्गत टैलमन नामक स्थानमें भीषण युद्ध हुआ। यह ईसासे २२५ वर्ष पहलेकी बात है। समरक्षेत्रमें ४०००० गलसैन्य हताहत हुई और १०००० फौजें कैद कर ली गईं। रोमकोंने बोआई प्रदेशसे पो-नदीके किनारे तकके देशों पर अधिकार कर लिया। रोमराज्यका आकार चारों ओरसे बढ़ने लगा। उत्तर-अल्पस पहाड़ तक रोमकोंकी जयपताका फहराई।

उस समय हामिलकरने स्पेनमें साम्राज्यका बीज वपन किया था। उसकी अद्भुत प्रतिभासे वहां राज्यकी सीमा जल्द जल्द बढ़ने लगी। हामिलकरके हृदयमें रोमकोंके प्रति वैरभाव सर्वदा विद्यमान रहता था। उसने अपने नौ वर्षके पुत्रसे अग्निस्पर्श करा कर प्रतिज्ञा कराई थी, कि यह आजीवन रोमकोंके

समय भीषण तूफानमें पड़ कर सभी जङ्गीजहाज डूब गये। इसके जहाजियोंने भी सागरगर्भमें स्थान लिया। ३६४ जङ्गी जहाजोंमें केवल ८० जहाज रोम लौटे। इसके साथ कुछ फौजें भी आईं।

इस काण्डसे रोमक निरुत्साह नहीं हुए वरं बड़े उत्साहसे जङ्गी जहाजोंके बनानेमें प्रवृत्त हुए। तीन महीनेमें २२० जहाज बने। रोमन फिर जलपथसे चले। ईसासे २५३ वर्ष पहले रोमक कन्सल कार्थेजके किनारे लूट पाट करने लगे। वह युद्धमें विजय प्राप्त कर लौट रहा था, ऐसे समय तूफानमें पड़ कर सब जहाज डूब गये। पालिनस अन्तरीपके किनारे यह काण्ड हुआ था।

रोमक सैन्य फिर सिसिलीमें युद्ध करने लगा। २०० वर्ष ईसासे पूर्व रोमक प्रोकन्सल मेटेल्स पानार्मास नामक स्थानमें एक भीषण युद्धमें जयी हुआ। २०००० कार्थेजिय सैनिक रणस्थलमें मारे गये। १०४ हाथी रोमकोंके हाथ लगे। इस युद्धमें जयी हो कर बड़े उत्साहसे फिर २०० जङ्गी-जहाज तैयार किये गये। अब कार्थेजिय रोमकोंके साथ सन्धि करने पर तैयार हुए। रेगुलस पहलेके युद्धमें यहां कैद था। रोमक-इतिहासमें उसके वीरत्व, सत्यनिष्ठता तथा स्वदेशप्रेम स्वर्णाक्षरमें लिखे हुए हैं। कार्थेजियोंने अपने दूतोंके साथ रेगुलस को रोम भेज दिया और कहा,—यदि आप सन्धि न करा सकें तो फिर कार्थेजियन जेलमें चले आवें। निर्भीक रेगुलस सम्मत हुआ। लज्जाके मारे पहले रेगुलस रोमकी चहारदीवारीके भीतर घुसता न था। किन्तु आखिर जाना पड़ा। वीरहृदय रेगुलसके आनेकी ही गरजसे कार्थेजियोंके साथ सन्धि करने पर रोमक तय्यार हुए। किन्तु रेगुलसने कहा था—"भाइयों, मेरे इस तुच्छ शरीरके लिये रोमकोंका गौरव नष्ट कर कभी भी सन्धि न करना। रोमके गौरवमें ही मेरा भी गौरव है।" सेनेटके सभ्योंने कहा—"आप कार्थेज मत जाइये।" इसके बाद सहस्र सहस्र व्यक्तियोंने कहा, विदेशमें बलपूर्वक पकड़े हुए लोगोंके शपथका पालन न करनेसे पाप नहीं होता। किन्तु सत्यसन्ध स्वदेशवत्सल रेगुलस यह बात जानता था, कि वहां लौट जानेसे मुझ पर अमानुषिक अत्याचार होगा। फिर भी उसकी परवाह न कर वह कार्थेज चला गया। वहां जानेसे उस पर जो अमानुषिक अत्याचार हुआ, उसका वर्णन करनेसे हृदय कांप उठता है, रोंगटे खड़े हो जाते हैं। कार्थेजिय क्रोधित हो घोर नृशंसताके साथ उसको मार डाला। पहले आंखोंकी पपनियां काट कर वह भीषण धूपमें डाल दिया गया। पीछे एक बड़े बक्समें चोखे चोखे सुएं गाड़ कर उसमें वे उसको डुला देते थे। स्वदेशवत्सल रेगुलसने ऐसे भीषण अत्याचारको सहन करते हुए अपने प्राण गंवा दिये।

इस निष्ठुरताकी वीभत्स कहानी सुन कर रोमक कार्थेजको ध्वंस करने पर दृढ़प्रतिज्ञ हुए और शीघ्र ही उन्होंने इटलीके अन्तर्गत कार्थेजीय नगर लिलिबियम पर घेरा डाल दिया। दूसरी ओर कन्सल क्लडियसने जलपथसे ड्रेपानम नामक स्थानमें कार्थेजिय जङ्गी-जहाजों पर आक्रमण किया। पहले युद्धमें रोमकोंके जय प्राप्त करने पर अलयुक्त क्लडियसकी मूर्खतासे रोमकोंकी प्रायः हार हो गई। आटिलियस कलेटिनस उसकी जगह कन्सल नियुक्त हुआ। दूसरे कन्सल मि० जुनियस जङ्गीजहाज ले कर लिलिबियम नगरमें रोमक फौजोंके सहायतार्थ आ रहा था। राहमें तूफानमें पड़ कर उसके सब जङ्गीजहाजें डूब गये। केवल दो जहाजें बच गये थे। इस तरह दैवविडम्बनसे तीन बार रोमक जङ्गी-जहाज सागरगर्भमें डूब गये। अब रोमकोंने जलयुद्धकी ओरसे मन हटा कर स्थलयुद्धकी ओर ध्यान लगाया।

इस समय कार्थेजमें एक वीर पुरुषका जन्म हुआ। इसका नाम था—हमिलकार बार्का। यही इतिहासके प्रसिद्ध हानिबलका पिता है। ईसासे २४७ वर्ष पूर्व वह सिसिलीमें कार्थेजिय सैन्यके सेनापति हो कर गया, उस समय वह तरुण था। वह युद्धक्षेत्रमें सीधे न आ कर हार्कटायर्नके नीचे थोड़े सैन्य ले कर गया। इस स्थानमें उसने ऐसी व्यूह रचना की और एक वर्ष तक वहीं टिका रहा—कि उसके अद्भुत कार्योंसे शत्रु मित्र सभी सराहने लगे। इस सुरक्षित व्यूहसे वह धीरे धीरे रोमक फौजोंकी ओर दौड़ा। रोमक फौजें उसको बाधा दे न सकीं। हमिलकर आगे बढ़ा और उसने इरीक्स नामके निकटका एरिक्स नामक पहाड़ी नगर पर

अधिकार कर लिया। दो वर्षकी अक्लान्त चेष्टासे रोमक फौजें हामिलकरको एक पैर भी पीछे हटा न सकीं।

रोमक अब समझ गये कि वे जलयुद्धके बिना स्थल-युद्धमें कार्थेजियके साथ प्रतियोगिता कर नहीं सकेंगे। २४२ ईसाके पूर्व कन्सल लुटारियसके कटेलससे २०० जहाज ले कर युद्ध करने चला। हानो नामक सेनापति कार्थेजीय जहाजोंके अध्यक्ष था। इगेट्स नामक द्वीपके निकटके युद्धमें रोमकोंने विजय पाई। इस युद्धमें रोमकोंको सब विषयमें सुविधा मिली। क्योंकि जल-पथ बन्द करने पर कार्थेजसे कुछ भी सहायता नहीं आ सकी। फलतः हामिलकरको ससैन्य भूखों ही मरना पड़ा।

कार्थेजियोंने निरुपाय हो कर हामिलकरको रोमके साथ सन्धि कर लेनेको कहा। ईसाके २४१ वर्ष पहले यह सन्धि हो गई। इससे कार्थेजियोंको सिसिलीका प्रभुत्व और निकटके द्वीपपुञ्जोंका आधिपत्य छोड़ देना पड़ा। कैदियोंको उन्होंने छोड़ दिया। सन्धिमें यह शर्त थी, कि कार्थेजिय १० वर्षके भीतर ३२०० तोला सोना रोमकोंको युद्धके क्षतिपूर्तिके रूपमें देंगे। कर्सिका और सार्डिनिया रोमके अधिकारमें आ गये। किस तरह सिसिली पर शासन करें, रोमक इस विषय पर चिन्ता करने लगे। रोमकी शासन-प्रणालीके अनुसार सिसिलीका शासन होना असम्भव समझ कर उन्होंने सिसिलीमें एक नई शासन-प्रणाली प्रतिष्ठित की। रोमसे एक शासक हर साल निर्वाचित कर भेजा जाने लगा। इसी शासक द्वारा सिसिली देश शासित होने लगा। इसी तरह रोम-साम्राज्यकी प्रथम नींव पड़ी।

इधर हामिलकर अपने देशमें लौट आया और बदला चुकानेकी फिक्र करने लगा तथा साथ ही स्पेनमें एक विपुल साम्राज्य-प्रतिष्ठाका आयोजन करने लगा। बहुत दिनोंके बाद रोममें शान्ति स्थापित हुई। नुमाके समयसे इतने दिनों तक रणदेवता जेनासका दरवाजा खुला था। रोमके इतिहासमें दूसरी बार इस मन्दिरका दरवाजा बन्द हुआ। किन्तु अधिक दिनों तक बन्द न रहा। रणभेरीके आह्वानसे फिर शीघ्र ही रण-देवताका मन्दिरद्वार खुला। पहले ३३ जातियां मिल कर रोमराज्यकी प्रतिष्ठा हुई थी। इस समय दो जातियों और इस जातिमें मिल कर ३५ जातियां हो गईं।

एड्रियाटिक सागरके पूर्वीय भागमें इलिरीय वास करते थे। ये जल-डाकैतीसे समृद्धशाली हुए थे। इनके उपद्रवोंसे इटलीका किनारा निरापद न था। रोमकी सेनेटने इलिरीय राजा अग्रनके पास दूत भेज कर इस उपद्रवोंको दूर करनेकी प्रार्थना की। राजाने इस प्रार्थना पर जरा भी ध्यान न दिया; वरं दूत मार डाला गया। शीघ्र ही रोमक फौजें वहां पहुंची। यह ईसाके २२९ वर्ष पहलेकी घटना है। उस समय वहांका राजा अग्रन मर गया था। उसकी विधवा रानी टिउटा डिमेट्रियस नामक एक यूनानीके साहाय्यसे राज्य शासन कर रही थी। डिमेट्रियस रानीने टिउटाको छोड़ कर 'करसाइरा' नामक द्वीप रोमकोंको दिया। टिउटाने निरुपाय हो कर रोमकोंके प्रस्तावोंको स्वीकार कर लिया। इस तरह वहांकी जल-डकैती दूर हुई। इससे जितनी खुशी यूनानियोंको हुई, उतनी खुशी रोमकोंको न हुई। उन सबोंने रोमकोंको धन्यवाद-सूचक संवाद ले कर उनके पास दूत भेजा।

इस युद्धके समाप्त न होते होते गलोंसे फिर रोमकोंका युद्ध आरम्भ हुआ। इट्रिरियाके अन्तर्गत टैलमन नामक स्थानमें भीषण युद्ध हुआ। यह ईसासे २२५ वर्ष-पहलेकी बात है। समरक्षेत्रमें ४०००० गलसैन्य हताहत हुईं और १०००० फौजें कैद कर ली गईं। रोमकोंने बोआई प्रदेशसे पो-नदीके किनारे तकके देशों पर अधिकार कर लिया। रोमराज्यका आकार चारों ओरसे बढ़ने लगा। उत्तर-अल्पस पहाड़ तक रोमकोंकी जयपताका फहराई।

उस समय हामिलकरने स्पेनमें साम्राज्यका बीज वपन किया था। उसकी अद्भुत प्रतिभासे वहां राज्यकी सीमा जल्द जल्द बढ़ने लगी। हामिलकरके हृदयमें रोमकोंके प्रति वैरभाव सर्वदा विद्यमान रहता था। उसने अपने नौ वर्षके पुत्रसे अग्निस्पर्श करा कर प्रतिज्ञा कराई थी, कि वह आजीवन रोमकोंके

प्रति तिरस्कार रखेगा और वैर चुकानेमें प्राणपणसे चेष्टा करेगा। हामिल्कर लड़कपनसे ही अपने पुत्र हानिबलको युद्धविद्यामें निपुण कर रहा था। हानिबल पिताकी प्रतिज्ञा और रणपाण्डित्य आदि गुणोंमें उपयुक्त अधिकारी था। हामिल्कर स्पेनके भीतर धीरे धीरे राज्यविस्तार कर रहा था। ईसाके २२८ वर्ष पहले एक युद्धमें हामिल्कर मारा गया। इससे उसका दामाद हासद्रुबल सेनापति बना। स्पेनमें न्यूकार्थेज नामका इसने एक नगर बसाया। इसका इस समय कार्टेजना नाम है। तरुण वयस्क हानिबल सेनानायकके पद पर अधिष्ठित हुआ। २२१ वर्ष ईसासे पूर्व हासद्रुबल गुप्तरूपसे एक गुलामके हाथ मारा गया। इस समय हानिबल सेनापति और शासक नियुक्त हुआ। हानिबलके हृदयमें सदा रोम पर आक्रमण करनेकी चिन्ता रहती थी। इसलिये उसने फौजोंको सुशिक्षित करना आरम्भ किया। हानिबल अपने गुणोंसे स्पेनके सभी जातियोंके साहाय्य पानेके अधिकारी बन गये। इस समय वह रोमसे युद्धका कारण ढूंढ़ रहा था।

पहले हासद्रुबलके साथ सन्धिमें यह ठहरा था, कि एब्रो नदीकी पूर्वी सीमा तक रोमकोंका अधिकार रहेगा और नदीके पश्चिम पार कार्थेजिय स्पेनकी सीमा रहेगी। किन्तु हानिबलने इस सन्धिको अस्वीकार कर दिया और ईसाके २१९ वर्ष पूर्व अपने राज्यके बाहर सैगाण्टम नगर पर आक्रमण कर ८ मासके युद्धके बाद अधिकार कर लिया। रोमक मित्र-राज्योंके सहायतार्थ इतने दिनों तक कुछ न कर सके। रोमकोंने हानिबलसे संधि तोड़नेका कारण पूछनेके लिये दो बार दूत भेजे। हानिबलने उसका साफ और पर कोई उत्तर नहीं दिया।

दूसरा प्यूनिकयुद्ध (२१८-२०१ ई० पू०)

हानिबल सैगाण्टम पर अधिकार कर शीतकालमें वापस न्यूकार्थेज लौट आया। इसने ईसाके २१८ वर्ष पहले विराट् सैन्य ले कर एकाएक रोमराज्यके ध्वंस करनेके लिये यात्रा की। युद्धयात्राके पहले इसने स्पेन और कार्थेजकी रक्षाका सुन्दर प्रबन्ध कर दिया था। अपने छोटे भाई हासद्रुबलको स्पेन-रक्षाका भार दे कर कार्थेजकी रक्षाके लिये सैनिकोंके साथ अफ्रिका भेज दिया। सब प्रबन्ध कर हानिबल ईसाके पूर्व २१८ ई०के वसन्त ऋतुमें ६०००० पैदल, १२००० घुड़सवार और कई हाथी ले कर इटली चला और पांच महीनेमें पिरिनीज पर्वत पार कर रोन नदीके किनारे आ पहुंचा। पिरिनीज पर्वतके पहाड़ी जातियोंके साथ युद्ध करनेमें उसकी बहुतेरी फौजें नष्ट हुई थीं। रोमकोंने हानिबलको युद्धार्थ जाते देख कन्सल पी-कार्नेलियास सिपिओको फौजोंके साथ उसके रोकनेके लिये भेजा। किन्तु कन्सल सिपिओके मेसालिया पहुंचनेके पहले ही हानिबल रोन-नदी पार कर आल्प्सके निकट पहुंच गया। सिपिओने हानिबलको वहां रोकना असम्भव समझ रोम लौट आया और अपने भाई नेसियस सिपिओको स्पेन पर अधिकार कर लेनेके लिये भेजा। इसी कौशलसे पिछले समयमें रोम हानिबलके हाथ बच गया था। क्योंकि हानिबलको स्पेनसे सहायता मिलती तो वह सहज ही रोमका ध्वंस कर देता।

हानिबल विराट् सैन्योंके साथ बड़ी तेजीसे आल्प्स पर्वतसे होता हुआ इटलीकी ओर जाने लगा और शीघ्र ही सिसाल्पाइन गालके निकट पर्वतसे नीचे उपत्यकामें उतरा। उसको एकाएक इस तरह तेजीसे आते देख रोमक विचलित और भयभीत हुए। आल्प्स पर्वतको पार करते समय हानिबलके बहुतेरे सैनिक मर गये। उपत्यकामें पहुंच कर जब उसने अपने सैनिकोंको संभाला तब उसको दिखाई दिया, कि उसकी विराट् फौजोंमें केवल २०००० पैदल, ६००० घुड़सवार बाकी बच गये हैं। उसने कुछ दिनों तक विश्राम कर सैनिकोंकी क्लान्ति दूर की।

इधर रोमक फौजें आ कर उसके सामने डट गईं। टिसिनस और ट्रेबियामें दो भीषण युद्ध हुए। हानिबलके न्यूमिडिया घुड़सवारोंके शौर्य-पराक्रमसे रोमक फौजें तितर-बितर हो कर भागीं। सिपिओ युद्धक्षेत्रमें आहत हो कर पीछे और प्लासेन्टियाकी चहारदीवारीमें आ छिपा। हानिबल पो नदीको पार कर एट्रुरियामें आ पहुंचा। किन्तु रोमक फौजें साथ लगी हुईं। उस समय दूसरे कन्सल सेम्प्रोनियस सिपिओ-

के सहायतार्थ पहुंच गये। रोमक फौजोंने हानिबल-को ललकारा। दोनों ओरसे भीषण युद्ध होने लगा। हानिबलकी रणनिपुणताके कारण विशाल रोमक फौजें पराजित हुईं। किन्तु शीतकालके आ जानेसे हानिबल रोमकी ओर आगे बढ़ न सका। भीषण शीतके कारण हानिबलके बहुतेरे सैनिक मर गये। एक छोड़ कर सब हाथी मर गये। उस समय शीत वितानेके लिये वह किसली नगरमें चला गया।

सर्भियस और फ्लेमिनियस वर्त्तमान वर्षके कन्सल नियुक्त हुए। फ्लेमिनियस फिर फौजोंको ले कर हानिबलसे युद्ध करने चला। किन्तु हानिबलके कौशलसे वह फौजोंके साथ गिर गया। वह गिरिसङ्कटके एक छोटे पथसे ट्रासिमिन झीलके किनारे पहुंच अपनी फौजोंको एकत्र कर रहा था, ऐसे समय पोछेसे शत्रुओंने हमला कर दिया। फलतः कितनी ही फौजें मृत्यु-मुखमें पतित हुईं। कन्सल भी मारा गया। कितने ही सैनिक झीलमें कूद कर डूब गये। इस युद्धमें हानिबल-के १५०० सैनिक काम आये थे। हानिबलने १५००० रोमक सैनिक कैद कर लिये। हानिबलने केवल रोमक फौजोंका कैद कर इटली आदिके सैनिकोंको आदरके साथ छोड़ दिया। उसका उद्देश्य था, कि अन्यान्य जातियोंकी सहानुभूति अर्जन कर रोमका उच्छेद साधन किया जाये। इसीलिये उसने इस नीतिसे काम लिया। यथार्थमें बहुतेरी जातियोंके लोग हानिबलकी असीम प्रतिभाको देख उसके पक्षपाती बन गये। किन्तु एक विदेशी आक्रमणकारीके प्रति बहुतेरोंने विश्वास न किया। इस युद्धमें विजय प्राप्त कर हानिबल रोमकी ओर अग्रसर होता, किन्तु उसका दूसरा उद्देश्य था। वह पूर्वकी ओर अग्रसर हो कर तलवार और अग्नि द्वारा बहुत नगरोंको ध्वंस करने लगा। इस समय उस के पास २६००० पैदल थे। किन्तु रोमक-सहयोगी राजाओंकी सहायतासे ७००००० सैनिक एकत्र कर सकते थे। हानिबल फौजोंके साथ आपुलियाके अशधनसे पूर्ण प्रदेशमें जा कर लूटपाट कर रोमके सहयोगी राजाओंका सर्वनाश करने लगा। उसकी धारणा थी, कि इस तरह उपद्रव करने पर रोमके विरुद्ध कितने ही लोग उसको सहायता देंगे। इस समय इमिलियस पलास और टेरेण्टियस भारो कन्सल नियुक्त हो ससैन्य आपुलिया प्रदेशमें गये। उनकी अनुपस्थितिमें रोमकोंने और एक सैन्य एकत्र कर कमिशिया सेंचुरिता द्वारा फेवियस मेक्सिमसको डिरेक्टर नियुक्त किया। फेवियसने कौशलसे हानिबलको पराजित करना निश्चय किया।

हानिबल अपिनाइन पर्वतको पार कर कम्पेनियाकी समतल भूमिके समृद्ध नगरोंको लूटने और ध्वंस करने लगा। फिर भी फेवियस आमने सामने युद्ध करनेमें देर करने लगा। फेवियसने कम्पेनियाके गिरिसङ्कट पर अधिकार कर यह स्थिर किया, कि इसी पर्वत-पथ पर हानिबलको विनष्ट करूं। किन्तु अद्भुत कौशलसे हानिबल इस विपद्से बच गया। उसने पहले ही कम्पेनियाको लूट कर बहुतेरे बैल और गायोंको पकड़ लिया था। रात्रिके समय उसने २००० बैलोंके दोनों सींगोंमें कपड़ा लपेट तेलसे भिगा आग लगा कर मशालके सदृश बना दिया और अपने सैनिकोंको हुक्म दिया, कि इन बैलोंको रोमकोंकी फौजोंके सामने भगाओ। बैल अपने सींगोंमें आग जलते देख भड़क भड़क कर इधर उधर दौड़ने लगे। रोमक असंख्य मशालोंको अपनी तरफ आते देख विचलित हुए, मनमें सोचने लगे, कि हानिबल एकाएक रात्रिको आक्रमण करना चाहता है। इससे अपनी रक्षा न देख रोमक वहांसे भागे। हानिबलने भी इस अवसर पर बे-रोक गिरिसङ्कटको पार कर आपुलियाकी समतल भूमि पर पहुंच शीतावासके लिये जिरोनियम नामक स्थानमें अपना खेमा खड़ा किया। वह (२१६ ई० पू०) शीतकाल वहां बिता कर वसन्त आने पर समर सज्जा करने लगा। किन्तु खाद्य द्रव्यके अभावमें वह वहांसे कानि नामक स्थानमें चला गया और उसने रोमक फौजोंके सामने अपने खेमे खड़ा किये।

पूर्वोक्त दोनों कन्सल ८०००० पैदल और ६००० घुड़सवार ले कर हानिबलके सामने आये। हानिबलके पास ४०,००० पैदलोंसे अधिक फौज न थी। किन्तु उसके पास १०००० घुड़सवार मौजूद थे। अफिदियस नदीके दक्षिण मैदानमें युद्ध हुआ। यह कानिका युद्ध

मुसलिमवाल है। हानिबलके घुड़सवार भीमबलसे युद्ध करने लगे। रोमकी विशाल फौजें सम्पूर्ण रूपसे नष्ट हुईं। इस तरह रोमक फौजें पराजित हुईं।

हानिबल यदि इच्छा करता, तो रोमको इसी समय जीत लेता, किन्तु उसने ऐसा न किया। इसलिये बहुतेरे ऐतिहासिक इसकी नीतिकी निन्दा करते हैं।

हानिबलने भी सहयोगी राजाओंको रोमके हाथसे बचानेके लिये सैन्य भेज कर साहाय्य करने लगा। हानिबल सामनियमसे चल कर कम्पेनिया पहुंचा और वहांका प्रसिद्ध नगर कापुआ अधिकार कर लिया। नगरवासियोंने तनिक बाधा न दे नगरका द्वार खोल दिया और उसका अभिनन्दन किया। यहां ही उसने शीतकाल बितानेके लिये डेरे खड़े किये। यहां तक ही प्यूनिक युद्धका आदि काल है। इसी समय हानिबलने न्याय भावसे साफल्य लाभ किया था।

युद्धका मध्यकाल (२१५-२०७ ईसासे पूर्व)

वाणिज्य-समृद्धि, विलासवैभव, शिल्पविज्ञानकी उन्नति और साधारण ऐश्वर्य्यमें कापुआ रोमकी अपेक्षा किसी तरह कम न था। रोमके रसिक और विख्यात ऐतिहासिकने स्पष्टरूपसे लिखा है, कि विलास वायुके सुखस्पर्शने हानिबलकी फौजोंमें अनेकांशमें दृढ़ता और उद्यमको खो दिया था। जो हो, हानिबल भी रोमके सहयोगियोंको सहायताके लिये इटलीके एक छोरसे दूसरे छोर तक देशमें आधिपत्य फैलाने लगा। ईसासे २१५ वर्ष पहले फिर महासमर उपस्थित हुआ। फेबियस और सेम्प्रोनियस नामके दोनों कन्सल युद्धकी तैयारी करने लगे। हानिबलने भी टिफटा पर्वत पर व्यूहकी रचना की। यहां वह इटलीवासी साहाय्यकारी राजाओंकी प्रतीक्षा करने लगा। कार्थेजसे भी घुड़सवारोंके लिये वह प्रतीक्षा कर रहा था। इस समय नोला नामक स्थानमें एक छोटा युद्ध हुआ। इसमें उसके बहुतेरे सैनिक मारे गये। टिफटामें अवस्थान करते समय वह चारों ओरसे साहाय्य प्राप्त करने लगा। मासिडन पति फिलिपने और साइराक्यूज राजपुत्र हायेरोनिमसने हानिबलके समीप दूत भेज साहाय्य करना चाहा। इस तरह और इनमें दिनोंके बाद ये प्रबल राजा रोमके विरुद्ध युद्ध करनेके लिये तैयार हुए।

ईसाके २१४ वर्ष पहले फेबियस और मर्सेलस फिर कन्सल नियुक्त हुए। हानिबल आपुलियासे टिफटा आ कर कापुआ नगरीकी रक्षा करनेका उपाय सोचने लगा। वह पिउटोली अधिकार करनेका संकल्प कर रहा था, ऐसे समय टरेण्टम् नगर पर अधिकार करनेका मौका दीख पड़ा। इसके अनुसार वह शीघ्र उस ओर चला। रोमक सैन्य भी वहां पहुंच अपने दुर्गकी रक्षा करने लगा। हानिबल फिर शीतकाल बितानेके लिये आपुलिया चला गया। ईसासे २१३ वर्ष पहले ग्रीष्मकालमें सिसिलीमें युद्ध आरम्भ हुआ। कार्थेजीय सैनिकोंने आ कर सिसिलीमें युद्ध खड़ा किया। कुछ रोमक फौजें सिसिलीमें पहुंची थीं। इतनेमें टरेण्टम्के दो अधिवासियोंने विश्वासघातकता पूर्वक हानिबलसे नगर सौंप देनेका संकल्प किया। किन्तु किलेमें रोमक फौजोंके रहनेके कारण हानिबल कुछ भी नहीं कर सका।

साइराक्यूजके राजा हीरो रोमकोंका मित्र था। किन्तु उसका पुत्र हायेरोनिमस भिन्न प्रकृतिका आदमी था। उसने रोमके विरुद्ध कार्थेजकी सहायतामें युद्ध करनेका संकल्प किया था। १५ महीने राजत्व करनेके उपरान्त वह एक गुप्त घातकके हाथ मारा गया। साइराक्यूजमें प्रजातन्त्रकी स्थापना हुई। रोम और कार्थेज—ये दोनों इस पर अधिकार कर लेने पर तुल गये थे। किन्तु रोमकोंके प्रबल होनेसे हानिबलके भेजे दो कार्थेजीय प्रतिनिधि एपिसाइडस् और हिपोक्रेटिस भाग कर लियोण्टिनी नगरको प्रस्थान किया। इसी समय कन्सल मार्सलस् फौजोंके साथ सिसिलीमें पहुंचा (२१४ ई० पू०) वह शीघ्र ही लियोण्टिनीमें हानिबलके दोनों प्रतिनिधिके साथ युद्ध करनेके लिये चला। उसने इस युद्धमें विजय प्राप्त कर लियोण्टिनी पर अधिकार कर लिया। उसने अधिवासियोंको क्षमा किया। किन्तु दो सौ सैनिकोंको प्राणदण्ड हुआ।

मर्सेलसने आगे बढ़ कर स्थल और जलपथसे साइराक्यूज पर घेरा डाला। रोमकोंके चहारदीवारी तोड़नेके लिये नाना तरहके यन्त्र और कला कौशलको

अवतारणा की थी। किन्तु भुवनविख्यात गणितज्ञ पण्डित आर्कमिदिसकी प्रतिभाके बलसे रोमकोंकी सारी चेष्टा विफल हुई। बहुतेरे ऐतिहासिकोंका कहना है, कि बड़े कांचके एक टुकड़ेमें सूर्यकी किरणको पकड़ कर उसने रोमकोंके बहुतेरे जङ्गी जहाजोंको जला दिया था।

मार्सेलसने स्थलपथसे दृढ़ताके साथ उस स्थान पर घेरा डाला। एक दिन जब साइराक्यूजके दुर्गके सैनिक भोजनोत्सवमें प्रवृत्त थे, मार्सेलस अद्भुत कौशलसे उस घनान्धकारको पार कर सीढ़ी लगा कर किलेकी चहारदीवारीको लाँघने लगा और उसने एकाएक आक्रमण कर एपिपेलाई पर अधिकार कर लिया। इधर महोत्साहसे नगरके दूसरे किनारे पर लूट होने लगी। एपिहाइड्स शीघ्र ही इस किलेको छोड़ कर आकराडिना और यूरेलस किलेमें जा छिपा। मार्सेलसने युरेलस पर अधिकार कर आकराडिना पर घेरा डाला। हिमिल्को और हिप्रोक्रेटिसके अधीनस्थ कार्थेजीय सैन्य दुर्ग रक्षार्थ मौके पर पहुंचा। किन्तु महामारीके कारण बहुतेरे कार्थेजीय सैनिकोंकी मृत्यु हुई। मार्सेलसने विजयप्राप्त कर किले पर अधिकार कर लिया। नगरवासियोंने नगरका द्वार खोल दिया। रोमक-सैन्य नगर लूटने लगे। जब रोमक-फौजें भीषण कोलाहलके साथ नगर लूट रही थी, उस समय आर्कमिदिस एकाग्रचित्तसे ज्योमेट्रीकी प्रतिज्ञा लिख कर उसे साबित कर रहे थे। एक रोमक-सैन्य द्वारा पूछे जाने पर भी एकाग्र होनेसे उसने कुछ जवाब न दिया। उससे रंज हो कर उसने उसका मस्तक काट दिया था। मार्सेलसने इसके लिये अत्यन्त दुःखी हो कर विलाप किया था और महासमारोहसे उसको कब्र दे कर सन्तप्त परिवारको अर्थ-साहाय्यमें बहुत धन दिया। आर्कमिदिसने समाधि स्तम्भमें उनके उद्भावित रेखागणितके सिद्धान्तोंकी प्रतिकृति और वृत्तसूचिच्छेदकी चित्रावली अङ्कित की गई।

साइराक्यूजने प्राचीनकालके वाणिज्यजात विलासवैभवमें विशेष प्रसिद्धि लाभ की थी। शिल्प-विकल्पित भुवनमोहन चित्रावलीमें और रमणीय भास्कर्य्य सुकुमार कारुकार्य्यमें इसको चित्रशालिका अमरावतीकी उपमास्थल थी। मार्सेलसको नगर लूट कर आशातीत धनरत्न मणिमुक्ता हाथ लगा और वह शिल्पजात अपूर्व चीजें रोमके देव-मन्दिरको सजानेके लिये ले गया। इसके पहले पुराने जमानेमें किसीने शिल्पविकल्पित भास्कर्यचित्रावली संग्रह करनेकी चेष्टा न की।

इधर ईसाके २१२ वर्ष पूर्व दोनों कन्सल क्लडियस और फ्यूफिवियस कापुआका उद्धार करनेके लिये चले। हानिबलके सामने आ जानेसे वे पीछे हटे। हानिबल टरेण्टमके किले पर फिर अधिकार करनेके लिये वहां चला। वहां उसने (२११ ई० पू०) शीतका समय बिताया। दोनों कन्सलोंने इस सुयोगमें कापुआ पर आक्रमण करनेका सङ्कल्प किया और दो ओरसे फौजोंने नगरको घेर लिया। यह समाचार पा कर हानिबल तेजीसे वहां लौट आया और भीतरसे फौजें भी उसको सहायता देने लगी। बाहर और भीतरसे आक्रमण करके भी हानिबल रोमकोंको तितर बितर नहीं कर सका। इस समय वह रोम पर अधिकार कर लेनेकी गरजसे रोमकी ओर आगे बढ़ा। देखते देखते वह रोमके सिंहदरवाजे पर आ उपस्थित हुआ। उसको देख कर रोमके अधिवासी डर तो गये, किन्तु लड़ाई करनेसे पीछे न हटे। उस समय नगरके भीतर भी बहुतेरे सैनिक थे। उधर फवियसने कापुआके घेरेको सुव्यवस्था कर कुछ फौजोंको ले कर रोमकी ओर यात्रा की। हानिबल रोम-आक्रमणमें असफल हो कर उसके चारों ओरके स्थानोंको लूटने लगा। अन्तमें वह हताश हो कर लौटने पर बाध्य हुआ। विद्रोहियोंको प्राणदण्ड हुआ; सम्भ्रान्त व्यक्ति कैद कर लिये गये और बाकी अधिवासी गुलाम बना कर बेच दिये गये। अतुल ऐश्वर्य्य और विलासवैभवपूर्ण कापुआ नगरी श्मशानके रूपमें परिणत हुई। यह २११ ई०के पूर्वकी घटना हुई।

इसके बाद रोमक-कन्सल मार्सेलसने सलापिया नगर पर अधिकार कर लिया। किन्तु हार्डेनाई नामक स्थानमें फाबियसकी हार हुई। जो हो, रोमकी फिरसे उत्तरोत्तर उन्नतिमें विद्रोही सहयोगी फिर रोमकी शरणमें आने लगे। ईसाके २०६ वर्ष पूर्व ग्रीष्मकालमें सामनाइट और लुकानियन रोमके साथ फिर मित्रतासूत्रमें

बंध गये। इधर सिसिलीकी फौजोंकी विश्वासघातकतासे टैरेण्टम नगर रोमनोंके अधिकारमें आया। फाबियसके रणकौशलसे रोमक बारम्बार कृतकार्य होने लगे। हानिबलने सब मामलेके युद्धमें विपद्‌की आशङ्का जान नगर आदिको लूटते हुए दक्षिण इटलीमें डेरे खड़े किये और हास्द्रुबलके आगमनकी प्रतीक्षामें दिन गिनने लगे। इसी तरह ईसाके २०७ वर्ष पूर्व इटलीमें प्युनिक युद्धका अन्त हुआ।

दोनों सिपिओकी मृत्युके बाद हास्द्रुबल तेजीसे भाईकी सहायताके लिये इटलीकी ओर चला। ईसाके २०७ वर्ष पहले यह आल्पस पर्वतको पार कर इटलीकी समभूमिमें उतरा। इस वर्ष क्लडियस निरो और एम लिवियस् कन्सल नियुक्त हुए। निरो दक्षिण इटलीमें हानिबल पर आक्रमण करने चला और लिवियस हास्द्रुबलकी गति रोध करनेके लिये आरिमिनियमकी ओर चला। गाल हास्द्रुबलकी सहायता करने लगे। यह देख निरो वहांका आक्रमण छोड़ कर हास्द्रुबलकी ओर ७००० फौजोंको ले कर चला। यह बात हानिबलको मालूम न होने पाई। सात दिनोंमें २५० मीलका पथ तय कर लिवियसके साथ निरो मिल गया। कार्थेजिय भी इन दोनोंके आनेकी बात जानते थे। एक दिन विश्राम कर दोनों कन्सल-युद्ध करनेके लिये आगे बढ़े। तुमुल-युद्ध होने लगा। हास्द्रुबल अद्भुत रणकौशलसे युद्ध करने लगा। भीमकर्मा हास्द्रुबलके अति अद्भुत और भयङ्कर युद्धसे हजार हजार रोमक धराशायी होने लगे। पीछे हताश हो सबकी आशा छोड़ हास्द्रुबलने वीरतासे काटते मारते हुए अपने प्राण दे दिये। उसकी पीठ पर अस्त्रका एक भी चिह्न न था। कन्सल नीरो हास्द्रुबलका कटा सिर ले कर हानिबलके सेनेकी ओर अग्रसर हुआ। नीरोने वहां पहुंचते हुए सिरको हानिबलके सेनेमें फेंक दिया। अब हानिबलको अपने सहोदरकी मृत्यु पर बड़ा शोक हुआ। उसने कहा था—"मैं जानता हूं, कि कार्थेजका दुर्भाग्य अब निकट है।"

मेटारसके युद्धमें रोमक फिर इटली पर कायम हुए। हानिबल ब्रुटियम चला गया। स्पेनसे आना जाना असम्भव समझ कर विभिन्न स्थानोंकी फौजोंको एकत्र कर पर्वत परि-वृत ब्रुटियाई नामक स्थानमें दृढ़ताके साथ ऐसा डटा कर ४ वर्ष तक विश्राम करता रहा। इस बार प्युनिक युद्धका रङ्ग ढङ्ग बदल गया। अफ्रिका और स्पेनमें युद्ध होने लगे। पहले कहा गया है, कि सिपिओने (२१२ ई० के पूर्व) स्पेनमें प्राण त्याग किया। उसका सुप्रसिद्ध पुत्र सिपिओ इस समय जवान हो कर तरुणाईमें ही शौर्य्यवीर्य्यमें आश्चर्य हो उठा।

युद्धका तीसरा या अन्तिम समय (२०६-२०१ ई० पू०)

रोमवासी उसको देवताका वरपुत्र कह कर सम्बोधित करते थे और इसके सम्बन्धमें उसके मनमें भी ऐसी ही धारणा थी, कि देवता उसको सारे कार्योंमें सलाह दिया करते हैं। इसके बादका रोम-इतिहास इसकी उज्ज्वलकीर्त्तिसे चमक रहा है। ईसाके २१८ वर्ष पहले टिसिनसके भीषण युद्धमें उसने अपनी सत्रह वर्षकी आयुमें ही पिताकी प्राण-रक्षा की थी। कानिके युद्धक्षेत्रमें भी उसने ट्रिब्यूनके रूपमें युद्ध किया था। इस समय वह अधिनायक हो सि-लानसके साथ स्पेनमें सैन्यपरिचालन करने लगे। इस समय प्रोकन्सलका पद खाली देख २४ वर्षकी अवस्थामें सिपिओ उक्त पदके प्रार्थी हुआ। ईसाके २१० वर्ष पहले वह स्पेनमें आ उपस्थित हुआ। सिपिओने नगरा-धिकार कर कैदियोंके प्रति सद्व्यवहार किया। उसका पौरुष और मधुरव्यवहार देख स्पेनके सरदारोंने कार्थेजका पक्ष छोड़ कर उसका पक्ष ग्रहण किया। इसके बाद मण्डोनियस और इण्डिबिलिस नामक दो प्रधान राजाओंने सिपिओका आश्रय ग्रहण कर लड़ाई करना आरम्भ किया। स्पेनके सारे अधिवासी रोमकी अधीनता मान कर सिपिओकी शरणमें आये। वे सिपिओके पौरुष तथा सद्व्यवहारसे मुग्ध हो गये।

सिपिओ अब अफ्रिकाके कार्थेजियोंको पराजय करनेकी चिन्ता करने लगा। शीघ्र ही उसने वहां जा कर न्युमिडियाके राजाओंसे सद्भाव स्थापित किया। सिपिओकी आकारप्रकृति, प्रतिभा और बुद्धिमत्तासे मुग्ध हो कर सभी मित्रताके सूत्रमें बंध गये। सिपिओ (ईसाके २०६ वर्ष पूर्व) रोममें आ कर कन्सल-पद प्राप्त

करनेके प्रार्थी हुआ। दूसरे वर्षके लिये कन्सल पद पर नियुक्त हो उसने अफ्रिका जा वहांके प्यूनिक लड़ाईका अन्त करना चाहा। किन्तु प्रवीण दोनों कन्सलोंने इसमें सम्मति नहीं दी। तब सिपिओने सिसिली पर विजय-प्राप्त करनेकी इच्छा प्रकट की। किन्तु सेनेटने फौज भेजनेमें अनिच्छा प्रकट की। सिपिओका अद्भुत साहस देख कर बहुतेरे रोमक वीर स्वेच्छापूर्वक लड़ाईके लिये अग्रसर हुए। सेनेट इन युवकोंकी इच्छाओंको दबा न सकी। सिपिओ सिसिलीमें लड़ाईका उद्योग करने लगा। इधर उसके शत्रु उसको लौटा लानेके लिये सेनेटको उत्तेजित करने लगे। सिपिओ यूनानी साहित्यमें अनुरक्त और अत्यन्त विलासी था। इसलिये पुराने रोमवासी उसको अच्छी दृष्टिसे देखते न थे। उसके शत्रुओंने समाचार दिया, कि सिपिओ सिसिलीमें बैठ कर विलास-प्रवाहमें प्रवाहित हो रहा है, इससे उसको शीघ्र वापस बुला लेना चाहिये। किन्तु सेनेटको उसको लौटा लानेका साहस न हुआ। इसलिये जांच करनेके लिये उसने एक कमीशन नियुक्त किया। कमीशनने वहां जा कर उसके युद्धोद्योग और अभिनव रणकौशल देख कर विस्मित हृदयसे भूयसी प्रशंसा की। उस समय सेनेटने उसको आनेके बदले अफ्रिकामें जा कर युद्ध करनेकी आज्ञा प्रदान की। इसके अनुसार (ईसासे २०४ वर्ष पहले) सिपिओ लिलिबियमसे अफ्रिकाके उटिका नामक स्थानमें चला गया। कार्थेजीय सैनिक सिपिओके पहले प्रतिद्वन्द्वी जिसाँगो हासद्रुबलकी अधीनतामें परिचालित हुए थे और उसका दामाद साइफाक्सके साहाय्यार्थ कार्थेजके पक्षमें युद्ध करने लगा। २०३ ईसाके पूर्व रीतिके अनुसार युद्ध आरम्भ हुआ। मेसिनिसाने पूर्वके सौहृदके अनुसार सिपिओका पक्ष ग्रहण किया।

घोर अन्धेरी रातमें सिपिओने कार्थेजीयके खेमे पर आक्रमण किया और आग लगा दी। सारे खेमे जल कर भस्म हो गये। बहुतेरे कार्थेजीय-सैन्य तलवार और आगके मुखमें पतित हुए। हासद्रुबल फिर एक बार सैन्य ले कर साइफाक्सकी सहायतामें युद्ध करने लगा। किन्तु सिपिओ और मेसिनिसाकी सम्मिलित फौजोंने उन सबोंको पूर्णरूपसे पराजित किया। साइफाक्सकी प्रेमिका सफोनिसबा कैद कर ली गई। मेसिनिसा बहुत दिनों तक इसका प्रेमाकांक्षी था। इस समय इसको कैद कर उसने इसके साथ विवाह कर लिया; किन्तु इस बातको सिपिओ नहीं जानता था। किन्तु उसने मनमें अनुमान किया, कि पीछे इस विवाहके फलसे मेसिनिसा अपने श्वसुर हासद्रुबलका पक्ष ले लिया, इसीलिये उसने उस कन्याको उसके हाथ सौंप देनेकी बात कही। मेसिनिसा सफोनिसबाको वास्तवमें प्रेम करता था। इससे उसको कैद कराना उपयुक्त न समझ उसको जहर खिला दिया। इस तरह सफोनिसबाका अन्त हुआ। कार्थेजीयोंने सिपिओके पराक्रमसे तंग आ कर रोमसे चले आनेके लिये हानिबल और मागोरके पास दूत भेजे। हानिबलने १५ वर्ष तक इटलीमें युद्ध कर एक छोरसे दूसरे छोर तक अधिकार कर लिया था। हानिबलके स्वदेश लौटने पर रोमक बड़े खुश हुए। हानिबलके साथ युद्ध करनेसे रोमकोंके ३००००० सैन्य विनष्ट हुए थे। धनरत्न जो लुट गया था, उसकी इयत्ता नहीं। रोमकोंने उसके पहले ऐसे वीर पुरुषको देखा न था।

अद्वितीय पितृभक्त पुत्रने पिताकी आज्ञा पालनके लिये जो महाव्रत उठाया था, उसका किञ्चितांश पूरा कर हानिबल लम्बी सांस ले जहाज पर बैठा। उसके कार्थेजमें पहुंचते ही कार्थेजीय नये बलसे बलवान् हो उठे; किन्तु हानिबलने यहांकी अवस्थाका पर्यावेक्षण कर युद्धसे सन्धि ही करना उचित जाना। किन्तु युद्धोन्मत्त सिपिओकी कड़ी सन्धि शर्तोंको कार्थेजीय सैन्य स्वीकृत नहीं कर सका। हानिबल स्वयं उपस्थित हो किसी किसी शर्तको बदल देना चाहा; किन्तु सिपिओने उस पर जरा भी ध्यान न दिया। फलतः लड़ाई छिड़ गई। (२०२ ईसाके पूर्व) जेमा नामक स्थानमें दोनों फौजोंका भयङ्कर युद्ध आरम्भ हुआ। इस युद्धमें सिपिओकी ही विजय हुई। २०००० कार्थेजीय सैनिकोंके रक्ताक्त परिपूरित नरमुण्डोंसे युद्धस्थल भयङ्कर हो उठा। २५००० कार्थेजीय कैद कर लिये गये। हानिबलने बड़े कष्टसे अपना प्राण बचाया।

फिर युद्ध करना असम्भव समझ हानिबलने सन्धिका

प्रस्ताव किया। सिपियोकी सन्धि-शर्तें पहलेकी अपेक्षा भी अधिक कठोर थीं। किन्तु दूसरा उपाय न था। किसी तरह सन्धि (२०१ ईस्वीपूर्व) हो गई। कार्थेजीय अफ्रिकामें स्वाधीनतासे राज्य करने लगे। उनके अन्यान्य प्रायः सभी अधिकार छीने गये। यह भी स्थिर हुआ, कि वे बिना रोमकी आज्ञाके युद्धविग्रह भी न कर सकेंगे। सभी हाथी रोमको सौंप देने होंगे। मेसिनिसाको वे न्युमिडियाका राजा स्वीकार करेंगे। युद्धकी क्षति-पूर्तिमें १०००० रौप्यमुद्रा ५० वर्षोंमें रोमको देने होंगे।

इस तरह रोम बाहुबलसे पश्चिम प्रदेशोंके सार्वभौम अधिपति हो गया। इस समय दिग्विजयी सिकन्दरके उत्तराधिकारियोंके द्वारा संस्थापित यूनानी राज्योंकी अवस्था अत्यन्त शोचनीय हो गई थी। जो सिरिया राज्य सिन्धुनदसे इजियन सागर तक फैला था, उसके बहुतेरे प्रदेशोंने स्वाधीनता स्वीकार कर ली थी। पार्थिया-बाख्त्रियाके राजे सिरियाका शासन अस्वीकार कर स्वाधीन बन गये थे। फ्रीजिया और गलेशियामें गल प्रबल हो उठे थे। मासिया नामक एक नया राज्य कायम हुआ था। इसकी राजधानी पार्गामस थी। पार्गामसके राजाने साइराक्यूसमें द्वितीय प्यूनिक लड़ाईके समय रोमके साथ मित्रता स्थापित की थी।

इस समय तृतीय अन्तियोकस् सिरियाके राजा था। उसने पार्थियनोंको पराजित कर 'ग्रेट' या महान्की उपाधि ग्रहण की थी। इस समय टलेमीवंशीय यूनानी राजा मिस्रके सिंहासन पर बैठा था। इसने भी पिरहसके समय दूत भेज कर मित्रताकी सन्धि कर ली थी। किन्तु ईसाके २०५ वर्ष पूर्व चौथे टलेमीकी मौत होने पर बालक-सम्राट् टलेमी एपिफेनिस सिंहासन पर बैठा। उसके अभिभावकोंने सिरिया और मासिडनके आक्रमणकी आशङ्का कर रोमन-सम्राट्के साहाय्यकी प्रार्थना की थी। इजियन सागरमें रोडसका प्रजातन्त्र सामुद्रिक लड़ाईमें अद्वितीय कहा जाता था। इस स्वाधीन राज्यने मासिडनके आक्रमणकी आशङ्कासे रोमके साथ मित्रता की थी। मासिडोनिया इस समय यूनानमें सर्वप्रधान राज्य समझा जाता था। इसका राजा पांचवाँ फिलिप इस समय इस देशका शासनसूत्र परिचालन कर रहा था। यह ईसाके २२० वर्ष पहले १७ वर्षकी अवस्थामें सिंहासन पर बैठा। यूनान देशमें इसका राज्य बहुत दूरमें फैला था। किन्तु उस समय यूनानमें 'एकियन लिग' और 'इटोलियन लिग' नामके दो नये सम्प्रदायोंका अभ्युत्थान हुआ था। एथेन्स और स्पार्टा तब तक अपनी स्वाधीनताकी रक्षा कर रहे थे। किन्तु इनका पूर्वगौरव मलिन हो गया था। जब यूनान और एशियाकी ऐसी अवस्था थी, तब रोमके साथ मासिडनकी प्रतिद्वन्द्विता चल रही थी।

मासिडनीय, सिरीय और गलेशिय-युद्ध (२१४-१८८ ई० पू०)

पहले ही कहा जा चुका है, कि दूसरे प्यूनिक युद्धके समय मासिडनके राजाने कार्थेजका साथ दे रोमके साथ शत्रु-आचरण किया था। डिमेट्रियस नामक एक विश्वासघातक यूनान विद्रोही इलिरीय प्रदेशमें रोमकों द्वारा निर्वासित हुआ था। यह फिलिपकी राजसभामें जा कर राजाका विशेष विश्वासपात्र बन गया। विश्वासपात्र ही क्यों, एक परामर्शदाता बन चुका था। फिलिप सदा उसकी रायके मुताबिक कार्य करता था। डिमेट्रियसने युवक फिलिपके अन्तःकरणमें रोमके प्रति विद्वेषभावकी उत्तेजना फैला दी थी। ईसाके २१४ वर्ष पू० फिलिपने कई जङ्गी जहाजोंको ले कर ओरिकम पर अधिकार कर लिया और आपलोनिया पर घेरा डाल दिया। किन्तु रोमन-सैन्यके आ जानेसे वह वहांसे लौट आया। इसके बाद तीन वर्षों तक कोई घटना न हुई। फिर २११ ईसाके पूर्व जब 'इटोलियन लीग'ने रोमके साथ सन्धि कर लिया। तब वह फिलिपके विरोधी बन गया। अब एकियन लिग फिलिपके साथ मिल गया। इटोलियन-लीग पहले फिलिपके साथ सन्धि करने पर बाध्य हुआ। फिर अफ्रिकामें रोम जब युद्धमें लिप्त था, तब रोमने भी फिलिपके साथ सन्धि कर ली थी। यह ईसाके २०५ वर्ष पूर्वकी घटना है। इस तरह मासिडनीय पहले युद्धका अवसान हुआ। किन्तु दोनों पक्षोंने ही इस समय समझ लिया था, कि यह सन्धि अधिक दिनों तक टिक न सकेगी। सिपियो जब तक अफ्रिकामें प्रसिद्ध सेनानीके साथ लड़ाईमें फंसा था, तब तक फिलिपने हानिबलको

सहायतामें ४००० सैनिक भेजे थे। इजियनसागरमें प्राधान्यलाभ करनेके लिये यह सारे यूनान पर कब्जा कर रहा था। इसलिये रोडसके प्रजातन्त्र और पार्गामासके राजा आटालूस पर उसने शीघ्र ही आक्रमण किया। ये दोनों ही रोमके मित्रतासूत्रमें आबद्ध थे। फिलिपने लड़ाई आरम्भ करनेसे पहले सिरियाके राजा अन्तिओकासके साथ सन्धि कर ली थी। इससे रोम निश्चिन्त न रह सका। इस तरह दूसरी बार माकिदनीय लड़ाई आरम्भ हुई। ईसाके २०० वर्ष पूर्व फिलिपने पहले एथेन्स पर आक्रमण किया। इस पर एथेन्सकी सहायता करनेके लिये रोमक कन्सल सालपेशियस गलबा कई जङ्गीजहाजोंके साथ आया। यह देख कर फिलिप एथेन्सवासियों पर भयानक अत्याचार करने लगा। किन्तु प्रकाश्य लड़ाईमें किसी पक्षकी जय-पराजय न हो सकी। गलबाके बाद भिलियस कन्सल नियुक्त हुआ। यह ईसाके १९९ वर्ष पूर्वकी घटना है। यह भी फिलिपका कुछ बिगाड़ न सका। इसके एक वर्ष बाद फ्लैमेनियस कन्सल नियुक्त हो कर नये उद्योगसे लड़ाई करने लगा। उसने शीघ्र ही थेसाली पर कब्जा कर फोलिस और लोक्रिसमें शीतकाल बिताया। इसके दूसरे वर्षमें सिनो सेफालेमें या 'कुकुरमस्तक' नामक स्थानकी लड़ाईमें माकिदनीय २रे युद्धका अवसान हुआ। रोमक पहले बड़ी विपदमें फंसे थे, पीछे इटालियन घुड़सवारोंके भीमपराक्रमसे रक्षा हुई। माकिदनीय फौजें भी (Phalanx) अमित विक्रमके साथ युद्ध करने लगीं। ८००० माकिदनीय फौजें आहत और ५००० कैद हुईं; किन्तु रोमकोंके ७००से अधिक सिपाही नष्ट नहीं हुए। फिलिप अब सन्धि करने पर बाध्य हुआ। ईसाके १९६ वर्ष पहले यह सन्धि हुई। इसके अनुसार फिलिपको यूनानसे फौजें हटा लेनी पड़ीं। जङ्गीजहाज रोमकोंके हाथ सौंप देने पड़े और फिलिपको इस बातकी प्रतीक्षा करनी पड़ी, कि रोमके बिना कहे किसी देशसे यह मित्रता न करेंगे। लड़ाईकी क्षतिपूर्तिमें १००० रुपये रोमकोंको मिले।

फ्लैमेनियसने यूनानको शीघ्र रोमके शासनाधीन कर देना उचित न समझ यूनानकी स्वतन्त्रताकी घोषणा की। पीछे पांच वर्ष तक यूनानमें रह कर शासनकी बागडोरको सम्भाल कर बड़ी धूमधामसे रोम पहुंचा। रोममें उसका बड़ा सम्मान हुआ। इस समय सिरियाके राजा अन्तिओकस एशियामाइनर पर घेरा डाल कर यूनान पर आक्रमण करनेकी तय्यारी कर रहा था।

इधर यूनानके इटालियन औद्धत्यके कारण फिलिप और अन्तिओकसको रोमके विरुद्ध उभाड़ रहे थे। किन्तु फिर फिलिप रोमके सामने शिर उठा न सका। अन्तिओकस और नेबिसने इटालियनकी प्रार्थना स्वीकार कर ली। इस समय हानिबल अपने देशसे निर्वासित हो सिरियाकी राजसभामें उपस्थित हुआ। वहांकी सेनेटने रोमके विरुद्ध शिर ऊंचा करनेका उद्योग करनेके अपराधमें इसे देशसे निकाल दिया था। सिरियाके राजाने यहां आनन्दके साथ हानिबलको अपना प्रधान सेनापति बनाया। अन्तिओकस थेसालीके सुप्रसिद्ध डिमेत्रियस नामक सुरक्षित किलेमें पहुंचा। ईसाके १९१ वर्ष पूर्व रोमकोंने उसके विरुद्ध युद्ध-घोषणा की। कन्सल इलियस ग्लेबाने भी थेसालीकी यात्रा की। अन्तिओकस् थार्मोपली नामक गिरिपथ पर सैन्य ले कर पड़ा था। इस तरह उसने रोमकोंके मध्य एशियामें जानेका रास्ता रोक रखा था। किन्तु रोमक दूसरे एक पथसे सिरियाकी फौजोंके पीछे आ पहुंचे। यह देख सिरियाकी फौजें भाग खड़ी हुईं। अन्तिओकस् यूनानकी विजयसे निराश हो कर अपने देश एशियामें लौट आया। ईसाके १९० वर्ष पूर्व हानिबलको परास्त करनेवाला सिपिओ आफ्रिकेनासके भाई एल-सिपिओ और सी ले लियास कन्सल नियुक्त हुआ। एल-सिपिओको अन्तिओकस्के विरुद्ध युद्धमें जानेकी प्रार्थना करने पर सेनेटको उसकी योग्यतामें सन्देह हुआ। फलतः सेनेटने उसको आज्ञा न दी। किन्तु सिपिओ आफ्रिकेनासके भी भाईके साथ जानेकी बात सुन कर सेनेटने पीछे आज्ञा दे दी।

इधर अन्तिओकस् एक विराट सैन्योंका संगठन कर पार्गामस राज्यको लूट रहा था। रोमक फौजें हेलेसपन्तको पार कर उसके सामने पहुंच गईं। सिपाइलस पर्वतके नीचे मेगनिसिया नामक स्थानमें लड़ाई आरम्भ हुई। रोमकोंके लोकभयङ्कर पराक्रमसे अनिश्चित

प्रहार किया। सिपियोकी सन्धिकी शर्तें पहलेकी अपेक्षा भी अधिक कठोर हुईं। किन्तु दूसरा उपाय न था। किसी तरह सन्धि (२०१ ईसासे पूर्व) हो गई। कार्थेजीय अफ्रिकामें स्वाधीनतासे राज्य करने लगे। उनके अन्यान्य प्रायः सभी अधिकार छीने गये। यह भी स्थिर हुआ, कि वे बिना रोमकी आज्ञाके युद्धविग्रह भी न कर सकेंगे। सभी हाथी रोमको सौंप देने होंगे। मैसिनिसाको वे न्युमिडियाका राजा स्वीकार करेंगे। युद्धकी क्षतिपूर्तिमें १०००० रौप्यमुद्रा ५० वर्षोंमें रोमको देने होंगे।

इस तरह रोम बाहुबलसे पश्चिम प्रदेशोंके सार्वभौम अधिपति हो गया। इस समय दिग्विजयी सिकन्दरके उत्तराधिकारियोंके द्वारा संस्थापित यूनानी राज्योंकी अवस्था अत्यन्त शोचनीय हो गई थी। जो सिरिया राज्य सिन्धुनदसे इजियन सागर तक फैला था, उसके बहुतेरे प्रदेशोंने स्वाधीनता स्वीकार कर ली थी। एशिया-माइनरके राजे सिरियाका शासन अस्वीकार कर स्वाधीन बन गये थे। बाक्ट्रिया और पार्थियामें राज्य प्रबल हो उठे थे। गालेशिया नामक एक नया राज्य कायम हुआ था। इसकी राजधानी पार्गामास थी। पार्गामसके राजाने साइराकूसमें द्वितीय प्युनिक लड़ाईके समय रोमके साथ मित्रता स्थापित की थी।

इस समय तृतीय अन्तिओकस् सिरियाका राजा था। इसने पार्थियावालोंको पराजित कर 'ग्रेट' या महाराजकी उपाधि ग्रहण की थी। इस समय टॉलेमीवंशीय यूनानी राजा मिस्रके सिंहासन पर बैठा था। इसने भी पिरहसके समय दूत भेज कर मित्रताकी सन्धि कर ली थी। किन्तु ईसासे २०५ वर्ष पूर्व चौथे टॉलेमीकी मौत होने पर बालक-सम्राट् टॉलेमी एपिफेनिस सिंहासन पर बैठा। उसके अभिभावकोंने सिरिया और माकिदनके आक्रमणसे भयभीत हो रोमक-सम्राट्से सहायताकी प्रार्थना की थी। इजियन सागरमें रोडसका प्रजातन्त्र नौ-शक्तिमें अद्वितीय कहा जाता था। इस प्रजातन्त्र राज्यने माकिदनके आक्रमणकी आशङ्कासे रोमके साथ मित्रता की थी। माकिदनिया इस समय शक्तिशाली राज्य समझा जाता था। सुदृढ़ राजा पञ्चम फिलिप इस समय इस देशका शासनदण्ड परिचालन कर रहा था। यह ईसासे २२० वर्ष पहले १७ वर्षकी अवस्थामें सिंहासन पर बैठा। यूनान देशमें इसका राज्य बहुत दूरमें फैला था। किन्तु उस समय यूनानमें 'एकियान लिग' और 'इटोलियन लिग' नामके दो नये सङ्घराज्योंका अभ्युत्थान हुआ था। एथेन्स और स्पार्टा तब तक अपनी स्वाधीनताकी रक्षा कर रहे थे। किन्तु इनका पूर्वगौरव मलिन हो गया था। जब प्राच्य और प्रतीच्यकी ऐसी अवस्था थी, तब रोमके साथ माकिदनकी प्रतिद्वन्द्विता चल रही थी।

माकिदनीय, सिरीय और गलेशियन-युद्ध (२१४-१८८ ई० पू०)

पहले ही कहा जा चुका है, कि दूसरे प्युनिक युद्धके समय माकिदनके राजाने कार्थेजका साथ दे रोमके साथ शत्रु-आचरण किया था। डिमेट्रियस नामक एक विश्वासघातक यूनान विद्रोही इलिरीय प्रदेशसे रोमकों द्वारा निर्वासित हुआ था। यह फिलिपकी राजसभामें जा कर राजाका विशेष विश्वासपात्र बन गया। विश्वास हो चले, यह परामर्शदाता बन चुका था। फिलिप सदा उसकी रायके मुताबिक कार्य करता था। डिमेट्रियस युवक फिलिपके अन्तःकरणमें रोमके प्रति विरुद्धभावकी उत्तेजना फैला दी थी। ईसासे २१४ वर्ष पू० फिलिपने कई जङ्गी जहाजोंसे जा कर ओरिकम पर अधिकार कर लिया और आपोलोनिया पर घेरा डाल दिया। किन्तु रोमक-सैन्यके आ जानेसे यह वहां लौट आया। इसके बाद तीन वर्षों तक कोई घटना न हुई। फिर २११ ईसासे पूर्व जब 'इटोलियन लोगोंने' रोमके साथ बन्धुत्व कर लिया। तब यह फिलिपके विरोधी बन गया। तब एकियान लिग फिलिपके साथ मिल गया। इटोलियन-लोग पहले फिलिपके साथ सन्धि करनेको बाध्य हुआ। फिर अफ्रिकामें रोम जब युद्धमें लिप्त था, तब रोमने भी फिलिपके साथ सन्धि कर ली थी। यह ईसासे २०५ वर्ष पूर्वकी घटना है। इस तरह माकिदनीय पहले युद्धका अवसान हुआ। किन्तु दोनों पक्षोंने ही इस बातको समझ लिया था, कि यह सन्धि अधिक दिनों तक टिक न सकेगी। सिपियो जब तक अफ्रिकामें हानिबलके साथ लड़ाईमें फंसा था, तब तक फिलिपने हानिबलको

सहायतामें ४००० सैनिक भेजे थे। इजियनसागरमें प्राधान्यलाभ करनेके लिये वह सारे यूनान पर कब्जा कर रहा था। इसलिये रोडसके प्रजातन्त्र और पार्गामासके राजा आटालुस पर उसने शीघ्र ही आक्रमण किया। ये दोनों ही रोमके मित्रतासूत्रमें आबद्ध थे। फिलिपने लड़ाई आरम्भ करनेसे पहले सिरियाके राजा अन्तिओकासके साथ सन्धि कर ली थी। इससे रोम निश्चिन्त न रह सका। इस तरह दूसरी बार माकिदनीय लड़ाई आरम्भ हुई। ईसाके २०० वर्ष पूर्व फिलिपने पहले एथेन्स पर आक्रमण किया। इस पर एथेन्सकी सहायता करनेके लिये रोमक कन्सल सालपेशियस गलवा कई जङ्गीजहाजोंके साथ आया। यह देख कर फिलिप एथेन्सवासियों पर भयानक अत्याचार करने लगा। किन्तु प्रकाश्य लड़ाईमें किसी पक्षकी जय-पराजय न हो सकी। गलवाके बाद भिलियस कन्सल नियुक्त हुआ। यह ईसाके १९९ वर्ष पूर्वकी घटना है। यह भी फिलिपका कुछ बिगाड़ न सका। इसके एक वर्ष बाद फ्लेमेनियस कन्सल नियुक्त हो कर नये उद्योगसे लड़ाई करने लगा। उसने शीघ्र ही थेसाली पर कब्जा कर फोलिस और लोकिसमें शीतकाल बिताया। इसके दूसरे वर्षमें सिनो सेफालेमें या 'कुकुरमस्तक' नामक स्थानकी लड़ाईमें माकिदनीय २रे युद्धका अवसान हुआ। रोमक पहले बड़ी विपद्में फंसे थे, पीछे इटालियन घुड़सवारोंके भीमपराक्रमसे रक्षा हुई। माकिदनीय फौजें भी (Phalanx) अमित विक्रमके साथ युद्ध करने लगीं। ८००० माकिदनीय फौजें आहत और ५००० कैद हुईं; किन्तु रोमकोंके ७००से अधिक सिपाही नष्ट नहीं हुए। फिलिप अब सन्धि करने पर बाध्य हुआ। ईसाके १९६ वर्ष पहले यह सन्धि हुई। इसके अनुसार फिलिपको यूनानसे फौजें हटा लेनी पड़ी। जङ्गीजहाज रोमकोंके हाथ सौंप देने पड़े और फिलिपको इस बातकी प्रतीक्षा करनी पड़ी, कि रोमके बिना कहे किसी देशसे वह मित्रता न करेंगे। लड़ाईकी क्षतिपूर्तिमें १००० रुपये रोमकोंको मिले।

फ्लेमेनियसने यूनानको शीघ्र रोमके शासनाधीन कर देना उचित न समझ यूनानकी स्वतन्त्रताकी घोषणा की। पीछे पांच वर्ष तक यूनानमें रह कर शासनकी बागडोरको सम्भाल कर बड़ी धूमधामसे रोम पहुंचा। रोममें उसका बड़ा सम्मान हुआ। इस समय सिरियाके राजा अन्तिओकस एशियामाइनर पर घेरा डाल कर यूनान पर आक्रमण करनेकी तय्यारी कर रहा था।

इधर यूनानके इटालियन औद्धत्यके कारण फिलिप और अन्तिओकसको रोमके विरुद्ध उभाड़ रहे थे। किन्तु फिर फिलिप रोमके सामने शिर उठा न सका। अन्तिओकस् और मेबिसने इटालियनकी प्रार्थना स्वीकार कर ली। इस समय हानिबल अपने देशसे निर्वासित हो सिरियाकी राजसभामें उपस्थित हुआ। वहांकी सेनेटने रोमके विरुद्ध शिर ऊंचा करनेका उद्योग करनेके अपराधमें इसे देशसे निकाल दिया था। सिरियाके राजाने यहां आनन्दके साथ हानिबलको अपना प्रधान सेनापति बनाया। अन्तिओकस थेसालीके सुप्रसिद्ध दिमेत्रियस नामक सुरक्षित किलेमें पहुंचा। ईसाके १९१ वर्ष पूर्व रोमकोंने उसके विरुद्ध युद्ध-घोषणा की। कन्सल इलियस ग्लेब्रोने भी थेसालीकी यात्रा की। अन्तिओकस् थार्मोपली नामक गिरिपथ पर सैन्य ले कर पड़ा था। इस तरह उसने रोमकोंके मध्य एशियामें आनेका रास्ता रोक रखा था। किन्तु रोमक दूसरे एक पथसे सिरियाकी फौजोंके पीछे आ पहुंचे। यह देख सिरियाकी फौजें भाग खड़ी हुई। अन्तिओकस् यूनानकी विजयसे निराश हो कर अपने देश एशियामें लौट आया। ईसाके १९० वर्ष पूर्व हानिबलको परास्त करनेवाला सिपिओ आफ्रिकेनासके भाई एल-सिपिओ और सी लेलियास कन्सल नियुक्त हुआ। एल-सिपिओको अन्तिओकसके विरुद्ध युद्धमें जानेकी प्रार्थना करने पर सेनेटको उसकी योग्यतामें सन्देह हुआ। फलतः सेनेटने उसको आज्ञा न दी। किन्तु सिपिओ आफ्रिकेनासके भी भाईके साथ जानेकी बात सुन कर सेनेटने पीछे आज्ञा दे दी।

इधर अन्तिओकस् एक विराट सैन्योंका संगठन कर पार्गामस् राज्यको लूट रहा था। रोमक फौजें हेलेसपन्तको पार कर उसके सामने पहुंच गईं। सिपाइलम पर्वतके नीचे मेगनिसिया नामक स्थानमें लड़ाई आरम्भ हुई। रोमकोंके लोक-भयङ्कर पराक्रमसे अनिश्चित

स्वीकार किया। सिपिओकी सन्धिकी शर्तें पहलेकी अपेक्षा भी अधिक कठोर हुईं। किन्तु दूसरा उपाय न था। फिर सन्धि (२०१ ईसाके पूर्व) हो गई। कार्थेजीय अफ्रिकामें स्वाधीनतासे राज्य करने लगे। उनके अन्यान्य प्रायः सभी अधिकार छीने गये। यह भी निश्चय हुआ, कि वे बिना रोमकी आज्ञाके युद्धविग्रह भी न कर सकेंगे। सभी हाथी रोमको सौंप देने होंगे। मैसिनिसाको वे न्यूमिडियाका राजा स्वीकार करेंगे। युद्धकी क्षतिपूर्तिमें १०००० रौप्यमुद्रा ५० वर्षोंमें रोमको देने होंगे।

इस तरह रोम बाहुबलसे पश्चिम प्रदेशोंके सार्वभौम अधिपति हो गया। इस समय सिकन्दरके उत्तराधिकारियोंके द्वारा संस्थापित यूनानी राज्योंकी अवस्था अत्यन्त शोचनीय हो गई थी। जो सिरिया राज्य सिन्धुनदसे इजियन सागर तक फैला था, उसको बहुतेरे प्रदेशोंने अधीनता अस्वीकार कर दी थी। एशिया-माइनरके राजे सिरियाका शासन अस्वीकार कर स्वाधीन बन गये थे। बाक्ट्रिया और पार्थियामें राज्य प्रबल हो उठे थे। मार्सिया नामक एक नया राज्य कायम हुआ था। इसकी राजधानी पार्गामाम थी। पार्गामामके राजा आट्टालसने द्वितीय प्यूनिक लड़ाईके समय रोमके साथ मित्रता स्थापित की थी।

इस समय तृतीय अन्तियोकस् सिरियाका राजा था। इसने पार्थियावालोंको पराजित कर 'ग्रेट' या महाराजकी उपाधि ग्रहण की थी। इस समय टलेमीवंशीय यूनानी राजा मिश्रके सिंहासन पर बैठा था। इसने भी चिर-कालसे रोमसे मेल कर मित्रताकी सन्धि कर ली थी। किन्तु ईसाके २०५ वर्ष पूर्व चौथे टलेमीकी मौत होने पर बालक-कुमार टलेमी एपिफेनिस सिंहासन पर बैठा। उसके मन्त्रियोंने सिरिया और मासिडनके आक्रमणसे आतङ्कित हो रोमन-सम्राट्से सहायताकी प्रार्थना की थी। इजियन सागरमें रोड्स प्रजातन्त्र समुद्रिक शक्तिमें अद्वितीय कहा जाता था। इस प्रजातन्त्र राज्यने मासिडनके आक्रमणकी आशङ्कासे रोमसे सहायता भिक्षा की थी। मासिडनिया इस समय अत्यन्त पराक्रमशाली राज्य समझा जाता था। इसका राजा ५वाँ फिलिप इस समय इस देशका शासनदण्ड परिचालन कर रहा था। यह ईसाके २२० वर्ष पहले १७ वर्षकी अवस्थामें सिंहासन पर बैठा। यूनान देशमें इसका राज्य बहुत दूरमें फैला था। किन्तु उस समय यूनानमें 'एकियान लीग' और 'इटोलियन लीग' नामके दो नये संघराज्योंका अभ्युत्थान हुआ था। एथेन्स और स्पार्टा तब तक अपनी स्वाधीनताकी रक्षा कर रहे थे। किन्तु इनका पूर्वगौरव मलिन हो गया था। जब प्राच्य और प्रतीच्यकी ऐसी अवस्था थी, तब रोमके साथ मासिडनकी प्रतिद्वन्द्विता चल रही थी।

मासिडनीय, सिरीय और गलेशियन-युद्ध (२१४—१८८ ई० पू०)

पहले ही कहा जा चुका है, कि दूसरे प्यूनिक युद्धके समय मासिडनके राजाने कार्थेजके साथ हो रोमके साथ शत्रु-आचरण किया था। डिमेट्रियस नामक एक विश्वासघातक यूनान विद्रोही इलिरीय प्रदेशसे रोमके द्वारा निकाला गया था। यह फिलिपकी राजसभामें जा कर राजाका विशेष विश्वासपात्र बन गया। विश्वास ही क्यों, एक परामर्शदाता बन चुका था। फिलिप राजा उसकी रायके मुताबिक कार्य करता था। डिमेट्रियस युवकने फिलिपके अन्तःकरणमें रोमके प्रति विद्वेषाग्निकी उत्तेजना फैला दी थी। ईसाके २१४ वर्ष पू० फिलिपने कई जहाजोंसे ले कर अरिकम पर अधिकार कर लिया और आपोलोनिया पर घेरा डाल दिया। किन्तु रोमक-सैन्यके आ जानेसे वह वहाँसे लौट आया। इसके बाद तीन वर्षों तक कोई घटना न हुई। फिर २११ ईसाके पूर्व जब 'इटोलियन लीग'ने रोमके साथ सन्धि कर लिया। तब यह फिलिपके विरोधी बन गया। जब एकियान लीग फिलिपके साथ मिल गया। इटोलियन-लीग पहले फिलिपके साथ सन्धि करने पर बाध्य हुआ। फिर अफ्रिकामें रोम जब युद्धमें लिप्त था, तब रोमने भी फिलिपके साथ सन्धि कर ली थी। यह ईसाके २०५ वर्ष पूर्वकी घटना है। इस तरह मासिडनीय पहले युद्धका अवसान हुआ। किन्तु रोमने पहले ही इस बातका अनुभव किया था, कि यह सन्धि अधिक दिनों तक टिक न सकेगी। फिलिपने जब तक अफ्रिकामें प्रसिद्ध रोमके साथ लड़ाईमें फँसा था, तब तक फिलिपने हानिबलको

सहायतामें ४००० सैनिक भेजे थे। इजियनसागरमें प्राधान्यलाभ करनेके लिये वह सारे यूनान पर कब्जा कर रहा था। इसलिये रोड्सके प्रजातन्त्र और पार्गामासके राजा आटालुास पर उसने शीघ्र ही आक्रमण किया। ये दोनों ही रोमके मित्रतासूत्रमें आवद्ध थे। फिलिपने लड़ाई आरम्भ करनेसे पहले सिरियाके राजा अन्तिओकासके साथ सन्धि कर ली थी। इससे रोम निश्चिन्त न रह सका। इस तरह दूसरी बार माकिदनीय लड़ाई आरम्भ हुई। ईसाके २०० वर्ष पूर्व फिलिपने पहले एथेन्स पर आक्रमण किया। इस पर एथेन्सकी सहायता करनेके लिये रोमक कन्सल सालपेशियस गलबा कई जङ्गीजहाजोंके साथ आया। यह देख कर फिलिप एथेन्सवासियों पर भयानक अत्याचार करने लगा। किन्तु प्रकाश्य लड़ाईमें किसी पक्षकी जय-पराजय न हो सकी। गलबाके बाद भिलियस कन्सल नियुक्त हुआ। यह ईसाके १९९ वर्ष पूर्वकी घटना है। यह भी फिलिपका कुछ बिगाड़ न सका। इसके एक वर्ष बाद फ्लेमेनियस कन्सल नियुक्त हो कर नये उद्योगसे लड़ाई करने लगा। उसने शीघ्र ही थेसाली पर कब्जा कर फोलिस और लोक्रिसमें शीतकाल बिताया। इसके दूसरे वर्षमें सिनो सेफालेमें या 'कुकुरमस्तक' नामक स्थानकी लड़ाईमें माकिदनीय २रे युद्धका अवसान हुआ। रोमक पहले बड़ी विपद्में फंसे थे, पीछे इटालियन घुड़सवारोंके भीमपराक्रमसे रक्षा हुई। माकिदनीय फौजें भी (Phalanx) अमित विक्रमके साथ युद्ध करने लगीं। ८००० माकिदनीय फौजें आहत और ५००० कैद हुईं; किन्तु रोमकोंके ७००से अधिक सिपाही नष्ट नहीं हुए। फिलिप अब सन्धि करने पर बाध्य हुआ। ईसाके १९६ वर्ष पहले यह सन्धि हुई। इसके अनुसार फिलिपको यूनानसे फौजें हटा लेनी पड़ी। जङ्गीजहाज रोमकोंके हाथ सौंप देने पड़े और फिलिपको इस बातकी प्रतीक्षा करनी पड़ी, कि रोमके बिना कहे किसी देशसे वह मित्रता न करेंगे। लड़ाईकी क्षतिपूर्तिमें १००० रुपये रोमकोंको मिले।

फ्लेमेनियसने यूनानको शीघ्र रोमके शासनाधीन कर देना उचित न समझ यूनानकी स्वतन्त्रताकी घोषणा की। पीछे पांच वर्ष तक यूनानमें रह कर शासनकी बागडोरको सम्भाल कर बड़ी धूमधामसे रोम पहुंचा। रोममें उसका बड़ा सम्मान हुआ। इस समय सिरियाके राजा अन्तिओकस एशियामाइनर पर घेरा डाल कर यूनान पर आक्रमण करनेकी तय्यारी कर रहा था।

इधर यूनानके इटालियन औद्धत्यके कारण फिलिप और अन्तिओकसको रोमके विरुद्ध उभाड़ रहे थे। किन्तु फिर फिलिप रोमके सामने शिर उठा न सका। अन्तिओकस और नेबिसने इटालियनकी प्रार्थना स्वीकार कर ली। इस समय हानिबल अपने देशसे निर्वासित हो सिरियाकी राजसभामें उपस्थित हुआ। वहांकी सेनेटने रोमके विरुद्ध शिर ऊंचा करनेका उद्योग करनेके अपराधमें इसे देशसे निकाल दिया था। सिरियाके राजाने यहां आनन्दके साथ हानिबलको अपना प्रधान सेनापति बनाया। अन्तिओकस थेसालीके सुप्रसिद्ध दिमेत्रियस नामक सुरक्षित किलेमें पहुंचा। ईसाके १९१ वर्ष पूर्व रोमकोंने उसके विरुद्ध युद्ध-घोषणा की। कन्सल एलियस ग्लेब्राने भी थेसालीको यात्रा की। अन्तिओकस् थार्मोपली नामक गिरिपथ पर सैन्य ले कर पड़ा था। इस तरह उसने रोमकोंके मध्य एशियामें आनेका रास्ता रोक रखा था। किन्तु रोमक दूसरे एक पथसे सिरियाको फौजोंके पीछे आ पहुंचे। यह देख सिरियाकी फौजें भाग खड़ी हुईं। अन्तिओकस् यूनानकी विजयसे निराश हो कर अपने देश एशियामें लौट आया। ईसाके १९० वर्ष पूर्व हानिबलको परास्त करनेवाला सिपिओ आफ्रिकेनासके भाई एल-सिपिओ और सी लेलियास कन्सल नियुक्त हुआ। एल-सिपिओको अन्तिओकसके विरुद्ध युद्धमें जानेकी प्रार्थना करने पर सेनेटको उसकी योग्यतामें सन्देह हुआ। फलतः सेनेटने उसको आज्ञा न दी। किन्तु सिपिओ अफ्रिकेनासके भी भाईके साथ जानेकी बात सुन कर सेनेटने पीछे आज्ञा दे दी।

इधर अन्तिओकस् एक विराट सैन्योंका संगठन कर पार्गामस राज्यको लूट रहा था। रोमक फौजें हेलेसपन्तको पार कर उसके सामने पहुंच गईं। सिपाइलस पर्वतके नीचे मेगनिसिया नामक स्थानमें लड़ाई आरम्भ हुई। रोमकोंके लोक-भयङ्कर पराक्रमसे अशिक्षित

सिरियाकी फौजें परास्त हुईं। ५३००० सिरीय फौजें हताहत हुईं और रोमवालोंके केवल ४०० सिपाही काम आये। उपायहीन होकर अन्तियोकसने सन्धिकी प्रार्थना की। रोमवालोंकी शर्तें ये हुईं—(१) वह टारस पर्वतके पश्चिमके सारे प्रदेश रोमवालोंको प्रदान करेगा अर्थात् वह केवल एशिया माइनरका ही राजा रहेगा। (२) १२ वर्षके भीतर अन्तियोकस १५००० तालन्त क्षतिपूर्तिस्वरूप रोमवालोंको देगा। (३) उसे सभी हाथियों और जहाजों प्रदान रोमवालोंको देने पड़ेंगे। (४) हानिबलको कैद कर रोमकोंके हाथ सौंप देना पड़ेगा। अन्तियोकसने सन्धियोंको स्वीकार कर लिया। हानिबल वहाँसे भाग कर क्रीट द्वीप पहुंचा। वहाँसे यह बिथीनियाके राज प्रसा- सी जा पहुंचा था।

एल सिपिओ अतुल धन सम्पत्ति ले कर महासमा- रोहसे रोम लौटा। उसके भाईने जैसे अफ्रिका पर विजय करने पर 'अफ्रिकेनास' की उपाधि पाई थी, वैसे ही उसको एशिया जय करने पर "एशियाटिकस" की उपाधि मिली। इसके बाद विद्रोही एटोलियनोंको दण्ड देनेमें रोमक अग्रसर हुए। ईसाके १८९ वर्ष पूर्व कन्सल फलवियस नोबिलिओरने यूनान आ कर वहाँके प्रसिद्ध नगर एम्ब्रासिया पर अधिकार कर लिया। एटो- लियनोंने निरुपाय हो कर सन्धिकी प्रार्थना की। सन्धि- के अनुसार अपनी स्वाधीनता खो कर सब सदाके लिए रोम- के अधीन हुए। एटोलियनोंने युद्धकी क्षतिस्वरूप ५०० टैलेन्ट रोमको दिये। इस तरह प्रसिद्ध एटोलियन लीगका सम्पूर्ण नाश हुआ। नोबिलिओरके सहयोगी कन्सल मान्लियस को इस समय एशिया-माइनरके गालिशियके राज्योंमें शान्ति स्थापन करनेके लिये सेनेट द्वारा भेजा गया था। किन्तु उसके हृदयमें विजिगीषा और अर्थलालसा बलवती हो उठी थी। इसलिये सेनेटके आदेशकी अपेक्षा न कर उसने गैलेशियनोंके साथ युद्ध ठान दी। इससे पहले किसी कन्सलने सेनेटकी आज्ञाके बिना विदेशियोंके साथ युद्ध किया न था। मान्लियसने अतुल विक्रमके साथ गैलेशियनोंको हरा कर बहुत धनरत्न प्राप्त किया। किन्तु रोमकोंने उस समय एशियाके जीते हुए देशोंमें सुखद शासन- प्रणाली न कायम कर रोमके अधीन हो लिया। यहाँसे पार्गामसके राजा यूमिनसको लायकोनिया, गलेशिया और लिसियाके मालमको बखशीश दे दी और पैसिडियाका अधिक भाग रोडियन प्रजातन्त्रके अधीन कर दिया। मान्लियस १८७ ईसाके पूर्व महासमारोहसे रोम लौट आया। विख्यात ऐतिहासिकोंने इस युद्धोंको (सुल- तान महमूदकी तरह) केवल धन लूटनेका दृष्टान्त कह कर लिखा की है।

मैसिडोनियन और एकियन युद्ध (२०० १४६ ईसाके पूर्व)

जिस समय रोमक एशिया छोड़े हुए हुएसे धन- रत्न लूट रहे थे, उस समय पश्चिम यूरोपके अधीन जातियोंमें भीषण लड़ाई चल रही थी। इटलीके उत्तर पो नदीके किनारेके लड़ाई-झगड़ा गल और लिगु- रियन जातियाँ हानिबलके सामने गल फौजोंके सेनापतियोंकी उत्तेजनासे रोमके विरुद्ध अस्त्र धारण करने पर उतारू हुए थे। २०० वर्ष ईसाके पूर्व गलोंने रोमाधिकृत प्लासेन्शिया और क्रेमोनिया पर आक्रमण कर लूटमें सूट लड़ाईकी घोषणा की।

सिपिओ द्वारा अधिकृत स्पेन देशमें रोमकोंकी शासन प्रथा कायम हो गई थी। स्पेन देश दो भागोंमें विभक्त हो कर दो रोमक-प्रिटर या गवर्नर द्वारा शासित होता था। किन्तु उत्तर और पश्चिमकी अनेक युद्धप्रिय जातियोंने इस समय भी रोमकी अधीनता स्वीकार नहीं की थी। मध्य स्पेनके केल्टिबेरियन, पुर्तगालके लिसीटे- निया और केन्टेब्रियन तथा गैलिशियन जातियाँ स्वतन्त्रतापूर्वक राज करते थे। रोमकोंने शान्ति स्थापनके लिये वहाँ बराबर चार दल सैनिक रोमसे पुष्ट किये थे और इनके सभी खर्चके लिये अधिवासियोंके ऊपर भार डाल कर वसूल करनेकी प्रथा चलाई गई। रोमक शासन क्रमशः कठोर- ताके मूलरूप हो रहा है, यह देख कर वहाँके अधिवासी विद्रोही हो उठे। कन्सल एम. पोर्सियस केटो विद्रोह दमन करनेके लिये स्पेन भेजे गये। यह १९५ ई० के पूर्वकी घटना है। सारे देशने रोमके विरुद्ध आक्रमण किया, किन्तु केटोकी रणचातुर्यता और रणनिपुणतासे फिर रोमक शासन दृढ़ हुआ।

रोमक-शासन-प्रणाली और सैन्य व्यवस्था।

इस समयके रोमकी 'कनष्टिटिउशन' या शासन-व्यवस्थाका संक्षेपमें वर्णन करना चाहिये। पहले प्लिबियन, पिट्रेशियनोंके विरोधकी घटनाओंका उल्लेख किया गया है। इस समय प्लिबियन पिट्रेशियनोंको बराबरीमें किसी तरह कम न थे। २रे प्युनिक-युद्धके बादसे दोनों दलमें कोई विरोध नहीं हुआ। क्योंकि प्रति वर्ष दो कन्सल और दो सेन्सर प्लिबियनोंकी ओरसे नियमित रूपसे निर्वाचित किये जाते थे। पिट्रेशियनोंके किसी किसी काल्पनिक उत्कर्षके सिवाय और कोई सुविधा नहीं थी। प्रत्येक रोमवासी भिन्न भिन्न सरकारी काम करनेके बाद कन्सल हो सकते थे। किन्तु जो नीचे ओहदे पर काम नहीं करते, उनमें अधिक गुण रहने पर भी वे कन्सल नहीं हो सकते थे। सिर्फ प्रसिद्ध सिपियोको मुकर्ररीमें इस नियमका व्यभिचार हुआ था। ईस्वी-सन् १७६के पूर्व 'लेक्स आनालिस' नामक एक आईन बनाया गया। उसके अनुसार 'कोयेष्टरशिप' या निम्नतम मजिष्ट्रेट पद पर अधिष्ठित व्यक्तिकी उमर २८ वर्ष, उनसे नीचे इडाइलशिपकी ३७, प्रिटरशिपकी ४० तथा कन्सल पदके लिये ४३ वर्ष ठहराई गई। जो उक्त पद पर नियमानुसार कार्य करते थे, वही एक समय कन्सल हो सकते। उपरोक्त मजिष्ट्रेटगण दो भागोंमें विभक्त थे—राजचिह्नालंकृत क्यूरिउल यथा कन्सल, प्रिटर आदि तथा नन क्यूरिउल मजिष्ट्रेट या डिक्टेटर आदि।

१। कोयेष्टरगण राज्यका वेतन बांटते और राजस्व वसूल करते थे।

२। इडाइलगण ठीक पब्लिक वर्कस डिपार्टमेण्ट या सरकारी पूर्त्तकार्यके निर्वाहक थे।

३। प्रिटर और कन्सल (या राजकीय मजिष्ट्रेट) प्रिटरगण सेनेट-सभा करते, व्यवहारशास्त्र बनाते और सामरिक शासनके अधिकारी थे। प्रत्येक प्रिटरके ६ लिक्टर रहते थे। पहले सिविल विचार या नागरिक विचार-कार्यके लिये एक प्रिटर नियुक्त होते थे।

४। कन्सलगण उच्चतम मजिष्ट्रेट थे। वे राज्य-शासन और सामरिक-विभागकी परिचालना किया करते थे। वे सेनेट-सभा करते तथा साधारण सभाका अधिवेशन कर सकते थे। वे ही सेनेटके सभापति थे। इनके अलावा जनताकी सम्मतिके अनुसार वे सैन्य-विभागके सर्वमय कर्त्ता थे। वे ही प्रकृत प्रस्तावमें सैन्योंके दण्डमुण्डके कर्त्ता थे। उनमेंसे हरएकके अधीन १२ लिक्टर रहते थे। उपरोक्त मजिष्ट्रेट प्रति वर्ष ही निर्वाचित होते थे। इनके अधीन कभी कभी प्रोकन्सल और प्रोप्रिटरगण नियुक्त होते थे। साधारणतन्त्रके परवर्त्ती कालमें कन्सलोंका शासनकाल समाप्त होने पर वे प्रोकन्सलके रूपमें वैदेशिक शासनकर्त्ता नियुक्त होते थे।

५। दूसरे प्युनिक-युद्धके पहले तक डिक्टेटर शिपका विशेष प्रचलन था। किन्तु रोमको प्राधान्य वृद्धिके साथ साथ इस असाधारण पदकी उतनी आवश्यकता न थी। किन्तु कन्सल किसी युद्ध-विग्रहके समय डिक्टेटरकी क्षमता पाते थे।

(६) सेन्सर—प्रत्येक पांच वर्ष पर दो सेन्सर नियुक्त होते थे। किन्तु १८ महीनेसे अधिक कोई उक्त पद पर कार्य्य कर नहीं सकता था। इनके कार्य विशेष प्रयोजनीय और दायित्वपूर्ण थे। इनके कार्य तीन भागोंमें विभक्त थे—

(१) इनके सर्वप्रथम कार्य मर्दुमशुमारी और उसकी रिपोर्ट तैयार कर प्रत्येक प्रजाकी सम्पत्तिका मूल्य निर्द्धारण करना था। पीछे सम्पत्तिके अनुसार अधिवासियोंका श्रेणी-विभाग किया जाता था। पहले कहा गया है, कि सार्डियस टालियसने इस प्रथाको सर्वप्रथम चलाया था।

(२) सेन्सरोंके दूसरे कार्य—अधिवासियोंके चरित्र तथा व्यवहारके प्रति दृष्टि रखना। इस विषयमें वे अपने कर्त्तव्य ज्ञानके ऊपर निर्भर करते थे। किसीकी अनुरोध रक्षा तथा प्रशंसाकी परवाह नहीं करते थे। वे व्यक्तिगत और साधारण असद्व्यवहारके लिये दण्ड-विधान किया करते थे। सेन्सरगण उच्च श्रेणीके लोगोंको निम्नश्रेणीमें लाते, सेनेटके सदस्योंको दोषके कारण हटाने और साधारणको राजकीय सुविधासे वञ्चित कर सकते थे।

(३) सिवा इसके वे सेनेटके परामर्शसे राज्यशासनकी

और राजस्व संग्रहकी व्यवस्था कर सकते थे। पूर्व कार्योंको पूर्ण करनेके लिये इनके हाथमें निर्दिष्ट संख्यामें रुपया आता था। इससे बड़े बड़े राजपथ या सड़कें बनती थीं।

सेनेट।

सेनेट पहले केवल परामर्शदाता समितिमात्र थी, किन्तु समयसे यह राज्यके शासनयन्त्रके एकमात्र परिचालक हो उठी थी। मजिस्ट्रेट केवल सेनेटके आज्ञानुसार कार्य किया करते थे। सेनेट ३०० सदस्योंसे संगठित होती थी। जो सदस्य इसमें निर्वाचित होते थे वे आजीवनके लिये होते थे, वैसे ही कोई विशेष कारण उपस्थित होने पर सदस्य हटाये जा सकते थे। किन्तु यह पद स्थायी नहीं होता था। प्रत्येक ५ वर्ष पर सेन्सर द्वारा नये सदस्य चुन लिये जाते थे। साधारणतः मजिस्ट्रेटोंमेंसे ही ये सदस्य अधिक लिये जाते थे। राजनीति विषयमें प्रवीणता और शिक्षा लाभ कर न सकने पर कोई सेनेटका सदस्य हो न सकता था।

सेनेटको सब तरहकी क्षमता थी। सेनेटकी आज्ञासे कोई कोई कानूनोंमें जनसाधारणकी सम्मति ली जाती थी। किन्तु अनेक विषयोंमें सेनेट साधारणकी सम्मतिके बिना कानून बना सकती थी। लड़ाई विग्रह विषयमें भी सेनेटके निर्देशानुसार जनरल कार्य करते थे। पर शत्रुके साथ युद्ध और सन्धि स्थापन विषयमें भी सेनेटका सार्वभौम प्रभाव था। सिवा इसके कमिशिया क्यूरिएटा, कमिशिया सेन्चुरिएटा, कमिशिया ट्रिब्यूटा, [illegible] आदि कई साधारण समिति भी समय समयपर स्थापित हुई थी।

रोमकी साम्राज्यिक अवस्था।

मासिडोनीय लड़ाईके बाद रोममें नाना विषयोंमें नाना परिवर्तन हुए थे। बहुतोंका ऐसा कहना है, कि ग्रीसका अवगाहन कर रोम राज्य होने पर रोमन जातीय चरित्रमें बहुत परिवर्तनके लक्षण प्रकाशित हुए। जो त्यागको ही धर्म मानते थे, वे अर्थ या काम भोगको ही धर्म मानने लगे और इन्द्रियसुखको ही मनुष्य जीवनके चरमोद्देश्य मानकर उसके उपासक बने।

धार्मिक परिवर्तन।

किसी जातिके उत्थान पतनके साथ साथ जातीय चरित्रकी उन्नति-अवनतिके साथ साथ जातीय देव देवियोंकी उत्पत्ति और अवनति होती रहती है। इटलीमें बेकस नामक मदिरा और मदनके अधिष्ठातृ देवता रोममें स्थापित हुए।

विलासप्रियता सब मनुष्योंमें प्रवाहित हुआ। बड़े बड़े रङ्गालयोंकी व्यवस्थाद्वारा आमोद प्रमोदमें आम नागरिक लग गया। सर्कसका कौतुकप्रदर्शनकी धूम मचाई जाती थी।

धनवृद्धिके साथ-साथ हृदयवत्ताकी अवनति हुई। अर्थवान् मनुष्य अर्थव्यय कर (रिश्वत दे कर) राजकार्य पद लेने लगे। इस कारणसे सबसे पहले (१८१ ई० पू०) "रिश्वत देना और लेना मना है" यह कानून बना है।

अधिक दिनों तक बड़ी बड़ी लड़ाई और विजयके अभिमानोंसे क्रमशः समाजकी अवनति हुई। गुलामी प्रथाके परिवर्तनमें स्वाधीन श्रमजीवियोंका सम्मानास्पद नष्ट होने लगा।

इस समय जो सबसे प्रसिद्ध व्यक्ति रोमके प्राचीन चरित्र और प्राचीन गुणावलीसे प्रत्यक्ष रूप रखते थे, उनमें एक परिवार केटो महोदयका है। पहले इसकी बात कह चुके हैं, कि ये प्राचीन रोमके एक आदर्श पुरुष थे।

इस रोममें अपूर्व एक घटना हुई। ईसासे २१५ वर्ष पूर्व प्युनिक लड़ाईके समय ट्रिब्यून ओपियस द्वारा "लैक्स ओपिया" नामक एक कानून बना था। इस कानूनके अनुसार कोई रोमक स्त्री आध आउन्ससे अधिक सोनेका व्यवहार नहीं कर सकती थी। कई तरहके रंगके कपड़ोंका पहनना, नगर और नगरके बाहर घोड़े गाड़ीका हाँकना—ये सब काम स्त्रियाँ कर न सकती थीं। इस समय हानिबलको जीत लेने और दूर पर बहुतेरे विजयोंके लक्षण प्रकट हुए थे। अतः स्त्रियोंने व्यक्तियोंसे इस कानूनको रद्द करनेका प्रस्ताव दोनों ट्रिब्यूनोंके पास भेजा। किन्तु इसके दोनों सदस्योंने उसके विरोधी हो उठे। किन्तु

अन्तमें रमणियोंको ही जीत हुई। वे नाना रंगोंके कपड़ोंको पहन तथा स्वर्णालङ्कारसे भूषिता हो कर स्वतन्त्रतापूर्वक विचरण करने लगीं।

इस समय सिपिओ अफ्रिकेनास और सिपिओ एशियाटिकास दोनों भाई साधारण लोगोंकी दृष्टिमें गिर गये। केटोकी कुचेष्टासे नेवियस नामक एक ट्रिव्यूनने छोटे सिपिओ पर लूटे हुए धनके अपव्यय करनेका अभियोग लगाया। इस अपराधमें उसको बड़ा कठोर दण्ड होता, किन्तु प्रसिद्ध ग्राकासके बुद्धिबलसे छोटे सिपिओ बच गया।

फिर ट्रिव्यूनों द्वारा सिपिओ अफ्रिकेनास अभियुक्त हुआ। जब उससे उसके अभियोगके सम्बन्धमें प्रश्न पूछा गया, तब इसका कुछ भी उत्तर न दे कर रोमके प्रजातन्त्रके लिये अपनी की हुई कीर्त्तियोंको ओजस्विनी भाषामें वर्णन करने लगा। सिपिओ जोरसे कहने लगा—"मैंने भुवनविख्यात जेमाके युद्धमें हानिबलको पराजित किया था। आज उसका वार्षिकोत्सवका दिन है।" सिपिओके ओजस्वी भाषणसे अदालतके सभी लोग उठ कर केपिटाल पर पूजा करनेके लिये चले गये। अदालतमें केवल विचारक ही रह गया। इसके बाद सिपिओ भी अदालतका नियमबन्धन तोड़ कर अकृतज्ञ रोमको छोड़ अपनी जन्मभूमिमें जा कर रहने लगा। रोमसे सम्बन्ध विच्छेद कर बाकी जिन्दगी उसने वहीं बिताई। ईसाके १८३ वर्ष पूर्व उसकी मृत्यु हुई। मृत्युके समय उसने कहा था, कि मेरी शवदेह अकृतज्ञ रोमकी भूमिमें न दफनाई जाये।

हानिबलने भी इसी समय प्राणत्याग किया। जब सेनेटने हानिबलको मार डालनेका विचार किया था, तब सिपिओने सेनेटके उस हुक्मको रद्द कराया था। सिपिओका अन्तिओकससभामें हानिबलके साथ जो कथोपकथन हुआ था, वह इतिहासमें प्रसिद्ध है। सिपिओने हानिबलसे पूछा—"कहो, किसको श्रेष्ठ सेनापति कहते हो?" हानिबलने उत्तर दिया,—"दिग्विजयी सिकन्दरको।" सिपिओने फिर पूछा दूसरा कौन? उत्तर मिला—"पिरहास" फिर सिपिओने कहा,—"तीसरा कौन?" हानिबलने कहा,—"तीसरा स्वयं मैं।" यदि आप मुझको हरा देते, तब आप कौन होते? हानिबलने हँस कर कहा था—"आपको हरा कर मैं सिकन्दर और पिरहाससे भी बढ़ जाता।" वे दोनों आपसमें एक दूसरेको समझ गये थे। पहले कहा जा चुका है, कि हानिबल बिथाइनियाकी राजसभामें रहने लगा था। किन्तु वहां रोमकोंके समागम होनेकी आशङ्कासे उसने विष पान कर आत्महत्या कर ली थी।

ईसाके १८४ वर्ष पूर्व केटो सेन्सर हुए। इस समय इसने रोमके भीतर बहुतेरे संस्कार किये। विलासिता दूर करनेके लिये उसने विलासिताकी सामग्रियों पर दूना कर बढ़ाया। सिवा इसके सेनेटके कई अकर्मण्य सदस्योंको उनके पदसे हटाया। किन्तु वयःवृद्धिके साथ साथ उसकी शक्ति कम होती गई। अन्तमें उसने यूनानी साहित्यकी आलोचनामें अपना ध्यान बढ़ाया। यह एक प्रसिद्ध ऐतिहासिक और प्रौढ़वक्ता था।

तीसरा माकिदनीय युद्ध, एकियान और प्यूनिक-युद्ध।

(१७९-१४६ ई० पू०)

रोम पश्चिम यूरोपमें प्राधान्य स्थापित और एशियाके पश्चिम भागमें प्रतिनिधित्व कर शान्तिसे दिन बिता रहा था। ऐसे समय फिर युद्ध आरम्भ हुआ। ईसाके १७९ वर्ष पूर्व माकिदनपति फिलिपकी मृत्यु हुई और उसका लड़का पर्सियस सिंहासन पर बैठा। फिलिपने मृत्युके पहलेसे ही रोमके साथ फिर युद्धका आयोजन किया था। पर्सियस जब राजा हुआ, तब उसका खजाना भरा था। विपुल सैन्य संग्रह करनेके लिये एशियाई राजे यूनान, थ्रेसियन, इलिरियन और केल्टिक जातियोंके साथ उसने मित्रता कर ली थी। रोमक भी चुप बैठे न थे। इन सब आयोजनोंको वे देख रहे थे। इस समय पर्सियस रोमके मित्र पार्गामासके राजा यूमिनसके प्राणनाशकी चेष्टा करने पर १७२ वर्ष ईसासे पूर्व खुल्लमखुल्ला युद्ध होने लगा। पर्सियसके अधीनमें प्रकाण्ड सैन्यदल संगृहीत हुआ। ओड्रेसियाका राजा कोटिस् उसका प्रधान सहायक बना। रोमकोंने भी युद्ध आरम्भ किया। किन्तु तीन वर्ष तक रोमक कुछ कर न सके। इधर पर्सियस ही जीतने लगा। इसलिये बहुतेरी जातियां भा

गः कर पश्चिमकी ओर बढ़ने लगी। अन्तमें ईसाके १६८ वर्ष पहले रोमने एमीलियस पलास युद्ध करनेके लिये भेजे गये। दोनोंमें पिड्ना नामक स्थानमें युद्ध हुआ। रोमकोंके सौभाग्य बलसे पर्सियस पहले पेला और पीछे सामथ्रेसिया और वहांसे मेसोपोटामिया भाग गया। पीछे वह पकड़ा गया और उसने आत्मसमर्पण किया।

ईसाके १६७ वर्ष पूर्व पलास इटली पहुंचा। उसने विपुल धन प्राप्त कर रोमके खजानेको भर दिया। मासिडोनिया पर विजय कर रोमने भूमध्यसागरके पूर्वी किनारे पर भी सार्वभौम प्राधान्य लाभ किया था। उस समयके सम्राट् भी रोमसे डरते थे। तदनन्तर एकियाके लोग पर्सियसके पक्ष ग्रहण करनेके कारणमें दण्डित हुआ। १ हजार प्रधान सम्भ्रान्त एकियान १६ वर्ष तक रोममें कैद थे। १६ वर्षोंके बाद जब वह कैदसे छुटे, तब उनमें केवल ३०० ही जीवित बचे थे। बाकी ७०० अनानुचित अत्याचारके कारण मर गये। इस घटनासे खिन्न हो कर अनेक विद्रोही हो उठे। उनमें आन्ड्रिस्कस नामक एक दासीपुत्रने अपनेको पर्सियसका वंशधर कह कर मासिडोनीय राजसिंहासनका दावा किया और (१४९ ई० पू०) फिलिप नाम रख कर सिंहासन पर बैठ गया। पहले इसने बहुत कुछ जीता था। रोमक प्रिटर जुवेन्टियस इसके हाथसे पराजित हुए। किन्तु एक वर्ष भी राजत्व करने न पाये मेटेलस द्वारा यह कैद कर लिया गया।

पश्चिमफलको हालिक एकाइयाओंने एकियाओंमें उत्तेजित हो स्पार्टा पर आक्रमण कर दि... ईसाके १४७ वर्ष पहले ही रोमक कमिसार ... मिटानेके लिये यूनान भेजे गये। किन्तु कोरि... आदि स्थानोंमें विद्रोह बढ़ गया। स्पार्टा द्वारा आक्रमण हुआ। करिन्थने भाग कर बचाया। तब मेटेलसने पहि... विरुद्ध घोषणा कर दी। डायइस... ...न पहुंचे, एकियान सेनापति क्रिटो... ...ब हो गये। पीछे एकियान्स ... ...कर कैद कर लिये गये। इसके ब... ...है

अधिनायक हो करिन्थ नगरमें फौजोंको एकत्र कर कुछ दिनों तक युद्ध किया। अन्तमें ममियसने करिन्थ नगर पर घेरा डाला। डियस पराजित हो कर भाग गया। यहांके अधिकांश अधिवासियोंने भाग कर जान बचाई। ममियस ने नगरमें घुस कर बहुतेरे लोगोंका नाश कर दिया और बालक और स्त्रियोंको गुलाम बना कर बेच दिया। इसके बाद उस प्राचीन करिन्थ नगरकी धन सम्पत्ति लूटी गई फिर आग लगा कर भस्म कर दिया गया। करिन्थ नगर प्राचीन ग्रीसके शिल्पनैपुण्यका एक नमूना था। सारा नगर जल कर राखका ढेर बन गया। इस तरह भुवनविख्यात यह नगर भस्मीभूत हुआ। यूनान स्वाधीनता खो कर रोमकोंके अधीन हुआ।

१३ प्युनिक युद्ध और कार्थेजका ध्वंस (१४९-१४६ ई० पू०)

हानिबलके निर्वासनके बाद कार्थेजीय ईसाके २०१ वर्ष पहलेके सन्धिके अनुसार कार्य्य करते चले आते थे। वे मसिनिसके विरुद्ध गौरवका पुनरुद्धार कर रहे थे। इसलिये वे रोमकी सिनेटकी आंखके कांटे बन गये।

सिनेट युद्धका कारण ढूंढने लगी। घटनाक्रमसे न्यूमिडियाके राजा मसिनिसाके साथ कार्थेजका झगड़ा होने लगा। यह रोमका मित्रराज था। इसलिये केटोने कार्थेजको ध्वंस करनेके लिये शीघ्र ही युद्धघोषणाका परामर्श दिया। किन्तु सिनेटने सम्मति नहीं दी। उस समय केटो आदि कितने ही दूत कार्थेजकी अवस्था जाननेके लिये वहां भेजे गये। वहां जाने पर केटो कार्थेजका धनऐश्वर्य देख दंग रह गया। रोम लौट कर इसने कार्थेजध्वंसके लिये रोमवासियोंको उत्तेजित करना आरम्भ किया। अन्तमें सिनेटने इसकी बात ... ।

...ध्वंस करना शुरू किया।
... साम्राज्य कार्थेजीय
३०० युवकों-
... नागरिक
...

सामान या एञ्जिन आदि ला कर रोमकोंके हवाले किया। निर्दय रोमकोंका कलेजा इससे भी ठण्डा न हुआ। अब रोमकोंने कहा, कि "तुम लोग कार्थेज छोड़ कर दूसरे स्थानमें जा बसो। क्योंकि, यह नगर ध्वंस किया जायगा।"

निर्दोष कार्थेजियोंसे अब नहीं रहा गया। अब हताश और निरुपाय हो कर उन्होंने वीरताके साथ लड़ कर मर जाना ही उचित विचार किया। शीघ्र ही नगरका दरवाजा बन्द कर सारे इटालियनोंको उन्होंने मार डाला और वे इस अन्यायी शत्रुके साथ युद्ध करनेका दृढ़ संकल्प कर स्वदेशवत्सल कार्थेजियोंको उत्तेजित करने लगे। कारीगर दिन रात अस्त्र-शस्त्र बनाने लगे। स्त्रियां अपने बाल काट धनुष पर गुण चढ़ाने लगीं। आबाल वृद्ध वनिता स्वदेशवात्सल्यके मोहनमन्त्रसे दीक्षित और प्रणोदित हो कर अनवरत युद्धविद्या सीखने लगे। कार्थेज मानो एक प्रकाण्ड अस्त्रागार बन गया। इमिलियस पलासके ज्येष्ठ पुत्र कर्नेलियस सिपिओ ससैन्य कार्थेज पहुंचा। हासद्रुबल नामक एक निर्वासित सेनापतिने कार्थेजियोंकी अधिनायकता-स्वीकार कर ली। कार्थेजियोंके दो आक्रमणोंसे रोमक तितर बितर हो गये। केवल सिपिओके रणकौशलसे फौजें नष्ट होनेसे बच गईं। सिपिओने मिस्र पर अधिकार कर कार्थेजमें अन्न आदि आनेवाले पथको रोक दिया। कार्थेजीय अद्वितीय वीरतासे आत्मरक्षा करने लगे और शीघ्र ही ५०० जङ्गी-जहाज तय्यार कर जलयुद्धकी तय्यारी करने लगे। यह देख रोमक डर गये। सिपिओका प्रमाद बढ़ गया। जलयुद्ध होने लगा। सात दिन घोर जलयुद्ध होने पर अन्तमें सभी जङ्गी-जहाज नष्ट हुए। इसके बाद सिपिओने दृढ़तापूर्वक कार्थेज पर घेरा डाला और रातको रोमकोंने कथन बन्दर पर कब्जा कर कार्थेजकी ऊंची चहारदीवारीको पार कर भीतर प्रवेश किया। नगरमें हृदयविदारक काण्ड होने लगे। खाद्याभावसे कार्थेजीय शवदेह भक्षण कर अपनी स्वतन्त्रताकी रक्षा करने लगे। सभी जगह तलवारोंकी झनकार सुनाई देती थी। प्रत्येक राजपथके बड़े बड़े महलोंमें कार्थेजीय नरनारियां अपने अस्त्रोंके सामने अपनी इहलीला संवरण करने लगीं। अग्निदेव उन गगनचुम्बी इमारतोंको अपने तेजसे जलाने लगे। नर-नारियोंका रक्तप्रवाह वेगवती नदीकी तरह समुद्रमें जा कर मिल गया। इस तरह यह उन्नत और ऐश्वर्य्यपूर्ण महानगरी महाश्मशानके रूपमें परिणत कर दी गई। आज भी उसका ध्वंसावशेष उस समयकी भयानक घटनाकी याद दिला देता है।

ईसाके १४६ वर्ष पहले जुलाई महीनेमें कार्थेजका ध्वंस हुआ। सिपिओने रोममें लौट कर बड़े समारोहसे विजयोत्सव मनाया। उसने भी हानिबलजेता सिपिओकी तरह अफ्रिकेनासकी उपाधि धारण की। बाकी कार्थेज-राज्य अफ्रिकाके नामसे रोमकोंके शासनके अन्तर्गत हो गया। प्राच्यवाणिज्यके प्रधान केन्द्र करिन्थ और प्रतीच्यवाणिज्यका निलय कार्थेज—ये दोनों वाणिज्य प्रधान नगर रोमकोंके हाथसे विनष्ट हुए। इस समयसे ही रोमके जीते देशोंमें साम्राज्यका सूत्रपात होने लगा।

स्पेनका युद्ध (१५३-१३० ई० पूर्व)

इस समय स्पेन देशके शासनकर्त्ता सेम्प्रोनियस ग्राकासके सद्व्यवहार और सुशासनसे वहां शान्तिमय शासन प्रवर्त्तित हुआ था। किन्तु ईसाके १५३ वर्ष पूर्वसे सेगेडा नगरके अधिवासियोंने नगरकी चहारदीवारी बनाना आरम्भ की। फलतः रोमकोंने इस कार्यमें बाधा उपस्थित की। इसलिए स्पेनमें बहुवर्षव्यापी युद्धका सूत्रपात हुआ। केल्टेबेरियनोंने सेगडाका पक्ष ग्रहण किया। कालवियस नोबिलियोंके युद्धमें उनका कुछ भी बिगाड़ न सका। पीछे क्लडियस मार्सेलसने उन सबोंको पराजित कर सन्धि स्थापित की। इसके बाद सालपिसियस गलबाने ल्युसिटानिया पर आक्रमण किया। किन्तु यह स्पेनियार्डों द्वारा विशेषरूपसे पराजित हुआ। पीछे ल्युसिनियस लुकालसने उसके सहायक बन फिरसे ल्युसिटानिया पर आक्रमण किया। किन्तु उन्होंने सन्धिके लिये गलबाके पास दूत भेजा। उस समय गलबा ल्युसिटानियोंको सपरिवार निर्भयरूपसे अपने खेमेमें आनेको कहा। वे उसकी बात पर विश्वास कर खेमेमें चले आये। यह विश्वासघातकता कर उन सबोंको मार डाला। बहुतेरे आदमी निर्दयतासे मार डाले गये। केवल भिरियेथस और अन्यान्य कई

भाग कर पर्सियससे मिलने लगा। अन्तमें ईसाके १६८ वर्ष पहले रोमसे एमिलियस पालस युद्ध करनेके लिये भेजे गये। दोनों फौजें पिडना नामक स्थानमें जुट गईं। रोमनोंके भीषण आक्रमणके फलसे पर्सियस पहले पेला और पीछे अम्फीपोलिस और वहांसे सेमोथ्रेस भाग गया। अन्तमें वह पकड़ा गया और उसने आत्मसमर्पण किया।

ईसाके १६७ वर्ष पूर्व पालस इटली पहुंचा। उसने विपुल धन सम्पत्ति ला कर रोमके खजानेको भर दिया। मासिडोनिया पर विजय कर रोमने भूमध्यसागरके पूर्वी किनारे पर भी सार्वभौम प्राधान्य लाभ किया था। उस समयके सम्राट् भी रोमसे कांप उठते थे। प्रधानतम एकियान लोग पर्सियसके पक्ष ग्रहण करनेके अपराधमें दण्डित हुआ। १ हजार प्रधान सम्भ्रान्त एकियान १६ वर्ष तक रोममें कैद थे। १६ वर्षोंके बाद जब वह कैदसे छुटे, तब इनमें केवल ३०० ही जीवित बचे थे। बाकी ७०० अमानुषिक अत्याचारके कारण मर गये। इस घटनासे विरक्त हो कर अनेक विद्रोही हो उठे। उनमें आण्ड्रिस्कस नामक एक दासीपुत्रने अपनेको पर्सियसका वंशधर कह कर मासिडनीय राजसिंहासनका दावा किया और (१४६ ई० पू०) फिलिप नाम रख कर सिंहासन पर बैठ गया। पहले इसने बहुत कुछ जीता था। रोमक प्रिटर जुवेन्टियस इसके हाथसे पराजित हुए। किन्तु एक वर्ष भी राजत्व करने न करने मेटेलस द्वारा यह कैद कर लिया गया।

एकियनलको सन्धिक हलकारोंसे एकियानोंने उत्तेजित हो स्पार्टा पर आक्रमण कर दिया। किन्तु ईसाके १४७ वर्ष पहले दो रोमक कमिश्नर इस झगड़ेको मिटानेके लिये यूनान भेजे गये। किन्तु शीघ्र ही करिन्थ आदि स्थानोंमें विद्रोह मच गया। स्पार्टा एकियानों द्वारा आक्रान्त हुआ। कमिश्नरोंने भाग कर अपना प्राण बचाया। तब सिनेटने एकियान लोगोंके विरुद्ध युद्धकी घोषणा कर दी। मेटेलस-सैन्यके साथ यूनान पहुंचे। एकियान सेनापति क्रिटोलस युद्धक्षेत्रमें उपस्थित न हो सके। पीछे स्कार्फिया नामक स्थानमें पकड़े जा कर कैद कर लिये गये। इसके बाद डियसने एकियन लोगोंके अधिनायक हो करिन्थ नगरमें फौजोंसे कुछ दिनों तक युद्ध किया। कन्सल मम्मियसने करिन्थ नगर पर घेरा डाला। डियस पराजित हो कर भाग गया। वहांके अधिकांश अधिवासियोंने भाग कर जान बचाई। मम्मियसने नगरमें घुस कर कत्ले आम जारी कर दिया और बालक और स्त्रियोंको गुलाम बना कर बेच दिया। इसके बाद उस प्राचीन करिन्थ नगरकी धन सम्पत्ति लूटी गई फिर आग लगा कर भस्म कर दिया गया। करिन्थ नगर प्राचीन यूनानियोंके शिल्पनैपुण्यका एक नमूना था। सारा नगर जल कर राखका ढेर बन गया। इस तरह भुवनविख्यात यह नगर भस्मीभूत हुआ। यूनान स्वाधीनता खो कर रोमनोंके अन्तर्गत हुआ।

१३ न्यूमिडिया-युद्ध और कार्थेजका ध्वंस (१५६ १४६ ई० पू०)

हानिबलके निर्वासनके बाद कार्थेजीय ईसाके २०१ वर्ष पहले सन्धिके अनुसार कार्य करते चले आते थे। वे लड़ाईके बिलकुल गौरवको पुनरुद्धार कर रहे थे। इसलिये वे रोमकी सिनेटकी आंखोंके कांटे बन गये।

सिनेट युद्धका कारण ढूंढ़ने लगी। घटनाक्रमसे न्यूमिडियाके राजा मेसिनिसाके साथ कार्थेजका झगड़ा होने लगा। यह रोमका मित्रराज था। इसलिये केटोने कार्थेजको ध्वंस करनेके लिये शीघ्र ही युद्धघोषणाका परामर्श दिया। किन्तु सिनेटने सम्मति नहीं दी। उस समय केटो आदि कितने ही दूत कार्थेजका झगड़ा मिटानेके लिये वहां भेजे गये। वहां जाने पर केटो कार्थेजका धनऐश्वर्य देख दंग रह गया। रोम लौट कर इसने कार्थेज ध्वंसके लिये रोमवासियोंको उत्तेजित करना आरम्भ किया। अन्तमें सिनेटने इसकी बात पर ध्यान दिया।

अब सिनेटने कार्थेजको तंग करना शुरू किया। सिनेटने आज्ञा दी,—प्रतिभूस्वरूप ... रोममें रखे जावें। कार्थेजने ... को रोममें भेज दिया। किन्तु रो... नहीं हुए। उनको भी कार्थेजका ... हुआ, कि रोमनोंने कहा, कि तुम ... हो। कार्थेजीय इस पर भी राजी... २००००० अस्त्र-शस्त्र, २००० महास्त्रोंदारी ...

सामान या एञ्जिन आदि ला कर रोमकोंके हवाले किया। निर्दय रोमकोंका कलेजा इससे भी ठण्ढा न हुआ। अब रोमकोंने कहा, कि "तुम लोग कार्थेज छोड़ कर दूसरे स्थानमें जा बसो। क्योंकि, यह नगर ध्वंस किया जायगा।"

निर्दोष कार्थेजियोंसे अब नहीं रहा गया। अब हताश और निरुपाय हो कर उन्होंने वीरताके साथ लड़ कर मर जाना ही उचित विचार किया। शीघ्र ही नगरका दरवाजा बन्द कर सारे इटालियनोंको उन्होंने मार डाला और वे इस अन्यायी शत्रुके साथ युद्ध करनेका दृढ़ संकल्प कर स्वदेशवत्सल कार्थेजियोंको उत्तेजित करने लगे। कारीगर दिन रात अस्त्र-शस्त्र बनाने लगे। स्त्रियां अपने बाल काट धनुष पर गुण चढ़ाने लगीं। आबाल वृद्ध वनिता स्वदेशवात्सल्यके मोहनमन्त्रसे दीक्षित और प्रणोदित हो कर अनवरत युद्धविद्या सीखने लगे। कार्थेज मानो एक प्रकाण्ड अस्त्रागार बन गया। इमिलियस पलासके ज्येष्ठ पुत्र कर्नेलियस सिपिओ ससैन्य कार्थेज पहुंचा। हासद्रुबल नामक एक निर्वासित सेनापतिने कार्थेजियोंकी अधिनायकता स्वीकार कर ली। कार्थेजियोंके दो आक्रमणोंसे रोमक तितर बितर हो गये। केवल सिपिओके रणकौशलसे फौजें नष्ट होनेसे बच गईं। सिपिओने मिस्र पर अधिकार कर कार्थेजमें अन्न आदि आनेवाले पथको रोक दिया। कार्थेजीय अद्वितीय धीरतासे आत्मरक्षा करने लगे और शीघ्र ही ५०० जङ्गी-जहाज तय्यार कर जलयुद्धकी तय्यारी करने लगे। यह देख रोमक डर गये। सिपिओका प्रमाद बढ़ गया। जलयुद्ध होने लगा। सात दिन घोर जलयुद्ध होने पर अन्तमें सभी जङ्गी-जहाज नष्ट हुए। इसके बाद सिपिओने दृढ़तापूर्वक कार्थेज पर घेरा डाला और रातको रोमकोंने कथन बन्दर पर कब्जा कर कार्थेजकी ऊंची चहारदीवारीको पार कर भीतर प्रवेश किया। नगरमें हृदयविदारक काण्ड होने लगे। खाद्याभावसे कार्थेजीय शवदेह भक्षण कर अपनी स्वतन्त्रताकी रक्षा करने लगे। सभी जगह तलवारोंकी झनकार सुनाई देती थी। प्रत्येक राजपथके बड़े बड़े महलोंमें कार्थेजीय नरनारियां अपने शत्रुओंके सामने अपनी इहलीला संवरण करने लगीं। अग्निदेव उन गगनचुम्बी इमारतोंको अपने तेजसे जलाने लगे। नर-नारियोंका रक्तप्रवाह वेगवती नदीकी तरह समुद्रमें जा कर मिल गया। इस तरह यह उन्नत और ऐश्वर्य्यपूर्ण महानगरी महाश्मशानके रूपमें परिणत कर दी गई। आज भी उसका ध्वंसावशेष उस समयकी भयानक घटनाकी याद दिला देता है।

ईसाके १४६ वर्ष पहले जुलाई महीनेमें कार्थेजका ध्वंस हुआ। सिपिओने रोममें लौट कर बड़े समारोहसे विजयोत्सव मनाया। उसने भी हानिबलजेता सिपिओकी तरह अफ्रिकेनासकी उपाधि धारण की। बाकी कार्थेज-राज्य अफ्रिकाके नामसे रोमकोंके शासनके अन्तर्गत हो गया। प्राच्यवाणिज्यके प्रधान केन्द्र करिन्थ और प्रतीच्यवाणिज्यका निलय कार्थेज—ये दोनों वाणिज्य प्रधान नगर रोमकोंके हाथसे विनष्ट हुए। इस समयसे ही रोमके जीते देशोंमें साम्राज्यका सूत्रपात होने लगा।

स्पेनका युद्ध (१५३-१३३ ई० पूर्व)

इस समय स्पेन देशके शासनकर्त्ता सेम्प्रोनियस ग्राकासके सद्व्यवहार और सुशासनसे यहां शान्तिमय शासन प्रवर्त्तित हुआ था। किन्तु ईसाके १५३ वर्ष पूर्वसे सेड़ा नगरके अधिवासियोंने नगरकी चहारदीवारी बनाना आरम्भ की। फलतः रोमकोंने इस कार्यमें बाधा उपस्थित की। इसलिए स्पेनमें बहुवर्षव्यापी युद्धका सूत्रपात हुआ। केल्टेबेरियनोंने सेगडाका पक्ष ग्रहण किया। कालपियस नोबिलियोंके युद्धमें उनका कुछ भी बिगाड़ न सका। पीछे क्लडियस मार्सेलसने उन सबोंको पराजित कर सन्धि स्थापित की। इसके बाद सालपिसियस गलबाने ल्युसिटानिया पर आक्रमण किया। किन्तु यह स्पेनियाडों द्वारा विशेषरूपसे पराजित हुआ। पीछे ल्युसिनियस लुकालसने उसके सहायक बन फिरसे ल्युसिटानिया पर आक्रमण किया। किन्तु उन्होंने सन्धिके लिये गलबाके पास दूत भेजा। उस समय गलबा ल्युसिटानियोंको सपरिवार निर्भयरूपसे अपने खेमेमें आनेको कहा। वे उसकी बात पर विश्वास कर खेमेमें चले आये। यह विश्वासघातकता कर उन सबोंको मार डाला। बहुतेरे आदमी निर्दयतासे मार डाले गये। केवल भिरियेथस और अन्यान्य कई

आ कर यूनानियोंसे मिलने लगी। अन्तमें ईसाके १६८ वर्ष पहले रोमसे एमीलियस पालस युद्ध करनेके लिये भेजे गये। दोनों फौजें पिड्ना नामक स्थानमें जुट गईं। रोमनोंके अधिक साहसके कारण पर्सियस पहले पेला और पीछे अम्फिपोलिस और वहांसे सिमोथ्रेस तक भाग गया। अन्तमें यह पकड़ा गया और उसने आत्मसमर्पण किया।

ईसाके १६७ वर्ष पूर्व पालस रोममें पहुंचा। उसने विपुल धन सम्पत्ति ला कर रोमके खजानेको भर दिया। मासिडोनिया पर विजय कर रोमने भूमध्यसागरके पूर्वी किनारे पर भी सार्वभौम प्राधान्य लाभ किया था। उस समयके सम्राट् भी रोमसे कांप उठते थे। प्रबलतम एकियान लीग पर्सियसके पक्ष ग्रहण करनेके अपराधमें दण्डित हुआ। १ हजार प्रधान सम्भ्रान्त एकियान १६ वर्ष तक रोममें कैद थे। १६ वर्षोंके बाद जब वह कैदसे छुटे, तब इनमें केवल ३०० ही जीवित बचे थे। बाकी ७०० अमानुषिक अत्याचारके कारण मर गये। इस घटनासे विरक्त हो कर अनेक विद्रोही हो उठे। उनमें आन्ड्रिस्कस नामक एक दासीपुत्रने अपनेको पर्सियसका वंशधर कह कर मासिडोनीय राजसिंहासनका दावा किया और (१४९ ई० पू०) फिलिप नाम रख कर सिंहासन पर बैठ गया। पहले इसने बहुत कुछ जीता था। रोमक जेनरल जुवेन्टियस इसके हाथसे पराजित हुए। किन्तु एक वर्ष भी राजत्व करने न पाया मेटेलस द्वारा यह कैद कर लिया गया।

एन्ड्रिस्कसकी क्षणिक कृतकार्यतासे एकियनोंने उत्तेजित हो स्पार्टा पर आक्रमण कर दिया। किन्तु ईसाके १४७ वर्ष पहले ही रोमक कमिशन इस झगड़ेको निबटानेके लिये यूनान भेजे गये। किन्तु शीघ्र ही करिन्थ आदि स्थानोंमें विद्रोह मच गया। स्पार्टा एकियनों द्वारा आक्रान्त हुआ। कमिश्नरोंने भाग कर अपना प्राण बचाया। तब सेनेटने एकियन लोगके विरुद्ध युद्धकी घोषणा कर दी। मेटेलस-मैसिडोनिकसके साथ यूनान पहुंचे। एकियन सेनापति क्रिटोलस युद्धक्षेत्रमें उपस्थित न हो सके। पीछे स्कार्फिया नामक स्थानमें पकड़े जा कर कैद कर लिये गये। इसके बाद डियस एकियन लीगके अधिनायक हो करिन्थ नगरमें फौजोंको जमा कर कुछ दिनों तक युद्ध किया। कान्सल मम्मियसने करिन्थ नगर पर घेरा डाला। डियस पराजित हो कर भाग गया। वहांके अधिकांश अधिवासियोंने भाग कर जान बचाई। मम्मियसने नगरमें घुस कर कत्ले आम जारी कर दिया और बालक और स्त्रियोंको गुलाम बना कर बेच दिया। इसके बाद उस प्राचीन करिन्थ नगरकी धन सम्पत्ति लूटी गई फिर आग लगा कर भस्म कर दिया गया। करिन्थ नगर प्राचीन पूर्वजोंके शिल्पनैपुण्यका एक नमूना था। सारा नगर जल कर राखका ढेर बन गया। इस तरह भुवन-विख्यात यह नगर भस्मीभूत हुआ। यूनान स्वतन्त्रता खो कर रोमनोंके अन्तर्गत हुआ।

३१। प्युनिक युद्ध और कार्थेजका ध्वंस (१४९-१४६ ई० पू०)

हानिबलके निर्वासनके बाद कार्थेजीय ईसाके २०१ वर्ष पहले सन्धिके अनुसार कार्य करने लगे थे। वे स्वदेशके विपुल गौरवको पुनरुद्धार कर रहे थे। इसलिये वे रोमकी सेनेटकी आंखके कांटे बन गये।

सेनेट युद्धका कारण ढूंढने लगी। घटनाक्रमसे न्यूमिडियाके राजा मेसिनिसाके साथ कार्थेजका झगड़ा होने लगा। वह रोमका मित्र था। इसलिये केटोने कार्थेजको ध्वंस करनेके लिये शीघ्र ही युद्धघोषणाका परामर्श दिया। किन्तु सेनेटने स्वीकृति नहीं दी। उस समय केटो आदि कितने ही दूत कार्थेजकी अवस्था जाननेके लिये वहां भेजे गये। वहां जाने पर केटो कार्थेजका धनऐश्वर्य देख जल गया। लौट कर इसने कार्थेज ध्वंसके लिये रोमवासियोंको उत्तेजित करना आरम्भ किया। अन्तमें सेनेटने इसकी बात पर ध्यान दिया।

अब सेनेटने कार्थेजको तंग करना शुरू किया। सेनेटने आज्ञा दी,—प्रतिभूस्वरूप ३०० सम्भ्रान्त कार्थेजीय रोममें रखे जावें। कार्थेजने इसे स्वीकार कर ३०० युवकोंको रोममें भेज दिया। किन्तु रोमवासी इससे भी सन्तुष्ट नहीं हुए। उनको तो कार्थेजका ध्वंस करना था। फल हुआ, कि रोमकोंने कहा, कि तुम लोग अस्त्र-शस्त्र रख दो। कार्थेजीय इस पर भी सम्मत हुए। उन्होंने २००००० अस्त्र-शस्त्र, २००० चहारदीवारोंके तोड़नेका

आइबेरियोंने भाग कर अपनी जान बचाई। विरियेथस रोमकोंकी इस निर्दयता और विश्वासघातकताका बदला चुकाने पर तैयार हुआ। यह पहले गड़ेरिया था, पीछे डकैती कर जीविका-निर्वाह करने लगा। किन्तु रोमकोंके इस अत्याचारसे यह महान् देशभक्तके रूपमें प्रकट हो उठा। सब लोग मिलकर उसके झंडेके नीचे युद्ध करने लगे। विरियेथस आमने-सामने युद्ध न कर गुरिल्ला युद्ध करने लगा। बहुतेरी लड़ाइयोंमें उसके हाथसे रोमक फौजें पराजित हुईं। पीछे ईसाके १४५ वर्ष पूर्व रोमसे फेबियस मैक्सिमस उसके साथ लड़ाई करनेके लिए भेजा गया। उसने विरियेथसको विशेषरूपसे पराजित किया। यह लड़ाई ल्युसितानियनके नामसे प्रसिद्ध हुई।

जो हो, उससे भी लड़ाईका विराम नहीं हुआ। एक दल रोमक-सैनिक उत्तर स्पेनमें केल्टिबेरियनोंके साथ और दूसरा दल दक्षिण-स्पेनमें विरियेथस और ल्युसितानियाकी फौजोंके साथ लड़ाई करने लगे। ईसाके १४१ वर्ष पूर्व विरियेथसने फेबियसको एक गिरि-संकटमें बन्द कर दिया। उसके बाहर जानेका पथ रुक गया। फेबियसने दूसरा उपाय न देख विरियेथससे मित्रताका बना कर सन्धि कर ली। किन्तु सेनेटने यह सन्धि स्वीकार नहीं की। फिर लड़ाई आरम्भ हुई। अन्तमें, विरियेथसको मार डालनेसे स्पेनिशोंका बल शेष हो गया। इसके बाद जुनियस ब्रूटसने इन स्थानोंमें शान्ति स्थापित की। किन्तु केल्टिबेरियनोंके साथ उस समय भी लड़ाईका अन्त न हुआ। ईसाके १३७ वर्ष पूर्व हस्तिलियस मांसिनस न्यूमान्शियन फौजों द्वारा घिर गया और दूसरा उपाय न देख उसने सन्धि कर ली। किन्तु सेनेटने फिर इस सन्धिको अस्वीकार कर दिया। अन्तमें (१३४ ईसाके पूर्व) सिपिओ अफ्रिके-नसस स्पेन भेजा गया। सिपिओने उनके नगरों पर घेरा डाला। स्पेनीय फौजें वीरताके साथ युद्ध कर अपनी रक्षा करने लगीं। अन्तमें इन नगरोंको आत्मसमर्पण करना पड़ा। सिपिओने नगरको महाश्मशानमें बदल कर अधिवासियोंको गुलामके रूपमें बेच दिया।

प्रथम गुलाम-युद्ध (१३४-१३२ ई० पू०)

न्यूमान्शियन युद्धके समय रोमकी भीतरी समाज-स्थितिका सूत्रपात हुआ। यहां गुलामोंके सा क्रमेण रोमके कृषक और अभिजात-समाजकी अवनतिका स्रोत प्रवाहित होने लगा था। इधर गुलाम भी नाना प्रकारके निर्दय व्यवहारसे मर्माहत हो रहे थे। भागे हुए दासोंको जीविकाका कोई स्थायी प्रबंध न था। सिसिलीमें गुलामोंकी संख्या अत्यधिक हो उठी थी। वहांके धनाढ्य दमोफिलस नामक एक धनीने गुलामोंके प्रति निर्दयतासे व्यवहार किया था। इससे कोई ४०० गुलामोंने यूनस नामक एक सीरियाके गुलामके अधीन एना पर आक्रमण किया और भीषण हत्या-काण्ड कर नगरके अधिवासियोंको मार डाला। यूनस मस्तक पर राजमुकुट धारण कर सिंहासन पर आ बैठा। यह समाचार पा कर ७०००० गुलाम और दासियोंने आ कर उसका साथ दिया। रोमके विरुद्ध सैन्य ले कर उन पर आक्रमण किया। किन्तु गुलामोंके सामने वह ठहर न सका और पराजित हो कर भागा। अन्तमें (१३४ ई० के पू०) कल्पर्नियस उनके साथ युद्ध करनेके लिये भेजा गया। यह भी गुलामोंको पराजित करनेमें असमर्थ हुआ। किन्तु अन्तमें कन्सल रुपिलि-यसने आ कर युद्धमें गुलामोंको हराया। २०००० हजार गुलाम मार डाले गये। बाकी शूली पर चढ़ा दिये गये। यूनस कैद कर रोम भेज दिया गया, किन्तु राहमें वह मर गया।

इस समय रोमका एशियामाइनरमें एक सुविस्तृत राज्य हो गया। पर्गामसके राजा अत्तलस फिलोमेटरने निः-सन्तान होनेकी वजहसे अपने विशाल राज्य और विपुल धन-भाण्डारको रोमराज्यके नाम वसीयतनामा लिख दिया। यह १३३ ईसाके पूर्वकी घटना है। किन्तु उस-के पिता अरिस्टोनिकसने इसके सम्बन्धमें बड़ी गड़बड़ी मचाई थी। रोमक कन्सल लिसिनियस क्रसस उसके द्वारा पराजित और निहत हुआ (१३१ ई० पू०)। किन्तु दूसरे वर्ष अरिस्टोनिकस रोमक-सैन्य द्वारा पराजित कर कैद कर लिया गया और पर्गामस राज्य रोमराज्यमें मिला लिया गया (१२९ ई० पू०)। इस समय यूरोप, एशिया और अफ्रिका इन तीन महादेशोंमें रोमकी राज्य-सीमा बढ़ाई गई। यह महाराज्य १० भागोंमें विभक्त

हुआ। १ सिसिली, २ सार्डिनिया और कर्सिका, ३-४ स्पेनके दो प्रदेश, ५ गलिया सिसालपिना, ६ माकिदनिया और एकिया, ७ इलिरिकम, ८ अफ्रिका या कार्थेज, ९ एशिया या पार्गामस, १० ट्रानसालपाइन गल या प्रभिनसिया। रोमके प्रजातन्त्रने यह विशाल राज्य लाभ किया सही, किन्तु धन वृद्धिके साथ साथ विलासवृद्धिमें राज्यसमृद्धि नष्ट होने लगी। रोमके राज्यशासन विषयमें आभ्यन्तरिक विप्लव होने लगे। जो रोमवासी स्वदेशप्रेमसे प्रणोदित हो दिग्विजय करनेमें समर्थ थे, इस समय वे प्रेम भोगविलासमें परिणत हुए। वे त्यागधर्मको छोड़ कर भोगके धर्ममें प्रवृत्त हुए। वीरव्रत रोमक तलवार छोड़ कर हाथमें बंशी ले उसकी तानमें मस्त रहने लगे।

रोमके इस अन्तर्विप्लवके समय टाइबेरियस और केयस ग्राकसने विशेष प्रसिद्धिलाभ की थी। ये दोनों भाई विख्यात सेम्प्रोनियस ग्राकासके पुत्र और हानिबल जेता सिपिओ अफ्रिकेनासके नाती थे। इनकी माता कर्नेलियाने अपने पुत्रोंको सर्वतोभावसे सुशिक्षा प्रदान की थी। इसीलिये उस समय इन दोनों भाइयोंने रोम राज्यके युवक-समाजमें ऊंची ख्याति पाई थी। ज्येष्ठ भाईके गुण पर मोहित हो सेनेटके प्रधान सदस्य एपियास क्लडियसने उसके साथ अपनी पुत्रीका विवाह कर दिया था। फिर टाइबेरियसकी बहन सेम्प्रोनियाके साथ छोटे सिपिओ अफ्रिकेनसका विवाह हुआ था। इस तरह ये दोनों भाई हर तरहसे रोम राज्यमें प्रसिद्ध हो गये थे। टाइबेरियस (ईसाके पूर्व १३७ वर्ष) कोयष्टके पद पर नियुक्त हुआ। एट्रुरियाके बीचसे जाते समय उसने रोमके कृषक सम्प्रदायकी हालत खराब देख उनका संस्कार करना निश्चय किया। इसके अनुसार वह (१३३ ईसाके पूर्व) ट्रिबिउनेटके पद पर नियुक्त हुआ। उसने ओजस्वी भाषामें वहांके कृषकोंकी दुर्दशाकी बात सेनेटमें कही और ३६७ वर्ष ईसाके पूर्ववाली लिसिनियस या कृषिसम्बन्धी कानूनको संस्कार कर वहां प्रवर्तित करनेकी प्रार्थना की। जो हो, कृषि सम्बन्धीय कानून उस समय प्रवर्तित हुआ। अब ग्राकसने प्रस्ताव किया, कि पार्गामासके दिये हुए धन भाण्डारसे कृषकोंकी दशा सुधारी जाये। इस तरह ग्राकासने सेनेटके सदस्योंके अधिकार पर हस्तक्षेप किया। क्योंकि प्रदेश-शासन और कोषागार (खजाना)की व्यवस्था सेनेटके सदस्योंके हाथ थी। इस प्रस्तावसे वह वहांके धनिकोंके अश्रद्धा भाजन हो उठा।

इस तरह रोममें पहले पहल अन्तर्जातीय विवाद या गृह-युद्धकी सृष्टि हुई। रोमके राजाके निर्वासन करनेके बाद ऐसी घटना नहीं हुई थी। रोमके नये सम्प्रदायके इस तरह जयलाभ करने पर भी वे ग्राकासके प्रवर्तित "एग्रेरियन" कानूनको रद्द करनेके साहसी नहीं हुए। ग्राकासके पद पर कार्बो नामक एक आदमी नियुक्त हुआ। इस समय ग्राकासके बहनोई छोटे सिपिओने अफ्रिकेनास स्पेनसे लौट कर अपने सालेकी मृत्यु पर हर्ष प्रकट किया। यह देख सर्वसाधारणकी दृष्टिमें वह गिर गया। सिपिओ इस समय साधारणके हितके लिये प्रवर्तित एग्रेरियन कानूनका प्रतिवाद करने लगा और ट्रिबियन-सम्प्रदायके अधिकारमें हस्तक्षेप करने लगा। ग्राकासके पद पर प्रतिष्ठित कार्बोने 'फोरम'-में खड़े हो कर कड़ी भाषामें सिपिओको प्रजाका शत्रु कह कर तिरस्कार किया। सिपिओके फिर ग्राकासकी मृत्युसे आनन्द प्रकट करते ही सम्मिलित प्रजाने उत्तेजित हो कर कहा—"अत्याचारीको दूर करो।" दूसरे दिन सवेरे देखा गया, सिपिओकी मृतदेह शय्या पर लोट रही है। कार्बोने सिपिओको मार डाला है, लोगोंको ऐसा सन्देह होने लगा। किन्तु इस काण्डसे धनीसम्प्रदाय डर गया। कार्बो इस समय सारे इटलीवासियोंको सम्पनिर्वाचनमें सम्मति देनेका अधिकार प्रदान करने पर अन्यान्य स्थानोंके अधिवासी (१२६ ईसाके पूर्व) रोममें एकत्र हुए। कार्बोका प्रस्ताव व्यर्थ करनेके अभिप्रायसे ट्रिब्यून जुनियस पेन्नासने रोमके प्रवासियोंको शीघ्र ही रोम परित्याग कर अन्यत्र चले जानेका हुक्म दिया। किन्तु टाइबेरियस ग्राकासके कनिष्ट भ्राता केयास ग्राकासने इसका प्रतिवाद किया। यह कार्बो और उनके अन्यान्य मित्र इटालियनोंके पक्षमें निर्वाचनाधिकार प्रदान करनेमें तत्पर हुए। पेन्नास इसकी प्रतिकूलताचरण करने लगे। यह देख कर इटलीवासी

आदमियोंके साथ भाग कर अपनी जान बचाई। विरियेथस रोमकोंसे इस निर्दयता और विश्वासघातकताका बदला चुकाने पर तैयार हुआ। वह पहले गड़ेरिया था, पीछे डकैती कर जीविका-निर्वाह करने लगा। किन्तु रोमकोंके इस अत्याचारसे वह स्वदेशानुरागसे प्रणोदित हो उठा। दल दल स्पेनिश उसके पक्षमें युद्ध करने लगे। विरियेथस प्रकाश्ययुद्ध न कर गुप्तयुद्ध करने लगा। बहुतेरी लड़ाइयोंमें उसके पराक्रमसे रोमक फौजें पराजित हुईं। पीछे ईसाके १४५ वर्ष पूर्व रोमसे फेबियस मैक्सिमस उसके साथ लड़ाई करनेके लिए भेजा गया। उसने विरियेथसको विशेषरूपसे पराजित किया। यह लड़ाई लुसिटानियाके नामसे प्रसिद्ध हुई।

जो हो, उससे भी लड़ाईका विराम नहीं हुआ। एक दल रोमक-सैनिक उत्तर स्पेनमें केल्टिबेरियनोंके साथ और दूसरा दल दक्षिण-स्पेनमें विरियेथस और लुसिटानियाकी फौजोंके साथ लड़ाई करने लगे। ईसाके १४१ वर्ष पूर्व विरियेथसने फेबियसको एक गिरि-संकटमें बन्द कर दिया। उसके बाहर आनेका पथ रुक गया। फेबियसने दूसरा उपाय न देख विरियेथससे मित्रता बना कर सन्धि कर ली। किन्तु सिनेटने यह सन्धि स्वीकार नहीं की। फिर लड़ाई आरम्भ हुई। अन्तमें, विरियेथसको सोते समय उसीके आत्मीयोंने कतल कर डाला। इसके बाद जुनियस ब्रूटसने इन स्थानोंमें शान्ति स्थापित की। किन्तु केल्टिबेरियनोंके साथ इस समय भी लड़ाईका अन्त न हुआ। ईसाके १३७ वर्ष पूर्व हस्टिलस मान्सिनस न्यूमान्शियन फौजों द्वारा घिर गया और दूसरा उपाय न देख उसने सन्धि कर ली। किन्तु सेनेटने फिर इस सन्धिको अस्वीकार कर दिया। अन्तमें (१३४ ईसाके पूर्व) सिपियो अफ्रिके-नसका पौत्र भेजा गया। सिपियोने इसके नगरों पर घेरा डाला। न्यूमान्शिया वीरोंने प्राणपणसे युद्ध कर नगरकी रक्षा करनी चाही। अन्तमें इन वीरोंको आत्मसमर्पण करना पड़ा। सिपियोने नगरको मट्टियामेट कर अधिवासियोंको गुलामोंमें बेच दिया।

प्रथम दासयुद्ध (१३४-१३२ ई० पू०)

न्यूमान्शियन युद्धके समय सिसिलीमें भीषण दास-विद्रवका सूत्रपात हुआ। यहां गुलामोंके भार प्रायः रोमके कृषक और धनशाली लोगोंमें अत्यन्त अधिक स्रोत प्रवाहित होने लगा था। इधर गुलाम भी नाना प्रकारके निर्दय व्यवहारसे उत्पीड़ित हो रहे थे। भगाये हुए दासोंको जीविकाका कोई स्थायी प्रबंध न था। सिसिलीमें गुलामोंकी संख्या अत्यधिक हो उठी थी। यहांके एना प्रदेशके भूस्वामी डेमोफिलसने गुलामोंको अति निर्दयतासे दण्ड दिया था। इससे कोई ४०० गुलामोंने यूनास नामक एक सिरियाके गुलामके अधीन एना पर आक्रमण किया और भीषण अत्याचार कर नगरके अधिवासियोंको मार डाला। यूनास मस्तक पर राजमुकुट धारण कर सिंहासन पर जा बैठा। यह समाचार पा कर ७०००० गुलाम और दासियोंने आ कर उसका साथ दिया। पीछे प्रिटरने सैन्य ले कर उन पर आक्रमण किया। किन्तु गुलामोंके सामने वह ठहर न सका और पराजित हो कर भागा। अन्तमें (१३४ ई० पू०) कल्पुर्नियस उनके साथ युद्ध करनेके लिये भेजा गया। वह भी गुलामोंको पराजित करनेमें असमर्थ हुआ। किन्तु अन्तमें कान्सल रुपिलि-यसने आ कर युद्धमें गुलामोंको हराया। २०००० हजार गुलाम मार डाले गये। बाकी क्रूसों पर लटका दिये गये। यूनास कैद कर रोम भेज दिया गया, किन्तु राह हीमें वह मर गया।

इस समय रोमका पश्चिम एशियामें एक प्रकाण्ड राज्य हो गया। पार्गामसके राजा अटलस फिलोमेटरने निःसन्तान होनेके कारण अपने विशाल राज्य और विपुल धन-भण्डारको रोमराज्यके नाम वसीयतनामा लिख दिया। यह १३३ ईसाके पूर्वकी घटना है। किन्तु अट-लसके पिता अरिस्टोनिकसने इसके राज्यकी बड़ी गड़बड़ी मचाई थी। रोमक कान्सल लिसिनस क्रासस उसके द्वारा पराजित और निहत हुआ (१३१ ई० पू०)। किन्तु दूसरे वर्ष अरिस्टोनिकस रोमक सैन्य द्वारा पराजित कर कैद कर लिया गया और पार्गामस राज्य रोमराज्यमें मिला लिया गया (१२९ ई० पू०)। इस प्रकार यूनान, एशिया और अफ्रिका इन तीन महादेशोंमें रोमकी साम्राज्य-सीमा बढ़ गई। यह प्रकाण्ड राज्य १० प्रान्तोंमें विभक्त

हुआ। १ सिसिली, २ सार्डिनिया और कर्सिका, ३-४ स्पेनके दो प्रदेश, ५ गलिया सिसालपिना, ६ माकिदनिया और एकिया, ७ इलिरिकम, ८ अफ्रिका या कार्थेज, ६ एशिया या पार्गामस, १० ट्रानसालपाइन गल या प्रभिनसिया। रोमके प्रजातन्त्रने यह विशाल राज्य लाभ किया सही, किन्तु धन वृद्धिके साथ साथ विलासवृद्धिमें राज्यसमृद्धि नष्ट होने लगी। रोमके राज्यशासन विषयमें आभ्यन्तरिक विप्लव होने लगे। जो रोमवासी स्वदेशप्रेमसे प्रणोदित हो दिग्विजय करनेमें समर्थ थे, इस समय वे प्रेम भोगविलासमें परिणत हुए। वे त्यागधर्मको छोड़ कर भोगके धर्ममें प्रवृत्त हुए। वीरव्रत रोमक तलवार छोड़ कर हाथमें वंशी ले उसकी तानमें मस्त रहने लगे।

रोमके इस अन्तर्विप्लवके समय टाइबेरियस और केयस ग्राकसने विशेष प्रसिद्धिलाभ की थी। ये दोनों भाई विख्यात सेम्प्रोनियन ग्राकासके पुत्र और हानिबल जेता सिपिओ अफ्रिकेनासके नाती थे। इनकी माता कर्निलियाने अपने पुत्रोंको सर्वतोभावसे सुशिक्षा प्रदान की थी। इसीलिये उस समय इन दोनों भाइयोंने रोम राज्यके युवक-समाजमें ऊंची ख्याति पाई थी। ज्येष्ठ भाईके गुण पर मोहित हो सेनेटके प्रधान सदस्य एपियास क्लडियसने उसके साथ अपनी पुत्रीका विवाह कर दिया था। फिर टाइबेरियसकी बहन सेम्प्रोनियाके साथ छोटे सिपिओ अफ्रिकेनसका विवाह हुआ था। इस तरह ये दोनों भाई हर तरहसे रोम राज्यमें प्रसिद्ध हो गये थे। टाइबेरियस (ईसाके पूर्व १३७ वर्ष) कोयष्टके पद पर नियुक्त हुआ। एट्रूरियाके बीचसे जाते समय उसने रोमके कृषक सम्प्रदायकी हालत खराब देख उनका संस्कार करना निश्चय किया। इसके अनुसार वह (१३३ ईसाके पूर्व) ट्रेडिउनेटके पद पर नियुक्त हुआ। उसने ओजस्वी भाषामें यहांके कृषकोंकी दुर्दशाकी बात सेनेटमें कही और ३६७ वर्ष ईसाके पूर्ववाली लिसिनियस या कृषिसम्बन्धी कानूनको संस्कार कर वहां प्रचलित करनेकी प्रार्थना की। जो हो, कृषि सम्बन्धीय कानून उस समय प्रवर्त्तित हुआ। अब ग्राकसने प्रस्ताव किया, कि पार्गामासके दिये हुए धन भाण्डारसे कृषकोंकी दशा सुधारी जाये। इस तरह ग्राकासने सेनेटके सदस्योंके अधिकार पर हस्तक्षेप किया। क्योंकि प्रदेश-शासन और कोषागार (खजाना)की व्यवस्था सेनेटके सदस्योंके हाथ थी। इस प्रस्तावसे वह यहांके धनिकोंके अश्रद्धा भाजन हो उठा।

इस तरह रोममें पहले पहल अन्तर्जातीय विवाद या गृह-युद्धकी सृष्टि हुई। रोमके राजाके निर्वासन करनेके बाद ऐसी घटना नहीं हुई थी। रोमके नये सम्प्रदायके इस तरह जयलाभ करने पर भी वे ग्राकासके प्रवर्तित "एग्रेरियन" कानूनको रद्द करनेके साहसी नहीं हुए। ग्राकासके पद पर कार्वो नामक एक आदमी नियुक्त हुआ। इस समय ग्राकासके बहनोई छोटे सिपिओने अफ्रिकेनास स्पेनसे लौट कर अपने सालेकी मृत्यु पर हर्ष प्रकट किया। यह देख सर्वसाधारणकी दृष्टिमें वह गिर गया। सिपिओ इस समय साधारणके हितके लिये प्रवर्तित एग्रेरियन कानूनका प्रतिवाद करने लगा और डिवियन-सम्प्रदायके अधिकारमें हस्तक्षेप करने लगा। ग्राकासके पद पर प्रतिष्ठित कार्वोने 'फोरम'-में खड़े हो कर कड़ी भाषामें सिपिओको प्रजाका शत्रु कह कर तिरस्कार किया। सिपिओके फिर ग्राकासकी मृत्युसे आनन्द प्रकट करने हो सम्मिलित प्रजाने उत्तेजित हो कर कहा—"अत्याचारीको दूर करो।" दूसरे दिन सबेरे देखा गया, सिपिओकी मृतदेह शय्या पर लोट रही है। कार्वोने सिपिओको मार डाला है, लोगोंको ऐसा सन्देह होने लगा। किन्तु इस काण्डसे धनी-सम्प्रदाय डर गया। कार्वो इस समय सारे इटलीवासियोंको सम्यनिर्वाचनमें सम्मति देनेका अधिकार प्रदान करने पर अन्यान्य स्थानोंके अधिवासी (१२६ ईसाके पूर्व) रोममें एकत्र हुए। कार्वोका प्रस्ताव व्यर्थ करनेके अभिप्रायसे ट्रिब्यून जुनियस पेन्नासने रोमके प्रवासियोंको शीघ्र ही रोम परित्याग कर अन्यत्र चले जानेका हुक्म दिया। किन्तु टाइबेरियस ग्रकासके कनिष्ट भ्राता केयास ग्राकासने इसका प्रतिवाद किया। यह कार्वो और उनके अन्यान्य मित्र इटालियनोंके पक्षमें निर्वाचनाधिकार प्रदान करनेमें तत्पर हुए। पेन्नास इनकी प्रतिकूलताचरण करने लगे। यह देख कर इटलीवासी

[illegible]

[illegible] पुनः ट्रिब्यून पदके लिये उम्मेदवार खड़े हुए। किन्तु [illegible] नहीं हो सके। [illegible] और वे [illegible] नियुक्त हुए। ईसाके १२१ वर्ष पूर्व [illegible] सब कानूनोंको रद्द [illegible] सीनेटने [illegible] किया। [illegible]

[illegible] इस प्रकार उनके लिये मरे। ग्राकसने अपने पुत्रको [illegible] किन्तु सीनेटके [illegible] और [illegible] सेनापति [illegible] पार कर [illegible] आ पहुँचा। [illegible] मार [illegible] मार [illegible]

अतएव दोनों भाइयोंके जितने कानून बनाये हुए थे, उन सबको इस भाँति सीनेटने रद्द कर दिया। गरीबोंको जो भूमि दी गई थी, वे सब सीनेट द्वारा छिनवा ली गईं।

जुगुर्थाइन युद्ध (११८-१०४ ई० पू०)।

सीनेटके इस भ्रष्टाचारके समय [illegible] एक प्रबल प्रतिनिधिका प्रादुर्भाव हुआ। इसका नाम मेरियस था। जिसको [illegible] कहा था, कि यह बालक इन लोगोंके रक्षक होगा। यह अपने समय पर ईसाके १११ वर्ष पूर्व ट्रिब्यूनोंकी ओरसे ट्रिब्यून नियुक्त हुआ। यह बड़ा प्रभावी सीनेटके सामने सामन्तशाहीके अनुकूल मत प्रकट करनेसे [illegible] न हुआ। इस पर सीनेटने [illegible] इस पर उसने [illegible] कैद कर लिया। इस तरह यह लोगोंमें विशेष विख्यात तथा [illegible]। इसने विख्यात [illegible] [illegible]

दूर भेज देनेकी उसकी इच्छा हुई। इसके अनुसार उसने जुगार्थाको सिपिओकी सहायताके लिये एक छोटी फौजके साथ स्पेन भेज दिया। वहां उसके पराक्रम और प्रतिभाको देखकर सिपिओने उसको प्रशंसापत्र दिया था। किंतु मिसिप्साके दोनों पुत्र हिम्पसल और अधिर्बल उसको ईर्षाकी दृष्टिसे देखने लगे। मिसिप्साने अपने दोनों कुमारोंके रक्षकरूपसे जुगार्थाको नियत कर दिया। इसके बाद मिसिप्सा परलोक सिधारा। किन्तु हिम्पसालके विरुद्धाचरण करने पर जुगार्थाने उसे मार डाला। यह ईसाके ११७ वर्ष पूर्वकी घटना है। इसके बाद जुगार्थाने छोटे भाई आधिर्बलको भी मार डालनेकी चेष्टा की थी। आधिर्बल लड़ाईके लिये तैयार हुआ। आधिर्बलने जुगार्थाके विरुद्ध शिकायत कर अपनी राज्य-रक्षाके लिये रोमकी सेनेटसे सहायता मांगी। इस पर रोमसे कमिश्नर भेजे गये। कमिश्नरोंने आ कर दोनों भाइयोंको बंटवारा कर दिया। किन्तु रिश्वतखोर कमिश्नरोंने जुगार्थासे रिश्वत ले कर अच्छा या उपजाऊ अंश जुगार्थाको दे दिया। इस पर भी जुगार्था सन्तुष्ट न हुआ और (ईसाके ११२ वर्ष पूर्व) सिरा नामक किले पर आक्रमण कर उसने मिसिप्साके पुत्र आधिर्बलको मार डाला। इस किलेमें जुगार्थाने कितने ही इटालियनोंको भी मार डाला। इस पर रोमके ट्रिब्यून मेमियसने सेनेटसे जुगार्थासे लड़ाई करनेकी सलाह दी। इस पर बेष्टिया और स्कारास लड़ाई करनेके लिये न्यूमिडिया भेजे गए। किन्तु उनको बहुत रिश्वत दे कर जुगार्थाने रोमको राजी कर लिया। इसने इनके हाथ सेनेटको ३० हाथी और कुछ धन भेजा था। यह रिश्वतखोरी छिप न सकी। केसियस नामक एक उदारचेता धार्मिक पुरुष जुगार्थाको बुलानेके लिये न्यूमिडिया भेजे गये। जुगार्था गवाही देनेके लिए ही बुलाया गया था। जुगार्था रोममें लाया गया। जुगार्था जब सभाभवनमें गवाही देने जैसे खड़ा हुआ, वैसे ही एक ट्रिब्यूनने उसे रोका। ट्रिब्यूनने उन दोनों बेष्टिया और स्कारससे रिश्वत ली थी।

जुगार्था कुछ दिनों तक रोममें ही रह गया। यहां उसको किसी साजिशमें शामिल देख कर सेनेटने इटली छोड़ देनेकी आज्ञा दी। रोमसे जाते समय सेनेटके सदस्योंके गर्हिताचरणका उल्लेख कर उसने कहा था,—"ये स्वार्थी नीचाशय सभ्य उपयुक्त खरीददार पाने पर रोमको बेंच सकते हैं। रोमका पतन अवश्यम्भावी है।" इसके बाद ईसाके ११० वर्ष पूर्व जुगार्थाके साथ युद्ध होने लगा। पहले पष्टुमियस अलबिनस युद्ध करनेके लिये भेजा गया। किन्तु उसके असफल होने पर उसका भाई अलास उस पद पर नियुक्त कर भेजा गया। किन्तु अपनी असावधानतासे वह शत्रु द्वारा घेर लिया गया और अपमानजनक सन्धि कर रोम लौट आया। सेनेटने सन्धिको अस्वीकृत कर मेटलासको युद्ध करनेके लिये न्यूमिडिया भेजा। इधर जिन्होंने जुगार्थासे रिश्वत ली थी, वे सब देशसे निकाले गये। मेटलासके साधु-चरित्रको देख कर जुगार्था रिश्वत दे कर सन्तुष्ट करनेमें हताश हुआ। मेटलासने जुगार्थाको वारंवार पराजित किया। जुगार्थाने दूसरा उपाय न देख बहुतेरे हाथी और धन दे कर सन्धि कर लेनेकी प्रार्थना की। मेटलासने अपने खेमेमें उसको आने कहा। जुगार्थाको ऐसा साहस न हुआ। इससे फिर युद्ध होने लगा।

पूर्वकथित मेरायस इस समय मेटलासके अधीन युद्ध कर रहा था। यह अपनी रणनिपुणता तथा सद्व्यवहारसे सबका प्रियपात्र बन गया था। इस समय मार्था नाम्नी एक सिरीय रमणीने उसको शीघ्र ही एक ऊंचा पद पानेकी भविष्यद्वाणी की थी। यह सुन कर उसने रोमके कन्सल पद प्राप्त करनेकी प्रार्थना की। मेटलसने पहले आज्ञा न दी। किन्तु पीछे उसको रोम जानेकी आज्ञा दे दी। मेरायासने सबकी सहायतासे यह पद पा लिया। किन्तु शीघ्र ही यह न्यूमिडिया युद्ध करनेके लिये भेजा गया। इधर यह समाचार पा कर मेटलस युद्धसे विरत हुआ। मेरायासके न्यूमिडिया पहुंचने पर रोमक सैनिक बड़ी बहादुरीके साथ लड़ने लगे। मेरायासने एक एक करके जुगार्थाके सभी सुरक्षित किलों पर अधिकार कर बहुत धन संग्रह कर लिया। इस समय सल्ला नामक एक प्रतिभाशाली रोमक-सैनिक मेरायासके अधीन युद्ध कर रहा था। इसीकी कूटनीतिके फलसे मेरायास जुगार्थाको पराजित करनेमें समर्थ हुआ था।

उत्तेजित हो उठे और उन्होंने शासक समाजके अधिकारियोंसे मन्त्र प्रारम्भ किया। किन्तु सिनेटने शीघ्र ही विद्रोह दमन किया।

इस समयसे साधारणके लिये केवल गायसको मुख्य आदर हुआ। यह टाइबेरियसके शासनके दस वर्ष (१२४ ई० पू०) पश्चात् रोममें और प्रायः और १२३ ई० पू० ट्रिब्यून नियुक्त हुआ। उसने साधारणके हितार्थ सिनेटको शक्ति घटा कर समाज और राज्य-शासनके मुख्यतः संस्कारमें ध्यान लगाया। दरिद्रोंके लाभके लिये और रोमवासियोंके हितार्थ गेयसने कई कानून बनाये। यह भाईके द्वारा बनाये कानून 'भूमि नियम' को पुनः प्रचलित कर सर्वसाधारणके विश्वासी हो उठा। अतः यह १२२ ईसाके पूर्व फिर ट्रिब्यून नियुक्त हुआ। इस समय फ्लाकियस फ्लैकस कौन्सल नियुक्त हो कर गेयसको सहायता करने लगा। इसी गेयस ग्रैकसने सभी इटालियनोंको रोमकी तरह निर्वाचन अधिकार प्रदान किया। सिनेटने ग्रैकसकी प्रतिपत्ति देख कर उसके विरुद्ध लिवियस ड्रूसस नामक एक अन्य सदस्यको नियुक्त किया। ड्रूसस सदैव उसके मतके अनुसार ही कार्य करता था। किन्तु गेयसके अफ्रिकामें उपनिवेश स्थापनके लिये जाने पर मौका देख ड्रूससने बहुतेरे लोगोंको गेयसके विरुद्ध उत्तेजित किया। गेयस ग्रैकस अब तीन और सात, पहलेकी तरह उसके प्रति साधारणकी सहानुभूति नहीं दिखाई दी। वह और उसके मित्र फ्लाकस पुनः ट्रिब्यून पदके लिये उम्मेदवार खड़े हुए। किन्तु सफलीभूत नहीं हो सके। उनके विरोधियोंमें ओपिमियस प्रधान थे और वे कौन्सल नियुक्त हुए। ईसाके १२१ वर्ष पूर्व गेयसके शत्रुओंने प्रधानता प्राप्त कर ग्रैकसके बनाये सब कानूनोंको रद्द करना आरम्भ किया और ग्रैकसके नये उपनिवेश स्थापन तथा ग्रैकसको दण्डनीय घोषित किया। इधर दोनों कौन्सल ओपिमियसको प्रधानतः उत्तेजित कर फ्लाकस और ग्रैकसके विरुद्ध साधारणको उत्तेजित करने लगे। ग्रैकसने अपने साथियोंके साथ मिल कर शत्रुओंके विरुद्ध अस्त्र धारण किया। इस प्रकार गृह विवादका सूत्रपात हुआ। इस समय दोनों कौन्सल अपने साथ सशस्त्र सैनिकोंको ले ग्रैकस पर आक्रमण करनेके लिये चले। ग्रैकसने अपने पुत्रको सन्धिके लिये सिनेटमें भेजा। किन्तु सिनेटके सदस्योंने उसे मार डाला। इधर कौन्सलोंके आक्रमणसे फ्लाकस पराजित मारा गया और ग्रैकस भाग कर एक जिस्कम्म मन्दिरमें गया, पीछे सब्लिसियस पुलके निकट टाइबर नदीको पार कर एक वनमें जा पहुँचा। यहाँ ग्रैकसने अपने नौकरसे अपनेको मार डालनेके लिये कहा। तदनुसार उस नौकरने अपने मालिकको मार कर अपनेको भी मार डाला।

ग्रैकस दोनों भाइयोंके जितने कानून बनाये हुए थे, उन सबको इस बार सिनेटने रद्द कर दिया। इटालियनोंको जो भूमि दी गई थी, वे सब सिनेट द्वारा छीन ली गई।

जुगार्थाइन युद्ध (११८-१०४ ई० पू०)।

सिनेटके इस अत्याचारके समय साधारणकी ओरसे एक नवम प्रतिनिधिका प्रादुर्भाव हुआ। इसका नाम मेरियस था। सिपियो अफ्रिकेनसने इसको बचपनमें देख कर कहा था, कि यह बालक हम लोगोंके समकक्ष होगा। यह अपने समय पर ईसाके ११९ वर्ष पूर्व प्लिबियनोंकी ओरसे ट्रिब्यून नियुक्त हुआ। यह प्रथम सिनेटके सामने साधारणके अनुकूल मत प्रकट करनेमें जरा भी भयभीत न हुआ। इस पर सिनेटके सदस्योंने इसको धमकाया। इस पर उसने कौन्सल मेटेलसको कैद कर लिया। इस प्रकार यह रोममें विशेष विख्यात तथा सम्मानास्पद हो गया। उसने जूलियस सीज़रकी फूफीसे विवाह किया था। इस समय अफ्रिकाके न्यूमिडियाके सिंहासनके लिये झगड़ा चल रहा था। वृद्ध राजा मिसिप्साने मृत्युके बाद उसके तीन पुत्रोंमें राज्यको बाँट दिया। किन्तु कुछ ही दिनोंके भीतर दोनों भाइयोंकी मृत्यु हो जानेसे जिगिर्था अकेले सारे राज्यके अधिकारी बन गये। उन दोनों भाइयोंमें किसीको सन्तान न थी। किन्तु एक भतीजा एक मात्र उत्तराधिकारी था। इसका नाम था जुगार्था। किन्तु मिसिप्साने इसकी प्रतिभा देख कर अपने सन्तानकी तरह इसका लालन पालन किया, पीछे उसने राज्यका उत्तराधिकारी होना, यह मालूम कर उसको

दूर भेज देनेकी उसकी इच्छा हुई। इसके अनुसार उसने जुगार्थाको सिपिओको सहायताके लिये एक छोटी फौजके साथ स्पेन भेज दिया। वहां उसके पराक्रम और प्रतिभाको देख कर सिपिओने उसको प्रशंसापत्र दिया था। किन्तु मिसिप्साके दोनों पुत्र हिम्पसल और अधियेल उसको ईर्षाकी दृष्टिसे देखने लगे। मिसिप्साने अपने दोनों कुमारोंके रक्षकरूपसे जुगार्थाको नियत कर दिया। इसके बाद मिसिप्सा परलोक सिधारा। किन्तु हिम्पसालके विरुद्धाचरण करने पर जुगार्थाने उसे मार डाला। यह ईसाके ११७ वर्ष पूर्वकी घटना है। इसके बाद जुगार्थाने छोटे भाई आधियेलको भी मार डालनेकी चेष्टा की थी। आधियेल लड़ाईके लिये तैयार हुआ। आधियेलने जुगार्थाके विरुद्ध शिकायत कर अपनी राज्यरक्षाके लिये रोमकी सेनेटसे सहायता मांगी। इस पर रोमसे कमिश्नर भेजे गये। कमिश्नरोंने आ कर दोनों भाइयोंको बंटवारा कर दिया। किन्तु रिश्वतखोर कमिश्नरोंने जुगार्थासे रिश्वत ले कर अच्छा या उपजाऊ अंश जुगार्थाको दे दिया। इस पर भी जुगार्था सन्तुष्ट न हुआ और (ईसाके ११२ वर्ष पूर्व) सिरा नामक किले पर आक्रमण कर उसने मिसिप्साके पुत्र आधियेलको मार डाला। इस किलेमें जुगार्थाने कितने ही इटालियनोंको भी मार डाला। इस पर रोमके ट्रिब्यून मेमियसने सेनेटस जुगार्थासे लड़ाई करनेकी सलाह दी। इस पर बेष्टिया और स्कारस लड़ाई करनेके लिये न्यूमिडिया भेजे गए। किन्तु उनको बहुत रिश्वत दे कर जुगार्थाने रोमको राजी कर लिया। इसने इनके हाथ सेनेटको ३० हाथी और कुछ धन भेजा था। यह रिश्वतखोरी छिप न सकी। केसियस नामक एक उदारचेता धार्मिक पुरुष जुगार्थाको बुलानेके लिये न्यूमिडिया भेजे गये। जुगार्था गवाही देनेके लिए ही बुलाया गया था। जुगार्था रोममें लाया गया। जुगार्था जब सभाभवनमें गवाही देने जैसे खड़ा हुआ, वैसे ही एक ट्रिब्यूनने उसे रोका। ट्रिब्यूनने उन दोनों बेष्टिया और स्कारससे रिश्वत ली थी।

जुगार्था कुछ दिनों तक रोममें ही रह गया। यहां उसको किसी साजिशमें शामिल देख कर सेनेटने इटली छोड़ देनेकी आज्ञा दी। रोमसे जाते समय सेनेटके सदस्योंके गर्हिताचरणका उल्लेख कर उसने कहा था,—"ये स्वार्थी नीचाशय सभ्य उपयुक्त खरीददार पाने पर रोमको बेच सकते हैं। रोमका पतन अवश्यंभावी है।" इसके बाद ईसाके ११० वर्ष पूर्व जुगार्थाके साथ युद्ध होने लगा। पहले पष्टुमियस अलबिनस युद्ध करनेके लिये भेजा गया। किन्तु उसके असफल होने पर उसका भाई अलास उस पद पर नियुक्त कर भेजा गया। किन्तु अपनी असावधानतासे वह शत्रु द्वारा घेर लिया गया और अपमानजनक सन्धि कर रोम लौट आया। सेनेटने सन्धिको अस्वीकृत कर मेटलासको युद्ध करनेके लिये न्यूमिडिया भेजा। इधर जिन्होंने जुगार्थासे रिश्वत ली थी, वे सब देशसे निकाले गये। मेटलासके साधुचरित्रको देख कर जुगार्था रिश्वत दे कर सन्तुष्ट करनेमें हताश हुआ। मेटलासने जुगार्थाको बारंबार पराजित किया। जुगार्थाने दूसरा उपाय न देख बहुतेरे हाथी और धन दे कर सन्धि कर लेनेकी प्रार्थना की। मेटलासने अपने खेमेमें उसको आने कहा। जुगार्थाको ऐसा साहस न हुआ। इससे फिर युद्ध होने लगा।

पूर्वकथित मेरायस इस समय मेटलासके अधीन युद्ध कर रहा था। वह अपनी रणनिपुणता तथा सद्व्यवहारसे सबका प्रियपात्र बन गया था। इस समय गाथो नामी एक सिरीय रमणीने उसकी शीघ्र ही एक ऊंचा पद पानेकी भविष्यद्वाणी की थी। यह सुन कर उसने रोमके कन्सल पद प्राप्त करनेकी प्रार्थना की। मेटलसने पहले आज्ञा न दी। किन्तु पीछे उसको रोम जानेकी आज्ञा दे दी। मेरायसने सबकी सहायतासे यह पद पा लिया। किन्तु शीघ्र ही वह न्यूमिडिया युद्ध करनेके लिये भेजा गया। इधर यह समाचार पा कर मेटलस युद्धसे विरत हुआ। मेरायासके न्यूमिडिया पहुंचने पर रोमक सैनिक बड़ी बहादुरीके साथ लड़ने लगे। मेरायासने एक एक करके जुगार्थाके सभी सुरक्षित किलों पर अधिकार कर बहुत धन संग्रह कर लिया। इस समय सल्ला नामक एक प्रतिभाशाली रोमक-सैनिक मेरायासके अधीन युद्ध कर रहा था। इसीकी कूटनीतिके फलसे मेरायास जुगार्थाको पराजित करनेमें समर्थ हुआ था।

जुगर्थाने बारंबार पराजित हो कर भी अपने अद्भुत कौशलसे मरुभूमि तक बहुत बड़ा भाग दखल कर ली। यह देख कर बोकसको अपना मामा जुगर्थाको और रोमकोंसे हारते देख भेदनीति ग्रहण करने लगा। सुल्लाने रोमकोंके कूट-प्रयोगमें फँस कर बोकसने अपने दामादको जंजीरोंसे बाँध कर रोमकोंके हाथमें सौंप दिया। सुल्ला इसको ले कर बड़ी धूमधामके साथ मेरियसके सेनामें पहुँचा। यह १०६ ईसाके पूर्वकी घटना है। मेरियास इस कामसे सन्तुष्ट होने पर भी सुल्लाके इस कामसे ईर्ष्यान्वित हुआ। सुल्ला युवावस्था साहित्यके सुपण्डित और विलासी थे। किन्तु युद्ध विद्यामें उनको भी अद्वितीय पण्डित देख रोमक चमत्कृत हुए। ईसाके १०४ वर्ष पूर्व मेरियास जुगर्थाको जंजीरोंसे बाँध कर रोममें बड़े समारोहसे ले आया। मेरियासके शत्रुओंने कारागारमें ही जुगर्थाका गला घोंटवा कर उसके गलेमें फाँसी पड़वाई। मेरियास दूसरी बार भी कन्सल नियुक्त हुए।

सिम्ब्री और ट्यूटनोंके साथ युद्ध (११३-१०१ ई० पू०)

इस समय बाल्टिक और डान्यूबके बीच बड़ा भारी असभ्य सम्प्रदाय अल्पाइन पर्वतके उत्तर भागमें पहाड़की तरह मिल कर रोमको पर आक्रमण करनेका उद्योग करने लगे। ये सिम्ब्री और ट्यूटन जातियोंके हैं। किन्तु पीछे केल्टिक जाति भी इस सम्प्रदायके साथ मिल गई थी। यह भ्रमणशील असभ्य सम्प्रदाय अपने स्त्री-पुत्रोंके साथ देश देशान्तरमें भ्रमण कर रहा था। इस दलमें ३००००० लड़ाकू सैनिक थे। कन्सलोंने इस सम्प्रदायको बाधा पहुँचाने पर कर रोक रखनेके लिये सेना भेजा; किन्तु रणक्षेत्रमें इस सम्प्रदायके साथ रोमन फौजें बारंबार पराजित तथा ध्वंस होने लगीं। ईसाके १०९ वर्ष पूर्व कन्सल जुनियस सिलेनास सिम्ब्रियोंके साथ बारंबार पराजित हुआ। इसके बाद केपियस नामक कन्सलका अरासियो युद्धमें पराजित और मारा गया और दूसरे एक कन्सलकी अधीनस्थ सेना इस सम्प्रदायसे पराजित हुआ और कैद कर लिया गया। बहुतेरे रोमन मारे गये। इसके बाद ईसाके १०५ वर्ष पूर्व दोनों कन्सल मैलियस कैपियो और

गालिसियाके विजयके विचार छोड़ कर इस सम्प्रदायने स्पेनमें जा कर। असभ्य सम्प्रदायने इस रोमक-गॉलिकी सीमा पार करके पहलेकी तरह आक्रमण आरम्भ किया। हानिबलके बाद ऐसी मार काटकी लड़ाई नहीं हुई थी।

रोमकोंने ईसाके १०३ वर्ष पूर्व इस विपद्के समय मेरियासको चौथी बार कन्सल नियुक्त किया। किन्तु बाधावश ट्यूटनोंके और भागे, न वह स्पेनमें घुस कर लूटने और आग लगाने लगे। इधर मेरियास एक नई सेना एकत्र कर उसको शिक्षामें पढ़ाने लगा। इसने उस समय सैन्य विभागमें बहुतेरे सुधार भी किये। पीछे (१०२ ईसाके पूर्व) मेरियास चौथी बार कन्सल नियुक्त हुआ। उस समय सिम्ब्री फिर गल प्रदेशमें हुए। मेरियास फौजोंके साथ वहाँ पहुँचा और उस स्थानको सुरक्षित करनेके लिये इसने भूमध्यसागरसे नदी तक एक खाई या नहर खोदवाई। बाधावश दो दलोंमें विभक्त हो कर ट्यूटनोंकी बाधा की ट्यूटन मेरियासको और कौई पहुँचे सेक्सटियाई आक्वा नामक स्थानमें भीषण युद्ध हुआ। मेरियासकी सुशिक्षित फौजें वहाँ गुप्तस्थानमें छिपी हुई थीं। जब ट्यूटन इस स्थानमें आ रहे थे, तब उन पर रोमक सेना एकाएक टूट पड़ी और बुरी तरहसे ट्यूटन मारे और काटे गये। पूर्वका अन्तर विजयसे व्याकुल हो ट्यूटन भागे। पीछेसे रोमक सैन्य मारने लगी। भीषण कारण हुआ। प्रायः सबको मार डाले गये और जो बाकी बचे उन्होंने भी आत्महत्या कर अपने प्राण गवाँ दिये। गोमकदमें रहनेवाली उनकी स्त्रियां पति-पुत्रको इस तरह पराजित होते देख शिशु सन्तानोंको मार कर स्वयं आत्महत्या करने लगीं। अनन्तर सुदूर भूमध्यसागरमें आ मिले। मेरियास पुनः रण कर सैनिक ओर आया। ऐसे समय उसको एक दूतद्वारा खबर मिली कि आप पाँचवीं बार कन्सल नियुक्त हुए।

इधर सिम्ब्री अल्प्स पार करके तरह आल्पस् पहाड़ोंको और कौटे। ट्यूटनोंके विनाशको मालूम सिम्ब्रियोंके बीच लड़ाईका समाचार पहुँचा बड़ी थोड़ी बातें किये। (१०१ ईसाके पूर्व) उनकी पुरानीको अनेक स्थान-पर युद्ध आरम्भ हुआ। मेरियासके एक कौंसलसे सिम्ब्री

हार गये। इनके १४००० सैनिक मारे गये और ६०००० सैनिक कैद कर लिये गये और गुलाम बना कर बेच दिये गये। किन्तु इनकी स्त्रियां कैद न हुईं वरं लक्ष लक्ष रमणियां आत्महत्या कर यमलोक सिधारीं। मेरायासने इस तरह असामान्य प्रतिभाबलसे और अभूतपूर्व रण-कौशलसे रोमक सौभाग्यसूर्यको राहु मुखसे बचाया। रोमवासी भी देवाराधना करते समय उसकी पूजा और तर्पण करनेसे न भूले। वह रोमका तृतीय उद्धारकर्त्ता कह-लाया। पीछे मेरायास बड़े समारोहसे विजयोत्सव कर गौरवान्वित चित्तसे रोममें वापस आया। वह छठीं बार फिर कन्सल नियुक्त हुआ। इससे पहले और कोई भी रोम-अधिवासी इतना सम्मानित नहीं हुआ था। बड़े बड़े ऐतिहासिकोंका कहना है, कि इस यशःसूर्यके मध्याह्नकालमें मेरायासकी यदि मौत हो जाती, तो अच्छा होता। क्योंकि ऐसा होने पर उस यशोरविका अस्तगमन रूप दुर्दिन देखना न पड़ता।

दूसरा गुलाम-युद्ध (१०३-१०१ ई० पू०)।

इस समय गुलामोंका बड़ा भारी विद्रोह खड़ा हुआ। चार वर्षव्यापी इस गुलाम युद्धने देशका बड़ा अनिष्ट किया। लुकालास और सार्ब्लियास कल्काके अधीन दो बार रोमक फौजें गुलामोंसे पराजित हुईं। सालर्डि-यस नामक एक दैवज्ञने अपनी असमान प्रतिभाके बलसे शीघ्र ही २०००० पैदल और २००० घुड़सवार सैन्य खड़ा किया कर अपना नाम ट्राइफन रख लिया। यही नहीं, उसने राज्याभिषेकोत्सव भी कर लिया। इधर गुलाम दो दलोंमें विभक्त हुए और आथेनी तथा आथे-निउने पश्चिम दलके राजा होने पर भी ट्राइफनका प्राधान्य स्वीकार कर लिया। ट्राइफनकी मृत्युके बाद अथेनियो गुलामोंका राजा हुआ। एकुइलियस सिसिलीमें भेजे गये। उन्होंने लड़ाईमें विजय-प्राप्त कर अपने हाथों आथे-नियोको रोमके आम्फिथियेटरमें सिंहशार्दूलके साथ युद्ध करनेमें नियुक्त किया। किन्तु हिंस्र जन्तुके साथ लड़ाई कर निष्ठुर रोमवासियोंके चित्तविनोद करनेकी अपेक्षा वे आपस होमें लड़ कर मर गये। यह ६६ वर्ष ईसासे पूर्वकी घटना है।

इस समय रोमकी शासन-प्रणालीमें फिर विप्लव उपस्थित होनेकी सूचना मिली। मेरायास शासन और सैन्य विभागमें एकाधिपत्य करनेके लिये सङ्कल्प करने लगा। किन्तु उसकी शासन क्षमता और वक्तृता शक्ति कुछ भी न थी। इसलिये साटार्निनास और ग्लसिया नामक दो वाग्मियोंको हाथमें कर अपने काममें लगा। साटार्निशस ट्रिव्यून वहां पर नियुक्त हुआ और एग्रे-रियन कानून चला कर गल प्रदेशकी भूमिको मेरा यासने फौजोंमें बांट देना चाहा। इस आईन-की एक शर्त्त थी, कि इसके प्रवर्त्तनका प्रस्ताव यदि सर्वसम्मतिसे पास हो, तो सेनेटके सदस्य इसका पालन करने पर शपथबद्ध होंगे और जो असम्मत होंगे वे सदस्यपदसे च्युत होंगे। मेटलास मेरायास—दोनोंने सेनेटकी सर्वसम्मतिसे यह कानून बनाया। केवल मेटलास अपने स्वीकृत शपथ पालन करने पर तैयार न हुआ। इस सम्बन्धमें मेटलास और मेरायासके पक्षमें घोरतर मनमुटाव उपस्थित हुआ। विरोधियोंके अत्याचारसे रोम राजधानी जर्जरित हो उठी। इस तरह राष्ट्रविप्लव कुछ समय तक चलनेके बाद प्रधान प्रधान नेताओंके पदाधिकार कम हो आया। उस समय सभीके निर्वाचनमें फंस गये। निर्वाचनमें दंगा फसाद होने देख सेनेटने मेरायासके विरोधियोंको दबाने-के लिये तथा राजरक्षा करनेके लिये आदेश दिया। उस समय साटार्नियास तथा ग्लेसियाको हताश हो आत्म-समर्पण करना पड़ा। सेनेटके उनकी राजद्रोहिता पर विचार करते समय प्रजाने उन्हें मार डाला।

सेनेटके साथ विवाद करनेमें, प्रजादलकी पराजय और मेरायासके ६ बार कन्सल नियुक्त होनेमें प्रजाके स्वाधि-कारह्रासके साथ साथ रोमकोंके प्राचीन प्रजातन्त्रके अनेक परिवर्त्तन हुए। मेरायास ६ बार कन्सल पद पर सेनेटके अनुमोदित ऊपर ही ऊपर नेतृपरिवर्त्तनमें अन्त-राय उपस्थित हुआ। इस लम्बे नेतृत्वमें मेरायासने साहार्निमास प्रवर्त्तित सामयिक संस्कारपद्धतिका अनु-करण कर एक एक सेनापतिके अधीनमें साधारण सेना-दल नियुक्त किया। यह सब सैनिक अपने अपने सेना-पतियोंकी बात या आज्ञा पालन करनेके अधिकारी होंगे। साधारण सैनिकोंमें पदमर्य्यादा या अर्थगरिमाका

हूणोंके बारंबार पराजित हो कर भी अपने अंकुर [illegible] प्रदेशों पर बहुत वर्षों शासन करते रहे। यह देख कर [illegible] और [illegible] हाथमें [illegible] उत्पन्न करने लगा। उसमें हूणोंके युद्ध-प्रयोजनसे [illegible] कर [illegible] अपने सामन्तोंको अंगोरसे बांध कर हूणोंके हाथमें सौंप दिया। राजा उसको ले कर बड़ी खुशीसे साथ सेनापतिके शिविरमें पहुंचा। यह १०६ ईसाके पूर्वकी घटना है। सेनापति इस कामसे मंजूर होने पर भी सम्राट्के इस कामसे ईर्ष्यान्वित हुआ। [illegible] साहित्यके सुपण्डित और विद्वान् थे। किन्तु युद्ध विद्यामें उनकी अधिकार परिचय ठीक नहीं मालूम हुई। ईसाके १०४ वर्ष पूर्व सेनापति हूणोंको अंगोरसे बांध कर लौटने पर बड़े सम्मानपूर्वक लौट आया। सेनापतिके शत्रुओंने सम्राट्को ही हूणोंका पक्षपाती कह कर उसके सामने अपमानित ठहराई। सेनापति दूसरी बार भी कमान नियुक्त हुए।

[illegible] और हूणोंके साथ युद्ध (१२३-१०१ ई० पू०)

इस समय [illegible] और [illegible] दो [illegible] साम्राज्य [illegible] उत्तर [illegible] हूणोंके साथ मिल कर [illegible] पर आक्रमण करनेका [illegible] करते रहे। ये [illegible] और हूण जातियोंके थे। किन्तु [illegible] जाति भी इस साम्राज्यके साथ मिल गई थी। यह शक्तिशाली [illegible] साम्राज्य अपने [illegible] साथ [illegible] कर रहा था। इस [illegible] १०००० [illegible] सैनिक थे। [illegible] इस साम्राज्यको आसानीसे [illegible] कर [illegible] किन्तु [illegible] इस साम्राज्यके साथ [illegible] बारंबार पराजित [illegible] होने लगी। ईसाके १०१ वर्ष पूर्व [illegible] सेनापति [illegible] के साथ बारंबार पराजित हुआ। इसके बाद [illegible] हूणोंसे पराजित और [illegible] और दूसरे [illegible] इस साम्राज्यसे पराजित हुआ और कैद कर लिया गया। [illegible] इसके बाद ईसाके १०८ वर्ष पूर्व [illegible] और

[illegible] सेनापतिसे [illegible] कर इस साम्राज्यके सामने आ गई। [illegible] साम्राज्यने [illegible] को [illegible] किया। [illegible] के बाद [illegible] नहीं हुई थी।

[illegible] ईसाके १०३ वर्ष पूर्व इस विद्रोहके समय सेनापतिको तीसरी बार कमान नियुक्त किया। किन्तु [illegible] हूणोंकी ओर भागे, [illegible] पुनः [illegible] और [illegible] लगे। इधर सेनापति [illegible] कर उनको सिखाने पढ़ाने लगा। इससे उस समय सैन्य विभागमें बहुतसे सुधार भी किये। पीछे (१०२ ईसाके पूर्व) सेनापति चौथी बार कमान नियुक्त हुआ। उस समय [illegible] फिर [illegible] हुआ। सेनापति [illegible] सेनाके साथ वहाँ पहुँचा और [illegible] सुरक्षित करनेके लिये इसने [illegible] तक [illegible] लगवाई। [illegible] हो कर हूणोंकी [illegible] सेनापतिकी ओर [illegible] युद्ध हुआ। सेनापतिकी सुशिक्षित फौजें [illegible] युद्धमें [illegible] थी। जब हूण इस [illegible] आ रहे थे, तब [illegible] हूण भागे और [illegible] गये। [illegible] हूण [illegible] लगे। [illegible] हुआ। [illegible] आत्महत्या कर [illegible] दिये। [illegible] पराजित होने [illegible] आत्महत्या करने लगी। [illegible] मिलो। सेनापति युद्धमें [illegible] कर [illegible] लौट आया। [illegible] कमान नियुक्त हुए।

इधर [illegible] हूणोंके [illegible] किये। १०१ ईसाके पूर्व [illegible] युद्ध आरम्भ हुआ। सेनापतिके [illegible]

इधर पम्पियास ष्ट्राबो उत्तर-इटलीमें जीतने लगा। प्रबल युद्धके बाद आस्कालाम नगर पर अधिकार हो गया। विपक्षियोंके अधिकांशने हथियार छोड़ कर अधीनता स्वीकार कर ली। उस समय प्लेटियास सिल्भेनास और पेपिरियस कार्वो नामक दोनों ट्रिब्यूनने "लेषल प्लोटिया-पपेरिया" नामक एक कानून बनाया। यह ८९ ईसाके पूर्वकी घटना है। इससे जिस कारणसे युद्धकी उत्पत्ति हुई थी, वह कारण दूर हुआ। अतएव बहुतेरे विपक्ष रोमक-दलमें आ गये। इस युद्धमें इटलीका सम्भ्रान्त नया सम्प्रदाय निःशेष हो गया। अन्तमें ३५ जातियां और १५ विभिन्न इटलीवासियोंको रोमके साथ समान निर्वाचन-अधिकार मिला। इसके बाद सामनाइट और लुकानियनोंने कुछ दिनों तक रोमके विरुद्धाचरण किया था। सामनियमके युद्धमें सल्लाने दोनोंकी शक्ति क्षीण कर दी थी। इसके बाद सारे इटलीके रहनेवाले रोमकी प्रधानता स्वीकार कर एकमें मिल गये।

इस अन्तर्विप्लवका अन्त होने पर भी पूर्वतन कलह-सूत्र पर फिर वाद-विवाद होने लगा। स्वाधिकार प्राप्त नया इटली-सम्प्रदाय रोमक सदस्योंकी पक्षपातिता और निर्वाचन विषयमें अपने पक्षमें राजकीय शक्तिका अलगाव कर घोरतर प्रतिवाद करने लगा। सदस्योंकी घोर प्रतिद्वन्द्विता से सेनेटसभाका रूप बदल गया था। साम्प्रदायिक वाद-विवाद, आपसमें शत्रुताभाव और प्रजाका चिरन्तन प्रसिद्ध और राजप्रासाद हृदय-भेदी मर्मपीड़ासे समूचा रोम पीड़ितोंके करुण क्रन्दनसे परिपूरित हुआ। अर्थनाश और अन्नाभावके कारण प्रजा ध्वंस होने लगी। रोमके इस कष्टने वहांकी सभी श्रेणीके लोगों पर अपना प्रभाव जमाया था।

पहला गृहयुद्ध (८८-८६ ईसाके पू०)

इस गड़बड़ीके दूर होते न होते मिथ्रिडेटिसके विरुद्ध लड़ाईकी घोषणा की गई। इस समय पण्टसके राजा ६ठें मिथ्रिडेटिस यों यूटरके साथ रोमका युद्ध अनिवार्य हो गया। पहलेकी लड़ाईमें सल्लाने जैसा पराक्रम और रणप्रतिभा दिखाई थी, उसको देख कर ही सबोंने उसको इस बार कन्सल नियुक्त किया (८८ ईसाके पूर्व)। किन्तु वृद्ध मेरायास इस पदके लिये प्राणपणसे चेष्टा करने लगा। सिवा इसके उसने सालपिसियस रुफास नामक एक वक्तृता-कुशल और क्षमताशाली व्यक्तिको लूटी हुई धन सम्पत्तिका प्रलोभन दे कर अपने पक्षमें कर लिया। ऐसा कर वह अपने उद्देश्यकी सिद्धि-का उपाय खोजने लगा। सालपिसियसने मेरायासको मिथ्रिडेटिक युद्धमें अधिनायकत्व प्रदान करनेके लिये एक नया कानून बनाया। सेनेटके सदस्योंने इसको रोकनेके लिये "जाष्टिशियम" घोषणा की। इसके अनुसार उस समय कोई कानूनी कार्य्य नियम विरुद्ध कहा जाता था। किन्तु सालपिसियस बलपूर्वक यह रद करने पर उतारू हुआ। उसने अपने ३ हजार अश्वारोहियोंका एक "एण्टीसेनेट" दल कायम किया और वह इनके साहाय्यसे बलपूर्वक कन्सलोंको फोरमसे निकाल कर अपनी अभीष्टसिद्धि पर उद्यत हुआ। पम्पियस भाग गया। उसका पुत्र और सल्लाका दामाद कुइण्टस मारा गया। सल्लाने अपने फोरमके निकटके मेरायासके घर-में घुस कर अपनी जान बचाई और प्राणके भयसे पूर्वोक्त "जाष्टिशियम" प्रत्याहार किया।

सल्ला रोम छोड़ कर कम्पनियाके निकट नोला नामक स्थानमें अवस्थित अपने सैन्योंके साथ मिल गया। इधर सलपिसियस और मेरायासने रोम पर अधिकार कर लिया। मेरायास मिथ्रिडेटिक युद्धमें कन्सल नियुक्त हुआ और उसने सल्लाके सैन्यदलका नेतृत्व ग्रहण कर नोलामें प्रतिनिधि भेजे। यह प्रतिनिधि नोलामें सल्लाकी फौजोंके चलाई ईंटोंके टुकड़ेसे मर गया। अब सल्लाने अपनी फौजोंको रोमके विरुद्ध चलाया। इस तरह सल्ला फौजोंके साथ रोम पर अधिकार करने चला। मेरायासने उसकी गतिमें बहुत रुकावटें डालीं, किन्तु वह विफल हुआ। अन्तमें सल्लाने रोम पर अधिकार कर लिया। मेरायास पुत्रके साथ भाग चला। सल्लाने रोम पर अधिकार कर लिया सही; किन्तु रक्तपात लूट तराज न होने दी। सालपिसियस अपने गुलामके विश्वासघातसे पकड़ा और मार डाला गया। इस समयसे रोमका राजनैतिक घटनास्रोत दूसरी प्रणालीसे प्रवाहित हुआ। इस समय अर्थात्

कोई स्वत्व न रहेगा। किन्तु [illegible] का क्षेत्र (Investiture) के सम्बन्धमें विस्तृत रहा।

इसके पश्चात् लोथेर, कनराड, हेनरी, फ्रेडरिक आदि ९-१० सम्राटोंने इटालियनोंको अधिकृत करनेकी चेष्टा की थी, किन्तु वे इस कार्यमें सफल नहीं हो सके। जिनमें बार इटलीपर [illegible] किये, उनमें बार वे बादशाहके कठोर नियमोंसे विमुक्त हो [illegible] स्वतन्त्र किये गये थे। इस तरह आन्दोलनकारियोंमें इटालियनोंको उत्तेजित होता देख फ्रेडरिक बारबरोसा लिगिनियर डू_मनने स्वतन्त्रता प्राप्त किया। उन्होंने अब जर्मन राजाओंमें राजविधि [illegible] प्रस्ताव उठाया, तब स्वतन्त्र राज्य (representative) सबसे इनके साथ सम्मिलित हो गया। डू_मनके स्वाधीनता कानूनोंको स्वतन्त्रताके पास कर दिया, किन्तु जर्मनने मंजूर नहीं किया और डू_मनको इटालियनोंके साथ सन्धियाँ किया और राजद्रोहको दण्डित करनेकी घोषणा की। उसके बाद सात वर्षतक युद्ध इटलीके द्वारा डू_मन मार डाला गया।

डू_मनके मरने पर इटलीवासी जर्मनीके विरुद्ध उत्तेजित हो उठे। उस समयसे अनुमतिपत्र स्वाधीन करने वालोंको दण्ड देनेके लिये एक समिति संगठित हुई। इस समितिके विचारकोंने बहुतेरे लोग शासनके दण्डसे दण्डित हुए।

स्विट्जरलैण्डका स्वाधीनता युद्ध। (१३०८-१३९९ ई०)

इसी शताब्दीमें स्विट्जरलैण्डमें एक महायुद्धकी सृष्टि हुई। इस युद्धमें स्विसवासी कई वर्ष सम्राटके सेना साथ लड़ती रही। [illegible] १५ वीं शताब्दी [illegible] बनाये नियमके अनुसार स्विसवासी रोमसम्राटोंके अधिकारोंसे वंचित हुए। इसी समय [illegible] उत्तेजित हो कर [illegible], [illegible], [illegible], [illegible], [illegible], [illegible], [illegible] और [illegible] आदि आठ प्रान्तोंने सम्राटके विरुद्ध युद्ध करना आरम्भ किया। इसी कारणसे स्विसने अपना स्वतन्त्र राष्ट्र स्थापित किया। [illegible] "[illegible]" कहलाता है। इस प्रदेश [illegible] किसीके अधीन न रह कर स्वतन्त्र रहे।

सम्मिलित प्रान्तोंने होहेनस्टाफेन राजवंशके निर्वाचनाधिकार न पानेके कारण राज्योंमें एक बड़ी अशान्ति उत्पन्न और रोम साम्राज्यमें अराजकता उपस्थित किया। होहेनस्टाफेन वंशका सम्पूर्ण अधिकार जाते रहा। नये सम्राटके प्रस्तावको राजधानी जर्मन हुई और इसका नाम [illegible] रखा गया। सन् १२७३ में सम्राटोंके पद [illegible] स्थापन हुई। इस समयमें अनेक [illegible] हो कर और १४ वीं शताब्दीमें लक्जेम्बर्ग वंशका एक आधिपत्य इसके बाद सम्राट नियुक्त हुआ।

जब [illegible] लक्जेम्बर्ग और [illegible] सम्राट रोमके सम्राट नियुक्त हो कर युद्ध किये गये। [illegible] और [illegible] इनके अधीन हो कर युद्ध करनेके लिये गये। इसी वर्ष [illegible] होने लगा। [illegible] सम्राट [illegible] युद्ध करके भी [illegible] द्वारा मारा गया और [illegible] युद्धमें विजय पाई। किन्तु [illegible] और युद्धमें पीछे न हटे। [illegible] साथ युद्ध कर [illegible] और [illegible], [illegible], [illegible] आदि [illegible] पराजित किया। [illegible] रोमके सम्राट [illegible] आदि [illegible] करने लगे। इस समय रोमके सिंहासन पर आरूढ़ हो चार्ल्स चतुर्थने 'गोल्डन बुल' नामक एक कानून बनाया। यह [illegible] वर्ष पूर्वका परचा है। इस कानूनके अनुसार रोमके [illegible] और [illegible] प्रधानोंको रोम सम्राटोंके साथ सम्राटको निर्वाचनाधिकार (Elector) देने की व्यवस्था हुई। इसके बाद रोम प्रबल हो उठा और सम्राटके द्वारा सर्व रोमवासियोंकी स्वतन्त्रता नष्ट होने लगी। इसके द्वारा धर्मके [illegible] युद्धों और [illegible] स्वतन्त्र हो कर युद्धोंकी चर्चा; [illegible] अन्तमें भी हो गया, किन्तु रोम [illegible] कमजोर न होने पाई। [illegible] अपना [illegible] युद्ध करने लगा। [illegible] [illegible] हो गये। अब [illegible] को अधिकार कर [illegible] सुरक्षित हुई पर अधिकार कर लिया।

इधर पम्पियास ष्ट्रावो उत्तर-इटलीमें जीतने लगा। प्रबल युद्धके बाद आस्कालाम नगर पर अधिकार हो गया। विपक्षियोंके अधिकांशने हथियार छोड़ कर अधीनता स्वीकार कर ली। उस समय प्लेटियास सिल्भेनास और पेपिरियस कार्वो नामक दोनों ट्रिब्यूनने "लेक्स प्लोटिया-पपेरिया" नामक एक कानून बनाया। यह ८९ ईसाके पूर्वकी घटना है। इससे जिस कारणसे युद्धकी उत्पत्ति हुई थी, वह कारण दूर हुआ। अतएव बहुतेरे विपक्ष रोमक-दलमें आ गये। इस युद्धमें इटलीका सम्भ्रान्त नया सम्प्रदाय निश्शेष हो गया। अन्तमें ३५ जातियां और १५ विभिन्न इटलीवासियोंको रोमके साथ समान निर्वाचन-अधिकार मिला। इसके बाद सामनाइट और लुकानियनोंने कुछ दिनों तक रोमके विरुद्धाचरण किया था। सामनियमके युद्धमें सल्लाने दोनोंकी शक्ति क्षीण कर दी थी। इसके बाद सारे इटलीके रहनेवाले रोमकी प्रधानता स्वीकार कर एकमें मिल गये।

इस अन्तर्विप्लवका अन्त होने पर भी पूर्वतन कलह-सूत्र पर फिर वाद-विवाद होने लगा। स्वाधिकार प्राप्त नया इटली-सम्प्रदाय रोमक सदस्योंकी पक्षपातिता और निर्वाचन विषयमें अपने पक्षमें राजकीय शक्तिका अलगाव कर घोरतर प्रतिवाद करने लगा। सदस्योंकी घोर प्रतिद्वन्द्वितासे सेनेटसभाका रूप बदल गया था। साम्प्रदायिक वाद-विवाद, आपसमें शत्रुताभाव और प्रजाका चिरन्तन प्रसिद्ध और राजभ्रष्ट हृदय-भेदी मर्मपीड़ासे समूचा रोम पीड़ितोंके करुण क्रन्दनसे परिपूरित हुआ। सर्वनाश और अत्याचारके कारण प्रजा ध्वंस होने लगी। रोमके इस कष्टने वहांकी सभी श्रेणीके लोगों पर अपना प्रभाव जमाया था।

पहला गृहयुद्ध (८८-८६ ईसाके पू०)

इस गड़बड़ीके दूर होते न होते मिथ्रिडेटिसके विरुद्ध लड़ाईकी घोषणा की गई। इस समय पण्टसके राजा ६ठें मिथ्रिडेटिस या यूपटरके साथ रोमका युद्ध अनिवार्य हो गया। पहलेके युद्धोंमें सल्लाने जैसा पराक्रम और रणप्रतिभा दिखाई थी, उसको देख कर ही सबोंने उसको इस बार कन्सल नियुक्त किया (८८ ईसाके पूर्व)। किन्तु वृद्ध मेरायास इस पदके लिये प्राणपणसे चेष्टा करने लगा। सिवा इसके उसने सालपिसियस रुफास नामक एक वक्तृता-कुशल और क्षमताशाली व्यक्तिको लूटी हुई धन सम्पत्तिका प्रलोभन दे कर अपने पक्षमें कर लिया। ऐसा कर वह अपने उद्देश्यकी सिद्धिका उपाय खोजने लगा। सालपिसियसने मेरायासको मिथ्रिडेटिक युद्धमें अधिनायकत्व प्रदान करनेके लिये एक नया कानून बनाया। सेनेटके सदस्योंने इसको रोकनेके लिये "जाष्टिशियम" घोषणा की। इसके अनुसार उस समय कोई कानूनी कार्य नियम विरुद्ध कहा जाता था। किन्तु सालपिसियस बलपूर्वक यह रद करने पर उतारू हुआ। उसने अपने ३ हजार अश्वारोहियोंका एक "एण्टीसेनेट" दल कायम किया और वह इनके साहाय्यसे बलपूर्वक कन्सलोंको फोरमसे निकाल कर अपनी अभीष्टसिद्धि पर उद्यत हुआ। पम्पियस भाग गया। उसका पुत्र और सल्लाका दामाद कुइण्टस मारा गया। सल्लाने अपने फोरमके निकटके मेरायासके घरमें घुस कर अपनी जान बचाई और प्राणके भयसे पूर्वोक्त "जाष्टिशियम" प्रत्याहार किया।

सल्ला रोम छोड़ कर कम्पनियाके निकट नोला नामक स्थानमें अवस्थित अपने सैन्योंके साथ मिल गया। इधर सलपिसियस और मेरायासने रोम पर अधिकार कर लिया। मेरायास मिथ्रिडेटिक युद्धमें कन्सल नियुक्त हुआ और उसने सल्लाके [illegible] नेतृत्व ग्रहण कर नोलामें प्रतिनिधि भेजे। [illegible] नोलामें सल्लाकी फौजोंके बलाई [illegible] गया। अब सल्लाने अपनी फौजोंको [illegible] चलाया। इस तरह सल्ला फौजोंके [illegible] कार करने चला। मेरायासने [illegible] बटें डालीं, किन्तु वह [illegible] रोम पर अधिकार कर लिया [illegible] भाग चला। सल्लाने [illegible] किन्तु रक्तपात [illegible] अपने [illegible] डाला गया। [illegible] दूसरे [illegible]

ईसासे ८३ वर्ष पूर्व लिखा और [illegible] [illegible] [illegible] हुए। इसके बाद ही [illegible] [illegible] [illegible] ही [illegible] गया।

[illegible] [illegible] [illegible], किन्तु [illegible] [illegible] [illegible] न हुई। [illegible] [illegible], कि [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] होता था। [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] हो [illegible] हो जाता है। [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] काम नहीं करती थी। [illegible] [illegible] [illegible] करनेके बाद ही [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] करने पर [illegible] हुए। [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] पर [illegible] था और [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] हुए थे, [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] गया। [illegible] [illegible] [illegible] रही [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] किया। [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] किया। [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] हुआ था। [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] हुआ और [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] लगा। [illegible] और [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] गया।

[illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] हुए, किन्तु [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] और [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] और [illegible] [illegible] [illegible] [illegible]

[illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] और [illegible] [illegible] [illegible] नहीं थी। [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] किया। किन्तु [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] गया। [illegible] बाद [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] गया। [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] ईसाके पूर्व [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] गया। किन्तु [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] गया।

[illegible] [illegible] [illegible] (ईसा पूर्व [illegible])

[illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] था। [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] किया। [illegible] [illegible] और [illegible] [illegible] [illegible] था। [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] था। [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] लगा। [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] पर बैठा। किन्तु [illegible] [illegible] [illegible] न था। [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] किया। [illegible] पर बैठा और [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] किया। किन्तु [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] किया और [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] और [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] किया। [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] हुआ।

[illegible] बाद [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible]

उसके सारे इटालियनों और रोमकोंको मार डालनेकी आज्ञा जारी कर दी। ८०००० रोमक एक दिनमें मार डाले गये। मिथ्रिडेटिसके जयलाभसे यूनानियोंने रोमकी अधीनताको तोड़ कर विद्रोही हो उसकी सहायताके लिये यात्रा की। इस समय सल्लाने फौजोंके साथ यूनानके अन्तर्गत एपिरासमें आ कर एथेन्स और पिरियास पर घेरा डाल दिया। कुछ ही समयमें सल्लाने एथेन्स पर अधिकार कर उसे लूट पाट।

मिथ्रिडेटिसके सेनापति आर्थेलास विशाल सैन्य ले कर ब्यूटियामें सल्लाके सामने आ डटा। चोरेनिया नामक स्थानमें भयङ्कर युद्ध होने लगा। किन्तु इस समय एक नयी विपद्का सूत्रपात हुआ। मेरायासकी ओरसे एक सैन्य ले कर भालेरियस फ्लाकसको एक दल फौजके साथ यूनानमें मिथ्रिडेटिस और सल्लाके साथ ही युद्ध करनेके लिये भेजा गया। फिम्ब्रिया नामक सेनापतिके साजिशसे फ्लाकास मार डाला गया। पीछे फिम्ब्रिया सेनापति हो कर मिथ्रिडेटिसके विरुद्ध कई युद्धोंमें परास्त किया (८५ ई०के पू०)। इधर आर्कोमिनास नामक स्थानके युद्धमें सल्लाने आर्थेलासको पूर्णरूपसे पराजित किया। उस समय मिथ्रिडेटिसने सन्धिकी प्रार्थना की। यह ईसाके ८४ वर्ष पूर्वकी घटना है। इसके अनुसार मिथ्रिडेटिस एशिया खण्डके जीते हुए प्रदेशोंको रोमकोंको दे दिया और ७० सुसज्जित जङ्गीजहाज रोमकोंको दिये। युद्धके क्षतिस्वरूप उसने २०० टालेण्ट प्रदान किये। सल्लाने सन्धि कर मेरायास द्वारा भेजे हुये फ्लाकासके हत्याकारी सेनापति फिम्ब्रियासे युद्ध करनेकी तयारी की। यह देख फिम्ब्रियाकी सेनायें उसे परित्याग कर सल्लाकी फौजोंसे मिल गई। फिम्ब्रियने आत्महत्या कर ली। इसके बाद सल्ला इटलीकी ओर बढ़ा। सल्लाने एशियामें विजय प्राप्त करते समय अपार सम्पत्ति हस्तगत कर ली थी। सिवा इसके वह युद्धमें फंसे रहने पर भी यूनानके टिउस नगरसे एपेलिकन नामक विराट पुस्तकालय रोम ले आया था। इस पुस्तकालयमें अरिष्टल और थिउफ्राष्टसके ग्रन्थ सुरक्षित थे।

ईसाके ८३ वर्ष पूर्व बसन्तकालमें ४० हजार सैनिक और बहुसंख्यक पारिषदोंके साथ सल्ला ब्राण्डुसियममें उतरा। उस समय दल सिपिओ और नोर्वानास कन्सल थे। सिन्ना और सिसालपाइन, गलोंके प्रो-कन्सल कार्वो, सल्लाके साथ युद्ध करनेके लिये सैन्य संग्रह कर रहे थे। किन्तु सिन्ना अपने विद्रोहियोंके हाथ मारा गया। मेरायासका दल नेतृहीन हो कर भी सल्लाके साथ युद्ध करनेका आयोजन करने लगा। २००००० फौजें मेरायासके दलकी ओर युद्ध करने लगीं। किन्तु सल्ला ४०००० फौजोंके साथ ब्राण्डुसियासमें उपस्थित था। किन्तु मेरायासका सैन्य दल, अधिनायक और शिक्षाके अभावसे कापुआ, टिनाम और प्रिनेष्टिके युद्धमें पराजित हो कर तितर बितर हो गया।

कन्सल नोर्वानास कम्पिनीयरके युद्धक्षेत्रमें पराजित हो कर रोडस द्वीपमें चला गया। इधर कार्वो और छोटा मेरायास रोमके कन्सल नियुक्त हुए। ईसासे ४२ वर्ष पूर्व सल्लाके सैन्यके साथ छोटे मेरायासका साक्रिपोर्टस नामक स्थानमें युद्ध हुआ। मेरायासने परास्त हो कर प्रिनेष्टि नामक स्थानमें आश्रय ग्रहण किया। प्रिनेष्टिके उद्धारके लिये दो युद्ध हुए। इस समय पम्पी और कार्वमेटलास सल्लाकी ओरसे कार्वोके साथ युद्ध करने लगे। सल्ला बे-रोक रोममें जा घुसा। कार्वो पराजित हो कर अफ्रिका भागा। किन्तु सामनाइट और लुकानियन सल्लाके विरुद्ध युद्धार्थ रोमकी ओर दौड़े। कलिनगेट नामक स्थानमें भीषण युद्ध हुआ। सामनाइट-सेनापति पण्टिआस कासकी अद्भुत वीरताके कारण पराजित हुआ और मारा गया। कम्पास मर्शियस नामक रणक्षेत्रमें सल्लाके नृशंस आदेशसे कई सहस्र सामनाइट और लुकानियन कैदियोंका शिर काट लिया। इस घटनासे प्रिनेष्टि किलेके सैनिकोंने आत्मसमर्पण किया। छोटा मेरायासने आत्महत्या कर ली। लुकानियन निर्दय भावसे मारे गये। सल्ला अब इटलीका एकमात्र कर्त्ता हो गया। उसने मेरायासके पक्षपाती सभी आदमियोंके कटे शिर लानेकी आज्ञा जारी की और इसके लिये पुरस्कारका लोभ दिखाया। इसके अनुसार भीषण लोम-हर्षण दृश्यका अभिनय होने लगा। २०० सेनेटके सदस्य, ४६ कन्सल, १६०० विचारक और १५०००० रोमवासियोंके शोणित स्रोतसे रोममें बीभत्स दृश्य उपस्थित हुआ।

इस तरह [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] होकर, [illegible] [illegible] [illegible] हुआ। [illegible] [illegible] [illegible] हुआ, किंतु [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] होकर [illegible] ईसाके ८५ वर्ष पूर्व [illegible] [illegible] हुए। किंतु [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] हुआ। [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] हुआ और [illegible] [illegible] हुई। ईसाके ४८ वर्ष पूर्व [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] हुई। [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] गई। उसकी [illegible] एक कविता उसके [illegible] थी। उसका [illegible] है — "[illegible] [illegible] और [illegible] [illegible] है [illegible] [illegible] था।" उसके [illegible] [illegible] [illegible], [illegible] [illegible] [illegible] और [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] आता है। ये सब [illegible] हुए थे।

[illegible] [illegible] बाद [illegible] [illegible] [illegible] दिखाई देने लगी। [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] थी। ये सब [illegible] [illegible] [illegible] होने लगे। [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] किया। किंतु [illegible] [illegible] हुआ। [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] किया। [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] किया। [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] थी। ईसाके ४४ वर्ष पूर्व [illegible] [illegible] [illegible] और [illegible] हुआ। [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] किया। [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible], कि [illegible] [illegible] [illegible] [illegible]। किंतु [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] हुआ। [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible]

[illegible] एक [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] ([illegible]) [illegible] हो रहा था। [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] करता था। ईसाके ४१ वर्ष पूर्व [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] पर आ पहुँचा और [illegible] [illegible] करने लगा। [illegible] [illegible] [illegible] और [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] गये। [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] ३० [illegible] [illegible] [illegible] कर [illegible] [illegible] पर अधिकार कर लिया। यह ईसाके ३९ वर्ष पूर्वकी घटना है। [illegible] [illegible] [illegible] गये। [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] (४१ [illegible] पूर्व) [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] हुआ। [illegible] [illegible] हुआ और [illegible] [illegible] गया। [illegible] था। [illegible] [illegible] और [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] गये। [illegible] [illegible] [illegible] [illegible], फिर भी [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] किया। ईसाके ३४ वर्ष पूर्व [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] हुआ। इस समय [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible]।

[illegible] [illegible] ([illegible] ईसा पूर्व)

[illegible] था; किंतु [illegible] [illegible] [illegible] हुआ। [illegible] [illegible] [illegible] [illegible]

पर आक्रमण कर उसको तंग कर दिया था। उस समय निरुपाय हो कर मिथ्रिडेटिसने एक दल सैन्य संग्रह कर हेलिस नदीके किनारे मरेना पर आक्रमण किया। इस बार मरेना पराजित हो कर फ्रिजिया भागा। उस समय मिथ्रिडेटिसने कापाडोकिया आदि स्थानों पर अधिकार कर लिया। इस समय (८२ ईसाके पूर्व) गाबिनियासने सल्लाकी आज्ञासे एशिया जा कर मरेनासे युद्ध बन्द करने कहा। इस पर मिथ्रिडेटिसने पूर्व सन्धिकी शर्तोंके अनुसार कापाडोकिया छोड़ दिया और वह अपने घर लौट आया। इसी तरह दूसरे मिथ्रिडेटिसयुद्धका अन्त हुआ।

तीसरा या महामिथ्रिडेटिक युद्ध (७४ ६१ ई०के पू०)

मिथ्रिडेटिस रोमकोंकी अभिसन्धि ज्ञान कर भीतर ही भीतर युद्धकी तय्यारी करने लगा। मेरायास पक्षीय सेनापति स्पेनके सार्टारियास और हजारों जल-डाकू उसके दलमें आ मिले। इसी समय मिथ्राइनियाके राजा ३रे निकोमिडस अपनी मृत्युके समय अपना समूचा राज्य रोमके प्रजातन्त्रके नाम सौंपा गया। किंतु निकोमिडसकी नाइसा नाम्नी स्त्रीके गर्भसे उत्पन्न लड़केको गद्दी पर बैठानेके लिये मिथ्रिडेटिसने साहाय्य करने लगा। इसके सम्बन्धमें भीषण युद्ध हुआ।

रोमक सैनिक लुकालस और अरिलियासकट्टा उनके विरुद्ध युद्धके लिये भेजे गये। मिथ्रिडेटिसने पहले समूचे बिथाइनिया पर अधिकार कर लिया। अंतमें मिथ्रिडेटिसको पराजित किया और उसको सिजिकास नामक स्थानमें घेर कर खाद्य द्रव्यकी आमद रफत रोक दिया। उस समय वह अपने राज्यमें लौट आया। किंतु लुकालासने उसका पीछा कर उसको फिर पराजित किया। मिथ्रिडेटिसने अपने दामाद अर्मेनियाके राजा टाइग्रेनसके मिलित सैन्य ले कर रोमक-सेनापति फेरियासको सम्पूर्णरूपसे पराजित किया। इसके बाद (६७ ईसाके पूर्व) रोमक सेनाध्यक्ष, ट्रियारियस जिला नामक स्थानमें भयङ्कर युद्धमें पराजित हुआ। रोमकोंके क्षेमे और युद्धसामग्री शत्रुके हाथ लगीं।

इधर लुकालासके विपक्षियोंको रोममें प्राधान्यलाभ करने पर उन्होंने लुकालासको रणक्षेत्रसे लौट आनेकी आज्ञा भेज दी। उससे लुकालासकी सैन्य विद्रोही हो उठीं। इस अवसर पर मिथ्रिडेटिस और टाइग्रेनसने फिर पण्टास और कापाडोकिया पर अधिकार कर लिया। लुकालासके विपक्षियोंने उसके बदले ग्लब्रिओको कन्सल नियुक्त कर युद्धक्षेत्रमें भेजा। किन्तु वह शत्रुपक्षका कुछ भी बिगाड़ न सका। मिथ्रिडेटिस (६७ ईसाके पूर्व) फिर अपने सिंहासन पर बैठा। इसी समय पम्पी मिथ्रिडेटिस युद्धके सेनापति होनेके कारण लुकालासने अपना पद परित्याग किया।

जल डाकुओंके साथ युद्ध।

इस समय भूमध्यसागरके जल डकैतोंका उपद्रव बहुत बढ़ गया था। सिरिया, साइप्रस और क्रीतद्वीपके सभी आदमी इस काममें लिप्त थे। उन सबोंने व्यवसायिक जहाजोंको लूटने पाटनेसे बहुत धन संग्रह किया था। उनके पास एक हजार जङ्गीजहाज और बहुतेरी सुशिक्षित फौजें तथा मल्लाह थे। वे प्रबल-पराक्रान्त हो उठे थे। उन्होंने अस्टिया बन्दरमें कई रोमक जहाजोंको जला दिया तथा अण्टोनियासकी दुहिता तथा पुत्रको पकड़ लिया था। इस पर रोमसे मर्भिलियस युद्ध करनेके लिये भेजा गया। ईसाके ६७ वर्ष पूर्व ट्रिब्यून गेबिनियस "लेक्स गेबेनिया" नामका एक कानून बना कर भूमध्यसागरके युद्धादि-निर्वाह करनेके लिये एक क्षमताशाली शासनकर्त्ताके नियोगका नियम बनाया। इसके अनुसार २०० जङ्गीजहाजें तैयार हुए। पम्पी इन सब जहाजोंके अधिनायक बन कर युद्ध करने चला और ३ महीनेके भीतर उसने उन जल-डाकुओंको परास्त किया। २०००० जल डाकू घेर कर लिये गये। किन्तु पम्पीने इनको जानसे न मार कर इनसे एशिया-माइनर और अन्यान्य स्थानमें उपनिवेश स्थापित कराया। इसके बाद पम्पीने सिलिसिया नामक स्थानके जल-डाकुओंके सुरक्षित किलोंका ध्वंस किया। ईसाके ६६ वर्ष पूर्व ट्रिब्यून मनिलियसने 'लेक्समानिलिया' नामका कानून बना कर पम्पीको मिथ्रिडेटिक युद्धकी अध्यक्षता सौंपी। सिसिरो और जुलियस सीजरने पम्पीका पक्ष समर्थन किया था। समाचार पाते ही पम्पीने एशिया आ कर लुकालससे सेनापतित्व ग्रहण किया और कौशलसे पार्थिव नरपतिको हाथमें कर ससैन्य मिथ्रिडेटिसके

[illegible] किया था। [illegible] [illegible] था। किन्तु [illegible] [illegible] किया। [illegible] [illegible] और [illegible] हुआ। [illegible] [illegible] किया। किन्तु [illegible] [illegible] था। [illegible] [illegible] गया।

[illegible] किया। [illegible] [illegible] हो गया। [illegible] [illegible] किया। [illegible] ईसवी पूर्व [illegible] [illegible] और [illegible] [illegible] और [illegible] हुआ। [illegible] (५४६ ईसवी पूर्व)। किन्तु [illegible] किया। इसके बाद [illegible] [illegible] और [illegible] हुआ और [illegible] हुआ। [illegible] और [illegible] (५३९ ईसवी पूर्व) [illegible] और [illegible] [illegible] हुआ। [illegible] किया। किन्तु [illegible] [illegible]

[illegible] किया। [illegible] था। [illegible] [illegible] किया। [illegible] [illegible] था। [illegible] हो गई। [illegible] थी। [illegible] और [illegible] [illegible] और [illegible] किये। [illegible] गये।

[illegible] [illegible] और [illegible] थी। [illegible] हुई। [illegible] [illegible] किया। [illegible] हुआ। [illegible] किया था।

[illegible] (५२२ ई० पू०)

[illegible] [illegible] हुआ। [illegible] [illegible]

[illegible]

मर गई। इस शोकपूर्ण घटनासे उसने ओजस्वी भाषामें सर्व साधारणको सम्बोधित कर एक वक्तृता दी थी।

वह गेबिनियन और मानलियन कानूनका एक प्रधान पृष्ठपोषक था। ईसाके ६५ वर्ष पूर्व उसने मेरायासकी प्रतिमूर्त्ति छिप कर रात्रिमें केपिटालमें प्रतिष्ठित की। पहले यह प्रतिमूर्त्ति सल्ला द्वारा तोड़ी गई थी। सीजरके इस कामसे प्रजाने अत्यन्त आनन्दके साथ उसकी जय-ध्वनि की थी। केचेलासने इस घटनाका समाचार सेनेटमें कहा; किन्तु सेनेट आनन्दित प्रजाका कुछ बिगाड़ न सकी। इस तरह सीजर, मेरायास, सिल्ला और मार्टिनास आदिने प्रजापक्षीय वीरोंकी विलुप्त कीर्त्तियोंका पुनरुद्धार करने लगा।

इस समय मार्कास टाल्लियास सिसिरो सीजरके सहकर्म्मी रूपमें काम करने लगा। सिसिरोने ईसाके १०६ वर्ष पूर्व आर्पिनाम नगरमें जन्म लिया था और अपनी प्रतिभाके बलसे २५ वर्षकी अवस्थामें सेक्सरोसियासके प्राणदण्डकी आज्ञाके समय डिक्टेटर सल्लाके विरुद्ध ओजस्विनी भाषामें वक्तृता दे कर सर्व साधारणको उत्तेजित किया था।

इस समय रोममें कटलाइनकी साजिशका घोर आन्दोलन चल रहा था। अन्यान्य शत्रुपक्षसे रोम नगरको प्रजासमेत ध्वंस करनेके लिये वेष्टल कुमारियोंके साथ साजिश चल रही थी। कटलाइनने अरेलिया अरेष्टिला नाम्नी एक वेश्याके प्रेम-फांसमें पड़ कर अपनी पत्नी तथा पुत्रका वध कर दिया था। सिसिरोने रोमध्वंसकी साजिशको प्रकट किया। सिसिरोकी वक्तृताके फलसे साजिश करनेवालेको प्राणदण्ड हुआ था। ईसाके ६३ वर्ष पहले सिसिरोने कन्सल पद पाया। इसी समय एक ओरष्ट्रिब्यून, कन्सल रुलियासम्बन्धीय एक कानून बनानेकी चेष्टा कर रहे थे। दूसरी ओर कटलाइनकी दूसरी साजिशकी नयी विपद् प्रकट हुई। सिसिरोने जुपिटरके मन्दिरमें कटलाइनके विरुद्ध अभियोग उपस्थित कर ८वीं नवम्बरको सेनेटके सदस्योंकी एक सभा बुलाई। साजिश करनेवाले इस बार भी जानसे मारे गये। काटोलाइन अब सैन्य संग्रह कर रोम पर आक्रमण करनेकी चेष्टा कर रहे थे। ईसाके ६२ वर्ष पहले उसकी फौजोंके साथी कन्सलकी फौजोंका युद्ध हुआ। कटलाइन पराजित हुआ और मारा गया। सिसिरोके बुद्धिबलसे इस विपद्से रोम बच गया था। इसीलिये केटोने उसको "रोमका पिता" कहा था। सारे देवीमन्दिरमें सिसिरोके कल्याणके लिये पूजा हुई। किन्तु साजिश करनेवालोंको बिना विचार किये प्राणवध करने पर बहुतेरोंने सिसिरोको अपराधी बनाया।

पम्पी रोममें आ कर दो विपदमें फंसा। नया पक्ष या साधारण पक्ष—किस पक्षका अवलम्बन करूं—यह बात वह स्थिर न कर सका। फिर नये पक्षसे विद्वेषका लक्षण देख उसने साधारण पक्षका अवलम्बन लिया। उसने एशियाके युद्धमें विशिष्ट सेनापतियोंको जागीर देनेकी प्रतिज्ञा की थी इस समय सेनेटसे उसने प्रार्थना की, कि सेनापतियोंको जागीर दी जाय। किन्तु सेनेटने उसकी प्रार्थनाको नामंजूर कर दिया। अब पम्पी कौशलसे प्रतिज्ञा पूर्ण करनेकी चेष्टा करने लगा। इसलिये क्रासस और सीजरसे उसने मित्रता स्थापित की। सीजर इस समय स्पेन और ल्यूसेटानियाके युद्धमें विजय प्राप्त कर रोममें लौट आया और वह कन्सल नियुक्त किया गया। पम्पी, सीजर और क्रासस इन तीनोंकी मित्रता पहले 'ट्रायम्भिरेट' नामसे प्रसिद्ध है। यथार्थमें ये तीन पुरुष ही रोमके सार्वभौम मालिक हो उठे। किन्तु उस समय इनमें सीजरका प्राधान्य सबसे अधिक था। सीजरने कन्सल-पद प्राप्त कर पम्पीकी प्रार्थना पूरी की और कम्पिनियाके भूमिखण्डको पम्पीकी सेनाओंमें बांट दिया। सीजरकी मध्यस्थतामें सेनेटको बाध्य हो कर पम्पीके एशिया-विजय-कार्यका समर्थन करना पड़ा। इसके बाद सीजरने पम्पीके साथ मित्रता दृढ़ करनेके लिये अपनी दुहिताका विवाह पम्पीके साथ कर दिया। सीजर क्रमसे सब पक्षके लोगोंका प्रियपात्र हो उठा। सीजर रोम-साम्राज्यके प्राधान्यलाभ कर सैन्यबल बढ़ानेका उपाय सोचने लगा। इसके लिये उसने गल-प्रदेशके शासक पदके लिये प्रार्थना की। फल भी हुआ। ट्रिब्यून भेटिनियासकी अनुकूलतासे वह सिसाल्ट-पाइन-गल और इल्लिरिकम प्रदेशका शासक बना। ईसाके ५८ से ५४ वर्ष पूर्व तक वह इस पद पर था। यहां एक बड़ी

विरुद्ध स्थलपथसे यात्रा की। मिथ्रिडेटिसने सन्धिकी प्रार्थना की। किन्तु इस प्रार्थना पर पम्पीने जरा भी ध्यान न दिया। तब मिथ्रिडेटिस अर्मेनिया भागा और पम्पी द्वारा सम्पूर्णरूपसे पराजित हुआ। पीछे सिनोरियमके दुर्भेद्य दुर्गमें रह कर उसने फिर सैन्यसंग्रह कर लिया। किन्तु इस बार उसका दामाद टाइग्रेनसने उसकी सहायता न की। मिथ्रिडेटिस सैन्यके साथ यक्जीनसके निकटके अपने राज्यमें भाग गया।

पम्पीने उसका पीछा न कर टाइग्रेनस पर आक्रमण किया। टाइग्रेनसका पुत्र पितासे बगावत कर पम्पीकी ओर हो गया। साथ ही अर्मेनियाके सभी नगरवासियोंने पम्पीकी अधीनता स्वीकार कर ली। निरुपाय हो कर टाइग्रेनसने पम्पीके सामने आत्मसमर्पण किया। पम्पीने उसके साथ सद्व्यवहार कर ६००० टेलेण्ट ले कर उसको अर्मेनियाका राजा स्वीकार करना चाहा। सिरिया, फिनीशिया, सिलिशिया और कापाडोकिया रोमके अधिकारमें आया। पम्पीने इसके बाद मिथ्रिडेटिसके विरुद्ध यात्रा की। राहमें आइबेरियन और अल्बेनियनोंके साथ उसका युद्ध हुआ। दोनों जातियोंने उसकी वश्यता स्वीकार कर ली (६५ ईसाके पूर्व)। किन्तु मिथ्रिडेटिसका अनुसरण कष्टसाध्य समझ फिर लौट कर उसने पण्टासमें रोमक शासन कायम किया। इसके बाद पम्पी सिरियाराज्यके ध्वंसावशेषमें जो सब स्वाधीन राज्य उद्भूत हुआ था, उस पर अधिकार करने लगा। अन्तिओकस एशियाटिकस राज्यच्युत हुआ और उसका राज्य अधिकृत हुआ। इस तरह सारा सिरिया और उसके निकटके देशोंमें रोमक-शासन प्रतिष्ठित कर (६३ ई०के पू०) पम्पीने फिनिशिया और पलेस्टाइन देशमें यात्रा की। इस समय हिर्कानास और अरिष्टाबुलास नामक पेलेष्टाइनके पुरोहित दोनों नरपति युद्धमें प्रवृत्त हुए। पम्पीके हिर्कानासका पक्ष लेने से अरिष्टाबुलसने शीघ्र ही आत्मसमर्पण किया। किन्तु राजाके पराजित होने पर भी जेरुजेलमवासी यहूदी प्रजाने रोमकोंकी अधीनता स्वीकार न की। तीन मासके घेरेके बाद जेरुजेलम पर अधिकार हुआ। पम्पीने उस पवित्रतम मन्दिरमें (Holy of Holies) प्रवेश किया। इससे पहले पवित्र यहूदी पुरोहितके सिवा इस मन्दिरमें कोई घुस न सकता था। पम्पीने हिर्कानासको पुरोहितके सिंहासन पर प्रतिष्ठित कर अरिष्टबुलसको कैद कर रोमकी यात्रा की। इस समय उसको मिथ्रिडेटिसकी मृत्युका समाचार मिला। मिथ्रिडेटिस मृत्युके पहले विराट सैन्य दल संगठन कर हानिबलकी तरह इटली आक्रमणका संकल्प कर रहा था। इसी समय उसकी मृत्यु हो गई। उसके पुत्र फार्नासिसने कुछ दिनों तक विपक्षता की थी। पीछे उसने यक्जीनसका राजा बन रोमकी अधीनता स्वीकार कर ली और डियोटेरस, गेलेशिया और परिओ बार्जेनस कापोडोकियाका करद राजा बना। पम्पीने जीते हुए देशोंमें ३९ नये नगर प्रतिष्ठित किये। इसी समय रोमकी पूर्वी सीमा दूर तक फैली।

रोमके बाहरी प्रदेशोंमें रोमकी विजय वैजयन्ती फहराने पर भी विशेष कोई उन्नति नहीं हो सकी। गेबियन और मानिलियन कानूनों द्वारा सेनेटकी क्षमता कम हो गई थी। प्रजा अपनी अवनति देख कासेसकी मुखापेक्षी हुई। साधारण पक्षके मध्य रोममें जुलियस सीजरकी प्रतिभा व्याप्त हुई। वह रोममें प्रधानता लाभ कर गौरवपथ पर चढ़ने लगा। उसने ईसाके १०० वर्ष पूर्व जन्म लिया। वह पम्पीसे ६ वर्ष छोटा था। उसके चाचाकी पुत्री जुलियाके साथ विख्यात मेरायासका विवाह हुआ। सीजरने अपने सिन्नाकी कन्या कर्णिलियाके साथ विवाह किया था।

रोमका तत्कालिक इतिहास (६८-६१ ई० पूर्व)

सल्लाने सीजरकी प्रतिभा देख कर कहा था, कि एक दिन इस नये सम्प्रदायका प्राधान्य इस बालक द्वारा ही ह्रास होगा। सीजरने वक्तृताशक्तिमें भी बहुत प्रसिद्धि प्राप्त की थी। उसने रोड्सके अलङ्कारिकोंसे शिक्षा लाभ की थी। आपलोनियसने उसकी आराधना की थी। मेरायासके पक्षका पुनः जीवित करना ही सीजरका उद्देश्य था। अपने व्यवहारसे वह सर्वसाधारणका प्रियपात्र हो उठा था। ईसाके ६८वर्ष पूर्व उसने क्वेष्टरका पद प्राप्त किया। किन्तु इसी समय उसकी पत्नी कर्णिलिया और मेरायासकी विधवा पत्नी जुलिया

मर गई। इस शोकपूर्ण घटनासे उसने ओजस्वी भाषामें सर्व साधारणको सम्बोधित कर एक वक्तृता दी थी।

यह गेविनियन और मानलियन कानूनका एक प्रधान पृष्ठपोषक था। ईसाके ६५ वर्ष पूर्व उसने मेरायासकी प्रतिमूर्त्ति छिप कर रात्रिमें केपिटालमें प्रतिष्ठित की। पहले यह प्रतिमूर्त्ति सल्ला द्वारा तोड़ी गई थी। सीजरके इस काममे प्रजाने अत्यन्त आनन्दके साथ उसकी जय-ध्वनि की थी। केचेलासने इस घटनाका समाचार सेनेटमें कहा; किन्तु सेनेट आनन्दित प्रजाका कुछ बिगाड़ न सकी। इस तरह सीजर, मेरायास, सिल्ला और मार्टि-नास आदिने प्रजापक्षीय वीरोंकी विलुप्त कीर्त्तियोंका पुनरुद्धार करने लगा।

इस समय मार्कास टाल्लियास सिसिरो सीजरके सहकर्म्मी रूपमें काम करने लगा। सिसिरोने ईसाके १०६ वर्ष पूर्व आर्पिनाम नगरमें जन्म लिया था और अपनी प्रतिभाके बलसे २५ वर्षकी अवस्थामें सेक्सरोसियासके प्राणदण्डकी आज्ञाके समय डिक्टेटर सल्लाके विरुद्ध ओजस्विनी भाषामें वक्तृता दे कर सर्व साधारणको उत्तेजित किया था।

इस समय रोममें कटलाइनकी साजिशका घोर आन्दो-लन चल रहा था। अन्यान्य शत्रुपक्षसे रोम नगरको प्रजासमेत ध्वंस करनेके लिये वेष्टल कुमारियोंके साथ साजिश चल रही थी। कटलाइनने अरेलिया अरेष्टिला नाम्नी एक वेश्याके प्रेम-फांसमें पड़ कर अपनी पत्नी तथा पुत्रका वध कर दिया था। सिसिरोने रोमध्वंसकी साजिशको प्रकट किया। सिसिरोकी वक्तृताके फलसे साजिश करनेवालेको प्राणदण्ड हुआ था। ईसाके ६३ वर्ष पहले सिसिरोने कन्सल पद पाया। इसी समय एक ओरष्ट्रिन्ट्रन, कन्सल एग्रिसम्बन्धीय एक कानून बनाने-की चेष्टा कर रहे थे। दूसरी ओर कटलाइनकी दूसरी साजिशकी नयी विपद् प्रकट हुई। सिसिरोने जुपिटरके मन्दिरमें कटलाइनके विरुद्ध अभियोग उपस्थित कर ८वीं नवम्बरको सेनेटके सदस्योंकी एक सभा बुलाई। साजिश करनेवाले इस बार भी जानसे मारे गये। काटो-लाइन अब सैन्य संग्रह कर रोम पर आक्रमण करनेकी चेष्टा कर रहे थे। ईसाके ६२ वर्ष पहले उसकी फौजोंके साथी कन्सलकी फौजोंका युद्ध हुआ। कटलाइन परा-जित हुआ और मारा गया। सिसिरोके बुद्धिबलसे इस विपद्से रोम बच गया था। इसीलिये केटोने उसको "रोमका पिता" कहा था। सारे देवोमन्दिरमें सिसिरोके कल्याणके लिये पूजा हुई। किन्तु साजिश करनेवालोंको विना विचार किये प्राणवध करने पर बहुतेरोंने सिसिरोको अपराधी बनाया।

पम्पी रोममें आ कर ही विपद्में फंसा। नया पक्ष या साधारण पक्ष—किस पक्षका अवलम्बन करूं—यह बात वह स्थिर न कर सका। फिर नये पक्षसे विद्वेषका लक्षण देख उसने साधारण पक्षका अवलम्बन लिया। उसने एशियाके युद्धमें विशिष्ट सेनापतियोंको जागीर देनेकी प्रतिज्ञा की थी इस समय सेनेटसे उसने प्रार्थना की, कि सेनापतियोंको जागीर दी जाय। किन्तु सेनेटने उसकी प्रार्थनाको नामंजूर कर दिया। अब पम्पी कौशल-से प्रतिज्ञा पूर्ण करनेकी चेष्टा करने लगा। इसलिये क्रासस और सीजरसे उसने मित्रता स्थापित की। सीजर इस समय स्पेन और ल्युसेटानियाके युद्धमें विजय-प्राप्त कर रोममें लौट आया और वह कन्सल नियुक्त किया गया। पम्पी, सीजर और क्रासस इन तीनोंकी मित्रता पहले 'ट्रायम्विरेट' नामसे प्रसिद्ध है। यथार्थमें ये तीन पुरुष ही रोमके सार्वभौम मालिक हो उठे। किन्तु उस समय इनमें सीजरका प्राधान्य सबसे अधिक था। सीजरने कन्सल-पद प्राप्त कर पम्पीकी प्रार्थना पूरी की और कम्पिनियाके भूमिखण्डको पम्पीकी सेनाओंमें बांट दिया। सीजरकी मध्यस्थतामें सेनेटको बाध्य हो कर पम्पीके एशिया-विजय-कार्यका समर्थन करना पड़ा। इसके बाद सीजरने पम्पीके साथ मित्रता दृढ़ करनेके लिये अपनी दुहिताका विवाह पम्पीके साथ कर दिया। सीजर क्रमसे सब पक्षके लोगोंका प्रियपात्र हो उठा। सीजर रोम-साम्राज्यके प्राधान्यलाभ कर सैन्यबल बढ़ानेका उपाय सोचने लगा। इसके लिये उसने गल-प्रदेशके शासक पदके लिये प्रार्थना की। फल भी हुआ। ट्रिब्यून भेटिनियासकी अनुकूलतासे वह सिसाल-पाइन-गल और इल्लिरिकम प्रदेशका शासक बना। ईसाके ५८ से ५४ वर्ष पूर्व तक वह इस पद पर था। यहां एक बड़ी

विरुद्ध स्थलपथसे यात्रा की। मिथ्रिडेटिसने सन्धिकी प्रार्थना की। किन्तु इस प्रार्थना पर पम्पीने ज़रा भी ध्यान न दिया। तब मिथ्रिडेटिस आर्मेनिया भागा और पम्पी द्वारा सम्पूर्णरूपसे पराजित हुआ। पीछे सिनो-रियमके दुर्भेद्य दुर्गमें रह कर उसने फिर सैन्यसंग्रह कर लिया। किन्तु इस बार उसके जामाद टाइग्रेनसने उसकी सहायता न की। मिथ्रिडेटिस सैन्यके साथ बस्फोरसके निकटके अपने राज्यमें भाग गया।

पम्पीने उसका पीछा न कर टाइग्रेनस पर आक्रमण किया। टाइग्रेनसका पुत्र पितासे बगावत कर पम्पीकी ओर हो गया। साथ ही आर्मेनियाके सभी नगरवासियों ने पम्पीकी अधीनता स्वीकार कर ली। निरुपाय हो कर टाइग्रेनसने पम्पीके सामने आत्मसमर्पण किया। पम्पी-ने उसके साथ सद्व्यवहार कर ६००० टेलेण्ट ले कर उसको आर्मेनियाका राजा स्वीकार करना चाहा। सिरिया, फिनीकिया, सिलिशिया और कापाडोकिया रोमके अधि-कारमें आया। पम्पीने इसके बाद मिथ्रिडेटिसके विरुद्ध यात्रा की। राहमें आइबेरियन और अलबेनियनोंके साथ उसका युद्ध हुआ। दोनों जातियोंने उसकी वश्यता स्वीकार कर ली (६५ ईसाके पूर्व)। किन्तु मिथ्रिडे-टिसका अनुसरण कष्टसाध्य समझ फिर लौट कर उसने पण्टासमें रोमक शासन कायम किया। इसके बाद पम्पी सिरियाराज्यके ध्वंसावशेषमें जो सब स्वाधीन राज्य उद्भूत हुआ था, उन पर अधिकार करने लगा। अन्ति-ओकस एशियाटिकस राज्यच्युत हुआ और उसका राज्य अधिकृत हुआ। इस तरह सारा सिरिया और उसके निकटके देशोंमें रोमक-शासन प्रतिष्ठित कर (६३ ई०के पू०) पम्पीने फिनिकिया और पलेस्टाइन देशमें यात्रा की। इस समय हिर्कानास और अरिष्टा-बुलास नामक पेलेस्टाइनके पुरोहित दोनों नरपति युद्धमें प्रवृत्त हुए। पम्पीके हिर्कानासका पक्ष लेने से अरिष्टा-बुलसने शीघ्र ही आत्मसमर्पण किया। किन्तु राजाके पराजित होने पर भी जेरुजेलमवासी यहूदी प्रजाने रोमकोंकी अधीनता स्वीकार न की। तीन मासके घेरेके बाद जेरुजेलम पर अधिकार हुआ। पम्पीने उस पवित्र-तम मन्दिरमें (Holy of Holies) प्रवेश किया। इसमें पहले पवित्र यहूदी पुरोहितके सिवा इस मन्दिरमें कोई घुस न सकता था। पम्पीने हिर्कानासको पुरोहितके सिंहासन पर प्रतिष्ठित कर अरिष्टबुलसको कैद कर रोम-की यात्रा की। इस समय उसको मिथ्रिडेटिसकी मृत्युका समाचार मिला। मिथ्रिडेटिस मृत्युके पहले विराट सैन्य दल संगठन कर हानिबलकी तरह इटली आक्रमणका संकल्प कर रहा था। इसी समय उसकी मृत्यु हो गई। उसके पुत्र फार्नासिसने कुछ दिनों तक विपक्षता की थी। पीछे उसने बस्फोरसका राजा बन रोमकी अधीनता स्वीकार कर ली और डिमो-टेरस, गेलेशिया और परिओ यार्जेनस कापोडोकियाका करद राजा बना। पम्पीने जीते हुए देशोंमें ३९ नये नगर प्रतिष्ठित किये। इसी समय रोमकी पूर्वी सीमा दूर तक फैली।

रोमके बाहरी प्रदेशोंमें रोमकी विजय वैजयन्ती फह-राने पर भी विशेष कोई उन्नति नहीं हो सकी। गेबियन और मानिलियन कानूनों द्वारा सेनेटकी क्षमता कम हो गई थी। प्रजा अपनी अवनति देख पम्पीकी मुखापेक्षी हुई। साधारण पक्षके मध्य रोममें जुलियस सीज़रकी प्रतिभा व्याप्त हुई। यह रोममें प्रधानता लाभ कर गौरव-पथ पर चढ़ने लगा। उसने ईसाके १०० वर्ष पूर्व जन्म लिया। यह पम्पीसे ६ वर्ष छोटा था। उसके चाचाकी पुत्री जुलियाके साथ विख्यात मेरायासका विवाह हुआ। सीज़रने अपने सिन्नाकी कन्या कर्नेलियाके साथ विवाह किया था।

रोमका तत्कालिक इतिहास (६९-६१ ई० पूर्व)

सल्लाने सीज़रकी प्रतिभा देख कर कहा था, कि एक दिन इस नये सम्प्रदायका प्राधान्य इस बालक द्वारा ही ह्रास होगा। सीज़रने वक्तृताशक्तिमें भी बहुत प्रसिद्धि प्राप्त की थी। उसने रोड्सके अलङ्कारिकोंसे शिक्षा लाभ की थी। आपलोनियसने उसकी सहायता की थी। मेरायासके पक्षका पुनः जीवित करना ही सीज़रका उद्देश्य था। अपने व्यवहारसे यह सर्वसाधा-रणका प्रियपात्र हो उठा था। ईसाके ६८वर्ष पूर्व उसने क्वेस्टरका पद प्राप्त किया। किन्तु इसी समय उसकी पत्नी कर्नेलिया और मेरायासकी विधवा पत्नी जुलिया

मर गई। इस शोकपूर्ण घटनासे उसने ओजस्वी भाषामें सर्व साधारणको सम्बोधित कर एक वक्तृता दी थी।

वह गेविनियन और मानलियन कानूनका एक प्रधान पृष्ठपोषक था। ईसाके ६५ वर्ष पूर्व उसने मेरायासकी प्रतिमूर्त्ति छिप कर रात्रिमें केपिटालमें प्रतिष्ठित की। पहले यह प्रतिमूर्त्ति सल्ला द्वारा तोड़ी गई थी। सीजरके इस कामसे प्रजाने अत्यन्त आनन्दके साथ उसकी जय-ध्वनि की थी। केचेलासने इस घटनाका समाचार सेनेटमें कहा; किन्तु सेनेट आनन्दित प्रजाका कुछ बिगाड़ न सकी। इस तरह सीजर, मेरायास, सिल्ला और मार्टिनास आदिने प्रजापक्षीय वीरोंकी विलुप्त कीर्त्तियोंका पुनरुद्धार करने लगा।

इस समय मार्कास टालियास सिसिरो सीजरके सहकर्म्मी रूपमें काम करने लगा। सिसिरोने ईसाके १०६ वर्ष पूर्व आर्पिनाम नगरमें जन्म लिया था और अपनी प्रतिभाके बलसे २५ वर्षकी अवस्थामें सेक्सटोसियासके प्राणदण्डकी आज्ञाके समय डिक्टेटर सल्लाके विरुद्ध ओजस्विनी भाषामें वक्तृता दे कर सर्व साधारणको उत्तेजित किया था।

इस समय रोममें कटलाइनकी साजिशका घोर आन्दोलन चल रहा था। अन्यान्य शत्रुपक्षसे रोम नगरको प्रजासमेत ध्वंस करनेके लिये वेष्टल कुमारियोंके साथ साजिश चल रही थी। कटलाइनने अरेलिया अरेष्टिला नाम्नी एक वेश्याके प्रेम-फांसमें पड़ कर अपनी पत्नी तथा पुत्रका वध कर दिया था। सिसिरोने रोमध्वंसकी साजिशको प्रकट किया। सिसिरोकी वक्तृताके फलसे साजिश करनेवालेको प्राणदण्ड हुआ था। ईसाके ६३ वर्ष पहले सिसिरोने कन्सल पद पाया। इसी समय एक ओरथ्रिबिउन, कन्सल छविसाम्बन्धीय एक कानून बनानेकी चेष्टा कर रहे थे। दूसरी ओर कटलाइनकी दूसरी साजिशकी नयी विपद् प्रकट हुई। सिसिरोने जुपिटरके मन्दिरमें कटलाइनके विरुद्ध अभियोग उपस्थित कर ८वीं नवम्बरको सेनेटके सदस्योंकी एक सभा बुलाई। साजिश करनेवाले इस बार भी जानसे मारे गये। काटोलाइन अब सैन्य संग्रह कर रोम पर आक्रमण करनेकी चेष्टा कर रहे थे। ईसाके ६२ वर्ष पहले उसकी फौजोंके साथी कन्सलकी फौजोंका युद्ध हुआ। कटलाइन पराजित हुआ और मारा गया। सिसिरोके बुद्धिबलसे इस विपद्से रोम बच गया था। इसीलिये केटोने उसको "रोमका पिता" कहा था। सारे देवोमन्दिरमें सिसिरोके कल्याणके लिये पूजा हुई। किन्तु साजिश करनेवालोंको बिना विचार किये प्राणवध करने पर बहुतेरोंने सिसिरोको अपराधी बनाया।

पम्पी रोममें आ कर दो विपद्में फंसा। नया पक्ष या साधारण पक्ष—किस पक्षका अवलम्बन करूं—यह बात वह स्थिर न कर सका। फिर नये पक्षसे विद्वेषका लक्षण देख उसने साधारण पक्षका अवलम्बन लिया। उसने एशियाके युद्धमें विशिष्ट सेनापतियोंको जागीर देनेकी प्रतिज्ञा की थी इस समय सेनेटसे उसने प्रार्थना की, कि सेनापतियोंको जागीर दी जाय। किन्तु सेनेटने उसकी प्रार्थनाको नामंजूर कर दिया। अब पम्पी कौशलसे प्रतिज्ञा पूर्ण करनेकी चेष्टा करने लगा। इसलिये क्रासस और सीजरसे उसने मित्रता स्थापित की। सीजर इस समय स्पेन और ल्यूसेटानियाके युद्धमें विजय-प्राप्त कर रोममें लौट आया और वह कन्सल नियुक्त किया गया। पम्पी, सीजर और क्रासस इन तीनोंकी मित्रता पहले 'ट्रायम्विरेट' नामसे प्रसिद्ध है। यथार्थमें ये तीन पुरुष ही रोमके सार्वभौम मालिक हो उठे। किन्तु उस समय इनमें सीजरका प्राधान्य सबसे अधिक था। सीजरने कन्सल-पद प्राप्त कर पम्पीकी प्रार्थना पूरी की और कम्पिनियाके भूमिखण्डको पम्पीकी सेनाओंमें बांट दिया। सीजरकी मध्यस्थतामें सेनेटको बाध्य हो कर पम्पीके एशिया-विजय-कार्यका समर्थन करना पड़ा। इसके बाद सीजरने पम्पीके साथ मित्रता दृढ़ करनेके लिये अपनी दुहिताका विवाह पम्पीके साथ कर दिया। सीजर क्रमसे सब पक्षके लोगोंका प्रियपात्र हो उठा। सीजर रोम-साम्राज्यके प्राधान्यलाभ कर सैन्यबल बढ़ानेका उपाय सोचने लगा। इसके लिये उसने गल-प्रदेशके शासक पदके लिये प्रार्थना की। फल भी हुआ। ट्रिब्यून भेटिनियासकी अनुकूलतासे वह सिसाल-पाइनगल और इल्लिरिकम प्रदेशका शासक बना। ईसाके ५८ से ५४ वर्ष पूर्व तक वह इस पद पर था। यहां एक बड़ी

विरुद्ध स्थलपथसे यात्रा की। मिथ्रिडेटिसने सन्धिकी प्रार्थना की। किन्तु इस प्रार्थना पर पम्पीने ज़रा भी ध्यान न दिया। तब मिथ्रिडेटिस आर्मेनिया भागा और पम्पी द्वारा सम्पूर्णरूपसे पराजित हुआ। पीछे सिनोरियमके दुर्भेद्य दुर्गमें रह कर उसने फिर सैन्यसंग्रह कर लिया। किन्तु इस बार उसका दामाद टाइग्रेनसने उसकी सहायता न की। मिथ्रिडेटिस सैन्यके साथ पन्टीकसके निकटके अपने राज्यमें भाग गया।

पम्पीने उसका पीछा न कर टाइग्रेनस पर आक्रमण किया। टाइग्रेनसका पुत्र पितासे बगावत कर पम्पीकी ओर हो गया। साथ ही आर्मेनियाके सभी नगरवासियों ने पम्पीकी अधीनता स्वीकार कर ली। निरुपाय हो कर टाइग्रेनसने पम्पीके सामने आत्मसमर्पण किया। पम्पीने उसके साथ सद्व्यवहार कर ६००० टैलेण्ट ले कर उसको आर्मेनियाका राजा स्वीकार करना चाहा। सिरिया, फिनीकिया, सिलिसिया और कापाडोकिया रोमके अधिकारमें आया। पम्पीने इसके बाद मिथ्रिडेटिसके विरुद्ध यात्रा की। राहमें आइबेरियन और अल्बेनियनोंके साथ उसका युद्ध हुआ। दोनों जातियोंने उसकी वश्यता स्वीकार कर ली (६५ ईसाके पूर्व)। किन्तु मिथ्रिडेटिसका अनुसरण कष्टसाध्य समझ फिर लौट कर उसने पन्टासमें रोमक शासन कायम किया। इसके बाद पम्पी सिरियाराज्यके ध्वंसावशेषमें जो सब स्वाधीन राज्य उद्भूत हुआ था, उन पर अधिकार करने लगा। अन्तिओकस एशियाटिकस राज्यच्युत हुआ और उसका राज्य अधिकृत हुआ। इस तरह सारा सिरिया और उसके निकटके देशोंमें रोमक-शासन प्रतिष्ठित कर (६३ ई०के पू०) पम्पीने फिनिकिया और पलेस्टाइन देशमें यात्रा की। इस समय हिर्कोनास और अरिष्टाबुलास नामक पेलेस्टाइनके पुरोहित दोनों नरपति युद्धमें प्रवृत्त हुए। पम्पीके हिर्कोनासका पक्ष लेने से अरिष्टाबुलसने शीघ्र ही आत्मसमर्पण किया। किन्तु राजाके पराजित होने पर भी जेरूसेलमवासी यहूदी प्रजाने रोमकोंकी अधीनता स्वीकार न की। तीन मासके घेरेके बाद जेरूसेलम पर अधिकार हुआ। पम्पीने उस पवित्रतम मन्दिरमें (Holy of Holies) प्रवेश किया। इसमें पहले पवित्र यहूदी पुरोहितके सिवा इस मन्दिरमें कोई घुस न सकता था। पम्पीने हिर्कोनासको पुरोहितके सिंहासन पर प्रतिष्ठित कर अरिष्टाबुलसको कैद कर रोमकी यात्रा की। इस समय उसको मिथ्रिडेटिसकी मृत्युका समाचार मिला। मिथ्रिडेटिस मृत्युके पहले विराट सैन्य दल संगठन कर हानिबलकी तरह इटली आक्रमणका संकल्प कर रहा था। इसी समय उसकी मृत्यु हो गई। उसके पुत्र फार्नासिसने कुछ दिनों तक विपक्षता की थी। पीछे उसने पन्टीकसका राजा बन रोमकी अधीनता स्वीकार कर ली और थ्रिओडेरस, गेलेशिया और परिओ यार्जेनस कापोडोकियाका करद राजा बना। पम्पीने जीते हुए देशोंमें ३९ नये नगर प्रतिष्ठित किये। इसी समय रोमकी पूर्वी सीमा दूर तक फैली।

रोमके बाहरी प्रदेशोंमें रोमकी विजय वैजयन्ती फहराने पर भी विशेष कोई उन्नति नहीं हो सकी। गेबियन और मानिलियन कानूनों द्वारा सेनेटकी क्षमता कम हो गई थी। प्रजा अपनी अवनति देख क्रासेसकी मुखापेक्षी हुई। साधारण पक्षके मध्य रोममें जुलियस सीज़रकी प्रतिभा व्याप्त हुई। वह रोममें प्रधानता लाभ कर गौरवपथ पर चढ़ने लगा। उसने ईसाके १०० वर्ष पूर्व जन्म लिया। वह पम्पीसे ६वर्ष छोटा था। उसके चाचाकी पुत्री जुलियाके साथ विख्यात मेरियासका विवाह हुआ। सीज़रने अपने सिन्नाकी कन्या कर्नीलियाके साथ विवाह किया था।

रोमका तत्कालिक इतिहास (६९-६१ ई० पूर्व)

सल्लाने सीज़रकी प्रतिभा देख कर कहा था, कि एक दिन इस नये सम्प्रदायका प्राधान्य इस बालक द्वारा ही ह्रास होगा। सीज़रने वक्तृताशक्तिमें भी बहुत प्रसिद्धि प्राप्त की थी। उसने रोड्सके अलंकारिकोंसे शिक्षा लाभ की थी। आपलोनियसने उसकी आराधना की थी। मेरियासके पक्षका पुनः जीवित करना ही सीज़रका उद्देश्य था। अपने व्यवहारसे वह सर्वसाधारणका विश्वास हो उठा था। ईसाके ६८वें पूर्व उसने क्वीयेष्टर पद प्राप्त किया। किन्तु इसी समय उसकी पत्नी कर्नीलिया और मेरियासकी विधवा पत्नी जुलिया

मर गई। इस शोकपूर्ण घटनासे उसने ओजस्वी भाषामें सर्व साधारणको सम्बोधित कर एक वक्तृता दी थी।

वह गेबिनियन और मानलियन कानूनका एक प्रधान पृष्ठपोषक था। ईसाके ६५ वर्ष पूर्व उसने मेरायासकी प्रतिमूर्त्ति छिप कर रात्रिमें केपिटालमें प्रतिष्ठित की। पहले यह प्रतिमूर्त्ति सला द्वारा तोड़ी गई थी। सीजरके इस कामसे प्रजाने अत्यन्त आनन्दके साथ उसकी जय-ध्वनि की थी। केचेलासने इस घटनाका समाचार सेनेटमें कहा; किन्तु सेनेट आनन्दित प्रजाका कुछ बिगाड़ न सकी। इस तरह सीजर, मेरायास, सिला और मार्टिनास आदिने प्रजापक्षीय वीरोंकी विलुप्त कीर्त्तियोंका पुनरुद्धार करने लगा।

इस समय मार्कास टालियास सिसिरो सीजरके सहकर्मी रूपमें काम करने लगा। सिसिरोने ईसाके १०६ वर्ष पूर्व आर्पिनाम नगरमें जन्म लिया था और अपनी प्रतिभाके बलसे २५ वर्षकी अवस्थामें सेक्सरोसियासके प्राणदण्डकी आज्ञाके समय डिक्टेटर सल्लाके विरुद्ध ओजस्विनी भाषामें वक्तृता दे कर सर्व साधारणको उत्तेजित किया था।

इस समय रोममें कटलाइनकी साजिशका घोर आन्दोलन चल रहा था। अन्यान्य शत्रुपक्षसे रोम नगरको प्रजासमेत ध्वंस करनेके लिये वेष्टल कुमारियोंके साथ साजिश चल रही थी। कटलाइनने अरेलिया ओरेष्टिला नाम्नी एक वेश्याके प्रेम-फांसमें पड़ कर अपनी पत्नी तथा पुत्रका वध कर दिया था। सिसिरोने रोमध्वंसकी साजिशको प्रकट किया। सिसिरोकी वक्तृताके फलसे साजिश करनेवालेको प्राणदण्ड हुआ था। ईसाके ६३ वर्ष पहले सिसिरोने कन्साल पद पाया। इसी समय एक ओरफ्रिङ्गन, कन्साल रुलिसाम्यन्धीय एक कानून बनानेकी चेष्टा कर रहे थे। दूसरी ओर कटलाइनकी दूसरी साजिशकी नयी विपद् प्रकट हुई। सिसिरोने जुपिटरके मन्दिरमें कटलाइनके विरुद्ध अभियोग उपस्थित कर ८वीं नवम्बरको सेनेटके सदस्योंकी एक सभा बुलाई। साजिश करनेवाले इस बार भी जानसे मारे गये। काटोलाइन अब सैन्य संग्रह कर रोम पर आक्रमण करनेकी चेष्टा कर रहे थे। ईसाके ६२ वर्ष पहले उसकी फौजोंके साथी कन्सलकी फौजोंका युद्ध हुआ। कटलाइन पराजित हुआ और मारा गया। सिसिरोके बुद्धिबलसे इस विपद्से रोम बच गया था। इसीलिये केटोने उसको "रोमका पिता" कहा था। सारे देवोमन्दिरमें सिसिरोके कल्याणके लिये पूजा हुई। किन्तु साजिश करनेवालोंको बिना विचार किये प्राणवध करने पर बहुतेरोंने सिसिरोको अपराधी बनाया।

पम्पी रोममें आ कर दो विपद्में फंसा। नया पक्ष या साधारण पक्ष—किस पक्षका अवलम्बन करूं—यह बात वह स्थिर न कर सका। फिर नये पक्षसे विद्वेषका लक्षण देख उसने साधारण पक्षका अवलम्बन लिया। उसने एशियाके युद्धमें विशिष्ट सेनापतियोंको जागीर देनेकी प्रतिज्ञा की थी इस समय सेनेटसे उसने प्रार्थना की, कि सेनापतियोंको जागीर दी जाय। किन्तु सेनेटने उसकी प्रार्थनाको नामंजूर कर दिया। अब पम्पी कौशलसे प्रतिज्ञा पूर्ण करनेकी चेष्टा करने लगा। इसलिये क्रासस और सीजरसे उसने मित्रता स्थापित की। सीजर इस समय स्पेन और ल्यूसेटानियाके युद्धमें विजय-प्राप्त कर रोममें लौट आया और वह कन्सल नियुक्त किया गया। पम्पी, सीजर और क्रासस इन तीनोंकी मित्रता पहले 'ट्रायम्विरेट' नामसे प्रसिद्ध है। यथार्थमें ये तीन पुरुष ही रोमके सार्वभौम मालिक हो उठे। किन्तु उस समय इनमें सीजरका प्राधान्य सबसे अधिक था। सीजरने कन्सल-पद प्राप्त कर पम्पीकी प्रार्थना पूरी की और काम्पिनियाके भूमिखण्डको पम्पीकी सेनाओंमें बांट दिया। सीजरकी मध्यस्थतामें सेनेटको बाध्य हो कर पम्पीके एशिया-विजय-कार्यका समर्थन करना पड़ा। इसके बाद सीजरने पम्पीके साथ मित्रता दृढ़ करनेके लिये अपनी दुहिताका विवाह पम्पीके साथ कर दिया। सीजर क्रमसे सब पक्षके लोगोंका प्रियपात्र हो उठा। सीजर रोम-साम्राज्यके प्राधान्यलाभ कर सैन्यबल बढ़ानेका उपाय सोचने लगा। इसके लिये उसने गल-प्रदेशके शासक पदके लिये प्रार्थना की। फल भी हुआ। ट्रिब्यून भेटिनियासकी अनुकूलतासे वह सिसाल-पाइन-गल और इल्लिरिकम प्रदेशका शासक बना। ईसाके ५८ से ५४ वर्ष पूर्व तक वह इस पद पर था। वहां एक बड़ी

विशाल सैन्य सुशिक्षित करने लगा। जिन गलोंने एक दिन इटलीका बहुत अनिष्ट किया था, उन गलोंका वह दमन करनेकी बात सोचने लगा।

उक्त त्रयवीर समिति या ट्रायम्बरेटके बुलाने पर सिसिरो उनके दलमें सम्मिलित नहीं हुआ। इसलिये ट्रिब्यून क्लोडियासने सिसिरोसे शत्रुताचरण करनेकी चेष्टा की। ईसाके ६२ वर्ष पूर्व सीज़रकी स्त्रीका "बोना डिया" महोत्सवमें पुरुषोंका आना निषेध रहने पर भी क्लोडियास स्त्री वेशमें स्त्री मण्डलीमें घुस गया था। क्लोडियासके अभियोगके सम्बन्धमें सिसिरोकी गवाही देने पर उनके साथ विरोधका कारण उपस्थित हुआ। विचारकोंके अविचारसे क्लोडियसको छुटकारा मिला था। क्लोडियसने एक कानून बनाया, कि जिसने बिना मामला चलाये रोमकोंको फांसी दिलवाया है, वह निर्वासित किया जायगा। इसलिये सिसिरो रोम छोड़ कर यूनान चला गया। यह ईसाके ५८ वर्ष पूर्वकी घटना है। इस कार्यमें क्लोडियसने त्रयवीर-समितिकी राय नहीं ली। पहले पम्पी द्वारा कैद टाइग्रेनसको छोड़ देनेके फलसे पम्पीके साथ उसकी शत्रुता उत्पन्न हुई। पम्पीने इसका बदला चुकानेके लिये यह चेष्टा की, कि किसी तरह सिसिरो फिर रोममें बुला लिया जाय। पम्पीकी मनस्कामना पूर्ण हुई। सेनेटने उसको बुलानेके लिये दूत भेजा और ईश्वरकी कृपासे वह एक बार फिर रोम लौट आया। रोममें सिसिरोके लौटने पर उसकी कल्याण-कामनाके लिये जुपिटर-मन्दिरमें पूजा चढ़ाई गई। यह ४थी सितम्बर सन् ५७ ईसाके पूर्वकी घटना है।

सीज़रकी चौथी यात्रा (५५ वर्ष ईसाके पूर्व)।

ईसाके ५६ वर्ष पूर्व सीज़रने वृटानी प्रदेशमें भेनेटी जातिके विरुद्ध यात्रा की और वहांसे वैल्ले और मोरन प्रदेशोंके निकटके मरिनी और मेनापाई जातियोंके दुर्भेद्य दुर्गों पर अधिकार कर लिया। सीज़र राइन नदीके किनारे केल्टिक जातिके साथ युद्धमें लिप्त हुआ। इस युद्धमें जर्मनोंको सीज़रने पूर्णरूपसे पराजित किया। अनन्तर सीज़रने दस ही दिनोंमें राइन नदी पर एक पुल तैयार कर राइन नदीको पार किया। वहांसे लौट कर मोरन और मेनाप्पी नामक स्थानके अधिवासियोंको हरा कर रोममें वह लौट आया। सीज़र इसी समय वृटेन पर आक्रमण करनेका सङ्कल्प कर कैलेके निकटवर्ती इटियास नामक स्थानमें जहाज पर चढ़ कर साउथ फोरलैण्ड नामक स्थानमें उतरा। वृटेन वीर-पराक्रमसे युद्ध करके भी पराजित हुए।

सीज़रकी पांचवीं और छठीं यात्रा (ईसाके ५४ वर्ष पूर्व)।

इस बार ५ लीजन ले कर सीज़र वृटेनमें आया। वृटन मिडलसेक्स और एसेक्स प्रदेशके अधिपति कैसिवेलनासको सेनापति बना कर युद्ध करने लगे। वृटेन कई युद्धोंमें पराजित हुए। उन्होंने रोमक गेवों पर आक्रमण किया सही; किन्तु वे सीज़रके साथ युद्धमें पराजित हो कर भाग गये। किन्तु शीघ्र ही विद्रोही हो कर वे स्वाधीनताकी चेष्टा करने लगे और बहुतेरे रोमक सैनिकोंको उन्होंने मार डाला। सीज़रने सिसालपाइन गलसे दो दल सैनिक एकत्र कर गलोंको पराजित कर फिर विद्रोहियोंको अपने वशमें किया। जर्मनोंने गलोंका साहाय्य किया था। इससे सीज़रने फिर राइन नदी पार कर जर्मनोंको हराया। गलोंने फिर रोमकोंके विरुद्ध प्रबलवेगसे अस्त्र धारण किया।

सीज़रकी ७वीं यात्रा (ईसाके ५२ वर्ष पूर्व)।

भर्सिञ्जेटोरिक्स नामक एक प्रसिद्ध वीर गलोंका सेनापति बना। इसके प्रबल-प्रतापके कारण सीज़रके ६ वर्षोंकी विजयविभूति पर पानी फिर जानेका उपक्रम हो गया था। गलोंका यह सेनापति बर्गाण्डी प्रदेशके एलेसिया नगरके किलेमें जा कर ठहरा। बहुतेरे गल-सैनिकोंने रोमक सैनिकोंको घेर लिया। इस विपद्के समय सीज़रने अद्भुत साहस तथा अतुल बल-विक्रमसे गलोंको छिन्न भिन्न कर दिया। एलेसिया सीज़रके अधिकारमें आ गया। गलोंके सेनापति कैद कर लिया गया।

सीज़रकी ८वीं यात्रा (५१ ईसाके पूर्व)।

सीज़रने इस यात्रामें समूचे गल देश पर अधिकार कर यहां रोमक-शासनकी प्रतिष्ठा की। प्रत्येक प्रदेशमें शासन-व्यवस्था और 'कर' निर्धारित कर वह रोम लौट आनेको तैयार हुआ। इस तरह नौ वर्ष तक लगातार

युद्ध कर सीज़रने रोम-साम्राज्यकी उत्तरी सीमाको बहुत दूर तक बढ़ा दिया।

ईसाके ५४ वर्ष पहले क्रासस पार्थिव राजाओंके साथ युद्ध करनेके लिये सिरिया गया। किन्तु मूर्खतावश २०००० रोमक उनके हाथ पराजित हुए तथा मारे गये। उनके कटे शिर पार्थिव-राजके दरबारमें भेजे गये। क्राससकी मृत्युसे पम्पी और सीज़र रोमके अधिनायक थे। कुछ ही समयमें इन दोनोंमें परस्पर विद्वेष हो गया। सीज़रकी कन्या और पम्पीकी पत्नी जुलियाकी मृत्युसे इनका सम्बन्ध और भी क्षीण हो गया। सभीके मुंहसे सीज़रकी गल-विजयकी बात पम्पीको असह्य हो गई थी। इसके बाद पम्पी डिक्टेटरका पद प्राप्त कर सार्वभौम आधिपत्य-लाभ करनेकी चेष्टा करने लगा।

इस समय बड़ी अराजकता फैली। माइलोने कन्सल हो कर क्लडियसको मार डाला। सीज़रकी कन्या जुलियाके मर जानेके बाद पम्पीने मेटेलस सिपिओकी कन्या कर्णिलियासे विवाह किया। अपने श्वसुरको शीघ्र ही उसने कन्सल पद पर नियुक्त किया। किन्तु सीज़रको कन्सल-पदका प्रार्थी होना देख कर पम्पीने एक कानून बनाया। इसके अनुसार किसी भी पदके प्रार्थीको रोममें रह कर उसे पद प्राप्तिकी प्रार्थना करनी होगी। कोई भी नियुक्तिकी तारीखसे ५ वर्षसे अधिक एक प्रदेशमें शासक न रह सकेगा। इसी समय सिपिओने एक आज्ञा प्रचारित की, कि "सीज़र अमुक दिनको अपने पदसे इस्तेफा दाखिल न करेगा, तो वह रोमका शत्रु समझा जायेगा।" सेनेटने नव-नियुक्त कन्सलोंको डिक्टेटरकी क्षमता प्रदान की सही; किन्तु ट्रिब्यून आण्टोनियस और कासीओ इसके विरुद्ध आज्ञाका प्रतिवाद करनेसे रोमसे निकाले गये। इसके बाद गुप्तरूपसे सीज़रके खेमेमें जा कर उन्होंने उससे सहायता मांगी। फलतः फिर एक बार गृह-विवाद उठ खड़ा हुआ। सेनेटने पम्पीको सेनापति बनाया।

गृहयुद्ध (ईसाके ४९-४४ वर्ष पूर्व)।

सीज़रने सेनेटका दृढ़ सङ्कल्प देख सैन्य-समावेश कर उन सैन्योंका मत जानना चाहा। फौजोंने एक वाक्यसे उसकी आज्ञा पालन करनेकी प्रतिज्ञा की। यह इटलीकी उत्तरी सीमाकी रुबिकन नदीको पार कर थोड़े सैनिकोंको ले इटलीकी ओर तेजीसे दौड़ा। सीज़र-विजय प्राप्त करते करते पिसेनामको पीछे छोड़ कर्फिनियाममें पहुंचा। इसी स्थानमें पम्पीका सेनापति सदलबल खड़ा था। पम्पीका सेनापति अहेनोबार्बास, बहुतेरे सेनेटके सदस्य और कई प्रसिद्ध व्यक्ति कैद कर लिये गये। सीज़रने इन पर कठोरताका व्यवहार नहीं किया। इससे सीज़र पर साधारणका भाव अच्छा हो गया।

सीज़रके बारंबार जीतने पर पम्पी तथा प्रजातन्त्रके प्रतिनिधि भयभीत हो किंकर्तव्यविमूढ़ हो गये। सन्ध्याके घनान्धकारमें पम्पी रोम छोड़ कर भाग गया। भयसे वह खज़ानेसे धन तक लेना भूल गया। कन्सल, सेनेटके सदस्य और बहुतेरे विख्यात मनुष्य भी पम्पीके साथ भागे। जहाजकी कमीसे सीज़रने उन सबोंका पीछा न किया। अतः रोम छोड़ कर कोई तीन महीनेमें सीज़रने सम्पूर्ण इटलीके प्रदेशों पर अधिकार कर लिया। अब सीज़र रोमका सर्वोपरि-स्वामी हो गया। केवल ट्रिब्यून मेटल्लासने उसके पवित्र धन-भाण्डारमें हस्तक्षेप किया था। सिवा इसके सीज़र शीघ्र ही रोमका अद्वितीय अधीश्वर हो गया। सीज़र लेपिडस पर रोम रक्षाका भार अर्पण कर तथा अण्टिनियसको फौजोंके साथ इटली-रक्षाका भार सौंप कर पम्पी पक्षके सेनापतियोंको पराजित करनेके लिये स्पेन चला। उसने किउरिओंको और भालेरियासको सिसिली और सार्डिनियाकी रक्षा करनेके लिये भेजा। इन दोनोंने अनायास ही दोनों स्थानों पर अधिकार कर लिया। इसके बाद ये पम्पीपक्षीय सेनाओं पर विजय प्राप्त करनेके लिये अफ्रिका चले। किन्तु किउरिओ पम्पीके सहयोगी मरेटेनियरके राजा जुबाके हाथ मार डाला गया।

इधर सीज़रने मसेलियामें आ कर देखा, कि यहांके अधिवासी अधीनता स्वीकार करने पर राजी नहीं हैं। इस समय सीज़र ट्रेबोनियास और ब्रुटसको उक्त स्थान पर घेरा डालनेकी आज्ञा दे कर ससैन्य स्पेन चला। पम्पीके दोनों लेफ्टिनेण्ट अफ्रिनियास तथा पेट्रियासने

विशाल सैन्य सुनिश्चित करने लगा। जिन गलोंने एक दिन इटलीका बहुत अनिष्ट किया था, उन गलोंका यह दमन करनेकी बात सोचने लगा।

उक्त तयम्बोर समिति या ट्रायम्भरेटके बुलाने पर सिसिरो उनके दलमें सम्मिलित नहीं हुआ। इसलिये ट्रिव्यून पोक्लडियासने सिसिरोसे शत्रुताचरण करनेकी चेष्टा की। ईसाके ६२ वर्ष पूर्व सीजरकी स्त्रीका "बोना डिया" महोत्सवमें पुरुषोंका आना निषेध रहने पर भी क्लडियास स्त्री वेशमें स्त्री मण्डलीमें घुस गया था। क्लडियासके अभियोगके सम्बन्धमें सिसिरोकी गवाही देने पर उनके साथ विरोधका कारण उपस्थित हुआ। विचारकोंके अविचारसे क्लडियसको छुटकारा मिला था। क्लडियसने एक कानून बनाया, कि जिसने बिना मामला चलाये रोमकोंको फांसी दिलवाया है, वह निर्वासित किया जायगा। इसलिये सिसिरो रोम छोड़ कर यूनान चला गया। यह ईसाके ५८ वर्ष पूर्वकी घटना है। इस कार्यमें क्लडियसने तयम्बोर-समितिकी राय नहीं ली। पहले पम्पी द्वारा फैर टाइग्रेनसको छोड़ देनेके फलसे पम्पीके साथ उसकी शत्रुता उत्पन्न हुई। पम्पीने इसका बदला चुकानेके लिये यह चेष्टा की, कि किसी तरह सिसिरो फिर रोममें बुला लिया जाय। पम्पीकी मनस्कामना पूर्ण हुई। सेनेटने उसको बुलानेके लिये दूत भेजा और ईश्वरकी कृपासे वह एक बार फिर रोम लौट आया। रोममें सिसिरोके लौटने पर उसकी कल्याण-कामनाके लिये जुपिटर-मन्दिरमें पूजा चढ़ाई गई। यह ४थी सितम्बर सन् ५७ ईसाके पूर्वकी घटना है।

सीजरकी चौथी यात्रा (५५ वर्ष ईसाके पूर्व)।

ईसाके ५६ वर्ष पूर्व सीजरने बृटानी प्रदेशमें भेनेटी जातिके विरुद्ध यात्रा की और वहांसे फैले और बोलन प्रदेशोंके निकटके मरिनी और मेनापाई जातियोंके दुर्भेद्य दुर्गों पर अधिकार कर लिया। सीजर राइन नदीके किनारे जर्मन जातिके साथ युद्धमें लिप्त हुआ। इस युद्धमें जर्मनोंको सीजरने पूर्णरूपसे पराजित किया। अनन्तर सीजरने दस ही दिनोंमें राइन नदी पर एक पुल तैयार कर राइन नदीको पार किया। वहांसे लौट कर बोलन और रोमाभी नामक स्थानके अधिवासियोंको

हरा कर रोममें वह लौट आया। सीजर इसी समय बृटेन पर आक्रमण करनेका सङ्कल्प कर कैलेके निकट वर्ती इटियास नामक स्थानमें जहाज पर चढ़ कर साउथ फोर्लैण्ड नामक स्थानमें उतरा। बृटेन भीम-पराक्रमसे युद्ध करके भी पराजित हुए।

सीजरकी पांचवीं और छठीं यात्रा (ईसाके ५४ वर्ष पूर्व)

इस बार ५ लीजन ले कर सीजर बृटेनमें आ बृटन मिडलसेक्स और एसेक्स प्रदेशके अधिपति भेल्वासको सेनापति बना कर युद्ध करने लगे। कई युद्धोंमें पराजित हुए। उन्होंने रोमक सेनां म मण किया सही। किन्तु वे सीजरके साथ प जित हो कर भाग गये। किन्तु शीघ्र ही वि ये स्वाधीनताकी चेष्टा करने लगे और यर सैनिकोंको उन्होंने मार डाला। सीजरने गलसे दो दल सैनिक एकत्र कर गलोंको फिर विद्रोहियोंको अपने वशमें किया। साहाय्य किया था। इससे सीजरने पार कर जर्मनोंको हराया। गलोंने फि प्रबलवेगसे अस्त्र धारण किया।

सीजरकी ७वीं यात्रा (ईसाके ५

भर्सिङ्गेटोरिक्स नामक एक सेनापति बना। इसके प्रबल ६ वर्षोंकी विजयविभूति पर पा हो गया था। गलोंका यह एलेसिया नगरके किलेमें जा सैनिकोंने रोमक सैनिकोंको समय सीजरने ८०००० सा गलोंको छिन्न भिन्न कर f कारमें आ गया। गलों गया।

सीजरकी ८वीं

सीजरने इस यात्र कर यहां रोमक-शास शासन-व्यवस्था क आनेको तैयार हु

सीजरके प्रतिनिधि अण्टनीके आत्मश्लाघापूर्ण राजनीति अवलम्बन कर रोमकी प्राचीन शासनपद्धतिके प्रलय-साधनमें आगे बढ़ जाने पर भी सिसिरो उसके प्रतिद्वन्द्विताचरणमें पराङ्मुख नहीं हुआ। उसने अदम्य उत्साहसे अपनी ओजस्विनी वक्तृता द्वारा सेनेटका पुनर्संगठन करनेका प्रयास पाया। साधारण प्रजा और प्रादेशिक शासक, प्राचीन नीतिका पक्षपाती बन कर आण्टनीके अवलम्बित शासन प्रथाका घोरतर प्रतिवाद करने लगे। सेनेटभवनमें या फोरममें सिसिरोकी वक्तृता और साधारणके प्रतिवाद उस प्रवर्त्तित घटनास्रोतको दूसरी ओर फिरा न सका। इस तरह दोनों पक्षकी लड़ाई प्रायः एक वर्ष तक चलती रही। ईसाके ४३ वर्ष पूर्व फिर एक बार अन्तर्विप्लवकी सूचना मिली।

दूसरी त्रयम्वीर-समिति (४३-२८ ई० पू०)

इस वर्षके शरत्कालमें आण्टनी १७ लीजन सैन्य ले कर इटली पर आक्रमण करनेका उद्योग करने लगा। सभी इस यात्रासे डर गये। इस पर वर्षके अक्तूबर महीनेमें आण्टनीने सेनेटकी रुकावटोंको नामञ्जूर कर सहयोगी लेपिडासकी सहायतासे बीस वर्षके छोटे भाई अक्टेभियानको कन्सल मनोनीत किया और इस तरह उसने दूसरी त्रयवीर समितिका संगठन किया। इससे प्रजा-पक्षमें भयकी मात्रा अत्यधिक बढ़ गई। इस समितिका शासनकार्य भी वैसा होता न था। सीजरकी तरह यह समिति अपने सद्व्यवहारसे प्रजाको राजी नहीं रख सकी थी। पर सालाकी तरह कठोर शासन कर साधारणकी अप्रीतिभाजन बन गई। इसके बाद प्रेस् किप्शन जारी करके उन्होंने सिसिरो आदि नये दलके लोगोंको फांसी पर चढ़ा कर अपना पक्ष सुदृढ़ कर लिया। दूसरे वर्ष अण्टनी और आक्टेभियानकी सम्मिलित सेनाके साथ फिलिपीमें ब्रुटस् और केसासका युद्ध हुआ। इस युद्धमें ब्रुटसके चलाये प्रजातन्त्र पक्षीय सेनादलके पराभव होनेसे प्रजातन्त्रकी प्राचीन पद्धति-प्रतिष्ठाकी रही सही आशा भी विलुप्त हो गई।

ईसाके ४० वर्ष पूर्व उक्त दोनों विजयी सेनानायकोंमें मनमुटाव हो गया। किन्तु ब्राण्डुसियाममें जो सन्धि हुई थी, उससे यह मनमुटाव शीघ्र ही दूर हो गया। इस तरह रोम-साम्राज्य नररक्तपातरूप कलङ्क-कालिमासे बच गया।

इस सम्मेलनसे दोनोंकी मित्रता दृढ़ हो गई। इस पर आण्टनीने अक्टेभियानकी बहन अक्टेभियाके साथ विवाह कर आपसका सम्बन्ध और भी दृढ कर लिया। इन तीनों वीरोंने आपसमें रोम-साम्राज्यको बांट कर अलग अलग शासन करना आरम्भ किया। आण्टनीने रोम साम्राज्यका समूचा पूर्वांश अपने शासनमें कर लिया। अक्टेभियानको इटली और समग्र पश्चिमाञ्चलका शासन मिला और लेपिडस अफ्रिकाके जीते हुए प्रदेशोंको ले कर ही शान्त रहने पर बाध्य हुआ।

अक्टेभियानने ३६ वर्ष ईसाके पूर्व लेपिडासको अफ्रिकासे किर्सियाई (Circeii) प्रदेशमें निर्वासित कर दिया। मुण्डरनरोतमें पराजित सेक्टस पम्पियास द्वारा अतुल धनरत्न एकत्र कर यहांके लोगोंके भयका कारण हुआ था। अक्टेभियानने लेपिडासविजयसे छुट्टी पाते ही उसको समूल नष्ट किया। ईसाके ३५ वर्ष पूर्व पम्पियासकी मृत्यु हो गई। उस समयसे अक्टेभियान पश्चिम-साम्राज्यभागका एकमात्र अधीश्वर हो गया। उसकी राजशक्तिके कण्टक-स्वरूप दूसरा कोई प्रतिद्वन्द्वी न रहा।

शीघ्र ही उसको आण्टनीकी शक्तिपरीक्षाका सुयोग प्राप्त हुआ। सुखलालसासे लुब्ध आण्टनीकी स्वेच्छाचारिता कर्मवीर अक्टेभियानके मनके मुताबिक नहीं हुई। ईसाके ३२ वर्ष पहले आण्टनीने अमानुषिक अत्याचार और व्यभिचारसे सर्वसाधारणके हृदय पर एक और दारुण चोट पहुंचाई। उसने मिस्र सिंहासनकी समुज्ज्वल करनेवाली टलेमी कन्या, पीनस्तनी क्लिओपेट्राके मन मुग्ध करनेवाले रूप पर मुग्ध हो कर अपनी प्रियतमा पत्नी अक्टेभियाको परित्याग किया। एक ओर आण्टनीने जैसे जीवनपणसे प्राणकी आराध्य प्रणयप्रतिमा प्राप्त की, दूसरी ओर वैसे ही उन्होंने अक्टेभियाके अपमानसे और दुःखसे उसके भाई अक्टेभियानके हृदयमें दारुण प्रतिहिंसाग्नि प्रज्वलित कर दी। अक्टेभियान अपने बहनोईको उचित दण्ड देनेके लिये प्रस्तुत हुआ।

सीज़रके विरुद्ध इलेर्डा नामक स्थानमें विशाल फौजें खड़ी कीं। किन्तु सीज़रका सितारा चमका था। इससे उसने शीघ्र ही उनको भी पराजित किया। दोनों लेफ्टिनेण्टोंने बाध्य हो कर आत्मसमर्पण किया। सीज़रने दया कर उन दोनोंको छोड़ दिया और उनकी फौजोंको अपनी फौजमें मिला लिया। अब सीज़र पश्चिम स्पेनके वारोके विरुद्ध चला। वारोने भी शीघ्र ही पराजित हो कर कर्डोवा नामक स्थानमें आत्मसमर्पण किया। इस तरह ४० दिनोंमें ही स्पेन पर विजय-प्राप्त कर सीज़र गल देशको चला। मसेलिया नगर अब तक अधिकारमें आया न था। किन्तु सीज़रका आना सुन किलेके किलेदारोंने भयभीत हो कर आत्मसमर्पण कर दिया।

इधर सीज़रकी अनुपस्थितिमें लेपिडसने नये बनाये एक कानूनके अनुसार सीज़रको डिक्टेटर नियुक्त किया। किन्तु केवल ग्यारह दिनों तक इस पद पर रह कर स्वेच्छानुसार कान्सल हुआ। सर्विलियस ईसॉरियाने भी कान्सल पद पाया। ग्यारह दिन ही डिक्टेटर पद पर रह कर सीज़रने कई लोकहितकर कार्य्य किये थे। ईसाके ४९ वर्ष पूर्व दिसम्बर महीनेमें सीज़र पम्पीका पीछा करने लगा। इधर पम्पीने यूनान, मिस्र और एशियाखण्डके अनेक राज्योंसे बड़ी विशाल फौजें एकत्र कर लीं। बिबुलस उसके सेनापति हुआ। निडर वीर सीज़र फिर भी सैन्यके साथ ब्राण्डुसियमसे एपिरास चला। आपसस नदीके किनारे सीज़र और पम्पीकी फौजें एकत्र हुईं। सीज़र बाकी फौजोंके लिये इस तरह चिन्तित हुआ कि वह अकेले एक दिन रातको एक छोटी नाव पर चढ़ कर एड्रियाटिक समुद्रके बीचसे हो कर ब्राण्डुसियमको चला। अन्तमें अण्टोनियस बाकी फौजोंको ले कर सीज़रसे आ मिला। पम्पीके पास सैनिक अधिक थे, फिर भी उसने सीज़र पर आक्रमण न किया। सीज़रने एक खाई खोदवा कर अपनी थोड़ी फौजोंसे ही पम्पी पर घेरा डाल दिया। एक दिन अचानक पम्पीने बड़े वेगसे सीज़र पर आक्रमण कर उसकी फौजोंको तितर बितर कर दिया। तब सीज़र शीघ्र ही उस स्थानको छोड़ कर थेसाली चला। थेसालीके फार्सेलस या फार्सेलिया नामक स्थानमें भयङ्कर युद्ध हुआ। ईसाके ४८ वर्ष पूर्व ९वीं अगस्तको सैन्य-संख्या अधिक होने पर भी पम्पी सम्पूर्णरूपसे पराजित हुआ।

इस तरह सीज़रने अपनी अदम्य शक्तिसे उत्तर, पूर्व और पश्चिम रोम-साम्राज्यका एकाधिपत्य स्थापित कर अपने हाथसे वृहत् शासनदण्ड परिचालन किया था। अपने बाहुबलसे रोम-साम्राज्य पूर्वमें युफ्रेटिस नदीके किनारे तक और कॉकेसस तक, उत्तरमें राइन नदी डेन्यूब और एल्ब नदी तथा पश्चिममें अटलाण्टिक महासागर तक फैला हुआ था।

उसने प्रादेशिक शासनकर्त्ताओंका कार्य्यकाल घटा कर अपने खजानेको लूटनेका पथ रोक दिया। उसने प्रादेशिक शासकोंका राजस्वका अधिकार और ट्रान्सपेडेन गलोंको रोमवासियोंका अधिकार दे कर समग्र इटलीको रोममें मिला लिया। सिवा इसके उसने समग्र इटलीमें एक तरहकी स्वायत्तशासनपद्धति चलाई थी।

ईसाके ५३ वर्ष पहले पारथों द्वारा कर्हीके युद्धमें क्रासस की जो हत्या हुई थी, उसका बदला चुकाने और पारथोंकी राजशक्ति क्षीण करनेके लिये सीज़रने बहुतसी वीरवाहिनियोंको ले कर रणयात्राका आयोजन किया। प्रजातन्त्रका नया सम्प्रदाय सीज़र द्वारा अपमानित और लांछित हो कर मनकी वेदनासे व्यथित हुआ था। इस युद्धका आडम्बर देख कर यह सम्प्रदाय ईर्षासे और भी जल भुन गया। उस सम्प्रदायके लोग अंटे हृदयसे सीज़रका सर्वनाश करनेके लिये आगे बढ़े। जिस दिन सन्ध्याके समय सीज़र पूर्व दिशाको विजय करनेके लिये तैयार हो रहा था उस समय ब्रूटस आदि गण-मान्य पुरुष उसके सामने आये। विश्वासघातक ब्रूटसने सीज़रके वीर कलेजेमें छुरा भोंक कर उसके इहजगतकी भवलीला समाप्त कर दी। ईसाके ४४ वर्ष पहले १५वीं मार्चको यह घटना है। इस दिनसे अक्टेवियन द्वारा एक्टियम रणक्षेत्रमें आण्टनीके पराजित होनेकी तारीख २ सितम्बर। सन् ईसाके ३१ वर्ष पू० तक रोम साम्राज्यमें घोरतर अराजकता फैली थी। इन १४ वर्षोंके शासन-विहीन रोम साम्राज्यका चित्र इतिहासमें कालिखके अक्षरसे अङ्कित है।

सीज़रके प्रतिनिधि अण्टनीके आत्मश्लाघापूर्ण राजनीति अवलम्बन कर रोमकी प्राचीन शासनपद्धतिके प्रलय-साधनमें आगे बढ़ जाने पर भी सिसिरो उसके प्रतिद्वन्द्विताचरणमें पराङ्मुख नहीं हुआ। उसने अदम्य उत्साहसे अपनी ओजस्विनी वक्तृता द्वारा सेनेटका पुनर्संगठन करनेका प्रयास पाया। साधारण प्रजा और प्रादेशिक शासक, प्राचीन नीतिका पक्षपाती बन कर आण्टनीके अवलम्बित शासन प्रथाका घोरतर प्रतिवाद करने लगे। सेनेटभवनमें या फोरममें सिसिरोकी वक्तृता और साधारणके प्रतिवाद उस प्रवर्तित घटना-स्रोतको दूसरी ओर फिरा न सका। इस तरह दोनों पक्षकी लड़ाई प्रायः एक वर्ष तक चलती रही। ईसाके ४३ वर्ष पूर्व फिर एक बार अन्तर्विप्लवकी सूचना मिली।

दूसरी त्रयम्वीर-समिति (४३ २८ ई० पू०)

इस वर्षके शरत्कालमें आण्टनी १७ लीजन सैन्य ले कर इटली पर आक्रमण करनेका उद्योग करने लगा। सभी इस यात्रासे डर गये। इस पर वर्षके अक्तूबर महीनेमें आण्टनीने सेनेटकी रुकावटोंको नामञ्जूर कर सहयोगी लेपिडासकी सहायतासे बीस वर्षके छोटे भाई अक्टेभियानको कन्सल मनोनीत किया और इस तरह उसने दूसरी त्रयवीर समितिका संगठन किया। इससे प्रजा-पक्षमें भयकी मात्रा अत्यधिक बढ़ गई। इस समितिका शासनकार्य भी वैसा होता न था। सीज़रकी तरह यह समिति अपने सद्व्यवहारसे प्रजाको राजी नहीं रख सकी थी। वरं सल्लाकी तरह कठोर शासन कर साधारणकी अप्रीतिभाजन बन गई। इसके बाद प्रेस्क्रिप्शन जारी करके उन्होंने सिसिरो आदि नये दलके लोगोंको फांसी पर चढ़ा कर अपना पक्ष सुदृढ़ कर लिया। दूसरे वर्ष अण्टनी और आक्टेभियानकी सम्मिलित सेनाके साथ फिलिपीमें ब्रुटस् और केसासका युद्ध हुआ। इस युद्धमें ब्रुटसके चलाये प्रजातन्त्र पक्षीय सेनादलके पराभव होनेसे प्रजातन्त्रकी प्राचीन पद्धति-प्रतिष्ठाकी रही सही आशा भी विलुप्त हो गई।

ईसाके ४० वर्ष पूर्व इन दोनों विजयी सेनानायकोंमें मनमुटाव हो गया। किन्तु ब्राण्डुसियाममें जो सन्धि हुई थी, उससे यह मनमुटाव शीघ्र ही दूर हो गया। इस तरह रोम-साम्राज्य नररक्तपातरूप कलङ्क-कालिमासे बच गया।

इस सम्मेलनसे दोनोंकी मित्रता दृढ़ हो गई। इस पर आण्टनीने अक्टेभियानकी बहन अक्टेभियाके साथ विवाह कर आपसका सम्बन्ध और भी दृढ़ कर लिया। इन तीनों वीरोंने आपसमें रोम-साम्राज्यको बांट कर अलग अलग शासन करना आरम्भ किया। आण्टनीने रोम-साम्राज्यका समूचा पूर्वांश अपने शासनमें कर लिया। अक्टेभियानको इटली और समग्र पश्चिमाञ्चलका शासन मिला और लेपिडस अफ्रिकाके जीते हुए प्रदेशोंको ले कर ही शान्त रहने पर बाध्य हुआ।

अक्टेभियानने ३६ वर्ष ईसाके पूर्व लेपिडासको अफ्रिकासे किर्सियाई (Circeii) प्रदेशमें निर्वासित कर दिया। मुण्डरनक्षेत्रमें पराजित सेक्टस पम्पियास द्वारा अतुल धनरत्न एकत्र कर वहांके लोगोंके भयका कारण हुआ था। अक्टेभियानने लेपिडासविजयसे छुट्टी पाते ही उसको समूल नष्ट किया। ईसाके ३५ वर्ष पूर्व पम्पियासकी मृत्यु हो गई। उस समयसे अक्टेभियान पश्चिम-साम्राज्यभागका एकमात्र अधीश्वर हो गया। उसकी राजशक्तिके कण्टक-स्वरूप दूसरा कोई प्रतिद्वन्द्वी न रहा।

शीघ्र ही उसको आण्टनीकी शक्तिपरीक्षाका सुयोग प्राप्त हुआ। सुखलालसासे लुब्ध आण्टनीकी स्वेच्छाचारिता कर्मवीर अक्टेभियानके मनके मुताबिक नहीं हुई। ईसाके ३२ वर्ष पहले आण्टनीने अमानुषिक अत्याचार और व्यभिचारसे सर्वसाधारणके हृदय पर एक और दारुण चोट पहुंचाई। उसने मिस्र सिंहासनको समुज्ज्वल करनेवाली टलेमी-कन्या वीराङ्गना क्लिओपेट्राके मन मुग्ध करनेवाले रूप पर मुग्ध हो कर अपनी प्रियतमा पत्नी अक्टेभियाको परित्याग किया। एक ओर आण्टनीने जैसे जीवनपणसे प्राप्तको आराध्य प्रणयप्रतिमा प्राप्त की, दूसरी ओर वैसे ही उन्होंने अक्टेभियाके अपमानसे और दुःखसे उसके भाई अक्टेभियानके हृदयमें दारुण प्रतिहिंसाग्नि प्रज्वलित कर दी। अक्टेभियान अपने बहनोईको उचित दण्ड देनेके लिये प्रस्तुत हुआ।

इस कुकर्मके लिये आण्टनीको सेनेटने पदच्युत और पूर्व साम्राज्यके आधिपत्यसे पदच्युत होनेकी घोषणा की और रानी क्लिओपेट्राके विरुद्ध रोमक फौजोंको भेजनेकी आज्ञा प्रचारित की। इसके अनुसार अक्टेभियास रोमक फौजोंका सेनापति बना। ईसाके ३१ वर्ष पूर्व २री सितम्बरको अक्टियाम रणक्षेत्रमें दोनों ओरसे घोर संघर्ष उपस्थित हुआ। आण्टनी युद्धमें पराजित हो कर जान ले कर भागा। किन्तु शत्रुके हाथसे आत्मरक्षा कर न सकने पर आण्टनी और क्लिओपेट्राने आत्महत्या कर ली। यह ३० ईसाके पूर्वकी घटना है।

अक्टियाके रणक्षेत्रमें आण्टनीके दर्पको चूर्ण करनेवाला डिक्टेटर सीजरके भाईका पोता अक्टेभियस सीजर इस समय रोमक जनसाधारणके पूज्य हो गया। अक्टेभियासने सेनेटकी रायसे राजासन ग्रहण किया। सेनेटने उसके अनुग्रहोंको देख उसको "अगाष्टस" की उपाधि दी थी।

अक्टेभियासने एक नगण्य खानदानमें जन्मग्रहण किया था। उसकी वंशोपाधि अक्टेभियास थी। उसका पितामह भिलेट्री नगरके एक सामान्य नागरिक था। पीछे उसको चाचाने गोद ले लिया। इससे यह वह वंशको सीजर उपाधिसे विभूषित हुआ। उस समयसे यह इतिहासमें अक्टेभियस सीजरके नामसे परिचित हुआ।

सन् २८-२७ ईसाके पूर्व तक अगष्टसने राजतख्त पर बैठ कर प्रजातन्त्रकी फिर प्रतिष्ठाके साथ उसकी अनुकरण कर ही राज्यका शासन किया था और प्रादेशिक नगरोंमें सर्वदारवरी स्थापना कर स्वयं उन राजाओंका अभिभावक बन कर सार्वभौम आधिपत्यका विस्तार किया था। उसकी चलाई यह शासन प्रणालीके अनुसार (Constitution of principate) रोम साम्राज्य २७ ईसाके पूर्वसे २८४ ईस्वी तक शासित हुआ था।

केवल एक वर्ष इस विराट् साम्राज्यका अधीश्वर हो कर उसने मनमें पूर्वके अभिभावकोंके सार्वभौम आधिपत्यका स्मरण कर समझ लिया, कि प्रजाका मनोरञ्जन ही श्रेष्ठ धर्म है। स्वेच्छाचारिताका दास बन कर प्रजाका विद्वेषभाजन बनना बड़ा ही अहित कर्म है। इससे अपना भी केवल हानि है, कोई लाभ नहीं। अतः जिससे प्रजा सुखसे रहे, इस विषय पर नज़र रखना ही राजाका एकमात्र कर्त्तव्य है। ऐसा विचार कर अगष्टसने स्वेच्छासे राजसिंहासन त्याग दिया और जिस अलौकिक शक्तिके प्रभावसे वह ४३ ई०के पू०से रोमका शासनदण्ड धारण करता चला आता था, उसे "रोमके साधारण प्रजापुञ्जके और सेनेटके सदस्योंके करकमलोंमें साधारणतन्त्रका भार अर्पण किया।" उसने यह कह कर अवसर ग्रहण कर लिया। इसके बाद फिर रोमराज्यमें सेनेट, एसेम्बली और मजिष्ट्रेटोंका कार्य प्रवर्त्तित हुआ। इस तरह अक्टेभियास रोमका "स्वाधीनतादाता" (Restorer of Commonwealth and Champion of freedom) कहा गया। उसकी सुमध्यम शासनप्रणालीको लोग "Maximum Augustus" कहते थे। डायोक्लिसियानके राजत्व काल तक इस नीतिकुशल प्रणालीसे ही रोमराज्यका शासन हुआ था। जुलियास सीजर बाहुबलसे रोमवासियोंके चित्त नीतिविजड़ित कर जो नहीं कर सका था, अगष्टस सीजर अनायास ही शान्ति और सहिष्णुताके बलसे वह सुसम्पन्न कर गया।

अगष्टस जीवित समयमें जो सब विषय कार्यरूपमें परिणत नहीं कर सका, उन सबोंको कार्यमें परिणत करनेका भार अपने गोदके पुत्र टाइबेरियासको सौंप गया। उसने अपने गोदके पुत्रको पहले ही राजशक्तिकी प्रतिभा दे दी थी। आइन प्रवर्त्तन और प्रचलित विधिका संस्काराधिकार (Censorial and tribunitian) प्राप्त करनेके समय टाइबेरियासने राजसरकारमें यथेष्ट प्रतिपत्ति बढ़ा ली थी। अगष्टसके अन्तिम समयमें उसके कार्यका प्रतिवाद करनेके लिये एक आदमीका भी खड़ा होनेका साहस नहीं हुआ।

उसके पुत्र टाइबेरियासने अपनी शाणित बुद्धिके वशवर्ती हो कर प्रजातन्त्रके सारे अधिकारोंका लोप किया। देखते देखते कान्सिलर, मजिष्ट्रेटों, गवर्नर, प्रिटर, क्वाएस्टर, ट्रिब्यूनेट, एडाइल आदि पद था उनके पदाधिकारके कार्य नाममात्र रह गये। और पहलेकी तरह जनता शासनका प्रयोग करनेमें समर्थ नहीं हुआ।

टाइबेरियासकी मृत्युके बाद ३७ ई०में कालीगुलाने साम्राज्याधिकार पाया। यह दुर्वृत्त, कोपन स्वभाव, गर्वित और ज्ञानशून्य उन्माद प्रकृतिका मनुष्य था। उसके बाद ३१वीं ई०में यथाक्रम निर्बोध क्लाडियस, ५४ ई०में नरपिशाच निरो, ६८ ई०में गालवा, ६६ ई०में ओथो और पशुप्रकृति, निष्ठुर अत्याचारके आमोद-प्रिय भिटेलियासने रोमका राज-पद अधिकार किया। इसके बाद उक्त वर्षके अन्त समयमें भेस्पेसियासने मसनद पर बैठ कर इटली नगरवासी और पश्चिम साम्राज्य विभागके प्रदेशवासी लेटिन जातियोंमेंसे सभ्य मनोनीत करनेकी आज्ञा जारी की। इससे रोमकी सेनेटकी शक्ति कुछ अधिक बढ़ गई। इसके बाद ७१ ई०में टाइटस, ८१ ई०में कापुरुष डोमिटियान, ६६ ई०में नेर्भा, ६८ ई०में ट्रिजान और ११७ ई०में हाड्रियानने क्रमसे रोमके राजपदको अलंकृत किया था। उन सबोंने भेस्पेसियानकी प्रवर्त्तित प्रथाका अनुसरण कर रोमीय सेनेटका प्रबल प्रताप खर्व कर दिया था। रोमकोंने स्वेच्छा और सहानसे जिस सरकारका अनुमोदन कर एकके हाथमें राज्य-भार सौंपा था, उन्हींके अत्याचारसे भीतरमें घृणा प्रकाश करने पर भी बाहर तोषामोद करने पर बाध्य हुए थे। किन्तु वे शताब्दी लुप्त स्वाधीनता-समृद्धिको बिलकुल भूल न सके।

अगस्टस्के बादसे हाड्रियान तक राजाओंके अधिकार कालमें रोमका बाह्यआडम्बर बहुत बढ़ गया था। इस समयसे ही प्रिन्सेप्सोंको छोड़ रोमकी अन्यान्य शक्तियां ह्रास होने लगीं। अगस्टस, टाइबेरियास और हाड्रियान—इन तीनों सम्राटोंके शासनकालमें राजशक्ति और शासनभार उनके ऊपर ही छोड़ दिया गया था। किन्तु जब अन्यान्य शासकशक्ति शिथिल होने लगी,तब रोमराज्यका एक आमूल परिवर्त्तन अवश्यम्भावी हो उठा। अगस्टस् टाइबेरियस कूटनीतिके बलसे और निर्लिप्तभावसे छिप कर राजशक्तिका प्रभाव देखता था, केलिगुला क्लाडियस और नीरोने उस तरहके छिपे तौरसे न देख अर्थात् इस भांतिकी घृणाके साथ छोड़ कर प्रकाश्यरूपसे शासनकार्य्यमें, राजस्वविभागमें, सामरिक-विभागमें और प्रादेशिक राजशासन सम्बन्धमें प्रिन्सेप्सका सर्वमय कर्त्तृत्व स्थापन किया। लिगेट, प्रिफेट प्रोकि ओरेट और छोड़े हुए गुलाम (Freedmen) उसके अधीनमें रह कर सरकारका कार्य्य करने लगे। इस तरह शक्ति वृद्धिके साथ साथ प्रिन्सेप्सकी मर्य्यादा बढ़ गई। धीरे धीरे यथार्थमें वह राजेश्वर हो उठा।

अगस्टस् दीनहीन प्रजाकी तरह अपेक्षाकृत छोटे मकानमें रह कर सामान्य और सरलभावसे जीवन बिता गया है। किन्तु बादके शासकोंने ऐश्वर्य्य-मदसे मत्त हो कर उस सरलताको पदमर्य्यादाको तोड़ दिया। वे सभी राजाकी तरह चमक-दमकके पक्षपाती हो गये। नीरोके राजत्वकालमें यह पूर्णरूपसे प्रकाश हो गया। रोमक-सम्राट्के राज्यकार्य्य निर्वाह करने योग्य आवश्यकीय उपयोगी द्रव्य राजसरकारमें विराजमान थे। उसके ही बलसे एक अलग राजमहल बना। महलके रक्षक इनकी बड़े यत्नसे रक्षा करते थे। यह मन्त्रि-मण्डलमें घिर कर सम्राट्की तरह गर्वके साथ विचरण करता था और उसके अभ्यन्तरमें रोज ही एक न एक उत्सव हुआ करता था। उसके मर जाने पर इस अवस्थामें बहुत परिवर्त्तन हुआ। क्योंकि उसके बादके गलवीय वंशीय भेस्पेसियान आदि सम्राट् ट्रजन, हाड्रियान, आण्टोनिनास उस सुख-समृद्धिकी अनुशासनामें न डूब कर अपेक्षाकृत सरलतासे जीवन बिता गये हैं। कालीगुला या नीरोकी तरह वे अन्याय्य तोषामोद प्रिय न थे। उनके इस सरल और सद्व्यवहारके परिवर्त्तनसे रोममें एक नये युगका सूत्रपात हुआ। सामरिक और राज्यशासन पूर्णरूपसे प्रतिष्ठित हो कर उत्तरोत्तर उन्नत हुआ। कालीगुला और नीरोके शासन कालमें वे सेनाविभागकी ओरसे 'इम्पारेटर' कह कर सम्मानित हुआ करते थे और पीछे सेनेटने उनको शक्ति दे दी। एकाएक इस तरहके उनके भाव परिवर्त्तनसे रोममें कोई भावान्तर न दिखाई देने पर भी रोमके बाहरी प्रदेशोंमें उसका यथेष्ट आभास मिला था। स्पेनमें लीजन द्वारा गालवाके सम्मानसे ही रोममें नये युगकी अवतारणा हुई थी। उसी समयसे ही यथार्थमें प्रिन्सेप्सोंको नियोजन सम्मति लीजनसे न लेने पर भी वास्तवमें उनकी आज्ञासे ही राजा राजशक्ति-सम्पन्न होते थे और राजशक्तिकी

इन कुकर्मोंके लिये आण्टनीको सिनेटने पदच्युत और पूर्व साम्राज्यके आधिपत्यसे पदच्युत होनेकी घोषणा की और रानी क्लियोपेट्राके विरुद्ध रोमक फौजोंको भेजनेकी आज्ञा प्रचारित की। इसके अनुसार अक्टेवियान रोमक फौजोंका सेनापति बना। ईसाके ३१ वर्ष पूर्व २री सितम्बरको अक्टियान रणक्षेत्रमें दोनों ओरसे घोर संघर्ष उपस्थित हुआ। आण्टनी युद्धमें पराजित हो कर प्राण ले कर भागा। किन्तु शत्रुके हाथसे आत्मरक्षा कर न सकने पर आण्टनी और क्लियोपेट्राने आत्महत्या कर ली। यह ३० ईसाके पूर्वकी घटना है।

अक्टियाके रणक्षेत्रमें आण्टनीके दर्पको चूर्ण करनेवाला डिक्टेटर जोलियसके भांजेका पोता अक्टेवियस सीजर इस समय रोमक जनसाधारणके पूज्य हो गया। अक्टेवियानने सिनेटकी रायसे शासन ग्रहण किया। सिनेटने उसके अनुग्रहोंको देख उसको "अगस्टस" की उपाधि दी थी।

अक्टेवियानने एक अगण्य खानदानमें जन्मग्रहण किया था। उसकी वंशोपाधि अक्टेवियास थी। उसका पितामह भिलिटनी नगरके एक सामान्य नागरिक था। पीछे उसको चाचाने गोद ले लिया। इससे वह उस वंशकी सीजर उपाधिसे विभूषित हुआ। उस समय से यह इतिहासमें अक्टेवियस सीजरके नामसे परिचित हुआ।

सन् २८-२७ ईसाके पूर्व तक अगस्टसने राजतख्त पर बैठ कर प्रजातन्त्रको फिर प्रतिष्ठाके साथ उसको अनुकरण कर ही राज्यका शासन किया था और प्रादेशिक नगरोंमें सरदारवर्गकी स्थापना कर स्वयं उन सभाओंका अधिनायक बन कर सार्वभौम आधिपत्यका विस्तार किया था। उसकी बनाई यह शासन प्रणालीके अनुसार (Constitution of principate) रोम साम्राज्य २७ ईसाके पूर्वसे २८४ ईस्वी तक शासित हुआ था।

केवल एक वर्ष इस विराट् साम्राज्यका अधीश्वर हो कर उसने सभी पूर्वके अधिनायकोंके सार्वभौम आधिपत्यका स्मरण कर मालूम किया, कि प्रजाका मनोरञ्जन ही श्रेष्ठ धर्म है। स्वेच्छाचारिताका द्वारा बन्द कर प्रजाका चिरस्थायी बनना बड़ा ही गर्हित कर्म है। इसमें प्रजा भी केवल हानिके कोई लाभ नहीं अतः जिससे प्रजा सुखसे रहे, इस विषय पर लक्ष्य रखना ही राजाका एकमात्र कर्तव्य है। ऐसा विचार कर अगस्टसने स्वेच्छासे राजसिंहासन त्याग दिया और जिस अलौकिक शक्तिके प्रभावसे वह ४३ ई०के पूर्वसे रोमका शासनदण्ड धारण करता चला आता था, उसे "रोमके साधारण प्रजापुञ्जके और सिनेटके सदस्योंके कर्तृत्वाधीनमें साधारणतन्त्रका भार अर्पण किया।" उसने यह कह कर अवसर ग्रहण कर लिया। इसके बाद फिर रोमराज्यमें सिनेट, धर्मेश्वरों और प्रतिष्ठेसोका कार्य प्रवर्तित हुआ। इस तरह अक्टेवियान रोमका "स्वाधीनतादाता" (Restorer of Common wealth and Champion of freedom) कहा गया। उसकी सुसभ्य शासनप्रणालीको लोग "Maximus Augustus" कहते थे। डायोक्लियानके राजत्व काल तक इस नीतिकुशल प्रणालीसे ही रोमराज्यका शासन हुआ था। जुलियास सीजर बाहुबलसे रोमवासियोंके चित्तको विजयित कर भी नहीं कर सका था, अगस्टस सीजर अनायास ही शान्ति और सहिष्णुताके बलसे यह सुसम्पन्न कर गया।

अगस्टस जीवित अवस्थामें भी सब विषय कर्तृत्वताके परिणत नहीं कर सका, उन सबोंको कार्यमें परिणत करनेका भार अपने गोदके पुत्र टाइबेरियासको दे गया। उसने अपने गोदके पुत्रको पहले ही राजशक्तिकी प्रतिमा दे दी थी। आईन प्रवर्तन और प्रचलित विधिका संस्काराधिकार (Censorial and tribunitian) प्राप्त करनेके समय टाइबेरियासने राजसरकारमें यथेष्ट प्रतिपत्ति बढ़ा ली थी। अगस्टसके अन्तिम समयमें उसके कार्योंका प्रतिवाद करनेके लिये एक आदमीका भी खड़ा होनेका साहस नहीं हुआ।

उसके पुत्र टाइबेरियासने अपनी शाणित बुद्धिके बलपर ही कर प्रजातन्त्रके सारे अधिकारोंका लोप किया। देखते देखते कमिशिया, मजिष्ट्रेसी, कन्सल, ट्रिब्यून, सिनेट, प्रिटर आदि पद थे उनमें बहुतोंके कारण नाममात्र रह गये। कोई पहलेकी तरह अपनी क्षमताका प्रयोग करनेमें समर्थ नहीं हुआ।

पर अलंकृत होते देखते हैं। उन्हीं नरपतियोंके राज्य कालसे ही रोम-साम्राज्यके सामरिक और राजकीय शान्तिकी पूर्ण प्रतिष्ठा हुई और धीरे धीरे वह उत्तरोत्तर बढ़ गई थी। उस समयसे 'इम्पिरियल' और 'सेनेटेरियल' प्रदेश-विभाग विलुप्त हुआ। राजकोष तथा सम्राट्के अपनत्वका अलगाव दूर हुआ। इसके बाद सेनेटर सामरिक और राजकीय कार्य्योंमें स्वाधिकार-विच्युत हुए। जो कुछ बाकी था, वह विख्यात वीर औरेलियनके (२७०-२७५ ई०में) यत्नसे पूर्ण हुआ। उसने राज्यशासनका कठोर दण्ड अपने हाथमें ले कर प्राचीन प्रथाका सम्पूर्णरूपसे विलुप्त किया। उसने अपने अधिकारकालमें रोम सरकारमें डायोक्लिसियानके अनुकरण पर राजशक्तिकी पराकाष्ठा दिखलाई थी और प्राच्य नगरोंकी समृद्धिका अनुकरण कर अपने राज्य समृद्धिकी गाम्भीर्य्य-वृद्धि की थी।

रोम-साम्राज्यका संक्षिप्त इतिहास।

पहले ही कहा जा चुका है, कि जुलियस सीजरने रोमसाम्राज्यकी सीमा बढ़ा कर नाना विषयोंका संस्कार किया था। किन्तु रात दिनके युद्धविप्लवकी शान्तिका कोई उपाय नहीं कर गया। महानुभाव अगष्टस् इसका उपाय कर गया था क्योंकि वह फूंक फूंक कर पैर रखता था। रोमीय प्रजातन्त्रके निर्वाचित सेनापतियों तथा स्वयं सीजर दक्षिण और पश्चिमके भूखण्डों पर विजय कर गया। फलतः अफ्रिकाके मरुप्रदेश तथा अटलाण्टिक-महासागरके सिवा रोम-राज्यसीमा और अधिक नहीं बढ़ सकी। सीजरने गल-विजय की थी सही; किन्तु उसका भतीजा अगष्टसने ही इन सब नगरोंमें सुसम्बद्ध शासनपद्धति-विस्तार और राजशक्तिका पतन किया था और उसी तरह राजकीय विधिसे ही वह रोमराज्यकी सीमारक्षामें तत्पर हुआ था।

ईसासे २५वर्ष पहले न्युमिडिया-राज्य प्राचीन अफ्रिका प्रदेशके अन्तर्भुक्त और उसके निकटका इजिप्त नगर एक स्वतन्त्र प्रदेशके रूपमें गिना जाने लगा। स्पेनके उत्तर-पश्चिमके रहनेवाले असभ्य पहाड़ी जातियोंको जीत कर लूसिटानियाका शासन-विस्तार किया गया था। ईसाके २७ वर्ष पूर्व अगष्टसने आकुइटानिया, गलडुनेन्सिस और बेलजिका प्रदेशको राज्यभुक्त कर युक्साइनसे जर्मनसागरके किनारे तक सीमा बढ़ा दी थी। इसके बाद उसने दक्षिणके मिसिया (६ ई०में) रिटिया (१५ ई०में) और गालिया-बलजिका आदि प्रदेश अधिकार कर सुशासन प्रतिष्ठा द्वारा शान्तिस्थापन करनेकी चेष्टा की थी। ९वीं ई०में मेरुसकी पराजयके बाद वह राइनको पार कर सामने आगे बढ़ नहीं सका। उसके वंशधर टाइबेरियस जिलमा ट्यूटने घर्गे सिसकी विपत्तिका बदला चुका कर जर्मनोकासको लौटनेकी आज्ञा दी और १७ ई०में उत्तर डेन्यूबके मार्कोमान्नी प्रदेशके राजा मारोबोडुआसके साथ सन्धि कर उसने अपने पिताके निर्दिष्ट अपने पक्षकी सुरक्षाका बन्दोबस्त करनेमें मन लगाया था। इसके अनुसार राइन नदीके किनारे उत्तर और दक्षिण जर्मनीमें डेन्यूबकी सीमा पर और पानोनिया और मिसियाके चारों ओर रोमीय लीजन प्रतिष्ठित किये गये थे।

अगष्टस् रोम साम्राज्यकी शान्ति और समृद्धि प्रतिष्ठित कर गया। इसके बादके बादशाह सभी सुदक्ष थे। वे अप्रतिहतरूपसे राज्यशासन कर गये हैं। गेयास, क्लडियास और नीरो दुर्बुद्धिके कारण तथा उनके अत्याचारसे रोम और इटली उत्पीड़ित हो उठी थी। राज्यके अन्य किसी स्थानमें उनकी दाल न गली। नीरोकी मृत्युके बाद, प्रतिद्वन्द्वी बादशाहोंके विरोधजनित युद्धमें रोम-साम्राज्यकी जो क्षति हुई थी, उसकी पूर्त्ति भेस्पेसियान कर गया था। ओथो, भिटेलियास और भेस्पेसियानके परस्पर युद्धके अवसर पर ६९-७० ई०में सिभिलिसका विद्रोह उपस्थित हुआ। ट्राजन, हाड्रियान और दोनों आण्टोनियास अपनी अपनी असाधारण शक्तिसे रोम-साम्राज्यके विश्वविजयिनी शक्तिके पुनराविर्भाव करनेमें समर्थ न होने पर भी सुशासन तथा शान्ति-स्थापनमें सफल हुए थे। क्लडियास वृटेनको जीतनेके लिये अग्रसर हुआ था। आग्रिकाला (७८-८४ ई०में) यहांका उत्तर-देश जीत कर "हाड्रियानकी चहारदीवारी" बना गया था। १०७ ई०में बर्बर जातिके आक्रमणसे डर कर ट्राजन निम्न डेन्यूब प्रदेशमें गया और उसने डाकिया-राज डूसेबाल्सको पराजित कर उसका राज्य छीन

रक्षाके लिये सम्राटको सैन्य पर ही निर्भर रहना पड़ता था। इस तरह जर्मन और मोसीय लीजनके अभिमतके अनुसारसे भिटेलियास और भेस्पेसियन सम्राट् पद पर प्रतिष्ठित हुए थे। डोमिशियनने सिपाहियाना ढंगसे रोमकी सेनेटमें घुस करके राज्यकालमें सामरिक प्रभाव (Military character)का परिचय दिया था। सम्राट् नेर्वाके (गोद) दत्तक पुत्र विख्यात वीर और योद्धा ट्राजनसे ही सामरिक विभागके सम्पूर्ण मालिक या "इम्पारेटर" पदने प्राचीन शासनपद्धतिके सिनेटकी शक्तिको भी पार कर दिया था।

सम्राट् हाड्रियानके बाद क्रमसे आन्टोनिनास पायास (१३८ ई०में), मार्कस् अरेलियस (१६१ ई०में), मार्कस आन्टोनिनास (१६१ ई०में), कोमाडियस (१८० ई०में), पार्टीनाक्स (१९२ ई०में), डिडायास जुलियानास (१९३ ई०में) और सेप्टिमियास सेभेरासने (१९३ ई०में) रोमक सिंहासन पर बैठ कर राजकार्य्यकी परिचालना की थी। ये सभी 'टायरेन्ट' नामसे पुकारे गये थे।

गाल्बा, भिटेलियास और भेस्पेसियनने सम्राट् पद पर अभिषिक्त हो कर ही अपनी अपनी जन्मभूमिसे रोममें आ कर सेनेटकी राय ली। ट्राजन और हाड्रियान दूसरे प्रदेशोंके उत्पन्न थे। इनमें ट्राजन सम्राट् पद प्राप्त करके भी एक वर्ष तक रोममें न आया; किन्तु हाड्रियानने सेनेट द्वारा अभिनन्दित होनेके पहले सिरोपामें "इम्पेरियाम" ग्रहण किया था। इसलिये वह सेनेटके सामने विनीत भावसे क्षमाप्रार्थना करने पर बाध्य हुआ था। ट्राजन और मार्कस औरिलियासकी दिग्गज-विस्तारित विजय कीर्ति, दुर्गमोचन और प्रतिष्ठापोलक हुई थी। अतः आवश्यक समझ कर रोमसे हटा कर दूसरे स्थानमें राजपाट परिवर्तन करनेकी व्यवस्था हुई थी। डेमिटियास-के सिवा भेस्पेसियनसे औरिलियास तकके सभी सेनेट-के साथ मिल कर यथोचित सुन्दर राज्यकार्य्य-सम्पादन करते थे। किन्तु क्रमशः आ कर भूभागमें दुर्दान्तकारी विदेशियोंके आक्रमणसे जब रोमकोंकी सामरिक शक्ति बढ़ गई तब वे कार्योंमें अनुरक्त हुए। समयके मुताबिक एक केन्द्रस्थ राजकीय शासनपद्धति (Imperial system of government)की आवश्यकता हुई। इसके अनुसार हाड्रियान इसके लिये उद्योगी हुआ था। उसकी इस अभीष्ट सिद्धिके द्वारा राज्यके शासनविभागकी बहुत उन्नतिकी आशा थी, किन्तु वैसी न हुई। वरं इसके द्वारा साम्राज्य शक्तिकी बहुत कमी हो गई थी।

मार्कस औरिलियासकी मृत्युसे आलेक्जेंड्रिया सिभा-सनके अधिकार तक (१८०-२०८ ई०में) रोमकी प्राचीन शासन-पद्धतिका सम्यक् विलय साधित हुआ था। पार्टिनेक्स सेभेरास सिकन्दर मासिमासार, मास्किमास, डासियस आदि बादशाहके द्वारा राजपद पर निर्वाचित होने पर भी सेभेरास सिकन्दरके सिवा उनमें और कोई लोकमतका आनुगत्य लाभ कर न सका। ईसाकी ३री शताब्दीमें रोमक बादशाह प्रधानतः सैनिकोंके निर्वाचन द्वारा ही मनोनीत होते थे। ये सब बादशाह सीमान्त प्रदेशवासी अपढ व्यक्तिके सन्तान हैं। ये ऐश्वर्य्यगर्वसे मत्त हो कर दूसरेकी समवेदनाको समझनेमें समर्थ नहीं होते थे। अत्याचार और निष्ठुरता उनके अंगका आभूषण बनी थी। अमानुषिक अत्याचारसे वे साधारणको पीड़ित कर अपनी अपनी पाशव प्रवृत्तिको चरितार्थ करते थे। इन सब नीच प्रकृतिके राजाओंसे सेनेट सदा सशङ्कय, लांछित और विड़म्बित होते थे। जो राज्यशासनके उद्योगी और दयावान् थे वे भी सेनेटको सरकारी कामोंमें हस्तक्षेप नहीं करने देते थे। सेप्टिमियस सेभेरास आरिस्टोक्रेटी था[1]। सेनेटसे अभिमत (Formal confirmation) न ले कर उसने राज्यकार्य्य भार ग्रहणका पथ प्रशस्त किया। रोममें रह कर उसने ही "प्रोकन्सल" उपाधि धारण और कोर्टमें बैठ कर शासन और विचार कार्य सम्पादन कर सहमकी पदार-हौसारोंके भीतर इन कार्योंके पूर्ण करनेकी व्यवस्था की थी। अन्तमें यह प्रिटोरियनके हाथोंके निरंकुश ही बादशाहके अपन्यय राजकर्मचारीके रूपमें नियोजित कर गये। इससे उसके अधीन प्रभुत्वका परिचय मिलता है। उसकी शिलालिपिमें यहाँ पहले बादशाहकी "Dominus" शब्द लिखा गया है।

सन् २४१ ई०में जर्मनोंके अभ्युदय और रोम-साम्राज्यके अधःपतनसे इस हिन्दू प्रचारित पर्वतोंके उत्तर कई सुदृढ़ सम्प्रदायोंके ऊपर क्रमशः रोम सिंहासन

पर अलंकृत होते देखते हैं। इन्हीं नरपतियोंके राज्य कालसे ही रोम-साम्राज्यके सामरिक और राजकीय शान्तिकी पूर्ण प्रतिष्ठा हुई और धीरे धीरे वह उत्तरोत्तर बढ़ गई थी। उस समयसे 'इम्पिरियल' और 'सेनेटेरियल' प्रदेश-विभाग विलुप्त हुआ। राजकोष तथा सम्राट्के अपनत्वका अलगाव दूर हुआ। इसके बाद सेनेटर सामरिक और राजकीय कार्य्योंमें स्वाधिकार-विच्युत हुए। जो कुछ बाकी था, वह विख्यात वीर औरेलियनके (२७०-२७५ ई०में) यत्नसे पूर्ण हुआ। उसने राज्य-शासनका कठोर दण्ड अपने हाथमें ले कर प्राचीन प्रथाका सम्पूर्णरूपसे विलुप्त किया। उसने अपने अधिकारकालमें रोम सरकारमें डायोक्लिसियानके अनुकरण पर राजशक्तिकी पराकाष्ठा दिखलाई थी और प्राच्य नगरोंकी समृद्धिका अनुकरण कर अपने राज्य समृद्धिकी गाम्भीर्य्य-वृद्धि की थी।

रोम-साम्राज्यका संक्षिप्त इतिहास।

पहले ही कहा जा चुका है, कि जुलियस सीजरने रोमसाम्राज्यकी सीमा बढ़ा कर नाना विषयोंका संस्कार किया था। किन्तु रात दिनके युद्धविग्रहकी शान्तिका कोई उपाय नहीं कर गया। महानुभाव अगस्टस् इसका उपाय कर गया था क्योंकि वह फूंक फूंक कर पैर रखता था। रोमीय प्रजातन्त्रके निर्वाचित सेनापतियों तथा स्वयं सीजर दक्षिण और पश्चिमके भूखण्डों पर विजय कर गया। फलतः अफ्रिकाके मरुप्रदेश तथा अटलाण्टिक-महासागरके सिवा रोम-राज्यसीमा और अधिक नहीं बढ़ सकी। सीजरने गल-विजय की थी सही; किन्तु उसका भतीजा अगस्टसने ही इन सब नगरोंमें सुसम्बद्ध शासनपद्धति-विस्तार और राजशक्तिका पतन किया था और उसी तरह राजकीय विधिसे ही वह रोमराज्यकी सीमारक्षामें तत्पर हुआ था।

ईसासे २५वर्ष पहले न्यूमिडिया-राज्य प्राचीन अफ्रिका प्रदेशके अन्तर्भुक्त और उसके निकटका इजिप्ट नगर एक स्वतन्त्र प्रदेशके रूपमें गिना जाने लगा। स्पेनके उत्तर-पश्चिमके रहनेवाली असभ्य पहाड़ी जातियोंको जीत कर लूसिटानियाका शासन-विस्तार किया गया था। ईसाके २७ वर्ष पूर्व अगस्टसने आकुइटानिया, गलडुनेनसिस और बेलजिका प्रदेशोंको राज्यभुक्त कर युफ्राइनसे जर्मनसागरके किनारे तक सीमा बढ़ा दी थी। इसके बाद उसने दक्षिणके मिसिया (६ ई०में) रिटिया (१५ ई०में) और गालिया-बलजिका आदि प्रदेश अधिकार कर सुशासन प्रतिष्ठा द्वारा शान्तिस्थापन करनेकी चेष्टा की थी। ९वीं ई०में भेरसकी पराजयके बाद वह राइनको पार कर सामने आगे बढ़ नहीं सका। उसके वंशधर टाइबेरियस शिलभा ट्यूटने वर्गेसिसकी विपत्तिका बदला चुका कर जर्मनीकासको लौटनेकी आज्ञा दी और १७ ई०में उत्तर डेन्यूबके मार्कोमन्नी प्रदेशके राजा मारोबोडुआसके साथ सन्धि कर उसने अपने पिताके निर्दिष्ट अपने पक्षकी सुरक्षाका बन्दोबस्त करनेमें मन लगाया था। इसके अनुसार राइन नदीके किनारे उत्तर और दक्षिण जर्मनीमें डेन्यूबकी सीमा पर और पानोनिया और मिसियाके चारों ओर रोमीय लीजन प्रतिष्ठित किये गये थे।

अगस्टस् रोम साम्राज्यकी शान्ति और समृद्धि प्रतिष्ठित कर गया। इसके बादके बादशाह सभी सुदक्ष थे। ये अप्रतिहतरूपसे राज्यशासन कर गये हैं। गेयास, क्लडियास और नीरो दुर्बुद्धिके कारण तथा उसके अत्याचारसे रोम और इटली उत्पीड़ित हो उठी थी। राज्यके अन्य किसी स्थानमें उनकी दाल न गली। नीरोकी मृत्युके बाद, प्रतिद्वन्द्वी बादशाहोंके विरोधजनित युद्धमें रोम-साम्राज्यकी जो क्षति हुई थी, उसकी पूर्त्ति भेस्पेसियान कर गया था। ओथो, भिटेलियास और भेस्पेसियानके परस्पर युद्धके अवसर पर ६९ ७० ई०में सिभिलिसका विद्रोह उपस्थित हुआ। ट्राजन, हाड्रियान और दोनों आण्टोनियास अपनी अपनी असाधारण शक्तिसे रोम-साम्राज्यके विश्वविजयिनी शक्तिके पुनराविर्भाव करनेमें समर्थ न होने पर भी सुशासन तथा शान्ति-स्थापनमें सफल हुए थे। क्लडियास बृटेनको जीतनेके लिये अग्रसर हुआ था। आग्रिकोला (७८ ८४ ई०में) यहांका उत्तर-देश जीत कर "हाड्रियानकी चहारदीवारी" बना गया था। १०७ ई०में बर्बर जातिके आक्रमणसे डर कर ट्राजन निम्न डेन्यूब प्रदेशमें गया और उसने डासिया-राज डुसेबालासको पराजित कर उसका राज्य छीन

लिया। उस समयसे २५६ ई० तक उक्त प्रदेश रोमके अधिकारमें था। बादशाह ट्राजानने मासिया-सिड्रिया प्रदेशको रोमसाम्राज्यमें मिला लिया था।

मार्कस ओरेलियसके शासनकालमें (१६२-१८० ई०) मार्कोमनी आदि जर्मन जातियां मौका पा कर रोम राज्य पर आक्रमण करने लगीं। ये धीरे धीरे उत्तर डेन्यूब प्रदेशको पार कर क्रमसे रिशिया, नोरिकाम और पानोनिया प्रदेशको लूट पाट और ध्वंस कर आल्पसको पार कर इटलीमें आ उपस्थित हुईं। इन जर्मे-निक बर्बरोंके साथ रोमको चौदह वर्ष तक युद्ध करना पड़ा।

सन् १८० ई०में मार्कस ओरेलियसकी मृत्यु हुई। उस समयसे २८४ ई० तक सामान्य युद्धविग्रह और शासन विशृङ्खलासे रोम-साम्राज्यमें घोर विप्लव उपस्थित हुआ। किन्तु सेप्टिमियास सेभेरास, डेसियास क्लडियास, ओरेलियन और प्रोबास आदि रणदुर्मद बादशाहोंके कठोर शासनसे रोम ध्वंस होनेसे बच गया था। २११ ई०में सेभेरासकी मृत्युके बादसे २८४ ई०के डायोक्लिसियनके राज्यारोहण तक लगभग २३ बादशाह क्रमशः सिंहासन पर बैठे थे। इनमें केवल तीन बादशाहोंकी स्वाभाविक मृत्यु हुई थी। डिसियस गथ जातिके साथ युद्ध करते समय मारा गया था। भालेरियानने सुदूर पूर्वकी ओर कैदी बन कर अपमानपूर्ण जीवनका अवसान किया था और क्लडियासने उसी दुर्भिक्षकी महामारीसे अपना जीवन खो दिया था।

राजमुकुट धारणके बाद अपनेको [illegible] मतिमानी बादशाह 'हाईरेक्ट' नामसे पुकारे गये थे। कोमोडासने अपनी बुद्धिके दोषसे और अत्याचारसे रोम राज्यमें विशृङ्खला उपस्थित कर दी। चारों ओरसे लोग उसके प्राणनाशकी चेष्टा की। उसकी बहन लुसिल्लाने षड्यन्त्र किया और क्लडियास पम्पि-आनसको [illegible] लगी। [illegible] समय बादशाहको [illegible] के हाथ मारा गया। सन् १९२ ई०की ३१वीं दिसम्बरको [illegible] निर्वासित की गई।

कोमोडासकी मृत्युसे जनताने शोर प्रकट न कर उसकी जगह पर सिनेटने पार्टिनाक्सको बैठाना चाहा। इस समय [illegible] ओलिनियास [illegible] प्रतिद्वन्द्वी बन कर सिंहासन अधिकार करनेकी चेष्टा करने लगा। किन्तु सफलता न मिली और सभी ध्वंसको प्राप्त हुए।

कोमोडासकी मृत्युके बाद (१९३ ई०की २८वीं मार्चको) तीन सौ "प्रिटोरीय गार्डस" नामक रक्षक सैनिकोंने गुप्तरूपसे महल पर आक्रमण कर पार्टिनाक्सको मार डाला था। उस समय, बृटेन, सिरिया और इलिरिकामके रोमीय सेनादलने प्रिटोरीय सेनादलके पार्टिनाक्सको मार डालने पर शोक प्रकाश किया और इस बुरे मार्गसे प्राप्त कार्यको युक्तियुक्त स्वीकार नहीं किया। उस समय वे अपने अपने कठोर अधिनायकोंके अधीनमें रह कर उपरोक्त हत्याकारियोंको दण्ड देनेके लिये आगे बढ़े। बृटेनके लोगोंके नायक क्लोडियास आल्बिनास, सिरियाके सेनापति और पिस् सिनियास नायगर और पानोनिया सेनादलके अध्यक्ष सेप्टिमियास सेभेरास पार्टिनाक्सकी मृत्युका बदला चुकाने आ कर आपसमें प्रतियोगी हो कर सिंहासन पानेकी आशामें युद्धका आयोजन किया। लुगडुनाम [illegible] और माइलिसियाके युद्धमें और पैलसको नगरके घेरेके समय भीषण युद्धमें आल्बिनास और नायगर-परिचालित प्रतिपक्ष रोमक सैनिक अपने नायकके साथ मार डाले गये। पूरी [illegible] हुई। शेषतः सेप्टिमियास सेभेरासने इस तरह शत्रुओंका नाश कर सिंहासन पर अधिकार कर लिया। किन्तु [illegible] पार्टिनाक्स अपने अधिकारके समय [illegible] बाद "प्रोटोरियन डिग्रेड" हुआ था। उक्त पार्टि-नियाक्स सिवा उसके वंशके अधिकारकालमें [illegible] और [illegible] नामक दूसरे दो बादशाह पैदा हुए। उनको देखनेसे मालूम होता है, कि उस समय रोमकी राजनीतिमें पूर्णता प्राप्त की थी।

मध्य पहाड़ोंके [illegible] सेभेरासने [illegible] कुछ [illegible] किया। ये सबको रोमकी प्रजा होने पर भी परिवर्तन [illegible],

फिर भी नाना सद्गुणोंसे परिपूर्ण थी। इस राज-महिषीके गर्भसे काराकल्ला तथा जेटा नामके दो चरित्र-हीन और पाशव प्रकृति प्रतिमूर्त्तिका आविर्भाव हुआ। सन् २०८ ई०में ६० वर्षका बुड्ढा सेभेरास अपने दोनों पुत्रको साथ ले कर बृटेन पर विजय करने गया। किन्तु रणमें विजय-प्राप्त करके भी दोनों पुत्रोंके असद्व्यवहारसे वह भग्नमनोरथ हुआ। काराकल्लाने उसके अन्तिम दिनोंमें उसे मार डालनेकी साजिश की। किन्तु विश्वस्त लीजनकी सतर्कतासे उसकी रक्षा हुई। सेभेरासने अपने कठोर शासनसे अपने पुत्रोंको उत्पीड़ित किया तथा डराया धमकाया। इससे भी उनके चरित्र-का संस्कार न हुआ। अन्तमें ६५ वर्षकी अवस्थामें इयार्क नगरमें उसने यह शरीर त्याग दिया। मृत्युके समय उसने सैनिकोंके सामने अपने पुत्रसे कहा था, कि तुम लोग इस सेनासङ्घके ही पुत्र हो। किन्तु दुर्भाग्य-वशतः इन्होंने आपसमें मेल नहीं रखा।

सम्राट्की मृत्युके बाद सैन्यदलने दोनों भाइयोंको सम्राट् कह कर विघोषित किया। यह दोनों राजसिंहासन पर बैठनेके लिये राजधानीको चले। अभी गल और इटलीको भी पार न कर सके थे, कि इन दोनोंमें पर-स्पर मनमुटाव पैदा हुआ। राजधानीमें पहुंच कर उन्होंने राज्यारोहण किया। किन्तु इन दोनोंने आपसमें राज्यका विभाग कर लिया। पिताका ऐसा आदेश भी था। ज्येष्ठ भ्राता काराकल्लाको यूरोप और पश्चिम अफ्रिका मिला और गेटाने एशिया और मिस्रदेश ले कर अले-कजेण्ड्रिया और अन्तिओकमें राजधानी कायम की। दो केन्द्रोंमें राजपाट प्रतिष्ठित होनेसे फिर आन्तर्जातिक विवादका सूत्रपात हुआ। दोनोंमें परस्पर ईर्षाग्नि प्रज्वलित हो उठी। यह देख माता जुलियाने दोनोंमें मेल करा देनेके लिये अपने घर दोनोंको बुलाया। किन्तु फल यह हुआ कि काराकल्लाने गुप्त हत्यारोंको लगा कर गेटा-को मरवा डाला।

भाईको मार कर काराकल्लाने अपने प्राणकी आशङ्का बता कर सेना तथा देवमन्दिरके सामने अपने प्राणकी भिक्षा मांगी। सिनेट और सेना द्वारा आश्वासन पाने पर मृत सम्राट्का सत्कार कर यह २१२ ई०में एकेश्वर अधीश्वर बन गया।

गेटाकी मृत्युके १ वर्ष बाद यह राजधानी छोड़ कर पूर्व विभागके प्रदेशोंमें शान्तिस्थापनके लिये चला। इसके शासनके समय पूर्व राज्यमें अत्याचार और अनाचारकी मात्रा बहुत बढ़ गई थी। अलेकजेण्ड्रियामें भीषण हत्या-काण्ड साधित हुआ। ओपिलियास माक्रिनाश दीवानी (Civil) विभागका और आडभेण्टस् सामरिक विभाग-का सर्वमय कर्त्ता हुआ। सम्राट्का मर जाना ही उसके लिये काल हो गया। बात फुट गई। यह बात मालूम हो गई कि काराकल्लाने ही अपने भाईको मरवा डाला है। इससे इसका सैन्य धीरे धीरे इसका साथ छोड़ने लगा। माक्रिनाश भविष्यद्वाणीके आधार पर साम्राज्य होनेकी चेष्टा करने लगे। सन् २१७ ई०की ८वीं मार्चको एडेसासे कड्हो आते समय अपने एक रक्षक मार्सियालिसके हाथ काराकल्ला मारा गया।

काराकल्लाकी मृत्युके बाद तीन दिनों तक रोमराज्यका सिंहासन शून्य था। इसके बाद श्रेष्ठ प्रिफेक्ट् अडभेण्टास-की इच्छासे सबोंने माक्रिनाशको राजसिंहासन पर बैठाया। किन्तु कुछ ही समयके बाद माक्रिनाशने अपने पुत्र डायाडुमेनियासनासको अण्टेनिनास नाम और राजोपाधि दान कर राजसिंहासन पर बैठा दिया। उसका अभिप्राय था, कि बालककी मोहन मूर्त्तिसे मुग्ध हो कर सेनाओंका चित्तहरणपूर्वक अपने संशयपूर्ण सिंहा-सनको सुदृढ़ कर लूं। उसने इसी उद्देश्यसे राजमाता जुलियाको अन्तिओकके राजप्रासादसे निकाल दिया। इस रमणीने बहु धन रत्न ले कर अपनी सोइमियास और मामयी नामकी विधवा कन्याओंके सङ्ग ले कर एमासामें पहुंच कर सोइमियासके पुत्र वासियानासको सम्राट् बनाया। इसको उसने काराकल्लाके विवाहित स्त्रीजात पुत्र कह कर घोषणा कर दी। सेनाओंने मिसाय-के धनसे पुष्ट हो कर वसियानासको अन्तिओकस नामसे सम्राट् स्वीकार कर लिया। माक्रिनाश भाग्यो पड़ा। कुचक्रमें पड़ कर यह अन्तिओकके निकट इम्मिके युद्धमें पराजित हुआ। उसके साथ दश वर्षके पुत्र डियाडुमे-नियानासका भाग्य चूर्ण हो गया। शत्रु, मित्र सभी विजेताकी शरणमें आये। काराकल्लाके कल्पित पुत्र वासियानास एमेसाके सूर्य्यमन्दिरकी देवमूर्त्तिके नाम

लिया। इस समयसे २५१ ई० तक उक्त प्रदेश रोमके अधिकारमें था। बादशाह ट्राजानने आर्मेनिया-सिरिया प्रदेशको रोमसाम्राज्यमें मिला लिया था।

मार्कस औरेलियसके राजत्वकालमें (१६१-१८० ई०) मार्कोमनी आदि जर्मन जातियां सीमान्तसे आ कर रोम राज्य पर आक्रमण करने लगीं। ये धीरे धीरे उत्तर डेन्यूब प्रदेशको पार कर क्रमसे रिशिया, नोरि-कम और पानोनिया प्रदेशको लूट पाट और ध्वंस कर आक्विलियाको पार कर इटलीमें आ उपस्थित हुईं। इन जर्मनिक वर्बरोंके साथ रोमको चौदह वर्ष तक युद्ध करना पड़ा।

सन् १८० ई०में मार्कस औरेलियसकी मृत्यु हुई। इस समयसे २८४ ई० तक साम्राज्य युद्धविग्रह और शासन विशृङ्खलासे रोम साम्राज्यमें घोर विप्लव उप-स्थित हुआ। किन्तु सेप्टिमियस सेवेरस, डेसियस, क्लडियस, औरेलियन और प्रोबस आदि रणदुर्मद बादशाहोंके कठोर शासनसे रोम ध्वंस होनेसे बच गया था। २११ ई०में सेवेरसकी मृत्युके बादसे २८४ ई०के डायोक्लिशियनके राज्यारोहण तक लगभग २३ बादशाह क्रमशः सिंहासन पर बैठे थे। इनमें केवल तीन बादशाहोंकी स्वाभाविक मृत्यु हुई थी। डिसियस गथ-जातिके साथ युद्ध करते समय मारा गया था। भ्ले-रियानने सुदूर पूर्वकी ओर कैदमें पड़ कर अपमान-पूर्ण जीवनका अवसान किया था और क्लडियसने उसी दुर्दिनकी महामारीमें अपना जीवन खो दिया था।

राजपुत्र मार्कसके बाद आसनके अधिकारी इस नाम जीवनको बादशाह 'हार्कुलिस' नामसे पुकारे गये थे। कोमोडासने अपनी बुद्धिके दोषसे और अत्याचारसे रोम राज्यमें विशृङ्खला उपस्थित कर दी। बड़ी चोरसे लड़ाईमें उनके मनमानेकी चेष्टा की। उनको बहुत सुविख्यात सेनापतियोंको विपत्तिमें डाला और क्लडियस परि-वारके द्वितीय-परिवारका उनको अनुचित आदिके साथ स्थापित करने लगे। अन्तमें सिनेटकी सहायतासे उसे शासक बादशाहको प्रीटोरियन गुप्तचरके हाथ मारा गया। सन् १९३ ई०को १ली जनवरीको पर्टिनाक्स निर्वाचित की गई।

कोमोडासकी मृत्युसे जनतामें शोक प्रकट न कर उसकी जगह पर सिनेटने पार्टिनाक्सको बैठाना चाहा। उस समय सवराम बलवान सेनापतियोंने उसके प्रतिद्वन्द्वी बन कर सिंहासन अधिकार करनेकी चेष्टा करने लगा। किन्तु सफलता न मिली और सभी ध्वंसको प्राप्त हुए।

कोमोडासकी मृत्युके बाद (१९३ ई०की २८वीं मार्चको) तीन सौ "प्रिटोरियन गार्ड्स" नामक शरीर-रक्षक सैनिकोंने राजमहल पर आक्रमण कर पार्टिनाक्स को मार डाला था। उस समय बृटेन सिरिया और इलिरिकमके रोमीय सेनापतिने प्रिटोरियन सेनादलके पार्टिनाक्सको मार डालने पर शोक प्रकाश किया और इन बुरे मार्गसे प्राप्त अर्थको घृणापूर्वक स्वीकार नहीं किया। उस समय वे अपने अपने कठोर अधिनायकोंके अधीनमें रह कर उपरोक्त हत्याकारियोंको दण्ड देनेके लिये आगे बढ़े। बृटेनके शासनके शासक क्लोडियस आल्बिनास, सिरियाके सेनापति और पिसेनियस नाइगर और पानोनिया सेनादलके अध्यक्ष सेप्टिमियस सेवेरस पार्टिनाक्सकी मृत्युका बदला चुकाने आ कर आपसमें प्रतियोगी हो कर सिंहासन पानेकी आशामें युद्धका आयोजन किया। कुस्तुन्तुनिया रणक्षेत्रमें ईसस-पेट्र और मार्सेलियाके युद्धमें और लैग्डनको नगरके घेरेके समय आल्बिनास और नाइगर-परिचालित प्रतिपक्ष रोमक सैनिक अपने नायकके साथ मार डाले गये। युद्ध समाप्त हुआ। धीरता-मयी सेप्टिमियस सेवेरसने इस तरह शत्रुओंका नाश कर सिंहासन पर अधिकार कर लिया। पिताका सेप्टिमियस पार्लिनियस अपने अधिकारके समय आगे बहु "प्रेटोरियन विद्रोह" हुआ था। उस कार्ल-लियसके पिता उसके वंशके अधिनायकोंमें गाल्बा और उस्तियानस नामक दूसरे दो बादशाह पैदा हुए। उसको लेखकोंसे मालूम होता है, कि उस समय रोमके राजनीतिमें पूर्णता प्राप्त की थी।

प्रथम वर्षोंके दिनोंमें सेवेरसने अतिशय दुर्गका धीरता आदि एक मनोरम पालियामेन्ट दिया। वे इसको रोमको मजबूती देनेके लिए भी परिवर्तन थे,

फिर भी नाना सद्गुणोंसे परिपूर्ण थी। इस राज-महिषीके गर्भसे काराकल्ला तथा जेटा नामके दो चरित्र-हीन और पाशव प्रकृति प्रतिमूर्त्तिका आविर्भाव हुआ। सन् २०८ ई०में ६० वर्षका बुड्ढा सेवेरास अपने दोनों पुत्रको साथ ले कर वृटेन पर विजय करने गया। किन्तु रणमें विजय-प्राप्त करके भी दोनों पुत्रोंके असद्-व्यवहारसे वह भग्नमनोरथ हुआ। काराकल्लाने उसके अन्तिम दिनोंमें उसे मार डालनेकी साजिश की। किन्तु विश्वस्त लीजनकी सतर्कतासे उसकी रक्षा हुई। सेवेरासने अपने कठोर शासनसे अपने पुत्रोंको उत्पीड़ित किया तथा डराया धमकाया। इससे भी उनके चरित्र-का संस्कार न हुआ। अन्तमें ६५ वर्षकी अवस्थामें इयार्क नगरमें उसने यह शरीर त्याग दिया। मृत्युके समय उसने सैनिकोंके सामने अपने पुत्रसे कहा था, कि तुम लोग इस सेनासङ्घके ही पुत्र हो। किन्तु दुर्भाग्य-वशतः इन्होंने आपसमें मेल नहीं रखा।

सम्राट्की मृत्युके बाद सैन्यदलने दोनों भाइयोंको सम्राट् कह कर विघोषित किया। यह दोनों राजसिंहासन पर बैठनेके लिये राजधानीको चले। अभी गल और इटलीको भी पार न कर सके थे, कि इन दोनोंमें पर-स्पर मनमुटाव पैदा हुआ। राजधानीमें पहुंच कर उन्होंने राज्यारोहण किया। किन्तु इन दोनोंने आपसमें राज्यका विभाग कर लिया। पिताका ऐसा आदेश भी था। ज्येष्ठ भ्राता काराकल्लाको यूरोप और पश्चिम अफ्रिका मिला और गेटाने एशिया और मिस्रदेश ले कर अले-कजेण्ड्रिया और अन्तिओकमें राजधानी कायम की। दो केन्द्रोंमें राजपाट प्रतिष्ठित होनेसे फिर भ्रातृजातिक विवादका सूत्रपात हुआ। दोनोंमें परस्पर ईर्षाग्नि प्रज्वलित हो उठी। यह देख माता जुलियाने दोनोंमें मेल करा देनेके लिये अपने घर दोनोंको बुलाया। किन्तु फल यह हुआ कि काराकल्लाने गुप्त हत्यारोंको लगा कर गेटा-को मरवा डाला।

भाईको मार कर काराकल्लाने अपने प्राणकी आशङ्का बता कर सेना तथा देवमन्दिरके सामने अपने प्राणकी भिक्षा मांगी। सिनेट और सेना द्वारा आश्वासन पाने पर मृत सम्राट्का सत्कार कर यह २१२ ई०में एकेश्वर अधीश्वर बन गया।

गेटाकी मृत्युके १ वर्ष बाद यह राजधानी छोड़ कर पूर्व विभागके प्रदेशोंमें शान्तिस्थापनके लिये चला। इसके शासनके समय पूर्व राज्यमें अत्याचार और अनाचारकी मात्रा बहुत बढ़ गई थी। अलेकजेण्ड्रियामें भीषण हत्या-काण्ड साधित हुआ। ओपिलियास माक्रिनास दीवानी (Civil) विभागका और आडभेण्टस् सामरिक विभाग-का सर्वमय कर्त्ता हुआ। सम्राट्का मर जाना ही उसके लिये काल हो गया। बात फूट गई। यह बात मालूम हो गई कि काराकल्लाने ही अपने भाईको मरवा डाला है। इससे इसका सैन्य धीरे धीरे इसका साथ छोड़ने लगा। माक्रिनास भविष्यद्वाणीके आधार पर साम्राज्य होनेकी चेष्टा करने लगे। सन् २१७ ई०की ८वीं मार्चको एडेसासे कड्‌ही आने समय अपने एक रक्षक मार्सियालिसके हाथ काराकल्ला मारा गया।

काराकल्लाकी मृत्युके बाद तीन दिनों तक रोमराज्यका सिंहासन शून्य था। इसके बाद श्रेष्ठ प्रिफेक्ट् अडभेण्टास-की इच्छासे सबोंने माक्रिनासको राजसिंहासन पर बैठाया। किन्तु कुछ ही समयके बाद माक्रिनासने अपने पुत्र डायाडुमेनियासनासको अण्टेनिनास नाम और राजोपाधि दान कर राजसिंहासन पर बैठा दिया। उसका अभिप्राय था, कि बालककी मोहन मूर्त्तिसे मुग्ध हो कर सेनाओंका चित्तहरणपूर्वक अपने संशयपूर्ण सिंहा-सनको सुदृढ़ कर लूं। उसने इसी उद्देश्यसे राजमाता जुलियाको अन्तिओकके राजप्रासादसे निकाल दिया। इस रमणीने बहु धन रत्न ले कर अपनी सोइमियास और मामयी नाम्नी विधवा कन्याओंको सङ्गमें ले कर एमासामें पहुंच कर सोइमियासके पुत्र बासियानासको सम्राट् बनाया। इसको उसने काराकल्लाके विवाहित औरसजात पुत्र कह कर घोषणा कर दी। सेनाओंने मिसाय-के धनसे पुष्ट हो कर बसियानासको अन्तिओकस नामसे सम्राट् स्वीकार कर लिया। माक्रिनास खाली पड़ा। कुचक्रमें पड़ कर यह अन्तिओकके निकट इम्पिके युद्धमें पराजित हुआ। उसके साथ दस वर्षके पुत्र डियाडुमे-नियानासका भाग्य चूर्ण हो गया। मात्र, मिस सभी विजेताकी शरणमें आये। काराकल्लाके कल्पित पुत्र बासियानास एमेसाके सूर्य्यमन्दिरकी देवमूर्त्तिके नाम

पर इलागाबालस अभिभावकोंद्वारा मारा गया। इसीके युद्धके बाद रोम-साम्राज्यका अधःपतन हुआ। यह सन् २१८ ईस्वीकी दूसरी घटना है।

मामियाराका पुत्र राजा हुआ और मामियाका पुत्र अलेक्जेन्डर उसका सहयोगी बन कर राजकार्यका कार्य करने लगा। किन्तु नया सम्राट् अपने भाईकी ईर्ष्यासे कातर हो कर उसके प्राणनाशकी चेष्टा करने लगा। प्रिटोरियन गार्डदल बालक अलेक्जेन्डरकी प्राणरक्षाके लिये तत्पर हुआ। एक दिन यह प्रिटोरियन दलने उसको राजप्रासादमें ला कर निष्ठुरतासे मार डाला (२२२ ई०की १०वीं मार्चको)। सेनाओंने मामियाके पुत्र १७ वर्षके अलेक्जेन्डरको राज-सिंहासन पर बैठाया। इसके अनुसार अलेक्जेन्डर-सेवेरस नामसे सम्राट् बन गया। अलेक्जेन्डरने दुर्भाग्यवशात् लौटने समय राइन नदी पर जर्मन सेनाओंको पकड़ कर माक्सिमीन नामक एक व्यक्तिको एक बड़ी सेना एकत्र करने तथा उसको सिखाने पढ़ानेका भार दिया। यह मनुष्य धीरे धीरे प्रधान सेनापतिके पद पर पहुंच गया। इस समय सम्राट्के अत्याचारसे पीड़ित हो कर लोगोंने सम्राट्को मार डाला। इसके बाद माक्सिमीनको गद्दी पर बैठाया। यह सन् २३५ ई०की १९वीं मार्चकी घटना है।

माक्सिमीन थ्रेसवासी एक किसानका लड़का था। इसने ऊंचा पद पा कर 'टाइबेरि'की तरह अपने साम्राज्यका सर्वस्व लूट लेना चाहा। धर्मोन्मत्तताके कारण इसने देवमन्दिरकी पूजामें भी कमी कर दी। प्रतिमाके विरुद्ध ... पेट पालन करने ... धर्मान्तर इस कार्यमें साम्राज्यका प्र... विरुद्ध हुआ। ... अफ्रिका ... शासनकर्ता ... मार डाला। ... ... उपाधि ग्रहण कर अपने ... ... राजधानी ... वृद्ध गार्डियानका ... राजसिंहासन करने लगा। इसके ... ... और ... ...

कायम हुई। प्रिटोरियन गार्डस सेनादलके नायक प्रिटो-रियनोंका नगरकी रक्षा करनेके लिए नियुक्त हुआ। उसने अपने अत्याचारसे ... कर सिनेट और नगरवासियों पर अपना प्रभुत्व कायम किया। किन्तु प्रजाविद्रोहमें उसको अपना जीवन खो देना पड़ा। उस समय सेनाने भर्त्सना ... दे कर दोनों गार्डियनोंने राज्यको सुदृढ़ बनाया। किन्तु इससे विशेष कोई फल नहीं हुआ। सन् २३७ ईस्वीकी दूसरी जुलाईको मौरितानियाका शासनकर्ता कापेलियानसने आफ्रिका कार्थेजप्रदेश पर आक्रमण किया। कनिष्ठ गार्डियान रणक्षेत्रमें मारा गया। यह सुन कर वृद्ध गार्डियानने आत्महत्या कर ली। इसने कुल ३६ दिन ही राजत्व किया था।

इधर दोनों गार्डियानकी मृत्युसे सिनेटके सदस्य आतङ्कग्रस्त प्रमादित करने लगे। सिनेटने माक्सिमस और बालबिनसको सम्राट्के पद पर नियुक्त किया। माक्सिमस राजनाशके विरुद्ध युद्ध कार्यमें लिप्त रहने लगा और सुयश और ... प्रभाव विस्तार करने लगा। माक्सिमसने मौरतानिया और जर्मन जातियोंको पराजित कर सैनिकमण्डलका ... परिचय दिया था। किन्तु जब इन दोनों सम्राट् विप्र-योगमें मग्न हो कर देवमन्दिरकी पूजा पाठ करनेमें मग्न थे, तब अकस्मात् एक जनसमूहने उन सुप्तमन्दिरों ... घेर कर चीत्कार कर कहा--"गार्डियन वंशधरको ही ... सम्राट् बनाये जावें।" दोनों सम्राटोंने ... सी सेना ले कर इस जनसमूहको निरस्त ... चेष्टा की। इन लोगोंने वृद्ध गार्डियानके दौहित्र ... उपस्थित ...

थे। ऐसे समय प्रिटोरिया गार्ड्स् दलने आ राजमहलमें घुस कर अधीश्वरके गहनोंको उतार कर मार डाला। यह सन् २३८ ई०की १५वीं जुलाईकी घटना है।

इस तरह एक एक करके छः सम्राट् कुछ महीनेमें ही विद्रोही प्रजाके हाथसे मार डाले गये। गार्डियान प्रजा पुञ्जकी कृपासे राजतख्त पर बैठा सही, किन्तु उसकी माताके कृपापात्र लोगा उसके बाल्यकालमें ही आधिपत्य विस्तार करने लगा। वे प्रजाके प्रति अत्याचारपरायण हो कर भी निश्चिन्त नहीं हुए। अन्तमें उन्होंने बालक सम्राट्की दोनों आंखें निकाल लीं। उस समय (२४३ ई०) सम्राट्ने प्राणके भयसे भाग कर प्रधान मन्त्रीकी शरणमें जा कर प्राणभिक्षा पाई। उनके विश्वस्त परामर्शदाता और प्रिटोरिय प्रिफेक्ट मिसिथियासने सम्राट्की ओरसे मिसोपोटामिया-आक्रमणकारी पारस्यके राजाको पराजित किया और उस घटनाका स्मरण रखनेके लिये उसने २४२ ई०में जानासके मन्दिरका दरवाजा खोल दिया।

पारस्यकी फौजोंको भगा कर सम्राट्ने उनका पीछा किया और उन्हें यूफ्रेटिससे टाइग्रीस तक भगा कर सेनेटको अपने सचिवकी प्रखर बुद्धिका परिचय दिया। किन्तु अकस्मात् मिसिथियासकी मृत्युसे अधीश्वर गार्डियानकी समृद्धिका लोप हुआ। उसने अरब देशीय प्रसिद्ध डाकू फिलिपको प्रिफेक्ट पद पर नियुक्त किया। उसने इसको नियुक्त कर आप ही आप अपनी मृत्युको बुलाया। फिलिप डाकू था ही, साम्राज्यको हड़प जानेके लिये उसने अधीश्वरके विरुद्ध सैनिकोंको भड़काया। उत्तेजित सैनिकोंने आबोरास नदीके किनारे सम्राट्को मार कर फिलिपको सम्राट् बनाया।

फिलिप पूर्वसे आ कर रोमके सिंहासन पर बैठा। उसने रोमवासियोंके हृदयसे अपनी नीच वंशोद्भवता दूर करनेके लिये पवित्र क्रीड़ाओंका प्रचलन किया। अगस्टसके बाद क्लडियास, डोमिसियान और सेमेरसके सिवा और किसीने इन क्रीड़ाओंका प्रचलन नहीं किया था। उसके शासनकालके सन् २४६ ई०में मिसियामें लोजनोंके भीतर घोर विद्रोह फैला। मारिनास नामक एक सेनापति इस विद्रोहका नेता बना। उस समय सम्राट्ने डिसियास् नामक एक सेनेटके सदस्यको इस विद्रोहका दमन करनेके लिये भेजा। डिसियासकी जानेकी इच्छा न थी, किन्तु वह राजाके आदेशसे गया। वहां जा कर विद्रोहियोंके कहनेसे सम्राट्के विरुद्ध उसने अस्त्र धारण किया। फौजोंने उसको ही राजमुकुट पहना कर आगे किया। फल हुआ, कि वेरोनाके युद्धमें फिलिपको पराजित कर डिसियासको ही रोमका अधीश्वर बनाया। डिसियासने कई मास निर्विघ्न राजत्व कर सीमान्त आक्रमणकारी गथ जातिको दण्ड देनेके लिये यात्रा की और वह डेन्यूबके निकट आ उपस्थित हुआ। इधर एक दल डाकिया प्रदेशको लूटने लगा और मिसियाकी अन्यतम राजधानी मार्सियानापोलिस पर घेरा डाल कर बर्बरोंने बहुत धन सम्पत्ति लूट ली। गथ सेनापति निभा डिसियासकी दलबल सहित अग्रसर होते देख भाग गया। गथ लोगोंने पीछे हट कर थ्रेसके निकटके हिमास पर्वतके पादमूलस्थ फिलिपोपोलिस नगर पर घेरा डाला। डिसियास उनका पीछा करके भी आगे जा न सका। शत्रुदलने एक दिन अचानक अधीश्वरके खेमे पर आक्रमण किया। रोमकसैन्य तितर-बितर हो गया। फिलिपोपोलिस शत्रुओंके हाथ चला गया। डिसियासने नये उद्यमसे फिर सेना एकत्र कर उनको उचित दण्ड देने तथा रोमके प्रणष्ट गौरवका उद्धार करनेके लिये चेष्टा की। इस बार उनको रोमकी अवनतिका प्रधान कारण मालूम हुआ। सारे रोममें रिश्वतखोरीका बाजार गर्म था। अर्थलालसासे रोमकोंका मस्तिष्क विह्वल हो गया था और रीतिनीति हीनावस्थापन्न थी। अधीश्वरने इस जातीय अवनतिका मूलतः संस्कार करनेके लिये भलेरियानको नियुक्त किया। किन्तु गथ जातिके बारंबार आक्रमणसे अधीश्वरको इसे मूलसे नष्ट करनेका अवसर नहीं मिला। सिसिया प्रदेशके फोरम ट्रेबोनियाई नामक नगरके निकट दोनों ओरसे विकट युद्ध हुआ। अधीश्वर पुत्रके साथ मारा गया।

रोमीय लोगनने भग्नमनोरथ हो कर डिसियासके पुत्र हष्टिलियानासको सम्राट् बनाया (२५१ ई० दिसम्बर) और गाल्लास दूसरे राजकार्य संचालनेके लिये

पर इलागाबालस अन्तिओकास नाम स्थानके युद्धके बाद रोम-साम्राज्यका अधीश्वर हुआ। यह सन् २१८ ई०की ७वीं जूनकी घटना है।

सोइमियासका पुत्र राजा हुआ और मामियाका पुत्र अलेकसन्दर उसका सहयोगी बन कर राजसंसारका कार्य्य करने लगा। किन्तु नया सम्राट् अपने भाईकी ईर्षासे कातर हो कर उसके प्राणनाशकी चेष्टा करने लगा। प्रिटोरियान गार्डसदल बालक अलेकसन्दरकी प्राणरक्षाके लिये अग्रसर हुआ। एक दिन यह प्रिटोरिया दलने उसको राजपथमें ला कर निष्ठुरतासे मार डाला (२२२ ई०की १०वीं मार्चको)। सेनाओंने मामिनासको मारनेवाला १७ वर्षके अलेकसन्दरको राजसिंहासन पर बैठाया। इसके अनुसार अलेकसन्दर-सेवेरस नामसे सम्राट् बन गया। अलेकसन्दरने दुर्भाग्यवश ईरानसे लौटते समय राइन नदी पर अपनी सेनाओंको एकत्र कर माक्सिमीन नामक एक व्यक्तिको एक नई सेना एकत्र करने तथा उसको सिखाने पढ़ानेका भार दिया। यह मनुष्य धीरे धीरे प्रधान सेनापतिके पद पर पहुंच गया। इस समय सम्राट्के अत्याचारसे पीड़ित हो कर लोगोंने सम्राट्को मार डाला। इसके बाद माक्सिमीनको गद्दी पर बैठाया। यह सन् २३५ ई०की १९वीं मार्चकी घटना है।

माक्सिमीन थ्रेसवासी एक किसानका लड़का था। इसने ऊंचा पद पा कर 'टायरेण्ट'की तरह सर्वसाधारणका सर्वस्व लूट लेना चाहा। अर्थलोलुपताके कारण उसने देवमन्दिरकी पूजामें भी कमी कर दी और प्रतिमाके निकट सञ्चितअर्थसे पेट पालन करने लगा। उसके धर्मनाशक इस कार्य्यसे साम्राज्यका प्रत्येक व्यक्ति बिगड़ उठा। थिसंड्रस नगरमें अफ्रिकाके प्रोकन्सल गर्डियानसके अधीन साजिश करनेवालोंने मार डाला। अस्सी वर्षके वृद्ध गार्डियानस विद्रोहियोंके चक्करमें पड़ कर अपने पवित्र जीवनको अन्त अंतिम विप्लवजनित रक्तपातसे कलुषित कर डाला। वृद्ध गार्डियानस सद्‌बुद्धिसे राजसिंहासन पर बैठ कर राज्यशासन करने लगा। उसके पुत्र छोटे गार्डियानकी वीरता और दृढ़तासे कार्थेज नगरमें राजधानी कायम हुई। प्रिटोरिया गार्डस सेनादलके नायक मिटोलियानाश नगरकी रक्षा करनेके लिए नियुक्त हुआ। उसने अपने अत्याचारसे बादशाहका प्रियपात्र बन कर सेनेट और नगरवासियों पर अपना प्रभुत्व कायम किया। किन्तु प्रजाविप्लवमें उसको अपना जीवन खो देना पड़ा। उस समय सेनाको अर्थका लोभ दे कर दोनों गार्डियनोंने राज्यको सुदृढ़ बनाया। किन्तु इससे विशेष कोई फल नहीं हुआ। सन् २३७ ई०की ३री जुलाईको मौरितानियाका शासनकर्त्ता कापिलियानसने अरक्षित कार्थेजप्रदेश पर आक्रमण किया। कनिष्ठ गार्डियान रणक्षेत्रमें मारा गया। यह सुन कर वृद्ध गार्डियानने आत्महत्या कर ली। इसने कुल ३६ दिन ही राजत्व किया था।

इधर दोनों गार्डियानकी मृत्युसे सिनेटके सदस्य आनन्दाश्रु प्रवाहित करने लगे। सेनेटने माक्सिमास और बालबिनासको सम्राट्के पद पर नियुक्त किया। माक्सिमास राजशत्रुके विरुद्ध युद्ध कार्य्यमें लिप्त रहने लगा और सुवाग्मी और कवि बालबिनास राजविधिका प्रभाव विस्तार करने लगा। माक्सिमासने सारमतीय और जर्मन जातिको पराजित कर सेनानायकत्वका यथेष्ट परिचय दिया था। किन्तु जब इन दोनों सम्राट विजयोत्सवमें मत्त हो कर देवमन्दिरमें पूजा दान करनेमें मस्त थे, तब अकस्मात् एक जनसंघने उस सुखशान्तिको भङ्ग कर चीत्कार कर कहा--"गार्डियन वंशधरको ले कर तीन सम्राट् बनाये जायें।" दोनों सम्राटोंने अपनी थोड़ी सी सेना ले कर इस जनसमाजको तितर-बितर कर देनेकी व्यर्थ चेष्टा की। उन लोगोंने वृद्ध गार्डियानके पौत्र और कनिष्ठ गार्डियानके भतीजे गार्डियानको सीजर नाम दे कर सबके सामने उपस्थित किया। इस विरोधके समाप्त होने पर रोम आत्मरक्षा करने पर तैयार हुआ।

रणजयी उद्धत स्वभाववाले माक्सिमासके साथ विशाल रोमसाम्राज्यमें सुशासन विस्तार करनेके लिये बालबिनासका मनोकाङ्क्षित उपस्थित हुआ। समग्र नगर केपिटोलाइन-क्रीड़ामें उन्मत्त हुआ था। दोनों सम्राट् राजअन्तःपुरकी निर्जन कोठरियोंमें विश्राम कर रहे

थे। ऐसे समय प्रिटोरिया गार्डस् दलने आ राजमहलमें घुस कर अधीश्वरके गहनोंको उतार कर मार डाला। यह सन् २३८ ई०की १५वीं जुलाईकी घटना है।

इस तरह एक एक करके छः सम्राट् कुछ महीनेमें ही विद्रोही प्रजाके हाथसे मार डाले गये। गार्डियान प्रजा पुञ्जकी कृपासे राजतख्त पर बैठा सही, किन्तु उसकी माताके कृपापात्र खोजा उसके बाल्यकालमें ही आधिपत्य विस्तार करने लगा। वे प्रजाके प्रति अत्याचारपरायण हो कर भी निश्चिन्त नहीं हुए। अन्तमें उन्होंने बालक सम्राट्की दोनों आंखें निकाल लीं। उस समय (२४३ ई०) सम्राट्ने प्राणके भयसे भाग कर प्रधान मन्त्रीकी शरणमें जा कर प्राणभिक्षा पाई। उनके विश्वस्त परामर्शदाता और प्रिटोरिय प्रिफेक्ट मिसिथियासने सम्राट्की ओरसे मिसोपोटामिया-आक्रमणकारी पारस्यके राजाको पराजित किया और उस घटनाका स्मरण रखनेके लिये उसने २४२ ई०में जानासके मन्दिरका दरवाजा खोल दिया।

पारस्यकी फौजोंको भगा कर सम्राट्ने उनका पीछा किया और उन्हें यूफ्रेटिससे टाइग्रीस तक भगा कर सेनेटको अपने सचिवकी प्रखर बुद्धिका परिचय दिया। किन्तु अकस्मात् मिसिथियासकी मृत्युसे अधीश्वर गार्डियानकी समृद्धिका लोप हुआ। उसने अरब देशीय प्रसिद्ध डाकू फिलिपको प्रिफेक्ट पद पर नियुक्त किया। उसने इसको नियुक्त कर आप ही आप अपनी मृत्युको बुलाया। फिलिप डाकू था ही, साम्राज्यको हड़प जानेके लिये उसने अधीश्वरके विरुद्ध सैनिकोंको भड़काया। उत्तेजित सैनिकोंने आबोरास नदीके किनारे सम्राट्को मार कर फिलिपको सम्राट् बनाया।

फिलिप पूर्वसे आ कर रोमके सिंहासन पर बैठा। उसने रोमवासियोंके हृदयसे अपनी नीच वंशोद्भवता दूर करनेके लिये पवित्र क्रीड़ाओंका प्रचलन किया। आगस्टसके बाद क्लडियास, डोमिसियान और सेभेरसके सिवा और किसीने इन क्रीड़ाओंका प्रचलन नहीं किया था। उसके शासनकालके सन् २४६ ई०में मिसियामें लोजनोंके भीतर घोर विद्रोह फैला। मारिनास नामक एक सेनापति इस विद्रोहका नेता बना। उस समय सम्राट्ने डिसियास् नामक एक सेनेटके सदस्यको इस विद्रोहका दमन करनेके लिये भेजा। डिसियासकी जानेकी इच्छा न थी, किन्तु वह राजाके आदेशसे गया। वहां जा कर विद्रोहियोंके कहनेसे सम्राट्के विरुद्ध उसने अस्त्र धारण किया। फौजोंने उसको ही राजमुकुट पहना कर आगे किया। फल हुआ, कि भेरोनाके युद्धमें फिलिपको पराजित कर डिसियासको ही रोमका अधीश्वर बनाया। डिसियासने कई मास निर्विघ्न राजत्व कर सीमान्त आक्रमणकारी गथ जातिको दण्ड देनेके लिये यात्रा की और वह डेन्यूबके निकट आ उपस्थित हुआ। इधर एक दल डाकिया प्रदेशको लूटने लगा और मिसियाकी अन्यतम राजधानी मार्सियानापोलिस पर घेरा डाल कर बर्बरोंने बहुत धन सम्पत्ति लूट ली। गथ-सेनापति निभा डिसियासको दलबल सहित अग्रसर होते देख भाग गया। गथ लोगोंने पीछे हट कर थ्रेसके निकटके हिमास पर्वतके पादमूलस्थ फिलिपोपोलिस नगर पर घेरा डाला। डिसियास उनका पीछा करके भी आगे जा न सका। शत्रुदलने एक दिन अचानक अधीश्वरके खेमे पर आक्रमण किया। रोमकसैन्य तितर-बितर हो गया। फिलिपोपोलिस शत्रुओंके हाथ चला गया। डिसियासने नये उद्यमसे फिर सेना एकत्र कर उनको उचित दण्ड देने तथा रोमके प्रणष्ट गौरवका उद्धार करनेके लिये चेष्टा की। इस बार उनको रोमकी अवनतिका प्रधान कारण मालूम हुआ। सारे रोममें रिश्वतखोरीका बाजार गर्म था। अर्थलालसासे रोमकोंका मस्तिष्क विकृत हो गया था और रीतिनीति दोनों पथभ्रष्ट थी। अधीश्वरने इस जातीय अवनतिका मूलतः संस्कार करनेके लिये भलेरियानको नियुक्त किया। किन्तु गथ जातिके बारंबार आक्रमणसे अधीश्वरको इसे मूलसे नष्ट करनेका अवसर नहीं मिला। सिसिया प्रदेशके फोरम ट्रेबोनियाई नामक नगरके निकट दोनों ओरसे विकट युद्ध हुआ। अधीश्वर पुत्रके साथ मारा गया।

रोमीय लोजनने भग्नमनोरथ हो कर डिसियासके पुत्र हष्टिलियानासको सम्राट् बनाया (२५१ ई० दिसम्बर) और गाल्लास दूसरे राजकार्य संभालनेके लिये

निवृत्त हुआ। इसने गथ-शत्रुओंके विरुद्ध अस्त्र धारण करनेमें असमर्थ हो कर उन्हें धन दे कर सन्तुष्ट किया। इस दुर्भिक्षके समय अकस्मात् हष्टिलियानासकी मृत्यु हुई। लोगोंने गल्लासके प्रति सन्देह किया, किन्तु विशेष कोई आपत्ति नहीं की। उन लोगोंने उसके सद्गुणों पर मोहित हो कर उसको ही सम्राट्के पद पर अभिषिक्त किया।

गथ जातिके रोमका प्रभाव एवं तथा वर्त्तमान सम्राट्की दुर्बलता देख कर वर्बर दल पहाड़ी सोतोंकी तरह रोमसाम्राज्यमें आ घुसा। पानोनियाके शासनकर्त्ता एमिलियानासने सम्राट्के निश्चेष्ट भावकी उपेक्षा कर स्वयं अपनी सेनाओंको ले कर इन वर्बरोंको डेन्यूब नदीके उस पार कर दिया। सेनाने उसकी अद्भुत वीरताको देख इसीको सम्राट् बनाया।

सम्राट् गल्लास यह समाचार पा कर विद्रोही सेनाओंको और सहयोगीओंको समुचित दण्ड देनेके लिये म्योसिया-प्रदेशमें उपस्थित हुआ। किन्तु सम्राट्की सेनायें विद्रोहियोंसे मिल गईं। फल यह हुआ, कि पुत्रके साथ सम्राट् गल्लास मारा गया। इसी समयसे गृहयुद्धका अवसान हुआ। यह २५३ ई०की घटना है।

उक्त वर्षके मई महीनेमें एमिलियानासने राजसम्मान पाया। यह सिनेटके हाथ शासनविभागका भार अर्पण कर स्वयं रोमराज्य-रक्षाके अभिप्रायसे उत्तर और पूर्वकी ओर वर्बरियोंको दण्ड देनेके लिये सेनापतित्व ग्रहण करना चाहा। किन्तु उसका यह उद्देश्य कार्य्यमें परिणत नहीं हुआ। क्योंकि गल्लासने इससे पहले ही भालेरियान को सैन्य संग्रह करनेके लिये गल और जर्मनीमें भेजा था। भालेरियान सैन्य ले कर लौट आया। इन दोनोंमें संघर्ष होनेमें पहले एमिलियानास सेनाओं द्वारा मारा गया।

सिन्सर भालेरियान ६० वर्षकी अवस्थामें साम्राज्यका अधीश्वर हुआ। किन्तु पुत्र गालिएनासके हाथ राजकार्य्यका कुछ भार अर्पण कर निश्चिन्त हुआ। इससे राज्यमें घोर विशृङ्खला उपस्थित हुई। फ्राङ्कस, गथ, आलेमनी और पारसीवालोंके बारंबार आक्रमणसे चिन्तित हो कर राजा स्वयं युद्ध करनेके लिये पूर्वकी ओर

सैन्य ले कर अग्रसर हुआ।
था। सेनापति पसथूमासने
गल राज्यकी रक्षा की और आलेमनी
प्रजावर्गने परास्त किया। इससे
गाल्लियेनास सन्तुष्ट नहीं हुआ।
सेनेट भीषण षड्यन्त्रमें फंसी थी। इसने
के समीप सहस्र आलेमन्नी सैनिकोंको
मार्कोमन्नी राजतनया पीपाका पाणिग्रहण किया
जब गथ-जाति बाढ़की तरह
पार कर ध्वंस कर रही थी, तब पारस्य
गुप्तरूपसे आर्मेनियाके राजा खुसरूको
अधिकृत प्रदेशों पर कब्जा कर लिया।
शासकके पुत्रने क्रोधित हो कर युफ्रेटिस
ओरके देशोंको उजाड़ बना दिया।
बदला चुकानेके लिये युफ्रेटिस नदीके
नदीको पार करते ही पारस्यराजने सेना
पराजित कर कैद कर लिया (२६० ई०)।
विख्यात वीर डिमोस्थेनिस कापाडोकिया
सिजारियाकी रक्षा कर रही थी। शाह
सवार हो कर रोमसम्राट्का खाल खिंचवा
उस खालको भूसेसे भर कर पारस्य
स्वरूप राजप्रासादमें गड़वा दिया।

गाल्लिएनास अपने पिताकी मृत्यु
उठा। अब वही राज्यका एकमात्र अधीश्वर
वाग्मितागुणसे, कवित्वशक्तिसे और उस
सभी उस पर प्रसन्न रहते थे। किन्तु उसके
प्रकृतिका सम्राट् कभी बैठा न था। उसके
राज्यने क्रमशः वैदेशिकोंके आक्रमणसे
किया। वर्बरगण रोमसाम्राज्यको हिलाने
अलेक्सण्ड्रियामें गृहविवाद उठ खड़ा हुआ
द्वीपमें डाकुओंके प्रादुर्भावसे राजकर न
इसारियामें ट्रिबेलियानास शत्रुराजत्व
वर्ष तक इस तरहके विप्लवसे
तक महामारीके कारण रोमसाम्राज्य
उठा। यह देख सम्राट्को बड़ा
सण्ड्रियाके आधेसे अधिक अधिवासी

मर गये। उस प्रजामण्डलीने "स्वेच्छाचारी राजाके पापसे राज्यका क्षय होता है" समझ ऑरेओलासको सम्राट् बना कर आड्डाके रणक्षेत्रमें गाल्लियेनासको हराया। आधी रातको सम्राट् गुप्तचरों द्वारा मारा गया था। मरते समय सम्राट् राजपरिच्छद और वेशभूषा पाभियाके सेनानायक क्लडियासको दे कर राजसिंहासन पर बैठानेकी व्यवस्था कर गया। इसके अनुसार क्लडियास राजसिंहासन पर बैठा। मिलान हाथमें कर और ऑरेलिओलासको मार कर उसने सेनाओंका संस्कार किया था। किन्तु गथ और बर्बरोंके साथ ऑलमनीय तथा अन्यान्य जर्मन जातियोंने जल और स्थलसे युद्ध कर रोम-साम्राज्यको विध्वंस करना आरम्भ किया था। क्लडियासने रोमको इनसे बचाया था। फिर नाइसेसके युद्धमें क्लडियासने युद्धविद्याका यथेष्ट परिचय दिया था।

इसी समय सम्राट्के प्रधान शत्रु टेट्रिकासने पश्चिमाञ्चलमें और जेनोबियाने पूर्व प्रदेशमें राज्य स्थापन करनेकी चेष्टा की। पहले तो वह उन सबोंको दण्ड देने पर तैयार न थे, किन्तु पीछे वह मिसिया थ्रेस, माकिडोनियाके युद्धमें विजय लाभ कर रोगाक्रान्त हो शिरमियास नगरमें मर गया। मरते समय वह ऑरेलियानको राजसिंहासनका अधिकारी बना गया। फिर भी उसके भाई कुइण्टिलियसने १७ दिनके लिये आकुइलेइया नगरमें राजच्छत्र शिर पर धारण किया था। ऑरेलियानके आनेसे शत्रुदल डेन्यूबके दूसरे पार भाग गया।

शिरमियास नगरवासी किसानकुलका सामान्य सैनिक रह कर सौभाग्यसे लियान सम्राट् बन गया। उसके राज्यकालके चार वर्ष ६ महीनेमें "गथिक युद्ध" का अन्त हुआ था। जर्मनजातिने अपने किये दुष्कर्मोंका उपयुक्त दण्ड भोगा था। पश्चिम प्रदेशके शासनकर्त्ता टेट्रिकास राजसिंहासनलाभका प्रयासी हुआ। इसको सम्राट्ने विद्रोही होने पर पकड़ कर कैद कर लिया था। आण्टोनियासकी चहारदीवारीसे हार्कयूलास स्तम्भ तक सम्राट् शान्तिविस्तार कर निश्चिन्त हुआ था। यह २७१ ई०की घटना है।

इसके बाद सम्राट्ने उसी वर्षमें ही पामिरा और पूर्व प्रदेशोंकी अधीश्वरी जेनोबियाके विरुद्ध युद्धकी तैयारी की। वह राजकुलकामिनी रूप और गुणोंसे अलंकृत थी। वह यूनान, सिरिया और मिस्रदेशकी भाषा अच्छी तरहसे जानती थी। उसके पति वीरश्रेष्ठ ओडेनाथास सेनेटसे सिरियाका शासक नियुक्त किया गया था। स्वामीके मर जाने पर जेनोबियाने ही सब प्रदेशोंका शासन कार्य किया था। और तो क्या, पारसराज तथा रोम-सम्राट् गाल्लियेनासको भी उसके हाथसे पराजित होना पड़ा था। इस समय उसने अपनी राज्यसीमा विथिनया सीमान्तसे युफ्रेटिसके किनारे तक विस्तार कर ली थी। शस्यशाली मिस्रराज्य उसके अधीन हुआ था।

सम्राट् ऑरेलियानके विथिनिया पहुंचने पर सबोंने उसकी वश्यता स्वीकार कर ली। आनकिरा और तियाना पदानत हुए। किन्तु जेनोबियाने युद्धकी तैयारी की। अन्तिओक और एमेसाके युद्धमें (२७२ ई०में) पराजित हो कर जेनोबिया तीसरी बार युद्धकी तैयारी करने लगी। उसके मिस्रविजयी सेनापति जावदास तथा उसने स्वयं युद्धकी परिचालना की थी। इधर सम्राट्के विश्वस्त सेनापति प्रोबासने एक रणवाहिनी ले कर मिस्रको जीत लिया। उस समय रानी जेनोबियाने अपने किलेमें आश्रय लिया। उस समय पामिरा नगरी का समृद्धगौरव रोमसे कुछ कम न था। सम्राट्ने पामिरा पर घेरा डाला। पारसके राजाके मर जानेसे साहाय्यकी आशा न रही। इधर मिस्र विजय कर प्रोबास पहुंच गया। यह देख रानी जेनोबिया भाग खड़ी हुई। किन्तु पीछा करनेवाले सैनिकोंने उसको पकड़ लिया। सम्राट्ने रानीकी बहादुरी पर सदयता दिखाई थ सम्राट्के वहांसे आते ही पामिरावासियोंने विद्रोह कर वहांके शासकको मार डाला। यह समाचार पा कर सम्राट् लौट आया और उसने पामिराका ध्वंस किया था। पामिराकी आबाल-वृद्ध वनिता सभी तलवारके शिकार हुए थे। वहांसे जा कर उसने मिस्रके विद्रोहका दमन किया। दलपति फार्मास मारा गया। विजयगौरवसे उन्मत्त होने पर भी सम्राट्ने कैदी राजाओंके प्रति असद्व्यवहार नहीं किया। जेनोबियाको उसने टिभोलीके बगीचेमें रखा था और उसकी कन्याओंका विवाह

भार मिला। गालेरियसको डेन्यूबके किनारेके प्रदेशोंका शासनभार मिला। माक्सिमियानने इटली और अफ्रिकाका अधिकार विस्तार किया। स्वयं अधीश्वर डायोक्लिशियन थ्रेस, मिस्र और एशियाके धनधान्य पूर्ण राज्योंका शासनभार ले कर निश्चिन्त हुआ।

डायोक्लिशियन अनुल्लिनस-वंशीय एक सिनेटरके सदस्यके गुलामका पुत्र था। यह बुद्धि और बाहुबलसे अतुल सम्पत्तिका अधीश्वर हुआ। राजा हो कर एक वर्षके बाद ही सन् २८६ ई०में यह माक्सिमियानको अपना सहयोगी बना लिया। इसके बाद दूसरे वर्ष उसने बागाउडीवासी विद्रोहियोंका दमन किया। इस समयसे रोम-साम्राज्यके चारों ओर विद्रोहाग्नि प्रज्वलित हो उठी। वर्वरजाति रोमकसैन्य, राजकरके वसूल करनेवाले और स्वयं राज्येश्वरोंके अपूर्व अत्याचारोंसे प्रपीड़ित गल जाति विद्रोही हो उठी। पण्टासके किनारे पर फ्राङ्क औपनिवेशिकोंने डकैती आरम्भ की। अफ्रिका, यूनान और एशियाके किनारे दिन रात लूटतराज हो रही थी। ऐसी विशृङ्खलतामें बुलो नगरमें अवस्थित नौसेनाध्यक्ष कारोसियसने इङ्गलिशप्रणाली पार कर बृटेन पर अधिकार कर लिया; यह सन् २८६ ई०की घटना है।

डायोक्लिशियन और माक्सिमियान हताश हुए। किन्तु फिर दोनों सीजरोंकी सहयोगिता प्राप्त कर उन्होंने नयबलसे बलवान् हो कर बृटेन पर आक्रमण किया। कनस्तान्सियास इस सैन्यका अधिनायक हुआ था। सन् २९२ ई०के बुलो नगरके युद्धमें कारोसियस पराजित हुआ और उसकी फौजोंने आत्मसमर्पण किया। इसके बाद कनस्तान्सियसने फिर जलयुद्धका आयोजन किया। इतनेमें मन्त्री अलेक्टसने राजाको मार कर सन् २९४ ई०में बृटेन पर अधिकार कर लिया। रोमक प्रिफेक्ट असक्लिपिओडसने जङ्गी जहाजोंसे अलेक्टसको मार गिराया। बृटेनवासी राजभक्त हो देख पड़े।

डायोक्लिशियनने प्रोबासकी तरह रोम-साम्राज्यकी भित्ति दृढ़ करनेका सङ्कल्प कर सीमान्तके किलोंको मजबूत किया। मिस्रसे पारस तक किले बड़े किये गये। अन्तिओक, एमेसा और दमस्कसमें अस्त्रागार स्थापित हुए। इस तरहका आयोजन करनेसे गाथ, भाण्डाल, गेपिडि, आलेमनी आदि वर्बर जातियोंका बल चूर्ण हुआ था और वे रणक्षेत्रमें यमसदन सिधारे। आलेमन्नी लङ्ग्रे और विन्डोनिसाके युद्धोंमें कनस्तान्सियासके हाथसे पराजित हुआ। गलवासी आलेमन्नी जातिके उपद्रव बच गये।

मिस्र विजयके बाद यह पारस्यविजयके लिये चला। रोम-साम्राज्यके चतुर्विभागकी एकत्र वाहिनियां उसकी सहायताके लिये भेजनेकी व्यवस्था हुई। गलेरियास साथ साथ चला। पारस्यके राजा नारसेहने नाना स्थानोंसे सैन्य संग्रह किया, किन्तु कोई शृंखलाबद्ध व्यवस्था नहीं कर सका। युद्धमें असमर्थ हो कर वह मिडियाकी मरुभूमिमें भाग गया। गलेरियासने उसके परिवारवर्ग (स्त्रीपुत्रादि) को बड़े यत्न और सम्मानके साथ रणक्षेत्रमें रखा था। अन्तमें सन्धिका प्रस्ताव हुआ। पारस्यको रोमकी अधीनता स्वीकार करनी पड़ी। इस्तिलीन, जावदिसिन आर्जानिन और कार्डुएन प्रदेश और इबेरियाका शासन रोम-अधीश्वरके हाथ लगा। इस पर रोम और पारस्यके बीच मित्रताकी सन्धि हुई। तिरिदेतिसने भी पिताकी सम्पत्ति पाई। इसके बाद यह डालमेसियाके अन्तर्गत सलोना नगरमें गया। यह सन् ३०५ ई०की १ली मईकी घटना है। इसी दिन उसके सहयोगी अन्यतम अधीश्वर मैक्सिमियान अपनी मिलान राजधानीमें इसी तरहकी घोषणा प्रचारित कर स्वयं लुकानिया नामक गण्डग्राममें जा कर निश्चिन्त हुआ।

डायोक्लिशियन और मैक्सिमियनके राजकार्योंसे अवसर ग्रहण करते ही रोमराज्यमें फिर विशृङ्खला उपस्थित हुई। कनस्तान्सियस और गलेरियस सर्वोच्च कर्तृत्व प्राप्त कर भी सुशासनकी प्रतिष्ठा कर न सके। गलेरियस और कनस्तान्सियसने पूर्वकी तरह आगस्टसकी उपाधि धारण कर ली। गलेरियसने अपने भांजे मैक्सि-मिन और इटलीके सेनापति सेभेरसको सीजर बना कर चार विभागोंमें साम्राज्यको बांट दिया। उसने समझ लिया था, कि ऐसा करनेसे शासनकी व्यवस्था ठीक हो जायगी। किन्तु उसकी समझ गलत निकली।

पश्चिम विभागमें कनस्तान्ताइन और अफ्रिका और इटलीमें माक्सेण्टियासने विद्रोही बन कर अपने अधीनस्थ देशों पर कब्जा कर लिया। कालेडिनियामें बर्बरोंको पराजित कर अधीश्वर कनस्तान्सियस मर गया। यह ३०६ ई०की घटना है। उस समय गलेरियसने राज्यकी विभ्राट् दशा देख कर अपने पुत्र कनस्तान्ताइनको सीजरकी उपाधि दे कर उसके विभागका शासक बनाया और पूर्वकथित सेभेरसको अगष्टसकी उपाधि दी।

कनस्तान्ताइनकी इस तरह सौभाग्यवृद्धि होते देख मेक्सिमियानके पुत्र और गलेरियासके दामाद माक्सेण्टियासके राजैश्वर्यलाभकी आशासे इसी वर्षकी २०वीं अक्तूबरको उत्कण्ठित रोमकोंको अपने पक्षमें ला कर रोममें विद्रोह-ध्वजा फहराई। पुत्रके प्रति स्नेहाधिक्यवश वृद्ध मेक्सिमियनने विद्रोहियोंका ही पक्ष ग्रहण किया। यह देख कितने ही रोमक उसके साथ आ गये। इस तरह उसका पक्ष और भी मजबूत हो गया। अधीश्वर सेभेरेस अपने सहयोगीके परामर्शके अनुसार राजधानीकी ओर चला। किन्तु उसके आते पर नगरका दरवाजा बन्द हो गया। उसकी सेनाओंने सेभेरेसका साथ छोड़ दिया। यह देख वह राभेन्नामें भाग गया। वहां मेक्सिमियनकी फौजोंने उस पर आक्रमण किया। इस तरह सेभेरेस पकड़ा जा कर मार डाला गया। इसके बाद मेक्सिमियानने आल्पस् पर्वतमालाको पार कर सन् ३०७ ई०की ३१वीं मार्चको दरबारमें कनस्तान्ताइनको बुला कर अगष्टस उपाधि और अपनी कन्या फष्टाको दान किया।

सेभेरेसके मारे जानेका समाचार पा कर रोमकोंको दण्ड देनेके लिये गलेरियास इलिरिकामसे अपनी फौजोंको ले कर रोमकी ओर चला। किन्तु नार्नी नामक स्थानमें पहुंचने पर फौजोंने उनका साथ छोड़ दिया। इससे वह भाग गया। यह सन् ३०८ ई०की घटना है। इस समय निम्नलिखित छः अधीश्वरोंने रोम साम्राज्यका शासन किया था—मेक्सिमियानके अधीन कनस्तान्ताइन और मेक्सेण्टियस और गेलेरियसके अधीन लाइसिनियस और मेक्सिमिन। वृद्ध अधीश्वर मेक्सिमियनने अपने पुत्रके लिये समग्र पश्चिम-विभागको हस्तगत कर लेनेकी साजिश की। कनस्तान्ताइनके फ्राङ्क जातिको परास्त करनेके लिये राइन नदीके किनारे अग्रसर होने पर वृद्ध अधीश्वरने अर्थ दे कर सेनादलको वशीभूत किया। कनस्तान्ताइनकी उपयुक्त सैन्यके सामने युद्ध करनेमें असमर्थ हो मेक्सिमियनने मार्शाएल नगरमें आश्रय लिया। विपक्षियोंने नगर पर अधिकार कर लिया। कनस्तान्ताइनके आज्ञासे सन् ३१० ई०की फरवरी महीनेमें उन्होंने उसे मार डाला। इसके एक वर्ष बाद सन् ३११ ई०की मई महीनेमें अत्यधिक मद्य पीनेके कारण पीड़ित हो कर गलेरियसने परलोक प्रयाण किया।

गलेरियसके मृत्युके बाद इस बात पर लिसिनियास मेक्सिमिनमें विरोध पैदा हुआ, कि किसका प्राधान्य हो। अन्तमें मेक्सिमिनने प्राच्य-विभागके एशियाखण्ड और लिसिनियासने यूरोपखण्ड पर अधिकार कर लिया। हेलेसपण्ट और थ्रेसीय वसफरास दोनोंकी अधिकृत सीमा निर्दिष्ट हुई। इसी समय रोमराजकी उन्नतिविधानके लिये लिसिनियास और कनस्तान्ताइन एकमत हुए। किन्तु मेक्सिमिन और माक्सेण्टियस एकदल हो कर छिप कर अन्तर्जातिक विप्लवकी कुटिलकल्पना करने लगे।

अधीश्वर महात्मा कनस्तान्ताइन प्रथमने ३०६ और ३१२ ई०में फ्राङ्क और आलेमनी जातिको सम्पूर्णरूपसे निर्जीव कर दिया। इसके बाद सन् ३१५ ई०में यह इटलीवासीके विरुद्ध युद्धकी घोषणा कर तुरीण रणक्षेत्रमें उन्हें परास्त किया था। दोनों ओरसे भयङ्कर युद्ध होनेके बाद उनकी हार हुई थी। इसके उपरान्त उसने भेरोना पर घेरा डाला। मेक्सिण्टियासके सेनापति प्यारिसियास पम्पियानास नगरकी रक्षामें तल्लीन था। दोनों ओरके भयङ्कर युद्धके बाद पम्पियानास पराजित हुआ।

सम्राट् कनस्तान्ताइन इस समय लिसिनियासके साथ अपनी बहन कनस्तान्सियाका विवाह कर देनेका आयोजन किया। सन् ३१३ ई०के मार्च महीनेमें दोनों मिलान नगरमें एकत्र हुए। दोनों विवाहकार्यमें फंसे थे, ऐसे समय उन सबको इपसैलमें जाना पड़ा था। कनस्तान्ता-

इन फ्रान्क जातिके औद्धत्य-निवारणार्थ राइन तट पर गया और लिसिनियास विद्रोही मेक्सिमिनके दर्पको चूर्ण करनेके लिये बैजन्ती नगर पर अधिकार कर इसी वर्षके १०वीं अप्रिलको हिराक्लियामें परस्पर सम्मुखीन हुए मेक्सिमिन परास्त हो कर निकोमिडियामें भाग गया। वहां उसकी मृत्यु हुई।

सन् ३१४ ई०में कनस्तान्ताइन और लिसिनियास रोमीय जगत्के एकमात्र अधीश्वर हुए। दोनों अधीश्वर दर्प-से उत्तेजित हो कर एकाधिपत्यकी आशासे आपसमें युद्धविग्रह करने लगा। कनस्तान्ताइनके अन्यतम बहनोई बासियानाको सीजरकी उपाधि और इटलीका शासन-भार मिला। इससे लिसिनियासका हृदय विद्वेषाग्निसे जल उठा। वह अपने अधीनस्थ अपराधियोंको दूसरे दो बादशाहोंको विचारार्थ देनेमें असम्मत हुआ। इस पर घोर युद्ध हुआ। सन् ३१५ ई०में ८वीं अक्तूबरको पानोनियाके अन्तर्गत सिबालिस नगरके निकट घोर लड़ाई होनेके बाद लिसिनियास पराजित हो कर डाकियासे थ्रेसमें भाग गया। निर्दिष्ट स्थानके मार्डिया रणक्षेत्रमें दूसरी लड़ाई हुई। लिसिनियासकी सेना रात्रिके घनान्धकारमें इस बार भी भगी हुई।

दो बार लगातार पराजयसे लिसिनियासको श्रीभ्रष्ट देख कर कनस्तान्ताइनको दया हुई। उसने सन्धि कर आपसके मनोमालिन्यको दूर करनेका यत्न किया। किन्तु युद्धके क्षतिपूरण स्वरूप पानोनिया, डाल्मासिया, डाकिया, माकिदोनिया और यूनान पश्चिम साम्राज्यमें मिला लिये गये। क्रिस्पास और छोटे कनस्तान्ताइन पश्चिमके सीजर नियुक्त और कनिष्ठ लिसिनियास पूर्व राज्यका सीजर हुआ।

इस घटनाके ८ वर्ष बाद सन् ३२३ ई०की ३री जुलाई को कनस्तान्ताइन अपने सहयोगी लिसिनियासके सर्वनाश करने पर उतारू हो उठा। डेन्यूब नदीको पार कर उसने सोमयेगसे अपने मित्र पर आक्रमण किया। लिसिनियास आत्मरक्षामें असमर्थ हो बैजन्ती किलेमें दुबक गया। किन्तु वहांसे वह कालसिडनमें उतरके बाद निकोमिडियामें भागा। अन्तमें बहन कनस्तान्तियाके कहनेसे अधीश्वर कनस्तान्ताइनने अपने बहनोई लिसिनियाससे रोम-साम्राज्यका अधिकार निकाल लिया। इसके साथ ही उसके अधीनके शासनकर्ता मार्टिनियासको अस्तमित होना पड़ा। लिसिनियास थेसेलोनिका नगरमें नजरबन्द हुआ। पीछे राजद्रोहिताके अपराधमें उसको यमसदन जाना पड़ा। डायोक्लिशियनने सुशासन-व्यवस्थाके लिये जिस रोम-साम्राज्यको चार भागोंमें विभक्त किया था, वह आज ३७ वर्षके बाद सन् ३२४ ई०में रोम साम्राज्य एक छत्राधीन हुआ। राज्य-विभागोंके एक हो जानेसे और राजकार्यकी सुविधाके लिये उसने स्वनामसे कनस्तान्तिनोपल नगरी स्थापन किया और अलेकसन्द्रस सेवेरस जो कुछ था ईसाधर्मको प्रश्रय दे गया है, वह उसकी सम्यक् प्रतिष्ठा कर गया।

अधीश्वर कनस्तान्ताइनके दो पत्नियां थीं। पहली मिनार्विनाके गर्भसे एकमात्र क्रिस्पास और दूसरी पत्नी फष्टाके गर्भसे कनस्तान्ताइन दूसरे, कनस्तान्सियास और कनस्तान्सने जन्मग्रहण किया। कनस्तान्सियासको सीजरकी उपाधिके साथ गल प्रदेशका शासनभार देनेसे क्रिस्पासका हृदय विद्वेषाग्निसे जल उठा। इस समय राजाके जीवन-नाशके षड्यन्त्रमें षड्यन्त्रकारी कह कर क्रिस्पास पकड़ा और मार डाला गया। अधीश्वर कनस्तान्ताइनने प्रथम अपने जीवनके बीस और तीस वार्षिक राजभोगोत्सव सम्पन्न कर सन् ३३७ ई०में २२वीं मईको निकोमिडियाके आकुइरियन राजमहलमें देहत्याग किया। इसके बाद उनकी पत्नी फष्टाके गर्भसे उत्पन्न तीनों पुत्र राज्यके अधिकारी हुए। ज्येष्ठ कनस्तान्ताइनको नई राजधानी, कनस्तान्सियासको थ्रेस और पूर्वी नगर तथा कनस्तान्सको इटली, आफ्रिका और इलिरिकाम मिले। इसी समय नारसेसके पौत्र और हरमूजका पुत्र शापुर प्राच्य रोमराज्य पर अधिकार कर अपने शासनका विस्तार कर रहा था। कनस्तान्सियास प्राणपणसे युद्ध करके भी उसे हटा न सका। सन् ३४८ ई०के सिङ्गारा-युद्धमें रोमक पराजित हो कर भागे। इसी समय भारत-की फौजोंने पारसिककी सहायता की थी।

इसी समय सम्मेशियोंके अधीन जब पारस्यके पूर्वी भाग उपद्रव कर रहे थे। पारस्यराजने दूसरा उपाय न देख रोम-सम्राट्के साथ सन्धि कर ली। इधर आल-

द्रोही कनस्तन्ताइनने कनिष्ठ भाई कनस्तान्सके धन-ऐश्वर्य्यको बढ़ते देख ईर्षान्वित हो कर उस पर आक्रमण कर दिया। उसके आनेसे डर कर कनस्तान्सके द्वारा भेजी हुई फौजोंने छलसे कनस्तान्ताइनको ले जा कर उन सबोंको मार डाला। यह ३४० ई०की घटना है। इसके ठीक दश वर्ष बाद अर्थात् सन ३५० ई०में माग्नेण्टियास नामक एक राजद्रोहीने मार्शेलियानासकी उत्तेजनासे कनस्तान्सको मार डाला। कनस्ताण्सियासने माग्नेण्टियासको नहीं छोड़ा। सिलिओकस पर्वतके निकटके युद्ध माग्नेण्टियास सन ३५३ ई०में मारा गया।

सन् ३५० ई०में कनस्ताण्सियास एकछत्र राजा हो गया। सन ३५१ ई०को ५वीं मार्चको उसने गाल्लासके साथ अपनी कन्या कनस्तान्तिनाका विवाह कर दिया और उसको राजकार्य्यके सुप्रबन्धमें लगाया। सन ३५३ ई०में कनस्ताण्सियासका राज्य निष्कण्टक होने पर भी गाल्लासका अत्याचार दिनों दिन बढ़ने लगा। यह देख सम्राट्ने उसकी क्षमताको कम कर देनी चाही। उसने कौशलसे अपनी कन्याका प्राण-संहार कर दामादको छलसे मिलानमें बुला कर अर्वासिओ नामक सेनापतिके साहाय्यसे पेटोभिओ नामक स्थानमें कैद कर लिया। इसके बाद उसने पोला नामक स्थानमें कैद कर उसको भवयन्त्रणासे मुक्त कर दिया। इस समय उन्होंने भतीजोंको मार डाला। केवल साम्राज्ञी यूसिबियाको बीचमें रख जुलियास एथेन्स नगरमें निर्वासित किया गया। यह वहां ही रहने लगा। किन्तु उसको वहां अधिक दिनों तक रहना न पड़ा। साम्राज्ञीको कृपासे उसका विवाह कनस्ताण्सियासको बहन हेलनासे हो गया। अब यह सीजरकी उपाधिके साथ आल्पस पर्वतके दूसरे किनारेके प्रदेशोंका शासक बनाया गया। इसके सम्बन्धमें उसको मिलानमें आ कर अधीश्वरसे भेंट करनी पड़ी। यहां २४ दिन रह कर यह गल-राज्यके शासन करने चला। यह ३५५ ई०की घटना है।

सन् ३५७-५८ ई०में सम्राट् कनस्ताण्सियास पूर्व विभागका परिदर्शन करने आ कर कादी, सौरमतीय और लिमिगेन्तिस आदि जातियोंको वशमें लाया। शेषोक्त वर्षमें उसको सापुरके साथ युद्ध करना पड़ा। इसी युद्धमें उसके पुत्रके कलेजेमें बाण धंस जानेकी वजह मृत्यु हो गई। इससे उसने क्षतिपूरण-स्वरूप आमिदा नगरको ध्वंस किया। इससे रोमकोंने उत्तेजित हो कर उसके विरुद्ध युद्धकी घोषणा की। इस समय बर्बरोंने सापुरका साथ छोड़ दिया। इससे उसका बल कम हो गया। सन् ३६० ई०में रोमकोंने शिङ्गाड़ा और मिसिपोटामिया पर अधिकार कर लिया और भीर्घाके युद्धमें हार कर सापुर भाग गया। इसके बाद अधीश्वर कनस्ताण्सियासने अपने सेनापतिके कार्य्योंसे असन्तुष्ट हो कर स्वयं डेन्यूबके किनारेसे पूर्वकी ओर यात्रा की। बेशाब्दे-किले पर घेरा डालनेके समय वर्षाकाल आ जानेसे अधीश्वरने अन्तिओकमें लौट कर छावनी बनाई।

राजनीतिक विशृङ्खलामें गिर कर अधीश्वर कनस्ताण्सियास फ्राङ्क आलेमन्नी आदि जर्मनीके असभ्य अधिवासियोंको गलराज्यके अधिकांश प्रदेश छोड़ देने पर बाध्य हुआ। इस समय नाना शास्त्रविद् जुलियान गलका शासक हुआ। इसने युद्धविद्यामें निपुण न होने पर भी ३५७-३५८ ई०में कई युद्धोंमें जर्मनीके बर्बरों को पराजित कर राइन नदीके दूसरे किनारे तक रोमराज्यकी सीमाका विस्तार किया।

जुलियानकी यह प्रतिभा और सौभाग्य अधीश्वरकी आंखोंमें कांटा बन गया। उसने शीघ्र ही उसके पास आज्ञा भेजी, कि ड्रिय्यूबके समीप अपनी चार लीजन भेजो। इससे सेनायें बिगड़ गई। वे पारस्यके कठिन क्लेशोंको सहने पर राजी न हुई। उन्होंने अधीश्वरकी आज्ञाका अमान्य कर जुलियानके लिए जीवन उत्सर्ग करना स्वीकार किया। वे बलपूर्वक राज-प्रासादमें घुस कर जुलियानको आदरके साथ पकड़ कर ले आये और सिंहासन पर बैठा कर उसको अधीश्वर होनेकी घोषणा प्रचारित की। इसके सम्बन्धमें दोनों ओरसे घोर युद्ध होने लगा। जुलियानने सन् ३६१ ई०में बासिल नगरके समीप अपने सेनादलको दो भागोंमें विभक्त कर सेनापतिने विसाको रिटिया और नोरिकामके बीचसे और जोभियास और जोभिनासको आल्पस पार कर उत्तरी इटलीमें जानेकी आज्ञा दी। इसके बाद यह स्वयं डेन्यूब नदी द्वारा विपुल-वाहिनियोंको सिरमियाममें ला कर उनसे मिल

गया। इधर कनस्तान्सियस अपनी फौजोंके साथ पथ पर्य्यटनमें अत्यधिक क्लान्त हो गया। दारुण परिश्रम और दुश्चिन्ता-निबन्धनसे स्वास्थ्य भङ्ग होने पर मोपसुक्रीन नगरके रोगोंसे ही वह पीड़ित हो गया। २४ वर्ष राजत्व भोग कर ४५ वर्षकी अवस्थामें इसी रोगसे उसकी मृत्यु हुई। मृत्युके पहले वह युवक जुलियानको सम्राट् बना गया।

जुलियान राजसिंहासन पर बैठ कर सरकारी कामोंमें कितने ही संस्कारोंमें प्रवृत्त हुआ। वह पहलेकी तरह मूर्तिपूजक था। इससे ईसाई उसके शासनकालमें अपना विस्तार कर न सके। वह जेरुसलेमके प्राचीन मन्दिरका संस्कार कर पारस-विजय करनेके लिये आगे बढ़ा। गाभोगा मालका किलेको ध्वंस करनेके बाद पारसवाले हताश होने पर भी रोमकोंके विपक्षताचरण करनेसे बाज न आये। सन् ३६३ ई०की २६वीं जून को जुलियान स्वयं युद्धक्षेत्रमें अवतीर्ण हुआ। विपक्षियों-के चलाये (बरछा) अस्त्रसे वह मूर्च्छित हो गया। संज्ञा प्राप्त होने पर घोड़े पर चढ़ कर वह फिर युद्ध करने चला। किन्तु डाक्टरोंने उसकी मृत्यु निकट समझ उसके इस कामसे रोक दिया। मृत्यु-शय्या पर उसने दार्शनिकश्रेष्ठ प्रिस्कास और माक्सिमसके साथ 'आत्मा की प्रकृति' विषय पर विचार किया था।

जुलियानकी मृत्युके बाद रोमीय सैन्यके अधिनेता वीर जोभियानने सेनाओंके आग्रहसे राजपद ग्रहण किया। किन्तु उसको अधिक दिनों तक राज्यसुखभोग करना न पड़ा। सन् ३६४ ई०की १७वीं फरवरीको अत्यधिक मद्य पीने और भोजन करनेसे उसका दादास्ताना नगरमें मृत्यु हो गई। उसकी मृत्युके बाद रोम-साम्राज्य १० दिन तक खाली था। निर्वाचन क्रमसे भालेन्टिनियनने २६वीं फरवरीको सम्राट् पद प्राप्त किया था। उसने उक्त वर्षके मार्च महीनेमें अपने भ्राता भालेन्सको कनस्तान्तिनोपोल राजधानीके साथ राज्य भाग समर्पण किया और स्वयं मिलानमें रह कर इटालिकाम, इल्लोरि, गल आदि पश्चिमीय राज्यों पर शासन करने लगे। इस समय सन् ३६५ ई०के सितम्बर महीनेमें जुलियानके मित्र आत्मीय प्रोकोपियसके विद्रोह और उस समयके जर्मन-युद्धने उसको विशेष रूपसे तंग कर दिये। शेषोक्त युद्धके समय ग्रेनवाइके अन्तर्गत ब्रेगेसियो नगरमें अपने स्टैटिफ सैनिकोंको विस्तार करनेके समय मनके आवेगमें उसकी शिरा फट गई। इसीसे उसकी मृत्यु हो गई। यह ३७५ ई०की घटना है। उसका भाई भालेन्स और तीन वर्ष तक प्राच्य सिंहासन पर बैठ कर सन् ३७८ ई०में गथ युद्धमें पराजित हो शत्रुके हाथ मारे गया।

भालेन्टिनियानकी मृत्युके समय उसका ज्येष्ठ पुत्र ग्रेसियन ट्रिभस प्रासादमें था। वह राजपदका अधिकारी था, पर सेनापति ग्रेगेसिओने रणक्षेत्रमें अपने सौतेले भाई द्वितीय भालेन्टिनियनको राजा होनेकी घोषणा की। तब ग्रेसियान चार वर्षके छोटे भाईको सौतेली माके तत्त्वावधानमें मिलान नगरमें रख स्वयं आल्पसके बाहरके प्रदेशों पर शासन करनेके लिये चला। सन् ३७५-३८३ ई० तक ग्रेसियानके ३३२-३६२ ई० तक भालेन्टिनियनका और सन् ३६४-२८७ ई० तक भालेन्सका राज्यकाल है। अतः ३७५-३७८ ई० तक रोमजगत् तीन सम्राटों द्वारा शासित हुआ था। भालेन्सके जीवनकालमें पूर्व भागमें रोमकोंका प्रभाव अक्षुण्ण था। उसकी मृत्युसे ही यथार्थमें रोम-साम्राज्यके अधःपतनकी कल्पना की जाती है।

गथ जातिके हाथसे भालेन्सकी मृत्यु होनेके बाद पूर्व रोमराज्य उत्सन्नप्राय देख कर सम्राट् ग्रासियान अपने चाचाकी सहायताके लिये आ उपस्थित हुआ। उसने आते ही अपने चाचाकी मृत्युसे व्यथित हो कर भावी विपत्तके निवारण करनेके लिये स्पेन और गल-विजेता निर्वाचित पुत्र थोडिसियासको अधीश्वर बनाया। सन् ३९५ ई० तक प्रथम थियोडोसियास ही रोम साम्राज्यका एकमात्र अधीश्वर था।

आर्बोगास्टस नामका एक सेनापति सन् ३९१ ई०में भालेन्टिनियनको हत्या कर स्वयं युजिनियास नाम रख कर पश्चिम साम्राज्यका अधीश्वर बन गया। राज्यापहारक युजिनियाको पराजित कर थियोडोसियास रोम-साम्राज्यका एकमात्र अधीश्वर हो गया। इसीने क्रुश्चान-धर्मका अनुयायी हो कर मूर्तिपूजक धर्मका नाश किया था। सन् ३९५ ई०में १७वीं जनवरीको मिलान नगरमें

थिओडोसियासकी मृत्यु हुई। उसके दो पुत्र थे। ज्येष्ठ पुत्र आर्केडियासने पूर्व राज्यका भाग ले कनस्तान्तिनोपलमें राजधानी की और छोटे पुत्र ओनोरियास पश्चिम विभागका अधीश्वर बना।

सन् ३९५ ई०में ओनोरियास पश्चिम राजधानीके सिंहासन पर बैठा सही, किन्तु उसमें राजकीय प्रतिभा न रहनेसे उसके राज्यमें घोरतर विश्रृङ्खला उपस्थित होने लगी। अफ्रिकामें गिल्डोर-विद्रोह, आलारिक और राडागाइससके इटली आक्रमण, जर्मन द्वारा गल राज्य उत्सादन, ष्टिलिकोर और रुफिनियासके षड्यन्त्र, गथ जातिका पराभव, अलारिककी मृत्यु, कनस्तान्टाइनके अभ्युदय और पतन, ष्टिलिकोरकी हत्या आदि घटनाओंसे रोम साम्राज्यका बल घटने लगा था।

ओनोरियासके बाद हीनवीर्य्य निम्नोक्त कई राजे पश्चिम अधीश्वर सिंहासन पर बैठे थे। सन् ४२४ ई०में तृतीय भालेण्टिनियन राजसिंहासन पर बैठा। इसके बाद ४५५ ई०में मेक्सिमास, इसी वर्षमें अभिताम, सन् ४५७ ई०में मेजोरियानास, ४६१ ई०में सेभेरास, ४६७ ई०में एन्थिमियास, ४७२ ई०में ओलिब्रियास, ४७३ ई०में ग्लिसेरियस, ४७४ ई०में जुलियास नेपोस और ४७५ ई०में रोमुलास अगष्टलस पश्चिम रोम-साम्राज्यके सिंहासन पर बैठे। अन्तिम अधीश्वरके बाद सन् ४७६ ई०में प्रजातन्त्रके हाथ रोम-साम्राज्यका शासन-भार अर्पण करनेसे पश्चिम साम्राज्यका अन्त हो गया। अनोरियासके शासनकालमें अगष्टलासके आधिपत्य तक आटिला और हूण जातिके उपद्रवसे समग्र पश्चिम रोम-राज्यका विध्वंस हुआ था। प्रजातन्त्रके अभ्युदयसे अन्यान्य शासनसमितिकी अपेक्षा धर्म्माध्यक्ष पोपका ही आधिपत्य बढ़ गया था। पोपग्रेगरी दी ग्रेट या 'प्रथम' के समयमें धर्म्मशक्ति पर विजय पाई।

पोप शब्दमें विस्तृत विवरण देखो।

महात्मा थियोडाससके पुत्र आर्केडियसने सन् ३९५ ई०में पूर्व विभागका शासनाधिकार प्राप्त कर सन् ४०८ ई० तक राजशासन किया। इसी समय गाइनासका विद्रोह हुआ। इसके बाद उसका पुत्र द्वितीय थिओडोसियस सन् ४०८से ४५० ई० तक और मार्सियन और आर्केडियास तनया फूलचेरियाने ४५० ई०से ४५७ ई० तक राज्यशासन किया। इसके उपरान्त निम्नलिखित राजे राज्यसिंहासन पर बैठे थे।

नाम	सन
१ लिओ प्रथम	४६७ ४७४
२ लिआ द्वितीय	४७४-४७४

३ जेनो ४७४-४९१ यह द्वितीय लिओका बाप है।
४ आनाष्टासियास ४९१-५१८ यह साइलेण्टयारी उपाधिसे विभूषित था।
५ जष्टिन प्रथम या ज्येष्ठ ५१८-५२७।
६ जष्टिनियन ५२७-५६५ यह जेष्टिनका भतीजा है।
७ जेष्टिन द्वितीय या छोटा ५६५-५७८ इसके अधिकारके समय इसलामधर्म्मके प्रवर्त्तक महम्मदका जन्म हुआ।
८ टाइबेरियास द्वितीय ५७८-५८२ इसने कनस्तान्टाइनकी उपाधि धारण कर राज्य-शासन किया था।
९ मरिस ५८२-६०२ यह कापाडोकियावासी था और अन्तमें गुप्त शत्रु द्वारा मारा गया।
१० फोकास ६०२-६१० अन्तिम वर्षमें शत्रु के हाथ मारा गया।
११ हेरोक्लियास ६१०-६१४
१२ हेरोक्लियास द्वितीय ६४१-६४१ यह ११ संख्यकका पुत्र था। इसने कनस्तान्टाइन नाम रखा था।
१३ हिरोक्लिओनास ६४१-६४१। १२ संख्यकका भाई, निर्वासित किया गया।
१४ कनस्तान्स द्वितीय ६४१-६४८। हिराक्लियास कनस्तान्टाइनके पुत्र।
१५ कनस्तान्टाइन ४र्थ ६६८-६८५ उपाधि प्रगोनेट स।
१६ जष्टिनयन द्वितीय ६८५ ई०में राजाधिकार ६९५ ई०में निर्वासित ७०५ ई०में पुनः राजप्राप्ति और ६९५ ई०में मारा गया।
१७ लिओण्टिआस ६९५ ई०में शासनाधिकार और ६९८ ई०में राज्यसे भगाया गया।
१८ आप्सिमार टाइबेरियास ६९८ ई०में राज्याधिकार और ७०५ ई०में राज्यच्युत किया गया।

१९ फिलिप्पिकास वार्डेनिस ७११ ई०में राज्यारोहण और ७१३ ई०में मरा।

२० अनास्तासियस द्वितीय ७१३ ई०में सिंहासनप्राप्ति, ७१६ ई०में राज्यच्युत और ७१९ ई०में शत्रुके हाथ मारा गया।

२१ थियोडोसियास तृतीय ७१६ ई०में राज्यप्राप्ति; ७१८ ई०में राज्य त्याग।

२२ लिओ तृतीय ७१८-७४१ ई० यह इसौरीय देशवासी सन्तान था।

२३ कनस्तान्तिन (५म) ७४१-७७५ ई०।

२४ लिओ ४र्थ ७७५-७८० इसकी उपाधि 'खाजारी' थी।

२५ कनस्तान्तिन (६ष्ठ) ७८० ई०में इसने माता इरेणेके सहयोगसे राज्यशासन किया, अन्तमें ७९७ ई०में गुप्त घातकों द्वारा मारा गया।

२६ इरेणे ७९७-८०२ २५ संख्यककी माता, अन्तके वर्ष-में राज्यसे बहिष्कृत की गई।

२७ निसेफोरस ८०२-८११ ई०।

२८ स्टोरेसियास ८११ ई०में राज्याधिकार और २७ संख्यकका पुत्र। इसी वर्षमें इसने राज्य त्याग किया।

२९ माइकेल ८११ ई०में राज्याधिकार और ८१३ ई०में राज्यच्युत।

३० लिओ (५म) ८१३ ई०में सिंहासनपे अधिकार और ८२०में गुप्त शत्रुके हाथ मारा गया। यह आर्मेनियन था।

३१ माइकेल (२य) ८२०-८२९ यह "दी स्टेमारर" या तोतला नामसे प्रसिद्ध था।

३२ थियोफिलास ८२९-८४२ ई०।

३३ माइकेल (३य) ८४२ ई०में राज्य प्राप्त कर ८६७में मारा गया।

३४ बासिल ८६७-८८६ ई० यह 'मासिडोनिया' नामसे परिचित था।

३५ लिओ ६ठा ८८६-९११ ई० यह दार्शनिक था।

३६ अलेक्जन्डर ९११-९१२ ई० यह ६ठे लिओका भाई था। इसने भतीजा कनस्तान्तिन सप्तमके साथ राज्य किया।

३७ कनस्तान्तिन (७म) 'पोर्फायरोजेनिटस' ९११ ई०में राज्याधिकार, किन्तु पितामह रोमानास द्वारा ९१९ ई०में राज्यच्युत, अन्तमें ९४५-९५९ ई० तक फिर सिंहासनलाभ और राज्य शासन।

३८, ३९, ४०, ४१ रोमानास (१म) या लेकापेनास और उसके तीन पुत्र ख्रिष्टोफार, स्टिफन और कनस्तान्तिन ८म, इन्होंने यथाक्रम ९१९, ९२१ और ९२८ ई०में शासनाधिकार लाभ किया और ९४४ और ९४५ ई०में राज्यच्युत हुए।

४२ रोमानास (२य) या छोटा ९५९-९६३ यह ७वें कनस्तान्तिनका पुत्र है।

४३ निसेफोरस (२य) या (फोकस) ९६३ ई०में सिंहासन पर बैठा और ९६९ ई०में गुप्तघातक द्वारा मारा गया।

४४ जान जिमिस्केस ९६९-९७६।

४५, ४६ बासिल (२य) और कनस्तान्तिन (९म) ९७६-१०२५ और कनस्तान्तिन (९म), पीछे १०२५-१०२८ ई०।

४७ रोमानास (३य) १०२८-१०३४ यह आर्गीरासके नामसे परिचित।

४८ माइकेल (४र्थ) १०३४-१०४१ यह 'पाफ्लागोनीय-के नामसे विख्यात।

४९ माइकेल (५म) १०४१ ई०में राज्यरोहण और १०४२ ई०में राज्यसे भगाया गया। यह कालफेत के नामसे प्रसिद्ध था।

५०, ५१ जोई और कनस्तान्तिन (१०म) १०४२-१०५४।

५२ 'थियोडोरा-१०५४-१०५६ यह सम्राट् जोईकी बहन थी।

५३ माइकेल (६ष्ठ) १०५६ ई०में राज्याधिकार प्राप्त हुआ और १०५७ ई०में इसने छोड़ दिया, इसका दूसरा नाम स्ट्राटिओटिकास।

... १०५७ ई०में राज्यप्र... १०५९ ई०में ...

५५ ...

किया। इसके बाद, १०६७ ई० तक रोमराज्य वैदेशिकके आक्रमणोंसे घोर विशृङ्खला उपस्थित हुई।
५६ यूडोकिया और रोमानस (३य) १०६७-१०७१ ई०।
५७ माइकेल ७म (या आन्द्रोनिकास १म) और कनस्तान्ताइन १२वां एकत्र १०७१ ई०।
५८ माइकेल ७म् इसी वर्षमें ही एकेश्वर सम्राट् हुआ। सन् १०७८ ई०में उसको स्वेच्छापूर्वक सिंहासन परित्याग करना पड़ा।
५९ निसेफोरस (३य) या (बोटानियस) सन् १०७८ ई०में साम्राज्य पद प्राप्ति और १०८१ ई०में सिंहासन च्युति।
६० आलेक्सियस (१म) या (काम्नेनास) १०८१-१११८।
६१ जन्नकी मेनास १११८—११४३ ई०।
६२ मनुएल कोम्नेनास ११४३ ११८० ई०।
६३ आलेक्सियास (२य) या (कोम्नेनास) ११८० ई० में राज्याधिकार; किन्तु ११८३ ई०में राज्यच्युत और मारा गया।
६४ आन्द्रोनिकस (१म) कोम्नेनास ११८३ ई०में राज्य-प्राप्ति और ११८५ ई०में शत्रुके हाथ मारा गया।
६५ आइजक (१म) (अञ्जेलास) ११८५ ई०में राज्याधिकार और ११९१ ई०में राज्यच्युति किन्तु १२०३-१२०५ ई० तक फिर राज्यशासन। इसी समय हिन्दुस्थानमें दासवंशने पठान सरदार कुतुबउद्दीन द्वारा दिल्ली राजधानीमें पठान शासन प्रतिष्ठित हुआ।
६६ आलेक्सियास (३य) अञ्जेलास सन् ११९५ ई०में सिंहासनारोहण और १२०३ ई०में राज्यच्युति और १२०५ ई०में पुनः शासनभार प्राप्ति।
६७ आक्सियास (४र्थ) अञ्जेलास १२०३ ई०में पिता अञ्जेलासके सहयोगसे राज्यशासन किया। किन्तु शीघ्र ही १२०४ ई०में मारा गया।
६८ आलेक्सियास (५म) आञ्जेलास मार्जफले १२०४ ई०में सिंहासन अधिकार और इस समयके बाद ही शत्रु द्वारा रक्षित घातकके हाथ उसकी जीवन-लीलाका शेष हुआ।

कनस्तान्तिनोपोलके लेटिनजातिके सम्राट्।
६९ बालडुइन (१म) १२०४-१२०६ ई० यह फ्लाण्डार जातिके एक काउण्ट था।
७० हेनरी १२०६-१२१६ ई०
७१ पिटर कुर्टिर १२१७-१२१९ ई०
७२ राबर्ट १२१९-१२२८ ई०
७३ बालडुइन (२य) १२२८ ई०में राज्याधिकार प्राप्त कर १२६१ ई० तक राज्यशासन किया। अन्तमें माइकेल पेलिओलोगास द्वारा उक्त वर्षमें उसको राज्यसे बाहर कर दिया गया।

इस समय किस नगरमें राजधानी कायम कर चार यूनानी सम्राट् रोमसाम्राज्यके कुछ अंश तक स्वतन्त्र भावसे शासन करते रहे—

थिओडोर लास्कारिस (१म) १२०६ १२२२ ई०। जान डुकस आलेसिस १२२२-१२५५ ई०। थिओडोर डुकस लास्कारिस १२५५ १२५९ ई०।
जान लास्कारिस १२५९ ई०में सिंहासन प्राप्त किया सही; किन्तु उसको अधिक दिनों तक राज्य भोग न करना पड़ा। १२६० ई०में उसको राज्यच्युत कर पेलिओलोगासवंशीय राजाओंने रोमसाम्राज्य पर अपना प्रभाव फैलाये।

पेलिओलोगास वंशीय यूनानी सम्राट्।
७४ माइकेल १२६० ई०में राजा हुआ। १२६१ ई०में उसने कनस्तान्ताइन पर विजय प्राप्त कर १२८२ ई० तक राज्य किया था।
७५ आन्द्रोनिकास (२य) १२८२-१३३२ ई० माइकेलने इस समय १२९५-१३२० ई० तक इसके सहयोगीके रूपसे राज्यशासन किया।
७६ आन्द्रोनिकास (३य) १३२८ और पीछे १३३२ ई०में दो बार राजा हुआ। १३३२ वर्षसे १३४१ ई० तक इसने राजत्व किया था। यह तुर्क जातिके साथ युद्धमें आहत और पराजित हुआ। इसके पुत्र जान पेलिओलोगास राजाका उत्तराधिकार हुआ था।
७७ जान (१म) १३४१-१३९१ ई०, राज्याधिकारके समय यह नौ वर्षका बालक था। इसलिये इसकी

मातायोंने राज्य चलानेके लिये अपने स्वामीके परमहितैषी मित्र जान काण्टाकुज़ेनको राज्यपरिदर्शक (Regent) नियुक्त किया। इस पर उसका प्रभाव देख कर ईर्षान्वित हो शत्रुओंने उसको राजद्रोही और धर्मद्वेषी होनेकी घोषणा की और उन्होंने उसकी माताको कैद कर लिया। पीछे उसने डेमोटिका नगरमें अपने मस्तक पर राजछत्र धारण किया। किन्तु उसकी सेनाओंने उसका साथ छोड़ दिया। इस पर सार्वीय यह असभ्य जातिकी शरणमें चला गया। इधर नौ-सेनापति आपोकोकास और धर्माध्यक्ष जान (John of Apri the Patriarch) राज्यका मालिक हुआ। राज्यमें घोर अत्याचार और अनाचार फैल गया। नौसेनापति मारा गया। राज्यमें घोर विशृङ्खला उपस्थित होते देख रानी आनने काण्टाकुज़ेनकी निर्वासनकी दण्डाज्ञा रद्द करनेके लिये धर्माध्यक्ष जानसे प्रार्थना की। बदलेमें जानने उसको राज्य और धर्मच्युतका दण्ड दिलाया। इसी गड़बड़ीमें काण्टाकुज़ेनने सेनाके साथ आ कर कनस्तान्तिनोपोल पर घेरा डाल दिया। रानीने यह समाचार सुन कर उसके पदानत हुई। आक्रमणकारीने अपनी कन्याके साथ राजकुमार जानका विवाह कर दिया और स्वयं उसके संरक्षक बन गया। यह १३४७ ई०की घटना है।

इस तरह ६ वर्षों तक घोर अत्याचार होते रहनेके बाद काण्टाकुज़ेनके राज्यमें शान्ति उपस्थित हुई। किन्तु आन्ड्रोनिकासके वंशधर अब राजा न रहे, क्योंकि काण्टाकुज़ेन ही राज्यके अधीश्वर बन गया। अब जान अपने राज्य प्राप्त करनेके लिये विद्रोहाचरण करनेमें प्रवृत्त हुआ। काण्टाकुज़ेनके अनुगृहीत यूरोपीय तुर्की सेनाओंने उसको पराजित किया। इस समय काण्टाकुज़ेनने बालक अधीश्वरके साथ पुनः मिल जानेकी आशासे निराश हो कर अपने पुत्र माथियो काण्टाकुज़ेनको गद्दीनशीन कर राजकार्य्य चलाना चाहा। सन् १३५५ ई०में उसने राजकार्य्यसे अवसर ग्रहण कर अपने पुत्रके हाथ शासन-भार अर्पण किया। माथियोको सन् १३५६ ई०में सिंहासन त्याग करने पर बाध्य होना पड़ा।

७८ मेनुयल्स १३९१-१४२५ ई०

७९ जान (७म) मेनुयल्सके साथ १३९९ ई०में शासन-भार ग्रहण और सन् १४०२ ई०में राज्य-त्याग किया।

८० जान (८म) १४२५-१४४८ ई०

८१ कनस्तान्तिनाइन १४४८ ई०में साम्राज्य सिंहासन पर आरोहण किया और १४५३ ई० २९वीं मईको तुर्क सेना द्वारा कनस्तान्तिनोपल अवरोध किया गया और विजयके समय यह मारा गया।

रोमसाम्राज्यका अधःपतन।

सम्यक् समुन्नत रोमजाति प्रथमसे इतने दिनों तक धीरे धीरे भिन्न भिन्न रोमराज्यसे परिपुष्ट हो समग्र सभ्यजगत्को प्रकाशित किया था, उस सुमहान् राजसत्ताका किस तरह ह्रास हुआ, रोमका राजचरित और इतिहासकी आलोचना करने पर उसका एक पूर्णचित्र प्रकाशित हो सकता है। असीम पौरुषसे रोमके नेताओंने राजपद पर प्रतिष्ठित हो कर प्रजामें जो भय उत्पन्न किया था, उन्हींसे रोमराज्यकी भित्ति मजबूत हुई थी। सिपियो, सल्ला, सीज़रकी अद्भुत वीरता और इसमें अब करनेके समयकी नृशंस हत्या उस समयकी दुर्दम्य तथा अदम्य जातियोंके ऊपर आधिपत्य स्थापित करने पर समर्थ हुई थी। उस पर रोमके राजनीतिक प्रभाव, पहलेकी सिनेट, एसेम्बली, कमिशिया और मजिस्ट्रेसी आदि राजकीय विधियाँ अविहत-राज्यमें युगायुग प्रतिष्ठा होने पर भी सभी विभागके शासनकर्त्ता प्रजाके सर्वस्व लूटनेसे बाज न आते थे। उन्होंने रोमका अद्भुत प्रभाव प्रजाओंकी विलोपदशामें जमा किया था। उस समयका सम्पूर्ण सभ्यजगत् रोमजातिके भयसे सर्वदा शंकित और विचलित रहता था।

अधीश्वर अगष्टसकी राजविधिके परिवर्त्तनसे रोम-साम्राज्यमें शान्ति-राज्य-प्रतिष्ठाताकी आशा समुदित होने पर भी यथार्थमें अराजकता और अत्याचारके सिवा और कुछ नहीं देखा जाता था। क्योंकि, वहांका राजवंश परम्परागत न था। वीरत्व-प्रतिभासे लब्धप्रतिष्ठित सेनानायकगण अधिकांश स्थलमें सम्राट् पद निर्वाचित होते थे। कभी वे अर्थके लोभसे सम्भ्रान्तवंशीय धनी सन्तानोंको सिंहासन पर बैठानेमें द्विरुक्ति नहीं करते थे। राजसिंहासनकी इस तरह दुरवस्था देख अधीश्वर धनलालसामें स्वतः ही यथेच्छाचारी "Tyrant" हुए थे। वरन् वे लूटनेके लिये सदा युद्धविग्रह किया करते थे और उनके अधीनस्थ सेनामें भी राज्य जीतने पर धन अपहरण करनेकी आशासे उद्धत हो कर प्राणपणसे युद्ध कर वीरताकी पराकाष्ठा दिखाती थी।

रोमराज्यके इस निदारुण आधिपत्यकालमें ष्टोइक, प्लेटोनिष्ट, आकाडेमिक और इपिक्यूरियास आदि विभिन्न दार्शनिक सम्प्रदायका अभ्युदय हुआ था। वे अर्थलिप्सा और जीवहिंसा तिलाञ्जलि दे कर जीवात्माकी मङ्गलकामनामें शान्ति-सुखके उद्देश्यसे दौड़ रहे थे। संसारकी बड़ी झंझटोंसे अलग हो कर उन्होंने राजाकांक्षा त्याग कर दी और एक सम्राट् मनोनीत कर उसके हाथ समग्र साम्राज्यका शासनभार सौंप वे निश्चिन्त मनमें ज्ञानकी चर्चामें समय बिताने लगे। ष्टोइक वैशेषिककी तरह आणविक और भौतिक सिद्धान्तमें (Contemplation of orig nal matters) मस्त रहता था। प्लेटोका शिष्य सम्प्रदाय आत्माका अविनश्वरत्व (Immortality) प्रतिपादन करनेमें सचेष्टित था। आकाडेमिक सांख्यकी तरह प्रत्यक्षीभूत जगत्‌की वस्तुसत्ता स्वीकार न कर तर्क और मीमांसाके सागरमें गोता लगाता (Lost in Scepticism) था और इपिकिउरीय सम्प्रदायने चार्वाकके मतानुसार परमेश्वरकी ऐसी शक्ति आरोप करनेमें अस्वीकार (Denied the prudence of a supreme power) कर दिया। फ्लावियवंशीय राजाओंके शासनकालमें विभिन्न सम्प्रदायके धर्ममन्दिरोंमें विविध सम्प्रदायके दिये उपहारोंकी रक्षाका उचित प्रबन्ध था। अतः यह कहानी ही होगी, कि ज्ञानवृद्धिके साथ दुर्द्धर्ष और नृशंस प्रकृति रोमकोंके हृदयमें कोमल और कमनीयताने आश्रय लिया था। वही उग्र और प्रचण्डप्रकृतिके रोमक क्रमशः नरहत्याजनित पापपङ्कमें डुबकियां लगा कर अपनी आत्माको कलुषित करनेसे बाज आये। वे भार्जिल, सिसरो आदिके ज्ञानगर्भ उपदेशोंका अनुसरण कर भाव और भाषानुशीलनमें लगे। चित्तकी शान्तिके कारण उसने अब युद्धविग्रहमें मन खराब करना अनुचित समझा सिवा इसके व्यवसाय वाणिज्यमें अतुल ऐश्वर्य्यसम्पन्न हो कर वे प्राच्यसमृद्धि हृदयमें पोषण करते थे। सुखसम्पदसे मस्त हो कर वे आलसी हो गये और इसलिये धीरे धीरे जातीय उद्यमसे हाथ धोने लगे। रोमीय नगर-वासियोंकी अपरिमित समृद्धिराशि देख कर वैदेशिक वर्बरोंने बारंबार उन स्थानोंका ध्वंस किया था। इटली आलस्यसलिलमें निमज्जित होने पर भी गल, स्पेन, वृटेन आदि यूरोपीय प्रदेश शक्तिहीन नहीं हुए। फिर भी अर्द्ध दास हो कर रोमक जातिकी गौरव रक्षा करनेमें समर्थ नहीं हुए। ऐतिहासिक गिबनने लिखा है—

"But though the tranquil and plentiful state of the Empire was felt and confessed by the provincials as well as the Romans, though the latent causes of decay and corruption might escape the eye of contemporaries, yet Rome was gradually declining and slowly verging towards dessolution. A secret poison had been introduced by the long peace and lethargic inactivity into the bowels of the Empire, Military spirit no longer existed; the fire of enterprise was extinguished, and the commanding genius of Rome forsook the polluted habitations of a luxurious and effeminate people. The improvements of arts, whilst it refined, had gradually enervated the country; the splendour of their cities served only to allure the impending rapacity of hardy race of Barbarians.

ज्ञानोन्नतिके साथ रोमराजाओंके हृदयमें भी सजातिप्रियताका प्रभाव बढ़ गया था। सम्राट् हाड्रियान और

अन्टोनाइन इनके दयापरवश हो कर इनकाम्य गुलामके छुटकारेके नये कानूनका प्रचार किया। ये छुट कर राजानुग्रह-प्राप्त प्रभामें विशेष विश्वासके साथ दिन बिताने लगे। इस तरह गुलामोंके छुटकारेसे रोमक हीनवीर्य हो गये थे। राज्यलिप्सा और आपसकी प्रतिद्वन्द्विता फिर उनके मनको लुभा न सकी।

रोमक साम्राज्यमें काव्य और साहित्यकी उन्नतिके लिये पूर्वोक्त तीनों सम्राटोंने यथासाध्य चेष्टा की थी। सुदूर यूफ्रेटसके उत्तरी किनारेके प्रदेश अलङ्कारशास्त्र-अध्ययनका केन्द्रस्थान बन गया था। टेम्स और राइन नदीके किनारे होमर और वर्जिलकी ओजस्विनी गीत प्रतिध्वनित होती थी। यूनानियोंने पदार्थ-विद्या और ज्योतिष आलोचनामें शीर्षस्थान अधिकार कर लिया था। टलमी और गालेनका नाम आज भी प्राच्य और प्रतीच्य जगत्‌में उनकी स्मृति जगा रही है। लुसियान-की कवित्व-प्रतिभा कम नहीं। पूर्वपुरुषोंकी ऐसी असाधारण प्रतिभा ले कर रोममें और किसीने जन्म ग्रहण नहीं किया। टीकाकारोंने सुयशका स्थान ग्रहण किया था।

ईसाकी तीसरी शताब्दीके मध्य भागमें उत्साह-सम्पन्न पाश्चात्य रोम जातिके क्षीण अवसाद और अधःपतन लक्ष्य कर पूर्वाञ्चलवासी शिक्षित गुलाम लङ्गीनसने कहा था—

"In the same manner (says he) as some children always remain pigmies, whose infant limbs has been too closely confined, thus our tender minds, fettered by the prejudices and habits of an unjust servitude, are unable to expand themselves, or to attain that well proportioned greatness which we admire in the ancients, who living under a popular government, wrote with the same freedom as they acted." (Gibbon, Chap. I.)

इस तरह दर्शन और काव्यालोचनासे जितने ही लोलुप तक प्राप्त हो गया, उतने ही वे पूर्वपुरुषोंके कीर्तिकीर्तिको छोड़ कर कौशल-कल्पविद्याओंका आश्रय लेने पर बाध्य हुए।

उस निराशाजनक और सम्यक् समुन्नत पारसवालोंके साथ बारंबार युद्धमें रोमकोंका उत्तरोत्तर अपचार होने लगा। फिरनाद्‌मा इस कर वे दोनों ही अपनी रक्षा करनेमें समर्थ नहीं हुए। पारसवालोंके शौर्यबल और धर्मबल विचूर्णित होनेके साथ-साथ रोमकोंके भी आध्यात्मिक प्रभाव और धर्मप्रवणता क्रमशः ही क्षीण-भिन्न हो रही थी। इसी समय रोमकोंके अधिकृत पैलेस्टाइनमें ईसाई धर्मके प्रतिष्ठाता महात्मा ईसामसीह साम्य मैत्रीका प्रचार कर धन-लोलुप रोमकोंके हृदयमें शान्तिवारि प्रवाहित कर रहे थे। सम्राट् कनस्टान्टाइन प्रथम और थियोडोसियसने ईसाईधर्मको विशाल प्रतिष्ठा प्रदान कर मूर्त्तिपूजाका अनाचार बन्द कर दिया।

ईसामसीहको दसों शताब्दीके भीतर सम्राट् शार्लि-मनके अभ्युदय और उसकी सहानुभूतिसे समूचे यूरोपमें ईसाईधर्मका प्रचार हुआ था। ईसाई-धर्मका प्रभाव पश्चिम-साम्राज्यमें जिस तरह फैला था, पूर्व-प्रान्तमें वैसा प्रभाव फैला नहीं था। रोमक ईसाई-धर्मकी व्याख्या ग्रहण कर धीरे धीरे स्वयं ही धर्मान्तरमें प्रवाहित हुए थे। रोमूलस आगस्टुलसके ४७६ ई०में राजासन छोड़नेसे जितने ही अराजकताका प्रचार होने लगा, उतने ही नवधर्ममें दीक्षित ईसाई सम्प्रदायका आधिपत्य रोममें फैल गया। ईसाई रोमक प्रजाने दुर्निवार्य भौतिक शासनके बदले धर्मगुरुओंको ही आध्यात्मिक शासकका सर्वोच्च पद दे डाला। धर्मप्रचार और विस्तारके साथ साथ क्रमशः वे रोमक-समाजमें 'धर्मगुरु' बन कर पूजित हुए।

पुराना ईसा (यीशु) और पोप शब्द देखो।

इस नये धर्मबलसे रोमक प्रजावर्ग हीनबल न होने पर भी धर्मलिप्साकी कोमलतासे उनकी अदम्य विजयलिप्सा निर्वीर्य हो गई। युद्धविद्यामें वे क्रमशः अनभ्यस्त और अक्षम हो गये। ऐसे समय सन् ५७० ई०में मक्का नगरमें इस्लाम धर्मका अभ्युदय हुआ। शीघ्र ही अरबवासी पवित्र इस्लाम धर्ममें दीक्षित हुए। सुयोग्य नेता धर्मगुरु और सम्प्रदायके प्रतिष्ठाता हुआ। इनसे उनके अरबों और तातारोंके नये उद्यम और अपार साहस, शिक्षा, शिल्प, संस्कृत

और सुदूर स्पेन राज्य पर अधिकार कर लिया। हतवीर्य रोमक इसके साथ युद्धमें पराजित हुए। ईसाइयोंको भी इस समय इनके हाथ बड़ा कष्ट भोगना पड़ा था।

महम्मद और मुसलमान देखो।

मुसलमानी साम्राज्यके विस्तारके साथ साथ खलीफोंका आविर्भाव हुआ। खलीफा सुलेमानके राजत्वके समय अरबोंने सन् ७१६ ई०में कनस्तान्तिनो पोल पर घेरा डाला और फ्रान्स पर आक्रमण किया। स्थान स्थानमें खलीफाके अधीनस्थ शासनकर्त्ता या सेनापति स्वतन्त्र राजपाट स्थापित करने लगे (७८१ ई०से ६६० ई० तक)। देखते देखते इतना बड़ा रोमराज्य खण्ड खण्ड मुसलमानी राज्योंमें परिणत हुआ। इसी समय अर्थात् ईस्वीसन्‌की १०वीं शताब्दीमें तुर्क जाति बड़ी प्रभावसम्पन्न हुई थी। उनके बलवीर्य्यसे रोमक नष्ट भ्रष्ट और श्रीहीन हो उठे। सालजुक वंशीय तुर्क-सरदार तुग़रल बेग और जाफर पारस जीत कर खलीफोंको सहायता करने लगे। सरदार अलपआर्सलानने यूनानकी रानी युडोसियाको परास्त कर राजदण्ड हाथमें कर लिया और उक्त रानी और सम्राट् रोमानास डाइओजेनिसको कैद कर लिया (१०६४ ई०)। इसके बाद १०-२ ई०में मालिक शाहने एशियामाइनर और जेरुसलाम पर अधिकार कर लिया। इसके बाद ई०की १३वीं शताब्दीके शुरूमें मुगल-सरदार चङ्गेज खांने और अन्तमें तैमूरलङ्गने रोमसाम्राज्यको लूट-पाट कर नष्ट भ्रष्ट कर दिया। इसके बाद सन् १४४८ ई०में तुर्कके हाथ रोमसम्राट् कनस्तान्ताइनकी मृत्युके साथ साथ रोम साम्राज्यका अवसान होने लगा। (पारस्य, तुरुष्क, कनस्तान्तिनोपल, सिरिया आदि शब्दोंमें विशेष द्रष्टव्य)

रोम नगर और उसका प्रत्नतत्त्व।

रोम नगर ही रोमसाम्राज्यकी प्रधान राजधानी है। यूरोपके अन्तर्गत इटली राज्यमें प्रवाहित टाइबर नदीके किनारे समुद्र तटसे प्रायः १४ मील पर अवस्थित है। अक्षा० ४१°५३′५२″ उ० और देशा० १२°२८′४०″ पू०।

टाइबर नदीके दोनों किनारे अमोघ निम्न पार्वत्य प्रदेश पर यह नगर स्थापित है। यहांके भूतत्त्वकी आलोचना कर. देखनेसे स्पष्ट मालूम होता है, कि यह स्थान एक समय समुद्रके निकट था। समय पा कर समुद्रके उस पलिमय वेलाभूमिके निकटके किसी ज्वालामुखी पर्वतके अभ्युद्गम और गलित धातवस्रावसे परिव्याप्त हो कर इधर उधर असमान भावसे फेंके हुए स्तूप राशिमें समाच्छादित हो गया। पीछे वही विभिन्न प्रान्तरस्तरोंमें रूपान्तरित हो कर एक एक छोटे छोटे पहाड़ोंके रूपमें परिणत हो गया। इस तरहके कितने ही शैलशिखरों और उसके सानुमय भूभागमें इतिहास-प्रसिद्ध रोमनगरी प्रतिष्ठित हुई थी।

लाग़ो, ब्राकियानो और रोमके निकटकी आलबान शैल-श्रेणीमें कितने ही ज्वालामुखोंका मुंह (Craters) दृष्टिगोचर होता है। इन सब पर्वतोंसे अपेक्षाकृत आधुनिक युगमें भी बालुकादि और धातवनिस्राव बाहर हो रहा है। भूगर्भनिहित गलमृत्पात्र, ब्रोञ्ज धातुनिर्मित शस्त्रादि, मनुष्योंकी हड्डियां उसके प्रमाण हैं।

रोम नगरकी जमीन तीन भागोंमें विभक्त है—१ टाइबर नदीके बायें किनारे अवस्थित समतल और उपत्यका भूमि। यह समुद्रसैकतज पलिमय प्रान्तरसे परिपूर्ण है। २ उक्त समतलक्षेत्रोपरि आग्नेय-गिरिजात शैलमय भूभाग और ३ टाइबर नदीके दक्षिणी किनारेके जनिकुलान और भाटिकन पर्वतमालाके मध्यवर्ती सानुमय समतल भूखण्ड।

प्राचीनतम कालमें यह स्थान समुद्रगर्भमें था। अभी भी यहां उसके बहुत नमूने पाये जाते हैं। सुन्दर सोनहरी बालुकारेणु और मृद्भाण्ड बनानेवाली मट्टी उसके प्रमाण और उल्लेखनीय वस्तु हैं।

उपरोक्त तीन तरहके आग्नेयस्तर (Volcanic deposits) और पलिमय भूमि (Alluvial deposits) के सिवा आवेन्ताइन और पिञ्चिय शैलमालामें एक तरहके चूनेके पत्थरका स्तर दिखाई देता है।

पालेटाइन शैलके समीपके जिन देशोंमें अग्निमय रक्तवर्ण भस्मराशि गिरि थी, सम्भवतः एक वनमाला पर गिरी होगी। कारण उस दग्ध भस्मराशिके प्रदाहसे विमर्दित और दग्ध हो कर वृक्षकी लकड़ियां कोयलोंमें परिणत हो गई हैं। इस तरहके बहुतेरे नमूने दिखाई देते हैं। इन सब तूफा पर्वतके स्थान स्थानमें इस तरहके पत्थर

खंडहरोंका स्तर दिखाई देता है। कहीं कहीं कोयलेके रूप-में परिणत हुए वृक्षशाखादि भी मध्यस्तरके साथ सुरक्षित देखे जाते हैं। सेप्टुनासके प्रसिद्ध रोमकी महान दीवारें इस तरहके प्रस्तर (Conglomerate of tufa and charred wood) गठित। इसको "स्कालि काशि" (Scalæ caci) सिंगाफके पूर्वांचलके पूर्व निदर्शन विद्यमान हैं। एक समयमें जो उपत्यकायें जलाभूमि-पूर्ण और दुर्गम था (Dionys. ii 30, Ov. Fast. vi. 401), पिछले समय वही जलनिर्गमशून्य सुरम्य प्रान्तरमें पर्यवसित हुई थी। प्राचीन रोमराज्यके स्थापत्यविद्या (कारीगरी)का श्रेष्ठतम निदर्शनभूत भूगर्भस्थ जलप्रणालीके (Cloacae) द्वारा इन सब दूषित जल-राशिको निकाल कर उस स्थानको कृषिक्षेत्र और उद्यान तथा उपवन आदिके लिये उपयोगी बनाया गया है। (Varro Ling. Lat, IV. 149)। एक समयमें सुप्राप-स्तरमें जो शैलशिखर ग्रामादिसे समाच्छादित थे और प्रत्येक पर्वत-शिखरके अधिवासियोंने ग्रामको रक्षाके लिये ऊंचे पर्वत पर एक ग्राम्यदुर्ग (Village forts) बनाया था, उन्होंने उस समयके शत्रुओंके आक्रमणसे अपनेको बचानेके लिये उस पर्वतके निम्न भागको दुरा-रोह और दुर्गम बनानेकी चेष्टा भी की थी। एक सरकार-के शासनाधीन होनेके बाद उन सब पार्वत्य भूमिको अलग अलग रखना उचित न जान पड़ा। अतएव सुसम्बद्ध अट्टालिका समूहसे इस समय रोमकोंको भूषित करना ही सरकारका उद्देश्य हुआ। उनके समीप वास्तुशास्त्रमें तथा कारीगरोंकी पराकाष्ठा दिखलानेमें अग्रसर हुए। उनकी यह अद्भुत कीर्ति (Gigantic engineering works) आगमके इतिहासमें एक अलौ-किक घटना है।

इस समय रोमवासियोंके उत्साहसे प्रत्युत पर्वत-शिखर समतल बना कर बस्तीके उपयुक्त अधित्यकामें परिणत किया गया और दुर्गम चूड़ा और पर्वतगात्र काट कर सुगम रास्ता और सीढ़ियां बनाई गईं। मध्ययुगमें भी (Middle ages) यह कारीगरी या वास्तु-विद्या स्वाभावतः विद्यमान थी। ईसासन्‌की १४वीं शताब्दीमें कापन म सान्तामारियाके गीर्जासे केपिटोलाइन आर्क (Capitoline Arx) जानेके लिये शत्रुओंके मन्तव्य सेण्टमारिया तक सुदीर्घ सोपान-श्रेणी या सीढ़ियां बनाई गई थीं।

मध्ययुगमें रोमसाम्राज्य मण्डलके स्थापत्य शिल्प-ज्ञानमें जो सौभाग्यरेखा समुदित हुई थी, आज भी वह समकोणमें दिखाई देती है। रोम गवर्नमेण्टके सन् १८८६ ई०में किये गये "Piano regolatore" नामक प्रस्तावके अनुसार स्थापत्यकार्य धीरे धीरे सुसम्पन्न हो रहा है। मध्ययुगमें जो शैलशिखर तोड़ कर समतल अधित्यकाओंमें परिणत किया गया था और प्रत्येकी पर्वतसे शिखर उच्च पहाड़ कर जो उपत्यकायें समतलके वासयोग्य बनाई गई थी, वर्तमान पुर्तनिर्माणकी विशृङ्खलतासे वे सभी एक सम्पूर्ण समतल प्रान्तरमें (uniform level) पर्यवसित करनेका आयास हुआ है। और फिर अमेरिका देशके नगरोंका ढंग पर (Chessboard plan) की तरह चौड़े चौकोन रास्ता बना कर नया रोमनगर बसाया गया।

बारंबार अग्निदाहसे होते रहनेके कारण रोम नगरी-के भस्मीभूत होते रहनेसे इसकी प्राचीनसीमाभ्रष्ट हो गई है। इससे यह ठीक करना कठिन हो गया है, कि प्राचीन रोम राजधानी किस स्थानसे किस स्थान तक थी।

वर्तमान रोमकी अपेक्षा प्राचीन रोममें शीतका आधिक्य था। उस समय रोम नगरके चारों और चारों ओरके स्थानोंमें मलेरिया ज्वरका उतना प्रकोप न था। किन्तु इस समय बड़े जोरोंसा है। प्राचीनकालमें केम्पन सुप्रसिद्ध जल हो (Campagna) स्वास्थ्य-के लिये प्रसिद्ध था। यह स्थान उस समय बस्ती अधिक रहनेसे वहांको स्वास्थ्योन्नति आशा इससे पर अब लक्षित थी। किन्तु यह कहा जा नहीं सकता, कि इसीसे ही उस समयमें आज जैसा ज्वर रोगका प्रादुर्भाव न था। पालेटाइन और अन्यान्य शैलशिखर पर कांसल-देशोंके बड़े बड़े स्थापित सीढ़ियों पर और एक्विलाइन पर्वत पर मेकासिनासको स्मृति और सामाजिक उद्यान उपवन दर्शन करनेसे जाना हो सकता रोम प्राकृतिक स्वास्थ्य सम्पन्न कर देता है। ईसाजन्मके बहुत पहलेसे ही रोमकी अवस्था बढ़ने लगी। आगे चलके

यहांकी भूमिके अस्वास्थ्यकर होनेका ही अनुमान होता है। (Monografia di Rome vol iii, 1878.) पढ़नेसे मालूम होता है, कि उक्त शताब्दीमें रोम नगरमें प्रायः २५ लाख मनुष्योंकी बस्ती थी। उस महासमृद्धशाली रोम नगरीने भी उस समयके उपयोगी सौधमालासे विभूषित हो समग्र सभ्य-जगत्के सामने रोम साम्राज्यके कोर्त्तिगौरवका विकाश किया था।

उस समयके रोम नगरमें Tufa Lapis Albanus, Lapis Gabinus, Silex, Lapis Tiburiinus, pulvis puteolames (razzolana) प्रभृति पत्थरकी अट्टालिकायें बनी थीं। विट्रुवियास, प्लिनी आदि लेखकोंने अपने अपने ग्रन्थोंमें इन सब पत्थरों तथा उसकी जोड़ाइयोंके मसलोंका उल्लेख किया है।

सूर्यपक्व और पजायेकी पकायी ईंटोंका उस समय यथेष्ट व्यवहार था। फिर किसी समयमें प्राचीन रोमकी कोई प्रसिद्ध अट्टालिका या चहारदीवारी ईंटोंकी बनी न थी। केवल चहारदीवारी, जोड़ाई तथा नीवों आदिमें कङ्करीट (Concrete) किया जाता था। नीव मजबूत करनेके लिये ईंटका टुकड़ा पत्थर और सिमेण्टका अधिक व्यवहार होता था। रोमकोंने सिमेण्ट तैयार करनेमें विशेष पारदर्शिता प्राप्त की थी।

ईसाके १०० वर्ष पहले सबसे पहले रोम नगरमें मरमर पत्थरका प्रचलन हुआ। विख्यात धाम्मी क्रेससने यूनानी भोगविलासके रसास्वादनमें उत्सुक हो कर ६२ वर्ष ईसासे पूर्व अपने पालेटाइन शैलके महलमें हाइमेसियाना मर्मरका स्तम्भ तैयार किया था। इसके कुछ समय बाद अधीश्वर अगष्टसके शासनकालमें मर्मर पत्थरका आदर सब जगह फैल गया। और तो क्या, साधारण तथा राजघरानोंमें उसी चिकने मरमरका ही व्यवहार होने लगा।

स्तम्भादि बनानेमें यहां सदा मरमरका ही अधिक प्रचलन था। यह पत्थर रंगके अनुसार स्थान विशेषमें अलग अलग नामोंसे परिचित था। किन्तु देश या स्थानके नामानुसार यह चार भागोंमें विभक्त था। लूणा नदीके किनारेका उत्पन्न Marmor Lunense,—प्रोगना डो टेटर करिन्थियनस्तम्भ इसी पत्थरसे बना है। २ एथेन्सके निकटके हाइमेटास शैलका तय्यार किया Marmor Hymettium, मिट्रोलिका S Pietro स्तम्भ और S. Maria Maggiore मन्दिरके भीतर ४२ स्तम्भ इस पत्थरके खुदे हुए हैं। इसका रंग धूसर और इसमें नील रंगकी पतली पतली रेखायें हैं। लूणाके मरमर पत्थरकी अपेक्षा इसका दाना बहुत मोटा है। ३ एथेन्स नगरके निकटके पेण्टेलिकास पर्वतका Marmor pentelicum,—इसका दाना बारीक और सफेद रंगका है। मेरिकानके कुमार अगष्टसकी मूर्त्ति इस पत्थरसे ही काटी गई। भास्करको देवमूर्त्ति या मनुष्य-मूर्त्ति तय्यार करनेके लिये इस देशी मरमरका ही आदर था। ४ पेरोस द्वीपका सुन्दर Marmoparium पत्थर इसका गठन Crystal पत्थरकी तरह है।

विभिन्न श्रेणीके पत्थरोंको एकत्र जोड़नेमें रोमक कारीगर जिस मसाले और सिमेण्टका व्यवहार करते थे, उस पर विचार करनेसे विस्मित होना पड़ता है। चहारदीवारी या गृहकी नीवके किसी स्थानमें जब गुरुभारकी आवश्यकता होती थी, तब उस स्थानमें उसीको अनुरूप गुरुत्वका पत्थर बैठाया जाता था। पूर्वकथित कोलोसियाम प्रासादमें दबावकी आवश्यकता होनेके कारण जोड़ाईके कौशलमें इस तरहकी अनेक जटिलतायें दिखाई देती हैं। सिवा इसके उस समयके ईंटोंका जुड़ाईकी पराकाष्ठा भी दिखाई दी थी। २७ वर्ष ईसाके पहले पान्थियोन प्रासादकी नींवमें या दीवार विशेषमें मरमर लगानेके लिये त्रिकोणाकार ईंटकी गथनी या जोड़ाई हुई थी। नेअरासके समयमें और उसके बादके समयमें फलावीय युगापेक्षा छोटी ईंटोंका व्यवहार हुआ था। इन छोटे ईंटोंकी जुड़ाई मसालाके गुणसे ऐसी मजबूती हुई थी, कि आज भी इसके नमूने प्रत्नतत्त्वविदोंके चित्तको कर्षण करनेमें समर्थ हुए हैं। ईंटोंकी बनी कोर्त्तियोंकी एक फिहरिस्त नीचे दी जाती है—

नाम	काल		ईंटका परिमाण।
जुलियस सीजरका रोष्ट्रा	४४	ईसासे पूर्व	१॥ फुट
एग्रिप्पार पान्थियोन	२७	„	१॥ „
टायबेरियासके प्रिटोरोय	२३	„	१·१॥। „

कोयलेका स्तर दिखाई देता है। कहीं कहीं कोयलेके स्तरमें परिणत द्रव्य वृक्षशाखादि भी अवयवके साथ सुरक्षित देखे जाते हैं। रोमुलसके प्रसिद्ध रोमकी चहार दीवारी इन पत्थरके प्रस्तर (Conglomerate of tufa and charred wood) गठित। इसकी "स्कालि काकि" (Scalae caci) विभागके पूर्वावयवके पूर्ण निदर्शन विद्यमान हैं। एक समयमें जो उपत्यकावली जलाभूमिपूर्ण और दुर्गम था (Dionys. ii 50, Ov. Fast. vi. 401), पिछले समय वही जलप्रणालीविशून्य सुरम्य प्रान्तरमें पर्यवसित हुई थी। प्राचीन रोमराजाके स्थापत्यविद्या (कारीगरी)का श्रेष्ठतम निदर्शनभूत भूगर्भस्थ जलप्रणालीके (Cloacae) द्वारा इन सब दूषित जलराशिको निकाल कर उस स्थानको कृषिक्षेत्र और उद्यान तथा उपवन आदिके लिये उपयोगी बनाया गया है। (Varro Ling. Lat, IV. 149)। एक समयमें जो शैलशिखर ग्रामादिसे समाच्छादित थे और प्रत्येक पर्वत-शिखरके अधिवासियोंने ग्रामको रक्षाके लिये ऊंचे पर्वत पर एक ग्रामदुर्ग (Village forts) बनाया था, उन्होंने उस समयके शत्रुओंके आक्रमणसे अपनेको बचानेके लिये उस पर्वतके निम्न भागको दुरारोह और दुर्गम बनानेकी चेष्टा भी की थी। एक सरदारके शासनाधीन होनेके बाद उन सब पार्वत्य भूमिको अलग अलग रखना उचित न जान पड़ा। सुदृढ़ अट्टालिका समूहसे इस समय रोमकोंको भूषित करना ही सरदारका उद्देश्य हुआ। उनके कार्यसाधनमें तथा कारीगरीकी पराकाष्ठा दिखानेमें अग्रसर हुए। उनकी यह अद्भुत कीर्ति (Gigantic engineering works) जगत्‌के इतिहासमें एक अलौकिक घटना है।

इस समय रोमवासियोंके उद्योगसे अद्भुत पर्वतशिखर समतल बना कर पत्थरोंके उपयुक्त अट्टालिकामें परिणत किया गया और दुर्गम चूड़ा और पर्वतगात्र काट कर सुगम राजपथ और सीढ़ियां बनाई गईं। मध्ययुगमें भी (Middle ages) यह कारीगरी या चातुर्य विशेष समादरभावसे विद्यमान था। ईसाकी ४ थी शताब्दीमें मन्दिरद्वारकी सीमासे कैपिटोलाइन आर्क (Capitoline Arx) जानेके लिये पत्थरोंके सोपानसे सिल्सेलिया तक सुदीर्घ सोपानश्रेणी या सीढ़ियां बनाई गई थीं।

मध्ययुगमें रोमसाम्राज्य समूहके ध्वंसावशेष पर जो सौन्दर्यकीर्ति प्रतिष्ठित हुई थी, आज भी वह समस्तोंको दिखाई देती है। रोम गवर्नमेण्टके सन १८८६ ई०में किये गये "Piano regolatore" नामक प्रस्तावके अनुसार स्थापत्यकार्य धीरे धीरे सुसम्पन्न हो रहा है। मध्ययुगमें जो शैलशिखर तोड़ कर समतल अधित्यकाओंमें परिणत किया गया था और प्रणाली बनाके फिर उच्च बना कर जो उपत्यकायें साधारणके वासयोग्य बनाई गई थीं, वर्तमान युगविज्ञानकी विज्ञव्यवस्थासे वे सभी एक सम्पूर्ण समतल प्रान्तरमें (uniform level) पर्यवसित करनेका आयोजन हुआ है। और फिर अमेरिका देशके नगरोंके ढंग पर (Chessboard plan) की तरह चौड़े चौकोन रास्ता बना कर नया रोमनगर बसाया गया।

बारंबार अग्निकाण्ड होते रहनेके कारण रोम नगरीके भस्मीभूत होते रहनेसे इसका भग्नावशेष हो गई है। इससे यह ठीक करना कठिन हो गया है, कि प्राचीन रोम राजधानी किस स्थानसे किस स्थान तक थी।

वर्तमान रोमकी अपेक्षा प्राचीन रोममें शैत्यका आधिक्य था। उस समय रोम नगरके भीतरी और चारों ओरके स्थानोंमें मलेरिया ज्वरका उतना प्रकोप न था। किन्तु इस समय वह जोरोंपर है। प्राचीनकालमें केवल सुजलाशोभित जल हो (Campagna) स्वास्थ्यके लिये प्रसिद्ध था। यह स्थान उस समय बस्ती अधिक रहनेसे यहांकी स्वास्थ्योन्नति आशा उसीसे पर अवलम्बित थी। किन्तु यह कहा जा नहीं सकता, कि इसीसे उस समयमें ज्वर तक ज्वर रोगका प्रादुर्भाव न था। पालेटाइन और अन्यान्य शैलशिखर पर ज्वरके देवोंके उद्देश्यसे स्थापित वेदियों पर और एस्क्वीलाइन पर्वत पर मेफाइटिसकी स्मृति और समाधियां इसका उज्ज्वल दृष्टान्त बतलाती हैं, तभी रोग प्राचीनकाल प्रतिपादन कर देता है। ईसाके शताब्दियोंमें ही रोमकी जनसंख्या क्रमसे बढ़ने लगी। इससे इसमें

हैं, इनमें सबोंमें भिन्न भिन्न मूर्त्तियां प्रतिष्ठित की गई है। मिनार्भा मेडिकाके मन्दिरका गठन देख कर यही मनमें आता है, कि वह किसी समयमें किसी पुराने महलका स्नानागार होगा। सिवा इसके सल्लाष्ट घास भवन, सम्राट् टाइबेरियस-कृत सेनानिवास या छावनी (Praetorian camp), २७ ईसासे पूर्व एग्रिप्पा विनिर्मित सुप्रसिद्ध 'Pantheon' प्रसाद या देवमन्दिर और उसके निकटके बड़ी दालान (Thermae of Agrippa) और Firemen's barrack, Goldens House of Nero और जुलियस सीजर द्वारा प्रतिष्ठित Septa Julia आदि और भी बहुतेरी अट्टालिकायें नमूनेके रूपमें पाई गई हैं।

रोमके पुराने क्रीडामण्डप और रङ्गालयोंमें सर्कस, मक्सिमस, सर्कस फ्लमिनियस, केलिगोलाका सर्कस आदि उल्लेख किया जा सकता है। लिविने १७६ ईसासे पूर्व एम० ए० मिलियस लेपिडासके रङ्गालयका उल्लेख किया है। ५६-५५ ईसासे पूर्व पम्पीने पत्थरके एक रङ्गमञ्चकी प्रतिष्ठा की थी। रङ्गालय देखो।

खृष्टान-सम्प्रदायके अभ्युदयसे इस्वीसन् ४थीसे १२वीं शताब्दीके बीच नाना स्थानोंमें ईसाई-मन्दिर स्थापित हुए थे। देशी शिल्पकी पराकाष्ठास्वरूप सम्राट् निरोके राज्यकालमें प्लोटियास लाटरनासकृत लोटेरन प्रासाद बना। सम्राट् कनस्तान्तादनके राज्यकालमें भाटिकन प्रासादगृहका पतन हुआ था। पीछे आनुमानिक १२०० ई०में पोप इनोसेण्ट और पीछे १२७७-१२८० ई०में ३रे निकोलसने बहुत यत्नके साथ इसके आकारको बदल दिया था। कुइरिनल प्रासाद, यह इटलीके राजा इमानुएलके राजभवनके रूपमें गृहीत हुआ है।

फ्लोरेण्टाइन युग।

सन् १४५०-१५५० ई० तक रोमको फ्लोरेण्टाइन युग कहा जाता है। इस समय मिनो दी फिसोले या Mino di giovanni Bramante, Baldassare Peruzzi आदि प्रसिद्ध कारीगरोंका आविर्भाव हुआ था। इनके जीवनकालमें रोमीय शिल्पकलाविद्याने शीर्षस्थान अधिकार किया था। इसके बाद मिगनोला (१५०७-१५७३), कार्लोमदाना (१५५६-१६३६), वार्निनी (१५९८-१६८०), कार्लोफण्टाना (१६३४-१७१४ ई०) आदि कारीगरोंकी कारीगरी विद्याके उत्कर्ष साधनमें अग्रसर होने पर भी उसकी रक्षा करनेमें समर्थ नहीं हुए। उस समय रोमवासी स्थापत्य-सौन्दर्य्यको भूल कर माइकेल आञ्जेलोके चित्रनैपुण्य पर मोहित हो रहे हैं। इसके बाद सुदक्ष राफेल, कनिष्ठ आण्टानी या दा सङ्गालोऔर सान्सोभिनो आदि चित्रकारगण (artist) अपने अपने मनके अनुसार कल्पनाचित्र प्रासाद निर्माण करनेमें प्राचीन स्थापत्य शिल्पका अवसाद हुआ था।

वर्त्तमान युग।

फ्लोरेण्टाइन युगके अन्तमें धीरे धीरे कई कारीगरोंके अभ्युदय होने पर भी चित्रविद्याके प्राधान्य और उत्कर्षताने रोमीय स्थूलशिल्पके बदले सूक्ष्म कलाविद्याका आश्रय ग्रहण किया। सङ्गीतशास्त्र और चित्रविद्याका यथेष्ट आदर बढ़ने लगा।

ई०सन्‌की १७वीं और १८वीं शताब्दीमें रोमकोंके पसन्द करनेकी शक्तिका लोप हो गया। इस समय Cosmati या Renaissance युगका शिल्पचातुर्य्य आज कलकी अट्टालिकाओंको परिशोभित नहीं कर सकता है। सामान्य रूपसे अट्टालिकाओंको गंवाई होने पर भी वासिलिकाओंके सरल गाम्भीर्य्यकी रक्षा नहीं हुई है। १९वीं शताब्दी इसमें कितने ही परिवर्त्तन दिखाई देते हैं। सन् १८७१ ई०में रोम राजधानीके रूपमें पुनः व्यवहृत होने पर राजकर्मचारी फिर कारीगरी विद्याकी उन्नतिमें लगे। कोसोपरि स्थापित Cassa di Risparmio नामक प्रासाद और टाइवर नदीके किनारेकी कई अट्टालिकायें Strozzi और फ्लोरेण्टाइन प्रासादके ढङ्ग पर बनी हैं। पियाज्जा निकोसियाकी एक अट्टालिका, ग्रामेण्टर "पालाञ्जो गिरोद" प्रसादके और विष्ठलहोटेल, विनिसके एक सुन्दर प्रासादके ढङ्ग पर निर्मित हुए थे। सिवा इसके राजपुरुषोंके यत्नसे S. paolo fuori le Mura के धर्मशिक्षा आदि प्राचीन कीर्त्तियोंकी मरम्मत हुई थी। इस समय यहांका म्युजियम और चित्रमन्दिर (Galleries) देखनेकी चीज है।

कानून और साहित्य।

रोमकोंने सभ्यतामार्गमें अग्रसर हो कर सभ्यजातिके

मॉरिसकी अ-मन्नागारी	१८	ईसाके पूर्व	१-३१ ई०
पाइडियनका स्नानागार	८०	,,	१३ ,,
डोमिशियनका प्रासाद	९०	,,	१३ ,,
हेड्रियानका भिलास और			
रोमका मन्दिर	१२५	,,	१४ ,,
सेप्टिमसका प्रासाद	२००	,,	१ ,,
ऑरेलियन शहरदीवारी	१३१	,,	३१ १३१ ,,

मसाला और सिमेन्टसे सगर पत्थरकी जोड़ाई किया रोमक सन्तान्त ओंढ़ पर भी सगरकी पर्तों लिखाना या पैठना (Marble lining) जानते थे। प्राचीन Concord मन्दिरके भीतरी सूराखें बनाई भीतरी भित्तिको स्तूपिरके मरमरी द्वारा सुशोभित करनेके लिये वे नाना द्रव्योंको मिला कर पलस्तर लगाकर दीवारमें लगाते थे। Concrete cement backing मसाला, सुरखी, मरमरकी धूलि, मृत्तिकापङ्क और ग्रावाड़ादि प्रभृति द्रव्योंको मिला कर (अर्थात् कारीगरके पासमें जो कुछ रहता था, वह एकत्र कर) यह तैयार किया जाता था। कभी कभी रोमकगुरुकी ओर अथवा चहारदीवारी इन मिले हुए द्रव्योंसे परिमाणानुसार ढाल देते थे। इसके बाद इस पलस्तर पर मरमरकी पट्टियां पैठा कर अङ्कुशयुक्त धातवके पर्णों (Clamps of metal, hooked at the end) द्वारा दीवारमें गाड़ देते थे।

रोमकसम्राटोंने विभिन्न प्रदेशोंमें आवागमनकी सुविधाके लिये प्राचीन रोमक समाजने सब सड़कें बड़े चौड़े पथ तैयार कराये थे। इन सब रास्तोंसे भिन्न भिन्न स्थानोंसे रोमकी प्रसिद्ध चहारदीवारी पार कर गये, उन स्थानोंमें एक एक दरवाजा बना था।

ऊपरमें जिन रोमके शासन प्राचीर या चहारदीवारीका उल्लेख किया गया है, उनमें रोमके प्रधान ऐतिहासिक या यों कहिये कि रोमके इतिहासके प्रारम्भक रोमुलसके कथित दीवारोंका (Wall of Romulus) नमूना ही सर्वापेक्षा प्राचीन है। इसके बाद रोमके राजा सर्वियस टलियसका सुदृढ़ और सुदृढ़ प्राचीर (Wall of Servius Tullius) उल्लेखयोग्य है। इस प्राचीर इटलीके ध्वंसावशेष निर्माण का चिह्न मिलता है। ... पर साम्राज्यकी हुई आवृत्ति हुई है। इसके बाद २७१-८६ ईसवी सुविस्तृत और रोम और ओरेलियन प्राचीर (Wall of Aurelian and Probus) बना। इसके बाद ८४० ईसवी पोप लियो दी फोर्थ ने यहांके पश्चिम पार्श्व पर चहारदीवारी निर्माण कराये। इसके बाद १५६० से १५४४ ईसवी तक यहांके पश्चिम किनारेके आदिकालमें और जैनिकोलम पर्वतको घेर कर रोम अर्थोंमें एक सुदृढ़ और सुन्दर चहारदीवारी निर्माण करा कर नगरका पश्चिम भाग सुरक्षित किया था।

कारीगरी (Workmanship)के प्रमाण दिखलानेके साथ रोमकोंने शिल्पविद्यामें भी यथेष्ट उन्नति की थी। रोमकसाम्राज्य और राजतन्त्रके अधिपत्यकालमें रोम नगरमें जो सब अद्भुत कीर्तिस्तम्भ स्थापित हुए थे, उनके ध्वंसावशिष्ट चिह्न (नमूने) आज भी सुरक्षित रह कर प्राचीन शिल्पका गौरव बतला रहे हैं। इनके सिवा यहांके भीतरमें जो प्रजा और राजतन्त्रके उन युगोंसे पूर्व समयके भी बहुतेरे नमूने पाये गये हैं। इन सब द्रव्योंके प्राचीनत्व निरूपणका कोई विशेष प्रमाण नहीं मिला है।

प्राचीन युगकी कीर्ति और स्मृतिचिह्नोंका विशेष उल्लेख करना निष्प्रयोजन है। क्योंकि उनके कोई धारावाहिक इतिहासके अतिरिक्त सुभीता नहीं।

कैपिटल पर्वतके नमूने।

सबसे पहले कैपिटलाइन पहाड़के शिखर कैपिटलको "रोमुलस प्राचीर" कहा जाता है। पहाड़ियोंके चारों ओर सुविस्तृत भूभागमें यहांके मैदान, कैपिटल, फोरम रोमानम, जुपिटरका मन्दिर, सर्वसाधारणका आदि विद्यमान हैं।

कैपिटल और रोमन फोरमके चित्र।

1 Temple of Jupiter Capitolinus, 2 Tabularium, 3 Forum Julii, 4 Forum of Augustus, 5 Forum Pacis, 6 Forum Nervae, 7 Forum of Trajan, 8 ..., 9 ... Trajan, 10 Temple of Fortuna Virilis, 11 ..., 12 Temple of Neptune, 13 Temple of Venus and Roma. इन मन्दिरोंके सिवा और भी कितने ही मन्दिर

हैं, इनमें सर्वोंमें भिन्न भिन्न मूर्त्तियां प्रतिष्ठित की गई हैं। मिनार्भा मेडिकाके मन्दिरका गठन देख कर यही मनमें आता है, कि यह किसी समयमें किसी पुराने महलका स्नानागार होगा। सिवा इसके सल्लाष्ट घास भवन, सम्राट् टाइबेरियस-कृत सेनानिवास या छावनी (praetorian camp), २७ ईसासे पूर्व एग्रिप्पा विनिर्मित सुप्रसिद्ध 'Pantheon' प्रसाद या देवमन्दिर और उसके निकटके बड़ी दालान (Thermae of Agrippa) और Firemen's barrack, Goldens House of Nero और जुलियस सीजर द्वारा प्रतिष्ठित Septa Julia आदि और भी बहुतेरी अट्टालिकायें नमूनेके रूपमें पाई गई हैं।

रोमके पुराने क्रीड़ामण्डप और रङ्गालयोंमें सर्कस, म्याक्सिमस, सर्कस फ्लैमिनियस, कैलिओलाका सर्कस आदि उल्लेख किया जा सकता है। लिभिने १७६ ईसासे पूर्व एम० ए०. मिलियस लेपिडासके रङ्गालयका उल्लेख किया है। ५८-५२ ईसासे पूर्व एमीने पत्थरके एक रङ्गमञ्चकी प्रतिष्ठा की थी। रङ्गालय देखो।

खृष्टान-सम्प्रदायके अभ्युदयसे इसोसन् ४थीसे १२वीं शताब्दीके बीच नाना स्थानोंमें ईसाई-मन्दिर स्थापित हुए थे। देशी शिल्पकी पराकाष्ठास्वरूप सम्राट् निरोके राज्यकालमें प्लोटिवास लाटरनासकृत लोटोरन प्रासाद बना। सम्राट् कनस्तान्ताइनके राज्यकालमें नाटि कन प्रासादगृहका पतन हुआ था। पीछे आनुमानिक १२०० ई०में पोप इनोसेण्ट और पीछे १२७७-१२८० ई०में ३रे निकोलसने बहुत यत्नके साथ इसके आकारको बदल दिया था। कुइरिनल प्रासाद, यह इटलीके राजा इमानुएलके राजभवनके रूपमें गृहीत हुआ है।

फ्लोरेण्टाइन युग।

सन् १४५०-१५५० ई० तक रोमको फ्लोरेण्टाइन युग कहा जाता है। इस समय मिनो डी फिसोले या Mino di giovanni Bramante, Baldassare Peruzzi आदि प्रसिद्ध कारीगरोंका आविर्भाव हुआ था। इनके जीवनकालमें रोमीय शिल्पकलाविद्याने शीर्षस्थान अधिकार किया था। इसके बाद भिगनोला (१५०७-१५७३), कार्लोमडाना (१५५६-१६३६), बार्निनो (१५९८-१६८०), कार्लोफण्टाना (१६३४-१७१४ ई०) आदि कारीगरोंकी कारीगरी विद्याके उत्कर्ष साधनमें अग्रसर होने पर भी उसकी रक्षा करनेमें समर्थ नहीं हुए। उस समय रोमवासी स्थापत्य-सौन्दर्य्यको भूल कर माइकेल आञ्जेलोके चित्रनैपुण्य पर मोहित हो रहे हैं। इसके बाद सुदक्ष राफेल, कनिष्ठ आण्टानो या दा सङ्गालोजक सान्सोभिनो आदि चित्रकारगण (artist) अपने अपने मनके अनुसार कल्पनाचित्र प्रासाद निर्माण करनेमें प्राचीन स्थापत्य शिल्पका अवसाद हुआ था।

वर्त्तमान युग।

फ्लोरेण्टाइन युगके अन्तमें धीरे धीरे कई कारीगरोंके अभ्युदय होने पर भी चित्रविद्याके प्राधान्य और उत्कर्षताने रोमीय स्थूलशिल्पके बदले सूक्ष्म कलाविद्याका आश्रय ग्रहण किया। सङ्गीतशास्त्र और चित्रविद्याका यथेष्ट आदर बढ़ने लगा।

ई०सन्‌की १७वीं और १८वीं शताब्दीमें रोमकोंके पसन्द करनेकी शक्तिका लोप हो गया। इस समय Cosmati या Renaissance युगका शिल्पचातुर्य्य आज कलकी अट्टालिकाओंको परिशोभित नहीं कर सकता है। सामान्य रूपसे अट्टालिकाओंकी ऊंचाई होने पर भी बासिलिकाओंके सरल गाम्भीर्य्यकी रक्षा नहीं हुई है। १९वीं शताब्दी इसमें कितने ही परिवर्त्तन दिखाई देते हैं। सन् १८७० ई०में रोम राजधानीके रूपमें पुनः व्यवहृत होने पर राजकर्मचारी फिर कारीगरी विद्याकी उन्नतिमें लगे। कोसोपरि स्थापित Cassa di Risparmio नामक प्रासाद और टाइबर नदीके किनारेकी कई अट्टालिकायें Strozzi और फ्लोरेण्टाइन प्रासादके ढङ्ग पर बनी हैं। पियाज्जा निकोसियाकी एक अट्टालिका, प्रामेल्टर "पालाज्जो गिरोद" प्रसादके और मिएलहोटेल, मिनिसके एक सुन्दर प्रासादके ढङ्ग पर निर्मित हुए थे। सिवा इसके राजपुरुषोंके यत्नसे S. Paolo fuori le Mura के बसलिका आदि प्राचीन कीर्त्तियोंकी मरम्मत हुई थी। इस समय यहांका म्युजियम और चित्रमन्दिर (Galleries) देखनेकी चीज है।

कानून और साहित्य।

रोमकोंने सभ्यतामार्गमें अग्रसर हो कर सभ्यजातिके

मीरोंकी अखाड़ाको
हारदागर स्नानागार
सेप्टिमियसका प्रासाद
हाड्रियानस् विमान और
रोमका मन्दिर
सेप्टिमका प्रासाद
ओलिम्पस मल्लशाला

मन्दिरों और विमेन्
लिया रोमक मन्दिरों
पिलास्टर या पैरवा (Mashli
Concord मन्दिरके भीतरी
की मध्यबिन्दुके बराबरी
है नाना द्रव्योंको मिला कर
हा बनाते थे। Concret
सुरखी, पत्थरके चूर्ण, व
प्रभृति द्रव्योंको मिला कर
कुछ रहता था, वह पत्थर क
था। कभी कभी रोमवासी
ईंटोंसे इन मिले हुए द्रव्यों
देते थे। इसके बाद इस प्रका
पैदा कर अङ्कुशयुक्त भानवं
hooked at the end) भाग

रोमवासियोंने विभिन्न
सुविधाके लिये प्राचीन रोमक
बीड़े पुल तैयार कराये थे। र
जिन स्थानोंको रोमको प्रसिद्ध
गई, उन स्थानोंमें एक एक

ऊपरमें जिन रोमके
इमारतोंका उल्लेख किया गया है,
सेप्टिमियस या जो कहिये कि
इस्पष्ट रोमुलसके बधिक
Romulus) मातृका हो
बाद रोमके राजा सर्वियस
सुरङ्ग प्राचीर (Wall of
है। इस प्राचीर कुल्लिन
हो मिलता है। इस

, जिससे रोगके भरे हों। (पु०) १ वैद्
, शूर, चौराहिय। (शब्द० १, ४०)
वृक्ष, वाटिका पेड़।
सं० त्रि०) रोगदूर' आत्मरों हन्ति। मधुरा-
चिन, पुनर्शित।
सं० स्त्री०) रोग इति ख्यातो यस्य। ज्यरात-
मत, मरक।
सं० पु०) रोगमें आत्मा प्रधान। १ रोगपीड़,
रोगीके ऊपर भाग। २ पतके रोगसे भरे

(सं० पु०) मागीर।
(सं० स्त्री०) रोगाश्च इत्यादयोगतस्तस्या
इस। इसको वृक्ष, भोजपत्रीका पेड़।
सं० त्रि०) रोगाक्ष: सन्त्यास्येति, रोगाश्च
नाथ' अर्शआदित्वात्। (पा ५।२।११) इति
, हृदरोगी। २ जिसको रोगसे
हो।
) रोगको मोक।
पु०) हाथका अवस्थान।
रोग (सं० स्त्री०) रोगकी अवस्था
रोगपुरके समान महोन महोन बाले
से हैं और कई दिनों तक रहते हैं।
बहुत भी रहती है। इस रोगको
कहते हैं।
० पु०) । इस
शरीरके रोगसे । जो माना लिए
कम और
है। (

जो पेटके बीचो बीच नाभिसे ऊपरकी ओर गई होती है। पर्याय—रोमलता, रोमाली, लोमराजि। यह रोमावली जवानीके शुरूमें होती है। (रसमञ्जरी)

रोमाश्रयफला (सं० स्त्री०) रोमाश्रयं फलमस्याः। झिंझिरिष्टाक्षुप, झिंझिरीटा नामका पौधा।

रोमोद्गति (सं० स्त्री०) रोम्नां उद्गतिः उद्गमः। रोमाञ्च, पुलक।

रोमोद्गम (सं० पु०) रोम्नामुद्गमः। रोमाञ्च, रोयोंका हर्ष या भयसे खड़ा होना।

रोमोद्भेद (सं० पु०) रोम्नामुद्भेदः। रोमाञ्च, रोमहर्ष।

रोम्यिलवेङ्कटबुध—तर्कभाषाभावके प्रणेता।

रोयाँ (हिं० पु०) बाल जो सब दूध पिलाने वाले प्राणियोंके शरीर पर थोड़े या बहुत उगते हैं, लोम।

रोर (सं० स्त्री०) १ बहुत-से लोगोंके मुंहसे निकल कर उठी हुई ऊंची सम्मिलित ध्वनि, कलकल। २ घमासान, हलचल। ३ बहुत-से लोगोंके रोने चिल्लानेका शब्द। (वि०) ३ प्रचण्ड, तेज। ४ उपद्रवी, अत्याचारी।

रोरवण (सं० स्त्री०) अतिशय शब्द, घोर शब्द।

रोरा (हिं० पु०) १ चूर गांजा। २ रोर देखो।

रोरी (हिं० स्त्री०) १ हलदी चूनेसे बनी हुई लाल रंगकी बुकनी जिसका तिलक लगाते हैं। २ चहल पहल, धूम। (वि०) ३ सुन्दर, रुचिर। (पु०) ४ लहसुनिया नाग, एक प्रकारका रत्न।

रोयक (सं० स्त्री०) जनपदभेद।

रोरुदा (सं० स्त्री०) रुद्-यङ् रोरुद्-अ-टाप्। अत्यन्त रुदन और विलाप।

रोल (सं० पु०) १ हरा अदरक। २ तालीशपत्र, तेजपत्ता।

रोल (हिं० पु०) १ पानीका तोड़, बहाव। २ रुखानीकी तरहका एक औजार जिससे बरतनकी नक्काशीकी जमीन साफ की जाती है। (स्त्री०) २ रोर कोलाहल। ४ शब्द, ध्वनि।

रोलदेव सं० पु०) एक चित्रकर। (कथासरित्सा० ५०।३७)

रोलम्ब (सं० पु०) रौतीति रु-विच्, रोः कुजन् सन् लम्बति स्थानात् स्थानान्तरं गच्छतीति रो-लम्ब-अच्। भ्रमर, भौंरा। (त्रिका०)

रोलर (अं० पु०) १ ढुलकनेवाली वस्तु, बेलन। २ छापेखानेमें स्याही देनेका बेलन। यह सरेस और गुड़ मिला कर बनता है। इसी पर स्याही लगा कर टाइपों पर फेरी जाती है।

रोलर फ्रेम (अं० पु०) बेलनकी कमानी। इसमें रोलर लगा कर स्याही तथा टाइपों पर फेरते हैं। यह लोहेका एक हलका या घेरा होता है जिसमें एक पेचदार छड़ लगी होती है। ऊपर काठकी दो मुठिया होती हैं जिन्हें पकड़ कर सिल पर स्याही पीसते और अक्षरों पर फेरते हैं।

रोलर मोल्ड (अं० पु०) सरेसके बेलन ढालनेका सांचा। यह दो प्रकारका होता है,—(१) चोंगा, जिसमें बेलन ठेल कर निकाला जाता है। बेलन ढालते समय इसमें पीसी खड़िया तथा रेंड़ीका तेल लगा दिया जाता है जिसमें मोल्डमें सरेस न पकड़ ले। (२) दो फांका जिसके पल्ले अलग अलग होते हैं। इन्हें खोल देनेसे रोलर सहजमें निकल आता है।

रोला (सं० पु०) एक छन्द। इसके प्रत्येक चरणमें ११+१३के विश्रामसे २४ मात्राएं होती हैं। किसी किसीका मत है, कि इसके अन्तमें दो गुरु अवश्य आने चाहिए। पर इसे सब कोई नहीं मानते हैं।

रोला (हिं० पु०) १ शोरगुल, कोलाहल। २ घमासान युद्ध। ३ जूठे बरतन मांजनेका काम, चौका बरतन करनेका काम।

रोली (हिं० स्त्री०) चूने हल्दीसे बनी हुई लाल बुकनी जिसका तिलक लगाते हैं। थी, इसके बनानेका तरीका—लोहेकी कड़ाहीमें चूनेका पानी भर कर उसमें हलदी, खटाई और सोहागा गलानेका सुहागा डाल कर अग्नि पर पकाते हैं। पीछे सुखा कर छान लेते हैं।

रोवना (हिं० क्रि०) १ रोना देखो। (वि०) २ बहुत जल्दी रोनेवाला, बहुत जल्दी बुरा माननेवाला। ३ हंसी या खेलमें भी बुरा मान जानेवाला, चिढ़नेवाला।

रोवासा (हिं० वि०) जो रोने पर तैयार हो, जो रो देना चाहता हो।

रोशंसा (सं० स्त्री०) इच्छा।

रोशन (फा० वि०) १ जलता हुआ, प्रदीप्त। २ प्रकाश-

सीसरने कई कानूनोंका प्रचलन किया। वही इति-हासमें "Roman Law" के नामसे परिचित है। सम्राट् जष्टिनियनने राजकीय नियम संग्रहको प्रका-शित किया था। थियोडोसियसने हिन्दुन प्रदेशों, मिसर, यूफ्रेटिस आदि राज्योंके कानूनका सम्पादन किया था। यहां रोमीय 'जुरिस प्रुडेन्स' आदि भी संस्कृतभाषामें नानाप्रकारके व्यवहारशास्त्रोंमें दिखाई देता है।

राजनिति या कानून बनानेमें रोमक साहित्यका (Roman Literature) अभ्युदय हुआ। ईसासे २४०से ८० वर्ष पूर्व तक लिभियस आन्ड्रोनिकस, निभियस, प्लौटस, एन्नियस, पेकुभियस, केटो, टेरेन्स, लुसिलियस आदि आविर्भूत हुए थे। द्वितीय युगमें अर्थात् ८०से ४२ वर्ष ईसासे पूर्वके बीच सिसिरो, सीजर, लुक्रेटियस और सलाष्टुभियस और वारो आदि प्रसिद्ध व्यक्तियोंने जन्मग्रहण कर रोमसाहित्यकी उन्नति की थी। इसके बाद अगष्टसके युगमें (४२ वर्ष ईसासे पूर्वसे सन् १४ ई० तक) भर्जिल, होरेस, टाइबुलस, प्रोपर्टि-यस, ओभिड आदि सुकवि तथा लिभी ऐतिहासिक आविर्भूत हुए थे। इसके बाद सन् १४से १३० ई०के भीतर टैसिटस, जुभिनल, रोमो सेनेका, लुकान, फिड्रस, मार्शल, पर्सियस, क्विन्टिलियन, प्लिनी, पेट्रोनियस, भेलियस, प्लिनी आदि बहुतेरे ऐतिहासिक, दार्शनिक कवि, साहित्य-सेवकोंने जन्मग्रहण किया था।

ट्राजन और हाड्रियानके राज्यकालमें रोमक साहित्य-का भी उसी तरहसे उत्थान हुआ। जुभिनलकी मृत्यु-के बाद ईसाकी दूसरी शताब्दीमें सुएटोनियस, अपुलियस, चौथी और पाँचवीं शताब्दीमें क्लाडियन, आसोनियस और मार्सेलिनसमें साहित्य आलोचनाको आरम्भ किया था।

रोमहरण (सं० क्ली०) हरिताल, हरताल।

रोमहर्ष (सं० पु०) रोम्णां हर्षः। रोमाञ्च, रोंगटे खड़े होना।

रोमहर्षण (सं० क्ली०) रोम्णां हर्षणं। १ रोमाञ्च, रोंगटा खड़ा होना, जो अत्यन्त आनन्दके कारण शरीरमें अनुभव उत्पन्न होता है। रोम्णां हर्षणं यस्मात् । (त्रि०) २ रोमाञ्चकर, जिससे रोंगटे खड़े हों। (पु०) ३ वेद-व्यासका शिष्य, सूत, पौराणिक। (हिं० पु०) ४ विभीतक वृक्ष, बहेड़ेका पेड़।

रोमहर्षिन् (सं० त्रि०) रोमहर्षं प्राप्नोति इत्यच्। रोमाञ्च-युक्त, रोमाञ्चित, पुलकित।

रोमान्त (सं० पुं०) रोम इति अन्त्यं यस्य। हस्त-पृष्ठ, हाथके ऊपरी भाग।

रोमाञ्च (सं० पु०) रोम्णां अञ्चः उद्गमः। १ रोमहर्ष, आनन्दसे रोओंका ऊपर उठना। २ भयसे रोंगटे खड़े होना।

रोमाञ्चकी (सं० पु०) मागोट।

रोमाञ्चिका (सं० स्त्री०) रोमाञ्च उत्पादकत्वेनास्त्यस्या इति रोमाञ्च-ठन्। मरुली वृक्ष, गंगेरनोका पेड़।

रोमाञ्चित (सं० त्रि०) रोमाञ्चः सञ्जातोऽस्येति, रोमाञ्च (तदस्य सञ्जातं तारकादिभ्य इतच्। पा ५।२।३६) इति इतच्। १ जातपुलक, हृष्टरोमा। २ जिसके रोंगटे खड़े हो गये हों।

रोमाण (सं० पु०) रोएँका मोर।

रोमान्त (सं० पु०) हाथका ऊर्ध्वभाग।

रोमान्तिका मसूरिका (सं० स्त्री०) शीतलाको तरहका एक रोग। इसमें रोमकूपके समान महीन महीन दाने शरीर भरमें निकलते हैं और कई दिनों तक रहते हैं। खाँसी, ज्वर और अरुचि भी रहती है। इसे छोटी माता भी कहते हैं।

रोमान्तीज्वर (सं० पु०) ज्वरविशेष, छोटा ज्वर। इस ज्वरमें हरदम देहमें रोएँ होते या छोटी माता निक-लती है। इसमें कफ और पित्तकी अधिकता तथा दाह और अरुचि होती है। (भावप्र०)।

रोमाली (सं० स्त्री०) रोम्णां आली पंक्तिः। १ नाभि, स्तनमध्य और उदरके बीचका भाग। २ रोमा-वली, रोओंकी पंक्ति।

रोमालु (सं० पु०) रोमविशिष्ट, जिसके बाल हों।

रोमालुविटपी (सं० पु०) रोमालुविट विटपः वृक्षः। पौष्करमूलविशेष पुष्करमूल। (राजनि०)

रोमावलि (सं० स्त्री०) रोमावली देखो।

रोमावली (सं० स्त्री०) रोम्णां आवली। रोओंकी पंक्ति

जो पेटके बीचो बीच नाभिसे ऊपरकी ओर गई होती है। पर्याय—रोमलता, रोमाली, लोमराजि। यह रोमावली जवानीके शुरूमें होती है। (रसमञ्जरी)

रोमाश्रयफला (सं० स्त्री०) रोमाश्रयं फलमस्याः। झिंझिरिष्टाक्षुप, झिंझिरीटा नामका पौधा।

रोमोद्गति (सं० स्त्री०) रोम्णां उद्गतिः उद्गमः। रोमाञ्च, पुलक।

रोमोद्गम (सं० पु०) रोम्णामुद्गमः। रोमाञ्च, रोयोंका हर्ष या भयसे खड़ा होना।

रोमोद्भेद (सं० पु०) रोम्णामुद्भेदः। रोमाञ्च, रोमहर्ष।

रोम्यिलुयेङ्कटबुध—तर्कभावाभावके प्रणेता।

रोयाँ (हिं० पु०) बाल जो सब दूध पिलाने वाले प्राणियोंके शरीर पर थोड़े या बहुत उगते हैं, लोम।

रोर (सं० स्त्री०) १ बहुत-से लोगोंके मुंहसे निकल कर उठी हुई ऊंची सम्मिलित ध्वनि, कलकल। २ घमासान, हलचल। ३ बहुत-से लोगोंके रोने चिल्लानेका शब्द। (वि०) ३ प्रचण्ड, तेज। ४ उपद्रवी, अत्याचारी।

रोरवण (सं० स्त्री०) अतिशय शब्द, घोर शब्द।

रोरा (हिं० पु०) १ चूर गांजा। २ रोर देखो।

रोरी (हिं० स्त्री०) १ हलदी चूनेसे बनी हुई लाल रंगकी बुकनी जिसका तिलक लगाते हैं। २ चहल पहल, धूम। (वि०) ३ सुन्दर, रुचिर। (पु०) ४ लहसुनिया नाग, एक प्रकारका रत्न।

रोरुक (सं० स्त्री०) जनपदभेद।

रोरुदा (सं० स्त्री०) रुद्-यङ् रोरुद-अ-टाप्। अत्यन्त रुदन और विलाप।

रोल (सं० पु०) १ दरा अदरक। २ तालीशपत्र, तेजपत्ता।

रोल (हिं० पु०) १ पानीका तोड़, बहाव। २ रुखानीकी तरहका एक औजार जिससे बरतनकी नक्काशीकी जमीन साफ की जाती है। (स्त्री०) ३ रोर कोलाहल। ४ शब्द, ध्वनि।

रोलदेव सं० पु०) एक चित्रकर। (कथासरित्सा० ५०।३७)

रोलम्ब (सं० पु०) रौतीति रु-विच्, रोः कुजन् सन् लम्बति स्थानात् स्थानान्तरं गच्छतीति रो-लम्ब-अच्। भ्रमर, भौंरा। (त्रिका०)

रोलर (अं० पु०) १ ढुलकनेवाली वस्तु, बेलन। २ छापेखानेमें स्याही देनेका बेलन। यह सरेस और गुड़ मिला कर बनता है। इसी पर स्याही लगा कर टाइपों पर फेरी जाती है।

रोलर फ्रेम (अं० पु०) बेलनकी कमानी। इसमें रोलर लगा कर स्याही तथा टाइपों पर फेरते हैं। यह लोहेका एक हलका या घेरा होता है जिसमें एक पेचदार छड़ लगी होती है। ऊपर काठकी दो मुठिया होती हैं जिन्हें पकड़ कर सिल पर स्याही पीसते और अक्षरों पर फेरते हैं।

रोलर मोल्ड (अं० पु०) सरेसके बेलन ढालनेका सांचा। यह दो प्रकारका होता है,—(१) चोंगा, जिसमें बेलन ठेल कर निकाला जाता है। बेलन ढालते समय इसमें पीसी खड़िया तथा रेंडीका तेल लगा दिया जाता है जिसमें मोल्डमें सरेस न पकड़ ले। (२) दो फांका जिसके पल्ले अलग अलग होते हैं। इन्हें खोल देनेसे रोलर सहजमें निकल आता है।

रोला (सं० पु०) एक छन्द। इसके प्रत्येक चरणमें ११+१३के विश्रामसे २४ मात्राएं होती हैं। किसी किसीका मत है, कि इसके अन्तमें दो गुरु अवश्य आने चाहिये। पर इसे सब कोई नहीं मानते हैं।

रोला (हिं० पु०) १ शोरगुल, कोलाहल। २ घमासान युद्ध। ३ जूठे बरतन मांजनेका काम, चौका बरतन करनेका काम।

रोली (हिं० स्त्री०) चूने हल्दीसे बनी हुई लाल बुकनी जिसका तिलक लगाते हैं। रोरी, इसके बनानेका तरीका—लोहेकी कड़ाहीमें चूनेका पानी भर कर उसमें हल्दी, खटाई और सोना गलानेका सुहागा डाल कर अग्नि पर पकाते हैं। पीछे सुखा कर छान लेते हैं।

रोवना (हिं० क्रि०) १ रोना देखो। (वि०) २ बहुत जल्दी रोनेवाला, बहुत जल्दी बुरा माननेवाला। ३ हंसी या खेलमें भी बुरा मान जानेवाला, चिढ़नेवाला।

रोवासा (हिं० वि०) जो रोने पर तैयार हो, जो रो देना चाहता हो।

रोशंसा (सं० स्त्री०) इच्छा।

रोशन (फा० वि०) १ जलता हुआ, प्रदीप्त। २ प्रकाश-

[illegible] बड़े अध्यवसायसे [illegible] किया। यही इति-हासमें "Roman Law" के नामसे परिचित है। [illegible] [illegible] यूरोपीय [illegible] प्रका-शित किया था। [illegible] मन्दिर, गिरजे, पुस्तक आदि [illegible] किया था। यही रोमीय [illegible] भाव भी [illegible] यूरोपीय [illegible] दिखाई देता है।

रोमलिपि या कानून बनानेसे रोमक साहित्यका (Roman Literature) अभ्युदय हुआ। ईसासे १४०से ८० वर्ष पूर्व तक लिभियस आन्द्रोनिकस, निभियस, प्लौटस, एन्नियस, पेकुभियस, केसी, टेरेन्स, लुसिलियस आदि आविर्भूत हुए थे। सिसेरो युगमें अर्थात् ८०से ४२ वर्ष ईसासे पूर्वमें [illegible] सिसिरो, सीज़र, लुक्रेटियस और सल्लस्टियस और कातुलस आदि प्रसिद्ध व्यक्तियोंने जन्मग्रहण कर रोमकसाहित्यकी उन्नति की थी। इसके बाद अगस्टसके युगमें (४२ वर्ष ईसासे पूर्वसे सन् १८ ई० तक) भार्जिल, होरेस, टाइबुलस, प्रोपर्टियस, ओभिड आदि सुकवि तथा लिभी ऐतिहासिक आविर्भूत हुए थे। इसके बाद सन् १४से १३० ई०में [illegible], [illegible], [illegible], [illegible], [illegible], [illegible], [illegible], [illegible], [illegible] आदि बहुतेरे ऐतिहासिक, वक्तृताविद् कवि, साहित्य-सेवकोंने जन्मग्रहण किया था।

ट्राजान और हाड्रियनके शासनकालमें रोमक साहित्य-का भी [illegible] हुआ। जुभिनलकी मृत्यु-के बाद [illegible] [illegible], [illegible] [illegible] [illegible] और [illegible] साहित्य [illegible] किया था।

रोमहृत् (सं० क्ली०) हरिताल, हरताल।

रोमहर्ष (सं० पु०) रोम्णां हर्षः। रोमाञ्च रोंगटे खड़े होना।

रोमहर्षण (सं० क्ली०) रोम्णां हर्षणं। १ रोमाञ्च, रोंगटे खड़े होना, जो [illegible] होता है। रोम्णां हर्षणं यस्मात्। (त्रि०) २ रोमाञ्चकर, जिससे रोंगटे खड़े हों। (पु०) ३ [illegible] शिष्य, सूत, पौराणिक। (भाग० १।५) ४ विभीतक वृक्ष, बहेड़ेका पेड़।

रोमहर्षित (सं० त्रि०) रोमहर्ष जातमस्य इतच्। रोमाञ्च-युक्त, रोमाञ्चित, पुलकित।

रोमाङ्कुर (सं० क्ली०) रोम इति अङ्कुरः [illegible]। रोमोद्गम, [illegible]।

रोमाञ्च (सं० पु०) रोम्णां अञ्चः [illegible]। १ रोमहर्ष, आनन्दसे रोमोंका ऊपर आना। २ भयसे रोंगटे खड़े होना।

रोमाञ्चकी (सं० पु०) [illegible]।

रोमाञ्चिका (सं० स्त्री०) रोमाञ्च [illegible] इति रोमाञ्च ठन्। [illegible] पेड़।

रोमाञ्चित (सं० त्रि०) रोमाञ्च [illegible], रोमाञ्च [illegible] इति इतच्। १ [illegible], हर्षित। २ भयसे जिसके रोंगटे खड़े हो गये हों।

रोमान्त (सं० पु०) [illegible]।

रोमान्त (सं० पु०) [illegible]।

रोमान्तिका मसूरिका (सं० स्त्री०) [illegible] एक रोग। इसमें रोमकूपके समान [illegible] शरीर भरमें निकलते हैं और [illegible] रहते हैं। [illegible], ज्वर और अरुचि भी [illegible] है। [illegible] छोटी माता भी कहते हैं।

रोमान्तोद्भव (सं० पु०) [illegible]। [illegible] [illegible] होता या छोटी माता निक-लती है। इसमें [illegible] और [illegible] होती है। (भावप्र०)।

रोमाली (सं० स्त्री०) रोमाणां आली पंक्तिः। १ [illegible] [illegible] और [illegible] रोमकी [illegible]। २ रोमा-वली, रोमोंकी पंक्ति।

रोमाश्व (सं० पु०) [illegible], [illegible]।

रोमाश्वत्थित (सं० पु०) [illegible] [illegible] [illegible]। (राजनि०)

रोमावलि (सं० स्त्री०) रोमावली देखो।

रोमावली (सं० स्त्री०) रोमाणां आवली। रोमोंकी पंक्ति

जो पेटके बीचों बीच नाभिसे ऊपरकी ओर गई होती है। पर्याय—रोमलता, रोमाली, लोमराजि। यह रोमावली जवानीके शुरूमें होती है। (रसमञ्जरी)

रोमाश्रयफला (सं० स्त्री०) रोमाश्रयं फलमस्याः। झिंझिरिटाक्षुप, झिंझिरोटा नामका पौधा।

रोमोद्गति (सं० स्त्री०) रोम्नां उद्गतिः उद्गमः। रोमाञ्च, पुलक।

रोमोद्गम (सं० पु०) रोम्नामुद्गमः। रोमाञ्च, रोयोंका हर्ष या भयसे खड़ा होना।

रोमोद्भेद (सं० पु०) रोम्नामुद्भेदः। रोमाञ्च, रोमहर्ष।

रोम्पिल्लयेङ्कटबुध—तर्कभावाभावके प्रणेता।

रोयाँ (हिं० पु०) वाल जो सब दूध पिलाने वाले प्राणियोंके शरीर पर थोड़े या बहुत उगते हैं, लोम।

रोर (सं० स्त्री०) १ बहुत-से लोगोंके मुंहसे निकल कर उठी हुई ऊंची सम्मिलित ध्वनि, कलकल। २ घमासान, हलचल। ३ बहुत-से लोगोंके रोने चिल्लानेका शब्द। (वि०) ३ प्रचण्ड, तेज। ४ उपद्रवी, अत्याचारी।

रोरवण (सं० क्ली०) अतिशय शब्द, घोर शब्द।

रोरा (हिं० पु०) १ कूट गांजा। २ रोर देखो।

रोरी (हिं० स्त्री०) १ हलदी चूनेसे बनी हुई लाल रंगकी बुकनी जिसका तिलक लगाते हैं। २ चहल पहल, धूम। (वि०) ३ सुन्दर, रुचिर। (पु०) ४ लहसुनिया नाग, एक प्रकारका रत्न।

रोरुक (सं० क्ली०) जनपदभेद।

रोरुद्रा (सं० स्त्री०) रुद्-यङ् रोरुद्-अ-टाप्। अत्यन्त रुदन और विलाप।

रोल (सं० पु०) १ हरा अदरक। २ तालीशपत्र, तेजपत्ता।

रोल (हिं० पु०) १ पानीका तोड़, बहाव। २ रुखानीकी तरहका एक औजार जिससे बरतनकी नक्काशीकी जमीन साफ की जाती है। (स्त्री०) ३ रोर कोलाहल। ४ शब्द, ध्वनि।

रोलदेव (सं० पु०) एक चित्रकर। (कथासरित्सा० ५०।३७)

रोलम्ब (सं० पु०) रौतीति रु-णिच्, रोः कुजन् सन् लम्बति स्थानात् स्थानान्तरं गच्छतीति रो-लम्ब-अच्। भ्रमर, भौंरा। (त्रिका०)

रोलर (अं० पु०) १ ढुलकनेवाली वस्तु, बेलन। २ छापेखानेमें स्याही देनेका बेलन। यह सरेस और गुड़ मिला कर बनता है। इसी पर स्याही लगा कर टाइपों पर फेरी जाती है।

रोलर फ्रेम (अं० पु०) बेलनकी कमानी। इसमें रोलर लगा कर स्याही तथा टाइपों पर फेरते हैं। यह लोहेका एक हलका या घेरा होता है जिसमें एक पेचदार छड़ लगी होती है। ऊपर काठकी दो मुठिया होती हैं जिन्हें पकड़ कर सिल पर स्याही पीसते और अक्षरों पर फेरते हैं।

रोलर मोल्ड (अं० पु०) सरेसके बेलन ढालनेका सांचा। यह दो प्रकारका होता है,—(१) चोंगा, जिसमें बेलन ठेल कर निकाला जाता है। बेलन ढालने समय इसमें पीसी खड़िया तथा रेंड़ीका तेल लगा दिया जाता है जिसमें मोल्डमें सरेस न पकड़ ले। (२) दो फांका जिसके पल्ले अलग अलग होते हैं। इन्हें खोल देनेसे रोलर सहजमें निकल आता है।

रोला (सं० पु०) एक छन्द। इसके प्रत्येक चरणमें ११+१३के विश्रामसे २४ मात्राएं होती हैं। किसी किसीका मत है, कि इसके अन्तमें दो गुरु अवश्य आने चाहिए। पर इसे सब कोई नहीं मानते हैं।

रोला (हिं० पु०) १ शोरगुल, कोलाहल। २ घमासान युद्ध। ३ जूठे बरतन मांजनेका काम, चौका बरतन करनेका काम।

रोली (हिं० स्त्री०) चूने हलदीसे बनी हुई लाल बुकनी जिसका तिलक लगाते हैं। थो, इसके बनानेका तरीका—लोहेकी कड़ाहीमें चूनेका पानी भर कर उसमें हलदी, खटाई और सोभा गलानेका सुहागा डाल कर अग्नि पर पकाते हैं। पीछे सुखा कर छान लेते हैं।

रोवना (हिं० क्रि०) १ रोना देखो। (वि०) २ बहुत जल्दी रोनेवाला, बहुत जल्दी बुरा माननेवाला। ३ हंसी या खेलमें भी बुरा मान जानेवाला, चिढ़नेवाला।

रोवासा (हिं० वि०) जो रोने पर तैयार हो, जो रो देना चाहता हो।

रोशंसा (सं० स्त्री०) इच्छा।

रोशन (फा० वि०) १ जलता हुआ, प्रदीप्त। २ प्रकाश-

नाम, मनवहार। ३ नवर, जाहिर। ४ प्रसिद्ध, मशहूर।

रोशन आरा (बेगम)—शाहजहान बादशाहकी छोटी लड़की। १६६९ ई०में दिल्लीनगरमें ही इनकी मृत्यु हुई। शाहजहानाबादके स्थापित रोशन आरा उद्यानमें इनकी समाधि मौजूद है।

रोशन उद्दौला ख्वाजा अली—मुहम्मदशाह बादशाहका अनुगृहीत एक उमराव। इसका असल नाम था ज़ाफर खाँ। इन्होंने १७२१ ई०में दिल्लीके चांदनी चौकके कोतवाली चबूतरेके समीप सुनहली मसजिद बनवाई थी। इसके बाद १७२५ ई०में इन्होंने मुसलमानोंके पढ़नेके लिये दिल्लीके काजीवाड़ाके पास एक और मसजिद बनाई थी। रोशन उद्दौला मसजिद नामसे मशहूर और सोनेके पातसे मंडित थी। इस मसजिदकी छत पर खड़े हो कर नादिरशाहने दिल्लीवासियोंकी हत्या करनेका आदेश दिया था। १७३६ ई०में रोशन उद्दौला इस लोकसे चल बसे।

रोशन उद्दौला (नवाब)—हैदराबाद निजामके मंत्री। ये सुशिक्षित और दयाशाली थे। १८३० ई०में इनकी मृत्यु हुई।

रोशनचौकी (फा० स्त्री०) फूँक कर बजानेका एक बाजा, शहनाईका बाजा। इसे प्रायः चार आदमी मिल कर बजाते हैं। एक सिर्फ सुर भरता है, दो उसके द्वारा रागिनीका गान करते हैं, एक नगाड़ा या दुक्कड़ बजाता है और चौथेके द्वारा ताल दिया है। यह बाजा प्रायः देवस्थानों या राजा बादशाहोंके द्वार पर पहर पहर पर बजाया जाता है इसीसे चौकी कहलाता है।

रोशनदान (फा० पु०) प्रकाश आनेका छिद्र, गवाक्ष, मोखा।

रोशनाई (फा० स्त्री०) १ स्याही लिखनेकी स्याही, मसी। २ प्रकाश, रोशनी।

रोशनी (फा० स्त्री०) १ प्रकाश, उजाला। २ दीपमालाका प्रकाश, दीयोंकी पंक्तिका उजाला। ३ ज्ञानका प्रकाश, विद्याका प्रकाश। ४ दीपक, चिराग।

रोशेनरस—[illegible] एक [illegible] जाता है जब यह [illegible] हुआ है।

५८१ वर्गमील है। यहांके निवासियोंकी संख्या इसके अंदर आते हैं; पुलिस सर्कलकी संख्या १५३(१५०) शासन किया होता है।

रोशेनिया—मुसलमानोंका सम्प्रदायभेद। यद्यपि इस सम्प्रदायका प्रवर्तक एक मुसलमान साधु इसका प्रवर्तक है, यह पीछे रोशन नामसे परिचित था।

बायजीदने अकबर बादशाहके राजत्वकालमें [illegible] अफगान जातिके एक प्रसिद्ध [illegible] एक विद्वान और स्वधर्मनिष्ठ मुसलमानके घरमें जन्मग्रहण किया। पिताके मरने पर वह [illegible] था वह [illegible] हो गया। पीछे वह पीरके [illegible] करनेके लिये हिन्दुस्तान आया गया। यहांसे भारतवर्ष लौटने समय कालिंजरमें मुल्ला सुलेमानके साथ इसकी भेंट हुई। इन्हींसे उसने धर्मविश्वास ग्रहण किया; जिससे पूर्वके सब [illegible] दूर हो उसके मतमें ही [illegible] किया और उसे [illegible] आदेश पालनके लिये कहता रहा। किन्तु इससे भी इसका चित्त स्थिर न हुआ। [illegible] होने हो एक ज्ञानपूर्वक परिवर्तन कर [illegible] चला गया और वहां अपना धर्मान्तर [illegible] कहने लगा। यह हुमायूँ बादशाहके पुत्र मिर्जा महम्मद हकीमका समसामयिक था। मुगलसम्राट अकबरके समय १५९ हिजरीमें इसने अपना मत चला कर अपना धर्ममत प्रचार किया। [illegible] इसके यहां [illegible] मिर्जा महम्मद हकीमको सताने लिये बायजीदके साथ [illegible] जिनकी उस समयके मुसलमान साधुओंको प्रायः [illegible] देता था।

प्रवाद है, कि बायजीदने [illegible] धर्मविश्वास [illegible] नहीं जानता था। किन्तु [illegible] [illegible] [illegible] और [illegible] [illegible] कि [illegible] [illegible] [illegible] को [illegible] देता था। इसको [illegible] होती थी। यह 'अल [illegible]' का [illegible] [illegible] है। इसके [illegible] [illegible]

[illegible] हुआ है। [illegible]

है [illegible]

विश्वास नहीं करता वह मूर्ख है। वैसे अहङ्कारविमूढ़ व्यक्तिको ऐहिक ऐश्वर्यमें कोई अधिकार नहीं है। उस अज्ञ और जीवन्मृत व्यक्तिके वंशधर भी जब मृतवत् आचरण करेंगे, तब जीवित और ज्ञानी ही उस सम्पत्तिके प्रकृत उत्तराधिकारी समझे जायेंगे इस संस्कारके वशवर्त्ती हो कर उसने बहुतसे मूर्ख लोगोंका काम तमाम करनेका हुकुम दे दिया था। यहां तक कि उसने तथा उसके चार पुत्रोंने दस्युवृत्ति द्वारा अमीर उमरा आदि धनाढ्य मुसलमानोंका यथासम्भव लूट लिया था। लूटके मालका पांचवां हिस्सा वह एक जगह जमा रखता था और जरूरत पड़ने पर उसे अपने विश्वस्त अनुचरोंके बीच बांट देता था।

दस्युवृत्तिमें लिप्त रह कर भी बयाजिद या उसके चार पुत्र कभी भी धर्मपथसे भ्रष्ट नहीं हुआ था। वे सब-के सब संयमी और जितेन्द्रिय थे, कभी भी कोई कुकार्य नहीं करते थे। वे एकेश्वरोपासनाकारीका न कभी धन लूटते और न उन्हें किसी प्रकारकी तकलीफ ही देते थे। इसलाम धर्मके क्रियाकर्ममें बड़े कट्टर थे। नित्य ५ बार नमाज पढ़ते थे। और तो क्या, एकेश्वरमें विश्वास करनेवालेके सिवा दूसरे हाथका मारा हुआ पशुमांस तक भी नहीं खाते थे। एक दिन बयाजिद्ने अबदुलासे कहा, कि पैगम्बर महम्मद वर्णित सरियात् रात्रिकी समान, तरिकात् तारकाके समान, हकिकत् चन्द्रके समान और मारिफत् सूर्य्यके समान हैं। आत्माको उज्ज्वल करनेके लिये मारिफत् भिन्न और दूसरा कोई उपाय नहीं है। इसलाम धर्मका सरियात् या पञ्चाङ्ग साधन हर एक मुसलमानका कर्त्तव्य है। नित्य ईश्वरका नाम जपना, भजन करना तथा तसबिया और तहलील करना मुसलमानका कर्त्तव्य है।

बयाजिदके बनाये हुए कई उपदेश ग्रन्थ मिलते हैं। वे सब ग्रन्थ अरबी, पारसी, हिन्दी और पेगू (अफगानी) भाषामें हुए हैं। उसका 'मकसुद-अल मुमेनिन' ग्रन्थ अरबी भाषामें रचा गया है। उस ग्रन्थमें लिखा है, कि परम पिता परमेश्वरने मियांजी जबराईल द्वारा उसे पैगम्बरकी शिक्षा दी थी। उसका 'खायर-अल-बियान' नामक ग्रन्थ उपरोक्त चार भाषामें लिखा है। इसमें बयाजिदके प्रति स्वयं परमेश्वरके उपदेशकी बात है। हालनामा उन्हींके धर्ममतका इतिहास है। यह धर्ममत बहुत कुछ सुफिमतके जैसा है।

बयाजिद्के इस नये धर्ममतमें विश्वास करके बहुतेरे अफगान उसके शिष्य हो गये। काबुल, कन्धार, युसुफजै आदि प्रदेशवासीने उसका मत ग्रहण कर एक शक्तिसम्पन्न अफगान-सम्प्रदायकी सृष्टि की। वे उद्धत साम्प्रदायिकगण उस समयके समृद्ध मुगल साम्राज्यके विरुद्धाचरण करनेसे बाज न आये। सम्राट् अकबरशाहके शासनकालसे ले कर शाहजहांकी समृद्धिके शेष तक रोशेनियोंने दिल्लीश्वरका प्रतिपक्षताचरण किया था। बयाजिदके जीते जी इस सम्प्रदायने बड़ी उन्नति की थी। उस समय उन्होंने धर्मगुरु बयाजिदको अपना अधिनायक बना कर अकबरके शान्तिमय राज्यका शान्तिभङ्ग किया था। अफगानिस्तानके अन्तर्गत भालापुरमें बयाजिदका मकबरा मौजूद है।

बयाजिदके उमार शेख, कमाल उद्दीन, नूरउद्दीन और जलाल-उद्दीन नामक चार पुत्र तथा कमाल-खातुन नामक एक कन्या थी। मियां बयाजिदकी मृत्युके बाद जलाल उद्दीन धर्मगुरु बन कर गद्दी पर बैठा। १००७ हिजरीमें गजनीके अधिकार करने पर वह अकबर द्वारा भेजे गये सेनापतिके हाथ मारा गया। उसके मरने पर उमार शेखका लड़का मिर्या आहादाद गद्दी पर बैठा। १०३३ हिजरीमें जहांगीरके सेनापतिने नवागढ़ दुर्गमें उसका काम तमाम किया। शिष्यमण्डली उसे आहाद या ईश्वरका अवतार मानती थी।

बादमें आहादादका लड़का अबदुला कादिर गद्दी पर अधिरूढ़ हुआ। शाहजहांकी सभामें उसकी बड़ी खातिर थी। १०४३ हिजरीमें उसका देहान्त हुआ। लाश पेशावरमें दफनाई गई। इसके बाद मुगलके षड़यन्त्रसे एक एक कर बयाजिदवंशका लोप हुआ। शाहजहांके जमानेमें नूरउद्दीनके पुत्र मिर्जा दौलताबाद युद्धमें मारा गया। जलालउद्दीनके एक पुत्र करिमदादने मुगल-सेनापति सैयद खांके कौशलसे १०४८ हि०में मचनीला शैल पर प्राण त्याग किया। दूसरा लड़का अल्लादाद खां रसीद्खानी उपाधिके साथ दाक्षि-

नाम, कलाइदार। ३ प्रकट, ज़ाहिर। ४ प्रसिद्ध, मशहूर।

रोशन आरा (बेगम)—मुगलसम्राट् शाहजहांकी छोटी लड़की। १६६१ ई०में दिल्लीराजधानीमें ही इनकी मृत्यु हुई। शाहजहानाबादके प्रान्तस्थित रोशन आरा उद्यानमें इनकी समाधि मौजूद है।

रोशन उद्दौला ख्वाजा अफू—सम्राट् महम्मद शाहका अनुगृहीत एक उमराव। इनका असल नाम था जाफर खां। इन्होंने १७२२ ई०में दिल्ली नगरवासियोंके कोतवालीके चबूतरेके समीप सुनहरी मसजिद बनवाई थी। इसके बाद १७४५ ई०में इन्होंने मुसलमानोंके पढ़नेके लिये दिल्लीके काजीवाड़ाके पास एक और मसजिद बनाई जो रोशन उद्दौला मसजिद नामसे मशहूर और सोनेके पानीसे मंडित थी। इस मसजिदकी छत पर खड़े हो कर पारस्यपति नादिरशाहने दिल्लीवासियोंकी हत्या करनेका आदेश दिया था। १७३६ ई०में रोशन उद्दौला इस लोकसे चल बसे।

रोशन उद्दौला (नवाब)—हैदराबाद निजामके भाई। ये सुशिक्षित और दानशील थे। १८७० ई०में इनकी मृत्यु हुई।

रोशनचौकी (फा० स्त्री०) फूंक कर बजानेका एक बाजा, शहनाईका बाजा। इसे प्रायः तीन आदमी मिल कर बजाते हैं। एक सिर्फ सुर भरता है, दो उसके द्वारा राग रागिनीका गान करते हैं, एक नगाड़ा या दुक्कड़ बजाता है और स्रोतके द्वारा साथ देता है। यह बाजा प्रायः देवतालयों या राजा बादशाहोंके द्वार पर पहर पहर पर बजाया जाता है इसीसे चौकी कहलाता है।

रोशनदान (फा० पु०) प्रकाश आनेका छिद्र, गवाक्ष, झरोखा।

रोशनाई (फा० स्त्री०) १ कागज लिखनेकी स्याही, मसी। २ प्रकाश, रोशनी।

रोशनी (फा० स्त्री०) १ उजाला, प्रकाश। २ दीपमालाका प्रकाश, दीपकोंकी पंक्तिका प्रकाश। ३ ज्ञानका प्रकाश, दिमागका प्रकाश। ४ दीपक, चिराग।

रोशनाबाद—त्रिपुरा जिलान्तर्गत एक भूसम्पत्ति। ५३ परगनोंसे ले कर यह विस्तृत गठित हुआ है। भूपरिमाण ५८० वर्गमील है। यहांके त्रिपुराके राजा इसके ज़मींदार होते हैं। वृटिश गवर्मेण्टको सालाना १५११(१०) राजस्व देना होता है।

रोशनिया—मुसलमानधर्मका सम्प्रदायभेद। बायज़िद् अन्सारी नामक एक मुसलमान-साधु इसका प्रवर्त्तक है। वह पीर-इ रोशन नामसे परिचित था।

बायज़िदने पञ्जाब जालन्धरमें कानिगुराम जिलेके गुमुंदर्गोत्र अफगान जातिके मध्य अब्दुल्ला नामक एक विद्वान् और धर्मनिष्ठ मुसलमानके पुत्ररूपमें जन्मग्रहण किया। पिताके समयमें यह उपयुक्त था पर पतित हो गया। पीछे वह घोड़े का व्यवसाय करनेके लिये समरकन्द राज्यमें गया। वहांसे भारतवर्ष लौटते समय कालिञ्जरमें मुल्ला सुलेमानके साथ उसकी भेंट हुई। तभीसे उसका धर्मविश्वास बदलने लगा। जिससे पुत्रके इस धर्मान्तरसे क्रुद्ध हो उसके पिताने आक्रमण किया और उसे इस्लाम धर्मका आदेश पालनके लिये मजबूर कराया। किन्तु इससे भी पुत्रका चित्त फिर परिवर्तित न हुआ। अन्तमें आक्रान्त होनेसे वह जन्मभूमिका परित्याग कर निनगहर नामक स्थानमें गया और वहां अपना धर्ममत फैलानेकी कोशिश करने लगा। वह हुमायूं बादशाहके पुत्र मिर्जा महम्मद हकीमका समसामयिक था। मुगलसम्राट् अकबरके समय ९४४ हिजरीमें उसने अपना नाम प्रकाश कर अपना धर्ममत स्थापन किया। बाद रोशनने इसे पढ़ा। बायज़िदने मिर्जा महम्मद हकीमको उसने लिखा। बायज़िदके साथ तर्क वितर्कमें इस सम्प्रदायके मुसलमान साधुओंको पराजय होने देना था।

सुनते हैं, कि बायज़िदने पाण्डित्यसे धर्मविश्वास भी नहीं सीखा था। किन्तु पूर्णज्ञानके सुहम्मदकी दर्शनादिकी आलोचना कर उसे सद्धर्म था। वह कुरानके प्रसिद्ध वाक्योंकी अपने मतसे व्याख्या कर लोगोंको समझा देता था। उसके दल दल बाद होते थे। वह 'खैरुलबयान' का प्रचार कर गया है। उसके मतसे जिस हिन्दूने ज्ञान लाभ किया है वह मुसलमानोंसे श्रेष्ठ है। जिस व्यक्तिके आत्मज्ञान नहीं हुआ है उसके भी परिवर्तनाचार

विश्वास नहीं करता वह मूर्ख है। वैसे अहङ्कारविमूढ़ व्यक्तिको ऐहिक ऐश्वर्यमें कोई अधिकार नहीं है। उस अज्ञ और जीवन्मृत व्यक्तिके वंशधर भी जब मृतवत् आचरण करेंगे, तब जीवित और ज्ञानी ही उस सम्पत्तिके प्रकृत उत्तराधिकारी समझे जायेंगे इस संस्कारके वशवर्त्ती हो कर उसने बहुतसे मूर्ख लोगोंका काम तमाम करनेका हुकुम दे दिया था। यहां तक कि उसने तथा उसके चार पुत्रोंने दस्युवृत्ति द्वारा अमीर उमरा आदि धनाढ्य मुसलमानोंका यथासर्वस्व लूट लिया था। लूटके मालका पांचवां हिस्सा वह एक जगह जमा रखता था और जरूरत पड़ने पर उसे अपने विश्वस्त अनुचरोंके बीच बांट देता था।

दस्युवृत्तिमें लिप्त रह कर भी बयाजिद या उसके चार पुत्र कभी भी धर्मपथसे भ्रष्ट नहीं हुआ था। वे सबके सब संयमी और जितेन्द्रिय थे, कभी भी कोई कुकार्य नहीं करते थे। वे एकेश्वरोपासनाकारीका न कभी धन लूटते और न उन्हें किसी प्रकारकी तकलीफ ही देते थे। इसलाम धर्मके क्रियाकर्ममें बड़े कट्टर थे। नित्य ५ बार नमाज पढ़ते थे। और तो क्या, एकेश्वरमें विश्वास करनेवालेके सिवा दूसरे हाथका मारा हुआ पशुमांस तक भी नहीं खाते थे। एक दिन बयाजिदने अबदुल्लासे कहा, कि पैगम्बर महम्मद् वर्णित सरियात् रात्रिकी समान, तरिकात् तारकाके समान, हकिकत् चन्द्रके समान और मारिफत् सूर्य्यके समान हैं। आत्माको उज्ज्वल करनेके लिये मारिफत् भिन्न और दूसरा कोई उपाय नहीं है। इसलाम धर्मका सरियात् या पञ्चाङ्ग साधन हर.एक मुसलमानका कर्त्तव्य है। नित्य ईश्वरका नाम जपना, भजन करना तथा तसबिया और तहलील करना मुसलमानका कर्त्तव्य है।

बयाजिदके बनाये हुए कई उपदेश ग्रन्थ मिलते हैं। वे सब ग्रन्थ अरबी, पारसी, हिन्दी और पेशू (अफगानी) भाषामें हुए हैं। उसका 'मकसुद्-अल मुमेनिन' ग्रन्थ अरबी भाषामें रचा गया है। उस ग्रन्थमें लिखा है, कि परम पिता परमेश्वरने जिब्राँजी जबराईल द्वारा उसे पेनप्रेमकी शिक्षा दी थी। उसका 'खायर-अल-बियान' नामक ग्रन्थ उपरोक्त चार भाषामें लिखा है। इसमें बयाजिदके प्रति स्वयं परमेश्वरके उपदेशकी बात है। हालनामा उन्हींके धर्ममतका इतिहास है। यह धर्ममत बहुत कुछ सुफिमतके जैसा है।

बयाजिदके इस नये धर्ममतमें विश्वास करके बहुतेरे अफगान उसके शिष्य हो गये। काबुल, कन्धार, युसुफजै आदि प्रदेशवासीने उसका मत ग्रहण कर एक शक्तिसम्पन्न अफगान-सम्प्रदायकी सृष्टि की। ये उद्धत साम्प्रदायिकगण उस समयके समृद्ध मुगल साम्राज्यके विरुद्धाचरण करनेसे बाज न आये। सम्राट् अकबरशाहके शासनकालसे ले कर शाहजहांकी समृद्धिके शेष तक रोशेनियोंने दिल्लीश्वरका प्रतिपक्षताचरण किया था। बयाजिदके जीते जी इस सम्प्रदायने बड़ी उन्नति की थी। उस समय उन्होंने धर्मगुरु बयाजिदको अपना अधिनायक बना कर अकबरके शान्तिमय राज्यका शान्तिभङ्ग किया था। अफगानिस्तानके अन्तर्गत भातापुरमें बयाजिदका मकबरा मौजूद है।

बयाजिदके उमार शेरा, कमाल उद्दीन, नूरउद्दीन और जलाल-उद्दीन नामक चार पुत्र तथा कमाल-खानुम नामक एक कन्या थी। मियां बयाजिदकी मृत्युके बाद जलाल उद्दीन धर्मगुरु बन कर गद्दी पर बैठा। १००७ हिजरीमें गजनीके अधिकार करने पर यह अकबर द्वारा भेजे गये सेनापतिके हाथ मारा गया। उसके मरने पर उमार शेखका लड़का मियां आहादाद गद्दी पर बैठा। १०३७ हिजरीमें जहांगीरके सेनापतिने नवागढ़ दुर्गमें उसका काम तमाम किया। शिष्यमण्डली उसे आहाद या ईश्वरका अवतार मानती थी।

बादमें आहादादका लड़का अबदुल्ला कादिर गद्दी पर अधिरूढ़ हुआ। शाहजहांकी सभामें उसकी बड़ी खातिर थी। १०४३ हिजरीमें उसका देहान्त हुआ। लाश पेशावरमें दफनाई गई। इसके बाद मुगलके षड़यन्त्रसे एक एक कर बयाजिदवंशका लोप हुआ। शाहजहांके जमानेमें नूरउद्दीनके पुत्र मिर्जा दौलताबाद युद्धमें मारा गया। जलालउद्दीनके एक पुत्र करिमदादने मुगल-सेनापति सैयद खांके कौशलसे १०४८ ई०में भवलीला शेष की। दूसरा लड़का अल्लादाद खाँ रसीदखांकी उपाधिके साथ दाक्षि-

नाम, चमकदार। ३ दमक, जाहिर। ४ प्रसिद्ध, मशहूर।

रोशन आरा (बेगम)—मुगल सम्राट् शाहजहान्‌की छोटी लड़की। १६७१ ई०में दिल्लीनगरमें ही इनकी मृत्यु हुई। शाहजहानाबादमें स्थापित रोशन आरा बागमें इसकी समाधि मौजूद है।

रोशन उद्दौला ख्वाजा शाह—सम्राट् महम्मद शाहका कृपापात्र एक उमराव। इसका दूसरा नाम था जफर खां। इन्होंने १७२२ ई०में दिल्लीके चांदनी चौकमें कोत-वाली चबूतरेके नजदीक सुनहरी मसजिद बनवाई थी। इसके बाद १७२९ ई०में इन्होंने मुसलमानोंके पढ़नेके लिये दिल्लीके काश्मीरदरवाजेके पास एक और मसजिद बनाई जो रोशन उद्दौला मसजिद नामसे मशहूर और सोनेके पानीसे मंडित थी। इस मसजिदकी छत पर खड़े हो कर पारस्यपति नादिरशाहने दिल्लीवासियोंकी हत्या करनेका आदेश दिया था। १७३६ ई०में रोशन उद्दौला इस लोकसे चल बसे।

रोशन उद्दौला (नवाब)—हैदराबाद निजामके भाई। ये सुशिक्षित और सदाचारी थे। १८३० ई०में इनकी मृत्यु हुई।

रोशनचौकी (फा० स्त्री०) फूंक कर बजानेका एक बाजा, शहनाईका बाजा। इसे प्रायः तीन आदमी मिल कर बजाते हैं। एक सिर्फ स्वर भरता है, दो उसके द्वारा राग रागिनीका गान करते हैं, एक नगाड़ा या दुक्कड़ बजाता है और ओझके द्वारा ताल देता है। यह बाजा प्रायः देवस्थानों या राजा बादशाहोंके द्वार पर पहर पहर पर बजाया जाता है इसीसे चौकी कहलाता है।

रोशनदान (फा० पु०) प्रकाश आनेका छिद्र, गवाक्ष, झरोखा।

रोशनाई (फा० स्त्री०) १ लिखनेकी स्याही, मसी। २ उजाला, रोशनी।

रोशनी (फा० स्त्री०) १ प्रकाश, उजाला। २ दीपमालाका प्रकाश, दीपकोंकी पंक्तिका उजाला। ३ ज्ञानका प्रकाश, विद्याका प्रकाश। ४ दीपक, चिराग।

रोसनाबाद—त्रिपुरा जिलान्तर्गत एक भू-सम्पत्ति। ५३ परगने ले कर यह विभाग गठित हुआ है। भू-परिमाण ५८१ वर्गमील है। यहांके त्रिपुराके राजा इसके अधिकारी हैं। वृटिश-गवर्मेण्टको मालगुजारी (१५३९६) राजस्व देना होता है।

रोसेनिया—मुसलमानधर्म सम्प्रदायभेद। बयाजिद अन्सारी नामक एक मुसलमान-साधु इसका प्रवर्त्तक है। वह पीर ए रोशन नामसे परिचित था।

बयाजिदने कन्धार सीमान्तवर्ती कालिंजर जिले के पूर्व दर्रेखोल पठानके शाखिके मध्य मुल्ला नामक एक विद्वान् और स्वधर्मनिरत मुसलमानके पुत्ररूपमें जन्मग्रहण किया। पिताके समयमें यह अज्ञ था पर शिक्षित हो गया। पीछे यह घोड़ेका व्यवसाय करनेके लिये समरकन्द भेजा गया। वहांसे भारतवर्ष लौटते समय कालिंजरमें मुल्ला सुलेमानके साथ इसकी भेंट हुई। तभीसे उसका धर्मविश्वास बदलने लगा। पिताने पुत्रके इस व्यवहारसे क्रुद्ध हो उसके ऊपर अत्याचार किया और उसे इस्लाम धर्मका आदेश पालनके लिये मजबूर कराया। किन्तु इससे भी पुत्रका चित्त फिर परिवर्तित न हुआ। तदनन्तर स्वाधीन होने पर यह जन्मभूमिका परित्याग कर निनगहर नामक स्थानमें गया और वहां अपना धर्ममत फैलानेकी कोशिश करने लगा। यह हुमायूं बादशाहके पुत्र मिर्जा महम्मद हकीमका समसामयिक था। मुगलशाह अकबरके समय ९४९ हिजरीमें इसने धर्मप्रचार आरम्भ कर अपना धर्ममत स्थापन किया। बाद दीवानमें इसके पहले काबुलमें मिर्जा महम्मद हकीमके सामने मिले बयाजिदके साथ तर्क वितर्कमें उस समयके मुसलमान साधुओंको परास्त होना पड़ा था।

प्रवाद है, कि बयाजिदने बाल्यावस्थामें कहींसे विद्या भी नहीं सीखी थी। किन्तु पूर्वोक्त सुलेमानके शुश्रूषासे इसकी प्रतिभा ऐसी तीक्ष्ण हो गई थी, कि यह कुरानके प्रसिद्ध पदोंकी अरबीमें व्याख्या कर लोगोंको उपदेश देता था। उसकी हर एक बात बड़ी प्रभावशाली होती थी। यह 'ला-इलाह' का प्रचार कर गया है। इसके मतसे जिस हिन्दूने परमात्माका ज्ञान प्राप्त किया है वह मुसलमानोंमें भी श्रेष्ठ है। जिस व्यक्तिके अन्दर ज्ञान नहीं हुआ है उसमें और पशुमें कोई अन्तर नहीं।

ऐतिहासिक प्रसिद्धिकी बात नहीं सुनी जाती। शेषोक्त वर्षमें सम्राट् फर्रुखसियरने सारा हरियाना विभाग अपने मन्त्री रुकन उद्दौलाको प्रदान किया। पीछे रुकनने भी यह सम्पत्ति फौजदार खाँ नामक एक बेलुचिस्तानवासी उमरावको दे दी और १७३२ ई०में उसे फर्रुख नगरकी नवाबी मसनद पर अभिषिक्त किया। नया नवाब राजतख्त पर बैठ कर वर्त्तमान हिसार, रोहतक और गुड़गांव जिलेके कुछ अंश तथा पतियाला और झिन्द राज्यके कुछ अंशका शासन करने लगा। उसके लड़केने १७६० ई० तक ये रोकटोक राज्यभोग किया था। पीछे दिल्ली साम्राज्यके अधःपतनके साथ उसकी भी तकदीर फूटी निकली। आलमगीरकी हत्या और सम्राट् शाह आलमके नाममात्रके राजा होनेसे राज्यमें अराजकताका लक्षण सूचित होने लगा। दूसरे वर्ष पानीपतकी लड़ाईमें महाराष्ट्रशक्तिके अधःपतनके साथ साथ मुगलशक्तिका भी ह्रास हुआ। फर्रुख नगरके नवाबने प्रतिपालककी दुरवस्थासे अपने को दुर्दशाग्रस्त समझा। वह सामर्थ्यहीन हो नाममात्रके लिये मसनदकी शोभा बढ़ने लगा। इस समय सीमायाग्वेषी सिखसरदारोंने दस्युवृत्ति और अर्थलालसाका परित्याग कर राजपाट स्थापनको ओर ध्यान दिया। इससे नवाब दिनों दिन कमजोर होता गया। आखिर १७६२ ई०में भरतपुरके जाटसरदार जवाहिर सिंहने उसे राज्यसे निकाल भगाया।

इसके प्रायः २० वर्ष बाद उत्तर-भारतके हरियानामें नाना प्रकारकी विशृङ्खला उपस्थित हुई। नवाब फौजदारके पुत्र कुछ समयके लिये पैतृक सम्पत्ति अधिकार कर फिरसे राज्यशासन करने लगा। अनन्तर नजफ खांने यह स्थान जीत कर अपने एक अनुचरको प्रदान किया। पीछे सरधानाकी रानी बेगम समरूका स्वामी वालटर रिनहार्डट इसके कुछ अंशोंका जागीर तौर पर भोग करने लगा। १७८४ ई०में महाराष्ट्रगण इन सब विशृङ्खलाओंसे राज्यरक्षा करनेमें समर्थ हुए सही, किन्तु सुसमृद्ध सिन्दे राजन्यके सिखोंका दमन न कर सके। सिखोंने बार बार आक्रमण कर स्थानीय अधिवासियोंको तंग कर डाला। अन्तमें सिन्देराजने हरियाना विभागका अधिकांश कैथल और झिन्दके सरदारको समर्पण कर उपद्रवसे परित्राण पाया।

इसी समय सौभाग्यान्वेषी सैनिक जार्ज टामस हरियानाका अधराङ्ग हस्तगत कर स्वयं राज्यशासन करने लगा। उन्होंने झज्जरके निकट जर्जगढ़ नामक स्थानमें और हिसार जिलेके हाँसीमें दो दुर्ग बना कर अपना अधिकार मजबूत कर लिया था। १८०२ ई०में फरासी सेनानायकके अधीन परिचालित महाराष्ट्रदलने टामसको राज्यसे निकाल भगाया। दूसरे वर्ष अंगरेज-सेनापति लार्ड लेकने शतद्रु से शिवालिक पादमूल पर्यन्त अंगरेज शासनभुक्त कर लिया।

इस समय कैथल और झिन्दके सरदार जिलेका उत्तरांश अधिकार कर बैठे थे। अंगरेजराजने झज्जरके नवाबको दक्षिण, दाद्रि और बहादुरगढ़के नवाबको पश्चिम तथा दुजानाके नवाबको मध्यभाग शासन करनेके लिये दे दिया। शेषोक्त नवाब सिख और भट्टि जातिके बार बार आक्रमणसे तंग आ कर जब राज्य चलानेमें असमर्थ हुए, तब १८०१ ई०में यहां सुशृङ्खला स्थापनके लिये अंगरेजी सेना भेजी गई। इस समय वर्त्तमान जिलेका कुछ परगना अंगरेजोंके अधिकारभुक्त हो गया था। १८१८ ई०में कैथलराजकी मृत्युके बाद तथा १८२० ई०में झिन्दके सरदार कुछ भूभाग हस्तगत कर रोहतक जिला संगठित हुआ। उसी साल हिसार और शिर्षा विभाग रोहतकसे निकाल लिया गया और १८१४ ई०में पानीपत (वर्त्तमान कर्नाल) जिला स्वतन्त्र शासनभुक्त किया गया।

१८६२ ई० तक दिल्लीराजधानीके अंगरेज रेसिडेण्टके अधीन एक पोलिटिकल एजेण्ट यहांका शासन करते रहे। पीछे यह युक्तप्रदेशके साधारण राजनियमके शासनाधीन किया गया। १८५७ ई०के गदरमें यह जिला अंगरेजोंके हाथसे जाता रहा। फर्रुख नगर, झज्जर और बहादुरके नवाबने गुड़गांव हिसारवासी विभिन्न मुसलमानसम्प्रदायके साथ मिल कर यहां आधिपत्य जमाया। पीछे शिर्षा और हिसारके भट्टि-सरदारोंने उनसे मिल कर रोहतक पर आक्रमण किया और उसे लूटा। दिल्ली अंगरेजोंके हाथ आनेके बाद पंजाबी सेनादलको सहा-

[illegible] हुआ। १८७७ ई० में हिसारमें इनकी मृत्यु हुई।

रोप (सं० पु०) रुह णिच् अच्। १ रोपण, पुनरा। २ [illegible] । ३ छिद्र, सुराख। ४ तीर, [illegible] ।

रोपण (सं० पु०) रोपि [illegible] ल्युट्। १ [illegible] । २ [illegible] । ३ [illegible] (त्रि०)। ४ [illegible] ।

रोपणा (सं० स्त्री०) [illegible] ।

रोपित (सं० त्रि०) स्थापित, कृत।

रोपाशीन (सं० पु०) [illegible] ।

रोमन्थित (सं० त्रि०) [illegible] ।

रोहित (सं० त्रि०) [illegible] ।

रोहिन् (सं० त्रि०) [illegible] ।

रोरु (सं० त्रि०) [illegible] ।

रोल (सं० पु०) [illegible] देखो।

रोला (भा० स्त्री०) [illegible] देखो।

रोलनाई (भा० स्त्री०) [illegible] देखो।

रोलनी (भा० स्त्री०) [illegible] देखो।

रोसा (हिं० पु०) [illegible] ।

रोह (सं० पु०) रोहतीति रुह-अच्। १ अंकुर, अँखुवा। २ [illegible] । ३ चढ़ना, चढ़ाई। (त्रि०) ४ [illegible] ।

रोह (हिं० पु०) [illegible] ।

रोहक (सं० पु०) रुह ण्वुल्। १ [illegible] । (त्रि०) २ [illegible] । ३ [illegible] ।

रोहण (सं० पु०) [illegible] ।

रोहण (सं० क्ली०) [illegible] । १ [illegible] । २ [illegible] । ३ [illegible] । ४ [illegible] । (पु०) ५ [illegible] । ६ [illegible] ।

रोहणद्रुम (सं० पु०) १ [illegible] । २ [illegible] ।

([illegible])

रोहणा—[illegible] । यह

[illegible] ३०° [illegible] ७८° [illegible] है। [illegible] है। इस [illegible] है, इस कारण [illegible] है। [illegible] है। [illegible] देश [illegible] ।

रोहण्वती (सं० स्त्री०) [illegible] ।

रोहतक—पञ्जाब प्रदेशके हिसार विभागका एक जिला। यह अक्षा० २८° २१´ से २९° १७´ उ० तथा देशा० ७६° १३´ से ७६° ५८´ पू०के मध्य अवस्थित है। भूपरिमाण १७९७ वर्गमील है।

[illegible] और रोहतक नामक [illegible] विभाग ले कर यह जिला बना है। [illegible] और रोहतक [illegible] है। रोहतक [illegible] है।

[illegible] और [illegible] है। [illegible] यह जिला अवस्थित है। [illegible] । [illegible] और [illegible] है।

[illegible] १८५७ ई० [illegible] ।

ऐतिहासिक प्रसिद्धिकी बात नहीं सुनी जाती। शेषोक्त वर्षमें सम्राट् फर्रुखसियरने सारा हरियाना विभाग अपने मन्त्री एकन उद्दौलाको प्रदान किया। पीछे एकनने भी यह सम्पत्ति फौजदार खां नामक एक बेलुचिस्तानवासी उमरावको दे दी और १७३२ ई०में उसे फर्रुख नगरकी नवाबी मसनद पर अभिषिक्त किया। नया नवाब राजतख्त पर बैठ कर वर्त्तमान हिसार, रोहतक और गुरगांव जिलेके कुछ अंश तथा पतियाला और झिन्द राज्यके कुछ अंशका शासन करने लगा। उसके लड़केने १७६० ई० तक बेरोकटोक राज्यभोग किया था। पीछे दिल्ली साम्राज्यके अधःपतनके साथ उसकी भी तकदीर फूटी निकली। आलमगीरकी हत्या और सम्राट् शाह आलमके नाममात्रके राजा होनेसे राज्यमें अराजकताका लक्षण सूचित होने लगा। दूसरे वर्ष पानीपतकी लड़ाईमें महाराष्ट्रशक्तिके अधःपतनके साथ साथ मुगलशक्तिका भी ह्रास हुआ। फर्रुख नगरके नवाबने प्रतिपालककी दुरवस्थासे अपने को दुर्दशाग्रस्त समझा। वह सामर्थ्यहीन हो नाममात्रके लिये मसनदकी शोभा बढ़ाने लगा। इस समय सौभाग्यान्वेषी सिखसरदारोंने दस्युवृत्ति और अर्थलालसाका परित्याग कर राजपाट स्थापनकी ओर ध्यान दिया। इससे नवाब दिनों दिन कमजोर होता गया। आखिर १७६२ ई०में भरतपुरके जाटसरदार जवाहिर सिंहने उसे राज्यसे निकाल भगाया।

इसके प्रायः २० वर्ष बाद उत्तर-भारतके हरियानामें नाना प्रकारकी विशृङ्खला उपस्थित हुई। नवाब फौजदारके पुत्र कुछ समयके लिये पैतृक सम्पत्ति अधिकार कर फिरसे राज्यशासन करने लगा। अनन्तर नजफ खांने यह स्थान जीत कर अपने एक अनुचरको प्रदान किया। पीछे सरदानाकी रानी बेगम समरूका स्वामी वालटर रिनहार्डट इसके कुछ अंशोंका जागीर और पर भोग करने लगा। १७८४ ई०में महाराष्ट्रगण इन सब विशृङ्खलाओंसे राज्यरक्षा करनेमें समर्थ हुए सही, किन्तु मुसमुन्द सिन्दे राजशक्ति सिखोंका दमन न कर सकी। सिखोंने बार बार आक्रमण कर स्थानीय अधिवासियोंको तंग कर डाला। अन्तमें सिन्देराजने हरियाना विभागका अधिकांश कैथल और झिन्दके सरदारको समर्पण कर उपद्रवसे परित्राण पाया।

इसी समय सौभाग्यान्वेषी सैनिक जार्ज टामस हरियानाका अपराद्ध हस्तगत कर स्वयं राज्यशासन करने लगा। उन्होंने झाजरके निकट जर्जगढ नामक स्थानमें और हिसार जिलेके हाँसीमें दो दुर्ग बना कर अपना अधिकार मजबूत कर लिया था। १८०२ ई०में फरासी सेनानायकके अधीन परिचालित महाराष्ट्रदलने टामसको राज्यसे निकाल भगाया। दूसरे वर्ष अंगरेज-सेनापति लार्ड लेकने अतद्रुसे शिवालिक पादमूल पर्यन्त अंगरेज शासनभुक्त कर लिया।

इस समय कैथल और झिन्दके सरदार जिलेका उत्तरांश अधिकार कर बैठे थे। अंगरेजराजने झाजरके नवाबको दक्षिण, दाद्रि और बहादुरगढ़के नवाबको पश्चिम तथा दुजानाके नवाबको मध्यभाग शासन करनेके लिये दे दिया। शेषोक्त नवाब सिख और भट्टि जातिके बार बार आक्रमणसे तंग आ कर जब राज्य चलानेमें असमर्थ हुए, तब १८०१ ई०में यहां सुश्रृङ्खला स्थापनके लिये अंगरेजी सेना भेजी गई। इस समय वर्त्तमान जिलेका कुछ परगना अंगरेजोंके अधिकारभुक्त हो गया था। १८१८ ई०में कैथलराजकी मृत्युके बाद तथा १८२० ई०में झिन्दके सरदार कुछ भूभाग हस्तगत कर रोहतक जिला संगठित हुआ। उसी साल हिसार और शिर्षा विभाग रोहतकसे निकाल लिया गया और १८१४ ई०में पानीपत (वर्त्तमान कर्नाल) जिला स्वतन्त्र शासनभुक्त किया गया।

१८३२ ई० तक दिल्लीराजधानीके अंगरेज रेसिडेण्टके अधीन एक पोलिटिकल एजेण्ट यहांका शासन करते रहे। पीछे यह युक्तप्रदेशके साधारण राजनियमके शासनाधीन किया गया। १८५७ ई०के गदरमें यह जिला अंगरेजोंके हाथसे जाता रहा। फर्रुख नगर, झाझर और बहादुरके नवाबने गुरगाँव हिसारवासी विभिन्न मुसलमान-सम्प्रदायके साथ मिल कर यहां आधिपत्य जमाया। पीछे शिर्षा और हिसारके भट्टि-सरदारोंने इनसे मिल कर रोहतक पर आक्रमण किया और इसे लूटा। दिल्ली अंगरेजोंके हाथ आनेके बाद पंजाबी सेनादलकी सहा-

[illegible] हुए थे। [illegible]

[illegible] ई०में [illegible]

इस जिलेमें ११ शहर और ४६१ गांव लगते हैं। [illegible] हिन्दुओंकी संख्या सैकड़े पीछे ८५ है।

[illegible] और [illegible] दी जाती है। [illegible] 'दुफसली' कहते हैं। [illegible] दुर्भिक्ष हुआ करता है। १८२४, १८३०, १८३६, १८३८, १८५०-५१ और १८६८-६९, १८७५, १८७६ और १९०० ई०में यहां दुर्भिक्ष पड़ा था। १९०० ई०का दुर्भिक्ष बड़ा भयङ्कर था। [illegible]

[illegible]

इस जिलेमें [illegible]

[illegible] है।

२ [illegible] है। [illegible]

३ [illegible] है।

यह नगर बहुत पुराना है, किन्तु दुःखका विषय है, कि इसका कोई प्राचीन इतिहास नहीं मिलता। [illegible]

[illegible]

[illegible]—[illegible]

[illegible]—[illegible]

उठाये खड़ा है। सुलतानपुर और काङ्गरासे जो चौड़ा रास्ता लेहयारखन्द तक गया है वह इसी रास्तेके ऊपरसे चन्द्रा और भागा नदीकी उपत्यकाको पार कर घारा लाचामें मिला है। दिसम्बर महीनेको छोड़ कर अभी सभी समय यह रास्ता जाने आने लायक रहता है।

रोहन (हिं० पु०) एक प्रकारका पेड़। इसे सूहन और सूमी भी कहते हैं। यह पेड़ बहुत बड़ा होता है और दक्षिण तथा मध्यभारतके जंगलोंमें बहुतायतसे होता है। इसकी लकड़ी मकानोंमें लगती और मेज, कुरसी आदि सजावटके सामान बनानेके काममें आती है। हीरकी लकड़ी बहुत कड़ी, मजबूत, टिकाऊ, चिकनी तथा ललाई लिये काले रंगकी होती है। शिशिर ऋतुमें इस पेड़के पत्ते झड़ते हैं।

रोहना (हिं० क्रि०) १ चढ़ाना, ऊपर करना। २ अपने ऊपर रखना, धारण करना। ३ सवार कराना।

रोहन्त (सं० पु०) रुहादित्ति रह (रुहिनन्दिजीविप्राणिभ्यः षिदाशिषि। उण् ३।१२७) इति झच्। १ वृक्षभेद, एक पेड़का नाम। २ वृक्षमात्र, पेड़।

रोहन्ती (सं० स्त्री०) रुह झच्, षित्वात् ङीष्। १ लताभेद। २ लतामात्र।

रोहरी—सिन्धुप्रदेशके शिकारपुर जिलान्तर्गत एक उपविभाग। कोहिस्तान ले कर इसका भूपरिमाण ५४१० वर्गमील है। इसके पश्चिम और उत्तर सिन्धु नदी, उत्तर-पूर्व और पूर्वमें बहवलपुर और जयसलमेर राज्य तथा दक्षिणमें खैरपुर जिला है। मीरपुर नगर इसका विचार-सदर है।

रेजिस्तान नामक मरुप्रदेश और शिकारका समतल प्रान्त ले कर यह विभाग संगठित है। बीच बीचमें वनमाला परिशोभित गण्डशैलश्रेणी शोभा दे रही है। एक समय सिन्धुनदी उन सब गण्डशैलके पार्श्व हो कर अरोर नगर तक विस्तृत थी। पीछे किसी प्राकृतिक परिवर्त्तनसे स्रोत गति बदल शैलके मध्य हो कर लौटी है। शायद सिन्धुनदीक्षिप्त बालुकाराशिके विकारसे ही यह शैलमाला बनी है। रेजिस्तान विभागकी रैन नदी एक समय मूलसिन्धु रूपमें बड़ी तेजीसे बहती थी। अभी मन्दगति हो जानेसे उसकी चौड़ाई घट गई है तथा दोनों किनारा बालुकापूर्ण मरुप्रान्तरमें बदल गया है। एतद्भिन्न खेतीबारीकी सुविधाके लिये यहां बहुत-सी नहरें हैं। उनमेंसे पूर्व-नारा १३ मील, लुण्डी १६ मील अरोर १६ मील, दहर २६ मील, मसु ३२ मील, कोराई २३ मील, महारो ३७ मील और देङ्गरो १६ मील, लम्बी है। इन सब नहरोंसे स्थानीय जमींदार फिर ५७ नहर काट कर अपने अपने इलाकेमें ले गये हैं।

यहां मट्टीके बरतन, सूती कपड़े और चूनेका विस्तृत कारबार है। घोटकी और खैरपुर धहरों नगरमें कलों, नासदानी, कैंची और रसोईके बरतन तैयार होते हैं। यहांसे तरह तरहके अनाज, सज्जीमिट्टी, चून, तेल, पशम, रेशमी वस्त्र, नील और खाद्योपयोगी फलादिकी विभिन्न स्थानोंमें रफ्तनी होती है। नार्थवेष्टर्न रेलवेके खुल जानेसे व्यवसाय वाणिज्यमें बड़ी सुविधा हुई है।

सिन्धुप्रदेशके शिकारपुर जिलान्तर्गत एक तालुक। यह अक्षा० २७° ४′ से २७° ५०′ उ० तथा देशा० ६८° ३५′ से ६९° ४८′ पू०के मध्य अवस्थित है। भूपरिमाण १४६७ वर्गमील और जनसंख्या ८५ हजारसे ऊपर है। इसमें रोहरी नामक १ शहर और ६१ ग्राम लगते हैं। यहांकी प्रधान उपज धान, ज्वार और गेहूं है।

३ उक्त तालुकका एक शहर। यह अक्षा० २७° ४१ उ० तथा देशा० ६८° ५६′ पू०के मध्य सिन्धुके बायें किनारे अवस्थित है। जनसंख्या हजारके करीब है। प्रवाद है, कि १२९७ ई०में सैयद रुकन उद्दीन शाहने इस नगरको बसाया। मुसलमानी जमानेमें यहां बहुत-सी मसजिदें बनी थीं। उनमें से १५६४ ई०में सम्राट् अकबर शाहके अधीनस्थ शासनकर्त्ता फते खाँने नाना शिल्प और कारुकार्य-समन्वित जुमा-मसजिद तथा १५९३ ई०में मीर मुराम शाहने इदगाह मसजिदकी प्रतिष्ठा कराई थी।

१५४५ ई०में स्थानीय कलहोड़ा-राज मीर महम्मदने अपने मित्र खैरपुराधिपति मीर अलीमुरादसे पैगम्बर महम्मदकी दाढ़ीका एक बाल पाया। उसने उस देवस्मृतिकी रक्षार्थ नगरसे उत्तर 'वार मुबारक' नामक एक चौकोन धर्म्मभवन बनवाया। उस मसजिदके मध्यस्थलमें हीरे पन्नेसे जड़े हुए एक सोनेके डब्बेमें यह

[illegible] हुए थे। अकबर और [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] हुए। [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] किये गये। [illegible] और [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] हुआ। [illegible] ई०में [illegible] [illegible] गोरखपुर जिलेमें [illegible] गया।

इस जिलेमें ११ [illegible] और ४११ [illegible] लगते हैं। [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] करोड़ है। [illegible] [illegible] [illegible] ४५ है।

वाणिज्य व्यवसाय और कृषिकार्योंमें यहां बहुत उन्नति देखी जाती है। यहां [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] और [illegible]। [illegible] [illegible] [illegible] नहीं करते, [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] हैं जिसे '[illegible]' कहते हैं। [illegible] [illegible] यहां [illegible] दुर्भिक्ष हुआ करता है। [illegible], [illegible], [illegible], [illegible] और [illegible] ई०, [illegible], [illegible] और [illegible] ई०में यहां दुर्भिक्ष पड़ा था। [illegible] ई०का दुर्भिक्ष बहुत [illegible] था। [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] थे। [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] शुरू कर दिया था। [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] शुरू किया था। [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] दुर्दशा हो गई थी, कि [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] और एक [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] थे। [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] हो गई थी। [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] हो गई थी, [illegible] [illegible] [illegible] और [illegible] [illegible]।

इस जिलेमें [illegible] [illegible] हैं, गोरखपुर, [illegible], [illegible] और [illegible]। [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] हुआ है। [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] है। [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible], [illegible], [illegible] [illegible] और [illegible] [illegible] हैं। [illegible] [illegible] गोरखपुर [illegible] [illegible] [illegible] [illegible]

[illegible], जो [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] है।

२. इस जिलेकी एक तहसील। यह [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] है। [illegible] [illegible] [illegible] और [illegible] [illegible] करोड़ है। इसमें [illegible] और [illegible] लगते हैं।

३. इस जिलेका प्रधान नगर और [illegible]। यह [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] है। [illegible] [illegible] [illegible] करीब है।

यह नगर बहुत पुराना है, किन्तु [illegible] [illegible] है, कि [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] नहीं मिलता। [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] और [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] हैं। [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] था, [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] है। कहते हैं, कि [illegible] [illegible] ई०में [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] हुआ था। [illegible] [illegible] है, कि [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] और [illegible] हुआ था। [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] होता गया। [illegible] ई०में यह [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] लगा। [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] रहा है। [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] है। [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] है।

गोरखनाथ—[illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible]।

गोरखपुर—[illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible]। यह [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] है। [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] है। [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] है। [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] है। [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible]

सुरभि-कन्या। (कालिकापु०) १४ नव वर्षीया कन्या, नौ वर्षकी कन्या।

"अष्टवर्षा भवेद्गौरी नववर्षा च रोहिणी।"

(उद्वाहतत्त्व)

१५ पञ्चवर्षीया कन्या, पांच वर्षकी कुमारी। रोगियोंका रोग नाश करनेके लिये इस कुमारीकी पूजा करनेकी व्यवस्था देखी जाती है।

"रोहिणी पञ्चवर्षा च षड्वर्षा कालिका स्मृता।"

(देवीभाग० ३।२६।४२)

"रोहिणीं रोगनाशाय पूजयेद्विधिवन्नरः।"

(देवीभाग० ३।२६।४८)

रोहिणीकी पूजा निम्नोक्त मन्त्रसे करनी होती है।

"रोहयन्ती च बीजानि प्राग्जन्मसञ्चितानि वै।
या देवी सर्वभूतानां रोहिणीं पूजयाम्यहम्॥"

(देवीभाग० ३।२६।५६)

इस कुमारीकी पूजा करनेसे अनेक प्रकारकी सुखसम्पद प्राप्त होती है। १६ हिरण्यकशिपुकी कन्या। (भारत १।२२०।१८) १७ अश्विनी आदि सत्ताईस नक्षत्रोंके अन्तर्गत चौथा नक्षत्र। पर्याय—रोहिणी, ब्राह्मी। यह नक्षत्र शकटाकार और पञ्चतारात्मक है। ब्रह्मा इसके अधिष्ठात्री देवता हैं। इस नक्षत्रमें वृषराशि होती है।

रोहिणी (नक्षत्र) चन्द्रमाकी अत्यन्त प्रियतमा है। चन्द्रमाकी सत्ताईस स्त्री होने पर भी वे हमेशा रोहिणीके निकट रहते थे। और स्त्रियां इससे असन्तुष्ट हो दक्षके पास गईं और कुल वृत्तान्त उन्हें कह सुनाया। दक्ष बड़े बिगड़े और उन्होंने चन्द्रमाको शाप दिया। रोहिणीके कारण चन्द्रमा दक्षके अभिशापसे यक्ष्मरोगाक्रान्त हुए। (कालिकापु०)

यह नक्षत्र ऊर्द्ध्वमुख, और सर्वज्ञातिका है। शतपदचक्रानुसार इस नक्षत्रमें नामकरण होनेसे इसके चार पादमें "ओ, व, वी, वु" इन चार अक्षरोंका आदि नाम होगा। (कालिदासकृत शर्मवती०)

पांच नक्षत्रयुक्त शकटाकार रोहिणी नक्षत्र यदि प्रकाशित हो, तो निश्चलका २ दण्ड २८ पल बीत गया है, ऐसा जानना होगा।

इस नक्षत्रमें जन्म होनेसे जात बालक कुशल, कुलीन, सुवाक्यदेह, धनी, मानी और कामुक होगा। (कोष्ठीप्र०)

अष्टोत्तरी मतसे इस नक्षत्रमें जन्म होनेसे सूर्यकी दशा तथा विंशोत्तरी मतसे चन्द्रकी दशा होती है। नक्षत्रके परिमाणादि अनुसार भोग्यभुक्तादिका निरूपण किया जा सकता है।

भाद्रमासकी कृष्णाष्टमी अर्थात् जन्माष्टमीके दिन रोहिणी नक्षत्रका योग होनेसे जयन्ती-योग होता है। यह रोहिणी नक्षत्र रात्रिकाल पा कर यदि दूसरे दिन भी रहे, तो जब तक रोहिणी नक्षत्र रहेगा, तब तक उपवास करना होता है। रोहिणी रहने पर पारण नहीं करना चाहिये।

जन्माष्टमी देखो।

१८ गलरोगभेद, गलेका एक रोग। इसके निदान और चिकित्साका विषय भावप्रकाशमें इस प्रकार लिखा है। गलरोग १८ प्रकारका है। उनमेंसे रोहिणीके पांच भेद हैं।

निदान—दूषित वायु, पित्त, कफ और रक्त जब गलेमेंके मांसको दूषित कर कण्ठरोधकारी मांसाङ्कुर उत्पादन करता है, तब उसे रोहिणी रोग कहते हैं। इस रोगमें प्रायः रोगीका जीवन नष्ट होता है।

वातज रोहिणीका लक्षण—वातज रोहिणी रोगमें जीभके चारों ओर अत्यन्त वेदनाविशिष्ट कण्ठरोधकारक मांसाङ्कुर उत्पन्न होता है तथा रोगी स्तम्भत्व आदि वातजनित उपद्रवोंसे पीड़ित रहता है।

पित्तज लक्षण—पित्तजन्य रोहिणी रोगमें मांसाङ्कुर जल्दी निकलता है तथा अत्यन्त दाह और पाकयुक्त होता है। इस रोगीको जोरसे ज्वर आता है।

कफज लक्षण—कफजन्य रोहिणी रोगमें मांसाङ्कुर गुरु, स्थिर और अल्पपाकविशिष्ट होता है, तथा कण्ठस्रोत बंद हो जाता है।

सन्निपातज लक्षण—त्रिदोषज रोहिणी रोगमें उक्त तीन दोषोंके सभी लक्षण दिखाई देते हैं तथा मांसाङ्कुर गम्भीरपाकी होता है। ये सब लक्षण दिखाई देनेसे रोगीकी जान पर खतरा है, ऐसा जानना होगा।

रक्तज लक्षण—रक्तजन्य रोहिणी रोगमें जीभके नीचे

सुरभि-कन्या। (कालिकापु०) १४ नव वर्षीया कन्या, नौ वर्षकी कन्या।

"अष्टवर्षा भवेद्गौरी नववर्षा च रोहिणी।"

(उद्वाहतत्त्व)

१५ पञ्चवर्षीया कन्या, पांच वर्षकी कुमारी। रोगियों-का रोग नाश करनेके लिये इस कुमारीकी पूजा करनेकी व्यवस्था देखी जाती है।

"रोहिणी पञ्चवर्षा च षड्वर्षा कालिका स्मृता।"

(देवीभाग० ३।२६।४२)

"रोहिणीं रोगनाशाय पूजयेद्विधिवन्नरः।"

(देवीभाग० ३।२६।४८)

रोहिणीकी पूजा निम्नोक्त मन्त्रसे करनी होती है।

"रोहयन्ती च बीजानि प्राग्जन्मसञ्चितानि वै।
या देवी सर्वभूतानां रोहिणीं पूजयाम्यहम्॥"

(देवीभाग० ३।२६।५६)

इस कुमारीकी पूजा करनेसे अनेक प्रकारकी सुख-सम्पद प्राप्त होती है। १६ हिरण्यकशिपुकी कन्या। (भारत ३।२२०।१८) १७ अश्विनी आदि सत्ताईस नक्षत्रों-के अन्तर्गत चौथा नक्षत्र। पर्याय—रोहिणी, ब्राह्मी। यह नक्षत्र शकटाकार और पञ्चतारात्मक है। ब्रह्मा इस-के अधिष्ठात्री देवता हैं। इस नक्षत्रमें वृषराशि होती है।

रोहिणी (नक्षत्र) चन्द्रमाकी अत्यन्त प्रियतमा है। चन्द्रमाकी सत्ताईस स्त्री होने पर भी वे हमेशा रोहिणी-के निकट रहते थे। शेष स्त्रियां इससे असन्तुष्ट हो दक्ष के पास गई और कुल वृत्तान्त उन्हें कह सुनाया। दक्ष बड़े बिगड़े और उन्होंने चन्द्रमाको शाप दिया। रोहिणी-के कारण चन्द्रमा दक्षके अभिशापसे यक्ष्मारोगाक्रान्त हुए। (कालिकापु०)।

यह नक्षत्र ऊर्द्ध्वमुख, और सर्पजातिका है। शत-पदचक्रानुसार इस नक्षत्रमें नामकरण होनेसे इसके चार पादमें "ओ, व, वी, वु" इन चार अक्षरोंका आदि नाम होगा। (कालिदासकृत रात्रिचन्द्रिका०)

पांच नक्षत्रयुक्त शकटाकार रोहिणी नक्षत्र यदि प्रकाशित हो, तो सिद्धलग्नका ३ दण्ड २८ पल बीत गया है, ऐसा जानना होगा।

इस नक्षत्रमें जन्म होनेसे जात बालक कृतज्ञ, कुलीन, सुन्दरदेह, धनी, मानी और कामुक होता। (कोष्ठी०)

अष्टोत्तरी मतसे इस नक्षत्रमें जन्म होनेसे सूर्यकी दशा तथा विंशोत्तरी मतसे चन्द्रकी दशा होती है। नक्षत्रके परिमाणादि अनुसार भोग्यभुक्तादिका निरूपण किया जा सकता है।

भाद्रमासकी कृष्णाष्टमी अर्थात् जन्माष्टमीके दिन रोहिणी नक्षत्रका योग होनेसे जयन्ती-योग होता है। यह रोहिणी नक्षत्र रात्रिकाल पार कर यदि दूसरे दिन भी रहे, तो जब तक रोहिणी नक्षत्र रहेगा, तब तक उपवास करना होता है। रोहिणी रहने पर पारण नहीं करना चाहिये।

जन्माष्टमी देखो।

१८ गलरोगभेद, गलेका एक रोग। इसके निदान और चिकित्साका विषय भावप्रकाशमें इस प्रकार लिखा है। गलरोग १८ प्रकारका है। उनमेंसे रोहिणीके पांच भेद हैं।

निदान—दूषित वायु, पित्त, कफ और रक्त जब गलेमेंके मांसको दूषित कर कण्ठरोधकारी मांसाङ्कुर उत्पादन करता है, तब उसे रोहिणी रोग कहते हैं। इस रोगमें प्रायः रोगीका जीवन नष्ट होता है।

वातज रोहिणीका लक्षण—वातज रोहिणी रोगमें जीभके चारों ओर अत्यन्त वेदनाविशिष्ट कण्ठरोधकारक मांसाङ्कुर उत्पन्न होता है तथा रोगी स्तम्भत्व आदि वातजनित उपद्रवोंसे पीड़ित रहता है।

पित्तज लक्षण—पित्तजन्य रोहिणी रोगमें मांसाङ्कुर जल्दी निकलता है तथा अत्यन्त दाह और पाकयुक्त होता है। इस रोगीको जोर जोरसे ज्वर आता है।

कफज लक्षण—कफजन्य रोहिणी रोगमें मांसाङ्कुर गुरु, स्थिर और अल्पपाकविशिष्ट होता है, तथा कण्ठ-स्रोत बंद हो जाता है।

सन्निपातज लक्षण—त्रिदोषज रोहिणी रोगमें उक्त तीन दोषोंके सभी लक्षण दिखाई देते हैं तथा मांसाङ्कुर गम्भीरपाकी होता है। ये सब लक्षण दिखाई देनेसे रोगीकी जान पर खतरा है, ऐसा जानना होगा।

रक्तज लक्षण—रक्तजन्य रोहिणी रोगमें जीभके नीचे

लाल होती है। सब मछलियोंमेंसे यह श्रेष्ठ होती है। इसका गुण थोड़ा उष्ण, बलकर, वातनाशक तथा वीर्य-वर्द्धक माना गया है। (राजनि०)

भावप्रकाशके मतसे इसका पर्याय और गुण—रक्तोदर, रक्तमुख, रक्ताक्ष, रक्ताक्षति, कृष्णपक्ष, मत्स्यश्रेष्ठ और रोहित। यह मत्स्य सर्वापेक्षा श्रेष्ठ होता है। गुण—शुक्रवर्द्धक, अर्दितरोगनाशक, कुछ कषाय, मधुररस, वायुनाशक और थोड़ा पित्तकारक। (भावप्र०)

हारीतमें लिखा है, कि यह मछली सेवार खाती तथा स्वप्नरहित होनेसे दीपनीय और लघुपाक होती है।

"शैवालाहारभोजित्वात् स्वप्नस्य च विवर्ज्जनात्।
रोहितो दीपनीयश्च लघुपाको महाबलः॥"
(हारीत ३।११ अ०)

५ राजा हरिश्चन्द्रके पुत्रका नाम। (देवीभाग० ७।२५।१५) ६ एक प्रकारका मृग। ७ रोहितक नामका पेड़। ८ कुसुमका फूल, बर्रेका फूल। ९ रक्तवर्ण, लाल रंग। १० एक नदीका नाम। (जैनहरि० ५४।२) ११ गन्धर्वोंकी एक जाति। (त्रि०) १२ रक्तवर्णविशिष्ट, लाल रंगका।

रोहितक (सं० पु०) रोहित एव स्वार्थे कन्। १ रोहितका पेड़, रोहेड़ा। यह पेड़ सफेद और लाल दो प्रकारका होता है। पर्याय—रोही, प्लीहशत्रु, दाड़िमपुष्पक, रोहीतक, रोहिण, कुशाल्मलि, दाड़िमपुष्प, सदाप्रसून, कूटशाल्मलि, विरोचन, शाल्मलिक। गुण—कटु, स्निग्ध, कषाय, शीतल, कृमि, व्रण, प्लीहा और रक्तनेत्ररोगनाशक। (राजनि०) २ हरिणविशेष। ३ कुसुम्भका पेड़। ४ एक देशका नाम। रोहतक देखो।

रोहितकारण्य (सं० क्ली०) एक स्थानका नाम। (भारत उद्योग०)

रोहितकूट—एक पर्वतका नाम। (जैनहरि० ५।१।१२)

रोहितकूल (सं० क्ली०) जनपदभेद। (पञ्चविंशब्रा० १४।३।१२)

रोहितकूलीय (सं० क्ली०) सामभेद।

रोहितगिरि (सं० पु०) पर्वतभेद।

रोहितपुर (सं० क्ली०) रोहितक नगर। हरिश्चन्द्रके पुत्र रोहिताश्वने यह नगर बसाया। रोहतगढ़ देखो।

रोहितवत् (सं० त्रि०) रक्तवर्णयुक्त, लाल रंगका। (कात्यायन १।४।४)

रोहितवस्तु (सं० क्ली०) एक नगरका नाम। (ललितवि०)

रोहितवाह (सं० पु०) अग्नि।

रोहिता (सं० स्त्री०) रोहित-टाप्। (वर्णादनुदात्तात्तोपधात्तो नः। पा ४।१।३९) इति पाक्षिको ङीप्, तकारस्य नकारादेशश्च न। रागादि द्वारा रक्तवर्ण, क्रोधसे लाल।

रोहिताक्ष (सं० पु०) रक्तचक्षु। रक्तलोचन, लाल आँख।

रोहिताङ्ग—एक देशका नाम। रोहतक देखो।

रोहिताञ्जि (सं० त्रि०) रक्त चिह्नविशिष्ट, लाल चिह्नका।

रोहिताश्व (सं० पु०) रोहितोऽश्वो यस्य। १ अग्नि। २ राजा हरिश्चन्द्रके पुत्रका नाम। ३ एक प्राचीन गढ़का नाम जो शोन नदके किनारे पर था।

रोहितिका (सं० स्त्री०) रोहितो वर्णोऽस्त्यस्या इति रोहित-ठन्, टाप्। रागादि द्वारा रक्तवर्ण, क्रोधसे लाल।

रोहितेय (सं० पु०) रोहित एव स्वार्थे ढ। रोहितवृक्ष, रोहेड़ा।

रोहिदश्व (सं० पु०) अग्नि।

रोहिन् (सं० पु०) अवश्यं रोहतीति रुह आवश्यके णिनि। १ रोहितकवृक्ष, रोहेड़ा। २ अश्वत्थवृक्ष, पीपलका पेड़। वटवृक्ष, बड़का पेड़। रोहू मछली। ५ एक प्रकारका मृग। ६ रोहिष घास।

रोहिलखण्ड—युक्तप्रदेशके छोटे लाटके अधीन एक शासन विभाग। यह अक्षा० २७°३५´ से २९°५८´ उ० तथा देशा० ७८° २´ से ८०° २८´ पू०के मध्य अवस्थित है। भूपरिमाण १२८०० वर्गमील है। बिजनौर, मुरादाबाद, बदाऊँ, बरेली, पिलिभित और शाहजहानपुर जिला इसके अन्तर्भुक्त है। इसके उत्तरमें हिमालय, दक्षिण पश्चिममें गङ्गा और पूरबमें अवधप्रदेश है। यहांकी आबहवा बहुत स्वास्थ्यकर है। ईख और धान प्रधान फसल है। फिर गेहूं, चना, रुई तथा बाजरा आदि भी कम नहीं उपजता।

इस विभागमें १८ प्रधान नगरके सिवा और भी २८ छोटे छोटे नगर तथा ११३८७ ग्राम लगते हैं। जनसंख्या

गान था। यह कन्धारका परित्याग कर कातिहारमें आ कर बस गया था। १७१० ई०में रहमत्‌का जन्म हुआ।

१७४० ई०में रोहिलखण्ड नामक बड़ा देशभाग अली महम्मदके अधिकारभुक्त हुआ तथा सम्राट् उसीको यहांका शासनकर्त्ता माननेको बाध्य हुए। ५ वर्ष राज्यशासन करनेके बाद १७४५ ई०में अयोध्याके सूबेदार सफदरजङ्गके साथ उसका युद्ध हुआ। इस समय सम्राट् महम्मदने वजीरका पक्ष लिया था, इस कारण अलीमहम्मद उसकी वश्यता स्वीकार करनेको बाध्य हुआ। यह नजरबंदीकी तौर पर दिल्लीमें रखे जाने पर भी उसके अधीनस्थ दुर्द्धर्ष अफगानोंने अत्याचार और उपद्रव करना शुरू कर दिया। सम्राट्‌ने अलीको सरहिन्दका शासनकर्त्ता बना कर अफगानोंके हाथसे छुटकारा पाया।

१७४८ ई०में अबदालीके भारत-आक्रमणकी तैयारी देख कर अली महम्मदने फिरसे रोहिलखण्ड हस्तगत कर लिया तथा बड़ी होशियारीसे वह राज्यशासन चलाने लगा। शासनविशृङ्खलाको सुदृढ़ करनेके कुछ समय बाद ही १७४९ ई०में उसका देहान्त हुआ। उस समय उसका बड़ा और मझला लड़का कमदुल्ला और अबदुल्ला खां अबदालीके साथ कन्धारमें था। इस कारण बाकी चार नाबालिग लड़कोंके हाथ राज्यभार न सौंप कर अलीने अपने चचा रहमत् खांको 'हाफिज' अर्थात् राज्यका प्रधान अभिभावक और रहमत्‌के ज्ञातिभ्राता दुण्डी खांको सेनापति बनाया।

अली महम्मदकी मृत्युके बाद उसके विख्यात सेनापति और बिजनौरके जागीरदार नाजिर खांके दुण्डी खांकी कन्यासे विवाह किया और नाजिब उद्दौला नाम धारण कर बिजनौरमें स्वतन्त्र राजपाट बसाया। मध्य अन्तर्वेदमें बङ्गसवंशीय अफगान कायमजङ्गने फर्रुखाबादमें अपना प्रभाव फैला कर अफगान-शासनका विस्तार किया था। इस समय वजीर सफदरजङ्गने उनका दर्प चूर करनेकी इच्छासे पहले सेनापति कुतुबउद्दीनको भेजा। दुण्डी खां परिचालित रोहिलाके हाथसे कुतुब मारा गया। पीछे सफदरने कायम-जङ्गकी सहायतासे १७५० ई०में रोहिलखण्ड पर आक्रमण कर दिया। बदाऊंकी लड़ाईमें हाफिज रहमत और दुण्डी खांके हाथसे कायम-जङ्ग यमपुर सिधारा। अब सफदरने रोहिलखण्ड पर आक्रमण न कर कायमके पुत्र अहमद खां पर फर्रुखाबादमें चढ़ाई कर दी। इस युद्धमें विशेषरूपसे अपमानित, लाञ्छित और पराजित हो सफदर प्राण ले कर भागा। पीछे अफगानोंने इलाहाबाद तक लूटा।

इस अपमानसे क्रुद्ध हो सफदर महाराष्ट्र सेनापति मलहार राव होलकर और जयाप्पा सिन्देकी सहायतासे पुनः रणक्षेत्रमें उतरा। अहमद खां रहमत् और दुण्डी खांसे सहायता पा कर युद्धकी तैयारी करने लगा। १७५१ ई०में महाराष्ट्र सेनाने रोहिलखण्डमें घुस कर अहमद खांको परास्त किया। इस प्रकार अहमद खां फिरसे फर्रुखाबादके सिंहासन पर बैठा।

इस समय फयजुल्ला खां, अबदुल्ला खां, हाफिज रहमत और दुण्डी खांके बीच राज्यविभाग ले कर झगड़ा खड़ा हुआ। आखिर चारोंने ही मिल कर अलीकी सम्पत्ति आपसमें बांट ली। १७५४ ई०में मन्त्री गाजीउद्दीन द्वारा सम्राट् अहमदशाहकी राज्यच्युति तथा सफदरजङ्गकी मृत्यु और सुजा उद्दौलाकी अयोध्या-मसनद प्राप्तिसे रोहिला जातिका भाग्यसूर्य धीरे धीरे अन्धकारसे ढक गया। १७५६ ई०में अबदालीने ३री बार भारतवर्ष पर चढ़ाई कर दी। इस बार उसने पूर्वकथित नाजिब उद्दौलाको सेनापति और प्रधान मन्त्री बनाया। गाजी उद्दीनको यह अवनति अच्छी न लगी। वह मराठोंकी सहायतासे उसका सर्वनाश करने तुल गया। १७५८ ई०में मराठासेनाने नाजिब उद्दौलाको रोहिलखण्ड मार भगाया। इससे भी संतुष्ट न हो कर आखिर उन्होंने १७५९ ई०में नाजिबको तख्त परसे उतार दिया। हाफिज रहमत तथा अन्यान्य रोहिला-सरदारोंने मराठोंकी गति रोकनेमें असमर्थ हो सुजा उद्दौलाकी सहायता मांगी। उसी सालके नवम्बर मासमें मिलित सेनादलसे हार खा कर महाराष्ट्रीय दल चम्पत हुआ।

महाराष्ट्रीय-सेनाके भागनेके और भी कई कारण थे। १७५९ ई०के सितम्बरके महीनेमें अबदालीने ५वीं बार भारतवर्ष पर आक्रमण करनेके लिये पञ्जाबमें पदार्पण किया। पञ्जाब उस समय मराठोंके

हाफिज रहमत्‌के साथ महाराष्ट्रदलका सन्धि-प्रस्ताव चलता देख हेष्टिंसको बहुत फिक्र हुई। उन्होंने अयोध्याके वजीरका पक्ष लेने और अङ्गरेजोंका स्वार्थ साधनेके लिये सेनापति सर राबर्ट चेकारके अधीन एक दल अङ्गरेजी सेना भेजी। मराठोंको रोहिलखण्डसे भगाना ही उनका मुख्य उद्देश था। सेनाध्यक्ष चेकारने सुजा उद्दौलाके साथ शर्त करके दो दल अङ्गरेज, छः दल सिपाही और एक दल कामानवाही सेना ले कर १७७३ ई०के मार्च मासमें अयोध्यासे रोहिलखण्डकी यात्रा कर दी। अयोध्याकी सेना और अङ्गरेजी-सेना रोहिलोंको मदद देगी, इस आशय पर सुजा-उद्दौलाने हाफिज रहमत्‌को पत्र लिखा तथा मराठोंके विरुद्ध युद्धघोषणा करनेका संकल्प किया। इस प्रस्ताव पर हाफिज रहमत् सहमत न हुए। सेनापति चेकारने जब देखा, कि हाफिजने जाबिता खां और महाराष्ट्रका पक्ष लिया, तब वह दल-बलके साथ रामघाटकी ओर अग्रसर हुआ। वहां नदीके दूसरे किनारे महाराष्ट्रगण ससैन्य रहते थे। हाफिज रहमत् शठतापूर्वक आज तक महाराष्ट्र वा सुजाके दलमें शामिल न हुआ था। महाराष्ट्र-सेनापतिने समय न खो कर बलपूर्वक उसे वशीभूत करनेकी चेष्टा की। उन्होंने नदी पार कर हाफिज रहमत्‌के शिविरके सामने रोहिला-दुर्ग पर आक्रमण कर दिया, किन्तु वे अङ्गरेजोंके साथ युद्ध करनेके लिये तैयार न हुए।

इधर २१वीं मार्चको हाफिज रहमत् कोई उपाय न देख सुजाके प्रस्तावको मान कर उसके दलमें मिल गया। इससे मराठोंको पीछे हटना पड़ा। कई बार आक्रमणका भय दिखा कर उन लोगोंने सुजा और अङ्गरेजोंको उत्कण्ठित किया था। आखिर मई मासमें दाक्षिणात्यमें महाराष्ट्र-सरदारोंके बीच मनोमालिन्य हो जानेसे उन्होंने बाध्य हो कर उत्तर भारतवर्षको छोड़ दिया। इससे वजीर और अङ्गरेजोंके सितारे चमक उठे। महाराष्ट्र शक्तिका बिलकुल लोप हो गया। इस भीषण विवादसे महाराष्ट्रीय सरदार तितर-बितर हो गये। उन लोगोंने जो लाखसे अधिक अश्वारोही-सेना और १० करोड़ तङ्का वसूल किया था उसीको आपसमें बांट कर महाराष्ट्र-सरदार चुप हो बैठे। इसी समयसे महाराष्ट्र-शक्तिका अवसान हुआ।

इस युद्धमें वजीरका खजाना खाली हो जानेके कारण उसने मराठोंसे अपना प्राप्य मांगा। हाफिज रहमत् देनेको राजी न हुआ, इससे उसके विरुद्ध युद्ध ठान देनेका हुकुम हुआ। किन्तु सुजाने युद्ध करके राजकोष खाली करना न चाहा। इस पर हेष्टिंसने वाराणसीकी सन्धिके अनुसार उसे ५० लाख रुपये दे कर इलाहाबाद और कोरा खरीद लिया। इसके बाद रोहिलोंको मार भगानेकी कोशिश होने लगी। वजीरने इसमें अपनी सम्मति दी सही, पर सेना एक भी न भेजी।

१७७४ ई०में सुजाने मराठोंको दोआबसे भगा कर जाबिता खां तथा अन्यान्य सरदारोंसे मेल कर लिया। किन्तु शीघ्र ही उसका मन बदल गया। उसने रोहिल्लाओंका दमन करनेके अभिप्रायसे पुनः हेष्टिंसकी सहायता प्रार्थना की। सेनापति चेकार उसकी मददमें भेजे गये। बातकी बातमें अंगरेजी-सेना अयोध्या-प्रान्तमें आ धमकी। कर्नल चम्पियनके निकट संधिका प्रस्ताव भेज कर भी हाफिज रहमत् प्राप्य रुपये देनेको राजी न हुआ। अब युद्ध अवश्यम्भावी हो उठा। उसी वर्षकी २३वीं अप्रिलको शाहजहानपुर जिलेके मीरन-कटरामें युद्ध छिड़ा। रणक्षेत्रमें हाफिज रहमत्‌के साथ करीब दो हजार रोहिल्लोंने प्राण विसर्जन किये। इसके बाद फयजुल्ला खांने रोहिलोंका नेतृत्व ग्रहण किया सही, पर वह युद्धमें असमर्थ हो रामपुर, तराई और पीछे गढ़वालके पर्वतसानुदेशमें भाग गया और वहींसे सन्धिका प्रस्ताव लिख भेजा। जुनमासमें अंगरेज और वजीर सेनाको पर्वत सीमान्त पर उपस्थित देख डरके मारे उसने सन्धिकी शर्तें मंजूर कर ली।

अंगरेजी सेना और वजीरके वहांसे चले जाने पर फयजुल्ला पांच हजार रोहिल्ला ले कर रामपुर आया और राज्यशासन करने लगा। बाकी रोहिला-सेना सरदारके साथ रोहिलखण्डका परित्याग कर जाबिता खांके इलाकेमें रहने लगी। इस युद्धमें रोहिला जातिके ऊपर जो अत्याचार किया गया था वह महामति वार्कने १७८८ ई० ४थी अप्रिलको वक्तृतामें तथा लार्ड मेकलेके विवरणमें साफ साफ लिखा है।

रोहिष (सं० क्ली०) कत्तृणनामक घास। इसकी जड़ सुगन्धित होती है।

पीपल मूल, चई, चीतामूल, सोंठ, दारचीनी, इलायची, तेजपत्र, हरीतकी, बहेड़ा और आंवला प्रत्येक १ पलके अंदाज चूर्ण कर ऊपरसे डाल देना होगा। पीछे उसे एक बरतनमें रख कर उसका मुंह अच्छी तरह बंद कर दे और एक मास तक उसी अवस्थामें छोड़ दे बाद एक मासके उसे आलोड़न कर छान ले। यह अरिष्ट दिनके समय २ या ३ बार करके छटांक भर सेवन करना होगा। इसके सेवनसे प्लीहा, गुल्म, उदरी आदि रोग प्रशमित होते हैं।

(भैषज्यरत्ना० प्लीहायकृदधि०)

रोहुन (हिं० पु०) रोहन नामका पेड़।

रोहू (हिं० स्त्री०) १ एक प्रकारकी बड़ी मछली। इसका मांस अति स्वादिष्ट होता है। इसके सिरेको लोग अत्यन्त स्वादिष्ठ बनाते हैं। इसके ऊपर सेहरा होता है। २ एक वृक्ष जो पूर्व हिमालयमें विशेषतः दार्जिलिङ्गमें होता है।

रौंद (हिं० स्त्री०) १ रौंदनेका भाव या क्रिया। २ चक्कर गश्त।

रौंदन (हिं० स्त्री०) रौंदनेकी क्रिया या भाव, मर्दन।

रौंदना (हिं० क्रि०) १ पैरोंसे कुचलना, मर्दित करना। २ लातोंसे मारना, खूब पीटना।

रौंसा (हिं० पु०) १ केवांच। २ केवांचके बीज। ३ लोबिया, बोड़ा। ४ लोबियाके बीज।

रौ (फा० स्त्री०) १ गति, चाल। २ पानीका बहाव, तोड़। ३ चाल, ढंग। ४ किसी बातकी धुन, किसी कामके करनेकी झोंक। ५ वेग, झोंक।

रौ (हिं० पु०) एक प्रकारका पेड़।

रौक्म (सं० त्रि) रुक्म-अण्। १ रुक्म सम्बन्धी। २ सुवर्णनिर्मित, सोनेका बना हुआ।

रौक्मिणेय (सं० पु०) १ रुक्मिणीके गर्भसे उत्पन्न। २ प्रद्युम्न।

रौक्षक (सं० पु०) रुक्षके गोत्रमें उत्पन्न एक ऋषिका नाम।

रौक्ष्य (सं० स्त्री) रुक्षस्य भावः रुक्ष-ष्यञ्। रुक्षता, रूखापन।

रौगन (अ० पु०) १ तेल। २ लाख आदिका बना हुआ पक्का रंग जो चीजों पर चमक आदि लानेके लिये चढ़ाया जाता है।

रौगनी (अ० वि०) १ तेलका। २ रोगन फेरा हुआ, जिस पर लाख आदिका पक्का रंग चढ़ाया हो।

रौचनिक (सं० त्रि०) १ गोरोचन या रोली सम्बन्धी, गोरोचन या रोलीसे रंगा हुआ। (स्त्री०) २ दांतकी जड़का चमड़ेके समान कठिन मैल।

रौच्य (सं० पु०) रुचेरपत्यमिति रुचि ष्यण्। १ बिल्व-दण्ड धारण करनेवाला संन्यासी, रौच्य मनु। रुचि प्रजापतिके पुत्रका नाम रौच्य था। (मत्स्यपु० ९ अ०)

रौच्य तेरहवें मनु थे। इस मन्वन्तरमें सुधर्मा आदि देवता, इन्द्र दिवस्पति तथा धृतिमान्, अव्यय, तत्त्वदर्शी, निरुत्सुक, निर्मोह, सुतपा, तिग्मशर्म, चित्रसेन, विचित्र नयरुत्, निर्भय, दृढ़, सुनेत्र, क्षत्रबुद्धि और सुव्रत ये सब मनुके पुत्र हैं। (मार्कण्डेयपु०)

२ बिल्वकाष्ठदण्ड, बेलकी लकड़ीका डंडा। ३ मन्व-न्तरविशेष। (मार्कण्डेयपु० १००।३६)

रौज़न (फा० पु०) १ छिद्र, सुराख। २ गवाक्ष, मोखा। ३ दरार, दरज।

रौज़ा (अ० पु०) १ बाग, बगीचा। २ बड़े पीर, बाद-शाह या सरदार आदिकी कब्रके ऊपर बनी हुई इमारत।

रौढ़ीय (सं० पु०) एक व्याकरण-सम्प्रदायका नाम।

रौताइन (हिं० स्त्री०) १ राव या रावतकी स्त्री, ठकुरा-इन। २ स्त्रियोंके लिये आदर सूचक सम्बोधन।

रौताई (हिं० स्त्री०) १ राव या रावत होनेका भाव। २ राव या रावतका पद, ठकुराई, सरदारी।

रौद्र (सं० स्त्री०) रुद्रस्येदं वा रुद्रो देवता यस्य रुद्र-अण्। १ शृङ्गारादि रसके अन्तर्गत रसविशेष। इसका पर्याय उग्र है। यह रस क्रोधका आश्रय है। इस रस-का विषय साहित्यदर्पणमें इस प्रकार लिखा है,—इस रसका स्थायिभाव क्रोध है, वर्ण लाल है, अधिष्ठात्री देवता रुद्र हैं, शत्रु इसका आलम्बन है, यह शत्रुओंकी चेष्टा है तथा उद्दीपन, मुष्टिप्रहार, पतन, 'विकृतच्छेद', अवधारण, संग्राम और सम्भ्रमादि द्वारा उद्दीप्त होता है। भ्रूविक्षेप, ओष्ठनिर्दंश, बाहुस्फोटन, तर्जन, आत्मावदान-कथन ये सब इसके अनुभाव हैं, आक्षेप, क्रूरसन्दर्शनादि उग्रता, वेग, रोमाञ्च, स्वेद, वेपथु, मत्तता, मोह और अमर्षादि इसका व्यभिचारिभाव है। (सा०द० ३।२३१)

रौधादिक (सं० त्रि०) रुधादिगण सम्बन्धीय।

रौधिर (सं० त्रि०) रुधिर-अण्। रुधिरसम्बन्धीय।

रौनक (अ० स्त्री०) १ वर्ण और आकृति, रूप। २ प्रफुल्लता, विकाश। ३ शोभा, छटा, चहल-पहल। ४ दीप्ति, चमक-दमक।

रौप्य (सं० क्ली०) रूप्यमेव अण्। रूप्य, चांदी। यह एक खनिज पदार्थ है तथा अष्टधातुओंमें गिना जाता है। इस धातुसे नाना प्रकारके अलङ्कार और औषधादि बनते हैं। स्नायविक दुर्बलताजनित रोगमें आयुर्वेद मतसे स्वर्ण या लौहके योगसे रौप्यघटित औषध प्रयोगकी विधि है। डाक्टर वमार्सान उस औषधकी उपकारिताके सम्बन्धमें प्रशंसा कर गये हैं।

धन प्राचत्र यथा प्रतीच्य जगत्में बहुत पहलेसे रौप्यका आदर और व्यवहार चला आता है। वैदिक ब्राह्मणादि युगमें भी ऋषिगण सोने और चांदीका व्यवहार जानते थे। पुराणादि और मन्वादि स्मृतिमें चांदीका उल्लेख देखनेमें आता है। स्मृतिकारोंने ब्राह्मणके पक्षमें शूद्रसे रौप्यदान ग्रहणकी व्यवस्था दी है। इस दानसे वे पतित नहीं हो सकते। ये सब रत्न उस समय ब्राह्मणगण देवसेवाके लिये निर्दिष्ट रखते थे।

विशेष विवरण चांदी शब्दमें देखो।

रौप्यगिरि—प्राचीन विदेह राज्यके अन्तर्गत एक शैल।

रौप्यमय (सं० त्रि०) रौप्य-स्वरूपे मयट्। रौप्यस्वरूप, चांदीका।

रौप्यमुद्रा (सं० स्त्री०) रौप्यधातुसे प्रस्तुत राजचिह्नाङ्कित रौप्यचक्र या चतुष्कोण खण्ड, चांदीका सिक्का, रुपया (Silver Coinage)। अंगरेजोंके शासनकालमें आज कल जिस प्रकार रौप्यमुद्रा या रुपया (१६ आना या ६४ पैसेके बराबर) प्रचलित है, मुसलमानोंके जमानेमें भी उस प्रकार सिक्का प्रचलित था, लेकिन उसका परिमाण आज कलके समान न था। प्राचीन हिन्दूराजाओंके समय नाना प्रकारकी स्वर्ण और रौप्यमुद्रा प्रचलित थी। भारतवर्षमें विभिन्न राजाओंके अधिकारमें छेनीसे कटी हुई या सांचेमें ढलाई जो सब मुद्रा प्रचलित हुई थी उनमें कुछ न कुछ खाद अवश्य मिली रहती थी। १८६८ ई०में सर्जन मेजर सेकल्टन (Surgeon major Sheklton) एक पत्रिकामें १०२ प्रकारकी स्वर्ण मुहर, ३२ प्रकार हुण या पगोडा, १ प्रकार अर्द्धपगोडा, २४ प्रकार सोनेका फानम (परिमाण २'६से ५'६ ग्रेन) और २१ प्रकार वैदेशिक स्वर्णमुद्रा तथा रौप्यके मध्य ४५६ प्रकारके रुपये, २३ प्रकारकी अठन्नी, ६ प्रकारके फानम और १ दमड़ी सिक्केकी खादका पार्थक्य निर्देश कर गये हैं।

अबुल फजलकी लेखनीसे मालूम होता है, कि १५४२ ई०में हुमायूं से दिल्लीका सिंहासन छीन कर शेरशाहने पहले पहल अपने नाम पर सिक्का चलाया था। उस शेरशाही मुद्राकी एक पीठ पर इस्लाम-धर्मका निशाना और दूसरी पीठ पर पारसी भाषामें शेरशाहका नाम लिखा था। उसके पहले भारतवर्षमें अरबदेशीय चांदीका दरहाम, स्वर्ण, दिनार और तांबेका फुलस प्रचलित था। पठान और मुगल आधिपत्य विस्तारके साथ साथ ये सब मुद्रायें भी इस देशमें लाई गई। प्राचीन हिन्दू और शक-राजाओंकी नामाङ्कित मुद्रा उसी दिनसे एक तरह लोप-सी हो गई थी।

विशेष विवरण मुद्रातत्त्व शब्दमें देखो।

सम्राट् अकबरने शेरशाही सिक्केका संस्कार कर चौकोन रौप्यजलाली सिक्का चलाया। उसका वजन ११।० माशा था। उसे 'चारयारी' सिक्का भी कहते थे। क्योंकि, इसके चार कोनेमें महम्मद, आबूबकर, ओमर और ओसमानका नाम तथा किनारेमें अलीका नाम खुदा था। उस समय भारतके भिन्न भिन्न स्थानमें भिन्न भिन्न तरहका माशे भरका सिक्का प्रचलित रहनेसे मुद्राविशेषका वजन ठीक करना बड़ी ही असुविधा थी। अध्यापक ब्लोखमनने अकबरशाहके राज्यकालकी कुछ परिष्कार स्वर्ण और रौप्यमुद्राका वजन ठीक कर उसका औसत १७५·५ ग्रेन स्थिर किया। अर्थात् एक एक विशुद्ध रौप्यमुद्रा १७४·४ ग्रेनकी अकबरशाह द्वारा चलाई गई थी। जहांगीर, शाहजहां और औरङ्गजेबके समय जो सब मुद्रा चलाई गई है उनका वजन भी १७५ ग्रेन था। महम्मद शाहके जमानेमें सूरत, दिल्ली, अहमदाबाद और बङ्गालमें उतने ही वजनकी मुद्रा ढाली गई थी। अतएव मुगल जमानेकी अकबरी, जहांगिरी, शाहजहानी, आलमगिरी,

रौद्ररसके साथ हास्य, शृङ्गार और भयानक रसके साथ विरोध है। (साहित्यद० ३।२४४)

(पु०) रुद्रस्यायमिति रुद्र-अण्। २ रुद्रगण, भूत, घम। पर्याय—घर्म, प्रकाश, दीप्त, आतप। इसका गुण—कटु, रुक्ष, स्वेद मूर्च्छा और तृष्णानाशक, दाह और वैवर्ण्यजनक तथा बहुरोगवर्द्धक।

ज्योतिषमें रौद्रके ७ नाम देखनेमें आते हैं, जैसे—नन्दन, पिङ्गल, रौद्र, धौराक्ष, कालयुक्तिक, अग्निनामा और दुन्दुभि।

प्रतिवर्ष एक एक रौद्र अधिपति होता है। जिस प्रकार राजा, मन्त्री आदि प्रतिवर्ष एक एक होता है उसी प्रकार इन सात रौद्रोंमेंसे एक एक हुआ करता है। किस वर्षमें कौन रौद्र अधिपति होगा, गणना द्वारा उसका स्थिर करना होता है।

"नन्दनः पिङ्गलो रौद्रो धौराक्षः कालयुक्तिकः।
अग्निनामा द्वन्द्वो रौद्रः एते रौद्राः प्रकीर्तिताः॥"
(ज्योतिष)

किसी किसी ग्रन्थमें 'द्वन्द्व' इस नामकी जगह 'प्रमादाद' नाम लिखा है।

इन रौद्रोंका फल इस प्रकार लिखा है,—जिस वर्ष पिङ्गल रौद्र होता है उस वर्षमें प्रजाक्षय, अनेक रोगों और सब जीवोंकी उत्पत्ति होती है। नन्दन रौद्र होनेसे प्राणादि विनाश और मानवों गरुड़ नामका कीट, अग्नि नामक रौद्र होनेसे उत्पात द्वारा पृथ्वी शून्य तथा, जीवोंको नाना प्रकारका रोग, रौद्र नामक रौद्रमें निरोद्रेग नाना रोग और शस्यादि पीड़ा, धौर नामक रौद्रमें अतिशय उत्पात तथा बहुविध रोग, काल नामक रौद्रमें प्रजाओंमें शान्ति और तृष्णा तथा शस्यादि नाना प्रकारका रोग होता है। (ज्योतिस्तत्त्व)

३ दैवतग्रहु। ४ यम। ५ कार्त्तिकेय। ६ बृहस्पतिके ६० संवत्सरोंमेंसे ५४वां वर्ष। ७ वैकुण्ठेद। ८ अश्लेषानक्षत्र। इस नक्षत्रमें रौद्र शब्द बहुवचनान्त है। ९ आर्द्रानक्षत्र। १० मात्रा भक्षण। इसका अधिष्ठात्री देवता रुद्र है। इस कारण नक्षत्रका रौद्र नाम हुआ है। ११ मालभेद। १२ विङ्गभेद। (त्रि०) रुद्र अण्। १३ तीव्र, तेज। १४ भीषण, भयानक। १५ रुद्रसम्बन्धी। १६ रुद्रका उपासक।

रौद्रक (सं० क्लो०) रुद्रस्य इदं रुद्र-(कुलालादिभ्यो वुञ्। पा ४।३।११८) इति वुञ्। रुद्र द्वारा किया हुआ।

रौद्रकर्मन् (सं० त्रि०) रौद्रं कर्म यस्य। १ भीषण कर्मा, भयंकर काम करनेवाला। (क्ली०) २ भीषण कर्म, भयंकर काम।

रौद्रकेतु (सं० पु०) आकाशके पूर्व-दक्षिण भागमें स्थित शमशानके समान वर्णित या रुपहली, धूम या क्षत्र आकारकी किरणोंसे युक्त और आकाशके तीन भाग तकमें गमन करनेवाला एक केतु।

रौद्रगण (सं० पु०) फलितज्योतिषके अनुसार एक गणका नाम। इस गणमें जन्म लेनेसे मनुष्य रुद्रभक्त पापिष्ठ होता है। (कोष्ठप्रदीप)

रौद्रता (सं० स्त्री०, रौद्रस्य भावः तल्-टाप्। १ रौद्रत्व, भयङ्करता, उग्रस्वभाव। २ प्रचण्डता, प्रबलता।

रौद्रदर्शन (सं० त्रि०) रौद्रं दर्शनं यस्य। भीषण आकृति और चेहरावाला, भयंकर रूपका।

रौद्रपाली— जैनसम्प्रदायभेद। (हस्तिपा० १।७८)

रौद्रपाद (सं० क्लो०) रौद्रस्य नक्षत्रविशेषस्य पादः। आर्द्रा नक्षत्रका पादभेद।

रौद्रमनस् (सं० त्रि०) रौद्रं मनो यस्य। भयानक मनोयुक्त निष्ठुर चित्तवाला, क्रूर।

रौद्ररस (सं० त्रि०) रुद्र और अग्निसम्बन्धीय।

रौद्राश्व (सं० पु०) रुद्रके शोणीसे उत्पन्न पुत्र।

रौद्रार्क (सं० पु०) २३ मात्राओंके छन्दोंकी संज्ञा जो कुल मिला कर ४६३६८ हो सकते हैं।

रौद्राश्व (सं० पु०) पुरुपुत्र और उसके वंशके एक राजा।

रौद्रि (सं० पु०) रुद्रके गोत्रमें उत्पन्न पुत्र।

रौद्री (सं० स्त्री०) रौद्र-ङीप्। १ रुद्रकी पत्नी, पार्वती। महामाया चामुण्डारूपिणीने रुद्र नामक महादैत्यका संहार किया था, इसलिये ये महारौद्री नामसे प्रसिद्ध हुई थीं। (वाराहपु० त्रिशक्तिमा०)

२ गान्धारस्वरकी दो श्रुतियोंमेंसे पहली श्रुति।

रौद्रोदाय (सं० पु०) रुद्रका भक्त।

रौप (सं० पु०) रौप्यनामकं रौप (विदादिभ्योऽञ्। पा ४।१।१०४) इति अञ्। रौप्यका अपत्य।

रौधादिक (सं० त्रि०) रुधादिगण सम्बन्धीय।

रौधिर (सं० त्रि०) रुधिर-अण्। रुधिरसम्बन्धीय।

रौनक (अ० स्त्री०) १ वर्ण और आकृति, रूप। २ प्रफुल्लता, विकाश। ३ शोभा, छटा, चहल-पहल। ४ दीप्ति, चमक-दमक।

रौप्य (सं० क्ली०) रूप्यमेव अण्। रूप्य, चांदी। यह एक खनिज पदार्थ है तथा अष्टधातुओंमें गिना जाता है। इस धातुसे नाना प्रकारके अलङ्कार और औषधादि बनते हैं। स्नायविक दुर्बलताजनित रोगमें आयुर्वेद मतसे स्वर्ण या लौहके योगसे रौप्यघटित औषध प्रयोगकी विधि है। डाक्टर दमाईन उक्त औषधकी उपकारिताके सम्बन्धमें प्रशंसा कर गये हैं।

यहां प्राच्य तथा प्रतीच्य जगत्में बहुत पहलेसे रौप्यका आदर और व्यवहार चला आता है। वैदिक ब्राह्मणादि युगमें भी ऋषिगण सोने और चांदीका व्यवहार जानते थे। पुराणादि और मन्वादि स्मृतिमें चांदीका उल्लेख देखनेमें आता है। स्मृतिकारोंने ब्राह्मणके पक्षमें शूद्रसे रौप्यदान ग्रहणकी व्यवस्था दी है। इस दानसे वे पतित नहीं हो सकते। वे सब रत्न उस समय ब्राह्मणगण देवसेवाके लिये निर्दिष्ट रखते थे।

विशेष विवरण चांदी शब्दमें देखो।

रौप्यगिरि—प्राचीन विदेह राज्यके अन्तर्गत एक शैल।

रौप्यमय (सं० त्रि०) रौप्य-स्वरूपे मयट्। रौप्यस्वरूप, चांदीका।

रौप्यमुद्रा (सं० स्त्री०) रौप्यधातुसे प्रस्तुत राजचिह्नाङ्कित रौप्यचक्र या चतुष्कोण खएड, चांदीका सिक्का, रुपया (Silver Coinage)। अंगरेजोंके शासनकालमें आज कल जिस प्रकार रौप्यमुद्रा या रुपया (१६ आना या ६४ पैसेके बराबर) प्रचलित है, मुसलमानोंके जमानेमें भी उस प्रकार सिक्का प्रचलित था, लेकिन उसका परिमाण आज कलके समान न था। प्राचीन हिन्दूराजाओंके समय नाना प्रकारकी स्वर्ण और रौप्यमुद्रा प्रचलित थी। भारतवर्षमें विभिन्न राजाओंके अधिकारमें छेनीसे कटी हुई या सांचेमें ढलाई जो सब मुद्रा प्रचलित हुई थी उनमें कुछ न कुछ चारु अक्षर लिखा रहता थी। १८६८ ई०में सर्जन मेजर सेकल्टन (Surgeon major Sheklton) एक पत्रिकामें १०२ प्रकारकी स्वर्णमुद्रा, ३२ प्रकार हूण या पगोडा, १ प्रकार अर्द्धपगोडा, २४ प्रकार सोनेका फानम (परिमाण २'६से ५'६ ग्रेन) और २१ प्रकार वैदेशिक स्वर्णमुद्रा तथा रौप्यके मध्य ४५६ प्रकारके रुपये, २३ प्रकारकी अठन्नी, ६ प्रकारके फानम और १ दमड़ी सिक्केको खादका पार्थक्य निर्देश कर गये हैं।

अबुल फजलकी लेखनीसे मालूम होता है, कि १५४२ ई०में हुमायूं से दिल्लीका सिंहासन छीन कर शेरशाहने पहले पहल अपने नाम पर सिक्का चलाया था। उस शेरशाही मुद्राकी एक पीठ पर इस्लाम-धर्मका निशाना और दूसरी पीठ पर पारसी भाषामें शेरशाहका नाम लिखा था। उसके पहले भारतवर्षमें अरबदेशीय चांदीका दरहाम, स्वर्ण, दिनार और तांबेका फुलस प्रचलित था। पठान और मुगल आधिपत्य विस्तारके साथ साथ ये सब मुद्रायें भी इस देशमें लाई गईं। प्राचीन हिन्दू और शक-राजाओंकी नामाङ्कित मुद्रा उसी दिनसे दिन एक तरह लोप-सी हो गई थी।

विशेष विवरण मुद्रातत्त्व शब्दमें देखो।

सम्राट् अकबरने शेरशाही सिक्केका संस्कार कर चौकोन रौप्यधातुकी सिक्का चलाया। उसका वजन ११।० माशा था। उसे 'चारयारी' सिक्का भी कहते थे। क्योंकि, इसके चार कोनेमें महम्मद, आबुबकर, ओमर और ओसमानका नाम तथा किनारेमें अलीका नाम खुदा था। उस समय भारतके भिन्न भिन्न स्थानमें भिन्न भिन्न तरहका खाद भरका सिक्का प्रचलित रहनेसे मुद्राविशेषका वजन ठीक करना बड़ी ही असुविधा थी। अध्यापक ब्लौकमैनने अकबरशाहके राज्यकालकी कुछ परिष्कार स्वर्ण और रौप्यमुद्राका वजन ले कर उसका औसत १५५·१ ग्रेन स्थिर किया। अर्थात् एक एक विशुद्ध रौप्यमुद्रा १७४४ ग्रेनकी अकबरशाह द्वारा चलाई गई थी। जहांगीर, शाहजहां और औरङ्गजेबके समय जो सब मुद्रा चलाई गई हैं उनका वजन भी १७५ ग्रेन था। महम्मद शाहके जमानेमें सूरत, दिल्ली, अहमदाबाद और बङ्गालमें उतने ही वजनकी मुद्रा ढाली गई थी। इसपर मुगल जमानेकी अकबरी, जहांगीरी, शाहजहांनी, आलमगिरी,

रौद्ररसमें भय हास्य, अद्भुत और भयानक रसोंके साथ विरोध है। (साहित्यद० ३ परि०)

(पु०) रुद्रस्यायमिति रुद्र-अण्। २ रुद्रोष्ण, धूप, घाम। पर्याय—घर्म्म, प्रकाश, तीव्र, आतप। इसका गुण—कटु, रुक्ष, स्वेद मूर्च्छा और तृष्णाजनक, दाह और वैवर्ण्यजनक तथा वायुरोगवर्द्धक।

ज्योतिषमें रौद्रके ७ नाम देखनेमें आते हैं, जैसे—ज्वर, विद्रुम, रौद्र, घोराख्य, कालदंशिन, अग्निनामा और हर।

प्रतिवर्ष एक एक रौद्र अधिपति होता है। जिस प्रकार राजा, मन्त्री आदि प्रतिवर्ष एक एक होता है उसी प्रकार इन सात रौद्रोंमेंसे एक एक हुआ करता है। किस वर्षमें कौन रौद्र अधिपति होगा, गणना द्वारा उसका स्थिर करना होता है।

"ज्वरः विद्रुमो रौद्रो घोराख्यः कालदंशिनः।
अग्निनामा हरो रौद्रः सप्त रौद्राः प्रकीर्त्तिताः॥"

(ज्योतिष)

किसी किसी ग्रन्थमें 'हर' इस नामकी जगह 'प्राणहार' नाम लिखा है।

इस रौद्रका फल इस प्रकार लिखा है,—जिस वर्ष विद्रुम रौद्र होता है उस वर्षमें महामारी, अनेक रोगों और सब जंतुओंकी उत्पत्ति होती है। ज्वर रौद्र होनेसे प्राणादि विनाश और नाना प्रकार तापका क्लेश, अग्नि नामक रौद्र होनेसे उत्पात द्वारा पृथ्वी शून्य तथा, जीवोंको नाना प्रकारका रोग, रौद्र नामक रौद्रमें विस्फोटक नाना रोग और मस्तादि पीड़ा, घोर नामक रौद्रमें अतिशय उत्पात तथा बहुविध रोग, काल नामक रौद्रमें उत्पातसे सभी जीव पीड़ित तथा मस्तादि नाना प्रकारका रोग होता है। (ज्योतिष)

३ दीप्तरस धातु। ४ यम। ५ कार्त्तिकेय। ६ बृहस्पति-के ६० संवत्सरोंमेंसे ५४वाँ वर्ष। ७ भैरवभेद। ८ अप-देवताभेद। इस अर्थमें रौद्र शब्द बहुवचनान्त है। ९ ज्योतिर्विशेष। १० आर्द्रा नक्षत्र। इसका अधिष्ठात्री देवता रुद्र है। इस कारण आर्द्राका रौद्र नाम हुआ है। ११ [illegible]। १२ विष्णुभेद। (त्रि०) रुद्र-अण्। १३ तीव्र, तेज। १४ भीषण, भयानक। १५ रुद्र-सम्बन्धी। १६ रुद्रका उपासक।

रौद्रक (सं० क्ली०) रुद्रेण कृतं रुद्र-(कुलालादिभ्यो वुञ्। पा ४।३।११८) इति वुञ्। रुद्र द्वारा किया हुआ।

रौद्रकर्म्मन् (सं० त्रि०) रौद्रं कर्म यस्य। १ भीषण कर्म, भयंकर काम करनेवाला। (क्ली०) २ भीषण कर्म, भयंकर काम।

रौद्रकेतु (सं० पु०) आकाशके पूर्व-दक्षिण भागमें धूमके समभागके समान वर्णित या कपाली, शूल या दण्ड आकारकी किरणोंसे युक्त और आकाशके तीन भाग तक गमन करनेवाला एक केतु।

रौद्रगण (सं० पु०) फलितज्योतिषके अनुसार एक गण-का नाम। इस गणमें जन्म लेनेसे यह व्यक्ति पापिष्ठ होता है। (कोष्ठीप्रदीप)

रौद्रता (सं० स्त्री०, रौद्रस्य भावः तल्-टाप्।) १ रौद्रत्व, भयङ्करता, उग्रभावत्व। २ प्रचण्डता, प्रखरता।

रौद्रदर्शन (सं० त्रि०) रौद्रं दर्शनं यस्य। भीषण आकृति और वेषवाला, भयंकर रूपका।

रौद्रपाणी—[illegible]। (ज्योति० ग्रन्थ)

रौद्रपाद (सं० क्ली०) रौद्रस्य नक्षत्रविशेषस्य पादः। आर्द्रा नक्षत्रका पादांश।

रौद्रमनस् (सं० त्रि०) रौद्रं मनो यस्य। भयानक मनोवृत्ति-विशिष्ट, हिंस्र क्रियावाला, क्रूर।

रौद्राग्न (सं० त्रि०) रुद्र और अग्नि-सम्बन्धीय।

रौद्रायण (सं० पु०) रुद्रके गोत्रमें उत्पन्न पुरुष।

रौद्रार्क (सं० पु०) २१ मात्राओंके छंदोंकी संज्ञा जो कुल मिला कर १७७११ हो सकते हैं।

रौद्राश्व (सं० पु०) पुरुपुत्र और उनके वंशके एक राजा।

रौद्रि (सं० पु०) रुद्रके गोत्रमें उत्पन्न पुरुष।

रौद्री (सं० स्त्री०) रौद्र-ङीप्। १ रुद्रकी पत्नी, पार्वती। महाराष्ट्र चालुक्यराजोंने रुद्र नामक महादेवका मंदिर बनवाया था, उसमें वे महारौद्रीके नामसे प्रसिद्ध हुई थीं। (बम्बइ० गेजेटियर)

२ गान्धारस्वरकी दो श्रुतियोंमेंसे पहली श्रुति।

रौद्रोदक (सं० पु०) [illegible]।

रौप्य (सं० पु०) [illegible] (विकारे, पा ४।३।१३५) इति अण्। चाँदीका गहना।

रौधादिक (सं० त्रि०) रुधादिगण सम्बन्धीय।

रौधिर (सं० त्रि०) रुधिर-अण्। रुधिरसम्बन्धीय।

रौनक (अ० स्त्री०) १ वर्ण और आकृति, रूप। २ प्रफुल्लता, विकाश। ३ शोभा, छटा, चहल-पहल। ४ दीप्ति, चमक-दमक।

रौप्य (सं० क्ली०) रूप्यमेव अण्। रूप्य, चांदी। यह एक खनिज पदार्थ है तथा अष्टधातुओंमें गिना जाता है। इस धातुसे नाना प्रकारके अलङ्कार और औषधादि बनते हैं। स्नायविक दुर्बलताजनित रोगमें आयुर्वेद मतसे स्वर्ण या लौहके योगसे रौप्यघटित औषध प्रयोगकी विधि है। डाक्टर वमार्सोन उस औषधकी उपकारिताके सम्बन्धमें प्रशंसा कर गये हैं।

क्या प्राच्य क्या प्रतीच्य जगत्में बहुत पहलेसे रौप्यका आदर और व्यवहार चला आता है। वैदिक ब्राह्मणादि युगमें भी ऋषिगण सोने और चांदीका व्यवहार जानते थे। पुराणादि और मन्वादि स्मृतिमें चांदीका उल्लेख देखनेमें आता है। स्मृतिकारोंने ब्राह्मणके पक्षमें शूद्रसे रौप्यदान ग्रहणकी व्यवस्था दी है। इस दानसे वे पतित नहीं हो सकते। ये सब दान उस समय ब्राह्मणगण देवसेवाके लिये निर्दिष्ट रखते थे।

विशेष विवरण चांदी शब्दमें देखो।

रौप्यगिरि—प्राचीन विदेह राज्यके अन्तर्गत एक शैल।

रौप्यमय (सं० त्रि०) रौप्य-स्वरूपे मयट्। रौप्यस्वरूप, चांदीका।

रौप्यमुद्रा (सं० स्त्री०) रौप्यधातुसे प्रस्तुत राजचिह्नाङ्कित रौप्यचक्र वा चतुष्कोण खण्ड, चांदीका सिक्का, रुपया (Silver Coinage) अंगरेजोंके शासनकालमें आज कल जिस प्रकार रौप्यमुद्रा या रुपया (१६ आना या ६४ पैसेके बराबर) प्रचलित है, मुसलमानोंके जमानेमें भी उस प्रकार सिक्का प्रचलित था, लेकिन उसका परिमाण आज कलके समान न था। प्राचीन हिन्दूराजाओंके समय नाना प्रकारकी स्वर्ण और रौप्यमुद्रा प्रचलित थी। भारतवर्षमें विभिन्न राजाओंके अधिकारमें छेनीसे कटी हुई या सांचेमें ढलाई जो सब मुद्रा प्रचलित हुई थी उनमें कुछ न कुछ खाद अवश्य मिली रहती थी। १८६८ ई०में सर्जन मेजर सेकल्टन (Surgeon major Shekltou) एक पत्रिकामें १०२ प्रकारकी स्वर्ण मुहर, ३२ प्रकार हुण वा पगोडा, १ प्रकार अर्द्धपगोडा, २४ प्रकार सोनेका फानम (परिमाण २'६से ५'१ ग्रेन) और २१ प्रकार वैदेशिक स्वर्णमुद्रा तथा रौप्यके मध्य ४५६ प्रकारके रुपये, २३ प्रकारकी अठन्नी, ६ प्रकारके फानम और १ दमड़ी सिक्केकी खादका पार्थक्य निर्देश कर गये हैं।

अबुल फजलकी लेखनीसे मालूम होता है, कि १५४२ ई०में हुमायूंसे दिल्लीका सिंहासन छीन कर शेरशाहने पहले पहल अपने नाम पर सिक्का चलाया था। उस शेरशाही मुद्राकी एक पीठ पर इसलाम-धर्मका निशाना और दूसरी पीठ पर पारसी भाषामें शेरशाहका नाम लिखा था। उसके पहले भारतवर्षमें अरबदेशीय चांदीका दिरहाम, स्वर्ण, दिनार और ताम्बेका फुलस प्रचलित था। पठान और मुगल आधिपत्य विस्तारके साथ साथ ये सब मुद्रायें भी इस देशमें लाई गईं। प्राचीन हिन्दू और शक-राजाओंकी नामाङ्कित मुद्रा उसी दिनसे दिन एक तरह लोप-सी हो गई थी।

विशेष विवरण मुद्रातत्त्व शब्दमें देखो।

सम्राट् अकबरने शेरशाही सिक्केका संस्कार कर चौकोन रौप्यजलाली सिक्का चलाया। उसका वजन ११।० माशा था। उसे 'चारयारी' सिक्का भी कहते थे। क्योंकि, इसके चार कोनेमें महम्मद, आबूबकर, ओमर और ओसमानका नाम तथा किनारेमें अलीका नाम खुदा था। उस समय भारतके भिन्न भिन्न स्थानमें भिन्न भिन्न तरहका भारी भरका सिक्का प्रचलित रहनेसे मुद्राविशेषका वजन ठीक करना बड़ी ही असुविधा थी। अध्यापक ब्लोकम्यानने अकबरशाहके राज्यकालकी कुछ परिष्कार स्वर्ण और रौप्यमुद्राका वजन ले कर उसका औसत १७५·५ ग्रेन स्थिर किया। अर्थात् एक एक विशुद्ध रौप्यमुद्रा १७४·४ ग्रेनकी अकबरशाह द्वारा चलाई गई थी। जहांगीर, शाहजहां और औरङ्गजेबके समय जो सब मुद्रा चलाई गई है उसका वजन जो १७५ ग्रेन था। महम्मद शाहके जमानेमें सूरत, दिल्ली, अहमदाबाद और बङ्गालमें इतने ही वजनकी मुद्रा ढाली गई थी। अतएव मुगल जमानेकी अकबरी, जहांगिरी, शाहजहानी, आलमगिरी,

महम्मदशाही, अहमदशाही, आलमगीर (१७५२ ई०) मुद्रा एक-सी थी। महाराष्ट्र और अन्यान्य हिन्दू राजाधि इस प्रदेशमें मुगल बादशाहोंके नाम रख कर स्वतन्त्र मुद्रा चलाते थे। अंग्रेज आधिपत्य विस्तारके साथ साथ प्रचलित मुद्रामें भी बहुत हेरफेर हुआ। भिन्न भिन्न स्थानमें भिन्न भिन्न प्रकारकी मुद्रा प्रचलित रहनेसे अंग्रेज बनियोंने १७१३ ई०की ३५वीं धाराके अनुसार शाहआलमके शासनकालके १९वें वर्षमें जो मुद्रा प्रचलित थी, उसीके बराबर दिल्लीकी सिक्का मुद्रा कर दी। मुगल बादशाहोंके समयकी मुद्राका परिमाण १७८·३२४ ग्रेन था। उसमें १७५·९ ग्रेन विशुद्ध चांदी रहनेके कारण उसका मूल्य दिल्लीकी मुद्राके बराबर था। पीछे १८०० ई०में १७९ ग्रेनकी मूल्यकी मुद्रा जिसमें १६४·७४ विशुद्ध चांदी रहती थी, निकाली गई। १८३१ ई०में इष्ट इण्डिया कम्पनीके डिरेक्टर बम्बई और मन्द्राजमें १८० ग्रेनकी मुहर और रौप्यमुद्रा ढालने लगे। १७९८ ई० तक आर्काट रुपया १७० ग्रेन विशुद्ध चांदीका ढालते थे। पीछे १६६·७७ ग्रेन विशुद्ध या १६५·७ ग्रेनका यह रुपया तैयार होने लगा। पीछे उसका वजन १८० ग्रेन कर दिया गया।

इष्ट इण्डिया कम्पनीने कलकत्तेमें पहले पहल जो सिक्का ढलवाया था उसकी एक पीठ पर "हामि इ दिन-इ-महम्मद, साया फजल इलाह सिक्का शाह बादशाह विजयर शाहआलम् बादशाह" और दूसरी पीठ पर 'मुर्शिदाबाद' और मुबारक शाहआलम बादशाहका 'जुलूस सालका १९वां वर्ष' अङ्कित था। पश्चिम भारतके फर्रुखाबाद, बनारस और सागर नगरके टकसाल-घरमें जो सिक्का ढाला गया था उसकी एक पीठ पर वही नाम तथा दूसरी पीठ पर 'फर्रुखाबाद' नाम अङ्कित है। मन्द्राज और बम्बई जिलेके रुपयेमें इस स्थानके नामका परिवर्तन हुआ था। १८४० ई०से अङ्कित मुद्राके एक ओर रानी विक्टोरियाकी मुकुटहीन मूर्त्तिके नीचे नाम Queen Victoria और दूसरी ओर One Rupee लिखा हुआ है। सिपाही विद्रोहके बाद भारतवर्ष इस अङ्गरेजोंके अधिकारमें आया, तब १८६२ ई०में जो रौप्यमुद्रा प्रचलित हुई उसकी एक पीठ पर भारत-साम्राज्ञी विक्टोरियाकी मुकुट सहित आवक्ष मूर्त्तिके चारों ओर Queen Victoria और दूसरी पीठ पर One rupee India 1862 लिखा हुआ था।

पहले लिख आये हैं, कि १६ आनेका एक रुपया होता है। किन्तु आने या आधेकी भाँति मुद्रा (सिक्के) नहीं होती। आजकलकी तरह तांबेका आध आना या डबल पैसा, एक पैसा, आध पैसा और पाई पैसा (Copper) ढलता था। उसकी एक ओर सिंह और मुकुटकी मूर्त्ति तथा Auspicio regis et senatus Angliae और दूसरी ओर East India company Half anna 'आध पैसा' लिखा रहता था। इस ताम्रमुद्राका परिमाण इस प्रकार था—

डबल पैसा—२०० ग्रेन (Troy)
एक पैसा—१०० " "
आध पैसा—५० " "
पाई—३३$\frac{1}{3}$ " "

बङ्गालमें पहले जो सोनेकी मुहर प्रचलित थी, उसमें ९९ भाग सोना और १० भाग खाद रहती थी। १८वीं सदीकी १४वीं धाराके अनुसार $\frac{११}{१२}$ सोना और $\frac{१}{१२}$ खाद मिलानेकी व्यवस्था हुई। पीछे १८३५ ई०की १७वीं धारामें इस खादको स्थिर कर ३० रुपये मोलकी एक डबल मुहर, १८० ग्रेन अर्थात् १५ रुपयेकी मुहर, १० रुपयेकी $\frac{२}{३}$ मुहर और ५ रुपयेके बराबर $\frac{१}{३}$ मुहर ढाली जाने लगी थी। १८७० ई०की २३वीं मुद्राधारा (Indian coinage act xxiii of 1870) राजविधिमें गृहीत हो कर इसी प्रकारकी मुहर ढलने लगी। केवल डबल मुहरका मूल्य ३० रुपया कर दिया गया। मुद्राका परिमाण मुहरमें हुआ अर्थात् १६० ग्रेन और ११६·६६६ तोला (Tola) था। मुर्शिदाबादमें जो अशर्फी प्रचलित थी उसका परिमाण १९०·८९५ ग्रेन (Troy) था। सिन्धे और होलकर राज उज्जयिनीमें रौप्यमुद्रा बनाते थे। हैदराबादमें आसफजाहीके उत्तराधिकारीके समय शाहआलम और इनके सिक्

तथा तांबेका ढबुआ एवं सिक्कोंमें फानम और चक्रम् सिक्का चलता था।

रौप्यायण (सं० पु०) रूप्यके गोत्रमें उत्पन्न पुरुष।

रौप्यायणि (सं० पु०) रूप्यके गोत्रमें उत्पन्न पुरुष।

रौम (सं० क्ली०) रुमायां लवणाकरे भवं, रुमा अण्। शाम्भरिलवण, सांभर नमक।

रौमक (सं० क्ली०) शाम्भरिलवण, सांभर नमक। रुम नदीसे यह नमक उत्पन्न होता है, इसलिये इसे रौमक कहते हैं। (भावप्र०)

रौमकीय (सं० त्रि०) रोमक चतुर्षु अर्थेषु (कृशाश्वादिभ्यश्छण्। पा ४।२।८०) इति छण्। १ रोमदेशका रहनेवाला। २ रोमप्रदेश। ३ रोमकदेशके पास। ४ रोमकदेशसे निर्वृत्त।

रौमण्य (सं० त्रि०) रौमण देशका रहनेवाला या रोमन-देशमें उत्पन्न। (पा ४।२।८०)

रौमलवण (सं० क्ली०) रौम-लवणमिति। शाम्भरिलवण, सांभर नमक।

रौमशीय (सं० त्रि०) रोमश चतुर्षु अर्थेषु (कृशाश्वादिभ्यश्छण्। पा ४।२।८०) इति छण्। १ रोमश देशवासी। २ रोमशमें उत्पन्न। ३ रोमशदेशके पास। ४ रोमश-देशसे निर्वृत्त।

रौमहर्षणक (सं० त्रि०) रोमहर्षणसंयुक्त।

रौमहर्षणि (सं० पु०) रोमहर्षण ऋषिके गोत्रमें उत्पन्न पुरुष।

रौम्यायण (सं० पु०) महादेव। (महाभारत १३।१७) बहु-वचनका प्रयोग करनेसे शिवका अनुचर अपदेवता समझा जाता है।

रौरव (सं० पु०) रुरवः स्तुविशेषस्तस्यायमिति रुरु-अण्। १ नरकविशेष, रौरव नरक। इस नरकका नाम इक्कीस नरकोंमेंसे पांचवां कहा गया है। यह दो हजार योजन विस्तृत है। यह नरक बड़ा भयानक है। जो कूट-साक्षी तथा मिथ्यावादी हैं वही इस नरकका भोग करते हैं। (मार्कपु० पितापुत्रसंवादाध्याय) नरक शब्द देखो।

(त्रि०) २ चञ्चल, बात पर दृढ़ न रहनेवाला। ३ धूर्त, बेईमान, कपटी। ४ घोर, भयंकर। ५ रुरु मृग-सम्बन्धी। (मनु २।४१) (क्ली०) ६ सामभेद। (ऐतब्रा० ३।१७)

रौरव—शैवधर्मप्रवर्त्तक एक आचार्य। अभिनवगुप्तने इनका नामोल्लेख किया है।

रौरवक (सं० क्ली०) रुरुणा कृतं (कुलालादिभ्यो वुञ्। पा ४।३।११८) इति रुरु-वुञ्। रुरु द्वारा कृत।

रौरुकिन् (सं० पु०) रुरुक प्रवर्त्तित सम्प्रदायभेद।

रौला (हिं० पु०) १ हल्ला, शोर। २ ऊधम, हलचल।

रौशन (फा० वि०) रोशन देखो।

रौशनदान (फा० पु०) रोशनदान देखो।

रौशनी (फा० स्त्री०) रोशनी देखो।

रौशम्बर (सं० पु०) आतङ्कदर्पणके प्रणेता वाचस्पतिके भाई और प्रमोदके पुत्र। ये एक अद्वितीय पण्डित थे।

रौस (फा० स्त्री०) १ गति, चाल। २ बागकी पटरी, बागकी क्यारियोंके बीचका मार्ग। ३ रंग ढंग, तौर तरीका।

रौसली (हिं० स्त्री०) एक प्रकारकी चिकनी उपजाऊ मिट्टी, डाकर।

रौसा (हिं० पु०) रूसा देखो।

रौहाल (हिं० स्त्री०) घोड़ेकी एक चाल। २ घोड़ेकी एक जाति।

रौहिक (सं० त्रि०) रोह इव (अङ्गुल्यादिभ्यष्ठक्। पा ५।३।१०८) इति इवार्थे ठक्। रोहके समान।

रौहिण (सं० क्ली०) रोहिणमेव स्वार्थे अण्। दिनमानका नवममुहूर्त्त। एकोद्दिष्टश्राद्धमें पूर्वाह्णको एकोद्दिष्टश्राद्ध आरम्भ करके रौहिणकालका लङ्घन नहीं करना चाहिये। अर्थात् उतने समयके भीतर श्राद्ध समाप्त करना होगा। यदि सङ्गवमुहूर्त्तके बाद रौहिण तक तिथिलाभ हो तथा दूसरे दिन तीन मुहूर्त्त तक वह तिथि रहे, तो पूर्व दिन श्राद्ध होगा। किन्तु दोनों दिन यदि सङ्गवमुहूर्त्त लाभ हो, तो दूसरे दिन श्राद्ध होगा। (श्राद्धतत्त्व)

(पु०) रुह-इनन्-स्वार्थे अण्। २ चन्दन वृक्ष।

रौहिणक (सं० क्ली०) सामभेद। (लाट्या० १।६।२५)

रौहिणायन (सं० पु०) रौहिणस्य गोत्रापत्यं (रौहिण्य अश्वा-दिभ्यः फञ्। पा ४।१।११०) इति अश्वाद्यर्थे फञ्। रौहिण-का गोत्रापत्य।

रौहिणि (सं० पु०) १ सामभेद। २ रौहिणका गोत्रापत्य।

रौहिणेय (सं० पु०) रोहिण्या अपत्यमिति रोहिणी

मुहम्मदशाह, अहमदशाह, आलमगीर (१७५८ ई०) मुद्रा चलाते थे। मराठा और अन्यान्य हिन्दू राजाधि-राज मुगल बादशाहोंके नाम पर अपनी मुद्रा चलाते थे। अंग्रेज अधिकार विस्तारके साथ साथ प्रचलित मुद्राओंमें बहुत हेरफेर हुआ। भिन्न भिन्न स्थानोंमें भिन्न भिन्न प्रकारकी मुद्रा प्रचलित रहनेसे अंग्रेज सरकारने १७९३ ई०की ३५वीं धाराके अनुसार शाहआलमके शासनकालके १९वें वर्षकी जो मुद्रा प्रचलित थी, उसीके बराबर सिक्कोंको प्रामाणिक मुद्रा कर ली। मुगल बादशाहोंके पूर्वोक्त मुद्राका परिमाण १७९·३१४ ग्रेन था। उसमें १७५·९ ग्रेन विशुद्ध चांदी रहनेके कारण उसका मूल्य सिक्का मुद्राके बराबर था। पीछे १८०० ई०में १९१ ग्रेनकी पूर्वोक्त मुद्रा जिसमें १७६·१३ विशुद्ध चांदी रहती थी, ढाली गई। १८३५ ई०में इष्ट इण्डिया कम्पनीके डिरेक्टर बम्बई और मन्द्राजमें १८० ग्रेनकी मुहर और रौप्यमुद्रा ढालने लगे। १७५८ ई० तक आर्कटी रुपया १७० ग्रेन विशुद्ध चांदीका आता था। पीछे १६६·६७३ ग्रेन विशुद्ध या १७६·४ ग्रेनका यह रुपया तैयार होने लगा। पीछे उसका वजन १८० ग्रेन कर दिया गया।

इष्ट इण्डिया कम्पनीने कलकत्तेमें पहले पहल जो सिक्का ढलवाया था उसकी एक पीठ पर "हामि-इ-दिन-इ महम्मद, साया फजलअल्ला सिक्का जद बर हफ्त किश्वर शाहआलम् बादशाह" और दूसरी पीठ पर 'मुर्शिदाबाद' और मुगलसम्राट् शाहआलम बादशाहका 'जोलूसमैमनत मानूस १९वां वर्ष' अंकित था। पश्चिम भारतके फर्रुखाबाद, बनारस और सागर नगरके टकसालघरोंमें जो सिक्का ढाला गया था उसकी एक पीठ पर वही नाम तथा दूसरी पीठ पर 'फर्रुखाबाद' नाम अंकित है। मन्द्राज और बम्बई टकसालमें रुपयेमें उस समयके भावका परिवर्तन हुआ था। १८३५ ई०में अंकित मुद्राके एक ओर राजा विलियम चतुर्थकी मूर्तिके पीछे नाम [illegible] और दूसरी ओर [illegible] लिखा हुआ है। सिपाही विद्रोहके बाद भारतवर्ष जब अंग्रेजोंके अधिकारमें आया, तब १८६२ ई०में जो रौप्यमुद्रा प्रचलित हुई उसकी एक पीठ पर भारत-साम्राज्ञी विक्टोरियाकी मुकुट सहित आवक्ष मूर्तिके चारों ओर Queen Victoria और दूसरी पीठ पर One rupee India 1862 लिखा हुआ था।

पहले लिख आये हैं, कि १६ आनेका एक रुपया होता है। किन्तु चांदी या तांबेकी आना मुद्रा (अधी) नहीं होती। आजकलकी तरह आनेका भाग उस समय डबल पैसा, एक पैसा, आध पैसा और पाई पैसा (पाई) ढलता था। उसकी एक ओर सिंह और बृटिशराज मूर्ति तथा Auspicio regis et senatus Angliae और दूसरी ओर East India company Half anna ये 'पैसा' लिखा रहता था। उस ताम्रमुद्राका परिमाण इस प्रकार था—

डबल पैसा—२०० ग्रेन (Troy)
एक पैसा—१०० " "
आध पैसा—५० " "
पाई—३३ $\frac{1}{3}$ " "

मन्द्राजमें पहले जो सोनेकी मुहर प्रचलित थी, उसमें ११ भाग सोना और १ भाग खाद रहती थी। १८वीं सदीकी १४वीं धाराके अनुसार $\frac{११}{१२}$ सोना और $\frac{१}{१२}$ खाद मिलानेकी व्यवस्था हुई। पीछे १८३५ ई०की १७वीं धारासे उस व्यवस्थाको फिर कर ३० रुपये मोलकी एक डबल मुहर, १८० ग्रेन अर्थात् १५ रुपयेकी मुहर, १० रुपयेकी $\frac{२}{३}$ मुहर और ५ रुपयेके बराबर $\frac{१}{३}$ मुहर ढाली जाने लगी थी। १८७० ई०की २३वीं मुद्राविधि (Indian coinage act xxiii of 1870) राजविधिके अधीन हो कर इसी प्रकारकी मुहर बनने लगी, केवल डबल मुहरका मूल्य ३० रुपया कर दिया गया। मुद्राका परिमाण मुहरमें पूरा अर्थात् १८० ग्रेन और ९१६·६६६ कैरट (Touch) था। मुर्शिदाबादमें जो अशर्फी प्रचलित थी उसका परिमाण १९०·८९५ ग्रेन (Troy) था। सिन्धिया और होलकर राज प्राचीन पद्धतिकी रौप्यमुद्रा बनाते थे। हैदराबादमें आसफ जाही राजवंशके समय सालारजंग और इनकी लिखा-

तथा तांबेका टकुआ एवं सियांकुरमें फानम और चक्रम् सिक्का चलता था।

रौप्यायण (सं० पु०) रूप्यके गोत्रमें उत्पन्न पुरुष।

रौप्यायणि (सं० पु०) रूप्यके गोत्रमें उत्पन्न पुरुष।

रौम (सं० क्ली०) रुमायां लवणाकरे भवं, रुमा अण्। शाम्भरिलवण, सांभर नमक।

रौमक (सं० क्ली०) शाम्भरिलवण, सांभर नमक। रुम नदीसे यह नमक उत्पन्न होता है, इसलिये इसे रौमक कहते हैं। (भावप्र०)

रौमकीय (सं० त्रि०) रोमक चतुर्थ अर्थेषु (कृशाश्वादिभ्यश्छण्। पा ४।२।८०) इति छण्। १ रोमदेशका रहनेवाला। २ रोमप्रदेश। ३ रोमकदेशके पास। ४ रौमकदेशसे निवृत्त।

रौमण्य (सं० त्रि०) रौमण देशका रहनेवाला या रोमनदेशमें उत्पन्न। (पा ४।२।८०)

रौमलवण (सं० क्ली०) रौम-लवणमिति। शाम्भरिलवण, साँभर नमक।

रौमशीय (सं० त्रि०) रोमश चतुर्थ अर्थेषु (कृशाश्वादिभ्यश्छण्। पा ४।२।८०) इति छण्। १ रोमश देशवासी। २ रोमशमें उत्पन्न। ३ रोमशदेशके पास। ४ रोमशदेशसे निवृत्त।

रौमहर्षणक (सं० त्रि०) रोमहर्षणसंयुक्त।

रौमहर्षणि (सं० पु०) रोमहर्षण ऋषिके गोत्रमें उत्पन्न पुरुष।

रौम्यायण (सं० पु०) महादेव। (महाभारत १३।१७) बहुवचनका प्रयोग करनेसे अग्निका अनुचर अपदेवता समझा जाता है।

रौरव (सं० पु०) रुरवः क्रतुविशेषस्तस्यायमिति रुरु-अण्। १ नरकविशेष, रौरव नरक। इस नरकका नाम इक्कीस नरकोंमेंसे पांचवां कहा गया है। यह दो हजार योजन विस्तृत है। यह नरक बड़ा भयानक है। जो कूटसाक्षी तथा मिथ्यावादी हैं वही इस नरकका भोग करते हैं। (मार्कपु० पितापुत्रसम्वाद) नरक शब्द देखो।

(त्रि०) २ चञ्चल, बात पर दृढ़ न रहनेवाला। ३ धूर्त, बेईमान, कपटी। ४ घोर, भयंकर। ५ रुरु मृग सम्बन्धी। (मनु ३।२७१) (क्ली०) ६ साममेद। (पंचब्रा० ३।१०)

रौरव—शैवधर्मप्रवर्त्तक एक आचार्य। अभिनवगुप्तने इनका नामोल्लेख किया है।

रौरवक (सं० क्ली०) रुरुणा कृतं (कुलालादिभ्यो वुञ्। पा ४।३।११८) इति रुरु-वुञ्। रुरु द्वारा कृत।

रौरुकिन् (सं० पु०) रुरुक प्रवर्त्तित सम्प्रदायभेद।

रौला (हिं० पु०) १ हल्ला, शोर। २ ऊधम, हलचल।

रौशन (फा० वि०) रोशन देखो।

रौशनदान (फा० पु०) रोशनदान देखो।

रौशनी (फा० स्त्री०) रोशनी देखो।

रौशर्मन् (सं० पु०) आतङ्कदर्पणके प्रणेता वाचस्पतिके भाई और प्रमोदके पुत्र। ये एक अद्वितीय पण्डित थे।

रौस (फा० स्त्री०) १ गति, चाल। २ बागकी पटरी, बागकी क्यारियोंके बीचका मार्ग। ३ रंग ढंग, तौर तरीका।

रौसली (हिं० स्त्री०) एक प्रकारकी चिकनी उपजाऊ मिट्टी, डाकर।

रौसा (हिं० पु०) रौंसा देखो।

रौहाल (हिं० स्त्री०) घोड़ेकी एक चाल। २ घोड़ेकी एक जाति।

रौहिक (सं० त्रि०) रुह इव (मघ्वादिभ्यष्ठक्। पा ५।३।१०८) इति इवार्थे ठक्। रुहके समान।

रौहिण (सं० क्ली०) रौहिणमेव स्वार्थे अण्। दिनमानका नवममुहूर्त्त। एकोद्दिष्टश्राद्धमें पूर्वाह्णमें एकोद्दिष्टश्राद्ध आरम्भ करके रौहिणकालका लङ्घन नहीं करना चाहिये। अर्थात् उतने समयके भीतर श्राद्ध समाप्त करना होगा। यदि सङ्गवमुहूर्त्तके बाद रौहिण तक तिथिलाभ हो तथा दूसरे दिन तीन मुहूर्त्त तक वह तिथि रहे, तो पूर्व दिन श्राद्ध होगा। किन्तु दोनों दिन यदि सङ्गवमुहूर्त्त लाभ हो, तो दूसरे दिन श्राद्ध होगा। (श्राद्धतत्त्व)

(पु०) रुह-इनन्-स्वार्थे अण्। २ चन्दन वृक्ष।

रौहिणक (सं० क्ली०) साममेद। (आश्व० १६।३५)

रौहिणायन (सं० पु०) रौहिणस्य गोत्रापत्यं (रौहिण अश्वादिभ्यः फञ्। पा ४।१।११०) इति भारद्वाजे फञ्। रोहिणका गोत्रापत्य।

रौहिणि (सं० पु०) १ साममेद। २ रोहिणका गोत्रापत्य।

रौहिणेय (सं० पु०) रोहिण्या अपत्यमिति रोहिणी

([illegible] । [illegible]) इति इञ् । १ रोहिणीके पुत्र, बलराम । ([illegible]) २ बुधग्रह । ३ गोरस, गायका बछड़ा । ४ पुनर्जीवन्तिका एक-मौदीयोंमें एक मौदी । पुनर्जीवन आ कर बन्धगोवर्में वास होता है । पुनर्जीवनक बन्धगोवर्में बरोर्ग अथवा पुनर्जीवन नहीं होता ।

"[illegible] ।
[illegible] ॥"
([illegible])

(स्त्री०) ५ [illegible], यथा ।

रौहिणेयवर्ती (सं० स्त्री०) एक नौकाका नाम ।

रौहिणेय (सं० पु०) रौहिणका गोत्रापत्य ।

रौहिण (सं० त्रि०) १ रौहिणकरक सम्बन्धीय, रोहू मछलीका । (पु०) २ रौहिण मनुके पुत्रका नाम । ३ कृष्णके एक पुत्रका नाम ।

रौहितक (सं० त्रि०) रौहितकके समीपमें उत्पन्न ।

रौहितायनि (सं० पु०) रौहितके गोत्रमें उत्पन्न पुरुष ।

रौहिताश्व (सं० पु०) १ [illegible] । २ रौहिताश्वके गोत्रमें उत्पन्न पुरुष ।

रौहिष (सं० क्ली०) रोहतीति रुह-([illegible] । उण् ११८) इति टिषच्, पृषोदरात् सिद्धिः । १ कत्तृण, रौहिष नामक घास । पर्याय—देवताड़, श्यामक, [illegible], [illegible], [illegible], धूमगन्धिक । गुण—तिक्त, कटु, [illegible] और [illegible], पित्त, श्वास, कुष्ठ, ज्वर और [illegible] नाशक । ([illegible])

(पु०) २ मृगविशेष । ३ रोहितमत्स्य, रोहू मछली ।

रौहिषी (सं० स्त्री०) रौहिष ङीष् । १ मृगी । २ दूर्वा, दूब ।

रौही (सं० स्त्री०) [illegible] मृग ।

रौंदी (हिं० स्त्री०) [illegible] ।

ल

ल—व्यञ्जनका तीसरा और व्यञ्जनवर्णका अट्ठाईसवां वर्ण । इसका उच्चारण स्थान दन्त है । इसके उच्चारणमें संवार, नाद और घोष प्रयत्न होते हैं । यह अल्पप्राण है ।

इसके पर्याय—[illegible], [illegible] और [illegible] । ([illegible])

इसका ध्यान—

"[illegible] ।
[illegible] ॥
[illegible] ।
[illegible] ।
[illegible] ॥"
([illegible])

इस प्रकार ध्यान कर [illegible] एक बार जप करना होता है । यह अक्षर [illegible], [illegible], [illegible], [illegible] और [illegible], [illegible] और [illegible] है । [illegible] इस वर्णको [illegible] करनी होती है ।

"[illegible] ।
[illegible] ॥
[illegible] ।
[illegible] ।
[illegible] ॥" ([illegible])

मातृकान्यासमें इस वर्णका ककुद्देशमें न्यास करना होता है। काव्यके आदिमें इस शब्दका प्रयोग नहीं करना चाहिये, करनेसे विपत्ति होती है।

लंकलाट (अं० पु०) एक प्रकारका मोटा बढ़िया कपड़ा। यह प्रायः धुला हुआ होता है।

लंकाल (हिं० पु०) सिंह, शेर।

लंकोई (हिं० स्त्री०) लङ्कोदक देखो।

लंग (फा० स्त्री०) १ लाग देखो। (पु०) २ लंगड़ापन।

लंगड़ (फा० वि०) लँगड़ा देखो। (पु०) २ लंगर देखो।

लँगड़ा (हिं० वि०) १ जिसका एक पैर बेकाम या टूटा हो। २ जिसका एक पाया टूटा हो। (पु०) ३ एक प्रकारका बहुत बढ़िया कलमी आम। यह प्रायः बनारसमें होता है।

लँगड़ाना (हिं० क्रि०) चलनेमें दोनों या चारों पैरोंका ठीक ठीक और बराबर न बैठना बल्कि किसी एक पैरका कुछ रुक या दब कर पड़ना, लंग करते हुए चलना।

लँगड़ी (हिं० स्त्री०) १ एक प्रकारका छन्द। (वि०) २ बली, जोरावर। ३ जिस स्त्रीका एक पैर बेकाम या टूटा हो।

लंगर (फा० पु०) १ लोहेका बना हुआ एक प्रकारका बहुत बड़ा कांटा। इस कांटेके बीचमें एक मोटा लंबा छड़ होता है और एक सिरे पर दो, तीन या चार टेढ़ी झुकी हुई नुकीली शाखाएं और दूसरे सिरे पर एक मजबूत कड़ा लगा हुआ होता है। इस कांटेका व्यवहार बड़ी बड़ी नावों या जहाजोंको जलमें किसी एक ही स्थान पर ठहराये रखनेके लिये होता है। इसके ऊपर कड़ेमें मोटा रस्सा या जंजीर आदि बांध कर इसे बीच पानीमें छोड़ देते हैं। जब यह तलमें पहुंच जाता है तब इसके टेढ़े अंकुड़े जमीनके कंकड़ पत्थरोंमें अड़ जाते हैं जिससे नाव या जहाज उसी जगह रुक जाता है और जब तक यह फिर खींच कर ऊपर नहीं उठा लिया जाता तब तक नाव या जहाज आगे नहीं बढ़ सकता। २ रस्सी या तार आदिसे बंधी और लटकती हुई कोई भारी चीज। इसका व्यवहार कई प्रकारकी कलोंमें और विशेषतः बड़ी घड़ियों आदिमें होता है। ऐसा लंगर प्रायः निरन्तर एक ओरसे दूसरी ओर आता जाता रहता है। कुछ कलोंमें यह ऐसे पुरजोंका भार ठीक रखनेमें व्यवहार किया जाता है जो एक ओर बहुत भारी होते हैं और प्रायः इधर उधर हटते बढ़ते रहते हैं। बड़ी घड़ियोंमें जो लंगर होता है वह चाभी दी हुई कमानीके जोरसे एक सीधी रेखामें इधरसे उधर चलता रहता है और घड़ीकी गति ठीक रखता है। ३ जहाजोंका मोटा बड़ा रस्सा। ४ लकड़ीका वह कुंदा जो किसी हरहाई गायके गलेमें रस्सी द्वारा बांध दिया जाता है। इसके बांधनेसे गाय इधर उधर भाग नहीं सकती। इसे ठेंगुर भी कहते हैं। ५ चांदीका बना हुआ तोड़ा जो पैरमें पहना जाता है। इसकी बनावट जंजीरकी-सी होती है। ६ लोहेकी मोटी और भारी जंजीर। ७ पहलवानोंका लँगोट। ८ अंडकोश। ९ किसी पदार्थके नीचेका वह भाग जो मोटा और भारी हो। १० कमरके भाग। ११ वह स्थान जहां बहुतसे लोगोंका भोजन एक साथ पकता हो। १२ कपड़ेमेंके वे टांके जो दूर दूर पर इसलिये डाले जाते हैं, जिसमें मोड़ा हुआ कपड़ा अथवा एक साथ सीए जानेवाले दो कपड़े, अपने स्थानसे हट न जाय। इस प्रकारके टांके पक्की सिलाई करनेसे पहले डाले जाते हैं इसीसे इसे कच्ची सिलाई भी कहते हैं। १३ वह पका हुआ भोजन जो प्रायः हर रोज किसी निश्चित समय पर दीनों और दरिद्रों आदिको बांटा जाता है। १४ वह स्थान जहां दीनों और दरिद्रों आदिको बांटनेके लिये भोजन पकाया जाता है। १५ वह उभड़ी हुई रेखा जो अंडकोशके बीचके भागमें शुरू हो कर गुदा तक जाती है, सीवन। १६ वह स्थान या व्यक्ति आदि जिसके द्वारा किसीको किसी प्रकारका आश्रय या सहारा मिलता हो। (वि०) १७ जिसमें अधिक बोझ हो, भारी। १८ नटखट, ढीठ। १९ लंगड़ा देखो।

लंगरखाना (फा० पु०) वह स्थान जहांसे दरिद्रोंको बना बनाया भोजन बांटा जाता हो।

लंगरगाह (फा० पु०) किनारे परका वह स्थान जहां लंगर डाल कर जहाज ठहराए जाते हैं।

लंगूर (हिं० पु०) १ बंदर। २ पूंछ, दुम। ३ एक विशेष प्रकारका बंदर। यह साधारण बन्दरसे बड़ा होता है और इसकी पूंछ बहुत लम्बी होती है। इसके मारे

[illegible] और मुंह, [illegible] [illegible] आदि [illegible] होता है।

मंगु[illegible] (हिं० पु०) [illegible]।

मंगुरी (हिं० स्त्री०) १ घोड़ेकी एक चाल जिसमें वह [illegible] कर सकता है। २ [illegible] [illegible] जब वे [illegible] [illegible] देते हैं।

मंगुल (हिं० पु०) [illegible]।

मंगौर (हिं० पु०) [illegible] एक प्रकारका बना हुआ [illegible] [illegible] होता है, जिसमें [illegible] और [illegible] के लिये [illegible] रहते हैं। [illegible] करते हैं। इसे [illegible] भी कहते हैं।

मंगौरा (हिं० पु०) मंगौर देखो।

मंगौरी (हिं० स्त्री०) [illegible], [illegible]।

मंछ (हिं० वि०) मूर्ख, उजड्ड।

मंछ (हिं० पु०) [illegible]।

मंझुरा (हिं० वि०) [illegible] [illegible] हो।

मंझरानी (अ० स्त्री०) [illegible]।

मंझर (हिं० पु०) मंझर देखो।

मंझरा[illegible] (हिं० पु०) [illegible] देखो।

मंझा (हिं० वि०) [illegible] [illegible] हो, [illegible] हो जिसमें बहुत [illegible] हो। २ [illegible] हो। [illegible] जैसे—[illegible]। ३ [illegible] अधिक हो, जैसे—[illegible]। ४ [illegible]।

मंझाई (हिं० स्त्री०) [illegible] होनेका भाव, [illegible]।

मंझाव (हिं० पु०) मंझाई।

मंझो (हिं० [illegible]) [illegible]।

म[illegible] (सं० [illegible]) [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] है। [illegible]

[illegible] होता है। २ [illegible] [illegible] "[illegible]" [illegible] है [illegible] ३ [illegible] ४ [illegible]। ५ [illegible]।

म[illegible] (सं० पु०) [illegible], [illegible] पेड़।

मकड़[illegible] (हिं० पु०) [illegible] कुछ बड़ा होता है। [illegible] करता है। इसे [illegible] भी कहते हैं।

मकड़ाना (हिं० क्रि०) [illegible]।

मकड़ा (हिं० पु०) [illegible]। [illegible]।

मकड़ी (हिं० स्त्री०) १ [illegible] २ [illegible] ३ [illegible]। [illegible]।

मकवाई—[illegible] [illegible] [illegible] है। [illegible] [illegible] है।

मकव (अ० पु०) [illegible]।

मकतब (अ० पु०) १ [illegible] (वि०) २ [illegible]।

मकबूल—१ [illegible] [illegible] है। [illegible] [illegible] है।

[illegible]

अक्षा० १३° ४२´ उ० तथा देशा० ७५° ३८´ पू० भद्र-नदीके किनारे तरिकेरी रेलवे स्टेशनसे १२ मीलकी दूरी पर अवस्थित है। जनसंख्या हजारसे ऊपर है। राजा वज्रमुकुट रायकी सुप्राचीन राजधानी रत्नपुरी इसके पास ही अवस्थित है। बेदेवल्ली नगरमें विचार-सदर प्रतिष्ठित।

लकवा (सं० पु०) एक वातरोग। इसमें प्रायः चेहरा टेढ़ा हो जाता है। यह चेहरेके सिवा और और अंगोंमें भी होता है और जिस अंगमें होता है उसे बिलकुल बेकाम कर देता है। इस रोगमें शरीरके ज्ञानतन्तुओंमें एक प्रकारका विकार आ जाता है। जिससे कोई कोई अंग हिलने डोलने या अपना ठीक ठीक काम करनेके योग्य नहीं रह जाता। इसे फालिज भी कहते हैं।

लकसी (हिं० स्त्री०) फल आदि तोड़नेकी लग्गी। इसके ऊपरी सिरे पर लोहेका चन्द्राकार फल या एक तिरछी छोटी लकड़ी बंधी रहती है। इसी लग्गीको हाथमें ले कर ऊपरी सिरेमें बंधी हुई छोटी लकड़ी या फलकी सहायतासे ऊंचे वृक्षोंके फल आदि तोड़ते हैं।

लकाटी (हिं० स्त्री०) एक प्रकारकी बिल्ली जिसके नरोंके अंडकोशोंमेंसे एक प्रकारका मुश्क निकलता है।

लकार (सं० पु०) ल-स्वरूपे कारः। लस्वरूप वर्ण, लकार यही अक्षर।

"अनुकूला विमलाङ्गी कुलजा कुशला सुशीलसम्पन्ना।
पञ्चलकारा भार्या पुरुषः पुण्योदयाल्लभते ॥" (उद्भट)

लकि—१ पञ्जाबप्रदेशके बन्नू जिलेकी एक तहसील। भूपरिमाण १२६६ वर्गमील है। यह अक्षा० ३२° १६´ से ३२° ५१´ उ० तथा देशा० ७०° २५´ १५" से ७०° १८´ ४५" पू०के मध्य अवस्थित है। कुराम और गोम्बी-मिथोत उपत्यकाका दक्षिण प्रान्त ले कर यह तहसील संगठित है। यहां मारवात नामक एक जातिका वास है। उन लोगोंकी प्रधानताके कारण पार्श्ववर्त्ती स्थानवासी इसे मार्वत विभाग कहते हैं। किन्तु लकि नगरमें राजकोष सदर प्रतिष्ठित रहनेसे सरकारी विवरणमें इसका लकि नाम रखा है।

यह स्थान बलुई है, इस कारण फसल अच्छी नहीं लगती। गम्भीला आदि पहाड़ी नदियोंके सिवा यहां जलका कोई अच्छा प्रबन्ध नहीं है। अधिकांश नदियोंमें वर्षाके सिवा और किसी समय जल नहीं रहता। जहां बालू कम है वहां अधिवासी एकत्र हो कर रहते हैं। वही एक एक गांव कहलाता है। वर्षाका पानी जमा रखनेके लिये ग्रामवासी बड़े बड़े गड्ढे खोद रखते हैं। पीछे वर्षाके बाद उसी पानीको खेत आदि पटानेके काममें लाते हैं। कई ग्रामोंके बीच एक तालाब रहता है, किन्तु बलुई मिट्टी रहनेके कारण वह स्थायी नहीं होता। उस समय अधिवासी एकमात्र गम्भीला नदीसे अथवा १०से १५ मील तक दूरवर्त्ती पर्वत मध्यस्थित जलस्रोत या पुष्करिणीसे जल लाते हैं। गदहे या बैलकी पीठ पर जलका मशक लाद स्त्रियां ही जल लाती हैं। कभी कभी वे स्वयं ही ढो कर लाती हैं।

२ उक्त जिलेका एक नगर और मार्वत् या लकि तहसीलका विचारसदर। यह अक्षा० ३२° ३८´ उ० तथा देशा० ७०° ५६´ पू०के मध्य अवस्थित है। इस नगरके दूसरे किनारे पूर्वतन ईशानपुर नामक नगर था। १८४४ ई०में सिख-गवर्मेण्टके राजस्व-संग्राहक फते खाँ तिवानाने यहां दुर्ग स्थापन कर एक नगर बसाया। गम्भीला नदीकी प्रबल बाढ़से नगर डूब जाने तथा क्रमशः गम्भीला-तटस्थ झाड़ीसे उत्पन्न मच्छड़ोंके उपद्रवसे राजकर्मचारी उस राजधानीको उठा कर दूसरे किनारे बलुई भूमि पर ले गये। यहां पहले मीनाखेल, सोयेदावखेल और मौचद्-खेल नामक तीन ग्राम थे। ईशानपुरके अधिवासी भी पीछे यहां आ कर बस गये। इस प्रकार कई ग्रामोंके अधिवासियोंके एकत्र हो जानेसे यह एक समृद्धिशाली नगर बन गया। १८७४ ई०में यहां म्युनिसपलिटी स्थापित हुई है। तभीसे नगर बहुत साफ सुथरा है। यहां एक अस्पताल और एक वर्नाक्युलर स्कूल है।

लकि—सिन्धुप्रदेशके करांची जिलान्तर्गत गिरिश्रेणी।

लकि देखो।

लकि—बम्बई-प्रेसिडेन्सीके शिकारपुर जिलेका एक नगर।

लकि देखो।

लकीर (हिं० स्त्री०) १ कलम आदिके द्वारा अथवा और किसी प्रकार बनी हुई वह सीधी आकृति जो बहुत दूर तक एक ही सीधमें चली गई हो, रेखा। २ धारी।

[illegible] होती है।

[illegible] (सं० पु०) [illegible]

[illegible] और [illegible]

[illegible]

[illegible] (हिं० पु०) [illegible] होता है। [illegible] और [illegible] होती है। [illegible]

[illegible] (सं० त्रि०) [illegible]

[illegible] (सं० पु०) [illegible]

[illegible] (हिं० पु०) [illegible]

[illegible] है और [illegible] होती है।

[illegible] (हिं० पु०) [illegible] होता है। [illegible]

[illegible] (हिं० स्त्री०) [illegible] (पु०) [illegible]

[illegible] और [illegible] है। [illegible]

[illegible] (सं० त्रि०) [illegible]

[illegible] (सं० पु०) [illegible]

[illegible] (सं० पु०) [illegible]

[illegible]

जाना जाय या जिसके द्वारा पहचाना जाय उसे लक्षण कहते हैं। यह लक्षण दो प्रकारका है, इतरभेदानुमापक और व्यवहारप्रयोजक। (न्यायमत)

कृत्, तद्धित और समासका नियामक अभिधान तथा अनभिज्ञोंका अभिधानसूचक ही लक्षण पदवाच्य है। लक्ष्यमें लक्ष्यार्थके अभिनिवेशको लक्षण कहते हैं। समान और असमान जातीय व्यवच्छेद ही लक्षणार्थ है।

३ दर्शन। ४ सौमित्रि, लक्ष्मण। ५ सारस पक्षी। ६ सामुद्रिकके अनुसार शरीरके अंगोंमें होनेवाले कुछ विशेष चिह्न जो शुभ या अशुभ माने जाते हैं। ७ शरीरमें होनेवाला एक विशेष प्रकारका काला दाग जो बालकके गर्भमें रहनेके समय सूर्य या चन्द्रग्रहण लगनेके कारण पड़ जाता है। ८ शरीरमें दिखाई पड़नेवाले वे चिह्न आदि जो किसी रोगके सूचक हों। अंगरेजीमें इसे Symptoms कहते हैं।

लक्षणक (सं० पु०) लक्षणयुक्त, जिसमें कोई लक्षण हो।

लक्षणज्ञ (सं० त्रि०) लक्षणं जानातीति ज्ञा-क। लक्षणवेत्ता, जो लक्षणसे जानकार हो।

लक्षणत्व (सं० क्ली०) लक्षणस्य भावः त्व। लक्षणका भाव या धर्म।

लक्षणलक्षणा (सं० स्त्री०) लक्षणाभेद। लक्षणा देखो।

लक्षणवत् (सं० त्रि०) लक्षणं विद्यतेऽस्य मतुप् मस्य वः। लक्षणविशिष्ट, लक्षणयुक्त।

लक्षणसन्निपात (सं० पु०) १ अङ्कपात। २ द्रव्य विशेषमें कोई चिह्न या निशान अंकित करना।

लक्षणा (सं० स्त्री०) लक्ष (लक्षेरट् च। उण् ३।७) इति नस्तस्याट्‌ागमश्च, लक्षणमस्त्यस्येति अच्, ततष्टाप्। १ हंसी। २ सारसी। ३ अप्सराविशेष। ४ शब्दसम्बन्ध। तात्पर्यकी अनुपपत्तिके कारण (तात्पर्यका बोध नहीं होता, इस कारण) शक्यार्थका जो सम्बन्ध है, उसे लक्षणा कहते हैं।

केवल शब्दार्थ ले कर अर्थबोध या शब्दबोध करनेमें अनेक जगह तात्पर्यकी उत्पत्ति नहीं होती अर्थात् तात्पर्यका बोध नहीं होता, इस कारण लक्षणा स्वीकार करनी होती है। लक्षणा स्वीकार करनेसे तात्पर्य मालूम करनेमें कोई कष्ट नहीं होता। सहजमें इस लक्षणाशक्तिके बल मालूम हो जाता है।

पहले लिखा जा चुका है, कि तात्पर्यका अर्थ ग्रहण करनेके लिये शक्यसम्बन्धका नाम लक्षणा है। अभी इसका उदाहरण देनेसे स्पष्ट हो जायगा। 'गङ्गायां घोषः प्रतिवसति' गङ्गामें घोष रहता है, यह एक वाक्य है, गङ्गा कहनेसे प्रवाहयुक्त जलरूप समझा जाता है। प्रवाहयुक्त जलमें घोष नहीं रह सकता। आदमी जमीन पर रहता है जलमें रहना असम्भव है। अतएव यहां पर शब्दार्थकी कोई प्रतीति नहीं होती अर्थात् गङ्गामें वास करता है, इससे कोई अर्थहीन समझा गया। अतः इन सब स्थानोंमें अर्थबोधके लिये लक्षणाशक्ति स्वीकार करनी होती है। लक्षणा स्वीकार करनेसे तात्पर्य आसानीसे मालूम हो जाता है। 'गङ्गामें घोष रहता है' ऐसा वाक्य कहा गया है। जलमय गङ्गामें रहना जब असम्भव है तब क्या गङ्गाके समीप है? इसका पता लगानेसे पहले तीर देखा जाता है। अतएव गङ्गा शब्दका अर्थ लक्षणा द्वारा गङ्गातीर कहनेसे और कोई गोलमाल न रह जाता तथा इससे तात्पर्यकी भी उत्पत्ति होती है। इसलिये यहां पर तात्पर्यकी उत्पत्ति होनेके कारण शब्दबोधमें भी कोई व्याघात न पहुंचा। अतः गङ्गाके किनारे शक्यसम्बन्धका लक्षणा हुई। इस प्रकार जहां जहां तात्पर्यका अर्थ ले कर अर्थ मालूम किया जायगा, वहां लक्षणा होगी।

शब्दशक्तिप्रकाशिकामें लिखा है, कि—

"अजहत् याऽजहत्स्वार्था निरूढाधुनिकादिकाः।
लक्षणा विविधास्ताभिर्लक्षकः स्यादनेकधा॥" (शब्दशक्ति)

शब्दशक्तिप्रकाशिकाके मतसे यह लक्षणा जहत्स्वार्था, अजहत्स्वार्था, निरूढा और आधुनिकादिके भेदसे अनेक प्रकारकी है।

साहित्यदर्पणमें लिखा है, कि—

"मुख्यार्थबाधे तद्युक्तो ययान्योऽर्थः प्रतीयते।
रूढेः प्रयोजनाद्वासौ लक्षणा शक्तिरर्पिता॥"

(साहित्यद० २।१३)

जहां मुख्य अर्थका बोध न हो कर तद्युक्त अर्थात् मुख्यार्थयुक्त हो रूढ़ि (प्रसिद्ध) या प्रयोजनसिद्धिके लिये जिस शक्ति द्वारा अन्य अर्थकी प्रतीति होती है उसका नाम लक्षणा है।

शब्दके तीन प्रकारकी शक्ति है, अभिधा, लक्षणा और व्यंजना। इन तीनों [illegible] अर्थ प्रतीत होता है। [illegible] लक्षणा और [illegible] अभिधा और [illegible] है। [illegible]

([illegible])

[illegible]

([illegible])

[illegible]

[illegible] होगा।

[illegible]

[illegible]

[illegible]

इन दोनों दोषोंका यथाक्रम दार्शनिक नाम अतिव्याप्ति और अव्याप्ति है। अतिव्याप्ति—अतिशय सम्बन्ध या अतिरिक्त सम्बन्ध। सम्बन्धयोग्य स्थलको अतिक्रम कर अर्थात् जिसके साथ सम्बन्ध होना उचित है उसके साथ न हो कर दूसरेके साथ होनेसे अतिव्याप्ति-दोष होता है। सम्बन्ध योग्य स्थलको अतिक्रम करना, ऐसा कहनेसे यह न समझना होगा, कि सम्बन्धयोग्य स्थलमें बिलकुल सम्बन्ध रहेगा ही नहीं। सम्बन्धयोग्य स्थलमें सम्बन्ध रह कर भी यदि सम्बन्धके अयोग्य स्थलमें सम्बन्ध हो, तो अतिव्याप्तिदोष हुआ करता है।

उक्त स्थलमें व्युत्पत्तिके अनुसार गमनशील गो पशुमें गो शब्दका प्रयोग होनेमें कोई भी बाधा नहीं होती, फिर गमनशील मनुष्यादिमें भी गो शब्दका प्रयोग हो सकता है। गमनशील मनुष्यादि गोशब्दका सम्बन्धयोग्य स्थल नहीं है। इस अयोग्य स्थलमें सम्बन्ध होनेके कारण अतिव्याप्तिदोष होता है।

अव्याप्ति शब्दसे असम्बन्ध समझा जाता है। किसी अर्थके साथ शब्दका सम्बन्ध न रहेगा यह असम्भव है। अतएव जहां पर सम्बन्ध रहना उचित है वहां सम्बन्ध नहीं रहनेसे ही असम्बन्ध सम्बन्ध समझना होगा। जैसे शयान या उपविष्ट गो पशु भी गो है, उस अवस्थामें भी उसके साथ गो शब्दका सम्बन्ध रहना उचित है, परन्तु गो शब्दके व्युत्पत्तिलभ्य अर्थके अनुसार शयनादि अवस्थामें गो पशुके साथ गो सम्बन्ध नहीं रह सकता इस कारण अव्याप्तिदोष होता है। गो शब्दको यौगिक कहनेसे उक्त प्रकारका अतिव्याप्ति और अव्याप्तिदोष होता है। अतएव गो शब्द यौगिक नहीं रूढ़ है।

कोई कोई प्रत्यय क्रिया करने योग्य तक समझा जाता है सही, किन्तु सभी प्रत्यय नहीं। साधारणतः क्रिया कर्त्ता ही समझा जाता है। यहां पर डोस् प्रत्ययका अर्थ क्रियाकर्त्ता है। इसलिये अव्याप्तिदोष होता है। क्रिया करने योग्य तक ही डोस् प्रत्ययका अर्थ है, यह यदि मान लिया जाय, तो प्रश्न यह हो सकता है, कि पाचक व्यक्ति जिस समय पाक नहीं करता उस समय भी उसे पाचक कहते हैं। क्योंकि, उस समय पाक नहीं करनेसे भी उसमें पाक करनेकी योग्यता है। इसी प्रकार शयान या उपविष्ट गो पशु उस समय यद्यपि गमन नहीं करता, तो भी गमन करनेकी योग्यता उसमें है। इस कारण शयनादिकालमें भी गो शब्दका प्रयोग हो सकता है। सुतरां गो शब्दके यौगिक होने पर भी अव्याप्तिदोष नहीं होता। इसके उत्तरमें यही कहना है, कि उक्त प्रकारसे थोड़ा बहुत अव्याप्ति दोषका परिहार भले ही हो सकता है, पर अतिव्याप्तिदोषका परिहार तो किसी हालतसे नहीं हो सकता। अतएव गो शब्दको रूढ़ मानना होगा।

गमनकर्त्ता यह अवयवार्थ (गमधातु और डोस् प्रत्ययका अर्थ) गोशब्दका व्युत्पत्ति निमित्तमात्र है; किन्तु प्रवृत्तिनिमित्त नहीं। गोशब्दका प्रवृत्तिनिमित्त गोत्वजाति है। जिस अर्थका अवलम्बन कर शब्द व्युत्पन्न होता है या शब्दकी व्युत्पत्तिके अनुसार जो अर्थ पाया जाता है उसे व्युत्पत्तिनिमित्त तथा जिस अर्थका अवलम्बन कर शब्दकी प्रवृत्ति अर्थात् प्रयोग होता है उसे प्रवृत्तिनिमित्त कहते हैं। अतएव गोत्वजाति या गोत्वजातिविशिष्ट व्यक्तिमें गो शब्दका प्रयोग होता है, इस कारण उस अर्थमें गो शब्दका सङ्केत स्वीकार किया गया है। यह सङ्केत गो इस वर्णावलीगत गो शब्दका घटक है, गम् धातु या डोस् प्रत्ययगत नहीं। पाचक शब्द यौगिकरूढ़ नहीं है। क्योंकि, पाचक इस वर्णावलीके किसी अर्थविशेषमें सङ्केत नहीं है। अवयव सङ्केत अर्थात् पच् धातु णुल् प्रत्ययके सङ्केत द्वारा ही पाककर्त्तारूप अर्थकी अवगति हो सकती है। समुदायका सङ्केत स्वीकार करनेका कोई कारण नहीं। इसलिये पाचक शब्द रूढ़ नहीं, यौगिक है।

पहले जिस सङ्केतका उल्लेख किया गया है, वह सङ्केत दो प्रकारका है, आजानिक और आधुनिक। जो सङ्केत बहुत दिनोंसे चला आता है, जो नित्य है उसे आजानिक तथा जो सङ्केत अनादिकालसे नहीं चला आता, बीच बीचमें परिवर्त्तित हो गया है उसे आधुनिक कहते हैं। आजानिक सङ्केतका दूसरा नाम शक्ति और आधुनिक सङ्केतका परिभाषा है। गोघटादि सङ्केत आजानिक तथा चैत्रमैत्रादि सङ्केत आधुनिक है। आजानिक सङ्केत शक्तिके अनुसार जो शब्द जो अर्थ

[illegible] करता है, [illegible] होता है। [illegible] करता है, [illegible] नहीं होता। [illegible] है। [illegible]

[illegible]

[illegible] है। [illegible] जाता है। [illegible] होती [illegible] है।

[illegible] है। [illegible] और [illegible] है। [illegible] और [illegible] है।

[illegible] है, [illegible] है। [illegible]

[illegible] है। [illegible] है। [illegible] और [illegible] है। [illegible]

[illegible] और [illegible] है। [illegible]

[illegible] है। [illegible]

[illegible] ([illegible]) [illegible] और [illegible] है। [illegible] है।

([illegible])

[illegible] ([illegible]) [illegible]

[illegible] ([illegible]) [illegible]

[illegible] ([illegible]) [illegible]

[illegible] ([illegible]) [illegible] ([illegible])

[illegible] ([illegible]) [illegible]

([illegible])

[illegible] ([illegible]) [illegible]

([illegible])

[illegible] ([illegible]) [illegible] और [illegible] है। [illegible]

[illegible]

थलनिवासी शाङ्खल राजपूतोंको पराजित और वशी-भूत किया था। सम्राट् महम्मद शाह लोदीने इस समय जब राजपूताने पर आक्रमण कर दिया, तब राणा उसके विरुद्ध खड़े हो गये। बेदनोर-दुर्गके सामने मुसलमान-सेनाके साथ राजपूतसेनाकी मुठभेड़ हुई। सैकड़ों पठान-सेना युद्धक्षेत्रमें खेत रही। जो कुछ बच गई वह हार स्वीकार जान ले कर भागी।

लक्षके राज्यकालमें विधर्मी मुसलमानोंने हिन्दूके पवित्र तीर्थ गयाधाम पर चढ़ाई कर दी। धर्मक्षेत्र गयापुरीका मुसलमान-कवलसे उद्धार करनेकी कामनासे राणा दलबलके साथ उस ओर रवाना हुए। इस युद्ध-यात्राके साथ तीर्थयात्रा करना भी उनका उद्देश्य था।

बहुत दिन राज्यशासन कर जब लक्षसिंह बूढ़े हुए, तब मेवाड़के भावी राणा चण्डको जामाता वरण कर मारवाड़पति रणमल्लने विवाह प्रस्तावके साथ नारियल भेजा। उस समय चण्ड राजसभामें उपस्थित नहीं था, किसी जरूरी काममें बाहर गये हुए थे। अतएव वृद्ध राजाने कहीं रणमल्ल गुस्सा न जायें, इस भयसे नारियलको ले लिया। उस कन्याके गर्भसे मुकुलजी-का जन्म हुआ। मुकुलजीने जब पांचवें वर्षमें कदम बढ़ाया, तब राणा उसके ऊपर प्रजा-पालनका भार सौंप कर जंगल चले गये। जितेन्द्रिय वीर चण्ड बालक मुकुलका पक्ष ले कर राजकार्य चलाने लगे।

लक्षणसिंह सनातन हिन्दूधर्मके विद्वेषाचारी इस्लाम धर्मावलम्बियोंके विरुद्ध गयाधाम गये। वहीं मुसल-मानोंके हाथसे उनकी मृत्यु हुई।

महाराणा लक्ष शिल्पोन्नतिकी बड़ी सहायता कर गये हैं। अला उद्दीनने विजातीय विद्वेषसे जिस मेवाड़-राज्यको श्मशानभूमिमें परिणत कर दिया था, राणाने उस मरुभूमिमें अमरापुरी सदृश एक नगरी बसा दी। उस नगरीको सुन्दर सुन्दर सौधमाला और मन्दिरसे परि-शोभित कर दिया। बहुत रुपया खर्च करके उन्होंने एक सुन्दर प्रासाद और ब्रह्मेश्वरकी उपासनाके लिये एक बड़ा भजन-मन्दिर बनवाया था। वह मन्दिर आज भी विद्यमान है। स्थानीय लोगोंका जलाभाव दूर करनेके लिये उन्होंने उक्त प्राचीर परिवेष्टित कुछ दिग्घी खुदवा कर राज्यकी शोभा बढ़ाई।

राणाके अनेक सन्तान सन्तति थी। चण्ड ही सब-से बड़े थे। किन्तु उन्हें पितृसिंहासन नहीं मिला था। आज कल अगुणा, पानोर और आरावल्लीके नाना प्रान्तवासी लूणावत् और दुल्लावत्-वंशीय सरदार लक्षके वंशधर कहलाते हैं।

लक्षा (सं० स्त्री०) लक्षयतीति लक्ष-अच्-टाप्। लक्ष, एक लाखकी संख्या।

लक्षान्तपुरी (सं० स्त्री०) एक प्राचीन नगरका नाम।

लक्षि (सं० स्त्री०) लक्ष्मी देखो। २ लक्ष्य देखो।

लक्षित (सं० त्रि०) लक्ष-क्त। १ आलोचित, विचारा हुआ। २ दृष्ट, देखा हुआ। ३ अंकित, बतलाया हुआ। ४ लक्षणाश्रय, जिस पर कोई लक्षण या चिह्न बना हो। ५ अनुमित, अनुमानसे समझा या जाना हुआ। (पु०) ६ वह अर्थ जो शब्दकी लक्षणाशक्तिके द्वारा ज्ञात होता है।

लक्षितव्य (सं० त्रि०) निर्देश्य, बतलाया हुआ।

लक्षितलक्षणा (सं० स्त्री०) लक्षिते लक्षणा। लक्षणाभेद, एक प्रकारकी लक्षणा। जहां लक्षित अर्थमें लक्षणा होती है उसीको लक्षितलक्षणा कहते हैं। लक्षणा देखो।

लक्षिता (सं० स्त्री०) लक्ष-क्त, स्त्रियां टाप्। परकीयान्तर्गत नायिकाभेद, वह परकीया नायिका जिसका गुप्त प्रेम उसकी सखियोंको मालूम हो जाय। यह नायिका पुंश्चलीभावनिपुण है।

उदाहरण—

"वद्मुखं बद्मुखं वद्मु पान् तदपि वा भूयात्।

मद्भवतु तद्भवतु वा विरुद्धस्य गोपनोपायः।" (रसमञ्जरी)

लक्ष्मी (सं० स्त्री०) एक वर्णवृत्त, इसके प्रत्येक चरणमें आठ रगण होते हैं। इसे गंगोदक, गंगाधर और खंजन भी कहते हैं।

लक्ष्मीमराय—लक्ष्मीसराय देखो।

लखनी—युक्तप्रदेशान्तर्गत एक जिला और नगर।

लखनऊ देखो।

लक्ष्मन् (सं० क्ली०) लक्षणसाधनेन लक्ष्यते इति वा लक्ष-मनिन्। १ चिह्न, निशान। २ प्रधान, मुख्य।

लक्ष्मण (सं० क्ली०) १ चिह्न, लक्षण। २ नाम। ३ सारस। (पु०) ४ कुरुराज दुर्योधनके एक पुत्रका नाम। (त्रि०) ५ श्रीविशिष्ट, जिसमें शोभा और कान्ति हो।

प्रतिपादन करता है, अनादिकालसे उस शब्दका उस अर्थमें प्रयोग होता है। आधुनिक सङ्केत या परिभाषाके अनुसार जो शब्द जो अर्थ प्रतिपादन करता है, उस अर्थमें उस शब्दका अनादिकालसे प्रयोग नहीं होता। क्योंकि, आधुनिक सङ्केत या परिभाषा व्यक्तिविशेषके इच्छानुसार परिकल्पित हुआ करती है। परिभाषाकी सृष्टि होनेसे पहले पारिभाषिक शब्दप्रयोग बिलकुल असम्भव है।

रूढ़ शब्द देखो।

इस प्रकार रूढ़ शब्दकी सिद्धिके लिये लक्षणा स्वीकृत हुई है। गोशब्दसे व्युत्पत्तिलभ्य अर्थ गमनशील मनुष्यादि न समझ कर गो-पशु तथा कुशल शब्दमें कुशग्राही न समझ कर दक्ष ऐसा अर्थ समझा जाता है। इस प्रकार जहां जहां रूढ़ शब्दकी सिद्धि होगी वहां लक्षणा होगी। प्रयोजन सिद्धिका विषय पहले ही लिखा जा चुका है।

साधारण भावमें लक्षणाका लक्षण कहा गया। यह लक्षणा फिर कई प्रकारकी है। साहित्यदर्पण, काव्यप्रकाश और सरस्वतीकण्ठाभरण आदिमें इसका विषय विशेष भावमें लिखा है। उपादानलक्षणा और लक्षणलक्षणा आदि भेदसे भी यह लक्षणा अनेक प्रकारकी है।

वाक्यार्थमें अन्वयबोधके लिये अर्थात् वाक्यको अर्थबोधक अन्वयसिद्धिके लिये जहां मुख्य अर्थ न ले कर दूसरा अर्थ लिया जाता है, वहां पर यह मुख्यार्थका उपादान हेतु हुआ है, इस कारण इसको उपादानलक्षणा कहते हैं। (साहित्यद० २।१७)

जहां दूसरेकी अन्वयसिद्धिके लिये मुख्य अर्थ अपना अंश अर्थात् स्वार्थ परित्याग करता है वहां यह लक्षणा होती है। यह लक्षणा उपलक्षणके कारण ही हुआ करती है, इसलिये इसका नाम लक्षणलक्षणा हुआ है। यह लक्षणा सारोपा और साध्यवसानाके भेदसे दो प्रकारकी है। (साहित्यद० २।१९)

इन सब लक्षणोंका भेद शब्द और अर्थापत्ति ले कर आलोचित हुआ है। शब्द और शब्दशक्ति देखो।

लखनादौन—१ मध्यप्रदेशके सिवनी जिलेकी एक तहसील। भूपरिमाण १५८३ वर्गमील है। २ उक्त तहसीलके अन्तर्गत एक बड़ा गांव।

लक्ष्मणालौह (सं० क्ली०) औषधविशेष। इसके बनानेकी तरकीब—लक्ष्मणामूल, हस्तिकर्ण पलाशमूल, शिलाजु, त्रिफला, त्रिकटु, चितामूल, मुथा, अश्वगन्धामूल प्रत्येक १ तोला, लौह १८ तोला, इन सबको अच्छी तरह मर्दन कर यह औषध तैयार करे। इसका अनुपान घी और मधु है। औषध सेवन करने बाद थोड़ा सा दूध पीना चाहिये। यह औषध वृष्यकर है। इसका व्यवहार करनेसे स्त्रियोंके कन्याप्रसव निवृत्त हो कर पुत्रप्रसव होता है। वाजीकरणाधिकारमें यह एक उत्तम औषध है।

(भैषज्यरत्ना० वाजीकरणाधि०)

लक्षणिन् (सं० त्रि०) १ लक्षण या चिह्नयुक्त, जिसमें कोई लक्षण या चिह्न हो। २ लक्षणज्ञ, लक्षण बतानेवाला।

लक्षणीय (सं० पु०) लक्षणा द्वारा ज्ञातव्य या बोधव्य, लक्षणा द्वारा जाना हुआ।

लक्षणोरु (सं० त्रि०) जंघेमें चिह्न या लक्षणयुक्त।

लक्षण्य (सं० त्रि०) १ लक्षणयुक्त, जिसमें कोई लक्षण हो। २ लक्षणार्ह, लक्षण जाननेवाला। ३ दैवलक्षणसम्पन्न आदर्श पुरुष। (हिना० ४७।१२०)

लक्षदत्त (सं० पु०) राजभेद, एक राजाका नाम।

(कथासरित्सा० ५।७८)

लक्षपुर (सं० क्ली०) एक प्राचीन नगरका नाम।

(दे० ५।१६)

लक्षसिंह (राणा)—मेवाड़के एक राणा, वीरवर हमीरके पौत्र और क्षेत्रसिंहके पुत्र। ये करीब करीब १३८३ ई० में पितृसिंहासन पर बैठे। राज्यभार ग्रहण करते ही इन्होंने पितृपुरुषोंका पदानुसरण करके विजयविलास-सुखका भोग करनेके लिये पहले मारवाड़राज्यके ऊपर दृष्टि डाली। विजयगढ़का पहाड़ी दुर्ग अधिकार कर उसे तहस नहस कर डाला तथा अपनी विजयकीर्त्तिके अक्षयलाभ स्वरूप उसके ऊपर बेदनोर-दुर्ग बनवाया। इस समय उनके अधिकृत जावर प्रदेशके अन्तर्गत प्रचुर मात्रामें चांदी और रांगेकी खानें मिलीं। उन खानोंसे चांदी निकाल कर इन्होंने राज्यका समृद्धिगौरव सौ गुना बढ़ा दिया था।

अनन्तर राणा लक्षने भारत राज्यके अन्तर्गत गया-

चलनिवासी शाङ्कल राजपूतोंको पराजित और पदानत किया था। सम्राट् महम्मद शाह लोदीने इस समय जब राजपूताने पर आक्रमण कर दिया, तब राणा उसके विरुद्ध खड़े हो गये। बेदनोर-दुर्गके सामने मुसलमान-सेनाके साथ राजपूतसेनाकी मुठभेड़ हुई। सैकड़ों पठान-सेना युद्धक्षेत्रमें खेत रही। जो कुछ बच गई वह हार स्वीकार जान ले कर भागी।

लक्षके राज्यकालमें विधर्मी मुसलमानोंने हिन्दूके पवित्र तीर्थ गयाधाम पर चढ़ाई कर दी। धर्मक्षेत्र गयापुरीका मुसलमान-कवलसे उद्धार करनेकी कामनासे राणा दलबलके साथ उस ओर रवाना हुए। इस युद्ध-यात्राके साथ तीर्थयात्रा करना भी उनका उद्देश्य था।

बहुत दिन राज्यशासन कर जब लक्षसिंह बूढ़े हुए, तब मेवाड़के भावी राणा चण्डको जामाता वरण कर मारवाड़पति रणमल्लने विवाह प्रस्तावके साथ नारियल भेजा। उस समय चण्ड राजसभामें उपस्थित नहीं था, किसी जरूरी काममें बाहर गये हुए थे। अतएव वृद्ध राजाने कहीं रणमल्ल गुस्सा न जावें, इस भयसे नारियलको ले लिया। उस कन्याके गर्भसे मुकुलजीका जन्म हुआ। मुकुलजीने जब पांचवें वर्षमें कदम बढ़ाया, तब राणा उसके ऊपर प्रजा-पालनका भार सौंप कर जंगल चले गये। जितेन्द्रिय वीर चण्ड बालक मुकुलका पक्ष ले कर राजकार्य चलाने लगे।

लक्षणसिंह सनातन हिन्दूधर्मके विरुद्धाचारी इस्लाम धर्मावलम्बियोंके विरुद्ध गयाधाम गये। वहीं मुसलमानोंके हाथसे उनकी मृत्यु हुई।

महाराणा लक्ष शिल्पोन्नतिकी बड़ी सहायता कर गये हैं। अला उद्दीनने विजातीय विद्वेषसे जिस मेवाड़-राज्यको श्मशानभूमिमें परिणत कर दिया था, राणाने उस मरुभूमिमें अमरापुरी सदृश एक नगरी बसा दी। उस नगरीको सुन्दर सुन्दर सौधमाला और मन्दिरसे परिशोभित कर दिया। बहुत रुपया खर्च करके उन्होंने एक सुन्दर प्रासाद और परमेश्वरकी उपासनाके लिये एक बड़ा ब्रह्म-मन्दिर बनवाया था। यह मन्दिर आज भी विद्यमान है। स्थानीय लोगोंका जलाभाव दूर करनेके लिये उन्होंने उक्त प्राचीर परिवेष्टित कुछ दिग्घी खुदवा कर राज्यकी शोभा बढ़ाई।

राणाके अनेक सन्तान सन्तति थी। चण्ड ही सबसे बड़े थे। किन्तु उन्हें पितृसिंहासन नहीं मिला था। आज कल अगुणा, पानोर और आरावल्लीके नाना प्रान्तवासी लूणावत् और दुलावत्-वंशीय सरदार लक्षके वंशधर कहलाते हैं।

लक्षा (सं० स्त्री०) लक्षयतीति लक्ष-अच्-टाप्। लक्ष, एक लाखकी संख्या।

लक्षाव्हपुरी (सं० स्त्री०) एक प्राचीन नगरका नाम।

लक्षि (सं० स्त्री०) लक्ष्मी देखो। २ लक्ष्य देखो।

लक्षित (सं० त्रि०) लक्ष क्त। १ आलोचित, विचारा हुआ। २ दृष्ट, देखा हुआ। ३ अंकित, बतलाया हुआ। ४ लक्षणाश्रय, जिस पर कोई लक्षण या चिह्न बना हो। ५ अनुमित, अनुमानसे समझा या जाना हुआ। (पु०) ६ वह अर्थ जो शब्दकी लक्षणाशक्तिके द्वारा ज्ञात होता है।

लक्षितव्य (सं० त्रि०) निर्देश्य, बतलाया हुआ।

लक्षितलक्षणा (सं० स्त्री०) लक्षिते लक्षणा। लक्षणाभेद, एक प्रकारकी लक्षणा। जहां लक्षित अर्थमें लक्षणा होती है उसीको लक्षितलक्षणा कहते हैं। लक्षणा देखो।

लक्षिता (सं० स्त्री०) लक्ष क्त, स्त्रियां टाप्। परकीयान्तर्गत नायिकाभेद, वह परकीया नायिका जिसका गुप्त प्रेम उसकी सखियोंको मालूम हो जाय। यह नायिका पुंश्चलीभावनिपुण है।

उदाहरण—

"वद्मस्तं वद्मूतं वद्मूयान् तदपि वा भूयात्।

मद्भावद्भावं वा विफलस्तव गोपनोद्यमः।" (रसमञ्जरी)

लक्ष्मी (सं० स्त्री०) एक वर्णवृत्त, इसके प्रत्येक चरणमें आठ रगण होते हैं। इसे गंगोदक, गंगाधर और खंजन भी कहते हैं।

लक्ष्मीमराय—लक्ष्मीश्वराय देखो।

लक्ष्मौ—युक्तप्रदेशान्तर्गत एक जिला और नगर।

लखनऊ देखो।

लक्ष्मन् (सं० क्ली०) लक्ष्यतेऽनेन लक्ष्यते इति वा लक्ष-मनिन्। १ चिह्न, निशान। २ प्रधान, मुख्य।

लक्ष्मण (सं० क्ली०) १ चिह्न, लक्षण। २ नाम। ३ सारस। (पु०) ४ कुरुराज दुर्योधनके एक पुत्रका नाम। (त्रि०) ५ श्रीयुक्त, जिसमें शोभा और कान्ति हो।

लक्ष्मण—रामायणोक्त एक अद्वितीय वीर और रघुकुल-तिलक श्रीरामचन्द्रके छोटे वैमात्रेय भाई। सुमित्राके गर्भसे उत्पन्न होनेके कारण इनका एक नाम सौमित्रि भी था। लङ्कायुद्धमें इन्होंने इन्द्रविजयी मेघनादको मारा था।

अध्यात्मरामायणमें लिखा है, कि अत्यन्त सुलक्षण सम्पन्न होनेके कारण इनका नाम लक्ष्मण हुआ था।

"सम्पन्नलक्षणो नाम लक्ष्मण' इत्युदाहृतम्।
शत्रुघ्नं शत्रुहन्तारं गुरुरभाषत॥

(अध्यात्मरामा० १।३।४१)

रामायणके बालकाण्डमें लिखा है, कि लक्ष्मण रामचन्द्रके प्राण समान थे। राम जब बैठते तब ये भी बैठते थे, जहां राम जाते, लक्ष्मण भी उनके साथ हो लेते थे, सो जाने पर पैरके समीप बैठते थे। आजन्म छायाकी तरह भाईके अनुगामी थे। रामके प्रसादके सिवा और किसी उपादेय खाद्यमें उनकी तृप्ति नहीं होती थी। राम जब घोड़े पर आखेटको निकलते, तब लक्ष्मण भी धनुर्बाण हाथमें लिये उनके शरीररक्षक रूपमें पीछे पीछे चलते थे। जिस दिन विश्वामित्रके साथ राम ताड़कादि राक्षसका वध करनेके लिये निविड़ वनपथसे जा रहे थे उस दिन भी कायाच्छायावत् लक्ष्मण उनके साथ थे। भ्रातृभक्तिके विषयमें उनकी जितनी प्रशंसा की जाय, थोड़ी है। इस समय वनपथमें जाते समय दोनों भाइयोंको अन्न-कष्ट होता था, इस कारण महामुनि विश्वामित्रने कष्ट दूर करनेके लिये एक मन्त्रदान किया। पीछे दोनों भाइयोंने गौतमाश्रम जा कर अहल्याका उद्धार किया अनन्तर जनक-भवनमें जा कर शिवका धनुर्भङ्ग तोड़ा। रामने सीताका और लक्ष्मणने ऊर्मिलाका पाणिग्रहण किया। ऊर्मिलाके गर्भसे लक्ष्मणके अङ्गद और चन्द्रकेतु नामक दो पुत्र हुए।

रामका अभिषेक संवाद सुन कर सभी आनन्द सागरमें गोते खाते थे, पर लक्ष्मणके चेहरे पर जरा भी प्रसन्नता न थी, वे नीरव हो कर रामकी छायाकी तरह पीछे पीछे चलते थे। राम लक्ष्मणको आत्माकी तरह अपनी तरह जानते थे। अभिषेक संवादसे सुखी हो उन्होंने सबसे पहले लक्ष्मणको आलिङ्गन कर कहा, "मैं और राज्य तुम्हारे लिये ही चाहता हूँ।"

लक्ष्मणके दोनों नाम्न दशरथके मारे लाल हो गये लक्ष्मण अल्पभाषी थे सही, पर रामके प्रति जब कोई अन्याय व्यवहार करता, तब वे क्षमा करना नहीं जानते थे। जिस दिन कैकेयीने अभिषेकमहोत्सव-प्रवृत्त रामचन्द्रको सुखतुल्य वनवासकी आज्ञा सुनाई, उस दिन रामकी मूर्ति प्रशान्त वैराग्यको ज्योतिसे भूषित हो उठी। लेकिन लक्ष्मणने क्रुद्ध हो अश्रुपूर्ण नेत्रोंसे उनका पीछा किया था।

इस अन्याय आदेशको वे सहन न कर सके। रामचन्द्रने जिन्हें अकुण्ठित चित्तसे क्षमा कर दिया है, लक्ष्मण उन्हें क्षमा न कर सके। रामका वनवास ले कर इन्होंने कौशल्याके सामने बहुत बकझक की थी। आखिर क्रुद्ध हो राक्षस अयोध्यापुरीको नष्ट करना चाहा। इन्होंने रामकी कर्त्तव्यबुद्धिकी प्रशंसा नहीं की, इस कदर्य आदेशका पालन करना धर्मसङ्गत नहीं है, इस प्रकार उन्हें बार बार समझाया था।

लक्ष्मण रामके साथ वन चले। इस आत्मत्यागी देवताके लिये किसीने विलाप नहीं किया। यहां तक कि सुमित्राने भी विदाय-कालमें पुत्रके लिये आंसू नहीं बहाया था, बल्कि दृढ़ और सौहार्द्र कण्ठसे लक्ष्मणसे कहा था, 'पुत्र! जाओ, स्वच्छन्द मनसे वन जाओ, रामको दशरथके समान देखना, सीताको मेरे समान मानना तथा वनको अयोध्या समझना।' इस प्रकार उपदेश दे कर सुमित्राने लक्ष्मणको विदा किया था।

आरण्यजीवनमें जो कुछ कठोरता थी, उसका अधिक भाग लक्ष्मणके ऊपर था। लक्ष्मणने बड़े आह्लादपूर्वक इसे अपने सिर पर ले लिया था। पहाड़ पर पुष्पित वन्यलताओंसे पुष्प तोड़ कर रामचन्द्र सीताके कानोंको सजाते थे, पीछे उठ कर सीताके साथ मन्दाकिनीमें स्नान करते थे अथवा गोदावरीतीरस्थ शैलके वक्षमें सीताकी आंख पर अञ्जन लगा कर सुलाते जाते थे। इधर भोग-संन्यासी लक्ष्मण संसारसे मुंह मोड़ कर पर्णशाला बनाते थे, कभी हाथमें कुठार ले कर आश्रम... काटते और कभी ईंधन और पैदल... जुटा कर... व्यवस्था करते थे। कभी ... पञ्चतीर्थिक शरीरसे

कलसीमें जल भर कर लाते थे। फिर कभी चित्रकूट पर्वतकी पर्णशालासे सरोवर-तट जानेके पथको चिह्नित करनेके लिये ऊँची तरुशाखा पर कपड़े बाँध देते थे। कभी कोमल घासके अंकुर और वृक्षपर्णोंसे रामकी शय्या बना कर उनकी बाट जोहते थे। कभी वे कालिन्दी पार करनेके लिये बेड़े बनाते और उस पर सीताके बैठनेके लिये सुन्दर आसन बिछा देते थे। इन संयमी स्नेहवीरने भ्रातृसेवामें अपनी निजसत्ता खो दी थी। रामचन्द्रने पञ्चवटी जा कर लक्ष्मणसे कहा था, "इस सुन्दर तरुराजिपूर्ण प्रदेशमें पर्णशालाके लिये एक उत्तम स्थान चुनो।' लक्ष्मणने कहा, 'आपको जो स्थान पसन्दमें आवे, वही दिखला दीजिये। सेवकके ऊपर चुननेका भार मत दीजिये।" रामचन्द्रने जब यह स्थान बता दिया, तब लक्ष्मण खंता हाथमें लिये जमीनको चौरस करने लगे।

एक दिन काले साँपोंसे भरे हुए गभीर अरण्यमें भूख और राहकी थकावटसे सीताका चेहरा उदास देख राम बहुत दुःखित हुए। वे भी दुःखमयी रातका कष्ट सह न सके। वे लक्ष्मणको अयोध्या लौट जानेके लिये बार बार कहने लगे, "तुम अयोध्या लौट जाओ, शोककी अवस्थामें सान्त्वना दे कर मेरी माताओंका पालन करना।" रामकी ऐसी कातरोक्तिसे दुःखित हो लक्ष्मणने कहा, "मैं पिता, सुमित्रा, शत्रुघ्न, यहां तक कि स्वर्गको भी तुमसे बढ़ कर नहीं समझता।"

वहां एक दिन दशाननकी बहन सूर्पणखा आई और रामकी प्रेमभिखारिणी हुई। रामने उसे लक्ष्मणके पास भेज दिया। संयमी, जितेन्द्रिय और अनाहार-क्लिष्ट लक्ष्मणको रमणीप्रेम बिलकुल अच्छा न लगा। उन्होंने सूर्पणखाके नाक कान काट कर उसे निर्लज्जताका पुरस्कार दिया। सूर्पणखाकी प्रार्थनासे राक्षस सेनापति खरदूषण वहां आ धमका। दोनों भाईके नुकीले तीरसे राक्षसोंका निर्मूल हुआ। सूर्पणखाके मुखसे सीताके रूपलावण्यकी बात सुन कर दशानन दण्डकारण्य आया और सीताको हर ले गया। स्वर्ण-मृगरूपधारी मारीच रामके शरसे यमपुर सिधारा।

कबन्ध मरा, जटायु भी मरा; लक्ष्मणने समाधि-स्थल खोद कर कबन्ध और जटायुका सत्कार किया। दिन-रात उन्हें जरा भी चैन नहीं—वन आते समय इन्होंने कहा था, "देवी सीताके साथ मैं गिरिसानुदेशमें विहार करूंगा, जागरित हों या निद्रित, उनका काम मैं ही कर दूंगा, खंता, कुठार और धनुष हाथोंमें लिये मैं उनके साथ साथ घूमूंगा।" वनवासके शेष वर्षोंमें उन पर विपत्तिका पहाड़ टूट पड़ा; रावण सीताको हर ले गया। सीताके शोकसे राम पागल हो गये। भाईका यह दारुण कष्ट देख कर लक्ष्मण भी पागलकी तरह सीताको इधर उधर खोजने लगे। रामकी आज्ञासे वे गोदावरीके किनारे उन्हें खोजने आये।

इसके बाद दनु नामक शापग्रस्त यक्षके कहनेसे राम लक्ष्मणके साथ पम्पाके किनारे सुग्रीवकी खोजमें गये। सुग्रीवने राजकुमारको आते देख हनुमान्‌को उनके पास भेजा। हनुमान्‌ने उनका परिचय पूछा और बड़े सम्मान-पूर्वक कहा, "आप दोनों भाई दिग्विजयी-से मालूम होते हैं, तब फिर आपने चीर और वल्कल क्यों धारण किया है? आपकी बड़ी बड़ी भुजा सब भूषणोंसे भूषित होने योग्य थी, पर एक भी भूषण नहीं दिखाई देता, सो क्यों?' यह सुन कर लक्ष्मण बहुत दुःखित हुए। जो निरवच्छिन्न मौनभावसे स्नेहार्द्र हृदय वहन करते आये हैं, आज वे स्नेहके छन्द और भावको रोक न सके। परिचय देनेके बाद उन्होंने कहा, 'दनुके कहनेसे आज हम दोनों भाई सुग्रीवके शरणापन्न होने आये हैं। जिन रामने शरणागतोंको अकुण्ठित चित्तसे प्रचुर धन दान किया है, त्रिभुवन-विख्यात दशरथके ज्येष्ठ पुत्र मेरे गुरु वह जगत्-पूज्य रामचन्द्र आज वानराधिपतिकी शरण लेनेके लिये यहां पड़े हैं। सर्वलोक जिनका आश्रय पा कर कृतार्थ होता था, जो प्रजापुञ्जके रक्षक और पालक थे, आज वे आश्रय-भिक्षा करके सुग्रीवके निकट उपस्थित हैं। वे शोकाभिभूत और आर्त्त हैं, सुग्रीव निश्चय ही प्रसन्न हो कर उन्हें शरण देंगे।" इतना कहते कहते लक्ष्मणका चिरनिरुद्ध अश्रु बहने लगा। वे रो कर मौन हो गये। रामकी दुरवस्था देख कर वे किंकर्तव्यविमूढ़ हो गये, उनका दृढ़ चरित्र आर्द्र और करुण हो गया।

अशोक-वनमें हनुमान्‌से सीताने कहा था, 'महामत

लक्ष्मण—रामायणोक्त एक अद्वितीय वीर और रघुकुल-तिलक श्रीरामचन्द्रके छोटे वैमात्रेय भाई। सुमित्राके गर्भसे उत्पन्न होनेके कारण इनका एक नाम सौमित्रि भी था। लङ्कायुद्धमें इन्होंने इन्द्रविजयी मेघनादको मारा था।

अध्यात्मरामायणमें लिखा है, कि अत्यन्त सुलक्षण सम्पन्न होनेके कारण इनका नाम लक्ष्मण हुआ था।

'लक्षणाढ्यतो नाम लक्ष्मणं' इति गुणान्वितम्।
शत्रुघ्नं शत्रुहन्तारमेवं गुरुरभाषत॥

(अध्यात्मरामा० १।३।४१)

रामायणके बालकाण्डमें लिखा है, कि लक्ष्मण रामचन्द्रके प्राण समान थे। राम जब बैठते तब वे भी बैठते थे, जहां राम जाते, लक्ष्मण भी उनके साथ हो लेते थे, सो जाने पर पैरके समीप बैठते थे। आजन्म छायाकी तरह भाईके अनुगामी थे। रामके प्रसादके सिवा और किसी उपादेय वस्तुसे उनको तृप्ति नहीं होती थी। राम जब घोड़े पर आखेटको निकलते, तब लक्ष्मण भी धनुर्बाण हाथमें लिये उनके शरीररक्षक रूपमें पीछे पीछे चलते थे। जिस दिन विश्वामित्रके साथ राम ताड़कादि राक्षसका वध करनेके लिये निविड़ वनपथसे जा रहे थे उस दिन भी काकपक्षधर लक्ष्मण उनके साथ थे। भ्रातृभक्तिके विषयमें उनकी जितनी प्रशंसा की जाय, थोड़ी है। इस समय वनपथमें जाते समय दोनों भाइयोंको क्षुत्-कष्ट होता था, इस कारण महामुनि विश्वामित्रने कष्ट दूर करनेके लिये एक मन्त्रदान किया। पीछे दोनों भाइयोंने गौतमाश्रम जा कर अहल्याका उद्धार किया अनन्तर जनकभवनमें जा कर शिवका धनुष तोड़ा। रामने सीताका और लक्ष्मणने ऊर्मिलाका पाणिग्रहण किया। ऊर्मिलाके गर्भसे लक्ष्मणके अङ्गद और चन्द्रकेतु नामक दो पुत्र हुए।

रामका अभिषेक संवाद सुन कर मानो आनन्द सागरमें गोते खाते थे, पर लक्ष्मणके चेहरे पर जरा भी प्रसन्नता न थी, वे नीरव हो कर रामकी छायाकी तरह पीछे पीछे चलते थे। राम लक्ष्मणको प्राणोंका हृदय बहिः तरह जानते थे। अभिषेक संवादसे सुखी हो उन्होंने सबसे पहले लक्ष्मणको आलिङ्गन कर कहा, 'मैं जीवन और राज्य तुम्हारे लिये ही चाहता हूं।' यह सुन कर लक्ष्मणके दोनों गाल प्रसन्नताके मारे लाल हो गये। लक्ष्मण क्षमाशाली थे सही, पर रामके प्रति जब कोई अन्याय व्यवहार करता, तब वे क्षमा करना नहीं जानते थे। जिस दिन कैकेयीने अभिषेकमहोत्सवमग्न प्रभु रामचन्द्रको सुदुस्तर वनवासकी आज्ञा सुनाई, उस दिन रामकी मूर्ति हठात् वैराग्यकी ज्योतिसे मुखरित हो उठी। लेकिन लक्ष्मणने क्रुद्ध हो अग्निपूर्ण नेत्रोंसे इनका पीछा किया था।

इस अन्याय आदेशको वे सहन न कर सके। रामचन्द्रने जिन्हें अकुण्ठित चित्तसे क्षमा कर दिया है, लक्ष्मण उन्हें क्षमा न कर सके। रामका वनवास सुन कर इन्होंने कौशल्याके सामने बहुत बकझक की थी। आखिर क्रुद्ध हो समस्त अयोध्यापुरीको नष्ट करना चाहा। इन्होंने रामकी कर्त्तव्यबुद्धिकी प्रशंसा नहीं की, इस गर्हित आदेशका पालन करना धर्मसङ्गत नहीं है, इस प्रकार उन्हें बार बार समझाया था।

लक्ष्मण रामके साथ वन चले। इस भारतवासी देवताके लिये किसीने विलाप नहीं किया। यहां तक कि सुमित्राने भी विदाय-कालमें पुत्रके लिये आंसू नहीं बहाया था, बल्कि दृढ़ और गम्भीर कण्ठसे लक्ष्मणको कहा था, 'पुत्र! जाओ, स्वच्छन्द मनसे वन जाओ, रामको दशरथके समान देखना, सीताको मेरे समान मानना तथा वनको अयोध्या समझना।' इस प्रकार उपदेश दे कर सुमित्राने लक्ष्मणको विदा किया था।

आरण्यजीवनमें जो कुछ कठोरता थी, उसका अधिक भाग लक्ष्मणके ऊपर था। लक्ष्मणने बड़े आह्लादपूर्वक उसे अपने सिर पर ले लिया था। पहाड़ पर पुष्पित वन्यलताओंसे पुष्प तोड़ कर रामचन्द्र सीताके बालोंको सजाते थे; कभी जा कर सीताके साथ मन्दाकिनीमें स्नान करते थे अथवा गोदावरीतीरस्थ वनके वृक्षमें सीताकी गोद पर मस्तक रख कर सुखसे सोते थे। इधर भीम-संन्यासी लक्ष्मण संसारसे नहीं और पर्ण-शाला बनाते थे, कभी हाथमें कुठार ले कर शाखा-प्रशाखा काटते थे, कभी भैंस और बैलका सूखा गोबर ढूंढ कर अग्नि जलानेकी व्यवस्था करते थे। कभी शीतकालकी चांदनी रातको पर्णकुटीर द्वारदेशमें

कलसोंमें जल भर कर लाते थे। फिर कभी चित्रकूट पर्वतकी पर्णशालासे सरोवर-तट जानके पथको चिह्नित करनेके लिये ऊंची तरुशाखा पर कपड़े बांध देते थे। कभी कोमल तृणके अंकुर और वृक्षपर्णसे रामकी शय्या बना कर उनकी बाट जोहते थे। कभी वे कालिन्दी पार करनेके लिये बेड़े बनाते और उस पर सीताके बैठनेके लिये सुन्दर आसन बिछा देते थे। इन संयमी स्नेहवीरने भ्रातृसेवामें अपनी निजसत्ता खो दी थी। रामचन्द्रने पञ्चवटी जा कर लक्ष्मणसे कहा था, "इस सुन्दर तरु-राजिपूर्ण प्रदेशमें पर्णशालाके लिये एक उत्तम स्थान चूनो।' लक्ष्मणने कहा, 'आपको जो स्थान पसन्दमें आवे, वही दिखला दीजिये। सेवकके ऊपर चुननेका भार मत दीजिये।" रामचन्द्रने जब वह स्थान बता दिया, तब लक्ष्मण खंता हाथमें लिये जमीनको चौरस करने लगे।

एक दिन काले सांपोंसे भरे हुए गभीर अरण्यमें भूख और राहकी थकावटसे सीताका चेहरा उदास देख राम बहुत दुःखित हुए। वे भी दुःखमयी रातका कष्ट सह न सके। वे लक्ष्मणको अयोध्या लौट जानेके लिये बार बार कहने लगे, "तुम अयोध्या लौट जाओ, शोककी अवस्थामें सान्त्वना दे कर मेरी माताओंका पालन करना।" रामकी ऐसी कातरोक्तिसे दुःखित हो लक्ष्मण-ने कहा, 'मैं पिता, सुमित्रा, शत्रुघ्न, यहां तक कि स्वर्ग-को भी तुमसे बढ़ कर नहीं समझता।"

यहां एक दिन दशाननकी बहन शूर्पणखा आई और रामकी प्रेमभिखारिणी हुई। रामने उसे लक्ष्मणके पास भेज दिया। संयमी, जितेन्द्रिय और अनाहार-क्लिष्ट लक्ष्मणको रमणीप्रेम बिलकुल अच्छा न लगा। उन्होंने शूर्पणखाके नाक कान काट कर उसे निर्लज्जताका पुरस्कार दिया। शूर्पणखाकी प्रार्थनासे राक्षस सेना-पति खरदूषण वहां आ धमका। दोनों भाईके तुर्णसे तीरसे राक्षसोंका निर्मूल हुआ। शूर्पणखाके मुखसे सीताके रूपलावण्यकी बात सुन कर दशानन दण्डका-रण्य आया और सीताको हर ले गया। स्वर्ण-मृगरूप-धारी मारीच रामके शरसे यमपुर सिधारा।

कबन्ध मरा, जटायु भी मरा; लक्ष्मणने समाधि-स्थल खोद कर कबन्ध और जटायुका सत्कार किया। दिन-रात उन्हें जरा भी चैन नहीं—वन आते समय इन्होंने कहा था, "देवी सीताके साथ मैं गिरिसानुदेशमें विहार करूंगा, जागरित हों या निद्रित, उनका काम मैं ही कर दूंगा, खंता, कुठार और धनुष हाथमें लिये मैं उनके साथ साथ घूमूंगा।" वनवासके शेष वर्षमें उन पर विपद्का पहाड़ टूट पड़ा; रावण सीताको हर ले गया। सीताके शोकसे राम पागल हो गये। भाईका यह दारुण कष्ट देख कर लक्ष्मण भी पागलकी तरह सीताको इधर उधर खोजने लगे। रामकी आज्ञासे वे गोदावरीके किनारे उन्हें खोजने आये।

इसके बाद दनु नामक शापग्रस्त पक्षके कहनेसे राम लक्ष्मणके साथ पम्पाके किनारे सुग्रीवकी खोजमें गये। सुग्रीवने राजकुमारोंको आते देख हनुमान्‌को उनके पास भेजा। हनुमान्‌ने उनका परिचय पूछा और बड़े सम्मान-पूर्वक कहा, "आप दोनों भाई दिग्विजयीसे मालूम होते हैं, तब फिर आपने चीर और वल्कल क्यों धारण किया है? आपकी बड़ी बड़ी भुजा सब भूषणोंसे भूषित होने योग्य थी, पर एक भी भूषण नहीं दिखाई देता, सो क्यों?' यह सुन कर लक्ष्मण बहुत दुःखित हुए। जो चिरदिन मौनभावसे स्नेहार्द्र हृदय वहन करते आये हैं, आज वे स्नेहके छन्द और आवाको रोक न सके। परिचय देने-के बाद उन्होंने कहा, 'दनुके कहनेसे आज हम दोनों भाई सुग्रीवके शरणापन्न होने आये हैं। जिन रामने शरणा-गतोंको अकुण्ठित चित्तसे प्रचुर धन दान किया है, त्रिभु-वन-विख्यात दशरथके ज्येष्ठ पुत्र मेरे गुरु वह जगत्-पूज्य रामचन्द्र आज वानराधिपतिकी शरण लेनेके लिये यहां पड़े हैं। सर्वलोक जिनका आश्रय पा कर कृतार्थ होता था, जो प्रजापुञ्जके रक्षक और पालक थे, आज वे आश्रय-भिक्षा करके सुग्रीवके निकट उपस्थित हैं। वे शोकाभिभूत और आर्त हैं, सुग्रीव निश्चय ही प्रसन्न हो कर उन्हें शरण देंगे।" इतना कहते कहते लक्ष्मणका चिरनिरुद्ध अश्रु बहने लगा। वे रो कर मौन हो गये। रामकी दुरवस्था देख कर वे किंकर्तव्यविमूढ़ हो गये, उनका दृढ़ चरित्र आर्द्र और करुण हो गया।

अशोक-वनमें हनुमान्‌से सीताने कहा था, 'लक्ष्मण

मुझसे छूट कर भागने लगते हैं।' रावणकी शक्तिसे विद्ध लक्ष्मण जिस दिन युद्धभूमिमें मूर्च्छित हो गये थे, उस दिन राम आकुल भावसे जिस प्रकार अपनी रक्षा करते हैं, उसी प्रकार छोटे भाई लक्ष्मणको अपनी गोदमें लिटा कर उनकी रक्षा करते थे:—रावणका असंख्य शर रामके शरीरको छिन्न भिन्न कर रहा था। राम उस ओर जरा भी दृष्टि न फेर कर अश्रुपूर्ण नेत्रोंसे लक्ष्मणकी रक्षा कर रहे थे। अनन्तर वानर सेनाके लक्ष्मणकी रक्षाका भार ग्रहण करने पर वे युद्धमें प्रवृत्त हुए। रावण भाग चला। पीछे रामचन्द्रने मृतकल्प भ्राताको अति शोकाकुलभावसे आलिङ्गन कर कहा, 'तुमने जिस प्रकार वनमें मेरा अनुगमन किया था, आज मैं भी उसी प्रकार यमालय तक तुम्हारा अनुगमन करूंगा। तुम्हारे बिना मैं जीवन धारण नहीं कर सकता। देश देशमें स्त्री और मित्र मिल सकता है, पर ऐसा कोई देश देखनेमें नहीं आता, जहाँ तुम्हारे समान भाई, मन्त्री और सहाय मिलता हो। भाई! उठो, आंख खोलो, मेरा दुःख देखो। जब कभी मैं पर्वत पर या वनमें शोकार्त, प्रमत्त और विषण्ण होता था, तब तुम ही प्रबोध वाक्यसे मुझे सान्त्वना देते थे। अभी क्यों इस प्रकार नीरव हो गये हो?'

रामायणमें युद्धमें वीरवर लक्ष्मण बलपौरुष और साहसका अच्छा परिचय दे गये हैं। सहयोगी सेनापतियोंके रूपमें युद्ध करनेके सिवा इन्होंने अपने भुजबलसे अतिकाय, इन्द्रजित् आदिको यमपुर भेजा था। मेघनादको मारना उनका कर्तृत्व था। चौदह वर्ष ब्रह्मचारी और जितेन्द्रिय नहीं होनेसे इन्द्रजित्‌को कोई मार नहीं सकता, ऐसा वर था। लक्ष्मणने वनवासकालमें उस व्रतका पालन किया था। ताड़का-निधनकालमें विश्वामित्र प्रदत्त मन्त्र ही उस भगवान् रुद्रके निधनमें सहाय हुआ था।

रामके आज्ञापालनमें लक्ष्मणने कभी भी मुंह नहीं मोड़ा। न्यायसङ्गत हो या न हो, लक्ष्मण भाईकी आज्ञाका अक्षरशः पालन कर गये हैं। राक्षसोंका विनाश कर जिस दिन रामने सीताको विपुल जनसंघके मध्य हो कर कठोर भाषामें कहा था, उस दिन सीता मानो मर गई थीं, उनका सर्वाङ्ग कम्पित हो रहा था। लक्ष्मण यह दृश्य देख कर व्यथित हो गये, किन्तु रामके कार्यका उन्होंने प्रतिवाद नहीं किया। जब सतीत्व परीक्षाके समय सीता अग्निमें कूद पड़नेके लिये तैयार हो गईं, तब उन्होंने लक्ष्मणसे चिता बनाने कहा। लक्ष्मणने रामका अभिप्राय समझ कर सजल-नेत्रोंसे चिता बनाया, जरा भी प्रतिवाद नहीं किया। भ्रातृ-स्नेहसे वे स्वीय अस्तित्वशून्य हो गये थे। सीताका उद्धार कर राम अयोध्याके राजा हुए। लक्ष्मणने सानुभक्ति-पूर्वक उनके सिर पर छत्र थामा था। वे राजकार्यमें भाईकी सहायता करते थे। कुछ दिन बाद प्रजाको जब सीताके चरित्रसम्बन्धमें सन्देह हुआ, तब रामने उन्हें वनवास देनेकी सलाह दी। लक्ष्मण यह गुरुभार ले कर गर्भवती सीतादेवीको वाल्मीकिके आश्रममें रख आये। इस समयसे लक्ष्मणकी चित्तविकृति हुई। अश्वमेध यज्ञके समय वे ही महामुनिके आश्रमसे सीतादेवीको लाने गये। सीताके पाताल-प्रवेशके बाद एक दिन कालपुरुष आ कर रामचन्द्रसे मिले। उस समय रामचन्द्रने लक्ष्मणको द्वारपाल बनाया और कहा कि गुप्तवार्ता-गृहमें किसीको घुसने न देना। अकस्मात् क्रोधमूर्ति दुर्वासा रामचन्द्रसे मिलने आये। लक्ष्मणने रामचन्द्रकी आज्ञा सुना कर उन्हें भीतर जानेसे रोका। दुर्वासा शाप देनेको तैयार हो गये। इस पर रामसे अनुमति लेनेके लिये लक्ष्मणने घरमें प्रवेश किया। प्रतिज्ञावश रामने लक्ष्मणकी निन्दा की। लक्ष्मणने सरयू-जलमें डूब कर प्राण गंवाये।

अध्यात्मरामायणमें लक्ष्मणको 'शेष'का अवतार कहा है।

लक्ष्मणके चरित्रमें आत्मा पुरुषकारकी महिमा देखी जाती है। एक दिन लक्ष्मणने रामसे कहा, "जलसे निकली हुई मछलीकी तरह मैं आपके बिना क्षण भर भी नहीं ठहर सकता।" इन्होंने वनवासकी आज्ञाको अन्याय तथा रामके पितृ-आदेश पालनको धर्मविरुद्ध समझा था। इस पर रामने लक्ष्मणसे कहा था, 'तू क्या इस कार्यको दैवकल्पित फल नहीं समझता। आरब्ध कार्यका नष्ट कर यदि किसी असंकल्पित कारणसे कार्यध्वंस पड़े

जाय, तो उसे दैवका कर्म समझना चाहिये। देखो, कैकेयी हमेशासे मुझे भरतके समान मानती आती थी, पर वह जो मेरी जानी दुश्मन हो गई सो क्यों? यह स्पष्ट दैवका कर्म है, इसमें मनुष्यका कोई चारा नहीं।" लक्ष्मणने उत्तरमें कहा, 'अति दीन और अशक्त व्यक्तिही दैवकी दोहाई देते हैं। पुरुषकार द्वारा जो दैवके प्रतिकूल खड़े होते, वे आपकी तरह अवसन्न न हो जाते। मृदु-व्यक्ति ही सर्वदा कष्ट भोगते हैं—"मृदुर्हि परिभूयते।" धर्म और सत्यका बहाना कर पिता जो घोर अन्याय करते हैं, यह क्या आपको मालूम नहीं? आप देवतुल्य हैं, ऋजु और दान्त हैं तथा शत्रु भी आपकी प्रशंसा करते हैं। ऐसे पुत्रको किस अपराधसे वनमें भगा रहे हैं? आप जो धर्म करनेके लिये छटपटा रहे हैं, उस धर्मको मैं अधर्म समझा। स्त्रीके वशवर्ती हो कर निरपराध पुत्रको वनवास देना—यही क्या सत्य है, क्या इसीको धर्म कहते? मैं आज ही अपने बाहुबल पर अयोध्याके सिंहासन पर बैठूंगा। देखूं तो सही, कौन मुझे रोकता? आज पुरुषकारके अंकुशसे उद्दाम दैव-हस्तीको मैं अपने काबू करूंगा। जिसे आप दैवकृत बतलाते हैं, उसे आप अस्त्रोंसे प्रत्याख्यान कर सकते हैं, तब फिर किस लिये अकिञ्चित्कर दैवकी प्रशंसा कर रहे हैं?"

लक्ष्मण युद्ध, पुरुषोचित और विपदमें निर्भीक थे। विपद पड़ने पर वे हताश नहीं होते थे। विराध राक्षसके हाथमें सीताको निःसहायभावमें पतित देख "हाय, आज माता कैकेयीकी आशा पूरी हुई" ऐसा कह कर रामचन्द्र अवसन्न हो गये थे। लक्ष्मणने भाईको उस अवस्थामें देख क्रुद्ध सर्पकी तरह निश्वास छोड़ कर कहा, 'इन्द्रके समान पराक्रमी हो कर आप क्यों अनाथकी तरह परिताप कर रहे हैं? आइये, हम लोग दुष्ट राक्षसका वध करें।'

शेलविद्ध लक्ष्मणने पुनर्जीवन लाभ कर जब देखा, कि राम उनके शोकसे अधीर हो अश्रुपूर्ण नेत्रोंसे स्त्रियोंकी तरह विलाप कर रहे हैं, तब उसी कातर अवस्थामें लक्ष्मणने इस प्रकार पौरुषहीन मोहग्रस्तिके लिये रामका तिरस्कार किया था। विरहकी अवस्थामें रामकी एकान्त विह्वलता देख उन्होंने व्यथित चित्तसे 'आप उत्साहशून्य न होवें' 'आपको इस प्रकार दुर्बलता दिखाना उचित नहीं' 'पुरुषकार अवलम्बन कीजिये' इत्यादि प्रकार उपदेश दे कर रामसे कहा था, "देवताओंके अमृतलाभकी तरह बहु-तपस्या कृच्छ्र साधन करके महाराज दशरथने आपको पाया था। यह सब मैंने भरतके मुखसे सुनी है—आप तपस्याके फलस्वरूप हैं। यदि विपदमें पड़ कर आप जैसे धर्मात्मा सह न कर सकें, तो साधारण आदमी किस प्रकार सह करेगा?"

राम जानते हों या न जानते हों, जिस किसीने अन्याय किया है, लक्ष्मणने उसे क्षमा न की, यह बात पहले ही लिखी जा चुकी है। दशरथकी गुणराशि उन्हें अच्छी तरह मालूम थी, क्रोधकी उत्तेजनासे वे चाहे जो कुछ कहें, पर दशरथ पुत्रशोकसे प्राणत्याग करेंगे, इसका भी उन्हें पहले ही अनुमान हो चुका था। फिर भी वे दशरथको फटकारनेसे बाज नहीं आये। सुमन्त्रने विदाय कालमें जब लक्ष्मणसे पूछा, 'कुमार! पितासे कुछ कहना भी है?" इस पर लक्ष्मण बोले, 'राजासे कहना, उन्होंने रामको क्यों वन भेजा, निरपराध ज्येष्ठ पुत्रका क्यों परित्याग किया, बहुत सोचने पर भी मुझे समझमें आया। मैं महाराजके चरित्रमें पितृत्वका कोई निदर्शन नहीं देख पाता। मेरे भ्राता, बन्धु, भर्ता और पिता, सभी रामचन्द्र हैं।'

भरतके प्रति उन्हें भारी सन्देह था। कैकेयीके पुत्र भरत माताके भावसे अनुप्राणित होंगे, इस सम्बन्धमें उनकी अटल धारणा थी। केवल रामके डरसे वे भरतके प्रति कठोर वाक्यका प्रयोग नहीं करते थे। किन्तु जब अतापद वेशधारी भगवान् रूप भरत रामके चरणोंमें लेट गये, तब लक्ष्मणका सन्देह दूर हुआ और लज्जाके मारे वे अधोवदन हो गये। एक दिन शीतकालकी रातको पाला खूब पड़ रहा था। निद्रित अपने अपने घोंसलेमें सिकुड़ गई थीं। उसी समय भरतके लिये लक्ष्मणके प्राण रो उठे। उन्होंने रामसे कहा, 'यह भीषण शीत सह कर धर्मात्मा भरत आपकी भक्तिके लिये तपस्या कर रहे हैं। राज्य, भोग, मान, विलास सबों पर लात मार कर निराहारी जटा धारण

[illegible] रामको अधीन कर रहे हैं। पारि-[illegible] नियम पालन कर प्रतिदिन [illegible] रात्रिको [illegible] स्नान करते हैं। चिरसुखोचित राजकुमार उस समय किस प्रकार स्नान करते होंगे।"

इन लक्ष्मणने ही पहले भरतके प्रति इतना क्रोध दिखलाया था। किन्तु जिस दिन उन्हें समझमें आया, कि वे वन वनमें घूम कर रामकी जिस प्रकार सेवा करते हैं, [illegible] महासमृद्धिके भवन रह कर भी भरत उसी प्रकार रामकी भक्तिमें कृच्छ्र साधन कर रहे हैं, उसी दिनसे भरतके प्रति जो कुछ उनका बुरा भाव था, वह जाता रहा, उनका हृदय औदार्य और विनम्र हो गया। किन्तु कैकेयीको उन्होंने कभी भी क्षमा नहीं किया। एक दिन लक्ष्मणने रामसे कहा था "दशरथ जिसके स्वामी हैं, साधु भरत जिसके पुत्र हैं, वह कैकेयी ऐसी निष्ठुर क्यों हुई?"

शरत्काल उपस्थित हुआ, किन्तु सुग्रीवका कहीं पता नहीं। उसने राम द्वारा बालीके मारे जाने पर प्रतिज्ञा की थी, कि वह सीताको खोजनेमें मदद देगा। लक्ष्मणने क्रोधपूर्वक कहा, 'अकृतज्ञ इस मूर्ख सुग्रीव उपकार पा कर [illegible] अवहेला करता है। इसका आज अन्त करूंगा।' रामने उनका क्रोध शान्त कर सुग्रीवके पास भेज दिया। सुग्रीवको अपने कर्तव्यकी बात याद दिला कर लक्ष्मणने उसे जो सब बातें कही थीं, उनमें संक्षेपतः कुछ ये हैं—

"जिस पथसे बाली गया है, वह पथ संकुचित नहीं हुआ है। सुग्रीव! तुमने जो प्रतिज्ञा की है, उसका क्यों नहीं पालन करता, क्या बालीके पथका अनुसरण करना चाहता?' किन्तु लक्ष्मणका चरित्र जान कर रामने एक 'पुनश्च' जोड़ कर लक्ष्मणको सावधान कर दिया। आज उस [illegible] करेगा। बालीका पुत्र अङ्गद सभी वानरोंको ले कर जानकीकी खोज करेगा।

केवल वानर ही ये [illegible] न हुए, हाथी और पशु [illegible] तैयार हो गये। [illegible] लता और अपने [illegible] विविध [illegible] कर राजचन्द्रके [illegible] दिया। [illegible] पुरको [illegible]

उस बचनको उन्होंने जिस प्रकार सहन किया था, [illegible] कर आश्चर्य हो सकता है। मारीच राक्षसने रामके स्वरका अनुकरण कर विपद कण्ठसे 'हा लक्ष्मण' कह कर चीत्कार किया था। सीताने व्याकुल हो कर उसी समय लक्ष्मणको रामके पास जाने कहा। लक्ष्मण रामकी आज्ञा उल्लंघन कर जानेको राजी न हुए। उन्होंने सीताको समझा कर कहा, कि कुछ मारीच छल कर रहा है और कोई बात नहीं है। रामजी कुशलपूर्वक हैं। किन्तु सीताने [illegible] आक्रान्त हो [illegible] और क्रोध भरी बातोंमें लक्ष्मणको कहा, "तू भरतका चर है, प्रच्छन्न शत्रु है, केवल मेरे लोभके लिये रामके पीछे पीछे आया है, अगर राम पर कोई विपद पड़ी तो मैं आगमें कूद मरूंगी'। यह सुन कर लक्ष्मण कुछ समय स्तम्भित और विमूढ हो खड़े रहे। क्रोध और लज्जासे उनके कपोल लाल हो गये। उन्होंने कहा, 'देवी! तुम मेरे निकट देवीस्वरूप हो, तुम्हारे प्रति मुझे कुछ भी कहना उचित नहीं। स्त्रियोंकी बुद्धि स्वभावतः ही भेदकारी होती है। वे [illegible], क्रूर और चपल होती हैं। तुम्हारी बात तप्तलौहशलाकाके सदृश मेरे कानोंमें घुस रही है,—निश्चय ही मेरी मृत्यु उपस्थित हो गयी, चारों ओर अशुभ लक्षण दिखाई देते हैं।" इतना कह कर लक्ष्मण वहांसे चल दिये। जाते समय उन्होंने सीतासे कहा था, "विशालाक्षि! सभी वे वन देवता तुम्हारी रक्षा करें और यह लकीर जो मैं खींच देता हूं, इसे कभी पार न करना।"

लक्ष्मणका पुरुषोचित चरित्र सर्वत्र समेत था। उनकी पौरुषपूर्ण महिमा सर्वत्र [illegible] थी,—शुभ्र शेफालिका-कर सदृश सुविमल और सुवासित थी। रावण जब सीताको आकाशमार्गसे ले जा रहा था, तब सीताने [illegible] भूषण नीचे गिराये थे। उन आभूषणोंको [illegible] रखा था। उसे देख कर लक्ष्मणने कहा [illegible] सीताके चरणमें इन्हें [illegible] नहीं [illegible] केवल [illegible]

णियोंके नूपुर और काञ्चीका विलासमुखर-निक्कन सुन कर लक्ष्मण लज्जित होते थे। यह लज्जा प्रकृत पौरुषकी लक्षण थी। चरित्रवान् साधुका इस प्रकार लज्जा स्वाभाविक था। जब मदविह्वलाङ्गी नमिताङ्गयष्टि तारा लक्ष्मणके पास आई,—उसका विशाल श्रोणी स्खलित काञ्चीका हेमसूत्र उनके सामने मृदुतरङ्गित हो उठा, तब लक्ष्मणने शिर झुका लिया था। इन सब गुणोंसे वे देवताके समान पूजनीय थे, इसमें जरा भी सन्देह नहीं।

लक्ष्मण—कई एक ग्रन्थकार और पण्डित। १ रघुवंश टीकाके रचयिता। २ एक ग्रन्थकार। इन्होंने चूड़ामणि सार, दैवज्ञविधिविलास और रत्नग्रन्थ नामक तीन ग्रन्थ लिखे। ३ परमहंससंहिताके रचयिता। ४ समयार्णवके प्रणेता। ५ वैद्यकयोगचन्द्रिका वा योगचन्द्रिका नामक ग्रन्थके रचयिता। ये दत्तके पुत्र तथा नागनाथ और नारायणके शिष्य थे। ६ महाभाष्यादर्शके प्रणेता। इनके पिता का नाम था मुरारि पाठक। ७ पद्यामृत तरङ्गिणीधृत एक कवि। ८ मृच्छकटिटीकाके प्रणेता, लल्लादीक्षितके पिता और शङ्कर दीक्षितके पुत्र।

लक्ष्मण—१ एक हिन्दू-महाराज। कोसामके शिलाफलकमें यही सम्वत् उत्कीर्ण देखा जाता है। २ कच्छपघातवंशीय एक राजा, वज्रदामनके पिता। ये १०वीं सदीके अन्तमें विद्यमान थे। ३ बङ्गालके सेनवंशीय एक राजा। ये राजा केशवसेनके पौत्र और नारायणके पुत्र थे। ऐतिहासिक अबुल फजलने नारायणको "नौजिद" नामसे और सेनवंशके शेष स्वाधीन राजा कह कर उल्लेख किया है। लक्ष्मणसेन और बङ्गाल देखो।

लक्ष्मण आचार्य—१ चण्डीकुचपञ्चशतीके प्रणेता। २ जगन्मोहन नामक ज्योतिर्ग्रन्थके रचयिता। ३ पादुकासहस्र, विरोधपरिहार और वेदार्थविचारके प्रणेता।

लक्ष्मणकवच (सं० क्ली०) १ लक्ष्मणकी स्तुति करनेका एक स्तोत्र। २ धरणीविशेष।

लक्ष्मण कवि—शृङ्गारविलासचम्पूके रचयिता। २ चम्पूरामायण युद्धकाण्डके प्रणेता।

लक्ष्मणकुण्डक (सं० क्ली०) एक तीर्थका नाम।

लक्ष्मणगढ़—राजपूतानेके जयपुर राज्यके शेखावाटी जिलान्तर्गत एक नगर। जयपुर राज्यके अधीनस्थ सामन्त शीकर-वंशीय सरदार राव राजा लक्ष्मणसिंह द्वारा १८०६ ई०में यह नगर बसाया गया। यह नगर दुर्ग आदिसे परिवेष्टित तथा जयपुर नगरके अनुकरण पर बना है। यहां धनी महाजनोंकी कई एक सुन्दर सुन्दर अट्टालिका है।

लक्ष्मणगढ़—राजपूतानेके अलवार सामन्त राज्यके अन्तर्गत एक नगर। यह अलवार नगरसे २३ मीलकी दूरी पर दक्षिण-पूर्वमें अवस्थित है। पहले यह स्थान तौर नामसे परिचित था। राजा प्रतापसिंहने दुर्ग बनानेके बाद इस स्थानका नाम बदल कर लक्ष्मणगढ़ रखा। नजफ खांने इस दुर्ग पर हमला किया था।

लक्ष्मण गुप्त—काश्मीरवासी एक शैवदार्शनिक। ये उत्पल और भट्टनारायणके शिष्य थे। तथा ९५० ई०में मौजूद थे।

लक्ष्मणचन्द्र—कीरगांवके एक हिन्दू-सामन्त राजा। इनकी उपाधि राजानक थी। ये त्रिगर्त (जालन्धर) राज जयचन्द्रके अधीन राज्य करते थे। इनकी माता लक्षणिका त्रिगर्त-राजपुत्र हृदयचन्द्रकी लड़की थीं। कीरगांवके शिववैद्यनाथ मन्दिरमें इनकी प्रशस्ति उत्कीर्ण देखी जाती है।

लक्ष्मण ठाकुर—मिथिलाके एक राजा तथा महाराज शिवसिंहके पूर्वपुरुष।

लक्ष्मणतीर्थ—पुराणोक्त एक प्राचीन तीर्थ। इस नदीके जलमें स्नान करनेसे अशेष पुण्यलाभ होता है। नारदपुराण ७९ अध्यायमें इस तीर्थमाहात्म्यका वर्णन है।

यह दक्षिण-भारतमें प्रवाहित कावेरी नदीकी एक शाखा है। कुर्गराज्यमें ब्रह्मगिरिसन्निहित कुट्टिग्रामके पार्श्वदेशसे निकल कर उत्तर-पूर्वकी ओर महिसुर-राज्य होती हुई कावेरी-सङ्गममें मिली है। यहांकी नदीमें सात बांध हैं जिससे खेत पटानेमें बड़ी सुविधा हो गई है। इन सब बांधोंमें हानागोड़ बांध सबसे बड़ा है।

उत्पत्ति स्थानसे कुछ दूर पर्वत पर आनेसे ब्रह्मगिरिमें एक बड़ा जलप्रपात दिखाई देता है। यही प्रपात लक्ष्मणतीर्थ नामसे प्रसिद्ध है। यहां प्रति वर्षमें हजारों आदमी स्नान करने आते हैं। जिस पथसे इस तीर्थमें आना होता है वह बड़ा ही विस्मयजनक है। पथके दक्षिण-

भीषण शीतकालकी रातको जमीन पर सो रहे हैं। पारिग्रज्यका नियम पालन कर प्रतिदिन शेष रात्रिको भरत सरयूमें स्नान करते हैं। चिरसुखोचित राजकुमार उस समय किस प्रकार स्नान करते होंगे।"

इन लक्ष्मणने ही पहले भरतके प्रति इतना क्रोध दिखलाया था। किन्तु जिस दिन उन्हें समझमें आया, कि वे वन वनमें घूम कर रामकी जिस प्रकार सेवा करते हैं, अयोध्याकी महासमृद्धिके मध्य रह कर भी भरत उसी प्रकार रामकी भक्तिमें कृच्छ्र साधन कर रहे हैं। उसी दिनसे भरतके प्रति जो कुछ उनका बुरा भाव था, वह जाता रहा, उनका स्वर स्नेहार्द्र और विनम्र हो गया। किन्तु कैकेयीको उन्होंने कभी भी क्षमा नहीं किया। एक दिन लक्ष्मणने रामसे कहा था "दशरथ जिसके स्वामी हैं, साधु भरत जिसके पुत्र हैं, वह कैकेयी ऐसी निष्ठुर क्यों हुई?"

शरत्काल उपस्थित हुआ, किन्तु सुग्रीवका कहीं पता नहीं। उसने राम द्वारा वाली मारे जाने पर प्रतिज्ञा की थी, कि वह सीताकी खोजनेमें मदद देगा। लक्ष्मणने क्रोधपूर्वक कहा, 'ग्राम्यसुखमें रत मूर्ख सुग्रीव उपकार पा कर प्रत्युपकारकी अवहेला करता है। इसका मजा जल्द चखाता हूं। रामने उनका क्रोध शान्त कर सुग्रीवके पास भेज दिया। सुग्रीवको अपने कर्त्तव्यकी बात याद दिला कर लक्ष्मणने उसे जो सब बातें कही थीं, उनमें क्रोधसूचक कुछ ये हैं—

"जिस पथसे वाली गया है, वह पथ संकुचित नहीं हुआ है। सुग्रीव! तुमने जो प्रतिज्ञा की है, उसका क्यों नहीं पालन करता, क्या वालीके पथका अनुसरण करना चाहता?' किन्तु लक्ष्मणका चरित्र जान कर रामने एक 'पुनश्च' जोड़ कर लक्ष्मणको सावधान कर दिया। आज उस मिथ्यावादीका विनाश करूंगा। वालीका पुत्र अङ्गद अभी वानरोंको ले कर जानकीकी खोज करेगा।

केवल बातसे ही वे सन्तुष्ट न हुए, हाथमें तीर धनुष ले कर तैयार हो गये। वानराधिपति डरसे कांपने लगा और अपने गलेमेंके विचित्र कौशुमाल्यको तोड़ ताड़ कर रामचन्द्रके उद्देशसे चल दिया। ऐसे तेजस्वी युवकको तेजस्विनी सीताने जो कठोर वचन कहा था, उस वचनको उन्होंने किस प्रकार सह्य किया था, जान कर आश्चर्य हो सकता है। मारीच राक्षसने रामके स्वरका अनुकरण कर विपन्न कण्ठसे 'हा लक्ष्मण' कह कर चीत्कार किया था। सीताने व्याकुल हो कर उसी समय लक्ष्मणको रामके पास जाने कहा। लक्ष्मण रामकी आज्ञा उठा कर जानेको राजी न हुए। उन्होंने सीतासे समझा कर कहा, कि दुष्ट मारीच छल कर रहा है और कोई बात नहीं है। रामजी कुशलपूर्वक हैं। किन्तु सीताने स्वामीकी विपदाशङ्कासे ज्ञानशून्य हो अश्रुपूर्ण और क्रोध भरी आंखोंसे लक्ष्मणको कहा, "तू भरतका चर है, प्रच्छन्न ज्ञातिशत्रु है, केवल मेरे लोभके लिये रामके पीछे पीछे आया है, अगर राम पर कोई विपद् पड़ी तो मैं आगमें कूद मरूंगी',यह सुन कर लक्ष्मण कुछ समय स्तम्भित और विमूढ़ हो खड़े रहे। क्रोध और लज्जासे उनके कपोल लाल हो गये। उन्होंने कहा, 'देवी! तुम मेरे निकट देवीस्वरूप हो, तुम्हारे प्रति मुझे कुछ भी कहना उचित नहीं। स्त्रियोंकी बुद्धि स्वभावतः ही भेदकारी होती है। वे विमुक्तधर्मा, क्रूरा और चपला होती हैं। तुम्हारी बात तप्तलौहशेलके सदृश मेरे कानोंमें घुस रही है,—निश्चय ही मेरी मृत्यु उपस्थित हो गई, चारों ओर अशुभ लक्षण दिखाई देते हैं।" इतना कह कर लक्ष्मण वहांसे चल दिये। जानेके समय उन्होंने सीतासे कहा था, "विशालाक्षि! अभी ये सब वनदेवता तुम्हारी रक्षा करें और यह लकीर जो मैं खींच देता हूं, उसे कभी पार न करना।"

लक्ष्मणका पुरुषोचित चरित्र सर्वत्र सतेज था। उनकी पौरुषदृप्त महिमा सर्वत्र अनाविल थी,—शुभ्र शेफालिकाकी तरह सुनिर्मल और सुरभित थी। रावण जब सीताको आकाशमार्गसे ले जा रहा था, तब सीताने कुछ आभूषण नीचे गिराये थे। उन आभूषणोंको सुग्रीवने संग्रह कर रखा था। उसे देख कर लक्ष्मणने कहा था, 'मैंने हार और केयूरको सीताके बदनमें कभी नहीं देखा, इसलिये उसे नहीं पहचानता हूं, केवल उनके दोनों पैरोंके नूपुरको। क्योंकि, पदवन्दना कालमें उसे अक्सर देखा करता था।" किष्किन्ध्याकी गिरिगुहास्थित राजधानीमें प्रवेश कर गिरिवासिनी रम-

नियोंके नूपुर और काञ्चीका विलासमधुर-निक्कण सुन कर लक्ष्मण लज्जित होते थे। यह लज्जा महत् पौरुषका लक्षण थी। चरित्रवान् साधुका इस प्रकार लज्जा स्वाभाविक था। जब मदविह्वलाक्षी नमिताङ्गयष्टि तारा लक्ष्मणके पास आई,—उसका विशाल श्रोणी स्खलित काञ्चीका हेमसूत्र उनके सामने मृदुलम्बित हो उठा, तब लक्ष्मणने शिर झुका लिया था। इन सब गुणोंसे ये देवताके समान पूजनीय थे, इसमें जरा भी सन्देह नहीं।

लक्ष्मण—कई एक ग्रन्थकार और पण्डित। १ गुरुवंश टीकाके रचयिता। २ एक ग्रन्थकार। इन्होंने चूड़ामणि सार, दैवज्ञविधिविलास और रमलग्रन्थ नामक तीन ग्रन्थ लिखे। ३ परमहंससंहिताके रचयिता। ४ समयार्णवके प्रणेता। ५ वैद्यकयोगचन्द्रिका वा योगचन्द्रिका नामक ग्रन्थके रचयिता। ये दत्तके पुत्र तथा नागनाथ और नारायणके शिष्य थे। ६ महाभाष्यादर्शके प्रणेता। इनके पिता का नाम था मुरारि पाठक। ७ पद्यामृत तरङ्गिणीधृत एक कवि। ८ मृच्छकटिटीकाके प्रणेता, लल्लादीक्षितके पिता और शङ्कर दीक्षितके पुत्र।

लक्ष्मण—१ एक हिन्दू-महाराज। कोसामके शिलाफलकमें यही सम्वत् उत्कीर्ण देखा जाता है। २ कच्छपघातवंशीय एक राजा, वज्रदामनके पिता। ये १०वीं सदीके अन्तमें विद्यमान थे। ३ बङ्गालके सेनवंशीय एक राजा। ये राजा केशवसेनके पौत्र और नारायणके पुत्र थे। ऐतिहासिक अबुल फजलने नारायणको 'नौजिब' नामसे और सेनवंशके शेष स्वाधीन राजा कह कर उल्लेख किया है। लक्ष्मणसेन और बङ्गदेश देखो।

लक्ष्मण आचार्य—१ चण्डीकुचपञ्चाशतीके प्रणेता। २ जगन्मोहन नामक ज्योतिर्ग्रन्थके रचयिता। ३ पादुकासहस्र, विरोधपरिहार और वेदार्थविचारके प्रणेता।

लक्ष्मणकवच (सं० क्ली०) १ लक्ष्मणकी स्तुति करनेका एक स्तोत्र। २ धरणीविशेष।

लक्ष्मण कवि—हनुमद्विलासचम्पूके रचयिता। २ चम्पूरामायण युद्धकाण्डके प्रणेता।

लक्ष्मणकुण्डक (सं० क्ली०) एक तीर्थका नाम।

लक्ष्मणगढ़—राजपूतानेके जयपुर राज्यके शेखावाटी जिलान्तर्गत एक नगर। जयपुर राज्यके अधीनस्थ सामन्त सीकर-वंशीय सरदार राव राजा लक्ष्मणसिंह द्वारा १८०६ ई०में यह नगर बसाया गया। यह नगर दुर्ग आदिसे परिरक्षित तथा जयपुर नगरके अनुकरण पर बना है। यहां धनी महाजनोंकी कई एक सुन्दर सुन्दर अट्टालिका हैं।

लक्ष्मणगढ़—राजपूतानेके अलवार सामन्त राज्यके अन्तर्गत एक नगर। यह अलवार नगरसे २३ मीलकी दूरी पर दक्षिण-पूर्वमें अवस्थित है। पहले यह स्थान और नामसे परिचित था। राजा प्रतापसिंहने दुर्ग बनानेके बाद इस स्थानका नाम बदल कर लक्ष्मणगढ़ रखा। नजफ खांने इस दुर्ग पर हमला किया था।

लक्ष्मण गुप्त—काश्मीरवासी एक शैवदार्शनिक। ये उत्पल और भट्टनारायणके शिष्य थे। तथा ९५० ई०में मौजूद थे।

लक्ष्मणचन्द्र—कीरग्रामके एक हिन्दू सामन्त राजा। इनकी उपाधि राजानक थी। ये त्रिगर्त (जालन्धर) राज जय चन्द्रके अधीन राज्य करते थे। इनकी माता लक्षणिका त्रिगर्त-राजपुत्र हृदयचन्द्रकी लड़की थी। कीरग्रामके शिववैद्यनाथ मन्दिरमें इनकी प्रशस्ति उत्कीर्ण देखी जाती है।

लक्ष्मण ठाकुर—मिथिलाके एक राजा तथा महाराज शिवसिंहके पूर्वपुरुष।

लक्ष्मणतीर्थ—पुराणोक्त एक प्राचीन तीर्थ। इस नदीके जलमें स्नान करनेसे अशेष पुण्यलाभ होता है। नारदपुराण ७१ अध्यायमें इस तीर्थमाहात्म्यका वर्णन है।

यह दक्षिण-भारतमें प्रवाहित कावेरी नदीकी एक शाखा है। कुर्गराज्यमें ब्रह्मगिरिसन्निहित कुटि ग्रामके पार्श्वदेशसे निकल कर उत्तर-पूर्वकी ओर महिसुर-राज्य होती हुई कावेरी-सङ्गममें मिली है। यहांकी नदीमें सात बांध हैं जिससे खेत पटानेमें बड़ी सुविधा हो गई है। इन सब बांधोंमें हानागोद बांध सबसे बड़ा है।

उत्पत्ति स्थानसे कुछ दूर पर्वत पर आनेसे ब्रह्मगिरिमें एक बड़ा जलप्रपात दिखाई देता है। यही प्रपात लक्ष्मणतीर्थ नामसे प्रसिद्ध है। यहां प्रति वर्षमें हजारों आदमी स्नान करने आते हैं। जिस पथसे इस तीर्थमें आना होता है यह बड़ा ही विस्मयजनक है। पथके दक्षिण-

भीषण शीतकालकी रातको जमीन पर सो रहे हैं। पारिव्रज्यका नियम पालन कर प्रतिदिन शेष रात्रिको भरत सरयूमें स्नान करते हैं। चिरसुखोचित राजकुमार उस समय किस प्रकार स्नान करते होंगे।"

इन लक्ष्मणने ही पहले भरतके प्रति इतना क्रोध दिखलाया था। किन्तु जिस दिन उन्हें समझमें आया, कि वे वन वनमें घूम कर रामकी जिस प्रकार सेवा करते हैं, अयोध्याकी महासमृद्धिके मध्य रह कर भी भरत उसी प्रकार रामकी भक्तिमें कृच्छ्र साधन कर रहे हैं। उसी दिनसे भरतके प्रति जो कुछ उनका बुरा भाव था, वह जाता रहा, उनका स्वर स्नेहार्द्र और विनम्र हो गया। किन्तु कैकेयीको उन्होंने कभी भी क्षमा नहीं किया। एक दिन लक्ष्मणने रामसे कहा था "दशरथ जिसके स्वामी हैं, साधु भरत जिसके पुत्र हैं, वह कैकेयी ऐसी निष्ठुर क्यों हुई?"

शरत्काल उपस्थित हुआ, किन्तु सुग्रीवका कहीं पता नहीं। उसने राम द्वारा बाली मारे जाने पर प्रतिज्ञा की थी; कि वह सीताको खोजनेमें मदद देगा। लक्ष्मणने क्रोधपूर्वक कहा, 'ग्राम्यसुखमें रत मूर्ख सुग्रीव उपकार पा कर प्रत्युपकारकी अवहेला करता है। इसका मजा जल्द चखाता हूं।' रामने उनका क्रोध शान्त कर सुग्रीवके पास भेज दिया। सुग्रीवको अपने कर्त्तव्यकी बात याद दिला कर लक्ष्मणने उसे जो सब बातें कही थीं, उनमें क्रोधसूचक कुछ ये हैं—

"जिस पथसे बाली गया है, वह पथ संकुचित नहीं हुआ है। सुग्रीव! तुमने जो प्रतिज्ञा की है, उसका क्यों नहीं पालन करता, क्या बालीके पथका अनुसरण करना चाहता?' किन्तु लक्ष्मणका चरित्र जान कर रामने एक 'पुनश्च' जोड़ कर लक्ष्मणको सावधान कर दिया। आज उस मिथ्यावादीका विनाश करूंगा। बालीका पुत्र अङ्गद अभी वानरोंको ले कर जानकीकी खोज करेगा।

केवल बातसे ही वे सन्तुष्ट न हुए, हाथमें तीर धनुष ले कर तैयार हो गये। वानराधिपति डरसे कांपने लगा और अपने गलेमेंके विचित्र क्रीड़ामाल्यको तोड़ ताड़ कर रामचन्द्रके उद्देशसे चल दिया। ऐसे तेजस्वी युवकको तेजस्विनी सीताने जो कठोर वचन कहा था, उस वचनको उन्होंने किस प्रकार सह्य किया था, जान कर आश्चर्य हो सकता है। मारीच राक्षसने रामके स्वरका अनुकरण कर विपन्न कण्ठसे 'हा लक्ष्मण' कह कर चीत्कार किया था। सीताने व्याकुल हो कर उसी समय लक्ष्मणको रामके पास जाने कहा। लक्ष्मण रामकी आज्ञा उठा कर जानेको राजी न हुए। उन्होंने सीतासे समझा कर कहा, कि दुष्ट मारीच छल कर रहा है और कोई बात नहीं है। रामजी कुशलपूर्वक हैं। किन्तु सीताने स्वामीको विपदाशङ्कासे ज्ञानशून्य हो अश्रुपूर्ण और क्रोध भरी आंखोंसे लक्ष्मणको कहा, "तू भरतका चर है, प्रच्छन्न शत्रु है, केवल मेरे लोभके लिये रामके पीछे पीछे आया है, अगर राम पर कोई विपद् पड़ी तो मैं आगमें कूद मरूंगी' ;यह सुन कर लक्ष्मण कुछ समय स्तम्भित और विमूढ़ हो खड़े रहे। क्रोध और लज्जासे उनके कपोल लाल हो गये। उन्होंने कहा, 'देवी! तुम मेरे निकट देवीस्वरूप हो, तुम्हारे प्रति मुझे कुछ भी कहना उचित नहीं। स्त्रियोंकी बुद्धि स्वभावतः ही भेदकारी होती है। वे विमुक्तधर्मा, क्रूरा और चपला होती हैं। तुम्हारी बात तप्तलौहशेलके सदृश मेरे कानोंमें घुस रही है,—निश्चय ही मेरी मृत्यु उपस्थित हो गई, चारों ओर अशुभ लक्षण दिखाई देते हैं।" इतना कह कर लक्ष्मण वहांसे चल दिये। जानेके समय उन्होंने सीतासे कहा था, "विशालाक्षि! अभी ये सब वनदेवता तुम्हारी रक्षा करें और यह लकीर जो मैं खींच देता हूं, उसे कभी पार न करना।"

लक्ष्मणका पुरुषोचित चरित्र सर्वत्र सतेज था। उनकी पौरुषद्दृप्त महिमा सर्वत्र अनाविल थी,—शुभ्र शेफालिकाकी तरह सुनिर्मल और सुपवित्र थी। रावण जब सीताको आकाशमार्गसे ले जा रहा था, तब सीताने कुछ आभूषण नीचे गिराये थे। उन आभूषणोंको सुग्रीवने संग्रह कर रखा था। उसे देख कर लक्ष्मणने कहा था, 'मैंने हार और केयूरको सीताके बदनमें कभी नहीं देखा, इसलिये उसे नहीं पहचानता हूं, केवल उनके दोनों पैरोंके नूपुरको। क्योंकि, पदवन्दना कालमें उसे अक्सर देखा करता था।" किष्किन्धाकी गिरिगुहास्थित राजधानीमें प्रवेश कर गिरिवासिनी रम-

वेदी राजाके सम्बर्द्धनार्थ स्वयं उपस्थित हुए। उनके साथ एक भी सिपाही न गया था। जलकी नाव पर चढ़ते ही वे बन्दीभावमें चन्द्रद्वीप लाये गये। यहां कारागृहमें रहने समय एक दिन रामचन्द्र उनसे मिले। इस समय लक्ष्मणमाणिक्यने उन्हें बुरी तरह घायल किया था। इस पर उन्होंने क्रोधसे अधीर हो लक्ष्मणके प्राण लेनेका हुकुम दे दिये। राजाका हुकुम फौरन तामिल किया गया।

लक्ष्मणमाथुर कायस्थ—लक्ष्मणोत्सव और वैद्यसर्वस्व नामक वैद्यक ग्रन्थके प्रणेता। ये अमरसिंहके पुत्र थे।

लक्ष्मणराजदेव—चेदीराज्यके कलचूरी-वंशीय एक राजा तथा केयूरवर्ष १म युवराजदेवके पुत्र। पिताके स्वर्ग सिधारने पर ९५० ई०में ये राजगद्दी पर बैठे। इन्होंने राजकन्या राहड़ासे विवाह किया था। उनकी लड़की बोन्थादेवीके साथ पश्चिम-चालुक्यराज विक्रमादित्यकी शादी हुई थी। राजर्षीहित २य तैलपने ९७३-९९७ ई० तक प्रभूत प्रतापके साथ राज्यशासन किया था।

विलहरिशिलालेखसे मालूम होता है, कि राजा लक्ष्मणराजदेव कोशलाधिपतिको हरा कर पश्चिमप्रदेश जीतने को गये थे तथा गुजरातमें सोमेश्वरलिङ्गकी उपासना की थी।

लक्ष्मण वन्द्योपाध्याय—एक बंगाली कवि। इन्होंने सम्भवतः पहिले पहल अध्यात्मरामायणका बंगलानुवाद किया था। इस रामायणकी दो सौ वर्षकी पुरानी पुस्तक मिली है।

लक्ष्मण वेदान्ताचार्य—न्यायप्रकाशिका नामकी श्रीभाष्य टीकाके रचयिता।

लक्ष्मण शास्त्री—अमरकोषव्याख्याके प्रणेता तथा विश्वेश्वर शास्त्रीके पुत्र।

लक्ष्मणसिंह—शतकोटीमण्डलके प्रणेता।

लक्ष्मणसेन—बंगालके सेनवंशीय एक राजा। ये बल्लालसेनके पुत्र थे। इनके समयमें मुसलमानोंकी सेनाने बंगाल पर आक्रमण किया था। याज्ञवल्क्यधर्मशास्त्रटीका-के प्रणेता शूलपाणि, हलायुध, पशुपति, जयदेव और धोयी कविने इन्हींकी सभामें रह कर सभाको उज्ज्वल किया था। इन सब पण्डितोंके संसर्गमें होनेसे आप भी एक सुकवि हो गये थे। पद्यावलीमें इनकी बनाई बहुत-सी कविता उद्धृत हुई हैं। प्राचीन ताम्रलिपिमें ये दक्षिणाब्धिविजयी थे ऐसा उल्लेख देखा जाता है। जब महम्मद-ई बख्तियारने पदार्पण किया, उस समय घूस लेनेवाले पंडितोंकी प्ररोचनासे बूढ़े राजा किस प्रकार राज्य छोड़ कर जगन्नाथ दर्शनके बहाने भाग गये यह बात किसीसे छिपी नहीं है। कुलशास्त्रमें ये कुलपद्धतिसंस्कारक नामसे विख्यात हैं।

सेनराजवंश देखो।

लक्ष्मण सोमयाजिन्—सीताराम विहारकाव्यके प्रणेता तथा कोर्गण्टिगङ्गरके पुत्र।

लक्ष्मणस्वामी—काश्मीरके मन्दिरमें प्रतिष्ठित लक्ष्मणमूर्त्ति। (राजत० ४।२७६)

लक्ष्मणा ((सं० स्त्री०) लक्ष्मणमस्त्यस्याः इति अर्श आदित्वात् टाप्। १ श्वेतकण्टकारी। २ सारसी, सारस पक्षीकी मादा। ३ एक जड़ी जो पुत्रदा मानी जाती है। यह जड़ी पर्वतों पर मिलती है। इसके पत्ते चौड़े होते हैं और उन पर लाल चंदनकी सी बूंदें होती हैं। इसका कन्द सफेद होता है और यही औषधके काममें आता है। इसका संस्कृत पर्याय—लक्ष्मणाकन्द, पुत्रकन्दा, पुत्रदा, नागिनी, नागाह्वा, नागपत्री, तुलिनी, नन्दिका, अश्वबिन्दुच्छदा, पुच्छदा। गुण—मधुर, शीतल, स्त्रीवन्ध्यतानाशक, रसायन, बलकर और त्रिदोषनाशक। (राजनि०)

मद्रदेशके राजा बृहत्सेनकी कन्या। यह कृष्णजीसे ब्याही गई थी और उनकी आठ पटरानियोंमेंसे एक थी। (भागवत० १०।५८।५७) ५ दुर्योधनकी बेटीका नाम। इस कन्याका जब स्वयम्वर हुआ तब श्रीकृष्णके पुत्र साम्बने इसे हर कर विवाह किया।

(भागवत० १०।६८।१)

६ जवाका पेड़। ७ मुकुन्दरस।

लक्ष्मणाचार्य (सं० पु०) एक ग्रन्थकारका नाम।

लक्ष्मण आचार्य देखो।

लक्ष्मणाश्रया (सं० स्त्री०) लक्ष्मणामूल।

लक्ष्मणादित्य राजपुत्र—एक कवि। ये क्षेमेन्द्रके शिष्य थे। कविकण्ठाभरणमें इनके बनाये श्लोक उद्धृत हैं।

पार्श्वमें दुरारोह पर्वतशृङ्ग और वाम पार्श्वमें गभीर नदीकी खाई है। इन्हीं दोनोंके मध्यवर्त्ती पथसे यात्री जाते आते हैं। अन्यमनस्क होनेसे गिरनेकी सम्भावना है। भिक्षुक और संन्यासी राहकी बगलमें तरह तरहके रूप बना कर बैठे रहते हैं जो यात्रियोंके और भी भयके कारण है।

लक्ष्मणदास—श्रीसूक्तभाष्यके रचयिता।

लक्ष्मणदेव—तर्कभाषासारमञ्जरी प्रणेता माधवदेवके पिता।

लक्ष्मणदेशिक—एक प्रसिद्ध तान्त्रिक पण्डित। ये वारेन्द्र ब्राह्मण विजय आचार्यके पौत्र और श्रीकृष्णके पुत्र थे। इन्होंने कार्त्तवीर्यार्ज्जुनदीपदानपद्धति, कुण्डमण्डपविधि, ताराप्रदीप, शारदातिलक, शब्दार्थचिन्तामणि नामक शारदातिलकटीका और तत्त्वप्रदीप नामकी ताराप्रदीप-टीका लिखी।

लक्ष्मणद्विवेदिन्—उपसर्गद्योतकत्वविचार, द्विकर्मवाद और सारसंग्रह नामक व्याकरणके प्रणेता।

लक्ष्मणनायक—एक नायक-सरदार। ये १८१० ई०में बालघाटके अन्तर्गत परशवड़ा नामक स्थानमें एक जनपद स्थापन कर गये हैं।

लक्ष्मण पण्डित—सारचन्द्रिका नामक राघवपाण्डवीय टीका और सूक्तिमुक्तावलीके रचयिता।

लक्ष्मणपति—गौरीजातकके प्रणेता।

लक्ष्मणप्रसू (सं० स्त्री०) लक्ष्मणस्य प्रसूर्जननी। सुमित्रा।

लक्ष्मणभट्ट (सं० पु०) गीतगोविन्दकी टीकाके प्रणेता।

लक्ष्मणभट्ट—१ काव्यप्रकाशटीकाके प्रणेता चण्डिदासके एक मित्र। ग्रन्थकारने अपनी टीकामें बन्धुवरकी पंडिताईका परिचय दिया है। २ पद्यरचना और रत्नमालाके प्रणेता। ३ महाभारतकी टीकाके प्रणेता। जहां तक सम्भव है कि ये भारतभावदीपके प्रणेता नीलकण्ठके गुरु थे। ४ हीलकल्पद्रुमके प्रणेता नारायणभट्टके पुत्र। इन्होंने बाघेल-सरदार राजा भावसिंह देवके आदेशानुसार उक्त ग्रन्थ संकलन किया। ५ आचाररत्न, आचारसार, गुरुशतकटिप्पण और गोत्रप्रवररत्नके रचयिता। रामकृष्णभट्टके पुत्र, नारायणभट्टके पौत्र और रामेश्वरभट्टके प्रपौत्र थे। ६ लक्ष्मणभट्टीय नामक वेदान्तग्रन्थके रचयिता।

लक्ष्मणमाणिक्य—बङ्गालके प्रसिद्ध बारभूञांमेंसे एक। भुलुआमें इनकी राजधानी थी। मेघनाके पूर्ववर्ती अनेक परगनों पर इनका आधिपत्य था।

बङ्गालके इस भूंयावंशके प्रभाव और प्रतिष्ठाके सम्बन्धमें अनेक किंवदन्ती प्रचलित हैं। उनका अनुसरण करनेसे मालूम होता है, कि एक दिन आदिशूर वंशीय बङ्गज कायस्थ श्रेणीमें उत्पन्न राजा विश्वम्भर राय चट्टग्रामके अन्तर्गत सीताकुण्ड तीर्थ जा रहे थे। राहमें उन्हें रात हो गई। मेघनाके एक चोरबालूके चरमें लङ्गर डाल कर रात भर वहीं रहे। स्वप्नमें राजाने देखा कि भगवान् कह रहे हैं, "तुम आज जिस स्थानमें सो रहे हो, उसके चारों ओरके स्थानों पर तुम्हारा अधिकार होगा।" प्रातःकाल होने पर उन्होंने स्वप्नको ईश्वरका आदेश ही समझ लिया। उस स्थानको जीतनेका सङ्कल्प कर वे अरुणोदयकालमें ही रवाना हुए। प्रशान्त नदीमें दिङ्निरूपण न कर सकनेके कारण वे इधर उधर भटकते रहे। इसी कारण राजाने उस स्थानका भुल या भुलुआ नाम रखा।

प्रवाद है, कि १०वीं माघ अथवा १२०३ ई०में यह घटना घटी थी। इसके पहले ही महम्मद इ-ख्तियार खिलजीने बङ्गाल पर आक्रमण कर दिया था। प्रवादवर्णित कालनिर्णयमें विश्वास नहीं होने पर भी लक्ष्मणमाणिक्यको वंशलतासे मालूम होता है, कि राजा विश्वम्भरकी ११वीं पीढ़ीमें राजा लक्ष्मणमाणिक्य उत्पन्न हुए थे। विश्वम्भरकी मृत्यु और लक्ष्मणके जन्म, दोनोंमें ३५० वर्षका अन्तर है।

इधर ऐतिहासिक प्रमाणसे भी जाना जाता है, कि १५८६ ई०में चन्द्रद्वीपपति राजा कन्दर्पनारायण जीवित थे। राजा लक्ष्मणमाणिक्य उन्हींके समसामयिक थे। कन्दर्पनारायणकी मृत्युके बाद बालक रामचन्द्रराय राजा हुए। बालक रामचन्द्रको लक्ष्मणमाणिक्य बुरी निगाहसे देखते थे। कई कारणोंसे क्रुद्ध हो उन्होंने भुलुआ पर चढ़ाई करनेके लिये जंगी जहाजोंको सजानेका हुकुम दिया। तदनुसार उनका दलबल अस्त्रशस्त्र ले कर मेघना नदीको पार कर गया और लक्ष्मणको खबर दी गई। भुलुआ-राज कोई आशङ्का न कर प्रति-

चेदी राजाके सम्बर्द्धनार्थ स्वयं उपस्थित हुए। उनके साथ एक भी सिपाही न गया था। शत्रुकी नाव पर चढ़ते ही वे बन्दीभावमें चन्द्रद्वीप लाये गये। वहां कारागृहमें रहते समय एक दिन रामचन्द्र उनसे मिले। इस समय लक्ष्मणमाणिक्यने उन्हें बुरी तरह घायल किया था। इस पर उन्होंने क्रोधसे अधीर हो लक्ष्मणके प्राण लेनेका हुकुम दे दिये। राजाका हुकुम फौरन तामिल किया गया।

लक्ष्मणमाथुर कायस्थ—लक्ष्मणोत्सव और वैद्यसर्वस्व नामक वैद्यक ग्रन्थके प्रणेता। ये अमरसिंहके पुत्र थे।

लक्ष्मणराजदेव—चेदीराज्यके कलचूरी-वंशीय एक राजा तथा केयूरवर्ष १म युवराजदेवके पुत्र। पिताके स्वर्ग सिधारने पर ९५० ई०में ये राजगद्दी पर बैठे। इन्होंने राजकन्या राहड़ासे विवाह किया था। उनकी लड़की बोन्थादेवीके साथ पश्चिम-चालुक्यराज विक्रमादित्यकी शादी हुई थी। राजद्रोहित २य तैलपने ९७३-९९७ ई० तक प्रभूत प्रतापके साथ राज्यशासन किया था।

बिलहरिफलकसे मालूम होता है, कि राजा लक्ष्मणराजदेव कोशलाधिपतिको हरा कर पश्चिमप्रदेश जीतने को गये थे तथा गुजरातमें सोमेश्वरलिङ्गकी उपासना की थी।

लक्ष्मण वन्द्योपाध्याय—एक बंगाली कवि। इन्होंने सम्भवतः वशिष्ठकृत अध्यात्मरामायणका बंगलानुवाद किया था। इस रामायणकी दो सौ वर्षकी पुरानी पुस्तक मिली है।

लक्ष्मण वेदान्ताचार्य—न्यायप्रकाशिका नामकी श्रीभाष्य टीकाके रचयिता।

लक्ष्मण शास्त्री—अमरकोषव्याख्याके प्रणेता तथा विश्वेश्वर शास्त्रीके पुत्र।

लक्ष्मणसिंह—शतकोटीमण्डलके प्रणेता।

लक्ष्मणसेन—बंगालके सेनवंशीय एक राजा। ये बल्लालसेनके पुत्र थे। इनके समयमें मुसलमानी सेनाने बंगाल पर आक्रमण किया था। पवनदूतपद्यावली(?)के प्रणेता शूलपाणि, हलायुध, पशुपति, जयदेव और धोयी कविने इन्हींकी सभामें रह कर सभाको उज्ज्वल किया था। इन सब पण्डितोंके संसर्ग होनेसे आप भी एक सुकवि हो गये थे। पद्यावलीमें इनकी बनाई बहुत-सी कविता उद्धृत हुई है। प्राचीन ताम्रलिपिमें ये दक्षिणाब्धिविजयी थे ऐसा उल्लेख देखा जाता है। जब महम्मद-ई बख्तियारने बङ्गाक्रमण किया, उस समय घूस लेनेवाले पंडितोंकी प्ररोचनासे बूढ़े राजा किस प्रकार राज्य छोड़ कर जगन्नाथ दर्शनके बहाने भाग गये यह बात किसीसे छिपी नहीं है। कुलशास्त्रमें ये कुलपद्धतिसंस्कारक नामसे विख्यात हैं।

सेनराजवंश देखो।

लक्ष्मण सोमयाजिन्—सीताराम-विहारकाव्यके प्रणेता तथा श्रीगिरिटनाट्टरके पुत्र।

लक्ष्मणस्वामी—काश्मीरके मन्दिरमें प्रतिष्ठित लक्ष्मणमूर्ति। (राजत० ४।२७६)

लक्ष्मणा ((सं० स्त्री०) लक्ष्मणमस्त्यस्या इति अर्श आदित्वात् टाप्। १ श्वेतकण्टकारी। २ सारसी, सारस पक्षीकी मादा। ३ एक जड़ी जो पुत्रदा मानी जाती है। यह जड़ी पर्वतों पर मिलती है। इसके पत्ते चौड़े होते हैं और उन पर लाल चंदनकी सी बूंदें होती हैं। इसका कन्द सफेद होता है और यही औषधके काममें आता है। इसका संस्कृत पर्याय—लक्ष्मणाकन्द, पुत्रकन्दा, पुत्रदा, नागिनी, नागाह्वा, नागपत्री, मुलिनी, मञ्जिका, भद्रविन्दुच्छदा, पुच्छदा। गुण—मधुर, शीतल, स्त्रीवन्ध्यत्वनाशक, रसायन, बलकर और त्रिदोषनाशक। (राजनि०)

मद्रदेशके राजा बृहत्सेनकी कन्या। यह कृष्णजीसे ब्याही गई थी और उनकी आठ पटरानियोंमेंसे एक थी। (भागव० १०।५८।५७) ५ दुर्योधनकी बेटीका नाम। इस कन्याका जब स्वयम्वर हुआ तब श्रीकृष्णके पुत्र साम्बने इसे हर कर विवाह किया।

(भागव० १०।६८।१)

६ जवासा पेड़। ७ मुगुलन्दरस।

लक्ष्मणाचार्य (सं० पु०) एक ग्रन्थकारका नाम।

लक्ष्मण भाचार्य देखो।

लक्ष्मणाश्रया (सं० स्त्री०) मन्मथालुक।

लक्ष्मणादित्य राजपुत्र—एक कवि। ये हेमेन्द्रके शिष्य थे। कविकण्ठाभरणमें इनके बनाये श्लोक उद्धृत हैं।

लक्ष्मणावती—बङ्गालकी प्राचीन राजधानी। इसका दूसरा नाम गौड़ था। गौड़ेश्वर महाराज लक्ष्मणसेन (दूसरे-के मतसे सेनवंशीय अंतिम राजा लछमनिया) ने गौड़ राजधानीको अच्छी तरह सज्ज कर उसका 'लक्ष्मणावती' नाम रखा था। तत्परवर्त्ती मुसलमान ऐतिहासिक भी इस नगरका 'लखनौती' नामसे उल्लेख कर गये हैं। १२४३ ई०के कुछ बाद मिनहाजने इस नगरमें वास किया था। लक्ष्मणावतीका तोरणद्वार तथा अन्यान्य हिन्दू और मुसलमान-कीर्त्तिका निदर्शन आज भी जो गौड़राजधानीमें विद्यमान है उसका संक्षिप्त विवरण गौड़में लिखा जा चुका है। वर्त्तमान प्रत्नतत्त्वविदोंके अध्यवसायसे इस प्राचीन जनपदके लुप्त इतिहासका अनेकांश बल्लालसेन और लक्ष्मणसेन आदि सेनवंशीय राजाओंके जीवन इतिहासके साथ साथ उद्घाटित होता है। उसका विस्तृत विवरण बङ्गालके इतिहासमें दिया जायगा।

गौड़, बङ्गाल और सेनराजवंश देखो।

लक्ष्मणोरु (सं० त्रि०) लक्षणोरु देखो।

लक्ष्मण्य (सं० पु०) लक्ष्मणके पुत्र। (ऋक् ५।३३।१०)

लक्ष्मवीथी (सं० स्त्री०) लक्ष्य करनेका पथ।

लक्ष्मी (सं० स्त्री०) लक्षयति पश्यति उद्योगिनमिति लक्षि (लक्षेर्मुट् च। उण् ३।१६०) ई प्रत्ययो मुडागमश्च। विष्णुपत्नी। पर्याय—पद्मालया, पद्मा, कमला, श्री, हरिप्रिया, इन्दिरा, लोकमाता, क्षीराब्धितनया, रमा, जलधिजा, भार्गवी, हरिवल्लभा, दुग्धाब्धितनया, क्षीरसागरसुता। (कविकल्पलता)

ब्रह्मवैवर्त्तपुराणमें लक्ष्मीका उत्पत्ति-विषय इस प्रकार लिखा है,—एक दिन नारदने नारायणसे लक्ष्मीकी उत्पत्ति और पूजादिका विषय पूछा। नारायणने कहा था कि, "सृष्टिके पहले रासमण्डलस्थित परमात्मा श्रीकृष्णके वामभागसे लक्ष्मीदेवी उत्पन्न हुईं। ये अत्यन्त सुन्दरी और तप्तकाञ्चनवर्णाभा थीं। उनका अङ्ग शीतलमें सुखजनक, उष्ण और ग्रीष्मकालमें शीतल, कटिदेश क्षीण, दोनों स्तन कठिन और नितम्ब अति विशाल था। यह देवी स्थिरयौवना थीं तथा उनका वर्ण श्वेत चम्पकके समान था। मुखमण्डल शारदीय कोटि पूर्णचन्द्रकी प्रभाको भी मात करता था। दोनों नेत्र शरत्कालीन मध्याह्नके विकसित पद्मको भी तिरस्कार करते थे। यह देवी उत्पन्न होते ही ईश्वरकी इच्छासे दो रूपोंमें विभक्त हो गईं। दोनों ही मूर्त्ति रूप, वर्ण, तेज, वयस, प्रभा, यश, वस्त्र, भूषण, गुण, हास्य, दर्शन, वाक्य, मधुरस्वर और नीतिमें एक सी थीं। उनका नाम राधिका और लक्ष्मी रखा गया। कृष्णकी वामांशसम्भूता मूर्त्ति लक्ष्मी तथा दक्षिणांशसम्भूता देवी राधिका कहलाईं। राधिकाने उत्पन्न होते ही श्रीकृष्णकी कामना की। पीछे लक्ष्मीने भी कृष्णकी प्रार्थना की। श्रीकृष्णने इस प्रकार दोनोंसे प्रार्थित हो दोनोंका ही अभिलाष पूर्ण किया था। इसके बाद श्रीकृष्ण दक्षांशसे द्विभुज और वामांशसे चतुर्भुज इन दो भागोंमें विभक्त हुए। पीछे द्विभुज मूर्त्तिमें कृष्णने राधिकाको ग्रहण किया और स्वीय चतुर्भुज नारायणमूर्त्ति ले कर लक्ष्मीकी प्रार्थना पूरी की। लक्ष्मीदेवी स्निग्ध दृष्टिसे समस्त विश्व पर लक्ष्य रखती हैं, इस कारण वे महालक्ष्मी कहलाईं। इस प्रकार द्विभुज कृष्ण राधिकाकान्त तथा चतुर्भुज नारायण लक्ष्मीकान्त हुए थे।

श्रीकृष्ण राधिका और गोपियोंके साथ गोलोकमें रहे तथा चतुर्भुज नारायण लक्ष्मीदेवीके साथ वैकुण्ठमें गये। कृष्ण और नारायण दोनों ही सर्वांशमें एक-से हैं। यह लक्ष्मीदेवी शुद्धसत्त्वस्वरूपा हैं। वैकुण्ठधाम ही उनका पूर्णाधिष्ठान निर्दिष्ट है। ये प्रेमसे नारायणको आवद्ध कर सभी रमणियोंमें प्रधान हुईं। यह लक्ष्मीदेवी इन्द्रकी सम्पत्तिरूपिणी स्वर्गलक्ष्मीरूपमें, पाताल और मर्त्यमें राजाओंके निकट राजलक्ष्मीरूपमें, गृहिगण-गृहमें गृहलक्ष्मीरूपमें, कलांश द्वारा गृहिणी और सम्पद् रूपमें, गोगणकी प्रसूति सुरभिरूपमें, यज्ञकामिनी दक्षिणा रूपमें, क्षीरोदसागरकी कन्या रूपमें, चन्द्रसूर्यमण्डलमें, रत्नमें, फलमें, नृपपत्नीमें, दिव्य स्त्रीमें, गृहमें, समस्त शस्यमें, वस्त्रमें, परिष्कृत स्थानमें, देवप्रतिमामें, मङ्गलघटमें, माणिक्य और मुक्ता आदिमें शोभारूपमें अवस्थान करती हैं। जहां जहां सामान्य रूपकी भी शोभा देखनेमें आती है, वहां लक्ष्मीदेवी अवस्थित हैं, ऐसा जानना होगा। क्योंकि, लक्ष्मीदेवी ही एकमात्र शोभाकी आधार हैं। विना उनके अवस्थानके शोभा रह नहीं सकती। लक्ष्मी-

देवी जहां विराजित नहीं रहती हैं वहां इनकी दिखाई देती है।

लक्ष्मीदेवी पहले वैकुण्ठधाममें नारायणसे पूजी गई। पीछे ब्रह्मा और महादेवने उनकी पूजा की। अनन्तर क्षीरोदसागरमें विष्णुने, भारतमें स्वायम्भुव मनुने, मानवेन्द्र, नृपेन्द्र, मुनीन्द्र और साधुगृहिगणने तथा पातालमें नागोंने यथाक्रम उनका पूजन किया था। पहले ब्रह्माने भाद्रमासकी शुक्लाष्टमीसे समस्त पक्ष भक्तिपूर्वक उनकी पूजा की थी। तभीसे त्रिलोकमें यह पद्धति प्रचलित है।

चैत, पौष और भाद्रमासके शुद्ध और मङ्गलजनक दिनमें विष्णुने उनकी पूजा की। पीछे त्रिलोकवासी भी इन तीनों महीनोंमें लक्ष्मीदेवीकी पूजा करने लगे। मनुने पौषमासके संक्रान्ति दिनमें प्राङ्गणके मध्य लक्ष्मीका पूजन किया। धीरे धीरे यह पूजन भी संसारमें प्रचलित हो गया। इसके बाद राजेन्द्र, मङ्गल, केदार, बलदेव, सुबल, ध्रुव, इन्द्र, बलि, कश्यप, दक्ष आदिने उनकी पूजा की थी।

इस प्रकार यह सर्व सम्पत्स्वरूपिणी सकल ऐश्वर्यकी अधिष्ठात्री देवी लक्ष्मी सर्वदा सर्वत्र सभी लोगोंसे वन्दित और पूजित होती हैं। लक्ष्मीदेवी वैकुण्ठमें पूर्णभावमें तथा चराचर ब्रह्माण्डमें अंशभावमें विराजित हैं।

नारायणसे लक्ष्मीदेवीकी उत्पत्ति आदिका विवरण सुन कर नारदके मनमें एक महा संशय उपस्थित हुआ। यह संशय दूर करनेके लिये उन्होंने भगवान्से प्रश्न किया कि, लक्ष्मीदेवी रासमण्डलमें आविर्भूत हुईं, किन्तु उनका नाम सिन्धु-तनया क्यों पड़ा? समुद्र मथ कर देवताओंने किस प्रकार लक्ष्मीको पाया? आप यह संशय दूर कर कृतार्थ करें।

भगवान्ने कुछ मुसकुरा कर कहा, 'नारद! पहले दुर्वासा मुनिके अभिशापसे जब देवराज, देवगण और मर्त्यवासी सभी श्रीभ्रष्ट हुए, तब लक्ष्मीदेवी कष्ट हो परम दुःखितान्तःकरणसे स्वर्गादिका परित्याग कर वैकुण्ठधाम गईं और महालक्ष्मीमें लीन हुईं। एक दिन देवराज इन्द्र अतिशय कामोन्मत्त भावमें रम्भाका शृङ्गार कर रहे थे। इसी समय अकस्मात् दुर्वासामुनि शङ्करकी पूजा करनेके लिये वहां आ पहुंचे। देवेन्द्रने मुनीन्द्रको देख कर ज्ञानशून्य अवस्थामें प्रणाम किया। इस पर महामुनि दुर्वासाने उन्हें आशीर्वाद दे कर पारिजातपुष्प प्रदान किया और कह दिया कि यह पुष्प सकल पापनाशक और सब प्रकारका मङ्गलनिदान है। उन्होंने यह भी कहा, कि जो भक्तिपूर्वक श्रीहरिके चरणोंमें निवेदित यह पुष्प मस्तक पर धारण न करेगा, वह स्वगणके साथ श्रीभ्रष्ट होगा।

उस समय इन्द्र अत्यन्त कामोन्मत्त थे। उन्हें कर्त्तव्याकर्त्तव्यका कुछ भी ज्ञान न था। अतएव दुर्वासाके चले जाने पर उन्होंने भ्रमवशतः वह पुष्प ऐरावतके मस्तक पर फेंक दिया। ऐरावत उस पुष्पको मस्तक पर धारण करते ही इन्द्रका परित्याग कर जंगल चला गया। इन्द्र उसी समय स्वजनोंके साथ श्रीभ्रष्ट हुए। इन्द्रको श्रीभ्रष्ट होते देख रम्भा भी उन्हें छोड़ चली गई, तब इन्द्रकी नींद टूटी, वे होशमें आये।

इन्द्र बड़े दुःखित हो अमरावती गये। अमरावती आ कर उन्होंने पुरीको निरानन्दमय, शत्रुओंसे परिपूर्ण, दीनभावापन्न तथा बन्धु बान्धववर्जित देखा। पीछे दूतके मुखसे कुल वृत्तान्त सुन कर वे देवताओंके साथ ब्रह्माके निकट गये। ब्रह्माको जब कुल हाल मालूम हुआ, तब वे इन्द्रसे कहने लगे, 'देवेन्द्र! तुम मेरा प्रपौत्र हो। निरन्तर श्रीके आश्रयमें तुमने उज्ज्वल श्रीको धारण किया था, तुम लक्ष्मी सदृशी शचीका स्वामी हो। फिर भी तुम सर्वदा पराई स्त्रीमें फंसे रहते हो, पहले तुम गौतमके शापसे भगाङ्ग हो गया था, जिस पर भी तुमने पर स्त्रीरमण नहीं छोड़ा। जो पर स्त्री-रमण करता है, उसकी श्री और यश नष्ट होता है। इत्यादि प्रकारसे इन्द्रको तिरस्कार कर लोकपितामहने फिरसे कहा, 'जाओ तुम भगवान् विष्णुकी आराधना करो, वे तुम्हें लक्ष्मी-प्राप्तिका उपाय बतला देंगे।'

अनन्तर इन्द्र नारायणके उद्देशसे कठोर तपस्या करने लगे। तपस्यासे प्रसन्न हो कर नारायणने लक्ष्मीको सिन्धु-कन्यारूपमें जन्म लेने कहा। पीछे लक्ष्मीके पानेके लिये देव दानवने मिल कर समुद्र-मन्थन किया था। इस समुद्र-मन्थनसे इन्द्रने सम्पत् स्वरूपिणी लक्ष्मीको पाया। नारायणकी आज्ञासे उनके निवासार्थ

सिन्धुकन्यारूपमें लक्ष्मी प्रादुर्भूत हुई थीं। समुद्रसे उत्पन्न हो कर लक्ष्मीने देव आदिको वर दिया। लक्ष्मीकी कृपासे इन्द्र राज्य और श्रीयुक्त हुए थे। उस समय सबोंने मिल कर लक्ष्मीदेवीका स्तव किया था।
(ब्रह्मवैवर्त पु० ३३-३६ अ०)

लक्ष्मीचरित।

लक्ष्मी किस किस स्थानमें रहती हैं और कहां कहां नहीं रहती हैं उसका विषय पुराणादिमें इस प्रकार लिखा है,—यह लक्ष्मीचरित परम-पवित्र है। जो भक्ति पूर्वक उसे सुनते हैं उनका दुःख दूर होता है। लक्ष्मी-देवी जब समुद्रसे उत्पन्न हुई, तब अङ्गिरा, मरीचि आदि ऋषियोंने उनका पूजन और स्तव कर कहा था, 'माता! आप देवताओंके घर और मर्त्यलोक जाइये। जगज्जननी लक्ष्मीने देवताओंसे यह वचन सुन कर उन्हें कहा, 'मैं ब्राह्मणोंकी सलाहसे देवताओंके घर और मर्त्यलोकमें अवश्य जाऊंगी। हे मुनीन्द्रगण! भारतवर्षमें मैं जिनके घर जाऊंगी सो ध्यान दे कर सुनो।

मैं पुण्यवान् सुनीतिज्ञ गृहस्थ और राजाओंके घर स्थिरभावमें रह कर उन्हें पुत्रके समान प्रतिपालन करूंगी। गुरु, देवता, माता, पिता, बान्धव, अतिथि और पितृलोक जिनके प्रति रुष्ट हैं मैं उनके घर नहीं जा सकती। जो व्यक्ति हमेशा चिंता करता रहता है तथा जो सर्वदा भयभीत, शत्रुग्रस्त है, जो अत्यन्त पातकी, ऋणग्रस्त या अतिशय कृपण है उन सब पापियोंके घर मैं पदार्पण नहीं करूंगी। जिस व्यक्तिने दीक्षा नहीं ली है, जो सर्वदा शोकपीड़ित, मन्दबुद्धि, स्त्रीके वशी-भूत है, जिसकी स्त्री और माता वेश्या है, जो कटुभाषी है, हमेशा कलह करता है, जिसके घर हमेशा कलह होता है, जिसके घरमें स्त्रियां प्रधान हैं, उनके घर में प्रवेश नहीं करूंगी। जो व्यक्ति हरिपूजा और हरिका गुण गान नहीं करता अथवा जो हरिकी प्रशंसा करना नहीं चाहता, जो व्यक्ति कन्या-विक्रय, आत्म-विक्रय और वेद विक्रय करता है वह नरहत्याकारक और हिंसक है, उसका घर नरकके समान है। वहां मैं कदापि नहीं जाऊंगी। जो व्यक्ति कृपणता, दोषसे दूषित हो कर माता, पिता, भार्या, गुरुपत्नी, गुरुपुत्र, अनाथा, भगिनी, कन्या और आश्रयरहित बान्धवोंका पोषण न करके सर्वदा धनसञ्चयमें लगा रहता है, मैं कभी भी उसके घर नहीं जाऊंगी।

जिस व्यक्तिके दन्त अपरिष्कृत, वस्त्र मलिन, मस्तक रूक्ष, ग्रास और हास्य विकृत है तथा जो मूर्ख मूत्रविष्ठा त्याग करते समय मूत्रादि त्याग करनेवालेको देखता है, जो भींगे पैरको धो कर या पैरको न धो कर सोता है, जो नंगा सोता है, जो शाम या दिनको शयन करता है उसके घरमें कभी भी पदार्पण नहीं करूंगी। जो व्यक्ति पहले शिरमें तेल लगा कर पीछे दूसरे अंगमें लगाता है, जो तेल लगा कर विष्ठामूत्र त्याग करता, प्रणाम करता या फूल तोड़ता है, जो नाखूनसे तृण काटता और जमीन कोड़ता है, जिसके शरीर और पैरमें मैल रहता है, उस पर मेरी कृपा नहीं रहती। जो व्यक्ति जान बूझ कर आत्म दत्त या परदत्त ब्राह्मणकी या देवताकी वृत्ति हरण करता है, उसके घरमें मेरा स्थान नहीं। जो मन्दबुद्धि, शठ, दक्षिणाविहीन, यज्ञकारक और पापी है तथा मन्त्र और विद्या द्वारा जीविका-निर्वाह करता है, जो ग्रामयाजी, चिकित्सक, पाचक और देवल, जो क्रोधवशतः विवाह-कर्म या अन्य धर्मकार्यमें बाधा पहुंचाता है तथा दिनको मैथुन आचरण करता है, मैं इन सब व्यक्तियोंके घर नहीं जाती। (ब्रह्मवैवर्त पु० गणेशखं०,२१, २२ अ०)

पद्मपुराणमें लिखा है, कि एक दिन केशवने मेरुपृष्ठ पर सुखसे बैठी हुई लक्ष्मीसे पूछा था, 'देवी! तुम कहां पर निश्चल हो कर रहती हो।' उत्तरमें लक्ष्मीने विष्णु-से इस प्रकार कहा था—

"मेरुपृष्ठे सुखासीनां लक्ष्मीं पृच्छति केशवः।
केनोपायेन देवि त्वं गृहां भवति निश्चला॥
श्रीरुवाच।
शुक्लाः पारावता यत्र गृहिणी यत्र चोज्ज्वला।
अकलहा वर्त्तते तत्र कृष्ण वसाम्यहम्॥
धान्यं सुवर्णसदृशं तण्डुला रजतोपमाः।
अन्नञ्चैवातुषं यत्र तत्र कृष्ण वसाम्यहम्॥"
(स्कन्दपु० लक्ष्मीचरित्र)

जहां सफेद कबूतर रहते हैं, जहां गृहिणी सुन्दरी और कलहहीना है, वहां मैं अवस्थान करती हूं। जहां धान

"श्वेतचम्पकवर्णाभा शुद्धरम्या मनोहरा ।
शरत्पार्वणकोटीन्दुप्रभा प्रच्छादितानना ॥"

(ब्रह्मवैवर्त्तपु० प्रकृतिख० ३५ अ०)

किन्तु दूसरी जगह इन्हें गौरवर्णा कहा है । जिस ध्यानसे लक्ष्मीपूजा होती है उस ध्यानके अनुसार ये गौरवर्णा हैं । ध्यान—

"पाशाक्षमालिकाम्भोजसृणिभिर्याम्यसौम्ययोः ।
पद्मासनस्थां ध्यायेच्च श्रियं त्रैलोक्यमातरम् ॥
गौरवर्णां सुरूपाञ्च सर्वालङ्कारभूषिताम् ।
रौक्मपद्मव्यग्रकरां वरदां दक्षिणेन तु ॥"

स्कन्दपुराणोक्त ध्यान—

"हिरण्यवर्णां हरिणीं सुवर्णरजतस्रजाम् ।
चन्द्रां हिरण्मयीं लक्ष्मीं जातवेदसमावहाम् ॥
गौरवर्णान्तु द्विभुजां सितपद्मोपरिस्थिताम् ।
बिभ्रतीं वरदहस्ताञ्च जगच्छोभाप्रकाशिनीम् ॥"

आश्विनी पूर्णिमाके दिन कोजागरी लक्ष्मीपूजा और कार्त्तिकी अमावस्याके दिन दीपान्विता लक्ष्मीपूजा होती है । दीपान्विता और कोजागरी शब्दमें देखो ।

२ दुर्गा । ३ सम्पत्ति, दौलत । ४ शोभा, सौन्दर्य । ५ ऋद्ध्यौषध, ऋद्धि नामकी ओषधि । ६ वृद्धिनामौषध, वृद्धि नामकी ओषधि । ७ फलवान्वृक्ष, वह वृक्ष जो फलता हो । ८ सीताजीका एक नाम । ९ वीरस्त्री । १० स्थलपद्मिनी, थलकमल । ११ हरिद्रा, हल्दी । १२ शमीवृक्ष । १३ द्रव्य, चीज । १४ मुक्ता, मोती । १५ मोक्षकी प्राप्ति । १६ पद्म, कमल । १७ श्वेत तुलसी, सफेद तुलसी । १८ मेषशृङ्गी, मेढासिंगी । १९ एक वर्णवृत्त जिसके प्रत्येक चरणमें दो रगण, एक गुरु और एक लघु अक्षर होता है ।

लक्ष्मी—एक विदुषी स्त्री-कवि । लक्ष्मी देखो ।

लक्ष्मीक (सं० त्रि०) १ लक्ष्मीवन्त, धनवान् । २ सौभाग्ययुक्त, भाग्यवान् ।

लक्ष्मीकवच—एक मन्त्रौषध जो पहना जाता है । आगमसार, कूर्मपुराण और स्कन्दपुराणमें इसका विषय लिखा है ।

लक्ष्मीकान्त (सं० पु०) लक्ष्म्याः कान्तः । १ नारायण । २ कल्लोलेश-लक्ष्मीकान्त नामक एक देवता ।

लक्ष्मीकान्त न्यायभूषण (भट्टाचार्य)—रघपद्धतिके प्रणेता । इन्होंने कृष्णनगराधिप राजा गिरिशचन्द्रके कहनेसे प्रायः ६५ वर्ष पहले यह ग्रन्थ बनाया था ।

लक्ष्मीकुमार ताताचार्य—लघुभाव-प्रकाशिका और सारचन्द्रिकाके रचयिता ।

लक्ष्मीकुलार्णव (सं० पु०) एक तन्त्रका नाम ।

लक्ष्मीगृह (सं० क्ली०) लक्ष्म्याः गृहं आवासस्थान । १ रक्तोत्पल, लाल कमल । २ लक्ष्मीवेश्म, लक्ष्मीका घर ।

लक्ष्मीचन्द्र मिश्र—शैवकल्पद्रुमके प्रणेता ।

लक्ष्मीजनार्द्दन (सं० पु०) १ लक्ष्म्या सहितो जनार्द्दनः । शालग्रामशिलाविशेष । इसके लक्षण—एक ओर चार चक्र, नवीन नीरदतुल्य अर्थात् घोर कृष्णवर्ण तथा वनमालारहित शालग्राम शिलाको लक्ष्मीजनार्द्दन कहते हैं । (ब्रह्मवैवर्त्तपु० प्रकृतिख० और देवीभाग० ९।२४।२९) २ लक्ष्मी और नारायण ।

लक्ष्मी टोड़ी (हिं० स्त्री०) एक प्रकारकी संकर रागिणी । इसमें सब कोमल स्वर लगते हैं ।

लक्ष्मीताल (सं० पु०) लक्ष्मीयुक्तस्तालः । १ श्रीतालवृक्ष । २ संगीतमें १८ *मात्राओंका एक ताल* । इसमें १५ आघात और तीन खाली होते हैं ।

लक्ष्मीत्व (सं० क्ली०) लक्ष्मी भावे त्व । १ लक्ष्मीका भाव या धर्म । २ ऐश्वर्य ।

लक्ष्मीदत्त—१ सहमचन्द्रिका-टीका और हिल्लाजदीपिकाटीकाके रचयिता । २ पाण्डवचरितकाव्यके प्रणेता तथा लक्ष्मीनारायणके पुत्र ।

लक्ष्मीदत्त आचार्य—आकाश-निरूपण नामक न्यायग्रन्थ । वचनभूषण (वेदान्त) तथा पदार्थदीपिका और संग्रह नामक व्याकरणके प्रणेता ।

लक्ष्मीदास (सं० पु०) योगशतक ग्रन्थके प्रणेता ।

लक्ष्मीदास—१ अनुमान-लक्षणके प्रणेता । २ योगशतक नामक ग्रन्थकर्त्ता । ३ केरलवासी एक कवि । इन्होंने शुकसन्देश-काव्य रचा । ४ भास्कराचार्यकृत सिद्धान्तशिरोमणि ग्रन्थकी गणिततत्त्वचिन्तामणि नामक प्रसिद्ध टीकाके प्रणेता । ये वाचस्पति मिश्रके

पुत्र और केशवके पौत्र थे। इन्होंने १५०१ ई०में अपना ग्रन्थ समाप्त किया।

लक्ष्मीदेव—मङ्खके समसामयिक एक पण्डित। श्रीकण्ठ-चरित काव्यमें इनका उल्लेख है।

लक्ष्मीदेवी (सं० स्त्री०) मिथिलाराज चन्द्रसिंहकी महिषी। ये लछिमा और ललिमा नामसे मशहूर थीं। विवादचंद्र आदि ग्रंथके प्रणेता मिसरू मिश्र और मिताक्षरा-टीकाके रचयिता बालंभट्ट उन्हीं द्वारा पाले पोसे गये थे। रानीने स्वयं पण्डितोंके साहाय्यसे मिताक्षरा-व्याख्यान नामक प्रसिद्ध मिताक्षरा-टीका लिखी।

लक्ष्मीधर (सं० पु०) १ स्रग्विणी छन्दका दूसरा नाम। २ विष्णु।

लक्ष्मीधर—१ एक कवि। पद्यावलीमें इनका उल्लेख है। २ द्राविड़वासी एक ब्राह्मण। भोजप्रबन्धमें इसका विषय वर्णित हुआ है। ३ अलङ्कार मुक्तावलीके प्रणेता। ४ चक्रपाणिकाव्य और मलयवर्णनकाव्यके रचयिता। ५ विट्ठलटीकाके प्रणेता। वृत्तरत्नाकरादर्शमें इनका नामोल्लेख है। ६ स्मृतिकल्पद्रुम या गृहस्थकाण्डके रचयिता। ७ गणितप्रदीपके प्रणेता। ये भागनाथके भाई और शिवदेवके पुत्र थे। ८ षड्भाषाचन्द्रिकाके रचयिता। ये कोण्डभट्टके शिष्य और यज्ञेश्वरभट्टके लड़के थे। ९ हरिकारिकाके प्रणेता तथा श्रीकण्ठके पुत्र और विद्याधरके पौत्र। १० विरुद्धविधिविध्वंस नामक ग्रन्थके रचयिता। ये मल्लदेवके पुत्र और वामनके पौत्र थे।

लक्ष्मीधर आचार्य—नामचिन्तामणि, न्यायभास्कर और भगवन्नामकौमुदीके रचयिता। ये विट्ठलाचार्यके पुत्र थे। अनन्तानन्द रघुनाथयति और श्रीकृष्ण सरस्वतीसे इन्होंने विद्या सीखी।

लक्ष्मीधर—कवि-अद्वैतमकरन्द और न्यायमकरन्दके रचयिता।

लक्ष्मीधर देशिक—आनन्दलहरीकी टीकाके बनानेवाले।

लक्ष्मीधर भट्ट—१ कुण्डकारिकाके रचयिता। २ कृत्य-कल्पतरुके प्रणेता। ये कान्यकुब्जाधिपति राजा गोविन्द-चन्द्र देवके मन्त्री और महासान्धिविग्रहिक हृदयधरके पुत्र थे। इनके रचे तीन और कल्पग्रन्थ मिलते हैं,—दानकल्पतरु, राजधर्मकल्पतरु और व्यवहारकल्पतरु। ये ग्रन्थ समग्र उक्त कल्पतरुके ही अंदर हैं।

लक्ष्मीधरसेन—एक वैद्य पण्डित। ये कायुरस्थसेनके पुत्र और माङ्गल्यसेनके पौत्र थे। तत्त्वचन्द्रिका नामकी चिकित्सासंग्रहकी टीकाके प्रणेता। शिवदासमेन इनके प्रपौत्र थे।

लक्ष्मीनरसिंह—विलास नामक व्याकरणके प्रणेता। इन्होंने विशेषणद्वयवैयर्थ्य नामक न्यायशास्त्र भी बनाया।

लक्ष्मीनाथ (सं० पु०) विष्णु।

लक्ष्मीनाथ—गोपालार्च्चनचन्द्रिकाके रचयिता।

लक्ष्मीनाथ भट्ट—१ पिङ्गलार्थप्रदीपके प्रणेता रायभट्ट-के पुत्र और नारायणके पौत्र। १८०० ई०में इन्होंने उक्त ग्रन्थ समाप्त किया। २ एक पण्डित। वृत्तमौक्तिकके प्रणेता चन्द्रशेखर इनके लड़के थे।

लक्ष्मीनाथ मिश्र लीलावतीटीका और सिद्धान्तशिरो-मणि-टीकाके प्रणेता।

लक्ष्मीनाथ शर्म्मन्—शिशुपाल-वधव्याख्याके रचयिता। ये नारायण शर्माके पुत्र और वंशीधर शर्माके पौत्र थे।

लक्ष्मीनारायण—१ उपलमार्य, काशीस्तोत्र, कृष्णाष्टक, देव्याष्टक, गौराङ्गपद्यालक्षणविविक्ति, पांशुस्नानवृत्ति-प्रकाश, प्रातःस्मरणाष्टक, भारतीनीराजन, मङ्गलाष्टक, मदनमुखचपेटिका, रामचन्द्रपञ्चरत्नी, रामपञ्चश्लोकल्प-लतिका, विश्वपदासिनोरदाक, विश्वेश्वरनीराजन, विष्णु-नीराजन, शङ्कराष्टक, शिवपूजक, शिवस्तोत्र, सूर्य्यावरणपदी आदि ग्रन्थके प्रणेता। २ तत्त्वप्रकाशिकाव्याख्या नामक वेदान्तग्रन्थके रचयिता। ३ न्यायविकारिकारके प्रणेता। ४ लघुसंग्रह नामक ज्योतिर्ग्रन्थके रचयिता। ५ मुग्धबोध-टीकाके प्रणेता।

लक्ष्मीनारायण—कुर्गराज्यके दीवान। ये जातिके ब्राह्मण थे। १८३३ ई०में मालुप्रदेशवासी भीषण विद्रोही हो उठे। धीरे धीरे यह विद्रोहकी आग दक्षिण-कनाड़ा होती हुई कुर्गराज्यमें फैल गई। इस समय अप्पय्यर नामक एक राजद्रोहीके उकसाने पर दीवान लक्ष्मीनारायण अंगरेजोंके दुश्मन बन बैठे, किन्तु विश्वासी कुर्गियोंके साहाय्यसे शीघ्र ही दीवानजीका दमन काबूमें गया।

लक्ष्मीनारायण (सं० पु०) लक्ष्म्युपलक्षितो नारायणः। १ शालग्रामशिलाविशेष। जिस शालग्राम-शिलाका एक ओर चार चक्र, घोर कृष्णवर्ण और वनमाला विभूषित

लक्ष्याराम (सं॰ पु॰) लक्ष्म्या आरामः। एक वनका नाम।

लक्ष्य (सं॰ क्ली॰) लक्ष्यते यदिति लक्ष-ण्यत्। १ शरवेधस्थान, वह जगह या वस्तु जिस पर किसी प्रकारका निशाना लगाया जाय। पर्याय—लक्ष, शरव्य, प्रतिकार, वेध्य, वेध। २ वह जिस पर किसी प्रकारका आक्षेप किया जाय। ३ व्याज, बाधा। ४ अनुमेय, वह जिसका अनुमान किया जाय। ५ अस्त्रोंका एक प्रकारका संहार। ६ अभिलषित पदार्थ, उद्देश्य। ७ वह अर्थ जो वाच्य, लक्ष्य और व्यङ्ग्य इन तीन प्रकारके शब्दोंकी लक्षण-शक्तिके द्वारा निकलता है उसे लक्ष्य कहते हैं। लक्षणा देखो। (त्रि॰) ८ दर्शनीय, देखने योग्य।

लक्ष्यक्रम (सं॰ त्रि॰) १ जिस अज्ञात प्रणालीके द्वारा उद्दिष्ट वस्तुका आकार और इङ्गित जाना जाय। २ काव्योक्तिमें अनिर्द्देश्यबोधक ज्ञान जिसके प्रकाश करनेकी आवश्यकता नहीं रहती।

लक्ष्यज्ञत्व (सं॰ क्ली॰) १ चिह्नानुशीलन ज्ञान, वह ज्ञान जो चिह्नोंको देख कर उत्पन्न हो। २ वह ज्ञान जो दृष्टान्तके द्वारा उत्पन्न हो।

लक्ष्यता (सं॰ स्त्री॰) लक्ष्यस्य भावः तल टाप्। लक्ष्यका भाव या धर्म, लक्ष्यत्व।

लक्ष्यभेद (सं॰ पु॰) चिह्नितस्थान विच्छिन्नकरण, एक प्रकारका निशाना जिसमें तेजीसे चलते या उड़ते हुए लक्ष्यको भेदते हैं। अर्जुनने आकाशमार्गमें स्थित मत्स्यचिह्नको धनुर्धरसे विद्ध किया था।

लक्ष्यवीथी (सं॰ स्त्री॰) लक्ष्यावीथी। १ मनुष्य-जीवनकी उद्देश्यसाधक पन्था, वह उपाय या कर्म जिससे जीवनका उद्देश्य सिद्ध होता हो। २ ब्रह्मलोकका मार्ग, देवयान पथ।

लक्ष्यवेधिन् (सं॰ त्रि॰) निशानाविद्धकारी, लक्ष्य वेध करनेवाला।

लक्ष्यसुप्त (सं॰ त्रि॰) नींद तोड़नेवाला।

लक्ष्यहन् (सं॰ त्रि॰) लक्ष्यं हन्ति हन क्विप्। १ लक्ष्यभेदकारी, उड़ते या तेजीसे चलते हुए पदार्थों या जीवों पर ठीक निशाना करनेवाला। (पु॰) २ तीर।

लक्ष्यार्थ (सं॰ पु॰) वह अर्थ जो लक्षणासे निकले।

लखतार—बम्बई-प्रदेशके काठियावाड़ विभागके अन्तर्गत एक देशी सामन्त राज्य। यह अक्षा॰ २२° ४६´ से २३° उ॰ तथा देशा॰ ७१° ४६´ से ७२° ३´ पू॰के मध्य अवस्थित है। भूपरिमाण २४८ वर्गमील और जनसंख्या १५ हजारसे ऊपर है। इसमें ५१ ग्राम लगते हैं। राजस्व ७० हजार रुपयेसे ज्यादा है। थान और लखतार नामक दो भूसम्पत्ति तथा अहमदाबाद जिलेके कुछ ग्राम ले कर यह राज्य संगठित है।

यहां एक भी नदी या पहाड़ नहीं है। अधिकांश स्थान समतल है। रुई और धान ही यहांका प्रधान उपज है। पेर और बोराश्रेणीके मुसलमान स्थानीय कपाससे एक प्रकारका मोटा कपड़ा तैयार करते हैं। थानकी कुम्हार-जातिका मृत्-शिल्प प्रशंसनीय है। ज्वरके सिवा यहां और किसी प्रकारका रोग नहीं दिखाई देता। यह स्थान बहुत स्वास्थ्यप्रद है।

यहांके सरदार तृतीय श्रेणीके सामन्त कहलाते हैं। १८०७ ई॰की सन्धिके अनुसार ये लोग भी अंगरेजोंकी अधीनता स्वीकार करनेको बाध्य हुए। इलाहाबादके राजा साहब चन्द्रसिंहजीके लड़के अभयसिंहजीको लखतार तालुक ध्राङ्गध्रा राज्यसे मिला था। अभयसिंहने १६०४-१५ ई॰के भीतर थान तथा आस पासके देश कारियासे छीन लिये। वर्त्तमान सरदार उन्हींके वंशधर हैं। ठाकुर इनकी उपाधि है। जूनागढ़के नवाब और अंगरेजोंको कर देना पड़ता है।

लखन (हिं॰ स्त्री॰) लखनेकी क्रिया या भाव।

लखनऊ—१ अयोध्या प्रदेशके कमीशनरके अधीन एक विभाग। यह युक्तप्रदेशके छोटे लाटके शासनाधीन है। अक्षा॰ २५° ४६´ से २८° ४२´ उ॰ तथा देशा॰ ७९° ४१´ से ८१° ३४´ पू॰के मध्य अवस्थित है। भूपरिमाण १२०५१ वर्गमील है। इसमें ४४ शहर और १०१५० ग्राम लगते हैं। लखनऊ शहर सबसे बड़ा है। लखनऊ, उनाव, रायबरेली, सीतापुर, हरदोई और खेरी जिला ले कर यह विभाग संगठित है। जनसंख्या ३० लाखके करीब है।

२ उक्त विभागका एक जिला। यह अक्षा॰ २६° ३०´

२ कासाधिकारमें औषधविशेष। प्रस्तुत प्रणाली—पारा, हरिताल, प्रत्येक दो भाग ; खपड़ा, रांगा, कान्तलौह, अबरक, तांबा, कांसा, गंधक, प्रत्येक द्रव्य ८ तोला ले कर अच्छी तरह पीसे और केसरके रसमें भावना दे कर इलायची, जायफल, तेजपत, लवङ्ग, यमानी, जीरा त्रिकटु, त्रिफला, प्रत्येक एक एक भाग मिलावे । बादमें चनेके समान गोली बना कर छायामें सुखा ले। अनुपान शीतल जल है। इसके सेवनसे सभी प्रकारके कास शीघ्र नष्ट होते हैं। औषधसेवनकालका पथ्य—मछली, मांस, दूध और स्निग्ध भोजन। साग, खट्टा, मीठा खाना मना है। यह औषध क्षयकास, श्वास, श्लेष्मा, पाण्डु, शोथ, शूल, प्रमेह, और अर्श आदि रोगोंमें भी विशेष उपकारक है। (रसेन्द्रसारस० कासाधि०)

३ वातव्याधिनाशक औषधविशेष। प्रस्तुत प्रणाली—कृष्ण अबरक, पारा, गंधक, विजबंद, नागबला, शतमूली, भूमिकुष्माण्ड, काले धतूरेका बीज, हिजलबीज, वृद्धदारकबीज, गोक्षुरबीज, सिद्धिबीज, जातीफल, जैती, कपूर प्रत्येक २ तोला, सोनेकी भस्म २ माशा, इन्हें एक साथ अच्छी तरह पीस कर चनेके बराबर गोली बनावे। अनुपान त्रिफलाका जल वा दोषके बलाबल अनुसार स्थिर करना होगा। यह औषध पुष्टिकारक, बलकर तथा वातव्याधि, कुष्ठ, पाण्डु, प्रमेह आदि रोगनाशक है। (रसेन्द्रसारस० वातव्याधि रोगाधिका०)

४ रसायन और वाजीकरण रोगाधिकारमें औषधविशेष। प्रस्तुत प्रणाली—कृष्ण अबरकका चूर्ण ८ तोला, पारा, गंधक, कपूर, जायफल, जैती, वृद्धदारकबीज, धतूरेका बीज, सिद्धिबीज, भूमिकुष्माण्ड, शतमूली, विजबंद, गोपवल्ली, गोक्षुर, हिजलबीज, प्रत्येक २ तोला, इन सब द्रव्योंको एकत्र चूर्ण कर पानके रसमें मर्दन करे और ३ रत्तीकी गोली बनावे। इस औषधके सेवनसे घोर सन्निपात, अठारह प्रकारके कुष्ठ, बीस प्रकारके प्रमेह, नाड़ीव्रण आदि रोग नष्ट होते हैं।

औषध सेवनके बाद दूध, दही, मांस, सुरा आदि पान करनेसे कामकी वृद्धि होती तथा बूढ़ा जवान होता है। शुक्रक्षय और लिङ्ग शिथिल कभी भी नहीं होता। मतवाले हाथीके समान बलवान् हो कर रोज सौ स्त्रीके साथ संभोग कर सकता है। इससे नेत्रकी वृद्धि भी होती है। महात्मा नारदके उपदेशसे जगत्पति भगवान् वासुदेव इस रसका सेवन कर लाख स्त्रीके वल्लभ हुए थे। (रसेन्द्रसारस० रसायनाधिका०)

लक्ष्मीवेष्ट (सं० पु०) लक्ष्मीयुक्तो वेष्टः। ताड़पीन।

लक्ष्मीश (सं० पु०) लक्ष्म्याः ईशः। १ विष्णु। २ आम्रवृक्ष, आमका पेड़। (त्रि०) धनवान्, अमीर।

लक्ष्मीशसूरि—जैन सूरिभेद। ये पद्माराध्यके पुत्र और मन्त्रदेवताप्रकाशिका नामक ग्रन्थके रचयिता विष्णुदेवके पिता थे।

लक्ष्मीश्रेष्ठा (सं० स्त्री०) स्थलपद्मिनी। (वैद्यकनि०)

लक्ष्मीश्वर सिंह—मिथिलाके एक राजा। ये ऊषाहरण नाटकके प्रणेता, हर्षनाथके प्रतिपालक थे।

लक्ष्मीसख (सं० पु०) १ लक्ष्मीके प्रियपात्र या वरपुत्र। २ राजा या धनी व्यक्ति।

लक्ष्मीसनाथ (सं० त्रि०) रूप और ऐश्वर्यशाली।

लक्ष्मीसमाह्वया (सं० स्त्री०) लक्ष्म्यासह आह्वयो यस्याः। सीता।

लक्ष्मीसहज (सं० पु०) लक्ष्म्या सहजातः इति अत ब, क्षीराब्धिजातत्वादस्य तथात्वं। चन्द्रमा।

लक्ष्मीसागर सूरि—एक जैन सूरि। इनका जन्म १४०८ ई०में हुआ था। इनके शिष्य शुभशीलगणिने पञ्चशतीप्रबन्धसम्बन्ध और स्नात्रपञ्चाशिका आदि ग्रन्थकी रचना की थी।

लक्ष्मीसिंह—रंगपुरके एक राजा। इनकी माताका नाम कालेश्वरी था। (देशावली)

लक्ष्मीसिंह नरेन्द्र—आसामके इन्द्रवंशीय एक राजा। १७७१ ई०में ये सिंहासनसे उतारे गये।

लक्ष्मीसूक्त (सं० क्ली०) श्रीसूक्त। श्रीसूक्त देखो।

लक्ष्मीसेन (सं० पु०) कथासरित्सागरवर्णित एक व्यक्तिका नाम। (६६।१०३)

लक्ष्मीस्तोत्र (सं० क्ली०) लक्ष्मीदेवीका स्तव।

लक्ष्मेश्वर (लक्ष्मीश्वर)—बम्बई प्रेसिडेन्सीके दक्षिण मराठा एजेन्सीके मिरज राज्यान्तर्गत एक नगर। यह अक्षा० १५° ७´ १०″ उ० तथा देशा० ७४° ३०´ ४०″ पू०के मध्य अवस्थित है। यह एक पुराना देवमन्दिर है।

लक्ष्याराम (सं० पु०) लक्ष्यस्या आरामः। एक वनका नाम।

लक्ष्य (सं० क्लो०) लक्ष्यते यदिति लक्ष-ण्यत्। १ शर-वेधस्थान, वह जगह या वस्तु जिस पर किसी प्रकार-का निशाना लगाया जाय। पर्याय—लक्ष, शरव्य, प्रतिकाय, वेध्य, वेध। २ वह जिस पर किसी प्रकारका आक्षेप किया जाय। ३ व्याज, बाधा। ४ अनुमेय, वह जिसका अनुमान किया जाय। ५ अस्त्रोंका एक प्रकारका संहार। ६ अभिलषित पदार्थ, उद्देश्य। ७ वह अर्थ जो वाच्य, लक्ष्य और व्यङ्ग्य इन तीन प्रकारके शब्दोंकी लक्षणा-शक्तिके द्वारा निकलता है उसे लक्ष्य कहते हैं। लक्षणा देखो। (त्रि०) ८ दर्शनीय, देखने योग्य।

लक्ष्यक्रम (सं० त्रि०) १ जिस अज्ञात प्रणालीके द्वारा उद्दिष्ट वस्तुका आकार और इङ्गित जाना जाय। २ काव्योक्तिमें अनिर्दिष्टबोधक ज्ञान जिसके प्रकाश करनेकी आवश्यकता नहीं रहती।

लक्ष्यज्ञत्व (सं० क्लो०) १ चिह्नानुशीलन ज्ञान, वह ज्ञान जो चिह्नोंको देख कर उत्पन्न हो। २ वह ज्ञान जो दृष्टान्त-के द्वारा उत्पन्न हो।

लक्ष्यता (सं० स्त्री०) लक्ष्यस्य भावः तल्-टाप्। लक्ष्यका भाव या धर्म, लक्ष्यत्व।

लक्ष्यभेद (सं० पु०) चिह्नितस्थान विच्छिन्नकरण, एक प्रकारका निशाना जिसमें तेजीसे चलते या उड़ते हुए लक्ष्यको भेदते हैं। अर्जुनने आकाशमार्गमें स्थस्त मत्स्य-चिह्नको धनुषसे विद्ध किया था।

लक्ष्यवीथी (सं० स्त्री०) लक्ष्यावीथी। १ मनुष्य-जीवनको उद्देश्यसाधक पन्था, वह उपाय या कर्म जिससे जीवन-का उद्देश्य सिद्ध होता हो। २ ब्रह्मलोकका मार्ग, देव-यान पथ।

लक्ष्यवेधिन् (सं० त्रि०) चिह्नविद्धकारी, लक्ष्य वेध करने-वाला।

लक्ष्यसुप्त (सं० त्रि०) नींद तोड़नेवाला।

लक्ष्यहन् (सं० त्रि०) लक्ष्यं हन्ति हन-क्विप्। १ लक्ष्यभेद कारी, उड़ते या तेजीसे चलते हुए पदार्थों या जीवों पर ठीक निशाना करनेवाला। (पु०) २ तीर।

लक्ष्यार्थ (सं० पु०) वह अर्थ जो लक्षणासे निकले।

लखतार—बम्बई-प्रदेशके काठियावाड़ विभागके अन्तर्गत एक देशी सामन्त राज्य। यह अक्षा० २२° ४१′ से २३° ३० तथा देशा० ७१° ४६′ से ७२° ३′ पू०के मध्य अवस्थित है। भूपरिमाण २४८ वर्गमील और जनसंख्या १५ हजारसे ऊपर है। इसमें ५१ ग्राम लगते हैं। राजस्व ७० हजार रुपयेसे ज्यादा है। थान और लखतार नामक दो भूसम्पत्ति तथा अहमदाबाद जिलेके कुछ ग्राम ले कर यह राज्य संगठित है।

यहां एक भी नदी या पहाड़ नहीं है। अधिकांश स्थान समतल है। रुई और धान ही यहांका प्रधान उपज है। घेर और बोराश्रेणीके मुसलमान स्थानीय कपाससे एक प्रकारका मोटा कपड़ा तैयार करते हैं। थानकी कुम्हार-जातिका मृत् शिल्प प्रशंसनीय है। ज्वर-के सिवा यहां और किसी प्रकारका रोग नहीं दिखाई देता। यह स्थान बहुत स्वास्थ्यप्रद है।

यहांके सरदार तृतीय श्रेणीके सामन्त कहलाते हैं। १८०७ ई०की सन्धिके अनुसार ये लोग भी अंगरेजोंकी अधीनता स्वीकार करनेको बाध्य हुए। हलावादके राजा साहब चन्द्रसिंहजीके लड़के अभयसिंहजीको लखतार तालुक धांगध्रा राज्यसे मिला था। अभयसिंहने १६०४-१५ ई०के भीतर थान तथा आस पासके देश काठियोंसे छीन लिये। वर्त्तमान सरदार उन्हींके वंशधर हैं। ठाकुर इनकी उपाधि है। जूनागढ़के नवाब और अंगरेजोंको कर देना पड़ता है।

लखन (हिं० स्त्री०) लखनेकी क्रिया या भाव।

लखनऊ—१ अयोध्या प्रदेशके कमीश्नरके अधीन एक विभाग। यह युक्तप्रदेशके छोटे लाटके शासनाधीन है। अक्षा० २५° ४६′ से २८° ४२′ ३० तथा देशा० ७९° ४१′ से ८१° ३४′ पू०के मध्य अवस्थित है। भूपरिमाण १२०५१ वर्गमील है। इसमें ४४ शहर और १०१५० ग्राम लगते हैं। लखनऊ शहर सबसे बड़ा है। लखनऊ, उन्नाव, रायबरेली, सीतापुर, हरदोई और खेरी जिला ले कर यह विभाग संगठित है। जनसंख्या ६० लाखके करीब है।

२ उक्त विभागका एक जिला। यह अक्षा० २६° ३०′

२ कासाधिकारमें औषधविशेष। प्रस्तुत प्रणाली—पारा, हरिताल, प्रत्येक दो भाग; खपड़ा, रांगा, कान्तलौह, अबरक, तांबा, कांसा, गंधक, प्रत्येक द्रव्य ८ तोला ले कर अच्छी तरह पीसे और केसरके रसमें भावना दे कर इलायची, जायफल, तेजपत, लवङ्ग, यमानी, जीरा त्रिकटु, त्रिफला, प्रत्येक एक एक भाग मिलावे। बादमें चनेके समान गोली बना कर छायामें सुखा ले। अनुपान शीतल जल है। इसके सेवनसे सभी प्रकारके कास शीघ्र नष्ट होते हैं। औषधसेवनकालका पथ्य—मछली, मांस, दूध और स्निग्ध भोजन। साग, खट्टा, मीठा खाना मना है। यह औषध क्षयकास, श्वास, श्लीमक, पाण्डु, शोथ, शूल, प्रमेह, और अर्श आदि रोगोंमें भी विशेष उपकारक है। (रसेन्द्रसारस० कासाधि०)

३ वातव्याधिनाशक औषधविशेष। प्रस्तुत प्रणाली—कृष्ण अबरक, पारा, गंधक, विजबंद, नागबला, शतमूली, भूमिकुष्माण्ड, काले धतूरेका बीज, हिजलबीज, वृद्धदारकबीज, गोक्षुरबीज, सिद्धिबीज, जातीफल, जैती, कर्पूर प्रत्येक २ तोला; सोनेकी भस्म ३ माशा, इन्हें एक साथ अच्छी तरह पीस कर चनेके बराबर गोली बनावे। अनुपान त्रिफलाका जल या दोषके बलाबल अनुसार स्थिर करना होगा। यह औषध पुष्टिकारक, बलकर तथा वातव्याधि, कुष्ठ, पाण्डु, प्रमेह आदि रोगनाशक है। (रसेन्द्रसारस० वातव्याधि रोगाधिका०)

४ रसायन और वाजीकरण रोगाधिकारमें औषधविशेष। प्रस्तुत प्रणाली—कृष्ण अबरकका चूर्ण ८ तोला, पारा, गंधक, कपूर, जायफल, जैती, वृद्धदारकबीज, धतूरेका बीज, सिद्धिबीज, भूमिकुष्माण्ड, शतमूली, विजबंद, गोपवल्ली, गोखरू, हिजलबीज, प्रत्येक २ तोला, इन सब द्रव्योंको एकत्र चूर्ण कर पानके रसमें मर्दन करे और ३ रत्तीकी गोली बनावे। इस औषधके सेवनसे घोर सन्निपात, अठारह प्रकारके कुष्ठ, बीस प्रकारके प्रमेह, नाड़ीव्रण आदि रोग नष्ट होते हैं।

औषध सेवनके बाद दूध, दही, मांस, सुरा आदि पान करनेसे कामकी वृद्धि होती तथा बूढ़ा जवान होता है। शुक्रक्षय और लिङ्ग शिथिल कभी भी नहीं होता। मतवाले हाथीके समान बलवान् हो कर रोज सौ स्त्रीके साथ संभोग कर सकता है। इससे नेत्रकी वृद्धि भी होती है। महात्मा नारदके उपदेशसे जगत्पति भगवान् वासुदेव इस रसका सेवन कर लाख स्त्रीके वल्लभ हुए थे। (रसेन्द्रसारस० रसायनाधिका०)

लक्ष्मीवेष्ट (सं० पु०) लक्ष्मीयुक्तो वेष्टः। ताड़पीन।

लक्ष्मीश (सं० पु०) लक्ष्म्याः ईशः। १ विष्णु। २ आम्रवृक्ष, आमका पेड़। (त्रि०) धनवान्, अमीर।

लक्ष्मीशसूरि—जैन सूरिभेद। ये पद्माराधके पुत्र और मन्त्रदेवताप्रकाशिका नामक ग्रन्थके रचयिता विष्णुदेवके पिता थे।

लक्ष्मीश्रेष्ठा (सं० स्त्री०) स्थलपद्मिनी। (वैद्यकनि०)

लक्ष्मीश्वर सिंह—मिथिलाके एक राजा। ये ऊषाहरण नाटकके प्रणेता, हर्षनाथके प्रतिपालक थे।

लक्ष्मीसख (सं० पु०) १ लक्ष्मीके प्रियपात्र या वरपुत्र। २ राजा या धनी व्यक्ति।

लक्ष्मीसनाथ (सं० स्त्री०) रूप और ऐश्वर्यशाली।

लक्ष्मीसमाह्वया (सं० स्त्री०) लक्ष्म्यासह आह्वयो यस्याः। सीता।

लक्ष्मीसहज (सं० पु०) लक्ष्म्या सहजातः इति अन ज, क्षीराब्धिजातत्वादस्य तथात्वं। चन्द्रमा।

लक्ष्मीसागरसूरि—एक जैन सूरि। इनका जन्म १४०८ ई०में हुआ था। इनके शिष्य शुभशीलगणिने पञ्चशतीप्रबन्धसम्बन्ध और स्नात्रपञ्चाशिका आदि ग्रन्थकी रचना की थी।

लक्ष्मीसिंह—रंगपुरके एक राजा। इनकी माताका नाम कमलेश्वरी था। (देशावली)

लक्ष्मीसिंह नरेन्द्र—आसामके इन्द्रवंशीय एक राजा। १७५१ ई०में ये सिंहासनसे उतारे गये।

लक्ष्मीसूक्त (सं० क्ली०) श्रीसूक्त। श्रीसूक्त देखो।

लक्ष्मीसेन (सं० पु०) कथासरित्सागरवर्णित एक व्यक्तिका नाम। (६६।१७३)

लक्ष्मीस्तोत्र (सं० क्ली०) लक्ष्मीदेवीका स्तव।

लक्ष्मेश्वर (लक्ष्मीश्वर)—बम्बई प्रेसिडेन्सीके दक्षिण महाराष्ट्र एजेन्सीके मिरज राज्यान्तर्गत एक नगर। यह अक्षा० १५° ७' १०" उ० तथा देशा० ७४° ३०' ४०" पू०के मध्य अवस्थित है। यह एक पुराना देवमन्दिर है।

लक्ष्याराम (सं० पु०) लक्ष्या आरामः। एक वनका नाम।

लक्ष्य (सं० क्ली०) लक्ष्यते यदिति लक्ष-ण्यत्। १ शरवेधस्थान, वह जगह या वस्तु जिस पर किसी प्रकारका निशाना लगाया जाय। पर्याय—लक्ष, शरव्य, प्रतिकार, वेध्य, वेध। २ वह जिस पर किसी प्रकारका आक्षेप किया जाय। ३ व्याज, बाधा। ४ अनुमेय, वह जिसका अनुमान किया जाय। ५ अस्त्रोंका एक प्रकारका संहार। ६ अभिलषित पदार्थ, उद्देश्य। ७ वह अर्थ जो वाच्य, लक्ष्य और व्यङ्ग्य इन तीन प्रकारके शब्दोंकी लक्षण-शक्तिके द्वारा निकलता है उसे लक्ष्य कहते हैं। लक्षणा देखो। (त्रि०) ८ दर्शनीय, देखने योग्य।

लक्ष्यक्रम (सं० त्रि०) १ जिस अज्ञात प्रणालीके द्वारा उद्दिष्ट वस्तुका आकार और इङ्गित जाना जाय। २ काव्योक्तिमें अनिर्दिष्टवबोधक ज्ञान जिसके प्रकाश करनेकी आवश्यकता नहीं रहती।

लक्ष्यज्ञत्व (सं० क्ली०) १ चिह्नानुशीलन ज्ञान, वह ज्ञान जो चिह्नोंको देख कर उत्पन्न हो। २ वह ज्ञान जो दृष्टान्तके द्वारा उत्पन्न हो।

लक्ष्यता (सं० स्त्री०) लक्ष्यस्य भावः तल् टाप्। लक्ष्यका भाव या धर्म, लक्ष्यत्व।

लक्ष्यभेद (सं० पु०) चिह्नितस्थान विच्छिन्नकरण, एक प्रकारका निशाना जिसमें तेजीसे चलते या उड़ते हुए लक्ष्यको भेदते हैं। अर्जुनने आकाशमार्गमें स्थित मत्स्यचिह्नको शरपथसे विद्ध किया था।

लक्ष्यवीथी (सं० स्त्री०) लक्ष्यावीथी। १ मनुष्य-जीवनको उद्देश्यसाधक पन्था, वह उपाय या कर्म जिससे जीवनका उद्देश्य सिद्ध होता हो। २ ब्रह्मलोकका मार्ग, देवयान पथ।

लक्ष्यवेधिन् (सं० त्रि०) निशानेबाज, लक्ष्य वेध करनेवाला।

लक्ष्यसुप्त (सं० त्रि०) नींद तोड़नेवाला।

लक्ष्यहन् (सं० त्रि०) लक्ष्यं हन्ति हन क्विप्। १ लक्ष्यभेद करने, उड़ने या तेजीसे चलते हुए पदार्थों या जीवों पर ठीक निशाना करनेवाला। (पु०) २ तीर।

लक्ष्यार्थ (सं० पु०) वह अर्थ जो लक्षणासे निकले।

लखतार—बम्बई-प्रदेशके काठियावाड़ विभागके अन्तर्गत एक देशी सामन्त राज्य। यह अक्षा० २२° ४६´ से २२° ३० तथा देशा० ७१° ४६´ से ७२°३´ पू०के मध्य अवस्थित है। भूपरिमाण २४८ वर्गमील और जनसंख्या १५ हजारसे ऊपर है। इसमें ५१ ग्राम लगते हैं। राजस्व ७० हजार रुपयेसे ज्यादा है। थान और लखतार नामक दो भूसम्पत्ति तथा अहमदाबाद जिलेके कुछ ग्राम ले कर यह राज्य संगठित है।

यहां एक भी नदी या पहाड़ नहीं है। अधिकांश स्थान समतल है। रुई और धान ही यहांका प्रधान उपज है। पेट और बोराप्रेणीके मुसलमान स्थानीय कपाससे एक प्रकारका मोटा कपड़ा तैयार करते हैं। थानको कुम्हार-जातिका मृत् शिल्प प्रशंसनीय है। ज्वरके सिवा यहां और किसी प्रकारका रोग नहीं दिखाई देता। यह स्थान बहुत स्वास्थ्यप्रद है।

यहांके सरदार तृतीय श्रेणीके सामन्त कहलाते हैं। १८०७ ई०की सन्धिके अनुसार ये लोग भी अंगरेजोंकी अधीनता स्वीकार करनेको बाध्य हुए। हलाहाबादके राजा साहब चन्द्रसिंहजीके लड़के अजयसिंहजीको लखतार तालुक प्राप्तप्रा रूपसे मिला था। अजयसिंहने १६०४-१५ ई०के भीतर थान तथा थान पासके देश काठियोंसे छीन लिये। वर्तमान सरदार उन्हींके वंशधर हैं। ठक्कर इनकी उपाधि है। जुनागढ़के नवाब और अंगरेजोंको कर देना पड़ता है।

लखन (हिं० स्त्री०) लखनेकी क्रिया या भाव।

लखनऊ—१ अयोध्या प्रदेशके कमीश्नरके अधीन एक विभाग। यह युक्तप्रदेशके छोटे लाटके शासनाधीन है। अक्षा० २५° ४६´ से २८° ४२´ ३० तथा देशा० ८०° ४१´ से ८१° ३४´ पू०के मध्य अवस्थित है। भूपरिमाण १२०५१ वर्गमील है। इसमें ४४ शहर और १०१५० ग्राम लगते हैं। लखनऊ शहर सबसे बड़ा है। लखनऊ, उनाव, रायबरेली, सीतापुर, हरदोई और खेरी जिला ले कर यह विभाग संगठित है। जनसंख्या ६० लाखके करीब है।

२ उक्त विभागका एक जिला। यह अक्षा० २६° ३०´

से २६° ६' ३० तथा देशा० ८०° ३४' से ८१° १३' पू०के मध्य अवस्थित है। भूपरिमाण ६६७ वर्गमील है। इसके उत्तरमें हरदोई और सीतापुर, पूरबमें बाराबंकी, दक्षिणमें रायबरेली और पश्चिममें उनाव जिला है।

इस जिलेका अधिकांश स्थान उर्वर तथा श्यामल शस्यसे परिपूर्ण है। बीच बीचमें ग्राम और वनमाला-विराजित विस्तीर्ण मैदान रणक्षेत्रकी अतीतकीर्त्ति वहन कर जनसाधारणके हृदयमें वीरकीर्त्तिका उद्बोधन कर देता है। स्थानीय नदीमालाकी वालुकामय सैकत भूमि भूर तथा अनुर्वर खारी जमीन ऊसर कहलाती है। गोमती और साइनदी शाखा-प्रशाखामें फैल कर यहां बहती है। इनमेंसे बेहता, नागवा, लोनो और ,वांका नदी ही प्रधान हैं।

इस जिलेका उतना प्राचीन इतिहास नहीं है। शाहबुद्दीन द्वारा परास्त (११६४ ई०) प्रसिद्ध कन्नौज-राज जयचांदके शासनकालसे पहले लखनऊ नगर प्रतिष्ठा नहीं हुआ। इस विभागमें औपनिवेशिक राज-पूतोंके आगमन-प्रसङ्गकी आलोचना करनेसे मालूम होता है, कि मुसलमानी आक्रमणके बाद ही यहां नाना राज पूत शाखायें बस गई थीं।

मुसलमान जातिके अभ्युदयसे पहले जनवार, परि-हार और गौतम यहां आ कर बस गये थे। जनवार जातिका इतिहास भर और बहराइच जातिके साथ मिला है। गौतमोंकी प्राचीन किंवदन्तीका अनुसरण करनेसे ज्ञात होता है, कि ये लोग कन्नौजराजवंशके साथ संश्लिष्ट थे तथा वाई जातिने इस देशमें आ कर भी कन्नौजराजकी प्रधानता स्वीकार नहीं की थी। पनवार और चौहान राजपूत दिल्लीश्वरके अधीन इस प्रदेश पर आक्रमण करने आये और उन्होंने नाना स्थानोंमें उप-निवेश स्थापन किया।

पठान राजाओंके आक्रमण तथा धर्मनाशके भयसे बहुतेरे राजपूत परिवार यहां भाग आये। ये लोग धीरे धीरे एक एक स्थान जीत कर वहांके सरदार हो गये। मोहन, लालगञ्ज और निगोहन परगनेमें अमे-ठिया और गौतमोंने इसी प्रकार प्रभुत्वलाभ किया था। १६वीं सदीके मध्यभागमें शेखोंने अमेठी परगनेसे अमे-ठियाओंको भगा कर अपनी कोठी जमाई। उन लोगों-के अधीन इकौनावासी जनवारोंने यहां आ कर उपनि-वेश बसाया था।

बाई और चौहानने बिजनोर जीता। इसके बाद बाई लोगोंने ककोरी जीत कर अपना प्रभाव फैलाया था। जनवार और राइकराइगण मोहन-औरस नामक स्थान-में आ कर बस गये। इसके बाद निकुम्भ, गाहरवाड़, गौतम और जनवारगण मलिहाबाद परगनेमें धीरे धीरे फैल गये। पनवार और चौहानोंके सहोना आक्रमण और जीतनेके बाद जनवारोंने उत्तरमें कुर्सी और देवाको फतह किया। अनन्तर उन्होंने कुर्सी से कल्याणी नदीके उत्तर तीर पर्यन्त भूभाग पर अपना अधिकार जमाया था। पीछे बाई लोगोंने उनसे देवाको छीन लिया।

इसके बाद मुसलमानोंका अभियान शुरू हुआ। १०३० ई०में सबसे पहले सैयद मसाउदने इस स्थान पर चढ़ाई की। किन्तु वह यहां मुसलमान-प्रभाव फैला न सका। पर हां किसी किसी परगनेके प्राचीन नगरादिमें मुसलमानोंकी टूटी फूटी कीर्त्तिका निदर्शन देखनेसे मालूम होता है, कि उसने जिस जिस स्थान हो कर जिलेमें प्रवेश किया था, वहां वहां उसके अनुचरोंने गांव बसा लिये थे। मोहनलालगञ्जके नग्राम और अमेठी ग्राममें वह छावनी डाल कर दलबलके साथ यहां रहा। समिक नगरमें उसका सदर था। छावनी छोड़नेके बाद सैनादलको सदरसे यहां आ कर रहनेका साहस न हुआ।

अनन्तर शाहबुद्दीनके जमानेमें १२०२ ई०को खिलजी-पुत्र महम्मद-इ-बख्तियारने इस स्थान पर चढ़ाई कर दी। उसके समयकी कोई कीर्त्ति यहां नहीं है। अधिक सम्भव है, कि उसने मलिहाबादके निकटवर्त्ती बख्तियार नगरकी प्रतिष्ठा कर इस नगरमें एक पठान उपनिवेश बसाया हो, किन्तु ये सब पठान ककोरीके बाई-राजा साथनाके विरुद्ध युद्ध करके यहां पठान प्रभाव फैला कर दूसरी जगह उपनिवेश स्थापन न कर सके।

१३वीं सदीके मध्यभागसे ही यहां मुसलमानोंका उप-निवेश प्रतिष्ठित हुआ। औपनिवेशिकके मध्य परगनोंके फतमन्दीरवासी शेख और सलिमाबादके सैयद ही प्रधान

थे। इसके बाद किदवाईके शेखोंने आ कर अपना प्रभाव फैलाया। इसके बाद अन्यान्य मुसलमान-सम्प्रदाय कुर्सी और देवासे होता हुआ यहां बस गया था। प्रवाद है, कि ये मुसलमानगण सत्रिखसे यहां आये थे।

सत्रिखसे मुसलमान लोग बार बार इस जिलेके नाना स्थानोंको आक्रमण करके भी स्थायी प्रभुत्व लाभ न कर सके। ये लोग सलार मसाउदके सेनापति शाह घेगके अधीन पहले देवा नगरको आक्रमण कर लखनऊ होते हुए मल्हियांव तक बढ़े थे। यहां शाह घेग हिन्दुओंसे परास्त और निहत हुआ। निकटवर्त्ती एक ग्राममें उसका मकबरा मौजूद है। उसकी चोटी बहुत ऊंची है, इस कारण लोग उसे नौ-गजापीर कहते हैं। पीछे यहां मुसलमान-शासनकर्त्ता नियुक्त होनेके बाद क्रमशः देवास, कुर्सी और लखनऊसे ककोरी परगना तक विस्तृत स्थानोंके ग्रामादिमें मुसलमान-उपनिवेश बसाया गया। ये लोग धीरे धीरे एक एक स्थान जीत कर यहांका सरदार कहलाने लगे।

स्थानीय प्रवादसे जाना जाता है, कि राजपूत और मुसलमान औपनिवेशिकोंके पहले यहां भर, अरख और पासी नामक निम्नश्रेणीकी कुछ जातियोंका वास था। अयोध्यामें सूर्यवंशी राजाओंका प्रभाव जब लुप्त हुआ तब भरोंने इस प्रदेशको लूटा। यहांके घने जंगलमें मार्कण्डेय तपस्या किया करते थे। इस कारण कोई कोई वन-स्थानीय लोगोंके निकट परम पुण्यस्थान समझा जाता था। ये सब ऋषि जिस जिस स्थानमें रहते थे, वह अभी नगररूपमें परिणत होने पर भी उन्हीं ऋषियोंके नामसे पुकारे जाते हैं। मल्हियांव-मण्डल ऋषिके नामसे, मोहन मोहनगिरि गोस्वामीके नामसे, अगीर अगस्त्य योगीके नामसे तथा देवा देवल ऋषिके नामसे प्रसिद्ध हुआ। भर-दलोंने उन सब ऋषियोंका आश्रम लूट कर १२वीं सदीमें सई नदीके तीरवर्त्ती भूभागोंका शासन किया था।

ये लोग किरात नामक पहाड़ी जातिकी तरह तराई प्रदेशसे यहां आये थे। आज भी भरविहोंका ध्वंसावशेष यहांके नाना ग्रामोंमें पड़ा है। कन्नौज-राजवंशने अपने अभ्युत्थानके पहले भरोंका दमन करनेकी कोशिश की थी। राजा जयचंदने अन्ता, उदन और बनाफर राजपूत जातिकी सहायतासे बिजनौरके निकटस्थ नायवन पर हमला कर दिया। ये यहांके पासीराज चिगलीको पराजित कर ससांवा और देवा तक अग्रसर हुए। पासी और भरोंने मल्हिहाबाद तथा ककोरी और बिजनौरके दक्षिण सईतीरवर्त्ती मासैन्दी तक अपना दखल जमाया था। इसके पहले यहां भर जातिका अधिकार और प्रभाव विस्तृत था।

पासी और भरगण यहांके आदिम अधिवासी हैं। ये लोग दुर्द्धर्ष और शराबी होते हैं। अन्यान्य अधिवासियोंको शराब पिला कर ये लोग उनका सर्वस्व लूट लेते थे। भर जातिके सम्बन्धमें भी ऐसी ही एक किंवदन्ती प्रचलित है। ६१८ ई०में राजा तिलकचंदने ही यहां भरराजवंशका प्रभाव फैला। बराइच नगरमें उसकी राजधानी थी। उसने दिल्लीपतिको हरा कर दिल्ली पर अधिकार जमाया। उसके वंशमें ६ राजाओंने दिल्लीसे अयोध्या पर्यन्तप्रान्त तक राज्यशासन किया था। इस वंशके राजा गोविन्दचंदकी स्त्री भीमादेवी राज्यशासन कर १०६३ ई०में परलोकवासिनी हुई। मरते समय उन्होंने अपनी सम्पत्ति अपने धर्मगुरु हरगोविन्दको दान कर दी थी। उक्त हरगोविन्दके वंशने १५ पीढ़ी तक यहांका शासन किया था।

लखनऊ नगर और सेनावास, ककोरी, मल्हिहाबाद और अमेठी यहांका प्रधान नगर और वाणिज्यकेन्द्र है। रब्बी, खरीफ और हेमन्तिकादि धान काफी उपजता है। नाव द्वारा यहांका वाणिज्य उतना नहीं चलता। अधिकांश रेलपथ और पक्की सड़कसे पैलगाड़ी द्वारा ही चलता है। सीतापुर, फैजाबाद और कानपुर जाने आनेके लिये जो सड़क गई है वह प्रायः ५ सौ मील लम्बी है। इसके सिवा कुर्सी, देवा, सुलतानपुर, गोसाईगंज और अमेठी हो कर सुलतानपुर, मोहनलालगंज हो कर रायबरेली, सई नदीका सुन्दर पुल पार कर मोहन और उन्नाव जिलेके रसूलाबाद और मल्हिहाबादसे हरदोई जिलेके सांडिला नगर तक सड़क गई है। इन सभी सड़कोंने लखनऊ नगर छू रखे हैं। फिर कुछ सड़कें यहांसे अन्यान्य जिलोंके प्रधान प्रधान

नगरोंमें गई हैं। उनमेंसे जो सड़कें महोनासे कुर्सी और देवा होती हुई बाराबंकी तक; गोसाईंगञ्ज और मोहनलालगञ्ज होती हुई कानपुरके राजपथमें तक; बनिपुलसे मोहन और औरस तक, सई नदीके पक्के पुल पार कर मोहन-औरसके उत्तरसे रहिमाबाद तक तथा लखनऊसे बिजनौर तक गई हैं, ये हो प्रधान हैं। जिलेकी उपरोक्त सभी सड़कें पक्की हैं। वर्षाके समय उन पर कीचड़ जमने नहीं पाता। सभी स्थानोंमें नदीके ऊपर पक्केका पुल है।

अयोध्या-रोहिलखण्ड रेलपथ इस जिलेके मध्य हो कर दौड़ गया है। इसकी तीन शाखाएं पूर्व-दक्षिण-पश्चिम और उत्तर-पूर्वको गई हैं। एक लखनऊसे बाराबंकी और घर्घरा-तीरवर्त्ती बहरामघाट तक जा कर फैजाबादसे वाराणसी पर्यन्त आई है। दूसरी शाखा लखनऊसे कानपुर तथा तीसरी ककोरी और मलिहाबाद नगर होती हुई हरदोई नगर पार कर शाहजहानपुर, बरेली और मुरादाबाद तक चली गई है। लखनऊ नगर ही व्यवसाय वाणिज्यमें प्रसिद्ध है। दूसरे दूसरे नगरोंमें सामान्य तौरसे वाणिज्य चलता है।

इस जिलेमें ६ शहर और ९३२ ग्राम लगते हैं। जनसंख्या ८ लाखके करीब है। हिन्दूकी संख्या सैकड़े पीछे ७८, मुसलमानकी २० तथा बाकीमें दूसरी दूसरी जातियां हैं। विद्याशिक्षामें यह जिला बढ़ा चढ़ा है। अभी कुल मिला कर दो सौसे अधिक स्कूल हैं। कालेजकी संख्या ६ है जिनमेंसे एक लखनऊ शहरमें पांच कालेज हैं। स्कूल और कालेजको छोड़ कर २५ अस्पताल हैं।

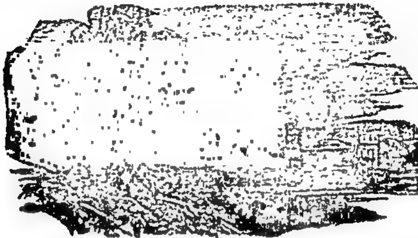
२ लखनऊ जिलेकी मध्य तहसील। यह अक्षा० २६° ३१´ से २७° ०´ तथा देशा० ८०° ३१´ से ८१° ६´ पूर्वके मध्य अवस्थित है। भूपरिमाण ३६० वर्गमील और जनसंख्या ४ लाखसे ऊपर है। इसमें ३२७ ग्राम और ३ शहर लगते हैं।

४ अयोध्या प्रदेशकी राजधानी। यह अक्षा० २६° ५२´ ३० तथा देशा० ८०° ५६´ पू० गोमती नदीके दोनों किनारे अवस्थित है। यह नगर कलकत्तासे ६६६ मील, वाराणसीसे १९९ मील और बम्बईसे ८८५ मील दूर पड़ता है। समुद्रपृष्ठसे इसकी ऊंचाई ४०३ फुट है। यह नगर युक्तप्रदेशमें सबसे बड़ा है तथा अंगरेजाधिकृत भारतीय नगरोंमें चौथा है। जनसंख्या तीन लाखके करीब है।

बम्बई, कलकत्ता और मन्द्राजको छोड़ कर भारतीय सभी नगरोंमें यह मनोरम है। मुसलमानी अमनके आखिरमें यह उत्तर-पश्चिम भारतकी राजधानी रूपमें गिना जाता था। अंगरेजोंके दखलमें आनेके बाद भी यहां उस विभागका विचार-सदर प्रतिष्ठित है। यहां सभ्यता और उन्नतिकी पराकाष्ठा यथेष्ट विद्यमान है। सङ्गीतविद्यालय, व्याकरण शिक्षासमिति और इसलामधर्मकी आलोचनाके लिये कई एक साम्प्रदायिक विद्यालय आज भी स्थानीय समृद्धिका परिचय देते हैं।

गोमती नदीके दोनों किनारे बड़े बड़े मकान हैं जिनसे नगरकी शोभा और भी बढ़ गई है। नगरकी सीमा पार करनेसे नदीके किनारे दूरव्यापी उद्यानवाटिका स्थानीय सौन्दर्यकी मात्रा और भी बढ़ाती है। नगरके एक छोरसे दूसरे छोर तक जानेके लिये गोमती नदी पर चार पुल बने हैं। उनमेंसे दो स्थानीय मुसलमान राजाओंके यत्नसे तथा १८५६ ई०में अंगरेजोंके दखलमें आनेके बाद अंगरेजोंके उद्योगसे बाकी दो पुल बनाये गये थे। नदी पर जो लोहेका बना हुआ पुल है उसे पार करनेसे जगमगाता हुआ मर्मर-सा सफेद सुन्दर महल दृष्टिगोचर नहीं होता। उस समय फलफूलके भारसे झुके हुए श्यामल वृक्षोंसे समावृत उद्यान-वाटिका ही लोगोंकी दृष्टि पर पड़ती है। इस प्रकार कुछ दूर जानेमें जानेसे नवाब आसफ-उद्दौलाका प्राचीन पत्थरका पुल दिखाई देता है। उसीके वाम भागमें मच्छियाभवन दुर्गका सुदृढ़ प्राचीर है। उस प्राचीरके भीतर लक्ष्मण टीला नामक प्राचीन नगरभाग है। इसके बगलमें ही नाना अट्टालिकादिसे परिशोभित आसफ-उद्दौलाका प्रतिष्ठित प्रसिद्ध इमामबाड़ा है। यहांसे कुछ दूर आगे बढ़ने पर इतिहास-प्रसिद्ध जुमा-मसजिद मिलती है। उस मसजिद पर चढ़नेसे नगरका पुराना भाग दिखाई देता है। इसके पास ही नदीके किनारे रेसिडेन्सी भवनका भग्नप्राचीर है। यहांका स्मृतिक्रोस (Memorial Cross) आज भी दर्शकके हृदयमें

१८५७ के गदर और अंगरेजकी वीरत्व-कहानीका परिचय देता है। इस सुविस्तृत प्राङ्गणके सामने नदीके किनारे स्थापित छतरमञ्जिल नामक विख्यात प्रासाद है। इस प्रासाद पर जो सोनेका छत्र है उस पर सूर्यकी किरण पड़नेसे दूर स्थानवासीको उसकी चमक दिखाई देती है। इसके पास ही बांई ओर दो मसजिद हैं। दोनों मसजिदके बीचमें कैसरबाग नामक महल है। यहां अयोध्याराजवंशके सिंहासनच्युत वंशधर रहते थे।



लखनऊ-सेतु।

मुगल-साम्राज्यके अन्तिम समयमें भी अयोध्याके वजीरवंशकी प्रधानताके समय लखनऊमें राजधानी कायम की गई। उक्त मुसलमान-राजवंशने यथाक्रम रोहिलखण्ड, इलाहाबाद, कानपुर, गाजीपुर और इस विभागमें शासन किया था। इसके बाद सैयद् खांके वंशजोंने इसका उपभोग किया। इसके पहले यहां ब्राह्मण और कायस्थोंका प्रभाव था। मच्छिभवन दुर्ग-प्राकारके भीतर लक्ष्मणटीला नामक उच्च भूमि ही उस प्राचीन जनपदका निदर्शन है। प्रवाद है, कि यहां अयोध्या-राज रामचन्द्रके भाई लक्ष्मणने शेषनागके पवित्र तीर्थके समीप अपने नाम पर लक्ष्मणपुर नगर बसाया था। उस पवित्र तीर्थके ऊपर मुगल बादशाह औरङ्गजेबने एक मसजिद बनवा दी। किन्तु लक्ष्मणपुरकी पवित्र स्मृति आज भी लखनऊवासीके हृदयसे दूर नहीं हुई है।

शेख या लखनऊके शेखजादा नामक प्रसिद्ध मुसलमान-राजवंशने ही पहले अयोध्याको जीत कर अपनी धाक जमाई। पीछे रामनगरके पठानोंने गोल दरवाजा तक मुसलमान शासनदण्ड परिचालित किया था। इसके ठीक पूरबमें शेखोंकी अधिकार-सीमा थी। उन्होंने ही ध्वस्तप्राय मच्छिभवन दुर्ग बनवाया था। धीरे धीरे उस दुर्गके चारों ओर आबादी हो गई। मुगल-बादशाह अकबरशाहके समय यही आबादी लखनऊ कहलाने लगी। राजा टोडरमलके पैमाइश-विवरणमें गोमती-तीरवर्ती समृद्धिका उल्लेख है। आईन-इ-अकबरी पढ़नेसे मालूम होता है, कि यहां मुसलमान-साधु शेख मीनाशाहका मकबरा था। लोग उनकी पूजा करनेके लिये यहां आया करते थे। उस समय यहां सैकड़ों ब्राह्मणका वास था। सम्राट् अकबरशाहने उन लोगोंको प्रसन्न करनेके लिये लाख रुपये दे कर वाजपेय-यज्ञ कराया। उनके पहले यहांकी कोई विशेष समृद्धि न थी। उनके उद्योगसे और पीछे सैयद् अली खां और आसफ उद्दौलाके अध्यवसायसे इस नगरकी धीरे धीरे श्रीवृद्धि हुई थी। प्राचीन नगरभाग अब वर्तमान चक है, पर तथा चकसे संलग्न नगरका दक्षिणांश सम्राट् अकबरशाह द्वारा बसाया गया है। इसके सिवा उन्होंने अन्यान्य स्थानोंका शत्रु-मोचन करनेके लिये बहुत रुपये खर्च किये थे। उनके पुत्र मिर्जा

सलीम शाह (जहांगीर) ने वर्त्तमान दुर्गके पश्चिम 'मिर्जामण्डि' की स्थापना की थी। अनन्तर अयोध्या-राजवंशके पहले और किसी भी मुगल-बादशाहने प्रासादादि बना कर इस नगरकी शोभाको नहीं बढ़ाया।

नैशापुरका सुप्रसिद्ध पारसिक वणिक् सैयद् खां वाणिज्य करनेके लिये यहां आया था। किन्तु यहां युद्ध-व्यवसाय द्वारा उसका भाग्य चमक उठा। वह मुगल बादशाहकी कृपासे १७३२ ई०में अयोध्याका शासनकर्त्ता हुआ। लखनऊ नगरमें उसने राजधानी बनाई। तभीसे अयोध्यामें इस स्वाधीन राजवंशकी प्रतिष्ठा हुई है। यह वंश पीछे अयोध्याका वजीरवंश हो गया था।

सैयद् खांके वंशधरोंने राज्यसमृद्धिसे गौरवान्वित हो लखनऊ नगरको बड़े बड़े सुन्दर महलोंसे सुशोभित कर दिया था। स्वयं सूबेदार सैयद् खां मच्छिभवनके पश्चाद्भागमें एक छोटा-सा महलमें रहता था। दुर्गके दक्षिण-पश्चिम जहां अंगरेजोंका अस्त्रागार (Ordnance Stores) है उस स्थान पर यहांके शेख राजाओं द्वारा निर्मित दो सुप्राचीन अट्टालिकाका निदर्शन पाया जाता है। सैयद् खां जब सूबेदार हो कर यहां आया तब उनमेंसे एकमें भाड़ा दे कर रहता था। वह तीन तीन महीनेमें भाड़ा चुकाता जाता था; किन्तु उसके वंशधरोंने भाड़ा देना बंद कर दिया। आखिर नवाब आसफ उद्दौलाने उस अट्टालिकाको राजसम्पत्ति बतला कर जब्त कर लिया।

सैयद् खां जब पहले पहल यहां आया था, तब शेख लोग कई बार उसके विरुद्ध खड़े हो गये थे, पर कुछ कर न सके। आखिर वे उस वीरवरका बलवीर्य देख कर स्वयं उसके अधीन हो गये। मृत्युसे पहले सैयद्ने अपने शत्रुकुलको निर्मूल कर अयोध्या विभागमें एक स्वाधीन देश बसाया था। वृद्धावस्थामें भी उसके बलवीर्यका ह्रास नहीं हुआ था। हिन्दू लोग उसके युद्ध-कौशलसे पराजित और भयभीत होते थे। प्रसिद्ध हिन्दू-वीर भगवन्तसिंह खींचि उससे द्वन्द्वयुद्ध कर मारे गये। अपने अधीनस्थ सेनादल और अध्यक्षके शिक्षा गुणसे उस समय उसने विशेष प्रतिष्ठा लाभ की थी।

उसका दामाद और उत्तराधिकारी नवाब सफदर जङ्ग (१७४३ ई०में) दिल्लीमें वजीर-पद पर नियुक्त था। उसने वाङ्गसवाङ्गकी दुर्द्धर्ष बाई जातिको भयभीत रखनेके लिये नगरसे ३ मील दक्षिण जलालाबादमें दुर्ग बनवाया तथा लक्ष्मणपुरके प्राचीन दुर्गका पुनः संस्कार कर उसका मच्छिभवन नाम रखा। उस दुर्गके शिखर पर एक मछली स्थापित रहनेसे उसका यह नाम हुआ था। उसने नगरमें बहनेवाली नदीके ऊपर दो पुल बनवानेकी कोशिश की थी। पीछे आसफ उद्दौलाके यत्नसे उसका आरम्भ किया हुआ कार्य शेष हुआ था। क्योंकि उसका लड़का सुजाउद्दौला (१७५३ ई०में) बक्सर-युद्धके बाद फैजाबादमें ही रहता था। उसके लखनऊ नगरमें न रहनेके कारण नगरकी कोई श्रीवृद्धि न हुई।

अयोध्याके इस नवाबवंशके प्रथम तीन राजे ही योद्धा और प्रसिद्ध राजनैतिक थे। उन्होंने अंगरेज, महाराष्ट्र और रोहिला तथा दिल्लीके प्रधान प्रधान अमात्योंके विरुद्ध युद्ध कर अच्छा नाम कमाया था। लगातार युद्ध-विग्रहमें लिप्त रहनेके कारण वे राज्यशासनके सिवा राज्यके स्थापत्य-शिल्पकी कोई उन्नति न कर सके। केवल सामरिक विभागकी उपयोगी दुर्गमाला, कूप और सेतु आदि बनानेमें उन लोगोंका चित्त आकृष्ट था।

चौथे नवाब आसफ उद्दौलासे लखनऊका राजनैतिक चित्र परिवर्त्तित हुआ। उसने अङ्गरेजोंसे मेल कर लिया। अंगरेजी सेनाकी सहायतासे उसने रोहिलखण्डको जीत कर वाराणसी तक अपना अधिकार फैलानेकी चेष्टा की। इस प्रकार धीरे धीरे उसने अपना बल मजबूत कर लिया। बहुत रुपये खर्च करके उसने पुल और मसजिद बनवाईं तथा लखनऊ शहरको गौरवकीर्त्ति और स्थापत्यविद्याका महत् निदर्शन प्रसिद्ध इमामबाड़ा नामक प्रासाद स्थापन किया। यह प्रसिद्ध अट्टालिका यद्यपि दिल्ली और आगरेके इमामबाड़ेकी तरह मुसलमानी ढंग पर नहीं बनी है, तो भी 'रूमिदरवाजा' नामक मसजिदके साथ संलग्न रहनेके कारण इसका सौन्दर्य देखने लायक है। इसका गठन साधारण तथा गाम्भीर्यपूर्ण है। इसमें गोथ और इटली गठनकी बहुत कुछ सादृश्यता देखी जाती है। १७८४ ई०में जब यहां महामारीका भारी प्रकोप

था, उस समय बेचारी क्षुधित प्रजाको अन्न जल आदि मिलता और इसके बदले उन लोगोंसे इमामबाड़ा बनानेमें काम लिया जाता था। कहते हैं, कि अर्थाभावके कारण नगरके कितने मान्यगण्यने भी इसमें काम किया था। दिनको कहीं लोगोंसे पहचाने न जायें, इस लाजसे वे दोपहर रातको अपनी मजदूरी लेते थे। उस इमामबाड़े-का एक प्रकोष्ठ १६७ फुट×५२ फुट लम्बा है। उसके बनानेमें करीब एक करोड़ रुपया खर्च हुआ था। उसमें चमकीले और प्रभासम्पन्न जो सब कारुशिल्प चित्रित हुए थे, अभी केवल उनका चिह्नमात्र रह गया है। मूल्यद्रव्य स्थानभ्रष्ट या अपहृत होनेके कारण लोगोंको देखनेमें नहीं आता। उक्त स्थान दुर्गसीमाके मध्य रहनेसे अभी वृटिश-सरकारने उसमें अस्त्रादि रखनेकी व्यवस्था की है। आश्चर्यका विषय है, कि अट्टालिका काष्ठका कोई शिल्प देखनेमें नहीं आता। फार्गुसन साहब इसके गुम्बजकी बड़ी तारीफ कर गये हैं।

इमामबाड़ेको छोड़ रूमीदरवाजा भी आसफ उद्दौलाकी एक प्रधान कीर्ति है। इसके बाद दुर्गके पश्चिमस्थ नदी-तीरवर्ती दौलतखाना नामक प्रासाद है। यही पीछे सरकारी रेसिडेन्सीमें परिणत हो गया था। गोमती-तीरवर्ती यह सुवृहत् अट्टालिका लखनऊका एक गौरवस्थल है। नवाब सयादत् अली जब फरहतबक्श नामक सुरम्य प्रासादमें अपना वासभवन उठा ले गया, तब इस अट्टालिकामें अंगरेज-रेसिडेन्ट रहने लगे। नगरके पश्चिमांशमें तथा नदीके दूसरे किनारे नवाब आसफ उद्दौला-प्रतिष्ठित बिबियापुर नामक प्रासाद है। नवाब बहादुर जब शिकारको बाहर निकलते, तब इसी प्रासाद-भवनमें आ कर रहते थे। एतद्भिन्न नगरके दूसरे दूसरे स्थानोंमें भी इस नवाबके उद्योगसे निर्मित और भी कितनी अट्टालिकायें मौजूद हैं। ये सब अट्टालिकायें लखनऊ शहरका गौरव बढ़ाती हैं।

इस समय सेनापति क्लड मार्टिनने Martiniere नामक सुप्रसिद्ध विद्यालय स्थापन किया। यह बिलकुल इटली-ढंग पर बनाया गया था। पीछे कहीं मुसलमानगण उसे छीन न लें, इस भयसे उसके मध्य स्थापयिताकी हड्डी गाड़ दी गई। किन्तु सिपाही-विद्रोहके समय मुसलमानोंने मकबरा खोद कर हड्डीको बाहर निकाल दिया।

आसफ उद्दौलाके शासनकालमें लखनऊ-शहर बहुत भड़कीला दिखाई देता था। इस समय राज्यशोभाकी वृद्धिके साथ साथ राजस्वकी भी यथेष्ट वृद्धि हुई थी। नवाब आसफ उद्दौला बहुत उदार और शौकीन थे। उसीमें वह अपना खजाना खाली कर गये। पाश्चात्य ऐतिहासिकोंका कहना है, कि यूरोप या भारतवर्षमें आसफ उद्दौलाके गौरवमय कीर्तिकलापका मुकाबला कोई भी राजा नहीं कर सकता। उनके उच्चाभिलाषने उन्हें साधारण सीमासे बाहर कर दिया था। उस समयका प्रसिद्ध मुसलमान-राजा टीपू सुलतान या निजाम जिससे हाथी या हीरकादि सम्पत्तिमें उनके समान ऐश्वर्यवान् न हो सकें, इस ओर उनका विशेष लक्ष्य था। अपने लड़के वजीर अलीके (जिसने मि० चेरीके हत्यापराधमें न्यूनाधिक पुर्णोंमें बन्दी १८ हट अपलीला सम्पादन की थी) के विवाहमें उन्होंने बारातके साथ १२ सौ हाथी भेजे थे। उस समय अलीके शरीर पर करीब २० लाख रुपये का हीरा जवाहर आदिका अलङ्कार शोभता था।

यह अतुल सम्पत्ति उन्होंने भारतीय प्रजाका खून चूस कर संग्रह की थी। Tennant का विवरण पढ़नेसे इसका पता चलता है। उन्होंने लखनऊके सम्बन्धमें लिखा है—"I never witnessed so many varied forms of wretchedness, filth and vice" अर्थात् ऐसी भीषण पाप कलङ्क कालिमालिप्त नगरी मैंने कभी नहीं देखी। उस समय शोभा मिर्जा आलमके शासित प्रदेशको छोड़ कर आसफ उद्दौलाका सारा अयोध्या राज्य श्मशानभूमिमें परिणत हो गया था।

आसफ उद्दौलाके लड़के सयादत् अली खाँ (१७९८ ई०)ने अङ्गरेजोंका आनुगत्य स्वीकार किया था। यह अङ्गरेजी सेनाकी आश्रयछायामें निश्चिन्त हो कर ऐश्वर्यसुखके भोगविलासमें समय देता रहा था। नवाबगण पूर्वपुरुषोंकी तरह युद्धोंमें जातीय गौरवकी पुष्टि न करके भोगविलासमें उन्मत्त हो गया था। यह

अंगरेजोंके हाथ अपनी सम्पत्तिका आधा सौंप कर अपनिष्ट ले कर ही आत्मतृप्ति करता था। मसजिद, कूप, दुर्ग, सेतु आदि निर्माण द्वारा राज्यकी श्रीवृद्धि न करके उसने भोगविलासके लिये कई मकान बनवाये थे। ये सब मकान नये भाव और नई प्रणालीसे बनाये गये थे। तत्परवर्त्ती राजाओंके जमानेमें भी इस प्रकारके मकान बनानेकी चेष्टा की गई थी। उनमें यूरोपीय कारीगरी दिखाई देती थी।

जिस सयादत् खां और उसके वंशधरोंने एक सामान्य वासभवनमें रह कर यह सौभाग्य अर्जन किया था, इमामबाड़ा, चक और बाजारादिके प्रतिष्ठाता जो शौकीन आसफ उद्दौला केवल एक प्रासाद ले कर संतुष्ट था, उस वंशमें सयादत् अली बहुत-से प्रासाद बनवा कर भोगविलासकी पराकाष्ठा दिखा गया है। इस वंशमें वसीर उद्दीन हैदरने अपरिमित धन खर्च करके राजपरिवार और राजमहिषियोंके लिये कई एक अत्युत्कृष्ट प्रासाद बनवाये थे। उसकी विवाहिता स्त्रियां जिस प्रासादमें रहती थीं वह छत्रमञ्जिल नामसे प्रसिद्ध था। कैसर-पसन्द और अन्यान्य महलोंमें उसकी रक्षिता रमणियां रहती थीं। शाहमञ्जिल नामक प्रसिद्ध भवनप्राङ्गणमें उसके कौतूहल उद्दीपनार्थ जंगली पशु रखे जाते थे। नवाब फरहत्बख्स, हजूरबाग, बिबियापुर और अन्यान्य प्रासादमें रहता था। वाजिद अलीशाहने ३६० रमणियोंसे विवाह न करके उन्हें आश्रिताकरूपमें अपने बेगम महलमें रखा था। उनमेंसे हर एकके लिये प्रासादके समान अट्टालिका बनाई गई थी।

सयादत् अली खांने फरहत्बख्स नामक प्रमोदभवन बनवा कर राजप्रासाद परिवर्तन किया था। उसने हिन्दुओंकी बस्तीके पूर्वांशसे लगायत दिलकुशा तक नगरके बाहर कई एक छोटे छोटे प्रासाद बनवा दिये थे। ये सब प्रासाद वर्त्तमान सेनानिवासके अन्तर्में अवस्थित हैं। इन महलोंसे नदीकूल, नगर और आस-पासके स्थानोंका सौन्दर्य दूना बढ़ गया था। पीछे वाजिद अलीने नदीके किनारे कैसरबाग नामक नन्दनकाननमें देवपुरी सदृश नाना शिल्पपूर्ण अत्युत्कृष्ट अट्टालिका बनवा कर उसीको अपना वासभवन बनाया। उसने पूर्वोक्त जेनरल मार्टिनसे इस प्रासादका तीरवर्ती कुछ अंश खरीदा था। पीछे बहुत रुपये खर्च कर उस सुरम्य हर्म्यका संस्कार करा उसे अभिनव और अमिलरित प्रासादमें पर्यवसित किया था। उसका राजदरबार-घर अर्थात् जहां सुविस्तृत नाना शिल्पनैपुण्य-मण्डित राजसिंहासन प्रतिष्ठित था, वह लालबारहदरी या कसर-उस-सुल्तान कहलाता था। वाजिदके शासनकालमें लखनऊ नगरी चित्र वैचित्र्यकी चरम सीमा तक पहुंच गई थी। जिस दिनसे इस मुसलमान-राजवंशने अंगरेजोंके हाथ आत्मसमर्पण किया तथा जिस समयसे लखनऊ नगरमें अङ्गरेज रेसिडेण्टके रहनेकी व्यवस्था हुई, उसके बादसे जब कभी नवीन नवाबका राज्याभिषेक होता, तब अङ्गरेज-रेसिडेण्ट आ कर उसे सिंहासन पर बैठाते थे तथा इस प्रदेशमें अपनी राजशक्तिकी प्रधानता जतानेके लिये उसे राजनजर देते थे।

सयादत् अली खांका लड़का गाजी उद्दीन हैदर १८१४ ई०में अयोध्याके राजपद पर बैठा। यही इस वंशमें प्रथम राजनामका अधिकारी हुआ था। उसने अपने पिताके अनुष्ठित मोतीमहल गुम्बजके चारों बगल मोतीमहल प्रासाद बनवाया। नदीके प्राचीन नौका-सेतुके उभय तीरवर्ती मुबारक-मञ्जिल और शाह-मञ्जिल नामक प्रासाद उसीके अनुग्रहसे संस्कृत हुआ था। शाहमञ्जिल प्रासादमें वह रोमक-सम्राटोंकी तरह दुरन्त जंगली पशुओंका रणकौतुक देखते थे। लखनऊ राजवंशके अवसान तक इस प्रासादमें यथायह पाशव-युद्ध हो रहा था। इसके सिवा गाजी उद्दीन हैदरने चीनी-बाजार सुप्रसिद्ध 'छत्रमञ्जिल-कलान' और 'छत्रमञ्जिल खुर्द' बनवाया था।

अपने मकबरेके लिये उसने गोमतीके किनारे शाह नजफ नामक एक मन्दिर निर्माण किया था। बचपनमें वह इसीमें रहता था। उस पर अपने पिता और माताके लिये उसने दो मकबरे भी बनवाये थे। जलकी सुविधाके लिये उसने एक नहर कटवानेकी चेष्टा की थी। उसका निदर्शन नगरके पूर्व और दक्षिणमें आज भी देखा जाता है। अर्थाभावके कारण वह उसे शेष न कर सका था। कदम-रसूल अर्थात् महम्मद-पदचिह्नस्थापित

कृत्रिम स्तूपके ऊपर उसने एक बड़ी अट्टालिका बनवाई थी। पहले एक मुसलमान उस पदचिह्नको अरबसे इस देशमें लाया था। वही उसको एक ऊंचे स्थान पर स्थापन कर एक मुसलमान तीर्थरूपमें घोषित कर गया है। गाज़ी उद्दीनके आग्रहसे उसका माहात्म्य बहु- बढ़ गया। १८५७ ई०के गदरमें यह पत्थर स्थानान्तरित किया गया था, इस कारण तभीसे यह कदम रसूलके मन्दिरमें प्रतिष्ठित न हुआ।

गाज़ी उद्दीनके पुत्र नासिर उद्दीन हैदर १८२७ ई०में पितृ-सिंहासन पर अभिषिक्त हो राजकार्य चलाने लगा। ज्योतिःशास्त्रमें ऐकान्तिक आसक्तिके कारण उसने बहुत रुपये खर्च कर 'तारावाली कोठी' नामक एक वेधालय खोला था। विख्यात अङ्गरेज़-ज्योतिर्विद् कर्नल विल-कापस उसके कर्मचारिरूपमें नियुक्त हो कर उक्त वेधा-लयके यन्त्रादिका परिदर्शन करते थे। १८४७ ई०में कर्नल विलकापसकी मृत्युके बाद वाजिद अलीशाहने उस वेधालयको बंद कर दिया। सिपाही-विद्रोहके समय विद्रोहियोंके उपद्रवसे उक्त वेधालयमें जितने यन्त्रादि थे सभी टूट फूट गये। विद्रोहि दलके नेता और परामर्शदाता फैज़ाबादवासी मौलवी अहमदउल्ला शाह इस समय यहां आ कर बस गया। विद्रोहियोंको उभाड़नेके लिये वह अपने प्राङ्गणमें सभा किया करता था।

नासिर उद्दीन हैदरने उपरोक्त वेधालयको छोड़ कर इराकृत नगरमें एक बड़ी 'करबला' भी बनवाई थी। उसी करबलामें वह दफनाया गया था।

नासिर उद्दीनकी मृत्युके बाद उसका चचा महम्मद अली शाह १८३७ ई०में सिंहासन पर बैठा। उसने अपने कीर्तिस्तम्भ हुसैनाबादका इमामबाड़ा बनवाया। यह दो भागोंमें विभक्त है। लखनऊ दुर्गका प्रसिद्ध रूमी दरवाज़ा गोमती-तीरवर्ती प्रशस्त पथसे इस इमामबाड़ा-के बहिःप्राङ्गणमें चला आया है। यहां रास्तेसे कुछ पश्चिम खड़ा हो कर देखनेसे दाहिनी ओर आसफ उद्दौलाका इमामबाड़ा और रूमी-दरवाज़ा तथा बाईं ओर हुसैनाबादका इमामबाड़ा और जुमा मसजिद दृष्टिगोचर होती है। इन सब अट्टालिकाओंका समावेश देख कर अनेक स्थापत्यवित् मुक्तकण्ठसे कह गये हैं, कि स्थापत्य शिल्पका ऐसा अत्युत्कृष्ट निदर्शन भारतवर्षमें बहुत थोड़ा है।

राजा महम्मद अलीशाहने अपने इमामबाड़ेमें आनेके लिये छत्रमञ्जिलसे दुर्गके मध्य होता हुआ इमामबाड़ा तक एक लम्बा चौड़ा रास्ता निकाला था। उस रास्तेके किनारे एक दिग्गी भी खोदी गई थी। उसने दिल्लीकी जुमामसजिदकी अपेक्षा अधिकतर उत्कृष्ट प्रणालीसे सुनिर्मित इमामबाड़ेको बगलमें एक मसजिदकी नींव डाली थी। अकालमें उसकी मृत्यु हो जानेसे उसका निर्माणकार्य पूरा न होने पाया। तभीसे वह उसी हालत-में पड़ा है। उसने 'सातखण्ड' नामक एक और दुर्गस्तम्भ बनानेका उद्योग किया था। उसके चार खण्ड बनाये जानेके बाद वह इस लोकसे चल बसा। वह भी अधूरा ही पड़ा है।

अनन्तर लखनऊके चतुर्थ राजा आमजाद अलीशाह (१८४१ ई०)-ने कानपुर तक पक्की सड़क, हजरतगञ्जमें अपना मकबरा और गोमतीका लौहसेतु बनवाया। राजा गाज़ी उद्दीन हैदरने उस सेतुको इङ्गलैण्डसे लाने-का हुक्म दिया था। उसके पहुंचनेसे पहले ही गाज़ीका देहान्त हो चुका था। पीछे उसके लड़के नासिर उद्दीनने रेसिडेण्टोंके सामने उसे स्थापन करनेका प्रस्ताव किया था, किन्तु नदीमें स्तम्भ खड़ा करना सहज न था, इस कारण वह प्रस्ताव स्थगित रहा। आखिर आमजाद अलीने उसकी प्रतिष्ठा की।

अयोध्याराजवंशके अन्तिम राजा वाजिद अलीशाहने १८४७ से १८५६ ई० तक लखनऊ सिंहासनको अलंकृत किया था। उसका बनाया कैसरबाग नामक प्रमोदउद्यान नगरमें सबसे बड़ा और सुन्दर होने पर भी वह जन-साधारणके निकट प्रशंसाभाजन न हो सका था। १८४८ ई०में उसका कार्यारम्भ तथा १८५० ई०में उसका निर्माणकार्य शेष हुआ। उसके बनानेमें करीब ८० लाख रुपये खर्च हुए थे।

वेधालयके सम्मुखस्थ उत्तर-पूर्व द्वार हो कर प्रवेश करनेमें दर्शकको पहले जिलौखाना नामक प्रासाद द्वार पार करना होता है। इस प्रासादमें राजकीय दारो-

अङ्गरेजोंके हाथ अपनी सम्पत्तिका आधा सौंप कर अवशिष्ट ले कर ही आत्मतृप्ति करता था। मसजिद, कूप, दुर्ग, सेतु आदि निर्माण द्वारा राज्यकी श्रीवृद्धि न करके उसने भोगविलासके लिये कई मकान बनवाये थे। ये सब मकान नये ढंग और नई प्रणालीसे बनाये गये थे। तत्परवर्ती राजाओंके जमानेमें भी इस प्रकारके मकान बनानेकी चेष्टा की गई थी। उनमें यूरोपीय कारीगरी दिखाई देती थी।

फिर सयादत् खां और उनके वंशधरोंने एक सामान्य वासभवनमें रह कर यह सौभाग्य अर्जन किया था। इमामबाड़ा, चक और बाजारादिके प्रतिष्ठाता जो शौकीन आसफ उद्दौला केवल एक प्रासाद ले कर संतुष्ट था, उस वंशमें सयादत् अली बहुत-से प्रासाद बनवा कर भोगविलासकी पराकाष्ठा दिखा गया है। इस वंशमें वजीर उद्दीन हैदरने अपरिमित धन खर्च करके राजपरिवार और राजमहिषियोंके लिये कई एक अत्युत्कृष्ट प्रासाद बनवाये थे। उसकी विवाहिता स्त्रियां जिस प्रासादमें रहती थीं वह छत्रमञ्जिल नामसे प्रसिद्ध था। कैसर-पसन्द और अन्यान्य महलोंमें उसकी रक्षिता रानियां रहती थीं। शाहमञ्जिल नामक प्रसिद्ध भवन-प्राङ्गणमें उसके कौतूहल उद्दीपनार्थ जंगली पशु रखे जाते थे। नवाब फरहत्बखस, हजूरबाग, बिबियापुर और अन्यान्य प्रासादोंमें रहता था। वाजिद अली शाहने ३६० रमणियोंसे विवाह न करके उन्हें आश्रितारूपसे अपने बेगम महलमें रखा था। उनमेंसे हर एकके लिये प्रासादके समान अट्टालिका बनाई गई थी।

सयादत् अली खांने फरहत्बखस नामक प्रमोदभवन बनवा कर राजप्रासाद परिवर्त्तन किया था। उसने हिन्दुओंकी बस्तीके पूर्वांशमें लगायत दिलखुश तक नगरके बाहर कई एक छोटे छोटे प्रासाद बनवा दिये थे। ये सब प्रासाद वर्त्तमान सेनानिवासके उत्तरमें अवस्थित हैं। इन महलोंसे नदीकूल, नगर और आस पासके स्थानोंका सौन्दर्य दूना बढ़ गया था। पीछे वाजिद अलीने नदीके किनारे कैसरबाग नामक नन्दनकाननमें देवपुरी सदृश नाना शिल्पपूर्ण अत्युत्कृष्ट अट्टालिका बनवा कर उसीको अपना वासभवन बनाया। उसने पूर्वोक्त जेनरल मार्टिनसे इस प्रासादका नींवकी कुछ अंश खरीदा था। पीछे बहुत रुपये खर्च कर उस सुरम्य हर्म्यका संस्कार करा उसे अभिनव और अभिलषित प्रासादमें पर्यवसित किया था। उसका राजदरबार-घर अर्थात् जहां सुविस्तृत नाना शिल्पनैपुण्य-मण्डित राजसिंहासन प्रतिष्ठित था, वह लालबारादरी या कसर-उल-सुलतान कहलाता था। वाजिदके शासनकालमें लखनऊ नगरी शिल्पवैचित्र्यकी चरम सीमा तक पहुंच गई थी। जिस दिनसे इस मुसलमान-राजवंशने अंगरेजोंके हाथ आत्मसमर्पण किया तथा जिस समयसे लखनऊ नगरमें अङ्गरेज रेसिडेण्टके रहनेकी व्यवस्था हुई, उसके बादसे ही जब कभी नवीन नवाबका राज्याभिषेक होता, तब अङ्गरेज-रेसिडेण्ट आ कर उसे सिंहासन पर बैठाते थे तथा इस प्रदेशमें अपनी राजशक्तिकी प्रधानता जतानेके लिये उसे नजरनजर देते थे।

सयादत् अली खांका लड़का गाजी उद्दीन हैदर १८१४ ई०में अयोध्याके राजपद पर बैठा। यही इस वंशमें प्रथम राजनामका अधिकारी हुआ था। उसने अपने पिताके अनुष्ठित मोतीमहल गुम्बजके चारों बगल मोतीमहल प्रासाद बनवाया। नदीके प्राचीन नौका-सेतुके उभय तीरवर्ती मुबारक-मञ्जिल और शाह मञ्जिल नामक प्रासाद उसीके अनुग्रहसे संस्कृत हुआ था। शाहमञ्जिल प्रासादमें वह रोमक-सम्राटोंकी तरह दुरन्त जंगली पशुओंका रणकौतुक देखते थे। लखनऊ राजवंशके अवसान तक इस प्रासादमें बराबर पशु-युद्ध होता रहा था। इसके सिवा गाजी उद्दीन हैदरने गोमती-बाजार सुप्रसिद्ध 'छत्रमञ्जिल-कलान' और 'छत्रमञ्जिल खुर्द' बनवाया था।

अपने मकबरेके लिये उसने गोमतीके किनारे शाह नजफ नामक एक मन्दिर निर्माण किया था। बचपनमें वह इसीमें रहता था। उस पर अपने पिता और माताके लिये उसने दो मकबरे भी बनवाये थे। जनकी सुविधाके लिये उसने एक नहर कटवानेकी चेष्टा की थी। उसका निदर्शन नगरके पूर्व और दक्षिणमें आज भी देखा जाता है। अर्थाभावके कारण वह उसे शेष न कर सका था। कदम-रसूल अर्थात् महम्मद-पदचिह्नस्थापित

कृत्रिम स्तूपके ऊपर उसने एक बड़ी अट्टालिका बनवाई थी। पहले एक मुसलमान उस पदचिह्नको अरबसे इस देशमें लाया था। वही उसको एक ऊंचे स्थान पर स्थापन कर एक मुसलमान तीर्थरूपमें घोषित कर गया है। गाज़ी उद्दीनके आग्रहसे उसका माहात्म्य बहु- बढ़ गया। १८५७ ई०के गदरमें यह पत्थर स्थानान्तरित किया गया था, इस कारण तभीसे यह कदम रसूलके मन्दिरमें प्रतिष्ठित न हुआ।

गाज़ी उद्दीनके पुत्र नासिर उद्दीन हैदर १८२७ ई०में पितृ-सिंहासन पर अभिषिक्त हो राजकार्य चलाने लगा। ज्योतिःशास्त्रमें ऐकान्तिक आसक्तिके कारण उसने बहुत रुपये खर्च कर 'तारावाली कोठी' नामक एक वेधालय खोला था। विख्यात अङ्गरेज़-ज्योतिर्विद् कर्नल विलकाक्स उसके कर्मचारिरूपमें नियुक्त हो कर उक्त वेधालयके यन्त्रादिका परिदर्शन करते थे। १८४७ ई०में कर्नल विलकाक्सकी मृत्युके बाद वाजिद अलीशाहने उस वेधालयको बंद कर दिया। सिपाही-विद्रोहके समय विद्रोहियोंके उपद्रवसे उक्त वेधालयमें जितने यन्त्रादि थे सभी टूट फूट गये। विद्रोहि दलके नेता और परामर्शदाता फैज़ाबादवासी मौलवी अहमदउल्ला शाह इस समय यहां आ कर बस गया। विद्रोहियोंको उभाड़नेके लिये यह अपने प्राङ्गणमें सभा किया करता था।

नासिर उद्दीन हैदरने उपरोक्त वेधालयको छोड़ कर इरादत नगरमें एक बड़ी 'करबला' भी बनवाई थी। उसी करबलामें वह दफनाया गया था।

नासिर उद्दीनकी मृत्युके बाद उसका चचा महम्मद अली शाह १८३७ ई०में सिंहासन पर बैठा। उसने अपने कीर्त्तिस्तम्भ हुसेनाबादका इमामबाड़ा बनवाया। यह दो भागोंमें विभक्त है। लखनऊ दुर्गका प्रसिद्ध रूमी दरवाज़ा गोमती-तीरवर्त्ती मच्छीभवनसे इस इमामबाड़ाके बहिःप्राङ्गणमें चला आया है। यहां रास्तेमें कुछ पश्चिम खड़ा हो कर देखनेसे दाहिनी ओर आसफ उद्दौलाका इमामबाड़ा और रूमी दरवाज़ा तथा बाईं ओर हुसेनाबादका इमामबाड़ा और जुमा मसजिद दृष्टिगोचर होती है। इन सब अट्टालिकाओंका समावेश देख कर

अनेक स्थापत्यवित् मुक्तकण्ठसे कह गये हैं, कि स्थापत्य शिल्पका ऐसा अत्युत्कृष्ट निदर्शन भारतवर्षमें बहुत थोड़ा है।

राजा महम्मद अलीशाहने अपने इमामबाड़ेमें आनेके लिये छत्तरमञ्ज़िलसे दुर्गके मध्य होता हुआ इमामबाड़ा तक एक लम्बा चौड़ा रास्ता निकाला था। उस रास्तेके किनारे एक डिग्गी भी खोदी गई थी। उसने दिल्लीकी जुमामसजिदकी अपेक्षा अधिकतर उत्कृष्ट प्रणालीसे स्वनिर्मित इमामबाड़ेकी बगलमें एक मसजिदकी नींव डाली थी। अकालमें उनकी मृत्यु हो जानेसे उसका निर्माणकार्य पूरा न होने पाया। तभीसे वह उसी हालतमें पड़ा है। उसने 'सातखण्ड' नामक एक और दुर्गस्तम्भ बनानेका उद्योग किया था। उसके चार खण्ड बनाये जानेके बाद वह इस लोकसे चल बसा। वह भी अधूरा हो पड़ा है।

अनन्तर लखनऊके चतुर्थ राजा आमजाद अलीशाह (१८४१ ई०)-ने कानपुर तक पक्की सड़क, हज़रतगञ्जमें अपना मकबरा और गोमतीका लौहसेतु बनवाया। राजा गाज़ी उद्दीन हैदरने उस सेतुको इङ्गलैण्डसे लाने-का हुक्म दिया था। उसके पहुंचनेसे पहले ही गाज़ीका देहान्त हो चुका था। पीछे उसके लड़के नासिर उद्दीनने रेसिडेन्सीके सामने उसे स्थापन करनेका प्रस्ताव किया था। किन्तु नदीमें स्तम्भ खड़ा करना सहज न था, इस कारण वह प्रस्ताव स्थगित रहा। आखिर आमजाद अलीने उसकी प्रतिष्ठा की।

अयोध्याराजवंशके अन्तिम राजा वाजिद अलीशाहने १८४७ से १८५६ ई० तक लखनऊ सिंहासनको अलंकृत किया था। उसका बनाया कैसरबाग नामक प्रमोदउद्यान नगरमें सबसे बड़ा और सुन्दर होने पर भी वह जन-साधारणके निकट प्रशंसाभाजन न हो सका था। १८४८ ई०में उसका कार्यारम्भ तथा १८५० ई०में उसका निर्माणकार्य शेष हुआ। उसके बनानेमें करीब ८० लाख रुपये खर्च हुए थे।

वेधालयके सम्मुखस्थ उत्तर-पूर्व द्वार हो कर प्रवेश करनेसे दर्शकको पहले जिलौखाना नामक प्रासाद द्वार पार करना होता है। इस प्रासादके दक्षिण दालो-

दखल हुआ करता था। यहांसे दक्षिणकी ओर घूम कर एक आच्छादित द्वार पार करनेसे चीनीबागमें आया जाता है। यहां चीनी कांचके पात्रादिसे उद्यानभोग को अलंकृत कर रखा है। यहांसे नग्नाकृति रमणी मूर्त्तिसे परिशोभित एक प्रवेशद्वार अतिक्रम करनेसे हजरतबागमें पहुंचते हैं। यह नग्न प्रतिकृतियां १८वीं में अनार्जित यूरोपीय रुचिसे बनाई गई हैं। हजरतबागके दक्षिण चन्दीवाली, बारहदरी और खासमुकाम या बादशाह-मंजिल है। इस बारहदरीकी मेज एक समय चांदीसे मढ़ी हुई थी। बादशाह मंजिल सयादत् अली खां द्वारा प्रतिष्ठित होने पर भी वाजिद अलीशाहने उसे अपने नयप्रासाद चित्रके अन्तर्मुक्त कर लिया। उसके वामभागमें और भी कितनी अट्टालिकायें हैं जिनमेंसे राजकीरदार माजिम उद्दौला खांका चांदलक्ष्मी नामक वासभवन उल्लेखनीय है। नवाब वाजिद अलीने चार लाख रुपयेमें इसे खरीदा था। इस अट्टालिकामें प्रधान बेगम और राजमहिषी रहती थीं। सिपाही विद्रोहके समय इस प्रासादमें रह कर उसकी एक बेगमने विद्रोहिदलकी सहायतार्थ दरबार लगाया था। इसके पासवाले अस्तबलमें अंग्रेज बन्दी रखे गये थे।

इसके पार्श्वस्थ-पथकी बगलमें वृक्ष है। उस वृक्षका तला मर्मर पत्थरका बंधा हुआ था। मेलेके दिन नवाब फकीरके वेशमें पीला कपड़ा पहन कर यहां बैठे रहते थे।

पूर्वकी ओर लालद्वारा लाख रुपया खर्च कर बनाया गया था। इसे पार करनेसे कैसरबागका प्रकृत उद्यानप्राङ्गण देखनेमें आता है। इसके चारों ओर अन्तःपुरकामिनियोंका प्रासाद है। इस प्रासाद-प्राङ्गणमें प्रतिवर्ष भादोंके महीनेमें मेला लगता है। इस मेलेमें लखनऊवासी क्या हिन्दू क्या मुसलमान सभी जमा होते हैं। इसके बाद प्रस्तरनिर्मित बारादरी है। यह अभी रङ्गमञ्चमें परिणत हो गया है। पश्चिमका लालद्वार पार करनेसे 'कैसर-पसन्द' नामक प्रसिद्ध प्रासाद मिलता है। इसे नासिर उद्दीन हैदरके मन्त्री रोशन उद्दौलाने बनवाया था। उसका ऊपरी भाग अर्द्धगोलाकार स्वर्णमय कलसोंसे आच्छादित है। नवाब वाजिद अलीशाहने उसे हस्तगत कर अपनी प्रियतमा स्त्री मशुक-उल सुलतानको रहनेके लिये दिया था। पीछे एक दूसरा किवांखाना पार करनेसे दर्शक राजपथ पर पहुंचता है।

लखनऊ अंगरेजोंके अधिकारमें आनेके बाद यहांके स्थापत्यशिल्पकी गौरवज्ञापक और किसी भी प्रकारकी अट्टालिका न बनाई गई। केवल कुछ दातव्य चिकित्सालय, विद्यालय और राजकार्यालय बनाये गये थे। बलरामपुरके महाराज सर दिग्विजयसिंह के. सी. एस. आई. ने रेसिडेन्सिकी बगलमें एक अस्पताल बनवा दिया है।

उपरोक्त दोनों इमामबाड़े, छत्रमञ्जिल, कैसरबाग और अयोध्या राजवंशधरोंके अन्याय प्रासादोंको छोड़ कर यहां सयादत् अली खां, मुशिदजादी, महम्मद अली शाह और गाजी-उद्दीन हैदरका समाधिमन्दिर देखने लायक है। एतद्भिन्न बहुत सी उद्यानवाटिका, इमामबाड़ा, देवमन्दिर, मसजिद और धनाढ्य नगरवासियोंका वासभवन भी स्थापत्यशिल्पसे परिपूर्ण है। १८वीं सदीकी घृणित स्थापत्यरुचि जब इङ्गलैण्डसे दूर की गई, तब उसने भारतमें प्रवेश किया। भोगविलासलोलुप मुसलमानराजोंने उसको खूब अपनाया। प्रत्नतत्त्वानुसन्धित्सु फार्गुसनने इस नगरके स्थापत्यशिल्पका उल्लेख यों किया है,—No caricatures are so ludicrous or so bad as those in which Italian detail are introduced. १८५६ ई०की ७वीं फरवरीको अंगरेजराजने अयोध्याप्रदेशको अपने हाथ पर लखनऊके राजा वाजिद अली शाहको कलकत्तेका गङ्गातीरवर्त्ती मुचीखोला नामक स्थानमें नजरबंद रखा। उसी समयमें १९वीं सदीमें लखनऊके अंतिम नवाबकी मृत्यु हुई।

सिपाही-विद्रोह।

मीरटनगरमें सिपाही-विद्रोहवह्नि धधकनेके दो मास बाद १८५७ ई०की २री मार्चको सर हेनरी लारेन्स अयोध्याप्रदेशके चीफ कमिश्नर नियुक्त हुए। उस समय लखनऊ दुर्गमें १२ अंगरेज सैनादल, एक दल यूरोपीय कमानवाही सैन्य, ७ नम्बरके देशी अश्वारोही सेनादल तथा १३, ४८ और ७१ नम्बरके देशी पदाति नगरके समीप दो दल सैनादल तथा स्थानीय रेगुलरके पदातिक, एक दल सामरिक पुलिस-सेना, दो दल देशी कमानवाही

और एक दल अयोध्याके इरेगुलाका पदातिक रहता था। तात्पर्य यह कि, उस समय यहां ७५० अंगरेज और प्रायः ७००० भारतीय सेना थी। अप्रिल मासके आरम्भमें ही देशी सिपाहियोंमें विद्वेषभाव दिखाई दिया। इस समय अंगरेजोंने जो जातिनाशका उपाय अवलम्बन किया था, उसका बदला चुकानेके लिये सिपाहियोंने ४८ नम्बर पदातिक दलके सार्जनका घर जला दिया। सर हेनरी लारेन्सने उपस्थित विपद्‌की आशङ्का कर रेसिडेन्सीको सुरक्षित करने और रसद जुटानेकी व्यवस्था कर ली। ३०वीं अप्रिलको ७ नम्बर अयोध्याके इरेगुलाका सेनादल कार्ट्रिजमें गायकी चर्बी मिली जान कर उसे काटनेसे इनकार चला गया। फिर भी उन्हें भुलावा दे कर सेनापतिकी आज्ञा माननेको बाध्य किया गया। ३री मईको हेनरीने उन लोगोंके अस्त्रशस्त्र छीन लेनेका हुकुम जारी किया। तदनुसार सभी देशी सिपाहियोंसे हथियार छीन लिये गये।

१२वीं मईको सर हेनरी लारेन्सने एक दरबार करके जनताको हिन्दीभाषामें समझा दिया, कि अंगरेजी शासन हिन्दू और मुसलमानके लिये बहुत लाभदायक है। अतएव सबोंको अंगरेजी शासनका पक्षपाती हो उसीको अनुगामी होना चाहिये। उसके दूसरे दिन सबेरे मीरटके हत्याकाण्डका संवाद जब लखनऊ नगर पहुंचा, तब सेनादलमें बड़ी सनसनी फैल गई। १६वीं मईको सर हेनरी लारेन्सने अयोध्याके सेनादलका कर्त्तृत्व लाभ कर रेसिडेन्सीमें यूरोपीय नर नारीकी रक्षा और दुर्ग तथा मच्छिभवनको सुरक्षित कर दिया। ३०वीं मईकी रातको लखनऊ नगरमें विद्रोहवह्नि जो इतने दिनोंसे सुलग रही थी, एकाएक धधक उठी। ७१ नम्बरके सेनादल तथा अन्यान्य दलके लोगोंने मिल कर अध्यक्षोंकी कोठीमें आग लगा दी तथा घरके लोगोंको मार डाला। दूसरे दिन सबेरे यूरोपीय सेनादलने उन्हें आक्रमण कर पीछे हटा दिया। किन्तु ७ नम्बरके अश्वारोहिदल विद्रोहिदलमें मिल कर सीतापुरकी ओर रवाना हुए। १२वीं जून तक लखनऊ नगर अंगरेजोंके अधिकारमें रहा सही, पर अयोध्याके दूसरे दूसरे अंश विद्रोहियोंके हाथ लगे।

११वीं जूनको सामरिक पुलिस और देशी घुड़सवार विद्रोही सेनादल खुल्लमखुल्ला अंगरेजों पर गोला बरसाने लगे। दूसरे दिन देशी पदातिक दलने उन्हें साथ दे कर नगरको मथ डाला। २० जूनको कानपुर विद्रोहि-दलके हाथ लगा जान कर सिपाही लोग फूले न समाये। २९ जूनको ७००० हजार विद्रोहियोंने फैजाबादके पथसे अग्रसर हो रेसिडेन्सीसे आठ मील दूर चिनहाट ग्राम पर चढ़ाई कर दी। सर हेनरी लारेन्स युद्धके लिये अग्रसर हुए। किन्तु वे शत्रुके सामने बहुत देर तक ठहर न सके। हार स्वीकार कर लौट आये। उन्होंने शत्रुपक्षका बल अधिक देख कर मच्छीभवनको छोड़ दिया और रेसिडेन्सीकी बलपुष्टि करनेके लिये वहां कुल सेना इकट्ठी की। १ली जुलाईको शत्रुदल रेसिडेन्सीको घेर कर गोला बरसाने लगा। २रे शत्रुपक्षका एक गोला सर हेनरीके सोनेकी कोठरीमें घुसा जिससे वे बुरी तरह घायल हुए और ४थी जुलाईको इसी यन्त्रणासे परलोक सिधारे। अनन्तर मेजर बांक्स सिभिल विभागके और ब्रिगेडियर इनग्लिस सामरिक विभागके अध्यक्ष हुए। २०वीं जुलाईको शत्रुओंने फिरसे अंगरेजों पर हमला कर दिया। दूसरे दिन मेजर बांक्स मारे गये। अब कुल अधिकार ब्रिगेडियर इंगलिसके हाथ रहा। १० और १८ अगस्तको लगातार ही आक्रमण करके भी शत्रुदल अंगरेजोंको परास्त न कर सका। रेसिडेन्सीमें जो अंगरेज थे, कहींसे मदद मिलनेकी आशा न देख हताश हो रहे थे। इसी समय आउट्रम और हावलकके आनेकी खबर सुन कर वे लोग बहुत उत्साहित हुए। २२वीं सितम्बरको हावलकने आलमबागमें पहुंच कर वहांके विद्रोहियोंका दमन किया। २५ सितम्बर तक शत्रुओंके साथ युद्ध करते हुए वे रेसिडेन्सके दरवाजे पर पहुंचे। उसके पहले ही शत्रुओंके हाथसे जेनारल नील मारे गये थे। शत्रुदलने अंगरेजोंकी शक्ति कमजोर देख कर फिरसे नगर पर धावा बोल दिया। आउट्रम और हावलकने बड़ी वीरतासे दिन रात युद्ध कर नगरकी रक्षा की थी।

अक्टूबर मास तक अंगरेज लोग असीम हिम्मतसे युद्ध कर आत्मरक्षा करते रहे। १७वीं नवम्बरको सर

स्नान हुआ करता था। यहांसे दक्षिणकी ओर घूम कर एक आच्छादित द्वार पार करनेसे चीनीबागमें आया जाता है। यहां चीनी कांचके पात्रादिने उद्यानभोगको अलंकृत कर रखा है। यहांसे नग्नाकृति रमणी मूर्त्तिसे परिशोभित एक प्रवेशद्वार अतिक्रम करनेसे हजरतबाग-में पहुंचते हैं। यह नग्न प्रतिकृतियां १८वीं में समाजित यूरोपीय रुचिसे बनाई गई हैं। हजरतबागके दक्षिण चन्दोवाली, बारहद्वारी और खासमुकाम या बादशाह-मंजिल है। इस बारहद्वारीकी मेज एक समय चांदीसे मढ़ी हुई थी। बादशाह मंजिल सआदत अली खां द्वारा प्रतिष्ठित होने पर भी वाजिद अलीशाहने उसे अपने शयनप्रासाद चित्तके अन्तर्भुक्त कर लिया। उसके वाम-भागमें और भी कितनी अट्टालिकायें हैं जिनमेंसे राज-हीरकार मासिम उल्ला खांका चांदलक्ष्मी नामक वास-भवन उल्लेखनीय है। नवाब वाजिद अलीने चार लाख रुपयेमें इसे खरीदा था। इस अट्टालिकामें प्रधान बेगम और राजमहिषी रहती थीं। सिपाही विद्रोहके समय इस प्रासादमें रह कर उनकी एक बेगमने विद्रोहिदलकी सहायतार्थ दरबार लगाया था। इसके पासवाले अस्तबल-में अङ्गरेज बन्दी रखे गये थे।

इसके पार्श्वस्थ-पथकी बगलमें वृक्ष है। उस वृक्ष-का तला मर्मर पत्थरका बंधा हुआ था। मेलेके दिन नवाब फकीरके वेशमें पीला कपड़ा पहन कर यहां बैठे रहते थे।

पूर्वकी ओर नालीद्वारा लाख रुपया खर्च कर बनाया गया था। इसे पार करनेसे कैसरबागका प्रशस्त उद्यान-प्राङ्गण देखनेमें आता है। इसके चारों ओर अन्तःपुर कामिनियोंका प्रासाद है। इस प्रासाद-प्राङ्गणमें प्रतिवर्ष भादोंके महीनेमें मेला लगता है। इस मेलेमें लखनऊवासी क्या हिन्दू क्या मुसलमान सभी जमा होते हैं। इसके बाद प्रस्तरनिर्मित बारहदरी है। यह अभी रङ्गमञ्चमें परि-णत हो गया है। पश्चिमका लालद्वार पार करनेसे 'कैसर-पसन्द' नामक प्रसिद्ध प्रासाद मिलता है। इसे नासिर उद्दीन हैदरके मन्त्री रोशन उद्दौलाने बनवाया था। उसका ऊपरी भाग अर्द्धगोलाकार स्वर्णमय आवरणसे आच्छादित है। नवाब वाजिद अलीशाहने उसे हस्तगत कर अपनी प्रियतमा स्त्री महबूब-उस सुल-तानके रहनेके लिये दिया था। पीछे एक दूसरा त्रिमो-हाना पार करनेसे दर्शाद बाग तक पहुंचता है।

लखनऊ अंगरेजोंके अधिकारमें आनेके बाद यहांके स्थापत्यशिल्पकी गौरवप्रापक और किसी भी प्रकारकी अट्टालिका न बनाई गई। केवल कुछ दातव्य चिकित्सा-लय, विद्यालय और राजकार्यालय बनाये गये थे। बल-रामपुरके महाराज सर दिग्विजयसिंह के. सी. एस. आई. ने रेसिडेन्सीकी बगलमें एक अस्पताल बनवा दिया है।

उपरोक्त दोनों इमामबाड़े, छत्तरमंजिल, कैसरबाग और अयोध्या राजवंशधरोंके अन्याय प्रासादोंको छोड़ कर यहां सआदत अली खां, खुर्शीदजादी, मुहम्मद अली शाह और गाजी-उद्दीन हैदरका समाधिमन्दिर देखने लायक है। एतद्भिन्न बहुत सी उद्यानवाटिका, दवाखाना, देवमन्दिर, मसजिद और धनाढ्य नगरवासियोंका वास-भवन भी स्थापत्यशिल्पसे परिपूर्ण है। १८वीं सदीकी दूषित स्थापत्यपद्धति जब इङ्गलैण्डसे दूर की गई, तब उस-ने भारतमें प्रवेश किया। भोगविलासलोलुप मुसलमान-राजोंने उसको खूब अपनाया। प्रत्नतत्त्वानुसन्धित्सु फार्गुसनने इस नगरके स्थापत्यशिल्पका उल्लेख यों किया है,—No caricatures are so ludicrous or so bad as those in which Italian detail are intro-duced. १८५६ ई०की ७वीं फरवरीको अंगरेजराजने अयोध्याप्रदेशको छीन कर लखनऊके राजा वाजिद अली शाहको कलकत्तेका गङ्गातीरवर्ती मुचीखोला नामक स्थानमें नजरबंद रखा। उसी भवनमें १९वीं सदीको लखनऊके अंतिम नवाबकी मृत्यु हुई।

सिपाही-विद्रोह।

मीरटनगरमें सिपाही-विद्रोहवह्नि प्रज्वलित होनेके दो मास बाद १८५७ ई०की २री मार्चको सर हेनरी लारेन्स नवा-बिहन अयोध्याप्रदेशके चीफ कमिश्नर नियुक्त हुए। उस समय लखनऊ दुर्गमें ३२ अंगरेज सेनादल, एक दल यूरो-पीय कमानवाली सैन्य, ७ नम्बरके देशी अश्वारोही सेना-दल तथा १३, ४८ और ७१ नम्बरके देशी पदाति सेनाके समीप दो दल सिपाही तथा स्थानीय रेगुलर पदातिक, एक दल सामयिक पुलिस सेना, दो दल देशी अश्वारोही

मुजफ्फरपुर जिलेके बीच बह चली है और धौरान तथा पासियाड़ नामक दो जलधाराओंसे कलेवर पुष्ट कर दक्षिण-की ओर दरभङ्गा-मुजफ्फरपुर रास्तासे ७-८ मील दक्षिण बाघमती नदीमें मिल गई है। उक्त रास्ता नदीके ऊपर लोहेका पुल हो कर गया है। वर्षाकालमें इस नदीसे सीतामढ़ी तक नौका पर आ सकते हैं। राजापति, दुमड़ा, बेल्हाही, नरपुर और राजखण्ड नीलकोठी इस नदीके किनारे है।

लखना (हिं० क्रि०) १ लक्षण देख कर अनुमान कर लेना। २ देखना।

लखनोर—रोहिलखण्डके रामपुर राज्यान्तर्गत एक नगर। पहले यहां कटारिया जातिकी राजधानी थी। आज कल यह शाहाबाद कहलाता है। यहां प्राचीन कीर्त्तिके अनेक ध्वस्त निदर्शन पड़े हैं।

लखनोर—बङ्गालका एक प्राचीन राजनगर। प्रसिद्ध मुसलमान ऐतिहासिक मिनहाजके वर्णनसे जाना जाता है, कि राजनगर, बङ्ग, कामरूप और तिरहुत यह विस्तीर्ण भूखण्ड एक समय लक्ष्मणावती या गौड़राज्य नामसे परिचित और लक्ष्मणसेनके अधिकारभुक्त था। लक्ष्मणा-वती प्रदेश गङ्गा द्वारा दो भागोंमें विभक्त था। इनमेंसे पश्चिमी भाग राढ़ और पूर्वी भाग 'बरिन्द' (वरेन्द्र) कहलाता था। उसी राढ़में लखनोर नगरी अवस्थित थी।

अबुल फजलकी आईन-इ-अकबरीमें लिखा है, कि बल्लालसेनने उत्तर-राढ़में वीरभूम जिलेके अन्तर्गत लक्ष्मणनगर नामसे एक प्रसिद्ध नगर बसाया था। तब-कात-इ-नासिरी आदि मुसलमान-इतिहासमें उसीको 'लखनोर' कहा है। आज कल यह 'नगर' नामसे प्रसिद्ध है।

लखनौती (लक्ष्मणावती)—युक्तप्रदेशके सहारनपुर जिलान्तर्गत मांगुर तहसीलका एक प्राचीन नगर। अभी यह ध्वंसावस्थामें पड़ा है और श्रीभ्रष्ट हो गया है। प्राचीन कीर्त्तिके निदर्शन-स्वरूप यहां एक टूटा फूटा किला मौजूद है।

इस नगरमें तथा इसके उपकण्ठस्थित पांच ग्रामोंमें पहलेसे तुर्क जातिका एक उपनिवेश चला आता था। बहुत दिनों तक ये लोग यहां स्वाधीन और स्वतन्त्र हो कर रहे। पीछे १८वीं सदीके शेष भागमें उन लोगों-ने क्रमशः अपना दल मजबूत कर लिया। १७९४ ई०में सहारनपुरके महाराष्ट्रीय शासनकर्त्ता बापू सिन्दे उन लोगोंका दमन करनेके लिये तुल गये। आखिर जार्ज टामसके अधीन प्रेरित महाराष्ट्रकी सेनादलने आ कर दुर्ग प्राचीरको तोड़ फोड़ डाला। तुर्क लोग आत्मसम-र्पण करनेको बाध्य हुए।

लखनौती—बङ्गालकी एक प्राचीन नगरी।

लक्ष्मणावती देखो।

लखपती (हिं० पु०) लाखों रुपयेका अधिपति, जिसके पास लाखों रुपयेकी सम्पत्ति हो।

लखमीनाथ (हिं० पु०) समुद्र।

लखमीवर (हिं० पु०) विष्णु।

लखर (हिं० पु०) काकड़ासिंगीका पेड़। इसे आकोल भी कहते हैं।

लखलखा (फा० पु०) १ कोई सुगन्धित द्रव्य। २ एक विशेष प्रकारका बना हुआ सुगन्धित द्रव्य। यह प्रायः मिट्टी पर गुलाब-जल छिड़क कर अथवा इसी प्रकारके और द्रव्योंसे तैयार किया जाता है। इसे सुंघा कर बेहोश आदमीको होशमें लाते हैं।

लखाहाण्डाई—दरभंगा जिलेमें प्रवाहित एक छोटी नदी।

लखाव—आसाम प्रदेशके श्रीहट्ट जिलेकी सीमा पर स्थित एक बड़ा गांव यह खासियाहीलकी नीचे अवस्थित है। यहां हर सप्ताहमें दो दिन हाट लगता है जिसमें पहाड़ी खस और सन्तेंग लोग पहाड़ी वस्तुएं बेचने आते हैं।

लखाना (हिं० क्रि०) १ दिखलाना। २ अनुमान करा देना, समझा देना।

लखि—बर्मा-के मिटकीनाके सिन्धु प्रदेशान्तर्गत एक गिरिश्रेणी। यह बलुचिस्तानकी हाला या ब्राहुई पर्वत श्रेणीसे मिली हुई। इसकी लम्बाई प्रायः ५० मील और ऊंचाई १५००से २००० फुट है। यह अक्षा० २६° ३० तथा देशा० ६७° ५' पू०के मध्य पड़ती है। इस पर्वतमें बहुतसे गरम सोते हैं। सेवान नगरके समीप यह पर्वतांश क्रमशः सिन्धुनदका समतल भूमिमें परि-णत हो गई है। पर्वतपृष्ठमें कहीं कहीं तांबा, रसांजन और सीसा पाया जाता है।

कालिन काम्बेलके अधीनस्थ सैनादल कानपुरसे आलम-बाग पहुंचा। काम्बेल यहांसे कलकत्ता जा कर लख-नऊका उद्धार करनेकी इच्छासे भिन्न भिन्न स्थानसे सैन्य संग्रह करने लगे। १२वीं नवम्बरको उन्होंने दलबलके साथ आलमबाग पर चढ़ाई कर दी। कुछ समय युद्ध करनेके बाद शत्रुदल परास्त हुआ। अनन्तर वे दिलखुश प्रासादको कब्जा कर मार्टिनियरकी ओर अग्रसर हुए। यहां हथियारबंद विद्रोही सिपाही दल रहता था। उक्त स्थानको जीत कर काम्बेलने खालको पार किया और १६वीं नवम्बरको शत्रुदलके प्रधान केन्द्र सिकन्दरबाग पर हमला कर दिया। यहां दोनों दलोंमें घोर युद्ध होनेके बाद विद्रोहीदल परास्त हुआ। अंगरेजीसेना दुर्गको अधिकार कर बड़े उत्साहसे मोतीमहल तक अग्रसर हुई। हावलक रेसिडेन्सीसे निकल कर दलबलके साथ उनसे मिले।

इस प्रकार विजयी द्वितीय साहाय्यकारी सैनादल लखनऊ नगर पहुंचा सही, पर अङ्गरेजोंके लिये नगरकी रक्षा करना असम्भव-सा हो उठा। इस पर सर कालिन काम्बेलने शत्रुकी जबर्दस्त चढ़ाई देख कर अङ्गरेज पुरुष, स्त्री और बालबच्चोंको यहांसे कलकत्ता भेज देना चाहा। तदनुसार वे २०वीं नवम्बरको दलबलके साथ अग्रसर हुए। रेसिडेन्सी पर पुनः शत्रुका कब्जा हुआ। राहमें सर हेनरी हावलककी मृत्यु हुई। आलमबागमें वे दफ-नाये गये।

अब सबके सब कानपुरकी ओर चले। केवल सर जेम्स आउट्रम ३५०० सेना ले कर आलमबागकी रक्षा करने रह गये। वे प्रधान सेनापतिकी बाट जोह रहे थे। इसी समय मौका देख विद्रोहि-दलने नगरके चारों ओर घेर लिया। वे लोग आत्मरक्षाके लिये चारों सीमाको सुदृढ़ करने लगे। प्रायः ३० हजार शिक्षित सिपाही और ५० हजार वालंटियर नगरके चारों ओर प्रायः २० मील तक फैल गये थे। उन लोगोंके पास १०० कमान थीं।

१८५८ ईसवी २री मार्चको सर कालिन काम्बेलने फिर लखनऊकी यात्रा कर दी। उन्होंने दिलखुशको जीत कर मार्टिनियरको दखलके लिये कमानवाही सेना-की सजा गया। ५ मार्चको ब्रिगेडियर फ्रांक्स नेपाल-राज द्वारा भेजे गये ३ हजार गुर्खा और ३ हजार अङ्ग-रेजी सेना ले कर यहां डट गये। आउट्रम भी दलबलके साथ गोमती पार कर फैजाबादकी ओर चल दिये। इस समय सिपाही दलने दक्षिण-पूर्वसे उन पर चढ़ाई कर दी। एक सप्ताह (६से १५ मार्च तक) दोनोंमें लगा-तार युद्ध चलता रहा। आखिर विद्रोहि-दलकी हार हुई। अङ्गरेजोंने एक एक उन लोगोंके सभी सुरक्षित स्थान जीत लिये। विद्रोहि दल लखनऊसे भाग चला। पीछे सेनापति काम्बेल अयोध्याके सैनादलको शिकस्त कर उनका संहार करने लगे। उसी सालकी १८वीं अक्तूबरको लार्ड कैनिङ्गने सस्त्रीक यहां आ कर उक्त नगरका पुनः संस्कार कार्य देखा था।

इस नगरमें नाना प्रकारका शिल्प-वाणिज्य चलता है। उनमेंसे जरी, रेशम और जवाहरका कार्य ही प्रसिद्ध है। कश्मीरी वणिकोंने यहां शाल बनानेका कारखाना खोला है। कांचके बरतन और कागज बनानेका काम भी है।

शिक्षा-विभागमें मार्टिनियरको छोड़ कर लखनऊका कैनिङ्ग कालेज प्रसिद्ध है। यह कालेज १८६४ ई०में स्थापित हुआ है। विभागीय कमिश्नर इस कालेजके सभापति हैं। इसके सिवा अमेरिकन मिसनके अधीन ७ और इङ्गलिश चर्च मिसनके अधीन ५ विद्यालय हैं। तालुकदारके लड़कोंके पढ़नेके लिये भी एक स्वतन्त्र स्कूल है जो कोलविन स्कूल (Colvin School) कह-लाता है। इसके सिवा नार्मल स्कूल, जुबली हाई स्कूल, सिकेण्डरी स्कूल और प्राइमरी स्कूल भी हैं। बालिका-स्कूल भी अभी खुर्शीद-मञ्जिलमें है, १८६६ ई०में स्थापित हुआ है। गायनकला और सङ्गीत शिक्षाके लिये यहां बहुतसे उस्तादोंके अधीन विद्यालय परिचालित होता है। लखनऊका धनी समुदाय देखने लायक है। यहांसे ५ अङ्गरेजी और १८ हिन्दी समाचार-पत्र निक-लते हैं। शहरमें जितने प्रेस हैं उनमेंसे नवलकिशोर प्रेस ही मशहूर है।

लखनई—अवधकी नदीकी एक शाखा। यह सैदबकी पांडवानालासे निकल कर इटावा गांवके पास होती हुई

मुजफ्फरपुर जिलेके बीच बह चली है और सौरान तथा धासियाड़ नामक दो जलधारासे कलेवर पुष्ट कर दक्षिणकी ओर दरभङ्गा-मुजफ्फरपुर रास्तामें ७·८ मील दक्षिण बाघमती नदीमें मिल गई है। उक्त रास्ता नदीके ऊपर लोहेका पुल हो कर गया है। वर्षाकालमें इस नदीसे सीतामढ़ी तक नौका पर आ सकते हैं। राजापति, दुमरा, येलाही, जरपुर और राजखण्ड नीलकोठी इस नदीके किनारे हैं।

लखना (हिं० क्रि०) १ लक्षण देख कर अनुमान कर लेना। २ देखना।

लखनोर—रोहिलखण्डके रामपुर राज्यान्तर्गत एक नगर। पहले यहां कटारिया जातिकी राजधानी थी। आज कल यह शाहाबाद कहलाता है। यहां प्राचीन कीर्त्तिके अनेक ध्वस्त निदर्शन पड़े हैं।

लखमोर—बङ्गालका एक प्राचीन राजनगर। प्रसिद्ध मुसलमान ऐतिहासिक मिनहाजके वर्णनसे जाना जाता है, कि राजनगर, बङ्ग, कामरूप और तिरहुत यह विस्तीर्ण भूखण्ड एक समय लक्ष्मणावती या गौड़राज्य नामसे परिचित और लक्ष्मणसेनके अधिकारभुक्त था। लक्ष्मणावती प्रदेश गङ्गा द्वारा दो भागोंमें विभक्त था। इनमेंसे पश्चिमी भाग राढ़ और पूर्वी भाग 'वरिन्द' (वरेन्द्र) कहलाता था। उसी राढ़में लखनोर नगरी अवस्थित थी।

अबुल फजलकी आईन-इ-अकबरीमें लिखा है, कि बल्लालसेनने उत्तर-राढ़में वीरभूम जिलेके अन्तर्गत लक्ष्मणनगर नामसे एक प्रसिद्ध नगर बसाया था। तबकात-इ-नासिरी आदि मुसलमान इतिहासमें उसीको 'लखनोर' कहा है। आज कल यह 'नगर' नामसे प्रसिद्ध है।

लखनौती (लक्ष्मणावती)—युक्तप्रदेशके सहारनपुर जिलान्तर्गत रुड़की तहसीलका एक प्राचीन नगर। अभी यह ध्वंसावस्थामें पड़ा है और श्रीभ्रष्ट हो गया है। प्राचीन कीर्त्तिके निदर्शन स्वरूप यहां एक टूटा फूटा किला मौजूद है।

इस नगरमें तथा इसके अव्यवहित पांच ग्रामोंमें पहलेसे तुर्क जातिका एक उपनिवेश चला आता था। बहुत दिनों तक ये लोग यहां बलशाली और समृद्धिहीन हो कर रहे। पीछे १८वीं सदीके शेष भागमें इन लोगोंने क्रमशः अपना दल मजबूत कर लिया। १७९४ ई०में सहारनपुरके महाराष्ट्रीय शासनकर्त्ता बापू सिन्दे उन लोगोंका दमन करनेके लिये तुल गये। आखिर अंग्रेज शासकके अधीन प्रेरित साहाय्यकारी सेनादलने आ कर दुर्ग प्राचीरको तोड़ फोड़ डाला। तुर्क लोग आत्मसमर्पण करनेको बाध्य हुए।

लखनौती—बङ्गालकी एक प्राचीन नगरी।

लक्ष्मणावती देखो।

लखपती (हिं० पु०) लाखों रुपयेका अधिपति, जिसके पास लाखों रुपयेकी सम्पत्ति हो।

लखमीताल (हिं० पु०) समुद्र।

लखमीवर (हिं० पु०) विष्णु।

लखर (हिं० पु०) काकड़ासिंगीका पेड़। इसे करकोल भी कहते हैं।

लखलखा (फा० पु०) १ कोई सुगन्धित द्रव्य। २ एक विशेष प्रकारका बना हुआ सुगन्धित द्रव्य। यह प्रायः मिट्टी पर गुलाब-जल छिड़क कर अथवा इसी प्रकारके और द्रव्योंसे तैयार किया जाता है। इसे सुंघा कर बेहोश आदमीको होशमें लाते हैं।

लखाहाएडाई—दरभंगा जिलेमें प्रवाहित एक छोटी नदी।

लखात—आसाम प्रदेशके नौगांव जिलेकी सीमा पर स्थित एक बड़ा गांव यह खासियापहाड़ीके नीचे अवस्थित है। यहां हर सप्ताहमें दो दिन हाट लगता है जिसमें पहाड़ी खस और मलंग लोग पहाड़ी वस्तुएं बेचने आते हैं।

लखाना (हिं० क्रि०) १ दिखलाना। २ अनुमान करा देना, समझा देना।

लखि—बम्बई-प्रेसिडेन्सीके सिन्धु प्रदेशान्तर्गत एक गिरिश्रेणी। यह बलुचिस्तानकी हाला या ब्राहुई पर्वत श्रेणीसे निकली हुई। इसकी लम्बाई प्रायः ५० मील और ऊंचाई १५००से २००० फुट है। यह अक्षा० २६° ३०' तथा देशा० ६७° ५' पू०के मध्य पड़ती है। इस पर्वतमें बहुतसे गरम सोते हैं। सेहवान नगरके समीप यह पर्वतांश क्रमशः सिन्धुनदकी समतल भूमिमें परिणत हो गई है। पर्वतपृष्ठमें कहीं कहीं सोरा, गन्धक और तांबा पाया जाता है।

लकि—सिन्धुप्रदेशके कराची ज़िलेके सेहवान उपविभागके अन्तर्गत एक बड़ा गांव। यह सिन्धुनदके पश्चिमी किनारेके पास और लकि गिरिसंकटके प्रवेशपथ पर अवस्थित है। सिन्धु, पंजाब और दिल्ली रेलवे लाइन लकि नगर होती हुई गिरिपथके बीच हो कर चली गई है। यहां उक्त रेलवे लाइनका एक स्टेशन है। यहांसे प्रसिद्ध धारातीर्थ दो मील दूर पड़ता है। इस गरम चश्मेमें आनेके लिये सीधी सड़क दौड़ गई है।

लखि—सिन्धुप्रदेशके शिकारपुर ज़िलान्तर्गत एक नगर। यह अक्षा० २७° ५१´ उ० तथा देशा० ६८° ४४´ पू०के बीच पड़ता। इस नगरसे सिन्धु, पंजाब और दिल्ली रेलपथका एक अड्डा सिर्फ डेढ़ कोस दूर है। यह नगर बहुत प्राचीन है। जिस समय वर्त्तमान शिकारपुर विभाग जंगलोंसे भरा था, उस समय यह सिन्धुप्रदेशके प्रसिद्ध चण्डिका और लर्काना विभागका प्रधान केन्द्र समझा जाता था। फिलहाल यह सौन्दर्य बहुत कुछ नष्ट हो गया है।

लखिमपुर—आसाम प्रदेशकी पूर्वी सीमा पर स्थित अङ्गरेजोंके अधिकारमें एक ज़िला। ब्रह्मपुत्र-नदके दोनों किनारोंके भूभागको ले कर यह ज़िला गठित है। यह अक्षा० २६° ४१´ से २७° ५२´ उ० तथा देशा० ९३° ४६´ से ९६° ५´ पू०के मध्य अवस्थित है। भूपरिमाण ४५२९ वर्गमील है। इस ज़िलेका अधिकांश हिस्सा ही जंगलों और पर्वतोंसे भरा है। बीच बीचमें पहाड़ी जातिका वास है। सरकारकी वर्त्तमान पैमाइशोंमें सिर्फ ३०२१ वर्गमील भूमि रहने योग्य निर्दिष्ट हुई है। डिब्रुगढ़, डिब्रु नदी और ब्रह्मपुत्रके संगम पर अवस्थित है और यही इस ज़िलेका विचार सदर है। जनसंख्या ३७१३९६ है।

इस ज़िलेके उत्तर डफला, मीरी, आबर और मिश्मी शैलमाला, पूर्वमें मिश्मी और सिङ्फो शैलमाला, दक्षिणमें पाटकै पर्वत और नागपर्वतका पार्वत्य प्रदेश तथा पश्चिममें दरङ्ग और शिवसागर ज़िलेको अलग करनेवाली भरभरली, डिहिङ्ग और दिसङ्ग नदी पड़ती है। उत्तर और पूर्वप्रान्तस्थित शैलमाला पर इस समय भी पहाड़ी जाति रहती है, इस कारण अभी तक वर्त्तमानमें अङ्गरेजोंका अधिकार न होने पाया है। दक्षिण सीमा ले कर अङ्गरेजराज और ब्रह्म गवर्मेण्टका बन्दोबस्त हुआ था। सम्प्रति ब्रह्मराज्य अङ्गरेजोंके अधिकारमें आने पर भी उक्त देशकी बहुतेरी पहाड़ी जातियां आज भी स्वाधीनभावसे पहाड़की तराईमें विचरण करती हैं।

ब्रह्मपुत्र नदके दोनों किनारोंकी भूमि बड़ी उपजाऊ है। इसकी उत्तरी, पूर्वी और दक्षिणी सीमा पर बड़े बड़े पहाड़ हैं जिनसे आसाम उपत्यकाके ये सब स्थान बड़े मनोरम दिखाई पड़ते हैं। ब्रह्मपुत्र नद नाना शाखाओंके साथ हिमालयकी कन्दरासे निकल कर आसाम-प्रदेश होता हुआ नीचेकी ओर बह गया है। नदीके किनारे धान काफी उपजता है। बहुतेरे बांस और फलके भी जंगल हैं।

ब्रह्मपुत्र नद ही यहांका प्रधान है। वर्षाकालमें इस नदमें सदिया तक जहाज आया जाता है, किन्तु दूसरी ऋतुमें डिब्रुगढ़ तक आता है। इस समय छोटी छोटी नावें दापकुलटापोर्थ तक आ सकती हैं। डिहिङ्ग और दिसङ्ग नामकी दो शाखाएं हिमालयकी तराईसे निकल कर यहां ब्रह्मपुत्रसे आ मिली हैं। डिहिङ्ग ही जिलेकी प्रसिद्ध सहायक नदी है। इसके अलावा सुवर्णश्री नद, डिहिङ्ग, डिब्रु, बूढ़ी डिहिङ्ग, दिसङ्ग और लोहित नदी ब्रह्मपुत्रका कलेवर बढ़ाती हुई इस ज़िलेके बीच हो कर बहती है।

खेतीबारीकी उन्नति और वृद्धिके लिये यहांकी किसी नदीमें बांध नहीं दिया जाता। प्राचीन आसामके राजाओंने रास्तेकी रक्षाके लिये बांध दिलवाया था। जंगलोंमें जो सब वस्तु मिलती है उनमें रबरके ही पेड़ प्रधान हैं। इसके सिवा रेशम, मोम और अनेक तरहकी औषध भी पाई जाती है। हाथी, गैंडा, जंगली भैंसा, जंगली गाय, हरिण और भालू आदि पशु और बहुत तरहके पक्षी वनमें स्वच्छन्दरूपसे विहार करते हैं।

ब्रह्मकुण्ड या परशुरामकुण्ड यहांका प्रधान तीर्थ है। यहां ब्रह्मपुत्रकी एक शाखा बहती है। हर साल बहुतेरे तीर्थयात्री पर्वतके ऊपर स्थित इस तीर्थका दर्शन करने जाते हैं। पास हीके प्रसिद्ध देवपुरी (ताम्रगृहद्वार)—

एक गभीर पर्वत गह्वर है। दिसङ्ग नदीने जहां नागाशैल छोड़ा है वहीं यह अवस्थित है।

यहांका इतिहास बहुत कुछ आसामके इतिहासके साथ मिला है। आसाम अधिकार करनेकी इच्छासे पूर्वाञ्चलवासी राजे ब्रह्मपुत्रको पार कर पहले लखिमपुरमें घुसे थे। कहते हैं, कि बंगालके पालराजाओंने एक समय यहां अपना प्रभाव फैला कर हिन्दू-उपनिवेश स्थापन किया था। उसके बाद बंगालके बारभूंया राजाओंने आत्मकलहसे प्रपीड़ित हो कर विवाद-विरहित इस निविड़ प्रदेशमें आ कर एक उपनिवेश बसाया। आज भी बांसकाटा और लखिमपुर नगरके पास जो दिग्गी हैं वह उनकी कीर्त्तिकी घोषणा करती है। शानवंशीय चूटियाओंने पहलेसे ही आसाम कब्जा कर रखा था। वे बारभूंयाओंको यहांसे भगा कर सुवर्णश्री नदीके किनारे रहते थे; किन्तु यह राज्यसंभोग उनके भाग्यमें अधिक दिनों तक बदा न था। १३वीं सदीमें आहम राजाओंने आसाम अधिकार कर प्राधान्य स्थापन किया। चुटियाने इस समय कुछ समयके लिये अपना प्रभाव अक्षुण्ण रखनेकी चेष्टा की; किन्तु इसमें वे फलीभूत न हुए—पासके दरङ्ग जिलेमें भाग आये। वहां जिस स्थान पर वे रहते थे वह आज चुटिया कहलाता है।

ये आहमगण भी शानजातिके हैं। ये पोङ्गराज्यके पार्वत्य भूभागसे दलबलके साथ आगे बढ़ कर पश्चिमकी ओर आसाममें आये। यहां बलसंचय करके धीरे धीरे एक दुर्द्धर्ष जाति हो उठे। इस समय उन्होंने अपने बाहुबलसे ब्रह्मपुत्र प्रवाहित उपत्यकाभूमिमें अपना आधिपत्य फैलाया। मुगलसम्राट् औरङ्गजेब द्वारा भेजे गये सेनापति मीरजुमलाको उन्होंने परास्त कर बंगालसे भगा दिया। इस वंशके प्रतापी राजा रुद्रसिंहके शासनकालमें आसाम-राज्यमें शान्ति और समृद्धि विराज करती थी।

आहम और आसाम देखो।

राजा गौरीनाथके राज्यकालमें ही मणिपुरमें आहम-वंशकी शासनशक्तिका लोप हो गया। कमजोर राजा गौरीनाथ बागियोंके षड़यन्त्रमें पड़ कर राज्यच्युत और निम्न आसाममें निर्वासित हुए। उसके बाद उन्होंने यह समृद्ध राजधानी नष्ट भ्रष्ट कर दी। इस समय मोयामारिया या मटक जाति ब्रह्मपुत्र नदीके दाहिने किनारे पर स्वाधीनता स्थापन कर अपना प्रभाव फैलाती थी तथा उन्होंने कमजोर सदिया-विभागको लूट कर तहस-नहस कर डाला। उस अराजक राज्यमें किसी प्रकार शृङ्खला स्थापित नहीं हुई। राज्यापहारक बड़े गोसांई कुछ भी शासनकी अच्छी व्यवस्था न कर सके। प्रजा उपद्रव और अत्याचारके हाथसे छुटकारा पानेके लिये राज्य छोड़ भाग गई। अवसर पा कर ब्रह्मराजने उपर्युपरि लखिमपुर पर आक्रमण कर दिया। युद्धविग्रहमें बहुत मनुष्य कटे मरे। प्रजाओंने निरुपाय हो कर भी लखिमपुर नगरके सामने फिर युद्धका आयोजन किया। दुर्द्धर्ष ब्रह्म सेनाके सामने हतबल दिमासा चड़ी न रह सकी। वह हार खा कर भागने लगी, लेकिन विजयीने पीछा कर उनको समूल नष्ट कर डाला।

१८२५ ई०में ब्रह्मसैन्य लखिमपुरसे भगाया गया सही, पर लखिमपुरके बहुदिनसे अत्याचारका स्रोत स्वभाव-से प्रवाहित होने लगा। अंगरेजराजने नाममात्र आसन पर अधिकार किया। वे आज भी इस देशमें सुशासनकी व्यवस्था नहीं कर पाये हैं। शिवसागर उपविभागके अन्तर्गत मटक विभाग उस समय देशी सरदारके अधीन शासित होता था। १८३९ ई०में जब बूढ़े सरदारकी मृत्यु हुई, तब उनके वंशधरने अंगरेजराजके आज्ञानुसार राज्यशासन करना अस्वीकार कर दिया। अतः वे पदच्युत हुए। इस साल अंगरेजराजने उत्तर-लखिमपुर और शिवसागर विभाग राजा पुरन्दरसिंहसे छीन लिया। क्योंकि, वह राजा राज्यशासनमें निकम्मा था तथा उसका कर्मचारी प्रजाओं पर अत्याचार कर खजाना वसूल करता था। इस आक्रमणमें पहाड़ी असभ्य जातिने उत्तर-राज्यको लूट कर जनशून्य कर डाला। इस समय सदिया नगरमें एक खामती सरदार स्थानीय शासनकर्त्ताके रूपमें राजकार्यको परिचालना करता था। १८३५ ई०में अंगरेजराजने एक सेनानायकके अधीन सदिया नगरमें एक दल सिपाही रखा। इसके बाद वर्ष बाद अचानक एक दिन पहाड़ी खामतीने पहाड़से सहसा भूमिमें उतर कर अंगरेज-सेनापति और पालिटिकल एजेंट मेजर हायाटके साथ सिपाहियोंको मार

गया। पीछे १८९१ ईमें अंगरेजराजने आसामप्रदेश-का पूरा शासनभार ग्रहण कर पहाड़ी जातिका आक्रमण रोकनेके लिये खूब कोशिश की। तभीसे यहां शांति राज्य कायम हुआ।

आपर, आदम, दफला, काछाड़ी, खामती, कुकी, लालुङ्ग, मणिपुरी, मरङ, मुरिया, मिकिर, मिसमी, नागा, नेपाली, राभा, सन्थाल, सिंफो आदि असभ्य जातियां इस जिलेके पहाड़ी प्रदेशमें वास करती हैं। अतिरिक्त हिन्दुओंमेंसे ब्राह्मण, राजपूत, कायस्थ, अगरवाल बनिया और कलिता (ये लोग अनार्य और पहाड़ी आसाम-राजाओंकी पुरोहिताई करते थे। आज कल सभी खेतीबारी कर अपना गुजारा चलाते हैं। ये लोग यहां मरगुद कहलाते हैं) आदि जातियां मौजूद हैं।

इस सुदूर पूर्वप्रान्तमें इस्लाम-धर्म नहीं फैला। मुगल-बादशाह के समय मुसलमानोंकी सेना आसाम प्रदेशमें घुसने पर भी जलवायुका प्रकोप सहन न कर सकी। उन्हें यह देश छोड़ देनेको बाध्य होना पड़ा। आहम राजाओंने राज्यवृद्धि बढ़ानेकी इच्छासे कई घर मुसलमान कारीगरोंको राजधानीमें ला कर स्थापन किया। इस समय यहांपर भी कुछ मुसलमान दुकानदार मणिपुर आ कर रहने लगे। ये सभी फकीरोंके मतानुयायी थे। गरम या मौलमारीगण इस समय वैष्णवधर्ममें दीक्षित हुए हैं। ज्ञानिरुपानन्द आसाम राजाओंके अत्याचारसे इस वैष्णव-सम्प्रदायमें कई बार विद्रोह उपस्थित हुआ। अन्तमें वैष्णवोंने ही प्रधानता पाई।

यहांके अधिवासियोंकी अवस्था उतनी खराब नहीं है। नमक, अफीम आदि कई द्रव्योंको छोड़ ये अपनी जरूरी चीजें तैयार कर लेते हैं। सूती कपड़े के अलावा यहांके लोग रेशमी कपड़े भी बुनते हैं। यहां दो तरहका रेशम तैयार होता है। उसका नाम पाट या मूंगा कहलाता है। स्त्रियां काम कर रेशमी कपड़े तैयार करती हैं। कई जातियां विजू पालती हैं।

यहांके खानके कमोंमें बढ़िया चाय होती है। चाय तथा सूती कपड़ा, मूंगा और अंडी रेशमी कपड़ा, सिंही का कपड़ा, तांबे, पत्थर, रबर और मोम यहांसे प्रचुर परिमाणमें बंगाल भेजा जाता है। नदियोंमें ब्रिटिश स्टीमर-कारकी देख-रेखमें इस स्थान एक मेला लगता है। सामानसे घोड़े, हिम गरू और बाजार आदि जानेके लिये रेल बनाई गई है। इस रेलपथसे तथा स्टीमर और नावों द्वारा यहांका वाणिज्य व्यवसाय चलता है। इस जिलेमें एक शहर और ११२३ गांव लगते हैं।

२ उक्त जिलेके उत्तर एक उपविभाग। यह उत्तर-लखिमपुर कहलाता है। भू-परिमाण १२७१ वर्गमील है। इसके उत्तरमें दफला और मीरी शैल तथा दक्षिणमें ब्रह्मपुत्र नद है। लखिमपुर नगर इसका सदर है। जनसंख्या ८४८२४ है।

३ उत्तर-लखिमपुर उपविभागके अन्तर्गत एक बड़ा गांव। यह अक्षा० २७° ५७´ उ० तथा देशा० ८०° ४३´ पू०के बीच सुवर्णश्री नदीकी शाखा रंगानदीके किनारे अवस्थित है। यहां अंगरेज राजकी एक छावनी है।

लखिमपुर—१ अयोध्याप्रदेशके खेरी जिलेकी एक तहसील। यह अक्षा० २७° ४७´ से २८° ३०´ उ० तथा देशा० ८०° १८´ से ८१° १´ पू०के बीच पड़ती है। इसका भूपरिमाण १०७१ वर्गमील है। खेरी, श्रीनगर, भूर, पैला और कुकड़ा-मैलानी परगने इसके अन्तर्भुक्त हैं। जनसंख्या ३११३२६ है।

२ खेरी जिलेका प्रधान नगर और लखिमपुर तहसील-का सदर। यह अक्षा० २७° ५७´ उ० तथा देशा० ८०° ४७´ पू०के मध्य उल नदीके दाहिने किनारे एक मील दूरी अवस्थित है। यहां वाणिज्य और कारोबार जोरों चलता है इसलिये यह बड़ा समृद्धिशाली हो गया है।

लखीपुर (लक्ष्मीपुर)—आसामके ग्वालपाड़ा जिलेके दक्षिण एक बड़ा गांव। यह अक्षा० २५° ५७´ उ० तथा देशा० ९०° ५१´ पू०के मध्य गारो पहाड़के उत्तर पादमूलमें अवस्थित है। यहां मेचपाड़ाके प्रसिद्ध जमींदारका प्रासाद है। यहां जो बालक और बालिकाओंकी पाठशाला है उसका खर्च इन्हींसे चलता है। जनसंख्या ४०१४ है। इष्ट-इण्डिया कम्पनीने १७५५ ईमें यहां एक कपड़ेका कारखाना खोला था।

लखीपुर (लक्ष्मीपुर)—आसामप्रदेशका एक गांव। यह कछाड़ जिलेमें पूर्व बराक और जिरी नदीके संगम पर बसा हुआ है। गांवमें मणिपुरके महाराजकी एक कचहरी है।

लखेरा—लाखसे चूड़ी और खिलौने बनानेवाली एक जाति। सम्भवतः संस्कृत लाक्षाकार शब्दके अपभ्रंशसे लखेरा शब्द बना है। इस जातिकी उत्पत्तिके सम्बन्धमें बहुत सी किंवदन्तियां प्रचलित हैं। इस जातिके लोग अपनेको पटवाय जातिकी एक शाखा तथा उनके समान कायस्थ जातिसे उत्पन्न मानते हैं। एक और उपाख्यानसे पता चलता है, कि पार्वतीके विवाहकालमें देवादिदेव महादेवने हिमालयकी कन्याके हाथकी चूड़ी बनानेके लिये पार्वतीके शरीरका मैल ले कर इस जातिकी सृष्टि की। उसमें यह भी लिखा है, कि ये पहले यदुवंशी राजपूत थे। पाण्डवोंका विनाश करनेके लिये कुरुराजने जो जतुगृह बनवाया था उसमें दुर्योधनको इन लोगोंने मदद पहुंचाई थी। इस कारण ये लोग पीछे निन्दित और समाजच्युत हुए। तभीसे ये उसी लाखकी तिजारत कर अपनी जीविका चलाते हैं।

इनमें विधवा विवाह प्रचलित है। इच्छा करनेसे ये विवाह बंधन भी तोड़ सकते हैं। सभी शराब पीते और मांस खाते हैं। विहारमें ये लोग लहेरी कहलाते हैं।

लखोट (हिं० पु०) लखुट देखो।

लखौटा (हिं० पु०) १ चंदन, केसर आदिसे बना हुआ अंगराग। २ एक प्रकारका छोटा डिब्बा। यह प्रायः पीतलका बना है और इसमें स्त्रियां प्रायः सिन्दूर आदि सौभाग्यकी सामग्री रखती हैं। इसके ढकनेमें प्रायः शीशा भी लगा होता है। ३ लिफाफा।

लखौरी (हिं० स्त्री०) १ आकारकी एक प्रकारकी छोटी पतली ईंट। इस तरहकी ईंट प्रायः पुराने मकानोंमें ही पाई जाती है। अब इसका व्यवहार कम होता जा रहा है। इसे नौतेरही ईंट भी कहते हैं। २ एक प्रकारकी भौंरीका घर जो वह मिट्टीसे घरोंके कोनोंमें बनाती है, भृंगीका घर। ३ किसी देवताको उसके प्रियवृक्षकी एक लाख पत्तियां या फूल आदि चढ़ाना।

लगंत (हिं० स्त्री०) १ लगने या स्त्री प्रसंग करनेकी क्रिया या भाव। २ लगन होनेकी क्रिया या भाव।

लग (हिं० क्रि० वि०) १ नजदीक, समीप। २ पर्यन्त, तक। (स्त्री०) ३ लगन, लाग, प्रेम। (अव्य०) ४ लिये, वास्ते।

लगड़ (सं० त्रि०) चारु।

लगडग (हिं० क्रि० वि०) लगभग देखो।

लगण (सं० पु०) एक प्रकारका रोग, इसमें पलक पर एक छोटी, चिकनी, कड़ी गांठ हो जाती है। इस गांठमें न तो पीड़ा होती है और न यह पकती है।

लगत (सं० पु०) वेदान्तज्योतिषके प्रणेता एक ज्योतिषीका नाम। इनका दूसरा नाम लगध भी था।

लगती (हिं० स्त्री०) वह बिछौना जिसे बच्चेवाली स्त्रियां बच्चोंके नीचे इसलिए बिछा कर उन्हें अपने पास सुलाती हैं, कि जिसमें उनके मलमूत्रसे और बिछौने खराब न होने पावे, कथरी, पोतड़ा।

लगन (हिं० स्त्री०) १ लगनेकी क्रिया या भाव, लगाव। २ किसी ओर ध्यान लगानेकी क्रिया, प्रवृत्तिका किसी एक ओर लगना, लौ। ३ प्रेम, मुहब्बत। (पु०) ४ वे दिन जिनमें विवाह आदि होते हैं, सहालग। ५ विवाहके लिये स्थिर किया हुआ कोई शुभ मुहूर्त, ब्याहका मुहूर्त या साइत। ६ लग्न देखो।

लगन (फा० पु०) १ कोई बड़ी थाली जिसमें आटा गूंधते या मिठाई आदि रखते हैं। २ तांबे, पीतल आदिकी एक प्रकारकी थाली जिसमें रख कर मोमबत्ती जलाई जाती है। ३ मुसलमानोंमें विवाहकी एक रीति। इसमें विवाहसे पहले थालियोंमें मिठाइयां आदि भर कर वरके लिये भेजी जाती हैं।

लगनपत्री (हिं० स्त्री०) विवाह समयके निर्णयकी चिट्ठी जो कन्याका पिता वरके पिताको भेजता है।

लगना (हिं० क्रि०) १ दो पदार्थोंके तल आपसमें मिलना, एक चीजकी सतह पर दूसरी चीजकी सतहका होना, सटना। २ एक चीजका दूसरी चीज पर सीना, जड़ा, टांका या चिपकाया जाना। ३ सम्मिलित होना, शामिल होना। ४ किसी पदार्थका दूसरे पदार्थमें संलग्न होना, मिलना। ५ उत्पन्न होना, उगना, जमना। ६ किसी पदार्थके तल पर पड़ना। ७ आघात पहुंचना, चोट पहुंचना। ८ स्थापित होना, कायम होना। ९ [illegible] या [illegible] युक्त होना। १० चोट या आघात आदिका पहुंच कर दिखना या दबना। ११ व्यय होना। खर्च होना। १२ जलने तपने या [illegible] कारण, [illegible]

जाना। १३ ज्ञात पड़ना, मालूम होना। १४ आरम्भ होना, शुरू होना। १५ कामके लिये आवश्यक होना, जरूरी होना। १६ गड़ना, गलना। १७ प्रभाव पड़ना, असर होना। १८ किसी प्रकारकी प्रवृत्ति आदिका आरम्भ होना। १९ टक्कर खाना, टकराना। २० किसी पदार्थका किसी प्रकारकी शब्द या गुलगुलाहट आदि उत्पन्न करना। २१ किसी ऐसे कार्यका आरम्भ होना जिसमें बहुतसे लोगोंके एकत्र होनेकी आवश्यकता हो। २२ खाद्य पदार्थका पकानेके समय अन्न आदिके अभाव या आंचकी *अधिकताके कारण बरतनके तलमें जम जाना।* २३ किसी चीजके ऊपर लेप किया जाना, पोता जाना, मला जाना। २४ भारी होना, खलना। २५ एक चीजका दूसरी चीजके साथ रगड़ खाना। २६ उपयोगमें आना, काममें आना। २७ जूएकी बाजी पर रखा जाना, दांव पर रखा जाना। २८ समीप पहुंचना, पास आना। २९ गड़ना, चुभना। ३० किसी कार्यमें प्रवृत्त या तत्पर होना। ३१ पीछे पीछे चलना, साथ होना। ३२ हातव्य नियत होना, देना निश्चित होना। ३३ अंकित होना, लिखित होना। ३४ बंद होना, मुंदना। ३५ गौ, भैंस, बकरी आदि दूध देनेवाले पशुओंका दूहा जाना। ३६ सम्बद्ध होना, चिमटना। ३७ छेड़खानी करना, छेड़छाड़ करना। ३८ काममें लाने योग्य होना, ठीक बैठना। ३९ आरोप होना। ४० हिसाब होना, गणित होना। ४१ प्रायश्चित्त होना, जलना। ४२ स्पर्श करना, छूना। ४३ बदलेमें आना, सुलभ होना। ४४ जहाजका छिछले पानीमें चलते किनारेकी जमीन पर चढ़ जाना। ४५ एक जहाजका दूसरे जहाजके सामने या बराबर आना। ४६ किसी स्थान पर एकत्र होना। ४७ दाम ठीक आना। ४८ चाकका नाप कर चढ़ाया जाना। ४९ होना। ५० फैलना, बिछना। ५१ धारदार चीजकी धारका तेज किया जाना। ५२ किसी चीजका विशेषतः खानेकी चीजका अस्वच्छ होना, सड़ना, गलना। ५३ कामसे रहना, ताकमें रहना। ५४ अपने निश्चित स्थान या कार्य आदि पर पहुंचना। ५५ संभोग करना, मैथुन करना।

लगभग (हिं० क्रि० वि०) प्रायः, करीब करीब।

लगमात्र (हिं० स्त्री०) स्वरोंके वे चिह्न जो उच्चारणके लिये व्यञ्जनोंमें जोड़े जाते हैं।

लगरि—एक पहाड़ी जाति।

लगलग (अ० वि०) बहुत दुबला पतला, क्षीण दुर्बल।

लगवाना (हिं० क्रि०) लगानेका काम दूसरेसे कराना, दूसरेको लगानेमें प्रवृत्त करना।

लगातार (हिं० क्रि० वि०) एकके बाद एक, सिलसिलेवार।

लगान (हिं० पु०) १ लगने या लगानेकी क्रिया या भाव। २ वह स्थान जहां पर मजदूर आदि सुस्तानेके लिये अपने सिरका बोझ उतार कर रखते हैं। ३ किसी *मकानके ऊपरी भागमें बना हुआ कोई ऐसा स्थान* जहांसे कोई वहां जा आ सकता हो, लाग। ४ भूमि पर लगनेवाला वह कर जो खेतिहरोंकी ओरसे जमींदार या सरकारको मिलता है, राजस्व। ५ वह स्थान जहां पर नावें आ कर ठहरा करती हैं।

लगाना (हिं० क्रि०) १ एक पदार्थके तलके साथ दूसरे पदार्थका तल मिलाना, सतह पर सतह रखना। २ किसी पदार्थके तल पर कोई चीज डालना, रगड़ना, छिड़कना या गिराना। ३ दो पदार्थोंको परस्पर संलग्न करना, जोड़ना। ४ उपयोगमें लाना, काममें लाना। ५ आरोपित करना, अभियोग लगाना। ६ किसीके पीछे या साथ नियुक्त करना, शामिल करना। ७ किसीमें कोई नई प्रवृत्ति आदि उत्पन्न करना। ८ ऐसा कार्य करना जिसमें बहुतसे लोग एकत्र या सम्मिलित हों। ९ गणित करना, हिसाब करना। १० एक चीज पर दूसरी चीज सीना, टांकना, चिपकाना या जोड़ना। ११ हातव्य निश्चित करना, यह तै करना कि इतना अवश्य दिया जाय। १२ प्रायश्चित्त करना, जलाना। १३ क्रमसे रखना या सजाना, कायदे या सिलसिलेसे रखना। १४ अनुभव करना, मालूम करना। १५ एक ओर या किसी उपयुक्त स्थान पर पहुंचाना। १६ सम्मिलित करना, शामिल करना। १७ खर्च करना, व्यय करना। १८ घरमें करना, गोट पहुंचाना। १९ ठीक स्थान पर बैठाना, जड़ना। २० दूध आदि आरोपित करना, जमाना। २१ तेज करना, पैनाना। २२ सड़ाना, गलाना। २३ स्थापित करना, कायम करना। २४ किसी किसीके अपने आपको बहुत दूर तक सोच समझना, किसी बातका

अभिमान करना। २५ नियत स्थान या कार्य पर पहुंचाना। २६ गौ, भैंस, बकरी आदि दूध देनेवाले पशुओंको दूहना। २७ बंद करना। २८ अंग पर पहनना, ओढ़ना या रखना। २९ किसी चीजका विशेषतः खानेकी चीजका अभ्यस्त करना, परचाना, सधाना। ३० गाड़ना, धंसाना। ३१ जूएकी बाजी पर रखना, दांव पर रखना। ३२ अपने साथ या पीछे ले चलना। ३३ खरीदनेके समय चीजका मूल्य कहना, दाम आंकना। ३४ किसी प्रकार साथमें सम्बन्ध करना। ३५ किसी कार्यमें प्रवृत्त या तत्पर करना, नियुक्त करना। ३६ स्पर्श करना, छुआना। ३७ किसीके मनमें दूसरेके प्रति दुर्भाव उत्पन्न करना, कान भरना। ३८ बदलेमें लेना, मुजरा करना। ३९ समीप पहुंचाना, पास ले जाना। ४० धारदार चीजकी धार तेज करना, सान पर चढ़ाना। ४१ अंकित करना, चिह्नित करना। ४२ पाल खींच कर चढ़ाना। ४३ जहाजको छिछली या किनारेकी जमीन पर चढ़ाना। ४४ फैलाना, बिछाना। ४५ संभोग करना, मैथुन करना। ४६ करना। ४७ एक जहाजको दूसरे जहाजके सामने या बराबर ले जाना।

लगाम (फा० स्त्री०) १ इस ढाँचेके दोनों ओर बंधा हुआ रस्सा या चमड़ेका तस्मा जो सवार या हांकनेवालेके हाथमें रहता है। सवार या हांकनेवाला इसी रस्से या तस्मेकी सहायतासे घोड़ेको चलाता, रोकता, इधर उधर मोड़ता और अपने वशमें रखता है, बाग, रास। २ लोहेका वह कंटिदार ढाँचा जो घोड़ेके मुंहके अंदर रखा जाता है और जिसके दोनों ओर रस्सा या चमड़ेका तस्मा आदि बंधा रहता है।

लगार (हिं० स्त्री०) १ नियमित रूपसे कोई काम करने या कोई चीज देनेकी क्रिया या भाव, बंधी। २ वह जो किसीको ओरसे भेद लेनेके लिये भेजा गया हो, वह जो किसीके मनकी बात जाननेके लिये किसीकी ओरसे गया हो। ३ वह जिससे घनिष्ठताका व्यवहार हो, मित्र। ४ लगनेकी क्रिया या भाव, लगाव। ५ लगन, प्रीति। ६ तारा, क्रम, सिलसिला। ७ रास्तेमें कोई वह स्थान जहांसे जुआरी लोग जुआ खेलनेके स्थान तक पहुंचाये जाते हैं, ठिकान।

लगालगी (हिं० स्त्री०) १ लाग, लगन। २ सम्बन्ध, मेल जोल।

लगालिका (सं० स्त्री०) एक छन्दका नाम। इसके प्रत्येक चरणमें चार अक्षर होते हैं। पहला और तीसरा वर्ण गुरु और बाकी दो लघु होते हैं।

लगाव (हिं० पु०) लगे होनेका भाव, वास्ता।

लगावट (हिं० स्त्री०) १ सम्बन्ध, वास्ता। २ प्रेम, प्रीति, मुहब्बत।

लगावना (हिं० क्रि०) लगाना देखो।

लगित (सं० त्रि०) लग-कर्मणि क्त। संयुक्त।

लगुड़ (सं० पु०) १ दण्ड, डंडा, लाठी। २ लौहमय अस्त्र-भेद, एक विशेष प्रकारका लोहेका डंडा। इसकी आकृति और परिमाण आदिका विषय शुक्रनीतिमें इस प्रकार लिखा है,—यह प्रायः दो हाथका होना चाहिये। इसका निचला भाग पतला और मुंह मोटा तथा लोहेसे बांधा रहना चाहिये। इसका व्यवहार प्राचीनकालमें पैदल सैनिक अस्त्रोंके समान करते थे। ३ लाल कनेर।

लगुल (हिं० पु०) शिश्न, लिंग।

लगौहाँ (हिं० वि०) जिसे लगन लगानेकी कामना हो, रिझायला।

लग्गा (हिं० पु०) १ लंबा बाँस। २ वह लंबा बाँस जिसके सहारेसे छिछले पानीमें नाव चलाते हैं, लग्गी। ३ घास या कीचड़ आदि हटानेका एक प्रकारका फरसा जिसमें दस्तेकी जगह एक लंबा बांस लगा रहता है। ४ वृक्षोंसे फल आदि तोड़नेका वह लंबा बांस जिसके आगे एक अंकुसी लगी रहती है, लकसी। ५ कार्य आरम्भ करना, काममें हाथ लगाना।

लग्गी (हिं० स्त्री०) लंबा बांस। लग्गा देखो।

लग्घड़ (हिं० पु०) १ बाज, लगार। २ एक प्रकारका चीता। यह सामान्य चीतेसे बड़ा होता है। इसे शिकार करना सिखाया जाता है। यह प्रायः ६ फुट लंबा होता है। इसकी आँखों पर एक जंजीरसे पट्टी बंधी रहती है। इसीको लकड़बग्घा भी कहते हैं।

लग्घा (हिं० पु०) लग्गा देखो।

लग्घी (हिं० स्त्री०) लग्गी देखो।

लग्न (४८ मिनट) तक ही रहते इति लग्न शब्द (सूर्यकान्त [illegible]) इति निरयणात् मानुः । १ अहोरात्रमें जितना समय अंश क्षितिजमें किसी एक राशिका उदय होता है। अहोरात्रमें लग्न द्वादश राशियाँ उदय होती हैं, इसलिये अहोरात्रमें द्वादश लग्न कल्पित हुए हैं। 'राशीनामुदयो लग्नं' (दीपिका) प्रति दिन-रातमें यथाक्रमसे द्वादश राशिका उदय हुआ करता है। इस एक एक राशिके उदयकालके मानको लग्नमान कहते हैं।

पृथ्वी ६० दंड मानों दिन रातमें एक बार अपनी धुरी पर घूमती है। इसीको पृथ्वीकी आह्निकगति कहते हैं। इस एक आह्निकगतिवशतः पृथ्वी मेष आदि द्वादश राशि अतिक्रम करती है। सुतरां इससे सहजमें हो जाना जाता है, कि एक राशि अतिक्रम करनेमें प्रायः ५ दंड लगता है। किन्तु सूक्ष्मरूपसे गणना की जाने पर सब लग्नोंका लग्नमान समान नहीं होता। इसका कारण यह है, कि पृथ्वीका आकार बिलकुल गोल नहीं है। इसलिये लग्नमानकी घटती बढ़ती हुआ करती है। सूर्योदयके समय जिस लग्नका उदय अर्थात् पूर्वाकाशमें प्रकाश होता है, उसे उदयलग्न तथा सूर्यास्तके समय जिस लग्नका उदय होता है, उसे अस्तलग्न कहते हैं। फिर यह लग्नमान सब देशोंमें समान नहीं है।

सूर्यके अयनगतिसे इसका परिवर्त्तन हुआ करता है। ६६ वर्ष ८ मासमें सूर्य एक अंश हट जाते हैं इससे लग्नमानका भी कुछ प्रभेद हो जाता है। प्रति वर्षकी पत्रिकामें अयनांशशोधित लग्नमान दिया जाता है, उसको देख कर लग्नमान स्थिर किया जाता है। ६६ वर्ष ८ मासके बाद सूर्यके एक अंश हट जाने पर भी इसी लग्नमानके अनुसार लग्न स्थिर करनेसे करीब करीब ठीक होता है। सामान्य कुछ पलका तारतम्य हो सकता है।

[illegible] लग्नमान—

"[illegible] ।

[illegible]"

([illegible])

लग्नस्थिरकरणकी पद्धती—किसी निर्दिष्ट समयका लग्नस्थिरकरण किये जाने पर अर्थात् किसी एक कालका लग्न होने पर अथवा किसी व्यक्ति जन्म ग्रहण किये जाने पर कालवशतः किस लग्नमें जन्म हुआ है, अथवा किस लग्नमें ग्रहण किया गया है, इसके जाननेकी निर्दिष्ट प्रणालीके अनुसार लग्न स्थिर करना होता है।

लग्न स्थिर करनेके पहले उस दिनकी रविस्फुटि स्थिर करनी होती है। साधारणतः रविस्फुटिका अर्थ यह, कि राशिमान या लग्नमानका कितना अंश रवि द्वारा भुक्त या कितना अंश रविने भोग किया है। रवि एक एक मासमें एक एक राशिमें रह कर बारह महीनोंमें बारह राशिका भोग करते हैं। जिस मासको जिस राशिमें सूर्य उदय होते हैं। उसको मासकी राशिमें वे भ्रमण होते हैं। जैसे वैशाख महीनेमें सूर्य मेष राशिमें उदय होते और कार्त्तिकमें तुला राशिमें भ्रमण होते हैं। सूर्य प्रतिदिन राशिके कुछ अंश बढ़ते बढ़ते मासके अन्तमें राशिके शेषांश प्रदेशमें पहुंचते हैं। इस प्रकार सभी राशि रवि द्वारा भुक्त होती है। इसमें प्रत्येक दिन राशिमें कुछ कुछ बढ़नेमें जो समय लगता है, उसे सूर्यके दैनिक रविस्फुटि या गति कहते हैं। उदय लग्नकी रविस्फुटि उदयरविस्फुटि तथा अस्तलग्नकी रविस्फुटि अस्तरविस्फुटि कहलाती है।

लग्नमानको मासकी दिनसंख्या द्वारा भाग देने पर जो भागफल होगा, वही दैनिक रविस्फुटि है। और उपायसे भी रविस्फुटि जानी जाती है, किन्तु यही तरीका सबसे सहज है और इसीसे सूक्ष्मरूपसे रविस्फुटि स्थिर होती है।

लग्नमानके दण्डादिको पलमें परिणत कर उसके दिनसे भाग देकर उसको स्थिर करनेसे दैनिक रविस्फुटि निर्दिष्ट होगी। जैसे मेष लग्नमान ४।७ पल है, इसका गुणा करनेसे ८।१४ पल होगा। यहां पर ८ दण्डको एक करनेसे ८ पल १४ विपल दैनिक रविस्फुटि होगी, यही जानना होगा। यह जो नियम कहा गया, यह उस हालतमें जब लोग जितना भाग होता है। मासको कभी बेशी होनेसे मासमें भी कुछ फर्क पड़ जाता है।

रविस्फुटि स्थिर करनेका और भी एक नियम है।

"लग्नस्य द्विगुणं कृत्वा मासभोगस्तथा दिनैः।
पष्टिभागेन दण्डश्च शेषश्च पलमुच्यते ॥"

(ज्योतिःसारस०)

जिस मासके जिस लग्नके जितने दिनोंकी रवि-भुक्ति गणना करनी होगी उस लग्नफलको दूना कर गुणनफलको मासकी अतीत संख्यासे पुनः गुणा करे। गुणनफल जितना हो उसे ६०से भाग दे। पीछे भाग-फलको दण्ड और भागावशिष्टको पल समझना होगा। इस प्रकार प्राप्त दण्डपल अभीष्ट दिनकी रविभुक्ति होगा।

इस तरह रविभुक्ति स्थिर करके दिवाभागमें जन्म ग्रहण करनेसे या प्रश्न होनेसे दोनों लग्नकी रविभुक्ति जानी जाती है। रात्रिकालमें जन्म या प्रश्न होनेसे अस्तलग्नकी रविभुक्ति जानना आवश्यक है। इस प्रकार निर्दिष्ट दिनके उदय या अस्त लग्नकी रविभुक्ति बाद देनेसे लग्नका अवशिष्टभोग्य अंश जो रहेगा, उसके साथ दूसरे दूसरे लग्नका मान क्रमशः योग करना होगा। अब देखा जाय, कि इष्ट दण्डपलादि समष्टीकृत लग्नमानके मध्य शेष लग्नके दण्डपलादिमें अन्तर्निहित हुआ है तथा शेष लग्नके पहले लग्नके दण्डपलादिको अतिक्रम किया है, तब जानना चाहिये कि उक्त शेष लग्न ही इष्ट दण्डके उदित लग्न अर्थात् लग्नमें ही जन्म या प्रश्न हुआ है।

एक उदाहरण देनेसे यह अच्छी तरह समझमें आ जायगा। १९१६ ई०को २२ जेठको ९ बजे रातको एक लड़केका जन्म हुआ। उस लड़केका कौन लग्न होगा, यह स्थिर करनेमें पहले रविभुक्ति स्थिर करनी होगी, ज्येष्ठ मासको वृषराशिमें सूर्यका उदय तथा वृश्चिक राशिमें अस्त हुआ है। इस बालकका रातमें जन्म होने से अस्तलग्न मानना होगा। दिनमें जन्म होनेसे दिवा-लग्न और रातमें होनेसे अस्तलग्न मानना होता है, यह पहले ही कहा जा चुका है।

वृश्चिक लग्नका मान ५।४०।२० विपल है। उस सालका ज्येष्ठ मास (बंगला) ३२ दिनका हुआ है। अतएव उक्त लग्नमानको ३२ द्वारा भाग देनेसे प्रत्येक दिनकी रविभुक्ति मालूम हो जायगी। एक मासको दिनसंख्या जितनी हुई है उस संख्या द्वारा उक्त दैनिक रविभुक्तिको गुणा करनेसे उस दिनको रवि-भुक्ति पाई जाती है। यहां पर दैनिक रविभुक्तिको बाद दे कर निम्नोक्त प्रकारसे लग्नमान स्थिर किया जा सकता है। जैसे—

$$\frac{\text{वृश्चिक लग्नमान ५।४०।२०}}{\text{मासकी दिनसंख्या ३२}} = \text{० द १० पल ३८}\frac{१}{८}\text{वि०}$$

दैनिक रविभुक्ति ०।१०॥३८$\frac{१}{८}$ विपल। + दैनिक रविभुक्ति २२ जन्मतारीख = ३।५४।५८।४५ अनुपल। उस दिन अंग्रेजी ६।३७ मिनिटमें सूर्य अस्त हुए हैं। अतएव ९ बजे रातको जन्म होनेसे सूर्यास्तके २ घण्टा २३ मिनिट बाद जन्म हुआ है, ऐसा स्थिर करना होगा। इसको दण्ड पलादिमें परिणत करनेसे ५।५७।३० विपल होता है। अतएव उस समय रात्रिमान दण्डपलादि होगा।

पूर्वोक्त नियमानुसार वृश्चिक लग्नमान ५।४०।२० से उक्त २२वीं जेठकी रविभुक्ति ३।५४।५८।४५ घटानेसे १।४५।२१।१५ वृश्चिक लग्नका अवशिष्ट भोग्यमान रहेगा उसके साथ दूसरा दूसरा लग्नमान जोड़ना होगा। इस प्रकार जोड़ करते करते जब देखा जाय, कि समष्टीकृत लग्नमानके मध्य जिस राशिमें जातदण्ड पतित हुआ है, उस समय उस राशिमें लग्न हुआ है, ऐसा स्थिर करना होगा। यदि वृश्चिक लग्नके अवशिष्ट भोग्यमान-के मध्य जात दण्डका समय पतित होगा, तो उसका परवर्त्ती लग्नमान फिर जोड़ना नहीं होगा।

यहां पर वृश्चिकभोग्य लग्नमान—१।४५।२१।१५
धनुर्लग्नमान—५।१७।२०।०
समष्टि—७।२।४१।१५

इसमें ५।५७।३० विपल जातदण्ड विलीन हुआ है। वृश्चिकभोग्य लग्नमान अतिक्रम कर धनु लग्नमानके मध्यवर्त्तिकालमें लड़के भूमिष्ठ होनेसे धनुर्लग्नमें उस-का जन्म हुआ है, ऐसा स्थिर हुआ। यदि बालक ९ बजे रातको जन्म न ले कर २ बजे रातको जन्म लेता, तो दूसरा दूसरा लग्नमान क्रमशः जोड़ना पड़ता।

इसी नियमसे लग्न स्थिर करना होता है। दिनको जन्म होनेसे सूर्योदयकालसे लग्नस्थिर करना होता है।

लग्न स्थिर नहीं होनेसे प्रश्नका फलाफल नहीं जाना जा सकता। इस कारण पहले लग्नस्थिर करना उचित है। लग्न स्थिर होनेसे निःसंदेह यथोक्त फल मिलता है। बहुतेरे ज्योतिर्विद् लग्नके प्रति विशेष लक्ष्य न करके फल निर्णय करते हैं, किन्तु उससे यथोक्त फल कुछ भी नहीं मिलता। इस कारण शास्त्रमें लग्न-स्थिरताके अनेक उपाय कहे हैं। अति संक्षिप्त भावमें उस-का विषय लिखा जाता है।

अनेक समय ऐसा हुआ करता है, कि जब कोई बच्चा जन्म लेता, तब वहां घड़ीके न रहने अथवा निर्दिष्टरूपसे समयका ज्ञान न होनेसे आनुमानिक समयको ले कर लग्न स्थिर किया जाता है, किन्तु आनुमानिक समयको ले कर जो लग्न निरूपित होता है, वह ठीक है या नहीं, इसकी जांचके अनेक उपाय हैं। जैसे—

लग्नशुद्धिपरीक्षा।

वृष, कर्कट, कन्या, वृश्चिक, मकर और मीन इनका नवांशक लग्न होनेसे माथेसे अथवा माथा प्रभृति छिपकर हो कर बच्चा जनमता है। मेष, मिथुन, सिंह, तुला, धनु और कुम्भ इनका नवांश लग्न होनेसे पांवसे निकलता तथा प्रभृतिसे पहलेपहल हो कर बच्चा जन्मा है, ऐसा जानना होगा।

"[illegible]
[illegible]" (वृहज्जा०)

आचार्यवराहमिहिरने लिखा है, कि मेष, सिंह और धनु लग्नमें जन्म होनेसे सूतिकागृह घरसे पूर्वभागमें तथा सूतिकागृहकी भित्तीकी संख्या ५; कन्या, वृष और मकर लग्नमें सूतिकागृह घरसे दक्षिण और भीतकी संख्या ४ [illegible]; कुम्भ, तुला और मिथुन लग्नमें सूतिकागृह घरसे पश्चिम तथा भीत-संख्या ७ [illegible]; मीन, कर्कट और वृश्चिक लग्नमें सूतिकागृह घरसे उत्तर तथा भीत-संख्या २, ६ या ८ है, ऐसा जानना होगा।

मेष, कर्कट, तुला, वृश्चिक और कुम्भ इनमेंसे एक [illegible] अथवा [illegible] होनेसे घरसे पूरब, धनु, मीन, मिथुन और कन्या लग्न होनेसे उत्तर, वृष लग्न होनेसे पश्चिम, सिंह और मकर लग्न होनेसे दक्षिण भागमें सूतिकागृह होगा। स्थिर लग्नमें जन्म होनेसे सूतिकागृहके एक द्वार, द्व्यात्मक लग्नमें दो द्वार तथा चर लग्नमें होनेसे अनेक द्वार होते हैं। वृहज्जातकमें यह भी लिखा है, कि केन्द्रस्थित बलवान् ग्रह जिस दिशाका अधिपति है, सूतिकागृहका द्वार उसी ओर स्थिर करना चाहिये। केन्द्रस्थित अनेक ग्रह बलवान् होनेसे अनेक द्वार होते हैं और यदि केन्द्रमें ग्रह न रहे, तो जन्मलग्नकी राशिदिक्के अनुसार सूतिकागृहका द्वार निर्णय करें।

मेष और वृष लग्नमें सूतिकागृहके पूर्व भागमें, मिथुन लग्नमें अग्निकोणमें, कर्कट और सिंह लग्नमें दक्षिण भागमें, कन्या लग्नमें नैर्ऋतकोणमें, तुला और वृश्चिक लग्नमें पश्चिम भागमें, धनु लग्नमें वायुकोणमें, मकर और कुम्भ लग्नमें उत्तर भागमें तथा मीन लग्नमें ईशानकोणमें शिशु-का प्रसव और [illegible] निरूपण करना होगा।

शिशुके मस्तक पतन द्वारा लग्न राशिकी जो दिशा है उसी दिशामें शिशुका मस्तक पतित होता है अर्थात् मेष, सिंह और धनु लग्नमें पूर्वदिशा; वृष, कन्या और मकर लग्नमें दक्षिणदिशा; मिथुन, तुला और कुम्भ लग्नमें पश्चिम दिशा, कर्कट, वृश्चिक और मीन लग्नमें उत्तर दिशा हो कर बच्चा जन्म लेता है। किसी किसी ग्रन्थ[illegible] लग्नपति अथवा लग्नाधिपति ग्रह यदि बलवान् हो, तो उस ग्रहकी जो दिशा है उसी दिशामें सूतिकागृह या सूतिकागृहका द्वार तथा शिशुका मस्तक पतन होगा, ऐसा निश्चय किया जाता है। फिर किसीका कहना है, कि लग्नके द्वादशांशपतिकी दिशासे सूतिकागृहका द्वार निरूपित होता है।

[illegible] लग्नशोधा—[illegible] जिस राशिमें रहते हैं उस राशिका अधिपति जन्मकुण्डलीमें जिस राशिमें रहता है उस राशिमें अथवा उस राशिसे सप्तम या नवम राशिमें अथवा [illegible] राशिसे सप्तम या नवम राशिमें जन्मलग्न होगा। यह नियम अधिकांश समय सत्य देखा जाता है। [illegible] जन्मकुण्डलीमें [illegible] होनेसे पूर्वोक्त राशिमें [illegible] उत्पन्न हुआ करता है।

रविस्थित नक्षत्रके अनुसार लग्नपरीक्षा।—यदि दोपहर दिनको जन्म हो, तो रवि जिस नक्षत्रमें हैं, उस नक्षत्रमें अर्थात् उस नक्षत्रघटित जिस राशि अथवा रविस्थित नक्षत्रसे सप्तम नक्षत्रमें जो राशि होती है वह राशि जन्म-लग्न होगी। दोपहर दिनके बाद शाम तक रविभोग्य नक्षत्रसे द्वादश नक्षत्रघटित जो राशि होगी, उसीको जन्मलग्न समझना चाहिये। संध्याके बाद दोपहर रातको जन्म होनेसे रविभोग्य नक्षत्रसे सत्तरह या उन्नीस नक्षत्र तथा दोपहर रातके बादसे ले कर सूर्योदयसे पूर्व तक चौबीस नक्षत्रघटित जो राशि होगी वही लग्न होती है। चन्द्रराश्यधिप और रविभोग्य नक्षत्र ये दोनों नियम कहे गये। इन्हीं दोनों नियमोंसे अकसर लग्न निरूपण करते देखा जाता है तथा इसीके अनुसार लग्न स्थिर किया जाता है। (बृहज्जातक)

जन्मलग्नमें यदि शीर्षोदय हो, तो गर्भस्थ शिशु मस्तक द्वारा, पृष्ठोदय होनेसे पाद द्वारा तथा दोनोंका उदय हो, तो हस्त द्वारा भूमिष्ठ होता है। फिर यदि जन्म-लग्नमें शुभग्रहकी दृष्टि या योग रहे, तो सुख और यदि पापग्रहकी दृष्टि या योग रहे, तो कष्टसे प्रसव होगा, ऐसा जानना चाहिये। इस पर मणित्थ नामक एक ज्योतिर्विद् कहते हैं, कि लग्नपति या लग्नका नवांशपति यदि वक्री हो अथवा यदि कोई वक्री-ग्रह लग्नमें रहे, तो विपरीत भावमें अर्थात् हस्तपदादि द्वारा गर्भस्थ शिशु बाहर निकलता है। बृहज्जातकके टीकाकार भट्टोत्पलका कहना है, कि शीर्षोदय लग्नमें गर्भस्थ शिशु ऊर्ध्वशीर्ष, ऊर्ध्व-मुख और निम्नपृष्ठ हो कर तथा पृष्ठोदय लग्नमें अधो-मुख ऊर्ध्वपृष्ठ हो कर जन्म लेता है।

मेष, वृष या सिंह इनके अन्यतम लग्नमें यदि जन्म हो, तथा उसमें यदि शनि या मङ्गल रहे, तो गर्भस्थ शिशु नाड़ीवेष्टित हो कर उत्पन्न हुआ है, ऐसा जानना होगा। लग्नका उदित नवांश जिस राशिके स्वरूप होगा, उस राशिमें कालपुरुषका जो अङ्ग निरूपित होता है, वही अङ्ग नाड़ीवेष्टित था, जानना होगा। जन्मलग्न राशि और लग्नकी नवांश स्वकर राशि बलवान् होती है, इस राशि-स्वरूपमें स्थान प्रसव-स्थानको कल्पना करनी होगी। लग्न या नवांश राशि चरसंज्ञक होनेसे घरके बाहर, परदेशमें, राहमें या और किसी जगह तथा स्थिरसंज्ञक राशि होनेसे अपने घरमें उभयस्वभाव आत्मीय घरमें प्रसव होगा, ऐसा जानना चाहिये।

दीपरश्मि द्वारा लग्नका अंश निर्णय—लग्नस्थ चन्द्र यदि राशिके आरम्भमें रहें, तो प्रदीप तेलसे भरा था, यदि मध्य भागमें रहें, तो आधा तेल था और यदि वे शेष भागमें रहें, तो प्रदीपमें थोड़ा तेल था, ऐसा जानना होगा। कोई कोई कहते हैं, कि चन्द्रके पूर्णापूर्णत्वभेदसे तेलका रहना स्थिर किया जाता है, किन्तु यदि प्रदीपकी बत्ती दग्ध हो रही हो, तो जानना चाहिये, कि लग्नके आरम्भमें प्रथम भागमें जन्म हुआ है। उस बत्तीमेंसे आधी दग्ध होनेसे लग्नके मध्यभागमें तथा अधिकांश दग्ध होनेसे शेष भागमें जन्म हुआ है, स्थिर करना होगा।

लग्न ही जातकका शरीर है, इस कारण लग्न परीक्षा अच्छी तरह करना उचित है। जातकके लग्नमें किस किस विषयका विचार किया जाता है उसका विषय नीचे लिखा जाता है।

लग्नमें देहका परिमाण, रूप, वर्ण, आकृति, शरीर-चिह्न, यश, गुण और निर्गुण, सुख और दुःख, प्रवास और स्वदेशवास, सबल और दुर्बल, ज्ञान, चरित्र, स्वभाव, आरोग्य, मर्यादा, मान, इन्द्रिय निग्रह, वयोमान अर्थात् आयुका स्थूल परिमाण, शान्ति, क्लेश, भागिनेयवधू, पुंस्त्रीविचार, चेष्टा, कटु, लवण और तिक्तादि रस, पितामही, मातामह, पुत्रका भाग्य, शत्रुकी मृत्यु, वैद्य, भाईका पुत्र, सासकी माता, पितामहकी सम्पत्ति, स्वदेशभाग्य और विदेशभाग्य, मस्तक, गूलिका भार और कीर्ति, इन सबका विचार करना होता है। अर्थात् इन सबका विचार करनेमें लग्नसे ही देखना होता है।

जातकालङ्कारमें लिखा है, कि लग्न और लग्नपति दोनों ही बलवान् होनेसे लग्नभावोत्थ फलकी वृद्धि तथा दुर्बल होनेसे फलकी हानि होती है। इस प्रकार अन्यान्य भावस्थलमें भी भावराशि और भावपतिके शुभाशुभके अनुसार शुभाशुभकी कल्पना करनी होगी।

एक लग्नके ऊपर ही सभी भावफल निर्भर करता है लग्नमें गोलमाल होनेसे सभी फल गोलमाल हो जाते हैं।

लग्न स्थिर नहीं होनेसे वास्तविक फलाफल नहीं जाना जा सकता। इस कारण पहले लग्नविचार करना उचित है। लग्न स्थिर होनेसे निःसन्देह यथार्थ फल बतलाया है। बहुतेरे ज्योतिर्विद् लग्नके प्रति विशेष आदर न करके फल निर्णय करते हैं, किन्तु इससे यथार्थ फल कुछ भी नहीं मिलता। इस कारण शास्त्रमें लग्नस्थिरताके अनेक उपाय कहे हैं। अति संक्षिप्त भावमें उसका विवरण लिखा जाता है।

अनेक समय ऐसा हुआ करता है, कि जब कोई प्रश्न करने आता, तब वहां पहुंचके न रहने अथवा निश्चितरूपसे समयका ज्ञान न होनेसे आनुमानिक समयको ले कर लग्न स्थिर किया जाता है, किन्तु आनुमानिक समयको ले कर जो लग्न निरूपित होता है, वह ठीक है या नहीं, उसको जाननेके अनेक उपाय हैं। जैसे—

लग्नशुद्धपरीक्षा।

वृष, कर्कट, कन्या, वृश्चिक, मकर और मीन इसका अन्यतम लग्न होनेसे प्रश्नकर्ता नम्र तथा प्रकृति स्थिरमना हो कर कथा कहते हैं। मेष, मिथुन, सिंह, तुला, धनु और कुम्भ इसका अन्यतम लग्न होनेसे प्रश्नकर्ता विचलित तथा प्रकृतिसे चञ्चल हो कर कहता जाता है, ऐसा जानना होगा।

"युग्मे च नमतः प्रश्नो ह्ययुग्मे विचलस्तथा।
ओजराशौ समायुक्ते कुशलं कुशलं वदेत्॥" (ज्यो०प्र०)

ज्योतिषशास्त्रमें लिखा है, कि मेष, सिंह और धनु लग्न होनेसे सूतिकागृह उसके पूर्वभागमें तथा सूतिकागृहको स्त्रियोंकी संख्या ५; कन्या, वृष और मकर लग्नमें सूतिकागृह उसके दक्षिण और स्त्रीकी संख्या ४ जन; कुम्भ, तुला और मिथुन लग्नमें सूतिकागृह उसके पश्चिम तथा स्त्री संख्या ४ जन; मीन, कर्कट और वृश्चिक लग्नमें सूतिकागृह उसके उत्तर तथा स्त्री-संख्या ३, १ या ० है, ऐसा जानना होगा।

मेष, कर्कट, तुला, वृश्चिक और कुम्भ इनमेंसे एक अन्यतम अथवा लग्नका उदित नवांश राशि लग्न होनेसे उसके पूरब, धनु, मीन, मिथुन और कन्या लग्न होनेसे उत्तर; वृष लग्न होनेसे पश्चिम; सिंह और मकर लग्न होनेसे दक्षिण भागमें सूतिकागृह होगा। स्थिर लग्नमें लग्न होनेसे सूतिकागृहके पूर्व द्वार। द्विस्वभाव लग्नमें दो द्वार तथा चर लग्नमें होनेसे अनेक द्वार होते हैं। बृहज्जातकमें यह भी लिखा है, कि केन्द्रस्थित बलवान् ग्रह जिस दिशाका अधिपति है, सूतिकागृहका द्वार उसी ओर स्थिर करना चाहिये। केन्द्रस्थित अनेक ग्रह बलवान् होनेसे अनेक द्वार होते हैं और यदि केन्द्रमें ग्रह न रहे, तो लग्नस्थ नवांश राशिके अनुसार सूतिकागृहका द्वार निर्णय करें।

मेष और वृष लग्नमें सूतिकागृहके पूर्व भागमें, मिथुन लग्नमें अग्निकोणमें, कर्कट और सिंह लग्नमें दक्षिण भागमें, कन्या लग्नमें नैर्ऋतकोणमें, तुला और वृश्चिक लग्नमें पश्चिम भागमें, धनु लग्नमें वायुकोणमें, मकर और कुम्भ लग्नमें उत्तर भागमें तथा मीन लग्नमें ईशानकोणमें शिशुका प्रसव और शयनस्थान निरूपण करना होगा।

शिशुके मस्तक पतन द्वारा लग्न राशिकी जो दिशा है, उसी दिशामें शिशुका मस्तक पतित होता है अर्थात् मेष, सिंह और धनु लग्नमें पूर्वशिर; वृष, कन्या और मकर लग्नमें दक्षिणशिर; मिथुन, तुला और कुम्भ लग्नमें पश्चिम शिर, कर्कट, वृश्चिक और मीन लग्नमें उत्तरशिर हो कर बच्चा जन्म लेता है। किसी किसी मतसे लग्नस्थ अथवा लग्नाधिपति ग्रह यदि बलवान् हो, तो उस ग्रहकी जो दिशा है उसी दिशामें सूतिकागृह या प्रसवगृहका द्वार तथा शिशुका मस्तक पतन होगा, ऐसा स्थिर किया जाता है। फिर किसीका कहना है, कि लग्नके द्वादशांशपतिकी दिशामें सूतिकागृहका द्वार निरूपित होता है।

सारावली ग्रन्थके निर्देशके अनुसार लग्न शोधन—चन्द्र जिस राशिमें रहते हैं उस राशिका अधिपति वा द्वादशांशपति जिस राशिमें रहता है उस राशिमें अथवा उस राशिसे पञ्चम वा नवम राशिमें अथवा सप्तम राशिसे पञ्चम वा नवम राशिमें जन्मलग्न होता। यह नियम अधिकांश जगह सत्य देखा जाता है। चन्द्र [illegible] ग्रहोंके [illegible] जन्मलग्नको भी [illegible] लिखा गया, इसका [illegible] होनेसे पूर्वोक्त राशिमें ही लग्न हुआ करता है।

रविस्थित नक्षत्रके अनुसार लग्नज्ञान।—यदि दोपहर दिनको जन्म हो, तो रवि जिस नक्षत्रमें हैं, उस नक्षत्रमें अर्थात् उस नक्षत्रघटित जिस राशि अथवा रविस्थित नक्षत्रसे सप्तम नक्षत्रमें जो राशि होती है वह राशि जन्म-लग्न होगी। दोपहर दिनके बाद शाम तक रवि-भोग्य नक्षत्रसे द्वादश नक्षत्रघटित जो राशि होगी, उसीको जन्मलग्न समझना चाहिये। संध्याके बाद दोपहर रात-को जन्म होनेसे रविभोग्य नक्षत्रसे सत्तरह या उन्नीस नक्षत्र तथा दोपहर रातके बादसे ले कर सूर्योदयसे पूर्व तक चौबीस नक्षत्रघटित जो राशि होगी वही लग्न होती है। चन्द्रराश्यंशाधिप और रविभोग्य नक्षत्र ये दोनों नियम कहे गये। इन्हीं दोनों नियमोंसे अकसर लग्न निरूपण करते देखा जाता है तथा इसीके अनुसार लग्न स्थिर किया जाता है। (वृहज्जातक)

जन्मलग्नमें यदि शीर्षोदय हो, तो गर्भस्थ शिशु मस्तक द्वारा, पृष्ठोदय होनेसे पाद द्वारा तथा दोनोंका उदय हो, तो हस्त द्वारा भूमिष्ठ होता है। फिर यदि जन्म-लग्नमें शुभग्रहकी दृष्टि या योग रहे, तो सुख और यदि पापग्रहकी दृष्टि या योग रहे, तो कष्टसे प्रसव होगा, ऐसा जानना चाहिये। इस पर मनित्थ नामक एक ज्योतिर्विद् कहते हैं, कि लग्नपति या लग्नका नवांशपति यदि वक्री हो अथवा यदि कोई वक्री-ग्रह लग्नमें रहे, तो विपरीत भावमें अर्थात् हस्तपदादि द्वारा गर्भस्थ शिशु बाहर निकलता है। वृहज्जातकके टीकाकार भट्टोत्पलका कहना है, कि शीर्षोदय लग्नमें गर्भस्थ शिशु ऊर्ध्वशीर्ष, ऊर्ध्व-मुख और निम्नपृष्ठ हो कर तथा पृष्ठोदय लग्नमें अधो-मुख ऊर्ध्वपृष्ठ हो कर जन्म लेता है।

मेष, वृष या सिंह इनके अन्यतम लग्नमें यदि जन्म हो, तथा उसमें यदि शनि या मङ्गल रहे, तो गर्भस्थ शिशु नाड़ीवेष्टित हो कर उत्पन्न हुआ है, ऐसा जानना होगा। लग्नका इद्रित नवांश जिस राशिके स्वरूप होगा, उस राशिमें जातकका जो अङ्ग निरूपित होता है, वही अङ्ग नाड़ीवेष्टित था, जानना होगा। जन्मलग्न राशि और लग्नकी नवांश स्वरूप राशि बलवान् होती है, उस राशि-के सदृश स्थान प्रसव-स्थानकी कल्पना करनी होगी। लग्न या नवांश राशि चरसंज्ञक होनेसे घरके बाहर, परदेशमें, राहमें या और किसी जगह तथा स्थिरसंज्ञक राशि होनेसे अपने घरमें स्वसम्पर्कीय आत्मीय घरमें प्रसव होगा, ऐसा जानना चाहिये।

दीपवर्त्ति द्वारा लग्नका अंश निरूपण—लग्नस्थ चन्द्र यदि राशिके आरम्भमें रहें, तो प्रदीप तेलसे भरा था, यदि मध्य भागमें रहें, तो आधा तेल था और यदि वे शेष भागमें रहें, तो प्रदीपमें थोड़ा तेल था, ऐसा जानना होगा। कोई कोई कहते हैं, कि चन्द्रके पूर्णापूर्णत्वभेदसे तेलका रहना स्थिर किया जाता है, किन्तु यदि प्रदीपकी बत्ती दग्ध हो रही हो, तो जानना चाहिये, कि लग्नके आरम्भमें प्रथम भागमें जन्म हुआ है। उस बत्तीमेंसे आधी दग्ध होनेसे लग्नके मध्यभागमें तथा अधिकांश दग्ध होनेसे शेष भागमें जन्म हुआ है, स्थिर करना होगा।

लग्न ही जातकका शरीर है, इस कारण लग्न परीक्षा अच्छी तरह करना उचित है। जातकके लग्नमें जिस जिस विषयका विचार किया जाता है उसका विषय नीचे लिखा जाता है।

लग्नमें देहका परिमाण, रूप, वर्ण, आकृति, शरीर-चिह्न, यश, गुण और निर्गुण, सुख और दुःख, प्रवास और स्वदेशवास, सबल और दुर्बल, ज्ञान, चरित्र, स्वभाव, आरोग्य, प्रशंसा, मान, इन्द्रिय निग्रह, वयोमान अर्थात् आयुका स्थूल परिमाण, जाति, क्लेश, जातिभेदवपु, पुंस्त्रीविचार, चेष्टा, कटु, लवण और तिक्तादि रस, पितामही, मातामह, पुत्रका लाभ, शत्रुकी मृत्यु, वैद्य, सालेका पुत्र, सासकी माता, पितामहकी सम्पत्ति, स्वदेशभाग्य और विदेशभाग्य, मस्तक, सूतिका-गार और कीर्त्ति, इन सबका विचार करना होता है। अर्थात् इन सबका विचार करनेमें लग्नमें ही देखना होता है।

जातकालङ्कारमें लिखा है, कि लग्न और लग्नपति दोनों ही बलवान् होनेसे लग्नसम्बन्धीय कार्यकी वृद्धि तथा दुर्बल होनेसे फलकी हानि होती है। इस प्रकार अन्यान्य भावपत्रमें ही भावराशि और भावपतिके शुभाशुभके अनुसार शुभाशुभकी कल्पना करनी होगी।

एक लग्नके ऊपर ही सभी मनुष्यका निर्भर करता है लग्नमें गोलमाल होनेसे सभी फल गोलमाल हो जाते हैं।

और मङ्गलके रहनेसे जातक अल्पायु होता और उसे पितृरिष्टि होती है। यदि मेष, वृष अथवा कर्कट लग्न हो और वहां पूर्ण या बलवान् चन्द्र रहे, तो जातक रूपवान्, प्रियदर्शन, गुणवान्, धनी, गर्वित और भाग्यवान् होता है। उक्त तीन राशिको छोड़ कर लग्नगत चन्द्रके क्षीण होनेसे तथा उसके साथ अथवा उसके सातवेंमें किसी शुभग्रहके नहीं रहनेसे जातबालक मलिन, अमुख्य, भ्रमणशील और दुबला पतला होता है। उसकी अवस्था बदलती रहती है अर्थात् कभी ह्रास और कभी वृद्धि होती है। उस चन्द्रके उभय पार्श्वमें अथवा उसके सातवें शनि और मङ्गलके रहनेसे जातक अल्पायु होता और उसकी मातृरिष्टि होती है।

शुभग्रहसे दृष्ट हो कर मङ्गलका यदि लग्न रहे, तो जातक तेजस्वी, उग्र-स्वभाववाला, साहसी, बलवान्, दाम्भिक और धीर होता है। उस मङ्गलके सातवेंमें वृहस्पतिके रहनेसे वह ऐश्वर्यशाली और राजाके समान होता है। किन्तु पापदृष्ट होनेसे इसका विपरीत फल होता है। अर्थात् जातक कलहप्रिय, क्षतशरीर वा त्वक्दोषविशिष्ट, क्रूरचेष्टान्वित, इन्द्रियासक्त, क्रोधी, मद्य-मांसप्रिय, चञ्चल, विकलाङ्ग, मलिन, उदर वा दन्तरोगी और अर्शादि गुह्यरोगी हुआ करता है।

लग्नमें खास कर मिथुन और कन्यालग्नमें बुधके रहनेसे जातव्यक्ति, प्रियंवद, सुचतुर, मिष्टभाषी बंधुओंका हितकारी, कौतुकी, धनी, महात्मा, वणिक् वा शास्त्रवेत्ता होता है। किन्तु लग्नस्थ बुध, शनि वा मङ्गलके द्वारा दृष्ट होनेसे जातक वाचाल, मिथ्यावादी, मन्दमति-सम्पन्न, शठ, अविश्वासी, प्रवञ्चक, कपटी और चोर होता है।

मकर भिन्न अन्य किसी लग्नमें वृहस्पतिके रहनेसे जातक बुद्धिमान्, धर्मानुरक्त, विविध शास्त्रज्ञान-सम्पन्न, सदुपदेष्टा, लोकपूज्य, राजसम्मानित, भाग्यवान् और ऐश्वर्यशाली होता है।

लग्नमें शुक्रके रहनेसे जातक विलासी, गुणवान्, सुन्दरी स्त्री अथवा बहु ललनायुक्त, शिल्पशास्त्रविशारद, सङ्गीत और काव्यशास्त्रप्रिय, मधुरभाषी और प्रफुल्लचित्त वाला होता है। यदि तुला लग्न हो तथा उसमें शुक्र और कुम्भराशिमें वृहस्पति रहे, तो पुरुष सुन्दर होता है तथा उसकी स्त्रियां सर्वाङ्ग सुन्दरी होती हैं। किन्तु लग्नगत शुक्र पापयुक्त हो वा पापसे देखा जाय, तो वह नीचसङ्गप्रिय, नीचासक्तचित्त, अपव्ययी, अकृतज्ञ और दरिद्र होता है।

यदि तुला, धनु, कुम्भ या मीनराशि लग्न हो और लग्नमें शनि रहे, तो जातक दीर्घायु, ऐश्वर्यशाली तथा बहुलोकप्रतिपालक होता है। मतान्तरमें वृष, मिथुन वा कन्यालग्नमें शनि रहनेसे उक्त प्रकारका फल हुआ करता है। उस शनिके सप्तममें यदि वृहस्पति रहे, तो मानव परम ऐश्वर्यशाली होता है। किन्तु लग्नगत शनिके अन्य राशिमें रहनेसे मानव कान्तिहीन, मलीमस, दुःखयुक्त, सर्वदा व्याधिपीड़ित, नीचाशय और सुखविहीन होता है। मेषसे कन्या पर्यन्त इन छः राशिके मध्य कोई राशि लग्न होनेसे तथा वहां राहुके रहनेसे मानव अन्य ग्रहरिष्टिसे मुक्तिलाभ करता है। इसका विपरीत होनेसे राहु अशुभ फल देता है। केतु लग्नमें रहनेसे लग्नाधीन फलका ह्रास होता है। लग्नस्थित ग्रह जिस प्रकार फल-प्रद होता है उसी प्रकार लग्नाधिपति द्वारा भी फल निर्णय किया जाता है।

लग्नाधिपफल—लग्नाधिपतिके लग्नमें रहनेसे जातक भाग्यवान्, रिपुजयी, बहु परिजनयुक्त तथा अपने बन्धुवर्गमें श्रेष्ठ होता है। लग्नाधिपके द्वितीय स्थानमें रहनेसे मनुष्य अपने यत्न और परिश्रमसे धन कमाता है। लग्नाधिपके तृतीय स्थानमें रहनेसे जातक दाम्भिक, अभिमानी, ज्ञाता, ज्ञाति वा प्रतिवासीसे पराभूत तथा भ्रमणरत होता है। चतुर्थ स्थानमें रहनेसे वह पितृसम्पत्ति, उत्तम वाहन, उत्तम वासस्थान और भूमिलाभ करता है। कृषिकार्यमें ही उसे सफलता प्राप्त होती है। लग्नाधिपके पञ्चम स्थानमें रहनेसे जातक शास्त्रनिपुण, प्रसन्न, विलासप्रिय, कन्यासन्ततिविशिष्ट और बुद्धिमान होता है। छठे स्थानमें रहनेसे पीड़ा, शत्रुवृद्धि वा बध-बन्धन होता है। किन्तु शुभग्रहदृष्ट होनेसे मामा वा मामाके सहायता पानेकी सम्भावना है। लग्नाधिपके सप्तम स्थानमें रहनेसे यौवनावस्थामें स्त्रीसे अधिक स्नेहभाव, पारिवारिक परिवर्त्तन, विदेशयात्रा और शत्रुवृद्धि होती है तथा जातक अपनी बुद्धिके दोषसे अपना

इस कारण लग्नका अच्छी तरह विचार करना परमावश्यक है, लग्न स्थिर नहीं होनेसे जातकके जीवनका शुभाशुभ नहीं जाना जा सकता। लग्नसे राशिचक्रके द्वादश गृहको द्वादश लग्न कहते हैं। जैसे—लग्न, धन, सोदर, बंधु, पुत्र, रिपु, पत्नी, निधन, धर्मकर्म, आय और व्यय, इन द्वादश गृहको द्वादश लग्न कहते हैं। जैसे धन लग्न, सोदर लग्न, बन्धु लग्न, इत्यादि। किन्तु राशिमें रविके उदय कालरूप लग्न ही प्रधान है। उसीको प्रधान लक्ष्य करके अन्यान्य विषयोंका विचार करना होता है। लग्नभावफलका संक्षिप्त विवरण नीचे लिखा जाता है।

जो जो भावपति लग्नसे अथवा भावस्थानसे छठे, आठवें और बारहवेंमें रहे, तो उस उस भावोक्त फलकी हानि होती है। अतएव किसी भावका शुभाशुभ विचार करनेमें इतना होगा, कि वह भावपति लग्नसे तथा भावस्थानसे कहां है। यदि दोनों स्थानसे शुभ स्थानमें स्थित हो, तो उस भावफलका सम्पूर्ण फल तथा शुभाशुभ स्थान हो, तो फलका भी शुभाशुभ होता है।

वृहज्जातकके टीकाकार भट्टोत्पलका मत है, कि केवल छठे स्थानको छोड़ कर अन्य स्थानका शुभग्रह भाववृद्धिकर हुआ करता है। छठे स्थानका अशुभग्रह अशुभप्रद होने पर भी शत्रुनाशक होता है। लग्नसे छठा, आठवां और बारहवां स्थान दुःस्थान है। उस स्थानका ग्रह या भावपति अशुभप्रद होता है। अतएव ग्रहोंका छठा, आठवां और बारहवां सम्बन्ध होनेसे ही फलकी न्यूनता कल्पना करनी होगी। इसमें विशेषता यह है, कि जैसा ऊपर कह आये हैं, शुभ और स्वामिग्रहके योगसे शुभफल हुआ करता है, लेकिन छठे, आठवें और बारहवें स्थानके सम्बन्धमें विशेष विधि यह है, कि उसका विपरीतक्रमसे विचार करना होता है अर्थात् शुभग्रहके इस स्थानमें रहनेसे अशुभ और अशुभग्रहके रहनेसे शुभ होता है।

द्वादश लग्नरिष्टि।—मेष लग्नमें यदि जन्म हो कर लग्नमें चन्द्र, मङ्गल तथा मकर भिन्न अन्य किसी राशिमें शनि और रवि रहे, तो जातबालकको तीन दिनके भीतर मृत्यु होती है। यदि वृष लग्नमें जन्म हो तथा वह लग्न वृहस्पति या शनिसे छठे स्थानमें रहे अर्थात् शनि और वृहस्पति धनुराशिमें हों एवं आठवें स्थानमें मङ्गल रहे, तो जातकको चौदह दिनमें मृत्यु होगी। मिथुन लग्नमें जन्म हो कर कर्कटमें शनि, सप्तममें रवि रहनेसे मिथुनलग्नरिष्टि होती है। कर्कटलग्नमें जन्म हो कर तुला या कुम्भमें यदि वृहस्पति तथा वह राहु या मङ्गलसे देखा जाय, तो कर्कट लग्नरिष्टि; यदि सिंहलग्नमें जन्म हो तथा चन्द्रलग्नमें रहे और मकर भिन्न अन्य राशिमें शनि और रवि हों, तो सिंहलग्नरिष्टि; यदि कन्या लग्नमें जन्म हो तथा उस लग्नमें चन्द्र तथा वृहस्पतिके केन्द्रमें शनि रहे, तो कन्यालग्नरिष्टि; तुलालग्नजात व्यक्तिके छठे घरमें शुक्र तथा लग्नमें चन्द्र रहे, तो तुला लग्नरिष्टि; वृश्चिक लग्नजात व्यक्तिके कर्कटमें चन्द्र, धनुर्लग्नजात व्यक्तिके लग्नमें वृहस्पति तथा मङ्गलमें शनि रहे; मकरलग्नजात व्यक्तिके मेषमें चन्द्र और सिंहमें रवि, कुम्भलग्नजात व्यक्तिके चतुर्थमें चन्द्र या कन्या अथवा तुलामें शुक्र; मीनलग्नजात व्यक्तिके लग्नमें चन्द्र और वृश्चिकमें शनि रहनेसे लग्नरिष्टि होती है। ये सब रिष्टि होनेसे जातककी मृत्यु हुआ करती है।

प्रत्येक लग्नको सूक्ष्म कर षड़्वर्ग किया जाता है। षड़्वर्ग इस प्रकार है, लग्न, होरा, द्रेकाण, सप्तांश, नवांश, द्वादशांश और त्रिंशांश। इसके सिवा लग्नका स्फुटसाधन करनेसे और भी सूक्ष्म होता है। बिना स्फुटके अंश सूक्ष्म नहीं होता। सिंहलग्नमें जन्म हुआ है, कहनेसे स्फुटसाधन किया जाता है। इससे सिंहलग्नके कितने अंश और कितनी कलामें जन्म हुआ है, सो मालूम होता है। स्फुटसाधन देखो।

लग्नफल—यदि मेष, सिंह या धनुर्लग्न हो और उस स्थानमें रवि रहे, तो जातक गृहस्थ, धर्मपालक, बन्धुओंका हितकारी, उद्धत, बलवान, कर्तृस्वाभिमानी, क्षमाशील, मानी, उदारचित्त, धार्मिक और अभाभिलाषी होता है। किन्तु कर्कट अथवा तुलालग्न होनेसे तथा उस लग्नके ८ अंशके मध्य रविके रहनेसे वक्षः, नेत्ररोग और शिरःपीड़ा होती है तथा जातव्यक्ति प्रायः आत्मश्लाघी, धनरहित और पुत्रहीन होता है। उस रविके दोनों पार्श्वमें अथवा उसके सातवेंमें शनि

और मङ्गलके रहनेसे जातक अल्पायु होता और उसे पितृरिष्टि होती है। यदि मेष, वृष अथवा कर्कट लग्न हो और वहाँ पूर्ण या बलवान् चन्द्र रहे, तो जातक रूपवान्, प्रियदर्शन, गुणवान, धनी, गर्वित और भाग्यवान् होता है। उक्त तीन राशिको छोड़ कर लग्नस्थित चन्द्रके क्षीण होनेसे तथा उसके साथ अथवा उसके सातवेंमें किसी शुभग्रहके नहीं रहनेसे जातबालक मलिन, असुन्दर, भ्रमणशील और दुबला पतला होता है। उसकी अवस्था बदलती रहती है अर्थात् कभी ह्रास और कभी वृद्धि होती है। उस चन्द्रके उभय पार्श्वमें अथवा उसके सातवें शनि और मङ्गलके रहनेसे जातक अल्पायु होता और उसकी मातृरिष्टि होती है।

शुभग्रहसे दृष्ट हो कर मङ्गलका यदि लग्न रहे, तो जातक तेजस्वी, उग्र-स्वभाववाला, साहसी, बलवान्, दाम्भिक और धीर होता है। उस मङ्गलके सप्तममें वृहस्पतिके रहनेसे वह ऐश्वर्यशाली और राजाके समान होता है। किन्तु पापदृष्ट होनेसे इसका विपरीत फल होता है। अर्थात् जातक कलहप्रिय, क्षतशरीर या त्वक्-दोषविशिष्ट, क्रूरचेष्टान्वित, इन्द्रियासक्त, क्रोधी, मद्य-मांसप्रिय, चञ्चल, विकलाङ्ग, मलिन, उदर या कुष्ठरोगी और अर्शादि गुह्यरोगी हुआ करता है।

लग्नमें वास कर मिथुन और कन्यालग्नमें बुधके रहनेसे जातव्यक्ति, प्रियंवद, सुचतुर, मिष्टभाषी बंधुओंका हितकारी, कौतुकी, धनी, सरल, पण्डित या शास्त्रवेत्ता होता है। किन्तु लग्नस्थ बुध, शनि या मङ्गलके द्वारा दृष्ट होनेसे जातक वाचाल, मिथ्यावादी, अल्पमति-सम्पन्न, शठ, अविश्वासी, प्रवञ्चक, कपटी और चोर होता है।

मकर भिन्न अन्य किसी लग्नमें वृहस्पतिके रहनेसे जातक बुद्धिमान, स्वधर्मानुरत, विविध शास्त्रज्ञान-सम्पन्न, सदुपदेष्टा, लोकपूज्य, राजसम्मानित, भाग्यवान और ऐश्वर्यशाली होता है।

लग्नमें शुक्रके रहनेसे जातक विलासी, गुणवान्, सुन्दरी स्त्री अथवा बहु स्त्रलक्षणयुक्त, [illegible], सङ्गीत और काव्यनाटकप्रिय, सदाचारी और मधुरस्वभाववाला होता है। यदि तुला लग्न हो तथा उसमें शुक्र और कुम्भराशिमें वृहस्पति रहे, तो पुरुष सुन्दर होता है तथा

उसकी स्त्रियाँ सर्वाङ्ग सुन्दरी होती हैं। किन्तु लग्नगत शुक्र पापयुक्त हो या पापसे देखा जाय, तो वह नीचसङ्ग-प्रिय, नीचासक्तचित्त, मदमत्त, कामुक और दरिद्र होता है।

यदि तुला, धनु, कुम्भ या मीनराशि लग्न हो और लग्नमें शनि रहे, तो जातक दीर्घायु, ऐश्वर्यशाली तथा बहुलोकप्रतिपालक होता है। अन्यान्य वृष, मिथुन या कन्यालग्नमें शनि रहनेसे उक्त प्रकारका फल हुआ करता है। उस शनिके सप्तममें यदि वृहस्पति रहे, तो मानव परम ऐश्वर्यशाली होता है। किन्तु लग्नगत शनिके अन्य राशिमें रहनेसे मानव कान्तिहीन, मनोभग्न, दुःखयुक्त, सर्वदा व्याधिपीड़ित, नीचाशय और सुखविहीन होता है। मेषसे कन्या पर्यन्त इन छः राशिके मध्य कोई राशि लग्न होनेसे तथा वहाँ राहुके रहनेसे मानव भाग्य महारिष्टिसे मुक्तिलाभ करता है। इसका विपरीत होनेसे राहु अशुभ फल देता है। केतु लग्नमें रहनेसे लग्नाधीन फलका ह्रास होता है। लग्नस्थित ग्रह जिस प्रकार फल-प्रद होता है उसी प्रकार लग्नाधिपति द्वारा भी फल निर्णय किया जाता है।

लग्नाधिपफल—लग्नाधिपतिके लग्नमें रहनेसे जातक भाग्यवान, रिपुजयी, बहु परिजनयुक्त तथा अपने बन्धु-वर्गमें श्रेष्ठ होता है। लग्नाधिपके द्वितीय स्थानमें रहनेसे मनुष्य अपने यत्न और परिश्रमसे धन कमाता है। लग्नाधिपके तृतीय स्थानमें रहनेसे जातक दाम्भिक, अभिमानी, दाता, ज्ञाति या प्रतिवासीको पालनेवाला तथा भ्रमणरत होता है। चतुर्थ स्थानमें रहनेसे वह पितृ सम्पत्ति, उत्तम वाहन, उत्तम वासस्थान और भूमिलाभ करता है। इसके विपरीत होनेसे ये सब नष्ट होते हैं। लग्नाधिपके पञ्चम स्थानमें रहनेसे मानव मातृपितृभक्त, सन्तान, विद्याप्रिय, कलाशास्त्रविशिष्ट और बुद्धिमान होता है। छठे स्थानमें रहनेसे पीड़ा, शत्रुवृद्धि या भय उत्पन्न होता है। किन्तु शुभग्रहदृष्ट होनेसे मामा या मामासे सहायता पानेकी सम्भावना है। लग्नाधिपके सप्तम स्थानमें रहनेसे विवाहकालमें पत्नीसे अधिक धन-लाभ, बालकपनसे देशभ्रमण, विदेशवास और ज्ञानवृद्धि होती है तथा जातक अपनी बुद्धिके दोषसे अपना

अनिष्ट करता है। किसी व्यवसाय द्वारा धन और प्रतिपत्ति मिलती है। लग्नाधिपके आठवें स्थानमें रहनेसे मानव रुग्न, अल्पायु, शोकार्त्त, अपार्त्त और सर्वदा विपदापन्न होता है। किन्तु लग्नाधिपति यदि शुभ और बलवान् हों, तो उसे जीवन या कोई सम्पत्तिलाभ होता है। लग्नाधिपके नवम स्थानमें रहनेसे जातक भाग्यवान्, विद्वान्, शास्त्रानुरागी, धार्मिक या पोतवणिक् होता है। दशम स्थानमें रहनेसे मान्य, उच्चपद, कार्यसफलता और किसी समाजकी प्रधानता लाभ होती है। ग्यारहवें स्थानमें रहनेसे बहुमित्र, प्रचुर अर्थागम, उत्साह, वृद्धि और उत्तम वाहन लाभ होता है। लग्नाधिपके बारहवें स्थानमें रहनेसे दुर्भावना, बन्धनभय, ऋण, निर्वासन, क्षीणदेह, शोक और गुरुशत्रु होता है।

द्वितीय पतिके लग्नमें रहनेसे मनुष्य धनी और सौभाग्यशाली होता है; तृतीयाधिपतिके लग्नमें रहनेसे बहुभ्रमण और वासस्थानका परिवर्त्तन, परिजन द्वारा वेष्टित, कुलश्रेष्ठ और पराक्रमशाली, चतुर्थाधिपके रहनेसे बन्धुवाहन और स्थावरसम्पत्तिका लाभ, पञ्चमाधिपतिके रहनेसे जातक बुद्धिमान्, विद्यानुरागी, पुत्रवान्, विलासप्रिय, प्रफुल्लचित्त और अपने वंशका भूषणस्वरूप, षष्ठाधिपति के रहनेसे क्लेशयुक्त, शत्रु द्वारा पीड़ित, अल्पायु और सर्वदा असुस्थ, सप्तमाधिपतिके लग्नमें रहनेसे थोड़ी उमरमें विवाह, वाणिज्यकुशल और विदेशयात्रा; अष्टमाधिपतिके रहनेसे विपद्, शोक, अल्पायु या दीर्घस्थायी पीड़ा; नवमाधिपतिके रहनेसे जातक भाग्यवान्, बुद्धिमान्, धर्मपरायण, विद्या या वाणिज्य द्वारा धनी और बहुभ्रमणशील, दशमाधिपतिके रहनेसे मानव क्षमताशाली, गण्यमान्य और कीर्त्तिशाली; एकादशाधिपतिके रहनेसे प्रचुर आय, बहुमित्र और पद पदमें उत्साह तथा द्वादशाधिपतिके लग्नमें रहनेसे जातक अपव्ययी, हमेशा विपदापन्न और अल्पायु होता है।

लग्न और लग्नपति शुभ ग्रह द्वारा वेष्टित होनेसे जातक सौभाग्यशाली और यशस्वी होता है। इसी प्रणालीसे लग्नका फल विचार करना होता है।

(दीपिका, जातकको० इत्यादि)

(पु०) लग-क्त निपातनात् साधुः, यद्वा लस्ज-क्त तस्य नत्वं। २ स्तुतिपाठक, वंदीजन। पर्याय—प्रातर्व, स्तुतिव्रत, सूत। (अटापर) ३ विवाह, शादी। ४ विवाहके दिन, सहालग। ५ विवाहका समय। (वि०) ६ लगा हुआ, मिला हुआ। ७ लज्जित, शरमिंदा। ८ आसक्त।

लग्नक (सं० पु०) १ प्रतिभू, वह जो जमानत करे, जामिन। २ एक राग जो हनुमत्के मतसे मेघरागका पुत्र माना जाता है।

लग्नकङ्कण (सं० पु०) वह कङ्कण या मङ्गलसूत्र जो विवाहके पूर्व वर और कन्याके हाथमें बांधा जाता है।

लग्नकाल (सं० पु०) लग्नस्य कालः। लग्नका समय।

लग्नकुण्डली (सं० स्त्री०) फलित ज्योतिषमें वह चक्र या कुंडली जिससे यह पता चलता है, कि किसके जन्मके समय कौन कौनसे ग्रह किस किस राशिमें थे, जन्मकुण्डली।

लग्नग्रह (सं० पु०) १ दृढ़संश्लिष्ट। २ लग्नस्थित ग्रह।

लग्नदण्ड (सं० पु०) गाने या बजानेके समय स्वरके सुन्दर अंशों या श्रुतियोंको आपसमें एक दूसरेसे अलग न होने देना और सुन्दरतासे उनका संयोग करना, लाग डांट।

लग्नदिन (सं० क्ली०) लग्नस्य दिनं। लग्नका दिन, विवाहके लिये निश्चित दिन।

लग्नदिवस (सं० पु०) लग्नदिन।

लग्नदृष्टि (सं० स्त्री०) लग्नमें मस्तक आदिकी दृष्टि।

लग्नदेवी (सं० स्त्री०) पुराणवर्णित वरपरकी गामी या गाय।

लग्नपत्र (सं० पु०) लग्नस्य पत्रं। वह पत्रिका जिसमें विवाह और उससे सम्बन्ध रखनेवाला दूसरे कृत्योंका लग्न स्थिर करके ब्योरेवार लिखा जाता है।

लग्नपत्रिका (सं० स्त्री०) लग्नपत्र देखो।

लग्नफल (सं० पु०) लग्नविशेषमें जन्मके लिये जीवका शुभाशुभ फलभोग।

लग्नवेला (सं० स्त्री०) लग्नस्य वेला। लग्नकाल, लग्नका समय।

लग्नायु (सं० स्त्री०) फलितज्योतिषमें वह आयु जो लग्नके अनुसार स्थिर की जाती है।

लग्नका (सं० स्त्री०) नग्निका, नंगी स्त्री।

लग्नाश्रय (सं० पु०) एक मठका नाम। (हरिवं० १०)

लग्नेश (सं० पु०) फलितज्योतिषमें वह ग्रह जो लग्नका स्वामी हो।

लग्नोदय (सं० पु०) १ किसी लग्नके उदय होनेका समय। २ लग्नके उदय होनेका कार्य्य।

लघट (सं० पु०) लङ्घते गच्छस्थानमस्पृष्ट्वा उत्तरस्थाने पतति प्लुतं इतस्ततो गच्छति वा लङ्घ (लङ्घेर्नलोपश्च। उण् ।१।११४) इति अटि, नलोपश्च धातोः। वायु, हवा।

लघटि (सं० पु०) लघ-गतौ अटि, इन्मावः। वायु।

लघड़बग्गा (हिं० पु०) लकड़बग्घा देखो।

लघन्ती (सं० स्त्री०) एक नदीका नाम।

लघमोपुष्प (हिं० पु०) पद्मराग मणि, लाल, माणिक्य।

लघरि—एक असभ्य जाति।

लघिल (सं० पु०) प्राचीनकालका एक प्रकारका धारदार अस्त्र। इसमें दस्ता लगा होता था और इससे भैंसे आदि काटे जाते थे।

लघिमन् (सं० पु०) लघोर्भावः लघु (पृथ्वादिभ्य इमनिज्वा। पा ५।१।१२२) इति इमनिच्। १ लघुत्व, लघु या ह्रस्व होनेका भाव। २ अणिमादि ऐश्वर्योंके अन्तर्गत एक ऐश्वर्य। साधनाके द्वारा यह ऐश्वर्य लाभ होता है। योगियोंके संयम सिद्धि द्वारा क्षित्यादि पञ्चभूत जय कर सकने पर उनके अणिमादि आठ ऐश्वर्योंकी सिद्धि प्राप्त होती है। लघुत्वको लघिमा कहते हैं। जो व्यक्ति लघिमा शक्ति प्राप्त करते हैं वे बहुत छोटे या रूईकी तरह हलके बन सकते हैं तथा वे जल आदिके ऊपर आसानीसे चल सकते हैं।

(पातञ्जल० विभूतिपा० ४६)

लघिमा (सं० स्त्री०) लघिमन् देखो।

लघिष्ठ (सं० त्रि०) अयमनयोरेषां वा अतिशयेन लघुः लघु-इष्ठ। अतिशय लघुत्वयुक्त, बहुत छोटा या हलका।

लघिष्ठसाधारण गुणनीयक—अङ्कविशेष, एक तरहका हिसाब।

लघीयस् (सं० त्रि०) अयमनयोरेषां वा अतिशयेन लघुः लघु-ईयसुन्। अतिशय लघुत्वयुक्त, बहुत छोटा या हलका।

लघु (सं० क्ली०) लङ्घ्यतेऽनेनेति लघु (लङ्घिबंह्योर्नलोपश्च। उण् १।३०) इति कु, धातोर्नलोपश्च। १ शीघ्र, जल्दी। २ कृष्णागुरु, काला अगर। ३ उशीर, खस। ४ हस्ता, अश्विनी और पुष्या नक्षत्र। ये तीनों नक्षत्र ज्योतिषमें छोटे माने गये हैं और इनका गण लघुगण कहा गया है। (बृहत्सं० ९८।६) ५ समयका एक परिमाण। पन्द्रह क्षण परिमाण कालको लघु कहते हैं। पञ्चकाष्ठा परिमाणका एक क्षण होता है। (भाग० ३।११।७)

(पु०) ६ तीन प्रकारके प्राणायामोंमेंसे वह प्राणायाम जो बारह मात्राओंका होता है। शेष दो प्राणायाम मध्यम और उत्तम कहलाते हैं। ७ व्याकरणमें वह स्वर जो एक ही मात्राका होता है। जैसे,—अ, इ, उ, ऋ, ऌ आदि। ८ छन्दःशास्त्रोक्त लघु गणभेद। छन्दके लक्षणमें 'न' शब्द रहनेसे तीन लघु, 'भ' शब्दमें आदि गुरु तथा शेष दो लघु, 'य' शब्दमें आदि लघु, 'ज' आदि और शेष लघु, 'र' लघु, 'स' पहला दो लघु, 'त' शेष लघु और 'ल' शब्दमें सिर्फ एक लघु होता है। (क्लीव०) ९ रोगमुक्त, वह जिसका रोग छूट गया हो। रोग छूटने पर शरीर कुछ हलका जान पड़ता है। १० पंजीका छोटा होना जो इसके छः दोषोंमेंसे एक माना जाता है। ११ चांदी। १२ पृक्का, असबरग। १३ विट्खदिर। (त्रि०) १४ अगुरु, हलका। १५ जो बड़ा न हो, कनिष्ठ। १६ सुन्दर, बढ़िया। १७ निःसार, जिसमें किसी प्रकारका सार या तत्त्व न हो। १८ थोड़ा, कम। १९ दुर्बल, दुबला। २० नीच।

लघु आचार्य—एक ग्रन्थकार। इन्होंने त्रिपुरसुन्दरीस्तोत्र या त्रिपुरास्तोत्र, देवीस्तोत्र और त्रिपुरस्तव बनाया। ये लघु पण्डित नामसे भी प्रसिद्ध थे।

लघुकङ्कोल (सं० पु०) एक प्रकारका कंकोल जो साधारण कंकोलसे छोटा होता है।

लघुकटाई (हिं० स्त्री०) कटकटी देखो।

लघुकण्ठ (सं० पु०) शुक्लकण्ठ, सफेद कौआ।

लघुकण्टकी (सं० स्त्री०) लज्जालु।

लघुकर्कन्धु (सं० पु०) भूमिबदर, भुंईबेर।

लघुकर्णी (सं० स्त्री०) मूर्वा।

लघुकाय (सं० पु०) लघुः कायो यस्य। १ छाग, बकरा। (त्रि०) २ लघुशरीर, नाटा।

लघुकाश्मर्य (सं० पु०) लघुः काश्मर्यः । कट्फलवृक्ष, कायफलका पेड़ ।

लघुकिन्नरी (सं० स्त्री०) प्राचीनकालका एक प्रकारका बाजा । इस बाजेमें बजानेके लिये तार लगे होते थे ।

लघुकौमुदी (सं० स्त्री०) वरदराजका बनाया हुआ सिद्धान्तकौमुदीका संक्षिप्त व्याकरण ।

लघुक्रम (सं० पु०) द्रुतगमन, जल्दी जल्दी चलनेकी क्रिया ।

लघुक्रिया (सं० स्त्री०) क्षुद्र या तुच्छ कार्य ।

लघुखट्विका (सं० स्त्री०) लघुखट्विका, खटोला । पर्याय—आसन्दी ।

लघुखरतर (सं० क्ली०) प्राचीन यंत्रभेद । जैन शब्द देखो ।

लघुगङ्गाधर (सं० पु०) उदरामय रोगमें प्रयोज्य चूर्णभेद, यह चूर्ण या औषधि जो पेटकी बीमारीमें आती काम है ।

लघुगण (सं० पु०) लघुर्गणः । अश्विनी, पुष्या और हस्ता इन तीन नक्षत्रोंका समूह ।

लघुगर्ग (सं० पु०) लघुर्गर्ग इव । १ त्रिकण्टकमत्स्य, टेंगरा या त्रिकण्टक नामकी मछली । २ सीदा नामकी मछली ।

लघुगोधूम (सं० पु०) ह्रस्वगोधूम, छोटा गेहूं । यह स्निग्ध, गुरु, वृष्य, कफदम, आमशोषकर, मधुर, बल्य और पुष्टिकर माना गया है । (राजनि०)

लघुचन्दन (सं० क्ली०) काष्ठागुरु, अगर नामक सुगन्धित लकड़ी ।

लघुचित्त (सं० त्रि०) लघु चित्तं यस्य । क्षुद्रचित्त, जिसका मन बहुत ही दुर्बल या चञ्चल हो ।

लघुचित्तता (सं० स्त्री०) चित्तकी स्थैर्यहीनता, मनके बहुत ही दुर्बल या चञ्चल होनेका भाव ।

लघुचिन्तामणिरस (सं० क्ली०) रसौषधविशेष ।

लघुचिर्भिटा (सं० स्त्री०) मृगेर्वारु, सफेद इन्द्रायण ।

लघुचेतस् (सं० त्रि०) लघु चेतो यस्य । जिसके विचार बहुत ही तुच्छ और बुरे हों, नीच ।

लघुच्छदा (सं० स्त्री०) महाशतावरी, बड़ी सतावर ।

लघुच्छेद्य (सं० त्रि०) जो सहज हीमें काटा या ध्वंस किया जाय ।

लघुजङ्घ (सं० पु०) लवा नामक पक्षी ।

लघुजाङ्गल (सं० पु०) लावक पक्षी, लवा नामक पक्षी ।

लघुतर (सं० त्रि०) अति लघु, हलका ।

लघुता (सं० स्त्री०) लघु-भावे तल् टाप् । १ लघु होनेका भाव, छोटापन । २ तुच्छता, हलकापन ।

लघुतिक्त (सं० क्ली०) मुग्दासंग ।

लघुतुपक (सं० स्त्री०) तमंचा, पिस्तौल ।

लघुत्तमापवर्त्य (सं० पु०) वह सबसे छोटी संख्या जो दो या अधिक संख्याओंमेंसे प्रत्येकको पूरा पूरा भाग दे सके ।

लघुत्व (सं० पु०) १ लघु होनेका भाव, लघुता । २ तुच्छता, हलकापन, छोटापन ।

लघुदन्ती (सं० स्त्री०) लघुः क्षुद्रा दन्ती । क्षुद्रदन्तीवृक्ष, छोटी दन्ती । दन्ती देखो ।

लघुदुन्दुभि (सं० पु०) लघुर्दुन्दुभिः । एक प्रकारकी छोटी दुन्दुभि, डुग्गी ।

लघुद्राक्षा (सं० स्त्री०) लघुः क्षुद्रा द्राक्षा । काकलीद्राक्षा, किशमिश ।

लघुद्वारवती (सं० स्त्री०) वर्तमान द्वारवती नगरी ।

लघुनाममण्डल (सं० क्ली०) मण्डलात्मक चक्रभेद ।

लघुनामकर्म (सं० पु०) जैनियोंके अनुसार वह कर्म जिससे जीवका शरीर न तो बहुत भारी होता है और न हलका होता है बल्कि साधारण सम विभक्त होता है ।

लघुनामन् (सं० क्ली०) लघु लघुवर्णयुक्तं नाम यस्य । अगुरु, अगर नामक सुगन्धित लकड़ी ।

लघुनारायणोपनिषद्—एक उपनिषद्‌का नाम ।

लघुपञ्चक (सं० क्ली०) लघुपञ्चमूल देखो ।

लघुपञ्चमूल (सं० क्ली०) लघु क्षुद्रं पञ्चमूलं । क्षुद्रपञ्चमूल पाचन । शालिपर्णी, पिठवन, कटाई, कटेहरी और गोखरू इन पांचोंकी जड़ोंको लघुपञ्चमूल कहते हैं । यह पाचन, लघु, स्वादु, बलकर, पित्तानिलनाशक, नात्युष्ण, बृंहण, ग्राहक, ज्वर, श्वास और अश्मरीनाशक माना गया है । (भावप्र०)

लघुपण्डित (सं० पु०) एक नैयायिक । इन्होंने लघुपण्डितीय नामक न्यायशास्त्र लिखा । ऋजु आचार्य देखो ।

लघुपतनक (सं० पु०) १ द्रुत पतनशील, यह जो जोरसे गिर गया हो । २ हितोपदेशके अनुसार एक काक ।

लघुपत्र (सं० पु०) कमीला।

लघुपत्रक (सं० पु०) लघूनि पत्राणि यस्य कप्। कमीला।

लघुपत्रफला (सं० स्त्री०) लघु उदुम्बरिका, छोटा गूलर।

लघुपत्री (सं० स्त्री०) लघूनि पत्राणि यस्याः ङीप्। अश्वत्थवृक्ष, पीपलका पेड़।

लघुपराशर (सं० पु०) १ स्मृतिशास्त्रभेद। २ ज्योतिषभेद।

लघुपर्णी (सं० स्त्री०) १ मूर्वा, मरोड़फली। २ शतमूली, सतावर।

लघुपाक (सं० पु०) लघुः पाकः यस्य। वह खाद्य-पदार्थ जो सहजमें पच जाय।

लघुपाकिन् (सं० पु०) चीनाधान्य, चेना नामक कदन्न।

लघुपातिन् (सं० त्रि०) १ शीघ्र पतनशील, जल्द गिरनेवाला। (पु०) २ काक, कौवा।

लघुपाण्डुरपुष्पक (सं० पु०) द्वीपान्तर खर्जूरिका, एक प्रकारको खजूर जो भिन्न भिन्न द्वीपोंमें होता है।

लघुपिच्छिल (सं० पु०) लघुः पिच्छिलः। भूकर्बुदारक, लिसोढ़ा।

लघुपुलस्त्य (सं० पु०) पुलस्त्यका बनाया हुआ एक धर्मशास्त्र।

लघुपुष्प (सं० पु०) लघूनि क्षुद्राणि पुष्पाणि यस्य। भूमिकदम्ब, भुँइकदंब।

लघुप्रयत्न (सं० त्रि०) आलसी।

लघुफल (सं० पु०) लघु उदुम्बर, छोटा गूलर।

लघुबदर (सं० पु०) लघुः क्षुद्रो बदरः। छोटा बेर। पर्याय—सूक्ष्मफल, बहुकर, सूक्ष्मपत्र, दुस्पर्श, मधुर, बरहार, शिविप्रिय। पके बेरका गुण—मधुराम्ल, कफवातनाशक, रुचिकर, स्निग्ध, कुछ पित्तासि, दाह और शोषनाशक। (राजनि०)

लघुबदरी (सं० स्त्री०) भूबदरी, भुँइ बेर।

लघुबुद्धपुराण (सं० क्ली०) ललितविस्तर ग्रन्थका एक संक्षिप्त विवरण।

लघुव्यास—स्मृतिचन्द्रकारके रचयिता।

लघुब्राह्मी (सं० स्त्री०) लघुः क्षुद्रा ब्राह्मी। क्षुद्रब्राह्मी, छोटी ब्राह्मी।

लघुभण्टकी (सं० स्त्री०) चिञ्चोटक, बेंच साग।

लघुभद्र (सं० पु०) १ निम्न पद, छोटा ओहदा। २ निकृष्ट क्रम।

लघुभागवत (सं० क्ली०) भागवतपुराणका एक चूर्णिक।

लघुभाव (सं० पु०) १ हलका। २ सहजसाध्य, वह काम जो आसानीसे हो जाय।

लघुभुज् (सं० त्रि०) लघु लघुपाकद्रव्यं भुङ्क्ते भुज-क्विप्। १ लघुपाक द्रव्यभोजनकारी, भात खानेवाला। २ अल्पभोजी, थोड़ा खानेवाला।

लघुभोजन (सं० क्ली०) वह भोजन जो सहजमें और थोड़े समयमें परिपाक हो।

लघुमति (सं० त्रि०) छोटी समझवाला, मूर्ख।

लघुमन्थ (सं० पु०) लघुः क्षुद्रो मन्थः। क्षुद्राग्निमन्थ, छोटी गनियारी।

लघुमांस (सं० पु०) लघु स्वल्पं मांसं यस्य। तीतर नामक पक्षी।

लघुमांसी (सं० स्त्री०) गन्धमांसी, छोटी जटामांसी।

लघुमान (सं० पु०) नायिकाका वह मान या अल्प रोष जो नायकको किसी दूसरी स्त्रीसे बातचीत करते देख कर उत्पन्न होता है।

लघुमूल (सं० क्ली०) बीजगणितके अनुसार एक हिसाब।

लघुमूलक (सं० क्ली०) लघुमूलं यस्य कप्। ह्रस्वमूलक, छोटी मूली।

लघुयम (सं० पु०) तन्नामक एक मुनि।

लघुराशि (सं० स्त्री०) एक छोटी राशि।

लघुरसा (सं० स्त्री०) १ कारवेल्लक, करैलेकी बेल। २ अनन्ता, अनन्तमूल।

लघुलय (सं० क्ली०) लघु शीघ्रं लीयते इति ली अच्। १ उशीर, खस। २ थोड़ा काल या लयका मानको भाग।

लघुलोणिका (सं० स्त्री०) लोनीका साग।

लघुवादिन् (सं० त्रि०) परिष्कृत और सूक्ष्मवाक्यपरि-पाककारी, साफ और सरल कहना पसन्दवाला।

लघुविक्रम (सं० पु०) द्रुतगमन, शीघ्र जाना।

लघुविष्णु (सं० पु०) विष्णुकथित स्मृतिविशेष।

लघुवृत्ति (सं० त्रि०) ओछा कार्यकारी, छोटा काम करनेवाला।

लघुवेधिन् (सं० त्रि०) शीघ्र वेधकारी, जल्द वेधने या छेदनेवाला।

लघुशङ्का (सं० स्त्री०) मूत्रोत्सर्ग, पेशाब करना।

लघुशङ्ख (सं० पु०) क्षुद्रशङ्ख, घोंघा।

लघुशमी (सं० स्त्री०) शमीवृक्षभेद, एक प्रकारका पेड़ जो सेमरके पेड़के समान होता है।

लघुशान्तिपुराण—एक छोटा उपपुराण।

लघुशेखर (सं० पु०) संगीतमें एक प्रकारका ताल।

लघुशिवपुराण—एक उपपुराण।

लघुशीत (सं० पु०) लिसोड़ा।

लघुसत्त्व (सं० त्रि०) लघुप्रकृतिक, नीच स्वभावका।

लघुसदाफला (सं० स्त्री०) लघु सदा फलं यस्याः सा लघुसदा फला। लघुदुम्बरिका, छोटा गूलर।

लघुसमुत्थ (सं० पु०) वह राजा या राज्य जो लड़ाईके लिये जल्दी तैयार किया जा सके।

लघुसार (सं० त्रि०) लघुः अल्पः सारो यस्य। अल्पसारयुक्त, जिसमें थोड़ा सार हो।

लघुसुदर्शन (सं० क्ली०) आयुर्वेदके अनुसार एक प्रकारका चूर्णौषध।

लघुस्यामता (सं० स्त्री०) चञ्चलता।

लघुहस्त (सं० पु०) लघुः क्षिप्रकारी हस्तो यस्य। शीघ्रवेधी, वह जो बहुत जल्दी जल्दी बाण चला सकता हो।

लघुहस्तता (सं० स्त्री०) लघुहस्तस्य भावः तल्-टाप्। लघुहस्तका भाव या धर्म, जल्दी जल्दी बाण फेंकना।

लघुहस्तवत् (सं० त्रि०) लघुहस्त-मतुप्, तेज बाण [illegible]।

लघुहारीत (सं० पु०) हारीतऋषि-प्रवर्त्तित स्मृतिशास्त्रभेद।

[illegible] (सं० त्रि०) [illegible], [illegible]।

[illegible] (सं० स्त्री०) [illegible]। लघुदुम्बरिका, छोटा गूलर।

[illegible] (सं० [illegible]) १ [illegible], [illegible]। २ [illegible] के अनुसार एक [illegible]।

[illegible] (सं० स्त्री०) [illegible]। [illegible], [illegible]।

[illegible] (सं० त्रि०) १ [illegible]। २ [illegible], [illegible]।

लघूदुम्बरिका (सं० स्त्री०) छोटा गूलर।

लघ्वञ्जीर (सं० क्ली०) एक प्रकारका अंजीर।

लघ्वत्रि (सं० पु०) अत्रिमुनि-प्रवर्त्तित स्मृतिभेद।

लघ्वपुदुम्बरिका (सं० स्त्री०) लघु उदुम्बरिका, छोटा गूलर।

लघ्वानन्द (सं० त्रि०) लघुः आनन्दो यस्य। १ अल्प आनन्दयुक्त, कम मजावाला। (पु०) २ अल्प आनन्द, कम मजा।

लघ्वानन्दरस (सं० पु०) १ रसौषधविशेष। बनानेका तरीका—पारा, गंधक, लोहा, विष, अभ्र प्रत्येक एक भाग; मिर्च ८ भाग, सोहागा ४ भाग, भंगरैये और अमलवेतके रसमें सात बार भावना दे कर दो रत्तीकी गोली बनाये। अनुपान पानका रस है। इसके सेवनसे पाण्डु, अरुचि, मन्दाग्नि, ग्रहणी, ज्वर और वातश्लेष्म आदि रोग अति शीघ्र दूर होते हैं।

(रसेन्द्रसारस० पाण्डुरोगाधि०)

२ वातव्याधि रोगोक्त औषधविशेष। प्रस्तुत प्रणाली—पारा, गंधक, लोहा, अभ्र, विष, प्रत्येक एक भाग; मिर्च ८ भाग, सोहागा ४ भाग, भंगरैये और अनारके रसमें प्रत्यकको पांच बार भावना दे कर अनारके काढ़ेमें गोली बनाये। दोषके मुताबिक अनुपान ठीक करना होता है। इस औषधका इस्तेमाल करनेसे भ्रम और दाहके साथ वातव्याधि जाती रहती है।

(रसेन्द्रसारस० वातव्याधिरोगाधि०)

लघ्वार्यसिद्धान्त (सं० पु०) आर्यसिद्धान्तका संक्षिप्त ग्रन्थ।

लघ्वाशिन् (सं० त्रि०) लघु अल्पं लघुपाकं द्रव्यं वा अश्नाति अश-णिनि। लघुभोजी, कम खानेवाला।

लघ्वाहार (सं० त्रि०) लघुः आहारः यस्य। १ लघुभोजी, कम खानेवाला। (पु०) लघुभोजन, थोड़ा खाना।

लघ्वी (सं० स्त्री०) लघु ङीष्। १ लाघवयुक्ता, बहुत छोटी। २ [illegible]। ३ स्पृक्का, असबरग। ४ [illegible]।

लङ्क (सं० पु०) १ एक [illegible]। ([illegible] ७।१४८) २ [illegible]। (स्त्री०) ३ [illegible]।

[illegible]—[illegible] देखो।

लङ्कटङ्कटा (सं० स्त्री०) १ सुकेश राक्षसकी माता और विद्युत्केशकी कन्याका नाम । (रामायण ७।४।२३) २ सन्ध्याकी कन्याका नाम ।

लङ्कनाथ (सं० पु०) १ रावण । २ विभीषण ।

लङ्कनायक (सं० पु०) लङ्कनाथ देखो।

लङ्का (सं० स्त्री०) रमन्तेऽस्यामिति रम् बाहुलकात् कः रस्य लत्वं (उण् ३।४०) टाप्। रक्षःपुरी, रावणका राज्य।

ज्योतिःशास्त्रके मतसे यह लङ्का पृथिवीके वाममागमें अवस्थित है।

"लङ्काकुमध्ये यमकोटिरस्याः प्राक्पश्चिमे रोमकपत्तनञ्च ।
अधस्ततः सिद्धपुरं सुमेरुसौम्येऽथ याम्ये बड़वानलश्च ।"
(सिद्धान्तशिरोमणि)

अग्निपुराणमें लिखा है, कि लङ्कापुरी तीस योजन विस्तीर्ण है। इस पुरीके प्राकार सोनेके बने हैं। दक्षिण-समुद्रके किनारे त्रिकुट नामक एक पर्वत है। उस पर्वतके शिखर पर मध्यम समुद्रके समीप रवष्टाने बहुत परिश्रम करके इन्द्रके लिये यह पुरी बनवाई। इस पुरीमें चिड़िया भी नहीं जा सकती हैं। राक्षस सुखसे इस पुरीमें वास करते थे। वे अमरावतीके सदृश इस लङ्का-नगरीको पा कर भयानक दुराधर्ष हो गये थे।

"त्रिंशद्योजनविस्तीर्णां स्वर्णप्राकारतोरणाम् ।
दक्षिणस्योदधेस्तीरे त्रिकूटो नाम पर्वतः ॥
शिखरे तस्य शैलस्य मध्यमाम्बुधिसन्निधौ ।
पतत्रिभिश्च दुष्प्रापा टङ्कच्छिन्ना चतुर्दिशम् ॥
शक्रार्थं मत्कृता पूर्वं प्रयत्नात् बहुवत्सरैः ।
वसन्तु तत्र दुर्द्धर्षाः सुखं राक्षसपुङ्गवाः ॥
लङ्कादुर्गं समासाद्य शत्रूणां शत्रुसूदनाः ।
दुराधर्षा भविष्यन्ति राक्षसैर्बाहुभिर्वृताः ॥"
(अग्निपु० कपिलदर्शन नामाध्याय)

रामायणमें लिखा है, कि दक्षिण सागरके किनारे त्रिकुट नामक एक पर्वत है। उस शिखर पर अमरावती-सदृश लङ्का नामक एक विशाल पुरी है। यह सुन्दर पुरी सोनेकी दीवार और खाईसे घिरी है। उसके सभी दरवाजे सोने और वैदूर्यमणिके हैं। सभी स्थान यन्त्रोंसे सुरक्षित है। राक्षसोंके रहनेके लिये विश्वकर्माने बड़े यत्नसे इस पुरीको बनाया है। राक्षस इस पुरीमें रह कर अत्यन्त दुर्द्धर्ष हो गये थे। पीछे विष्णुके भयसे उन्होंने इस पुरीका परित्याग कर पातालमें आश्रय ग्रहण किया। कुछ दिन यह पुरी विना राक्षसके रही।

पीछे कुबेर विश्रवाकी आज्ञासे लङ्कापुरीके अधीश्वर हो यहां रहने लगे। इसके बाद जब रावण तपोबलसे बल-वान् हो उठा और उसे यह मालूम हुआ, कि लङ्कापुरी हमारे पूर्वपितृपुरुषोंकी निवासभूमि है, तब उसने लङ्का छोड़ देनेके लिये कुबेरके पास एक दूत भेजा। कुबेर रावणके भयसे पुरीको छोड़ चले गये। रावण लङ्काका अधीश्वर हुआ। (रामायण उत्तरका०) रावण देखो।

रामचन्द्र कपिसैन्यको साथ ले सीताके उद्धारके लिये लङ्का गये थे। वह लङ्का कहां है, उसका वर्त्तमान नाम क्या है, उसकी उत्पत्ति किस प्रकार हुई तथा उसका प्राचीन और आधुनिक इतिहास क्या है, उसके कुछ प्रमाण नीचे दिये जाते हैं ;—

वर्त्तमान देशी और विदेशी भौगोलिकगण एक स्वरसे कहते हैं, कि अभी जिसको हम लोग सिंहल या सिलोन कहते हैं उसीका प्राचीन नाम लङ्का है। किन्तु यह सिद्धान्त ठीक नहीं जंचता, बहुत पहले होसे हम लोगोंके पुराणादि-शास्त्रकारगण लङ्का और सिंहलको दो स्वतन्त्र द्वीप जानते थे। महाभारत और पुराणादिमें यह विशेषभावमें वर्णित है।

"सिंहलान् बर्बरान् म्लेच्छान् ये च लङ्कानिवासिनः।"
(महाभारत, वन, ५१ अ० २२ श्लो०)

"लङ्का कालाजिनाश्चैव शैलिका निकटास्तथा। २०
सूपभाः सिंहलाश्चैव तथा काञ्चीनिवासिनः ॥" २७
(मार्कण्डेयपुराण ५८ अ०)

फिर भागवत ५।१९।३०, वृहत्संहिता १४।१५ आदि प्राचीन ग्रन्थोंमें लङ्का और सिंहलको दो स्वतन्त्र द्वीप बताया है।

रामायणमें दक्षिणदेशीय स्थानादिका उल्लेख करते समय लिखा है—मलय-पर्वतके बाद ताम्रपर्णी नदी है। यह नदी समुद्रमें गिरी है। इस नदीको पार करनेसे पाण्ड्यनगर मिलता है। उस नगरका पुरद्वार सोनेका बना है। इसके " समुद्र पड़ता है। समुद्र पार करनेसे

लघुवेधिन् (सं॰ त्रि॰) शीघ्र वेधकारी, जल्द वेधने या छेदनेवाला।

लघुशङ्का (सं॰ स्त्री॰) मूत्रोत्सर्ग, पेशाब करना।

लघुशङ्ख (सं॰ पु॰) क्षुद्रशङ्ख, घोंघा।

लघुशमी (सं॰ स्त्री॰) शमीवृक्षभेद, एक प्रकारका पेड़ जो सेमरके पेड़के समान होता है।

लघुशाग्निपुराण—एक छोटा उपपुराण।

लघुशेखर (सं॰ पु॰) संगीतमें एक प्रकारका ताल।

लघुशिवपुराण—एक उपपुराण।

लघुशीत (सं॰ पु॰) लिसोड़ा।

लघुसत्त्व (सं॰ त्रि॰) लघुप्रकृतिक, नीच स्वभावका।

लघुसदाफला (सं॰ स्त्री॰) लघु सदा फलं यस्याः सा लघुसदा फला। लघुदुम्बरिका, छोटा गूलर।

लघुसमुत्थ (सं॰ पु॰) वह राजा या राज्य जो लड़ाईके लिये जल्दी तैयार किया जा सके।

लघुसार (सं॰ त्रि॰) लघुः अल्पः सारो यस्य। अल्पसारयुक्त, जिसमें थोड़ा सार हो।

लघुसुदर्शन (सं॰ क्ली॰) आयुर्वेदके अनुसार एक प्रकारकी चूर्णौषध।

लघुस्यामता (सं॰ स्त्री॰) चञ्चलता।

लघुहस्त (सं॰ पु॰) लघुः क्षिप्रकारी हस्तो यस्य। शीघ्रवेधी, वह जो बहुत जल्दी जल्दी बाण चला सकता हो।

लघुहस्तता (सं॰ स्त्री॰) लघुहस्तस्य भावः तल्-टाप्। लघुहस्तका भाव या धर्म, जल्दी जल्दी बाण फेंकना।

लघुहस्तवत् (सं॰ त्रि॰) लघुहस्त-सदृश, तेज बाण फेंकनेके समान।

लघुहारित (सं॰ पु॰) हारितऋषि-प्रणीत स्मृतिशास्त्रभेद।

लघुहृदय (सं॰ त्रि॰) चंचलचित्त, अस्थिर चित्तवाला।

लघ्वीमनुष्या (सं॰ स्त्री॰) लघ्वी मनुष्या। लघुदुम्बरिका, छोटा गूलर।

लघूकरण (सं॰ क्ली॰) १ हलका करना, घटाना। २ गणितके अनुसार एक तरहका अंक।

लघूक्ति (सं॰ स्त्री॰) लघ्वी उक्तिः। लघुकथन, कम बोलना।

लघूत्थानता (सं॰ त्रि॰) १ जो सहजमें उठ सके। २ उत्तम स्वास्थ्यसम्पन्न, खूब तन्दुरुस्त।

लघूदुम्बरिका (सं॰ स्त्री॰) छोटा गूलर।

लघ्वजीर (सं॰ क्ली॰) एक प्रकारका अंजीर।

लघ्वत्रि (सं॰ पु॰) अत्रिऋषि-प्रवर्त्तित स्मृतिभेद।

लघ्वघुदुम्बरिका (सं॰ स्त्री॰) लघु उदुम्बरिका, छोटा गूलर।

लघ्वानन्द (सं॰ त्रि॰) लघुः आनन्दो यस्य। १ अल्प आनन्दयुक्त, कम मजावाला। (पु॰) २ अल्प आनन्द, कम मजा।

लघ्वानन्दरस (सं॰ पु॰) १ रसौषधविशेष। बनानेका तरीका—पारा, गंधक, लोहा, विष, अभ्र प्रत्येक एक भाग ; मिर्च ८ भाग, सोहागा ४ भाग, भंगरैये और अमलबेतके रसमें सात बार भावना दे कर दो रत्तीकी गोली बनावे। अनुपान पानका रस है। इसके सेवनसे पाण्डु, अरुचि, मन्दाग्नि, ग्रहणी, ज्वर और वातश्लेष्म आदि रोग अति शीघ्र दूर होते हैं।

(रसेन्द्रसारस॰ पाण्डुरोगाधि॰)

२ वातव्याधि रोगोक्त औषधविशेष। प्रस्तुत प्रणाली—पारा, गंधक, लोहा, अभ्र, विष, प्रत्येक एक भाग ; मिर्च ८ भाग, सोहागा ४ भाग, भंगरैये और अनारके रसमें प्रत्येकको पांच बार भावना दे कर अनारके काढ़ेमें गोली बनावे। दोषके मुताबिक अनुपान ठीक करना होता है। इस औषधका इस्तेमाल करनेसे भ्रम और दाहके साथ वातव्याधि जाती रहती है।

(रसेन्द्रसारस॰ वातव्याधिरोगाधि॰)

लघ्वार्यसिद्धान्त (सं॰ पु॰) आर्यसिद्धान्तका संक्षिप्त ग्रन्थ।

लघ्वाशिन् (सं॰ त्रि॰) लघु अल्पं लघुपाकं द्रव्यं वा अश्नाति अश-णिनि। लघुभोजी, कम खानेवाला।

लघ्वाहार (सं॰ त्रि॰) लघुः आहारः यस्य। १ लघुभोजी, कम खानेवाला। (पु॰) लघुभोजन, थोड़ा खाना।

लघ्वी (सं॰ स्त्री॰) लघु ङीप्। १ लाघवयुक्ता, बहुत छोटी। २ बेर नामक फल। ३ स्पृक्का, असबरग। ४ हस्तिकोली।

लङ्क (सं॰ पु॰) १ एक व्यक्तिका नाम। (पाणिनि ४।१।११६) २ लङ्का नामक द्वीप। (स्त्री॰) ३ कटि, कमर।

लङ्कुक—लङ्कके भाई।

लङ्कटङ्कटा (सं० स्त्री०) १ सुकेश राक्षसकी माता और विद्युत्केशकी कन्याका नाम। (रामायण ७।४।२३) २ सन्ध्याकी कन्याका नाम।

लङ्कनाथ (सं० पु०) १ रावण। २ विभीषण।

लङ्कनायक (सं० पु०) लङ्कनाथ देखो।

लङ्का (सं० स्त्री०) रमन्तेऽस्यामिति रम् बाहुलकात् कः रस्य लत्वं (उण् ३।४०) टाप्। रक्षःपुरी, रावणका राज्य।

ज्योतिःशास्त्रके मतसे यह लङ्का पृथिवीके वाममागमें अवस्थित है।

"लङ्काकुमध्ये यमकोटिरस्याः प्राक्पश्चिमे रोमकपत्तनञ्च।
अधस्ततः सिद्धपुरं सुमेरुसौम्येऽथ याम्ये वड़वानलश्च।"

(सिद्धान्तशिरोमणि)

अग्निपुराणमें लिखा है, कि लङ्कापुरी तीस योजन विस्तीर्ण है। इस पुरीके प्राकार सोनेके बने हैं। दक्षिण-समुद्रके किनारे त्रिकुट नामक एक पर्वत है। उस पर्वतके शिखर पर मध्यम समुद्रके समीप स्वष्टाने बहुत परिश्रम करके इन्द्रके लिये यह पुरी बनवाई। इस पुरीमें चिड़िया भी नहीं जा सकती हैं। राक्षस सुखसे इस पुरीमें वास करते थे। वे अमरावतीके सदृश इस लङ्का-नगरीको पा कर भयानक दुराधर्ष हो गये थे।

"त्रिंशद्योजनविस्तीर्णा स्वर्णप्राकारतोरणाम्।
दक्षिणस्योदधेस्तीरे त्रिकूटो नाम पर्वतः॥
शिखरे तस्य शैलस्य मध्यमाम्बुधिसन्निधौ।
पतत्रिभिश्च दुष्प्रापा टङ्कच्छिन्ना चतुर्दिशम्॥
शक्रार्थं मत्कृता पूर्वं प्रयत्नात् बहुवत्सरैः।
वसन्तु तत्र दुर्द्धर्षाः सुखं राक्षसपुङ्गवाः॥
लङ्कादुर्गं समासाद्य शत्रूणां शत्रुसूदनाः।
दुराधर्षा भविष्यन्ति राक्षसैर्बाहुभिर्वृताः॥"

(अग्निपु० कपिलदर्शन नामाध्याय)

रामायणमें लिखा है, कि दक्षिण सागरके किनारे त्रिकुट नामक एक पर्वत है। उस शिखर पर अमरावती-सदृश लङ्का नामक एक विशाल पुरी है। यह सुन्दर पुरी सोनेकी दीवार और खाईसे घिरी है। उसके सभी दरवाजे सोने और वैदूर्यमणिके हैं। सभी स्थान यन्त्रोंसे सुसज्जित है। राक्षसोंके रहनेके लिये विश्वकर्माने बड़े यत्नसे इस पुरीको बनाया है। राक्षस इस पुरीमें रह कर अत्यन्त दुर्द्धर्ष हो गये थे। पीछे विष्णुके भयसे उन्होंने इस पुरीका परित्याग कर पातालमें आश्रय ग्रहण किया। कुछ दिन यह पुरी बिना राक्षसके रही।

पीछे कुबेर विश्रवाकी आज्ञासे लङ्कापुरीके अधीश्वर हो वहां रहने लगे। इसके बाद जब रावण तपोबलसे बल-वान् हो उठा और उसे यह मालूम हुआ, कि लङ्कापुरी हमारे पूर्वपितृपुरुषोंकी निवासभूमि है, तब उसने लङ्का छोड़ देनेके लिये कुबेरके पास एक दूत भेजा। कुबेर रावणके भयसे पुरीको छोड़ चले गये। रावण लङ्काका अधीश्वर हुआ। (रामायण उत्तरका०) रावण देखो।

रामचन्द्र कपिसैन्यको साथ ले सीताके उद्धारके लिये लङ्का गये थे। यह लङ्का कहां है, उसका वर्त्तमान नाम क्या है, उसकी उत्पत्ति किस प्रकार हुई तथा उसका प्राचीन और आधुनिक इतिहास क्या है, उसके कुछ प्रमाण नीचे दिये जाते हैं;—

वर्त्तमान देशी और विदेशी भौगोलिकगण एक स्वरसे कहते हैं, कि अभी जिसको हम लोग सिंहल या सिलोन कहते हैं उसीका प्राचीन नाम लङ्का है। किन्तु यह सिद्धान्त ठीक नहीं जंचता, बहुत पहले होसे हम लोगोंके पुराणादि-शास्त्रकारगण लङ्का और सिंहलको दो स्वतन्त्र द्वीप जानते थे। महाभारत और पुराणादिमें यह विशेषभावमें वर्णित है।

"सिंहलान् बर्ब्बरान् म्लेच्छान् ये च लङ्कानिवासिनः।"

(महाभारत, वन, ५१ अ० २२ श्लो०)

"लङ्का कालाजिनाश्चैव शैलिका निकटास्तथा। २१
नृपभाः सिंहलाश्चैव तथा काञ्चीनिवासिनः॥" २७

(मार्कण्डेयपुराण ५८ अ०)

फिर भागवत ५।१९।३०, वृहत्संहिता १४।१५ आदि प्राचीन ग्रन्थोंमें लङ्का और सिंहलको दो स्वतन्त्र द्वीप बताया है।

रामायणमें दक्षिणदेशीय स्थानादिका उल्लेख करते समय लिखा है—मलय-पर्वतके बाद ताम्रपर्णी नदी है। यह नदी समुद्रमें गिरी है। इस नदीको पार करनेसे पाण्ड्यनगर मिलता है। उस नगरका पुरद्वार सोनेका बना है। इसके " समुद्र पड़ता है। समुद्र पार करनेसे

सागरके मध्य अगस्त्यनिवेशित महेन्द्र पर्वत देखनेमें आयेगा। इसके दूसरे किनारे सौ योजन विस्तृत अनि-न्द्य प्रभापुञ्ज एक द्वीप है। उसी द्वीपमें रावण रहता था। जैसे—

"० ० मलयस्य महौजसम् ।
द्रक्ष्यथादित्यसङ्काशमगस्त्यमृषिसत्तमम् ॥
ततस्तेनाभ्यनुज्ञाताः प्रसन्नेन महात्मना ॥
ताम्रपर्णीं ग्राहजुष्टां तरिष्यथ महानदीम् ।
सा चन्दनवनैश्चित्रैः प्रच्छन्नद्वीपवारिणी ॥
कान्तेव युवतिः कान्तं समुद्रमवगाहते ।
ततो हेममयं दिव्यं मुक्तामणिविभूषितम् ॥
युक्तं कवाटं पाण्ड्यानां गता द्रक्ष्यथ वानराः ।
ततः समुद्रमासाद्य सम्प्रधार्यार्थनिश्चयम् ॥
अगस्त्येनान्तरे तत्र सागरे विनिवेशितः ।
चित्रसानुनगः श्रीमान् महेन्द्रः पर्वतोत्तमः ॥
जातरूपमयः श्रीमान् अवगाढो महार्णवम् ।
द्वीपस्तस्यापरे पारे शतयोजनविस्तृतः ॥
तत्र सर्वात्मना सीता मार्गितव्या विशेषतः ।
स हि देशस्तु वध्यस्य रावणस्य दुरात्मनः ॥"

(किष्किन्ध्याकाण्ड ४१ स० । १५-२५ श्लोक)

मलय पर्वतका वर्त्तमान नाम पश्चिमघाट है। इस पर्वतके जिस स्थानसे ताम्रपर्णी उत्पन्न हुई है उस स्थानको अभी भी अगस्त्याद्रि कहते हैं। (Caldwell's Dravidian Grammar, Intro, p. 48) ताम्रपर्णी नदी तिनवेल्ली प्रदेश होती हुई समुद्रसे मिली है। इस नदीके किनारे समुद्रके पास जो पाण्ड्यनगर स्थापित था उसको प्राचीन अरबी और ग्रीक भौगोलिक 'कोलखे' और 'कोयल' तथा निकटस्थ सागरको 'कोल-चिकस'* कहते थे। समुद्रको पार करनेसे महेन्द्र पर्वत मिलता है। यही सिंहलद्वीपका वर्त्तमान आदिमल्ल पर्वत होता है। जिस समयकी बात लिखी जाती है मालूम होता है, कि उस समय ताम्रपर्णी नदी-प्रवाहित भूमिखण्ड दक्षिणोत्तरमें बहुत दूर तक विस्तृत था। इस नदीको पार करनेसे ही सिंहलद्वीप जाया जाता था, इस कारण सिंहलद्वीपको पौराणिककालमें ताम्रपर्ण कहते थे। ग्रीकके प्राचीन पुराविदोंका कहना है, कि पाण्ड्यनगर मुक्ता मिलनेके कारण प्रसिद्ध था। किन्तु महाभारतके समय लोग सिंहलद्वीपके निकटवर्त्ती समुद्रसे मुक्ता निकालते थे। राजसूययज्ञके समय सिंहलद्वीपके लोगोंने ही राजा युधिष्ठिरको मुक्ता उपहारमें भेजी थी।

"समुद्रसारं वैदूर्य्यं मुक्तासङ्घांस्तथैव च ।
शतशश्च कुथांस्तत्र सिंहलाः समुपाहरन् ॥"

(सभापर्व ५१।१६)

रामायणमें तो दूसरी जगह लिखा है, कि हनुमानादि वानरगण सीताकी तलाश करते करते दक्षिणदेश पार कर एक अन्धकारपूर्ण पर्वतगह्वरमें पहुंचे थे। उस स्थानका नाम ऋक्षबिल था। इसके चारों ओर दुर्गम पर्वतश्रेणी थी। यहां आ कर वानरगण क्लान्त और पथभ्रान्त हो गये। उन्होंने पहले सुग्रीवसे सुना था, कि महेन्द्र पर्वतके बाद समुद्रके दूसरे किनारे रावणनिवास लङ्काद्वीप है; किन्तु इस स्थानका नाम उन सबोंने पहले कभी नहीं सुना था। बहुत खोज करते करते इस भयङ्कर गह्वरके मध्य एक योजन जानेके बाद उन्हें एक रमणीय स्थान मिला। यह स्थान सोने, वैदूर्य्यमणि और मणियोंसे परिपूर्ण था। सोने और चांदीके विमान वहां शोभा दे रहे थे। सभी घर चांदीके बने थे, उनकी खिड़कियां सोनेकी थीं (इत्यादि)। उन सबोंने थोड़ी ही दूर पर एक तपस्विनीको देखा। उसी तपस्विनीसे उन्हें कुछ बातें मालूम हुई,—

"मयो नाम महातेजा मायावी दानवर्षभः ।
तेनेदं निर्मितं सर्वं मायया काञ्चनं वनम् ॥
पुरा दानवमुख्यानां विश्वकर्मा बभूव ह ।
स तु वर्षसहस्राणि तपस्तप्त्वा महावने ॥
पितामहाद्वरं लेभे सर्वमौशनसं धनम् ।
विधाय सर्वं बलवान् सर्वकामेश्वरस्तदा ॥
उवास सुखितः कालं कंचिदस्मिन्महावने ।
तमप्सरसि हेमायां सक्तं दानवपुङ्गवम् ॥
विक्रम्यैवाशनिं गृह्य जघानेशः पुरन्दरः ।
इदं च ब्रह्मणा दत्तं हेमायै वनमुत्तमम् ॥"

(किष्किन्ध्या ५१ स० १०-१५ श्लोक)

* "कोल्चिकस नदुरका वर्त्तमान नाम मनार-उपसागर है।" (Lassen)

महा तेजस्वी मायावी मयदानवने मायाबलसे इस काञ्चनमय वनभूमिको बनाया है। ये पहले दानवोंके विश्वकर्मा थे। उन्होंने इस महावनमें हजार वर्ष तपस्या करके पितामह ब्रह्मासे वर पाया था। उस वरसे उन्हें औशनस रचित सभी प्रकारका शिल्पशास्त्र प्राप्त हुआ। इस प्रकार वे सर्वशक्ति-सम्पन्न और सवसृष्ट भोग्य विषयके भोक्ता हो कर कुछ समय सुखपूर्वक इस वनमें रहे। उस समय हेमा नाम्नी अप्सरामें वे आसक्त हो गये, इस कारण देवराज इन्द्रने वज्र द्वारा उन्हें मार डाला था। पीछे ब्रह्माने हेमाको यह अनुत्तम वन प्रदान किया।

महावंश नामक पालि-ग्रन्थके मतसे सिंहलद्वीपके एक विभागका नाम मय है। वर्त्तमान आदमशृङ्ग या श्रीपादशैल और उसके निकटस्थ स्थानको बहुतेरे मयराज्यके अन्तर्गत मानते हैं। (Tenent's Ceylon, vol 1. p. 337 n.) यद्यपि महावंशमें, सिंहल, नागद्वीप और ताम्रपर्णको एक द्वीपका पर्याय बतलाया है, पर यह बौद्धमत बहुत कुछ असङ्गत-सा प्रतीत होता है। क्योंकि, पहले ही महावंशके प्रणेताने सिंहल नामको ले कर गोलमाल कर रखा है। उनका कहना है, कि पहले इस स्थानका नाम सिंहल नहीं था। बङ्ग-राजकुमार विजयसिंहने जब इस द्वीपको जीता, तब उन्हींके नामानुसार इस स्थानका नाम 'सिंहल' हुआ। किन्तु उस समयसे बहुत पहले यह स्थान जो सिंहल कहलाता था, यह महाभारतमें कई जगह लिखा है। इसके सिवा ताम्रपर्णी (सिंहल) और नागद्वीप, ये दोनों जो स्वतन्त्र हैं यह सभी पुराण पढ़नेसे मालूम होता है।

रामके कपि-सैन्यको ले कर समुद्र तट पर पहुंचनेके बाद नलने १०० योजनका एक सेतु बनवाया था। इससे जाना जाता है, कि समुद्र-तटसे लङ्काका किनारा १०० योजन अर्थात् ४०० कोस था।

कोई कोई कहते हैं, कि रामेश्वर-द्वीपसे सेतु आरम्भ हुआ था। कोई कोई वर्त्तमान आदमस् ब्रिजको ही नलनिर्मित सेतु बतलाते हैं। किन्तु यह आधुनिक लोगोंकी कल्पनामात्र है। रामेश्वर-द्वीपसे नल सेतु हो सकता है, पर वर्त्तमान आदम ब्रिजको हम लोग नलसेतु नहीं मान सकते। जिन सब सङ्कीर्ण स्थानोंको बहुतेरे उस नलसेतुका प्रस्तरखण्ड मानते हैं, वे समुद्र स्रोतसे फेंके गये वालू या रेतीले पत्थर (Sand-stone) मात्र हैं। भूतत्त्वविदोंने परीक्षा कर देखा है, कि वे सब खण्ड नितान्त आधुनिक समयके हैं। (Onden Nieuw Oost Indian, Ch XV. p. 218.) इसके पास ही समुद्रके निर्मल जलमें बहुतों प्रवाल देखे जाते हैं। आगे चल कर प्रवाल उन सब खण्डोंमें मिल कर द्वीपाकारमें परिणत होंगे। बहुतेरोंका कहना है, कि पहले सिंहलद्वीप भारतवर्षके साथ मिला था। विशेषतः वर्त्तमान रामेश्वर-द्वीपसे सिंहलका किनारा १०० योजन नहीं है।

५वीं सदीमें पालि-ग्रन्थ महावंश पहले पहल रचा गया। उस महावंशके मतसे सिंहलका दूसरा नाम लङ्का है। किन्तु उस समय (७वीं सदीमें) प्रसिद्ध चीनपरिव्राजक यूएनचुवंग सिंहलद्वीप गये थे। उन्होंने सिंहलद्वीपको लङ्का नहीं कहा है। वे लिख गये हैं, कि, "सिंहलद्वीपके दक्षिण पूर्वमें एक पर्वत है। उसी पर्वतको लोग लङ्का कहते हैं। वहां यक्ष आदि वास करते हैं।" अतएव यह स्वीकार करना पड़ेगा, कि यूएनचुवंगके समयमें भी सिंहलद्वीपको कोई भी लङ्काद्वीप नहीं कहता था। सिंहलद्वीपसे बहुत दूर दक्षिण-पूर्वमें लङ्का नामक एक सामान्य पर्वत रहने पर भी समस्त सिंहलको हम लोग रामायणोक्त लङ्का नहीं कह सकते। सिंहलमें लङ्का पहाड़ है यह सुन कर ही यदि कोई सिंहलको लङ्का कहे, तो काश्मीरके अन्तर्गत जो लङ्काद्वीप है उसे तो बहुतेरे वेधड़क रावणकी लङ्का कह सकते हैं। केवल एक नामका मेल पानेसे प्राचीन जनपदादिकी अवस्थिति नहीं जानी जा सकती। उस स्थानके भूतत्त्व, चतुःसीमा और उत्पन्न द्रव्यादिके साथ वर्त्तमान निर्दिष्ट स्थानादिके भूतत्त्वादिका सादृश्य होनेसे भले ही उस प्राचीन जनपदादिका बहुत कुछ पता चल सकता है।

लङ्काके सम्बन्धमें पहले ही कहा जा चुका है, कि हम लोगोंके प्राचीन शास्त्रीय मतानुसार लङ्का और सिंहल दो स्वतन्त्र द्वीप थे। अभी देखना चाहिये, कि किस स्थानको हम लोग लङ्का कह सकते हैं।

अग्निपुराणमें लिखा है—

"त्रिंशद्योजनविस्तीर्णां स्वर्णप्राकारतोरणाम् ।
दक्षिणस्योदधेस्तीरे त्रिकूटो नाम पर्वतः ॥
शिखरे तस्य शैलस्य मध्यमेऽम्बुधिसन्निभे ।
पक्षिभिश्च दुरारोहे टङ्कच्छिन्ने चतुर्दिशम् ॥
शक्राज्ञया पुरा पूर्वं वर्षाणां बहुवत्सरैः ।
वसन्तु तत्र दुर्द्धर्षाः सुखं राक्षसपुङ्गवाः ॥"

दक्षिण-सागरके किनारे त्रिकूट नामक पर्वत है। उस पर्वतके मध्यशिखर पर समुद्रके समीप ३० योजन विस्तीर्ण स्वर्णप्राकार और तोरणादिसे परिशोभित लङ्का-पुरी है। इस पुरीमें पक्षिगण भी नहीं घुस सकते। पूर्वकालमें इन्द्रके लिये सैकड़ों वर्ष कठिन परिश्रम करके हमने (विश्वकर्मा) इस पुरीको बनाया है। हे दुर्द्धर्ष-राक्षसगण उस स्थानमें सुखसे वास करो।

रामायणमें भी लिखा है,—

"दक्षिणस्योदधेस्तीरे त्रिकूटो नाम पर्वतः ॥ २२
सुवेल इति चाप्यन्यो द्वितीयो राक्षसेश्वराः ।
शिखरे तस्य शैलस्य मध्यमेऽम्बुदसन्निभे ॥ २३
शकुनैरपि दुष्प्रापे टङ्कच्छिन्ने चतुर्दिशि ।
त्रिंशद्योजनविस्तीर्णा शतयोजनमायता ॥ २४
स्वर्णप्राकारसंवीता हेमतोरणसंवृता ।
मया लङ्केति नगरी शक्राज्ञप्तेन निर्मिता ॥" २५

(उत्तरकाण्ड ५म सर्ग)

हे राक्षसगण! दक्षिण-सागरके किनारे त्रिकूट नामक पर्वत है। उसके समान सुवेल नामका वहां एक और पर्वत है। उस पर्वतका मध्यम शिखर मेघके जैसा है। इसके चारों ओर बड़े बड़े चट्टान रहनेसे वहां पक्षी भी नहीं जा सकते। मैंने (विश्वकर्मा) उस शिखर पर इन्द्रके आदेशसे लङ्कापुरी बनाई है। यह पुरी तीस योजन लम्बी और एक सौ योजन चौड़ी है। चारों ओर सोनेकी दीवार खींच गई है। सभी दरवाजे सोनेके बने हैं।

फिर दूसरी जगह लिखा है।

"तस्मिन्नत्र त्रिकूटस्य मूर्ध्नि मेरोः शिखिरस्य ।
तस्मात् पुष्पं च यत्सर्वं मन्दरस्थमिवाम्बरम् ॥
शतयोजनविस्तीर्णं विमलं चारुदर्शनम् ।
निविष्टा तस्य शिखरे लङ्का रावणपालिता ॥
दशयोजनविस्तीर्णा विंशद्योजनमायता ।
सा पुरी गोपुरैरुच्चैः पाण्डुराम्बुदसन्निभैः ॥
काञ्चनेन च सालेन राजतेन च शोभिता ।
प्रासादैश्च विमानैश्च लङ्का परमभूषिता ॥"

(लङ्काकाण्ड ३९ सर्ग)

जिसका महोच्च शिखर आकाशसे छूता है, वह त्रिकूट पर्वत पुष्पसमाच्छन्न होनेके कारण सुवर्णमय-सा मालूम होता है। यह गिरि सौ योजन विस्तृत है और देखनेमें बड़ा ही सुन्दर लगता है। उसीके शिखर पर रावणपालिता लङ्कापुरी है। यह लङ्कापुरी सौ योजन लम्बी और बीस योजन चौड़ी है। यह नगरी पाण्डु-वर्ण मेघसदृश, सुवर्ण और रजत प्रासादयुक्त तथा विमानोंसे विभूषित है।

रामायणके मतसे लङ्कामें निम्नलिखित उद्भिद उत्पन्न होते हैं।

"चम्पकाशोकबकुलशालतालसमाकुला ।
तमालवनसंछन्ना नागमालासमावृता ॥
हिन्तालैरर्जुनैर्नीपैः सप्तपर्णैश्च पुष्पितैः ।
तिलकैः कर्णिकारैश्च पाटलैश्च समन्ततः ॥"

(लङ्काकाण्ड ३९ सर्ग)

चम्पक, अशोक, बकुल, शाल, तमाल, पनस, नाग-केशर, हिन्ताल, अर्जुन, कदम्ब, सप्तपर्ण, तिलक, कर्णि-कार और पाटल।

भास्कराचार्यने लिखा है,—

"लङ्कापुरेऽर्कस्य यदोदयः स्यात्
तदा दिनार्द्धं यमकोटिपुर्याम् ।
अधस्तदा सिद्धपुरेऽस्तकालः
स्याद्रोमके रात्रिदलं तदेव ॥
यदोज्जयिन्याः कुचतुर्थभागे
प्राच्यां दिशि स्याद्यमकोटिरेव ।
ततश्च पश्चान्न भवेदवन्ती
लङ्कैव तस्याः ककुभि प्रतीच्याम् ॥"

(गोलाध्याय ३।४४-४५)

जब लङ्कामें सूर्योदय होता है, तब (उसके नब्बे अंश

पूरवमें) यमकोटिमें मध्याह्न, सिद्धपुरमें सूर्यास्त और रोमकपत्तनमें दोपहर रात्रिकाल होता है। यमकोटि उज्जयिनीसे ठीक पूरब नब्बे अक्षांश दूरमें अवस्थित है। फिर लङ्का यमकोटिके ठीक पश्चिममें है, उज्जयिनी पश्चिममें नहीं है।

स्कन्दपुराणके कुमारिकाखण्डके मतसे लङ्का देशमें ३६००० ग्राम हैं।

"षट्‌त्रिंशच्च सहस्राणि लङ्कादेशः प्रकीर्त्तितः।"
(कुमारिकाखण्ड ३७ अ०)

सूर्यसिद्धान्तके मतसे लङ्का "भारतवर्षका एक नगर है।" (सूर्यसिद्धान्त १२।३६)

ब्रह्माण्डपुराणके मतसे—यवद्वीपके बाद मलयद्वीप है। इस मलय नामक द्वीपके अन्तर्गत पर्वतके ऊपर लङ्कापुरी है।

"तथाच मलयद्वीपं मेरुमेव सुसंस्कृतम्।
मणिरत्नाकरं स्फीतमाकरः कमलस्य च॥
अनेकयोजनाविष्टे चित्रसानुदरीगृहे।
तस्य कूटतटे रम्ये हेमप्राकारतोरणे॥
निर्यूहवहुविचित्रा हर्म्यप्रासादमालिनी।
शतयोजनविस्तीर्णा त्रिंशद्योजनमायता॥
नित्यप्रमुदिता स्फीता लङ्का नाम महापुरी।
सा कामरूपिणां स्थानं राक्षसानां महात्मनाम्॥
आवासो बलदृप्तानां विद्धि्याद्देवविद्विषाम्॥"
(ब्रह्माण्डपु० अनुषङ्गपाद ५२ अ०)

जनसाधारण लङ्काको स्वर्णलङ्का कहते हैं। रामायणमें एक जगह लिखा है,—

"यत्नवन्तो यवद्वीपं सप्तराज्योपशोभितम्।
सुवर्णरूप्यकद्वीपं सुवर्णाकरमण्डितम्॥" (कि० ४०।३०)

उक्त श्लोकसे भी जाना जाता है, कि यवद्वीपके पास ही सुवर्ण और रूप्यक द्वीप है। अतएव ब्रह्माण्डपुराणके साथ रामायण बहुत कुछ मिलता है।

सूर्यसिद्धान्तमें लङ्काको भारतवर्षका एक नगर कहा है, पूर्वकालमें भारतमहासागरीय द्वीप भी भारतवर्षमें ही गिना जाता था। ब्रह्माण्ड आदि पुराणोंमें लिखा है—

"अङ्गद्वीपं यवद्वीपं मलयद्वीपमेव च।
शङ्खद्वीपं कुशद्वीपं वराहद्वीपमेव च॥ १४
एवं षडेते कथिता अनुद्वीपाः समन्ततः॥ ४१
भारतद्वीपदेशो वै दक्षिणे बहुविस्तरः॥"
(ब्रह्माण्डपुराण ४८ अ०)

अतएव ब्रह्माण्डपुराणके मतानुसार मलयद्वीपके अन्तर्गत लङ्कापुरी कहनेसे पौराणिक मतमें वह भारतवर्ष भिन्न नहीं है। अतएव सूर्यसिद्धान्तके साथ मतभेद नहीं होता है।

यवद्वीपको अभी सब कोई 'जावा' कहते हैं। भारतमहासागरमें इस द्वीपकी अवस्थितिका विषय सबोंको मालूम है, यह कहना अनावश्यक है।

पर हां, यवद्वीपके पास ही लङ्का थी, इसका बहुत कुछ आभास पाया जाता है। फिर ब्रह्माण्डपुराणसे मालूम होता है, कि लङ्कापुरी मलयद्वीपके अन्तर्गत थी। अभी पूर्व-उपद्वीपके अन्तर्गत श्यामदेशके दक्षिणमें विस्तीर्ण जिस भूमिखण्डको मलय-प्रायद्वीप कहते हैं, वह यवद्वीपके पश्चिममें अवस्थित है। यहांकी मलयजातिका प्राचीन इतिहास पढ़नेसे मालूम होता है, कि वे लोग सुमात्रा द्वीपस्थ मेनङ्काबु नामक-स्थानमें पहले रहते थे। यह उन लोगोंका आदिवासस्थान था। उसे वे लोग मलय कहते थे*।

इस मलय जातिकी भाषा आज भी सुमात्रा आदि द्वीपोंसे लगायत अष्ट्रेलिया तथा पश्चिममें मादागास्कर तक प्रचलित है।† भारतमहासागरके द्वीपोंमें प्रायः एक भाषा प्रचलित रहनेसे यह सहजमें मालूम होता है, कि यह मलयवासी भिन्न देशीय विभिन्न जातियां पहले एक जातिकी थीं। कोई जाति असभ्यावस्थामें रह कर भी कालक्रमसे सभ्य और कोई सभ्य हो कर भी पुनः अवस्थाभेदसे नितान्त असभ्य हो गई है।

इन मलयभाषी जातियोंका रक्षः या राक्षस जाति नामसे रामायणादिमें उल्लेख है। आज भी यवद्वीपके निकट-

---

* Crawfurd's Indian *Archipelago*, Vol 11, p. 371-2 ग्रीस-देशीय प्राचीन भौगोलिकगण इसी मलयको Chersonesus *Area* अर्थात् स्वर्णद्वीप कहते थे।

† English Cyclopaedia, Vol, XI, p, 656,

भी ज़्योतिष द्वीपमें एक प्रकारकी कुत्सित भीषण कृष्ण-वर्णकी असभ्य जाति वास करती है०। उन मनुष्योंको [illegible] कहते हैं। उन लोगोंका स्वभाव भी राक्षसके जैसा है। इसी द्वीपके मध्य लङ्कालङ्क नामक एक नगर है। यह नाम भी संस्कृत 'लङ्कालङ्क'* शब्दका अपभ्रंश-सा मालूम होता है। इस द्वीपके पास ही आज भी राम, लक्ष्मण, सीता और नल आदि रामायणोक्त वीरोंके नामानुसार कई छोटे छोटे द्वीप मौजूद हैं।

जो हो, ब्रह्माण्डपुराणके मतानुसार यह साबित होता है, कि मलयके मध्य ही लङ्कापुरी है। रामायणके मतसे इस स्थानका नाम सुवर्णद्वीप है। आज कल उसको सुमात्रा कहते हैं।

वर्त्तमान मानचित्रमें देखा जाता है, कि सुमात्रा द्वीपके उत्तर पूर्वमें पर्वतकी चोटी पर और समुद्रके समीप 'सोनालंका' नामक एक नगर है। यह नगर 'स्वर्णलङ्का' शब्दका अपभ्रंश-सा मालूम होता है। फिर इस द्वीपके अन्तर्वर्त्ती हीरक अन्तरीप (Diamond Pt.) के समीप एक बन्दरको 'लङ्का' कहते हैं। आज भी इस द्वीपके उत्तर-पश्चिम काञ्चनगिरि (Golden Mt.) है।× इत्यादि प्रमाण द्वारा ज्ञात होता है, कि रामायणोक्त 'लङ्कापुरी' अथवा 'सुवर्णद्वीप' वर्त्तमान सुमात्राद्वीप समझा जाता था। सुमात्रा, यवद्वीप और बोर्नियो द्वीपके दक्षिण-पश्चिममें प्रवाहित विस्तीर्ण समुद्रको आज भी वहांकी पुरानी जातियां 'लङ्काई' नामसे कहती हैं। इससे भी लङ्काका बहुत कुछ स्थान निर्णय हो सकता है। अनेक बार भूमिकम्प और आग्नेयगिरिके उत्पात आदि प्राकृतिक विप्लवसे सुमात्राके दक्षिणका कितना ही भूभाग समुद्रगर्भगामी हो गया है। प्राचीन लङ्काराज्यका वही अंश शायद 'लङ्काई' नामसे कहलाता हो।

यद्यपि इस सुमात्राद्वीपमें हिन्दू जाति आज भी नहीं रहती और हिन्दूनिर्मित मन्दिरादिका कुछ भी ध्वंसावशेष नहीं दिखाई देता और न इतिहासमें ही लिखा है फिर भी ऐसे कितने प्रमाण हैं जिनसे हम लोग मुक्तकण्ठसे स्वीकार कर सकते हैं, कि श्रीरामचन्द्रके आगमनके बहुत पहले भारतवासी हिन्दूगण स्वर्णलाभकी आशासे यहां आया करते थे।† सुमात्राके मध्यस्थलमें प्राचीन हिन्दू राज्योंकी अनेक शिलालिपियां आविष्कृत हुई हैं, उनमें भी हिन्दू प्राधान्यके यथेष्ट निदर्शन हैं।

इस द्वीपमें आज भी मङ्गल, इन्द्रगिरि, इन्द्रपुर इत्यादि हिन्दू-प्रदत्त नामक नगर और नदीगिरियोंमें मौजूद हैं। अभी मलयजाति जिस स्थानको अपनी आदि भूमि कह कर गौरव करती है, पृथिवीके दूसरे दूसरे स्थानोंकी अपेक्षा जहां बहुत कुछ सोना पाया जाता था आज भी उस स्वर्णमयी भूमिके निकट हो कर इन्द्रगिरि नामक नदी बहती है। उक्त नाम पढ़नेसे भी स्पष्ट मालूम होता है, कि एक समय हिन्दुओंने इस सुमात्रा द्वीपमें आ कर उपनिवेश बसाया था।

इस द्वीपमें मल्लकेश्वर नामक शिवलिङ्ग विद्यमान है। (ब्रह्माण्डखण्ड ११।१४)

---

* English Cyclopaedia (Geography), Vol II p. 1045; III. 701.

† [illegible]

* लङ्कालङ्क शब्दका अर्थ भी राक्षस है। [illegible]

× ब्रह्माण्डपुराणमें इसीको [illegible] 'काञ्चनगिरि' कहा है [illegible]

(ब्रह्माण्ड० ५१ अ०)

† श्रीरामचन्द्रके बहुत पहले इस [illegible] स्वर्णलाभकी आशासे आया जाया करते थे। स्कन्दपुराणके नागरखण्डोक्त निम्नलिखित श्लोकोंसे यह बहुत कुछ प्रमाणित होता है—

"[illegible] ।
[illegible] ॥ ४०
[illegible]"

(नागरखण्ड ६४ अ०)

रामचन्द्रके लङ्काविजय करनेके बाद उनके कुछ कुछ अंश [illegible] थे, यह भी नागरखण्डमें लिखा है। (नागरखण्ड [illegible] अ० ६०-६२ श्लोक देखो)। इस सुमात्राके [illegible] ही [illegible] नामक एक द्वीप है। वह रामायणोक्त [illegible] देता है।

२ शाखा, डाली। ३ कुलटा, व्यभिचारिणी। ४ शाकिनी, चुड़ैल। ५ असवरग, स्पृक्का। ६ काला चना। ७ शिम्बी धान्य। पर्याय—करालत्रिपुटा, कान्तिका, दक्षिणात्मिका। गुण—रुचिकर, शीतल, पित्तनाशक, धातकारक और गुरु। (राजनि०)

लङ्कादाहिन् (सं० पु०) लङ्का दहति तच्छीलः दह णिनि। हनुमान्।

लङ्काद्वीप—भारत-महासागरस्थित एक द्वीप। रामायणके अनुसार राक्षसपति रावण यहां राजत्व करता था। लङ्का देखो।

लङ्काधिपति (सं० पु०) लङ्कायाः अधिपति। रावण।

लङ्कानाथ—लङ्काद्वीपका अधिपति, राक्षसराज रावण। अर्कचिकित्सा और निघण्टसंग्रह नामक दो वैद्यकग्रन्थ इन्होंने लिखे थे।

लङ्कापति (सं० पु०) १ रावण। २ विभीषण।

लङ्कापिका (सं० स्त्री०) लङ्कायिका देखो।

लङ्कायिका (सं० स्त्री०) स्पृक्का, असवरग।

लङ्कारि (सं० पु०) रामचन्द्र।

लङ्कारिका (सं० स्त्री०) पिड़िशाक।

लङ्कावतार—समन्तभद्रकृत एक प्रसिद्ध बौद्धग्रन्थ।

लङ्काशिन—एक प्रकारका वृक्ष।

लङ्कास्थायिन् (सं० पु०) लङ्कायां तिष्ठतीति स्था-णिनि। १ एक प्रकारका वृक्ष। (त्रि०) २ लङ्कावासी, लङ्कामें रहनेवाला।

लङ्किनी (सं० स्त्री०) रामायणके अनुसार एक राक्षसी जिसे हनुमान्‌जीने लङ्कामें प्रवेश करते समय घूसोंसे मार डाला था।

लङ्केश (सं० पु०) लङ्काया ईशः पति। १ रावण। २ विभीषण।

लङ्केश्वर (सं० पु०) १ रावण। कालाग्निरुद्रोपनिषद्, प्राकृत कामधेनु और शिवस्तुति नामक तीन ग्रन्थ इसके बनाये हैं। लङ्कानाथ देखो। २ लङ्काद्वीपस्थ शिवलिङ्गभेद।

लङ्केश्वररस (सं० पु०) कुष्ठरोगाधिकारमें रसौषधविशेष। प्रस्तुत प्रणाली—पारा, सोना, तांबा, गन्धक, हरताल, शिलाजित, अमलवेत इन सबोंको एक साथ तीन दिन मर्द्दन कर दो दो रत्तीकी गोली बनावे। अनुपान शहद और घी है। इसके अलावा त्रिफला, मंजीठ, वच, पाढर, मूला, कटकी और हल्दीका काढ़ा सेवन किया जा सकता है। इसका सेवन करनेसे कुष्ठरोगमें बड़ा लाभ पहुंचता है। (सेन्द्रसार० कुष्ठरोगाधि०)

लङ्केशवनारिकेतु (सं० पु०) अर्जुन।

लङ्कोदक (सं० पु०) स्पृक्का, असवरग।

लङ्कोपिका (सं० स्त्री०) लङ्कायिका देखो।

लङ्कोयिका (सं० स्त्री०) लङ्कायिका देखो।

लङ्खनी (सं० स्त्री०) घोड़ेकी एक प्रकारकी लगाम।

लङ्ग (सं० पु०) लङ्गतीति लङ्ग-गतौ अच्। १ सङ्ग, साथ। २ पिङ्ग, उपपति।

लङ्गक (सं० पु०) उपपति, स्त्रीका यार।

लङ्गतराई—पहाड़ी त्रिपुराराज्यके अन्तर्गत एक गिरिश्रेणी। इसका प्रधान शृङ्ग फेङ्गपुई १५८१ और सिमवासिया १५४४ फुट ऊंचा है। लक् वाइ देखो।

लङ्गदत्त—एक प्राचीन कवि।

लङ्गरीन—आसाम प्रदेशके खासिया पर्वतके अन्तर्गत एक सामन्त राज्य। यू-योर नामक एक सरदार यहांके अधिकारी हैं। यहां चूनेका कारबार जोरों चलता है। उसीका शुल्क यहांके अधिकारीका राजस्व है। धान, चना, लालमिर्च और हल्दी यहांकी प्रधान उपज है। यहां कोयलेकी भी खान है।

लङ्गल (सं० क्ली०) १ लाङ्गल, हल। २ लागल नामक जनपद।

लङ्गाई—आसामप्रदेशके श्रीहट्ट जिलान्तर्गत एक नदी। यह आसामकी सीमाके बाहरसे निकल कर पहले उत्तर और पीछे उत्तर-पूरब बहती हुई त्रिपुरा और लुसाईशैलके बीच हो कर इस जिलेमें आ मिली है।

लङ्गिम (सं० त्रि०) संयोगके उपयुक्त।

लङ्गिमय (सं० त्रि०) लङ्गिम देखो।

लङ्गूल (सं० क्ली०) लाङ्गूल, पूंछ।

लङ्गूलिया—दक्षिण भारतके मध्यप्रदेश विभागमें प्रवाहित एक नदी। इसे संस्कृतमें लङ्गूल और तेलगू भाषामें लांगुल्य कहते हैं। यह गोण्डवाना पर्वतके कालाण्डी नामक स्थानके समीपसे निकल कर तीन पहाड़ी जल

धारामें हो गई है। अनन्तर दक्षिण-पूर्वकी ओर नरपुर राज्यके बीच बहती हुई मन्द्राज प्रेसिडेन्सीके विजगा-पत्तन और गञ्जाम जिलेके भीतर हो कर चिकाकोलके दक्षिण समुद्रमें आ गिरी है। यहां नदी पर एक सुन्दर पुल है जिस हो कर ग्रेट ट्रङ्क रोड चली गई है। १८७६ ई०के तूफानसे पुल कुछ टूट फूट गया है। इस नदीके किनारे सिंगापुर, गिरस, रायगडू (रायगड़), पार्वतीपुर, पालकोण्डा और चिकाकोल नगर अवस्थित हैं। सात्तुर और मनङ्गुदा नामक दो शाखा इस नदीका कलेवर पुष्ट करती हैं।

लङ्गूर—युक्तप्रदेशके गढ़वाल जिलान्तर्गत एक गिरिदुर्ग। यह अक्षा० २९° ५५´ उ० तथा देशा० ७८° ४०´ पूर्वके बीच पड़ता है। अभी यह भग्नावस्थामें पड़ा है। समुद्रकी तहसे इसकी ऊंचाई ६४०१ फुट है। यहां जलसरबराहकी सुविधा न रहनेसे यह दुर्ग छोड़ दिया गया है।

लङ्घक (सं० त्रि०) १ अतिक्रमणकारी, लांघनेवाला। २ नियम भङ्गकारी, कायदा तोड़नेवाला। ३ सीमा अति-गामी, हदके बाहर जानेवाला।

लङ्घन (सं० क्ली०) लङ्घ-ल्युट्। १ उपवास, अनाहार, फाका।

"ज्वरे लङ्घनमेवादावुपदिष्टमृते ज्वरात्।
क्षयानिलभयक्रोधकामशोकश्रमोद्भवात्॥"
(चक्रपाणि ज्वराधि०)

ज्वरमें पहले उपवास करना होता है। इससे वात, पित्त, कफका परिपाक, अग्निकी दीप्ति, शरीरकी लघुता, ज्वरका ह्रास तथा भोजनकी इच्छा होती है। क्षतज-ज्वरमें; भय, क्रोध, शोक, काम और परिश्रमजनित ज्वरमें, वायुप्रकोपजनित ज्वरमें तथा राजयक्ष्माजनित ज्वरमें लङ्घन उचित नहीं है। जो वायु प्रधान, क्षुधार्त्त, तृष्णार्त्त, मुख-शोषयुक्त, भ्रमयुक्त तथा बालक, वृद्ध, गर्भिणी या दुर्बल हैं, उनके लिये भी लङ्घन कर्त्तव्य नहीं।

लङ्घनविहितज्वरमें भी अधिक लङ्घन द्वारा दुर्बल होना उचित नहीं। क्योंकि अधिक लङ्घन द्वारा अस्थिसन्धिमें वा सारे शरीरमें वेदना, कास, मुखशोष, क्षुधानाश, अरुचि, तृष्णा, श्रवणेन्द्रिय और दर्शनेन्द्रियकी दुर्बलता, मनकी अस्थिरता वा भ्रान्ति, अधिक उद्गार, मोह, अग्निमान्द्य आदि नाना प्रकारके उपद्रव होते हैं। उपयुक्त परिमाणमें यथारीति उपवास करनेसे ही मल, मूत्र और वायुका निःसरण, शरीरकी लघुता, घर्म निर्गम, मुख और कण्ठपरिष्कार, तन्द्रा और क्लान्तिका नाश, आहारमें रुचि, एक ही समय क्षुधा-तृष्णाका उदय, अन्तःकरणकी प्रसन्नता तथा विशुद्ध उद्गार आदि उपकार दिखाई देते हैं। (सुश्रुत)

२ प्लवन, लांघनेकी क्रिया। शास्त्रमें लिखा है, कि अग्निका लङ्घन नहीं करना चाहिये।

"न वह्निं लङ्घयेद्धीमान् नोपदध्यादधः क्वचित्।
न चैनं पादतः कुर्यात् मुखेन न धमेद्बुधः॥"
(कूर्मपु० उपवि० १५ अ०)

३ अतिक्रम, पार करनेकी क्रिया। ४ घोड़ेकी एक चाल जिसमें वह बहुत तेज चलता है। ५ लाघवकर विधि, वह उपाय जिससे किसी कार्यमें लाघव या सुभीता हो। ६ लघुभोजन, अल्प आहार। (स्त्री) टाप्। ७ अवमानना, उपेक्षा, लापरवाही।

"अन्यस्यापि शरं गत्वा लङ्घना क्रियते हि या।
तां नाम क्षियं सोढुं किं पुनः विभुमारणम्॥"
(मार्कण्डेयपु० ११६।११)

लङ्घनक (सं० त्रि०) १ लांघनेवाला, जिसके द्वारा लांघा जाय। (पु०) २ सेतु, पुल।

लङ्घना (सं० स्त्री०) अवमानना, उपेक्षा, लापरवाही।

लङ्घनीय (सं० त्रि०) लङ्घ-अनीयर्। १ लांघनेके योग्य। २ उल्लंघन करनेके योग्य।

लङ्घनीयता (सं० स्त्री०) लङ्घनीय-तल्-टाप्। लांघनेका भाव या धर्म।

लङ्घित (सं० त्रि०) लङ्घ-क्त। कृतलङ्घन, जो लांघा गया हो।

लङ्घ्य (सं० त्रि०) लङ्घ-यत्। लङ्घनीय, लांघनेके योग्य।

लच (हिं० पु०) लचकनेकी क्रिया, लचक।

लचक (हिं० स्त्री०) १ लचकनेकी क्रिया या भाव, लचन। २ वह गुण जिसके रहनेसे कोई वस्तु दबती या झुकती हो। ३ एक प्रकारका ताड़। यह १०-१२ हाथ ऊंची होती है और मलयप्रायद्वीपमें अधिक बढ़ती है। इसे बहुत-से लोग छिल कर लेते हैं।

लचकना (हिं॰ क्रि॰) १ किसी लंबे पदार्थका बोझ पड़ने या दबने आदिके कारण बीचसे झुकना, लचना । २ स्त्रियोंका कोमलता या नखरे आदिके कारण चलनेके समय रह रह कर झुकना । ३ स्त्रियोंकी कमरका कोमलता या नखरे आदिके कारण झुकना ।

लचका (हिं॰ पु॰) एक प्रकारका गोटा ।

लचकाना (हिं॰ क्रि॰) किसी पदार्थको लचनेमें प्रवृत्त करना, झुकाना ।

लचकीला (हिं॰ वि॰) जो सहजमें लच या दब जाय, लचकनेयोग्य ।

लचन (हिं॰ स्त्री॰) लचक देखो ।

लचनि (हिं॰ स्त्री॰) लचक देखो ।

लचलचा (हिं॰ वि॰) जो लचक जाय, लचीला ।

लचलचापन (हिं॰ पु॰) लचीले होनेका भाव, लचीलापन ।

लचाकेदार (हिं॰ वि॰) मजेदार, बढ़िया ।

लचाना (हिं॰ क्रि॰) लचकाना, झुकाना ।

लचारी (हिं॰ स्त्री॰) १ लाचारी देखो । २ वह कर जो कोई व्यक्ति अपनेसे बड़ेको देता है, भेंट, नजर । ३ एक प्रकारका गीत । ४ एक प्रकारका आमका अचार जो खाली नमकसे बनता है और जिसमें तेल नहीं पड़ता । इसे अचारी भी कहते हैं ।

लच्छ (हिं॰ पु॰) १ ब्याज, बहाना । २ वह वस्तु या स्थान जिस पर शस्त्र चलाना हो, निशाना । ३ सौ हजारकी संख्या, लाख । (स्त्री॰) ४ लक्ष्मी देखो ।

लच्छण (हिं॰ पु॰) स्वभाव ।

लच्छना (हिं॰ स्त्री॰) लक्षणा देखो ।

लच्छमण (हिं॰ वि॰) धनवान्, अमीर ।

लच्छमी (हिं॰ स्त्री॰) लक्ष्मी देखो ।

लच्छा (हिं॰ पु॰) १ कुछ विशेष प्रकारसे लगाये हुए बहुतसे तारों या डोरों आदिका समूह, गुच्छे या झुब्बे आदिके रूपमें लगाये हुए तार । २ मैदेकी एक प्रकारकी मिठाई । यह प्रायः पतले लंबे सूतकी तरह और देखनेमें उलझी हुई डोरके समान होती है । ३ एक प्रकारका घटिया केसर जो नोवल या निकृष्ट श्रेणीके केसरमें थोड़ा-सा बढ़िया केसर मिला कर बनाया जाता है । ४ किसी चीजके सूतकी तरह लंबे और पतले कटे हुए टुकड़े । ५ इस आकारकी किसी तरह बनाई हुई कोई चीज । ६ एक प्रकारका गहना जो तारोंकी जंजीरोंका बना होता है । यह हाथों और पैरोंमें पहननेका भी होता है ।

लच्छा साख (हिं॰ स्त्री॰) एक प्रकारकी संकर रागिणी ।

लच्छि (हिं॰ पु॰) लाखकी संख्या ।

लच्छिनाथ (हिं॰ पु॰) लक्ष्मीपति, विष्णु ।

लच्छी (हिं॰ पु॰) एक प्रकारका घोड़ा । (स्त्री॰) २ लक्ष्मी देखो । ३ सूत, रेशम, ऊन, कलाबत्तू इत्यादिकी लपेटी हुई गुच्छी, अट्टी ।

लच्छेदार (फा॰ वि॰) १ जिसमें लच्छे पड़े हों, लच्छोंवाला । २ जिसका सिलसिला जल्दी न टूटे और जिसके सुननेमें मन लगता हो, मजेदार या श्रुतिमधुर ।

लछन (हिं॰ पु॰) रामके छोटे भाई, लक्ष्मण । लक्ष्मण देखो ।

लछमन (हिं॰ पु॰) १ लक्ष्मण देखो । (स्त्री॰) २ लक्ष्मणा देखो ।

लछमनगढ़—राजपुतानेके जयपुर राज्यके शेखावाटी जिलान्तर्गत एक नगर । शीकर-सरदार राव राजा लक्ष्मणसिंहने १८०६ ई॰में यह नगर बसाया । लक्ष्मणगढ़ देखो ।

लछमनजी—व्रजभाषाके एक व्याकरणके प्रणेता ।

लछमन-झूला (हिं॰ पु॰) १ बदरीनारायणके मार्गमें एक स्थान । यहां पहले पुरानी चालका रस्सोंका एक लटकौवा पुल था जिसे झूला कहते थे । २ रस्सों या तारों आदिसे बना हुआ वह पुल जो बीचमें झूलेकी तरह नीचे लटकता हो । ३ एक प्रकारकी लता या बेल ।

लछमना (हिं॰ स्त्री॰) लक्ष्मणा देखो ।

लछमी (हिं॰ स्त्री॰) लक्ष्मी देखो ।

लछमी चांद—कुमायूंके चान्द्रवंशीय एक राजा ।

लछमीनारायण—बनारसके रहनेवाले एक ऐतिहासिक । इन्होंने गुल-ए-राणा नामक एक तजकिराकी रचना की ।

लछमीराम—एक हिन्दी-कवि । इन्होंने अपनी कवित्वशक्तिके लिये गुरुकी उपाधि पाई थी ।

लछमीराय—बरदाराज्य मलहारराबकी महिषी । १८७४

ईमें इनके एक पुत्र हुआ जो राज्यका उत्तराधिकारी समझा गया।

लजकारिका (सं० स्त्री०) लज्जां करोति कृ-ण्वुल् टाप् अत इत्वं। लज्जालुका पौधा।

लजना (हिं० क्रि०) लजाना, शरमाना।

लजर—एक पहाड़ी जाति।

लजवई—पंजाबप्रान्तके अन्तर्गत एक नगर।

लजवाना (हिं० क्रि०) दूसरेको लज्जित कराना।

लजाधुर (हिं० पु०) लज्जालु नामका पौधा।

लजाना (हिं० क्रि०) १ अपने किसी बुरे या भद्दे व्यवहारका ध्यान करके वृत्तियोंके संकोचका अनुभव होना। २ लज्जित करना।

लजालू (हिं० पु०) लज्जालु देखो।

लजीज़ (अ० वि०) स्वादिष्ट, जायकेदार।

लजीला (हिं० वि०) जिसमें लज्जा हो, लज्जायुक्त।

लजीहाँ (हिं० वि०) जिसमें लज्जा हो या जिससे लज्जा सूचित होती हो, लजीला।

लज्जका (सं० स्त्री०) १ वनकार्पासी, वनकपास। २ एक मालवकी थेली। (भाव० २।५।१४)

लज्जत (अ० स्त्री०) स्वाद, जायका।

लज्जतदार (फा० वि०) स्वादिष्ट, मजेदार।

लज्जरी (सं० स्त्री०) लज्जालुका, लजालू लता।

लज्जा (सं० स्त्री०) लज्जनमिति लज्ज व्रीडने (गुरोश्च हलः। पा ३।३।१०३) इति अ-टाप्। १ अन्तःकरणवृत्ति-विशेष, अन्तःकरणकी वह अवस्था जिसमें स्वभावतः अथवा अपने किसी भद्दे या बुरे आचरणकी भावनाके कारण दूसरोंके सामने वृत्तियां संकुचित हो जाती हैं, चेहरा मंद पड़ जाता है, मुंहसे शब्द नहीं निकलता, सिर नीचा हो जाता है और सामने ताका नहीं जाता, लाज, शर्म, हया। पर्याय—मन्दाक्ष, ह्री, त्रपा, व्रीडा, अपत्रपा, मन्दास्य, त्रपा, व्रीड, व्रीडम। २ मान-मर्यादा, इज्जत। ३ लज्जालु, लजालू। ४ वराहक्रान्ता, वराही।

लज्जाकर (सं० त्रि०) लज्जाजनक, लाज दिलानेवाला।

लज्जान्वित (सं० त्रि०) लज्जया अन्वितः। लज्जायुक्त, लजानेवाला।

लज्जावत् (सं० त्रि०) लज्जात्मक, जिसमें लज्जा उत्पन्न हो।

लज्जावती (सं० स्त्री०) वैद्यकके अनुसार मुग्धा नायिकाके चार भेदोंमेंसे एक।

लज्जालु (सं० पु० स्त्री०) लज्जाशील अस्त्यस्याः लज्जा-आलुच्। स्पर्शमात्रात् सङ्कोचशील। लज्जालु नामका पौधा। भिन्न भिन्न देशमें यह भिन्न भिन्न नामसे प्रसिद्ध है। जैसे, बङ्गलामें—लाजक, लाजुकलता, लज्जावती, कुमायुन—लाजवन्ती; पञ्जाब—लाजवन्ती, बम्बई—लाजू, मराठी—लजालू, लाजरी; गुर्जर—लजालु—रिसामणि, तामिल-तोत्तलवाडि, तैलगु—पेद्दनिद्राकन्ती, अत्तपत्ति; कनाड़ी मुट्टुमुरवरे; ब्रह्म—तरयुम्; संस्कृत—[illegible], लज्जालु; पर्याय—रक्तपादी, शमीपत्रा, स्पृक्का, खदिरपत्रिका, सङ्कोचिनी, समङ्गा, नमस्कारी, प्रसारिणी, शमपर्णी, खदिरी, गण्डमालिका, लज्जा, लज्जिरी, स्पर्शलज्जा, अस्पर्शरोधिनी, रक्तमूला, ताम्रमूला, स्वगुप्ता, अञ्जलिकारिका, महाभीता, वशिनी, महौषधि।

यह हाथ डेढ़ हाथ ऊंचा एक कांटेदार छोटा पौधा होता है। इसकी पत्तियां छूनेसे सुकड़ कर बंद हो जाती हैं और फिर थोड़ी देरमें धीरे धीरे फैलती हैं। इसके डंठलका रंग लाल होता है और महीन महीन पत्तियां शमी या बबूलकी पत्तियोंके समान एक सींकेके दोनों ओरको पंक्तिमें होती हैं। हाथ लगाते ही दोनों ओरकी पत्तियां संकुचित हो कर परस्पर मिल जाती हैं, इसीसे इसका नाम लज्जालु पड़ा। फूल गुलाबी रंगके गोल गोल घुंडियोंकी तरहके होते हैं। फूलके झड़ जाने पर छोटे छोटे चिपटे बीज पड़ते हैं। भारतके गरम भागोंमें यह सर्वत्र होता है। बंगालके दक्षिण भागमें कहीं कहीं बहुत दूर तक रास्तेके दोनों ओर यह लता मिलता है।

इसका गुण—कटु, शीतल, पित्तातिसार, शोथ, दाह, श्रम, श्वास, व्रण, कुष्ठ और कफनाशक। (राजनि०) भावप्रकाशके मतसे—शीतल, तिक्त, कषाय, कफपित्त-नाशक, रक्तपित्त, अतीसार और योनिरोगनाशक।

दाक्षिणात्यका कहना है, कि [illegible] पथरीरोगमें इसकी जड़का काढ़ा पीते हैं। करमण्डल उपकूलवासी इसकी जड़ और पत्ती और भगन्दर रोगमें इसकी जड़का काढ़ा [illegible] और दूधके साथ दो या दो से अधिक [illegible] सेवन करते हैं। भगन्दर

क्षतके ऊपर इसका रस देनेसे बहुत उपकार होता है। पञ्जावप्रदेशमें भी पूर्वोक्तरूपसे लज्जावतीके मूल और पत्रका व्यवहार होता है। अज्ञ कुसंस्कारापन्न मनुष्य निर्दिष्ट ऋतुमें पत्तेको तोड़ते और जड़को उखाड़ते हैं। इस समय शुभ मुहूर्त्तमें वे एक उत्सव मनाते हैं। उस मासके प्रथम सप्ताहमें जो मूल उखाड़ा जाता है, वह पित्तज पीड़ा और ज्वरादिमें बहुत उपकारी है। द्वितीय सप्ताहमें उखाड़ा हुआ पत्र मूलादि कामला, अर्श आदि रोगोंमें काम आता है। तृतीय सप्ताहके मूलादि कुष्ठ, वसन्त और Scab रोगमें अति फलदायक है। कोङ्कण जिलेमें इसको पत्तियोंको पीस कर कोरण्ड (पोत) पर लगाते हैं। इसके रसमें उतना ही घोड़ेका मूत्र मिला कर जो अञ्जन बनाया जाता है वह चक्षुपत्रके त्वग् रोगमें (Cornea) बहुत लाभदायक है। चमड़े पर लगानेसे पहले जलन देती, पीछे लाल हो कर वह स्थान सूज आता है। कुछ समय बाद कुल वेदना जाती रहती है।

रासायनिक परीक्षा द्वारा जाना गया है, कि लज्जालु लताकी पतली पतली जड़में सैकड़े पीछे १० भाग tannin रहता है। हीराकसीस (Salt of iron) के साथ मिलानेसे अच्छी काली बनती है।

२ लज्जालुभेद। दुग्धिका शब्द देखो। (त्रि०) लज्जा अस्त्यर्थे आलु। ३ लज्जाशील, लजीला।

लज्जावत् (सं० त्रि०) लज्जा विद्यतेऽस्य मतुप् मस्य वः। लज्जायुक्त, शर्मीला।

लज्जावती (सं० त्रि० स्त्री०) लज्जाशील, शर्मीला।

लज्जावन्त (सं० त्रि०) १ लज्जावत् देखो। २ लज्जालुका पौधा, लाजवंती।

लज्जावान् (सं० त्रि०) लज्जाशील, शर्मदार।

लज्जाशील (सं० त्रि०) लज्जा एव शीलं यस्य। लज्जायुक्त, जो बात बातमें शरमाता हो।

लज्जाशून्य (सं० त्रि०) निर्लज्ज, जिसे लज्जा न हो, बेहाया।

लज्जाहीन (सं० त्रि०) लज्जाशून्य, बेहाया।

लज्जिका (सं० स्त्री०) लज्जालुका पौधा।

लज्जित (सं० त्रि०) लज्जाके वशीभूत, शर्ममें पड़ा हुआ।

लज्जितभाव—ग्रहोंके छः भावोंमेंसे एक भाव। फलित ज्योतिषके अनुसार कोई ग्रह यदि लोनसे पञ्चम गृहमें राहुके साथ मिला रहे अथवा रवि या शनि किंवा मङ्गलके साथ मिल कर लग्नादि द्वादश स्थानके बीच किसी स्थानमें रहे, तो वह ग्रह लज्जित कहलाता है। मनुष्यके पुत्र (पञ्चम) स्थानमें लज्जित ग्रह रहनेसे उसके सब सन्तान मर जाते हैं, सिर्फ एक जीवित रहता है।

लज्जिरी (सं० स्त्री०) लज्जालुका, लजालू।

लज्या (सं० स्त्री०) लज्जा, शर्म।

लञ्चा (सं० स्त्री०) १ उपहार, उपढौकन। २ उत्कोच, घूस।

लञ्छन (सं० क्ली०) शस्यभेद।

लञ्ज (सं० पु०) लञ्जयति शोभते इति लञ्ज-अच्। १ पद, पांव। २ कच्छ, काछ। ३ पुच्छ, पूंछ। ४ अनिद्रा। ५ लाम्पट्य, लंपटता। ६ स्रोत, सोता। (स्त्री०) ७ लक्ष्मी।

लञ्जिका (सं० स्त्री०) लञ्जयति शोभते इति लञ्ज-ण्वुल्, टाप् अत इत्वं। गणिका, वेश्या, रंडी।

लटंग (हिं० पु०) एक प्रकारका बांस जो बरमामें होता है।

लट (सं० पु०) लटति यथेच्छाया वदति लट्-अच्। १ प्रमादवचन, बेखबर हो कर कहना। २ दोष। ३ पागल। ४ निर्बोध। ५ चौर, चोर।

लट (हिं० स्त्री०) १ सिरके बालोंका समूह जो नीचे तक लटके, बालोंका गिरा हुआ गुच्छा। २ एकमें उलझे हुए बालोंका गुच्छा, परस्पर चिमटे हुए बाल। ३ एक प्रकारके सूतके-से महीन कीड़े जो मनुष्यकी आंतोंमें पड़ जाते हैं और मलके साथ निकलते हैं। इसे चनूना भी कहते हैं। ४ एक प्रकारका बेंत। यह आसामकी ओर बहुत होता है। ५ लपट, लौ, अग्निशिखा।

लटक (सं० पु०) लटतीति लट् (कृषिशिल्पिवधभ्योर्वृ्क्त्यापि। उण् २।३२) इति क्वुन्। दुर्जन, नीच, दुष्ट।

लटक (हिं० स्त्री०) १ लटकनेकी क्रिया या भाव, नीचेकी ओर गिरता सा रहनेका भाव। २ झुकाव। ३ अंगोंकी मनोहर गति या चेष्टा, लुभावनी चाल। ४ ढालू जमीन, ढाल।

लटकन (हिं० पु०) १ लटकनेकी क्रिया या भाव, नीचेके ओर गिरता सो रहनेका भाव। २ मनोहर अंग, भंगी'

सुनारकी चाल। ३ नथनी या सिरपेंचमें लगे हुए रत्नोंका गुच्छा। यह नीचेकी ओर झुका हुआ हिलता रहता है। ४ मालखम्भकी एक कसरत। इसमें दोनों पैरोंके अंगूठोंमें बेंत फंसा कर पिंडलियोंको लपेटते हैं और पिंडलियोंके ही बल पर अंगूठोंसे बेंतको ऊपर खींचते हुए अंगोंके बल ऊपरका सारा धड़ नीचेको लटका देते हैं। ५ किसी वस्तुमें लगी हुई दूसरी वस्तु जो नीचे लटकती या झूलती हो, लटकनेवाली चीज। ६ नाकमें पहननेका एक गहना जो लटकता या झूलता रहता है। यह या तो नाकके दोनों छेदोंके बीचमें पहना जाता है अथवा नथमें लगा रहता है। ७ एक पेड़ जिसमें लाल रंगके फूल लगते हैं और जिसके बीजोंको पानीमें भिगोनेसे गेरुआ रंग निकलता है। इस रंगसे कपड़े रंगते हैं।

लटकना (हिं० क्रि०) १ किसी ऊंचे स्थानसे लग या टिक कर नीचेकी ओर अधरमें कुछ दूर तक फैला रहना, ऊपरसे लेकर नीचे तक इस प्रकार गया रहना कि ऊपरका छोर किसी आधार पर टिका हो और नीचेका निराधार हो, झूलना। २ किसी ऊंचे आधार पर इस प्रकार टिकना कि टिके या अड़े हुए छोरके अतिरिक्त और सब भाग नीचेकी ओर अधरमें हो, टंगना। ३ ऊंचे आधार पर टिकी हुई वस्तुका कुछ दूर नीचे तक आ कर इधरसे उधर हिलना डोलना, झूलना। ४ लचकना, बलखाना। ५ किसी खड़ी वस्तुका किसी ओर झुकना, नम्र होना। ६ किसी कामका पूरा किये हुए पड़ा रहना, देर होना। ७ कोई काम पूरा न होने या किसी बातका निर्णय न होनेके कारण दुबधामें पड़ा रहना, झूलना।

लटकाना (हिं० क्रि०) १ किसी ऊंचे स्थानसे एक छोर लगा या टिका कर शेष भाग नीचे तक इस प्रकार ले जाना कि ऊपरका छोर किसी आधार पर टिका हो और नीचेका निराधार हो। २ किसीका कोई काम पूरा न करके उसे दुबधामें डालना, आसरेमें रखना। ३ किसी ऊंचे आधार पर इस प्रकार टिकाना कि टिके या अड़े हुए छोरके अतिरिक्त और सब भाग अधरमें हों, वह छोर या अंश ऊपर टिकाना जिससे कोई वस्तु जमीन पर न गिरे। ४ किसी कामको पूरा न करके डाल रखना, देर करना। ५ किसी खड़ी वस्तुको किसी ओर झुकाना, लचकाना या नम्र करना।

लटकौआ (हिं० वि०) झूलता हुआ, बल खाता हुआ, लचकदार।

लटकू (हिं० पु०) एक प्रकारका पेड़ जिसकी छालको उबालनेसे रंग निकलता है।

लटकौवा (हिं० वि०) लटकनेवाला, जो लटकता हो।

लटजीरा (हिं० पु०) १ अपामार्ग, चिचड़ा। २ एक प्रकारका जड़हन धान। यह अगहनमें तैयार होता है और इसका चावल बहुत दिनों तक रहता है।

लटना (हिं० क्रि०) १ थक थक कर गिर जाना, लड़खड़ाना। २ ढीला पड़ना, शक्ति और उत्साहसे रहित होना। ३ रोग आदिसे शिथिल होना, दुबला और कमजोर होना। ४ व्याकुल होना, विकल होना। ५ अपनेसे विवश हो जाना, उचित काम करनेके योग्य न रह जाना, थक जाना। ६ ललचाना, लुभाना। ७ लिप्त होना, अनुरक्त होना।

लटपट (हिं० वि०) लटपटा देखो।

लटपटाना (हिं० क्रि०) १ सीधे ढंगसे न चल कर निर्बलता या मद आदिके कारण इधर उधर झुक झुक पड़ना, लड़खड़ाना। २ ठीक तरहसे न चलना, चूक जाना। ३ स्थिर न रहना, डिगना। ४ लुभाना, मोहित होना। ५ लीन होना, अनुरक्त होना।

लटपर्ण (सं० क्ली०) लटमुग्रं पर्णमस्य। गुड़त्वच्।

लटा (हिं० वि०) १ लोलुप, लंपट। २ बुरा, खराब। ३ तुच्छ, हीन। ४ लुच्चा, नीच। ५ गिरा हुआ, पतित।

लटापटी (हिं० स्त्री०) १ लटपटानेकी क्रिया या भाव। २ लड़ाई, झगड़ा, भिड़ंत।

लटिया (हिं० स्त्री०) सूत आदिका लच्छा, आंटी।

लटिया सन (हिं० पु०) पटसन।

लटी (हिं० स्त्री०) १ बुरी बात। २ झूठी बात, गप। ३ वेश्या, रंडी। ४ साधुनी, भक्तिन।

लटुआ (हिं० पु०) लट्टू देखो।

लटुक (हिं० पु०) लकुट नामका पेड़ और उसका फल। लटकु देखो।

लटुरी (हिं० पु०) लटूरी देखो।

लटू (हिं० स्त्री) लट्टू देखो।

लटूरी (हिं० स्त्री०) सिरके बालोंका लटकता हुआ गुच्छा, केश।

लटोरा (हिं० पु०) १ एक प्रकारका छोटा पेड़। इसकी पत्तियां गोल गोल और फल बेरके-से होते हैं। वसंतमें इसकी पत्तियां झड़ जाती हैं। यह भारतवर्षमें प्रायः सब जगह होता है। फलोंमें बहुत-सा लसदार गूदा होता है। फल औषधके काममें आता है और सूखी खांसी को ढीली करनेके लिये दिया जाता है। फारसीमें इसे 'सपिस्तां' कहते हैं। हकीम लोग मिस्री मिला कर इसका लऊक सपिस्तां नामक अवलेह बनाते हैं और खांसीमें चाटनेके लिये देते हैं। संस्कृतमें भी इसे 'श्लेष्मान्तक' कहते हैं। २ एक पक्षी। इसकी गर्दन और मुंह काला, डैने नीलापन लिये हुए भूरे और दुम काली होती है। इसकी लम्बाई दश इंच होती। यह भारतमें स्थायी रूपसे रहता है और प्रायः मैदानोंमें ही पाया जाता है। यह तीनसे छः तक अंडे देते हैं। इसके कई भेद होते हैं।

लट्ट (सं० पु०) दुर्जन, दुष्ट आदमी।

लट्टनभट्ट—एक प्राचीन कवि।

लट्टू (हिं० पु०) गोले वट्टेके आकारका एक खिलौना जिसे लपेटे हुए सूतके द्वारा जमीन पर फेंक कर लड़के नचाते हैं। इसके बीचमें लोहेकी एक कील जड़ी होती है जिसे गूंज कहते हैं। इसमें डोरी लपेट कर जोरसे फेंकते हैं जिससे यह बहुत देर तक चक्कर खाता हुआ घूमता रहता है।

लट्टूदार पगड़ी (हिं० स्त्री०) एक प्रकारकी पगड़ी। इसके ऊपर एक गोला सा बना होता है और आगे छज्जा-सा भी निकला होता है। इसे लज्जेदार पगड़ी भी कहते हैं।

लट्ठ (हिं० पु०) बड़ी लाठी, मोटा लंबा डंडा।

लट्ठबाज़ (हिं० वि०) लाठी लड़नेवाला, लठैत। २ बड़ी लाठी बांधनेवाला।

लट्ठबाज़ी (हिं० स्त्री०) लाठीकी लड़ाई या मार-पीट।

लट्ठमार (हिं० वि०) १ लट्ठ मारनेवाला। २ अप्रिय और कठोर, कड़ुआ।

लट्ठा (हिं० पु०) १ लकड़ीका बहुत लम्बा टुकड़ा, शहतीर। २ खेत या जमीन नापनेका बाँस या बल्ला जो ५॥ गजका होता है और नापके रूपमें चलता है। ३ घरकी छाजन या पाटनमें लगा हुआ लकड़ीका बल्ला, धरन। ४ लकड़ीका खंभा। ५ एक प्रकारका गाढ़ा मोटा कपड़ा, गफ मारकीन।

लट्ठाबंदी (हिं० स्त्री०) जमीनकी साधारण नाप जो लट्ठेसे की जाय।

लट्व (सं० पु०) लटतीति लट (भ्रमुग्रूपितटीति। उण् १११५१) इति क्वन्। १ एक जाति, नटुआ। २ एक प्रकारका राग। ३ तुरङ्गम, घोड़ा।

लट्वका (सं० स्त्री०) लट्वा।

लट्वा (सं० स्त्री०) लट्‌-क्वन्‌ टाप्। १ एक प्रकारका करञ्ज। २ वाद्यभेद, एक प्रकारका बाजा। ३ गौरा पक्षी। ४ कुसुम्भ, बालोंकी लट। ५ भिल्ली, देहलीज। ६ तूलिका, चित्र बनानेकी कूंची। ७ द्यूत, जोड़ा। ८ चूर्ण कुन्तल, अलक, बालोंकी लट। ९ व्यभिचारिणी स्त्री। १० मोठी खानेकी चीज़।

झुमावनी चाल। ३ कलगी या सिरपेंचमें लगे हुए रत्नोंका गुच्छा। यह नीचेकी ओर झुका हुआ हिलता रहता है। ४ मलखम्भकी एक कसरत। इसमें दोनों पैरोंके अंगूठोंमें बेंत फँसा कर पिंडलीको लपेटते हैं और पिंडलीके ही बल पर अंगूठोंसे बेंतको ऊपर खींचते हुए अंगोंके बल ऊपरका सारा धड़ नीचेको लटका देते हैं। ५ किसी वस्तुमें लगी हुई दूसरी वस्तु जो नीचे लटकती या झूलती हो, लटकनेवाली चीज। ६ नाकमें पहननेका एक गहना जो लटकता या झूलता रहता है। यह या तो नाकके दोनों छेदोंके बीचमें पहना जाता है अथवा नथमें लगा रहता है। ७ एक पेड़ जिसमें लाल रंगके फूल लगते हैं और जिसके बीजोंका पानीमें भीगनेसे गेरुआ रंग निकलता है। इस रंगसे कपड़े रंगते हैं।

लटकना (हिं० क्रि०) १ किसी ऊँचे स्थानसे लग या टिक कर नीचेकी ओर अधरमें कुछ दूर तक फैला रहना, ऊपरसे लेकर नीचे तक इस प्रकार गया रहना कि ऊपरका छोर किसी आधार पर टिका हो और नीचेका निराधार हो, झूलना। २ किसी ऊँचे आधार पर इस प्रकार टिकाना कि टिके या अड़े हुए छोरके अतिरिक्त और सब भाग नीचेकी ओर अधरमें हो, टँगना। ३ ऊँचे आधार पर टिकी हुई वस्तुका कुछ दूर नीचे तक आ कर इधरसे उधर हिलना डोलना, झूलना। ४ लचकना, बलखाना। ५ किसी खड़ी वस्तुका किसी ओर झुकना, नम्र होना। ६ किसी कामका पूरा बिना हुए पड़ा रहना, देर होना। ७ कोई काम पूरा न होने या किसी बातका निर्णय न होनेके कारण दुबधामें पड़ा रहना, झूलना।

लटकवाना (हिं० क्रि०) लटकानेका काम दूसरेसे कराना।

लटका (हिं० पु०) १ गति, चाल। २ कोई शब्द या वाक्य जिसके बार बार प्रयोगका किसीको अभ्यास पड़ गया हो, सखुनतकिया। ३ बनावटी चेष्टा, हाव भाव। ४ मन्त्रतन्त्रकी छोटी युक्ति, टोटका। ५ बातचीत करनेमें स्वरका एक विशेष प्रकारसे चढ़ाव उतार, बातचीतका बनावटी ढंग। ६ एक प्रकारका चलता गाना। ७ लिङ्ग। ८ किसी रोग या बाधाको शान्तिकी छोटी युक्ति, छोटा नुसखा।

लटकाना (हिं० क्रि०) १ किसी ऊँचे स्थानसे एक छोर लगा या टिका कर शेष भाग नीचे तक इस प्रकार ले जाना कि ऊपरका छोर किसी आधार पर टिका हो और नीचेका निराधार हो। २ किसीका कोई काम पूरा न करके उसे दुबधामें डालना, आसरेमें रखना। ३ किसी ऊँचे आधार पर इस प्रकार टिकाना कि टिके या अड़े हुए छोरके अतिरिक्त और सब भाग अधरमें हों, एक छोर या अंश ऊपर टिकाना जिससे कोई वस्तु जमीन पर न गिरे। ४ किसी कामको पूरा न करके डाल रखना, देर करना। ५ किसी खड़ी वस्तुको किसी ओर झुकाना, लचकाना या नम्र करना।

लटकौला (हिं० वि०) झूमता हुआ, बल खाता हुआ, लचकदार।

लटकू (हिं० पु०) एक प्रकारका पेड़ जिसकी छालको उबालनेसे रंग निकलता है।

लटकौंया (हिं० वि०) लटकनेवाला, जो लटकता हो।

लटजीरा (हिं० पु०) १ अपामार्ग, चिचड़ा। २ एक प्रकारका जड़हन धान। यह अगहनमें तैयार होता है और इसका चावल बहुत दिनों तक रहता है।

लटना (हिं० क्रि० १ थक थक कर गिर जाना, लड़खड़ाना। २ ढीला पड़ना, शक्ति और उत्साहसे रहित होना। ३ श्रमरोग आदिसे शिथिल होना, दुबला और कमजोर होना। ४ व्याकुल होना, विकल होना। ५ श्रमसे निकम्मा हो जाना, अधिक काम करनेके योग्य न रह जाना, थक जाना। ६ ललचाना, लुभाना। ७ लिप्त होना, अनुरक्त होना।

लटपट (हिं० वि०) लटपटा देखो।

लटपटा (हिं० वि०) १ गिरता पड़ता, लड़खड़ाता हुआ। २ जो स्पष्ट या ठीक क्रमसे न निकले, टूटा फूटा। ३ थक कर गिरा हुआ, बेदम। ४ जो ठीक बँधा न रहनेके कारण ढीला हो कर नीचेकी ओर सरक आया हो, ढीला-ढाला। ५ जो ठीक क्रममें न हो, अटपट। ६ जो लेईकी तरह गाढ़ा हो, लुटपुटा। ७ भींगा हुआ, जिसमें शिकन या सिलवट पड़ी हो।

लटपटान (हिं० स्त्री०) १ लटपटानेकी क्रिया या भाव, लड़खड़ाहट। २ मनोहर गति या चाल, लचक।

लटपटाना (हिं० क्रि०) १ सीधे ढंगसे न चल कर निर्बलता या मद आदिके कारण इधर उधर झुक झुक पड़ना, लड़खड़ाना। २ ठीक तरहसे न चलना, चूक जाना। ३ स्थिर न रहना, डिगना। ४ लुभाना, मोहित होना। ५ लीन होना, अनुरक्त होना।

लटपर्णी (सं० स्त्री०) लट्युग्रं पर्णमस्य। गुड़त्वक्।

लटा (हिं० वि०) १ लोलुप, लंपट। २ बुरा, खराब। ३ तुच्छ, हीन। ४ लुच्चा, नीच। ५ गिरा हुआ, पतित।

लटापटी (हिं० स्त्री०) १ लटपटानेकी क्रिया या भाव। २ लड़ाई, झगड़ा, भिड़ंत।

लटिया (हिं० स्त्री०) सूत आदिका लच्छा, आंटी।

लटिया सन (हिं० पु०) पटसन।

लटी (हिं० स्त्री०) १ बुरी बात। २ झूठी बात, गप। ३ वेश्या, रंडी। ४ साधुनी, भक्तिन।

लटुआ (हिं० पु०) लट्टू देखो।

लटुक (हिं० पु०) लकुट नामका पेड़ और उसका फल। लटकु देखो।

लटूरी (हिं० पु०) लटूरी देखो।

लटू (हिं० स्त्री) लट्टू देखो।

लटूरी (हिं० स्त्री०) सिरके बालोंका लटकता हुआ गुच्छा, केश।

लटोरा (हिं० पु०) १ एक प्रकारका छोटा पेड़। इसकी पत्तियां गोल गोल और फल बेरके-से होते हैं। वसंतमें इसकी पत्तियां झड़ जाती हैं। यह भारतवर्षमें प्रायः सब जगह होता है। फलोंमें बहुत-सा लसदार गूदा होता है। फल औषधके काममें आता है और सूखी खांसी को ढीली करनेके लिये दिया जाता है। फारसीमें इसे 'सपिस्तां' कहते हैं। हकीम लोग मिस्री मिला कर इसका लऊक सपिस्तां नामक अवलेह बनाते हैं और खांसीमें चाटनेके लिये देते हैं। संस्कृतमें भी इसे 'श्लेष्मातक' कहते हैं। २ एक पक्षी। इसकी गर्दन और मुंह काला, डैने नीलापन लिये हुए भूरे और दुम काली होती है। इसकी लम्बाई एक बित्ता होती। यह भारतमें स्थायी रूपसे रहता है और प्रायः मैदानोंमें ही पाया जाता है। यह तीनसे छः एक अंडे देते हैं। इसके कई भेद होते हैं।

लट्ट (सं० पु०) दुर्जन, दुष्ट आदमी।

लट्टनभट्ट—एक प्राचीन कवि।

लट्टू (हिं० पु०) गोले बट्टेके आकारका एक खिलौना जिसे लपेटे हुए सूतके द्वारा जमीन पर फेंक कर लड़के नचाते हैं। इसके बीचमें लोहेकी एक कील जड़ी होती है जिसे गूंज कहते हैं। इसमें डोरी लपेट कर जोरसे फेंकते हैं जिससे यह बहुत देर तक चक्कर खाता हुआ घूमता रहता है।

लट्टूदार पगड़ी (हिं० स्त्री०) एक प्रकारकी पगड़ी। इसके ऊपर एक गोला सा बना होता है और आगे छज्जा-सा भी निकला होता है। इसे लज्जेदार पगड़ी भी कहते हैं।

लट्ठ (हिं० पु०) बड़ी लाठी, मोटा लंबा डंडा।

लट्ठबाज़ (हिं० वि०) लाठी लड़नेवाला, लठैत। २ बड़ी लाठी बांधनेवाला।

लट्ठबाज़ी (हिं० स्त्री०) लाठीकी लड़ाई या मार-पीट।

लट्ठमार (हिं० वि०) १ लट्ठ मारनेवाला। २ अप्रिय बात कठोर, कड़या।

लट्ठा (हिं० पु०) १ लकड़ीका बहुत लम्बा टुकड़ा, शहतीर। २ खेत या जमीन नापनेका बांस या बल्ला जो ५॥ गजका होता है और नापके रूपमें चलता है। ३ घरकी छाजन या पाटनमें लगा हुआ लकड़ीका बल्ला, धरन। ४ लकड़ीका खंभा। ५ एक प्रकारका गाढ़ा मोटा कपड़ा, गफ मारकीन।

लट्ठाबंदी (हिं० स्त्री०) जमीनकी साधारण माप जो लट्ठे से की जाय।

लट्व (सं० पु०) लटतीति लट (अशुप्रुषिलटीति। उण् ११५१) इति क्वन। १ एक जाति, नटुआ। २ एक प्रकारका राग। ३ तुरङ्गम, घोड़ा।

लट्वका (सं० स्त्री०) लट्वा।

लट्वा (सं० स्त्री०) लट्व-कन् टाप्। १ एक प्रकारका करञ्ज। २ वाद्यभेद, एक प्रकारका बाजा। ३ गौरा पक्षी। ४ कुसुम्भ, बालोंकी लट। ५ झिल्ली, देहलीज। ६ तूलिका, चित्र बनानेकी कूंची। ७ यून, कोड़ा। ८ चूर्ण कुन्तल, अलक, बालोंकी लट। ९ व्यभिचारिणी स्त्री। १० मोडी खानेकी चीज़।

लठ (हिं० पु०) लट्ठ देखो।

लठियल (हिं० वि०) लाठी बाँधनेवाला, लठैत।

लठैत (हिं० वि०) लाठी चलानेवाला, लठबाज।

लड़ंत (हिं० स्त्री०) १ लड़ाई, भिड़ंत। २ सामना, मुकाबला।

लड़ (हिं० स्त्री०) १ धागेमें गुथी हुई या एक दूसरेसे लगी हुई एक ही प्रकारकी वस्तुओंकी पंक्ति, माला। २ रस्सीका एक तार। ३ पंक्तिमें लगे हुए फूलों या मञ्जरियोंका छड़ीके आकारका गुच्छा। ४ पंक्ति, कतार।

लड़क (सं० पु०) जातिविशेष।

लड़कखेल (हिं० पु०) १ बालकोंका खेल। २ सहज काम, साधारण बात।

लड़कपन (हिं० पु०) १ वह अवस्था जिसमें मनुष्य बालक हो, बाल्यावस्था। २ लड़कोंका-सा चिलबिलापन, चंचलता।

लड़कबुद्धि (हिं० स्त्री०) बालकोंकी सी समझ, नासमझी।

लड़का (हिं० पु०) १ थोड़ी अवस्थाका मनुष्य, बालक। २ पुत्र, बेटा।

लड़काबाला (हिं० पु०) १ संतती, औलाद। २ पुत्र कलत्र आदि, परिवार।

लड़की (हिं० स्त्री० १ छोटी अवस्थाकी स्त्री, बालिका। २ कन्या, बेटी।

लड़कीवाला (हिं० पु०) विवाह सम्बन्धमें कन्याका पिता या और कोई संरक्षक।

लड़कौरी (हिं० वि० स्त्री०) जिसकी गोदमें लड़का हो, जिसके पास पालने पोसनेके योग्य अपना बच्चा हो।

लड़खड़ाना (हिं० क्रि०) १ न जमने या न ठहरनेके कारण इधर उधर हिल डोल जाना, झोंका खाना। २ डगमगा कर गिरना, झोंका खा कर नीचे आ जाना।

लड़खड़ी (हिं० स्त्री०) लड़खड़ानेकी क्रिया या भाव, डगमगाहट।

लड़न (सं० क्ली०) लड़ ल्युट्। स्पन्दन, डोलना।

लड़ना (हिं० क्रि०) १ आघात करनेवाले शत्रु पर आघात करनेका व्यापार करना, एक दूसरेको चोट पहुंचाना। २ वादविवाद करना, बहस करना। ३ विरोधी या प्रतिपक्षीके हानि पहुंचानेवाले प्रयत्नको निष्फल करने और उसे विफल करनेका उद्योग करना, व्यापार आदिमें सफलताके लिये एक दूसरेके विरुद्ध प्रयत्न करना। ४ एक दूसरेको गिरानेका प्रयत्न करना, कुश्ती करना। ५ एक दूसरेको कठोर शब्द कहना, झगड़ा करना। ६ दो वस्तुओंका वेगके साथ एक दूसरेसे आ लगना, टक्कर खाना। ७ अनुकूल पड़ना, मुआफिक उतरना। ८ पूर्णरूपसे घटित होना, मेल मिल जाना। ९ किसी स्थान पर पड़ना, लक्ष्य पर पहुंचना। १० बिच्छू, भिड़ आदिका डंक मारना।

लड़ जाना (हिं० क्रि०) लड़खड़ाना देखो।

लड़बावर (हिं० वि०) १ जो लड़कपन लिये हो, अल्हड़, नासमझ। २ मूर्खतासे भरा हुआ, जिससे मूर्खता प्रकट हो। ३ गँवार, अनाड़ी।

लड़बौरा (हिं० वि०) लड़बावरा देखो।

लड्ह (सं० त्रि०) १ मनोज्ञ, सुन्दर। २ एक जातिका नाम।

लड्हचन्द्र—एक प्राचीन कवि।

लड़ाई (हिं० स्त्री०) १ आघात करनेवाले शत्रु पर आघात करनेकी क्रिया, एक दूसरेको चोट पहुंचानेकी क्रिया या भाव, युद्ध। २ एक दूसरेको पटकनेका प्रयत्न, कुश्ती। ३ वादविवाद, बहस। ४ सेनाओंका परस्पर आघात-प्रतिघात, संग्राम, जंग। ५ परस्पर कठोर शब्दोंका व्यवहार, कलह। ६ विरोधी या प्रतिपक्षीके व्यवहारसे अपनी रक्षा करने और उसे निष्फल करनेका परस्पर प्रयत्न व्यवहार या मामलेमें सफलताके लिये एक दूसरेके विरुद्ध प्रयत्न या व्यापार। ७ दो वस्तुओंका वेगके साथ एक दूसरीसे आ लगना, टक्कर। ८ अनबन, बैर, दुश्मनी।

लड़ाका (हिं० वि०) १ लड़नेवाला, योद्धा, सिपाही। २ बात बातमें लड़ जानेवाला, झगड़ालू।

लड़ाकू (हिं० वि०) १ युद्धमें व्यवहृत होनेवाला, लड़ाईमें काम आनेवाला। २ लड़ाका देखो।

लड़ाना (हिं० क्रि०) १ लड़नेका काम दूसरेसे कराना, लड़नेमें प्रवृत्त करना। २ झगड़ेमें प्रवृत्त करना, कलहके लिये उद्यत करना। ३ परस्पर उलझाना। ४ एक वस्तुको दूसरीसे वेग या झटकेके साथ मिला देना, भिड़ाना। ५ सफलताके लिये व्यवहारमें लाना, सिद्धिके लिये

संचारित करना। ६ लक्ष्य पर पहुंचाना, किसी स्थान पर फेंकना या डालना। ७ लाड़ प्यार करना, प्रेमसे पुचकारना।

लड़ी (हिं० स्त्री०) १ सीधमें गुछी हुई या एक दूसरोसे लगी हुई एक ही प्रकारकी वस्तुओंकी पंक्ति, माला। २ पंक्तिमें लगे हुए फूलों या मंजरियोंका छड़ीके आकारका गुच्छा। ३ रस्सी या गुच्छेका तार। ४ पंक्ति, कतार।

लड़ुआ (हिं० पु०) मोदक, लड्डू।

लड़ुवा (हिं० पु०) लड़ुआ देखो।

लड़ैता (हिं० वि०) १ जिसका बहुत लाड़ प्यार हो, लाड़ला, दुलारा। २ प्यारा, प्रिय। ३ जो लाड़ प्यारके कारण बहुत इतराया हो, जिसका स्वभाव किसीके बहुत प्रेम दिखानेसे बिगड़ गया हो, शोख। ४ लड़नेवाला, योद्धा।

लडोले (लाटोल) बड़ौदा राज्यके बीजापुर उपविभागान्तर्गत एक नगर। यह नगर गायकवाड़के शासनाधीन है।

लड्ड (सं० त्रि०) दुर्जन, खोटा आदमी।

लड्डुक (सं० पु०) लड्डू देखो।

लड्डुकेश्वर—शिवलिङ्गभेद। (शिव० ५४।१।६)

लड्डू (हिं० पु०) गोल बंधी हुई मिठाई, मोदक। लड्डू कई प्रकारके तथा कई चीजोंके बनते हैं।

लढंत (हिं० पु०) कुश्तीका एक पेच जो मुरगों या खरगोशोंकी लड़ाईका अनुकरण है।

लण्ड (सं० क्ली०) लण्ड्यते उत्क्षिप्यते इति लण्ड-घञ्। पुरीष, विष्ठा।

लण्डन—इङ्गलैण्डकी राजधानी। यह टेम्स नदीके तट पर अवस्थित है। यहां प्रासादके समान बहुत-सी अट्टालिकाओं और कल-कारखानोंके रहनेसे यह नगर जगमगा उठा है।

विशेष विवरण इङ्गलैण्ड और बृटेन शब्दमें देखो।

लत (सं० स्त्री०) किसी बुरी बातका अभ्यास और प्रवृत्ति, बुरी टेव।

लतखोर (हिं० वि०) लतखोरा देखो।

लतखोरा (हिं० वि०) १ सदा लात खानेवाला, सदा ऐसा काम करनेवाला जिसके कारण मार खानी पड़े या भला बुरा सुनना पड़े। २ नीच, कमीना। ३ दास, किंकर। ४ दरवाजे पर पड़ा हुआ पैर पोंछनेका कपड़ा, पायंदाज। ५ देहली, चौखट।

लतड़ी (हिं० स्त्री०) १ खेसारी नामका अन्न। २ एक प्रकारकी जूती जिसमें केवल तला ही होता है।

लतपत (हिं० वि०) लथपथ देखो।

लतमर्दन (हिं० स्त्री०) १ लातोंसे दबानेकी क्रिया, पैरोंसे रौंदनेकी क्रिया। २ पदाघात, लातोंकी मार।

लतर (हिं० स्त्री०) बेल, बल्ली।

लतरा (हिं० पु०) एक प्रकारका मोटा अन्न। इसे 'बराबर' और रेवछ भी कहते हैं। इसकी फलियोंकी तरकारी भी बनाई जाती है।

लतरी (हिं० स्त्री०) १ एक प्रकारकी घास या पौधा। यह खेतोंमें मटरके साथ बोया जाता है और इसमें चिपटी चिपटी फलियां लगती हैं। इसके दानोंसे दाल निकलती है जिसे गरीब लोग खाते हैं। यह बहुत मोटा अन्न माना जाता है। इसे 'मोट' और खेसारी भी कहते हैं। २ एक प्रकारकी हलकी जूती जो केवल तलेके रूपमें होती है और अंगूठेमें फंसा कर पहनी जाती है।

लता (सं० स्त्री०) ललति वेष्टयते यान्यमिति लत पचाद्यच् टाप्। १ वह पौधा जो सूत या गेरीके रूपमें जमीन पर फैले अथवा किसी खड़ी वस्तुके साथ लिपट कर ऊपरकी ओर चढ़े, बेल। पर्याय—वल्ली, वल्लि, वेल्लि, प्रतति, जिस लतामें बहुत-सी शाखाएं इधर उधर निकलती हैं और पत्तियोंका आपस होता है, इसे प्रतालिनी कहते हैं। इसका पर्याय—वीरुध, गुल्मिनी, उलप, (अमर) अमावास्याके दिन लता और वीरुधको काटना नहीं चाहिए। काटनेसे ब्रह्महत्याका पाप लगता है।

(विष्णुपु० ३।१२ अ०)

२ कोमल कांड या शाखा। ३ प्रियंगु। ४ स्पृक्का। ५ माषपर्णी। ६ ज्योतिष्मती। ७ लताकस्तूरिका। ८ माधवीलता। ९ दूर्वा, दूब। १० कैवर्त्तिका। ११ सारिवा। १२ जातीपुष्पका पौधा। १३ सुन्दरी स्त्री। १४ महाभारतके अनुसार एक अप्सराका नाम। (भारत १।२१७।२०) १५ श्वेत सारिवा। १६ श्वेत यूथिका। १७ बृहती। १८ लाल परवलका पौधा। १९ मेढ़की

लठ (हिं॰ पु॰) लट्ठ देखो।

लठियल (हिं॰ वि॰) लाठी बांधनेवाला, लठैत।

लठैत (हिं॰ वि॰) लाठी चलानेवाला, लठबाज़।

लड़ंत (हिं॰ स्त्री॰) १ लड़ाई, भिड़न्त। २ सामना, मुकाबला।

लड़ (हिं॰ स्त्री॰) १ सूतमें गुथी हुई या एक दूसरीसे लगी हुई एक ही प्रकारकी वस्तुओंकी पंक्ति, माला। २ रस्सीका एक तार। ३ पंक्तिमें लगे हुए फूलों या मञ्जरियोंका छड़ीके आकारका गुच्छा। ४ पंक्ति, कतार।

लड़क (सं॰ पु॰) जातिविशेष।

लड़कखेल (हिं॰ पु॰) १ बालकोंका खेल। २ सहज काम, साधारण बात।

लड़कपन (हिं॰ पु॰) १ वह अवस्था जिसमें मनुष्य बालक हो, बाल्यावस्था। २ लड़कोंका-सा खिलखिलापन, चंचलता।

लड़कबुद्धि (हिं॰ स्त्री॰) बालकोंकी सी समझ, नासमझी।

लड़का (हिं॰ पु॰) १ थोड़ी अवस्थाका मनुष्य, बालक। २ पुत्र, बेटा।

लड़काबाला (हिं॰ पु॰) १ संतती, औलाद। २ पुत्र कलत्र आदि, परिवार।

लड़की (हिं॰ स्त्री॰) १ छोटी अवस्थाकी स्त्री, बालिका। २ कन्या, बेटी।

लड़कीवाला (हिं॰ पु॰) विवाह सम्बन्धमें कन्याका पिता या और कोई संरक्षक।

लड़कौरी (हिं॰ वि॰ स्त्री॰) जिसकी गोदमें लड़का हो, जिसके पास पालने पोसनेके योग्य अपना बच्चा हो।

लड़खड़ाना (हिं॰ क्रि॰) १ न जमने या न ठहरनेके कारण इधर उधर हिल डोल जाना, झोंका खाना। २ डगमगा कर गिरना, झोंका खा कर नीचे आ जाना।

लड़खड़ी (हिं॰ स्त्री॰) लड़खड़ानेकी क्रिया या भाव, डगमगाहट।

लड़न (सं॰ क्ली॰) लड़ बहुल। स्पन्दन, डोलना।

लड़ना (हिं॰ क्रि॰) १ आघात करनेवाले शत्रु पर आघात करनेका व्यापार करना, एक दूसरेको चोट पहुंचाना। २ वादविवाद करना, बहस करना। ३ विरोधी या प्रतिपक्षीके हानि पहुंचानेवाले प्रयत्नको निष्फल करने और उसे विफल करनेका उद्योग करना, व्यवहार आदिमें सफलताके लिये एक दूसरेके विरुद्ध प्रयत्न करना। ४ एक दूसरेको गिरानेका प्रयत्न करना, कुश्ती करना। ५ एक दूसरेको कठोर शब्द कहना, झगड़ा करना। ६ दो वस्तुओंका वेगके साथ एक दूसरेसे आ लगना, टक्कर खाना। ७ अनुकूल पड़ना, मुआफिक उतरना। ८ पूर्णरूपसे घटित होना, मेल मिल जाना। ९ किसी स्थान पर पड़ना, लक्ष्य पर पहुंचना। १० बिच्छू, भिड़ आदिका डंक मारना।

लड़ जाना (हिं॰ क्रि॰) लड़खड़ाना देखो।

लड़बावर (हिं॰ वि॰) १ जो लड़कपन लिये हो, अल्हड़, नासमझ। २ मूर्खतासे भरा हुआ, जिससे मूर्खता प्रकट हो। ३ गँवार, अनाड़ी।

लड़बौरा (हिं॰ वि॰) लड़बावरा देखो।

लड़ह (सं॰ त्रि॰) १ मनोज्ञ, सुन्दर। २ एक जातिका नाम।

लड़हचन्द्र—एक प्राचीन कवि।

लड़ाई (हिं॰ स्त्री॰) १ आघात करनेवाले शत्रु पर आघात करनेकी क्रिया, एक दूसरेको चोट पहुंचानेकी क्रिया या भाव, युद्ध। २ एक दूसरेको पटकनेका प्रयत्न, कुश्ती। ३ वादविवाद, बहस। ४ सेनाओंका परस्पर आघात-प्रतिघात, संग्राम, जंग। ५ परस्पर कठोर शब्दोंका व्यवहार, कलह। ६ विरोधी या प्रतिपक्षीके व्यवहारसे अपनी रक्षा करने और उसे निष्फल करनेका परस्पर प्रयत्न व्यवहार या मामलेमें सफलताके लिये एक दूसरेके विरुद्ध प्रयत्न या चाल। ७ दो वस्तुओंका वेगके साथ एक दूसरेसे आ लगना, टक्कर। ८ अनबन, वैर, दुश्मनी।

लड़ाका (हिं॰ वि॰) १ लड़नेवाला, योद्धा, सिपाही। २ बात बातमें लड़ जानेवाला, झगड़ालू।

लड़ाकू (हिं॰ वि॰) १ युद्धमें व्यवहृत होनेवाला, लड़ाईमें काम आनेवाला। २ लड़ाका देखो।

लड़ाना (हिं॰ क्रि॰) १ लड़नेका काम दूसरेसे कराना, लड़नेमें प्रवृत्त करना। २ झगड़ेमें प्रवृत्त करना, कलहके लिये उद्यत करना। ३ परस्पर उलझाना। ४ एक वस्तुको दूसरीसे वेग या झटकेके साथ भिड़ा देना, भिड़ाना। ५ सफलताके लिये व्यवहारमें लाना, सिद्धिके लिये

संचारित करना। ६ लक्ष्य पर पहुंचाना, किसी स्थान पर फेंकना या डालना। ७ लाड़ प्यार करना, प्रेमसे पुचकारना।

लड़ी (हिं० स्त्री०) १ सीधमें गुथी हुई या एक दूसरोसे लगी हुई एक ही प्रकारकी वस्तुओंकी पंक्ति, माला। २ पंक्तिमें लगे हुए फूलों या मंजरियोंका छड़ीके आकारका गुच्छा। ३ रस्सी या गुच्छेका तार। ४ पंक्ति, कतार।

लड़ुआ (हिं० पु०) मोदक, लड्डू।

लड़ुवा (हिं० पु०) लड़ुआ देखो।

लड़ैता (हिं० वि०) १ जिसका बहुत लाड़ प्यार हो, लाड़ला, दुलारा। २ प्यारा, प्रिय। ३ जो लाड़ प्यारके कारण बहुत इतराया हो, जिसका स्वभाव किसीके बहुत प्रेम दिखानेसे विगड़ गया हो, शोख। ४ लड़नेवाला, योद्धा।

लड़ोले (लाडोल) बड़ौदा राज्यके बीजापुर उपविभागान्तर्गत एक नगर। यह नगर गायकवाड़के शासनाधीन है।

लड्ड (सं० त्रि०) दुर्जन, खोटा आदमी।

लड्डुक (सं० पु०) लड्डू देखो।

लड्डुकेश्वर—शिवलिङ्गभेद। (शिव० ५४।११६)

लड्डू (हिं० पु०) गोल बंधी हुई मिठाई, मोदक। लड्डू कई प्रकारके तथा कई चीजोंके बनते हैं।

लढंत (हिं० पु०) कुश्तीका एक पेच जो मुरगों या खरगोशोंकी लड़ाईका अनुकरण है।

लण्ड (सं० क्ली०) लण्ड्यते उत्क्षिप्यते इति लण्ड-घञ्। पुरीष, विष्ठा।

लण्डन—इङ्गलैण्डकी राजधानी। यह टेम्स नदीके तट पर अवस्थित है। यहां प्रासादके समान बहुत-सी अट्टालिकाओं और कल-कारखानोंके रहनेसे यह नगर जगमगा उठा है।

विशेष विवरण इङ्गलैण्ड और बृटेन शब्दमें देखो।

लत (सं० स्त्री०) किसी बुरी बातका अभ्यास और प्रवृत्ति, बुरी टेव।

लतखोर (हिं० वि०) लतखोरा देखो।

लतखोरा (हिं० वि०) १ सदा लात खानेवाला, सदा ऐसा काम करनेवाला जिसके कारण मार खानी पड़े या भला बुरा सुनना पड़े। २ नीच, कमीना। ३ दास, किंकर। ४ दरवाजे पर पड़ा हुआ पैर पोंछनेका कपड़ा, पायंदाज। ५ देहली, चौखट।

लतड़ी (हिं० स्त्री०) १ केसारी नामका अन्न। २ एक प्रकारकी जूती जिसमें केवल तला ही होता है।

लतपत (हिं० वि०) लथपथ देखो।

लतमर्दन (हिं० स्त्री०) १ लातोंसे दबानेकी क्रिया, पैरोंसे रौंदनेकी क्रिया। २ पदाघात, लातोंकी मार।

लतर (हिं० स्त्री०) बेल, वल्ली।

लतरा (हिं० पु०) एक प्रकारका मोटा अन्न। इसे 'बराबर' और रेवछ भी कहते हैं। इसकी फलियोंकी तरकारी भी बनाई जाती है।

लतरी (हिं० स्त्री०) १ एक प्रकारकी घास या पौधा। यह खेतोंमें मटरके साथ बोया जाता है और इसमें चिपटी चिपटी फलियां लगती हैं। इसके दानोंसे दाल निकलती है जिसे गरीब लोग खाते हैं। यह बहुत मोटा अन्न माना जाता है। इसे 'मोट' और खेसारी भी कहते हैं। २ एक प्रकारकी हलकी जूती जो केवल तलेके रूपमें होती है और अंगूठेको फंसा कर पहनी जाती है।

लता (सं० स्त्री०) ललति वेष्टयते यान्यमिति लत पचाद्यच् टाप्। १ वह पौधा जो सूत या गेरीके रूपमें जमीन पर फैले अथवा किसी खड़ी वस्तुके साथ लिपट कर ऊपरकी ओर चढ़े, बेल। पर्याय—वल्ली, वल्लि, वेल्लि, प्रतति, जिस लतामें बहुत-सी शाखाएं इधर उधर निकलती हैं और पत्तियोंका भापस होता है, इसे प्रतालिनी कहते हैं। इसका पर्याय—वीरुध, गुल्मिनी, उलप, (अमर) अमावास्याके दिन लता और वीरुधको काटना नहीं चाहिए। काटनेसे ब्रह्महत्याका पाप लगता है।

(विष्णुपु० ३।१२ अ०)

२ कोमल कांड या शाखा। ३ प्रियंगु। ४ स्पृक्का। ५ अशनपर्णी। ६ ज्योतिष्मती। ७ लताकस्तूरिका। ८ माधवीलता। ९ दूर्वा, दूब। १० कैवर्त्तिका। ११ सारिवा। १२ जातीपुष्पका पौधा। १३ सुन्दरी स्त्री। १४ महाभारतके अनुसार एक अप्सराका नाम। (भारत १।२२७।२०) १५ श्वेत सारिवा। १६ श्वेत यूथिका। १७ बृहती। १८ लाल परवलका पौधा। १९ मेढ़की

कण्ठा और हस्ताङ्गुलपर्वोंका नाम। १० एक प्रकारका छन्द। इसके चार चरण होते हैं। प्रत्येक चरणमें १८ अक्षर होते हैं। पहला, दूसरा, तीसरा, चौथा, पांचवां, छठा, आठवां, ग्यारहवां, चौदहवां और सत्तरहवां गुरु और बाकी लघु होता है।

लताकर (सं० पु०) नाचनेमें हाथ हिलानेका एक प्रकार।

लताकरञ्ज (सं० पु०) लताख्यं करञ्जः। १ प्रकारका करञ्ज, कंटकरेञ्ज। संस्कृत पर्याय—दुःस्पर्श, वीराख्य, वज्रबीजक, धनदाक्षी, कण्टफल, कुबेराक्षी। इसके पत्तेका गुण कटु, उष्ण, कफ और वातनाशक तथा बीजका गुण दीपन, पथ्य, शूल, गुल्म और विषनाशक माना गया है। (राजनि०)

लताकस्तूरिका (सं० स्त्री०) लताख्या कस्तूरी, तद्वत् गन्धवत्त्वात्, ततः स्वार्थे कन्। दक्षिणमें होनेवाला एक पौधा। वैद्यकमें इसे तिक्त, स्वादु, वृष्य, शीतल, लघु, नेत्रोंको हितकारी तथा श्लेष्मा, तृष्णा और मुखरोगको दूर करनेवाला माना है।

लताकुञ्ज (सं० पु०) लताओंसे छाया हुआ स्थान।

लतागण (सं० पु०) वैद्यकमें सूत या डोरीके रूपमें फैलनेवाले पौधोंका वर्ग।

लतागृह (सं० पु० क्लो०) लतानिर्मितं गृहं। लताओंसे मंडपकी तरह छाया हुआ स्थान।

लताङ्गी (सं० स्त्री०) कर्कटशृङ्गी, काकड़ासींगी।

लताजिह्व (सं० पु०) लतेव जिह्वा यस्य। सर्प, सांप।

लताड़ (हिं० स्त्री०) लथाड़ देखो।

लताड़ना (हिं० क्रि०) १ पैरोंसे कुचलना, रौंदना। २ लातोंसे मारना। ३ लेटे हुए आदमीके शरीर पर खड़े हो कर धीरे धीरे इधर उधर चलना जिससे उसके बदनकी थकावट दूर होती है। ४ हैरान करना, थकाना।

लतातरु (सं० पु०) लतेव दीर्घस्तरुः। १ नारङ्गवृक्ष, नारङ्गीका पेड़। २ तालवृक्ष, ताड़का पेड़। ३ शाल या शालवृक्ष पेड़। ४ गुवाकतरुभेद।

लतातार (सं० पु०) हिन्तालवृक्ष।

लताद्रुम (सं० पु०) लतेव द्रुमः शीर्षं यस्य। लताशाल। संस्कृत पर्याय—शाखी, आवर्त्त, कुण्डिक, पत्र, दीर्घ।

लतानन (सं० पु०) नाचनेमें हाथ हिलानेका एक ढंग।

लतान्त (सं० क्ली०) १ पुष्प, फूल। २ लताकी फुनगी।

लतापता (हिं० पु०) १ लता और पत्ते, पेड़ों और पौधोंका समूह। २ पौधोंकी हरियाली। ३ जड़ी बूटी।

लतापनस (सं० पु०) लतायां पनसमिव फलमस्य। फल-लताविशेष, तरबूज। पर्याय—चेलाल, मिश्रफल, सुफाल, राजनेमिष, मादाध, सेतु।

लतापर्ण (सं० पु०) विष्णु।

लतापर्णी (सं० स्त्री०) १ तालमूली। २ मधुरिका, सौंफ।

लतापाश (सं० पु०) लताका फन्दा या समूह, लताजाल।

लतापृक्का (सं० स्त्री०) लताप्रताना पृक्का। समुद्रान्ता।

लताप्रतानिनी (सं० स्त्री०) लताप्रतानोऽस्त्यस्येति इनि। शाखाप्रचयवती लता। पर्याय—वीरुध, गुल्मिनी, उलप, वीरुधा, गवय, प्रताना, कफ।

लताफल (सं० क्ली०) लतायां फलमस्य। पटोल, परवल।

लतावृक्षिका (सं० स्त्री०) वृक्षकी लता।

लताभद्रा (सं० स्त्री०) लतया भद्रा यस्याः। भद्रालीदृश।

लताभवन (सं० क्ली०) लतानिर्मितं भवनं। लतागृह, लताओंका कुंज।

लतामणि (सं० पु०) लताजातो मणिः। प्रवाल, मूंगा।

लतामण्डप (सं० पु०) लतागृह, छाई हुई लताओंसे बना हुआ मंडप या घर।

लतामण्डल (सं० पु०) छाई हुई लताओंका घेरा या कुंज।

लतामदन् (सं० स्त्री०) लतायां मदन् यस्याः। कूर्चा।

लतामाधवी (सं० स्त्री०) लताप्रताना माधवी। माधवीलता।

लतामृग (सं० पु०) शाखामृग, बानर।

लताम्बुज (सं० क्ली०) खीरा।

लतायष्टि (सं० स्त्री०) लता यष्टिरिव। मञ्जिष्ठा, मजीठ।

लताशावक (सं० पु०) लतायां शाव इव यस्य। प्रवाल, मूंगा।

लतारसन (सं० पु०) लतेव रसना यस्य। सर्प, सांप।

लतार्क (सं० पु०) लता अर्क इवाग्रा यस्य। दलाण्डुवृक्ष, प्याजका पौधा।

लतालक (सं० पु०) हस्ती, हाथी।
लतालय (सं० पु०) लतानिर्मितः आलयः। लतागृह, लताओंसे मंडपकी तरह छाया हुआ स्थान।
लतावलय (सं० पु०) १ लतागृह। २ वह जिसने चारों ओरसे मंडलाकारमें लता लगाई हैं।
लतावृक्ष (सं० पु०) शल्लकीवृक्ष, सलईका पेड़।
लतावेष्ट (सं० पु०) लतयेव आवेष्टो वेष्टनं यत्र। १ कामशास्त्रमें सोलह प्रकारके रतिबंधनोंमेंसे तीसरा। २ एक पर्वत जो द्वारकापुरीसे दक्षिणकी ओर पड़ता है। (हरिवंश १६५।१६)
लतावेष्टन (सं० क्ली०) एक प्रकारका आलिङ्गन।
लतावेष्टित (सं० पु०) १ लतावेष्ट, सोलह प्रकारके रतिबंधोंमेंसे तीसरा। २ एक प्रकारका आलिङ्गन। ३ लता द्वारा वेष्टित या घेरा हुआ।
लतावेष्टितक (सं० क्ली०) लतायेव वेष्टितं वेष्टनं यत्र कन्। एक प्रकारका आलिङ्गन।
लताङ्कुतरु (सं० पु०) लताशालका पेड़।
लताशङ्क (सं० पु०) शाल या साखूका पेड़।
लताशैल—कामरूपके अन्तर्गत एक गिरि। (भविष्य ब्रह्मख० १६५१)
लतासाधन (सं० क्ली०) लतया साधनं। तन्त्रोक्त साधनविशेष। इस साधनको प्रधान अधिकरण स्त्री है, इसीसे इसको लतासाधन कहते हैं। इस साधनका विषय मंत्रमें इस प्रकार लिखा है—यह साधन यदि करना हो, तो पहले एक स्त्रीको ला कर यथाविधि इष्टदेवीकी पूजा करे। पीछे उस स्त्रीके केशमें सौ, कपालमें सौ, सिन्दूरमण्डलमें सौ, दोनों स्तनोंमें सौ, नाभिदेशमें सौ और योनिदेशमें सौ बार इष्टमन्त्रका जप करे। अनन्तर आसन पर उठ कर पुनः तीन सौ बार जप करना होगा। इस प्रकार हजार बार जप करनेसे इष्टमन्त्रकी सिद्धि होती है।

अन्य प्रकार—महारात्रिको एक ऋतुमती नारी ला कर उसके योनिदेशमें इष्टदेवताकी पूजा करनेके बाद जप करे। इस प्रकार तीन दिन पूजा और जप करना होता है। पीछे चक्रयन्त्रमें १०८ बार जप करके नवपुष्पाञ्जलि द्वारा फिरसे १०८ बार जप करे। अनन्तर पूर्णाहुति दे कर पुनः १०८ बार जप करना होगा। इस तरह जपादि करनेसे इष्टमन्त्र सिद्ध होता है। मन्त्रसिद्ध होनेसे धनवान्, बलवान्, वाग्मी और नारियोंका प्रिय होता है। (मायातन्त्र १२वां पटल)

इस साधनका विषय अन्नदाकल्पके १६वें पटल तथा गुप्तसाधनतन्त्रके ४थे पटलमें विशदरूपसे लिखा है। विस्तार हो जानेके भयसे यहां पर नहीं लिखा गया।
लतिका (सं० स्त्री०) छोटी लता, बेल।
लतियर (हिं० वि०) जो सदा लात खाता हो, लतखोर।
लतियल (हिं० वि०) लतियर देखो।
लतिहर (हिं० वि०) लतिहर देखो।
लतिहल (हिं० व०) लतिहर देखो।
लतीफ़ (अ० वि०) १ मज़ेदार, ज़ायकेदार। २ मनोहर, बढ़िया।
लतीफ़ा (अ० पु०) १ हास्यरसपूर्ण छोटी कहानी, चुटकुला। २ चमत्कारपूर्ण बात, अनूठी बात। ३ चुहलकी बात, हँसीकी बात।
लतोद्गम (सं० पु०) लताया उद्गमः। अवरोह, अधःपतन।
लत्ता (हिं० पु०) १ फटा पुराना कपड़ा, चीथड़ा। २ कपड़ेका टुकड़ा, वस्त्रखण्ड। ३ कपड़ा।
लत्तिका (सं० स्त्री०) लत-घातें (कृतिभिदिलतिभ्यः कित्। उण् ३।१४७) इति तिकन्-टाप्। गोधा, गोह।
लत्ती (हिं० स्त्री०) १ प्रहारके लिये उठाया या चलाया हुआ घोड़े, गदहे आदिका पैर, पशुओंका पादप्रहार। २ लात मारनेकी क्रिया। ३ कपड़ेकी लंबी धज्जी। ४ बांसमें बंधी हुई कपड़ेकी धज्जी जिसे ऊंचा करके कबूतर उड़ाते हैं। ५ पतंगकी दुम अर्थात् नीचे बंधी हुई कपड़े की लंबी धज्जी, पुछिल्ला।
लथपथ (हिं० वि०) १ जो भींग कर भारी हो गया हो, तराबोर। २ कीचड़ आदिमें सना हुआ, जो कीचड़में लगनेसे भारी हो गया हो।
लथाड़ (हिं० स्त्री०) १ जमीन पर पटक कर इधर उधर लोटाने या घसीटनेकी क्रिया, चपेट। २ हानि, नुकसान। ३ पराजय, हार। ४ डांट, डपट, झिड़की।
लथाड़ना (हिं० क्रि०) चपेड़ना देखो। २ लताड़ना देखो।
लथिया—संयुक्तप्रदेशके गाजीपुर जिलान्तर्गत एक बड़ा गांव। यह जमानियासे एक मील दक्षिण-पूर्व पड़ता है।

यहांके इतिहासकी बड़ी क्षति पहुंची है। आज उसका एक भी अध्याय नहीं है जिससे पुनः उसकी पूर्ति हो।

राजा सिङ्गे नामग्यलके राजत्वकालमें लद्दाख राज्यकी बहुत कुछ श्रीवृद्धि हुई। उन्होंने मुगल सम्राट् जहांगीरकी सहायता पा कर बल्ति-सरदारको हरा कर लद्दाखी जातिके बलवीर्यकी पराकाष्ठा दिखाई थी। तदनन्तर सोकपो और लद्दाखी जातिके बीच लगातार कई लड़ाइयां हुईं। अन्तमें सोकपो हार खा कर भाग गये। इस समय काश्मीरवासी मुसलमानोंने लद्दाखियोंको काफी मदद पहुंचाई थी। सोकपोंको उस समय बसनेके लिये रुडोग विभाग मिला था। इस युद्धमें लद्दाखीने मुसलमानोंकी सहायता पाई थी, इस कारण इसकी पद्मानगन्दीमें लद्दाखराज उस समय इसलामधर्ममें दीक्षित हुए थे। तभीसे वे काश्मीरराजको राजकर देते आ रहे हैं।

१८२२ ई०में मूर क्राफ्ट लद्दाख देखने आये। उस समय गैल्पो या लद्दाखके शासनकर्ताने अङ्गरेजराजकी अधीनता स्वीकार करना चाहा; किन्तु लद्दाखकी उस समयकी स्थिति देख कर वे राजी न हुए। १८३४ ई०में काश्मीरराज गुलाबसिंहने अपना प्रसिद्ध डोगरा सैन्य ले कर लद्दाख पर चढ़ाई कर दी। सेनापति जोरावर सिंह सेनानायक हो कर यथाक्रम दो अभियानके बाद लद्दाख और बल्ती प्रदेश पर कब्जा कर बैठे। क्रोधान्ध हो कर तिब्बत-सेनापतिने लद्दाख पर आक्रमण किया, किन्तु कुछ भी फल न निकला। चीनी और सोकपो सेनाके साथ युद्ध तथा दारुण पहाड़ी शीतके कारण सिखसैन्य समूल निहत हुई। उसी वर्ष अफगानिस्तानमें एक दल अंगरेजी सैन्य भी इसी प्रकार नष्टभ्रष्ट और निहत हुआ। अङ्गरेजी-सेनाने जब पंजाब पर विजय पाई, तब काश्मीर और उसके अधीनका सभी प्रदेश अंगरेजोंके हाथ आया। १८४६ ई०की १६वीं मार्चकी सन्धिके अनुसार अंगरेज गवर्मेण्टने पुनः यह गुलाबसिंहको लौटा दिया।

१८४७ ई०में अंगरेज-गवर्मेण्टने यहांका सीमान्त-विवरण ठीक करनेके लिये Dr Cayleyको लद्दाख भेजा। १८७० ई०में काश्मीर महाराजके साथ अङ्गरेज राजप्रतिनिधि लार्ड मेयोकी एक संधि हुई। उस सन्धिके अनुसार यहांके लिये एक अंगरेज और एक देशी कमिश्नर नियुक्त हुए। वे दोनों एक साथ मिल कर इस कामको चलाते आ रहे हैं। (Dr Aitchison कृत Trade Products of Leh 1871 नामक ग्रन्थमें यहांके पण्यद्रव्यकी लंबी चौड़ी विवरणी दी हुई है।)

लदाना (हिं० क्रि०) लादनेका काम दूसरेसे कराना।

लदाफंदा (हिं० वि०) भारपूर्ण, बोझसे भरा या लदा हुआ।

लदाव (हिं० पु०) १ लादनेकी क्रिया या भाव। २ भार, बोझ। ३ वह छत या मेहराब जिसमें ईंटोंकी जोड़ाई बिना धरन या कड़ियोंके सहारे अधरमें ठहरी हो। ४ ईंटोंकी जोड़ाई जो बिना धरन या लकड़ीके आधारसे ठहरी हो, कड़ेकी जोड़ाई। ५ छत आदिका पटाव।

लदुआ (हिं० वि०) बोझ ढोनेवाला, पीठ पर बोझ ले कर चलनेवाला।

लद्दू (हिं० वि०) बोझ ढोनेवाला, लदुआ।

लद्धड़ (हिं० वि०) जिसमें तेजी और फुरती न हो, काहिल।

लद्धड़पन (हिं० पु०) काहिली, सुस्ती।

लनलटक (सं० स्त्री०) एक प्रकारका पौधा या घास जिसका साग बना कर खाया जाता है।

लना (हिं० पु०) १ एक पेड़ जिससे पञ्जाबमें सज्जी निकाली जाती है। इसका एक भेद जोरासना है। २ जोरा।

लनी (हिं० स्त्री०) १ पानकी बारोंकी कतारी। २ पञ्जाबमें होनेवाला एक पेड़। इससे सज्जी निकाली जाती है।

लन्ढौर—युक्तप्रदेशके देहरादून जिलान्तर्गत एक शैलावास। इस नगरमें अङ्गरेजोंकी एक छावनी है। यह समुद्रपृष्ठसे ७४५९ फुट ऊंचा, अक्षा० ३०° २७' उ० तथा देशा० ७८° ८' पू०के मध्य हिमालय पहाड़के शिखर पर अवस्थित है। मसूरी शैलावासके अन्तर्गत होने पर भी यह स्वतन्त्र कान्टमेण्ट मजिष्ट्रेटके शासनाधीन है। यह नगर १८२७ ई०में पीड़ित अङ्गरेजसेनाके स्वास्थ्य-वासरूपमें परिणत हुआ। मसूरी नगर और लन्ढौर अभी एक नगर गिना जाता है। [illegible]।

लन्दौरा—युक्तप्रदेशके शहरानपुर जिलेकी रुड़की तहसील के अन्तर्गत एक नगर। यह अक्षा० २९° ४८' उ० तथा देशा० ७७°५८' पू०के मध्य रुड़कीसे २॥ कोस दक्षिण पूर्वमें अवस्थित है। इस नगरमें एक दुर्ग है जिसके चारों ओर एक खाई दौड़ गई है। दुर्द्धर्ष सरदार रामदयाल सिंहके गूजर जातीय आत्मीय स्वजनोंका यहां वास है। सिपाही विद्रोहके समय गुजरोंने भारी अत्याचार किया था, इस कारण नगरमें आग लगा दी गई थी।

लप (हिं० पु०) १ एक प्रकारकी घास। इसे 'खुरारी' भी कहते हैं। २ दोनों हथेलियोंको मिला कर बनाया हुआ संपुट जिसमें कोई वस्तु भरी जा सके, अञ्जली। ३ अञ्जली भर वस्तु। (स्त्री०)४ बेंत या लचीली छड़ीको पकड़ कर हिलानेसे उत्पन्न शब्द या व्यापार। ५ छुरी, तलवार आदिकी चमककी गति।

लपक (हिं० स्त्री०) १ ज्वाला, लपट। २ लौ या लपटकी तरह निकलने या चलनेकी तेजी, वेग। ३ चमक, कान्ति। ४ चलनेका वेग, फुरती।

लपकना (हिं० क्रि०) १ चटपट या तेजीसे चल पड़ना, तुरत दौड़ पड़ना। २ आक्रमणके लिये दौड़ पड़ना, झपटना। ३ वेगसे गमन करना, तेजीसे जाना या चलना। ४ कोई वस्तु लेनेके लिये झटसे हाथ बढ़ाना।

लपकी (हिं० स्त्री०) एक प्रकारकी सीधी सिलाई।

लपचा (हिं०पु०) सिकिमके पहाड़ोंकी एक जङ्गली जाति। लेप्चा देखो।

लपझप (हिं० वि०) १ चञ्चल, चपल। २ तेज फुरतीला। ३ चुपचाप न बैठनेवाला, अधीर।

लपट (हिं० स्त्री०) १ आगके दहकनेसे उठा हुआ जलती वायुका स्तूप, आगकी लौ। २ तपी हुई वायु, हवामें फैली हुई गरमी। ३ गंध, महक। ४ किसी प्रकारको गंधसे भरा वायुका झोंका।

लपटना (हिं० क्रि०) १ अंगोंसे घेरना, आलिंगन करना। २ उलझना, फंसना। ३ किसी सूतकी सी वस्तुका दूसरी वस्तुके चारों ओर कई फेरोंमें घेरना। ४ लग जाना, संलग्न होना। ५ लगा रहना, रत रहना। ६ परिवेष्टित होना, घिर आना।

लपटा (हिं० पु०) १ गाढ़ी गीली वस्तु। २ कढ़ी। ३ लपसी, लेई।

लपटाना (हिं० क्रि०) १ अङ्गोंसे घेरना, चिमटाना। २ आलिङ्गन करना, गले लगाना। ३ परिवेष्टित करना, घेरना। ४ किसी सूतकी-सी वस्तुको कई फेरे करके टिकाना या बांधना, लपेटना। ५ संलग्न, सटना। ६ उलझना, फंसना।

लपटौआं (हिं० पु०) १ एक प्रकारका जङ्गली तृण जिसको बाल कपड़ेमें लिपट या फंस जाती है और कठिनतासे छूटती है। (वि०) २ लिपटनेवाला, चिमटनेवाला। ३ सटा या लिपटा हुआ।

लपन (सं० क्ली०) लप्यतेऽनेनेति लप करणे ल्युट्। १ मुख, मुंह। २ भाषण, कथन।

लपना (हिं० क्रि०) १ बेंत या लचीली छड़ीका एक छोर पकड़ कर जोरसे हिलाये जानेसे इधर उधर झुकना, झोंकके साथ इधर उधर लचना। २ झुकना, लचना। ३ लपकना, ललचना, हैरान होना, परेशान होना।

लपलपाना (हिं० क्रि०) १ बेंत या लचीली छड़ी, टहनी आदिका एक छोर पकड़ कर जोरसे हिलाये जानेसे इधर उधर झुकना, झोंकके साथ इधर उधर लचना। २ किसी लंबी कोमल वस्तुका इधर उधर हिलना डोलना या किसी वस्तुके अंदरसे बार बार निकलना। ३ छुरी, तलवार आदिका चमकना, झलकना। ४ झोंकके साथ इधर उधर लचाना, लपाना। ५ किसी लंबी नरम चीजको इधर उधर हिलाना डुलाना या किसी वस्तुके अंदरसे बार बार निकालना। ६ छुरी, तलवार आदिको निकाल कर चमकाना, चमचमाना।

लपलपाहट (हिं० स्त्री०) १ लपलपानेकी क्रिया या भाव, एक छोर पकड़ कर जोरसे हिलाए जाते हुए बेंत आदिका झोंका। २ चमक, झलक।

लपसी (हिं० स्त्री०) १ भुने हुए आटेमें चीनीका शरबत डाल कर पकाई हुई बहुत गाढ़ी लेई जो खाई जाती है, थोड़े घीका हलुआ। २ पानीमें औटाया हुआ आटा जिसमें नमक मिला होता है और जो जेलमें कैदियोंको दिया जाता है। इसे लपटा भी कहते हैं। ३ गीली गाढ़ी वस्तु।

लपहा (हिं० पु०) पानका एक रोग, पानकी गेरूई।

लपाना (हिं० क्रि०) १ लचीली छड़ी आदिको झोंकके

गात इधर उधर चलाना, फटफटाना। २ लम्बी चोंचसे कुतरना। ३ आगे बढ़ाना।

लपित (सं० क्ली०) लप भावे क्त। १ वचन, बात। (त्रि०) २ कथित, कहा हुआ।

लपिता (सं० स्त्री०) शार्ङ्ग नामक पक्षीकी एक जाति।

लपेट (हिं० स्त्री०) १ लपेटनेकी क्रिया या भाव। २ बंधी हुई गठरीमें कपड़ेकी सबसे ऊपरी लौट। ३ किसी सूत, डोरी या कपड़ेकी सी वस्तुको दूसरी वस्तुकी परिधिके लपेटने या बांधनेकी स्थिति, फेरा। ४ उलझन, फंसाव। ५ ऐंठन, मरोड़। ६ किसी मोटी लम्बी वस्तुकी मोटाई के चारों ओरका विस्तार, घेरा। ७ कुश्तीका एक पेंच। जब दोनों लड़नेवाले एक दूसरेकी बगलसे सिर निकालते हैं और कमरको दोनों हाथोंसे पकड़ कर भीतर अड़ानी टांगसे लपेटते हैं तब उसे लपेट कहते हैं। ८ पकड़, बंधन।

लपेटन (हिं० स्त्री०) १ लपेटनेकी क्रिया या भाव, लपेट। २ ऐंठन, मरोड़। ३ फेरा, बल। ४ उलझन, फंसाव। (पु०) ५ लपेटनेवाली वस्तु, वह वस्तु जो चारों ओर लग कर घेर ले। ६ वह कपड़ा जिसे किसी वस्तुके चारों ओर घुमा घुमा कर बांधे। ७ वह वस्तु जिसे किसी वस्तुके चारों ओर घुमा घुमा कर बांधे। ८ पैरोंमें उलझनेवाली वस्तु। ९ वह लकड़ी जिस पर जुलाहे बुन कर तैयार कपड़ा लपेटते हैं, तूर, बेलन।

लपेटना (हिं० क्रि०) १ किसी सूत, डोरे या कपड़ेकी-सी वस्तुको दूसरी वस्तुके चारों ओर घुमा कर बांधना, घुमाव या फेरेके साथ चारों ओर फंसाना। २ डोरी, सूत या कपड़े आदि-सी फैली हुई वस्तुको तह पर तह चढ़ाते या घुमाते हुए संकुचित करना, फैली हुई वस्तुको लच्छे या गट्ठरके रूपमें करना। ३ सूत, डोरी या कपड़े आदि-सी वस्तु चारों ओर ले जा कर घेरना, परिवेष्टित करना। ४ हाथ पैर आदि अंगोंको चारों ओर बढ़ा कर छेंक रखना, पकड़में कर लेना। ५ पकड़में लाना, काबू करना। ६ मोड़ कर कपड़े आदिके अन्दर करके बंद करना, कपड़े आदिके अन्दर बांधना। ७ उलझनमें डालना, झंझटमें फंसाना। ८ ऐसी स्थितिमें करना कि कुछ करते न बने, गतिविधि बंद करना। ९ गीली गाढ़ी वस्तु पोतना, लेपन करना।

लपेटनी (हिं० स्त्री०) जुलाहोंकी लपेटन नामकी लकड़ी, तूर।

लपेटवाँ (हिं० वि०) १ जो लपेटा हो, जिसे लपेट सकें। २ जिसमें सोने चांदीके तार लपेटे गये हों। ३ जो लपेट कर बना हो। ४ जो सीधे ढंगसे न कहा या किया गया हो, घुमाव फिराववाला। ५ जिसका अर्थ छिपा हो, गूढ़।

लपेटा (हिं० पु०) लपेट देखो।

लपेटिका (सं० स्त्री०) महाभारतके अनुसार एक पवित्र तीर्थका नाम।

लपेन (सं० पु०) बालरोगोंके अधिष्ठाता एक देवता। (पारस्करगृह्य० १।१६)

लपेता (हिं० पु०) १ छतमें लगी हुई वह लकड़ी जिसमें रेशमी कपड़े बुननेवाले जुलाहोंके करघेकी रस्सियां बंधी रहती हैं। २ एक प्रकारका गोटा।

लप्सिका (सं० स्त्री०) खाद्यद्रव्यविशेष, लपसी। बनानेका तरीका—थोड़े मैदेको अच्छी तरह भून कर नारियलके साथ दूधमें डाल दें। पीछे उसको आग पर चढ़ा कर गाढ़ा करे। गाढ़ा होने पर लवङ्ग और गोलमिर्च ऊपरसे छोड़ दें। अच्छी तरह सिद्ध हो जाने पर नीचे उतार ले। इसीका नाम लप्सिका है। इसका गुण बृंहण, बलकर, गुरु, पित्त और वायुनाशक, स्निग्ध, श्लेष्मवर्द्धन, गुरुपाक और रुचिकर माना गया है। इसको मोहनभोग भी कह सकते हैं। फर्क इतना ही है, कि मोहनभोग घृतसे बनाया जाता है।

लप्सुद (सं० क्ली०) कूर्च।

लप्सुदिन (सं० त्रि०) कूर्चयुक्त।

लफंगा (फा० वि०) १ लंपट, व्यभिचारी। २ शोहदा, कुमार्गी।

लफटंट (अं० पु०) सेनाका एक छोटा अफसर।

लफटंट गवर्नर (अं० पु०) किसी प्रान्तका शासक, छोटे सूबेका हाकिम।

लफ्ज (अ० पु०) १ शब्द। २ बात, बोल।

लब (फा० पु०) ओंठ, होंठ।

लबंगुरानया (हिं० स्त्री०) गहरे बैंगनी रङ्गके रतालूकी लता जो भारतवर्षमें कई जगह बोई जाती है। इसकी जड़ खाई जाती है।

लबड़ धोंधों (हिं० स्त्री०) १ झूठ मूठका हल्ला, व्यर्थका गुल गपाड़ा। २ क्रम और व्यवस्थाका अभाव, गड़बड़ी। ३ बातोंका भुलावा, बेईमानीकी चाल। ४ अन्याय, अनीति।

लबदा (हिं० पु०) मोटा बेडौल डंडा।

लबदी (हिं० स्त्री०) छोटी छड़ी, पतली छड़ी।

लबनी (हिं० स्त्री०) १ मिट्टीकी लम्बी हांड़ी या मटकी, जो ताड़के पेड़ोंमें बांध दी जाती है और जिसमें ताड़ी इकट्ठी होती है। २ काठकी लंबी डांड़ी लगा हुआ कटोरा जिससे कड़ाहमें शीरा निकालते हैं, डोवा।

लबरा (हिं० वि०) १ झूठ बोलनेवाला। २ गप हांकनेवाला, गप्पी।

लबरी (हिं० वि० स्त्री०) १ झूठ बोलनेवाली, गप्पी। (स्त्री०) २ खिचड़ी बेलो।

लबलबी (फा० स्त्री०) बन्दूकके घोड़ेकी कमानी।

लबादा (फा० पु०) १ रुईदार चोगा, दगला। २ वह लंबा ढीला पहनावा जो अंगरखे आदिके ऊपरसे पहन लिया जाता है और जिसका सामना प्रायः खुला होता है, चोगा।

लबारी (हिं० स्त्री०) १ झूठ बोलनेका काम। (वि०) २ झूठा। ३ चुगलखोर।

लबालब (फा० क्रि० वि०) मुंह या किनारे तक, छलकता हुआ।

लबी (हिं० स्त्री०) ईखका रस जो पका कर खूब गाढ़ा और दानेदार कर दिया गया हो, राब।

लबेचू (हिं० पु०) जैन वैश्योंकी एक जाति, लमेचू।

लबेद (हिं० पु०) वेदके विरुद्ध वचन या प्रसंग, लोकाचार और दन्तकथा।

लबेदा (हिं० पु०) मोटा बड़ा डंडा।

लबेदी (हिं० स्त्री०) १ छोटा डंडा, लाठी। २ डंडेका बल, जबरदस्ती।

लबेरा (हिं० पु०) लसोड़ेका पेड़ या फल, लपेरा।

लब्ध (सं० त्रि०) लभ-क्त। १ प्राप्त, पाया हुआ। २ उपार्जित, कमाया हुआ। ३ भाग करनेसे आया हुआ फल। (पु०) ४ दश प्रकारके दासोंमेंसे एक।

लब्धक (सं० त्रि०) प्राप्त, पानेवाला।

लब्धकाम (सं० त्रि०) अभीष्टसिद्ध, जिसकी मनस्कामना पूरी हो गई हो।

लब्धकीर्त्ति (सं० त्रि०) १ यशस्वी, जिसने कीर्त्ति पाई हो। २ विख्यात, नामवर।

लब्धचेतस (सं० त्रि०) पुनःप्राप्तचित्त, जिसने पुनः ज्ञानलाभ किया हो।

लब्धजन्मन् (सं० त्रि०) प्राप्तजन्म, जिसने जन्म लिया हो।

लब्धदत्त (सं० पु०) एक व्यक्तिका नाम। (कथासरित्सा० ५३।८)

लब्धधन (सं० त्रि०) धनवान्, दौलतमंद।

लब्धनामन् (सं० त्रि०) लब्धं नाम यस्य। ख्यातनामा, नामवर।

लब्धनाश (सं० पु०) प्राप्त वस्तुका नाश, पूर्वधनका विनाश।

लब्धप्रतिष्ठ (सं० त्रि०) लब्धा प्रतिष्ठा येन। प्रतिष्ठित, जिसने प्रतिष्ठा पाई हो।

लब्धप्रशमन (सं० त्रि०) मिले हुए धनका सत्पात्रको दान।

लब्धलक्ष (सं० त्रि०) १ जिसका वार ठीक निशाने पर जा लगे। २ जिसे अभिप्रेत वस्तु मिल गई हो।

लब्धवर (सं० त्रि०) लब्धः वरो येन। वरप्राप्त, जिसने वर पाया हो।

लब्धवर्ण (सं० त्रि०) लब्धा वर्णा यशांसि येन। विद्वान्, पण्डित।

लब्धविद्य (सं० त्रि०) लब्धा विद्या येन। विद्वान्, पण्डित।

लब्धव्य (सं० त्रि०) लभ-तव्य। लाभार्ह, पानेके योग्य।

लब्धशब्द (सं० त्रि०) लब्धनाम, नामवर, मशहूर।

लब्धसिद्धि (सं० त्रि०) लब्धा सिद्धिः येन। जिसने सिद्धि पाई हो।

लब्धा (सं० स्त्री०) लभ-क्त-टाप्। विप्रलब्धा नायिका। विप्रलब्धा देखो।

लब्धाङ्क (सं० पु०) गणित करने पर जो अंक प्राप्त हो। जवाब।

लब्धानुज्ञ (सं० त्रि०) लब्धा अनुज्ञा येन। जिसने अनुज्ञा पाई हो।

लब्धावकाश (सं० त्रि०) लब्धः अवकाशः येन। जिसने अवकाश या छुट्टी पाई हो।

लब्धावसर (सं० त्रि०) जिसने कार्यसे अवसर ग्रहण किया हो, पेन्सन पानेवाला।

लब्धि (सं० स्त्री० लभ-क्तिन्। १ लाभ, प्राप्ति। २ हिसाब-का [illegible]।

लब्धिम (सं० त्रि०) प्राप्त, उपार्जित।

लब्धोदय (सं० त्रि०) लब्धः उदयः उत्पत्तिर्येन। १ जात, उत्पन्न। २ जिसने सौभाग्य अर्जन किया हो।

लभन (सं० क्ली०) प्राप्त करना, हासिल करना।

लभस (सं० पु०) लभ (अत्यविचमीति। उण् ३।११७) इति असच्। १ वाजिबन्धनरज्जु, घोड़ा बांधनेकी रस्सी। इसे पिछाड़ी भी कहते हैं। २ धन। ३ याचक, मांगनेवाला।

लभ्य (सं० त्रि०) लब्धुं शक्यते इति लभ (पोरदुपधात्। पा ३।१।९८) इति यत्। १ न्याययुक्त, मुनासिब। २ लब्धव्य, पाने योग्य।

लमक (सं० पु०) रमते इति रम (रमेश्च नाशः। उण् ५।३३) इति वुन् रस्य लत्वं। १ जार, उपपति। २ विलासी, लंपट।

लमगजा (हिं० पु०) हलकारा, [illegible]।

लमगिरा (हिं० वि०) लम्बी गर्दनवाला।

लमचा (हिं० पु०) एक प्रकारकी बरसाती घास, जो काली चिकनी मिट्टीकी जमीनमें बहुत पाई जाती है।

लमछड़ (हिं० पु०) १ भाला, बरछी। २ पुरानी चालकी लंबी बंदूक। ३ कबूतरबाजोंकी लग्गी। (वि०) ४ पतला और लम्बा।

लमछुआ (हिं० वि०) जो आकारमें कुछ लम्बा हो, लम्बापन लिये हुए।

लमटक (हिं० पु०) कुशकी तरहकी एक घास जिसमें सुगन्ध महक होती है। इसे 'उसवाकुश' भी कहते हैं और इसको औषधके काममें देते हैं।

लमतड़ंग (हिं० पु०) लमछड़ देखो।

लमदंता (हिं० वि०) १ जिसके दांत लम्बे हों। (पु०) २ हाथम पक्षी।

लमढींग (हिं० पु०) एक प्रकारका पहाड़ी सारस।

लमतड़ंग (हिं० वि०) बहुत लम्बा या ऊंचा।

लमान—एक जाति। यह बम्बई प्रेसिडेन्सीके अहमदनगर, धारवाड़ आदि जिलोंमें रहती है और चारण बंजारे नामसे प्रसिद्ध है। यह जाति राजपूतानेके मारवाड़ देशसे यहां आकर बस गई है। इस जातिके लोग चौहान, होल्कर, मधु, पवार, रणवार और सिंदे आदि उपाधिधारी हैं। वर और कन्याकी उपाधि एक होनेसे विवाह नहीं होता। इसके अलावा विवाहमें और कोई अड़चन नहीं है। ये लोग हिन्दू हैं। सभी शिखा रखते हैं, लेकिन वेशभूषा और परिच्छद आदि बड़ा गंदा होता है। यहां तक, कि सप्ताहमें दो दिन भी स्नान नहीं करते।

गोकुलाष्टमी, दशहरा और दीवाली ये बड़ी धूमधाममें मनाते हैं। विवाह आदि कार्योंमें गांवके जोशी लोग ही इनकी पुरोहिताई करते हैं। विवाह और अन्त्येष्टिके अलावा इनमें और कोई संस्कार नहीं है। इनमें विधवाविवाह और बहुविवाह प्रचलित है। सन्तान आदिके उत्पन्न होने पर प्रसूति ४० दिन तक अशौच मानती है। विवाहमें वरके साथ बारात जानेकी प्रथा नहीं है सिर्फ दो एक आदमी जाते हैं। [illegible] इनके कोई धर्मगुरु नहीं हैं।

विवाहित पुरुष या रमणीकी मृत्यु होने पर ये शवको जलाते हैं। मृत्युके बाद आत्मीय स्वजनके अशौच नहीं होता। तीसरे दिन ही जाति कुटुम्बका भोज होता है। किसी तरहका श्राद्ध आदि नहीं होता। आपसमें किसी विषयकी मीमांसा करनेके लिये पंचायत बैठती है।

लमेतापार—नर्मदा नदीके किनारेका एक तीर्थ।

लमगान—काबुलके अंदर एक प्रदेश। इसका संस्कृत नाम लम्पाक है। लम्पाक देखो।

लम्प (सं० पु०) एक जाति।

लम्प (अं० पु०) दीपक, चिराग।

लम्पक (सं० पु०) [illegible] एक जनपद। [illegible]

लम्पट (सं० त्रि०) १ व्यभिचारी, कामुक। (पु०) २ स्त्रीका उपपति, यार।

लम्पटता (सं० स्त्री०) लम्पट होनेका भाव, दुराचार।

लम्पा (सं० स्त्री०) एक नगरका नाम।

लम्पाक (सं० पु०) १ लम्पट, दुराचारी। २ पुराणानुसार एक देशका नाम। इसे मुरण्ड भी कहते हैं। यह देश भारतके उत्तर-पश्चिममें था। (भारत द्रोणपर्व ११६।४२) ३ पद्मनाभकृत स्वरशास्त्रभेद।

लम्पाटह (सं० पु०) पटहवाद्य, नगाड़ा।

लम्फ (सं० पु०) प्लुतगति, उछाल।

लम्फन (सं० क्ली०) उछाल, कूदना।

लम्ब (सं० पु०) लम्बते इति लवि अवस्रंसने अच्। १ नर्त्तक, वह जो नाचता हो। २ पति। ३ उत्कोच, घूस। ४ अङ्ग। ५ शुद्धरागका एक भेद। ६ एक राक्षस जिसे श्रीकृष्णने मारा था। इसीको प्रलम्बासुर भी कहते हैं। ७ एक दैत्यका नाम। (हरिवंश ४३।४२) ८ ज्योतिषमें एक प्रकारकी रेखा जो विषुवरेखासे समानान्तर होती है। ६ एक मुनिका नाम। १० ज्योतिषमें ग्रहोंकी एक प्रकारकी गति। (क्ली०, ११ विलम्ब देखो। (त्रि०) १२ दीर्घ, लम्बा।

लम्बक (सं० पु०) लम्ब स्वार्थे कन्। १ लम्ब, लम्बा। २ किसी पुस्तकका एक अध्याय। ३ ज्योतिषमें एक प्रकारके योग जो संख्यामें पन्द्रह होते हैं। ४ मुत्रका एक रोग।

लम्बकर्ण (सं० पु०) लम्बौ कर्णौ यस्य। १ छाग, बकरा। २ अंकोट वृक्ष। ३ राक्षस। ४ हस्ती, हाथी। ५ श्येनपक्षी, बाज चिड़िया। ६ शशक, खरगोश। ७ खर, गदहा। (त्रि०) ८ दीर्घ कर्णविशिष्ट, जिसके कान लंबे हों।

लम्बकेश (सं० पु०) लम्बः केश इवाग्रभागो यस्य। १ दीर्घाग्रयुक्त कुशमय विष्टर, लम्बे लम्बे कुशका बनाया हुआ आसन।

विवाहके समय वरके बैठनेके लिये विष्टर देना होता है। थोड़े कुशको ले कर उसके अग्र-भागमें वामावर्त्तसे दाई बार लपेट दे कर अग्रभागको नीचेकी ओर खड़ा कर देनेसे विष्टर बनता है। विष्टर देखो। २ दीर्घ केशयुक्त, जिसके बड़े बड़े बाल हों।

लम्बकेशक (सं० पु०) एक मुनिका नाम।

लम्बग्रीव (सं० पु०) उष्ट्र, ऊँट।

लम्बजठर (सं० त्रि०) लम्बोदर, लम्बा पेटवाला।

लम्बजिह्व (सं० पु०) एक राक्षसका नाम।

लम्बज्यका (सं० स्त्री०) ज्योतिषोक्त ज्या रेखा भेद। Sine of co-latitude

लम्बज्या (सं० स्त्री०) लम्बज्यका देखो।

लम्बतङ्क (सं० त्रि०) ताड़के समान लंबा, बहुत लंबा।

लम्बदन्ता (सं० स्त्री०) लम्बा दन्ता इव फलानि यस्याः। १ सैंहली पिप्पली, सिंहल देशकी पिप्पली। (त्रि०) २ वृहद्दशनविशिष्ट, जिसके दांत बड़े बड़े हों।

लम्बन (सं० क्ली०) लम्बते इति लम्ब-ल्युट्। १ नाभिलम्बित कण्ठिकादि, गलेका वह हार जो नाभि तक लटकता हो। पर्याय—ललन्तिका। २ अवलम्बन, आश्रय। ३ झूलनेकी क्रिया। (पु०) लम्बायते। ४ कफ।

लम्बपयोधरा (सं० स्त्री०) १ लम्बमान स्तनयुक्त स्त्री, वह स्त्री जिसके स्तन लंबे हों। २ कार्त्तिकेयकी एक मातृकाका नाम।

लम्बबीजा (सं० स्त्री०) लम्बानि बीजानि यस्याः। सैंहली पिप्पली, सिंहल देशकी पिप्पली।

लम्बमान (सं० त्रि०) लम्ब-शानच्। लम्बायमान वस्तु, वह वस्तु या चीज जो लम्बी हो।

लम्बस्फिच् (सं० त्रि०) लम्बा स्फिक् यस्य। विपुल नितम्ब, जिसका चूतड़ चौड़ा हो।

लम्बांश (सं० पु०) ज्योतिषके अनुसार अक्षांश रेखा विशेष। अंगरेजीमें इसे Complement of latitude या Co-latitude कहते हैं।

लम्बा (सं० स्त्री०) १ लक्ष्मी। २ गौरी। ३ तिक्ततुम्बी, छोटा कडुआ कद्दू। ४ दक्षकी कन्याका नाम। (हरिवंश) ५ स्थावरविषके अन्तर्गत पत्रविष। ६ हिमालयकी कन्या का नाम। ७ लंबा देखो।

लम्बाक्ष (सं० पु०) एक मुनिका नाम।

लम्बानि—बम्बईप्रदेशके धारवाड़ जिलेमें रहनेवाली एक जाति। इस जातिके लोग हमेशा घूमते रहते हैं।

लम्बिका (सं० स्त्री०) लम्बते या लम्ब-ण्वुल्-टापि अत इत्वं। तालुद्ध सूक्ष्मजिह्वा, गलेके अंदरकी घंटी। पर्याय-घण्टिका, सुधास्रवा, गलशुण्डिका, अलिजिह्वा, अलिजिह्विका।

मल्लिकाकोकिला (सं० स्त्री०) देवगान्धार।

मल्लिर (सं० त्रि०) मल्लते... १ लंबा। (पु०) २ मोल।

मल्लिल (सं० त्रि०) लम्बगुण, लंबा।

मल्लिया—युक्तप्रदेशके कुमायूँ राज्यान्तर्गत एक गिरिपथ। यह अक्षा० ३१° १६´ उ० तथा देशा० ८०° २०´ पू० के बीच पड़ता है। कुमायूँसे क्रमशः उत्तर हिमालयको पार कर गया है। यह स्थान समुद्रकी सतहसे १७ हजार फुट ऊँचा है।

मल्लुक (सं० पु०) १ एक मात्राका नाम। २ ज्योतिषमें एक प्रकारके योग जिसको अंगना पाकड़ है, मल्लक।

मल्लुरा (सं० स्त्री०) एक प्रकारका हार जो लाल मलका होता है।

मल्लोदर (सं० पु०) मल्लपुरुषे यस्य। १ गणेश। २ पुराणानुसार एक राजाका नाम। (भागवत ९।२।२२) (त्रि०) ३ औदरिक, पेटू।

मल्लोष्ठ (सं० पु०) मल्ल ओष्ठो यस्य, ओष्ठोत्वोः समासे इति अकारलोपेन साधुः। १ उष्ट्र, ऊँट। २ एक प्रकारके शैवमत देवता। (त्रि०) ३ लम्बमान ओष्ठयुक्त, जिसका होंठ लटका हो।

मल्लौष्ठ (सं० पु०) १ उष्ट्र, ऊँट। (त्रि) २ दीर्घ ओष्ठ विशिष्ट, जिसका होंठ लंबा हो।

मल्व (सं० पु०) मल्ल, फायदा।

मवक (सं० त्रि०) मारक, नाश करनेवाला।

मवन (सं० क्ली०) मव्-भावे ल्युट्। १ अभिलाषा, बान्धना। २ बन्धन। ३ मारडालना, बन्धन।

मवना (सं० स्त्री०) मव-भावे युच् टाप्। बांधना।

मवासी—दाक्षिणात्य ... विभागवासी एक पुरानी जाति।

मव्यपुष्ट (सं० त्रि०) [illegible]

मष (सं० पु०) मष-अच्। १ विनाश, कीट। २ ... ३ ... दृष्टिको ... विषय ... चित्तवृत्तियाँ भी जिस होती हैं उसको मष कहते हैं।

सुषुप्तिकी ... —यह मष दो प्रकारका है, प्रथम प्रकारका मष जैसे—सम्प्रज्ञात समाधि अवस्थामें ध्येय वस्तुके द्वारा निर्विकल्पक समाधिमें परमानन्दसंज्ञक ब्रह्ममें चित्तवृत्तिको ओतप्रोत जो करना है उसको मष कहते हैं। अथवा जैसे सोहेमें अग्निबिन्दु पीकर जैसे तपे लोहेके बराबरी जल पी लेते हैं, यह जिस प्रकार शुष्क होता है उसी प्रकार योगानुष्ठानके अनुष्ठान द्वारा निर्विकल्प समाधिलाभ होनेसे चित्तवृत्तिके पर्व दुःखादि नहीं हो सकते। अब जिस प्रकार तपे लोहेमें शुष्क आता है, उसी प्रकार चित्तवृत्ति भी परमानन्द ब्रह्ममें लीन हो जाती है। अतएव जब चित्तवृत्ति लीन हो गई, तब चित्तकी वृत्ति और विक्षेपादि हैं वे फिर उपस्थित नहीं होती। सुषुप्तिकालकी तरह आलस्यादिसे चित्तवृत्तिके बाह्य शब्दादि विषय ग्रहण न कर सकनेसे अथवा आलस्यके कारण चित्तवृत्तिका जो शुष्कभाव होता है वही द्वितीय मष है। तात्पर्य जिस किसी विचार द्वारा चित्तवृत्ति जब शुद्ध या नष्ट हो जाती है, तभी यह मष होता है।

४ संगीतमें नृत्य, गीत और वाद्यकी समता, मान, ताल और क्रियाका मेल। सङ्गीत-दामोदरमें लिखा है कि हृदय, कण्ठ और कपाल इन तीन स्थानोंमें लयकी स्थिति है। किसी किसी पण्डितका कहना है, कि मष ४९ प्रकारका है। भगवान् पञ्चानन स्वयं मषप्रिय हैं तथा जनार्दन इसमें लीन हैं।

४९ प्रकारके मष ये सब हैं—त्रिपदी, चतुष्पदी, षट्पदिका, त्रिभङ्गिका, पालम्बुक, शिम्बा, चन्द्रवारा, कन्दुक, कण्डाङ्कुर, कालिन्द, त्रोटक, ललित, चतुरस्र, सर्वचतुरस्र, मर्कट, मान, वहनी, उत्सारणा, अवतरी, सम्पाटी, चन्द्रिक, पक्षीणी, पद्म, मिश्र, अर्द्धचन्द्रिका, चन्द्रलिप, शालन, धमिल्ल, अर्द्धपद्म, भद्रपिठ, चतुष्क, चित्र, विचित्रित, मालती, चित्रपताका, गुच्छ, शिरोमुक्त, सन्दीप और परस्पर। ([illegible])

यह मष्टता भावकार्यके हाथ, पैर, कंधे और मुँहसे प्रकट होती है। सङ्गीतदामोदरमें हृदय, कण्ठ और कपाल इसके स्थान माने गये हैं।

५ मेज़, एक वस्त्रोंका पुराने ... [illegible] ... ६ एक वस्त्रोंका पुराने वस्त्रोंसे एक प्रकार जिसमें कि

वह तद्रूप हो जाय और उसकी सत्ता पृथक् न रह जाय। ७ चित्तकी वृत्तियोंका सब ओरसे हट कर एक ओर प्रवृत्त होना, ध्यानमें डूबना। ८ गूढ़ अनुराग, लगन। ९ कार्यका अपने कारणमें समाविष्ट होना या फिर कारणके रूपमें परिणत हो जाना। १० स्थिरता, विश्राम। ११ मूर्च्छा, बेहोशी। १२ वह समय जो किसी स्वरको निकालनेमें लगता है। वह तीन प्रकारका माना गया है—द्रुत, मध्य और विलंबित। १३ एक प्रकारका पाटा जिससे वैदिककालमें खेत जोत कर उसको मिट्टीको सम या बराबर करते थे। इसका उल्लेख शुक्ल यजुर्वेदकी वाजसनेयसंहितामें है। (स्त्री०) १४ गानेका स्वर, गानेमें स्वर निकालनेका ढंग। १५ गीत गानेका ढंग या तर्ज, धुन। १६ सङ्गीतमें सम। १७ लामज्जक, लामज्ज नामक तृण। (त्रि०) १८ आवरणात्मक, ढकनेवाला।

लयन (सं० क्ली०) १ विश्राम, शान्ति। २ आश्रय, विश्राम स्थान। ३ आश्रयग्रहण, पनाह लेना।

लयपुत्री (सं० स्त्री०) लयस्य पुत्रीव, नर्त्तकी।

लययोग (सं० पु०) तन्त्रोक्त साधनयोगभेद। (प्राणतो० २४०,२११)

लयली-मजनु—पारस्योपाख्यानोक्त नायक नायिकाभेद। इनके प्रेम-चित्रके आधार पर बंगला भाषामें एक ग्रन्थ लिखा गया है।

लयाढ़ा—छोटा नागपुर विभागान्तर्गत एक शैलश्रेणी। यह सिंहभूम जिले तक पूर्व पश्चिममें फैली हुई है।

लयारम्भ (सं० पु०) लयस्य आरम्भो यस्मात्। नट।

लयालम्ब (सं० पु०) लयमालम्बते इति लम्ब-अण्। नट।

लरखराना (हिं० क्रि०) लड़खड़ाना देखो।

लरजना (हिं० क्रि०) १ कांपना, हिलाना। २ भयभीत होना, दहल जाना।

लरज़ा (फा० पु०) १ कंप, थरथराहट। २ एक प्रकारका ज्वर जिसमें रोगीका शरीर ज्वर आते ही कांपने लगता है, जूड़ी। ३ भूकम्प, भूचाल।

लरावर—मध्यभारतकी भोपाल एजेन्सीके धार और देवास राज्यके अन्तर्गत एक विभाग। भू-परिमाण ३० वर्गमील है। १८८० ई०में यहांके जागीरदार रामचन्द्र राव पोयारकी जब मृत्यु हो गई, तब उनके भतीजेको मासिक वृत्ति दे कर यह सम्पत्ति धार और देवास राज्यमें मिला कर ली गई।

लर्ज (हिं० पु०) सितारके एक तारका नाम। यह छः तारोंमें पांचवां और पीतलका होता है।

ललक (हिं० स्त्री०) प्रबल अभिलाषा, गहरी चाह।

ललना (हिं० क्रि०) १ किसी वस्तुको पानेकी गहरी इच्छा करना, ललचना। २ अभिलाषासे पूर्ण होना, चाहकी उमंगसे भरना।

ललकार (हिं० स्त्री०) १ युद्धके लिये उच्च स्वरसे आह्वान, प्रचारण, हांक। २ किसीको किसी पर आक्रमण करनेके लिये पुकार कर उत्साहित करना, लड़नेका बढ़ावा।

ललकारना (हिं० क्रि०) १ युद्धके लिये उच्च स्वरसे आह्वान करना, हांक लगाना। २ किसी पर आक्रमण करनेके लिये किसीको पुकार कर उत्साहित करना, लड़नेके लिये उकसाना या बढ़ावा देना।

ललचना (हिं० क्रि०) १ लालच करना, पानेकी प्रबल इच्छा करना। २ किसी बातकी प्रबल इच्छा करना, लालसा करना। ३ मोहित होना, लुब्ध होना।

ललचाना (हिं० क्रि०) १ किसीके मनमें लालच उत्पन्न करना, लालसा उत्पन्न करना। २ मोहित करना, लुभाना। ३ कोई अच्छी या लुभानेवाली वस्तु सामने रख कर किसीके मनमें लालच उत्पन्न करना, कोई वस्तु दिखा कर उसके पानेके लिये अधीर करना।

ललचौहां (हिं० वि०) लालचसे भरा, ललचाया हुआ।

ललज्जिह्व (सं० पु०) ललन्ती जिह्वा यस्य। १ उष्ट्र, ऊंट। २ कुक्कुर, कुत्ता। (त्रि०) ३ जीभ लपलपाता हुआ। ४ भयंकर, खूंखार।

ललदम्बु (सं० पु०) ललत् चलदम्बु यस्य। तिम्बक, एक प्रकारका नीबू।

ललदेवा (हिं० पु०) एक प्रकारका धान जिसकी फसल अगहनमें तैयार होती है।

ललन (सं० क्ली०) लल-ल्युट्। १ केलि, क्रीड़ा। २ चालन, चलानेकी क्रिया। (पु०) लल्यते ईप्स्यते इति लल-कर्मणि ल्युट्। ३ प्यारा बालक, दुलारा लड़का। ४ लड़का, बालक। ५ नायकके लिये प्यारका शब्द,

प्रिय नायक या पति। ६ साल, सालूका पेड़। ७ प्रियाल, चिरौंजीका पेड़।

ललनदास—लखनऊके रहनेवाले एक ब्राह्मण। इनका जन्म सं० १८३१में हुआ था। ये बड़े महात्मा हो गये हैं। इनकी ज्ञानप्रधान कविता उत्तम है।

ललना (सं० स्त्री०) ललयति ईप्सति कामान् लल-णिच् ल्यु-टाप्। १ कामिनी, स्त्री। २ जिह्वा, जीभ। ३ एक वर्णवृत्त जिसके प्रत्येक चरणमें भगण, मगण और दो सगण होते हैं।

ललनाप्रिय (सं० क्ली०) ललनानां प्रियं। १ ह्रीवेर। (पु०) २ कदम्ब। ३ कामिनीवल्लभ, स्त्रियोंका प्रिय।

ललनिका (सं० स्त्री०) ललना, स्त्री।

ललन्तिका (सं० स्त्री०) ललन्त्येव स्वार्थे कन्। १ नाभि-लम्बमालिकादि, नाभि तक लटकती हुई माला या हार। २ गोधा, गोह।

लला (हिं० पु०) १ प्यारा या दुलारा लड़का। २ लड़का, कुमार। ३ लड़के या कुमारके लिये प्यारका शब्द। ४ नायक या पतिके लिये प्यारका शब्द, प्रिय नायक या पति।

ललाई (हिं० स्त्री०) लालिमा, सुर्खी।

ललाक (सं० पु०) लिङ्ग, लिङ्गेन्द्रिय।

ललाट (सं० क्ली०) [illegible] ईप्सां अटति प्राप्नोति अट-अच्। १ अवयवविशेष, माथा। संस्कृत पर्याय—अलिक, गोधि, भालाङ्ग, भाल, कपालक, ललीक, ललाटक। सामुद्रिकमें लिखा है, कि जिसका ललाट उन्नत, विपुल और विषम होता वह निर्धन तथा जिसका अर्धचन्द्राकृति सा होता वह धनवान् होता है। इसी प्रकार शुक्तिविशाल होनेसे धार्मिक और निम्न होनेसे पापी, स्वस्तिकादि रेखा और उन्नतशिरा रहनेसे धनवान्, संवृत होनेसे कृपण, उन्नत होनेसे गुरु तथा निम्न होनेसे वधी होता है। ललाट पर तीन रेखा रहनेसे सौ वर्षकी परमायु, चार रेखा रहनेसे ९५ वर्षकी परमायु और राजा, रेखा नहीं रहनेसे ९० वर्षकी परमायु, रेखा छिन्न भिन्न होनेसे पुंश्चल, केशान्त-गत रहनेसे ८० वर्षकी, ५, ६, ७ या अनेक रेखा रहनेसे ५० वर्षकी, भ्रूलग्नाग्र रेखा होनेसे ३० वर्षकी, बाईं ओर एक रेखा होनेसे ३० वर्षकी परमायु और रेखा टेढ़ी होनेसे अल्पायु होती है। (सामुद्रिक)

सामुद्रिकमें और इसका विशेष विवरण दिया गया जो सामुद्रिकशास्त्रमें वर्णित है, वे ललाट देख कर मनुष्यकी आयु और शुभाशुभका हाल कह सकते हैं। २ भाग्यका लेख, किस्मतका लिखा।

ललाटक (सं० क्ली०) ललाटमेव ललाट कन्। १ प्रशस्त ललाट। २ ललाटमात्र, मस्तक।

ललाटन्तप (सं० त्रि०) ललाटं तपतीति ललाटतप (असूर्यललाटयोर्दृशितपोः। पा ३।२।३६) इति खश् मुम्। १ ललाटतापक, ललाट-तापकारी। (पु०) २ सूर्य।

ललाट-पटल (सं० क्ली०) मस्तकका तल, माथेकी सतह।

ललाटपुर (सं० क्ली०) एक नगरका नाम। (त ५।४४।७१)

ललाटफलक (सं० क्ली०) कपाल, ललाट-पटल।

ललाटरेखा (सं० स्त्री०) कपालका लेख, भाग्यलेख। कहते हैं, कि विधाता जातकके छठी आकर रातको अर्थात् छठी रातमें उसके ललाटमें लिख कर देते हैं।

ललाटाक्ष (सं० पु०) ललाटे अक्षिणी यस्य। शिव।

ललाटाक्षी (सं० स्त्री०) दुर्गा।

ललाटिका (सं० स्त्री०) ललाटे भवोऽलङ्कारः (कर्ण-ललाटात् कनलङ्कारे। पा ४।३।६५) इति कन्। १ माथे पर बाँधनेका एक गहना, टीका। २ माथे परका टीका, तिलक।

ललाटूल (सं० त्रि०) उच्च ललाटयुक्त, जिसका ललाट ऊँचा हो।

ललाटेन्दुकेसरी—उड़ीसाके केशरीवंशीय एक राजा। उड़ीसा देखो।

ललाट्य (सं० त्रि०) ललाट-सम्बन्धीय, ललाटका।

ललाम (सं० क्ली०) लड् विलासे क्विप्, लड् अमति गच्छतीति अम-गतौ अण् डस्य लत्वं। १ चिह्न, निशान। २ ध्वजा, झंडा और पताका। ३ शृङ्ग, सींग। ४ भूषण, अलंकार। ५ घोड़े या सिंहकी गर्दन परका बाल, अयाल। ६ पुण्ड्र, टीका। ७ प्रधान। ८ घोड़े या गायके माथे पर-का चिह्न अर्थात् दूसरे रंगका चिह्न। ९ घोड़े का गहना। १० रत्न। (त्रि०) ११ प्रधान, श्रेष्ठ। १२ रमणीय, सुन्दर। १३ लाल रंगका, सुर्ख।

ललामक (सं० क्ली०) माथेमें पहननेकी माला।

ललामगु (सं० पु०) शिश्न, लिङ्गेन्द्रिय।
ललामन् (सं० क्ली०) १ ललाम। २ पुच्छ।
ललामात् (सं० त्रि०) सुन्दर अलंकृत।
ललामी (सं० स्त्री०) १ कर्णभूषणविशेष, कानमें पहनने का एक गहना। २ सुन्दरता। ३ लालिमा, सुर्खी।
ललित (सं० क्ली०) लल-क्त। १ शृङ्गारभावज क्रियाविशेष। शृङ्गाररसमें एक कायिक हाव या अङ्गचेष्टा। इसमें सुकुमारता (नजाकत)-के साथ भौं, आँख, हाथ, पैर आदि अङ्ग हिलाए जाते हैं। कहीं कहीं भूषण आदिसे सजाने को ललित भाव कहा है। (पु०) लल्यते ईप्सते इति लल कर्मणि क्त। २ षाड़व जातिका एक राग। यह भैरव राग का पुत्र माना जाता है। इसमें निषाद स्वर नहीं लगता तथा धैवत और गान्धारके अतिरिक्त और सब स्वर कोमल लगते हैं। इसके गानेका समय रात्रिके तीस दण्ड बीत जाने पर अर्थात् प्रातःकाल है। ३ एक विषम वर्णवृत्त। इसके पहले चरणमें सगण, जगण, सगण, लघु; दूसरे चरणमें नगण, सगण, जगण, गुरु; तीसरेमें नगण, नगण, सगण, सगण, और चतुर्थमें सगण, जगण, सगण जगण होता है। ४ कुछ आचार्योंके मतसे एक अलङ्कार। इसमें वर्ण्य वस्तु (बात)-के स्थान पर उसका प्रतिबिम्ब वर्णन किया जाता है।

(त्रि०) ५ सुन्दर, बढ़िया। ६ ईप्सित, मनचाहा। ७ चलित, चलता हुआ।
ललितक (सं० क्ली०) एक प्राचीन तीर्थका नाम।
ललितकला (सं० स्त्री०) वे कलाएं या विद्याएं जिनके व्यक्त करनेमें किसी प्रकारके सौन्दर्यकी अपेक्षा हो।

विशेष विवरण 'कला' शब्दमें देखो।

ललितकान्ता (सं० स्त्री०) ललिता कान्ता च। मङ्गलचण्डिका, दुर्गा।
ललितचैत्य (सं० पु०) चैत्यभेद, एक प्रकारका मन्दिर या धर्मशाला।
ललितताल (सं० पु०) संगीतका एक ताल।
ललितपद (सं० त्रि०) १ सुन्दर पदयुक्त, जिसमें सुन्दर पद या शब्द हों। (पु०) २ पदमात्रिक छन्द। इसके प्रत्येक चरणमें १६ और १२के हिसाबसे २८ मात्राएं होती हैं। अन्तमें दो गुरु रखे जाते हैं। इसे सार, नरेन्द्र और दोवे भी कहते हैं।
ललितपुर (सं० क्ली०) एक नगरका नाम।

(राजतरङ्गिणी ४।१८७)

ललितपुर—१ युक्तप्रदेशके झांसी जिलेका एक उपविभाग। यह ललितपुर और महरोनी तहसील ले कर बना है।

२ झांसी जिलेकी एक तहसील। यह अक्षा० २४ं १६´ से २५ं १२´ उ० तथा देशा० ७८ं १०´ से ७८ं ४०´ पू०के मध्य अवस्थित है। भूपरिमाण १०५८ वर्गमील और जनसंख्या डेढ़ लाखसे ऊपर है। इसमें ललितपुर और तालबहत नामक २ शहर और ३६८ ग्राम लगते हैं। इस तहसीलके पश्चिम और उत्तर-पश्चिममें बेतवा-राज्य है। यहांकी जमीन काली है।

३ उक्त तहसीलका एक शहर। यह अक्षा० २४ं४२´ उ० तथा देशा० ७८ं२८´ पू०के मध्य अवस्थित है। जनसंख्या ११ हजारसे ऊपर है।

ललितपुरका कोई प्राचीन इतिहास नहीं है। पहले यहां असभ्य गोंड़ जातिका वास था। आज भी विन्ध्यशैलमालाके शिखर पर उस पहाड़ी जातिका प्रतिष्ठित देवमन्दिरादि उस अतीत स्मृतिका परिचय देता है। वर्त्तमान समयमें भी पर्वत परके कुछ ग्रामोंमें गोंड़ जातिका वास देखा जाता है।

परवर्त्ती कालमें यहां जब आर्य-उपनिवेश स्थापित हुआ, तब वे गोंड़ लोग क्रमशः हिन्दुधर्म पर विश्वास कर उसके अनुरागी तथा थोड़े ही समयके अन्दर शिक्षा और सभ्यताके गुणसे उन्नत हो गये। उन लोगोंकी स्थापत्यविद्याके परिचय-स्वरूप आज भी अट्टालिका और जलनालियां यहां विद्यमान हैं। उनके अधःपतनके बाद महोवाके चन्देलवंशीय राजोंने यहां आधिपत्य फैलाया। बांदा और हमीरपुरमें उनकी राजधानी थी।

बांदा और हमीरपुर शब्द देखो।

१२वीं सदीके शेष भागमें इस चन्देल-राजवंशका अधःपतन हुआ। उस समय यह स्थान छोटे छोटे सामन्त राजोंके शासनाधीन हो गया। उन सामन्तोंने दिल्लीके मुसलमान राजोंकी प्रधानता स्वीकार नहीं की। उन लोगोंने सम्पूर्ण स्वाधीनभावसे राज्यशासन किया था।

१४वीं सदीमें बुन्देला राजाओंने इस प्रदेश पर आक्रमण और अधिकार किया। उन्होंने पहले ओरछामें और पीछे सारे बुन्देलखण्डमें अपना प्रताप फैलाया था।

१७०४से १८२८ ई० तक बुन्देलखण्डके पंचम भी राजाओंने चन्देरीका शासन किया था। बीच बीचमें यहां दिल्लीके मुगल-बादशाहोंका आधिपत्य फैला था। अन्तिम बुन्देला राजा रामचांद जब सिंहासनारूढ़ करने चले गये, तब उनकी अनुपस्थितिमें मराठोंने इस प्रदेशमें अपना प्रताप फैलाया; किन्तु वे लोग अधिक दिन तक इस प्रदेशको हस्तगत न कर सके। १८०० ई०में रामचांदके लड़केको वे लोग सम्मिलित उत्तराधिकारी बनानेसे बाध्य हुए। इसके दो वर्षके भीतर किसी समरक्षेत्रके षड़-यन्त्रसे राजकुमार परलोक सिधारे। पीछे उनके भाई मोरप्रहलाद गद्दी पर बैठे। वे उच्छृङ्खल और शासन कार्यमें असमर्थ थे। उनके अधीनस्थ ठाकुर सामन्त पूर्णरूपसे स्वच्छन्दवृत्तिके वशीभूत हो कर आस पासके राज्योंमें ऊधम मचाते थे। राजा मोरप्रहलाद उन्हें काबूमें न कर सके। बार बार इस प्रकार आक्रमण और लूटमारसे जब उन लोगोंने १८११ ई०में ग्वालियरके सीमान्तवर्ती सिन्धियाकी प्रजा पर अत्याचार करना आरम्भ कर दिया, तब ग्वालियरपति उनका दमन करनेके लिये आगे बढ़े। महाराजके हुक्मसे सिन्धिया सेनाने चन्देरी पर चढ़ाई कर दी। ग्वालियरके सेनापति जिन बापटिस्ट (Jean Baptiste) ने इस युद्धके साथ अग्रसर हो कोटराबंगो, रामगढ़ा और चन्देरी दुर्ग पर अधिकार किया। मोरप्रहलाद झांसी भाग गये, किन्तु उनके सेना ललितपुर आदि स्थानोंमें अग्रसर हुए। कई सप्ताह बाद अनाज आदिसे युद्ध करनेके बाद सिन्धिया-सेनाने आत्मसमर्पण किया। एक ठाकुर सामन्तकी विश्वासघातकतासे चन्देरी शत्रुके हाथ लगा। देशमें देशमें असन्तुष्ट सामन्तगणोंने भी सिन्धिया-राजाकी शरण ली। सिन्धिया महाराजने तब इस प्रदेशका शासनभार ग्रहण कर कर्नल फिलोजको यहांका शासनकर्त्ता बनाया।

ग्वालियर महाराजको इसकी पूर्णतः आमदनीसे अपनी अपनी बागान लिये। राजा मोरप्रहलादने अपने भरणपोषणके लिये ३१ गांव पाये।

इसके बाद ३५ वर्ष तक यहां शान्ति विराजती रही। सिन्धियाको निर्दिष्ट शासन प्रणालीसे यहांका शासनकार्य निर्विघ्नपूर्वक चलने लगा। किन्तु बुन्देलखण्ड प्रदेशके राजाको राजा बना कर अकस्मात् बागी हो गये। इस पर सिन्धिया महाराजने विस्ती कर्नल बाप्टिस्टको शान्तिस्थापन करनेके लिये भेजा। उन्होंने चन्देरी-राज्यको तीन भागोंमें बांट दिया। एक भाग राजा मोरप्रहलादको मिला और दो भाग सिन्धियाके राज्यभुक्त रहा। राजा मोरप्रहलाद यह थोड़ा राज्य ले कर भी अपने अधीनस्थ ठाकुर सामन्तोंके साथ लड़ते लड़ते १८४२ ई०में परलोकको सिधारे। उनकी मृत्युके बाद उनके लड़के मर्दनसिंह राजा हुए। इस घटनाके दो वर्ष बाद महाराजपुर युद्धका अवसान हुआ। सिन्धियाने ग्वालियर-सेनादलके खर्चके लिये आमदनी-स्वरूप अंगरेजोंके हाथ चन्देरी राज्यका अपना अंश सौंप दिया।

अंगरेज-गवर्मेंटने यह सम्पत्ति पा कर इसे एक स्वतन्त्र जिला बना लिया। किन्तु सन्धिके शर्तानुसार सिन्धिया-महाराजका प्रभुत्व अक्षुण्ण रखने और प्रजावर्गके स्वाधिकारकी रक्षा करनेके लिये अंगरेज गवर्मेंट बाध्य हुई। सिपाहीविद्रोह तक यह इसी प्रकार चलता रहा। बाणपुरराज मर्दनसिंहने अपने स्वत्वाधिकारसे वंचित हो कर इस समय बुन्देला सरदारोंको अंगरेजोंके विरुद्ध उभाड़ा। १८५७ ई०की १२वीं जूनको राजा मर्दनसिंह विद्रोहियोंसे प्रेरित हो झांसी और ग्वालियरके विद्रोहियोंके साथ मिल गये। इस प्रकार सैकड़ों विद्रोहियोंका दल अंगरेजोंके देशीय सेनानायकोंको मारने दलमें आ कर राजा मर्दनसिंहने अपनेको बाणपुरका स्वाधीन राजा घोषित कर दिया। उन्होंने अंगरेजोंसे लड़नेकी इच्छासे बाणपुरमें बन्दूक बनानेका एक कारखाना खोला। राजाको सागर जिलेके ऊपर अपना अधिकार फैलाते देख अंगरेज गवर्मेंट निश्चिन्त न रह सकी। १८५८ ई०के मार्चमें सर ह्यू रोजके अधीनस्थ सेनादलने उन्हें आक्रमण कर परास्त किया। राजा मर्दनसिंह बन्दी हो कर अपने देशसे बाहर गये। साथ साथ अंगरेज-सेनाने

उन्हें ललितपुरसे बाणपुर और तालबहतकी ओर खदेरा। राजाकी पराजयसे अधीनस्थ सेनादलने डर कर शान्तभाव धारण किया। इस समय ग्वालियरका विद्रोह-दमन करनेके लिये अङ्गरेजी सेना चन्देरीसे चली जानेको बाध्य हुई। इधर विद्रोही-दलने फिरसे चन्देरी-राज्यको हस्तगत कर लिया। इसके बाद उसी साल-के अक्तूबर मासमें अङ्गरेजी-सेनाने पुनः ललितपुर पर चढ़ाई कर दी। बुन्देलागण भीम-विक्रमसे युद्ध करके भी आत्मरक्षा न कर सके। आखिर उन्होंने ललितपुर अङ्गरेजोंके हाथ सौंप दिया। इस विद्रोहके समय बुन्देल ठाकुर-सरदारोंने आपसमें विद्वेषभाव दिखा कर अपना सर्वनाश कर डाला। सिपाही-विद्रोहके बाद यहां शान्ति स्थापित हुई। अशिक्षित सरदार अंगरेज-गवर्मेण्टके कठोर शासनसे नियन्त्रित हो शान्तिमय जीवन बितानेको बाध्य हुए। तभीसे यहां और कोई उपद्रव न हुआ।

शहरके निकट ठाकुर-सरदारोंके निर्मित वासभवन और दुर्ग देखे जाते हैं। सभी दुर्गोंका अधिकांश ध्वंसावस्थामें पड़ा है। १८५८ ई०में ललितपुर-विजय-के बाद सेनापति सर ह्यु रोजने उनमेंसे बहुतोंको तोड़ फोड़ डाला। विन्ध्यशैलश्रेणीके समुन्नत-शिखर पर बहुतसे प्राचीन मन्दिरोंका ध्वंसावशेष देखा जाता है। ये सब प्राचीन गोंड़-अधिवासियोंकी कीर्त्ति हैं। वर्तमान जैन अधिवासियोंके उद्योगसे यहां एक सुन्दर मन्दिर बनाया गया है। शहरमें १८७० ई०को म्युनिस्पलिटो स्थापित हुई है। यहांसे चमड़ा और घी दूसरे दूसरे देशों में भेजा जाता है। शहरमें चार स्कूल हैं।

ललितपुराण (सं० क्ली०) बौद्धोंका 'ललितविस्तर' नामक ग्रन्थ जिसमें बुद्धका चरित लिखा है।

ललितप्रहार (सं० पु०) अल्प प्रहार।

ललितललित (सं० क्ली०) अत्यन्त सुन्दर।

ललितलोचन (सं० त्रि०) १ सुन्दर चक्षु, उत्तम नेत्र। (स्त्री०) २ विद्याधर वाणदत्तकी कन्या।

ललितवनिता (सं० स्त्री०) सुन्दरी स्त्री।

ललितविस्तर (सं० पु०) बौद्धोंका जीवनचरित-विषयक सुप्राचीन एक बौद्धग्रन्थ। गाथा देखो।

ललितव्यूह (सं० पु०) १ बौद्धशास्त्रके अनुसार एक समाधि। २ देवपुत्रभेद। ३ बोधिसत्त्वभेद।

ललिता (सं० स्त्री०) ललित टाप्। १ कस्तूरी। २ नारी, बेगाई। ३ नदीविशेष। कालिकापुराणमें लिखा है, कि पुराकालमें ब्रह्मनन्दन वशिष्ठ निमिराजके शापसे तथा राजर्षि निमि भी वशिष्ठके शापसे देहहीन हो गये। वशिष्ठने ब्रह्माके उपदेशसे कामरूपपीठमें सन्ध्याचल पर घोर तपस्या की। विष्णुने तपस्यासे संतुष्ट हो कर उन्हें वर दिया। उस वरके प्रभावसे वशिष्ठने मज्जनकुण्ड बनाया। इसी कुण्डके पूर्व ललिता नामक मनोहारिणी और दक्षिण-सागरगामिनी एक नदी है। महादेवजी उस नदीको लाये थे। वैशाखमासकी शुक्ला तृतीयाको इस नदीमें स्नान करनेसे शिवलोककी प्राप्ति होती है। ललिता नदीके पूर्व किनारे भगवान् नामक एक पर्वत है। उस पर्वत पर भगवान् विष्णु लिङ्गरूपमें विराजित हैं। जो शुक्ला द्वादशीको ललितामें स्नान कर इस पर्वत पर भगवान् विष्णुकी पूजा करते हैं उन्हें इस लोकमें नाना सुख और परलोकमें विष्णुलोककी गति होती है।

(कालिकापु० ८१ अ०)

बृहन्नीलतन्त्रके २०वें अध्यायमें इस तीर्थका हाल लिखा है।

४ पद्मपुराण, ब्रह्मवैवर्त्तपुराण आदिके अनुसार राधिकाकी प्रधान आठ सखियोंमेंसे एक। गोलोक रास-मण्डलमें श्रीमती राधिकाके लोमकूपसे इन सब गोपियों-की उत्पत्ति हुई थी। (ब्रह्मवैवर्त्तपु०)

पद्मपुराणके पातालखण्डमें लिखा है, कि जो ललिता हैं वे ही दुर्गा तथा राधिका हैं। इनमें कोई भेद नहीं है।

५ एक रागिणी जो सङ्गीतदामोदर और हनुमत्के मतसे मेघरागकी और सोमेश्वरके मतसे वसन्तरागकी पत्नी है। इसका स्वरग्राम इस प्रकार है—स, ग, म, ध, नि, स। अथवा स, रि, ग, म, प, ध, नि, स (प्रथम) ध, नि, स, ग, म, ध (द्वितीय)। इसका ध्यान—

"प्रफुल्लपूर्च्छद्दमाल्यवत्पटा मुर्गोरकान्तिर्नवलो मुदन्विः।
विनिःश्वसन्ती सहसा प्रभाते विभातवेशा ललिता प्रदिष्टा॥"

(सङ्गीतरत्नाकर)

१ एक वर्णवृत्त । इसके प्रत्येक चरणमें तगण, भगण, जगण और रगण होते हैं ।

ललितासन (सं० क्लो०) एक प्रकारका आसन ।

ललितापुष्पाञ्जन (सं० क्लो०) एक प्रकारका औषधियुक्त ।

ललितादित्य—काश्मीरके एक राजा । चन्द्रापीड तारापीड़के पश्चात् सिंहासन पर ये काश्मीरके सिंहासन पर बैठे । जिस समय राजा तारापीड़का स्वर्गवास हुआ, उस समय ललितादित्य काश्मीरमें सम्राट् काश्मीरके एक शासक थे । ललितादित्यको स्वप्नमें भी यह विश्वास नहीं था, कि मुझे समस्त काश्मीरके शासनका भार मिलेगा ।

काश्मीरके सिंहासन पर बैठते ही ललितादित्यने चारों शत्रुओंको अपने वशीभूत कर लिया । दिग्विजयके लिये जब ये युद्ध यात्रा करते थे, तब कर कर राजगण उनके अधीन हो जाता था ।

ललितादित्यने कान्यकुब्जराज यशोवर्मा पर हमला किया था । अपनेको ऐसा समझ कर यशोवर्मा रणभूमिमें उतरे । किन्तु यशोवर्माको ललित जैसा राजा ललितादित्यके प्रतापानलमें भस्म हो गये । अन्तमें यशोवर्मा दूसरा कोई उपाय न देख उनकी शरणमें आ गये । इन्हीं कान्यकुब्ज राजा यशोवर्माकी सभामें भवभूति आदि महाकवि थे । कनौज अधिकार करनेके बाद राजा ललितादित्य पूर्वकी ओर दिग्विजयमें आगे बढ़े । इसी प्रकार इन्होंने दिग्विजय यात्रा करके अपनी प्रभुता विस्तृत कर दी । दिग्विजयमें [illegible] प्राप्त हुआ युद्धोंके बादमें आरम्भ हुए थे । ललितादित्य बड़े इन्द्रियपरायण थे । राजकार्यकी ओर उनका कुछ भी ध्यान न था । इससे राज्यकार्यमें दुराचारकी वृद्धि हुई थी और प्रजाओंकी दुरवस्था हो गई थी । इसके बादसे विना अपराधके पापियोंके द्वारा भी एक संवाद दिया था, इस समय कुछ ललितादित्य उस पर दण्डित करने लगे । पूर्व दुराचारियोंने राजाको पैरसे सिंहासनसे विच्युत कर दिया । और राज्य पहिलेकी आदर करता था वह इस भूल गये । जब भी और कठोर हो का [illegible] वारमें होता था । ललितादित्य इतने दुर्दान्त हो गये कि एक क्षण भी विद्रोहियोंको बिना दण्ड दिये चैन नहीं पड़ता था । जो राजा सर्वदा दिग्विजयमें प्रवृत्त रह कर अपने राज्य बढ़ानेमें लगे रहते थे, ललितादित्य उन्हें मूर्ख कहता था । इन दुराचारोंका फल यह निकला कि ललितादित्यने अपनी आदि रानीसे अपना पद छोड़ दिया । इस राजाने ब्राह्मणोंको दी हुई भूमि छीन ली थी । इस दुराचारी राजाका शासन काश्मीरमें १२ वर्ष तक रहा ।

ललितपुर—एक प्राचीन नगर । यहां ललितादेवी विराजित हैं । (ब्रह्माण्ड० [illegible]) ललितपुर देखो ।

ललितासन (सं० क्लो०) एक प्रकारका आसन ।

ललिताषष्ठी (सं० स्त्री०) आश्विनशुक्ल षष्ठी । जिस तिथिमें स्त्रियाँ पुत्रकी कामनासे या पुत्रके हितार्थ ललिता देवी (पार्वती)का पूजन करती हैं और व्रत रखती हैं उसीका नाम ललिताषष्ठी है । पूजा [illegible] और [illegible] चढ़ाई पर सिंदूर आदि चढ़ा कर होती है ।

ललिथ (सं० पु०) जातिविशेष।

लली (हिं० स्त्री०) १ लड़कोके लिये प्यारका शब्द। २ दुलारी लड़की, लाड़ली लड़की। ३ नायिकाके लिये प्यारका शब्द, प्रेमिका।

ललीतिका (सं० स्त्री०) एक प्राचीन तीर्थ। यह चम्पा जनपदमें अवस्थित है। (भारत३।८४।१२६)

लल्यान (सं० क्ली०) एक प्राचीन जनपद। (राजतर० ६।१८३)

लल—भारतीय एक प्राचीन ज्योतिषी। इसका सिद्धान्त आर्य ज्योतिषमें बड़े आदरसे देखा जाता है।

लल्ल—विधानमालाके प्रणेता। ढुंढिराज लल्लोपाध्य नामक और एक पद्धतिकार देखे जाते हैं। इनका रचा मृतपत्नीकाधान, सर्गद्वारेष्टिसत्नप्रयोग और होत्रसामान्य ग्रन्थ देखनेसे बोध होता है, कि दोनों एक व्यक्ति थे।

लल्ल—ज्योतिषरत्नकोष, गणिताध्याय और गोलाध्याय तथा शिष्यधीवृद्धिद-महातन्त्र नामक ज्योतिर्ग्रन्थके रचयिता त्रिविक्रम भट्टके पुत्र। भास्कराचार्यने सिद्धान्तशिरोमणिके शेषोक्त ग्रन्थमें उल्लेख किया है।

लल्लचन्द—छिन्दवंशीय एक राजा। ये मलहनके पुत्र और वैरवर्माके पौत्र थे। इनकी माता अणहिला चुलुकीश्वरवंशकी थीं।

लल्लधाराहसुत (सं० पु०) १ लल्ल तथा धाराहके पुत्र। २ नक्षत्रसमुच्चयके प्रणेता।

लल्लादीक्षित—मृच्छकटिकटीकाके रचयिता। ये लक्ष्मणके पुत्र और शङ्कर दीक्षितके पौत्र थे। इन्होंने १८२१ ई०में उक्त ग्रन्थ संकलन किया।

ललियशाही—काबुलके शाही-वंशीय एक हिन्दू राजा। इनका दूसरा नाम था कमलुक। उद्भाण्डपुरमें इनकी राजधानी थी। राजतरङ्गिणीमें लिखा है, कि महाराज प्रभाकरदेवके मन्त्री गोपालवर्म्माने इनके पुत्र तोरमाणको सिंहासनच्युत किया था। ये खुरासान-पति आमरु इबन-लईके समसामयिक थे।

लल्लूजी लाल—एक हिन्दी ग्रन्थकार।

लल्लो (हिं० स्त्री०) जीभ, जबान।

लल्लो चप्पो (हिं० स्त्री०) चिकनी चुपड़ी बात जो केवल किसीको प्रसन्न करनेके लिये कही जाय, ठकुरसुहाती।

लव (सं० क्ली०) लू अप्। १ जातीफल। २ लवङ्ग। ३ लामज्जक, उशराङ्कुश नामका तृण। ४ ईषत्, बहुत थोड़ी मात्रा। (पु०) लवणमिति लू-अप्। ५ लेश। ६ विनाश। ७ छेदन, कटाई। ८ कालका एक मान, दो काष्ठा अर्थात् छत्तीस निमेषका अल्प समय। कुछ लोग एक निमेषके साठवें भागको लव मानते हैं। ९ पक्षिभेद, लवा नामकी चिड़िया। १० ऊन, बाल या पर जो पशु पक्षियोंके शरीरसे कतर कर निकाले जाते हैं। ११ गोपुच्छलोम, सुरागायकी पूंछके बाल जो चँवर बनानेके लिये कतरे जाते हैं।

लव—रामचन्द्रके पुत्र। रामायणके उत्तरकाण्डमें लिखा है, कि रामचन्द्रने सीतादेवीकी गर्भावस्थामें लोकापवादसे भय खा कर उन्हें छोड़ देनेके लिये लक्ष्मणको आज्ञा दी। लक्ष्मण उनकी आज्ञाका पालन करते हुए सीताको ले कर वाल्मीकिके तपोवनमें छोड़ आये। वहां सीताके यमज दो सन्तान उत्पन्न हुए। इन दो पुत्रोंका नाम लव और कुश पड़ा। वाल्मीकिने इन्हें रामायणका गान सिखा दिया था। जब इन्होंने रामचन्द्रकी सभामें जा कर यह गाना सुनाया, तब रामने इन्हें पहचाना।

सीता और राम शब्द देखो।

लवक (सं० पु०) १ छेदक, वह जो छेद करता हो। २ द्रव्यभेद।

लवङ्ग (सं० क्ली०) लुनाति श्लेष्मादिकमिति लु (तरत्यादिभ्यश्च। उण् १।११६) इति अङ्गच्। स्वनामख्यात वणिक् द्रव्यभेद, लौंग। भिन्न भिन्न देशमें यह भिन्न भिन्न नामसे प्रसिद्ध है। यथा—महाराष्ट्र और कलिङ्ग—लवङ्ग कलिका, लविङ्ग; तामिल—किरम्पेर, किरापु; इलवङ्ग—अप्पु, करवाप्प इलग्गु; तैलङ्ग—लवङ्गलु; द्राविड़—लवङ्ग मलयालम्—छङ्कि; शिङ्गापुर—बरल, पारस्य—मेखक्, बङ्गाल—लङ्ग, लवङ्ग। संस्कृत पर्याय—देवकुसुम, श्रीप्रसून, लवङ्गक, लवङ्गकलिका, दिव्य, शेखर, लव, श्रीपुष्प, रुचिर, वारिसम्भव, भृङ्गार, जीर्णकुसुम, चन्द्रनपुष्प।

इसके वृक्ष मलबार, अफ्रिकाके समुद्र तट पर, जंजीबार, मलाया, जावा आदिमें होते हैं। लवङ्गकी खेतीके लिये काली मिट्टी और विशेषतः वह मिट्टी जो ज्वालामुखीकी राख हो या जिसमें बालू मिला हो, अच्छी

६ एक वर्णवृत्त। इसके प्रत्येक चरणमें तगण, भगण, जगण और रगण होते हैं।

ललितातन्त्र (सं० क्ली०) एक प्रकारका तन्त्र।

ललितातृतीयाव्रत (सं० क्ली०) एक प्रकारका योषिद्व्रत।

ललितादित्य—काश्मीरके एक राजा। कश्मीरराज तारापीड़के परलोक सिधारने पर ये काश्मीरके सिंहासन पर बैठे। जिस समय राजा तारापीड़का स्वर्गवास हुआ, उस समय ललितादित्य काश्मीरके अन्तर्गत काश्मीरके एक शासक थे। ललितादित्यको स्वप्नमें भी यह विश्वास नहीं था, कि मुझे समस्त काश्मीरके शासनका भार मिलेगा।

काश्मीरके सिंहासन पर बैठते ही ललितादित्यने समूचे जम्बूद्वीपको अपने कब्जेमें कर लिया। दिग्विजयके लिये जब ये युद्ध यात्रा करते थे, तब डर कर शत्रुदल उनके अधीन हो जाता था।

ललितादित्यने कान्यकुब्जराज यशोवर्मा पर हमला किया था। अगणित सेना इकट्ठी कर यशोवर्मा रणभूमिमें उतरे। किन्तु यशोवर्माको अगणित सेना राजा ललितादित्यके प्रतापानलमें भस्म हो गई। अन्तमें यशोवर्मा दूसरा कोई उपाय न देख रणक्षेत्रसे भाग गये। इन्हीं कनौजपति राजा यशोवर्माकी सभामें भवभूति आदि महाकवि थे। कनौज अधिकार करनेके बाद राजा ललितादित्य पूर्वकी ओर दिग्विजयमें आगे बढ़े। इसी प्रकार इन्होंने दिग्विजय-यात्रा करके अपनी प्रभुता विस्तृत कर दी। दिग्विजयमें इन्हें जो धन प्राप्त हुआ था, उससे इन्होंने कई मन्दिर अग्रहार आदि बनवाये थे। इन्होंने परिहासपुर नामक एक नगर बसाया था और उसमें इन्द्रध्वज नामका एक कीर्त्तिस्तम्भ प्रतिष्ठित किया था। यह स्तम्भ पत्थरका था और ५४ फुट ऊंचा था। इन्होंने ३६ वर्ष ७ महीने ११ दिन राज्य किया था।

ललितादित्य २य—काश्मीरके एक राजा।

ललितादित्यपुर (सं० क्ली०) ललितादित्य द्वारा प्रतिष्ठित एक नगर।

ललितापञ्चमी (सं० स्त्री०) आश्विन महीनेकी शुक्ला पञ्चमी। इसमें ललितादेवी (पार्वती)की पूजा होती है।

ललितापीड़—काश्मीरके एक राजा। ये जयापीड़की रानी दुर्गाके गर्भसे उत्पन्न हुए थे। ललितापीड़ बड़े ही इन्द्रियपरायण थे। राजकार्यकी ओर उनका कुछ भी ध्यान न था। इनके राज्यकालमें दुराचारकी वृद्धि हुई थी और वेश्याओंकी प्रधानता हो गई थी। इनके नारकी पिता जयापीड़ने पापकर्मोंके द्वारा जो धन संचय किया था, इस समय पुत्र ललितापीड़ उसका उचित व्यय करने लगे। धूर्त दुराचारियोंने राजाको वेश्या-विद्यामें निपुण कर दिया। वीर अथवा पण्डितोंका आदर करना ये एकदम भूल गये। भड़ुओं और मसखरों ही का आदर दरबारमें होता था। ललितापीड़ इतने दुर्वृत्त हो गये कि एक क्षण भी स्त्रियोंको बिना देखे उन्हें चैन नहीं पड़ता था। जो राजा सर्वदा दिग्विजयमें प्रवृत्त रह कर अपने राज्य बढ़ानेमें लगे रहते थे, ललितापीड उन्हें मूर्ख कहता था। इन दुराचारोंका फल यह निकला कि ललितापीड़के मन्त्री आदि सबोंने अपना अपना पद छोड़ दिया। इस राजाने ब्राह्मणोंको दी हुई वृत्ति छीन ली थी। इस दुराचारी राजाका शासन काश्मीरमें १२ वर्ष तक रहा।

ललितापुर—एक प्राचीन नगर। यहां ललितादेवी विराजित हैं। (कुब्जीत० २२) ललितपुर देखो।

ललिताव्रत (सं० क्ली०) एक प्रकारका व्रत।

ललिताषष्ठी (सं० स्त्री०) भाद्रकृष्ण षष्ठी। जिस तिथिको स्त्रियां पुत्रकी कामनासे या पुत्रके हितार्थ ललिता देवी (पार्वती)का पूजन करती हैं और व्रत रहती हैं उसीका नाम ललिताषष्ठी है। पूजा कुश और पलाशकी टहनी पर सिंदूर आदि चढ़ा कर होती है।

ललितासप्तमी (सं० स्त्री०), ललिताख्या सप्तमी। भाद्रमासका शुक्लसप्तमी व्रतविशेष। उक्त सप्तमी-तिथिमें व्रतका अनुष्ठान किया जाता है, इसलिये इस व्रतका नाम ललितासप्तमीव्रत है। इसे कुक्कुटीव्रत भी कहते हैं।

ललितोपमा (सं० स्त्री०) एक अर्थालङ्कार। इसमें उपमेय और उपमानकी समता जतानेके लिये सम, समान, तुल्य लौं, इव आदिके वाचक पद न रख कर ऐसे पद लाये जाते हैं जिनसे बराबरी, मुकाबला, मित्रता, निरादर, ईर्ष्या इत्यादि भाव प्रकट होते हैं।

ललित्थ—पुराणानुसार एक प्राचीन जनपद। (मार्क०५७।३७)

ललिथ (सं० पु०) जातिविशेष।

लली (हिं० स्त्री०) १ लड़कोंके लिये प्यारका शब्द। २ दुलारी लड़की, लाड़ली लड़की। ३ नायिकाके लिये प्यारका शब्द, प्रेमिका।

ललीतिका (सं० स्त्री०) एक प्राचीन तीर्थ। यह चम्पा जनपदमें अवस्थित है। (भारत३।८४।१२६)

लल्यान (सं० क्ली०) एक प्राचीन जनपद। (राजतर० ६।१८३)

लल्ल—भारतीय एक प्राचीन ज्योतिषी। इसका सिद्धान्त आर्य ज्योतिषमें बड़े आदरसे देखा जाता है।

लल्ल—विधानमालाके प्रणेता। ढुंढिराज लल्लोपाध्य नामक और एक पद्धतिकार देखे जाते हैं। इनका रचा मृतपत्नीकाधान, स्वर्गद्वारेप्रिसतप्रयोग और होतसामान्य ग्रन्थ देखनेसे बोध होता है, कि दोनों एक व्यक्ति थे।

लल्ल—ज्योतिषरत्नकोष, गणिताध्याय और गोलाध्याय तथा शिष्यधीवृद्धिद-महातन्त्र नामक ज्योतिर्ग्रन्थके रचयिता त्रिविक्रम भट्टके पुत्र। भास्कराचार्यने सिद्धान्तशिरोमणिके शेषोक्त ग्रन्थमें उल्लेख किया है।

ललचन्द—छिन्दवंशीय एक राजा। ये मलहनके पुत्र और पैरयर्माके पौत्र थे। इनकी माता अणहिला चुलुकीश्वरवंशकी थीं।

लल्लवाराहसुत (सं० पु०) १ लल्ल तथा वाराहके पुत्र। २ नक्षत्रसमुच्चयके प्रणेता।

लल्लादीक्षित—मृच्छकटिकटीकाके रचयिता। ये लक्ष्मणके पुत्र और शङ्कर दीक्षितके पौत्र थे। इन्होंने १८२१ ई०में उक्त ग्रन्थ संकलन किया।

लल्लियशाही—काबुलके शाही-वंशीय एक हिन्दू राजा। इनका दूसरा नाम था कमलुक। उद्भाण्डपुरमें इनकी राजधानी थी। राजतरङ्गिणीमें लिखा है, कि महाराज प्रभाकरदेवके मन्त्री गोपालवर्म्माने इनके पुत्र तोरमाणको सिंहासनच्युत किया था। ये खुरासान-पति आमरु इवन-लेईके समसामयिक थे।

लल्लूजी लाल—एक हिन्दी ग्रन्थकार।

लल्लो (हिं० स्त्री०) जीभ, जुबान।

लल्लोचप्पो (हिं० स्त्री०) चिकनी चुपड़ी बात जो केवल किसीको प्रसन्न करनेके लिये कही जाय, ठकुरसुहाती।

लव (सं० क्ली०) लू-अप्। १ जातीफल। २ लवङ्ग। ३ लामज्जक, उशराङ्कुश नामका तृण। ४ ईषत्, बहुत थोड़ी मात्रा। (पु०) लवणमिति लू-अप्। ५ लेश। ६ विनाश। ७ छेदन, कटाई। ८ कालका एक मान, दो काष्ठा अर्थात् छत्तीस निमेषका अल्प समय। कुछ लोग एक निमेषके साठवें भागको लव मानते हैं। ६ पक्षिभेद, लवा नामकी चिड़िया। १० ऊन, बाल या पर जो पशु पक्षियोंके शरीरसे कतर कर निकाले जाते हैं। ११ गोपुच्छलोम, सुरागायकी पूंछके बाल जो चँवर बनानेके लिये कतरे जाते हैं।

लव—रामचन्द्रके पुत्र। रामायणके उत्तरकाण्डमें लिखा है, कि रामचन्द्रने सीतादेवीकी गर्भावस्थामें लोकापवादसे भय खा कर उन्हें छोड़ देनेके लिये लक्ष्मणको आज्ञा दी। लक्ष्मण उनकी आज्ञाका पालन करते हुए सीताको ले कर वाल्मीकिके तपोवनमें छोड़ आये। यहां सीताके यमज दो सन्तान उत्पन्न हुए। इन दो पुत्रोंका नाम लव और कुश पड़ा। वाल्मीकिने इन्हें रामायणका गान सिखा दिया था। जब इन्होंने रामचन्द्रकी सभामें आ कर यह गाना सुनाया, तब रामने इन्हें पहचाना।

सीता और राम शब्द देखो।

लवक (सं० पु०) १ छेदक, वह जो छेद करता हो। २ द्रव्यभेद।

लवङ्ग (सं० क्ली०) लुनाति श्लेष्मादिकमिति लु (वरत्यादिभ्यश्च। उण् १।११६) इति अङ्गच्। स्वनामख्यात वणिक् द्रव्यभेद, लौंग। भिन्न भिन्न देशमें यह भिन्न भिन्न नामसे प्रसिद्ध है। यथा—महाराष्ट्र और कलिङ्ग—लवङ्गकलिका, लविङ्ग; तामिल—किरम्बेर, किराम्बु; इलयङ्ग—करम्बु, करयाम्प इलम्बु; तैलङ्ग—लवङ्गलु; द्राविड़—लवङ्ग मलयालम्—कराम्बु; शिङ्गापुर—करल; पारस्य—मेखक्, वङ्गाल—लङ्ग, लवङ्ग। संस्कृत पर्याय—देवकुसुम, श्रीप्रसून, लवङ्गक, लवङ्गकलिका, दिव्य, शेखर, लव, श्रीपुष्प, रुचिर, वारिसम्भव, भृङ्गार, जीर्णपुष्प, चन्दनपुष्प।

इसके वृक्ष मलवार, अफ्रिकाके समुद्र तट पर, अंजीबार, मलाया, जावा आदिमें होते हैं। लवङ्गकी खेतीके लिये काली मिट्टी और विशेषतः वह मिट्टी जो ज्वालामुखीकी राख हो या जिसमें बालू मिला हो, अच्छी

६ एक वर्णवृत्त। इसके प्रत्येक चरणमें तगण, भगण, जगण और रगण होते हैं।

ललितातन्त्र (सं० क्ली०) एक प्रकारका तन्त्र।

ललितातृतीयाव्रत (सं० क्ली०) एक प्रकारका योषिद्व्रत।

ललितादित्य—काश्मीरके एक राजा। काश्मीरराज तारापीड़के परलोक सिधारने पर ये काश्मीरके सिंहासन पर बैठे। जिस समय राजा तारापीड़का स्वर्गवास हुआ, उस समय ललितादित्य काश्मीरके अन्तर्गत काश्मीरके एक शासक थे। ललितादित्यको स्वप्नमें भी यह विश्वास नहीं था, कि मुझे समस्त काश्मीरके शासनका भार मिलेगा।

काश्मीरके सिंहासन पर बैठते ही ललितादित्यने समूचे जम्बूद्वीपको अपने कब्जेमें कर लिया। दिग्विजयके लिये जब ये युद्ध यात्रा करते थे, तब डर कर शत्रुदल उनके अधीन हो जाता था।

ललितादित्यने कान्यकुब्जराज यशोवर्मा पर हमला किया था। अगणित सेना इकट्ठी कर यशोवर्मा रणभूमिमें उतरे। किन्तु यशोवर्माकी अगणित सेना राजा ललितादित्यके प्रतापानलमें भस्म हो गई। अन्तमें यशोवर्मा दूसरा कोई उपाय न देख रणक्षेत्रसे भाग गये। इन्हीं कन्नौजपति राजा यशोवर्माकी सभामें भवभूति आदि महाकवि थे। कन्नौज अधिकार करनेके बाद राजा ललितादित्य पूर्वकी ओर दिग्विजयमें आगे बढ़े। इसी प्रकार इन्होंने दिग्विजय-यात्रा करके अपनी प्रभुता विस्तृत कर दी। दिग्विजयमें इन्हें जो धन प्राप्त हुआ था, उससे इन्होंने कई मन्दिर अग्रहार आदि बनवाये थे। इन्होंने परिहासपुर नामक एक नगर बसाया था और उसमें इन्द्रध्वज नामका एक कीर्त्तिस्तम्भ प्रतिष्ठित किया था। यह स्तम्भ पत्थरका था और ५४ फुट ऊंचा था। इन्होंने ३६ वर्ष ७ महीने ११ दिन राज्य किया था।

ललितादित्य २य—काश्मीरके एक राजा।

ललितादित्यपुर (सं० क्ली०) ललितादित्य द्वारा प्रतिष्ठित एक नगर।

ललितापञ्चमी (सं० स्त्री०) आश्विन महीनेकी शुक्ला पञ्चमी। इसमें ललितादेवी (पार्वती)की पूजा होती है।

ललितापीड़—काश्मीरके एक राजा। ये जयापीड़की रानी दुर्गाके गर्भसे उत्पन्न हुए थे। ललितापीड़ बड़े ही इन्द्रियपरायण थे। राजकार्यकी ओर उनका कुछ भी ध्यान न था। इनके राज्यकालमें दुराचारकी वृद्धि हुई थी और वेश्याओंकी प्रधानता हो गई थी। इनके मारको पिता जयापीड़ने पापकर्मोंके द्वारा जो धन संचय किया था, इस समय पुत्र ललितापीड़ उसका उचित व्यय करने लगे। धूर्त्त दुराचारियोंने राजाको वेश्या-विद्यामें निपुण कर दिया। वीर अथवा पण्डितोंका आदर करना ये एकदम भूल गये। भडुओं और मसखरों ही का आदर दरबारमें होता था। ललितापीड़ इतने दुर्वृत्त हो गये कि एक क्षण भी स्त्रियोंको बिना देखे उन्हें चैन नहीं पड़ता था। जो राजा सर्वदा दिग्विजयमें प्रवृत्त रह कर अपने राज्य बढ़ानेमें लगे रहते थे, ललितापीड़ उन्हें मूर्ख कहता था। इन दुराचारोंका फल यह निकला कि ललितापीड़के मन्त्री आदि सबोंने अपना अपना पद छोड़ दिया। इस राजाने ब्राह्मणोंको दी हुई वृत्ति छीन ली थी। इस दुराचारी राजाका शासन काश्मीरमें १२ वर्ष तक रहा।

ललितापुर—एक प्राचीन नगर। यहां ललितादेवी विराजित हैं। (ब्रह्मखण्ड० २२) ललितपुर देखो।

ललिताव्रत (सं० क्ली०) एक प्रकारका व्रत।

ललिताषष्ठी (सं० स्त्री०) भाद्रकृष्णा षष्ठी। जिस तिथिको स्त्रियां पुत्रकी कामनासे या पुत्रके हितार्थ ललिता देवी (पार्वती)का पूजन करती हैं और व्रत रहती हैं उसीका नाम ललिताषष्ठी है। पूजा कुश और पलाशकी टहनी पर सिंदूर आदि चढ़ा कर होती है।

ललितासप्तमी (सं० स्त्री०) ललिताख्या सप्तमी। भाद्रमासका शुक्लसप्तमी व्रतविशेष। उक्त सप्तमी-तिथिमें व्रतका अनुष्ठान किया जाता है, इसलिये इस व्रतका नाम ललितासप्तमीव्रत है। इसे कुक्कुटीव्रत भी कहते हैं।

ललितोपमा (सं० स्त्री०) एक अर्थालङ्कार। इसमें उपमेय और उपमानकी समता जतानेके लिये सम, समान, तुल्य लौं, इव आदिके वाचक पद न रख कर ऐसे पद लाये जाते हैं जिनसे बराबरी, मुकाबला, मित्रता, निरादर, ईर्ष्या इत्यादि भाव प्रकट होते हैं।

ललित्थ—पुराणानुसार एक प्राचीन जनपद।

(मार्क०५७।३७)

ललिथ (सं० पु०) जातिविशेष।

लली (हिं० स्त्री०) १ लड़कीके लिये प्यारका शब्द। २ दुलारी लड़की, लाड़ली लड़की। ३ नायिकाके लिये प्यारका शब्द, प्रेमिका।

ललोतिका (सं० स्त्री०) एक प्राचीन तीर्थ। यह चम्पा जनपदमें अवस्थित है। (भारत३।८४।१२६)

लल्यान (सं० क्ली०) एक प्राचीन जनपद।

(राजतर० ६।१८३)

लल्ल—भारतीय एक प्राचीन ज्योतिषी। इसका सिद्धान्त आर्य ज्योतिषमें बड़े आदरसे देखा जाता है।

लल्ल—विधानमालाके प्रणेता। ढुंढिराज लल्लोपाध्य नामक और एक पद्धतिकार देखे जाते हैं। इनका रचा मृतपत्नीकाधान, स्वर्गद्वारेष्टिसत्रप्रयोग और होत्रसामान्य ग्रन्थ देखनेसे बोध होता है, कि दोनों एक व्यक्ति थे।

लल्ल—ज्योतिषरत्नकोष, गणिताध्याय और गोलाध्याय तथा शिष्यधीवृद्धिद-महातन्त्र नामक ज्योतिर्ग्रन्थके रचयिता त्रिविक्रम भट्टके पुत्र। भास्कराचार्यने सिद्धान्तशिरोमणिके शेषोक्त ग्रन्थमें उल्लेख किया है।

लल्लचन्द—छिन्दवंशीय एक राजा। ये मलहनके पुत्र और वैरमर्माके पौत्र थे। इनकी माता अणहिला चुलुकीश्वरवंशकी थीं।

लल्लवाराहसुत (सं० पु०) १ लल्ल तथा वाराहके पुत्र। २ नक्षत्रसमुच्चयके प्रणेता।

लल्लादीक्षित—मृच्छकटिकटीकाके रचयिता। ये लक्ष्मणके पुत्र और शङ्कर दीक्षितके पौत्र थे। इन्होंने १८२१ ई०में उक्त ग्रन्थ संकलन किया।

ललियशाही—काबुलके शाही-वंशीय एक हिन्दू राजा। इनका दूसरा नाम था कमलुक। उद्भाण्डपुरमें इनकी राजधानी थी। राजतरङ्गिणीमें लिखा है, कि महाराज प्रभाकरदेवके मन्त्री गोपालवर्म्माने इनके पुत्र तोरमाणको सिंहासनच्युत किया था। ये खुरासान-पति आमर इयन-सेईके समसामयिक थे।

लल्लूजी लाल—एक हिन्दी ग्रन्थकार।

लल्लो (हिं० स्त्री०) जीभ, जबान।

लल्लो चप्पो (हिं० स्त्री०) चिकनी चुपड़ी बात जो केवल किसीको प्रसन्न करनेके लिये कही जाय, ठकुरसुहाती।

लव (सं० क्ली०) लू अप्। १ जातीफल। २ लवङ्ग। ३ लामज्जक, उशीराङ्कुश नामका तृण। ४ ईषत्, बहुत थोड़ी मात्रा। (पु०) लवणमिति लू-अप्। ५ लेश। ६ विनाश। ७ छेदन, कटाई। ८ कालका एक मान, दो काष्ठा अर्थात् छत्तीस निमेषका अल्प समय। कुछ लोग एक निमेषके सातवें भागको लव मानते हैं। ९ पक्षिभेद, लवा नामकी चिड़िया। १० ऊन, बाल या पर जो पशु पक्षियोंके शरीरसे कतर कर निकाले जाते हैं। ११ गोपुच्छलोम, सुरागायकी पूंछके बाल जो चंवर बनानेके लिये कतरे जाते हैं।

लव—रामचन्द्रके पुत्र। रामायणके उत्तरकाण्डमें लिखा है, कि रामचन्द्रने सीतादेवीको गर्भावस्थामें लोकापवादसे भय खा कर उन्हें छोड़ देनेके लिये लक्ष्मणको आज्ञा दी। लक्ष्मण उनकी आज्ञाका पालन करते हुए सीताको ले कर वाल्मीकिके तपोवनमें छोड़ आये। वहां सीताके यमज दो सन्तान उत्पन्न हुए। इन दो पुत्रोंका नाम लव और कुश पड़ा। वाल्मीकिने इन्हें रामायणका गान सिखा दिया था। जब इन्होंने रामचन्द्रकी सभामें आ कर यह गाना सुनाया, तब रामने इन्हें पहचाना।

सीता और राम शब्द देखो।

लवक (सं० पु०) १ छेदक, वह जो छेद करता हो। २ द्रव्यभेद।

लवङ्ग (सं० क्ली०) लुनाति श्लेष्मादिकमिति लु (तरत्यादिभ्यश्च। उण् १।११६) इति अङ्गच्। स्वनामख्यात वणिक् द्रव्यभेद, लौंग। भिन्न भिन्न देशमें यह भिन्न भिन्न नामसे प्रसिद्ध है। यथा—महाराष्ट्र और कलिङ्ग—लवङ्ग-कलिका, लविङ्ग; तामिल—किरम्पेर, किराम्बु; इलवङ्ग—अप्पु, करयाम्प इत्यादि; तैलङ्ग—लवङ्गलु; द्राविड़—लवङ्ग मलयालम्—ग्राम्बु; शिङ्गापुर—करल; पारस्य—मेखक, बङ्गाल—लङ्ग, लवङ्ग। संस्कृत पर्याय—देवकुसुम, श्रीप्रसून, लवङ्गक, लवङ्गकलिका, दिव्य, शेखर, लव, श्रीपुष्प, रुचिर, वारिसम्भव, भृङ्गार, जीर्णकुसुम, चन्दनपुष्प।

इसके वृक्ष मलबार, अफ्रिकाके समुद्र तट पर, जंजीबार, मलाया, जावा आदिमें होते हैं। लवङ्गकी खेतीके लिये काली मिट्टी और विशेषतः वह मिट्टी जो ज्वालामुखीकी राख हो या जिसमें बालू मिला हो, अच्छी

मानी जाती है। पहले इसको पनीरीमें एक एक फुटके फासले पर बो देते हैं। इसका विशेषतः ताजा बीज ही बोया जाता है। चार पांच सप्ताहमें बीज उग आते हैं। पौधे जब चार फुट ऊंचे हो जाते हैं, तब उनको पनीरीसे उखाड़ कर बीस फुटकी दूरी पर बागमें लगाते हैं। जहां यह लगाया जाय, वहांकी भूमि पीली और दोमट होनी चाहिये। मटियार, बालू या दलदलमें इसकी खेती नहीं होती। यदि काली मिट्टीमें बालू मिला हो और उसके नीचे पीली मिट्टी तथा कङ्कड़ पड़ जाय, तो लवङ्गका पेड़ बहुत शीघ्र बढ़ता है। बहुत घनी छाया पौधेको हानी पहुंचाती है। पनीरी बैठानेके समय प्रायः वर्षाका आरम्भ है। बैठाये हुये पौधेको दो तीन वर्ष तक धूपसे बचानेके लिये प्रायः छायाकी जरूरत पड़ती है। आंधीसे बचानेके लिये इसके बागको घनी भाड़ीसे घेराई करनेकी आवश्यकता होती है। कभी कभी इसमें आवश्यकतानुसार पानी भी दिया जाता है। तीसरे वर्ष इसके ऊपरसे छाजन हटा ली जाती है। छठे वर्षसे फूल आने लगता है। बारहवें वर्ष पौधा खूब खिलता है और बीस पचीस वर्ष तक फूलता रहता है। इसके बाद फूल कम आने लगते हैं। कलियां पहले हरी रहती हैं; फिर पीली और अन्तको गुलाबी रंगकी हो जाती हैं। यही उनके तोड़नेका समय है, ये कलियां या तो बंधी हुई चुन ली जाती हैं अथवा लकड़ियोंसे पीट कर नीचे गिरा दी जाती हैं और फिर उनको इकट्ठा करके सुखा लिया जाता है। यही लवङ्ग है जो बाजारोंमें बिकता है। कुछ कलियां जो पेड़ोंमें रह जाती हैं, बढ़ कर फूल जाती हैं। फूल जब झड़ जाते हैं, तब नीचेका भाग फूल कर छोटी सी घुंघीके आकारका हो जाता है जिसमें एक या दो दाने होते हैं। यही घुंडी बोनेके काममें आती है। लवङ्गकी कलम भी उसकी डालीको मिट्टीमें दबानेसे तैयार की जाती है। डेढ़ दो महीनेमें उसमें जड़ें निकल आती हैं। इस प्रकारकी कलम जल्दी फूलने लगती है।

लवङ्गके भपकेसे एक प्रकारका सुगंधित तेल निकलता है। यह तेल वर्णहीन तथा कभी कभी हल्दी रंग-सा धुंधरा जाता है। सुगन्धित द्रव्य (*Perfumery*) तथा चर्बी, साबन और शराबकी गंध बढ़ानेमें इसका व्यवहार होता है। जर्मनराज्यमें कार्बलिक एसिडके साथ यह मिलाया जाता है। ४ औंस लवङ्गका तेल एक गेलन स्पिरिटमें मिलानेसे लवङ्गसार (essence of gloves) बनता है।

बेनकुलेन, पिनां, आम्बयना और जंजीबारका लवङ्ग सबसे उमदा होता है। औषधमें जो सब लवङ्ग व्यवहृत होते हैं उनकी गंध बड़ी कड़ी होती है। नाखूनसे दबाने पर उनमेंसे तेल निकल आता है। भारतवर्षके बाजारोंमें जो सब लवङ्ग पाये जाते हैं वे पुराने पेड़के हैं। इस कारण किसी विशेष कार्यमें उनका व्यवहार नहीं होता। आकृति, वर्ण और आभ्यन्तरिक तेलकी परीक्षा करनेसे ही लवङ्गका प्रभेद सहजमें जाना जा सकता है।

लवङ्ग उत्तेजक, वायुनाशक और उत्कृष्ट गंधयुक्त होता है। दीर्घकालस्थायी उदरामयमें, पाकस्थलीकी वेदनामें तथा गर्भावस्थामें जो लगातार वमन होता रहता है, उसमें यह विशेष उपकारक है। डा० पेरसलिने शारीरिक अवसन्नता और अजीर्ण रोगमें दिनको दो या तीन बार लवणका काढ़ा सेवन करनेकी व्यवस्था दी है। उनके मतसे आध पाइंट गरम जलमें १ ड्राम लवङ्गचूर्णको सिद्ध कर १ या २ औंस प्रतिवार सेवन करना चाहिये। स्नायविक दुर्बलता और अग्निमान्द्यमें विशेषता और लवणका काथ विशेष उपकारप्रद है। इससे प्यास, वमन, उदराध्मान और पेटकी वेदना निवृत्त होती है। गेठियावात, शिरःपीड़ा और दन्तशूलमें लवङ्गतैल लगानेसे बहुत लाभ पहुंचता है। हकीमी मतसे इसका गुण उत्तेजक और श्लेष्मानाशक, विषनाशक तथा मस्तिष्क स्निग्धकारक माना गया है। यह चक्षुरोगमें हितकर, हृदयका वावना-निवारक, बलकर और पुष्टिवर्द्धक है।

तांबेके बरतनमें अथवा पत्थर पर मधुके साथ लवङ्ग घिस कर आंखके पलक पर लगानेसे पानीका गिरना और योजकत्वग्शोथ (Conjunctivitis) बंद हो जाता है। लवङ्गको दीयेकी बत्तीमें जला कर खानेसे खुसखुसी खांसी दूर होती है। व्यञ्जनादिमें गरम मसालेके साथ और पानमें लवङ्ग सिद्ध कर खानेकी व्यवस्था बङ्गालमें अधिक प्रचलित है।

अंगरेजी भैषज्यतत्त्वमें लवङ्ग-तैल विशेष Oleum Garysphylli नामसे प्रसिद्ध है। रासायनिक प्रक्रियाकी विशेष परीक्षा द्वारा इसमें Eugenol या Eugenic acid, Salicylic acid, Caryophyllic acid, Carmufellic acid और सामान्य मात्रामें tannic acid पाया गया है।

प्रति वर्ष ११०१८४१ रु० लवङ्गकी जंजीवार, आदेन और भारतीय द्वीपपुञ्जोंसे बङ्गाल, बम्बई और मान्द्राजमें आमदनी तथा यहांसे इङ्गलैण्ड और स्काटलैण्ड, होंकों, ष्ट्रेटसेटलमेण्ट, एशियास्थ तुरुष्क, आदेन, फ्रान्स और अन्यान्य देशोंमें ३६७२४६, रु०की रफ्तनी होती है।

वैद्यकके मतसे इसका गुण—शीतल, तिक्त, कटु, नेत्रहितकर, दीपन, पाचन, रुचिकर, कफ, पित्त और अस्रदोषनाशक, तृष्णा, छर्दि, आध्मान तथा शूल आशुविनाशक, कास, श्वास, हिक्का और क्षयनाशक।

(भावप्र० राजनि०)

"विरहानलसन्तप्ता तापिनी कापि कामिनी।
लवङ्गानि समुत्सृज्य मह्यो राहवं ददौ ॥" (उद्भट)

लवङ्गक (सं० क्ली०) लवङ्ग स्वार्थे कन्। लवङ्ग, लौंग।

लवङ्गकन्दपत्री (सं० स्त्री०) लघु तालीशपत्र, छोटा तेजपत्ता।

लवङ्गकलिका (सं० स्त्री०) लवङ्ग, लौंग।

लवङ्गलता (सं० स्त्री०) १ लौंगका पेड़ या उसकी शाखा। २ राधिकाकी एक सखीका नाम। ३ प्रायः समोसेके आकारकी एक बंगला मिठाई। इसमें ऊपरसे एक लौंग खोसा हुआ होता है और इसके अन्दर कुछ मेवे और मसाले आदि भरे होते हैं।

लवङ्गादि (सं० पु०) अजीर्णरोगका एक औषध। प्रस्तुत प्रणाली—लवङ्ग, सोंठ, मिर्च और सोहागा, बराबर बराबर भाग ले कर अच्छी तरह चूर्ण करे। पीछे अपामार्ग और चितेके रसमें ७ बार भावना दे। अग्निके बलाबलके अनुसार उपयुक्त मात्रामें इस औषधका सेवन करनेसे अजीर्णरोग दूर होता है। भैषज्यरत्नावलीमें इसकी मात्रा एक रत्ती बताई है।

लवङ्गादिचूर्ण (सं० क्ली०) ग्रहणीरोगाधिकारोक्त चूर्णौषधविशेष। यह चूर्ण स्वल्प और वृहद्के भेदसे दो प्रकारका है। प्रस्तुत प्रणाली—स्वल्पलवङ्गादि चूर्ण—लवङ्ग, अतीस, मोथा, बेलसोंठ, अकवन, मोचरस, जीरा, धयफल, लोध, इन्द्रजौ, अतिबला, धनिया, सफेद धूना, कर्कटशृङ्गी, पीपल, सोंठ, वराक्रान्ता, यवक्षार, सैन्धवलवण और रसाञ्जन इन्हें बराबर बराबर भाग ले कर अच्छी तरह पीसे और एक साथ मिला दे। इस चूर्णकी मात्रा १० रत्तीसे २० रत्ती, अनुपान चावलका पानी, मधु या बकरीका दूध कहा है। इस चूर्णका सेवन करनेसे अग्निमान्द्य, ग्रहणी और अतीसार आदि उदररोग नष्ट होते हैं। वृहल्लवङ्गादि चूर्ण—लवङ्ग, अतीस, मोथा, पीपल, मरिच, सैन्धव, हबूरा, धनिया, कायफल, कुट, जयित्री, जायफल, मंगरैला, सचललवण, नागेश्वर, चितामूल, विट्लवण, तितलौकी, बेलसोंठ, दारचीनी, इलायची, रसाञ्जन, धयफूल, मोचरस, आकनादि, तेजपत्र, तालीशपत्र, पीपल-मूल, वनयमानी, यमानी, वराक्रान्ता, इन्द्रजौ, सोंठ, अनारके फलका छिलका, यवक्षार, नीमका छिलका, सफेद धूना, साचिक्षार, समुद्रफेन, सोहागेका लावा, अतिबला, कुरजमूलका छिलका, जामुनका छिलका, आमका छिलका, कटकी, अबरक, लोहा, गन्धक और पारा प्रत्येकका समान चूर्ण। इन्हें अच्छी तरह चूर्ण कर एक साथ मिलाये। अनुपान मधु और चावलका पानी है। इसके सेवनसे ग्रहणी, अतिसार और प्रदर आदि रोग नष्ट होते हैं।

दूसरा तरीका—लवङ्ग, जीरा, रेणुक, सैन्धव, दारचीनी, तेजपत्र, इलायची, वनयमानी, यमानी, मोथा, त्रिकटु, त्रिफला, सोयां, आकनादि, चिरायता, गोखरू, जैसी, जायफल, दारुहरिद्रा, जटामांसी, रक्तचन्दन, मुरामांसी, कचूर, सौंफ, मेथी, सोहागेका लावा, मंगरैला, यवक्षार, साचिक्षार, अतिबला, बेलसोंठ, कुट, चितामूल, पीपलमूल विड़ङ्ग, धनिया, पारा, अबरक, गन्धक और लोहा, समान भाग चूर्ण ले कर एक साथ मिलाये। मात्रा एक माशेसे ले कर क्रमशः अ.ध तोले तक बढ़ानी चाहिये। यह चूर्ण अत्यन्त अग्निवृद्धिकारक और ग्रहणीरोगनाशक है। इसके सिवा अन्यान्य उदररोगमें भी यह विशेष उपकारी है। (भैषज्यरत्ना० ग्रहणीरोगाधि०)

३ स्त्रीरोगाधिकारोक्त औषधभेद। प्रस्तुत प्रणाली-लवङ्ग, सोहागेका लावा, मोथा, धवफूल, बेलसोंठ, धनिया, जायफल, सफेद धूना, सोयाँ, अनारके फलका छिलका, जीरा, सैन्धव, मोचरस, सुन्दिमूल, रसाञ्जन, अबरक, रांगा, वराक्रान्ता, रक्तचन्दन, सोंठ, अतसी, कर्कटश्रृङ्गी, गेरु और अतिबला समभाग चूर्ण कर एक साथ मिलावे। अनुपान बकरीका दूध बताया है। गर्भावस्थामें संग्रहग्रहणी, अतिसार, ज्वर और आमरक्तातिसार होनेसे इसका प्रयोग करना चाहिये। इस चूर्णको अंगरैयेके रसमें भिगो कर तीन दिन तक भावना देनी होती है।

४ गुल्मरोगाधिकारोक्त औषधभेद। प्रस्तुत प्रणाली—लवङ्ग, निसोथका मूल, दन्तीमूल, यमानी, सोंठ, वच, धनिया, चितामूल, त्रिफला, पीपल, कटकी, द्राक्ष, यवं, गोखरू, यवक्षार, इलायची, वनयमानी (अजमोदा) और इन्द्रजौ इन्हें चूर्ण कर २ तोला भर गरम जलके साथ सेवन करे। इससे सभी प्रकारके गुल्म, अर्श, शोथ आदि नष्ट होते हैं।

लवङ्गादिवटी (सं० स्त्री०) १ अग्निमान्द्यरोगाधिकारोक्त औषधभेद। प्रस्तुतप्रणाली—लवङ्ग, सोंठ, मरिच और सोहागेका लावा बराबर बराबर चूर्ण ले कर तथा अपामार्ग और चितामूलके काढ़ेमें भावना दे कर एक रत्तीकी गोली बनावे। इसके सेवनसे मांस आदि कड़ी वस्तु पच जाती है। (भैषज्यरत्ना० अग्निमान्द्याधि०)

२ अजीर्ण-रोगाधिकारोक्त औषधविशेष। प्रस्तुत प्रणाली—लवङ्ग, जातीफल, धनिया, कुट, सफेद जीरा, बहेड़ा, इलायची, दारचीनी, सोहागा, कौड़ीकी भस्म, मोथा, वच, अजवायन, विट्लवण, सैन्धवलवण, प्रत्येक एक भाग। पारा, गंधक, लोहा, अबरक, प्रत्येक आधा भाग, इन सब चूर्णोंको एकत्र कर पानके साथ गोली बनावे। इसका अनुपान गरम जल बताया गया है। इसके सेवनसे ग्रहणी, आमदोष, पेटकी वेदना, प्रवाहिका, ज्वर, कफानिलशूल, कुष्ठ, भम्म, पित्त, प्रबलवायु, मन्दाग्नि और कोष्ठगतवात आदि रोग जल्द दूर होते हैं।

(रसेन्द्रसा० अजीर्णरोगाधि०)

लवण (सं० क्ली०) लुनाति जाड्यमिति लु-नन्द्यादित्वात् ल्यु, पृषोदरादित्वात् णत्वं। क्षाररसयुक्त द्रव्य, नमक। विभिन्न स्थानीय नाम। बम्बई—नमक, मीमक; मराठी—मीठा, गुर्जर—मिठु, तामिल—उप्पु; तेलगू—लवणम्, उप्पु; कनाड़ी—उप्पु; मलयालम्—उप्पु, लवणम्; ब्रह्म—श; सिङ्गापुर—तुणु; अरब—मिलहुल आजिन, पारस्य—नमक, नामके, खुर्दानि, तुमके तायाम्; चव—उया; चीन येन्; अङ्गरेजी—Sea-salt, common salt, table-salt; फरासी—Sel Commun sel de Cuisine, sel Marin; जर्मन—Chlornatrium Kochsalz; डेनमार्क और स्वीडन—Salt, इटली—Chloruro-di-Sodio, Sal commune, स्पेन—Sal।

भारतमें प्रधानतः दो प्रकारके लवणका व्यवहार देखा जाता है। पहला सादा लवण (Sodium chloride) और दूसरा कृष्ण लवण या विट् लवण। विट् लवणमें साधारण लवणका भाग रहने पर भी उसमें अन्यान्य द्रव्य मिला रहता है। इस कारण वह बहुत कुछ भेषजगुणयुक्त है। स्थान विशेषमें उस गुणमें कमी वेशी देखी जाती है। साधारणतः विट्लवणमें Sulphuret of iron पाया जाता है। लौहादि और कार्बनेट अव सोडियमको गरम कर उसमें आंवला और हर्रे मिलानेसे जो गुण पाया जाता है, विट्लवणमें प्रधानतः वही गुण रहता है।

हिन्दूगण स्मरणातीत कालसे ही लवणका व्यवहार जानते थे। अथर्ववेद ७।७६।१, आश्वलायनश्रौतसूत्र २।१६।२४, छान्दोग्य उपनिषद् ४।१०।७, शतपथब्राह्मण १४।५।४।१२, आश्वलायन गृह्यसूत्र १।८।१०, गोभिल २।३।१३ आदि प्राचीन ग्रन्थोंमें लवणका बहुल-प्रचार देखा जाता है। महामुनि सुश्रुतने स्वकृत आयुर्वेदशास्त्रमें लवणके निम्नोक्त भेद बतलाये हैं।

सुश्रुतमें लिखा है, कि सैन्धव, सामुद्र, विट्, सौवर्च्चल, रोमक और उद्भिद आदि लवण पराक्रमसे उष्ण, वायुनाशक, कफ और पित्तकर तथा पूर्वक्रमसे स्निग्ध, स्वादु और मलमूत्रका सञ्चयकर है। सैन्धव, सच्छ, विट्, पाक्य, साम्भर, सामुद्र, पक्तिम, यवक्षार, उषक्षार और सुवर्चिका आदि लवणवर्ग है।

इनका गुण—लवणरस, पाचक और संशोधक है। इससे रसोंका विश्लेषण तथा शरीरका क्लेद और शैथिल्य

साधित होता है। इन सब रसोंका विरोधी उष्णगुणयुक्त और मार्गविशोधक तथा शरीरांशका कोमलतासाधक है। यह रस अधिक मात्रामें सेवन करनेसे शरीरमें खुजली होती, गोल गोल चकत्ते पड़ जाते, मुख और नेत्रमें फोड़े निकलते, रक्तपित्त और वातरक्त दोष होता, पुरुषत्वकी हानि होती तथा खट्टी डकार आती है।

सैन्धवलवण—चक्षुका हितकर, मुखप्रिय, रुचिकर, लघु, अग्निवृद्धिकर, स्निग्ध, मधुररस, वृष्य, शीतल, दोषनाशक तथा उक्त सभी प्रकारके लवणसे उत्कृष्ट और फलदायक होता है।

सामुद्रलवण—परिपाकमें मधुर, अल्प उष्ण, अविदाही, भेदक, ईषत् स्निग्ध, शूलनाशक और अल्पपित्तवर्द्धक होता है।

सौवर्चललवण—परिपाकमें लघु, उष्णवीर्य, विशद, कटु, गुल्म, शूल और विबन्धनाशक, मुखप्रिय, सुरभि और रुचिकर माना गया है।

रोमक (पांशुलवण)—तीक्ष्ण, अतिशय उष्ण, स्त्रीसंसर्गशक्तिका वर्द्धन कर, पाकमें कटु, वायुनाशक, लघु, विस्यन्दी, सूक्ष्म, मलभेदक और मूत्रकर होता है। औद्भिद लवण लघु, तीक्ष्ण, उष्ण, हृदय और श्लेष्मसञ्चयकर, वायुका अनुलोमकारी, तिक्त और कटु माना जाता है। गुटिकालवण कफ, वायु और कृमिशान्तिकर, लेखनकर, पित्तवर्द्धक, अग्निकर, पाचक और भेदक होता है। उपक्षार (क्षारमृत्तिकासम्भूत लवण)—यह वालुकेय अर्थात् वालुकाजातके मूलदेशस्थ आकरसे उत्पन्न होता तथा कटु और छेदनकर माना जाता है।

इन सब लवणोंमेंसे सैन्धव, सौवर्चल, विट्, सामुद्र और साम्भर इन पांचोंको पञ्चलवण कहते हैं। एक लवण कहनेसे सैन्धव, द्विलवण कहनेसे सैन्धव और सचल, त्रिलवणसे सचल और विट्, चतुर्लवणसे सैन्धव, सचल विट् और सामुद्र तथा पञ्चलवण कहनेसे पूर्वोक्त पांच लवण जानना होगा। किन्तु चरकमें पञ्चलवणकी जगह साम्भर लवणके बदलेमें औद्भिद लवण माना गया है।

(सुश्रुत सूत्रस्था० ४६ अ०)

संस्कृत ग्रन्थमें जिस प्रकार सैन्धव अर्थात् सिन्धुदेशजात पार्वत्य लवण (Rock-Salt), समुद्र अर्थात् सूर्यके उत्तापसे सुखाया हुआ समुद्रजलज लवण या करकच, रोमक अर्थात् रुमानदी जलजात तथा शाकम्भरी या शाम्भर ह्रदजात लवण, पांशुज और ऊषासुत अर्थात् लवणाक्त मृत्तिकासे उत्पन्न लवण, विट्लवण, सौवर्च्चल, या सोञ्चल अर्थात् काला नमक, उद्भिद् अर्थात् रेहा या कालर लवण तथा गुटिक आदि लवणोंका उल्लेख है, उसी प्रकार वर्त्तमान रसायन-विज्ञानमें साधारण लवणके भी (Sodium chloride) दो विभाग हैं। वे साधारणतः Rock-Salt और Sea-salt नामसे प्रसिद्ध हैं। किन्तु भारतवर्षमें इसके सिवा Marsh Salt और Earth Salt नामक और भी दो श्रेणीभेद बताये गये हैं।

भारतवासी जनसाधारण खाद्यद्रव्यके साथ प्रधानतः जितने प्रकारके लवणोंका व्यवहार करते हैं। नीचे उसकी एक तालिका दी गई है—

१ पञ्जाबी सैन्धव (लाहोरी और सैन्धवलवण)—यह सिन्धुनदके दक्षिणमें पाया जाता है। 'कोहाटी' और निमक-सख्त नामक दोनों प्रकारके लवण सिन्धुनदके पश्चिमोत्तर भागमें पाये जाते हैं। अलावा इसके हिमालय प्रदेशके मण्डिराज्यसे एक और प्रकारके नमककी आमदनी होती है।

२ दिल्लीका "सुलतानपुरी" लवण—यह दिल्लीकी लवणाक्त मिट्टीकी खान (Pit-brine Salt)से निकाला जाता है।

३ शाम्भर लवण—राजपूतानाके शाम्भरह्रदके जलसे प्रस्तुत होता है।

४ दिग्दलवण—राजपूतानाके दिद्वयना विभागकी मिट्टीसे तैयार होता है।

५ कौड़िया-लवण—राजपूतानाके पञ्चभद्रा नामक स्थानकी मिट्टीसे उत्पन्न होता है। मध्यभारतमें भी यह लवण प्रचलित है।

६ फलौदी लवण—राजपूतानाके फलौदी प्रदेशकी मिट्टीसे उत्पन्न।

७ बरागड़ा-लवण—बम्बई प्रेसिडेन्सीके गुजरात विभागमें प्रस्तुत होता है।

३ ग्रहणीरोगाधिकारोक्त औषधभेद। प्रस्तुत प्रणाली-लवङ्ग, सोहागेका लावा, मोथा, धवफूल, बेलसोंठ, धनिया, जायफल, सफेद धूना, सोयाँ, अनारके फलका छिलका, जीरा, सैन्धव, मोचरस, सुन्दिमूल, रसाञ्जन, अबरक, रांगा, वराक्रान्ता, रक्तचन्दन, सौंठ, अतसी, कर्कट-श्रृङ्गी, गेरु और अनिवला समभाग चूर्ण कर एक साथ मिलावे। अनुपान बकरीका दूध बताया है। गर्भावस्थामें संग्रहग्रहणी, अतिसार, ज्वर और आमरक्तातिसार होनेसे इसका प्रयोग करना चाहिये। इस चूर्णको भंगरैयेके रसमें भिगो कर तीन दिन तक भावना देनी होती है।

४ गुल्मरोगाधिकारोक्त औषधभेद। प्रस्तुत प्रणाली—लवङ्ग, निसोथका मूल, दन्तीमूल, यमानी, सोंठ, वच, धनिया, चितामूल, त्रिफला, पीपल, कटकी, दारु, चई, गोखरू, यवक्षार, इलायची, वनयमानी (अजमोदा) और इन्द्रजौ इन्हें चूर्ण कर २ तोला भर गरम जलके साथ सेवन करे। इससे सभी प्रकारके गुल्म, अर्श, शोथ आदि नष्ट होते हैं।

लवङ्गादिवटी (सं० स्त्री०) १ अग्निमान्द्यरोगाधिकारोक्त औषधभेद। प्रस्तुतप्रणाली—लवङ्ग, सोंठ, मरिच और सोहागेका लावा बराबर बराबर चूर्ण ले कर तथा अपामार्ग और चितामूलके काढ़ेमें भावना दे कर एक रत्तीकी गोली बनावे। इसके सेवनसे मांस आदि कड़ी वस्तु पच जाती है। (भैषज्यरत्ना० अग्निमान्द्याधि०)

२ अजीर्ण-रोगाधिकारोक्त औषधविशेष। प्रस्तुत प्रणाली—लवङ्ग, जातीफल, धनिया, कुट, सफेद जीरा, बहेड़ा, इलायची, दारचीनी, सोहागा, कौड़ीकी भस्म, मोथा, वच, अजवायन, विट्‌लवण, सैन्धवलवण, प्रत्येक एक भाग। पारा, गंधक, लोहा, अबरक, प्रत्येक आधा भाग, इन सब चूर्णोंको एकत्र कर पानके साथ गोली बनावे। इसका अनुपान गरम जल बताया गया है। इसके सेवनसे ग्रहणी, आमदोष, पेटकी वेदना, प्रवाहिका, ज्वर, कफजनितशूल, कुष्ठ, अम्ल, पित्त, प्रबलवायु, मन्दाग्नि और कोष्ठगतवात आदि रोग जल्द दूर होते हैं।

(भैषज्यरत्ना० अजीर्णरोगाधि०)

लवण (सं० क्ली०) लुनाति जाड्यमिति लु-नन्द्यादित्वात् ल्यु, पृषोदरादित्वात् णत्वं। क्षाररसयुक्त द्रव्य, नमक। विभिन्न स्थानीय नाम। बङ्गला—नून, नीमक; मराठी—मीठ, गुजरात—मिठु, तामिल—उप्पू; तेलगू—लवणम्, उप्पू; कनाड़ी—उप्पू; मलयालम्—उप्पू, लवणम्; ब्रह्म—श; सिङ्गापुर—लुणु; अरब—मिल-हुल आजिन, पारस्य- नमक, नामके, खुर्दानि, नुमके तायाम्; चव—उया; चीन येन्; अङ्गरेजी—Sea-salt, common salt, table-salt; फरासी—Sel Commun sel de Cuisine, sel Marin; जर्मन—Chlorantrium Kochsalz; डेनमार्क और स्विस—Salt, इटली—Chloruro-di-Sodio, Sal commune; स्पेन—Sal।

भारतमें प्रधानतः दो प्रकारके लवणका व्यवहार देखा जाता है। पहला सादा लवण (Sodium chloride) और दूसरा कृष्ण लवण या विट् लवण। विट् लवणमें साधारण लवणका भाग रहने पर भी उसमें अन्यान्य द्रव्य मिला रहता है। इस कारण यह बहुत कुछ भेषजगुणयुक्त है। स्थान विशेषमें उस गुणमें कमी बेशी देखी जाती है। साधारणतः विट्‌लवणमें Sulphuret of iron पाया जाता है। क्लोराइड और कार्बनेट अव सोडियमको गरम कर उसमें आंवला और हर्रे मिलानेसे जो गुण पाया जाता है, विट्‌लवणमें प्रधानतः वही गुण रहता है।

हिन्दूगण स्मरणातीत कालसे ही लवणका व्यवहार जानते थे। अथर्ववेद ७।७६।१, आश्वलायनश्रौतसूत्र २।१६।२४, छान्दोग्य उपनिषद् ४।१७।७, शतपथब्राह्मण १४।५।४।१२, आश्वलायन गृह्यसूत्र १।८।१०, गोभिल २।३।१३ आदि प्राचीन ग्रन्थोंमें लवणका बहुल-प्रचार देखा जाता है। महामुनि सुश्रुतने स्वरचित आयुर्वेदग्रन्थमें लवणके निम्नोक्त भेद बतलाये हैं।

सुश्रुतमें लिखा है, कि सैन्धव, सामुद्र, विट्, सौवर्चल, रोमक और उद्भिद् आदि लवण पराक्रमसे उष्ण, वायुनाशक, कफ और पित्तकर तथा पूर्वक्रमसे स्निग्ध, स्वादु और मलमूत्रका सृष्टकर है। सैन्धव, सच्च, विट्, पाक्य, सामार, सामुद्र, पवित्रम, यवक्षार, उपक्षार और सुवर्चिका आदि लवणवर्ग है।

इनका गुण—लवणरस, पाचक और संशोधक है। इससे रसोंका विश्लेषण तथा शरीरका क्लेद और शैथिल्य

संाधित होता है। इन सब रसोंका विरोधी उष्णगुण-युक्त और मार्गविशोधक तथा शरीरांशका कोमलता-साधक है। यह रस अधिक मात्रामें सेवन करनेसे शरीरमें खुजली होती, गोल गोल चकत्ते पड़ जाते, मुख और नेत्रमें फोड़े निकलते, रक्तपित्त और वातरक्त दोष होता, पुरुषत्वकी हानि होती तथा खट्टी डकार आती है।

सैन्धवलवण—चक्षुका हितकर, मुखप्रिय, रुचिकर, लघु, अग्निवृद्धिकर, स्निग्ध, मधुररस, वृष्य, शीतल, दोषनाशक तथा उक्त सभी प्रकारके लवणसे उत्कृष्ट और फलदायक होता है।

सामुद्रलवण—परिपाकमें मधुर, अल्प उष्ण, अविदाही, भेदक, ईषत् स्निग्ध, शूलनाशक और अल्पपित्त-वर्द्धक होता है।

सौवर्चललवण—परिपाकमें लघु, उष्णवीर्य, विशद, कटु, गुल्म, शूल और विबन्धनाशक, मुखप्रिय, सुरभि और रुचिकर माना गया है।

रोमक (पांशुलवण)—तीक्ष्ण, अतिशय उष्ण, स्त्रीसंसर्गशक्तिका वर्द्धनकर, पाकमें कटु, वायुनाशक, लघु, विस्यन्दी, सूक्ष्म, मलभेदक और मूत्रकर होता है। औद्भिद लवण लघु, तीक्ष्ण, उष्ण, हृद्य और श्लेष्म-संचयकर, वायुका अनुलोमकारी, तिक्त और कटु माना जाता है। गुटिकालवण कफ, वायु और कृमिशान्तिकर, लेखनकर, पित्तवर्द्धक, अग्निकर, पाचक और भेदक होता है। उपक्षार (क्षारमृत्तिकासम्भूत लवण)—यह धातुक्षेप अर्थात् बालुकाजातके मूलदेशस्थ आकरसे उत्पन्न होता तथा कटु और छेदनकर माना जाता है।

इन सब लवणोंमेंसे सैन्धव, सौवर्चल, विट्, सामुद्र और साम्भर इन पांचोंको पञ्चलवण कहते हैं। एक लवण कहनेसे सैन्धव, द्विलवण कहनेसे सैन्धव और सचल, त्रिलवणसे सचल और विट्, चतुर्लवणसे सैन्धव, सचल विट् और सामुद्र तथा पञ्चलवण कहनेसे पूर्वोक्त पांच लवण जानना होगा। किन्तु चरकमें पञ्चलवणकी जगह साम्भर लवणके बदलेमें औद्भिद लवण माना गया है।

(सुश्रुत सूत्रस्था० ४६ अ०)

संस्कृत ग्रन्थमें जिस प्रकार सैन्धव अर्थात् सिन्धुदेशजात पार्वत्य लवण (Rock-Salt), समुद्र अर्थात् सूर्यके उत्तापसे सुखाया हुआ समुद्रजलज लवण या करकच, रोमक अर्थात् रुमानदी जलजात तथा शाकम्भरी या शाम्भर ह्रदजात लवण, पांशुज और ऊषासुत अर्थात् लवणाक्त मृत्तिकासे उत्पन्न लवण, विट्लवण, सौवर्च्चल, या सोञ्चल अर्थात् काला नमक, उद्भिद् अर्थात् रेह या कालर लवण तथा गुटिक आदि लवणोंका उल्लेख है, उसी प्रकार वर्त्तमान रसायन-विज्ञानमें साधारण लवणके भी (Sodium chloride) दो विभाग हैं। ये साधारणतः Rock-Salt और Sea-salt नामसे प्रसिद्ध हैं। किन्तु भारतवर्षमें इसके सिवा Marsh Salt और Earth Salt नामक और भी दो श्रेणीभेद बताये गये हैं।

भारतवासी जनसाधारण खाद्यद्रव्योंके साथ प्रधानतः जितने प्रकारके लवणोंका व्यवहार करते हैं। नीचे उसकी एक तालिका दी गई है—

१ पञ्जाबी सैन्धव (लाहोरी और सैन्धवलवण)—यह सिन्धुनदके दक्षिणमें पाया जाता है। 'कोहाटी' और निमक-सब्ज नामक दोनों प्रकारके लवण सिन्धुनदके पश्चिमोत्तर भागमें पाये जाते हैं। अलावा इसके हिमालय प्रदेशके मण्डिराज्यसे एक और प्रकारके नमककी आमदनी होती है।

२ दिल्लीका "सुलतानपुरी" लवण—यह दिल्लीकी लवणाक्त मिट्टीकी खान (Pit-brine Salt)से निकाला जाता है।

३ शाम्भर लवण—राजपूतानाके शाम्भरह्रदके जलसे प्रस्तुत होता है।

४ दिन्द्लवण—राजपूतानाके दिदुयना विभागकी मिट्टीसे तैयार होता है।

५ कौशिया-लवण—राजपूतानाके पञ्चभद्रा नामक स्थानकी मिट्टीसे उत्पन्न होता है। मध्यभारतमें भी यह लवण प्रचलित है।

६ फलोदी लवण—राजपूतानाके फलोदी प्रदेशकी मिट्टीसे उत्पन्न।

७ बरागड़ा-लवण—बम्बई प्रेसिडेन्सीके गुजरात विभागमें प्रस्तुत होता है।

८ कोङ्कणी-लवण—बम्बई-उपकूलसे उत्पन्न।

९ कर्कच और वनयार (कर्कच) लवण—मन्द्राज उपकूलमें प्रस्तुत होता है।

१० पङ्ग (पांगु) लवण बङ्गालके समुद्रोपकूलमें जो लवण साधारणतः प्रस्तुत होता है।

११ खारा (क्षार) लवण—लवणाक्त मिट्टीसे जो लवण प्रस्तुत किया जाता है।

१२ पाकया या नमक शोर—सोरा (Saltpetre)से जो लवण बनता है।

१३ बेकुरपुरी अर्थात् लीवरपुल-लवण—इङ्गलैण्ड, जर्मनी और फ्रान्स राज्यसे जो लवण भारतवर्षमें आता है। यह साधारणतः Liverpool Salt कह लाता है। वर्त्तमानकालमें इसी परिष्कृत लवणको भारत-वासी काममें लाते हैं। कहीं कहीं कर्कच और सैन्धव लवणका भी प्रचार है। कट्टर हिन्दू और हिन्दू-विध-वाएं सैन्धव लवणका ही व्यवहार करती हैं।

१४ सुफरी-लवण—सिंहलद्वीपमें पाया जाता है।

१५ अयोध्यापुरी-लवण—लोहितसागरके किनारे प्रस्तुत होता है।

१६ आदेन-लवण—आदेन नगरके समीप पाया जाता है। इस लवणकी प्रतिवर्ष प्रायः ३३ हजार टनकी आमदनी होती है।

१७ मरकट और मरकटसैन्धा—पारस्य उपसागरके किनारे तैयार होता है।

१८ लेनना लवण—तिब्बतदेशमें मिलता है।

१९ मणिपुर आदि छोटे छोटे देशोंमें मिलनेवाला लवण।

ये सब लवण भारतवर्षमें प्रचलित रहने पर भी लीवरपुल शहरसे जो 'Cheshire Salt' कलकत्ता, चट्टग्राम, रङ्गून और मद्रासके प्रसिद्ध बन्दरोंमें आता है उसका परिमाण सबसे ज्यादा है।

भारतवर्षके भूतत्त्वकी आलोचना करनेसे मिट्टीकी तहमें लवणका रहना निर्णय किया जा सकता है। भूतत्त्वविद् ब्लानफोर्ड और मेडलीकोटने कोहट, काङ्गड़ा, बहादुरखेल, मण्डि-लवणपर्वत और हिमालय सन्निहित शिवालिक पर्वतभागमें प्रचुर लवणका अस्तित्व देखा था। उन दोनोंने सुसिन या न्युमुलिटिक्स्तरमें सिलि उरीय-युगस्तरमें, पेलियोजोइक स्तरमें, जिपसम् स्तरमें तथा प्राचीन और आधुनिक टासियारि-युगस्तरमें सैन्धव लवणस्तर (beds of rock-salt) पाया था। आज भी कोहट आदि स्थानोंकी लवणकी खानसे सैन्धव लवण निकाला जाता है।

युगान्तरीय मिट्टीकी तहसे प्राप्त लवणको छोड़ कर भारतवर्षके समुद्र और ह्रदके किनारे स्थानीय लोगोंके व्यवहारार्थ जो नमक प्रस्तुत होता है उसका संक्षिप्त हाल नीचे दिया गया है।

मन्द्राज—इस प्रेसिडेन्सीमें पहले समुद्रके खारे जलको वाष्पाकारमें परिणत कर लवण तय्यार करते थे। स्थानविशेषमें खारी मिट्टी अथवा भस्मको जलमें डुबो कर उससे लवण प्रस्तुत करते थे। किन्तु अभी यह प्रथा बिलकुल उठ गई है। प्रथमोक्त प्रणालीसे जो लवण बनता है उसीका स्थानीय लोग व्यवहार करते हैं। इसके सिवा बम्बईसे भी कई प्रकारके लवण दूसरे दूसरे देशोंमें भेजे जाते हैं।

बङ्गाल—पहले मेदिनीपुर और यशोहर जिलेमें लवण तैयार करनेका कारखाना था। कलकत्तेके निकटवर्ती सोरेकी कलोंमें सोरेसे लवण निकाला जाता था।

बिहार और उड़ीसा—उड़ीसामें आज भी धूपमें खारे जलको सुखा कर नमक तैयार करते हैं। पहले कृत्रिम उपायसे भी पांगा लवण बनाया जाता था। बिहार, भागलपुर और मुङ्गेरके विभागमें लवण तय्यार होता था।

बेरार—यहां लोणारह्रदके जलसे तथा अकोलाके अन्तर्गत पूर्णा विभागके लवणजलपूर्ण कूपसे लवण प्रस्तुत होता था। लेकिन अभी नहीं होता।

राजपूताना—शाम्भरह्रद, दिदवाना और पाचोर-रेवासा ह्रदके जलसे नमक काफी तैयार किया जाता था।

बम्बई—समुद्रके खारे जलको धूपमें सुखा कर बहुत पहलेसे उपकूलदेशमें लवण प्रस्तुत करते आ रहे हैं। काम्बे उपसागरके किनारे कच्छके रणप्रदेशमें, सिन्धु-प्रदेशमें और थानामें लवण तय्यार करनेके कारखाने हैं (Thana salt-works)। अंगरेजराजने लवणका

ध्वंसांव लास कर लेनेके अभिप्रायसे काम्बेके नवाबको वार्षिक ४० हजार रुपया क्षतिपूरणस्वरूप दे कर लवण-का व्यवसाय उठा दिया।

पञ्जाब—यहां प्रधानतः सैन्धव लवण ही निकाला जाता है। सिन्धुनदके दूसरे किनारे बन्नू जिलेके कोहट और कालाबाग तथा लवणगिरि (Salt-range) में सैन्धव बहुतायतसे पाया जाता है। कालाबाग और लवणगिरिका सैन्धव सिलिउरीय युगस्तरीय काङ्गड़ और कोहटमें मण्डिस्तर (Mandi deposits) के जैसा है। इतद्भिन्न यहां गुड़गांव जिलेके खारे कूपजलोंसे लवण बनाया जाता है। यह शाम्भरहद-जात लवणसे निकृष्ट होता है।

युक्तप्रदेश—लवणाक्त कूप-जलसे इस विभागके नाना स्थानोंमें लवण तय्यार होता है। किन्तु यह दूसरे दूसरे स्थानोंके लवणके जैसा विशुद्ध नहीं होता। यहांके लवणमें Sodium sulphate, magnisium sulphates, *sodium carbonate* और *nitre* मिला हुआ देखा जाता है। बुलन्दशहर और मुजफ्फरनगरमें बहुत थोड़ा नमक तय्यार होता है।

आसाम—लवणाक्त-कूप तथा जोरहाट और सदिया-के लवण प्रस्रवणसे काफी लवण प्रस्तुत होता है। कछाड़, मायापुर और चट्टग्रामके पहाड़ी प्रदेशोंमें भी कूपसे खारे जलसे नमक तय्यार किया जाता है। अशिक्षित और अर्द्ध सभ्य जातियां बांसके चोंगोंमें खारे जल-को फुटा कर लवण बनाती हैं।

ब्रह्म—पेगूके टर्सियारी युगस्तरीय पर्वतों पर सैकड़ों लवणके प्रस्रवण हैं। उनसे स्थानीय लोग लवण तय्यार करते हैं। आकायाबसे मार्गुई पर्यन्त समुद्रके किनारे समुद्रके जलसे सामुद्र लवण बनाया जाता है।

मुसलमान-राजाओंके जमानेमें लवण पर महसूल लगाया जाता था। १८०३ ई०की ३८ धाराके अनुसार अङ्गरेज गवर्मेण्टने पहले पहल मन पीछे (८२$\frac{२}{७}$ पौंड) लवण पर १) रु० महसूल स्थिर कर दिया। धीरे धीरे यह ३।० रु० तक बढ़ा दिया गया। १८८२ ई०में अन्यान्य प्रदेशोंकी अपेक्षा बङ्गालके लवण पर अधिक महसूल देख भारतराजप्रतिनिधिने भारतवर्षमें तमाम समान महसूल लगा कर मन पीछे २॥०) रु० कर दिया। किन्तु सीमान्त प्रदेशमें गोलमाल हो जानेके डरसे कोहाट और मण्डीकी लवणकी खान पर उन्होंने कोई कर न रखा। केवल कोहाटकी खानसे जो लवण अफगान-सीमान्त पर जाता था उस पर मन पीछे (सिक्का वजन १०२ पौंड) ॥० आना कर दिया था। मण्डीकी खान से उत्पन्न हैम-लवण पर उससे अधिक महसूल लगाया था। किन्तु अङ्गरेजी लवणकी अपेक्षा यह भी बहुत कम था। लवणका यह महसूल लेनेके लिये अङ्गरेज गवर्मेण्टने देशी राजे, सरदार और जमींदारोंको क्षति-पूरणस्वरूप राजस्वका कुछ अंश माफ कर दिया।

वाणिज्य और कारबारके लिये भारतवर्षमें जितने प्रकारका नमक प्रचलित है, भारत गवर्मेण्टकी राज-विवरणीमें उसकी एक तालिका दी जाती है। यह भिन्न भिन्न प्रकारका लवण भिन्न भिन्न श्रेणीमें रखा गया है:—

१ खनिज या सैन्धव लवण (Rock-salt)—कोहट, मण्डी आदि स्थानोंकी खानसे यह नमक नाना स्थानोंमें भेजा जाता है।

२ ह्रद और कूपज लवण (Lake and pit salt)—शाम्भर, दिदवाना, पचभद्रा और दिल्लीके लवणके खार खानोंमें यह तय्यार होता है।

३ सामुद्र लवण (Sea salt और pit-salt) भारतवर्ष-के समुद्रोपकूल उपवर्त्ती विभिन्न स्थानोंमें प्रस्तुत होता है।

४ भानूपलवण (Marsh-salt)—लवणाक्त जल-से उत्पन्न होता है। दिल्ली आदि स्थानोंकी खारी मिट्टी-को खोदनेसे जो गड्ढा बन जाता है उसीके जलसे तैय्यार किया जाता है।

५ खाड़िज लवण (swamp salt) समुद्रोपकूल-वर्त्ती खाड़ियोंके खारे कीचड़से जमा किया जाता है। समुद्रका जल उन सब खाड़ियोंमें घुस कर फिर निकलने नहीं पाता। पीछे यह आपसे आप सूख कर मिट्टी के ऊपर दानेदार हो जाता है। यही खाड़िज

लवण है। यह विशुद्ध होता है। उसमें प्रायः ६७ भाग Chloride of sodium रहता है।

६ क्षितिज लवण (Caline efflorescence) वर्षा ऋतुके बाद स्थानविशेषमें नमक आपे आप बाहर निकलता है। उन सब स्थानोंमें कभी भी घास नहीं उगती। इस जातिके नमकको युक्तप्रदेशमें खरियार, लोनहा, रेह और कल्हार सोरा कहते हैं।

७ क्षारलवण (Earth salt)—भारतवर्षमें इसको खारा नमक कहते हैं। ग्वालियर, पतियाला और मध्य-भारतमें यह लवण उत्पन्न होता है।

८ नमक सोर (Saltpetre salt)—सोरेसे जो मिश्र लवण बनता है उसीको नमक सोर कहते हैं।

उत्तर और पश्चिम-भारतमें जितनी नमककी खान हैं उनके स्तरोंमें किस प्रकार नमक जमा रहता है, यह देखने लायक है। इनमेंसे लवणगिरिके स्तर विशेष उल्लेखनीय हैं। यह शैलमाला देशा० ७१°३०´ से ७३° पू० तथा अक्षा० ३२° २३´से ३०´ उ०के मध्य अवस्थित है। सिन्धुसागर दोआबकी अधित्यकाभूमि और कोहिस्तान विभाग ले कर लवणशैल संगठित है। इसके एक प्रान्तमें झेलम नदी और दूसरे प्रान्तमें सिन्धु नदी बहती है। प्रायः १५२ मील विस्तृत इस पहाड़ी प्रदेशमें जिन गहरे स्तरोंमें लवणराशि जमा रहती है, नीचे केवल उनके नाम दिये गये हैं—

नाम	स्तरका घनत्व
वर्त्तमान गठित स्तर—	
Debris of gypsum	१५० फुट
चूना पत्थर स्तर—	
Nummulitic limestone	२०० „
कोयलास्तर—	
Coal alum-shab marl	९० „
बलुई पत्थरस्तर—	
Green sand-stone	६०० „
Blue marl	१२५ „
Red sandstone	३०० „
लवणस्तर—	
Upper layer of white gypsum	५ „
Brick red marl	१६० फुट
Brown gypsum	१५० „
Lower layer of white gypsum	२०० „
Salt marl and salt	६०० „

इस लवणगिरिविभागमें प्रधानतः मेयु-खनि, वार्चे खनि, कालाबाग खनि और नूरपुर खनिसे सैंधवलवण निकाला जाता है।

कोहाटका लवणमय प्रदेश सिन्धुनदके पश्चिममें अवस्थित है। यह अक्षा० ३२° ४७´से ३३° तथा ५२´देशा० ७२° ५२´ तथा देशा० ७०° ३५´से ७२° १८´ पू०के बीच पड़ता है। यहां जट्टा, मालगिन, नरि, करक और बहादुरखेल नामक स्थानमें खान है। भारतके प्रायः ६० हजार वर्गमील स्थानतथा कन्दहार, बालक और गजनी आदि भूभागमें यह लवण प्रचलित है।

मण्डीके लवणकी खान हिमालयदेशके मण्डी राज्यमें अक्षा० ३२° ३० ´ तथा देशा० ७७° पू०के मध्य अवस्थित है। गुमा और द्राङ्ग नामक स्थानमें दो खानें हैं। अंगरेजी राज्यमें मण्डी लवण विक्रय होता है इसलिये मण्डि राजको करस्वरूप लवणका लभ्यांश अंगरेज-सरकारमें देना पड़ता है। इसके अलावा Delhi-salt works, Cambhar Salt lake, Didwana-salt marsh, Pachbadra salt works, Luni and Palodi salt और Tibet or Lencha salt नामक विविध स्थानीय लवणका प्रचलन देखा जाता है।

इसको छोड़ कर आयुर्वेदमें सज्जी-खार आदि और भी अनेक प्रकारका लवण (Sodium salt) औषधमें व्यवहृत होता है।

बंगालमें लवण प्रस्तुत करनेकी प्रणाली।

लवणका वाणिज्य अंगरेज-गवर्मेण्ट खुद अपनेसे करती है। जो उसकी अनुमतिके बिना लवण प्रस्तुत करते हैं, वे दण्डका भागी होते हैं। बंगालमें जो सब लवण प्रस्तुत होता है, वह अंगरेज-सरकार खरीद लेती है और उसे आठ गुने या उससे भी ज्यादे दाममें प्रजाओंके व्यवहारके लिये बेच डालती है। सिर्फ लवणसे गवर्मेण्टको ३ करोड़ रु० वार्षिक लाभ होता है। यह सब कार्य करनेके लिये उन्होंने बहुत धन व्यय कर अनेक कार्यालय खोल रखे हैं और उनमें कर्मचारी नियुक्त कर

दिये हैं। उसके सुशासनके लिये कहीं कहीं अंगरेजराजे भी रखे गये हैं। बंगदेशीय लवणके कारखानोंके व्यवस्थापक अंगरेज कलकत्तेमें रहते हैं। वे जहां एकत्र हो कर मन्त्रणा करते हैं, वह "साल्टबोर्ड" कहलाता है। इस बोर्डके अधीनस्थ सभी कार्यालयमें एक नियम चलता है। विस्तारके हो जानेके भयसे सब स्थानोंकी लवणप्रस्तुतप्रणाली न लिख कर सिर्फ तमलुककी लवण प्रस्तुतप्रणाली दी जाती है।

तमलुक नगर कलकत्तेसे २२ कोस दक्षिण रूपनारायण नदीके तट पर अवस्थित है। पहले यह नगर समृद्ध और वाणिज्यमें बड़ा प्रसिद्ध था, लेकिन आज वह ख्याति जाति रही। सिर्फ नाममात्र रह गया है। किन्तु लवणके लिये यह नगर सामान्य नहीं है। यहां जो कोठी है उससे हर साल नौ या दश लाख मन लवण प्रस्तुत होता है तथा उससे कम्पनी पचीस लाख रुपयेके करीब लाभ उठाती है।

तमलुककी सदर कोठीके अधीन पांच कार्यालय हैं जिनमेंसे तमलुक, महिषादल, जमालुडा, औरङ्गाबाद तथा सुमजुदकी आढत ही प्रधान और विख्यात है। फिर प्रत्येक आढतके अधीन छोटे छोटे कार्यालय हैं। इस छोटे कार्यालयका नाम 'हुद्दा' है। इन सब हुद्दोंमें दारोगा, मोहरर, आदलदार आदि भिन्न भिन्न नामके बहुतसे कर्मचारी नियुक्त रहते हैं। वे कातिकसे ले कर जेठ तक लवण प्रस्तुत करते हैं। कातिकके शुरूमें लवणसमिति (साल्ट-बोर्ड) के साहब किस आढ़तमें कितना लवण तैयार करना चाहिए, यह ठीक कर देते हैं। इस निर्दिष्ट परिमाणका नाम 'तायदाद' है। इस तायदादके मुताबिक प्रत्येक हुद्दे के कर्मचारी अपने अपने हुद्दे के प्रजाओं या कुलियोंको बुला कर कहते हैं, कि कौन कितना लवण तैयार करेगा और क्या दाम लेगा। पीछे एक स्टांप या छपा हुआ कागज दिया जाता है। इस निर्द्धारण क्रियाका नाम "सौदापत्र" है तथा जिस कागज पर यह लिखा जाता है वह 'हाथचिट्ठा' कहलाता है। जो इस प्रकार सौदापत्र स्थिर कर हाथचिट्ठा लेते हैं, वे 'मलङ्गी' कहलाते हैं। लवण तैयार करनेमें बहुत कम लाभ होता है। सुतरां केवल यही काम कर कोई अपना गुजारा चला नहीं सकता। मलङ्गी मात्र ही लवण प्रस्तुत करनेके अलावा खेतीबारी भी करते हैं। इतने पर भी उनकी गरीबी दूर नहीं होती। सभी बड़े कर्जखोर और अत्यन्त दरिद्र हैं।

तमलुकका लवण यहांकी भागीरथी, हल्दी, टेंगराखाली, रायखाली आदि कई नदीके जलसे प्रस्तुत होता है। इसलिये लवण प्रस्तुत करनेके सभी कार्यालय इन्हीं नदियोंके किनारे बने हैं। मलङ्गी लोग यथोपयुक्त स्थान निर्दिष्ट कर उसे चार भागोंमें बांटते हैं। उसके एक भाग का नाम 'चातर' है। यह सबसे बड़ा होता है और उसमें लवणकी मिट्टी प्रस्तुत होती है। दूसरेका नाम 'जुरी' अर्थात् कुण्ड है और वह लवणाक्त जल रखनेके काममें आता है। तीसरेका नाम 'माडा' अर्थात् लवण छाननेका स्थान है। चौथा "भूरी घर' अर्थात् लवण पाक करनेका घर है। इन चारों भागकी समष्टिको 'खालाड़ी' या 'मजाङ्ग' कहते हैं। इस प्रकार एक एक खालाड़ीके लिये दो तीन बीघे जमीनकी जरूरत होती है।

पहले ही कह आये हैं, कि खालाड़ीके अन्यान्य अंशसे 'चातर' बड़ा होता है, उसके लिये एक बीघा या उससे भी अधिक स्थानकी आवश्यकता होती है। मलङ्गी लोग उसे बड़ी सावधानीसे साफ करते हैं और वहांसे कुछ मिट्टी खोद कर उसके बीच बीचमें तथा चारों ओर बांध देते और इस स्थानको तीन भाग करते हैं। उसके बाद उन तीन खेतोंको कोड़ कर पटेलेसे चौरस कर लेते हैं। यह चौरस की हुई भूमि आठ दश दिन तक धूपमें सुखाई जाती है। पीछे उसके ऊपरकी मिट्टी और ईंटकी दीवारमें लोना लगनेसे जैसा चूर्ण उत्पन्न होता है वैसा ही चूर्ण हो जाता है। चूर्ण तैयार होने पर पांच या छः मनुष्य इधर उधर घूम कर उसको अच्छी तरह रौंदते हैं। अनन्तर एक सप्ताह तक उसे धूपमें सुखा कर खेतसे जमा करते हैं। इसके बाद बाढ़से चातर सिक्त रहने और धूपकी सहायता पानेसे लवण-मृत्तिका अच्छी तरह उत्पन्न होती है। बाढ़के जलसे चातर धुल जानेसे तथा कातिक या अगहनके महीनेमें अत्यन्त वर्षा या कुहेसेसे अथवा मेघसे आकाश ढंके रहनेसे लवणोत्पत्तिमें नुकसान पहुंचता है। पूस और माघके महीनेमें ज्वारके जलसे जुरी नामक कुण्ड परि-

पूर्ण न होनेसे लवण बनानेके काममें हानि होती है।

एक जुरी बनानेमें चार कट्ठे जमीन की आवश्यकता होती है। उस जमीनमें पांच या छः हाथ गहरा, एक हाथ ऊंचा और एक हाथ चौड़ा एक गड्ढा बना कर एक नाले द्वारा किसी किसी नदीके साथ संयुक्त कर देने-से यह जुरी तैयार होती है। बड़ी ज्वारके दिन उस नालेसे हो कर जब नदीके जलसे जुरी भर जाती है, तब मलङ्गी लोग नालेको बंद कर बड़ी सावधानीसे उस जलकी रक्षा करते हैं। वर्षाके समय जुरी वृष्टिके जलसे भर जाती है। कार्त्तिक मासमें यह जल फेंक कर जुरीको साफ रखते हैं। बाढ़के खारे जलसे उसे भरना ही लवण तैयार करनेका एक प्रधान उपादान है। सावधानीसे यह कार्य नहीं करनेसे सभी परिश्रम व्यर्थ जाता है। चातरको ज्वारके जलसे सिक्त कर धूपमें सुखाने का नाम 'साजन' है, कार्त्तिक मासमें चातर प्रस्तुत करनेसे क्रमागत तीन मास उसमें लवणमृत्तिका जम सकती है। माघके शेषमें या फाल्गुनके प्रारम्भमें उसे पुनः ज्वारके जलसे सिक्त कर खनन न करने और उसके ऊपरकी भस्म तथा मट्टिकी निकम्मी मिट्टी अलग न कर देनेसे उसमें लवण-मृत्तिका अच्छी तरह जमने न पाती।

खालाड़ीके तृतीय अङ्गका नाम माधा है। यह माधा प्रस्तुत करनेके लिये मलङ्गी लोग १२ हाथ परिधिका और ४॥ हाथ ऊंचा मिट्टीका एक टीला बनाते हैं और उसके ऊपर १॥ हाथ गहरा गड्ढा खोद रखते हैं। मिट्टी भस्म और बालुकादि द्वारा उसका तल ऐसा मजबूत कर दिया जाता है, कि जल उसके भीतर घुस नहीं सकता। पीछे उसके तलमें 'कुड़ी' नामक एक मिट्टीका बरतन रख कर एक बांसकी नलीसे उसका संयोग रहनेके निकटस्थ एक गड़हेसे कर दिया जाता है। उस गड़हेका नाम 'नाद' है। ३०-३२ कलसी जल उस नादमें समा सकता है।

चातरमें लवण-मृत्तिका प्रस्तुत होनेसे मलङ्गी लोग पूर्वोक्त कुड़ीके ऊपर बांसकी एक छलनी और छलनीके ऊपर थोड़ा घास रखते हैं। पीछे उस मिट्टीसे माधाका गड्ढा भर कर पैरसे उसको अच्छी तरह दाब देते हैं और जुरीसे कलसी कलसी लवणजल उस पर डालते हैं। इस प्रकार ८० कलसी जल डालनेसे वह लवणकी मट्टी बह कर बांसकी नली द्वारा नादमें आ गिरती है। किन्तु यह जल लवणकी मिट्टीसे अलग नहीं होता। ८० कलसी जलमें से सिर्फ ३०।३२ कलसी जल नादमें गिरता है। बाकी जल मिट्टीके साथ मिला रहता है। नादमें जलका गिरना बंद होनेसे मलङ्गी लोग उस लवण जलको एक दूसरी कलसीमें रख देते हैं। माधाकी धुली हुई मिट्टी चातरमें डालनेके लिये उसे दूसरी जगह रख नई लवणकी मिट्टीसे उस माधाको भरनेके अभिप्रायसे पुनः नई मिट्टी छानना शुरू करते हैं।

लवणको जलमें देनेके घरका नाम भुनरी घर है। यह घर चातरके पास ही बना होता है। उसकी लम्बाई २५-२६ हाथ और चौड़ाई ७ या ८ हाथ होती है। मलङ्गी मात्र ही उस घरको उत्तर-दक्षिणमें लम्बा तथा उसके दक्षिणी भागकी अपेक्षा उत्तरी भाग अधिक ऊंचा बनाते हैं। इसका कारण यह है, कि दक्षिण भागमें वे लोग रहते हैं, इससे अधिक ऊंचा बनानेकी जरूरत नहीं होती। किन्तु उत्तर भागमें लवण-जलका चूल्हा बनाना होता है, इस कारण ऊंचा बनाना जरूरी है। ऊंचा नहीं बनानेसे उसमेंसे जो धूआं निकलता वह बाहर निकलने नहीं पाता जिससे घरमें रहना कठिन हो जाता है। चूल्हा मिट्टीका बना होता है। उसकी ऊंचाई तीन हाथ होती है। उस चूल्हेके ऊपर कीचड़ देते और कीचड़ पर दोसौ या ढोसौ पचीस-तिसटीके कुम्भाकार छोटे छोटे मट्टीके बरतन रख छोड़ते हैं। उन बरतनका नाम कुड़ी है। प्रत्येक कुड़ीमें डेढ़ सेर बालू समाती है। उन बरतनों को चूल्हेके ऊपर कीचड़ पर रखनेसे जैसा आकार बन जाता है वह नीचे दे दिया गया है। मलङ्गी लोग उसे 'भंर' तथा जिस पर यह रखा रहता है उसे भंरगाक कहते हैं।

चूल्हेमें आंच देनेसे कीचड़ सूख कर उस परके सभी कुड़ी बरतनोंका एक पिण्ड बन जाता है। चार पांच या छः घंटा उसमें नादका लवण जल पाक करनेसे दो टोकरी लवण तैयार होता है। वह टोकरी चूल्हेकी बगलमें रखी रहती है। उस टोकरीसे जो जल निकलता है

भंर

यह उसके नीचेको घास पर पड़ कर लवणके स्थूल पिण्डरूपमें परिणत हो जाता है। उस लवणपिण्डका नाम 'गाछालवण' है। दूसरे लवणकी अपेक्षा यह बहुत निर्मल होता है। कम्पनीने 'गाछालवण' का बनाना बंद कर दिया है। क्योंकि, मलङ्गी लोग यह लवण कम्पनीको न दे कर दूसरेके हाथ चुपके बेच लिया करते थे।

लवणपाकका एक दूसरा नाम पोकान है। कार खानेमें इस पोकान शब्दका ही व्यवहार होता है। दो टोकरी लवण पोषतान होनेसे कम्पनीके आदलदार नामक कर्मचारी आ कर काठकी मुहरकी छाप मार देते हैं। उस मुहरका नाम आदल है। उस आदलसे ही आदलदार नाम पड़ा है।

लवण पर मुहर पड़ जानेसे वह मलङ्गीकी घरीमें रखा जाता है। वहां एक दिन और एक रातमें वह सूख जाता है। पीछे मलङ्गी लोग गोलाघरकी मट्टी पर ढेर लगा कर रख देते हैं। दश या बारह दिन गोला-घरमें रखनेके बाद बाहर ला कर गोलाघरके सामने ढेर लगा दी जाती है। उस ढेरका नाम 'बहिरकांड़ी' है। १०।१५ दिन उस कांड़ीमें रहनेसे लवण सुख जाता है। पीछे पोकान-दारोगा आ कर यह लवण मलङ्गीसे वजन कर लेते और उतनेका एक चिट्ठा लिख देते हैं। पहले इसी नियमसे लवण तय्यार किया जाता था।

२ असुरविशेष। लवणासुर देखो। ३ राक्षस-विशेष। (त्रि०) लवणेन संसृष्टः लवण ठक् (लवणात् ठक्। पा ४।४।२४) इति ठको लुक् यद्वा लवणो रसोऽस्त्य-स्मिन्निति अर्श आद्यच्। ४ लवणरसयुक्त, नमकीन। ५ लावण्ययुक्त, सुन्दर।

लवण—चट्टलके अन्तर्गत गण्डग्राम।

(भविष्य० ब्रह्मखण्ड १५।४५)

लवणकिंशुका (सं० स्त्री०) महाज्योतिष्मती।

लवणक्षार (सं० पु०) लवणस्य क्षारः। खारी नमक।

लवणखनि (सं० स्त्री०) लवणाकर, नमककी खान।

लवणजल (सं० त्रि०) लवणं जलं यस्य। १ लवणसमुद्र। (क्ली०) लवणं जलं। २ लवणाक्त जल, खारा पानी। ३ लवणमिश्रित जल, वह पानी जिसमें नमक मिला हो।

लवणजलधि (सं० पु०) लवणसमुद्र। (भागवत ५।१७।११)

लवणजलनिधि (सं० पु०) लवणसमुद्र, खारे पानीका समुद्र। (रामायण ५।३१।६२)

लवणता (सं० स्त्री०) लवणस्य भावः तल-टाप्। लवणका भाव या धर्म, लवणरसयुक्त।

लवणतृण (सं० क्ली०) लवणरसविशिष्टं तृणं। १ तृणविशेष, अमलोनी घास जिसका साग खाते हैं, उसको लोनिया भी कहते हैं। संस्कृत पर्याय—लोमतृण, तृणाम्ल, पटु-तृणक, अम्लकाण्ड। गुण—अम्ल, कषाय, स्तनदुग्धनाशक, अम्लवृद्धिकर। (राजनि०) २ कुलफा नामक साग।

लवणतोय (सं० त्रि०) लवणजल, लवणसमुद्र।

(रामा० ५।०।२१)

लवणत्रय (सं० क्ली०) लवणस्य त्रयं। तीन प्रकारके नमकोंका समूह—सैंधव, विट् और सचल।

लवणत्व (सं० क्ली०) लवणधर्मान्वित, लोणा।

लवणद्वय (सं० क्ली०) दो प्रकारके नमकोंका समूह—सचल और सैंधव।

लवणनित्य (सं० त्रि०) प्रतिदिन लवण-रसास्वादनशील।

लवणधेनु (सं० स्त्री०) लवणनिर्मिता धेनुः। गायके रूपमें कल्पित नमकका ढेर। इसके दानका वराहपुराणमें बड़ा माहात्म्य लिखा है जो इस तरह है,—गोबरसे लिपे स्थानमें कुशके आसन पर सोलह प्रस्थ नमकका एक ढोंका रखे और उसे गायके रूपमें कल्पित करे। चार प्रस्थ और नमक पासमें रख कर उसे उस गायका बछड़ा माने। फिर चार गन्ने रख कर चार पैर, सोना रख कर मुंह और सींग, चांदी रख कर खुर, फल रख कर दांत, चीनी रख कर ओंठ, गन्धद्रव्य रख कर नाक, मक्खन रख कर स्तन, तागा रख कर पूंछ, तांबेके पत्तर रख कर पीठ, कुश रख कर रोएं और कांसा रख कर दोहनी कल्पित करे। पीछे इस धेनुके गलेमें घंटी बांधे। तदनन्तर सुगंध पुष्प आदि द्वारा यथाविधान पूजन करके इस धेनुको दो वस्त्रसे ढक कर ब्राह्मणको दान कर दें। संक्रान्ति ग्रहण, व्यतीपातादि योग और उत्तम कालमें दान करना उचित है। विधिपूर्वक धेनु दान कर इसकी दक्षिणामें सोना देना होता है। उक्त विधिके अनुसार

इस लवणधेनुका दान करनेसे इहलोकमें विविध सुख और अन्तकालमें ब्रह्मलोककी गति होती है।

लवणपत्तन—चट्टलके अन्तर्गत एक नगर।
(भविष्य ब्रह्मखं० १५।६४)

लवणपाटलिका (सं० स्त्री०) लवणकी थली, नमकका स्थान।

लवणपालालिका (सं० स्त्री०) लवणपाटलिका देखो।

लवणपुर (सं० क्ली०) एक नगरका नाम।

लवणभास्कर (सं० क्ली०) वैद्यकका एक प्रसिद्ध चूर्ण। इसमें तीनों नमक और अन्य कई औषधियां पड़ती हैं और यह पेटकी अपच आदि बीमारियोंमें दिया जाता है।

लवणमद (सं० पु०) लवणस्य मदः। खारी नमक।

लवणमन्त्र (सं० पु०) लवण उत्सर्गकालीन एक मन्त्र।

लवणमेह (सं० पु०) सुश्रुतके अनुसार प्रमेह रोगका एक भेद। इस रोगमें पेशाबके साथ लवणके समान स्राव होता है। (सुश्रुत नि० ६ अ०)

लवणयन्त्र (सं० क्ली०) दो मुंहदार बरतनोंके मुंह जोड़ कर बनाया हुआ एक यन्त्र जिसमें कुछ औषधियोंका पाक होता। इनमेंसे एक बरतनमें नमक भी दिया जाता है।

लवणवर्ष (सं० पु०) पुराणानुसार कुशद्वीपके अन्तर्गत एक वर्ष या खंड। (लिङ्गपु० ४६।२६)

लवणवारि (सं० क्लि०) लवणजल, खारे पानीका समुद्र।

लवणव्यापत् (सं० स्त्री०) घोड़ोंकी एक प्रकारकी गहरी पीड़ा। घोड़ा जब बहुत नमक खाता है, तो वायु कुपित हो कर बहुत पीड़ा होती है, इस पीड़ाको लवणव्यापत् कहते हैं।

लवणसमुद्र (सं० पु०) लवणसागर, खारे पानीका समुद्र। यह पुराणोक्त सात समुद्रोंमेंसे एक है। अन्य पुराणोंमें तो सातों समुद्रोंकी उत्पत्ति सगरके पुत्रोंके खोदनेसे या प्रियव्रत राजाके रथके चलनेसे बताई गई है, पर ब्रह्मवैवर्त्तमें लिखा है, कि श्रीकृष्णकी एक पत्नी विरजाके गर्भसे सात पुत्र हुए जो सात समुद्र हुए। इनमेंसे एक पुत्रके रोनेके कारण थोड़ी देरके लिये कृष्णका वियोग हो गया। इस पर विरजाने उसे शाप दिया—'तू लवणसमुद्र होगा और तेरा जल कोई नहीं पीयेगा।' यह कथा बहुत पीछेकी कल्पित जान पड़ती है।

लवणस्थान (सं० क्ली०) एक जनपद।

लवणा (सं० स्त्री०) लुनाति या लु ल्यु-टाप्। १ एक नदीका नाम, लूनी। २ दीप्ति, आभा। ३ महाज्योतिष्मती लता। (राजनि०) ४ चुक्रिका, चूक। ५ चांगेरी। ६ लवणशाक, अमलोनी साग।

लवणाकर (सं० पु०) लवणस्य आकरः। लवणकी खान, वह स्थान जहांसे नमक निकलता है।

लवणाद्य—चरगाँवके अन्तर्गत एक लवण-प्रस्रवण।

लवणाचल (सं० पु०) लवणनिर्मितं अचलः। दानार्थ लवणराशिनिर्मित पर्वत, पहाड़के रूपमें कल्पित नमकका ढेर। लवणका जो पर्वत बना कर दान करते हैं उसे लवणाचल कहते हैं। मत्स्यपुराणमें इस पर्वतदानका विधान इस प्रकार है। सोलहद्रोण नमकका एक ढोंका ले कर उसका पर्वत बनाये, अर्थात् उसे पर्वतके आकारमें स्थापित करे। इतने नमकसे जो पर्वत बनाया जाता है वह उत्तम, उसके आधेका बनाया हुआ वह मध्यम, और उससे भी आधेका बनाया हुआ पर्वत अधम कहलाता है। जिस परिमाणका पर्वत बनाया जायगा, उसके चौथाईसे विष्कम्भ पर्वत बनावे। पर्वतदानके विधानानुसार सुवर्ण आदिसे ब्रह्मादि और लोकपालादि बना कर विधिपूर्वक उसकी पूजा करे। पीछे उसे दान कर ब्राह्मणको दक्षिणा दे और भोजन कराये। इस प्रकार विधिके अनुसार जो लवणपर्वत दान करते हैं, वे इस लोकमें नाना प्रकारका सुखसौभाग्य भोग कर उमालोकमें एक कल्प तक वास करते और पीछे उन्हें मुक्ति मिलती है। (मत्स्यपु०)

लवणापमोदक (सं० क्ली०) नमकसे बनाई हुई एक प्रकारकी औषध।

लवणान्तक (सं० पु०) लवणस्य अन्तकः। १ लवणासुरको मारनेवाले शत्रुघ्न। (रघु १५।४०) २ मोम।

लवणाब्धि (सं० पु०) लवणसमुद्र, खारे पानीका समुद्र।
(मार्कण्डेयपु० ५४।७)

लवणाब्धिज (सं० क्ली०) लवणाब्धौ लवणसमुद्रे जायते

इति जलःड । समुद्र लवण, समुद्रसे निकला हुआ नमक ।

लवणाम्बुराशि (सं० पु०) लवणस्य अम्बुराशिः । लवण-समुद्रका जलसमूह ।

लवणाम्भस् (सं० पु०) लवणजल, समुद्र ।

लवणार (सं० क्ली०) लवणक्षार, खारी नमक ।

लवणारज (सं० क्ली०) लवणक्षार, खारी नमक।

लवणार्णव (सं० पु०) लवणसमुद्र, खारे पानीका समुद्र ।

लवणालय (सं० पु०) लवणस्य आलयः । लवनासुरकी बसाई हुई मधुपुरी । पीछे यह मथुराके नामसे प्रसिद्ध हुई । (रामा० ४।४१।३४) लवण देखो ।

लवणाश्व (सं० पु०) महाभारतवर्णित एक ब्राह्मण ।

लवणासुर—एक असुरका नाम । रामायणमें लिखा है,— सत्ययुगमें दैत्यवंशमें लोलाके गर्भसे मधु नामक एक पुत्र उत्पन्न हुआ । इस मधुने महादेवकी कठोर तपस्या कर एक शूल पाया था । महादेवका शूल पा कर मधु बड़ा बल-वान् हो उठा । किन्तु मधु दैवबलसे बलवान् होने पर भी परमधार्मिक था, किसीका कोई अनिष्ट नहीं करता था । इसके बाद मधुने पुनः तपस्या कर महादेवसे प्रार्थना की, कि मुझे एक ऐसा वर दीजिये जिससे यह शूल वंशपरम्पराक्रमसे रह जाय । किन्तु महादेवने कहा, कि यह वर तो नहीं मिल सकता, पर तुम्हारा बड़ा लड़का यह शूल पायेगा, इसमें संदेह नहीं ।

विश्वावसुकी कन्या अनलाके गर्भसे कुम्भीनसी नामकी एक कन्या हुई । मधुने कुम्भीनसीसे विवाह किया और उसीके गर्भसे लवण पैदा हुआ । क्रमशः लवण बड़ा हुए स हो उठा । मधुने जब देखा, कि लवण बड़ा दुर्दान्त हो गया, तब वह शोकातुर हो कर शूल उसे दे परलोक सिधारा । लवण इस शूलके प्रभावसे त्रिलोकका अवध्य हो गया । लवणके भीषण अत्याचारसे पीड़ित हो ऋषियोंने रामचन्द्रकी शरण ली । भगवदवतार रामचन्द्रने इस-का वध करनेके लिये भरतसे कहा । किन्तु शत्रुघ्नने स्वयं उसका वध करनेके लिये प्रार्थना की । शत्रुघ्नकी प्रार्थना पर रामचन्द्रने उन्हें ही लवणका वध करने भेजा । "लवणके हाथ जब तक शूल रहेगा, तब तक देवदानवादि भी क्यों न हो जो उसके सामने लड़ाई करने आयंगे वे भस्मीभूत हो जायगे ।" शत्रुघ्नको यह बात अच्छी तरह मालूम थी । इसलिये जिस समय राक्षसके हाथ शूल नहीं था, उसी समय शत्रुघ्नने आ कर उसका काम तमाम किया । देव-गण बड़े संतुष्ट हुए और उनकी भूरि भूरि प्रशंसा कर आकाशसे पुष्पवृष्टि करने लगे ।

इसके बाद देवोंने शत्रुघ्नके समीप उपस्थित हो उनसे वर मांगने कहा । शत्रुघ्नने प्रार्थना की कि, 'देवविनिर्मित इस लवणासुरकी मनोहारिणी मधुपुरी (मथुरा) जिससे शीघ्र ही जनाकीर्ण हो जाय यही वर हमें दीजिये ।' 'तथास्तु' कह कर देवगण चले गये । पीछे शत्रुघ्न बारह वर्ष इसी नगरीमें रह कर अयोध्या लौटे थे ।

(रामायण अयोध्याका० ७३.८४ अ०)

लवणिमन् (सं० पु०) लवणस्य भावः (वर्णदृढादिभ्यः ष्यञ् । पा ५।१।१२३) इति इमनिच् । लवणका भाव या धर्म ।

लवणोत्तम (सं० क्ली०) लवणेषु उत्तमं, सैन्धव लवण, सेंधा नमक । यह सब नमकोंसे अच्छा माना जाता है ।

लवणोत्तमादिचूर्ण (सं० क्ली०) अर्श रोगमें बड़ा फायदा पहुंचानेवाली एक औषध । इसके बनानेकी तरकीब— सेंधा नमक, चितामूल, इन्द्रजौ, करंजका बीया, नीमकी छाल, इनका बराबर बराबर भाग ले कर चूर्ण कर पीछे अच्छी तरह मिला दे । औषधकी मात्रा २ मासा है । इसे मट्ठेके साथ खानेसे अर्शरोग आरोग्य होता है ।

(भैषज्यरत्ना० अर्शरोगाधिकार)

लवणोत्तमादिचूर्ण (सं० क्ली०) अर्शरोगाधिकारमें चूर्णी-षधविशेष । प्रस्तुतप्रणाली—सेंधा नमक, चितक, इन्द्रजौ, करंजमूल और महापिचुमर्द मूल, इन सब मूलोंके प्रत्येकका चूर्ण २ तोला ले कर एक साथ अच्छी तरह चूर्ण करे । इस औषधका परिमाण ८ मासा और अनु-पान मट्ठा है । अर्शरोगमें यह बड़ा लाभदायक है ।

(चक्रदत्त अर्शरोगाधि०)

लवणोत्थ (सं० क्ली०) लवणादुत्तिष्ठतीति उद्-स्था-क । लवणक्षार, खारी नमक ।

लवणोत्था (सं० स्त्री०) ज्योतिष्मती लता ।

लवणोरस (सं० पु०) एक नगर । (राजतर० ११३३११)

लवणोद (सं० पु०) लवणं उदकं यस्य, उत्तरपदस्य चेत्युदकस्योदादेशः । लवणसमुद्र ।

लवणोदक (सं० पु०) १ लवणमिश्रित जल, नमक मिला हुआ पानी। २ लवणसमुद्र।

लवणोदधि (सं० पु०) लवण समुद्र।

लवन (सं० क्लो०) लू-भावे ल्युट्। १ छेदन, काटना। २ खेतकी कटाई, लुनाई। ३ खेत काटनेकी मजदूरीमें दिया हुआ अन्न, लौनी।

लवना (हिं० क्रि०) १ पके हुए अन्नके पौधोंको खेतोंसे काट कर एकत्र करना, लुनना। २ लोना देखो।

लवनि (सं० स्त्री०) लवनी देखो।

लवनी (हिं० स्त्री०) १ खेतमें अनाजकी पकी फसलकी कटाई, लुनाई। २ वह अन्न जो खेत काटनेवालोंको मजदूरीमें दिया जाता है।

लवनी (सं० स्त्री०) फलवृक्षविशेष, शरीफेका पेड़ या फल।

लवनीय (सं० त्रि०) लू अनीयर्। छेदनीय, काटनेके लायक।

लवन्य (सं० पु०) एक जाति। (राजतर० ७।१२७१)

लवराज (सं० पु०) काश्मीरके एक ब्राह्मण। (राजतर० ८।१३४७)

लवली (सं० स्त्री० लवं लेशं लातीति ला-क, गौरादित्वात् ङीष्। १ फलवृक्षविशेष, हरफारेवरी नामका पेड़ और उसका फल। पर्याय—सुगन्धमूला, पाण्डु, कोमलवल्कला। इसके फलका गुण हृद्य, सुगन्धि और कफवातनाशक माना गया है। (राजनि०) २ एक विषम वर्णवृत्त। इसके प्रथम चरणमें १६, दूसरेमें १२, तीसरेमें ८ और चौथे चरणमें २० वर्ण होते हैं।

लवलीन (हिं० वि०) तन्मय, मग्न।

लवलेश (सं० पु०) १ अत्यन्त अल्प मात्रा, बहुत थोड़ी मिकदार। २ जरा-सा लगाव, अल्प संसर्ग।

लवपत् (सं० त्रि०) क्षणस्थायी, थोड़ी देर तक रहनेवाला।

लवशस् (सं० अव्य०) खंड खंड, मुहूर्तके लिये।

लवा (हिं० पु०) तीतरकी जातिका एक पक्षी। यह तीतरसे बहुत छोटा होता है और जमीन पर अधिक रहता है। इसके पंजे बहुत लम्बे होते हैं। नर और मादामें देखनेमें कोई भेद नहीं होता। सारा भूरे रंगके बदले देता है। जाड़ेके दिनोंमें इन चिड़ियाके झुंडके झुंड झाड़ियों और जमीन पर दिखाई पड़ते हैं। ये दाने और कीड़े खाते हैं।

लवाई (हिं० वि०) १ हालकी ब्याई हुई गाय, वह गाय जिसका बच्चा अभी बहुत ही छोटा हो। (स्त्री०) २ खेतकी फसलकी कटाई, लुनाई। ३ फसल-कटाईकी मजदूरी।

लवाक (सं० पु०) लवार्थं छेदनार्थं अकतीति अक-अच्। छेदनद्रव्य, काटनेकी चीज।

लवाजमा (अ० पु०) १ किसीके साथ रहनेवाला दलबल और साज सामान, साथमें रहनेवाली भीड़-भाड़ या असबाब। २ आवश्यक सामग्री, वह सामान जो किसी बातके लिये जरूरी हो।

लवाजमात (अ० पु०) सामग्री, उपकरण।

लवाणक (सं० पु०) लूयतेऽनेनेति लू (आणकः लूधूशिङ्घिधाञ्भ्यः। उण् ३।८३) इति आणक। दात्रादि छेदनद्रव्य, हंसिया।

लवित्र (सं० क्ली०) लूयतेऽनेनेति लू (अर्तिलूधूसूखनसहचर इत्र। पा ३।२।१८४) इति इत्र। दात्र, हँसिया।

लवेरणि (सं० पु०) एक ऋषिका नाम। (संस्कारकौमुदी)

लक्हरिया—१ सिन्धुप्रदेशके शिकारपुर जिलान्तर्गत एक तालुक। यह अक्षा० २७° १५' से ३१' उ० तथा देशा० ६८° २' से ६८° २३' के मध्य अवस्थित है। भूपरिमाण २०७ वर्गमील है।

२ उक्त तालुकका एक नगर। यहां दो फौजदारी अदालत है।

लब्धिसागर—श्रीपालकथाके प्रणेता।

लव्य (सं० त्रि०) छेदनयोग्य, काटनेके लायक।

लब्बय—मन्द्राज और बम्बईमें सिटेंग्लोंमें रहनेवाली एक मुसलमान जाति। मलबार उपकूलमें भी इस जातिका वास देखा जाता है। इस जातिके लोग अरब और पारस देशके औपनिवेशिक मुसलमानोंके सन्तान हैं। अधिक सम्भव है, कि ७वीं सदीमें इराकके शासनकर्त्ता हजाज-इब्न्-युसुफके अत्याचारसे तंग आ कर उस देशके अरबी और पारसी लोग इस देशमें आ कर बस गये हों। इसके अलावा जो सब अरबी और पारसी

मुसलमान वणिक् पश्चिमी-भारतके वाणिज्यके लिये भारत आते जाते थे, उनमेंसे बहुतेरे यहींके अधिवासी हो गये इसी वणिक्सम्प्रदायने १६वीं सदीके प्रारम्भ तक दक्षिण-भारतमें अपनी धाक जमा ली थी। पुर्त्तगीज वणिकोंके प्रभावसे उक्त मुसलमान वणिक्सम्प्रदायका वाणिज्य धीरे धीरे ह्रास होता गया। भारतवासी ये सब मुसलमान-वंशधर ही अभी लब्बय कहलाते हैं। ये खास कर मारवाड़ी और हिन्दी भाषा बोलते हैं।

इनका मुंह और काली काली आंखें देखनेसे मालूम होता है, कि नाना वैदेशिक रक्तके मिलनेसे यह जाति उत्पन्न हुई है। ये स्वभावतः नाटे लेकिन बड़े बलिष्ठ होते हैं। इनका आचार-व्यवहार सराहनीय है। ये साफ सुथरा रहते हैं। चमड़ा, मुक्ता, किमती पत्थर, चावल और नारियल बेचना ही इनका जातीय-व्यवसाय है।

ये साफाई सम्प्रदायभुक्त और सुन्नी-मतावलम्बी हैं। धर्मकर्ममें इनका पूरा ध्यान रहता है। आधेसे अधिक मनुष्य चमड़ेका कारबार करते हैं। व्यवसायके लिये ये सिंहलद्वीप तक धावा करते हैं।

लशकर (फा० पु०) १ सेना, फौज। २ मनुष्योंका भारी समूह, भीड़भाड़। ३ जहाजमें काम करनेवालोंका दल, जहाजी आदमी। ४ फौजके टिकनेका स्थान, छावनी।

लशकरी (फा० वि०) १ फौजका, सेनासम्बन्धी। २ जहाजसे सम्बन्ध रखनेवाला। ३ जहाज पर काम करनेवाला, खलासी। (पु०) ४ सैनिक, सिपाही। ५ जहाजी-आदमी। ६ जहाजियों या खलासियोंकी भाषा।

लशकारना (फा० क्रि०) शिकारी कुत्तोंको शिकार पकड़नेके लिये पुकार कर बढ़ावा देना, लहकारना।

लशुन (सं० क्ली०) अश्यते भुज्यते इति अश (अशेर्लश्च। उण् ३।५७) इति उनन्, लशादेशश्च धातोः। रसोन, लहसुन। पर्याय—महौषध, गृञ्जन, अरिष्ट, महाकन्द, रसोनक, रसोन, म्लेच्छकन्द, भूतघ्न, उग्रगन्ध। लहसुनकी जड़ या कन्द प्याजके ही समान तीक्ष्ण और उग्र गंधवाली होती है। इससे बहुत-से आचारवान् हिन्दू विशेषतः वैष्णव नहीं खाते, प्याजकी गांठ और लहसुनकी गांठकी बनावटमें बहुत अंतर होता है। प्याजकी गांठ कोमल छिलकोंकी तहोंसे मढ़ी हुई होती है, पर लहसुनकी गांठ चारों ओर एक पंक्तिमें गुथी हुई फांकोंसे बनी होती है जिन्हें जवा कहते हैं। वैद्यकमें यह मांसवर्द्धक, शुक्रवर्द्धक, स्निग्ध, उष्णवीर्य, पाचक, सारक, कटु, मधुर, तीक्ष्ण, टूटी जगहको ठीक करनेवाला, कफवातनाशक, कण्ठशोधक, गुरु, रक्तपित्तवर्द्धक, बलकारक, वर्णप्रसादक, मेधाजनक, नेत्रोंका हितकारी, रसायन और हृद्रोग, जीर्णज्वर, कुक्षिशूल, गुल्म, अरुचि, कास, शोथ, आमदोष, कुष्ठ, अग्निमान्द्य, कृमि, वायु, श्वास तथा कफनाशक माना जाता है। भावप्रकाशमें लिखा है, कि लहसुन खानेवालेके लिये खट्टी चीजें, मद्य और मांस हितजनक है तथा कसरत, धूप, क्रोध, अधिक जल, दूध और गुड़ अहितकर है। वैद्यकमें इसके बहुत गुण कहे गये हैं। यह तरकारीके मसालेमें पड़ता है। भावप्रकाशमें लहसुनके सम्बन्धमें यह आख्यान लिखा है,—जिस समय गरुड़ इन्द्रके यहांसे अमृत हर कर लिये जा रहे थे, उस समय उसकी एक बूंद जमीन पर गिर पड़ी, उसीसे लहसुनकी उत्पत्ति हुई।

धर्मशास्त्रके मतसे लहसुन खाना एकदम निषिद्ध है। ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य, इन तीन जातियोंको कदापि लहसुन नहीं खाना चाहिये।

"लशुनं गृञ्जनं चैव पलाण्डुं कवकानि च।
अभक्ष्याणि द्विजातीनाममेध्य प्रभवाणि च॥"

(मनु ५।५)

लशुन, गृञ्जन, पालाण्डु, कवक और अमेध्यप्रभव अर्थात् विष्ठादि जात वस्तु द्विजातियोंकी अभक्ष्य है। कुल्लूकभट्टने उस श्लोककी टीकामें लिखा है,—"द्विजाति ग्रहणं शूद्रस्यपर्युदासार्थं" द्विजाति पदसे पर्युदासार्थ अर्थात् अवज्ञान्तार्थ जानने पर शूद्र भी भक्षण न करे। यदि करे तो कोई विशेष दोषावह नहीं होगा। लहसुन द्विजातियोंके अभक्ष्य है, शूद्र द्विजातिमें गिना नहीं जाता। अतएव शूद्र लहसुन भक्षण कर सकेगा यह शास्त्रका अभिमत नहीं है।

मनु और याज्ञवल्क्यके मतसे यदि कोई द्विजाति (ब्राह्मण, क्षत्रिय) जान बूझ कर लहसुन भक्षण करें, तो वे पतित होंगे। अज्ञानतः भक्षण करनेसे केवल चान्द्रायण तथा ज्ञानतः भक्षण करनेसे उन्हें चान्द्रायणादि करके पुनः संस्कार करना होगा, नहीं तो वे अव्यवहार्य और पतित होंगे।

(मनु ५।१६-२०, याज्ञवल्क्य० १।१७६। पलाण्डु देखो।)

लशुनाद्यतैल—कर्णरोगमें उपकारक एक प्रकारकी औषध। इसके बनानेका तरीका—तिलतैल १ सेर, बकरीका दूध ४ सेर। कल्कार्थ—लहसुन, आंवला और हरताल मिला कर २ पल। इसे कानमें देनेसे बहिरापन जाता रहता है। (भैषज्यरत्ना०)

लशुन (सं० पु०) रसेन ऊनः, रस्य लत्वं, पृषोदरादित्वात् साधुः अकारलोपश्च। लसुन, लहसुन।

लष्वा (सं० स्त्री०) वाञ्छन, चाह।

लषणावती (सं० स्त्री०) एक प्राचीन नगर।

लसना (हिं० क्रि०) प्रसना देखो।

लषमण (सं० पु०) लक्ष्मण।

लषमादेवी—एक राजकन्याका नाम। दूसरा नाम लक्ष्मीदेवी था।

लष्व (सं० पु०) लाषयति नृत्ये निर्त्यं गुणकीर्ति लष (सर्वनिघृष्वेति। उण् १।१५३) इति वन्प्रत्ययेन साधुः। नर्तक, वह जो नाचता हो।

लसकर (हिं० पु०) लश्कर देखो।

लस (सं० पु०) १ चिपकने या चिपकानेका गुण श्लेषण। २ वह जिसके लगानेसे एक वस्तु दूसरी वस्तुसे चिपक जाय, लासा। ३ चित्त लगनेकी बात, आकर्षण।

लसक (सं० पु०) नर्तक, नाचनेवाला।

लसदार (फा० वि०) जिसमें लस हो, लसीला।

लसना (हिं० क्रि०) एक वस्तुको दूसरी वस्तुके साथ इस प्रकार सटाना कि वह अलग न हो, चिपकाना।

लसम (हिं० वि०) जो खरा और चोखा न हो, दागी।

लसलसा (हिं० वि०) लसदार, चिपचिपा।

लसलसाना (हिं० क्रि०) गोंद या लसदार चीजकी तरह चिपकना, चिपचिपाना।

लसलसाहट (हिं० स्त्री०) लसदार होनेका भाव, चिपचिपाहट।

लसवारी—राजपूताना अलवार-राज्यके अन्तर्गत एक बड़ा गांव। यह अक्षा० २७°३३´ उ० तथा देशा० ७६° ५६´ पू०के मध्य रामगढ़नगरसे चार कोस दक्षिण-पूर्व तथा अलवार-राजधानीसे दस कोस दक्षिण पूर्वमें अवस्थित है। यहां १८०३ ई०में विख्यात लसवारीका युद्ध हुआ था, जिसमें अङ्गरेजोंके हाथसे प्रसिद्ध महाराष्ट्र-शक्तिका पराभव हुआ।

जब सेनापति लार्ड लेकको यह खबर लगी, कि मराठी सेना छिपके बढ़ रही है, तब वे उन्हें रोकनेके लिए घुड़सवार सेनादलको ले कर गहरी रातमें इस गांवके [illegible] पहली नवम्बरको दोनों दलमें मुठभेड़ हुई। [illegible] लेक भारी पराजय अवश्यम्भावी समझ कर [illegible] हुए। इसी समय पैदल सेना उनकी सहायता[illegible] पहुंच गई। लार्ड लेक कुछ काल विश्राम कर फिर युद्धके लिए रणक्षेत्रमें उतरे। इस बार सिन्धे सैन्यने [illegible] विक्रमसे अङ्गरेजों पर हमला किया। मराठी सेनाने [illegible] पर्यन्त युद्ध कर भारतमें गौरवकी रक्षा की थी। [illegible] उन्होंने यह सैन्य नष्ट हो जानेके भयसे लड़ाई बन्द [illegible] दी। अङ्गरेजोंकी जीत हुई। उन्हें ७१ कमान और [illegible] रसद भी मिली।

लसा (सं० स्त्री०) लसतीति लस-अच्, टाप्। [illegible] हल्दी।

लसिका (सं० स्त्री०) लसतीति लस-अच् ततः स्वार्थे कन् [illegible] टाप् अत इत्वं। लाला, थूक।

लसी (हिं० स्त्री०) १ लस, चिपचिपाहट। २ चित्त लगने[illegible] वस्तु, आकर्षण। ३ सम्बन्ध, लगाव। ४ लोभका [illegible] फायदेका डौल। ५ दूध और पानी मिला शरबत।

लसीका (सं० स्त्री०) १ इक्षुरस, ईखका रस। २ [illegible] मांसतत्स्थगत रस, मांस और चमड़ेके बीचमें रहनेवाला रस या पानी।

लसीला (हिं० वि०) १ लसदार, चिपचिपा। २ शोभा[illegible] युक्त, सुन्दर।

लसुन (हिं० पु०) लशुन देखो।

लसुनिया (हिं० पु०) लहसुनिया देखो।

लसोढ़ा (हिं० पु०) एक प्रकारका छोटा पेड़। इस[illegible] पत्तियां गोल गोल और पान बेरके-से होते हैं। [illegible] वसन्तमें पत्तियां झड़ता है और हिन्दुस्तानमें प्रायः [illegible] पाया जाता है। फलमें बहुत ही लसदार गूदा होता [illegible] यह फल औषधके काममें आता है और सूखी खांसी [illegible] दूर करनेके लिये दिया जाता है। फारसीमें [illegible] सपिस्तां कहते हैं। हकीम लोग मिश्री मिला कर अवलेह या चटनी बनाते हैं, जो खांसीमें चाटनेके लिये दिया जाता है। संस्कृतमें भी इसे श्लेष्मातक कहते हैं।

लहबर (हिं॰ पु॰) १ एक प्रकारका बहुत लंबा और ढीला ढाला पहनावा, चोगा। २ झंडा, निशान। ३ एक प्रकारका तोता जिसकी गरदन बहुत लंबी होती है।

लहमा (हिं॰ पु॰) निमिष, पल।

लहर (सं॰ पु॰) एक जाति। २ काश्मीरके अन्तर्गत लोहर जनपद।

लहर (हिं॰ स्त्री॰) १ हवाके झोंकेसे एक दूसरेके पीछे ऊंची उठती हुई जलकी राशि, बड़ा हिलोरा। २ उमंग, जोश। ३ आनन्दकी उमंग, मौज। ४ शरीरके अंदरके किसी उपद्रवका वेग जो कुछ अंतर पर रह रह कर उत्पन्न हो, झोंका। ५ मनकी मौज, मनमें आपसे आप उठी हुई प्रेरणा। ६ वक्र गति, इधर उधर मुड़ती हुई टेढ़ी चाल। ७ आकाशकी गूंज, स्वरका कंप जो वायुमें उत्पन्न होता है। ८ हवाका झोंका। ९ किसी प्रकारकी गंधसे भरी हुई हवाका झोंका, महक। १० बराबर इधर उधर मुड़ती या टेढ़ी होती हुई जानेवाली रेखा, चलते सर्पकी-सी कुटिल रेखा।

लहरदार (फा॰ वि॰) जो सीधा न जा कर टेढ़ मेढ़ा गया हो, कुटिल या वक्र गतिसे गया हुआ।

लहरना (हिं॰ क्रि॰) लहराना देखो।

लहरपटोर (हिं॰ पु॰) पुरानी चालका एक प्रकारका रेशमी धारीदार कपड़ा।

लहरा (हिं॰ पु॰) १ लहर, तरंग। २ मौज, मजा। ३ बाजोंकी वह गत जो आरम्भमें नाचने या गानेके पहले समां बांधने और आनन्द बढ़ानेके लिये बजाई जाती है। इसमें कुछ गाना नहीं होता केवल ताल और स्वरोंकी मधुरता होती है। ४ एक प्रकारकी घास।

लहरा—उड़ीसाके अन्तर्गत एक प्राचीन नगर। यह पाल-लहरा राज्यकी राजधानी है। पाल-लहरा देखो।

लहराना (हिं॰ क्रि॰) १ हवाके झोंकेसे इधर उधर हिलना डोलना, लहरें खाना। २ मनका उमंगमें होना, उल्लासमें होना। ३ आगकी लपटका निकल कर इधर उधर हिलना, दहकना। ४ हवाका चलना या पानीका हवाके झोंकेसे उठना और गिरना, लहरा या हिलोर मारना। ५ किसी वस्तुके लिये उत्कंठित होना, ललचना। ६ शोभित होना, विराजना। ७ सीधे न चल कर सांपकी तरह इधर उधर मुड़ते या झोंका खाते हुए चलना। ८ हवाके झोंकेसे इधर उधर हिलाना डुलाना या हिलने डोलनेके लिये छोड़ देना। ९ बार बार इधरसे उधर हिलाना डुलाना। १० सीधे न चल कर सांपकी तरह इधर उधर मोड़ते हुए चलाना, वक्रगतिसे ले जाना।

लहरि (सं॰ स्त्री॰) महातरंग। लहर देखो।

लहरिया (हिं॰ पु॰) १ ऐसी समानान्तर रेखाओंका समूह जो सीधी न जा कर क्रमसे इधर उधर मुड़ती हुई गई हों, टेढ़ी मेढ़ी गई हुई लकीरोंकी श्रेणी। २ वह साड़ी या धोती जिसकी रंगाई टेढ़ी मेढ़ी लकीरोंके रूपमें हो। ३ एक प्रकारका कपड़ा जिसमें रंग बिरंगी टेढ़ी मेढ़ी लकीरें बनी होती हैं। ४ गोटेके कपड़ोंके किनारे बनी हुई बेल। (स्त्री॰) ५ लहर शब्दका पूर्वी निर्देशात्मक रूप।

लहरियादार (फा॰ वि॰) जिसमें लहरिया बना हो, जिसमें बहुत-सी टेढ़ी मेढ़ी रेखाएं हों।

लहरी (सं॰ स्त्री॰) लहर, तरंग।

लहल (हिं॰ पु॰) एक प्रकारका राग जो दीपक रागका पुत्र कहा जाता है।

लहलह (हिं॰ वि॰) १ लहलहाता हुआ, हरा भरा। २ हर्षसे फूला हुआ, खुशीसे खिला हुआ।

लहलहा (हिं॰ वि॰) लहलहाता हुआ, हरा भरा। २ हरे हुए। ३ आनन्दसे पूर्ण, खुशीसे भरा हुआ।

लहलहाना (हिं॰ क्रि॰) १ लहरानेवाली हरी पत्तियोंसे भरना, हरा भरा होना। २ दुर्बल शरीरका फिरसे अंग और सजीव होना, शरीर पनपना। ३ प्रफुल्ल होना, खुशीसे भरना। ४ सूखे पेड़ या पौधेमें फिरसे पत्तियां निकलना, पनपना।

लहलही (हिं॰ वि॰ स्त्री॰) लहलहा देखो।

लहसुन (हिं॰ पु॰) १ एक पेड़की जड़ कर मारी और गिरी हुई लम्बी लम्बी पतली पत्तियोंका एक पौधा। इसकी जड़ गोल गांठके रूपमें होती है।

विशेष विवरण लशुन शब्दमें देखो।

२ माणिक्यका एक दोष। इसे संस्कृतमें अशोभक कहते हैं।

लहसुनिया (हिं॰ पु॰) धूमिल रंगका एक रत्न या बहुमूल्य

पत्थर, मद्राक्षक। यह नयरत्नोंमें है तथा लाल, पीले और हरे रंगका भी होता है। जिस पर तीन अर्द्ध-रेखाएं हों, वह उत्तम समझा जाता है और 'ढाई सूतका' कहलाता है।

लहसुनी हींग (हिं० स्त्री०) एक प्रकारकी कृत्रिम हींग जो लहसुनके योगसे बनाई जाती है।

लहसुवा (हिं० पु०) एक प्रकारका साग।

लहाछेद (हिं० पु०) १ नृत्यकी क्रियाओंमेंसे चौथी क्रिया, नाचकी एक गति। २ नाचनेमें तेजी और झपट।

लहार—मध्यभारतके ग्वालियर राज्यान्तर्गत एक दुर्गाधिष्ठित नगर। यह अक्षा० २५° ११' ५०" उ० तथा देशा० ७८° ५१' ५" पू०के मध्य सिन्धुनदके दाहिने किनारेसे तीन कोस पूर्वमें अवस्थित है। १७८० ई०में अङ्गरेजी-सेनाके इस दुर्ग पर चढ़ाई करनेसे दोनों दलमें घमसान युद्ध छिड़ा। उस समय दुर्गमें ५०० सेना मौजूद थी। कर्नेल पपहाम दुर्ग पर घेरा डाल कर गोला बरसाने लगे। इससे सिर्फ किलादार और उनके कुछ अनुचरोंके सिवा और सभी यमपुरको सिधारे।

लहारपुर—१ अयोध्याप्रदेशके सीतापुर जिलान्तर्गत एक परगना। भू-परिमाण १७२ वर्गमील है। लहारपुर नगरसे दो मील पश्चिम केशरीगंज नगर यहांका प्रधान वाणिज्यकेन्द्र है। इस परगनेके मध्यभागमें १०२० फुट ऊंची एक अधित्यका भूमि दिखाई पड़ती है। यहांकी मिट्टी कड़ी होती है। दक्षिणकी जमीन उर्वरा है।

मुगल-सम्राट् अकबरके समय राजा टोडरमलने १३ तप्पोंको ले कर यह परगना संगठित किया था। गौड़ और जनवार राजपूत यहांके स्वत्वाधिकारी हैं। १७०७ ई०में मुगल-सम्राट् औरङ्गजेबकी जब मृत्यु हो गई, तब राज्यमें अराजकता देख गौड़राज चन्द्रसेनने सीतापुर पर आक्रमण कर दिया और उसे अपने कब्जेमें कर लिया। तभीसे उन्हींके वंशधर इस सम्पत्तिके अधिकारी हैं। स्थानीय जनवार राजपूत कुर्री परगनेके सैन्दूर नगरसे यहां आ कर बस गये और सैन्दूरी कहलाने लगे। ये गौड़राजवंशसे पहले यहां आये हुए थे।

२ उक्त परगनेका एक प्रसिद्ध नगर। यह अक्षा० २७° ४२' उ० तथा देशा० ८०° ५५' पू०के मध्य घाघरा नदीके तट पर महापुर नगर जानेके रास्तेमें अवस्थित है। जनसंख्या १०११७ है जिसमें आधा हिन्दू और मुसलमान हैं।

इस नगरमें १३ मसजिद, २ मकबरा, ४ हिन्दूमन्दिर और २ सिख मन्दिर हैं। इसके अलावा यहां १ चिकित्सालय और २ स्कूल हैं। रबि-उस्-सानीके महीनेमें यहां एक मेला लगता है और बड़ी धूमधामसे मुहर्रम मनाया जाता है। १३७० ई०में सम्राट् फिरोज तुगलक बहराइचमें सैयद् सलार मसाउदका मकबरा देखने आये। उन्होंने ही इस नगरको अपने नाम पर बसाया था। इसके ३० वर्ष बाद लहरी नामक एक पासीने इस नगर पर कब्जा कर इसका नाम लहारपुर रखा। १४१८ ई०में कन्नौजसे प्रेरित मुसलमान सेनापति शेख ताहिर गाजीने पासियोंको समूल निहत कर यह स्थान अपने कब्जेमें कर लिया। ११०७ ई०में गौड़ राजपूतगण मुसलमानोंको नगरसे भगा कर खुद राज्यशासन करने लगे। सम्राट् अकबरशाहके राजमन्त्री और सेनापति राजा टोडरमल इसी नगरमें पैदा हुए थे।

लहालोट (हिं० वि०) १ हंसीसे लोटता हुआ, हंसीमें मग्न। २ प्रेममग्न, लुभाया हुआ। ३ खुशीसे भरा हुआ, आनन्दके मारे उछलता हुआ।

लहासन (हिं० स्त्री०) वह काली भेंड जिसकी कनपटीसे माथे तकका भाग लाल होता है।

लहासी (हिं० स्त्री०) १ वह मोटी रस्सी जिससे नाव या जहाज बांधे जाते हैं। २ रस्सी, डोरी। ३ रास्तेमें निकली हुई जड़।

लहिक (सं० पु०) एक व्यक्तिका नाम। (गरोड़ रेखो।)

लहुल (लाहुल)—पंजाबप्रदेशके कांगड़ा जिलान्तर्गत एक उपविभाग। यह अक्षा० ३२° ८' से ३२° ५९' उ० तथा देशा० ७६° ४६' से ७७° ४७' पू०के बीच पड़ता है। भू-परिमाण २२५५ वर्गमील और जनसंख्या ७२०५ है। उत्तर-पश्चिममें विस्तृत चम्बा व तमाङ्गा और दक्षिण-पूर्वमें पंजाबगिरिमालाकी मध्यवर्त्ती उपत्यकाभूमि ले कर यह उपविभाग बना है। इसके उत्तर-पश्चिममें चम्बा शैल, उत्तर और पूर्वमें लादकके अन्तर्गत रुपसू उप-

विभाग, पश्चिम-दक्षिणमें कांगड़ा और कुल्लू तथा दक्षिण-पूर्वमें स्पिति विभाग है।

हिमालयके शिखर पर स्थित यह उपत्यका-भूमि बड़े बड़े पहाड़ोंसे घिरी है। इसमें होकर चन्द्रा और भागा नामकी दो नदियां तीव्र धारासे बहती हैं और टाण्डी गांवके पास आपसमें मिल गई हैं। पीछे चन्द्रभागा नामसे चम्बामें प्रवेश कर पंजाबकी समतल-भूमिमें बह चली है।

इन दोनों नदियोंके अन्तर्वर्ती प्रदेशके दोनों किनारे हिमालयकी चोटी पड़ती है। देखनेसे मालूम होता है मानो उन्हीं भयावह और गगनचुम्बी तुषाराच्छन्न पर्वत-कन्दराको फाड़ कर दोनों नदी इस छोटी उपत्यकामें बहती है। बड़ा लाचा शिखिर समुद्रकी तहसे १६२२१ फुट ऊंचा है। उससे उत्तर पूरबमें जो सब शैलमाला शिर उठाये खड़ी हैं, वे भी १९-२१ हजारसे कम ऊंची न होंगी।

इस पहाड़ी उपत्यकाका अधिकांश स्थान ही जन-शून्य है। मनुष्यके रहनेका कोई उपयुक्त स्थान दिखाई नहीं पड़ता। गरमीके दिनोंमें कुल्लूवासी यहांसे इस विभागमें भेंड़ चराने आते हैं। उस समय वे अपने अपने रहनेके लिये घर बना लेते हैं। कहीं कहीं लामा या बौद्ध-संन्यासियोंके घर और बौद्धमठ दिखाई पड़ते हैं।

चन्द्राभागाकी दोआबसे भागाके किनारे अवस्थित दार्चा तक चारागाहोंका स्थान एकदम नहीं है। इस उपत्यका-भूमिके बीच अर्थात् समुद्रपृष्ठसे प्रायः १० हजार फुट ऊंचे स्थानमें कुछ ग्रामादि दिखाई पड़ते हैं। ११३४५ फुट ऊंची अधित्यका भूमिमें कंजर नामक ग्राम अवस्थित है। इतने ऊंचे पर इसके सिवाय और कोई ग्राम नहीं है। रोहतङ्ग और बारलाच शिखिर हो कर लदाख और यारकन्द जानेका एक चौड़ा रास्ता गया है। आज भी वणिक् लोग इस पथसे आते जाते हैं।

तिब्बत और-पश्चिमस्थ कुल्लूराज्य भी पहलेसे यह स्थान देखते आते थे। पूर्वकालमें यहां बौद्धधर्मका प्रादुर्भाव था तथा यह स्थान तिब्बतराज्यके अन्तर्गत था। १०वीं सदीमें जोर राज्यमें उथल पुथल मचा हुआ, तब यह स्थान तिब्बतीय अधिकारसे निकल कर लदाखके शासनाधीन हो गया। फिर कब इस प्रकार पीछे यह स्थान तिब्बतीय अधिकारसे निकल कर स्वाधीन हो गया, मालूम नहीं। पर हां, इतना अनुमान किया जाता है, कि १६०० ईमें लदाखकी शासनशक्तिका संहार होनेसे पहले यह घटना घटी थी। कुछ समय तक यह स्थान ठाकुर-सामन्तोंके शासनमें रहा। स्थानीय उक्त सरदारगण सभी महाराजाओंको कर देते थे। आज भी इन सरदारों-का वंश इस प्रदेशका शासन करता है। वे पूर्व-पुरुषोंकी इस सम्पत्तिका आधिपत्य और कर भोग करते आ रहे हैं। १७वीं सदीमें राजा जगत्सिंहके पुत्र बुधसिंहके राजत्वकालमें यह कुल्लूराजके अधिकारमें हुआ। राजा जगत्सिंह मुगल-सम्राट् शाहजहान और औरङ्गजेबके समसामयिक थे। बुधसिंहके अधिकारसे १८४६ ई० तक लाहुल कुल्लूराजके दखलमें रहा। पीछे यह अंगरेज राजके हाथ आया।

यहांके अधिवासियोंमेंसे ठाकुर उपाधिधारी सामन्त ही प्रधान हैं। वे लोग अपनेको राजपूत बतलाते हैं सही, पर मुखश्री या तिब्बतीय खून इनके शरीरमें प्रकट है। कनेत नामक पहाड़ी जाति भारतीय और मंगोलीय जातिसे उत्पन्न हुई है। ये सबके सब बौद्धधर्मावलम्बी हैं। फिर भी वर्त्तमान ठाकुरोंके उद्योगसे यहां धीरे धीरे हिन्दू-धर्म भी जोरों जमता जा रहा है। नीचे उपत्यका-भागमें कुछ सद्ब्राह्मण वसोवास करते हैं, किन्तु बहुत जगह पुरोहित लोग दोनों धर्मका पालन करते हैं। कहीं कहीं तिब्बतीय प्रथाका प्रसंग दिखाई देता है। पर्वतके ऊपर बहुतसे बौद्धमठ प्रतिष्ठित हैं। इनमेंसे चन्द्रा और भागा नदीके संगम पर अवस्थित गुरुघण्टाल-मठ ही प्रधान है। यहांके वाशिन्दे बड़े सुन्दर और शराबी होते हैं। खेती, बागीचा और व्यापार काम ही यहांका प्रधान जीविकोपाय है। अधिवासी ऊन, सोहागा, कपड़े, बकरे, भेड़े और घोड़ेका व्यवसाय कर अपना गुजारा चलाते हैं। यहां ठंढ खूब पड़ती है। गर्मीके महीनेमें कार्दाङ्गकी वायुका ताप ६८° F, जाड़ेमें ५६° F तथा अगिनमें ६१° F रहता है, बाद धीरे धीरे कम होता जाता है।

मठ (हिं० पु०) मठ, स्तूप।

मठेर (हिं० पु०) गुलाब व फूल।

मठैन (हिं० पु०) छोटे कदका एक मझोला पेड़। यह

पञ्जाब, दक्षिण गुजरात और राजपूतानेमें बहुत होता है। इसके हीरकी लकड़ी बहुत चिकनी, साफ और मजबूत होती है और कुर्सी, मेज, अलमारी इत्यादि सजावटके सामान बनानेके काममें आती है।

लहेरा—१ बिहारवासी जातिविशेष। लाहकी चूड़ी बना कर बेचना ही इनका जातीय व्यवसाय है। इनकी स्वतन्त्र जाति नहीं है, निम्न श्रेणीके विभिन्न सम्प्रदायसे बनी है। लाहका व्यवसाय करनेके कारण इनका लहेरा नाम हुआ है। गङ्गानदीके उत्तरी और दक्षिणी किनारे रहनेसे इनमें तिरहुतिया और दक्षिणिया नामक दो स्वतन्त्र थोक हैं। चूरी-जातिकी एक शाखा लाहका गहना बनाती है, इस कारण वह भी लहेरा-श्रेणीमें मिल गई है। लखेरी देखो।

इन लोगोंके मध्य काशी और महुरिया नामक दो गोत्र या श्रेणी-विभाग हैं। सपिण्ड सात पुरुषको बाद कर ये लोग पुत्र-कन्याका विवाह करते हैं। जवान पुत्र-कन्याका विवाह करनेमें कोई दोष नहीं होता। किन्तु अकसर बाल्यविवाह हो चलता है। विवाहप्रथा स्थानीय हिन्दू सी है। केवल वरके पिताको तिलक देनेकी व्यवस्था है। इन लोगोंके मध्य बहुविवाह प्रचलित है। पहली स्त्री बांझ होनेसे मर्द दूसरा विवाह कर सकता है। विधवा सगाई मतसे विवाहित होती है। इस समय वह अकसर देवरसे ही विवाह करती है। यदि दूसरे मर्दसे विवाह करनेकी इच्छा हो, तो कर भी सकती है। स्त्रीका चालचलन खराब होनेसे पंचायत उसका विचार करती है। यदि दोष साबित हो जाय, तो पुरुष उसे छोड़ सकता है। स्वजातिके मध्य यदि कोई किसी स्त्रीको कुमार्ग पर ले जाय, तो अपने समाजके प्रधानोंको भोज दे कर समाजमें मिलना है। किन्तु भिन्न सम्प्रदायके दूसरे पुरुषमें आसक्त हो कर यदि वह रमणी पाप-पङ्कमें लिप्त हो जाय, तो उसे समाजसे निकाल दिया जाता है।

बिहार प्रदेशके सहश हिन्दूके मध्य पुत्र-कन्याका उत्तराधिकार मिताक्षराके मतसे प्रचलित है। इन लोगोंमें पञ्जाबकी 'चूड़ावन्द' प्रथा देखी जाती है। उससे स्त्रीके संख्यानुसार ही स्वामीकी सम्पत्ति विभक्त होती है। अर्थात् पहली स्त्रीके यदि एकमात्र पुत्र हो और दूसरीके अनेक, तो मृत पिताकी सम्पत्ति दो भागोंमें बांटी जाती है। एक भागका अधिकारी पहली स्त्रीका एकमात्र पुत्र होता है। सम्पत्ति बांटते समय विवाहित और नीशास्त्रीका कोई विचार नहीं रहता।

ये लोग अपनेको कट्टर हिन्दू बतलाते हैं। भगवतीको आराध्य देवी जान कर उन्हींकी उपासना करते हैं। किन्तु हिन्दूके दूसरे दूसरे देवकी अवज्ञा भी नहीं करते, तिरहुतिया ब्राह्मण इनके पुरोहित होते हैं। इससे ये लोग समाजमें निन्दनीय नहीं होते। बन्दी और गोराइया नामक ग्राम्य-देवताको हरएक गृहस्थ पूजा करता है। इस समय ब्राह्मणकी जरूरत नहीं पड़ती। इन दो देवताको घरका मालिक ही बकरा, दूध, रोटी और मिष्टान्नादि चढ़ाता है।

ये लोग समाजमें कोइरी और कुर्मियोंके समान समझे जाते हैं। ब्राह्मण इनके हाथका जल पीते हैं। लाहकी चूड़ी और खिलौने बनानेके सिवा ये लोग खेती बारी भी करते हैं।

२ एक जाति जो रेशम रंगनेका काम करती है।
३ पक्का रेशम रंगनेवाला, रंगरेज।

लहेरियासराय—दरभङ्गा जिलेके दरभङ्गा शहरका एक हिस्सा। १८८४ ई०से सरकारी अदालत यहीं पर लगती है। यहां बी० एन० डबल्यू रेलवेका एक ष्टेशन भी है।

लहोड़ (सं० पु०) पाणिनिके अनुसार एक व्यक्ति। (पा ५।३।१८)

लहा (सं० पु०) १ एक ऋषिका नाम। २ उनके वंशधर। (हृहदारण्यक ३।३।१)

लॉ (अं० पु०) १ वे राजनियम या कानून जो देश या राज्यमें शान्ति या सुव्यवस्था स्थापित करनेके लिये बनाये जांय। २ ऐसे राजनियमों या कानूनोंका संग्रह, व्यवहारशास्त्र, धर्मशास्त्र। जैसे,—हिन्दू लॉ, महम्मदन लॉ।

लांगड़ो (हिं० पु०) हनुमानजी।

लांग प्राइमर (अं० पु०) छापेखानेमें एक प्रकारका टाइप, जिसका आकार आदि इस प्रकार होता है—
'लांग प्राइमर'।

लांघना (हिं० क्रि०) १ किसी चीजके इस पारसे उस पार जाना, लांघना। २ किसी वस्तुको उछल कर पार करना।

लायनी उड़ी (हिं० स्त्री०) मल्लखंभकी एक कसरत। यह साधारण उड़ीके ही समान होती है। इसमें विशेषता यह है, कि इसमें खोंचका कुछ स्थान छूट या लांघ कर पार किया जाता है।

लाय (हिं० स्त्री०) लपटन, धूप।

लायो (हिं० पु०) एक प्रकारका धान।

लाइक (हिं० वि०) लायक देखो।

लाइची (हिं० स्त्री०) इलायची देखो।

लाइट हाउस (अं० पु०) एक प्रकारका स्तम्भ या मीनार जिसके सिर पर एक बहुत तेज रोशनी रहती है जिससे जहाज वहाज आदिसे न टकराय या और किसी प्रकारकी दुर्घटना न हो, प्रकाशस्तम्भ।

लाइट माउण्ट—आसामके खासिया पर्वतमालाके अन्दर एक गिरिश्रेणी। यह समुद्रकी तहसे ५३७७ फुट ऊंची है।

लाइन (अं० वि०) १ कतार, अवली। २ पंक्ति, सतर। ३ रेलकी सड़क। ४ घरोंकी वह पंक्ति जिसमें सिपाही रहते हैं, बारिक, लैन। ५ रेखा, लकीर। ६ व्यवसाय, पेशा।

लाइन क्लियर (अं० पु०) रेलवेमें वह संकेत या पत्र जो किसी स्टेशनोंके ड्राइवरको यह सूचित करनेके लिये दिया जाता है, कि तुम्हारे जाने या आनेके लिये रास्ता साफ है। बिना यह संकेत या पत्र पाये वह गाड़ी आगे नहीं बढ़ा सकता।

लाइफ बोय (अं० पु०) एक प्रकारका यन्त्र। यह ऐसे ढंगसे बना होता है, कि पानीमें डूबता नहीं, तैरता रहता है और डूबते हुए व्यक्तिके प्राण बचानेके काममें आता है। इसे गेंदवा भी कहते हैं। यह कई प्रकारका होता है और प्रायः जहाजों पर रखा रहता है। यदि संयोगसे कोई मनुष्य पानीमें गिर पड़े, तो यह उसकी सहायताके लिये फेंक दिया जाता है। इसे पकड़ लेनेसे मनुष्य डूबता नहीं।

लाइफ बोट (अं० स्त्री०) एक प्रकारकी नाव जो समुद्रमें जहाजोंके साथ बचानेके काममें लाई जाती है। ये नावें विशेष प्रकारसे बनी हुई होती हैं और जहाजों पर लटकती रहती हैं। जब तूफान या अन्य किसी दुर्घटनामें जहाजके डूबनेकी आशंका होती है, तब ये नावें पानीमें छोड़ दी जाती हैं। लोग इन पर चढ़ कर प्राण बचाते हैं।

लाइब्रेरी (अं० स्त्री०) १ वह स्थान जहां पढ़नेके लिये बहुत सी पुस्तकें रखी हों, पुस्तकालय। २ वह कमरा या भवन जहां पुस्तकोंका संग्रह हो, पुस्तकालय।

लाइसेंस (अं० पु०) लैसेन्स देखो।

लाई (हिं० स्त्री०) १ उबाले हुए धानोंको सुखा कर गरम बालूमें भूननेसे बनी हुई खीलें, धानका लावा। २ छिपी शिकायत, चुगली।

लाई (फा० स्त्री०) १ एक प्रकारका रेशमी कपड़ा। २ एक प्रकारकी ऊनी चादर। ३ शराबकी तलछट।

लाऊ (हिं० पु०) लौकी, घिया।

लॉक-अप (अं० पु०) हवालात।

लाकड़ी (हिं० स्त्री०) लकड़ी देखो।

लॉकेट (अं० पु०) वह लटकन जो घड़ीकी या और किसी प्रकारकी पहननेकी जंजीरमें शोभाके लिये लगाया जाता है और नीचेकी ओर लटकता रहता है।

लाक्साम—त्रिपुराके अन्तर्गत एक गण्डग्राम। यहां आसाम बंगाल रेलवेका एक जंक्शन है।

लाकाडोंग—आसामप्रदेशकी जयन्ती शैलमालाके दक्षिणमें अवस्थित एक ग्राम। यह [illegible] शेलाघाटसे ६ मील दूर और समुद्रपृष्ठसे ४२०० फुट ऊंचा है। यहां एक छोटी कोयलेकी खान है। इस खानका कोयला प्रायः अंगरेजी बढ़िया कोयलेके समान है। यह अंगरेज-सरकारके मातहतमें है। लाकाडोंगसे कुम्भीनागाओंमें शेलाघाट तक कोयला ढोआई करना था इसमें बहुत खर्च पड़ता था। इस कारण आज कल यहांसे कोयला निकाला नहीं जाता।

लाखापादर—बम्बई प्रेसिडेन्सीके काठियावाड़ जिलान्तर्गत मालवाड़ प्रान्तमें एक छोटा सामन्तराज्य। यहांके सरदार बड़ौदा गायकवाड़को वार्षिक १२४) और जूनागढ़ नवाबको ७४) राजकर देते हैं।

लाकिनी (सं० स्त्री०) तान्त्रिकोंके अनुसार एक देवीका नाम। दुर्गोत्सवपद्धतिमें 'ओं लाकिन्यै नमः' इस मन्त्रसे पूजा करनी होती है।

लाकुच (सं० पु०) लकुच देखो।

लाक्ष (सं० त्रि०) लाक्ष या लक्ष्मी शब्दका अपप्रयोग।

लाक्षकी (सं० स्त्री०) सीताका एक नाम।

(पद्मपु० उत्तरखं० ५५ अ०)

लाक्षण (सं० त्रि०) १ लक्षण सम्बन्धी, लक्षणका। २ लक्षणवित्, लक्षण जाननेवाला।

लाक्षणि (सं० पु०) लक्षणका गोत्रापत्य।

लाक्षणिक (सं० पु०) लक्षणमधीते वेद वा लक्षण (क्रतूक्थादि सूत्रान्तात् ठक्। पा ४।२।६०) इति ठक्। १ लक्षणाभिज्ञ, वह जो लक्षणोंका ज्ञाता हो। २ वह छन्द जिसके प्रत्येक चरणमें ३२ मात्राएं हों। (त्रि०) ३ जिससे लक्षण प्रकट हो। ४ लक्षणसम्बन्धी।

लाक्षण्य (सं० त्रि०) लक्षणवित्, लक्षण जाननेवाला।

लाक्षा—कामरूपके दक्षिणमें प्रवाहित एक नदी। (कालिका-पु० १७ अ०) रामपालके दक्षिणमें भी यह नदी बहती है। (देशावली)

लाक्षा (सं० स्त्री०) लक्ष्यतेऽनयेति लक्ष (गुरोश्च हलः। पा ३।३।१०३) इति अ-टाप्, यद्वा-बाहुलकात् राजतेरपि सा' कपिलिकादित्वात् वा लत्वं (उण् ३।६२) रक्तवर्ण वृक्षनिर्यासविशेष, लाख, लाह। संस्कृत पर्याय—राक्षा, जतु, याव, अलक्त, द्रुमामय, खदिरिका, रक्ता, रङ्गमाता, पलङ्कषा, क्रमिहा, द्रुमव्याधि, अलक्तक, पलाशी, मुद्रिणी, दीप्ति, जन्तुका, गन्धमादिनी, नीला, द्रवरसा, पित्तारि।

भिन्न भिन्न देशमें यह भिन्न भिन्न नामसे प्रसिद्ध है। हिन्दी—लाख, लाह; बङ्गला—गाला; गुजरात—लाक; तामिल—कोम्बुरक्कि; तैलङ्ग—कोम्मलक, लसुक, लक; मलयालम्—अम्बुल; ब्रह्म—खेजिअक; सिङ्गापुर—लघर; महाराष्ट्र—लाख; कलिङ्ग—अरएड।

असना, वट, महुआ; पलाश आदि वृक्षोंके छिलकेमें लाखका कीड़ा (Coccus lacca) रहनेके कारण लाल रंगका जो निर्यास निकलता है उसीको लाक्षा कहते हैं। कोई कोई कहते हैं, कि लाखका कीड़ा वृक्षका छिलका खा कर जो मल त्याग करता है वही जलवायु और वृक्षके रसगुणसे लाक्षामें परिणत हो जाता है। इस लाक्षा या लाहके लिये भारतवर्षके नाना स्थानोंमें खेती होती है। वहांके लोग एक वृक्षसे लाक्षा कीट ले कर दूसरे वृक्ष पर छोड़ देते हैं। उस कीटसे वृक्षके छिलकेमें नये कीटकी उत्पत्ति होती है। धीरे धीरे यह नूतन कीटवंश वृक्षको छा लेता है। जब लाक्षाकीटसे वृक्षका आपाद मस्तक आच्छन्न हो जाता है, तब वह वृक्ष जीता नहीं रहता, रसहीन हो कर उसके पत्ते झड़ जाते हैं। उसके तनेसे ले कर पल्लवादि तक लाक्षामलसे आवृत हो कर मलसंयुक्त हरिद्राभ लोहितवर्णमें रंग जाता है। लाक्षापालनकारी उपयुक्त समयमें वह लाक्षामल परिपक्व हुआ है या नहीं, जान कर उसे तोड़ लेते और बाजारमें बेचते हैं। यह लाक्षा देशी वाणिज्यके पण्यद्रव्यमें गिनी जाती है। उससे नाना प्रकारके खिलौने बनते हैं। खिलौने बनानेसे पहले उसे जलमें भिगो रखते हैं। जल धीरे धीरे लाल हो जाता है। यह लाल जल सुखाने पर गाढ़ा होता है। पीछे जो लाल रंग पेंदीमें जम जाता है उसे पुनः सुखा कर 'Lac dye' तय्यार करते हैं। यही वाणिज्यद्रव्यरूपमें बाजारमें विकता है। अलता नामक सूती कपड़ा इसी लाक्षा-रंगसे बनता है।

भिगोने और परिष्कार करनेके बाद लाख एक छोटे बीजकी तरह चूर्ण हो जाती है। उसे लाखदाना या seed-lac कहते हैं। उन दानोंको आगकी गर्मीमें थोड़ी रजनके साथ गला कर जो लाखका पत्तर (shell-lac) बनाया जाता है उसका नाम चपड़ा है। बुतामकी जैसी छोटी और गोल लाख (Button-lac) कहलाती है।

भारतवर्षके स्थानविशेषमें लाखकी उत्पत्ति और परिमाण स्वतन्त्र है। पश्चिम बङ्गाल और आसामके पहाड़ी प्रदेशमें तथा मध्यप्रदेशके नाना स्थानोंमें लाक्षा बहुतायतसे पाई जाती है। युक्तप्रदेशमें इसकी खेती बहुत कम देखी जाती है। पञ्जाब, बम्बई और मन्द्राज विभागोंमें भी उतनी नहीं होती। इसमें कहीं कहीं पर्याप्त और कहीं कहीं अल्प उत्पन्न होती है। श्याम, सिंहल, पूर्वभारतीय द्वीपपुञ्जोंमेंसे किसी किसी द्वीपमें तथा चीन-साम्राज्यमें बहुत कम लाह उपजती है। इन सब स्थानोंमेंसे श्याम, आसाम और ब्रह्मदेशकी लाक्षा सर्वोत्कृष्ट है।

भारतवर्षमें लाक्षाका व्यवहार बहुत प्राचीन कालसे, संभवतः वैदिक कालसे होता आया है। मनुसंहिता और महाभारतमें लाक्षाका उल्लेख है। दुर्योधन कर्तृक पञ्च-

पाश्चात्यके अनुवादकोंने स्वयं लिखोंने भी लिखी नहीं है। इस समय उत्तर पश्चिम-भारतमें लाक्षाका भी बहुत प्रचार था, यह दुर्योधन द्वारा बनाये गये जतुगृहसे ही मालूम होता है। यह जतुगृह उस समयके लाक्षा निर्मित (Lac-in-lowery) का प्रकृष्ट निदर्शन है।

भारतीय लाक्षाका अंग्रेजी नाम Lac तथा लाक्षाजात द्रव्योंका नाम "Lacquer ware" है। इतिहासका अनुसंधान करनेसे पता लगता है, कि भारतवर्षसे यह द्रव्य सबसे पहिले ही द्वारा पश्चिमात्यदेशमें लाया जाता था। वे लोग इस द्रव्यको नाम मात्रसे ही जानते थे। प्रायः ८०-९० ई०में पेरिप्लसकी लिखावटसे मालूम होता है, कि Lacca देशके मध्यमें अनेक प्रकारके लाक्षाजातद्रव्य लोहित वर्णके परिच्छदोपयुक्त Barbarike बन्दरमें भेजे जाते थे। उक्त ग्रन्थकार लाक्षाका वर्णका भी (Lac dye) उल्लेख कर गये हैं। Aelian-कृत प्राणितत्त्वमें (२५० ई०में) लाक्षाकीटका उल्लेख है। उन्होंने लिखा है, कि भारतवासी वृक्ष पर इन कीड़ोंको पालते थे। कुछ समय बाद वे उन्हें पकड़ कर चूर्ण करते और उस चूर्णको जलमें मिला रखते थे। इस प्रकार जो रंग बनता था उससे गैरिक वस्त्र तथा चूर्ण आदि रंगते थे। इसी रंगमें रंगाया हुआ कपड़ा उस समय पारस्य राजके पास बिक्रयार्थ भेजा जाता था। (Nat. animal, Vol iv, 46) गर्सियाका कहना है, कि अरबी वणिक् लाक्षाको 'लाक् सुमुत्री' कहते थे। अधिक सम्भव है, कि पेगूकी लाक्षा यहांसे सुमात्राके वाणिज्य-बन्दरकी राह जाती हो। उस समयके बंदरमें ही अरबी वणिक् उक्त द्रव्य खरीदते थे। इस कारण उन्होंने इसका लक् सुमुत्री नाम रखा था। १३४३ ई०में Ibn Batuta (१३४३) ने, १५१६ ई०में Barbosa ने, १५६३ ई०में Garcia आदि ग्रन्थकारोंने भारतीय तथा पेगू, मर्तबान और बंगालकी लाक्षाका यथायथ उल्लेख किया है। गर्सियाने १५६३ ई०में लिनशोटेनके लिखे ग्रन्थमें लाक्षा तथा बहुत पहलेके अनेक ग्रन्थोंमें लाक्षाका वाणिज्यका वर्णन मिलता है। उन ग्रन्थोंमें सम्भवतः निकोलोडि (Lac ...) मलबार, बङ्गाल और दाक्षिणात्यकी लाक्षाका विवरण वर्णन कर गये हैं।

उत्तर पश्चिमके पञ्जाब, सिन्धु, सिन्धुनदकी तथा अयोध्याके दक्षिण पूर्व विभागकी पर्वतश्रेणीमें प्रचुर लाक्षा उत्पन्न होती है। मिर्जापुरके लाहके कारखानेमें अयोध्याकी लाहकी ही अधिक आमदनी होती है। पञ्जाबमें बहुत कम लाह उत्पन्न होती है। सिन्धुदेशमें हैदराबादके अन्तर्गत विभागमें भी लाक्षा उत्पन्न होती है तथा प्रतिवर्ष स्थानीय प्रसिद्ध खिलौने बनानेमें काममें व्यवहृत होती है। मध्यभारतकी पहाड़ी भूमिमें जितनी लाक्षा उत्पन्न होती है उससे स्थानीय मनुष्य चूड़ी आदि बनाते हैं। अधिकांश रेलगाड़ी द्वारा कलकत्ते और बम्बई शहरमें लाया जाता है तथा वहांसे जहाज द्वारा बाहर होते हुए यूरोप जाता है। मध्यप्रदेशमें बहेलिया, रामकोट, निरिमा, कुर्ग, धावुक, महिला और गोंड़ आदि असभ्य जातियां तथा स्थानीय निम्न श्रेणीके मुसलमान लाक्षा संग्रह कर पशुवा लोगोंके हाथ बेचते हैं। लाक्षायुक्त वृक्ष शाखा भी जंगलसे शहरमें विक्रयार्थ लाया जाता है, उसको लाठ दण्ड या Stick lac कहते हैं। महिसुर और मद्रासके मालाबार और उत्तर-प्रान्तविभागमें प्रचुर लाक्षा उत्पन्न होती है। वहांसे लाक्षादण्ड कलकत्ता लाया जाता है। पीछे वहांसे यूरोप भेजा जाता है।

भारतवर्षको मध्यप्रदेशजात लाक्षाका वैदेशिक वाणिज्य ही प्रधान है। परन्तु बङ्गाल, आसाम और ब्रह्मदेशसे उसकी अपेक्षा बहुत कम लाह देशान्तर भेजी जाती है। देशी लोगोंके व्यवहारार्थ कुछ लाह रह जाती है। बङ्गालके मानभूम, छोटानागपुर और उड़ीसा-विभागमें बहुतायतसे लाहकी खेती होती है। सिंहभूम, मुर्शिदाबाद और हजारीबागसे प्रति वर्ष बहुतसी लाख कलकत्ते आती है। बांकुड़ाके अन्तर्गत सोनामुखी, कालिन्दा आदि स्थानोंसे तथा मिर्जापुरसे लाक्षाका कार जाता है।

बङ्गालमें प्रति वर्ष दो बार लाक्षा जमा की जाती है। पहली बार कार्तिकसे पूस तक और दूसरी बार बैसाखसे जेठ मास तक। स्थानके नामानुसार यह कुसुमी, बैर, पलाशी, अरहरिया आदि विभिन्न विभिन्न नामोंसे प्रसिद्ध है।

इसमें इलायाल, अंगुलि अथवा नाखून [illegible]

पड़नेसे लाक्षाकीट मर जाते हैं। इसके सिवा पिपीलिकामात्र ही इनके अपकारक हैं। ये सब वृक्ष पर चढ़ कर लाक्षाकीटके मादा-कोटर (Female cell)में घुस जातीं और उस पर रखे हुए मीठा मोमके जैसा सफेद छिलका खाने लगती है। इससे कोटरके कीड़े परिपुष्ट होने नहीं पाते। वायु और उत्तापकी प्रखरतासे नष्ट हो जाते हैं। जिस वृक्षमें चिउंटी लगती हैं उसकी लाह पुष्ट हो नहीं सकती। फिर Galleria और Tinea श्रेणीके और भी दो प्रकारके कीट इनके शत्रु हैं। ये केवल स्त्री-लाक्षाकीटके रंगका अंश और छोटे छोटे कीड़ोंको खाते हैं।

रासायनिक परीक्षा द्वारा लाक्षामें विभिन्न पदार्थका होना साबित हुआ है। उन सब पदार्थोंमें विशेष विशेष गुण रहने तथा उसके स्वतन्त्र स्वतन्त्र कार्यमें व्यवहृत होनेके कारण बाजारमें उसकी विशेष मांग है। अध्यापक हाचेटने विश्लेषण द्वारा देखा है, कि पल्लवमण्डित लाक्षामें (Stick lac) ६८ भाग रजन, १० भाग रंग, ६ भाग मोम, ५॥ भाग दूधके जैसा पदार्थ, ६॥ भाग मांड़ और ४ भाग धूल आदि है। लाक्षाचूर्णमें (eel-lac) ८८'५ रजन, १२॥ रंग, ४॥ मोम और २ भाग दूध तथा Shell-lac-में ६० भाग रजन, ॥० भाग रंग, ४ भाग मोम और २'८ भाग नाइट्रोजन सम्बन्धीय पदार्थ रहता हैं। उनभारडोरयेलका कहना है, कि Shell lac-का रजन नामक पदार्थ अलकोहल और इथरसे गल जाता है। फिर उस धूने जैसे पदार्थका कुछ अंश अलकोहलमें गलता है, पर इथरमें नहीं गलता। यह दाना देता है उसमें लाक्षाकोटकी चर्बी (Unsaponified fat) तथा मौलिक और मार्सारिक पलिट है। कुछ मोम और Laccine भी पाया जाता है।

लाक्षाका पत्तर बनानेका तरीका—पहले पल्लवमण्डित लाक्षाको जांतेमें पीस कर चूर्ण करना होता है। उसमेंसे घास भूसा चुन कर फेंकना होता है। पीछे उन लाहके खण्डोंको क्रमशः फल बीजकी तरह छोटा करनेके लिये तीन या चार प्रकारके जांतोंमें लगातार पीस और चूर्ण कर छलनीसे छान लेते हैं। इस प्रकार छानते छानते जब केवल लाहका चूर्ण मेज पर गिरने लगता है घास भूसा कुछ भी नहीं रहता, तब स्त्रियां उसे उठा कर सूपमें फटकती हैं। सूपमें परिष्कार करते समय वे अपरिष्कार लाक्षाचूर्ण अलग रख कर परिष्कार लाक्षाके दानोंको लाहका पत्तर बनानेके लिये उठा रखती हैं। अपरिष्कार लाक्षाचूर्ण चूड़िहारोंके यहां बेच दिया जाता है। वे उसे गला कर भारतीय स्त्रियोंके हाथका अलङ्कार बनाते हैं।

इसके बाद उन परिष्कृत दानोंको एक लंबे नलमें भर जलमें छोड़ देते हैं। नलके भीतर जल रहनेसे लाहका रंग धीरे धीरे जलमें मिल कर लाल हो जाता है। वे सब दाने जलमें हिलानेसे गल कर छोटे छोटे दानोंमें परिणत हो जाते हैं तथा वर्ण पदार्थ (Colouring matter) लाक्षासे एकदम अलग हो जाता है। अनन्तर उस रंगीन जलको थिरानेके लिये एक बड़े चहबच्चेमें २४ घंटे तक रख देते हैं। मी उसी तरह चहबच्चेको पेंदीमें जब रंग जम जाता है, तब बड़ी सावधानीसे ऊपरका जल चहबच्चेसे निकाल दिया जाता है। पीछे उस सश्चित रंगीन पदार्थको अच्छी तरह छान कर एक बरतनमें रखते हैं। वहां सुखने पर जब वह गाढ़ा हो जाता, तब उसे बरफीके आकारमें खण्ड खण्ड करके धूपमें फिर सुखा लेते हैं। इसीका नाम 'लाकडाय' है।

उपरोक्त जलधौत लाक्षाकणको 'Seed lac' कहते हैं। उसे आतपतापमें वा अग्नितापसे तरल करके पात्रमें लगे हुए उसमें आलोडन द्वारा रजन मिलाई जाती है। इससे भीतरकी लाक्षा और भी तरल हो जाती है, बरतनमें लगने नहीं पाती।

पूर्वकथित बरतनके चारों ओर इसनेके कुछ नल सजे रहते हैं। उनका ऊपरी भाग ४५° कोणमें झुका होता है। भीतर पोल और हमेशा गरम जलसे भरा रहता है। जल बहुत थोड़ा गरम होता है, क्योंकि अधिक गरम होनेसे लाह ठंडी होने नहीं पाती इस कारण वह जम भी नहीं सकती। फिर यदि लाह बिलकुल ठंडी हो जाय, तो बहुत जल्द कड़ी हो जानेकी सम्भावना है। ऐसी अवस्थामें उसमें तरल लाह लगा कर खींचनेसे वह उन इसनेके खंभोंमें अटक जायगी। अतएव नियमित उत्ताप जलसे उन इस्नेके पोले भरे रहने पर एक आदमीके

भावप्रकाशके मतसे लाक्षा वर्णकर, शीतल, बलकर, स्निग्ध, लघु, कफ, पित्त, अस्र, हिक्का, कास, ज्वर, व्रण, उरःक्षत, विसर्प, कृमि और कुष्ठरोगनाशक है। भैषज्यरत्नावलीमें लिखा है, कि नई तथा मिट्टीरहित लाक्षाका प्रयोग करना चाहिये।

"लाक्षा च नूतना ग्राह्या मृत्तिकादि विवर्जिता।"

(भैषज्यरत्ना०)

२ शतपदी। ३ सेवती।

लाक्षागुग्गुलु—आयुर्वेदोक्त एक प्रकारकी औषध। प्रस्तुत प्रणाली—लाक्षा, हाड़जोड़ा, अर्जुन-छाल, अश्वगन्धा प्रत्येक एक तोला और गुग्गुल ५ तोला ले कर एक साथ मर्द्दन करे। पीछे इसका टूटे हुए अंगमें प्रलेप दे। इससे टूटा हुआ अंग और किसी स्थानका मचकना दूर हो जाता और समूचा शरीर वज्रकी तरह मजबूत होता है।

लाक्षागृह (सं० पु०) लाक्षाका वह घर जिसे दुर्योधनने पांडवोंको जला देनेकी इच्छासे बनवाया था। आग लगनेसे पहले ही सूचना पा कर पाण्डव लोग इस घरसे निकल गये थे।

लाक्षातरु (सं० पु०) लाक्षोत्पादकस्तरुः। पलाशका वृक्ष।

लाक्षातैल (सं० क्लो०) लाक्षादिभिः पक्वं तैलं। १ एक तैल-विशेष। लाख आदिसे यह तैल तैयार किया जाता है इसीसे इसको लाक्षातैल कहते हैं। यह तेल दो प्रकारका है,—स्वल्प और बृहत्। प्रस्तुत प्रणाली—

स्वल्पलाक्षातैल—सम परिमाण लाक्षा, हरिद्रा और मजीठ द्वारा तैल पका कर उसमें गन्धद्रव्य डाल कर उतारना होता है। यह तैल दाह, शीत और ज्वरनाशक माना गया है। (सुखबोध)

२ बालरोगाधिकारमें, तैलभेद। इसके बनानेका तरीका—तिलतैल ४ सेर, लाक्षाका क्वाथ ४ सेर, दहीका पानी १६ सेर; कल्कार्थ—रास्ना, रक्तचन्दन, कुट, अश्वगन्धा, हरिद्रा, दारुहरिद्रा, सोयां, देवदारु, यष्टिमधु, मूर्वामूल, कटकी और रेणुक सब मिला कर १ सेर, इन सब कल्कों द्वारा यथाविधान तैल पाक करना होता है। इसको मालिश करनेसे बालकके ज्वरादि नाश होते और बलकी वृद्धि होती है। (भैषज्यरत्ना० बालरोगाधिका०)

दूसरा तरीका—कूटी हुई लाख ३ शराव, जल १६ शराव, इन्हें २१ बार दोलायन्त्रमें परिश्रुत करके १६ शराव ग्रहण करे। अथवा लाक्षा ८ शराव, जल ६४ शराव, पाक कर १६ शराव। पीछे तिलतैल ४ शराव, लाक्षारस या क्वाथ १६ शराव, दहीका पानी १६ शराव, कल्कार्थ—सोयां, हल्दी, मूर्वाका मूल, रेणुक, कटकी, मुलेठी, रास्ना, असगंध, देवदारु, मोथा और रक्तचन्दन प्रत्येक २ तोला, यथाविधान पाक करे। पाक सिद्ध होने पर कपूर, शिलारस और नखी प्रत्येक २ तोला ले कर ऊपरसे डाल दे। यह तैल ज्वरादि रोगनाशक है। (रसर०)

लाक्षादितैल—ज्वररोगमें उपकारक तैलौषधविशेष। प्रस्तुत प्रणाली—मूर्च्छित तिलतैल ४ सेर, पुरानी कांजी २४ सेर; कल्कार्थ—लाख, हल्दी, मजीठ कुल मिला कर १ सेर। इस तेलकी मालिश करनेसे ज्वर तथा दाह दूर होता है।

महालाक्षादि तैल नामक इस प्रकारका एक और तैल तैयार होता है। इसके बनानेका तरीका—मूर्च्छित तिलतैल ४ सेर, लाक्षाका काढ़ा १६ सेर (लाक्षा ८ सेर, ६४ सेर जलमें पाक कर शेष १६ सेर), दहीका पानी १६ सेर, कल्कार्थ—सोयां, हरिद्रा, मूर्वामूल, कुट, रेणुक, कटकी, मुलेठी, रास्ना, अश्वगन्धा, देवदारु, रक्तचन्दन प्रत्येक २ तोला। पाक खतम होने पर कपूर २ तोला, शिलारस २ तोला और नखी २ तोला इस तेलमें मिलावे। इस तेलको मालिश करनेसे विषम ज्वर आदि नाना रोग विनष्ट होता है।

लाक्षाके छः गुने जलमें अर्थात् १८ सेर जलमें ३ सेर लाक्षा कूट कर छोड़ दे। तदनन्तर यह जल दोलायन्त्रसे परिस्रावित कर सिर्फ १६ सेर जल ले लेवे और बाकी छोड़ दे अथवा ८ सेर लाक्षाको ६४ सेर जलमें पका कर उसीका एक पाद क्वाथ औषध बनानेमें प्रयोग किया जा सकता है। (भैषज्यरत्ना० ज्वराधिका०)

लाक्षादिवर्ग (सं० पु०) सुश्रुतोक्त लाक्षादि गणभेद। ये गण यथा—लाक्षा, रेवत, कुटज, अश्वमार, कटफल, हरिद्रा, दारुहरिद्रा, निम्ब, सप्तच्छद, मालती और त्रायमाणा।

(सुश्रुत सूत्र० ३८ अ०)

लाक्षाघतैल—मुखरोगमें हितकर एक औषध। इसके बनानेका तरीका—तिलका तेल ४ सेर, लाक्षाका रस ४ सेर,

छिद्रोंसे जो निकली हुई लाख है वह एक कपड़ेके लिये पर लगा देता है। धूप और हिमसे उस कपड़ेके ऊपर लगाकर आगमें गर्मी लगनेसे लाह गरम और पतली हो कर फैल जाती है। पीछे एक आदमी कपड़ा, लाह या कारिगरके दोनों हाथसे दो छोर पकड़ कर अन्यके लिये इस तरह लाखको खींच बढ़ाता है। लाखकी गर्मी और तपता रहने पर जब वह वायुमें सूख जाती तब ऊपरके छोटे अंशको तोड़ फोड़ कर बीचे चादरकी तरह पतले अंशको एक डंडेमें लटकाया जाता है। यह टुकड़ा साधारणतः चिपटी हो पड़ती है। ये उस चादरकी तरह पतली लाखको कपड़ेसे लाह-चूरा कर पहलेमें एक दूसरे गर्मी डंडेके साथ उठा ले जाती है और ऐसे संयोजित करके रख देती है। इस लाखको 'Thyme shellac' या [illegible] कहते हैं। दूसरे दिन उस सूखी लाखके टुकड़ोंको बांध कर बक्समें भर नाना स्थानोंमें भेजा जाता है।

लाहका रंग भिन्नभिन्न है। पीली अथवा या बहुधा लालका रिवाजी बहुत पसन्द करती है। मुर्शिदाबाद, रघुनाथपुर आदि स्थानोंमें रेशमी कपड़ेके सूत लाखके रंगमें रंगाये जाते हैं। यह लाखका चमड़ेवालोंके भी विशेष उपकारी है। रेशमें पक्कीहै होने लायक [illegible] सुखाने होनेसे उसमें धूप पर अच्छा रंग लगानेसे बहुत लाभ पहुंचता है। हिन्दूके आयुर्वेदशास्त्रमें लाक्षादि तैलकी रक्षा [illegible] गुण लिखा है। इसका रंग लालसे आदरणीय होता है। कपड़े रंगनेके सिवा कई रंग रंगोकी सहायतासे दूसरे दूसरे रंग तैयार किये जाते हैं। इसका रंग बहुत पक्का होता है।

लाहसे चूड़ी, छड़ी, तरह तरहके गहने और खिलौने आदि बनते हैं। चपड़ेकी लाहका बना हुआ [illegible] जाता है। अब एक दूसरे [illegible] हो, तो लाह द्वारा आसानीसे जमा सकते हैं। यह पालिशकी तरह चिकनी और चमकीली हो सकती है। बहुतसे [illegible] और [illegible] आदि स्थानोंमें लाहके मजबूत और चिकने बनते हैं। पंजाब, सिन्धु और [illegible] (Lac turnery) है। कारखानेमें दस्तूर लाहके कुछ चूरोंमें Lac-varnish कहलाते हैं। दूसरे कागज पर लाह लगा कर उसे जिस किसी चीजके आकारमें परिणत कर सकते हैं। चीनोंमें लाहसे तरह तरहके सुन्दर बक्स, फूलदानी आदि चीजें तैयार होती हैं। [illegible] आदिके गहनोंमें लाह अधिक प्रचलित है।

भारतीय लाहकारोंमें आगकी प्रणाली अलग है। ये काठके ऊपर लाहके बदले Blue Vermilion नामक पेड़के दूधसे पालिश देते हैं। लाहको पालिश [illegible] है। कारीगरोंकी [illegible], [illegible], लोबान और [illegible] मिलानेसे लाहको पालिश बनती है। साधारणतः बक्स, [illegible], [illegible] आदिमें [illegible] चढ़ानेके लिये यह काम आती है।

लाहा और लाहारंगका वाणिज्य पहले बड़ा भारी चलता था। १८६५ ई०में [illegible] लाहकी अपेक्षा लाहारंगकी दर चार दूना बढ़ गया। उस समय कीरमी [illegible] होती थी। कीरमी बढ़िया रंग बननेके कारण लाहारंगके बदले इसीका व्यवहार होने लगा। कीरमके कारण लाहारंगका आदर घट गया। १८७२ ई०में इसकी दर बहुत घट गई। १८७४ ई०की २७वीं नवम्बरको भारत सरकारने जो नोटिस निकाला उससे इसकी रफ्तनी बंद हो गई। यूरोपीय बाजारमें उसकी चलन न थी, इस कारण उस पर जो महसूल लगा था वह वसूल नहीं होने पाता था। आज भी लाहारंग वाणिज्य चलता है, किन्तु पहलेकी तरह नहीं। ब्रिटेनिया और अमेरिकाके युक्तराज्यमें लाहकी रफ्तनी होती है। [illegible], [illegible], [illegible], इटली, आष्ट्रेलिया, बेलजियम, चीन, [illegible] और [illegible] देशोंमें भी बहुतसी लाहकी रफ्तनी होती है।

[illegible] जो [illegible] प्रतिपादित हुआ है उसके ऊपर लाहका स्वर दिया जाता है। [illegible] नहीं होता। [illegible] नहीं होता।

इसका गुण—कटु, तिक्त, कषाय, [illegible], [illegible], [illegible], [illegible] और विषमज्वरनाशक तथा [illegible] है।

भावप्रकाशके मतसे लाक्षा वर्णकर, शीतल, बलकर, स्निग्ध, लघु, कफ, पित्त, अस्र, हिक्का, कास, ज्वर, व्रण, उरःक्षत, विसर्प, कृमि और कुष्ठरोगनाशक है। भैषज्यरत्नावलीमें लिखा है, कि नई तथा मिट्टीरहित लाक्षाका प्रयोग करना चाहिये।

"लाक्षा च नूतना ग्राह्या मृत्तिकादि विवर्जिता।"

(भैषज्यरत्ना०)

२ शतपत्री। ३ सेवती।

लाक्षागुग्गुलु—आयुर्वेदोक्त एक प्रकारकी औषध। प्रस्तुत प्रणाली—लाक्षा, हाड़जोड़, अर्जुन-छाल, अश्वगन्धा प्रत्येक एक तोला और गुगुल ५ तोला ले कर एक साथ मर्द्दन करे। पीछे इसका टूटे हुए अंगमें प्रलेप दे। इससे टूटा हुआ अंग और किसी स्थानका मचकना दूर हो जाता और समूचा शरीर वज्रकी तरह मजबूत होता है।

लाक्षागृह (सं० पु०) लाक्षाका वह घर जिसे दुर्योधनने पांडवोंको जला देनेकी इच्छासे बनवाया था। आग लगनेसे पहले ही सूचना पा कर पाण्डव लोग इस घरसे निकल गये थे।

लाक्षातरु (सं० पु०) लाक्षोत्पादकस्तरुः। पलाशका वृक्ष।

लाक्षातैल (सं० क्ली०) लाक्षादिभिः पक्वं तैलं। १ एक तैलविशेष। लाह आदिसे यह तैल तैयार किया जाता है इसीसे इसको लाक्षातैल कहते हैं। यह तेल दो प्रकारका है,—स्वल्प और वृहत्। प्रस्तुत प्रणाली—

स्वल्पलाक्षातैल—सम परिमाण लाक्षा, हरिद्रा और मजीठ द्वारा तैल पका कर उसमें गन्धद्रव्य डाल कर उतारना होता है। यह तैल दाह, शीत और ज्वरनाशक माना गया है। (सुश्रुत)

२ बालरोगाधिकारमें, तैलभेद। इसके बनानेका तरीका—तिलतैल ४ सेर, लाक्षाका क्वाथ ४ सेर, दहीका पानी १६ सेर; कल्कार्थ—रास्ना, रक्तचन्दन, कुट, अश्वगन्धा, हरिद्रा, दारुहरिद्रा, सोयां, देवदारु, यष्टिमधु, मूर्वामूल, कटकी और रेणुक सब मिला कर १ सेर, इन सब कल्कों द्वारा यथाविधान तैल पाक करना होता है। इसकी मालिश करनेसे बालकके ज्वरादि नाश होते और बलकी वृद्धि होती है। (भैषज्यरत्ना० बालरोगाधिका०)

दूसरा तरीका—कूटी हुई लाक्ष ३ शराव, जल १६ शराव, इन्हें २१ बार दोलायन्त्रमें परिश्रुत करके १६ शराव ग्रहण करे। अथवा लाक्षा ८ शराव, जल ६४ शराव, पाक कर १६ शराव। पीछे तिलतैल ४ शराव, लाक्षारस या क्वाथ १६ शराव, दहीका पानी १६ शराव, कल्कार्थ—सोयां, हल्दी, मूर्वाका मूल, रेणुक, कटुकी, मुलेठी, रास्ना, अश्वगंध, देवदारु, मोथा और रक्तचन्दन प्रत्येक २ तोला, यथाविधान पाक करे। पाक सिद्ध होने पर कपूर, शिलारस और नखी प्रत्येक २ तोला ले कर ऊपरसे डाल दे। यह तैल ज्वरादि रोगनाशक है। (रसर०)

लाक्षादितैल—ज्वररोगमें उपकारक तैलौषधविशेष। प्रस्तुत प्रणाली—मूर्च्छित तिलतैल ४ सेर, पुरानी कांजी २४ सेर, कल्कार्थ—लाह, हल्दी, मजीठ कुल मिला कर १ सेर। इस तेलकी मालिश करनेसे ज्वर तथा दाह दूर होता है।

महालाक्षादि तैल नामक इस प्रकारका एक और तैल तैयार होता है। इसके बनानेका तरीका—मूर्च्छित तिलतैल ४ सेर, लाक्षाका काढ़ा १६ सेर (लाक्षा ८ सेर, ६४ सेर जलमें पाक कर शेष १६ सेर), दहीका पानी १६ सेर, कल्कार्थ—सोयां, हरिद्रा, मूर्वामूल, कुट, रेणुक, कटकी, मुलेठी, रास्ना, अश्वगन्धा, देवदारु, रक्तचन्दन प्रत्येक २ तोला। पाक खतम होने पर कपूर २ तोला, शिलारस २ तोला और नखी २ तोला इस तेलमें मिलावे। इस तेलको मालिश करनेसे विषम ज्वर आदि नाना रोग विनष्ट होता है।

लाक्षाके छः गुने जलमें अर्थात् १८ सेर जलमें ३ सेर लाक्षा कूट कर छोड़ दे। तदनन्तर यह जल दोलायन्त्रमें परिस्रावित कर सिर्फ १६ सेर जल ले लेवे और बाकी छोड़ दे अथवा ८ सेर लाक्षाको ६४ सेर जलमें पका कर उसीका एक पाद क्वाथ औषध बनानेमें प्रयोग किया जा सकता है। (भैषज्यरत्ना० ज्वराधिका०)

लाक्षादिवर्ग (सं० पु०) सुश्रुतोक्त लाक्षादि गणभेद। ये गण यथा—लाक्षा, रेवत, कुटज, अश्वमार, कटफल, हरिद्रा, दारुहरिद्रा, निम्ब, सप्तच्छद, मालती और त्रायमाणा।

(सुश्रुत सूत्र० ३८ अ०)

लाक्षाद्यतैल—कुष्ठरोगमें हितकर एक औषध। इसके बनानेका तरीका—तिलका तेल ४ सेर, लाक्षाका रस ४ सेर,

दूध ४ सेर, गौका घृत १६ सेर, कल्कार्थ—सोंठ, [illegible], मंजीठ, पद्मकेशर, पद्मकाष्ठ, रक्तचन्दन, [illegible], वहिंकल्प प्रत्येक १ पल। इस तेलको पुरानी मालिशसे [illegible], हलीमक, [illegible], कामला, [illegible], मुखशोषित्व, अरुचि और मुखकी विरसता नष्ट होती और सब दुःख मालूम होते हैं।

मालद्वीप—दक्षिण-भारतके मलबार उपकूलके निकट एक द्वीप। यह अक्षा० १०° से १४° उ० तथा देशा० ७१° ४०' से ७४° पूर्वके मध्य भारत-महासागरमें अवस्थित है। यह भारत उपकूलसे प्रायः २०० मील पड़ता है। सोलह द्वीपोंको ले कर यह द्वीपपुञ्ज बना है। इनके सभी द्वीपोंमें लोग वास करते हैं। इसका अन्तर्गत दक्षिण कनाडाके [illegible] तथा अवशिष्ट दक्षिण भाग [illegible] सभी राजाके शासनाधीन है। यह मलबार जिलेका एक अंश माना जाता है।

यहाँ एक लाख द्वीप रहनेके कारण लक्षद्वीप नामकी लक्षद्वीप शब्दकी उत्पत्ति हुई है। शायद एक समय मालद्वीप और लक्षद्वीप एक [illegible] हुआ हो। उस समय लोगोंने छोटा छोटा लक्षद्वीप देख कर उसका नाम लक्षद्वीप रखा। किन्तु बहुतोंका कहना है, कि प्रवाल-कीटविशेषोंसे इस द्वीपकी उत्पत्ति हुई है। प्रवाल और लाक्षा एक ही होती है, इस कारण लोग इसे लाक्षाद्वीप कह कर पुकारते हैं। अधिक सम्भव है, कि यहाँ वणिक् बहुत दिनोंसे लाक्षाका वाणिज्य करनेके लिये मलबार उपकूल आते जाते होंगे। उन्हींने ही लाक्षासे इस द्वीपका लाक्षाद्वीप नाम रखा। १५११ ईस्वीमें पार्तुगीज [illegible] द्वीपको [illegible] और [illegible] घोषित कर गये हैं। तदनन्तर [illegible] यह मलबार द्वीपपुञ्ज कह कर वर्णित है। नीचे वर्तमान द्वीपपुञ्जोंके नाम दिये जाते हैं,—

दक्षिण कनाड़ा	लोकसंख्या
अमीनि वा अमीनदीवि	२०६४
केल्तान	५९३
चेतलाट	२९५
किल्तान	४१०
बित्रा (आबादी नहीं है)	—
मलबार जिलावाले—	
अगत्ति	[illegible]
कवरत्ति	[illegible]
अन्द्रोथ	२८८४
कल्पेनी	१५५५
मिनिकोई (मोलकर)	३१११
सुहेली (आबादी नहीं)	—

मिनिकोई द्वीपके अधिवासी लक्षद्वीपके अधिवासियोंकी तरह मलयालम् भाषा नहीं बोलते। इनकी [illegible] मालद्वीपी भाषासे बहुत कुछ पृथक् वा और मालद्वीपवासियोंकी भाषाके साथ बहुत समानता देख कर इस द्वीपको मालद्वीपपुञ्जके अन्तर्गत किया जाता है।

इसका प्रत्येक द्वीप प्रवालकीटविशेषोंसे उत्पन्न है। सब समुद्रकी सतहसे १० या १५ फुट ऊँचा और भू-परिमाण २ से ३ वर्गमील है। इसके चारों ओर प्रवालका पर्वतश्रेणी दिखाई पड़ता है; पूर्वांशका प्रवाल-श्रेणि पश्चिमसे कुछ कम है। पश्चिमकी ओर यह ५०० गज और कोई कोई तीन मील तक विस्तृत है। यहाँके कम गहराईके [illegible] 'लैगून'की तरह विस्तृत है। यही नहीं, कि [illegible] तूफानके समय इसी [illegible] [illegible] छिपा जा सकता है। यह आश्रय कोई भय नहीं रहता। [illegible] समय पर [illegible] जलपूर्ण रहता है, [illegible] पहुँचने पर [illegible] हो जाता है। उस समय उसका [illegible] दिखाई देता तथा [illegible] [illegible] जहाँ अधिक [illegible] रहता है वहीं [illegible] जाता है। उन द्वीपोंके पश्चिम [illegible] जैसा [illegible] प्रवाल श्रेणि है, वैसा पूर्वमें नहीं है। [illegible] और [illegible] [illegible] समुद्रके [illegible] मिल गया है। [illegible] मालूम होता है, कि पश्चिमकी अपेक्षा पूर्व दिशा बहुत पहले [illegible] हुई है। इस द्वीपपुञ्जके प्रत्येक [illegible] [illegible] दिखाई देता है। [illegible] अब नहीं पड़ता। [illegible] [illegible] हैं। इसकी [illegible]

मिट्टी मिलती है। कुदालसे यह बालू उठा कर फेंकनेसे यह गड्ढा जलसे भर जाता है। इसी प्रकार कूप, तड़ाग और पुष्करिणी आदि काट कर जल निकलने पर नारियलका छिलका भिगोया जाता है।

यहां बहुतायतसे नारियलका पेड़ होता है। यहां चूहेको छोड़ दूसरा जानवर दिखाई नहीं पड़ता। यह नारियलका जानो दुश्मन है। कछुआ और मछली भी बहुत पाई जाती है।

प्रायः ढाई सौ वर्ष तक यह द्वीपपुञ्ज कोन्ननूर राज्यके शासनाधीन रहा। १५५० ई०में कोलत्तिरी-राज प्रसिद्ध चिरकलने यहांके सरदारको जागीरस्वरूप दिया। इसके बहुत दिन बाद मालद्वीपके सुलतानसे मिनिकोई द्वीप ले लिया गया। १७८६ ई०में उत्तर-द्वीपके अधिवासियोंने बागी हो कर राजाका अधीनता-बंधन तोड़ महिसुर-राजकी वश्यता स्वीकार कर ली। १७६६ ई०में कनाड़ा विभाग इष्ट-इण्डिया कम्पनीके हाथ आया। तभीसे यह द्वीप कोन्ननूरके नवाबजादीको लौटाया नहीं गया, सिर्फ उनके राजस्वसे ५२५० रुपये अंगरेजोंने घटा दिये। उसी समयसे यह द्वीपमाला दो विभागमें हो गई है।

१८५५से ले कर १८६० ई० तक दक्षिण द्वीपका खजाना बाकी पड़ जानेके कारण उसे वसूल करनेके लिये क्यासी नियुक्त हुए। तदनन्तर १८७७ ई०में पुनः राजस्व अदा नहीं होने पर उक्त विभाग मलबारके राजस्व संग्राहक (Collector of Malabar) के अधीन सौंपा गया था। इससे दिखाया मालूम हो गई। अङ्गरेज-सरकार उत्तर-विभागमें तथा कोन्ननूरके अली राजा अपने अधिकृत विभागमें उत्पन्न नारियलका छिलका वहीं वाहांसे वसूल करते हैं। वे दोनों ही प्रजाओंसे निर्दिष्ट मूल्य दे कर छिलका खरीद करते और उपकूलके बाजारोंमें ऊंचे मूल्य पर बेच डालते हैं। मूलधनके अलावा जो बचत होती है वह दोनों आपसमें बांट लेते हैं। अली राजा खुद यहांका शासन करते हैं, उसके लिये उन्हें अङ्गरेज सरकारको वार्षिक दस हजार रुपया पेशगी देना पड़ता है।

अङ्गरेजराज-शासित कनाड़ाके अधीन द्वीपभागमें नारियलके छिलकेका दाम घटता बढ़ता नहीं है। अङ्गरेज कर्मचारी चावल और नगद रुपये दे कर उसका मूल्य चुका देते हैं। अलीराजाके अधिकृत भूभागमें उसका ठीक उलटा है। यहांके देशी सरदार लोग छिलकेका मूल्य ले कर राजाके साथ बड़ा गोलमाल करते हैं। इससे राजाका बड़ा नुकसान होता है। नारियल, कौड़ी, कछुएका खप्पर आदि द्रव्यसे राजाका वाणिज्य चलता है।

कनाड़ाके अधीनका द्वीप एक सब मजिष्ट्रेट और मुनसफ द्वारा तथा कोन्ननूर द्वीपपुञ्ज अमीनोंके द्वारा परिचालित होता है। यहांके अधिवासी शान्तिप्रिय हैं। वादविवाद होने पर गांवके प्रधान द्वारा उसका निपटेरा करा लेते हैं।

जनसंख्या १० हजारसे ऊपर है जिनमेंसे अधिकांश मुसलमान हैं। उपकूलवासी मापिल्लाओंकी तरह ये भी पहले हिन्दू थे। उनमें एक ऐसी किंवदन्ती है, कि उनके पूर्वपुरुषगण धार्मिक प्रधान राजा चेरमान पेरुमलकी खोजमें मलयालसे मक्काकी ओर बढ़े थे। रास्तेमें इस द्वीपसे टकरा कर जहाज टूट गया और वे लोग यहीं उतरनेको बाध्य हुए। यहांके वाशिन्दे पहले हिन्दू थे इसमें सन्देह नहीं। सम्भवतः तीन सौ वर्ष पहले ये इस्लामधर्ममें दीक्षित हुए थे। उनकी कन्याएं ही पितृसम्पत्तिकी अधिकारिणी होती हैं। पुरुषगण वाणिज्यके लिये या राजकर्मकी खोजमें मलबार उपकूल आते हैं। लड़के भी पिताके साथ हो लेते हैं। इस कारण द्वीपसमूहमें स्त्रियोंकी ही संख्या अधिक देखी जाती है।

स्त्रियां निर्भय हो नगरमें घूमती फिरती हैं। नौका खेनेके सिवा ये सब काम करती हैं। ये घूंघट नहीं देतीं। यहांके अधिवासी मलयालम् भाषा बोलते लेकिन अरबी अक्षर लिखते पढ़ते हैं। मिनिकोई द्वीपकी भाषा मालद्वीपी और मलयालम् मिश्रित है।

लाक्षाप्रसाद (सं० पु०) लाक्षायाः प्रसादो यस्मात्। पट्टिका लोध, पठानी लोध।

लाक्षाप्रसादन (सं० पु०) लाक्षां प्रसादयतीति प्र-सद-णिच् ल्यु। रक्तलोध, लाल लोध। पर्याय—क्रमुक, पट्टिका, पेटी। (भावप्र०)

[illegible] (सं० पु०) [illegible] । [illegible] और [illegible] [illegible] कर सकता है।

[illegible] (सं० स्त्री०) [illegible] । [illegible]—[illegible], [illegible], [illegible], [illegible] [illegible], [illegible] और [illegible], [illegible], [illegible] और [illegible] [illegible] [illegible] पर [illegible] होती है। इस [illegible] [illegible] आदि [illegible] नहीं सकता। ([illegible])

[illegible] (सं० पु०) १ [illegible], [illegible] पेड़। २ [illegible] पेड़।

[illegible] (सं० वि०) १ [illegible], [illegible]। २ [illegible], [illegible] बना हुआ।

[illegible] (सं० पु०) [illegible] गोत्रापत्य।

[illegible] (सं० पु०) १ [illegible] गोत्रापत्य। २ [illegible]।

[illegible] (सं० पु०) [illegible] गोत्रापत्य।

[illegible] (सं० पु०) १ [illegible] गोत्रापत्य। २ [illegible] एक राजा। [illegible] देखो।

[illegible] (सं० त्रि०) [illegible] ([illegible]) [illegible]। यह भी [illegible] कर सकता है।

[illegible] (हिं० वि०) १ [illegible]। (पु०) २ [illegible] इस प्रकार लिखी जाती है—१००००० । ([illegible] वि०) ३ बहुत, अधिक। ([illegible]) ४ [illegible] देखो।

[illegible]—[illegible] एक राजा। इनके [illegible] [illegible] था। [illegible] मृत्यु होने पर [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] पर बैठे। वे बड़े [illegible] थे। इनको [illegible] एक [illegible] [illegible] हुआ करता था। एक दिन [illegible] [illegible] बड़े [illegible] थे। [illegible] [illegible] कर कहा, "वे क्यों [illegible] रहे हैं?" [illegible] [illegible] दिया कि [illegible] [illegible] हो कर वे [illegible] हैं। [illegible] [illegible] दिया, कि [illegible] [illegible] [illegible] दिये जायें। कई दिनोंके बाद [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible]—"[illegible] वे क्यों [illegible] हैं [illegible] [illegible]

क्यों [illegible] नहीं [illegible] रहे?" [illegible] उत्तर दिया, "[illegible]! [illegible] भी [illegible] [illegible]?" [illegible] [illegible] [illegible] क्यों [illegible] रहे हैं। [illegible] [illegible] [illegible] दिये जायें।" [illegible] [illegible] लिखते हैं, कि [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] किया। [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] थी। [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] थे और उनके [illegible] [illegible] एक [illegible] किया था। किन्तु एक दिन बिना कारण ही [illegible] [illegible] [illegible] [illegible]। इतिहासमें लिखा है, कि इस [illegible] [illegible] [illegible] एक राज्य किया था। इनके पुत्रका नाम [illegible] था।

[illegible] (हिं० वि०) [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] या और किसी [illegible] [illegible] [illegible]।

[illegible] (हिं० पु०) [illegible] देखो।

[illegible] (हिं० पु०) १ [illegible] बना हुआ एक [illegible] रंग। इसे स्त्रियाँ सुन्दरताके लिये हाथों पर लगाती हैं। २ पेड़के पौधोंमें लगनेवाला एक रोग। इससे पौधेकी [illegible] [illegible] हो कर नष्ट जाती है। इसे [illegible] भी कहते हैं। यह एक प्रकारके बहुत ही सूक्ष्म [illegible] कीड़ोंका समूह होता है। ३ एक [illegible] [illegible]। यह मारवाड़ देशमें रहता था।

[illegible] (सं० पु०) [illegible] देखो।

[illegible] (हिं० वि०) वह भूमि जिसका लगान न देना पड़ता हो, जिस पर कर न हो।

[illegible] (हिं० स्त्री०) वह भूमि जिस पर कोई लगान न हो।

[illegible] (हिं० वि०) १ [illegible], [illegible]। (पु०) २ [illegible] [illegible] रंग, [illegible] रंग। (स्त्री०) ३ [illegible] [illegible]।

[illegible]—[illegible] [illegible] [illegible]। [illegible] [illegible] आदि [illegible] हो [illegible] है। [illegible] कहता है, कि [illegible] [illegible] [illegible] [illegible], [illegible] आदि [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] कर [illegible] हैं। [illegible] [illegible] हैं। [illegible] [illegible] [illegible] नहीं है। [illegible] [illegible] [illegible]

आदान-प्रदान नहीं चलता। बालाजीको प्रतिमूर्त्ति और तिरुपतिकी व्यङ्कोबा मूर्त्ति ही उनकी उपास्य देवी हैं। विवाहादिमें ये लोग शराब पीते हैं।

स्त्रियाँ और बाल बच्चे चूड़ी बनानेमें पुरुषको मदद देते हैं। ये लोग स्थानीय कुनबियोंसे सामाजिक मर्यादामें ऊँचे तथा ब्राह्मणोंसे नीचे हैं। सिमगा, दशहरा, दीवाली एकादशी और शिवरात्रि पर्वोंमें ये लोग उपवासादि करते हैं। जातकर्म और अन्त्येष्टिको छोड़ कर इनके और कोई संस्कार नहीं है। जातकर्म बहुत कुछ उच्च हिन्दू-सा है। विवाहपर्वमें स्त्रियां मारवाड़ीभाषामें गाती हैं। ब्राह्मण आ कर कन्यादान करते हैं। सिन्दूर-दान ही विवाहका प्रधान अङ्ग है। विवाहके बाद वर कन्याको अपने घर ले आता तथा आत्मीयकुटुम्बोंको एक भोज देता है। बालिकावधू ऋतुमती होनेसे तीन दिन अशौच रहता है। चौथे दिन उसे उबटन लगा कर गरम जलसे नहलवाया जाता है। पीछे स्त्रियां आ कर बालिका-की गोदमें चावल, नारियल, पञ्चफल और पान देती हैं। इसके बाद वह स्वामिसहवास करने पाती है। एक वर्षसे कम उमरवाले बच्चोंके मरने पर उन्हें गाड़ दिया जाता है। उससे ऊपर होनेसे दाहकर्म होता है। मृतका पुत्र या निकट आत्मीय दाहके बाद क्षौरकर्म करके शुद्ध होते हैं। उस दिन वह अपने हाथसे पाक नहीं करता, किसी आत्मीयके घरमें खिचड़ी खा कर रहता है। तीसरे दिन वे मृतकी भस्मराशिको एकत्र करते हैं तथा दही और भात खाते हैं। दशवें दिन ब्राह्मणको बुला कर मृतके उद्देशसे पिण्ड तथा ग्यारहवें दिन आत्मीय कुटुम्बोंको एक भोज देते हैं। छः मासमें अर्द्धवार्षिक श्राद्ध तथा वर्षके अन्तमें वार्षिक श्राद्ध होता है। उस समय भी वे ज्ञातिभोज देते हैं। महालयाके दिन भी वे पितरोंके उद्देश्यसे श्राद्ध करते हैं। जातीय पञ्चायत सामाजिक विवादकी निष्पत्ति करती है। इन लोगोंमें बाल्यविवाह, बहुविवाह और विधवा विवाह प्रचलित है।

लाग (हिं० स्त्री०) १ संपर्क, लगाव, ताल्लुक। २ लगा-वट, लगन। ३ प्रेम, मुहब्बत। ४ युक्ति, तरकीब। ५ प्रति-स्पर्धा, चढ़ा ऊपरी। ६ वह स्वांग आदि जिसमें कोई विशेष कौशल हो और जो जल्दी समझमें न आये। ७ जादू, टोना। ८ वैर, दुश्मनी। ९ धातुको फूंक कर तैयार किया हुआ रस, भस्म। १० एक प्रकारका नृत्य। ११ भूमि कर, लगान। १२ वह घेरा जिससे घेवरका अथवा इसी प्रकारका और कोई टीका लगाया जाता है। १३ दैनिक भोजनकी सामग्री, रसद। १४ वह नियत धन जो विवाह आदि शुभ अवसरों पर ब्राह्मणों, भाटों, नाइयों आदिको अलग अलग रस्मोंके सम्बन्धमें दिया जाता है।

लागडाँट (हिं० स्त्री०) १ शत्रुता, दुश्मनी। २ प्रति-स्पर्धा, चढ़ा ऊपरी। नृत्यकी एक क्रिया।

लागत (हिं० स्त्री०) वह खर्च जो किसी चीजकी तैयारी या बनानेमें लगे, कोई पदार्थ प्रस्तुत करनेमें होनेवाला व्यय।

लागुड़िक (सं० त्रि०) १ लगुड़युक्त, जिसके हाथमें लाठी हो। २ प्रहरी, पहरा देनेवाला।

लाघरक (सं० पु०) हलीमक नामक रोग।

लाघव (सं० क्ली०) लघोर्भावः कर्म वा (इगन्ताच्च लघु-पूर्वात्। पा ५।१।१३१) इति अण्। १ लघुत्व, लघु होने-का भाव। २ अल्पत्व, थोड़ा होनेका भाव, कमी। ३ हाथकी सफाई, फुर्ती। ४ आरोग्यता, नीरोगता, तंदुरुस्ती। ५ नपुंसकता। (अव्य०) ६ फुरतीसे, सहजमें।

लाघवायन (सं० पु०) एक ग्रन्थकार। इन्होंने एक श्रौतसूत्र और उसका भाष्य प्रणयन किया।

लाघविक (सं० त्रि०) संक्षिप्त, थोड़ा।

लाङ्क (सं० स्त्री०) १ कमर, कटि। २ परिमाण, मिक-दार।

लाङ्कायनि (सं० पु०) लङ्काका अपत्य।

(पा० ४।१।१५८)

लङ्कायन (सं० पु०) लङ्काका गोत्रापत्य।

(पा० ४।१।९९)

लाङ्ग (सं० स्त्री०) धोतीका वह भाग जो दोनों जांघोंके बीचसे निकाल कर पीछेकी ओर कमरसे खोंस लिया जाता है, कछ।

लाङ्गल (सं० पु०) लङ्गतीति लगि गतौ बाहुलकात् कलच्।

लाक्षारस (सं० पु०) लाक्षया रसः। महावर जो पानीमें लाख औटा कर बनता है।

लाक्षावटी (सं० स्त्री०) औषधविशेष। प्रस्तुत प्रणाली—लाख, भेला, अजवायन, सफेद अपराजिताकी छाल, अर्जुनके फल और फूल, विडंग, माखी और गुग्गुल इन सबोंको एकत्र चूर्ण कर गोली बनानी होती है। इस औषधको घरमें रखनेसे सांप तथा चूहा आदि घरमें पैठ नहीं सकता। (रसेन्द्रसार पाण्डुरोगाधिका०)

लाक्षावृक्ष (सं० पु०) १ कोशाम्रवृक्ष, कोसमका पेड़। २ पलासका पेड़।

लाक्षिक (सं० त्रि०) १ लाक्षासम्बन्धी, लाखका। २ लाक्षाभाव, लाखका बना हुआ।

लाक्षेय (सं० पु०) लक्षका गोत्रापत्य।

लाक्ष्मण (सं० पु०) १ लक्ष्मणका गोत्रापत्य। २ लक्ष्मण-वृक्षसम्बन्धीय।

लाक्ष्मणि (सं० पु०) लक्ष्मणका गोत्रापत्य।

लाक्ष्मणेय (सं० पु०) १ लक्ष्मणका गोत्रापत्य। २ बंगालके सेनवंशीय एक राजा। सेनराजवंश देखो।

लाक्ष्यिक (सं० त्रि०) लक्ष्यमधीते वेद वा (क्रतूक्थादि-सूत्रान्तात् ठक्। पा ४।२।६०) इति लक्ष्य-ठक्। वह जो लक्ष्याभ्यास या भेद कर सकता है।

लाख (हिं० वि०) १ सौ हजार। (पु०) २ सौ हजार-संख्या जो इस प्रकार लिखी जाती है—१००००० । (क्रि० वि०) ३ बहुत, अधिक। (स्त्री०) ४ लाक्षा देखो।

लाखनसेन—जयसलमेरके एक राजा। इनके पिताका नाम था कर्णसी। पिताकी मृत्यु होने पर लाखनसेन सन् १२७२ ई०में जयसलमेरके राजसिंहासन पर बैठे। ये बड़े सीधे सादे थे। इनको सर्वदा एक प्रकारका उन्माद रोग हुआ करता था। एक दिन माघके महीनेमें गीदड़ बड़े जोरसे चिल्ला रहे थे। लाखनसेनने सभा-सदोंको बुला कर कहा, 'ये क्यों चिल्ला रहे हैं?' एक सभा-सदने उत्तर दिया कि जाड़ेसे व्याकुल हो कर ये चिल्लाते हैं। लाखनसेनने उत्तर दिया, कि इनको कपड़े बनवा दिये जायें। कई दिनोंके पीछे राजाने पुनः उस-का चिल्लाना सुना। तब राजाने अपने उसी सभासदको बुला कर पूछा—"अब ये क्यों चिल्लाते हैं क्या इनके कपड़े अभी तक नहीं बनवाये गये?" सभासदने उत्तर दिया, "अन्नदाता! कपड़े तो बन गये।" लाखनसेन बोले, 'तब ये शोर क्यों मचा रहे हैं। अच्छा इनको रहनेके लिये मकान बनवा दिये जायें।' इतिहास-लेखक लिखते हैं, कि राजकर्मचारियोंने शीघ्र ही राजाकी इस आज्ञाका पालन किया। सोढा जातिकी रानी इन पर अपनी बड़ी प्रभुता रखती थी। रानीने अपने पिताकी राजधानी अमर-कोटसे बहुतेरे अपने कुटुम्बी बुलाये थे और उनके हाथों राज्यका एक एक काम सौंप दिया था। किन्तु एक दिन बिना कारण ही लाखनसेनने उन सभोंको मार डाला। इतिहासमें लिखा है, कि इस निर्बोध राजाने चार वर्ष तक राज्य किया था। इनके पुत्रका नाम पुण्यपाल था।

लाखना (हिं० क्रि०) लाख लगा कर बरतन या और किसी चीजमेंका छेद बंद करना।

लाखपती (हिं० पु०) लखपती देखो।

लाखा (हिं० पु०) १ लाखका बना हुआ एक प्रकारका रंग। इसे स्त्रियां सुन्दरताके लिये होठों पर लगाती हैं। २ गेहूंके पौधोंमें लगनेवाला एक रोग। इससे पौधेकी नाल लाल रंगकी हो कर सड़ जाती है। इसे गेरुआ या कुकुहा भी कहते हैं। यह एक प्रकारके बहुत ही सूक्ष्म लाल रंगके कीड़ोंका समूह होता है। ३ एक प्रसिद्ध भक्त। यह मारवाड़ देशमें रहता था।

लाखागृह (सं० पु०) लाक्षागृह देखो।

लाखिराज (हिं० वि०) वह भूमि जिसका लगान न देना पड़ता हो, जिस पर कर न हो।

लाखिराजी (हिं० स्त्री०) वह भूमि जिस पर कोई लगान न हो।

लाखी (हिं० वि०) १ लाखके रंगका, मटमैला लाल। (पु०) २ मटमैला लाल रंग, लाखका सा रंग। (स्त्री०) ३ लाखके रंगका घोड़ा।

लाखेरी—बम्बई प्रदेशवासी जातिविशेष। लाहसे चूड़ी आदि बनाना ही इनकी उपजीविका है। इन लोगोंका कहना है, कि उनके पूर्वपुरुष मारवाड़से अहमदनगर, धारवाड़ आदि दाक्षिणात्यके प्रधान प्रधान नगरोंमें आ कर बस गये हैं। ये लोग हिन्दूधर्मावलम्बी हैं। इनमें श्रेणिगत कोई विभाग नहीं है। एक उपाधिवाले व्यक्तियोंमें

आदान-प्रदान नहीं चलता। बालाजीकी प्रतिमूर्त्ति और तिरुपतिकी व्यङ्कोवा मूर्त्ति ही उनकी उपास्य देवी हैं। विवाहादिमें ये लोग शराब पीते हैं।

स्त्रियां और बाल बच्चे चूड़ी बनानेमें पुरुषको मदद देते हैं। ये लोग स्थानीय कुनबियोंसे सामाजिक मर्यादामें ऊंचे तथा ब्राह्मणोंसे नीचे हैं। सिमगा, दशहरा, दीवाली एकादशी और शिवरात्रि पर्वों ये लोग उपवासादि करते हैं। जातकर्म और अन्त्येष्टिको छोड़ कर इनके और कोई संस्कार नहीं है। जातकर्म बहुत कुछ उच्च हिन्दू-सा है। विवाहकार्यमें स्त्रियां मारवाड़ीभाषामें गाती हैं। ब्राह्मण आ कर कन्यादान करते हैं। सिन्दूर दान ही विवाहका प्रधान अङ्ग है। विवाहके बाद वर कन्याको अपने घर ले आता तथा आत्मीयकुटुम्बोंको एक भोज देता है। बालिकावधू ऋतुमती होनेसे तीन दिन अशौच रहता है। चौथे दिन उसे उबटन लगा कर गरम जलसे नहलाया जाता है। पीछे स्त्रियां आ कर बालिका की गोदमें चावल, नारियल, पञ्चफल और पान देती हैं। इसके बाद वह स्वामिसहवास करने पाती है। एक वर्षसे कम उमरवाले बच्चोंके मरने पर उन्हें गाड़ दिया जाता है। उससे ऊपर होनेसे दाहकर्म होता है। मृतका पुत्र या निकट आत्मीय दाहके बाद क्षौरकर्म करके शुद्ध होते हैं। उस दिन वह अपने हाथसे पाक नहीं करता, किसी आत्मीयके घरमें खिचड़ी खा कर रहता है। तीसरे दिन वे मृतकी भस्मराशिको एकत्र करते हैं तथा दही और भात खाते हैं। दसवें दिन ब्राह्मणको बुला कर मृतके उद्देशसे पिण्ड तथा ग्यारहवें दिन आत्मीय कुटुम्बोंको एक भोज देते हैं। छः मासमें अर्द्धवार्षिक श्राद्ध तथा वर्षके अन्तमें वार्षिक श्राद्ध होता है। उस समय भी वे ज्ञातिभोज देते हैं। महालयाके दिन भी वे पितरोंके उद्देश्यसे श्राद्ध करते हैं। जातीय पञ्चायत सामाजिक विवादकी निष्पत्ति करती है। इन लोगोंमें बाल्यविवाह, बहुविवाह और विधवा-विवाह प्रचलित है।

लाग (हिं० स्त्री०) १ संपर्क, लगाव, ताल्लुक। २ लगावट, लगन। ३ प्रेम, मुहब्बत। ४ युक्ति, तरकीब। ५ प्रतिस्पर्धा, चढ़ा ऊपरी। ६ वह स्वांग आदि जिसमें कोई विशेष कौशल हो और जो जल्दी समझमें न आवे। ७ जादू, टोना। ८ वैर, दुश्मनी। ९ धातुको फूंक कर तैयार किया हुआ रस, भस्म। १० एक प्रकारका नृत्य। ११ भूमि कर, लगान। १२ वह चेप जिससे चेचकका अथवा इसी प्रकारका और कोई टीका लगाया जाता है। १३ दैनिक भोजनकी सामग्री, रसद। १४ वह नियत धन जो विवाह आदि शुभ अवसरों पर ब्राह्मणों, भाटों, नाइयों आदिको अलग अलग रस्मोंके सम्बन्धमें दिया जाता है।

लागडांट (हिं० स्त्री०) १ शत्रुता, दुश्मनी। २ प्रतिस्पर्धा, चढ़ा ऊपरी। नृत्यकी एक क्रिया।

लागत (हिं० स्त्री०) वह खर्च जो किसी चीजकी तैयारी या बनानेमें लगे, कोई पदार्थ प्रस्तुत करनेमें होनेवाला व्यय।

लागुडिक (सं० त्रि०) १ लगुड़युक्त, जिसके हाथमें लाठी हो। २ प्रहरी, पहरा देनेवाला।

लाघरक (सं० पु०) हलीमक नामक रोग।

लाघव (सं० क्ली०) लघोर्भावः कर्म वा (इगन्ताच्च लघुपूर्वात्। पा ५।१।१३१) इति अण्। १ लघुत्व, लघु होनेका भाव। २ अल्पत्व, थोड़ा होनेका भाव, कमी। ३ हाथकी सफाई, फुर्ती। ४ आरोग्यता, नीरोगता, तंदुरुस्ती। ५ नपुंसकता। (अव्य०) ६ फुरतीसे, सहजमें।

लाघवायन (सं० पु०) एक ग्रन्थकार। इन्होंने एक श्रौतसूत्र और उसका भाष्य प्रणयन किया।

लाघविक (सं० त्रि०) संक्षिप्त, थोड़ा।

लाङ्क (सं० स्त्री०) १ कमर, कटि। २ परिमाण, मिकदार।

लाङ्काकायनि (सं० पु०) लङ्काका अपत्य।

(पा० ४।१।१५८)

लङ्कायन (सं० पु०) लङ्काका गोत्रापत्य।

(पा० ४।१,९९)

लाङ्ग (सं० स्त्री०) धोतीका वह भाग जो दोनों जांघोंके बीचसे निकाल कर पीछेकी ओर कमरमें खोंस लिया जाता है, कांछ।

लाङ्गूल (सं० पु०) लङ्गतीति लगि गतौ बाहुलकात् ऊलच्।

लाक्षारस (सं० पु०) लाक्षायाः रसः । महावर जो पानीमें लाख औटा कर बनता है।

लाक्षावटी (सं० स्त्री०) औषधविशेष । प्रस्तुत प्रणाली—लाख, मैला, अजवायन, सफेद अपराजिताकी छाल, अर्जुनके फल और फूल, विडंग, माखी और गुग्गुल इन सबोंको एकत्र चूर्ण कर गोली बनानी होती है। इस औषधको घरमें रखनेसे सांप तथा चूहा आदि घरमें पैठ नहीं सकता । (रसेन्द्रसारस पाण्डुरोगाधिका०)

लाक्षावृक्ष (सं० पु०) १ कोशाम्रवृक्ष, कोसमका पेड़। २ पलासका पेड़।

लाक्षिक (सं० त्रि०) १ लाक्षासम्बन्धी, लाखका । २ लाक्षाभाव, लाखका बना हुआ।

लाक्षेय (सं० पु०) लक्षका गोत्रापत्य।

लाक्ष्मण (सं० पु०) १ लक्ष्मणका गोत्रापत्य । २ लक्ष्मण-सम्बन्धीय।

लाक्ष्मणि (सं० पु०) लक्ष्मणका गोत्रापत्य।

लाक्ष्मणेय (सं० पु०) १ लक्ष्मणका गोत्रापत्य। २ बंगालके सेनवंशीय एक राजा । सेनराजवंश देखो।

लाक्ष्यिक (सं० त्रि०) लक्ष्यमधीते वेद वा (क्रतूक्थादि-सूत्रान्ताट् ठक् । पा ४।२।६०) इति लक्ष्य-ठक् । यह जो लक्ष्याभ्यास या भेद कर सकता है।

लाख (हिं० वि०) १ सौ हजार। (पु०) २ सौ हजार-संख्या जो इस प्रकार लिखी जाती है—१००००० । (क्रि० वि०) ३ बहुत, अधिक। (स्त्री०) ४ लाक्षा देखो।

लाखनसेन—जयसलमेरके एक राजा। इनके पिताका नाम था कर्णसी। पिताकी मृत्यु होने पर लाखनसेन सन् १२७२ ई०में जयसलमेरके राजसिंहासन पर बैठे। ये बड़े सीधे सादे थे। इनको सर्वदा एक प्रकारका उन्माद रोग हुआ करता था। एक दिन माघके महीनेमें गीदड़ बड़े जोरसे चिल्ला रहे थे। लाखनसेनने सभा-सदोंको बुला कर कहा, 'ये क्यों चिल्ला रहे हैं?' एक सभा-सदने उत्तर दिया कि जाड़ेसे व्याकुल हो कर ये चिल्लाते हैं। लाखनसेनने उत्तर दिया, कि इनको कपड़े बनवा दिये जायं। कई दिनोंके पीछे राजाने पुनः उस-का चिल्लाना सुना। तब राजाने अपने उसी सभासदको बुला कर पूछा—"अब ये क्यों चिल्लाते हैं क्या इनके कपड़े अभी तक नहीं बनवाये गये?" सभासदने उत्तर दिया, "अन्नदाता! कपड़े तो बन गये।" लाखनसेन बोले, 'तब ये शोर क्यों मचा रहे हैं। अच्छा इनको रहनेके लिये मकान बनवा दिये जायें।' इतिहास-लेखक लिखते हैं, कि राजकर्मचारियोंने शीघ्र ही राजाकी इस आज्ञाका पालन किया। सोढा जातिकी रानी इन पर अपनी बड़ी प्रभुता रखती थी। रानीने अपने पिताकी राजधानी अमर-कोटसे बहुतेरे अपने कुटुम्बी बुलाये थे और उनके हाथों राज्यका एक एक काम सौंप दिया था। किन्तु एक दिन बिना कारण ही लाखनसेनने उन सबोंको मार डाला। इतिहासमें लिखा है, कि इस निर्बोध राजाने चार वर्ष तक राज्य किया था। इनके पुत्रका नाम पुण्यपाल था।

लाखना (हिं० क्रि०) लाख लगा कर बरतन या और किसी चीजमेंका छेद बंद करना।

लाखपती (हिं० पु०) लखपती देखो।

लाखा (हिं० पु०) १ लाखका बना हुआ एक प्रकारका रंग। इसे स्त्रियां सुन्दरताके लिये होठों पर लगाती हैं। २ गेहूंके पौधोंमें लगनेवाला एक रोग। इससे पौधेकी नाल लाल रंगकी हो कर सड़ जाती है। इसे गेरुआ या कुकुहा भी कहते हैं। यह एक प्रकारके बहुत ही सूक्ष्म लाल रंगके कीड़ोंका समूह होता है। ३ एक प्रसिद्ध भक्त। यह मारवाड़ देशमें रहता था।

लाखागृह (सं० पु०) लाक्षागृह देखो।

लाखिराज (हिं० वि०) वह भूमि जिसका लगान न देना पड़ता हो, जिस पर कर न हो।

लाखिराजी (हिं० स्त्री०) वह भूमि जिस पर कोई लगान न हो।

लाखी (हिं० वि०) १ लाखके रंगका, मटमैला लाल। (पु०) २ मटमैला लाल रंग, लाखका सा रंग। (स्त्री०) ३ लाखके रंगका घोड़ा।

लाखेरी—बम्बई प्रदेशवासी जातिविशेष। लाहकी चूड़ी आदि बनाना ही इनकी उपजीविका है। उन लोगोंका कहना है, कि उनके पूर्वपुरुष मारवाड़से अहमदनगर, धारवाड़ आदि दाक्षिणात्यके प्रधान प्रधान नगरोंमें आ कर बस गये हैं। ये लोग हिन्दूधर्मावलम्बी हैं। इनमें श्रेणिगत कोई विभाग नहीं है। एक उपाधिवाले व्यक्तियोंमें

आदान-प्रदान नहीं चलता। बालाजीकी प्रतिमूर्ति और तिरुपतिकी व्यंङ्कोया मूर्त्ति ही उनकी उपास्य देवी है। विवाहादिमें ये लोग शराब पीते हैं।

स्त्रियां और बाल बच्चे चूड़ी बनानेमें पुरुषको मदद देते हैं। ये लोग स्थानीय कुनवियोंसे सामाजिक मर्यादामें ऊंचे तथा ब्राह्मणोंसे नीचे हैं। सिमगा, दशहरा, दीवाली एकादशी और शिवरात्रि पर्वोंमें ये लोग उपवासादि करते हैं। जातकर्म और अन्त्येष्टिको छोड़ कर इनके और कोई संस्कार नहीं है। जातकर्म बहुत कुछ उच्च हिन्दू-सा है। विवाहकार्यमें स्त्रियां मारवाड़ीभाषामें गाती हैं। ब्राह्मण आ कर कन्यादान करते हैं। सिन्दूर-दान ही विवाहका प्रधान अङ्ग है। विवाहके बाद वर कन्याको अपने घर ले जाता तथा आत्मीयकुटुम्बोंको एक भोज देता है। बालिकावधू ऋतुमती होनेसे तीन दिन अशौच रहता है। चौथे दिन उसे उबटन लगा कर गरम जलसे नहलवाया जाता है। पीछे स्त्रियां आ कर बालिका-की गोदमें चावल, नारियल, पञ्चफल और पान देती हैं। इसके बाद वह स्वामिसहवास करने पाती है। एक वर्षसे कम उमरवाले बच्चोंके मरने पर उन्हें गाड़ दिया जाता है। उससे ऊपर होनेसे दाहकर्म होता है। मृतका पुत्र या निकट आत्मीय दाहके बाद क्षौरकर्म करके शुद्ध होते हैं। उस दिन वह अपने हाथसे पाक नहीं करता, किसी आत्मीयके घरमें खिचड़ी खा कर रहता है। तीसरे दिन वे मृतकी भस्मराशिको एकत्र करते हैं तथा दही और भात खाते हैं। दशवें दिन ब्राह्मणको बुला कर मृतके उद्देशसे पिण्ड तथा ग्यारहवें दिन आत्मीय कुटुम्बोंको एक भोज देते हैं। छः मासमें अर्द्धवार्षिक श्राद्ध तथा वर्षके अन्तमें वार्षिक श्राद्ध होता है। उस समय भी ये ज्ञातिभोज देते हैं। महालयाके दिन भी ये पितरोंके उद्देश्यसे श्राद्ध करते हैं। जातीय पञ्चायत सामाजिक विवादकी निष्पत्ति करती है। इन लोगोंमें बाल्यविवाह, बहुविवाह और विधवा विवाह प्रचलित है।

लाग (हिं० स्त्री०) १ संपर्क, लगाव, ताल्लुक। २ लगा-वट, लगन। ३ प्रेम, मुहब्बत। ४ युक्ति, तरकीब। ५ प्रति-स्पर्धा, चढ़ा ऊपरी। ६ वह स्वांग आदि जिसमें कोई विशेष कौशल हो और जो जल्दी समझमें न आवे। ७ जादू, टोना। ८ वैर, दुश्मनी। ९ धातुको फूंक कर तैयार किया हुआ रस, भस्म। १० एक प्रकारका नृत्य। ११ भूमि कर, लगान। १२ वह चेप जिससे चेचकका अथवा इसी प्रकारका और कोई टीका लगाया जाता है। १३ दैनिक भोजनकी सामग्री, रसद। १४ वह नियत धन जो विवाह आदि शुभ अवसरों पर ब्राह्मणों, भाटों, नाइयों आदिको अलग अलग रस्मोंके सम्बन्धमें दिया जाता है।

लागडांट (हिं० स्त्री०) १ शत्रुता, दुश्मनी। २ प्रति-स्पर्धा, चढ़ा ऊपरी। नृत्यकी एक क्रिया।

लागत (हिं० स्त्री०) वह खर्च जो किसी चीजकी तैयारी या बनानेमें लगे, कोई पदार्थ प्रस्तुत करनेमें होनेवाला व्यय।

लागुडिक (सं० त्रि०) १ लगुड़युक्त, जिसके हाथमें लाठी हो। २ प्रहरी, पहरा देनेवाला।

लाघरक (सं० पु०) हलीमक नामक रोग।

लाघव (सं० क्ली०) लघोर्भावः कर्म वा (इगन्ताच्च लघु-पूर्वात्। पा ५।१।१३१) इति अण्। १ लघुत्व, लघु होने-का भाव। २ अल्पत्व, थोड़ा होनेका भाव, कमी। ३ हाथकी सफाई, फुर्ती। ४ आरोग्यता, नीरोगता, तंदुरुस्ती। ५ नपुंसकता। (अव्य०) ६ फुरतीसे, सहजमें।

लाघवायन (सं० पु०) एक ग्रन्थकार। इन्होंने एक श्रौतसूत्र और उसका भाष्य प्रणयन किया।

लाघविक (सं० त्रि०) संक्षिप्त, थोड़ा।

लाङ्क (सं० स्त्री०) १ कमर, कटि। २ परिमाण, मिक-दार।

लाङ्गकायनि (सं० पु०) लङ्गकका अपत्य।

(पा० ४।१।१५८)

लाङ्गायन (सं० पु०) लङ्गका गोत्रापत्य।

(पा० ४।१।९९)

लाङ्गू (सं० स्त्री०) धोतीका वह भाग जो दोनों जांघोंके बीचसे निकाल कर पीछेकी ओर कमरसे खोंस लिया जाता है, काछ।

लाङ्गल (सं० पु०) लङ्गतीति लगि गतौ बाहुलकात् कलच्।

१ संज्ञामध्यात भूमिकर्षणयन्त्र, खेत जोतनेका हल। पर्याय—हल, गोदारण, सीर, हाल, शीर। २ शिश्न, लिंग। ३ चन्द्रमाका मर्योन्नत शृङ्ग। ४ पुष्पविशेष, एक प्रकारका फूल। ५ तालवृक्ष, ताड़का पेड़।

लाङ्गलक (सं॰ पु॰) सुश्रुतके अनुसार हलके आकारका वह घाव जो भगंदर रोगमें गुदामें शस्त्रचिकित्सा करके किया जाता है। (सुश्रुतचि॰ ८ अ॰)

लाङ्गलकी (सं॰ स्त्री॰) विषलांगुलिया, कलियारी नामका जहरीला पौधा।

लाङ्गलग्रह (सं॰ पु॰) लाङ्गलं गृह्णाति (शक्तिलाङ्गलाङ्कुशयष्टितोमरघटघटीधनुःषु। पा ३।२।९) इत्यस्य वार्त्तिकोक्त्या अच्। कृषक, खेतिहर।

लाङ्गलग्रहण (सं॰ क्ली॰) लाङ्गलधारण, हल लेना या पकड़ना।

लाङ्गलचक्र (सं॰ क्ली॰) लाङ्गलाकारं चक्रं। फलित-ज्योतिषमें एक प्रकारका चक्र। इस चक्रकी सहायतासे खेतीके सम्बन्धमें शुभाशुभ फल जाने जाते हैं।

यह चक्र लाङ्गलाकार बनाना होता है इसीसे इसको लाङ्गलचक्र कहते हैं। जिस दिन गणना करनी होगी, उस दिन सूर्याक्रान्त नक्षत्र मानना होगा। सभी नक्षत्रोंको यथास्थान विन्यास करके देखना होगा, कि उस दिनका नक्षत्र किस स्थानमें है। यदि दण्डमें रहे, तो गौको हानि, वृषस्थ होनेसे स्वामिका भय, लाङ्गल और योक्त्रमें होनेसे लक्ष्मीलाभ होता है। अतएव लाङ्गल और योक्त्रस्थित नक्षत्रमें खेती करनेसे शुभफल होता है।

लाङ्गलदण्ड (सं॰ पु॰) लाङ्गलस्य दण्डः। लाङ्गलका ईश, हलकी हरिस। पर्याय—ईशा, ईषा।

लाङ्गलध्वज (सं॰ पु॰) बलराम।

लाङ्गलपद्धति (सं॰ स्त्री॰) लाङ्गलस्य पद्धतिः। लाङ्गलरेखा, वह रेखा जो जमीन जोतते समय हलकी फालके धंसनेसे पड़ती जाती है। पर्याय—शीता, सीता।

लाङ्गलफाल (सं॰ पु॰ क्ली॰) हलको अंकुशके नीचे लगी हुई वह लोहेकी चौड़ी और लंबी छड़ जिसका सिरा नुकीला और पैना होता है, कुस।

लाङ्गलाह्व (सं॰ पु॰) कलियारी नामका जहरीला पौधा।

लाङ्गलापकर्षिन् (सं॰ त्रि॰) १ लाङ्गल अपकर्षणकारी, हल जोतनेवाला। (पु॰) २ वृष, बैल।

लाङ्गलायन (सं॰ पु॰) लाङ्गलका गोत्रापत्य।

लाङ्गलाह्वया (सं॰ स्त्री॰) लाङ्गलिया क्षुप, कलियारी नामका पौधा।

लाङ्गलि (सं॰ पु॰) १ कलियारी नामका जहरीला पौधा। २ जल-पीपल। ३ मञ्जिष्ठा, मजीठ। ४ पिठवन। ५ कौंछ, केवाँच। ६ चव्य, चाब। ७ गजपीपल। ८ ऋषभक नामकी अष्टवर्गीय ओषधि। ९ महाराष्ट्री या मराठी नामकी लता।

लाङ्गलिक (सं॰ पु॰) लाङ्गलवत् आकृतिरस्यस्येति लाङ्गल ठन्। एक प्रकारका स्थावर विष।

लाङ्गलिका (सं॰ स्त्री॰) लाङ्गलमिवाकारोऽस्त्यस्या इति ठन्-टाप्। लाङ्गलि देखो।

लाङ्गलिकी (सं॰ स्त्री॰) लाङ्गल ठन्-ङीप्। कलियारी। पर्याय—अग्निशिखा, अग्निज्वाला, ज्वालका, लाङ्गली, गौरी, शीता, हलिनी, गर्भघातिनी, अग्निजिह्वा, इन्द्रपुष्पा, अग्निमुखी, वह्निशिखा। इसका गुण कुष्ठ और दुष्टव्रण-नाशक माना गया है। (राजनि॰)

लाङ्गलिन् (सं॰ पु॰) लाङ्गलमस्त्यस्येति लाङ्गल-इनि। १ बलराम। २ नारिकेल, नारियल। ३ सर्प, साँप। (स्त्री॰) ४ पुराणानुसार एक नदीका नाम। (मार्क॰ ५७।२६) ५ कलियारी। ६ पिठवन। ७ मञ्जिष्ठा, मजीठ। ८ जलपीपल। ९ गजपीपल। १० कौंछ, केवाँच। ११ चव्य, चाब। १२ महाराष्ट्री नामकी लता। १३ ऋषभक नामकी अष्टवर्गीय ओषधि। (त्रि॰) १४ लाङ्गल विशिष्ट, हलवाला।

लाङ्गलिनी (सं॰ स्त्री॰) कलियारी, कलिहारी।

लाङ्गली (सं॰ स्त्री॰) लाङ्गलाकारोऽस्त्यस्याः इति लाङ्गल-अच् ङीप्। लाङ्गलाकार पुष्प, जलज शाकविशेष। पर्याय—शारदी, तोयपिप्पली, शकुलादनी, जलाशी, जलपिप्पली, पिप्पला, श्यामाङ्गिनी, मत्स्यगन्धा, कलियारी। (राजनि॰) २ शालपर्णी, सरिवन नामका वृक्ष।

लाङ्गलीत (सं॰ पु॰) एक शिवलिङ्गका नाम। (लिङ्गपुराण १ अ॰)

लाङ्गलीशाक (सं॰ पु॰) जल-पीपल।

लाङ्गलीषा (सं० स्त्री०) (पृषि परत्व०। पा ६।१।६४) इति सूत्रस्य वार्त्तिकोक्त्या साधुः। हरिस, हलका लट्ठा।

लाङ्गूल (सं० क्ली०) लङ्ग (खर्जिपिञ्जादिभ्य ऊरोलचौ। उण् ४.६०) इति ऊलच् बाहुलकात् वृद्धिश्च। १ पूंछ, दुम। पर्याय—पुच्छ, लूम, वालहस्त, वालधि, लङ्गूल, लाङ्गूल, लुलाम, आवाल, लञ्ज, पिच्छ, वाल। गोपुच्छका जल मस्तक पर देनेसे पाप विनष्ट होता है। यह जल तीर्थजलके समान पवित्र है। (वराहपुराण) २ शेफ, लिङ्ग। ३ कुसूल, कोठला।

लाङ्गूलिन् (सं० पु०) प्रशस्त लाङ्गूलमस्त्यस्येति लाङ्गूल-इनि। १ वानर, बंदर। २ ऋषभ नामक ओषधि। ३ पिठवन। ४ कौंछ, केवाँच।

लाङ्गूलिया—मध्यप्रदेशमें प्रवाहित एक नदी। सम्भवतः यही पुराणानुसार लाङ्गलिनी नदी है।

लाङ्गूली (सं० पु०) लाङ्गूलिन देखो।

लाङ्गूलीका (सं० स्त्री०) लाङ्गूलाकृतिरस्त्यस्या इति लाङ्गूल-ठन्। पृश्निपर्णी, पिठवन।

लाङ्गूल (सं० क्ली०) १ दुम, पूंछ। २ शिश्न, लिङ्ग।

लाङ्गूला (सं० स्त्री०) १ केवाँच, कौंछ। २ पृश्निपर्णी, पिठवन।

लाचार (फा० वि०) १ विवश, मजबूर। (क्रि० वि०) २ विवश हो कर, मजबूर हो कर।

लाचारी (फा० स्त्री०) लाचार होनेका भाव, मजबूरी।

लाची (हिं० स्त्री०) इलायची देखो।

लाचीदाना (हिं० पु०) खाली चीनीकी एक प्रकारकी मिठाई। यह छोटे छोटे गोल दानोंके आकारकी होती है। कभी कभी इसके अंदर सौंफ या इलायचीका दाना भी भरा होता है। इसे इलायचीदाना भी कहते हैं।

लाज (सं० क्ली०) लाज-अच्। १ उशीर, खस। २ धानका लावा, खील। इसका गुण—मधुररस, शीतवीर्य, लघु, अग्निसन्दीपक, मलमूत्रको कम करनेवाला, रूक्ष, बलकारक, पित्त, कफ, वमि, अतिसार, दाह, रक्तदोष, प्रमेह, मेद और पिपासानाशक माना गया है। (भावप्र०) (पु०) लाज अच्। ३ आर्द्रतण्डुल, पानीमें भींगा हुआ चावल।

लाज (हिं० स्त्री०) लज्जा, शर्म, हया।

लाजक (सं० पु०) धानका भुना हुआ लावा, लाई।

लाजतर्पण (सं० क्ली०) लाजकृतं तर्पणं। लाजाकृत तर्पणविशेष। खोईका बना हुआ एक प्रकारका तर्पण। दाह और वमिसे रोगीके अत्यन्त कातर होने पर गुड़ और शहद मिला कर लाजतर्पणका प्रयोग किया जा सकता है। खोईको खूब चूर्ण कर यह तैयार करना होता है।

लाजपेया (सं० स्त्री०) लाजेन कृता पेया। यह मांड़ जो खोई या लावा उबालनेसे निकले। इसका व्यवहार रोगियोंको पथ्य देनेमें होता है।

लाजभक्त (सं० पु०) लाजस्य भक्तः। खोईभक्त, खोई या लावाका पकाया हुआ भात। यह रोगियोंको पथ्यमें दिया जाता है। इसका गुण—लघु, शीतल, अग्निदीप्तिकर, मधुर, बलकर, निद्रा और रुचिकर, कफ और पित्तनाशक तथा व्रणशोधनकारी। (वैद्यनि०)

लाजमण्ड (सं० पु०) लाजस्य मण्डः। यह मांड़ जो खोई या लावा उबालनेसे निकले।

लाजवंत (हिं० वि०) जिसे लज्जा हो, शर्मदार।

लाजवंती (हिं० स्त्री०) लजालु नामका पौधा, छुई मुई।

लाजवर्णा (सं० स्त्री०) लाजस्य वर्ण इव वर्णो यस्याः। असाध्य लूताविशेष, फुंसी जो मकड़ीके मूतनेसे निकलती है।

लाजवर्द (फा० पु०) १ एक प्रकारका प्रसिद्ध कीमती पत्थर। इसे संस्कृतमें 'राजवर्त्त' कहते हैं। यह अंगाली रंगका होता है और इसके ऊपर सुनहले छींटे होते हैं। यह वातज रोगोंके लिये गुणकारी, मनको प्रसन्न करनेवाला, हृदयके लिये बलकारी और उन्माद आदि रोगोंमें उपकारी माना जाता है। आँखोंमें सुरमा लगानेके लिये इसकी सलाई भी बनती है जो बहुत अधिक गुणकारी मानी जाती है। २ विलायती नील जो गंधकके मेलसे बनता और बहुत बढ़िया होता है।

लाजवर्दी (फा० वि०) लाजवर्दके रंगका, हलका नीला।

लाजवाब (फा० वि०) १ जिसके जोड़का और कोई न हो, अनुपम, बेजोड़। २ जो कुछ जवाब न दे सके, निरुत्तर।

लाजसक्तु (सं० पु०) लाजस्य सक्तुः। खोई या लावाका सत्तू।

लाजहोम (सं० पु०) प्राचीनकालका एक प्रकारका होम। इसमें खोई या धानका लावा आहुतिमें दिया जाता था।

लाजा (सं० स्त्री०) लाज-अच्-टाप्। १ चावल। २ भृष्ट धान्य, लावा। गुण—तृष्णा, छर्दि, अतीसार, प्रमेह, मेद और कफनाशक, कास और पित्तोपशमक, अग्निकारक, लघु और शीतल। इसके मांड़का गुण—अग्निकारक, दाह, तृष्णा, ज्वर और अतीसारनाशक, शरीर क्षोभनाशक और आमपाचक। (पु०) ३ भूमि, पृथ्वी।

लाज़िम (अ० वि०) १ जो अवश्य कर्त्तव्य हो। २ उचित, मुनासिब।

लाज़िमी (अ० वि०) जो अवश्य कर्त्तव्य हो, जरूरी।

लाञ्जुल (सं० क्लो०) धान्य, धान।

लाञ्छन (सं० क्लो०) लाञ्छ-ल्युट्। १ चिह्न, निशान। २ दाग। ३ दोष, कलंक। (पु०) ४ रागीधान्य, मड़ुआ।

लाञ्छनी (सं० स्त्री०) लक्ष्मण बेलो।

लांजी—मध्यप्रदेशके बालाघाट जिलेकी बुहां तहसीलके अन्तर्गत एक नगर। यह अक्षा० २१° २०´ उ० तथा देशा० ८०° ३५´ पू०के मध्य अवस्थित है। यह नगर चारों ओर तालाबसे घिरा है। उसका भाग घने जंगलसे ढका है। यहां एक प्राचीन शिवमन्दिर और कुछ खंडहर देखे जाते हैं। यह प्राचीन लाञ्जि नगरका अवशेष समझा जाता है। यहां एक किला टूटी फूटी हालतमें पड़ा है। शायद १७०० ई०के लगभग गोंड़-राजाने यह किला बनवाया था। किलेके अहातेमें लाञ्जकाई नामक कालीमूर्त्ति प्रतिष्ठित एक देवालय है। उक्त देवीमूर्त्तिके नामानुसार ही नगरका नामकरण हुआ है।

लाट (अं० पु०) १ किसी प्रान्त या देशका सबसे बड़ा शासक, गवर्नर। २ बहुत-सी चीजोंका वह विभाग या समूह जो एक ही साथ रखा, बेचा या नीलाम किया जाय।

लाट (सं० पु०) १ एक अनुप्रास जिसमें शब्द और अर्थ एक ही होते हैं, पर अन्वयमें हेर फेर होनेसे वाक्यार्थमें भेद हो जाता है। २ वह लंबा बांध जो किसी मैदानके पानीके बहावको रोकनेके लिये बनाया जाता है।

लाट (सं० पु०) देशविशेष, वर्त्तमान गुजरात प्रदेशका प्रान्त भाग।

नर्मदा, महोच, मुद्राका और मही नदीके तीरस्थ गुजरात तथा खान्देश विभाग ले कर यह प्राचीन जनपद संगठित था। प्राचीन संस्कृत ग्रन्थोंमें यह लाट नामसे प्रसिद्ध है। मुसलमान भौगोलिक मसूदी (A D. 910 vol I. 381), अलबिरुणी (A D, 1020 in Elliot I 6?) तथा टलेमी (A D. 150 vol II 63) पेरिप्लस आदिने इसका लाड़, लारिस या लारिक नामसे उल्लेख किया है। ये लोग इस जनपदके स्थाननिर्णयके सम्बन्धमें अनेक स्थानोंके नाम बतलाते हैं। अलबिरुणी, मसूदी और इब्न सैयदका कहना है, कि थाना और सोमनाथ पत्तन ले कर यह लाटदेश बना है। मुसलमान पण्डित सुलेमान काम्बे उपसागरसे ले कर मलबार-उपकूल तक सागरांशको लाट-समुद्र बता गये हैं। मसूदीने सीमूर, सुपर, थाना और अन्यान्य नगरोंको ले कर लारिका (लाट) प्रदेशकी सीमा निर्देश की है। वर्त्तमान प्रत्नतत्त्वविदोंका सिद्धान्त है, कि सूरत, भरोंच, खेरा और बड़ोदाका कुछ अंश ले कर यह लाट देश बना था।

इस स्थानके अधिवासी लाट कहलाते थे। ये लोग अनहिलवाड़-राजके अधीन थे। किसी कारणसे उन लोगों पर असंतुष्ट हो राजा कुमारपालने लाटोंको राज्यसे भगा दिया। तभीसे ये भारतवर्षके नाना स्थानोंमें जा कर बस गये हैं। राजपूतानेके मरुदेशमें, बेरारके मैसूर विभागमें आज भी इन लोगोंका वास देखा जाता है। परन्तु अभी ये उस प्रकार सुविस्तृत भावमें तथा प्राचीन नामसे परिचित नहीं हैं। ये सबके सब हिन्दू हैं। बहुतोंने जैनधर्म भी ग्रहण कर लिया है। राजपूतानेके लाड़ व्यवसाय-वाणिज्यमें लिप्त हैं, बेरारके लाड़ रेशमी कपड़े बुनते हैं। विख्यात भ्रमणकारी टावर्नियरने मलबार उपकूलमें तथा बुनपर्णीने सिंहलद्वीपमें लाड़ी नामक एक प्रकारकी मुद्राका प्रचार देखा था। शायद वह मुद्रा सुप्राचीन लाटदेशमें प्रचलित थी। पीछे उस नामके अपभ्रंशसे उसका लाड़ी नाम हो गया था।

माधोदरी और लाडुरी बन्दर देखो।

लाट (हिं० स्त्री०) मोटा और ऊंचा खंभा। उत्तरपश्चिम भारतमें बहुत प्राचीन कालसे अनेक प्रकारके खंभे विराजित हैं। प्राचीन कीर्त्तिके आदर्श होनेसे वे विशेष विख्यात और जनसाधारणके आदरकी वस्तु हैं। इसके सिवा इन सब स्तम्भों पर अति प्राचीन अक्षरोंमें

जो सब इतिवृत्त लिखे हैं, वे प्रत्नतत्त्वविदों के बड़े ही चित्ताकर्षक हैं। उन विद्वानों ने बहु परिश्रम और आलोचना द्वारा उन लिपिमालाका पाठ कर उनका प्रकृततत्त्व निर्णय किया है। महामति जेम्स-प्रिन्सेप्सने पहले पहल इसके वर्णमालाका आविष्कार किया। यह माला अभी लाट-वर्णमाला (Lat-character) कहलाती है।

भारतवर्षके विभिन्न देशोंमें इस प्रकारके कितने लाट स्तम्भ मस्तक उठाये खड़े हैं। उनमेंसे इलाहाबादकी लाट ही प्रसिद्ध है। उस स्तम्भकी एक बगलमें गुप्तराजवंशके सामयिक अक्षरोंमें तथा दूसरी बगलमें बौद्धसम्राट् अशोककी प्रशस्तिके जैसे अक्षरोंमें लिपि खोदी हुई है। दिल्लीकी लाटकी लिपिके साथ कटककी धौली-लिपि और गिरनारकी पहाड़ी-लिपिकी वर्णमालाका बहुत कुछ सादृश्य देखा जाता है। इसके सिवा उसमें कपर्दिगिरियोंकी सेमिटिक अक्षरमालाकी जैसी लिपि भी देखी जाती है। उस लाटमें २६ श्लोक लिखे हैं। उसमें भारतवर्षस्थित जनपदादिका विभाग और उसका नाम, उस समयके राजवंशका विवरण तथा पारस्य और शकजातिका विवरण लिखा है। हस्तिनापुरमें चन्द्रवंशीय राजोंकी राजधानी प्रतिष्ठित होने तथा मनुसंहिता वा महाभारतमें शूरसेनका कोई विशेष नहीं रहने पर भी हमें उस लिपिसे मालूम होता है, कि ईसा जन्मसे पहले ३री सदीमें बौद्धसम्राट् अशोकके राजत्वकालमें यह इलाहाबाद भूभाग एक प्रसिद्ध स्थान समझा जाता था।

२ भीतरी लाट—गाजीपुर जिलान्तर्गत एक स्तम्भ। उसमें इलाहाबाद लाटके जैसे राजवंशका परिचय और वंशतालिका विद्यमान है।

३ दिल्लीलाट—फिरोजस्तम्भ नामसे परिचित। पाठानराज फिरोज तुगलक (१३५१-१३८८)ने इसके ऊपर सोनेका एक कलस लगवा दिया है। तभीसे यह स्वर्णलाट नामसे प्रसिद्ध है। पूर्वकालकी सुप्रसिद्ध भारतीय राजधानी सारे दिल्ली-विभागमें इसके सिवा और कोई प्राचीन निदर्शन नहीं है। यही कौटिल्य विषयके अन्तर्मुख एक अद्भुत कीर्त्तिस्तम्भ है। पूर्वकालसे इस स्तम्भके विषयमें नाना किंवदन्तियां प्रचलित हैं,—हिन्दू लोग उसे भीमकी गदा, मुसलमान लोग सम्राट् फिरोजकी छड़ चलनेकी लाठी, कोई कोई महात्मा अलेकसन्दरका पुरु विजयस्मृतिस्तम्भ तथा टोम कोरियट आदि प्राचीन अङ्गरेज-भ्रमणकारिगण उसे अशोकस्तम्भ जानते थे। परवर्त्तिकालमें यूरोपीय प्रत्नतत्त्वविदोंकी चेष्टासे जब उसका प्रकृत पाठ उद्धृत हुआ, तब लोगोंका सन्देह जाता रहा।

यह स्तम्भ पहले यमुनाके दूसरे किनारे सलोरा जिलेके शिवालिक पादमूलस्थ खिजिराबादके समीप था। पीछे वह दिल्ली-द्वारके बाहरमें ला कर गाड़ दिया गया है। डा० कनिङ्गमका कहना है, कि यह स्तम्भ प्राचीन स्रुघ्न राजधानीके किसी स्थानमें था। चीनपरिव्राजक यूएनचुयंग उसकी पार्श्ववर्त्ती बौद्ध विहार और बुद्धस्मृतिसे संयुक्त सम्राट् अशोकके समकालीन सुवृहत् स्तूपका उल्लेख कर गये हैं। स्थानीय प्रवाद है, कि उक्त प्राचीन देशसे यह स्तम्भ बैलगाड़ी पर चढ़ा कर खिजराबाद लाया गया था। करीब १३५६ ई०में फिरोजशाह हिन्दूके मुखसे उसकी निश्चलताका हाल सुन बहुत रुपये खर्च करके इसे दिल्ली लाये थे। उन्होंने उसका शिखर सफेद और काले पत्थरोंसे सुशोभित कर स्वर्णकलस रखा था। उस समय मीनार-जरिन नामसे प्रसिद्ध था। १६११ ई०में विलियम फिञ्च दिल्ली नगरमें आ कर इसके स्वर्णमय-कलस और अर्द्धचन्द्राकृति चूड़ाका उल्लेख कर गये हैं।

यह लाट अन्यान्य अशोकस्तम्भकी तरह घोर लाल पत्थरकी बनी है। उसकी ऊंचाई ४२ फुट ७ इञ्च है। ऊपरी भाग ३५ फुट चौड़ा, पालिशदार और चिकना तथा निम्न भाग रूखड़ा है। यह करीब आठ सौ मन भारी होगी। उस स्तम्भमें दो प्रधान और बहुत-सी छोटी छोटी लिपियां उत्कीर्ण हैं। उनमेंसे ईसा-जन्मके ३री सदीके शेष भागमें बौद्धसम्राट् अशोककी जो लिपि उत्कीर्ण है, वही सबसे पुरानी है। यह पाली अक्षरमें लिखी है। उसकी वर्णमाला भारतीय वर्णमालाका सर्वप्राचीन निदर्शन है। आज भी उसके अक्षर साफ साफ दिखाई देते हैं। केवल दो एक जगह पत्थरकी चिट उखड़ जानेसे उस स्थानकी लिपि नष्ट हो गई है। उसके शेष भागमें एक छत्र पर सम्राट् अशोकका आदेश लिखा है जो इस प्रकार है:—"धर्मकी रक्षाके कारण शिलास्तम्भके ऊपर एक ऐसा शिलाफलक

उत्कीर्ण करो जो बहुत दिन तक रह जाय।" उसके ऊपरी भागके चारों ओर चार और नीचे एक शिलालिपि देखी जाती है। पूर्वमुखी फलकके शेष दश छत तथा अन्यान्य फलकोंकी लिपि इस दिल्लीस्तम्भका पार्थक्य सूचित करती है। एक दूसरे फलकमें चौहानराज विशाल (विग्रह) देवकी विजयवार्त्ता उत्कीर्ण है। उसे पढ़नेसे मालूम होता है, कि उन्होंने हिमाद्रिसे ले कर विन्ध्य-गिरि पर्यन्त समस्त भूभाग एकच्छत्राधीन कर लिया था।

चौहान राजवंशकी गौरवज्ञापक यह लिपि दो खण्डोंमें विभक्त है। उसका अर्द्धांश प्राचीन अशोक-लिपिके ऊपर और शेषार्द्ध उसके नीचे उत्कीर्ण है। दोनों लिपि खण्डोंमें ही १२२० संवत् लिखा है। निम्न खण्डकी वर्ण-माला आधुनिक संस्कृत है। उसमें लिखा है, कि शाक-म्भरीराज विशालदेवने ११६१ ई०में यह शिलाफलक खोदा था। इसी प्रकारका एक दूसरा लाटस्तम्भ मीरटसे दिल्ली नगरमें लाया गया था। सम्राट् अशोकने अपने सुप्रसिद्ध अनुशासनका राज्यके मध्य प्रचार करनेके लिये जो सब स्तम्भ स्थापित किये थे उन्हींमें परवर्त्ती राजन्य और वैदेशिक भ्रमणकारियों अपनी अपनी वीरकीर्त्ति उत्कीर्ण कर गये हैं। उनका नया स्तम्भ खड़ा करनेमें किसी प्रकारका कष्ट नहीं होता।

४ दिल्लीका लौहस्तम्भ—मसजिदके मध्यस्थलमें स्थापित है। ऊंचाई २२ फुट और घेरा १६ इञ्च है। प्रत्नतत्त्ववित् प्रिन्सेपने उसे ३री या ४थी शताब्दीका बना अनुमान किया है। उसकी गात्रस्थ लिपि 'कनौजी नागरी' तथा अन्यान्य मिश्र-वर्णमालामें लिखी है। इसमें हस्तिनापुर-राज्यापहारक राजा धव तथा वाह्लिकादि जातिका उल्लेख रहनेसे यह ५वीं सदीके बीचका बना मालूम होता है।

५ निगमबोध—यमुनातीरवर्त्ती ... [illegible] ... फीरोजशाह। यह दिल्लीसे कुछ मील दक्षिणमें ... [illegible] ... कवियों विवरणसे पता चलता है, कि ... [illegible] ... गौरव-प्रकाशक एक स्तम्भ यहां विद्यमान ... [illegible]

... [illegible]

६ यार ... [illegible]

इसकी ऊंचाई ४२ फुट ७ इञ्च है। इसके गात्रमें नाना प्रकारके कारुकार्य हैं।

७ गाजीपुरस्तम्भ—गाजीपुरमें स्थापित एक बौद्ध-स्तम्भ। उसकी वर्णमाला पूर्ण संस्कृत नहीं है। इस कारण लोग उसे आसानीसे नहीं समझ सकते। इसके गात्रमें जो शिलाफलक खोदित है वह इलाहाबाद, दिल्ली आदि स्तम्भोंकी तरह बौद्धस्तम्भके ऊपर स्थापित हुआ है। उसमें गुप्तवंशीय समुद्रगुप्तसे युवराज महेन्द्र-गुप्तका नाम पाया जाता है।

८ रूपवास शैलस्तम्भ—भरतपुर राज्यके रूपवास-विभागमें एक बड़े पहाड़ पर स्थापित है। यह असम्पूर्ण अवस्थामें पड़ा है। बड़े स्तम्भकी ऊंचाई ३३॥० फुट और छोटेकी २२॥० फुट है।

९ धौलीस्तम्भ—कटक जिलेके धौली ग्राममें अवस्थित है। इसमें लाटवर्णमाला तथा बीच बीचमें वलभी और सिवनी-लिपिके अक्षरमाला देखी जाती है। उड़ीसा विभागमें जो सब अशोकस्तम्भ प्रतिष्ठित हैं वे सभी बालु-पत्थरके बने हैं।

१० जूनरस्तम्भ—इसमें दो शिलाफलक उत्कीर्ण हैं। नानाघाटके स्तम्भ पर जो लिपि उत्कीर्ण है वह दिल्ली-स्तम्भ और गिरनार पर्वतस्थ शिलाफलकके साथ मिलती जुलती है। गिरनारकी पहाड़ी-लिपिको जेम्स प्रिन्सेपने पाली बताया है।

कार्त्तिक।

महामति कर्नेल टाडने राजस्थानकी प्राचीन कीर्त्ति और स्तम्भगात्रोदित लिपिमाला देख कर मुक्तकण्ठसे कहा था, 'पहले इन्द्रप्रस्थ, प्रयाग, मेवाड़, जूनागढ़की शैलमाला, विजली और आरावल्ली शिखर पर स्थापित स्तम्भादिका, पर्वत गात्रोत्कीर्ण लिपिका तथा भारतमें सर्वत्र प्रतिष्ठित जैन और बौद्ध-मन्दिरादिमें उत्कीर्ण शिलाफलकोंका प्रकृत ... होनेसे हम निश्चय ही भारतवर्षके प्राचीन ... [illegible] ... आलोचना कर सकते हैं।" इस प्रकार ... [illegible] ... महात्मा जेम्स प्रिन्सेप गवर्नर जनरलके ... [illegible] ... प्रत्नतत्त्वका अनुशीलन करने लगे। लाट-... [illegible] ... उन्हें मालूम हुआ, कि यह ... [illegible] ... मिश्रित बनी है। उसके

विशेष और अपरापर पद पालि-विभक्ति और प्रत्यययोग-से साधित तथा क्रियापद प्रायः संस्कृतसे लिये गये हैं। मिलसा-स्तम्भमें भी गुप्तवंशीय फलकादिकी जैसी भाषाका प्रयोग है, वे ही पहले पहल मिलसा-स्तम्भकी संख्या निरूपण कर कालनिर्णय करनेमें समर्थ हुए थे। बौद्ध-स्तम्भादिमें पद्यविन्यास द्वारा कालमान वर्णित देखा जाता है।

लाटलिपिकी अक्षरमाला प्राचीन ब्राह्मीलिपिके सिवा और कुछ भी नहीं है। स्तम्भके ऊपर छोड़ कर दूसरी जगह ऐसी वर्णमाला नहीं देखी जाती, इस कारण उसे लाटलिपि कहते हैं। अफगानिस्तानकी कपर्दिगिरियोंकी वर्णमाला उससे कुछ बड़ी तथा प्राचीन सेमितिक ढंग पर अङ्कित है। किन्तु कटक, दिल्ली, इलाहाबाद, बेतिया, मुलदिया और राधिया आदिकी स्तम्भलिपि भारतीय ब्राह्मी है।

ऊपर जितने लाट स्तम्भोंकी बात लिखी गई उनकी आकृति भिन्न भिन्न है। दिल्लीमें फिरोजस्तम्भ नामक जो लाट है वह किसीसे भी छिपी नहीं है। वह एक ऊंची अट्टालिकाके ऊपर स्थापित है। इसके ऊपरकी लाटलिपि बहुत प्राचीन है तथा निम्नदेशोंमें अपेक्षाकृत परवर्त्तिकालमें संस्कृत अक्षरोंमें खोदित एक दूसरा शिला-फलक उत्कीर्ण है।

अभी बौद्ध-सम्राट् अशोकके प्रवर्त्तित जो सोलह लाट-स्तम्भ आविष्कृत हुए हैं और उनमें जिन सब राजानुशासनका हाल दिया गया है उसे नीचे लिखते हैं—

अशोकका अनुशासन और उनका दान।

१ला—खाद्यार्थ या यज्ञार्थमें पशुहिंसाका निषेध तथा धर्मनीतिकी परिशुद्धिका आदेश।

२रा—राज्यमय आयुर्वेद-शिक्षा-प्रचार और बिना मूल्यके दुःखित प्रजाओंकी चिकित्सा-व्यवस्था, रास्तेकी बगलमें कूआं खोदना और वृक्ष रोपना।

३रा—प्रियदर्शीके शासनकालका द्वादशवार्षिक समारोह-प्रचार और पञ्चवर्षिक राजानुगत्य या राजभक्ति-प्रदर्शन।

४था—प्रियदर्शीके शासनकालके मत द्वादशवार्षिक राज्यशासनके साथ वर्तमान निर्विरोध राजत्वका सामञ्जस्य प्रचार।

५वां—बौद्धधर्मका प्रचार करनेके लिये धर्मगुरु और प्रचारकनियोग।

६ठा—प्रतिवेदक, राज्यरक्षक, धर्माधिकरण आदि पदों पर व्यक्तिविशेषको नियुक्त कर राज्यका मङ्गल व्यवस्था-प्रचार।

७वां—विभिन्न धर्मसम्प्रदायके मतपार्थक्यका सामञ्जस्य करके ऐक्यमत स्थापनमें राजाका आग्रहज्ञापन।

८वां—पूर्ववर्त्ती राजाओंके पार्थिव भोगविलासके साथ अपने निरीह आमोदका पार्थक्यनिर्देश और पवित्र साधुपुरुष संदर्शन, भिक्षादान और धर्मगुरु आदि माननीयोंको यथायोग्य सम्मानना दानकी अनुज्ञा।

९वां—धर्म और नीतिविषयक कथा, धर्ममङ्गल, धर्मसेवीका सुख, भिक्षुकोंको दान, सभी पर दया और गुरुजनोंके प्रति मान्यका फलनिर्देश और उसकी कर्त्तव्यताके सम्बन्धमें आदेश-प्रचार।

१०वां—'यशो वा क्षिति वा' वादकी मीमांसा, अनित्य संसारके अविद्याजनित गर्वका प्रत्याख्यान और जीवन्मुक्तिका प्रकृष्ट पथ्यानिर्देश।

११वां—धौली और गिरनार प्रशस्तिमें वर्णित "धर्म ही ईश्वरका सर्वश्रेष्ठ दान है।"

१२वां—बौद्धधर्ममें अविश्वासियोंके साथ अनुनयपूर्वक मताभिव्यक्ति।

१३वां—सारे अनुशासनका सारमर्म और संक्षिप्त उपदेश।

लाट—कुरानके अनुसार एक अपदेवता। महम्मदके समय थाकिया और कोरेश जाति इस देवताकी उपासना करती थी।

लाटक (सं० त्रि०) लाट जाति-सम्बन्धीय।

लाटडिण्डीर—एक प्राचीन कवि। क्षेमेन्द्रकृत सुवृत्ततिलकमें इनका उल्लेख है।

लाटपत (सं० पु०) दारचीनी।

लाटपर्ण (सं० पु०) दारचीनी।

लाटरी (अं० स्त्री०) एक प्रकारकी योजना। इसका आयोजन विशेष कर किसी सार्वजनिक कार्यके लिये

धन एकत्र करनेके निमित्त किया जाता है और इनमें लोगोंको किस्मत आजमानेका मौका मिलता है। इसमें एक निश्चित रकमके टिकट बेचे जाते हैं और यह घोषणा की जाती है, कि एकत्र धनमेंसे इतना धन उन लोगोंमें बांटा जायगा जिनके नामकी चिटें पहले निकलेंगी। टिकट लेनेवालोंके नामकी चिटें किसी संदूक आदिमें डाल दी जाती हैं और कुछ निर्वाचित विशिष्ट व्यक्तियोंकी उपस्थितिमें वे चिटें निकाली जाती हैं। जिनके नामकी चिटें सबसे पहले निकलती हैं, उसे पहला पुरस्कार अर्थात् सबसे बड़ी रकम दी जाती है। इस प्रकार पहले निकलनेवाले नामवालोंमें निश्चित धन यथाक्रम बांट दिया जाता है। इसके लिये सरकारसे अनुमति लेनी पड़ती है।

लाटाचार्य—एक प्रसिद्ध ज्योतिषी।

लाटानुप्रास (सं० पु०) वह शब्दालङ्कार जिसमें शब्दोंकी पुनरुक्ति तो होती है, परन्तु अन्वयमें हेर फेर करनेसे तात्पर्य भिन्न हो जाता है।

लाटायन (सं० पु०) लाट्यायन।

लाटिका (सं० स्त्री०) रीतिभेद। वैदर्भी, पाञ्चाली, गौड़ी और लाटिका ये चार प्रकारकी रीति हैं। रचना पद्धतिको ही रीति कहते हैं।

वैदर्भी और पाञ्चाली रीतिकी मध्यस्थिता जो रीति है उसे लाटी कहते हैं। तात्पर्य यह, कि केवल वैदर्भी रीतिके अनुसार या पाञ्चाली रीतिके अनुसार रचना न हो कर इसके मध्य भावमें जो रचना होगी वही लाटीरीति है। वैदर्भी और पाञ्चाली इन दोनों ही रीतिके नियमका अनुसरण कर जो रचना होती है वही लाटी रीति है।

इस रीतिमें मृदु पदविन्यास होगा अथच दीर्घ-समासबहुल और युक्तवर्ण अधिक न रहेगा तथा उचित विशेषण द्वारा वस्तु विन्यास होनेसे यह रीति होगी। विशेषणका प्रयोग इस प्रकार करना होगा, कि वर्णनीय वस्तुके साथ उसकी सङ्गति रहे।

दूसरा लक्षण—उत्कट-पदयुक्त रचना होनेसे गौड़ी-रीति, ललित-पदविन्यास होनेसे वैदर्भी, मिश्रभावमें पाञ्चाली तथा मृदु-पदविन्यास करनेसे लाटी-रीति होती है। (साहित्यद० ९ परि०)

लाटी (सं० स्त्री०) लाटिका रीति।

लाटीय (सं० त्रि०) लाटक, लाटजाति सम्बन्धी।

लाटेश्वर—पश्चिम भारतमें स्थित एक शैवतीर्थ।

लाट्यायन (सं० पु०) श्रौतसूत्रके प्रणेता एक ऋषि।

लाड़ (हिं० पु०) १ लाड़ देखो। (स्त्री०) २ लाड़ देखो।

लाठी (हिं० स्त्री०) वह लंबी और मोटी बड़ी लकड़ी जिसका व्यवहार चलनेमें सहारेके लिये अथवा मार-पीट आदिके लिये होता है, डंडा।

लाठी—१ बम्बई प्रदेशके काठियावाड़ विभागके गोहेल-वाड़ प्रान्तका एक सामन्त राज्य। यह अक्षा० २१° ४१′ से २१° ४५′ उ० तथा देशा० ७१° २३′ से ७१° ३२′ पू०के मध्य अवस्थित है। भूपरिमाण ४२ वर्गमील है। यहां-का अधिकांश स्थान पर्वतमालासे पूर्ण है। कहीं कहीं काली मिट्टी दिखाई पड़ती है। इस उर्वर मिट्टीमें रुई, ईख और अन्न बहुतायतसे उपजता है। निकटवर्ती भाव-नगर बन्दरमें यहांके पण्यद्रव्यकी खरीद बिक्री होती है।

भावनगर-राजवंशके प्रतिष्ठाताके मंझले भाई साहू-जीने यहांके सरदारवंशकी प्रतिष्ठा की। इस वंशके एक ठाकुर-सरदारने दमाजी गायकवाड़को अपनी कन्या ब्याह दी। उन्होंने दहेजमें अपनी कन्याको छनारी नामक भूसम्पत्ति दी थी।

यह सम्पत्ति आज दामनगर नामसे विख्यात है। गायकवाड़-राज दमाजीने यह सम्पत्ति पाने पर श्वसुरसे राजकर लेना छोड़ दिया। तभीसे यहांके सरदार उक्त सम्पत्तिका प्रायः निष्कर भोग करते आ रहे हैं। और गायकवाड़राजको प्रत्येक वर्ष एक घोड़ा भेंट दिया करते हैं। उनका वार्षिक राजस्व ७३११० रु० है। इसमेंसे वे बड़ोदाके गायकवाड़को तथा जूनागढ़के नवाबको एक साथ २००७ रु० कर देते हैं। उन्हें दत्तक लेनेका अधिकार नहीं है। जेठे लड़के ही पितृपदके अधिकारी होते हैं। यहांके सरदार वापुभा (१८८४ ई०) गोहिलवंशीय राज-पूत हैं। ये अङ्गरेज-राजसरकारसे तीसरी श्रेणीके सामन्त गिने जाते हैं। ये अपने राज्यमें किसी तरहका पण्यद्रव्य पर महसूल नहीं लगाते।

२ उक्त सामन्त राज्यका प्रधान नगर। यह अक्षा० २१° ४३′ ३० तथा देशा० ७१° २४′ पू०के बीच पड़ता है। भाव

नगर-गोंडाल रेलपथकी धोराजी शाखा इस राज्यके बीचो-बीच हो कर चली गई है। नगरसे आध कोस पर इस रेलपथका एक स्टेशन है। जनसंख्या ५६६७ है। यहां धर्मशाला, चिकित्सालय और विद्यालय है।

लाड़ (हिं० पु०) बच्चोंका लालन, प्यार, दुलार।

लाड़—बम्बई प्रदेशमें रहनेवाली एक जाति। यह जाति दक्षिण-गुजराती भी कहलाती है। सम्भवतः यही प्राचीन लाट जनपदवासी लाट-जातिके वंशधर हैं। इनमें एक प्रवाद इस तरह है,—उत्तर-भारतसे उनके पूर्वपुरुष दक्षिण-भारतमें आ कर बस गये हैं। ये काले और पीले रंगके होते हैं। तुलजाभवानी और येल्लमा इनकी प्रधान उपास्य देवी हैं।

इस जातिके लोग हट्टे कट्टे, मजबूत और सुडौल होते हैं। ये बहुत कुछ शिम्पियोंसे मिलते जुलते हैं। इनकी आंखें बड़ी बड़ी, तोतेकी जैसी नाक, दोनों होंठ पतला और मुंह गोल होता है। इनका आचार-व्यवहार उच्च श्रेणीके ब्राह्मण-सा और पहनावा साफ सुथरा होता है। ये शराब नहीं पीते और न मांस ही खाते हैं। अधिकांश निरामिषाशी हैं। दूधके लिये सब कोई गाय और भैंस पालते हैं। स्त्रियां घंघरा अथवा फेंटा बांधती हैं। ये आतिथ्य-सत्कार खूब करते लेकिन सभी बड़े आलसी होते हैं। इनके लिए लाड़ लोकको अवस्था उतनी खराब नहीं है। इतर आदि गंधद्रव्य बेचना ही उनकी प्रधान उपजीविका है।

इनमें नामके अलावा और कोई उपाधि देखी नहीं जाती। लड़केके विवाहसे लड़कीके विवाहमें ही अधिक खर्च होता है। क्योंकि जमाईको दहेजमें रुपये देने पड़ते हैं। ये सभी धार्मिक होते और ब्राह्मणोंकी बड़ी भक्ति करते हैं। विवाहादिमें ब्राह्मण ही इनकी पुरोहिताई करते हैं। ये पण्ढरपुर और तुलजापुरमें देवदर्शनको आते हैं और हिन्दूके प्रधान प्रधान सब त्योहारोंमें ही उपवास आदि किया करते हैं। बनारसमें इनके धर्मगुरुका वंश है। ये जातिमें गोस्वामी हैं। ये समय समय पर दक्षिणी शिष्योंको मन्त्र देने आते हैं। दूसरी जातिको ये शिष्य नहीं बनाते।

बालकके जन्मके बाद नाभिच्छेद किया जाता है और तब प्रसूति नहलाई जाती है। पांचवें दिन षष्ठीपूजाके बाद जातीय कुटुम्बका भोज होता है। तेरहवें दिन सभी बालकको गोद लेते हैं। इसी दिन उसका नामकरण होता है। इसके बाद तीन महीने तक प्रति सोमवारको प्रसूति षष्ठीपूजा करती है। इस तरह तीन महीना बीतने पर प्रसूति पुत्रको ले कर आस पासके देवालयमें जाती और देवताको भेंट दे कर घर वापस आती है।

इस दिनसे विवाह पर्यन्त और कोई संस्कार नहीं होता। विवाहसे एक दिन पहले 'देवकार्य' होता है। इसमें कुलदेवताकी पूजा होती है। विवाहके दिन वर और कन्याको उबटन लगा कर स्नान कराया जाता है। पीछे उन्हें एक साथ बैठा कर पुरोहित मन्त्र पाठ करते हैं। सिन्दूरदानके बाद विवाह शेष होता है। पीछे एक भोज होता है।

ये लोग मृत-शरीरको जलाते और सिर्फ दश दिन तक अशौच मानते हैं। ये देखनेमें प्रायः एकसे लगते हैं। समाजमें किसी तरहकी गड़बड़ी होने पर जातीय प्रधानोंके विचारसे उसका निबटेरा होता है। जो इसका उल्लंघन करते वे जातिच्युत होते हैं। पीछे दश रुपये देने पर समाजमें लिये जाते हैं।

लाड़कसाब—बम्बईप्रदेशमें रहनेवाली एक मुसलमान जाति। भेड़, बकरा आदि मार कर बेचना ही इस जातिका व्यवसाय है। इस जातिके लोग पहले हिन्दू थे। महिसुरराज टीपू सुलतान (१७८५-१७९९ ई०)-के समयसे सभी इसलाम-धर्ममें दीक्षित हुए हैं। स्त्री और पुरुषोंका वेशभूषा स्थानीय हिन्दू-सा है। कोई कोई पुरुष केवल दाहिने कानमें एक बड़ा कुंडल पहनते हैं। स्त्रियां पुरुषोंसे सुन्दरी होतीं और घरसे बाहर आनेमें नहीं लजाती हैं। यहां तक, कि दूकान पर बैठ कर मांस बेचती हैं। ये मितव्ययी, कर्मठ, चतुर और विनयी होते हैं पर कुछ गंदा रहते हैं।

ये अपने ही समाजमें शादी करते हैं। 'पाटिल' नामक निर्वाचित समाजके अध्यक्षका आदेश सभी मानते हैं। किसी तरहका सामाजिक गोलमाल होनेसे पंचायत उसका निबटेरा कर देती है। उसकी अवहेला करने पर जातिके जुर्माना करते हैं। ये हिन्दू देवदेवी-की बड़ी भक्ति करते हैं। हिन्दूके देवताकी पूजा आदि

तथा त्योहारमें ये बड़े समारोहके साथ उत्सव मनाते हैं। कोई भी गोमांस नहीं खाता। काजी इनका विवाह और मृताधिकार्य सम्पादन करते हैं। इनके अलावा अन्यान्य सभी विषयोंमें ये हिन्दू-प्रथाको अनुसरण करते हैं। ये कुरान या कलमा नहीं पढ़ते और न मसजिदमें ही जाते हैं। दूसरे दूसरे मुसलमान सम्प्रदायके साथ बैठ कर खानेमें ये घृणा करते हैं।

लाड़खान—एक मुसलमान राजा। ये अनङ्गरङ्गके प्रणेता कल्याणमल्लके प्रतिपालक थे।

लाड़लड़ा (हिं० पु०) एक प्रकारका सांप जो प्रायः वृक्षों पर रहा करता है।

लाड़लड़ैता (हिं० वि०) जिसका बहुत अधिक लाड़ हो, प्यारा, दुलारा।

लाड़ला (हिं० वि०) जिसका लाड़ किया जाय, दुलारा।

लाड़ली (हिं० वि० स्त्री०) जिसका लाड़ किया जाय, दुलारी।

लाड़वाणी—बम्बई प्रदेशवासी एक जाति। राजा कुमारपाल द्वारा दक्षिण गुजरातके लाट देशसे भगाये जाने पर ये लोग सम्भवतः यहां आ कर बस गये होंगे। ये हिन्दू हैं। इनमें अगस्त्य, भरद्वाज, गर्ग, गौतम, जमदग्नि, कौशिक, काश्यप, वशिष्ठ और विश्वामित्र गोत्र प्रचलित हैं। सगोत्र अथवा एक पदवी होनेसे इनमें विवाह नहीं होता। ये हर रोज स्नान और कुलदेवताकी पूजा किया करते हैं। इनके अलावा तुलजापुरकी भवानीदेवी, सताराके अन्तर्गत सिंगनापुरके महादेव, पण्ढरपुरके बिठोबा आदि तीर्थोंमें ये सपरिवार जाते हैं। इनका लौकिक आचार व्यवहार और वेशभूषा स्थानीय ब्राह्मणोंसे मिलता जुलता है। ये साफ सुथरे, मेहनती, अतिथेय और मधुर होते हैं। चावल, कपड़ा और तरह तरहका मसाला बेचना ही इनका जातीय व्यवसाय है। ग्रामवासी बहुतेरे लाड़ खेती-बारी करते हैं। सम्प्रति बहुत लोग पढ़ लिख कर सरकारी नौकरी करने लगे हैं। स्त्रियां पुरुषोंके साथ दूकानमें माल बेचती हैं। इसके सिवाय ये सूदखोरका सब काम करते हैं।

ये स्थानीय ब्राह्मणोंसे समाजमें नीच और कुनबियों-से उच्च गिने जाते हैं। देशके ब्राह्मण इनकी पुरोहिताई करते हैं। हिन्दूकी सभी देवदेवीकी पूजामें इनकी बड़ी भक्ति देखी जाती है। ये हिन्दूके सब त्योहारोंको मानते और प्रति वर्षकी सलोनो पूर्णिमामें सब कोई जनेऊ पहनते हैं। इनमें बाल्यविवाह और बहुविवाह चलता है, किन्तु विधवा-विवाह निषिद्ध है। बालकका अष्टम वर्ष ही उपनयनका उत्तम काल है। १५से २० वर्ष तक लड़केका विवाह होता है। विवाहका मन्त्र वैदिक नहीं है। ये देशी भाषामें ही विवाह आदि कराते हैं। ये शवको जलाते हैं। सिर्फ दस दिन तक अशौच रहता है। उसके बाद शुद्ध हो कर जातिभोज देते हैं। किसी प्रकारका बखेड़ा खड़ा होने पर पंचायत उसका निपटारा कर देती है। अपराधीको जुर्माना किया जाता है। कभी कभी दोषी जातिभोज दे कर छुटकारा पाता है।

लाड़सूर्यवंशी—बम्बई प्रदेशके धारवाड़ जिलेमें रहनेवाली एक नीच जाति। बकरा आदि काट कर उसका मांस बेचना ही इनका जातीय व्यवसाय है। ये अशुद्ध हिन्दी बोलते हैं।

इनमें किसी तरहका श्रेणीविभाग नहीं है। पुत्र उत्पन्न होने पर नाभि काटनेके बाद ये जातबालकके मुंहमें रेंड़ीके तेलकी कई बूंदें डाल देते हैं तथा पांचवें दिन एक बकरा काट कर आत्मीय स्वजनको भोज देते हैं। तेरहवें दिन अशौचके बाद सब कोई बालकको गोद लेते तथा नामकरण करते हैं। उसके बाद विवाह तक और किसी तरहका संस्कार नहीं होता। विवाहके दिन वर और कन्या एक उच्च वेदी पर बैठाई जाती और गांवके पण्डित कन्या सम्प्रदान करते हैं। मगर पहले तमाम ये दोनोंके सिर पर हल्दीसे रंगा हुआ चावल छिड़कते हैं। विवाहके उपरान्त आत्मीय स्वजनका भोज होता है।

मृत्युके बाद ये शवदेहको स्नान कराते और विछा कर कपड़ा पहनाते हैं। इसके बाद उसे फूलकी माला और अलंकार आदिसे सुशोभित कर दफनाते हैं। तीसरे दिन ये उसी कब्र पर आ कर दूध डालते हैं। यदि कोई अशुभ दिनमें मरता है, तो उस घरके सब कोई तीन महीने तक उस घरको छोड़ दूसरी जगह जा कर रहते हैं। इनका विश्वास है, कि अशुभ समयमें मृत्युके लिये जो दोष होता है, वह इस घरमें

रहनेसे गृहस्थित अपर व्यक्तिको निःसन्देह ही स्पर्श कर सकता है।

इनमें बाल्यविवाह और बहुविवाह प्रचलित है। विधवा-विवाह निषिद्ध है। सामाजिक किसी भी विषयकी मीमांसा पंचायत द्वारा ही होती है। इनकी बातकी अवहेला करनेवाला व्यक्ति समाजच्युत होता है।

ये लोग धार्मिक होते हैं। धर्मकर्ममें भी इनकी बड़ी श्रद्धा है। बेलगांव जिलेकी सवदत्ती नगरीका येलुम्मा देवोतीर्थ तथा नवलगुण्डके मुसलमान-साधु दवल-मालिकका मकबरा ये देखने आते हैं। ब्राह्मणोंके प्रति भी इनकी भक्ति अचला है। विवाहादि क्रिया कर्ममें ब्राह्मण लोग भी याजकता करते हैं। इनके कोई धर्म-गुरु नहीं होते।

लाड़ू (हिं० पु०) १ लड्डू, मोदक। २ दक्षिणी नारंगी।

लाड़िया (हिं० पु०) वह दलाल जो दूकानदारसे मिला रहता है और ग्राहकोंको धोखा दे कर उसका माल बिकवाता है।

लाड़ियापन (हिं० पु०) १ लाड़ियाका काम। २ धूर्तता, चालाकी।

लाड़णी (सं० स्त्री०) कुलटा स्त्री।

लात (हिं० स्त्री०) १ पैर, पाँव। २ पैरसे किया हुआ आघात या वार, पादप्रहार।

लाद (हिं० स्त्री०) १ किसी वस्तुको बैल या गाड़ी पर रख कर एक स्थानसे दूसरे स्थानको ले जानेका कार्य, लादनेकी क्रिया। २ मिट्टीका वह ढोंका जो पानी निकालने-की ढेंकीके दूसरे ओर लगा रहता है। ३ पेट, उदर। ४ आँत, अँतड़ी।

लादना (हिं० क्रि०) १ किसी चीज पर बहुत सी वस्तुएं रखना, एक पर एक चीजें रखना। २ गाड़ी या पशुको भारसे युक्त करना, ढोने या ले जानेके लिये वस्तुओंको भरना। ३ कुश्ती लड़ते समय विपक्षीको अपनी पीठ या कमर पर उठा लेना। ४ किसीके ऊपर किसी बातका भार रखना।

लादवा—पञ्जाब प्रदेशके अम्बाला जिलेकी पिपली तह-सीलके अन्तर्गत एक नगर। यह अक्षा० २९° ५१′ उ० तथा देशा० ७७° ३′ पू०के बीच पिप्पलीसे करनाल जानेके रास्तेमें अवस्थित है। जनसंख्या ३५१८ है। यहां पहले सामन्त-राज्यकी एक राजधानी थी। १८४६ ई०में सिख युद्धके समय यहांके सरदार राजा अजितसिंह अङ्गरेजोंके विरुद्ध खड़े हो गये थे। इस कारण सम्पत्ति जब्त कर ली गई है। आज भी दुर्ग और राजप्रासाद तथा अन्यान्य प्रधान प्रधान अट्टालिका विद्यमान है। म्युनिसपलिटीके अधीन रहनेसे नगरकी पूर्वसमृद्धिका किसी तरह ह्रास न होने पाया है। नगरमें एक वर्नाक्युलर मिडिल स्कूल और एक चिकित्सालय है।

ला-दावा (अ० वि०) जिसका कोई दावा न रह गया हो, जो अधिकारसे रहित हो गया हो।

लादिया (हिं० पु०) वह जो किसी चीज पर बोझ लाद कर एक स्थानसे दूसरे स्थान पर ले जाता हो।

लादी (हिं० स्त्री०) १ कपड़ोंकी वह गठरी जो धोबी गदहे पर लादता है। २ वह गठरी जो किसी पशु पर लादी जाती है।

लानंग (हिं० पु०) एक प्रकारका अंगूर। यह कुमायूं और देहरादूनमें अधिकतासे होता है। इससे अर्क निकाला जाता और एक प्रकारकी शराब बनाई जाती है।

लान (अं० पु०) हरी घासका बड़ा मैदान जिस पर गेंद आदि खेलते हैं।

लानटेनिस (अं० पु०) गेंदका एक खेल जो छोटे-से मैदानमें खेला जाता है।

लानत (हिं० स्त्री०) धिक्कार, फिटकार।

लानती (हिं० पु०) वह जो सदा लानत मलामत सुननेका अभ्यस्त हो, सदा फिटकार सुननेवाला।

लाना (हिं० क्रि०) १ कोई चीज उठा कर या अपने साथ ले कर आना, कोई चीज उस जगह पर ले आना जहां उसे ग्रहण करनेवाला हो अथवा जहां ले आनेवाला रहता हो। २ प्रस्तुत करना, सामने रखना। ३ उत्पन्न करना, पैदा करना। ४ आग लगाना, जलाना।

लान्त (सं० पु०) तन्त्रके अनुसार एक प्रकारका संकेत।

लान्तकज (सं० पु०) जैनियोंके एक प्रकारके देवताओंका गण।

लान्डीखाना—अफगानिस्तानके अन्तर्गत "खैबरघाटी" नामक प्रसिद्ध पहाड़ी रास्तेका एक अंश। ऐसा कठिन और दुर्गम स्थान और कहीं भी नहीं है। पूर्वमुखमें जमरूद नामक स्थानसे यह स्थान २० मील और पश्चिममुखसे ७ मील पड़ता है। गिरिसंकटके इसी स्थान पर लान्डीखाना नामक एक गांव है। यह अक्षा० ३४° ३' ३० तथा देशा० ७१° ३' पू०के बीच पड़ता है और समुद्रकी तहसे २४८८ फुट ऊंचा है। इस गिरिपथकी सबसे ऊंची सुरंग लान्डीकोटाल ३३३८ फुट ऊंची है। यहां एक दुर्ग है। खैबर गिरिपथ हो कर जाते समय अंगरेजी सेना इसी दुर्गमें ठहरती है। दुर्गकी दाहिनी बगलमें एक सराय है। यात्री तथा वणिक् लोग जाते आतेके समय इसी स्थान पर भोजन आदि करते हैं।

लान्डीकोटालके अंगरेजराजके एक कर्मचारी (Political officer) के अधीन यह संकट रक्षित है। पहाड़ी सेना (Irregular levies) इसकी रखवाली करती है। लान्डीकोटालके पास ही पिसगाह नामक पर्वतशृङ्ग है। विगत अफगान-युद्धके समय इस शिखर पर आरोहण कर स्थानीय अंगरेज-कर्मचारीने जलालाबाद तक अफगानिस्तानके समतल क्षेत्रका पर्यवेक्षण किया था।

लान्डीकोटाल पार कर गिरिपथकी चौड़ाई कुछ संकीर्ण हो गई है। उसी कन्दरमें लान्डीखाना ग्राम है। यहांसे कुछ दूर जाने पर अफगानिस्तानका समतलक्षेत्र पड़ता है।

लान्त्—पाणिनीय पाठादिगणोक्त एक शब्द। (पा ४।४।२६)

लाप (सं० पु०) लप-घञ्। कथन, बात।

लापता (हिं० वि०) १ जिसका पता न लगे, खोया हुआ। २ गुप्त, गायब।

लापरवा (फा० वि०) १ जिसे किसी बातकी परवा न हो, बेफिक्र। २ जो सावधानीसे न रहता हो, असावधान।

लापरवाह (फा० वि०) लापरवा देखो।

लापरवाही (फा० स्त्री०) १ लापरवा होनेका भाव। बेफिक्री। २ असावधानी, प्रमाद।

लापित (सं० त्रि०) लप णिच् क्त। कथित, कहा हुआ।

लाबु (सं० पु०) तूम्बी, कद्दू।

लाप्य (सं० त्रि०) लप्तुं शक्य लप-ण्यत्। कथनीय, कहने योग्य।

लाफा—मध्यप्रदेशके बिलासपुर जिलान्तर्गत एक जमींदारी सम्पत्ति। भूपरिमाण २०२२ वर्गमील है। १३१६ ईसे यहांके जमींदारवंश इस सम्पत्तिका भोग करते आ रहे हैं। स्थानीय जमींदार कुलवार वंशीय हैं।

लाफागढ़—मध्यप्रदेशके बिलासपुर जिलेका एक गिरिदुर्ग। यह अक्षा० २२° ४१' ३० तथा देशा० ८२° ३' पू०के बीच बिलासपुर नगरसे ३५ मील उत्तर लाफाग्राम पर स्थापित है। समुद्रकी तहसे यह स्थान ३२०० फुट ऊंचा है। दुर्गके चारों ओर अधित्यकाभूमि, चार वर्गमील है जो अभी छोटेसे जंगलमें परिणत हो गई है।

इस सुविस्तृत अधित्यकाभूमिमें एक समय छत्तीसगढ़के हैहयवंशीय राजे रहते थे। पीछे वे रत्नपुरमें राजधानी उठा ले गये। आज भी दुर्ग और चहारदीवारी आदि भग्न अवस्थामें पड़ी हैं।

लाभ (सं० पु०) लभ-करणे घञ्। १ प्राप्ति, मिलना। २ फायदा, मुनाफा। ३ उपकार, भलाई।

लाभक (सं० पु०) लाभ स्वार्थे कन्। लाभ, फायदा।

लाभकारक (सं० त्रि०) जिससे लाभ होता हो, फलदायक, फायदेमंद।

लाभकारी (सं० त्रि०) फायदा करनेवाला, फायदेमंद।

लाभक्षायिक (सं० पु०) जैनोंके अनुसार वह अनन्त लाभ जो समस्त कर्मोंका क्षय या नाश हो जाने पर आत्माकी शुद्धताके कारण प्राप्त होता है।

लाभदायक (सं० वि०) जिससे लाभ हो, गुणकारी।

लाभमद (सं० पु०) वह मद जिससे मनुष्य अपने आपको लाभवाला और दूसरेको हीनपुण्य समझे।

लाभलिप्सा (सं० स्त्री०) पानेकी इच्छा।

लाभलिप्सु (सं० त्रि०) पानेकी इच्छा करनेवाला।

लाभवत् (सं० त्रि०) लाभः विद्यतेऽस्य मतुप् मस्य वः। लाभयुक्त, फायदेमंद।

लाभस्थान (सं० क्ली०) लाभका स्थान। ज्योतिषके लग्नादि बारह भावोंमेंसे लग्नसे ग्यारहवां स्थान। इस

स्थानमें लाभका विषय विचार करना होता है। इस लिये इसे लाभस्थान कहते हैं।

हस्ती, अश्व, यानवाहनादि, उत्तम भूषणादि, शय्या, धनरत्नादि, कन्या, आयु, विद्या और अर्थलाभ ये सब विषय लाभस्थानसे अर्थात् लग्नमें ग्यारहवें स्थानका निश्चय करना होता है।

लाभान्तराय (सं० पु०) यह अन्तराय कर्म जिसके उदय होनेसे मनुष्यके लाभमें विघ्न पड़ता है।

लाभ्य (सं० क्ली०) लभ-ण्यत्। लाभ, फायदा।

लाम (हिं० पु०) १ सेना, फौज। २ बहुत-से लोगोंका समूह।

लामकायन (सं० पु०) १ लमकका गोत्रापत्य। (पा ४।१।९९) २ एक आचार्यका नाम।

लामकायनिन् (सं० पु०) लामकायन शाखाध्यायी।

लामज (हिं० पु०) एक प्रकारका तृण। संयुक्त प्रदेश, पंजाब और सिंधमें प्रायः बारहों महीने यह पाया जाता है। यह खसकी तरहका और कुछ पीले रंगका होता है इसलिये इसे पीलावाला भी कहते हैं। इसकी जड़के पासका भाग मोटा होता है और उस पर रोएं होते हैं। इसका डंठल सीधा होता है जिस पर चिकने, पतले और लंबे पत्ते होते हैं। वैद्यकमें इसे उत्तेजक, आमवातमें पसीना लानेवाला, रुधिरको साफ करनेवाला, अजीर्ण, खांसी आदि दूर करनेवाला और विशूचिका तथा ज्वरमें लाभकारी माना जाता है।

लामज्जक (सं० क्ली०) १ लामज नामक तृण। लामज देखो। २ खस, उशीर।

लामय (हिं० पु०) एक प्रकारकी घास जो प्रायः ऊसर भूमिमें पाई जाती है।

लामा (ब्ल्'लामा*)—तिब्बतका बौद्धयतिभेद। इन लोगोंके मध्य सर्वश्रेष्ठ बौद्धसंन्यासी दलाई लामा कहलाते हैं। मङ्गोलियाने बौद्धधर्ममें दीक्षित हो कर तिब्बतस्थ श्रेष्ठ धर्मयाजकोंका यह नाम रखा था। तिब्बतीय भाषामें ब्ल्'लामा शब्दसे श्रेष्ठ तथा मङ्गोलीय दलाईसे समुद्र समझा जाता है।

राजा थिस्रोङ्-दे-सुसानने (६२८-८६ ई०में) तिब्बतीय बौद्धयतियोंके मध्य श्रेणीविभाग करके उनके आचार-व्यवहारकी प्रणाली निर्द्धारित कर दी। आगे चल कर उस प्राचीन पद्धतिका विलोप हुआ तथा १५वीं सदीके आरम्भमें वर्त्तमान धर्मपद्धति सम्पूर्ण पृथक् और स्वाधीन भावमें संगठित हुई। सुप्रसिद्ध लामा त्सोङ्खापाने १४१७ ई०में लासा नगरीमें गाःल्दन् नामक मठ स्थापन किया तथा स्वयं उस मठके सर्वश्रेष्ठ अध्यक्ष हुए। जनसाधारण उनकी बड़ी श्रद्धा करते थे। उनके प्रति लोगोंकी ऐसी अचला भक्ति हो गई थी, कि उनकी सन्तानसन्ततिको भी वे लोग देवांश-समुद्भूत समझते थे। उसी विश्वासके बल उनके पुत्रपौत्रादि आज भी उस मठके अध्यक्ष होते हैं। किन्तु लासा नगरके सर्वश्रेष्ठ बौद्धधर्माचार्य दलाई लामाने तथा तषिलहूणपोके पञ्चेन् रिन्पोछेके धर्मप्रभावने जनसाधारणका चित्त आकर्षण किया, तब पूर्वोक्त गाःल्दन् मठाधिकारीकी समस्त प्रतिपत्ति नष्ट हो गई। शेषोक्त दोनों लामाको देवसम्भूत जान कर वे लोग देवताके समान उन्हें मानने लगे।

दलाई लामा जनताके निकट ध्यानी बोधिसत्त्व चेनरेशीके अंशसम्भूत या उन्हींके अवतार समझे जाते हैं। लोगोंका विश्वास है, कि बोधिसत्त्व चेनरेशी जब जिस मनुष्यकी देहमें प्रविष्ट हो कर धराधाममें अवतीर्ण होनेकी इच्छा करते, तभी वे अपने शरीरसे एक अपूर्व ज्योतिः निकाल कर उस मनुष्यकी देहमें मिला देते हैं। इससे उस मनुष्यकी देहमें देवत्वका आविर्भाव हो जाता है। पञ्चेन्-रिन्-पोछे नामक लामा चेनरेशी बोधिसत्त्वके पिता अमिताभका अवतार माने जाते हैं।

किंवदन्ती है, कि त्सोङ्खापाने अपने दो प्रधान शिष्योंको पुनः पुनः जन्म-परिग्रह कर बौद्धधर्मकी पवित्रतारक्षा तथा परिपालनके लिये हुकुम दिया। उन्होंने ही सबसे पहले उन दोनोंको आचार्यमर्यादाकी पृथक्ता और प्रधानता बतला दी। इसी प्रकार उपरोक्त देवांश-सम्भूत दोनों लामाकी उत्पत्ति हुई है। Croomकी वंशतालिकासे मालूम होता है, कि गेदुन् ग्रुप्पने (जन्म १३८९ ई०, मृत्यु १४७३ ई०) सबसे पहले पेञ्चन् रिन्पोछेकी उपाधि ग्रहण की थी। आज भी दलाई-लामा

* तिब्बत-भाषामें अक्षरस्थ 'ब' अनुच्चार्य।

इसी उपाधिसे परिचित हैं। अतएव इससे स्पष्ट अनुमान होता है, कि तिब्बतमें ही सबसे पहले दलाई लामाओंने शासनाधिकारके निकट पहुँच गये थे। पाश्चात्य महाद्वीपके महाप्रभु पुरोहितगणके ऊपर धर्म-शक्तिको उच्च मर्यादा न मिली। १४४७ ई०में वे तशिलहुन-गोम्फा सुदृढ़ संघाराम स्थापन कर गये हैं। उक्त मठके उपाध्यायगण ही शायद पञ्चेन् रिन् पोछे नाम धारण कर दलाई लामाकी तरह अपनी ऐसी शक्ति फैलानेकी कोशिश की। अपनी दैवशक्ति प्रकाशित कर वे सर्वपूज्य हुए सही, पर दलाई लामाकी तरह धर्मराज्यमें उनका प्रभाव न फैला और न आगे अधिकृत भूभागमें उनका शासन या आदेश ईश्वरवाक्यवत् उस तरह सम्मानित और प्रतिपालित हो सका। केवल तिब्बतमें दलाई लामाकी तरह वे अपनी राजशक्ति फैलानेमें समर्थ हुए थे।

५म ग्येलव-रिन् पोछे लोबसङ्ग ग्यछो उच्चाभिलाषी थे। उन्होंने भोटराजके साथ विरोधकालमें कुकुनोर नामक ह्रदतीरवासी कोशोत् मोङ्गलियोंके पास इस आशय पर एक दूत भेजा था, कि भोटराजधानी शिगात्सें पर चढ़ाई करनेके लिये वे लोग उन्हें मदद पहुँचावेंगे। शिगात्सेके भोटराजके साथ उनका जो युद्ध हुआ उसमें मोङ्गलियोंने तिब्बत अधिकार कर लोबसङ्गको दे दिया। १६४० ई०में यह घटना घटी। अतएव उसी समयसे सारे तिब्बतराज्यमें दलाई लामाका अधिकार (temporal

संसारधर्मनिरत गृहस्थगण यदि पवित्र जीवनमें विश्वास करें, तो वे धार्मिक पुरुष कहे जाते हैं। धर्मोपदेश सुननेका उन्हें अधिकार है। धर्मोपदेशका पालन कर संसार-कार्य निर्वाह करनेसे वे उपासक या उपासिका, ब्रह्मचर्यका अवलम्बन नहीं करनेसे पवित्रता और चार उपदेश पालन करनेसे गेन्-यो या गेन्-मा कहलाते हैं।

धर्मप्राण तिब्बतीय समाजमें लामागण पार्थिव और आध्यात्मिक शक्तिके आधारभूत हैं तथा सर्वशक्तियुक्त भोगाधिकारी ज्ञान कर जनसाधारण उन लामाओंके कृपा-प्रार्थी होते हैं। इस कारण उस देशके अधिकांश मनुष्य बचपनमें संसारधर्मको जलाञ्जलि दे लामाका शिष्यत्व ग्रहण करते हैं। फिर राजशक्ति और धर्मशक्तिके द्वारा अनुप्राणित हो वे आश्रयागत लामाराज्यवासी जनों पर यथेच्छ अर्थदण्ड (जुरमाना) भी करते हैं। विवाहादिके समय उन लोगोंको यथेष्ट धनादिक देना भी पड़ता है। ये सब अत्याचार कठोरता सहन कर भी तिब्बतवासी प्रत्येक गृहस्थ अपने अपने प्रथम या द्वितीय पुत्रको लामापद पर नियोग करनेके लिये मठमें भेज देते हैं। उन लोगोंकी अन्यान्य सन्तान-सन्ततिका विवाह होता है तथा वे गृहस्थके भरण-पोषणार्थ नाना कार्योंमें व्याप्त रहते हैं। जिनका प्रथम पुत्रके अलावा दूसरा पुत्र भी लामा होना चाहता है वे दो या दोसे अधिक पुत्र

के लिये १ शिष्य या शिक्षानवीश और २ दीक्षित शिष्य रहते हैं। ये लोग पुरोहितका पद पाते हैं तथा ३ महामान्य आचार्य या धर्मगुरु पदाधिकारी होनेकी व्यवस्था है। भारतीय बौद्धसमाजमें श्रमण या भिक्षु और स्थविर या उपाध्याय आदि पद देखे जाते हैं। तिब्बती लामा-सम्प्रदायमें भी उसी प्रकार सामान्य बालकसे महामान्य आचार्य पद पानेके भी चार क्रम हैं। उन सबोंका शिक्षा-नवीशकाल दो भागोंमें विभक्त है।

१ला 'गे-ञेन्' या उपासक। धर्मजीवन बितानेके अभिप्रायसे जो मठमें प्रवेश कर शिक्षाकार्यमें भर्ती होते हैं, वह उपासक दो प्रकारका है, पञ्चमहापातकका परित्याग कर धर्ममतानुवर्त्तनकारी व्यक्तिमात्र तथा संन्यासाश्रमावलम्बी शिष्य। शेषोक्त श्रेणीमें जो १० उपदेशका परिपालन तथा साम्प्रदायिक परिच्छदादिको पहन कर इस धर्मपथका पथिक होनेको तय्यार हैं वे 'रप्-ब्युङ्' कहलाते हैं। मङ्गोल लोग उन्हें स्कायि, बन्दि, बन्द या बन्दे और कालमाकगण मांभी कहते हैं।

२रा गे तसुल या शिक्षाजीवनका प्राथमिक पर्याय। इस समय उन्हें ३६ धर्मनियमोंका पालन करना होता है। मठके दूसरे दूसरे लोगोंके निकट ये बहुत कुछ उप-धर्माध्यक्ष समझे जाते हैं। किन्तु बौद्धयतिकी तरह उनका सम्मान नहीं होता।

३रा गे-लोङ्—धर्माचार्य और भिक्षु। २४ वर्षकी उमर नहीं होनी, तब तक कोई भी यह मर्यादा पानेका अधिकारी नहीं। इस समय ये लोग प्रकृत दीक्षितयति समझे जाते हैं। ऐसी अवस्थामें उन्हें २५३ नियमोंका पालन करना होता है।

४था खान-पो—मठाध्यक्ष या उपाध्याय। यही लामा-संन्यासव्रतकी चरमसीमा है। क्योंकि, 'खान-पो' ही शिक्षित, दीक्षित और यतियोंके प्रकृत गुरु हैं। इस समय उन्हें उपरोक्त साम्प्रदायिक तीनों विभागके शिक्षकता-कार्यमें भर्ती रहना होता है। केवल जो दैवशक्ति द्वारा अनुप्राणित या बोधिसत्त्वावतार, 'हुतुक्तु' हैं तथा आचार्य देव कह कर राजशक्तिसे भूषित हैं, वे ही लाम खान् पो के ऊपर रहते हैं। यथार्थमें ये लोग भी पूर्व-कथित उपाध्याय या गुरुके सिवा और कुछ नहीं हैं। बहुत पहले होसे ये राजशक्तिसम्पन्न देवरूपी धर्मयाजकगण लामा या आचार्यकी तरह सम्मानित होते आ रहे हैं। अन्यान्य मठाधिकारीसे इनका पार्थक्यनिर्देश करनेके लिये वे श्रेष्ठ लामा (Grand Lama) नामसे भी पुकारे जाते हैं। केवल बड़े बड़े मठमें ही एक एक खान्-पो रहते हैं। निकटस्थ छोटे छोटे लामास्थान और मन्दिरादिके परिदर्शकके रूपमें वे वहांके सभी कार्यादिकी देखरेख करते हैं। उनका यह पद बहुत कुछ काथलिक बिशपों-सा है।

लामाकी दीक्षा-प्रणाली।

देपुङ्, सेरा, गाःल्दन् और तषिल्हुन्पो आदि भोट-राजस्थ सुप्रसिद्ध संन्यासाश्रममें जिस प्रणाली (गो-लुग्-प)से लामा-शिष्य बनाया जाता है नीचे उसका संक्षिप्त विवरण दिया जाता है। तिब्बतके अन्यान्य मठोंमें अधिकारीगणोंकी आचरित प्रथाका अनुसरण कर कार्य करते हैं।

जिस बालकको (बत्सन्-छओड़) पिता माताने लामा बनाना स्थिर कर लिया है वह अपने घरमें आठ (छःसे बारह वर्ष तक भी) वर्ष तक रहेगा। लेकिन उस समय वह मठमें आ कर विद्याभ्यास कर सकता है। मठ जाते समय उसके शिर पर लाल या हल्दी रंगकी टोपी पहनाई जाती है। वहां पाठाभ्यासके समय शिक्षा-भिलाषी छात्रवृन्द शिक्षानुरूपसे उत्तरोत्तर उच्च श्रेणीमें पहुंच जाते हैं। ये ड्राबा, गो-त्स उल् और गे-लोङ् अर्थात् यथाक्रमसे शिक्षानवीश शिष्य, दीक्षित शिष्य तथा यति होते हैं और ये बौद्धयतिपदके अधिकारी हो कर शिक्षाविभागीय किसी एक विशेष विभागकी उन्नति करनेके लिये कोशिश कर सकते हैं।

बहुतेरे बालक ही प्रधान मठमें या संघाराममें लामा पद और उसके समान शिक्षा पानेके लिये प्रवेश करनेसे पहले गांवके छोटे मठमें प्राथमिक पाठ शिक्षा समाप्त करते हैं तथा दीक्षा पानेके समय मठमें इकट्ठे होते हैं। सिक्किमके पेमियोङ्छि मठमें तथा भिन्दोलिङ्के निङ्मा-संघाराममें जिस प्रथासे बालकोंको शिक्षा दी जाती है, वह नीचे लिखी गई है।

जब कोई बालक ही मठमें शिक्षा पानेके लिये आता है, तो पहले इसे उसके पिताका नाम, कुलमर्यादा और पदमर्यादा आदि बातें पूछी जाती हैं। यदि पिता धनवान् हो तो वे लड़केको मठमें रख सकते हैं। बालकका परि-

उसी उपाधिसे परिचित हैं। अतएव इससे स्पष्ट अनुमान होता है, कि गेडुन ग्रुप ही सबसे पहले दलई लामारूपमें जनसाधारणके निकट गृहीत हुए थे। गाल्दन् सङ्घाराम-के मठाध्यक्ष सुसोनग्रापाके वंशधर धर्म-ऋचेन्को उक्त मर्यादा न मिली। १४४५ ई०में ये तषिलहुन-पोछेका सुवृहत् संघाराम स्थापन कर गये हैं। उक्त मठके उपाध्यायने ही शायद पन्चेन् ऋन् पोछे नाम धारण कर दलई लामाकी तरह अपनी ऐसी शक्ति फैलानेकी कोशिश की। अपनी दैवशक्ति जनताको बता कर ये सफलीभूत हुए सही, पर दलई लामाकी तरह धर्मराज्यमें उनका प्रभाव न फैला और न अपने अधिकृत भूभागमें उनका वचन या उपदेश देववाक्यवत् उस तरह सम्मानित और प्रतिपालित ही हुआ। केवल तिब्बतमें दलई लामाकी तरह ये अपनी राजशक्ति फैलानेमें समर्थ हुए थे।

५म ग्येलव-ऋन्-पोछे लोवजङ्ग गैमरसो उपाधिलाभी थे। उन्होंने भोटराजके साथ विरोधकालमें कुकुनोर नामक हृदतीरवर्त्ती कोपोत्-मोङ्गलियोंके पास इस आशय पर एक दूत भेजा था, कि भोटराजधानी दिगार्चो पर चढ़ाई करनेके लिये ये लोग उन्हें मदद पहुंचायेंगे। दिगार्चोके भोटराजके साथ उनका जो युद्ध हुआ उसमें मोङ्गलियोंने तिब्बत अधिकार कर लोवजङ्गको दे दिया। १६४० ई०में यह घटना घटी। अतएव उसी समयसे सारे तिब्बतराज्यमें दलई लामाका अधिकार (temporal government) विस्तृत हुआ।

पहले लिखा जा चुका है, कि लामागण बोधिसत्त्वके अंशसम्भूत थे। तिब्बतियोंका विश्वास है, कि उनमेंसे कोई कोई नरदेहमें पृथ्वी पर अवतीर्ण होते और कोई स्वर्गीय ज्योति पा कर अंशावतारूपमें पूजित होते हैं। बौद्धधर्मशास्त्र-प्रसिद्ध बोधिसत्त्वोंने जिस प्रकार संसार-धर्मका परित्याग कर प्रव्रज्याव्रत अवलम्बन किया था, ये लामागण भी उसी प्रकार प्राचीनतम बौद्धयतियों (भिक्षु)के सङ्घ, श्रमण और अर्हत्-धर्मका पालन करते हैं। मठविहारिणी बौद्धभिक्षुणीगण लामाओंके साथ समधर्मानुशीलनमें रत रहने पर भी जनसाधारणकी निगाहमें उस प्रकार सम्मानके साथ नहीं देखी जाती। ये सब साधारण उपासक समझी जाती हैं।

संसारधर्मनिरत गृहिव्यक्तिका यदि पवित्र बौद्धधर्ममें विश्वास रहे, तो वे धार्मिक गृहस्थ कहे जाते हैं। धर्मोपदेश सुननेका उन्हें अधिकार है। पञ्चोपदेशका पालन कर संसार-कार्य निर्वाह करनेसे वे उपासक या उपासिका, ब्रह्मचर्यका अवलम्बन नहीं करनेसे पवित्रकर्मा और चार उपदेश पालन करनेसे गेन्-पो या गेन्-मा कहलाते हैं।

धर्मप्राण तिब्बतीय समाजमें लामागण पार्थिव और आध्यात्मिक शक्तिके आधारभूत हैं तथा सर्वसम्पद्का भोगाधिकारी जान कर जनसाधारण उस आचार्यपदके प्रार्थी होते हैं। इस कारण उस देशके अधिकांश मनुष्य बचपनमें संसारधर्मको जलाञ्जलि दे लामाका शिष्यत्व-ग्रहण करते हैं। फिर राजशक्ति और धर्मशक्तिके बलसे अनुप्राणित हो ये आचार्यगण लामापदप्रार्थी बालकों पर यथेच्छ सर्वदण्ड (यत्सुन ग्रल) भी करते हैं। शिक्षानविशीके समय उन लोगोंको यथेष्ट कायिक क्लेश भी भुगतना पड़ता है। ये सब अमानुषिक कठोरता रहते हुए भी तिब्बतवासी प्रत्येक गृहस्थ अपने अपने प्रथम या प्रियतम पुत्रको लामापद पर नियोग करनेके लिये मठमें भेज देते हैं। उन लोगोंकी अन्यान्य सन्तान-सन्ततिका विवाह होता है तथा वे गृहस्थके भरण-पोषणार्थ नाना कार्योंमें व्यापृत रहती हैं। जिसका प्रथम पुत्रके अलावा दूसरा पुत्र भी लामा होना चाहता है वे दो या दोसे अधिक पुत्र भेज सकते हैं। इस कारण बौद्धप्रधान भोटराज्यमें प्रति छः या आठ आदमीके भीतर एक लामा हो गया है। सिक्किममें इस प्रकार १ : १०, लदाकमें १ : १२, भूटानमें १ : १०, स्पितीमें १ : ७, सिंहलमें १ : ३०, बर्मामें १ : ३०, तथा उत्तर एशियाकी काल्मक जातिमें १५० से २०० तम्बूमें सिर्फ १ लामा विद्यमान देखे जाते हैं।

स्लागिनट्वइट्, डा० कनिंहम, डा० काम्बेल, मूरकुफट्, स्मिइट बुक आदिका तिब्बत और लदाक-विवरण पढ़नेसे मालूम होता है, कि तिब्बतकी राजधानी लासा नगरीके बारह मठोंमें तथा उसके आस पासके भूभागमें प्रायः १८५०० लामा हैं। पश्चिम-तिब्बत या लदाक विभागकी वर्तमान जनसंख्यामें प्रायः छठांश लामा हैं।

साधारण संन्यासाश्रममें पारमार्थिक उत्कर्ष साधन-

के लिये १ शिष्य या शिक्षानवीश और २ दीक्षित शिष्य रहते हैं। ये लोग पुरोहितका पद पाते हैं तथा ३ महामान्य आचार्य या धर्मगुरु पदाधिकारी होनेकी व्यवस्था है। भारतीय बौद्धसमाजमें श्रमण या भिक्षु और स्थविर या उपाध्याय आदि पद देखे जाते हैं। तिब्बती लामा-सम्प्रदायमें भी उसी प्रकार सामान्य बालकसे महामान्य आचार्य पद पानेके भी चार क्रम हैं। उन सबोंका शिक्षानवीशकाल दो भागोंमें विभक्त है।

१ला 'गे-ञेन्' या उपासक। धर्मजीवन बितानेके अभिप्रायसे जो मठमें प्रवेश कर शिक्षाकार्यमें व्रती होते हैं, वह उपासक दो प्रकारका है, पञ्चमहापातकका परित्याग कर धर्ममतानुवर्त्तनकारी व्यक्तिमात्र तथा संन्यासाश्रमावलम्बी शिष्य। शेषोक्त श्रेणीमें जो १० उपदेशका परिपालन तथा साम्प्रदायिक परिच्छदादिको पहन कर इस धर्मपथका पथिक होनेको तय्यार है ये 'रब्-ब्युङ्' कहलाते हैं। मङ्गोल लोग उन्हें स्काथि, बन्दि, बन्द या बन्ते और कालमाकगण मांभी कहते हैं।

२रा गे-तसुल या शिक्षाजीवनका प्राथमिक पर्याय। इस समय उन्हें ३६ धर्मनियमोंका पालन करना होता है। मठके दूसरे दूसरे लोगोंके निकट ये बहुत कुछ उपधर्माध्यक्ष समझे जाते हैं। किन्तु बौद्धयतिकी तरह उनका सम्मान नहीं होता।

३रा गे-लोङ्—धर्माचार्य और भिक्षु। २४ वर्षकी उमर नहीं होनी, तब तक कोई भी यह मर्यादा पानेका अधिकारी नहीं। इस समय ये लोग प्रकृत दीक्षितयति समझे जाते हैं। ऐसी अवस्थामें उन्हें २५२ नियमोंका पालन करना होता है।

४था खान-पो—मठाध्यक्ष या उपाध्याय। यही लामा-संन्यासव्रतकी चरमसीमा है। क्योंकि, 'खान-पो' ही शिक्षित, दीक्षित और यतियोंके प्रकृत गुरु हैं। इस समय उन्हें उपरोक्त साम्प्रदायिक तीनों विभागके शिक्षकता-कार्यमें व्रती रहना होता है। केवल जो दैवीशक्ति द्वारा अनुप्राणित या बोधिसत्त्वावतार, 'हुतुक्तु' हैं तथा आचार्य देव कह कर राजशक्तिसे भूषित हैं, वे ही लाम खान्-पो के ऊपर रहते हैं। यथार्थमें ये लोग भी पूर्व-कथित उपाध्याय या गुरुके सिवा और कुछ नहीं हैं। बहुत पहले होसे ये राजशक्तिसम्पन्न देवरूपी धर्मयाजकगण लामा या आचार्यकी तरह सम्मानित होते आ रहे हैं। अन्यान्य मठाधिकारीसे इनका पार्थक्यनिर्देश करनेके लिये ये श्रेष्ठ लामा (Grand Lama) नामसे भी पुकारे जाते हैं। केवल बड़े बड़े मठमें ही एक एक खान्-पो रहते हैं। निकटस्थ छोटे छोटे लामास्थान और मन्दिरादिके परिदर्शकके रूपमें ये वहांके सभी कार्यादिका देखरेख करते हैं। उनका यह पद बहुत कुछ काथलिक विशपों-सा है।

लामाकी दीक्षा-प्रणाली।

देपुङ्, सेरा, गाःल्दन् और तषिल्हुन्पो आदि भोटराजस्थ सुप्रसिद्ध संन्यासाश्रममें जिस प्रणाली (गो-लुग्-प)से लामा-शिष्य बनाया जाता है नीचे उसका संक्षिप्त विवरण दिया जाता है। तिब्बतके अन्यान्य मठोंमें अधिकारीगणोंको आचरित प्रथाका अनुसरण कर कार्य करते हैं।

जिस बालकको (बरसन्-छभोड़) पिता माताने लामा बनाना स्थिर कर लिया है वह अपने घरमें आठ (छःसे बारह वर्ष तक भी) वर्ष तक रहेगा। लेकिन उस समय वह मठमें आ कर विद्याभ्यास कर सकता है। मठ जाते समय उसके शिर पर लाल या दूसरी रंगकी टोपी पहनाई जाती है। यहां पाठाभ्यासके समय शिक्षाभिलाषी छात्रवृन्द शिक्षानुरूपसे उत्तरोत्तर उच्च श्रेणीमें पहुंच जाते हैं। ये ड्रापा, गो-त्स उल् और गे-लोङ् अर्थात् यथाक्रमसे शिक्षाभिलाषी शिष्य, दीक्षित शिष्य तथा यति होते हैं और ये बौद्धयतिपदके अधिकारी हो कर शिक्षाविभागीय किसी एक विशेष विधानकी उन्नति करनेके लिये कोशिश कर सकते हैं।

बहुतेरे बालक दो प्रधान मठमें या संघाराममें लामा पद और उसके समान शिक्षा पानेके लिये प्रवेश करनेसे पहले गांवके छोटे मठमें प्राथमिक पाठ शिक्षा समाप्त करते हैं तथा दीक्षा पानेके समय मठमें भरती होते हैं। सिकिमके पेमियोङ्छि मठमें तथा सिन्दोलिङ्के सिङ्मा-संघाराममें जिस प्रथासे बालकोंको शिक्षा दी जाती है, वह नीचे लिखी गई है।

जब कोई बालक को मठमें शिक्षा पानेके लिये आता है, तो पहले उसे उसके पिताका नाम, कुलमर्यादा और पदमर्यादा आदि बातें पूछी जाती हैं। यदि पिता धनवान् हो तो वे लड़केको मठमें रख सकते हैं। बालकका परि-

अनुपस्थित होने पर भी यह शिक्षाकाल अतिक्रम कर नहीं सकता। इस समयसे उसे कठिन परिश्रमके साथ धर्मशास्त्रादि अध्ययन करना होता है। शास्त्र देखनेके सिवा यह शिष्य हर तरहकी शिल्प या चित्र-विद्या सीख सकता है। पाठ याद नहीं करनेसे वह बेंतकी मार खाता है। उस समय जो आचार्य गेत्सुलको बौद्धधर्मका गूढ़ रहस्य बता देते हैं, वे 'र्स वै लामा' नामसे इस बालक द्वारा चिरदिन पूजित होते हैं। इस समय अकसर उसकी परीक्षा की जाती है।

एक संघारामके अंदर प्रत्येक मठमें ही एक एक धर्माचार्य रहते हैं। वे श्रेष्ठ लामा कहलाते हैं। सूत्र, विनय और अभिधर्म नामक धर्मशास्त्रके किसी एक विषयमें पारदर्शी न हो सकनेसे कोई भी लामा पद नहीं पाता। लामाओंमेंसे जो जितना धर्मशास्त्र पढ़ते हैं, वे उतने ही पूज्य समझे जाते हैं। इस कारण गेत्सुलगण भी अपने अपने उपाध्यायकी अध्यापनासे एक एक विषयमें पारदर्शी होते हैं। प्रतिदिन पढ़नेके समय घंटा बजता है। इसी घंटेको सुन वे पाठगृहमें जा कर पाठाभ्यास करते हैं और अपने आचार्योंसे नया पाठ लेते हैं। इस प्रकार आवश्यकीय पाठ समाप्त होने पर उनका इम्तहान लिया जाता है। पहले एक वर्षके बाद और पीछे एक या दो वर्षके बाद इम्तहान होता है। दोनों परीक्षामें जब तक पास नहीं होते, तब तक उन्हें चाय बनानी और संघके बूढ़े व्यक्तियोंकी आज्ञा माननी पड़ती है।

परीक्षाके समय प्रत्येक संघारामके सर्वश्रेष्ठ आचार्य और यतिगण एक घरमें जमा होते हैं। वे सभी चुपचाप बैठते हैं, तथा उनके बीच गेत्सुल खड़ा हो कर अपना पाठ सुनाता है। अगर पढ़ते समय वह कहीं भूल जाता है, तो एक दूसरा बालक समीपमें खड़ा हो कर बतला देता है। पहली परीक्षामें सभी पढ़ी हुई पुस्तकें [illegible] करीब तीस दिन [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] है।

[illegible] [illegible] वर्ष तक [illegible] [illegible] बाहर किया जाता है। जो [illegible] वर्ष लगातार पास नहीं होता, वह मठसे बाहर कर दिया जाता है। सिर्फ धनवान्‌का लड़का ही बहुत रुपये खर्च करने पर मठमें रह कर विद्याभ्यास कर सकता है। निर्धनका लड़का अगर वह फिर पढ़ना चाहे, तो वह साधुवेश गृही हो कर दिन बिताता है, लेकिन उसे संघारामके किसी किसी मठकी दास्यवृत्ति करनी पड़ती है। अगर वह पीछे पारदर्शी हो, तो वह किसी गाँवके मठका लामाचार्य बना दिया जाता है। किन्तु उस समय वह लामाकी तरह प्रतिष्ठित होने पर भी उस पदका यथार्थ अधिकारी नहीं होता।

उपरोक्त परीक्षासे छात्रसंघका परस्पर विचार बड़ा ही अच्छा है। उससे छात्रको कैसी शिक्षा दी गई है, यह अच्छी तरह जाना जाता है। तिब्बतके सुप्रसिद्ध दे-पुङ्, तषिल्हुनपो, सेर और गाल्दन् संघाराममें समय समय पर ऐसी विचारसभा बुलाई जाती है। यहां करीब चारसे ले कर आठ हजार तक बौद्धयति इकट्ठे हैं। इसको तिब्बती भाषामें 'मुल्यान्-जिङ्' कहते हैं। इस सभामें यह भी विचार होता है, कि शिष्योंने धर्मशास्त्र और धर्मतत्त्वका सारमर्म समझा है या नहीं। जहां यह सभा बैठती है वह स्थान शालपेड़की डाली और पत्थरसे घिरा रहता है। बौद्धयतिके अलावा और कोई भी उस सभामें प्रवेश नहीं कर सकता। उस सभाके बीच सबसे ऊंचे पत्थरके आसन पर ख्यवस्-मगोन्, उसके नीचे छोटे आसन पर मखान-पो और उससे नीचे गर्येपे बैठते हैं। उसके चारों ओर दर्शकोंके बैठनेका स्थान सात भागोंमें बंटा रहता है। प्रश्न करनेवाले हल्दी रंगका साफा बांध कर दर्शकमण्डलीके समक्ष हाथ जोड़ अपना प्रश्न उठाते हैं। एकत्रित छात्रमण्डलीमेंसे जो उस प्रश्नका उचित उत्तर दे सकता है, वही छात्र लामाके आदेशसे उच्चश्रेणीमें चढ़ता है।

वर्ष भरमें सिर्फ चार बार ग्रीष्म, शरद्, शीत और वसन्तकालमें यह विचार-सभा बैठती है। इस प्रकार [illegible] वर्ष तक पढ़ कर सुपण्डित हो सकने पर 'बोसरे' [illegible] वर्षके बाद गेत्सुल अपने अध्यवसायके बल गेलोङ्-[illegible] जाता है। गेत्सुल होनेके समय जिस प्रथाका अनुसरण कर [illegible] और [illegible] आचार्यका अभिमत

ग्रहण करना पड़ा था, इस समय भी उसे उसी प्रकार मठकी तालिकामें नाम लिखवा कर प्रकृत यति होना होता है। जो यति अपने अध्यवसायके बल पर खुली विचारसभामें अथवा मठकी प्रधान परीक्षामें उत्तीर्ण होते हैं, वे ही बौद्धधर्मतत्त्वकी श्रेष्ठ उपाधि पाते हैं। उपाधिपानेके बाद वे सब प्रकार आचार-मर्यादा पानेके अधिकारी होते हैं।

गे पे तथा रब्-जम पा बौद्धधर्मकी श्रेष्ठ उपाधि है। गे लोङ् शिक्षा बलसे 'गे-पे' हो कर किसी एक वैज्ञानिक तत्त्वालोचनमें नियुक्त रह सकते हैं; लेकिन जब तक वे इस पद पर न चढ़ेंगे तब तक उन्हें धर्मशास्त्र हीकी आलोचना करनी होगी। गे पे उपाधि-प्राप्त बहुतेरे बौद्धयति तिब्बत, माङ्गोलिया-आमदो और चीन राज्यकी गवर्मेण्टकी देखरेखमें परिचालित संघारामके प्रधान लामा या स्थवस् मगोन पद पर अभिषिक्त हैं। जो मठके आचार्यका पद ग्रहण नहीं करते, वे मठमें रह कर तन्त्र शास्त्र पढ़ते हैं। पीछे तन्त्रशास्त्रकी वक्ष्यमाण परीक्षामें उत्तीर्ण हो कर सर्वपूज्य गाःलदन् संघारामका 'खूप' पद पाते हैं।

घर जम्-प परीक्षामें उत्तीर्ण छात्रगण जनसाधारणके बीच ही गिने जाते हैं। वे खुली जगह सबोंको बौद्धधर्मका उपदेश दिया करते हैं। तिब्बतके बारह प्रसिद्ध संघारामोंको छोड़ अन्य किसी मठाध्यक्षको यह उपाधि देनेका अधिकार नहीं है। देवांशसम्भूत लामाओंके लिये निर्दिष्ट पद और कार्यावलीमें उनका अधिकार है। राजशक्तिधारी दलई-लामा ऐसे छात्रोंको 'छओजे' और 'पण्डित'की उपाधि देते हैं। इन दोनोंकी मध्यवर्त्ती उपाधिका नाम लो-स्स-ब है। 'रब्-जम् प' और 'छओजे' उपाधि करीब करीब समान है। वे तै-जो कह कर सम्मानित होते हैं। इसलिये देवांशसम्भूत लामाओंके नीचे यथाक्रमसे खान-पो, छओजे तथा रब-जम प पदाधिकारीगण मर्य्यादासम्पन्न हैं। छओजे और रब्-जम्-प श्रेणोसे खान् पो चुना जाता है। किसी किसी मठमें खान् पोके सहकारी रूपमें छओजे नियुक्त देखे जाते हैं। छोटे छोटे मठमें प्रधान लामाका कार्य छओजे या रब्-जम्-पओंके हाथ सौंपा हुआ है।

रमो-छे और मो-रु नामक मठमें भोजविद्या और भौतिकविद्या शिक्षाके लिये स्वतन्त्र शाखा प्रतिष्ठित है। जो इस विद्यालयमें रह कर इस विज्ञानके गूढ़ रहस्यका मर्म जानते और परीक्षामें उत्तीर्ण होते हैं, वे ङग् रम्-प कहलाते हैं। वे आयुर्व्वेद, रसायन, भूततत्त्व आदिकी आलोचना करते हैं। शैवसम्प्रदायकी तरह वे वेशभूषा धारण करते हैं। सम्भवतः तान्त्रिक कापालिक-मत अनुसरण कर ही इस सम्प्रदायकी उत्पत्ति हुई होगी। इस श्रेणीके अज्ञ व्यक्ति 'ङग-प' या भविष्यद्वक्ता कहलाते हैं और झाड़ना फूकना और भूत उतारना या भगाना आदि कार्य्य दिखाते हैं।

मठकी शासनव्यवस्था।

बड़े बड़े संघाराममें हजारों बौद्धयति वास करते हैं। एक नियमका पालन न कर सकनेके कारण लामाओंने वहांकी कार्यावली निर्व्विरोध चलानेके लिये एक शासनतन्त्र बनाया है। वहां एक तरह राजतन्त्र ही विद्यमान देखा जाता है। इस पद्धतिका परिचालन करनेके लिये परिदर्शकरूपमें कुछ कर्मचारी नियुक्त हैं। वे वहांका हिसाब किताब करते और आवश्यकता पड़ने पर दुर्दान्त छात्रसंघको भी अपराधके अनुसार दण्ड देते हैं।

कु-शो, हुन-कु आदि उपाधिधारी देवानुगृहीत लामा लोग ही इन सब संघारामोंके एकमात्र कर्त्ता हैं। मङ्गोलीय बौद्ध-सम्प्रदायमें वे खुबिलियन नामसे परिचित हैं। किसी किसी संघाराममें खान-पो या उपाध्याय ही अध्यक्ष हैं। वे खान्-पो दलई लामाकी अनुमतिके अनुसार या प्रादेशिक लामा प्रधानोंके आदेशानुसार ही नियुक्त होते हैं। वे एकक्रमसे सिर्फ सात वर्ष तक एक मठका अध्यक्ष रह सकते हैं। उनके अधान निम्नोक्त कर्मचारी मठकी सुश्रृङ्खला और सुशासनकी रक्षा करते हैं। वे सभी मठवासी यतियोंकी सलाहसे निर्वाचित होते तथा सभी निर्दिष्ट समय तक नियोजित पदकी मर्यादा रक्षा करनेको बाध्य हैं।

१ लोब-पोन् या अध्यापक—ये संघारामके धर्म और विद्या-शिक्षाके परिदर्शक हैं।

२ छग्-दसो—कोषाध्यक्ष और खजांची।

प्रायः छब्बीस होने पर भी वह शिक्षाकाल अतिक्रम कर नहीं सकता। इस समयसे उसे कठिन परिश्रमके साथ धर्मशास्त्रादि अध्ययन करना होता है। शास्त्र देखनेके सिवा वह शिष्य हर तरहकी शिल्प या चित्र-विद्या सीख सकता है। पाठ याद नहीं करनेसे वह बेंतकी मार खाता है। उस समय जो आचार्य गेत्पुलको बौद्धधर्मका गूढ़ रहस्य बता देते हैं, वे 'र्त्से वे लामा' नामसे इस बालक द्वारा चिरदिन पूजित होते हैं। इस समय अकसर उसकी परीक्षा की जाती है।

एक संघारामके अंदर प्रत्येक मठमें ही एक एक धर्माचार्य रहते हैं। वे श्रेष्ठ लामा कहलाते हैं। सूत्र, विनय और अभिधर्म नामक धर्मशास्त्रके किसी एक विषयमें पारदर्शी न हो सकनेसे कोई भी लामा पद नहीं पाता। लामाओंमेंसे जो जितना धर्मशास्त्र पढ़ते हैं, वे उतने ही पूज्य समझे जाते हैं। इस कारण गेत्पुलगण भी अपने अपने उपाध्यायकी अध्यापनासे एक एक विषयमें पारदर्शी होते हैं। प्रतिदिन पढ़नेके समय घंटा बजता है। इसी घंटेको सुन वे पाठगृहमें जा कर पाठाभ्यास करते हैं और अपने आचार्योंसे नया पाठ लेते हैं। इस प्रकार आवश्यकीय पाठ समाप्त होने पर उनका इम्तहान लिया जाता है। पहले एक वर्षके बाद और पीछे एक या दो वर्षके बाद इम्तहान होता है। दोनों परीक्षामें जब तक पास नहीं होते, तब तक उन्हें चाय बनानी और संघके बूढ़े यतिओंकी आज्ञा माननी पड़ती है।

परीक्षाके समय प्रत्येक संघारामके सर्वश्रेष्ठ आचार्य और यतिगण एक घरमें जमा होते हैं। वे सभी चुपचाप बैठते हैं तथा उनके बीच गेत्पुल खड़ा हो कर अपना पाठ सुनाता है। अगर पढ़ते समय वह कहीं भूल जाता है, तो एक दूसरा बालक समीपमें खड़ा हो कर बतला देता है। पहली परीक्षामें सभी पढ़नेकी पुस्तकें इस भांति सुनानेमें करीब तीन दिन लगते हैं और छः दिन वह बालक भी इधे विश्राम करने पाता है। इस मौके पर वह पुनः आगेका किताब देख सकता है।

जो बालक इस परीक्षामें उत्तीर्ण नहीं हो सकता, उसको बड़ी लाञ्छनाके साथ घरसे बाहर ला कर 'छ्योस थमस्पा' उत्तम-मध्यम प्रहार किया जाता है। जो तीन वर्ष लगातार पास नहीं होता, वह मठसे बाहर कर दिया जाता है। सिर्फ धनवान्‌का लड़का ही बहुत रुपये खर्च करने पर मठमें रह कर विद्याभ्यास कर सकता है। निर्धनका लड़का अगर वह फिर पढ़ना चाहे, तो वह साधुचेता गृही हो कर दिन बिताता है, लेकिन उसे संघारामके किसी किसी मठको दासवृत्ति करनी पड़ती है। अगर वह पीछे पारदर्शी हो, तो वह किसी गाँवके मठका लामाचार्य बना दिया जाता है। किन्तु उस समय वह लामाकी तरह प्रतिष्ठित होने पर भी उस पदका यथार्थ अधिकारी नहीं होता।

उपरोक्त परीक्षासे छात्रसंघका परस्पर विचार बड़ा ही अच्छा है। उससे छात्रको कैसी शिक्षा दी गई है, यह अच्छी तरह जाना जाता है। तिब्बतके सुप्रसिद्ध दे-पुङ्, तषिल्हुनपो, सेर और गाल्दन् संघाराममें समय समय पर ऐसी विचारसभा बुलाई जाती है। यहां करीब चारसे ले कर आठ हजार तक बौद्धयति इकट्ठे हैं। इसको तिब्बती भाषामें 'म्छ्यान्-शिद्' कहते हैं। इस सभामें यह भी विचार होता है, कि शिष्योंने धर्मशास्त्र और धर्मतत्त्वका सारमर्म समझा है या नहीं। जहां यह सभा बैठती है वह स्थान शालपेड़की डाली और पत्थरसे घिरा रहता है। बौद्धयतिके अलावा और कोई भी उस सभामें प्रवेश नहीं कर सकता। उस सभाके बीच सबसे ऊंचे पत्थरके आसन पर स्यपवस्-मगोन्, उसके नीचे छोटे आसन पर मखान-पो और उससे नीचे गर्यपे बैठते हैं। उसके चारों ओर दर्शकोंके बैठनेका स्थान सात भागोंमें बंटा रहता है। प्रश्न करनेवाले हल्दी रंगका साफा बांध कर दर्शकमण्डलीके समक्ष हाथ जोड़ अपना प्रश्न उठाते हैं। एकत्रित छात्रमण्डलीमेंसे जो उस प्रश्नका उचित उत्तर दे सकता है, वही छात्र लामाके आदेशसे उच्चश्रेणीमें चढ़ता है।

वर्ष भरमें सिर्फ चार बार ग्रीष्म, शरत्, शीत और वसन्तकालमें यह विचार-सभा बैठती है। इस प्रकार बारह वर्ष तक पढ़ कर सुपण्डित हो सकने पर बीससे चौबीस वर्षके बाद गेत्पुल अपने अध्यवसायके बल गेलोङ्-पद पाता है। गेत्पुल होनेके समय जिस प्रथाका अनुसरण कर उपाध्याय और श्रेष्ठ लामाका अभिमत

ग्रहण करना पड़ा था, इस समय भी उसे उसी प्रकार मठकी तालिकामें नाम लिखवा कर प्रकृत यति होना होता है। जो यति अपने अध्यवसायके बल पर खुली विचारसभामें अथवा मठकी प्रधान परीक्षामें उत्तीर्ण होते हैं, वे ही बौद्धधर्मतत्त्वकी श्रेष्ठ उपाधि पाते हैं। उपाधिपानेके बाद वे सब प्रकार आचार-मर्यादा पानेके अधिकारी होते हैं।

गे पे तथा रब्-जम पा बौद्धधर्मकी श्रेष्ठ उपाधि है। गे लोङ् शिक्षा बलसे 'पे-पे' हो कर किसी एक वैज्ञानिक तत्त्वालोचनामें नियुक्त रह सकते हैं; लेकिन जब तक वे इस पद पर न चढ़ेंगे तब तक उन्हें धर्मशास्त्र हीकी आलोचना करनी होगी। गे पे उपाधि-प्राप्त बहुत से बौद्धयति तिब्बत, माङ्गोलिया-आमदो और चीन राज्यकी गवर्मेण्टकी देखरेखमें परिचालित संघारामके प्रधान लामा या खम्बस् मगोन पद पर अभिषिक्त हैं। जो मठके आचार्योंका पद ग्रहण नहीं करते, वे मठमें रह कर तन्त्र शास्त्र पढ़ते हैं। पीछे तन्त्रशास्त्रकी वक्ष्यमाण परीक्षामें उत्तीर्ण हो कर सर्वपूज्य गाःलद्न् संघारामका 'खूप' पद पाते हैं।

पर जम्-प परीक्षामें उत्तीर्ण छात्रगण जनसाधारणके बीच ही गिने जाते हैं। वे खुली जगह सबोंको बौद्धधर्मका उपदेश दिया करते हैं। तिब्बतके बारह प्रसिद्ध संघारामोंको छोड़ अन्य किसी मठाध्यक्षको यह उपाधि देनेका अधिकार नहीं है। देवांशसम्भूत लामाओंके लिये निर्दिष्ट पद और कार्यावलीमें उनका अधिकार है। राजशक्तिधारी दलई-लामा ऐसे छात्रोंको 'छमोजे' और 'पण्डित'की उपाधि देते हैं। इन दोनोंकी मध्यवर्ती उपाधिका नाम लो-रस-प है। 'रब्-जम् प' और 'छमोजे' उपाधि करीब करीब समान है। ये तै-जा कह कर सम्मानित होते हैं। इसलिये देवांशसम्भूत लामाओंके नीचे यथाक्रमसे खान-पो, छमोजे तथा रब-जम प पदाधिकारीगण मर्यादासम्पन्न हैं। छमोजे और रब् जम्-प श्रेणीसे खान् पो चुना जाता है। किसी किसी मठमें खान् पोके सहकारी रूपमें छमोजे नियुक्त देखे जाते हैं। छोटे छोटे मठमें प्रधान लामाका कार्य छमोजे या रब्-जम्-पओंके हाथ सौंपा हुआ है।

रमो-छे और मो-द नामक मठमें मोजविद्या और भौतिकविद्या शिक्षाके लिये स्वतन्त्र शाखा प्रतिष्ठित है। जो इस विद्यालयमें रह कर इस विज्ञानके गूढ़ रहस्यका मर्म जानते और परीक्षामें उत्तीर्ण होते हैं, वे ङग् रम्-प कहलाते हैं। वे आयुर्वेद, रसायन, भूततत्त्व आदिकी आलोचना करते हैं। शैवसम्प्रदायकी तरह वे वेशभूषा धारण करते हैं। सम्भवतः तान्त्रिक कापालिक-मत अनुसरण कर ही इस सम्प्रदायकी उत्पत्ति हुई होगी। इस श्रेणीके अज्ञ व्यक्ति 'ङग-प' या भविष्यद्वक्ता कहलाते हैं और झाड़ना फूंकना और भूत उतारना या भगाना आदि कार्य दिखाते हैं।

मठकी शासनव्यवस्था।

बड़े बड़े संघाराममें हजारों बौद्धयति वास करते हैं। एक नियमका पालन न कर सकनेके कारण लामाओंने यहांकी कार्यावली निर्विरोध चलानेके लिये एक शासनतन्त्र बनाया है। यहां एक तरह राजतन्त्र ही विद्यमान देखा जाता है। इस पद्धतिका परिचालन करनेके लिये परिदर्शकरूपमें कुछ कर्मचारी नियुक्त हैं। वे यहांका हिसाब किताब करते और आवश्यकता पड़ने पर दुर्वृत्त छात्रसंघको भी अपराधके अनुसार दण्ड देते हैं।

कु-षो, कुत-कु आदि उपाधिधारी देवानुगृहीत लामा लोग ही इन सब संघारामोंके एकमात्र कर्त्ता हैं। मङ्गोलीय-बौद्ध-सम्प्रदायमें वे खुबिलियन नामसे परिचित हैं। किसी किसी संघाराममें खान-पो या उपाध्याय ही अध्यक्ष हैं। ये खान्-पो दलई लामाकी अनुमतिके अनुसार या प्रादेशिक लामा प्रधानोंके आदेशानुसार ही नियुक्त होते हैं। ये एकक्रमसे सिर्फ सात वर्ष तक एक मठका अध्यक्ष रह सकते हैं। उनके अधान निम्नोक्त कर्मचारी मठकी सुश्रृङ्खला और सुशासनकी रक्षा करते हैं। वे सभी मठवासी यतियोंकी सलाहसे निर्वाचित होते तथा सभी निर्दिष्ट समय तक नियोजित पदकी मर्यादा रक्षा करनेको बाध्य हैं।

१ लोब-पोन् या अध्यापक—ये संघारामके धर्म और विद्या-शिक्षाके परिदर्शक हैं।

२ छग्-दसो—कोषाध्यक्ष और खजांची।

ऋण छमीन होने पर भी वह शिक्षाकाल अतिक्रम कर नहीं सकता। इस समयसे उसे कठिन परिश्रमके साथ धर्मशास्त्रादि अध्ययन करना होता है। शास्त्र देखनेके सिवा वह शिष्य हर तरहकी शिल्प या चित्र-विद्या सीख सकता है। पाठ याद नहीं करनेसे वह बेंतकी मार खाता है। उस समय जो आचार्य गेत्सुलको बौद्धधर्मका गूढ़ रहस्य बता देते हैं, वे 'र्त्स वे लामा' नामसे इस बालक द्वारा चिरदिन पूजित होते हैं। इस समय अकसर उसकी परीक्षा की जाती है।

एक संघाराममें अंदर प्रत्येक मठमें ही एक एक धर्माचार्य रहते हैं। वे श्रेष्ठ लामा कहलाते हैं। सूत्र, विनय और अभिधर्म नामक धर्मशास्त्रके किसी एक विषयमें पारदर्शी न हो सकनेसे कोई भी लामा पद नहीं पाता। लामाओंमेंसे जो जितना धर्मशास्त्र पढ़ते हैं, वे उतने ही पूज्य समझे जाते हैं। इस कारण गेत्सुलगण भी अपने अपने उपाध्यायकी अध्यापनासे एक एक विषयमें पारदर्शी होते हैं। प्रतिदिन पढ़नेके समय घंटा बजता है। इसी घंटेको सुन वे पाठगृहमें जा कर पाठाभ्यास करते हैं और अपने आचार्यसे नया पाठ लेते हैं। इस प्रकार आवश्यकीय पाठ समाप्त होने पर उनका इम्तहान लिया जाता है। पहले एक वर्षके बाद और पीछे एक या दो वर्षके बाद इम्तहान होता है। दोनों परीक्षामें जब तक पास नहीं होते, तब तक उन्हें चाय बनाने और संघके बूढ़े यतिओंकी आज्ञा माननी पड़ती है।

परीक्षाके समय प्रत्येक संघारामके सर्वश्रेष्ठ आचार्य और यतिगण एक घरमें जमा होते हैं। वे सभी चुपचाप बैठते हैं तथा उनके बीच गेत्सुल खड़ा हो कर अपना पाठ सुनाता है। अगर पढ़ते समय वह कहीं भूल जाता है, तो एक दूसरा बालक समीपमें खड़ा हो कर बतला देता है। पहली परीक्षामें सभी पढ़नेकी पुस्तकें इस भांति सुनानेमें करीब तीन दिन लगते हैं और इसी दिन यह बालक भी सुखसे विश्राम करने पाता है। इस मौके पर वह पुनः आगेका किताब देख सकता है।

जो बालक इस परीक्षामें उत्तीर्ण नहीं हो सकता, उसको बड़ी लाञ्छनाके साथ घरसे बाहर ला कर 'छमीस चामस्पा' उत्तम-मध्यम प्रहार किया जाता है। जो तीन वर्ष लगातार पास नहीं होता, वह मठसे बाहर कर दिया जाता है। सिर्फ धनवानका लड़का ही बहुत रुपये खर्च करने पर मठमें रह कर विद्याभ्यास कर सकता है। निर्धनका लड़का अगर यह फिर पढ़ना चाहे, तो वह साधुवेश गृही हो कर दिन बिताता है, लेकिन उसे संघारामके किसी किसी मठकी दासवृत्ति करनी पड़ती है। अगर वह पीछे पारदर्शी हो, तो वह किसी गाँवके मठका लामाचार्य बना दिया जाता है। किन्तु उस समय वह लामाकी तरह प्रतिष्ठित होने पर भी उस पदका यथार्थ अधिकारी नहीं होता।

उपरोक्त परीक्षासे छात्रसंघका परस्पर विचार बड़ा ही अच्छा है। उससे छात्रको कैसी शिक्षा दी गई है, यह अच्छी तरह जाना जाता है। तिब्बतके सुप्रसिद्ध डे-पुङ्, तषिल्हुनपो, सेर और गाल्दन् संघाराममें समय समय पर ऐसी विचारसभा बुलाई जाती है। यहां करीब चारसे ले कर आठ हजार तक बौद्धयति इकट्ठे हैं। इसको तिब्बती भाषामें 'मूल्वान्-श्रिङ्' कहते हैं। इस सभामें यह भी विचार होता है, कि शिष्योंने धर्मशास्त्र और धर्मतत्त्वका सारमर्म समझा है या नहीं। जहां यह सभा बैठती है वह स्थान शालपेड़की डाली और पत्थरसे घिरा रहता है। बौद्धयतिके अलावा और कोई भी उस सभामें प्रवेश नहीं कर सकता। उस सभाके बीच सबसे ऊँचे पत्थरके आसन पर खम्बस्-मगोन्, उसके नीचे छोटे आसन पर मखान-पो और उससे नीचे गयेपे बैठते हैं। उसके चारों ओर दर्शकोंके बैठनेका स्थान सात भागोंमें बंटा रहता है। प्रश्न करनेवाले हल्दी रंगका साफा बांध कर दर्शकमण्डलीके समक्ष हाथ जोड़ अपना प्रश्न उठाते हैं। एकत्रित छात्रमण्डलीमेंसे जो उस प्रश्नका उचित उत्तर दे सकता है, वही छात्र लामाके आदेशसे उच्चश्रेणीमें चढ़ता है।

वर्ष भरमें सिर्फ चार बार ग्रीष्म, शरद्, शीत और वसन्तकालमें यह विचार-सभा बैठती है। इस प्रकार बारह वर्ष तक पढ़ कर सुपण्डित हो सकने पर बीससे चौबीस वर्षके बाद गेत्सुल अपने अध्यवसायके बल गेलोङ्-पद पाता है। गेत्सुल होनेके समय जिस प्रथाका अनुसरण कर उपाध्याय और श्रेष्ठ लामाका अभिमत

ग्रहण करना पड़ता था, इस समय भी उसे उसी प्रकार मठकी तालिकामें नाम लिखवा कर प्रकृत यति होना होता है । जो यति अपने अध्यवसायके बल पर खुली विचारसभामें अथवा मठकी प्रधान परीक्षामें उत्तीर्ण होते हैं, वे ही बौद्धधर्मतत्वकी श्रेष्ठ उपाधि पाते हैं। उपाधिपानेके बाद वे सब प्रकार आचार-मर्यादा पानेके अधिकारी होते हैं।

गे वे तथा रब्-जम पा बौद्धधर्मकी श्रेष्ठ उपाधि है। गे लोङ् शिक्षा बलसे 'चे-पे' हो कर किसी एक वैज्ञानिक तत्त्वालोचनामें नियुक्त रह सकते हैं; लेकिन जब तक वे इस पद पर न चढ़ेंगे तब तक उन्हें धर्मशास्त्र ही की आलोचना करनी होगी। गे वे उपाधि-प्राप्त बहुत से बौद्धयति तिब्बत, माङ्गोलिया-आमदो और चीन राज्यकी गवर्मेण्टकी देखरेखसे परिचालित संघाराम के प्रधान लामा या रुवरबस् मगोन पद पर अभिषिक्त हैं। जो मठके आचार्यका पद ग्रहण नहीं करते, वे मठमें रह कर तन्त्र शास्त्र पढ़ते हैं। पीछे तन्त्रशास्त्रकी वक्ष्यमाण परीक्षामें उत्तीर्ण हो कर सर्वपूज्य गालदन् संघारामका 'खृप' पद पाते हैं।

रब जम्-प परीक्षामें उत्तीर्ण छात्रगण जनसाधारणके बीच ही गिने जाते हैं। वे खुली जगह सबोंको बौद्धधर्मका उपदेश दिया करते हैं। तिब्बतके बारह प्रसिद्ध संघारामोंको छोड़ अन्य किसी मठाध्यक्षसे यह उपाधि देनेका अधिकार नहीं है। देवांशसम्भूत लामाओंके लिये निर्दिष्ट पद और कार्यावलीमें उनका अधिकार है। राजशक्तिधारी दलई-लामा ऐसे छात्रोंको 'छओजे' और 'पण्डित'की उपाधि देते हैं। इन दोनोंकी मध्यवर्त्ती उपाधिका नाम लो-रम-प है। 'रब् जम् प' और 'छओजे' उपाधि करीब करीब समान है। वे लै-जो कह कर सम्मानित होते हैं। इसलिये देवांशसम्भूत लामाओंके नीचे यथाक्रमसे खान-पो, छओजे तथा रब-जम प पदाधिकारीगण मर्य्यादासम्पन्न हैं। छओजे और रब् जम्-प श्रेणीसे खान् पो चुना जाता है। किसी किसी मठमें खान् पोके सहकारी रूपमें छओजे नियुक्त देखे जाते हैं। छोटे छोटे मठमें प्रधान लामाका कार्य छओजे या रब्-जम्-प-ओंके हाथ सौंपा हुआ है।

रमो-छे और मो-रु नामक मठमें भौतविद्या और भौतिकविद्या शिक्षाके लिये स्वतन्त्र शाखा प्रतिष्ठित है। जो इस विद्यालयमें रह कर इस विज्ञानके गूढ़ रहस्यका मर्म जानते और परीक्षामें उत्तीर्ण होते हैं, वे ङग् रम्-प कहलाते हैं। वे आयुर्वेद, रसायन, भूततत्त्व आदिकी आलोचना करते हैं। शैवसम्प्रदायकी तरह वे वेशभूषा धारण करते हैं। सम्भवतः तान्त्रिक कापालिक-मत अनुसरण कर ही इस सम्प्रदायको उत्पत्ति हुई होगी। इस श्रेणीके अज्ञ व्यक्ति 'छग-प' या भविष्यद्वक्ता कहलाते हैं और झाड़ना फूकना और भूत उतारना या भगाना आदि कार्य दिखाते हैं।

मठकी शासनव्यवस्था।

बड़े बड़े संघाराममें हजारों बौद्धयति वास करते हैं। एक नियमका पालन न कर सकनेके कारण लामाओंने वहांकी कार्यावली निर्विरोध चलानेके लिये एक शासनतन्त्र बनाया है। वहां एक तरह राजतन्त्र ही विद्यमान देखा जाता है। इस पद्धतिका परिचालन करनेके लिये परिदर्शकरूपमें कुछ कर्मचारी नियुक्त हैं। वे वहांका हिसाब किताब करते और आवश्यकता पड़ने पर दुर्वृत्त छात्रसंघको भी अपराधके अनुसार दण्ड देते हैं।

कु-पो, हुत-कु आदि उपाधिधारी देवानुगृहीत लामा लोग ही इन सब संघारामोंके एकमात्र कर्त्ता हैं। मङ्गोलीय बौद्ध-सम्प्रदायमें वे खुबिलियन नामसे परिचित हैं। किसी किसी संघाराममें खान-पो या उपाध्याय ही अध्यक्ष हैं। वे खान्-पो दलई लामाकी अनुमतिके अनुसार या प्रादेशिक लामा प्रधानोंके आदेशानुसार ही नियुक्त होते हैं। वे एकक्रमसे सिर्फ सात वर्ष तक एक मठका अध्यक्ष रह सकते हैं। उनके अधीन निम्नोक्त कर्मचारी मठकी सुशृङ्खला और सुशासनकी रक्षा करते हैं। वे सभी मठवासी यतिओंकी सलाहसे निर्वाचित होते तथा सभी निर्दिष्ट समय तक नियोजित पदकी मर्यादा रक्षा करनेको बाध्य हैं।

१ लोब-पोन् या अध्यापक—ये संघारामके धर्म और विद्या-शिक्षाके परिदर्शक हैं।

२ छग्-दसो—कोषाध्यक्ष और खजांची।

३ ञेर-प या ग्सिय-ञेर—भाण्डारी।

४ गे-को तथा -फाल मो—हाकिम और सेनाध्यक्ष। यह दो व्यक्ति होते हैं और पुलिस-कर्मचारीको तरह इधर उधर पहरा देते तथा मठवासियोंके दोष गुणका विचार करते हैं। इनके सहकारी दो हर् ञेर हैं।

५ उम्-जुसे—प्रधान गायक।

६ कु-ञेर—धर्मालयका परिचारक।

७ छ'ओय-ग्रे न्—जल देनेवाला।

८ ज म—चाय बनानेवाला। इसके अलावा प्रत्येक मठमें ही सम्पादक और परिदर्शक, पाचक, पुररक्षी, अतिथि सत्कारक, हिसाब-रक्षक, कर-संग्राहक, चिकित्सक, चित्रकर, वाणिज् यति, भूतके ओझा और माङ्गल्य-दण्डग्राही आदि नियुक्त हैं।

संघारामोंकी कार्यावली नियमपूर्वक परिचालित करनेके लिये अलग अलग विभाग निर्दिष्ट हैं। देपुङ्ग संघाराममें ७७०० यति वास करते हैं। ये ग्लो-ग सालगिलङ्-स्गो-मङ्, प्दे-यङस् और स ङगस् प नामक चार विश्वविद्यालयके अधीन हैं। प्रत्येक विद्यालय एक उपाध्याय द्वारा परिचालित होता है। यतिगण प्रादेशिक और जातीय विभागानुसार विभिन्न मठमें स्थान पाते हैं। उस विभिन्न श्रेणीके मध्य करनेका स्थान खम्‌न्-त्सन् (Provincial messing club) तथा विद्यालय ग्रव-त्सन् (College) कहलाता है। प्रथमोक्त स्थानमें यतिगण आहार, शयन और अध्ययन करते तथा शेषोक्त टोलमें आ कर वे अपने अपने गुरुके पास अपना पाठ सुनाते हैं। इस संघाराम के सबसे बड़े बरामदे (ठ् सोगस्-छेन-लह-खङ्)में जनसाधारणको-आनेका अधिकार है।

सेर-संघाराममें ५५०० यति रहते हैं। उनमेंसे यपेरा, सङ्गास्-प स्मद् प विद्यालयके प्रत्येकके अधीन एक शाखासमिति है। गाल्दन संघाराममें ३३०० बौद्धयति वास करते हैं। येङ् रसे और यर-रसे नामक दो शाखा विद्यालय इसके अन्तर्गत हैं। तिपिल्हूनपोके प्रसिद्ध संघाराममें तीन 'त स्वङ्' या विद्यालय हैं। उनके अधीन प्रायः ४० खमत्सन या शिष्यावास देखे जाते हैं। बंगालके प्रसिद्ध परिव्राजक श्रीयुक्त राय शरत्चन्द्र दास बहादुरने सुप्रसिद्ध तपिल्हूनपो संघाराममें परिभ्रमण कर उसका ठीक ठीक विवरण संग्रह किया था। उनके सम्पादित Jour-Bud. Text, Socy. India iv, p. 14 (1893) तथा Journey to Lhasa and Central Tibet नामक ग्रन्थमें विशदरूपसे यह विवरण लिखा है। शेषोक्त ग्रन्थके ७६ पन्नेमें लिखा है,—तुम्म प्रदेशवासी तपिल्हूनपोके एक देवकपालस्थ नवीन लामाने १८८१ ई०की १५वीं दिसम्बरको उपवास और त्योहारका दिन समझ कर बौद्धयतिओंके तु-पम्त्सन् पद्लामका इरादा किया। अतः उन्होंने कुन खेप लिङ्गसे पञ्चेनको निमन्त्रण करने भेजा। उन्होंने उक्त सङ्घाराम-के मध्यस्थ ३८०० यतियोंको एक एक रुपया करके, श्रेष्ठ लामाको उपहार और प्रणामी तथा लामा-विद्यालय-में (College of Incarnate Lamas) बहुत धन दिया था। पञ्चेनके पधारने पर सभी बाजे गाजेके साथ उन्हें सम्मानपूर्वक मठके प्रधान प्रकोष्ठमें ले गये थे। वे इस उपासनागृह (दसो खङ्ग)में आ कर वेदीके ऊपर बैठे और तब उत्सव क्रियाकाण्ड शुरू हुआ। १० बजे रातमें उसका शेष हुआ। पीछे भोज्यद्रव्य, माल्य और अपरापर द्रव्य ले कर यतिगण अपने अपने मठवास लौट आये। इस घटनाके बाद उक्त नवीन लामा तुपिल्हूनपो संघाराम-में शिक्षानवीशरूपमें रह कर पाठाभ्यास करने लगे। पीछे उन्होंने परीक्षा दे कर लामा पद पाया और इस देशमें तपिलामा नामसे प्रसिद्ध हुए। ये बौद्धतीर्थ देखनेके लिये भारतवर्षमें आये थे।

उपरोक्त संघारामके छात्रावासमें दो लामा रहते हैं। उनमेंसे ज्येष्ठ लामा ही छात्रावाससंलग्न मठके परिदर्शक और मन्दिरके पूजक तथा छात्रमण्डलीके उपदेष्टा हैं। कनिष्ठ लामा केवल भाण्डारकी देखरेखमें रहते हैं। यदि उनके अधीनस्थ मठका कोई छात्र असदाचरण करता है, तो वह दण्डका भागी होता है। हरसाल इन दो कर्मचारीको बदली होती है। इन सब कर्मचारियोंकी नियुक्तिके समय स्वतन्त्र प्रक्रियाका अनुष्ठान होते देखा जाता है।

प्रति दिन सवेरे अथवा चार बजे एक बालक मंदिरकी चोटी पर चढ़ कर शङ्खोत्सव गाता है। यह गान

सुनते ही छात्रमण्डली जाग उठती तथा अपने अपने घरके और छात्रोंको घंटा बजा कर उठाती है। तब वे सब मुंह और हाथ पैर धो कर कपड़ा बदल लेते हैं। पीछे शिरको ऊला-गमसे ढक कर तथा हल्दी रंगकी टोपी पहन कर एक कटोरा और मैदेकी थैली हाथमें लेते और भंडारी मैदा लाने जाते हैं। उसके बाद वे मन्दिरके प्राङ्गणमें प्रणाम कर मठका प्रदक्षिण करते तथा कोई कोई मञ्जुश्री मन्दिरमें जा कर ओम ह-प सुच मढ़ि मन्त्र पाठ किया करते हैं।

एक बजे मिग् दर्स-म लामा छिग्स्सेम स्तोत्र उच्च स्वरसे गाते हैं। उस समय छात्रगण उसी दरवाजे पर आ कर शिरमें पीला साफा बांध कर एक स्वरमें वही स्तोत्र पढ़ते हैं। कुछ देर बाद दविल आ कर द्वार खोल देता और वे सबके सब मन्दिरमें घुसते हैं। भीतर आ कर सब अपने योग्य स्थान पर बैठते और सिरकी टोपी खोल नीचे रख देते हैं। उस समय अपनी थैली और कटोरा टेबुलके नीचे छिपाये रखते हैं। पीछे प्रधान गायकके वेदपदार्थमय गीत गाने पर जब कनिष्ठ मठपरिदर्शक पीला साफा शिरमें लपेट कर लोहेके हथौड़ेसे खंभेमें चोट देता, तब सब छात्र जलखईघर जा कर चाय पीते हैं और फिर वापस आ कर अपने अपने आसन पर बैठ जाते हैं। इस जलखईघरकी स्वतन्त्र व्यवस्था है। जिस नियमसे लड़के चाय पीते हैं वह विस्तार हो जानेके भयसे यहां पर लिखा नहीं गया। चाय बांटनेके लिये पांच नौकर नियुक्त हैं। मठके यति दिनमें तीन दफे चाय पीते हैं। चंदेमें अधिकांश चाय का वसूल होती है। कोई कोई धनी, प्रादेशिक शासनकर्ता और चीनके सम्राट् त्योहार आदिमें लामाओंको चाय पिलाते हैं। लामामठकी जिस हंडीमें चायका जल गरम होता है, उसमें करीब दो सौ मन जल अंटता है।

मठकी प्रचलित प्रथाका उलंघन करने, किसी प्रकारका असौजन्य या असद्व्यवहार दिखलाने अथवा ब्रह्मचर्य भंग करनेसे प्रातिमोक्षविधिके अनुसार उसका विचार होता और सजा दी जाती है। सामान्य अपराध होने पर तिरस्कार या लाञ्छना द्वारा छुटकारा पाता है। यदि कोई एक ही अपराध बारंबार करता है, तो वह अपराध गुरुतर समझा जाता है और अपराधी उसीके अनुसार सजा पाता है। यदि कोई छात्र शराब पीता या चोरी करता है, तो उसके शिक्षक और छात्रावासके परिदर्शक विचारसभासे निन्दक समझे जाते हैं। पीछे दो मनुष्य इस छात्रके पैरमें डोरी बांध कर मन्दिरके बाहर लाते और उसे बेंत मारते हैं। कड़ी मार देनेके बाद वह मठसे बाहर कर दिया जाता है। जो अपनी इच्छासे ब्रह्मचर्य भंग कर मठ छोड़ देता है, वह जंगली कहलाता है।

मठके बाहर भी लामाओंका प्रभाव फैला हुआ है। यदि कोई किसीके ऊपर जुल्म करता है, तो ईई-दो-सङ्ग या ललाटमें काली रेखा लगानेवाले गेकोर लामागण मठके बाहर आ कर उस जुल्मीका दमन कर सकते हैं। वे गेकोर लामागण मठाध्यक्ष अपर दो प्रतियोगियोंकी सहायतासे लामा या ब्रह्मचर्याश्रमका नियम पालन करते हैं। वे लामा प्राचीन बौद्धसंन्यासियोंकी तरह सुखस्पृहावर्जित नहीं हैं। संन्यासीके समान वे अर्थलालसा और भोजनलिप्सात्याग नहीं कर सकते। गे-लुग्-प आदि तिब्बतीय प्रधान संघाराममें अधीन बहुत-सी भूसम्पत्ति है। उसकी आयसे उनका खर्च चलता है। इसके अलावा धान कटनेके समय सैकड़ों लामा मठसे निकल कर धान, चाय, नेनू, नमक, मांस आदि मांगते फिरते हैं। जो मिलता है वह मठके भंडारमें जमा रहता है। कोई कोई लामा पुतली बना कर या मूर्त्ति काट कर, छाप मार कर, कोष्ठी बना कर, चिकित्सा कर और झाड़ फूंक कर नाना उपायसे अर्थ संचय कर मठका खर्च चलाते हैं। जो ऐसा नहीं कर सकते, वे मठमें रह कर दूसरा दूसरा काम करते हैं। कोई कोई वाणिज्य करके संघारामका गौरव बढ़ाते हैं। वे सब धर्माचार्य सूद लेनेसे जरा भी बाज नहीं आते। सचमुच वे सुव्यवसायी और देशके महाजन गिने जाते हैं।

भारतीय बौद्धोंका वेशभूषा भारतीय ऋतुओंके अनुसार बना था। जब बौद्धधर्म तिब्बत आदि तुषारमय देशोंमें फैल रहा था, उसी समयसे वेशभूषाका परिवर्तन हो गया है। तिब्बतीय लामा या बौद्धयति भयानक

शीत और मच्छड़से बचनेके लिये जूता, मोजा और पहननेका कपड़ा आदि शीतप्रधान देशका उपयोगी करके बनाते हैं। प्राचीन बौद्धोंका चीरवास और वर्त्तमान लामाओंको जपमाला, शिरस्त्राण, कमरबंद, छोटा कुरता, चोगा, इजार, पायजामा तथा जूता आदिका मिलान करनेसे मालूम होता है, कि वर्त्तमान युगमें बौद्धधर्ममें कैसा विप्लव उपस्थित हुआ है।

तिब्बतीय लामागण शिरमें जो साफा बांधते हैं, वह ठीक भारतीयके समान है, थोड़ा चीन और मङ्गोलीयासे मिलता है। तिब्बतीय लामाओंका विश्वास है, कि लामाधर्मके प्रतिष्ठाता बौद्धभिक्षु पद्मसम्भव हैं तथा उनके सहयोगी शान्तरक्षित ईसो सन् ८वीं सदीमें भारतसे जो पगड़ी पहन कर तिब्बत आये थे, उसीकी तरह वर्त्तमान टोपी बनती है। पञ्चे नुउवे दमन लाल पगड़ी बांध शान्तरक्षित तिब्बतमें आये थे। गे लुग्-प को छोड़ तिब्बतमें सभी जगह ऐसी पगड़ीका प्रचार था। यह साफा या पगड़ी भारतके शीतप्रधान देशोंमें व्यवहृत कईकी कनभप्पा टोपी-सी है। त्सोङ खापा उसी लाल टोपीके बदले पीली पगड़ी प्रचार कर गये हैं। वही गे-लुग्-प सम्प्रदायका पहनावा है।

मठविहारिणी बौद्धभिखारिन् पशमीने कपड़े या लोमसे बने हुए एक प्रकारके शिरस्त्राणका व्यवहार करती हैं। सम्प्रदायके भेदसे यह शिरस्त्राण लाल या काला होता है। सिकिम, भूटान और हिमालय प्रान्तके अनेक देशोंमें जहां वृष्टि नहीं होती, वहांके अधिवासी बौद्धलामागण गरमीके दिनोंमें पड़की टोपी पहनते हैं। कोई भी पहलेकी टोपी नहीं पहनता। चीनवासीकी तरह वे टोपी खोल कर आगन्तुकको प्रणाम करते हैं। यही कारण है, कि देवमन्दिरमें घुसते समय कोई भी शिर पर टोपी नहीं रखते, सिर्फ कई धर्मकार्यमें टोपी पहननेकी विधि है।

उनके शरीरके कपड़े भी दो रंगके होते हैं। गे लुग् प सम्प्रदायके आचार्यगण केसरसे रंगा हुआ कपड़ा पहनते हैं। जब कोई गे लुग्-प आचार्यको उपढौकन देने आये, तो उसी तरहका कपड़ा पहन सकता है। उसको छोड़ यह यदि कोई ऐसा वस्त्र पहन कर आता है, तो वह दण्डका भागी होता है। प्राचीन बौद्धोंकी संघाटी, अन्तर्वासक और उत्तरासंघाटीके साथ तिब्बतीय लामाओंका जान, नम् जार और वल् गोम् नामक शरीर परका वस्त्र मिलता जुलता है। इसके अलावा शाक्त और वैष्णवोंकी भांति वे माला जपते हैं। इस मालामें १०८ दाने रहते हैं और उसके दोनों छोरके सूतेमें दश दश करके 'साक्षी' रखते हैं। १०८ बार माला जपनेके बाद एक एक साक्षी ले कर वे मन्त्रसंख्या निरूपण करते हैं। इस हिसाबसे दोनों ओर १०×१० साक्षीमें उनकी १०८०० जपसंख्या होती है। वे दाने भी भिन्न भिन्न प्रकारके होते हैं। सर्वप्रधान तशिलामाके पास मुक्ता, चुन्नी, पन्ना, नीला, प्रवाल, स्फटिक आदि मूल्यवान पत्थरमें बनी माला देखी जाती है। एतद्भिन्न सम्प्रदायभेदसे और देवाराधनाविशेषसे मालाके दाने अलग अलग होते हैं। गे-लुग-प सम्प्रदायमें हल्दी रंगके काठकी माला, तम-दिन् पूजामें लालचन्दनकी लकड़ीकी तथा छ-रशी उपासनामें सफेद शंखकी, तान्त्रिक उपदेवताओंकी पूजामें रुद्राक्ष (Elaeocarpus Janitus), सांपकी हड्डी, अवलोकितकी पूजामें स्फटिककी, पद्मसम्भव और ताम्-दिनकी पूजामें प्रवाल तथा यमभैरवकी उपासनामें नर-मुण्डमाला व्यवहृत होती है।

लामा जब माला जप नहीं सकते, तब वे गले या दाहिने हाथमें बांध रखते हैं। माला जपनेके समय प्रत्येक दाना पकड़नेके पहले वे ओम् प्रणव उच्चारण करते हैं। पीछे दाना पकड़ कर मन ही मन पाठ किया करते हैं। भिन्न भिन्न देवताका जपमन्त्र भिन्न भिन्न है। ये सब लामा अकसर और भी कई एक द्रव्योंका व्यवहार किया करते हैं। उनमेंसे भजनचक्र, वज्रदण्ड, घंटा, करोटीनिर्मित ढका या ढाक, पञ्जनी, कवच, पोथी और अलंकार प्रधान है। तशिल् हुनपोके प्रधान लामा कभी कभी जवाहिरातका बना कंठहार पहनते हैं। किसी किसीको भिक्षापात्र और सन्न्यासदण्ड है।

तिब्बतवासी लामाधर्मके लिये प्राण-विसर्जन करने पर भी कर्मकाण्डमें उनकी बड़ी आसक्ति देखी जाती है। मठवासी यत, ग्राम्य पुरोहित, गुहावासी तपःपरायण-लामा भिक्षु अथवा छयियाणिन्यादि कर्ममें लिप्त लामा-

गण पृथक् पृथक् कार्यमें व्यापृत रह कर जीवनयात्रा निर्वाह कर रहे हैं। इस विभिन्न श्रेणीके लामाओंकी नित्यकर्मपद्धति भी स्वतन्त्र है।

लामानगरीके पोतल पर्वतस्थ श्रेष्ठ लामा-संघाराममें बौद्धयति जिस प्रथाका अवलम्बन कर दैनिक कार्य करते हैं, वही नीचे संक्षिप्तरूपसे लिखी जाती है,—

रात्रिकालमें जब नींद टूटती है, उसी समय यति शय्यात्याग करते हैं। पीछे बिछावन परसे उठ कर परिच्छद पहन कर संयत हृदयसे गृहमध्यस्थ वेदीके समक्ष तीन बार देवोद्देशसे प्रणाम करते हैं। तदनन्तर जीवनयात्रा-निर्वाहके उपायकी प्रार्थना कर बुद्ध और बोधिसत्त्वोंके उद्देश्यसे स्तव तथा एकत्र हो कर कई मंत्र पाठ करें। स्तव और मन्त्र पढ़नेके बाद "ओं खेचरगणय ही ही स्वाहा" यह मन्त्र तीन बार पढ़ कर यतिगण अपने अपने पैरोंको थूके। उनका विश्वास है, कि दिनमें घूमनेसे जो सब जीव कुचला जाता है, वह इसी मन्त्रके बलसे अमरावतीके इन्द्रपुरमें देवरूपमें जन्म लेता है।

इन सब देवाराधनाके बाद यदि रात्रि अधिक रह जाय, तो वे पुनः शय्या पर जा सकते हैं; किन्तु यदि दो या चार दण्ड बाकी रहे, तो उन्हें और नहीं सोना चाहिये। थोड़े समयके लिये 'स्मोन् लम्' भजनगीति या मन्त्र पाठ कर रात्रि यापन करें तथा घंटाध्वनिसे जब सब कोई उठें, तो वे भी शय्या त्याग कर शङ्खध्वनि और शिङ्गाध्वनि तक अपना वेशभूषा पहनें। शिङ्गाध्वनि होते ही सभी अपने अपने मठको छोड़ कर 'दों-ख्छल' नामक प्रस्तरमण्डपमें उपासनाके लिये जुटें। प्रस्तर आसन पर खड़े हो कर वे "ओम् अर्घ चार्घ घिमनसे! उत्सुहन महाक्रोध हुं फट्" मन्त्र पाठ कर मनका पाप और कलुष आदिकी चिन्ता करें। उससे उनका चित्तपातक दूर हो जाता है। तदनन्तर सुग्-पा नामक सज्जी मिट्टी या साबुनसे अपना हाथ पैर धो डालें। हाथ पैर धोते समय वे विशेष विशेष मन्त्र पढ़ते हैं। मुख आदि धोनेके बाद शौच हो कर वे हाथमें माला ले कर जप करते करते तारादेवी और मञ्जुश्रीके उद्देश्यसे मन्त्र पाठ करते हैं। समय बचने पर कोई कोई अपनी अपनी कुलाधिष्ठात्री देवीकी स्तुति भी किया करते हैं।

यह सब कार्य करनेमें करीब १५ मिनट लगता है। उसके बाद दूसरी बार शंखध्वनि होनेसे गे-लोङ यतिगण मन्दिरके दरवाजेके सामने तथा गेत्सुल लोग मन्दिरके सामनेवाले आँगनमें खड़े हो कर देवताको प्रणाम करते हैं। पीछे मन्दिरका दरवाजा खुलने पर एक एक करके सभी मन्दिरमें प्रवेश करते हैं। इस समय हाथमें दण्ड ले कर गेको दरवाजे पर खड़े रहते हैं। जब सब कोई अपनी अपनी चटाई पर मर्यादाके अनुसार बैठ जाते, तब तीसरी बार शंखध्वनि होती है। उस समय सभी एक स्वरमें कुछ निर्दिष्ट मन्त्र पाठ करते हैं। पीछे चाय पीते हैं। चाय पीनेके पहले अध्यक्ष लामा सबोंके स्तुतिवाक्य उच्चारण करने पर अपना अपना प्याला बाहर कर देते हैं। मठका शिक्षाधीश या कोई भृत्य उसमें चाय डाल देता है। पीनेके पहले यतिगण अंगुलीसे दो बूंद जमीन पर गिरा कर बुद्ध, अपरापर देवता और पितरोंको दे कर पीछे आप पीते हैं। मिठाई और मांस खानेके समय भी इसी प्रकारकी व्यवस्था है।

जनसाधारण कौतूहल दूर करनेके लिये नीचे केवल मन्त्रोंका भावार्थ दिया गया।

"खाने पीने चाटने चूसने योग्य चव्य पेयादि स्वादिष्ट भोज्यद्रव्य हम ध्यानी बुद्ध और स्वर्गके बोधिसत्त्वोंको भेंट देते हैं। वे इस खाद्य पर कृपा करें। ओम् आः हुं।" तदनन्तर यथाक्रमसे "ओम् गुरु वज्र नैविद्य आः हुं। ओम् सर्व बुद्ध बोधिसत्त्व वज्रनैविद्य आः हुं। ओम् देव डाकिनि श्रीधर्मपाल सपरिवार वज्रनैविद्यः आः हुं।" भूतेश्वरके उद्देश्यसे—"ओम् अग्रपिण्ड अशिभ्यः स्वाहा। ओम् हारिते महा वज्रयक्षिणि हर हर सर्वपापविमोक्षि स्वाहा" इत्यादि। जीवमांस होनेसे जीवहिंसा और उसका मांस खानेसे जो पाप होता है उसका क्षय करनेके लिये तथा पशुको स्वर्गकामनाके लिये "ओम् अबिर खेचर हुं" मन्त्र पाठ किया जाता है। तदनन्तर मठभण्डारके खाद्यद्रव्य देनेवालेकी मंगलकामनाके लिये यह मंत्र पढ़ा जाता है—"नमो। समन्तप्रभराजाय तथागताय अर्हते सम्यक्सम्बुद्धाय नमो मञ्जुश्रिये। कुमारभूताय बोधिसत्त्वाय महासत्त्वाय! तद्यथा! ओम् रत्नमे निरमसे जये जये लब्धे महामतरश्मिणस्मे परिशोधाय

स्वाहा"। इसके बाद वे और भी कितनी स्तुति किया करते हैं। ये धर्म, निर्वाण, चिन्तामणि, कल्पतरु, मङ्गल और प्रवृत्ति निवृत्तिकी प्रार्थनामात्र है।

चाय पीनेके बाद धर्मानुवेदकोंकी अर्चना, स्थविरोंकी पूजा, मण्डलार्पण, भैरव तथा तारा, देम-छोग् और सङ्दु आदि कुलदेवताओंकी पूजा यथाक्रमसे अनुष्ठित होती है इन सब पूजाओंके करनेमें अधिक समय लगता है इस-लिये बीच बीचमें चाय पीनेकी भी विधि है। कुल-देवताकी पूजा करनेके समय मध्य मध्यमें मृत व्यक्तिकी प्रेतात्मा तथा पीड़ित व्यक्तिको रोगमुक्तिके लिये मङ्गल-कामना की जाती है। पीड़ितकी रोगमुक्ति कामनाका नाम "कु रिम्" पूजा है। अनन्तर अवशिष्ट कुलदेवोंकी पूजा समाप्त कर वे चाय पीते हैं। उसके बाद शेव-राब् सञ्चिङ-पो गान कर सभा भंग करते और एक एक करके मन्दिरसे बाहर हो कर अपने अपने घर चले जाते हैं। प्रधान लामा सबके पीछे बाहर होते हैं।

घर आ कर वे अपना अपना अभीष्ट मन्त्र जप और कुलदेवताकी पूजा करते हैं। उसके बाद उक्त देवोंको भोग चढ़ाते हैं। पूजाके समय "भजनचक्र" घुमा कर सभी समय ठीक कर लेते हैं। इस समय अगर सूर्यदेव आकाशचक्रमें दिखाई दें; तो सभी अपने अपने कमरेसे बाहर हो कर दोनों हाथ उठा कर "ओम् मरीचीनां स्वाहा" मन्त्र पढ़ कर स्तुति करते हैं। तदनन्तर सबेरे करीब नौ बजे जब सूर्यकी किरण कड़ी और शीतल वायु गरम हो जाती है, तो फिर एक बार शङ्खध्वनि होती है। अब मठवासी सभी संन्यासी मलत्यागार्थ निर्दिष्ट स्थान जाते तथा शौच-कर्मादि कर वापस आते हैं। दूसरी शङ्खध्वनि होने पर सभी पढ़नेवाले आँगनमें जमा होते हैं। इस समय अगर पानी पड़ता रहे, तो सभी एक बरामदे पर आ कर पढ़ते हैं। पन्द्रह मिनटके बाद फिर तीसरी शङ्खध्वनि होती है। उस समय सभी वहांसे मन्दिरमें जा कर पुनः उपासनामें लग जाते हैं। दोप-हरके बाद पुनः शङ्खनाद होनेसे वे उसी तरह पहले प्राङ्गणमें और पीछे मन्दिरमें इकट्ठे हो कर उपासना किया करते हैं। इसके बीच वे तीन बार चाय पीने पाते हैं।

सभी अपने अपने कमरेमें आ कर जूता उतार अभीष्ट देवताकी पूजा कर भोग लगाते हैं। उसके बाद मठका भृत्य उन्हें खानेकी चीज दे जाता है। अपने अपने भोजन-से थोड़ा निकाल कर वे पितरों तथा हारिती और अपने पुत्रोंको दे कर पीछे आप खाते हैं। तब यति लोग कुछ समयके लिये अपने अपने कार्यमें व्यस्त रहते हैं। ३ बजेके बाद वे चौथी बार मन्दिरमें इकट्ठे होते हैं। इस समय भी पहलेकी भांति तीन दफे शङ्खध्वनि होती है। इस दफे देवताओंको भोग चढ़ानेके समय तीन बार चाय पी कर घर लौट आते हैं। शिक्षानवीश और 'पार-पा' यतिगण इस समय घर आ कर पाठाभ्यास करते हैं। ७ बजे पाचवीं बार सम्मिलन होता है। इस समय तीन बार शङ्खनादके बाद सभी पूजादि समाप्त कर तीन बार चाय पीते और तब घर लौटते हैं। रातमें दूसरी बार घंटा बजने पर शिक्षानवीश और दीक्षित यति सम्प्रदाय अपने अपने अध्यापकसे अपना पाठ सुनाते और पीछे पाठ लेते हैं। तीसरी बार घण्टा बजने पर सभी सोने जाते हैं।

भिङ्-मा सम्प्रदायके सभी मठोंमें प्रायः ऐसी ही प्रथा चलती है। पृथक्तामें उस उस साम्प्रदायिक मठमें सभी समय शङ्खध्वनि नहीं होती। ८ बजे शङ्खघण्टा बजने पर सब कोई मन्दिरमें इकट्ठे हो कर पूजादि किया करते हैं तथा वहां बैठ कर चाय और मूढ़ी खाते हैं। सबेरे १० बजे चोनदेशीय दुन्दुभि बजाई जाती है। इस समय सभी सङ्घारामके बड़े बरामदेमें इकट्ठे हो कर भोजन करते हैं। बिना भोग लगाये कोई भी नहीं खाता। सन्ध्या समय भी वे शङ्खध्वनि सुन कर इकट्ठे होते और चाय पीते हैं। तदनन्तर चीनी ढाक बजने पर सभी चङ्ग मद्य पीते हैं। इस समय महाकालकी पूजा तथा उसके बाद साधारणकी मंगलकामनाके लिये देवपूजा होती है। सन्ध्या समय १०८ दीप जला कर वे स्कङ्-पाग् पूजा करते हैं। गुरु पद्मसम्भवकी पूजा ही भिङ्-मा साम्प्रदायिक मठकी प्रधान है। वहांके यति दिनमें नौ बार चाय पीते और भोजन करते हैं। सन्ध्या समय एकत्र होनेके बाद यतिगण फिर एक बार एकत्र होते हैं। रातमें एकत्र हो कर वे अन्न और मांस खाते हैं।

गांवके पुरोहित सम्पूर्णरूपसे लामाके महामठका अनुकरण करते हैं। लेकिन पूजा और कर्मकाण्डमें बहुत पृथक्ता देखी जाती है। रातमें नींद टूटने पर भजन-कालमें बहुतेरे हठयोगका अभ्यास करते हैं। जिनकी नींद रातमें नहीं टूटती, वे प्रातःकाल मुख आदि धोनेके बाद उपरोक्त रूपसे आचारानुष्ठान करते हैं। तदनन्तर देवार्चना, प्रेतार्चना और भोग दे कर वे चाय मूढ़ी खाते हैं। २ बजे सभी पेट भर खाते हैं। ६ बजे शामको वे पुनः कुलदेवता आदिकी पूजा और इत्यादि पाठ करते हैं। रातके ६-१० बजे वे शयन किया करते हैं।

तपःपरायण लामा योगी ऐसे क्रियाकाण्डका अनुष्ठान नहीं करते। वे पर्वतगुहामें रह कर निरन्तर ईश्वर-चिन्तामें निमग्न रहते तथा प्रकृत संन्यासीके पालनीय आचार अनुष्ठानको करते हैं। यह योगाभ्यास तीन मास तीन दिन ले कर करना होता है। इस समय 'मूलयोग सङ्गोन गो'की चार शाखा हो वे लक्षमाका जप करते और आश्रममें मिश्राम'स पढ़नेके समय लक्षमाके देवोद्देशसे नत होते हैं। वे वज्रयान-मतावलम्बी तथा संन्यासीके हठयोगसाधनकारी हैं। वे सिद्धि पानेकी आशासे यह कार्यानुष्ठान किया करते हैं।

पश्चिम भोटराज्यवासी अधिकांश लामा ही वाणिज्य और शिल्प ले कर व्यस्त हैं। वे खेती कर और धान आदि बेच कर जो लाभ उठाते हैं, उसीसे मठका खर्च चलता है। बहुतोंने मठके लामाओंके पहननेके लिये दर्जी, चमार और तसवीर खींचनेका काम उठा लिया है। कोई गांव गांवमें भिक्षा मांग कर मठका भंडार भरते हैं।

लामा लोग खास कर चावल, दूध, मक्खन, दाल, चाय और मांस खाते हैं। वे बकरा, भेड़ा और गौका मांस सेवनीय तथा मछली और मुर्गेका मांस निषिद्ध मानते हैं। गे-लोङ मांस कदापि नहीं खाते। वे सम्पूर्ण रूपसे ब्रह्मचर्यावलम्बन करते हैं। तपिलहुन्‌पोके प्रधान लामा मांस खाते हैं। प्रसिद्ध लासा-मठके लामागण साधु प्रकृतिके होते हैं। वे शराब नहीं पीते। अन्यान्य जगहोंके लामा चङ्ग मद्य पीते। लासा-मठके लामा लोग भूत आदिकी तृप्तिके लिये मद्य उत्सर्ग करते हैं।

लामा-धर्मकी उत्पत्ति।

कब और कैसे भोटराज्यमें बौद्धधर्मकी प्रतिष्ठाके साथ साथ तन्त्रमतप्रसून इस लामाधर्मकी उत्पत्ति, स्थिति और प्रतिपत्ति फैली थी, इसका विशेष विवरण संग्रह करनेका कोई उपाय नहीं है। ७वीं सदीमें यहां सचमुच बौद्धधर्मका बीज उगने पर भी तिब्बत जनपद-वासी मात्र ही वर्व्वरताके घोर अन्धकारसे आच्छन्न था। भोटराज स्रोङ्-त्सन् गम्पो (६३६-४१ ई०) ने अपने बाहुबलसे चीन-राज्यकी पश्चिमी सीमा तक जय कर एक विस्तृत राज्य जीता था। थङ्गवंशीय चीन-सम्राट् थैत्सुङ्ग अपनी कन्या वेन्छेङ्गके साथ उसका विवाह कर मित्रतापाशमें आबद्ध हुए थे। चीन-इतिहासमें भोटराज स्रोङ् त्सन् गम्पो छित्सुङ्ग लुङ्सान् नामसे प्रसिद्ध हैं। ६४१ ई०में यह घटना घटी। इसके दो वर्ष बाद उन्होंने नेपाल-राज अंशुवर्माकी कन्या भृकुटीदेवीसे शादी कर ली। दोनों राजकन्याका बौद्धधर्ममें अटल विश्वास था। इसलिये पत्नियोंके अनुरोधसे राजा भी बौद्धधर्ममें आसक्त हो गये। किसी किसी ग्रन्थकारका कहना है, कि उन्होंने बौद्धधर्ममें दीक्षित हो कर पीछे बौद्धराज कन्यासे ब्याह किया था। वे अपनी दो महिषीकी प्रार्थनासे तथा तिब्बत राज्यमें बौद्धधर्म फैलानेकी इच्छासे बौद्धधर्मग्रन्थका संग्रह करनेमें कृत-संकल्प हुए थे। उन्हींके उद्योगसे भोटराज्यमें बौद्धधर्माचार्य लानेकी व्यवस्था हुई थी। भारत, नेपाल और चीन राज्यके नाना स्थानोंमें भोट-राजदूत जा कर ग्रन्थादि संग्रह करते थे।

उनके आदेशसे जो दूत भारत आये थे उनका नाम था थोन मि-सम्भोट। यह ६३२ ई०में भारत आये और ६५० ई०में भोटराज्य लौट गये। उन्होंने भारतमें रह कर ब्राह्मण-लिपिदत्त तथा पण्डित देववित् सिंह (सिंहघोष)-से बौद्धधर्मशास्त्र पढ़ा था। स्वदेश जाते समय वे सैकड़ों बौद्धग्रन्थ साथ ले गये थे। वे उत्तर-भारतीय कुटिल वर्णमाला-मिश्रित जिस अक्षरसे पुस्तक लिख ले गये थे उसी अक्षरसे तिब्बतीय भाषामें उन्होंने व्याकरण लिख कर प्रचार किया। सिर्फ तिब्बतीय वर्णमालाका स्वर-सामञ्जस्यके लिये उन्होंने उसी अक्षरमालामें कुछ चिह्नों-

का आविष्कार किया था। यही पीछे तिब्बतीय वर्ण-माला कहलाई।

थोन्मिने बौद्धधर्मग्रन्थके अनुवादमें सारा जीवन बिताया सही, पर वे यथार्थ धर्मप्रचारक या बौद्धयति न हो सके; किन्तु राजा स्रोङ्-त्सन गम्पो बौद्धधर्मके प्रतिष्ठाता कह कर बोधिसत्त्व अवलोकितके अवतार माने जाते थे। उनकी पत्नी चीनराजदुहिता वेनछेङ्ग अवलोकितकी पत्नी तारादेवीके नामसे श्वेताङ्गिनी तारा तथा नेपालराजकन्या भ्रूकुटी तारादेवी कह कर पूजिता हुईं। भ्रूकुटी ताराका वर्ण नीला और मूर्त्ति बड़ी ही डरावनी थी। वह रात दिन अपने पति वेनछेङ्गके साथ कलह किया करती थीं इसलिये इसकी उग्रमूर्त्ति कल्पित हुई है।

सम्भवतः ६५० ई०में राजा स्रोङ्-त्सन् गम्पोके परलोक सिधारने पर उनके पौत्र मङ्गस्रोङ् मङ्ग त्सनने राजाके बौद्धधर्मयाजक मन्त्रीके प्रतिनिधित्वमें राज्य किया। उसके बादसे तिब्बतमें कुसंस्काराच्छन्न भूतो-पासक वामान धर्मका प्रभाव फैला। प्रायः एक सौ वर्ष बाद उक्त वंशमें राजा ठि स्रोङ्-देवत्सानके राजत्वकाल-में पुनः बौद्धधर्मकी प्रधानता हुई। चीनसम्राट् त्सङ्ग-त्सोङ्गकी पालित कन्या छिन्-छेङ्गके गर्भसे इस राज कुमारका जन्म हुआ। बौद्धधर्ममें माताकी आसक्ति रहनेके कारण पुत्र भी बौद्धधर्ममें दीक्षित हुआ। उन्होंने कुलपुरोहित भारतीय बौद्धयति शान्तरक्षितके परामर्शसे भारतवर्षसे गुरु पद्मसम्भवको लानेके लिये दूत भेजा। पद्मसम्भव उस समय विहारके नालन्दामठमें तान्त्रिक योगाचार्य शास्त्रमें बड़े प्रतिष्ठित हो उठे थे। कहते हैं, कि गुरु पद्मसम्भवने शान्तरक्षितकी भगिनी मन्दारवा-से ब्याह किया था।

राजाकी बुलाहट सुन पद्मसम्भव फूले न समाये। उन्होंने नेपालराज्य हो कर तिब्बतकी यात्रा की। ई०में उन्होंने राजधानी पहुंच कर अपनी यात्राका [illegible] रण लिखा था। रास्तेमें उन्होंने किस तरह और यक्षिणीका प्रभाव दूर किया था, राजाको [illegible] हुए कहा थो,—"उन लोगोंने [illegible] प्रभुत्व [illegible] लिये अब वे किसीका [illegible] करेंगी। मैंने

उन्हें अभय दे कर कहा है, कि तुम लोग भी मेरे आदेश-से पूजा और बलि पाओगी।" इससे स्पष्ट जाना जाता है, कि भारतकी अर्द्धसभ्य और असभ्य जातिको जब बौद्धा-चार्योंने बौद्धधर्ममें दीक्षित करनेकी कोशिश की थी तब उन्होंने देखा था, कि वे लोग कुसंस्कारमें तथा पर्वत, वृक्ष और भूत आदिकी उपासना ले कर इतने मोहित हो गये हैं, कि उनके हृदयसे यह कुसंस्काररूप कुहेसेको हटा कर निर्वाणमुक्ति और प्रतीत्य-समुत्पादरूप महा धर्मबीजको बोना बड़ा ही कठिन है। पीछे वे देवरूपमें पूज्य उन्हीं सब भीषण दृश्य अपदेवताओंको प्रकृत देवरूपमें गिन कर "न देवाः सृष्टिनाशकाः" वाक्यकी सार्थकताकी रक्षा करनेमें प्रयासी हुए। वे इस बातका प्रचार करने लगे,—"यही सब पिशाच, यक्ष, डाकिनी, योगिनी आदि बुद्धकी मङ्गलमय करुणासे मन्दकारी शक्ति विसर्ज्जन कर अभी जीवकी मङ्गलकामनामें लगी हैं। वे अब किसी भी जीवोंका अपकार न करेंगी। वरं जिससे जीवोंका मङ्गल और मुक्तिलाभ हो, उसीमें सहायता करेंगी। इसलिये वे साधारणकी पूज्य हैं और उन्हें बलि देना उचित है।" इस प्रकार जैसे भारतमें बौद्धतान्त्रिकयुगमें साधरणकी चित्तवृत्ति आकर्षण करने-की इच्छासे दशबाहुशालिनी दुर्गा, लोलरसना कराल वदना काली, विस्फारितनेत्र विरूपाक्ष, रक्तवर्णा भीषण दृश्या शीतला, करालदंष्ट्रा वाराही आदि देवदेवीका आविर्भाव हुआ था, वैसे बौद्धगुरु पद्मसम्भवने भी तिब्बत पहुंच कर कुसंस्काराच्छन्न तिब्बतवासीको पूर्वतन धर्ममें विश्वास दिलाते हुए उनके हृदयमें बुद्धका प्राधान्य स्थापन कर बौद्धधर्मका बीज बोया था। यह पौत्तलिकमिश्रित बौद्धधर्म मूलधर्मके साथ मिल कर लामा (ब्लम) या ग्रहधर्म नामसे प्रसिद्ध हुआ। तिब्बतीय भाषामें ल्हाम शब्दसे परम पुरुष समझा जाता [illegible] बुद्ध [illegible] पुरुष थे अर्थात् जिनकी महीयसी [illegible] भूतगण भी वशीभूत हो कर [illegible] लिये तैयार हो गये थे।

[illegible] मर्म और प्रभाव [illegible] क्रियाकाण्डोंमें [illegible] सदस-

वर्त्तित लामा या श्रेष्ठ धर्मके पक्षपाती हुए। उन्हींकी कृपा तथा उत्साहसे ७४९ ई०में तिब्बतके सम-यास नगरमें प्रथम बौद्धमठ प्रतिष्ठित हुआ। वह मगधकी ओदण्डपुरीके सुप्रसिद्ध बौद्धमठके अनुकरण पर बनाया गया था, स्वयं पद्मसम्भवने इस मन्दिरकी नींव डाली थी। यतिवर शान्तरक्षितने प्रतिष्ठाकार्यमें गुरुको खासी मदद पहुंचाई थी। इसी मन्दिरमें पहले लामा-सम्प्रदायकी प्रतिष्ठा हुई तथा शान्तरक्षितने यहांका प्रथम आचार्य या उपाध्याय हो कर तेरह वर्ष तक कठिन परिश्रमसे धर्मकार्य चलाया था। वे सम्प्रति लामा-समाजमें आचार्यबोधिसत्त्वके रूपमें पूजे जाते हैं। उनकी धारणा है, कि प्रसिद्ध बौद्धाचार्य शारिपुत्र, आनन्द, नागार्जुन, शुभङ्कर, श्रीगुप्त और ज्ञानगर्भ आदिकी तरह वे स्वतंत्र सम्प्रदायभुक्त थे।

तिब्बतके बाशिन्दे इस नवप्रवर्त्तित लामा-मतको धर्म या बौद्धधर्म कहते हैं; किन्तु सचमुच उसमें प्रकृत बौद्ध धर्मका छायामात्र विद्यमान है। तान्त्रिक वीराचारमें वह सम्यक्‌रूपसे गिना जाता है। नाना देवताकी उपासना तथा भौतिक क्रिया और भोजविद्याने उस प्राचीन सूक्ष्मतम धर्मतत्त्वको आश्रय कर उसे नये रूपमें गठित किया है। इस धर्मके विश्वासी लोग "नङ्‌-प" तथा जो इस मतसे बाहर हैं, वे "प्यि-ड्रिङ" कहलाते हैं।

उपाध्याय शान्तरक्षितके बाद "पल बड्‌स"ने आचार्यका आसन ग्रहण किया; यथार्थमें "प्य-खृग जिग्‌स्" सर्वप्रथम दीक्षित लामा हुए थे। शिक्षानवीश शिष्योंमेंसे लामा सगोर वैरोचन हो सर्वापेक्षा सुपण्डित हुए थे। वे लामा-समाजमें बुद्धके भ्राता और सहचर आनन्दके अवतार समझे जाते थे। वैरोचनने तिब्बतीय भाषामें बहुत से संस्कृत ग्रन्थोंका अनुवाद किया था।

गुरु पद्मसम्भवने लामाधर्म प्रतिष्ठा और प्रचारप्रसङ्गमें जो सब आचारानुष्ठान विधिबद्ध किया था। उसके जाननेका कोई उपाय नहीं है। उनके साम्प्रदायिक पचीस शिष्य उनके तिरोधानकी कुछ सदी पीछे उनके प्रवर्त्तित प्रकृत धर्ममत और पद्धति जो सब ग्रन्थ संकलन कर गये हैं, उससे सम्भवतः उस समयके आचार आदिका वर्णन है। लेकिन आदि पद्धति अनुसृत तथा भौतिकविद्यासमाश्रित ञिङ्‌-म-प सम्प्रदायकी आचारपद्धति देखनेसे सहजमें जाना जाता है, कि पद्मसम्भवने अपनी जन्मभूमि उद्यान तथा काश्मीरमें प्रचलित घोर तान्त्रिक और भोजविद्याप्रसूत महायान-सम्प्रदायका बौद्धमत ही स्थापन किया था। उसमें मन्त्रमूलक शैवधर्म और भूतोपासक बोन् पा धर्म मिला हुआ था।

गुरु पद्मसम्भवके जो पचीस शिष्य थे, वे सभी भौतिक और भोजविद्यामें पारदर्शी थे। वे मन्त्रबलसे भूतोंको वशमें कर तिब्बतमें अपने चलाये धर्ममें बद्धपरिकर हुए। तिब्बतवासी बौद्धगण पद्मसम्भवके असामान्य तिरोधान और उनके भोजविद्याका प्रभाव देख कर उनको द्वितीय बुद्धरूपमें पूजा करते आ रहे हैं। आज भी प्राचीन लामासम्प्रदायोंके मठमें उनकी आठ प्रकारकी मूर्त्तिकी उपासना होती है। तिब्बतवासीका विश्वास है, कि गुरु पद्मसम्भवने समय समय पर यह विभिन्न मूर्त्ति धारण की थी।

राजा थि-स्रोङ्‌-देत्सन् और उनके दो वंशधरके प्रगाढ़ उत्साहसे तिब्बतमें लामाधर्म सुप्रतिष्ठित हो कर धीरे धीरे फैल गया। बोन्-पा धर्माश्रित तिब्बतवासी आचरित प्रथाका सामञ्जस्यसाधक इस नवीन मतका प्रतिद्वन्द्वी न हुआ, वरं राजाके भयसे उसकी पुष्टि ही की थी। उन्होंने समझ रखा था, कि इस मतमें शङ्का करनेका कारण नहीं, अधिकन्तु इसमें नई शक्तिका संचार हुआ है। इसी कारण भूतात्मक नवधर्ममें तिब्बतवासीके अनुरक्त होनेसे लामाधर्मकी शीघ्र ही पुष्टि और वृद्धि हो गई। किन्तु शिक्षाबलसे तिब्बतवासी जितनी मानसिक उन्नति करते गये, उतनी ही लामाधर्म-संस्कारकी आवश्यकता सूझ पड़ी। ज्ञानवृद्धिके साथ साथ धर्मपद्धतिकी भी संस्कार होता गया; इसी कारण तिब्बतीय बौद्धधर्मका तीन युग निरूपण कर गये,—१म आदि युग अर्थात् राजा थि-स्रोङ-देत्सनके राज्यकालमें लामाधर्मकी प्रतिष्ठासे बौद्धोंकी ताड़ना तक; २य मध्ययुग या लामाधर्मके संस्कारकाल तक तथा ३य वर्त्तमान लामा धर्म, या १७वीं सदीमें धर्माचार्य दलई लामाका प्राधान्य और राजत्वविस्तार तक।

८२२ ई०में उत्कीर्ण लासा नगरीके शिलाफलकको पढ़नेसे पता चलता है, कि तिब्बत और चीनवासिगण तीन परम पुरुष तथा पवित्रचेता साधुगण सूर्य, चन्द्र, ग्रह और ताराओंकी उपासना करते थे, यही यथार्थमें यहांका आदिलामायुगका निदर्शन गिना जाता है।

७९६ ई०में थि-स्रोङ् देत्सनकी मृत्युके बाद उसके लड़के मुथिग् सान-पो राजा हुए। अधिक दिन इन्होंने राज्य करने भी न पाया था, कि विष खिला कर इनकी जान ले ली गई। पीछे इनके भाई सद्न लेगस सिंहासन पर बैठे। ये बौद्धधर्मका प्रचार करनेके लिये कमलशीलको तिब्बतमें लाये थे। उनके लड़के रालपचन ८१६ ई०में (दूसरेके मतसे ९वीं सदीके शेष भागमें) सिंहासन पर अधिरूढ़ हुए। उनके शासनकालमें नागार्जुन, वसुबन्धु और आर्यदेवकी प्रसिद्ध टीका और धर्मग्रन्थोंका भोटभाषामें अनुवाद हुआ। इसके सिवा उन्होंने भारतवासी कुछ बौद्धयतियोंको धर्मग्रन्थोंका अनुवाद करने नियुक्त किया था। उन यतियोंमें स्थविरमतिके शिष्य जिनमित्र, शीलेन्द्रबोधि, सुरेन्द्रबोधि, प्रज्ञावर्मन, दानशील और बोधिमित्रके नाम उल्लेखनीय हैं।

राजा रालपच्चनके बौद्धधर्मानुरागसे ईर्षा-परतन्त्र हो उनके छोटे भाई लङ्-दर्म बौद्धधर्मद्वेषी हो गये। उन्होंने ८६० ई०में अपने भाईको यमपुर भेज सिंहासन अपनाया। सिंहासन पर बैठ ये लामाओं पर यथेच्छ अत्याचार करने लगे। यहां तक कि उन्होंने मन्दिर और मठोंको ध्वंस कर लामा-संन्यासियोंको जीवहिंसाकारी कसाईका कार्य करनेके लिये बाध्य किया था। इसके सिवा इनके हुकुमसे कितने बौद्धग्रन्थ जला दिये गये थे।

बौद्धधर्मके प्रति जो उनका घोर विद्वेष था, वह बहुकाल स्थायी न रहा। उनके राज्यकालका तीसरा वर्ष बीतने भी न पाया था, कि लालुङ्ग्वासी लामा पाल दोर्जे मुन्तोस आदिने भयावह वेशभूषा पहन कर उन्हें मार डाला। लामा पालदोर्जे बाउल जैसा अद्भुत पहनावा पहन कर राजमहलके सामने नाचने लगा। राजा ज्यों ही उसे देखने आये, त्यों ही लामाने उन्हें बाणसे विद्ध कर डाला। राजसेना उसे पकड़नेके लिये दौड़ पड़ी। वे कालेसे रंगे घोड़े पर सवार हो नदी तैर कर भाग गये। जलमें घोड़ेका बनावटी रंग धुल गया, असली रंग दिखाई देने लगा। उन्होंने अपना छद्मवेश फेंक कर नया सफेद वस्त्र पहन लिया। इस प्रकार वे सुखसे नदी पार कर गये। कुसंस्काराच्छन्न तिब्बतवासीने उन्हें दूसरा व्यक्ति समझ कर अथवा दैवशक्ति-सम्पन्न जान कर पीछा करना छोड़ दिया। तीरके आघातसे राजा पञ्चत्वको प्राप्त हुए। मरते समय उन्होंने कहा था, "बौद्धधर्म उत्सादनरूप पापपङ्कमें लिप्त होनेसे (३ वर्ष) पहले क्यों न मुझे मार डाला गया।" राजा लङ्-दर्मके मृत्युकालीन इस वाक्यसे बौद्धधर्ममें उनका विश्वास देख उनके बालक पुत्रको लामाओंके प्रति विरुद्धाचरण करनेका साहस न हुआ। इस प्रकार लामागण अपनी खोई हुई शक्तिका पुनरुद्धार कर अपनी प्रतिपत्ति फैलानेमें समर्थ हुए थे।

११वीं सदीके प्रारम्भमें भारतके नाना स्थानोंसे खास कर काश्मीरसे कुछ बौद्धयति तिब्बत आये। उनमेंसे स्मृति, धर्मपाल, सिद्धपाल, गुणपाल, प्रज्ञापाल तथा प्रज्ञापारमिताके अनुवादक सुभूति, श्रीशान्ति आदि यतियोंके नाम उल्लेखनीय हैं। पीछे १०३८ ई०में लामाधर्मसंस्कारक सुप्रसिद्ध बौद्धाचार्य, अतीशने तिब्बतमें पदार्पण किया। वे लामाओंके निकट 'जो-वो-जे दपालल्दन अतीश' नामसे परिचित और देवताकी तरह सम्मानित हुए।*

* भारतवर्षमें वे दीपङ्कर श्रीज्ञान नामसे प्रसिद्ध थे। उनके पिताका नाम कल्याणश्री तथा माताका प्रभावती था। भोट-इतिहासके मतसे बङ्गालके गौड़-राज्यके अन्तर्गत विक्रमपुरके राजवंशमें ९८० ई०को उनका जन्म हुआ। वे ओदन्तपुरी-विहारमें आ कर बौद्ध-यतिधर्ममें दीक्षित हुए थे। सुवर्णद्वीप वा सुवर्णनगरके बौद्धाचार्य सुपरिचित चन्द्रकीर्ति, महाबोधिविहारके उपाध्याय मतिचित्र तथा महासिद्धि नारोके निकट उन्होंने महायानमत और महासिद्धिका अभ्यास किया था। तिब्बत-यात्राकालमें वे मगधके विक्रमशिला सङ्घारामके अध्यापक-पद पर नियुक्त थे। राजा महीपालके पुत्र नयपाल उनके समसामयिक थे।

अतीशके प्रधान शिष्य ड्रोम-टोन संस्कृत कदम-सम्प्रदायके प्रधान महन्त हुए थे। यह सम्प्रदाय साढ़े तीन सौ वर्षके बाद तिब्बतके सुप्रसिद्ध गे-लुग प सम्प्रदाय पर्यवसित हो उसी नामसे प्रतिष्ठित हुआ। अतीशके प्रवर्त्तित कादम-प-सम्प्रदायके अनुकरण पर अर्द्ध संस्कृत कर ग्यु-प तथा शाक्य म सम्प्रदायकी उत्पत्ति हुई थी।

११वीं सदीके शेष भागमें लामाधर्मकी जड़ मजबूत होने पर भी शाक्य प्रभृति स्थानोंमें उसके प्रतियोगी सम्प्रदायकी उत्पत्ति हुई। वे सब सम्प्रदाय स्वतन्त्र भावसे पारमार्थिक मण्डल स्थापन कर अपनी पौरोहित्य शक्तिका विस्तार करने लगे। धर्मयाजकोंकी शक्ति वृद्धिके साथ साथ स्थानीय सरदारोंको शक्ति ह्रास होने लगी। इसी मौकेमें चीन और मोङ्गल-जातिने तिब्बतके नाना स्थानोंमें आ कर अपनी गोटी जमाई।

१२०६ ई०में खाकनमोगलके वंशधर जेनघिज (जेङ्गिस) खाँने तिब्बत पर अधिकार किया। उनके वंशधर प्रसिद्ध चीनसम्राट् खुबिलाई (कुबलाई) खाँ वर्वरने अशिक्षित और असभ्य प्रधान चीन और मोङ्गलीयराज्यमें एक सद्धर्मप्रतिष्ठाके उद्देशसे प्रसिद्ध शाक्यके श्रेष्ठ लामाको (शाक्य पण्डित नामसे परिचय) अपनी राजसभामें बुलाया और बौद्धधर्म ग्रहण किया। तभीसे यह एक नई शक्ति पा कर राजधर्मरूपमें तमाम फैल गया।

खुबिलाई खाँने अपने धर्मोपदेष्टा शाक्यपण्डितको लामाधर्ममण्डलके गुरुपद पर अभिषिक्त किया तथा उसे चीनराज्यपौरोहित्यके पुरस्कार स्वरूप तिब्बतराज्यका शासनकर्त्ता बनाया। इसके बाद १२६१ ई०में उन्हींके यत्नसे उक्त पण्डितके भतीजे मतिध्वज फागसप उपाधिके साथ श्रेष्ठ धर्माचार्यके पद पर प्रतिष्ठित हुए। राजाकी कृपासे इन्हें रोमक पोपकी तरह अधिकार मिला था।

सम्राट् खुबिलाई खाँने लामाधर्मकी उन्नतिके लिये बहु परिश्रम और अर्थव्ययसे मोङ्गलियाके नाना स्थानोंमें तथा पेकिन नगरमें एक बहुत बड़ा संघाराम खोला था। उन्हींके उत्साहसे शाक्यपण्डित मतिध्वजने पण्डितोंसे समावृत हो लामाधर्मके प्रसिद्ध कर-ग्युका ग्रन्थ मोङ्गलीय भाषामें अनुवाद किया।

परवर्ती मुगल बादशाहोंके अधीन शाक्य-पुरोहितोंकी राजकीय प्रधानता धीरे धीरे बढ़ती गई तथा उन्होंने प्रतिद्वन्द्वी लामासम्प्रदायके विरुद्धाचारी हो उन पर अत्याचार करना शुरू कर दिया। १३२० ई०में उन लोगोंने दिकुङ्का सुप्रसिद्ध कर-ग्यु-प संघाराम जला डाला था। १३६८ ई०में मिङ्गराजवंश चीनसाम्राज्यके सिंहासन पर बैठे। उक्त वंशीय सम्राटोंने शाक्य पण्डितोंकी क्षमता खर्व करनेके उद्देशसे कर-ग्यु प दिकुङ्ग और क-दम-प-तपल संघारामके तीनों आचार्योंको तदनुरूप श्रेष्ठ पौरोहित्य-शक्ति प्रदान की थी।

१५वीं सदीके प्रारम्भमें लामा तसोङ्-ख प ने अतीश-प्रवर्त्तित संस्कृत-लामाधर्मका पुनः संस्कार कर गेलुग-प नामसे उसका प्रचार किया। इस सम्प्रदायने धीरे धीरे श्रीवृद्धिलाभ कर तिब्बतमें प्रचलित अन्यान्य सम्प्रदायको कमजोर कर दिया। पांच पीढ़ीके भीतर इस सम्प्रदायके प्रधान धर्मयाजक तिब्बतके पुरोहितराज कह कर विख्यात हुए। उक्त साम्प्रदायिक प्रधान धर्माचार्य आज भी उसी सम्मानसे भूषित हैं।

१०३८ ई०में लामा नग तसोके साथ जब वे नारिखोरसुम पथसे तिब्बत आये, उस समय इनकी अवस्था ६० वर्षकी थी। उन्होंने यहां आ कर लामाधर्मका संस्कार करना चाहा। १०५२ ई०में लामा-नगरीके निकटवर्ती वकठाट् बहारामें उनका देहान्त हुआ। लामामतके संस्कारकार्यमें लिप्त हो उन्होंने स्वमतप्रतिपादक कुछ ग्रन्थ लिखे। उन ग्रन्थोंके नाम ये हैं :— बोधिपथप्रदीप, चर्यासंग्रहप्रदीप, सत्यद्वयावतार, मध्यमोपदेश, संग्रहगर्भ, हृदयनिश्चित, बोधिसत्त्वमण्यावली, बोधिसत्त्वकर्मादिमार्गावतार, शरणागतोपदेश, महायानपथसाधनवर्णसंग्रह, महायानपथसाधनसंग्रह, सूत्रार्थसमुच्चयोपदेश, दशकुशलकर्मोपदेश, कर्मविभङ्ग, समाधिसम्भरपरिवर्त्त, लोकोत्तरसप्तकविधि, गुह्यक्रियाक्रम, चित्तोत्पादसम्वरविधिकर्म, शिक्षासमुच्चय अभिसमय (सुवर्णद्वीपाधिपति राजा धर्मपालने दीपङ्कर और कमलको जो धर्मशिक्षा दी थी वही उसका सारमर्म है) और विमलरत्नलेख। तिब्बत यात्राकालमें दीपङ्कर अतीशने अन्तिम ग्रन्थ मगधराज नयपालको लिख भेजा था। तिब्बतमें ये बोधिसत्त्व मञ्जुश्रीके अवतार कह कर पूजित हैं।

लामा सनोड्-ब-प के भतीजे गेदेन डब उक्त सम्प्रदायके प्रधान धर्माचार्य (Grand Lama) हुए। लोगोंके निकट वे भवतारूपमें समझे जाते थे। १६४० ई०में मुगलराज गुसरी खाँने तिब्बत जीत कर पञ्चम लामाचार्य ङग्-वङ्-लो-सङ्को दे दिया। तभीसे गे-लुग-प सम्प्रदायके लामाचार्यगण राजशक्तिसे भूषित हुए। १६५० ई०में चीन सम्राट्ने उन्हें तिब्बतका अधिराज कबूल कर मोङ्गलीय 'दलई' (समुद्र)की उपाधि दी। तभीसे यूरोपीय परिव्राजकोंके निकट वे तथा उनके वंशधरगण दलई लामा नामसे परिचित हुए हैं। तिब्बतीय समाजमें वे गल-व-रिन-पोछे नामसे प्रसिद्ध हैं।

१६४३ ई०में उन्होंने लासानगरके समीप पहाड़के ऊपर सुप्रसिद्ध पोतल प्रासाद मन्दिर बनवाया। तिब्बतके दूसरे दूसरे लामा-साम्प्रदायिकगण उन्हें तथा उनके वंशधरोंको अवलोकितका अवतार मानते हैं। किन्तु राजशक्तिप्राप्त लामा ङग वङ् अपना शेष जीवन शांतिसे बिता न सके। प्रभुत्वस्थापनमें उद्दाम आकाङ्क्षा तथा शत्रुजातिके विद्रोहसे प्रपीड़ित हो वे इस लोकसे चल बसे। छठे लामा चीन-सम्राट्के हुकुमसे मारे गये। पीछे उन्होंने अपने हाथमें तिब्बतका कर्तृत्व ले कर सारे राज्यमें धर्मनीति और राजनीतिका सामञ्जस्य विधान करके वहां महन्त नियुक्त करनेकी व्यवस्था की। किन्तु गे-लुग्-प सम्प्रदाय पञ्चम लामाकी चलाई प्रथासे दिनों दिन उन्नति कर रहे थे। इसी समय कुछ चीन-राजकर्मचारियोंके तिब्बतमें आने पर भी इस सम्प्रदायके लामाचार्यगण यथार्थमें राज्यके अधीश्वर समझे जाते थे तथा सभी सम्प्रदायभुक्त लामा उन्हींको श्रेष्ठ समझते थे।

यह लामाधर्म केवल तिब्बतमें ही नहीं, दूर दूर देशोंमें भी फैल गया। अभी यह पश्चिममें यूरोपीय काकेससे ले कर पूर्वमें कामस्कट्का तथा उत्तरमें बुरियात् साइबेरियासे दक्षिणमें सिकिम और युन-नान् तक विस्तृत है। इस विस्तृत भूभागमें लामाधर्म विस्तृत होने पर भी यहांको अधिवासियोंकी संख्या बहुत थोड़ी है। किन्तु सब कोई लामाको राजा और धर्मगुरु मानते हैं।

सारे तिब्बत राज्यकी जनसंख्या ४० लाखसे ऊपर नहीं है। उनमेंसे बहुतेरे लामाधर्मोपासक हैं। कुछ भोटवासिगण बोन धर्मसेवी हैं तथा कुछ दोनों ही धर्मको मानते हैं। बोन धर्माचारिगण लामाधर्मके भी पृष्ठपोषक हैं।

यूरोपमें कालमक तातार जातिकी वासभूमि भलगा नदीतीर तक लामाधर्मकी अन्तिम सीमा है। तोरगोत् जातिके भागनेके बाद भी यूरोपके रूसराज्यमें डन और येक नदीके मध्यवर्ती स्थानमें २० हजार घर कालमक तातारका वास था। उनमेंसे करीब लाख मनुष्य लामाधर्मावलम्बी हैं। तोरगोत् जाति अबसे भागी है, तबसे यह वेचकारी पुरोहित लामाको श्रेष्ठ नहीं मानती और न उनका आदेश ही पालन करती है। उन लोगोंमें एक श्रेष्ठ पुरोहित है। आज भी वे लुकछिप कर उन लोगोंकी धर्मरक्षाकी व्यवस्था देते आ रहे हैं। आज भी भलगा नदीके किनारे उनकी धर्मशक्ति फैल रही है। कालमाकोंके श्रेष्ठ पुरोहित अभी भी लामा नामसे पूजित हैं। दलईलामाको सर्वश्रेष्ठ नहीं मानने पर भी रूस गवर्नमेण्टके निर्वाचित एक प्रधान लामाके उपदेशानुसार वे लोग अपने धर्मकी रक्षा करते हैं।

इतिहासका अनुसरण करनेसे जाना जाता है, कि पहले भलगा नदीतट तक दलई-लामाका अधिकार विस्तृत था। उनके निकट दायित्वप्राप्त अनेक बौद्धपुरोहित प्रति वर्ष उन्हें लासानगरीमें राजकर भेजते थे। ये सब लामा पुरोहित अभी स्कायिनर नामसे प्रसिद्ध हैं। तोरगोतोंके भागनेके बादसे स्कायिनरोंने कर भेजना बन्द कर दिया। अवशिष्ट उल्लुस (Ulluse)-के स्कायिनरगण अभी विभिन्न छुसलुमे विभक्त हैं। १८०३ ई०के विवरणसे पता चलता है, कि कालमक जातिको जनसंख्याका दशमांश पुरोहितप्रधान होने तथा स्वजातिसमाजमें प्रभाव फैला कर उनके अर्थोंसे प्रतिपालित होनेके कारण रूस गवर्नमेण्टने १८३८ ई०में प्रत्येक-वर्ग, अन्तोनमकी महायतासे उक्त अर्थोंसिक प्रभावको खर्व कर डाला। पहले दुष्ट और आलसी आदमी अर्थोपार्जनमें अक्षम हो इस पुरोहित-सम्प्रदायका आश्रय लेते थे तथा धर्मप्राण-निरीह बौद्ध-कालमकोंसे धर्मका बहाना कर धनका संग्रह करते थे। रूस गवर्नमेण्टने हजारों शमण एवं पुरोहितोंको सम्प्रदायसे निकाल दिया था।

नेपालमें गुर्खा जातिके प्रादुर्भावसे शैवहिन्दूधर्मका प्रचार हुआ। शैवहिन्दू होने पर भी उनमेंसे अधिकांश नेपाली बौद्ध ही लामामतावलम्बी हैं। वर्त्तमान भूटान देशमें लामाधर्म पूर्णमात्रामें विराजित है। वहांके तासिसूदन जिलेमें ५ सौ, पुनाखामें ५ सौ, पारो जिलेमें ३ सौ, तोङ्गसोरमें ३ सौ, टागनामें २॥ सौ और चन्दीपुर (अन्दीपुर) में २ सौ लामा पुरोहित हैं। इसके सिवा पर्वतगुहामें असंख्य लामासंन्यासी तथा मठमें बौद्ध-भिक्षुणी देखी जाती हैं। मठवासीको छोड़ कर प्रायः ३ हजार लामा-पुरोहित राजकर्म और वाणिज्य व्यवसायमें लिप्त हैं।

सिकिममें लामामत ही राजधर्म है। वहांके लामा तथा साधारण लोगोंका विश्वास है, कि धर्मात्मा पद्मसम्भव (गुरु रिम-पो छे) लामामत स्थापन करनेके लिये तिब्बत जाते समय इसी देश हो कर गये थे। १७वीं सदीके लामा परिव्राजक लहा-त्सुन छेम्पो तिब्बतसे सिक्किम आये थे। उनके विवरणसे मालूम होता है, कि उस समय वहांके अधिवासी अज्ञानान्धकारमें निमज्जित थे। शायद उनके आनेके बाद सिकिमवासी लामाधर्ममें दीक्षित हुए होंगे। वे यहां परित्राणकर्त्ता धर्मात्मारूपमें पूजित होते हैं।*

१७वीं सदीके शेष भागमें लहा-तसुन छेम्बोकी मृत्युबादसे सिकिममें लामाधर्म धीरे धीरे फैल गया तथा थोड़े ही समयमें बौद्धयति और सङ्घाराम सिकिमराज्य आच्छन्न हो गया। अतएव सिकिमवासीकी सभ्यता और साहित्य तथा लेपछा जातिकी वर्णमालाका उत्पत्तिकाल लामाधर्मकी सहायतासे परिपुष्ट हुआ है, ऐसा कहा जाता है। सिकिममें ञिङ-मन्प और कर ग्यु-प (कर-म-प) सम्प्रदायका प्रभाव ही अधिक है। वहां दुक्-प-सम्प्रदायका कोई मठ नहीं देखा जाता।

पहले ही लिखा जा चुका है, कि तिब्बतमें लामाधर्मके विस्तारके साथ साथ उसके कितने साम्प्रदायिक विभाग संगठित हुए। भारतीय महायान और तान्त्रिक बौद्धमत तथा भोट-जनपदस्थ प्राचीन शौन-धर्मको पश्चात कर वहांके लामामतकी उत्पत्ति हुई है। ७४७ ई०में ओगेन या उद्यानवासी गुरु पद्मसम्भवकी चेष्टासे परिवर्द्धित होने पर भी वह उतनी प्रतिष्ठालाभ न कर सका। ८९९ ई०में राजा लङ् दर्मने बौद्धधर्मका उच्छेद करनेकी कामनासे बौद्धोंके प्रति विशेष अत्याचार करना शुरु कर दिया। उस समय तिब्बतमें प्रतिष्ठित बौद्धमत धीरे धीरे हीनप्रभ हो गया। उसके बादसे ले कर महात्मा अतीशके शुभागमन तक लामाधर्म फिर उठ कर खड़ा न हो सका। १०५० ई०में अतीश और उनके शिष्य ब्रोम-स्तोङ् कदम प सम्प्रदायकी स्थापना कर आदि लामाधर्मके संस्कारक कह कर पूजित हुए। इस शाखामतावलम्बी सुप्रसिद्ध लामा लासोन-ख प ने १४०७ ई०में गाल्दन् संघाराम स्थापन कर बौद्धधर्म फैलाना चाहा। १६४० ई०में यही तिब्बतके पारमार्थिक-मण्डलरूपमें गिना जा कर संस्कृत गेलुगप (कदम-प शाखान्तर्भुक्त) सम्प्रदाय नामसे प्रतिष्ठित हुआ। १६४० ई०से यह पारमार्थिक मण्डलेश्वर वर्त्तमान समय तक इस साम्प्रदायिक मत और अपने प्रभावको एक नजरसे देखते आ रहे हैं।

१०६२ ई०में ञिङ्-म-शाखा प्रतिष्ठित हुई। यह १३वीं सदीके शेष भाग तक अच्छी तरह संस्कृत हो आखिर ञिङ् माप सम्प्रदायरूपमें प्रधान हो गई है। १५वीं सदीके शेषार्द्धसे ले कर १७वीं सदीके मध्यभाग तक इस सम्प्रदायके शाखानुरूपमें यथाक्रम ओर्गेन-प दोर्जे तक प मिन्द्रोलिङ-प, ङ दक-प, कर्नोक-प और लहा-तसुन-प आदि सम्प्रदायोंकी सृष्टि हुई है। ये सब सम्प्रदाय ञिङ्-म-प या प्राचीन असंस्कृत लामा मतसम्बन्धीय शाखा नामसे प्रसिद्ध हैं।

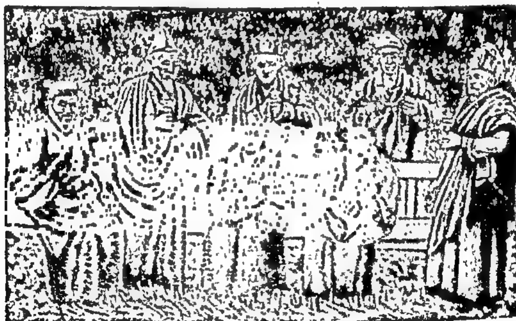
१०७२ ई०में शाक्य मोनने जो शाखा प्रवर्त्तित की, वह शाक्य प-शाखा नामसे फैल गई है। उससे १३वीं सदी-

* लहा तसुन छेम्बोने दक्षिणपूर्व तिब्बत भूभागके कोङ्गबू जिलेकी त्सङ्गपो (ब्रह्मपुत्र) उपत्यकामें १५९५ ई०को जन्मग्रहण किया था। ये वहांसे सिकिम आते समय राहमें नाना बौद्ध-सङ्घाराम होते हुए १६४८ ई०में लासानगर पहुंचे। यहां पहले दलई-लामा ङग-वङ्के साथ उनकी भेंट हुई। ये भारतीय बौद्धाचार्य महात्मा भीममित्रका अवतार कह कर प्रसिद्ध हैं। वर्त्तमान नेमिओङ्गछि-सङ्घारामके प्रतिष्ठाता जिक्मी-प वो उन्हींके अवतारमें जन्म लिया था।

के मध्यभागमें ञोनङ-प शाखाकी उत्पत्ति हुई है। १७वीं सदीके मध्य भागमें तारनाथने ञोन-ङ प शाखाका मत प्राधान्य स्थापन किया। १५वीं सदीके प्रथमार्द्धमें शाक्यप शाखासे ङोर-प नामक एक दूसरी शाखा संगठित हुई, यह प्रधानता लाभ न कर सकी।

११वीं सदीके शेष भागमें मर-प और मिल रस-प शाखा स्थापन कर गये हैं। लामा द्वग्-पो-लह्जे उक्त साम्प्रदायिक मतकी प्रतिष्ठा कर जनसाधारणमें उसके प्रवर्त्तक रूपमें परिचित हुए थे। लगभग ११४२ से १२२० ई०के मध्य कर-ग्यु-प सम्प्रदायसे पृथक् और संहतभावमें दिगुङ्-प, कर्म-प तथा प्राचीन या उत्तर डुक्-प (२१६० ई०) शाखाकी उत्पत्ति हुई। आखिर १२१० ई० में उक्त डुक्-प सम्प्रदायसे संहतभावमें मध्य और दक्षिण भोटान्तके डुक-प तथा फिरसे १२२० ई०में उक्त भोटान्त डुक-पसे आधुनिक या दक्षिण डुक-प शाखाका उद्भव हुआ था। १२वीं सदीके शेषभागमें दिगुङ-प शाखासे तलुन-प नामक एक और स्वतन्त्र शाखाकी उत्पत्ति हुई। कर्ग्यु-प और शाक्यप सम्प्रदायाश्रित शाखाएं अर्द्ध संस्कृत लामामत नामसे प्रसिद्ध हैं।

वर्त्तमान समयमें कोई कोई लामा गुरु पद्मसम्भवकी गुहामें छिपा कर रखे हुए प्राचीन धर्मग्रन्थको खोदाई कर जो सब शाखा-मत प्रचार करनेकी चेष्टा करते हैं, वे सब 'तेर-म' या गुरुके अभिव्यक्त साम्प्रदायिक मत ञिङ्-म-प सम्प्रदायके अन्तर्भुक्त माने जाते हैं। इसमें शमानी बोन-प और भूतादिकी उपासनाके साथ विशुद्ध लामा-मतका समन्वय दिखलाया गया है। उपरोक्त विभिन्न सम्प्रदायकी पद्धति परस्पर पृथक् है। उन लोगोंका परिच्छद और शिरस्त्राण भी अलाहदा है। नीचे दिये गये चित्रोंसे इसका पता चलेगा।



मोङ्गललामा शे-रब। कर्-ग्यु लामा। ञिङ्मप लामा।
लामा उगेन-ग्य-त्सो। सिद्-भा लामाइय। कर्म्मलामा।

उपरोक्त सम्प्रदायसमष्टिके विस्तार और प्रतिष्ठाके साथ साथ लामाधर्मराज्यमें असंख्य मठ और सङ्घारामकी प्रतिष्ठा हुई। इन सब विभिन्न शाखा-सम्प्रदाय और उनके अन्तर्भुक्त विभिन्न मठादिका विवरण विस्तार हो जानेके भयसे यहां पर नहीं दिया गया। सांसारिक प्रलोभनसे निलिप्तभावमें अवस्थान करना ही बौद्धयतियोंका प्रधान कर्म है। क्योंकि इससे वे निश्चिन्त मनसे ईश्वरकी उपासना कर सकते हैं। यही कारण है, कि वे लोग निर्जन और प्रलोभनशून्य निर्जन प्रदेशमें आ कर वास करते हैं। यही सब धामस्थान बौद्ध

सङ्घाराम या मन्दिर कहलाते हैं। लामाधर्म फैलानेके लिये तिब्बत-राज्यमें तथा उसके आस पास चीन, मोङ्गलीय, रूस आदि विभिन्न देशोंमें नाना सङ्घाराम और मन्दिर प्रतिष्ठित हैं। उन सब स्थानोंको भोटभाषामें गोन-प (निर्जन स्थान) कहते हैं। नीचे कुछ विभिन्न देशों प्रसिद्ध सङ्घारामके नाम दिये गये हैं,—

तिब्बत—तषिलहुणपो, शास्क्य, मिन्द्रोलिङ्, हीमिस (लादक), सङ्-ङ छो लिङ्ग, पद्मम यङ तसे (पेमिओङ्गछि), त-क-तपि रिङ्, फो-दङ, ल मङ, दोर्जेलिङ (दार्जिलिङ्ग), देडाङ, रि-गोन्, तु-लुङ्, पन चे, डुग दे, फनशङ, कचो पल-रि, मणि, से-गोन, पङ गङ, लहुन तसे, नम-तसे, तसुन डाङ, रव-लिङ्ग, तुव लिङ्ग दे-चिय-लिङ। ये सब स्थानके नामानुसार प्रसिद्ध हैं। इनके सिवा सम-यास, गाःलदन, दे-पुङ्ग, सेर र, नम-ग्यल-छोई-दे, रमो-छे और करमपंच, देपेरिप-गय, जन-लछे, छमन मरिन (१२२२० फुट ऊंचा), दोच्चो-लुगु-दोङ, शाक्य या शास्क्य, र-रेङ्ग, तिङ्ग गे, फुन-तयोगतलिङ, सम-दिङ (१४५१२ फुट ऊंचा), दि-कुङ्ग (वि-गुङ), स्मिन-म्रोल-ग्लिङ (मिन्द्रोलिङ्ग), दोर्जे दग, दपल-रि, पालु, गुरु-छो-वङ्, रुङ्ग-कर-गु-थोक, वछु-छ, गैन-तनि, ब्रेजे, छाव-मेद्रा, कार्थोक, रिछचे, दोर्जे-यु, मर-पुङ्-ले ह-पुङ्, सेन देलदेम, फु प टोन, कोन्-देम, भो-लुन्, छमनक, क्योन-स, नरतोन, रिण-छेन-सुन, तसेनचुक्, रयुन, और देमू आदि प्रधान प्रधान कई संघाराम विद्यमान हैं। समूचे तिब्बतके मठाश्रम या सङ्घारामकी संख्या ३ हजारसे कम नहीं होगी। इन सब प्रसिद्ध सङ्घारामकी बगलमें पवित्र छोते-न (चैत्य या स्तूप) तथा मेनदोङ (स्मृतिस्तम्भ) विद्यमान देखे जाते हैं।

चीन—युन-हो-कोङ्ग या प्रसिद्ध पेकिन-सङ्घाराम, कु-तै-यान, कुम्बुम (यहां एक श्वेतचन्दनका वृक्ष है। कहते हैं, कि यह वृक्ष तसोङ-ख-पाके जन्मकालीन निःस्रावित रक्तसे उत्पन्न हुआ था। उसके पत्ते रंग विरंगके हैं। प्रत्येक पत्तेमें नरसिंह तथागतकी मूर्त्ति अङ्कित है। पाश्चात्य प्रत्नतत्त्वविन् हुकने उस पत्तेको देख कर लिखा है, कि उसके पत्तेमें तिब्बतीय वर्णमाला विन्यस्त है। यह अनैसर्गिक व्यापार सचमुच विस्मयकर है) तथा ओ-थो-ख-ङ नामक बड़ा मन्दिर है।

मङ्गोलिया—उर्ग फुरेन और तारानाथ मन्दिर। यहां ३० हजार बौद्धयति तथा कुकु-खोतुन विभागके पांचके सङ्घाराममें प्रायः २० हजार लामा रहते हैं।

साइबेरिया—बैकाल ह्रदके निकटवर्त्ती सेलिंजिनस्कके उत्तर-पश्चिममें अवस्थित एक सङ्घाराम। यहांके मठाचार्य वरियातोंके मध्य खानेपा पण्डित नामसे परिचित हैं।

यूरोप—भलगा नदीतीरवर्त्ती कालमक तातारोंका मन्दिर 'खुरुल' कहलाता है। यह साधारणतः तम्बूसे बनाया जाता है। ये सब तम्बू प्रधानतः दो भागोंमें विभक्त हैं:—जहां पुरोहित रहते हैं उसका नाम खुरुल्लुम-ओपर्गों और जहां देवमूर्त्ति और धर्मसंक्रान्त चित्रावली सज्जित रहती है उसका नाम दिचतानोषा खुर्ल्लोनुन-ओपर्गो है। एक एक खुरुल्लमें सौसे ऊपर पुरोहित रहते देखे जाते हैं।

लदाक या छोटा तिब्बत—हेमि या हीमिस, लमयुर रु, मथोग्लिङ्ग, (तुर्किस्तानके मानचित्रमें थोत्लिङ्गमठ), येग छोम, कोहदजोगस, चम ले, मथो, स्पिथुग, शेर-गल, चिव गङ, गु गे, कनुम-दुब-लिङ, पोंच और पङ्ग गि।

नेपाल—यहांकी मिन्न उपत्यकामें कोई सङ्घाराम नहीं देखा जाता। उत्तर-दिग्वर्त्ती अधित्यका-विभागमें है या नहीं कह नहीं सकते। यहांके बौद्धतीर्थोंमें बहुतेरे लामाओंका वास है।

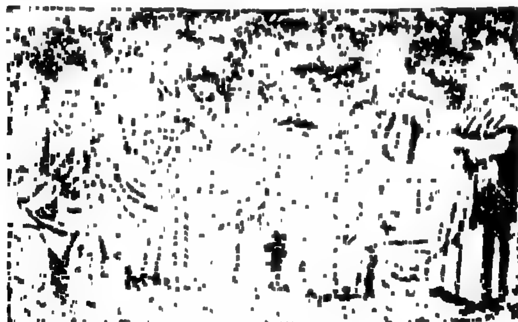
भूटान—तापि-छोद-सोङ्ग, पुन-थाङ, उग्य न-त-से, ताकरो, वाह, रतम-छोग गेन, क ह-लि, सम-जिन, खाछागस गेन खा, छाल-फुग, फालिमपोङ्ग, पेछोङ्ग आदि। भूटानके महालामा धर्मराज और देवराज तापिछोदसङ्घ सङ्घाराममें वास करते हैं।

सिकिम—सङ्गछेलिङ, दुबदि, पेमिओङ्गछि, गङ्टोक, तपिदिङ्ग, सेनन, रिनचिनपोङ्ग, रलोङ्ग, मलि, रम-थेक, फदुङ्ग (फोयङ), छेउङ्ग-टोङ्ग, केदसुपेरि, लछुङ्ग, तलुङ्ग (दो-लुङ), पएटछि, फेनसुङ्ग, करतोक, दलिङ्ग (दों-ग्लिङ), यनगङ्ग (यङ-सगङ), वलमङ, लघुङ्ग, लहुनत्से, सिनिक (जिमिग), रिङ्गिम (म्रङ्गोन), लिङथेम, रत्सग-नेस, लछेन, लिङ्खोद, फदुङ्ग (फग्सुर्योङ),

के मध्यभागमें ङोनङ-प शाखाकी उत्पत्ति हुई है। १७वीं सदीके मध्य भागमें तारनाथने ङोन-ङ प शाखाका मत प्राधान्य स्थापन किया। १५वीं सदीके प्रथमार्द्धमें शाक्यप शाखासे ङोर-प नामक एक दूसरी शाखा संगठित हुई, यह प्रधानता लाभ न कर सकी।

११वीं सदीके शेष भागमें मर-प और मिल रस-प शाखा स्थापन कर गये हैं। लामा ढग्-पो-लहजे उक्त साम्प्रदायिक मतकी प्रतिष्ठा कर जनसाधारणमें उसके प्रवर्त्तक रूपमें परिचित हुए थे। लगभग ११४२ से १२२० ई०के मध्य कर गु-प सम्प्रदायसे पृथक् और स्वतन्त्रभावमें दिकुङ्-प, कर्म-प तथा प्राचीन या उत्तर दुक्-प (२१६० ई०) शाखाकी उत्पत्ति हुई। आखिर १२१० ई०में उक्त दुक्-प सम्प्रदायसे स्वतन्त्रभावमें मध्य और दक्षिण भोटान्तके दुक्-प तथा फिरसे १२२० ई०में उक्त भोटान्त दुक पसे आधुनिक या दक्षिण दुक्-प शाखाका उद्भव हुआ था। १२वीं सदीके शेषभागमें दिकुङ-प शाखासे तलुङ-प नामक एक और स्वतन्त्र शाखाकी उत्पत्ति हुई। करग्यु-प और शाक्यप सम्प्रदायाश्रित शाखाएं अर्द्धसंस्कृत लामामत नामसे प्रसिद्ध हैं।

वर्तमान समयमें कोई कोई लामा गुरु पर्वतालयकी गुहामें छिपा कर रखे हुए प्राचीन धर्मग्रन्थको खोज कर जो सब शाखा-मत प्रचार करनेकी चेष्टा करते हैं, वे सब 'तेर-म' या गुरुके अभिव्यक्त साम्प्रदायिक मत ञिङ्-म-प सम्प्रदायके अन्तर्भुक्त माने जाते हैं। इसमें नगानी बोन-प और भूतादिकी उपासनाके साथ विशुद्ध लामामतका समन्वय दिखलाया गया है। उपरोक्त विभिन्न सम्प्रदायकी पद्धति परस्पर पृथक् है। उन लोगोंका परिच्छद और शिरस्त्राण भी अलाहदा है। नीचे दिये गये चित्रोंसे इसका पता चलेगा।



गोङ्सलामा शे-राब।   कर्-गु लामा।   शाक्यपलामा।
लामा उर्गेन-नव् ग्यो।   ञिङ्-मा लामाद्वय।   कर्मलामा।

उपरोक्त सम्प्रदायसमष्टिके विस्तार और प्रतिष्ठाके साथ साथ लामापर्वतप्रान्तमें असंख्य मठ और सङ्घारामकी प्रतिष्ठा हुई। उन सब विभिन्न शाखा-सम्प्रदाय और उनके अन्तर्भुक्त विभिन्न मठादिका विवरण विस्तार हो जानेके भयसे यहां पर नहीं दिया गया। सांसारिक प्रलोभनसे निर्लिप्तभावमें अवस्थान करना ही बौद्धयतियोंका प्रधान कर्म है। क्योंकि इससे वे निश्चिन्त मनसे ईश्वरकी उपासना कर सकते हैं। यही कारण है, कि ये लोग निर्जन और प्रलोभनशून्य निर्जन प्रदेशमें जा कर वास करते हैं। यहां सब प्रायस्थान बाधोंके

सङ्घाराम या मन्दिर कहलाते हैं। लामाधर्म फैलानेके लिये तिब्बत-राज्यमें तथा उसके आस पास चीन, मोङ्गलीय, रूस आदि विभिन्न देशोंमें नाना सङ्घाराम और मन्दिर प्रतिष्ठित हैं। उन सब स्थानोंको भोटभाषामें गोन-प (निर्जन स्थान) कहते हैं। नीचे कुछ विभिन्न देशों प्रसिद्ध सङ्घारामके नाम दिये गये है,—

तिब्बत—तपिलहुणपो, शास्यय, मिन्द्रोलिङ्, हीमिस (लादक), सङ्‌ङ छो लिङ्ग, पद्म यङ तसे (पेमि ओङ्गछि), त-क-तपि रिङ्, फो-टङ, ल मङ, दोर्जेलिङ (दार्जिलिङ्ग)। देडाङ, रि-गोन्, मृ-लुङ्, पन चे, तुम दे, फनजङ, कव्री पल-रि, मणि, से-नोन, पङ गङ, लहुन तसे, नम-तसे, तमुन ठाङ, रच-छिङ्ग, तुप लिङ्ग दे-चिय-लिङ। ये सब स्थानके नामानुसार प्रसिद्ध हैं। इनके सिवा सम-यास, गाःलदन, हे-पुङ्ग, सेर र, नम-ग्यल-छोई-दे, रमो-छे और कर्म-चय, देपेरिप-नाय, जन-लछे, छमम मरिन (१२२२० फुट ऊंचा), दीवर्दा-लुगु-दोङ, शाक्य या शास्यय, र-रेङ्ग, तिङ्ग-गे, फुन-तयोगसगिलङ, सम-दिङ (.१४५१२ फुट ऊंचा), दि-कुङ्ग (धि-गुङ), स्मिन-ग्रोल-गिलङ (मिन्दोलिङ्ग), दोर्जे दग, दपल-रि, पालु, गुरु-छो-यङ्, रङ्ग-कर-गु-थोक, वङ्गु-छ, गैन-तमि, देर्ज, छाय-मेश्ग, कार्योक, रिछचे, दोर्जे-यु, मर-पुङ्-लेग-पुङ्, मेल देलदेम, फुप रोन्, कोन्-देम, भो-लुन्, छमनक, क्योन-स, नरतोन, रिण-छेन-सुन, तसेनचुङ्, स्पुन, और देमू आदि प्रधान प्रधान कई संघाराम विद्यमान हैं। समूचे तिब्बतके मठाश्रम या सङ्घारामकी संख्या ३ हजारसे कम नहीं होगो। इन सब प्रसिद्ध सङ्घारामकी बगलमें पवित्र छोते-न (चैत्य या स्तूप) तथा मेनदोङ (स्मृतिस्तम्भ) विद्यमान देखे जाते हैं।

चीन—युन-हो-कोङ्ग या प्रसिद्ध पेकिन-सङ्घाराम, कुन्‌तै-यान, कुम्बुम (यहां एक श्वेतचन्दनका वृक्ष है। कहते हैं, कि यह वृक्ष तसोङ-ख-पाके जन्मकालीन निःस्रावित रक्तसे उत्पन्न हुआ था। उसके पत्ते रंग बिरंगके हैं। प्रत्येक पत्तेमें नरसिंह तथागतकी मूर्त्ति अङ्कित है। पाश्चात्य प्रत्नतत्त्ववित् हुकने उस पत्तेको देख कर लिखा है, कि उसके पत्तेमें तिब्बतीय वर्णमाला विन्यस्त है। यह अनैसर्गिक व्यापार सचमुच विस्मयकर है) तथा जो-वो-ख-ङ नामक बड़ा मन्दिर है।

मङ्गोलिया—उर्ग कुरेन और तारानाथ मन्दिर। यहां ३० हजार बौद्धयति तथा कुकु-खोतुन विभागके पांचके सङ्घाराममें प्रायः २० हजार लामा रहते हैं।

साइबेरिया—बैकाल ह्रदके निकटवर्त्ती सेलिंजिनस्क-के उत्तर-पश्चिममें अवस्थित एक सङ्घाराम। यहांके मठाचार्य बरियातोंके मध्य खानेपा पण्डित नामसे परिचित हैं।

यूरोप—भलगा नदीतीरवर्त्ती कालमक तातारोंका मन्दिर 'खुरुल' कहलाता है। यह साधारणतः तम्बूसे बनाया जाता है। ये सब तम्बू प्रधानतः दो भागोंमें विभक्त हैं।—जहां पुरोहित रहते हैं उसका नाम खुरु-ल्लुन-ओपर्गो और जहां देवमूर्त्ति और धर्मसंक्रान्त चित्रावली सज्जित रहती है उसका नाम शिचतानोवा युर्च्छा-तुन-ओपर्गो है। एक एक खुरुलमें सौसे ऊपर पुरोहित रहते देखे जाते हैं।

लदाक वा छोटा तिब्बत—हेमि या हीमिस, लमयुर ङ, मधोगिल्ङ्ग (तुर्किस्तानके मानचित्रमें थोत्लिङ्ग-मङ), थेग छोम, कोठदगोगस, थम ले, मघो, हिपथुग, शेर-गल, चिप गङ, गु गे, कनुम-डुब-लिङ, पोंचि और पङ्ग गि।

नेपाल—यहांकी निम्न उपत्यकामें कोई सङ्घाराम नहीं देखा जाता। उत्तर-दिग्वर्त्ती अधित्यका-विभागमें है वा नहीं कह नहीं सकते। यहांके बौद्धतीर्थोंमें बहुतेरे लामाओंका वास है।

भूटान—तापि-छोद-सोङ्ग, पुन-गाङ, उयन-ल-से, वाकरो, बाह, स्तम-छोग गेन, मरु-लि, सम-भिन, ला-छागस-गेन खा, छाल-फुग, कालिमपोङ्ग, पेछोङ्ग आदि। भूटानके महालामा धर्मराज और देवराज तापिछोदसङ्घ सङ्घाराममें वास करते हैं।

सिकिम—सङ्कछेलिङ, दुबदि, पेमिओङ्गछि, गण्टोक, तपिदिङ्ग, सेनन, रिनचिनपोङ्ग, रलोङ्ग, मलि, रम-थेक, फदुङ्ग (फोयङ), छेउङ्ग-टोङ्ग, केटसुपेरि, लछुङ्ग, तलुङ्ग (तो-लुङ), पण्टछि, फेनसुङ्ग, करतोक, दलिङ्ग (दों-गिलङ), यनगङ्ग (यङ-सगङ), बलमङ, लछुङ्ग, लहुन-रत्से, सिनिक (जिमिग), रिङ्गिम (म्रदगोन), लिङ-थेम, रत्सग-नेस, लछेन, लिङ्गोर, फदुङ्ग (फगसुर्याल),

गोम्पिङ्ग (गुम्लिङ्ग), नमची, पन्धिया, मङ्ग ल्याम।

ये सब सङ्घारामवासी बौद्धयतिगण तिब्बतीय विभिन्न सम्प्रदायको आश्रय कर अपने अपने साम्प्रदायिक मतकी रक्षा करते आ रहे हैं। धर्मसम्प्रदायके पृथक् ताके अनुसार उनके सिर पर लाल और पीली पगड़ी देखी जाती है। सिक्किममें जितने मन्दिर हैं उनका अधिकांश निङ्ग म सम्प्रदाययुक्त है। केवल नमची, ताशि दिङ्ग, सिमोन और मङ्ग मोछे सङ्घाराममें रूपकल्प तथा रलौंग और गोलिङ्ग मन्दिरमें रलौंकल्प ज्ञानामत चिन्तारत्न देखा जाता है।

पूर्वकथित सङ्घाराम और मन्दिरको छोड़ कर तिब्बतके नाना स्थानोंमें मन्दिर विराजित हैं। उन सब मन्दिरोंमेंसे लासा नगरीका सुवृहत् मन्दिर ही सर्वप्रधान है। मन्दिरको द्वारसे ले कर गर्भगृह तक जगह जगह नाना देवमूर्त्ति देखी जाती हैं जिनमेंसे द्वारपालोंकी आकृति बड़ी ही भयावनी है। लामाराज्यके पश्चिमदिक्-पति विरूपाक्ष, दक्षिण-दिक्पति विरूढक, भूतोंकी ईश्वरी देवीमूर्त्ति, हस्त तालमा भूतिनी मूर्त्ति, वज्रपाणि मूर्त्ति; पूर्वदिक्पति धृतराष्ट्र तथा उत्तरदिक्पति यक्षेश्वरके वैश्रवण; यम, अग्नि, वायु, वरुण, यक्ष, रक्षः, सोम, ब्रह्म, इन्द्र और भूपति नामक दशलोक-पालमूर्त्ति आदि देवचित्र चित्ताकर्षक हैं। इनके सिवा यहां अमिताभ, अमितायु, नागार्जुन, मञ्जुश्री, सामन्त-भद्र, वज्रपाणिरक्षक, अवलोकित, तारा, एकविंश तारा-मूर्त्ति, पद्मसम्भव, ज्ञानरक्षित, अतीश, वज्रधर, मरण, सिन्दूर व, ज्ञानपुरा, अक्षोभ्य, अमोघसिद्धि, वैरोचन, रत्नसम्भव, मरीचि वा वाराहीमूर्त्ति, वज्रभैरवमूर्त्ति, हय ग्रीवमूर्त्ति, विभिन्न शक्ति (काली) मूर्त्ति, विभिन्न डाकिनी, यक्षिणी, गन्धर्व, असुर, किन्नर, महोरग, गरुड़ आदि असंख्य बुद्ध, बोधिसत्त्व, बौद्धाचार्य, कुलदेवता, अन्य-देवता तथा डाकिनी, भूतिनी और तान्त्रिक हिन्दू देव-देवी मूर्त्ति तिब्बतीय लामा समाजमें पूजित होती जाती हैं।

लामागण विशुद्धतोंके प्रेतोद्देश श्राद्ध और पिण्ड-दानादि बड़ी श्रद्धापूर्वक करते हैं। ये लोग यमराज-की नरकका अस्तित्व मान कर विश्वास करते हैं। सञ्जीव, कालसूत्र, सङ्घात, रौरव, महारौरव, तापन, प्रता-पन और अवीचि नामक ८ अग्निमय तथा अर्बुद, निर-र्बुद, अतट, हहव, उत्पल, पद्म और पुण्डरीक नामक ८ शीतमय और तद्भिन्न पृथ्वीपृष्ठ पर, पर्वत पर, मरु-देशमें, उष्ण प्रस्रवण और हस्तिदिमें प्रायः ८४ हजार नरक निरूपित हैं। ये सब नरक 'लोकान्तरिक' नामसे प्रसिद्ध हैं। नरकसे ऊपर और स्वर्गसे नीचे ये प्रेत-लोककी कल्पना करते हैं।

लामायतियोंकी मृतदेह ध्यानी बुद्धकी तरह आसन पर बैठा कर गाड़ी जाती है। जहां उन लोगकी समाधि होती है, यह स्थान तीर्थरूपमें गिना जाता है, तिब्बतियों-के लामाओंकी लाश जलाई जाती है। पीछे उस भस्म वा अस्थिको गाड़ कर उसके ऊपर एक एक बुद्ध-मूर्त्ति स्थापित कर देते हैं। साधारण व्यक्तिके मरने पर किसी प्रकारका उत्सव नहीं मनाया जाता। कहीं कहीं ये लोग लाशको पर्वत पर फेंक देते हैं। कहीं कहीं लाश फेंकनेके लिये दीवारसे घिरा हुआ स्थानविशेष विद्यमान है। मङ्गोलीय लामा कभी कभी मृतदेहको गाड़ देते हैं और उसके ऊपर पत्थरके टुकड़े रख कर जन्ममृत्युका संक्षिप्त इतिहास लिख रखते हैं। पर्वत पर इस उद्देशसे लाश फेंकी जाती है, जिससे मांस खाने-वाले पशु पक्षी उसका मांस खायें। कहीं कहीं ये लाशको जलाते भी हैं। छोटे छोटे बच्चोंके मरने पर उनके माता पिता उन्हें रखनेको वनमें फेंक देते हैं। स्पितिमें श्राद्ध, समाधिस्थ वा नदीके जलमें बहा देने-का नियम है। मृत्युके बाद प्रेतकी मङ्गलकामनासे ये लोग मन्त्र पढ़ते हैं। एकमात्र लाल पगड़ी पहननेवाले लामाओंमें लोक लामा ही विवाह करते हैं।

तिब्बतीय बौद्धधर्मका कुमरा दूसरा हाल परिव्राजक बौद्धाचार्योंकी जीवनीमें तथा बौद्धधर्म, धर्मरत्नसमुच्चय, अवधान, मौलिकविद्या, ज्योतिर्विद्या और तिब्बत शब्दमें संक्षेपमें दिया गया है। अतएव यहां पर इसका उल्लेख नहीं किया गया।

१ दलाई लामाओंकी तालिका।

संख्या।	नाम।
१	गेंदुन ग्रुब्।

२ दगेदुन ग्रामत्पो ।
३ यसोद तमून् ।
४ पोन् ताम् ।
५ ङग दङ ब्लोव सन् ग्यमत्पो ।
६ तपङस् छ्रुस ग्यमत्पो ।
७ स्कल् बजन् ।
८ भम् दपल ।
९ लुङ् तोंगस् ।
१० तपुञ ग्यस् ।
११ मखस प्रब् ।
१२ फ्रिन् लस् ।
१३ थुग् बस्तान् ।

इस वंशके प्रतिष्ठाता महालामा गेदुनका प्रवश स्के-थो निकट किसी स्थानमें जन्म हुआ। पीछे उन्होंने तसिलहुण-पो सङ्घारामकी स्थापना की थी। छठे लामाके चरित्रदोषसे राज्यच्युत और निहत होने पर तातारराज गिचिकर खाँने पोतल-मठके अध्यक्षपद पर छगफोरिलस् ङग् यङ्-येचे-ग्यमत्पोको नियुक्त किया। किन्तु थोड़े ही दिनोंमें यह घोषणा कर दी गई कि लिथङ्ग नगरमें देपुङ्ग सङ्घारामके एक बौद्धयतिके पुत्ररूपमें कलजङ नामक छठे लामाने जन्म लिया। इस पर चीन-सम्राट्ने उस बालकको कारारुद्ध कर १७२० ई०के युद्धपर्यंन्त तातार-राजके नियोजित लामाको ही लासा नगरीके धर्मगुरु-पद पर नियुक्त रखा। १७२८ ई०में नरहत्याके अपराधमें उन्होंने भोटराजको तख्त परसे उतार दिया और छोतिन सङ्घा-रामके फेशरी रिनपोछेको उनके पद पर अभिषिक्त किया। इसके कुछ समय बाद उन्होंने फिरसे अपनी धाक जमाई। उनके राजत्वकालके १७४९ ई०में चीन-राजशक्ति तिब्बतसे हटा दी गई।

नवें, दशवें, ग्यारहवें और बारहवें महालामा बच-पनमें ही अपने अपने अभिभावक द्वारा विष खिलवा कर यमपुर भेज दिये गये। शेषोक्त लामा तेरह ही वर्षकी अव स्थाम इस लोकसे चल बसे। पीछे १३वें लामा खुब-तसान उस पदके अधिकारी हुए।

सुप्रसिद्ध "तापि" लाम्यवंश।

१ खुग् प लहस तुसस—रतनग सङ्घारामके एक बौद्धयति।
२ शाक्यय पण्डित।
३ युन् स्तोन दोर्जे पाल।
४ मसग्रत गेलेगपालजङ्गा।
५ पञ्चेन् सोदनम पगोग् फित्गलङपो।
६ चेन स प लोजन दोङ्ग ग्रब।

ये सब बौद्धयति या 'तापि' लामा नामसे प्रसिद्ध थे या नहीं, कह नहीं सकते। क्योंकि तषिलहूणपोका प्रसिद्ध सङ्घाराम १५वीं सदीके प्रथम भागमें प्रतिष्ठित हुआ। अतएव उक्त तालिकाके अन्तिम दो लामाको ही तत्साम-यिक मान सकते हैं। पञ्चेन रिनपोछे उपाधिधारी निम्नोक्त लामागण ही प्रकृत तापि-लामारूपमें सर्वत्र पूजित होते हैं।

१ लोंजङ छोस् क्यि ग्यालमत्सन।
२ „ येचे दपल जङ पो।
३ „ दपल लदन् येचे।
४ ऑस्तान पदि निम।
५ ऑदपालादन छोस् क्यि।

शाक्य-साम्प्रदायिक लामाचार्य गण।

१ शाक्य यसङ्पो।
२ यङ यत्सुन।
३ यन्-करपो।
४ छ्यङरिन स्कोम्प।
५ कुङ्गरङ्ग।
६ यङ यङ।
७ छङदेरि।
८ अङलेन।
९ लेगस-प-दपल
१० लेङ गे दपल।
११ ओद्-जेर दपल।
१२ ओद् सेर-सेङ्गे।
१३ कुनरिन।
१४ दान, चोद-दपन।
१५ योन यत्सुन।
१६ ओद-सेर सेङ्गेद्देय।
१७ ग्यैल च-सङपो।
१८ द्रङ-चयङ्ग दपल।

१९ लोद्-गन-डुपन।

२० र्देब-न तसन ग्येर।

२१ डङ्-प तन्तुन।

ये महाचार्यगण आज भी 'शापय पम छेन' कहलाते हैं। भूटानके महाचार्य महालामागण कर-ग्यु व सम्प्रदायके दक्षिण-दुक व शाखाके अन्तर्भुक्त हैं। इन भूटानियोंके श्री सन्नोके पहले बङ्गालकी उत्तरी सीमा कोचविहार पर आक्रमण किया। भूटानोत्तरमें कुछ तिब्बतीय सैन्य भी थे। उनके अधिनायक दुपगणि येपतुन नामक एक लामा क्रमशः सेनाओंके ऊपर आधिपत्य फैला कर धर्मराजरूपमें गण्य हुए। उनके मरनेके बाद उनकी आत्माने लोगोंकी धारणाके अनुसार लासानगरीके जिस बालकके शरीरमें प्रवेश किया था, उसीको भूटान लाया गया। यह लामावतार 'रिनपोछे' और 'धर्मराज' कहलाता है। बालक लामाने राजदण्डपरिचालनके लिये जो अभिभावक नियुक्त किया वे ही देवराज कहलाये।

भूटानके लामाचार्यगण।

१ ङ्गा वङ्ग नमग्र्याल दुङ् ओम र्दोर्जे।

२ " जिग् मेद् तंगस पा।

३ " छोस् क्यि ग्यंल मछ्सान।

४ " जिग मेद् डङ् पो।

५ " शापय सेङ गे।

६ " जम छ् पङम ग्योल मतयान।

७ " छोस क्यि डङ् पुग।

८ " जिग मेद् संगम व (द्वितीयवार अवतीर्ण)

९ " " " मोर्दु।

१० " " " छोस ग्योल।

इन दशों लामावतारकी स्वतन्त्र जीवनी है। प्रथम लामा विवाहित और महालामा योगस ध्यानोंके समसामयिक थे। अवशिष्ट लामागण ब्रह्मचर्यावलम्बी हैं। धर्मराज ग्रीष्मकालमें तसिछो दुर्गमें रहते हैं। यह प्रासाद पत्थरका बना और सात मंजिला है। यहाँ प्रायः ५ सौ बौद्धयति रहते हैं। मेपालवासी लामाओं पर ये ही कर्तृत्व करते हैं। गुर्खा-गवर्मेण्ट इनके विरोधी नहीं हैं।

ककन्मदेशवासी मङ्गोलियोंके प्रधान धर्माध्यक्ष उर्गो-कुरेन नामक स्थानमें वास करते हैं। ये लोग जेप्‌सुन-दम्प नामसे परिचित हैं। कककवासी मङ्गोलियोंका विश्वास है, कि सुप्रसिद्ध ऐतिहासिक लामा तारनाथ उन लोगोंके जेप्सुन दम्पियोंके शरीरमें बार बार जन्मते हो धर्मविस्तार करते हैं। मङ्गोलियोंका उर्गो सङ्घाराम पहले शापय-सम्प्रदायभुक्त था। पीछे यह गेलुग साम्प्रदायिक मठाश्रममें परिणत हुआ है।

सम्राट् कङ्-हि'के शासनकालमें (१६६२-१७२२ ई०) पीकनको लोटस्य कोको-खाताल नगरमें धर्माचार्य जेप्सुनदम्प रहते थे। उस समय कालमक या खिलइय जातिके साथ ककोंका झगड़ा खड़ा हुआ। ककोंने परास्त हो कर चीनराजका आश्रय लिया। इस पर कालमाकोंने चीन-सम्राट् के निकट जेप्सुनदम्प और उनके भाई राजकुमार तुसहेतु खाँको उन्हें प्रत्यर्पण करनेकी प्रार्थना की। किन्तु सम्राट् के राजी नहीं होने पर उन्होंने दलाई-लामाको मध्यस्थ बनाया। दलाई-लामा या उनके प्रतिनिधिने विचार करके उक्त दोनों राजकुमारोंको लौटा देनेका हुकुम दिया। इससे सम्राट् के साथ कालमाक जातिका युद्ध हुआ। इस समय एक दिन सम्राट् जेप्सुनदम्पसे मिलने गये। जेप्सुनने उनका अपमान किया। राजाने क्रुद्ध हो कर उनका सिर काट डालनेका हुकुम दिया। इस घटनासे कक लोग विद्रोही हो उठे और जेप्सुनदम्पने यह घोषणा कर दी, कि वे सम्राट् से खुल्लमखुल्ला युद्ध करना चाहते हैं। चीन-सम्राट् ने विद्रोहकी सूचना देते दलाई-लामाकी शरण ली। उनके विचारसे यही स्थिर हुआ, कि जेप्सुनदम्पके लोकसे अवतार तिब्बतमें ही होंगे। ककवासिगण इसी समयसे स्वदेशके भिन्न श्रेष्ठ पुरोहित होनेसे वञ्चित हुए।

अभी मध्य या पश्चिम-तिब्बतसे ही तत्पश्चात् जेप्सुनदम्पका अवतार आविर्भूत होता है। वर्तमान जेप्सुनदम्पका लासा-नगरीके बाजारके समीप जन्म हुआ था। ये देपुङ्ग सङ्घाराममें गेलुग-प लामाके विद्यार्थी रूपमें प्रविष्ट हुए। किन्तु उनके पांचवें वर्षमें पदार्पण करते ही कक लोग उन्हें उर्गो ले गये। उनके साथ देपुङ्ग लामा उनके शिक्षकरूपमें गये थे।

अवतारस्वरूप पूज्य पूर्वोक्त धर्माचार्योंके अलावा

उनकी अपेक्षा हीनप्रभाव-सम्पन्न और भी कितने लामाचार्य हैं। वे ज्योतिःप्राप्त वा देहान्तधारी कह कर पूजित हैं। इस श्रेणीके लामाचार्य तिब्बतमें ३०, उत्तर-मङ्गोलियामें १६, दक्षिण-मङ्गोलियामें ५७, कोकोनोरमें ३५, छियामदो ओर्जे छयनमें ५ और पेकिनमें १४ हैं। इन सब देहान्तरप्रविष्ट लामाके मध्य पश्चिम-तिब्बतके सेङ्छेन रिणपोछे, यङ्जिन-लो-प, चिल्लुङ, लो-छेन, कियअर-तिङ्कि, दे-छन-मलिग, कङला और कोङ तथा खाम विभागमें तु, छम-दो दोर्जे आदि प्रधान हैं।

पेकिनके लामामण्डलको तिब्बतीय भाषामें छङ-स्क्य (शाक्य) कहते हैं तथा यहांके लामाचार्य रोल-पद्दोके अवताररूपमें पूजित हैं। सम्राट् कङ्ग-हि-के शासनकालमें १६६०से १७०० ई०के मध्य वे दैवशक्ति-सम्पन्न हो गये थे। सम्राट्ने उन पर विश्वास कर उन्हें मध्य मङ्गोलियाका धर्माध्यक्ष पद प्रदान किया।

लदाकके अवतीर्ण लामागण कुशो नामसे प्रसिद्ध हैं। यमदोक ह्रदतीरस्थ सङ्घाराममें एक बौद्ध रमणीने शाचार्याणीका पद पाया है। ये वज्रवाराहीकी अवतार मानी जाती थी। मि० बोगल उनसे जा कर मिले थे।

लामाचार्यगण देहत्याग करनेके समय अपने अपने पुनर्जन्मका हाल बतला गये हैं। वे लोग किस ग्राममें किस परिवारमें जन्म लेंगे यह भी कह दिया करते थे। किन्तु वर्त्तमान समयमें उस लामावतारका निर्वाचन और परीक्षा स्वतन्त्र प्रथासे की जाती है। मृत लामाचार्य किस नामसे अवतीर्ण हो सकते हैं। पहले ११७ विशुद्धचेता लामा एकत्र हो उसका नाम निर्द्धारण कर लेते हैं। नामनिर्देश करते समय भजन और पूजन होता है। जितने पवित्र नाम उनके मनमें आते हैं उन्हें वे एक एक कागजके टुकड़े पर लिख एक स्वर्णपात्रमें रख देते हैं। पीछे स्तोत्रगान करते करते ३१से ७१ दिन तक उसमेंसे एक एक कागज निकालते हैं। उन कागजोंके मध्य नव अवतारका नाम पाया जाता है। पेकिनराज 'न'छुङ'को भविष्यवाणी पर विश्वास कर महालामा नियुक्त करते हैं। लामाचार्यकी निर्वाचन-प्रणालीका गूढ़ रहस्य और उसके प्रकृत तत्त्वका मर्मोद्घाटन अनावश्यक जान कर नहीं लिखा गया।

लामा (हिं० पु०) घास खाने और पागुर करनेवाला एक जंतु। यह ऊंटकी तरहका होता है। आकारमें यह ऊंटसे कुछ मोटा होता है और इसकी पीठ पर कूबड़ नहीं होता। यह दक्षिणी अमेरिकामें पाया जाता है। यह बहुत चपल, बलवान् और शीघ्रगामी होता है। इसे जब तक हरी घास मिलती है, तब तक पानीकी कोई आवश्यकता नहीं होती। इसकी सब उंगलियां अलग अलग होती हैं और प्रत्येक उंगलीमें एक छोटा मजबूत खुर होता है। इसके रोएं बहुत मुलायम होते हैं और इसकी खालका चरसा बहुत होता है, इसीलिये कुत्तोंकी सहायतासे इसका शिकार किया जाता है। जब कोई इसे छेड़ता है, तब यह उस पर थूक देता है जिसका कुछ विषैला प्रभाव होता है। जंगली दशामें इसे ग्वाना और पालतू दशामें लामा कहते हैं। ऊंट देखो।

लामो (हिं० पु०) एक प्रकारका फल। यह प्रायः डेढ़ बालिश्त लंबा होता है और दिल्ली तथा राजपूतानेकी ओर पाया जाता है। इसकी तरकारी बनाई जाती है।

लायक (अ० वि०) १ उचित, ठीक, वाजिब। २ उपयुक्त, मुनासिब। ३ सुयोग्य, गुणवान।

लायक (सं० पु०) संलग्न, जुड़ा हुआ।

लायकी (अ० स्त्री०) १ लायक होनेका भाव या धर्म। २ सुयोग्यता, काबिलीयत।

लायची (हिं० स्त्री०) इलायची देखो।

लायल (अ० वि०) राजभक्त।

लायलटी (अ० स्त्री०) राजभक्ति।

लार (हिं० स्त्री०) १ वह पतला लसदार थूक जो कोई बहुत कड़ुई चीज खाने या मुंहमें कोई दवा आदि लगाने पर तारके रूपमें निकलता है। २ लासा, लुआब। ३ कतार, पंक्ति। (क्रि० वि०) ४ साथ पीछे।

लारेन्स (लार्ड Sir John Lawrence Bart. *K*, C. B)—भारतके एक अंगरेज-राजप्रतिनिधि। १८६३ ई०में लार्ड एलगिन (Alexander Bruce, Earl of Elvin and Kincardine)की धर्मशालामें अकस्मात् मृत्यु हो जानेसे तथा ओहबी नामक मुगल-सम्प्रदायकी विद्रोहिता देख कर लण्डनकी मन्त्रिसभा दहल गई और उन्होंने महामति सरजान लारेन्सको भारतके गवर्नर जनरल और

गवर्नर बना कर भेजा। तदनुसार १८६४ ई०की १२वीं जनवरीको कलकत्तेमें आ कर उन्होंने राजकार्यका भार अपने हाथ लिया। भारतमें आ कर ही वे सभ्यताका अभिमान का अपमान देख कर कुछ निश्चिन्त हुए। क्योंकि उस समय चीनके आभ्यन्तरिक युद्ध और धर्मोन्मत्त मुसलमानोंकी विद्रोहिता अंगरेजोंके वाणिज्यस्वार्थमें बाधा डाल रही थी। उसी सालके अक्तूबर मासमें उन्होंने लाहोरमें दरबार किया और ६ सौ राजाओंसे परिवृत हो भारत-राज्यमें जिससे शान्ति स्थापित हो उसका उपाय कर दिया।

इस समय बङ्गाल-गवर्मेण्ट भूटान जातिके उपद्रवसे तंग तंग आ गई थी। इन दुर्दान्त डकैतोंका दमन करनेके अभिप्रायसे इन्होंने मालकाष्टर, डाग्सफोर्ड, रिचार्डसन, टम्बस, विड आदि सेनापतियोंके अधीन अङ्गरेज-सेनादल-को भिन्न दिशासे भूटान पर आक्रमण करनेका हुकुम दे दिया। तदनुसार अङ्गरेजी-सेना भूटानकी ओर दौड़ पड़ी। नाना स्थानोंमें युद्ध करके भी भूटानवासी अङ्गरेज वाहिनीको परास्त न कर सके। आखिर उन्होंने अङ्गरेजोंसे सन्धि कर ली। अङ्गरेज राजने भूटानके देवराजके जो सब प्रदेश भारत-सीमान्तभुक्त कर लिये थे उसके लिये वे भूटानपतिको वार्षिक २५ हजार रुपये देनेको राजी हुए। इससे रक्तस्रवकारी भूटान युद्धका अवसान हुआ।

इस समय १८६५ ई०में प्रधान सेनापति सर ह्यु रोजने पदत्याग किया। उस पद पर सर विलियम रोज मान्सफिल्ड के, सी, बी, नियुक्त हुए। इन्होंने लखनऊ, पञ्जाब, सिपाही-विद्रोह और क्रिमियाके युद्धमें बड़ी वीरता दिखाई थी।

उसी साल राजप्रतिनिधि लारेन्सने पञ्जाब और अयोध्याकी प्रजाओंके हितसाधनमें कोई कसर उठा न रखी थी। १८६६ ई०में उड़ीसामें महा दुर्भिक्ष उपस्थित हुआ। यह धीरे धीरे ४ मील लम्बे और ४० मील चौड़े स्थानमें फैल गया। बङ्गालके लाट हालिडेने इस समय विशेष उदारताका परिचय दिया था। इस महामारीमें प्रायः ८ लाख मनुष्य करालकालके गालमें फंस गये थे।

इस समय १८६७ ई०में महिसुरराजका राज्याधिकार ले कर महिसुरमें गोलमाल खड़ा हुआ। महिसुरराजने कई बार लार्ड डलहौसी, कैनिङ्ग, एलगिन और लारेन्सके पास निवेदन पत्र भेजा था। लारेन्सने बड़ी गंभीरता और बुद्धिमत्ताके साथ उसका भार भारत-सचिव (Conservative Secretary of State for India)के हाथ सौंपा। भारत-सचिवने महिसुरराजके दत्तकपुत्रको राज्यका अधिकारी ठहराया। उनके अधिकारकालमें मिश्र और आविसिनिया-युद्धमें भारतवर्षसे देशी सेनादल बहुत दूर पश्चिम भेजा गया था। उक्त वर्षके भारत-प्रतिनिधिने लखनऊ नगरमें एक राजदरबार बैठाया। उसमें वहांके उत्तर पश्चिम भारतवासी तालुकदार, जमींदार और अयोध्याके प्रजासाधारणने महारानी विक्टोरियाके प्रति सम्मान और अङ्गरेज-गवर्मेण्टके प्रति राजभक्तिका चरम-निदर्शन दिखलाया था।

उसी साल रूसराजसेनापतियोंने मध्य-एशियाके बोखारा राज्यमें तथा तुर्किस्तान प्रदेशमें आ कर वहांके अमीरको आश्रय दिया था। अमीरके लड़के विद्रोही प्रजाओंके साथ मिल कर सिंहासन पर अधिकार करना चाहते थे। किन्तु कुछ कर न सके, क्योंकि रूस-सेनासे अमीरको काफी मदद मिलती थी। अपने राज्यको सुदृढ़ कर अमीरने कृतज्ञता-स्वरूप रुसियनोंको बुखारामें स्थान दे दिया। भारतवर्षमें रुसियनोंका विप्लवक समझ कर लार्ड लारेन्सने अफगानपति और अङ्गरेजोंके मित्र दोस्त महम्मदके पुत्र शेरअलीको काबुलके सिंहासन पर बिठाया। इस प्रकार वे अङ्गरेज जाति और रूसियोंकी भलाई करनेको तैयार हो गये। कुछ समय बाद शेरअली राज्यसे निकाले गये तथा एक अफगान-राजपुत्र रूस-सेनाओंसे मिल कर राज्य पानेके लिये षड्यन्त्र करने लगे। इस गोलमालके समय महामति लारेन्सने बड़ी गंभीरताके साथ निरपेक्षताका अवलम्बन किया था। उनकी इस निरपेक्ष राजनीतिको राजनीतिज्ञ लोग "a masterly in activity" कह कर बड़ी तारीफ करते हैं।

वे भारतवर्षकी प्रजाकी सुखवृद्धिके लिये मदद करते गये हैं। उस समय इन्होंने भारतवर्षमें तमाम सदर

काटनेका प्रस्ताव किया था, किन्तु राजकोषमें उतने रुपये न रहनेके कारण यह प्रस्ताव स्थगित रहा। उनके आदेशसे भारतके गवर्मेण्ट स्कूलोंमें बाइबिल-ग्रन्थ पाठ्य-पुस्तकरूपमें व्यवहृत हुआ था।

१८६६ ई०में ये भारतके प्रतिनिधिका पद छोड़ कर २७वीं मार्चको इङ्गलैण्ड वापस आये। भारतसाम्राज्ञीने उन्हें (Baron Lawrence of the Punjab and Grately in the Country of Southamton), मर्यादा तथा तरह तरहकी मान्यसूचक उपाधि और पारितोषिक दिया था। १८७८ ई में उनका देहान्त हुआ।

लारेन्स (सर हेनरी)—एक अंगरेज-सेनापति। इन्होंने गदरके समय अयोध्याके विद्रोहिदलके साथ युद्ध करके बड़ी वीरता दिखलाई थी। लखनऊके अवरोधकालमें तथा चिनहुतके युद्धमें इन्होंने अंगरेजोंकी स्वार्थरक्षाके लिये आत्मोत्सर्ग कर दिया था। चिनहुतके युद्धमें विद्रोहिदलने जयलाभ कर रेसिडेन्सी पर चढ़ाई कर दी। उन लोगोंका एक गोला हेनरी लारेन्सकी कमरमें ऐसा लगा कि ये ४थी जुलाईको इस लोकसे चल बसे।

लार्काकोल—पश्चिमी बंगालके पहाड़ी प्रदेशमें रहनेवाली प्रसिद्ध कोल जातिकी एक शाखा। ये बड़े दुर्दर्ष होते हैं। कोल देखो।

लार्काना—बम्बई प्रेसिडेन्सीके सिन्धुप्रदेशका एक जिला। यह अक्षा० २५°५३' से २८° उ० तथा देशा० ६७°११' से ६९° ३३' पू०के मध्य अवस्थित है। भूपरिमाण ५०६१ वर्गमील है। इसके उत्तरमें शकर और अपर सिन्ध फ्रण्टियर डिष्ट्रिक्, पूर्वमें सिन्ध नदी, खैरपुर राज्य और हैदराबाद जिला, दक्षिणमें कराची जिला और पश्चिममें खीरथर पर्वतमाला है। लरक वा लड़ाक जातिसे जो एक समय लार्काना उपविभागमें रहती थी, जिलेका नामकरण हुआ है।

इस जिलेकी प्राकृतिक शोभा उतनी चित्ताकर्षक नहीं है। केवल सिन्धुनद और पश्चिम नारानदी तथा नारासे गार खाल तकका भूभाग हमेशा हराभरा दिखाई देता है। दूसरे दूसरे स्थानकी जमीन ऊपर है। यहां बहुत-सी नहरें हैं, इस कारण खेती बारीमें बड़ी सुविधा है। स्थानीय जमींदार और गवर्मेण्टसे ये सब नहरें काटी गई हैं। उनमेंसे गवर्मेण्टकी नारा नहर सबसे बड़ी है। उसकी लम्बाई ३० मील और चौड़ाई १०० फुट है।

इस जिलेका इतिहास शकर और कराची जिलेके साथ मिला हुआ है। कलहोरा वंशमें जब आपसमें लड़ाई होती थी, तब एक दाउदपोता सरदार मारा गया था। उसीके क्षतिपूरणस्वरूप लार्कानाका कुछ अंश उसके वंशधरको दिया गया। पीछे तालपुरोंने उसे छीन कर अपने दखलमें कर लिया। शाहशुजाके युद्धके बाद तालपुरके मीरोंमें लार्काना उपविभाग बंट गया। पीछे सिन्ध-विजयके साथ साथ यह जिला भी अंगरेजोंके हाथ लगा।

इस जिलेमें ५ शहर और ७०८ ग्राम लगते हैं। जन-संख्या साढ़े छः लाखके करीब है। मुसलमानकी संख्या सबसे ज्यादा है। सैकड़े पीछे ११ मनुष्य सिन्धी भाषा बोलते हैं। विद्याशिक्षामें इस प्रदेशके चौबीस जिलोंमें इसका स्थान इक्कीसवां आया है। अभी कुल मिला कर ६०० स्कूल हैं। स्कूलके अलावा ८ अस्पताल हैं। स्थानीय प्राचीन कीर्त्तियोंके निदर्शनस्वरूप एक पुराना किला, शाहाल महम्मद कलहोरा तथा उनके प्रधान मन्त्री शाहबहादुरका मकबरा विद्यमान है। शाहाल-महम्मदके पौत्र आदम शाह एक प्रसिद्ध फकीर थे। उनके वंशधरोंने एक समय सिन्धुप्रदेशका शासन किया था।

२ उक्त जिलेका एक उपविभाग। इसमें लार्काना, लबदरिया, कम्बर और रतो दरो तालुक लगते हैं।

३ लार्काना जिलेका एक तालुक। यह अक्षा० २७°२७' से २७° ४६' उ० तथा देशा० ६८°१' से ६८° २८' पू०के मध्य अवस्थित है। भूपरिमाण २६७ वर्गमील और जनसंख्या लाखसे ऊपर है। इसमें लारकाना नामक १ शहर और ७२ ग्राम लगते हैं। सिन्ध नदीके किनारे गेहूं बहुतायतसे उपजता है। जंगलमें आम और खजूरके पेड़ अनेक देखे जाते हैं।

४ लार्काना तालुकका प्रधान नगर और विचार सदर। यह अक्षा० २७° ३३' उ० तथा देशा० ६८° १६' पू० गार-नहरके बाएं किनारे अवस्थित है। शिकारपुर शहरसे यह ४० मील दूर पड़ता है। इस स्थानका प्राकृतिक सौन्दर्य अत्यन्त मनोरम देख कर अंगरेज भ्रमण-

लाल आलू (हिं० पु०) १ रतालू । २ अरुई ।

लाल इलायची (हिं० स्त्री०) बड़ी इलायची । इलायची देखो ।

लाल उद्दीन—नजीबाबादके नवाबके भाई । ये १८५७ ई०के गदरमें शामिल थे । इसलिये १८५८ ई०के अप्रेल महीनेमें वृटिश-राजके विचाराधीन हुए ।

लालक (सं० त्रि०) १ लालनकारी, प्यार करनेवाला । (पु०) २ एक हिन्दू राजा । इनके पौत्र हर्षसिंहकी कन्यासे कलिङ्गराज खारवेल (भिखुराज)ने विवाह किया ।

लालकङ्क—लाल रंगकी कङ्क जातिकी एक चिड़िया ।

लालकन्द (हिं० पु०) गजकर्ण आलू, वंड ।

लाल कलमी (हिं० पु०) चाँदनी या गुलचाँदनी नामका पौधा या उसका फूल ।

लाल कवि—१ एक भाषा-कवि । ये राजा छत्रसाल हाड़ा कोटेवालेके दरवारमें थे । जिस समय दाराशिकोह और औरङ्गजेब बादशाहीके लिये आपसमें फतुहामें लड़ रहे थे और जिस युद्धमें राजा छत्रसाल आहत हुए थे, उस युद्धमें ये कवि मौजूद थे । इन्होंने नायिकाभेदका 'विष्णु-विलास' नामक एक भाषाका ग्रन्थ भी बनाया है ।

२ एक कवि । इनका नाम विहारीलाल था । ये जातिके ब्राह्मण थे और टिकमापुरमें रहते थे । इनका छाप नाम 'लाल कवि' था । ये सं० १८८५ में उत्पन्न हुए थे और महाकवि मतिरामके वंशधरोंमें-से थे । ये ही अपने वंशके अन्तिम महाकवि कहे जा सकते हैं ।

३ बनारसके रहनेवाले एक भाट । ये काशीनरेश राजा चेतसिंहके दरवारमें रहते थे । इन्होंने नायिकाभेद 'आनन्दरस' और सतसईकी टीका 'लालचन्द्रिका' नामके दो ग्रन्थ बनाये हैं ।

४ एक भाषा-कवि । ये संस्कृत भाषा भी जानते थे । इन्होंने चाणक्यनीतिका भाषान्तर किया ।

५ एक हिन्दीके विद्वान् । इनका पूरा नाम था लल्लू लाल जी । ये गुजराती थे परन्तु आगरेमें रहते थे । संवत् १८१२में इनका जन्म हुआ था । कहते हैं, कि आधुनिक हिन्दीके यही आचार्य थे । इन्होंने सभाविलास, माधव-विलास, प्रेमसागर-धार्मिक, राजनीति आदि कई ग्रन्थ बनाये हैं ।

लालकीन (हिं० पु०) नानकीन देखो ।

लालकुमारी—दिल्लीके बादशाह जहान्दार शाहकी एक प्रियतमा रखेली । नाचनेवालीके गर्भसे इसका जन्म हुआ । जवानीमें भी लालकुमारी वेश्याकी तरह मह-फिल आदिमें नाचती गाती थी । इसकी सुरीली तान और रूपलावण्य पर मुग्ध हो कर जहान्दारने इस पर आत्मजीवन समर्पण कर दिया । उसीके अनुग्रहसे यह वेश्या राजकुलाङ्गनारूपमें गिनी जाने लगी और उसका वंश राजपुरुषोंसे बड़ा आदर पाने लगा । यहां तक, कि बहुत समय लालकुमारीके स्वजन उमरावोंका अनादर कर वेरोक-टोक सब काम करते थे ।

लाल खाँ—भारतके एक प्रसिद्ध गवैये । ये दिल्लीश्वर अकबर शाह और जहांगीर बादशाहके दरवारमें रहते थे । १६०६ ई०में इन्होंने इहलीला संवरण की ।

लालखानी—उत्तर-पश्चिम भारतवासी एक मुसलमान-सम्प्रदाय । ये पहले राजपूत थे, पीछे इसलामधर्म ग्रहण करने पर अपने सरदार लाल खाँके नामानुसार लालखानी नामसे परिचित हुए ।

ये अपनेको राजपूतानेके अन्तर्गत राजौड़के बड़े गुर्जरवंशीय ठाकुर-सामन्त कुमार प्रतापसिंहका वंशधर मानते हैं । कुमार प्रतापसिंहने मेवाड़की लड़ाईमें दिल्ली-श्वर पृथ्वीराजको सहायता की । युद्धमें जाते समय उन्होंने रास्तेमें मीना जातिका विद्रोह दमन करनेके लिये कैला और अलीगढ़में डोर-राज्यका साहाय्य किया था, इसलिये राजाने खुशीसे राजकन्या उनको व्याह दी और उन्हें बुलन्द-शहरके आस पासके १५० गांव पुरस्कार या दहेजमें दिये । उक्त प्रतापसिंहसे ग्यारह पीढ़ी बाद लालसिंहने जन्म लिया । मुगल-सम्राट् अकबर शाहने लालसिंहकी वीरता और राजभक्ति पर प्रसन्न हो कर उन्हें खान्की उपाधि दी । उसी समयसे यह राजवंश लाल-खानी नामसे परिचित हुआ । लाल खाँके पौत्र इतिमद राय मुगल-सम्राट् औरङ्गजेबके समय इसलामधर्ममें दीक्षित हुए । इतिमद रायसे सात पीढ़ी नीचे नंदरअली खाँ और उनके भतीजे दुन्दे खाँने बुलन्दशहरके कुमोना दुर्गमें रह कर अङ्गरेज-सेनासे युद्ध किया था । उन्होंने पीछे अपना अपना अधिकृत प्रदेश दुर्गादिसे सुरक्षित कर

रखा। मन्दूरेल राजने बादमें यह सम्पत्ति मर्सालटेन रायो नामक इस वंशके एक व्यक्तिको दे दी। अभी सितापो, पहाड़ु और धर्मपुर आदि स्थानोंमें यह मालगसवंश बड़ी प्रतिष्ठाके साथ वास करते हैं। ये आज भी अपनी हिन्दू-मर्यादा भूले नहीं हैं। कुमार और ठाकुरानी उपाधि तथा विवाह-कार्यमें हिन्दू पद्धति आज भी इनमें चलती है। सितापो-मालगवंश इस समय गोंड़ा मुसलमान होनेका उद्योग कर रहे हैं।

बहुतेरे इन्हें भी मुसलिम नामसे भी पुकारते हैं। इनका आचार व्यवहार हिन्दू और मुसलमान दोनों सा है। ये इसलामधर्मावलम्बी दीक्षित ठाकुरवंशको छोड़ कर और किसीके साथ पुत्र-कन्याका आदान प्रदान नहीं करते। विवाहके समय कुलमर्यादा और गोत्रादि पर विशेष लक्ष्य रखते हैं। विवाह, जन्म और मृत्यु संस्कार मुसलमानों सा है। विवाहमें काजी पुरोहिताई करते हैं तथा मयरेद दस्तखाई आती है। कोई भी कलमा नहीं पढ़ते। ये हिन्दू-देवदेवीकी भी पूजा करते हैं।

लालगञ्ज—मुजफ्फरपुर जिलेकी हाजीपुर तहसीलका एक नगर और वाणिज्यकेन्द्र। यह अक्षा० २५° ५२' उ० तथा देशा० ८५° १०' पू०के मध्य गण्डकके पूर्वी किनारे अवस्थित है। जनसंख्या ११ हजारसे ऊपर है। यहांसे चमड़े, तेलहन, अनाज, शोरा आदि द्रव्योंकी रफ्तनी होती है। नगरसे एक मील दक्षिण जिस नदीघाटसे माल-असबाब नाव पर लादा जाता है वह बसन्तघाट कहलाता है।

लालगञ्ज—युक्तप्रदेशके गोरखपुर जिलान्तर्गत एक छोटा नगर। यह कुआनू नामक एक छोटी नदीके किनारे अवस्थित है। गोरखपुर-फैजाबादसे सुलतानपुर जानेका रास्ता इसी नगर हो कर गया है। यहां एक सुन्दर बाजार है।

लालगञ्ज—युक्तप्रदेशके मिर्जापुर जिलेके अन्तर्गत एक नगर। यह अक्षा० २४° १' उ० तथा देशा० ८२° २५' पू०के मध्य गाङ्गेय उपत्यकाके तारापार पहाड़ पर अवस्थित है। समुद्रकी तहसे इसकी ऊंचाई ५०० फुट है। यहां एक बाजार है।

लालगञ्ज—अयोध्याप्रदेशके रायबरेली जिलेकी, इसकी तहसीलका एक नगर। यह अक्षा० २६° ९' उ० तथा देशा० ८१° ० पू०के मध्य पड़ता है। इस नगरके पास ही हफ्तेमें दो दिन हाट लगती है। पहले यहां तहसीलका सदर था। १८९६ ई०में यह दफ्तर नगर उठ कर चला आया है।

लालगढ़—दिनाजपुर जिलान्तर्गत एक गण्डग्राम। यहां एक प्राचीन परीक्षाम है।

(भविष्य० ब्रह्म० ४८।१३६)

लालगला—उड़ीसा प्रदेशमें प्रवाहित एक नदी। यह जयपुर सामन्तराज्यके उत्तर (अक्षा० १९° २५' उ० तथा देशा० ८३° १८' पू०)से निकल कर जयपुर और विजगापट्टम जिलेके बीच हो कर बहती हुई वंशधारा (अक्षा० १८° १२' उ० तथा देशा० ८४° पू०) नदीमें आ गिरी है।

लालगिरिधर—एक भाषा कवि। ये बैसवाड़ेके रहनेवाले ब्राह्मण थे। इनका जन्म-संवत् १८०७ में हुआ था। इन्होंने नायिकाभेदका एक ग्रन्थ बनाया जिसे भाषाके कवि उत्तम समझते हैं।

लालगुली—बम्बई प्रदेशके बेलगांव उपविभागका एक प्रसिद्ध झरना। बेलगांव नगरसे ८ मील उत्तर काली नदी प्रायः ३०० फुट ऊंचेसे गिरती है। इस झरनेके पास एक प्राचीन दुर्ग है। कहते हैं, कि गोंड़-सरदार लोग दुर्दान्त शत्रु या कैदियोंको दुर्गकी छतसे इस गभीर जलधारामें फेंकते थे।

लालगुरु—उत्तर भारतमें रहनेवाली भंगी जातिके एक पूजित देवता। ये लालबेग नामसे विख्यात भारतमें परिचित हैं।

लालगोला—मुर्शिदाबाद जिलान्तर्गत एक बड़ा गांव। यह पद्मानदीके किनारे अवस्थित है और एक वाणिज्य-केन्द्रमें गिना जाता है।

लालङ्क—आसामकी एक पहाड़ी जाति। आसाम देखो।

लालचंदन (हिं० पु०) एक प्रकारका चंदन। इसका पेड़ कदमें छोटा होता है और मैसूर प्रान्त तथा मद्रासमें बहुतायतसे पाया जाता है। इसके ऊपरकी लकड़ी सफेद और हीरकी लकड़ी कुछ कालापन लिये लाल होती है। इसे [illegible] घिसने पर इसमें से अच्छी सुगंध निकलती [illegible] पर लगाया जाता है। रक्तचन्दन शब्दमें देखो।

लालच (हिं० पु०) कोई पदार्थ विशेषतः धन आदि प्राप्त करनेकी इतनी अधिक और ऐसा कामना जो कुछ भद्दी और बेढंगी हो, कोई चीज पानेकी बहुत बुरी तरह इच्छा करना, लोभ।

लाल चकधी (हिं० पु०) मैंसा।

लालचन्द—एक भाषा-कवि। कवित्त और कुण्डलिया छन्दोंमें इनकी कविता बहुत सुन्दर हुई है। इनकी कविता प्रायः कूटमय होती थी।

लालचन्द्र (सं० पु०) भाषालीलावतीके प्रणेता।

लालचांच (हिं० पु०) शुक, तोता।

लालचांद—उत्तर-पश्चिम प्रदेशमें रहनेवाले एक हिन्दू कवि। इन्होंने फारसीमें एक दीवान बनाया। १८५२ ई०में इनकी मृत्यु हुई।

लालची (हिं० वि०) जिसे बहुत अधिक लालच हो, लोभी।

लालचीता (हिं० पु०) लाल फूलका चितक या चीता। चीता देखो।

लालचीनी (हिं० पु०) एक प्रकारका कबूतर। इसका सारा शरीर सफेद और शिर पर लाल छिटकियां होती हैं।

लालटेन (हिं० स्त्री०) किसी प्रकारका वह खाना आदि जिसमें तेलका खजाना और जलानेके लिये बत्ती लगी रहती है। इसके चारों ओर तेज हवा और पानी आदिसे बचानेके लिये शीशा या इसी प्रकारका और कोई पारदर्शी पदार्थ लगा रहता है। इसका व्यवहार प्रकाशके लिये ऐसे स्थानों पर होता है जहां या तो प्रकाशको प्रायः एक स्थानसे दूसरे स्थान पर ले जानेकी आवश्यकता होती है या ऐसी जगह स्थायिरूपसे रखनेके लिये होता है, जहां चारों ओर हवा आया करती है। इसे कंडील भी कहते हैं।

लालड़ी (हिं० पु०) लाल रंगका एक प्रकारका नगीना। यह प्रायः नथों और बालियों आदिमें मोतीके दोनों ओर लगाया जाता है।

लालढङ्ग—युक्तप्रदेशके बिजनौर जिलान्तर्गत एक बड़ा गांव। यह अक्षा० २९° ५२' उ० तथा देशा० ७८° २३' पू०के बीच पड़ता है। यहां १७७४ ई०में रोहिल्ला-सरदार फैजुल्ला खांने तेतुनाकी लड़ाईमें अंगरेजोंसे हार खा कर आश्रय लिया था। अंगरेज और अयोध्याराजकी सेनाने जब इनका पीछा किया, तो इन्होंने कोई उपाय न देख यहीं अंगरेजोंसे सन्धि कर ली थी।

लालदरवाज़ा—उत्तर पश्चिम प्रदेशके सहारनपुर और देहरादून जिलेकी मध्यवर्ती शिवालिक गिरिमालाका एक गिरिपथ। यह समुद्रकी तहसे २६२५ फुट ऊंचा है और अक्षा० ३३° १३' ३०" तथा देशा० ७७° ५८' पू०के बीच पड़ता है।

लालदरवाज़ा—मुंगेरसे बहुत समीप गंगाके तट पर अवस्थित एक रेलवे स्टेशन। यहांसे मुंगेर कचहरी प्रायः एक मील दूर पड़ती है। गंगा पार करनेके लिये यहां जहाज भी लगता है।

लालदाना (हिं० पु०) लाल रंगका पोस्तेका दाना, लाल खसखस।

लालदास—अलवारवासी मेओजातिके एक साधु। ये लालदासी नामक वैष्णव-सम्प्रदायके प्रवर्त्तक थे तथा १५४० ई०में विद्यमान थे। इन्होंने कुछ दिन तक धौलीपुर, बन्धोली और गुरगांव जिलेके डोड़ी गांवमें जा कर अपना मत प्रचार किया। बन्धोलीमें रहते समय इनके एक पुत्रकी मृत्यु हो गई। वहीं उसका संस्कार किया गया। १६४८ ई०में जब इनकी मृत्यु हुई, उस समय इनके एक पुत्र और एक कन्या जीवित थी।

लालन (सं० क्ली०) लल-णिच्-ल्युट्। अत्यन्त स्नेह करना, प्रेमपूर्वक बालकोंका आदर करना, लाड़।

लालन (हिं० पु०) १ प्रिय, प्यारा बच्चा। २ कुमार, बालक। (स्त्री०) ३ चिरौंजी, पियाल।

लालनपालन (सं० क्ली०) यत्नपूर्वक प्रतिपालन, भरणपोषण।

लालनीय (सं० त्रि०) लल-णिच्-अनीयर्। लालन करनेके योग्य, दुलार या प्यार करनेके लायक।

लालपानी (हिं० पु०) शराब, मद्य।

लालपिलका (हिं० पु०) लाल रंगका एक प्रकारका कबूतर। इसकी दुम और डैने सफेद होते हैं।

लालपुर—पूर्णिया जिलेके अन्तर्गत एक नगर। यह अक्षा० २५° २६' उ० तथा देशा० ८७° २०' पू०के मध्य अवस्थित है। पूर्णिया नगरसे २१ मील उत्तर-पश्चिममें पड़ता है।

रगा। अङ्गरेज राजके बादसे यह सम्पत्ति स्त्रोसलेन गो शासक इस वंशके एक व्यक्तिको दे दी। बस्ती जिलाओं, बहराइच और धर्मपुर आदि स्थानोंमें यह लालखम्भन बड़ी प्रतिष्ठाके साथ वास करते हैं। ये आज भी अपनी हिन्दू मर्यादा भूले नहीं हैं। कुमार और ठाकुरकी उपाधि तथा विवाह-कार्यमें हिन्दू पद्धति आज भी इनमें चलती है। किन्तु नाभार्थंन इस समय पीरा मुसलमान होनेका उद्योग कर रहे हैं।

बहुतेरे इन्हें मौ मुसलिम नामसे भी पुकारते हैं। इनका आचार व्यवहार हिन्दू और मुसलमान दोनोंका है। ये इसलामधर्मसे दीक्षित ठाकुरवंशको छोड़ कर और किसीके साथ पुत्र-कन्याका आदान प्रदान नहीं करते। विवाहके समय कुलमर्यादा और गोत्रादि पर विशेष लक्ष्य रखते हैं। विवाह, जन्म और मृत्यु संस्कार मुसलमानों सा है। विवाहमें काजी पुरोहिताई करते हैं तथा जयदेह बनवाई जाती है। कोई भी कलमा नहीं पढ़ते। ये हिंदू-देवदेवीकी भी पूजा करते हैं।

लालगञ्ज—मुजफ्फरपुर जिलेकी हाजीपुर तहसीलका एक नगर और वाणिज्यकेन्द्र। यह अक्षा० २५° ५९' उ० तथा देशा० ८५° १०' पू०के मध्य गण्डकके पूर्वी किनारे अवस्थित है। जनसंख्या ११ हजारसे ऊपर है। यहांसे चावल, तेलहन, अनाज, सोरा आदि द्रव्योंकी रफ्तनी होती है। नगरसे एक मील दक्षिण जिस घाटसे माल-असबाब नाव पर लादा जाता है वह बसन्तघाट कहलाता है।

लालगञ्ज—युक्तप्रदेशके गोरखपुर जिलान्तर्गत एक छोटा नगर। यह कुआनू नामक एक छोटी नदीके किनारे अवस्थित है। गोरखपुर-सेमरियावांसे सुलतानपुर जानेका रास्ता इसी नगर हो कर गया है। यहां एक सुन्दर बाजार है।

लालगञ्ज—युक्तप्रदेशके मिर्जापुर जिलेके अन्तर्गत एक नगर। यह अक्षा० २४° १' उ० तथा देशा० ८२° २१' पूर्वके मध्य ... पहाड़ पर अवस्थित है। समुद्रकी तहसे इसकी ऊंचाई ५१४ फुट है। यहां एक बाजार है।

लालगञ्ज—अयोध्याप्रदेशके रायबरेली जिलेकी डलमौ तहसीलका एक नगर। यह अक्षा० २६° ८' उ० तथा देशा०

८१° ० पू०के मध्य पड़ता है। लिखकः धन आदि प्राप्त
इसमें दो दिन हाट लगती है। कामना जो कुछ नहीं
मशहूर था। १८७६ ई०में यह यहां बहुत बुरी तरह इसका
आया है।

लालगढ़—दिनाजपुर जिलान्तर्गत। कवित्त और कुण्डलिया
एक प्राचीन धर्मस्थान है। (मशहूर हुई है। इनकी कविता

लालगढ़ा—उड़ीसा प्रदेशमें जयपुर सामन्तराज्यके अन्तर (झूलावतीके प्रणेता।
देशा० ८३° १८' पू० में निकल गोता।
गापट्टम जिलेके बीच हो कर बहनेवाली रहनेवाले एक हिन्दू
१८° १२' उ० तथा देशा० ८४° पू०) दीवान बनाया। १८५२ ई०

लालगिरिधर—एक भाषा कवि।
ब्राह्मण थे। इनका जन्म-संवत् बहुत अधिक लालच
इन्होंने नायिकाभेदका एक ग्रन्थ बना
उत्तम समझते हैं। पू०) लाल फूलका निरक था नीला

लालगुनी—बम्बई प्रदेशके
प्रसिद्ध झरना। बीजापुर नगरसे प्रकारका कबूतर। इसका
नदी प्रायः ३०० फुट ऊंचेसे गिरती है पर लाल छिटकियां हैं
एक प्राचीन दुर्ग है। कहते हैं, कि इसी प्रकारका यह
दुर्दान्त शत्रु या कैदियोंको दुर्गकी छतसे और गलानेके लिये
पानीमें फेंकते थे। और तेज हवा

लालगुरु—उत्तर भारतमें रहनेवाली आ इसी प्रकारका और
पूजित देवता। ये साधारण आरण्य-नि ता है। इसका
परिचित हैं। होता है जहां या

लालगोल—मुर्शिदाबाद जिलान्तर्गत एक रे स्थान पर ले-
पद्मानदीके किनारे अवस्थित है और एक जगह
लिया जाता है। ओर हवा

लालङ्ग—आसामकी एक पहाड़ी जाति।

लालचंदन (हिं० पु०) एक प्रकारका एक
चन्दन छोटा होता है और मैसूर प्रान्त आदि
जंगलमें पाया जाता है। इसके ऊपरको
छालको उतारते हुए कालापन लिये लाल
छिलकेसे बहुत ही लाल रंग और मदारी
है। यह भी चंदनकी तरह माथे पर लगा-
विशेष विवरण रक्तचन्दन में

लालच (हिं॰ पु॰) कोई पदार्थ विशेषतः धन आदि प्राप्त करनेकी इतनी अधिक और ऐसी कामना जो कुछ भद्दी और बेढंगी हो, कोई चीज पानेकी बहुत बुरी तरह इच्छा करना, लोभ।

लाल चकधी (हिं॰ पु॰) मैंसा।

लालचन्द—एक भाषा-कवि। कवित्त और कुण्डलिया छन्दोंमें इनकी कविता बहुत सुन्दर हुई है। इनकी कविता प्रायः कूटमय होती थी।

लालचन्द्र (सं॰ पु॰) भाषालीलावतीके प्रणेता।

लालचाँच (हिं॰ पु॰) शुक, तोता।

लालचंद—उत्तर-पश्चिम प्रदेशमें रहनेवाले एक हिन्दू कवि। इन्होंने फारसीमें एक दीवान बनाया। १८५२ ई॰में इनकी मृत्यु हुई।

लालची (हिं॰ वि॰) जिसे बहुत अधिक लालच हो, लोभी।

लालचीता (हिं॰ पु॰) लाल फूलका चित्रक या चीता। चीता देखो।

लालचीनी (हिं॰ पु॰) एक प्रकारका कबूतर। इसका सारा शरीर सफेद और शिर पर लाल छिटकियां होती हैं।

लालटेन (हिं॰ स्त्री॰) किसी प्रकारका वह खाना आदि जिसमें तेलका खजाना और जलानेके लिये बत्ती लगी रहती है। इसके चारों ओर तेज हवा और पानी आदिसे बचानेके लिये शीशा या इसी प्रकारका और कोई पार दर्शी पदार्थ लगा रहता है। इसका व्यवहार प्रकाशके लिये ऐसे स्थानों पर होता है जहां या तो प्रकाशको प्रायः एक स्थानसे दूसरे स्थान पर ले जानेकी आवश्यकता होती है या ऐसी जगह स्थायिरूपसे रखनेके लिये होता है, जहां चारों ओर हवा आया करती है। इसे कंडोल भी कहते हैं।

लालड़ी (हिं॰ पु॰) लाल रंगका एक प्रकारका नगीना। यह प्रायः नथों और बालियों आदिमें मोतीके दोनों ओर लगाया जाता है।

लालढङ्ग—युक्तप्रदेशके विजनौर जिलान्तर्गत एक बड़ा गांव। यह अक्षा॰ २९° ५२′ उ॰ तथा देशा॰ ७८° २३′ पू॰के बीच पड़ता है। यहां १७७४ ई॰में रोहिल्ला-सरदार फैजुल्ला खांने तेतुनाकी लड़ाईमें अंगरेजोंसे हार खा कर आश्रय लिया था। अंगरेज और अयोध्याराजकी सेनाने जब इनका पीछा किया, तो इन्होंने कोई उपाय न देख यहीं अंगरेजोंसे सन्धि कर ली थी।

लालदरवाज़ा—उत्तर पश्चिम प्रदेशके सहारनपुर और देहरादुन जिलेकी मध्यवर्त्ती शिवालिक गिरिमालाका एक गिरिपथ। यह समुद्रकी तहसे २६३५ फुट ऊंचा है और अक्षा॰ ३३° १३′ उ॰ तथा देशा॰ ७७° ५८′ पू॰के बीच पड़ता है।

लालदरवाज़ा—मुंगेरसे बहुत समीप गंगाके तट पर अवस्थित एक रेलवे स्टेशन। यहांसे मुंगेर कचहरी प्रायः एक मील दूर पड़ती है। गंगा पार करनेके लिये यहां जहाज भी लगता है।

लालदाना (हिं॰ पु॰) लाल रंगका पोस्तेका दाना, लाल खसखस।

लालदास—अलवारवासी मेओजातिके एक साधु। ये लालदासी नामक वैष्णव-सम्प्रदायके प्रवर्तक थे तथा १५४० ई॰में विद्यमान थे। इन्होंने कुछ दिन तक धौलीपुर, बन्धोली और गुरगांव जिलेके डोड़ी गांवमें जा कर अपना मत प्रचार किया। बन्धोलीमें रहते समय इनके एक पुत्रकी मृत्यु हो गई। वहीं उसका संस्कार किया गया। १६४८ ई॰में जब इनकी मृत्यु हुई, उस समय इनके एक पुत्र और एक कन्या जीवित थी।

लालन (सं॰ क्ली॰) लल-णिच्-ल्युट्। अत्यन्त स्नेह करना, प्रेमपूर्वक बालकोंका आदर करना, लाड़।

लालन (हिं॰ पु॰) १ प्रिय, प्यारा बच्चा। २ कुमार, बालक। (स्त्री॰) ३ चिरौंजी, पियाल।

लालनपालन (सं॰ क्ली॰) यत्नपूर्वक प्रतिपालन, भरण-पोषण।

लालनीय (सं॰ त्रि॰) लल-णिच्-अनीयर्। लालन करनेके योग्य, दुलार या प्यार करनेके लायक।

लालपानी (हिं॰ पु॰) शराब, मद्य।

लालपिलका (हिं॰ पु॰) लाल रंगका एक प्रकारका कबूतर। इसकी दुम और डैने सफेद होते हैं।

लालपुर—पूर्णिया जिलेके अन्तर्गत एक नगर। यह अक्षा॰ २५° २६′ उ॰ तथा देशा॰ ८७° २०′ पू॰के मध्य अवस्थित है। पूर्णिया नगरसे २१ मील उत्तर-पश्चिममें पड़ता है।

रखा। अंग्रेज राज्यके बादसे यह जाति धर्मान्तरित सी मालूम होने लगी। इस वंशके एक व्यक्तिने ... भी चित्तौड़, वहादुर और धर्मपुर आदि स्थानोंमें यह सामन्तवंश बड़ी प्रतिष्ठाके साथ वास करते हैं। ये आज भी अपनी हिन्दू-प्रथाएं भूले नहीं हैं। कुमार और ठाकुरकी उपाधि तथा विवाह-कार्यमें हिन्दू पद्धति आज भी इनमें चलती है। क्रिश्चियन-आर्यसमाज इस समय शीघ्र मुसलमान होनेका उद्योग कर रहे हैं।

बहुतेरे इन्हें नौमुसलिम नामसे भी पुकारते हैं। इनका आचार-व्यवहार हिन्दू और मुसलमान दोनोंसा है। ये इसलामधर्मावलम्बी दीक्षित ठाकुरलोगोंको छोड़ कर और किसीके साथ पुत्र-कन्याका आदान प्रदान नहीं करते। विवाहके समय कुलमर्यादा और गोत्रादि पर विशेष लक्ष्य रखते हैं। विवाह, जन्म और मृत्यु संस्कार मुसलमानों सा है। विवाहमें काजी पुरोहिताई करते हैं तथा नजरेह नजराई जाती है। कोई भी कलमा नहीं पढ़ते। ये हिन्दू-देवदेवियोंकी भी पूजा करते हैं।

लालगञ्ज—मुजफ्फरपुर जिलेकी हाजीपुर तहसीलका एक नगर और वाणिज्यकेन्द्र। यह अक्षा० २५° ५२´ उ० तथा देशा० ८५° १०´ पू०के मध्य गण्डकके पूर्वी किनारे अवस्थित है। जनसंख्या ११ हजारसे ऊपर है। यहांसे चावल, तेलहन, अनाज, शोरा आदि द्रव्योंकी रफ्तनी होती है। नगरसे एक मील दक्षिण जिस नहरघाटसे माल-असबाब नाव पर लादा जाता है वह बसन्तघाट कहलाता है।

लालगञ्ज—युक्तप्रदेशके गोरखपुर जिलान्तर्गत एक छोटा नगर। यह कुआनू नामक एक छोटी नदीके किनारे अवस्थित है। गोरखपुर-फैजाबादसे सुलतानपुर जानेका रास्ता इसी नगर हो कर गया है। यहां एक सुन्दर बाजार है।

लालगञ्ज—युक्तप्रदेशके मिर्जापुर जिलेके अन्तर्गत एक नगर। यह अक्षा० २४° १´ उ० तथा देशा० ८२° २५´ पू०के मध्य मार्कण्ड उपत्यकाके समतल पहाड़ पर अवस्थित है। समुद्रकी तहसे इसकी ऊंचाई ५०० फुट है। यहां एक बाजार है।

लालगञ्ज—मध्यप्रदेशके ... जिलेकी, ... तहसीलका एक नगर। यह अक्षा० २१° ... उ० तथा देशा० ८१° ० पू०के मध्य पड़ता है। इस नगरके पास ही एक हफ्तेमें दो दिन हाट लगती है। पहले यहां ... सदर था। १८३६ ई०में यह दूसरी जगह उठ कर चला गया है।

लालगढ़—दिनाजपुर जिलान्तर्गत एक गण्डग्राम। यहां एक प्राचीन परीस्थान है।

(मण्टगो० मार्टि० ५म्भा४३५)

लालगङ्गा—उड़ीसा प्रदेशमें प्रवाहित एक नदी। यह जयपुर सामन्तराज्यके उत्तर (अक्षा० १९° ३५´ उ० तथा देशा० ८३° १८´ पू०)से निकल कर जयपुर और विजगापट्टम जिलेके बीच हो कर बहती हुई बंगालको (अक्षा० १८°१२´ उ० तथा देशा० ८४° पू०) खाड़ीमें आ गिरी है।

लालगिरिधर—एक भाषा कवि। ये बैसवाड़ेके रहनेवाले ब्राह्मण थे। इनका जन्म-संवत् १८०७ में हुआ था। इन्होंने नायिकाभेदका एक ग्रन्थ बनाया जिसे भाषाके कवि उत्तम समझते हैं।

लालगुडी—बम्बई प्रदेशके बेलगाम उपविभागका एक प्रसिद्ध झरना। बेलगाम नगरसे ८ मील उत्तर यहां नदी प्रायः १०० फुट ऊंचेसे गिरती है। इस झरनेके पास एक प्राचीन दुर्ग है। कहते हैं, कि गोंड़-सरदार लोग दुर्दान्त शत्रु या कैदियोंको दुर्गकी छतसे इस गम्भीर जलधारामें फेंकते थे।

लालगुरु—उत्तर भारतमें रहनेवाले भंगी जातिके एक पूजित देवता। ये लालबेग ... नामसे परिचित हैं।

लालगोला—मुर्शिदाबाद जिलान्तर्गत एक बड़ा गांव। यह पद्मानदीके किनारे अवस्थित है और एक वाणिज्य केन्द्रमें गिना जाता है।

लालडू—आसामकी एक पहाड़ी जाति। ... देखो।

लालचंदन (हिं० पु०) एक प्रकारका चंदन। इसका पेड़ कदमें छोटा होता है और मैसूर प्रान्त तथा मद्रासमें बहुतायतसे पाया जाता है। इसके ऊपरकी लकड़ी सफेद और भीतरकी लकड़ी कुछ कालापन लिये लाल होती है। इसे घिसनेसे बहुत ही लाल रंग और अच्छी सुगंध निकलती है। यह भी चंदनकी तरह माथे पर लगाया जाता है।

विशेष विवरण रक्तचन्दन शब्दमें देखो।

लालच (हिं० पु०) कोई पदार्थ विशेषतः धन आदि प्राप्त करनेकी इतनी अधिक और ऐसी कामना जो कुछ भद्दी और बेढंगी हो, कोई चीज पानेकी बहुत बुरी तरह इच्छा करना, लोभ।

लाल चकरी (हिं० पु०) मैंसा।

लालचन्द्र—एक भाषा-कवि। कवित्त और कुण्डलिया छन्दोंमें इनकी कविता बहुत सुन्दर हुई है। इनकी कविता प्रायः कूटमय होती थी।

लालचन्द्र (सं० पु०) भाषालीलावतीके प्रणेता।

लालचांच (हिं० पु०) शुक, तोता।

लालचांद—उत्तर-पश्चिम प्रदेशमें रहनेवाले एक हिन्दू कवि। इन्होंने फारसीमें एक दीवान बनाया। १८५२ ई०में इनकी मृत्यु हुई।

लालची (हिं० वि०) जिसे बहुत अधिक लालच हो, लोभी।

लालचीता (हिं० पु०) लाल फूलका चित्रक या चीता। चीता देखो।

लालचीनी (हिं० पु०) एक प्रकारका कबूतर। इसका सारा शरीर सफेद और शिर पर लाल छिटकियां होती हैं।

लालटेन (हिं० स्त्री०) किसी प्रकारका वह खाना आदि जिसमें तेलका खजाना और जलानेके लिये बत्ती लगी रहती है। इसके चारों ओर तेज हवा और पानी आदिसे बचानेके लिये शीशा या इसी प्रकारका और कोई पार दर्शी पदार्थ लगा रहता है। इसका व्यवहार प्रकाशके लिये ऐसे स्थानों पर होता है जहां या तो प्रकाशको प्रायः एक स्थानसे दूसरे स्थान पर ले जानेकी आवश्यकता होती है या ऐसी जगह स्थायिरूपसे रखनेके लिये होता है, जहां चारों ओर हवा आया करती है। इसे कंदील भी कहते हैं।

लालड़ी (हिं० पु०) लाल रंगका एक प्रकारका नगीना। यह प्रायः नथों और बालियों आदिमें मोतीके दोनों ओर लगाया जाता है।

लालढांग—युक्तप्रदेशके बिजनौर जिलान्तर्गत एक बड़ा गांव। यह अक्षा० २६° ५२´ उ० तथा देशा० ७८° २३´ पू०के बीच पड़ता है। यहां १७७४ ई०में रोहिल्ला-सरदार फैजुल्ला खांने ... अंगरेजोंसे हार खा कर आश्रय लिया था। अंगरेज और अयोध्याराजकी सेनाने जब इनका पीछा किया, तो इन्होंने कोई उपाय न देख यहीं अंगरेजोंसे सन्धि कर ली थी।

लालदरवाजा—उत्तर पश्चिम प्रदेशके सहारनपुर और देहरादून जिलेकी मध्यवर्ती शिवालिक गिरिमालाका एक गिरिपथ। यह समुद्रकी तहसे २६३५ फुट ऊंचा है और अक्षा० ३३° १३´ उ० तथा देशा० ७७° ५८´ पू०के बीच पड़ता है।

लालदरवाजा—मुंगेरसे बहुत समीप गंगाके तट पर अवस्थित एक रेलवे स्टेशन। यहांसे मुंगेर कचहरी प्रायः एक मील दूर पड़ती है। गंगा पार करनेके लिये यहां जहाज भी लगता है।

लालदाना (हिं० पु०) लाल रंगका पोस्तेका दाना, लाल खसखस।

लालदास—अलवारवासी मेओजातिके एक साधु। ये लालदासी नामक वैष्णव-सम्प्रदायके प्रवर्तक थे तथा १५४० ई०में विद्यमान थे। इन्होंने कुछ दिन तक धौलीपुर, बन्दोली और गुरगांव जिलेके छोटे गांवमें जा कर अपना मत प्रचार किया। बन्दोलीमें रहते समय इनके एक पुत्रकी मृत्यु हो गई। वहीं उसका संस्कार किया गया। १६४८ ई०में जब इनकी मृत्यु हुई, उस समय इनके एक पुत्र और एक कन्या जीवित थी।

लालन (सं० क्ली०) लल-णिच्-ल्युट्। अत्यन्त स्नेह करना, प्रेमपूर्वक बालकोंका आदर करना, लाड़।

लालन (हिं० पु०) १ प्रिय, प्यारा बच्चा। २ कुमार, बालक। (स्त्री०) ३ चिरौंजी, पियाल।

लालनपालन (सं० क्ली०) यत्नपूर्वक प्रतिपालन, भरणपोषण।

लालनीय (सं० त्रि०) लल-णिच्-अनीयर्। लालन करनेके योग्य, दुलार या प्यार करनेके लायक।

लालपानी (हिं० पु०) शराब, मद्य।

लालपिलका (हिं० पु०) लाल रंगका एक प्रकारका कबूतर। इसकी दुम और डैने सफेद होते हैं।

लालपुर—पूर्णिया जिलेके अन्तर्गत एक नगर। यह अक्षा० २५° २६´ उ० तथा देशा० ८७° २०´ पू०के मध्य है। पूर्णिया नगरसे २१ मील उत्तर-पश्चिममें

लालपुर—युक्तप्रदेशके मुरादाबाद जिलान्तर्गत एक बड़ा गाँव। यह अक्षा० २८° ५' उ० तथा देशा० ७८° ५४' पूर्वके मध्य मुरादाबादसे अमरोहा जानेके रास्ते पर अवस्थित है।

लालपुर—गुजरात प्रदेशके काठियावाड़ विभागके अन्तर्गत हालर जिलेका एक नगर। यह अक्षा० २२° १२' उ० तथा देशा० ७०° ६' पूर्वके मध्य विस्तृत है।

लालपुर—युक्तप्रदेशके कानपुर जिलान्तर्गत एक बड़ा गाँव। यह अक्षा० २६° ४५' उ० तथा देशा० ८०° १' पूर्वके मध्य फतेगढ़-गोसानियाससे कानपुर जानेके रास्ते पर अवस्थित है।

लालरेंडा (हिं० पु०) कुमुदा।

लालबहादुर—महिम्नस्तोत्र और गुर्वष्टकके प्रणेता। ये लाल पंडितसे भी परिचित थे।

लालबाग—बंगालकी मल्लभूमिके अन्तर्गत एक प्राचीन नगर। यहाँ एक प्राचीन दुर्ग और देव-मन्दिरादिका टूटा फूटा खंडहर पड़ा है।

लालबाबा—दरभंगा जिलेमें प्रवाहित एक शाखानदी। यह मझौरो गाँवके पास बागमती नदीमें आ कर मिल गई है।

लालबाग—मुर्शिदाबाद जिलेका एक उपविभाग। यह अक्षा० २४° ६' से २४° २३' उ० तथा देशा० ८७° ५१' से ८८° २०' पूर्वके मध्य अवस्थित है। भूपरिमाण ३३० वर्गमील और जनसंख्या २ लाखके करीब है। इसमें मुर्शिदाबाद और आजिमगञ्ज नामक २ शहर और ६३२ ग्राम लगते हैं।

लालबाग—भारतीय मुसलमान राजाओंका प्रसिद्ध प्रमोद-उद्यान। पद्मराग मणि (लाल)की तरह यह हमेशा जगमगाता रहता था। इस कारण इसका लालबाग नाम हुआ है। इस उद्यानवाटिकाके चारों ओर रोशनीके पद से जिससे इसकी शोभा और भी निखरती थी। धीरे धीरे यह एक छोटे नगरमें परिणत हो गया था। हाजिनगरके अन्दर बाग और बहुनूरके देशी गोपालगञ्जपुर प्रसिद्ध उद्यानवाटी आज भी विद्यमान है।

लालबाग—बड़ोदा जिलेका एक नगर। गोविन्दराव और बालिकाबाबूसिंहसे यह नगर पूर्ण है।

लालबाजार—दिनाजपुर जिलान्तर्गत एक नगर।

लालबुझक्कड़ (हिं० पु०) बातोंका अटकलपच्चू अर्थ लगानेवाला, वह जो कोई बात जानता तो न हो पर वे ही मंडाल कहाता हो।

लालबेग (हिं० पु०) १ लाल रंगका एक प्रकारका धारदार कीड़ा। २ मुसलमान, भंगियों और मेहतरोंके एक कल्पित पीरका नाम।

लालबेगी—झाड़ूदार मेहतर सम्प्रदाय। ये लोग मुसलमान कह कर परिचित हैं, पर सुन्नत कोई भी नहीं कराता। सूअरका मांस ये लोग बे-रोक-टोक खाते हैं। यूरोपीय राजपुरुष अथवा धनियोंके घर झाड़ूदारका काम करते हैं। परिष्कार परिच्छन्न रहनेके कारण दूसरे दूसरे नौकर इन्हें जमादार कह कर पुकारते हैं।

ये लोग यूरोपीय पुरुषोंका जूठा खाते और सभी प्रकारकी शराब पीते हैं। मृतदेह छूनेसे ये लोग अपनेको अपवित्र समझते हैं। इनके आचरित धर्म और क्रिया-पद्धति बहुत कुछ हिन्दू और मुसलमानकी रीति भी है। मुसलमानोंकी तरह इन लोगोंमें भी एक वृद्धा रमणी घटकी बन कर पात्र और पात्रीका विवाह-सम्बन्ध स्थिर करती है। किन्तु 'काबिन' या विवाहका प्रतिज्ञापत्र भी नहीं लिखते, पर यह कबूल करते हैं, कि विवाहित पत्नीका अच्छी तरह लालन किया जायगा और उसके रहते घरमें दूसरी स्त्री नहीं लाई जा सकती।

विवाहके पूर्व दिन ये लोग "कन्दूरी" उत्सव तथा मुसलमान-सम्प्रदायके आचरित अन्यान्य कर्म करते हैं। किन्तु उस समय ये लोग काजीको ब्राह्मणको नहीं बुलाते हैं। वरके घरमें कन्याका विवाह होनेसे वरपक्षको ६) रु० तथा कन्याके घरमें होनेसे ।=) आना शादीमें देनी होती है।

कोई कोई लालबेगी इसलाम धर्मसे उपासना करता है। किन्तु अधिकांश मनुष्य उसका पालन नहीं करते। मसजिदमें घुस कर इन्हें उपासना करनेका अधिकार नहीं है।

इन लोगोंकी अन्त्येष्टि-क्रिया स्वतन्त्र है। मुसलमानके निर्दिष्ट कब्रस्थानमें ये लोग मृतदेहको नहीं दफना सकते। अतः वे अपना जातीय-निर्दिष्ट किसी भूखंडमें ये लोग लाश ले जा कर गाड़ देते हैं।

गाड़नेसे पहले वे पांच वस्त्रसे उसे ढक देते हैं। दोनों बाहुके नीचे दो रूमाल बांध देते, मस्तक एक गमछेसे ढक देते और पीछे एक पजामा वा गमछा पहना कर जमीनमें गाड़ देते हैं। अनन्तर कब्रको मिट्टीसे भर कर उसके ऊपर एक चादर बिछा देते हैं। उसका नाम 'फूलकी चादर' है। उस चादरके चार कोनोंमें चार अनारकी लकड़ी गाड़ते और आग लगा कर उसे भस्मसात् कर देते हैं। इसके बाद मुसलमानोंकी संस्कार-प्रथासे ही सभी काम होता है। मृत्युके बाद चार दिन मृत व्यक्तिके घरमें किसी प्रकारकी रोशनी या आग नहीं जलाई जाती। इन दिनों वे पड़ोस वा किसी आत्मीयके घर भोजनादि करते हैं। पांचवें दिन मृतके घरके सामने एक थाल सुपारी रख कर फूलसे ढक देते हैं तथा उसी दिन स्वजातीय भोज होता है।

ये लोग हिन्दूके अनेक पर्वोंका पालन करते हैं तथा अनेक विषयोंमें हिन्दूकी आचारपद्धतिका अनुसरण कर कार्य करते हैं। दीवाली और होली पर्व ये लोग बड़ी धूमधामसे करते हैं। इस दिन ये लोग अपने आदि-पुरुष लालवेगके उद्देश्यसे मिट्टीकी एक पांच गुम्बजवाली मसजिद या मकबरा बनाते हैं, उसके सामने मुर्गीको बलि दी जाती तथा उसके नाम पर गोलाब, शिरनी और मिष्टान्न चढ़ाया जाता है।

ऐतिहासिक इलियटका कहना है, कि इनके उपास्य आदिपुरुष वा कुलदेवता लालवेग शायद उत्तर पश्चिम भारतीय लालगुरु (राक्षस आरण्य किरात) होंगे। किन्तु वाराणसीवासी लालवेगी वीर जहरको ही (चिश्तिया साधु सैयद शाह जुहूर) लालवेग मानते हैं। पञ्जाबके कमार जिस प्रकार हज़रत दाऊद और रङ्कर पीर अली रंगरेजको पूजा करते हैं, उसी प्रकार वहांके मेहतर लालपीर वा बाबा फकीरकी उपासना किया करते हैं। लालगुरु देखो।

लालवेगी इसलामधर्ममें दीक्षित होनेके बाद ही किसी मुसलमान साधुको अपना वंशप्रवर्त्तक मानते आ रहे हैं। उत्तर-भारतसे ये लोग नौकरीकी खोजमें बङ्गाल आ कर बस गये हैं।

लालवेगी—दरभंगा जिलेमें प्रवाहित एक नदी।

लालमरेंडा (हिं० पु०) एक प्रकारका छोटा झाड़। यह भारतके गरम प्रान्तोंमें उत्पन्न होता है। इसके बीजोंसे तेल निकलता है जो गठियाके रोगमें काम आता है। इसको उंदरबीबी भी कहते हैं।

लालमणि—प्रश्नसुधाकर और मुहूर्त्तदर्पणके प्रणेता।

लालमणि त्रिपाठी—परिभाषाशिरोमणि और विद्वद्-कौमुदी नामक व्याकरणके प्रणेता।

लालमणि भट्टाचार्य—निर्णयसारके रचयिता।

लालमणि हाट—रङ्गपुर जिलान्तर्गत एक नगर और प्रसिद्ध वाणिज्य स्थान। यहां पटसन, तमाकू आदि द्रव्य बहुत परिमाणमें बेचनेके लिये लाया जाता है।

लालमन (हिं० पु०) १ श्रीकृष्ण। २ एक प्रकारका तोता। इसका सारा शरीर लाल, डैने हरे, चोंच गुलाबी और दुम काली होती है।

लालमाई—बङ्गालके पार्वत्य त्रिपुरा जिलेके अन्तर्गत एक शैल। यह कुमिल्ला नगरसे ३ मील पश्चिम और उत्तर-दक्षिणमें १० मील विस्तृत है। इस शैलश्रेणीकी ऊंचाई कहीं भी १०० फुटसे अधिक न होगी। इसका अधिकांश स्थान गभीर वनमालासे समाच्छन्न है। यहां लोहे और चांदीकी खान है। अङ्गरेज-गवर्मेण्टने २१ हजार रुपयेमें मैनामती और लालमाई शैलको त्रिपुराराजको हाथ बेच दिया है। इस शैलशिखर पर जङ्गलावृत-स्थानमें एक प्राचीन दुर्ग और कुछ पत्थरकी प्रतिमूर्त्ति पड़ी है। भास्कर-खोदित पत्थरके चित्रोंमें नाग और वराहमूर्त्ति देख कर यूरोपीयगण अनुमान करते हैं, कि ये सब ध्वस्त निदर्शन पर्वतवासी असभ्य अहिन्दू जातिकी कीर्त्ति है। किन्तु त्रिपुरा राजधानी कुमिल्लाके इतने समीप रहनेसे यह स्पष्ट अनुमान किया जाता है, कि यह त्रिपुरा-राजवंशके किसी प्राचीन राजाकी ही कीर्त्ति, मूर्त्ति शेषनाग और वराह अवतारके प्रतिपादक हैं। भारतवर्षसे बहुत दूर पूर्व पार्वत्य विभागमें जब पहले पहल हिन्दूधर्म फैला, तब ही शायद यह दुर्ग और देवालय आदि बने होंगे। त्रिपुरामें वैष्णवधर्मकी प्रतिष्ठासे शाक्तधर्मका विलोप हुआ। मालूम होता है, उसी समय त्रिपुरावासीने शक्ति उपासनाके इस पूज्य स्थानको छोड़ दिया और धीरे धीरे यहां जंगलसे ढक गया है।

[illegible] है [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] किन्तु [illegible] [illegible] होता है। [illegible] [illegible] होता। अनुमान होता है कि [illegible] अपने नाम पर [illegible] [illegible] और [illegible] होगा। [illegible] [illegible] आज भी [illegible] रही है।

[illegible] ([illegible]) एक प्रसिद्ध [illegible] है। इसका व्यवहार प्रायः [illegible] होता है।

भारतवर्षके [illegible], [illegible] [illegible] भूमि के [illegible] फुट ऊँचाई स्थान पर भी इसका पेड़ उत्पन्न हुआ है। इसकी [illegible] बहुत भिन्न होती है। [illegible] के [illegible] प्रकारकी [illegible] देखी जाती है। [illegible] और वर्षा द्वारा उसको [illegible] जाती है।

भारतवर्षके विभिन्न स्थानोंमें तथा यूरोपीय भाषाओंमें [illegible] विभिन्न नामोंसे परिचित है। हिन्दी—[illegible]; बङ्गाल—[illegible], [illegible]; [illegible]—[illegible]; [illegible]—[illegible]; [illegible]—[illegible]; [illegible]—[illegible]; [illegible]—[illegible]; [illegible]—[illegible]; [illegible]—[illegible]; [illegible] [illegible]—[illegible]; [illegible]—[illegible]; [illegible] [illegible] और [illegible] Chin[illegible] [illegible] है।

इस [illegible] के समान, [illegible] इसमें अधिक [illegible] होता है। [illegible] के लिये इसकी [illegible] होती है। [illegible] और पीछे और आगेकी ओर [illegible] होते हैं। [illegible] [illegible] है। [illegible] इसके लिये अच्छी नहीं होती। [illegible] होती है। [illegible] फूल आते हैं और तब [illegible] लगती है। [illegible] [illegible] होते हैं। यही [illegible] के समान [illegible] होता है। परन्तु [illegible] यह [illegible] और उतनी ही मोटी होती है। इन फलियोंका रंग हरा, पीला, काला, [illegible] होता है और यह कई महीनों तक लगातार [illegible] है। जब यह पकती है, तब इसका रंग हरा और [illegible] पर [illegible] हो जाता है।

[illegible] विश्वास है, कि [illegible] पहले [illegible] उत्पन्न हुई थी। [illegible] [illegible] [illegible] थी। [illegible] इसका [illegible] नाम [illegible] हुआ है। [illegible] [illegible] किन्तु अधिक सम्भव है, कि [illegible] पहले [illegible] भारतीय [illegible] है। [illegible] [illegible] [illegible]

[illegible]

१६वीं सदीमें यूरोपमें पहले पहल लालमिर्चकी खेती हुई। वहांके लोगोंका कहना है, कि उसके परवर्त्तिकालमें भारतवर्षमें उसकी आमदनी हुई थी। शायद पुर्त्तगीज-नाविकगण वेष्ट-इण्डिजमे भारतीय द्वीपोंमें और पीछे भारतवर्षमें लाये होंगे, परन्तु यह विश्वास नहीं होता। क्योंकि जो हिन्दू एक समय सुमात्रा, जावा, वाली और लङ्का आदि द्वीपोंमें उपनिवेश स्थापन करनेमें समर्थ हुए थे, वे क्या अमेरिकाके निकटवर्त्ती महालङ्का द्वीपजात 'लङ्का' नामक यह उद्भिज्ज भारतवर्षमें नहीं लाये होंगे? गोलमिर्चकी तरह कटु जान कर उस समयके ग्रन्थकारोंने अपने अपने ग्रन्थमें उसे 'मरिच' जातिके अन्तर्भुक्त कर लिया था। अधिक सम्भव है, कि गोलमिर्चकी तरह सद्गुण-सम्पन्न न होनेके कारण उसका उतना आदर नहीं था। यही कारण है, कि वैद्यक ग्रन्थमें कुमारिच नामसे उसका उल्लेख देखा जाता है। लङ्काद्वीपमें उत्पन्न होनेके कारण इसका लङ्का या लालमिर्च नाम हुआ है। आयुर्वेदशास्त्रमें इसका गुण—दीपन, विदाही, अर्शोवृद्धिकर, अम्लकर, गुरुपाक और विरुक्षी बताया है।

मरिच शब्द देखो।

ऊपरमें लालमिर्चके जातिविभागका उल्लेख किया गया है। अङ्गरेजीमें जिसको Red Pepper कहते हैं उसका वैज्ञानिक नाम Capsicum annuum है। C. frutescens नामक इसकी एक और जाति है। अङ्गरेजीमें इसे Chilly, Goat pepper, Cayenne pepper, Spur pepper कहते हैं। इस जातिकी मिर्च उपरोक्त श्रेणीसे छोटी होती है। बङ्गाल और उत्तर-पश्चिम प्रदेशमें इसको गाछमिर्च कहते हैं। किन्तु हिमालयप्रदेशमें यह "खर्सानो", मलयालममें "चवे-लोमक चीना मरिच और लङ्गमिरा" सिङ्गापुरमें "चास मरिच" नामसे प्रसिद्ध है। दक्षिण अमेरिका, बंगाल, उड़िसा और मन्द्राज प्रदेशमें इस जातिकी लालमिर्च बहुतायतसे उपजती है। इसको सूर्यमुखी मिर्च भी कहते हैं। C. grossum श्रेणीकी लालमिर्च बङ्गाल तथा भारतवर्षके अन्यान्य देशोंमें कमरंगा या काफ्री मिर्च नामसे मशहूर है। यह बहुत तिक्त होती है। कृषक इस जातिकी मिर्चकी खेती नहीं करते। किसी किसी उद्यानमें शौकीन लोग इस लालमिर्चको लगाते हैं। इसके फलोंका रंग सिन्दूरके समान गाढ़ा लाल होता है। इसकी कड़ी उग्रता देख कर मसाले अथवा व्यञ्जनादिके साथ नहीं खाते। यूरोपीयगण अकसर खट्टे अचारमें अथवा उसके बीचे निकाल उसमें मसाला भर कर सिरकामें डुबो रखते हैं। C minimum वा C. fastigiatum धानकी तरह छोटी होती है, इस कारण इसको धानीमिर्च कहते हैं। इसके अलावा बेर या वटफलकी जैसी लाल और गोल एक और प्रकारकी लालमिर्च देखी जाती है। चन्द्रमणि नामक छोटी लालमिर्चकी एक और श्रेणी है।

कच्ची, पक्की, सूखी और अचारमें डुबोई हुई सभी प्रकारकी लालमिर्च लोग खाते हैं। तरकारी आदिको लाल करने तथा अचारादिकी गंध बढ़ानेके लिये लालमिर्चका व्यवहार अधिक होता है। बङ्गालमें मिर्चके काढ़ेसे खोलागुड़की तरह एक प्रकारकी वस्तु बनाते हैं। इसका स्वाद तीता होता है। इङ्गलैण्डमें भी लालमिर्चका यथेष्ट आदर है। सूखी लालमिर्चको ढेंकीमें कूट कर अथवा जांतेमें पीस कर पीछे कपड़ेमें छान बोतलमें रखनेसे यह चूर्ण नहीं बिगड़ता। कारि पाउडरके साथ उस चूर्णका व्यवहार होता है।

वैद्यकग्रन्थमें लालमिर्चको कुमरिच कहा है। यह दीपन, अग्निकर और बलवर्द्धक है। वेदनायुक्त स्थानमें यह मिर्च पीस कर प्रलेप करनेसे वह स्थान लाल हो उठता और पीछे वेदना जाती रहती है। गलेकी घंटी बढ़ने अथवा जीभके तलेमें कांटा पड़नेसे यहां लालमिर्चको घिस दे, भारी उपकार होगा। सामयिक वा दूषित गलक्षतरोगमें इसके सिद्ध किये हुए जलसे कुल्ली करनेसे वेदनाका नाश होता है। चीनी और कतीराके साथ लालमिर्चका लोजेञ्ज बना कर सेवन करनेसे स्वरभङ्ग-दोष दूर होता है। गायक और वक्ताओंको यह लोजेञ्ज बहुत प्रिय है। यह मलेरिया-नाशक और गलगण्ड-निवारक माना गया है। कुत्ते अथवा सांपके काटे हुए स्थानमें लालमिर्चको पीस कर प्रलेप करनेसे विषनाश होता है। मदात्ययरोग (Delirium Tremens) २० ग्रेन सेवन करनेसे बहुत उपकार होता है। गलक्षतमें एक बोतल जलमें ४ ड्राम लालमिर्च सिद्ध कर यह जल लगानेसे

[illegible] (Fruit) [illegible]

[illegible]

[illegible] (accuracy) [illegible]

[illegible] (हिं० पु०) [illegible]

[illegible] (हिं० पु०) [illegible]

[illegible] (Charles of Bengal) [illegible] १८१४ ई०में इनकी मृत्यु हुई।

[illegible] (हिं० स्त्री०) [illegible]

[illegible] (सं० पु०) [illegible]

[illegible] (हिं० पु०) [illegible]

[illegible] (हिं० पु०) [illegible]

[illegible] (हिं० पु०) [illegible]

[illegible] (सं० स्त्री०) [illegible]

[illegible] (हिं० पु०) [illegible]

[illegible] (हिं० पु०) [illegible]

[illegible]

अकसर ही इस पवित्र तीर्थको देखने आया करते हैं। सबोंकी धारणा है, कि १३५६ ई०में उक्त मकबरा बना था। १६३९ ई०में तत्कालीन राजवंशीय मीर्जा जानीने इस साधुके उद्देश्यसे एक और बड़ा मकबरा बनवाया। सिन्धुराज मीर करमअली खाँ तालपुरने इसका शर और चूड़ाका गुम्बज चाँदीके पत्तरसे मढ़वा दिया। इस मकबरेमें अरबी-भाषामें लिखा एक शिलाफलक है।

लालसिंह—एक सिख-सरदार। ये रानी चाँदकुमारीके प्रियपात्र थे। इस कारण राजसरकारमें इनकी मोटी अच्छी जम गई थी। राजा जवाहिर सिंहके परलोक सिधारने पर १८४४ ई०में ये ही प्रधान मन्त्री हुए। सिपाही-विद्रोहके पहले ये कुछ समयके लिये आगरामें नजरबंद थे।

लालसिंह—एक प्रसिद्ध ज्योतिषी।

लालसिरा (हिं० स्त्री०) एक प्रकारकी बत्तख जिसका सिर लाल होता है।

लालसीक (सं० क्ली०) पिच्छिल, पिलपिला।

लाला (सं० स्त्री०) लल-णिच् अच् टाप्। मुखस्थ जल, मुंहसे निकलनेवाली लार, थूक। पर्याय—सृणिका, स्यन्दिनी, द्राविका, सृणीका, मुखस्राव। (राजनि०)

लाला (हिं० पु०) १ एक प्रकारका संबोधन। इसका व्यवहार किसीका नाम लेते समय उसके प्रति आदर दिखलानेके लिये किया जाता है, महाशय। इस शब्दका व्यवहार प्रायः पश्चिममें खत्रियों और बनियों आदिके लिये अधिकतासे होता है। २ कायस्थ जाति या कायस्थोंका सूचक एक शब्द। ३ छोटे प्रिय बच्चेके लिये संबोधन, प्रिय व्यक्ति विशेषतः बालक। (वि०) ४ लाल रंगका। लाल देखो।

लाला (फा० पु०) पोस्ताका लाल रंगका फूल। इससे प्रायः काली दसवस पैदा होती है। इसे गुलेलाला भी कहते हैं।

लाला जयनारायण—चण्डीकाव्य और हरिलीलाके प्रणेता। ये लाला रामप्रसादके पुत्र थे। रामप्रसाद देखो।

लालाट (सं० त्रि०) ललाट-सम्बन्धीय।

लालाटि (सं० पु०) ललाटका गोतापत्य।

लालाटिक (सं० त्रि०) ललाटं पश्यतीति ललाट (दंशायां ललाटकुक्कुटी पश्यति। पा ४।४।४६) इति ठक्। १ प्रभुका कपालदर्शी, कार्याक्षम। २ ललाट सम्बन्धी। (पु०) ३ आश्लेषणविशेष, मिलावट।

लालाटी (सं० स्त्री०) ललाट।

लालाठाकुर—आह्निकसंक्षेपके रचयिता वामदेवके प्रतिपालक।

लालापाठक—एक भाषा-कवि। ये रूकुम नगरमें रहते थे। इनका जन्म सं० १८३१में हुआ था। इन्होंने 'शालिहोत्र' नामक भाषाकी एक उत्तम पुस्तक लिखी।

लालामेह (सं० पु०) लालामेह देखो।

लालाबाबू—एक प्रसिद्ध बङ्गाली-साधु और परम वैष्णव। मुर्शिदाबाद जिलेके कान्दी नगरके सुप्रसिद्ध उत्तर-राढ़ीय कायस्थ जमींदार। हरेकृष्णके वंशमें इनका जन्म हुआ। कलकत्तेके उत्तर पाइकपाड़ा ग्राममें उन लोगोंका एक वासभवन है। इस कारण वे लोग पाइकपाड़ाके राजा कहलाते हैं। लालाबाबू अतुल-ऐश्वर्यके अधिपति थे। परदुःखसे दुःखित हो वे खुले हाथ दान दिया करते थे, इस कारण लोगोंने उनका लालाबाबू नाम रखा था। उनके पितामह दीवान गङ्गागोविन्द सिंह भारतप्रतिनिधि वारेन हेस्टिङ्गके शासनकालमें इष्ट-इण्डिया कम्पनीके दीवान थे। गङ्गागोविन्दके पुत्र प्राणकृष्ण (पीछे दीवान) ने अपने बड़े भाई राधाकान्त (बङ्गेश्वर नवाब सिराज उद्दौलाके प्रधान राजस्व संग्राहक) की देख रेखमें रह कर विषय-कर्ममें विशेष दक्षतालाभ किया था। ये पितृसम्पत्तिके अधिकारी हो उदारताका यथेष्ट परिचय दे गये हैं।

इन्हीं महानुभवके पुत्र कृष्णचन्द्र सिंह उर्फ लाला बाबू थे। ये पिताके सद्गुणशाली थे। प्रथम जीवनमें ये वर्द्धमान और कटककी कलक्टरीके दीवान हुए थे। पीछे उनकी विषय-तृष्णा धीरे धीरे बुझती गई। सुना जाता है कि एक दिन शामको वे अपने महलके ऊपर टहल रहे थे। इसी समय एक धोबिन जो पास ही में रहती थी, जोरसे चिल्ला उठी, "सूर्यास्त हो चला, बासना (केलेका छिलका) में आग लगा दो।" यह बात सुन कर साधकके प्राण चमक उठे। उन्होंने यह नहीं समझा, कि धोबिन रातके लिये बासना या केलेके छिलकेको जलाना

[illegible] किया।

[illegible]

[illegible]

[illegible]

[illegible]

[illegible] (सं० सि०) [illegible]

[illegible] लिखा गया है, [illegible]

[illegible] १८[illegible] ईसवी [illegible]

[illegible] 'हिन्दू' [illegible] और [illegible] १८८३ ईसवी [illegible] ([illegible] Law) [illegible]

[illegible]

[illegible]

[illegible] हिन्दू [illegible] और [illegible] हिन्दू [illegible] मुहम्मद [illegible] हंसराज और [illegible] [illegible]

[illegible] हंसराज और [illegible] हिन्दू विद्यार्थियों और [illegible] [illegible] समाज और [illegible] स्थापित किये हुए [illegible] [illegible] था, कि पश्चिम और [illegible] नहीं हो सकता। इसलिये देशको सार्वजनिक [illegible] लिये [illegible] उचित है। [illegible] [illegible] —([illegible]) अर्थात् '[illegible]' [illegible] किया था।

[illegible] (Mazzini) और [illegible] (Garibaldi) [illegible] किया। [illegible] किये गये हैं।

[illegible]

परिश्रमके कारण उक्त वर्षके अन्तमें आपका स्वास्थ्य कुछ बिगड़ गया था। इतने पर भी जब भारतवर्षकी दुरवस्थाका विवरण इङ्गलैण्डमें साधारणको जतानेकी बात छिड़ी, तब मि० गोखले और आप जाने पर उद्यत हुए थे। वहां जा कर बहुत जगहोंमें आपने अपने देशकी दुःख-कहानी कह सुनाई। सुनते ही वहांके सभी लेबर, डेमोक्रेटिक और सोसेलिस्ट आपके पक्षमें हो गये। फिर वहांसे यूरोपके अनेक स्थानोंमें और अमेरिका गये। आपके जानेका उद्देश्य एकमात्र वहांकी शिक्षाप्रणालीको देखना था। वहांसे पुनः इङ्गलैण्ड लौट आये और मि० गोखलेके साथ मिल कर बहुत से राजनैतिक कार्य किये। यूरोप और अमेरिकामें भ्रमण करनेसे आपको वहांकी अवस्थाके साथ भारतवर्षकी अवस्थाकी तुलना करने का सुयोग मिला। उन देशोंमें उस समय राजनैतिक क्षमताके लिये प्रजाओं और गवर्मेण्टके बीच आन्दोलन चल रहा था, लेकिन भारतमें उसका कुछ भी नामो निशान न था। पाश्चात्य सभ्यताका लक्षण यह था, कि जिस देशकी गवर्मेण्ट होगी, उस देशके आदमियोंके लिये उस देशके आदमियों द्वारा शासनतन्त्र बनाया जायगा। प्रजातान्त्रिक इंगलैण्ड, राजतान्त्रिक जर्मनी, यथेच्छाचार तान्त्रिक रूस और साधारण तान्त्रिक फ्रान्स सब मुल्कोंमें एक ही लक्षण दिखाई पड़ता था। जब कोई गवर्मेण्ट प्रजाके विरुद्ध काम करती थी, तब प्रजा सब मिल कर उस गवर्नमेण्टको बदल कर नई गवर्मेण्ट स्थापित करती थी।

१६०७ ई०के दिसम्बर महीनेमें सूरतमें जो निखिल भारतवर्षीय स्वदेशी सम्मेलन हुआ था, उसमें आपने कहा था,—'सम्मिलित भारतका धर्म एक ही स्वदेशी होना चाहिये।' उनकी वक्तृता संवादपत्रमें पढ़ कर सर जे०, इबेटसन आदि सिविलियन उनको राजविद्रोही मानते थे और लार्ड मारलीका ख्याल था, कि लाला लाजपत रायके मातहत बहुत-सी बागी सेनाएं मौजूद हैं, समय पड़ने पर वे सरकारके विरुद्ध उठ खड़ी होंगी। लेकिन सचमुच आप राजविद्रोही नहीं थे। आप कहते थे, कि विद्रोहका मार्ग बहुत खराब है। मैं वह नहीं चाहता। आपको उम्मेद था, कि ब्रिटेनके सरल, दयालु और न्यायपर अधिवासी भारतवासीका दुःख सुन कर उनका दुःख छुड़ानेके लिये चेष्टा करेंगे। लेकिन पीछे मालूम हुआ, कि वे लोग आगेका गुण खो बैठे हैं।

लालाजीकी वक्तृतासे गवर्मेण्ट इतना डर गई थी, कि पञ्जाबके लाट सर डि, इबेट्सनने भारतके बड़े लाट लार्ड मिंटो और सेक्रेटरी आव स्टेट लार्ड मारलीसे सलाह कर १८१८ ई०के रेगुलेशन तीनके अनुसार आपको गिरफ्तार करके बिना विचार किये ही गुप्त कैदखानेमें डाल दिया था। क्योंकि, उनका ख्याल था, कि लालाजीको कैद करनेसे पञ्जाबमें शान्ति रहेगी, पर इसका फल उलटा ही निकाला। शान्तिके बदले समूचे भारतमें अशान्ति फैल गई।

आपका विश्वास था, कि गवर्मेण्टके मदद पहुंचानेसे भारतवासी एक जाति नहीं हो सकते हैं और न उनके दबावसे भारतीयोंकी उत्तेजना घट सकती है। आपका उपदेश यह था, कि भारतीयोंका एकमात्र धर्म स्वदेशप्रेम ही होना चाहिए और उसीके लिये उन्हें जीना और मरना चाहिए।

लालाजीने हिन्दू समाज-संस्कार करनेके लिये बड़ी चेष्टा की थी। आप कहते थे, कि मुसलमानों और क्रिस्तानोंको हिन्दू बनानेका कुछ प्रयोजन नहीं है। हिन्दुओंके पुराने शास्त्र और वर्तमान अवस्थाके अनुसार समाज-संस्कार करके सबोंको एकत्रित करना चाहिए। आप राजनैतिक या सामाजिक परिवर्त्तन इंगलैण्डके अनुसार नहीं चाहते थे। भारतकी अवस्थानुसार जैसे चल सकता है आप वैसा ही परिवर्त्तन चाहते थे।

१६०६ ई०में कलकत्ता-इण्डियन नेशनल कांग्रेसके आप सभापति नियुक्त हुए थे। उस समय आपने कहा था,—होनहार तथा बूढ़े मनुष्योंकी बात माननी चाहिए, अधीर होना उचित नहीं। हिन्दू, मुसलमान और पारसी लोगोंके लिये वह एक बुरा दिन होगा जब कि वे लोग अपना चाल-चलन छोड़ यूरोपीयोंका अनुसरण करेंगे।

आप बहुत-सी स्कूल-पुस्तकें लिख गये हैं जिनमें इटली तथा भारतके अनेक देशभक्तों और अवतार तथा धर्मप्रचारकोंका चरित लिखा है। आप भारत, यूरोप

लोकाभ्युदय (सं० पु०) लोकस्य अभ्युदयः। लोकसमूहका अभ्युदय, जनताकी उन्नति।

लोकायत (सं० क्ली०) लोकेषु आयतं विस्तीर्णमिव। १ चार्वाकशास्त्र। इस दर्शनमें परलोक या परोक्षवादका खण्डन है। २ वह मनुष्य जो इस लोकके अतिरिक्त दूसरे लोकको न मानता हो। ३ किसी किसीके मतसे दुर्मिल नामक छन्दका एक नाम।

लोकायतन (सं० पु०) १ चार्वाक। २ जो चार्वाकके नास्तिक मतका अनुसरण करता हो।

लोकायतिक (सं० पु०) लोकायतं शास्त्रमस्त्यस्येति, लोकायत-ठन्। १ चार्वाक। २ बौद्धभेद। ये लोग नास्तिक लोकायतके मतानुसार चलते हैं, इसीसे इनका लोकायतिक नाम पड़ा है।

लोकायन (सं० पु०) नारायण।

लोकालोक (सं० पु०) लोक्यतेऽसौ इति लोकः, न लोक्यतेऽसौ इति आलोकः ततः कर्मधारयः। स्वनामख्यात पर्वत विशेष। पर्याय—चक्रवाड़। यह पर्वत साब्धिद्वीपा पृथिवीको वेष्टन कर प्राकारकी तरह खड़ा है। इस पर्वतके किसी स्थानमें सूर्यालोक दिखाई देता है और किसी स्थानमें नहीं दिखाई देता है। इसलिये इसका लोकालोक नाम पड़ा है।

इस पर्वतका विषय देवीभागवतमें इस प्रकार लिखा है—भगवान्‌ने नारदसे कहा था, 'नारद! शुद्ध सागरके चर पर लोकालोक नामक पर्वत है। यह पर्वत लोक (प्रकाशमान) और अलोक (अप्रकाशमान) इन दो स्थानोंके विभागके लिये कल्पित हुआ है इस कारण इसका लोकालोक नाम पड़ा है। मानसोत्तर और मेरु दोनोंके मध्यवर्त्ती समस्त भूभाग सुवर्णमय और दर्पणकी तरह निर्मल है। यहां देवताको छोड़ और कोई प्राणी नहीं रहता। यहां जो कुछ वस्तु रखी जाती है, वह सोना हो जाती है। यही कारण है, कि यहां कोई नहीं आता। परमेश्वरने उस पर्वतको तीन लोकके सीमास्थानमें रखा है। सूर्य प्रभृति ध्रुवावधि ज्योतिष्मान ग्रहोंकी किरणें उसीके अधीन तीनों लोकमें आती हैं। कभी भी उसे छोड़ कर बाहर नहीं निकल सकती। यह पर्वत इतना ऊंचा और विस्तृत है, कि ग्रहोंकी गति उतनी दूर जाने नहीं पाती। ऋषिगण इस लोकालोकका परिमाण पचास कोटि योजन इस भूमण्डलका चतुर्थांश बतलाते हैं। आत्मयोनि ब्रह्माने इस पर्वतके ऊपर चारों ओर ऋषभ, पुष्पचूड़, वामन और अपराजित नामक चार दिग्गज स्थापन किये हैं। ये सब दिग्गज सारे संसारकी रक्षा करते हैं। भगवान् हरि इस स्थानमें सभी लोगोंकी भलाईके लिये निजांशसम्भूत दिक्पालोंके वीर्य, सत्त्वगुण और ऐश्वर्यकी वृद्धि कर विष्वक्सेनादि अनुचरोंके साथ चतुर्भुज मूर्त्तिमें विराजित हैं। सनातन विष्णु अपने मायारचित विश्वकी रक्षाके लिये कल्पान्तकाल तक इस मूर्त्तिमें अवस्थान करते हैं।

(देवीभाग० ८।१४ अ०)

लोकावेक्षण (सं० क्ली०) जगत्‌की भलाई चाहना।

लोकिन् (सं० त्रि०) १ लोकप्राप्त, स्वर्गीय। (पु०) २ लोकपति। ३ जगद्वासिमात्र। इस अर्थमें केवल बहुवचनका ही प्रयोग होता है।

लोकेश (सं० पु०) लोकानामीशः। १ ब्रह्मा। २ बुद्धभेद। ३ पारद, पारा। ४ इन्द्र। ५ लोकपाल। ६ लोकाधिपति।

लोकेशकर—तत्त्वदीपिका या तत्त्वबोधिनी नामक रामाश्रमकृत सिद्धान्तचंद्रिकाकी टीकाके रचयिता। इनके पिताका नाम क्षेमङ्कर था।

लोकेशप्रभवाप्यय (सं० त्रि०) लोकपालगणसे उद्भूत और उसीसे प्रतिनिवृत्त।

लोकेश्वर (सं० पु०) लोकानामीश्वरः। १ बुद्धदेव। २ लोकका प्रभु। ३ लोकपाल।

लोकेश्वरात्मजा (सं० स्त्री०) लोकेश्वरस्य बुद्धस्य आत्मजेव। बुद्धशक्तिभेद। पर्याय—तारा, महाश्री, ओङ्कार स्वाहा, श्री, मनोरमा, तारिणी, जया, अनन्ता, शिवा, खदिरवासिनी, भद्रा, वैश्या, नीलसरस्वती, शङ्खिनी, महातारा, वसुधारा, धनन्ददा, त्रिलोचना, लोचना।

लोकेष्टि (सं० स्त्री०) इष्टिभेद।

लोकैकबन्धु (सं० पु०) लोकानां एक एव बन्धुः। गौतम बुद्ध या शाक्यमुनि।

लोकैषणा (सं० स्त्री०) १ स्वर्गप्राप्तिकी इच्छा, स्वर्ग-सुख-

लोकस्कन्द (सं॰ पु॰) तमालवृक्ष।

लोकस्थाः (सं॰ स्त्री॰) दैनिक घटना।

लोकस्थिति (सं॰ स्त्री॰) १ प्रचलित पद्धति। २ जागतिक नियम।

लोकस्पृत् (सं॰ त्रि॰) लोकभृत् देखो।

लोकस्पृत् (सं॰ त्रि॰) जगत्‌की भलाई चाहनेवाला।

लोकहरदी (हिं॰ स्त्री॰) एक प्रकारकी हल्दी।

लोकहार (हिं॰ वि॰) लोकको हरण करनेवाला, संसारको नष्ट करनेवाला।

लोकहास्य (सं॰ त्रि॰) १ जगत्‌का हास्यास्पद। २ जनसाधारणका उपहास्य।

लोकहित (सं॰ त्रि॰) लोकस्य हितः। १ जनताका मङ्गल चाहनेवाला। (स्त्री॰) २ जनताकी भलाई।

लोकहिता (सं॰ स्त्री॰) १ तुत्थाञ्जन। २ कुल्थी।

लोकाकाश (सं॰ पु॰) १ आकाश, शून्यस्थान। २ जैन मतानुसार विश्व जिसमें सब प्रकारके जीव और तत्त्व रहते हैं।

लोकाक्षि (सं॰ पु॰) आचार्यभेद। मनुसंहिताकी ३।१६० टीकामें कुल्लूकभट्टने इनका उल्लेख किया है।

लोकाक्षि—दाक्षिणात्यके काञ्चिपुर-निवासी चित्रकेतुके पुत्र। ज्ञानोपार्जनके बाद ये राजधानीका परित्याग कर श्रीशैल पर रहते थे। "महाजनः येन गतः स पन्था" यह नीतिवाक्य उनके जीवनका मूलमन्त्र था। ये ज्योतिष, स्मृति और तन्त्र ग्रन्थ लिख गये हैं। लौगाक्षि देखो।

लोकाक्षिन्—लौगाक्षिका एक नाम। लौगाक्षि देखो।

लोकाचार (सं॰ पु॰) लोकस्य आचारः। जनसमूहका आचार, लोकव्यवहार। जनसाधारण जिस आचार-पद्धतिके अनुसार चलते हैं, उसे लोकाचार कहते हैं। अनेक स्थानोंमें लोकाचार शास्त्रवत् मान्य है।

लोकाचार्य—महाभारतात्पर्य-व्याख्या, तत्त्वत्रय और वचन-भूषणटीकाके प्रणेता। लोकाचार्यसिद्धान्त नामक वेदान्त ग्रन्थ इन्हींका बनाया हुआ मालूम होता है।

लोकाट (हिं॰ पु॰) एक प्रकारका पौधा। इसके पत्ते लम्बे और नुकीले होते हैं, सेंधूके पत्तोंसे बहुत कुछ मिलते जुलते हैं, पर सेंधूसे कुछ बड़े होते हैं। इसका पेड़ बीस पचीस हाथसे अधिक ऊंचा नहीं होता। इसके पेड़में फागुन चैतके महीनेमें मंजरियां लगती हैं और बड़े बेरके बराबर फल लगते हैं। यह फल पकने पर पीले होते हैं और खानेमें प्रायः मीठे, मुलायम और स्वादिष्ट होते हैं। सहारनपुरमें लोकाट बहुत अच्छा और मीठा उत्पन्न होता है। यह फल चीन और जापान देशका है और वहींसे भारतवर्षमें आया है।

लोकातिग (सं॰ पु॰) १ असामान्य, मामूली। २ अद्भुत, अजूबा। ३ साधारण नियमसे बाहर।

लोकातिशय (सं॰ पु॰) १ लोकातिग देखो। २ दैनिक प्रथासे बाहर।

लोकात्मन् (सं॰ पु॰) १ जगत्‌की आत्मा। २ विष्णु।

लोकादि (सं॰ पु॰) जगत्सृष्टिके आदिकर्त्ता, ब्रह्मा।

लोकाधिप (सं॰ पु॰) लोकस्य अधिपः। १ लोकपाल। २ देवतामात्र। ३ नरपति। ४ बुद्ध।

लोकाधिपति (सं॰ पु॰) १ लोकपाल। २ देवता।

लोकानन्द—किरातार्जुनीय टीकाके प्रणेता।

लोकाना (हिं॰ क्रि॰) फेंकना, उछालना।

लोकानुग्रह (सं॰ पु॰) १ जगत्‌का मङ्गल, संसारकी भलाई। २ प्रजावर्गकी उन्नति। ३ जनसाधारणके प्रति अनुकम्पा।

लोकानुराग (सं॰ पु॰) जनसाधारणके प्रति स्नेह या दया।

लोकान्तर (सं॰ क्ली॰) अन्यत् लोकं। परलोक, वह लोक जहां मरने पर जीव जाता है।

लोकान्तरग (सं॰ त्रि॰) लोकान्तरं याति गच्छति वा लोकान्तर गम ड। १ मृत, मरा हुआ। २ लोकान्तरगामी, परलोक जानेवाला।

लोकान्तरिक (सं॰ त्रि॰) दोनों लोकके बीच बसनेवाला।

लोकान्तरित (सं॰ त्रि॰) १ जो इस लोकसे दूसरे लोकमें चला गया हो। २ मृत, मरा हुआ।

लोकापवाद (सं॰ पु॰) लोके अपवादः। अपवाद, लोकनिन्दा।

लोकाभिमानिन् (सं॰ त्रि॰) सर्वव्यापी।

लोकाभिभाषिन (सं॰ त्रि॰) १ अगद्धाहित। (पु॰) २ बुद्धभेद।

लोकाभ्युदय (सं० पु०) लोकस्य अभ्युदयः। लोकसमूहका अभ्युदय, जनताकी उन्नति।

लोकायत (सं० क्ली०) लोकेषु आयतं विस्तीर्णमिव। १ चार्वाकशास्त्र। इस दर्शनमें परलोक या परोक्षवादका खण्डन है। २ वह मनुष्य जो इस लोकके अतिरिक्त दूसरे लोकको न मानता हो। ३ किसी किसीके मतसे दुर्मिल नामक छन्दका एक नाम।

लोकायतन (सं० पु०) १ चार्वाक। २ जो चार्वाकके नास्तिक मतका अनुसरण करता हो।

लोकायतिक (सं० पु०) लोकायतं शास्त्रमस्त्यस्येति, लोकायत-ठन्। १ चार्वाक। २ बौद्धभेद। ये लोग नास्तिक लोकायतके मतानुसार चलते हैं, इसीसे इनका लोकायतिक नाम पड़ा है।

लोकायन (सं० पु०) नारायण।

लोकालोक (सं० पु०) लोक्यतेऽसौ इति लोकः, न लोक्यतेऽसौ इति आलोकः ततः कर्मधारयः। स्वनामख्यात पर्वत विशेष। पर्याय—चक्रवाड़। यह पर्वत सप्तद्वीपा पृथिवीको घेरन कर प्राकारकी तरह खड़ा है। इस पर्वतके किसी स्थानमें सूर्यालोक दिखाई देता है और किसी स्थानमें नहीं दिखाई देता है। इसलिये इसका लोकालोक नाम पड़ा है।

इस पर्वतका विषय देवीभागवतमें इस प्रकार लिखा है—भगवान्ने नारदसे कहा था, 'नारद! शुद्धसागरके चर पर लोकालोक नामक पर्वत है। यह पर्वत लोक (प्रकाशमान) और अलोक (अप्रकाशमान) इन दो स्थानोंके विभागके लिये कल्पित हुआ है इस कारण इसका लोकालोक नाम पड़ा है। मानसोत्तर और मेरु दोनोंके मध्यवर्ती समस्त भूभाग सुवर्णमय और दर्पणकी तरह निर्मल है। वहां देवताको छोड़ और कोई प्राणी नहीं रहता। वहां जो कुछ वस्तु रखी जाती है, वह सोना हो जाती है। यही कारण है, कि वहां कोई नहीं आता। परमेश्वरने उस पर्वतको तीन लोकके सीमास्थानमें रखा है। सूर्य प्रभृति ध्रुवावधि ज्योतिष्मान् ग्रहोंकी किरणें उसीके अधीन तीनों लोकमें जाती हैं। कभी भी उसे छोड़ कर बाहर नहीं निकल सकती। यह पर्वत इतना ऊंचा और विस्तृत है, कि ग्रहोंकी गति उतनी दूर जाने नहीं पाती। ऋषिगण इस लोकालोकका परिमाण पचास कोटि योजन इस भूमण्डलका चतुर्थांश बतलाते हैं। आत्मयोनि ब्रह्माने इस पर्वतके ऊपर चारों ओर ऋषभ, पुष्पचूड़, वामन और अपराजित नामक चार दिग्गज स्थापन किये हैं। ये सब दिग्गज सारे संसारकी रक्षा करते हैं। भगवान् हरि इस स्थानमें सभी लोगोंकी भलाईके लिये निजांशसम्भूत दिक्पालोंके वीर्य सत्त्वगुण और ऐश्वर्यकी वृद्धि कर विष्वक्सेनादि अनुचरोंके साथ चतुर्भुज मूर्त्तिमें विराजित हैं। सनातन विष्णु अपने मायारचित विश्वकी रक्षाके लिये कल्पान्तकाल तक इस मूर्त्तिमें अवस्थान करते हैं।

(देवीभाग० ८।१४ अ०)

लोकापेक्षण (सं० क्ली०) जगत्की भलाई चाहना।

लोकिन् (सं० त्रि०) १ लोकप्राप्त, स्वर्गीय। (पु०) २ लोकपति। ३ जगद्वासिमात्र। इस अर्थमें केवल बहुवचनका ही प्रयोग होता है।

लोकेश (सं० पु०) लोकानामीशः। १ ब्रह्मा। २ बुद्धभेद। ३ पारद, पारा। ४ इन्द्र। ५ लोकपाल। ६ लोकाधिपति।

लोकेशकर—तत्त्वदीपिका या तत्त्वबोधिनी नामक रामाश्रमकृत सिद्धान्तचन्द्रिकाकी टीकाके रचयिता। इनके पिताका नाम क्षेमङ्कर था।

लोकेशप्रभवाप्यय (सं० त्रि०) लोकपालगणसे उद्भूत और उसीसे प्रतिनिवृत्त।

लोकेश्वर (सं० पु०) लोकानामीश्वरः। १ बुद्धदेव। २ लोकका प्रभु। ३ लोकपाल।

लोकेश्वरात्मजा (सं० स्त्री०) लोकेश्वरस्य बुद्धस्य आत्मजेव। बुद्धशक्तिभेद। पर्याय—तारा, महाश्री, ओङ्कार स्वाहा, श्री, मनोरमा, तारिणी, जया, अनन्ता, शिवा, खदूरवासिनी, भद्रा, वैश्या, नीलसरस्वती, शङ्खिनी, महातारा, वसुधारा, धनन्ददा, त्रिलोचना, लोचना।

लोकेष्टि (सं० स्त्री०) इष्टिभेद।

लोकैकबन्धु (सं० पु०) लोकानां एक एव बन्धुः। गौतम बुद्ध या शाक्यमुनि।

लोकैषणा (सं० स्त्री०) १ स्वर्गप्राप्तिकी इच्छा, स्वर्ग-सुख-

कफपित्तनाशक, पाण्डुरोगनाशक, व्रण, गुल्म, श्वास, कास और प्रमेहनाशक, शोथनाशक तथा नेत्ररोगमें हितकर है।

लोत (सं० पु० क्ली०) लुनातीति लु (हसिमृग्रिणिति। उण् ३।८६) इति तन्। १ लोप्त धन, चोरोंका धन। २ लोत, आंसू। ३ चिह्न, निशान। ४ लवण, नमक। ५ अश्रुपात, आंसू का टपकना।

लोत (सं० स्त्री०) लुनातीति लु (तॄभि तुन्यन्तुन। उण् ४।१५८) इति तून, यद्वा ला (अशित्रादिभ्य इत्रोत्री। उण् ४।१७२) इति उत। लोत, नेत्रजल, आंसू।

लोथ (हिं० स्त्री०) किसी प्राणीका मृत शरीर, लाश।

लोथड़ा (हिं० पु०) मांसका बड़ा पिंड जिसमें हड्डी न हो, मांसपिण्ड।

लोधारी (हिं० स्त्री०) १ कम पानीमेंसे नावको खींचते या धीरे धीरे खेते हुए किनारे लगाना। २ लोधारी लङ्गर डाल कर पानीकी तहका पता लेते हुए मार्गसे किनारेकी ओर नाव बढ़ाना।

लोधारी लंगर (हिं० पु०) सबसे छोटा लंगर। यह उस जगह डाला जाता है जहां पानी कम होता है और यह जानना अभिप्रेत होता है कि यह किनारे जानेका मार्ग है या नहीं।

लोद (हिं० स्त्री०) लोध देखो।

लोदी—१ प्राचीन राजवंशभेद। २ दिल्लीके सनामप्रसिद्ध मुसलमान राजवंश। भारतवर्ष देखो।

लोध (सं० पु०) रुध-अच्, रस्य लः। स्वनामख्यात वृक्ष। यह भारतवर्षके जङ्गलोंमें उत्पन्न होता है।

विशेष विवरण लोध्र शब्दमें देखो।

लोधरा (हिं० पु०) जापानमें बननेवाला एक प्रकारका तांबा।

लोधरान—पञ्जाब प्रदेशके मुलतान जिलान्तर्गत एक तहसील। यह अक्षा० २९° २२´ से ले कर २९° ५५´ उ० तथा देशा० ७१° २२´ से ले कर ७२° ९´ पू० तक विस्तृत है। भूपरिमाण १०५७ है।

यह तहसील शतद्रु नदीके किनारे अवस्थित है। यहांकी जमीन पहाड़ी और बलुई है जिससे यहां अन्नकी उपज उतनी अच्छी नहीं है। गेहूं, जुआर, बाजरा, रूई, जौ और नील यहांका पण्यद्रव्य है। लोधरान नगरमें एक तहसीलदार रहते हैं। यही यहांके दीवानी और फौजदारी विभागका विचार करते हैं। इस तहसीलमें कुल २६२ गांव और दो शहर लगते हैं।

लोधा—मुसलमान फकीरोंकी एक शाखा। ये अयोध्याके मुसलमान फकीर-वंशसे उत्पन्न हुए हैं। नेपालकी तराई और अयोध्याके सीमान्त प्रदेशमें इनका वास है।

लोधिका—बम्बई प्रेसिडेन्सीके काठियावाड़ विभागके हलार प्रान्तमें स्थित एक छोटा सामन्त-राज्य। यह राज्य आज कल दो भागोंमें विभक्त है। उक्त दोनों राजवंशोंकी कुल आय २५ हजार रुपया है जिनमेंसे अंगरेजराजको सलाना १२८७) और जूनागढ़के नवावको ४०५) रु० कर देना होता है। लोधिका ग्राम राजकोटसे १५ मील और गोण्डालसे १५ मील उत्तर पश्चिम पड़ता है।

लोधि—कृषिजीवी एक हिन्दू जाति। मध्यभारत, युक्तप्रदेश और भरतपुरके आस-पास स्थानोंमें इनका वास देखा जाता है। आचार-व्यवहार और सामाजिक प्रथानुसार ये कुर्मी जातिसे मिलते जुलते हैं। एक समय इस जातिके लोग जबलपुर और सागर जिलेमें बड़े प्रसिद्ध हो उठे थे। शायद १६वीं सदीमें ये बुन्देलखण्डसे आ कर मध्यभारतमें बस गये। पीछे कुर्मियोंने सम्भवतः १६२० ई०में दोआबसे उस देशमें गमन किया था। महाराष्ट्र देशमें इसी कारण उत्तर-भारतके लोधि लोग 'लोधि परदेशी' नामसे पुकारे जाते हैं। यहां ये ग्वाले और बढ़ईका काम करते हैं।

ये हट्टे-कट्टे, मजबूत और मेहनती होते हैं। खेतीबारीमें कुर्मियोंके समान हैं, पर उनके समान शान्त स्वभावके नहीं। ये धर्मांध, अत्याचारी, परस्वापहरणप्रिय और प्रतिहिंसा परायण हैं। नर्मदाके निकटवर्ती प्रदेशोंमें ये खेती-बारी तो करते ही हैं, पर इसके सिवाय ये डकैती कर भी अपना जीवन बिताते हैं। मृगयामें ये बड़े पटु होते हैं। तीर अथवा बंदूक छोड़नेमें ये बड़े तेज हैं। इसलिये ये सैनिक कार्य करनेमें सब तरहसे उपयुक्त हैं। दक्षिणी-भारतमें इस जातिके बहुतेरे सेनामें भर्ती हो गये हैं।

इनमें बहुविवाह और विधवा-विवाह प्रचलित है। विवाहित विधवा पत्नी और अपने मनसे परित्यक्ता

भार्याके कोई पार्थक्य नहीं है। सगाई मतसे विवाहिता विधवा स्वजातोय न होनेसे उसे स्वामो ग्रहण कर नहीं सकते। बहुत जगह दूर सम्पर्कीय होने पर भी विधवाएं देवरसे ब्याही जाती हैं। दोनों विवाहिता पत्नी और सगाई पत्नीके सन्तानोंका पितृसम्पत्ति पर समान अधिकार रहता है।

लोघिखेरा—मध्यभारतके छिन्दवाड़ा जिलेकी सौंसर तहसीलके अन्तर्गत एक नगर। यह अक्षा० २०° ३५´ उ० तथा देशा० ७८° ५४´ पू० पर अवस्थित है। म्युनिसिपलिटी रहनेके कारण नगरमें राजकीय समृद्धिका अभाव नहीं है। यहां उत्कृष्ट पीतलका बरतन और तांबेकी हंडी बनती हैं। इसके अतिरिक्त यहां एक प्रकारका मोटा सूती कपड़ा भी तैयार होता है। आस पासके बाशिन्दे उसे पहननेके काममें लाते हैं।

लोध्र (सं० पु०) रुणद्धीति रुध-बाहुलकात् रन् रस्य लत्वम्। लोधवृक्ष। विभिन्न देशमें यह विभिन्न नामसे प्रसिद्ध है, जैसे तैलङ्ग—तेलुलोद्गचेट्टु, गर्ज, लोदर, लोद्दग; महाराष्ट्र—हुरा। संस्कृत पर्याय—गालव, शावर, तिरीट, तिल्व, मार्जन। रक्तलोध्रका पर्याय—लोध्र, मिहतरु, तिल्वक, कान्तकीलक, हेमपुष्पक, भिल्ली, शावरक। इसका गुण—कषाय, शीतल, वात, कफ और अस्त्रनाशक, चक्षु का हितकर, विषनाशक।

(राजनिघण्टु)

यह वृक्ष नेपाल और कुमायूं के पहाड़ी प्रदेशमें, कोटाके जङ्गलमें, बङ्गालके समतलक्षेत्रमें खास कर मेदिनीपुर और वर्द्धमान जिलेमें तथा बम्बईप्रदेशके घाट पर्वतमालाके जङ्गलोंमें पाया जाता है। इसका छिलका रंगने, चमड़ा सिझाने और औषधियोंमें काम आता है। छिलकेका उष्ण जलमें भिगो देनेसे पीला रंग निकाला जाता है। छिलकेको सज्जीमिट्टीके साथ पानीमें उबालनेसे लाल रंग निकलता है जिससे छींट छापते हैं। यह पेड़ १०से १२ फुट ऊंचा होता है। इसका छिलका पेचिस आदि पेटके कई रोगोंमें दी दिया जाता है। इसका गुण ठंढा है। इसके काढ़े का भी प्रयोग किया जाता है। लोध्रकी लकड़ीके काढ़े से कुल्ला करनेसे मसूढ़े से रक्तका निकलना बन्द होता और वह दृढ़ हो जाता है। इसकी लकड़ी जल्दी फट जाती है, पर मजबूत होती है। उड़के चूरसे अबीर बनाते हैं जिसे हिन्दूमात्र ही होली पर्वमें उड़ाते हैं। अबीर देखो।

२ एक जातिका नाम।

लोध्र (हिं० पु०) जापानी तांबा, लोधरा।

लोध्रकवृक्ष (सं० पु०) लोध्र एव लोध्रकः स एव वृक्षः। लोध।

लोध्रतिलक (सं० पु०) एक प्रकारका अलंकार जो उपमाका एक भेद माना जाता है।

लोध्रपुष्प (सं० पु०) मधूकवृक्ष, महुएका पेड़।

लोध्रपुष्पक (सं० पु०) शालिधान्य विशेष।

लोध्रपुष्पिणी (सं० स्त्री०) हस्वधातकी, छोटा धवका फूल।

लोध्रवृक्ष (सं० पु०) मधूकवृक्ष, महुएका पेड़।

लोना (हिं० वि०) १ नमकीन, सलोना। २ सुन्दर। (पु०) ३ एक प्रकारका रोग जो ईंट, पत्थर और मिट्टीकी दीवारोंमें लगता है। इससे दीवार झड़ने लगती और कमजोर पड़ जाती है। कुछ ही दिनोंमें उसमें गड्ढे पड़ जाते हैं और वह कट कर गिर पड़ती है। यह रोग नींवके पासके भागमें शुरू होता है और ऊपरकी ओर बढ़ता है। ४ नमकीन मिट्टी जिससे शोरा बनाया जाता है। ५ वह धूल या मिट्टी जो लोना लगने पर दीवारसे झड़ कर गिरती है। यह खेतमें डाली जाती है और खादका काम देती है। ६ घोंघेकी जातिका एक कीड़ा। यह प्रायः नावके पेंदेमें चपका हुआ मिलता है। ७ वह क्षार जो चनेकी पत्तियों पर इकट्ठा होता है और जिसके कारण उसकी पत्तियां चाटनेमें खट्टी जान पड़ती हैं। ८ एक कल्पित स्त्री जो जातिकी चमार और जादू टोनेमें बहुत प्रवीण कही जाती है। (क्रि०) ९ फसल काटना।

लोनाई (हिं० कि०) लावण्य, सुन्दरता।

लोनार (हिं० पु०) वह स्थान जहां नमक बनता हो अथवा जहांसे नमक आता हो।

लोनार—मध्यभारतके बेरार विभागके बुलदाना जिलान्तर्गत एक नगर। यह अक्षा० १९° ५९´ उ० तथा देशा० ७६° ३३´ पू० पर अवस्थित है। यहांकी जनसंख्या ३०८५ है जिनमें ब्राह्मणोंकी ही संख्या अधिक है।

यह स्थान अति प्राचीन है तथा पर्वतकी तराईमें अवस्थित है। यहां लोना नामका एक तालाब है जिसका जल नमकीन या खारा होता है। कहते हैं, कि इस हृदके गर्भमें दानवश्रेष्ठ लवणासुर रहता था। गोलोकविहारी विष्णु सुन्दर बालकका रूप धर कर यहांमें अवतीर्ण हुए थे। बालकके मोहन रूप पर मुग्ध हो कर लवणासुरने अपनी दोनों बहनोंके साथ उनका विवाह कर देना चाहा था। पीछे विष्णुके मायाजालमें पड़ कर उन्होंने विष्णुसे अपने भाईका निगूढ़ निकेतन बतला दिया। तब विष्णुने पाद-स्पर्शसे उन गुप्त वासभवनके पत्थर उखाड़ डाले और भूतलमें प्रवेश कर घरमें सोये लवणासुरको यमपुर भेज दिया। विष्णु द्वारा लवणासुरके निहत होने पर उसी जगह उसकी समाधि हुई तथा उसके खूनसे यह गर्त भर आया। आज भी स्थानीय लोग लोनारहृदके खारे जलको लवणासुरका लहू तथा विष्णुपादस्पर्शसे पवित्र समझते हैं। निकटवर्ती धारेश्वर नामक स्थानमें एक गण्डशैल है। इसकी लम्बाई और लोनारहृदका घेरा करीब समान है। जनसाधारण इस शैलको लवणासुर-भवनका आच्छादन-प्रस्तर समझते हैं। विष्णुके पैरकी अंगुलिके स्पर्शसे यह पत्थर उछल कर यहां गिर पड़ा था।

इस हृदका प्राकृतिक सौन्दर्य बड़ा ही मनोरम है। इसके चारों ओर वृत्ताकारमें चार सौ फुट उच्च पर्वतकी चोटी विराजित है। इस चोटी पर असंख्य मन्दिर और कीर्त्तिस्तम्भ खंडहरोंमें पड़े हैं। आज कल यह एक जंगल बन गया है। उसके ऊपरके किनारेकी परिधि प्रायः पांच मील तथा जलके आस-पास स्थानकी परिधि प्रायः तीन मील है। इसके अलावा किनारेकी ऊंचाई १५' से ८०' तक है। हृदकी गभीरता और इसके ढालू किनारेको देख कर भूतत्त्वविद् कहते हैं, कि यह एक समय किसी आग्नेयगिरि (ज्वालामुखी पर्वत) का मुंह था। पार्श्ववर्ती पर्वतके पत्थर आज भी उसकी साक्षी देते हैं। यहां नाना तरहके पेड़ दिखाई पड़ते हैं जिससे इसकी शोभा और भी बढ़ गई है।

हृदके दक्षिणाग्र पर्वतपृष्ठमें एक छोटा गर्त या कुण्ड है। यहांसे हमेशा मीठा जल निकल कर तेज धारासे हृदगर्भमें गिरता है। इस प्रस्रवणके सामने एक मन्दिर है।

हृदके ढालू देशके वनप्रदेश और जलगर्भके मध्यवर्ती स्थानमें एक विस्तृत दलदल है। वर्षा ऋतुमें यह पानीसे भर जाती है; किन्तु और समयमें जल सूख जाता या बह जाता है जिससे चारों ओर ही एक विस्तीर्ण क्षेत्र बन जाता है। उसमें कभी भी कोई अन्न पैदा नहीं होता। हृदका जल खारा होनेसे इस दलदलकी मिट्टी भी खारी हो जाती है। इसलिये सूख जाने पर यह सफेद दिखाई पड़ती है। तब इस मिट्टीसे नमक बनता है। यहांके नमकमें सैकड़े पीछे ३८ भाग अङ्गाराम्ल, ४०·६ क्षार (Soda), २०·६ जल और ०·५ कठिन पदार्थ तथा थोड़ी मात्रामें सलफेट मिलता है। यह सज्जीमिट्टी साबुन बनानेमें भी काम आती है।

लोनारा—अयोध्याप्रदेशके हरदोई जिलेके अन्तर्गत एक नगर। करीब साढ़े तीन सदीके पहले निकुम्भोंने गुर-मद्रासे दक्षिण आ कर यहांके आदिम अधिवासी कमानगारोंको मार भगाया और इस नगरको अपने कब्जेमें कर खुद रहने लगे। आज तक भी निकुम्भगण यहांके सत्वाधिकारी हैं।

लोनिका (हिं० स्त्री०) लोनी नामक साग।

लोनिया (हिं० पु०) १ एक जाति। ये लोग लोन या नमक बनानेका व्यवसाय करते हैं और शूद्रोंके अन्तर्गत माने जाते हैं। (स्त्री०) २ लोनी नामक साग।

लोनी (हिं० स्त्री०) १ कुलफेकी जातिका एक प्रकारका साग। इसकी पत्तियां बहुत छोटी छोटी होती हैं। यह ठंढी जगह पर अधिक होती है, इसका स्वाद खट्टा होता है। इसमें सफेद रंगके फूल लगते हैं। इसको लोग गमलोंमें बोते हैं और विलायती लोनी कहते हैं। इसके बीज विलायतसे आते हैं। २ वह क्षार जो पत्ते आदिकी पत्तियों पर बैठता है। ३ एक प्रकारकी मिट्टी। इससे लोनियां लोग शोरा और नमक बनाते हैं।

लोनी—युक्तप्रदेशके मीरट जिलेकी गाजियाबाद तहसीलके अन्तर्गत एक प्राचीन नगर। अभी यह नगर श्रीभ्रष्ट और जनशून्य हो रहा है। दिल्लीश्वर पृथ्वीराजके प्रतिष्ठित एक प्राचीन दुर्गका खंडहर आज भी उस कीर्ति-

का परिचय देता है। मुगल-सम्राट्गण शिकारके लिये यहां बराबर आया करते थे। उनका प्रासाद श्रीहीन अवस्थामें पड़ा है। १७८६ ई०में सम्राट् महम्मद शाहने यहां एक उपवन और दिग्गी बनवाई थी। इस दिग्गी और उपवनमें जल लानेके लिये पहले उन्होंने ही यमुना नहर कटवाई थी। बहादुर शाहकी महिषी जिनत् महलने उलदीपुरमें प्राचीर-परिवेष्टित प्रवेशद्वार आदिसे परिशोभित एक सुन्दर उद्यान लगाया था। उसके बीच चमकीले लाल पत्थरोंसे बना गुंबजदार प्रसिद्ध बारदुआरी मौजूद है। इसके अलावा यहां मुगल-राजवंशधरोंकी और भी असंख्य कीर्त्तियाँ दृष्टिगोचर होती हैं। सिपाही-युद्धके बाद अंगरेज-राजने यह नगर मुगलोंके हाथसे छीन लिया। आज इस स्थानकी सुन्दरता जाती रही।

लोनेली—बम्बई प्रेसिडेन्सीके पूना जिलान्तर्गत एक नगर यह अक्षा० १८° ४५' उ० तथा देशा० ७३° २४ पू० तक और गिरिसंकटके सर्वोच्च स्थान पर अवस्थित है। ग्रेट इंडियन पेनिनसुला रेलवेकी दक्षिण-पूर्व शाखामें यह एक प्रधान स्टेशन है। यहांकी जनसंख्या ६६४६ है। यहां रेल-कम्पनीका कारखाना रहनेके कारण बहुतेरे यूरोपीय और देशी लोगोंका वास है। नगरसे दो मील दक्षिण रेल-कम्पनीका एक सुन्दर बांध है। इसका जल सभी लोग घरके काममें लाते हैं। यहां बहुत-सी सुन्दर अट्टालिका, प्रोटेस्टेंट और रोमन कैथलिक धर्ममन्दिर, मेसनिक लाज, कोओपरेटिभ स्टोर, एक अस्पताल और आठ स्कूल हैं। नगरको बगलमें ही एक सुन्दर वन है।

लोनेसिंह—एक भाषा-कवि। इनका जन्म बाछिल मितौली जिला खेरीमें हुआ था। ये बड़े कवि और साहसी क्षत्रिय थे। इन्होंने भागवतके दशम स्कन्धकी नाना छन्दोंमें भाषा की है। ये एक लड़ाईमें मारे गये।

लोप (सं० पु०) लुप्-घञ्। १ विच्छेद। २ नाश, क्षय। ३ अभाव, अदर्शन। ४ अन्तर्द्धान होना, छिपना। ५ व्याकरणके चार प्रधान नियमोंमेंसे एक जिसके अनुसार शब्दके साधनमें किसी वर्णको उड़ा देते हैं।

लोपक (सं० त्रि०) नाशकारी, विघ्न बाधा डालनेवाला।

लोपन (सं० क्ली०) १ नाशन, नष्ट करना। २ तिरोहित करना, लुप्त करना।

लोपना (हिं० क्रि०) १ लुप्त होना, मिटना। २ छिपाना।

लोपाक (सं० पु०) लोपं शीघ्रमदर्शनमकति प्राप्नोतीति अक-अण्। शृगाल, गीदड़।

लोपाञ्जन (सं० पु०) वह कल्पित अंजन जिसके विषयमें यह प्रसिद्ध है, कि इसके लगानेसे लगानेवाला अदृश्य हो जाता है।

लोपापक (सं० पु०) लोपं द्रुतमदर्शनं आप्नोतीति ण्वुल्। शृगाल, सियार।

लोपापिका (सं० स्त्री०) लोपापक स्त्रियां टाप्, अत इत्वं। शृगाली, सियारिन।

लोपामुद्रा (सं० स्त्री०) लोपयति येषितां रूपाभिमानमिति लोपा पचाद्यण् आमुद्रयति स्पृशः स्प्रष्टिमिति आ-मुद्रा-अण्, ततः कर्मधारयः किंवा न मुदं याति अमुद्रा पति-शुश्रूषाय लोपे अमुद्रा। अगस्त्यमुनिकी स्त्री।

स्मृतिमें लिखा है, कि भाद्रमासके अन्तिम तीन दिन अगस्त्यको और पीछे लोपामुद्राको अर्घ्य देना होता है।

"अप्राप्ते भास्करे कन्यां शेषभूतैस्त्रिभिर्दिनैः।
अर्घ्यं दद्युरगस्त्याय गौड़देशनिवासिनः॥"

(मलमासतत्त्व)

यह अर्घ्य दक्षिण मुंह करके शङ्खमें जल, श्वेतपुष्प, अक्षत और चन्दनादि डाल निम्नोक्त मन्त्रसे देना होता है।

"शङ्खे तोयं विनिक्षिप्य सितपुष्पाक्षतैर्युतम्।
मन्त्रेणानेन वै दद्याद्दक्षिणाशामुपस्थितः॥"

अर्घ्यदानमन्त्र—

"काशपुष्पप्रतीकाश अग्निमारुतसम्भव।
मित्रावरुणयोः पुत्र कुम्भयोने नमोऽस्तु ते॥"

प्रार्थनामन्त्र—

"आतापिर्भक्षितो येन वातापिश्च महासुरः।
समुद्रः शोषितो येन स मेऽगस्त्यः प्रसीद तु॥"

लोपामुद्राका अर्घ्यदान-मन्त्र—

"लोपामुद्रे महाभागे राजपुत्रि पतिव्रते।
गृहाणार्घ्यं मया दत्तं मैत्रावरुणिवल्लभे॥"

(मलमासतत्त्व)

महाभारतमें लोपामुद्राके जन्मादिका विवरण इस

यह स्थान अति प्राचीन है तथा पर्वतकी तराईमें अवस्थित है। यहां लोना नामका एक तालाब है जिसका जल नमकीन या खारा होता है। कहते हैं, कि इस ह्रदके गर्भमें दानवश्रेष्ठ लवणासुर रहता था। गोलोकविहारी विष्णु सुन्दर बालकका रूप धर कर धरामें अवतीर्ण हुए थे। बालकके मोहन रूप पर मुग्ध हो कर लवणासुरने अपनी दोनों बहनोंके साथ उनका विवाह कर देना चाहा था। पीछे विष्णुके मोहजालमें पड़ कर उन्होंने विष्णुसे अपने माईका निभृत निकेतन बतला दिया। तब विष्णुने पाद-स्पर्शसे इन गुप्त वासभवनके पत्थर उखाड़ डाले और भूतलमें प्रवेश कर घरमें सोये लवणासुरको यमपुर भेज दिया। विष्णु द्वारा लवणासुरके निहत होने पर उसी जगह उसकी समाधि हुई तथा उसके खूनसे यह गढ़ा भर आया। आज भी स्थानीय लोग लोनारह्रदके खारे जलको लवणासुरका रक्त तथा विष्णुपादस्पर्शसे पवित्र समझते हैं। निकटवर्ती धारेवाल नामक स्थानमें एक गण्डशैल है। इसकी लम्बाई और लोनारह्रदका घेरा करीब समान है। जनसाधारण इस शैलको लवणासुर-भवनका आच्छा-दन-प्रस्तर समझते हैं। विष्णुके पैरकी अंगुलिके स्पर्शसे यह पत्थर उछल कर यहां गिर पड़ा था।

इस ह्रदका प्राकृतिक सौन्दर्य बड़ा ही मनोरम है। इसके चारों ओर वृत्ताकारमें चार सौ फुट उच्च पर्वतकी चोटी विराजित है। इस चोटी पर असंख्य मन्दिर और कीर्तिस्तम्भ खंडहरोंमें पड़े हैं। आज कल यह एक जंगल बन गया है। उसके ऊपरके किनारेकी परिधि प्रायः पांच मील तथा जलके आस-पास स्थानकी परिधि प्रायः तीन मील है। इसके अलावा किनारेकी ऊंचाई १५' से ८०' तक है। ह्रदकी गभीरता और उसके ढालू किनारेको देख कर भूतत्त्वविद् कहते हैं, कि यह एक समय किसी आग्नेयगिरि (ज्वालामुखी पर्वत) का मुंह था। पासवर्ती पर्वतके पत्थर आज भी उसकी साक्षी देते हैं। यहां नाना तरहके पेड़ दिखाई पड़ते हैं जिससे इस-की शोभा और भी बढ़ गई है।

ह्रदके दक्षिणस्थ पर्वतपृष्ठमें एक छोटा गर्त या प्रस्र-वण है। यहांसे हमेशा मीठा जल निकल कर तेज धारासे ह्रदगर्भमें गिरता है। इस प्रस्रवणके सामने एक मन्दिर है।

ह्रदके ढालू देशके समप्रदेश और जलगर्भके मध्यवर्ती स्थानमें एक विस्तृत दलदल है। वर्षा ऋतुमें यह भरके भर जाती है, किन्तु और समयमें जल सूख जाता या घट जाता है जिससे चारों ओर ही एक विस्तीर्ण क्षेत्र बन जाता है। उसमें कभी भी कोई अन्न पैदा नहीं होता। ह्रदका जल खारा होनेसे इस दलदलकी मिट्टी भी खारी हो जाती है। इसलिये सूख जाने पर यह सफेद दिखाई पड़ती है। तब इस मिट्टीसे नमक बनता है। यहांके नमकमें सैकड़े पीछे ३८ भाग अङ्गाराम्ल, ४०·६ सज्जी (Soda), २०·६ जल और ०·५ कठिन पदार्थ तथा थोड़ी मात्रामें सलफेट मिलता है। यह सज्जीमिट्टी साबुन बनानेमें भी काम आती है।

लोनारा—मध्यप्रदेशके हर्दोई जिलेके अन्तर्गत एक नगर। करीब साढ़े तीन सदीके पहले निकुम्भोंने गुज-रातसे दक्षिण आ कर यहांके आदिम अधिवासी कमानगारोंको मार भगाया और इस नगरको अपने कब्जेमें कर सुख रहने लगे। आज तक भी निकुम्भगण यहांके स्वत्वाधिकारी हैं।

लोनिका (हिं० स्त्री०) लोनी नामक साग।

लोनिया (हिं० पु०) १ एक जाति। ये लोग लोन या नमक बनानेका व्यवसाय करते हैं और शूद्रोंके अन्तर्गत माने जाते हैं। (स्त्री०) २ लोनी नामक साग।

लोनी (हिं० स्त्री०) १ कुल्फेकी जातिका एक प्रकारका साग। इसकी पत्तियां बहुत छोटी छोटी होती हैं। यह ऊंची जगह पर उत्पन्न होती है, इसका स्वाद खट्टा होता है। इसमें सफेद तरहके फूल लगते हैं। इसको लोग बगीचोंमें बोते हैं और विलायती लोनी कहते हैं। इसके बीज विलायतसे आते हैं। २ वह खार जो मकान आदिकी दीवारों पर पैदा होता है। ३ एक प्रकारकी मिट्टी। इससे लोनिये लोग शोरा और नमक बनाते हैं।

लोनी—युक्तप्रदेशके मीरट जिलेकी गाजियाबाद तह-सीलके अन्तर्गत एक प्राचीन नगर। अभी यह नगर श्रीभ्रष्ट और जनशून्य हो रहा है। दिल्लीश्वर पृथ्वीराजके प्रतिष्ठित एक प्राचीन दुर्गका खंडहर आज भी उस कीर्ति-

का परिचय देता है। मुगल-सम्राट्गण शिकारके लिये यहां बराबर आया करते थे। उनका प्रासाद श्रीहीन अवस्थामें पड़ा है। १७८६ ई०में सम्राट् महम्मद शाहने यहां एक उपवन और दिग्गी बनवाई थी। इस दिग्गी और उपवनमें जल लानेके लिये पहले उन्होंने ही यमुना नहर कटवाई थी। बहादुर शाहकी महिषी जिनत महलने उलदीपुरमें प्राचीर-परिवेष्टित प्रवेशद्वार आदिसे परिशोभित एक सुन्दर उद्यान लगाया था। उसके बीच चमकीले लाल पत्थरोंसे बना गुंबजदार प्रसिद्ध बारदुआरी मौजूद है। इसके अलावा यहां मुगल-राजवंशधरोंकी और भी असंख्य कीर्त्तियाँ दृष्टिगोचर होती हैं। सिपाही-युद्धके बाद अंगरेज-राजने यह नगर मुगलोंके हाथसे छीन लिया। आज इस स्थानकी सुन्दरता जाती रही।

लोनेली—बम्बई प्रेसिडेन्सीके पूना जिलान्तर्गत एक नगर यह अक्षा० १८° ४५' उ० तथा देशा० ७३° २४ पू० तक और गिरिसंकटके सर्वोच्च स्थान पर अवस्थित है। ग्रेट इंडियन पेनिनसुला रेलवेकी दक्षिण-पूर्व शाखामें यह एक प्रधान स्टेशन है। यहांकी जनसंख्या ६६४६ है। यहां रेल-कम्पनीका कारखाना रहनेके कारण बहुतेरे यूरोपीय और देशी लोगोंका वास है। नगरसे दो मील दक्षिण रेल-कम्पनीका एक सुन्दर बांध है। इसका जल सभी लोग घरके काममें लाते हैं। यहां बहुत-सी सुन्दर अट्टालिका, प्रोटेस्टैंट और रोमन-कैथलिक धर्ममन्दिर, मेसनिक लाज, कोओपरेटिभ स्टोर, एक अस्पताल और आठ स्कूल हैं। नगरकी बगलमें ही एक सुन्दर वन है।

लोनेसिंह—एक भाषा-कवि। इनका जन्म बाछिल मितौली जिला खीरीमें हुआ था। ये बड़े कवि और साहसी क्षत्रिय थे। इन्होंने भागवतके दशम स्कन्धको नाना छन्दोंमें भाषा की है। ये एक लड़ाईमें मारे गये।

लोप (सं० पु०) लुप्-घञ्। १ विच्छेद। २ नाश, क्षय। ३ अभाव, अदर्शन। ४ अन्तर्द्धान होना, छिपना। ५ व्याकरणके चार प्रधान नियमोंमेंसे एक जिसके अनुसार शब्दके साधनमें किसी वर्णको उड़ा देते हैं।

लोपक (सं० त्रि०) नाशकारी, विघ्न बाधा डालनेवाला।

लोपन (सं० क्ली०) १ नाशन, नष्ट करना। २ तिरोहित करना, लुप्त करना।

लोपना (हिं० क्रि०) १ लुप्त होना, मिटना। २ छिपाना।

लोपाक (सं० पु०) लोपं शीघ्रमदर्शनमकति प्राप्नोतीति अक-अण्। शृगाल, गीदड़।

लोपाञ्जन (सं० पु०) वह कल्पित अंजन जिसके विषयमें यह प्रसिद्ध है, कि इसके लगानेसे लगानेवाला अदृश्य हो जाता है।

लोपापक (सं० पु०) लोपं द्रुतमदर्शनं आप्नोतीति ण्वुल्। शृगाल, सियार।

लोपापिका (सं० स्त्री०) लोपापक स्त्रियां टाप्, अत इत्वं। शृगाली, सियारिन।

लोपामुद्रा (सं० स्त्री०) लोपयति येषितां रूपाभिधानमिति लोपा पचाद्यण् आमुदयति स्रष्टुः सृष्टिमिति आ-मुद्रा-अण्, ततः कर्मधारयः किंवा न मुदं राति अमुद्रा पति-शुश्रूषाय लोपे अमुद्रा। अगस्त्यमुनिकी स्त्री।

स्मृतिमें लिखा है, कि भाद्रमासके अन्तिम तीन दिन अगस्त्यको और पीछे लोपामुद्राको अर्घ्य देना होता है।

"अप्राप्ते भास्करे कन्यां शेषभूतैस्त्रिभिर्दिनैः।
अर्घ्यं दद्युरगस्त्याय गौड़देशनिवासिनः॥"

(मलमासतत्त्व)

यह अर्घ्य दक्षिण मुंह करके शङ्खमें जल, श्वेतपुष्प, अक्षत और चन्दनादि डाल निम्नोक्त मन्त्रसे देना होता है।

"शङ्खे तोयं विनिक्षिप्य सितपुष्पाक्षतैर्युतम्।
मन्त्रेणानेन वै दद्याद्दक्षिणाशामुपस्थितः॥"

अर्घ्यदानमन्त्र—

"काशपुष्पप्रतीकाश अग्निमारुतसम्भव।
मित्रावरुणयोः पुत्र कुम्भयोने नमोऽस्तु ते॥"

प्रार्थनामन्त्र—

"आतापिर्भक्षितो येन वातापिश्च महासुरः।
समुद्रः शोषितो येन सोऽगस्त्यः प्रसीद तु॥"

लोपामुद्राका अर्घ्यदान मन्त्र—

"लोपामुद्रे महाभागे राजपुत्रि पतिव्रते।
गृहाणार्घ्यं मया दत्तं मैत्रावरुणिवल्लभे॥"

(मलमासतत्त्व)

महाभारतमें लोपामुद्राके जन्मादिका विवरण इस

प्रकार लिखा है। महर्षि अगस्त्यने एक दिन अपने पितरोंको एक विवरमें लम्बमान देख पूछा था, कि आप लोग यहां अवस्थान करके क्यों समय बिताते हैं? उन्होंने उत्तर दिया, "पुत्र अगस्त्य! तुम पुत्र उत्पादन करके हम लोगोंको इस कष्टसे उद्धार करो। इससे तुम्हारा भी कल्याण होगा।" इस पर अगस्त्यने उनसे कहा, "मैं आप लोगोंका अभिलाष पूर्ण करूंगा।" पीछे अगस्त्यने स्वयं पुत्ररूपमें जन्मग्रहण करेंगे, ऐसा स्थिर किया, किन्तु उन्हें मनोनुकूल कन्या न मिली। पीछे उन्होंने मन ही मन सोच विचार कर जिस प्राणीका जो अङ्ग-प्रत्यङ्ग अति उत्कृष्ट था, उस प्राणीका वह अङ्ग प्रत्यङ्ग मन ही मन संग्रह कर उससे एक कन्या निर्माण की। इस समय विदर्भाधिपति पुत्रके लिये तपस्या कर रहे थे। अगस्त्यने अपने लिये निर्माण की हुई यह कन्या विदर्भराजको दे दी। राजाने इस कन्याका नाम लोपामुद्रा रखा। धीरे धीरे उस कन्याने युवावस्थामें कदम बढ़ाया।

महर्षि अगस्त्यने लोपामुद्राको जब गार्हस्थ्यके योग्य देखा, तब विदर्भराजके पास आ कर कहा, 'राजन्! पुत्रके लिये गार्हस्थ्य धर्ममें मेरी इच्छा हुई है। अतएव आप मेरी लोपामुद्राको लौटा दें।' राजाने इतिकर्तव्यविमूढ़ हो रानीसे यह बात जा कही। रानी भी कोई उपयुक्त उत्तर न दे सकी। इस पर लोपामुद्राने राजा और रानीको दुःखित देख कर कहा, 'पिताजी! आप मुझे ऋषिके हाथ सौंप दें।' अनन्तर विदर्भराजने कन्याके याचनानुसार विधिपूर्वक अगस्त्यको यह कन्या सम्प्रदान की। अगस्त्यने लोपामुद्राको भार्यारूपमें ग्रहण किया और कहा, 'अभी तुम बहुमूल्य वसन भूषणका परित्याग कर और वल्कल पहनो।' लोपामुद्राने वैसा ही किया।

अगस्त्य गङ्गाके किनारे आ कर अनुकूला सहधर्मिणीके साथ घोर तपस्या करने लगे। इस प्रकार बहुत दिन बीत गये। एक दिन अगस्त्यने तपःप्रदीप्ता लोपामुद्राको ऋतुस्नाता देखा। उनकी परिचर्या, शुचिता, जितेन्द्रियता, श्री और रूपलावण्यसे सन्तुष्ट हो अगस्त्यने रतिकामनासे उन्हें बुलाया। लोपामुद्राने अत्यन्त लज्जित हो कहा, 'आपने सन्तानके लिये मुझे अपनी भार्या बनाया है, किन्तु मेरा यही अभिलाष है, कि मेरे पितृगृहमें जैसे सिंहासन, वस्त्र और भूषणादि थे, वैसे ही सिंहासन और वस्त्रभूषणसे विभूषित कर आप मेरे साथ सहवास करें।' अगस्त्य बोले, 'मैं तपस्वी हूं, राजोचित वस्त्रभूषण और शय्या कहां पाऊं?' इस पर लोपामुद्राने जवाब दिया, 'आप तपोधन हैं, अपने तपःप्रभावसे क्षण भरमें ही उन सब चीजोंको संग्रह कर सकते हैं।' अगस्त्यने फिर कहा, 'तुम्हारा कहना तो सच है, पर ऐसा करनेसे मेरे तपमें विघ्न-बाधा पहुंचेगी। अतएव जिससे मेरे तपमें बाधा न पहुंचे, ऐसा ही कोई उपाय करो।' इस पर लोपामुद्रा बोली, 'तपोधन! मेरे ऋतुकाल ११ दिनमें थोड़ा ही बाकी रह गया है। बिना अलङ्कारादि पहने आपके पास आनेकी मेरी इच्छा नहीं होती और आपका धर्मलोप करनेकी भी मेरी इच्छा नहीं, अतएव जिससे धर्मलोप न हो और मेरा अभिलाष भी पूरा हो जाय, ऐसा ही उपाय कीजिये।' इस पर अगस्त्यने कहा, 'सुभगे! यदि तुम्हारी ऐसी ही इच्छा है, तो कुछ काल ठहरो, मैं अतः धन लाने जाता हूं जिससे तुम्हारा अभिलाष पूरा हो।'

अनन्तर अगस्त्य राजा श्रुतर्वाके यहां आये। उन्होंने राजासे कहा, 'राजन्! मैं धनार्थी हो कर आपके पास आया हूं, इसलिये मुझे कुछ धन दीजिये। पर हां, ऐसे धनसे मुझे काम नहीं जिससे दूसरेको कष्ट पहुंचे।' राजाने जवाब दिया, 'मेरे आय और व्ययकी परीक्षा कर जितनी इच्छा हो ले लीजिये।' तब अगस्त्यने राजाके आय और व्ययको समान देख कर सोचा, कि यह धन लेनेसे राजा और प्रजा दोनोंको कष्ट पहुंच सकता है। इसलिये उन्होंने धनग्रहण नहीं किया। पीछे वे राजा श्रुतर्वाके साथ ब्रध्नश्वके यहां और वहां भी इस कार्यमें न हो पुरुकुत्स त्रसदस्युके निकट चले गये। वहां भी अर्थसिद्धि न होनेके कारण सबके सब इल्वलके पास गये। इल्वलने मेषरूपधारी वातापिके मांससे ऋषिको परितुष्ट किया। अनन्तर इल्वल वातापिको बार बार पुकारने लगे। इस पर अगस्त्यने कहा, कि मैंने वातापिको हजम कर डाला। अनन्तर इल्वलने अति

विपण्ण और भयभीत हो कर ऋषिको प्रचुर धन दे विदा किया।

इसके बाद अगस्त्य ऋषि धन ले कर लोपामुद्राके समीप उपस्थित हुए। लोपामुद्राने कहा, 'भगवन्! आप एक अति पवित्र और बलवान् पुत्र उत्पादन कीजिये।' ऋषिने तथास्तु कह कर लोपामुद्राके साथ संभोग किया। लोपामुद्रा गर्भवती हुई और ऋषि वनको चले गये। ७ वर्ष गर्भधारण कर लोपामुद्राने एक पुत्र प्रसव किया। यह पुत्र साङ्गोपाङ्ग वेदज्ञान-सम्पन्न तथा अतिशय रूपवान् निकला। ऋषियोंने उसका नाम इध्मवाह रखा। यह इध्मवाह भी तपके प्रभावसे पिताके ही जैसे पराक्रमी हुए थे। (भारत वनपर्व ६५-६८ अ०)

लोपामुद्रापति (सं० पु०) लोपामुद्रायाः पतिः। अगस्त्य।

लोपायक (सं० पु०) शृगाल, गीदड़।

लोपाश (सं० पु०) शृगाल, गीदड़।

लोपाशक (सं० पु०), लोपं व्याकुलीभावं चकितमश्नाति अश-ण्वुल्। शृगाल, गीदड़।

लोपाशिका (सं० स्त्री०) लोपाशक-स्त्रियां टाप्, अत इत्वं। शृगाली, सियारिन।

लोपिन् (सं० त्रि०) क्षतिकारक, हानि पहुंचानेवाला।

लोप्तृ (सं० त्रि०) १ नियम भंग करनेवाला। २ क्षतिकारक, हानि पहुंचानेवाला।

लोप्त्र (सं० क्ली०) लुप-ष्ट्रन्। स्तेयधन, चोरीका माल।

"ते तस्यापसृते लोप्त्रं दस्यवः कुरुसत्तम।
निधाय च भयाल्लीनास्तत्रैवानागते बले॥" (भारत १।१०७।५)

लोप्त्री (सं० स्त्री०) लोप्त्र-षिद्गौरादि ङीष्। लोप्त्र, चोरीका माल।

लोप्य (सं० त्रि०) लोप योग्य, नाश करनेके लायक।

लोबान (अ० पु०) एक वृक्षका सुगन्धित गोंद। यह वृक्ष अफ्रिकाके पूर्वी किनारे पर, सुमालीलैंडमें और अरबके दक्षिणी समुद्र तट पर होता है और वहींसे लोबान अनेक रूपोंमें भारतवर्षमें आता है। कुंदुरुजकर, कुंदुर, उनस कुंदुरुछगा, कुंदुरुकजफा आदि इसीके भेद हैं। इनमेंसे कई दवाके काममें आते हैं। इनमें लोबानकशफा, जिसे धूप भी कहते हैं, भारतवर्षमें लोबानके नामसे बिकता है। यह गोंद वृक्षकी छालके साथ लगा रहता है। अरबसे लोबान बंबई आता है। वहां छांट छांट कर उसके भेद किये जाते हैं। जो पीले रंगको बूंदोंके रूपके साफ दाने होते हैं, वे कौड़िया कहलाते हैं। उनको छांट कर यूरोप भेज देते हैं तथा मिला जुला और चूरा भारतवर्ष और चीनके लिये रख लेते हैं। एक और प्रकारका लोबान जावा, सुमात्रा आदि स्थानोंसे आता है जिसे जावी लोबान कहते हैं। यूरोपमें इससे एक प्रकारका क्षार बनाया गया है। इस क्षारको बेंजोइक एसिड कहते हैं। लोबान प्रायः जलानेके काममें लाया जाता है जिससे सुगन्धित धूआं निकलता है। वैद्यकमें कुंदुर लोबानका प्रयोग सूजाकमें और जावी लोबानका प्रयोग खांसीमें होता है। यह अधिकतर मरहमके काममें लाया जाता है।

लोबिया (हिं० पु०) एक प्रकारका बोड़ा। यह सफेद रंगका और बहुत बड़ा होता है। इसके फल एक हाथ तक लंबे और पौने अंगुल तक चौड़े तथा बहुत कोमल होते हैं और पका कर खाये जाते हैं। बीजोंसे दाल और दालमोठ बनाते हैं। इसकी और भी जातियां हैं, पर लोबिया सबसे उत्तम माना जाता है। इसकी पत्तियां उर्दके समान होती, पर उनसे बड़ी और चिकनी होती हैं। पौधा शोभा और भाजीके लिये बागोंमें बोया जाता है और बहुमूल्य होता है।

लोबिया कंजई (हिं० पु०) एक रंग जो गहरा हरा होता है।

लोभ (सं० पु०) लुभ घञ्। १ आकांक्षा, दूसरेके पदार्थको लेनेकी कामना, लालच। पर्याय—तृष्णा, लिप्सा, वश, स्पृहा, कांक्षा शंसा, गार्द्ध्य, वांछा, इच्छा, तृष्, मनोरथ, काम, अभिलाष।

दूसरेकी दौलत आदि देख कर उसे लेनेके लिये जो अभिलाष होता है, उसे लोभ कहते हैं। यह लोभ ब्रह्माके अधरसे उत्पन्न हुआ था।

गीतामें लिखा है, कि नरकके तीन द्वार हैं,—काम, क्रोध और लोभ। इसलिये सब तरहसे लोभ छोड़ देना उचित है।

जगत्‌में एकमात्र लोभसे सभी अनिष्ट होता है, लोभ ही पापकी प्रसूति है, लोभसे ही क्रोध, काम, मोह और

लोर (हिं० पु०) १ कानका कुण्डल। २ लटकन। ३ आंसू।

लोरी (हिं० स्त्री०) १ एक प्रकारका गीत। स्त्रियां बच्चोंको सुलानेके लिये यह गीत गाती हैं। साथ ही वे बच्चेको गोदमें ले कर हिलाती भी जाती हैं अथवा खाट पर लेटा कर थपकी देती जाती हैं। २ मैनेकी एक जाति।

लोर्मी (लुर्मि)—मध्यप्रदेशके बिलासपुर जिलान्तर्गत एक जमींदारी। इस जमींदारीके अधिकारी एक वैरागी हैं। १८३० ई०में उनके पूर्वजोंने यह स्थान जागीरस्वरूप पाया था। भूपरिमाण १२ वर्गमील है। लोर्मी गांव यहांका प्रधान वाणिज्यस्थान है। यहां नाना तरहकी फसल लगती है।

लोल (सं० त्रि०) लोडतीति लुड़-विलोड़ने अच्। १ चञ्चल। २ कम्पायमान, हिलता डोलता। ३ परिवर्तनशील। ४ क्षणिक, क्षणभंगुर। ५ उत्सुक, अति इच्छुक। (पु०) ६ तामस मनु। (*मार्कण्डेयपु० ७४।८९*) ७ लिङ्ग, शिश्न।

लोलक (सं० क्ली०) १ लटकन जो बालियोंमें पहना जाता है। यह मछलीके आकारका या किसी और आकारका होता है। स्त्रियां इसे नथ या बालोंमें पिरो कर पहनती हैं। २ कानकी लव, लोलकी। ३ घंटे या घंटेके बीचमें लगा हुआ लटकन जो हिलानेसे इधर उधर टकरा कर घंटोंमें लग कर शब्द उत्पन्न करता है। ४ चरखेमें मिट्टीका एक लट्टू। यह खूंटेमें इसलिये लगाया जाता है, कि उसको ऊपर या नीचे करके खूंटा उठा या दबा सकें।

लोलकी (हिं० स्त्री०) कानका वह भाग जो गालोंके किनारे इधर उधर नीचेको लटकता रहता है। इसीमें छेद करके बुन्दा या बाली आदि पहनते हैं।

लोलहर (सं० पु०) बृहत्संहिताके अनुसार एक जनपद जो ईशानकोणमें है।

लोलदिनेश (सं० पु०) लोलार्क नामक सूर्य।

लोला (सं० स्त्री०) लोल-टाप्। १ जिह्वा, जीभ। २ लक्ष्मी। ३ चञ्चला स्त्री। ४ मधु दैत्यकी माता। ५ एक योगिनीका नाम। ६ एक वृत्तका नाम। इसके प्रत्येक चरणमें मगण, सगण, मगण, भगण और दो गुरु होते हैं। इसमें सात सात पर यति होती है। ७६४ हाथ लम्बी ८६५ चौड़ी और ६ $\frac{२}{२५}$ हाथ ऊंची नाव।

लोला (हिं० पु०) लट्टूका एक खिलौना। यह एक डंडा होता है जिसके दोनों सिरों पर दो लट्टू होते हैं।

लोलाक्षिका (सं० स्त्री०) घूर्णितलोचना, वह स्त्री जिसकी आंखें घबराती हों।

लोलार्क (सं० पु०) लोलनामा अर्कः। सूर्य। महादेवने सूर्यका लोल नाम रखा था इसलिये सूर्यको लोलार्क कहते हैं। (कूर्मपु० और काशीख०)

लोलिका (सं० स्त्री०) लोलतीति लुल-ण्वुल्-टाप् अत इत्वं। चाङ्गेरी, चूकी शाक।

लोलित (सं० त्रि०) लुल-विमर्दे क्त, लोलः संजात इति। कम्प, डोला।

लोलिनी (सं० त्रि० स्त्री०) चञ्चल प्रकृतिवाली।

लोलिम्बराज (सं० पु०) वैद्यकजीवनग्रन्थके प्रणेता। ये दिवाकरके पुत्र और हरिहरके शिष्य थे। इन्होंने चमत्कार-चिन्तामणि, रत्नकलाचरित, वैद्यावतंस, वैद्यविलास या हरिविलास, वैद्यजीवन, हरिविलासकाव्य और लोलिम्बराजीय भास्कर और भी कितने वैद्यक ग्रन्थ प्रणयन किये।

लोलुप (सं० त्रि०) गर्हितं लुम्पतीति लुप-यङ् अच्। १ अतिशय लुब्ध, बड़ा लोभी। २ किसी बातके लिये परम उत्सुक। ३ चटोर, चट्टू।

लोलुपता (सं० स्त्री०) लोलुपस्य भावः तल्-टाप्। लोलुपत्व, लोलुपका भाव या धर्म, लालच।

लोलुभ (सं० त्रि०) भृशं लुभ्यतीति लुभ यङ् अच्। लोलुप, लालची।

लोलुवा (सं० स्त्री०) काटनेकी दृढ़ इच्छा।

लोलुव (सं० त्रि०) पुनः पुनः कर्त्तनशील, बार बार काटनेवाला।

लोवेरा (सं० क्ली०) एक नगरका नाम। (राजत० १।८८)

लोहाड़—[illegible]

लोहरन्ध्र—[illegible]

लोवा (हिं० स्त्री०) १ लोमड़ी। (पु०) २ लोधकी जाति

का एक पक्षी। यह बटेरसे छोटा होता है और काश्मीर, मध्यप्रदेश तथा संयुक्तप्रान्तमें पाया जाता है। नर प्रायः मादासे कुछ अधिक बड़ा होता है। शिकारी इसका शिकार करते हैं। इसे गुरगा भी कहते हैं।

लोवा—अयोध्या प्रदेशके उन्नाव जिलान्तर्गत एक नगर। यह अक्षा० २६° २१' उ० तथा देशा० ८१° १' पू०के मध्य सई नदीके तट पर अवस्थित है। पुर्वा और उन्नाव नगरके साथ यहांका व्यापार चलता है।

लोवागढ़—पञ्जावप्रदेशके वन्नु जिलान्तर्गत एक पर्वत। मैदानी देखो।

लोशन (अं० पु०) अधिक पानीमें घुली हुई औषधि। यह शरीरमें ऊपरसे लगाने, किसी पीडित अंशको धोने या तर रखने आदिके काममें आती है।

लोशशरायणि (सं० पु०) एक प्राचीन ग्रंथकार।

लोष्ट (सं० पु० क्ली०) लोष्टते इति लोष्ट घञ्, यद्वा लूयते इति लू (लोष्टपलितौ। उण् ३।६२) इति क्त प्रत्ययेन निपातनात् साधुः। १ मृत्तिकाखण्ड, ढेला। पर्याय—लोष्टु, दलि। २ लौहमल। ३ लेष्टु।

लोष्टक (सं० पु०) १ मृत्पिण्ड। २ चन्दन आदि रखनेकी वस्तु।

लोष्टघ्न (सं० पु०) लोष्टं हन्तीति हन-टक्। खेतीका वह औजार जिससे खेतके ढेले फोड़ते हैं, परेला।

लोष्टदेव—दीनाक्रन्दनस्तोत्रके रचयिता तथा रम्यदेवके पुत्र। ये श्रीकण्ठचरितके प्रणेता मङ्खके समसामयिक थे।

लोष्टन (सं० क्ली०) मृत्पिण्ड।

लोष्टभेदन (सं० पु०) भिनत्तीति भिद्-ल्यु, लोष्टस्य भेदनः: लोष्टभङ्गसाधन मुद्गर, वह मुगदर जिससे ढेला फोड़ा जाता है, परेला। पर्याय—लोष्टुभेदन, लोष्टघ्न, लोष्टुघ्न, कोटिश, कोटीश।

लोष्टमर्दिन् (सं० पु०) लोष्टुघ्न, परेला।

लोष्टमय (सं० त्रि०) लोष्टस्वरूपे मयट्। लोष्टस्वरूप, ढेलेके समान।

लोष्टवत् (सं० त्रि०) मृत्तिकानिर्मित, मिट्टीका बना हुआ।

लोष्टसर्वज्ञ—एक प्राचीन कवि।

लोष्टाश्म (सं० पु०) एक मूषिका नाम। (संस्कारकौमुदी)

लोष्टु (सं० पु०) लोष्ट, ढेला।

लोष्ट्र (सं० पु०) लोष्ट-रन्। लोष्ट, ढेला।

लोसर—पञ्जावप्रदेशके काङ्गड़ा जिलेके स्पिति-राज्यान्तर्गत पर्वतपृष्ठस्थ एक गण्डग्राम। यह अक्षा० ३२° २८' उ० तथा देशा० ७७°४६' पू० तक विस्तृत है तथा समुद्रकी तहसे १३४०० फुट ऊंचा है। इसके अलावा और कोई भी गांव इतने ऊंचे पर नहीं है।

लोहँड़ा (हिं० पु०) १ लोहेका एक प्रकारका पात्र जिसमें खाना पकाया जाता है। कभी कभी इसमें दस्ता भी लगा रहता है। २ तसला।

लोह (सं० पु० क्ली०) लूयतेऽनेनेति लू बाहुलकात् ह। स्वनामख्यात धातुविशेष, लोहा। संस्कृत पर्याय—लौह, जोङ्गक, सर्वतेजस, रुधिर। तीक्ष्ण, मुण्ड और कान्त-भेदसे लोह तीन प्रकारका होता है। मुण्डलोहके पर्याय—मुण्ड, मुण्डायस, दृषत्सार, शिलात्मज, अश्मज। कान्तलोहके पर्याय—आर, कृष्णायस। तीक्ष्णलोहके पर्याय—तीक्ष्ण, शस्त्रायस, शस्त्र, पिण्ड, पिण्डायस, शठ, आयस, निशित, तीव्र, खड्ग, मुण्डज, अयस्, चित्रायस, चीनज। वैज्ञानिक विवरण लौह शब्दमें देखो।

वैद्यक मतसे इसका गुण—रुक्ष, उष्ण, तिक्त, वात, पित्त, कफ, प्रमेह, पाण्डु, और शूलनाशक।

मनुमें लिखा है, कि अश्म (पत्थर) से लोहेकी उत्पत्ति होती है।

वैद्यकमें लोहेकी उत्पत्ति, गुण और मारणादिका विषय इस प्रकार लिखा है।

पुराकालके देव दानव युद्धमें देवताओं द्वारा लोमिल नामक दानव मारा गया था। उसीके शरीरसे अनेक प्रकारके लोहेकी उत्पत्ति हुई। लोह विशेष उपकारक है। सेवन या औषधमें इसे शोधन कर व्यवहार किया जाता है। शोधित लोह विशेष उपकारी है। अशोधित लोहका सेवन करनेसे पण्डता, कुष्ठ, हृद्रोग, शूल, अश्मरी, हृल्लास आदि रोग उत्पन्न होते हैं। इससे मृत्यु तक भी हो सकती है। इसका व्यवहार कदापि नहीं करना चाहिये।

शोधनप्रणाली—लोहेका बारीक पत्तर बना कर अग्निमें डलावे। पीछे गरम रहते उस पर यथाक्रम तेल, मट्ठा,

लोहकान्त (सं० पु०) लोहः कान्तोऽस्य। अयस्कान्त, चुम्बक।

लोहकार (सं० पु०) लोहं लोहमयं शस्त्रादि करोतीति कृ-अण्। लोहकारक, लोहार।

लोहकारक (सं० पु०) लोहं लोहमयशस्त्रादि करोतीति कृ-ण्वुल्। लोहार, कमार। पर्याय—व्योकार, लौहकार, अयस्कार, कर्मारक, कम्मार। जातिमालाके मतसे शूद्राके औरस और कुलालादिकके गर्भसे इसकी उत्पत्ति हुई है।

लोहकारी (सं० स्त्री०) लताविशेष अतिबला देखो।

लोहकिट्ट (सं० क्ली०) लोहस्य किट्टं। लोहमल, लोहेकी कीट या मैल। यह भट्ठेमें डाल कर लोहेको गलाने या आग देनेसे निकलती है। इसका पर्याय—किट्ट, लोहचूर्ण, अयोमल, लोहज, कृष्णचूर्ण, लोह। वैद्यकमें इसे कृमि, वात, पित्त, शूल, मेह, गुल्म और शोफका नाशक लिखा है। इसका स्वाद मधुर और कटु तथा प्रकृति उष्ण मानी गई है। मण्डूर देखो।

लोहगड—बम्बई प्रेसिडेन्सीके पूना जिलान्तर्गत भारगिरि-मण्डके मध्यस्थित शिखर पर स्थित एक नगर और दुर्ग। यह लनावलीसे दो कोस दक्षिण-पश्चिममें अवस्थित है। १७१३ ई०में महाराष्ट्र सरदार कान्होजी आंग्रियाने यह दुर्ग अधिकार कर लिया। एक सदी बाद शेष मराठा पेशवा बाजीरावके साथ लड़ाई पर १८१८ ई०में अङ्गरेज-सेनापति लेफ्टेनेंट कर्नल प्रोथरने इस स्थान पर अपना दखल जमाया। १८४५ ई०से यहां एक सेनाके अधीन अङ्गरेजी सेना रहती है।

लोहगन्ध (सं० पु०) महाभारतके अनुसार एक जातिका नाम।

लोहगिरि (सं० पु०) एक पर्वतका नाम।

लोहघातक (सं० पु०) कर्मकार नामक जाति। इस जातिके लोग लोहेको तपा कर पीटते हैं।

लोहचारिणी (सं० स्त्री०) एक नदीका नाम। इसे लोहतारिणी भी कहते हैं।

लोहजालिका (सं० स्त्री०) एक प्रकारका बख्तर जिसमें सारा शरीर ढका रहता था।

लोहचूर्ण (सं० क्ली०) लोहस्य चूर्णं। लोहकिट्ट।

लोहज (सं० क्ली०) लोहादुत्पद्यते इति जन-ड। १ लोहकिट्ट, मण्डूर। २ कांस्य, कांसा।

लोहजङ्घ (सं० पु०) १ ब्राह्मण। (कथासरित्सा० १२।५७) २ महाभारतके अनुसार एक जाति।

लोहजाल (सं० क्ली०) १ लोहनिर्मित जाल, यह जाल लोहेका बना होता है। २ वर्म, बख्तर। ३ लोहेका पत्तर।

लोहजित् (सं० पु०) हीरक, हीरा।

लोहतारिणी (सं० स्त्री०) महाभारतके अनुसार एक नदी।

लोहदारक (सं० पु०) नरकभेद।

लोहद्राविन् (सं० पु०) लोहानि द्रावयतीति द्रु-णिच्-णिनि। १ टङ्कणक्षार, सोहागा। २ अम्लवेत।

लोहनगर (सं० क्ली०) एक प्राचीन नगरका नाम। (कथासरित्सा० २७।१८८)

लोहनाल (सं० पु०) लोहस्य नालं दण्डो यस्य। नाराच नामक अस्त्र। नाराच देखो।

लोहपञ्चक (सं० क्ली०) सोना, चांदी, तांबा, रांगा और सीसा; वैद्यकके अनुसार पञ्चलोह कहनेसे उक्त पांच धातु समझी जाती है।

लोहपाश (सं० पु०) लोहशृङ्खल, लोहेकी सिकड़ी या जंजीर।

लोहपुर (सं० क्ली०) एक प्राचीन नगर।

लोहपृष्ठ (सं० पु०) लोहमिव कठिनं श्यामं वा पृष्ठं यस्य। १ कङ्कपक्षी, कांक। (त्रि०) २ लोहमय पृष्ठयुक्त।

लोहप्रतिमा (सं० स्त्री०) लोहस्य प्रतिमा। लोहकी प्रतिमा। पर्याय—सूर्मी, स्थूणा, सूर्मि, सूर्म, सूर्मिका।

लोहबद्ध (सं० त्रि०) लोहमण्डित।

लोहबान (हिं० पु०) लोबान देखो।

लोहमय (सं० त्रि०) लोह स्वरूपे मयट्। लोहात्मक, लोहेका बना हुआ।

लोहमारक (सं० पु०) लोहं मारयति मारयतीति मृ-णिच्-ण्वुल्। १ शालिञ्चशाक, शालिञ्च नामक शाक। २ वैद्यकके अनुसार कृष्णजीरक। इस महौषध द्वारा लोहेके चूर देनेसे लोहभस्म होता है इसलिये इसे लोहमारक कहते हैं। इसका दूसरा नाम शिङ्गलारित भी

है। ये गण ये सब हैं,—त्रिफला, निसोथ, दन्ती, त्रिकटु, तालमूली, वृद्धदारक, पुनर्णवा, अड़ूसत्त, चिता, अदरक, विड़ङ्ग, भृङ्गराज, भिलावा, सोंठ, अनारका पत्ता, सोयां, तुलसी, मोथा, ओल, गुड़ूची, मण्डुकपर्णी, हस्तिकर्णपलास, कुलिश, केशराज, माण, खण्डितकर्ण और दार्वीशाक इन सब द्रव्योंसे लोहमें पुट देना होता है।
(रसेन्द्रसारस०)

लोहमुक्तिका (सं० स्त्री०) लाल रंगकी मुक्ता।

लोहमेखल (सं० त्रि०) धातुनिर्मित मेखलाधारी, जो लोहेकी मेखला पहने हो।

लोहमेखला (सं० स्त्री०) स्कन्दचर मातृभेद। (भारत ६ पर्व)

लोहयष्टि (सं० स्त्री०) एक प्राचीन नगरका नाम।

लोहर (सं० क्ली०) जनपदभेद, शायद लाहोर।
(राजतर० ४।१७७)

लोहरजस् (सं० क्ली०) लोहकिट्ट।

लोहराजक (सं० क्ली०) रौप्य, रूपा।

लोहलंगर (हिं० पु०) १ जहाजका लङ्गर। २ बहुत भारी वस्तु।

लोहल (सं० त्रि०) लोहमिव लातीति ला-क। १ अव्यक्त वाक्, अनुचित वाणी। २ लोहग्राहक, लोहा खरीदनेवाला। (पु०) ३ शृङ्खलाचार्य।

लोहलिङ्ग (सं० क्ली०) रक्तपूर्ण स्फोटकादि।

लोहवत् (सं० त्रि०) लोहेके समान।

लोहवर (सं० क्ली०) लोहेषु सर्वतैजसेषु वरं। स्वर्ण, सोना।

लोहवर्मन् (सं० क्ली०) लोहेका बकतर।

लोहवात (सं० पु०) धान या चावलका एक भेद।

लोहशङ्कु (सं० पु०) १ मनुके अनुसार एक नरकका नाम। (मनु ४।९०) २ लोहनिर्मित कीलक, लोहेका बना खूंटा।

लोहश्लेषण (सं० पु०) लोहानि सर्वतैजसानि श्लेषयति योजयतीति श्लेषि-ल्यु। टङ्कणक्षार, सोहागा।

लोहसङ्कर (सं० क्ली०) लोहानां सङ्करो यत्र। १ वर्त्तलोह, एक प्रकारका लोहा। २ मिश्रित तैजस।

लोहसार (सं० पु०) १ फौलाद। २ फौलादकी बनी जंजीर।

लोहसिंह—मध्यप्रदेशके सम्बलपुर जिलान्तर्गत एक भूसम्पत्ति। भूपरिमाण ६० वर्गमील है। इसमें २६ गाँव लगते हैं। अधिकांश प्रजा गोंड़ और ख्रुजातीय है। ग्राम-समीपवर्त्ती स्थानमें ये लोग खेती-बारी करते हैं। १८५७ ई०में सिपाहीविद्रोहके समय विद्रोहि-दलके नेता सुरेन्द्र शाहके अधीन यहांके अधिवासियोंने घोर अत्याचार किया था। स्थानीय सरदार चन्दतकके भाई मधु ठाकुर मूरकी हत्याके अपराधमें प्राणदण्डसे दण्डित हुए। विद्रोह-शान्तिके बाद सरदार चन्दतकने अङ्गरेजराजको शान्तिरक्षाका अङ्गीकार-पत्र दिया था, इस कारण वे पुनः राजा बनाये गये थे।

लोहहारक (सं० पु०) मनुके अनुसार एक नरकका नाम।

लोहांगी (हिं० स्त्री०) वह छड़ी जिसके एक किनारे पर लोहा लगा होता है।

लोहा (हिं० पु०) १ लोह और लोह देखो। २ अस्त्र, हथियार। ३ लोहेकी बनाई हुई कोई चीज या उपकरण। ४ लाल रंगका बैल। (वि०) ५ लाल। ६ बहुत अधिक कड़ा, कठोर।

लोहाकर (सं० क्ली०) लोहस्य आकरं। लोहेका आकर, लोहेकी खान।

लोहाकर्ण (सं० त्रि०) लोहितवर्ण कर्णविशिष्ट, लाल कानवाला। (कात्या० श्रौ० २२।११।२६)

लोहाख्य (सं० क्ली०) लोहमेव आख्या यस्य। १ अगुरु, अगर। २ लोह, लोहा।

लोहागड़ा—बङ्गालके यशोर जिलेका एक नगर। यह अक्षा० २३° ११´ उ० तथा देशा० ८९° ४१´ पू०के मध्य अवस्थित है। मधुमती नदी यहांसे थोड़ी ही दूर पड़ता है। यहां गुड़ और चीनीका जोरों कारबार चलता है। खालुरा आदि निकटवर्त्ती ग्रामवासी गुड़के बदले चावल खरीद ले जाते हैं। उस गुड़से यहां अच्छी चीनी तैयार होती है। यह चीनी कलकत्ता और नारायणगंजमें भेजी जाती है। यहां एक कालीकी मूर्त्ति प्रतिष्ठित है। दूर दूर देशके लोग उस मूर्त्तिकी पूजा करने आते हैं।

लोहाघाट—युक्तप्रदेशके कुमायूं जिलान्तर्गत एक सेनावास। यह अक्षा० २९° २४´ उ० तथा देशा० ८०° ८´ पू०के मध्य लोहानदीके बायें किनारे अवस्थित है।

समुद्रपृष्ठसे इसकी ऊँचाई ५५६२ फुट है। यह चीड़-शाखिक वनों और ऊँचे पर्वतशृङ्गोंसे घिरे हैं। पहले इस नगरसे ३ मील दक्षिण चम्पावत् नगरमें लोहाघाटका थी। यहाँकी आबहवा अच्छी न होनेसे यहाँ पर उठा कर लाई गई। १८८३ ईमें यह सेनावास छोड़ दिया गया है। अभी यहाँ चायकी खेती होती है। अल्मोड़ासे यह नगर ५४ मील दक्षिण पूर्वमें अवस्थित है।

लोहागाँव—मध्यप्रदेशके बुन्देलखण्ड विभागके सागर जिलान्तर्गत एक बड़ा गाँव। यह अक्षा० २४° २६´ ३० तथा देशा० ८०° २२´ पू०के मध्य इलाहाबादसे ११८ मील दक्षिण-पश्चिम सागर जानेके रास्ते पर अवस्थित है। समुद्रकी तहसे इसकी ऊँचाई १२६० फुट है। पहले यहाँ अंगरेजराजका एक सेनानिवास था। पीछे यह चारि हटा दी जानेसे स्थानीय समृद्धिका बहुत कुछ ह्रास हो गया है।

लोहाद्रावक (सं० पु०) एक मणिका नाम।

लोहार्गल (सं० पु०) वराहतीर्थ, महिसुरके अन्तर्गत मन्दूर राज्यमें अवस्थित एक तीर्थ। लोहार्गल या कुमार माहात्म्यमें इस स्थानका विवरण लिखा है।

लोहाज (सं० पु०) लाल बकरा।

लोहाजवक्त्र (सं० पु०) स्कन्दानुचर मातृगण।
(भारत ९।४०)

लोहाण्ड (सं० त्रि०) लाल अण्डकोषवाला जीव।

लोहाना (हिं० क्रि०) १ लोहेके बरतनमें रखे रहनेके कारण किसी वस्तुमें लोहेके गुण या रंग आदिका उतर आना, किसी पदार्थमें लोहेका रंग या स्वाद आ जाना। (पु०) २ एक जातिका नाम।

लोहाभिसार (सं० पु०) लोहोंको शस्त्रादिमें अभिसारित पर्व। लोहाभिहार।

लोहाभिहार (सं० पु०) लोहाभिसारके पर्व। शस्त्रादि राजाओंकी नीराजना विधि।

लोहामिष (सं० क्ली०) लाल रंगके बकरेका मांस।

लोहायस (सं० क्ली०) ताम्रयुक्त मिश्र धातु।

लोहार (हिं० पु०) एक जाति। यह लोहेका काम करती है। इस जातिके अनेक भेद हैं। इनमेंसे कुछ अपनेको ब्राह्मण कहते और यज्ञोपवीत धारण करते हैं। इनमेंसे पश्चिमोंके नाम जो ओझा आदि रहते हैं, वह मांसभक्षण सुरापानहीन होते हैं और कुछ मांस खाते हैं। प्रत्येक अन्तर्जातिका खानपान और विवाह-सम्बन्ध पृथक् पृथक् होता है और उनके नाम भी भिन्न होते हैं।

लोहारदगा—रांची जिलेका पश्चिम भाग। यह अक्षा० २२° २४´ से २४° ३९´ ३० तथा देशा० ८३° २२´ से ८५° ५४´ पू०के मध्य अवस्थित है। भूपरिमाण १२१४५ वर्ग मील है। इसके उत्तरमें सोननदी, हजारीबाग, गया और शाहाबाद जिलेको पृथक् करती है। उत्तर पश्चिम और पश्चिममें मिर्जापुर जिला तथा सरगुजा, जशपुर और गांगपुर सामन्तराज्य; दक्षिण और पूर्वमें सिंहभूम और मानभूमका जिला है। पूर्वी सीमामें सुवर्णरेखा नदी बहती है।

इस स्थानका कोई प्राचीन इतिहास नहीं मिलता। अधिक सम्भव है, कि पहले यह स्थान पहाड़ और घने जङ्गलसे ढका था। लोग इसे झारखण्ड कहा करते थे। आज भी यह छोटानागपुर विभाग अरण्यप्रदेशका परिचय देता है। इस स्थानमें बहुत-से आदिम अधिवासी मुण्डा और पीछे ओरांवगण बहुत दिनोंसे वास करते आ रहे हैं। बहुत दिनोंसे एक साथ रहने पर भी दोनोंमें विवाहादि नहीं चलता। वे अपने अपने प्राचीन धर्म और कुलप्रथाकी रक्षा करते हैं। किन्तु एक समय दोनोंकी राजनीति एक-सी थी।

इस भूमिमें भी बहुत प्राचीन कालसे अनार्यजातीय ओरांव और सामन्तपतियोंके हिन्दूजाति ही कभी रहने आ रहे थे। उन लोगोंका यह नैतिक शान्तिपूर्ण भाव कब कोई भी राजा इन्हें स्वतन्त्रतामें बाधक बनना नहीं चाहते थे। वे बराबर स्वतन्त्र ग्रामपति की तरह स्थान शासन विधान किया करते थे तथा पूरी शान्ति से एक एक गांवमें इकट्ठे हो रहते थे। गाँवका एक एक प्रधान मालिक सर्वोच्च होता था। यही नहीं, कि वे लोग अपने गांवके शासनकार्यके कर्ता या मालिक थे, किसी शत्रुके साथ युद्ध करनेमें भी आगे रहते थे। लोग धनुर्बाण लेकर ही युद्ध किया करते थे।

थनाका ग्राम्यदलपतिगण एक समय सभ्यताके संमिश्रणसे सामन्तराजरूपमें गिने जाते थे। इन दलपतियोंमें जो दलबलके साथ शत्रुके आनेके पथ घाटीकी रक्षा करता था वह घाटवाल वा सरदार कहलाता था। अभी ये सब सरदार अपने देश और समाजमें पूर्ववत् पूज्य हैं। यहां अंगरेजी शासन फैलने पर भी मुण्डा वा ओरांउन-नेताओंके अधिकारमें उतना धक्का नहीं पहुंचा है। परन्तु अंगरेजोंके अधीन रहनेसे ये लोग अब पहलेकी तरह रणमें वा लूटमें प्राप्त वन्दियोंकी नृशंसरूपसे हत्या और अमानुषिक महिषोत्सर्ग आदि पाशविक अत्याचार करने नहीं पाते। वृटिश-गवर्मेण्टके कठोर शासनसे ये अभी शान्त हो गये हैं।

लगभग १६१६ ई०में मुगल-सम्राट् जहांगीर वादशाहके राज्यकालमें मुगल-सेनाने कोका (असल छोटा नागपुर)को अधिकार किया। इस समय यहांकी किसी किसी नदीमें हीरा मिलता था। युद्ध-विजय और हीरा मिलनेका समाचार पा कर दिल्ली-दरवारमें बड़ी धूमधामसे आनन्दोत्सव मनाया गया था। इतिहास पढ़नेसे मालूम होता है, कि उक्त घटनाके बाद १६४०-६० ई०के मध्य मुसलमानोंने कई बार पलामू पर आक्रमण किया, पर एक बार भी वे कृतकार्य न हुए। आखिर १६६० ई०में दाऊद खाँने पलामू-दुर्गको आक्रमण किया और जीता। उनके वंशधरोंने उस दुर्गमें ३० फुट लम्बे और १२ फुट चौड़े एक बड़े चित्रपट पर उनका आक्रमण-कौशल लिख दिया है।

दाऊद द्वारा पलामू-दुर्ग जीते जानेके बादसे ले कर १७२२ ई० तक यहां और कोई ऐतिहासिक उल्लेखनीय घटना देखनेमें नहीं आती। शेषोक्त वर्षमें स्थानीय सामन्तराज रणजित् राय गुप्तरूपसे मार डाले गये। पीछे उन्हींके भतीजे जयकृष्ण राय गद्दी पर बैठे थे। कुछ दिन राज्यसुखका सम्भोग करके जयकृष्णने एक छोटी लड़ाईमें प्राण-विसर्जन किया। पीछे उनकी स्त्री और परिवारके सभी लोगोंने विहार प्रदेशके अन्तर्गत मेगरा नामक स्थानमें आ कर यहांके कानून-गो उदवन्त रायका आश्रय लिया। उदवन्त राय १७७० ई०में मृत राजा रणजित् रायके पौत्र गोपाल रायको पटनेमें लाये थे, पीछे यहांके अंगरेज एजेण्ट कप्तान कर्नाकके सामने आ कर पलामूराजका यथार्थ उत्तराधिकारी घोषित किया। कानून-गोकी प्रार्थना पर कप्तान कर्नाकने कहा, कि गोपाल रायको राजसिंहासन पर बैठनेमें अंगरेज-गवर्मेण्टकी ओरसे मदद पहुंचायेंगे। तदनुसार उन्होंने उस समयके पलामूराजको परास्त कर गोपाल राय और उनके दो भाइयोंको पांच वर्षकी सनद दी। तभीसे पलामू विभाग अंगरेजाधिकृत रामगढ़ जिलेके अन्तर्भुक्त हुआ। इस घटनाके दो वर्ष बाद कानून-गो उदवन्त रायके हत्याकाण्डमें लिप्त रहनेके अपराधमें विश्वासघातक गोपाल राय कारारुद्ध हुए और वसन्त राय गद्दी पर बैठे। १७८४ ई०को पटना नगरमें गोपाल रायकी मृत्यु हुई। राजा वसन्तरायका भी उसी साल देहान्त हुआ। पीछे चूड़ामण राय राजसिंहासन पर बैठे। ये १८१३ ई०में ऋणजालसे जड़ित हो गये इस कारण बाकी खजाना न देनेके कारण वृटिश गवर्मेण्टने उनकी पलामू सम्पत्ति खरीद ली।

गया जिलेके अन्तर्गत देवविभागके राजा फतेनारायण सिंहकी सहायतासे उपकृत हो अङ्गरेज गवर्मेण्टने प्रत्युपकार और पुरस्कार-स्वरूप १८१६ ई०में उन्हें पलामू सम्पत्ति जागीर-स्वरूप दे दी। राजा फतेनारायण न्यायपूर्वक राजस्व नहीं उगाहते थे तथा प्रजा पर भारी अत्याचार करते थे। फलतः सभी प्रजा बागी हो गई। १८१८ ई०में अङ्गरेज-गवर्मेण्टने यह सम्पत्ति पुनः हस्तगत कर ली।

अङ्गरेजोंके दखलमें आनेके बाद पलामूने शान्तभाव धारण किया है। १८३१ ई०को छोटा-नागपुरमें कोल विद्रोह उपस्थित हुआ। यही इतिहासमें 'सुयाड़-विद्रोह' नामसे प्रसिद्ध है। छोटा-नागपुरके महाराजके आत्मीय और अनुचरोंका अत्याचार ही इस विद्रोहका कारण था। १८३८ ई०के मार्च मासमें अङ्गरेजोंके यत्नसे यह रुक गया। मानभूम देखो।

इस भीषण विद्रोहमें कोलगण ऐसे उत्तेजित हो गये थे, कि बहुत खून-खराबीके बाद भी वे शान्त न हुए। बहुतसे ग्राम लूटे और जलाये गये तथा नररक्तसे पृथ्वी तरावोर की गई। पीछे गङ्गानारायण आदि दस्युदलनेता

अङ्गरेजोंके हाथसे पराजित हुए, किन्तु उन्होंने आत्मसमर्पण नहीं किया। इस ओर अंगरेजी समय सेनाओंसे उत्पात होने पर यहांके पहाड़ी प्रदेशको घेर डाला, किंतु पलामू-विभागको उससे भी शान्ति न हुई। इस विद्रोहके बाद अङ्गरेज-गवर्मेण्टके शासन-विभागोंमें जो सब परिवर्तन हुआ है, वह हजारीबाग जिलेके विवरणमें दिया गया है। हजारीबाग देखो।

उपरोक्त कुआड़-विद्रोहके कुछ समय बाद दो गेरो और खरवार जाति बागी हो गई। १८३२ ई०में उनका दमन किया गया। तभीसे ले कर सिपाहीविद्रोह तक यहां और किसी प्रकारकी घटना न घटी। उसी समय खरवार जाति स्थानीय राजपूत जमींदारोंके विरुद्ध खड़ी हुई। उनका दल धीरे धीरे परिपुष्ट होता गया। इस समय रामगढ़के विद्रोही सेना-दलने पलामू नगरमें आश्रय ले कर यहांके खरवारी जमींदार नीलाम्बर सिंह और पीताम्बर सिंहकी सहायतासे विद्रोहकी मात्रा धीरे धीरे बढ़ा दी। २६ नवम्बर मन्द्राज-पदातिक दल और रामगढ़के कुछ राजभक्त सेनाकी सहायतासे यह विद्रोह शान्त हुआ। स्वयं कमिश्नर दुर्गके सामने विद्रोहि दल पराजित हुआ। नीलाम्बर और पीताम्बर बन्दिरूपमें कारागार भेज दिये गये। आखिर अङ्गरेज गवर्मेण्टके विचारसे उन्हें फांसीकी सजा हुई।

विशेष विवरण रांची शब्दमें देखो।

२ रांची जिलेका एक शहर। यह अक्षा० २३° २९´ उ० और देशा० ८४° ४२´ पू०के मध्य रांची शहरसे ४७ मील पश्चि[illegible] है। जनसंख्या ६ हजारसे ऊपर है [illegible] शहर रहा। १८८८ [illegible] छोटा कु[illegible]

लोहारा—म[illegible] एक [illegible] प्रान्त [illegible] और [illegible] जिला [illegible] १ [illegible] है।

गढ़ है। उसके ऊपर जो जङ्गल है उसमें सेगुन, शाल, महुआ और कुसुम वृक्ष पाये जाते हैं। [redacted] सब वस्तुओंसे लाख, गोंद और मधु संग्रह कर कोल लोग बाजारमें बेचने आते हैं। बंजार लोग यहांसे पशम और घी खरीद ले जाते हैं। यहां खनिज लोहा गलाया जाता है। यहांके अधिवासियोंने कोड़ जातीय [illegible] बहुत मदद पहुंचाई थी, इस कारण इस वंशके किसी राजाने १५३८ ई०में यह सम्पत्ति जागीर-स्वरूप पाई। लोहारा ग्राम खूब स्वास्थ्यप्रद है। यहां सरकारी विद्यालय, थाना और अस्पतालके अतिरिक्त सुन्दर उद्यान है।

लोहारा-सादतपुर—मध्यप्रदेशके रायपुर जिलान्तर्गत कुर्ग तहसीलकी एक भूसम्पत्ति। भूपरिमाण ११७ वर्गमील और जनसंख्या ६ हजारके करीब है। इसमें कुल ८९ ग्राम लगते हैं। जागीरकी पहाड़ पर जंगल [illegible] जिसमें [illegible] इस जमींदारीका अधिकांश भाग संलग्न है। प्रसिद्ध पदाधिकारियोंके साथ यहांके जमींदारोंका सम्बन्ध है। यह स्थान बहुत उपजाऊ है। यहां गन्ना सरसों काफी उत्पन्न होती है। लोहारा-सादतपुर यहांका प्रसिद्ध वाणिज्य स्थान है।

लोहारो (सं० स्त्री०) लोहारका काम।

लोहारी माहल—युक्तप्रदेशके गढ़वाल जिलान्तर्गत एक जनपद। यह अक्षा० ३०° ५७´ उ० तथा देशा० ७८° ४४´ पू०के मध्य विस्तृत है। कई पहाड़ोंकी चोटीसे घिरा हुआ यह जनपद जातियोंसे आ कर मिला है। यहां जातियोंके सिवाय एक थोड़ा रास्ता है। इसमें १० मील कुटिल [illegible] जनसंख्या ६ हजार [illegible] है।

[illegible] हिसार विभागका एक देशी [illegible] विभागके दक्षिणके [illegible] [illegible] होता और अक्षा० २८° २१´ से [illegible] ४०´ से ७४° ५४´ पूर्वके [illegible] और जन[illegible] [illegible] [illegible] [illegible] एक [illegible] है [illegible]

वार-राजके दूत-स्वरूप अङ्गरेज सेनापति लार्ड लेकके पास गये और राजकीय सम्बन्ध ले कर दोनोंमें जो मनमुटाव चला आ रहा था उसे इन्होंने दूर कर दिया। इस कार्यके पुरस्कार-स्वरूप इन्हें अलवार-पतिसे लोहारु देश मिला तथा लार्ड लेकने कृतज्ञ हृदयसे इन्हें फिरोजपुर परगनेका शासनभार समर्पण किया। अङ्गरेजोंके साथ उनकी जो सन्धि हुई थी, उसमें उन्होंने युद्धविग्रहमें मदद देनेका वचन दिया था।

अहमदकी मृत्युके बाद उनके बड़े लड़के समसुद्दीन खाँ सिंहासन पर बैठे। किन्तु १८३५ ई०में वे रेसिडेण्ट मि० फ्रेजरके हत्याकाण्डमें लिप्त थे, इस अपराधमें दिल्ली नगरमें उन्हें फांसी हुई। उनका फिरोजपुर परगना भी जब्त किया गया। आखिर अङ्गरेजराजने अमीन उद्दीन खाँ और जियाउद्दीन खाँ नामक समसुद्दीनके दो भाइयोंके बीच लोहारु सम्पत्ति बराबर बराबर बाँट दी। १८५७ ई०के गदरमें उक्त दोनों भाई दिल्लीमें रहते थे। विद्रोहियोंने जब दिल्लीमें घेरा डाला, तब अङ्गरेज-प्रतिनिधियोंकी ओरसे दोनों भाई पर कड़ा पहरा बैठाया गया था। वे विद्रोहमें किसी तरह शामिल न थे, इस कारण विद्रोह-दमनके बाद अङ्गरेज-गवर्मेण्टने उन्हें मुक्ति दे कर फिरसे राजभोग करने दिया था। १८६९ ई०में अमीन उद्दीनकी मृत्यु हुई। इस समय उनके पुत्र अलाउद्दीन् लोहारुकी नवाबी मसनद पर बैठे। पहले अङ्गरेजराजके बन्दोबस्तानुसार अमीनके भाई जियाउद्दीन सहकारी नवाब हुए सही, पर वे राज्यके शासनकार्यमें किसी तरह हस्तक्षेप न कर सकते। वे अङ्गरेजराज द्वारा निर्दिष्ट १८००० रु० वार्षिक वृत्ति ले कर ही सन्तुष्ट थे।

अङ्गरेज गवर्मेण्टके विश्वास-भाजन होने तथा अङ्गरेजराजका आनुगत्य स्वीकार करनेके कारण भारत-सरकारने १८७४ ई०में अलाउद्दीनको नवाबकी उपाधि तथा गोद लेनेका अधिकार दे कर एक सनद दी। १८८४ ई०में राजा पर बहुतोंका कर्ज हो गया, इस कारण सम्पत्तिकी रक्षाके लिये उन्होंने १२ वर्षके वादे पर स्थानीय गवर्मेण्टसे ऋण लिया। इस समय लोहारु-राज्यका परिचालन-भार अलाउद्दीनके पुत्रके हाथ सौंपा गया। नवाब अलाउद्दीन दूसरे सामन्त सियाउद्दीनकी तरह वार्षिक १८ हजार रुपया वेतन पाने लगे। १८८४ ई०में अलाउद्दीनकी मृत्यु हुई। अब उनके लड़के अमीर उद्दीनने राज्यशासनकी बागडोर अपने हाथ ली। कुछ समय बाद वे के, सी, आई, ई-की उपाधिसे भूषित हुए। १८९३-से १९०३ ई० तक उनके भाईने राजकार्य चलाया, क्योंकि वे मालेर कोटला राज्यके सुपरिण्टेण्डेण्ट बनाये गये थे। इन्हें फुरसत बहुत कम मिलती थी। वर्त्तमान नवाबका नाम है कैप्टेन नवाब ऐजुद्दीन अहमद खाँ बहादुर फखरुद्दौला। इन्हें ९ तोपोंकी सलामी मिलती है। राजको आय कुल मिला कर ९९ हजार रुपया है। नवाबको १२५ पसुविट मालवा अफीमका एक बकस रखनेका अधिकार है। इसके लिये इन्हें २८० रुपये कर देने पड़ते हैं।

२ उक्त राज्यकी राजधानी। यह अक्षा० २८° २४´ उ० तथा देशा० ७५° ५२´ पू० हिस्सारसे ५२ मील दक्षिणमें अवस्थित है। जनसंख्या ढाई हजारके लगभग है। यहां एक समय लोहेकी खान थी जिसमें लोहार लोग काम करते थे। उसी लोहारसे इसका लोहारु नाम हुआ है। यहां नवाबका प्रासाद, कार्यालय, अस्पताल, जेल, डाक और तार-घर है।

लोहार्गल (सं० क्ली०) लोहस्य अर्गलमिव। १ एक तीर्थका नाम। वराहपुराणमें इस तीर्थका माहात्म्य वर्णित है। २ लोहकीलक, लोहेका खूंटा।

लोहावत्—राजपूतानेके जोधपुर राज्यका एक शहर। यह अक्षा० २६° ५९´ उ० तथा देशा० ७२° ३६´ पू० जोधपुर शहरसे ५५ मील उत्तर पड़ता है। जनसंख्या पांच हजारसे ऊपर है।

लोहासुर (सं० पु०) असुरभेद। लोहासुर-माहात्म्यमें इसका विषय वर्णित है।

लोहि (सं० क्ली०) श्वेतटङ्कण, सफेद सोहागा।

लोहिका (सं० स्त्री०) लोहतस्त्यजतेति लोह-टन्। लोहपात्र, लोहेका बरतन। पर्याय—करसेन्दि, करपात्र।

लोहित (सं० क्ली०) रुहते इति रुह (रुहेरश्च लो वा। उण् ३।९४) इति इतन् रस्य लत्वं। १ रक्तगोशीर्ष। २ कुंकुम, केसर। ३ रक्तचन्दन, लाल चन्दन। ४ पद्मक, पीतल। ५ हरिचन्दन। ६ वृणकुंकुम। ७ रुधिर, लहू। ८ युद्ध,

अङ्गरेजोंके हाथसे परास्त हुए, किन्तु उन्होंने आत्मसमर्पण नहीं किया। इस घोर संघर्षके समय कोलोंने उन्मत्त हो कर यहांके पहाड़ी प्रदेशको मथ डाला, किंतु पलामू-विभागको जरा भी क्षति न हुई। इस विद्रोहके बाद अङ्गरेज-गवर्मेण्टके शासन-विभागीय जो सब परिवर्त्तन हुआ है, वह हजारीबाग जिलेके विवरणमें दिया गया है। हजारीबाग देखो।

उपरोक्त शुयाड़-विद्रोहके कुछ समय बाद ही चेरो और खरवार जाति बागी हो गई। १८३२ ई०में उसका दमन किया गया। तभीसे ले कर सिपाहीविद्रोह तक यहां और किसी प्रकारकी घटना न घटी। उसी साल खरवार जाति स्थानीय राजपूत जमींदारोंके विरुद्ध खड़ी हुई। उसका दल धीरे धीरे परिपुष्ट होता गया। इस समय रामगढ़के विद्रोही सेना-दलने पलामू नगरमें आश्रय ले कर यहांके राजवंशी जमींदार नीलाम्बर सिंह और पीताम्बर सिंहकी सहायतासे विद्रोहकी मात्रा धीरे धीरे बढ़ा दी। २६ नवम्बर मन्द्राज-पदातिक दल और रामगढ़के कुछ राजभक्त सेनाकी सहायतासे यह विद्रोह शान्त हुआ। सात बरीका-दुर्गके सामने विद्रोहि दल परास्त हुआ। नीलाम्बर और पीताम्बर बन्दिरूपमें कारागार भेज दिये गये। आखिर अङ्गरेज गवर्मेण्टके विचारसे उन्हें फांसीकी सजा हुई।

विशेष विवरण रांची शब्दमें देखो।

२ रांची जिलेका एक शहर। यह अक्षा० २३° २६' उ० और देशा० ८४° ४१' पू०के मध्य रांची शहरसे ४७ मील पश्चिममें अवस्थित है। जनसंख्या ६ हजारसे ऊपर है। १८४० ई० तक यह रांची जिलेका सदर रहा। १८८८ ई०में यहां म्युनिसपलिटी स्थापित हुई है। यहां एक छोटा कुष्ठाश्रम है।

लोहारा—मध्यप्रदेशके रायपुर जिलान्तर्गत धामतरी तहसीलकी एक भूसम्पत्ति। भूपरिमाण ३६८ वर्गमील है। इसमें १२० ग्राम लगते हैं।

इसके पूर्व और पश्चिममें तेन्दुला और कर्करा नदी बहती हैं। इसके सिवा यहां और भी कितनी छोटी छोटी नदियां बहती हैं। उक्त पर्वतमालाका एक अंश दिल्ली पहाड़ नामसे मशहूर है। उसकी ऊंचाई २००० फुट है। उसके ऊपर जो जङ्गल है उसमें सेगुन, शाल, महुआ और कुसुम वृक्ष पाये जाते हैं। इन सब जङ्गलोंमें लाख, मोम और मधु संग्रह कर गोंड़ लोग बाजारमें बेचने आते हैं। बंजार लोग यहांसे परसन और रुई खरीद ले जाते हैं। यहां खनिज लौह गलाया जाता है। यहांके अधिकारीने गोंड़ जातीय रतनपुरराजको लड़ाईमें खासी मदद पहुंचाई थी, इस कारण इस वंशके किसी राजाने १५३८ ई०में यह सम्पत्ति जागीर-स्वरूप पाई। लोहारा ग्राम खूब समृद्धिसम्पन्न है। यहां सरकारी विद्यालय, थाना और जनसाधारणके वायुसेवनार्थ सुन्दर उद्यान है।

लोहारा-साहसपुर—मध्यप्रदेशके रायपुर जिलान्तर्गत दुर्ग तहसीलकी एक भूसम्पत्ति। भूपरिमाण १६७ वर्गमील और जनसंख्या ६ हजारके करीब है। इसमें कुल ८५ ग्राम लगते हैं। शालदिखी पहाड़का जंगल तथा निम्नप्रदेश ले कर इस जमींदारीका अधिकांश-स्थान संगठित है। प्रसिद्ध पद्मारियावंशके साथ यहांके जमींदारोंका सम्बन्ध है। यह स्थान बहुत उपजाऊ है। यहां तरह तरहकी काफी फसल लगती है। लोहारा-साहसपुर यहांका प्रसिद्ध वाणिज्य स्थान है।

लोहारी (सं० स्त्री०) लोहारका काम।

लोहारी गाड़—युक्तप्रदेशके गढ़वाल जिलान्तर्गत एक जलप्रपात। यह अक्षा० ३०° ५३' उ० तथा देशा० ७८° ४४' पू०के मध्य विस्तृत है। कई पहाड़ोंकी बड़ी तेजीसे लांघता हुआ यह जलप्रपात भागीरथीमें आ कर मिला है। यहां भागीरथीके किनारे एक चौड़ा रास्ता है। प्रपातसे १० मील दक्षिण तक नदीतीरस्थ रास्तेकी बगलमें ६ रस्सीका झूलेला-पुल है।

लोहारु—पञ्जाबप्रदेशके हिसार विभागका एक देशी राज्य। यह दिल्ली विभागके कमिश्नरके राजकीय तत्त्वावधानमें परिचालित होता और अक्षा० २८° २१' से २८° ४५' उ० तथा देशा० ७५° ४०' से ७५° ५७' पू०के बीच पड़ता है। भूपरिमाण २२४ वर्गमील और जनसंख्या २० हजारसे ऊपर है। इसमें लोहारु नामक १ शहर और ५६ ग्राम लगते हैं। आहम्मदबख्स नामक एक मुगल इस राजवंशके प्रतिष्ठाता थे। १८०६ ई०में ये अल-

वार-राजके दूत-स्वरूप अङ्गरेज सेनापति लार्ड लेकके पास गये और राजकीय सम्बन्ध ले कर दोनोंमें जो मनमुटाव चला आ रहा था उसे इन्होंने दूर कर दिया। इस कार्यके पुरस्कार-स्वरूप इन्हें अलवार-पतिसे लोहारु देश मिला तथा लार्ड लेकने कृतज्ञ हृदयसे इन्हें फिरोजपुर परगनेका शासनभार समर्पण किया। अङ्गरेजोंके साथ उनकी जो सन्धि हुई थी, उसमें उन्होंने युद्धविग्रहमें मदद देनेका वचन दिया था।

अहमदकी मृत्युके बाद उनके बड़े लड़के समसुद्दीन खाँ सिंहासन पर बैठे। किन्तु १८३५ ई०को वे रेसिडेण्ट मि० फ्रेजरके हत्याकाण्डमें लिप्त थे, इस अपराधमें दिल्ली नगरमें उन्हें फांसी हुई। उनका फिरोजपुर परगना भी जप्त किया गया। आखिर अङ्गरेजराजने अमीन उद्दीन खाँ और जियाउद्दीन खाँ नामक समसुद्दीनके दो भाइयोंके बीच लोहारु सम्पत्ति बराबर बराबर बांट दी। १८५७ ई०के गदरमें उक्त दोनों भाई दिल्लीमें रहते थे। विद्रोहियोंने जब दिल्लीमें घेरा डाला, तब अङ्गरेज-प्रतिनिधियोंकी ओरसे दोनों भाई पर कड़ा पहरा बैठाया गया था। वे विद्रोहमें किसी तरह शामिल न थे, इस कारण विद्रोह-दमनके बाद अङ्गरेज-गवर्मेण्टने उन्हें मुक्ति दे कर फिरसे राजभोग करने दिया था। १८६९ ई०में अमीन उद्दीनकी मृत्यु हुई। इस समय उनके पुत्र अलाउद्दीन लोहारुकी नवाबी मसनद पर बैठे। पहले अङ्गरेजराजके बन्दोबस्तानुसार अमीनके भाई जियाउद्दीन सहकारी नवाब हुए सही, पर वे राज्यके शासनकार्यमें किसी तरह हस्तक्षेप न कर सकते। वे अङ्गरेजराज द्वारा निर्दिष्ट १८००० रु० वार्षिक वृत्ति ले कर ही सन्तुष्ट थे।

अङ्गरेज गवर्मेण्टके विश्वास-भाजन होने तथा अङ्गरेजराजका आनुगत्य स्वीकार करनेके कारण भारत-सरकारने १८७४ ई०में अलाउद्दीनको नवाबकी उपाधि तथा गोद लेनेका अधिकार दे कर एक सनद दी। १८८४ ई०में राजा पर बहुतोंका कर्ज हो गया, इस कारण सम्पत्तिकी रक्षाके लिये उन्होंने १२ वर्षके वादे पर स्थानीय गवर्मेण्टसे ऋण लिया। इस समय लोहारु-राज्यका परिचालन भार अलाउद्दीनके पुत्रके हाथ सौंपा गया। नवाब अलाउद्दीन दूसरे सामन्त सियाउद्दीनकी तरह वार्षिक १८ हजार रुपया वेतन पाने लगे। १८८४ ई०में अलाउद्दीनकी मृत्यु हुई। अब उनके लड़के अमीर उद्दीनने राज्यशासनकी बागडोर अपने हाथ ली। कुछ समय बाद वे के, सी, आई, ई-की उपाधिसे भूषित हुए। १८९३से १९०३ ई० तक उनके भाईने राजकार्य चलाया, क्योंकि वे मालेर कोटला राज्यके सुपरिण्टेण्डेण्ट बनाये गये थे। इन्हें फुरसत बहुत कम मिलती थी। वर्त्तमान नवाबका नाम है कैप्टेन नवाब ऐजुद्दीन अहमद खाँ बहादुर फकरुद्दौला। इन्हें ९ तोपोंकी सलामी मिलती है। राजकी आय कुल मिला कर ६६ हजार रुपया है। नवाबको १२५ पसुविट मालवा अफीमका एक बकस रखनेका अधिकार है। इसके लिये इन्हें २८० रुपये कर देने पड़ते हैं।

२ उक्त राज्यकी राजधानी। यह अक्षा० २८° २४´ उ० तथा देशा० ७५° ५२´ पू० हिस्सारसे ५२ मील दक्षिणमें अवस्थित है। जनसंख्या ढाई हजारके लगभग है। यहां एक समय लोहेकी खान थी जिसमें लोहार लोग काम करते थे। उसी लोहारसे इसका लोहारु नाम हुआ है। यहां नवाबका प्रासाद, कार्यालय, अस्पताल, जेल, डाक और तार-घर है।

लोहार्गल (सं० क्ली०) लोहस्य अर्गलमिव। १ एक तीर्थका नाम। वराहपुराणमें इस तीर्थका माहात्म्य वर्णित है। २ लौहकीलक, लोहेका खूंटा।

लोहावत्—राजपूतानेके जोधपुर राज्यका एक शहर। यह अक्षा० २६° ५९´ उ० तथा देशा० ७२° ३६´ पू० जोधपुर शहरसे ५५ मील उत्तर पड़ता है। जनसंख्या पांच हजारसे ऊपर है।

लोहासुर (सं० पु०) असुरभेद। लोहासुर-माहात्म्यमें इसका विषय वर्णित है।

लोहि (सं० क्ली०) श्वेतटङ्कण, सफेद सोहागा।

लोहिका (सं० स्त्री०) लोहतस्त्यवेति लोह-ठन्। लोहपात्र, लोहेका बरतन। पर्याय—सर्वसेन्दि, सरपात्र।

लोहित (सं० क्ली०) रोहते इति रुह (रुहेरश्च लो वा। उण् ३।९४) इति इतन् रस्य लत्वं। १ रक्तगोशीर्ष। २ कुंकुम, केसर। ३ रक्तचन्दन, लाल चन्दन। ४ पत्तङ्ग, पीतल। ५ हरिचन्दन। ६ तृणकुंकुम। ७ रुधिर, लहू। ८ युद्ध,

न्याई। ९ सरोवरविशेष। (मत्स्यपु० १२०।१२) १० माणिक्य। (पु०) ११ नदविशेष। यह ब्रह्मपुत्र-की एक शाखा है। लौहित्य देखो। १२ सागरविशेष। इस सागरका जल लाल होता है इसलिये इसको लोहित या लालसागर कहते हैं। यहां वरुण रहते हैं। (भारत सभा०) १३ भौम। (बृहत्संहिता ६८) १४ रोहित मत्स्य, रोहू मछली। १५ मृगविशेष। १६ सर्पभेद, एक प्रकारका सांप। १७ सुरभेद, द्वादश मन्वन्तरके एक देवता। १८ मसूर, मसुरी। १९ रक्तालु। २० रक्तशालि, लाल धान। २१ चलभेद। २२ पर्वत-विशेष। (मत्स्यपु० १२०।११) २३ कुशद्वीपस्थ वर्षभेद। (मत्स्यपु० १२२।६५) २४ चक्षुरोगविशेष, आंखकी एक बीमारी। (शार्ङ्गधरस० १।६।८७) २५ नागभेद। २६ हद-विशेष। (हरिवंश) (त्रि०) २७ रक्तवर्ण, लाल। २८ रक्त-वर्णयुक्त, लाल रंगका।

लोहितक (सं० क्ली०) लोहित मिव स्वार्थे कन्। १ रीति। २ कांस्य, कांसा। (पु०) लोहित एव स्वार्थे कन्। ३ मङ्गल ग्रह। ४ पद्मरागमणि। ५ धान्यभेद, एक प्रकारका धान। ६ बौद्धस्तूपभेद। चीनपरिव्राजक यूएनचुवङ्ग इस पर्वतको देख गये हैं। ७ आज कलके रोहतक नगरका प्राचीन नाम।

लोहितकल्माष (सं० त्रि०) लाल वर्ण चिह्नयुक्त, चित-कबरा।

लोहितकूट—एक प्राचीन जनपद, सम्भवतः लोहित पर्वतके पासका स्थान। (हरिवंश)

लोहितकृष्ण (सं० त्रि०) कृष्णाभ वर्ण, गाढ़ा लाल।

लोहितक्षय (सं० पु०) १ रक्तक्षय, लहूका क्षय होना। २ रक्तनाश, खूनकी खराबी होना। ३ रक्तक्षरण या मोक्षण, लहू गिरना।

लोहितक्षयक (सं० त्रि०) रक्तात्मता रोगग्रस्त।

लोहितक्षीर (सं० त्रि०) रक्तवर्ण गाढ़ा दुग्धक्षरणशील।

लोहितगङ्ग (सं० क्ली०) १ प्राचीन जनपदभेद। (अव्य०) २ जहां गङ्गा लाल दिखाई पड़ती हैं।

(पाणिनि २।१।२१ भाष्य)

लोहितगङ्गक (सं० क्ली०) प्राचीन स्थानभेद।

लोहितग्रीव (सं० पु०) लोहितं रक्तवर्ण ग्रीवा यस्य। अग्नि। (मार्क०पु० ९९।५९)

लोहितचन्दन (सं० क्ली०) लोहितं चन्दनमिव। १ कुंकुम, केसर। २ रक्तचन्दन, लाल चन्दन।

लोहितजह्नु (सं० पु०) एक प्राचीन ऋषिका नाम।

(आश्व०श्रौ० १२।१४)

लोहितत्व (सं० क्ली०) १ लोहितका भाव या धर्म। २ लोहितवर्ण, लाल रंग।

लोहितध्वज (सं० त्रि०) १ लालवर्ण पताकायुक्त। (भारत उद्योगपर्व) (पु०) २ सम्प्रदायभेद। ३ पूग, सुपारी।

(पा ५।३।११२)

लोहितपादक (सं० पु०) एक देशका नाम।

लोहितपित्तिन् (सं० त्रि०) रक्तपित्तरोगी, जिसे रक्तपित्त की बीमारी हुई हो।

लोहितपुष्प (सं० त्रि०) लालवर्ण पुष्पधारी, रक्तकुसुम-समन्वित।

लोहितपुष्पक (सं० पु०) लोहितं पुष्पमस्य कप्। दाड़िम-वृक्ष, अनारका पेड़।

लोहितमुक्ति (सं० स्त्री०) लाल मुक्ता।

लोहितमृत्तिका (सं० स्त्री०) लोहिता मृत्तिका। १ गैरिक, गेरू। २ रक्तवर्ण मृत्तिका, लाल मिट्टी।

लोहितराग (सं० पु०) लाल रंग।

लोहितवत् (सं० त्रि०) रक्त सदृश, रक्तयुक्त।

लोहितवासस् (सं० त्रि०) रक्तवर्ण वस्त्रयुक्त, लाल कपड़ेवाला।

लोहितशतपत्र (सं० क्ली०) रक्तोत्पल, लाल पद्म।

(भागवत ५।२४।१०)

लोहितशबल (सं० त्रि०) चितकबरा।

लोहितसारङ्ग (सं० त्रि०) लाल बिन्दुविशिष्ट।

लोहिता (सं० स्त्री०) लोहित-स्त्रियां टाप्। १ क्रोधादि-जन्य रक्तवर्णा, वह स्त्री जो क्रोधसे लाल हो गई हो। २ वराहक्रान्ता, वाराही। ३ रक्त पुनर्णवा।

लोहिताक्ष (सं० पु०) लोहिते अक्षिणी यस्य (बहुव्रीहौ सक्थ्यक्ष्णोः स्वाङ्गात् षच्) १ विष्णु। २ कोकिल, कोयल। ३ लाल रंगका अक्ष या पासा, युधिष्ठिरने वैदुर्य और काञ्चनमय कृष्ण और लोहित अक्ष या पासा तैयार कराया था।

(भारत ४।१।१२) ४ सर्पभेद, एक प्रकारका सांप। ५ स्कन्दानुचरभेद। (भारत ६ पर्व-) ६ ऋषिभेद। (त्रि०) ७ रक्तवर्ण चक्षुयुक्त, जिसकी आंखें लाल हों।

लोहिताक्षी (सं० स्त्री०) लोहिताक्ष स्त्रियां ङीप्। १ रक्तलोचना, वह जिसकी आंखें लाल हो। २ स्कन्दानुचर मातृभेद (भारत शल्यपर्व) ३ जानुसन्धि और बाहुसन्धि, घुटना और केहुनि। ४ जानु और बाहुका सन्धिस्थान।

लोहितागिरि (सं० पु०) पर्वतभेद। (पा ६।३।११७)

लोहिताङ्ग (सं० पु०) लोहितं अङ्गं यस्य। १ मङ्गल ग्रह। २ कम्पिल्लक वृक्ष, कमीला नामक पेड़।

लोहितानन (सं० पु०) लोहितमाननं मुखं यस्य। १ नकुल, नेवला। २ रक्तवर्ण मुख, लाल मुंह।

लोहितामुखी (सं० स्त्री०) अस्त्रभेद, एक प्रकारका हथियार।

लोहितायन (सं० पु०) गोत्रप्रवर्त्तक ऋषिभेद, लोहितके गोत्रापत्य।

लोहितायनि (सं० स्त्री०) लोहितायनस्य गोत्रापत्यं स्त्री। लोहितायनकी वंशोद्भवा। यह शायद लौहितायनि शब्दका अपप्रयोग है।

लोहितायस् (सं० क्ली०) लोहितमयः। ताम्र, तांबा।

लोहितायस (सं० क्ली०) लोहितं आयसम्। १ रक्तवर्ण लोहजाति। २ ताम्र, तांबा। (त्रि०) ३ ताम्रनिर्मित, तांबाका बना हुआ।

लोहितार्ण (सं० पु०) धृतराष्ट्रके एक पुत्रका नाम। (भाग० ५।२०।२१)

लोहितार्द्र (सं० त्रि०) रक्ताक्त, खूनसे तराबोर।

लोहितार्मन् (सं० क्ली०) वह रक्तगुटिका या फुंसियां जो आंखकी पुतलीके पास सफेद चमड़ेके ऊपरमें उत्पन्न होती हैं।

लोहितालु (सं० पु०) रक्तपिण्डालु, लाल रतालू।

लोहिताभास (सं० त्रि०) रक्ताभ, ललाई लिये।

लोहिताशोक (सं० पु०) रक्ताशोक, वह अशोकका पेड़ जिसमें लाल फूल लगते हैं।

लोहिताश्व (सं० पु०) लोहितवर्ण अश्वारोही, लाल घुड़सवार।

लोहितास्य (सं० त्रि०) १ रक्तवर्ण मुखविशिष्ट, लाल मुंहवाला। २ रक्ताक्त मुख, खून लगा हुआ मुंह।

लोहिताहि (सं० पु०) रक्तवर्ण सर्प, लाल सांप।

लोहितिका (सं० स्त्री०) १ रक्तवहा नाड़ी, वह धमनी जिस हो कर लहू बहता है। २ मञ्जिष्ठा, मजीठ।

लोहितिमन् (सं० पु०) लोहित्य, लाल रंग।

लोहितीभूत (सं० त्रि०) रक्तवर्णताप्राप्त, जो लाल हो गया हो।

लोहितेक्षणा (सं० स्त्री०) रक्त चक्षु, लाल आंखें।

लोहितैत (सं० त्रि०) लालचिह्नविशिष्ट।

लोहितोत्पल (सं० क्ली०) रक्तपद्म, लाल कमल।

लोहितोद (सं० पु०) १ पुराणानुसार इक्कीस नरकोंमेंसे एक नरकका नाम। (त्रि०) लोहितं उदकं यत्र। २ लालवर्ण उदकयुक्त, जिसका पानी लाल हो। ३ रक्त, लाल।

लोहितोर्ण (सं० त्रि०) लोहितानि ऊर्णानि यस्मिन्। लालवर्ण ऊर्णविशिष्ट, जिसके ऊन लाल हों।

लोहित्य (सं० पु०) लोहित-ष्यञ्। १ धान्यविशेष, एक प्रकारका धान। २ एक प्राचीन ग्रामका नाम। ३ बाल्मीकिने कपिवती नदीका इसमें हो कर बहना लिखा है। ४ ब्रह्मपुत्र नद। ५ एक समुद्रका नाम। पुराणानुसार यह कुशद्वीपके पास है।

लोहित्या (सं० स्त्री०) १ एक नदीका नाम। २ एक अप्सराका नाम।

लोहित्यायनमातृ (सं० स्त्री०) देवीभेद।

लोहिनिका (सं० स्त्री०) १ रक्तवर्णा स्त्री, लाल रंगकी औरत। २ शिराभेद। लोहितक देखो।

लोहिनी (सं० स्त्री०) लोहिता-(वर्णादनुदात्तादिति। पा ४।१।३९) इति ङीप्, तकारस्य नकारादेशश्च। रक्त स्त्री।

लोहनिका (सं० स्त्री०) रक्तवर्ण दीप्तिविशिष्टा, लाल ज्योतिका।

लोहिन्य (सं० पु०) गोत्रप्रवर्त्तक ऋषिभेद। शायद यह लौहित्यका प्रमादिक पाठ है।

लोहिया (हिं० पु०) १ लोहेकी चीजोंका व्यापार करनेवाला। २ बनियों और मारवाड़ियोंका एक जातिका नाम। ३ लाल रंगका बैल। ४ लोहेकी बनी हुई गोली।

लोहू (हिं० पु०) रक्त, खून।

लोहोत्तम (सं० क्ली०) लोहेषु सर्वतैजसेषु उत्तमम्। स्वर्ण, सोना।

लौंग (हिं० पु०) १ एक झाड़की कली जो खिलनेके पहले ही तोड़ कर सुखा ली जाती है। विशेष विवरण लवङ्ग शब्दमें देखो। २ लौंगके आकारका एक आभूषण। इसे स्त्रियां नाक या कानमें पहनती हैं।

लौंगचिड़ा (हिं० पु०) १ एक प्रकारका कबाब। यह बेसन मिला कर बनाया जाता है। २ फुलकी रोटी।

लौंगमुश्क (हिं० पु०) एक प्रकारके फूलका नाम।

लौंगरा (हिं० पु०) एक प्रकारकी घास। इसकी पत्तियां गोल और नुकीली होती हैं। यह घास वर्षाऋतुमें उत्पन्न होती है। इसमें लौंगके आकारकी कलियां लगती हैं। फूल पीले रंगके होते हैं। उनके पक जाने पर नीचेके डंठल कुछ मोटे हो जाते हैं। बंगालमें लोग इसकी पत्तियोंका साग बनाते हैं।

लौंगिया मिर्च (हिं० स्त्री०) एक प्रकारकी बहुत कड़वी मिर्च। इसका पेड़ बहुत बड़ा और फल छोटे छोटे होते हैं। इसका दूसरा नाम मिरचो भी है।

लौंडा (हिं० पु०) १ छोकरा, बालक। २ खूबसूरत और नमकीन लड़का (वि०) ३ अबोध। ४ छिछोरा।

लौंडापन (हिं० पु०) १ लौंडा होनेका भाव। २ लड़कपन। ३ छिछोरापन।

लौंडी (हिं० स्त्री०) दासी, मजदूरनी।

लौंडेबाज (हिं० वि०) जो सुन्दर बालकोंसे प्रेम रखता हो और उनके साथ प्रकृतिविरुद्ध आचरण करता हो।

लौंडेबाजी (हिं० स्त्री०) लौंडेबाजका काम, लौंडोंसे प्रेम रखना।

लौंद (हिं० पु०) अधिमास, मलमास।

लौंदरा (हिं० पु०) वह पानी ग्रीष्म ऋतुमें वर्षा आरम्भ होनेसे पहले बरसता है, दौंगरा।

लौंदी (हिं० स्त्री०) वह करछी जिससे खंडसारमें पाक चलाया जाता है।

लौन (हिं० पु०) १ लवन देखो। २ लौंद देखो।

लौ (हिं० स्त्री०) १ आगकी लपट, ज्वाला। २ दीपककी टेम, दीपशिखा। ३ लाग, चाह। ४ चित्तकी वृत्ति। ५ आशा, कामना।

लौआ (हिं० पु०) कद्दू, घीआ।

लौका (हिं० पु०) कद्दू।

लौकाक्ष (सं० पु०) धर्मशास्त्राभेद। पाणिनिने ६।२।३३ सूत्रके कार्तकौजपादिगणमें "कौथुम लौकाक्षाः" शब्दमें शाखा विशेषका उल्लेख किया है।

लौकायतिक (सं० पु०) लोकायतमधीते वेद वा लोकायत (ऋतूक्थादिसूत्रान्तात् ठक्। पा ४।२।६०) १ तार्किकभेद। २ चार्वाकशास्त्र जाननेवाले। लोकायतिक देखो।

लौकिक (सं० त्रि०) १ लोकसम्बन्धीय, सांसारिक। २ व्यवहारिक। (पु०) ३ सात मात्राओंके छन्दोंका नाम। ऐसे छन्द इक्कीस प्रकारके होते हैं। ४ काश्मीरका अब्दभेद। ५ न्यायभेद।

लौकिकज्ञान (सं० क्ली०) शास्त्रादिज्ञान।

लौकिकता (सं० स्त्री०) लौकिकस्य भावः, लौकिक-तल् टाप्। १ लोकव्यवहारसिद्धत्व। २ शिष्टाचार। ३ आपसके किसी कार्यविशेषमें यत्र मित्रात्मादि उभयी दलका आदानप्रदान।

लौकिकत्व (सं० क्ली०) लौकिकता, लोकप्रसिद्धत्व।

लौकिकन्याय (सं० पु०) लोकमें पाला जानेवाला नियम, साधारण नियम।

लौकिकविषयविचार (सं० पु०) प्रचलित साधारण विषयकी मीमांसा या वादानुवाद।

लौकिकाग्नि (सं० पु०) लौकिकोऽग्निः। साधारण अग्नि।

लौकिकाचार (सं० क्ली०) १ लोकाचार। २ कुलाचार।

लौकिकी (सं० स्त्री०) १ शास्त्रप्रसिद्धा। २ प्रख्याता, विख्याति।

लौकिकीयात्रा (सं० स्त्री०) १ लोकव्यवहार। २ विवाहादि सांसारिक कार्य।

लौकी (हिं० स्त्री०) १ कद्दू, घीआ। २ काठकी वह नली जिसे अर्कमें लगा कर मद्य चुआते हैं।

लौक्य (सं० त्रि०) लोकाय हितं ष्यञ्। १ लोकसम्बन्धीय। २ पार्थिव। ३ साधारण। (पु०) ४ मुनिभेद।

लौगाक्षि (सं० पु०) १ लोगाक्षके गोत्रापत्य। २ वैदिक आचार्यभेद। ये धर्मसूत्रके प्रणेता कहलाते हैं।

कात्यायन श्रौतसूत्र (२।६।२४)में लौगाक्षिका उल्लेख

है। आर्षाध्याय, उपनयनतंत्र, काठकगृह्यसूत्र, प्रवराध्याय और श्लोकतर्पण नामक ग्रंथ इन्हींके बनाये हुए हैं। पैठीनसी, विज्ञानेश्वर तथा हेमाद्रिने लौगाक्षि स्मृतिका भी उल्लेख किया है।

लौगाक्षिभास्कर—अर्थसंग्रह नामक मीमांसाशास्त्र ग्रंथके प्रणेता। इनके बनाये और भी कितने दर्शनशास्त्र-सम्बन्धीय ग्रंथ मिलते हैं।

लौज (अ० पु०) १ बादाम। २ एक प्रकारकी मिठाई जो काट कर तिकोनिया बरफीके आकारकी बनाई जाती है। इसमें प्रायः बादाम पीस कर डाला जाता है।

लौटना (हिं० क्रि०) १ कहीं जा कर पुनः वहांसे फिरना, वापस आना। २ इधरसे उधर मुंह फेरना, पीछेकी ओर मुंह फरना।

लौटपौट (हिं० क्रि०) १ ढोरकी छपाई, वह छपाई जिसमें उलटा सीधा न हो। २ उलटने पुलटनेकी क्रिया। लोटपोट देखो।

लौटफेर (हिं० पु०) इधरका उधर हो जाना, उलट फेर।

लौटान (हिं० स्त्री०) लौटनेकी क्रिया या भाव।

लौटाना (हिं० क्रि०) १ फेरना, पलटाना। २ वापस करना। ३ ऊपर नीचे करना।

लौटानी (हिं० क्रि० वि०) लौटते समय, लौटनी बार।

लौड़ा (हिं० पु०) शिश्न, लिङ्ग, पुरुषकी मूत्रेन्द्रिय।

लौद (हिं० पु०) अरहर आदिकी नरम डाली। इससे छाता छानेका काम लिया जाता है।

लौदरा (हिं० पु०) लौद देखो।

लौनहार (हिं० पु०) लौनी करनेवाला, खेत काटनेवाला।

लौना (हिं० पु०) १ वह रस्सी जिससे किसी पशुके एक अगले और एक पिछले पैरको एक साथ बांधते हैं, जिसमें खुला छोड़ देने पर भी वह दूर तक न जा सके। २ ईंधन, जलावन। ३ फसल काटनेका काम, कटनी।

लौनी (हिं० स्त्री०) १ फसलकी कटनी, कटाई। २ दावी, लहना।

लौरस (सं० क्ली०) सामभेद।

लौम (सं० त्रि०) १ लोम-सम्बन्धीय। २ लोमसे उत्पन्न।

लौमकायन (सं० त्रि०) लोमक सम्बन्धीय।

लौमकायनि (सं० पु०) लोमकका गोत्रापत्य।

लौमकीय (सं० त्रि०) लोमक-सम्बन्धीय।

लौमन्य (सं० त्रि०) रोम बहुल, जिसके बहुत रोएं हों।

लौमशीय (सं० त्रि०) १ लोमशसे उत्पन्न। २ लोमश सम्पर्कीय।

लौमहर्षणक (सं० त्रि०) लोमहर्षणकृत, जिससे रोंगटे खड़े हो गये हों।

लौमहर्षणि (सं० पु०) लोमहर्षणका गोत्रापत्य।

लौमायन (सं० त्रि०) १ लोम-सम्बन्धीय। (पु०) २ लोमनका गोत्रापत्य।

लौमायन्य (सं० पु०) लोमनके वंशधर।

लौमि (सं० पु०) लोमका गोत्रापत्य।

लौलाह—प्राचीन स्थानभेद। (राजतर० ७।१२५३)

लौमिक—एक प्राचीन कवि।

लौल्य (सं० क्ली०) लोलस्य भावं। १ चाञ्चल्य, अस्थिरता। २ अस्थायित्व, लोपत्व। ३ इच्छा, स्पृहा। ४ शैथिल्य, शिथिलता।

लौल्यता (सं० स्त्री०) बलवती आकाङ्क्षा, गहरी इच्छा।

लौल्यवत् (सं० त्रि०) १ अतिशय स्पृहाशील, बहुत इच्छुक। २ अर्थगृध्नु, अर्थलोलुप। ३ आकाङ्क्षायुक्त, इच्छुक।

लौश (सं० क्ली०) कई प्रकारके साम।

लौह (सं० पु०) लोह एव। स्वनामप्रसिद्ध लौह नामक धातु। इस धातुकी उत्पत्ति पृथ्वीके गर्भसे है। इसमें नाना प्रकारके गुण रहनेके कारण दूसरे दूसरे देशोंके चिकित्सक तथा वैज्ञानिकोंने इसके रासायनिक बलाबलकी परीक्षा करके औषधके रूपमें इसे सेवन करनेको कहा है। खनिज लौह इसकी दूसरी ओषधियोंके योगसे शुद्ध किया जाता है। लौहके वैद्यक मतसे निम्नलिखित तेरह प्रकारके संस्कार साधित हुए हैं—१ शालिघर्षण, २ उद्वर्त्तन, ३ अनुभावन, ४ आतपशोष, ५ निषेक, ६ मारण, ७ दलन, ८ क्षालन, ९ सूर्यपाक, १० स्थालीपाक, ११ चूर्णन, १२ पुटपाक एवं १३ पाकनिष्पन्न।

वर्तमान समयमें भी कई देशोंमें लोहेकी खान नजर आती हैं; किन्तु इन खानोंके लोहसे प्राचीन कालीन खानों के लौह कहीं अधिकतर शक्तिप्रद होते थे। आयुर्वेदप्रवर्त्तक ऋषियोंने कांभी, पाण्डि, कान्त, कालिंग तथा वज्रक नामक लोहमें पांच प्रकारके भेद निर्देश किये हैं। उक्त पांच प्रकारके लौह ही सर्वश्रेष्ठ तथा विशेष फलदायक होते हैं। इनसे आयु, बल, वीर्यवर्द्धक तथा रोगनाशक और श्रेष्ठतम रसायन तैयार होते हैं। कृष्णवर्ण लौहका गुण—शोथ, शूल, अर्श, कुष्ठ, पाण्डु, प्रमेह, मेद तथा वायुनाशक, वयःस्थैर्य तथा चक्षुस्तेजकारी, सारक और गुरु। शोधित लौहका गुण—सर्वरोगनाशक, मरण रोचक। अशुद्ध लौहका गुण—आरणयोग्य और आयुर्नाशक। लौहके जारण मारणादिके संक्षिप्त परिचयका वर्णन यथास्थानमें किया गया है।

रसायन तथा लौह देखो।

भारतके विभिन्न स्थानमें एवं भिन्न भिन्न राज्यमें यह धातु पृथक् पृथक् नामसे परिचित है। हिन्दी—लोहा; बंगला—लोहा; मराठी—लोखण्ड; गुजराती—लेयू; तामिल—इरुम्बू; तेलगू—इनुमु; कनाड़ी—कबिना; मलयालम्—इरुम्बा; ब्रह्म—दान, थान; अरबी—हदिद; पारस्य—आहन; शिंगापुर—यकर; अंगरेजी—Iron; लाटिन—Ferrum; फरासी—Fer; जर्म्मनी—Eisen; पुर्त्तगाल तथा इटली—Ferro; स्पेन—Hierro; डिनेमार तथा स्वेडिस—Jern; ओलन्दाज—Jizer, Yzer; गथ—Ais; ग्रीक—Sideros; तुर्क—देमिर, तिमुर, पोलण्ड—Zelazo; रूस—Schelezo; पस्तु—आयस्पणा; मलय—बसि, बेसि। रासायनिकोंके मतसे यह धातु मङ्गलग्रहके समान प्रभावसम्पन्न है।

भारतके भूपञ्जरकी आलोचना करनेसे ऐसा देखा जाता है, कि इसके विभिन्न स्तरोंमें विभिन्न पार्थिव पदार्थोंके साथ मिश्रित लौहधातु वर्त्तमान है। वैज्ञानिकोंने इन समस्त विभिन्न स्तरोंके अपरिष्कृत लौह (Iron ores) का विशेष रूपसे पर्य्यवेक्षण किया है। वे कहते हैं, कि भारत भरमें दूसरे दूसरे धातुओंके साथ न्यून या अधिक परिमाणसे लोहे मिश्रित रहते हैं। किसी किसी स्थानमें लोहेके साथ दूसरे दूसरे धातुओंका संश्रव नहीं रहता, केवल कितने पार्थिव पदार्थोंका समावेशमात्र देखा जाता है। यौगिकरूपमें यह लौह अधिक पाया जाता है। शुद्धलौह अपेक्षाकृत दुर्लभ पदार्थ है। लौहका स्वाभाविक यौगिक अनेक प्रकारके हैं। इसका अक्साइड कार्बोनेट, फस्फाइड प्रभृति रासायनिक परीक्षा तथा विश्लेषण द्वारा मालूम हो जाता है।

कितने ही अपरिष्कृत यौगिक लौहको परीक्षा द्वारा विशुद्ध करके देखा गया है, कि इन सभी खनिज पदार्थोंमें लौहका परिमाण दूसरेकी अपेक्षा कहीं अधिक है। सर्वसाधारणके जानकारीके लिये कुछ विशुद्ध तथा परीक्षित लोहेकी तालिका नीचे लिखी जाती है—

चुम्बक-प्रस्तर नामक द्रव्य लोहेका ही अक्साइड है। इसको Ferroso-ferric अथवा Magnetic Oxide कहते हैं। इसका दूसरा नाम Magnetic or magnetic iron है। इसमें प्रायः ७२·४ अंश विशुद्ध लोहा रहता है। वैज्ञानिक भाषामें इस यौगिकको Protosesquioxide कहते हैं। विशुद्ध लौहकी प्राप्तिकी आशासे भारतके कई स्थानोंमें लोग कृष्णवर्ण बालू (Black sand) को अग्निमें गलाते हैं। उसमें Magnetic तथा titaniferous लौह-मिश्रित रहते हैं। गेरूमिट्टी—वैज्ञानिक भाषामें Red haematite तथा अङ्गरेजीमें Red ochre (Fe_2O_3) कहलाता है। यह Sesquioxide है। इसमें ७० भाग लोहा पाया जाता है। पलामिट्टी अथवा Yellow-ochre ($2 Fe_2O_3, 3 H_2O$) रासायनिकोंमें Brown hoematite or Limoniteके नामसे प्रसिद्ध है। इसमें साधारणतः ५६·६ लौह विद्यमान है।

कार्बोनेट आव आयरन Spathic iron-ore अथवा Siderite कहलाता है। उसमें ४८·३ भाग लोहा रहता है। यह कार्बनेट अथवा स्वाभाविक लोहे, कीचड़ मिश्रित रहनेके कारण Clay-ironstone या Argillaceous iron stone ore कहलाता है। Black sand नामक मिट्टीको यह कार्बन-मिश्रित क्ले-आयरण स्टोन तैयार करती है। Haematite श्रेणीके अन्तर्भुक्त अथवा उसी श्रेणीको Ilmenite नामक एक और मिट्टी पाई जाती है। इसके कई अंश Titanium द्वारा स्थानच्युत करके रासायनिक

लोग उसे Tatiniferous iron कहते हैं। इन सभी यौगिक पदार्थों में लोहेकी मात्रा सर्वत्र समान नहीं है।

भूगर्भके मध्य अति प्राचीन युगीय तहमें लौह धातुका संस्थान देख कर अनुमान किया जाता है, कि अति प्राचीन कालमें भी इस धातुका प्रचार था; किन्तु किस समय तथा किस महान् पण्डितने इसका आविष्कार किया एवं किसने इसको व्यवहारोपयोगिता निर्देश किया इसका वर्णन इतिहासोंमें पाया नहीं जाता। आर्य हिन्दुओंके सर्व-प्राचीन ऋक्संहिता ग्रन्थके पढ़नेसे जाना जाता है, कि आर्य ऋषिगण वैदिकयुगमें भी लोहेको निर्मलीकरणविधि (ऋक् ४।२।१७), उसकी कठिनता (ऋक् १।११६।३६) एवं तीक्ष्णधारत्व (ऋक् ६।३।५)से जानकार थे। शुक्लयजुर्वेदका "मे हयश्च मे श्यामश्च मे लोहश्च मे सीसश्च मे त्रपु च मे यज्ञेन कल्पन्ताम् ॥" (१८।१३) मन्त्रांश पाठ करनेसे स्पष्ट ज्ञान पड़ता है, कि उस समयके आर्य लोग सभी तरहके लोहेसे परिचित थे। अथर्ववेदके ५।२८।१ तथा ११।३।१ मन्त्रोंमें लोहेका उल्लेख किया गया है।

वैदिक संहितायुगके बाद ब्राह्मण तथा सूत्रयुगमें भी लोहेका खूब प्रचलन था। शतपथ ब्राह्मण ६।१।३।५; कात्यायन श्रौतसूत्र ७।४।३७, २०।७।१, २०।७।४, आश्वलायन-गृह्यसूत्र १।७।६ प्रभृतिके पाठ करनेसे पता चलता है, कि तलवार क्षुरादिका व्यवहार उस समय भी था। मनुसंहिताके ५।११४।१६ श्लोकको पढ़नेसे स्पष्ट ही ज्ञात होता है, कि उस समय दग्धपात्रादि भी लोहेके बने होते थे। भस्म तथा अम्लसे उन लोहेके पात्रोंको मांजमा करके जलमें धो देनेसे हो वे शुद्ध समझे जाते थे। उक्त ग्रन्थके ११।१६७ श्लोकमें लौहपात्रका अपहरण करना अत्यन्त निषेध किया गया, इससे ज्ञान पड़ता है, कि प्राचीन लोग इस धातुको बहुत मूल्यवान् समझते थे। इसके बाद याज्ञवल्क्य संहितामें (२।१०७) लौहपिण्ड, महाभारतके वनपर्व्वमें लौहभाजन, रामायणमें (२।६०।१२) लौहमय आभरण, सुश्रुतमें (१।२३।२०) कुम्भ एवं श्रीमद्भागवतमें (११।२७।१२) लौही (सुवर्णादि अष्टधातुमयी) प्रतिमाके निर्माणकी व्यवस्था देखनेसे ऐसा मालूम पड़ता है, कि आर्य-हिन्दू लोग जिस समय संसारको सभी जातियां लोहेके प्रयोगसे अनभिज्ञ थे, उस समयसे ही इसका व्यवहार करते आ रहे हैं, एवं उस समयमें हो उन लोगोंने इस धातुसे उत्कृष्ट देवदेवीकी प्रतिमा निर्माण करके शिल्पनैपुण्यकी पराकाष्ठा दिखाई थी। उस प्राचीन शिल्पकीर्त्तिकी रेखामात्र हम लोगोंके दृष्टिगोचर न होने पर भी हम लोग आज भी पूर्व कीर्त्तिस्तम्भादि देख कर गौरवान्वित होते हैं। आज भी दिल्लीका सुप्रसिद्ध लौहस्तम्भ (सूर्यस्तम्भ) हमारे प्राचीन शिल्पनैपुण्यका परिचय दे रहा है। १५०० ई०के उस भयंकर जलप्रवाहसे भी यह स्तम्भ नष्ट नहीं हुआ। दिल्ली देखो।

किसी किसीका विश्वास है, कि लोहेके टुकड़े कभी कभी आकाशसे पृथ्वी पर पतित होते हैं, क्योंकि, प्रकृतावस्थामें लौह जिस तरह यौगिकरूपमें देखा जाता है; उल्कामें भी प्रायः उसी तरह मिश्रित रहता है। इससे स्वतः ही अनुमान होता है, कि वे यह प्रधानतः उल्काज (Meteoric origin) पदार्थके सिवाय और कुछ दूसरा नहीं है। विशेषरूपसे आलोचना करके देखनेसे मालूम होता है, कि उसमें कई अम्लजन (acids)के क्षार (Soda) रूपमें पर्याप्त परिमाणसे गन्धक तथा आक्सिजन मिले हुए हैं। इसके अलावे उसमें अन्यान्य धातु तथा विभिन्न मिट्टियोंका समावेश रहनेके कारण उसका लौह-संस्थान निर्णय करना अत्यन्त कठिन हो जाता है। उल्का देखो।

चिर-प्रसिद्ध यह लौहधातु भारतवर्षके भिन्न भिन्न स्थानोंमें यौगिकरूपसे अवस्थित है, सर्वसाधारणको जानकारीके लिये उनका संक्षिप्त परिचय नीचे दिया जाता है।

मान्द्राज-विभाग।

स्थानोंके नाम	लोहभेद	गलानेका स्थान
त्रिवाङ्कोर	ब्लाकमाग्नेटाइट तथा लाटेराइट	इयेनकोटा
तिन्नेवली	माग्नेटिक आयरन-सैण्ड	पट्टकुलम्
मदुरा	लाटेराइट	इस समय दुष्प्राप्य
पुदुकोटा	माग्नेटाइट	—
त्रिचोनपली	फेरुजिनास् नडियूल	—
कोयम्बातोर	ब्लाक्-सैण्ड	—
नोलगिरि	हिमाटाइट तथा माग्नेटाइट	—

स्थानोंके नाम	लौहभेद	गलानेका स्थान
मलाबार	माग्नेटाइट तथा लाटेराइट	कर्मनार, चेरनार, वल्लुवनार, एरनार और तेमेलपुर तालुक।
सालेम	माग्नेटाइट	पोर्ट नाभो
दक्षिण-आर्काट	घोल	तिरुणमलय, कल्लकुचि
उत्तर	ब्लाक सैण्ड	—
चेङ्गलपत	माग्नेटाइट तथा हिमाटाइट	—
नेल्लूर	माग्नेटाइट तथा हिमाटाइट	—
कोड़ग	हिमाटाइट	—
कर्णूल	"	—
बेल्लरी	"	—
कृष्णा	—	गुण्टूर, मसलीपत्तन
गोदावरी	लाइमोनाइट तथा हिमाटाइट	—

विजागापट्टम, गञ्जाम, अनन्तपुर तथा दक्षिण कनाड़ाके कई स्थानोंमें लोहा पाया जाता है।

महिसुर-राज्य।

अष्टग्राम	माग्नेटाइट	—
बङ्गलूर	ब्लाक-सैण्ड	चीनपत्तन
नागर	,, तथा हिमाटाइट	बाबा बूदन, चित्तलदुर्ग,

उपरोक्त तीनों विभागके जिलोंमें अधिक लोहा पाया जाता है। नागर-विभागान्तर्गत कोदुर नामक स्थानमें अनेक लोहेकी खानें हैं। कोमाणो नामक यहांके स्थानके चतुष्पार्श्वोंमें तथा बाबा-बूदन ग्रामके पूर्वस्थित शैलपादमूलमें खनिज लोहा गलानेका कारखाना है। इसके अलावे यहां इस्पात तैयार किया जाता है।

हैदराबाद-विभाग।

यहां हिमाटाइट, टिटानिफेरस, सांड एवं कङ्कलमें हरिद्राभवर्ण एलामिट्टी तथा लाल गेरूमिट्टीमें लोहेकी खान दिखाई पड़ती है। लिङ्गसागर जिलेमें फैली हुई धारवारशैलमालाके ऊपर हमीरी शैलस्तरमें माग्नेटाइट लौह भी पाया जाता है। यहांके सिङ्गरेनी कोयलेकी खानमें अपेक्षा उत्कृष्ट लोहा पाया जाता है। अनन्तगिरि, कल्लूर प्रभृति परगनेमें लोहा गलानेका कारखाना है। ऊँटगाफल्लके अन्तर्गत कई ग्रामोंमें इस्पात तैयार किया जाता है। इस स्थानमें कोणसमुद्रके इस्पातका कारखाना बहुत दिनोंसे प्रसिद्ध है। पश्चदत्तर एवं पूर्व-निर्मित एक विवरणोंसे पता चलता है, कि पारस्यवासी वणिक्-सम्प्रदाय कोणसमुद्रके सर्वोत्कृष्ट इस्पात खरीद कर ले जाता था। उससे दामास्कासकी चिरप्रसिद्ध तलवारके फलक तैयार किये जाते थे। यह इस्पात साधारणतः निरपल्लीके Iron-sand और दिमदुर्तिके Magnetite लोहेसे बनाये जाते हैं।

मध्यप्रदेश।

बस्तार, सम्बलपुर, बिलासपुर, रायपुर, चान्दा, बालाघाट, भाण्डारा, नागपुर, मण्डल, शिवनी, छिन्दवाड़ा, निमाड़, होसङ्गाबाद, नरसिंहपुर और जब्बलपुर आदि जिलेके नाना स्थानोंमें हिमाटाइट माग्नेटाइट लाइमोनाइट आदि श्रेणीका यौगिक लौह बहुतायतसे पाये जाते हैं। उनमेंसे सम्बलपुरके अन्तर्गत गढ़जात-महलोंमें, रायरावोलमें, रायपुरके अन्तर्गत दण्डीलोहारा और लोहगढ़, बोराट बांध, मण्डाई, टाकुरतला और नन्दगांव भूभागमें; चांदा जिलेके अश्व लोहारा, देवलगांव, पिप्पलगांव, गुञ्जवाड़ी, ओगलपेट, मेटापुर, भानपुर तथा लोरा पर्वतके अन्तर्गत मोगला, गांगरा, दानवाई और घोसालपुर आदि स्थानोंमें काफी लोहा उत्पन्न होता है। उमारिया कोयलेकी खानके कारखानेका तथा जबलपुरके उत्तर-पश्चिम सभी स्थानोंका खनिज लौह यूरोपीय प्रथासे परिष्कृत हो व्यवहारोपयोगी लोहेमें परिणत होता है।

रेवा, बुन्देलखण्ड, ग्वालियर, इन्दोर, धार, चन्द्रगढ़ और अली-राजपुर आदि भूभागोंमें हिमाटाइट और माङ्गानिफेरस यौगिक-लौह पाया जाता है। ये सब लोहे (Coal 'measure strata' और 'metamorphic rocks' नामक स्तरमें रखे हुए हैं। ग्वालियरके अन्तर्गत सागमन, माहजोरा, गोकुलपुर, परोली, पगारी, राजपुर-पार बौन, मङ्गोर, विनापरी, बड़ौदा, इमिलिया, गुजारी और पारोन आदि गांवोंमें हिमाटाइट और लाइमोनाइट श्रेणीके लोहेकी खान है। इन्दोरसे ६० मील दक्षिण-पश्चिममें अवस्थित बाघ-ग्राममें Transition rocks स्तरमें निर-मलिन हिमाटाइट लोहेकी खान मौजूद है।

बम्बई ।

उत्तर-कनाड़ा, धारवाड़, कालादगि, वेलगाम्, गोआ, सावन्तवाड़ी, कोल्हापुर, रत्नगिरि, सतारा, सूरत, रेवाकान्ता, पांचमहाल, काठियावाड़ और कच्छप्रदेशमें माग्नेटाइट, लाटेराइट और हिमाटाइट श्रेणीका लोहा देखनेमें आता है। उनमेंसे रत्नगिरिके अन्तर्गत माल्यवान् पर्वतके समीप रेवाकान्ताके जम्बूघोड़ा, लिमोद्रा और लावकेश्वर नामक स्थानमें तथा काठियावाड़के ओमिया शिखर पर जुरासिक-स्तरमें प्रचुर लोहा है। किन्तु अभी यह काममें नहीं लाया जाता है।

राजपूताना ।

जयपुर, मेवाड़, अलवार, मारवाड़, अजमीर, बूंदी, कोटा और भरतपुर राज्यके विभिन्न स्तरोंमें लोहा यौगिकभावमें विद्यमान है। उनमेंसे आरावली-पर्वतके ट्राञ्जिशन-स्तर, सिन्धुप्रदेशका कौरचर और रानीकोट श्रेणी, मेवाड़के गङ्गोर विभागके निकटवर्त्ती स्थान तथा अलवार राज्यके राजगढ़के निकटस्थ विस्तृत लोहकी खान उल्लेखनीय है। यहांका लोहा माग्नेटाइट, हिमाटाइट और माङ्गानिज अक्साइडके यौगिक रूपमें विद्यमान है।

पञ्जाब ।

बन्नू, पेशावर, झेलम, कांगड़ा, मण्डो, सिमला-शैलराज्य और गुरगांव जिलेके नाना स्थानोंमें लोहा देखा जाता है। उसमेंसे कांगड़ाका magnetic iron-sand बहुत बढ़िया है। काश्मीर राज्यके पञ्च नामक नदीतीरवर्त्ती पहाड़ोप्रदेशमें, पञ्चशिरके उत्तर ग्रामडूशैलके निकट, भीमवारा नदीके तीरवर्त्ती सुफाइन ग्राममें, काश्मीर-उपत्यकाके सोपुरमें और पामपुर नामक स्थानके समीप तथा लदाखके अन्तर्गत वानला-ग्राममें लौह-संग्रहके कारखाने हैं।

युक्तप्रदेश ।

कुमायूं, ललित, बांदा और मिर्जापुर जिलेमें काफी लोहा पाया जाता है। उनमेंसे कुमायूंके अन्तर्गत रामगढ़, पट्टली, लोसांगियानी, नातना-खां, पारवाड़ा, खैराना और शिवालिक स्तरके कालधुङ्गी और देचौरी नामक स्थानका लोहा उमदा होता है। इन स्थानोंका लौह m'caceous halmatite and limonite नामसे प्रसिद्ध है।

बिहार और उड़ीसा ।

बराकर लोहेका कारखाना (Barakar Ironworks) सर्वश्रेष्ठ हैं। रानीगञ्जके कोयलेकी खानमें Ironstone shales और nodules of clay-iron-stone पाया जाता है। वीरभूम, भागलपुर, मुंगेर, गया, मानभूम, सिंहभूम, लोहरडगा, उड़ीसा, छोटानागपुरके सामन्त-राज्योंमें लौह-संस्थान देखा जाता है।

खासिया, जयन्ती और नागापहाड़ पर तथा मणिपुर राज्यमें साधारणतः टार्सियारि कोयलेके स्तरमें titaniferous magnetite, pisolitic nodule of limonite और nodules of clay iron-stone देखा जाता है। खासिया और जयन्ती पहाड़के जिस प्रस्तर स्तरमें लोहा पाया जाता है, वह बहुत जल्द टूटता है, इस कारण वहांके आदमी उसे अच्छी तरह चूर्ण कर लेते हैं। पीछे एक नली जहां प्रबल वेगसे जलधारा बहती है, वहीं पर उस चूर्णको ले जा कर धोते हैं। इससे मिट्टी और उसी तरहके लघु पदार्थ जलस्रोतमें बहते हैं तथा उससे भारी लोहेके कण नीचे बैठ जाते हैं। इस प्रकार बार बार प्रक्षालनके बाद जब वह यौगिक लौहचूर्ण मृदादि पार्थिव पदार्थोंसे निर्मुक्त हो जाता है, तब वे लोग उसे आंचमें गला कर लोहा निकालते हैं। इस प्रकार बार बार लोहा गलानेसे वह परिष्कृत हो जाता है। इसके बाद अग्निके समान लाल कर हथौड़ेसे पीटनेसे वह अच्छे लोहेमें पलट जाता है।

ब्रह्मराज्य ।

उत्तरब्रह्म, पेगू और तेनासेरिम विभागमें तथा शान-राज्यके नाना स्थानोंमें, मागुंई नगरसे १० मील दक्षिण पश्चिममें तथा उससे ४ मील दक्षिणमें अवस्थित दो द्वीपोंमें लोहेका निदर्शन पाया गया है। बङ्गोपसागरस्थ अन्दामान द्वीपके पोर्टब्लेयर नगरसे कुछ मील दक्षिण 'रङ्ग-ऊ-छाङ्ग' नामक स्थानमें प्रचुर परिमाणमें halmatite यौगिक मिलता है। किन्तु उसमें कोयाट्ज और पाइराइट मिले रहनेसे वह किसी काममें नहीं आता।

प्रचलित प्रणाली।

वाणिज्यके लिये बाजारमें जो लोहा देखा जाता है, उसमें यह प्राकृत लौह बिलकुल स्वतन्त्र है। पत्थर-कोयले-का एक बड़ा चूल्हा बना कर उसमें लोहेके खनिज यौगिकोंको सबसे पहले दग्ध कर लेनेसे लोहा मुक्तावस्थामें लाया जाता है। इस प्रक्रियासे जल, कार्बनिक आनहाइड्राइड और गन्धकादि आक्सिजन द्वारा सलफर डाइअक्साइड रूपमें बाहर निकल पड़ते हैं और लोहा प्रायः फेरिक अक्साइड रूपमें बदल जाता है। इस फेरिक-अक्साइडके साथ कोयला अथवा कोक तथा लाइमष्टोन (कार्बनेट आव लाइम) मिला कर ब्लाष्ट फार्नेस (Blast furnace) नामक बड़े चूल्हेमें उत्तप्त करनेसे लोहा आक्सिजनविहीन हो जाता है।

स्वीडेन, रूस और पूर्व भारतीय द्वीपोंमें इसी प्रथासे लोहा गलाया जाता है। नीचे लोहेके गलानेकी चुल्ली और लोहेकी पर्यायिक परिणतिका विषय लिखा जाता है—

ब्लाष्ट फार्नेस—ईंटका यह चूल्हा बनाया जाता है। इसकी ऊंचाई ८० फुट होती है। ऊपर और नीचेका भाग बिचले भागसे कुछ चौड़ा होता है। नीचे वायु घुसनेके लिये नल, धातु गल कर बाहर होनेके लिये छेद रहता है। चूल्हेके ऊपरसे उपरोक्त फेरिक अक्साइड मिला देना होता है। ब्लाष्ट फार्नेस व्यवहार करनेका तात्पर्य यह, कि चूल्हेके निम्नस्थित नल द्वारा जो वायु घुसती है उससे कोक दग्ध हो कर कार्बनिक अक्साइड उत्पन्न होता है। यह वाष्प जितना ही ऊपर उठता है, अङ्गार-के द्वारा यह उतना ही आक्सिजनविहीन हो कर कार्बनिक अक्साइडमें परिणत हो जाता है। पीछे यह कार्बनिक अक्साइडका आक्सिजन आकर्षण कर लेता है उस समय लोहा अलग हो जाता है। लोहा जिस समय द्रवीभूतावस्थामें आने रहता है उस समय यह कुछ अङ्गारके साथ मिल जाता है। लाइमष्टोन व्यवहार करनेका तात्पर्य यह, कि यह उत्तप्तावस्थामें कार्बनिक अनहाइड्राइड प्राणहीन हो कर कालसियम अक्साइडमें परिणत होता है तथा इस अवस्थामें खनिज कर्दमादिके साथ सम्मिलित हो कर तरलाकारमें लोहेके ऊपर बहने लगता है। इसको स्लाग (Slag) कहते हैं। चूल्हेके नीचे जो छेद रहता है उसमें हो कर यह निकल पड़ता है तथा लोहा दूसरे छेदसे बाहर आता है। यह तरल लोहा जब कठिन होता है, तब उसे कास्ट या पिग (Cast or Pig) कहते हैं। भारतवर्षके नाना स्थानोंमें साधारणतः ३।४ फुटसे १० फुट तक ऊंचा फार्नेस देखा जाता है।

कास्ट आयरनमें सैकड़े पीछे २से ५ भाग अङ्गार तथा सिलिकन, गंधक, फोस्फोरस, मांगनिज आदि अनेक प्रकारकी धातु मिली रहती हैं।

लोहेको विशुद्धावस्थामें लानेमें उसको फिरसे गलाना होता है। उस समय वायुके आक्सिजनके द्वारा अन्यान्य पदार्थोंके साथ लोहेको सम्मिलित कर पीछे उसे पीट कर जिस अवस्थामें लाया जाता है उसको रट (Wrought) आयरन कहते हैं। रट आयरनमें सैकड़े पीछे ०·१५ से ०·५ भाग अङ्गार रहता है। जब सैकड़े पीछे ०·६ से २·० भाग अङ्गार रासायनिक योगमें लोहेके साथ रहता है, तब यह इस्पात कहलाता है।

इस्पात बनानेमें रट आयरनको कोयलेकी अग्निमें बहुत देर तक उत्तप्त करना होता है। पीछे उसको ठंढे जलमें अथवा तेलमें हठात् गिरा देनेसे यह बहुत कड़े इस्पातमें परिणत हो जाता है। यह इस्पात टूट जाता है। जो जो पदार्थ बनानेमें जिस जिस प्रकारके इस्पातकी जरूरत होती है उसमें उसी प्रकारका पान देना आवश्यक है। इस्पातको २२१° सेंटिग्रेडके उत्तापमें उत्तप्त कर धीरे धीरे ठंढा कर लेनेसे यह बहुत कठिन हो जाता है। इससे छुरी आदि अस्त्रादि प्रस्तुत होते हैं। यदि २८०° सेंटिग्रेड तक उत्तप्त कर शीतल किया जाय, तो यह बहुत मजबूत हो जाता है। इससे घड़ीके स्प्रिंग आदि बनते हैं।

बेपुर, सलेम, पाल्मकोट्टा, पैनाकुर और पुदुकोट्टा नामक स्थानोंमें लोहेका जो magnetic oxide यौगिक पाया जाता है, पार्थिव पदार्थसे विमुक्त कर Blast furnace के मध्य यह गलानेसे बढ़िया लोहा तैयार होता है। उसमें सैकड़े पीछे ७२ भाग लोहा रहता है। यह गन्धक, आर्सेनिक अथवा फोस्फोरस हीन है। बागपाड़ा और हीरापुर नामक स्थानका खनिज लौह ही इस्पात बनानेके काममें विशेष उपयुक्त है।

बेपुरके लोहेके कारखानेमें भारतीय कास्टीन (Cast

steel) बनानेमें जो प्रथा काममें लाई जाती है उसे Bessemer-process कहते हैं। स्वीडेन आदि पाश्चात्य देशोंमें प्रायः उसी प्रथासे इस्पात बनाया जाता है। किन्तु ग्रेट-ब्रिटेन राज्यके विभिन्न स्थानोंमें विशेषतः सेफिल्ड नगरके प्रसिद्ध लोहेके कारखानेमें जिस उपायसे इस्पात तैयार किया जाता है, वह ऊपर लिखी प्रणालीसे एकदम भिन्न है।

सेफिल्डकी छुरी कैंची (Cutlery) प्रस्तुत करनेके उपयोगी इस्पात बनानेकी प्रणाली बहुत कठिन और बहुव्ययसाध्य है, यह जान कर इस देशके लोहारोंने कारखानोंमें काम करना छोड़ दिया है। वहां पिग-आयरन बनानेके लिये एक आलोड़न या प्रतिघातकारी चूल्हा (reverberatory furnace) रहता है। उस चूल्हेकी गर्मीसे काष्ट-आयरन गल कर नलपथसे चालित हो Converter या Bessemer vessel नामक पात्रमें जमा होता है। स्वीडेन और मान्द्राजके बेपुर कारखानेमें उस प्रकारकी चुल्ली नहीं है। उन दोनों स्थानोंमें ब्लाष्ट फारनससे अर्धस्फुत लौह-धातु गल कर हत्थेके जैसे पात्र विशेषमें (Ordinary founder's ladle) परिचालित होता है। पीछे घूमते हुए उत्तोलक यन्त्र (travelling crane) की सहायतासे वह लौहपूर्ण हत्था ऊपर उठ कर कनभर्टर नामक पात्रमें द्रवलौह ढाल देता है। दोनोंमें विशेषता यह है, कि अङ्गरेजी प्रथासे रक्षित कनभर्टर-पात्र चक्रदण्डके ऊपर (axles) रखा रहता है, इच्छानुसार वह घुमाया जा सकता है। किन्तु इस देशके और स्वीडेनके उक्त कनभर्टर एक जगह स्थिरभावमें रखे रहते हैं तथा उसके चारों ओर अग्नि उत्तापके साथ इष्टकचूर्ण (Fireclay, sand और pulverized english fire-bricks) आदिका प्रलेप दिया जाता है। इसके बाद वायलरमें करीब ५० पौंड वाष्प उठा कर उस गलित धातुके प्रति वर्गइञ्च स्थानमें ६॥ से ७ पौंड चाप दिया जाता है। कनभर्टरमें वायुविताड़नके लिये पौन इञ्च व्यासयुक्त ११ नाली (Tuyeres) उक्त पात्रके नीचे खड़े बलमें रहती हैं। उस पात्रके प्रोलको नरम करनेमें माङ्गानिज या दूसरे किसी धातु-मिश्रणकी आवश्यकता नहीं होती। केवल वात्या सञ्चाड़न द्वारा बार बार चाप देनेसे तथा आवश्यकतानुसार बहुत देर तक आंच देते रहनेसे वह प्रोल विशेषरूपसे परिष्कृत हो जाता है।

अब वह उत्तप्त और द्रवीभूत लौहधातु प्रायः सम्पूर्णरूपसे कार्बणविमुक्त (Decarbonized) होती है, तब उस पात्रस्थ नालीका टैप खोल देनेसे तरल इस्पात बड़ी तेजीसे बाहर आ कर तल्लस्थ Ladle नामक पात्रमें गिरता है। उस पात्रके भी नीचे तरल इस्पात गिरनेका छेद है। तरल इस्पातसे पूर्ण उस लेडलको पीछे हिला कर सांचे (Cast-iron ingot moulds) के ऊपर ले जाते हैं। वहां छेदका मुंह खोल देनेसे इस्पात जलस्रोतकी तरह उस सांचेमें गिरता है। ठंढा होने पर Nasmyth hammer नामक हथौड़ेसे उसको पीट लेते हैं। इस प्रकार विभिन्न आकारके इस्पातका पत्तर बना कर बाजारमें विक्रयार्थ भेजे जाते हैं।

उपरोक्त अंगरेजी प्रथासे लोहा गलानेमें बड़े चूल्हेकी आवश्यकता होती है। इसमें अनेक प्रकारकी असुविधाएं तथा लकड़ीका खर्च बहुत ज्यादा देख कर यहांके कारखानोंमें अंगरेजी प्रथासे अब लोहा गलाया नहीं जाता। १८३३ ई०में दक्षिण-आर्कटके सलेम जिलेके पोर्टनभो नगरमें तथा मलबारके किनारे बेपुरनामक स्थानमें कारखाने खोले गये। सलेमके कारखानेसे पिग्-आयरनको गला कर इङ्गलैण्ड भेजा जाता था। पीछे उसे इस्पातमें ला कर अधिक मोलमें बेचते थे। उसी इस्पातसे ब्रिटानिया और मोनाई-का पुल बनाया गया था। बेपुरके कारखानेमें बढ़िया इस्पात तैयार हुआ था सही, पर बहुव्ययसाध्य तथा कुछ लाभ न होनेके कारण यहां उक्त प्रथासे इस्पात तैयार करना बंद कर दिया गया। १८५५ ई०में वीरभूम आयरनवर्कस कम्पनीने कार्य आरम्भ किया। १८५६ ई०में कुमायूंमें और १८७१ ई०में इन्दोरराज्यके अन्तर्गत बारवाई ग्राममें एक लोहेका कारखाना खोला गया था। १८८० ई०के किसी समय पञ्जाब प्रदेशके सिरमूर राज्यके अन्तर्गत नाहन नगरमें एक कारखाना स्थापित हुआ। कुछ दिन चालू रहनेके बाद परिचालकोंने अधिक खर्च देख कर उसे बंद कर दिया

१८७४ ई०में रानीगंजके कोयलेके क्षेत्रके अन्तर्गत बरा कर नगरमें 'Bengal Iron Company'ने लोहा गलाने के लिये एक कारखाना खोला। इस समय तक लकड़ीका कोयला ही काममें लाया जाता था। १८७५ ई०में चान्दा जिलेमें लोहा गलानेके लिये लकड़ीके कोयलेके बदले पत्थरका कोयला काममें लाया गया। उस समय बराकरके लोहेके कारखानेमें भी लकड़ीका कोयला जलानेकी व्यवस्था हुई थी। उस कारखानेमें १२७०० टन पिग आयरन प्रस्तुत होने पर भी वाणिज्यमें घाटा देख कर १८७८ ई०में यह कारखाना बंद कर दिया गया। इसके तीन वर्ष बाद अंगरेज-गवर्मेण्टने कारखाना चलानेका भार अपने हाथमें ले कर Ritter von Schwartz नामक एक सुदक्ष वैज्ञानिकको यहांका परिदर्शक नियुक्त किया। १८८४ ई०की १ली जनवरीको एक बड़ा चूल्हा (ब्लाष्ट फर्नेस) ले कर कार्य आरम्भ किया गया। १८८८ ई०के शेष भागमें उसमें ३०११६ टन मात्र प्रस्तुत होते देख सस्कृत प्रथासे एक दूसरा ब्लाष्ट फर्नेस स्थापन किया गया। उसमें १८८६-९० ई०को १५००० तथा उसके दूसरे वर्षमें २० हजार टन पिग-आयरन गलाया गया था। उस कारखानेमें प्रति वर्ष प्रायः दो हजार टन पिग-आयरन गला कर Pipes, Sleepers, bridge-piles railway axle-boxes तथा तरह तरहके कलोंके कार्य और कृषि-कार्यके उपयोगी यन्त्रादि तैयार होने लगे। १८९१ ई०में अंगरेज गवर्मेण्टने बराकर आयरन वर्कस एक स्वतन्त्र कम्पनीके हाथ बेच दिया। उपरोक्त पाश्चात्य वैज्ञानिकने यहां सबसे पहले यूरोपीय प्रथासे लोहा गलानेका कौशल दिखलाया था।

परीक्षा।

लोहे और इस्पातको परीक्षा करनेके लिये एक बिन्दु तीव्र नाइट्रिक एसिड डालो। डालनेसे यदि काला दाग पड़ जाय, तब उसे इस्पात जानना चाहिये। लोहे पर नाइट्रिक एसिड डालनेसे भस्म रंगका दाग पड़ता है।

धर्म।

विशुद्ध लौह चांदीकी तरह सफेद होता और पालिस करनेसे उज्ज्वल दीख पड़ता है। लौहका संघर्षण करनेसे एक प्रकारकी गन्ध पाई जाती है। सूत्रगुच्छकी तरह इसकी बनावट होती है, इसलिये यह भार सहन करनेमें पूरा समर्थ होता है। अपेक्षाकृत इसका वजन—७·७ होता है। लोहा चुम्बक-शक्ति भी धारण कर सकता है। यह आक्सिजनका विशेष पक्षपाती होता है, इसलिये अत्यन्त कष्टसे इसकी रक्षा करनी होती है। क्लोरिन, ब्रोमिन एवं आयोडिनके साथ यह आसानी यौगिकाकार लाभ करता है। जल मिश्रित सालफ्युरिक एवं हाइड्रोक्लोरिक एसिडसे यह गल जाता है एवं ऐसे समयमें हाइड्रोजन वाष्प बहिर्गत हो जाता है। १·४५ आपेक्षिक गुरुत्वके नाइट्रिक एसिडसे लोहेका कुछ भी परिवर्त्तन नहीं होता, किन्तु जल-मिश्रित नाइट्रिक एसिडमें आसानीसे गल जाता है। इसका आणविक गुरुत्व ५६ है।

व्यवहार।

लौहके व्यवहारके सम्बन्धमें वर्णन करना अत्युक्ति मात्र ही है। बालक, वृद्ध, युवा सबोंको ही इसकी उपयोगिताका विशेष ज्ञान है। लौह प्रचुर परिमाणमें औषधमें प्रयोग किया जाता है। एलोपैथिकका औषधोंमें लौह जिस तरह व्यवहृत होता है, उसका संक्षिप्त विवरण नीचे दिया गया है। वैद्यक मतकी औषधियां तथा लौहके गुणागुण यथास्थानमें लिखे जा चुके हैं।

लौहका यौगिकवृन्द।

लौह प्रधानतः दो श्रेणियोंका यौगिक उत्पादन करता है। यथा,—फेरास और फेरिक।

Ferrous oxide FeO	Ferrous hydrate $Fe(OH)_2$
Ferroso ferric Oxide Fe_3O_4	Ferrous chloride $FeCl_2$
Ferrous Iodide FeI_2	Ferrous sulphide FeS
Ferrous carbonate $FeCO_3$	Ferrous Phosphate Fe_3P_2
Ferrous sulphate $FeSO_4$	(7, H_2O)—Fe_3PO_8, $8H_2O$
Ferric oxide Fe_2O_3	Ferric hydrate $Fe_2(OH)_6$
Ferric Chloride Fe_2Cl_6	Ferric sulphide Fe_2S_3

फेरास अक्साइड।—यह कृष्णवर्ण पदार्थ है। हाइड्रजनके जलमें सामयिक ... मिलानेसे श्वेत वर्णका हाइड्रेट नीचे बैठ जाता है, किन्तु यह थोड़े समय वायुके आक्सिजनके द्वारा फिर फेरिक अवस्थामें आ

ा है। श्वेतवर्णसे धीरे धीरे सब्ज वर्ण एवं सब्ज सि लोहितभायुक्त हो जाता है।

फेरास क्लोराइड।—लौहको हाइड्रोक्लोरिक एसिडमें ानेसे तैयार होता है। यह अत्यन्त जलशोषक पदार्थ यह देखनेमें सब्ज होता तथा जल एवं अलकोहल ाण उत्पादन करता है। वायुसे यह विकृत हो कर रक क्लोराइड एवं आक्साइडरूप धारण कर लेता है।

फेरास आयोडाइड।—आयोडिनके द्रावकके साथ ह मिलानेसे यह तैयार होता है। यह वायुसे विकृत जाता है इसलिये चीनीके इसके साथ औषध यहार करनेकी विधि है।

फेरास सल्फाइड।—हीराकसीसके द्रावकमें क्षारघटित ल्फाइड मिलानेसे काला सल्फाइड अधःस्थ हो जाता । इसको वायुमें रखनेसे फेरिक अक्साइड एवं धक उत्पन्न होता है।

फेरास सल्फेट या हीराकस।—जल मिश्रित सल्फि- रिक एसिड द्वारा लौहको जलानेसे यह तैयार होता । यह सब्जवर्ण तथा दानेदार पदार्थ है। इसके एक णुमें एक अणु जल मिलानेसे भी इसके दानेका ाकार नष्ट नहीं होता। जल अथवा अलकोहलमें सानीसे गल जाता है। लोहितोत्तापसे हीराकसीस कृत हो कर सल्फर डाइआक्साइड तथा ट्राइओक्सा- ड वाष्प एवं फेरिक अक्साइडमें बदल जाता है। र्डसन (Nordhausen) सल्फिउरिक एसिड तैयार रनेमें यह व्यवहृत होता है। हीराकसीसका द्रावण ायुस्पृष्ट होनेसे बेसिक फेरिक सल्फेट पैदा हो ाता है।

फेरास कार्बनेट।—हीराकसीसके द्रावकमें कार्ब- ट आव् सोडा मिलानेसे श्वेतवर्णके कार्बनेटका लोप ो जाता है, किन्तु हाइड्रेटकी तरह वायुस्थ आक्सिजन- े संयोगसे हाइड्रेट बन जाता है।

फेरास फास्फेट।—फास्फेट आव् सोडाके द्रावणको ीराकसीसके द्रावणमें डालनेसे श्वेतवर्णके फेरास ास्फेटका लोप हो जाता है।

फेरिक आक्साइड।—फेरिक क्लोराइडके द्रावकमें ारघटित द्रावक मिलानेसे पाटकिला वर्णका चूर्ण जैसा पदार्थ नीचे चला जाता है। इसको हाइड्रेट कहते हैं। हाइड्रेटके जलको अलग करनेसे आक्साइड पाया जाता है। फेरिक आक्साइड क्षारादि पदार्थोंमें नहीं गलता। यह एसिडमें गल जाता है।

फेरसो-फेरिक आक्साइड।—समभाग फेरास एवं फेरिक सल्फेटके द्रावकमें आमोनियां मिला कर तपानेसे काले रंगका लोप हो जाता है। यह नाइट्रिक एवं हाइ- ड्रोक्लोरिक एसिडमें गल जाता है।

फेरिक क्लोराइड।—फेरिक आक्साइडको हाइड्रोक्लो- रिकमें गलानेसे यह तैयार होता है अथवा लौहको हाइड्रोक्लोरिक एसिडमें गलानेके बाद उसमें नाइट्रिक एसिड मिला कर उबालनेसे फेरिक क्लोराइड प्रस्तुत हो सकता है।

जल-शून्य फेरिक क्लोराइड तैयार करनेमें तपे हुए लाल लोहेके साथ क्लोरिण वाष्प मिलाना होता है। यह अत्यन्त जलशोषक होता है। यह जल अलकोहल इथरमें गल जाता है।

फेरिक सल्फेट।—हीराकसीसके साथ सल्फिउ- रिक एसिड मिला कर, एवं उस मिले हुए कसीस और सल्फिउरिकमें नाइट्रिक एसिड मिला कर उबालनेसे फेरिक सल्फेट तैयार होता है। हाइड्रेट, कार्बनेट, फास्फेट एवं सल्फाइडके अलावा फेरो सायानाइड आव पोटासियमके द्रावक योगमें फेरस श्रेणीके श्वेतवर्णके यौगिकरूपमें अधःस्थ होता है। वायुके संसर्गसे यह धीरे धीरे नीलवर्णमें परिणत हो जाता है। फेरिडसायानाइड आव पोटासियम मिलानेसे गाढ़ा नील रंग कुछ फीका पड़ जाता है। इसे टर्णबुल- ब्लू कहते हैं। सल्फोसायानाइड आव पोटासियमके साथ फेरस श्रेणीके लवणादिमें किसी प्रकारका परि- वर्तन दिखाई नहीं पड़ता।

फेरिक श्रेणीके यौगिकके क्षारादि पदार्थोंसे हाइ- ड्रेट बनता है। क्षारघटित सल्फाइड अधःस्थ हो जाता है एवं उसमें गंधक मिला हुआ नजर आता है। फेरस- में यह नहीं रहता है।

फेरोसायानाइड आव पोटासियमके साथ गाढ़ा नीलवर्ण फीका पड़ जाता है; इसे प्रुसियन ब्लू कहते हैं।

फेरिक सायनाइड आदि पोटासियमके संयोगसे किसी प्रकारका परिवर्त्तन नहीं होता। इसी तरहसे फेरस एवं यौगिक-समूह अलग किये जाते हैं। लकिन सायनाइडके साथ गाढ़ा रक्तवर्ण निकल आता है। पेरसमें यह नहीं दिखाई देता।

वाणिज्य।

इस धातुके आविष्कार और व्यवहारोपयोगिताके साथ साथ इसका वाणिज्य जनसमाजमें विस्तृत हुआ था। भारतवासी लौहधातुका व्यवहार बहुत दिनोंसे जानते थे। उस समय भारतीय लौहधातादि देशान्तरमें भेजे और बेचे जाते थे या नहीं उसका कोई प्रमाण नहीं मिलता। परन्तु बहुत प्राचीन कालसे वैदेशिकके साथ भारतवासीका जो वाणिज्य संबन्ध था इससे अनुमान होता है, कि प्राचीन सभ्यताके आदर्शस्थल भारतवर्षसे लौहनिर्मित पात्रादि अथवा इस्पात आदिकी यूरोपखण्डमें भी रफ्तनी होती थी।

मान्द्राज, सलेम आदि दाक्षिणात्य प्रदेशोंमें बहुत प्राचीन कालसे इस्पात प्रस्तुत होता था। यहांके लोग खनिज magnetite लौहको गला कर चोट सहनेवाला (Malleable) एक प्रकारका नरम लोहा ढालते थे। आज भी यह प्रथा जारी है।

पेरिप्लसके वर्णनसे मालूम होता है, कि उस समय भारतीय इस्पातकी बहुत ख्याति थी। प्राचीन अरबी कविताओंमें सुप्रसिद्ध भारतीय इस्पातकी बनी तलवारों-का उल्लेख है। प्राचीन स्पेनवासोंके निकट यह अल-हिन्दे नामसे परिचित था। पारसिक वणिकगण उसे 'हुन्दवानी' कहते थे। मार्कोपोलके विवरणमें यह 'ओन्दानी' (Ondanique) नामसे लिखा गया है। १६वीं सदीमें पुर्त्तगीज-वणिक् कलाङ्गा उपकूलस्थित भाटकल आदि स्थानोंसे लोहा ला कर यूरोप भेजते थे। १५११ ई०में पुर्त्तगालराजने गोआके गवर्नरको लिख भेजा था, कि वे प्रचुर लौह और इस्पात केवल बन्दरसे आफ्रिकाके उपकूलमें तथा लोहितसागरतीरवर्त्ती तुर्क जातिके मध्य बेचनेके लिये भेजें।

(Archivo Port. Orient, Fasc. 3. 318)

Wilkinson-कृत Engines of ... (१८३९ ई०

नामक पुस्तकमें तथा Percy-रचित धातुविज्ञान (Metallurgy, Iron and steel) ग्रंथमें "वुत्स" नामक इस्पातकी विशेष प्रशंसा है। वे लिख गये हैं, कि दामास्कसकी विख्यात तलवारके फलक भारतीय वुत्स इस्पातसे ही बनाये जाते थे।

उड़ीसाके सिंहभूम जिलान्तर्गत जमशेदपुरका प्रसिद्ध टाटा-आयरन-ष्टीलका कारखाना किसीसे भी छिपा नहीं है। उसमें ८० हजार मनुष्य काम करते हैं। ऐसा बड़ा लोहेका कारखाना एशिया भरमें नहीं है। इसके प्रतिष्ठाता बम्बई-निवासी सर दोराबजी जमशेदजी टाटा हैं।

वर्त्तमान समयमें भारतीय लौहकी अपेक्षा यूरोपीय लौहका ही अधिक आदर है। इससे गृहस्थोंके नित्य कामकी खाने पीनेकी थाली, कटोरे, बेड़ी, सन्दूक, झंझरी, कलछी, तसले, पीन, परातें, कल कब्जे आदि बनाये जाते हैं। टेलिग्राफ, पुल आदि बहुतसे असमसाहसिक कार्य भी लोहेके द्वारा किये जाते हैं। लोहेके इस्पातसे इञ्जिन बनाई जाती है।

२ छागविशेष, एक प्रकारका बकरा।

(भारत १३।८८।१३)

लौहचूर्ण—चिकित्सा-शास्त्रोक्त चूर्णौषधभेद।

लौहजालक (सं० क्ली०) कान्तलौह।

लौहकार (सं० क्ली०) लोहार।

लौहकिट्ट (सं० क्ली०) मण्डूर, लोहेकी मैल।

लौहघातक (सं० पु०) लोहेन लौहनिगड़ेन घातः प्रचारो यत्र। नरकभेद। लौहशङ्क देखो।

लौहज (सं० क्ली०) लोहात् जायते इति जन-ड। १ मण्डूर, लोहेकी मैल। २ वर्त्तलौह, एक प्रकारका लोहा।

लौहद्राव (सं० पु०) अम्लविकित्साभेद।

लौहनिर्हरणोपाय (सं० क्ली०) लोहेको अच्छी तरह भस्म करना।

लौहनिर्हत्यीकरणाभिषञ्चक (सं० क्ली०) घृत, मधु, कुंकुम, सोहागा और गुग्गुल। ये पांच पदार्थोंके मिले रहनेके कारण इसका निश्चयात्मक नाम पड़ा है। जिन-पदार्थोंके साथ मिलाने और पुन लौह भस्म नहीं होने पर

भी ४ रत्ती मात्रामें उसका सेवन किया जा सकता है। (रसेन्द्रसार०)

लौहपत्री (सं० स्त्री०) १ लौहचटका, लोहेका चटकना। २ लौहमारण। ३ लौहपुर, एक प्राचीन नगर।

लौहपर्पटी (सं० स्त्री०) औषधविशेष। प्रस्तुत प्रणाली—पारा २ तोला, गंधक २ तोला एकत्र कज्जली बना कर उसमें २ तोला लोहा मिलावे। पीछे खरलमें उसे अच्छी तरह कूटे। इसके बाद किसी लोहेके बरतनमें घी लगा कर उसमें कज्जली रस धीमी आंच पर चढ़ावे। गल जाने पर उसे केलेके पत्ते पर ढाल यथाविधि पर्पटी बनावे। पीछे उसे चूर्ण कर ले। १ रत्तीसे ले कर प्रति दिन १ रत्ती करके मात्रा बढ़ावे। एक या दो सप्ताह तक अर्थात् जब तक अच्छा न हो जाय, तब तक इसका सेवन करते रहे। अनुपान शीतल जल अथवा जीरा और धनियेका काढ़ा बताया गया है। इसके सेवनकालमें विदाही और शाकादि द्रव्य तथा चिन्ता, मैथुन आदि वर्जनीय हैं। लौहपर्पटी सेवन करनेसे ग्रहणी, सूतिका, गतीसार, कामला, अग्निमान्द्य और भस्मक आदि नाना रोग विनष्ट होते हैं। (भैषज्यरत्ना० ग्रहण्यधि०)

लौहपर्पटीरस (सं० क्ली०) श्वासकृच्छ्र और कासादि रोगनाशक औषधभेद। प्रस्तुत प्रणाली—पारा और गंधक प्रत्येक २ भाग तथा लोहा १ भाग, इन्हें एकत्र पीस कर धीमी आंचमें गलावे, ठंढा होने पर गोली बनावे। पीछे ब्रह्मयष्टि, पुण्डरीरी, वक, त्रिफला, जयन्ती, सम्हालू, त्रिकटु, अड़ूस, घृतकुमारी और अदरक, प्रत्येकके रसमें सात सात बार भावना दे। सूख जाने पर तांबेके बरतनमें रस जब तक गंध न निकले, तब तक पुटपाक करे। दो रत्ती भर पानके रस, पीपर, सुरस क्काथ अथवा अड़ूसके पत्तोंके रसके साथ सेवन करनेसे श्वास कास आदि रोग नष्ट होते हैं। इमली, तेल, बैगन, कुष्माण्ड, केला, मांसका जूस और कफजनक द्रव्य खाना तथा स्त्रीसम्भोग करना मना है। इस औषधमें लोहेके बदले तांबेसे पाक करने पर ताम्रपर्पटी तैयार होती है। ताम्रपर्पटी देखो।

लौहबन्ध (सं० पु० क्ली०) लौहस्य बन्धमिव बन्धनं यत्र। लौहशृङ्खल, लोहेकी जंजीर।

लौहभाण्ड (सं० पु०) १ लौहस्य भाण्डमिवाकृतिर्यस्य। १ अश्मसार, खल। २ लौहनिर्मित पात्र या भाण्ड, लोहेका बरतन।

लौहभू (सं० स्त्री०) लौहस्य भूरिव। कठिनो नामक लौहपात्र, कड़ाह।

लौहमेकीबीज (सं० क्ली०) रस जारण बीजभेद।

लौहमय (सं० त्रि०) १ लौहमण्डित, लोहेसे मढ़ा हुआ। २ लौहनिर्मित, लोहेका बना हुआ।

लौहमल (सं० पक्लो०) लौहस्य मलम्। लौहकिट्ट, मण्डूर, लोहेकी मैल।

लौहमृत्युञ्जयरस (सं० क्ली०) प्लीहारोगनिवारक औषधविशेष। प्रस्तुत प्रणाली—पारा, गंधक, लोहा, अबरक, तांबा, मैनसिल, विषमुष्टि, कौड़ी, शहतूत, शङ्ख, रसाञ्जन, जायफल, कुन्द, सांचिक्षार, यवक्षार, जयपाल, सोंठ, पीपल, मिर्च, हींग और सैन्धव लवण प्रत्येक समान भाग ले कर सूर्यावर्त्त और बिल्वपत्रके रसमें सात सात बार भावना दे। पीछे फिरसे सूर्यावर्त्तरसमें अच्छी तरह मर्दन करे। दो रत्तीकी गोली रोगीको सेवन करानेसे प्लीहा, यकृत्, गुल्म, अष्ठीला, अग्रमांस, शोथ, उदरी, वातरक्त और विद्रधिरोगकी शान्ति होती है।

लौहयन्त्र (सं० पु०) लौहेन निर्मितः यन्त्र इव। १ लोहेकी कल। २ रसायनाक भाण्डविशेष। इसमें औषधादिका पाक करना होता है।

लौहरसायन (सं० क्ली०) औषधविशेष। प्रस्तुत प्रणाली—शुद्ध पोट्टलीबद्ध गुग्गुल, तालमूली, त्रिफला, खैरकी लकड़ी, अड़ूसकी छाल, निसोथ, भूकदम्ब, सम्हालू, चितामूल, थूहरका मूल, प्रत्येक १० पल, पाकार्थ जल ८० सेर, शेष २० सेर, काढ़ेको कपड़ेमें छान १ सेर चीनी और १० पल उक्त गुग्गुल मिलाना होगा। अनन्तर किसी तांबेके बरतनमें पुराना घी ४ सेर और लौहचूर्ण १२ पल डाल कर उसके साथ चीनी और गुग्गुल-मिश्रित क्काथ जलसे पाक करे। आसन्न पाकमें शिलाजित २ पल, इलायची ४ तोला, दारचीनी ४ तोला, विड़ङ्ग २ पल, मिर्च, रसाञ्जन, पीपल, त्रिफला प्रत्येक २ पल ऊपरसे डाल दे। ठंढा होने पर उसमें मधु १ सेर मिलावे और पीछे शिला पर पीस कर घीके बरतनमें रखे। इसको

व

व—हिन्दी या संस्कृत वर्णमालाका उनतीसवाँ व्यञ्जनवर्ण। यह उकारका विकार और अन्तस्थ अर्द्धव्यञ्जन माना जाता है।

श्रीमद्भागवतमें लिखा है,—

"ऊष्माणमिन्द्रियाण्याहुरन्तःस्था बलमात्मनः।
[illegible]॥"

पाणिनिके मतसे इसका उच्चारण स्थान दन्त्य है, किन्तु दूसरी जगह दन्त्योष्ठ बताया है।

बीजवर्णाभिधानतन्त्र, रुद्रयामलके मन्त्रकोष और अन्यान्य तन्त्रशास्त्रोंमें 'व' वर्णके जो पर्याय लिखे हैं, वे इस प्रकार हैं—

"व वारो वारुणी सूक्ष्मा पश्चिमो देवलाञ्छनः।
शिरं कलसश्च वामोरुः॥" (बीजवर्णाभिधान)

"वकारो वरुणो वाम्यः स्वेदः सङ्कर्षणो जलः॥"
(रुद्रयामल-मन्त्रकोष)

"व वारो वारुणी सूक्ष्मा वरुण देवलांछनः।
[illegible]॥
[illegible]।
[illegible]॥"
(तन्त्राभिधान०)

यह वर्ण पञ्च प्राणमय, त्रिबिन्दु और त्रिशक्ति समन्वित, चतुर्वर्गफलदाता और सर्वसिद्धिप्रद है। शिवने भगवतीको इसका स्वरूप बतलाया था—

"वकारं परमाश्चर्यं कुण्डलीमोक्षमव्ययम्।
पञ्चप्राणमयं वर्णं त्रिबिन्दुसहितं सदा॥
त्रिशक्तिसहितं वर्णमात्मादितत्त्वसंयुतम्।
पञ्चदेवमयं वर्णं पीतविद्युल्लताकृतिम्॥
चतुर्वर्गप्रदं वर्णं सर्वसिद्धिप्रदायकम्।
त्रिबिन्दुसहितं देवि त्रिशक्तिसहितं सदा॥"
([illegible])

महाकालिकामतसे इस वर्णका ध्यान [illegible] में लिखा है, यथा—

"कुन्दपुष्पप्रभां देवीं द्विभुजां वरदोद्यताम्।
शुक्लमाल्याम्बरधरां रत्नहारोज्ज्वलां पराम्॥
साधकाभीष्टदां सिद्धां सिद्धिदां सिद्धसेविताम्।
एवं ध्यात्वा वकारं तु तन्मन्त्रं दशधा जपेत्॥"
(वर्णोद्धारतन्त्र)

हिन्दीमें इस वर्णका उच्चारण अधिकतर केवल ओष्ठसे होता है, सिर्फ संस्कृताभ्यासी लोग ही दन्त्योष्ठ उच्चारण करते हैं।

वंकट (हिं० वि०) १ टेढ़ा, बाँका। २ कुटिल, जो सीधा न हो। ३ विकट, दुर्गम।

वंकनाली (हिं० स्त्री०) साधुओंकी बोलचालमें सुषुम्ना नामक नाड़ी जो मध्यमें मानी गई है।

वंक्षु—इक्षु नद। आज कल आक्सस (Oxus) नामसे प्रसिद्ध है। यह मध्य-एशियाकी एक सबसे बड़ी नदी है। इस नदीका अधिकांश बोखारा-राज्यमें बहता है। यह पामीरकी सबसे ऊँची अधित्यका सरीकुलसे निकल कर तुर्किस्तानको पूर्व और पश्चिम इन दो भागोंमें विभक्त करती है। पीछे बोखाराके दक्षिण भाग और खीवाके सुविस्तृत मरुस्थलको फाड़ती हुई १५०० मील जानेके बाद अनेक शाखाओंमें विभक्त हो आरल समुद्रमें गिरती है। पुराविदोंका विश्वास है, कि पहले यह नदी कास्पियन सागरमें गिरती थी। पीछे उसकी गति बदल गई है।

बहुतोंकी धारणा है, कि इस आमू (Oxus) या वंक्षु नदीके किनारे ही आर्य-जातिका वास था। यहींसे सुप्राचीन नदी हो कर आर्य-सभ्यता सुदूर यूरोपखण्डमें फैली है। पाश्चात्य प्राचीन ऐतिहासिक स्ट्राबो, हेरोडोटस आदिके विवरणसे जाना जाता है, कि पूर्वकालमें यहां शकजातिका आधिपत्य था तथा इस नदीने शक और पह्लव राज्योंको विभक्त कर रखा था। पुराणों [illegible] और महाभारतमें शाकद्वीप बहु[illegible] है [illegible] मत्स्यपुराण और महाभारतमें शाक[illegible] जिस इक्षु नदीका उल्लेख है, वही

आजकल वक्षु नदी कहलाती है। पुराणके मतसे वंक्ष नदी जम्बूद्वीपमें बहती है। पुराणका अनुवर्त्ती होनेसे मालूम पड़ेगा, कि शाकद्वीपकी सीमा पर जो वंश बहता है, वह इक्षु और जम्बूद्वीपमें जो वंश आ गिरा है, वह वंक्षु नामसे प्रसिद्ध है।

इस नदीके किनारे "वक्ष" या "वखस" जातिका वास* रहनेके कारण इसका वंक्ष नाम पड़ा होगा। यहां सूर्य और अग्नि-उपासक शकोंके अभ्युदयके बाद बौद्ध-प्रभाव फैला था। ७वीं सदीमें चीनपरिव्राजक इस नदीके किनारे अनेक बौद्धकीर्त्ति और अशोक स्तूपके निदर्शन देख गये थे। उन्होंने भी इस नदीका पोस्सु या वक्षु नामसे उल्लेख किया है। उनके वर्णनमें अनवतप्त (वर्त्तमान सरीकूल) ह्रदके पूर्वांशसे गङ्गा, दक्षिणसे सिन्धु, पश्चिमसे वक्षु तथा उत्तरांशसे सीता नदी निकली है। चीनपरिव्राजक इस स्थानको देख कर जो वर्णन कर गये हैं, उसके साथ विष्णु और मत्स्यपुराणके वर्णनका एकदम मेल है। चीनपरिव्राजकने जिसे 'अनवतप्त' ह्रद कहा है, वही पुराणमें 'विन्दुसर' नामसे परिचित है। विन्दुसर देखो।

वंगाली (हिं० स्त्री०) भैरव रागकी रागिणी। यह ओड़व जातिकी है और इसमें ऋषभ तथा धैवतस्वर नहीं लगते। कल्लिनाथके मतसे यह सम्पूर्ण जातिकी है और इसमें दो बार मध्यम आता है।

वंदनवार (हिं० स्त्री०) वह माला जो सजावटके लिये घरोंके द्वार पर या मंडपके चारों ओर उत्सवके समय बांधी जाती है। इस मालामें फूल पत्तियां गुथी रहती हैं, यज्ञादिमें आमके पल्लव गूंथे जाते हैं।

वन्दनमाला देखो।

वंश (सं० पु०) वमति उद्गिरतिपुरुषान् वन्यते इति वा। टु वम उद्गिरणे इति धातोर्यद्वा वन शब्दे इति धातो वाहुलकात् शः। यद्वा, वष्टि उद्यते इति वा वश कान्तौ अत्र घञ् वा। ततो नुम्। १ पुत्र पौत्रादि। पर्याय—सन्तति, गोत्र, जनन, कुल, अभिजन अन्वय, सन्तान, निघन, जाति। (जटाधर)

विद्या और जन्म द्वारा, एकलक्षणाक्रान्त कुलपरम्परागत सन्तान ही वंश कहलाते हैं,—'कुलञ्च विद्यया जन्मना वा प्राणिनामेकलक्षणः सन्तानो वंशः।' (जयादित्य) सुभूतिने कहा है,—"धनेन विद्यया वा ख्यातस्यापत्यधारा वंशः।" अर्थात् धन और विद्यागौरवसे प्रसिद्ध आपत्यधाराका नाम ही वंश है।

भारतवर्षके प्राचीन इतिहासकी आलोचना करनेसे जाना जाता है, कि पूर्वकालसे यहां अनेक प्रतिष्ठित और वीर्यशाली राजवंशका आधिपत्य फैला था। ये सब विभिन्न वंशीय राजसन्तति-परम्परा भिन्न भिन्न समयमें भिन्न भिन्न स्थानका अप्रतिहत प्रभावसे राज्यशासन कर गई हैं। पुराणादिमें पृथुवंश, भरतवंश आदि अनेक सुप्राचीन वंशोंका हाल लिखा है। उनमेंसे सूर्यवंश और चन्द्रवंश सर्वप्रधान हैं। सूर्यवंशमें महाराज मान्धाता, दिलीप, रघु और दशरथात्मज श्रीरामचन्द्रने जन्मग्रहण किया था। रामचन्द्र द्वारा रावण विजय सूर्यवंशकी प्रसिद्धिका कारण है। चन्द्रवंशमें सैकड़ों राजा उत्पन्न हुए थे। उनमेंसे भारतीय महायुद्धके नायक युधिष्ठिरादि पञ्चपाण्डवसे ही वंशकी ख्याति फैली है। सूर्य और चन्द्रवंश देखो।

इस चन्द्रवंशकी दूसरी शाखा यदुवंशमें भगवदवतार श्रीकृष्णने जन्मग्रहण किया था। इसी वंशमें दाक्षिणात्यके प्रसिद्ध यादव राजवंश उत्पन्न हुए हैं।

यादव-राजवंश देखो।

तुर्वसुके वंशमें उज्जयिनीपति महाराज विक्रमादित्य आविर्भूत हुए थे।

शकजातिके अभ्युदयसे भारतवर्षमें शककुशन-वंशीय वैदेशिक राजवंशका अधिष्ठान हुआ। उस वंशके राजे क्रमशः हिन्दू धर्मका अवलम्बन कर राजपूत कहलाने लगे। उन्हींसे राजपूत-समाजमें ८ शाखाओंमें विस्तृत अग्निकुलकी उत्पत्ति हुई। परमार, परिहार, चौलुक्य और चाहमान ये चार अग्निकुल हैं। इतिहासमें इन चार वंशोंकी प्रतिपत्तिका यथेष्ट परिचय है।

ईसा जन्मसे पहले जैन और बौद्ध राजवंशके अलावा शिशुनागवंश, नन्दवंश, मौर्यवंश, यवनराजवंश, मित्र,

* Wood's Journey to the Source of the Oxus. p. XXIII.

व

व—हिन्दी या संस्कृत वर्णमालाका उनतीसवाँ व्यञ्जनवर्ण। यह उच्चारणमें विवार और अन्तस्थ अर्द्धव्यञ्जन माना जाता है।

श्रीमद्भागवतमें लिखा है—

"[illegible] ।
[illegible] ॥"

पाणिनिके मतसे इसका उच्चारणस्थान दन्त्य है, किन्तु दूसरी जगह दन्त्यौष्ठ बताया है।

श्रीमद्वर्णाभिधानतन्त्र, रुद्रयामलके मन्त्रकोष और अन्यान्य तन्त्रशास्त्रोंमें 'व' वर्णके जो पर्याय लिखे हैं, वे इस प्रकार हैं—

"वः वारि वारुणी सूक्ष्मा वरुणो देवतोषकः ।
[illegible] ॥" (वर्णाभिधान)

"वरुणो वरदो वायुः [illegible] ॥"

(रुद्रयामल-मन्त्रकोष)

"वो वरुणो वारुणी सूक्ष्मा वरुण देवतोषकः ।
[illegible] ॥
[illegible] ।
[illegible] ॥"

(नानातन्त्रशा०)

यह वर्ण पञ्च प्राणमय, त्रिबिन्दु और त्रिशक्ति समन्वित, चतुर्वर्गफलप्रदाता और सर्वसिद्धिप्रद है। शिवने पार्वतीजीसे इसका स्वरूप बतलाया था—

"वकारं परमानन्दं कुण्डलीमोक्षमव्ययम् ।
[illegible] ॥
[illegible] ।
[illegible] ॥
[illegible] ।
[illegible] ॥"

(कामधेनुतन्त्र)

महामोक्षप्रद इस वर्णको ध्यानप्रणाली भी तन्त्रशास्त्रमें लिखी है, यथा—

"कुन्दपुष्पप्रभां देवीं द्विभुजां पङ्कजेक्षणाम् ।
शुक्लमाल्याम्बरधरां रत्नहारोज्ज्वलां पराम् ॥
साधकाभीष्टदां सिद्धां सिद्धिदां सिद्धसेविताम् ।
एवं ध्यात्वा वकारं तु तन्मन्त्रं दशधा जपेत् ॥"

(वर्णोद्धारतन्त्र)

हिन्दीमें इस वर्णका उच्चारण अधिकतर केवल ओष्ठसे होता है, सिर्फ संस्कृताभ्यासी लोग ही दन्त्योष्ठ उच्चारण करते हैं।

वंकट (हिं० वि०) १ टेढ़ा, बाँका। २ कुटिल, जो सीधा न हो। ३ विकट, दुर्गम।

वंकनाली (हिं० स्त्री०) साधुओंकी बोलचालमें सुषुम्ना नामक नाड़ी जो मध्यमें मानी गई है।

वंक्षु—वक्षु नद। आज कल आक्सस (Oxus) नामसे प्रसिद्ध है। यह मध्य-एशियाकी एक सबसे बड़ी नदी है। इस नदीका अधिकांश तातार-राज्यमें बहता है। यह पामीरकी सबसे ऊंची अधित्यका सरीकुलसे निकल कर तुर्किस्तानको पूर्व और पश्चिम इन दो भागोंमें विभक्त करती है। पीछे बोखाराके विस्तीर्ण प्रान्तर और तातारके सुविस्तृत मरुप्रान्तको पार करती हुई १३०० मील आनेके बाद अनेक शाखाओंमें विभक्त हो आरल समुद्रमें गिरती है। पुराविदोंका विश्वास है, कि पहले यह नदी कास्पियन सागरमें गिरती थी। पीछे उसकी गति बदल गई है।

बहुतोंकी धारणा है, कि इस वंक्षु (Oxus) या गंगा नदीके किनारे ही आर्यजातिका वास था। इसी सुप्राचीन नदी हो कर आर्य-सभ्यता सुदूर पूर्वदेशमें फैली है। पाश्चात्य प्राचीन ऐतिहासिक स्ट्राबो, हेरोडोटस आदिके विवरणसे जाना जाता है, कि पूर्वकालमें यहां अश्वजातिका आधिपत्य था तथा इस नदीने इरान और तुरान राज्योंको विभक्त कर रखा था। पुराणके उल्लेखसे मत्स्यपुराण और महाभारतमें शाकद्वीप कहा है। (शाकद्वीप देखो।) मत्स्यपुराण और महाभारतमें शाकद्वीपकी सीमा पर जिस चक्षु नदीका उल्लेख है, वही

आज कल अक्षु नदी कहलाती है। पुराणके मतसे वंक्ष नदी जम्बूद्वीपमें बहती है। पुराणका अनुवर्त्ती होनेसे मालूम पड़ेगा, कि शाकद्वीपकी सीमा पर जो अंश बहता है, वह इक्षु और जम्बूद्वीपमें जो अंश आ गिरा है, वह वंक्षु नामसे प्रसिद्ध है।

इस नदीके किनारे "वक्ष" या "वक्षम" जातिका वास* रहनेके कारण इसका वंक्ष नाम पड़ा होगा। यहां सूर्य और अग्नि-उपासक शकोंके अभ्युदयके बाद बौद्ध-प्रभाव फैला था। ७वीं सदीमें चीनपरिव्राजक इस नदी-के किनारे अनेक बौद्धकीर्त्ति और अशोक स्तूपके निदर्शन देख गये थे। उन्होंने भी इस नदीका पोत्सु या वक्षु नामसे उल्लेख किया है। उनके वर्णनमें अनवतप्त (वर्त्तमान सरीकूल) ह्रदके पूर्वांशसे गङ्गा, दक्षिणसे सिन्धु, पश्चिमसे वक्षु तथा उत्तरांशसे सीता नदी निकली है। चीनपरिव्राजक इस स्थानको देख कर जो वर्णन कर गये हैं, उसके साथ विष्णु और मत्स्यपुराणके वर्णन का एकदम मेल है। चीनपरिव्राजकने जिसे 'अनवतप्त' ह्रद कहा है, वही पुराणमें 'विन्दुसर' नामसे परिचित है। विन्दुसर देखो।

वंगाली (हिं० स्त्री०) भैरव रागकी रागिणी। यह ओडव जातिकी है और इसमें ऋषभ तथा धैवतस्वर नहीं लगते। कल्लिनाथके मतसे यह सम्पूर्ण जातिकी है और इसमें दो बार मध्यम आता है।

वंदनवार (हिं० स्त्री०) वह माला जो सजावटके लिये घरोंके द्वार पर या मंडपके चारों ओर उत्सवके समय बांधी जाती है। इस मालामें फूल पत्तियां गुथी रहती हैं, यज्ञादिमें आमके पल्लव गूंथे जाते हैं।

वन्दनमाला देखो।

वंश (सं० पु०) वमति उद्गिरतिपुरुषान् वम्यते इति वा। टु वम उद्गिरणे इति धातोर्यद्वा वन शब्दे इति धातो बाहुल-कात् शः। यद्वा, वष्टि उच्यते इति वा वश कान्तौ अच घञ् वा। ततो नुम्। १ पुत्र पौत्रादि। पर्याय—सन्तति, गोत्र, जनन, कुल, अभिजन अन्वय, सन्तान, निधन, जाति। (जटाधर)

विद्या और जन्म द्वारा एकलक्षणाकान्त कुलपरम्परा-गत सन्तान ही वंश कहलाते हैं,—'कुलस्य विद्यया जन्मना वा प्राणिनामेकलक्षणः सन्तानो वंशः।' (जयादित्य) सुभूतिने कहा है,—"धनेन विद्यया वा ख्यातस्यापत्यधारा वंशः।" अर्थात् धन और विद्यागौरवसे प्रसिद्ध अपत्य-धाराका नाम ही वंश है।

भारतवर्षके प्राचीन इतिहासकी आलोचना करनेसे जाना जाता है, कि पूर्वकालसे यहां अनेक प्रतिष्ठित और वीर्य-शाली राजवंशका आधिपत्य फैला था। ये सब विभिन्न वंशीय राजसन्तति-परम्परा भिन्न भिन्न समयमें भिन्न भिन्न स्थानका अप्रतिहत प्रभावसे राज्यशासन कर गई हैं। पुराणादिमें पृथुवंश, भरतवंश आदि अनेक सुप्राचीन वंशोंका हाल लिखा है। उनमेंसे सूर्यवंश और चन्द्रवंश सर्वप्रधान हैं। सूर्यवंशमें महाराज मान्धाता, दिलीप, रघु और दशरथात्मज श्रीरामचन्द्रने जन्मग्रहण किया था। रामचन्द्र द्वारा रावण-विजय सूर्यवंशकी प्रसिद्धिका कारण है। चन्द्रवंशमें सैकड़ों राजा उत्पन्न हुए थे। उनमेंसे भारतीय महायुद्धके नायक युधिष्ठिरादि पञ्चपाण्डवसे ही वंशकी ख्याति फैली है। सूर्य और चन्द्रवंश देखो।

इन चन्द्रवंशकी दूसरी शाखा यदुवंशमें भगवदवतार श्रीकृष्णने जन्मग्रहण किया था। इसी वंशमें दाक्षिणात्य-के प्रसिद्ध यादव राजवंश उत्पन्न हुए हैं।

यादव-राजवंश देखो।

तुर्वसुके वंशमें उज्जयिनीपति महाराज विक्रमादित्य आविर्भूत हुए थे।

शकजातिके अभ्युदयसे भारतवर्षमें शककुशान-वंशीय वैदेशिक राजवंशका अधिष्ठान हुआ। उस वंशके राजे क्रमशः हिन्दू धर्मका अवलम्बन कर राजपूत कहलाने लगे। तभीसे राजपूत-समाजमें ८ शाखाओंमें विस्तृत अग्निकुलकी उत्पत्ति हुई। परमार, परिहार, चौलुक्य और चाहमान ये चार अग्निकुल हैं। इतिहासमें इन चार वंशोंकी प्रतिपत्तिका यथेष्ट परिचय है।

ईसा जन्मसे पहले जैन और बौद्ध राजवंशके अलावा शिशुनागवंश, नन्दवंश, मौर्यवंश, यवनराजवंश, मित्र,

---

* Wood's Journey to the Source of the Oxus. p. XXIII.

कालय और अग्रवंश आदि वंशोंकी ख्याति भारतप्रसिद्ध है। नागवंशका लोप होनेसे भारतवर्षमें गुप्तवंशका अभ्युदय हुआ। स्कन्दगुप्तको पराजय कर यौधेयोंने भारतमें हूणवंशको प्रतिष्ठा की। मालवराज यशोधर्मदेवने हूण-वंशीय मिहिरकुलका विध्वंस कर उज्जयिनीराज-वंशका गौरव बढ़ाया था। इसके बाद मगध, कनौजी, उज्जयिनी, स्थाण्वीश्वर, कनौज आदि देशोंमें एक एक प्रबल-पराक्रान्त राजवंशकी प्रतिष्ठा हुई थी। राष्ट्रकूट या राठौरवंश, चोल और चन्देल तथा कनौजके आयुध-राजवंशका प्रभाव किसीसे भी छिपा नहीं है। इसके सिवा भारतके नाना स्थानोंमें बुन्देला, जाट तथा निजाम-शाही, कुतबशाही आदि विभिन्न हिन्दू और मुसलमान जातिके बहुतसे राजवंशकी प्रतिष्ठा हुई है।

उत्तर-भारतीय इन सब महापराक्रमी आयुध राज-वंशके समय बङ्गालमें शूरवंशका प्रभाव फैला। आदि-शूरके ब्राह्मण लानेका हाल बङ्गवासीमात्रको ही मालूम है। पीछे यहां पाल और सेन-राजवंशका अभ्युदय हुआ था। सेनवंशीय लक्ष्मणसेनको पराजय कर महम्मद इ-वख्तियार खिलजीने बङ्गालको फतह किया।

भारतवर्षमें मुसलमानोंके आनेसे यहां गजनी, घोरी, गुलामवंश, खिलजीवंश, तुगलकवंश, सैयद, लोदी, सुर और मुगलवंशने राज्य किया। उसके बाद अङ्गरेजराज-का अभ्युदय हुआ है।

२ गृहका कड़ीकाष्ठ, बंडेर। ३ पृष्ठावयव, पीठकी रीढ़। ४ वर्ग। ५ वाद्यभाण्डविशेष, बांसुरी। ६ इक्षु, एक प्रकारको ईख। ७ सर्ज नामक शालवृक्ष। ८ खड्ग-मध्योन्नभाग, खड्गके बीचका वह भाग जो ऊंचा होता है अर्थात् जहां पर वह अधिक मोटा होता है। ९ संघ। १० अतिथि, मेहमान। ११ दस हाथका एक मान। १२ अस्थिनिम्नद्रुत इत्यादिकी अस्थि, बाहु आदिको लम्बी हड्डी। १३ नाकके ऊपरकी हड्डी, बांसा। १४ विष्णु। १५ वंशलोचन। १६ पुत्र, पुत्र। १७ तृणजातिविशेष, बांस। इस पृथ्वी पर विभिन्न स्थानकी आबहवाके तारतम्यानुसार विभिन्न प्रकारका बांस उत्पन्न होता है। उद्भिद्तत्त्वविद् बेन्थम और हूकरने २२ प्रकारके बांसका उल्लेख किया है। उनमेंसे भारत और मलय प्रायोद्वीपमें अलग अलग प्रायः १४ प्रकारके बांस देखे जाते हैं। यह गरम देशोंमें अधिक होता है और बहुत से कामोंमें आता है। इससे चटाइयां, टोकरियां, पंखे, कुरसियां, टट्टर, छप्पर, टोकरियां आदि अनेक चीजें बनती हैं। कहीं कहीं तो लोग केवल बांससे ही सारा मकान बना लेते हैं और कहीं कहीं बड़े बांसके खोलोंमें भर कर पानी तक रख लेते हैं। इसके पतले रेशोंसे रस्सियां भी बनती हैं। इसके कोपलोंका मुरब्बा और अचार भी तैयार किया जाता है।

भिन्न भिन्न देशोंमें यह भिन्न भिन्न नामसे प्रसिद्ध है। हिन्दी—बांस, बड़ाबू, मगरबांस, मन्दबांस; बङ्गला—वेणु या वेउबांस, बांस; आसाम—कटाह, कोलकटाक्तु; संथाली—मार; गारो—वाह-वाण्डे; चट्टग्राम—वरियाला; पञ्जाब—मगर, मान्ज; कुमायूं—वंश; छोटनागपुर—कटाङ्, पोइई; दाक्षिणात्य—वन; बम्बई—मन्ढेली, मानवास; दाक्षिणात्य—बांस, छोटा बांस होनेसे बांसा और बड़ा होनेसे बम्बू; गोंड़—कटि बादुर; मराठ—कटास; पारस्य—नाई; तामिल—मुंगिल, मुलगिल; तेलगू—मूलकाला, वादू, बोङ्गा, वेदुर, बोङ्ग वेदुर, वोगोवेदुर, वेल्लेदुरु, वेन्दुराति, वेदु; कनाड़ी—बिदु, टुंगु; मय—वा-वाह; ब्रह्म—व नादैन, कैलुपा; सिङ्गापुर—बाटु, उना, उना; चीन—चुह; अङ्गरेजी—Bamboo। वैज्ञानिक भाषामें यह उद्भिद्तत्त्वके तृणविभाग (Gramineal) को दृढ़पत्र (Bambuseal) श्रेणीके अन्तर्गत है। संस्कृत पर्याय—त्वक्सार, कर्मार, त्वचिसार, तृणध्वज, शतपर्वा, यवफल, वेणु, मस्कर, तेजन, किष्कुपर्वा, रन्ध्र, धनुर्द्रुम, शततन्तु, वटपत्री, महाबल, दृढ़ग्रन्थि, दृढ़पत्र, धनुर्द्रुम, धानुष्य, दृढ़ग्रन्थि, विशालो, धुवपत्रक।

बांस साधारणतः ४०।५० हाथ अर्थात् ६०से १२० फुट तक लंबा होता है। छोटा बांस २० फुटसे कम ऊंचा नहीं होता। भारत तथा पूर्व भारतीय देशोंमें जितने प्रकारके बांस देखे जाते हैं, पाश्चात्य उद्भिद्विदोंने उनके आकृतिक गठन, दीर्घता, प्रकृति और उत्पत्तिस्थान-का निर्देश किया है। नीचे उनके वैज्ञानिक नाम, उत्पत्ति-

स्थान, ऊंचाई आदिका हाल संक्षेपमें लिखा जाता है—

१ Bambusa affinis—मार्त्तावानमें उत्पन्न होता है। लम्बाई १५से २० फुट होती है। ब्रह्मदेशकी भाषामें इसको थैका और थिशे कहते हैं।

२ B. Agrestis—जन्मस्थान चीन, कोचीन चीन और मलयद्वीपपुञ्ज। गठन चक्राकार, मोटाई १ फुट और लम्बाई १॥ फुट होती है। भीतर पोल नहीं होता।

३ Amahussana—पूर्वभारतीय द्वीपपुञ्जके अम्वयना और मनिला नामक स्थानमें होता है। लम्बाई थोड़ी होती है और यह झाड़ीकी तौर पर पैदा होता है। इसमें गांठें बहुत घनी होती हैं।

४ B. Apus—यवद्वीपके अन्तर्गत शालक पर्वतके ऊपर इस जातिका बांस उगता है। यह ६०से ७० फुट लम्बा और मनुष्यकी जांघके समान मोटा होता है। पत्तियां बड़ी बड़ी और सूईकी नोकसी होती हैं।

५ B Aristata—पूर्व-भारतके नाना स्थानोंमें पाया जाता है। यह चिकना तथा पतला होता है, पर दण्डाकार नहीं होता। इस श्रेणीके बांस देखनेमें बड़े ही सुन्दर लगते हैं।

६ B Arundinacea—मध्य, दक्षिण और पश्चिम-भारतमें प्रधानतः देखा जाता है। यह दण्डाकार और ३० से ६० फुट ऊंचा होता है। भीतर उतना पोल नहीं होता। रेशे चिकने, कठिन और मोटे होते हैं। पत्तियां छोटी और पतली होती हैं। तीस वर्षका पुराना होनेसे इसमें फूल लगते हैं।

७ B. Arundo—छोटी बांस कहलाता है। इससे महाबलेश्वरकी प्रसिद्ध छड़ी बनती है।

८ B Aspera—आम्बयना द्वीपमें उत्पन्न होता है। पेड़ ६०से ७० फुट लम्बा होता है।

६ B. Atra—उत्पत्ति-स्थान आम्बयना द्वीप है। वंश-दण्ड चिकने और काले होते हैं।

१० B. Pacciféra—चट्टग्रामके पहाड़ी प्रदेशमें उत्पन्न होता है। चट्टग्रामवासी इसको पगुट्टल्लू कहते हैं। दाक्षिणात्यमें यह विषा बांस कहलाता है। इसमें जामुन जैसे एक प्रकारके फल लगते हैं। उसमें केवल एक ही बीज रहता है। इसी बांसमें तवाशीर या वंशलोचन पाया जाता है।

११ B. Balcooa—पूर्व-बङ्ग आसाममें कई जगह उत्पन्न होता है। बङ्गालमें इसे बालकू बांस वा धूली-बांस तथा आसाम और कछाड़ विभागमें येनेवा, भालूका-बांस कहते हैं। लेपछा लोगोंने इसका प्रिङ्ग नाम रखा है। यह बांस स्त्री जातिका माना गया है।

१२ B Bitung—यवद्वीपमें उत्पन्न होता है। पत्तियां चौड़ी और खुरदरी होती हैं।

१३ B. Blumeana—उत्पत्ति-स्थान यवद्वीप है। यह दण्डाकार और नवप्रसूत बच्चेके हाथकी तरह पतला होता है।

१४ B. Brandisii—ब्रह्मदेश और चट्टग्रामके ४ हजार फुट ऊंचे पर्वत पर उत्पन्न होता है। इसकी ऊंचाई १२६ फुट और मोटाई ३० इञ्च होती है। कच्ची पत्तियां लाल और हल्दी रंगकी होती हैं। यह बांस बङ्गालमें ओड़ा, ब्रह्ममें वो और मर्गोंके निकट तुगुंरा नामसे प्रसिद्ध है।

१५ B. Falconéri—उत्तर-पश्चिम हिमालय पहाड़ पर विशेषतः शिमला पहाड़के ५००० फुट ऊंचे स्थान पर यह वृक्ष उत्पन्न होता है। डा० माण्डिनने इसे बालकू बांसकी श्रेणीमें शामिल किया है। इसके फूल प्रायः एक इञ्च लम्बे और देखनेमें बहुत कुछ तलदा बांसके फूलके जैसे होते हैं। पहाड़ी भाषामें यह छूये काग आदि नामोंसे परिचित है।

१६ B Glauca—भारतवर्षके नाना स्थानोंमें पाये जाते हैं। पत्तियां एक इञ्चसे बड़ी नहीं होतीं। यह बांस दो फुटसे ज्यादा नहीं बढ़ता, किन्तु डाल पत्तियोंसे ढकी रहती हैं। इसमें छोटे और सफेद फूल लगते हैं।

१७ B. Khasiana—खासिया पर्वत पर पाया जाता है। खास जाति इसको तुमार-वंश कहती है।

१८ B Maxima—कम्बोज, बालि, जावा आदि पूर्व भारतीय द्वीपपुञ्जोंके अन्तर्गत बहुत-से द्वीपोंमें यह वृक्ष पैदा होता है। इसकी ऊंचाई ६०से ७० फुट तक होती है। वंशदण्ड प्रायः मनुष्यदेहके समान मोटे होते हैं। भीतर पोल होता है।

१९ B. Mitis—आम्बयनाके वनमें भी यह काफी उत्पन्न होते देखा जाता है। कोचीन-चीनमें इसकी

पैदा होता है। यह ३० फुट तक लंबा होता है, किन्तु वृन्त साधारणतः पतले होते हैं। कहीं कहीं मोटे भी देखे जाते हैं, कभी कभी मनुष्यके पैरके समान मोटे होते हैं।

२० B. Multiplex—कोचीन चीनके उत्तर विभागमें घेरा लगानेके लिये इसको रोपा होता है।

२१ B. Nana—ब्रह्म और चीनराज्यमें पैदा होता है। यह पेड़ छोटा, पत्तियां छोटी छोटी और निचला भाग सफेद होता है। इसका घना घेरा देखनेमें बड़ा ही सुन्दर दिखाई देता है। चीनवासी इसे फु का तथा ब्रह्मवासी पिनवपिनट्य कहते हैं।

२२ B. Nigra—चीन-साम्राज्यके अंगरेजाधिकृत कान्टन प्रदेशमें यह बांस पाया जाता है। इसके वृन्त मनुष्यकी ऊंचाईके समान बढ़ने भी नहीं पाते, कि काट लिये जाते हैं। उससे व्यवहारोपयोगी अच्छी लाठी और स्त्रियोंके व्यवहार्य छतरीके सुन्दर बेंट तय्यार होते हैं। इङ्गलैण्डमें भी यह बांस उत्पन्न होता है।

२३ B. Nutans—नेपाल, सिकिम, खासिया-जैन्तिया, आसाम, भोटान और भूटानके पार्वतीय मैदानोंमें यह बांस झाड़ देखा जाता है। भूपृष्ठसे इसकी ऊंचाई ७ हजार फुट होती है। यह देखनेमें बहुत कुछ तल्दा बांसके जैसा होता है। भीतर पोल नहीं होता, ठोस होता है। मोटे बांसमें कुछ पोल होते हैं। नेपालमें यह मल्ल-बांस, लेपचा देशमें मल्न्, भूटियामें प्रिउमिङ्, आसाममें बिजुली और मुकियाल तथा भोटानमें पिउङ्गे नामसे मशहूर है।

२४ B. Orientalis—मद्रास दाक्षिणात्यमें ही पैदा होता है।

२५ B. Pallida—पूर्व-बङ्ग और आसाममें मिलता है और ५० फुट लम्बा होता है। खासिया लोग इसको उस बेंत और कछाड़ी लोग मुवाल और बरवाल कहते हैं।

२६ B. Picta—सिलहट, चैमसूर, मेंगलिया और अरके पास पासके पार्वत्य ढालोंमें यह घना झाड़ बनाकर देखनेमें आता है। यह दो इञ्चसे अधिक मोटा नहीं होता। प्रायः ४ फुटके अन्तर पर एक एक गांठ रहती है। भीतरी खोखली, किन्तु बहुत मजबूत होती है। इस कारण यह बिलकुल लाठीके लायक है।

२७ B. Prava—आसामके उत्तरपूर्व देशमें तथा अन्यान्य स्थानोंमें इसकी बहुतायत देखी जाती है। इसकी पत्तियां साधारणतः १८ इञ्च लम्बी और ३·४ इञ्च चौड़ी होती हैं। यह बांस चेवनेके लिये उपयुक्त जानके लाया जाता है।

२८ B. Polymorpha—पेगुयोमा पहाड़ पर तथा मार्तबान विभागके पर्वत पर इस बांसका वन देखा जाता है। ब्रह्मवासी इसे कियाँङ्ग कहते हैं।

२९ B. Pubescens—इसका वृन्त ३० फुट लम्बा पर १॥ इञ्चसे अधिक मोटा नहीं होता।

३० B. Spina—दाक्षिणात्यके मन्द्राज और गुनपुर जिलेमें उत्पन्न होता है। इसकी लम्बाई ८० फुट तक देखी गई है। उड़ीसावासी इसको कांटा बांस कहते हैं।

३१ B. Spinosa—भारतके पूर्वोत्तरस्थान कण्टक बांसकी जाति। हिन्दीमें इसे पुट या बेहुर बांस; बङ्गालमें बेउड़ बांस; आसाममें कोटे; कछाड़में किन्टुे; ब्रह्ममें वनरेखां कहते हैं। बङ्गाल, आसाम और ब्रह्मराज्य, युक्तप्रदेश, मन्द्राज प्रदेशके उत्तर पूर्वांशमें तथा भारतके अन्यान्य स्थानोंमें झाड़ बांध कर यह उत्पन्न होता है। यह देखनेमें सुन्दर और गहन झाड़ाकृतिका होता है। बङ्गदेशके निकट जङ्गलोंमें और ब्रह्मराज्यमें ३० से ५० फुट ज्यादा लम्बा नहीं होता। इसकी कच्ची डाली बिलकुल और कठिन होती है, कि उस बांसके वनमें घुसना मुश्किल है। पत्तियां छोटी और कांटेदार होती हैं। ज्येष्ठ मासमें जब वर्षा शुरू होती है, तब पुराने बांसोंमें फूल निकलते हैं। इस बांसको फाड़ कर चटाई बनाये जाते हैं। पञ्जाब पार्वत्यभागमें इस बांसकी लाठी बना कर ब्राह्मण-सन्तानके हाथमें पकड़ देनेकी विधि है।

३२ B. Striata—चीन देशमें पैदा होता है। इसकी झाड़ी नहीं होती। इसके वृन्त पतले, गांठें, छिलके और सब्ज रंगके होते हैं। इङ्गलैण्डके ग्रीन्हौसमें उत्तप्त निवेशमें (Bush-house) इसको रोपा होता है। यह १० फुट तक ऊंचा होता है।

३३ B. Stricta—बहुत कुछ झाड़ी बांध कर उत्पन्न होता है। भारतवर्षमें इसे बाड़ बांस कहते हैं। दाक्षिणात्यमें मेरन् भाषामें इसका नाम शल्मवेदुर है। यह बहुत मजबूत, ठोस और सीधा होता है।

३४ B Tabacaria—आम्बयना, जावा, मलिया द्वीपोंमें बहुतायतसे पाया जाता है। ३-४ फुटके फासले पर एक एक गांठ होती है। इसका दण्ड कनिष्ठांगुलीसे मोटा नहीं होता। इस कारण उस पर पालिस दे कर अच्छी छड़ी बनाई जाती है। उसका छिलका इतना कड़ा होता है, कि उस पर कुठाराघात करनेसे आगकी चिनगारियां निकलती हैं।

३५ B, Teres—बङ्गाल और आसाम प्रदेशमें प्रधानतः उत्पन्न होता है।

३६ B, Trilda—बङ्गालका साधारण बांस। पेगू प्रदेशके जलमय वनभागमें भी उत्पन्न होता है। यह बांस बहुत जल्द बढ़ता है। तीस दिनके भीतर पूरी बाढ़में आ जाता है। इसकी ऊंचाई ७० फुट और मोटाई १२ इञ्च होती है। पत्तियां मंझोली, कोमल और शिराविशिष्ट होती हैं। गांठें कुछ मोटी होती हैं। इस बांसको फाड़ कर कुछ दिन जलमें डुबो रखनेसे यह बहुत मजबूत और टिकाऊ होता है। इससे टोकरे, पंखे, चोक आदि बनते हैं। तलदा बांसकी इसकी गांठे बहुत मजबूत होती हैं। लोग इस बांसके कच्चे कोपल खाते हैं, उसमें मसाला आदि डाल कर अचार भी बनाया जाता है।

३७ B, Verticillata—आम्बयना द्वीपमें उत्पन्न होता है। इसकी ऊंचाई १५-१६से कम नहीं होती। इसके पत्ते शरीरमें लगनेसे खुजलाहट पैदा होती है जो सहजमें दूर नहीं होती। इस कारण किसीको उसकी पत्तियां संग्रह करनेका साहस नहीं होता। Rumphius ने इस जातिके वृक्षका Leleba alba नामसे उल्लेख किया है।

३८ B, Vulgaris—भारतवर्षमें तमाम, विशेषतः श्रीहट्ट, चट्टग्राम और सिंहल द्वीपके दक्षिण और मध्यभागमें उत्पन्न होता है। अमेरिकाके वेष्ट इण्डिज द्वीपोंमें तथा दक्षिण-अमेरिकामें जगह जगह इसकी खेती होती है। यह बांस देखनेमें पीला होता है। बीच बीचमें सब्ज धारियां दिखाई देती हैं। बङ्गालमें इसे वासिनी बांस, बम्बईमें कलक, पंजाबक और सिङ्गापुरमें ऊना कहते हैं। यह बांस साधारणतः २०से ५० फुटसे ज्यादा लम्बा नहीं होता। मोटाई छोटे छोटे लड़कोंके बाहुमूलके समान होती है। पत्तियोंमें मोटे मोटे रेशे रहते हैं। पुराने बांसमें फूल लगते हैं, फूल देखनेमें बहुत कुछ B. Arundinacea श्रेणीसे होते हैं।

उपरोक्त छोटे बड़े सभी बांसोंके ऊपर कठिन छिलके होते हैं। बांस जातिविशेषमें मोटा या पतला होता है। किसी बांसमें कुछ दूरके फासले पर और किसीमें घनी गांठें होती हैं। सिङ्गापुर, चीन आदि देशोंमें इस बांसकी छोटी छोटी छड़ी बनती है। किसी किसी श्रेणीका बांस ३० दिनके भीतर पूरी बाढ़में आ जाता है, कोई कोई २-३ मासके भीतर शाखाओंके साथ बढ़ता है। प्रधानतः वर्षाऋतुमें ही बांसके कोपल निकलते हैं, कनाल डिल्मानने १८३५ ई०में अच्छी तरह पर्यालोचना कर दिया है, कि वर्षाऋतुमें वज्रध्वनिके साथ ही बांसके साथ कोपल उगते हैं। पीछे वृष्टिके जलसे यह धीरे धीरे बढ़ता जाता है। चीन देशमें 'वेकिया' नामक एक प्रकारका चौका बांस पाया जाता है। यह घर आदि सजाने अथवा असवाब बनानेमें व्यवहृत होता है। इससे अच्छे अच्छे कलमदान बनते हैं।

वर्षाके आरम्भमें जड़ लगे हुए बांसको दूसरी जगह लगानेसे उसमें भी कोपल निकलते हैं। इसके सिवा बीजसे भी बांस उत्पन्न होता है। Glumes और Palea संयुक्त बीजको जमीनमें गाड़नेके बाद सात दिनके भीतर ही अंकुर उगते हैं। कभी कभी यह मूल शस्यमें संलग्न रह कर ही छः इञ्च तक बढ़ता है। उस समय कोपलको दूसरी जगह उखाड़ कर रोपते हैं। यह अङ्कुरित बीज थोड़े ही समयमें नष्ट हो जाते हैं, किन्तु अच्छी तरह यदि उसकी रक्षा की जाय, तो यह भारतवर्षके एक प्रान्तसे दूसरे प्रान्तमें भेजा और उससे बांस लगाया जा सकता है। १०से १२ वर्षके भीतर यह सुपक्व और काटने लायक नहीं होता।

बांसका जैसा कोपल होगा, बढ़ने पर भी उसकी मोटाई उतनी ही होगी। कोपलके अनुसार बांस पतला मोटा होता है। बांसके बढ़नेसे उसकी मोटाई घटती बढ़ती नहीं, पूर्ववत् रहती है। समय पर उसकी केवल परिपक्वता निर्भर करती है। नारियल, ताड़, खजूर आदि पेड़ोंको डाल देख कर जिस प्रकार उनके समय-

का निर्णय किया जाता है, बांसकी गांठ देख कर उस प्रकार समयका पता नहीं लगाया जा सकता। उनका पुष्पोद्गम या बीजाधान देख कर लोग उसकी अवस्थाका निर्णय करते हैं। मध्यभारतकी पहाड़ी प्रदेशवासी जातियां पहाड़ी बांसका बीजाधान देख कर अपनी उमर तककी गणना करती हैं। जो व्यक्ति बांसका दो "कारहू" अर्थात् दो बार बीजाधान देखता है, उसकी उमर ६० वर्षसे कम नहीं होती।

साधारणतः २५ से ३५ वर्षके भीतर बांसमें फूल निकलते हैं। अनेक समय ४४ वर्षके बाद फूल निकलते देखे गये हैं। कभी कभी बांसके बीजसे चावल पाया जाता है। यह चावल बहुतेरे लोग खाते हैं। बहुतोंका विश्वास है, कि अकालके समय बांसमें अधिकतासे चावल उत्पन्न होता है, किन्तु यह सत्य प्रतीत नहीं होता। १८३६ ई०के Trans. Agri Horti. Soc. of India, Vol. III p. 159-13 पत्रमें लिखा है, कि उस समय कई जगह बांसोंमें चावल भी देखा गया था, पर दुर्भिक्ष कहीं भी न था। खेतोंमें भी काफी फसल लगी थी। उस समय खेतका चावल रुपयेमें १६ सेर और बांसका चावल २० सेर मिलता था। प्रत्येक बांसमें ४से २० सेर तक चावल पाया जाता है। जो बांस जितने ही विच्छिन्न भावसे और जितनी उर्वर भूमिमें रहता है, उससे उतना ही अधिक चावल मिलता है। चावल निकलनेके बाद बांस पेड़ ही आप सूखने लगता है। किन्तु उसकी जड़से पुनः कोंपल निकलता है। कभी कभी बीजसे भी पुनः उत्पन्न होता है।

पहले ही लिखा जा चुका है, कि मनुष्य बांसका कोंपल तरकारी बना कर अथवा उसका अचार बना कर खाते हैं। गाय आदि जन्तु बड़े चावसे बांसकी पत्ती खाते हैं। गायके पक्षमें बांसकी पत्ती बहुत उपकारी है। १८१२ ई०के उड़ीसा-दुर्भिक्षमें लाखों आदमीने बांस-का चावल खा कर अपने प्राण बचाये थे। १८६५ ई०को महिसुरमें धारवाड़ और बेलगांव जिलेवासी प्रायः ५० हजार आदमियोंने जंगलमें जा कर बांसके तण्डुल-से जीवन धारण किये थे। १८६६ ई०को मालदह जिलेमें रुपयेमें १२ सेर बांसका चावल मिलता था। उस समय

खेतके चावलको दर रुपयेमें १० सेर थी। दुर्भिक्षके समय वहांके लोग बांसका ही चावल खा कर रहते थे, किन्तु चावल सुस्वादु नहीं था। Dr. Bidie का कहना है कि उससे अजीर्ण और उदरामय रोग उत्पन्न होता है।

बांसके भीतर कभी कभी जल रहता है। वह जल बहुत ठंढा होता है। धातुरोगग्रस्त व्यक्तिको वह जल पिलानेसे बहुत लाभ पहुंचता है। बांसको उपकारिता सम्बन्धमें बङ्गालमें जो वचन प्रचलित है उसका अर्थ इस प्रकार है, पूर्वदिशामें कुलपरकार परिशोभित ... विराजित पुष्करिणी तथा पश्चिमको बांसका जंगल ... गृहवाटिका गृहस्थोंके लिये विशेष मङ्गलप्रद है।

बांससे जितने प्रकारकी चीजें बनती हैं, उनका उल्लेख पहले किया जा चुका है। इसके सिवा बांससे वाद्ययन्त्र बनते हैं। श्रीकृष्णकी मोहन बांसुरी तथा ... गायक तानसेनका सहनाई नामक वाद्ययन्त्र वेणु ... बांसका ही बना हुआ था। आज कल भी तरह तरह से विभिन्न प्रकारकी बांसुरी बनाई जाती है। तार कसने बांसके ऐसेके होते हैं। सन्थाली भीलों ... मादक वाद्ययन्त्र आवश्यकतानुसार छोटे या बड़े ... एक गांठदार बांसके पोरसे बनाये जाते हैं। वह ... सारंगीकी तरह बजाया जाता है। उससे सुरका भी ... तरह साफ साफ मालूम होता है। बीणायन्त्र, ... और एक तारा आदि यन्त्रोंका पृष्ठदण्ड भी बांसका बनाया जाता है।

उपरोक्त निम्नश्रेणीकी वस्तुओंके अलावा बांससे मनुष्यजातिके एक और उपकार होता है। वह ... समाजकी ज्ञानोन्नतिको सौकर्यसाधक लिपिविद्याके ... कागजके सिवा और कुछ भी नहीं है। मानवजाति प्रयोजन या मनमानी लिखनेके लिये ... हुआ है। इस बांसकाष्ठसे एक दूसरे प्रकारका तैयार होता है। वह कागज अपेक्षाकृत दृढ़ होनेके कारण लिखनेमें उसका व्यवहार नहीं होता। इसलिये ... अधिक प्रचलन देखा जाता है।

Indian Forester नामक पत्रिकाके एक भागमें भी ... देशीय बांससे कागज बनानेकी कथा की गई है। यह ... सत्य है, कि सभी लोग आसानीसे इस प्रकारका ...

[सम्प]न्न कर कार्य कर सकते हैं। बांसकी पत्तियां और गांठ [क]ो अच्छी तरह काट कर फेंक दे। पीछे उन बांसोंके तीन [च]ार फुट लम्बे टुकड़े कर एक साथ बांध जलमें डुबो रखे। [त]ालाव या चहबच्चेमें डुबोते समय उसकी एक पीठ पर [क]ाफी नमक छिड़क दे। इस प्रकार ऊपर और नीचे बार [ब]ार नमक छिड़क कर धीरे धीरे जल ढालना होता है। [ज]ब जल उसमें तमाम फैल जाय तब जल देना बन्द कर [दे]। इस प्रकार चूर्ण-मिश्रित जलमें ३।४ मास निमज्जित [र]हनेसे यह बांसका पुलिंदा सड़ जाता है। पीछे उसे [ढें]की या ऊखलमें कूट कर चूर्ण करे। अनन्तर उस चूर्ण-[क]ो अच्छी तरह साफ कर फिरसे उसको परिष्कृत जलमें [घु]ला देना होता है। कागजके आयतन या लम्बाई, चौड़ाई [औ]र मोटाईके अनुसार ही परिष्कार जल मिलानेका [नि]यम है। इसके बाद उस जल मिश्रित वंशचूर्णके मांड़-[क]ो चौकोन छननी आकारके सांचेमें ढाल कर यथारीति [क]ागज बनाया जाता है। कागजके अनुरूप सांचेमें वह [मां]ड़ समानभावमें फैल कर कागजका आकार धारण [क]ो करता है, पर उस समय भी वह गीला रहता है। उस [ग]ीले कागजको सुखा लेना आवश्यक है। सांचेसे गीले [क]ागजको निकाल कर पहले एक गरम दीवारमें उसे [सु]खा लेना होता है। इसी प्रकार बांसके कोपलको फिट-[क]री-मिश्रित जलमें सड़ा कर बनानेसे उमदा कागज [ब]न सकता है। वंशयष्टिका हरिद्वर्ण नाश कर जो कागज [ब]नाया जाता है वह मध्यम और वंशचूर्णका बनाया [हु]आ कागज निकृष्ट समझा जाता है। एक पक्का कारीगर [प्र]ति मिनिटमें इस प्रकारके छः कागज बना सकता है।

अमेरिका और यूरोपवासी कागज व्यवसायियोंने [व]ेष्ट इण्डिज द्वीपपुञ्जसे हजारों टन 'बांसके रेशे' (Bam-[b]oo fibre) ला कर उत्कृष्ट कागज बनाया है। फ्रेञ्जिल-[व]ासी वैज्ञानिकगण इसके बारीक रेशोंको रेशम या पशम-[मे]ं मिला कर कपड़े बुनते हैं। Mr. Routledgeने भारत-[व]र्षमें बांसके रेशेसे कागज बनानेकी व्यवस्था प्रतिपादन [क]ी। किन्तु कच्चे कोपलको छोड़ कर दूसरे परिपक्व [ब]ांसमें उसकी उपयोगिता कम और खर्च अधिक देख [उ]क्त प्रस्ताव मंजूर नहीं किया गया।

ऊपरमें बांसके सामान्य भेषज गुण लिखे जा चुके हैं। वैद्यकके मतसे यह बांस दो प्रकारका है—सामान्य और रन्ध्रवंश। राजनिघण्टुके मतसे इन दोनों प्रकारके वंश-गुण कषाय, कुछ तिक्त, शीतल, मूत्रकृच्छ्र, प्रमेह, अर्श, पित्तदाह और अस्रनाशकारी तथा अम्लकर हैं। रन्ध्रवंश-में विशेष गुण यह है, कि यह दीपन अजीर्णनाशक, रुच्य, पाचन, हृद्य और शूलघ्न होता है।

वंशांकुर या कोंपलका गुण—कटु, तिक्त, अम्ल, कषाय, शीतल, पित्तरक्तदाहकृच्छ्रघ्न और रुचिकर।

भावप्रकाशके मतसे इसका गुण—सारक, शतवीर्य, मधुर और कषायरस, वस्तिशोधक, छेदन तथा कफ, पित्त, कुष्ठ, व्रण और शोथनाशक, बांसका कोंपल—कटु, कषाय, मधुररस, कटु विपाक, रूक्ष, गुरु, सारक, विदाही तथा कफ, वायु और पित्तवर्द्धक; वेणुफल—सारक, रूक्ष, कषायरस, कटु, विपाक, वायु और पित्त-वर्द्धक, उष्णवीर्य, मूत्ररोधक और कफनाशक।

नल, शर आदि तृणविशेषको भी वैज्ञानिक मीमांसामें वंश जातिका कहा है। प्राचीन वैद्यकशास्त्रमें भी इस-को तृणजातिमें शामिल किया है। नल और शर देखो।

बांसके पत्ते और कच्चे कोंपलको सिद्ध कर उसका काढ़ा सेवन करानेसे स्त्रियोंके रजोनिर्गम होता है। भारतवर्ष और चीनराज्यमें प्रसवके बाद प्रसूतिको यह काढ़ा पिलाया जाता है। इससे अच्छी तरह रक्तस्राव हो कर जरायु परिष्कार होता है।

वंशऋषि (सं० पु०) वे ऋषि जिनके नाम वंश-ब्राह्मणमें आये हैं।

वंशक (सं० क्ली०) वंश इव कायतीति कै-कः। १ अगुरु, अगर नामक गंधद्रव्य। वंश इव प्रतिकृतिः (इवे प्रति-कृतौ। पा ५।३।९६) इति कन्। २ मत्स्यविशेष, एक प्रकारकी मछली। ३ इक्षुभेद, एक प्रकारका गन्ना या ईख। वैद्यकमें इसे शीतल, मधुर, स्निग्ध, पुष्टिकारक, सारक, वृष्य और कफनाशक लिखा है। इसके रसका स्वाद कुछ खारीपन लिये और भारी होता है। ४ क्षुद्र, वंश छोटी जातिका बांस।

वंशकाष्ठ (सं० क्ली०) कृष्णागुरुकाष्ठ, काले अगरकी लकड़ी।

वंशकठिन (सं० पु०) वंशा वेणवः कठिना यस्मिन्देशे स वंशकठिनः। बांस वन, बांसका जंगल।

का निर्णय किया जाता है, बांसकी गांठ देख कर उस प्रकार समयका पता नहीं लगाया जा सकता। उसका पुष्पोद्गम या बीजाधान देख कर लोग उसकी अवस्थाका निर्णय करते हैं। मध्यभारतकी पहाड़ी प्रदेशवासी जातियां पहाड़ी बांसका बीजाधान देख कर अपनी उमर तककी गणना करती हैं। जो व्यक्ति बांसका दो "काटङ्ग" अर्थात् दो बार बीजाधान देखता है, उसकी उमर ६० वर्षसे कम नहीं होती।

साधारणतः २५ से ३५ वर्षके भीतर बांसमें फूल निकलते हैं। अनेक समय ४४ वर्षके बाद फूल निकलते देखे गये हैं। कभी कभी बांसके बीजसे चावल पाया जाता है। यह चावल बहुतेरे लोग खाते हैं। बहुतोंका विश्वास है, कि अकालके समय बांसमें अधिकतासे चावल उत्पन्न होता है, किन्तु यह सत्य प्रतीत नहीं होता। १८३६ ई०के Trans. Agri Horti. Soc. of India, Vol. III p. 139-13 ग्रन्थमें लिखा है, कि उस समय कई जगह बांसोंमें चावल तो देखा गया था, पर दुर्भिक्ष कहीं भी न था। खेतोंमें भी काफी फसल लगी थी। उस समय खेतका चावल रुपयेमें १६ सेर और बांसका चावल २० सेर मिलता था। प्रत्येक बांसमें ४से २० सेर तक चावल पाया जाता है। जो बांस जितने ही विच्छिन्न भावमें और जितनी उर्वर भूमिमें रहता है उसमें उतना ही अधिक चावल मिलता है। चावल निकलनेके बाद बांस आप ही आप सूखने लगता है। किन्तु उसकी जड़से पुनः कोंपल निकलता है। कभी कभी बीजसे भी वृक्ष उत्पन्न होता है।

पहले ही लिखा जा चुका है, कि मनुष्य बांसका कोंपल तरकारी बना कर अथवा उसका अचार बना कर खाते हैं। गाय आदि जन्तु बड़े चावसे बांसकी पत्ती खाते हैं। गायके पसो रोगमें बांसकी पत्ती बहुत उपकारी है। १८१२ ई०के उड़ीसा-दुर्भिक्षमें लाखों आदमीने बांसका चावल खा कर अपने प्राण बचाये थे। १८६५ ई०की महामारीमें धारवाड़ और बेलगाम जिलावासी प्रायः ५० हजार आदमियोंने कनाड़ामें आ कर बांसके तण्डुलसे जीवन धारण किये थे। १८६६ ई०को मालदह जिलेमें रुपयेमें १३ सेर बांसका चावल मिलता था। उस समय खेतके चावलकी दर रुपयेमें १० सेर थी। दुर्भिक्षके मारे यहांके लोग बांसका ही चावल खा कर रहते थे, किन्तु चावल सुखकर नहीं था। Dr. Bidie का कहना है, कि उससे अजीर्ण और उदरामय रोग उत्पन्न होता है।

बांसके भीतर कभी कभी जल रहता है। यह बहुत ठंढा होता है। वायुरोगग्रस्त व्यक्तिको यह जल पिलानेसे बहुत लाभ पहुंचता है। बांसकी उपकारिताके सम्बन्धमें खनाका जो वचन प्रचलित है उसका भावार्थ इस प्रकार है, पूर्वदिशामें कुमुदकह्लार-परिशोभित हंसविराजित पुष्करिणी तथा पश्चिममें ... ... गृहवाटिका गृहस्थोंके लिये विशेष मङ्गलप्रद है।

बांससे जितने प्रकारकी चीजें बनती हैं, उसका उल्लेख पहले किया जा चुका है। इसके सिवा बांससे अनेक वाद्ययन्त्र बनते हैं। श्रीकृष्णकी मोहन बांसुरी तथा प्रसिद्ध गायक तानसेनका सहनाई नामक वाद्ययन्त्र वेणु नामक बांसका ही बना हुआ था। आज कल भी तरह तरहके बांससे विभिन्न प्रकारकी बांसुरी बनाई जाती है। इसके तार कच्चे बांसके रेशेके होते हैं। मलयवासी औंक्लोङ्ग नामक वाद्ययन्त्र आवश्यकतानुसार छोटे या बड़े एक एक गांठदार बांसके चोंगेसे बनाये जाते हैं। यह जलतरंगकी तरह बजाया जाता है। उसमें सुरका भी तारतम्य साफ साफ मालूम होता है। गोपीयन्त्र, सितार और एक तारा आदि यन्त्रोंका पृष्ठदण्ड भी बांसका बनाया जाता है।

उपरोक्त नित्यव्यवहार्य वस्तुओंके अलावा वंशदण्डसे मनुष्यजगत्‌में एक और सदुपकार होता है। वह मनुष्यसमाजकी ज्ञानोन्नतिकी सौकर्यसाधक लिपिविद्याके एक अङ्गके सिवा और कुछ भी नहीं है। मानवजातिका मनोभाव या ग्रन्थादि लिखनेके लिये कागजका आविष्कार हुआ है। इस वंशदण्डसे एक दूसरे प्रकारका तैयार होता है। यह कागज अपेक्षाकृत दृढ़ होनेके कारण लिपिकार्यमें उतना व्यवहृत नहीं होता। द्रव्यादिको रखनेमें उसका अधिक प्रचलन देखा जाता है।

Indian forester नामक पत्रिकाके ४र्थ भागमें चीनदेशीय बांसका कागज बनानेकी प्रथा दी गई है। वह इतना सहज है, कि सभी लोग आसानीसे उस प्रकारका अव-

लम्बन कर कार्य कर सकते हैं। बांसकी पत्तियां और गांठ को अच्छी तरह काट कर फेंक दे। पीछे उन बांसोंके तीन चार फुट लम्बे टुकड़े कर एक साथ बांध जलमें डुबो रखे। तालाव या चहबच्चेमें डुबोते समय उसकी एक पीठ पर काफी नमक छिड़क दे। इस प्रकार ऊपर और नीचे वार वार नमक छिड़क कर धीरे धीरे जल ढालना होता है। जब जल उसमें तमाम फैल जाय तब जल देना बन्द कर दे। इस प्रकार चूर्ण-मिश्रित जलमें ३।४ मास निमज्जित रहनेसे यह बांसका पुलिन्दा सड़ जाता है। पीछे उसे ढेंकी वा ऊखलमें कूट कर चूर्ण करे। अनन्तर उस चूर्ण-को अच्छी तरह साफ कर फिरसे उसको परिष्कृत जलमें डुबा देना होता है। कागजके आयतन या लम्बाई, चौड़ाई और मोटाईके अनुसार ही परिष्कार जल मिलानेका नियम है। इसके बाद उस जल मिश्रित वंशचूर्णके मांड़-को चौकोन छलनी आकारके सांचेमें ढाल कर यथारीति कागज बनाया जाता है। कागजके अनुरूप सांचेमें वह मांड़ समानभावमें फैल कर कागजका आकार धारण तो करता है, पर उस समय भी वह गीला रहता है। उस गीले कागजको सुखा लेना आवश्यक है। सांचेसे गीले कागजको निकाल कर पहले एक गरम दीवारमें उसे सुखा लेना होता है। इसी प्रकार बांसके कोंपलको फिट करी-मिश्रित जलमें सड़ा कर बनानेसे उमदा कागज बन सकता है। वंशयष्टिका हरिद्वर्ण नाश कर जो कागज बनाया जाता है वह मध्यम और वंशचूर्णका बनाया हुआ कागज निकृष्ट समझा जाता है। एक पक्का कारीगर प्रति मिनिटमें इस प्रकारके छः कागज बना सकता है।

अमेरिका और यूरोपवासी कागज-व्यवसायियोंने वेष्ट इण्डिज द्वीपपुञ्जसे हजारों टन 'बांसके रेशे' (Bamboo fibre) ला कर उत्कृष्ट कागज बनाया है। अंग्रेज-वासी वैज्ञानिकगण इसके बारीक रेशोंको रेशम या पशम-में मिला कर कपड़े बुनते हैं। Mr. Routledgeने भारत-वर्षमें बांसके रेशेसे कागज बनानेकी व्यवस्था प्रतिपादन की। किन्तु कच्चे कोंपलको छोड़ कर दूसरे परिपक्व बांसमें उसकी उपयोगिता कम और खर्च अधिक देख उक्त प्रस्ताव मंजूर नहीं किया गया।

ऊपरमें बांसके सामान्य भेषज गुण लिखे जा चुके हैं। वैद्यकके मतसे यह बांस दो प्रकारका है—सामान्य और रन्ध्रवंश। राजनिघण्टुके मतसे इन दोनों प्रकारके वंश-गुण कषाय, कुछ तिक्त, शीतल, मूत्रकृच्छ्र, प्रमेह, अर्श, पित्तदाह और अस्रनाशकारी तथा अम्लकर हैं। रन्ध्रवंश-में विशेष गुण यह है, कि यह दीपन अजीर्णनाशक, रुच्य, पाचन, हृद्य और शूलघ्न होता है।

वंशांकुर या कोंपलका गुण—कटु, तिक्त, अम्ल, कषाय, शीतल, पित्तरक्तदाहकृच्छ्रघ्न और रुचिकर।

भावप्रकाशके मतसे इसका गुण—सारक, शतवीर्य, मधुर और कषायरस, वस्तिशोधक, छेदन तथा कफ, पित्त, कुष्ठ, व्रण और शोथनाशक, बांसका कोंपल—कटु, कषाय, मधुररस, कटु विपाक, रूक्ष, गुरु, सारक, विदाही तथा कफ, वायु और पित्तवर्द्धक; वेणुफल—सारक, रूक्ष, कषायरस, कटु विपाक, वायु और पित्त-वर्द्धक, उष्णवीर्य, मूत्ररोधक और कफनाशक।

नल, शर आदि तृणविशेषको भी वैज्ञानिक मीमांसामें वंश जातिका कहा है। प्राचीन वैद्यकशास्त्रमें भी इस-को तृणजातिमें शामिल किया है। नल और शर देखो।

बांसके पत्ते और कच्चे कोंपलको सिद्ध कर उसका काढ़ा सेवन करानेसे स्त्रियोंके रजोनिर्गम होता है। भारतवर्ष और चीनराज्यमें प्रसवके बाद प्रसूतिको यह काढ़ा पिलाया जाता है। इससे अच्छी तरह रक्तस्राव हो कर जरायु परिष्कार होता है।

वंशऋषि (सं० पु०) वे ऋषि जिनके नाम वंश-ब्राह्मणमें आये हैं।

वंशक (सं० क्ली०) वंश इव कायतीति कै-कः। १ अगुरु, अगर नामक गंधद्रव्य। वंश इव प्रतिकृतिः (इवे प्रति-कृतौ। पा ५।३।९६) इति कन्। २ मत्स्यविशेष, एक प्रकारकी मछली। ३ इक्षुभेद, एक प्रकारका गन्ना या ईख। वैद्यकमें इसे शीतल, मधुर, स्निग्ध, पुष्टिकारक, सारक, वृष्य और कफनाशक लिखा है। इसके रसका स्वाद कुछ खारापन लिये और भारी होता है। ४ क्षुद्र, वंश छोटी जातिका बांस।

वंशकाष्ठ (सं० क्ली०) कृष्णगुरुकाष्ठ, काले अगरकी लकड़ी।

वंशकठिन (सं० पु०) वंशा वेणवः कठिना यस्मिन्देशे स वंशकठिनः। वांश वन, बांसका जंगल।

वंशधारा (सं० स्त्री०) १ महेन्द्रपादनिःसृत एक नदी। यह मध्यप्रदेशके कालहस्ती जिलेका लोखोगढ़ जमींदारीसे निकली है तथा अक्षा० १६°५५´ उ० तथा देशा० ८३° ३२´ पू० तक विस्तृत है। यह दक्षिणपूर्वाभिमुख विशाखपत्तन जिलेके बीच होती हुई किमेड़ी विभागके वट्टिली नगरके समीप गंजाम जिलेमें घुस गई है। वहांसे पुनः दक्षिण-पूर्व गतिसे बहती हुई कलिङ्गपत्तनके पास बङ्गोपसागरमें मिल गई है। यह नदी १७० मील तक विस्तृत है। उसके प्रायः अर्द्धांशमें नौका द्वारा पण्यद्रव्य ले आया जाता है।

२ कुलपद्धति। ३ वंशवल्ली।

वंशधारिन् (सं० त्रि०) वंशं धरतीति धृ-णिनि। वंश-रक्षाकारी, वंशधर।

वंशनर्त्तिन् (सं० पु०) गृहनर्त्तक, भाँड़।
(शुक्लयजुः ३०।२१)

वंशनाड़िका (सं० स्त्री०) वंश एव नाड़िका यत्र। १ वंशनाली, वह नल जो बाँसका बना हो। २ बाँसुरी।

वंशनाथ (सं० पु०) वंशके प्रधान या प्रसिद्ध व्यक्ति।
(रमा० ४।२६।२६)

वंशनालिका (सं० स्त्री०) वंशनालोऽस्त्यस्यां इति वंशनाल-ठन्-टाप्। वंशी, बाँसुरी।

वंशनाश (सं० क्ली०) वंशस्य नाशः क्षयः, वंश-नाश-घञ्। १ वंशका लोप। २ फलितज्योतिषके अनुसार एक योग। ग्रहोंके जिस समावेशभेदसे मनुष्यकी मृत्यु होती है उसे वंशनाशयोग कहते हैं। यदि जन्मकालमें रवि, शनि और राहु एक घरमें रहे, तो उस मनुष्यका वंशनाश होता है।

वंशनेत (सं० क्ली०) वंशस्येव नेत्राण्यस्य। इक्षुमूल, ईखके अंकुरवाले डंठल जिन्हें जमीनमें गाड़नेसे ईखका नया पौधा उत्पन्न होता है। इसे आँख भी कहते हैं।

वंशपत्र (सं० पु०) वंशस्य पत्राणीव पत्राण्यस्य। १ नल। वंशस्य पत्रम्। (क्ली०) २ वंशदल, बाँसका पत्ता। ३ हरितालभेद, एक प्रकारकी हरताल जो सबसे श्रेष्ठ समझी जाती है। रसेन्द्रसारसंग्रहमें इसके शोधने-की प्रणाली यों लिखी है,—वंशपत्राख्य नामक हरताल, कुम्हड़े और चूनेके जलमें तीन बार या सात बार निक्षेप कर शोधन कर ले। पीछे यह शोधित तालक तण्डुलके आकारमें चूर्ण कर शरावमें रख कर जलावे। अन्तमें बर-तन ठंढा होने पर माणिक्याभ-रस उठा ले। इसकी विभिन्न शोधनप्रणाली, गुण और अपरापर विषय हरि-ताल शब्दमें लिखे हैं।

४ एक छन्दका नाम। साधारणतः वंशपत्रपतित छन्द कहलाता है।

वंशपत्रक (सं० क्ली०) वंशपत्रमिव स्वार्थे कन्। १ हरिताल, हरताल। (पु०) वंशस्य पत्रमिवाकृतिरस्येति स्वार्थे कन्। २ क्षुद्र मत्स्यविशेष, एक प्रकारकी छोटी मछली। ३ नल। ४ श्वेतवर्ण इक्षुभेद, एक प्रकारकी ईख जो सफेद होती है। (राजनि०)

वंशपत्रपतित (सं० क्ली०) एक छन्दका नाम। इसका पहला, चौथा, छठा, दशवां और सत्तरहवां वर्ण गुरु तथा बाकी लघु होता है कोई कोई इसको वंशपत्रपतित छन्द कहते हैं। पण्डित शम्भूके मतसे इसका दूसरा नाम वंशदल है। (छन्दोमञ्जरी)

वंशपत्रिका (सं० स्त्री०) १ वेणुदल, बांसका पत्ता। २ वंशपत्राकार तृण, वह घास जो बांसके पत्ते सी होती है। वंशपत्री देखो।

वंशपत्री (सं० स्त्री०) वंशपत्रगौरादित्वात् ङीष्। १ एक प्रकारकी हींग। २ तृणविशेष, एक घास जिसे बांसा कहते हैं। पर्याय—वंशदला, जीरिका, जीर्णपत्रिका। इसकी पत्तियां बांसकी पत्तियोंसे मिलती हैं। वैद्यकमें यह शीतल, मधुर, रुचिकारी तथा रक्तपित्तके दोषोंको शान्त करनेवाली कही गई है। भावप्रकाशमें लिखा है, कि वंश-पत्रीके वेणुपत्री, पिण्डा, हिंगु और शिराटिका ये सब पर्यायक शब्द हैं। वंशपत्री हिंगुपत्रीके समान गुण-कारी है अर्थात् यह रुचिकारक, तीक्ष्ण, उष्णवीर्य, पाचक, कटुरस तथा हृद्रोग, वस्तिगत दोष, विबन्ध, अर्श, कफ, गुल्म और वायुनाशक मानी गई है। (भाव० पू० १ भाग)

वंशपरम्परा (सं० स्त्री०) सन्तान-सन्ततिक्रम, पुत्र-पौत्रा-दिक्रम।

वंशपात—सह्याद्रिवर्णित राजभेद। (सह्या० ३३।१०६)

वंशपातकारिणी (सं० स्त्री०) वह स्त्री जो बाँसकी टोकरी आदि बनाती है।

वंशपाल—शिलालिपिवर्णित एक राजा।

वंशपीत (सं० पु०) वंशः वंशपत्रमिव पीतः। गुग्गुलु, गुग्गुल।

वंशपुष्पा (सं० स्त्री०) वंशस्य पुष्पाणीव पुष्पाणि यस्याः। सहदेवी लता।

वंशपूरक (सं० क्ली०) वंशस्येव पूरकमस्य। इक्षुमूल, ईखकी आँख या अंकुर।

वंशप्रतिष्ठानकर (सं० पु०) वंशख्याति या प्रतिपत्ति-विस्तारकारी, वह जो वंशकी उन्नति करता हो।

वंशबीज (सं० क्ली०) वंशस्य बीजं। वेणुयव, बाँसका चावल।

वंशब्राह्मण (सं० क्ली०) १ वैदिक आचार्यपरम्पराभेद। २ सामवेदके ब्राह्मणोंमें एक प्रधान ब्राह्मण जिसमें सामवेदी ब्राह्मणोंके वंशकार ऋषियोंकी नामावली है।

वंशभार (सं० पु०) बाँसका भार या बोझा।

वंशभृत् (सं० पु०) १ वह जो वंशका भरण पोषण करता हो। २ वंशका प्रधान व्यक्ति।

वंशभोज्य (सं० त्रि०) १ वंशका उपभोग्य। २ वंशानुक्रम प्राप्त। (क्ली०) ३ पैतृक राज्य। (भारत वनपर्व)

वंशमय (सं० त्रि०) वंश स्वार्थे मयट्। वंशनिर्मित, बाँसका बना हुआ।

वंशमर्यादा (सं० स्त्री०) वंशस्य मर्यादा। १ वंशपरम्परा प्राप्त गौरव, कुलक्रमागत मर्यादा। २ राजदत्त उपाधि या खिताब।

वंशमूलक (सं० क्ली०) महाभारतके अनुसार एक तीर्थ। इस तीर्थमें स्नान करनेसे अशेष पुण्य संचय होता है। (भारत वनपर्व)

वंशयव (सं० पु०) वेणुयव, बाँसका चावल।

वंशराज (सं० पु०) वंशानां राजा इति राजादसन्निभ-टच्। १ सबसे बढ़िया या सबसे बड़ा बाँस। २ रामभेद। (कविकल्पलता)

वंशरोचना (सं० स्त्री०) रोचते इति, रुच नन्द्यादित्वात् ल्युः, टाप्, वंशस्य रोचना। स्वनामख्यात वंशपर्व मध्यस्थित श्वेतवर्ण औषधविशेष, वंसलोचन। पर्याय—त्वक्क्षीर, वंशलोचना, शुभ्रावती, शुभा, क्षीरी, वंशजा, त्वक्क्षीरिका, शुभ्रा, त्वक्क्षीरी, शुभ्रा, वंशक्षीरी, वैणवी, त्वक्सार, कर्मारी, त्वचा, वंशकर्पूररोचना, तुङ्गा, रोचनिका, पिङ्गा, वंशशर्करा, वेणुलवण। इसका गुण—रूक्ष, कषाय, मधुर, हिम, श्वासकासघ्न, तापनाशक, रक्तशुद्धिकारक और पित्तोद्रेक प्रशमनकारी। (राजनि०)

भावप्रकाशके मतसे इसकी गुणावली वंशजा शब्दमें लिखी गई है। वंशजा और वंशलोचन देखो।

वंशलक्ष्मी (सं० स्त्री०) कुललक्ष्मी।

वंशलोचन (सं० पु०) वंशलोचना देखो।

वंशलोचना (सं० स्त्री०) वंशरोचना रस्य लत्वम्। बाँसके पर्वके बीच नीलाभ श्वेतवर्ण पदार्थविशेष। चलित भाषामें इसका नाम वंसलोचन है। अंगरेजीमें इसे Bamboo Manna कहते हैं। यह पदार्थ प्रधानतः वेदुर बाँस या नल बाँससे (Bambusa arundinacea) उत्पन्न होता है। भारतके विभिन्न स्थानोंमें यह औषध 'तबाशीर' कहलाती है।

भिन्न भिन्न देशोंमें यह भिन्न भिन्न नामसे परिचित है। हिन्दी—वंसलोचन, वंसकपूर; बंगला—बांसकपूर, वंशलोचन; आसाम—सुलोटिया; अरब और पारस्य—तबाशीर; मराठी—वंशलोचन, वनगोंडा; गुजराती—वांसकपूर, वांस-नु-मीठा; तामिल—मुङ्गलुप्पु; तेलगू—वेदरुप्पु, तवक्षीरि; मलयालम्—मीलिउप्प; कनाड़ी—विदरुप्पु, तवक्षीर; सिंगापुर—उणा, लुणु, उणाका-कपूर; ब्रह्म—वा-छा; पारेना—किथी पाठे-गसा, वसन; संस्कृत—वंशरोचना शब्दमें दिया गया है।

बाजारमें यह द्रव्य साधारणतः दो प्रकारका देखा जाता है—(१) कबूदी या नीलाभ तथा (२) सफेद या श्वेतवर्ण। प्राचीन वैद्यकमें इसका केवल गुण लिखा है—

केवल भारतवासी ही नहीं, सुदूर अरब और रोमवासी यवन लोग भी बहुत प्राचीनकालसे इस वंशज द्रव्यके गुणसे जानकार थे। डायस्कोराइडस, प्लिनि, गालन आर्मियन, एवेरुस फी, प्लेटे, डायोस्कर आदि मनीषिगण इस महामूल्य द्रव्यका उल्लेख कर गये हैं। प्लिनिके Saccharon et Arabia fert sed elaudatius India Est autem mel in arun linibus collectum आदि

पढ़नेसे निःसन्देह तवाशीरकी बात याद आ जाती है। सालमासियस् आदि तर्क द्वारा उसे ईखकी शर्करा मानते हैं, किन्तु हम्बोल्ट उसकी मीमांसा कर कहते हैं, कि अरबी या पारसी तवाशीर शब्दसे शर्करा नहीं समझी जाती, वह संस्कृत त्वक्क्षीरा (Bark milk) शब्दका अपभ्रंशमात्र है।

हिन्दू आयुर्वेदमें और मुसलमानोंके हकीमी शास्त्रमें तवाशीरका बहुत प्रयोग देखा जाता है। यह शीतल, बलकर, कामोद्दीपक और श्वासकासनिवारक, अन्यान्य औषधके साथ हृद्रोगमें प्रयुक्त होता है। अजीर्ण, आमाशय तथा उदराध्मान आदि रोगोंमें यह शीघ्र ही फायदा पहुंचाता है। यह पिपासानिवारक और कफनिःसारक है। विषम ज्वरमें पिपासा अत्यन्त बलवती होने पर वंशलोचनका एक चूर्णक प्रस्तुत कर प्रयोग करनेसे भारी उपकार होता है। ८ भाग वंशलोचन, १६ भाग पीपल, ४ भाग इलायची और १ भाग दारचीनी एकत्र चूर्ण कर घी अथवा मधुके साथ अवलेह तैयार कर सेवन करावे। चूर्णकी मात्रा १से ले कर २ स्क्रुपल तक है। कफनिःसारणके लिये ५से ले कर २० ग्रेन तक वंशलोचन प्रयोग किया जा सकता है।

बांसमें यह महदुपकारी पदार्थ कैसे उत्पन्न होता है, यह आज भी ठीक निर्द्धारित नहीं हुआ है। हम लोगोंके देशमें कहते हैं, कि बांसमें स्वाती नक्षत्रका जल पड़नेसे वंशलोचन उत्पन्न होता है। उद्भिद्विदोंकी धारणा है, कि बांसका स्वभावजातरस अर्थात् गांठ या पोरके बीच जलाकार तरल पदार्थ (Natural sap) विकृत हो कर यह महामूल्य पदार्थ उत्पादन करता है। बांसकी कच्ची और कोपलमें अधिक रस रहता है। उसमें एक प्रकारकी मीठी गंध पाई जाती है। यह रस परिपक्व हो कर क्रमशः तवाशीरमें परिणत हो जाता है। अफीम विभागीय अङ्गरेज-राजकर्मचारी Mr. Peppe का कहना है—"मैंने एक देशी वणिक्‌को तवाशीर उत्पन्न करते देखा है। विशेष परीक्षासे उसको मालूम हो गया था कि बांसमें छेद करनेवाला एक प्रकारका कीड़ा रहनेसे बांसकी गांठमेंका रस नमकीन हो कर रासायनिक संयोगसे भिन्न आकारका हो जाता है। उसने एक गाछसे ऐसे कितने कीड़े ला कर आधे पके अन्य बहुतसे पेड़ों पर छोड़ दिये। इससे भी उसको वंशलवण मिल गया था। बार बार ऐसी चेष्टा कर वह सिद्धमनोरथ हुआ था। उससे मुझे भी काफी रुपये मिल गये थे।" फिर कोई कोई कहते हैं, कि बांसकी गांठके भीतर जो स्वाभाविक रससंचारहेतु सिलिका मिश्रित एक और प्रकारका पदार्थ (Silicious Concretion of an opaline nature) उत्पन्न होता है, वही तवाशीर कहलाता है। किन्तु यथार्थमें किस किस धातुके रासायनिक संयोगसे उसकी उत्पत्ति हुई है परीक्षा किये बिना उसका पता नहीं लग सकता।

ग्लासगो नगरके रसायनके अध्यापक टी, टमसनको विश्लेषण द्वारा मालूम हुआ है, कि इसके एक सौ भागमें ९०·५० अंश सिलिका, १·१० पटाश, ०·९०, पेरक्साइड आव आयरन ०·४०, आलुमिनिया ४·८७ जल तथा नाश—२·२३ अंश है। वंशलोचनके अलावा बांसका अपरापर अंश भी दवाके काममें आता है। बांसके कोपल अथवा अग्रभागके आवरकके भीतर रेशेकी तरह जो बारीक पदार्थ रहता है वह विषैला होता है। वह रेशा खाद्यादिमें मिला कर सेवन कराया जा सकता है। सेवनके बाद मनुष्यके शरीरमें विष अपना प्रभाव दिखलाता है। कुछ महीनेके बाद वह व्यक्ति करालकालका शिकार बन जाता है।

वंशवर्द्धन (सं० त्रि०) वंशं ■ शमानं वर्द्धहति वंश-वृध-ल्युट्। १ वंशाभिमानरक्षाकारी, वंशका गौरव बढ़ानेवाला। (पु०) २ सह्याद्रिवर्णित एक राजाका नाम। (सह्या० ३३।६५)

वंशवर्त्तिन् (सं० त्रि०) वंशे वर्त्तयतीति वंश-वृत-णिनि। १ वंशकी मर्य्यादा रखनेवाला। (स्त्री०) २ वंशलोचना, वंसलोचन।

वंशवाटी—हुगली जिलान्तर्गत एक प्राचीन नगर। यह अक्षा० २२° ५७´ उ० तथा देशा० ८८° २६´ पू०के मध्य भागीरथीके किनारे अवस्थित है। जनसंख्या ८०००से ऊपर है।

मुगल सम्राट् शाहजहांके जमानेमें बांसबाड़िया-राजवंशके पूर्वपुरुष राघव रायने इस नगरको बसाया। बांस-

बाड़िया-राजवंशके साथ इस नगरका इतिहास मिला हुआ है, इस कारण नीचे केवल उस राजवंशका थोड़ा परिचय दिया जाता है।

यहांके राजवंशके पूर्वपुरुष देवदत्त बङ्गदेशके राजा आदिशूरके समसामयिक थे। मुर्शिदाबाद जिलेके दत्त-वाटी नामक ग्राममें इन लोगोंका आदिनिवास है। दत्त-वंशीय जमींदारके राजमहल रहनेसे इस ग्रामका वंशवाटी नाम पड़ा है। देवदत्तसे चौदह पीढ़ी नीचे द्वारकानाथ दत्त दत्तवाटीका परित्याग कर सप्तग्राममें रहने लगे। पीछे उनके पौत्र उदयदत्तने भागीरथी तीरस्थ पाटुली नामक स्थानमें नगर बसाया।

द्वारकानाथके पौत्र सहस्राक्षदत्तने ९८० बंगला साल (१५७३ ई०) में मुगल बादशाह अकबरसे एक फरमान प्राप्त किया। उससे उन्हें 'जमींदार'-की उपाधि मिली थी। सहस्राक्षको जागीरस्वरूप फतसलपुर परगना मिला। सहस्राक्षके पुत्र उदय दत्तको बादशाह अकबरने वंशानुक्रमसे 'सआपमिराय'-की उपाधि दी थी। १६२८ ई०में उदयके ज्येष्ठ पुत्र जयानन्दने सम्राट् शाहजहानसे 'मजुमदार' की उपाधि और कोटपकतिपार-पुर परगना जागीरमें प्राप्त किया। जयानन्द राय मजुम-दारके बड़े लड़के राघवको बादशाहने १२ रवि १०६६ हिजरी सन (१६४६ ई०) में 'मजुमदार' और 'चौधरी'-की उपाधि दी। उस समय बङ्गदेशमें चार मजुमदार थे उनमेंसे राघव एक थे। इस उपाधिके साथ राघवने निम्नलिखित २१ परगनोंकी जमींदारी और बहुत-सी निष्कर भूमि उपहारमें दी थी—आर्सा, हलदा, मामदानि-पुर, पांजनौर, पोटो, अहानाबाद, शाइस्तानगर, जाहा-नगर, रायपुर, कोतवाली, पाउनान, सोलतानपुर, बकस बन्दर, पारशान, कमीराबाद, जङ्गोपुर, मारहाटी, हावली शहर, मुजफ्फरपुर, हातिकान्दी, सेलिपुर आदि। उक्त सम्मानित शासन करनेके लिये राघवने पाटुलीमें एक महल बनवाया। नदीगर्भमें पाटुलीग्राम लीन हो जानेकी आशङ्कासे राघवके बड़े लड़के रामेश्वर वांसबेड़ियामें राजधानी उठा लाये। उस समय यह एक सामान्य ग्राम था। रामेश्वरने नाना स्थानोंसे ३६० घर ब्राह्मण पण्डित, कायस्थ, वैद्य और विविध जातीय हिन्दुओं-को तथा सौसे अधिक मुसलमान पठानोंको ला कर वांसबाड़ियामें बसाया था। काशीके पण्डित रामनाथ सार्वभौम उनके सभा-पण्डित हुए थे। उन्होंने इस ग्राममें ४१ टोल स्थापन कर तथा काशी और मिथिलासे अध्या-पक ला कर छात्रोंको स्मृति, श्रुति, वेदान्त, न्याय, साहित्य और अलङ्कारशास्त्र सिखानेका उपाय कर दिया था। टोलका कुल खर्च वे ही देते थे।

वर्गियोंके अत्याचारके भयसे राजा रामेश्वरने वांस-बाड़ियाका राजप्रासाद परिखा द्वारा सुरक्षित कर लिया। रामेश्वरके गड़से यह राजभवन 'गड़वाटी' नामसे प्रसिद्ध हुआ। उस परिखाकी परिधि प्रायः एक मील थी। धनु-र्बाण, ढाल, तलवार और बन्दूकके साथ पैदल सिपाही गड़का पहरा देते थे। आवश्यकतानुसार यहां कुछ कमान भी रखी जाती थी। वर्गी लोग जब त्रिवेणीको लूटने आये, तब यहांके कुछ लोगोंने गड़में घुस कर अपनी अपनी जान बचाई थी। यह संवाद पा कर वर्गियों-ने गड़वाटी पर घेरा डाला। राजा रामेश्वरके पुत्र राजा रघुदेवने दलबलसे सज्जित हो रात्रिकालमें युद्ध कर मर-हट्ठोंको पराहत किया और वहांसे मार भगाया। रघुदेवने पूर्व खाईका संस्कार कर उसके चारों ओर एक दूसरी खाई खुदवाई थी।

राजा रामेश्वर रायने १०वीं सफर १०७० हिजरीमें औरङ्गजेब बादशाहसे एक सनद पाई थी। इसमें उनको ज्येष्ठ पुत्र क्रमसे 'राजा महाशय' की उपाधि दी गई थी।

इस सनदके साथ बादशाहने उन्हें पञ्चपट्टा (पांच पोशाक) खिलअत तथा राजपदवीको सम्मानके साथ रक्षा करनेके लिये वांसबेड़िया ग्राममें ४०१ बीघा जमीन जागीर एवं कलकत्ता, पाण्डुआ, हातिपाड़ा, अकोमार-पुर, मेदनमल्ल, मागुरा, पानी, बलोड़, मामपुर, सुल्तान-पुर, कृष्णपुर और कौनिया नामक बारह परगनोंकी जमीं-दारी दी थी।

वांसबाड़ियाका वासुदेवमन्दिर भी राजा रामेश्वरका बनाया हुआ है। यह ईंटोंका बना है और इसके ऊपर तरह तरह कारीगरी दिखाई गई है।

१६०१ शकाब्द (१६७९ ई०) में यह मन्दिर प्रतिष्ठित हुआ है।

उस मन्दिरमें प्राचीन बंगला हरफमें निम्नलिखित श्लोक आज भी दिखाई देता है—

"महीव्योमाङ्गशीतांशुगणिते शकवत्सरे।
श्रीरामेश्वरदत्तेन निर्ममे विष्णुमन्दिरम्॥"

राजा रघुदेवको नवाब मुर्शिद कुली खांने 'शूद्रमणि'-की उपाधि दी थी। राजस्व उगाहनेमें मुर्शिद कुलीका कठोर नियम बंगला इतिहासमें प्रसिद्ध है। किन्तु मुर्शिदकी गुण-ग्राहिता भी सामान्य न थी। सुना जाता है, कि एक ब्राह्मण जमींदारके यहां बहुत बाकी पड़ गया था। इस कारण नवाबने उन्हें बैकुण्ठकुण्डमें फेंक देनेका हुक्म दिया। राजा रघुदेवको जब यह बात मालूम हुई, तब उन्होंने कुल देना चुकती कर ब्राह्मणको मुक्त कर दिया। रघुदेवकी इस उदारता पर मोहित हो नवाबने उन्हें 'शूद्रमणि'-की उपाधि दी थी। तभीसे उनका नाम "शूद्रमणि राजा रघुदेव राय महाशय" पड़ा।

सचमुच एक समय क्या राजकार्य, क्या समरकौशल, क्या दानधर्म, क्या नीतिनिपुणता, सभीमें पाटुलीके महाशय-वंश बङ्गालके गौरव थे। उदार अकबर, कुटिल औरङ्गजेब, जहांगीर और शाहजहां पाटुली-वंशकी मुक्त-कण्ठसे प्रशंसा कर गये हैं। मुर्शिद कुली और मुअज्जम आदिकी इस सात्त्विक हिन्दू कायस्थ-वंश पर अच्छी निगाह रहती थी। कुल-पञ्जिका तथा मुसलमान इतिहासमें पाटुली-वंशकी यथेष्ट प्रशंसा है। राजा रघुदेवके पुत्र राजा गोविन्ददेव बङ्गालके ब्राह्मणोंको एक लाख बीघा जमीन ब्रह्मोत्तर दी थी।

राजा गोविन्ददेवके पुत्र राजा नृसिंहदेव पिताके मरनेके तीन मास बाद ११४७ साल (१७४० ई०)-के पूस मासमें उत्पन्न हुए थे। उस समय बङ्गाल और बिहारके नवाब थे अलीवर्दी खां। वर्द्धमानके जमींदार-के पेशकार माणिकचन्द्रने अलीवर्दी खांको खबर दी, कि बांसबाड़ियाके राजा गोविन्ददेवकी निःसन्तानावस्थामें मृत्यु हो गई है। अलीवर्दी खांने गोविन्ददेवकी कुल जमींदारी वर्द्धमानके जमींदारको दे दी। पांच महीनेके लड़के नृसिंहदेव शत्रुके कौशलसे क्षण भरमें विपुल धनसे वञ्चित हुए। नृसिंहदेव अपने हाथसे यह बात लिख गये हैं—"सन् ११४७ साल माह आश्विनमें मेरे पिता गोविन्ददेव रायकी मृत्यु हुई, उस समय मैं गर्भमें था। वर्द्धमान जमींदारके पेशकार माणिकचन्द्रने नवाब अलीवर्दी खांके निकट मेरे पिताकी निःसन्तानावस्थामें मृत्यु हुई है, ऐसा लिख कर मेरी पुश्तैनी जमींदारी अपने मालिककी जमींदारीमें मिला ली।"



राजा नृसिंहदेव राय महाशय।

इस घटनाके कुछ समय बाद बङ्गालका मुसलमान सिंहासन विलुप्त हो गया। सोलह वर्षमें सात नवाब मुर्शिदाबादके नवाब हुए। इससे बङ्गकी प्रजा बहुत भय भीत और स्तम्भित हो गई। कुमार नृसिंहदेव उस समय पैतृक सम्पत्तिका उद्धार करनेकी कोशिश कर रहे थे। अंगरेजोंके जमानेमें बंगालमें अराजकता बहुत कुछ दूर हो गई। वारेन हेस्टिंस बङ्गालके शासनकर्त्ता हुए। नृसिंहदेवने उनकी शरण ली।

१७७९ ई०में वारेन हेस्टिंसने राजा नृसिंहदेवको एक सनद दी। उस सनदके अनुसार पैतृक जमींदारीमेंसे केवल नौ परगने नृसिंहदेवको मिले। नृसिंहदेव उतनेसे सन्तुष्ट न हुए। जब लार्ड कार्नवालिस गवर्नर जेनरल बन कर आये, तब नृसिंहदेवने उनके पास जा कर अपना कुल दुखड़ा रोया और जमींदारी लौटा देनेके लिये प्रार्थना की। लार्ड कार्नवालिसने उन्हें विलायतके कोर्ट आव डिरेक्टरके निकट अपील करने कहा। नृसिंह-

देव इस शरीरसे स्वर्ग दर्शनके लिये रुपये संग्रह करने लगे। इस उद्देश्यसे वे काशीधाम भी गये थे। वहाँ धार्मिक-योगपरायणमना संन्यासियोंके साथ मिल कर उनकी बुद्धि बिलकुल पलट गई। अब वे उन साधुओंकी सहायतासे योगमार्गमें शनैः शनैः उन्नति लाभ करने लगे। उन्होंने सोचा, कि विलायतमें भ्रमण करनेसे बहुत खर्च पड़ेगा, पीछे उसका फल क्या होगा यह भी अनिश्चित है। जो रुपया जमा हो चुका है, उसमें यदि कोई स्थायी कीर्ति-मन्दिर बनवाया जाय, तो अच्छा सदुपाय होगा। यह सोच कर वे षट्चक्रभेदप्रणालीसे हंसेश्वरी मन्दिर बनवानेका आयोजन करने लगे। मन्दिरका निर्माण-कार्य आरम्भ हुआ सही, पर वे उसे समाप्त न कर सके। १८०२ ई०में वे इस लोकसे चल बसे। १०८८ ई०में उन्होंने स्वयम्भवाका मन्दिर बनवाया था।

मन्दिरद्वारमें एक प्रस्तर-फलक पर निम्नलिखित श्लोक लिखा है:—

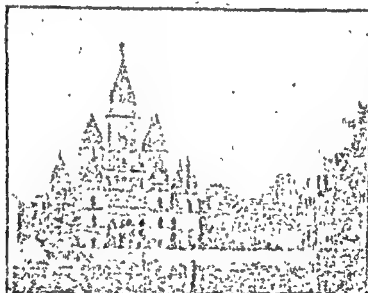
"खाष्टवसेन्दुमन्मूर्द्धे शाके श्रीमत् स्वयम्भवा।
गेहे ... श्रीमद्रहेन्द्र श्रीनृसिंहदेववर्मणः॥"

नृसिंहदेव संस्कृत और फारसी भाषाके सुपण्डित थे। चित्र और मल्लविद्यामें भी उनकी असाधारण निपुणता थी। वे धर्मविषयक अनेक सुन्दर सङ्गीत रच गये हैं।

राजा नृसिंहदेवकी पत्नी रानी शङ्करीने सुविख्यात हंसेश्वरी मन्दिरकी १८१४ ई०में प्रतिष्ठा की। इस मन्दिरके एक प्रस्तरफलकमें निम्नलिखित श्लोक लिखे हैं-

"शाकाब्दे रसवह्निभैत्रगणिते श्रीमन्दिरं मन्दिरं
योगद्वारचतुर्दशेभवतनुं हंसेश्वरी राजितं।
भूपालेन नृसिंहदेवकृतिनारब्धं तदाज्ञानुगा
तत्पत्नी गुरुपादपद्मनिरता श्रीशङ्करी निर्ममे॥"

(शकाब्दा १७३६)



हंसेश्वरी मन्दिर।

हंसेश्वरी मन्दिर बङ्गालकी एक उत्कृष्ट कीर्ति है। नाना स्थानोंसे अनेक यात्री इस देवमूर्तिके दर्शन करने आते हैं। एक विशेष शवके ऊपर देवादिदेव सो रहे हैं। उनके नाभिकुण्डसे प्रस्फुटित पद्म निकला है। दारु-मयी देवी मूर्ति हंसेश्वरी उसके ऊपर विराजित हैं। इसकी बनावट जनसाधारणकी दृष्टिको आकर्षित करती है।

स्वामीकी मृत्युके बाद रानी शङ्करीका ध्यान धार्मिक कार्यों-की ओर ध्यान दौड़ा। वह प्रजाको सन्तानकी तरह प्यार करती थी। प्रजा भी उनके मधुर व्यवहारसे सन्तुष्ट रहती थी। वे लोग 'रानी-मा'-का नाम स्मरण किये बिना अन्न ग्रहण नहीं करते थे। रानीमाता साधारण भात दालको पसन्द करती थी। फूल, इत्र, तेल आदि और विलासिता बिलकुल देखना नहीं चाहती थी। अपनी सम्पत्ति वे सुखसे दान दे देती थी। पूजा पार्वण आदिमें विशेषतः दोलयात्राके समय वे बङ्गालके पण्डितोंको निमन्त्रण

कर अबीर और एक रुपया दे कर प्रत्येकको प्रणाम करती थी।

१२४४ सालके अग्रहायण मासमें पुत्र कैलासदेव परलोकको सिधारे। उनके पुत्र देवेन्द्रदेवका भी १२५६ सालके वैशाखमासमें देहान्त हुआ। पौत्रकी मृत्युके छः मास बाद रानी ठक्कुरीकी मृत्यु हुई। रानी अपनी सारी जमींदारी मृत्युसे कुछ पहले एक विल करके हंमेश्वरी ठाकुरानीके नाम उत्सर्ग कर गई। नाबालिग प्रपौत्र राजा पूर्णेन्दुदेव सुरेन्द्रदेव और भूपेन्द्रदेव वंशानुक्रमिक सेवायत नियुक्त किये गये।

१२६७ सालमें कनिष्ठ भूपेन्द्रदेवका, १३०३ सालकी ११वीं श्रावणको ज्येष्ठ राजा पूर्णेन्दुदेवका और मध्यम सुरेन्द्रदेवका १३०४ सालकी १६वीं चैत्रको देहान्त हुआ।

वंशवितति (सं० स्त्री०) १ वंशगुच्छ। २ बांसका जङ्गल। ३ कुलज-वंश।

वंशविदल (सं० पु०) वंशनिर्मित मन्दिरिका, बांसकी चिमटी।

वंशविदारिणी (सं० स्त्री०) वंशं विदारयतीति वंश-विद्र-णिच्-णिनि। वंशविदारणकारी रमणी।

वंशविशुद्ध (सं० त्रि०) वंशानि विशुद्धानि यत्र। १ परिष्कार वंश विनिर्मित। २ विशुद्ध कुलागत।

वंशविस्तर (सं० पु०) वंशस्य विस्तरः। समग्र वंशधारा, वंशपरम्परा।

वंशवृद्धि (सं० स्त्री०) वंशस्य वृद्धिः। १ पुत्र कलत्रादिके जन्मसे वंशका विस्तार। २ वंशसमृद्धि।

वंशव्यजनवायु (सं० पु०) वंशनिर्मित तालवृन्तकी वायु, बांसके पंखेकी हवा। वैद्यकमें इसका गुण लिखा हुआ है। 'वंशव्यजनजो वातः रूक्षोष्णो वातपित्तदः।' (राजव० २ परि०)

वंशशर्करा (सं० स्त्री०) वंशस्य शर्करेव। १ वंशरोचना, वंसरोचन। २ वंशोत्पन्न शर्करा, वह शर्करा जो बांसकी बनी हो। यह वस्तु अति हितकर, बल्य, सुमधुर और रूक्ष मानी गई है।

वंशशलाका (सं० स्त्री०) वंशस्य शलाकेव शलाका। १ वीणामूलः वीन, सितार आदि बाजोंका डंडा। २ वंशनिर्मित शलाका।

वंशसमाचार (सं० पु०) वंशस्य समाचारः। वंशाख्यान।

वंशस्थ (सं० त्रि०) वंशे तिष्ठतीति वंश-स्था-क। १ वंशस्थित। (पु०) २ बारह वर्णोंका एक वर्णवृत्त। इसका व्यवहार संस्कृत काव्योंमें अधिक मिलता है। इसमें जगण, तगण, जगण और रगण आते हैं। इसे वंशस्थविल भी कहते हैं।

वंशस्थविल (सं० क्ली०) वंशस्थ देखो।

वंशस्थिति (सं० स्त्री०) वंशस्य स्थितिः प्रतिपत्तिरिति। वंशकी मर्यादा, वंशख्याति। (रघु० १८।३०)

वंशहीन (सं० त्रि०) १ निर्वंश, जिसके वंशमें कोई न हो। २ अपुत्र।

वंशागत (सं० त्रि०) १ पुरुषपरम्पराप्राप्त। २ वंशक्रमागत।

वंशाग्र (सं० क्ली०) वंशस्य अग्रम्, प्रथमजातत्वात्। वंशाङ्कुर, बांसका कोपल।

वंशाङ्कुर (सं० पु०) वंशस्य अङ्कुरः। वंशकरीर, बांसका कोपल। पर्याय—वंशाग्र, यवफलाङ्कुर। यह कटु, तिक्त, अम्ल, कषाय, लघु और शीतल तथा रुचिकर और पित्तास्र दाहकृच्छ्रघ्न माना गया है।

वंशानुकीर्त्तन (सं० क्ली०) वंशावली कथन, वंशका परिचय देना।

वंशानुक्रम (सं० पु०) वंशस्य अनुक्रमः। वंशपरम्परा।

वंशानुग (सं० त्रि०) १ वंशकी तरह। २ तलवारके मध्यस्थ वक्रांशके जैसा। (बृहत्सं० ५०।३) ३ एक वंशसे दूसरे वंशमें जानेवाली (लक्ष्मी)।

वंशानुचरित (सं० क्ली०) वंशस्य अनुचरितम्। प्राचीन राजवंशोंकी कथा। यह पुराणोंके लक्षणोंमेंसे एक है।

वंशानुवंशचरित (सं० क्ली०) पुराणोक्त प्राचीन और आधुनिक वंशका आख्यान।

वंशान्तर (सं० पु०) नल।

वंशावली (सं० स्त्री०) पाणिनिके शरादि गणोक्त रमणीभेद। (पा० ६।३।१२०)

वंशावली (सं० स्त्री०) पूर्वपुरुषोंकी नामावली, किसी वंशमें उत्पन्न पुरुषोंकी पूर्वोत्तर क्रमसे सूची।

वंशावलेह (सं० पु०) बांसका छिलका।

वंशाग्रिय (सं० क्लो०) बांसकी चोटी।
वंशाङ्क (सं० पु०) वंशुदण्ड, बांसका डण्डा।
वंशिक (सं० क्ली०) वंशोऽस्त्यस्येति ठन्। १ अगुरुकाष्ठ, अगरकी लकड़ी। २ कृष्णवर्ण इक्षुभेद, काला गन्ना। (त्रि०) ३ वंशसम्बन्धीय। ४ वंशोद्भव, वंशमें उत्पन्न।
वंशिका (सं० स्त्री०) वंशिक-टाप्। १ अगुरु, अगर। २ बंशी, बांसुरी। ३ पिप्पली।
वंशिन् (सं० त्रि०) वंश-इनि। वंशसम्बन्धीय, वंशजात।
वंशिवाद्य (सं० क्ली०) वंशीवाद्य, बांसुरी।
वंशी (सं० स्त्री०) वंशकारणत्वेनास्त्यस्याः अच्, गौरादित्वात् ङीष्। १ मुरली, बांसुरी।

वंशी बजानेमें पटु शब्दचूड़ामणि श्रीकृष्णने गोपाङ्गनाओंके मनोरञ्जनके लिये वृन्दावनमें बांसुरी बजाई थी। वृन्दावनमें "वंशीध्वनि" इस अर्थमें मनप्राणहरणकारी कृष्णका बांसुरी निनाद ही समझा जाता है। इसी कारण कविगण वंशीमें कवित्व प्रभाव आरोप कर गये हैं। वंशी श्रीकृष्णको अङ्गभूषण थी यह प्रेमरसास्वादी वैष्णव कवियोंकी भणिताओंसे स्पष्ट मालूम होता है।

सङ्गीतशास्त्रमें इस वंशीवाद्ययन्त्रका प्रकार और प्रस्तुत प्रणाली लिपिबद्ध है। जिस प्रकार बिना तालके गानकी शोभा नहीं होती, उसी प्रकार वाद्ययन्त्र नहीं रहनेसे तालकी महिमा समझी नहीं जाती। क्योंकि ताल वाद्ययन्त्रसे ही निकला है। उसमेंसे मुंहसे फूंक कर जो बांसुरी बजाई जाती है, उसको वंशी कहते हैं।

पुराने ग्रन्थोंमें लिखा है, कि वंशी बांसकी होनी चाहिये; पर खैर, लाल चन्दन आदिकी लकड़ीकी अथवा सोने चांदीकी भी हो सकती है। यह बाजा प्रायः डेढ़ बालिश्त लंबा होता और मुंहसे फूंक कर बजाया जाता है। इसका एक सिरा बांसकी गांठके कारण बंद रहता है। बंद सिरेकी ओर स्वर भरनेके लिये स्वर छेद होते हैं और दूसरी ओर बजानेके लिये एक विशेष प्रकारसे तैयार किया हुआ छेद होता है। उसी छेदवाले सिरेको मुंहमें ले कर फूंकते हैं और आगेवाले छेदों पर उंगलियां रख उसे बंद कर देते हैं। जब जो स्वर निकालना होता है तब उस स्वरवाले छेद परकी उंगली उठा लेते हैं। इसी तरह बार बार उंगलियां रख और उठा कर बजाते हैं।

भरत ऋषिके मतानुसार वंशीका छेद कनिष्ठा उंगलीके मूलके बराबर होना चाहिये। जो छेद मुंहमें रख कर फूंकते हैं उसका नाम 'फूत्काररन्ध्र' और सुर निकलनेवाले स्वर छेदोंका नाम 'तारन्ध्र' है। इस वंशीके सिवा भरतके अनुसार चार प्रकारकी मुरलियां और होती हैं। इनके नाम महानंदा, नंदा, विजया और जय हैं। महानन्दामें तारन्ध्र फूत्काररन्ध्रसे दस अंगुल पर, नन्दामें ग्यारह अंगुल पर, विजयामें बारह अंगुल पर और जयामें चौदह अंगुल पर होते हैं।

२ चार कर्षका एक मान जो आठ तोलेके बराबर होता है। ३ वंशलोचन। ४ सौवर्णो निष्क्रियार्थं जालोत्कटादि चूर्णं।
वंशीदास—भेदाभेदवाद नामक वैष्णवक ग्रन्थके प्रणेता।
वंशीधर (सं० पु०) १ वह जो वंशी बजाता हो। २ श्रीकृष्ण।
वंशीधर—एक प्रसिद्ध वैद्यक ग्रन्थके प्रणेता। इन्होंने वैद्यकुतूहल और वैद्यमहोत्सव नामक दो ग्रन्थ लिखे। इनके पुत्र विद्यापतिने १६८२ ई०में वैद्यरहस्यपद्धति लिखी थी।
वंशीधर—१ एक प्रसिद्ध नैयायिक। इन्होंने वाचस्पति मिश्र-रचित तत्त्वकौमुदीकी टीका और शब्दमालाव्याख्यानकी रचना की। २ छन्दोमञ्जरी और पिङ्गलप्रकाश नामक टीकाकार। ३ एक वैदिक। ये कुण्डार्क और होमविधि नामक दो वैदिक ग्रन्थ लिख गये हैं।
वंशीधरदैवज्ञ—दैवज्ञकामनिधि नामक ज्योतिर्ग्रन्थके रचयिता।
वंशीवादिन् (सं० पु०) वंशीं वादयति वद-णिनि। १ श्रीकृष्ण। २ वंशीवादक, वह जो बांसुरी बजाता हो।
वंशीवरा (सं० स्त्री०) धौतिभेद। 'वंशीवरा मुखेन गुणवंशीवजङ्घारिणा।' (... ५७ प०)
वंशीय (सं० त्रि०) वंशे भवः इति वंश-छण्। एकवंशजात, सजातीय।
वंशीवट (सं० पु०) वृन्दावनमें वह बरगदका पेड़ जिसके नीचे श्रीकृष्ण वंशी बजाया करते थे। वृन्दावन देखो।
वंशीवदन (सं० त्रि०) वंशी वदनेऽस्य, सर्वदा वंशी बजानेवाला।

वंशीवदनदास—एक बंगाली वैष्णव पदकर्त्ता। इनके पिताका नाम छकौड़ी चट्टोपाध्याय था। छकौड़ी पाटुलीमें रहते थे। पीछे वे नदियाके कुलियापहाड़ पर आ कर बस गये। १५१६ शकमें चैत्रमासकी पूर्णिमाको इसी कुलियापहाड़ पर वंशीदासका जन्म हुआ।

गौड़ीय वैष्णव-समाजमें वंशीदास श्रीकृष्णके अवतार माने जाते हैं। कुलियापहाड़ पर इन्होंने 'प्राणवल्लभ' विग्रहकी प्रतिष्ठा की। पीछे विल्वग्राममें आ कर बस गये। विल्वग्रामके भट्टाचार्य वंशीवदनके ज्ञाति हैं।

महाप्रभुके संन्यासग्रहणके बाद वंशीवदनने कुछ दिन नवद्वीपके गौराङ्ग भवनमें वास किया था। यहां उन्होंने 'दीपान्विता' नामक एक छोटा काव्य लिखा। इनके दो पुत्र थे, चैतन्य और नित्यानन्द। चैतन्यके पुत्र रामचन्द्र और शचीनन्दन प्रसिद्ध पदकर्त्ता थे। शचीनन्दनने "गौराङ्ग-विजय" नामक एक काव्य भी लिखा है।

वंशीवदन शर्मा—गोपीचन्द्रके संक्षिप्तसार व्याकरणकी टीका तथा नैषधकाव्यकी टीकाके रचयिता।

वंशीवादक (सं० पु०) शुषिरयन्त्र-वादानभिज्ञ, वह जो खूब अच्छा वंशी बजाना जानता हो।

वंशीवादन (सं० पु०) वंशी बजाना।

वंशोद्भव (सं० त्रि०) वंशज, कुलमें उत्पन्न।

वंशोद्भवा (सं० स्त्री०) १ वंशरोचना, वंसलोचन। २ बांसकी शक्कर।

वंश्य (सं० त्रि०) वंशे भवः। वंश-(दिगादिभ्यो यत्। पा ४।३।५४) इति यत्। १ सद्वंशजात, अच्छे कुलमें उत्पन्न, सम्भ्रान्त। पर्याय—कुल्य, बीज्य। २ वंशज, कुलमें उत्पन्न। (पु०) ३ पृष्ठावयवविशेष, पीठकी रीढ़। ४ गृहोर्द्ध्व काष्ठविशेष, वह बड़ी लड़की जो छाजनके बीचोबीच रीढ़के समान होती है। इसे बंड़ेर भी कहते हैं।

वंसग (सं० पु०) वृषभेद, सांढ़।

वंहियस् (सं० त्रि०) बहुत, प्रचुर।

वंहिष्ठ (सं० त्रि०) अतिशय, अधिक।

व (सं० अव्य०) इव अर्थबोधक। इस प्रकार, ऐसा।

व (सं० क्ली०) वा ल गमनहिंसयोः कः। १ प्रचेता। २ वरुणबीज।

व (सं० पु०) वातिमिति वा भावे घः। १ सान्त्वन। याति गच्छतीति वाल-गमने कः। २ वायु। ३ वरुण। ४ बाहु। ५ मन्त्रण। ६ कल्याण। ७ वसति, बस्ती। ८ वरुणालय, समुद्र। ९ शार्दूल। १० वस्त्र। ११ आलुक, जलमें उत्पन्न होनेवाले कंद। १२ वन्दन। १३ वाण। १४ सेरकी, कोईका कंद। १५ अस्त्र। १६ खड़गधारी पुरुष। १७ मूर्वा नामक लता। १८ वृक्ष। १९ मद्य। २० कलशसे उत्पन्न ध्वनि। (त्रि०) २१ बलवान्।

व (फा० अव्य०) और। जैसे राजाका रईस।

बक (सं० पु०) स्वनामप्रसिद्ध जलचर पक्षिजातिविशेष, बगला नामका पक्षी। अंगरेजीमें इसे Ardea Nivea कहते हैं। यह जलमें मछली पकड़ कर अपना पेट भरता है।



बक।

२ अगस्तका पेड़ या फल। ३ एक दैत्यका नाम। इसे श्रीकृष्णने बाल्यावस्थामें मारा था। ४ एक राक्षस जिसे भीमने मारा था। ५ कुवेर। ६ एक यक्षका नाम। ७ दाल्भ्यगोत्रीय एक ऋषि। ८ एक राजाका नाम। ९ एक जातिका नाम। विशेष विवरण बक शब्दमें देखो।

बक—काश्मीरके एक राजा। इनके पिताका नाम था मिहिरकुल। मिहिरकुलकी मृत्युके बाद काश्मीरके सिंहासन पर बक बैठे। राज्य पानेके थोड़े ही दिनोंके बाद बकने प्रजाओंका चित्त प्रसन्न कर लिया। इनके पिताके समय प्रजाको जो दुःख हुआ था, उस दुःखको प्रजा इनको पा कर भूल गई। इनका राज्य धर्म और न्याय पर स्थापित हुआ। इन्होंने बकेश्वर नामक शिवकी प्रतिष्ठा की थी और बकवती नामकी एक नदी और लवणोत्संस नामका एक नगर बसाया था। इन्होंने ६३ वर्ष १३ दिन

वंशावलि (सं० स्त्री०) वंशकी आलि।

वंशाह्व (सं० पु०) विमुदक, बांसका चावल।

वंशिक (सं० क्ली०) वंशोऽस्त्यस्येति ठन्। १ अगुरुकाष्ठ, अगरकी लकड़ी। २ कृष्णवर्ण इक्षुभेद, काला गन्ना। (त्रि०) ३ वंशसम्बन्धीय। ४ वंशोद्भव, वंशसे उत्पन्न।

वंशिका (सं० स्त्री०) वंशिक-टाप्। १ अगुरु, अगर। २ वंशी, बांसुरी। ३ पिप्पली।

वंशिन् (सं० त्रि०) वंश इनि। वंशसम्बन्धीय, वंशजात।

वंशिवाद्य (सं० क्ली०) वंशीवाद्य, बांसुरी।

वंशी (सं० स्त्री०) वंशाकारत्वेनास्त्यस्याः अच्, गौरादित्वात् ङीष्। १ मुरली, बांसुरी।

वंशी बजानेमें पटु नटवरनागर श्रीकृष्णने गोपाङ्गनाओंके मनोरञ्जनके लिये वृन्दावनमें बांसुरी बजाई थी। वृन्दावनमें "वंशीध्वनि" इस अर्थमें मनप्राणहरणकारी कृष्णका बांसुरी निनाद ही समझा जाता है। इसी कारण कविगण वंशीमें कवित्व प्रभाव आरोप कर गये हैं। वंशी श्रीकृष्णको अतिप्रिय थी यह प्रेमरसात्मक वैष्णव कवियोंकी भक्तिगाथासे स्पष्ट मालूम होता है।

सङ्गीतशास्त्रमें इस वंशीवाद्ययन्त्रका प्रकार और प्रस्तुत-प्रणाली लिपिबद्ध है। जिस प्रकार बिना तालके गानकी शोभा नहीं होती, उसी प्रकार वाद्ययन्त्र नहीं रहनेसे गानका महिमा समझमें नहीं आती। क्योंकि ताल वाद्ययन्त्रसे ही निकला है। इनमेंसे मुंहसे फूंक कर जो बांसुरी बजाई जाती है, उसको वंशी कहते हैं।

पुराने ग्रन्थोंमें लिखा है, कि वंशी बांसकी होनी चाहिये; पर खैर, श्वेत चन्दन आदिकी लकड़ीकी अथवा सोने चांदीकी भी हो सकती है। यह बाजा प्रायः डेढ़ बालिश्त लम्बा होता और मुंहसे फूंक कर बजाया जाता है। इसका एक सिरा बांसकी गांठके कारण बंद रहता है। बंद सिरेकी ओर स्वरोंके लिये सात छेद होते हैं और दूसरी ओर बजानेके लिये एक विशेष प्रकारसे तैयार किया हुआ छेद होता है। उसी छेदवाले सिरेको मुंहमें ले कर फूंकते हैं और स्वरोंवाले छेदों पर उंगलियां रख कर बंद कर देते हैं। जब जो स्वर निकालना होता है तब उस स्वरवाले छेद परसे उंगली हटा लेते हैं। इसी तरह बार बार उंगलियां रख और हटा कर बजाते हैं।

सङ्गीत शास्त्रके मतानुसार वंशीका छेद कनिष्ठा उंगलीके मूलके बराबर होना चाहिये। जो छेद मुंहमें रख कर फूंकते हैं उसका नाम 'फूत्काररन्ध्र' और सुर निकलनेवाले सात छेदोंका नाम 'तारन्ध्र' है। इस वंशीके सिवा शास्त्रके अनुसार चार प्रकारकी मुरलियां और होती हैं। उनके नाम महानंदा, नंदा, विजया और जया हैं। महानन्दामें तारन्ध्र फूत्काररन्ध्रसे दश अंगुल पर, नन्दामें ग्यारह अंगुल पर, विजयामें बारह अंगुल पर और जयामें चौदह अंगुल पर होते हैं।

२ चार कर्षका एक मान जो आठ तोलेके बराबर होता है। ३ वंशलोचन। ४ तोलकपोनिकिरमाके आलोकनादि चूर्ण।

वंशीदास—भेदाभेदवाद नामक वैदान्तिक ग्रन्थके प्रणेता।

वंशीधर (सं० पु०) १ वह जो वंशी बजाता हो। २ श्रीकृष्ण।

वंशीधर—एक प्रसिद्ध वैद्यक ग्रन्थके प्रणेता। इन्होंने वैद्यकुतूहल और वैद्यमहोत्सव नामक दो ग्रन्थ लिखे। इनके पुत्र शिवापतिने १६८३ ई०में वैद्यरहस्यपद्धति लिखी थी।

वंशीधर—१ एक प्रसिद्ध नैयायिक। इन्होंने वाचस्पति मिश्र-रचित तत्त्वकौमुदीकी टीका और शब्दप्रामाण्य-खण्डनकी रचना की। २ छन्दोमञ्जरी और पिङ्गलप्रकाश नामक टीकाकार। ३ एक वैदिक। ये पुत्रारत्रिका और होमविधि नामक दो वैदिक ग्रन्थ लिख गये हैं।

वंशीधरदीक्षित—ईशवास्यविधि नामक संस्कृतग्रन्थके रचयिता।

वंशीधारिन् (सं० पु०) वंशी धारयति धृ णिनि। १ श्रीकृष्ण। २ वंशीवादक, वह जो बांसुरी बजाता हो।

वंशीरवा (सं० स्त्री०) ध्वनिभेद। '[illegible]' ([illegible])

वंशीय (सं० त्रि०) वंशे भवे इति वंश-छस्। वंशजात, वंशोद्भव।

वंशीवट (सं० क्ली०) वृन्दावनमें वह वटवृक्ष जिसके नीचे श्रीकृष्ण वंशी बजाया करते थे। वृन्दावन देखो।

वंशीवदन (सं० त्रि०) वंशीवदनाधार, सर्वदा वंशी बजानेवाला।

वंशीवदनदास—एक बंगाली वैष्णव पदकर्त्ता। इनके पिताका नाम छकौड़ी चट्टोपाध्याय था। छकौड़ी पाटुलीमें रहते थे। पीछे वे नदियाके कुलियापहाड़ पर आ कर बस गये। १५१६ शकमें चैत्रमासकी पूर्णिमाको इसी कुलियापहाड़ पर वंशीदासका जन्म हुआ।

गौड़ीय वैष्णव-समाजमें वंशीदास श्रीकृष्णके अवतार माने जाते हैं। कुलियापहाड़ पर इन्होंने 'प्राणवल्लभ' विग्रहकी प्रतिष्ठा की। पीछे विल्वग्राममें आ कर बस गये। विल्वग्रामके भट्टाचार्य वंशीवदनके ज्ञाति हैं।

महाप्रभुके संन्यासग्रहणके बाद वंशीवदनने कुछ दिन नवद्वीपके गौराङ्ग भवनमें वास किया था। यहां उन्होंने 'दीपान्विता' नामक एक छोटा काव्य लिखा। इनके दो पुत्र थे, चैतन्य और नित्यानन्द। चैतन्यके पुत्र रामचन्द्र और शचीनन्दन प्रसिद्ध पदकर्त्ता थे। शचीनन्दनने "गौराङ्ग-विजय" नामक एक काव्य भी लिखा है।

वंशीवदन शर्मा—गोपीचन्द्रके संक्षिप्तसार व्याकरणकी टीका तथा नैषधकाव्यकी टीकाके रचयिता।

वंशीवादक (सं० पु०) शुषिरयन्त्र-वादनाभिज्ञ, वह जो खूब अच्छा वंशी बजाना जानता हो।

वंशीवादन (सं० पु०) वंशी बजाना।

वंशोद्भव (सं० त्रि०) वंशज, कुलमें उत्पन्न।

वंशोद्भवा (सं० स्त्री०) १ वंशरोचना, वंसलोचन। २ बांसकी शकरा।

वंश्य (सं० त्रि०) वंशे भवः। वंश-(दिगादिभ्यो यत्। पा ४।३।५४) इति यत्। १ सद्वंशजात, अच्छे कुलमें उत्पन्न, सम्भ्रान्त। पर्याय—कुल्य, बीज्य। २ वंशज, कुलमें उत्पन्न। (पु०) ३ पृष्ठावयवविशेष, पीठकी रीढ़। ४ गृहोर्द्ध्व काष्ठाविशेष, वह बड़ी लड़की जो छाजनके बीचोबीच रीढ़के समान होती है। इसे बंड़ेर भी कहते हैं।

वंसग (सं० पु०) वृषभेद, सांढ़।

वंहियस् (सं० त्रि०) बहुत, प्रचुर।

वंहिष्ठ (सं० त्रि०) अतिशय, अधिक।

व (सं० अव्य०) इव अर्थबोधक। इस प्रकार, ऐसा।

व (सं० क्ली०) वा ल गमनहिंसयोः कः। १ प्रचेता। २ वरुणबीज।

व (सं० पु०) वानमिति वा भावे घः। १ सान्त्वन। वाति गच्छतीति वाल-गमने कः। २ वायु। ३ वरुण। ४ बाहु। ५ मन्त्रण। ६ कल्याण। ७ वसति, वस्ती। ८ वरुणालय, समुद्र। ९ शार्दूल। १० वस्त्र। ११ शालूक, जलमें उत्पन्न होनेवाले कंद। १२ वन्दन। १३ वाण। १४ सेरुकी, कोईंका कंद। १५ व्याघ्र। १६ खड्गधारी पुरुष। १७ मूर्वा नामक लता। १८ वृक्ष। १९ मद्य। २० कलशसे उत्पन्न ध्वनि। (त्रि०) २१ बलवान्।

व (फा० अव्य०) और। जैसे राजाका रईस।

वक (सं० पु०) स्वनामप्रसिद्ध जलचर पक्षिजातिविशेष, बगला नामका पक्षी। अंगरेजीमें इसे Ardea Nivea कहते हैं। यह जलमें मछली पकड़ कर अपना पेट भरता है।



वक।

२ अगस्तका पेड़ या फल। ३ एक दैत्यका नाम। इसे श्रीकृष्णने बाल्यावस्थामें मारा था। ४ एक राक्षस जिसे भीमने मारा था। ५ कुवेर। ६ एक यक्षका नाम। ७ दाल्भ्यगोत्रीय एक ऋषि। ८ एक राजाका नाम। ९ एक जातिका नाम। विशेष विवरण वक शब्दमें देखो।

वक—काश्मीरके एक राजा। इनके पिताका नाम था मिहिरकुल। मिहिरकुलकी मृत्युके बाद काश्मीरके सिंहासन पर वक बैठे। राज्य पानेके थोड़े ही दिनोंके बाद वकने प्रजाओंका चित्त प्रसन्न कर लिया। इनके विनाके समय प्रजाको जो दुःख हुआ था, उस दुःखको प्रजा इनको पा कर भूल गई। इनका राज्य धर्म और न्याय पर स्थापित हुआ। इन्होंने वकेश्वर नामक शिवकी प्रतिष्ठा की थी और वकवती नामकी एक नदी और लवणोत्संस नामका एक नगर बसाया था। इन्होंने ६३ वर्ष १३ दिन

तक बकासुरका राज्य किया था। एक दिन गन्धर्वके समय चन्द्र बालकको एक कोलिनी सुन्दर देख पकड़ कर राजा युवकके पास पहुंची और उन्हें अपने दासीके मोहित करनेके लिये उसने वार्षिकमय देशमेंका निमन्त्रण दिया। राजा अपने कुछ साथियोंको साथ ले कर दूसरे दिन प्रातःकाल उन कोलिनोंके आश्रममें गये। कोलिनोंने उन सभोंका बलिदान किया। (राजतरङ्गिणी)

बक[illegible] (सं० स्त्री०) एक प्राचीन जनपद। यह नर्मदाके किनारे अवस्थित है। काव्यालङ्कारसूत्रमें लिखा है, कि यहांनिवासी राजा सातवाहन सर्ववर्मासे कलाप व्याकरण-का अध्ययन करके अपने गुरुको यह राज्य गुरु-दक्षिणा-में दिया था।

बक[illegible] (सं० पु०) गुल्मविशेष, कलमीर।

बक[illegible]—बम्बई प्रदेशके बेलगाम जिलान्तर्गत एक नगर-ग्राम और प्राचीन तीर्थस्थान। यह अक्षांशसे बारह मील दक्षिण पूरब पड़ता है। यहां मल्लिकार्जुनका एक सुन्दर पत्थरका मन्दिर है। इसके अलावा यहां और भी कई प्राचीन मन्दिरोंका खंडहर पड़ा है।

बकचर (सं० पु०) बकस्येव चरः। १ बकव्रति, बगलेके समान ढोंगी या पाखण्डी। (स्त्री०) २ बगलेके बिचरनेका स्थान।

बकचिञ्चिका (सं० स्त्री०) मत्स्यविशेष, एक प्रकारकी छोटी मछली।

बकजित् (सं० पु०) १ भीमसेन। २ श्रीकृष्ण।

बकत्व (सं० क्ली०) बकका भाव या धर्म, कुटिलता।

बकदाल्भ्य—एक महात्मा मुनि। इन्होंने जिस स्थान पर तपस्या की थी वह स्थान बड़ा ही पवित्र तथा शान्तिप्रद है। यहां जानेसे काम क्रोधके भी स्रोत प्रशान्त हो जाते हैं। इनका आश्रम धृतराष्ट्रके राज्यमें था।

एक दिन मुनियोंने राजा विश्वजित्के लिये द्वादश वर्ष-के समाप्त होने पर यज्ञ किया था। उस यज्ञमें देखे कि मुनि बकदाल्भ्य भी गये हुए थे। मुनिको उस यज्ञमें बहुत दक्षिणा मिली। बकदाल्भ्यने अन्य मुनियोंसे कहा,—'तुम लोग इन गौओंको ले जाओ। मैं अब राजा धृतराष्ट्रसे दूसरी गौएं मांगूंगा।' मुनि राजा धृतराष्ट्रके पास पहुंचे और उनसे गौएं मांगीं। धृतराष्ट्रने

क्रोध हो कर, कहा 'महाराज! देखो, हमारी गायें मरी पड़ी हैं, चाहो इन्हींको ले जाओ।' इस पर बकदाल्भ्य बड़े बिगड़े और कहा—'इस मूर्ख राजाको देखो तो सही, मुझे मरी गायें देता है। अच्छा अब मैं इसका राज्य नष्ट किये देता हूँ।'

बकदाल्भ्य उन्हीं मरी गायोंको ले गये और उन्हींका मांस काट काट कर हवन करने लगे। धीरे धीरे यह अनुष्ठान समाप्त हुआ। उधर धृतराष्ट्रका राज्य नष्ट होने लगा। तब राजा धृतराष्ट्र मुनिके शरणापन्न हुए। मुनिने क्षमा कर दिया। (महाभारत)

बकद्वीप—विष्णुपुरसे चार कोस दक्षिण मल्लभूमिके अन्तर्गत एक प्राचीन ग्राम। यहां वृन्दावनकी प्रसिद्ध मूर्ति मौजूद है। देखनेसे मालूम होता है, कि यहां किसी समय अवस्थित है। अभी यह स्थान 'बगड़ी' कहलाता है।

बकधूप (सं० पु०) गन्धद्रव्यविशेष, गुग्गुल।

बकनख (सं० पु०) विश्वामित्रके एक पुत्रका नाम।

बकनिषूदन (सं० पु०) बकस्य निषूदनः। भीमसेन।

बकपञ्चक (सं० क्ली०) कार्त्तिक शुक्ल एकादशीसे ले कर पूर्णिमा तककी पांच तिथियां। बकव्रत देखो।

बकपुष्प (सं० पु०) १ अगस्त्यका पेड़। (क्ली०) २ बक-फूल।

बकयन्त्र (सं० क्ली०) आसव आदि बनानेके यन्त्रोंके लिये एक पात्र या बरतन। इसके मुंह पर बगलेकी गर्दनकी तरह टेढ़ी नली लगी रहती है। अंगरेजीमें इसे Retort कहते हैं।

बकरा—बालासोरके अन्तर्गत एक नदी।

(अक्षा० [illegible] देशा० [illegible])

बकराजा—[illegible] ब्राह्मण। पूर्वदेशी कुछ ब्राह्मणोंके साथ एक ग्रामके पास रहते थे। एक दिन अकस्मात् ग्रामके पास आकर दुःख दिया। बादमें लोगोंने कुछ दिनोंका मालूम हुआ, कि इस ग्रामके पास एक राक्षस रहता है। राक्षस प्रति दिन बारी बारी हर घरसे अपने परिवारमेंसे एक एक मनुष्य और दो दो महिष देनेको बाध्य हैं। आज ब्राह्मणकी बारी है, इसीलिये वे रोते हैं। यदि आज ब्राह्मणके साथ किसीको नहीं भेजा जायगा, तो वह सब

कर उन्हें सवंश नाश करेगा। ब्राह्मणके मुखसे यह कातरोक्ति सुन कर कुन्तीदेवी बहुत दुःखित हुई और बोली, 'हे ब्राह्मण! तुम्हारे केवल एक पुत्र और एकमात्र युवती कन्या है। उन्हें भेजना अथवा तुम्हारा और तुम्हारी पत्नीका उपहार ले कर जाना उचित नहीं। मेरे पांच पुत्र हैं, उनमेंसे एक तुम्हारी भलाईके लिये उस पापी राक्षसके पास जायगा।' अनेक वादानुवादके बाद कुन्तीकी बात पर धीरज बांध कर ब्राह्मण कुन्तीके साथ भीमसेनके पास गये और यह कठिन कार्य करनेका अनुरोध किया। भीम भी यह महाव्रत करनेके लिये तैयार हो गये।

सवेरे भीमसेनने खाद्य सामग्री ले कर राक्षसके वासस्थानकी ओर यात्रा कर दी। अनन्तर राक्षसके घरमें घुस कर वे स्वयं भोजन करने लगे और राक्षसका नाम ले ले कर पुकारने लगे। बकराक्षस बहुत बिगड़ा और भीमसेन पर टूट पड़ा। भीमसेनने उस पर ऐसा प्रहार किया, कि उसकी पीठकी हड्डी चूर चूर हो गई। आखिर वह पंचत्वको प्राप्त हुआ।

वकराज (सं० पु०) राजवर्मन् नामक राजविशेष। ये कश्यपके पुत्र थे। (भारत शान्तिपर्व०)

वकवध (सं० पु०) १ वकासुरका निहनन। २ महाभारतीय आदिपर्वके अन्तर्गत एक पर्वाध्याय। इस अध्यायमें भीमसेन द्वारा एकचक्रा नगरीमें वकासुरका निधनवृत्तान्त लिखा है।

वकवृक्ष (सं० पु०) बकफूलका पेड़।

वकल (सं० पु०) वृक्षके छिलकेका अभ्यन्तरस्थ पतला वक्कल।

वकवृत्ति (सं० पु०) वकस्येव स्वार्थसाधिका वृत्तिर्यस्य। वकाचार, धोखा दे कर काम निकालनेकी घातमें रहनेकी वृत्ति। वकवृत्ति देखो।

वकवैरिन् (सं० पु०) वकस्य वैरी घातकत्वात्। १ भीमसेन। २ श्रीकृष्ण।

वकव्रत (सं० क्लो०) कपटी मनुष्य, वगलेकी तरह घातमें रहनेवाला।

वकव्रतचर (सं० पु०) वकवृत्तिधारीमात्र।

वकव्रतिक (सं० पु०) कपटी संन्यासी, वह जो स्वार्थके लिये कपटभावसे धर्माचार करता हो।

वकव्रतिन् (सं० पु०) वकव्रतिक देखो।

वकसक्थ (सं० पु०) ऋषिभेद।

वकसहवासिन् (सं० पु०) पद्म, कमल।

वकसुल्तान एक प्राचीन नगरका नाम।

वकाची (सं० स्त्री०) वकचिञ्चिका मत्स्य, एक प्रकारकी छोटी मछली।

वकाण्डप्रत्याश (सं० स्त्री०) वृथा आशा।

वकारि (सं० पु०) वकस्य अरिः। १ श्रीकृष्ण। २ भीमसेन।

वकाल—पूर्ववङ्गवासी चण्डाल जातिभेद। ये लोग वकाली नामसे भी प्रसिद्ध हैं। यह जाति चण्डालसे भिन्न होने पर भी आपसमें वैवाहिक आदान-प्रदान अथवा आहार व्यवहार प्रचलित नहीं है। परन्तु एक ही ब्राह्मण दोनोंका पौरोहित्य करता है। ढाका जिलेके जाफरगञ्ज और माणिकगञ्ज उपविभागमें ही अधिकांश वकालोंका वास है। ये लोग खेतीबारी नहीं करते, नाव खे कर अपना गुजारा चलाते हैं। कोई कोई गांव गांवमें घूम कर हल्दी मसाला आदि वेचता है। सबोंका काश्यपगोत्र है। अधिकांश व्यक्ति कृष्णमन्त्रके उपासक हैं। इन लोगोंका विश्वास है, कि व्यवसाय वाणिज्य द्वारा ये लोग बहुत कुछ उन्नत हुए हैं, इसी कारण चण्डालके साथ इनका संस्रव नहीं है। ये लोग चण्डालकी तरह घृणित पशुमांस नहीं खाते और न शराब ही पीते हैं।

वकालत (अ० स्त्री०) १ दूसरेकी किसी कामका भार लेना, दूसरेके स्थानापन्न हो कर काम करना। २ दूसरेके पक्षका मंडन। ३ दूतकर्म, दूसरेका संदेशा और दे कर कहना। ४ अदालत या कचहरीमें किसी मामलेमें वादी या प्रतिवादीकी ओरसे प्रश्नोत्तर या वादविवाद करनेका काम, मुकदमेमें किसी फरीककी तरफसे बहस करनेका पेशा।

वकालतन (अ० क्रि० वि०) वकीलके द्वारा, असालतनका उलटा।

वकालतनामा (अ० पु०) वह अधिकार-पत्र जिसके द्वारा कोई किसी वकीलको अपनी तरफसे मुकदमेमें बहस करनेके लिये मुकर्रर करता है।

बकासुर (सं० पु०) १ दैत्य। यह पूतनाका भाई और कंसका अनुचर था। कंसकी आज्ञा पा कर यह कृष्णको मार डालनेके लिये गया और उन्हें निगल गया। पीछे कृष्णने इसे चीर फाड़ कर इसको यमपुर भेज दिया। (भागवत और भारत) २ एक राक्षस। भीमसेनने इस राक्षसको उस समय मारा था जब पाँचों पाण्डव लाक्षागृहसे निकल कर वनमें जा कर रहते थे।

बकी (सं० स्त्री०) एक राक्षसीका नाम।

बकील (अ० पु०) दूसरेके कामको उसकी ओरसे करनेका भार लेनेवाला। २ राजदूत, एलची। ३ दूसरेका सन्देशा ले जा कर उस पर जोर देनेवाला, दूत। ४ दूसरेका पक्ष मंडन करनेवाला, दूसरेकी ओरसे उसके अनुकूल बात करनेवाला। ५ प्रतिनिधि। ६ कानूनके अनुसार वह आदमी जिसने वकालतकी परीक्षा पास की हो और जिसे अदालतोंकी ओरसे अधिकार मिला हो, कि वह अदालतोंमें मुद्दई या मुद्दालेकी ओरसे बहस करे।

बकुल (सं० पु०) १ स्वनामप्रसिद्ध पुष्पवृक्ष, मौलसिरी का पेड़ या फूल। इसके छिलके और फूलका गुण—शीतल, हृद्य, विषदोषनाशक, मधुर, कषाय, अम्लरस, कफ, दन्त, स्निग्ध, मलरोधक, कोष्ठशुद्धिकर और सुरभि। इसकी छालके चूर्णसे दाँत माँजनेसे दाँतके रोग नष्ट होते हैं। [illegible] बकुल शब्द देखो।

बकुलपुष्प (सं० क्ली०) बकुलका फूल।

बकुला (सं० स्त्री०) बकुल-टाप्। १ कुटकी नामक ओषधि। (पु०) २ बकपुष्प।

बकुलाद्य तैल—तैलौषधभेद। प्रस्तुत-प्रणाली—इसके लिये बकुल फल, लोध, हाड़जोड़, मोथा, खैर, अमलतास, पाकरकी छाल, लाल गुलकी छाल, मैलकी लकड़ी, कुल मिला कर १२॥० सेर, जिसका तेल ४ सेर, पाकार्थ जल १६ सेर, शेष १६ सेर। कल्कार्थ उपरोक्त सब मिला कर १ सेर। इस तेलको कुल्ला या मलनेसे दाँत चूहेसे हिलता हुआ दाँत मजबूत होता है।

([illegible])

बकुलित (सं० त्रि०) बकुलपुष्पसंजातोऽस्य।

बकुची (सं० स्त्री०) १ बाकुची नामकी ओषधि। २ बकुल, मौलसिरी।

बकुश (सं० पु०) वह साधु जिसे अपने धर्मों, शरीर और वस्त्रों या शिष्योंको कुछ कुछ विकार बढ़ता हो।

बकूल (अ० पु०) घटित होना, प्रकट होना।

बकूफ (अ० पु०) १ ज्ञान, जानकारी। २ बुद्धि, समझ।

बकेनिका (सं० स्त्री०) बलाका, बगली।

बकेश (सं० पु०) बकजातिभिन्न पक्षिविशेष।

बकेरु (सं० पु०) बक, बगला।

बकोलिय (सं० पु०) एक ऋषिका नाम।

बक्कम (सं० पु०) वृक्षविशेष, एक प्रकारकी लकड़ी। इसका गुण—

"[illegible]।
[illegible]।
[illegible]॥" (सुश्रुत)।

बक्कल—वृक्षभेद।

बख्त (अ० पु०) १ समय, काल। २ किसी कामके होनेका समय, अवसर, मौका। ३ इतना समय कि कोई काम किया जा सके, अवकाश, फुरसत। ४ मृत्युकाल, मरनेका नियत समय।

बख्त बेबख्त (अ० क्रि० वि०) १ यथासमय, कभी कभी। २ असमय।

बख्तपुर—बम्बई प्रेसिडेन्सीके रेवाकांठा पाण्डुमेवासके अन्तर्गत एक सामन्तराज्य। यह सम्प्रति उदयपुर अधिपतिके तीन सामन्तोंके अधीन है। ये लोग बड़ौदाके गायकवाड़को कर देते हैं। अवस्थान रेवा नदीतीर है।

बक्तव्य (सं० त्रि०) बच् तव्य। १ कुत्सित, हीन। २ वक्तव्य, वाच्य, कहने योग्य। ३ कुछ कहने सुनने लायक। एक आये सत्य। (क्ली०) ४ वचन, कथन। ५ कारण, वह बात जो किसी विषयमें कहनी हो। ६ निन्दा, शिकायत।

बक्तव्यता (सं० स्त्री०) कथनयोग्यता, वह बात जो कहनेके लायक हो।

बक्तव्यत्व (सं० क्ली०) वक्तव्यता देखो।

बक्तावरी (हिं० पु०) [illegible] [illegible] होंगे

वाला शालिधान्य। मराठीमें इसे घकोई धान कहते हैं। यह लघु और सुखपाच्य होता है।

वक्ता (सं० त्रि०) वच तृच्। १ वाग्मी, बोलनेवाला। २ भाषणपटु, वदान्य। पर्याय—वद, वदावद, वक्ता, सुष्ठुवक्ता, बहुभाषी, वाग्मी, वावदूक, वचक, सुवचा, प्रवाक्, पण्डित। (पु०) ३ कथा कहनेवाला पुरुष, व्यास।

वक्ति (सं० स्त्री०) उक्ति, कथा, वाक्य।
(बृहदारण्यक उप० ४।३।२६)

वक्तु (सं० पु०) मन्दवाक्यभाषी, कुत्सित वाक्य बोलनेवाला पुरुष।

वक्तुकाम (सं० त्रि०) वक्तुं कामयते यः सः वा वक्तुं कामो यस्य सः। बोलनेमें इच्छुक या अभिलाषी।

वक्तुमनस् (सं० त्रि०) वक्तुं मनो यस्य सः वक्तुमनाः। कथितमानस, जिनने बोलनेकी इच्छा की है।

वक्तृ (सं० त्रि०) कथनशील, वक्ता, बोलनेवाला।

वक्तृक (सं० त्रि०) वक्तृ-स्वार्थे कन्। १ कथनपटु, जो बोलनेमें खूब चतुर हो। २ सत्यवादी, सच बोलनेवाला।

वक्तृता (सं० स्त्री०) वच्-तृच्, तस्य भावः तल्-टाप्। १ वाक्पटुता, वाग्मिता। २ व्याख्यान। ३ भाषण, कथन।

वक्तृत्व (सं० क्ली०) १ वक्तृता, वाग्मिता। २ व्याख्यान। ३ कथन।

वक्तृत्वशक्ति (सं० स्त्री०) बोलनेकी क्षमता।

वक्त्र (सं० क्ली०) वक्ति अनेनेति वच्-(गुधृवीपचिवचियमिसदिक्षदिभ्यस्त्रः। उण् ४।१६६) इति त्रः। १ मुख। वदन, आस्य, आनन, मुखार्थवाचक है। इस वक्त्र शब्दसे वन्दूकका मुख, हाथीकी सूंड़, पक्षीकी चोंच, तीरका फलक, भृङ्गारका नल आदि समझा जाता है। २ तगरकी जड़। ३ वस्त्रभेद, एक प्रकारका कपड़ा। ४ एक प्रकारका छंद जो अनुष्टुभ् छंदके अनुरूप होता है। ५ कामका आरम्भ। ६ बीजगणितोक्त प्रथम गृहीत संख्या। ७ तगरका फूल।

वक्त्रक (सं० त्रि०) मुखसम्बन्धी। वक्त्र देखो।

वक्त्रकटुता (सं० स्त्री०) मुखवैर।

वक्त्रखुर (सं० पु०) वक्त्रस्य खुर इव, पृषोदरादित्वात् षः। दण्ड।

वक्त्रज (सं० पु०) ब्राह्मणो वक्त्रात् जायते इति। "ब्राह्मणोऽस्य मुखमासीत्" इति श्रुतेः जन-ड। १ ब्राह्मण। (त्रि०) २ मुखजात, मुखसे उत्पन्न।

वक्त्रताल (सं० क्ली०) वक्त्रस्य तालम्। मुखवाद्य, वह ताल जो मुखसे उत्पन्न किया जाय।

वक्त्रतुण्ड (सं० पु०) गणेश।

वक्त्रदंष्ट्र (सं० त्रि०) वक्त्रे मुखदेशे दंष्ट्राणि यस्य। १ दीर्घदन्तविशिष्ट, जिसके दांत बड़े बड़े हों। (पु०) २ शूकर, सूअर।

वक्त्रदल (सं० क्ली०) तालू।

वक्त्रद्वार (सं० क्ली०) मुखविवर।

वक्त्रपट (सं० क्ली०) मुखावरणवस्त्र।

वक्त्रपट्ट (सं० पु०) वक्त्रस्य पट्ट इव। वह बरतन जिसमें घोड़ा चना खाता है, तोबड़ा। पर्याय—तलिका, तलसारक।

वक्त्रपरिस्पन्द (सं० पु०) १ वक्तृताके समय मुखका कांपना या हिलना। २ कथन, वाचन।

वक्त्रबाहु (सं० पु०) वाराहीकंद।

वक्त्रभेदिन (सं० पु०) वक्त्रं भिनत्तीति भिद् णिनि। १ तिक्तरस, तीता। (त्रि०) २ मुखविदारक, मुंह फाड़नेवाला।

वक्त्रयोधिन् (सं० पु०) १ एक असुरका नाम। (हरिवंश) (त्रि०) २ मुखसे लड़ाई करनेवाला (पक्षि आदि)।

वक्त्ररन्ध्र (सं० क्ली०) मुखविवर।

वक्त्ररुह (सं० त्रि०) १ मुखसे जो उत्पन्न हो। (पु०) २ वह बाल जो हाथीकी सूंड पर होते हैं।
(बृहत्सं० ६७।१०)

वक्त्ररोग (सं० पु०) मुखरोग, मुंहकी बीमारी।

वक्त्ररोगिन् (सं० त्रि०) मुखरोग-भोगकारी, जिसे मुंहकी बीमारी हुई हो।

वक्त्रवास (सं० पु०) वक्त्रं वासयति सुरभीकरोतीति वासि-(कर्मण्यण्। पा ३।२।१) इति अण्। १ नारङ्ग, नारंगी। वक्त्रस्य वासः। २ मुखताम्बूल।

वक्त्रशल्या (सं० स्त्री०) गुञ्जा, घुंघची।

वक्त्रशोधन (सं० क्ली०) वक्त्रस्य शोधनमिव। १ निम्बुफल, नीबू। २ भव्य, कमरख। ३ मुखशोधन, मुखशुद्धिकरण।

वक्त्रशोधिन् (सं० पु०) वक्त्रं शोधयतीति शुध्-णिच्-णिनि। १ जंबीरी नीबू। २ मुखशोधक।

पक्षाभिघात (सं० पु०) [illegible], [illegible] पेड़ ।

पक्षान्त (सं० पु०) [illegible] ।

पक्षाघात (सं० पु०) पक्षस्य आघातः । लकवा, [illegible] ।

पक्षाली (सं० स्त्री०) [illegible] ।

पक्षाद (सं० त्रि०) [illegible], [illegible] योग्य ।

पक्ष (सं० पु०) १ वह भूमि या सम्पत्ति जो धर्मार्थ दान कर दी गई हो, किसी धर्मके काममें लगी हुई जायदाद । २ किसीके लिये कोई चीज या धन सम्पत्ति आदि अर्पण देना । ३ किसी धर्मके काममें धन आदि देना, धर्मार्थ दान ।

पक्षनामा (फा० पु०) वह पत्र जिसके अनुसार किसीने अपनी कोई चीज धर्म की राह, दानपत्र ।

पक्षा (अ० पु०) १ अवकाश, मोहलत । २ काम करनेमें विराम ।

पक्षन (सं० स्त्री०) [illegible], [illegible] ।

पक्षाधारण (सं० त्रि०) [illegible] करनेवालोंका [illegible] ।
([illegible]) '[illegible]' । [illegible]
[illegible] ।'
([illegible])

पक्षार (सं० त्रि०) १ [illegible], [illegible] करनेके योग्य । २ [illegible] ।

'[illegible] ।'
([illegible])

'[illegible] ।'
([illegible])

पक्षि (सं० पु०) पक्ष इति । [illegible] । [illegible] ([illegible]) इति [illegible] । [illegible] । १ [illegible], [illegible] । पर्याय—[illegible], [illegible] । २ [illegible] । [illegible] [illegible] हैं ।

[illegible] ([illegible]) । [illegible] । [illegible] । ३ [illegible] । ४ [illegible] । ५ [illegible] । ६ [illegible] । ७ [illegible] । ८ [illegible] । जिस किसी [illegible] न हो, उस [illegible] हो गये रहेंगे । [illegible] ।

९ महाभारतके अनुसार [illegible] एक राजा । (भारत [illegible]) १० [illegible] और [illegible] विशेष । ११ रामायणके अनुसार एक [illegible] नाम । (रामायण [illegible]) १२ [illegible] ।

(त्रि०) [illegible] इति । [illegible] । [illegible] न लोपः । [illegible] । १३ [illegible], [illegible] । पर्याय—[illegible], [illegible], [illegible], [illegible], [illegible], [illegible], [illegible], [illegible], [illegible], [illegible] ।

"[illegible] ।"
(भारत [illegible])

कविकल्पलताके नीचे लिखे बहुतसे पक्षियोंके नाम दिये जाते हैं,—

[illegible], [illegible], [illegible], [illegible], [illegible], [illegible], [illegible], [illegible], [illegible], [illegible], [illegible], [illegible], [illegible], [illegible], [illegible], [illegible], [illegible] इत्यादि । (कविकल्पलता) १४ [illegible], [illegible] । १५ [illegible] । १६ [illegible] ।

पक्षिकण्ट (सं० पु०) [illegible] । १ [illegible], [illegible] पेड़ । २ [illegible] ।

पक्षिकन्दर (सं० पु०) [illegible] । [illegible], [illegible] पेड़ ।

पक्षिकूट (सं० पु०) [illegible] । [illegible], [illegible] और [illegible] ।

पक्षिण (सं० पु०) [illegible] । [illegible], [illegible] ।

पक्षिणि (सं० स्त्री०) [illegible] । १ [illegible] । २ [illegible] ।

[illegible] हैं । [illegible] है । [illegible] है । [illegible] नहीं [illegible] । [illegible]

और अन्यान्य शक्तिप्रभावसे उनकी वक्रगति हो जाती है।

ज्योतिषियोंने मङ्गलादि ग्रहोंकी वक्रगतिकी दिन-संख्या निर्देश की है। उससे जाना जाता है, कि मङ्गलकी वक्रगति ७६ दिन, बुधकी २१ दिन, वृहस्पतिकी १०० दिन, शुक्रकी १२ दिन तथा शनिकी वक्रगति १८४ दिन है।

विस्तृत विवरण ग्रह शब्दमें देखो।

वक्रगल (हिं० पु०) एक प्रकारका बाजा जो मुंहसे फूंक कर बजाया जाता है।

वक्रगामिन् (सं० त्रि०) १ असरल गति, टेढ़ी चाल चलनेवाला। २ असत् व्यक्ति, झूठा। ३ शठ, कुटिल। ४ प्रवञ्चक, धोखेबाज।

वक्रगुल्फ (सं० पु०) उष्ट्र, ऊंट।

वक्रग्रीव (सं० पु०) वक्रा ग्रीवास्य। उष्ट्र, ऊंट।

वक्रचञ्चु (सं० पु०) वक्रा चञ्चुर्यस्य। शुकपक्षी, तोता।

वक्रण (सं० क्ली०) वक्रीकरण, टेढ़ा करना।

वक्रणा (सं० स्त्री०) वक्रण देखो।

वक्रता (सं० स्त्री०) १ वक्रका भाव या धर्म, टेढ़ापन। २ क्रूरता, शठता।

वक्रत्व (सं० क्ली०) वक्रता देखो।

वक्रताल (सं० क्ली०) वक्रं तालं यत्र। वाद्यविशेष, एक प्रकारका बाजा जो मुंहसे बजाया जाता है। पर्याय—मुखवाद्य, वक्रनाल।

वक्रताली (सं० स्त्री०) वक्रतालगौरादित्वात् ङीष्। मुखवाद्य, एक प्रकारका बाजा जो मुंहसे बजाया जाता है।

वक्रतु (सं० पु०) देवताभेद। (मार्कपु० ८०।६)

वक्रतुण्ड (सं० पु०) वक्रं तुण्डं यस्य। १ शुक पक्षी, तोता। २ गणेश। (त्रि०) ३ वक्रोष्ठ, जिसके होंठ टेढ़े हों।

वक्रदंष्ट्र (सं० पु०) वक्रा दंष्ट्रा यस्य। शूकर, सूअर।

वक्रदन्त (सं० पु०) दन्तवक्र नामक राक्षस।

वक्रदन्ती (सं० स्त्री०) हस्तदन्ती, लघुदंती।

वक्रदल (सं० क्ली०) तालू। वक्रदल देखो।

वक्रदृष्टि (सं० स्त्री०) १ टेढ़ी दृष्टि। २ क्रोधकी दृष्टि। ३ मन्द दृष्टि।

वक्रधर (सं० पु०) द्वितीयाका टेढ़ा चन्द्रमा धारण करनेवाले, शिव।

वक्रनक्र (सं० पु०) वक्रः कुटिलः नक्र इव दिंस्रस्च। १ पिशुन, चुगलखोर। २ शुक पक्षी, तोता।

वक्रनाल (सं० क्ली०) मुखवाद्य, एक प्रकारका बाजा जो मुंहसे बजाया जाता है।

वक्रनास (सं० त्रि०) वक्रनासा या चञ्चुयुक्त, जिसकी नाक या चोंच टेढ़ी हो।

वक्रनासिक (सं० पु०) वक्रा नासिका यस्य। १ पेचक, उल्लू। (त्रि०) २ कुटिल नासायुक्त, टेढ़ी नाकवाला।

वक्रपाद (सं० त्रि०) वक्रं पादं यस्य। खञ्ज, लंगड़ा।

वक्रपुच्छ (सं० पु० स्त्री०) वक्रं पुच्छं यस्य। कुक्कुर, कुत्ता।

वक्रपुच्छिक (सं० पु०) कुक्कुर, कुत्ता।

वक्रपुर (सं० क्ली०) एक प्राचीन नगरका नाम।

(कथासरित्सा० १०७,१३६)

वक्रपुष्प (सं० पु०) वक्राणि पुष्पाण्यस्य। १ वकवृक्ष, अगस्तका पेड़। २ पलासका पेड़।

वक्रपुष्पिका (सं० स्त्री०) लांगूलिका, विषलांगली।

वक्रबालधि (सं० पु०) वक्रो बालधिः केशयुक्तलांगूलं यस्य। १ कुक्कुर, कुत्ता। (क्ली०) २ कुटिलपुच्छ, टेढ़ी पूंछ।

वक्रभनित (सं० क्ली०) वक्रं कुटिलं भणितम्। कुटिल-वाक्य, खोटी बात। पर्याय—छेकोक्ति, वक्रोक्ति, श्लेषोक्ति।

वक्रभाव (सं० पु०) १ वक्रता, टेढ़ापन। २ असरलता, कुटिलता।

वक्रम (सं० पु०) अपक्रमणमिति अप-क्रम-भावे घञ्। अल्लोपः। पलायन, भागना।

वक्रय (सं० पु०) मूल्य, दाम।

वक्ररेखा (सं० स्त्री०) टेढ़ी रेखा।

वक्रलाङ्गूल (सं० पु०) वक्रं लांगूलं यस्य। १ कुक्कुर, कुत्ता। (क्ली०) २ कुटिल पुच्छ, टेढ़ी पूंछ।

वक्रवक्त्र (सं० पु०) वक्रं वक्त्रमस्य। १ शूकर, सूअर। (त्रि०) २ वक्रमुखविशिष्ट, टेढ़ा मुंहवाला।

वक्रशल्या (सं० स्त्री०) वक्रं शल्यमिव पत्रादिकं यस्याः। १ कुटुम्बिनी क्षुप, एक प्रकारकी टेढ़ी लता। २ कटुतुम्बी,

[illegible] वह, [illegible] । ४ [illegible], [illegible] दिखलाती।

वक्राङ्ग (सं० त्रि०) जिसके अंग टेढ़े हों। (महिष आदि)।

वक्राघ (सं० स्त्री०) वक्रं [illegible] । वक्रायवकप्रुप, [illegible] ।

वक्राङ्ग (सं० पुं०) वक्रं अङ्गं यस्य । १ हंस । २ सर्प, सांप । ३ कुटिल अवयव, टेढ़ा अङ्ग । (त्रि०) ४ कुटिल अवयवविशिष्ट, जिसका अंग टेढ़ा हो।

वक्राङ्घ्रि (सं० पुं०) वक्र पाद, टेढ़ा पैर।

वक्राङ्घ्रि संग्रामदेव—काश्मीर राज यशस्करके पुत्र। राजा यशस्कर जब बहुत बीमार पड़े, तब उन्होंने पहले अपने पुत्रको छोड़ कर अपने भाईके नाती वर्णटको राज्य दिया था, परन्तु यशस्करके जीते-जी जब वर्णट मनमाना करने लगा, तब मन्त्रियोंकी सलाहसे यशस्करने वर्णटको अलग करके अपने पुत्रको राज्य दिया।

राजा यशस्करके परलोक सिधारने पर संग्रामदेवकी उमर कम थी इसलिये उनकी पितामही अभिभाविका हो गई। पर्वगुप्त उन दिनों राज्य लेनेके लिये बहुत व्याकुल हो रहा था। उसने एक दिन मौका देख कर राजभवन पर चढ़ाई की और संग्रामदेवको मार डाला तथा उनके गलेमें पत्थर बंधवा कर उन्हें किसी नदीमें फेंकवा दिया। इनके पैर टेढ़े थे इस कारण इनका नाम वक्राङ्घ्रि पड़ गया था। इन्होंने १ महीने १ दिन राज्य किया था।

वक्राणक (सं० पुं०) महाभारतके अनुसार एक जाति। इस जातिका दूसरा नाम वक्राति है।

वक्रि (सं० त्रि०) [illegible], कटु [illegible]।

वक्रित (सं० त्रि०) वक्र-इतच् । १ वक्रभावापन्न, जो टेढ़ा हो गया हो। २ वक्र, टेढ़ा।

वक्रिन् (सं० पुं०) वक्रो गत्यादयोऽस्यास्तीति इनि। वैदिक-[illegible] । १ बुद्धदेव, जिन्होंने [illegible] वैदिक मतका विरोध किया था। २ वह प्राणी जिसके अंग स्वभावसे टेढ़े हों। ३ वक्रगति। (त्रि०) ४ वक्रविशिष्ट, ग्रह जो आगेको छोड़ कर पीछे लौटते हैं। [illegible] लिखा है, कि जो ग्रह अपनी राशिसे एकराशिको दूसरी राशिमें चला जाता है, उसे अतिचारी या महावक्री कहते हैं। यह वक्रता मंगल आदि पांच ग्रहोंमें ही होती है। ग्रहगति देखो।

वक्रिम (सं० त्रि०) वक्र अस्ति [illegible] । वक्र, कुटिल, टेढ़ा।

वक्रिमन् (सं० पुं०) वक्र इमनिच् । वक्रता, टेढ़ापन।

वक्री (सं० पुं०) वक्रिन् देखो।

वक्रोक्षण (सं० स्त्री०) दोनों आंखों [illegible] आगेके कोनोंसे टेढ़ा करना।

वक्रीकृत (सं० त्रि०) अवक्रः वक्रः कृतः अभूततद्भावे च्वि । वक्र, जो टेढ़ा हो गया हो।

वक्रीभाव (सं० पुं०) १ वक्रता, टेढ़ापन। २ कुटिलता, शठता। ३ प्रवञ्चना, धोखेबाजी।

वक्रीभूत (सं० त्रि०) १ वक्रभावापन्न, जो टेढ़ा हो गया हो। २ प्रवञ्चनायुक्त, धोखेबाज। ३ शठतायुक्त, कुटिल।

वक्रेतर (सं० त्रि०) जो वक्र न हो अर्थात् सरल।

वक्रेश्वर—वीरभूम जिलेके दबराज प्रभाग सदर सिउड़ीसे ८ मील पश्चिममें अवस्थित एक अति प्राचीन तीर्थस्थान। हरिपुर परगनेमें [illegible] भी नाम है उसमें [illegible] 'वक्रेश्वर' [illegible] प्राचीन तीर्थभूमिका [illegible] है। यहांकी प्राचीन कीर्ति अधिकांश विलुप्त होने पर भी 'वक्रेश्वर' [illegible] दक्षिण आज भी ४०० शिव-मन्दिर और अनेक [illegible] तीर्थयात्रियोंके मनमें [illegible] इसकी [illegible] करते हैं। प्राचीन [illegible] भावानुसार आज भी यह स्थान "गुप्त वक्रेश्वर" नामसे जनसाधारणमें प्रसिद्ध है।

[illegible] वक्रेश्वर शिव [illegible] एक प्रधान और प्राचीन तीर्थ है। यहां [illegible] और वैष्णव [illegible] साथ साथ [illegible] धीरे धीरे [illegible] लोगोंके [illegible] हुआ है, इसमें सन्देह नहीं।

[illegible] वक्रेश्वर-माहात्म्यमें वक्रेश्वरके पूर्व [illegible] और [illegible] वर्णन किया गया है।

"[illegible] वक्रेश्वर [illegible]।
[illegible]॥"

गौड़देशमें यक्षेश्वर नामक एक बड़ा क्षेत्र है। उस क्षेत्रका स्मरण करनेसे मनुष्य सभी पापोंसे मुक्त होते हैं।

इस यक्षेश्वरकी उत्पत्ति किस प्रकार हुई, उसका संक्षिप्त विवरण नीचे लिखा जाता है,—

सत्ययुगमें महातपा अष्टावक्रका नाम था सुव्रत। त्रैलोक्यमें ऐश्वर्यकी आस्पदीभूत लक्ष्मीके स्वयम्वरमें देवसभामें मनोहर नृत्य हुआ था। देव, गन्धर्व, सिद्ध, चारण आदि सभी उस स्वयम्वरमें उपस्थित थे। वहाँ अमरपति शचीनाथ इन्द्रने सबसे पहले लोमशऋषिको पाद्य, अर्घ्य और आचमनीय अर्पण किया। यह देख भगवान् सुव्रत बड़े बिगड़े, लेकिन तपभङ्ग हो जानेके भयसे उन्होंने कोई शाप नहीं दिया। क्रोधके कारण उनका अष्टाङ्ग वक्र हो गया। उसी दिनसे उनका अष्टावक्र नाम पड़ा। इस प्रकार वक्राङ्ग हो मुनिवरने इस क्षेत्रमें आ कर कठोर तपस्या आरम्भ कर दी। उनकी तपस्यासे सर्वलोक उत्तप्त हो उठा। दश हजार वर्ष तक केवल जल पी कर, पीछे दश हजार वर्ष केवल पेड़की पत्तियां खा कर और उसके बाद दश हजार वर्ष वायु भक्षण कर जितेन्द्रिय मुनिवरने कठोर तपस्या की थी। उनके निकट पावक आकारके तीन कुण्ड निकल आये। उन्हीं कुण्डोंके नाम दक्षिणाग्नि, गार्हपत्याग्नि और आहवनीयाग्नि हैं। ये तीनों अग्नि अतल नामक पातालमें अवस्थित हैं। उनका जल स्वर्गप्रदायक है। यहां भोगवतीके जल प्रवाहित जिनके मस्तक पर सुमेरु है उन हाटक नामक महादेवकी भी यक्षऋषिने अर्चना की। उनकी अदृश्य जटासे जल निकल कर तीन अग्निकुण्डके साथ मिल गया है। पावक उस जलको आलिङ्गन कर उष्णतोया श्वेतगङ्गा नदीरूपमें बहते हैं। इसी नदीका किसीने भोगवती और किसीने श्वेतके नामानुसार श्वेतगङ्गा नाम रखा है। यहां पातालेश, अक्षयवट और नन्दीश्वरमें स्नान, पीछे ब्रह्मयोनि और शिलाका स्नान तथा नदीके एक अंशमें शिवको स्नान करा कर दक्षिणकी ओर यक्षेश्वरके पश्चाद्भागमें तीन धनुके फासले पर पापहारिणी वैतरणीमें स्नान और उसके दर्शन करनेसे अतिरात्रका फल होता है। यह पापहर क्षेत्र सर्पाकार है। त्रैलोक्यकी रक्षा करनेके लिये महादेव यहां वास करते हैं। उन्हींके उद्देशसे महातपा यक्षने तपस्या की थी। स्वयं पार्वतीपति मुनिके प्रति अत्यन्त प्रसन्न हुए थे। वक्रमुनिने यहां आराधना की थी, इस कारण यहां पर महादेव यक्षेश्वर नामसे प्रसिद्ध हुए। उनके प्रभावसे अष्टावक्रको अभीष्ट प्राप्त हुआ था।

इस क्षेत्रमें कहां कौन तीर्थ है तथा उन सब तीर्थोंमें किस प्रकार पूजादि करनी होती है, यक्षेश्वरकी तीर्थ-परिक्रमामें इस प्रकार लिखा है,—

इस यक्षेश्वरक्षेत्रके दक्षिण क्षारकुण्डादि तीर्थोंकी क्रमशः यात्रा करनी होती है। पहले यक्षेश्वरमें जा कर क्षौरकर्म, स्नान और शिवके दर्शन और प्रणाम कर पञ्चतीर्थ विधानसे यात्रीको परिक्रमा करनी चाहिये। पीछे क्षारकुण्डमें स्नान कर कुशोदक छिड़क कर यथाविधान सङ्कल्प करनेके बाद मन्त्रपाठ करे।

इस क्षारकुण्डके पूर्वमें सिद्धसेवित सर्वपापनाशक भैरवकुण्ड है। तीर्थयात्रीको भक्तिपूर्वक इस भैरवकुण्डमें आ कर जलस्पर्श करना चाहिये।

भैरवकुण्डके पूर्वमें सर्वपापनाशक महापुण्यप्रद अग्निकुण्ड है। पीछे यात्री कुशसंयुक्त अग्निकुण्डके जल द्वारा अभिषेक करे।

अग्निकुण्डके पूर्वमें जीवकुण्ड (दूसरा नाम अमृतकुण्ड) है। सर्वपापनाशक और सर्वरोग-निवारक अग्निकुण्डसे इस जीवकुण्डमें आ कर सर्वपाप विनाशार्थ स्नान करे।

जीवकुण्डसे दक्षिण सर्वसौभाग्यप्रद सौभाग्य नामक कुण्ड है। सर्वपाप-विनाश और सर्वसौभाग्यलाभके लिये यात्रीको सौभाग्यकुण्डमें स्नान करना होता है।

अग्निकुण्डके दक्षिण पापमोचनी वैतरणी है। इसका जल स्पर्श करनेसे मनुष्य पाप-मुक्त होते हैं। यहां भी स्नान करना होता है। इस क्षेत्रमें क्षारकुण्डके दक्षिण पापहरा नामक एक सर्वपापहरा सरित् है। वैतरणी पार कर यहां स्नान करना उचित है।

इसके बाद ब्रह्मकुण्डमें आना होगा। जीवकुण्डके ईशान-कोणमें ब्रह्मकुण्ड है। यह कुण्ड मानवका भोग-मोक्षप्रद और सर्वपापनाशक माना गया है। ब्रह्मकुण्डमें स्नान करना होता है।

[illegible] पुराणमें द्रोणकुण्ड [illegible] एक कुण्ड है। इस कुण्डमें स्नान करनेका [illegible] लिखा है।

द्रोणकुण्डमें [illegible], [illegible] और [illegible] [illegible] [illegible] गये हैं। इस [illegible] [illegible] [illegible] ही [illegible] पूजा करना होता है। [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] है। [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] होता है।

[illegible] शिवर और [illegible] [illegible] हैं। [illegible] द्वारा उनकी भी पूजा करनी होती है। पीछे [illegible] पूजा करना आवश्यक है। द्रोणकुण्डके [illegible] [illegible] [illegible] शिवर [illegible] भी [illegible] है। [illegible] द्वारा उनकी पूजा करनेसे [illegible] [illegible] फल होता है।

[illegible] [illegible] कर पीछे [illegible] दर्शन करे। [illegible] [illegible] द्वारा [illegible] कर [illegible] पूजा करनी होती है। [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible]।

इस [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] भी [illegible] या [illegible] करना [illegible] [illegible] [illegible] होते हैं।

ऊपर जिन सब कुण्डोंका उल्लेख किया गया [illegible] [illegible] जिस प्रकार हुई है, वह भी [illegible] [illegible] [illegible] है। [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] किया गया।

[illegible] [illegible] एक ऐतिहासिक घटना [illegible] इस प्रकार है—

[illegible], [illegible], [illegible], [illegible] [illegible] और [illegible] [illegible] राजा थे। जिनमेंसे [illegible] [illegible] थी। [illegible] [illegible] [illegible] राज[illegible] [illegible] थी। वे [illegible] दिन [illegible] [illegible] [illegible] पूजा करते [illegible] और फिर लौट आते थे। [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] कर दिया था, कि [illegible] [illegible] [illegible] और [illegible] [illegible] [illegible] [illegible]; [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] होगा, तुम [illegible] [illegible]

[illegible], [illegible] और [illegible] होंगे।' [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] जिनसे [illegible] [illegible] [illegible] करनेके लिये [illegible] [illegible]। [illegible] [illegible] प्रसन्न हो [illegible] कहा, '[illegible]! [illegible] जो इच्छा हो, सो वर मांगो।' [illegible] [illegible] [illegible] [illegible], 'यदि आप इस [illegible] पर प्रसन्न हैं, तो [illegible] [illegible] दीजिये। [illegible] [illegible] कि इस कुण्डोंकी [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] होने पर जो [illegible] रहे और [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] हो।' [illegible] कहा, '[illegible]! तुम धन्य हो, क्योंकि [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] भी इच्छा न हुई। [illegible] मेरे [illegible] भी [illegible] है, मेरे [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] होता है, [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] द्रोणकुण्ड [illegible] रहेगा और तुम भी [illegible] [illegible] यह [illegible] [illegible], इसमें संदेह नहीं। [illegible] [illegible] भी [illegible] और [illegible] [illegible] भी [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] होगी। [illegible] फिर [illegible] भी [illegible] नहीं [illegible] [illegible]। [illegible] [illegible] इस द्रोणकुण्डमें [illegible] स्नान कर भी [illegible] [illegible], उसे [illegible] [illegible] फल होगा।'

इस [illegible] [illegible] मालूम पड़ता है, कि [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] इस कुण्डोंका [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] आवश्यक है। [illegible] [illegible] [illegible] [illegible]

[illegible]

एक श्लेषार्थक और दूसरा अर्थवाचक है। निम्नोक्त उदाहरणसे इसका स्पष्ट पता चलेगा—

"के यूयं स्थल एव सम्प्रति वयं प्रश्नो विशेषाश्रयः
किं ब्रूते विहगः स वा फणिपतिर्यत्रास्ति सुप्तो हरिः।
वामा यूयमहो विडम्बरसिकः कीदृक्स्मरो वर्त्तते
येनास्मासु विवेकशून्यमनसः पुंस्वेव योषिद् भ्रमः॥"

'के यूयं' तुम लोग कौन हो? इस प्रश्नके उत्तरमें उत्तरदाताने कहा, हम लोग जलमें नहीं हैं। यहां पर 'के' को किम् शब्दकी प्रथमा विभक्तिका बहुवचन न मान कर जलवाचक 'कं' शब्दकी सप्तमी विभक्तिका एकवचन 'के' मान कर उत्तर दिया गया, इस कारण यह वक्रोक्ति हुई है। प्रत्युत्तरमें—'प्रश्नोविशेषाश्रयः' पदमें जिज्ञास्य-ज्ञापन किया गया है। यहां पर 'वि' पक्षी और 'शेष' अनन्त (नाग) यह विशेष अर्थ ग्रहण करके ही उत्तर दिया गया था; विशेष शब्दका साधारण अर्थ नहीं लिया गया।—तब तुम लोग क्या यह कहना चाहते, 'हम लोग पक्षी हैं अथवा सर्प हैं, जहां विष्णु भगवान् सो रहे हैं?' यहां पर विशेष शब्दका साधारण अर्थ नहीं लिया गया है, वि-शब्दसे पक्षी और शेष शब्दसे सर्पका अर्थ लिया गया है, इस कारण यह वक्रोक्ति हुई है।

द्वितीयार्द्धमें—अहा! तब तुम लोग क्या वामा हो अर्थात् प्रतिकूल अर्थ ग्रहण करते हो (वामा शब्दका एक अर्थ है प्रतिकूलवादी)। क्योंकि हम एक अर्थसे प्रश्न करते हैं और तुम उसका अर्थ लेते हो। उत्तरवादीने वामा शब्दका प्रतिकूलवादी अर्थ न ले कर साधारणतः स्त्री-अर्थ लिया और कहा,—वाह री अंधे! तुम ऐसे कामासक्त हो गये, कि तुम्हें पुरुषमें नारीका भ्रम हो गया। यहां वामा शब्दके दो अर्थ हुए १म स्त्री और २य प्रतिकूलवादी। प्रश्नकर्त्ताने प्रतिकूलवादी अर्थ लगाया है, किन्तु उत्तरदाता स्त्री अर्थ मान कर उत्तर देते हैं, यही वक्रोक्ति है। इन दोनों अर्थोंका संयोग होनेके कारण इसको समङ्गश्लेष कहते हैं। अन्य पक्षमें यह अभङ्ग है।

"काले कोकिलवाचाले सहकारमनोहरे।
कृतागसः परित्यागात् तस्याश्चेतो न दूयते॥"

कोकिलकलरवसे परिपूर्ण आम्रमुकुल विकसित मनोहर वसन्तकालमें दोषी कान्तको त्याग कर कामिनीका चित्त व्यथित नहीं होता, सचमुच व्यथित होता है। यहां पर निषेधार्थमें नञ् शब्द प्रयुक्त हुआ है, किन्तु अपर पक्षमें काका अर्थात् ध्वनिविशेष द्वारा विधि अर्थ भी होता है।

वक्रोलक (सं० पु०) १ एक गण्डग्राम। (कथासरित्सा० ७३।१८) २ उसी नामका एक नगर। (कथासरित्सा० ९३।२)

वक्रोष्ठिका (सं० स्त्री०) वक्रोष्ठोऽस्त्यस्या इति, ठन्। ईषद्धसनेन हि-ओष्ठस्य वक्रता जायते अतोऽस्यास्तथात्वम्। यद्वा वक्र ओष्ठो यस्याः। ततः स्वार्थे कन्, टापि अत इत्वम्। अट्टहासहास्य, ऐसी मंद हंसी जिसमें दांत न खुले केवल ओंठ कुछ टेढ़े हो जायं, मुसकान। पर्याय—स्मित।

वक्ष (सं० त्रि०) १ तिर्यग्गामी, तिरछा या टेढ़ा चलनेवाला। २ इतस्ततः परिभ्रमणशील, इधर उधर घूमनेवाला।

वक्षन् (सं० त्रि०) गुणवक्ता, स्तोता।

वक्षी (सं० स्त्री०) गुणवक्त्री। (ऋक् १।१८४।६)

वक्षस (सं० पु०) सुश्रुतके अनुसार एक प्रकारका मद्य। (वक्षस् देखो।)

वक्षः (सं० क्ली०) उच्यतेऽनेनेति। वच् (पचिवचिभ्यां सुट् च। उण् ४।२१९) इति असुन् सुट्। वक्षेरसुन् इति रमानाथः धातुप्रदीपश्च। १ अङ्गविशेष, पेट और गलेके बीचमें पड़नेवाला भाग जिसमें स्त्रियोंके स्तन और पुरुषोंके स्तनके-से चिह्न होते हैं, छाती। पर्याय—क्रोड़, भुजान्तर, उरः, वत्स, अङ्क, उत्सङ्ग, वक्षण, गणपीठक और वक्षःस्थल।

गरुड़पुराणमें वक्षके शुभाशुभ लक्षण लिखे हैं। समवक्षोविशिष्ट अर्थवान्, पीनवक्षोव्यक्ति वीर और शक्तिशाली तथा विषमवक्ष व्यक्ति निर्धन और शस्त्रके द्वारा निधनप्राप्त होते हैं।

"अर्थवान् समवक्षाः स्यात् पीनैर्वीरोऽमिर्वर्जितः।
वक्षोभिर्विषमैर्निःस्वः शस्त्रेण निधनस्तथा॥"

(गरुड़पुराण ६५ अ०)

(पु०) वहतीति वह-(वहिहाधाञ्भ्यश्छन्दसि।

ब्रह्मकुण्डसे पूर्वभागमें श्वेतगङ्गा नामक सर्वपापनाशक एक कुण्ड है। इस कुण्डमें जा कर स्नान करनेका नियम है।

श्वेतगङ्गाके उत्तर पुत्र, ऐश्वर्य और सुखप्रद अक्षय नामक एक वट है। इस वटवृक्षका प्रदक्षिण कर शिवभाव में दत्तचित्तसे पूजन करना होता है। वटवृक्षके समीप माधवदेव अवस्थित हैं। उनके दर्शन करनेसे सहजमें मुक्तिलाभ होता है।

माधवके निकट अनेक देवता खड़े हैं। गन्धपुष्पादि द्वारा उनकी भी पूजा करनी होती है। पीछे कामधेनुकी पूजा करना आवश्यक है। श्वेतगङ्गाके दक्षिण श्वेतगङ्गाके जलके निकट वृषरूपी धर्म अवस्थित हैं। गन्धपुष्पादि द्वारा उनकी पूजा करनेसे चतुर्वेद पाठका फल होता है। वृषको आलिङ्गन कर पीछे वक्रेश्वरके दर्शन करे। पाद्य अर्घ्यादि द्वारा अभिषेक कर यथाक्रम पूजा करनी होती है। वृषमूर्त्तिके पश्चिम वेदीके मध्य वक्रेश्वरदेव अवस्थित हैं।

इस अष्टावक्रनिर्मित परम रमणीय पुण्य शिवक्षेत्रका जो स्मरण या प्रणाम करता उसके सभी पाप दूर होते हैं।

ऊपर जिन सब कुण्डोंका उल्लेख किया गया उनकी नामोत्पत्ति किस प्रकार हुई है, यह भी वक्रेश्वर माहात्म्यमें वर्णित है। विस्तार हो जानेके भयसे यहां पर नहीं लिखा गया।

वक्रेश्वर-माहात्म्यमें एक ऐतिहासिक घटनाका उल्लेख इस प्रकार है—

सत्यवादी, सत्यपरायण, वीर्यवान्, जितेन्द्रिय और दयालु श्वेत नामक एक राजा थे। शिवजीमें उनकी अटूट भक्ति थी। मङ्गलकोट नामक नगरमें उनकी राजधानी प्रतिष्ठित थी। वे प्रति दिन ५ योजनका रास्ता तै कर वक्रेश्वरकी पूजा करने आते और फिर लौट जाते थे। उन्हें भक्तवत्सल भगवान् वक्रेश्वरने वर दिया था, कि तुम मनुष्योंसे दुराधर्ष और सर्वदा ब्रह्मण्य (या ब्राह्मणमें अनुरक्त) होगे तथा देवद्विजको प्रिय वस्तु दान कर धर्मपूर्वक राज्य करोगे। तुम्हारा राजभवन सभी प्रकारके ऐश्वर्यसे समायुक्त होगा, तुम विपुल धनवान, आयुष्मान् और कीर्तिमान् होगे।' वक्रेश्वरके वचन सुन कर श्वेत नरपति भक्तियुक्त चित्तसे प्रणत हो भगवान्‌को प्रसन्न करनेके लिये स्तव करने लगे। भगवान वक्रेश्वरने प्रसन्न हो कर कहा, 'राजेन्द्र! तुम्हारी जो इच्छा हो, सो वर मांगो।' राजाने हाथ जोड़ प्रार्थना की, 'यदि आप इस दास पर प्रसन्न हैं, तो दो वर दीजिये। पहला यह कि इस पुण्यक्षेत्रमें आपके निकट मेरा प्राणान्त होने पर भी नाम रहे और दूसरा आप होके निकट मेरा अन्तिम काल शेष हो।' शिवने कहा, 'महाराज! तुम धन्य हो, क्योंकि दूसरा वर लेनेकी आपकी जरा भी इच्छा न हुई। महाराज मेरे पास जो जाह्नवी है, मेरे स्नानार्थ जिसमें नाना तीर्थोंका समागम होता है, आजसे उसका तुम्हारे नामानुसार श्वेतगङ्गा नाम रहेगा और तुम भी अन्तकालमें मेरा पद लाभ करोगे, इसमें संदेह नहीं। तुम्हारा चरित्र जो सुनेगा और तुम्हारा स्तोत्र जो पाठ करेगा उसे स्वर्गकी प्राप्ति होगी। उसे फिर कभी भी यमालय नहीं जाना पड़ेगा। मेरे निकट इस श्वेतगङ्गाके जलमें स्नान कर जो पिण्डदान करेगा, उसे गया-श्राद्ध करनेका फल होगा।'

इस प्राचीन कहानीसे मालूम पड़ता है, कि नाना उष्ण-प्रस्रवणशोभित यह निभृत स्थान बहु-ऋषियों तपस्वियोंका प्रिय स्थान समझे जाने पर भी श्वेत नामक किसी हिन्दू-राजके यत्नसे ही इस पुण्यक्षेत्रकी प्रतिष्ठा हुई है। आज भी नाना स्थानोंसे अनेक यात्री इस तीर्थके दर्शन करने आते हैं। यह स्थान अत्यन्त स्वास्थ्यकर है। यहांके कुण्डरूपी उष्ण-प्रस्रवणोंका जल सचमुच रोगनाशक है।

वक्रोक्ति (सं० स्त्री०) वक्रा कुटिला उक्तिः। १ काकूक्ति, व्यङ्ग-वचन। २ कुटिलोक्ति, कपट वचन। ३ शब्दालङ्कारविशेष। काव्यादिमें श्लेषयाक्यके प्रयोग या व्यङ्गोक्तिको वक्रोक्ति कहते हैं। साहित्यदर्पणके १०म परिच्छेदमें इसका विषय यों लिखा है—

"अन्यस्यान्यार्थकं वाक्यमन्यथा योजयेद् यदि।
अन्यःश्लेषेण काक्वा वा सा वक्रोक्तिस्ततो द्विधा॥"
(साहित्यदर्पण १०।६४१ प०)

साधारणतः वक्रोक्तिसे दो अर्थ समझे जाते हैं। उनमें

एक श्लेषार्थक और दूसरा अर्थवाचक है। निम्नोक्त उदाहरणसे इसका स्पष्ट पता चलेगा—

"के यूयं स्थल एव सम्प्रति वयं प्रश्नो विशेषाश्रयः
किं ब्रूते विहगः स वा फणिपतिर्यत्रास्ति सुप्तो हरिः।
वामा यूयमहो विडम्बरसिकः कीदृक्स्मरो वर्त्तते
येनास्मासु विवेकशून्यमनसः पुंस्येव योषिद् भ्रमः॥"

'के यूयं' तुम लोग कौन हो? इस प्रश्नके उत्तरमें उत्तरदाताने कहा, हम लोग जलमें नहीं हैं। यहां पर 'के' को किम् शब्दकी प्रथमा विभक्तिका बहुवचन न मान कर जलवाचक 'क' शब्दकी सप्तमी विभक्तिका एकवचन 'के' मान कर उत्तर दिया गया, इस कारण यह वक्रोक्ति हुई है। प्रत्युत्तरमें—'प्रश्नोविशेषाश्रयः' पदसे जिज्ञास्य-ज्ञापन किया गया है। यहां पर 'वि' पक्षी और 'शेष' अनन्त (नाग) यह विशेष अर्थ ग्रहण करके ही उत्तर दिया गया था; विशेष शब्दका साधारण अर्थ नहीं लिया गया।—तब तुम लोग क्या यह कहना चाहते, 'हम लोग पक्षी हैं अथवा सर्प हैं, जहां विष्णु भगवान् सो रहे हैं?' यहां पर विशेष शब्दका साधारण अर्थ नहीं लिया गया है, वि-शब्दसे पक्षी और शेष शब्दसे सर्पका अर्थ लिया गया है, इस कारण यह वक्रोक्ति हुई है।

द्वितीयार्द्धमें—अहा! तब तुम लोग क्या वामा हो अर्थात् प्रतिकूल अर्थ ग्रहण करते हो (वामा शब्दका एक अर्थ है प्रतिकूलवादी)। क्योंकि हम एक अर्थसे प्रश्न करते हैं और तुम उसका अर्थ लेते हो। उत्तरवादीने वामा शब्दका प्रतिकूलवादी अर्थ न ले कर साधारणतः स्त्री-अर्थ लिया और कहा,—वाह जी वाह! तुम ऐसे कामासक्त हो गये, कि तुम्हें पुरुषमें नारीका भ्रम हो गया। यहां वामा शब्दके दो अर्थ हुए १म स्त्री और २य प्रतिकूलवादी। प्रश्नकर्त्ताने प्रतिकूलवादी अर्थ लगाया है, किन्तु उत्तरदाता स्त्री अर्थ मान कर उत्तर देते हैं, यही वक्रोक्ति है। इन दोनों अर्थोंका संयोग होनेके कारण इसको समङ्गश्लेष कहते हैं। अन्य पक्षमें यह अभङ्ग है।

"काले कोकिलवाचाले सहकारमनोहरे।
कृतागसः परित्यागात् तस्याश्चेतो न दूयते॥"

कोकिलकलरवसे परिपूर्ण आम्रमुकुल विकसित मनोहर वसन्तकालमें दोषी कान्तको त्याग कर कामिनीका चित्त व्यथित नहीं होता, सचमुच व्यथित होता है। यहां पर निषेधार्थमें नञ् शब्द प्रयुक्त हुआ है, किन्तु अपर पक्षमें काका अर्थात् ध्वनिविशेष द्वारा विधि अर्थ भी होता है।

वक्रोलक (सं॰ पु॰) १ एक गण्डग्राम। (कथासरित्सा॰ ७६।१८) २ उसी नामका एक नगर।

(कथासरित्सा॰ ६३।३)

वक्रोष्ठिका (सं॰ स्त्री॰) वक्रोष्ठोऽस्त्यस्या इति, ठन्। ईषद्धसनेन हि ओष्ठस्य वक्रता जायते अतोऽस्यास्तथात्वम्। यद्वा वक्र ओष्ठो यस्याः। ततः स्वार्थे कन्, टापि अत इत्वम्। अट्टहासहास्य, ऐसी मंद हंसी जिसमें दांत न खुले केवल ओंठ कुछ टेढ़े हो जायं, मुसकान। पर्याय—स्मित।

वक्र (सं॰ त्रि॰) १ तिर्यग्गामी, तिरछा या टेढ़ा चलनेवाला। २ इतस्ततः परिभ्रमणशील, इधर उधर घूमनेवाला।

वक्त (सं॰ त्रि॰) गुणवक्ता, स्तोता।

वक्री (सं॰ स्त्री॰) गुणवक्त्री। (ऋक् १।१४४।६)

वक्स (सं॰ पु॰) सुश्रुतके अनुसार एक प्रकारका मद्य।

(वक्कस देखो।)

वक्षः (सं॰ क्ली॰) उच्यतेऽनेनेति। वच् (वर्त्तिवचिभ्यां सुट् च। उण् ४।२१६) इति असुन् सुट्। वक्षतेरसुन् इति रमानाथः धातुप्रदीपश्च। १ अङ्गविशेष, पेट और गलेके बीचमें पड़नेवाला भाग जिसमें स्त्रियोंके स्तन और पुरुषोंके स्तनके-से चिह्न होते हैं, छाती। पर्याय—क्रोड़, भुजान्तर, उरः, वत्स, अङ्क, उत्सङ्ग, वक्षण, गणपीठक और वक्षःस्थल।

गरुड़पुराणमें वक्षके शुभाशुभ लक्षण लिखे हैं। समवक्षोविशिष्ट धनवान्, पीनवक्षोव्यक्ति वीर और शक्तिशाली तथा विषमवक्ष व्यक्ति निर्धन और शस्त्रके द्वारा निधनप्राप्त होते हैं।

"धनवान् समवक्षाः स्यात् पीनैर्वक्षोभिरूर्जितः।
वक्षोभिर्विषमैर्निःस्वः शस्त्रेण निधनस्तथा॥"

(गरुड़पुराण ६६ अ॰)

(पु॰) वक्तीति वच-(वहिहाधाञ्भ्यश्छन्दसि।

उण् ४।२२०) इति असुन्, सुट् च। २ अनडुयान, बैल।

वक्षण (सं० त्रि०) १ शक्तिशाली, बलिष्ठ। (क्ली०) वक्षत्य-नेनेति, वक्षरोपसंहरयोः ल्युट्। २ वक्ष, छाती। ३ वाहक।

"क्रियास्म वक्षणानि यज्ञैः" (ऋक् ६।२३।६)

"वक्षणानि वाहकानि स्तोत्राणि क्रियास्म करवाम।" (सायण)

४ अग्नि, आग।

वक्षणा (सं० स्त्री०) १ नदी। (ऋक् ५।४२।१२) २ नदी-गर्भ। (ऋक् १०।२६।११) ३ उदर, पेट।

"या वः प्रजां जनयत् वक्षणाभ्यः" (अथर्व० १४।२।१४)

वक्षणि (सं० त्रि०) शक्तिदाता।

वक्षणी (सं० त्रि० स्त्री०) वक्षण स्त्रियां ङीप्। १ शक्ति-दात्री। २ आनन्दवर्द्धिनी।

वक्षणेस्था (सं० त्रि०) अग्निमें स्थापित।

वक्षथ (सं० पु०) १ बलाधान। २ वृद्धि-प्रकाश।

वक्षस् (सं० पु० क्ली०) १ हृदयोपरिस्थ देहभाग, छाती। २ वृष, बैल।

वक्षःसंमर्द्दिनी (सं० स्त्री०) वक्षसि संमर्द्दते इति सं-मृद्-णिनि। स्त्री, पत्नी।

वक्षःस्थल (सं० क्ली०) १ वक्ष, छाती। २ हृदय।

वक्षस्तटाघात (सं० पु०) वक्षसः तटः वक्षस्तटः तेषु आघातः यत्र। वक्षस्थलोपरि मुष्टयाघात, छाती पर मुक्का मारना।

वक्षी (सं० स्त्री०) अग्निशिखा, आगकी लौ।

वक्षु—स्वनाम प्रसिद्ध इक्ष (Oxus) नदी। वंक्षु देखो।

वक्षोग्रीव (सं० पु०) विश्वामित्रके एक पुत्रका नाम। (भारत १३ पर्व)

वक्षोज (सं० क्ली०) वक्षसि जायते इति जन-ड। स्तन, कुच।

वक्षोमण्डलिन् (सं० पु०) नृत्यकालीन हस्तविन्यासभेद।

वक्षोरुह (सं० पु०) वक्षसि रोहतीति रुह-क। स्तन, कुच।

वक्ष्यमाण (सं० त्रि०) १ भविष्यत् कथनीय विषय, जो भविष्यमें कहने लायक हो। २ वाच्य, वक्तव्य। ३ जो कथनका प्रस्तुत विषय हो, जिसे कह रहे हों। (क्ली०) ४ मनोहर वचन, सुन्दर वचन।

वक्ष्यमाणत्व (सं० क्ली०) वक्ष्यमाणका भाव या धर्म।

वख्तसिंह—जोधपुरके राजा अभयसिंहके छोटे भाई। अभयसिंहके स्वर्गवासी होने पर उनके पुत्र रामसिंह पिताकी गद्दी पर बैठे। वख्तसिंह नागोरके जागीरदार थे। रामसिंहके अभिषेकके समय वख्तसिंहको आना आवश्यक था, क्योंकि वे कुलमें बड़े थे। परन्तु न मालूम किस कारणसे उस समय न तो वख्तसिंह आये और न किसी अपने प्रतिनिधि होको भेजा। रामसिंहके अभि-षेकमें नागोरके ठाकुरके यहांसे केवल उनकी एक धाय आई थी। यह देख राजा रामसिंह बड़े अप्रसन्न हुए। उन्होंने उस धायका बड़ा अपमान किया और अभिषेक होनेके बाद ही उन्होंने नागोर पर धावा बोलनेकी सेना-को आज्ञा दी। अपने चाचा वख्तसिंहको सेना एकत्रित करनेका भी अवकाश न दिया। दोनों ओरसे घमासान युद्ध होने लगा। छः स्थानोंमें बड़े भयंकर युद्ध हुए। अन्तमें युवक रामसिंहने अपनी मूर्खताका फल पाया। वे हार गये। वख्तसिंहको मारवाड़का सिंहासन हाथ लगा। अन्तमें वख्तसिंहको आमेरकी महारानीने मार डाला।

वख्तियार खिलजी—इतिहास-प्रसिद्ध वङ्गविजेता मुसल-मान सेनापति। महम्मद-इ-वख्तियार देखो।

वगड़ी (वकद्वीप शब्दका अपभ्रंश)—प्राचीन गौड़राज्य पांच भागोंमें विभक्त है उनमेंसे वगड़ी एक विभाग है। वराहमिहिरकी वृहत्संहितामें जिस उपवङ्गका उल्लेख है, शायद वही वगड़ी विभागके जैसा मालूम होता है। दिग्विजयप्रकाशमें लिखा है, कि भागीरथीके पूर्वभागमें पांच योजन विस्तृत उपवङ्ग है। यशोरादि देश, कानन और अनेक नदी इसी उपवङ्गके अन्तर्गत है।

सेनवंशके जमानेमें भागीरथीके पूर्व, पद्माके पश्चिम और सागरके उत्तरवर्ती देशदेशका अंश वगड़ी कहलाता था। अभी भागीरथीका पश्चिमी किनारा राढ़ और पूर्वी किनारा वगड़ी कहलाता है। राढ़ और वगड़ी विभागमें विशेषता यह है, कि राढ़ भूभाग-शैल और कङ्करमय, अधिकांश स्थल ऊंचा नीचा है, किन्तु वगड़ी भूभाग इसका ठीक विपरीत है। इसकी कुल जमीन उर्वरा है और बाढ़के समय डूब जाती है।

राढ़ और वङ्गदेश देखो।

बगदोगरा—बङ्गालके रङ्गपुर जिलान्तर्गत एक नगर। जनसंख्या छः हजारके लगभग है।

बगय म—निम्न ब्रह्मके तनासेरिम विभागके अमहर्ष्ट जिलान्तर्गत एक बड़ा गांव। यह बगय-म नदीके किनारे अवस्थित है। इस नदीका उत्तरी किनारा तव-त नो कहलाता है।

बगर—चम्पारणके अन्तर्गत एक नदी। (भविष्य० ब्रह्मख० ४२।१४१)

बगरू—दक्षिण-ब्रह्मके तानसेरिम विभागके अमहर्ष्ट जिलान्तर्गत एक उपविभाग। इसके पूरब तौङ्गन्यु पर्वतमाला और पश्चिममें बङ्गोपसागर है। भूपरिमाण २८ मील है। यह ऊंची पहाड़ी भूमि घनमालासे समाच्छन्न है, बीच बीचमें धानके खेत और बड़े बड़े गांव भी देखे जाते हैं। दानेदार पत्थरोंके उच्च पर्वतशिखर उस प्राकृतिक गाम्भीर्यको भेद कर उन्नत मस्तकसे ऐश्वरिक महिमा दिखला रहा है।

बगलामुखी (सं० स्त्री०) दशमहाविद्याके अन्तर्गत देवीविशेष। यह दश प्रकारकी शक्तिमूर्त्ति कैसे आविर्भूत हुई थीं यह दशमहाविद्या शब्दमें लिखा जा चुका है। दशमहाविद्या देखो।

इस महादेवीका पूजामन्त्र और पूजामाहात्म्य तन्त्रसारमें वर्णित है। तन्त्रसारमें लिखा है, कि इसका मन्त्र साधकवर्गका हितकर और शत्रुदलका स्तम्भनकारी ब्रह्मास्त्र-स्वरूप है। इस मन्त्रसे सबोंको स्तम्भित किया जा सकता है। यहां तक, कि वायुकी भी गति रुक सकती है।

इस देवीकी पूजासे वाक्स्तम्भन, बुद्धिनाश और शत्रुका क्षय होता है। देवीमन्त्रका प्रयोग करनेसे सभी आधिभौतिक व्यापार साधित हो सकते हैं।

दश हजार बार मन्त्रजप करके निशाकालमें हरिद्रा और हरितालके साथ लवणहोम करनेसे दुष्ट व्यक्तिका वाक्स्तम्भन और बुद्धिविपर्यय होता है तथा इससे शत्रुसैन्यका स्तम्भन किया जा सकता है। घृत, मधु और शर्कराके साथ पीतपुष्पका होम स्तम्भन कार्यविशेषमें फलप्रद है। कार्यसाधनार्थ पहले एक यन्त्र बनवाना आवश्यक है। पीछे स्तम्भनार्थ होमादि पूजा करनी होती है।

धातुफलक पर अथवा पाषाणपट्ट पर अथवा हरिद्रा, धुस्तूर और हरिताल द्वारा यन्त्र अङ्कित करना ही उत्तम है। देवस्तम्भन और शत्रुओंके मुखस्तम्भनार्थ उक्त यन्त्र लिख कर गाढ़ आक्रमण करे। हरिद्रादि पूर्वोक्त द्रव्य द्वारा भोजपत्र पर यन्त्र लिखे। उस यन्त्र पर कुम्हारके चाककी मिट्टीसे एक बैल बना कर रखे। पीछे उसकी पीठ पर रख कर बगलामुखीकी आराधना करनेसे विवादमें जयलाभ होता है। उस बैलकी नाकमें पीली रस्सी डाल कर प्रतिदिन पीतवर्ण पुष्पादि उपचार द्वारा अपने घरमें पूजा करनेसे दुष्टका मुखस्तम्भन होता है।

बगवाडी—बम्बई प्रदेशके काठियावाड़ विभागके अन्तर्गत सूरत प्रान्तका एक छोटा सामन्त-राज्य। अभी यह दो अंशोंमें विभक्त हो गया है। ये दोनों सामन्त-वंश अभी गायकवाड़को १३५) रु० और जूनागढ़के नवाबको १६) रु० वार्षिक कर देते हैं। बगवाड़ी ग्राम ३ वर्गमील विस्तृत है।

बगासड़ा—१ बम्बईप्रदेशके दक्षिण काठियावाड़के अन्तर्गत एक छोटा सामन्त राज्य। अभी यह छः पट्टीदारोंमें बंट गया है। वर्त्तमान अधिवासी जूनागड़के नवाबको १५४०) रु० और बड़ोदाके गायकवाड़को २५४०) रु० वार्षिक कर देते हैं। वार्षिक आय १० हजार रुपयेकी है।

२ उक्त राज्यका प्रधान नगर। यह अक्षा० २१° २६' उ० तथा देशा० ७१° पू०के मध्य अवस्थित है। यह सूरतसे १६० मील पश्चिम काठियावाड़ प्रायोद्वीपके मध्य वर्त्ती गीर नामक ऊंची भूमिके समीप बसा हुआ है।

बगासपुर—मध्यप्रदेशके नरसिंहपुर जिलान्तर्गत एक नगर।

बगाह (सं० पु०) अव-गाह भावे घञ्, अलोपः। अवगाह, जलमें हल कर स्नान।

बगुला—बङ्गालके नदीया जिलान्तर्गत एक बड़ा ग्राम। यह कलकत्तेसे ५७॥ मील उत्तरमें अवस्थित है। यहां इष्टर्न बंगाल स्टेट रेलवेका एक प्रधान स्टेशन है। नदीयाका सदर कृष्णनगर और नवद्वीप जानेके लिये यहांसे ११ मील दूर तक एक पक्की सड़क है।

बगेपल्ली (बगेनपल्ली)—महिसुर राज्यके कोलाया जिले-

में कम्पल्य तालुकके अंदर एक गण्डग्राम। यह अक्षा० १३° ४७′ १५″ उ० तथा देशा० ७७° ५०′ २१″ पू० तक विस्तृत है। यहां विचार-सदर स्थापित है।

वगेसर (वघसर)—युक्तप्रदेशके कुमायूं जिलान्तर्गत एक नगर। यह अक्षा० २९° ४६′ २०″ उ० तथा देशा० ७०° ४७′ ३५″ पू०के बीच सरयू और गोमती नदीके संगम पर अवस्थित है। कलकत्तेसे यह स्थान ६११ मील उत्तर-पश्चिम तथा अलमोरासे २७ मील उत्तर-पूर्व पड़ता है। नगर समुद्रकी तहसे प्रायः तीन हजार फुट ऊंचा है। इस नगरके साथ मध्य-एशिया और तिब्बतका विस्तृत वाणिज्य है। प्रति वर्ष माघ महीनेमें यहां भूटिया जातिका एक मेला लगता है।

कहते हैं, कि मुगल-साम्राट् तैमूरने पहले वगेसर उपत्यकाभूमिमें एक मुगल-उपनिवेश स्थापन किया था; किन्तु आज कल यह मुगल-जातिके वासका चिह्नमात्र है। केवल पहाड़ी वनिये लोग व्यापार करते हैं।

वगैरह (अ० अव्य०) एक प्रत्यय जिसका अर्थ यह होता है, कि "इसी प्रकार और भी समझिये" इत्यादि, आदि। इसका प्रयोग वस्तुओंको गिनानेमें उनके नामोंके अन्तमें संक्षेप या लाघवके लिये होता है।

वगोर—राजपूतानेके उदयपुर जिलान्तर्गत एक नगर। यह उदयपुर राजधानीसे ६७ मील उत्तर-पूर्व पड़ता है। पहले यह महाराना सोहनसिंहकी जमींदारीमें था। १८७५ ई०में यह उनके हाथसे छीन लिया है।

वग्नु (सं० पु०) वक्ति इति। वच् (वचेर्गश्च। उण् ३।३१) इति नुः गश्चान्तादेशः। १ वक्ता, कथक। २ वावदूक, बकवादी, बहुत बकनेवाला। ३ पशुओंका चीत्कार। ४ भेकरव, मेढ़कका बोलना।

वग्वन (सं० त्रि०) प्रियवाक्य-कथनशील, मीठी बात करनेवाला। (ऋक् १०।३२।२)

वग्वनु (सं० पु०) शब्द।

वघा (सं० स्त्री०) पतङ्गविशेष, एक प्रकारका पतंग जो टिड्डीके समान होता है।

[illegible]त—पञ्जाबप्रदेशके अन्तर्भुक्त एक पार्वतीय सामन्त- · यह सिमला-शैलवासके पार्श्वमें अवस्थित है [illegible]ना विभागके कमिश्नरकी देख-रेखमें परिचालित होता है। भू-परिमाण ३६ वर्गमील है। इस राज्यमें लगभग १७८ गांव लगते हैं। राज्यका मध्यस्थ अक्षा० ३०° ५५′ उ० तथा देशा० ७७° ७′ पू० तक विस्तृत है।

यहांके सरदार राना दलीप सिंह (१८८५ ई०) राजवंशीय थे। १८५६ ई०में उनका जन्म हुआ था। वे अङ्गरेज-राजको वार्षिक दो हजार रुपये कर देते थे; किन्तु कालका और सिमलाके मध्यवर्त्ती कसौली और सोलान सेनानिवासके लिये अङ्गरेज-गवर्नमेण्टने उनसे लिया था जिससे करमें १३६) रुपये कम कर दिये गये हैं। वाघल-राज्यकी भांति यहांके सरदारगण भी अङ्गरेज-गवर्नमेण्टके साथ सन्धिसूत्रमें आबद्ध हैं। वाघेल देखो।

वघार (वघियाड़)—सिन्धुनदकी एक शाखा। यह करांची जिलेके ठाठा नगरके दक्षिणमें अक्षा० २४° ४०′ उ० सिन्धुगालसे निकल कर समुद्रकी ओर बह गई है। १८वीं सदीमें यह नदी बहुत विस्तृत और वेगवती थी। लाहोरी बन्दरके सभी पण्यद्रव्य उस समय परिचालित हो कर समुद्रके किनारे लाये जाते थे। १८४० ई०में बालूका चर पड़ जानेसे सिन्धुकी गति बदल गई है तथा वह नदीवक्ष धीरे धीरे सूखता जा रहा है। इस नदीके मुहाने पर अवस्थित पिति, पितियानी, जूना और रेछाल शाखामें आज भी नाव द्वारा गमनागमन किया जाता है।

वघेल—राजपूत जातिकी एक शाखा। आदि शोलङ्की या चौलुक्य श्रेणीसे यह शाखा उत्पन्न हुई है। रेवांपति महाराज रघुराजसिंह-रचित भक्तमाल नामक ग्रन्थमें इस राजपूत-शाखाका संक्षिप्त इतिहास लिखा है—उससे जाना जाता है, कि प्रसिद्ध साधु कबीर पश्चिम समुद्रमें स्नान करने लिये गुजरात गये। इस समय चौलुक्य या सोलङ्कीवंशीय गुजरातके सिंहासन पर अधिष्ठित थे। राजाके कोई सन्तान न थी। उन्होंने कबीरसे पुत्रके लिये प्रार्थना की। कबीरके आशीर्वादसे सोलङ्कीराजके दो पुत्र हुए जिनमेंसे एकका आकार व्याघ्रके जैसा था। इस व्याघ्रा[illegible]र पुत्रका नाम व्याघ्रदेव रखा गया। राजपुरोहितोंने उस दुर्लक्षण पुत्रको समुद्रमें फेंक देनेकी सलाह दी। राजाने भी समुद्रमें फेंक देनेका हुकुम दे दिया। कबीरको यह बात मालूम हो गई। उन्होंने कुमारको लौटा लाने

कहा और इस कुमारके नामसे एक स्वतन्त्र दलकी उत्पत्ति होगी, यह भी कह दिया। दैवविड़म्बनासे व्याघ्रदेवके भी कोई पुत्र न हुआ। आखिर कबीरके अनुग्रहसे उनके एक पुत्रने जन्म लिया। व्याघ्रदेवके नामानुसार ही उनकी वंश-परम्परा 'बघेल' या 'बाघेल' नामसे प्रसिद्ध हुई।

व्याघ्रदेवके पुत्रका नाम था जयसिंह। पितामहके आदेशसे ये अनेक सैन्य सामन्तोंके साथ दिग्विजयमें निकले। नर्मदाके किनारे आ कर उन्होंने गौड़देशको जीता। वहां लुन्धियालेराकी बैशराजपूत-कन्याके साथ उनका विवाह हुआ। उनके वंशधर करणसिंह और केशरीसिंह दिग्विजयके उपलक्षमें नाना स्थानोंको जीत कर मुसलमान नवाबके अधिकारभुक्त गोरखपुर दखल कर बैठे। उन लोगोंके बाद मल्लारसिंह, सारङ्गदेव और भीमलदेवने यथाक्रम राज्यभोग किया। भीमलके पुत्र ब्रह्मदेव गहरवाड़ राजपूतोंके साथ मिल गये। उनके परवर्त्ती प्रतापशाली उत्तराधिकारीका नाम वीरसिंह था। प्रवाद है, कि उनके एक लाख घुड़सवार थे।

वीरसिंहने मुसलमानोंके हाथसे कुछ दिनके लिये प्रयाग तीर्थका उद्धार किया। यह संवाद पा कर बादशाहने दलबलके साथ चित्रकूटमें वीरसिंहका मुकाबला किया। बादशाहने उन्हें बुला कर कहा, 'मेरी प्रजाका शान्तिभङ्ग करनेमें क्या तुम्हें भय नहीं हुआ?' वीरसिंहने उत्तर दिया, 'क्षत्रियका अपना अधिकार आयत्त रखना कर्त्तव्य है। दुष्टका दमन और शिष्टका पालन क्षत्रियधर्म है।' बादशाहने उनकी योग्ता पर मुग्ध हो उनके पुत्र वीरभानुको 'राजा' की उपाधि दी। बादशाहके उत्साहसे वीरसिंहने १२ राजोंको हराया और पीछे आप बान्धोगढ़में आ कर रहने लगे। दक्षिणमें तमसा तक उसकी जयपताका उड़ती थी। उन्होंने अन्तिम कालमें पुत्रके हाथ राज्य भार सौंप प्रयागमें जीवन विसर्जन किया। वीरभानुने कच्छवह-राजकन्यासे विवाह किया। यौतुकमें उन्हें रतनपुरका राज्य मिला था। प्रत्नतत्त्वविद् कनिंहम साहबके मतानुसार ५८०से ६८३ संवत् तक बघेलोंने शोन और तमसाकी उपत्यकामें अपना आधिपत्य फैलाया था। पीछे कलचूरी, चन्देल, चाहमान, सेंहुर और आखिर गोंड़ोंने उन स्थानों पर कब्जा किया।

फर्रुखावादके बघेलोंका कहना है, कि माधोगढ़में उन लोगोंके पूर्व-पुरुषोंका वास था। कन्नोज-पति जयचन्द्रके समय ये लोग इस देशमें आ कर बस गये। यहांके बघेलपति छत्रशालने बृटिशगवर्मेण्टके विरुद्ध अस्त्र धारण किया था, इस कारण बघेलराज्य जब्त कर लिया गया। उन लोगोंके बस आनेके कारण ही रेवाराज्य 'बघेल' या 'बघेलखण्ड' नामसे प्रसिद्ध हुआ।

यमुनाके दक्षिण बघेल राजपूत परिहार और गहरवाड़ राजपूतके घर अपनी कन्या देते तथा बैश, गौतम और गहरवाड़की कन्या लेते हैं।

इलाहाबाद अञ्चलके बघेल अत्यन्त अवाध्य और दुष्ट स्वभावके होते हैं। मौका पाने पर वे चोरी डकैती करनेसे भी बाज नहीं आते।

बघेलखण्ड—मध्यभारतके अन्तर्गत एक विस्तीर्ण भूखण्ड। बघेल जातिकी वासभूमि होनेके कारण इस विस्तृत भूखण्डका बघेलखण्ड * नाम पड़ा है। अंगरेजोंके जमानेमें यह सामन्तराज्यपुञ्ज बघेलखण्डएजेन्सी नामसे प्रसिद्ध हुआ। भारतराजप्रतिनिधि बड़े लाटके अधीनस्थ मध्यभारतके एजेण्ट तथा रेवाराज्यके परिदर्शक पालिटिकल एजेण्टरूपमें यहांका शासन करते हैं। ये पालिटिकल एजेण्ट सतना या रेवानगरमें रहते हैं।

इसके उत्तर इलाहाबाद और मिर्जापुर जिला, पूर्वमें छोटानागपुरके अधीनस्थ सामन्तराज्य, दक्षिणमें मध्यप्रदेशका विलासपुर और मण्डला जिला तथा पश्चिममें जब्बलपुर और बुन्देलखण्डका सामन्तराज्य है। १८७१ ई० तक यह विभाग बुन्देलखण्ड एजेन्सीके अन्तर्भुक्त रहा। बुन्देला और बघेल जातिका कीर्त्तिनिकेतन होनेके कारण यह स्थान भौगोलिक और ऐतिहासिक सम्बन्धमें एकतावद्ध था। पीछे बुन्देलोंका प्रभाव जाता रहा। बृटिश गवर्मेण्टने उन लोगोंमें फूट पैदा कर मधिष्य शक्तिसंग्रह-

---

* जिस बघेला जातिके नाम पर यह इस प्रदेशका नाम पड़ा है, वह शिशोदीय राजपूतोंकी एक शाखा है। गुजरात प्रदेशसे दक्षिण आ कर यह जाति बस गई है। सम्राट् अकबर शाहकी इस जाति पर विशेष कृपा रहती थी। बघेल देखो।

का पथ रोकनेकी चेष्टा की। इसी उद्देशसे उसी साल बघेलखण्ड भूभाग ले कर स्वतन्त्र एजेन्सी प्रतिष्ठित हुई।

बुन्देलखण्ड और बुन्देला देखो।

इस स्थानका भूपरिमाण ११३२३ वर्गमील है। इसमें कुल ४ शहर और ५८३२ ग्राम लगते हैं। रेवा, नगोद, मैहार, सोहावल, कोठी, सिद्धपुरा और जागीर राज्य ले कर यह एजेन्सी बनी है।

इन सब सामन्तराज्योंके मध्य केवल रेवा राजाको अङ्गरेजराजने सन्धिपत्र दिया है। यहांके सामन्त पण्यद्रव्य वाणिज्यके लिये किसी प्रकारका शुल्क नहीं लेते।

बङ्क (सं० पु०) बङ्कतीति बङ्क-अच्। १ नदीवक्र, नदीका मोड़। (त्रि०) २ वक्र, झुका हुआ।

बङ्कनाल (सं० पु०) शरीरकी एक नाड़ीका नाम।

बङ्कर (सं० पु०) वह स्थान जहांसे नदी मुड़ी हो, नदीका मोड़।

बङ्कसेन (सं० पु०) अगस्तिवृक्ष, वक वृक्ष।

बङ्का (सं० स्त्री०) बङ्क-टाप्। वल्गाग्रभाग, लगामकी अगली मेंढ़ी।

बङ्कटक (सं० पु०) एक पर्वतका नाम।

बङ्गालकाचार्य—प्राचीन ज्योतिर्विद्भेद।

बङ्गाला (सं० स्त्री०) बङ्गालकी प्राचीन राजधानीका नाम जिसके कारण उस देशका बंगाल नाम पड़ा।

(राजतर० ३।४८०)

बङ्किणी (सं० स्त्री०) कोल नासिका नामक क्षुपभेद।

बङ्किम (सं० त्रि०) बङ्क-इमनिच्। ईषत् वक्र, कुछ टेढ़ा या झुका हुआ।

बङ्किमचन्द्र चट्टोपाध्याय—बङ्गके प्रतिभाशाली अद्वितीय औपन्यासिक, चिन्ताशील कवि और एक प्रधान दार्शनिक। १८३८ ई०की २७वीं जूनको नैहाटी स्टेशनके पार्श्वस्थ कांटालपाड़ा ग्राममें साहित्यरथी बङ्किमचन्द्रने जन्म ग्रहण किया।

बङ्किमचन्द्रके पिता यादवचन्द्र लार्ड हार्डिञ्जके समय डिपटी कलक्टर थे। उनके चार पुत्र थे, श्यामाचरण, सञ्जीवचन्द्र, बङ्किमचन्द्र और पूर्णचन्द्र।

बचपनसे ही बङ्किमचन्द्रकी मेधा और प्रतिभाका परिचय पाया जाता है। पांच वर्षकी उम्रमें इन्हें एक ही दिनमें वर्णज्ञान सम्यक्‌रूपसे हो गया था। कांटालपाड़ाकी पाठशालामें इनकी प्रथम परीक्षा हुई। जब इनकी उमर आठ वर्षकी थी उस समय इनके पिता मेदिनीपुरके डिपटी कलक्टर थे। वे बङ्किमचन्द्रको अपने साथ रखते थे। उन्होंने पुत्रको मेदिनीपुरके अङ्गरेजी स्कूलमें भर्त्ती कर दिया। इस समय बङ्किमचन्द्रने अपनी बुद्धिमत्ता का जो परिचय दिया था वह असाधारण है। प्रति वर्ष दो बार करके उन्हें तरक्की मिलती थी। मेदिनीपुर जिलेके कांथि महकूमेके अन्तर्गत मनोरम नदीतटकी दृश्यावली स्वच्छ, विरलतरु, सिकताभूमिकी निर्जन समावसम्पत् बङ्किमचन्द्रके हृदयमें चिरदिन अङ्कित थी। उनकी अपूर्व कपाल-कुण्डलाकी दृश्यावलीमें उस कालेवरकी छायाने स्पष्ट भावसे पतित हो उसे परम सुन्दर बना डाला है।

१८५१ ई०में यादवचन्द्रकी २४ परगनेमें बदली हुई। बङ्किमचन्द्रने इस समय हुगलीकालेजमें प्रवेश किया। कालेज भी उनकी गवेषणा और शिक्षाका परिचय पा कर अध्यापकगण विस्मित होते थे। बङ्किम केवल पाठ्यपुस्तक पढ़ कर तृप्त नहीं होते थे, कालेजके पुस्तकालयमें जा करके अच्छी अच्छी किताब पढ़ा करते थे। हुगलीकालेजसे इन्होंने सिनियर स्कालरसिप-परीक्षा प्रशंसाके साथ पास की थी। इस समय इन्होंने किसी अध्यापकके निकट चार वर्ष तक संस्कृत ग्रन्थ पढ़े। कालेजमें पढ़ते समय इनकी प्रशंसा सभी अध्यापकोंके मुखसे सुनी जाती थी। केवल साहित्यमें ही नहीं, अङ्गरेजीमें भी इनकी असाधारण व्युत्पत्ति हो गई थी।

हुगली कालेजमें अध्ययन शेष कर वे कलकत्ते आये और प्रेसिडेन्सी कालेजमें आईन पढ़ने लगे। इसी समय अर्थात् १८५८ ई०में विश्वविद्यालयमें पहले पहल बी, ए, परीक्षा प्रचलित हुई। उस समय बङ्किमचन्द्रकी उमर २० वर्षकी थी। आईन पढ़ते पढ़ते ही इन्होंने बी, ए, परीक्षा दी तथा विशेष प्रशंसाके साथ उत्तीर्ण हुए। ये कलकत्ता विश्वविद्यालयके प्रथम वर्षके बी, ए, थे।

बी, ए, की उपाधि उस समय ऐसी अपूर्व सामग्री समझी जाती थी, कि वङ्किम बाबूको देखनेके लिये बहुत दूरके लोग जाते थे। वङ्किम बाबू शिक्षित-मण्डलीके मुखोज्ज्वल "बी, ए, वङ्किम" कह कर तमाम परिचित हुए थे।

बी, ए, परीक्षा पास करनेके कुछ समय बाद ही छोटा लाट हैलिडे साहबने इन्हें डिपटी मजिष्ट्रेट बना कर भेजा। इस कारण ये आईन परीक्षामें सफल न हो सके।

स्वदेशके प्रति इनका बराबर अनुराग रहता था। दूसरेकी वस्तुसे अपने घरकी वस्तु अच्छी होती है, इस बातका इन्होंने सबसे पहले शिक्षित-सम्प्रदायके बीच प्रचार किया। उच्च राजकार्यमें नियुक्त हो कर भी इन्होंने मातृभाषाकी सेवाको ही जीवनका सर्वश्रेष्ठ लक्ष्य समझ रखा था।

बाल्यकालसे उनका वङ्गभाषाके प्रति अनुराग दिखाई देता था। ये ईश्वरगुप्तकी कवितामाला बड़े आनन्दके साथ पढ़ा करते थे। १३ वर्षकी उमरमें इन्होंने मानस और ललित नामक कविता लिखी। ईश्वरगुप्त उनकी कविता सुन कर बड़े प्रसन्न होते थे तथा प्रभाकरमें प्रकाश कर उन्हें उत्साहित करते थे। उस दिनसे वङ्किमचन्द्र ईश्वरगुप्तके शिष्य हुए।

१८६१ ई०में उनका प्रथम उपन्यास दुर्गेशनन्दिनी लिखा गया और दूसरे वर्ष प्रकाशित हुआ। यद्यपि अंगरेजी आदर्श पर उक्त उपन्यास रचा गया था, फिर भी इसी प्रथम उद्यमसे उन्होंने वङ्गभाषाके ऊपर असाधारण आधिपत्य और चरित्रचित्रणमें अपूर्व दक्षता दिखलाई है। उपन्यास लिख कर किसीके भाग्यमें ऐसी सफलता न मिली है। इसके पहले इन्होंने Indian field नामक पत्रिकामें 'राजमोहनकी स्त्री' Rajmohan's wife नामक एक उपन्यास लिखना शुरू कर दिया। किन्तु उस पत्रिकाके बंद हो जानेसे इनका अंगरेजी उपन्यास भी असम्पूर्ण रह गया।

पहले ही लिखा जा चुका है, कि अंगरेजी भाषामें वङ्किमचन्द्रकी असाधारण व्युत्पत्ति थी। स्टेटसमैन पत्रिकामें जेनरल एसेम्बलीके भूतपूर्व प्रिन्सिपल हेष्टि साहबके साथ जो लेखनी युद्ध चला था। उसमें इनका अंगरेजी लेख पढ़ कर सभी विमुग्ध हो गये थे। यहां तक, कि इनके प्रतिद्वन्द्वी हेष्टि साहबने भी मुक्तकण्ठसे स्वीकार किया था, 'इतने दिनोंके बाद बङ्गालमें मुझे एक उपयुक्त प्रतिद्वन्द्वी मिला है।'

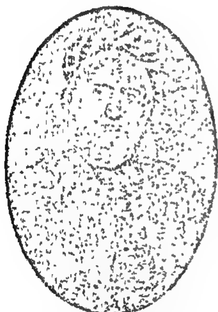
सरकारी नौकरीसे अलग होनेके कई वर्ष पहले वङ्किमचन्द्र बङ्गाल-गवर्मेण्टके सरकारी सिक्रेटरी हुए थे। किन्तु नाना कारणोंसे इन्हें यह पद परित्याग करना पड़ा था।

दुर्गेशनन्दिनीके प्रचारसे वङ्किमचन्द्रकी ख्याति चारों ओर फैल गई। पीछे १८६७ ई०में कपालकुण्डला और १८७० ई०में मृणालिनी प्रकाशित हुई। १८७२ ई०में वङ्गदर्शनका प्रचार हुआ। वङ्गदर्शनके प्रकाशके साथ वङ्गदेशमें मानों युगान्तर उपस्थित हुआ। वङ्गीय लेखकोंकी रुचि भी परिवर्त्तित हुई। शिक्षित वङ्गवासीके निकट वङ्गदर्शनका जैसा आदर हुआ था, वैसा आदर आज तक किसी सामयिक पत्रका नहीं हुआ है। वङ्गदर्शनके सम्पादक रूपमें वङ्किमचन्द्रने आज कलके थोड़े बहुतसे लेखकोंको ही लिखनेकी रीति सिखला दी थी तथा आपने भी अनेक प्रबन्ध और उपन्यास लिख कर साहित्यजगत्में एकाधिपत्य लाभ किया था। जो वङ्गभाषाको अपनी मातृभाषा स्वीकार करनेमें लज्जा बोध करते थे, अंगरेजीभाषामें लिखित ग्रन्थ ही जिनका एकमात्र वेदस्वरूप था, विदेशीके अनुकरणको ही जो जीवनकी एकमात्र कृतकृतार्थताका कारण समझते थे—उन परम उद्धत प्राश्चात्य भाव-मत्त वङ्गको वङ्किम बाबूने ही उपस्थित कर उनके चरणोंमें अर्घ्यप्रदान करनेके लिये बाध्य किया। तभीसे अंगरेजी शिक्षित युवक ही वङ्गभाषाके सेवकोंके नेता हो गये हैं। वङ्किम बाबूके इस कार्यसे मातृभाषाका तमाम प्रचार हुआ, इसी कारण वे 'वङ्गभाषाके सम्राट्' कहे जाते हैं। इन्होंने वङ्गदर्शनमें निम्नलिखित पुस्तक प्रकाशित कीं—

१२७९ सालमें विषवृक्ष और इन्दिरा, १२८० सालमें चन्द्रशेखर और युगलांगुरीय, १२८१ सालमें रजनी, १२८०-८१ और ८२ सालमें कमलाकान्तका दफ्तर, १२८४ सालमें कृष्णकान्तका विल, १२८६ सालमें राजसिंह, १२८७ और ८८ सालमें आनन्दमठ, १२८७ सालमें मुचीरामगुड़का

जीवनचरित, १२८८ सालमें देवी चौधरानी। देवी चौधरानीका कुछ अंश बङ्गदर्शनमें निकल कर पीछे यह पुस्तकाकारमें प्रकाशित हुआ। १२८४ सालमें बङ्किमचन्द्रने बङ्गदर्शनकी सम्पादकता छोड़ दी। पीछे इनके बड़े भाई सञ्जीवचन्द्र सम्पादक हुए। सञ्जीवचन्द्रकी मृत्युके बाद बङ्गदर्शनका निकलना बंद हो गया।

कुछ वर्ष बाद साधारणी-सम्पादक श्रीयुक्त अक्षयचन्द्र सरकार महाशयकी चेष्टासे नवजीवन प्रकाशित हुआ। नवजीवनके साथ बङ्किमचन्द्रने मानो नवजीवन प्राप्त किया। आनन्दमठके शेषमें तथा देवी चौधरानीमें इन्होंने जिस ज्ञान और कर्मयोगका सूत्रपात किया, सीताराममें उसकी परिणति है।



बङ्किमचन्द्र चट्टोपाध्याय।

बङ्गके अन्तिम गौरवरवि सीतारामका प्रकृत आलेख्य इनकी तूलिकासे कुछ भिन्नरूपमें चित्रित होने पर भी उनके जीवनमें जो संन्यासिरूपी महापुरुषका प्रभाव विस्तृत हुआ था, सीताराममें बङ्किमचन्द्रने वही चित्र दिखानेकी चेष्टा की थी। उस समय बङ्किमचन्द्रके जमाई राखालचन्द्र बन्द्योपाध्यायने 'प्रचार' नामक एक मासिक पत्र निकाला। यह मासिकपत्र बङ्किम बाबूके परामर्शसे ही निकाला गया था, इसमें सन्देह नहीं। प्रचारमें कृष्णचरित और गीतामर्म तथा नवजीवनमें धर्मतत्त्व प्रकाश कर उन्होंने अपने नवजीवनका प्रकृत लक्ष्य लोगोंको बता दिया था।

डिपटी-कार्यमें बृटिश-गवर्नमेण्टके निकट इनकी अच्छी ख्याति थी। उपयुक्त समयमें इन्हें पेन्शन मिली। बृटिश-गवर्नमेण्टने इनकी कार्यदक्षतासे संतुष्ट हो इन्हें रायबहादुर और सी, आई, ई, की उपाधि दी। पेन्शनके बाद इनका अधिकांश समय साहित्यसेवा, धर्मचर्चा और ज्योतिःशास्त्रकी आलोचनामें व्यतीत होता था।

इनके एक भी पुत्र न था। केवल दो कन्याएं थीं। पेन्शन पानेके बाद इनके शरीरमें भी शिथिलता आ गई। आखिर १३०० सालकी २६वीं चैत्र अपराह्णकालके ३ बज कर २३ मिनिटमें बहुमूत्रजनित ज्वर तथा मूत्रनालीके विस्फोटक रोगसे बङ्गके साहित्यरथी महामति बङ्किमचन्द्र परलोकको सिधारे। उनकी मृत्युसे बङ्ग-साहित्यको जो क्षति हुई है, उसकी फिर पूर्त्ति होनेकी नहीं।

उस समय बङ्गालके अधिकांश सामयिक और संवादपत्रके सम्पादकने दुःख प्रकट करते हुए कहा था, कि बङ्किम बाबूकी मृत्युसे बङ्गालका साहित्यराज्य राजहीन हो गया। बङ्गालीके हृदय-गठनमें बङ्किमचन्द्रकी हृदयप्रतिभा विशेष कार्यकारी हुई थी। जातीय जीवनकी सम्यक् परिणतिके समय अपर सुसभ्य जातिके मध्य भी शायद ऐसी महीयसी प्रतिभाका परिचय मिलता हो। बङ्किम बाबू सर्वतोमुखी प्रतिभाके असाधारण दृष्टान्त हैं। इतिहास, गणित, साहित्य आदि विषयोंमें ही ये सर्वश्रेष्ठ थे। इनकी प्रकृतिका प्रधान लक्षण स्वातन्त्र्य था। बंगालमें ऐसे जीवनका नितान्त असद्भाव था। यथा स्वदेशी यथा विदेशी सबोंके निकट ये समान स्वाधीन चित्तका परिचय दे गये हैं। स्वतन्त्रता या जातीयता खोये बिना बंगाली किस तरह अङ्गरेजी शिक्षासे उपकार उठा सकते हैं, बङ्किमचन्द्र उनके आदर्श थे। बंगालियोंका नितान्त दुर्भाग्य हुआ, कि उनके धर्म और सामाजिक मत अंग अंगमें फैलनेके पहिले ही ये परलोक सिधारे। उनका धर्मतत्त्व उनके धर्मजीवनकी अनुष्ठानिकामात्र थी। उनका धर्ममत गीताके समान था। निष्काम भक्ति या सरल वृत्तिकी अनुकूलताकी ईश्वरमुखिता इनके प्रचारित

धर्मानुशीलनका मुख्य साधन था। भारतकी भावी आशासे उत्फुल्ल हो उन्होंने जो "वन्दे मातरम्" गाया था। उनके तिरोभावके बारह वर्ष बाद आज वह भारतवासीके जातीय संगीतरूपमें कोटि कोटिकण्ठसे पुकाराजाता है।

वङ्गमाताकी मूर्त्ति वङ्किमके हृदय-पट पर सदा विराजमान रहती थी, इसका आभास "कमलाकान्तेर दप्तर" "आमार दुर्गोत्सव" प्रबन्धसे सूचित होता है। वङ्किम बाबू बंगालको दीन हीन नहीं समझते थे,—उनके "वन्दे मातरम्" जातीय हीनतासूचक कातरोक्ति नहीं है, उसमें सुदूर जातीय-गौरवकी स्मृतिसे शक्तिहीन निश्चेष्ट स्पर्द्धा नहीं—उसमें वङ्किम बाबूने वङ्गमातृको भगवतीकी तरह महीयसी शक्तिशालिनी-स्वरूपमें कल्पना की है,—इस हिसाबसे 'वन्दे मातरम्' गान जातीय सङ्गीतोंके मध्य स्वतन्त्र प्रतिष्ठा पाने योग्य है। बङ्गाली जातिके अभ्यन्तर जो महाशक्ति छिपी थी, 'वन्दे मातरम्' गानसे वङ्किम बाबूने ही उसका आविष्कार किया।

वङ्किम बाबू स्वयं अपना एक 'आत्मचरित' लिख गये हैं। उनकी मृत्युके बारह वर्षके भीतर उनकी जीवनी प्रकाशित न हो, अपने आत्मीय स्वजन तथा बङ्गाली मात्रसे ये प्रार्थना कर गये थे। 'वन्दे मातरम्' गानने भारतवर्षके कोटिकण्ठसे नवबल सञ्चय कर वङ्किम बाबूके जातीय अनुरागको समुज्ज्वल कर दिखाया। यदि उनका जीवनचरित प्रकाशित हुआ होता, तो उनकी एक प्रधान कीर्त्तिका हाल प्रकाशित रह जाता।

वङ्किमदास कविराज—'वैरम्योद्धरणी' नामक किरातार्ज्जुनीयकाव्यकी टीकाके रचयिता।

वङ्किल (सं० पु०) वङ्कति इति वङ्क-इलच्। कण्टक, काँटा।

वङ्कु (सं० त्रि०) १ वक्रगामी। २ वक्रगमनशील।

वङ्कु—प्राचीन एक नदी। (भारत सभापर्व) वंक्षु देखो।

वङ्क्य (सं० त्रि०) वङ्क्य-यत्। (वन्त्येर्गतौ। पा ७।३।६३) इति अगत्यर्थे कुत्वम् च। वक्र, टेढ़ा।

वङ्क्रि (सं० पु० क्ली०) वङ्कते इति। वकि कौटिल्ये (वङ्क्र्यादयश्च। उण् ४।६६) इति क्रिन् प्रत्ययेन निपात्यते। १ वाद्यविशेष, प्राचीन कालका एक प्रकारका बाजा। २ कड़ी, कौड़ी। ३ पार्श्वास्थि, पशुओंकी पसलीकी हड्डी।

वङ्क्षण (सं० पु०) वङ्क्षति संहतो भवतीति वङ्क्ष-ल्युः पृषोदरादित्वात् नुम्। मूलाशय और जंघाद्वयका सन्धिस्थान, वह स्थान जो पेड़ू और जांघके बीचमें है और जहां 'वध्मं' नामक रोगकी गांठ निकला करती है।

वङ्क्षु (सं० स्त्री०) वहतीति वह-बाहुलकात् कुन्, नुम् च। आक्सस नदी। यह हिन्दुकुश पर्वतसे निकल कर मध्य एशियामें बहती हुई आरल समुद्रमें गिरती है। इस नदीका नाम वेदोंमें कई जगह आया है। पुराणोंमें यह केतुमाल वर्षकी एक नदी कही गई है।

महाभारतीय युगमें इस पुण्यतोया नदीकी गणना पवित्र नदियोंमें की गई थी।

'गोदावरी च वेण्वा च कृष्णवेण्या तथा द्विजा।
दृषद्वती च कावेरी वङ्क्षुर्मन्दाकिनी तथा॥"

(महाभारत १३।१६५।२२)

रघुवंशकी प्राचीन प्रतियोंमें भी रघुके दिग्विजयके अन्तर्गत इस नदीका उल्लेख है और इसके किनारे हूणोंकी बस्ती कही गई है।

वङ्ग (सं० क्ली०) वङ्गतीति वगि-गतौ अच्। १ धातुविशेष, रांगा नामकी धातु। पर्याय—त्रपु, स्वर्णज, नागजीवन, मृदङ्ग, रङ्ग, गुरुपत्र, पिच्चट, चक्रसंज्ञ, नागज, तमर, कस्तीर, आलीनक, सिंहल, स्वर्वेत, नाग।

भावप्रकाशमें लिखा है, कि खुरक और मिश्रक भेदसे वङ्ग दो प्रकारका है। मिश्रकसे खुरक वङ्ग उत्तम होता है। इसका गुण लघु और सारक तथा प्रमेह, कफ, कृमि, पाण्डु और श्वासरोगनाशक माना गया है। यह शरीरका सुखदायक, इन्द्रियोंके प्रबलता-सम्पादक और मानवदेहका पुष्टिसाधक है।

रसेन्द्रसारसंग्रहमें वङ्ग (रांगा)-की विभिन्न शोधनप्रणाली लिखी है। चूनेके पानीमें चार दण्ड तक भिंगो देनेसे वङ्ग विशुद्ध होता है। पीछे हरतालको आकके दूधमें खूब मल कर यह लेह पदार्थ वङ्गके पत्तरमें लेप दे कर पीपलकी छाल आगमें सात बार पुट दे अथवा विशुद्ध वङ्गमें पहले हरिद्राचूर्ण, दूसरेमें अजवायन, तीसरेमें जीरा, चौथेमें इमलीकी छालका चूर्ण और पांचवेंमें पीपलकी छालका चूर्ण दे कर यथाविधान पाक करनेसे वङ्गका भस्म तैयार होता है। (रसेन्द्रसारसंग्रह)

विशुद्ध वङ्गको दूसरी हंडीमें गला कर उसीके परिमाणमें अपामार्गभस्मचूर्ण उसमें मिला कर खलमें अच्छी तरह घोंटना होगा। पीछे राख फेंक कर शराव पुटमें भेज आंच देने पर वङ्गभस्म होता है।

वङ्गभस्मका गुण—तिक्त, अम्ल, रूक्ष, वातवर्द्धक, मेह, श्लेष्म, कृमि और मेहरोगनाशक।

अविशुद्ध वङ्गका गुण—तिक्त, मधुर, मेहघ्न, पाण्डु, कृमि और वातनाशक, थोड़ा पित्तकर और लेखनोपयोगी।

२ सीसक, सीसा। सीसक और वङ्ग प्रायः एक ही समान होता है। यथास्थान इसका वैज्ञानिक संयोग और गुणावली लिखी गई है। त्रपु, रङ्ग और सीसक देखो।

३ कार्पास, कपास। ४ वार्त्ताकु, बैंगन।

वङ्ग (सं० पु०) मगध या बिहारके पूर्व पड़नेवाला प्रदेश, बंगाल। ऋग्वेदमें सबसे पूर्व पड़नेवाले जिस प्रदेशका उल्लेख है, वह 'कीकट' (मगध) है। अथर्व संहितामें 'अङ्ग' देशका भी नाम मिलता है। संहिताओंमें 'वङ्ग' नाम नहीं मिलता। ऐतरेय आरण्यकमें ही सबसे पहले वङ्ग देशकी चर्चा आई है और वहांके निवासियोंकी दुर्बलता और कुआहार आदिका उल्लेख पाया जाता है। बात यह है, कि संहिताकालमें कीकट और वङ्ग देशमें अनार्यो का ही निवास था। आर्यलोग वहां तक न पहुंचे थे। बौधायन-धर्मसूत्रमें लिखा है, कि वङ्ग, कलिङ्ग, पुण्ड्र आदि देशोंमें जानेवालेको लौटने पर पुनस्तोम यज्ञ करना चाहिये। मनुस्मृतिमें तीर्थयात्राके लिये जानेकी आज्ञा है। इससे ज्ञान पड़ता है, कि उस समय आर्य वहां बस गये थे। शतपथ ब्राह्मणके समयमें मिथिलामें विदेह वंश प्रतिष्ठित था। रामायणमें प्राग्ज्योतिपुर (रंगपुरसे ले कर आसाम तक प्राग्ज्योतिष प्रदेश कहलाता था) की स्थापनाका उल्लेख है।

इस प्राचीन वङ्गकी सीमा कहां तक फैली थी, इसके जाननेका कोई उपाय नहीं है। अपेक्षाकृत परवर्त्तीकालमें वङ्गकी कैसी सीमा निर्दिष्ट हुई थी, वह नीचे लिखे श्लोकमें दिया जाता है।

"रत्नाकरं समारभ्य ब्रह्मपुत्रान्तगं शिवे।
वङ्गदेशो मया प्रोक्तः सर्वसिद्धिप्रदर्शकः॥"
(शक्तिसङ्गमतन्त्र) विस्तृत विवरण वङ्गदेशमें देखो।

वङ्ग (सं० पु०) चन्द्रवंशीय बलि राजाके पुत्र। (गरुड़पुराण १४४ अ०) महाभारतमें लिखा है, कि राजा बलिको कोई सन्तति न हुई। तब उन्होंने अंधे दीर्घतमा ऋषि द्वारा अपनी रानीके गर्भसे पांच पुत्र उत्पन्न कराये। इन पुत्रोंके नाम हुए—अङ्ग, वङ्ग, कलिङ्ग, पुण्ड्र और सुह्म। इन्हींके नाम पर देशोंके नाम पड़े।

"ततः प्रसादयामास पुनस्तमृषिसत्तमम्।
बलिः सुदेष्णां भार्यां स्वां तस्मै तां प्राहिणोत् पुनः।
तां स दीर्घतमाङ्गेषु स्पृष्ट्वा देवीमथाब्रवीत्।
भविष्यन्ति कुमारास्ते तेजसादित्यवर्चसः॥
अङ्गो वङ्गः कलिङ्गश्च पुण्ड्रः सुह्मश्च ते सुताः।
तेषां देशाः समाख्याताः स्वनामप्रथिता भुवि॥
अङ्गस्याङ्गो भवेद्देशो वङ्गो वङ्गस्य च स्मृतः।
कलिङ्गविषयश्चैव कलिङ्गस्य च स्मृतः॥
पुण्ड्रस्य पुण्ड्राः प्रख्याता सुह्माः सुह्मस्य च स्मृताः।
एवं बलेः पुरा वंशः प्रख्यातो वै महर्षिजः॥"
(भारत १।१०४।४७-५१) वङ्गदेश शब्दमें पुरावृत्त देखो।

वङ्गज (सं० क्ली०) वङ्गात् धातुविशेषात् जायते इति जन-ड। १ सिन्दूर। २ पित्तल, पीतल। (त्रि०) ३ वङ्गदेश जात। ४ वङ्गदेशवासी कायस्थ, वैद्य आदि जातिका एक श्रेणीविभाग। ये दक्षिण-राढ़ीय श्रेणीकी अन्यतम शाखा कह कर परिचित हैं। यह शाखा वङ्गदेशके पूर्वाञ्चलमें जा कर बस गई है इसलिये वङ्गज कहलाती है।

वङ्गजीवन (सं० क्ली०) रौप्य, चांदी।

वङ्गदेश—स्वनामप्रसिद्ध भारतीय देशभाग। यह भाग भारतवर्षके उत्तर-पूर्व हिमालय पहाड़की जड़से ले कर दक्षिण समुद्रतट तक फैला हुआ है। भारतका यह भाग वंगभूमि, वंगराज्य, बंगला तथा बंगालाके नामसे प्रसिद्ध था। भारतवर्षके पूर्वोत्तर प्रान्तवर्त्ती पुण्यतोया गंगानदी-प्रवाहित डेल्टाके कुछ अंश ले कर यह राज्य संगठित है। बहुत प्राचीन कालमें ही यहांके लोगोंका वाणिज्य कार्यक्रम प्रबल तथा रोमराज्यके साथ चल रहा था। उस समय भी इस देशके रहनेवालोंकी ज्ञानवत्ता तथा बुद्धिमत्तासे संसार भरके सभी देश परिचित थे। इन लोगोंकी शिल्पादि तथा दूसरी दूसरी कलाविद्याका प्रचार-

प्रभाव चारों ओर फैल गया था। विदेशी व्यापारी लोग समुद्रकी राहसे आ कर यहांके सुवर्ण-ग्रामादि बन्दरोंसे इस देशको पैदा होनेवाली अनेक चीजें ले आया करते थे। उस समयसे ही बंगालका गौरव दिग्‌दिगन्तमें व्याप्त हो गया। तभीसे बंगालके दक्षिण प्रान्त स्थित समुद्रभाग देशके नामानुसार बंगोपसागर तथा बङ्गवासी भी बंगालीके नामसे विदित हुए थे। भारतकी दूसरी दूसरी जातियोंकी अपेक्षा बंगाली जातिके विद्या गौरवने बंगालको स्वतन्त्र मर्यादा तथा समादर प्रदान किया है।

नामनिरुक्ति।

यह विशाल बंगालराज्य महाभारतके समयमें किस तरह सीमाबद्ध था, इसका कोई ठीक पता नहीं है। उस समय बंगराज्य, अंगराज्यके पार्श्ववर्त्ती देशके नामसे पुकारा जाता था। उसके बाद जब बंगालियोंने ज्ञानमार्गमें उन्नति करके तान्त्रिक आलोक प्राप्त किया, उस समय उन्होंने तन्त्रका महिमाविस्तार तथा प्रभाव-प्रचारके साथ ही बंगालको दैर्घ्य तथा विस्तारकी कल्पना कर लिया।

'तबकत इ-नासिरी' नामक मुसलमानी इतिहासके पढ़नेसे हम लोगोंको पता चलता है, कि बंगालके सेन वंशीय अन्तिम राजा महाराज लक्ष्मणसेनको हरा कर महम्मद-इ-बख्तियारने बंगालको विजय किया था। उसके आगमनसे लक्ष्मणावती, विहार, बंगाल तथा कामरूप आदि देश बहुत भयभीत हुए थे। मार्कोपोलो (१२९८ ई०) लिखते हैं, कि १२९० ई० पर्यन्त बंगाल विजय नहीं हुआ। बंगाल उक्त चारों देशोंके दक्षिण भागमें अवस्थित था। उक्त दोनों विवरणों पढ़नेसे जाना जाता है, कि मुसलमानोंके आगमनके पूर्व बंगाल चार खंडोंमें विभक्त था। मार्कोपोलोने उसके ही दक्षिणी भागको बंगालके नामसे उल्लेख किया है। रसीदुद्दिनका कहना है, कि लगभग १३०० ई०में बंगाल दिल्लीश्वरके अधीन हुआ। १३४५ ई०में 'इबन बतुता'ने बंगालराज्य तथा यहांके धानकी प्रचुरताका उल्लेख किया है। वे लिखते हैं, कि खोरासानवासी इस प्रदेशको नाना प्रकारके उत्कृष्ट पदार्थोंसे परिपूर्ण नगर कहते थे। सुप्रसिद्ध कवि हाफिजकी (१३५० ई०) कविताओंमें बंगालका उल्लेख पाया जाता है। भास्को दी-गामाने (१४९८ ई०) बंगालमें मुसलमानोंकी प्रधानता तथा यहांके सूती तथा रेशमी वस्त्र, चांदी प्रभृति वाणिज्य-पदार्थोंका उल्लेख किया है। वे लिखते हैं, कि अनुकूल हवा बहनेसे ४० दिनमें कालिकटसे बंगाल आ सकते हैं। इसके अलावा १५०५ ई०में लिवनाईरो, १५१० ई०में वार्थेमा तथा १५१५ ई०में बार्बोसा बंगाल-राज्य तथा यहांके रहनेवालोंके व्यापारका विवरण लिपिबद्ध कर गये हैं। अबुल्‌फ़ज़ल-कृत 'आईन-इ अकबरी' नामक मुसलमानी इतिहासमें बङ्गाल शब्दकी एक व्युत्पत्ति दी गई है। उन्होंने लिखा है, कि प्राचीन कालमें यह देश बंग नामसे उल्लिखित होता था। बंगके पूर्वतन हिन्दू राजे पर्वत-पादमूलस्थ निम्नभूमिमें मिट्टीके बांध अथवा आल दिया करते थे। बंगालके अनेकों स्थानमें उक्त राजाओंसे निर्मित इस तरहके सैकड़ों आल विद्यमान देख कर आलयुक्त बंगका नामकरण बंगाल हुआ है। सम्राट् औरङ्गजेब बंगालकी समृद्धि देख कर अभिमान सहित कह गये हैं, कि यह स्थान सभी जातियोंके लिये स्वर्गके समान है। १५९० ई०में वमिन्टन लिखते हैं, कि बंगाल-राज्य अराकानके उत्तर पश्चिममें अवस्थित है। चट्टग्राम बंगालके दक्षिण-पूर्व सीमान्त पर विद्यमान है।

बंग नामकी उत्पत्ति एवं इस राज्यका स्थिति तथा प्रतिष्ठाके सम्बन्धमें प्राचीन ग्रन्थोंमें जैसा विवरण पाया जाता है, वह पुरावृत्त प्रसंगमें लिखा जा चुका है। लुई वार्थेमा एवं अपरापर पुर्त्तगीज भ्रमणकारियोंने चट्टग्रामके निकटवाले बंगाला नामक एक नगरका उल्लेख किया है। प्राचीन मानचित्रमें उस नगरका स्थान निर्देश किया हुआ है। बहुत सम्भव है, कि वार्थेमाने बंगालमें पदार्पण नहीं किया। वे मलबारके उपकूलमें ही ठहर कर अरबी वणिकोंके पथानुवर्त्ती हो कर इस देशके नामानुसार बंगालके प्रधान नगरका नाम बंगाला लिख गये हैं, परन्तु इस बंगाल नगरका कोई निदर्शन विद्यमान नहीं है। जान पड़ता है, कि पुर्त्तगीजोंने बंगालके प्रधान बन्दर चट्टग्राम आ कर उसके दक्षिण उपकण्ठस्थित एक गण्डग्रामको बंगालियोंकी वासभूमि समझ चट्टग्रामको ही बंगाल नगर बतलाया है।

सीमा तथा विभाग इत्यादि ।

ब्रह्मपुत्र तथा गंगा नदीके डेल्टाओं एवं उनके अववाहिका प्रदेशको निम्नस्थ उपत्यका भूमिको ले कर वस्तुतः वर्त्तमान बंगाल संगठित है। १८७४ ई०में आसाम विभागको बंगालका अंगच्युत करके स्वतन्त्र शासनाधीन किया गया। उस समयसे ही खास-बंगाल, बिहार, उड़ीसा तथा छोटानागपुर विभागको एकत्र करके अंग्रेजाधिकृत बंगालकी सीमा निर्दिष्ट की गई थी। उसके बाद १९०५ ई०की १६वीं अक्टूबरको पूर्व बंगालको आसाममें मिला कर एक दूसरे छोटे लाटके अधीन 'पूर्व-बंगाल तथा आसाम' प्रदेश स्वतन्त्र संगठित किया गया। १९१२ ई०से बिहार और उड़ीसा बंगालसे अलग कर दिया गया और पूर्व-बंगाल बंगदेशमें मिला लिया गया है। यह अक्षा० २१° ३०′ से ले कर २७° १२′ ४४″ उ० तथा देशा० ८६° ५७′ ४५″ से ले कर ९२° ४६′ पू० तक विस्तृत है। भूपरिमाण ८०००० वर्गमील है।

इसकी उत्तरी सीमा पर नेपाल तथा भोटान राज्य; पूर्वमें आसाम; दक्षिणमें बंगोपसागर; पश्चिममें बिहार, उड़ीसा और छोटा नागपुर है। बंगाल छोटा लाट (Governor)-के शासनाधीन है।

मुसलमान लोग बंग-विजय करके गंगाके डेल्टाओंको ही संकुल नामानुसार बंग कहा करते थे। किसी किसी मुसलमान ऐतिहासिकने राजधानी लक्ष्मणावतीके नामानुसार इस प्रदेशको भी लक्ष्मणावतीके नामसे वर्णन किया है। गौड़ तथा लक्ष्मणावतीके ध्वंस होनेके बाद जिस समय राजपाट ढाका तथा मुर्शिदाबादमें स्थानान्तरित हुआ, उस समय भी निम्न बंग बंगालके नामसे ही परिचालित होता था। इसके बाद मुसलमानोंने पूर्वमें [illegible] अधिकार करके बंगालकी सीमा वृद्धि की। दिल्लीके अधीनस्थ [illegible] शासनकर्ताओं तथा उनके [illegible] स्वाधीन [illegible] राजाओंके राज्य [illegible] हो जाने पर [illegible] सुविधाके [illegible] बंगालको [illegible] किया। [illegible] की सुविधाके लिये बंगाल, बिहार, तथा उड़ीसाको मिला कर एक सूबा संगठित किया गया था। इसी सूबेसे बिहार, [illegible] तथा [illegible] निर्दिष्ट किये गये थे। इस सूबेमें बंगालका शासन करनेके लिये दिल्लीश्वरके अधीन एक शासनकर्त्ता नवाब बंगालमें रहते थे। ये शेषोक्त नवाब बंगालमें ही मुर्शिदाबादके नवाबके नामसे परिचित थे। सिर्फ एक नवाबसे ऐसे विस्तृत तथा महासमृद्धिशाली देशका राजकर वसूल होनेकी सुविधा न देख कर उनके अधीन बिहार, उड़ीसा तथा ढाकामें एक एक नायब-नाजिम (Deputy Governor) रखनेकी व्यवस्था की गई थी।

अंगरेजाधिकारमें बंगालका सन्निवेश होनेसे प्रकृत बंग नामका अनेक विपर्यय साधित हुआ है। उड़ीसाके उपकूलस्थित बालेश्वरसे ले कर बिहारके मध्यवर्ती पटना पर्यन्त स्थानों पर ईष्ट-इण्डिया कम्पनीकी जितनी कोठियां थीं, वे उक्त कम्पनीके दफ्तर (Bengal Establishment)-के नामसे वर्णित हैं। फ्रान्सिस फार्बोण्टेसने चट्टग्रामके पूर्व बहुत दूरसे ले कर उड़ीसाके अन्तर्गत पामिरा पाइण्ट (Palmyra Point) पर्यन्त विस्तृत उपकूल तथा गंगाप्रवाहित भूमिभाग ले कर बंगालकी सीमा निर्दिष्ट की थी। पार्कस (Parchas)-के मतसे यह उपकूलभाग प्रायः ५०० मील है।

पूर्व विवरण पर आलोचना करनेसे अच्छी तरह जाना जाता है, कि बंगालकी सीमा किसी समय भी स्थिर नहीं थी। पार्श्ववर्ती राजाओंके आक्रमणसे समय समय पर इसका अंगच्युत हुआ करता था। बंगालके अन्तिम मुसलमान नवाब सिराजुद्दौलाके बंग-सिंहासनसे च्युत होने पर तथा बंगालको दिल्लीश्वर कर्तृक दीवानी अंगरेजोंके हाथों समर्पित होने पर भी आराकान तथा ब्रह्म-वासियोंने बंगालका सीमान्तप्रदेश आलोड़ित कर डाला था। सिपाही-विद्रोहके बाद ईष्ट-इण्डिया कम्पनीका शासन अवसान होने पर महारानी विक्टोरियाने इसका शासन-भार अपने हाथमें ले लिया था। उस समय उन्होंने सुप्रीमकोर्ट तथा सदर दीवानी अदालत उठा कर अपने मतानुसार हाईकोर्ट स्थापित किया। अंगरेज-गवर्नमेण्ट विशेष ध्यानके साथ बंगालको शासन [illegible] करने लगी। १८७७ ई०में महारानी 'भारत-सम्राज्ञी'के पद पर अभिषिक्त होने पर भारतमें अंगरेजी [illegible] हो गया। [illegible]

पुर-युद्धावसानमें बंगालकी सीमा परिवर्द्धित हुई। अंगरेज-गवर्नमेण्टने बंगालको प्रेसिडेन्सीभुक्त कर लिया।

अंगरेजाधिकृत यह बंगाल राज्य क्रमसे एक प्रेसिडेन्सीके रूपमें विरक्त हो गया। सिर्फ गंगा तथा ब्रह्मपुत्र प्रवाहित समस्त अववाहिका प्रदेश ही नहीं, बल्कि सिन्धुनदके समग्र अववाहिका प्रदेश तथा उसके हिमालय पृष्ठस्थ शाखा-प्रशाखा-व्याप्त स्थानोंको भी ले कर यह विभाग संगठित हुआ। तात्पर्य यह, कि विन्ध्यपर्वतमालाके उत्तर दिग्वर्ती प्रायः समग्र आर्यावर्त्त भूमि बंगाल प्रेसिडेन्सीके अन्तर्भुक्त हुई थी। बंगाल प्रेसिडेन्सीके इस विभागके सम्बन्धमें अब केवल कहना ही शेष है। जिन पांच सुवृहत् प्रदेशोंको ले कर 'बंगाल-प्रेसिडेन्सी' संगठित हुई थी, वे पांचों प्रदेश क्रमशः निर्दिष्ट विभिन्न शासनकर्त्ताके अधीन हुए; किन्तु सबोंके ऊपर भारत-राज-प्रतिनिधि कर्त्तृत्व कर दिये गये। बंगाल प्रेसिडेन्सी इस ऐतिहासिक विभाग संगठित होनेके बहुत पीछे अर्थात् १८५१ ई०में मध्यप्रदेशमें एक स्वतन्त्र शासन-विभाग गठित हुआ था। किन्तु जो बंगाल बंगवासियोंकी जन्मभूमि है, जो गंगा तथा ब्रह्मपुत्रकी उपत्यका ले कर प्रधानतः गठित है, वही अंगरेज राजकीय दफ्तरमें निम्न बंग (Lower Bengal)-के नामसे वर्णित है।

बङ्गदेशका विभाग और जिला।

शासनकार्य चलानेके लिये बंगदेश पांच विभागों (Division) में विभक्त है; फिर विभाग जिलोंमें विभक्त है। प्रत्येक जिलेका शासन-भार वहांके कलक्टर-मजिष्ट्रेटके ऊपर अर्पित है। उन कलक्टरोंके कार्यकी देख रेख करनेके लिये प्रत्येक विभागमें एक एक कमिश्नर नियुक्त हैं। नीचे बंगदेशके विभागों, जिलों और सदरों (Head quarters) के नाम दिये जाते हैं।

जिला	सदर
१ प्रेसिडेन्सी-विभाग—	
(१) कलकत्ता	कलकत्ता
(२) चौबीस परगना	अलीपुर
(३) खुलना	खुलना
(४) नदीया	कृष्णनगर
(५) जशोर	जशोर
(६) मुर्शिदाबाद	बहरमपुर
२—वर्द्धमान विभाग—	
(१) वर्द्धमान	वर्द्धमान
(२) बांकुड़ा	बांकुड़ा
(३) वीरभूम	सिवड़ी
(४) मेदिनीपुर	मेदिनीपुर
(५) हुगली	हुगली
(६) हवड़ा	हवड़ा
३—राजसाही-विभाग—	
(१) राजसाही	रामपुर-बोआलिया
(२) बोगड़ा	बोगड़ा
(३) पबना	पबना
(४) मालदह	अंगरेज-बाजार
(५) रंगपुर	रंगपुर
(६) दिनाजपुर	दिनाजपुर
(७) जलपाईगोड़ी	जलपाईगोड़ी
(८) दार्जिलिङ्ग	दार्जिलिंग
४—ढाका-विभाग—	
(१) ढाका	ढाका
(२) फरीदपुर	फरीदपुर
(३) बाकरगंज	बारिशाल
(४) मैमनसिंह	मैमनसिंह
५—चट्टग्राम-विभाग—	
(१) चट्टग्राम	चट्टग्राम
(२) पार्वत्य चट्टग्राम	रंगामाटी
(३) नवाखाली	सुधाराम
(४) त्रिपुरा	कोमिल्ला

प्राकृतिक दृश्य।

बंगालप्रदेशके प्राकृतिक सौन्दर्यका विशेष कोई असद्भाव नहीं हुआ है। दक्षिणमें तरंगसंकुल बंगोपसागर उत्ताल ऊर्म्मिमालासे सागरसैकतको विधौत कर रहा है। उत्तरमें हिमाचलशिखर क्रमोच्च शृंगमालासे समारोहित हो कर मानो एक अभि-

सीमा तथा विभाग इत्यादि ।

ब्रह्मपुत्र तथा गंगा नदीके डेल्टाओं एवं उनके सम-पार्श्विक प्रदेशकी निम्नतम उपत्यका भूमिको ले कर वस्तुतः वर्त्तमान बंगाल संगठित है। १८५४ ई०में आसाम विभागको बंगालका अंगच्युत करके स्वतन्त्र शासनाधीन किया गया। उस समयसे ही खास-बंगाल, बिहार, उड़ीसा तथा छोटानागपुर विभागको एकत्र करके अंग्रेजाधिकृत बंगालकी सीमा निर्दिष्ट की गई थी। उसके बाद १९०५ ई०की १६वीं अक्टूबरको पूर्व बंगालको आसाममें मिला कर एक दूसरे छोटे लाटके अधीन 'पूर्व-बंगाल तथा आसाम' प्रदेश स्वतन्त्र संगठित किया गया। १९१२ ई०से बिहार और उड़ीसा बंगालसे अलग कर दिया गया और पूर्व-बंगाल बंगदेशमें मिला लिया गया है। यह अक्षा० २१° ३०´ से ले कर २७° १२´ ४४´´ उ० तथा देशा० ८६° ३५´ ४५´´ से ले कर ९२° ४१´ पू० तक विस्तृत है। भूपरिमाण ८०००० वर्गमील है।

इसकी उत्तरी सीमा पर नेपाल तथा भोटान राज्य; पूर्वमें आसाम; दक्षिणमें बंगोपसागर; पश्चिममें बिहार, उड़ीसा और छोटा नागपुर है। बंगाल छोटा लाट (Governor)-के शासनाधीन है।

मुसलमान लोग बंग-विजय करके गंगाके डेल्टाओंको ही संस्कृत मतानुसार बंग कहा करते थे। किसी किसी मुसलमान ऐतिहासिकने राजधानी लक्ष्मणावतीके मतानुसार इस प्रदेशको भी लक्ष्मणावतीके नामसे वर्णन किया है। गौड़ तथा लक्ष्मणावतीके ध्वंसके बाद जिस समय राजपाट ढाका तथा मकसूदाबादमें स्थानान्तरित हुआ, उस समय भी निम्न बंग बंगालके नामसे ही परिचित होता था। इसके बाद मुसलमानोंने पूर्वमें ब्रह्मपुत्र-तीर पर्यन्त अधिकार करके बंगालकी सीमा वृद्धि की। दिल्लीके अधीनस्थ पठान शासनकर्त्ताओं तथा उसके बादके स्वाधीन पठान राजाओंके राज्य शेष हो जाने पर मुगल-सम्राट् अकबर शाहके सुविख्यात सेनापति मानसिंहने बंगालको मुगल साम्राज्यमें मिला लिया। राजा टोडरमलकी पैमाइशीके बाद राजकर-की सुविधाके लिये बंगाल, बिहार, तथा उड़ीसाको मिला कर एक सूबा संगठित किया गया एवं उसी सूबेमें जिला, सरकार तथा परगना प्रभृति विभाग निर्दिष्ट किये गये थे। इस सूबेमें बंगालका शासन करनेके लिये दिल्लीश्वरके अधीन एक शासनकर्त्ता नवाब बंगालमें रहते थे। ये शेषोक्त नवाब बंगालमें प्रायः ही मुर्शिदाबादके नवाबके नामसे परिचित थे। सिर्फ एक नवाबसे ऐसे विस्तृत तथा महासमृद्धिशाली देशका राजकर वसूल होनेकी सुविधा न देख कर उनके अधीन बिहार, उड़ीसा तथा ढाकामें एक एक नायब-नाज़िम (Deputy Governor) रखनेकी व्यवस्था की गई थी।

अंगरेजाधिकारमें बंगालका सन्निवेश होनेसे प्रकृत बंग नामका अनेक विपर्यय साधित हुआ है। उड़ीसाके उपकूलस्थित बालेश्वरसे ले कर बिहारके मध्यवर्त्ती पटना पर्यन्त स्थानों पर ईष्ट-इण्डिया कम्पनीकी जितनी कोठियां थीं, वे उक्त कम्पनीके दफ्तर (Bengal Establishment)-के नामसे वर्णित हैं। कान्निस फार्णण्डेजने चट्टग्रामके पूर्व बहुत दूरसे ले कर उड़ीसाके अन्तर्गत पालिरा पइण्ट (Palmyra Point) पर्यन्त विस्तृत उपकूल तथा गंगाप्रवाहित भूमिभाग ले कर बंगालकी सीमा निर्दिष्ट की थी। पार्कीस (Purchas)-के मतसे यह उपकूलभाग प्रायः ५०० मील है।

पूर्व विवरण पर आलोचना करनेसे अच्छी तरह जाना जाता है, कि बंगालकी सीमा किसी समय भी स्थिर नहीं थी। पार्श्ववर्त्ती राजाओंके आक्रमणसे समय समय पर इसका अंगच्युत हुआ करता था। बंगालके अन्तिम मुसलमान नवाब सिराजुद्दौलाके बंग-सिंहासनसे च्युत होने पर तथा बंगालकी दिल्लीश्वर कर्तृक दीवानी अंगरेजके हाथमें समर्पित होने पर भी आराकान तथा ब्रह्म-वासियोंने बंगालका सीमाप्रदेश आलोड़ित कर डाला था। सिपाही-विद्रोहके बाद ईष्ट-इण्डिया कम्पनीका शासन समाप्त होने पर महारानी विक्टोरियाने इसका शासन-भार अपने हाथमें ले लिया था। उस समय उन्होंने सुप्रीमकोर्ट तथा सदर दीवानी अदालत हटा कर अपने मतानुसार हाईकोर्ट स्थापित किया। अंगरेज-गवर्मेण्ट विशेष दृढ़ताके साथ बंगालकी शासन व्यवस्था करने लगी। १८७७ ई०में महारानी 'भारत-सम्राज्ञी'के पद पर अभिषिक्त होने पर भारतमें अंगरेजोंका प्रभाव अक्षुण्ण हो उठा। भोटान-युद्ध तथा मणि-

पुर-युद्धावसानमें बंगालकी सीमा परिवर्द्धित हुई। अंगरेज-गवर्नमेण्टने बंगालको प्रेसिडेन्सीभुक्त कर लिया।

अंगरेजाधिकृत यह बंगाल राज्य क्रमसे एक प्रेसिडेन्सीके रूपमें विभक्त हो गया। सिर्फ गंगा तथा ब्रह्मपुत्र प्रवाहित समस्त अववाहिका प्रदेश ही नहीं, बल्कि सिन्धुनदके समग्र अववाहिका प्रदेश तथा उसके हिमालय पृष्ठस्थ शाखा-प्रशाखा-व्याप्त स्थानोंको भी ले कर यह विभाग संगठित हुआ। तात्पर्य यह, कि विन्ध्यपर्वतमालाके उत्तर दिग्वर्त्ती प्रायः समग्र आर्यावर्त्त भूमि बंगाल प्रेसिडेन्सीके अन्तर्भुक्त हुई थी। बंगाल प्रेसिडेन्सीके इस विभागके सम्बन्धमें अब केवल कहानी ही शेष है। जिन पांच सुवृहत् प्रदेशोंको ले कर 'बंगाल-प्रेसिडेन्सी' संगठित हुई थी, वे पांचों प्रदेश क्रमशः निर्दिष्ट विभिन्न शासनकर्त्ताके अधीन हुए, किन्तु सबोंके ऊपर भारत-राज-प्रतिनिधि कर्त्तृत्व कर दिये गये। बंगाल प्रेसिडेन्सी इस ऐतिहासिक विभाग संगठित होनेके बहुत पीछे अर्थात् १८५१ ई०में मध्यप्रदेशमें एक स्वतन्त्र शासन-विभाग गठित हुआ था। किन्तु जो बंगाल बंगवासियोंकी जन्मभूमि है, जो गंगा तथा ब्रह्मपुत्रकी उपत्यका ले कर प्रधानतः गठित है, वही अंगरेज राजकीय दफ्तरमें निम्न बंग (Lower Bengal)-के नामसे वर्णित है।

वङ्गदेशका विभाग और जिला।

शासनकार्य चलानेके लिये बंगदेश पांच विभागों (Division) में विभक्त है; फिर विभाग जिलोंमें विभक्त है। प्रत्येक जिलेका शासन-भार वहांके कलक्टर-मजिष्ट्रेटके ऊपर अर्पित है। उन कलक्टरोंके कार्योंकी देख रेख करनेके लिये प्रत्येक विभागमें एक एक कमिश्नर नियुक्त है। नीचे बंगदेशके विभागों, जिलों और सदरों (Head quarters) के नाम दिये जाते हैं।

१ प्रेसिडेन्सी-विभाग—

जिला	सदर
(१) कलकत्ता	कलकत्ता
(२) चौबीस परगना	अलीपुर
(३) खुलना	खुलना
(४) नदीया	कृष्णनगर
(५) जशोर	जशोर
(६) मुर्शिदाबाद	बहरमपुर

२—वर्द्धमान विभाग—

जिला	सदर
(१) वर्द्धमान	वर्द्धमान
(२) बांकुड़ा	बांकुड़ा
(३) वीरभूम	सिवड़ी
(४) मेदिनीपुर	मेदिनीपुर
(५) हुगली	हुगली
(६) हवड़ा	हवड़ा

३—राजसाही-विभाग—

जिला	सदर
(१) राजसाही	रामपुर-बोआलिया
(२) बोगड़ा	बोगड़ा
(३) पबना	पबना
(४) मालदह	अंगरेज-बाजार
(५) रंगपुर	रंगपुर
(६) दिनाजपुर	दिनाजपुर
(७) जलपाईगोड़ी	जलपाईगोड़ी
(८) दार्जिलिङ्ग	दार्जिलिंग

४—ढाका-विभाग—

जिला	सदर
(१) ढाका	ढाका
(२) फरीदपुर	फरीदपुर
(३) वाकरगंज	वारिशाल
(४) मैमनसिंह	मैमनसिंह

५—चट्टग्राम-विभाग—

जिला	सदर
(१) चट्टग्राम	चट्टग्राम
(२) पार्वत्य चट्टग्राम	रंगामाटी
(३) नवाखाली	सुधाराम
(४) तिपुरा	कोमिल्ला

प्राकृतिक दृश्य।

बंगालप्रदेशके प्राकृतिक सौन्दर्यका विशेष कोई असद्भाव नहीं हुआ है। दक्षिणमें तरंगसंकुल बंगोपसागर उत्ताल ऊर्म्मिमालासे सागरसैकतको विधौत कर रहा है। उत्तरमें हिमाचलशिखर क्रमोच्च शृंगमालासे समारोहित हो कर मानो एक अभि-

गन स्पर्श उद्भासित कर रहे हैं। उन तुषारमण्डित शिखर पर सहस्रकिरणके प्रतिफलित होनेसे तुषार धवल पर्वतमाला एक ज्योतिर्मय हैमस्तूपमें पर्यवसित हो रहा है। निम्नभागमें कभी वह सूर्यकिरणसे समुद्भासित हो कर दिग्दिगन्त आलोकित करता है और कभी गाढ़ कुज्झटिकासे समाच्छादित हो कर अपूर्व मेघमालाकी तरह निश्चल दण्डायमान है। ये पर्वत गात्रको विदीर्ण करके छोटी छोटी स्रोतस्विनी प्रखर गतिसे समतल उपत्यका प्रान्तमें अवतीर्ण हो कर परस्पर के संयोगसे पुष्ट हो एक एक प्रकाण्ड जलधाराकारमें प्रवाहित हो रही है। उक्त नदियोंमें हिमपादनिःसृत गंगा तथा ब्रह्मपुत्र ही यहांके प्रधान प्रवाह हैं। दूसरी उनकी ही शाखा प्रशाखायें हैं। गंगा तथा ब्रह्मपुत्र देखो।

यहां नदियाँ वङ्गालकी शोभा तथा शस्य समृद्धिका एकमात्र कारण है। हिमालयपृष्ठ अथवा उत्तर-बंगालके उच्च स्थानोंको विदीर्ण करके इन नदियों-ने निम्न वङ्गालकी निम्न भूमिमें एक मृदु स्तर ला कर संचय कर दिया है। इस स्तर की उर्वराशक्ति ऐसी है, कि जिस स्थानमें इस तरह स्तर संचित हो जाता है, वहां पर्याप्त परिमाणमें विभिन्न प्रकारके शस्य उत्पन्न होते हैं। गंगा तथा ब्रह्मपुत्रके उत्तर उपत्यका प्रदेश एवं निम्न बंगालके समतल प्रान्तमें इस तरह
नदी-जालसे समाच्छन्न हो [illegible] गोंसे
जानेकी विशेष सुविधा हो [illegible] ये नदियाँ
शस्य विताड़ित हो कर [illegible]
कर देती हैं जिससे भूमि [illegible]
जाती है। यह पांक भी [illegible]
होती है। कभी कभी [illegible]
प्रभृतिसे जल [illegible]
है। उस [illegible]
कृषिकार्य [illegible]
के पास छोटे [illegible]
प्रधान प्रधान [illegible]
नगरवासियोंके [illegible]
वृक्षादि परिशो[illegible]
निकटादि स्थानोंम [illegible]

नदीतीरवर्ती ग्राम अथवा नगरोंमें विशेषतः स्नान करने के घाटों पर देव मन्दिरादि प्रतिष्ठित हो कर देशवासियों की धर्मपरायणता तथा स्थापत्यशिल्पका परिचय दे रहे हैं। ग्रामके मध्य अथवा पार्श्वस्थ ये सब बहुविध देवालय या मन्दिर स्थापत्य प्राच्य वैचित्र्यकी एकतानता भंग कर देते हैं। कहीं कहीं भग्न मन्दिर अथवा प्राचीन प्रासादादि विध्वस्त हो कर जंगलपूर्ण स्तूपराशिमें परिणत हो गये हैं। ये सब प्राचीन कीर्तिनिदर्शन प्रत्नतत्त्वविदों की आलोचना करनेकी चीजें हैं। पार्श्वस्थ वनमालाओं इन सब स्तूपोपरि गठित जंगलोंमें सौन्दर्यका विशेष विकाश न होने पर भी उनमें विभिन्न जातीय हिंस्र जीवोंका वास हो गया है। इन जंगलोंके आस-पासमें भी छोटे छोटे ग्राम विद्यमान हैं। प्राकृतिकमें वङ्गाल के विभिन्न नदीवर्ती ग्राम अथवा नगरोंमें प्राकृतिक सौन्दर्यका ऐसा ही वैषम्य दृष्टिगोचर होता है, कि सभी स्थान मानो नवभूषासे सुसज्जित हो कर दर्शकोंके चित्त को आकर्षित करनेका प्रयास कर रहे हैं।

इस बंगाल प्रदेशमें जितनी नदियां तथा शाखा देखी जाती हैं, उन सबोंमें गंगा और ब्रह्मपुत्र प्रधान हैं। तिस्ता, भागीरथी (हुगली), दामोदर, रूपनारायण प्रभृति कई दूसरी दूसरी नदियां अपेक्षाकृत क्षुद्र होने पर भी प्रधान नदियां ही कहलाती हैं। इनके अलावे कई शाखा नदियों-से अथवा नदीके अंशविशेष विभिन्न नामसे परिचित
जैसे आत्रेय, आड़ियल-खां, बराकर, भैरव, दिवापरी,
छोट निदया, बूढ़ीगंगा, चित्रा, [illegible],
[illegible]मती, यमुना, करतोया,
[illegible], [illegible],
[illegible] रूपनारायण,

धारा प्रायः सूख गई है। इन धाराओंमें वर्षा ऋतुके अतिरिक्त अन्य ऋतुओंमें बहुत कम जल शेष रह जाता है। ये सब धारायें मरातिस्ता, वूढ़ीगंगा प्रभृति नामोंसे परिचित हैं। दूसरी दूसरी कितनी ही नदियोंकी धाराओंके कई स्थानोंमें तो बिलकुल ही जल नहीं रहता। इन नदियोंके ऊपर रेलपथके लिये पुल बांधे गये हैं। कई मरी हुई नदियोंकी धाराओंको भरके उसके ऊपर लौहवर्त्म विस्तारित किया गया है। कई नदियोंसे व्यापारकी सुविधाके लिये गवर्मेण्ट बहादुरने खाई खोद कर उनकी धाराओंको दूसरी ओर परिचालित कर दिया है, जिससे इस देशवासियोंमें कितनेको तो लाभ पहुंचता है और कितनेको अत्यन्त हानि होती है। प्राचीन कितनी ही नदियां शुष्क हो कर इस समय शस्यक्षेत्रमें पर्यवसित हो गई हैं। उन स्थानोंके बाशिन्दे जलकष्टसे हाहाकार कर रहे हैं। वारिपातरूप जगदीश्वरकी अनुकम्पाके सिवा यहांकी प्रजाओंके प्राणोंको रक्षाका और कोई दूसरा उपाय नहीं है। कहीं कहीं खाई, बांध प्रभृति द्वारा देश-रक्षाका विधान हुआ है, किन्तु वे सिर्फ स्थानीय लोगोंका ही कुछ उपकार कर सकते हैं। स्वर्णप्रसू बंगालकी नदियां बाहुल्य होने पर भी इस समय जलाभावसे यहांकी प्रजा दुर्भिक्ष तथा अन्नकष्टसे प्रपीड़ित है।

नदियोंके अलावे स्थान स्थान पर कूप तथा तड़ागादिके द्वारा यहांका जलाभाव दूर किया जाता है। दामोदर आदि बहुत-सी नदियों पर बांध बांध कर जलरक्षाकी व्यवस्था है। यहांकी छोटी छोटी जल-धाराओंसे ये बांध ही यहांके लोगोंके लिये विशेष उपकारी हैं।

वीरभूम आदि नाना स्थानोंमें बहुतसे शीतल, लवण और उष्ण जलपूर्ण प्रस्रवण दृष्टिगोचर होते हैं। ये सब स्थान बहुत प्राचीनकालसे ही तीर्थक्षेत्ररूपमें गिने जाते हैं। इसका विशेष विवरण जिला प्रसंगमें लिखा गया है। प्रस्रवण जो प्राचीनत्वका परिचालक है, यह बंगालके भूतत्त्वकी आलोचना करनेसे सहजमें जाना जा सकता है।

भूतत्त्व।

भूतत्त्वविदोंने विशेष गवेषणा और अनुशीलनके बाद यह स्थिर किया है, कि निम्नवङ्गका अधिकांश स्थान समुद्रगर्भमें पड़ा हुआ था। कालक्रमसे समुद्रगर्भ जितना ही पीछे हटता गया उतना ही चर पड़ता गया। पीछे वही चर जनसमाजके वासस्थानके रूपमें परिणत हो गया है। पृथ्वीके नीचे पड़ी हुई शम्बूक (सीप) मछली आदिकी हड्डी और नवीभूत मिट्टीके स्तरादि उसका प्रमाण देते हैं। महाभारतके वनपर्व ११३ अ० युधिष्ठिरके तीर्थयात्रा-विवरणमें कौशिकीतीर्थसे कुछ दूर पांच सौ नदीयुक्त गङ्गासागर-सङ्गम तथा वहांसे भी कुछ दूर समुद्रके किनारे कलिङ्ग देश रहनेसे साफ साफ मालूम होता है, कि समस्त तीर उस समय उत्तरराढ़से कुछ दूर तक विस्तृत था। कौशिकीका वर्त्तमान नाम कोसी है। तारकेश्वरके निकटवर्त्ती हरिपाल आदि ग्रामोंके निकट कौशिकीका प्राचीन गर्भ देखा जाता है। ग्रीक-राजदूत मेगास्थनीज पटनासे तीन सौ मील दूर गङ्गासागर-सङ्गमकी बात लिख गये हैं।

आज कल जिस प्रकार हम लोग नवाखाली जिलेके समुद्रोकूल पर सनद्वीप आदि चरजात द्वीपकी उत्पत्ति देखते हैं, प्राचीन कालमें भी उसी प्रकार समुद्रतीरवर्त्ती नदियोंके मुहाने पर मिट्टी जम जानेसे क्रमशः द्वीपकी उत्पत्ति हुई थी। इसी कारण बहुत-से स्थानोंके नामके अन्तमें 'द्वीप' 'दियारा या दिया' और 'चर' शब्द दिखाई पड़ते हैं। चन्द्रद्वीप, नवद्वीप, अग्रद्वीप, शुकचर, वकचर, कांटादिया, रूपदिया आदि स्थान शायद उसी चरसे उत्पन्न हुए होंगे।

उस समयके लोकसमाजका प्रथित चर आगे चल कर वृक्ष, लतादिसे परिपूर्ण हो उपवन, ग्राम और धीरे धीरे नगरमें परिणत हो गया है। किन्तु आज भी यह चराभिधान दूर नहीं हुआ है। चक्रदह, खड़दह, शिवादह आदि जिस प्रकार नदीगर्भसे पीछे सौधमाला-मण्डित सुरम्य नगरमें परिणत हो गया है, उसी प्रकार नदीस्रोतसे लाये गये बालूके कण भी मुहानास्थ समुद्र-तट पर सञ्चित हो जाते हैं और जिससे चरभूमिकी उत्पत्ति होती है। आज जहां पर मकरसंक्रान्तिके दिन सागर-तीर्थयात्रिगण इकट्ठे हो कर स्नानादि करते हैं,

नव दृश्यपट उन्मोचित कर रहे हैं। उस तुषारमण्डित शिखर पर अरुणकिरणके प्रतिफलित होनेसे तुषार धवल पर्वतसानु एक ज्योतिर्मय हैमस्तूपमें पर्य्यवसित हो रहा है। दिवाभागमें कभी वह सूर्यकिरणसे समुद्भासित हो कर दिग्‌दिगन्त आलोकित करता है और कभी गाढ़ कुज्झटिकासे समाच्छादित हो कर अपूर्व मेघमालाकी तरह निश्चल दण्डायमान है। ये पर्वत गात्रको विधौत करके छोटी छोटी स्रोतस्विनी प्रखर गतिसे समतल उपत्यका प्रान्तमें अवतीर्ण हो कर परस्पर के संयोगसे पुष्ट हो एक एक प्रकृष्ट जलधारारूपमें प्रवाहित हो रही है। उक्त नदियोंमें हिमपादनिःसृत गंगा तथा ब्रह्मपुत्र ही यहांके प्रधान प्रवाह हैं। दूसरी उनकी ही शाखा प्रशाखायें हैं। गंगा तथा ब्रह्मपुत्र देखो।

यही नदियां वङ्गालकी शोभा तथा शस्य समृद्धिका एकमात्र कारण हैं। हिमालयपृष्ठ अथवा उत्तर-बंगालके उच्च स्थानोंको विधौत करके इन नदियोंने निम्न वङ्गालकी निम्न भूमिमें एक मृदु स्तर ला कर संचय कर दिया है। इस स्तर की उर्व्वरताशक्ति ऐसी है, कि जिस स्थानमें इस तरह स्तर संचित हो जाता है, वहां पर्य्याप्त परिमाणमें विभिन्न प्रकारके शस्य उत्पन्न होते हैं। गंगा तथा ब्रह्मपुत्रके उत्तर उपत्यका खण्ड एवं निम्न बंगालके समतल प्रान्तमें इस तरह नदी-जालसे समाच्छन्न हो जानेसे शस्यक्षेत्रोंको सींचे जानेकी विशेष सुविधा हो गई है। कभी कभी ये नदियां वन्य-विताड़ित हो कर उभय तीरवर्ती ग्रामोंको जलमय कर देती हैं जिससे भूपृष्ठमें एक प्रकारकी पीक जम जाती है। यह पीक भी शस्योत्पादनमें विशेष उपयोगी होती है। कभी कभी ठौर ठौर पर खाई खोद कर नाली प्रभृतिसे जल ला कर खेत सींचनेकी व्यवस्था की जाती है। उच्च भूमिमें कूप अथवा पुष्करिण्यादि खोद कर भी कृषिकार्य सम्पन्न किया जाता है। इन सभी कृषिक्षेत्रोंके बीच छोटे छोटे गाँव, बड़े गाँव, नगर अथवा वाणिज्य-प्रधान बन्दर-समूह विराजित हैं। नगरके आस-पास नगरवासियोंके स्वहस्तरोपित पुष्पोद्यान अथवा फल-वृक्षादि परिशोभित उपवनसमूह तथा तन्मध्यस्थ अट्टालिकादि स्थानीय सौन्दर्यकी वृद्धि कर रही है। गंगादि नदीतीरवर्त्ती ग्राम अथवा नगरोंमें विशेषतः स्नान करनेके घाटों पर देव-मन्दिरादि प्रतिष्ठित हो कर देशवासियोंकी धर्मपरायणता तथा स्थापत्यशिल्पका परिचय दे रहे हैं। ग्रामके मध्य अथवा पार्श्वस्थ ये सब अट्टालिकायें या मन्दिर श्यामल ग्राम्य वैचित्र्यकी एकाग्रता भंग कर देते हैं। कहीं कहीं भग्न मन्दिर अथवा प्राचीन प्रासादादि विध्वस्त हो कर जंगलपूर्ण स्तूपराशिमें परिणत हो गये हैं। ये सब प्राचीन कीर्त्तिनिदर्शन प्रत्नतत्त्वविदोंकी आलोचना करनेकी चीजें हैं। पार्श्वत्य वनमालायें इन सब स्तूपोपरि गठित जंगलोंमें सौन्दर्यका विशेष विकाश न होने पर भी उनमें विभिन्न जातीय हिंस्र जीवोंका वास हो गया है। इन जंगलोंके आस-पासमें भी छोटे छोटे ग्राम विद्यमान हैं। वास्तविकमें वङ्गालके विभिन्न नदीवर्त्ती ग्राम अथवा नगरोंमें प्राकृतिक सौन्दर्यका इतना ही वैषम्य दृष्टिगोचर होता है, कि सभी स्थान मानो नवभूषासे सुसज्जित हो कर दर्शकोंके चित्तको आकर्षित करनेका प्रयास कर रहे हैं।

इस बंगाल प्रदेशमें जितनी नदियां तथा शाखा देखी जाती हैं, उन सबोंमें गंगा और ब्रह्मपुत्र प्रधान हैं। तिस्ता, भागीरथी (हुगली), दामोदर, रूपनारायण प्रभृति कई दूसरी दूसरी नदियां अपेक्षाकृत क्षुद्र होने पर भी प्रधान नदियां ही कहलाती हैं। इनके अलावे कई शाखा नदियोंसे अथवा नदीके अंशविशेष विभिन्न नामसे परिचित हैं। जैसे अजय, आड़ियल-खां, वराकर, भैरव, विद्याधरी, बड़ तिस्ता, छोट तिस्ता, बूढ़ीगंगा, चित्रा, धलेश्वरी, धनकिशोर वा द्वारकेश्वर, इच्छामती, यमुना, कपोताक्ष, करतोया, कालीगंगा, कालिन्दी, मेघना, मरा-तिस्ता, मातला वा रायमङ्गल, मयूराक्षी, पद्मा, रूपनारायण, सन्द्वीप, सरस्वती।

उपरोक्त नदियां अथवा उनकी शाखायें एवं संयुक्त खाइयां बंगालके विभिन्न स्थानमें विस्तारित होनेसे कृषिक्षेत्रादिको सींचनेकी जिस तरह सुविधा है, उसी तरह नौकाओंके द्वारा पण्यद्रव्य एक स्थानसे दूसरे स्थान लाने पर यां ले जानेकी भी सुविधा है। दुःखका विषय है, कि प्राकृतिक परिवर्त्तनसे नदियोंकी गति दूसरी ओर परिचालित होनेके कारण कई नदियोंकी प्राचीन

धारा प्रायः सूख गई है। इन धाराओंमें वर्षा ऋतुके अतिरिक्त अन्य ऋतुओंमें बहुत कम जल शेष रह जाता है। ये सब धारायें मरातिस्ता, बूढ़ीगंगा प्रभृति नामोंसे परिचित हैं। दूसरी दूसरी कितनी ही नदियोंकी धाराओंके कई स्थानोंमें तो बिलकुल ही जल नहीं रहता। इन नदियोंके ऊपर रेलपथके लिये पुल बांधे गये हैं। कई मरी हुई नदियोंकी धाराओंको भरके उसके ऊपर लौहवर्त्म विस्तारित किया गया है। कई नदियोंसे व्यापारकी सुविधाके लिये गवर्मेण्ट बहादुरने खाई खोद कर उनकी धाराओंको दूसरी ओर परिचालित कर दिया है, जिससे इस देशवासियोंमें कितनेको तो लाभ पहुंचता है और कितनेको अत्यन्त हानि होती है। प्राचीन कितनी ही नदियां शुष्क हो कर इस समय शस्यक्षेत्रमें पर्यवसित हो गई हैं। उन स्थानोंके बाशिन्दे जलकष्टसे हाहाकार कर रहे हैं। वारिपातरूप जगदीश्वरकी अनुकम्पाके सिवा यहांकी प्रजाओंके प्राणोंकी रक्षाका और कोई दूसरा उपाय नहीं है। कहीं कहीं खाई, बांध प्रभृति द्वारा देश-रक्षाका विधान हुआ है, किन्तु वे सिर्फ स्थानीय लोगोंका ही कुछ उपकार कर सकते हैं। स्वर्णप्रसू बंगालकी नदियां बाहुल्य होने पर भी इस समय जलाभावसे यहांकी प्रजा दुर्भिक्ष तथा अन्नकष्टसे प्रपीड़ित है।

नदियोंके अलावे स्थान स्थान पर कूप तथा तड़ागादिके द्वारा यहांका जलाभाव दूर किया जाता है। दामोदर आदि बहुत-सी नदियों पर बांध बांध कर जलरक्षाकी व्यवस्था है। यहांकी छोटी छोटी जल-धाराओंसे ये बांध ही यहांके लोगोंके लिये विशेष उपकारी हैं।

वीरभूम आदि नाना स्थानोंमें बहुतसे शीतल, लवण और उष्ण जलपूर्ण प्रस्रवण दृष्टिगोचर होते हैं। ये सब स्थान बहुत प्राचीनकालसे ही तीर्थक्षेत्ररूपमें गिने जाते हैं। इसका विशेष विवरण जिला प्रसंगमें लिखा गया है। प्रस्रवण जो प्राचीनत्वका परिचालक है, वह बंगालके भूतत्त्वकी आलोचना करनेसे सहजमें जाना जा सकता है।

भूतत्त्व।

भूतत्त्वविदोंने विशेष गवेषणा और अनुशीलनके बाद यह स्थिर किया है, कि निम्नबङ्गका अधिकांश स्थान समुद्रगर्भमें पड़ा हुआ था। कालक्रमसे समुद्रगर्भ जितना ही पीछे हटता गया उतना ही चर पड़ता गया। पीछे वही चर जनसमाजके वासस्थानके रूपमें परिणत हो गया है। पृथ्वीके नीचे पड़ी हुई शम्बूक (सीप) मछली आदिकी हड्डी और नवीभूत मिट्टीके स्तरादि उसका प्रमाण देते हैं। महाभारतके वनपर्व ११३ अ० युधिष्ठिरके तीर्थयात्रा-विवरणमें कौशिकीतीर्थसे कुछ दूर पांच सौ नदीयुक्त गङ्गासागर-सङ्गम तथा वहांसे भी कुछ दूर समुद्रके किनारे कलिङ्ग देश रहनेसे साफ साफ मालूम होता है, कि समस्त तीर उस समय उत्तरराढ़से कुछ दूर तक विस्तृत था। कौशिकीका वर्त्तमान नाम कोसी है। तारकेश्वरके निकटवर्त्ती हरिपाल आदि ग्रामोंके निकट कौशिकीका प्राचीन गर्भ देखा जाता है। ग्रीक-राजदूत मेगास्थनीज पटनासे तीन सौ मील दूर गङ्गासागर-सङ्गमकी बात लिख गये हैं।

आज कल जिस प्रकार हम लोग नवाखाली जिलेके समुद्रोकूल पर सनद्वीप आदि चरजात द्वीपकी उत्पत्ति देखते हैं, प्राचीन कालमें भी उसी प्रकार समुद्रतीरवर्त्ती नदियोंके मुहाने पर मिट्टी जम जानेसे क्रमशः द्वीपकी उत्पत्ति हुई थी। इसी कारण बहुत-से स्थानोंके नामके अन्तमें 'द्वीप' 'दियारा या दिया' और 'चर' शब्द दिखाई पड़ते हैं। चन्द्रद्वीप, नवद्वीप, अग्रद्वीप, शुकचर, बकचर, कांटादिया, रूपदिया आदि स्थान शायद उसी चरसे उत्पन्न हुए होंगे।

उस समयके लोकसमाजका प्रथित चर आगे चल कर वृक्ष, लतादिसे परिपूर्ण हो उपवन, ग्राम और धीरे धीरे नगरमें परिणत हो गया है। किन्तु आज भी यह चराभिधान दूर नहीं हुआ है। चक्रदह, खड़दह, शिवादह आदि जिस प्रकार नदीगर्भसे पीछे सौधमाला-मण्डित सुरम्य नगरमें परिणत हो गया है, उसी प्रकार नदीस्रोतसे लाये गये बालूके कण भी मुहानास्थ समुद्र-तट पर सञ्चित हो जाते हैं और जिससे चरभूमिकी उत्पत्ति होती है। आज जहां पर मकरसंक्रान्तिके दिन सागर-तीर्थयात्रिगण इकट्ठे हो कर स्नानादि करते हैं,

मध हृदयपट उन्मोचित कर रहे हैं। उस तुषारमण्डित शिखर पर अरुणकिरणके प्रतिफलित होनेसे तुषार-धवल पर्वतसानु एक ज्योतिर्मय हैमस्तूपमें पर्य्यवसित हो रहा है। दिवाभागमें कभी वह सूर्यकिरणसे समुद्भासित हो कर दिग् दिगन्त आलोकित करता है और कभी गाढ़ कुज्झटिकासे समाच्छादित हो कर अपूर्व मेघमालाकी तरह निश्चल दण्डायमान है। ये पर्वत गात्रको विधौत करके छोटी छोटी स्रोतस्विनी प्रखर गतिसे समतल उपत्यका प्रान्तमें अवतीर्ण हो कर परस्पर के संयोगसे पुष्ट हो एक एक प्रकृष्ट जलधाराःरूपमें प्रवाहित हो रही हैं। उक्त नदियोंमें हिमपादनिःसृत गंगा तथा ब्रह्मपुत्र ही यहांके प्रधान प्रवाह हैं। दूसरी उनकी ही शाखा प्रशाखायें हैं। *गंगा तथा ब्रह्मपुत्र देखो।*

यही नदियाँ वङ्गालकी शोभा तथा शस्य समृद्धिका एकमात्र कारण हैं। हिमालयपृष्ठ अथवा उत्तर-बंगालके उच्च स्थानोंको विधौत करके इन नदियों-ने निम्न वङ्गालको निम्न भूमिमें एक मृदु स्तर ला कर संचय कर दिया है। इस स्तर की उर्व्वरताशक्ति ऐसी है, कि जिस स्थानमें इस तरह स्तर संचित हो जाता है, वहां पर्य्याप्त परिमाणमें विभिन्न प्रकारके शस्य उत्पन्न होते हैं। गंगा तथा ब्रह्मपुत्रके उत्तर उपत्यका खण्ड एवं निम्न बंगालके समतल प्रान्तमें इस तरह नदी-जालसे समाच्छन्न हो जानेसे शस्यक्षेत्रोंको सींचे जानेको विशेष सुविधा हो गई है। कभी कभी ये नदियां वन्य-विताड़ित हो कर उभय तीरवर्ती ग्रामोंको जलमय कर देती हैं जिससे भूपृष्ठमें एक प्रकारकी पीक जम जाती है। यह पीक भी शस्योत्पादनमें विशेष उपयोगी होती है। कभी कभी ठौर ठौर पर खाई खोद कर नाली प्रभृतिसे जल ला कर खेत सींचनेको व्यवस्था की जाती है। उच्च भूमिमें कूप अथवा पुष्करिण्यादि खोद कर भी कृषिकार्य सम्पन्न किया जाता है। इन सभी कृषिक्षेत्रों-के बीच छोटे छोटे गाँव, बड़े गाँव, नगर अथवा वाणिज्य-प्रधान बन्दर-समूह विराजित हैं। नगरके आस-पास नगरवासियोंके सहस्तरोपित पुष्पोद्यान अथवा फल-वृक्षादि परिशोभित उपवनसमूह तथा तन्मध्यस्थ अट्टालिकादि स्थानीय सौन्दर्यकी वृद्धि कर रही हैं। गंगादि नदीतीरवर्ती ग्राम अथवा नगरोंमें विशेषतः स्नान करने के घाटों पर देव-मन्दिरादि प्रतिष्ठित हो कर देशवासियों-की धर्मपरायणता तथा स्थापत्यशिल्पका परिचय दे रहे हैं। ग्रामके मध्य अथवा पार्श्वस्थ ये सब अट्टालिकायें या मन्दिर श्यामल ग्राम्य वैचित्र्यकी एकाग्रता भंग कर देते हैं। कहीं कहीं भग्न मन्दिर अथवा प्राचीन प्रासादादि विध्वस्त हो कर जंगलपूर्ण स्तूपराशिमें परिणत हो गये हैं। ये सब प्राचीन कीर्तिनिदर्शन प्रत्नतत्त्वविदों-की आलोचना करनेकी चीजें हैं। पार्श्वस्थ वनमालामें इन सब स्तूपोपरि गठित जंगलोंमें सौन्दर्यका विशेष विकाश न होने पर भी उनमें विभिन्न जातीय हिंस्र जीवोंका वास हो गया है। इन जंगलोंके आस-पासमें भी छोटे छोटे ग्राम विद्यमान हैं। वास्तविकमें वङ्गाल-के विभिन्न नदीवर्त्ती ग्राम अथवा नगरोंमें प्राकृतिक सौन्दर्यका इतना ही वैषम्य दृष्टिगोचर होता है, कि सभी स्थान मानो नवभूषासे सुसज्जित हो कर दर्शकोंके चित्त-को आकर्षित करनेका प्रयास कर रहे हैं।

इस बंगाल प्रदेशमें जितनी नदियां तथा शाखा देखी जाती हैं, उन सबोंमें गंगा और ब्रह्मपुत्र प्रधान हैं। तिस्ता, भागीरथी (हुगली), दामोदर, रूपनारायण प्रभृति यद्यपि दूसरी दूसरी नदियां अपेक्षाकृत क्षुद्र होने पर भी प्रधान नदियां ही कहलाती हैं। इनके अलावे कई शाखा नदियों-से अथवा नदीके अंशविशेष विभिन्न नामसे परिचित हैं। जैसे अजय, आड़ियल-खां, बराकर, भैरव, विद्याधरी, बड़ तिस्ता, छोट तिस्ता, बूढ़ीगंगा, चित्रा, धलेश्वरी, धलकिशोर या द्वारकेश्वर, इच्छामती, यमुना, करतोया, कालीगंगा, कालिन्दी, मेघना, मरा-तिस्ता, मातला या रायमङ्गल, मयूराक्षी, पद्मा, रूपनारायण, सन्द्वीप, सरस्वती।

उपरोक्त नदियां अथवा उनकी शाखायें एवं संयुक्त खाइयाँ बंगालके विभिन्न स्थानमें विस्तारित होनेसे कृषिक्षेत्रादिको सींचनेको जिस तरह सुविधा है, उसी तरह नौकाओंके द्वारा पण्यद्रव्य एक स्थानसे दूसरे स्थान लाने पर एवं ले जानेकी भी सुविधा है। दुःखका विषय है, कि प्राकृतिक परिवर्त्तनसे नदियोंकी गति दूसरी ओर परिचालित होनेके कारण कई नदियोंको प्राचीन

धारा प्रायः सूख गई है। इन धाराओंमें वर्षा ऋतुके अतिरिक्त अन्य ऋतुओंमें बहुत कम जल शेष रह जाता है। ये सब धारायें मरातिस्ता, बूढ़ीगंगा प्रभृति नामोंसे परिचित हैं। दूसरी दूसरी कितनी ही नदियोंको धाराओंके कई स्थानोंमें तो बिल्कुल ही जल नहीं रहता। इन नदियोंके ऊपर रेलपथके लिये पुल बांधे गये हैं। कई मरी हुई नदियोंकी धाराओंको भरके उसके ऊपर लौहवर्त्म विस्तारित किया गया है। कई नदियोंसे व्यापारकी सुविधाके लिये गवर्मेण्ट बहादुरने खाई खोद कर उनकी धाराओंको दूसरी ओर परिचालित कर दिया है, जिससे इस देशवासियोंमें कितनेको तो लाभ पहुंचता है और कितनेको अत्यन्त हानि होती है। प्राचीन कितनी ही नदियां शुष्क हो कर इस समय शस्यक्षेत्रमें पर्यवसित हो गई हैं। उन स्थानोंके वाशिन्दे जलकष्टसे हाहाकार कर रहे हैं। वारिपातरूप जगदीश्वरकी अनुकम्पाके सिवा वहांकी प्रजाओंके प्राणोंको रक्षाका और कोई दूसरा उपाय नहीं है। कहीं कहीं खाई, बांध प्रभृति द्वारा देश-रक्षाका विधान हुआ है, किन्तु ये सिर्फ स्थानीय लोगोंका ही कुछ उपकार कर सकते हैं। स्वर्णप्रसू बंगालकी नदियां बाहुल्य होने पर भी इस समय जलाभावसे वहांकी प्रजा दुर्भिक्ष तथा अन्नकष्टसे प्रपीड़ित है।

नदियोंके अलावे स्थान स्थान पर कूएं तथा तड़ागादिके द्वारा वहांका जलाभाव दूर किया जाता है। दामोदर आदि बहुत-सी नदियों पर बांध बांध कर जलरक्षाकी व्यवस्था है। वहांकी छोटी छोटी जल-धाराओंसे ये बांध ही यहांके लोगोंके लिये विशेष उपकारी हैं।

वीरभूम आदि नाना स्थानोंमें बहुतसे शीतल, लवण और उष्ण जलपूर्ण प्रस्रवण दृष्टिगोचर होते हैं। ये सब स्थान बहुत प्राचीनकालसे ही तीर्थक्षेत्ररूपमें गिने जाते हैं। इसका विशेष विवरण जिला प्रसंगमें लिखा गया है। प्रस्रवण जो प्राचीनत्वका परिचालक है, यह बंगालके भूतत्त्वकी आलोचना करनेसे सहजमें जाना जा सकता है।

भूतत्त्व।

भूतत्त्वविदोंने विशेष गवेषणा और अनुशीलनके बाद यह स्थिर किया है, कि निम्नवङ्गका अधिकांश स्थान समुद्रगर्भमें पड़ा हुआ था। कालक्रमसे समुद्रगर्भ जितना ही पीछे हटता गया उतना ही चर पड़ता गया। पीछे वही चर जनसमाजके वासस्थानके रूपमें परिणत हो गया है। पृथ्वीके नीचे पड़ी हुई शम्बूक (सीप) मछली आदिकी हड्डी और नवोभूत मिट्टीके स्तरादि उसका प्रमाण देते हैं। महाभारतके वनपर्व ११३ अ० युधिष्ठिरके तीर्थयात्रा-विवरणमें कौशिकीतीर्थसे कुछ दूर पांच सौ नदीयुक्त गङ्गासागर-सङ्गम तथा वहांसे भी कुछ दूर समुद्रके किनारे कलिङ्ग देश रहनेसे साफ साफ मालूम होता है, कि समस्त तीर उस समय उत्तरराढ़से कुछ दूर तक विस्तृत था। कौशिकीका वर्त्तमान नाम कोसी है। तारकेश्वरके निकटवर्ती हरिपाल आदि ग्रामोंके निकट कौशिकीका प्राचीन गर्भ देखा जाता है। ग्रीक-राजदूत मेगास्थनीज पटनासे तीन सौ मील दूर गङ्गासागर-सङ्गमकी बात लिख गये हैं।

आज कल जिस प्रकार हम लोग नवाखाली जिलेके समुद्रोपकूल पर सनद्वीप आदि चरजात द्वीपकी उत्पत्ति देखते हैं, प्राचीन कालमें भी उसी प्रकार समुद्रतीरवर्ती नदियोंके मुहाने पर मिट्टी जम जानेसे क्रमशः द्वीपकी उत्पत्ति हुई थी। इसी कारण बहुत-से स्थानोंके नामके अन्तमें 'द्वीप' 'दियारा या दिया' और 'चर' शब्द दिखाई पड़ते हैं। चन्द्रद्वीप, नवद्वीप, अग्रद्वीप, शुकचर, बकचर, कांटादिया, रूपदिया आदि स्थान शायद उसी चरसे उत्पन्न हुए होंगे।

उस समयके लोकसमाजका प्रथित चर आगे चल कर वृक्ष, लतादिसे परिपूर्ण हो उपवन, ग्राम और धीरे धीरे नगरमें परिणत हो गया है। किन्तु आज भी वह चराभिधान दूर नहीं हुआ है। चकदह, खड़दह, शियादह आदि जिस प्रकार नदीगर्भसे पीछे सौधमाला-मण्डित सुरम्य नगरमें परिणत हो गया है, उसी प्रकार नदीस्रोतसे लाये गये बालूके कण भी मुहानास्थ समुद्रतट पर सञ्चित हो जाते हैं और जिससे चरभूमिकी उत्पत्ति होती है। आज जहां पर मकरसंक्रान्तिके दिन सागर-तीर्थयात्रिगण इकट्ठे हो कर स्नानादि करते हैं,

कुछ दिन बाद यह समुद्रगर्भको भेद कर ऊपर उठेगा और क्रमशः ग्राममें नगरमें परिणत हो जायगा।

मेघना नदीके सागरसङ्गम पर बादुरा, मानपुरा आदि द्वीप जो सौ वर्ष पहले केवल भाटेके समय जग उठता और ज्वारके समय डूब जाता था अभी वही उच्च भूमि और बहुजनाकीर्ण ग्रामोंसे परिपूर्ण हो गया है। उसके बाद नाजीरचर, फालकनचर नामक और भी दो छोटे द्वीप उल्लेखनीय हैं। १८६० ई०में भी वह जंगलोंसे भरा था, अभी वहां बहुत लोगोंका वास हो गया है। उसके बाद चौबिसपरगना, खुलना और बारिशालसे बहुत दक्षिण जहां सौ वर्ष पहले समुद्रतरङ्ग बहती थी अभी उन सब स्थानोंमें असंख्य ग्राम नगर बस गये हैं।

नदी-स्रोतसे लाये गये बालूके कण जब नदी गर्भमें सञ्चित होते, तब चरकी उत्पत्ति होती है। यह बात सर्व-वादिसम्मत है। इस वङ्गभूमिमें प्रवाहित गङ्गा नदी किस वेगसे कितनी मिट्टी प्रति दिन वहन कर समुद्रमुखमें डाल देती है, उसकी गणना करनेसे चमत्कृत होना पड़ता है। करीब ७५ वर्ष पहले कुछ अभिज्ञ यूरोपीय पण्डितोंने गाजीपुरमें बैठ कर नाना उपाय प्रयोग द्वारा स्थिर किया था, कि गङ्गा प्रति वर्ष सागरसङ्गमस्थलमें १७३८२४०००० मन मिट्टी वहन कर डाल देती है। किन्तु गाजीपुरसे दक्षिण स्वयं गङ्गा और उसकी शोन, अजय आदि शाखा नदियां सुन्दरवनके मध्यमें अवस्थित २५० नदियां तथा उसके बाद उत्तर पूर्वके कोनेसे आई हुई ब्रह्मपुत्र या ललेश्वरी आदि कई नदियां एकमें मिल कर यहां कितना मन मिट्टी ले आती हैं, इसका कुछ अन्दाज नहीं लगाया जा सकता।

उपरोक्त मृत्तिकास्तरकी गठन और परिणति बङ्गाल के किसी किसी विभागमें किस तरह संसाधित हुई थी, उसका (विभाग करके) विवरण संक्षेपमें दिया जाता है:—

प्रथम विभाग—राजमहलकी पर्वतश्रेणीसे आरम्भ करके भागीरथीके उत्पत्तिस्थान छापघाटी तक बड़ी गङ्गाके दक्षिण और छापघाटीसे भागीरथीके पश्चिम-द्वारसे, ले कर मेदिनीपुर तक प्रायः एक ही तरहकी मिट्टी देखी जाती है। भूतत्त्वविदोंकी सूक्ष्म दृष्टिसे देखने पर उसमें भी विभाग दिखाई देता है। किन्तु मोटी दृष्टिसे एक ही प्रकारकी मिट्टी देखी जाती है। सभी जगह एक समान कंकड़ पत्थरसे परिपूर्ण है, अथवा पहाड़ी कठिन मिट्टी ही दिखाई देती है। विन्ध्य और पूर्वघाट पर्वतमालाकी मिट्टीकी प्रकृतिके साथ इसका अनेक विषयोंमें प्रभेद रहने पर भी एक विषयमें दोनों समान ही है यानी कंकड़ी और पथरीली मिट्टी है। जहां कंकड़ और पत्थर दिखाई नहीं देता, (जैसे वर्द्धमान जिलेके दक्षिण और पश्चिम भागमें तथा हुगलीके पश्चिमांशमें) वहां मिट्टी इतनी कठिन है, कि उसको भी पत्थर-प्रकृतिकी ही कही जाय तो अत्युक्ति नहीं कही जा सकती और उसकी प्रकृति भी ऐसी है, कि बङ्गालके और कहीं भी वैसी मिट्टी पाई नहीं जाती। इस भूभाग की मिट्टी बहु युगयुगान्तरसे निर्मित है, सुतरां सीधी बातमें उसे पक्की मिट्टी कही जा सकती है। यह निश्चित है, कि एक समयमें समुद्र गौड़के निकट तक फैला था अथवा और भी पहले गङ्गासागरसङ्गम जब राजमहलका सान्निध्यमें अवस्थित था, उस समय समुद्रका जल कभी भी इस मिट्टीको पार नहीं कर सकता था। इसी कारण समुद्रका जल हट जाने पर जो चिह्न देखा जाता है या मछलियोंके अस्थिपञ्जर या जल जीवोंकी हड्डियां जो दिखाई देती हैं, वे सब इस मिट्टीमें दिखाई नहीं देतीं। इससे स्पष्ट है, कि इस मिट्टी पर समुद्रका जल नहीं था।

द्वितीय विभाग—पद्मा और बूढ़ी गङ्गाके उत्तरी किनारेसे हिमालयके नीचे तराई भूमि तक सारा भूभाग हिमालयकी ढालुई भूमि है। यह हिमालयके ऊंचे प्रदेशसे पद्माके उत्तरी तट पर क्रमागत ढालू होती आई है। इस भूभागकी सर्वत्र ही मिट्टी एक प्रकारकी है; सभी जगह हिमालयके जातविधौत बालुकाराशि है। इस पर किञ्चित् परिमाणसे बालुका मिली है। दो अंश मिट्टी एक अंश बालू रहनेसे यह भूमि शस्य-उत्पादनके लिये उपयोगी है। इस ढालुई बालुई जमीनमें सर्वत्र ही हिमालयको जातविधौत जलधारा अन्तःसलिलके रूपमें प्रवाहित रहने पर सारे देशकी भूमिमें कुछ कुछ जल-सिक्त और आर्द्र है। इस मिट्टीमें अधिक बालू रहनेसे

इस देशमें कूप खुदवानेके सिवा दूसरा कुछ उपाय नहीं। पोखर खुदवाने पर बालू गिर कर गड्ढा भर जाता है। फलतः लम्बा चौड़ा तालाब खुदवाया जा सकता है; किन्तु छोटे छोटे पोखरे नहीं।

बड़े ही आश्चर्य्यका विषय है, कि समुद्रसे इतनी दूर पर और हिमालयके नीचे इतनी वालुका कहांसे आई? भूतत्त्वविदोंका कहना है, कि पृथ्वीके भूपञ्जर बननेके 'यूसिन' युगमें हिमालयके तटदेश तक समुद्र फैला हुआ था। केवल तट ही क्यों—उसकी इस समयकी ऊंचाईका प्रायः एक तृतीयांश तक उस समय भी समुद्रमें डुबा हुआ था। यूसिनके बाद म्योसिन, प्लिओसिन और उसके बाद भूपञ्जरके चौथे युगके स्तर-निर्माणकी क्रिया चल रही है। इसमें म्योसिन स्तरमें ही प्रथम मनुष्य-सृष्टिका चिह्न प्राप्त हो जाता है। उसमें भी फिर निम्न म्योसिनमें प्राप्त चिह्न अति अस्पष्ट और सन्देहजनक है। ऊपर म्योसिनसे ही केवल मानवीय अस्तित्वके स्पष्ट चिह्न प्राप्त होनेसे उसको मानवीय युगका आरम्भकाल कहा जा सकता है। इस तरह एक एक स्तर गठित होनेमें कितने लाख वर्ष बीत जाते हैं। अतएव उस समयके समुद्र-परित्यक्त बालू आज भी प्रस्तरावस्थामें परिणत न हो कर जो अपनी अवस्थामें विद्यमान है, यह कभी सम्भवपर नहीं विवेचित होता।

यह वालुकाराशि हिमालयके गात्रविधौत प्रस्तर रेणुकाके सिवा और कुछ भी नहीं। एक तो हिमालयके ढालू प्रदेशकी वजह प्रस्तरप्रवण अवनत हेका भूमि है, सुतरां बालू जमा होनेमें असुविधा कहां? इस विभाग पर अर्थात् उत्तरांशकी जमीन प्रथम विभागके साथ सम-पुरातन और निम्नांशकी जमीन उसकी अपेक्षा कुछ आधुनिक होने पर भी दूसरे दो विभागोंकी अपेक्षा पुरानी है, इसमें सन्देह नहीं किन्तु आश्चर्यका विषय है, कि तृतीय और चतुर्थ विभागकी जमीन जैसी कठोर देखी जाती है, इस पुरानी जमीनके किसी भागमें वैसी नहीं दिखाई देती। इस ढालू भूमिमें अन्तःसलिलकी प्रबल प्रवाह-क्रिया निरन्तर सम्पादित होनेसे ही इसका एकमात्र कारण है। फिर यह भी स्वतःसिद्ध है, कि इन सब भूभागोंके उत्पन्न होनेके बहुत समय पहले यह वालुका टीली भूमि पर जमा हुई थी।

तृतीय विभाग—ब्रह्मपुत्रके पूर्वी तटसे नवाखाली, चट्टग्राम आदि प्रदेश और पश्चिम ओर तमोलुकके निकटके स्थान। नैसर्गिक कारण-विशेषमें* समुद्र हट जाने पर जिस तरह प्रकृतिका भूभाग ऊपर उठ जाता है, अविकल उसी तरह प्रकृतिविशिष्ट भूमि ले कर इन सब स्थानोंकी उत्पत्ति है। समुद्रके हट जाने पर स्थानविशेषमें जो वालुकाराशिका स्तूप जमा हो गया है (जिसको टीला कह सकते हैं) वही इन सब नवोदित स्थानके प्राचीनत्वका कारण है। यह सब स्तूप कहीं खण्ड खण्ड पर्वताकारमें विद्यमान है। कहीं छोटे छोटे कुछ ऊंचे-पहाड़ श्रेणीमें परिणत हुआ है। किन्तु स्थान-विशेषमें अब भी अविकल टीलेके आकारमें बालू रह गया है। तमोलुकके निकटके टीले इस समय वालुकास्तूप है; किन्तु चट्टग्राम आदि अञ्चलमें वे पर्वताकारमें परिणत हो गये हैं। इन सब पर्वतोंके बाहरी आवरण काट कर फेंक देनेसे भीतर अब भी वालुकास्तूप दिखाई देता है। किन्तु कहीं कहींका वालुकास्तर पत्थरके स्तरमें परिणत होने लगा है। इन सब पर्वतोंके बीचमें सब जगह सामुद्रिक जलज या जल-जीवोंका पञ्जर दिखाई देता है। चट्टग्राम प्रदेशके सीताकुण्ड तीर्थके निकट जो पर्वतमाला है, वह कितने अंशमें आग्नेय स्वभावके होने पर भी उसकी उत्पत्ति और परिणति कुछ अंशमें उक्त प्रकारके सामुद्रिक वालुकासे ही हुई है। यह मुक्तकण्ठसे स्वीकार करना होगा। ब्रह्मदेशकी पूर्वी सीमा पर दक्षिण उत्तरसे ओर जो पर्वतमाला आ कर हिमालयमें मिल गई है, उन सब पर्वतोंसे यह बालू-निर्मित पर्वतमालाकी प्रकृति सम्पूर्णरूपसे स्वतन्त्र है। ये सब पर्वतमाला बहुत युग

* यूसिन युगमें जो सागर-जल हिमालय तक विस्तृत था, त्रेतायुगमें लङ्काध्वंस करनेके बाद वह स्वाभाविक नियमसे हिमालयको छोड़ क्रमशः लङ्कामें चला गया। लङ्काद्वीपका वह विस्तृत भूखण्ड भी इस समय प्राकृतिक नियमसे स्थानान्तरित हो पृथ्वीके विभिन्न अंशमें ग्राम और नगरका आकार बन गया। नदियोंका यह साक्ष्य बलवान है। अनुमान होता है, कि इसीसे ही या क्रमसे निम्न बङ्गकी उत्पत्ति है।

पहलेसे सृष्ट हुई है। समुद्र एक समय उसीके चरण-स्पर्श कर प्रवाहित हो रहा था। समय पा कर वहांसे हट कर उसने इस तृतीय विभागकी जमीनकी सृष्टि की है। यह भूभाग प्रथम और द्वितीय विभागसे बहुत अर्वाचीन है। किन्तु अर्वाचीन होने पर भी द्वितीय विभागसे बहुत अधिक कठोर हुआ है। किन्तु यह कठोरता प्रथम विभागके बराबर नहीं।

चतुर्थ विभाग—इस विभागकी मिट्टी सब जगह पङ्कीली है, किन्तु किसी किसी जगह जरा कड़ी है। प्रथम और चतुर्थ विभागकी मिट्टीकी बराबरी करने पर स्पष्ट ही पृथक् धर्माक्रान्त मालूम होती है। गङ्गाके दक्षिण राजमहलके दूसरे पार और उत्तर मालदहके पार—इन दोनोंकी मिट्टीका मुकाबला करने पर अच्छी तरह पार्थक्य दिखाई देता है। राजमहलके पार गङ्गाके जलधार तक पत्थर और कंकड़का रास्ता और कड़ी मिट्टी और ठीक उसके दूसरे पार सारी जमीन अथवा मालदह जिलाके दोआंस पंकयुक्त मिट्टी या केवल राजमहल और मालदहके पार ही क्यों, समग्र भागीरथीके दोनों पार मिट्टीको तुलना करने पर दोनों मिट्टियोंमें सामान्य दृष्टिसे भी प्रभेद परिलक्षित होता है। भागीरथीके पश्चिम पारके नितान्त धारकी मिट्टी ले कर तुलना करनेसे विशेष कुछ भी प्रभेद दिखाई नहीं देता। जहां तक नदीकी क्रियासे मिट्टीका अंश छुट गया है या पहले छुट चुका है, उसकी सीमा पार कर जाने पर मिट्टीकी परीक्षा करना आवश्यक है।

पश्चिममें भागीरथी, उत्तरमें पद्मा और उसकी शाखा-प्रशाखा, पूर्वमें धलेश्वरी और मेघना तथा दक्षिणमें समुद्र तक इस गाङ्गेय बद्वीप भूभाग ही चतुर्थ विभाग का आयतन है। गङ्गा और उसकी असंख्य शाखाओंके प्रवाह द्वारा लाई मिट्टीसे समुद्र भरा जा कर क्रमसे दियारा पड़ कर बद्वीपकी सारी जमीन सृष्ट हुई है। इसलिये प्रायः समस्त भूभाग ही पङ्कीली मिट्टी अति अधिकतररूपसे देखी जाती है। फलतः इस पङ्कीली मिट्टीके गुणसे इस भूभागकी प्रायः सारी जमीन उर्वराशक्ति भी इतनी अधिक है, कि उसके साथ अन्य किसी विभागकी तुलना नहीं की जा सकती। यहां वर्षके भीतर ही कई तरहकी फसल उत्पन्न की जा सकती है। इधर जमीन यदि कुछ भी जोती बोई न जाय पड़ती रह जाय, तो बहुत शीघ्र घास-पात जङ्गलसे परिपूर्ण हो जाती है।

पहली कही हुई चार प्रकारकी मिट्टियोंमें पहली प्रकारकी मिट्टी सबसे नीरस है। चौथे प्रकारकी जमीनकी तरह किसी समय ही घने जङ्गलोंसे पूर्णकी अवस्था नहीं होती। अथवा यहां उद्भिदोंकी वृद्धि और विकाश भी ऐसा सतेज या शीघ्रतर नहीं। द्वितीय और तृतीय विभागीय जमीनकी उर्वरता प्रायः एक समान है तथा प्रथम विभागीय जमीनकी अपेक्षा बहुत गुणमें सतेज है। यहां तक, कि कोई कोई अंश चतुर्थ विभागके जैसा है।

चतुर्थ विभागकी मिट्टी और तृतीय विभागकी मिट्टी यद्यपि दोनों ही क्रमसे समुद्र हट जानेसे जाग उठा है सही; किन्तु इनके निर्माण-प्रकरणमें प्रकृतिगत विभिन्नता बहुत है। इस तरहकी मिट्टीके निर्माणसे समुद्रके नित्य ज्वार-भाटाका समय जल हट जानेके साथ कुछ सादृश्य दिखाई देता है। भाटाके समय समुद्रके ढालुए किनारेकी भूमिमें जिस तरह स्तबक-स्तबकमें दाग रख जल नीचे जा कर गिर जाता है, यहां भी उसी तरह कोई नैसर्गिक कारणवश कालक्रमसे जैसे समुद्रका जल स्तबक-स्तबकसे हट कर पृथक् हो गया है, ठीक उसी तरह ही इन सारे जमीनका उदय हुआ है और उसके साथ साथ वायुके प्रबल आघातसे बालुकाराशि स्तूपीकृत हो कर और उसी कारणसे क्रमसे मजबूत हो प्रकाण्ड प्रकाण्ड बालूके टीले दिखाई देते हैं, किन्तु चतुर्थ विभागकी मिट्टीकी निर्माण-परिपाटी दूसरे तरहकी है।

बङ्गालके दक्षिणका चौबीसपरगना, खुलना, बरिशाल जिलेका दक्षिण भाग और सुन्दरबनकी अवस्था मनोयोगपूर्वक परिदर्शन करनेसे इस चतुर्थ विभागकी भूमि-निर्माणका कौशल अति सहज ही अनुभव किया जा सकता है। नदीके प्रवाहसे लाई मिट्टी क्रिया द्वारा नदीके सङ्गमस्थलस्थ समुद्रमें भर पड़ता है सही; किन्तु वह एक बार ही कुछ स्थान चारों ओर समानभावसे भर

कर टीला नहीं बन जाता या समान भावसे उच्च नहीं हो जाता।

नदीके प्रवाहसे इस तरह मिट्टीको ढेर समुद्रगर्भमें फेंके जाने पर पहले त्रिकोण क्षेत्रके आकारमें मुहाने पर समुद्रको भरनेकी चेष्टा करते हैं और इस त्रिकोण क्षेत्रका तलदेश नदीकी ओर तथा आगेका कोण समुद्रको ओर रहता है। किन्तु समुद्रका प्रबल स्रोत-वेग छोटी चौड़ाई-वाले स्थानोंका काट कर फेंक देता है। इसी कारण जब भरा हुआ स्थान क्रमसे समुद्र छोड़ उठता है, तब एक अविच्छिन्न त्रिकोण भूखण्ड निर्मित होनेके बदलेमें कुछ अंश मूल भूभागमें संलग्न हैं और अवशिष्ट बहुखण्ड द्वीपाकारमें परिणत हुआ दिखाई देता है। उन द्वीपोंमें जो सबके मध्यस्थलमें अव-स्थित है, वह छोटी चौड़ाई और लम्बे आकारमें अव-स्थित है। फिर यह भरा हुआ भूखण्ड जब जल हटनेसे निकल नहीं आया था, फिर भी मिट्टी जमने लगी थी, तब समुद्रजलका स्रोत-वेग और उसका गात्र काट कर फेंक या विधौत कर नहीं सका था। वरं उसके मध्यस्थित नीचे और नरम अंशको काट कर वहां गहरी रेखा बना देता है। जल हट जानेसे ये ही सब रेखायें उस समय बद्वीपमें अनेक छोटी बड़ी नदियों और नहरोंके रूपमें परिणत होती हैं। यह नवोदित भूमि अपनी जल-क्रिया द्वारा फिर जमा हो कर और क्रमशः ज्वारकी प्रबलतासे प्लावित हो पङ्कीली मिट्टी द्वारा फिर निर्मित होने पर एक तरहसे चिरस्थायित्व प्राप्त करती है, अपूर्ण निम्नभागमें हट जाती और वहां फिर उसी तरह निर्माणका कार्य्य करती रहती है। पुनर्निर्मित भागमें तब जो कुछ नदी और नहर रह जाती है, वह गिनती और आयतनमें सामान्य और उसके द्वारा गठनका कार्य्य इतनी सुस्तीसे होती है, कि देशके बीचकी मिट्टी भी विशेष रूपान्तरित नहीं होती।

गांगेय बद्वीप इसी तरह ही गठित हुआ है और अब भी उसके दक्षिण भागकी गठनक्रिया इस तरह पूर्ण-प्रतापसे चल रही है। नित्य ही मनुष्यका आवास और व्यवहार-उपयोगी नये नये भूमिखण्ड समुद्रसे जल हट जानेके कारण उत्पन्न हो रहे हैं। उपरोक्त भूगठनप्रक्रिया-के अभिनयमें आज भी समुद्रगर्भमें मिट्टीनिर्मित असंख्य चर दिखाई देते हैं, जो ज्वारके समय डुबे रहते हैं और भाटेके समय निकल आते हैं। यह कहनेकी आवश्यकता नहीं, कि ये ही भविष्यमें अच्छी तरहसे जमीनकी पीठ पर नदी और नहरके आकारमें दिखाई देते हैं, समय पा कर ये नदी नाले भी विस्तृत आयतन हो कर शुष्कगर्भ हो कर हट जायेंगे और छोटे छोटे सब द्वीप देशके साथ जुट कर एक आकारमें परिणत होंगे।

गौड़के पूर्व-दक्षिणका समुद्रभाग भी इसी तरह भरा भूमिखण्डके उदयसे क्रमशः दक्षिण ओर हट गया है और सम्भवतः उसी उन्नत भूखण्ड पर वर्तमान सुन्दरवनकी तरह असंख्य नदी नाले तैयार हो जायेंगे। उन नदी-नालोंमें मूल-प्रवाह ही सर्वापेक्षा प्रबल या जलधारा था। वह मूल-प्रवाह आज भी पद्माके आकारमें तट-भूमिको तोड़ कर प्रवाहित हो रहा है।

फलतः समुद्र हट जानेसे जब समुद्रगर्भमें प्रथम ब-द्वीप उठा, तब गङ्गाका मूल-प्रवाह भागीरथीका खात हो कर प्रवाहित हुआ था। इसी कारणसे बहुत दिनोंसे लोग गङ्गासागर-सङ्गमको "गङ्गासागरसङ्गम" कहते हैं। पद्मा और मेघना सम्भवतः पहले समुद्रको खाड़ी थी, पीछे नदीके रूपमें परिणत हुई है।

ईसीसनकी प्रथम शताब्दीमें लिखे पेरिप्लुसमें दिखाई देता है, कि वर्तमान रङ्गपुर प्रभृति अञ्चलसे तेज-पात और अन्यान्य व्यवसाय वाणिज्यकी चीजें गङ्गासे नाव या जहाज द्वारा तमोलुकमें लाई जाती थीं। अवश्य ही स्वीकार करना होगा, कि गङ्गाका मूल-प्रवाह भागी-रथीके खातसे प्रवाहित न रहनेसे किसी तरह ये सब व्यवसायकी चीजें उत्तरवङ्गसे गंगा द्वारा बहा कर तमो-लुक आ नहीं सकती थीं। अथवा ऐसा भी हो सकता है, कि इस समय जैसे मेघनाके मुहाने पर बहुत दूर घुस कर समुद्र-खाड़ीको भी मेघना ही कहते हैं, उस समय भी उसी तरह गंगाके मुखको ओर बहुत दूर तक भीतरकी और तमोलुकके किनारेकी समुद्रखाड़ीको गंगा कहते होंगे। पेरिप्लुसमें गांगेय बन्दरमें वाणिज्य द्रव्यादिके प्रसंगमें उसी अर्थमें ही गंगाका निर्दिष्टत्व सूचित हुआ है। पेरिप्लुससे प्राप्त इसके साथी और भी ये दो

से कोयला निकाला जा रहा है। यह सुविस्तृत खाद देख कर अनुमान होता है, कि प्राचीन युगमें रानीगञ्जसे बराकर तक एक निविड़ वन मौजूद था।

कोयला और प्रस्तर शब्द देखो।

कोयलेके सिवा भूगर्भमें लोहा भी पाया जाता है। बराकर और वीरभूममें कारखाना खोल कर लोहा गलाने-का प्रबन्ध हुआ था। अब भी कहीं कहीं देशी प्रथासे लोहा गलाया जाता है। लौह देखो। स्थान स्थान पर अबरककी खान पाई जाती है।

पहले यहां समुद्रके जलसे नमक तैयार कर बेचा जाता था। इसके लिये एक बहुत बड़ा कारखाना खोला गया था। सरकारने विलायती नमकका व्यवसाय बन्द होनेके कारण देशी नमकका कारोबार उठा दिया। अब भी उड़ीसे और २४ परगनेके किसी किसी स्थानमें राज-कीय कानूनके अनुसार नमक तैयार किया जाता है।

लवण देखो।

बङ्गालमें उल्लेख योग्य कोई पहाड़ नहीं है। उत्तरमें एकमात्र हिमालयपृष्ठका दार्जिलिङ्ग शृङ्गभाग है। बङ्गाल-के गवर्नरने यहां राजकार्य-सम्पन्न करनेके लिये एक नगरकी प्रतिष्ठा की है। इस समय यह स्थान और इसके निकटका कर्सियोङ्ग स्वास्थ्यके लिये उत्तम है।

कृषि।

बंगदेश नदीमातृक देश। गंगा और ब्रह्मपुत्रकी बहुत शाखा-प्रशाखाएं इस देशमें बहनेसे जमीन उर्वरा है। कृषि-कार्यके लिये समूचे भारतमें ऐसा स्थान कहीं नहीं है। इसलिये बंगालको "सुजलां सुफलां शस्य-श्यामलां" कहा है। नीचे प्रधान प्रधान उत्पन्न द्रव्यकी मोटामोटी एक तालिका और उत्पन्न स्थान दिया गया है बारीशाल (वाकरगञ्ज), चौबीस प्रगना, बर्द्धमान, मेदिनीपुर, दिनाजपुर, वीरभूम और हुगली जिलेमें धान अधिक पैदा होता है। नदीया, मालदह, मुर्शिदाबाद जिलोंमें धानकी अपेक्षा गेहूं बहुतायतसे होता है। फरीदपुर, पबना, ढाका, रङ्गपुर, मैमनसिंह, राजशाही, जलपाईगोड़ी और पूर्व-कथित चौबीस प्रगना, नदीया और हुगली जिलेके स्थान स्थानमें पटुआ (पाट), तम्बाकू, सोंठ, हल्दी आदि चीजें उत्पन्न होतीं और यहांसे नाना नगरोंमें भेजी जाती हैं। सिवा इनके बांकुड़ा, चट्टग्राम, नवाखाली, त्रिपुरा, बगुड़ा, दार्जिलिङ्ग, यशोहर, खुलना आदि स्थानोंमें भी खेती बहुत होती है।

पहले कहा जा चुका है, कि कृषिकार्य ही यहांके अधिवासियोंकी उपजीविका है। उत्पन्न द्रव्यमें धान और पाट प्रधान है। सिवा इनके यहांके किसान आव-श्यकताके अनुसार तेल होने वाले तेलहन, चना, उड़द, आदि कई तरहकी फसलें पैदा होती हैं। आमन, आउस, बोरो, ओरी या जाड़ा (जला) धान विभिन्न समयमें उत्पन्न होता है। सरिसों, तीसी (अलसी) और उड़द आदि रब्बीकी फसल समयान्तरमें उत्पन्न होते देखी जाती है। पटुआ या कोष्ठुरकी खेती इन दिनों उत्तरोत्तर बढ़ रही है। पूर्व बङ्गकी नीलकी कोठियां इस समय यों ही गिर पड़ रही हैं। सिर्फ पश्चिम बङ्गके कई स्थानोंमें कुछ नील पैदा होता है। हिमालयके नीचे दार्जिलिङ्ग जिलेमें चाय और सिनकोना (कुनैन) होती है।

इनके अलावा अनेक प्रकारके फलोंके लिये बंगाल प्रसिद्ध है। मालदहका फजली आम बड़ा मशहूर है। मुर्शिदाबाद और राजसाहीमें बहुत आम होता है। दार्जिलिंगका कमला नीबू बड़ा उपादेय फल है।

कलकारखाना और शिल्प।

देशके थोड़े बाशिन्दे शिल्पकर्म द्वारा अपनी जीविका चलाते हैं। पुराना गृहशिल्प क्रमशः कमता जा रहा है तथा पाश्चात्य और वैज्ञानिक कलका कारबार दिन पर दिन बढ़ता जाता है। पहले जुलाहोंकी संख्या आजकल-की अपेक्षा बहुत ज्यादा थी। पहननेका कपड़ा वे ही प्रस्तुत करते थे। बढ़िया पतला कपड़ा बहुत तैयार होता और विदेश भेजा जाता था। उनमेंसे ढाका ही प्रसिद्ध था। यहांकी तैयारी मसलिनका आदर आज भी कम नहीं है। आज कल कलके कपड़े का प्रायः सभी जगह प्रचार है, तो भी कलकारखानेमें बंग-देश बम्बई प्रदेशसे बहुत पीछे पड़ा हुआ है। निम्न-लिखित पुराना गृहशिल्प आज भी विद्यमान है—

सूती कपड़ा (चन्द्रननगर, ढाका, शान्तिपुर, हवड़ा और टांगाइल), रेशमी कपड़ा (मुर्शिदाबाद, मालदह,

राजशाही, मेदिनीपुर, वीरभूम और बांकुड़ा)। इनके अलावा सोना, चांदी, पीतल और हाथी दांतका बना शिल्प द्रव्य।

कल-कारखानेमें सूते और कपड़ेकी कल, पाटकी कल, कागजकी कल प्रधान है। कलकत्ता, श्रीरामपुर और कुष्टियाके कपड़ेकी कल प्रसिद्ध है। पाटका कारखाना कलकत्तेके निकट नदीतीरमें अवस्थित है। वाली, टीटागढ़ और रानीगंजमें कागजकी कल है। कलकत्ते और उसके पासके अनेक स्थानोंमें पाटकी कलें (Jute Presses) हैं। कलकत्ते और हवड़ेमें कई सुवृहत् Engineering works हैं।

अन्यान्य छोटे बड़े कलकारखानेमें कलकत्तेका चमड़े-का कारखाना, साबुनका कारखाना, चावलकी कल और सलाईका कारखाना प्रसिद्ध है। यशोर जिला और कलकत्तेके निकट काशीपुरकी चीनीकी कल रानीगंज और कलकत्तेका मृत्‌शिल्प (Pottery)-का कारखाना, हवड़ा और शिवपुरका रस्सीका कारखाना विख्यात है।

अधिवासी लोकसंख्या इत्यादि।

बंगालकी जनसंख्या ४ करोड़ ५६ लाखके करीब है अर्थात् प्रति वर्गमीलमें ५७८ लोगोंका वास है। समूचे भारतमें यही सर्वापेक्षा घनजनवसतिपूर्ण प्रदेश है, किन्तु यहांके अधिकांश वाशिन्दे बेकार हैं। इसी कारण देशकी दरिद्रता उत्तरोत्तर बढ़ती जा रही है, इसमें सन्देह नहीं। समूची जनसंख्यामें सिर्फ एकतृतीयांश मनुष्य खेती-बारी कर अपनी जीविका चलाते हैं। बहुत थोड़े मनुष्य कलकारखाना, भिन्न भिन्न शिल्प कार्य्य और व्यवसायमें लगे हुए हैं। बाकी मनुष्य नौकरी कर अपना पेट पालते हैं। निकम्मे मनुष्योंमें बालक और बूढ़ेकी ही संख्या ज्यादा है।

हिन्दू, मुसलमान, खृष्टान आदि विभिन्न धर्म्मा-वलम्बी जातियोंको ले कर यह जनसंख्या संगठित है। यथार्थ वङ्गवासियोंमें सामाजिक मर्य्यादानुसार जो जो श्रेणी-गतविभाग हुए हैं, नीचे उनके नाम या सामाजिक संज्ञा लिखी गई—

इन प्रदेशोंके प्रत्येक जिले और उनके उपविभागोंमें अनेक नगर मौजूद हैं। ये नगर प्रधानतः वहांके वाणिज्य-केन्द्रके नामसे प्रसिद्ध हैं। उनमें जो विशेष समृद्ध और धन-जन पूर्ण हैं, नीचे उसकी फिहरिश्त दी गई—

कलकत्ता (जनसंख्या १२२२०००)—बंगालकी राज-धानी। ब्रिटिश साम्राज्यके मध्य जनसंख्यामें यह स्थान दूसरा है। भारत भरमें यह पहला बन्दर और दूसरा शिल्पकेन्द्र है। यह भागीरथीके मुहानेसे ८६ मील उत्तर-में अवस्थित है। समूचे संसारमें यहांके समान और इतना पाट प्रस्तुत नहीं होता। पाट, चाय, अफीम, चावल, तेलहन, कोयला, पशुचर्म और नीलकी कल-कत्तेसे रफ्तनी होती है। नगरमें बहुसंख्यक सुरम्य अट्टा-लिका है इसलिये कलकत्तेको City of palaces कहते हैं। कलकत्ता भारतवर्षका एक प्रधान शिक्षा केन्द्र (Educational Centre) है।

हवड़ा (जनसंख्या १८००००)-बंगालका दूसरा नगर। ईष्ट-इण्डियन रेलवे इस नगरसे आरम्भ हो कर क्रमशः दिल्ली और नागपुर पर्य्यन्त दौड़ गई है। हवड़ेमें कई कल-कारखाने हैं। इसके निकट शिवपुरमें गवर्नमेण्टका बागान (Botanical Garden) और पूर्त्तविद्यालय (Engineering College) अवस्थित है।

ढाका (जनसंख्या १०८०००)—मुसलमानी अमल-दारीमें यहां बंगालकी राजधानी थी। यह पतला कपड़ा बुननेके लिये प्रसिद्ध है। सम्प्रति यहां एक विश्वविद्यालय प्रतिष्ठित हुआ है।

चट्टग्राम (लोकसंख्या २२०१०)—यह एक उन्नति-शील बन्दर है। आसाम-बंगाल रेलवे द्वारा यह आसाम और चांदपुरके साथ मिला हुआ है। पाट, चावल, चाय यहांसे भेजी जाती है।

मुर्शिदावाद—बंगालके नवाबोंकी शेष राजधानी। यह स्थान रेशमी कपड़े और मीठे आमके लिये प्रसिद्ध है।

चन्दननगर—यह फरासी अधिकारभुक्त है। यहां महीन सूती कपड़ा प्रस्तुत होता है।

रानीगंज—यह कोयलेकी खान और मृत्‌शिल्प (pottery) के लिये प्रसिद्ध है। यहां एक कागजकी कल है।

दार्जिलिंग—बंगालकी ग्रीष्म-राजधानी। यह एक प्रधान स्वास्थ्य-निवास (Sanitorium) है।

खड़्गपुर—यहां बंगाल-नागपुर रेलवेका प्रधान कारखाना है। यह उक्त लाइनका एक प्रधान केन्द्र है।

आसनसोल—ईष्ट-इण्डियन और बंगाल नागपुर रेलवेका जङ्क्शन। यहां ईष्ट इण्डियन रेलवेका बहुसंख्यक locomotives रहता है।

सीतारामपुर—यह कोयलेकी खानके लिये प्रसिद्ध है।

नारायणगञ्ज—यह पूर्वबंगका एक प्रधान बन्दर एवं पाट और चावलके व्यवसायके लिये विख्यात है। यहां पाटकी बहुत सी कलें हैं। नारायणगञ्ज ढाकासे रेलवे लाइन द्वारा संयुक्त है। यहांसे स्टीमरके जरिये ग्वालन्दो और चाँदपुर जाना होता है।

ग्वालन्दो—पद्मा और यमुनाके संगम पर अवस्थित है। यह ईष्टर्न बंगाल रेलवे द्वारा कलकत्तेसे तथा स्टीमर लाइन द्वारा नारायणगञ्ज, चाँदपुर और कलकत्तेके साथ मिला हुआ है। यह उत्तर और पूर्व बङ्गका एक प्रधान बन्दर है।

सिराजगञ्ज और मदारीपुर—यह पाटके व्यवसाय के लिये प्रसिद्ध है।

नवद्वीप—बंगालके हिन्दू राजाओंकी शेष राजधानी। यह चैतन्यदेवका जन्मस्थान और लीलाक्षेत्र है।

आलीपुर—यहां गवर्नमेण्टकी पशुशाला (Zoological garden) है।

बराकर—यहां लोहेकी खान पाई जाती है और लोहा भी प्रस्तुत है।

नैहाटी—ईष्ट इण्डियन और ईष्टर्न-बंगाल रेलवेका जङ्क्शन। यहां भागीरथीके ऊपर एक सुन्दर सेतु है।

वर्त्तमान अवस्था।

अवस्था परिवर्त्तनके साथ बंगवासी बंगालियोंका भाग्य भी मन्दा होता जा रहा है। जिन बंगालियोंकी वीर-कहानियां चिरन्तन कालसे इतिहासमें उज्ज्वल-पट पर अंकित हैं, वे ही बंगाली आज मुट्ठी भर अन्नके लिए लालायित हैं। महाभारतके युगमें भी बंगीय वीरोंका प्रभाव दिगन्तमें व्याप्त हुआ था। स्वाधीन बंगाली राजे अपने दोर्दण्ड प्रतापसे राज्यशासन कर गये हैं। शूरवंश, पालवंश और सेनवंशीय नरपतियोंका वीरत्व गौरव शिलालेखों और प्राचीन राजकुल प्रशस्ति दिया गया है। बंगाल जब मुसलमानोंके हाथ चला गया था, तब भी बारभूंइयाका अतुल प्रताप समग्र बंगालमें प्रतिध्वनित होता था। राजा प्रतापादित्य, राजा गणेश, सीताराम आदिकी वीरत्व कहानियाँ और युद्ध-निपुणताका विषय कौन नहीं जानता? अधिक दिनोंकी बात नहीं, ईसाकी १८वीं शताब्दीके मध्यभागमें जानकीराम, मोहनलाल आदि बंगाली वीरोंका सदल-बल रणक्षेत्रमें अवतीर्ण होना हम देखते हैं। इसके बाद १९वीं शताब्दीमें लेफ्टनेण्ट कालू घोषने भी उस वीरत्व प्रभावकी अक्षुण्ण-रश्मि हाथमें ली थी। आज भी उस दिनकी बात है, कि श्रीसुरेशचन्द्र विश्वास आदि कई बंगाली वीरोंने अर्णव-पारमें विदेशोंमें जा कर वीरता दिखलाई है। किन्तु दुःखका विषय है, कि अंगरेज राजके कठोर शासनमें और राजदण्डविधिके नियमके कारण वह गौरव न जाने कहां विलुप्त हो गया है, उसका चिह्नमात्र तक नहीं।

सुप्रसिद्ध और प्राचीन बंगालके विभिन्न राजवंश अब वैसे राजशक्ति-सम्पन्न नहीं। दरिद्रताके कारण वे भी अब निस्तेज और निष्प्रभ हो गये हैं। उनके वंशधर या उत्तराधिकारी केवल उपाधि ले कर ही संतुष्ट हैं। कुछ राजे ऋणग्रस्त हो कर सरकारके अधीन हो वृत्तिमात्रका उपभोग कर रहे हैं। वर्द्धमानराज, त्रिपुरराज, कूचविहारराज, नदियाराज, नाटोरराज, समग्र शक्तिहीन हो गये हैं। इनके सिवा और भी अनेक राजे और जमींदार हैं, वे राजानुग्रहलाभके सिवा कभी भी स्वाधीनताकी लामेच्छा नहीं करते। वरं विषयवासना और राजाकी कृपाप्राप्तिके लिये निरन्तर अविवेचकोंकी तरह दरिद्र प्रजाका रक्तशोषण कर रहे हैं। अर्थाभाव होनेके कारण प्रजाका बाहुबल अवनोदित हुआ है और साथ ही साथ राजशक्तिका भी ह्रास हुआ है। दरिद्र प्रजा इसी तरह भूखों मर रही है। उन पर भगवान् कष्ट पर कष्ट दे रहे हैं। यह निरन्तर दुर्भिक्षसे पीड़ित हो रही है। अनावृष्टिके कारण अन्नाभावसे प्रजाका सर्वनाश हो रहा है।

धर्म।

इन सब अधिवासियोंमें प्रधानतः हिन्दू, मुसलमान, देशी और विदेशी खृष्टान और आदिम अनार्य-धर्मसेवी दिखाई देते हैं। हिन्दू मुसलमान और खृष्टान-धर्मावलम्बी होने पर भी ये सम्प्रदाय-विशेषमें विभिन्न हैं। शैव, शाक्त और वैष्णव आदि जैसे हिन्दुओंमें श्रेणी भाग हैं और उनमें फिर रामानन्दी, कबीरपन्थी आदि जैसे साम्प्रदायिक विभाग दिखाई देता है, मुसलमानोंमें भी उसी तरह सिया और सुन्नोके सिवा वहाबी, फराजी आदि पृथक् मत विद्यमान हैं। फिर खृष्टानोंमें रोमन, कैथलिक, यूनानी गिर्जे और प्रोटेष्टण्ट समाजके सिवा मेथडिष्ट चापेल, वेसलियान मिसन, एपिसकोपेलियन मिसन, लुथार मिसन आदि साम्प्रदायिक मतभेद दिखाई देता है। अनार्य्य सम्प्रदायका धर्ममत स्थानभेदसे पृथक् पृथक् है।

बौद्ध और हिन्दू-धर्मस्रोतकी प्रबल बन्या एक समय बङ्गालमें भरपूर थी। पालवंशी बौद्ध राजाओंके अधिकारमें बौद्ध-धर्मका जो अक्षुण्ण प्रभाव बङ्गालमें विराज रहा है, आज भी तान्त्रिक उपासनामें उसका प्रभूत निदर्शन विराज रहा है। वैदिक उपासनापद्धति उस समय एकदम ही बङ्गराज्यसे अन्तर्हित हो गई थी, इसीसे महाराज आदिशूर कनौजसे पांच सात्विक ब्राह्मण ला कर बङ्गालमें वेदमार्गको अक्षुण्ण रखनेकी चेष्टा की। उसके बादके सेनवंशीय हिन्दू राजगण भी हिन्दूधर्म प्रतिष्ठाके लिये विशेष मनोयोगी हुए थे। बल्लालकी कौलीन्य मर्य्यादा इस ब्राह्मण-प्रभाव-विस्तारका अवान्तर फल है।

बौद्ध और हिन्दुओंके समसमयमें बङ्गालमें जैन-धर्मका विस्तार हुआ है। इस समय भी नाना स्थानोंमें जैन और बौद्ध-कीर्त्तियां परिलक्षित हो रही हैं। इन सब कीर्त्तियोंका विवरण बङ्गालके प्रत्नतत्त्व प्रसङ्गमें लिखा गया है। हिन्दू, जैन और बौद्धधर्म्मका विशेष विवरण उन शब्दोंमें देखो।

इसके बाद सेनवंशके अधःपतनसे बङ्गालके मुसलमानोंके अभ्युदय होनेसे यहां पठान, मुगल आदि विभिन्न श्रेणीके इसलाम-धर्मावलम्बियोंका अभ्युदय हुआ। इसी समय बङ्गालके बहुतेरे अधिवासियोंने इसलाम-धर्म ग्रहण किया। तबसे बङ्गालमें अनेक फकीरों, पीरोंका आविर्भाव हुआ। इन सब पीरोंके स्थानमें आज भी मेला लगता है। हिन्दू-मुसलमान दोनों भक्तिपूर्वक पीरकी पूजा किया करते हैं। बहुत दिनोंसे मुसलमानके संसर्गसे हिन्दू समाजमें सत्यनारायणकी (सत्यपीर)-की पूजा प्रवर्त्तित हुई है। मुसलमान शब्द देखो।

बङ्गालके मुसलमान राजत्वके मध्यकालमें अर्थात् ईस्वीसन्‌की १५वीं शताब्दीके अन्तमें सन् १४८५ ई०में नवद्वीपमें श्रीचैतन्य महाप्रभुका आविर्भाव हुआ। बङ्गके सुविख्यात सुलतान हुसेन शाह और नसरत् शाहके राजत्वकालमें उन्होंने स्वयं वैष्णव मत प्रचार किया था। उसके बाद वैष्णव-धर्म उत्तरोत्तर बढ़ रहा था। उनके समसामयिक और परवर्त्ती वैष्णव कवि धर्म प्रचारमें सहायक हुए थे। इन्होंने उत्तमोत्तम संस्कृत ग्रन्थ रचना और कुछ बंगानुवाद कर जनसाधारणके सम्मुख भागवत आदि प्रोक्त वैष्णव-धर्मके विशद मर्मकी व्याख्या की थी। उनकी सुललित पदलहरी पाठ और गान कर बहुतेरे विमुग्ध चित्तसे श्रीचैतन्यके चरणोंमें आश्रय ग्रहण करते हैं। श्रीजीव गोस्वामी, रूपसनातन, कृष्णदास कविराज, कविकर्णपुर, नरोत्तम दास, वासुघोष, ज्ञानदास, गोविन्द दास, विद्यापति, जयदेव आदि वैष्णव कवियोंकी ज्ञान-कहानी आज भी बंगालके एक प्रान्तसे दूसरे प्रान्त तक प्रतिध्वनित होती है।

श्रीचैतन्यदेव और अन्यान्य कवियोंका नाम देखो।

वैष्णवधर्मवृक्षकी शाखा-प्रशाखाके रूपसे कर्त्ताभजा, गुरुसत्य, सती-मा, हरिबोला, रातभिखारी और उत्कलकी सत्कुली, अनन्तकुली, कविराजी, निहङ्ग, चिन्दुधारी, अतिबड़ी आदि मतके उद्भव होने पर भी यथार्थमें वह अभिनव धर्ममत नहीं कहा जाता है। खृष्टीय १६वीं शताब्दीके प्रारम्भकालमें राजा राममोहन रायने वेदान्त मत प्रतिपाद्य ब्राह्ममत प्रचार किया। उसी समयसे ही आदि ब्राह्मसमाजकी ख्याति हुई। इसके बाद उनके प्रवर्त्तितमतका संस्कार कर महात्मा केशवचन्द्रसेनने नवविधान (ब्राह्म) मतकी प्रतिष्ठा की। राममोहन राय, केशवचन्द्र सेन और ब्राह्मसमाज शब्दमें विशेष विवरण देखो।

महात्मा राममोहन जिस समय दक्षिण-बङ्गमें ब्राह्मधर्म

प्रतिष्ठा-प्रसङ्गमें सती-दाहादि निवारणरूप हिन्दूधर्म विरुद्ध घोरतर समाज-विप्लवकर आन्दोलन ले कर हिन्दू अधिवासियोंको तंग कर दिया है, प्रायः उसी समय ही १८२८ ई०में पूर्व-बङ्गमें हाजी सरित् उल्लाने फराजी नामक संस्कृत इस्लाम-धर्ममत प्रवर्त्तन द्वारा सुन्नी-सम्प्रदायको एक अभिनव शाखाका विस्तार किया था*। फराजी देखो।

बङ्गका पुरावृत्त।

अति प्राचीन कालसे बङ्गाल नाना नगर तथा छोटे छोटे राज्योंमें विभक्त था। अबसे कुछ समय पूर्व-बङ्गालकी सीमा पश्चिम-बिहारकी सीमासे-पूर्व चट्ट ग्राम और आसामकी सीमा और उत्तरमें हिमालयका पाद-देशसे, दक्षिणमें बङ्गोपसागर और उड़ीसाकी सीमा तक थी, किन्तु पहले ऐसी न थी। कब इसका आयतन बढ़ा है और कब कई राज्योंमें विभक्त हो कर एक छोटे देशके रूपमें परिणत हुआ है, इसका परिचय बङ्गके इतिहास-की आलोचना करने पर यह अच्छी तरह समझमें आता है।

वैदिक समयका बङ्ग।

प्रथम देखना होगा, कि बङ्ग नाम कितना प्राचीन है? और 'बङ्ग'(१) कहनेसे किस स्थानका बोध होता है। जगत्‌का आदि-ग्रन्थ ऋक्‌संहितामें अनार्यनिवास "कीकट" (पीछेका नाम मगध), ऋग्वेदके ऐतरेय ब्राह्मणमें 'पुण्ड्र'(२) और अथर्वसंहितामें 'अङ्ग' (३) देशका उल्लेख रहने पर भी 'बङ्ग' नाम नहीं। हम ऋग्वेदके ऐतरेय आरण्यकमें (२।१।१) सबसे पहले बङ्ग नाम पाते हैं। यथा—

"इमाः प्रजास्तिस्रो अत्याय मायं स्तानीमानि वयांसि।
बङ्गावगधाश्चेरपादान्यन्या अर्कमभितो विविश्र इति॥"(४)

'बङ्गाः' अर्थात् बङ्गदेशवासीगण, 'वगधाः' अर्थात् मगधवासीगण और 'चेरपादाः' अर्थात् चेरदेशवासी-गण। यह त्रिविध प्रजा ही यथा दुर्बलता यथा दुराचार या बहु अपत्यतासे काक, चटक और पारावत (कबूतर) आदि सदृश है।

वास्तविक वैदिकयुगमें बङ्गदेश अनार्य-निवास ही कहा जाता है। इस अनार्य जातियोंको लक्ष्य कर प्राचीन भाष्यकारोंने बङ्गावगधका राक्षस अर्थ किया होगा। आनन्दतीर्थ उसी प्राचीन भाष्यका ही अनुवर्त्ती हुए हैं।

केवल ऐतरेय आरण्यक कह कर नहीं, वरं ऋक्‌-संहितामें कीकट या मगध अनार्य्य-निवास होनेसे निन्दित है। ऐतरेय-ब्राह्मणमें भी 'पुण्ड्र' या पुण्ड्रवन-पदवासी 'दस्यूनां भूयिष्ठा' अर्थात् डाकुओंके पिता (जनक) कह कर घृणित और अथर्वसंहितामें अङ्ग और मगध-वासियोंके प्रति अनार्य्योचित श्लेषोक्ति देखी जाती है। इन सब प्रमाणोंसे मालूम होता है,

---

* Bhattacharja's Castes and Sects of Bengal ग्रन्थमें अन्यान्य सम्प्रदायका संक्षेप परिचय द्रष्टव्य।

(१) ऋक्‌संहिता ३।५३।१४। (२) ऐतरेय ब्राह्मण ७।१८।

(३) अथर्वसंहिता ५।२२।१४।

(४) यहां भाष्यकारने 'बङ्गाः वनगता वृक्षाः' 'अवगधाः व्रीहियवाद्या ओषधयः' 'ईरपादाः उरःपादाः सर्पाः' ऐसा अर्थ किया है। फिर माया टीकाकार आनन्दतीर्थने 'वयांसि' अर्थमें पिशाच, 'बङ्गाव-गधाः' अर्थमें राक्षस और 'ईरपादाः' अर्थमें असुर निर्देश किया है अतएव भाष्यकार और टीकाकारके बीचमें भी यथेष्ट मतभेद देखा जाता है। भाष्यकारने जहां वृक्ष, ओषधि और सर्प अर्थ किया, उन्हींका टीकाकारने वही पिशाच, राक्षस और असुर अर्थ स्वीकार किया है। इस तरहका मतभेद देख कर अध्यापक मोक्षमूलरने लिखा है—

"Possibly they are all old ethnic names like Vanga, Chera &c."(Sacred Books of the East, Vol 1. p. 202f.) अध्यापक सत्यव्रत सामाश्रमी महाशयने भी अपनी त्रयीटीकामें इस तरह व्याख्या की है—

"अस्मन्मते स्वत्र 'बङ्गावगधाश्चेरपादाः' इत्यस्य व्याख्यानार्थे-इत्थं कष्टकल्पनं निष्प्रयोजनम्, अपि 'बङ्गा' वंगदेशीयाः 'वगधा' मगधा, 'चेरपादाः' चेरनामजनपदवासिनः। तास्त्रिविधा एव प्रजाः 'वयांसि' काकचटकपारावतादिसदृशाः। दुर्बलतयैव न आदरणम्। इत्याह्यदेशत्वादि मगधत्वेन परिहरः, कलिङ्गचोलाद्ध्रयोः कलिङ्गान्ध्रयोर्भेदेऽव चेरपाद इति।" (पृ० १९१)

ऐतरेय आरण्यके उद्धृत मंत्रका दोनों अर्थ समीचीन जान कर ग्रहण किया गया।

कि वैदिकयुगमें वर्त्तमान विहारसे वङ्गाल तक भूभागोंमें अनार्य्य या आर्य्येतर जातिका प्रभाव विस्तृत था। अनार्य्य प्रभावके कारण ही आर्य्य यहां वास करना उचित नहीं समझते थे। और तो क्या, बौधायन धर्मसूत्रमें लिखा है, कि वङ्ग, कलिङ्ग, पुण्ड्र आदि देशोंमें घूमने पर भी भ्रमणकारीको पुनस्तोम या सर्वपृष्ठीयाग करना पड़ता था।

मनुसंहिता रचनाके समय सम्भवतः वङ्गके निर्जन वनमें दो एक आर्य्य ऋषियोंका आश्रम बन चुका था और उसीके साथ ये सब स्थान तीर्थके रूपमें गण्य हो गया था। मनुसंहिताके रचयिता सम्भवतः इसीसे व्यवस्था कर गये हैं, कि तीर्थयात्राके सिवा कोई आर्य्य अङ्ग वंगादि देशमें जा न सकेगा—तीर्थयात्राके सिवा वहां जाने पर द्विजातियोंको पुनः संस्कार करना होगा। ऐतरेय-ब्राह्मणमें पुण्ड्रगण विश्वामित्रके सन्तान कहे गये हैं। फिर मनुसंहितामें पौण्ड्रकगणके वृषलत्व या शूद्रत्व प्राप्तिकी कथा है। (१०।४४) इससे मालूम होगा, कि जब विश्वामित्रके वंशधर इस देशमें आ कर बस गये, तब इस देशमें द्विजातियोंका वास न था। इस कारणसे ब्राह्मणके अभावसे उनका संस्कार विलुप्त हुआ। इससे वे वृषल और यहांके अनार्य्योंके साथ मिल कर डाकू कहलाये। दस्यु और वृषल देखो।

यह ठीक जाननेका कोई उपाय नहीं, कि किस समय वङ्गदेशमें आर्य्यसभ्यता प्रतिष्ठित हुई थी। रामायणके समयमें सम्भवतः इसका सूत्रपात हुआ और महाभारतके युगमें आर्य्यसभ्यता प्रतिष्ठित हुई थी, इसका प्रमाण भी मिलता है। रामायणमें लिखा है, कि चन्द्रवंशीय अमूर्त्तरजा नामक एक राजाने धर्मारण्यके निकट प्राग्ज्योतिषपुर स्थापित किया। शतपथ-ब्राह्मण आदि वैदिक ग्रन्थोंसे ही प्रमाणित हुआ है, कि बहुत प्राचीन कालमें मिथिलामें विदेमाधव द्वारा आर्य्यसभ्यता विस्तृत हुई थी। वर्त्तमान जलपाईगोड़ी रङ्गपुरसे आसामकी पूर्वी सीमा तक प्राचीन प्राग्ज्योतिष देश फैला था, प्राग्ज्योतिषपुर (वर्त्तमान गोहाटी) उक्त प्राग्ज्योतिषकी राजधानी थी। इससे यह स्पष्ट है, कि मिथिला (वर्त्तमान दरभङ्गा) और आसाममें आर्य्यसभ्यता फैली हुई थी, फिर भी बीचमें अङ्ग, वङ्ग और पौण्ड्रमें आर्य्योपनिवेश स्थापित नहीं हुआ, यह क्या कभी सम्भव हो सकता है? महाभारतके कर्णपर्व (४५ अ०)में लिखा है,—"पौण्ड्र, कलिङ्ग, मगध और चेदी-देशीय सभी महात्मा शाश्वत पुरातनधर्म विशेषरूपसे जानते हैं और उसके अनुसार कार्य्य किया करते हैं।" इस महाभारतकी उक्तिसे स्पष्ट जाना जाता है, कि उससे पहले पौण्ड्र अर्थात् उत्तर वङ्गमें वैदिकधर्म और आर्य्यसभ्यताका विकाश हो गया था।

हरिवंश पढ़नेसे मालूम होता है, कि ययातिके पुत्र पुरुकी नीचली २२ पीढ़ीमें महाराज वलिने जन्मग्रहण किया। ये परम योगी और राजा थे। इनके वंशधर पांच पुत्र अंग, वङ्ग, सुह्म, पुण्ड्र और कलिंग हैं। ये ही महाराज वलिके क्षत्रिय-सन्तान हैं। किन्तु उनके वंशधर पुत्रोंने कालक्रमसे ब्राह्मणत्व लाभ किया था।

महाभारतके आदि पर्व (१०४ अध्याय)में कहा गया है, "भूलोक परशुराम कर्त्तृक निःक्षत्रिय होनेसे अनेक क्षत्रिय-पत्नियोंने वेदपारग ब्राह्मण द्वारा सन्तान उत्पन्न किया था। वेदका विधान यह है, कि जो पाणिग्रहण करता है, उसके क्षेत्रमें जो सन्तान पैदा लेता है, वह सन्तान उसीका कहलाता है। अतएव धर्माचरण सोच कर ही क्षत्रिय-पत्नियोंने ब्राह्मणसे सहवास किया था। इस तरह क्षेत्रज पुत्रके दृष्टान्त दिखानेके लिये महाभारतके रचयिताने यह पुरातन इतिहास लिखा है—

"क्षत्रियराज वलिके पुत्र न था। उन्होंने एक दिन गङ्गास्नान करने जाते समय देखा, कि एक अन्ध ऋषि गङ्गामें बहते चले आते हैं। धार्मिक राजा उनको गंगाधारसे निकाल घर ले गये। उन अन्ध ऋषिका नाम दीर्घतमा था। धार्मिक नरपतिने उनके क्षेत्रमें पुत्रोत्पादन करनेके लिये अनुरोध किया। इसके अनुसार उनकी महिषी (रानी)-के गर्भसे दीर्घतमाने पांच पुत्र उत्पन्न किये। इन्हीं पांच पुत्रोंके नाम अंग, वंग, कलिंग, पुण्ड्र और सुह्म। उन्हींके नाम पर एक एक देश विख्यात हैं।

हरिवंशमें लिखा है:—परम योगी राजा वलि ऊर्द्ध्वरेता थे। इसलिये उनकी पत्नी सुदेष्णाके गर्भसे महातेजस्वी मुनिवर दीर्घतमासे ये पांच पुत्र उत्पन्न हुए। योगात्मा

प्रतिष्ठा-प्रसङ्गमें सती-दाहादि निवारणरूप हिन्दूधर्म विरुद्ध घोरतर समाज-विप्लवकर आन्दोलन ले कर हिन्दू अधिवासियोंको तंग कर दिया है। प्रायः उसी समय ई० १८२८ ई०में पूर्व-बङ्गमें हाजी सरित् उल्लाने फराजी नामक संस्कृत इस्लाम-धर्ममत प्रवर्तन द्वारा सुन्नी-सम्प्रदायको एक अभिनव शाखाका विस्तार किया था*।

फराजी देखो।

वङ्गका पुरावृत्त।

अति प्राचीन कालसे वङ्गाल नाना नगर तथा छोटे छोटे राज्योंमें विभक्त था। अबसे कुछ समय पूर्व-वङ्गालकी सीमा पश्चिम-बिहारकी सीमासे पूर्व ब्रह्म पाम और आसामकी सीमा और उत्तरमें हिमालयका पाद-देशसे, दक्षिणमें बङ्गोपसागर और उड़ीसाकी सीमा तक थी, किन्तु पहले ऐसी न थी। कब इसका आयतन बढ़ा है और कब कई राज्योंमें विभक्त हो कर एक छोटे देशके रूपमें परिणत हुआ है, इसका परिचय वङ्गके इतिहास-की आलोचना करने पर यह अच्छी तरह समझमें आता है।

वैदिक समयका वङ्ग।

प्रथम देखना होगा, कि वङ्ग नाम कितना प्राचीन है ? और 'वङ्ग'(१) कहनेसे किस स्थानका बोध होता है। जगत्‌का आदि-ग्रन्थ ऋक्‌संहितामें अनार्यनिवास "कीकट" (पीछेका नाम मगध), ऋग्वेदके ऐतरेय ब्राह्मणमें 'पुण्ड्र'(२) और अथर्वसंहितामें 'अङ्ग' (३) देशका उल्लेख रहने पर भी 'वङ्ग' नाम नहीं। हम ऋग्वेदके ऐतरेय आरण्यकमें (२।१।१) सबसे पहले वङ्ग नाम पाते हैं। यथा—

"इमाः प्रजास्तिस्रो अत्यायमायं स्तानीमानि वयांसि।
वङ्गावगधाश्चेरपादान्यन्या अर्कमभितो विविश इति॥"(४)

'वङ्गाः' अर्थात् वङ्गदेशवासीगण, 'वगधाः' अर्थात् मगधवासीगण और 'चेरपादाः' अर्थात् चेरदेशवासीगण। यह त्रिविध प्रजा ही यथा दुर्बलता यथा दुराहार या बहु अपत्यतासे काक, चटक और पारावत (कबूतर) आदि सदृश हैं।

वास्तविक वैदिकयुगमें वङ्गदेश अनार्य-निवास ही कहा जाता है। इस अनार्य जातियोंको लक्ष्य कर प्राचीन भाष्यकारोंने वङ्गावगधका राक्षस अर्थ किया होगा। आनन्दतीर्थ उसी प्राचीन भाष्यका ही अनुवर्ती हुए हैं।

केवल ऐतरेय आरण्यक कह कर नहीं, वरं ऋक्-संहितामें कीकट या मगध अनार्य्य-निवास होनेसे निन्दित है। ऐतरेय-ब्राह्मणमें भी 'पुण्ड्र' या पुण्ड्रगण-वद्वासी 'दस्यूनां भूयिष्ठा' अर्थात् डाकुओंके पिता (जनक) कह कर घृणित और अथर्वसंहितामें अङ्ग और मगध-वासियोंके प्रति अनार्य्योचित श्लेषोक्ति देखी जाती है। इन सब प्रमाणोंसे मालूम होता है,

---

* Bhattacharja's Castes and Sects of Bengal ग्रन्थमें अन्यान्य सम्प्रदायका संक्षेप परिचय द्रष्टव्य।

(१) ऋक्‌संहिता ३।५३।१४। (२) ऐतरेय ब्राह्मण ७।१८।
(३) अथर्वसंहिता ५।२२।१४।

(४) यहां भाष्यकारने 'वङ्गाः वनगता वृक्षाः' 'अवगधाः ओषधि-मात्रा ओषधयः' 'ईरपादाः उरःपादाः सर्पाः' ऐसा अर्थ किया है। फिर यहां टीकाकार आनन्दतीर्थने 'वयांसि' अर्थमें पिशाच, 'वङ्गाव-गधाः' अर्थमें राक्षस और 'ईरपादाः' अर्थमें असुर निर्देश किया है अतएव भाष्यकार और टीकाकारके बीचमें भी यथेष्ट मतभेद देखा जाता है। भाष्यकारने जहां वृक्ष, ओषधि और सर्प अर्थ किया, उन्हींका टीकाकारने वहीं पिशाच, राक्षस और असुर अर्थ स्वीकार किया है। इस तरहका मतभेद देख कर अध्यापक मोक्षमूलरने लिखा है—

"Possibly they are all old ethnic names like Vanga, Chera &c."(Sacred Books of the East, Vol 1, p. 202f.) अध्यापक सत्यव्रत सामाश्रमी महाशयने भी अपनी त्रयीटीकामें इस तरह व्याख्या की है—

"अस्मन्मते तत्र 'वङ्गावगधाश्चेरपादाः' इत्यस्य व्याख्यानाशे-ऽत्रं कष्टकल्पनं निष्प्रयोजनम्, अपि 'वङ्गा' वङ्गदेशीयाः 'मगधा' मगधा, 'चेरपादाः' चेरनामजनपदवासिनः। तास्त्रिविधा एव प्रजाः 'वयांसि' काकचटकपारावतादिसदृशाः। दुर्बलत्वेन च शठत्वम्। इत्थञ्चैतस्यापि मगधरतेन परिग्रहः, कलिङ्गाथोऽन्यत्र कलिङ्गान्ध्रयोर्यथैव चेरादि इति।" (२० १९१)

ऐतरेय आरण्यके उद्धृत अंशका ऐसा ही अर्थ समीचीन जान कर ग्रहण किया गया।

कि वैदिकयुगमें वर्त्तमान विहारसे बङ्गाल तक भूभागोंमें अनार्य्य या आर्य्येतर जातिका प्रभाव विस्तृत था। अनार्य्य प्रभावके कारण ही आर्य्य यहां वास करना उचित नहीं समझते थे। और तो क्या, बौधायन-धर्म सूत्रमें लिखा है, कि बङ्ग, कलिङ्ग, पुण्ड्र आदि देशोंमें घूमने पर भी भ्रमणकारीको पुनस्तोम या सर्वपृष्ठीयाग करना पड़ता था।

मनुसंहिता रचनाके समय सम्भवतः बङ्गके निर्जन वनमें दो एक आर्य्य ऋषियोंका आश्रम बन चुका था और उसीके साथ वे सब स्थान तीर्थके रूपमें गण्य हो गया था। मनुसंहिताके रचयिता सम्भवतः इसीसे व्यवस्था कर गये हैं, कि तीर्थयात्राके सिवा कोई आर्य्य अङ्ग बंगादि देशमें जा न सकेगा—तीर्थयात्राके सिवा वहां जाने पर द्विजातियोंको पुनः संस्कार करना होगा। ऐतरेय-ब्राह्मणमें पुण्ड्रगण विश्वामित्रके सन्तान कहे गये हैं। फिर मनुसंहितामें पौण्ड्रकगणके वृषलत्व या शूद्रत्व प्राप्तिकी कथा है। (१०।४४) इससे मालूम होगा, कि जब विश्वामित्रके वंशधर इस देशमें आ कर बस गये, तब इस देशमें द्विजातियोंका वास न था। इस कारणसे ब्राह्मणके अभावसे उनका संस्कार विलुप्त हुआ। इससे वे वृषल और यहांके अनार्य्योंके साथ मिल कर डाकू कहलाये। दस्यु और वृषल देखो।

यह ठीक जाननेका कोई उपाय नहीं, कि किस समय बङ्गदेशमें आर्य्यसभ्यता प्रतिष्ठित हुई थी। रामायणके समयमें सम्भवतः इसका सूत्रपात हुआ और महाभारतके युगमें आर्य्यसभ्यता प्रतिष्ठित हुई थी, इसका प्रमाण भी मिलता है। रामायणमें लिखा है, कि चन्द्रवंशीय अमूर्त्तरजा नामक एक राजाने धर्मारण्यके निकट प्राग्ज्योतिषपुर स्थापित किया। शतपथ-ब्राह्मण आदि वैदिक ग्रन्थोंसे ही प्रमाणित हुआ है, कि बहुत प्राचीन कालमें मिथिलामें विदेमाथव द्वारा आर्य्यसभ्यता विस्तृत हुई थी। वर्त्तमान जलपाईगोड़ी रङ्गपुरसे आसामकी पूर्वी-सीमा तक प्राचीन प्राग्ज्योतिष देश फैला था, प्राग्ज्योतिषपुर (वर्त्तमान गोहाटी) उक्त प्राग्ज्योतिषकी राजधानी थी। इससे यह स्पष्ट है, कि मिथिला (वर्त्तमान दरभङ्गा) और आसाममें आर्य्यसभ्यता फैली हुई थी, फिर भी बीचमें अङ्ग, बङ्ग और पौण्ड्रमें आर्य्योपनिवेश स्थापित नहीं हुआ, यह क्या कभी सम्भव हो सकता है? महाभारतके कर्णपर्व (४५ अ०)में लिखा है,—"पौण्ड्र, कलिङ्ग, मगध और चेदी-देशीय सभी महात्मा शाश्वत पुरातनधर्म विशेषरूपसे जानते हैं और उसके अनुसार कार्य्य किया करते हैं।" इस महाभारतकी उक्तिसे स्पष्ट जाना जाता है, कि उससे पहले पौण्ड्र अर्थात् उत्तर-बङ्गमें वैदिकधर्म और आर्य्यसभ्यताका विकाश हो गया था।

हरिवंश पढ़नेसे मालूम होता है, कि ययातिके पुत्र पुरुकी नोचली २२ पीढ़ीमें महाराज बलिने जन्मग्रहण किया। ये परम योगी और राजा थे। इनके वंशधर पांच पुत्र अंग, बङ्ग, सुह्म, पुण्ड्र और कलिंग हैं। ये ही महाराज बलिके क्षत्रिय-सन्तान हैं। किन्तु उनके वंशधर पुत्रोंने कालक्रमसे ब्राह्मणत्व लाभ किया था।

महाभारतके आदि पर्व (१०४ अध्याय)में कहा गया है, "भूलोक परशुराम कर्त्तृक निःक्षत्रिय होनेसे अनेक क्षत्रिय-पत्नियोंने वेदपारग ब्राह्मण द्वारा सन्तान उत्पन्न किया था। वेदका विधान यह है, कि जो पाणिग्रहण करता है, उसके क्षेत्रमें जो सन्तान पैदा होता है, वह सन्तान उसीका कहलाता है। अतएव धर्माचरण सोच कर ही क्षत्रिय-पत्नियोंने ब्राह्मणसे सहवास किया था। इस तरह क्षेत्रज पुत्रके दृष्टान्त दिखानेके लिये महाभारतके रचयिताने यह पुरातन इतिहास लिखा है—

"क्षत्रियराज बलिके पुत्र न था। उन्होंने एक दिन गङ्गास्नान करने जाते समय देखा, कि एक अन्ध ऋषि गङ्गामें बहते चले आते हैं। धार्मिक राजा उनको गंगाधारसे निकाल घर ले गये। उन अन्ध ऋषिका नाम दीर्घतमा था। धार्मिक नरपतिने उनके क्षेत्रमें पुत्रोत्पादन करनेके लिये अनुरोध किया। इसके अनुसार उनकी महिषी (रानी)-के गर्भसे दीर्घतमाने पांच पुत्र उत्पन्न किये। इन्हीं पांच पुत्रोंके नाम अंग, वंग, कलिंग, पुण्ड्र और सुह्म। उन्हींके नाम पर एक एक देश विख्यात हैं।

हरिवंशमें लिखा है:—परम योगी राजा बलि ऊर्द्ध्वरेता थे। इसलिये उनकी पत्नी सुदेष्णाके गर्भसे महातेजस्वी मुनिवर दीर्घतमासे ये पांच पुत्र उत्पन्न हुए। योगात्मा

बलिने उन क्षेत्रज पांच पुत्रोंको राजसिंहासन पर बैठा कर योग मार्गका आश्रय लिया। (३१ अध्याय)

उद्धृत प्रमाणोंसे बल कहना पड़ता है, कि बलि अथवा उनके पांच पुत्रोंसे ही अंग-वंगादि जनपदोंमें वैदिक-सभ्यता प्रचारित और चातुर्वर्ण्य समाज संगठित हुआ।

महाभारतकारने बलि-पुत्र अंग, वंगादिके नामानुसार भिन्न भिन्न देशोंकी नामोत्पत्ति स्वीकार की है। पूर्वोक्त अथर्ववेद, ऐतरेय-ब्राह्मण और ऐतरेय आरण्यकके अनुवर्ती होनेसे अवश्य ही कहना पड़ता है, कि आर्य्य-सभ्यता विस्तारसे पहले अंग, वंग, पुण्ड्रका नामकरण हुआ था। बलि पुत्र जिन्होंने जिस राज्यका अधिकार पाया था, वे उन्हीं राज्योंके नामानुसार सम्भवतः विख्यात हुए थे। जैसे पौण्ड्रके अधिपति महाबल वासुदेव नाना पुराणोंमें केवलमात्र 'पौण्ड्रक' नामसे परिचित हैं।

बलि पुत्र अंगकी छठी पीढ़ी नीचे अंगाधिप दशरथ लोमपादके नामसे विख्यात थे। आप श्रीरामचन्द्रके पिता दशरथके सखा और ऋष्यशृंगके श्वशुर थे। लोमपादके प्रपौत्र चम्पसे अंगकी राजधानी चम्पा नामसे प्रसिद्ध हुए। अंगाधिप चम्पके प्रपौत्र-पौत्र बृहन्मनाके विजय नामक एक पुत्र हुआ। हरिवंशमें वे 'ब्रह्मक्षेत्रोत्तर'* विशेषणसे विभूषित हुए थे। इन विजयके प्रपौत्र पुत्र अधिरथ सूतवृत्ति अवलम्बन कर क्षत्रिय-समाजमें निन्दित हुए थे। सूतने अधिरथ कर्णका प्रतिग्रह किया था इससे कर्णको सभी सूतके पुत्र कहते थे†।

जो हो, हरिवंशके विवरणमें यदि कुछ भी ऐतिहासिकता हो, तो अवश्य ही स्वीकार करना होगा, कि पौरव अधिराज बलिके समय अर्थात् महावीर कर्णको ११वीं पीढ़ी पहलेसे (वर्त्तमान समयसे पांच हजार वर्ष-से पहले) अङ्ग-वङ्गमें क्षत्रिय-समाजकी प्रतिष्ठा हुई थी। और तो क्या, यहांके अनेक नृपतिने योगबलसे या कर्म-फलसे ब्राह्मणत्व तक लाभ किया था। उसी बहुत पुराने समयसे ही बङ्गालियोंकी जन्मभूमि बङ्ग सात्विक योगी, ऋषि, ज्ञानी, मानी और महावीरोंकी लीलास्थली हुई थी। इसी कारणसे बोधायन-धर्मसूत्रमें और मनुसंहिता में जो स्थान आर्य्यावर्त्तके अनुपयुक्त कहा गया था, महाभारतमें बङ्गप्रान्त उसी कलिङ्गदेश "पवित्र गिरि-शोभित सतत द्विजसेवित" पुण्य स्थान कहा गया है।

महाभारतसे हम लोग और भी जानते हैं, कि महाराज युधिष्ठिरके राजसूय यज्ञके समय यह बङ्गदेश नाना छोटे छोटे राज्योंमें विभक्त था। भीमके पहले दिग्विजय उपलक्षमें सभापर्वमें लिखा है।

"भीमसेन अपने पक्षके होने पर भी सुह्म प्रसुह्मोंको युद्धमें पराजित कर मगधवासियोंके प्रति चले। वहां दण्ड, दण्डधार और नाना पर महीपालोंको पराजय कर वे सभी एकत्र हो कर गिरिव्रजमें आये और जरासन्ध-नन्दन सहदेवको सान्त्वनायुक्त और करायत्त कर सबको साथ में ले कर्णके प्रति दौड़े। इसके बाद पाण्डवश्रेष्ठ भीमने चतुरङ्ग-सेनाके बलसे पृथ्वी कंपित कर शत्रुनाशन कर्णके साथ घोरतर युद्ध किया और उनको संग्राममें पराजित कर और वशीभूत कर पर्वतवासी राजाओंको महासमरमें अपने बाहुबलसे मारा। इसके उपरान्त भीम पराक्रम और महाबाहु पुण्ड्राधिप वासुदेव और कौशिकीकच्छ निवासी राजा महौजा इन दोनों नृपतिको युद्धमें पराजित कर बङ्गराजके प्रति धावमान हुए। समुद्रसेन और चन्द्रसेन नरपतियोंको पराजित कर ताम्रलिप्तराज कर्वटाधिपति, सुह्माधिपति और सागरवासी सब म्लेच्छों-को जीता।

बङ्गमें जैन और बौद्ध-प्रभाव।

हम लोगोंने महाभारत, हरिवंश और नाना पुराणकी आलोचना कर पाया है, कि मगध, अङ्ग, वङ्ग और सुह्मके क्षत्रिय पौरगण आपसमें आत्मीयता और मित्रताके पाश में आबद्ध थे, उनके आचार व्यवहार बहुत कुछ एक था। इसका कारण यह, कि यहांके क्षत्रियवंशमें जब कभी कोई महापुरुष आविर्भूत हुए हैं, तभी इन्होंने साधारणको

---

* "ब्रह्मक्षेत्रोत्तरः सत्यां विजयोनाम विश्रुतः।" (हरिवंश ३१।४७) यहां ब्रह्मक्षेत्रोत्तर शब्दका किसीने अर्थ किया है, ब्राह्मण और क्षत्रिय—दोनों धर्मोंका मानी, फिर बहुतोंने अर्थ किया है:—"क्षात्रिय प्रभृति द्वारा ब्राह्मणोंसे उत्कृष्ट और क्षत्रियादि द्वारा पूजितसे श्रेष्ठ।"

† हरिवंश ३१ अध्यायमें पूर्वोक्त वंशावली और विशेष विवरण द्रष्टव्य।

उच्च ज्ञानोपदेश प्रदान कर उन्नत और एकभावापन्न करनेकी चेष्टा कर पाया है। परवर्त्ती ब्राह्मणग्रन्थ इस सम्बन्धमें बहुत कुछ निस्तब्ध है सही, पर प्राचीन जैन और बौद्धग्रन्थोंसे उसका यथेष्ट प्रमाण मिलता है। आदि ब्राह्मणशास्त्र जिस तरह गुरुपरम्परासे मुख-मुखमें चलता आ रहा है, आदिजैन और बौद्धग्रन्थ भी उसी तरह गुरु-परम्परासे मुख-मुखमें चलता रह कर ब्राह्मणशास्त्रोंको भांति पीछे लिपिबद्ध हुआ है। इन सब परम्परागत जैन ग्रन्थोंसे हम लोग देख सकते हैं, कि जिनधर्मप्रचारक २४ तीर्थङ्करोंमेंसे सिर्फ आदि जिन ऋषभदेवके अलावा २ अजितनाथ, ३ सम्भवनाथ, ४ अभिनन्दन, ५ सुमतिनाथ, ६ पद्मप्रभ, ७ सुपार्श्व, ८ चन्द्रप्रभ, ९ सुविधिनाथ, १० शीतलनाथ, ११ श्रेयांसनाथ, १२ वासुपूज्य, १३ विमलनाथ, १४ अनन्तनाथ, १५ धर्मनाथ, १६ शान्तिनाथ, १७ कुन्थुनाथ, १८ अरनाथ, १९ मल्लिनाथ, २० मुनिसुव्रत, २१ नमीनाथ, २२ नेमिनाथ, २३ पार्श्वनाथ और २४ महावीर, इन २१ तीर्थङ्करोंके साथ वंगालीका संस्रव घट गया था। ये सभी परम ज्ञानी कह कर जैन-समाजमें 'देवाधिदेव' अर्थात् देवब्राह्मणसे श्रेष्ठ कह कर पूजित थे।

उक्त तीर्थङ्करोंमेंसे २३वें तीर्थंङ्कर पार्श्वनाथने ईसी-सन् ७७७ के पहले मानभूम जिलेके समेतशिखर पर (वर्त्तमान परेशनाथ पहाड़ पर) मोक्षलाभ किया। २७०० वर्ष पूर्व राढ़वङ्गमें उनके प्रभावसे बहुतोंने ही तत्प्रचारित चातुर्याम-धर्म्म ग्रहण किया था। अरिष्ट-नेमिपुराणान्तर्गत जैन हरिवंशमें लिखा है, कि यादवपति श्रीकृष्णके ज्ञाति नेमिनाथने अङ्गवङ्गादि देशमें आ कर जैन धर्म प्रचार किया था। जिस समय भगवान् श्रीकृष्ण ब्रह्मण्यधर्मरक्षामें सात्वत धर्म प्रचारमें निरत थे, उस समय उनके ही एक ज्ञाति भिक्षुधर्म प्रचारमें अग्रसर हुए थे। उनका मत ब्राह्मणविरोधी था, इसलिए ब्राह्मणोंके धर्मग्रन्थमें स्थानलाभ नहीं किया सही, पर जैनाचार्यगण उसकी रक्षा कर आर्यसमाजका एक और तरफका चित्र देखनेका अवसर दे गये हैं। यद्यपि उस समय जिनधर्म आर्यसमाजमें सुप्रतिष्ठित हुआ था वा नहीं सन्देह है, किन्तु आज भी जो पूर्व भारतके एक प्रान्तमें क्षत्रिय-सन्तान अपने अपने प्राधान्यकी रक्षामें उद्युक्त थे, वह हिन्दू और जैन दोनोंके हरिवंशमें अल्पविस्तर चित्रित है। यह भी सम्भव नहीं, कि नेमिनाथकी तरह क्षत्रिय-प्रचारकोंकी उत्तेजनासे पौण्ड्रक वासुदेव कृष्णद्वेषी हो गये थे। जो हो, उस अतीत युगको तिमिरावृत इतिवृत्त तर्कसंकुल कह कर और निःसन्देह भ्रमप्रमादपरिशून्य होनेकी सम्भावना न रहनेसे यहीं क्षान्त हुए।

महाभारतकार "वीर्यश्रेष्ठाश्च राजानः" कह कर क्षत्रियकी श्रेष्ठताकी घोषणा कर गये हैं। कुरुक्षेत्रके कुलक्षयकर महासमरसे ही आर्यावर्त्तका क्षत्रियप्रभाव खर्व्व होने लगा तथा सीमान्त प्रदेशसे दूसरी दुर्द्धर्ष जातियोंने भारतमें घुसनेकी सुविधा पाई। ब्राह्मणप्राधान्य भी फैलने लगा। इस समय पूर्व और दक्षिण-भारतमें ब्राह्मणलोग कर्मकाण्डप्रचारके साथ पौराणिक देवपूजा प्रतिष्ठामें उद्योगी हुए थे, एवं क्षत्रियेतर जनसाधारण बहुतेरे आदरके साथ कर्मकाण्डबहुल सहज पूजामें अनुरक्त हो रहे थे। किन्तु इस समय उत्तर-पश्चिम भारतमें क्षत्रिय-प्रभाव ह्रास होने पर भी पूर्व भारतमें एकदम ह्रास नहीं हो सका, वरं यहांके क्षत्रियोंके अभ्युदयकी सुविधा हुई थी। वे कर्मकाण्डबहुल देवपूजामें सन्तुष्ट न थे। आत्मसंयम और आत्मोत्कर्ष-लाभमें सभी सचेष्ट थे। कुरुक्षेत्रमें क्षात्रजीवनका भीषण परिणाम देख उन्होंने तलवार चलानेकी अपेक्षा मोक्षपथका उपाय निकालना ही पुरुषार्थ समझा था। उसीके फलसे पूर्व-भारतमें बुद्ध और तीर्थङ्करोंका अभ्युदय हुआ था।

पाणिनिके अष्टाध्यायी (६।२।१००) और जैन-हरिवंश पढ़नेसे जाना जाता है, कि भारतीय युगके बाद पूर्व-भारतमें "अरिष्टपुर" और "गौड़पुर" नामक दो प्रधान नगर था। जैनहरिवंशमें अरिष्टपुर और सिंहपुरका एकत्र उल्लेख पाया जाता है। अरिष्टनेमि या नेमिनाथके नाम पर अरिष्टपुरका नाम पड़ा है, इसमें कुछ असम्भव नहीं। इन तीन प्राचीन नगरोंमेंसे गौड़पुर पुण्ड्रदेशमें और अरिष्टपुर उत्तरराढ़में था, ऐसा बोध होता है। गौड़पुरसे ही पीछे गौड़राज्यका नामकरण हुआ। प्राचीन बौद्ध और जैन ग्रन्थोक्त सिंहपुर नामक प्रधान नगर सुह्म या राढ़देशमें अवस्थित था। इस प्रकार समस्त राढ़देश

इस देशमें क्षत्रियोंकी मोटी जम गई थी। इस समय अबुल्फज़लकी गणनानुसार कह सकता हूं, कि सम्राट् अशोकके पहले ही इस स्थानमें कायस्थोंका अधिकार हो चला था एवं वे प्राचीन कालीन कायस्थराजे उनके अधीश्वर मगधाधिपतियोंके मतानुवर्त्ती थे।

अशोकके बाद उनके पौत्र सम्राट् दशरथ जैनधर्मानुरक्त हुए। बराबरके नागार्जुनी पहाड़ पर उत्कीर्ण दशरथकी लिपिसे जाना जाता है, कि उन्होंने जैन आजीवकोंके सम्मानार्थ बहुतों दानकी व्यवस्था की थी।

अशोक-पौत्र दशरथके बाद मौर्यवंशीय पांच राजे पाटलिपुत्रमें अधिष्ठित हुए। उनके नाम थे—संगत, शालिशूक, सोमशर्म्मा, शतधन्वा तथा वृहद्रथ। इन पांचों राजाओंके राज्यकालमें मौर्य-प्रभाव बहुत कुछ फीका पड़ गया था। अशोक जिस सुविस्तीर्ण साम्राज्यकी प्रतिष्ठा कर गये थे, उस विपुल साम्राज्यकी रक्षा करनेकी शक्ति उनके वंशधरोंमें थी ऐसा नहीं जान पड़ता। अशोक दूर दूरके देशोंमें शासन-निर्वाहके निमित्त राजप्रतिनिधि रख गये थे। धीरे धीरे वे अवसर पा कर स्वाधीन हो गये। मौर्यराज दशरथ जिस राजशक्तिका परिचय दे गये हैं, उनके वंशधरोंमें उसकी क्षीण-ज्योति भी पाई नहीं जाती।

चन्द्रगुप्त तथा अशोक-प्रियदर्शीने ३१५ ३१६से ले कर २१५ २१६ पर्य्यन्त साम्राज्य शासन किया। प्रियदर्शी देखो। अवदानादि बौद्धग्रन्थोंके मतानुसार अशोकके बाद १,०० वर्ष तक मौर्य्याधिकार रहा।

उदयगिरिकी हाथीगुफामें १६४ मौर्याब्दमें उत्कीर्ण खारवेलकी सुवृहत् शिलालिपिसे जाना जाता है, कि कलिङ्गपति भिक्षुराज खारवेल अपने १२वें राज्याङ्कमें (अर्थात् १६२ मौर्याब्दमें) गंगातीर आ कर मगधपतिको अपने वशमें लाया था। मगधपति उनके भयसे मथुरा भाग गये। पहले ही लिखा जा चुका है, कि वीरमोक्षके १५५ वर्ष बाद अर्थात् ३१२ पूर्व्वके [illegible] में चन्द्रगुप्तका अभिषेक हुआ था। इसी [illegible] मौर्य्याब्द आरम्भ हुआ। इस तरहसे ईसाके [illegible] पूर्व कलिंगपतिने मगध विजय किया [illegible] दूसरे धर्मोका विद्वे[illegible] पर भी [illegible] थे।

उनके प्रभावसे मगध, अंग, वंग तथा कलिंगमें जैनाचार ही प्रबल हो उठा था। वंगाधिपतिने उनके साथ वैवाहिक सम्बन्ध जोड़ लिया था। कलिंगाधिपतिने शाकपति हथीशाहकी कन्याका पाणि-ग्रहण किया था। उनके अभ्युदयकालमें कुसुम्ब क्षत्रियोंने उनकी यथेष्ट सहायता की थी। खारवेल भिक्षुराजने जिस मगधपति पर आक्रमण किया था, वे ही सम्भवतः अन्तिम मौर्य्यपति वृहद्रथ थे। भिक्षुराजके कलिंगमें प्रत्यावर्त्तन करने पर वृहद्रथ भी फिरसे अपनी राजधानीको लौट आये।

वृहद्रथकी दुर्बलता देख कर उसको राजच्युत करनेका षड्यन्त्र-पट रचा गया। बाणभट्टके हर्षचरितमें लिखा है, कि सैन्यबल परिदर्शन करानेकी छलनासे दुष्ट पुष्यमित्रने अपने स्वामी मौर्य्य वृहद्रथको मार डाला। इस तरहसे सेनापति पुष्यमित्रने मौर्य्यसिंहासन पर अधिकार जमाया। मौर्य्य-राजमन्त्री कैद कर लिये गये। पुष्यमित्रके साथ ही साथ प्रायः १७६ खृ० पूर्वाब्द शुंगराजवंशकी प्रतिष्ठा हुई।

शुङ्गाभ्युदय।

पुष्यमित्र वेदविप्रभक्त थे। ब्राह्मण-पुरोहितकी सलाहसे उन्होंने अश्वमेध यज्ञ किया था। अश्वमेध सम्पन्न कर पुष्यमित्र भारतके सम्राट् हुए थे। बहुत समय बाद वे पूर्व-भारतमें वैदिक धर्मप्रचारमें तत्पर हुए। इन्हीं पुष्यमित्रके राज्यकालमें ग्रीक नृपति मिनिन्द्र (Menander) ने मध्यमिका और साकेत विजय कर पाटलिपुत्र पर हमला किया। किन्तु वहींसे उन्हें लौट आना पड़ा। पाटलिपुत्रके पूर्व यवनोंने आगे कदम बढ़ानेका साहस न किया। बहुतेरे अनुमान करते हैं, कि उस समय यवन लोग अशोक-कीर्त्तियोंको तोड़-फोड़ गये थे। फिर बौद्धग्रन्थके अनुसार पुष्यमित्र ही अशोककी कीर्त्तिलोपके कारण थे। जो हो, यवनके आक्रमणसे मगधराज्य बहुत कुछ विपर्यस्त हो गया था। पीछे बूढ़े राजाके मरने पर [illegible] को धोखा दे कर दूसरे दूसरे राजे राज्य [illegible] करने लगे। उसके बहुकालके [illegible] मित्रदेवने अग्निमित्रको मार डाला। [illegible] अग्निमित्रके कनिष्ठ पुत्रोंको राजा [illegible] आपसमें भी अधिक दिन

यदा न था। महावीर वसुमित्र थोड़े दिनके बाद ही पैतृक सिंहासन पर बैठे। वैदिक धर्मप्रचार करनेकी इच्छासे ही वसुमित्रने दाक्षिणात्यसे वेदज्ञ विप्र मंगा कर उन्हें राजगृह प्रदान किया था। वसुमित्र और उनके परवर्त्ती अन्तक, पुलिन्दक, घोषवसु, वज्रमित्र, भागवत और देवभूमि आदि शुङ्ग राजे सभी देवविप्रभक्त थे। इस वंशने ११२ वर्ष अर्थात् ६४ खृ० पूर्वाब्द पर्यन्त राज्यका भोग करते रहे।

देवभूमि अति लम्पट और व्यसनासक्त थे। उन्हें यमपुर भेज उनके ब्राह्मणमन्त्री वसुदेवने सिंहासन अपनाया। वसुदेवसे ही कण्व या काण्वायण ब्राह्मणवंशकी प्रतिष्ठा हुई। वसुदेव, भूमिमित्र, नारायण और सुशर्मा काण्ववंशीय ये चार राजे ४५ वर्ष तक (करीब २० खृ० पूर्वाब्द पर्यन्त) पाटलिपुत्रमें अधिष्ठित थे।

शुङ्ग और काण्व शाकद्वीपी मालूम पड़ते हैं। उनके समयमें सिर्फ पूर्व-भारत ही नहीं, समूचे भारतवर्षमें सौरमत और प्रतिमापूजा प्रचलित हुई। और, भागवत, पाञ्चरात्र तथा पौराणिकोंका भी अभिनव अभ्युत्थान हुआ था।

शुङ्ग और कण्वोंके आधिपत्यकालमें ही उत्तर पश्चिम भारतमें शकजातिका अभ्युदय था।

भारतवर्ष शब्द विवरण देखो।

वसुमित्र सम्मानित राजगृहस्थित वैदिक विप्रगण वत्स, उपमन्यु, कौण्डिल्य, गर्ग, हारित, गौतम, शाण्डिल्य, भरद्वाज, कौशिक, काश्यप, वशिष्ठ, वात्स्य, सावर्णि और पराशर १४ गोत्रोंमें विभक्त थे। परवर्त्ती कालमें ये सब दाक्षिणात्य विप्रसन्तान वङ्गके नाना स्थानोंमें फैल गये थे। किन्तु वे सब भी जैन बौद्ध-प्रभावमय वङ्गकी आबहवा लगनेसे कुछ समय बाद बहुत कुछ वैदिकाचारभ्रष्ट हो गये। तभीसे वङ्गके किसी किसी अन्य प्रदेशमें मेद, कैवर्त्त आदि जातिका आधिपत्य देखा जाता है।

दाक्षिणात्यके अन्ध्र राजाओंसे राज्य छीना जाने पर काण्ववंशने उत्तर-पश्चिम भारतमें शकक्षत्रपोंका आश्रय लिया। आन्ध्रोंने पाटलिपुत्र अधिकार किया सही, पर वहांकी राजधानी उनके बसनेलायक न रही। वे यहां प्रतिनिधि छोड़ दाक्षिणात्य लौट गये। जो हो, उस समय पूर्व-भारतमें द्राविड़ीय आचार बहुत कुछ फैल गया था। किन्तु प्रतिनिधियोंके स्वार्थतासे राज्यमें अन्त-विप्लवकी सूचना हो गई, जिससे अङ्ग, वङ्ग और मगध-राज्य छोटे छोटे भागोंमें बंट कर एक एक स्वाधीन राजाओं-के हाथ पड़ गया। इस समय पश्चिम प्रदेशमें शकोंकी गोटी पूर्णरूपसे जमी हुई थी। शाकद्वीपी काण्व ब्राह्मणों के धर्मोपदेशसे शकराजे भारतीय देवविप्रपूजक और प्रजारञ्जक हो गये। प्रजाएं भी उनसे विरक्त हो गईं। इसलिये पूर्वकी ओर आधिपत्य फैलानेमें उन्हें अधिक कष्ट न भोगना पड़ा। शकोंके शुभ दिन आ पहुंचे।

१ली सदीमें शकाधिप कनिष्ठ भारत सम्राट् हुए। सारनाथके भूगर्भसे सम्प्रति महाराज कनिष्ककी जो स्तम्भलिपि आविष्कृत हुई है, उसका अनुसरण करनेसे जान पड़ेगा, कि पूर्व-भारत भी कनिष्कके साम्राज्यभुक्त हुआ था। उनके उदारनैतिक होने पर भी उनकी शिला-लिपियां उनके बौद्धधर्मानुरागकी घोषणा करती हैं। उनके प्रयत्नसे बनारसकी तरह अंग, वंग और कलिंगमें भी महायान बौद्धमत प्रचारित हुआ था।

महाराज कनिष्ककी राजधानी पुरुषपुर (वर्त्तमान पेशावर) में थी। बहुत दूर पश्चिमी सीमा पर अधि-ष्ठित रहने पर भी उन्होंने काशगर, यारकन्द, खोतन आदि मध्य एशियाके सुदूर उत्तर प्रदेशसे दक्षिणमें विन्ध्याद्रि तथा पूर्वमें अंग-वंग-कलिंग तक आधिपत्य फैलाया था। 'धर्मपिटक-सम्प्रदायनिदान' नामक बौद्ध-ग्रन्थके मतसे महाराज कनिष्क पाटलिपुत्र आये और वहांके राजाको जीत कर बौद्धधर्माचार्य बौद्धघोषको ले गये। सम्प्रति सारनाथसे वहांकी समतल भूमिसे दश हाथ मिट्टीके नीचे सम्राट् कनिष्ककी शिलालिपि और कीर्त्ति बाहर हुई है। इस शिलालिपिसे पता चलता है, कि उस समय वाराणसी प्रदेश महाराज कनिष्कके अधीन खरपल्लल नामक एक (शक) क्षत्रपके शासनाधीन था। पाटलिपुत्रका प्राचीन भूगर्भ रीतिमत खोदा जाने पर सारनाथकी तरह सुप्राचीन कनिष्क-कीर्त्ति निकल सकती है। तब हम लोग जान सकेंगे, कि पूर्व-भारतमें उनके अधीन कौन क्षत्रप (Satrap) आधिपत्य करते थे।

कनिष्कके प्रभावसे ही शक, यवन, पारद और भारतीय भास्कर्य-शिल्पका समीकरण हुआ। सम्राट् अशोकके समय केवल भारतमें ही क्यों, सुदूर मध्य एशिया और यूरोपमें बौद्धधर्मका प्रचार होने पर भी बुद्धदेवकी कोई प्रतिमा प्रतिष्ठित न हुई। अशोकके समय बुद्ध प्रतिमा-पूजाकी आवश्यकता भी किसीने हृदयङ्गम नहीं किया। पहले लिखा जा चुका है, कि शाकद्वीपीय मगोंने ही भारतमें देवप्रतिमा निर्माण कर प्रचार किया था। इस प्रथाके अनुवर्त्ती हो कर महायान मत प्रचारके साथ शाक्यसिंह बुद्धकी लीलाविषयिणी नाना प्रतिमा गढ़ कर भारतके नाना पुण्य स्थानोंमें प्रतिष्ठित करने लगे। उन सब अपूर्व भास्कर शिल्पोंका निदर्शन भारतके नाना स्थानोंसे ही आविष्कृत हुआ है। उन सब शिल्पनैपुण्यको देखकर भारतीय शिल्पिगण सभ्यजगत्‌के प्रशंसा-भाजन हो गये हैं।

कनिष्क जो महायान मत प्रचार कर गये, समय पा कर वह संशोधित और परिवर्त्तित हो तान्त्रिक बौद्ध धर्मकी सृष्टि हुई थी। एक दिन समस्त बङ्गदेश इस तान्त्रिक बौद्ध सागरमें डूब गया था, यह बात पीछे लिखी जायगी।

महाराज कनिष्कके बाद उनके पुत्र हुविष्क या हुष्क सिंहासन पर बैठे। पेशावरसे ले कर पूर्व बङ्ग पर्यन्त उनके कब्जेमें था। नाना स्थानोंसे उनकी जो शिलालिपि और मुद्रालिपि निकली है, उससे बोध होता है, कि उन्होंने पितासे अधिक समय तक साम्राज्य शासन किया था। उनके समयमें भी शासन करनेके लिये पाटलिपुत्रमें उनके अधीन एक क्षत्रप अधिष्ठित थे।

हुविष्कके पुत्र शकाधिप वसुदेव या वासुदेव थे। उन्होंने ७४ से ले कर ९८ शकाब्द तक साम्राज्यका भोग किया था। उनकी मुद्रामें शिव, त्रिशूल और नन्दिमूर्त्ति अंकित थी, इसलिये शैव नरपति कहलाते थे। कनिष्क जो सुविस्तीर्ण साम्राज्यका पत्तन कर गये, वसुदेवके समय उसके ध्वंसका सूत्रपात हुआ। सम्भवतः उनके अन्य धर्म ग्रहण करने पर उनके अधीन दूर देशवासी क्षत्रगण विरक्त हो कर सभी स्वाधीन हो गये। उनमेंसे उज्जयिनीपति रुद्रदाम प्रधान थे। उन्होंने थोड़े ही समयके बीच अवन्ती, अनूप, नीवृत्, आनर्त्त, सुराष्ट्र, श्वभ्र, मरुकच्छ, सिन्धु, सौवीर, कुकुर, अपरान्त, निषाद आदि जनपद अधिकार कर महाक्षत्रपकी उपाधि ग्रहण की। पाटलिपुत्रके क्षत्रप भी उनके अनुवर्त्ती हुए थे। इस राजद्रोहिताके समय पाटलिपुत्रके निकट लिच्छविगण प्रबल हो उठे। अङ्ग-वङ्गके सामन्तराजोंने भी स्वाधीनता अवलम्बन की। उत्तर-पश्चिम सीमान्तमें पारसिक शासनवंश सर उठाने लगे। और कहना क्या, वसुदेवकी मृत्युके साथ उत्तर-भारतीय शकसाम्राज्य ध्वंस हो गया तथा आभीर, गर्द्दभिल्ल, लिच्छवि, नाग, हैहय आदि जातियोंने नाना स्थान अधिकार कर छोटा छोटा राज्य कायम किया। क्षत्रप नाम उत्तर-भारतसे विलुप्त हो गया।

२री सदीके शेष भागमें लिच्छवियोंने पाटलिपुत्र दखल किया। दुःखका विषय है, कि उनका इतिहास लिखनेका उपकरण आज तक भी बाहर नहीं हुआ है। पूर्व भारतके नाना स्थानोंमें कर्त्तृत्वस्थापनमें प्रयासी सामन्तों द्वारा अन्तर्विद्रोह उपस्थित हुआ जिससे अनेक राजकुमार स्वदेश परित्याग कर सुदूर कम्बोज (वर्त्तमान कम्बोडिया), चम्पाद्वीप (अण्णाम्) और यवद्वीप चले गये तथा नवजित कम्बोज आदि स्थानमें शैव और ब्राह्मकीर्त्ति प्रतिष्ठित की। सैकड़ों वर्ष बीत चला, आज भी वह सब हिन्दूकीर्त्ति विद्यमान है।

३री सदीमें मध्यभारतमें त्रैकूटक या हैहयवंश प्रबल हो उठे। इस वंशके ईश्वरदत्त २४९ ई०में उज्जयिनीके क्षत्रपोंको परास्त कर चेदि या कलचुरि-संवत् चलाये। उनके अभ्युदयसे हैहयोंने अङ्गवङ्ग दखल करनेकी चेष्टा की; किन्तु उनका उद्देश्य व्यर्थ हो गया। ३री सदीके शेष भागमें गुप्त और उनके लड़के घटोत्कच नामक दो सामन्त-महाराज मगधमें प्रबल हो उठे। घटोत्कचके पुत्र १म चन्द्रगुप्तने लिच्छवि राजकन्या कुमारदेवीसे ब्याह कर पाटलिपुत्रका सिंहासन पाया। थोड़े ही दिनोंमें वे आर्यावर्त्तके सम्राट् हो गये। गुप्त राजवंश देखो।

कर्णसुवर्ण (मुर्शिदाबाद जिलेकी रांगामाटी) और उसके निकटवर्त्ती प्राचीन ईंटके स्तूपमें समय समय पर यहांके गुप्तराजाओंको स्वतन्त्र प्रचलित बहुत स्वर्णमु-

बाहर हुई है। उससे रविगुप्त, जयमहाराज, नरगुप्त, प्रकटादित्य, क्रमादित्य, विष्णुगुप्त आदि नाम मिलते हैं। इन सब गुप्त राजाओंमेंसे किसने तथा कब राजत्व किया, इसके जाननेका उपकरण आज तक भी बाहर नहीं हुआ है। उनमेंसे नर गुप्त या शशाङ्क नरेन्द्र गुप्तका नाम इतिहासमें प्रसिद्ध है। ये एक घोरतर बौद्धविद्वेषी थे।

शूरवंशका अभ्युदय।

देवगुप्तके समयमें ही उत्तर राढ़में या कर्णसुवर्णमें आदिशूरका अभ्युदय हुआ। आदिशूरका असल नाम था जयन्त। ये रविशूरके पौत्र और माधवशूरके पुत्र थे। उन्होंने थोड़े ही समयमें पौण्ड्रवर्द्धन जय करके वहां राजधानी कायम की और ६५४ शकमें या ७३२ ई०में यथारीति अभिषिक्त हुए।

महाराज आदिशूरके अभ्युदय कालमें उनके अधिकारमें नानाविध निरग्निक तथा जैन अथवा बौद्धभावापन्न ब्राह्मणका वास था। उनमेंसे राढ़देशवासी सप्तशती ब्राह्मण लोग ही प्रधान थे।

जब तक आदिशूर जीवित रहे, तब तक कनोजागत वैदिक ब्राह्मणोंने गौड़मण्डलमें वैदिकधर्म-प्रचारमें सुयोग और सुविधा पाई थी। उनके मरनेके समय पश्चिमोत्तर गौड़में और मगधमें बौद्ध लोगोंने मिल कर वप्यटके पुत्र गोपालको अभिषिक्त किया एवं उनके द्वारा फिरसे बौद्धप्राधान्य स्थापनका आयोजन होने लगा। किन्तु जब तक आदिशूर जीवित रहे, तब तक वे कुछ भी न कर सके। पालराजवंश देखो।

पूर्व वङ्गमें वर्मवंश।

सेनपति राजेन्द्र चोलके आक्रमणसे पूर्व वङ्ग हीनबल हो गया। इस समय विक्रमपुरमें वर्म वंश का अभ्युदय था। वर्म-वंशीय किन भूपतिने सर्वप्रथम पूर्व-वङ्ग अधिकार किया, अभी तक मालूम नहीं। इस वंशमें हरिवर्मदेव नामक एक प्रबल-पराक्रान्त वैष्णव नृपतिका इतिहास मिला है। शिलालिपि, ताम्रशासन और वैदिक कुल-ग्रन्थमें इस नरपालकी कीर्त्ति और परिचय विवृत हैं।

सेन-राजवंश।

महाराज हरिवर्मदेवका प्रभाव गंगाके उत्तरी किनारेमें नहीं फैला। उत्तरराढ़ और गंगाके परपारस्थ वरेन्द्रसे लेकर गया पर्यन्त उस समय भी बौद्धाधिकार चलता था। राजेन्द्रचोलके राढ़देश पर आक्रमणकालमें दक्षिणापथके बहुसामन्त राजाओंने उनका बल बढ़ाया था। राजेन्द्र-चोलके लौटने पर सभी सामन्त उनके अनुगामी हुए थे, ऐसा बोध नहीं होता।

अधिक सम्भव महाराज हरिवर्मदेवकी मृत्यु होने पर समूचे राढ़वङ्गमें अराजकता फैल गई। ऐसा सुयोग पा कर सामन्तसेन-पुत्र हेमन्तसेन राढ़देश पर कब्जा कर बैठे। इनके बाद उनके पुत्र विजयसेन। विजयसेनके पुत्र बल्लालसेन और बल्लालके पुत्र लक्ष्मणसेन आदि प्रसिद्ध राजाओंने राज्य किया। इनका विस्तृत विवरण इन्हीं सब शब्दोंमें देखो।

बङ्गालमें मुसलमान-प्रभाव।

ईस्वीसन् १२०३ से यथार्थमें बंगालमें मुसलमान-शासन आरम्भ हुआ। तभीसे उन लोगोंने इस देशमें अपनी बस्ती कायम कर रखी है। उस समयसे ले कर अङ्गरेज कर्तृक बंगालकी दीवानी लेनेके समय प्रायः ५६२ वर्ष तक मुसलमान लोग इस देशमें राजत्व कर गये हैं।

महम्मद-ई-बख्तियार खिलजी घोरके एक वजीर थे। सुलतान गयासुद्दीन महम्मद शाहके समय वे गजनी आये। वहां कुछ दिन रह कर वे भारतवर्ष पहुंचे एवं मालिक मुर्वाजम हिसाम उद्दीनके यहां नौकरी करने लगे। वे सुलतान शाहब उद्दीनके एक प्रसिद्ध सदस्य थे। तदनन्तर ११९९ ई०में उन्होंने बंगाल पर हमला कर १२०३ ई०में राढ़ और वारेन्द्र नामक प्रदेश जीत लिया।

महम्मद-ई-बख्तियार खिलजीसे आरम्भ करके कादर खाँके शासन समय तक बंगाल दिल्ली-साम्राज्यभुक्त था। उस समय दास, खिलजी और तुगलकवंशीय दिल्लीश्वर-गण अपने अपने प्रतिनिधिके द्वारा बंगालका शासन करते थे। किन्तु सुलतान फकर उद्दीनके समय बंगाल दिल्लीकी अधीनता तोड़ स्वाधीन हो गया। यह १३४० ई०की बात है। उन्होंने बंगाल-राज्यको समग्र शासनशक्ति अपने हाथ कर अपनेको बादशाह कह कर घोषणा की। जब तक अकबर बादशाह दायुदको पराजित न कर १५७६ ई०में बंगालकी स्वाधीनता हरण की,

तब तक बंगालकी पठान जातिका सम्पूर्ण प्रताप और अपरिसीम शक्तासार सकुचित विलम्बे सहसा पड़ा था। कवि बाहिनोंमें यह विशेषरूपसे लिखा गया है।

दिल्लीके अधीनस्थ बंगालके पठान शासनकर्त्ता।

ईस्वीसन	हि० स०	बङ्गेश्वर	सामयिक दिल्लीश्वर
११९९	५९५	महम्मद-ई-बख्तियार खिलजी (लक्ष्मणावती)	शाहबुद्दीन घोरी
१२०५	६०२	महम्मद शिरान खिलजी	कुतबुद्दीन आइबक
१२०८	६०५	अली मर्दन खिलजी	"
१२११	६०८	सुलतान गयासुद्दीन	अल्तमश
१२२७	६२४	नासीरुद्दीन अल्तमस	"
१२२९	६२७	अलाउद्दीन जानी	"
१२२९	६२७	सैफउद्दीन आइबक	"
१२३३	६३१	तुगान खाँ	सुलताना रजिया
१२४३	६४१	माजी	अलाउद्दीन मसाउद
१२४४	६४२	तैमूर खाँ किरान	"
१२४४	६४२	मालिक युजबेग तुग्रिल खाँ	"
१२४६	६४४	सैफउद्दीन	"
१२५३	६५१	इख्तियार उद्दीन मालिक युजबेग	"
१२५७	६५६	जलाल उद्दीन मसाउद	नासीरुद्दीन महम्मुद
१२५८	६५७	इज्ज उद्दीन बलबन	"
१२५९	६५८	अरसालन खाँ कराकिलिजी	"
१२६०	६५९	अरसालन तातार खाँ	"
१२७७	६७६	तुग्रल (मोइजउद्दीन)	गयासुद्दीन बलबन
१२८२	६८१	नासीरुद्दीन बघरा खाँ (बलबनका पुत्र)	"
१२९१	६९१	रुकनउद्दीन कैकाउस	जलाल उद्दीन फीरोजशाह खिलजी, अलाउद्दीन खिलजी।
१३०२	७०२	शामसउद्दीन	फिरोजशाह "
१३१८		शाहबउद्दीन बघराशाह	मुबारकशाह
		गयासुद्दीन बहादुरशाह	तुगलकशाह
		नासीरुद्दीन	महम्मद तुगलक
१३२५	७२५	कादर खाँ	"

बंगालके स्वाधीन पठान नरपति।

ईस्वीसन	हि० स०	बङ्गेश्वर	सामयिक दिल्लीश्वर
१३३६	७४०	फकरुद्दीन मुबारक शाह	महम्मद तुगलक
१३४१	७४२	अलाउद्दीन आलीशाह (गौड़)	"
१३४२	७४३	इलयास शाह (गौड़)	"
१३४६		गाजी शाह (पूर्वबङ्ग)	"
१३५२	७५३	इलयास शाह (सर्व बङ्ग)	फिरोजशाह
१३५६	७५८	सिकन्दर शाह	"
१३६८	७६९	गयासुद्दीन शाह (पूर्व बङ्ग)	"
	७९५	" (सर्वबङ्ग)	
१४१०	८१३	सैफ उद्दीन बिन गयासुद्दीन हामजा	महम्मद शाह
१४१२	८१५	शाहब उद्दीन बयाजिदशाह	महमूद शाह
१४८०	७८७	राजा गणेश	-
१४१५	८२१	जलाल उद्दीन महम्मद शाह बिन गनशा	खिजिर खाँ
१४३१	८३५	अहमदशाह बिन जलाल	मुबारक शाह
१४४८	८५०	नासिरुद्दीन महमूद शाह	आलम शाह
१४५७	८६२	बार्बक शाह	बहलोल लोदी
१४७४	८७९	युसुफ शाह बिन बार्बक	"
१४८२	८८७	सिकन्दर शाह	"
१४८२	८८७	फते शाह	"
१४९१	८९६	सुलतान शाहजादा	"
१४९२	८९७	सैफउद्दीन फिरोजशाह हबसी	"
१४९४	८९९	नासीरुद्दीन महमूद	सिकन्दर
१४९५	९००	मुजफ्फर शाह हबसी	"
१४९८	९०३	अलाउद्दीन सैयद हुसेन शाह	"
१५२१	९२७	नसरत शाह	इब्राहिम और बाबर
१५३२	९३९	फिरोज शाह ३य	हुमायूँ
१५३४	९४०	महमूदशाह बिन हुसेन शाह (यही बङ्गालके शेष स्वाधीन नरपति थे)	
१५३७	९४४	फरीद उद्दीन शेरशाह	"

१५३८	९४५	हुमायूँ—इन्होंने गौड़ या जन्नतावाद-में राज-पाट किया था।	
१५३९	९४६	शेरशाह (पुनः)	
१५४५	९५२	महम्मद खाँ	

सूरवंशके अधीन शासनकर्त्ता।

ईस्वीसन्	हि० अ०	वंगेश्वर	सामयिक दिल्लीश्वर
१५५५	९६२	खिजिर खाँ बाहादुर शाह	शेरशाह
		महम्मद शूर	सलीम शाह
१५५५	९६२	बहादुर शाह	महम्मद आदिली
१५६१	९६८	जलाल उद्दीन बिन महम्मद	"
१५६४	९७१	सुलेमान करानी	"
१५७३	९८१	बाजिद बिन सुलेमान	"
१५७३	९८१	दाउद खाँ बिन सुलेमान अकबरके सेनापति मुनाइम खाँने इसे मुगल पदानत किया।	

मुगल सम्राट्के अधीनस्थ बंगालके शासनकर्त्ता।

ईस्वीसन्	हि० अ०	वंगेश्वर	सामयिक दिल्लीश्वर
१५७६	९८४	खाँ जहान	अकबर
१५७९	९८७	मुजफ्फर खाँ	"
१५८०	९८८	राजा टोडर मल्ल	"
१५८२	९९०	खाँ अजीम	"
१५८४	९९२	शाहबाज खाँ	"
१५८९	९९७	राजा मान सिंह	"
१६०६	१०१५	कुतबुद्दीन कोकलतास	जहाँगीर
१६०७	१०१६	जहाँगीर कुली	"
१६०८	१०१७	सेख इसलाम खाँ	"
१६१३	१०२२	कासिम खाँ	"
१६१८	१०२८	इब्राहिम खाँ	"
१६२२	१०३२	शाहजहान	"
१६२५	१०३३	खानजाद खाँ	"
१६२६	१०३५	मकरम खाँ	"
१६२७	१०३६	फिदाई खाँ	"
१६२८	१०३७	कासिम खाँ जबुनी	शाहजहाँ
१६३२	१०४२	आजिम खाँ	"
१६३७	१०४८	इसलाम खां मसहदी	"
१६३९	१०४९	सुलतान सुजा	"
१६६०	१०७०	मीर जुमला	औरङ्गजेब
१६६४	१०७४	साइस्ता खाँ	"
१६७७	१०८७	फिदाई खाँ	"
१६७८	१०८८	सुलतान महम्मद आजिम	"
१६८०	१०९०	साइस्ता खाँ	"
१६८९	१०९९	इब्राहिम खाँ २य	"
१६९७	११०८	आजिम उससान	"
१७०४	१११६	मुर्शिद कुली खाँ	"
१७२५	११३९	सुजा उद्दीन खाँ	महम्मद शाह
१७३९	११५१	अला उद्दौला सरफराज खाँ	"
१७४०	११५३	अलीवर्दी खाँ महब्बत जंग	"
१७५६	११७०	सिराजुद्दौला	आलमगीर
१७५७	११७१	मीरजाफर अली खाँ	"
१७६०	११७४	कासिम अली खाँ	शाह आलम
१७६३	११७७	मीरजाफर अली खाँ	"
१७६५	११७९	नजीम उद्दौला	"

इन सब राजाओंका विस्तृत विवरण इन्हीं शब्दोंमें देखो।

१७६५ ई०के जनवरी महीनेमें जब मीरजाफरकी मृत्यु हुई, तब उनके पुत्र नजीम उद्दौलाने अङ्गरेज-कम्पनीसे सन्धि कर ली और अङ्गरेजोंके हाथ बङ्गराज्यका शासनभार सौंप दिया। वे नाममात्रके नवाब-नाजिम पदाभिषिक्त रहे। बङ्गालके फौजदारी और दीवानी विचारका परिदर्शनभार उनके ऊपर न रहा; उन्होंने वास्तवमें विचार-विभागका व्यवस्थापकत्व और सर्वमय कर्त्तृत्व खो दिया। उनके अधीनस्थ एक दीवानकी देखरेखमें निजामतका कार्य्य चलने लगा। अयोध्याके वजीर सुजाउद्दौलाके पराभवके बाद अंगरेज-कम्पनीने इलाहाबाद और कोड़ा प्रदेश दिल्लीके बादशाह-

थे। उन्होंने पहले इनके बदले बङ्गाल, बिहार और उड़ीसाकी दीवानी सनद पाई। उसमें नवाब 'नाजिम'की निजामत-खर्चके लिये वार्षिक ५३८६१३१) रु० वृत्ति स्थिर हुई थी। अंगरेजोंने उसी सूत्र पर मुर्शिदाबादके नवाबोंको यह वृत्ति देना चाहा। पीछे अङ्गरेजको कृतज्ञतामें पड़ गई। भारतमें इसी समयसे अङ्गरेज-कम्पनी बङ्गालकी यथार्थ शासनकर्त्ता हुई थी। निजामत सनद-से उपलब्धियोंको बङ्गालके परवर्त्ती नवाब नाजिमोंकी पेंशन-तालिका नीचे दी गई है,—

मुर्शिदाबादी बंगालका नवाबवंश।

१७६५ नजम उद्दौला—मीरजाफरके पुत्र। १७६६ ई०की ८वीं मईको इनका स्वर्गवास हुआ। इन्होंने दीवान अङ्गरेज कम्पनीसे सालाना ५३८६१३१) रुपयेकी वृत्ति पाई थी।

१७६६ सैफ उद्दौला—मीरजाफरके २य पुत्र। इनकी मृत्यु १७७० ई०की १०वीं मार्चको हुई। इनके समय वार्षिक वृत्ति घटा कर ४१८६१३१) रुपया कर दी गई थी।

१७७० मुबारक उद्दौला—मीरजाफरके ३य पुत्र। १७९३ ई०के सितम्बर महीनेमें ये परलोकवासी हुए। इन्हें ३१८१९९१) रु० वृत्ति मिलता था। इनके ही समयमें १७७२ ई०को उक्त वृत्ति घटा कर सालाना १६ लाख रु० कर दी गई थी। यह घटती आज तक भी चली आती है।

१७९३ नासिर उल मुल्क नजीर उद्दौला दिलावरजंग—मुबारकके पुत्र। १८१० ई०के अप्रैल महीनेमें इनकी मृत्यु हुई।

१८१० सैयद जैन उद्दीन अली खाँ उर्फ अली जाह—नासिर उल्मुल्कके पुत्र।

१८२१ सैयद अहमद अली खाँ उर्फ वालाजाह—अली जाहके भाई। १८२४ ई०की ३०वीं अक्तूबर-को ये मृत्युमुखमें पतित हुए।

१८२४ सैयद मुबारक अली खाँ उर्फ हुमायूं जाह—वालाजाहके पुत्र।

१८३८ फरीदूं जाह सैयद मन्सूर अली खाँ नासरत जंग—हुमायूं जाहके पुत्र। ये नाना कारणोंसे गद्दी छोड़ कर इंगलैण्ड चले गये।

इस समय अङ्गरेज-गवर्नमेण्टके उन्हें अप्रसन्नताका कारण नाराज होने पर, ये वार्षिक लाख रुपया मुशाहरा और कर्ज चुकानेके लिये दस लाख रुपये पानेकी आशासे १८८० ई०की १ली नवम्बरको निजामतकी नवाब नाजिम पदवी त्याग करनेमें राजी हुए। १८८२ ई०में उनके बड़े लड़के सैयद हसन अली खाँने सनद द्वारा मुर्शिदाबादके नवाब बहादुरकी उपाधि पाई। १८९१ ई०की १७वीं मार्चको नवाब सर सैयद हसन अली खाँ बहादुर जी. सी. आई. ई. ने १८८० ई०की १ली नवम्बरको अपने पिताके नवाब नाजिम पदत्यागानुसार नाजिम और सोहदार पदके हुए सेक्रेटरी आफ स्टेटके इच्छानुसार अपना मनोरथ प्रकट किया। उसी वर्षमें उनकी गद्दीकी रक्षाके तात्पर्य-को सर्वसम्मत भारत-प्रतिनिधि द्वारा (by the Council of his Excellency the Viceroy and Governor General of India) १८९१ ई०की १५ नं० राजविधि (Act XV of 1891)-में यह निर्दिष्ट और परिपुष्ट हुआ। यह मर्यादा स्थापन कर उन्होंने उसके बदले गवर्नमेण्टसे एक वंशानुक्रमिक वार्षिकवृत्ति एवं मुर्शिदाबाद, कलकत्ता, मेदिनीपुर, ढाका, मालदह, पूर्णिया, पटना, रङ्गपुर, हुगली, राजशाही, वीरभूम और नाना स्थानोंमें बहुत सी निर्दिष्ट आयकी भूसम्पत्ति पाई थी। इनके पांच पुत्र थे,—आमदुल कादर सैयद वासिफ अली मीर्जा, इस्कन्दर कादर सैयद नासिर अली मीर्जा, आसफ कदर मीर्जा, सैयद वाहद अली मीर्जा और सईद अली मीर्जा।

अंगरेजोंका अभ्युदय।

बंगालमें वाणिज्य करनेके अभिप्रायसे अंगरेज ईष्ट इण्डिया कम्पनी सप्तदश शताब्दीमें बंगालकी ओर बढ़ी। १६१५ ई०में सर टामस रो-ने मुगल-सम्राट् जहांगीरसे अनुमतिसे वाणिज्य करनेका आदेश लिया। १६५० ई०में बंगालके मुगल-प्रतिनिधि शाहशुजा ने पहले शासनकर्त्ताकी कम्पनीको पटनेमें कारबार करनेके लिये कोठी खोली। अर्थात् क्रमशः बंगालमें अंगरेज कोठियां स्थापन करने लगे।

वारी लोगोंने किस तरह अपनी कोठीकी रक्षाके लिये सैन्य इकट्ठा किया था, इतिहास-पाठक यह अच्छी तरह जानते होंगे। १६४० ई०में हुगली नगरमें एवं १६४२ ई०में बालेश्वरमें कोठी खोली गई। १६४५-४६ ई०में सम्राट् शाहजहांके आनुकूल्य और डा० सार्जन ग्रेवियल वाउटन-की प्रार्थनासे हुगलीमें अंगरेज-वणिक्-सम्प्रदायकी कोठी जम गई। तभीसे उक्त कम्पनी अपनी अधिकाररक्षा में विशेष यत्नवान् हुई। क्योंकि इस समय प्रतिद्वन्द्वी ओलन्दाज, दिनेमार, फरासी, जर्मन आदि विभिन्न वणिक्सम्प्रदायके साथ प्रतिपक्षता कर अंगरेजोंको अपनी स्वार्थरक्षा करनी पड़ी थी। इस समय अंगरेजोंने अपनी वाणिज्य-कोठी अच्छी तरह चलानेके लिये एक एक एजेंट नियुक्त किया।

अंगरेज कम्पनीको इस प्रभाववृद्धिके साथ साथ डिरेकृरके आदेशसे एजेंटके बदले एक एक गवर्नर रखना पड़ा था। १६९० ई०में जाव चार्नक कलकत्तेमें रहे। १६९२ ई०में उनकी मृत्यु हो गई। इस साल हुगलीसे कलकत्तेमें अङ्गरेज कम्पनीकी एजेंसी उठा कर लाई गई थी। १८९६ ई०में औरङ्गजेबके लड़के आजिम उसमान बंगाल-के शासनकर्त्ता हुए। १६९८ ई०में उन्होंने अङ्गरेजकम्पनी-को कलकत्ता और तत्सन्निहित दो गांव दे कर वहांकी प्रजाओंके दोष-गुणका न्यायविचार करनेका क्षमता दी। उनके ही आदेशसे उक्त वर्षमें कलकत्तेमें "फोर्टविलियम" किलेको नींव डाली गई। अंगरेज गवर्नर ड्रेकके विसदृश आचरणसे विरक्त हो कर नवाब सिराजुद्दौलाने १७५६ ई०में कलकत्ते पर हमला कर दिया और विजय पाई। दूसरे वर्ष मद्राससे आ कर कर्नल क्लाइवने कलकत्ता फिर मुसलमानोंके हाथसे छीन लिया। १७५७ ई०के जून महीनेमें सिराजको गद्दीसे उतार दिया और उन्हें निहत कर क्लाइवने मीरजाफर अली खांको बंगालके सिंहासन पर विठाया। यहींसे अंगरेज-कम्पनीके राजत्वका सूत्रपात हुआ। मीरजाफर अंगरेजोंके अभिमतसे बंगालका शासन करनेमें पराङ्मुख हुए, तब मीरकासिम अलीको बंगालका शासन-भार दिया गया। कासिम अलीके अंगरेजद्वेषी होनेसे उन्हें पदच्युत कर पुनः मीरजाफरको वङ्ग सिंहासन पर विठाया गया। १७६५ ई०में मीरजाफरकी मृत्यु हो गई। पीछे उनके लड़के नजम उद्दौलाको बंगालकी मसनद पर अभिषिक्त किया गया था। उक्त सालके जून महीनेसे नजम अंगरेज कम्पनीके वृत्तिभोगी हुए। इस सालकी १२वीं अगस्तको मुगल-सम्राट्ने क्लाइवको जागीरस्वरूप वङ्गाल, विहार और उड़ीसाकी दीवानी दी। यह दीवानी सनद ही बंगालके अंगरेज राजत्वकी प्रधान और प्रथम दलाल हुई। तभीसे अंगरेज लोग ही बंगालके प्रकृत शासनकर्त्ता हो गये एवं मुर्शिदाबादके नवाबवंश अंगरेजोंसे वृत्ति पाने लगे। पूर्वोक्त तालिकामें बहुत संक्षेपसे इन प्रतिभाशाली नवाबवंशका परिचय दिया गया है।

ईष्ट-इंडिया कम्पनीके अधीनस्थ बंगालके एजेंट।

नाम	कार्य्यग्रहणकाल।
मि० राल्फ कार्टराइट	१६३२
„ जडेस	...
„ थार्ड	...
कैपटेन जान ब्रुकाभेन	१६५०
मि० जेम्स ब्रिजमेन	...
„ पाल वालडे ग्रेभ	१६४३
„ जार्ज गवटन	१६५३
„ जोनाथान त्रेविशा	१६५८
„ विलियम ब्लेक	१६६३
„ शेम ब्रिजेस	१६५६
„ वाल्टर क्लोवेल	१६७०
„ माथियस भिंसेंट	१६७७

बंगालके गवर्नर।

मि० विलियम हेजेस	१६८२ जुलाई
„ „ गिफोर्ड	१६८४ अगस्त
सर एडवार्ड लिटलटन	१६९९ जुलाई
„ चार्लस आयर	२६वीं मई १७००
मि० जान वीयार्ड	७वीं जनवरी १७०१
„ आण्टनी वोयेंटडेन	२०वीं जुलाई १७१०
„ जान रासेल	४थी मार्च १७११
„ रावर्ट हेजेस	३री दिस० १७१३
„ सामुएल फिक	१२वीं जन० १७१८

को उपढौकनमें दे कर उसके बदले बङ्गाल, बिहार और उड़ीसाकी दीवानी सनद पाई। उसमें नवाब 'नाजिम'को निजामत-रक्षाके लिये वार्षिक ५३८६१३१) रु० वृत्ति स्थिर हुई थी। अंगरेजोंको उसी सूत्र पर मुर्शिदाबादके नवाबोंको यह वृत्ति देनी पड़ी। पीछे अङ्गरेजकी कूटनीतिमें यह घट गई। वास्तवमें इसी समयसे अङ्गरेज कम्पनी बङ्गालकी यथार्थ शासनकर्त्ता हुई थी। निजामत मसनद-में उपस्वभोगी बङ्गालके परवर्ती नवाब नाजिमोंकी वंश तालिका नीचे दी गई है,—

वृत्तिभोगी बंगालका नवाबवंश।

१७६५ नजीम उद्दौला—मीरजाफरके पुत्र। १७६६ ई०-को ३री मईको इनका स्वर्गवास हुआ। इन्होंने दीवान अङ्गरेज कम्पनीसे सालाना ५३८६१३१) रु०की वृत्ति पाई थी।

१७६६ सैफ उद्दौला—मीरजाफरके २य पुत्र। इनकी मृत्यु १७७० ई०को १०वीं मार्चको हुई। इनके समय वार्षिक वृत्ति घटा कर ४१८६१३१) रु०का कर दी गई थी।

१७७० मुबारक उद्दौला—मीरजाफरके ३य पुत्र। १७९३ ई०के सितम्बर महीनेमें ये करालकाल-कवलमें पतित हुए। इन्हें ३१८१९९१) रु० वृत्ति मिलती थी। इनके ही समयमें १७७२ ई०को उक्त वृत्ति घटा कर सालाना १६ लाख रु० कर दी गई थी। यह घटती आज तक भी चली आती है।

१७९३ नासिर उल मुल्क मबारक उद्दौला दिलावरजंग—मुबारकके पुत्र। १८१० ई०के अप्रेल महीनेमें इनकी मृत्यु हुई।

१८१० सैयद जैन उद्दीन अली खां उर्फ बाबर जाह—नासिर उल् मुल्कके पुत्र।

१८२१ सैयद अहमद अली खां उर्फ वालाजाह—बाबर जाहके भाई। १८२४ ई०को ३०वीं अक्तूबर-को ये मृत्युमुखमें पतित हुए।

१८२४ सैयद मुबारक अली खां उर्फ हुमायूं जाह—वाला जाहके पुत्र।

१८३८ फरीदून जाह सैयद मनसुर अली खां नसरत जंग—हुमायूं जाहके पुत्र। ये नाना कारणोंसे पदच्युत कर इंगलैण्ड भेज दिये गये।

इस समय अङ्गरेज-गवर्नमेण्टके उन्हें अर्थसाहाय्य करनेमें स्वीकृत होने पर, वे वार्षिक लाख रुपया मुसहरा और ऋण तोड़नेके लिये दश लाख रुपये पानेकी आशासे १८८० ई०-को १ली नवम्बरको निरपेक्षित नवाब नाजिम मर्यादा त्याग करनेमें स्वीकृत हुए। १८८२ ई०में उनके लड़के सैयद हसन अली खांने सनद द्वारा मुर्शिदाबादके नवाब बहादुरकी उपाधि पाई। १८९१ ई०को १२वीं मार्चको नवाब सर सैयद हसन अली खां बहादुर जी. सी. आई. ई.ने १८८० ई०को १ली नवम्बरको अपने पितृकृत नवाब-नाजिम पदत्यागाङ्गीकार साबित और मंजूर करते हुए सेक्रेटरी आव ष्टेट्सके इंडेनचरमें अपना मतलब प्रकट किया। उसी वर्षके उसी महीनेकी २१वीं तारीख-को सकौंसिल भारत-प्रतिनिधि द्वारा (by the Council of his Excellency the Viceroy and Governor General of India) १८९१ ई०को १५ नं० राजविधि (Act XV of 1891)-में यह स्थिरीकृत और परिगृहीत हुआ। यह मर्यादा त्याग कर उन्होंने उसके बदले अङ्गरेजराजसे एक वंशानुक्रमिक वार्षिकवृत्ति एवं मुर्शिदाबाद कलकत्ता, मेदिनीपुर, ढाका, मालदह, पूर्णिया, पटना, रङ्गपुर, हुगली, राजशाही, वीरभूम और सन्थाल परगनेमें बहुत-सी निर्दिष्ट आयकी भूसम्पत्ति पाई थी। इनके पांच पुत्र थे,—आसफ कादर सैयद, वासिफ अली मीर्जा, इस्कान्दर कादर सैयद नासिर अली मीर्जा, आसफ अली मीर्जा, सैयद यासुब अली मीर्जा और महविन् अली मीर्जा।

अंगरेजोंका अभ्युदय।

बंगालमें वाणिज्य करनेके अभिप्रायसे अंगरेज ईष्ट-इण्डिया कम्पनी मद्रासके समुद्रकी राहसे बंगालकी ओर चली। १६१४ ई०में सर टामस रो-को मुगल-सम्राट् जहांगीरके अनुग्रहसे वाणिज्य करनेका आदेश मिला। १६२० ई०में बंगालके मुगल-प्रतिनिधि इब्राहिम खां फते जङ्गके शासनकालमें कम्पनीने पटनेमें कपड़ा देनेके लिये कोठी खोली। तभीसे क्रमशः बंगालमें अनिवार्य भावसे अंगरेजोंका प्रभाव फैलने लगा। कम्पनीके गमां

वारी लोगोंने किस तरह अपनी कोठोकी रक्षाके लिये सैन्य इकट्ठा किया था, इतिहास-पाठक यह अच्छी तरह जानते होंगे। १६४० ई०में हुगली नगरमें एवं १६४२ ई०में बालेश्वरमें कोठी खोली गई। १६४५-४६ ई०में सम्राट् शाहजहांके आनुकूल्य और डा० साजेन ग्रे वियल वाउटन-की प्रार्थनासे हुगलीमें अंगरेज वणिक्-सम्प्रदायकी कोठी जम गई। तभीसे उक्त कम्पनी अपनी अधिकाररक्षामें विशेष यत्नवान् हुई। क्योंकि इस समय प्रतिद्वन्द्वी ओलन्दाज, दिनेमार, फरासो, जर्मन आदि विभिन्न वणिक्सम्प्रदायके साथ प्रतिपक्षता कर अंगरेजोंको अपनी स्वार्थरक्षा करनी पड़ी थी। इस समय अंगरेजोंने अपनी वाणिज्य-कोठी अच्छी तरह चलानेके लिये एक एक एजेंट नियुक्त किया।

अंगरेज कम्पनीको इस प्रभाववृद्धिके साथ साथ डिरेकृरके आदेशसे एजेंटके बदले एक एक गवर्नर रखना पड़ा था। १६९० ई०में जाब चार्नक कलकत्तेमें रहे। १६९२ ई०में उनकी मृत्यु हो गई। इस साल हुगलीसे कलकत्तेमें अङ्गरेज कम्पनीको एजेंसी उठा कर लाई गई थी। १८९६ ई०में औरङ्गजेबके लड़के आजिम उससान बंगालके शासनकर्त्ता हुए। १६९८ ई०में उन्होंने अङ्गरेजकम्पनी-को कलकत्ता और तत्सन्निहित दो गांव दे कर वहांकी प्रजाओंके दोष-गुणका न्यायविचार करनेका क्षमता दी। उनके ही आदेशसे उक्त वर्षमें कलकत्तेमें "फोर्टविलियम" किलेकी नोंव डाली गई। अंगरेज गवर्नर ड्रेकके विसदृश आचरणसे विरक्त हो कर नवाब सिराजुद्दौलाने १७५६ ई०में कलकत्ते पर हमला कर दिया और विजय पाई। दूसरे वर्ष मद्राससे आ कर कर्नल क्लाइवने कलकत्ता फिर मुसलमानोंके हाथसे छीन लिया। १७५७ ई०के जून महीनेमें सिराजको गद्दीसे उतार दिया और उन्हें निहत कर क्लाइवने मीरजाफर अली खांको बंगालके सिंहासन पर बिठाया। यहींसे अंगरेज-कम्पनीके राजत्वका सूत्रपात हुआ। मीरजाफर अंगरेजोंके अभिमतसे बंगालका शासन करनेमें पराङ्मुख हुए, तब मीरकासिम अलीको बंगालका शासन-भार दिया गया। कासिम अलीके अंगरेजद्वेषी होनेसे उन्हें पदच्युत कर पुनः मीरजाफरको बङ्ग सिंहासन पर बिठाया गया। १७६५ ई०में मीरजाफरकी मृत्यु हो गई। पीछे उनके लड़के नजम उद्दौलाको बंगालकी मसनद पर अभिषिक्त किया गया था। उक्त सालके जून महीनेसे नजम अंगरेज कम्पनीके वृत्तिभोगी हुए। इस सालकी १२वीं अगस्तको मुगल-सम्राट्ने क्लाइवको जागीरस्वरूप बङ्गाल, विहार और उड़ीसाकी दीवानी दी। यह दीवानी सनद ही बंगालके अंगरेज राजत्वको प्रधान और प्रथम दलील हुई। तभीसे अंगरेज लोग ही बंगालके प्रकृत शासनकर्त्ता हो गये एवं मुर्शिदाबादके नवाबवंश अंगरेजोंसे वृत्ति पाने लगे। पूर्वोक्त तालिकामें बहुत संक्षेपसे इन प्रतिभाशाली नवाबवंशका परिचय दिया गया है।

ईष्ट-इंडिया कम्पनीके अधीनस्थ बंगालके एजेंट।

नाम	कार्यग्रहणकाल।
मि० राल्फ कार्टराइट	१६३३
„ जईस	...
„ थाई	...
कैपटेन जान ब्रुकामेन	१६५०
मि० जेम्स ब्रिजमेन	...
„ पाल वालडे ग्रेभ	१६४३
„ जार्ज गवटन	१६५३
„ जोनाथान ट्रेविशा	१६५८
„ विलियम ब्लेक	१६६३
„ शेम ब्रिजेम	१६५६
„ वाल्टर क्लोवेल	१६७०
„ माथियस भिंसेंट	१६७७

बंगालके गवर्नर।

मि० विलियम हेजेस	१६८२ जुलाई
„ „ गिफोर्ड	१६८४ अगस्त
सर एडवार्ड लिट्लटन	१६९९ जुलाई
„ चार्लस आयर	२६वीं मई १७००
मि० जान बीयार्ड	७वीं जनवरी १७०१
„ आण्टनी वोयेंटडेन	२०वीं जुलाई १७१०
„ जान रासेल	४थी मार्च १७११
„ रावर्ट हेजेस	३री दिस० १७१३
„ सामुएल फिक	१२वीं जन० १७१८

नाम	कार्यभारग्रहणकाल
,, जान डीन	१७वीं ,, १७२३
,, हेनरी फ्रैंकलैंड	३०वीं ,, १७२६
,, एडवार्ड स्टिफेनसन	१७वीं सित० १७२८
,, जान डीन	,, ,,
मि० जान स्टाकहाउस	२५वीं फर० १७३२
,, टामस ब्राडिल	२९वीं जन० १७३९
,, जान फारेस्टर	४थी फर० १७४६
,, विलियम बारवेल	१८वीं अप्रि० १७४८
,, एडम डसन	१७वीं जुलाई १७४९
,, विलियम फिटके (Fytche)	५वीं ,, १७५२
,, रोजर ड्रेक	८वीं अग० १७५२
कर्नेल राबर्ट क्लाइव	२७वीं जून १७५८
जान जेड, हालवेल	२२वीं जून १७६०
मि० हेनरी भान्सीटार्ट	२७वीं जुलाई १७६०
,, जान स्पेन्सर	३री दिस० १७६४
लार्ड क्लाइव	३री मई १७६५
मि० हारि वेरेलेष्ट	२७वीं जन० १७६७
,, जान कार्टियर	२६वीं दिस० १७६९
मि० वारेन हेष्टिंगस	१३वीं अप्रेल १७७२

माननीय वारेन हेष्टिंगस पहले गवर्नर थे। १७७३ ई०में पार्लियामेण्टके नियमानुसार मद्रास और बम्बई बंगालके शासनाधीन हुआ एवं वे गवर्नर जनरल पद पर नियुक्त हुए। उस समय गवर्नर जेनरलका वेतन सालाना ढाई लाख और उनकी सभाके चार सदस्योंमेंसे हरएकको एक लाख रुपया मिलता था। भारतवर्षके इतिहासमें भारतके अंगरेज-गवर्नर जेनरलोंका शासन-विवरण दिया जा चुका है, इसलिये यहां कुछ नहीं लिखा गया। सिर्फ बंगालकी कुछ प्रसिद्ध घटना लिख कर अङ्गरेजशासन प्रभावका संक्षेप विवरण दिया जाता है—

ईष्ट इण्डिया कम्पनीके दीवानी लेने पर लार्ड क्लाइव-ने कम्पनीके सेनाविभागको बढ़ाया। वे सब वाणिज्यके बहाने अर्थलोलुप हो कर इस देशके वाणिज्योंमें यथा अर्थ वसूल करते थे। मीरजाफर और मीरकासिमके समय कम्पनीके कर्मचारियोंकी अर्थगृध्नुता और अत्याचारकी मात्रा दिन पर दिन बढ़ती ही गई। कम्पनीकी अर्थपिपासा बुझानेके लिये नवाबोंको भी प्रजापीड़न कर अर्थसंग्रह करना पड़ा था। इस अत्याचारके साथ साथ प्रजाओं पर ईश्वर भी प्रतिकूल थे। १७६९-७० ई०में बंगालमें भीषण अकाल पड़ा। बंगला ११७६ सालमें यह दुर्घटना घटी थी, इससे यह 'छियत्तरका मन्वन्तर' नामसे आज भी प्रसिद्ध है।

वारेन हेष्टिंगसने बंगालका राजस्व वसूल करनेकी सुविधाके लिये कलकृर नियुक्त किया। इस समय खिराजी हड़प कर जानेमें महम्मद रेजा खाँ और राजा सिताब राय कारारुद्ध हुए। हेष्टिंगस राजकोष और राजकार्यालय मुर्शिदाबादसे कलकत्ते उठा लाये। उन्होंने विचारकार्यकी सुविधाके लिये दीवानी और फौजदारी अदालत कायम की थी। उक्त कलकृर ही दीवानी अदालतके तथा काजी या मुफ्ती फौजदारीके विचारक हुए। अपीलके लिये कलकत्तेमें "सदर दीवानी अदालत" और "सदर निजा-मत अदालत" नामक दो प्रधान विचारालय स्थापित हुए थे। १७७१ ई०में "सदर निजामत" मुर्शिदाबादमें उठ गई और महम्मद रेजा खाँ नायब नजीम हो कर वहांके प्रधान विचारपति हुए।

कम्पनीकी श्रीवृद्धि देख १७७३ ई०में इंगलैंडकी पार्लमेण्टने वङ्ग व्यापारमें हस्तक्षेप किया। उनके शासन-देशसे वारेन हेष्टिंगस गवर्नर-जेनरल हुए और सकौं-सिल गवर्नर-जेनरलका कर्तृत्व कम्पनीके भारतीय अधि-कारमें व्याप्त हुआ। इसी समय अंगरेज अपराधियोंके दण्डविधानके लिये इंगलैंडीय व्यवस्थानुसार कलकत्तेमें सुप्रीमकोर्ट स्थापित हुई थी। डिरेकृरोंकी अनुमतिके अनुसार हिन्दुओंका हिन्दूशास्त्रानुसार और मुसलमानोंका मुसलमान सूरेके अनुसार विचार करनेकी आज्ञा जारी हुई। इस पर हालहेड साहबने एक बंगला व्यवस्था-ग्रन्थ संकलन किया। उनका प्रथम बंगला व्याकरण १७७८ ई०में छपा था। चार्लस् विलकिन्सने उक्त छापेका अक्षर खोदा था। यही बंगला अक्षरकी प्रथम सृष्टि है। १७८० ई०को २९वीं जनवरीको कलकत्तेमें पहला संवाद-पत्र छपना शुरू हुआ।

हेष्टिंगसके शासनकालमें १७७५ ई०को महाराज नन्दकुमारको फांसी हुई। उनके बाद सुप्रीमकोर्ट

स्थापित होने पर १७८३ ई०में सर विलियम जोन्स प्रधान विचारपति हो कर आये। १७८४ ई०में उन्होंने 'एशियाटिक सोसाइटी आव बंगाल' नामक सभा स्थापन की। उसी साल पार्लामेंटके आदेशसे 'बोर्ड आव कन्ट्रोल' कायम हुआ।

लार्ड कर्नवालिसके शासनकालमें १७९० ई०में सदर निजामत फिर कलकत्ता चली आई। १७९३ ई०में निर्दिष्ट राजस्वकर वसूल करनेका दशसाला या चिरस्थायी बन्दोबस्त उनके समयको प्रधान घटना है। इस वर्षमें अंगरेजोंमें लिखी हुई कितनी ही व्यवस्था संगृहीत तथा प्रचारित हुई। मि० फारेस्टरने उनका बंगला अनुवाद किया।

लार्ड कर्नवालिसने कलक्टरोंके हाथमें सिर्फ राज-कर संग्रह करनेका भार दिया था। उन्होंने काजी, मुफ्ती प्रभृतिके स्थान पर प्रति जिलेमें 'जज' नियुक्त करके उनके हाथमें दीवानी तथा फौजदारी मुकद्दमेका विचारभार अर्पण किया। फौजदारी कार्यकालमें मुसलमानी व्यवस्थानुसार ही विचारकार्य निर्वाहित होगा, इसलिये एक एक मुसलमान-कर्मचारी सहकारी रूपमें प्रति जजके साथ रहते थे। जिलाके जजोंसे निष्पादित मुकद्दमेकी अपील सुननेके निमित्त कलकत्ता, मुर्शिदाबाद, ढाका एवं पटना नगरोंमें चार 'प्रोभिन्सियल कोर्ट' स्थापित हुई। इन 'प्रोभिन्सयल कोर्ट'के ऊपर सदर-दीवानी तथा सदर निजामत अदालत थी। दीवानी मुकद्दमेके विचारके लिये प्रति जिलेमें एक एक रजिष्टार तथा कई एक मुन्सिफ नियुक्त हुए। स्थान स्थान पर एक एक थाना स्थापित हुआ एवं एक दारोगा प्रति थानाके कर्त्ता नियुक्त हुए।

१७९८ ई०में मार्किस आव वेलेस्ली बंगालके गवर्नर जेनरल हुए। १८०३ ई०में महाराष्ट्रियोंके साथ सन्धि करके कम्पनीने उनसे कटक प्रदेश ले लिया।

उनके समय तक सदर दीवानी तथा सदर निजामतका कार्यभार कौंसिलके साथ गवर्नर जेनरलके हाथमें न्यस्त था। उससे कार्यकी असुविधा होती देख वेलेस्लीने तीन 'जज' नियुक्त किये। उनमेंसे प्रथितनामा तथा बहुविद्याविशारद कोलब्रुक एक थे। अंगरेज सिविलियनोंको देशी भाषाकी शिक्षा देनेके निमित्त लार्ड वेलेस्लीने फोर्ट विलियम कालेज स्थापित किया। इस उपलक्षमें वहांके पाठ्यरूपमें कई एक बंगला पुस्तकें सम्पादित हुईं। उनमें रामराम बाबूकी 'प्रतापादित्यचरित' (१८०१ ई०) तथा लिपिमाला (१८०२ ई०), राजीवलोचनका कृष्णचन्द्रचरित, मृत्युञ्जयविद्यालङ्कारकी राजावली, केरी साहबका बंगला व्याकरण तथा अभिधान आदि उल्लेखयोग्य पुस्तकें थीं। १७९९ ई०में मिसनरी मार्शमान तथा वार्ड श्रीरामपुरमें आ कर रहने लगे। उन्होंने ही जयगोपाल तर्कालंकार द्वारा संशोधन करा कर १८०१ ई०में रामायण और इसके बाद महाभारत छपाना आरम्भ किया। इस समयसे ही स्वभावतः बंगला-साहित्यका आदर घर घरमें है।

१८०७ ई०में लार्ड मिन्टो गवर्नर जेनरल हुए। उनके शासनकालके शेषभागमें (१८१३ ई०) पार्लमिन्ट प्रदत्त सनदानुसार इसमें कम्पनी एक तरहसे वाणिज्य रहित हो गई। ईसाई मिसनरियोंने यहां धर्म-प्रचार करनेकी अनुमति पाई, इसलिये कलकत्तामें एक 'बिशप' नियुक्त हुआ। इसके अलावा कम्पनीको इस देशकी प्रजाओंको विद्याशिक्षा देनेके लिये सरकारी राजकोषमेंसे प्रति वर्ष एक लाख रुपये व्यय करनेकी आज्ञा हुई।

लार्ड मायरा या मार्किस आव हेस्टिङ्गस् १८१३ ई०में गवर्नर-जेनरल हो कर बंगालमें आये। उनके समयमें नेपाल तथा महाराष्ट्र-युद्धमें अंगरेज विजयी हुए थे। इस समय कई एक देशी सम्भ्रान्त व्यक्तियोंके यत्न तथा व्ययसे कलकत्तेमें "हिन्दू कालेज" स्थापित हुआ एवं उन लोगों हीके द्वारा उत्साहित हो कर श्रीरामपुरकी मिसनरियोंने "समाचारदर्पण" नामक प्रथम बंगला संवादपत्र मुद्रित किया। (२३वीं मई १८१८ ई०)

१८२४ ई०के अगस्त महीनेमें लार्ड ऐमहर्ष्ट गवर्नर जेनरल हो कर कलकत्ता आये। उनके समयमें ब्रह्मयुद्धमें कम्पनीकी राज्यवृद्धि एवं भरतपुरका प्रसिद्ध किला अंगरेजोंके हस्तगत हुआ। इस समय कलकत्तामें 'संस्कृत कालेज' स्थापित करनेके विषयमें संस्कृत भाषावित् अध्यापक विलसन साहब विशेष उद्योगी हुए थे। लार्ड ऐमहर्ष्टने १८२७ ई०में पश्चिममें आ कर दिल्ली-

के बादशाहसे कहा, कि कम्पनी ही इस देशका वास्तविक सम्राट् है।

१८२८ ई०में लार्ड विलियम बेण्टिंग गवर्नर जेनरल हुए। उन्होंने सहमरणकी प्रथाको उठा दिया। राजा राममोहन राय, द्वारकानाथ ठाकुर, राय कालीनाथ मुन्सी प्रभृति इस देशके अनेकों सुशिक्षित भद्र संतानोंने इस महत् कार्यमें उनकी सहायता की थी। उस समय इस देशमें ठगके नामसे एक डकैतोंका दल था। वे लोग भद्रवेशमें गमनागमन करते थे एवं सुयोग पा कर यात्रियोंका वध करके उनका यथासर्वस्व अपहरण कर लेते थे। कर्नल स्लीमनके उद्योगसे ठग लोगोंका यह दौरात्म्यक व्यापार निवारित हुआ।

इस समय इस देशके लोगोंको संस्कृत किंवा अङ्गरेजी भाषाकी शिक्षा देना उचित है, कि नहीं इस विषय पर घोर आन्दोलन उपस्थित हुआ। अध्यापक विलसन साहब संस्कृत भाषाकी शिक्षाके समर्थक थे एवं प्रसिद्ध लार्ड मेकले तथा ट्रीवेलियन साहब पाश्चात्य ज्ञान-चर्चाका प्रयोजनीयता दिखा कर अंग्रेजीका पक्ष समर्थन करते थे। गवर्नर जेनरलके विचारानुसार अंग्रेजीकी ही जय हुई। १८३५ ई०में मेडिकल कालेज स्थापित हुआ।

लार्ड वेण्टिङ्कके समयमें विचार-विभागका बहुत ही परिवर्त्तन हुआ। 'प्रोविन्सियल कोर्ट' उठा दी गई एवं "रेभिन्यू कमिश्नरी" की स्थापना हुई। कलक्टरोंने फौजदारी मुकदमेके विचारकी क्षमता पाई एवं जज दीवानी तथा दौरेके मुकदमेका विचार करेंगे, ऐसा स्थिर हुआ।

१७९३ ई०में 'मुन्सिफी' एवं १८०३ ई०में सदर 'अमीनी' पदकी सृष्टि हुई। अब तक देशी लोग ही इस पद पर नियुक्त किये जाते थे। लार्ड वेण्टिङ्कने इस देशीय लोगोंके निमित्त "प्रधान सदर अमीनी" पदकी भी सृष्टि की। इस पदका मासिक वेतन ५००) रुपये निर्द्धारित हुए एवं प्रधान सदर अमीन सब तरहके दीवानी मुकदमा करनेके अधिकारी हुए। [illegible] "डिपुटी कलक्टर" नियुक्त होनेका नियम [illegible] पद भी देशी लोग पाते थे।

लार्ड वेण्टिङ्कके शासनकालमें ईश्वरचन्द्र गुप्तने "प्रभाकर" नामक संवादपत्र प्रचार किया (१८०३ ई०)। एवं राजा राममोहन रायने कलकत्तामें १८२६ ई०में ब्रह्म समाज स्थापित किया था। ज्ञात पड़ता है, भारतवासी हिन्दू भद्रसमाजमेंसे राजा राममोहन राय ही पहले पहल इंगलैण्ड गये एवं उन्होंने वहां जा कर मानवलीला संवरण की। राममोहन रायने कई एक बंगला ग्रन्थोंकी रचना की थी।

१८३५ ई०में लार्ड वेण्टिङ्कने स्वदेशकी यात्रा की एवं स्वतंत्र गवर्नरके न आने तक मेटकाफ् साहब ही उनके कार्य पर नियुक्त रहे। उनके शासनकालमें तथा उनके ही उद्योगसे अंग्रेजी तथा बंगला मुद्रायन्त्रोंकी स्वाधीनता संस्थापित हुई। मेकले साहबने इस विषयमें अधिक पोषकता की थी।

१८३५ से ले कर १८४२ ई० पर्यन्त लार्ड आकलैण्ड गवर्नर जेनरल रहे। उनके समयमें काबुलमें अंग्रेजोंकी विलक्षण दुर्दशा हुई। बंगालमें १८३५ ई०में हुगली कालेजकी एवं १८४१ ई०में ढाका कालेजकी स्थापना हुई।

१८४२से ले कर १८४४ ई० तक लार्ड एलेनबराने गवर्नर जेनरलके पद पर शासन किया। उनके समयमें काबुलमें अङ्गरेज लोग विजयी हो कर मान सहित लौटे एवं सिन्ध देश पर कम्पनीका अधिकार हो गया। लार्ड एलेनबराने डिपटी मजिस्ट्रेटके पदकी सृष्टि की। उनके शासनकाल (१८४३ ई०)में तत्त्वबोधिनी-पत्रिका प्रकाशित हुई एवं अक्षयकुमार दत्त इस पत्रिकाके सम्पादक हुए।

१८४४ ई० से ले कर १८४८ ई० तक हार्डिंज साहब गवर्नर जेनरल थे। उन्होंने सिक्खोंके युद्धमें विजय पाई। उनके समयमें "हार्डिंज स्कूल" नामसे कई एक गवर्नमेंट बंगला विद्यालय एवं १८४५ ई०में कृष्णनगर [illegible]त हुआ [illegible] समय ईश्वरचन्द्र विद्या- [illegible] की (१८४७ ई०)। [illegible] इस देशके गवर्नर जेन- [illegible] पंजाब, पेगु, सतारा, [illegible] कम्पनीके अधिकार [illegible]

हुआ एवं १८५५ ई०में हिन्दूकालेज प्रेसीडेन्सी कालेजमें परिणत हो गया। इसके अलावा अन्यान्य कई गवर्नमेंट आदर्श बंगविद्यालय तथा बंगकी स्त्रीजातिको विद्याशिक्षाके लिये कलकत्तेमें बेथुन कालेज प्रतिष्ठित हुआ। इस समय सर चार्लस उड प्रणीत १८५४ ई०में शिक्षाविषयिणी अनुमतिलिपि आई एवं तदनुसार कलकत्ता विश्वविद्यालयका सूत्रपात हुआ। इसके साथ साथ विद्यालय सम्बन्धमें गवर्नमेण्टकी "ग्रान्ट इन एड" प्रथा भी प्रवर्त्तित हुई थी। इस उपलक्षमें शिक्षाविषयक कमिटि उठ गई, एवं विद्याध्यापनके "डाइरेक्टर" "इन्सपेक्टर" प्रभृति पदोंकी सृष्टि हुई।

लार्ड डलहौसीके यत्नसे इस देशमें ईष्ट इण्डिया-रेलवे तथा खबर भेजनेके तार (टेलीग्राफ) स्थापित हुए (१८५२ ई०)। पोस्टल डिपार्टमेंट स्थापित होनेसे डाकमहसूल कम गया। १८५३ ई०में ईष्ट-इण्डिया-कम्पनीने पार्लामेंट महासभासे एक सनद प्राप्त की जिसके द्वारा बंगालमें 'लेफ्टीनेंट गवर्नर"के नामसे एक स्वतन्त्र शासनकर्त्ता नियुक्त करनेकी आज्ञा मिली एवं इस देशवासियोंने इङ्गलैण्ड जा कर "सिविल सर्विस"की परीक्षा देनेकी अनुमति पाई। सर फ्रेडरिक हेलिडे २८ अप्रील सन् १८५४ ई०में बंगालका प्रथम लेफ्टीनेंट गवर्नर हो कर आये। १८५६ ई०में विद्यासागर महाशयकी चेष्टासे विधवा-विवाहकी व्यवस्था विधिवद्ध हुई।

१८५६ ई०में लार्ड डलहौसीने स्वदेशयात्रा की एवं लार्ड कैनिङ्ग भारतवर्षके गवर्नर-जेनरल बन कर यहां आये। लार्ड कैनिङ्गके समयमें १८५७ ई०में सिपाही-विद्रोह हुआ। इस राष्ट्र-विप्लवमें उन्होंने अत्यन्त विलक्षणताके साथ कार्य किया था, इसलिये उन्हें लोग "क्लेमेन्सी कैनिङ्ग" कहते हैं। सिपाही विद्रोहके बाद महारानी विक्टोरियाने कम्पनीके हाथसे इस देशका शासन-भार अपने हाथमें ले लिया। उस समय उन्होंने अंगीकार किया था, कि वे इस देशकी प्रजाओंके धर्म तथा स्वत्वकी रक्षा करेंगी एवं उनके योग्य होने पर सारा राज्यकार्य उन्हें दे देंगी (नवम्बर १८५८ ई०)। लार्ड कैनिङ्गके समयमें "भारतवर्षीय दण्डविधि" "दीवानी" "फौजदारीकार्यविधि" एवं "खजाना सम्बन्धी १० आईन" प्रचारित हुए एवं "करेन्सी नोट" पहले पहल प्रचलित हुआ।

कैनिङ्गके बाद लार्ड एलगिन गवर्नर जेनरल हुए। उनके शासनकालमें पूर्व-बंगाल तथा मातला रेलवे खुली एवं सदर अदालत तथा सुप्रीमकोर्ट मिला कर "हाईकोर्ट" बनाया गया। हाईकोर्टके विचारासनके पद पर इस देशवासीके नियुक्त होनेका नियम है।

दो वर्ष (१८६२-६३ ई०) के अन्दर ही लार्ड एलगिनने मानवलीला संवरण की। उनकी मृत्युके बाद सर विलियम डेनिसन कुछ दिनों तक गवर्नर जेनरल रहे। इसके बाद सर जान लारेन्स (१८६४-६६ ई०) तक एवं लार्ड मेओ (१८६९ ई० तक) यथाक्रमसे गवर्नर जेनरल रहे। एक निर्व्वासित मुसलमानके अस्त्राघातसे अन्दामन द्वीपमें लार्ड मेओकी मृत्यु हुई (८वीं फरवरी १८७२ ई०)।

इसके बाद ६वीं फरवरीसे २४वीं फरवरी तक सर जान स्ट्रेची तथा २४वीं फरवरीसे ३री मई तक लार्ड नेपियर गवर्नर जेनरलका कार्य करते रहे। १८७२ ई०की ३री मईको लार्ड नार्थब्रूकने इस देशका शासन-भार ग्रहण करके कर-प्रपीड़ित प्रजाओंका कर-भार हलका किया एवं ऊंची अंग्रेजी-शिक्षा प्राप्त करनेका उत्साह दिया।

लार्ड नार्थब्रूकके समय १८७५ ई०के शेषभागमें युवराज प्रिन्स आव वेल्स (भारत सम्राट् सप्तम एडवर्ड)ने बंगालमें शुभागमन किया। युवराजके इंगलैण्डसे प्रत्यागमन होने पर महाराणी विक्टोरियाने "एम्प्रेस आव इण्डिया"-की उपाधि ग्रहण की (१८७५ ई०)। १८७७ ई०के जनवरी महीनेमें इस उपाधि ग्रहणके उपलक्षमें महा समारोहके साथ दिल्लीमें एक दरबार हुआ। इसी साल दक्षिण-भारतमें दुर्भिक्ष पड़ा तथा काबुलके अमीरके साथ अंगरेजोंका युद्ध हुआ। उस युद्धमें अंगरेजोंकी ही विजय हुई। १८७५ ई०में उन्होंने स्वदेशयात्रा की एवं लार्ड लिटन उनके पद पर अभिषिक्त हुए।

लार्ड लिटनने देशीय संवादपत्रोंकी स्वाधीनता हरण कर ली एवं उन्होंने अस्त्र-आईन विधिवद्ध किया।

इनके समयमें दुर्भिक्ष निवारणार्थ व्यवसाय करनेवालों पर 'लाइसेन्स-टैक्स' नामक कर संस्थापित हुआ। १८८० ई०के अप्रिल महीनेमें लार्ड लिटनके भारत परित्याग करने पर मार्किस् आव रिपन भारतवर्षके गवर्नर जेनरल हो कर आये। उनके समयमें अंगरेज लोग पुनः काबुल युद्धमें लिप्त हुए।

रिपनने देशीय संवादपत्रोंको स्वाधीनता पुनः प्रदान करके एवं "स्वायत्तशासनप्रणाली" प्रचलित करके बंगालका विशेष मंगल साधन किया। इसके अलावे इनके समयमें विद्याशिक्षा सम्बन्धमें "एडुकेशन कमीशन" नियुक्त हुआ। इनके ही अमलमें रमेशचन्द्र मित्रने कुछ काल तक 'जज'का कार्य किया था।

१८८४ ई०के शेष भागमें लार्ड डफरिनके हाथमें भारतका शासन-भार अर्पण करके लार्ड रिपनने स्वदेशकी यात्रा की। उनके आगमनके कुछ दिन बाद १८८५ ई०में बंगालके प्रजास्वत्वविषयक ८ आईन विधिबद्ध हुए। १८८५ ई०के शेष भागमें ब्रह्मराज थिबको सिंहासनच्युत तथा बन्दी करके उस राज्य पर अधिकार कर लिया गया। १८८६ ई०की पहली जनवरीसे विस्तीर्ण ब्रह्मराज्य भारत-साम्राज्यभुक्त हो गया है। उक्त वर्षके अप्रिल महीनेमें 'इनकम् टैक्स' कर पुनः स्थापित हुआ। भारत राजराजेश्वरी भिक्टोरियाके राजत्वकालका पांच सौ वर्ष पूर्ण होनेके उपलक्षमें १८८७ ई०की २६वीं फरवरीको भारतवर्षके प्रत्येक स्थानोंमें महासमारोहके साथ "जुबिलि" महोत्सव सम्पादित हुआ था।

लार्ड डफरिनने देशी लोगोंको अधिक परिमाणमें ऊंचे पद पर नियुक्त करनेके अभिप्रायसे—"पबलिक सर्विस कमीशन" नियुक्त किया, किन्तु उनके मन्तव्यानुसार अभी भी कोई विशेष कार्यका अनुष्ठान नहीं होता। लार्ड डफरिनके शासनकालमें सिकम, तिब्बत तथा पंजाब सीमान्तस्थित कृष्णपर्वतमें युद्ध हुआ। इन्होंने १८८८ ई०की १०वीं दिसम्बरको लार्ड लैन्सडाउनके हाथमें शासन भार अर्पण करके विलायतकी यात्रा की। लार्ड लैन्सडाउनके समयमें १८९० ई०के दिसम्बर महीनेमें रूस-सम्राट्के ज्येष्ठ पुत्र देश भ्रमणकी इच्छासे भारतमें आये थे। मणिपुर राज्यके राजकार्य ठीक रीतिसे न चलते देख कर भारत गवर्मेण्ट उस विषयमें हस्तक्षेप करनेको बाध्य हुई। उसके उपलक्षमें प्रेरित अंगरेज-कर्मचारिगणके निहत होने पर एक दल अंगरेजी सेनाने मणिपुर पर अधिकार कर लिया एवं अपराधिगण गिरफ्तार कर लिये गये। न्यायाधीश द्वारा अपराधियोंको समुचित दण्ड दिया गया (१८९१ ई०)। युवराज टिकेन्द्रजित्को अंगरेजी राज्यके विचारानुसार प्राणदण्ड मिला।

लार्ड एल्गिन २४वीं जनवरी १८९४ ई०में भारतवर्षके राजप्रतिनिधि तथा गवर्नर जेनरल नियुक्त हुए। उनके शासनकालमें "डायमण्ड जुबिलि" उत्सव महासमारोहके साथ निष्पन्न हुआ था। १८९९ ई०में एल्गिनके चले जाने पर लार्ड कर्जन आव केडलष्टोन भारतप्रतिनिधि हुए। उनके शासनकालमें म्यूनिसपलिटि तथा शिक्षाविषयक कितने ही राजनैतिक कार्यका संस्कार हुआ था। उनके शासनकालमें १८९९ ई०की २२वीं जनवरीको भारतेश्वरी भिक्टोरियाकी मृत्यु हुई। उनके ज्येष्ठ पुत्र सप्तम एडवर्डके राज्याभिषेकके उपलक्षमें दिल्लीमें एक वृहत् दरबार हुआ। इस समय बंगालमें भी बहुत उत्सव मनाया गया था। उनके अवकाशके समय मन्द्राजके गवर्नर लार्ड एम्पथिल कार्य करते थे। उन्होंने पूर्व-बंगालके कितने ही जिलोंको आसाम प्रदेशमें मिला कर बंगालके दो टुकड़े कर दिये। इससे बंगालकी राजनैतिक नींव बहुत मजबूत हो गई, इसमें शक नहीं। भारतकी उत्तरी तथा पूर्वी सीमाकी रक्षा करना एवं बंग तथा ब्रह्मके मध्यवर्त्ती वनाकीर्ण पार्वत्य प्रदेशमें अङ्गरेजी-शासनकी प्रतिष्ठा करना ही इस जटिल तत्त्वका गूढ़ उद्देश्य था।

इस समय सामरिक विभागके सुधारके लिए जंगी लाट लार्ड किचनर बहादुरके साथ उनका विरोध उपस्थित हुआ। उससे उन्होंने भारत सचिवके पास कार्यत्यागपत्र भेजा। उनका त्यागपत्र गृहीत तथा अनुमोदित होने पर भी वे भारतवर्षका त्याग नहीं कर सके। इङ्गलैण्डाधीश्वर सप्तम एडवर्डकी आज्ञानुसार वे युवराज प्रिन्स आव वेल्सको अभिनन्दन देनेके लिए भारतवर्षमें रहनेको बाध्य हुए। १९०५ ई०के दिसम्बरको

युवराजने बम्बई शहरमें पदार्पण किया। जब १७वीं तारीखको लार्ड मिण्टो भारत पहुंचे, तब उनके हाथमें भारत साम्राज्यका कार्यभार दे कर उन्होंने १८वीं दिसम्बरको इङ्गलैण्ड-यात्रा की।

लार्ड मिण्टोके समयमें २४वीं दिसम्बरको युवराज बंगालमें आये थे। कलकत्तामें उनके शुभागमनमें यथेष्ट आनन्दोत्सव हुआ था। कलकत्ताके मैदानमें उनको अभ्यर्थना तथा अभिनन्दनार्थ एक दरबार हुआ था। उस समय छोटालाट बहादुरके बेलभेडियारके प्रासादमें वंगीय हिन्दू महिलाओंने युवराज-पत्नीका वरण किया था।

१९०५ ई०के अक्टूबर महीनेमें बंगराज्य दो भागोंमें विभक्त हुआ। फुलर साहब वहांके छोटेलाट हुए। बंगवासियोंने इन दिनों अङ्गरेज व्यापारियोंसे प्रपीड़ित हो कर उनके व्यापार-पथको रोध करनेके लिए बंगालमें "स्वदेशी" विस्तार करनेकी चेष्टा की। उन लोगोंने स्वदेशी वाणिज्यकी रक्षाके लिये बंगमाताके श्रीचरणोंमें शरण ली एवं श्रीयुत बङ्किमचन्द्रके उस दिगन्त विस्फारित "वन्दे मातरम्" महामन्त्रसे दीक्षित हो कर जाति तथा देशोद्धारकी चेष्टा की। इस 'वन्दे मातरम्' मन्त्रसे शीघ्र ही विद्रोह होनेकी आशङ्का जान कर अङ्गरेज-राजकर्मचारिगण सशङ्कित हो उठे। उन्होंने चारों ओर 'वन्दे मातरम्' स्रोतका प्रतिरोध करनेके लिए सर्कुलर जारी किया। दरिद्र बंगाली प्रजाओंके ऊपर राजपुरुषोंने कुछ अत्याचार भी करना आरम्भ किया। उन राजकर्मचारियोंके मस्तिष्क 'वन्दे मातरम्'की ध्वनिसे विघूर्णित हो गये। उन्होंने बंगालियोंके औद्धत्य दमनके लिए उस स्थानमें गोरखा सेनादल नियुक्त किया। अन्तमें १९०६ ई०में बंगाल प्रोभिन्सियल-कनफरेन्सके समय राजा प्रजाविद्वेषका चूड़ान्त हो गया। बंगालके नेता सुरेन्द्रनाथ वन्द्योपाध्याय राजपुरुषों द्वारा अर्थदण्डसे दण्डित हुए। प्रजाओंमें और भी अशान्ति अनुभूत होने लगी, उस समय राज्यमें विधानके लिए पूर्व वङ्गालके छोटालाट बहादुरने स्वीय आदेश प्रत्याहार किया। किन्तु बंगालमें इस समय "स्वदेशी आन्दोलन" पूर्णरूपसे जग उठा था।

वङ्गालके लेफ्टनाण्ट गवर्नर।

नाम	कार्यारम्भ
सर फ्रेडरिक जे. हालिडे	१८५४ अप्रिल २८,
„ जान पी. ग्राण्ट	१८५९ मई १,
„ सेसिल विडन K. C. S. I	१८६२ अप्रिल २४,
„ विलियम ग्रे	१८६७ „ २४,
„ जार्ज कैम्बेल	१८७१ मार्च १,
„ रिचार्ड टेम्पल Bart „	१८७४ अप्रिल ६,
माननीय आसली इडेन C. S. I. C. I. E	१८७७ जनवरी ८,
सर एडुआर्ट सि. बेली K. C. S. I. C. I. E	१८७९ जुलाई १५,

(इन्होंने आसली इडेनकी जगह कुछ समय अस्थायिरूपसे काम किया।)

आगष्टस रिभर्स टम्सन C. S. I. C. I. E.	१८८२ अप्रिल २४,
मि० एच. ए. कक्रेल I. C. S. C. I. E.	१८८५ अगस्त ११,

(रिभर्स टम्पसनके अवकाश लेने पर अस्थायिरूपसे कार्य किया।)

सर एडुआर्ट सि बेली	१८८७ अप्रिल २,
„ चार्लस अलफ्रेड इलियट K. C. S. I.	१८९० दिसम्बर १७,
„ आण्टनी पाट्रिक मैकडोनेल K. C. S. I.	१८९३ मई ३०,

(उसी सालकी ३० वीं नवम्बर तक इलियटकी छुट्टीके समय कार्य किया।)

माननीय सर अलेकजन्दर मेकेञ्जी K. C. S.	१८९५ दिसम्बर १८,
माननीय चार्लस सि. ष्टिभेन्स C. S. I.	

(अलेकजन्दर मेकेञ्जीके अवकाश लेने पर १८९७ ई०की २८वीं दिसम्बर तक कार्य किया।)

माननीय सर जान उडबरन I. C. S. K. C. S. I.	१८९८ अप्रिल ७,
„ जे. ए. बोर्डिलोन V. D. I. C. S. C. S. I.	१९०२ नवम्बर २२ ऐक्टि

सर ए, एच, एल फ्रेजर M. A, I. C.S.K.C.S.I.
१९०३ नवम्बर २,
(इनके अवकाश लेने पर १९०६ ई०के जून मास तक माननीय एल, हेयरने कार्य किया।)
विलियम ड्यूक १९०८,
ई, एन बेकर १९१०,
सर चार्ल्स एलियट १९११,
लार्ड कारमाइकल १९१२,
लार्ड रोनल्डशे १९१७,
लार्ड लीटन १९२२,
सर स्टानली जयसन १९२७ (वर्त्तमान गवर्नर)

अंग्रेजोंके शासन-कालमें बंगालकी अवस्था।

अंग्रेजोंके राजत्व-कालमें इस देशके अन्दर नाना प्रकारकी कुप्रथायें फैल गई हैं एवं कितनी ही कुप्रथाओं-की इति हो गई है। सहमरण या सतीदाह, गंगासागर-में संतान-विसर्जन प्रभृति कुप्रथायें जिस तरह दूर हो गई हैं एवं चोर डकैत तथा अत्याचारी जमींदारोंके दौरात्म्य कम हो चला है, उसी तरह नई नई सड़कें, रेलवे एवं वाष्पीय जहाजों (वायुयान) द्वारा गमनागमन तथा व्यापार करनेका सुविधायें हो गई हैं। फिर पोष्ट या डाक एवं टेलीग्राफ (तार)के प्रवर्तित होनेसे अति अल्प समय-में ही दूर दूर तक संवाद भेजनेका उपाय हो गया है। चिकित्सालयकी वृद्धि होनेसे जनसाधारणकी स्वास्थ्य रक्षा करनेका पथ प्रशस्त हो गया है। विद्यालयों द्वारा लोगों-की बहुत मानसिक उन्नति हुई है। बंगवासियोंकी आंखें खुल गई हैं, मुद्रायन्त्रकी स्वाधीनता पा कर उन लोगोंके राजपुरुषोंसे अपने मनकी बातें खुल कर कहनेका रास्ता मिल गया है।

अंग्रेजोंने इस देशमें नील, चाय प्रभृति द्रव्योंकी खेती करके यहांका कुछ उपकार किया है सही, किन्तु इस से दरिद्र प्रजाओंका कितने ही विषयोंमें अमंगल साधित हुआ है। १८०० ई०में यहां नीलकी खेती आरम्भ हुई एवं उस समयसे ही यहांका दीनहीन प्रजाओंने धनके लालचमें पड़ कर अपना सर्वस्व नष्ट करके अंग्रेजोंके निकट प्राण तथा मान बचानेकी शिक्षा प्राप्त कर ली। नील-करोंने किस तरह अपने अमानुषिक अत्याचारोंसे बंगाल-की प्रजाओंको निपीड़ित किया, इसे नीलदर्पण नाटकसे अच्छी तरह समझ सकते हैं। यह नीलकी खेती एक समय पश्चिम तथा दक्षिण-बंगालके प्रायः सभी स्थानोंमें प्रचलित थी। प्रायः प्रति १० मीलकी दूरी पर एक एक नीलकर व्यापारीकी कोठी स्थापित हो गई थी। उन सभी नीलकोठियोंका ध्वंसावशेष आज भी बंगालके उस अतीत दुःखकी स्मृति दिला रहा है।

अंग्रेजोंके समयमें बंगालके कोने कोनेमें निरशान्ति विराज रही है, इसलिये समाज-सुधार तथा भाषाकी उन्नति करनेका सबोंने अवसर प्राप्त कर लिया है। राजा राममोहन रायने ब्राह्मसमाज संस्थापन करके एवं ईश्वरचन्द्र विद्यासागर महाशयने विधवाविवाह प्रचलन तथा बहु-विवाह के निवारण करनेका आन्दोलन करके समाज-सुधारका रास्ता खोल दिया है। ईश्वरचन्द्रगुप्त, अक्षय-कुमार दत्त, ईश्वरचन्द्र विद्यासागर, माइकेल मधुसूदन दत्त, दीनबन्धु मित्र, बंकिमचन्द्र चट्टोपाध्याय, हेमचन्द्र बन्धोपाध्याय प्रभृति ग्रन्थकारोंके द्वारा बंगला-भाषा तथा साहित्यकी विलक्षण उन्नति हुई है। यंत्राजनों, पंचाली वालों, कीर्त्तन करनेवालों एवं यात्रा करनेवालोंके गान तथा बंगला भाषाकी मधुरताकी अत्यन्त वृद्धि हुई है। बंगाय रंगालयोंमें भी अंगरेजी अनुकरणका यथेष्ट प्रभाव परिलक्षित होता है। अंगरेजोंके समयमें ही आज पढ़ता है, बंगला गद्यग्रन्थोंका अधिक प्रचार हुआ है। फारेस्टर साहबके १७९३ ई०के विधिसङ्ग्रहके बंगला अनुवादके पहले भी कितने ही गद्यग्रन्थोंका परिचय पाया जाता है।

ईसाई मिसनरियोंके यत्नसे कृत्तिवासकृत रामायण तथा काशीरामकृत महाभारत पहले पहल मुद्रित हुआ। इसके बाद उन लोगोंने ही बंगला-सम्वाद-पत्र छापना आरम्भ किया। श्रीरामपुर-कालेज, कल-कत्ताके कई कालेज तथा स्थान स्थान पर अन्य प्रकारके विद्यालय स्थापित होनेसे इस देशवासियोंको विद्याकी शिक्षा प्राप्त करनेमें यथेष्ट सहायता मिली है। केरी, मार्श-म्यान तथा डफ साहबके नाम इस देशके कृतविद्य व्यक्तिगण सचमुच भूल नहीं सकते। उनके यत्न तथा उद्योगसे बंगालमें अंग्रेजी शिक्षाकी मार्ग सहज हो गई है। उसी शिक्षाके फलस्वरूप धीरे धीरे यहां हिन्दू, पेट्रियट

बंगाल हरकरा, इण्डियन डेली न्यूज़, इण्डियन मिरर, स्टेट्समैन, इंगलिश मैन, बेंगली तथा अमृतबाजार-पत्रिका प्रभृति अंगरेजी संवाद-पत्र एवं संजीवनी, बंगवासी, वसुमती, हितवादी प्रभृति बंगला संवाद पत्र प्रचारित हो रहे हैं।

१८१५ ई०में यशोहर जिलेमें पहले पहल महामारी (हलटो रोग) देखो गई। इसके बाद धीरे धीरे सारे भारतमें फैल गई। समय समय पर इस रोगके उत्पातसे सभी देशोंके अधिवासी व्यतिव्यस्त हो पड़े हैं। कितने ही वर्षोंसे नदीया, हुगली, बर्द्धमान, मेदनीपुर प्रभृति जिलोंमें 'संचारी ज्वर'-की प्रकोपाग्निमें पड़ कर कितने ही दीन प्रजाएं मृत्युको प्राप्त हो जाती हैं। इन्फ्लूयेंजा तथा बंबई प्लेगसे अभी भी देशका सर्वनाश हो रहा है। वैज्ञानिक लोग अनुमान करते हैं, कि नदी, खाई प्रभृतिके धीरे धीरे पंक द्वारा भर जानेसे एवं स्थान स्थान पर प्रयोजनीय नाला न रहनेके कारण पानीके रुक जानेसे इस ज्वरकी उत्पत्ति होती है वर्षाऋतुमें निम्न बंगालकी गुल्मलताओंके सड़ जानेसे एक प्रकारका दुर्गन्धमय वाष्प निकलता है। उस अविशुद्ध वायुके सेवनसे रक्त दूषित हो जानेके कारण मलेरिया आदि रोगोंका प्रकोप होता है। कितने तो ऐसो विवेचना करते हैं, कि तीन सौ वर्ष पहले जिस महामारीसे गौड़नगर जनशून्य हो गया था, वह भी एक प्रकारका ज्वर ही था।

१८६४ ई०में बङ्गाल देशमें एक भयङ्कर बवंडर आया था जिससे लोगोंको महती क्षति हुई थी। बहुतों वृक्ष और घर धराशायी हुए थे, बहुतों जहाज और नावें डूब गई थीं। बङ्गोपसागरके जलने २४ परगनेके दक्षिणांशमें प्रवेश कर कितने मनुष्य, जीवजन्तु और लोकालयको विनष्ट किया था, उसको शुमार नहीं। यह घटना १२७० सालके आश्विन मासमें घटी थी। इसके बाद १२७४ सालके कार्त्तिक मासमें और १२७६ सालमें तूफान आया था। इस प्रकारका तूफान इस प्रदेशके लिये नया नहीं था। आईन ई अकबरी पढ़नेसे मालूम होता है, कि १५८२ ई०में यहां एक वज्रविद्युत्के साथ भीषण बवंडर आया था। उसके प्रभावसे समुद्रका जल इतना ऊंचा उठ गया था, कि देवमन्दिरके शिखर तथा अत्यन्त ऊंचे स्थानोंको छोड़ कर वाकरगञ्जका अनेकांश जलमग्न हो गया था। इस दुर्घटनामें प्रायः दो लाख मनुष्योंको मृत्यु हुई थी। १८७६ ई०की ३१वीं अक्टूबरको जो तूफान उठा, वह सबसे मारात्मक था।

बङ्गन (सं० पु०) वङ्गतीति वगि-ल्यु। वार्त्ताकु, बैंगन।

बङ्गवाड़ी—उत्तर-बङ्गका एक गण्डग्राम।

बङ्गभाषा (सं० स्त्री०) बंगाल-वासियोंकी कथित और लिखित भाषा।

बङ्गमल (सं० पु० क्ली०) सोसा नामक धातु। प्राचीनोंको यह धारणा थी, कि रांगा और सीसा दोनों एक ही धातु हैं और वे सीसेको रांगेका मल समझते हैं।

बङ्गला भाषा—जिस भाषामें बङ्गालके अधिवासी बोलते हैं, वही बङ्गला भाषा है। इस भाषाको लिखित और कथित इन दो भागोंमें प्रधानतः विभाग किया जा सकता है। प्रादेशिक हिसाबसे कथित भाषाको भी नाना शाखा प्रशाखाओंमें बांट सकते हैं। देश-भेदसे कथित भाषाके मध्य थोड़ी बहुत पृथक्ता तो दिखाई देती है, पर कथित भाषाने जो सर्वसाधारणको सुविधाके लिये समय समय पर संशोधित और संस्कृत हो लिखित भाषाका आकार धारण किया है, इसे सबोंको स्वीकार करना पड़ेगा किस प्रकार बङ्गभाषाकी उत्पत्ति हुई, यही यहां पर संक्षेपमें लिखा जाता है।

बङ्गभाषाका आदि-निर्णय।

अक्षरलिपि शब्दमें लिखा गया है, कि प्रायः ढाई हजार वर्ष बीत चला, बुद्धदेवके समय बङ्गलिपि नामक एक स्वतन्त्र लिपि प्रचलित थी। जब बङ्गलिपिकी सृष्टि हुई थी, उस समय स्वतन्त्र बङ्गभाषाका प्रचलन रहना कोई आश्चर्य नहीं। किन्तु उस समयकी बङ्गभाषा कैसी थी, उसका ठीक ठीक पता लगाना कठिन है।

पाणिनि-व्याकरणसे मालूम होता है, कि पाणिनिके पहले संस्कृत भाषा ही कथित भाषारूपमें प्रचलित थी। उनके समय भी प्रादेशिक भाषाके मध्य कुछ इतरविशेष था। उस प्राचीन कालमें प्रचलित संस्कृत भाषाके साथ देशी भाषा भी मिलती थी। यह विभिन्न देशप्रचलित भाषा ही आदि प्राकृत भाषा है।

मेदाम्भट्ट और मलयगिरिने लिखा है, कि 'भगवान् पाणिनिने प्राकृतका लक्षण भी प्रकाश किया है। यह संस्कृतसे भिन्न है। इसमें दीर्घाक्षर कहीं कहीं ह्रस्व हुआ करता है०।' इस प्रमाणसे जाना जाता है, कि पाणिनिके समय प्राकृत एक स्वतन्त्र भाषा समझी जाती थी। किन्तु इस भाषाकी लिखित भाषारूपमें गिनती न रहनेके कारण यह उस समय पुष्टिलाभ न कर सकी। पाणिनिके समय 'प्राकृत' प्रचलित रहने पर भी यह आर्यसाधारण-की सौकृत भाषा न समझी जाती थी, क्योंकि पाणिनिने अपनी अष्टाध्यायीमें 'छान्दस' और 'भाषा' इन दो शब्दों द्वारा 'वैदिक' और अपने समयमें प्रचलित 'लौकिक संस्कृत' भाषाका ही उल्लेख किया है। अतएव उनके समय भी संस्कृत-युग चलता था। यह संस्कृत युग कब तक चलता रहा था, उसका आज तक पता नहीं चला है। पर इतना जरूर है, कि बुद्धदेवके समय अर्थात् प्रायः ढाई हजार वर्ष पहले संस्कृत जनसाधारणकी कथित भाषा न समझी जाती थी। इस समय जनसाधारण जो भाषा समझते थे, उसका नाम 'गाथा' रखा गया। अभी इस भाषाको लोग संस्कृत नहीं मान सकते। इस भाषा-की रीति संस्कृत व्याकरणसङ्गत नहीं है। इस कारण हम लोग इसको टूटी फूटी संस्कृत मान लेते हैं। उस समय ब्राह्मण पण्डितोंके निकट विशुद्ध संस्कृत भाषाका प्रचार रहने पर भी जनसाधारणके निकट गाथा ही चलित भाषारूपमें गिनी जाती थी। सम्राट् अशोककी उस समय प्रचलित प्रादेशिक भाषामें जो सब अनु-शासन लिखे हैं, वे भाषाके कुछ परवर्ती और पाली भाषाके पूर्वतन प्राकृतसे समझे जाते हैं।

बौद्ध और जैनोंके सुप्राचीन धर्मग्रन्थकी भाषा आलोचना करनेसे भी अच्छी तरह जाना जाता है, कि उस प्राचीन गाथासे ही पाली, मागधी और अर्द्धमागधी भाषा परिपुष्ट हुई है।

पतञ्जलि आदि वैयाकरणोंके मतसे मागधी, अर्द्ध-मागधी यह सब प्राकृत भाषाका ही प्रकारभेद है।

प्राकृत देखो।

पहले कह आये हैं, कि भारतवर्षमें प्राकृत भाषा बहुत पहलेसे कथित भाषारूपमें प्रचलित थी। देश-भेदसे उस प्राकृतमें भी थोड़ा बहुत प्रभेद था। किन्तु जब यह प्राकृत लिखित भाषारूपमें व्यवहारयोग्य हुई, तब आवश्यकतानुसार संस्कारका भी प्रयोजन हुआ था। उस संस्कृत प्राकृत भाषाने ही पाली, मागधी या अर्द्ध-मागधीरूपसे पहले लिखित भाषाका स्थान अधिकार किया।

गौड़प्राकृतकी उत्पत्ति।

प्राकृत व्याकरणके अनुसार प्राकृत भाषा प्रधानतः संस्कृतभव, संस्कृतसम और देशी इन तीन श्रेणियोंमें विभक्त है। इन तीन श्रेणियोंके मध्य पालीको "तत्सम" तथा अर्द्धमागधीको "तद्भव" श्रेणीमें गिन सकते हैं। परवर्ती कालमें उक्त दोनों प्राकृत भाषाके प्रभावसे विभिन्न स्थानकी लिखित प्राकृत भाषाकी पुष्टि हुई। भरतके मतसे संस्कृत, प्राकृत, अपभ्रंश और मिश्र ये चार भाषाएं हैं। चण्डाचार्यने अपने 'प्राकृत लक्षण'में प्राकृतभाषाको प्राकृत, मागधी, पैशाची और अपभ्रंश इन चार भागोंमें विभक्त किया है। वररुचिके प्राकृत-प्रकाशमें लिखित प्राकृत मागधी, शौरसेनी महाराष्ट्री और पैशाची इन चार भागोंमें विभक्त हुई है।

हेमचन्द्राचार्यने अपने प्राकृत व्याकरणमें अर्द्ध-मागधीको 'आर्ष प्राकृत'के मध्य शामिल किया है। (३।१०) फिर चण्डाचार्यके मतानुसार अर्द्धमागधी, महाराष्ट्री और शौरसेनीका प्राचीनरूप ही आर्षप्राकृतके जैसा लिया जा सकता है। किन्तु प्राकृतचन्द्रिकाकार कृष्णपण्डितने आर्षप्राकृतको लक्षण बतलाया है। उनके मतसे आर्ष, मागधी, शौरसेनी, पैशाची, चूलिका पैशाची और अपभ्रंश ये छः प्रकार मूल प्राकृत हैं।

इन सब प्राकृतोंका प्रभाव जब भारतव्यापी हो गया, तब क्रमसे भारतके नाना स्थानोंकी प्रचलित प्राकृत, थोड़े थोड़े प्राकृतके आदर्श पर और देशी शब्दके मेलसे लिखित प्राकृतमें अपना स्थान पाने लगा। इस प्रकार ८वीं और १०वीं सदीमें हम लोग बहुतसी प्राकृत भाषा-का उल्लेख पाते हैं।

---

० मेदाम्भट्टका श्लोक इस प्रकार है—

"पाणिनिर्भगवान् प्राकृतलक्षणमपि वक्ति संस्कृतादन्यत्। दीर्घाक्षरम् कुत्रचिदेका मात्रामुदाहरति।"

१२वीं शताब्दीमें प्राकृतचन्द्रिकामें कृष्णपण्डितने लिखा है, कि महाराष्ट्रीय, अवन्ती, शौरसेनी, अर्द्ध-मागधी, वाह्लीकी, मागधी, शकारी, आभीर, चाण्डाल, शावर, व्राचण्ड, लाट, वैदर्भ, उपनागर, नागर, वार्वर, आवन्त्य, पाञ्चाल, टाक, मालव, कैकय, गौड़, उड्र, दैव, पाश्चात्य, पाण्ड्य, कौन्तल, सैंहल, कालिङ्ग, प्राच्य, कर्णाट, काञ्च्य, द्राविड़, गौर्जर, ये ३४ भिन्न-देश प्रचलित प्राकृत भाषा हैं। इनके सिवा वैतालादि २७ अपभ्रंश प्राकृत भी प्रचलित थीं। कृष्ण पण्डितके मतसे उक्त प्राकृत भाषाओंके मध्य काञ्चीदेशीय, पाण्ड्य, पाञ्चाल, गौड़, मागध, व्राचण्ड, दाक्षिणात्य, शौरसेनी, कैकय, शावर और द्राविड़ ये ११ पैशाचीसे निकली हैं†।

प्राकृत-चन्द्रिकाके प्रमाणसे हम अच्छी तरह समझते हैं, कि जब १२वीं सदीमें उन सब प्राकृत भाषाने व्याकरणके मध्य स्थान पाया है, तब उसके बहुत पहले ही वह सब भाषा लिखित भाषा-सी समझी गई थी, इसमें सन्देह नहीं। उक्त प्रमाणसे हम यह भी जानते हैं, कि १२वीं सदीके पहले ही हम लोगोंकी गौड़-मगधभाषा लिखित-प्राकृतके मध्य तथा पैशाची भाषासे उत्पन्न पण्डित समाजमें गण्य हुई थी।

अभी प्रश्न होता है, कि गौड़भाषाको 'पिशाचजा' कहनेका कारण क्या?

ऋग्वेदके ऐतरेय आरण्यकमें 'वयः, वङ्ग और मगध'-का उल्लेख है। आनन्दतीर्थने अपनी भाषाटीकामें पिशाच राक्षस, ऐसी व्याख्या की है। उनकी व्यवहृत प्राकृत भाषा ही बहुत पीछे शायद वैदिक ब्राह्मणोंके निकट पैशाची नामसे गण्य हुई होगी। परवर्त्ती कालमें आर्यसंस्रवसे यहांकी स्थानीय भाषा परिपुष्ट हुई सही, पर पूर्वभाषाका प्रभाव बिलकुल दूर नहीं हुआ। इसी कारण १२वीं सदीमें शेष कृष्णपण्डितने पूर्वाचार्योंकी दोहाई देते हुए गौड़मागधभाषाको आर्ष या मूल पैशाचीसे उत्पन्न स्वीकार किया है।

† "काञ्चीदेशीयपाण्ड्ये च पाञ्चालं गौड़मागधं।
व्राचण्डदाक्षिणात्यञ्च शौरसेनञ्च कैकयं॥
शावरं द्राविड़ञ्चैव एकादश पिशाचजाः॥"
(प्राकृतचन्द्रिका)

पैशाची प्राकृतका लक्षण क्या है?

"पैशाचिक्या रणयोर्लनौ।"

(चण्डका प्राकृतलक्षण ३।३८)

पैशाचिकी-भाषामें र और ण-की जगह ल और न होता है।

पैशाचीकी विशेषता दिखानेके लिये वररुचिने भी सूत्र किया है,—"णोः नः" (१०।५) अर्थात् मूर्द्धन्य 'ण' के स्थानमें दन्त्य 'न' होता है।

गौड़ भाषाका प्रकृत उच्चारण लेनेमें मूर्द्धन्य 'ण' का प्रयोग प्रायः नहींके बराबर है। वङ्गदेशीय निम्न श्रेणीके मनुष्य आज भी 'र' की जगह 'ल' का उच्चारण करते हैं। जैसे 'करिलाम' को 'कल्लाम'। 'र' के गौड़का लिखित भाषामें बहुत दिनसे स्थान लाभ करने पर भी 'ण' ने उतना दिन प्रवेशाधिकार न पाया। १००६ सन्‌की हस्त-लिखित चण्डीदासकी एक पदावलीमें बहुत दिन हुए, इस प्रकारका दृष्टान्त दिखलाया गया है।*

एक दूसरा विशेष लक्षण इस प्रकार है—'रशषाणां सः।' (चण्डप्राकृत ३।१८) रेफयुक्त 'श' और 'ष' की जगह सर्वत्र दन्त्य 'स' प्रयुक्त होता है। जैसे शीर्ष= सीस, आमिष=आमिस।

सच पूछिये, तो गौड़ वङ्गवासीके प्रकृत उच्चारणमें मूर्द्धन्य 'ष' और तालव्य 'श' की जगह आज भी तमाम दन्त्य सकारका उच्चारण सुना जाता है।

एक दूसरी विशेषता यह है—'यस्य जः' (चण्ड ३।१५) अर्थात् 'य' की जगह सर्वत्र 'ज' होता है। जैसे 'याता'—जाता।

यथार्थमें गौड़वङ्गमें 'य' वर्णका प्रकृत उच्चारण प्रचलित नहीं है, सर्वत्र 'य' 'ज' रूपमें ही उच्चारित होता है।

कृष्णपण्डितने प्रायः नौ सौ वर्ष पहले गौड़भाषाको पिशाचजा क्यों कहा, मालूम होता है और अधिक समझानेकी जरूरत नहीं।

पैशाची प्राकृतका मूल कहां है? वररुचिने लिखा है—"पैशाची प्रकृतिः शौरसेनी" (१०।२) पैशाची भाषाकी प्रकृति शौरसेनी अर्थात् शूरसेन या मथुरा अञ्चलमें जो प्राचीन प्राकृत भाषा प्रचलित थी, उससे भी पैशाची

* साहित्य-परिषत् पत्रिका ५म भाग १७९-१८४ पृ०।

वेङ्कटभट्ट और मल्लिनाथने लिखा है, कि 'भगवान् पाणिनिने प्राकृतका लक्षण भी प्रकाश किया है। यह संस्कृतसे भिन्न है। इसमें दीर्घाक्षर कहीं कहीं ह्रस्व हुआ करता है०।' इस प्रमाणसे जाना जाता है, कि पाणिनिके समय प्राकृत एक स्वतन्त्र भाषा समझी जाती थी। किन्तु इस भाषाकी लिखित भाषारूपमें गिनती न रहनेके कारण यह उस समय पुष्टिलाभ न कर सकी। पाणिनिके समय 'प्राकृत' प्रचलित रहने पर भी यह सर्वसाधारण-की लौकिक भाषा न समझी जाती थी, क्योंकि पाणिनिने अपनी अष्टाध्यायीमें 'छान्दस' और 'भाषा' इन दो शब्दों द्वारा 'वैदिक' और अपने समयमें प्रचलित 'लौकिक संस्कृत' भाषाका ही उल्लेख किया है। अतएव उनके समय भी संस्कृत-युग चलता था। यह संस्कृत युग कब तक चलता रहा था, उसका आज तक पता नहीं चलता है। पर इतना प्रकट है, कि बुद्धदेवके समय अर्थात् प्रायः ढाई हजार वर्ष पहले संस्कृत जनसाधारणकी प्रचलित भाषा न समझी जाती थी। उस समय जनसाधारण जो भाषा समझते थे, उसका नाम 'गाथा' रखा गया। अभी हम भाषाको ठीक संस्कृत नहीं मान सकते। इस भाषा-की रीति संस्कृत व्याकरणानुकूल नहीं है। इस कारण हम लोग इसको टूटी फूटी संस्कृत मान सकते हैं। उस समय ब्राह्मण पण्डितोंके निकट विशुद्ध संस्कृत भाषाका प्रचार रहने पर भी जनसाधारणके निकट गाथा ही चलित भाषारूपमें गिनी जाती थी। सम्राट् अशोककी उस समय प्रचलित प्रादेशिक भाषामें जो सब अनु-शासन मिलते हैं, वे गाथाके कुछ परवर्ती और पाली भाषाके पूर्वतन प्राकृतमें समझे जाते हैं।

बौद्ध और जैनोंके सूत्रान्त गाथाप्रभृति भाषा आलोचना करनेसे भी अच्छी तरह जाना जाता है, कि उस प्राचीन भाषासे ही पाली, मागधी और अर्द्धमागधी भाषा परिपुष्ट हुई है।

पतञ्जलि आदि वैयाकरणोंके मतसे मागधी, अर्द्ध-मागधी यह सब प्राकृत भाषाका ही प्रकारभेद है। प्राकृत देखो।

पहले कह आये हैं, कि भारतवर्षमें प्राकृत भाषा बहुत पहलेसे कथित भाषारूपमें प्रचलित थी। देश-भेदसे उस प्राकृतमें भी थोड़ा बहुत प्रभेद था। किन्तु जब यह प्राकृत लिखित भाषारूपमें व्यवहारयोग्य हुई, तब आवश्यकतानुसार संस्कारका भी प्रयोजन हुआ था। उस संस्कृत प्राकृत भाषाने ही पाली, मागधी या अर्द्ध-मागधीरूपमें पहले लिखित भाषाका स्थान अधिकार किया।

गौड़प्राकृतकी उत्पत्ति।

प्राकृत व्याकरणके अनुसार प्राकृत भाषा प्रधानतः संस्कृतभव, संस्कृतसम और देशी इन तीन श्रेणियोंमें विभक्त है। इन तीन श्रेणियोंके मध्य पालीको "तत्सम" तथा अर्द्धमागधीको "तद्भव" श्रेणीमें गिन सकते हैं। परवर्त्तीकालमें उक्त दोनों प्राकृत भाषाके प्रभावसे विविध स्थानकी विभिन्न प्राकृत भाषाकी पुष्टि हुई। भरतके मतसे संस्कृत, प्राकृत, अपभ्रंश और मिश्र ये चार भाषाएं हैं। चण्डाचार्यने अपने "प्राकृत लक्षण"में प्राकृतभाषाको प्राकृत, मागधी, पैशाची और अपभ्रंश इन चार भागोंमें विभक्त किया है। वररुचिके प्राकृत-प्रकाशमें लिखित प्राकृत मागधी, शौरसेनी महाराष्ट्री और पैशाची इन चार भागोंमें विभक्त हुई है।

हेमचन्द्राचार्यने अपने प्राकृत व्याकरणमें अर्द्ध-मागधीको 'आर्ष प्राकृत'के मध्य शामिल किया है। (२।१०) फिर चण्डाचार्यके मतानुसार अर्द्धमागधी, महाराष्ट्री और शौरसेनीका सम्मिश्रण ही आर्षप्राकृतके जैसा गिना जा सकता है। किन्तु प्राकृतचन्द्रिकाकार कृष्णपण्डितने आर्षप्राकृतको स्वतन्त्र बतलाया है। उनके मतसे आर्ष, मागधी, शौरसेनी, पैशाची, चूलिका पैशाची और अपभ्रंश ये छः प्रकार मुख्य प्राकृत हैं।

उक्त सब प्राकृतोंका प्रचार जब भारतव्यापी हो गया, तब फिरसे भारतके नाना स्थानोंके प्रचलित प्राकृत धीरे धीरे प्राकृतके आदर्श पर और देशी शब्दके मेलसे विभिन्न प्राकृतके मध्य स्थान पाने लगा। इस प्रकार ९वीं और १०वीं सदीमें हम लोग बहुतसी प्राकृत भाषा-का उल्लेख पाते हैं।

---

० वेङ्कटभट्टकी उक्ति इस प्रकार है—

"पाणिनिभगवान् प्राकृतलक्षणमपि वक्ति संस्कृतादन्यत् दीर्घाक्षरस्य ह्रस्वत्वं क्वचिदिति।"

संस्कृत	प्राकृत	जिस पुस्तकमें प्रयुक्त	वङ्गला
अत्र	एथ		एथा
कर्ण	कण्ण	मृ० क०	कान
कर्म्म	कम्म		काम
कार्य्यम्	कज्ज		काज
कियत्	केत्तक		कतक
कुत्र	केथु		कोथा
कृष्ण	काणु		कानु
क्षुर	छुरा		छुरि
गोप	गोयाल	छन्दोम०	गोयाल
गृहम्	घर	मृ० क०	घर
घृतम्	घिअ		घि
घोटक	घोड़ाअ	गाथा	घोड़ा
चक्र	चक्क		चाका
चन्द्र	चन्द	मृ० क०	चन्द, चांद
चतुर	चारि	पिङ्गल	चारि
चेटी	चेड्डी	मृ० क०	चेड़ी
चतुर्दश	चोद्द	पिङ्गल	चोद्द, चौद्द
च	अ	गाथा	ओ
ज्येष्ठ	जेट्ठा		जेठा
त्वम्	तुह्मि	उ० च०	तुह्मि, तुमि
त्वया	तुए	मृ० क०	तुइ
तैल	तेल		तेल
स्तम्भ	खम्भ		खाम्बा
त्रि	तिण्णि	पिङ्गल	तिन
दधि	दही	मृ० क०	दइ
द्वय	दुअ	पिङ्गल	दुइ
द्वादश	बार	"	बार
द्विगुण	दुणा	"	दुना
दृढ़	दढ़	श० कु०	दड़
दुग्ध	दुद्ध		दुध
द्वार	दुआर	मृ० क०	दुआर
द्वात्रिंश	बाइसा	पिङ्गल	बाइश
न	णो	गाथा	ना
प्रस्तर	पत्थर		पाथर
पञ्चदश	पण्णरह		पनर

संस्कृत	प्राकृत	जिस पुस्तकमें प्रयुक्त	वङ्गला
पलायन	पल्लाण		पालान
पुस्तक	पोथि		पुथि
विद्युत	विज्जुली	मृ० क०	विजुली
वाटी	वाड़ी	"	वाड़ी
वल्कल	वक्कल	श० कु०	वाकल
वधू	वहु	मृ० क०	वउ
वार्त्ता	वत्ता		बात
वृद्ध	वुड्ढ	मृ० क०	बुड़ा
ब्राह्मण	बह्मण	मृ० क०	बामुन
भक्त	भत्त		भात
भगिनी	बहिनी	"	बहिन्, बोन
मस्तक	मत्थअ	"	माथा
मक्षिका	माछि		माछि
मधु	महु		मौ
मिथ्या	मिच्छा		मिछा
यष्टि	लाट्ठी		लाठी
यावत्	जेत्तक		येतक
यत्र	जत्थ	उ० च०	यथा
राजा	राय, राअ	च० कौ० पिङ्गल	राय
राधिका	राई	अपभ्रंश	राइ
रौप्यम्	रूप्पा		रूपा
लवणम्	लोण		लुन, नुन
शृगाल	शिआल	मृ० क०	शियाल
श्मशान	मसाण		मसान
शय्या	शेज		सेज
षष्ठ	छ		छ, छय
षोड़श	सोला	पिङ्गल	षोल
स्थान	ठाण	मृ० क०	ठांइ
सन्ध्या	सञ्झा	"	सांज
सखी	सहि	"	सई
सः	शे	"	से
सत्यम्	सच्च	"	साचा
सप्त	सत्त	पिङ्गल	सात
सर्षप	सरिस्		सरिषा
हस्ती	हत्थी	मृ० क०	हाती
हस्त	हत्थ	श० कु०	हात

संस्कृत	प्राकृत	जिस पुस्तकमें प्रयुक्त	बङ्गला
हृदय	हिअअ	मृ० क०	हिया
हरिद्रा	हलद्दा		हलुद

इन सब शब्दोंमें बङ्गला और प्राकृत शब्द प्रायः एकसे देखे जाते हैं।

पहले ही लिख आये हैं, कि तीन प्रकारके प्राकृतोंमें "देशी" या संस्कृतके साथ सम्बन्धवर्जित शुद्ध देशज भिन्न भाषा भी एक है।

देशी प्राकृत भी विशेषभावसे प्राचीन बङ्गलामें चल गई है। १२वीं सदीमें रचित आचार्य हेमचन्द्रकी 'देशी नाममाला'-से भी बहुतेरे शब्द उठा कर दिखाते हैं। ये सब शब्द हेमचन्द्रके बहुत पहलेसे ही समूचे पश्चिम-भारतमें प्रचलित थे। उद्धृत प्राचीन देशी शब्दोंके देखनेसे सहज ही बोध होगा, कि बङ्गलामें संस्कृत प्रभावकी अपेक्षा प्राकृतका प्रभाव ही अधिक है। बङ्गला भाषा संस्कृत-मूलक नहीं है, वरं प्राकृतमूलक है।

देशी प्राकृत	चलित बङ्गला
उल्लट्ट पल्लट्ट	उलोटपालट, उल्टापाल्टा
उत्थल्ला	उथला, उथलान
उत्थल्ल-पत्थल्ल	आथाल-पाथाल
ओड्डिरो	उड्डि
ओढ्णी	उड़नी
ओल्ल	भोला
ओसा	ओस
कच्चार	कचड़ा
कुडुआ	कडुआ
कोट्ट	कोट
कोइला	कयला
कोलाहल	कोलाहल
कडंग	काँड़ागो
खली	खाल
खड्ड	खड्ड
खाइया	खाइ
गड्डो	गड्ड
गंडीव	गाण्डीव
गड्बडि	गड्बड़, घड्बड़ इत्यादि
गेण्ड और गेण्डुअ	गाँट, गेरो, गोंडरा
गोच्छा	गोच्छा, गोछा
घोड़ो	घोड़ा
घोलट्ट	घोला
चोट्टि	चुंटि, चुंटी
चड्ड	चाड्ड
चाउल	चाउल
चिल्ला	चिल
छल्ली	छलि वा छुली
छिनाल	छिनाल
छिनालो	
छिवा, छिद्दर	छीला
जड़ित	जड़ित
झडी	झड़
झलसिअ	झलसान
झलुंकिअ	
झालिअ	झलप
झलझलिआ	
झाड़	झाड़
झड़ह	झरा
टिप्पि	टिप्
टिक्क	टिका
टुंटो	टुंटो
डम्प, डापा	डेंगरा
डल्लो	ढेल, ढेला
डालो	डाल, ढाल
डुम्ब	डोम
ढाल्लो	ढुलि
ढंढल्ले	ढलढल्
तग्गण	तागा
तडफडिअ	धड़फड़
तुलसी	तुलसी
थरहरिअ	थरहरि (कम्प)
थोरा	थोर
धम्मा	धम्मा, धोंआ

देशी प्राकृत	चलित बङ्गला
घनो	घनि
पपिअ	पापिया
पुप्फा	फुपा, फुफु
पेल्लह	फेला
पेट्ट	पेट
पल्लोट्टई	पोलट, पाल्टान
फग्गु	फाग
फुम्फा	फम्पा
बड़बड़इ	बड़बड़, विड़विड़
बुक्कर	बुकनि
बुड्डर	घोड़ा, डोंगा
बोकड़	बोका (पाँठा)
भल्लू	भालुक
मेरो	मेड़ा
थड्डि	थुड़ि
रोल	रोल
वट्टा	बाट
वरड़ी / वल्ला / वल्लार	बोलता
विहाण	विहान
हणू	हनहन
हड्ड	हाड़
हल्लीसो	हल्लीस
हेला	हेला
हेरिम्बो	हेरम्ब

यहां तक कि, प्रचलित बङ्गला भाषा भी जो एक समय प्राकृत भाषा नामसे प्रचलित थी, उसके भी अनेक प्रमाण मिलते हैं।

बौद्ध और जैन प्राधान्य कालमें प्राकृत भाषाकी चरम उन्नति हुई थी। अनन्तर प्राकृत भाषाका संस्कृत से निरपेक्ष भावमें प्रतिष्ठित करनेकी कोशिश होने पर भी जिस प्रकार कृतकार्य्य न हो सका, अलक्ष्य भावमें भी संस्कृतका सांचा आ कर उसमें पड़ गया है, उसी प्रकार बङ्गभाषा भी प्राकृतसे उत्पन्न हो कर भी बौद्धावनति तथा ब्राह्मणोंके पुनरभ्युदय कालमें संस्कृतको अवलम्बन कर धीरे धीरे उन्नतिके पथ पर अग्रसर होने लगी। उस समयके संस्कृत-पण्डित संस्कृत शब्द-सम्पत्तिको क्रमशः बङ्गला भाषामें योग करने लगे तथा जहां तक सम्भव हो सका प्राकृत भाव लोप होने लगा। जो हो, लिखित भाषाके बहुत कुछ प्राकृतकी शक्ल छोड़ देने पर भी आज कल भाषा किसी अंशमें प्राकृतका ऋण परिशोध न कर सकी। गौड़ीय भाषामें अनेक जगह संस्कृतका शब्द सादृश्य प्राकृतसे अधिक है सही, पर ऐसा होने पर भी उन सब भाषाओंमें क्रियागत और नित्य व्यवहार्य शब्दगत सादृश्य इतना अधिक है, कि उसीसे प्रमाणित होता है, कि बङ्गभाषा प्राकृतसे ही उत्पन्न हुई है।

संस्कृत शब्द जिस भावमें पहले प्राकृतमें और पीछे बंगलामें परिवर्त्तित हुआ है, उसके कुछ नियमोंको क्रिया देखी जाती है, नीचे उनका उल्लेख किया गया है।

आद्य वर्णके बाद संयुक्त वर्ण रहनेसे संयुक्त वर्णका आदि अक्षर लोप और पूर्वस्वर दीर्घ होता है। जैसे हस्त—हाथ, हस्ती—हाती, कक्ष—काख, मल्ल—माल इत्यादि।

कभी कभी पूर्व स्वर अर्थात् आकार शेष वर्णमें युक्त होता है। जैसे, चक्र—चाका, चन्द्र—चान्दा।

कभी शेष वर्णका आकार लोप होता है। जैसे, लज्जा—लाज, ढक्का—ढाक इत्यादि।

आद्य स्वरके परस्थित तथा संयुक्त वर्णके आदिस्थित 'ं' तथा 'न' कारकी जगह चन्द्रबिन्दु होता है। जैसे—वंश—बाँस, कांस्य—काँसा, हंस—हाँस, चन्द्र—चाँद, दन्त—दाँत इत्यादि। अनेक जगह स्वरवर्ण रूपान्तरमें भी व्यवहृत होता है, अ की जगह 'ए' आ-की जगह 'इ' जैसे सञ्चान—शियाना, 'अ' की जगह 'उ' जैसे ब्राह्मण—बामुन। इसके सिवा और भी सूत्र हो सकते हैं। अनेक जगह 'ट'की जगह 'ड' होता है। जैसे—घोटक—घोड़ा घट—घड़ा, माण्ड—मांड़ इत्यादि। कहीं कहीं वर्ण बिलकुल नहीं रहता, जैसे—कर्मकार = कमार—'कामारी, कुम्भकार = कुम्भार—कुमार, मूत्र—'मू'। हृदय—हिअअ, हिया इत्यादि। कथित भाषा धीरे धीरे इसी प्रकार सहज आकारमें परिवर्त्तित हुई है।

विभक्ति।

संस्कृत और प्राकृतकी तरह बङ्गला भाषामें भी सात विभक्ति प्रचलित है। बङ्गला भाषाकी विभक्ति पहले कहांसे अनुसृत हुई है इसका अनुमान करना सहज नहीं है। क्योंकि बङ्गला विभक्तियोंमेंसे कुछ संस्कृतकी अनुयायी हैं। विशेषतः कई जगह प्रथमा विभक्तिका एकवचन संस्कृतका विसर्ग बङ्गलामें नहीं आता।

फिर इसी प्रकार प्रथमा विभक्तिके एकवचनमें पुराने ग्रन्थमें प्राकृतका अनुयायी व्यवहृत हुआ है। प्राकृतमें प्रथमा विभक्तिमें जिस प्रकार एकवचनमें 'ए' जोड़ा जाता है, बङ्गलामें भी उसी प्रकार प्रथमा विभक्तिके एकवचनमें पहले एकार जोड़नेकी रीति थी।

(प्राकृत—"गामो ए निद्दाके विमोहेदि" मृ० क० ३ अङ्क)

प्राकृत भाषामें द्विवचनमें कोई भेद नहीं दिखाई देता। प्रायः दोनों ही जगह सिर्फ संख्याबोध या आकारका योग हुआ है। जैसे—"अज आदि तरुले असंशय परिसो जादो देउल जाणामि कुलालया" (१) "कहि मे पुत्तआ" (२) इन दोनों स्थानोंके "न जानामि कुलालयौ" तथा "कुत्र मे पुत्रकौ" द्विवचनकी जगह आकार जोड़ा गया है। बङ्गला भाषामें अभी दो वचन प्रचलित हैं, एकवचन और बहुवचन, द्विवचन-बोधक किसी विभक्तिका प्रचलन नहीं देखा जाता। पूर्वप्रचलित बङ्गलामें बहुवचनके बोधके लिये प्राकृतके अनुयायी आकार जोड़ा गया है।

आज कल फिर लेखक भाषाके बहुवचनमें 'आ' कार जोड़नेकी प्रथा नहीं देखी जाती। अभी उस स्थान पर 'रा' शब्द अधिकार कर बैठा है।

बङ्गलामें द्वितीया और चतुर्थी, इन दोनों विभक्तियोंमें ही 'के' प्रचलित है। मोक्षमूलरके मतसे इस 'के' संस्कृतके कार्यमें 'कृ' होता आया है। प्राकृत भाषामें भी इस 'क'-का बहुत प्रचार है। विशेषतः मागधीमें इस 'क' का प्रचलन सबसे अधिक देखा जाता है।

हाँ सौ वर्ष पहले बङ्गला भाषामें विशिष्टरूपसे इसी प्रकार 'क' का प्रचलन था। यह क कभी कर्म और कभी सम्प्रदानरूपसे व्यवहृत होता था। किन्तु इसका कौन कर्म और कौन सम्प्रदानमें व्यवहृत होता था, यह सहजमें नहीं जाना जाता। पीछे यह 'क' 'के' का आकार धारण कर कर्म और सम्प्रदान बतानेके लिये प्रचलित हुआ है किन्तु पूर्वकालमें यही 'के' कर्म और सम्प्रदानको छोड़ कर अन्य सभी विभक्तियोंमें युक्त होता था। इसके भी अनेक प्रमाण मिलते हैं। अतएव कालक्रमसे कौन किस प्रकार परिवर्त्तित हुआ उसका निर्णय करना बहुत कठिन है। बहुवचन दिखानेके लिये अभी जिस प्रकार 'रा' 'दिगेर' इत्यादिका व्यवहार होता है उसी प्रकार पहले बहुवचन बतानेके लिये शब्दके साथ 'सब' 'सकल' 'आदि' प्रभृति जोड़े जाते थे।

हर्णलिके विधानानुसार पीछे इस आदि युक्त 'पुत्रादि' शब्दके साथ षष्ठीका योग हो कर पुत्रादिर हुआ है तथा उस पुत्रादिके ऊपर फिर स्वार्थमें 'क' युक्त हुआ है।

पूर्व और पश्चिम बङ्गमें कहीं कहीं आज भी 'आमागो तोमागो रामागो' आदिका व्यवहार देखा जाता है। ये शब्द आदिशब्दजन्य 'क' युक्त मात्र हैं, पीछे 'क' के 'ग' रूपमें परिवर्त्तन हुए हैं। आमागो आदि शब्द प्राकृत 'अह्माकं' 'तुह्माकं' से प्रतीत होते हैं।

करणकारक बोधक अभी जो द्वारा और दिया द्वारा व्यवहृत होता है, पहले यह सब कुछ भी नहीं था। उस समय संस्कृत 'हातेन'-की जगह प्राकृतमें 'हातए' का व्यवहार था। द्वारा शब्द संस्कृत द्वार शब्दसे निकला है। प्राकृत भाषाकी षष्ठीके बहुवचनमें 'हिंतो' व्यवहृत होता था,—"आमो हिंतो सुंतो।" (वररुचि)

बङ्गलामें यह 'हिंतो' पद 'हते' रूपमें परिणत हुआ है। पूर्वकालमें बङ्गलामें उसने 'हन्ते' रूप धारण किया था।

कालक्रमसे यह 'हन्ते' 'हइते' रूपमें परिवर्त्तित हुआ है। फिर कहीं कहीं 'हते' रूप हुआ है। यह रूप प्रायः प्राचीन ग्रन्थोंमें देखा जाता है।

वररुचिके प्राकृतप्रकाशके मतसे स्त्रीके बहुवचनमें 'ण' होता है। 'ण' और बङ्गलाका 'र' दोनों ही एक मूर्द्धन्य वर्ण है, स्वभावतः ही 'ण'के स्थानमें अनेक जगहोंमें आज भी अन्य भाषामें 'ण' और 'र' एक ही रूप सुना जाता है।

संस्कृत 'तस्मिन्' से सप्तमीमें 'त' की उत्पत्ति हुई है, संस्कृत सप्तमीका एक ही रूप रहता है, जैसे—'कानने' पर्वते, जले, इत्यादि। संस्कृत—लतायां नद्यां मालायां इत्यादि प्राकृतमें "लताए, नदीए, मालाए" होते हैं। प्राचीन हस्तलिखित ग्रन्थमें बङ्गलामें वह ठीक प्राकृत आकारमें ही है। वर्त्तमान कालमें वे सब परिवर्त्तित हो कर केवल 'शालाय, घेलाय, मालाय' इत्यादि रूप हो गये हैं।

क्रिया।

प्राकृतके भीतर 'करइ' 'वलइ' 'णचइ' इत्यादि कुछ क्रियाने बङ्गलामें ठीक 'करे' 'वले' 'नाचे' इत्यादि आकार धारण किया है। प्राकृत 'सुनिअ' 'करिअ' 'लभिअ' इत्यादि स्थानोंमें 'सुनिया' 'करिया' 'लइया' हुआ है। संस्कृत 'अस्ति' क्रियाने प्राकृत 'अच्छि' रूप धारण किया है तथा इस 'अच्छि' के साथ भू धातुको असमापिका 'हइया' योग कर 'हइयाछे' ऐसा रूप बना है। देखितेछे, करिमेछे इत्यादि भी इसी प्रकार उत्पन्न हुआ है। आज भी पूर्ववङ्गमें कहीं कहीं दो शब्द पृथक्भावमें उच्चारित होते हैं, जैसे—'जाइते आछे' 'खाइते आछे'। 'आछे' क्रिया संस्कृत 'आसीत्' के ही अपभ्रंश 'आछिल' रूपमें अन्यान्य पूर्ववर्ती पदके साथ युक्त हो कर (जैसे राजा आसीत्, सुन्दर आसीत् अर्थात् राजा थे, सुन्दर थे इत्यादि पद) बनी है।

शब्दकी परिवर्त्तन प्रणाली अति विचित्र है। प्रायः अनुकरणप्रियता ही उन सब परिवर्त्तनका कारण है। चलित 'चल' 'खेल' इत्यादि क्रियाओंका 'ल' कार दूसरी जगह भी योग हुआ है। रकार और लकारका सादृश्य तमाम देखा जाता है। संस्कृत 'चलामः' 'खेलामः' इत्यादि क्रिया क्रमशः 'चलिलाम' 'खेलिलाम' रूपमें परिवर्त्तित हुई है। प्राचीन बङ्गलामें अनेक जगह ठीक प्राकृतकी अनुयायी 'करन्ति' 'जानन्ति' 'करसि' 'जायमि' इत्यादि क्रियायें व्यवहृत हुई हैं।

ललितविस्तरमें अनेक जगह 'करोमि' के अपभ्रंशमें 'करोम' मिलता है तथा यह क्रिया उस ग्रन्थमें सभी जगह 'करिष्यामि' के अर्थमें व्यवहृत हुई है। आज भी पूर्ववङ्गमें कहीं कहीं 'करुम' क्रिया प्रचलित है।

'करिमु' क्रिया प्राचीन बङ्गलामें कई जगह मिलती है। 'करिमु' की जगह अनेक स्थानोंमें 'करिबु' व्यवहृत हुई है।

संस्कृत 'कुर्व्वः' क्रियाका 'करिव' रूपमें परिवर्त्तित होना सम्भव है। संस्कृत 'भवतु, ददातु' क्रिया प्राकृतमें यथाक्रम 'हउ', 'देउ' रूपमें व्यवहृत तथा उसके साथ बङ्गलामें सिर्फ एक 'क' का योग कर 'हउक', 'देउक' भावमें प्रचलित हुई है। यह 'क' कहांसे आया, सोचनेका विषय है। बङ्गलाकी अनेक क्रियाओंमें 'क' का व्यवहार देखा जाता है। भू, दा, कृ, इत्यादि क्रियायें जब कर्म और भाववाच्यमें प्रयुक्त होती हैं, तब उन सब क्रियाओंके कर्त्तृत्वबोधके लिए उसमें 'क' शब्दके योगसे उल्लिखित 'करिबेक' इत्यादि पद बने हैं।

संस्कृत अनुज्ञामें 'हि' प्राकृतमें 'ह' रूपमें परिवर्त्तित हुआ है। जैसे—"आभच्छ पुणो जुदं रहम।" (मुच्छक० २ अङ्क)

उसी प्रकार बङ्गलामें भी उसी अर्थमें 'ह' का व्यवहार पूर्व बङ्गलामें 'करिह', 'जाइह' इत्यादि रूपमें प्रचलित था। पिङ्गलके छन्दःसूत्रमें कहीं कहीं 'हु' देखा जाता है।

पहले कह आये हैं, कि प्राकृतमें वर्गीय और अन्तस्थ इन दो जकारकी जगह एक 'ज' 'श ष स' की जगह एक 'स' तथा 'ण न' की जगह जिस प्रकार ण-का व्यवहार देखा जाता है, उसी प्रकार बङ्गला भाषामें भी पहले उन सब वर्णोंकी जगह 'ज' 'स' तथा केवल 'न' का व्यवहार देखा जाता है। हस्तलिखित प्राचीन बङ्गला ग्रन्थ देखनेसे ही इसके दृष्टान्तका अभाव न रहेगा।

अनेक प्राचीन बङ्गला ग्रन्थमें भी प्राकृतकी तरह 'द' की जगह 'ड' का व्यवहार होता है।

छन्दः।

प्राचीन बङ्गला-भाषाके छन्दोनियममें कोई छानबीन न थी। पयार, धुआ, नचाड़ी आदि कुछ छन्द पहले प्रचलित थे। वे सब छन्द गानकी तरह सुर दे कर पढ़नेकी रीति थी। संस्कृत 'पद' शब्दसे 'पअ' तथा उससे 'पयार' आया है। जैसे संस्कृत षट्पदी हिन्दी प्राकृतमें 'छप्पई' हुआ है। 'पद' गानेका ही नियम था।

पयार पहले नाना रागोंमें गाया जाता था। प्राचीन कवियोंने भी 'पयार' को गान नामसे भणितामें उल्लेख किया है।

रूप होकर मनोहर और सुसज्जित है। कवि एक बहुत शैव थे, यह उनकी कविताओंसे साफ मालूम होता है।

रामकृष्णके बाद रामराय और कृष्णराय नामक दो कवियोंने 'मृगलुब्ध संवाद' नामक ग्रन्थमें शिवमाहात्म्य प्रचार किया।

द्विज रामदेव गङ्गाजलके अन्तर्गत नवग्रामनिवासी थे। उनके पिताका नाम गोविन्द और माताका नाम वसुमता था। १५२६ शक (१६०४ ई०) में उन्होंने मृगलुब्ध नामक ग्रन्थ लिखा।

शिवायन, रामकृष्ण, पश्चिम बङ्ग तथा तद् परवर्ती उक्त कवियोंके पूर्वबङ्गवासी थे। इस कारण उन लोगोंके ग्रन्थोंमें अपना अपना प्रादेशिक भाषाका प्रभाव दिखाई देता है।

द्विज भवानन्द और द्विज हरिहरसुत शङ्कर कविने 'वैद्यनाथमङ्गल' नामक एक शिवमाहात्म्यकी रचना की। इन दोनों ग्रन्थोंकी दो सौ वर्षकी पुस्तकें पाई गई हैं। इस देशमें रामेश्वरका शिवायन या शिवसङ्कीर्तन ही विशेष प्रचलित है। किन्तु यह ग्रन्थ बहुत प्राचीन नहीं है।

शिवमाहात्म्यमूलक स्वतन्त्र ग्रन्थ अधिक संख्यामें नहीं लिखे गये पर परवर्ती शाक्तप्रभावके समय जिन सब मङ्गल साहित्योंकी सृष्टि हुई है उनमें विशेष भावसे शैवोंके असाधारण प्रभावका परिचय पाया गया है। वङ्गीय प्रत्येक हिन्दू गृहस्थकी नित्य शिवपूजा करनेकी जो विधि प्रचलित है वह उसी शैव-प्रभावका उज्ज्वल निदर्शन है।

शाक्त-प्रभाव।

तान्त्रिक प्रभाव विस्तारके साथ गौड़बङ्गमें शाक्त-प्रभाव संघटित हुआ। पाल वौद्ध राजाओंके समय वौद्ध-तान्त्रिक तथा आर्यतारा, वज्रतारा, दशभैरवी आदि शक्तिके उपासक थे। उनके समय बौद्धशाक्तकी संख्या ही अधिक हो गई थी। पीछे शैवोंके पशुपतिगुरुके समयमें बहु-तान्त्रिक शैव-शाक्तप्रभाव हुए ... बहुत साधारणके बीच हिन्दू ... उनमें इसके लिये थे, पीछे ... था। आज भी हिन्दू ... समाजमें ही हुए, समय बाद

आधिपत्य जमाया। शीतला, विषहरी, मङ्गलचण्डी, षष्ठी आदि देवीकी पूजा ही जनसाधारणके बीच प्रवर्तित हुई।

शीतलाकी पूजा बङ्गालमें समान प्रचलित है। गौड़-बङ्गमें वसन्तरोगके प्रादुर्भावके साथ शीतला पूजा भी सर्वत्र प्रचलित हुई। उसके साथ साथ शीतलाका गान भी रचा गया। अनेक कवि 'शीतला मङ्गल'की रचना कर गये हैं,—बङ्गके नाना स्थानोंमें बड़ी धूमधाम-से शीतलापूजाके समय वे सब मङ्गल गाये जाते हैं। वे सब गान शीघ्र पण्डितोंके निकट होनेके कारण उन्हें पानेका उपाय नहीं। उनमेंसे पांच कवियोंके केवल पांच शीतलामङ्गलका पता लगा है। इन पांचोंके नाम हैं, कविवल्लभ दैवकीनन्दन, नित्यानन्द, चक्रवर्ती, कृष्णराम, रामप्रसाद और शङ्कराचार्य। इन कवियोंमें-से दैवकीनन्दनको हम बहुत सभी कवियोंसे प्राचीन समझते हैं।

कवि कृष्णराम, रामप्रसाद तथा शङ्कराचार्यने भी शीतलामङ्गलकी रचना की है। उक्त सभी कवियोंमें कवि कृष्णरामकी रचना प्राञ्जल, मनोहर और कवित्व-पूर्ण है। कृष्णरामका 'मदनदासका पाला' प्रकट हुआ है। जो हो, शीतलामङ्गलके पाले हिन्दू कवियोंके हाथ पड़ कर बहुत रूपान्तरित हो गये हैं, फिर भी इन सब ग्रन्थोंमें सुदूर अतीतकी शाक्तस्मृति अङ्कित है। यह स्पष्ट चिह्न बौद्ध शाक्तसमाजका अन्तिम निदर्शन है।

महामहोपाध्याय हरप्रसाद शास्त्री महाशय देखा आ कर देख आये हैं, कि जहां जहां जहां पर प्राचीन लोकेश्वरादिका देवालय है, वहां हारीतादेवी अवस्थान करती हैं। बौद्ध हारीता भी यहांकी शीतला-की तरह वसन्त-रोग-अधिष्ठात्री हैं। बङ्ग-देशमें जहां जहां धर्म-मन्दिर है, वहीं वहीं पर प्रायः शीतलाका अवस्थान निर्दिष्ट है। साधारणतः धर्म-पण्डित या डोमपण्डित शीतलाकी पूजा किया करते हैं। आज भी ये लोग धर्मराजके विशेषरूपसे निदर्शन ... धर्ममङ्गल-ग्रन्थमें ... है। इसका प्रचार सब होने ... हारीतीका शीतला-

मूर्त्तिमें हिन्दू-समाजमें हाजिर किया था। आखिर बङ्गमें कवि नित्यानन्दके 'वसन्तकुमारी' अनुग्रह-विस्तारके साथ अनिच्छा रहते हुए भी शैव और वैष्णवगण रोग-नाशके लिये शीतला पूजा करने वाध्य हुए थे। जो धर्म पण्डित हिन्दू समाजके बाहर पड़े थे, हिन्दू-समाजमें शीतलापूजा प्रचारके साथ उन लोगोंने बहुत कुछ विलुप्त सम्मान प्राप्त किया। दूसरे समय हिन्दू लोग उन्हें घृणाकी दृष्टिसे देखते हैं सही, पर शीतलापूजाके समय वे लोग हिन्दूके घर आवालवृद्धवनितासे पूजा पाते हैं। शीतलापूजा-प्रचारके साथ शीतलापूजक धर्मपण्डितोंने 'शीतला पण्डित' नामसे प्रसिद्धि पाई है। शीतला पण्डितोंकी पूजिता शीतला-प्रतिमा भावप्रकाश या पिच्छिलातन्त्रोक्त देवीमूर्त्ति नहीं है। शीतला पण्डितोंकी शीतलाके हाथ पैर नहीं हैं, सारे शरीरमें सिन्दूर लिपा है, शङ्ख या धातुखचित व्रणचिह्न अङ्कित है, मुंहमें वसन्तका चिह्न दिखाई देता है। नेपालकी बौद्ध हारीतीकी मूर्त्ति भी उसी तरह है। शीतला पण्डित आज भी शीतला-मङ्गल गाते हैं। उन लोगोंके पास शीतलाके अनेक ग्रन्थ हैं जिन्हें वे छिपाये रखे हुए हैं, किसीको भी देखने नहीं देते।

विषहरीका गान वा पद्मपुराण (मनसामङ्गल)

बङ्गसाहित्यमें देवीपूजाका प्रथम आदर्श विषहरी है। ये सर्पकी अधिष्ठात्री हैं। पूर्वतन हिन्दूसमाजमें इनका स्थान कहां था, प्राचीन पुराणमें उसका निदर्शन नहीं है। परन्तु भविष्य, ब्रह्मवैवर्त्त आदि पुराणोंके आधुनिक अंशमें इनका नाम तो पाया गया है, पर वह भी ८वीं सदीके पीछेका है। जो हो, उसके भी बहुत पीछे विषहरी, मङ्गलचण्डी आदिने बङ्गसाहित्यमें स्थान पाया है।

मनसाकी पूजा करनेसे सांपका भय जाता रहता है। वे विष हरण करती हैं, इस कारण उनका विषहरी नाम हुआ है। विषहरीका गान वा मनसामङ्गल सैकड़ों कवि रच गये हैं। उनमेंसे किस कविने इसकी प्रथम रचना की, उसका ठीक ठीक पता नहीं चलता। विजयगुप्तने १४०१ शकमें अपने पद्मपुराण वा मनसामङ्गलमें लिखा है, कि विजयगुप्तके समय अर्थात् साढ़े चार सौ वर्ष पहले हरिदत्तके गानका लोप हुआ था। इस हिसाबसे हम लोग हरिदत्तको कमसे कम ६०० वर्ष पहलेका आदमी मान सकते हैं। हरिदत्तको किसी किसीने कायस्थ कहा है। इन कायस्थ कविको ही मनसामङ्गलके आदिकवि मान सकते हैं।

इसके बाद नारायणदेवका पद्मपुराण है। नारायणदेवके निज परिचयसे जाना जाता है, कि वे जातिके कायस्थ थे, मौद्गल्य गोत्र था, देव पदवी थी। इनके पूर्वपुरुषका वास मगधमें था। इसके बाद वे राढ़में और राढ़से बोरग्राममें आ कर बस गये। (बोरग्राम मैमनसिंह जिला किशोरगञ्ज महकुमेके अन्तर्गत है) इन्हें १४वीं सदीका आदमी मान सकते हैं।

नारायणदेवके बाद हम विजयगुप्तका नाम पाते हैं। विजयगुप्तने १४०१ शक (१४७९ ई०)में पद्मपुराण या मनसा-मङ्गल प्रणयन किया।

हरिदत्त, नारायणदेव और विजयगुप्तको आदर्श कर बहुत-से कवि मनसामङ्गल लिख गये हैं। अकारादि वर्णानुक्रमसे ५६ कवियोंके नाम नीचे लिखे जाते हैं—

अनूपचन्द्र, आदित्यदास, कमललोचन, कवि कर्णपुर, कृष्णानन्द, केतकादास क्षेमानन्द, पण्डित गङ्गादास, गङ्गादास सेन, गुणानन्द सेन, गोपीचन्द्र, गोलोकचन्द्र, गोविन्ददास, चन्द्रपति, जगत्-वल्लभ, विप्र जगन्नाथ, जगन्नाथ सेन, जगमोहन मित्र, जयदेव दास, द्विज जयराम, विप्र जानकीनाथ, जानकीनाथ दास, नन्दलाल, नारायण, बलराम द्विज, बलराम दास, वाणेश्वर, मधुसूदन दे, यदुनाथ पण्डित, विप्र रतिदेव, रतिदेव सेन, रमाकान्त द्विज [illegible] राजसिंह (सुमङ्गल), राधाकृष्ण, रामचन्द्र, रामजीवन विद्याभूषण, विप्र रामदास, रामदास सेन, रामनिधि, रामविनोद, द्विज वंशीदास, वंशीधन, वनमाली द्विज, वनमालीदास, वर्द्धमानदास, वल्लभ घोष विजय, विप्रदास, विश्वेश्वर, विष्णु पाल, षष्ठीवर सेन, सीतापति, सुकविचन्द्र-दास, सुखदास, सुदामदास, द्विज हरिराम, हृदय ब्राह्मण।

उन सब कवियोंके मध्य पूर्व बङ्गवासी कविकी संख्या ही अधिक है। केतकादास क्षेमानन्द, जगमोहन मित्र आदि पश्चिम-बङ्गवासी कविकी संख्या थोड़ी है।

दिवलीला मनोहर और सुललित है। कवि एक कट्टर शैव थे, यह उनकी कवितासे स्पष्ट मालूम होता है।

रामकृष्णके बाद रामराय और श्यामराय नामक दो कवियोंने 'मृगव्याध संवाद' नामक ग्रन्थमें शिवमाहात्म्य प्रचार किया।

द्विज रतिदेव चट्टग्रामके अन्तर्गत चक्रशालानिवासी थे। उनके पिताका नाम गोपीनाथ और माताका नाम वसुमती था। १५९६ शक (१६७४ ई०) में उन्होंने मृगलुब्ध नामक ग्रन्थ लिखा।

कविचन्द्र रामकृष्ण पश्चिम बङ्ग तथा तत् परवर्ती उक्त कविगण पूर्वबङ्गवासी थे। इस कारण उन लोगोंके ग्रन्थमें अपनी अपनी प्रादेशिक भाषाका प्रभाव दिखाई देता है।

द्विज भगीरथ और द्विज हरिहरसुत शङ्कर कविने 'वैद्यनाथमङ्गल' नामक एक शिवमाहात्म्यकी रचना की। इन दोनों ग्रन्थोंमें दो सौ वर्षकी पुस्तकें पाई गई हैं। इस देशमें रामेश्वरका शिवायन वा शिवसंकीर्त्तन ही विशेष प्रचलित है। किन्तु यह ग्रन्थ बहुत प्राचीन नहीं है।

शिवमाहात्म्यसूचक स्वतन्त्र ग्रन्थ अधिक संख्यामें नहीं मिलने पर भी परवर्ती शाक्तप्रभावके समय जिन सब मङ्गल साहित्यकी सृष्टि हुई है उसमें विशेष भावसे शैवोंके असाधारण प्रभावका परिचय पाया गया है। बङ्गीय प्रत्येक हिन्दू गृहस्थकी नित्य शिवपूजा करनेकी जो विधि प्रचलित है वह उसी शैव-प्रभावका ज्वलन्त निदर्शन है।

शाक्त-प्रभाव।

तान्त्रिक प्रभाव विस्तारके साथ गौड़बङ्गमें शाक्त-प्रभावका सूत्रपात हुआ। सभी बौद्ध पालराजगण बौद्ध-तान्त्रिक तथा आर्यतारा, वज्रवाराही, वज्रभैरवी आदि शक्तिके उपासक थे। उनके समय बौद्धशाक्तकी संख्या ही अधिक हो गई थी। पीछे शैवोंके पुनरभ्युदय कालमें बहु-तान्त्रिक शैवसम्प्रदायभुक्त हुए थे। शैवगण पहले जो जनसाधारणके बीच शिव-माहात्म्य प्रचार कर उन्हें अपने दलमें मिलाते थे, पीछे उसका बिलकुल उल्टा देखा गया। भक्तकी नित्य साहाय्यकारी भक्तप्राण भगवतीके प्रभावने ही कुछ समय बाद जनसाधारणके ऊपर आधिपत्य जमाया। शीतला, विषहरी, मङ्गलचण्डी, षष्ठी आदि देवोंकी पूजा ही जनसाधारणके बीच प्रचलित हुई।

शीतलाकी पूजा बङ्गालमें तमाम प्रचलित है। गौड़-बङ्गमें वसन्तरोगके प्रादुर्भावके साथ शीतला पूजा भी सर्वत्र प्रचलित हुई। उसके साथ साथ शीतलाका गान भी रचा गया। अनेक कवि 'शीतला-मङ्गल'की रचना कर गये हैं,—बङ्गके नाना स्थानोंमें बड़ा धूमधाम-से शीतलापूजाके समय ये सब मङ्गल गाये जाते हैं। ये सब गान डोम पण्डितोंके निजस्व होनेके कारण उन्हें पानेका उपाय नहीं। उनमेंसे पांच कवियोंके केवल पांच शीतलामङ्गलका पता चला है। उन पांचोंके नाम हैं, कविवल्लभ देवकीनन्दन, नित्यानन्द, चक्रवर्त्ती, कृष्णराम, रामप्रसाद और शङ्कराचार्य। इन कवियोंमें-से देवकीनन्दनको इन बाकी सभी कवियोंसे प्राचीन समझते हैं।

कवि कृष्णराम, रामप्रसाद तथा शङ्कराचार्यने भी शीतलामङ्गलकी रचना की है। उक्त सभी कवियोंमें कवि कृष्णरामकी रचना प्राञ्जल, मनोहर और कवित्व-पूर्ण है। 'कृष्णरामका 'मदनदासका पाला' एकदम नया है। जो हो, शीतलामङ्गलके पाले हिन्दू कवियोंके हाथ पड़ कर बहुत रूपान्तरित हो गये हैं, फिर भी उन सब ग्रन्थोंमें सुदूर अतीतकी क्षीणस्मृति अङ्कित है। यह स्पष्ट चिह्न बौद्ध शाक्त-समाजका अन्तिम निदर्शन है।

महामहोपाध्याय हरप्रसाद शास्त्री महाशय नेपाल जा कर देख आये हैं, कि वहां जहां जहां पर वज्रोक लोकेश्वरादिका देवालय है, वहां हारीतादेवी अवस्थान करती है। बौद्ध हारीता भी वहांकी शीतला-की तरह वसन्त-व्रण व्याधिनाशिनी हैं। बङ्ग-देशमें जहां जहां धर्म-मन्दिर है, वहीं वहीं पर मानो शीतलाका अवस्थान स्वतःसिद्ध है। साधारणतः धर्म-पण्डित या डोमपण्डित शीतलाकी पूजा किया करते हैं। आज भी ये लोग वसन्तरोग-चिकित्सामें सिद्धहस्त समझे जाते हैं। धर्ममङ्गल-प्रसङ्गमें धर्मपण्डितोंके प्रभावका परिचय दिया गया है। उनका प्रभाव नष्ट होने पर उन लोगोंने बौद्ध-तान्त्रिक देवी हारीतीको 'शीतला-

मूर्त्तिमें हिन्दू-समाजमें हाजिर किया था। आखिर बङ्गमें कवि नित्यानन्दके 'वसन्तकुमारी' अनुग्रह-विस्तारके साथ अनिच्छा रहते हुए भी शैव और वैष्णवगण रोग-नाशके लिये शीतला पूजा करने वाध्य हुए थे। जो धर्म पण्डित हिन्दू-समाजके बाहर पड़े थे, हिन्दू-समाजमें शीतलापूजा प्रचारके साथ उन लोगोंने बहुत कुछ विलुप्त सम्मान प्राप्त किया। दूसरे समय हिन्दू लोग उन्हें घृणाकी दृष्टिसे देखते हैं सही, पर शीतलापूजाके समय वे लोग हिन्दूके घर आबालवृद्धवनितासे पूजा पाते हैं। शीतलापूजा-प्रचारके साथ शीतलापूजक धर्मपण्डितोंने 'शीतला पण्डित' नामसे प्रसिद्धि पाई है। शीतला पण्डितोंकी पूजिता शीतला-प्रतिमा भावप्रकाश वा पिच्छिलातन्त्रोक्त देवीमूर्त्ति नहीं है। शीतला पण्डितोंकी शीतलाके हाथ पैर नहीं है, सारे शरीरमें सिन्दूर लिपा है, शङ्ख वा धातुखचित व्रणचिह्न अङ्कित है, मुंहमें वसन्तका चिह्न दिखाई देता है। नेपालकी बौद्ध हारीतीकी मूर्त्ति भी उसी तरह है। शीतला पण्डित आज भी शीतला-मङ्गल गाते हैं। उन लोगोंके पास शीतलाके अनेक ग्रन्थ हैं जिन्हें वे छिपाये रखे हुए हैं, किसीको भी देखने नहीं देते।

विषहरीका गान वा पद्मपुराण (मनसामङ्गल)

बङ्गसाहित्यमें देवीपूजाको प्रथम आदर्श विषहरी है। ये सर्पकी अधिष्ठात्री हैं। पूर्वतन हिन्दूसमाजमें इनका स्थान कहां था, प्राचीन पुराणमें उसका निदर्शन नहीं है। परन्तु भविष्य, ब्रह्मवैवर्त्त आदि पुराणोंके आधुनिक अंशमें इनका नाम तो पाया गया है, पर वह भी ८वीं सदीके पीछेका है। जो हो, उसके भी बहुत पीछे विषहरी, मङ्गलचण्डी आदिने बङ्गसाहित्यमें स्थान पाया है।

मनसाकी पूजा करनेसे सांपका भय जाता रहता है। वे विष हरण करती हैं, इस कारण उनका विषहरी नाम हुआ है। विषहरीका गान वा मनसामङ्गल सैकड़ों कवि रच गये हैं पर उनमेंसे किस कविने इसकी प्रथम रचना की, उसका ठीक ठीक पता नहीं चलता। विजयगुप्तने १४०१ शकमें अपने पद्मपुराण वा मनसामङ्गलमें लिखा है, कि विजयगुप्तके समय अर्थात् साढ़े चार सौ वर्ष पहले हरिदत्तके गानका लोप हुआ था। इस हिसाबसे हम लोग हरिदत्तको कमसे कम ६०० वर्ष पहलेका आदमी मान सकते हैं। हरिदत्तको किसी किसीने कायस्थ कहा है। इन कायस्थ कविको ही मनसामङ्गलके आदिकवि मान सकते हैं।

इसके बाद नारायणदेवका पद्मपुराण है। नारायणदेवके निज परिचयसे जाना जाता है, कि वे जातिके कायस्थ थे, मौद्गल्य गोत्र था, देव पदवी थी। इनके पूर्वपुरुषका वास मगधमें था। इसके बाद वे राढ़में और राढ़से बोरग्राममें आ कर बस गये। (बोरग्राम मैमनसिंह जिला किशोरगञ्ज महकूमेके अन्तर्गत है) इन्हें १४वीं सदीका आदमी मान सकते हैं।

नारायणदेवके बाद हम विजयगुप्तका नाम पाते हैं। विजयगुप्तने १४०१ शक (१४७९ ई०)में पद्मपुराण या मनसा-मङ्गल प्रणयन किया।

हरिदत्त, नारायणदेव और विजयगुप्तको आदर्श कर बहुत-से कवि मनसामङ्गल लिख गये हैं। अकारादि वर्णानुक्रमसे ५९ कवियोंके नाम नीचे लिखे जाते हैं—

अनूपचन्द्र, आदित्यदास, कमललोचन, कवि कर्णपुर, कृष्णानन्द, केतकादास क्षेमानन्द, पण्डित गङ्गादास, गङ्गादास सेन, गुणानन्द सेन, गोपीचन्द्र, गोलोकचन्द्र, गोविन्ददास, चन्द्रपति, जगत्-वल्लभ, विप्र जगन्नाथ, जगन्नाथ सेन, जगमोहन मित्र, जयदेव दास, द्विज जयराम, विप्र जानकीनाथ, जानकीनाथ दास, नन्दलाल, नारायण, बलराम द्विज, बलराम दास, वाणीश्वर, मधुसूदन दे, यदुनाथ पण्डित, विप्र रतिदेव, रातदेव सेन, रमाकान्त द्विज रसिक [illegible], राजसिंह (सुमङ्ग), राधाकृष्ण, रामचन्द्र, रामजीवन विद्याभूषण, विप्र रामदास, रामदास सेन, रामनिधि, रामविनोद, द्विज वंशीदास, वंशीधन, वनमाली द्विज, वनमालीदास, वर्द्धमानदास, वल्लभ घोष विजय, विप्रदास, विश्वेश्वर, विष्णुपाल, षष्ठीवर सेन, सीतापति, सुकवि-दास, सुखदास, सुदामदास, द्विज हरिराम, हृदय ब्राह्मण।

उन सब कवियोंके मध्य पूर्व बङ्गवासी कविकी संख्या ही अधिक है। केतकादास क्षेमानन्द, जगमोहन मित्र आदि पश्चिम-बङ्गवासी कविकी संख्या थोड़ी है।

उपरोक्त कवियोंके मध्य क्षेमानन्द दासका मनसा-मङ्गल भावमें, भाषामें और वर्णनमें अपेक्षाकृत मनोहर मालूम होता है।

पूर्व बङ्गके आधुनिक मनसाभक्त कवियोंमें श्रीराम जीवन विद्याभूषण प्रधान हैं। विद्याभूषणो मनसामङ्गल १६२५ शक (१७०३ ई०)-में रचा गया। मनसा-पाञ्चाली-कारोंमें एक राजकविका परिचय पाते हैं। वे सुसङ्गके राजा राजसिंह थे। प्रायः १५० वर्ष पहले उन्होंने मनसामङ्गलकी रचना की।

मनसा-माहात्म्य उपलक्षमें चांद सौदागर और बेहुला या विपुलाका चरित्र-वर्णन करना ही मनसामङ्गल या पद्मपुराणका लक्ष्य है। बङ्गके प्राच्य कवियोंने चांद सौदागरका मानसिक तेजस्विता और इष्टदेवके प्रति ऐकान्तिक-निष्ठाका परिचय दिया है यह किसीसे भी छिपा नहीं है। प्राच्य कविके हाथसे सती बेहुलाको पतिभक्तिका जैसा आदर्श चित्रित हुआ है, जगत्‌के किसी भी स्थानमें किसी कविके हाथसे वैसा सती चरित्र अङ्कित नहीं देखा जाता।

प्रायः सभी मनसामंगलमें पूर्वतन धर्म और शैव प्रभाव-की छाया देखी जाती है। मनसामंगलके अधिकांश प्राचीन कवि ही महाशून्य धर्मनिरञ्जन और योगेश्वर शिवकी पहले ही वन्दना करनेको बाध्य हुए हैं। यहां तक कि मनसाका माहात्म्य-प्रचार करनेके पहले बहुतसे प्राचीन कवि सबसे पहले शिवलीलाका ही गान कर गये हैं। आज भी ज्येष्ठ मासकी शुक्ला दशमीके दिन बङ्गवासी गृहस्थमात्र ही मनसा-पूजा करते हैं।

मङ्गलचण्डीका गान या चण्डीमङ्गल।

मङ्गल चण्डीका गीत बहुत पहलेसे बंगालमें प्रचलित है। महाप्रभु चैतन्यदेवके आविर्भावके पहले होसे मंगलचण्डीका गीत गाया जाता था। इस चण्डीका गीत दो धारामें गाते थे—एक धाराका नाम साधारणतः शुभचण्डी और दूसरी धाराका नाम मंगलचण्डी है। इन दोनों धाराओंके मध्य शुभचण्डीकी पांचाली और व्रत-कथा ही अपेक्षाकृत प्राचीन है। पल्लीग्रामवासी हिन्दू गृहस्थ शुभचण्डीका गान बड़ी भक्तिसे सुनते थे। यही गान पीछे व्रत-कथामें परिणत हुआ। हमें विश्वास होता है, कि पालराजाओंके समय अर्थात् देशी साहित्यमें संस्कृत भाषाका प्रभाव घुसनेके पहले शुभचण्डीको कथाने स्थान पाया था। यही शुभचण्डी प्राकृत आकार धारण कर 'सुवचनी' रूपसे हिन्दू समाजमें प्रसिद्ध हुई हैं। सभी मङ्गल कर्मोंमें शुभचण्डीकी पांचाली गाई जाती थी। आज भी बंग-रमणियां शुभ कर्मोंमें सुवचनी-की पूजा करतीं और सुवचनीकी कथा सुनती हैं।

सुवचनीकी कथा बंगाली-गृहिणीमात्रके मध्य प्रचलित रहने पर भी बंगभाषाकी अति प्राचीन सुवचनी-के पांचाली-गान पुरुषोंके अयत्नसे अधिकांश विलुप्त हो गये हैं। द्विजवर, पल्लीवर आदि रचित "सुवचनीकी पांचाली" पाई गई है।

मंगलचण्डीके गानोंकी रचना करके बहुतसे कवियों-ने ख्याति प्राप्त की है। जिस तरह हिन्दुओंके आदि संस्कृत शास्त्रसूत्रोंमें लिखे हैं, ठीक उसी तरह बंगला भाषामें भी देव-देवियोंके माहात्म्य सूचक ग्रन्थ अति संक्षेप-से सूत्रोंमें ही लिखे गये हैं। ये सब ग्रन्थ लोगोंके आग्रह-से परवर्त्ती कवियोंके द्वारा प्रकाशित हुए हैं।

मंगलचण्डीकी जितनी पांचालियां हम लोगोंके हस्त लगी हैं, उनमें द्विज जनार्दनके बाद माणिक दत्तके ग्रन्थ ही उपस्थित सभी ग्रन्थोंको अपेक्षा अधिक प्राचीन जान पड़ते हैं। उनकी पांचालीसे जाना जाता है, कि गौड़वंगके मध्य लक्ष्मी सरस्वतीके प्रिय वरपुत्रोंके वास स्थान प्राचीन गौड़ नगरीके निकटवर्त्ती किसी स्थानमें माणिकदत्त का वास था। उन्होंने प्राचीन गौड़ अञ्चल-को निकटवर्त्तिनी महानन्दा, कालिन्दी, पुनर्भवा तथा टांगन नदी, गौड़ग्राम, छातयाभातयाके बिल तथा गौड़े-श्वरीका उल्लेख किया है। उन्होंने भगवतीके स्तवके समय उनको द्वारवासिनी कह कर पुकारा है। प्राचीन गौड़के निकट चण्डीपुर ग्राममें रणचण्डी अथवा द्वार वासिनी देवीका एक विशाल मन्दिर था, इस समय उसका भग्नस्तूप वहां पड़ा है। रणचण्डिका प्राचीन गौड़ राजधानीको रक्षयित्रीरूपमें द्वार-रक्षा तथा मंगल विधान करती थीं, इसी कारण वे 'द्वारवासिनी' तथा मंगलचण्डी इन दोनों ही नामोंसे विख्यात थीं। गौड़के पूर्वतन हिन्दू तथा बौद्धराजायें रणचण्डीकी

पूजा करते थे। गौड़नगरके ध्वंससाधनके साथ साथ रणचण्डीका मन्दिर भी परित्यक्त हुआ। रणचण्डीका विशाल मन्दिर जिस समय दर्शकोंके मनमें विस्मय उत्पादन करता था, जिस समय सैकड़ों यात्री वहां जा कर उनकी पूजा करते थे, उसी समय अर्थात् गौड़नगरकी समृद्धिकी अवस्थामें माणिकदत्तने मंगलचण्डीके गानोंकी रचना की थी। विषहरीके गान-रचयिता हरिदत्त जिस तरह काने थे, उसी तरह माणिकदत्त भी काने तथा लंगड़े दोनों ही थे। पहले ही लिख चुके हैं कि गौड़राजाओंके आधिपत्य कालमें उनके उत्साहसे ही रमाई पण्डितने बंगभाषामें शून्यवादप्रकाशक शून्यपुराण प्रकाश किया था। गौड़ाधिप बौद्ध-भूपालोंके आधिपत्य विलुप्त होने पर भी शून्यवादियोंने जनसाधारणके मनसे छिन्नमूल होनेका अवसर नहीं पाया। इसीलिये हम लोग माणिकदत्तकी 'मंगलचण्डी'में उसी बद्धमूल शून्यवाद तथा शून्यमूर्त्तिधर्मसे आदिसृष्टिका प्रसंग पाते हैं।

माणिकदत्तकी 'मंगलचण्डी' के अनुसार पहले कलिंग नगरमें, पीछे गुजरातमें एवं उज्जैन नगरमें मंगलचण्डीकी पूजाका प्रचार हुआ। माधवाचार्य, कविकंकण मुकुन्दराम प्रभृतिकी कितनी ही रचनायें पौराणिक मतानुसारिणी हैं, किन्तु माणिकदत्तकी 'मंगलचण्डी' के साथ हिन्दूपुराणका कोई संस्रव नहीं देखा जाता। द्विज जनार्दनके ग्रन्थोंकी तरह माणिकदत्तके ग्रन्थमें भी उस तरहके कवित्व, लालित्य अथवा वर्णनामाधुर्य नहीं हैं, वह मानों पद्यकी गन्धयुक्त गद्य-रचना है।

द्विज जनार्दनके समान ही द्विज रघुनाथकी मंगलचण्डिकाकी पांचाली पाई गई है। इस ग्रन्थकी रचनाप्रणाली द्विज जनार्दनकी रचनाकी तरह ही है। इस ग्रन्थमें भी उस तरहके कवित्व अथवा माधुर्य नहीं हैं,—कालकेतु, धनपति सौदागर तथा श्रीमन्त सौदागरके उपाख्यान सीधी भाषामें अति संक्षेपमें विवृत हुए हैं।

माणिकदत्तके समान ही मदनदत्त-रचित एक मंगलचंडी पाई गई है, यह ग्रन्थ माणिकदत्तका परवर्त्ती-सा जान पड़ता है। कविने बीच बीचमें कवित्वका परिचय किया है।

माणिकदत्त तथा मदनदत्तके बाद मुक्तारामसेनकी चंडी अथवा 'सारदामंगल'का उल्लेख कर सकते हैं। यह ग्रन्थ (१४६९ शक) १५४७ ई०में रचा गया।

इसके बाद देवीदास सेन, शिवनारायणदेव, क्षितिचन्द्र दास प्रभृति रचित कई एक छोटी छोटी 'मंगलचंडी' पाई गई हैं। इनमें कितने ही ग्रन्थ 'नित्य मंगलचंडीकी पांचाली' नामसे विवृत हुए हैं। इन सभी छोटे छोटे ग्रन्थोंको एक समय मंगलचंडीके भक्तगण नित्य दिन पाठ अथवा श्रवण करते थे।

पहले ही लिख चुके हैं कि सूत्रस्वरूप मंगलचंडीकी आदि पांचालियां धीरे धीरे वर्द्धितकलेवर हो कर 'जागरण'के नामसे विख्यात हुई। ये जागरण सात दिन तथा आठ रात्रि गाये जाते हैं, इसीलिये इनका 'अष्टमंगला' नाम हुआ है। जागरणमें मुक्तारामका नाम पहले ही पाया जाता है।

उक्त कवियोंके मध्य बलराम कविकंकणकी मंगलचंडी अति प्राचीन है। मेदनीपुर तथा बांकुड़ामें बलरामकी चंडीके गान प्रचलित थे।

कोई कोई कहते हैं, कि बलराम कविकंकण ही मुकुन्दरामके शिक्षागुरु थे। किन्तु 'गीतोंके गुरु'के उल्लेखसे मालूम पड़ता है, कि उनके ही गान मुकुन्दरामके आदर्श हुए थे। बलराम, मुकुन्दरामके पूर्ववर्त्ती होने पर भी किस समय पैदा हुए थे, इसका ठीक पता नहीं चलता।

बलरामके बाद माधवाचार्यका नाम मिलता है। २१० वर्षके प्राचीन कृष्णरामके ग्रन्थसे पता चलता है कि इसके पहले माधवाचार्यके गाने दक्षिणराढ़में विशेष प्रचलित थे।

कविकंकण मुकुन्दरामने १५१५ शकमें अर्थात् माधवाचार्यके 'जगरण' रचित होनेके १४ वर्ष बाद अपनी अपूर्व कवि कीर्त्ति अभयामंगलमें 'देवीकी चौंतीसा' समाप्त की। इस तरह दोनोंका एक ही आदर्श होना कोई आश्चर्य नहीं।

माधवाचार्यकी रचनामें सरल प्राकृतिक चित्र परिव्यक्त है। उन्होंने छोटी घटना तथा छोटा विषय ले कर जिस तरह ग्राम्यचित्र अङ्कन किया है, वह अति

स्वाभाविक एवं सुललित है। यदि कविकङ्कण मुकुन्दराम असाधारण प्रतिभा ले कर जन्म ग्रहण नहीं करते, तो हम-लोग माधवाचार्यको ही चण्डीकविका श्रेष्ठ आसन प्रदान करनेमें अग्रसर होते। दोनों कवियोंकी रचनायें अनेक स्थानोंमें मिलती जुलती हैं एवं उनके पाठ करनेसे मालूम पड़ता है मानो माधवाचार्यकी बातोंको ही मुकुन्दरामने उज्ज्वल भाषामें एवं अद्वितीय कवित्वनैपुण्यमें परिवर्द्धित कर दिया है।

कविकङ्कणके प्रभावके समय माधवाचार्यके गान दक्षिण राढ़में उस तरह आदृत न हो सके। कविके वंशधरोंने पूर्व-बंगालमें जा कर वास किया। उन्हींके साथ साथ कविके जागरण भी पूर्व-बंगालमें लाये गये। पूर्व-बंगाल तथा चट्टग्राममें आज भी माधवाचार्यके जागरण लोग अत्यन्त आदरके साथ सुना करते हैं।

कविकङ्कण मुकुन्दरामका परिचय पहले ही दे चुके हैं।

कवि कङ्कणकी चण्डीमङ्गल अथवा अभयामङ्गल बङ्गाली ग्राम्यकवियोंकी अद्वितीय कीर्त्ति है। क्या स्वभाव वर्णनामें, क्या सामाजिक चित्र अङ्कनमें, क्या देशकी तत्कालीन रीति नीति प्रदर्शन करने आदि किसी भी विषयमें, आज तक बङ्गालके कोई भी कवि कङ्कणका मुकाबिला न कर सके हैं। कविकङ्कणने अति सामान्य विषयोंके वर्णनमें भी जिस तरह अन्तर्दृष्टि तथा प्रतिभाका परिचय दिया है, उस तरह और किसी ग्रन्थोंमें नहीं पाया जाता।

चट्टग्रामके कायस्थ कवि भवानीशङ्कर भी प्रायः ढाई सौ वर्ष पहले चण्डीका एक जागरण लिख गये हैं। इस जागरणमें भी कायस्थ-कविने असाधारण कवित्व तथा प्रतिभाका परिचय दिया है। उनका चण्डीकाव्य कविकङ्कणके काव्यकी तुलनामें हीन होने पर भी चट्टग्रामका गौरव-प्रकाशक माना जाता है। जयनारायण सेन द्वारा रचित एक और चण्डीकाव्य उल्लेखनीय है। ये जयनारायण वैद्यराज राजवल्लभकी ज्ञातिके थे। माधवाचार्य कविकङ्कण भवानीशङ्कर प्रभृतिके ग्रन्थोंमें जिस तरह उच्चभाव तथा भक्तिरसका परिचय पाया जाता है, जयनारायणकी चण्डीमें उनके विपरीत है। ये वैद्यकवि आदिरसके परमभक्त थे।

जयनारायणके समय शिवचरण नामक एक ब्राह्मणने चण्डीके गानोंकी रचना की थी। यद्यपि इसका वर्णनीय विषय तन्त्र तथा मार्कण्डेयपुराणसे लिये गये हैं तथापि इसमें कालकेतुका प्रसङ्ग पा कर हमने इसे मङ्गल चण्डीके गानोंमें ही स्थान दिया है।

कविकंकणके पूर्व इतिहासमें अत्यन्त प्राचीनकाल की एक स्मृति पाई जाती है। उससे मालूम होता है कि कलिंग राज्यमें पहले जंगली असभ्य जातियोंके मध्य ही मंगलचंडीकी पूजा प्रचलित थी। द्विज जनार्दनकी मंगलचण्डीके सूत्रग्रन्थमें भी प्रथम पूजा विस्तारके उपलक्षमें विन्ध्याचलका उल्लेख पाया जाता है। वाक्पतिके गौड़वधकाव्यका पाठ करनेसे हम लोग जान सकते हैं कि ८वीं सदीके प्रथम भागमें कन्नौजपति यशोधर्मदेवने जिस समय दिग्विजयके उपलक्षमें विन्ध्याचलके जंगलसे हो कर यात्रा की थी, उस समय उन्होंने वहांकी शबर जातिको नरशोणित-लोलुपा महाकालीकी पूजा करते देखा था। इन शबरोंके आचरण व्याघ्रके सदृश थे। अन्तमें शबर जातिके मध्य किसी किसीने तो कलिंगराज्यके कई अंशोंको जीत कर राजपद भी प्राप्त कर लिया था। प्राचीन शिलालिपिसे इसका पता चला है। सम्भवतः वही अतीत कहानी कालकेतुको लक्ष्य करके मंगलचण्डीके माहात्म्यका प्रचार करनेके लिये वर्णन की गई है। असभ्य जातियोंमें ही प्रथमतः मंगलचण्डीकी पूजा होती थी, ऐसा समझ कर ही सम्भवतः सौदागर धनपतिदत्तने उन्हें 'डाकिनीदेवी' कह कर अश्रद्धा दिखलाई थी। अन्तमें गन्धवणिक्-पति धारसे ही अजयनदीके किनारे मंगलचण्डीकी पूजा प्रचलित हुई। यह बहुत दिनोंकी बात है। कारण यह कि हम लोग धर्ममंगलमें भी अजयनदीके तीरवर्त्ती ढेकुराधिपति इच्छाईघोष तथा हरिपालकी कन्या 'कानड़ा' के प्रसंगमें चण्डी-पूजाका आभास पाते हैं। शुभचंडी अथवा मंगलचंडीकी पूजा जिस समय उच्च श्रेणियोंमें होने लगा, उस समय देवीके साथ पौराणिक आद्याशक्तिका अभेदस्थापन करनेकी चेष्टा की गई। इसी कारण परवर्त्ती गौड़मंगल ग्रन्थमें पौराणिक वा आगमोक्त देवीचरित्र मुख्यभावमें एवं कालकेतुका

उपाख्यान गौणभावमें वर्णित देखा जाता है।

कालिकामंगल।

पौराणिकोंके अभ्युदयके समय कालिकादेवीने मंगलचंडोका स्थान धारण किया। इस समय मार्कण्डेयपुराण, कालिकापुराण तथा विभिन्न तन्त्रोंसे सहायता ले कर बहुतसे देवी-मंगलको रचना होने लगी। उनमें गोविन्ददास, क्षेमानन्द दास, मधुसूदन कवीन्द्र, श्रीनाथ, बलदुर्लभ, द्विज दुर्गाराम, अन्धकवि भवानी प्रसाद, रूपनारायण घोष, कृष्णराम दास, रामप्रसाद सेन, राय गुणाकर भारतचन्द्र, निधिराम कविरत्न एवं द्विज रामनारायणके ग्रन्थोंका परिचय दिया जाता है।

विद्यासुन्दर-कथा।

उक्त कालिकामंगलोंमें गोविन्ददासके ग्रन्थ ही सर्वप्राचीन गिने जाते हैं। गोविन्ददासने १५७१ शक (१५९५ ई०)-में अपने कालिका-मंगलकी रचना की थी। चंडीमंगल आगरणके एक दूसरे प्रधान कवि भवानीशंकरकी तरह इन्होंने भी अपनेको चट्टग्रामान्तर्गत देवग्रामवासी तथा आत्रेय गोत्र नरदासके वंशधर बताया है।

नये शिक्षित सम्प्रदायके भारतचंद्र-ग्रन्थके पाठ करनेसे जो अश्लीलता देख पड़ती है, गोविन्ददासके ग्रन्थोंमें उसका अभाव है। गोविन्ददासके सुन्दर एक मन्त्रतन्त्र-निपुण कालीभक्त थे, सर्वत्र तथा सर्वदा ही उनके चेहरेसे कालीभक्ति टपक रही थी। उनकी असर मान्यशक्ति तथा देवीभक्तिके प्रभावसे भूखण्ड मानो विदीर्ण हो कर सुरंगमें परिणत हो गया था। गोविन्ददासकी विद्या भी मानो अत्यन्त लज्जाशीला, पतिप्रेमातुरका देवीके भक्तिरसमें आप्लुता है। भारतचन्द्रकी विद्याके समान अति रसिका, अति अधीरा तथा अति वाचाल नहीं है।

गोविन्ददासके बाद कृष्णरामके कालिकामंगलकी रचना हुई। कृष्णरामके बाद रामप्रसाद एवं रामप्रसादके बाद भारतचन्द्रने विद्यासुन्दरकी रचना की।

कृष्णरामके कुछ समय बाद ही क्षेमानन्दने एक कालिकामङ्गलकी रचना की। अभी यह ग्रन्थ नहीं मिलता।

इस समय मधुसूदन कवीन्द्र नामक एक राढवासी सुकविने कालिकामङ्गल प्रकाशित किया। कवीन्द्रके बाद रामप्रसाद कविरञ्जनका कालिकामङ्गल है। रामप्रसादसेन एक सुकवि, सुलेखक और एक परम साधक थे। १७५८ ई०में महाराज कृष्णचन्द्रके रामप्रसादको १०० बीघा जमीन देने पर भी कविवर नदियाको राजसभामें नहीं गये। वे अपनी जन्मभूमि कुमारहट्ट ग्राममें ही रहते थे और वहीं महाराज कृष्णचन्द्रके साथ उनको मुलाकात हुई थी।

अन्नदा-मङ्गलके वचनसे जाना जाता है, कि १६७४ शकमें (१७५२ ई०में,) भारतचन्द्रका ग्रन्थ रचा गया। भारतचन्द्र और निधिरामके बाद प्राणराम चक्रवर्त्तीने विद्यासुन्दरको रचना की। उनको रचनामें वैसा लालित्य, माधुर्य्य या शब्दाडम्बर नहीं है। भारतचन्द्रके विद्यासुन्दरकी तुलनामें प्राणरामका ग्रन्थ नहीं ठहर सकता। आगमानुसार जो सब मङ्गलग्रन्थ रचे गये, उनमें दक्षिणराढ़ीय कायस्थ प्रवर रामशङ्करदेवका 'अभयामङ्गल' बहुत बड़ा ग्रन्थ है।

कालिका या अभयामङ्गलकी तरह बहुतसे कवि मार्कण्डेयपुराणकी चण्डीका अवलम्बन कर 'कालिकाविलास' 'दुर्गामङ्गल' 'दुर्गाविजय' आदि नामसे कुछ काव्य रचे गये हैं। उन सब ग्रन्थोंमें कालिदासका कालिकाविलास, द्विज कमललोचनका चण्डिकाविजय, रूपनारायण घोष और अन्धकवि भवानीप्रसादका दुर्गाविजय या चण्डीमङ्गल उल्लेखनीय है।

भवानीप्रसाद जन्मान्ध और निरक्षर थे सही, पर उन्होंने देवबलसे जो कवित्वशक्ति ले कर जन्म ग्रहण किया था वह सामान्य नहीं। उनकी रचनामें अच्छा प्रसादगुण है। कहीं कहीं उन्होंने सप्तशतीचण्डीके अनुवादमें अच्छे कृतित्वका परिचय दिया है।

भवानीप्रसादके समयमें ही एक दूसरे कविने मार्कण्डेय चण्डीके अनुवादमें सुतीक्ष्ण प्रतिभा और रचनाके कृतित्वका परिचय देकर अन्धकविको बहुत दूर हटा दिया है। इन कविका नाम रूपनारायण घोष है।

रूपनारायण संस्कृतशास्त्रवित् आद्याशक्तिके उपासक थे। वे मार्कण्डेय चण्डीका अवलम्बन कर अपना ग्रन्थ

सौर-प्रभाव ।

सूर्यकी पंचाली ।

बौद्ध, शैव और शाक्त-प्रभावके साथ साथ बङ्गालमें सौर लोगोंका संस्रव हुआ था। शाकद्वीपीय सभी आचार्य ब्राह्मणगण मित्र नामक सूर्यके उपासक थे । उनके यत्नसे भारतवर्षमें तमाम मित्रदेवकी मूर्त्ति प्रतिष्ठित और मित्रपूजा प्रचलित हुई थी।

सूर्यकी पञ्चालियोंमें द्विज कालिदास और द्विज रामजीवन विद्याभूषणका ग्रन्थ ही अधिक प्रचलित है। इन दोनों ग्रन्थोंमेंसे रामजीवनके ग्रन्थमें बहुत कुछ प्राचीनता देखी जाती है। कवि रामजीवनने १६११ शकमें आदित्य-रचित या सूर्यकी पञ्चाली लिखी। कालिदासने भी इसी समय सूर्य कथाका प्रचार किया था।

मुसलमानी अमल ।

अनुवाद साहित्यकी रचना ।

बौद्ध, शैव और शाक्त-प्रभावकी सूचना मुसलमानी-अमलके बहुत पहले हुई थी। १४वीं सदीके मध्यभागमें हिन्दु मुसलमानका मेल हुआ। इस मेलके फलसे १५वीं सदीके मध्यभागमें राजानुग्रह पानेकी आशासे कोई कोई संस्कृतवित् ब्राह्मण हिन्दूशास्त्रका मर्म समझानेके लिये अनुवाद कार्यमें लग गये।

रामायण ।

गौड़ेश्वरका उत्साह पा कर भाषाकी नींव मजबूत करनेके लिए अनेक बङ्गीय कवि जिन सब संस्कृत ग्रन्थोंका बङ्गभाषामें अनुवाद कर गये हैं उनमें रामायणके अनुवादको ही सर्वप्रथम कह सकते हैं। रामायणके रचयिता या अनुवादक भी अनेक हैं। उनमेंसे कृत्तिवास, अद्भुताचार्य, अनन्तदेव, फकीरराम कविभूषण और उनके लड़के गङ्गादास सेन, जगत्राम बन्द्य, जगत्वल्लभ, शिवचंद्र सेन, भिषक् शुक्लदास, द्विज रामप्रसाद, द्विज दयाराम, राममोहन और रघुनन्दन गोस्वामी, इन २२ कवियोंका संधान पाया गया है। इन सब रामायण-रचकोंके मध्य कवि कृत्तिवास ही अग्रणी हैं।

कृत्तिवासने १४४० ई० अथवा उसके निकटवर्त्ती किसी समय फुलिया ग्राममें माघमासकी श्रीपञ्चमीके दिन रविवारको जन्म ग्रहण किया। कृत्तिवासी-रामायणकी पाठविकृति अनेक रूपोंमें हो गई है। अतएव कृत्तिवासकी शुद्ध रचनाका रसास्वाद पाठकके पक्षमें असम्भव है। हम लोग जो सब रचना कृत्तिवासकी लिखी कह कर प्राचीन कविके कवित्व गौरवकी स्पर्द्धा करते हैं, हो सकता है कि वह गौरवस्पर्द्धा किसी दूसरेके लिये भी की जाती हो। क्योंकि जयगोपाल तर्कालङ्कारकी तरह और भी कितने तर्कालङ्कारोंने बङ्गला-रामायणकी पाठविकृति की है।

कृत्तिवासकी रचनामें प्रसाद और माधुर्यगुणकी भरमार है। कवितानैपुण्यमें भी ये बङ्गके एक प्रधान कविका आसन पानेके बिलकुल अधिकारी हैं। कृत्तिवासके बाद जितने रामायण रचे गये हैं उनमें 'अनन्त रामायण' ही सबसे प्राचीन है। अद्भुताचार्यरचित एक दूसरा प्राचीन रामायण भी पाया गया है। इन कविका पूर्वनाम नित्यानन्द था। ब्राह्मणवंशमें ये उत्पन्न हुए थे। इन्होंने अद्भुताचार्य आख्या ले कर सप्तकाण्ड रामायण प्रकाशित किया।

कृत्तिवासके प्रायः सौ वर्ष पीछे पश्चिम-बङ्गमें एक महाकविने जन्म लिया था। उनका नाम शङ्कर कविचन्द्र है। इन्होंने मल्लवंशीय वनविष्णुपुराधिप गोपाल सिंहके आदेशसे समस्त महाभारतका अनुवाद किया। इस कारण कविने मल्लराजसे पारितोषिक-स्वरूप अनेक ब्रह्मोत्तर सम्पत्ति और 'कविचन्द्र'-की उपाधि पाई। उनके असाधारण अध्यवसाय और बङ्गभाषाकी सेवाकी ओर ख्याल करनेसे चमत्कृत होना पड़ता है। उनके रामायण, महाभारत और श्रीमद्भागवतका अनुवाद तथा दूसरे दूसरे ग्रंथोंको एकत्र करनेसे सचमुच एक विराट् काण्ड बन जायगा। कविचंद्रके रामायणकी रचना अति मधुर, सरस और वैष्णवीय भक्ति-युक्त है।

कविचन्द्रके बाद प्रायः तीन सौ वर्ष हुआ, फकीरराम कविभूषण, भिषक् शुक्लदास, जगत्वल्लभ, भवानीनाथ बन्द्य और लक्ष्मणबन्द्यने रामायण प्रकाशित किया। उनमेंसे किसीने तो वाल्मीकि रामायण, किसीने अध्यात्म-रामायण और किसीने वशिष्ठ रामायणकी दोहाई दी है। किन्तु यथार्थमें उन लोगोंके ग्रन्थको उक्त किसी एक मूल रामायणका अनुवाद नहीं मान सकते।

कवि भवानीशङ्करके समय लक्ष्मणचन्द्र नामक एक और कविने जन्मग्रहण किया। इन्होंने भी सप्तकाण्ड रामायणकी रचना की है। लक्ष्मणचन्द्रके बाद गोविन्द वा रामगोविन्द दास नामक एक कायस्थने वृहत् सप्तकाण्ड लिखा। इन पांचों कवियोंने राढ़ वा पश्चिम-वङ्गको उज्ज्वल किया है। उन्हींके समय पूर्ववङ्गमें षष्ठीवर और उनके पुत्र गङ्गादास सेन रामायणकी रचनामें अग्रसर हुए थे।

द्विज दुर्गारामका रचित रामायण पाया गया है। यह रामायण कृत्तिवासके बाद लिखा गया है, यह बात कविने स्वयं अनेक बार स्वीकार की है। इन दुर्गाराम कविका कोई आत्मपरिचय नहीं मिलता। द्विज दुर्गाराम-कृत एक कालिकापुराणका अनुवाद भी पाया गया है।

करीब ३०० वर्ष हुआ बांकुड़ा जिलेके भुलुई ग्राममें ब्राह्मणवंशमें जगत्रामका जन्म हुआ। इन्होंने रामायण और दुर्गापञ्चरात्र ग्रन्थ लिखना आरम्भ किया। किन्तु वे दोमें-से एक भी समाप्त न कर सके। उनके कहनेसे उनके लड़के रामप्रसादने दोनों ग्रन्थ सम्पूर्ण कर डाले।

१६७७ शकमें रामप्रसादी रामायण समाप्त हुआ। रामप्रसादके समय माणिकचन्द्र नामक एक व्यक्तिने रामायणकी रचना की। भवानीदासने जयचन्द्र नामक किसी राजाके आदेशसे 'लक्ष्मण-दिग्विजय' ग्रन्थ लिखा। इस ग्रन्थमें कई जगह रामचरण नामक कविकी भणिता पाई जाती है। इसके अलावा रामचरितका अवलम्बन कर बहुतसे कवि खण्डकाव्यकी रचना कर गये हैं। उनमेंसे गुणराज खांके श्रीधर्म इतिहास (अर्थात् श्रीकृष्ण युधिष्ठिर-संवादमें श्रीरामचरित), रामजीवन रुद्रकी कौशल्याके चौतीसा, सुकवि हरिश्चन्द्रके स्वर्गारोहण, गुणचन्द्रके पुत्रके सीताके वनवास, लोकनाथ सेनके लवकुशके युद्ध, रघुमणिके कनिष्ठ भवानीनाथके पारिजातहरण, द्विज तुलसीदासके रायवार, भवानन्दके राम-स्वर्गारोहण तथा भवानीदासके लक्ष्मण-दिग्विजय, रामचन्द्रके स्वर्गारोहण और रामरत्नगीताकी रचना उल्लेखनीय हैं।

एतद्भिन्न द्विज दयाराम, काशीराम, जगत्वल्लभ, द्विज तुलसी आदि रचित संक्षिप्त रामायण पाये गये हैं। जो गौरीमंगल लिख कर शाक्त समाजमें प्रसिद्ध हुए हैं, उन राजा पृथ्वीचन्द्रने हो फिर भूपएडी रामायणको रचना कर मौलिकता और कवित्वका परिचय दिया है।

कवि शिवचन्द्र सेन भारतचन्द्रके कुछ पीछे आविर्भूत हुए। इनका बनाया हुआ एक रामायण मिलता है। इस रामायणका नाम 'शारदामंगल' है। रामचन्द्रकी दुर्गापूजा रामायणमें शारदा-माहात्म्य ज्ञापक है, इसी कारण कविने इस रामायणका 'शारदामंगल' नाम रखा है।

रघुनन्दन गोस्वामिकृत एक रामायण मिलता है। इस रामायणका नाम रामरसायन है। कृत्तिवास और कविचन्द्रके रामायणके बाद जो सब रामायणग्रन्थ रचे गये उनमें यही 'रामरसायन' श्रेष्ठ है। पूर्ववर्त्ती रामायणोंसे इस रामायणकी रचना सुन्दर और सुश्रृङ्खल है।

११६३ सालमें रघुनन्दनका जन्म हुआ। ४५ वर्षकी उमरमें उन्होंने इस रामरसायणकी रचना की।

महाभारत।

जिस प्रकार बहुतसे कवि रामायण वा रामचरितका अवलम्बन कर वृहत् वा खण्डकाव्यकी रचना कर गये हैं, उसी प्रकार अनेक कवि भारतकथा वा महाभारतका वर्णनीय विषय ले कर अनेक काव्य रच कर प्रसिद्ध हो गये हैं। उनमें विजयपण्डित, सञ्जय, कवीन्द्र परमेश्वर, श्रीकरनन्दी, कृष्णानन्द वसु, अनन्त मिश्र, नित्यानन्द घोष, द्विज रामचन्द्र खाँ, शङ्कर कविचन्द्र, रामकृष्ण पण्डित, द्विज नन्दराम, घनश्याम दास, षष्ठीवर और गङ्गादास सेन, उत्कल ब्राह्मण सारण, काशीराम दास, नन्दराम दास, द्वैपायन दास, राजेन्द्र दास, गोपीनाथ दत्त, रामेश्वरनन्दी, त्रिलोचनचक्रवर्त्ती, निमाई पण्डित, वल्लभदेव, द्विज कृष्णराम, द्विज रघुनाथ, लोकनाथ दत्त, शिवचन्द्र सेन, भैरवचन्द्र दास, मधुसूदन नापित, भृगुराम दास, भरत पण्डित, मुकुन्दानन्द, रामनारायण घोष आदि ३५ कवियोंके ग्रन्थ पाये गये हैं। इनके सिवा भवानन्द हरिवंश, सञ्जय और वियावागीश ब्रह्मचारीने भगवद्गीताका अनुवाद तथा पुरुषोत्तम और राघव दासने महाभारतीय विष्णुभक्तिकी कथा ले कर मोहमुद्गर, लोकनाथ दत्त और रामनारायण घोष नलोपाख्यान ले कर नैषध, पार्वतीनाथने नलोदय, सञ्जय और शिवचन्द्रसेनने भारतसावित्रीकी रचना की।

उपरोक्त ग्रन्थके मध्य भावमें, भाषामें और संक्षिप्त वर्णनमें विजय पण्डितके महाभारतको ही सबसे प्राचीन समझते हैं। सुलतान अलाउद्दीन होसेन शाहके समय केवल गौड़वङ्ग ही नहीं, वङ्गभाषाका भी सुवर्णयुग था। उन्हींके समय (शायद उन्हींके हुक्मसे) विजय पण्डितने 'विजय पाण्डव-कथा' वा 'भारतपांचाली'-की रचना की।

महाभारतका एक और अनुवाद-ग्रन्थ मिलता है। अनुवादकका नाम सञ्जय था। नाना कारणोंसे सञ्जय महाभारत भी अति प्राचीन मालूम होता है। परन्तु इनके गीतमें गौराङ्गदेवका नामोल्लेख रहनेके कारण इन्हें गौराङ्गके समसामयिक वा तत्परवर्त्ती लोग कह सकते हैं। इसके सिवा ग्रन्थकारके आत्मपरिचय सम्बन्धमें भी कुछ विशेष बात नहीं देखी जाती।

श्रीकरनन्दीने परागल खाँके पुत्र सेनापति छुटि खाँके आदेशसे महाभारत अश्वमेध पर्वका अनुवाद किया। महाभारतके जितने रचयिता हुए उनमें प्रायः साढ़े तीन सौ वर्ष पहले रचित द्विज रघुनाथकी अश्वमेध-पञ्चालिका पाई गई है। नित्यानन्द घोष एक प्रसिद्ध कवि थे। इन्होंने सारे महाभारतका अनुवाद किया। इन्हींका महाभारत पश्चिम-वंगमें तमाम प्रचलित था।

रामायण रचकोंके मध्य कविचन्द्रका नाम एक बार उल्लेख किया जा चुका है। महाभारत-रचकोंके मध्य भी इनका नाम पाया जाता है। भागवतके भी ये अनुवादक थे। इनका असल नाम शङ्कर था, 'कविचन्द्र' इनकी उपाधि थी।

राजेन्द्र दास प्रायः तीन सौ वर्ष पहलेके कवि हैं। इनके रचित आदिपर्वका प्रायः सभी अंश पाया गया है। इन्होंने केवल महाभारतके आदिपर्वका ही अनुवाद किया था, कह नहीं सकते।

षष्ठीवर रामायणकी तरह महाभारतका भी अनुवाद कर गये हैं। उन पर्वोंमेंसे केवल स्वर्गारोहण पर्व मिला है। षष्ठीवरके पुत्रका नाम गंगादास था। रामायणके बनाने-वालोंमें इनका नाम आया है। इनके रचित महाभारतका आंशिक अनुवाद मिलता है।

कवि काशीदास सम्पूर्ण महाभारतका अनुवाद कर गये हैं। पूर्वोक्त महाभारतके अनुवादकोंकी अपेक्षा काशीदास कुछ आधुनिक हैं सही, पर बंगाली-हिन्दू नरनारीके घर घर आज काशीदास-कृत महाभारतका ही आदर है।

काशीदासका विराटपर्व १५२६ शक या १०११ सन्में सम्पूर्ण हुआ। आज तक आविष्कृत काशीदासी महाभारतके किसी दूसरे पर्वके शेषमें इस प्रकार रचनाकालका उल्लेख नहीं है। इधर काशीराम दासके पुत्र नन्दराम दासने भी महाभारतकी रचना की है। उद्योगपर्वमें उनका भणितायुक्त प्राचीन ग्रन्थ पाया गया है। किन्तु आदि, सभा आदि अंश आज भी नहीं मिलता।

काशीरामके बाद रामेश्वरनन्दीने महाभारतकी रचना की। इनकी रचना काशीदाससे भी मार्जित है, कल्पनाका स्रोत भी बहुत दूर तक फैला है और आडम्बरसे परिपूर्ण है।

काशीदासके वंशमें एक और कविने महाभारतकी रचना की है। उनका नाम घनश्याम दास है। नन्दराम दासके समय एक दूसरे व्यक्ति भारत-कथा लिख गये हैं। द्वैपायनदास उनका नाम था। इनका केवल द्रोणपर्व पाया गया है।

द्विज रघुनाथकी तरह द्विज कृष्णराम भी वृहत् अश्वमेधपर्व लिख गये हैं। उनका ग्रन्थ जैमिनि-भारत नामसे प्रसिद्ध है। दो सौ वर्ष हो चला, एक और ब्राह्मणकविने जैमिनीय अश्वमेधपर्वका अनुवाद किया है। उनका नाम रामचन्द्र खाँ था।

दो सौ वर्षसे अधिक हुआ, कृष्णानन्द वसु नामक एक कायस्थकवि महाभारतके अष्टादश पर्वकी रचना कर गये हैं। उसकी रचना अति सुललित और प्राञ्जल तथा काशीराम दासकी तरह कवित्वपूर्ण है।

शताधिक वर्ष पहले पंद्रह वर्षके उग्र-क्षत्रिय बालक जिनका नाम भैरवचन्द्र था, महाभारत लिख कर प्रसिद्ध हो गये थे। उनका केवल भारतका ऊपारसाधर्य नामक अंश पाया गया है।

भागवत और पुराण।

जिस प्रकार रामायण और महाभारतका अनुवाद कर अनेक कवि इसका प्रचार कर गये हैं, उसी प्रकार

बहुसंख्यक कवि श्रीमद्भागवतका अनुवाद कर अथवा भागवतके अनुवर्त्ती हो कर अनेक ग्रन्थ लिख बङ्गसाहित्य में प्रसिद्ध हो गये हैं। भागवतके अनुवादकोंके मध्य गुण राज खाँ उपाधिधारी मालाधर वसुका नाम प्रथम पाया जाता है। मालाधर वसुने सात वर्ष कठिन परिश्रम करके १३६५ शकमें भागवतके १०वें और ११वें खण्डका बङ्गानुवाद प्रकाशित किया। उनके इस अनुवादका नाम श्रीकृष्णविजय या श्रीगोविन्दविजय है।

गुणराज खाँके बाद कविवर रघुनाथ भागवताचार्यने समस्त श्रीमद्भागवतका अनुवाद किया। उनके अनुवादका नाम श्रीकृष्णप्रेम-तरङ्गिणी है। चार सौ वर्ष पहले उन्होंने भागवतके पद्यानुवादमें जैसी दक्षता दिखाई है, अभी वह चित्र दुर्ल्लभ है। भागवताचार्य शब्द देखो।

गुणराज खाँ तथा भागवताचार्यका आदर्श ले कर पीछे बहुतसे कवियोंने लेखनी पकड़ी, उनमें माधवाचार्य, श्रीकृष्णकिंकर, नन्दरामघोष, आदित्यराम, अभिराम दास, गोपालदास, द्विज वाणीकण्ठ, दामोदर दास, द्विज लक्ष्मीनाथ, कविशेखर, कविवल्लभ, यशश्चन्द्र, यदुनन्दन, भक्तराम प्रभृति कवियोंने गुणराजकी तरह अधिकांश स्थानोंमें भागवतके दशमस्कन्धका अवलम्बन करके श्रीकृष्णविजय, श्रीकृष्णमंगल, गोविन्द-मंगल, गोपालविजय या गोकुलमंगल नामसे अपने अपने ग्रन्थोंका प्रचार किया। इन सभी कवियोंके मध्य द्विज माधवका श्रीकृष्णमंगल, कविवल्लभका गोपालविजय, कविचन्द्रका गोविन्दमंगल एवं भक्तरामका गोकुलमंगल तथा द्विज लक्ष्मीनाथका कृष्णमंगल, ये अति वृहत् ग्रन्थ हैं। भागवताचार्यकी तरह मेदनीपुरवासी कवि सनातन चक्रवर्त्तीने भी श्रीमद्भागवतका एक पद्यानुवाद किया है। इस ग्रन्थमें भागवतके प्रत्येक श्लोकोंका अनुवाद दिखाई पड़ता है। आकारमें यह भागवताचार्यकी कृष्णप्रेमतरंगिणीसे प्रायः द्विगुण है। सुना जाता है कि, द्विज वंशीदासने भी सम्पूर्ण भागवतका अनुवाद किया था।

इसके अलावे कई कवियोंने भागवतके एकादश स्कन्धकी दोहाई दे कर दण्डीपर्वकी रचना की है, उनमें राजाराम दत्त तथा महेन्द्रके 'दण्डीपर्व' ही प्रधान हैं।

भागवतकी कृष्णलीलाका अवलम्बन करके बहुतसे कवियोंने कई एक छोटे छोटे ग्रन्थोंकी रचना की है, उनमें नरसिंहदास, माधवगुणाकर तथा कृष्णचन्द्रने हंसदूत; द्विज कंसारि तथा सीताराम दासने प्रह्लादचरित; माधव, रामशरण तथा रामतनुने उद्धव-संवाद; द्विज परशुराम तथा द्विज जयानन्दने ध्रुवचरित; जीवन चक्रवर्त्ती, गोविन्ददास तथा द्विज परशुरामने सुदामा-चरित एवं जीवन मैत्र, पीताम्बर सेन तथा श्रीनाथदेवने ऊषाहरण; द्विज दुर्गाप्रसादने वामनभिक्षा; भवानीदासने गजेन्द्रमोक्षण; वारेन्द्र द्विज कमलाकान्तने मणिहरण; रामतनु कविरत्नने वस्त्रहरण एवं विप्र रूपराम, श्यामलाल दत्त, अयोध्याराम तथा शंकराचार्यने गुरुदक्षिणा नामक ग्रन्थ रचा। पौराणिक ग्रन्थोंका अवलम्बन करके जितने दूसरे दूसरे वैष्णव ग्रन्थ रचे गये हैं, उनमें रामलोचनका ब्रह्मवैवर्त्तपुराण; शिशुराम तथा ईश्वरचन्द्र सरकारकृत प्रभासखण्ड, द्विज मुकुन्दका जगन्नाथमंगल, कृष्णदास, वाणीकण्ठ तथा महीधरदासका नारदपुराण वा नारदसंवाद, अनन्तराम दत्त तथा रामेश्वरलक्ष्मीका पद्मपुराणान्तर्गत क्रियायोगसार, कृष्णदास तथा द्विज भगीरथका तुलसीचरित, दुर्गाचरणदासका विष्णुमंगल, श्रीरामशंकर वाचस्पतिके पुत्र दुर्गाप्रसादका मुक्तालतावलि, जगत्‌रामके पुत्र द्विज रामप्रसादका श्रीकृष्णलीलामृत, कृष्णप्रसाद घोषका विष्णुपर्वसार, केतकादासका कपिलामंगल, गदाधरदासका राधाकृष्णलीला, रघुनाथदासका शुकदेवचरित, जयनारायणका द्वारकाविलास, श्यामदासका एकादशीव्रतकथा आदि ग्रन्थ उल्लेखनीय हैं। ये सब ग्रन्थ अनुवादशाखाके अन्तर्गत हैं, किन्तु अधिकांश श्रीचैतन्य महाप्रभुके प्रभावसे ही लिखित कह कर प्रधान प्रधान कवियोंका परिचय, वैष्णव-साहित्यकी व्याख्या या अनुवाद-शाखामें दिया गया है।

वैष्णव साहित्यको हम लोग प्रधानतः तीन शाखाओंमें विभक्त कर सकते हैं—१म पदशाखा, २य चरितशाखा एवं ३य अनुवाद वा व्याख्या शाखा।

पदशाखा।

प्रसिद्ध पदकर्त्ता चण्डिदास वंगीय वैष्णव कवियोंके आदि कवि तथा अद्वितीय गिने जाते हैं। वीरभूम

जिलान्तर्गत नान्नुर ग्राममें चण्डिदासका जन्म हुआ। इनका जन्मकाल चौदहवीं शताब्दीके शेषभागमें अनुमान किया जाता है।

कवि चंडिदासकी पदावली प्रेमभक्तिका एक अपूर्व उन्मुक्त प्रस्रवण ही है। इस पदावलीकी मधुरमोहन झंकारसे सहृदयोंकी हृदयतंत्रियां भावावेशमें झनक उठती हैं। क्या भावमें, क्या भाषामें, क्या कवित्वमें,— चण्डिदासकी पदावली अत्यन्त ही मर्म-स्पर्शिनी है।

मैथिल-कवि विद्यापति ठाकुर ब्राह्मण-वंशीय थे। ये मिथिला-नरेश शिवसिंहके सभासद एवं कवि चण्डिदासके समसामयिक थे। कवि विद्यापति ठाकुरका जन्म 'बिपबियर बिस्की'में हुआ था, इसीलिये लोग उन्हें बिपबियर बिस्की विद्यापति ठाकुर कहा करते थे।

चण्डिदास तथा विद्यापति ठाकुर ही सर्वप्रधान पदकर्त्ता थे। पदकल्पतरु, पदकल्पलतिका प्रभृति ग्रंथोंमें अनेक पदकर्त्ता पदकर्तृगणोंका उल्लेख पाया जाता है, इन सभी पदोंसे पदकर्त्ताओंके नाम संग्रह करके अकारादि क्रमसे यहां लिखे जाते हैं।

पदकर्तृगण जैसे—१ अनंतदास, २ अनंतआचार्य, ३ अकबर अली, ४ आत्माराम दास, ५ आनंददास, ६ उद्धवदास, ७ कबीर, ८ कविरञ्जन, ९ कमरअली, १० कन्हाईदास, ११ कानूदास, १२ कामदेव, १३ कालीकिशोर, १४ कृष्णकांत दास, १५ कृष्णदास, १६ कृष्णप्रमोद, १७ कृष्णप्रसाद, १८ गतिगोविंद, १९ गदाधर, २० गिरिधर, २१ गुणदास, २२ गोकुलानंद, २३ गोकुलदास, २४ गोपालदास, २५ गोपालभट्ट, २६ गोपीकांत, २७ गोपीरमण, २८ गोवर्द्धन दास, २९ गोविंद दास, ३० गोविंद घोष, ३१ गौरमोहन, ३२ गौरदास, ३३ गौरसुंदर दास, ३४ गौरीदास, ३५ घनराम दास, ३६ घनश्याम दास, ३७ चण्डिदास, ३८ चंद्रशेखर, ३९ चम्पत ठाकुर, ४० चूड़ामणि दास ४१ चैतन्य दास, ४२ जगदानन्द दास, ४३ जगन्नाथ दास, ४४ जगमोहन दास, ४५ जयकृष्ण दास, ४६ ज्ञानदास, ४७ ज्ञानहरि दास, ४८ पुरुषोत्तम, ४९ प्रतापनारायण, ५० प्रमोददास, ५१ प्रसाददास, ५२ प्रेमदास, ५३ प्रेमानन्द दास, ५४ बलराम दास, ५५ बलाईदास, ५६ बल्लभ दास, ५७ बंशीवदन, ५८ बसन्तराय, ५९ वासुदेवघोष, ६० विजयानन्द दास, ६१ विद्यापति, ६२ विन्दु दास, ६३ विप्रदास, ६४ विप्रदास घोष, ६५ विश्वम्भर घोष, ६६ वीरचंद्र कर, ६७ वीरनारायण, ६८ वीरवल्लभ दास, ६९ वीरहम्बीर, ७० वैष्णवदास, ७१ वृन्दावन दास, ७२ व्रजानन्द, ७३ तुलसी दास, ७४ दलपति, ७५ दीनघोष, ७६ दीनहीन दास, ७७ दुःखीकृष्ण दास, ७८ दुःखिनी, ७९ देवकीनन्दन दास, ८० धरणीदास, ८१ नटवर, ८२ नन्दनदास, ८३ नन्द, ८४ नयनानन्द दास, ८५ नरसिंह दास, ८६ नरहरि दास, ८७ नरोत्तम दास, ८८ नयकान्त दास, ८९ नयचंद्र दास, ९० नवनारायण भूपति, ९१ नासिर महमूद, ९२ नृपतिसिंह, ९३ नृसिंहदेव, ९४ परमेश्वर दास, ९५ परमानंद दास, ९६ पीताम्बर दास, ९७ फकीर हबीर, ९८ फातन, ९९ भूपतिनाथ, १०० भुवनदास, १०१ मथुरादास, १०२ मधुसूदन, १०३ महेश बसु, १०४ मनोहर दास, १०५ माधव घोष, १०६ माधव दास, १०७ माधवाचार्य, १०८ माधव दास, १०९ माधो, ११० मुरारि गुप्त, १११ मुरारि दास, ११२ मोहनदास, ११३ मोहनी दास, ११४ यदुनंदन, ११५ यदुनाथ दास, ११६ यदुपति, ११७ यशोराज खान, ११८ यादवेंद्र, ११९ रघुनाथ, १२० रसमय दास, १२१ रसमयी दासी, १२२ रसिक दास, १२३ रामकांत, १२४ रामचंद्र दास, १२५ रामदास, १२६ रामचंद्र दास, १२७ राम दास, १२८ रामी, १२९ राधासिंह भूपति, १३० राधामोहन, १३१ राधावल्लभ, १३२ राधामाधव, १३३ रामानंद, १३४ रामानंद दास, १३५ रामानंद बसु, १३६ रूपनारायण, १३७ लक्ष्मीकांत दास, १३८ लोचनदास, १३९ शङ्करदास, १४० शचीनन्दन दास, १४१ शशिशेखर, १४२ श्यामचांद दास, १४३ श्यामदास, १४४ श्यामानंद, १४५ शिवराम, १४६ शिवराम दास, १४७ शिवानंद, १४८ शिवा सहचरी, १४९ शिवाई दास, १५० श्रीनिवास, १५१ श्रीनिवासाचार्य, १५२ शेखरराय, १५३ सदानंद, १५४ सालबेग, १५५ सिंहभूपति, १५६ सुंदर दास, १५७ सुबल, १५८ सेख जलाल, १५९ सेखभिक, १६० सेख लाल, १६१ सैयद मर्तुजा, १६२ हरिदास, १६३ हरिवल्लभ, १६४ हरेकृष्णदास, १६५ हरेराम दास।

इन १६५ पदकर्त्ताओंके नाम पाये जाते हैं। इन सब पदकर्त्तृगणमें प्रायः सभी ही चैतन्यदेवके समसामयिक एवं कोई कोई परवर्त्ती थे। सिर्फ चण्डिदास तथा विद्यापति पूर्ववर्त्ती थे। इनका परिचय पहले ही दे चुके हैं।

चरित-शाखा।

श्रीगौराङ्ग महाप्रभुके आविर्भावके समयसे वङ्गला भाषामें चरितरचना विशेषरूपसे प्रवर्त्तित हुई।

श्रीचैतन्यचरित सम्बंधमें निम्नलिखित पुस्तकें हम लोगोंके दृष्टिगोचर होती हैं। वृंदावन दासका चैतन्यभागवत, जयानंदका चैतन्यमङ्गल, लोचन दासका चैतन्यमङ्गल, कृष्णदास कविराजका चैतन्यचरितामृत। इनके अलावे अन्यान्य ग्रंथोंके आंशिक भावमें चैतन्यचरितकी घटनाविशेष दृष्टिगोचर होती है। जैसे—गोविंदका कड़चा प्रभृति। इन सभी ग्रंथोंमें प्रत्येक ग्रंथकी विशिष्टता परिलक्षित होती है। जैसे चैतन्यभागवतमें महाप्रभुकी नवद्वीपलीला तथा नित्यानंद प्रभुकी लीला विशेषरूपसे वर्णन की गई हैं। महाप्रभुकी लीलाके भौगोलिक विवरण एवं ऐतिहासिक तथ्यवर्णन ही जयानन्दके चैतन्यमंगलका विशेषत्व है। लोचनदासका चैतन्यमंगल, मुरारिगुप्त द्वारा लिखे हुए संस्कृत चैतन्यचरितका बंगलानुवाद है। इसके अलावे उन कवियोंने दुर्लभ कल्पनामें मुरारिके कड़चाका अङ्गसौष्ठव सम्पादन किया है। लोचनदासके चैतन्यचरितका विशेषत्व यही है कि, महाप्रभुके चरितलेखकोंमें इस तरहके मधु रसायमें किसीने भी उनकी लीला-वर्णना नहीं की है। श्रीचैतन्यचरितामृत ग्रन्थ वैष्णव-समाजमें अधिक आदरणीय है। इसमें एक ओर जिस तरह महाप्रभुके महीयसी मधुर लीला माधूर्य्यकी सरल वर्णना है, दूसरी ओर वैष्णव-दर्शन तथा वैष्णव-शास्त्रके सूक्ष्मतत्त्वका समावेश देखा जाता है। गोविन्दके कड़चाके महाप्रभुके चरितकी दूसरी कोई घटना लिखी नहीं गई है, सिर्फ उनके दाक्षिणात्य-भ्रमण ही इस ग्रन्थमें विवृत है।

इनके अलावे चूड़ामणि दासका चैतन्यचरित, शंकरभट्टका निमाई-सन्यास, मनःसन्तोषिणी एवं गोविन्ददासका कड़चा आदि ग्रन्थ भी पाये गये हैं।

इन सब ग्रन्थोंके अलावा महाप्रभुकी लीला-चरित और भी कई ग्रन्थ पाये जाते हैं। जैसे—प्रेमदासका चैतन्यचन्द्रोदयकौमुदी, रामगोपालदासका चैतन्यतत्त्वसार, हरिदासका चैतन्यमहाप्रभु एवं गोविन्ददासका गौराख्यान। उनमें प्रेमदासका चैतन्यचन्द्रोदयकौमुदी अपेक्षाकृत वृहत् ग्रन्थ है। इसमें प्रायः ४ हजार श्लोक हैं। यह ग्रन्थ चैतन्यचन्द्रोदय-नाटकका प्राचीन पद्यानुवाद है।

प्रसिद्ध रसज्ञ कवि पीताम्बरदासके पिता रामगोपाल दासने "चैतन्यतत्त्वसार" लिखा है। यह ग्रन्थ छोटा है, इसमें चैतन्यमहाप्रभुके तत्त्वको समझानेकी चेष्टा की गई है। गौराख्यानग्रन्थ 'निगम' भी कहलाता है। यह सहजिया सम्प्रदायका ग्रन्थ है।

महाप्रभुका लीलाचरित ले कर जिस तरह बहुतसे कवियोंने चैतन्यचरितकी रचना की है, उसी तरह कितने ही कवियोंने अद्वैत, नित्यानन्द प्रभृति कई महात्माओंकी लीला प्रकाश करके बंगला साहित्यकी पुष्टि की है।

हरिचरण नामक एक महापुरुषने अद्वैतमंगल ग्रन्थ लिखा है। ईशान-नागरने अद्वैतप्रकाश की रचना की थी। इसे छोड़ कर अद्वैतविलासमें अद्वैत प्रभुकी बाल्य लीलादि वर्णन की गई है। इस ग्रन्थके रचयिता नरहरि दास थे, ये श्रीखण्डवासी नरहरि सरकार नहीं थे।

अद्वैतकी बाल्यलीलाके सम्बन्धमें कृष्णदासकी लिखी हुई एक छोटी पुस्तक पाई गई है। श्यामदासका लिखा हुआ एक अद्वैतमंगल ग्रन्थ देखा जाता है। लोकनाथ दासने सीताचरितकी रचना की। इस पुस्तकमें अद्वैत प्रभुकी स्त्री सीताठाकुराणीके चरित्रका वर्णन है। नित्यानन्द-वंशमाला नामक एक रचितग्रन्थ पाया गया है, इस छोटी पुस्तकके रचयिताका नाम वृन्दावनदास था। नरहरि चक्रवर्त्ती प्रसिद्ध भक्तिरत्नाकर ग्रंथके रचयिता थे, इनका दूसरा नाम घनश्याम दास था।

नरहरि चक्रवर्त्तीने नरोत्तमविलास नामक एक और ग्रंथकी रचना की थी। इस ग्रंथमें नरोत्तम ठाकुर महाशयकी जीवनी लिखी हुई है। प्रेमविलास नामक ग्रंथके रचयिता नित्यानंद दास थे। यदुनंदन दासने प्रसिद्ध कर्णानंदकी रचना की थी। इसमें श्रीनिवास आचार्य तथा उनके शिष्योंका वृत्तान्त लिखा हुआ है। वंशी

पुस्तकके लेखकका नाम प्रेमदास था, ये ब्राह्मण जातिके थे, इनकी उपाधि सिद्धान्तवागीश थी। इस ग्रंथमें महाप्रभुका गृहत्याग तथा संन्यास एवं वंशीठाकुर नामक महाप्रभुके अनुचरका जन्म तथा शिक्षाप्रसंग वर्णित है।

उड़ियावासी गोपीवल्लभ दासने खृष्टीय १७वीं शताब्दीके मध्यभागमें विशुद्ध बङ्गलाभाषामें रसिकमंगलकी रचना की थी। श्यामानन्दके प्रधान शिष्य रसिकमुरारिके चरित्रकी वर्णना ही इस ग्रन्थका विषय है।

प्रसिद्ध कवि नरहरि चक्रवर्तीने अपने भक्तिरत्नाकरमें श्यामानन्दका कुछ परिचय दिया है। कृष्णदासने श्यामानन्दप्रकाश तथा श्रीजीवरामने श्यामानन्दविकाश लिख कर इस धर्मजीवनके और भी कई अंशोंको स्पष्ट किया है। इन दोनों ग्रन्थोंके मध्य भाषा, भाव तथा वर्णनामें श्यामानन्दप्रकाश ही प्राचीन ज्ञात पड़ता है।

भक्त रामचरण दासने अभिरामवन्दनाकी रचना की है। इस छोटी वन्दनामें अभिराम गोस्वामीके चरित्रका कुछ वर्णन है।

देवनाथ तथा बलरामदासने यथाक्रमसे गौरगणाख्यान तथा गौरगणोद्देशकी रचना की। संस्कृत भाषामें गौरगणोद्देशदीपिका तथा वृहत् गौरगणोद्देश नामक ग्रन्थ प्रचलित है, उनके ही भाव ले कर ये दोनों ग्रन्थ प्रायः दो सौ वर्ष पहले बङ्गला भाषामें लिखे गये हैं। इन दोनों ग्रन्थोंमें श्रीगौरांग महाप्रभुके पार्श्वदगणोंका संक्षिप्त परिचय दिया गया है।

प्रायः तीन सौ वर्ष पहले देवकीनन्दन दासने वैष्णववन्दनाकी रचना की थी। इनके पहले गौड़ीय वैष्णवसमाजमें जितने महात्मा हो गये हैं, प्रायः उन सबोंके नाम इस ग्रंथमें पाये जाते हैं। इस कारण यह ग्रंथ छोटा होने पर भी वैष्णवोंका इतिहास लिखनेके समय बहुत काम आयगा।

नाभादासके शिष्य नाभाजी हिंदी-भक्तमालके रचयिता थे। उनके शिष्य प्रियदासने इस ग्रंथकी टीका की थी। श्रीनिवास आचार्य प्रभुके शिष्य कृष्णदासने बङ्गभाषामें इस ग्रंथका अनुवाद किया है। इसके अलावे इन्होंने और भी कई भक्तोंके चरित्र इस ग्रंथमें संगृहीत करके इसे सर्वाङ्गसुंदर बनानेकी चेष्टा की है।

श्रीनिवास आचार्य प्रभुके पुत्र श्री गतिगोविंदने वीररत्नावलीकी रचना की। इसमें वीरचन्द्र गोस्वामीके जीवनचरित्रकी दो चार अद्भुत घटनाओंका वर्णन किया गया है। इसके अलावे गतिगोविंद ठाकुरका लिखा हुआ 'अन्तप्रकाशखण्ड' पाया गया है। इस ग्रंथमें वीरचंद्र प्रभुकी शेष लीलाओंका वर्णन है। इस ग्रंथको हम वीररत्नावलीका शेषांश कह सकते हैं। आनंदचंद्र दास जगदीश पण्डितके चरित्रविजयप्रणेता थे।

अनुवाद तथा व्याख्या शाखा।

संस्कृत ग्रंथोंका बङ्गलानुवाद करके प्राचीन कवियोंने बङ्गला साहित्यकी यथेष्ट पुष्टि की है। पौराणिक साहित्यकी बङ्गलानुवाद शाखाओंमें इसके पहले कितने ही सुविख्यात ग्रंथोंके नाम तथा परिचय दिये गये हैं। इस ग्रंथमें आकारादि वर्णमाला क्रमसे कतिपय ग्रंथकारों तथा उनके ग्रंथोंके नाम तथा विषयका उल्लेख किया गया है।

अकिञ्चन दासने श्रीगौरांग महाप्रभुके प्रियपार्षद रामानंदरायकृत जगन्नाथवल्लभ नाटकका पद्यानुवाद किया था।

कविवल्लभका रसकदम्ब ग्रंथ वैष्णव-समाजमें यदुनंदनके विदग्धमाधव नाटकके रसकदम्बकी तरह प्रसिद्ध नहीं है।

कृष्णदास, काशीदास तथा गदाधर ये तीन भाई भी परम-वैष्णव तथा प्रसिद्ध ग्रंथकार थे। गदाधर दासके जगत्मङ्गलमें इन लोगोंका विशेष वंश-परिचय दिया गया है। कृष्णदासके श्रीकृष्णविलास ग्रंथमें प्राञ्जल भाषामें हरिलीला वर्णन की गई है। यह श्रीमद्भागवतका ही आंशिक अनुवाद है।

गदाधर सुविख्यात काशीराम दासके छोटे भाई थे। इन्होंने जगन्मङ्गलकी रचना की थी। यह ग्रंथ स्कन्द तथा ब्रह्मपुराणके भाव ले कर अनूदित है। इस ग्रंथमें उत्कलखण्डकी वर्णना है। यह ग्रंथ १५६४ शकमें (या १०५० सालमें) लिखा गया था।

जयदेवकृत संस्कृत गीतगोविंद गीतिकाव्यके बङ्गलानुवादकोंमेंसे गिरिधर एक हैं। १७३६ ई०में भारतचंद्रके अन्नदामङ्गलकी रचना होनेके १६ वर्ष

पहले यह ग्रंथ रचा गया। इन्होंने दास गोस्वामीकी मनःशिक्षाका भी अनुवाद किया है।

गोपीचरण दास—चैतन्यचन्द्रामृतके अनुवादक थे।

गोविन्द ब्रह्मचारी—इन्होंने जयदेवकृत संस्कृत गीतगोविन्दका बङ्गलाभाषामें पद्यानुवाद किया है।

घनश्यामदास—ये गोविन्दरतिमञ्जरी ग्रन्थके अनुवादक थे। गोविन्दरतिमञ्जरी संस्कृत ग्रंथ इनका ही लिखा हुआ है।

जयानन्द—इन्होंने श्रीमद्भागवतके ध्रुवचरित तथा प्रह्लादचरितका भावालम्बन करके दो ग्रंथोंकी रचना की है।

दीनहीन दास—इन्होंने कविकर्णपुरके रचे हुए संस्कृत गौरगणोद्देशदीपिकाका अनुवाद किया है। उसी ग्रंथका नाम किरणदीपिका है।

दैवनाथ—इन्होंने श्रीमद्भागवतकी भ्रमरगीताका भावगत अनुवाद करके भ्रमरगीता नामक बङ्गला पद्य ग्रंथ प्रणयन किया है।

नरसिंह दास—इन्होंने संस्कृत हंसदूत ग्रंथका भावगत अनुवाद किया है।

नरसिंह द्विज—इनके ग्रंथका नाम उद्धव-संवाद है। यह श्रीमद्भागवतके उद्धव-संवादका भावगत अनुवाद है।

नारायण दास—इन्होंने १५४६ शकमें श्रीमद्दास-गोस्वामीके रचे हुए सुविख्यात मुक्ताचरित ग्रंथका पद्यानुवाद किया है।

प्रेमदास—इन्होंने दासगोस्वामीकी मनःशिक्षाका बङ्गलानुवाद तथा स्थान स्थानमें व्याख्या की है। कविकर्णपुरकृत श्रीचैतन्यचन्द्रोदय नाटकका अनुवाद करके ही ये प्रेमदास वैष्णव-समाजमें सुप्रसिद्ध हुए थे। यह ग्रंथ एक समय संस्कृत भाषामें अनभिज्ञ वैष्णव समाज परम प्रीतिकर पदार्थ गिना जाता था। इसका नाम चैतन्यचन्द्रोदयकौमुदी है। वंशीशिक्षा नामक एक ग्रंथ प्रेमदास द्वारा रचित माना जाता है। वंशीशिक्षामें प्रेमदासका दूसरा नाम पुरुषोत्तम लिखा है, इन्होंने वंशीशिक्षामें अपनेको उपरोक्त ग्रंथ-रचयिता कह कर परिचय दिया है।

भगवानदास—इन्होंने १७५६ शकमें अपने रचित गीतगोविन्दका एक पद्यानुवाद किया है।

माधवगुणाकर—ये उद्धवदूत ग्रन्थके रचयिता थे। यह ग्रन्थ भागवतके उद्धव-संवादका भावगत बंगला अनुवाद है।

मुकुन्द द्विज—ये जगन्नाथमङ्गलाके लेखक थे। जगन्नाथमंगल किसी ग्रन्थका अनुवाद न होने पर भी पुराणविशेषका भावगत अनुवाद है। जगन्नाथमंगल किसी किसी स्थानमें 'जगन्नाथ-विजय' के नामसे भी अभिहित हैं।

यदुनन्दनदास—ये पाणिहाटीके वैद्यवंशसम्भूत तथा श्रीनिवास आचार्य प्रभुकी कन्या श्रीमती मैनकादेवीके मन्त्रशिष्य थे। इन्होंने १६०७ ई०में कर्णानन्द ग्रंथकी रचना की।

कृष्ण-कर्णामृत—विल्वमंगल ठाकुर रचित कृष्ण कर्णामृत एक प्रसिद्ध सुमधुर संस्कृत ग्रंथ है। सुकवि यदुनन्दनने इस पाण्डित्यपूर्ण टीकाका बंगला भाषामें पद्यानुवाद करके संस्कृत न जाननेवाले पाठकोंका बहुत उपकार किया है।

गोविन्दलीलामृत—कृष्णदास कविराज महाशयने राधाकृष्णलीलात्मक गोविन्दलीलामृत नामक जिस ग्रंथकी रचना की थी, यह ग्रंथ उसका ही बंगला अनुवाद है। ग्रंथकारने स्थान स्थान पर व्याख्याका कार्य भी सम्पन्न किया है।

रसकदम्ब—यदुनन्दनका रसकदम्ब श्रीरूपगोस्वामी द्वारा रचित विदग्धमाधव नाटकका बंगला भाषामें पद्यानुवाद है।

रसमयदास—इन्होंने गीतगोविन्दका एक पद्यानुवाद किया है। यह अनुवाद पुजारी गोस्वामीकी टीकाके अभिप्रायानुसार ही रचा गया है।

राधावल्लभदास—इन्होंने श्रीमद्दास गोस्वमीकी विलाप-कुसुमाञ्जलिका पद्यानुवाद किया था।

रूपनाथदास—इनके लिखे हुए श्रीमद्भागवतकी भ्रमर-गीताका एक भावगत अनुवाद तथा बंगला पद्यग्रंथ हैं।

लाउडिया कृष्णदास—इन्होंने विष्णुपुरीकृत भक्तिरत्नावली ग्रंथका अनुवाद किया है। ईशाननागरके अद्वैत-

प्रकाशादि मतानुसार ये शङ्करप्रभुके बाल्यलीला-सूत्रके रचयिता थे।

चैतन्यमंगल—प्रणेता लोचनदासने राय रामानन्दकृत संस्कृत जगन्नाथ-वल्लभ नाटकके श्लोक तथा गीतांशका बंगला पद्यानुवाद किया है। लोचनदासका अनुवाद अत्यन्त मधुर तथा सरल है। लोगोंकी धारणा है, कि आनन्दलतिका तथा दुर्लभसार ग्रंथ इनके द्वारा ही लिखे गये थे।

हरिबोलदास—इन्होंने कृष्णलीलाकी पौराणिक घटना-का आश्रयलक्ष्य करके नौकाखण्ड नामक एक ग्रंथकी रचना की है।

भजन-ग्रन्थमाला।

गौड़ीय वैष्णवोंके रचित बहुसंख्यक भजनग्रंथ देखे जाते हैं। उनमेंसे कुछ गोस्वामियोंका रचित शास्त्रसम्मत है और अधिकांश बाउल तथा सहजिया सम्प्रदायके भजनप्रणालीविषयक हैं। इन सब ग्रंथकारोंके तथा उनके ग्रंथोंके नामादि अकारादि वर्णमालाक्रमसे नीचे लिखे जाते हैं।

अकिञ्चनदास—भक्तिरसात्मिका नामक एक छोटे भजनग्रंथके रचयिता। फिर दीन कृष्णदासका रचित इसी नामकी एक और हस्तलिपि देखी जाती है। यह ग्रंथ ढाई सौ वर्ष पहले रचा गया है।

अच्युतदास—गौरांभक्तिरसगीत नामक ग्रंथ इन्हीं-का बनाया है।

आनन्ददास—इन्होंने रसमुक्तार्णव नामक ग्रन्थ लिखा। इस ग्रन्थमें मधुररसका वर्णन है। रसके भजनके सम्बन्धमें बहुत-सी बातें इसमें लिखी हैं।

कृष्णदास—इनके बनाये निम्नलिखित भजन ग्रन्थ मिलते हैं—माधुर्यवर्णन, वृन्दावनध्यान, स्वरूप-निर्णय, गुरुशिष्यसंवाद, रागमयी कणा, रूपमञ्जरी, प्रार्थना, शुद्ध, रतिकारिका, आत्मनिरूपण, दशात्मिका, रसभक्तिलहरी, रागरत्नावली, सिद्धिनाम, आत्मजिज्ञासामाभरह, छानरत्न माला, आश्रयनिर्णय, गुरुतत्त्व, आगमस्थान। इनके सिवा आश्रयनिर्णय, गुरुतत्त्व, आगमस्थान, मनोवृत्ति पटल, चमत्कारचन्द्रिका, प्रह्लादचरित, आत्मसाधन, सारसंग्रह, पाषण्डदलन, श्यामसुन्दरी आदि छोटी छोटी पुस्तकें भी इन्होंने लिखी हैं।

कृष्णरामदास—भजनमालिका नामक ग्रन्थके रचयिता। ग्रन्थकी रचना और भाव अच्छा है। कृष्ण-भक्तिका प्राधान्य स्थापन ही इस ग्रन्थका विषय है।

गिरिधरदास—स्मरणमङ्गलसूत्र ग्रंथके प्रणेता। इस ग्रंथमें श्रीश्रीराधाकृष्णके अष्टकालीय लीला स्मरणका विषय लिखा है।

गुरुदास वसु—प्रेमभक्तिसार। इस ग्रन्थमें गौड़ीय वैष्णव-सम्प्रदायका साध्यसाधनतत्त्व लिखा है।

गोपाल भट्ट—गोलोकके प्रणेता। इसमें गोलोक-वर्णन और श्रीगौराङ्ग-नित्यानन्द-जाह्नवीतत्त्व आदि लिखे हैं।

गोपीकृष्णदास—हरिनामकवच।

गोपीनाथ दास—सिद्धसार।

गोविन्ददास—निगम नामक ग्रन्थ। वैष्णवकल्पतरु नामका एक दूसरा ग्रन्थ भी इन्होंने लिखा है।

गौरीदास—निगूढार्थप्रकाशावलीके प्रणेता।

चैतन्यदास—इन्होंने रसभक्ति-चन्द्रिका नामक ग्रन्थ लिखा है। ईश्वरतत्त्व और जीवतत्त्वका वर्णन ही इस ग्रन्थका विषय है।

जगन्नाथदास—रसोज्ज्वल ग्रन्थके प्रणेता।

जयकृष्णदास—इन्होंने मदनमोहनवन्दना नामक ग्रन्थ लिखा।

श्रीजीव गोस्वामी—इन्होंने बहुतसे संस्कृत ग्रन्थ लिखे हैं। सहजिया-सम्प्रदायका उपासनासार, नित्य वर्तमान आदि ग्रन्थ भी इन्हींके रचित हैं।

जीवनाथ—रसतत्त्वविलास नामक एक ग्रन्थके रचयिता।

दुःखी कृष्णदास—इनका दूसरा नाम श्यामानन्द है। आप सहज-रसायण ग्रन्थ लिख गये हैं।

दीन सनकदास—वैष्णवामृत ग्रन्थके लेखक।

नरसिंह दास—इन्होंने दर्पणचन्द्रिका नामक ग्रन्थ की रचना की है।

नरोत्तम दास—इनके बनाये प्रार्थना और प्रेमभक्ति-चन्द्रिका ग्रन्थ वैष्णव समाजमें चिरस्मरणीय और चिर-

पूजनीय हैं। इनके नाम पर और भी कितने ग्रन्थ देखे जाते हैं, जैसे—उपासनापटल, अर्थविसंवाद, अमृतरस-चन्द्रिका, प्रेमभावचन्द्रिका, सारात्सारकारिका, भक्ति-लतिका, साध्यप्रेमचन्द्रिका, राममाला, चमत्कार-चन्द्रिका, स्मरणमङ्गल, स्वरूपकल्पलतिका, प्रेमविलास, तत्त्वनिरूपण और रसभक्तिचन्द्रिका। इन सब ग्रन्थोंका अधिकांश सहजिया सम्प्रदायके, श्रीनरोत्तम ठाकुरका लिखा प्रतीत नहीं होता।

नित्यानन्द दास—रागमयीकणा और रसकल्पसार नामक दो ग्रन्थके प्रणेता।

प्रेमदास—इन्होंने उपासना-पटल और आनन्दभैरव नामक ग्रन्थ लिखे। उपासना-पटल नरोत्तम दासका रचित कह कर उल्लिखित हुआ है। प्रेमदासने मनःशिक्षा और वंशीशिक्षा नामक ग्रन्थकी भी रचना की।

प्रेमानन्द—मनःशिक्षा नामक विवेकवैराग्य-शिक्षा-ग्रन्थके प्रणेता। चन्द्रचिन्तामणि नामक एक और ग्रन्थ इनका बनाया हुआ मिलता है। चन्द्रचिन्तामणि गद्य-पद्यमय ग्रन्थ है।

बलराम दास—इन्होंने वैष्णवाभिधान और हाट-वन्दन नामक ग्रन्थ रचे हैं।

मधुरा दास—आनन्दलहरी नामक सहजिया सम्प्रदायके भजन ग्रन्थ-रचयिता।

मनोहर दास—दीनमणिचन्द्रोदयके रचयिता।

मुकुन्द दास—अमृतरसावली, चमत्कारचन्द्रिका, रत्नसागरतत्त्व, सहजामृत, वैष्णवामृत, सारात्सार-कारिका, साधनोपाय, रागरत्नावली; सिद्धान्तचन्द्रोदय, और अमृतरत्नावली आदि सहजिया सम्प्रदायके अनेक भजन ग्रन्थोंके रचयिता। ग्रन्थकारने अपनेको कृष्णदास कविराजका शिष्य बतलाया है।

यदुनाथ दास—तत्त्वकथा। यह भी सहजियाका साधन-भजन ग्रन्थ है।

युगलकिशोर दास—प्रेमविलास नामक एक छोटे ग्रन्थके रचयिता।

युगलकृष्ण दास—योगागम और भगवत्तत्त्वलीलाके लेखक।

रसमयी दास—इनका बनाया भाण्डतत्त्वसार नामक छोटा ग्रन्थ मिलता है। यह भी सहजतत्त्वमूलक है।

रसिक दास—रतिविलास नामक ग्रन्थके रचयिता।

राधावल्लभ दास—सहजतत्त्व। राधामोहनदास—रत्नकल्पतत्त्वसार। रामगोपाल दास—चैतन्यतत्त्वसार। रामचन्द्र दास—सिद्धान्तचन्द्रिका और स्मरणदर्पण। रामेश्वर दास—क्रियायोगसार। इस ग्रन्थमें वैष्णव-सम्प्रदायविशेषकी नित्यनैमित्तिक क्रियाका कुछ वर्णन है। लोचनदास—चैतन्यप्रेमविलास और दुर्लभसार।

वंशीदास—दीपकोज्ज्वल और निकुञ्ज-रहस्य। बाउल चाँद—निगूढार्थप्रकाश। व्रजेन्द्रकृष्ण दास—गोपी उपा-सना। वाणीकण्ठ—मोहमोचन। वृन्दावन दास—रत्न-कल्पसार, रिपुचरित, तत्त्वविलास और छोटे छोटे ग्रन्थों-के प्रणेता। इन्होंने चैतन्य-निताईसंवाद, वैष्णववन्दना इत्यादि दो एक ग्रंथ भी लिखे हैं। भजननिर्णय नामक एक सुन्दर ग्रंथ भी इनका बनाया मिलता है। नित्यानन्दवंशावलीचरित नामक एक ग्रन्थ भी वृन्दा-वन दास-रचित मालूम होता है। इसके सिवा भक्ति-चिन्तामणि, भक्तिमाहात्म्य, भक्तिलक्षण और भक्तिसाधन आदि ग्रन्थ भी वृन्दावन दासके नामसे ही प्रचलित हैं। उपासनासंग्रह नामक ग्रंथ श्यामानन्दका लिखा हुआ है।

सनातन गोस्वामी नामक एक व्यक्तिने सिद्धरति-कारिका ग्रन्थकी रचना की। वैष्णवोंके विशेषतः सह-जियोंके भजन साधनके सम्बन्धमें इस प्रकारके और भी सैकड़ों ग्रंथ हैं।

विविध वैष्णव ग्रन्थ।

गोविन्द द्विजका बनाया तुलसीमहिमा ग्रंथ, गोविन्द का श्रीमतीका मानभञ्जन, नन्दकिशोर दासके वृन्दावन लीलामृत और रसपुष्पकलिका, नरसिंह दासका प्रेम-दावानल, नरहरिका गीतचन्द्रोदय, नीलाचल दासका द्वादशपाटनिर्णय, पीताम्बर दासका रसमञ्जरी, भक्तराम-दासका गोकुलमङ्गल, भवानी दासका राधाविलास, मही-धर दासका एकादशी माहात्म्य, माधव दासका कृष्ण-मङ्गल, मुकुन्दद्विजका जगन्नाथमङ्गल, युगल किशोरदास-का चैतन्यरसकारिका, रामगोपाल दासका रसकल्पवल्ली, बलराम दासका कृष्णलीलामृत और वैष्णव चरित, वृन्दावनदासका भक्तिचिन्तामणि और शङ्करदासका

बनाया यम और प्रजापतिसंवाद नामक वैष्णव ग्रंथ मिलता है। ये सब ग्रंथ अंगरेजी-प्रभावके पहले लिखे गये थे।

मुसलमान-प्रभाव।

पहले लिखा जा चुका है, कि गौड़के मुसलमान अधिपतियोंके उत्साहसे अनेक पण्डित शास्त्रानुवादमें अग्रसर हुए थे। महाप्रभु श्रीगौराङ्गदेवके आविर्भावके बादसे वैष्णवकवि जिस प्रकार अनेक ग्रंथ लिख कर बङ्गलाभाषाको अलंकृत कर गये हैं, उसी प्रकार उनके अनुकरण पर बहुतसे मुसलमान-कवियोंने भी नाना ग्रंथ लिख कर बङ्गलासाहित्यकी अङ्गपुष्टि की है। ये सब ग्रन्थ पढ़नेसे मालूम होगा, कि सुपण्डित मुसलमान लोग भी हिन्दूशास्त्रको कैसी भक्ति-दृष्टिसे देखते थे, एक समय हिन्दू-मुसलमानोंके मध्य कैसा सद्भाव था। उस समय मुसलमान समाजमें भी देवचरित्रका अभाव न था। इन सब ग्रन्थोंके मध्य इस्लामधर्मको व्याख्यादि, धर्मतत्त्व, नीतितत्त्व, इतिहास, संगीत, गल्प और विरह-गाथा ही अधिक है। इन सब ग्रंथकारोंमेंसे बहुतेरे स्वभाववर्णना और कवित्वमें शक्तिसम्पन्न थे।

करम अली एक वैष्णव-कवि थे। चट्टग्रामके पटीया थानाके अन्तर्गत कमलडाङ्गामें उनका घर था। अपने ग्रंथमें ग्रंथकारने ऋतुके बारहों महीनेका वर्णन किया है।

राधाका द्वादशमासिक विरहवर्णन वैष्णव-कवियोंके प्रेमविषय वर्णनमें आदर्श स्थानीय था। उस बारमासाके अनुकरण पर किसी किसी मुसलमान कविने भी बारमासा गाया है। उनमेंसे छकिनाका बारमासा और मेहेर-नेगारका बारमासा मिलता है।

बङ्गला साहित्यके अनुकरण और अनुवादके अतिरिक्त मुसलमान-कविगण इस्लामधर्मके अनेक मौलिक-तत्त्व बङ्गलामें अनूदित कर बङ्गलाभाषाके कलेवरको पुष्ट कर गये हैं।

तत्त्वशास्त्र।

१ ज्ञानप्रदीप—सैयद सुलतान नामक एक मुसलमान साधुका रचित। उक्त कविका बनाया एक योगशास्त्रीय ग्रन्थ भी मिलता है। इसका प्रतिपाद्य विषय सर्वतोभावमें योगकालन्दर या उपरोक्त ज्ञानप्रदीपके जैसा है।

२ तन-तेलाउत या तनुसाधन—इस ग्रंथमें योगशास्त्रीय गभीरतत्त्व बङ्गला और मुसलमानी ढङ्गमें लिखा है। इसमें हिन्दूयोगका मूलाधार मणिपुर आदि संज्ञामें मुसलमानी नामकरण देखा जाता है। बीच बीचमें मुसलमानी योगके भी यथेष्ट निदर्शन हैं।

३ तउफा—एक धर्मग्रंथ। तउफाका अर्थ संहितादि है। मुसलमानके रोजा, नमाज आदि आवश्यकीय विषयोंकी इस ग्रंथमें आलोचना है। इसके सिवा इसमें मुसलमान-सामाजिक धर्मनीतिके अनेक कर्त्तव्य विषय भी लिपिबद्ध हैं। मूल अरबी तउफाके पारसी अनुवादसे कवि आलवालने रोसङ्गके राजा श्रीचन्द्र सुधर्मके मन्त्री श्रीमान् सुलेमानके कहने पर यह ग्रंथ बङ्गलामें लिखा है।

४ मुजिदका बारमासा—मुसलमानी धर्मतत्त्व सम्बन्धी एक छोटा ग्रंथ। महम्मद अली इसके रचयिता माने जाते हैं।

५ ज्ञानसागर—धर्मविषयक (फकीरी) ग्रंथ। इसमें योग-शास्त्रीय बहुत-सी बातें हैं। अली राजा उर्फ कानू फकीर इनके रचयिता हैं। ग्रंथकर्त्ताका पद पढ़नेसे मालूम होता है, कि उन्हें हिन्दू योगशास्त्रमें भी अच्छा ज्ञान था।

६ सिराज कुलुप—एक मुसलमानी धर्मतत्त्व या धर्मविज्ञान। इसमें स्वर्ग कितने हैं, पृथिवी किस पर अवस्थित है, ईश्वर किस दिन किसको सृष्टि करते हैं, प्रलयकालमें और पीछे क्या होगा। ये सब पौराणिक आख्यान सन्निवेशित हैं। ग्रंथकर्त्ताका नाम फकीर अली राजा है।

७ मुछार-छौयाल—हजरत मूसा (Moses) पैगम्बरके साथ भगवान्‌का तोर पहाड़ पर जो कथोपकथन हुआ, उसीका अवलम्बन कर कवि नसरुल्लाने इसकी रचना की।

८ साहादहा पीर पुस्तक—मुसलमानी दरवेशी ग्रंथ। साहादहा पीर नामक कोई सिद्ध पुरुष पहला

और चान्द नामक व्यक्ति ग्रन्थकर्त्ता हैं। इसमें मुसलमानी योगसाधनतत्त्वके अनेक विषय हैं।

९ ज्ञान-चौतीसा - तत्त्वज्ञानपूर्ण कुछ कविता। कवि सैयद सुलतान इसके रचयिता हैं।

१० अफात-रछूल—इसमें हजरत महम्मद मुस्तफाके तिरोधानका विवरण है। यह सैयद सुलतान द्वारा रचा गया है।

११ सबेमेहेराज—हजरत महम्मद मुस्तफाका स्वर्ग-परिभ्रमण-व्यापार इस ग्रन्थमें लिखा है। ग्रन्थकर्त्ता सैयद सुलतान है।

१२ हजरत महम्मदचरित—सैयद सुलतानने इसे लिखा है।

१३ यामिनो-बहाल—कवि करीम उल्ला द्वारा रचित।

१४ केकायतोल-मोछल्लिन (इसलाम हितकथा) हिंदूकी मनुसंहिताकी तरह एक मुसलमानी संहिता, महम्मदी धर्म-परिच्छदसे आवृत है।

१५ रहातुल कुलुप (आत्ममुक्तिसोपान)—एक धर्म-ग्रन्थ, यह इसी नामके पारसी ग्रंथका अनुवाद है। ग्रंथ-कर्त्ताका नाम सैयद नूर उद्दीन है।

१६ बालका नामा—प्रणेता मयनचाँद फकीर।

१७ इमामयात्राकी पुस्तक—एक धर्मविषयक मुसलमानी ग्रंथ। इसके रचयिता हैं वगुड़ा जिला-निवासी महिचरण और गैनारो कान्दीके श्रीदुर्गतिया सरकार साहब।

१८ ह्वीयत्य—तवारिखी हामिदीके प्रणेता मौलवी हामिदुल्ला खाँने इसकी रचना की। ग्रंथ पद्य और गद्यमें लिखा है। ग्रंथकर्त्ताने मूँछ कटानेवाले मुसलमानों पर श्लेष कर लिखा है। मूँछ कटाना महम्मदीय शास्त्रमें निषिद्ध कर्म है।

१९ सापपथ—एक काव्य। यह महम्मद हमिदुल्ला खाँ द्वारा रचा गया है। ईश्वरका एकत्व तथा सुकृति और कुकृतिका फलाफल इस ग्रंथमें प्रतिपादित हुआ है।

२० पैगम्बर-नामा—सैयद सुलतान द्वारा विरचित। ग्रंथ बहुत बढ़िया है। इसमें हजरत, इछा, मुछा, दाऊद, सुलेमान, नुह, आदि पैगम्बरोंका चरित तथा प्रसङ्ग-क्रमसे श्रीरामचरित और श्रीकृष्णचरित वर्णित है।

२१ दफायेत्—एक मुसलमानी संहिता। पारसी ग्रंथसे कवि सैयद नूरउद्दीनने अनुवाद किया है।

२२ सुलतान जमजमाका ग्रंथ—यह महम्मद कासिमका रचा हुआ है। इसमें कविने मनुष्यके मृत्युकालीन और तत्परवर्त्ती कालका हाल हकीयत् अर्थात् पापपुण्यका न्याय विचारादि सरल भाषामें दिखलाया है।

गुलाम मौलाका बनाया हुआ एक और सुलतान जमजमाका ग्रंथ मिलता है। प्रतिपाद्य विषयमें दोनों ग्रंथ एकसे हैं, परन्तु रचनामें कुछ पृथक्ता देखी जाती है।

२३ इब्लिछ-नामा—मुसलमानी धर्मग्रंथ। गुरु शिष्यकी कर्त्तव्यता इसका प्रधान प्रतिपाद्य विषय है।

२४ नूर कन्दिल—यह कवि महम्मद छफिने लिखा है। इसमें स्वर्ग, सृष्टि, मनुष्योत्सर्ग आदिसे ले कर मानव जीवनके शेष विचार तककी बातें लिखी हैं।

२५ योग कालन्दर—एक मुसलमानी योगशास्त्र। योगसाधन किस प्रकार करना होता है तथा परलोकका उपाय क्या है, यही इस ग्रंथमें लिखा है।

२६ आमछेपाराकी व्याख्या—पवित्र कुरान शरीफके अन्तर्गत आमछेपारा अंशकी व्याख्या और उसके पढ़नेका फल इस ग्रन्थमें प्रतिपादित हुआ है। फकीर होछेन इस ग्रंथके रचयिता हैं।

२७ चित-इमान—एक मुसलमानी धर्मग्रंथ। इसका अनुवाद अरबी भाषासे हुआ है। रचयिता काजी बदि-उद्दीन हैं।

२८ छरछालकी नीति या तक्तिय किताब—एक मुसलमानी संहिता। हुलाइन निवासी मुनाइम मुन्शीके कहनेसे कवि करम अलीने इस ग्रंथका पारसी भाषासे अनुवाद किया।

२९ अवतार-निर्णय—एक मुसलमानी ग्रंथ। ग्रंथमें सृष्टिपत्तनसे ले कर अवतारवाद तककी कथाएं लिखी हैं। नवी-वंशके व्याख्यान प्रसङ्गमें कविने महम्मदका अवतारत्व स्वीकार किया है।

३० फतेमाका छुरतनामा—बीबी फतेमा हजरत महम्मद मुस्तफाकी लड़की और हजरत अली मुर्त्तजाकी स्त्री थी। उनके दो पुत्र थे, इमाम हुसेन और हसन। उनकी अंतर्निहित अव्यक्त रूपराशि देखनेके लिये एक दिन छल

बहुत व्याकुल हो उठे। इसीका अवलम्बन कर ग्रंथकार शाह बरिद खांने यह ग्रंथ समाप्त किया था।

३१। आमरनूरिका परबिन्दसार—एक मुसलमान धर्मविषयक ग्रंथ। ग्रंथकारका नाम कवि कार आमक महम्मद है।

इतिहास-काव्य।

अनेक मुसलमान कवि इसलाम-धर्मका मर्म समझाने या उसकी पवित्र कीर्ति प्रचार करनेके लिये बहुतसे ऐतिहासिक काव्य बङ्गलामें रच गये हैं। बङ्गालके सब और विशेषकर मुसलमान समाजमें इसलामीय प्रचार ही ग्रन्थकारोंका मुख्य उद्देश्य है। किन्तु उन सब ग्रन्थोंमें बङ्गला रामायण, महाभारतादि ग्रन्थका थोड़ा बहुत अनुकरण देखा जाता है। नीचे अति संक्षिप्तभावमें उन सब ग्रन्थोंका प्रतिपाद्य विषय और उनका परिचय दिया गया है,—

१। हनीफाका युद्ध-महम्मद मुस्तफाके जमाई अलीके दो विवाह हुए थे। बीबी फातिमाके गर्भसे इमाम हुसेन और हसन तथा बीबी हनीफाके गर्भसे महम्मद हनीफाका जन्म हुआ। दमस्कसके दुर्दान्त राजा यजिदके हाथसे जब इमाम हुसेन-हसन मारे गये, तब हसनके पुत्र जयनाल आबेदिनने इस घटनाका विवरण करते हुए हनीफाको एक पत्र लिखा। हनीफा उस समय पर्वतमाली प्रदेशमें राज्य करते थे। भविष्यजीकी ऐसी दुर्घटनाकी बात सुन कर हनीफा क्रोधसे आग बबूले हो दलबलके साथ मदीना आये। मदीना आते ही महावीर हनीफाने यजिदको एक पत्र लिखा। उन्होंने उसमें यजिदसे युद्धकी घोषणा कर दी थी। युद्धमें यजिदकी पराजय और मृत्यु हुई। यही युद्धवृत्तान्त काव्यका वर्णित विषय है।

२। मुक्तार हौसेन ग्रन्थ—सुप्रसिद्ध मर्सियाका इतिहास है। इसमें हसन और हुसेनकी विपद्‌वार्ता तथा मुहर्रमका आमूल इतिहास वर्णित है।

३। इमाम चोरी—बाल्यकालमें इमाम हसन और हुसेनको कोई चुरा कर मुल्ला बादशाहके निकट ले गया था। इसी घटनाके आधार पर यह छोटा ग्रन्थ रचा गया है। कोई कोई इसे प्रसिद्ध कवि महम्मद खांकी रचना मानते हैं।

४। कासिमका युद्ध—करबला मैदानमें उस महायुद्ध प्रसिद्ध मुहर्रमकी संक्षिप्त घटना।

५। सिकन्दर-नामा—सुप्रसिद्ध कवि आलाउल द्वारा रचित। यह ग्रन्थ पारसी कवि निजामीने पहले पारसी भाषामें लिखा। पीछे आलाउलने इसीका भाषान्तर किया। ग्रन्थ माकिदूनवीर अलेकजान्दरकी जीवनी ले कर लिखा गया है।

६। अमीर जङ्ग—महम्मदके दौहित्र इमाम हसन-हुसेन जब पापिष्ठ यजिदसे मारे गये, तब उनके वैमात्रेय भाई अमीर महम्मद हनीफाने विषम संग्राममें यजिदका वध किया। मदीना और देमास्क नामक स्थानोंमें युद्ध हुआ था। उक्त दोनों स्थानोंके युद्ध-विवरणसे ग्रन्थका भी दो भाग हुआ है। पहले भागमें मदीना-युद्धका और दूसरेमें देमास्क-युद्धका वर्णन है। श्रीयुत् महम्मद शाहकी आज्ञासे कवि शेख मनसुरने पयारमें इस जङ्गकी बंगाली कथा समाप्त की थी।

७ जङ्ग-नामा—महम्मदके जमाई अलीकी युद्धवार्ता ले कर ग्रन्थ रचा गया है। ग्रन्थकर्त्ताका नाम मन-सुर अली है।

उपाख्यान-काव्य।

मुसलमान कविगण अरबी-उपन्यास या पारसी-उपन्यास वर्णित अपूर्व प्रेमकहानीके अनुकरण पर बङ्गला भाषामें अनेक उपाख्यान रच गये हैं। उनमेंसे कुछ आवश्यक ग्रन्थोंका परिचय नीचे दिया जाता है—

१ सती मैनावती और लोर चन्द्राणी—ग्रन्थकर्त्ताका नाम दौलत काजी और सैयद आलाउल साहब है। यह ग्रन्थ दो भागोंमें विभक्त है। प्रथम भागमें लोरराज और रानी चन्द्राणीका वृत्तान्त और द्वितीय भागमें वणिक्‌पुत्र छातन और राजकुमारी मैनाका प्रसङ्ग वर्णित है।

२ मदनकुमार-मधुमालाकी पुस्तक—नायक और नायिकाकी प्रेमकहानी ले कर यह ग्रन्थ रचा गया है। ग्रन्थकर्त्ता नूरमहम्मद है।

३ सप्त पयकर—सात विभिन्न उपाख्यान ले कर काव्य रचा गया है। रोसाङ्गकी राजसभामें रह कर महाकवि आलाउलने यह काव्य सैयद महम्मदके आदेशसे रचा।

४ जोवेलमुल्लुक सामारोक—यह एक मुसलमानी आख्यान ग्रंथ है। सैयद महम्मद अकबर अलीने इसकी रचना की। रचना उतनी खराब नहीं है।

५ कग फुर शाह—एक बड़ा उपन्यास ग्रंथ। इसके रचयिता मियाँ हसमत अली काजो चौधरी हैं।

६ तमिम-गुलाल चैतन्यसिलाल—एक प्रेम-कहानी। महम्मद अकबर इसके रचयिता हैं।

७ पद्मावती—चट्टग्रामके सुप्रसिद्ध कवि आलाउल द्वारा रचित। बङ्गला साहित्यसेवोके निकट इस ग्रंथका विशेष आदर है।

लालमति-सयफल मुल्लुक—लालमति और ओल-कर्णायन सिकन्दरके पुत्र मुल्लुकके प्रणय और परिणय व्यापारको ले कर यह ग्रंथ लिखा गया है।

मल्लिकाका हजार सौयाल—एक पद्यालिका। सेर बाज या राज इसके रचयिता हैं।

रत्नमाला—एक काव्य, फकीर महम्मद-विरचित। यह प्रेम और भक्तिकहानी ले कर लिखा गया है।

रैजवान शाहा—एक मुसलमानी उपाख्यान ग्रन्थ। इसे रूपककाव्य कहनेमें भी कोई अत्युक्ति न होगी। कवि शमसेर अलीने पहले पहल इसकी रचना की। कुछ अंश रचे जानेके बाद उनका देहान्त हो गया। पीछे कवि आछलामने उसकी रचना शेष की।

भावलाम—एक मुसलमानी केच्छा या राजकुमार-राजकुमारीकी प्रेमकहानी। समसुद्दीन छिद्दिकीने इसकी रचना की।

युसुफ जेलेखा—युसुफ और जेलेखाकी प्रेमकहानी ले कर यह ग्रन्थ लिखा गया है। पारसी भाषाके प्रसिद्ध महब्बत-नामा नामक ग्रन्थका यह एक पद्यानुवाद है।

लायली-मजनू—एक मुसलमानी प्रेमकहानी। यह काव्य वियोगान्त है। ग्रन्थकर्त्ता कविका नाम दौलत वजीर बहराम है।

सङ्गीतशाखा।

मुसलमान लोग सङ्गीतशास्त्रमें विशेष पारदर्शी थे। आईन-इ-अकबरी पढ़नेसे इसका अच्छी तरह पता चलता है। हिन्दू और मुसलमान सङ्गीतज्ञोंके यत्नसे रागनामा, तालनामा आदि अनेक पुस्तकें रची गईं जिन्होंने बङ्गला-साहित्यको अलंकृत किया था। नीचे कुछ पुस्तकोंका परिचय दिया जाता है—

१ रागनामा—प्राचीन सङ्गीतका एक इतिहास। इस पुस्तकके बनानेवाले एक नहीं थे। बहुतोंने मिल कर इसका सङ्कलन किया है। इसमें प्राचीन राग और तालका जन्म, गत्, रागका ध्यान तथा प्रत्येक रागानुयायी एक गान लिपिबद्ध है।

२ तालनामा—सङ्गीत-सम्बन्धीय एक पुस्तक। आलोच्य ग्रंथमें द्विज रघुनाथ, श्रीचाँद राय, छैयद आहन-उद्दिन, गोपीवल्लभ, छैयदमुर्त्तजा, हरिहर दास, नाछिर-उद्दिन, गैयाज, आलाउल, भवानन्द अमान, सेरचाँद, शिवरामदास और हीरामणि आदिका भणितायुक्त पद पाया गया है।

३ सुप्तिपत्तज—एक सङ्गीत पुस्तक। इसमें राग-तालके जन्मादिका हाल लिखा है तथा चम्पागाजी, बधसा अली और अली राजाकी भणिता देखनेमें आती है।

४ ध्यानमाला—एक सङ्गीतविषयक पुस्तक। राग-तालकी उत्पत्ति, कौन राग कब गाया जाता है और किसके द्वारा पहले पहल वाद्ययन्त्रोंका आविष्कार हुआ, उसका एक आनुपूर्विक इतिहास पुस्तकके मध्य आलोचित हुआ है।

५ रागतालकी पुस्तक—इसमें राग और तालकी उत्पत्ति, दण्डमाग, घड़ीभाग, रागतालके विवाह आदि विषयक लिखे हैं। इसमें केवल दो व्यक्तिकी भणिता देखी जाती है।

चम्पागाजी एक विख्यात पण्डित थे। सङ्गीतशास्त्रमें उनकी असाधारण व्युत्पत्ति थी। उनके रचित अनेक सङ्गीत पाये जाते हैं।

६ रागनामा—इसी श्रेणीकी एक दूसरी पुस्तक।

पदसंग्रह—रागमाला आदिमें जिस प्रकार मुसलमान कवियोंके रचित पद और गीतका समावेश हुआ है, आलोच्य पदसंग्रहमें भी उसी प्रकार बहुतसे व्यक्तियोंके रचित विभिन्न पद और गीत लिपिबद्ध देखे जाते हैं।

झुलुमा—एक छोटी गीतकी पुस्तक। इसमें सिर्फ

२० गई है। पहले यह मुसलमानोंके विवाहोत्सवमें गाया जाता था।

सत्यनारायणकी कथा।

इधर मुसलमान लोग जिस प्रकार हिन्दू-देव देवोंके प्रति श्रद्धा दिखा गये हैं, उधर हिन्दू लोग भी उसी प्रकार मुसलमान पीर आदिके भक्त और पूजक हो गये थे। आज भी अनेक शिक्षित हिन्दूसम्प्रदायके मध्य मुहर्रम-पर्वमें 'ताजिया' सजाते देखा जाता है। निम्न-सम्प्रदायमें भी इस संस्कारका अभाव नहीं है। बहुतेरे अभीष्टसिद्धि-के लिये 'पीरकी सिन्नी' मानते हैं और वहां मिट्टीका घोड़ा बना कर मानसिक दान करते हैं।

पीरके उद्देशसे यह सिन्निदानप्रथा बङ्गालमें विशेष भावसे प्रचलित है। बौद्धप्रधान बङ्गालमें अधिक दिन हिन्दूधर्मका स्थापित भी न होने पाई थी, कि मुसलमान आगमसे धीरे धीरे बङ्गालमें अपनी प्रतिष्ठा और प्रतिपत्ति सुदृढ़ करनेकी कोशिश की। बहुत दिन एक जगह रहनेसे हिन्दू और मुसलमानके बीच धर्मसम्बन्धमें उदार-भाव उपस्थित हुआ तथा उसीके फलसे धीरे धीरे बङ्गालमें मिश्रदेवता सत्यदेवता सत्यपीरका उद्भावन हुआ — उनकी पूजा और सिन्निदान विधिमें हेरफेर हुआ। क्रमशः यह पीर हिन्दुओंमें रूपान्तरित हो कर सत्यपीर या सत्यनारायण नामसे पूजित होने लगे। इन सत्य-नारायणकी पूजा-कथा बहुत कुछ पुराणप्रसिद्ध चण्डी-गान और मंगला-गान-सी है। साधारणतः ग्रंथ छोटे आकारके होने पर भी शङ्कराचार्य, कवि अयनारायण और उनकी भतीजी आनन्दमयी-रचित दोनों ग्रंथ बहुत बड़े हैं। शङ्कराचार्यकी पांचाली १६ पालोंमें ही प्रकाशित है।

पीरकी पूजाका प्रचार करनेके लिये ब्राह्मणोंने एक ओर जिस प्रकार अनेक सत्यनारायण-ग्रंथोंका प्रचार किया था उसी प्रकार मुसलमान कविगण भी "सत्यपीरके केच्छा" आदि विभिन्न नामके ग्रंथ सत्यनारायणका महात्म्य प्रचार करनेके उद्देशसे लिपिबद्ध कर गये हैं। आज तक हम लोगोंने सत्यनारायणके माहात्म्यसूचक जितने ग्रंथोंका परिचय पाये हैं, उनमें द्विजराम या रामेश्वर, फकीरामदास, द्विज विश्वेश्वर, द्विज रामकृष्ण, कवि-चन्द्र, अयोध्याराम राय तथा शङ्कराचार्यरचित सत्यनारायणकी कथा सर्वप्राचीन है। यह कथा प्रायः तीन सौ वर्ष पहले रची गई थी ऐसा अनुमान किया जाता है।

ऊपर कहे गये ग्रंथोंको छोड़ कर अयनारायणसेनका सत्यनारायणव्रत या हरिलीला तथा शिवरामकृत सत्य-पीर पांचाली नामक इस विषयके दो ग्रंथ पाये जाते हैं। अयनारायणके हाथमें पड़ कर यह सत्यनारायणकी व्रत-कथा एक सुन्दर सुवृहत् काव्यमें परिणत हो गई है।

इसके सिवा द्विज रामरामकृत एक नारायणदेवकी पांचाली है। चट्टग्रामसे बहुत-सी 'सत्यपीरकी पांचाली' पाई गई है। उनमेंसे ११४० सालमें लिखित फकीर-चांदकी तथा ११८२ सनमें नकल की गई द्विज घनश्यामकी पाञ्चालीपुस्तक उल्लेखनीय है। द्विज रामभद्रकी भणिता युक्त एक और भी 'सत्यपीरकी पाञ्चाली' है। फकीरराम दासने एक सत्यनारायण कथाकी रचना की। बङ्गालके सुप्रसिद्ध कवि भारतचन्द्र राय गुणाकरकी बनाई हुई एक सत्यनारायणकथा प्रचलित है। द्विज राम या रामेश्वरका जो सत्यनारायण ग्रंथ इस देशमें प्रचलित है वह रामेश्वरी सत्यनारायण कहलाता है। द्विज विश्वेश्वर विरचित एक सत्यनारायण या गोविन्दविजय मिलता है। यह ग्रंथ सन ११५१ सालकी हस्तलिपि है।

१०६२ सालकी लिखित शङ्कराचार्यकी एक 'सत्य-पीर कथा' पाई गई है। शङ्कराचार्य चट्टग्रामके थे, यहां पर आज तक उनके कुल ग्रंथ ढूंढनेसे नहीं मिले हैं। किन्तु आश्चर्यका विषय है, कि उड़ीसाके मयूरभञ्जराजकी जङ्गलपरिवेष्टित पालकपाड़ोंके मध्य हमने शङ्करा-चार्यके कुल १६ पाले देखे हैं।

शङ्कराचार्य सत्यपीरकी जो आत्मकथा कीर्तन कर गये हैं, कविकर्ण, कविवल्लभ आदि द्वारा उनकी प्रच-लित सत्यनारायणकथामें वही सब वर्णन पाया जाता है, केवल थोड़ा सा प्रभेद है। इससे मालूम होता है, कि जनसाधारणके मध्य बहुत कुछ ऐतिहासिक घटना है।

सुलतान हुसैन शाह 'अलाउद्दीन हुसैन शाह' नामसे मुसलमान-इतिहासमें प्रसिद्ध हैं। शङ्कराचार्य और कवि कर्णको सत्यनारायणकथामें जिस 'आलम' बादशाहका उल्लेख है, उन्हें हम लोग अलाउद्दीन हुसैन शाह समझते हैं।

हिन्दू कवियोंकी नकल पर अथवा मुसलमान समाजमें सत्यपीरका सिद्धान्त फैलानेके उद्देशसे कुछ मुसलमान कवि भी सत्यनारायणका माहात्म्य गा गये हैं। इन सब पुस्तकोंमें अरिफ कविके लालमोहनकी केच्छा विशेष उल्लेखनीय है। सुलतान हुसेन शाहने अपनी कन्याको देशान्तर भेज दिया था, इससे भी वे सत्यपीरके क्रोधसे परित्राण न पा सके थे।

इतिहास तथा कुलजी-साहित्य।

बंगलाभाषामें कुलपंजी या वंशानुचरित लिखनेकी प्रथा अति प्राचीन है। रामायण तथा प्राचीन पुराणादि शास्त्रोंसे हमलोग जान सकते हैं कि, विवाहसभामें वरकन्याके पूर्व पुरुषोंकी वंशावली कीर्त्तन करनेका नियम था। यह सनातन आर्य प्रथा बहुत दिनोंसे हिन्दू समाजमें चली आती है। दूसरे सभी देशोंकी अपेक्षा बंगाल देशमें ही आब्राह्मणचंडालादि सभी समाजोंमें वंशानुचरित-रक्षा तथा कीर्त्तन-प्रथा विशेषरूपसे फैली हुई थी। इसीसे इस देशमें कुलजी या वंशानुचरित साहित्यकी यथेष्ट पुष्टि दृष्टिगोचर होती है। बङ्गदेशमें कितने ही विदेशी राजाओंके आक्रमणसे एवं अनेकों धर्मसाम्प्रदायिक विप्लवसे प्रकृत राजनैतिक इतिहासका अधिकांश विलुप्त हो जाने पर भी कुलपंजी या वंशानुचरित सुरक्षित रहनेसे सामाजिक तथा पारिवारिक इतिहास विलुप्त नहीं हो सकता। अंगरेजी प्रभावसे बंगालीकी जातीयता-रक्षाका कठोर शृङ्खल शिथिल होनेके साथ साथ इन सब अमूल्य सामाजिक इतिहासोंका बहुत कम प्रचार हो गया है। उपयुक्त यत्नके अभावसे सैकड़ों कुल ग्रन्थ नष्ट हो गये हैं; किन्तु सामान्य अनुसन्धानसे ही हमलोगोंने जो कुछ संग्रह किया है, वे कुछ कम नहीं हैं। उनकी संख्या पाँच सौसे अधिक होगी।

बंगलाके सामाजिक इतिहास अथवा कुलग्रंथ व्यतीत, बंगलाभाषामें और भी कई छोटी और बड़ी ऐतिहासिक कविता तथा काव्य रचनायें देखी जाती हैं। इन सब पुस्तकोंके मध्य किसी किसी पुस्तकमें भौगोलिक विवरण इस प्रकारसे है, कि यदि उन्हें एकमात्र भूगोल कहा जाय, तो भी अत्युक्ति न होगी। ऐतिहासिक सभी कविताओं अथवा काव्योंमें सम्पूर्ण भावसे वंशाख्यान तथा धारावाहिकघटना समाश्रित नहीं है, फिर उनके मौलिक विषय बिलकुल ही प्रमाणशून्य हैं, ऐसा भी नहीं कह सकते। भाषामें रचित राजाख्यानसमूह, महाराष्ट्र पुराण तथा त्रिपुराका राजमाला प्रभृति ग्रंथ इस श्रेणीमें गण्य हो सकते हैं। इनके अलावे छोटी छोटी घटना-समाश्रित वा स्थानोंकी माहात्म्यज्ञापक जितनी कवित्वमयी कीर्त्तिगाथा पाई जाती हैं, वे भी इस श्रेणीमें गिनी जा सकती हैं।

विविध शाखाकी ग्रन्थमाला।

बंगाली कवियोंने योग तथा धर्मतत्त्व सम्बन्धमें कितने ही ग्रन्थोंकी रचना की है।

व्रत कथा।

पुराणोंमें कितने ही व्रतोंका उल्लेख है; ये सब प्रायः संस्कृत भाषामें ही लिखे हुए हैं। उनमें से कोई कोई ग्रंथ पहले हीसे बंगला भाषामें अनूदित हैं। बंगालके विभिन्न प्रदेशवासी लोगोंमें इन सब व्रतोंके सिवा और भी कितने ही लौकिक व्रतोंका भी प्रचलन देखा जाता है। ये व्रत 'मेयेली व्रत' के नामसे साधारणतः प्रसिद्ध हैं। इन मेयेली व्रतोंमेंसे कुछ तो भाषामें लिखे गये हैं और कुछ आज भी बंगीय कुल-ललनाओंको कण्ठस्थ हैं।

भाषामें रचित रामायण महाभारतादि तथा कृष्णलीलाविषयक भागवतादि ग्रन्थ गाये जानेके बाद पांचालीके बदलेमें उसके अंश विशेषका कथनीय विषय ले कर पृथक् पृथक् व्यक्तियोंके मुखसे कहनेके लिये पयारादि छन्दमें घोषाकथादि संयुक्त ग्रंथकी रचना होने लगी। धीरे धीरे ये जब अभिनयके योग्य हुए, तबसे ये सब ग्रंथ मार्जित भावापन्न हो कर 'यात्राके पाला' रूपमें परिणत हो गये।

यात्रा शब्दमें अनेक नाटकोंका परिचय दिया गया है; किन्तु उस स्थानमें उसी पालासमूहके साहित्य विषयकी आलोचना नहीं की गई है, केवल दो एक गानोंका नमूनामात्र दिया गया है। बंगालमें अङ्गरेजसमागमके पहले वा प्रथम यात्रा विषयमें जिस तरहके गद्य तथा पद्यमें वाक्यविन्यासकी प्रथा प्रचलित थी, उसका ही कथंचित आभास ले कर परवर्त्तिकालमें जो सब ग्रंथ रचित हुए, उनके भाव, भाषा तथा वर्णनाप्रणाली वर्त्तमान प्रथा-

रहे प्रचार थीं। अंगरेजोंके बंगाधिकारके बाद बंगला साहित्यका जिस तरह क्रमविकास हुआ है, उसी तरह यात्रा-अभिनयके उपयोगी नाटकोंकी भाषा भी मार्जित रुचि-सम्पन्न हो गई है।

प्राचीन बंगलाभाषामें रचित जिन सब पुस्तकोंका परिचय पहले दे चुके हैं, कृत्तिवासकी पुस्तक छिपने हो अंग्रेजी उसी छन्दमें रचित होने पर भी उसकी भाषा कहीं अधिक मार्जित एवं सुरुचि सम्पन्न है। छन्दबन्धके समयमें हो पंडित ईश्वरचन्द्र विद्यासागर, बंकिमचन्द्र चट्टोपाध्याय प्रभृति विद्वानोंने बंगला गद्यसाहित्यके उन्नतिसाधनमें जो अटूट परिश्रम किया था, उसीका फल थोड़े ही दिनोंमें बंगालके सभी स्थानोंमें विस्तृत हो गया। काव्यमें कृत्तिवासकी बात छोड़ देने पर भी उसी समय रङ्गलालवन्द्योपाध्याय कृष्णचन्द्र मजूमदार, मेघनादवध प्रणेता माइकेल मधुसूदन दत्त तथा कवियर हेमचन्द्र वन्द्योपाध्यायकी उक्त मार्जित भाषा-सम्पत्ति दिखाई देती है। माइकेल मधुसूदन, हेमचन्द्र प्रभृतिकी काव्य भाषामें मानो अङ्गरेजी छन्दोबन्ध तथा छन्दोबन्धका अनुकरणात्मक परिवर्तन हो रहा है। ईश्वरचन्द्र गुप्त कृष्णचन्द्र प्रभृति कवियोंकी कविताओंमें हम तरहके प्राचीन बंगला साहित्यका छन्दोबन्ध तथा पूर्व बंगला छन्दका अविकृत चित्र परिस्फुट देखते हैं।

इस समय यात्रासाहित्यकी परिपुष्टिके लिये ग्रंथकारोंने अपनी अपनी यात्राओंकी खोरहके लिये पुस्तक रचना शुरू कर दी। इन सब ग्रंथकारोंके मध्य हम लोग विद्यासुन्दर यात्राके रचयिता गोपाल उड़ेको प्रथम मानते हैं। उनके बाद मदन मास्टर, परमानन्द गोविन्ददास अधिकारी प्रभृति अनेकों कवि यात्राकी रचना कर गये हैं। वर्तमान समय कवि ब्रजमोहन राय तथा मनोमोहन बसुने भी यात्रासाहित्यका बहुत उत्कर्ष साधन किया है। प्रसिद्ध नाट्यकार श्रीयुक्त मोतीलाल रायके लिखे जो पांचालियां हैं, उनमें भरतागमन तथा निमाई सन्यास विशेष प्रसिद्ध हैं। संगीत तथा कथोपकथनमें राय महाशय सुपटु थे।

मदन मास्टरके समय यात्राका बहुत कुछ सुधार हुआ। उस समय बंगालमें रंगालयका पूर्ण अभाव था। नूतन भावमें रंगाभिनय उस समय सब साधारणके चित्तको हठात् आकर्षित कर लेता था; इसी कारण लोग उस समय यात्रा-साहित्यके ऊपर उतना ध्यान नहीं देते थे। अनेकों ग्रन्थकारोंने संस्कृत तथा अंग्रेजी नाटकोंका अनुकरण करके रंगाभिनयोपयोगी नाटकोंकी रचना की। उस समय बंगला गद्य साहित्य भी यथेष्ट उन्नति पर था। उसे हम उस समय नाटक साहित्यमें प्रसिद्ध कुलीन कुलसर्वस्व, शकुन्तला, पद्मावती, नवीन तपस्विनी, नीलदर्पण तथा जमाईबारिक नाटकोंके संकलनमें देखते हैं। सुप्रसिद्ध नाटककार दीनबंधु मित्र, मधुसूदन दत्त प्रभृतिने मार्जित गद्य साहित्य-शिक्षाके गुणसे अपनी अपनी पुस्तकोंकी भाषा भी मार्जित करनेका प्रयास किया था। इसीसे उक्त सभी पुस्तक संस्कृतके सांचेमें ढाली हुई है एवं उसकी भाषा भी यद्यपि साहित्यपूर्ण अलङ्कारोंसे परिपूर्ण नहीं है, तथापि उसका यथोक्त प्रकाश रामनारायणके समयके गद्यसाहित्यमें ग्रथित हो सकता है, और विद्यासागरके समयके मार्जित साहित्यके मध्य सन्निवेश नहीं किया जा सकता।

यात्राकी भाषा कालके परिवर्तनके साथ साथ प्रचलित यात्रा-समूहका सुधार हुआ एवं यात्रा साहित्यका भी मार्जित भाषामें आदर हो चला। उसीके साथ वर्तमान समयमें पांचाली, कवि तथा आदि गानकी रचना, शब्दयोजनाका विशेष परिवर्तन भी देखा जाता है। पहले पांचालीका गान जिस रूपमें था, इस समय उसकी भाषा अधिक मार्जित भावापन्न एवं रचना सुरुचि सम्पन्न हो गई है। प्राचीन पांचालियोंसे दाशरथि राय प्रभृति आधुनिक कवियोंके द्वारा रचित पांचालियोंमें इस तरहकी पृथक्ता सुस्पष्ट रूपसे वर्तमान है। इस समय जिन सब पांचालियोंके गान हम लोग सुनते हैं, उनके गान तथा भाषा अपेक्षाकृत कहीं अधिक मार्जित हैं, किन्तु अश्लीलताशून्य आदिरस या आदिरसकी ओर बहुत बढ़ गई है।

हरुठाकुर, नीलमणि पाटुनी, भोला मयरा प्रभृति कवियोंके गानोंकी रचना सुन्दर तथा भावविकाश-पूर्ण है।

पूर्व-बङ्गालमें जारीगानका अभी भी यथेष्ट समादर है। ये निरक्षर कवियोंकी रचना होने पर भी उनमें भाव-विकाशका पूर्ण उपादान विद्यमान देखा जाता है, किन्तु भाषाकी वैसी परिपाटी नहीं है; फिर भी ये सब कवि भाषामें अपटु थे, ऐसा भी नहीं कह सकते। जारीगान बहुत कुछ कवियानके समान ही होता है। दोनों दलमें प्रश्नोत्तर रूपमें गाना होता है।

एक ओर जिस तरह भूगोल, इतिहास, काव्य तथा नाटकादि एवं अङ्क ज्योतिषादि विज्ञान पुस्तकें पयारादि छन्दोंमें रची गई थीं, दूसरी ओर उसी तरह वैद्यक पुस्तकें भी भाषा पद्य अथवा गद्यमें रची जा कर जन-साधारणके मध्य आयुर्वेदका प्रभाव फैला रही थीं। बङ्गलाभाषामें वैद्यक पुस्तकें साधारणतः 'कविराजी पत्तरा' के नामसे प्रसिद्ध हैं।

गल्प।

आध्यात्मिक उन्नतिकी आशासे एवं मानसिक वृत्ति-निचयकी उत्कर्षता सम्पादनके निमित्त बङ्गीय कवियों-ने एक ओर जिस तरह धर्मतत्त्व, ज्ञानतत्त्व, योगतत्त्व तथा नीतितत्त्वविषयक ग्रन्थोंको भाषामें रचना करके बङ्गवासियोंके मनमें वैराग्यका सूचना कर दी है, दूसरी ओर उसी तरह उन्होंने अपूर्व अपूर्व आख्यानोंकी पुस्तकें रच कर उनके हृदयमें संसारोद्यानके प्रेमप्रस्रवणकी अमृतमयी धारा बहा दी है। इन सब उपाख्यानोंको अधिकांश पुस्तकें किसी न किसी राजवंशको उद्देश करके रची गई हैं। क्योंकि, ऐसा होनेसे ही तो उन पर जनसाधारणको विश्वास होगा एवं वे सब उन पुस्तकोंसे नीति संग्रह करके संसारक्षेत्रमें न्यायपथ पर दृढ़ रहेंगे। इस श्रेणीके कितने ही आख्यान इतिहास-मूलक हैं और कितने ही भित्तिशून्य गल्पमात्र हैं।

प्राचीन गद्य-साहित्यका इतिहास।

(अङ्गरेजी प्रभावसे पहलेका साहित्य)

बङ्गालमें अङ्गरेजी शासनाधिकार होनेके पहले बङ्गीय कवियोंने बङ्गलासाहित्यकी परिपुष्टिके लिये पद्य साहित्यके अलावे कई एक गद्य ग्रन्थोंकी रचना की थी। ये सब पुस्तकें साधारणतः देशीय प्रचलित भाषामें ही लिखी गई हैं। देशी अज्ञलोगोंको धर्मतत्त्व शिक्षा देनेके लिये परवर्तिकालमें विभिन्न मतावलम्बी वैष्णवों-ने पद्यको तोड़ कर एक प्रकारके गद्यमें कई एक पुस्तकें लिखी। उस प्राचीन गद्यकी भाषा वैसी सरल तथा वर्त्तमान बङ्गला गद्य-साहित्यकी तरह सुललित वा ओजस्वितापूर्ण न होने पर भी भाषातत्त्वके हिसाबसे वे ग्रन्थ अति अमूल्य समझे जायंगे।

शून्यपुराण, चैतन्यरूपप्राप्ति प्रभृति कई एक प्राचीन गद्यके निदर्शन-स्वरूप गद्यपद्यमिश्रित ग्रन्थोंके अलावे, हम लोग अपेक्षाकृत परवर्त्ती समयमें अर्थात् बङ्गालमें अङ्गरेजी शासनके सौ वर्षसे कुछ पहलेके रचे हुए कितने ही गद्य ग्रन्थोंका परिचय पाते हैं। इन सब ग्रन्थोंकी भाषा, अङ्गरेजी अधिकारके परवर्त्ती राममोहन राय, रामराम बसु, प्रभृतिक रचे हुए ग्रन्थोंका भाषाकी किसी अंशमें भी खराब नहीं है। उनमें वाग्वाडम्बर तथा समासकी अधिकता नहीं है—उनकी भाषा सरल है। उनमें वेदान्तादिदर्शनका अनुवाद, व्यवस्थातत्त्व, वृन्दा-वनलीला, भाग परिच्छेदका अनुवाद एवं व्रजेन्द्र ब्राह्मण कुछ ग्रन्थ उल्लेखनीय हैं।

इसके बाद बहुत समय तक बङ्गला भाषामें जिन सब गद्य तथा पद्यमय पुस्तकोंकी रचना हुई, वे सब प्रायः सहजियाके द्वारा ही रची गई। इनमे कोई कोई श्री-रूपगोस्वामी द्वारा रचित एवं कोई कोई कृष्णदास कवि-राज प्रभृति नामधारी कवियोंके द्वारा रचित कह कर प्रसिद्ध हैं।

अङ्गरेजी-प्रभाव।

अङ्गरेजोंके आनेसे पहले ही इस देशमें गद्य-साहित्य-का सूत्रपात हुआ था, यह पहले ही लिखा जा चुका है। अङ्गरेजी-शासनके प्रारम्भसे इस देशके लोगोंके हृदयमें नाना विषयोंमें कर्मनिष्ठाके भावका सञ्चार हुआ। यही जागरण गद्य-साहित्यका उद्बोधन है—उस विषयमें बङ्गालीके साथ साथ अङ्गरेज-राजपुरुषोंने भी सहायता की थी। केवल साहित्य ही नहीं, अङ्गरेजोंने सारे देश-में विविध विषयोंके परिवर्त्तनकी तरङ्गको अलग कर देनेकी कोशिश की। मुद्रायन्त्रके इतिहासमें हमें उसका पूर्ण चित्र देखनेमें आता है।

१७६५ ई०में अङ्गरेजोंने इस देशका आधिपत्य लाभ

कर छोडार्स-आर गठन किया। बङ्गभाषा न जाननेके कारण कम्पनीके कर्मचारियोंको काम काज करनेमें असुविधा होने लगी। इन सब असुविधाओंको दूर करनेके लिये हुगलीके तत्कालीन सिविल कर्मचारी मि० नैथेनियल ब्रासी हालहेड (Mr Nathaniel Brassy Halhed) बङ्गभाषा सीखने लगे। प्रगाढ़ अभिनिवेशके फलसे उन्होंने थोड़े ही दिनोंमें बङ्गभाषामें ऐसी अभिज्ञता प्राप्त कर ली थी, कि १७७८ ई०में उन्होंने Grammar of the Bengali Language नामक अङ्गरेजोंको सिखानेके लिए बङ्गभाषाका एक व्याकरण प्रणयन किया। यही व्याकरण बङ्गभाषाका पहला व्याकरण है। उस समय भी यहां मुद्रायन्त्रकी सृष्टि नहीं हुई थी। कम्पनीके कर्मचारी बङ्गला भाषाके ग्रन्थ पढ़नेके लिए बहुत चेष्टा कर रहे थे। आखिर कम्पनीके भूतपूर्व सिविल कर्मचारी मि० चार्लस विलकिन्सको हुगलीसे बुला कर उनसे अक्षरादि प्रस्तुत कराये गये। उन्होंने स्वयं मुद्राका कार्य करके मि० हालहेडका व्याकरण छाप दिया।

मि० हालहेडने भी बङ्गभाषामें यथेष्ट अधिकार प्राप्त किया था, यह उनका व्याकरण पढ़नेसे ही मालूम हो सकता है। उन्होंने ग्रीक, लाटीन, संस्कृत, पारसी और अरबी भाषाके व्याकरणके साथ तुलना करके इस बङ्गव्याकरणकी रचना की। इसमें बङ्गभाषाकी तात्कालिक और आधुनिक भावपद्धतिका यथेष्ट उदाहरण दिखाया गया है। जब इस देशमें बङ्गीय साहित्यकी किसी प्रकारकी आलोचना नहीं दिखाई देती थी, उस समय एक अङ्गरेजने बङ्गला भाषा अच्छी तरह सीख कर एक व्याकरण लिखा। पीछे ये इसी व्याकरणकी रचनासे भाषाकी शृङ्खला तथा गद्य रचनाके सौन्दर्यभावनामें अग्रसर हुए थे। यह बङ्गभाषाके इतिहासकी एक विशिष्ट घटना है।

मि० हालहेडके समय बङ्गीय गद्य भाषाकी अति शोचनीय अवस्था लक्षित हुई। उन्होंने लिखा है, कि मैंने इस व्याकरणमें प्राचीन बङ्गीय कवियोंकी पुस्तकोंसे ही सब उदाहरण उद्धृत किये हैं, इससे स्पष्ट जाना जाता है, कि उनके समयमें बङ्गला-भाषाका यथेष्ट गौरव है। बङ्गला भाषामें साहित्य, विज्ञान, इतिहास आदिका कोई भी विषय अच्छी तरह रचा जा सकता है; किन्तु बङ्गाली लोग इस ओर कुछ भी ध्यान नहीं देते। उन लोगोंके हाथका लिखना, उनका वर्णविन्यास तथा शब्दनिर्वाचन—सभी भ्रमात्मक और असङ्गत है। वे लोग न तो एक शब्दका अर्थ जानते और न भावका सम्बन्ध पहचानते। उनका लिखना अरबी, पारसी, हिन्दुस्तानी और बङ्गला शब्दका खिचड़ीपकान है। उसमें न शृङ्खला है और न कोई अर्थ ही निकलता है। यह बहुत अस्पष्ट, अबोध और अनिश्चयात्मक है*।

बङ्गला भाषामें कोई गद्य साहित्य है या नहीं, मि० हालहेडने इसे जाननेके लिये बड़ी खोज की थी, किन्तु उन्हें एक भी गद्य साहित्यका नाम सुननेमें न आया। उन्होंने लिखा है, कि मुसलमानोंके पहले भी इस देशकी साहित्यकी जो दशा थी, बंगीय साहित्यकी भी अभी वही दशा है। ग्रंथकार केवल पद्यमें ही पुस्तक रचा करते हैं। गद्य रचना इस देशके साहित्यमें बिलकुल अज्ञात है। केवल चिट्ठी-पत्र, आवेदन और इकरार आदि गद्यमें लिखे जाते हैं, किंतु इन सब रचनाओंमें भी भाषाका कोई नियम नहीं है, व्याकरणसंगत वाक्यगठनकी कोई प्रणाली नहीं है। इसके सिवा धर्मतत्त्व, इतिहास, नीतिकथा, जिस किसी विषयकी पुस्तक जिनको ग्रंथकारोंने नाम निरूपणीय होते हैं, वे सभी पद्यमें लिखे जाते हैं†।

गद्य ग्रन्थ संग्रह करनेके लिये नाना चेष्टा करके भी जब मि० हालहेड कृतकार्य न हुए, तब उन्होंने काशीरामदासके महाभारत, महाप्रभुके लीलामय चैतन्य-मङ्गल तथा भारतचन्द्रके विद्यासुन्दर आदिसे उदाहरण संग्रह किया था, वहीं भी वे गद्यसाहित्यमें कोई उदाहरण न दे सके।

मि० हालहेडने जब बङ्गभाषामें इस शोचनीय अभावका अनुभव किया, बङ्गीय गद्यसाहित्यकी उन्नतिके लिये जब उनका हृदय गम्भीर व्याकुलताके प्रवाहमें परिप्लुत होने लगा, ठीक उसी समय विधाताने इस देशमें गद-

* Gram[illegible] by Halhed.

† Gram[illegible] by Halhed.

साहित्यके प्रकृत प्रवर्त्तक स्वनामधन्य महात्मा राममोहन राय महोदयको आविर्भूत किया। मि० हालहेडने १७७८ सालमें अपना व्याकरण छपवाया। १७७४ सालसे लगायत १७८२ सालके भीतर किसी समय राममोहनका जन्म हुआ। राममोहन राय देखो।

कहते हैं, कि राजा राममोहन रायने १६ वर्षकी उमरमें ही 'हिन्दुओंकी पौत्तलिक धर्मप्रणाली' नामसे प्रतिमा-पूजाके विरुद्ध एक ग्रन्थ लिखा था। शायद यही ग्रन्थ वङ्गला भाषाका मुद्रित गद्यग्रन्थ है। किन्तु यूरोपीयगणके मतसे १८०१ ई०में फोर्टविलियम कालेजके पण्डित रामराम वसुने जो राजा प्रतापादित्यका ग्रंथ लिखा वह वङ्गभाषाका प्रथम गद्य ग्रंथ है।

किंतु हालहेड और राममोहन रायके पहले जो सब गद्य-ग्रंथ थे उनका परिचय पहले दिया जा चुका है अङ्गरेज अधिकारके प्रारम्भमें १७६५ ई०को ईसाई मशनरी येएटोने 'प्रश्नोत्तरमाला' नामक ईसा-धर्म-सम्बन्धमें एक वङ्गला-गद्य पुस्तक प्रकाश की। यह पुस्तक लण्डननगरमें छापी गई थी। १७८० ई०में कलकत्तेमें जो मुद्रायन्त्र स्थापित हुआ उसमें वङ्गला अक्षर न था। इस यन्त्रमें आवश्यकतानुसार लकड़ीमें खुदाई करके वङ्गला अक्षर छापे गये थे। इसके दश वर्ष पीछे (१७६० ई०में) केरि मार्समन आदि सुप्रसिद्ध मिशनरियां श्रीरामपुरमें वंगला मुद्रायंत्र खोल कर वंगभाषामें पुस्तकादि छापने लगीं। उन्होंने लकड़ीमें खुदाई करके जो एक प्रस्थ वंगला अक्षर तैयार किया उससे पहले वंगला भाषामें वाइविल पुस्तक छापी गई थी।

१७६३ ई०में लार्ड कार्नवालिसने जो सब आईन संग्रह किये, फोरेष्टर साहवने उनका वङ्गभाषामें अनुवाद किया था। इसके कुछ समय बाद अर्थात् १८०१ ई०को कलकत्तेमें उन्होंने अङ्गरेजी अभिधान मुद्रित किया। फलतः इस समय मार्समन, वार्ड, केरी आदि ईसा धर्मप्रचारकों द्वारा वङ्गलासाहित्यकी बड़ी उन्नति हुई थी। धीरे धीरे वङ्गला गद्य रचनाका अनुशीलन भी चलने लगा था। यहां तक कि इन्होंने वङ्गला स्कूल और वङ्गला संवादपत्र प्रकाश कर वंगभाषा-शिक्षाकी बड़ी सहायता की थी।

इधर अंगरेज-राजकर्मचारियोंको इस देशकी भाषा सिखानेके लिये १८०० ई०में मार्किस आव वेलस्लीने कलकत्तेमें फोर्टविलियम कालेजकी स्थापना की। इस विद्यालय द्वारा वङ्गलागद्यसाहित्यकी बड़ी उन्नति हुई है।

यद्यपि राजा राममोहन राय महाशयके बहुत पहले कुछ पण्डितोंने भाषा-परिच्छेद, स्मृतिशास्त्र तथा उपनिषद् और सांख्यदर्शन आदिका वङ्गानुवाद किया था, किन्तु वे सब ग्रन्थ मुद्रित नहीं हुए जिससे वंगीय-साहित्य-जगत्का आज तक कोई उपकार नहीं हुआ। राममोहन राय महाशयका कोई कोई ग्रन्थ प्रचलित हिन्दू-मतके विरुद्ध होनेके कारण पण्डितोंमें खलबली मच गई। इसी कारण वंगके अवातविक्षुब्ध पण्डित समाज-सागरमें आन्दोलनकी प्रबल तरंग हठात् उठ खड़ी हुई। इस आन्दोलनके समय वङ्गलाभाषाकी रचनामें अनभ्यस्त कुछ पण्डिताभिमानीने भी वंगभाषामें दो एक छत्र लिख कर ग्रन्थकार होनेका दावा कर लिया। इस कारण इस समय दो एक सामयिक पत्रोंकी सृष्टि भी हुई। किन्तु यथार्थमें राजा राममोहन रायको वंगला गद्यके उन्नति-साधनके प्रधानतम पथदर्शक कह सकते हैं।

अंगरेजी शासनके परवर्त्तीकालसे वंगला गद्य-साहित्यकी जो क्रमोन्नति हुई उसे हम लोग दो अंशोंमें विभाग कर सकते हैं। पहला ईष्ट-इण्डिया कम्पनीका अमल अर्थात् ईष्ट-इण्डिया कम्पनीके वंगराज्यका भार-ग्रहणसे ले कर महारानी विक्टोरियाके सिंहासनाधि-रोहण काल तक और दूसरा उस समयसे ले कर विद्या-सागरीय युगकी वर्त्तमान वंगलाभाषाके पूर्णविकाश तक। इतने दिनोंके भीतर जिन सब ग्रन्थकारोंने वंगला भाषामें ग्रन्थ लिखे हैं, नीचे उन्हींकी एक तालिका और ग्रन्थकारोंका संक्षिप्त परिचय दिया गया है—

ईष्ट इण्डिया कम्पनीका अमल।

साधारण साहित्य।

१ प्रश्नोत्तर-माला—येएटो साहव इस पुस्तकके प्रणेता हैं। ईसा-धर्मसंबन्धमें तत्त्वादि प्रश्नोत्तरके बहाने इस ग्रन्थमें लिखे गये हैं। १७६५ ई०को लण्डनमें यह ग्रन्थ छापा गया था। वंगमें अंगरेजी-प्रभावके प्रारम्भमें यही सबसे पहला वंगला गद्यग्रन्थ समझा जाता है।

कर छोड़नेके बाद [illegible] किया। बङ्गलामें न जाननेके कारण [illegible] पादरियोंको काम काज करनेमें असु-विधा होने लगी। इन सब असुविधाओंको दूर करनेके लिये कुछ [illegible] सिविलियन कर्मचारी मि० हैले-[illegible] The [illegible] of [illegible] [illegible] [illegible] अनुवाद [illegible]। [illegible] [illegible] [illegible] बङ्गलाभाषाकी [illegible] [illegible] कि १७७८ ई० में उन्होंने [illegible] the Bengali Language नामक अङ्ग-रेजीमें लिखे मि० बङ्गलाभाषाका एक व्याकरण प्रका-शित किया। यही व्याकरण बङ्गलाभाषाका पहला व्याक-रण है। उस समय भी यहां मुद्रायन्त्रकी सृष्टि नहीं हुई थी। [illegible] बङ्गला भाषाके ग्रन्थ छपनेके लिये बहुत चेष्टा कर रहे थे। चार्ल्स [illegible] [illegible] मि० [illegible] विल्किन्सकी [illegible] [illegible] [illegible] मुद्रित किये गये। उन्हो-ने [illegible] [illegible] करके मि० हालहेडका व्याकरण [illegible] किया।

मि० हालहेडने जो बङ्गलाभाषाका [illegible] [illegible] [illegible] किया था, वह उनका व्याकरण पढ़नेसे ही मालूम हो सकता है। उन्होंने [illegible], लाटिन, संस्कृत, फारसी और [illegible] भाषाके व्याकरणके साथ तुलना करके इस बङ्गलाव्याकरणकी रचना की। उसमें बङ्गलाभाषाकी [illegible] [illegible] और [illegible] [illegible] सहित उदाहरण दिया गया है। [illegible] [illegible] बङ्गीय साहित्यकी किसी प्रकारकी आलोचना नहीं दिखाई देती थी, उस समय एक [illegible] बङ्गला [illegible] भाषा [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible]। [illegible] [illegible] व्याकरणको [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] हुए थे। यह बङ्गलाके इतिहासकी एक विचित्र घटना है।

मि० हालहेडके समय बङ्गीय [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] हुई। उन्होंने लिखा है, कि [illegible] [illegible] [illegible] बङ्गीय [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible], [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] कि उनके [illegible] [illegible] [illegible]

[illegible] है। बङ्गला भाषाके साहित्य, विज्ञान, [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] है। किन्तु [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] नहीं है। [illegible] [illegible] [illegible] [illegible], [illegible] [illegible] [illegible]—[illegible] [illegible] और [illegible] है। वे [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] और न [illegible] [illegible]। [illegible] [illegible] [illegible], फारसी, हिन्दुस्तानी और बङ्गला [illegible] [illegible] है। [illegible] न [illegible] है और न [illegible] [illegible] [illegible] है। वह बहुत [illegible], [illegible] और [illegible] है*।

बङ्गला भाषामें कोई गद्य साहित्य है या नहीं, मि० हालहेडने इसे जाननेके लिये बड़ी खोज की थी, किन्तु उन्हें एक भी गद्य साहित्यका ग्रन्थ [illegible] न [illegible]। उन्होंने लिखा है, [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] है। [illegible] केवल [illegible] ही [illegible] [illegible] [illegible] है। [illegible] [illegible] [illegible] साहित्यमें [illegible] [illegible] है। केवल [illegible], [illegible] और [illegible] आदि [illegible] लिखे नहीं जाते हैं, किन्तु [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] नहीं है, [illegible] [illegible] [illegible] कोई [illegible] नहीं है। [illegible] सिवा [illegible], [illegible], [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] होते हैं, वे [illegible] [illegible] लिखे जाते हैं*।

[illegible] [illegible] [illegible] करनेके लिये [illegible] चेष्टा करके भी जब मि० हालहेड [illegible] न हुए, तब उन्होंने [illegible] [illegible] [illegible], महाप्रभु [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] विद्यासुन्दर [illegible] उदाहरण संग्रह किये थे, क्योंकि वे गद्यसाहित्यमें कोई उदाहरण न दे सके।

मि० हालहेडने जब बङ्गलाभाषामें इस [illegible] [illegible] [illegible] किया, बङ्गीय [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] होने लगा, [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible]

---

* [illegible] of the Bengal [illegible] [illegible] Halhed.

[illegible] the Bengal [illegible], [illegible] Halhed.

साहित्यके प्रकृत प्रवर्त्तक स्वनामधन्य महात्मा राममोहन राय महोदयको आविर्भूत्त किया। मि० हालहेडने १७७८ सालमें अपना व्याकरण छपवाया। १७७४ सालसे लगायत १७८२ सालके भीतर किसी समय राममोहनका जन्म हुआ। राममोहन राय देखो।

कहते हैं, कि राजा राममोहन रायने १६ वर्षकी उमरमें ही 'हिन्दुओंकी पौत्तलिक धर्मप्रणाली' नामसे प्रतिमापूजाके विरुद्ध एक ग्रन्थ लिखा था। शायद यही ग्रन्थ बङ्गला भाषाका मुद्रित गद्यग्रन्थ है। किन्तु यूरोपीयगणके मतसे १८०१ ई०में फोर्टविलियम कालेजके पण्डित रामराम बसुने जो राजा प्रतापादित्यका ग्रंथ लिखा वह बङ्गभाषाका प्रथम गद्य-ग्रंथ है।

किंतु हालहेड और राममोहन रायके पहले जो सब गद्य-ग्रंथ थे उनका परिचय पहले दिया जा चुका है अङ्गरेज अधिकारके प्रारम्भमें १७६५ ई०को ईसाई मशनरी वेएटोने 'प्रश्नोत्तरमाला' नामक ईसा-धर्म-सम्बन्धमें एक बङ्गला-गद्य पुस्तक प्रकाश की। यह पुस्तक लण्डननगरमें छापी गई थी। १७८० ई०में कलकत्तेमें जो मुद्रायन्त्र स्थापित हुआ उसमें बङ्गला अक्षर न था। इस यन्त्रमें आवश्यकतानुसार लकड़ीमें खुदाई करके बङ्गला अक्षर छापे गये थे। इसके दश वर्ष पीछे (१७९० ई०में) केरि मार्समन आदि सुप्रसिद्ध मिशनरियां श्रीरामपुरमें बंगला मुद्रायंत्र खोल कर बंगभाषामें पुस्तकादि छापने लगीं। उन्होंने लकड़ीमें खुदाई करके जो एक ग्रन्थ बंगला अक्षर तैयार किया उससे पहले बंगला भाषामें बाइबिल पुस्तक छापी गई थी।

१७९३ ई०में लार्ड कार्नवालिसने जो सब आईन संग्रह किये, फोरेष्टर साहबने उनका बङ्गभाषामें अनुवाद किया था। इसके कुछ समय बाद अर्थात् १८०१ ई०को कलकत्तेमें उन्होंने अङ्गरेजी अभिधान मुद्रित किया। फलतः इस समय मार्समन, वार्ड, केरी आदि ईसा-धर्मप्रचारकों द्वारा बङ्गलासाहित्यकी बड़ी उन्नति हुई थी। धीरे धीरे बङ्गला गद्य रचनाका अनुशीलन भी चलने लगा था। यहां तक कि इन्होंने बङ्गला स्कूल और बङ्गला संवादपत्र प्रकाश कर बंगभाषा-शिक्षाकी बड़ी सहायता की थी।

इधर अंगरेज-राजकर्मचारियोंको इस देशकी भाषा सिखानेके लिये १८०० ई०में मार्किस आव वेलस्लीने कलकत्तेमें फोर्टविलियम कालेजकी स्थापना की। इस विद्यालय द्वारा बङ्गलागद्यसाहित्यकी बड़ी उन्नति हुई है।

यद्यपि राजा राममोहन राय महाशयके बहुत पहले कुछ पण्डितोंने भाषा-परिच्छेद, स्मृतिशास्त्र तथा उपनिषद् और सांख्यदर्शन आदिका बङ्गानुवाद किया था, किन्तु वे सब ग्रन्थ मुद्रित नहीं हुए जिससे बंगीय-साहित्य-जगत्‌का आज तक कोई उपकार नहीं हुआ। राममोहन राय महाशयका कोई कोई ग्रन्थ प्रचलित हिन्दूमतके विरुद्ध होनेके कारण पण्डितोंमें खलबली मच गई। इसी कारण बंगके अवातविक्षुब्ध पण्डित समाजसागरमें आन्दोलनकी प्रबल तरंग हठात् उठ खड़ी हुई। इस आन्दोलनके समय बङ्गलाभाषाकी रचनामें अनभ्यस्त कुछ पण्डिताभिमानीने भी बंगभाषामें दो एक छत्र लिख कर ग्रन्थकार होनेका दावा कर लिया। इस कारण इस समय दो एक सामयिक पत्रोंकी सृष्टि भी हुई। किन्तु यथार्थमें राजा राममोहन रायको बंगला गद्यके उन्नतिसाधनके प्रधानतम पथदर्शक कह सकते हैं।

अंगरेजी शासनके परवर्त्तीकालसे बंगला गद्यसाहित्यकी जो क्रमोन्नति हुई उसे हम लोग दो अंशोंमें विभाग कर सकते हैं। पहला ईष्ट-इण्डिया कम्पनीका अमल अर्थात् ईष्ट इण्डिया कम्पनीके बंगराज्यका भारग्रहणसे ले कर महारानी विक्टोरियाके सिंहासनाधिरोहण काल तक और दूसरा उस समयसे ले कर विद्यासागरीय युगकी वर्त्तमान बंगलाभाषाके पूर्णविकाश तक। इतने दिनोंके भीतर जिन सब ग्रन्थकारोंने बंगला भाषामें ग्रन्थ लिखे हैं, नीचे उन्होंकी एक तालिका और ग्रन्थकारोंका संक्षिप्त परिचय दिया गया है—

ईष्ट इण्डिया कम्पनीका अमल।

साधारण साहित्य।

१ प्रश्नोत्तर-माला—वेएटो साहब इस पुस्तकके प्रणेता हैं। ईसा-धर्मसंबन्धमें तत्त्वादि प्रश्नोत्तरके बहाने इस ग्रन्थमें लिखे गये हैं। १७६५ ई०को लण्डनमें यह ग्रन्थ छापा गया था। बंगमें अंगरेजी-प्रभावके प्रारम्भमें यही सबसे पहला बंगला गद्यग्रन्थ समझा जाता है।

[illegible] हिन्दुओंके [illegible] —सुप्रसिद्ध [illegible] इस पुस्तकको लिखा। [illegible] यह ग्रन्थ लिखा गया है। [illegible]

[illegible] —[illegible] १८०१ ईसवी यह पुस्तक [illegible] किया। [illegible] अंग्रेजोंकी शिक्षाके लिये यह पुस्तक रची गयी है। इसमें [illegible] और [illegible] अनुवाद है।

[illegible] की [illegible] इस पुस्तकका [illegible] विशुद्ध अनुवाद है। [illegible] ने इस पुस्तकके [illegible] अनुवाद किया गया है।

हितोपदेश—१८१४ ईसवी [illegible] यह पुस्तक छापा गया।

[illegible] —१८०२ ईसवी [illegible] नामक [illegible] अनुवाद किया।

[illegible] —[illegible] १८०२ ई० में इस [illegible] लिखा। [illegible] अनुवाद हुआ है।

[illegible] —१८१४ ईसवी [illegible] प्रकाशित हुआ। [illegible] कि मृत्युञ्जय [illegible] इसके अनुवादक हैं।

पुरुषपरीक्षा—यह ग्रंथ संस्कृतका अनुवाद है, १८१८ ईसवी प्रकाशित हुआ है। [illegible] अनुवाद होने पर [illegible] मालूम है।

[illegible] —[illegible] मृत्युञ्जय [illegible] १८१३ ईसवी [illegible] विलियम [illegible] के लिये यह ग्रंथ [illegible] किया।

[illegible] —[illegible] सुप्रसिद्ध [illegible] १८०१ ईसवी [illegible] ग्रंथ [illegible] किया। [illegible] कहते हैं, कि [illegible] है। [illegible] है। [illegible] की [illegible] लिखी है [illegible] प्रकाशित हुआ था। कहते हैं, कि [illegible] और [illegible] लिखे [illegible] था।

[illegible] —१८०३ ईसवी [illegible], [illegible] बङ्गलाकी ईसपकी [illegible] किया। इस समय [illegible] ईसप-कथाका अनुवाद कर दिया था। ये सब अनुवाद [illegible] हैं।

[illegible] —१८०५ ईसवी [illegible] विलियम [illegible] के [illegible] अनुवाद किया।

[illegible] —१८०५ ईसवी [illegible] विलियम [illegible] नामक [illegible] अनुवाद किया। [illegible] पहला नाटक [illegible] होगा।

वेदान्त सूत्र-भाष्यानुवाद—१८१५ ईसवी राजा राम मोहन रायने वेदान्तसूत्र [illegible] अनुवाद किया। इसके बाद १८१६ ईसवी उन्होंने [illegible] अनुवाद [illegible] किया। १८१७ ईसवी उन्होंने [illegible] 'कठोपनिषद्' और 'मुण्डकोपनिषद्', १८१८ ईसवी [illegible] तथा १८३३ ईसवी [illegible] नामक ग्रन्थ लिखे।

राजा राममोहनने १८२१ ईसवी [illegible] नामक एक पुस्तककी रचना की। १८२३ ईसवी [illegible] प्रकाशित हुई। १८२७ ईसवी [illegible] १८२७ ईसवी [illegible] १८२८ ईसवी [illegible] तथा १८३२ ईसवी [illegible] नामक ग्रन्थ लिखे गये।

इसके बाद राजा राममोहन [illegible] है। [illegible] हैं। [illegible] भी कई पुस्तकें लिखी हैं।

इनके अलावा १८१७ ई०में ज्ञानपद्धति और चाणक्य श्लोकका बङ्गानुवाद, १८१८ ई०में स्त्रीशिक्षाविषयक प्रस्ताव, १८१८ ई०में नीतिकथा, १८१६ ई०में मनोरञ्जन इतिहास, श्रीयुत गौरमोहन विद्यालङ्कार और राजा राधाकान्तदेवकी बनाई राधाकान्तनीतिकथा, पियर्सन साहबकी रचित वाक्यावली, मि० स्टुयार्टकी ऐतिहासिक नीतिगल्प, १८२० ई०में राजा राधाकान्तदेव-विरचित स्त्री शिक्षाविषयक, १८२१ ई०को श्रीरामपुरसे मुद्रित गुण और वीर्य और १८२१ ई०को महेन्द्रलाल प्रेसमें मुद्रित आत्मतत्त्वकौमुदी, ये सब ग्रंथ पाये जाते हैं।

आत्मतत्त्व-कौमुदी नामक ग्रंथ प्रबोधचन्द्रोदय नाटकका गद्यमें बंगानुवाद है। प्रबोधचन्द्रोदय नाटकके रचयिता श्रीकृष्ण मिश्र हैं। किन्तु इस अनुवादके रचयिता तीन व्यक्ति हैं, पण्डित काशीनाथ तर्कपञ्चानन, गंगाधर न्यायरत्न और रामशङ्कर शिरोमणि। तीनों अनुवादकोंने जिस भावमें इसका अनुवाद किया है उससे नाटकका मर्म विनष्ट नहीं होता। इस बंगानुवादसे बंगीयसाहित्यका बहुत लाभ पहुंचा है, इसमें जरा भी सन्देह नहीं।

कलिराजाकी यात्रा—एक नाटक है। यह १८२१ ई०में रचित और अभिनीत हुआ है।

ज्ञानाञ्जन—यह भी राममोहन रायके अभिमतके प्रतिकूल रचित अति पाण्डित्यपूर्ण एक बंगला गद्यमें प्रतिवाद ग्रंथ है। श्रीमधुसूदन तर्कालङ्कार नामक एक पण्डितने यह ग्रंथ लिखनेका उद्देश क्या है, इस सम्बन्धमें एक भूमिका लिखी है।

रामरत्न—१८२६ ई०में नदिया-जिलावासी एक वारेन्द्र ब्राह्मणने रामरत्न नाम दे कर देवीभागवत ग्रंथका बंगानुवाद किया।

जीवोद्धार—१८२६ ई०में यह ग्रंथ छापा गया है। यह "नित्यकर्म पद्धति" है। इसमें संस्कृत मूल और बंगानुवाद है। गंगाकिशोर भट्टाचार्य इसके प्रणेता हैं।

वासवदत्ता मदनमोहन तर्कालङ्कार महाशयका द्वितीय ग्रन्थ होने पर भी काव्यांशमें, रचना-सौन्दर्यमें तथा आयतनमें यह सबसे बड़ा है।

इसके सिवा छोटे छोटे बच्चोंकी शिक्षाके लिये मदनमोहन तर्कालङ्कारने शिशुशिक्षाका प्रथम भाग, द्वितीय भाग और तृतीय भाग रचे।

१८५७ ई०से ईश्वरचन्द्र गुप्त द्वारा रचित प्रबोध-प्रभाकर नामक गद्य ग्रन्थ मुद्रित हुआ। १८५८ ई०को ४६ वर्षकी अवस्थामें ईश्वरचन्द्र इस लोकसे चल बसे। मृत्युके पहले वे और भी कितनी पुस्तकें लिख गये थे, किन्तु उनकी जीवद्दशामें प्रबोधप्रभाकरके सिवा और कोई पुस्तक छपी न थी। गुप्त महाशयकी एक दूसरी पुस्तकका नाम हितप्रभाकर है। यह भी गद्य पद्यमय है। बोधेन्दु-विकाश भी उन्हींका बनाया हुआ है। यह संस्कृत प्रबोधचन्द्रोदय नाटकका अनुवाद है—नाटकके आकारमें ही रचा गया है। इस ग्रन्थके छपते न छपते ग्रन्थकार परलोकको सिधारे। उस समय इसके सिर्फ तीन अङ्क छपे थे। गुप्त महाशयकी गद्य रचनाके मध्य यही पुस्तक उत्कृष्ट है।

गुप्त महाशयने कलिनाटक नामक और भी एक ग्रन्थ लिखना शुरू किया था, किन्तु दुर्भाग्यवशतः वे अकाल ही इस लोकसे चल बसे। इनके जीवनचरित्रके सम्बन्धमें अनेक विषय 'ईश्वरचन्द्रगुप्त' शब्दमें लिखे जा चुके हैं। बङ्गला-साहित्यके मध्ययुगके सबसे अन्तिम ग्रन्थकार ईश्वरचन्द्र गुप्त हैं। इनके बाद ही बङ्गीय साहित्यके वर्त्तमान युगका आरम्भ हुआ।

संस्कृत कालेजके पण्डितोंके द्वारा बङ्गला साहित्यकी यथेष्ट उन्नति हुई है। संस्कृत कालेजमें भी बङ्गलाभाषाके अनुशीलनके निमित्त एक समिति प्रतिष्ठित हुई थी। रेभरेण्ड कृष्णमोहन बन्द्योपाध्याय उस समितिके सदस्य थे। उनके अतिरिक्त और भी कितने सदस्य बङ्गलाभाषाकी उन्नतिके लिये कई एक सारगर्भ प्रस्तावना तथा प्रबन्धका प्रचार करते थे। किन्तु यथार्थमें संस्कृत कालेजके कतिपय पण्डितोंने ही बङ्गलाभाषाकी पुष्टि की। और क्या, उन्हें आधुनिक बङ्गलासाहित्यके जन्मदाता कह सकते हैं। पण्डित ताराशङ्कर, विद्यासागर एवं नाट्यकार रामनारायण प्रभृतिके नाम बंगलाभाषाकी वर्त्तमान उन्नतिके इतिहासमें चिर दिनों तक उज्ज्वल अक्षरोंमें लिखे रहेंगे।

इसके सिवा, १६वीं शताब्दीके आरम्भसे ही साप्ता-

२ हिंदुओंकी पौत्तलिक धर्म-प्रणाली—सुविख्यात राजा राममोहन रायने सोलह वर्षकी अवस्थामें इस ग्रन्थको लिखा। प्रतिमा उपासना-प्रणालीके प्रतिकूल यह ग्रन्थ लिखा गया है। राममोहन राय शब्द देखो।

कथोपकथन—सुविख्यात पादरी रेभरेण्ड डवल्यु केरीने १८०१ ई०में यह ग्रन्थ प्रणयन किया। जनसाधारणकी प्रचलित बंगलाभाषा अंगरेजोंको सिखानेके लिये यह पुस्तक रची गई है। इसमें उस समयके प्रचलित बंगला और उसका अंगरेजी अनुवाद है।

१९वीं सदीके आरम्भमें बंगलाभाषाकी प्रकृति कैसी थी इस ग्रन्थमें उसका विशुद्ध नमूना है। रेभरेण्ड केरीने इस ग्रन्थमें बंगलाके तत्सामयिक सभी समाजोंकी प्रचलित कथावार्त्ता और वाक्यपद्धतिका नमूना दिखलाया है।

इतिहासमाला—१८१२ ई०को श्रीरामपुरमिशनप्रेसमें यह ग्रन्थ छापा गया।

हितोपदेश—१८०१ ई०में गोलकचन्द्र शर्माने पद्यतन्त्रोक्त हितोपदेश नामक ग्रन्थका बंगानुवाद किया।

तोताका इतिहास—चण्डीचरण मुन्शीने १८०१ ई० में इस ग्रन्थको लिखा। पारसी ग्रंथसे इसका अनुवाद हुआ है।

बत्तीससिंहासन—१८३४ ई०को लण्डनमें इसका संस्करण प्रकाशित हुआ। उसके पढ़नेसे पता चलता है, कि मृत्युञ्जय तर्कालङ्कार इसके अनुवादक हैं।

पुरुषपरीक्षा—यह ग्रंथ संस्कृतका अनुवाद है, १८०८ ई०में प्रकाशित हुआ है। इसको संस्कृत पुरुषपरीक्षा ग्रंथका अनुवाद होने पर भी भाषा प्राञ्जल है।

प्रबोधचन्द्रिका—पण्डित मृत्युञ्जय तर्कालङ्कारने १८१३ ई०में फोर्ट विलियम कालेजके लिये यह ग्रंथ प्रकाश किया।

लिपिमाला—प्रतापादित्यचरित्र नामक सुविख्यात ऐतिहासिक ग्रंथके प्रणेता रामराम बसुने १८०१ ई०में प्रतापादित्यचरित्र ग्रंथ प्रणयन किया। केरी साहबने लिखा है, कि बसु महाशयकी तरह प्रगाढ़ अध्ययनपटु मनुष्य उन्होंने कभी भी नहीं देखा है। युकानन साहबने भी उनके पाण्डित्यकी प्रशंसा की है। बसु महाशयके जीवनमें अनेक विषयोंमें ही राजा राममोहनका चरित्र प्रतिबिम्बित हुआ था। कहते हैं, कि राजा राममोहनने ही बसु महाशयको फारसी और बङ्गला गद्य लिखने सिखाया था।

ईशोपकी गल्प—१८०३ ई०में डाक्टर गिलक्राइने उर्दू, अरबी, व्रजभाषा तथा बङ्गलामें ईशोपकी गल्प छापनेका बन्दोबस्त किया। इस समय तारिणीचरण मित्र नामक एक व्यक्तिने बङ्गभाषामें ईशोप-गल्पका अनुवाद कर दिया था। वे सब अनुवाद रोमक अक्षरोंमें छापे गये थे।

इलियड काव्य—१८०५ ई०में फोर्ट विलियम कालेजके छात्र जे सर्जेण्टने मारजिलके इलियड काव्यके प्रधान सर्गका बङ्गानुवाद किया।

टेम्पेष्ट—१८०५ ई०को फोर्ट विलियम कालेजमें। मस्कट नामके एक यूरोपीय अध्यापकने सेक्सपियरके टेम्पेष्ट नामक नाटकका अनुवाद किया। बङ्गभाषामें इसीको पहला नाटक कहना होगा।

वेदान्त-सूत्र-भाष्यानुवाद—१८१५ ई०को राजा राममोहन रायने वेदान्तसूत्र भाष्यका गद्यमें बङ्गानुवाद किया। इसके बाद १८१६ ई०में उन्होंने सामवेदके अन्तर्गत तवलकार उपनिषत्का शङ्करभाष्य बङ्गभाषामें अनुवाद किया। १८१७ ई०में उन्होंने और भी दो उपनिषद् 'कठोपनिषत्' और 'मुण्डकोपनिषद्', १८१८ ई०में 'गायत्रीका अर्थ' तथा १८२६ ई०में 'ब्रह्मनिष्ठ गृहस्थका लक्षण' नामक ग्रन्थ लिखे।

राजा राममोहनने १८२१ ई०में मिशनरियोंके प्रचारित ईसा-धर्मका प्रतिवाद करके 'ब्राह्मणसेवधि' नामक एक पुस्तककी रचना की। १८२३ ई०में 'पथ्यप्रदान' नामक एक दूसरी प्रतिवाद-पुस्तिका प्रकाशित हुई। १८२४ ई०में 'प्रार्थनापत्र' १८२७ ई०में 'गायत्र्या परमोपासनाविधानम्', १८२८ ई०में 'ब्रह्मोपासना' तथा १८२९ ई०में 'अनुष्ठान' नामक ग्रन्थ निकाले गये।

इसके बाद राजा राममोहन रायकी अतुल कीर्त्ति ब्रह्मसंगीत है। आज भी उनके रचित सङ्गीत इस देशके शिक्षित समाजमें गाये जाते हैं। फिर उनके रचित 'गौड़ीय व्याकरण', 'अदालत' तिमिरनाशक आदि और भी कई बङ्गला ग्रन्थ मिलते हैं।

इनके अलावा १८१७ ई०में शास्त्रदति और चाणक्य श्लोकका वङ्गानुवाद, १८१८ ई०में स्त्रीशिक्षाविषयक प्रस्ताव, १८१८ ई०में नीतिकथा, १८१६ ई०में मनोरञ्जन इतिहास, श्रीयुत गौरमोहन विद्यालङ्कार और राजा राधाकान्तदेवकी बनाई राधाकान्तनीतिकथा, पियर्सन साहबकी रचित वाक्यावली, मि० ष्टुयार्टकी ऐतिहासिक नीतिगल्प, १८२० ई०में राजा राधाकान्तदेव-विरचित स्त्री शिक्षाविषयक, १८२१ ई०को श्रीरामपुरसे मुद्रित सद्गुण और वीर्य और १८२१ ई०को महेन्द्रलाल प्रेसमें मुद्रित आत्मतत्त्वकौमुदी, ये सब ग्रंथ पाये जाते हैं।

आत्मतत्त्व-कौमुदी नामक ग्रंथ प्रबोधचन्द्रोदय नाटकका गद्यमें बंगानुवाद है। प्रबोधचन्द्रोदय नाटकके रचयिता श्रीकृष्ण मिश्र हैं। किन्तु इस अनुवादके रचयिता तीन व्यक्ति हैं, पण्डित काशीनाथ तर्कपञ्चानन, गंगाधर न्यायरत्न और रामशङ्कर शिरोमणि। तीनों अनुवादकोंने जिस भावमें इसका अनुवाद किया है उससे नाटकका क्रम विनष्ट नहीं होता। इस बंगानुवादसे बंगीयसाहित्यका बहुत लाभ पहुंचा है, इसमें जरा भी सन्देह नहीं।

कलिराजाकी यात्रा—एक नाटक है। यह १८२१ ई०में रचित और अभिनीत हुआ है।

ज्ञानाञ्जन—यह भी राममोहन रायके अभिमतके प्रतिकूल रचित अति पाण्डित्यपूर्ण एक बंगला गद्यमें प्रतिवाद ग्रंथ है। श्रीमधुसूदन तर्कालङ्कार नामक एक पण्डितने यह ग्रंथ लिखनेका उद्देश क्या है, इस सम्बन्धमें एक भूमिका लिखी है।

रामरत्न—१८२१ ई०में नदिया-जिलावासी एक वारेन्द्र ब्राह्मणने रामरत्न नाम दे कर देवीभागवत ग्रंथका बंगानुवाद किया।

जीर्णोद्धार—१८२१ ई०में यह ग्रंथ छापा गया है। यह "नित्यकर्म पद्धति" है। इसमें संस्कृत मूल और बंगानुवाद है। गंगाकिशोर भट्टाचार्य इसके प्रणेता हैं।

वासवदत्ता मदनमोहन तर्कालङ्कार महाशयका द्वितीय ग्रन्थ होने पर भी काव्यांशमें, रचना-सौन्दर्यमें तथा आयतनमें यह सबसे बड़ा है।

इसके सिवा छोटे छोटे बच्चोंकी शिक्षाके लिये मदनमोहन तर्कालङ्कारने शिशुशिक्षाका प्रथम भाग, द्वितीय भाग और तृतीय भाग रचे।

१८५७ ई०से ईश्वरचन्द्र गुप्त द्वारा रचित प्रबोध-प्रभाकर नामक गद्य ग्रन्थ मुद्रित हुआ। १८५८ ई०को ४६ वर्षकी अवस्थामें ईश्वरचन्द्र इस लोकसे चल बसे। मृत्युके पहले वे और भी कितनी पुस्तकें लिख गये थे, किन्तु उनकी जीवद्दशामें प्रबोधप्रभाकरके सिवा और कोई पुस्तक छपी न थी। गुप्त महाशयकी एक दूसरी पुस्तकका नाम हितप्रभाकर है। यह भी गद्य पद्यमय है। बोधेन्दुविकाश भी उन्हींका बनाया हुआ है। यह संस्कृत प्रबोधचन्द्रोदय नाटकका अनुवाद है—नाटकके आकारमें ही रचा गया है। इस ग्रन्थके छपते न छपते ग्रन्थकार परलोकको सिधारे। उस समय इसके सिर्फ तीन अङ्क छपे थे। गुप्त महाशयकी गद्य रचनाके मध्य यही पुस्तक उत्कृष्ट है।

गुप्त महाशयने कलिनाटक नामक और भी एक ग्रन्थ लिखना शुरू किया था, किन्तु दुर्भाग्यवशतः वे अकाल ही इस लोकसे चल बसे। इनके जीवनचरित्रके सम्बन्धमें अनेक विषय 'ईश्वरचन्द्रगुप्त' शब्दमें लिखे जा चुके हैं। वङ्गला-साहित्यके मध्ययुगके सबसे अन्तिम ग्रन्थकार ईश्वरचन्द्र गुप्त हैं। इनके बाद ही वङ्गीय साहित्यके वर्त्तमान युगका आरम्भ हुआ।

संस्कृत कालेजके पण्डितोंके द्वारा वङ्गला साहित्यकी यथेष्ट उन्नति हुई है। संस्कृत कालेजमें भी वङ्गलाभाषाके अनुशीलनके निमित्त एक समिति प्रतिष्ठित हुई थी। रेभरेण्ड कृष्णमोहन वन्द्योपाध्याय उस समितिके सदस्य थे। उनके अतिरिक्त और भी कितने सदस्य वङ्गलाभाषाकी उन्नतिके लिये कई एक सारगर्भ प्रस्तावना तथा प्रबन्धका प्रचार करते थे। किन्तु यथार्थमें संस्कृत कालेजके कतिपय पण्डितोंने ही वङ्गलाभाषाकी पुष्टि की। और क्या, उन्हें आधुनिक वङ्गलासाहित्यके जन्मदाता कह सकते हैं। पण्डित ताराशङ्कर, विद्यासागर एवं नाट्यकार रामनारायण प्रभृतिके नाम बंगलाभाषाकी वर्त्तमान उन्नतिके इतिहासमें चिर दिनों तक उज्ज्वल अक्षरोंमें लिखे रहेंगे।

इसके सिवा १९वीं शताब्दीके आरम्भसे ही सामा-

भूदेव बाबू भी अंगरेजी ग्रंथोंके आधार पर उपन्यास लिखनेमें प्रवृत्त हुए थे। पाश्चात्य विद्यामें पाण्डित्य लाभ करके देशीयभाषाके अनुशीलन, जातीय साहित्यकी सेवा तथा पाश्चात्य आदर्श लक्ष्य करके स्वदेशकी सेवा बङ्किमचन्द्रकी प्रतिभामें पूर्णरूपसे विकसित हो उठी थी।

बंकिमचन्द्र बंगीय साहित्यमें नूतन युगके प्रवर्त्तक थे। उनकी ग्रन्थावलीमें नूतन भावकी सृष्टि, नूतन चिन्ताकी पुष्टि, एवं अभिनव कल्पनाका युगपत् आविर्भाव देख कर बंगदेशके कोने कोनेमें आनन्द रव गूंज उठा था।

बङ्किमचन्द्रकी मौलिकता, उस तरहकी कल्पनाकी कमनीय लीला, उस तरहकी सौन्दर्य तथा लावण्यच्छटा, उस तरहकी मधुमयी रचना तथा गल्पचतुरताबंगीय गद्यसाहित्यमें और कहीं भी दृष्टिगोचर नहीं होती। बङ्किमचन्द्रने अंगरेजी साहित्य तथा देशीय संस्कृत साहित्यसे जो सम्पद् संग्रह की थी, जो बल तथा उद्यम प्राप्त किया था एवं उनसे जो माधुर्य तथा सौन्दर्य उनके हृदयमें उद्भासित हो उठे थे, जो स्वदेशानुराग उनके चित्तक्षेत्रमें उपास्य देवताकी तरह विराज रहा था, उन्हीं सब भावोंको वे अपने साहित्यमें प्रतिफलित कर गये हैं। शेष जीवन कालमें बङ्किमचन्द्र महाशयने कई एक धर्मसम्बन्धी ग्रंथोंका निर्माण किया था।

उस समयसे ही बंगसाहित्य वास्तविकमें शतमुखी गंगाप्रवाहकी तरह उच्छलित तरंगोंसे परिपूर्ण विशाल आकार धारण करके उन्नतिकी ओर प्रधावित हो रहा है। इस समय हेमचन्द्र बन्द्योपाध्याय, द्विजेन्द्रनाथ ठाकुर, चन्द्रनाथ वसु, महामहोपाध्याय श्रीहरप्रसाद शास्त्री पूर्णचन्द्र वसु, शिशिरकुमार घोष, नवीनचन्द्र सेन, श्रीयुत रवीन्द्रनाथ ठाकुर प्रभृति प्रधान साहित्य महारथियोंने बंगसाहित्य-तरंगिनीके धारा-प्रवाहको गौरव-गर्वसे परिपुष्ट कर दिया है। वर्त्तमान गद्य साहित्य प्रधानतः बङ्किमचन्द्रके आदर्शसे एवं वर्त्तमान पद्य साहित्य प्रधानतः श्रीयुक्त रवीन्द्रनाथके प्रभावसे प्रभावान्वित हुए हैं।

बंगसाहित्यके वर्त्तमान युगका इतिहास अभी भी लिखनेका समय उपस्थित नहीं हुआ है। इस समय भी पूर्ण उद्यमसे, भाव तथा भाषाकी विचित्रतामें बंगीय-साहित्य क्षण क्षणमें अकूल सागरकी ओर प्रवाहित होता जा रहा है। बंगला पद्यसाहित्य बहुत पहले ही यथेष्ट उन्नतिका परिचय दे चुका था, किन्तु गद्यसाहित्यकी वैसी उन्नति १९वीं शताब्दीके पहले परिलक्षित नहीं हुई थी। १९वीं शताब्दीके प्रारम्भमें जिस साहित्यका प्रचार हुआ, वह साहित्य उस शताब्दीके शेष भाग तक रचना-गौरवमें उन्नत, भाव प्रवाहमें समृद्ध तथा कतिपय विषयोंमें परिपुष्ट हो चुका था। यदि सच पूछा जाय तो वर्त्तमान बंगला गद्यसाहित्यकी आशातीत उन्नति हुई है।

वङ्गशुल्वज (सं० क्ली०) वङ्गशुल्वाभ्यां रङ्गताम्राभ्यां जायते जन ड। कांस्य धातु, कांसा। रांगे और तांबेके योगसे यह धातु तैयार होती है, इसीलिये इसका नाम वङ्गशुल्वज है।

वङ्गसेन (सं० पुं०) रक्त वकवृक्ष, लाल फूलवाला अगस्त।

वङ्गसेन—१ धातुरूप या आख्यातव्याकरणके प्रणेता। २ चिकित्सासारसंग्रह और वङ्गसेन नामक वैद्यकके रचयिता। इनके पिताका नाम था गदाधर। काञ्जिका नगरमें इनका वास था।

वङ्गाधिकश्रमण—अतीचारसूत्रके प्रणेता।

वङ्गारि (सं० पु०) वङ्गस्य रङ्गधातोररिः अस्य वङ्गधातोर्मारकत्वात् तथात्वं। हरिताल, हरताल।

वङ्गालिका (सं० स्त्री०) बंगाली देखो।

वङ्गाली (सं० स्त्री०) बंगाली देखो।

वङ्गावलेह (सं० पुं०) प्रमेहरोगमें अवलेहविशेष। दो रत्ती रांगेको भस्मको मधुके साथ पीछे दो तोला गुड़ और गन्धक सेवन करावे। इससे प्रमेहरोग आरोग्य होता है। (रसेन्द्रसारसं०)

वङ्गाष्टक (सं० क्ली०) प्रमेहरोगमें व्यवहार्य औषधविशेष। प्रस्तुत प्रणाली—पारा, गन्धक, लोह, रूपा, खर्पर, अभ्रक और तांबा प्रत्येक समान भाग तथा सभीके बराबर रांगा इन्हें एकत्र कूट कर गजपुटमें पाक करे, पीछे औषध शीतल होने पर उतार ले। इसकी मात्रा २ रत्ती और अनुपान मधु, हल्दीका चूर और आंवलेका रस है। इसका सेवन करनेसे बीस प्रकारका प्रमेह, धातुदोष, विसूचिका, विषम ज्वर, गुल्म, अर्श, मूत्राघातादि आदि रोग विनष्ट होते हैं।

वङ्गिपुरम्—मान्द्राजप्रदेशके कृष्णा-जिलान्तर्गत एक नगर। यह बापटलासे १६ मील उत्तर-पश्चिममें अवस्थित है। यहांके वल्लभराय मन्दिरके गरुड़स्तम्भमें तथा अगस्त्येश्वर स्वामीके मन्दिरमें दो शिलाफलक देखे जाते हैं। पहला १४८१ शकमें विजय-नगरराज सदाशिवरायके शासनकालमें उत्कीर्ण हुआ है। इसी साल मुसलमानोंने विजयनगरको तहस-नहस कर डाला था। दूसरा फलक १४७८ शकमें उक्त राजाके समय खुदा गया है। उसमें मूर्त्तराजदेव चोड़ महाराजका दानवृत्तान्त लिखा हुआ है।

वङ्गिरि (सं० पु०) पुराणानुसार एक राजाका नाम। (भागवत १२।१।३०)

वङ्गीय (सं० त्रि०) वङ्ग-(गहादिभ्यश्च। पा ४।२।१३८) इति छ। वङ्गदेशोद्भव, वङ्गदेशका।

वङ्गुला (सं० स्त्री०) एक रागिणी। रागिणी देखो।

वङ्गुर (सं० पु०) एक असुरका नाम। इन्द्रने इसका वध किया था।

वङ्गेश्वर (सं० पु०) वङ्गः तन्नामकदेशस्य ईश्वरः अधिपतिः। बंगालका राजा।

वङ्गेश्वररस (सं० पु०) औषधविशेष। यह औषध वङ्गेश्वर और वृहद्वङ्गेश्वरभेदसे दो प्रकारका है। प्रस्तुत-प्रणाली पाराभस्म ८ तोला, गन्धक, ताम्रभस्म, प्रत्येक ३२ तोला, अकवनके दूधके साथ घोंट मूषाबद्ध करके भूधरयन्त्रमें पाक करे। इस औषधकी मात्रा २ रत्ती है। इसे घीके साथ चाट कर आधा तोला पुनर्णवाके रस या क्वाथ और गोमूत्र या हरिद्राके रसके साथ पान करे तो गुल्मोदर रोग जाता रहता है।

(रसेन्द्रसारसं० उदररोगाधि०)

दूसरा तरीका—रससिन्दुर और रांगा समान भाग ले कर मर्दन करे। पीछे दो माशा मधुके साथ इसका सेवन करनेसे प्रमेह रोग नष्ट होता है।

वृहद्वङ्गेश्वर—प्रस्तुत-प्रणाली—रांगा, पारा, गन्धक, चांदी, कपूर, अबरक प्रत्येक २ तोला, सोना, मुक्ता प्रत्येक दो माशा इन्हें केशरके रसमें भावना दे कर दो रत्तीकी गोली बनावे। प्रमेहरोगाधिकारमें यह एक उत्कृष्ट औषध है। दोषके बलाबलके अनुसार बकरीका दूध, गायका दूध वा दधि अनुपानमें सेवन करना होता है। इसके सेवनसे बीस प्रकारके प्रमेह, मूत्रकृच्छ्र, पाण्डु, धातुस्थ ज्वर, हलीमक, वात, ग्रहणी, आमदोष, मन्दाग्नि, अरुचि, बहुमूत्र, मूत्रमेह और मूत्रातिसार आदि रोग प्रशमित होते हैं। इससे कान्ति, बल, वर्ण, ओज और शुक्रकी वृद्धि होती है। (रसेन्द्रसारसं० प्रमेहरोगाधि०)

वच (सं० पु०) वक्तीति वच्-अच्। १ शुक पक्षी, तोता। २ सूर्य। ३ कारण। ४ वचन, वाक्य।

वचःक्रम (सं० पु०) वचसः क्रमः। वाक्यका क्रम, वाक्-प्रणाली।

वचक्नु (सं० पु०) वक्तीति वच् (सृयुवचिभ्योऽन्युजीगूज-क्नुचः। उण् ३।८१) इति क्नुच्। १ ब्राह्मण। २ वृहदारण्यक उपनिषद्वर्णित एक व्यक्ति। (त्रि०) ३ वावदूक, वक्ता।

वचगोति—राजपूत जातिमें एक किम्वदन्ती है, कि दिल्लीश्वर पृथ्वीराज जब शाहबुद्दीन गोरी द्वारा परास्त हुए, तब उनके भ्राता चाहरदेवके वंशधर कंसराय तथा बरियार सिंहके अधीन कितने हो चौहान लोग संभल गढ़ परित्याग कर १२४८ ई०में सुलतानपुर जिलेके अम्वावन नामक स्थानमें बस गये। यहां उन लोगोंने मुसलमानोंके भयसे अपने चौहान नामके बदले "वत्स्यगोती" नाम ग्रहण किया। आगे चल कर 'वत्स्यगोती'से अपभ्रंशमें 'वचगोति' हो गया है।

द्वितीय उपाख्यानसे जाना जाता है, कि उपरोक्त चाहरदेवके प्रपौत्र राणा संगतदेवके इक्कीस लड़के थे। उनमें सर्वकनिष्ठ ही पितृसम्पत्तिके अधिकारी हुए एवं दूसरे दूसरे लड़कोंने अपने अपने अदृष्टकी परीक्षाके लिये विभिन्न देशोंकी यात्रा की। उनमेंसे बरियार सिंह तथा कंसरायने मैनपुरी जा कर अल्ला उद्दीनके अधीन सैनिक वृत्ति अवलम्बन की। उन लोगोंने वहांसे भर जातिके विरुद्ध युद्ध करनेके लिये अयोध्यामें आ कर वास किया। बरियार सिंहके अम्वावनमें बस जानेके बाद प्रतापगढ़के निकटवर्त्ती कोटविलखार नामक स्थानमें, सामन्तराज तथा बिलखरिया दीक्षितोंके सरदार रामदेवके अधीन नौकरी की। धीरे धीरे ये उक्त सामन्तराजके प्रियपात्र बन गये एवं उन्होंने सामन्तराजकी कन्याका

पाणिग्रहण किया। कुछ ही दिनोंके बाद राजपुत्र दलपत शाहको मार कर वे यहांके राजा बन बैठे।

एक समय अयोध्या प्रदेशमें इन वचगोति राजपूतोंकी प्रधानता फैली हुई थी। उन्नाव-राजवंशका इतिहास पढ़नेसे जाना जाता है, कि अयोध्याके प्रसिद्ध राजा तिलकचांदके समय तक वचगोतिगण वहांके राज-समाजमें विशेष आदर पाते थे। नये राजाके अभिषेकके समय वे राजकुमारके मस्तक पर राजतिलक लगा कर जब उन्हें राजा मान लेते थे, तब उनकी राजमर्यादा सार्थक होती थी। कुवांरके राजा एवं हसनपुरबंधुआके दीवान इस वंशके प्रधान सामन्त कहलाते हैं।

हसनपुरबंधुआके सरदार इस समय इस्लामधर्ममें दीक्षित हो कर खानज़ादा नामसे परिचित होने पर भी बनौधाके राजाओंको राजतिलक करनेके अधिकारी हैं। अमेठीके सोमवंशी सरदारगण, रामपुरके बिसेनगण, अमेठीके बन्धल गोतिगण एवं तिलोई-वासी कन्हाई पुरियागण जब तक इनसे राजटीका नहीं पा लेते, तब तक वे अपने अपने पूर्वपुरुषोंके पदके अधिकारी नहीं हो सकते।

सुलतानपुरके बरहगोती लोग बिलखरिया, तवा-इया, चन्दौरिया, कठवांग, डाले सुलतान, रघुवंशी तथा गर्गवंशी प्रभृतिकी कन्याओंका पाणिग्रहण करते हैं एवं तिलकचांद बाई, मैनपुरी चौहान, सूर्यवंशी, गौतम, बिसेन तथा बन्धलगोति प्रभृतिके हाथ कन्यादान करते हैं। जौनपुरके वचगोति लोग रघुवंशी, बाई, औपरवाम्य, निकुम्भ, धनमन्त, गौतम, गहरवार, पणवार, चन्देल, शौनक तथा दुर्गवंशी प्रभृतिकी कन्या ग्रहण करते एवं कन्हन, सरोति, गौतम, सूर्यवंशी, राजवाड़, बिसेन, कन्हाई पुरिया, गहरवार, बघेल, बांग प्रभृतिको अपनी कन्या देते हैं।

वचण्डी (सं० स्त्री०) १ सारिका, मैना। २ एक अस्त्र-का नाम। ३ पक्षी।

वचन (सं० क्ली०) उच्यतेऽनेनेति करणे ल्युट् यद्वा भावे ल्युट्, वच् ल्युट्। १ मनुष्यके मुंहसे निकला हुआ सार्थक शब्द, वाक्य। पर्याय—इरा, सरस्वती, ब्राह्मी, भाषा, वाणी, शारदा, गिरा, गिर, गिरादेवी, गौर्देवी, भारतीश्वरी, वाच्, वाचा, वाग्देवी, वर्णमातृका, भाषित, उक्ति, व्यवहार, लपित, वचस्।

वैदिक पर्याय—धारा, इला, गौः, गौरी, गान्धर्वी गभीरा, गम्भीरा, मन्द्रा, मन्द्राजनी, वाशी, वाणी, वाणीच, वाण, पवि, भारती, धमनि, नाली, मेना, मेलि, सूर्या, सरस्वती, निवित, स्वाहा, वग्नु, उपब्दि, मायु, काकुत्, जिह्वा, घोष, स्वर, शब्द, स्वन, श्लोक, होत्रा, गीः, गाथा, गण, धेना, ग्नाः, विपा, नना, कशा, धिषणा, नौः अक्षर, मही, अदिति, शची, वाक्, अनुष्टुप्, धेनु, वल्गु, गल्दा, सर, सुपर्णी, बेकुरा।

२ व्याकरणमें शब्दके रूपमें वह विधान जिससे एकत्व या बहुत्वका बोध होता है। हिन्दीमें दो ही वचन होते हैं—एकवचन और बहुवचन। पर कुछ और प्राचीन भाषाओंके समान संस्कृतमें एक तीसरा वचन भी होता है। ३ शुण्ठी, सोंठ।

वचनकर (सं० त्रि०) वचस्कर, जो अपने वचन पर अटल हो।

वचनकारिन् (सं० त्रि०) आज्ञाकारी।

वचनगुप्ति (सं० स्त्री०) जैनधर्मके अनुसार वाणीका ऐसा संयम जिससे वह अशुभ वृत्तिमें प्रवृत्त न हो।

वचनगोचर (सं० त्रि०) वचनेन गोचरः। प्रत्यक्षीभूत, जो वचनसे प्रत्यक्ष हुआ हो।

वचनग्राहिन् (सं० त्रि०) वचनं गृह्णातीति ग्रह-णिनि। वचन पर स्थित, वचनके अनुसार काम करनेवाला।

वचनपटु (सं० त्रि०) वचने पटुः। वाक्पटु, वाक्कुशल।

वचनमात्र (सं० त्रि०) मितिहीन वाक्य।

वचनलक्षिता (सं० स्त्री०) वह परकीया नायिका जिस-की बातचीतसे उसका उपपतिसे प्रेम लक्षित या प्रकट होता हो।

वचनविदग्धा (सं० स्त्री०) नायिकाओंका एक भेद, वह परकीया नायिका जो अपने वचनकी चतुराईसे नायककी प्रीतिका साधन करती हो।

वचनविरुद्ध (सं० त्रि०) शास्त्रविरुद्ध।

वचनविरोध (सं० त्रि०) प्रमाणविरुद्ध शास्त्रवाक्य।

वचनव्यक्ति (सं० त्रि०) मौलिक कथा।

वचनशत (सं० त्रि०) बहु वाक्य।

वचनसहाय (सं० त्रि०) जो किसी मनुष्यके साथ बातचित करनेके लिये विनयी और मिष्टभाषी व्यक्तिको अपने साथ ले जाता हो, बातचीत करनेवाला साथी।

वचनानुग (सं० त्रि०) वचनं अनुगच्छति गम-ड। वाक्यका अनुगामी, जो वचनके अनुसार चलता हो।

वचनावत् (सं० त्रि०) १ वाक्यकुशल, बोलनेमें चतुर। २ सुवक्ता, अच्छा बोलनेवाला। ३ प्रशंसावाक्यकथनशील, बड़ाई करनेवाला। ४ अव्यक्त शब्दकारी।

वचनीकृत (सं० त्रि०) तिरस्कृत, लाञ्छित।

वचनीय (सं० त्रि०) वच-अनीयर्। १ कथनीय। २ निन्दा, शिकायत।

वचनीयता (सं० स्त्री०) वचनीयस्य भावः तल्-टाप्। लोकापवाद।

वचनेस्थित (सं० त्रि०) वचने तिष्ठति स्मेति स्था-क। (तत्पुरुषे कृति बहुलं। पा ६।३।१४) इति सप्तम्या अलुक्। जो वचन पर अटल हो। पर्याय—वचनस्थ, विधेय, विनयग्राही, आश्रव।

वचनोपक्रम (सं० पु०) वचनस्य उपक्रमः। वाक्यारम्भ। पर्याय—उपन्यास, वाङ्मुख।

वचर (सं० पु०) अवान्तरे चरतीति अव-चर-अच्, अल्लोपः। १ कुक्कुट। २ शठ।

वचलु (सं० पु०) शत्रु।

वचस् (सं० क्ली०) उच्यते इति वच (सर्वधातुभ्योऽसुन्। उण् ४।१८९) इति असुन्। वाक्य।

वचसांपति (सं० पु०) वचसां वाचां पतिः षष्ठ्या अलुक्। वृहस्पति।

वचस्कर (सं० त्रि०) करोतीति कृ-अच्, वचसः करः। वचनपरस्थित, वचनानुसार कार्य्यकारी।

वचस्य (सं० त्रि०) वचनयोग्य, प्रशंसनीय, विख्यात।

वचस्या (सं० स्त्री०) स्तुतिकी इच्छा।

वचस्यु (सं० त्रि०) स्तुतिकाम, स्तुतिका अभिलाषी।

वचा (सं० स्त्री०) वाचयतीति वच्-णिच्-अच्, निपातनात् ह्रस्वः, यद्वा अन्तर्भावितण्यर्थात् वचोऽच्। औषधविशेष। यह काश्मीरसे आसाम तक और मणिपुर तथा वर्मामें दो हजारसे छः हजार फुट तक ऊँचे पहाड़ों पर पानीके किनारे होता है। इसके पत्ते सौसनके पत्तेके आकारसे, पर उससे कुछ बड़े होते हैं। इसके फूल नरगिसके फूलकी तरह पीले होते हैं। पत्तोंकी नाल लम्बी होती हैं। पत्तोंसे एक प्रकारका तेल निकाला जाता है। यह तेल खुला रहनेसे उड़ जाता है। इसकी जड़ लाली लिए सफेद रंगकी होती है। जड़में अनेक गांठें होती हैं।

संस्कृत पर्याय—उग्रगन्धा, षड्ग्रन्था, गोलोमी, शतपर्विका, तीक्ष्णा, जटिला, मङ्गल्या, विजया, उग्रा, रक्षोघ्नी, वच्या, लोमशा, भद्रा। गुण—अति तीक्ष्ण, कटु, उष्ण, कफ, आम, ग्रन्थिशोफ, वातज्वर और अतिसार-रोगनाशक। (राजनि०)

भावप्रकाशके मतसे वच, खुरासानी वच और महाभरीवच यही तीन प्रकारकी वच हैं। वचके पर्याय—उग्रगन्धा, षड्ग्रंथा, गोलोमी, शतपर्विका, क्षुद्रपत्नी, मङ्गल्या, जटिला, उग्रा और लोमशा। गुण—उग्रगन्धा, कटुतिक्तरस, उष्णवीर्य, वमिजनक, अग्निवृद्धिकारक, मलमूत्रशोधक तथा विवन्ध, आध्मान, शूल, अपस्मार, कफ, उन्माद, भूतदोष, कृमि और वायुनाशक।

खुरासानी वच—खुरासानी वचको पारसीक वच कहते हैं। यह वच सफेद होती है। इसका दूसरा नाम हैमवती है। इस वचमें पूर्वोक्त सभी गुण हैं, विशेषतः वायुनाशकके पक्षमें यह सर्वश्रेष्ठ है।

महाभरी वच—पश्चिम देशमें कुलिञ्जन नामसे प्रसिद्ध है। इसका दूसरा नाम सुगन्धा भी है। गुण—उग्रगन्धविशिष्ट, विशेषतः कफ और कासनाशक, स्वरप्रसादक, रुचिजनक तथा हृदय, कण्ठ और मुखशोधक। इसके सिवा स्थूलग्रन्थिविशिष्ट एक और प्रकारकी सुगन्धित वच है। यह वच पूर्वोक्त वचसे हीनगुणविशिष्ट है।

तोपचीनीको द्वीपान्तर वच कहते हैं। अन्यद्वीपमें उत्पन्न होनेके कारण इसका द्वीपान्तर नाम हुआ है। गुण—ईषत् तिक्तरस, उष्णवीर्य, अग्निदीप्तिकारक और मलमूत्रशोधक, विवन्ध, आध्मान, शूल, वातव्याधि, अपस्मार, उन्माद और शरीरवेदनानाशक, विशेषतः फिरंगी रोगमें यह बहुत उपकारी है। (भावप्र०)

गरुड़पुराणमें लिखा है, कि एक मास तक वचका जल, दूध या घृतके साथ सेवन करनेसे स्मरणशक्ति बढ़ती

चन्द्र और सूर्यग्रहणके समय एक पल वच दूधके साथ सेवन करनेसे धी-शक्तिकी वृद्धि होती है।

(गरुड़पु० १६३ अ०)

२ सारिका पक्षी, मैना। ३ सूर्य। ४ कारण। ५ वचन, वाक्य।

वचाचार्य (सं० पु०) आचार्यभेद।

वचादिचूर्ण—गुल्मरोगनाशक औषधविशेष। प्रस्तुत प्रणाली—वच, हरीतकी, हिंगु, सैन्धव लवण, अमल बेत, यवक्षार और यवानी इन सबोंका एकत्र बराबर बराबर भाग ले कर चूर्ण करे और प्रातःकाल ४ माशा ले कर गरम जलके साथ सेवन करे। ऐसा करनेसे थोड़े ही समयमें गुल्मरोग दूर हो जाता और भूख खूब लगती है।

वचार्क (सं० पु०) १ सूर्योपासकमात्र। २ पारसीजाति।

वचादिवर्ग (सं० पु०) वैद्योक्त औषधिसमूह।

(वाग्भट सू० १५)

वचाद्यघृत (सं० क्ली०) गण्डमाला रोगाधिकारमें घृतौषधविशेष। (रस०)

वचि (सं० पु०) १ वचन। २ नाम, अभिधान।

वचोग्रह (सं० पु०) गृह्णातीति ग्रह-अच्-वचसां ग्रहः। कर्ण, कान।

वचोयुज् (सं० त्रि०) वाक्यमात्र।

वचोविद् (सं० त्रि०) वचस्-विद्-क्विप्। निवेदित।

वच्छिकपाला—बंगालके अन्तर्गत एक प्राचीन स्थान।

वच्छिय—निबन्धसारके प्रणेता।

वज़न (अ० पु०) १ भार, बोझ। २ तौल। ३ मान, मर्यादा।

वज़नी (अ० वि०) १ जिसका बहुत बोझ हो, भारी। २ जिसका कुछ असर हो, माननेयोग्य।

वजह (अ० स्त्री०) १ हेतु, कारण। २ सबब। ३ प्रकृति।

वज़ा (अ० स्त्री०) १ संघटन, रचना। २ आकृति, रूप। ३ दशा, अवस्था। ४ सजधज, चालढाल। ५ प्रणाली, रीति। ६ मिनहा, मुजरा।

वज़ादार (फा० वि०) जिसकी बनावट या गठन आदि बहुत अच्छी हो, दर्शनीय।

वज़ादारी (फा० स्त्री०) १ फैशन, कपड़े वगैरह पहननेका सुन्दर ढंग। २ सजावटका उत्तम ढंग। ३ किसी प्रकारकी मर्यादा आदिका भली भांति निर्वाह।

वज़ारत (अ० स्त्री०) १ वजीरी, मन्त्री या अमात्यका पद। २ मन्त्री या अमात्यका कार्य। ३ अमात्यका कार्यालय।

वज़ीफा (अ० पु०) १ वृत्ति। २ वह वृत्ति या आर्थिक सहायता जो विद्वानों, छात्रों, संन्यासियों, दीनों या बिगड़े हुए रईसों आदिको दी जाती है। ३ वह जप या पाठ जो नियमपूर्वक प्रति दिन किया जाता है।

वज़ीफाख्वार (फा० वि०) वज़ीफा पानेवाला।

वज़ीर (अ० पु०) १ वह जो बादशाहको रियासतके प्रबन्धमें सलाह या सहायता दे, मन्त्री, दीवान। २ शतरंजकी एक गोटी जो बादशाहसे छोटी और शेष सब मोहरोंसे बड़ी होती है। यह गोटी आगे, पीछे, दाहिने, बायें और तिरछे जिधर चाहे, उधर और जितने घर चाहे, उतने घर चल सकती है।

वज़ीरी (अ० स्त्री०) १ वजीरका काम या पद। (पु०) २ घोड़ोंकी एक जाति। यह बलूचिस्तानमें पाया जाता है। इस जातिके घोड़े बड़े परिश्रमी और दौड़नेमें बहुत तेज होते हैं। इनके कंधे ऊंचे और पुट्ठे चौड़े होते हैं।

वज़ू (अ० पु०) नमाज़ पढ़नेके पूर्व शौचके लिये हाथ पांव आदि धोना। मुसलमानोंका नियम है, कि नमाज़ पढ़नेके पूर्व वे पहले तीन बार हाथ धोते, फिर तीन बार कुल्ली करके नथनोंमें पानी देते हैं। फिर मुंह धो कर कुहनियों तक हाथ धोते हैं और सिर पर पानी ले हाथ फेरते हैं। अन्तमें पांव धोते हैं। इसी आचारका नाम वज़ू है।

वजूद (अ० पु०) १ सत्ता, अस्तित्व। २ शरीर, देह। ३ अभिव्यक्ति, प्रकट या घटित होना। ४ वृद्धि।

वजूहात (अ० स्त्री०) कारणोंका समूह, यह बहुवचन शब्द है और इसका प्रयोग भी सदा बहुवचनमें ही होता है।

वज्र (सं० पु० क्ली०) वजतीति वज-गतौ (ऋजेन्द्राग्रवज्र-विप्रेति। उण् २।२८) इति रन्प्रत्ययेन निपातितः। १ इन्द्रका अस्त्रविशेष। पर्याय—ह्रादिनी, कुलिश, भिदुर, पवि, शतकोटि, स्वरु, शम्ब, दम्भोलि, अशनि, गुर्वीन, भिदिर, भिदु, [illegible] अशनी, वज्राशनि, अम्भादि, विद्युत्[illegible]

गिरिकण्टक, गौ, अद्रोत्य, मेघभूति, गिरिज्वर, जाम्बवि, दम्भ, भिदुर, अम्बुज। (निका०) वैदिक पर्याय—विद्युत्, नेमि, हेति, नम, पवि, सृक, वृक, वध, वज्र, अर्क, कुत्स, कुलिश, तुज, तिग्म, मेनि, स्वधिति, सायक, परशु।

(वेदनि० २।२०)

वज्रकी उत्पत्तिके विषयमें पुराणादिमें विभिन्न मत देखा जाता है। मत्स्यपुराणमें लिखा है, कि जब विश्वकर्माने सूर्यको भ्रमियन्त्र (खराद) पर चढ़ा कर खरादा था, तब छिल कर जो तेज निकला था, उसीसे विष्णुका चक्र, रुद्रका शूल और इन्द्रका वज्र बना था।

(मत्स्यपु० ११ अ०)

वामनपुराणमें लिखा है, कि इन्द्र जब दितिके गर्भमें घुस गये थे, तब वहां उन्हें बालकके पास ही एक मांसपिण्ड मिला था। इन्द्रने जब क्रुद्ध हो उसे हाथमें ले कर दबाया, तब वह लम्बा हो गया और उसमें सौ गांठें दिखाई पड़ीं। वही पीछे कठिन हो कर वज्र बन गया।

(वामनपु० ६८ अ०)

भागवतमें लिखा है, कि इन्द्रने वृत्रासुरका वध करनेके लिये दधीचि मुनिकी अस्थि द्वारा विश्वकर्मासे वज्र बनाने कहा। विश्वकर्माने वैसा ही किया। इन्द्रने इसी वज्रसे वृत्रासुरका वध किया था। (भागवत ६।१०-११ अ०)

आह्निकतत्त्वमें लिखा है, कि जब वज्रका भयानक शब्द सुनाई दे, उस समय पूर्व वा उत्तरमुख खड़े हो जैमिनिमुनिका नाम तीन बार लेनेसे वज्रका भय जाता रहता है। (आह्निकतत्त्वधृत ब्रह्मपु०) ऋग्वेदमें उल्लेख है, कि दधीचि ऋषिकी हड्डीसे इन्द्रने राक्षसोंका ध्वंस किया। ऐतरेय-ब्राह्मणमें इसका वर्णन इस प्रकार आया है। दधीचि जब तक जीते थे, तब तक असुर उन्हें देख कर भाग जाते थे। परन्तु जब वे मर गये, तब असुरोंने उत्पात मचाना आरम्भ किया। इन्द्र दधीचि ऋषिकी खोजमें पुष्कर गये। वहां पता चला, कि दधीचिका देहावसान हो गया। इस पर इन्द्र उनकी हड्डी ढूंढ़ने लगे। पुष्करक्षेत्रमें उनके सिरकी हड्डी मिली। उसीका वज्र बना कर इन्द्रने असुरोंका संहार किया।

अतिरिक्त महापातक होनेसे वज्राघातसे मृत्यु होती है। नारियल आदि वृक्षके शिखर पर वज्रपात होते देखा जाता है। वज्रपतनके बाद वह पेड़ मर जाता है। अनेक समय वज्राघातसे मृत वा मृतप्राय व्यक्तिको मिट्टीमें गाड़ रखनेसे पुनर्जीवन लाभ करते देखा गया है। ईंटोंके बने घर पर वज्रपात होनेसे वह चूर चूर हो जाता है।

अंगरेजीमें वज्रको Thunder-bolt कहते हैं। यह दो मेघोंके परस्पर संघर्षणसे विद्युत्के साथ उत्पन्न होता है। कहते हैं, कि गोबरकी ढेर या कदली वृक्ष पर वज्र गिरनेसे वह ऊपर नहीं उठ सकता और न भीतर ही घुस सकता है। बहुतोंका कहना है, कि वज्र देखनेमें लौह-शलाकाकी तरह होता है, किन्तु यथार्थमें सो नहीं है। विद्युत् देखो।

२ विद्युत्, बिजली। ३ रत्नविशेष, हीरा। पर्याय—इन्द्रायुध, हीर, भिदुर, कुलिश, पवि, अभेद्य, अशिर, रत्न, दृढ़, भार्गवक, षट्कोण, बहुधार, शतकोटि। गुण—षड्रसोपेत, सर्वरोगापहारक, सकलपापनाशक, सौख्यकर, देहदार्ढ्यकारक और रसायन। (राजनि०) विशेष विवरण हीरक शब्दमें देखो। ४ बालक। ५ धात्री। ६ काञ्जिक, कांजी। ७ वज्रपुष्प। ८ लौहविशेष, एक प्रकारका लोहा। यह वज्रलौह अनेक प्रकारका होता है। जैसे—नीलपिण्ड, अरुणाभ, मोरक, नागकेशर, तित्तिराङ्ग, स्वर्णवज्र, शैवालवज्र, शोणवज्र, रोहिणी, काङ्कोल, ग्रंथिवज्रक, मदनाख्य। ६ अभ्रविशेष, अबरक। भावप्रकाशमें इसकी उत्पत्तिका विषय इस प्रकार लिखा है—

पुराकालमें इन्द्रने जब वृत्रासुरका संहार करनेके लिये वज्र उठाया, तब उस वज्रसे आगकी चिनगारियां निकल कर भयानक शब्द करती हुई पहाड़ पर गिरीं। जिस जिस पर्वतके शिखर पर वह चिनगारियां गिरी थीं, वहीं अबरककी उत्पत्ति हुई। वज्रसे इसकी उत्पत्ति होनेके कारण इसका वज्र नाम हुआ है। यह ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्रके भेदसे चार जातिका है। ब्राह्मण जातिका अबरक सफेद, क्षत्रिय जातिका लाल, वैश्यका पीला और शूद्र जातिका अबरक काला होता है। सफेद अबरक रौप्यके संस्कार विषयमें, लाल रसायनमें, पीला स्वर्ण संस्कारविषयमें और काला अबरक सब रोगोंमें काम आता है।

पिनाक, दर्दुर, नाग और वज्र यही चार प्रकारका

चन्द्र और सूर्यग्रहणके समय एक पल वच दूधके साथ सेवन करनेसे धी-शक्तिकी वृद्धि होती है।

(गरुड़पु० १९३ अ०)

२ सारिका पक्षी, मैना। ३ सूर्य। ४ कारण। ५ वचन, वाक्य।

वचाचार्य (सं० पु०) आचार्यभेद।

वचादिचूर्ण—गुल्मरोगनाशक औषधविशेष। प्रस्तुत प्रणाली—वच, हरीतकी, हिंगु, सैन्धव लवण, अमल वेत, यवक्षार और यमानी इन सबोंका वकत बराबर बराबर भाग ले कर चूर्ण करे और प्रातःकाल ४ माशा ले कर गरम जलके साथ सेवन करे। ऐसा करनेसे थोड़े ही समयमें गुल्मरोग दूर हो जाता और भूख खूब लगती है।

वचार्च (सं० पु०) १ सूर्योपासकमात्र। २ पारसीजाति।

वचादिवर्ग (सं० पु०) वैद्योक्त औषधिसङ्घ।

(वाभट सू० ३५)

वचाद्यघृत (सं० क्ली०) गण्डमाला रोगाधिकारमें घृतौषधविशेष। (रस०)

वचि (सं० पु०) १ वचन। २ नाम, अभिधान।

वचोग्रह (सं० पु०) गृह्णातीति ग्रह-अच्-वचसां ग्रहः। कर्ण, कान।

वचोयुज् (सं० त्रि०) वाक्यमात्र।

वचोविद् (सं० त्रि०) वचस्-विद्-क्विप्। निवेदित।

वच्छिकवाला—बंगालके अन्तर्गत एक प्राचीन स्थान।

वच्छिप—निबन्धसारके प्रणेता।

वज़न (अ० पु०) १ भार, बोझ। २ तौल। ३ मान, मर्यादा।

वज़नी (अ० वि०) १ जिसका बहुत बोझ हो, भारी। २ जिसका कुछ असर हो, माननेयोग्य।

वजह (अ० स्त्री०) १ हेतु, कारण। २ तत्त्व। ३ प्रकृति।

वज़ा (अ० स्त्री०) १ संघटन, रचना। २ आकृति, रूप। ३ दशा, अवस्था। ४ सजधज, चालढाल। ५ प्रणाली, रीति। ६ मिनहा, मुजरा।

वज़ादार (फा० वि०) जिसकी बनावट या गठन आदि बहुत अच्छी हो, दर्शनीय।

वज़ादारी (फा० स्त्री०) १ फैशन, कपड़े वगैरह पहननेका सुन्दर ढंग। २ सजावटका उत्तम ढंग। ३ किसी प्रकारकी मर्यादा आदिका भली भांति निर्वाह।

वज़ारत (अ० स्त्री०) १ वजीरी, मन्त्री या अमात्यका पद। २ मन्त्री या अमात्यका कार्य। ३ अमात्यका कार्यालय।

वज़ीफा (अ० पु०) १ वृत्ति। २ वह वृत्ति या आर्थिक सहायता जो विद्वानों, छात्रों, संन्यासियों, दीनों या बिगड़े हुए रईसों आदिको दी जाती है। ३ वह जप या पाठ जो नियमपूर्वक प्रति दिन किया जाता है।

वज़ीफाख़ार (फा० वि०) वज़ीफा पानेवाला।

वज़ीर (अ० पु०) १ वह जो बादशाहकी रियासतके प्रबन्धमें सलाह या सहायता दे, मन्त्री, दीवान। २ सतरञ्जकी एक गोटी जो बादशाहसे छोटी और शेष सब मोहरोंसे बड़ी होती है। यह गोटी आगे, पीछे, दाहिने, बाएं और तिरछे जिधर चाहे, उधर और जितने घर चाहे, उतने घर चल सकती है।

वज़ीरी (अ० स्त्री०) १ वजीरका काम या पद। (पु०) २ घोड़ोंकी एक जाति। यह बलूचिस्तानमें पाया जाता है। इस जातिके घोड़े बड़े परिश्रमी और दौड़नेमें बहुत तेज होते हैं। इनके कंधे ऊंचे और पुट्ठे चौड़े होते हैं।

वज़ू (अ० पु०) नमाज़ पढ़नेके पूर्व शौचके लिये हाथ पांव आदि धोना। मुसलमानोंका नियम है, कि नमाज़ पढ़नेके पूर्व वे पहले तीन बार हाथ धोते, फिर तीन बार कुल्ली करके नथनोंमें पानी देते हैं। फिर मुंह धो कर कुहनियों तक हाथ धोते हैं और सिर पर पानी ले हाथ फेरते हैं। अन्तमें पांव धोते हैं। इसी आचारका नाम वज़ू है।

वजूद (अ० पु०) १ सत्ता, अस्तित्व। २ शरीर, देह। ३ अभिव्यक्ति, प्रकट या घटित होना। ४ सृष्टि।

वजूहात (अ० स्त्री०) कारणोंका समूह, यह बहुवचन शब्द है और इसका प्रयोग भी सदा बहुवचनमें ही होता है।

वज्र (सं० पु० क्ली०) वजतीति वज-गतौ (ऋजेन्द्राग्रवज्र-विप्रेति। उण् २।२८) इति रन्प्रत्ययेन निपातितः। १ इन्द्रका अस्त्रविशेष। पर्याय—ह्रादिनी, कुलिश, भिदुर, पवि, शतकोटि, स्वरु, शम्ब, दम्भोलि, अशनि, कुलीश, भिदिर, भिदु, स्वरस, सम्ब, सब, अशनी, वज्राशनि, जम्भारि, त्रिदशायुध, शतधार, शनार, आपोत्र, अश्म,

गिरिकण्टक, गौ, अभ्रोत्थ, मेघभूति, गिरिज्वर, आम्बवि, दम्भ, भिद्र, अम्बुज। (त्रिका०) वैदिक पर्याय—विद्युत्, नेमि, हेति, नम, पवि, सृक, वृक, वध, वज्र, अर्क, कुत्स, कुलिश, तुज, तिग्म, मेनि, स्वधिति, सायक, परशु। (वेदनि० २।२०)

वज्रकी उत्पत्तिके विषयमें पुराणादिमें विभिन्न मत देखा जाता है। मत्स्यपुराणमें लिखा है, कि जब विश्वकर्माने सूर्यको भ्रमियन्त्र (खराद) पर चढ़ा कर खरादा था, तब छिल कर जो तेज निकला था, उसीसे विष्णुका चक्र, रुद्रका शूल और इन्द्रका वज्र बना था। (मत्स्यपु० ११ अ०)

वामनपुराणमें लिखा है, कि इन्द्र जब दितिके गर्भमें घुस गये थे, तब वहां उन्हें बालकके पास ही एक मांसपिण्ड मिला था। इन्द्रने जब क्रुद्ध हो उसे हाथमें ले कर दबाया, तब वह लम्बा हो गया और उसमें सौ गांठें दिखाई पड़ीं। वही पीछे कठिन हो कर वज्र बन गया। (वामनपु० ६८ अ०)

भागवतमें लिखा है, कि इन्द्रने वृत्रासुरका वध करनेके लिये दधीचि मुनिकी अस्थि द्वारा विश्वकर्मासे वज्र बनाने कहा। विश्वकर्माने वैसा ही किया। इन्द्रने इसी वज्रसे वृत्रासुरका वध किया था। (भागवत ६।१०-११ अ०)

आह्निकतत्त्वमें लिखा है, कि जब वज्रका भयानक शब्द सुनाई दे, उस समय पूर्व वा उत्तरमुख खड़े हो जैमिनिमुनिका नाम तीन बार लेनेसे वज्रका भय जाता रहता है। (आह्निकतत्त्वधृत ब्रह्मपु०) ऋग्वेदमें उल्लेख है, कि दधीचि ऋषिकी हड्डीसे इन्द्रने राक्षसोंका ध्वंस किया। ऐतरेय-ब्राह्मणमें इसका वर्णन इस प्रकार आया है। दधीचि जब तक जीते थे, तब तक असुर उन्हें देख कर भाग जाते थे। परन्तु जब वे मर गये, तब असुरोंने उत्पात मचाना आरम्भ किया। इन्द्र दधीचि ऋषिकी खोजमें पुष्कर गये। वहां पता चला, कि दधीचिका देहावसान हो गया। इस पर इन्द्र उनकी हड्डी ढूंढ़ने लगे। पुष्करक्षेत्रमें उनके सिरकी हड्डी मिली। उसीका वज्र बना कर इन्द्रने असुरोंका संहार किया।

अतिरिक्त महापातक होनेसे वज्राघातसे मृत्यु होती है। नारियल आदि वृक्षके शिखर पर वज्रपात होते देखा जाता है। वज्रपतनके बाद वह पेड़ मर जाता है। अनेक समय वज्राघातसे मृत या मृतप्राय व्यक्तिको मिट्टीमें गाड़ रखनेसे पुनर्जीवन लाभ करते देखा गया है। ईंटोंके बने घर पर वज्रपात होनेसे वह चूर चूर हो जाता है।

अंगरेजीमें वज्रको Thunder-bolt कहते हैं। यह दो मेघोंके परस्पर संघर्षणसे विद्युत्‌के साथ उत्पन्न होता है। कहते हैं, कि गोबरकी ढेर वा कदली वृक्ष पर वज्र गिरनेसे वह ऊपर नहीं उठ सकता और न भीतर ही घुस सकता है। बहुतोंका कहना है, कि वज्र देखनेमें लौह-शलाकाकी तरह होता है, किन्तु यथार्थमें सो नहीं है। विद्युत् देखो।

२ विद्युत्, बिजली। ३ रत्नविशेष, हीरा। पर्याय—इन्द्रायुध, हीर, भिदुर, कुलिश, पवि, अभेद्य, अशिर, रत्न, दृढ़, भार्गवक, षट्कोण, बहुधार, शतकोटि। गुण—षड्‌रसोपेत, सर्वरोगापहारक, सकलपापनाशक, सौख्यकर, देहदार्ढ्यकारक और रसायन। (राजनि०) विशेष विवरण हीरक शब्दमें देखो। ४ बालक। ५ धात्री। ६ काञ्जिक, कांजी। ७ वज्रपुष्प। ८ लौहविशेष, एक प्रकारका लोहा। यह वज्रलौह अनेक प्रकारका होता है। जैसे—नीलपिण्ड, अरुणाभ, मोरक, नागकेशर, तित्तिराङ्ग, स्वर्णवज्र, शैवालवज्र, शोणवज्र, रोहिणी, काङ्कोल, ग्रंथिवज्रक, मदनाख्य। ९ अभ्रविशेष, अबरक। भावप्रकाशमें इसकी उत्पत्तिका विषय इस प्रकार लिखा है—

पुराकालमें इन्द्रने जब वृत्रासुरका संहार करनेके लिये वज्र उठाया, तब उस वज्रसे आगकी चिनगारियां निकल कर भयानक शब्द करती हुई पहाड़ पर गिरीं। जिस जिस पर्वतके शिखर पर वह चिनगारियां गिरी थीं, वहीं अबरककी उत्पत्ति हुई। वज्रसे इसकी उत्पत्ति होनेके कारण इसका वज्र नाम हुआ है। यह ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्रके भेदसे चार जातिका है। ब्राह्मण जातिका अबरक सफेद, क्षत्रिय जातिका लाल, वैश्यका पीला और शूद्र जातिका अबरक काला होता है। सफेद अबरक रौप्यके संस्कार विषयमें, लाल रसायनमें, पीला स्वर्ण संस्कारविषयमें और काला अबरक सब रोगोंमें काम आता है।

पिनाक, दर्दुर, नाग और वज्र यह चार प्रकारका

अवरक है। इनमेंसे वज्र नामक अवरकको अग्निमें डालनेसे वज्रकी तरह स्थिर भावमें रहता है, कुछ भी विकृत नहीं होता। यह अवरक अन्य सभी अवरकोंसे उमदा होता है। इससे ज्वरादिरोग प्रशमित होता है तथा इससे अकालमृत्यु नहीं होती। अवरकको शोधन करके काममें लाना चाहिये। शोधित अवरक ही गुणकारक होता है।

शोधितका गुण—कषाय, मधुररस, शातवीर्य, आयुष्कर, धातुवर्द्धक तथा त्रिदोष, व्रण, प्रमेह, कुष्ठ, प्लीहा, उदर, ग्रन्थि, विष और कृमिनाशक। नित्य सेवन करनेसे यह रोगनाशक, शरीरको दृढ़तासम्पादक, वीर्यवर्द्धक, अत्यन्त कोमलताजनक, परमायुवर्द्धक, पुत्रजनक, सिंह सदृश विक्रमजनक, अकालमृत्युनाशक तथा प्रति दिन सौ स्त्री रमण करनेकी शक्तिजनक होता है।

अशोधितका गुण—पीड़ाजनक तथा कुष्ठ, क्षय, पाण्डु, शोथ, हृद्गत और पार्श्वगत वेदना तथा शरीरकी गुरुताका उत्पादक। अभ्र शब्द देखो।

१० कोकिलाक्षवृक्ष। ११ श्वेत कुश। १२ थूहरका पेड़, सेहुंड। १३ कृष्णके एक प्रपौत्र जो रुक्मिणीगर्भजात प्रद्युम्नके पुत्र थे। १४ विश्वामित्रके एक पुत्रका नाम। १५ भाला, वरछा। १६ ज्योतिषमें २२ व्यतीपात योगोंमेंसे एक। १७ वास्तुविद्याके अनुसार वह स्तम्भ जिसका मध्य भाग अष्टकोण हो। १८ विष्णुके चरणका एक चिह्न। १९ अकलवीर नामका पौधा।

२० विष्कम्भादि सत्ताईस योगोंके अन्तर्गत पन्द्रहवां योग। ज्योतिषशास्त्रमें लिखा है, कि वज्रयोगके आदि ६ दण्ड निन्दनीय हैं अर्थात् इन नौ दण्डोंमें यात्रादि कोई शुभ कर्म नहीं करना चाहिये। जिस बालकका इस योगमें जन्म होता, वह गुणी, गुणग्राही, बलवान्, तेजस्वी, रत्न और धनादिका परीक्षक तथा शत्रुनाशक होता है। (कोष्ठीप्रदीप) २१ बौद्धके मतसे चक्राकार चिह्नविशेष।

(त्रि०) २२ वज्रके समान कठिन, बहुत कड़ा या मजबूत। २३ घोर, दारुण।

वज्रक (सं० क्ली०) वज्र संज्ञायां कन्। १ वज्रक्षार। २ फलितज्योतिषके अनुसार सूर्यके आठ उपग्रहोंमेंसे एक जो सूर्यसे तेईसवाँ नक्षत्र होता है

वज्रकक्षार (सं० पु० क्ली०) वज्रक्षार।

वज्रकङ्कट (सं० पु०) वज्रः कङ्कटो देहावरणमस्य। हनुमान्का एक नाम।

वज्रकण्टक (सं० पु०) वज्रस्य कण्टकमिव तद्वारकत्वात्। १ स्नुहीवृक्ष, थूहर। २ कोकिलाक्ष वृक्ष, तालमखानाका पेड़।

वज्रकण्टशाल्मली (सं० स्त्री०) नरकभेद। भागवतपुराणके अनुसार अट्ठाईस नरकोंमेंसे यह नरक तेरहवां है। जो सब पापी सर्वाभिगामी हैं, यमलोकमें उसकी इस नरकमें गति होती है।

"यस्त्विह वै सर्वाभिगमस्तममुत्र निरये वर्त्तमानं वज्रकण्टकशाल्मलीमारोप्य निष्कर्षन्ति ॥" (भागवत ५।२६।२१)

वज्रकन्द (सं० पु०) वज्राकारः कन्दोऽस्य। १ वज्रकर्ण, शकरकंद। २ वनशूरण, जंगली सूरण या जिमीकंद। ३ तालके वृक्षका फूल।

वज्रकपाटमत् (सं० त्रि०) सुदृढ़ द्वारयुक्त।

वज्रकपाली (सं० पु०) वज्रकपोलोऽस्यास्तीति इनि। बौद्धोंकी महायान शाखाके अनुसार एक बुद्धका नाम। पर्याय—हेरम्ब, हेरुक, चक्रसम्बर, देव, निशुम्भीश, शशिशेखर, वज्रटीक।

वज्रकर्ण (सं० पु०) वज्रकन्द, शकरकन्द।

वज्रकाञ्जिक (सं० क्ली०) स्त्रीरोगाधिकारका औषधविशेष। प्रस्तुत प्रणाली—कांजी १ सेर, कल्कार्थ पीपलका मूल, पीपल, सोंठ, अजवायन, जीरा, मंगरैला, हल्दी, दारुहल्दी, विट्लवण, सचल लवण, कुल मिला कर एक पल, पाकार्थ जल ४ सेर, शेष १ सेर, नियमपूर्वक पाक करे। यह कल्कके साथ पीना होता है। इसका सेवन करनेसे स्त्रियोंकी अग्निवृद्धि और आमशूल तथा कफ नष्ट हो कर बल, वीर्य तथा स्तनदुग्धकी वृद्धि होती है।

(भैषज्यरत्ना०)

वज्रकारक (सं० पु०) नखी नामक गन्धद्रव्य।

वज्रकालिका (सं० स्त्री०) वज्रोपलक्षिता कालिका। १ बुद्धकी माता मायादेवीका एक नाम। २ शाक्यमुनिकी माता।

वज्रकाली (सं० स्त्री०) १ जिनशक्तिभेद। २ हिन्दूदेवीमूर्त्तिभेद।

वज्रकीट (सं० पु०) एक प्रकारका कीड़ा जो पत्थर या काठको काट कर उसमें छेद कर देता है। कहते हैं, कि गण्डक नदीमें इन कीटोंके द्वारा काटी हुई शिला ही शालग्रामकी बटिया बन जाती है। वज्रदंष्ट्र देखो।

वज्रकाल (सं० पु०) वज्र।

वज्रकुक्षि (सं० क्ली०) पर्वतगुहाभेद।

वज्रकूट (सं० पु०) १ एक पर्वतका नाम। २ हिमालयकी चोटी परका एक एक प्राचीन नगर।

वज्रकृच्छ्र (सं० पु०) प्रायश्चित्तविशेष।

वज्रकेतु (सं० पु०) असुरभेद। यह नरकका राजा था।

वज्रक्षार (सं० क्ली०) वज्र साधकः क्षारं। क्षारविशेष। पर्याय—वज्रक, क्षारश्रेष्ठ, विदारक, सार, चन्दनार, धूमोत्थ, धूमशाङ्कक। गुण—अति उष्ण, तीक्ष्ण, क्षारक, रेचन, गुल्म, उदरपीड़ा, विष्टम्भ और श्रमनाशक।

प्लीहारोगाधिकारमें औषधविशेष। प्रस्तुत प्रणाली—सामुद्र लवण, सैन्धव लवण, काच लवण, यवक्षार, सौवर्चल लवण, सोहागा और सर्जिक्षार इनके बराबर बराबर चूर्णको अकवन और थूहरके दूधमें तीन दिन भावना दे कर एक तांबेके बरतनमें रखे और मुंह बंद कर लेप लगा दे। पीछे उसे पुटपाक करके चूर्ण करे। इसके बाद त्रिकटु, त्रिफला, जीरा, हरिद्रा और चिता इनके समान भाग चूर्णको मिश्रित कर क्षारका अर्द्धांश देना होगा। मात्रा दोषके बलानुसार स्थिर करनी चाहिये। यदि वायुकी अधिकता रहे, तो उष्ण जल अनुपान, श्लेष्माकी अधिकता रहनेसे घृत, पित्तकी अधिकता रहनेसे गोमूत्र तथा त्रिदोषदुष्ट होनेसे कांजी अनुपानके साथ सेवन करना होता है। इस औषधके सेवनसे सभी प्रकारके उदरी, गुल्म, शूल, अग्निमान्द्य, अजीर्ण और प्लीहादि रोग अति शीघ्र प्रशमित होते हैं।

(रसेन्द्रसारस० प्लीहारोगाधि०)

वज्रगर्भ (सं० पु०) बौद्धोंकी महायान शाखाके अनुसार एक बोधिसत्वका नाम।

वज्रगोप (सं० पु०) इन्द्रगोपकीटभेद, बीरबहूटी नामका कीड़ा।

वज्रगढ़—बम्बईप्रदेशके पूना जिलान्तर्गत एक गिरिदुर्ग।

वज्रगुग्गुलु (सं० क्ली०) औषधविशेष।

वज्रगोप (सं० पु०) इन्द्रगोपकीटभेद, बीरबहूटी।

वज्रघात (सं० पु०) वज्रपात।

वज्रघोष (सं० त्रि०) वज्रपतनका कड़कड़ शब्द।

वज्रचर्मा (सं० पु०) वज्रवत् दुर्भेद्यं चर्म यस्य। गण्डक, गैंड़ा।

वज्रचुञ्चु (सं० पु०) गृध्रपक्षी।

वज्रजित् (सं० पु०) वज्रं जयति तस्य आघात सहनेनेति, जि-क्विप्, तुगागमश्च। गरुड़।

वज्रज्वलन (सं० पु०) विद्युत्, बिजली।

वज्रज्वाला (सं० स्त्री०) वज्रस्य ज्वाला। १ वज्राग्नि। २ विरोचन दैत्यकी पोतीका नाम। ३ कुम्भकर्णकी पत्नी।

वज्रटङ्कशाली—भयानन्दीयखण्डन और वज्रटङ्कोद न्यायग्रन्थके प्रणेता।

वज्रटीक (सं० पु०) वज्रेण वज्रकपालेन टीकते प्रकाशते इति टीक क। वज्रपाणि नामक बुद्ध।

वज्रडाकिनी (सं० स्त्री०) महायान शाखाके तान्त्रिक बौद्धोंकी उपास्य डाकिनियोंका एक वर्ग। इनके अन्तर्गत ये आठ डाकिनियां मानी जाती हैं—श्वेतवर्णा लास्या, पीतवर्णा माला, रक्तवर्णा गीता, श्यामवर्णा नृत्या, शुक्लवर्णा पुष्पहस्ता पुष्पा, पीतवर्णा धूपहस्ता धूपा, रक्तवर्णा दीपहस्ता दीपा तथा गन्धहस्ता हरितवर्णा गन्धा। इनकी पूजा नेपाल और तिब्बतमें होती है। इन अष्टवज्रडाकिनीको बहुतेरे अष्टमातृकाका रूपान्तर मानते हैं।

वज्रणखा (सं० स्त्री०) रमणीभेद। (पा ४।१।५८)

वज्रतर (सं० पु०) ईंटकी जोड़ाईका एक प्रकारका मसाला।

वज्रतीर्थ (सं० पु०) तीर्थभेद। वज्रतीर्थमाहात्म्यमें इसका सविस्तर परिचय है।

वज्रतुण्ड (सं० पु०) वज्रं वज्रतुल्यं कठिनं तुण्डं यस्य। १ गरुड़। २ गणेश। ३ गृध्र, गीध। ४ मशक, मच्छड़। ५ स्नुहीवृक्ष, थूहर। (त्रि०) ६ वज्रतुण्डधर।

वज्रतुल्य (सं० पु०) वज्रेण तुल्यः। वज्रके समान।

वज्रदंष्ट्र (सं० पु०) वज्र इव दंष्ट्रा यस्य। १ इन्द्रगोपकीट, बीरबहूटी। २ राक्षसभेद। ३ असुरभेद। ४ सह्याद्रिवर्णित एक राजा। (त्रि०) ५ वज्रकी तरह दंष्ट्रायुक्त, जिसके दांत वज्रके समान कठिन हों।

अबरक है। इनमेंसे वज्र नामक अबरकको अग्निमें डालनेसे वज्रकी तरह स्थिर भावमें रहता है, कुछ भी विकृत नहीं होता। यह अबरक अन्य सभी अबरकोंसे उमदा होता है। इससे ज्वरादिरोग प्रशमित होता है तथा इससे अकालमृत्यु नहीं होती। अबरकको शोधन करके काममें लाना चाहिये। शोधित अबरक ही गुणकारक होता है।

शोधितका गुण—कषाय, मधुररस, शीतवीर्य, आयुष्कर, धातुवर्द्धक तथा त्रिदोष, व्रण, प्रमेह, कुष्ठ, प्लीहा, उदर, ग्रन्थि, विष और कृमिनाशक। नित्य सेवन करनेसे यह रोगनाशक, शरीरकी दृढ़तासम्पादक, वीर्यवर्द्धक, अत्यन्त कोमलताजनक, परमायुवर्द्धक, पुत्रजनक, सिंह सदृश विक्रमजनक, अकालमृत्युनाशक तथा प्रति दिन सौ स्त्री रमण करनेकी शक्तिजनक होता है।

अशोधितका गुण—पीड़ाजनक तथा कुष्ठ, क्षय, पाण्डु, शोथ, हृद्गत और पार्श्वगत वेदना तथा शरीरकी गुरुताका उत्पादक। अभ्र शब्द देखो।

१० कोकिलाक्षवृक्ष। ११ श्वेत कुश। १२ थूहरका पेड़, सेहुंड़। १३ कृष्णके एक प्रपौत्र जो रुक्मिणीगर्भजात प्रद्युम्नके पुत्र थे। १४ विश्वामित्रके एक पुत्रका नाम। १५ भाला, बरछा। १६ ज्योतिषमें २२ व्यतीपात योगोंमेंसे एक। १७ वास्तुविद्याके अनुसार वह स्तम्भ जिसका मध्य भाग अष्टकोण हो। १८ विष्णुके चरणका एक चिह्न। १९ अरुलबीर नामका पौधा।

२० विष्कम्भादि सत्ताईस योगोंके अन्तर्गत पन्द्रहवां योग। ज्योतिषशास्त्रमें लिखा है, कि वज्रयोगके आदि ९ दण्ड निन्दनीय हैं अर्थात् इन नौ दण्डोंमें यात्रादि कोई शुभ कर्म नहीं करना चाहिये। जिस बालकका इस योगमें जन्म होता, वह गुणी, गुणग्राही, बलवान्, तेजस्वी, रत्न और वस्त्रादिका परीक्षक तथा शत्रुनाशक होता है। (कोष्ठीप्रदीप) २१ बौद्धके मतसे चक्राकार चिह्नविशेष।

(त्रि०) २२ वज्रके समान कठिन, बहुत कड़ा या मजबूत। २३ घोर, दारुण।

वज्रक (सं० क्ली०) वज्र संज्ञायां कन्। १ वज्रक्षार। २ फलितज्योतिषके अनुसार सूर्यके आठ उपग्रहोंमेंसे एक जो सूर्यसे तेईसवां नक्षत्र होता है

वज्रकक्षार (सं० पु० क्ली०) वज्रक्षार।

वज्रकङ्कट (सं० पु०) वज्रः कङ्कटो देहावरणमस्य। हनुमान्‌का एक नाम।

वज्रकण्टक (सं० पु०) वज्रस्य कण्टकमिव तद्धारकत्वात्। १ स्नुहीवृक्ष, थूहर। २ कोकिलाक्ष वृक्ष, तालमखानाका पेड़।

वज्रकण्टशाल्मली (सं० स्त्री०) नरकभेद। भागवतपुराणके अनुसार अट्ठाईस नरकोंमेंसे यह नरक तेरहवां है। जो सब पापी सर्वाभिगामी हैं, यमलोकमें उसकी इस नरकमें गति होती है।

"यस्त्विह वै सर्वाभिगमस्तममुत्र निरये वर्त्तमानं वज्रकण्टकशाल्मलीमारोप्य निष्कर्षन्ति॥" (भागवत ५।२६।२१)

वज्रकन्द (सं० पु०) वज्राकारः कन्दोऽस्य। १ वज्रकर्ण, शकरकंद। २ वनशूरण, जंगली सूरण या जिमीकंद। ३ तालके वृक्षका फूल।

वज्रकपाटवत् (सं० त्रि०) सुदृढ़ द्वारयुक्त।

वज्रकपाली (सं० पु०) वज्रकपोलोऽस्यास्तीति इनि। बौद्धोंकी महायान शाखाके अनुसार एक बुद्धका नाम। पर्याय—हेरम्ब, हेरुक, चक्रसम्बर, देव, त्रिशुम्भीश, शशिशेखर, वज्रटीक।

वज्रकर्ण (सं० पु०) वज्रकन्द, शकरकन्द।

वज्रकाञ्जिक (सं० क्ली०) स्त्रीरोगाधिकारका औषधविशेष। प्रस्तुत प्रणाली—कांजी १ सेर, कल्कार्थ पीपलका मूल, पीपल, सोंठ, अजवायन, जीरा, मंगरेला, हल्दी, दारुहल्दी, विट्लवण, सचल लवण, कुल मिला कर एक पल, पाकार्थ जल ४ सेर, शेष १ सेर, नियमपूर्वक पाक करे। यह कल्कके साथ पीना होता है। इसका सेवन करनेसे स्त्रियोंकी अग्निवृद्धि और आमशूल तथा कफ नष्ट हो कर बल, वीर्य तथा स्तनदुग्धकी वृद्धि होती है।

(भैषज्यरत्ना०)

वज्रकारक (सं० पु०) नखी नामक गन्धद्रव्य।

वज्रकालिका (सं० स्त्री०) वज्रोपलक्षिता कालिका। १ बुद्धकी माता मायादेवीका एक नाम। २ शाक्यमुनिकी माता।

वज्रकाली (सं० स्त्री०) १ जिनशक्तिभेद। २ हिन्दूदेवीमूर्त्तिभेद।

वज्रकीट (सं० पु०) एक प्रकारका कीड़ा जो पत्थर या काठको काट कर उसमें छेद कर देता है। कहते हैं, कि गण्डक नदीमें इन कीटोंके द्वारा काटी हुई शिला ही शालग्रामकी बटिया बन जाती है। वज्रदंष्ट्र देखो।

वज्रकाल (सं० पु०) वज्र।

वज्रकुक्षि (सं० क्ली०) पर्वतगुहाभेद।

वज्रकूट (सं० पु०) १ एक पर्वतका नाम। २ हिमालयकी चोटी परका एक एक प्राचीन नगर।

वज्रकृच्छ्र (सं० पु०) प्रायश्चित्तविशेष।

वज्रकेतु (सं० पु०) असुरभेद। यह नरकका राजा था।

वज्रक्षार (सं० क्ली०) वज्र संज्ञकः क्षारं। क्षारविशेष। पर्याय—वज्रक, क्षारश्रेष्ठ, विदारक, सार, चन्दनार, धूमोत्थ, धूमजाङ्कक। गुण—अति उष्ण, तीक्ष्ण, क्षारक, रेचन, गुल्म, उदरपीड़ा, विष्टम्भ और श्रमनाशक।

प्लीहारोगाधिकारमें औषधविशेष। प्रस्तुत प्रणाली—सामुद्र लवण, सैन्धव लवण, काच लवण, यवक्षार, सौवर्चल लवण, सोहागा और सार्जिक्षार इनके बराबर बराबर चूर्णको अकवन और थूहरके दूधमें तीन दिन भावना दे कर एक तांबेके बरतनमें रखे और मुंह बंद कर लेप लगा दे। पीछे उसे पुटपाक करके चूर्ण करे। इसके बाद त्रिकटु, त्रिफला, जीरा, हरिद्रा और चिता इनके समान भाग चूर्णको मिश्रित कर क्षारका अर्द्धांश देना होगा। मात्रा दोषके बलानुसार स्थिर करनी चाहिये। यदि वायुकी अधिकता रहे, तो उष्ण जल अनुपान, श्लेष्माकी अधिकता रहनेसे घृत, पित्तकी अधिकता रहनेसे गोमूत्र तथा त्रिदोषदुष्ट होनेसे कांजी अनुपानके साथ सेवन करना होता है। इस औषधके सेवनसे सभी प्रकारके उदरी, गुल्म, शूल, अग्निमान्द्य, अजीर्ण और प्लीहादि रोग अति शीघ्र प्रशमित होते हैं।

(रसेन्द्रसारस० प्लीहारोगाधि०)

वज्रगर्भ (सं० पु०) बौद्धोंकी महायान शाखाके अनुसार एक बोधिसत्त्वका नाम।

वज्रगोप (सं० पु०) इन्द्रगोपकीटभेद, बीरबहूटी नामका कीड़ा।

वज्रगढ़—बम्बईप्रदेशके पूना जिलान्तर्गत एक गिरिदुर्ग।

वज्रगुग्गुलु (सं० क्ली०) औषधविशेष।

वज्रगोप (सं० पु०) इन्द्रगोपकीटभेद, बीरबहूटी।

वज्रघात (सं० पु०) वज्रपात।

वज्रघोष (सं० त्रि०) वज्रपतनका कड़कड़ शब्द।

वज्रचर्मा (सं० पु०) वज्रवत् दुर्भेद्यं चर्म यस्य। गण्डक, गैंडा।

वज्रचुञ्चु (सं० पु०) गृध्रपक्षी।

वज्रजित् (सं० पु०) वज्रं जयति तस्य आघात सहनेनेति, जि-क्विप्, तुगागमश्च। गरुड़।

वज्रज्वलन (सं० पु०) विद्युत्, बिजली।

वज्रज्वाला (सं० स्त्री०) वज्रस्य ज्वाला। १ वज्राग्नि। २ विरोचन दैत्यकी पोतीका नाम। ३ कुम्भकर्णकी पत्नी।

वज्रटङ्कशास्त्री—भवानन्दीयखण्डन और वज्रटङ्कीय न्यायग्रन्थके प्रणेता।

वज्रटीक (सं० पु०) वज्रेण वज्रकपालेन टीकते प्रकाशते इति टीक क। वज्रकपालि नामक बुद्ध।

वज्रडाकिनी (सं० स्त्री०) महायान शाखाके तान्त्रिक बौद्धोंकी उपास्य डाकिनियोंका एक वर्ग। इसके अन्तर्गत ये आठ डाकिनियाँ मानी जाती हैं—श्वेतवर्णा लास्या, पीतवर्णा माला, रक्तवर्णा गीता, श्यामवर्णा नृत्या, शुक्लवर्णा पुष्पहस्ता पुष्पा, पीतवर्णा धूपहस्ता धूपा, रक्तवर्णा दीपहस्ता दीपा तथा गन्धहस्ता हरितवर्णा गन्धा। इनकी पूजा नेपाल और तिब्बतमें होती है। इन अष्टवज्रडाकिनी को बहुतेरे अष्टमातृकाका रूपान्तर मानते हैं।

वज्रणखा (सं० स्त्री०) रमणीभेद। (पा ४।१।५८)

वज्रतर (सं० पु०) ईंटकी जोड़ाईका एक प्रकारका मसाला।

वज्रतीर्थ (सं० पु०) तीर्थभेद। वज्रतीर्थमाहात्म्यमें इसका सविस्तर परिचय है।

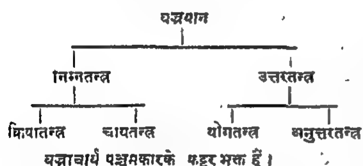
वज्रतुण्ड (सं० पु०) वज्रं वज्रतुल्यं कठिनं तुण्डं यस्य। १ गरुड़। २ गणेश। ३ गृध्र, गीध। ४ मशक, मच्छड़। ५ स्नुहीवृक्ष, थूहर। (त्रि०) ६ वज्रतुण्डधर।

वज्रतुल्य (सं० पु०) वज्रेण तुल्यः। वज्रके समान।

वज्रदंष्ट्र (सं० पु०) वज्र इव दंष्ट्रा यस्य। १ इन्द्रगोपकीट, बीरबहूटी। २ राक्षसभेद। ३ असुरभेद। ४ सह्याद्रिवर्णित एक राजा। (त्रि०) ५ वज्रकी तरह दंष्ट्रायुक्त, जिसके दांत वज्रके समान कठिन हों।

मन्त्रगुरु हैं। एक एक विहार एक एक वज्राचार्यके अधीन हैं। नेपालमें बहुत-से विहार हैं, अतएव बहुत-से वज्राचार्य भी देखे जाते हैं। नेपालके क्या बांड़ा, क्या साधारण बौद्ध गृहस्थ सभी अवनत मस्तकसे वज्राचार्यके आदेश और उपदेशका पालन करते हैं। नेपाल देखो।

नेपालके साधारण मुण्डितकेश बौद्धगण वज्र धारण नहीं कर सकते। जो यह वज्रधारणके अधिकारी हैं, वे ही वज्राचार्य कहलाते हैं। नेवारियोंके निकट वज्राचार्य *'गुभाजु' या 'गुभाल' नामसे भी प्रसिद्ध हैं। वज्राचार्यका अनुष्ठेय वा प्रवर्त्तित मत ही वज्रयान कहलाता है।* भूटान और नेपालके बौद्ध सभी वज्रयान-मतावलम्बी घोर तान्त्रिक हैं। सभी वज्रयान निम्नोक्तरूपमें विभक्त हैं:—



वज्राचार्य पञ्चप्रकारके कट्टर भक्त हैं।

वज्रादित्य—काश्मीरके एक राजाका नाम। इनके पिताका नाम ललितादित्य था। ये कुवलयादित्यके छोटे भाई थे। भाईके मरने पर ये काश्मीरके सिंहासन पर अधिरूढ़ हुए। वज्रादित्यके दो नाम थे—वप्पियक और ललितादित्य। वज्रादित्य बड़ा ही दुराचारी और क्रूर था। इसने परिहासपुर नामक गांवसे अपने पिताका बहुत-सा अमूल्य धन हरण किया था। इसके राज्यमें सर्वत्र म्लेच्छाचार हो गया था। म्लेच्छोंके हाथ इसने अनेक मनुष्योंको बेचा था। यह पापी राजा सर्वदा रानियोंके साथ रह कर अपना समय बिताता था। इसने ७ वर्ष राज्य किया था। अन्तमें क्षयरोगसे इसका देहान्त हुआ।

वज्राभ (सं० पु०) वज्रस्य हीरकस्य आभा इव आभा यस्य। १ दुग्धपाषाण, फुलखड़ी। (त्रि०) २ हीरकतुल्य दीप्तिविशिष्ट, हीरेके समान चमक दमकवाला।

वज्राभिषवन (सं० पु०) प्राचीन कालका एक प्रकारका अनुष्ठान। इसमें तीन दिन तक जौका सत्तू पी कर रहते थे।

वज्राभ्यास (सं० पु०) गुणकभेद (Crossmultiplication)।

वज्राभ्र (सं० पु०) एक प्रकारका अबरक जो काले रंगका होता है।

वज्राम्बुजा (सं० स्त्री०) तन्त्रोक्त देवीभेद।

वज्रायुध (सं० त्रि०) वज्रं आयुधो यस्य। १ इन्द्र। २ एक प्राचीन कवि।

वज्रावर्त्त (सं० पु०) एक मेघका नाम।

वज्राशनि (सं० पु०) वज्र।

वज्रासन (सं० क्ली०) १ हठयोगके चौरासी आसनोंमेंसे एक। इसमें गुदा और लिङ्गके मध्यके स्थानको बाएं पैरकी एड़ीसे दबा कर उसके ऊपर दाहिना पैर रख कर पालथी लगा कर बैठते हैं। २ वह शिला जिस पर बैठ कर बुद्धदेवने बुद्धत्व लाभ किया था। यह गयाक्षेत्रमें बोधिद्रुमके नीचे थी।

वज्रास्थिशृङ्खला (सं० स्त्री०) कोकिलाक्ष वृक्ष।

वज्राहत (सं० त्रि०) वज्राघात द्वारा मरा हुआ।

वज्राहिका (सं० स्त्री०) कपिकच्छु, केवांच।

वज्राह्व (सं० क्ली०) तगरपादुक।

वज्रिजित् (सं० पु०) १ इंद्रविजयी। २ गरुड़।

वज्रिणी (सं० स्त्री०) वज्रधारी।

वज्रिवस् (सं० त्रि०) वज्रधारी।

वज्री (सं० पु०) वज्रोऽस्त्यस्येति वज्र (अत इनि ठनौ। पा ५।२।११५) इति इनि। १ वज्रधारी इंद्र। २ बुद्ध वा जैनसाधु। ३ इष्टिकाभेद, एक प्रकारकी ईंट। ४ स्नुही, थूहर। ५ तिधारा, नरसेज।

वज्रेश्वर (सं० पु०) नेपालस्थ तीर्थभेद। यहां प्राचीन हिंदू और बौद्धमिश्रित तान्त्रिकाचार विद्यमान है।

वज्रेश्वरी (सं० स्त्री०) बौद्धदेवीभेद।

वज्रेश्वरीविद्या—गुप्त विद्याभेद। इसका दूसरा नाम वज्रवाहनिका विद्या है। नियमपूर्वक वज्र निर्माण करके इस विद्या द्वारा अभिषेक करना चाहिये एवं काञ्चन द्वारा उसमें मन्त्र लिखना चाहिये। पीछे किसी जितेन्द्रिय व्यक्तिको चाहिये, कि वज्र ग्रहण करके एक लाख जप कर वज्रकुण्डमें घृतादि द्वारा उसका दशांश होम करे इससे वज्र सर्वशत्रु-विजयकारी बन जाता है। इस प्रकार

जपसे पवित्र किया हुआ वज्र राजाओंको रखना उचित है।

प्राचीन कालमें इन्द्रके उपकारार्थ ब्रह्माने महादेवके पास इसका अभ्यास किया था। किसी समय इन्द्रने विश्वरूपकी बतलाई हुई विद्या द्वारा सोमरस तैयार करके विश्वरूपको मार डाला। इसके बाद इन्द्रने सोमयोगसे हुत हविःको प्रार्थना की। प्रजापति त्वष्टाने अपने पुत्र विश्वरूपके मरनेसे कुपित हो कर उन्हें सोमरस देनेसे इनकार किया। इस पर इन्द्र अत्यन्त क्रोधित हुए। वे जबरदस्ती सोमरस पी गये। प्रजापतिने 'इन्द्रके शत्रुकी वृद्धि हो' कह कर यज्ञमें आहुति डाली। उससे वृत्रासुर प्रकट हुआ। पीछे उस राक्षसने इन्द्र पर बड़े वेगसे आक्रमण किया। इन्द्र भयसे विह्वल हो कर ब्रह्माकी शरणमें गये। तब ब्रह्माने कहा—"हे अरिन्दम! तुम अभी वज्रेश्वरी मन्त्रसे अभिषिक्त वज्रको छोड़ो, शीघ्र ही तुम्हारे शत्रुका नाश होगा।

इस वज्रेश्वरी मन्त्रमें पहले गायत्री, उसके बाद "ओम् फट्, जहि इत्यादि" मन्त्र हैं। यह ब्राह्मी विद्या सब शत्रुओंका नाश करनेवाली है। इसके द्वारा वशीकरण, विद्वेष, उच्चाटन, स्तम्भन, मोहन, ताड़न, उत्सादन, छेदन, मारण, प्रतिबन्धन, सेनास्तम्भन सभी कर्म सिद्ध होते हैं।

"आयाहि वरदे देवि", इत्यादि मन्त्र द्वारा देवीको आवाहन कर पूजा जपादि बाह्य कार्य तथा यज्ञादि क्रिया करके 'ब्राह्मणेभ्योऽभ्यनुज्ञाता गच्छ देवी यथासुखं' मन्त्र द्वारा देवीको विसर्जन करना चाहिये। इसके बाद अग्नि स्थापन करके होम करना उचित है। इस विद्याके द्वारा सब तरहके कार्य सिद्ध हो जाते हैं। वश्यार्थी जातिपुष्प द्वारा तीन अयुत अथ अर्थात् तीस हजार बार होम करें। घृत करवीर द्वारा होम करनेसे आकर्षणकी सिद्धि होती है। लांगलक पुष्प द्वारा होम करनेसे विद्वेष सिद्ध होता है। तैलके होमसे उच्चाटन, मधु द्वारा स्तम्भन, तिल होमसे मोहन, खर, गज तथा उष्ट्रके रुधिरसे ताड़न, कुश होमसे पातन, रोटी बीजसे मारण तथा उच्चाटन, पानपत्र द्वारा बन्धन एवं मनःशिलासे होम करनेसे सैन्यस्तम्भन होता है। इनके अलावा घृत होमसे सिद्धि, दुग्ध होमसे विशुद्धि, तिल होमसे रोगनाश, पद्म होमसे धन एवं मधुकपुष्प द्वारा होम करनेसे कान्तिकी वृद्धि होती है। सावित्री द्वारा ३० हजार बार होम करनेसे सब तरहकी जय प्राप्त होती है।

वज्रोदरी (सं० स्त्री०) राक्षसीभेद।

वज्रोली (हिं० स्त्री०) हठयोगकी एक मुद्राका नाम।

वज वज—कलकत्तासे १५ मील दक्षिणमें अवस्थित एक बड़ा ग्राम। यह स्थान अभी वाणिज्य-बन्दररूपमें गिना जाता है। यहां १८वीं सदीके मध्यभागमें नवाबी सेनाके साथ अङ्गरेजोंका एक युद्ध हुआ था। आखिर अङ्गरेजी-सेनाने दुर्गको अधिकार किया। क्लाइव देखो।

वञ्चक (सं० पु०) वञ्चयते प्रतारयतीति वञ्च-णिच्-ण्वुल्। १ शृगाल, गीदड़। २ गृहबभ्रु, सौंधियार। ३ चोर, ठग। (त्रि०) ४ धूर्त्त, ठग। ५ खल।

वञ्चथ (सं० पु०) वञ्चति प्रतारयतीति वञ्च (शीङ्शपीति। उण् ३।११३) इति अथ। १ धूर्त। २ वञ्चना। ३ कोकिल।

वञ्चन (सं० क्ली०) वञ्च-भावे-ल्युट्। प्रतारण, धोखा देना या खाना। नीतिशास्त्रमें लिखा है, कि किसीसे ठग जाने पर बुद्धिमान्को चाहिये कि उसे प्रकाश न करें।

वञ्चनता (सं० स्त्री०) वञ्चनस्य भावः तल-टाप्। वञ्चनका भाव या धर्म।

वञ्चनवत् (सं० त्रि०) वञ्चन अस्त्यर्थे मतुप् मस्य व। वञ्चनविशिष्ट, जो ठगा गया हो।

वञ्चना (सं० स्त्री०) वञ्च णिच् युच्-टाप्। प्रतारणा, धोखा, फरेब, छल।

वञ्चनीय (सं० त्रि०) वञ्च-अनीयर्। प्रतारणीय, ठगने लायक।

वञ्चयत् (सं० त्रि०) वञ्च-णिच्-शतृ। वञ्चक, ठग।

वञ्चयितव्य (सं० त्रि०) वञ्च-णिच् तव्य। वञ्चनाके योग्य, ठगने लायक।

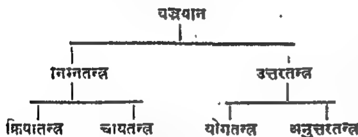
वञ्चित (सं० त्रि०) वञ्च्यते स्मेति वञ्च णिच्-क्त। १ वञ्चनाविशिष्ट, धोखेमें आया हुआ। २ अलग किया हुआ। ३ वियुक्त, अलग।

वञ्चिन् (सं० त्रि०) वञ्चनाकारी, धोखेमें डालनेवाला।

वञ्चुक (सं० त्रि०) वञ्चति प्रतारयतीति वञ्च-उकञ्। प्रतारणशील, धूर्त्त, ठग।

मन्त्रगुरु हैं। एक एक विहार एक एक वज्राचार्यके अधीन हैं। नेपालमें बहुत-से विहार हैं, अतएव बहुत-से वज्राचार्य भी देखे जाते हैं। नेपालके क्या बांड़ा, क्या साधारण बौद्ध गृहस्थ सभी अवनत मस्तकसे वज्राचार्यके आदेश और उपदेशका पालन करते हैं। नेपाल देखो।

नेपालके साधारण मुण्डितकेश बौद्धगण वज्र धारण नहीं कर सकते। जो यह वज्रधारणके अधिकारी हैं, वे ही वज्राचार्य कहलाते हैं। नेवारियोंके निकट वज्राचार्य 'गुभाजु' या 'गुभाल' नामसे भी प्रसिद्ध हैं। वज्राचार्यका अनुष्ठेय या प्रवर्त्तित मत ही वज्रयान कहलाता है। भूटान और नेपालके बौद्ध सभी वज्रयान मतावलम्बी घोर तान्त्रिक हैं। सभी वज्रयान निम्नोक्तरूपमें विभक्त हैं:—



वज्राचार्य पञ्चमकारके कट्टर भक्त हैं।

वज्रादित्य—काश्मीरके एक राजाका नाम। इनके पिताका नाम ललितादित्य था। ये कुवलयादित्यके छोटे भाई थे। भाईके मरने पर ये काश्मीरके सिंहासन पर अधिरूढ़ हुए। वज्रादित्यके दो नाम थे—वप्पियक और ललितादित्य। वज्रादित्य बड़ा ही दुराचारी और क्रूर था। इसने परिहासपुर नामक गांवसे अपने पिताका बहुत-सा अमूल्य धन हरण किया था। इसके राज्यमें सर्वत्र म्लेच्छाचार हो गया था। म्लेच्छोंके हाथ इसने अनेक मनुष्योंको बेचा था। यह पापी राजा सर्वदा रमणियोंके साथ रह कर अपना समय बिताता था। इसने ७ वर्ष राज्य किया था। अन्तमें क्षयरोगसे इसका देहान्त हुआ।

वज्राभ (सं० पु०) वज्रस्य हीरकस्य आभा इव आभा यस्य। १ दुग्धपाषाण, फुलखड़ी। (त्रि०) २ हीरकतुल्य दीप्तिविशिष्ट, हीरेके समान चमक दमकवाला।

वज्राभिषवन (सं० पु०) प्राचीन कालका एक प्रकारका अनुष्ठान। इसमें तीन दिन तक जौका सत्तू पी कर रहते थे।

वज्राभ्यास (सं० पु०) गुणकभेद (Crossmultiplication)।

वज्राभ्र (सं० पु०) एक प्रकारका अबरक जो काले रंगका होता है।

वज्राम्बुजा (सं० स्त्री०) तन्त्रोक्त देवीभेद।

वज्रायुध (सं० त्रि०) वज्रं आयुधो यस्य। १ इन्द्र। २ एक प्राचीन कवि।

वज्रावर्त (सं० पु०) एक मेघका नाम।

वज्राशनि (सं० पु०) वज्र।

वज्रासन (सं० क्ली०) १ हठयोगके चौरासी आसनोंमेंसे एक। 'इसमें गुदा और लिङ्गके मध्यके स्थानको बाएं पैरकी एड़ीसे दबा कर उसके ऊपर दाहिना पैर रख कर पालथी लगा कर बैठते हैं। २ वह शिला जिस पर बैठ कर बुद्धदेवने बुद्धत्व लाभ किया था। यह गयाजीमें बोधिद्रुमके नीचे थी।

वज्रास्थिशृङ्खला (सं० स्त्री०) कोकिलाक्ष वृक्ष।

वज्राहत (सं० त्रि०) वज्राघात द्वारा मरा हुआ।

वज्राह्विका (सं० स्त्री०) कपिकच्छु, केवांच।

वज्राह्व (सं० क्ली०) तगरपादुक।

वज्रिजित् (सं० पु०) १ इन्द्रविजयी। २ गरुड़।

वज्रिणी (सं० स्त्री०) वज्रधारी।

वज्रिवस् (सं० त्रि०) वज्रधारी।

वज्री (सं० पु०) वज्रोऽस्त्यस्येति वज्र ; अत इनि ठनौ। पा ५।२।११५) इति इनि। १ वज्रधारी इन्द्र। २ बुद्ध या जैनसाधु। ३ इष्टिकाभेद, एक प्रकारकी ईंट। ४ स्नुही, थूहर। ५ तिधारा, नरसेज।

वज्रेश्वर (सं० पु०) नेपालस्थ तीर्थभेद। यहां प्राचीन हिंदू और बौद्धमिश्रित तान्त्रिकाचार विद्यमान है।

वज्रेश्वरी (सं० स्त्री०) बौद्धदेवीभेद।

वज्रेश्वरीविद्या—गुप्त विद्याभेद। इसका दूसरा नाम वज्रवाहनिका विद्या है। नियमपूर्वक वज्र निर्माण करके इस विद्या द्वारा अभिषेक करना चाहिये एवं काञ्चन द्वारा उसमें मन्त्र लिखना चाहिये। पीछे किसी जितेन्द्रिय व्यक्तिको चाहिये, कि वज्र ग्रहण करके एक लाख जप कर वज्रकुण्डमें घृतादि द्वारा उसका दशांश होम करे इससे वज्र सर्वशत्रु-विजयकारी बन जाता है। इस प्रकार

जपसे पवित्र किया हुआ वज्र राजाओंको रखना उचित है।

प्राचीन कालमें इन्द्रके उपकारार्थ ब्रह्माने महादेवके पास इसका अभ्यास किया था। किसी समय इन्द्रने विश्वरूपकी बतलाई हुई विद्या द्वारा सोमरस तैयार करके विश्वरूपको मार डाला। इसके बाद इन्द्रने सोमयोगसे हुत हविःको प्रार्थना की। प्रजापति त्वष्टाने अपने पुत्र विश्वरूपके मरनेसे कुपित हो कर उन्हें सोमरस देनेसे इनकार किया। इस पर इन्द्र अत्यन्त क्रोधित हुए। वे जबरदस्ती सोमरस पी गये। प्रजापतिने 'इन्द्रके शत्रु की वृद्धि हो' कह कर यज्ञमें आहुति डाली। उससे वृत्रासुर प्रकट हुआ। पीछे उस राक्षसने इन्द्र पर बड़े वेगसे आक्रमण किया। इन्द्र भयसे विह्वल हो कर ब्रह्माकी शरणमें गये। तब ब्रह्माने कहा—"हे अरिन्दम! तुम अभी वज्रेश्वरी मन्त्रसे अभिषिक्त वज्रको छोड़ो, शीघ्र ही तुम्हारे शत्रुका नाश होगा।

इस वज्रेश्वरी मन्त्रमें पहले गायत्री, उसके बाद "ओम् फट्, अहि इत्यादि" मन्त्र हैं। यह ब्राह्मी विद्या सब शत्रुओंका नाश करनेवाली है। इसके द्वारा वशीकरण, विद्वेष, उच्चाटन, स्तम्भन, मोहन, ताड़न, उत्सादन, छेदन, मारण, प्रतिबन्धन, सेनास्तम्भन सभी कर्म सिद्ध होते हैं।

"आयाहि वरदे देवि" इत्यादि मन्त्र द्वारा देवीको आवाहन कर पूजा जपादि बाह्य कार्य तथा यज्ञादि क्रिया कारक 'ब्राह्मणेभ्योऽभ्यनुज्ञाता गच्छ देवी यथासुखं' मन्त्र द्वारा देवीको विसर्जन करना चाहिये। इसके बाद अग्नि स्थापन करके होम करना उचित है। इस विद्याके द्वारा सब तरहके कार्य सिद्ध हो जाते हैं। यज्ञार्थी जातिपुष्प द्वारा तीन अयुत तक अर्थात् तीस हजार बार होम करें। घृत करवीर द्वारा होम करनेसे आकर्षणकी सिद्धि होती है। लांगलक पुष्प द्वारा होम करनेसे विद्वेष सिद्ध होता है। तैलके होमसे उच्चाटन, मधु द्वारा स्तम्भन, तिल होमसे मोहन, खर, गज तथा उष्ट्रके रुधिरसे ताड़न, कुश होमसे पाटन, रोटी बीजसे मारण तथा उच्चाटन, पात्रपत्र द्वारा बन्धन एवं मनःशिलासे होम करनेसे सैन्यस्तम्भन होता है। इसके अलावा घृत होमसे सिद्धि, दुग्ध होमसे विशुद्धि, तिल होमसे रोगनाश, पद्म होमसे धन एवं मधुकपुष्प द्वारा होम करनेसे कान्तिकी वृद्धि होती है। सावित्री द्वारा ३० हजार बार होम करनेसे सब तरहकी जय प्राप्त होती है।

वज्रोदरी (सं० स्त्री०) राक्षसीभेद।

वज्रोली (हिं० स्त्री०) हठयोगकी एक मुद्राका नाम।

वज वज--कलकत्तासे १५ मील दक्षिणमें अवस्थित एक बड़ा ग्राम। यह स्थान अभी वाणिज्य-बन्दररूपमें गिना जाता है। यहां १८वीं सदीके मध्यभागमें नवाबी सेनाके साथ अङ्गरेजोंका एक युद्ध हुआ था। आखिर अङ्गरेजी-सेनाने दुर्गको अधिकार किया। क्लाइव देखो।

वञ्चक (सं० पु०) वञ्चयते प्रतारयतीति वञ्च-णिच् ण्वुल्। १ शृगाल, गीदड़। २ गृहबभ्रु, सौंधियार। ३ चोर, ठग। (त्रि०) ४ धूर्त्त, ठग। ५ खल।

वञ्चथ (सं० पु०) वञ्चति प्रतारयतीति वञ्च (शीङ्शपीति। उण् ३।११३) इति अथ। १ धूर्त्त। २ वञ्चना। ३ कोकिल।

वञ्चन (सं० क्ली०) वञ्च-भावे-ल्युट्। प्रतारण, धोखा देना या खाना। नीतिशास्त्रमें लिखा है, कि किसीसे ठग जाने पर बुद्धिमान्को चाहिये कि उसे प्रकाश न करें।

वञ्चनता (सं० स्त्री०) वञ्चनस्य भावः तल्-टाप्। वञ्चनका भाव या धर्म।

वञ्चनवत् (सं० त्रि०) वञ्चन अस्त्यर्थे मतुप् मस्य व। वञ्चनविशिष्ट, जो ठगा गया हो।

वञ्चना (सं० स्त्री०) वञ्च णिच् युच्-टाप्। प्रतारणा, धोखा, फरेब, छल।

वञ्चनीय (सं० त्रि०) वञ्च-अनीयर्। प्रतारणीय, ठगने लायक।

वञ्चयतृ (सं० त्रि०) वञ्च-णिच्-तृच्। वञ्चक, ठग।

वञ्चयितव्य (सं० त्रि०) वञ्च-णिच् तव्य। वञ्चनाके योग्य, ठगने लायक।

वञ्चित (सं० त्रि०) वञ्च्यते स्मेति वञ्च णिच्-क्त। १ वञ्चनाविशिष्ट, धोखेमें आया हुआ। २ अलग किया हुआ। ३ विमुख, अलग।

वञ्चिन् (सं० त्रि०) वञ्चनाकारी, धोखेमें डालनेवाला।

वञ्चुक (सं० त्रि०) वञ्चति प्रतारयतीति वञ्च-उकञ्। प्रतारणशील, धूर्त्त, ठग।

वज्र (सं० त्रि०) वन्‌च ण्यत् (वञ्चेर्गतौ। पा ७।३।६४) इति न कुत्वं। गमनीय, जाने लायक।

वञ्जनाचल—पर्वतभेद।

वञ्जरा (सं० स्त्री) नदीविशेष।

वञ्जुल (सं० पु०) वज्रतीति वञ्ज गतौ वाहुलकात् उलच्, नुम् च। १ तिनिश वृक्ष। २ अशोक वृक्ष। ३ स्थलपद्म-वृक्ष। ४ पक्षिविशेष। ५ वेतस वृक्ष, बेंतका पेड़।

वञ्जुलक (सं० पु०) १ वृक्षभेद। २ पक्षिभेद।

वञ्जुलद्रुम (सं० पु०) वञ्जुलो द्रुमः। अशोकवृक्ष।

वञ्जुलप्रिय (सं० पु०) वञ्जुलस्य प्रियः, वञ्जुलः प्रियश्चेति कर्मधारयो वा। वेतसवृक्ष, बेंत।

वञ्जुला (सं० स्त्री०) वञ्जुल-टाप्। १ अतिशय दुग्धवती गाभी, दुधारी गाय। २ एक नदीका नाम जो मत्स्यपुराणानुसार सह्याद्रि पर्वतसे निकलती है।

वञ्जुलावती (सं० स्त्री०) एक नदीका नाम जो दाक्षिणात्यके पर्वतसे निकलती है।

वट (सं० पु०) वटति वेष्टयति मूलेन वृक्षान्तरमिति वट पचाद्यच्। स्वनामख्यात छायावृक्ष, बरगदका पेड़। (Ficus Bengalenesis syn Ficus Indcia) स्थानीय नाम—हिन्दी—वट, बड़, बरगद; महाराष्ट्र—वट; कलिङ्ग—माल; तैलङ्ग—मर्रिचेट्ट, मारि, पेड्डि मरि; उत्कल—बोध; बङ्गला—बड़, वट; कोल—बोह; लेपछा—काङ्गि; मलयालम्—पेरमु, पेरलिनु; गोंड—वर्ली; उत्तर-पश्चिम—बोरा, कुर्कु; नेपाल—बोरहर; पस्तु—बागात्; हजारा—फग्वाडी; कनाड़ी—आलय, आलद, आल; ब्रह्म—पिन म्यौङ्ग; सिङ्गापुर—महानुग; अङ्गरेजी—बैनियन ट्री (Banyan tree); संस्कृत—पर्याय—न्यग्रोध, बहुपात्, वृक्षनाथ, यमप्रिय, रक्तफल, शृङ्गी, कर्मज, ध्रुव, क्षीरी, वैश्रवणावास, भाण्डीर, जटाल, रोहिण, अवरोही, विटपी, स्कन्दरुह, मण्डली, महाच्छाय, भृङ्गी, यक्षावास, यक्षतरु, पादरोहण, नील, शिफारुह, बहुपाद, वनस्पति।

हिमालयसे ले कर दक्षिण भारतके प्रायः सभी स्थानोंमें यह वृक्ष उत्पन्न होता देखा जाता है। साधारणतः यह ३०से १०० फीट तक ऊंचा होता है एवं शाखा-प्रशाखाओंसे परिपूर्ण हो कर दूर दूर तक फैल जाता है। इस वटवृक्षकी शीतल छाया आतपताप क्लिष्ट पथिकोंके मन हृदयको शीतल करती है एवं ग्रीष्म ऋतुकी कड़ी धूपमें प्रयास करनेवालोंके पक्षमें सभी वृक्षोंकी अपेक्षा इसकी छाया अधिक आनन्दप्रद होती है। कर्नल साइकसने नर्मदा नदी वक्षस्थ एक छोटे द्वीपके अन्तर्गत एक सुवृहत् वटवृक्षका उल्लेख किया है। यह जनसाधारणमें 'कवीरवट'के नामसे प्रसिद्ध है। कितने ही उसे वही सुप्राचीन वृक्ष समझते हैं जिसका वर्णन Nearchus ने अपने ग्रन्थमें किया था। पूनाकी (Gaz. Vol: XVIII) अन्य उपस्वकान्तर्गत मउ ग्राममें एक बहुत विस्तृत वटवृक्ष था। उसकी छायामें २० हजार मनुष्य स्वच्छन्दतापूर्वक बैठ सकते थे। इस वृक्षकी परिधि प्रायः २ हजार फीट एवं उसकी डालोंसे जितनी बरोह (Air roots) नीचे आई हैं, उन सबोंसे ३२० बरोहोंने तो मोटे मोटे स्तम्भकी भांति आकार धारण कर लिया है एवं अवशिष्ट प्रायः तीन हजार पतली जटाएं मृत्तिका संलग्न हो रही हैं। उन जटाओंके मध्य ७ हजार मनुष्य अनायास ही छिप सकते थे। नर्मदाकी भीषण बाढ़में उस द्वीपका एकांश धस जानेसे यह वृक्ष भी नष्ट हो गया।

एतद्भिन्न कलकत्ताके निकटवर्ती शिवपुर ग्रामस्थ रायल बोटानिकल गार्डेनमें एवं बम्बई प्रदेशके सतारा उद्यानमें इस तरहके दो वटवृक्ष हैं। शिवपुर भैषज्य-उद्यानके संरक्षक डाक्टर किंग विशेष पर्यवेक्षण करके कहते हैं कि, यह वृक्ष १ सौ वर्षसे भी अधिक प्राचीन है। यह १७८२ ई० में एक खजूर वृक्षके ऊपर पैदा हुआ था। उसकी २३२ जड़ें गोल गोल स्तम्भोंके रूपमें मिट्टीसे मिलती हैं। उनमें मूलस्तम्भ (काण्ड) का व्यास प्रायः ४२ फीट है। इसकी पत्रसमाच्छादित शाखा प्रशाखाओंकी छाया परिधि लगभग ८५७ फीटकी है। अभी भी यह वृक्ष उत्तरोत्तर बढ़ता जा रहा है। एवं और भी बढ़नेकी आशा की जाती है। १८८२ ई०में सताराके वटवृक्षका परिदर्शन करके मि० वार्नेर साहब लिखते हैं, कि यह वृक्ष कलकत्ताके वटवृक्षसे कहीं बड़ा है। उसकी परिधि १५८७ फीट है एवं यह उत्तर-दक्षिण ५६५ फीट तथा पूरब-पश्चिममें ४४२ फीट है।

वट और पीपलकी छाया घनी और ठण्ढी होती है। उनकी डालोंमेंसे जो जटाएं निकलती हैं, वे नीचे आ कर जड़ और तनेका काम देने लगती हैं जिससे वृक्षका विस्तार बहुत शीघ्रतासे होने लगता है। यही कारण है, कि बरगदके किसी बड़े वृक्षके नीचे सैकड़ों हजारों आदमी तक बैठ सकते हैं। इसीलिये ये वृक्ष पुण्यक्षेत्र रूपमें गिने जाते हैं। छायाके लिये ही कितने लोग सड़कके किनारे अथवा पुष्करिणीके तट पर पंचवटीका निर्माण करते हैं। पंजाबमें ये वृक्ष पथिकोंको निदाघ-शिशिरसे रक्षा करते हैं। इनसे एक ओर जितना लाभ है, दूसरी ओर उतनी ही हानि भी है। पक्षीसमूह यदि वटवृक्षके फलोंको खा कर किसी गृहकी छत पर या मन्दिरोंके शिखर पर विष्ठा त्याग करते हैं, तो उन विष्ठा-स्थित बीजोंसे वृक्ष उत्पन्न हो कर कुछ ही दिनोंमें दीवाल के अन्दर जड़ें घुसा देता है। उस समय दीवार तोड़ कर उस वृक्षको समूल नष्ट किये बिना निस्तार नहीं। अवहेला करनेसे यह वृक्ष शीघ्र ही बढ़ कर उस गृहको ध्वंस कर देता है। हिन्दू लोग पाप होनेके भयसे वट अथवा अश्वत्थ वृक्षको नष्ट करनेकी इच्छा नहीं करते। अत्यन्त यत्नके साथ जीवित वृक्ष मूलसहित उखाड़ कर दूसरे स्थानमें जमा देते हैं।

दक्षिण-भारतके रत्नगिरि जिलेमें वटवृक्षके ऊपर कर निर्दिष्ट है। कारण यह है, कि बादुर पक्षी साधारणतः Calophyllum inophyllum वृक्षके फलोंके बीजसहित विष्ठा त्याग करते हैं। इन बीजोंसे तेल निकलता है। अनेक वटवृक्षों पर लाह भी उत्पन्न होती देखी गई है। वटके दूधमें उसका चौथाई भाग सरसों तेल डाल कर आंच देनेसे एक प्रकारका गोंद तैयार होता है। वह गोंद चिड़ीमारके पक्षी पकड़नेके काममें आता है। आसामी लोग इससे एक प्रकारका कागज तैयार करते हैं। कोई कोई वटवृक्षको जड़ोंके रेशोंसे रस्सी बनाते हैं, किन्तु उससे कोई विशेष काम नहीं चलता।

दुग्धवत् वटवृक्षका लासा वेदनानाशक होता है। घातसे होनेवाली वेदनाके स्थान पर इसका प्रलेप करनेसे बहुत फायदा होता है। पाँवका तलवा फट जानेसे अथवा दन्त-पीड़ा होनेसे इसका दूध उस क्षत स्थान एवं दाँतोंकी जड़में लगानेसे यातनाका शीघ्र ही ह्रास हो जाता है। इसकी छालका गूदा पौष्टिक एवं बहुमूत्र रोगमें विशेष गुणदायक है। बीजका गुण शीतल तथा बलकर है। वटवृक्षके कोमल पत्ते उत्तप्त करके फोड़े पर लगानेसे पुल्टिसका काम करता है। गनोरिया रोगमें इसकी जड़का चूर्ण विशेष उपकारी होता है। यह सालसाका काम करता है।

इस वृक्षकी नई शाखाओंका काढ़ा रक्तोत्काशनाशक तथा जड़के कोमल अग्रभाग वमननिवारक होते हैं। शुष्क वटका दूध तथा फल स्खलनदोष (Spermatorrhaea), प्रमेह (gonorrhaea) नाशक एवं कामोद्दीपक माना गया है। कच्ची कली तथा दुग्धधारक-गुणविशिष्ट एवं अजीर्ण तथा उदरामय रोगमें विशेष हितकर है।

दुर्भिक्षके समयमें इसके लाल रंगके पके हुए फलको खा कर दरिद्र लोग अपने पेटकी ज्वाला शान्त करते हैं। हाथी, गाय आदि जानवर भी इसके पत्ते बड़े चावसे खाते हैं। इसकी लकड़ी विशेष उपकारी नहीं होती। सिर्फ पतली पतली सूखी डालियां जलावन (ईंधन)में काम आती हैं। Ficus elastica या दूधदार वट नामक और एक श्रेणीका वटवृक्ष देखा जाता है। उसका दूध रबरके समान ही गुणयुक्त होता है।

गुण—कषाय, मधुर, शिशिर, कफ, पित्तज्वरापहा, दाह, तृष्णा, मेह, व्रण तथा शोफनाशक।

वृक्षोंमें वट तथा अश्वत्थ ये दो वृक्ष ही हिन्दू-समाजमें पूजनीय गिने जाते हैं। हिन्दू लोग वट वृक्षको रुद्र-स्वरूप मानते हैं।

इन वृक्षोंके दर्शन, स्पर्श तथा सेवा करनेसे पाप दूर होते एवं दुःख, आपद तथा व्याधि जाती रहती हैं। अतएव ये वृक्ष रोपनेसे अशेष पुण्य संचय होता है। वैशाखादि पुण्य मासमें इन वृक्षोंको जड़में जल देनेसे पापोंका नाश होता है एवं नाना प्रकारकी सुख सम्पद् प्राप्त होती है।

२ कपर्दक, कौड़ी। ३ गोला। ४ मत्स्यविशेष, बड़ा। ५ साम्य, समान होनेका भाव। (स्त्री०) ६ मजमंडलके

वज्र (सं० त्रि०) वञ्च वयत् (वञ्चेर्गतौ। पा ७।३।६४) इति न कुत्वं। गमनीय, जाने लायक।

वञ्जनाचल—पर्वतभेद।

वञ्जरा (सं० स्त्री) नदीविशेष।

वञ्जुल (सं० पु०) वजतीति वज गतौ बाहुलकात् उलच्, नुम् च। १ तिनिश वृक्ष। २ अशोक वृक्ष। ३ स्थलपद्म-वृक्ष। ४ पक्षिविशेष। ५ वेतस वृक्ष, बेंतका पेड़।

वञ्जुलक (सं० पु०) १ वृक्षभेद। २ पक्षिभेद।

वञ्जुलद्रुम (सं० पु०) वञ्जुलो द्रुमः। अशोकवृक्ष।

वञ्जुलप्रिय (सं० पु०) वञ्जुलस्य प्रियः, वञ्जुलः प्रियश्चेति कर्मधारयो वा। वेतसवृक्ष, बेंत।

वञ्जुला (सं० स्त्री०) वञ्जुल टाप्। १ अतिशय दुग्धवती-गाभी, दुधारी गाय। २ एक नदीका नाम जो मत्स्यपुरा-णानुसार सह्याद्रि पर्वतसे निकलती है।

वञ्जुलावती (सं० स्त्री०) एक नदीका नाम जो दाक्षिणा-त्यके पर्वतसे निकलती है।

वट (सं० पु०) वटति वेष्टयति मूलेन वृक्षान्तरमिति वट पचाद्यच्। स्वनामख्यात छायावृक्ष, वरगदका पेड़। (Ficus Bengalenesis syn. Ficus Indcia) स्थानीय नाम—हिन्दी—वट, वड़, वरगद; महाराष्ट्र—वट; कलिङ्ग—माल; तैलङ्ग—मरिचेट्ट, मारि, पेड़िमरि; उत्कल:—बोद; बङ्गला—बड़, वट; कोल—बोद; लेपछा—काङ्गि, मलयालम्—पेरल्, पेरलिनु; गोंड—वरेली; उत्तर-पश्चिम—बोरा, फुर्कु; नेपाल—बोरहर; पश्तु—बागात्; हजारा—फगवाड़ी; कनाड़ी—आलद, आलद, आल; ब्रह्म—पिन न्योङ्ग; सिङ्गापुर—महानुग; अङ्गरेजी—बैनियन ट्री (Banyan tree); संस्कृत—पर्य्याय—न्यग्रोध, बहुपात्, वृक्षनाथ, यमप्रिय, रक्तफल, शृङ्गी, कर्मज, ध्रुव, क्षीरी, वैश्रवणावास, भाण्डीर, जटाल, रोहिण, अवरोही, विटपी, स्कन्धरुह, मण्डली, महाच्छाय, भृङ्गी, यक्षावास, यक्षतरु, पादरोहण, नील, शिफारुह, बहुपाद, वनस्पति।

हिमालयसे ले कर दक्षिण भारतके प्रायः सभी स्थानोंमें यह वृक्ष उत्पन्न होता देखा जाता है। साधारणतः यह ३०से १०० फीट तक ऊंचा होता है एवं शाखा-प्रशाखाओंसे परिपूर्ण हो कर दूर दूर तक फैल जाता है। इस वटवृक्षकी शीतल छाया आतपताप क्लिष्ट पथिकोंके तन हृदयको शीतल करती है एवं ग्रीष्म ऋतुकी कड़ी धूपमें प्रवास करनेवालोंके पक्षमें सभी वृक्षोंकी अपेक्षा इसकी छाया अधिक आनन्दप्रद होती है। कर्नल साइकसने नर्मदा नदी वक्षस्थ एक छोटे द्वीपके अन्तर्गत एक सुवृहत् वटवृक्षका उल्लेख किया है। यह जन-साधारणमें 'कवीरवट'के नामसे प्रसिद्ध है। कितने तो उसे वही सुप्राचीन वृक्ष समझते हैं जिसका वर्णन Nearchus ने अपने ग्रन्थमें किया था। पूनाकी (Gaz. Vol. XVIII) अन्ध उपत्यकान्तर्गत मउ ग्राममें एक बहुत विस्तृत वटवृक्ष था। उसकी छायामें २० हजार मनुष्य स्वच्छन्दतापूर्वक बैठ सकते थे। इस वृक्षकी परिधि प्रायः २ हजार फीट एवं उसकी डालोंसे जितने बरोह (Air roots) नीचे आई हैं, उन सबोंमें ३२० बरोहोंने तो मोटे मोटे स्तम्भकी भांति आकार धारण कर लिया है एवं अवशिष्ट प्रायः तीन हजार पतली जटाएं मृत्तिका संलग्न हो रही हैं। उन जटाओंके मध्य ७ हजार मनुष्य अनायास हो छिप सकते थे। नर्मदाकी भीषण बाढ़में उस द्वीपका एकांश धस जानेसे यह वृक्ष भी नष्ट हो गया।

एतद्भिन्न कलकत्ताके निकटवर्त्ती शिवपुर प्रासस्य रायल बोटानिकल गार्डनमें एवं बम्बई प्रदेशके सतारा उद्यानमें इस तरहके दो वटवृक्ष हैं। शिवपुर भैषज्य-उद्यानके संरक्षक डाक्टर किंग विशेष पर्य्यवेक्षण करके कहते हैं कि, यह वृक्ष १ सौ वर्षसे भी अधिक प्राचीन है। यह १७८२ ई० में एक खजूर वृक्षके ऊपर पैदा हुआ था। उसकी २३२ जड़ें गोल गोल स्तम्भोंके रूपमें मिट्टीसे मिलती हैं। उनमें मूलस्तम्भ (काण्ड) का व्यास प्रायः ४२ फीट है। इसकी पत्रसमाच्छादित शाखा प्रशाखाओंकी छाया परिधि लगभग ८५७ फीटकी है। अभी भी यह वृक्ष उत्तरोत्तर बढ़ता जा रहा है। एवं और भी बढ़नेकी आशा की जाती है। १८८२ ई०में सताराके वटवृक्षका परिदर्शन करके मि० वालेर साहब लिखते हैं, कि यह वृक्ष कलकत्ताके वटवृक्षसे कहीं बड़ा है। उसकी परिधि १५८७ फीट है एवं यह उत्तर-दक्षिण ५६५ फीट तथा पूरब-पश्चिममें ४४२ फीट है।

वट और पीपलकी छाया घनी और ठण्ढी होती है। उनकी डालोंमेंसे जो जटाएं निकलती हैं, वे नीचे आ कर जड़ और तनेका काम देने लगती हैं जिससे वृक्षका विस्तार बहुत शीघ्रतासे होने लगता है। यही कारण है, कि बरगद्के किसी बड़े वृक्षके नीचे सैकड़ों हजारों आदमी तक बैठ सकते हैं। इसीलिये ये वृक्ष पुण्यक्षेत्र रूपमें गिने जाते हैं। छायाके लिये ही कितने लोग सड़कके किनारे अथवा पुष्करिणीके तट पर पंचवटीका निर्माण करते हैं। पंजाबमें ये वृक्ष पथिकोंको निशा-शिशिरसे रक्षा करते हैं। इनसे एक ओर जितना लाभ है, दूसरी ओर उतनी ही हानि भी है। पक्षीसमूह यदि वटवृक्षके फलोंको खा कर किसी गृहकी छत पर या मन्दिरोंके शिखर पर विष्ठा त्याग करते हैं, तो उन विष्ठा-स्थित बीजोंसे वृक्ष उत्पन्न हो कर कुछ ही दिनोंमें दीवाल के अन्दर जड़ें घुसा देता है। उस समय दीवार तोड़ कर उस वृक्षको समूल नष्ट किये विना निस्तार नहीं। अवहेला करनेसे यह वृक्ष शीघ्र ही बढ़ कर उस गृहको ध्वंस कर देता है। हिन्दू लोग पाप होनेके भयसे वट अथवा अश्वत्थ वृक्षको नष्ट करनेकी इच्छा नहीं करते। अत्यन्त यत्नके साथ जीवित वृक्ष मूलसहित उखाड़ कर दूसरे स्थानमें जमा देते हैं।

दक्षिण-भारतके रत्नगिरि जिलेमें वटवृक्षके ऊपर कर निर्दिष्ट है। कारण यह है, कि बादुर पक्षी साधारणतः Calophyllum inophyllum वृक्षके फलोंके बीजसहित विष्ठा त्याग करते हैं। इन बीजोंसे तेल निकलता है। अनेक वटवृक्षों पर लाह भी उत्पन्न होती देखी गई है। वटके दूधमें उसका चौथाई भाग सरसों तेल डाल कर आंच देनेसे एक प्रकारका गोंद तैयार होता है। यह गोंद चिड़ीमारके पक्षी पकड़नेके काममें आता है। आसामी लोग इससे एक प्रकारका कागज तैयार करते हैं। कोई कोई वटवृक्षकी जड़ोंके रेशोंसे रस्सी बनाते हैं, किन्तु उससे कोई विशेष काम नहीं चलता।

दुग्धवत् वटवृक्षका लासा वेदनानाशक होता है। वातसे होनेवाली वेदनाके स्थान पर इसका प्रलेप करनेसे बहुत फायदा होता है। पाँवका तलवा फट जानेसे अथवा दन्त-पीड़ा होनेसे इसका दूध उस क्षत स्थान एवं दाँतोंकी जड़में लगानेसे यातनाका शीघ्र ही ह्रास हो जाता है। इसकी छालका गूदा पौष्टिक एवं बहुमूत्र रोगमें विशेष गुणदायक है। बीजका गुण शीतल तथा बलकर है। वटवृक्षके कोमल पत्ते उत्तप्त करके फोड़े पर लगानेसे पुल्टिसका काम करता है। गनोरिया रोगमें इसकी जड़का चूर्ण विशेष उपकारी होता है। यह सालसाका काम करता है।

इस वृक्षकी नई शाखाओंका काढा रक्तोत्काशनाशक तथा जड़के कोमल अग्रभाग वमननिवारक होते हैं। शुष्क वटका दूध तथा फल स्वप्नदोष (Spermatorrhaea), प्रमेह (gonorrhaea) नाशक एवं कामोद्दीपक माना गया है। कच्चे फली तथा दुग्धधारक-गुणविशिष्ट एवं अजीर्ण तथा उदरामय रोगमें विशेष हितकर हैं।

दुर्भिक्षके समयमें इसके लाल रंगके पके हुए फलको खा कर दरिद्र लोग अपने पेटकी ज्वाला शान्त करते हैं। हाथी, गाय आदि जानवर भी इसके पत्ते बड़े चावसे खाते हैं। इसकी लकड़ी विशेष उपकारी नहीं होती। सिर्फ पतली पतली सूखी डालियां जलावन (ईंधन)में काम आती हैं। Ficus elastica या दूधदार वट नामक और एक श्रेणीका वटवृक्ष देखा जाता है। उसका दूध रबरके समान ही गुणयुक्त होता है।

गुण—कषाय, मधुर, शिशिर, कफ, पित्तज्वरापहा, दाह, तृष्णा, मेह, व्रण तथा शोफनाशक।

वृक्षोंमें वट तथा अश्वत्थ ये दो वृक्ष ही हिन्दू-समाजमें पूजनीय गिने जाते हैं। हिन्दू लोग वट वृक्षको रुद्रस्वरूप मानते हैं।

इन वृक्षोंके दर्शन, स्पर्श तथा सेवा करनेसे पाप दूर होते एवं दुःख, आपद् तथा व्याधि जाती रहती है। अतएव ये वृक्ष रोपनेसे अशेष पुण्य संचय होता है। वैशाखादि पुण्य मासमें इन वृक्षोंकी जड़में जल देनेसे पापोंका नाश होता है एवं नाना प्रकारकी सुख सम्पद् प्राप्त होती है।

२ कपर्द्दक, कौड़ी। ३ गोला। ४ मत्स्यविशेष, बड़ा। ५ साम्य, समान होनेका भाव। (स्त्री०) ६ यज्ञमण्डलके

३ अकृतोद्वाह, अविवाहित। ४ जिसको पूंछ न हो या कट गई हो, लंडूरा, बाँड़ा।

वण्टक (सं० पु०) वण्ट एव स्वार्थे कन्। १ भाग, बाँट। वण्ट-ण्वुल्। (त्रि०) २ वण्टनकारी, विभाजक, बाँटनेवाला।

वण्टन (सं० क्ली०) वण्ट-ल्युट्। विभाग।

वण्टनीय (सं० त्रि०) वण्ट अनीयर्। बाँटने लायक, विभाग करनेके योग्य।

वण्टाल (सं० पु०) १ शूरोंका युद्ध। २ नौका। ३ खनित्र, खनती।

वण्टित (सं० त्रि०) वण्ट-इतच्। कृतविभाग, बाँटा हुआ।

वण्ठ (सं० पु०) वण्ठते इति वठि-अच्। १ अकृतोद्वाह, अविवाहित। २ वामन, बौना। ३ दास। ४ कुन्तायुध, भाला। (त्रि०) ५ हीनांग, जिसका कोई अंग खंडित हो। जैसे—लूला, लंडूरा, खंजा आदि।

वण्ठर (सं० पु०) १ स्थगिकारज्जु, वह रस्सी जिससे बकरी, गाय आदिको गलेसे बांधते हैं। २ कुत्तेकी पूंछ। ३ तालपल्लव, ताड़के वृक्षका कोंपल। ४ बाँसके कल्लेका वह मोटा पत्ता जो उसे छिपाये रहता है। वह पत्ता गांठ गांठ पर होता है और बहुत कड़ा तथा भूरे रंगका होता है। ५ स्तन, थन। ६ मेघ। ७ कुक्कुर, कुत्ता।

वण्डाल (सं० पु०) वण्टाल देखो।

वण्ड (सं० पु०) वनते इति वन सम्भक्तौ (वममपडात् डः। उण् १।११३) इति ड। १ वह जिसको लिङ्गेन्द्रियके अग्रभाग पर वह चमड़ा न हो, जो सुपारीको ढांके रहता है। २ ध्वजभङ्ग नामक रोग। पर्याय—दुश्चर्मा, छिन्नत्वक, शिपिविष्ट। (त्रि०) ३ हस्तादि वर्जित, लांगूलादिरहित। ४ हीनाङ्ग, बाँड़ा।

वण्डर (सं० पु०) १ कंजूस, मक्खीचूस, सूम। २ वह नपुंसक जो अन्तःपुरका रक्षक हो, ख्वोजा।

वण्डा (सं० स्त्री०) असती स्त्री, पुंश्चली।

वत् (सं० अव्य०) दातीति वा उति। साम्य, सम। पर्याय—वा, यथा, तथा, एव, एवं।

वतंस (सं० पु०) अवतंसयति ... वा अव-तसि अच् घञ् वा अवस्यालोपः। १ कर्णपूर, कर्णभूषण, कानका जेवर। २ शेखर, शिरोभूषण। (गीतगोविन्द ३।२)

वत (सं० अव्य०) १ खेद। २ अनुकम्पा। ३ सन्तोष। ४ विस्मय। ५ आमन्त्रण।

वतण्ड (सं० पु०) वनतीति वन (अण्डन् कृसृभृवृञः। उण् १।१२९) इत्यत्र वनतेस्तकारान्तादेशः। एक मुनिका नाम।

वतन (अ० पु०) १ वासस्थान। २ जन्मभूमि।

वतायन (सं० पु०) वातायन, झरोखा।

वतीरा (अ० पु०) १ ढंग, रीति, प्रथा। २ चाल ढाल। ३ लत, टेव।

वतु (सं० पु०) १ देवनदी। २ सत्यवाक्। ३ पथ्या। ४ अक्षिरोग।

वतोका (सं० स्त्री०) अवगतं तोकं अपत्यं यस्याः, अवस्यालोपः। अवतोका, वह गाय जिसका गर्भ पतन हो गया हो।

वत्स (सं० पु०) वदतीति वद (वृतृवदि हनि-कमिकषिभ्यः सः। उण् ३।६२) इति स। १ वर्ष, वत्सर। २ गोशिशु, गायका बच्चा, बछड़ा। पर्याय—शकृत्करि, तर्णक, दोग्धा, दोहक, दोह, रौहिणेय, बाहुलेय, तन्तुभ। सद्योजात वत्सरका पर्याय—तर्णक, तर्णभि, तन्तुभ, कन्न। ३ शिशु, बालक, बच्चा। ४ दिवोदासका पुत्र। (भागवत ६।१३।५) ५ देशभेद, कौसाम्बी। ६ कंसका एक अनुचर, वत्सासुर। यह असुर श्रीकृष्ण द्वारा निहत हुआ था। (भागवत १० ६०) ७ इन्द्रयव, इन्द्रजौ। ८ मुनिविशेष। (लिङ्गपु० ७।५०) (क्ली०) ६ वक्षस्, छाती।

वत्स—१ कुमारसम्भवटीकाके रचयिता। २ चरकाध्यर्युसूत्रके प्रणेता। हेमाद्रिने इनका उल्लेख किया है।

वत्सक (सं० क्ली०) वत्स-संज्ञायां स्वार्थे वा कन्। १ पुष्पकसीस। (पु०) वत्स-कन्। २ कुटज। ३ इन्द्रजौ।

निर्गुण्डी

... ०) औषधभेद।

..., खेतपपड़ा।

इन्द्रजौ।

... । इन्द्रजौ।

वत्सकामा (सं० स्त्री०) वत्सं कामयते इति कम्-अच्-टाप्। १ वत्साभिलाषिणी गाय। पर्याय—वत्सला। २ पुत्रादिकामा स्त्री, वह स्त्री जिसे पुत्रकी कामना हो।

वत्सगुरु (सं० पु०) पुत्रका आचार्य।

वत्सघोष (सं० पु०) एक देशका नाम जो नक्षत्रोंके प्रथम वर्गमें है।

वत्सतन्त्री (सं० स्त्री०) वत्सस्य तन्त्री। वत्सबन्धन रज्जु, वह रस्सी जिसे बछड़ा बांधा जाता है।

वत्सतर (सं० पु०) प्राप्तदमनकाल गोशिशु, जवान बछड़ा जो जोता न गया हो, दोहान। पर्याय—दम्य, दुर्दान्त, गड़ि।

वत्सतरी (सं० स्त्री०) वत्सतर-ङीप्। वह बछिया जो तीन वर्षकी हो, कलोर। वृषोत्सर्गमें चार वत्सतरीके साथ एक वृष उत्सर्ग करनेका विधान है। इस वत्स-तरीको उत्तम रूपसे अलंकारादि द्वारा सजा देना होता है। तीन वर्षसे कमको वत्सतरी नहीं होती।

वत्सदन्त (सं० पु०) बछड़ेके दांतके समान तीरभेद।

वत्सदामन—शूरसेनवंशीय एक राजा। इनके पिताका नाम देवराज और माताका याज्ञिका देवी था।

वत्सनपात् (सं० पु०) बभ्रुका वंशधर।
(शतपथब्रा० १४।५।५।२२)

वत्सनाभ (सं० पु०) वत्सान् नभ्यति हिनस्तीति नभ हिंसायां (कर्मण्यण्। पा ३।२।१) इत्यण्। विषवृक्ष-विशेष, मीठा जहर (Aconitum ferox)। इसे बम्बईमें बछनाग और तामिलमें वसनवी कहते हैं। संस्कृत-पर्याय—अमृत, विष, उग्र, महौषध, गरल, मारण, नाग, स्तोकक, प्राणहारक, स्थावरादि। गुण—अतिमधुर, उष्ण, वात, कफ, कण्ठपीड़ा और सन्निपातनाशक, पित्त तथा सन्तापवर्द्धक।

इसका पौधा हिमालयके कम ठण्डे भागोंमें होता है। इसकी जड़ विशेषतः नेपालसे आती है। इसके पत्ते संभालूके पत्तोंके समान होते हैं। विष जड़में होता है। भावप्रकाशमें लिखा है, कि वत्सनामाख्य विषकी आकृति गोवत्सको तरह होती है और इसके पत्ते संभालूके पत्तों-के समान होते हैं। जहां वत्सनाभ विषका वृक्ष रहता है, इसके निकट कोई भी वृक्ष बढ़ने नहीं पाता। यह वृक्ष शोध कर औषधोंमें दिया जाता है।

शोधनप्रणाली—जड़के छोटे छोटे टुकड़े काट कर तीन दिन तक गोमूत्रमें भिगोते हैं। पीछे छालको अलग करके लाल सरसोंके तेलमें भिगोए हुए कपड़ेमें पोटली बांध कर रखते हैं।

गुण—यह विष प्राणनाशक, व्यवायी और विकाशि-गुणयुक्त, अग्निगुणबहुल, वायु और कफनाशक, योग-वाही तथा मत्तताजनक होता है। किन्तु उपयुक्त मात्रा और युक्तिके साथ सेवन करनेसे यह प्राणरक्षाका कारण, रसायन, योगवाही, वातघ्न, कफापहारक और त्रिदोष-नाशक होता है। इसके योगसे मृत्युञ्जयरस, आनन्द-भैरवरस, पञ्चवक्त्ररस आदि कई प्रसिद्ध औषधें बनती हैं।

२ सह्याद्रिवर्णित राजभेद। (सह्या० २७।५७)

वत्सप (सं० पु०) १ वत्सपालक। २ श्रीकृष्ण। ३ दानव-भेद। (अथर्व ८।६।११)

वत्सपति (सं० पु०) राजभेद, वत्सराज। (वासवदत्ता)

वत्सपत्तन (सं० क्ली०) वत्सराजस्य पत्तनं। भारतवर्षके उत्तरका देश, कौशाम्बी।

वत्सपाल (सं० पु०) वत्सान् पालयतीति वत्स-पालि-अण्। १ श्रीकृष्ण और बलदेव। वृन्दावनमें उन्होंने गो-वत्स पालन किया था इसलिये वे वत्सपाल कहलाये। (त्रि०) २ वत्सपालक, बछा पालनेवाला।
(हरिवं० ६७।२४)

वत्सप्रचेतस् (सं० त्रि०) पूजा-पाठमें प्रवृत्तमना।

वत्सप्री (सं० पु०) राजभेद, भलन्दनके पुत्र। इनका दूसरा नाम वत्सप्रीति था। ये ऋग्वेदके ९।६८ और १०।४५, ४६ सूक्तके मन्त्रद्रष्टा ऋषि हैं।

वत्सप्रीति (सं० पु०) १ वत्सप्रीति, राजभेद। (स्त्री०) वत्सस्य प्रीतिः। २ वत्सके प्रति प्रीति।

वत्सबन्ध्या (सं० स्त्री०) मृतवत्सा। वत्साकांक्षी गाभी।

वत्सबालक (सं० पु०) वसुदेवके भाई।

वत्सभक्षक (सं० पु०) वत्सस्य भक्षकः। ईहामृग। यह गायका बछड़ा खाता है इसीसे इसको वत्सभक्षक कहते हैं।

वत्सभूमि (सं० स्त्री०) १ जनपदभेद, वत्सोंकी वास-भूमि। (भारत वन० २५३।८) २ वत्सराजके पुत्रका नाम।

वत्समित्र (सं० पु०) गोभिलऋषि।

वत्समुख (सं० पु०) वह जिसका मुंह गायके बछड़ेके जैसा हो।

वत्सर (सं० पु०) वसन्त्यस्मिन् अयनर्तुमासपक्षवारादय इति, वस निवासे (वसेश्च। उण् ३।७१) इति सरन्, (सः स्यार्द्धधातुके। पा ७।४।४९) इति सस्यतः। उतना काल या समय जितनेमें पृथ्वी सूर्यकी एक परिक्रमा पूरी करती है, कालका वह मान जो बारह महीनों या ३६५ दिनोंका होता है। पर्याय—संवत्सर, अब्द, हायन, शरत्, समा, शरदा, वर्ष, वरिष, संवत्। (शब्दरत्ना०)

मलमासतत्त्वमें लिखा है, कि सौर, सावन, नाक्षत्र और चान्द्रके भेदसे वत्सर चार प्रकारका होता है; इसलिये सौर, सावन, नाक्षत्र और चान्द्रके भेदसे मास भी चार प्रकारका हुआ। इनमेंसे बारह सौर मासका एक सौर वर्ष और बारह चान्द्रमासका एक चान्द्रवर्ष होता है। किन्तु मलमास होने पर तेरह महीनोंका एक चान्द्र वर्ष होता है। "चान्द्रवत्सरोऽपि द्वादशमासैर्भवति, मलमासपाते तु त्रयोदशमासैर्भवति। तथाच श्रुतिः—द्वादशमासाः संवत्सरः, क्वचित् त्रयोदशमासतः संवत्सरः।" (मलमासतत्त्व)

बारह नक्षत्र मासका एक नाक्षत्र वत्सर और बारह सावन मासका एक सावन वत्सर होता है। सूर्य जब तक एक राशिमें रहते हैं, तब तक एक सौरमास होता है। सूर्यके राशिमें रहनेसे मास हुआ है, इस कारण इसको सौरमास कहते हैं। साल, शकाब्द आदि सौरमासानुसार ही गिना जाता है।

तिथिघटित मासको चान्द्रमास कहते हैं। चान्द्रमास मुख्य और गौणके भेदसे दो प्रकारका है। बारह चान्द्र-मासका एक चान्द्रवत्सर होता है। २७ नक्षत्रका एक नाक्षत्र मास और इसके बारह नाक्षत्र मासका एक नाक्षत्र वर्ष होता है। सौर और चान्द्रके भेदसे सावन-मास भी दो प्रकारका है। जिस किसी दिनसे ले कर ३० अहोरात्रका जो मास होता है वही सौर सावनमास है। जैसे १०वीं आश्विनसे ले कर ९वीं कार्त्तिक तक ३० अहोरात्रका एक सौरसावन मास हुआ करता है। जिस किसी तिथिसे ले कर उसकी पूर्व तिथि तक ३० तिथिका एक चान्द्रमास और उसके बारह महीनोंका एक सावनवत्सर होता है। विशेष विवरण मास, मलमास और षष्टि संवत्सर शब्दमें देखो।

सौरवत्सर प्रभवादि ६० नामोंमें विभक्त हैं, इस कारण षष्टि संवत्सर नाम हुआ है।

२ ध्रुवके एक पुत्रका नाम। (भागवत ४।१०।१) ३ एक मुनिका नाम। (लिङ्गपु० ६३।५१)

वत्सराज (सं० पु०) वत्सोंका नरपति।

वत्सराज—एक राजाका नाम। इस नामके अनेक राजा हो गये हैं। एक तो कौशाम्बीका प्रसिद्ध राजा था जो गौतम बुद्धका समसामयिक था। चौहानवंशमें भी एक वत्सराज हुआ। लाट देशका एक चौलुक्यवंशी राजा इस नामका हुआ है। महोबेके चंदेल राजाओंका एक मन्त्री वत्सराज था जो अल्हा गानेवालोंमें 'बच्छराज' के नामसे प्रसिद्ध है।

वत्सराज—निर्णयदीपिकाके रचयिता। २ भोजप्रबन्ध और हास्यचूड़ामणिप्रहसनके प्रणेता। वाराणसीदर्पण और उसकी टीकाके प्रणेता। ये रामाश्रमके शिष्य और राघव त्रिपाठीके पुत्र थे। १६४१ ई०में इन्होंने उक्त पुस्तक लिखी थी।

वत्सराजदेव—एक प्राचीन कवि।

वत्सरादि (सं० पु०) वर्षका आदि, मार्गशीर्ष, अगहन।

वत्सरान्तक (सं० पु०) वत्सरस्य अन्ते कायति शोभते इति कै-क, यद्वा वत्सरस्यान्तो नाशो यस्मात्। फाल्गुन मास।

वत्सल (सं० त्रि०) वत्सये पुत्रादिस्नेहपात्रे कामोऽस्यास्तीति वत्स (वत्सांसाभ्यां कामबले। पा ५।२।९८) इति लच्। १ पुत्र या संतानके प्रति पूर्ण स्नेहयुक्त, बच्चेके प्रेमसे भरा हुआ। २ अपनेसे छोटोंके प्रति अत्यन्त स्नेहवान या कृपालु। (पु०) ३ साहित्यमें कुछ लोगोंके द्वारा माना हुआ दसवाँ वात्सल्य रस। इसमें पिता या माताका अपनी संततिके प्रति रतिभाव या प्रेम प्रदर्शित होता है।

वत्सलता (सं० स्त्री०) वत्सलस्य भावः तल्-टाप्। वात्सल्य, वत्सलका भाव या धर्म।

वत्सला (सं० स्त्री०) वत्सल-टाप् वा वत्सं लाति ला-क-टाप्। वत्सकामा गो।

वत्सवत् (सं० त्रि०) वत्स अस्त्यर्थे मतुप् मस्य वः। वत्सयुक्त, जिसे बच्चा हो।

वत्सवती (सं० स्त्री०) वत्सयुक्ता गाभी, वह गाय जिसे बछड़ा हो।

वत्सवरदाचार्य—प्रपन्नपारिजातके प्रणेता।

वत्सविन्द (सं० पु०) एक ऋषिका नाम। (प्रवराध्याय)

वत्सवृद्ध (सं० पु०) एक राजाका नाम। (भाग० ९।१२।९)

वत्सव्यूह (सं० पु०) वत्सका पुत्र। (विष्णुपुराण)

वत्सशाल (सं० त्रि०) गोशालामें उत्पन्न।

वत्सशाला (सं० स्त्री०) गोशाला, गुहाल।

वत्सस्मृति—प्राचीन स्मृतिग्रन्थविशेष। माधवाचार्यने कालमाधवीय ग्रन्थमें इसका उल्लेख किया है।

वत्सा (सं० स्त्री०) वत्स-टाप्। वत्सा, बछड़ी।

वत्साक्षी (सं० स्त्री०) वत्सस्याक्षीव गात्रचिह्नं यस्याः। षच्, समासान्तः, स्त्रियां ङीप्। तरबूज, कलिन्दा।

वत्साजीव (सं० त्रि०) १ गोवत्स पालन द्वारा जीविका-निर्वाहकारी, बछड़े को पाल कर अपना गुजारा चलानेवाला। २ पिङ्गल ऋषि।

वत्सादन (सं० पु०) अत्तीति अद ल्यु, वत्सानां अदनः भक्षकः। वृक, भेड़िया।

वत्सादनी (सं० स्त्री०) वत्सैरद्यते प्रियत्वादिति, अद-ल्युट्, ङीप्। गुडूची, गिलोय।

वत्सार (सं० पु०) कास्यपके एक पुत्रका नाम।

वत्सासुर (सं० पु०) असुरभेद। यह मथुरापति कंसका अनुचर था। वृन्दावनमें श्रीकृष्ण जब गाय चराते थे, तब यह असुर उनका अनिष्ट करनेके उद्देशसे वत्सरूपमें इधर उधर घूमता था। पीछे श्रीकृष्णने इसका वध किया। (भागवत १०म स्कन्ध)

वत्सिन् (सं० त्रि०) १ वत्सयुक्त, बछड़ोंके साथ। २ पुत्रसमन्वित, पुत्रोंके साथ। (पु०) ३ श्रीकृष्ण।

वत्सिमन् (सं० त्रि०) बाल्यावस्था, लड़कपन।

वत्सीय (सं० त्रि०) वत्स (तस्मै हितं। पा ५।१।५) इति हितार्थे छ। वत्सोंका हितकारी, बछड़ोंकी भलाई करनेवाला।

वत्सेश्वर (सं० पु०) १ राजभेद। २ वैयाकरणभेद। ३ चिकित्सासागरके प्रणेता।

वत्स्य (सं० त्रि०) वत्ससम्बन्धीय।

वथ्सर (सं० पु०) वैयाकरण पौष्करसादिके मतसे वत्सर शब्दका रूपान्तर। (पाणिनि ८।४।४८ वार्त्तिक)

वद (सं० क्ली०) कथन, उक्ति, वोपदेवके मतसे सन्देश-वचन और कथन। दीप्ति, सान्त्वन, ज्ञान, उत्साह, विवाद और प्रार्थनाके अर्थ समझे जानेसे वद धातुका आत्मनेपद होता है।

अनु+वद=अनुवाद, सदृशकथन। अप+वद=अपवाद, अकीर्त्ति। अभि+वद=अभिवादन, प्रणाम। प्रत्यभि+वद=प्रत्यभिवादन, प्रतिनमस्कार। परि+वद=परिवाद, निन्दा। प्र+वद=प्रवाद, जनश्रुति। प्रति+वद=प्रतिवाद। सम्+वद=संवाद। विसम्+वद=विसंवाद। वि+वद=विवाद, कलह।

वद (सं० त्रि०) वदति वक्तीति वद-पचा अच्। वक्ता, बोलनेवाला।

वदक (सं० त्रि०) वाक्यकथनशील, बोलनेवाला।

वदतोव्याघात (सं० पु०) कथनका एक दोष। इसमें कोई एक बात कह कर फिर उसके विरुद्ध बात कही जाती है।

वदन (सं० क्ली०) वदत्यनेनेति वद करणे-ल्युट्। १ मुख, मुंह। २ अग्र भाग, अगला हिस्सा। वद भावे ल्युट्। ३ कथन, बात कहना।

वदनदन्तुर (सं० पु०) जातिविशेष। (मार्कण्डेयपु० ५८।१२)

वदनरोग (सं० पु०) वदनस्य रोगः। मुखरोग।

वदनश्यामिका (सं० स्त्री०) वदनस्य श्यामिका, ६-तत्। वदनकालिमा, धब्बा।

वदनामय (सं० पु०) वदनस्य आमयः। वदनरोग।

वदनाम्लता (सं० स्त्री०) वदनस्य अम्लता। पित्तज रोगभेद। इस रोगमें मुंह हमेशा खट्टा मालूम होता है।

वदनासव (सं० पु०) वदनस्य आसवः। अधरमधु।

वदन्ति (सं० स्त्री०) वद (वेदाच। उण् ३।५०) इत्युज्ज्वलदत्तोक्त्या झच्, कृदिकारादिति वा ङीप्।

१ कथा, बात। वद-धातु लट् अन्ति करनेसे भी वदन्ति होती है। यह 'वदन्ति' क्रियापद है। वद धातु शतृ प्रत्यय करके स्त्रीलिङ्गमें ङीप् प्रत्ययमें वदन्तीपद होता है।

वदन्तिक (स'० पु०) जातिविशेष। (मार्कण्डेयपु० ५८।४५)

वदन्य (सं० त्रि०) वदान्य, उदार।

वदल—बम्बईप्रदेशके गोहेलवाड़ प्रान्तस्थ एक छोटा सामन्तराज्य। अभी यह दो पट्टीदारोंमें बट गया है। राजस्व ८५५० रु० है जिनमेंसे बड़ौदाके गायकवाड़को १५४ रु० कर देना पड़ता है। वदल नगर यहांका प्रधान वाणिज्य स्थान है। भूपरिमाण दो वर्गमील है।

वदली—बम्बईप्रदेशके हलार प्रान्तस्थ एक छोटा सामन्त राज्य। राजस्व २००० रु० है जिनमेंसे वृटिश-सरकारको २४६ रु० और जूनागढ़के नवाबको वार्षिक ७८ रु० कर देना पड़ता है। वदली ग्राम यहांका प्रधान स्थान है, भूपरिमाण दो वर्गमील है।

वदली—बम्बईप्रदेशके गुजरात प्रदेशके महीकान्था विभागका एक प्राचीन नगर। इदरसे यह छः कोस उत्तरमें अवस्थित है। ७वीं सदीमें चीनपरिव्राजक यूएनचुवङ्ग इस नगरकी समृद्धिका उल्लेख कर गये हैं। ११वीं सदीमें वदली नगर एक विस्तीर्ण राज्यकी राजधानी रूपमें गिना जाता था।

वदागरा—मन्द्राज-प्रदेशके मलबार जिलान्तर्गत एक नगर। यह अक्षा० ११ ३६ उ० तथा देशा० ७५ ३० १५ पू०के मध्य समुद्रके किनारे अवस्थित है। कालिकटसे कोन्ननूर तकका विस्तृत पथ इसी नगर हो कर गया है। यहांका दुर्ग कोलत्तिरि (चीरक्कल) राजाओंका बनाया हुआ है। १५६४ ई०में उक्त राजवंशके किसी राजाने यह दुर्ग कोट्टत्तनाड़-राजवंशके हाथ सौंप दिया। पीछे यह टीपू सुलतानके हाथ लगा। टीपूने इसको वाणिज्य-शुल्क उगाहनेके प्रधान राजकार्यालयरूपमें परिणत किया। १७९० ई०में अङ्गरेजराजने टीपूके हाथसे यह दुर्ग छीन कर पूर्वोक्त कोट्टत्तनाड़ राजवंशके हाथ दे दिया था। अनन्तर यह तीर्थपालियोंके विश्राममवनमें परिवर्त्तित हुआ है। यह नगर वाणिज्य-प्रधान है।

वदान्य (सं० त्रि०) वदति मर्येभ्य एव दास्यामीति मनोहरवाक्यमिति वद् (वदेरान्यः। उण् ३।१०४) इति आन्य। १ बहुप्रद, अतिशय दाता, उदार। २ वल्गुवाक्, मधुरभाषी। (पु०) ३ स्वनामप्रसिद्ध ऋषिविशेष।

वदाम (सं० क्ली०) फलविशेष, बादाम। पर्याय—सुफल, वातवैरी, नेत्रोपम। गुण—उष्ण, सुस्निग्ध, वातनाशक, गुरु और शुक्रवर्द्धक। (राजनि०) भावप्रकाशके मतसे यह मधुर, बलकारक, उष्ण, कफनाशक और रक्तपित्तरोग-नाशक माना गया है।

वदाल (सं० पु०) वद-बस्यर्थे क, वदेन वदनेन अलति पर्याप्नोतीति वद-अल-अच्। मत्स्यविशेष, पहिना नाम की मछली। इस मत्स्यका हव्यकव्यमें व्यवहार किया जा सकता है। पर्याय—पाठीन।

वदालक (स'० पु०) वदाल एव स्वार्थे कन्। पाठीनमत्स्य, पहिना मछली।

वदावद (स'० त्रि०) अत्यन्त वदतीति वद-अच्, (परिचालित। पा ३।१।१३४) इत्यस्य वार्त्तिकोक्त्या निपातितं। वक्ता, बोलनेवाला।

वदावदिन् (स'० त्रि०) अत्यन्त वचनशील, बहुत बोलनेवाला।

वदि (स'० पु०) कृष्ण पक्ष, जैसे वैशाख वदि ५।

वदितव्य (सं० त्रि०) वद-तव्य। कथनयोग्य, कहने लायक।

वदितृ (स'० त्रि०) वद-तृच्। वक्ता, बोलनेवाला।

वदिवास—प्राचीन जनपदभेद। बन्दिवास देखो।

वध (सं० पु०) हननमिति हन-अप् वधादेशः प्राणवियोगजनक व्यापारविशेष, मारण, नाश। पर्याय—प्रमापण, निबर्हण, निराकरण, निशारण, प्रवासन, परासन, निषूदन, निहिंसन, निर्वासन, संज्ञपन, निग्रन्थन, अपासन, निस्तर्हण, निहनन, क्षण, परिवर्जन, निर्वापण, विशसन, मारण, प्रतिघातन, उद्वासन, प्रमथन, क्रथन, उज्ज्वासन, आलम्भ, पिञ्ज, विशर, घात, उन्मथ, हिंसा, घातन, विदारण, पिञ्जक, पात, परिघ, परिघातन, स्वदन, निवारण, समाघात, निर्ग्रन्थन, मारि, मारी, उत्पात, मारक, मरक, मार, संघात। (शब्दरत्ना०)

किसी भी प्राणीका वध करनेसे पाप होता है। परन्तु आततायी शत्रुका वध करनेसे पाप नहीं होता।

पारिभाषिक वध—

"वपनं द्रविणादानं देशान्निर्यापनं तथा।
एष हि ब्रह्मबन्धूनां वधो नान्योऽस्ति दैहिकः॥"

(भारत सौप्तिकप०)

ब्राह्मणोंके मस्तक मुड़ा देना, उनका समस्त धन अपहरण करना तथा उन्हें देशसे निकाल देना इन्हीं सब कार्यों से उनका वध होता है। इसीको पारिभाषिक वध कहते हैं।

कालिकापुराणमें लिखा है, कि जहां एक व्यक्तिका वध करनेसे बहुतोंका कल्याण होता है वहां यह वध पुण्यप्रद है तथा स्वर्णचोर, सुरापायी, ब्रह्महत्याकारी, गुरुपत्नीगामी और आत्मघाती इन सब व्यक्तियोंका वध करनेसे पाप नहीं होता। यह वध भी पुण्यजनक बतलाया गया है।

एकके लिये बहुतोंका वध नहीं करना चाहिये। किन्तु बहुतोंकी शान्तिके लिये एकका वध किया जा सकता है, उसमें कोई दोष नहीं होता।

(वामनपु० ४ अ०)

वध और बन्धन पूर्वकर्मके वश हैं अर्थात् पूर्व कर्मानुसार ही वध और बन्धन होते हैं। (वामनपु० ६२ अ०)

स्मृतिमें वैधहिंसा विचारस्थलमें कहा है, कि यज्ञादिमें जो पशुवधादि किया जाता है उससे पाप नहीं होता। वैधहिंसाके अतिरिक्त जो कोई हिंसा की जाय उसमें अवश्य पाप होता है। यज्ञके लिये जो वध होता है, वह अवध है।

किन्तु सांख्यदर्शनकी सांख्यतत्त्वकौमुदीमें वाचस्पति मिश्रने लिखा है, कि यज्ञादिमें पशुवध करनेसे पाप और पुण्य दोनों ही होंगे। वधके कारण जो पाप होता है वह होगा ही तथा यज्ञकी पूर्णताके कारण जो पुण्य होता है वह भी होगा। परन्तु यज्ञमें पुण्यका भाग अधिक और पापका भाग कम है। अतएव बहुत सुखभोग करके थोड़ा-सा कष्ट भोग करना उतना दुःखजनक नहीं है। विशेष विवरण हिंसा शब्दमें देखो।

अज्ञानतः गो आदिका वध करनेसे उसका प्रायश्चित्त करना होता है। प्रायश्चित्त करनेसे वधजन्य पाप दूर हो जाता है। यज्ञादिको छोड़ कर अन्यस्थलमें वध करनेसे हो प्रायश्चित्त करना होगा।

वधक (सं० पु०) हन्तीति हन-क्कुन (हनो वधश्च। उण् २।३६) इति वधादेशः। १ वधकर्त्ता, वध करनेवाला। हिंस्र, हिंसक। २ व्याधि, रोग। ३ मृत्यु, मरण।

वधक—उत्तर-पश्चिम प्रदेशवासी जातिविशेष। दस्युवृत्ति इनकी प्रधान उपजीविका है, असहाय पथिक अथवा तीर्थयात्रियोंको फांसापट्टी दे कर उनके प्राण ले लेते हैं, इस कारण इनका वधक नाम हुआ है, किन्तु जातिगत सादृशतामें ये बौरिया और बहेलियाके सदृश हैं। केवल इन लोगोंमें राजपूतोंकी ही अधिकता देखी जाती है। वर्त्तमानकालमें अनेक धर्मभ्रष्ट मुसलमान भी इनके दलमें मिल गये हैं।

मथुरा, पिलिभीत और गोरखपुर जिलेमें इन डकैतोंका वास है। अङ्गरेजी शासनमें इन लोगोंने अभी बहुत कुछ शान्तभाव धारण किया है। ये लोग कभी कभी ब्राह्मण, भिक्षुक अथवा वैरागीके वेशमें तीर्थयात्रियोंके साथ जाते हैं और तीर्थक्षेत्रमें यात्रियोंके तीर्थ कार्य्य सम्पन्न करते हैं। इस समय ये दक्षिणा और प्रणामीरूपमें बलपूर्वक उनसे रुपये वसूल करनेकी चेष्टा करते हैं। अनेक समय यात्रियोंको धतूरा मिला हुआ प्रसाद खिला कर उनका सर्वस्व लूट लेते हैं।

कालीमाता इनकी प्रधान उपास्य-देवी हैं। ये लोग देवीकी पूजामें छाग-बलि चढ़ाते हैं। बकरेके मांसके अलावा ये गीदड़, लोमड़ी और नेवले आदिका मांस भी खाते हैं। इनका विश्वास है, कि गीदड़का मांस खानेसे शीतकालमें रातको भ्रमण करनेसे जाड़ा कुछ भी मालूम नहीं होता। ये लोग राजनियमकी प्रतिबन्धकता रहते हुए भी छिपके शराब पीते हैं। डकैतीके उद्देशसे बाहर निकलनेके पहले ये लोग कालीमाताकी पूजा करते हैं और उनके सामने प्रतिज्ञा करते हैं, कि लूटमें जो कुछ माल मिलेगा उसमें कुछ दलमेंके मृतव्यक्तिकी विधवाको या उसके बालकबालिकाको भरणपोषणके लिये देंगे।

वधकर्म (सं० क्ली०) वध एव कर्म। प्राणवियोग फलकव्यापार, वैसा काम जिससे प्राणनाश हो।

वधकर्माधिकारिन् (सं० पु०) राजनियुक्त प्राणहन्ता, जल्लाद।

वधकाम्या (सं० स्त्री०) वधकामना।

वधजीवी (सं० पु०) वधेन प्राणिवधेन जीवति प्राणान्

१ कथा, बात। वद-धातु लट् अन्ति करनेसे भी वदन्ति होती है। यह 'वदन्ति' क्रियापद है। वद धातु शतृ प्रत्यय करके स्त्रीलिङ्गमें ङीप् प्रत्ययमें वदन्तीपद होता है।

वदन्तिक (सं० पु०) जातिविशेष। (मार्कण्डेयपु० ५८।४५)

वदन्य (सं० त्रि०) वदान्य, उदार।

वदल—बम्बईप्रदेशके गोहेलवाड़ प्रान्तस्थ एक छोटा सामन्तराज्य। अभी यह दो पट्टीदारोंमें बट गया है। राजस्व २५५० रु० है जिनमेंसे बड़ौदाके गायकवाड़को १५४ रु० कर देना पड़ता है। वदल नगर यहांका प्रधान वाणिज्य स्थान है। भूपरिमाण दो वर्गमील है।

वदली—बम्बईप्रदेशके हल्लार प्रान्तस्थ एक छोटा सामन्त राज्य। राजस्व २००० रु० है जिनमेंसे वृटिश-सरकारको २४६ रु० और जूनागढ़के नवाबको वार्षिक ७८ रु० कर देना पड़ता है। वदली ग्राम यहांका प्रधान स्थान है, भूपरिमाण दो वर्गमील है।

वदली—बम्बईप्रदेशके गुजरात प्रदेशके महीकान्था विभागका एक प्राचीन नगर। इदरसे यह छः कोस उत्तरमें अवस्थित है। ७वीं सदीमें चीनपरिव्राजक युएनचुयङ्ग इस नगरकी समृद्धिका उल्लेख कर गये हैं। ११वीं सदीमें वदली नगर एक विस्तीर्ण राज्यकी राजधानी रूपमें गिना जाता था।

वदागरा—मन्द्राज-प्रदेशके मलवार जिलान्तर्गत एक नगर। यह अक्षा० ११° ३६´ उ० तथा देशा० ७५° ३०´ १५´´ पू० के मध्य समुद्रके किनारे अवस्थित है। कोलिकटसे कोअम्बूर तकका विस्तृत पथ इसी नगर हो कर गया है। यहांका दुर्ग कोलत्तिरि (चीरक्कल) राजाओंका बनाया हुआ है। १५६४ ई०में उक्त राजवंशके किसी राजाने यह दुर्ग कोट्टयनाड़ राजवंशके हाथ सौंप दिया। पीछे यह टीपू सुलतानके हाथ लगा। टीपूने इसको वाणिज्य-शुल्क उगाहनेके प्रधान राजकार्यालयरूपमें परिणत किया। १७९० ई०में अङ्गरेजराजने टीपूके हाथसे यह दुर्ग छीन कर पूर्वोक्त कोट्टयनाड़ राजवंशके हाथ दे दिया था। अनन्तर यह तीर्थयात्रियोंके विश्रामभवनमें परिवर्त्तित हुआ है। यह नगर वाणिज्य-प्रधान है।

वदान्य (सं० त्रि०) वदति सर्व्वम् एव दास्यामीति मनो-हरत्याकषमिति वदु-(वदेरान्यः। उण् ३।१०४) इति आन्य। १ बहुप्रद, अतिशय दाता, उदार। २ वल्गुवाक्, मधुरभाषी। (पु०) ३ स्वनामप्रसिद्ध ऋषिविशेष।

वदाम (सं० क्ली०) फलविशेष, बादाम। पर्याय—सुफल, वातवैरी, नेत्रोपम। गुण—उष्ण, सुस्निग्ध, वातनाशक, गुरु और शुक्रवर्द्धक। (राजनि०) भावप्रकाशके मतसे यह मधुर, बलकारक, उष्ण, कफनाशक और रक्तपित्त-रोग-नाशक माना गया है।

वदाल (सं० पु०) वद-घञर्थे क, वदेन वदनेन अलति पर्याप्नोतीति वद-अल-अच्। मत्स्यविशेष, पहिना नाम की मछली। इस मत्स्यका द्रव्यगुणमें व्यवहार किया जा सकता है। पर्याय—पाठीन।

वदालक (सं० पु०) वदाल एव स्वार्थे कन्। पाठीन-मत्स्य, पहिना मछली।

वदावद (सं० त्रि०) अत्यन्त वदतीति वद-अच्, (चरि-चालित। पा ३।१।१३४) इत्यस्य वार्त्तिकोक्त्या निपातितं। वक्ता, बोलनेवाला।

वदावदिन् (सं० त्रि०) अत्यन्त वचनशील, बहुत बोलनेवाला।

वदि (सं० पु०) कृष्ण पक्ष, जैसे वैशाख वदि ५।

वदितव्य (सं० त्रि०) वद-तव्य। कथनयोग्य, कहने लायक।

वदितृ (सं० त्रि०) वद-तृच्। वक्ता, बोलनेवाला।

वदिवास—प्राचीन जनपदभेद। वन्दिवास देखो।

वध (सं० पु०) हननमिति हन-अप् वधादेशः प्राणवियोग-जनक व्यापारविशेष, मारण, नाश। पर्याय—प्रमापण, निबर्हण, निराकरण, निशारण, प्रवासन, परासन, निषूदन, निहिंसन, निर्वासन, संज्ञपन, निग्रन्थन, अपासन, निस्तर्हण, निहनन, क्षण, परिवर्ज्जन, निर्वापण, विशसन, मारण, प्रतिघातन, उद्वासन, प्रमथन, क्रथन, उज्जासन, आलम्भ, पिञ्ज, विशर, घात, उन्मथ, हिंसा, घातन, विशारण, पिञ्जक, पात, परिघ, परिघातन, वर्जन, निवारण, समाघात, निर्ग्रन्थन, मारि, मारी, उत्पात, मारक, मरक, मार, संघात। (शब्दरत्ना०)

किसी भी प्राणीका वध करनेसे पाप होता है। परन्तु आततायी शत्रुका वध करनेसे पाप नहीं होता।

पारिभाषिक वध—

"वपनं द्रविणादानं देशान्निर्यापनं तथा।
एष हि ब्रह्मबन्धूनां वधो नान्योऽस्ति दैहिकः॥"

(भारत सौप्तिकप०)

ब्राह्मणोंके मस्तक मुड़ा देना, उनका समस्त धन अपहरण करना तथा उन्हें देशसे निकाल देना इन्हीं सब कार्योंसे उनका वध होता है। इसीको पारिभाषिक वध कहते हैं।

कालिकापुराणमें लिखा है, कि जहां एक व्यक्तिका वध करनेसे बहुतोंका कल्याण होता है वहां यह वध पुण्यप्रद है तथा स्वर्णचोर, सुरापायी, ब्रह्महत्याकारी, गुरुपत्नीगामी और आत्मघाती इन सब व्यक्तियोंका वध करनेसे पाप नहीं होता। यह वध भी पुण्यजनक बतलाया गया है।

एकके लिये बहुतोंका वध नहीं करना चाहिये। किन्तु बहुतोंकी शान्तिके लिये एकका वध किया जा सकता है, उसमें कोई दोष नहीं होता।

(वामनपु० ४ अ०)

वध और बन्धन पूर्वकर्मके वश्य हैं अर्थात् पूर्व कर्मानुसार ही वध और बन्धन होते हैं। (वामनपु० ६२ अ०)

स्मृतिमें वैधहिंसा विचारस्थलमें कहा है, कि यज्ञादिमें जो पशुवधादि किया जाता है उससे पाप नहीं होता। वैधहिंसाके अतिरिक्त जो कोई हिंसा की जाय उसमें अवश्य पाप होता है। यज्ञके लिये जो वध होता है, वह अवध है।

किन्तु सांख्यदर्शनकी सांख्यतत्त्वकौमुदीमें वाचस्पति मिश्रने लिखा है, कि यज्ञादिमें पशुवध करनेसे पाप और पुण्य दोनों ही होंगे। वधके कारण जो पाप होता है वह होगा ही तथा यज्ञकी पूर्णताके कारण जो पुण्य होता है वह भी होगा। परन्तु यज्ञमें पुण्यका भाग अधिक और पापका भाग कम है। अतएव बहुत सुखभोग करके थोड़ा-सा कष्ट भोग करना उतना दुःखजनक नहीं है। विशेष विवरण हिंसा शब्दमें देखो।

अज्ञानतः गो आदिका वध करनेसे उसका प्रायश्चित्त करना होता है। प्रायश्चित्त करनेसे वधजन्य पाप दूर हो जाता है। यज्ञादिको छोड़ कर अन्यस्थलमें वध करनेसे ही प्रायश्चित्त करना होगा।

वधक (सं० पु०) हन्तीति हन-ण्वुल् (हनो वधश्च। उण् २।३६) इति वधादेशः। १ वधकर्त्ता, वध करनेवाला। हिंस्र, हिंसक। २ व्याधि, रोग। ३ मृत्यु, मरण।

वधक—उत्तर-पश्चिम प्रदेशवासी जातिविशेष। दस्युवृत्ति इनकी प्रधान उपजीविका है, असहाय पथिक अथवा तीर्थयात्रियोंको फांसापट्टी दे कर उनके प्राण ले लेते हैं, इस कारण इनका वधक नाम हुआ है, किन्तु जातिगत सदृशतामें ये बौरिया और बहेलियाके सदृश हैं। केवल इन लोगोंमें राजपूतोंकी ही अधिकता देखी जाती है। वर्त्तमानकालमें अनेक धर्मभ्रष्ट मुसलमान भी इनके दलमें मिल गये हैं।

मथुरा, पिलिभीत और गोरखपुर जिलेमें इन डकैतोंका वास है। अङ्गरेजी शासनमें इन लोगोंने अभी बहुत कुछ शान्तभाव धारण किया है। ये लोग कभी कभी ब्राह्मण, भिक्षुक अथवा वैरागीके वेशमें तीर्थयात्रियोंके साथ जाते हैं और तीर्थक्षेत्रमें यात्रियोंके तीर्थ कार्य्यो सम्पन्न करते हैं। इस समय ये दक्षिणा और प्रणामीरूपमें बलपूर्वक उनसे रुपये वसूल करनेकी चेष्टा करते हैं। अनेक समय यात्रियोंको धतूरा मिला हुआ प्रसाद खिला कर उनका सर्वस्व लूट लेते हैं।

कालीमाता इनकी प्रधान उपास्य-देवी हैं। ये लोग देवीकी पूजामें छाग-बलि चढ़ाते हैं। बकरेके मांसके अलावा ये गीदड़, लोमड़ी और नेवले आदिका मांस भी खाते हैं। इनका विश्वास है, कि गीदड़का मांस खानेसे शीतकालमें रातको भ्रमण करनेसे जाड़ा कुछ भी मालूम नहीं होता। ये लोग राजनियमकी प्रतिबन्धकता रहते हुए भी छिपके शराब पीते हैं। डकैतीके उद्देशसे बाहर निकलनेके पहले ये लोग कालीमाताकी पूजा करते हैं और उनके सामने प्रतिज्ञा करते हैं, कि लूटमें जो कुछ माल मिलेगा उसमें कुछ दलमेंके मृतव्यक्तिकी विधवाको यां उसके बालकबालिकाको भरणपोषणके लिये देंगे।

वधकर्म (सं० क्ली०) वध एव कर्म। प्राणवियोग फलकव्यापार, वैसा काम जिससे प्राणनाश हो।

वधकर्माधिकारिन् (सं० पु०) राजनियुक्त प्राणहन्तृ, जल्लाद।

वधकाम्या (सं० स्त्री०) वधकामना।

वधजीवी (सं० पु०) वधेन प्राणिवधेन जीवति प्राणान्

धारयति जीव मिनि। यह जो वध करके जीविका निर्वाह करता हो। इसका अन्न भोजन, नहीं करना चाहिये। (याज्ञवल्क्य० १।१६४)

वधत्र (सं० क्ली०) वध्यतेऽनेनेति वध (अमि नक्षि-यजिवधि-पतिभ्योऽत्रन्। उण् ३।१०५) इति अत्रन्। १ अस्त्र, हथियार। २ नाशसे बचानेवाला।

वधदण्ड (सं० पु०) वध एव दण्डः। वधरूप दण्ड, प्राणनाशकी सजा। (मनु ८।१२९)

वधनिर्णेक (सं० पु०) नरहत्याजनित पापका प्रायश्चित्त।

वधभूमि (सं० स्त्री०) वधस्य भूमिः। वध्यस्थान, वह जगह जहां प्राणदण्ड दिया जाता हो।

वधस्थली (सं० स्त्री०) वधस्य या स्थानं भूमिः। प्राणवधस्थल, वधभूमि। पर्याय—मघात, प्रघात, वधस्थान, आघातन। (शब्दर०)

वधस्न (सं० त्रि०) १ नाशकारी अस्त्र। २ इन्द्रका वज्र।

वधस्नु (सं० त्रि०) हत्याकारी अस्त्रधारी, प्राण लेनेवाला, हथियारबंद।

वधा (सं० अव्य०) वध्र्‌या देखो।

वधाङ्गक (सं० क्ली०) वधः वध्यत्वमेवाङ्गं यस्य, ततः कन्। कारावेश्म, कारागार।

वधार्ह (सं० त्रि०) वधं अर्हतीति अर्ह-अच्। वध्य, मारने लायक।

वधित्र (सं० क्ली०) वध (अविशादिभ्य इत्रो श्री। उण् ४।१७२) इति इत्र। मन्मथ, कामदेव।

वधिन् (सं० त्रि०) प्राणवियोगफलकव्यापारो वधः सन्निष्पादत्व निर्वापत-निष्पादकत्वे नास्त्यस्येति वध इनि। वधकर्त्ता। वधकारी, वधप्रयोजक, अनुमन्ता, अनुग्राहक और निमित्तक ये पांचों वधके पापभागी होते हैं। (प्रायश्चित्तवि०)

वधोपुर—विन्ध्य-पार्श्वस्थ एक प्राचीन ग्राम। (भविष्य ब्रह्मख० ८।६५१)

वधु (सं० स्त्री०) वधू देखो।

वधुका (सं० स्त्री०) १ पुत्रवधू, पुत्रको स्त्री, पतोहु। २ नवपरिणीता पत्नी, दुलहन। रमणीमात्र, स्त्री।

वधुटी (सं० स्त्री०) पिताके घरमें रहनेवाली विवाहिता या अविवाहिता कन्या।

वधू (सं० स्त्री०) वध्नाति प्रेम्णा बन्ध-ऊ-नलोपश्च, यद्वा-वहति संसारभारं उह्यते भर्त्रादिभिरिति या वह (वहेर्धश्च। उण् १।८५) इति ऊ धश्चान्तादेशः। १ नारी, स्त्री। २ स्नुषा, पुत्रवधू, पतोहू। ३ नवोढा, नव विवाहिता स्त्री। ४ भार्या, पत्नी। ५ शारिवौषधि। ६ शटी, कचूर। ७ पृक्का, असवरग।

वधूकाल (सं० पु०) बालिकाका विवाहयोग्य समय।

वधूगृहप्रवेश (सं० पु०) द्विरागमन, कन्याका दूसरी बार स्वामीके घर जाना।

वधूजन (सं० पु०) वधूरेव जनः। योषित्, स्त्री।

वधूटशयन (सं० क्ली०) वधूटीनां शयनमिव पृषोदरादित्वात् साधुः। गवाक्ष, झरोखा।

वधूटी (सं० स्त्री०) अल्पवयस्का वधूः अल्पार्थे टि पक्षे ङीप्, यद्वा वधू 'वयस्य चरम् इति वाच्यं' (पा ४।१।२०) इत्यस्य वार्त्तिकोक्त्या ङीप्। १ पुत्र-भार्या, पतोहू। २ नवोढा, दुलहिन। ३ भार्या, पत्नी।

वधूदर्श (सं० त्रि०) वधूदर्शन, पतोहूका मुंह देखना।

वधूपथ (सं० पु०) वधूका कर्त्तव्य।

वधूमत् (सं० त्रि०) १ पत्नीयुक्त। २ लगाम लगा हुआ पशुका झुंड। ३ अलशून्य स्थानके उपयोगी स्त्री पशुयुक्त। ४ साज लगाने लायक।

वधूयु (सं० त्रि०) १ जो स्त्रीको प्यार करता हो। २ विवाहेच्छु, जो विवाह करना चाहता हो। ३ स्त्रीकामी।

वधूवस्त्र (सं० क्ली०) वह वस्त्र जो विवाहके समय कन्याको पहनाया जाता है।

वधूसरा (सं० स्त्री०) नदीभेद। भृगुपत्नी पुलोमाके अश्रुजलसे इस नदीकी उत्पत्ति हुई थी।

वधेप्सु (सं० त्रि०) हननेच्छु, वधकी इच्छा करनेवाला।

वधोद्यत (सं० त्रि०) मरणकारी, वध करनेवाला।

वधोद्यत (सं० त्रि०) वधाय उद्यतः। वधके लिये तैयार। पर्याय—सन्नद्ध, आततायी।

वधोपाय (सं० पु०) वधस्य उपायः। वधका उपाय।

वध्न (सं० क्ली०) जातिविशेष। (भारत भीष्मपर्व)

वध्य (सं० त्रि०) वधमर्हतीति वध यत्। वधार्ह, वधके लायक। पर्याय—शीर्षच्छेद्य।

वध्यघ्न (सं० त्रि०) वध्यं हन्ति हन क। वध्य-घातक, जो वध्य व्यक्तिको मारता हो।

वध्यता (सं० स्त्री०) वध्यस्य भावः तल्-टाप्। वध्यत्व, मारनेका भाव या धर्म।
वध्यपटह (सं० पु०) वह ढाक जो वधके समय बजाया जाता है।
वध्यपाल (सं० पु०) वध्य-बन्धनस्थानं कारागारं पालयतीति वध्यपाल-अण्। कारागृह-रक्षक, वह जो कारागारकी रक्षा करता हो।
वध्यभू (सं० स्त्री०) वध्यस्य भूः। वध्यभूमि, वध्य-स्थान।
वध्यमाला (सं० स्त्री०) वह माला जो वधके समय पहनाई जाती है।
वध्यशिला (सं० स्त्री०) वह शिला जिस पर रख कर प्राणिहत्या की जाती है।
वध्यस्थान (सं० क्ली०) वध्य स्थानं। वध्यस्थान।
वध्या (सं० स्त्री०) वधयोग्या। वध, हत्या।
वध्र (सं० क्ली०) वध्यतेऽनेनेति वन्ध (सर्वधातुभ्यष्ट्रन्। उण् ४।१५८) इति ष्ट्रन्। सीसक, सीसा नामकी धातु।
वध्रक (सं० पु०) सीसक, सीसा।
वध्रि (सं० त्रि०) छिन्नमुष्क, बधिया।
वध्रिका (सं० पु०) वह पुरुष जो बधिया हो, खोजा।
वध्रिमत् (सं० त्रि०) छिन्नमुष्कशाली, जिस स्त्रीका स्वामी ध्वजभङ्गरोगग्रस्त या रमणमें अक्षम हो।
वध्रिवाच् (सं० त्रि०) जल्पक, बकवादी।
वध्र्यश्व (सं० पु०) १ आखता घोड़ा। २ आखता घोड़े-की वंशपरम्परा।
वन (सं० क्ली० स्त्री०) वनतीति वन-अच् या वन्यते सेव्यते इति वन घ। (पुंसि संज्ञायां घः प्रायेण। पा ३।३।११८) १ बहुवृक्षसमन्वित स्थान, जङ्गल।

घर अथवा घरके समीप किस प्रकार वन लगाना होगा, इसका विषय ब्रह्मवैवर्त्तपुराणके श्रीकृष्णजन्मखण्डमें इस प्रकार लिखा है—आवास स्थलके मध्य सुन्दर तुलसीका पौधा लगाना कर्त्तव्य है। इससे हरिभक्ति, पुण्य और धनपुत्रका लाभ होता है। यहां तक, कि सबेरे तुलसीवनका दर्शन करनेसे स्वर्णदानका फल प्राप्त होता है। इसके सिवा घरके पूर्व और दक्षिणमें मालती, यूथिका, कुन्द, माधवी, केतकी, नागेश्वर, मल्लिका, काञ्चन, बकुल तथा अपराजिता इन सब सुन्दर सुन्दर पुष्पवृक्ष द्वारा जो वन लगाया जाता है, वह निःसन्देह कल्याण-कर है।

वराहपुराणमें मथुराके बारह वनोंका विवरण दिया गया है। उन वनोंके नाम ये हैं—मधुवन, तालवन, कुमुद-वन, काम्यकवन, बहुलवन, भद्रवन, खादिरवन, महा-वन, लोहज घवलवन, बिल्ववन, भाण्डीरवन और वृन्दावन। इनका विवरण मथुरा शब्दमें देखो।

वनविशेषमें मृत्यु होनेसे उत्तम फल लाभ होता है। देवीपुराणके अरण्योपर प्रशंसामें कहा गया है, कि सैन्धव, दण्डकारण्य, नैमिष, पुष्कर, कुरुजाङ्गल, उपलावृत, जम्बू मार्ग और हिमवास आदि जो वनों या अरण्योंमें जिनकी मृत्यु होती है, वे ब्रह्मलोक जा कर परमपदको प्राप्त होते हैं।

२ जल, पानी। ३ आलय, घर। ४ चमसा नामक यज्ञपात्र। (ऋक् ७।१४।६) ५ प्रस्रवण, झरना। वन वण सम्भक्ती भ्वादि परस्मै वन्यते सेव्यते शीतादिवारणाय, यद्वा वनति हिंसार्थः वन्यते हिंस्यतेऽनेन तमः अथवा वनु याचने तनादि आत्मने वन्यते याच्यते वृष्टिप्रदानाय, किंवा वन शब्दे भू पव वन्यते शब्द्यते स्तूयते स्तोतृभि-रिति पुंसि संज्ञायां वन-घ। ६ रश्मि, किरण। (निघण्टु १।५।८) ७ शङ्कराचार्यके शिष्यविशेषकी उपाधि।

जो संन्यासी सुखसम्पदाको तिलाञ्जलि दे कर सुरम्य निर्झरके निकट वनमें वास करते हैं, उन्हें वन कहते हैं। ८ स्तवक, फूलोंका गुच्छा, गुलदस्ता। ९ कुसुम, फूल।
वनकचु (सं० पु०) जङ्गली कच्चु। इस कच्चूका केवल साग खाया जाता है। यह मानकच्चूसे भिन्न है।
वनकणा (सं० स्त्री०) वनपिप्पली।
वनकण्टल (सं० पु०) मधुर शूरण, अच्छी जातिका सूरण या जिमीकन्द।
वनकदली (सं० स्त्री०) वनोद्भवा कदली। जङ्गली केला।
वनकन्द (सं० पु०) वनजातः कन्दः। वनशूरण, जङ्गली ओल।
वनकपीवत् (सं० पु०) पुलहके एक पुत्रका नाम।
वनकरिन् (सं० पु०) वनहस्ती, जङ्गली हाथी।
वनकर्कटी (सं० स्त्री०) आरण्य कर्कटी, जङ्गली ककड़ी।

धारयति जीव पिनि। यह जो वध करके जीविका निर्वाह करता हो। इसका अन्न भोजन नहीं करना चाहिये। (याज्ञवल्क्य० १।१६४)

वधत्र (सं० क्लो०) वध्यतेऽनेनेति वध (अमि नक्षि-यजिवधि-पतिभ्योऽत्रन्। उण् ३।१०५) इति अत्रन्। १ अस्त्र, हथियार। २ नाशसे बचानेवाला।

वधदण्ड (सं० पु०) वध एव दण्डः। वधरूप दण्ड, प्राण-नाशकी सजा। (मनु ८।१२९)

वधनिर्णेक (सं० पु०) नरहत्याजनित पापका प्रायश्चित्त।

वधभूमि (सं० स्त्री०) वधस्य भूमिः। वध्यस्थान, वह जगह जहां प्राणदण्ड दिया जाता हो।

वधस्थली (सं० स्त्री०) वधस्य वा स्थानं भूमिः। प्राण-वधस्थल, वधभूमि। पर्याय—मघात, मघात, वधस्थान, आघातन। (हारा०)

वधत्र (सं० लि०) १ नाशकारी अस्त्र। २ इन्द्रका वज्र।

वधस्नु (सं० लि०) हननकारी अस्त्रधारी, प्राण लेनेवाला, हथियारबंद।

वधा (सं० अव्य०) वद्भ्या देखो।

वधाङ्कक (सं० क्लो०) वधः वध्यनमेवाङ्कं यस्य, ततः कन्। कारावेश्म, कारागार।

वधार्ह (सं० लि०) वधं अर्हतीति अर्ह-अण्। वध्य, मारने लायक।

वधित (सं० क्लो०) वध (अजिवादिभ्य इत्रो त्रो। उण् ४।१७२) इति इत। मन्मथ, कामदेव।

वधिन् (सं० लि०) प्राणवियोगफलकव्यापारो वधः सन्निपात्य निर्वापन-निष्पादकत्वे अस्त्यस्येति वध इनि। वधकर्त्ता। वधकारी, वधप्रयोजक, अनुमन्ता, अनुग्राहक और निमित्तक ये पांचों वधके पापभागी होते हैं। (प्रायश्चित्तवि०)

वधीपुर—विन्ध्य-पार्श्वस्थ एक प्राचीन ग्राम।

(भविष्य ब्रह्मख० ८।६५१)

वधु (सं० स्त्री०) वधू देखो।

वधुका (सं० स्त्री०) १ पुत्रवधू, पुत्रकी स्त्री, पतोहू २ नवपरिणीता पत्नी, दुलहन। रमणीमात्र, स्त्री।

वधुटी (सं० स्त्री०) पिताज्ञयमें बसनेवाली विवाहिता या अविवाहिता कन्या।

वधू (सं० स्त्री०) वध्नाति प्रेम्णा पत्यु-ऊ-मनोगृह्न, यद्वा-वहति संसारभारं उह्यते भर्त्रादिभिरिति वा वह (वहेर्धश्च। उण् १।८५) इति ऊ धश्चान्तादेशः। १ नारी, स्त्री। २ स्नुषा, पुत्रवधू, पतोहू। ३ नवोढ़ा, नव विवाहिता स्त्री। ४ भार्या, पत्नी। ५ शारिवौषधि। ६ शटी, कचूर। ७ पृक्का, असबरग।

वधूकाल (सं० पु०) बालिकाका विवाहयोग्य समय।

वधूगृहप्रवेश (सं० पु०) द्विरागमन, कन्याका दूसरी बार स्वामीके घर आना।

वधूजन (सं० पु०) वधूरेव जनः। योषित्, स्त्री।

वधूटशयन (सं० क्लो०) वधूटीनां शयनमिव पृषोदरादि-कारत्वात्। गवाक्ष, झरोखा।

वधूटी (सं० स्त्री०) अल्पवयस्का वधूः अल्पार्थे टि पक्षे ङीप्, यद्वा वधू 'वयस्य चरम् इति वाच्यं' (पा ४।१।२०) इत्यस्य वार्त्तिकोक्त्या ङीप्। १ पुत्र-भार्या, पतोहू। २ नवोढ़ा, दुलहिन। ३ भार्या, पत्नी।

वधूदर्श (सं० लि०) वधूदर्शन, पतोहूका मुंह देखना।

वधूपथ (सं० पु०) वधूका कर्त्तव्य।

वधूमत् (सं० लि०) १ पत्नीयुक्त। २ लगाम लगा हुआ पशुका जुआ। ३ अल्पशून्य स्थानके उपयोगी स्त्री पशुयुक्त। ४ साज लगाने लायक।

वधूयु (सं० लि०) १ जो स्त्रीको प्यार करता हो। २ विवाहेच्छु, जो विवाह करना चाहता हो। ३ स्त्रीकामी।

वधूवस्त्र (सं० क्लो०) वह वस्त्र जो विवाहके समय कन्याको पहनाया जाता है।

वधूसरा (सं० स्त्री०) नदीभेद। भृगुपत्नी पुलोमाके अश्रुजलसे इस नदीकी उत्पत्ति हुई थी।

वधेप्सु (सं० लि०) हननेच्छु, वधकी इच्छा करनेवाला।

वधोदर्क (सं० लि०) मरणकारी, वध करनेवाला।

वधोद्यत (सं० लि०) वधाय उद्यतः। वधके लिये तैयार। पर्याय—सन्नद्ध, आततायी।

वधोपाय (सं० पु०) वधस्य उपायः। वधका उपाय।

वध्न (सं० क्लो०) जातिविशेष। (भारत भीष्मपर्व)

वध्य (सं० लि०) वधमर्हतीति वध-यत्। वधार्ह, वधके लायक। पर्याय—शीर्षच्छेद्य।

वध्यघ्न (सं० लि०) वध्यं हन्ति हन क। वध्य-घातक, जो वध्य व्यक्तिको मारता हो।

वध्यता (सं॰ स्त्री॰) वध्यस्य भावः तल्-टाप्। वध्यत्व, मारनेका भाव या धर्म।

वध्यपटह (सं॰ पु॰) वह ढाक जो वधके समय बजाया जाता है।

वध्यपाल (सं॰ पु॰) वध्य-बन्धनस्थानं कारागारं पालयतीति वध्यपाल-अण्। कारागृह-रक्षक, वह जो कारागारकी रक्षा करता हो।

वध्यभू (सं॰ स्त्री॰) वध्यस्य भूः। वध्यभूमि, वध्यस्थान।

वध्यमाला (सं॰ स्त्री॰) वह माला जो वधके समय पहनाई जाती है।

वध्यशिला (सं॰ स्त्री॰) वह शिला जिस पर रख कर प्राणिहत्या की जाती है।

वध्यस्थान (सं॰ क्ली॰) वध्य स्थानं। वध्यस्थान।

वध्या (सं॰ स्त्री॰) वधयोग्या। वध, हत्या।

वध्र (सं॰ क्ली॰) बध्यतेऽनेनेति वन्ध (सर्वधातुभ्यष्ट्रन्। उण् ४।१५८) इति ष्ट्रन्। सीसक, सीसा नामकी धातु।

वध्रक (सं॰ पु॰) सीसक, सीसा।

वध्रि (सं॰ त्रि॰) छिन्नमुष्क, वधिया।

वध्रिका (सं॰ पु॰) वह पुरुष जो बधिया हो, खोजा।

वध्रिमत् (सं॰ त्रि॰) छिन्नमुष्कशाली, जिस स्त्रीका स्वामी ध्वजभङ्गरोगग्रस्त या रमणमें अक्षम हो।

वध्रिवाच् (सं॰ त्रि॰) जल्पक, बकवादी।

वध्र्यश्व (सं॰ पु॰) १ आजता घोड़ा। २ आजता घोड़ेकी वंशपरम्परा।

वन (सं॰ क्ली॰ स्त्री॰) वनतीति वन-अच् या वन्यते सेव्यते इति वन घ; (पुंसि संज्ञायां घः प्रायेण। पा ३।३।११८) १ बहुवृक्षसमन्वित स्थान, जङ्गल।

घर अथवा घरके समीप किस प्रकार वन लगाना होगा, इसका विषय ब्रह्मवैवर्त्तपुराणके श्रीकृष्णजन्मखण्डमें इस प्रकार लिखा है—आवास स्थलके मध्य सुन्दर तुलसीका पौधा लगाना कर्त्तव्य है। इससे हरिभक्ति, पुण्य और धनपुत्रका लाभ होता है। यहां तक, कि सवेरे तुलसीवनका दर्शन करनेसे स्वर्णदानका फल प्राप्त होता है। इसके सिवा घरके पूर्व और दक्षिणमें मालती, यूथिका, कुन्द, माधवी, केतकी, नागेश्वर, मल्लिका, काञ्चन, बकुल तथा अपराजिता इन सब सुन्दर सुन्दर पुष्पवृक्ष द्वारा जो वन लगाया जाता है, वह निःसन्देह कल्याणकर है।

वराहपुराणमें मथुराके बारह वनोंका विवरण दिया गया है। उन वनोंके नाम ये हैं—मधुवन, तालवन, कुमुदवन, काम्यकवन, बहुलवन, भद्रवन, खादिरवन, महावन, लोहज धवलवन, बिल्ववन, भाण्डीरवन और वृन्दावन। इनका विवरण मथुरा शब्दमें देखो।

वनविशेषमें मृत्यु होनेसे उत्तम फल लाभ होता है। देवीपुराणके अरण्योदर प्रशंसामें कहा गया है, कि सैन्धव, दण्डकारण्य, नैमिष, पुष्कर, कुरुजाङ्गल, उपलावृत, जम्बूमार्ग और हिमवास आदि नौ वनों या अरण्योंमें जिनकी मृत्यु होती है, वे ब्रह्मलोक जा कर परमपदको प्राप्त होते हैं।

२ जल, पानी। ३ आलय, घर। ४ चमसा नामक यज्ञपात्र। (ऋक् ३।१४।६) ५ प्रस्रवण, झरना। वन वण सम्भक्तौ भ्वादि परस्मै वन्यते सेव्यते शीतादिवारणाय, यद्वा वनति हिंसार्थः वन्यते हिंस्यतेऽनेन तमः अथवा वनु याचने तनादि आत्मने वन्यते याच्यते वृष्टिप्रदानाय, किंवा वन शब्दे भूः पद वन्यते शब्द्यते स्तूयते स्तोतृभिरिति पुंसि संज्ञायां वन-घ। ६ रश्मि, किरण। (निघण्टु १।५।८) ७ शङ्कराचार्यके शिष्यविशेषकी उपाधि।

जो संन्यासी सुखसम्पदाको तिलाञ्जलि दे कर सुरम्य निर्झरके निकट वनमें वास करते हैं, उन्हें वन कहते हैं।

८ स्तवक, फूलोंका गुच्छा, गुलदस्ता। ९ कुसुम, फूल।

वनकचु (सं॰ पु॰) जङ्गली कच्चू। इस कच्चूका केवल साग खाया जाता है। यह मानकच्चूसे भिन्न है।

वनकणा (सं॰ स्त्री॰) वनपिप्पली।

वनकण्टुल (सं॰ पु॰) मधुर शूरण, अच्छी जातिका सूरण या जिमीकन्द।

वनकदली (सं॰ स्त्री॰) वनोद्भवा कदली। जङ्गली केला।

वनकन्द (सं॰ पु॰) वनजातः कन्दः। वनशूरण, जङ्गली ओल।

वनकपीवत् (सं॰ पु॰) पुलहके एक पुत्रका नाम।

वनकरिन् (सं॰ पु॰) वनहस्ती, जङ्गली हाथी।

वनकर्कटी (सं॰ स्त्री॰) आरण्य कर्कटी, जङ्गली ककड़ी।

वनकर्कोट (सं० पु०) अरण्यकर्कोटकी, जङ्गली ककोड़ा।

वनकर्णिका (सं० स्त्री०) महुआ वृक्ष, सलईका पेड़।

वनकाम (सं० त्रि०) वनभ्रमणेच्छु, वनमें विचरनेवाला।

वनकार्पासी (सं० स्त्री०) वनोद्भवा कार्पासी, जंगली कपास। पर्याय—त्रिपर्णी, भारद्वाजी, वनोद्भवा। (रत्नमाला)

वनकुक्कुट (सं० पु०) वन-ताम्रचूड़, वन-मुर्गा।

वनकुञ्जर (सं० पु०) हस्तिभेद, जंगली हाथी।

वनकुण्डली (सं० पु०) वनशूरण, जंगली जिमीकंद।

वनकेशराणी (सं० स्त्री०) श्वेतनिर्गुण्डी, सफेद सम्हालू।

वनकोकिलक (सं० क्लो०) छन्दोभेद। इस छन्दके प्रति चरणमें १७ अक्षर रहते हैं। सातवें, छठें और चौथे अक्षरमें यति होती है। इस छन्दके १, २, ३, ४, ५, ६, ८, ९, १०, १२, १३, १५ और १६ अक्षर लघु, बाकी सभी वर्ण गुरु होते हैं। यह कोकिलक नामसे भी प्रसिद्ध है।

वनकोद्रव (सं० पु०) वनज कोद्रवधान्य, जंगली कोदों।

वनकोलि (सं० स्त्री०) वनोद्भवा कोलिः। वनज बदरी, जंगली बेर। पर्याय—कर्कशिका, फलकर्कशा।

वनक्रकच (सं० त्रि०) १ सोमपातसे बुद्बुदाका निकलना। २ विभिन्न काष्ठपातमें स्थापित। (ऋक् ९।१०८।७ सायण)

वनक्रीड़ा (सं० स्त्री०) वनेक्रीड़ा। वनकेलि, वनमें जो खेल किया जाता है उसको वनक्रीड़ा कहते हैं।

वनखण्ड (सं० क्ली०) वनविशेष।

वनग (सं० त्रि०) वनं गच्छति गम-ड। वनगामी, जंगलमें जानेवाला।

वनगज (सं० पु०) वनोद्भवः गजः। वनहस्ती, जंगली हाथी।

वनगव (सं० पु०) वनगो, जंगली गाय।

वनगहन (सं० क्ली०) गभीर वन, घना जङ्गल।

वनगुप्त (सं० पु०) गुप्तचर, भेदिया।

वनगुल्म (सं० पु०) वनजात गुल्म, जङ्गली लता।

वनगो (सं० स्त्री०) वनस्य गौः। गवय, जङ्गली नील गाय।

वनगोचर (सं० पु०) वनं गोचरो देशो यस्य। १ व्याध। वनं जलं गोचरो निवासस्थानं यस्य। २ मत्स्य। (भाग० २।१८) ३ टीका-स्वामी। (त्रि०) ४ जलचर। ५ काननविहारी, जंगलमें विचरनेवाला।

वनघोली (सं० स्त्री०) अरण्यघोली।

वनङ्करण (सं० क्ली०) शरीरका अंशविशेष। भावनाचार्यके मतसे "वनं उदकं क्रियते विसृज्यते येन" इस अर्थमें जलकारी मेघादिका बोध होता है।

वनचन्दन (सं० क्ली०) वनजातं चन्दनं। १ अगुरु, अगर। २ देवदारु, देवदार।

वनचन्द्रिका (सं० स्त्री०) वने चन्द्रिका ज्योत्स्नेव। मल्लिका, एक प्रकारका बेला।

वनचम्पक (सं० पु०) वनजातश्चम्पकः। वनज चम्पकपुष्पवृक्ष, जङ्गली चम्पेका पौधा। पर्याय—वनदीप, हेमाह, सुकुमार। गुण—कटु, उष्ण, वात और कफनाशक, वह्निका दीप्तिवर्द्धक, व्रणरोपण और वयःस्तम्भकारक।

वनचर (सं० त्रि०) वने चरतीति वन-चर ट। १ वनचारी, वनमें भ्रमण करने या रहनेवाला। २ जङ्गली मनुष्य या प्राणी। ३ शरभ नामक वनजन्तु।

वनचर्या (सं० स्त्री०) १ वनचारी। २ वनवासी।

वनचारिन् (सं० त्रि०) वने चरतीति चरः णिनि। वनमें विचरण करनेवाला।

वनछाग (सं० पु०) वनस्य छागः। १ अरण्य छागल, जङ्गली बकरा। पर्याय—वर्कर, शिशुवाहक। (त्रिका०) वने छाग इव। २ शूकर, सूअर।

वनछिद् (सं० त्रि०) १ वनकर्त्तनकारी, जंगल काटनेवाला। (पु०) २ लकड़हारा।

वनच्छेद (सं० पु०) काष्ठकर्त्तन, लकड़ी काटना।

वनज (सं० क्ली०) वने जले जायते इति जन-ड। १ अम्बुज, कमल। २ मुस्तक, मोथा। ३ गज, हाथी। ४ वनशूरण, जंगली जिमीकन्द। ५ तुंबुरुका फल। ६ जंगली बिजौरा नीबू। ७ वनकुलथी। ८ वनतिलक। (त्रि०) ९ वनजात, जो वनमें उत्पन्न हो।

वनजताम्रचूड़ (सं० पु०) वनकुक्कुट, जंगली मुर्गा।

वनजमुद्गा (सं० स्त्री०) कर्कटशृङ्गी, काकड़ासिंगी।

वनजयूथिका (सं० स्त्री०) हस्वमेषशृङ्गी, मेढ़ासिंगी।

वनजा (सं० स्त्री०) वने जायते इति जन-ड स्त्रियां टाप्। १ मुद्गपर्णी। २ निर्गुण्डी। ३ सफेद भंटकटैया। ४ वनतुलसी। ५ असगंध। ६ वनकार्पासी। ७ गिरगिटी, गौंज। ८ वनोपोदिका। ९ गन्धपत्रा। १० ऐन्द्र, इन्द्र-सम्बन्धी।

वनजार—भारतवासी पण्यजीवि-जातिविशेष। उत्तर-भारतकी अपेक्षा दक्षिण-भारतमें ही इन लोगोंका अधिकतर वास है। यह जाति बहुत प्राचीनकालसे ही व्यापारमें प्रवीण है। एरियन (Indica, xi) ने इस जातिका उल्लेख किया है। दशकुमारचरितमें भी इन लोगोंका परिचय पाया जाता है। पाश्चात्य जातितत्त्वविदोंका कहना है कि, वणिजार अथवा वनजार शब्द संस्कृत वाणिज्यकारका ही अपभ्रंशमात्र है। एलियट साहबने तो 'बोरजार' पारसी शब्दसे ही इस जातिका नामकरण 'वनजार' होनेकी कल्पना की है। वे इस शब्दके द्वारा भारतवासियोंके साथ पारसियोंके संस्रवकी सूचनाकी मीमांसा कर गये हैं। अध्यापक काउपल इन उक्त मतोंकी सत्यता स्वीकार नहीं करते; वे कहते हैं—हिन्दी वन-ज्वालना अथवा वनञ्चारणा शब्दार्थसे ही 'वनजार' शब्दकी व्युत्पत्ति सिद्ध होनेकी अधिक संभावना है।

इस जातिके नामोत्पत्तिके प्रसंगमें पाश्चात्य पण्डित लोग किसी भी सिद्धान्तमें समुपस्थित क्यों न होवे, किन्तु इसमें सन्देह नहीं कि, यह जाति बहुत प्राचीन कालसे ही हिन्दू समाजमें प्रतिष्ठा पाती आ रही है। ऐतिहासिक उक्ति ही इसे समर्थन करती है। दक्षिण-प्रदेशनिवासी वनजार लोगोंमें माथुरिया, लवाण तथा चारण नामधारी तीन श्रेणीविभाग हैं। ये लोग अपनेको वर्णश्रेष्ठ ब्राह्मण तथा राजपूत जातियोंके वंशधर बताते हैं। माथुरिया श्रेणी मथुरासे आ कर इस स्थानमें बस गई है। अधिक संभव है कि, राजपूत चारण लोग तीर्थयात्राके उद्देशसे एवं लवाण श्रेणीके लोग लवण व्यापारके निमित्त इस प्रदेशमें उपस्थित हुए एवं स्वजातीय कन्याओंके अभावसे यहांके अन्य जातीय कन्याओंका पाणिग्रहण करके अपनी जातिसे पृथक् हो गये। ये लोग सिक्खोंके गुरु नानककी ही अपना धर्म-गुरु मानते हैं।

मुसलमानी इतिहासकी आलोचना करनेसे जाना जाता है, कि दिल्लीके सम्राटोंका दक्षिणविजय-प्रसंगके समयसे समयानुसार राजाओंकी आज्ञासे रसद ले कर ये वनजारगण दक्षिण-भारतमें आ उपस्थित हुए। इस तरहसे १५०८ ई०में दिल्लीश्वर सिकन्दर बादशाहके ढोलपुर पर आक्रमण करनेके समय पहले पहल वनराज लोग यहां आ बसे। चारण श्रेणीके लोग राठोरवंशीय हैं। ये लोग १६३० ई०में मुगल-सेनापति आसफखाके अधीन इस प्रदेशमें आये। इस समय उनकी श्रेणीके भंगी तथा जंगी नायक-वृन्द इस स्थानमें आये। आसफखा सेनापतिने इन लोगोंकी कार्यदक्षता देख कर इन्हें ताम्रपत्र पर सोनेके अक्षरोंसे लिख कर एक सनद प्रदान की थी। इन भंगी वंशधरोंके पास अभी भी वह पत्र वर्त्तमान है। हैदराबादके निजामने उसे देख कर इन्हें खिलत दी थी।

ये लोग जादूविद्या पर विश्वास करते हैं एवं कितने हीमें पारदर्शिता दिखाई देती है। भूत प्रेतोंको भगानेके लिये ये लोग नाना प्रकारके मन्त्र पाठ करते हैं। ज्वर, वातव्याधि तथा उदरामय प्रभृति रोगोंको ये लोग डायनकी दृष्टि निर्देश करते हैं। किसी स्त्रीको डायनी लगी है, ऐसा विश्वास होने पर ये उसे वनमें ले जा कर मार देनेसे भी कुण्ठित नहीं होते।

ये लोग साधारणतः हिन्दू देवदेवोंकी उपासना किया करते हैं। बालाजी, महाकाली, तुलजादेवी, मिठुभुखिया तथा सतीमूर्त्ति इन लोगोंकी प्रधान उपास्य है। इनके अलावे और भी कितने ही छोटे छोटे ठाकुरोंकी भी अत्यन्त भक्तिभावसे पूजा किया करते हैं। दस्युकार्यमें प्रवृत्त होनेसे पहले ये लोग अपने अपने उपनिवेशके पार्श्वस्थ मिठुभुखियाके मन्दिरमें प्रवेश करते हैं। दस्युवृत्तिमें लिप्त होनेकी पूर्वसन्ध्याके अलावे कोई घरके अन्दर गमन नहीं करता। अतएव पहले ये लोग दस्युपति मिठुकी पूजा करके एक सतीमूर्त्ति निर्माण करते हैं एवं एक घीका प्रदीप जला कर उस वर्त्तिकालोकमें शुभाशुभ निरीक्षण करते हैं। जब इस वर्त्तिकालोकमें शुभलक्षण प्रतिभात होता है, तब ये लोग दलके साथ बाहर होते हैं एवं उक्त गृहके सम्मुखस्थ पताकाके नीचे भूनिष्ठ हो कर इष्टदेवको प्रणाम करके अभीष्ट-पथकी ओर यात्रा करते हैं। लुण्ठनके समय ये लोग किसी तरहकी बात नहीं करते, यदि कोई भूल कर भी रास्तेमें बात कर बैठे तो ये लोग यात्रा अशुभ लक्षणायुक्त समझ कर पुनः

मिठुभुनियाके मन्दिरमें लौट आते हैं एवं पुनः मद्योपालोकमें शुभलक्षण अवगत होने पर लूट-मारके निमित्त घरके बाहर होते हैं। रास्तामें छींक होनेसे भी ये लोग कार्यमें विघ्न होनेकी भावना करते हैं।

किसीको पीड़ा होने पर ये लोग बालाजीके नामसे उत्सर्गीकृत 'हटाडिया' नामक वृषकी पूजा देते हैं। इस वृष पर कोई कभी भी किसी तरहका बोझा नहीं लादता पर लाल कपड़े और कौड़ियोंके बने गहनोंसे इसे सुसज्जित रखते हैं। ये लोग गुरु नानकको धर्मजगत्‌का एकमात्र कर्त्ताधर्त्ता समझ कर उनका ध्यान करते हैं एवं एकमात्र ईश्वरका सर्व्वाधारत्व स्वीकार करते हैं।

युक्तप्रदेशवासी बनजार जातिमें चौहान, बहुरूप, गौड़, यादव, पणवार, राठौर तथा तुवार नामक श्रेणी-विभाग हैं। बहुरूप तथा गौड़के अतिरिक्त इनकी सभी वंशोपाधियां राजपूत जातियकी परिचायक हैं। ऐसी किम्बदन्ती चली आ रही है कि, इन लोगोंने एक समय अयोध्या तथा हिमालयके सन्निहित कई स्थानोंमें राज्याधिकार प्राप्त कर लिया था। बरेली राज्यसे इन्हें जंघार राजपूतोंने भगा दिया। १६३२ ई०में पठान-सरदार रसूल खाँने बदाउन जिलान्तर्गत नानापाड़ा परगनासे एवं १८२१ ई०में फरुखाबाद हकीम मोहेन्द्रोने सिजोली परगनासे इन लोगोंको निकाल दिया। खेरी जिलाके जांगे राजपूतोंने अपने मित्र बनजार लोगोंसे खैरागढ़ प्राप्त किया था। सहारनपुर जिलान्तर्गत देवबन्द नगर इन लोगोंके द्वारा ही प्रतिष्ठित था, ऐसी किम्बदन्ती है।

हरदोई जिलान्तर्गत गोपामौ नगरके बनजार टोलावासी अपनेको मुसल्मान साधु सैयद सालारके वंशधर बताते हैं, फिर मन्द्राजवासी बनजार लोग अपनेको रामके अनुचर बन्दराधिपति सुग्रीवके वंशधर कहते हैं। इन सब बातों पर आलोचना करनेसे साफ ज्ञात होता है, कि बनजार लोग किसी एक विशिष्ट जातिके सन्तान नहीं हैं। समय समय पर विभिन्न जाति अथवा वंशके लोग कष्टावस्थाके प्रवासी हो कर इन लोगोंकी वृत्ति अवलम्बन कर लेनेके कारण बनजार नामसे अभिहित हो गये हैं। इस तरह दस्युवृत्ति किंवा द्रव्य-वाणिज्यके कारण बनजार श्रेणीभुक्त होने पर भी वर्त्तमान जातीय पेशानुसार मुजफ्फरनगरवासी बनजारोंके मध्य धानकूटा, लवण, मन्दवंशी, जाट, मुखिया ग्वाल, बोरबार, गोंड़, कोड़ा तथा गुजरर प्रभृति श्रेणी-विभाग हो गये हैं।

पश्चिम प्रदेशके बनजार लोग साधारणतः पांच विभागोंमें विभक्त हैं, उनके मध्य तुर्किया अथवा मुसलमान श्रेणीमें ३६ गोत्र प्रचलित हैं, जैसे—तोमर, चौहान, गहलोत, दिलवारी, भालपी, कजोडी, बुरुकी, तुर्की, शेख, नायमोर, अघवान, बदन, चकिराह, बहतारी, परड़, कणिके, घाड़े, चन्देल, सिली, घरका, बहुनिया, घानकिया, गंगो, तितर, हिन्दिया, राह, मरोनिया, आवर, कड़ेया, बहलीम, भट्टि, बग्धारी, परांगा, कालिया तथा खिलजी। ये लोग रूस्तम खांके अधीन मुलतानसे प्रथम तो मुरादाबाद आये, इसके बाद बिलासपुर तथा उसके समीपवर्त्ती प्रदेशोंमें आ बसे।

बैद-बनजार लोग भटनेरसे आये हैं। इनके सरदारका नाम दुल्हा है। इनमें भलोई, तएडार, इतार, कपाही, बुण्डेरि, कछनी, तारिण, घरवाहि, कौरि तथा बहलीम ११ गोत्र प्रचलित हैं। लवाण (लवणवाही) बनजार लोग अपनेको गौड़ ब्राह्मणके वंशधर कह कर परिचित करते हैं। ये लोग सम्राट् औरंगजेबके समयमें इस्लाम्मगढ़से आ कर दक्षिण प्रदेशके प्रवासी हुए। इनके बीच भी ११ गोत्र प्रचलित हैं। ये लोग कृषि-कार्यसे अपनी जीविका चलाते हैं।

मुकेरी बनजार लोग कहते हैं, कि मक्कामें उनके एक नायकका शिविर था। वहांसे यह वंश ब्यावरनगरमें आ कर वास करने पर जनसाधारणमें मक्काई या मुकेरी नामसे परिचित हुआ। इस बातको समर्थन करनेके लिये इन लोगोंने एक अद्भुत उपाख्यानकी कल्पना कर ली है। यह जो कुछ भी हो, किन्तु उन लोगोंके मुसलमान नाममें हिन्दू तथा मुसलमानका संमिश्रण देख कर मालूम पड़ता है, कि यह जाति उक्त दोनों ही जातियोंके संमिश्रणसे बनी है। [redacted] लोगोंमें निम्नोक्त वंशाख्या प्रचलित देखी जाती है। जैसे—अघवान, मुगल, तोमर, चौहान, सिमली, छोटा चौहान, पंवरकिया चौहान,

तानहर, काठेरिया, पठान, तरीन पठान, घोड़ी, घोड़ोवाल, धंगारोया, कारिठया तथा वहलीम।

यहरूप वनजार लोग साधारणतः हिन्दू हैं। इनमें मुसलमान भी हैं। मुसलमान श्रेणोको तरह वनजार हिन्दू लोग गृहस्थाश्रमाचारी नहीं हैं। इनके मध्य राठोर, चौहान, पणवार, तोमर तथा भुर्तिया नामक कई वंशविभाग देखा जाता है। इन सब वंशोंमें अब गोत्र-विभाग निर्णीत हो गया है। राठोर वंशमें मुछारी, बांहुको, मुद्वित तथा पणोत नामक चार दल हैं, उनके बीच मुछारीमें ५२, बांहुकीमें २७, मुद्दांयतमें ५६ एवं पणोतमें २३ गोत्र प्रचलित हैं। चौहानोंमें ४२ गोत्र विद्यमान हैं, ये लोग मैनपुरीसे आ कर इस प्रदेशमें बस गये हैं। भुर्तिया लोग गौड़ ब्राह्मणके सन्तान हैं। चित्तोरकी राजधानीमें इन लोगोंका वास था। वहांसे ये लोग दक्षिण प्रदेशवासी हो गये हैं। उनके मध्य २० गोत्र हैं।

ये यहरूप वनजार लोग अन्यान्य जातियोंको तरह सगोत्रमें विवाह नहीं करते। नाट जातिको कन्या ग्रहण करते हैं सही, किन्तु अपनी कन्या उन लोगोंको समर्पण नहीं करते। नायक या नायक वनजार लोग इन जातिके होते हुए भी साधारण श्रेणोकी अपेक्षा कहीं उन्नत हैं। इनमें राजपूतोंकी संख्या ही अधिक है। गोरखपुर विभागके नायक लोग अपनेको सनाढ्य ब्राह्मण कहते हैं। ये अपनेको चिलिभीतके आदिनिवासी बताते हैं। ये कट्टर हिन्दू हैं। इनके समाजमें बहुविवाह प्रचलित तो है, किन्तु विधवा-विवाह प्रचलित नहीं है। यदि कोई अविवाहिता बालिका परपुरुषके साथ अवैध प्रणय करती है, तो उसके पिताको एक जातीय भोज देना पड़ता है एवं उस बालिकाको सत्यनारायणकी कथा सुना कर पवित्र कर लेते हैं। विवाहके समय वरके पिताके हाथमें कन्याके पिता 'तिलकदान' स्वरूप कुछ रुपये देते हैं। पंचायतके विचारसे सभी अपनी व्यभिचारिणी पत्नीका त्याग कर सकते हैं। इस समाजमें विधवा-विवाह न होनेके कारण ऐसो रमणी फिर अपने सजातीय पुरुषके साथ विवाह नहीं कर सकती। ये लोग जन्म, मृत्यु तथा विवाह संस्कार यथाविधि सम्पन्न करते हैं। शवको जलानेके पश्चात् एवं अशौचके अन्तमें श्राद्ध निष्पन्न करते हैं। सवंरिया ब्राह्मण सभी कार्योंमें इन लोगोंको पुरोहिती करते हैं।

विवाहके समयमें ये लोग चार चार घड़ोंको उपर्युपरि करके सात थाक सजाते हैं एवं उनके बीचमें दो मूषल तथा एक जलपूर्ण कलसी रख देते हैं। इनके सामने मृत्तिकालिप्त स्थानमें चौका करके पुरोहित होम करता है। तदनन्तर उस नवदम्पतीको ग्रन्थि-बन्धन करा कर उस मूषलके चारों ओर सात लपेट घुमता है। अन्तमें उनके एक स्थान पर बैठ जानेके बाद कन्याके पिता वरका पांव पूजते हैं एवं कन्या-सम्प्रदानके यौतुक स्वरूप वरके हाथमें दो या चार रुपये देते हैं। यही बड़े घरोंका विवाह है। निम्न श्रेणोके मध्य कन्याको वरके घर ले जा कर 'धरीआ' विवाहानुसार विवाह करते हैं। इसके बाद स्वजातिभोज होता है।

वनजीर (सं० पु०) वनोद्भवो जीरः। वनजात जीरक, कालो जीरी। पर्याय—बृहत्पाली, सूक्ष्मपत्र, अरण्यजीर, कण। गुण—कटु, शीतल और व्रणनाशक।

वनजीविन् (सं० पु०) वह जो जंगलसे लकड़ी ला कर जीविका निर्वाह करता हो, लकड़हारा।

वनतण्डुली (सं० स्त्री०) १ तण्डुलीयभेद। (Amblogina polygonoides) २ वनतण्डुलीय शाक।

वनतरु (सं० पु०) अर्जुनवृक्ष।

वनतिक्त (सं० पु० स्त्री०) वनेषु वनोद्भवेषु मध्ये तिक्तः, तिक्ता वा। हरतिकी, हड़।

वनतिका (सं० स्त्री०) प्रोष्पा नामक लताभेद।

वनतिक्तिका (सं० स्त्री०) वनतिक्ता कन्, टापि अत इत्वं। १ पाठा। पाठा देखो। २ पथरी नामका साग। इसका गुण—तिक्त और शीतल तथा कटु और कफपित्तघ्न।

वनत्रपुष (सं० पु०) १ आरण्यत्रपुष, जंगली टांगा। २ इन्द्रवारुणी। (वैद्यकनि०)

वनदु (सं० त्रि०) १ प्रशंसाकारी, बड़ाई करनेवाला। १ स्तोता, पूजक।

दुर्गादासने 'वनदः' शब्दका 'वनदाः' अर्थात् अभीष्ट पूजोपहार दानकारो अर्थ लगाया है। किन्तु वर्त्तमान टीकाकार 'वनदु' शब्दका प्रबल इच्छायुक्त, ऐसा अर्थ लगाते हैं।

वनद (सं० पु०) वनं जलं ददातीति दा क। १ मेघ, बादल। (त्रि०) २ वनदानकर्ता।

वनदमन (सं० पु०) वनजातो दमनः। अरण्यदमनक वृक्ष, वनदौना।

वनदारक (सं० पु०) जातिविशेष।

वनदाह (सं० पु०) दावदहन, अग्निसे वन जलाना।

वनदीप (सं० पु०) वनस्य दीप इव। वनचम्पक।

वनदीपभट्ट (सं० पु०) एक प्रसिद्ध टीकाकार।

वनदुर्गा (सं० स्त्री०) १ तन्त्रोक्त देवीमूर्त्ति। पूर्ववङ्गमें वनदुर्गा पूजा बड़ी धूमधामसे की जाती है। २ इसी नामके एक नगरका नाम। ३ एक उपनिषदका नाम।

वनदेव (सं० पु०) वनका अधिष्ठाता देवता। (उत्तरचरित २)

वनदेवी (सं० स्त्री०) वनकी अधिष्ठात्री देवी।

वनद्रु (सं० पु०) वारवृक्ष, पियालका पेड़।

वनद्रुम (सं० पु०) १ अर्जुनवृक्ष। २ काष्ठागुरु।

वनद्विप (सं० पु०) वनहस्ती, जङ्गली हाथी।

वनधारा (सं० स्त्री०) वृक्षकी कतारके बीचका पथ।

वनधिति (सं० स्त्री०) १ कुठार आदि अस्त्र। २ मेघमाला।

वनधेनु (सं० पु०) अरण्यजात गौ, नीलगाय।

वनन (सं० क्ली०) १ धन, दौलत। २ इच्छा, वासना।

वननमिश्र—तर्कसंग्रहटिप्पणके प्रणेता।

वननिरय (सं० पु०) रौद्राश्वके एक पुत्रका नाम।

वननीय (सं० त्रि०) वाञ्छनीय, चाहने योग्य।

वनन्वत् (सं० त्रि०) १ उदकविशिष्ट, जिसमें जल हो। २ सम्भजनीय धन।

वनप (सं० पु०) १ वनवासी। २ लकड़हारा। ३ वनरक्षक, जङ्गलका रखवाला।

वनपन्नग (सं० पु०) वनस्थ सर्प।

वनपर्वन् (सं० क्ली०) महाभारतका तीसरा अंश। इस अंशमें युधिष्ठिर आदि पांचों पाण्डवके काम्यवनमें रहनेके समयका विवरण है।

वनपलाण्डु (सं० पु०) वनजात पलाण्डु, वनप्याज।

वनपादप (सं० पु०) वनमिव निविडः पादपो यस्य। शोभाञ्जन वृक्ष, सहिजनका पेड़।

वनपांशुल (सं० पु०) वने पांशुलः पापिष्ठः। व्याध, शिकारी।

वनपादप (सं० पु०) वनजवृक्ष, जङ्गली पेड़।

वनपार्श्व (सं० पु०) वनके आस-पासका स्थान।

वनपाल (सं० पु०) वनरक्षक, जङ्गलका रखवाला।

वनपिप्पली (सं० स्त्री०) वनोद्भवा पिप्पली। छोटी पीपल। मराठी—रानपिंपल, कर्णाटी—काडिपिप्पली। संस्कृत पर्याय—सूक्ष्मपिप्पली, क्षुद्रपिप्पली, वनकणा। इसका गुण कटु, उष्ण, तीक्ष्ण और रुच्य माना गया है। जब यह पीपल कच्ची रहती है, तभी तक इसमें गुण रहता है, सूखने पर इसका गुण बहुत कुछ कम हो जाता है।

वनपीत (सं० पु०) भूमिजात गुग्गुलु, वह गुग्गुल जो जमीनसे उत्पन्न हो।

वनपुष्पा (सं० स्त्री०) वनमिव निविडं पुष्पं यस्याः, टाप्। शतपुष्पा, सोआ।

वनपुष्पमय (सं० त्रि०) वनपुष्पसमाय।

वनपुष्पोत्सव (सं० पु०) आम्रवृक्ष, आमका पेड़।

वनपूतिका (सं० स्त्री०) आरण्यपूतिका, वनपोई। वैद्यकमें इसका गुण कटु, तिक्त, उष्ण और रुच्य कहा है।

वनपूरक (सं० पु०) वनजातः पूरकः बीजपूरकः। वनबीजपूरक, जंगली बिजौरा नीबू।

वनपूर्व (सं० पु०) एक प्राचीन गांवका नाम।

वनप्रस्थ (सं० त्रि०) जलचारी, जलमें रहनेवाला।

वनप्रवेश (सं० पु०) वनगमन, वह यात्रा जो कोई देवमूर्त्ति बनानेके अभिप्रायसे जङ्गली वृक्षोंको काटनेके लिये दल-बलके साथ वनमें की जाती है।

वनप्रस्थ (सं० क्ली०) १ अचिरवकाश्रित वन। २ स्थानविशेष। ३ वानप्रस्थ।

वनप्रस्थायिन् (सं० त्रि०) वनगमनकारी।

वनप्रिय (सं० क्ली०) वनेषु वनजातेषु मध्ये प्रियं। १ त्वक्, दारचीनी। (पु०) २ कोकिल, कोयल। ३ विभीतक वृक्ष, बहेड़ेका पेड़। ४ कपूर, कपरी। ५ मायामृग, सांभर हिरन।

वनफल (सं० क्ली०) जङ्गली पेड़का एक प्रकारका फल। यह खानेमें मीठा होता है।

वनफूल (सं० क्ली०) पुष्पकुसमोर। इसकी माला गूंथनेमें

सुन्दर दिखाई पड़ती है। श्रीकृष्ण वनफूलकी माला पहन कर वनमाली हुए थे।

वनवर्व्वर (सं॰ पु॰) कृष्णार्ज्जक, वनतुलसी।

वनवर्व्वरिका (सं॰ स्त्री॰) वनजात अर्ज्जक जातीय पत्र शाक, वनतुलसी। इसका गुण सुगन्ध, उष्ण, कटु, अग्निद, पिशाच और भूतघ्न एवं घ्राण-सन्तर्पण माना गया है। (राजनि॰)

वनवर्हिण (सं॰ पु॰) वन्य मयूर, जङ्गली मोर।

वनवाहक (सं॰ पु॰) जातिविशेष।

वनवीज (सं॰ पु॰) वनस्य वनोद्भवो वा वीजो वीज-पूरकः। वनवीजपूरक, जङ्गली बिजौरा नीबू।

वनवीजक (सं॰ पु॰) वनवीज-स्वार्थे कन्। वनवीजपूरक।

वनवीजपूरक (सं॰ पु॰) वनोद्भवो वीजपूरः। आरण्यजात वीजपूर, जंगली बिजौरा नीबू। पर्याय—वनज, वनवीजक, वनवीज, अत्यम्ला, गन्धाम्ला, वनोद्भवा, देवदूती, पीडा, देवदासी, देवेष्टा, मातुलुङ्गिका, पचनी, महाफला। इसका गुण—अम्ल, कटु, उष्ण, रुचिप्रद तथा वात, आमदोष, कृमि, कफ और श्वासनाशक। (राजनि॰)

वनभद्रिका (सं॰ स्त्री॰) वने भद्रं यस्याः ततष्टापि अत इत्वं। भद्रवला, माधवी लता।

वनभुज् (सं॰ पु॰) वनं भुङ्क्ते इति वन-भुज्-क्विप्। ऋषभौषध।

वनभू (सं॰ स्त्री॰) वनमय स्थान।

वनभूषण (सं॰ स्त्री॰) कोकिला।

वनमञ्जरी (सं॰ स्त्री॰) वननिर्गुण्डी।

वनमक्षिका (सं॰ स्त्री॰) वनस्य मक्षिका। दंश, डाँस।

वनमल्लिका (सं॰ स्त्री॰) सेवतीका पौधा या फूल।

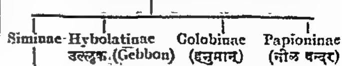
वनमल्ली (सं॰ स्त्री॰) वनोद्भवा मल्ली, जंगली मल्लिका।

वनमानुष (हिं॰ पु॰) १ वनजात मनुष्य। २ वनवासी। ३ स्वनामप्रसिद्ध चतुष्पद जीवविशेष। यह गोरिला अथवा पूँछहीन जातीय या स्वल्प पूँछवाले बन्दरोंसे बहुत कुछ मिलता जुलता है, किन्तु बन्दरोंकी तरह इसे पूँछ चिह्न या गण्डस्थली नहीं होती। यूरोपीय प्राणितत्त्वविद्गण इसके हाथ, पाँव, वक्षस्थल प्रभृतिकी हड्डियों तथा दांतादिकी अच्छी तरह पर्य्यवेक्षण करके एवं इन सबोंका मनुष्य जातिके साथ यथावथ सादृश्य निरूपण करके इस सिद्धान्तको प्राप्त हुए हैं, कि इस जातिके पशु, चतुष्पद बन्दर तथा मनुष्यके मध्यस्थलमें आसन ग्रहण कर सकता है। मनुष्यके साथ इनके पाँवोंकी अंगुलियां परस्पर पृथक पृथक रहती हैं। इसके कंकालके साथ मनुष्यके कंकालको तुलना करने पर देखा जाता है, कि मनुष्यकी अपेक्षा इसके हाथ तथा पाँवकी अंगुलियां बड़ी, पांव छोटे, हाथ लम्बे, पञ्जरकी हड्डियां नीचेकी ओर अधिक विस्तृत, कमरकी हड्डी पतली और लम्बी, खोपड़ी चिपटी तथा मुखकी ओर विस्तृत होती है। शरीरके ऊपरी हिस्सेमें शिम्पांजीका कंकाल मनुष्यके कंकालसे बहुत मिलता जुलता है। इस प्रकार अस्थि-संस्थानका लक्ष्य करके वैज्ञानिकोंने इन्हें ओरङ्ग, शिम्पाजी और गिवौं नामक तीन स्वतन्त्र श्रेणीमें विभक्त किया है। इस ओरङ्ग और शिम्पाजीको ही हम लोगोंके देशमें वनमानुष कहते हैं।

मलय द्वीपकी भाषामें 'ओरंग-उटान' शब्दसे वनमानुष समझा जाता है। इसलिये वहांके अधिवासी द्विपद चारी एवं बन्दरकी तरह हाथ पाँव-व्यवहारकारी मनुष्याकार इस वन्य-पशुको 'ओरंग-उटान' कहते हैं एवं बोर्निओ तथा सुमात्रा-द्वीपवासी भी इसे इसी शब्दसे उल्लेख करते हैं। बादमें अङ्गरेज भ्रमणकारियोंके अनुग्रहसे यह भारतीय द्वीपपुञ्जजात जीव देशी भाषामें Orang-outang शब्दसे परिगृहीत हुआ। प्राणितत्त्वविद् लिनियसने इसे *Simia* श्रेणीका जीव ठहराया है। वैज्ञानिकोंके अनुमानसे ये Pitheeus जातिके बन्दर *Chimpanzee* की एक शाखामात्र हैं।

वैज्ञानिकोंने बन्दरश्रेणीके जीवोंको आकृतिके प्रभेदसे अथवा जातिगत पृथकता अनुसार जिस तरह विशिष्ट दलमें विभक्त किया है, उसकी एक संक्षिप्त तालिका नीचे दी जाती है। इस तालिकासे बन्दरोंके साथ इनकी कहां तक पृथकता है, उसे आसानीसे समझ सकते हैं।

बन्दर जाति (*Simiadae*)



विस्तृत विवरण वानर शब्दमें देखो।

इस बन्दर जातिके मध्य S. Satyrus श्रेणीके वन-मानुष नामक पशु कुछ लाल रंगका होता है। इसका चेहरा चौड़ा, मुख गोल एवं नुकीला, कपालका निचला हिस्सा चिपटा तथा आंखें छोटी होती हैं एवं हनुकोष छोटा होता है; दोनों पार्श्वमें बारह हड्डियां होती हैं, छातीकी हड्डियां दो भागोंमें विभक्त रहती हैं। हस्तद्वय गुल्फग्रन्थिविलम्बी, पर लम्बा तथा पतला होता है। इन-में कभी नाखून दिखाई नहीं पड़ते। ये प्रायः पांच फीटसे ऊंचे नहीं होते। सुमात्रा तथा बोर्नियो द्वीपमें इनका वास है।

जीवतत्त्वविद्गण कहते हैं, कि जीवजातिके पशु-श्रेणीके मध्य 'गोरिल्ला' प्रथम स्थानका अधिकारी है। शिम्पाञ्जी उसके निम्न आसनके और ओरंग उटान तृतीय स्थानके अधिकारी हैं। कारण यह है, कि इन लोगोंके मानसिक ज्ञानमें भी इसी तरह कुछ पृथक्ता दृष्टिगोचर होती है। आश्चर्यका विषय यह है, कि ओरंग उटान इन सबोंकी अपेक्षा दीर्घाकार होता है एवं मनुष्यकी आकृतिसे बहुत कुछ मिलता जुलता है। इनकी छाती, भुजाएं तथा हाथोंकी बनावट मनुष्य-के समान ही होती है। मनुष्यजातिमें जिस तरह सब-की आकृति एक-सी नहीं होती, उसी तरह इनकी मुखा-कृतिमें भी कुछ न कुछ अन्तर अवश्य दिखलाई पड़ता है। ओरंगोंमें जो विशेष बुद्धिमान् होता है, वह मुखके भाव तथा रंग-ढंगसे विशेष विचक्षणताके साथ हृदयके भावोंको प्रकट करनेमें समर्थ होता है एवं कितने ही वनमानुष तो मनुष्यकी तरह हर्षक्रोधादि विभिन्न मान-सिक वृत्ति भी प्रकाश कर सकते हैं।

ये भारतवर्षके द्वीपोंके वनमाला-परिव्याप्त समतल प्रान्तमें घूम-फिर कर समय बिताते हैं। यहां ये भूमिसे वृक्षके ३०, ४० फीट ऊंची डालों पर वृक्षोंके पत्ते तथा दूसरी पतली डालियां इकट्ठी करके छोटे छोटे झोंपड़े बनाते हैं। इनके झोंपड़ेका व्यास प्रायः दो फीट होता है। ये वृक्षकी डालोंको चटाईकी तरह बुन कर विश्राम करनेकी शय्या तैयार कर लेते हैं। वनमें वास करनेके लिये मनुष्य कुठार या छुरेके सहायसे जिस तरह वृक्षशाखाओंको छतरी बना कर उससे आच्छादन करते हैं, ठीक उसी तरह ये भी अपने घरोंको पाटते हैं। उन पाटनों पर ये वृक्षके कच्चे तथा कोमल पत्ते बिछा कर चित्त लेटा करते हैं। निद्राकालमें ये हाथ या पांव बढ़ा कर पासकी मजबूत डाली पकड़ कर आनन्दसे सोते हैं। जब तक वे पत्ते सूख कर छिन्न भिन्न न हो जाते हैं, तब तक वे उसी शय्या पर स्वच्छन्दतापूर्वक सोते हैं।



ओरंग उटान।

बर्नियो-द्वीपवासी ओरंग गण अत्यन्त झगड़ालू होते हैं। जब ये वनके बाहर फल फूल खानेके लिये आते हैं, तब किसी सामान्य कारणसे ही झगड़ा कर एक दूसरे-को क्षत विक्षत कर देते हैं। इनके दांत इनकी आत्म-रक्षाके अस्त्रस्वरूप हैं। झगड़ेके समय ये शत्रुके हाथ तथा माथा खींच कर दांतोंसे नोच लेते हैं। यदि किसी समय कोई मनुष्य या हाथी अचानक उनके झोंपड़ेके पास जा पहुंचते हैं, तो ये उन्हें वहांसे भगा देनेके अभि-प्रायसे उन पर वृक्षोंकी डाल तथा पत्थरोंके टुकड़े फें

वेगसे प्रहार करना शुरू करते हैं। पीछे हाथी वृक्षको तोड़ कर उनके झोपड़े नष्ट कर देते हैं, इसी भयसे वे हाथीको देखते ही उसे भगानेकी चेष्टा करते हैं। समय समय पर वे वनपथगामी असहाय पथिकों पर वृक्षकी डाल लिये बड़े वेगसे आक्रमण करते हैं। कुमियर तथा कप्तान पाइनेरकी वर्णनासे जाना जाता है, कि एक समय इन सबोंने नेग्रो-बालिकाओंको हर कर वनमें छिपा रखा था।

पिंजरावद्ध शिम्पांजीकी अनुकरणप्रियता और सुबुद्धिकी प्रखरताका परिचय पा कर डा० ट्रेल कहते हैं, कि उनका स्वभाव बड़ा ही आश्चर्यजनक होता है। उसे पर्यवेक्षण करके नित्य ही नूतन गल्प सङ्कलन किया जा सकता है। वे आसानीसे वशीभूत होते हैं, यहां तक कि जो उन्हें प्यार करते हैं, उनके पास बैठ कर वे भोजन तक करते हैं। जो व्यक्ति उन्हें सर्वदा चिढ़ाया करते हैं, उन्हें देखते ही वे विरक्ति भाव प्रकाश करके उनके पास-से खिसक जाते हैं। यूरोपीय प्रथानुसार वे भी हाथ मल कर आनन्द प्रकाश करते हैं। उनके शरीर रोयें से ढके रहने पर भी वे शीतप्रधान देशमें वास करना पसन्द नहीं करते। शीतप्रधान यूरोपखण्डमें वे अपने मालिकके दिये हुए कम्बल बिछा कर आनन्दसे लेटते हैं। क्रोधित होने पर वे ऊंचे स्वरसे चिल्ला उठते हैं एवं मीठा खाना पानेसे वे "हाम हाम" शब्दों द्वारा आनन्द प्रकाश करते हैं।

शारावकसे सर जेमस् ब्रुकने कलकत्ताके बंगाल एसियाटिक सोसाइटीके आदुघरमें एक दीर्घाकार वन-मानुषका कंकाल भेजा था। मि० ब्लाइदने उनकी पृथकता लक्ष्य कर उनके पांच दल निर्देश किये हैं,—१ Pithecus Brookei वा मियस रम्बि, २ P. Satyrus वा मियस पप्पन, ३ P Curtus वा मियस छापिन्; ४ P. morio वा, मियस कसर एवं ५ P. Owenii, ये सब विभिन्न द्वीपोंके वनमानुष भारतीय द्वीपोंके विभिन्न भागोंमें वास करते हैं। सुमात्राके उत्तरांशमें P. morio एवं दक्षिणांशमें P. Owenii जातियोंका वास देखा जाता है। जीवतत्त्वविद् अट्वेनने इन द्वीपोंके Simaia Satyrus तथा S. morio नामक दो जातीय वनमानुषों-का उल्लेख किया है। पश्चिम-अफ्रिकाके गिनून नदी-तीरप्रदेशवासी T. gorilla तथा P. nigar दलोंके शिम्पांजी तथा गोरिला जातिका विस्तृत विवरण वानर शब्दमें लिखा गया है। वानर देखो।



शिम्पाञ्जी।

वनमार्जार (सं० पु०) वनबिड़ाल।

वनमाल (सं० त्रि०) १ वनमाला। (पु०) २ कृष्ण या विष्णु। ३ प्राग्ज्योतिषके भगदत्तवंशीय एक राजा। प्राग्ज्योतिष देखो।

वनमालदेव—शिलालिपि वर्णित कामरूपके एक राजा।

वनमाला (सं० स्त्री०) वनोद्भवा पुष्परचिता माला, मध्य-पल्लोपी। १ वनके फूलोंकी माला। २ एक विशेष प्रकारकी माला। यह सब ऋतुओंमें होनेवाले अनेक प्रकारके फूलोंसे बनती और घुटने तक लंबी होती थी। ऐसी माला श्रीकृष्ण धारण करते थे। ३ छन्दोभेद। इसके प्रत्येक चरणमें १८ अक्षर होते हैं। उनमेंसे १, २, ३, ४, ५, ६, ८ ११, १४, और १६ वर्ण लघु तथा बाकी वर्ण गुरु होते हैं। इसका १, २, ३, ४, ५, ७, ६, १०,

११, १३ और १६ वर्ण लघु तथा ६, ८, १२, १४ और १५ लघु होते हैं।

वनमालाधर (सं० त्रि०) १ श्रीकृष्ण। २ छन्दोभेद।

वनमालिका (सं० स्त्री०) १ आस्फोटा, चमेली। २ वनमल्लिका, सेवती। ३ वाराहीकन्द।

वनमालिदास—वनमाला नामक ग्रन्थके प्रणेता।

वनमालिन् (सं० पु०) वनमाला अस्त्यस्येति इनि। १ श्रीकृष्ण। २ नारायण। (त्रि०) ३ वनमाला धारण करनेवाला।

वनमालिनी (सं० स्त्री०) १ द्वारकापुरी २ वाराही।

वनमालिभट्ट—गीतगोविन्दके टीकाकार।

वनमाली (सं० पु०) वनमालिन् देखो।

वनमाली—१ अद्वैतसिद्धिसिद्धान्तके प्रणेता। २ न्यायखण्डन और मायावादखण्डनके रचयिता। ३ कृष्णनोपनयनविधानके प्रणेता। ४ प्रायश्चित्तसारकौमुदीके रचयिता। ५ भक्तिरत्नाकरके प्रणेता। ६ भगवद्गीताके एक टीकाकार। ७ मुक्तावली नामक वेदान्तग्रन्थके रचयिता। ८ वेदान्तदीप और स्फुटचन्द्राप्ती नामक ज्योतिःशास्त्रके प्रणेता। ९ एक प्राचीन कवि।

वनमाली मिश्र—१ वैयाकरणभूषण-सत्यमञ्जरी और सिद्धान्ततत्त्व विवेक नामक ग्रन्थके रचयिता। ये कोण्डभट्टके छात्र थे। २ भावमञ्जरी नामक ज्योतिर्ग्रन्थके प्रणेता। ३ ब्रह्मानन्दीय खण्डन और वनमालिमिश्रीय नामक वेदान्तके रचयिता।

वनमालोना (सं० स्त्री०) धीवरी।

वनमुच् (सं० पु०) वन जलं मुञ्चतीति मुच्-क्विप्। १ मेघ, बादल। (त्रि०) २ जलवर्षणकारिमात्र।

वनमुद्ग (सं० पु०) वनोद्भवो मुद्गः। १ मकुष्ठक, वनमूंग। पर्याय—वरक, निगूढक, कुलीनक, मयष्टी। २ मुद्गपर्णी, मुगानी।

वनमूत (सं० पु०) वनं जलं मूतं बद्धं येन, वनं मुञ्चतीति वा। मेघ, बादल।

वनमूर्द्धजा (सं० स्त्री०) वनस्य मूर्द्धनि जायते इति जन-ड। १ वनबीजपूरक, जङ्गली बिजौरा नीबू। २ कर्कटशृङ्गी, काकड़ासिंगी।

वनमूलफल (सं० क्ली०) वनजात कन्द और फल।

वनमृग (सं० पु०) हरिणविशेष।

वनमेथिका (सं० स्त्री०) आरण्यमेथिका, वनमेथी।

वनमोचा (सं० स्त्री०) वनोद्भवा मोचा। काष्ठकदली, वनकेला।

वनयमानी (सं० स्त्री०) अजमायनके छोटा पौधा, वनअजवायन।

वनयितृ (सं० त्रि०) हारयिता।

वनर (सं० पु०) वानर-पृषोदरादित्वात् आकार ह्रस्वः। वानर, बन्दर।

वनरक्षक (सं० त्रि०) वनकी रखवाली करनेवाला।

वनरम्भा (सं० स्त्री०) काष्ठकदली, वनकेला।

वनरसो—दाक्षिणात्यके महिसुर राज्यके कोलार जिलान्तर्गत एक ग्रामग्राम। यह अक्षा० १३° १४´ ३०´´ उ० तथा देशा० ७८° ११´ ३१´´ पू० तक विस्तृत है। यहां हर साल वैशाख महीनेमें रामनवमीपर्वके उत्सवमें एक मेला लगता है। इस मेलेमें एक लाखके करीब गाय आदि पशु बिकते हैं।

वनराज् (सं० पु०) वटवृक्ष, बरगद।

वनराज (सं० पु०) वनस्य वने वा राजा, इति वनराजन्-टच् (राजाहःसखिभ्यष्टच्। पा ५।४।९१) १ सिंह। २ वनका अधिपति, वनका मालिक। ३ अश्मन्तक वृक्ष।

वनराजि (सं० स्त्री०) १ वनकी श्रेणी, वन समूह। २ वनके बीच गई हुई पगडंडी। ३ वसुदेवकी एक दासीका नाम।

वनराजी (सं० स्त्री०) वनराजि देखो।

वनराट् (सं० पु०) वट वृक्ष, बरगद।

वनराष्ट्र (सं० पु०) जनपदभेद और जाति विशेष।

(मार्कण्डेयपु० ५८।४६)

वनराष्ट्रक (सं० पु०) वनराष्ट्र देखो।

वनरुह (सं० क्ली०) पद्म, कमल।

वनर्गु (सं० त्रि०) वनगामी।

वनर्ण (सं० पु०) शृङ्गीवृक्ष।

वनर्द्धि (सं० स्त्री०) वनकी समृद्धि, वनसम्पद्।

वनर्षु (सं० त्रि०) १ वेगेन वनविहरणकारी। (पु०) २ वनका वायु।

वनलक्ष्मी (सं० स्त्री०) वनस्य लक्ष्मी शोभा। १ कदली, केला। २ वनश्री, वनकी शोभा।

वनलता (सं० स्त्री०) वनजात लता, वल्ली।

वनलेखा (सं० स्त्री०) वनानां लेखा ६ तत्। वनकी श्रेणी, वन-समूह।

वनवर्व्वरिका (सं० स्त्री०) वनजाता वर्व्वरिका। अरण्यजात वर्व्वरी, वनतुलसी। पर्याय—सुगन्धि, सुप्रसन्नक, दोप, क्रेशी, विषघ्न, सुमुख, सूक्ष्मपत्रक, निद्रालु, शोफहारी, सुवक। इसका गुण—उष्ण, सुगन्धि, विशाल, वान्ति और भूतघ्न तथा घ्राणसन्तर्पणकारी। (राजनि०)

वनवह्नि (सं० पु०) वनस्य वनोद्भवो वा वह्निः। दावानल।

वनवात (सं० पु०) वनवायु, वनानिल।

वनवास (सं० पु०) वने वासः। १ वनका निवास, जङ्गलमें रहना। २ बस्ती छोड़ कर जङ्गलमें रहनेकी व्यवस्था या विधान। ३ मधूकवृक्ष, महुएका पेड़। (त्रि०) वने वासो यस्य। ४ वनवासी, जङ्गलमें रहनेवाला।

वनवासक (सं० पु०) १ शाल्मलीकन्द। २ एक प्राचीन नगर जो कादम्ब राजाओंकी राजधानी था। कादम्ब देखो।

वनवासन (सं० पु०) वनं वासयति गन्धेनेति वासि-ल्यु। १ खट्टाश, उद्‌विलाव। (त्रि०) २ वनमें बसाना।

वनवासिन् (सं० पु०) वनं वासयति सुरभीकरोति इति वासि-णिनि। १ ऋषभ नामक ओषधि। २ मुष्ककवृक्ष, मोखा नामका पेड़। ३ वाराहीकन्द। ४ शाल्मलीकन्द। ५ नीलमहिषकन्द। ६ द्रोणकाक, डोम कौआ, बड़ा काला कौआ। ७ द्वीपान्तरस्थ खर्जूरीवृक्ष, दोनों किनारे लगा हुआ खजूरका पेड़। (त्रि०) वने वसतीति वस-णिनि। ८ वनवासकारी, वनमें रहनेवाला, बस्ती छोड़ कर जङ्गलमें निवास करनेवाला।

वनवासी (सं० पु० त्रि०) वनवासिन् देखो।

वनवासी—दक्षिणमें तुङ्गभद्राकी शाखा वरदा नदीके किनारे बसा हुआ एक प्राचीन नगर। यह कादम्ब राजाओंका प्रधान नगर था। भौगोलिक टलेमी Banawasei नामसे इसका उल्लेख कर गये हैं। कादम्ब देखो।

वनवास्य—जनपदभेद, दक्षिणका वनवासी राज्य।

वनविड़ाल (सं० पु०) वनमार्जार।

वनविरोधिन् (सं० त्रि०) १ वनका शत्रु। (पु०) २ वर्षा ऋतु।

वनविलासिनी (सं० स्त्री०) शङ्खपुष्पी लता।

वनवीज (सं० पु०) वनवीजपूरक, जंगली बिजौरा नीबू।

वनवीजपूरक (सं० पु०) वनजात मातुलुङ्ग वृक्ष, जंगली बिजौरा नीबू। मराठी—वनमाहुलिङ्ग। कनाड़ी—कामाघवल। इसका गुण—अम्ल, कटु, उष्ण, रुच्य, वातघ्न, अम्लदोष और कृमिनाशक, कफघ्न तथा श्वासघ्न। (राजनि०)

वनवीर—सिसोदिया वीरवर पृथ्वीराजकी उपपत्नीके गर्भसे इसका जन्म हुआ था। राणा विक्रमाजीत और सरदारोंमें कुछ मनमुटाव हो गया। इसलिये सरदारोंने मेवाड़के सिंहासनसे राणा विक्रमाजीतको उतार कर उस पर वनवीरको बिठाया।

वनवीर गद्दी पर बैठते ही निष्कण्टक होनेका प्रयत्न करने लगा। राणा विक्रमाजीत तो उसकी आँखोंमें गड़ते ही थे। दूसरा संग्रामसिंहका छोटा लड़का उदयसिंह भी शुक्लपक्षके चन्द्रमाके समान बढ़ रहा था। वह भी वनवीरका एक बहुत दृढ़ कण्टक था। वनवीरने अन्तमें अपने कण्टकोंको निकाल देना ही निश्चित किया। एक दिन वनवीर अपना विचार दृढ़ कर रातकी प्रतिक्षा करने लगा। धीरे धीरे रात आ गई। इस समय कुमार उदयसिंह भोजन करके सोये हैं, उनकी धाय बिस्तरे पर बैठी सेवा कर रही हैं। उसी समय रनिवासमें रोने पीटनेकी आवाज सुनाई दी। धाय उठना ही चाहती थीं, कि बारी राजकुमारकी जूठन उठाने वहां आया। उसने कहा बड़ा अनर्थ हुआ, वनवीरने राणा विक्रमाजीतको मार डाला। सुनते ही धायका हृदय कांपने लगा। वह समझ गई, कि वह दुष्ट राणाको मार कर ही चुप नहीं रहेगा। राजकुमारके भी प्राण लेने इधर आयगा। उसे एक उपाय सूझ पड़ा। उसने एक टोकरेमें राजकुमारको लेटा कर ऊपरसे पत्ता ढांप दिया और बारी द्वारा राजकुमारको वहांसे हटा दिया। उसके जाते ही वनवीर रुधिरसे सनी तलवार ले कर वहां आ गया। उसने पूछा "राजकुमार कहां है?" धायने राजकुमारके बदले अपने पुत्रको ही बतला दिया। वनवीरने उसे भी मार डाला और तबसे उसने अपनेको निष्कण्टक समझ लिया।

इस भागका अरुण नाम था पड़ा। यह उस घाटी-को ढूंढने राजमहलसे बाहर निकले और पूर्वनिर्दिष्ट स्थान पर उसने राजकुमार तथा धात्रीको पाया। धात्रीने वनस्थलीके भागक स्थानमें पहुंच राजकुमारको भाला-माह भागक एक भीलोंके घर रख दिया। राजकुमार वहीं फूलने फलने लगे। स्थानीय सरदारोंने राजकुमार-को अपना राजा मान लिया। जब वनवीरको इसकी खबर लगी, तब वह बहुत चिन्तित हुआ, लेकिन अब वह चिन्तित हो कर कर ही क्या सकता था। सरदारोंने चौकिसी राजकुमार उदयसिंहका अभिषेक किया और वनवीर भाग कर दक्षिणकी ओर चला गया। नाग-पुरके भोंसले इसीकी सन्तान हैं।

वनशृङ्गाटी (सं० स्त्री०) वनस्य शृङ्गाटी वार्त्ताकी। भूरिंगणी, वनभंटा।

वनशोथि (सं० पु०) वनस्य शोथिः। वेणुधान्य, ज्वार।

वनशिम्बिका (सं० स्त्री०) आरण्यशिम्बी, वनसेमी।

वनशूकरी (सं० स्त्री०) वनस्य शूकरीव रोमशत्वात् मांस लक्षणाद। १ कपिकच्छु, केवांच। २ आरण्यवराही, जंगली मादा सूअर।

वनशूरण (सं० पु०) वनजातः शूरणः। वनोद्भवोल, वन ओल। पर्याय—शिखिशूरण, वन्य, वनकन्द, अरण्य-शूरण, वनज, भोरशूरण, वनकन्दुक। इसका गुण—कषाय, कटु, उष्ण, रुचि, गुल्म और शूलादि दोषघ्न तथा अर्श नाशनिवारक।

वनशृङ्गाट (सं० पु०) वनस्य शृङ्गाट इव, कण्टकायुक्तत्वात्। गोक्षुर, गोखरू। पर्याय—क्षुरक, त्रिकण्टक, स्वादुकण्टक, गोकण्टक, गोक्षुरक, वनशृङ्गाट, पलङ्कषा, श्वदंष्ट्रा और इक्षुगन्धिका। (भाव० पू० भाग)

वनशोभन (सं० क्ली०) वनं जलं शोभयतीति शुभ-णिच्-ल्यु। १ पद्म, कमल। (त्रि०) २ वनकी शोभा बढ़ानेवाला।

वनश्वन (सं० पु०) वने श्वा इव कुक्कुरः। १ गन्धमार्जार, गंधविलाव। २ शृगाल, शृगाल। ३ व्याघ्र, बाघ।

वनषण्ड (सं० पु०) वनसमूह वन या जङ्गल।

वनसद् (सं० त्रि०) १ वनवासी, वनमें रहनेवाला। (पु०) २ पक्षी। (ऋक् १० ११।४) वनसद् देखो।

वनसम्पर्येन (सं० पु०) लकड़ीकी देवमूर्ति बनानेके उद्देश से लकड़ीके लिये वनमें जाना।

वनसम् (सं० क्ली०) वननीय तेज और धन।

वनसस (सं० पु०) १ इच्छा। २ अनुरक्ति। ३ धन।

वनसङ्कट (सं० पु०) वने सङ्कटो यस्य वन्य मसूर। मसूर।

वनसङ्ग (सं० लि०) १ वनवासी। (पु०) २ वनवह्नि, दावाग्नि।

वनसमूह (सं० पु०) वनानां समूहः। १ अरण्यपंक्ति, वनराजि। पर्याय—अरण्य, गहन। २ जलसमूह, जलका ढेर।

वनसरोजिनी (सं० स्त्री०) वनस्य सरोजिनी पद्मिनीव शोभाकरत्वात्। वनकार्पासी, जङ्गली कपास।

वनसाहया (सं० स्त्री०) पश्य वनोद्भवी लता।

वनस्तम्ब (सं० पु०) गरुड़के एक पुत्रका नाम।

वनस्थ (सं० पु०) वने तिष्ठतीति स्था-क। १ मृग। २ वानप्रस्थ। गृहस्थोंके त्रिगुण, ब्रह्मचारियोंके त्रिगुण और वानप्रस्थ यतियोंके चतुर्गुण शौच होता है। (त्रि०) ३ वनवासी।

वनस्थली (सं० स्त्री०) वनभूमि, अरण्यदेश, जङ्गली जमीन।

वनस्था (सं० स्त्री०) वने तिष्ठतीति स्था-क-टाप्। अश्व-त्थवृक्ष, पीपलका पेड़।

वनस्थान (सं० क्ली०) जनपदभेद।

वनस्पतिकन्या (सं० स्त्री०) हस्वपुष्पी, छोटी बराई।

वनस्पति (सं० पु०) वनस्य पतिः। पारस्करादित्वात् सुट्। १ पुष्पहीन फलवान वृक्ष, वह पेड़ जिसमें फूल न हो केवल फल हो। जैसे—गूलर, बड़, पीपल आदि वट वर्गके वृक्ष। २ वृक्षमात्र, पेड़। ३ अश्वत्थवृक्ष, पीपलका पेड़। ४ वटवृक्ष, बरगद। ५ धृतराष्ट्रके एक पुत्रका नाम। (भारत १।१२।६१) ६ धूम्रपुत्रके एक पुत्रका नाम।

वनस्पतिकाय (सं० पु०) वानस्पतिक वृक्षोंका समूह।

वनस्पतिशास्त्र (सं० पु०) वह शास्त्र जिसके द्वारा यह जाना जाता हो, कि पौधों और वृक्षों आदिके कितने प्रकार, रूप और कौन कौनसी जातियां होती हैं, उनके भिन्न भिन्न अंगोंकी बनावट कैसी होती है और जल, वायु आदिके द्वारा किस प्रकारके नये पौधे या वृक्ष उत्पन्न होते हैं, वनस्पतिविज्ञान।

वनस्पतिसव (सं० पु०) एकाहभेद।

वनस्रज् (सं० स्त्री०) वनपुष्पोद्भवा या स्रक्। वनमाला।

वनहवन्दि (सं० पु०) नगरभेद।

वनहरि (सं० पु०) सिंह।

वनहरिद्रा (सं० स्त्री०) वनोद्भवा हरिद्रा, अरण्यहरिद्रा, जंगली हल्दी। महाराष्ट्र—साली; कोङ्कण—अडिविशका, अरिमिन ; तैलङ्ग—कस्तूरि पशुपु, अड्विपसुपु ; बम्बई—वनहल्द, कचोरा ; तामिल—कस्तूरि मञ्जल। संस्कृत पर्याय—शोली, शोलिका, वनारिष्टा। गुण—कटु, रुचिकर, तिक्त, दीपन और गौल्य।

वनहास (सं० पु०) वनस्य हास इव प्रकाशकत्वात्। १ काश, काँस। २ कुन्दका फूल।

वनहासक (सं० पु०) वनहास स्वार्थे कन्। काश, काँसा।

वनहुगली—कलकत्तेके उत्तर उपकण्ठस्थित एक प्रसिद्ध गण्डग्राम।

वनहुताशन (सं० पु०) वनोद्भवः हुताशनः। वनाग्नि।

वनाखु (सं० पु०) वनस्याखुः। शशक, खरगोश।

वनाखुक (सं० पु०) मुद्ग, मूँग।

वनाग्नि (सं० पु०) वनजात अग्नि, वनआग।

वनाचार्य—चन्द्रभरणहोरा नामक ज्योतिःशास्त्रके प्रणेता।

वनाज (सं० पु०) वनस्य अजः। वनछाग, जंगली बकरा। पर्याय—इड्डिक, शिशुवाहक, पृष्ठशृङ्ग।

वनाटन (सं० क्ली०) वने अटनं। वनभ्रमण, जंगलमें घूमना।

वनाटु (सं० पु०) वर्णा, नीली मक्खी।

वनान्त (सं० पु०) वनस्य अन्तः। वनप्रान्त, जंगली भूमि या मैदान।

वनान्तर (सं० क्ली०) अन्यत् वनं। अपर वन, दूसरा जंगल।

वनान्तराल (सं० क्ली०) वनपार्श्व, जंगलके आस-पासका स्थान।

वनापगा (सं० क्ली०) वनोद्भव नदी।

वनाब्जिनी (सं० स्त्री०) जलपद्म।

वनाभिलाव (सं० त्रि०) वनध्वंसकारी, जंगलको उजाड़नेवाला।

वनामल (सं० पु०) वनस्य आमलः आमलक इव। कृष्णपाकफल, काला करौंदा।

वनाम्बिका (सं० स्त्री०) दक्षकन्या शक्तिमूर्त्तिभेद।

वनाम्र (सं० पु०) वनस्य आम्र इव। कोशाम्र, कोसम नामक वृक्ष या उसका फल।

वनायु (सं० पु०) १ एक प्राचीन देशका नाम। यहांका घोड़ा अच्छा होता था। २ इस देशमें रहनेवाली जाति। ३ दानवविशेष। (भारत १।६५।३०) ४ पुरूरवाके एक पुत्रका नाम।

वनायुज (सं० पु०) वनायौ देशे जायते जन-ड। वनायुदेशोद्भव घोटक, वनायु देशका घोड़ा।

वनारपुर—एक प्राचीन नगरका नाम।

(भविष्य ब्रह्मख० ५८।१७)

वनारिष्टा (सं० स्त्री०) वनजाता अरिष्टेव। वनहरिद्रा, जंगली हल्दी।

वनार्चक (सं० पु०) वनस्य अर्चक इव नियतपुष्पचारित्वात् तथात्वं। पुष्पजीवी, वह जो माला बना कर अपनी जीविका चलाता है।

वनार्द्रक (सं० पु०) वनोद्भव आर्द्रकः। जंगली अदरक।

वनार्द्रका (सं० स्त्री०) वनार्द्रक, जंगली अदरक।

वनालक्त (सं० क्ली०) गैरिक, गेरू।

वनालय (सं० पु०) वनके बीचका रहनेका घर।

वनालयजीविन (सं० पु०) वह जो जंगली द्रव्य द्वारा अपनी जीविका चलाता हो।

वनालिका (सं० स्त्री०) वनं अलति भूषयति अल-ण्वुल् टाप् टापि अत इत्वं। हस्तिशुण्डी लता, हाथीसूंडी।

वनाली (सं० स्त्री०) वनराजि, वनकी श्रेणी।

वनाश्रम (सं० पु०) वनमेव आश्रमः। वनरूप आश्रम।

वनाश्रमिन् (सं० त्रि०) वनाश्रमः अस्त्यर्थे इनि। जिसने वनाश्रय लिया है, वानप्रस्थ-धर्मावलम्बी।

वनाश्रय (सं० पु०) वनमेव आश्रयो यस्य। १ द्रोणकाक, डोम कौआ। (त्रि०) २ अरण्याश्रयी, जिसने वानप्रस्थ लिया है।

वनाश्रित (सं० त्रि०) वानप्रस्थाचारी, जिसने वानप्रस्थ लिया है।

इस घटनाका ग्रहण भाव था दिया। यह उस बाली-को ढूंढने राजमहलसे बाहर निकली और पूर्वनिर्दिष्ट स्थान पर उसने राजकुमार तथा बालीको पाया। पापने वनवीर मायाके कमानसे पहुंच राजकुमारको आज्ञा-नुसार मायक एक जैनोंके घर रख दिया। राजकुमार वहीं कुछवें पलने लगे। सामन्त सरदारोंने राजकुमार-को अपना राजा मान लिया। जब वनवीरको इसकी खबर लगी, तब वह बहुत चिन्तित हुआ, लेकिन अब वह चिन्तित हो कर कर ही क्या सकता था। सरदारोंने चित्तौरमें राजकुमार उदयसिंहका अभिषेक किया और वनवीर भाग कर दक्षिणकी ओर चला गया। नाग-पुरके भोंसले उसीके सन्तान हैं।

वनशृन्ताकी (सं० स्त्री०) वनस्य वृन्ताकी वार्ताकी। बृहती, वनभंटा।

वनव्रीहि (सं० पु०) वनस्य व्रीहिः। देवधान्य, जुआर।

वनशिम्बिका (सं० स्त्री०) आरण्यशिम्बी, वनसेमी।

वनशूकरी (सं० स्त्री०) वनस्य शूकरीव रोमवत्वात् अस्य तथात्वम्। १ कपिकच्छु, केवांच। २ आरण्यवराही, जंगली मादा सूअर।

वनशूरण (सं० पु०) वनजातः शूरणः। वनोद्भवोल, वन ओल। पर्याय—शिखिशूरण, वज्र, वनकन्द, अरण्य-शूरण, वनज, अग्निशूरण, वनकन्दल। इसका गुण—कटु, कटु, उष्ण, रुचि, गुरुप और शूलादि दोषनाश तथा अर्श अग्निकारक।

वनशृङ्गाट (सं० पु०) वनस्य शृङ्गाट इव, कण्टकाकृतित्वात्। गोखुरू, गोखरू। पर्याय—क्षुरक, त्रिकण्टक, स्वादुकण्टक, गोकण्टक, गोक्षुरक, वनशृङ्गाट, पलङ्कषा, श्वदंष्ट्रा और इक्षुगन्धिका। (भावप्र० पू० भाग)

वनशोभन (सं० क्ली०) वने जले शोभते इति शुभ-ल्यु। १ पद्म, कमल। (त्रि०) २ वनकी शोभा बढ़ानेवाला।

वनश्वन् (सं० पु०) वने श्वा कुक्कुरः। १ गन्धमार्जार, गंधबिलाव। २ गीदड़, शृगाल। ३ व्याघ्र, बाघ।

वनषण्ड (सं० पु०) जंगलका वन या झुरमुट।

वनसद् (सं० त्रि०) १ वनवासी, वनमें रहनेवाला। (पु०) २ [illegible]। (ऋक् [illegible]) [illegible]।

वनसंयोग (सं० पु०) लकड़ीकी देवमूर्ति बनानेके उद्देश से लकड़ीके लिये वनमें जाना।

वनस्रज् (सं० स्त्री०) वनमाल सेज और पत्र।

वनस (सं० पु०) १ इच्छा। २ कानुर्तन। ३ यज्ञ।

वनसमुद्र (सं० पु०) वने समुद्रो मानुष्यं यस्य। मयूर।

वनसद् (सं० त्रि०) १ वनवासी। (पु०) २ वनवह्नि, दावाग्नि।

वनसमूह (सं० पु०) वनानां समूहः। १ अरण्यपंक्ति, वनराजि। पर्याय—वन्या, गहना। २ जलसमूह, जलकी ढेर।

वनसरोजिनी (सं० स्त्री०) वनस्य सरोजिनी पद्मिनीव शोभाकरत्वात्। वनकार्पासी, जङ्गली कपास।

वनसाह्वया (सं० स्त्री०) वनच उपोदकी लता।

वनस्तम्ब (सं० पु०) गरुड़के एक पुत्रका नाम।

वनस्थ (सं० पु०) वने तिष्ठतीति स्था-क। १ मृग। २ वानप्रस्थ। शूद्रोंके द्विगुण, ब्राह्मणादियोंके त्रिगुण और वानप्रस्थ यतियोंके चतुर्गुण शौच होता है। (त्रि०) ३ वनवासी।

वनस्थली (सं० स्त्री०) वनभूमि, अरण्यदेश, जङ्गली जमीन।

वनस्था (सं० स्त्री०) वने तिष्ठतीति स्था-क-टाप्। अश्वत्थवृक्ष, पीपलका पेड़।

वनस्थान (सं० क्ली०) अरण्यभेद।

वनस्पृहा (सं० स्त्री०) [illegible], छोटी कटाई।

वनस्पति (सं० पु०) वनस्य पतिः। पारस्करादित्वात् सुट्। १ पुष्पहीन फलवान् वृक्ष, वह पेड़ जिसमें फूल न हो केवल फल ही हों। जैसे—गूलर, बड़, पीपल आदि वट वर्गके वृक्ष। २ वृक्षमात्र, पेड़। ३ श्योनाकवृक्ष, पाढ़रका पेड़। ४ वटवृक्ष, बरगद। ५ [illegible]के एक पुत्रका नाम। (भाग० ५।२०।२१) ६ घृतपृष्ठके एक पुत्रका नाम।

वनस्पतिकाय (सं० पु०) जातिगत वृक्षोंका समूह।

वनस्पतिशास्त्र (सं० पु०) वह शास्त्र जिसके द्वारा यह जाना जाता हो, कि पौधों और वृक्षों आदिके क्या क्या रूप और कौन कौन सी जातियां होती हैं, उनके भिन्न भिन्न अंगोंकी बनावट कैसी होती है और उनमें आदिके द्वारा किस प्रकारके नये पौधे या वृक्ष उत्पन्न होते हैं, वनस्पतिविज्ञान।

वनस्पतिसव (सं० पु०) एकाहभेद।

वनस्रज् (सं० स्त्री०) वनपुष्पोद्भवा या स्रक्। वनमाला।

वनहबन्दि (सं० पु०) नगरभेद।

वनहरि (सं० पु०) सिंह।

वनहरिद्रा (सं० स्त्री०) वनोद्भवा हरिद्रा, अरण्यहरिद्रा, जंगली हल्दी। महाराष्ट्र—साली; कोङ्कण—अडिविशिका, अरिसिन। तैलङ्ग—कस्तूरि पशुपु, अड़विपसुपु; बम्बई—वनहल्द, कचोरा; तामिल—कस्तूरि मञ्जल। संस्कृत पर्याय—शोली, शोलिका, वनारिष्टा। गुण—कटु, रुचिकर, तिक्त, दीपन और सौख्य।

वनहास (सं० पु०) वनस्य हास इव प्रकाशकत्वात्। १ काश, काँस। २ कुन्दका फूल।

वनहासक (सं० पु०) वनहास स्वार्थे कन्। काश, काँसा।

वनहुगली—कलकत्तेके उत्तर उपकण्ठस्थित एक प्रसिद्ध गण्डग्राम।

वनहुताशन (सं० पु०) वनोद्भवः हुताशनः। वनाग्नि।

वनाखु (सं० पु०) वनस्याखुः। शशक, खरगोश।

वनाखुक (सं० पु०) मुद्ग, मूँग।

वनाग्नि (सं० पु०) वनजात अग्नि, वनआग।

वनाचार्य—चन्द्राभरणहोरा नामक ज्योतिःशास्त्रके प्रणेता।

वनाज (सं० पु०) वनस्य अजः। वनछाग, जंगली बकरा। पर्याय—इड़िक्क, शिशुवाहक, पृष्ठशृङ्ग।

वनाटन (सं० क्ली०) वने अटनं। वनभ्रमण, जंगलमें घूमना।

वनाटु (सं० पु०) वर्वणा, नीली मक्खी।

वनान्त (सं० पु०) वनस्य अन्तः। वनप्रान्त, जंगली भूमि या मैदान।

वनान्तर (सं० क्ली०) अन्यत् वनं। अपर वन, दूसरा जंगल।

वनान्तराल (सं० क्ली०) वनपार्श्व, जंगलके आस-पासका स्थान।

वनापगा (सं० स्त्री०) वनोद्भवा नदी।

वनाब्जिनी (सं० स्त्री०) जलपद्म।

वनाभिलाय (सं० त्रि०) वनध्वंसकारी, जंगलको उजाड़नेवाला।

वनामल (सं० पु०) वनस्य आमलः आमलक इव। कृष्णपाकफल, काला करौंदा।

वनाम्बिका (सं० स्त्री०) दक्षकन्या शक्तिमूर्त्तिभेद।

वनाम्र (सं० पु०) वनस्य आम्र इव। कोशाम्र, कोसम नामक वृक्ष या उसका फल।

वनायु (सं० पु०) १ एक प्राचीन देशका नाम। यहांका घोड़ा अच्छा होता था। २ इस देशमें रहनेवाली जाति। ३ दानवविशेष। (भारत १।६५।३०) ४ पुरूरवाके एक पुत्रका नाम।

वनायुज (सं० पु०) वनायौ देशे जायते जन-ड। वनायुदेशोद्भव घोटक, वनायु देशका घोड़ा।

वनारपुर—एक प्राचीन नगरका नाम।

(भविष्य ब्रह्मख० ५८।१७)

वनारिष्टा (सं० स्त्री०) वनजाता अरिष्टेव। वनहरिद्रा, जंगली हल्दी।

वनार्चक (सं० पु०) वनस्य अर्चक इव नियतपुष्पचारित्वात् तथात्वं। पुष्पजीवी, वह जो माला बना कर अपनी जीविका चलाता है।

वनार्द्रक (सं० पु०) वनोद्भव आर्द्रकः। जंगली अदरक।

वनार्द्रका (सं० स्त्री०) वनार्द्रक, जंगली अदरक।

वनालक्त (सं० क्ली०) गैरिक, गेरू।

वनालय (सं० पु०) वनके बीचका रहनेका घर।

वनालयजीविन (सं० पु०) वह जो जंगली द्रव्य द्वारा अपनी जीविका चलाता हो।

वनालिका (सं० स्त्री०) वनं अलति भूषयति अल-ण्वुल् टाप् टापि अत इत्वं। हस्तिशुण्डी लता, हाथीसूँडी।

वनाली (सं० स्त्री०) वनराजि, वनकी श्रेणी।

वनाश्रम (सं० पु०) वनमेव आश्रमः। वनरूप आश्रम।

वनाश्रमिन् (सं० त्रि०) वनाश्रमः अस्त्यर्थे इनि। जिसने वनाश्रय लिया है, वानप्रस्थ-धर्मावलम्बी।

वनाश्रय (सं० पु०) वनमेव आश्रयो यस्य। १ द्रोणकाक, डोम कौवा। (त्रि०) २ अरण्याश्रयी, जिसने वानप्रस्थ लिया है।

वनाश्रित (सं० त्रि०) वानप्रस्थाचारी, जिसने वानप्रस्थ लिया है।

वनाहिर (सं० पु०) वनस्य आहिर। शूकर, सूअर।

वनि (सं० पु०) वन (वनिश्रेणिस्वरि...) इति इ। अग्नि, आग।

वनिका (सं० स्त्री०) कुञ्जवन।

वनिकागार (सं० पु०) १ उपवन मध्यस्थ कुञ्ज। २ प्राचीन ग्रामविशेष।

वनित (सं० ति०) वन-क्त। १ याचित, माँगा हुआ। २ सेवित, सेवा किया हुआ।

वनिता (सं० स्त्री०) वन-क्त-टाप्। १ प्रिया, अनुरक्ता स्त्री, प्रियतमा। २ स्त्री, औरत। ३ छः वर्णोंकी एक वृत्ति। इसे 'तिलका' और 'डिल्ला' भी कहते हैं। इसमें दो सगण होते हैं।

वनिताद्विष् (सं० पु०) स्त्रीद्वेषी, वह जो स्त्रीसे ईर्ष्या करता हो।

वनितामोदिन् (सं० पु०) १ सर्पपत्र क्रूरा स्त्री। २ आसक्ता।

वनितामुख (सं० पु०) १ पुराणानुसार मनुष्योंकी एक जाति। (मार्क०पु० ५८।१०) (क्ली०) २ स्त्री-मुखमण्डल।

वनिताविलास (सं० पु०) १ स्त्रियोंको भोग करनेकी इच्छा। २ स्त्री-सम्भोग करनेकी इच्छा।

वनिताराज (सं० क्ली०) प्राचीन ग्रामभेद।

वनिन् (सं० ति०) १ याचक, माँगनेवाला। २ अधिकारी।

वनिन् (सं० पु०) वनं आश्रयत्वेनास्त्यस्येति वन इनि। वानप्रस्थ।

वनिन (सं० क्ली०) १ वनजात पलाश आदि। (ति०) २ वारिदानकारी, जल देनेवाला। ३ वनवासी, जङ्गलमें रहनेवाला। ४ वनोद्भव, वनज। ५ इच्छाशील, इच्छा करनेवाला। ६ पूजा या स्तुति करनेवाला।

वनिष्ठ (सं० ति०) दातृतम, बड़ा भारी दाता।

वनिष्ठु (सं० पु०) बक-पक्षीकी आँत, स्थूलान्त्र।

वनिष्णु (सं० पु०) मलद्वार, गुदा।

वनी (सं० स्त्री०) वनपंक्ति, छोटा वन।

वनीक (सं० ति०) याचक, माँगनेवाला।

वनीयक (सं० ति०) वनिं याचनमिच्छतीति वनीय ण्वुल्। याचक, माँगनेवाला।

वनीपक (सं० ति०) वन ईकच्। भिक्षुक याचक, माँगनेवाला।

वनेपन् (सं० ति०) वननविदित, इच्छा करनेवाला।

वनोपादन (सं० क्ली०) ... परिवर्त्तन, एक स्थानसे दूसरे स्थान पर जाना।

वनु (सं० पु०) हिंसा।

वनुष् (सं० ति०) १ हिंसक, मारनेवाला। २ ...

वने-किंशुक (सं० पु०) वने किंशुक इव। अर्था... प्राप्त, वह वस्तु जो देवसे ही बिना माँगे मिले जैसे ... किंशुक बिना माँगे या प्रयास किये मिलता है।

वने-क्षुद्र (सं० स्त्री०) वनक्षुद्रा अलुक् समासः। ... (...)

वनेचर (सं० ति०) वने चरतीति चर इति ट, अलुक् ... अरण्यचारी, वनमें फिरनेवाला मनुष्य, जंगली आदमी।

वनेज्य (सं० पु०) वने इज्यः। १ ... २ पपैहा, पापड़ा।

वनेकण्टक (सं० पु०) वह वस्तु जो देवसे ही बिना ... मिलता है।

वनेयु (सं० पु०) रौद्राश्वके एक पुत्रका नाम। (भागवत ९।२०...)

वनेराज (सं० स्त्री०) वने राजते राज क्विप्, अलुक् समास... शालमलकी तरह जंगलमें विराजमान। "रोहिद्या ... रश्मिर्वनेराट्" (ऋक् ६।१२।२) 'वनेराट् ... राजमाना' (सायण)

वनेरुहा (सं० स्त्री०) त्रिपर्णी कन्द, तिलकन्द।

वनेवस (सं० ति०) वनवासी।

वनेसर्ज (सं० पु०) वने सर्ज इव। असन वृक्ष।

वनोद्भव (सं० पु ...

वनोत्साह (सं० ...

...दिका ...
आदि ...
...ग्राम
...
...

वनोद्देश (सं० पु०) १ वनसमीप, जंगलके पासका स्थान। २ वनके बीचका स्थान।

वनोद्भव (सं० त्रि०) वने उद्भवो यस्य। १ वन्यतिल, जंगली तिल। २ शृगालकोली, कर्कन्धु। ३ वनशूरण, जंगली ओल। ४ वनबीजपूरक, जंगली बिजौरा नीबू।

वनोद्भवा (सं० स्त्री०) १ वनकार्पासी, जंगली कपास। २ काष्ठमल्लिका। ३ मुद्गपर्णी, मुगानी।

वनोपप्लव (सं० क्ली०) १ वनदहन। २ दावानल।

वनोर्वी (सं० स्त्री०) वनके समीपका स्थान।

वनौकस् (सं० पु०) वनमेव ओको गृहं यस्य। १ वानर, बन्दर। २ शुकशिम्बी, केवाँच। (त्रि०) ३ वनवासी, वह जिसका घर वनमें हो।

वनौघ (सं० पु०) १ वनसमूह। २ भारतके पश्चिम-दिक्स्थ एक पर्वत और उसके पासका जनपद।

वनौषध (सं० स्त्री०) वनकी ओषधियां, जंगली जड़ी बूटी

वन्ति (सं० त्रि०) वन-संभक्ती तृच्। संभक्ता।

वन्थलि (वामनस्थली)—बम्बईप्रदेशके सौराष्ट्र-प्रान्तस्थ एक प्राचीन नगर। यह अक्षा० २१° २८' उ० तथा देशा० ७०° २२' पू०के मध्य अवस्थित है। जूनागढ़से यह ४॥० कोस दक्षिण-पश्चिम पड़ता है। स्थानीय प्रवाद है, कि भगवान् नारायण वामनरूपमें इस नगरमें अवतीर्ण हुए थे। उन्हींके नामानुसार पीछे यह स्थान वामनस्थली कहलाने लगा। यहां लोहे और तांबेके बरतन बनानेका जोरों कारबार चलता है।

वन्दक (सं० त्रि०) वन्दते इति वन्द-ण्वुल्। वन्दनाकारी, स्तुति करनेवाला।

वन्दका (सं० स्त्री०) वन्दक-टाप्। वन्दा।

वन्दथ (सं० पु०) वन्दते स्तौति वन्द्यते स्तूयते इति वा अथ (वन्दशीङ् शपियमिवरियजीवि प्राणिभ्योऽथ)। १ स्तोता, स्तुति करनेवाला। २ स्तुत्य, स्तव या स्तुतिके योग्य।

वन्दन (सं० क्ली०) वन्द्यतेऽनेनेति वन्द-करणे ल्युट्। १ वदन। वन्द भावे ल्युट्। २ प्रणाम, स्तुति।

हरिभक्तिविलासमें १६ प्रकारकी भक्ति बतलाई है, उनमेंसे वन्दन एक है। भक्तोंको चाहिये, कि वे भव बन्धन काटनेके लिये भगवान्में १६ प्रकारकी भक्ति दिख-लावें।

"आयन्तु वैष्णवं प्रोक्तं शङ्खचक्राङ्कनं हरेः।
धारणञ्चोर्द्ध्वपुण्ड्राणां तन्मन्त्राणां परिग्रहः॥
अर्च्चनञ्च जपो ध्यानं तन्नामस्मरणं तथा।
कीर्त्तनं श्रवणञ्चैव वन्दनं पादसेवनं॥
तत्पादोदकसेवा च तन्निवेदितभोजनं।
तदीयानाञ्च संसेवा द्वादशीव्रतनिष्ठता॥
तुलसीरोपणं विष्णोर्देवदेवस्य शार्ङ्गिणः।
भक्तिः षोड़शधा प्रोक्ता भवबन्धविमुक्तये॥"

(हरिभक्तिवि० ११ वि०)

देवपूजामें षोड़शोपचारके मध्य यह अन्तिम उपचार है। देवताकी षोड़शोपचार द्वारा पूजा करनेमें शेषमें वन्दन करना होता है।

हरिभक्तिविलासमें वन्दनका विषय इस प्रकार लिखा है। भगवान्का स्तुतिपाठ करके वन्दन करनेका विधान है। दोनों हाथसे भगवान्के दोनों चरण पकड़ कर शिर-को झुका कर वन्दना करे कि, 'हे ईश! मृत्युके आक्रमण-रूप समुद्रसे त्रस्त और आपके आश्रित हूं, मुझे परित्राण कीजिये।

इसके सिवा दोनों बाहु, दोनों चरण, वक्ष, शिर, दृष्टि, मन और वचन इन अष्टाङ्ग द्वारा वन्दन करना होता है। दोनों घुटने, दोनों बाहु, शिर, वचन और बुद्धि इन पञ्चाङ्ग द्वारा भी वन्दन किया जाता है। यह वन्दन निखिल यज्ञमें प्रधान है। एकमात्र वन्दन द्वारा मन विशुद्ध हो कर हरिके दर्शन हो सकते हैं। वन्दन-कालमें भक्तोंके शरीरमें जितनी धूलिकणा रहेंगी, उतने मन्वन्तर उनका स्वर्गमें वास होगा। जो व्यक्ति असंख्य पाप करके अज्ञानमें मुग्ध रहता है, वह यदि भक्तिपूर्वक हरिको वन्दना करे, तो उसके सब पाप दूर हो जाते हैं और अन्तमें उसे स्वर्गकी प्राप्ति होती है। अतएव देव-वन्दन पापनाशक और स्वर्गजनक है। देवप्रतिमाको देखनेसे ही वन्दन करना होता है। अज्ञानवशतः यदि देववन्दन न करे, तो उसे नरकमें जाना पड़ता है।

(हरिभक्तिवि० ८वि) प्रणाम और नमस्कार शब्द देखो।

३ शरीर पर बनाये हुए तिलक आदि चिह्न। ४ वंदाक,

थोड़ा। ४ एक विरहका नाम। ५ एक मालुकका नाम। ६ एक राजाका नाम। (ऋक् ७।५१।१२)

वन्दन—बङ्गदेशके अन्तर्गत एक नदी। जिसके और उस-के तीरवर्ती भागलपुर एक बड़ा ग्राम।

वन्दनमाला (सं० स्त्री०) वन्दनार्थं माला यत्र सा। १ तोरण, बन्दवार। २ वन्दनवार, वह माला जो मङ्गलापद-के लिये घरोंके द्वार पर या मण्डपके चारों ओर उत्सवके समय बांधी जाती है। इस मालामें फूल पत्तियां गुथी रहती हैं। पत्तियोंके बदले पत्ते गूंथे जाते हैं।

वन्दनमालिका (सं० स्त्री०) वन्दनमाला स्वार्थे कन्-टाप्, इत्वं। मङ्गलोपेतादि सुगन्ध माला, यह माला जो मङ्गलापदके लिये घरोंके द्वार पर या मण्डपके चारों ओर उत्सवके समय बांधी जाती है।

वन्दनवार (हिं० स्त्री०) वन्दनमालिका देखो।

वन्दनश्रुत (सं० त्रि०) यदि अतिशयेन अनुगतो इन्दिरा। स्तुत्य आदि मधुर मेवा श्रोता। ११ वन्दने क्षिप्र सुगमनः। स्तुतिका श्रोता। (ऋक् ५।५१।१७)

वन्दना (सं० स्त्री०) वन्द (ण्यास-श्रन्थ-घट्टि-विदिभ्यश्च युच् । पा ३।३।१०७) इत्यस्य कार्तिकोक्तस्य युच्, टाप्। १ स्तुति। पर्याय—स्तवोगी। २ प्रणाम, वन्दन। ३ हाथ आदि द्वारा तिलक, यह तिलक जो देवताकी प्रसन्नताके लिये मस्तक पर लगाया जाता है।

वन्दि लोग प्रातःके आरम्भमें निर्दिष्टपूर्वक राजाकी यश्रिमालिकी कालमें देवताकी वन्दना किया करते हैं।

वन्दना (सं० स्त्री०) वन्द स्तुत्-टाप्। १ नति, स्तुति। २ प्रणाम आदर आदि। ३ गोरोचन। ४ चर्चा। ५ वाक्य कर्म। ६ तिलकादि चिह्न जो शरीर पर बनाए जाते हैं।

वन्दनीय (सं० त्रि०) वन्दना करने योग्य, आदर करने लायक।

वन्दनीया (सं० स्त्री०) वन्दनीय-टाप्। १ पूजनीया। २ गोरोचना।

वन्दा (सं० स्त्री०) वन्दते अन्यवृक्षानिति वन्दि-अच्, टाप्। वृक्षोपरि जात, दूसरे पेड़ोंके ऊपर उगनेवाला एक परगाछा पौधा, बांदा। (Epidendrum tessellatum) इसका अङ्गुल भिन्न होता है और पेड़की पर उग-कर उस पेड़को दूर करनेवाला कहा गया है।

वन्दाक (सं० पु०) वृक्षोपरि जात, बांदा।

वन्दाटा (सं० स्त्री०) वन्दा, बांदा।

वन्दाकी (सं० स्त्री०) वन्दा, बांदा।

वन्दारु (सं० त्रि०) वन्दते इति शॄवन्द्योरारुरिति आरु (उणादि। पा ३।२।१७३) इति आरु। १ वन्दनशील। (क्लीव) २ स्तोत्र। ३ वन्दाक, बांदा।

वन्दि (सं० स्त्री०) वन्दते इति तुम्बादिभ्यः इन्, इत्यनेन वदि (सर्वधातुभ्य इन्। उण ४।११७) इति इन्। १ आहृत मनुष्य गवादि, कैदी। पर्याय—प्रग्रह, उपग्रह, वन्दी, वन्दिका। (हलायुध०) २ सोपान, सीढ़ी। ३ गृह का चोरोंका भाव। (पु०) ४ स्तुतिपाठक, राजाओंका यश वर्णन करनेवाला।

वन्दिग्राह (सं० पु०) वन्दिरूपेण गृहस्य गृह्णातीति ग्रह-क। सम्प्राप्त देवगणाग्रकेश, डकैत। ये लोग गृहस्थकी वस्तुओंको भरह तक कर उनका परोपकार त्यक्त होते हैं। मिताक्षरामें लिखा है, कि राजा इन्हें शूली पर चढ़ा देवें।

वन्दिचौर (सं० पु०) वन्दिरूप विधाय चौरः चाण्डालः गृहस्थं वन्दिरूप धृत्वा महामूल्यग्रहणपरायण-द्रव्य गृह्णाति। वन्दिग्राह, डकैत। पर्याय—साहस, वन्दीचोर। (त्रिका०)

वन्दित (सं० त्रि०) वन्द-क्त। वन्दन, जिसकी वन्दना करी गयी हो।

वन्दिदेश—प्राचीन जनपदभेद। शायद यहीं राजपूताने-के अन्तर्गत बूंदी राज्य है। (मार्क० ५७ अ०)

वन्दिन् (सं० पु०) वन्दते स्तौति गुणादीनिति वन्द-णिनि। राजाओंकी कलादिकी स्तोत्रादि स्तुतिपाठक। पर्याय—स्तुतिपाठक, मागध, मगध। भविष्यमें प्रप-ञ्चनादि द्वारा राजाओंका स्तुतिपाठ करना ही इनकी वृत्ति है। ब्राह्मणीके गर्भसे क्षत्रियके औरससे इस जाति-की उत्पत्ति हुई है।

"क्षत्रियाद्विप्रकन्यायां सूतो भवति जातितः।"

(मनु० १४ अ०)

ब्राह्मणपुराणमें लिखा है, कि ब्राह्मणके बाद इन्हें प्रथा-नुसार दान देना चाहिये। यदि इन्हें कुछ न दिया जाय, तो दाता निन्दनीय होता है। फिर उसमें लिखा है, कि श्राद्धमें इन्हें दान नहीं करना चाहिए, किन्तु दूसरे प्रकार

लिखा है, कि श्राद्धके बाद वन्दियोंको यथाशक्ति दान देना उचित है। कहनेका तात्पर्य यह कि श्राद्धके पहले इनके लिये भोज्यादि उत्सर्ग करके श्राद्धके बाद इन्हें यह सब वस्तु देवे।

वन्दिनीका (सं० स्त्री०) एक दाक्षायणीका नाम।

वन्दिपाठ (सं० पु०) भट्टवंशियोंका गीत वा वंशकीर्त्ति-वर्णना।

वन्दिमिश्र—बालचिकित्साके रचयिता।

वन्दिवास (वन्दिवासु)—१ मन्द्राज प्रेसिडेन्सीके उत्तर आर्कट जिलान्तर्गत एक उपविभाग या तालुक। भूपरिमाण ४६६ वर्गमील है। यह स्थान शस्यशाली नहीं है। समतल प्रान्तमें परिव्याप्त होने पर भी यहांकी अधिकांश मिट्टी बालुका तथा कंकडोंसे परिपूर्ण है। बीच बीचमें लाल अथवा कृष्णवर्ण भूमिखण्ड देखा जाता है। किन्तु यह क्षार-मिश्रित होनेके कारण शस्योत्पादनके उपयोगी नहीं होता। इस उपविभागमें दो एक उन्नत शिखरवाला पर्वत भी दण्डायमान है।

२ उक्त जिलेका एक नगर। यह अक्षा० १२° ३०′ उ० तथा देशा० ७९° २८′ पू०के मध्य अवस्थित है। यह स्थान इतिहासमें प्रसिद्ध है। विगत कर्णाटक-युद्धके समय इस स्थानमें भी युद्ध हुआ था। आर्कटके नवाब-वंशके आत्मीय एक मुसलमान सामन्त वन्दिवासदुर्गके अधिनायक थे। १७५२ ई०में अंग्रेज-सेनापति मेजर लारेन्सने वन्दिवास पर आक्रमण किया था। तदनन्तर १७५७ ई०में कप्तान आल्डरकोम नगरको जला कर भी दुर्ग पर अधिकार न कर सके। तत्काल ही दुर्गके मध्य अवस्थित फरासी सेनाने अंग्रेजोंको भगा दिया। १७५९ ई०में मनसोनने अत्यन्त तीव्रगतिसे दुर्ग पर आक्रमण किया तो सही, किन्तु दुर्गविजय करनेसे असमर्थ हो अपनी सेना ले कर प्रत्यावृत्त हुए। इसी समय दुर्गस्थ फरासी सेनादल विद्रोही हो उठा। अंगरेज-सेनापति आयरकूटने सुअवसर पा कर दुर्ग पर आक्रमण किया। दुर्गवासिगणने कुछ दिन अवरोध करनेके बाद अंगरेजोंको आत्मसमर्पण किया। फरासियोंके मुखग्रास हस्तच्युत देख कर १७६० ई०के पहले सेनापति लाली अपने दलबलके साथ दुर्गके सामने आ उपस्थित हुए। देखते-देखते दो दिनके मध्य ही लगभग ३ हजार मराठी सेनाके साथ बुसी-रणक्षेत्रमें आ डटे। फरासी सेनाने दुर्गको घेर लिया। निरुपाय हो कर सर आयरकूटने एक दिन दुर्गका द्वार उन्मोचन करके सशस्त्र सेनाके साथ दुर्गमें प्रवेश किया। दोनों दलमें घोरतर संग्राम हुआ। अन्तमें फरासीगण पराजित हुए। बुसी अंगरेजोंके हाथ वन्दी हुए। फरासियोंके साथ अंग्रेजोंकी भारतवर्षमें और कभी ऐसी लड़ाई नहीं हुई। १७८० ई०से ले कर प्रायः तीन वर्ष तक लेफ्टेनेन्ट फ्लिटने अत्यन्त कौशलके साथ महिसुरपति हैदर अलीकी चढ़ाइयोंसे इस दुर्गकी रक्षा की थी। हैदराबाद पर आक्रमण करनेके समयमें सेनापति आयरकूटने उन्हें दो लड़ाइयोंमें सहायता दी थी एवं दूसरी दूसरी लड़ाईमें उन्होंने अत्यन्त दक्षताके साथ अपनी सेनाकी रक्षा करते हुए शत्रुदलको मार भगाया था।

वन्दी (सं० स्त्री०) वन्दि 'कृदिकारादक्तिनः' इति ङीष्। वन्दा, स्तुतिपाठक।

वन्दीक (सं० पु०) इन्द्र।

वन्दीकार (सं० पु०) वन्दीवत् गृहस्थं करोतीति कृ-अण्। वन्दिग्राह, डकैत। पर्याय—मायल, प्रसह्यचौर, विलाभ।

वन्दीकृत (सं० त्रि०) कारावद्ध, जो कैदमें बन्द हो।

वन्दीजन (सं० पु०) राजाओं आदिका यश वर्णन करनेवाला एक प्राचीन जाति।

वन्दीपाल (सं० पु०) कारारक्ष (Jailor)।

वन्द्य (सं० त्रि०) वन्द्यते स्तूयते इति वन्दि-ण्यत्। वन्दनीय, वन्दना करने योग्य।

वन्द्यता (सं० स्त्री०) वन्द्यस्य भावः तल्-टाप्। वन्द्यत्व, वन्द्यका भाव या धर्म।

वन्द्या (सं० स्त्री०) १ वन्द, बाँदा। २ गोरोचना।

वन्द्र (सं० त्रि०) वन्दते स्तौति देवादीन् पूजाकाले इति वन्दि रक्। पूजक।

वन्धुर (सं० क्ली०) १ रथ या गाड़ीका आश्रय जिसमें दोनों हरसे और धुरा प्रधान है। २ गाड़ीमेंका वह स्थान जहां सारथी या गाड़ीवान बैठ कर उसे चलाता है। सायणाचार्यने वेदभाष्यमें इसका अर्थ यों किया है;—'नीड़-- वन्धनाधारभूतम्, उन्नतानतरूपवन्धनकाष्ठम्,

बीरा। ५ एक जिनका नाम। ६ एक असुरका नाम। ७ एक गन्धर्वका नाम। (हरिवं० ३।४३।१४)

वन्दन—बरदोलीराज्यके अन्तर्गत एक गिरिशृङ्ग और उसके नीचे अवस्थित एक बड़ा ग्राम।

वन्दनमाला (सं० स्त्री०) वन्दनार्थं माला मध्य पद लो०। १ मांगल्य, वंदनवार। २ वन्दनवार, वह माला जो मङ्गलकार्यके लिये घरोंके द्वार पर या मण्डपके चारों ओर लटकाई जाती है। इस मालामें फूल पत्तियां गुथी रहती हैं। मङ्गलके समय ये लटकाई जाती हैं।

वन्दनमालिका (सं० स्त्री०) वन्दनमाला स्वार्थे कन्-टाप्, इत्वं। मङ्गलार्थादि गुथी हुई माला, वह माला जो मङ्गलकार्यके लिये घरोंके द्वार पर या मण्डपके चारों ओर लटकाई जाती है।

वन्दनवार (हिं० स्त्री०) वन्दनमालिका देखो।

वन्दारु (सं० त्रि०) वदि अभिवादन शृवन्द्योरारुः इति आरु। स्तुति करनेवाला। २ वन्दना करनेवाला। (ऋक् ४।४।१७)

वन्दना (सं० स्त्री०) वन्द (ण्यासश्रन्थो युच्। पा ३।३।१०७) इत्यनेन भावेऽकर्त्तरि युच्, टाप्। १ स्तुति। पर्याय—प्रणति। २ प्रणाम, नमस्कार। ३ होम भस्म द्वारा तिलक, वह तिलक जो होमकी भस्मसे ललाट, बाहुमें लगाया जाता है।

यति लोग प्रणामके आरम्भमें निर्विघ्नपूर्वक मन्त्रकी परिसमाप्तिकी कामनासे देवताकी वन्दना किया करते हैं।

वन्दा (सं० स्त्री०) वन्द अप्-टाप्। १ नति, स्तुति। २ आकाश लता। ३ बांदा। ४ बन्दी। ५ याचना करना। ६ जिसके सिर और शरीर पर बनाये जाते हैं।

वन्दनीय (सं० त्रि०) वन्दना करने योग्य, आदर करने लायक।

वन्दनीया (सं० स्त्री०) वन्दनीय टाप्। १ पूजनीया। २ गोरोचना।

वन्दाक (सं० स्त्री०) वन्दते आश्रयवृक्षादीनिति वदि-आक, टाप्। वृक्षादनी लता, दूसरे पेड़ोंके ऊपर उगनेवाली एक परजीवी पौधा, बांदा। (Epidendrum tessellatum) इसका स्वाद तिक्त होता है और वैद्यकमें यह कफ, पित्त नाशक बतलाया गया है।

वन्दाक (सं० पु०) वृक्षादनी, बांदा।

वन्दाका (सं० स्त्री०) बन्दा, बांदा।

वन्दाकी (सं० स्त्री०) बन्दा, बांदा।

वन्दारु (सं० त्रि०) वन्दते स्तौति अभिवादयतीति वा (शृवन्द्योरारुः। पा ३।२।१७३) इति आरु। १ वन्दनशील। (स्त्री०) २ स्तुति। ३ वन्दाक, बांदा।

वन्दि (सं० स्त्री०) वन्दते स्तौति गुणादिकं स्तुतिरूपां वाचं इति वन्दि (सर्वधातुभ्य इन्। उण् ४।११७) इति इन्। १ कारागृह, बन्दी, कैदी। पर्याय—प्रग्रह, उपग्रह, ग्राह, बन्दिका। (शब्दरत्ना०) २ सोपान, सीढ़ी। ३ स्तुतिका भाव। (पु०) ४ स्तुतिपाठक, राजाओंका यश वर्णन करनेवाला।

वन्दिग्राह (सं० पु०) वन्दिरिव गृह्णाति गृह्-अण्। कामरूप देशवासी चोर, डकैत। ये लोग गृहस्थोंके घरमें घुस कर उनका सर्वस्व लूट लेते हैं। मिताक्षरामें लिखा है, कि राजा इन्हें शूली पर चढ़ा देवें।

वन्दिचोर (सं० पु०) वन्दिग्रह विचार चोर। अन्यत्र गृहस्थ वन्दिग्रह हरण करनेवाला चोर। वन्दिग्राह, डकैत। पर्याय—प्रग्रह, बन्दीचोर। (त्रिका०)

वन्दित (सं० त्रि०) वन्द-क्त। वन्दक, वन्दना करनेवाला।

वन्दिदेश—प्राचीन जनपदभेद। शायद यही राजपूतानेके अन्तर्गत बूंदी राज्य है। (मार्क० ५७ अ०)

वन्दिन् (सं० पु०) वन्दते स्तौति गुणादिभिः वन्दि-णिनि। राजाओंके सामने उनकी कीर्त्ति स्तुतिपाठक। पर्याय—स्तुतिपाठक, मागध, मगध। अग्निपुराणमें प्रशंसादि द्वारा राजाओंका स्तुतिपाठ करना ही इनकी वृत्ति है। ब्राह्मणोंके शूद्र स्त्रियोंके गर्भसे इस जातिकी उत्पत्ति हुई है।

"[illegible]"

(आदि० १४ अ०)

प्रायश्चित्ततत्त्वमें लिखा है, कि श्राद्धके बाद इन्हें अवश्य कुछ दान देना चाहिये। यदि इन्हें कुछ न दिया जाय, तो श्राद्ध निष्फल होता है। किन्तु शास्त्रमें लिखा है, कि श्राद्धके बाद दान नहीं करना चाहिए, किन्तु दूसरे समय

लिखा है, कि श्राद्धके बाद वन्दियोंको यथाशक्ति दान देना उचित है। कहनेका तात्पर्य यह कि श्राद्धके पहले इनके लिये भोज्यादि उत्सर्ग करके श्राद्धके बाद इन्हें वह सब वस्तु देवे।

वन्दिनीका (सं० स्त्री०) एक दाक्षायणीका नाम।

वन्दिपाठ (सं० पु०) भट्टवंशियोंका गीत वा वंशकीर्त्ति-वर्णना।

वन्दिमिश्र—बालचिकित्साके रचयिता।

वन्दिवास (वन्दिवासु)—१ मन्द्राज प्रेसिडेन्सीके उत्तर आर्काट जिलान्तर्गत एक उपविभाग या तालुक। भूपरिमाण ४६६ वर्गमील है। यह स्थान शस्यशाली नहीं है। समतल प्रान्तमें परिव्याप्त होने पर भी यहांकी अधिकांश मिट्टी बालुका तथा कंकड़ोंसे परिपूर्ण है। बीच बीचमें लाल अथवा कृष्णवर्ण भूमिखण्ड देखा जाता है। किन्तु यह क्षार-मिश्रित होनेके कारण शस्योत्पादनके उपयोगी नहीं होता। इस उपविभागमें दो एक उन्नत शिखरवाला पर्वत भी दण्डायमान है।

२ उक्त जिलेका एक नगर। यह अक्षा० १२° ३०´ उ० तथा देशा० ७६° ३८´ पू०के मध्य अवस्थित है। यह स्थान इतिहासमें प्रसिद्ध है। विगत कर्णाटक-युद्धके समय इस स्थानमें भी युद्ध हुआ था। आर्काटके नवाब-वंशके आत्मीय एक मुसलमान सामन्त वन्दिवासदुर्गके अधिनायक थे। १७५२ ई०में अंग्रेज-सेनापति मेजर लारेन्सने वन्दिवास पर आक्रमण किया था। तदनन्तर १७५७ ई०में कप्तान आल्डरकोम नगरको जला कर भी दुर्ग पर अधिकार न कर सके। तत्काल ही दुर्गके मध्य अवस्थित फरासी सेनाने अंग्रेजोंको भगा दिया। १७५६ ई०में मनसोनने अत्यन्त तीव्रगतिसे दुर्ग पर आक्रमण किया तो सही, किन्तु दुर्गविजय करनेसे असमर्थ हो अपनी सेना ले कर प्रत्यावृत्त हुए। इसी समय दुर्गस्थ फरासी सेनादल विद्रोही हो उठा। अंगरेज सेनापति आयरकूटने सुअवसर पा कर दुर्ग पर आक्रमण किया। दुर्गवासिगणने कुछ दिन अवरोध करनेके बाद अंगरेजोंको आत्मसमर्पण किया। फरासियोंके मुखग्रास हस्तच्युत देख कर १७६० ई०के पहले सेनापति लालो अपने दलबलके साथ दुर्गके सामने आ उपस्थित हुए। देखते देखते दो दिनके मध्य ही लगभग ३ हजार मराठी सेनाके साथ बुसी-रणक्षेत्रमें आ डटे। फरासी सेनाने दुर्गको घेर लिया। निरुपाय हो कर सर आयरकूटने एक दिन दुर्गका द्वार उन्मोचन करके सशस्त्र सेनाके साथ दुर्गमें प्रवेश किया। दोनों दलमें घोरतर संग्राम हुआ; अन्तमें फरासीगण पराजित हुए। बुसी अंगरेजोंके हाथ वन्दी हुए। फरासियोंके साथ अंग्रेजोंकी भारतवर्षमें और कभी ऐसी लड़ाई नहीं हुई। १७८० ई०से ले कर प्रायः तीन वर्ष तक लेफ्टीनेन्ट फिलटने अत्यन्त कौशलके साथ महिसुरपति हैदर अलीकी चढ़ाइयोंसे इस दुर्गकी रक्षा की थी। हैदराबाद पर आक्रमण करनेके समयमें सेनापति आयरकूटने इन्हें दो लड़ाइयोंमें सहायता दी थी एवं दूसरी दूसरी लड़ाईमें उन्होंने अत्यन्त दक्षताके साथ अपनी सेनाकी रक्षा करते हुए शत्रुदलको मार भगाया था।

वन्दी (सं० स्त्री०) वन्दि 'कृदिकारादक्तिनः' इति ङीष्। वन्द्रा, स्तुतिपाठक।

वन्दीक (सं० पु०) इन्द्र।

वन्दीकार (सं० पु०) वन्दीवत् गृहस्थं करोतीति कृ अण्। वन्दिग्राह, डकैत। पर्याय—माचल, प्रसह्यचौर, चिल्लाभ।

वन्दीकृत (सं० त्रि०) कारावद्ध, जो कैदमें बन्द हो।

वन्दीजन (सं० पु०) राजाओं आदिका यश वर्णन करनेवाला एक प्राचीन जाति।

वन्दीपाल (सं० पु०) कारारक्षक (Jailor)।

वन्द्य (सं० त्रि०) वन्द्यते स्तूयते इति वदि-ण्यत्। वन्दनीय, वन्दना करने योग्य।

वन्द्यता (सं० स्त्री०) वन्द्यस्य भावः तल्-टाप्। वन्द्यत्व, वन्द्यका भाव या धर्म।

वन्द्या (सं० स्त्री०) १ वन्दा, बाँदा। २ गोरोचना।

वन्द्र (सं० त्रि०) वन्दते स्तौति देवादीन् पूजाकाले इति वन्दि रक्। पूजक।

वन्धुर (सं० क्ली०) १ रथ या गाड़ीका आश्रय जिसमें दोनों हरसे और धुरा प्रधान है। २ गाड़ीमेंका वह स्थान जहां सारथी या गाड़ीवान बैठ कर उसे चलाता है। सायणाचार्यने वेदभाष्यमें इसका अर्थ यों किया है;—'नीड़ - वन्धनाधारभूततम, उन्नतानतरूपबन्धनकाष्ठम्,

[illegible] ।
[illegible] देखो ।

वन्धुरस्थ (सं० त्रि०) रथारूढ़, उपविष्ट । [illegible], रथ पर बैठा हुआ ।

वन्धुरायु (सं० त्रि०) वन्धुरयुक्त ।

वन्धुरेष्ठ (सं० त्रि०) रथोपविष्ट, रथ पर बैठा हुआ । (ऋक् १।३४।९)

वन्न—बम्बई प्रदेशके [illegible] एक छोटा सामन्त-राज्य । यह [illegible] है । भूपरिमाण २८ वर्ग-मील है । [illegible] हो गये हैं । [illegible] रु० है जिसमें [illegible] और [illegible] रु० कर देने पड़ते हैं ।

वन्य (सं० त्रि०) वने भव, वन यत् । १ वनोद्भव, वनमें उत्पन्न होनेवाला । २ जङ्गल, जङ्गली । (क्ली०) ३ त्वच्, दालचीनी । ४ पुष्करमूल, [illegible] । ५ [illegible], जङ्गली [illegible] । ६ [illegible] । ७ [illegible] । ८ [illegible] । ९ [illegible] । १० [illegible] ।

[illegible] (सं० स्त्री०) वन्योपोदकी, जङ्गली [illegible] ।

[illegible] (सं० पु०) [illegible], [illegible], [illegible] ।

[illegible] (सं० क्ली०) [illegible] जङ्गली [illegible] । [illegible] और [illegible] करते हैं । [illegible] और [illegible] गया है ।

वन्यद्वीप (सं० पु०) वन्यहस्ती, जङ्गली हाथी ।

[illegible] (सं० स्त्री०) [illegible], [illegible] ।

[illegible] (सं० पु०) [illegible], यह [illegible] करती है ।

[illegible] (सं० पु०) १ [illegible], [illegible] पेड़ । २ जङ्गली पेड़ ।

[illegible] (सं० स्त्री०) [illegible] । [illegible] ।

[illegible] (सं० स्त्री०) [illegible] ।

[illegible] (सं० स्त्री०) [illegible] [illegible] । [illegible] । [illegible] । ४ [illegible] । ५ [illegible]

[illegible] करी । ४ गुञ्जा । ५ शिरीष, सीरस । ६ [illegible] । ७ [illegible] । ८ [illegible], [illegible] । ९ [illegible], [illegible] । १० [illegible] । ११ [illegible], जङ्गली [illegible] । १२ मेथिका, मेथी ।

वन्याशन (सं० त्रि०) [illegible], जङ्गली [illegible] खानेवाला ।

वन्याश्रम (सं० पु०) वनाश्रम ।

वन्येतर (सं० त्रि०) १ गृहपालित, पालतू । २ शिक्षित । ३ [illegible] ।

वन्योपोदकी (सं० स्त्री०) वन्या वनोद्भवा उपोदकी । लताविशेष । पर्याय—[illegible] । गुण—तिक्त, कटु, उष्ण, [illegible] ।

वनु (सं० पु०) वनति याचते इति [illegible] ([illegible] उण् २।१८) इति उ प्रत्ययः । [illegible], [illegible] ।

वप (सं० पु०) वप-अ । १ केशमुण्डन, बाल मुड़ना । २ बीजवपन, बीया बोना ।

वपन (सं० क्ली०) वप भावे ल्युट् । १ केशमुण्डन, सिर मुड़ना । २ बीजाधान, बीज बोना ।

बीजवपन ज्योतिषोक्त दिन देख कर करना चाहिये । दुर्दिनमें करनेसे कोई फल नहीं होता । पूर्वफल्गुनी, पूर्वाषाढ़ा, पूर्वभाद्रपद, कृत्तिका, भरणी, अश्लेषा और [illegible] भिन्न नक्षत्रोंमें ; चतुर्थी, नवमी, चतुर्दशी, अष्टमी और अमावस्या तिथिमें ; शुभग्रहके केन्द्रस्थ होनेसे ; [illegible] और मिथुन, तुला, कन्या, वृष, और धनुर्लग्नके पूर्वभागमें बीजवपन करनेसे शुभ होता है ।

वपा (सं० स्त्री०) [illegible] [illegible] । १ [illegible], [illegible] है । २ [illegible], [illegible] ।

[illegible] (सं०
(सं०

१ छिद्र, छेद। २ चरबी, मेद। ३ वल्मीकि, बाँबी।

वपाटिका (सं० स्त्री०) अश्वपाटिका, एक रोग। इसमें लिङ्गको आच्छादन करनेवाला चमड़ा प्रायः फट जाता है।

वपावत् (सं० त्रि०) वपा-अस्त्यर्थे मतुप् मस्य वः। प्रवृद्ध, मोटा ताजा।

वपावह (सं० क्ली०) मेदस्थान रूप कोष्ठाङ्ग।
(चरकसू० ७ अ०)

वपिल (सं० पु०) वपति बीजमिति वप-इलच्। पिता, बाप।

वपु (सं० पु०) वपुस् देखो।

वपुन (सं० पु०) वप-उनच् वा वयुन पृषोदरादित्वात् यस्य पः। देवता।

वपुनन्दन—एक प्राचीन कवि।

वपुर्धर (सं० त्रि०) धरतीति धृ-अच्, वपुषो धरः। देह-धारी।

वपुषा (सं० स्त्री०) हड़ुवा।

वपुष्टमा (सं० स्त्री०) १ पञ्चचारिणी लता। (जटाधर) २ रूप। (ऋक् १।२।१५) ३ काशीराजकी कन्या। परीक्षित्के पुत्र जनमेजयसे इनका विवाह हुआ था। हरिवंशमें लिखा है, कि राजा जनमेजयने अश्वमेध यज्ञका अनुष्ठान कर अश्ववध किया। वपुष्टमा उस मरे घोड़ेके पास बैठी हुई थी। देवराज उस राजमहिषीको सर्वाङ्गसुन्दरी देख कर मोहित हो गये और घोड़ेके शरीरमें प्रवेश कर उसके साथ संभोग किया। जनमेजयने घोड़को जीवित देख ऋत्विकोंको इसका कारण पूछा। उन्होंने इन्द्रकी दुरभिसन्धिको बात कह दी। इस पर जनमेजय बहुत बिगड़े और इन्द्रको शाप दिया कि, 'तुमने भारी दुष्कर्म किया है, इसलिये आजसे कोई भी अश्वमेध-यज्ञमें तुम्हारी अर्चना न करेगा।' पीछे ऋत्विकोंकी असावधानीसे ऐसी घटना घटी है, समझ कर उन्हें देशसे निकाल भगाया। इसके बाद वे वपुष्टमाको फटकार रहे थे, इसी समय विश्वावसु नामक गन्धर्वराज वहां पहुंचे और राजासे कहने लगे, 'राजन्! आप तीन सौ अश्वमेध-यज्ञ कर चुके हैं, इस कारण इन्द्रने अपने इन्द्रत्वलोपकी आशङ्कासे रम्भा नामक अप्सराको भेजा था। उसी रम्भाने काशीराजदुहिता रूपमें जन्म ग्रहण किया है। यह वपुष्टमा ही रम्भा नामकी अप्सरा है। इन्द्र इसी छलसे अपना कार्य सिद्ध कर चले गये हैं, आप इसके लिये दुःखित न होवें। काल ही इसका एकमात्र कारण है। ऋत्विकोंका आपने जो अपमान किया, उससे आपका पुण्यक्षय हुआ। इन्द्रके जो आपका भय था, वह भी जाता रहा, इसलिये आप वपुष्टमाको वृथा तिरस्कार न करें। आप इसे पुनः ग्रहण करें, कोई दोष न होगा।' विश्वावसुके कहनेसे राजा जनमेजयने वपुष्टमाको फिरसे ग्रहण किया।
(हरिवंश १६२-१६६ अ०)

वपुष्मत् (सं० त्रि०) वपुस् प्रशस्तार्थे मतुप्। १ प्रशस्त शरीरी, उत्तम शरीरवाला। (पु०) २ शाकद्वीपपति।

वपुष्य (सं० त्रि०) वपुस्-हितार्थे यत्। शरीरको भलाई करनेवाला।

वपुस् (सं० क्ली०) उप्यन्ते देहान्तरभोगसाधन बीजो-भूतानि कर्माण्यत्रे ति वप् (अर्त्ति-पृ-वपि यजीति। उण् २।११८) इति उसि। १ शरीर, देह। २ प्रशस्ताकृति, मनोहररूप। ३ अंश, भाग। (स्त्री०) ४ स्वनामख्यात दक्षकी कन्या। यह धर्मराजको पत्नी थीं।
(मार्कण्डेयपु० ५०।२१)

वपुःप्रकर्ष (सं० त्रि०) शारीरिक सौन्दर्य।

वपुःस्रव (सं० पु०) वपुषः शरीरात् स्रवः क्षरणं यस्य। शरीरस्थित रसधातु।

वपुस्सात् (सं० अ०) शरीरके आकारमें।

वपोदर (सं० त्रि०) पीवरोदर, तोंद।

वप्तव्य (सं० त्रि०) वप-तव्य। वपनीय, बोने लायक। परस्त्रीमें बीज वपन नहीं करना चाहिये।

वप्ता (हिं० पु०) वप्तृ देखो।

वप्तृ (सं० पु०) वपति बीजमिति वप तृच्। १ जनक, पिता। २ कवि। ३ नापित, नाई। (ऋक् १।१४२।४) (त्रि०) ४ वापक, बीज बोनेवाला। ५ कर्षक, जोतनेवाला।

वप्प (सं० पु०) १ पिता। २ पूज्य देवगुरुजन प्रभृति। ३ मेवाड़के राणाओंके पूर्वपुरुष। मेवाड़ देखो।

वप्पट्देवी (सं० स्त्री०) राजमहिषीभेद।

वेष्टितं सारथेः स्थानम् यद्वा सारथ्याश्रयस्थानम् ।'

रथमें देखो ।

वन्धुरस्थ (सं० त्रि०) रथासने उपविष्ट । रथारूढ़, रथ पर बैठा हुआ ।

वन्धुरायु (सं० त्रि०) वन्धुरयुक्त ।

वन्धुरेष्ठा (सं० त्रि०) रथोपविष्ट, रथ पर बैठा हुआ । (इन्द्र) । (ऋक् ३।४३।१)

वन्न—बम्बई-प्रदेशके काठियार प्रान्तस्थ एक छोटा सामन्त-राज्य । यह तीन ग्राम ले कर बना है । भूपरिमाण २४ वर्ग-मील है । यहांके अधिवासी अभी छः अंशोंमें विभक्त हो गये हैं । कुल राजस्व २२३१०१) रु० है जिनमें अङ्गरेजराज को वार्षिक ३७१५) रु० और जूनागढ़के नवाबको २७७) रु० करमें देने पड़ते हैं ।

वन्य (सं० त्रि०) वने भव, वन-यत् । १ वनोद्भूत, वनमें उत्पन्न होनेवाला । २ आरण्य, जङ्गली । (क्लो०) ३ त्वच्, दारचीनी । ४ कुटन्नट, नागरमोथा । ५ वनशूरण, जङ्गली जिमीकन्द । ६ वाराहीकन्द । ७ देवनल । ८ क्षीरविदारी । ९ शङ्ख । १० तमालपाल ।

वन्यजा (सं० स्त्री०) वनोपोदकी, जङ्गली कलम्बी साग ।

वन्यजीरक (सं० क्लो०) वनज कटु. जीरक, वनजीरा ।

वन्यदमन (सं० क्ली०) वनज दमनपुष्प जङ्गली दौनेका फूल । इसे महाराष्ट्रमें रानदवणा और कलिङ्गमें कादायण कहते हैं । इसका गुण वीर्यस्तम्भक, वलप्रद और आमदोष-नाशकमाना गया है ।

वन्यद्वीप (सं० पु०) वन्यहस्ती, जङ्गली हाथी ।

वन्यधान्य (सं० क्ली०) नोवार, पसही या तिन्नीके चावल ।

वन्यपक्षी (सं० पु०) वनजात पक्षी, वह चिड़िया जो स्वच्छन्दपूर्वक वनमें विहार करती है ।

वन्यवृक्ष (सं० पु०) १ अश्वत्थ वृक्ष, पीपलका पेड़ । २ जङ्गली पेड़ ।

वन्यवृत्ति (सं० स्त्री०) वन्योपजीविका । अरण्यवासीका जीवनोपाय ।

वन्यशद्मारी (सं० स्त्री०) पीतझिण्टी ।

वन्या (सं० स्त्री०) वनानामरण्यानां जलानां वा संहतिः वन् (पाशादिभ्यो यः । पा ४।२।४९) इति य टाप् । १ वन समूह, वनसंहति । २ मुद्गपर्णी । ३ गोपालककंटी, ग्वाल-ककड़ी । ४ गुञ्जा । ५ मिश्रेया, सौंफ । ६ भद्रमुस्ता, भद्र-मोथा । ७ गन्धपत्ता । ८ अश्वगन्धा, असगन्ध । ९ जल-प्लावन, जलसंहति । १० पिण्डखजूर । ११ वनहरिद्रा, जङ्गली हल्दी । १२ मेथिका, मेथी ।

वन्याशन (सं० त्रि०) वन्यफलाशी, जङ्गली फल खाने-वाला ।

वन्याश्रम (सं० पु०) वनाश्रम ।

वन्येतर (सं० त्रि०) १ गृहपालित, पालतू । २ शिक्षित । ३ सभ्य ।

वन्योपोदकी (सं० स्त्री०) वन्या वनोद्भवा उपोदकी । लताविशेष । पर्याय—वनजा, वनसाह्वया । गुण—तिक्त, कटु, उष्ण, रोचन ।

वन्र (सं० पु०) वनति भागमर्हति वनसंभक्तौ (स्फायितञ्चि-वञ्चीति । उण् २।१३) इति रन् प्रत्ययः । अंशी, हिस्से-दार ।

वप (सं० पु०) वप घ । १ केशमुण्डन, बाल मुड़ना । २ बीजवपन, बीया बोना ।

वपन (सं० क्ली०) वप-भावे ल्युट् । १ केशमुण्डन, सिर मुड़ना । २ बीजाधान, बीज बोना ।

बीजवपन ज्योतिषोक्त दिन देख कर करना चाहिये । कुदिनमें करनेसे कोई फल नहीं होता । पूर्वफल्गुनी, पूर्वाषाढ़ा, पूर्वभाद्रपद, कृत्तिका, भरणी, अश्लेषा और आर्द्रा भिन्न नक्षत्रोंमें ; चतुर्थी, नवमी, चतुर्दशी, अष्टमी और अमावस्या तिथिमें ; शुभग्रहके केन्द्रस्थ होनेसे । स्थिरलग्न वा जन्मलग्न और मिथुन, तुला, कन्या, कुम्भ, और धनुर्लग्नके पूर्वभागमें बीजवपन करनेसे शुभ होता है ।

वपनी (सं० स्त्री०) उप्यते मस्तकादिकेशाः अस्मिन् वप-अधिकरणे ल्युट् ङीप् । १ नापितशाला, वह स्थान जहां हज्जाम बैठ कर हजामत बनाते हैं । २ तन्तुवायशाला, वह स्थान जहां जुलाहे कपड़ा बुनते हैं । ३ ढरकी ।

वपनीय (सं० त्रि०) वप-अनीयर् । १ वपनयोग्य, बोने-लायक । २ निषेकयोग्य, वीर्यगत । आयुष्कामी व्यक्तिको चाहिये, कि वे कभी भी परस्त्रीमें वीजवपन न करें ।

वपाक (सं० पु०) केशराज ।

वपा (सं० स्त्री०) उप्यतेऽसौ इति वप् भिदादित्, टाप् ।

१ छिद्र, छेद । २ चरबी, मेद । ३ वल्मीकि, बाँबी ।

वपाटिका (सं० स्त्री०) अवपाटिका, एक रोग। इसमें लिङ्गको आच्छादन करनेवाला चमड़ा प्रायः फट जाता है।

वपावत् (सं० त्रि०) वपा-अस्त्यर्थे मतुप् मस्य वः। प्रवृद्ध, मोटा ताजा।

वपावह (सं० क्ली०) मेदस्थान रूप कोष्ठाङ्ग।
(चरकसू० ७ अ०)

वपिल (सं० पु०) वपति बीजमिति वप-इलच्। पिता, बाप।

वपु (सं० पु०) वपुस् देखो।

वपुन (सं० पु०) वप-उनन् या वयुन पृषोदरादित्वात् यस्य पः। देवता।

वपुनन्दन—एक प्राचीन कवि।

वपुर्धर (सं० त्रि०) धरतीति धृ-अच्, वपुषो धरः। देहधारी।

वपुषा (सं० स्त्री०) हबुषा।

वपुष्टमा (सं० स्त्री०) १ पद्मचारिणी लता। (जटाधर) २ रूप। (ऋक् १।२।१५) ३ काशीराजकी कन्या। परीक्षित्के पुत्र जनमेजयसे इनका विवाह हुआ था। हरिवंशमें लिखा है, कि राजा जनमेजयने अश्वमेध यज्ञका अनुष्ठान कर अश्ववध किया। वपुष्टमा उस मरे घोड़े के पास बैठी हुई थी। देवराज उस राजमहिषीको सर्वाङ्गसुन्दरी देख कर मोहित हो गये और घोड़ेके शरीरमें प्रवेश कर उसके साथ संभोग किया। जनमेजयने घोड़ेको जीवित देख ऋत्विकोंसे इसका कारण पूछा। उन्होंने इन्द्रकी दुरभिसन्धिकी बात कह दी। इस पर जनमेजय बहुत बिगड़े और इन्द्रको शाप दिया कि, 'तुमने भारी दुष्कर्म किया है, इसलिये आजसे कोई भी अश्वमेध-यज्ञमें तुम्हारी अर्चना न करेगा।' पीछे ऋत्विकोंकी असावधानीसे ऐसी घटना घटी है, समझ कर उन्हें देशसे निकाल भगाया। इसके बाद वे वपुष्टमाको फटकार रहे थे, इसी समय विश्वावसु नामक गन्धर्वराज वहां पहुंचे और राजासे कहने लगे, 'राजन्! आप तीन सौ अश्वमेध-यज्ञ कर चुके हैं, इस कारण इन्द्रने अपने इन्द्रत्वलोपकी आशङ्कासे रम्भा नामक अप्सराको भेजा था। उसी रम्भाने काशीराजदुहिता रूपमें जन्म ग्रहण किया है। यह वपुष्टमा ही रम्भा नामकी अप्सरा है। इन्द्र इसी छलसे अपना कार्य सिद्ध कर चले गये हैं, आप इसके लिये दुःखित न होवें। काल ही इसका एकमात्र कारण है। ऋत्विकोंका आपने जो अपमान किया, उससे आपका पुण्यक्षय हुआ। इन्द्रके जो आपको भय था, वह भी जाता रहा, इसलिये आप वपुष्टमाको वृथा तिरस्कार न करें। आप इसे पुनः ग्रहण करें, कोई दोष न होगा।' विश्वावसुके कहनेसे राजा जनमेजयने वपुष्टमाको फिरसे ग्रहण किया।
(हरिवंश १९२-१९६ अ०)

वपुष्मत् (सं० त्रि०) वपुस् प्रशस्तार्थे मतुप्। १ प्रशस्त शरीरी, उत्तम शरीरवाला। (पु०) २ शाकद्वीपपति।

वपुष्य (सं० त्रि०) वपुस्-हितार्थे यत्। शरीरको भलाई करनेवाला।

वपुस् (सं० क्ली०) उप्यन्ते देहान्तरभोगसाधन बीजीभूतानि कर्माण्यत्रे ति वप् (अर्त्ति-पृ-वपि यजीति। उण् २।११८) इति उसि। १ शरीर, देह। २ प्रशस्ताकृति, मनोहररूप। ३ अंश, भाग। (स्त्री०) ४ स्वनामख्यात दक्षकी कन्या। यह धर्मराजकी पत्नी थीं।
(मार्कण्डेयपु० ५०।२१)

वपुःप्रकर्ष (सं० त्रि०) शारीरिक सौन्दर्य।

वपुःस्रव (सं० पु०) वपुषः शरीरात् स्रवः क्षरणं यस्य। शरीरस्थित रसधातु।

वपुस्सात् (सं० अ०) शरीरके आकारमें।

वपोदर (सं० त्रि०) पीवरोदर, तोंद।

वप्तव्य (सं० त्रि०) वप-तव्य। वपनीय, बोने लायक। परस्त्रीमें बीज वपन नहीं करना चाहिये।

वप्ता (हिं० पु०) वप्तृ देखो।

वप्तृ (सं० पु०) वपति बीजमिति वप-तृच्। १ जनक, पिता। २ कवि। ३ नापित, नाई। (ऋक् १।१४२।४) (त्रि०) ४ वापक, बीज बोनेवाला। ५ कर्षक, जोतनेवाला।

वप्प (सं० पु०) १ पिता। २ पूज्य देवगुरुजन प्रभृति। ३ मेवाड़के राणाओंके पूर्वपुरुष। मेवाड़ देखो।

वप्पटदेवी (सं० स्त्री०) राजमहिषीभेद।

वप्पिय (सं० पु०) एक हिन्दू राजा।

वप्पीह (सं० पु०) चातक (Cocul s Melanoleucus)।

वप्यट—मगधके पालवंशीय प्रथम राजा गोपालके पिता।

वप्यनोल (सं० पु०) जनपदभेद।

वप्र (सं० पु० क्ली०) उप्यतेऽस्मिन्निति वप-(वृपिवपिभ्यां रन्। उण् २।२७) इति रन्। १ मिट्टीका ऊंचा धुस्स जो गढ़ या नगरकी खाईसे निकली हुई मिट्टीके ढेरसे चारों ओर उठाया जाता है और जिसके ऊपर प्राकार या दीवार होती है। पर्याय—चय, मृत्तिकास्तूप। (शब्दरत्ना०) दीवारकी तरह खड़ा कृत्रिम मृत्तिकास्तूपका नाम ही वप्र है।

वपन्ति बीजमत्रेति। २ क्षेत्र, खेत। बृहत्संहिता-में लिखा है, कि शुक्र जब वर्षाधिप होते हैं, तब शैलोपम जलद्जाल वारि वर्षण करता है, इससे वप्र या खेत भर जाता है, पृथिवी हरियाली दिखाई देती है तथा धान और ईख काफी उत्पन्न होती है। ३ रेणु, धूल। ४ तट, किनारा। ५ पर्वतसानु, पहाड़की चोटी। ६ टीला, भीटा। ७ सीसा नामकी धातु। ८ प्रजापति। (मेदिनीकार उणादिवृत्ति) ९ द्वापरयुगके एक व्यास। १० चौदहवें मनुके एक पुत्रका नाम।

वप्रक (सं० पु०) गोलवृत्तिकी परिधि, गोलाईका घेरा।

वप्रक्रिया (सं० स्त्री०) टीले या ऊंचे उठे हुए मिट्टीके ढेरको हाथी, सांड़ आदिका दांतों या सींगोंसे मारना। यह उनकी एक क्रीड़ा है।

वप्रक्रीड़ा (सं० स्त्री०) वप्रक्रिया देखो।

वप्रवाट्—चम्पारनके अन्तर्गत एक प्राचीन ग्राम। यह तिलपर्णी नदीके किनारे अवस्थित है।

(भविष्य ब्रह्म० ४५।२११)

वप्रा (सं० स्त्री०) वप-रन्-टाप्। १ मञ्जिष्ठा, मजीठ। २ जैनोंके इक्कीसवें जिन नेमिनाथकी माताका नाम।

वप्रानत (सं० त्रि०) क्रीड़ाके लिये उच्च भूमिके सामने सिर झुकाये हुए।

वप्रान्तर (सं० अव्य०) दोनों किनारेके बीच।

वप्राभिघात (सं० पु०) वप्रक्रीड़ा।

वप्राम्भःस्रुति (सं० स्त्री०) १ नदीकुल्यादी खोतका जल। २ नालानदी।

वप्राम्भस् (सं० क्ली०) तीरवाही स्रोतका जल।

वप्रि (सं० पु०) वपति बीजमत्र वप-क्रिन् (वहृश्रा-दयश्च। उण् ४।६६) १ क्षेत्र, खेत। २ ध्यानकी दुर्गमता

३ समुद्र।

वप्सस् (सं० क्ली०) १ रूप। २ वपु, देह।

वफ़ा (अ० स्त्री०) १ वादा पूरा करना, बात निबाहना। २ निर्वाह, पूर्णता। ३ सुशीलता, मुरौवत।

वफ़ात (सं० स्त्री०) मृत्यु, मरण।

वफ़ादार (अ० वि०) १ वचन या कर्त्तव्यका पालन करने-वाला। २ अपने कामको ईमानदारीसे करनेवाला ३ सच्चा।

वब (सं० पु०) एकादश करणके अन्तर्गत प्रथम करण इस करणके अधिपति इन्द्र हैं। इस करणमें जन्म लेनेसे मनुष्य बलवान, अति धीर, धनी और अति विचक्षण होता है। लक्ष्मी उसके घरमें हमेशा वास करती हैं।

(कोष्ठीप्र०)

दाक्षिणात्य ज्योतिर्विदोंके मतसे 'वब' शब्दका प्रथम वकार वर्गीय और अन्तिम वकार अन्तःस्थ है।

वबा (अ० स्त्री०) १ मरी, महामारी। २ छूतका रोग।

वबाल (अ० पु०) १ बोझ भार। २ आपत्ति, कठिनाई ३ घोर विपत्ति, आफ़त। ४ ईश्वरीय कोप। ५ पापका फल।

वभ्रु (सं० पु०) १ मण्डली सर्पविशेष, एक प्रकारका सांप २ एक यदुवंशी योद्धा। बभ्रु देखो।

वभ्रुधातु (सं० पु०) सुवर्ण-गैरिक, स्वर्णगेरु मिट्टी।

वभ्रुवाहन—बभ्रुवाहन देखो।

वम्र (सं० स्त्री०) १ जिनपूजाके बाद गानका बजाना। ब वम्र देखो। २ वरुणवीज।

वम (सं० पु० स्त्री०) वम-अच्। वमन, उल्टी।

वमथु (सं० पु०) वमतीति वम-अथुच् (द्वितोऽथुच्। उण् ३।११८९) १ वमि, कै करना। २ हाथीकी सूड़से निकली हुई जलकणा। पर्याय—करशीकर।

वमन (सं० क्ली०) वम भावे ल्युट्। १ छर्दन, कै करना। ज्वरादिमें रोगीको जरूरत पड़ने पर वमन कराया जा सकता है। (भावप्र०) २ वमनद्रव्य, वमन करनेवा

पदार्थ। ३ आहुति। ४ आहार। ५ अर्द्दन, पीड़ा। ६ शण, पटसन।

वमनकल्प (सं॰ पु॰) वमन करानेके लिये मदनादि अनेक प्रकारकी योग-योजनविधि। इनमेंसे वमनकल्प ही उत्तम है। (सुश्रुत॰ सू॰ ४३ अ॰)

वमनद्रव्य (सं॰ क्लो॰) वमिकारक वस्तु। वे ये सब हैं—मैनफल, कुटजकी छाल, देवताड़का फूल, तितलीकीका फूल, घोषा फल, श्वेतघोषा, सफेद सरसों, विडङ्ग, पीपल, करञ्ज, नागेश्वर, रक्तकाञ्चन, श्वेतकाञ्चन, नीम, असगंध, वेत, अपराजिता, कुंदरूका फल, वच, ग्वाल-ककड़ी आदि। (सुश्रुत सू॰ ३९ अ॰)

वमनविधि (सं॰ त्रि॰) वमनक्रिया। वमनक्रियाका समय पूर्वाह्न है। चिकित्सकको चाहिये कि वे शरत्, वसन्त और वर्षाकालमें ही रोगीको रेचन और वमन करावें। (भावप्र॰)

जो रोगी कफाक्रान्त, बलवान, हिक्कारोगादि द्वारा पीड़ित और धीर हैं, वैसे रोगीको ही वमन कराना उचित है। (भावप्र॰)

विषदोष, हृल्लासरोग, अग्निमान्द्य, श्लीपद, अर्बुद, हृद्रोग, कुष्ठ, विसर्प, महाजीर्ण, विदारिका, अपची, कास, श्वास, पीनस, वृद्धि अपस्मार, ज्वरोन्माद, रक्तातिसार, कर्णस्राव, अधिजिह्वक, गलशुण्डी, अतिसार, पित्तश्लेष्म-रोग, मेदोरोग और अरुचि; इन सब रोगोंमें चिकित्सक-को वमन कराना चाहिये।

वमन निषेध विषय—कम्प, उपलेप, निद्रा, तन्द्रा आलस्य, दौर्गन्ध, विषजनित उपसर्ग, कफप्रसेक और ग्रहणी आदि दोष वमनकारी व्यक्तिके कभी नहीं रहते। वमनके गुण—वमनसे श्लेष्म शोधन होता है, इस कारण उससे होनेवाले सभी विकार जाते रहते हैं।

निम्नलिखित व्यक्तियोंको कभी भी वमन न कराना चाहिये। जैसे—चक्षुरोगी, ऊदुर्ध्ववात, गुल्मोदर, प्लीहा और क्रिमिरोगग्रस्त, श्रमार्त्त, स्थूल, क्षतक्षीण, कृश, अतिवृद्ध, मूत्रातुर, केवल वातरोगी, स्वरोपघाती, अध्ययनरत, दुश्छर्दि, दुःकोष्ठ, तृष्णार्त्त, बालक ऊदुर्ध्वाग्र, पित्त, क्षुधित, निरूढ़ और गर्भिणी आदि। अवश्य वमनमें सभी रोग कृच्छ्र अथवा एकदम असाध्य हो जाते हैं। इस कारण उन्हें वमन कराना उचित नहीं।

अति वमनमें तृष्णा, हिक्का, उद्गार, संज्ञाराहित्य, जिह्वा-निःसरण, चक्षु व्यावृत्ति, हनुसंहति, रक्तच्छर्दि और कण्ठ-पीड़ा आदि उपद्रव होते हैं।

वमनव्यापत् (सं॰ स्त्री॰) वमन-असिद्धिके पक्षमें आध्मा-नादि विकार।

वमनी (सं॰ स्त्री॰) वमन ङीप्। जलौका, जोंक।
विस्तृत विवरण जलौका शब्दमें देखो।

वमनीया (सं॰ स्त्री॰) वमयतीति वमणवर्थविवक्षायामभि-धानात् कर्त्तरि अनीयरस्त्रियां टाप्। १ मक्षिका, मक्खी। (त्रि॰) २ वमनयोग्य।

वमि (सं॰ स्त्री॰) वमनमिति वम (सर्वधातुभ्य इन्। उण् ४।११३) इति इन्। वमन, छर्दन, प्रच्छर्दिका, रोगभेद, वमिरोग। इस रोगका निदान तथा चिकित्सा आदिका विषय वैद्यकमें इस तरहसे है—अधिक तरल वस्तु पान करनेसे, अतिशय स्निग्ध वस्तु खानेसे, अधिक लवण प्रयोग करनेसे, असमय या अपरिमित भोजन करनेसे एवं श्रम, भय, उद्वेग अजीर्ण तथा कृमि होनेसे वमन रोग पैदा होता है एवं गर्भावस्था तथा घृणित वस्तुओंके कारण वायु, पित्त, कफ आदि उत्क्लिष्ट हो कर वमनरोग उत्पादन करता है। इस रोगसे मुखमें पीड़ा होती है एवं सारा शरीर दुःखने लगता है।

वमन रोग पांच प्रकारके होते हैं,—वातज, पित्तज, कफज, सन्निपातज, आगन्तुज। इस रोगके पूर्व लक्षण वमि उपस्थित होनेके पहले हृल्लास अर्थात् वमनोद्वेग, उद्गारावरोध, मुखप्रसेक तथा मुख लवणाक्त मालूम पड़ते हैं एवं खाने पीनेकी चीजोंसे रुचि फिर जाती है।

वमिके सामान्य लक्षण—जिस रोगमें कुपित दोष अत्यन्त वेग तथा अंग पीड़नके साथ मुखकी ओर उमड़ आता है एवं मुखको परिपूर्ण करके बाहर उछल पड़ता है, उसे छर्दि या वमि रोग कहते हैं।

वातज लक्षण—वातज वमनमें हृदय तथा पार्श्वमें वेदना, मुखशोष, मस्तक तथा नाभीमें शूलवेदनाकी तरह वेदना तथा कास, स्वरभेद, अंगमें सूचीवेधवत् वेदना एवं अति कष्टके साथ वेग, प्रबल उद्गार तथा अतिशय शब्दके साथ फेन मिश्रित विच्छिन्न पतला तथा कषाय रसविशिष्ट वस्तु वमन, ये सब लक्षण दिखाई पड़ते हैं।

पित्तज लक्षण—पित्तज वमनरोगमें मूर्च्छा, प्यास, मुखशोष, मस्तक, तालु तथा दोनों आंखोंमें जलन, आंखोंमें अन्धेरा छा जाना एवं पीत हरा या धूम्रवर्णयुक्त, कटु तीता, अति उष्ण पदार्थका वमन तथा वमनके समय कण्ठमें जलन, ये सब लक्षण उपस्थित होते हैं।

कफज लक्षण—कफज वमनरोगमें मुख मधुर रसविशिष्ट, कफस्राव, भोजनमें अरुचि, निद्रा, शरीर भारी, स्निग्ध, घन, मधुर रसयुक्त तथा श्वेतवर्ण पदार्थ वमन एवं उलटी होनेके समय शरीरमें रोमाञ्च तथा अति यन्त्रणा होने लगती है।

सन्निपातज लक्षण—वमनरोगमें शूल, अजीर्ण, दाह, प्यास, श्वास, मूर्च्छा एवं लवण रसयुक्त उष्ण, नील या लोहित वर्णके घने पदार्थका वमन होना प्रभृति लक्षण प्रगट होते हैं।

आगन्तुज वमन—कुत्सित द्रव्य भोजन तथा किसी तरह घृणाजनक वस्तुको देखनेसे जिस वमनरोगकी उत्पत्ति होती है, अथवा स्त्रियोंकी गर्भावस्थाके समय जो उलटी होती है, कृमिरोग या आमरससे जो वमि होती है, उसे आगन्तुज वमि कहते हैं। इस वमनरोगमें वातादि तीन दोषोंमेंसे जिस दोषके लक्षण अधिक दिखाई पड़ें, उसके अनुसार उसे दोषज वमनरोग समझना होगा। केवल कृमियों द्वारा जिस वमनरोगकी उत्पत्ति होती है उसमें अत्यन्त वेदना होती है। जिस तरह आगन्तुज वमनके पांच कारण बतलाये गये हैं, उसी तरह इसके भी पांच भेद हैं, जैसे—असात्म्यज, कृमिज, आमज, बीभत्स तथा दौहृदज। इस आगन्तुज वमनमें वातजादि दोषोंके लक्षणानुसार इसके वातजादि कारण भी स्थिर करने चाहिये।

इस रोगका उपद्रव—कास, तमक श्वास, ज्वर, प्यास, हिचकी, चित्तभ्रमिता, हृद्रोग एवं आंखोंके सामने अंधेरा छा जाना आदि।

वमन रोगकी साध्यासाध्यता—वमनरोगमें यदि कुपित वायु, मल, मूत्र, स्वेद तथा जलवाही स्रोत रुद्ध हो कर ऊर्ध्वगामी होवे एवं उससे रोगीके कोष्ठमें पूर्व संचित पित्त, कफ या वायु दूषित स्वेदादि धातु उद्गीर्ण होवे और यदि वमि मलमूत्रकी तरह दुर्गन्ध हो तो उससे वमन रोगाक्रान्त रोगी तृष्णा, श्वास तथा हिचकी द्वारा पीड़ित हो कर हठात् मृत्युको प्राप्त होता है। जिस वमन रोगसे रोगी क्षीण हो जाता है एवं सर्वदा रक्तपूयादि मिश्रित पदार्थ वमन करता है अथवा वमिमें यदि मयूरपुच्छकी तरह आभा दिखाई पड़े, किंवा वमनरोगके साथ यदि कास, श्वास, ज्वर, हिचकी, तृष्णा, भ्रम, हृद्रोग प्रभृति उपद्रव उपस्थित होवे, तब यह वमनरोग असाध्य हो जाता है। इन सब लक्षणोंके अलावे दूसरे सब प्रकारके वमनरोगकी चिकित्सा करनेसे इसका प्रतीकार हो सकता है।

चिकित्सा—सब प्रकारके वमनरोग आमाशयमें दोष संचित होनेसे उत्पन्न होते हैं, इसलिये वमनरोगमें सबसे पहले लंघन देना ही कर्त्तव्य है। उसके बाद कफ तथा पित्तको दूर करनेवाली औषधिका सेवन करना चाहिये। किन्तु एक विशेषता यह है कि, वातज वमनरोगमें लंघन देना उचित नहीं। वातज वमिरोगमें दूधमें बराबर भाग जल मिला कर, सेंधा नमक तथा घृत मिश्रित मूंग तथा आंवलेका शोरवा पिलाना चाहिये। गुलंच, त्रिफला, बहेड़ा, आंवला, निम्ब तथा पोलता इन सबोंका काढ़ा बना कर मधुके साथ पान करनेसे पित्तज वमिरोग आराम होता है। हर्रेका चूर्ण मधुके साथ खानेसे भी वमिरोगमें फायदा पहुंचता है।

विड़ंग, त्रिफला तथा शुंठीका चूर्ण, किंवा विड़ंग, कैवर्त्तमुस्तक तथा शुंठीचूर्ण समभाग ले कर मधुके साथ सेवन करनेसे श्लेष्मज वमिरोग विनष्ट होता है।

आंवला, खै तथा चीनी ८ तोला एक साथ पीस कर उसके साथ ८ तोला मधु एवं ३२ तोला जल मिला कर कपड़े से छान कर पीनेसे त्रिदोषज वमिरोग आराम होता है। गुलंच द्वारा हिम (शीतकषाय) तैयार करके मधुके साथ पीनेसे कष्टसाध्य त्रिदोषज वमि भी हठात् आराम होती है।

हर्रे, त्रिकटु, धनिया तथा जीरा समभाग चूर्ण करके मधुके साथ चाटनेसे त्रिदोषज वमि तथा अरुचि नष्ट होती है। बेलकी छाल, गुलंच तथा गिलोयका काढ़ा मधु मिला कर पान करनेसे सान्निपातिक वमिका निवारण होता है। आमकी गुठली और बेलका काढ़ा मधु-

तथा चीनी मिला कर पीनेसे वमि तथा अतीसार रोगका नाश होता है। जामुन तथा आमके पत्तोंसे काढ़ा तैयार करके ठंढा होने पर उसमें लाईका चूर्ण तथा मधु मिला कर पीनेसे उष्माजन्य वमि, अतीसार तथा पिपासा दूर होती हैं।

पीपलकी छालका भस्म जलमें डाल कर पीनेसे अति दुःसाध्य वमिरोग भी आराम होता है। इलायची, लवंग, नागकेशर, बेरकी आंठीका गूदा, लाचा, प्रियंगु, मुस्तक, रक्त चन्दन तथा पिपली इन सब चीजोंका बराबर बराबर भाग चूर्ण करके मधुके साथ खानेसे वातज, पित्तज तथा कफ ये तीनों प्रकारके वमिरोग छूट जाते हैं।

वीभत्स वमिरोग हृदयग्राही वस्तुओंसे, दोहदज वमिरोग इच्छित फलोंसे तथा आमज वमिरोग लंघनसे आराम होते हैं। उद्गारकी अधिकताके साथ वमि होनेसे मूर्व्वा, धनिया, मुस्तक, जेठी मधु तथा रसाञ्जनका चूर्ण समभाग ले कर मधुके साथ चाटनेसे साधारण वमि दूर होती है। यह रोग सौवर्च्चल लवण, कृष्णजीरा, चीनी तथा मरिचचूर्ण बराबर भाग ले कर मधुके साथ चाटनेसे भी आराम हो जाता है।

नारियलका पानी, मूढ़ी या जली हुई रोटी भिंगोया हुआ जल अथवा बरफका पानी वमन निवारणकी उत्कृष्ट औषध है। बड़ी इलायचीका काढ़ा सेवन करनेसे वमनरोग शीघ्र ही दूर हो जाता है। रातिमें गुलंचको जलमें भिगो रखे, प्रातःकाल उस जलको मधुके साथ पीवे तो सब प्रकारके वमिरोग दूर हो जाते हैं। खेतपपड़ा, विल्वमूल या गुलंचका काढ़ा मधुके साथ एवं मूर्व्वा मूलका काढ़ा चावलके पानीके साथ सेवन करनेसे सब तरहके वमिरोग आराम होते हैं। जेठी मधु तथा रक्तचन्दन दूधके साथ अच्छी तरह पीस तथा घोंट कर पीनेसे रक्तवमन आराम होता है। आँवलेका रस १ तोला तथा कतवेलका रस १ तोला, थोड़ा-सा पीपल चूर्ण तथा मरिचचूर्णके साथ मधु मिला कर सेवन करनेसे प्रबल वमन भी रुक सकता है। तेलचट्टे की विष्ठा ३।४ दाना जलमें भिगो कर उस जलको थोड़ा पीनेसे अति प्रबल वमनका तुरत ही दमन होता है।

श्वेतचन्दन २ तोला, आँवलेका रस २ तोला एकत्र करके, उसमें थोड़ा-सा मधु मिला कर सेवन करनेसे वमिरोग दब जाता है। भुनी हुई मूंग १ पल, जल २ सेर, शेष २ पल, लाईका चूर्ण २ पल तथा थोड़ा मधु और चीनी मिला कर उस जलको पीनेसे वमि, अतीसार, तृष्णा, दाह तथा ज्वर निवारित होता है। इसके अतिरिक्त इलायचीचूर्ण, रसेन्द्र, वृषध्वजरस तथा पद्मकाद्यघृत प्रभृति वमन रोगकी अत्युत्तम दवा है।

(भैषज्यरत्ना० वमिरोगाधि)

इस रोगका पथ्यापथ्य—वमि होने पर आमाशयमें वेदना होती है, इसलिये पहले लंघन देना उचित है। वमन वेग रुक जाने पर जल्द हज़म होनेवाला तथा रुचिकारक भोजन क्रमशः देना उचित है। वमनका वेग रुकने हो यदि आहार देनेकी आवश्यकता होवे, तो भुनी हुई मूंगके काढ़ेके साथ लाईका चूर्ण, मधु तथा चीनी मिला कर खानेको दे सकते हैं। इस तरहका आहार देनेसे वमन, मेद, ज्वर, दाह और पिपासाकी शान्ति होती है। वमनवेग रुक जानेके बाद सहनीय सभी वस्तु भोजन कर सकते हैं एवं ज्वरादि उपसर्ग न रहने पर अभ्यासानुसार स्नानादि भी कर सकते हैं। स्वच्छ पान, स्वच्छ स्थानका वास एवं मनकी प्रफुल्लता आदि इस रोगमें विशेष लाभ पहुंचाती हैं। जिन सब कारणोंसे घृणा पैदा होती है, वे सब कारण तथा रौद्रादिके आतप सेवन प्रभृति इस रोगमें बहुत हानिकारक हैं।

शूलरोग तथा अम्लपित्तरोगमें वमन करानेसे ही लाभ होता है।

वमति उद्गिरति धूमादिकमिति "इक् कृष्यादिभ्यः" इति इक्। २ अग्नि। ३ धूर्त्त।

वमित (सं० त्रि०) वम-क्त। १ जिसको वमन कराया गया हो। (क्ली०) २ वमन किया हुआ पदार्थ।

वमितव्य (सं० त्रि०) वमनके लायक।

वमिन् (सं० त्रि०) १ वमनकारी। २ पीड़ित।

बम्बई—वृटिश सरकारके पश्चिम-भारतका एक देशभाग और विचार-विभाग। यह अक्षा० १३° ५३' से २८° २६' ३० तथा देशा० ६६° ४०' से ७६° ३२' पू०के मध्य विस्तृत है। सिन्ध मिला कर इसका भूपरिमाण १२२६८४ वर्गमील और जनसंख्या १८ करोड़से ज्यादा है। जनसंख्या-

मे यह भारतवर्षके मध्य प्रथम और बृटिश साम्राज्यके मध्य द्वितीय नगर है। इसमें ४ उपविभाग, २५ जिला तथा कितने देशी राज्य लगते हैं। इसके उत्तर, उत्तर-पश्चिम और उत्तर पूर्वमें बलुचिस्तान, पञ्जाब और राजपूताना, पूरबमें मध्यभारत एजेन्सी, मध्यप्रदेश, बरार और हैदराबाद राज्य, दक्षिणमें मन्द्राज प्रेसिडेन्सी और महिसुर तथा पश्चिममें अरब सागर है।

अङ्गरेजाधिकृत सभी जिले साधारणतः ४ भागोंमें विभक्त हैं, यथा—उत्तर विभाग—अहमदाबाद, खेड़ा, पांच महाल, भरोंच, सूरत, थाना और कुलाबा।

मध्य विभाग—खान्देश, नासिक, अहमदनगर, पूना, सोलापुर और सतारा।

दक्षिण विभाग—बेलगाम, धारवाड़, कलादगी, उत्तर कनाड़ा और रत्नगिरि।

सिन्धुविभाग—करांची, थर और पार्कर, हैदराबाद, शिकारपुर, उत्तरसिन्धु, सीमान्तप्रदेश।

इस प्रेसिडेन्सीमें निम्नलिखित कई सामन्त राज्य हैं। यथा:—बड़ौदा, कोल्हापुर, कच्छ, महीकान्था राज्य, रेवाकान्था राज्य, काठियावाड़ राज्य, पालनपुर राज्य, खम्बात, सावन्तवाड़ी, जंजीरा, दक्षिण मराठा जागीर, साताराके जागीर, बयहार, सूरतके अन्तर्गत सामन्त राज्य, सावनूर, नाड़कोट, अकालकोट, खान्देशके अन्तर्गत मङ्गराज्य और खैरपुर राज्य।

उक्त सभी जिलों और सिन्धुप्रदेशका भूपरिमाण १२४१२३ वर्गमील तथा सामन्त राज्योंका परिमाण ८२३२४ वर्गमील है। वर्त्तमान समयमें अनेक वैषयिक गोलमालसे उन सब सामन्त राज्योंका परिमाण बहुत घट गया है, मर्दुमशुमारीका विवरण पढ़नेसे इसका पता चलता है। बम्बई प्रसिडेन्सीमें ११६ नगर और १५३३२ ग्राम लगते हैं।

प्रेसिडेन्सीके इन सब स्थानोंके ऐतिहासिक और प्रत्नतत्त्वके विवरण विभिन्न स्थानमें लिखे गये हैं, इस कारण उन विषयोंकी आलोचना यहां पर न की गई।

२ बम्बई-प्रेसिडेन्सीका प्रधान नगर और बम्बई-गवर्नमेण्टकी राजधानी। यह अक्षा० १८°५५´ उ० तथा देशा० ७२°५४´ पू०के मध्य विस्तृत है। यह पश्चिम भारतका एक प्रधान वाणिज्य-बन्दर है। विचार-विभागकी सुव्यवस्थाके लिए यहां विचार-अदालत प्रतिष्ठित है तथा बम्बई नगर एक स्वतन्त्र जिलारूपमें गिना जाता है। इसका भूपरिमाण २२ वर्गमील है।

मुम्बादेवीके नामानुसार मुम्बईसे बम्बई नामकी उत्पत्ति हुई है। पुर्तगीजोंने समुद्रके किनारे इसका अच्छा स्थान देख कर इसे Bombahia या Boa-bahia कह कर उल्लेख किया है। पुर्तगीज 'बोमबाहिया' शब्दसे और कोई अङ्गरेजी बम्बई नामकी भी कल्पना करते हैं।

१६६१ ई०में पुर्तगीजोंने इङ्गलैण्डकी रानी कैथरिन आव ब्रगञ्जाको यौतुकस्वरूप बम्बईद्वीप प्रदान किया। इस समय इस द्वीपकी आय ६५०००) रु० थी। इस समय सूरत बन्दरमें ही पश्चिम-भारतकी ईष्ट इण्डिया कम्पनीका प्रधान अड्डा था।

इसके बाद पुर्तगीजोंने बम्बई नगरका संश्रव छोड़ कर सालसेटद्वीपमें आश्रय लिया। दुर्दान्त पुर्तगीजोंका दमन करनेके लिये १६६८ ई०में मुगल की सेनापति सिद्दीने बम्बई दुर्ग पर आक्रमण किया। इस समय अङ्गरेजोंने मुगल बादशाहसे निवेदन किया। बादशाहकी आज्ञासे मुगलसेना बम्बईसे हटा दी गई। १६८४ ई०में डिरेक्टरोंकी अनुमतिके अनुसार सूरतसे कम्पनीका वाणिज्यकेन्द्र बम्बई शहरमें उठा कर लाया गया। उसी सूत्रसे १६८७ ई०से बम्बई शहर अङ्गरेजोंका प्रधान वाणिज्य बन्दररूपसे गिना जाने लगा।

आज तक जिन दो अङ्गरेज कम्पनियोंने इङ्गलैण्डेश्वरसे भारतमें वाणिज्य करनेका अधिकार पाया था, १७०८ ई०में वे दोनों आपसमें मिल कर युनाइटेड ईष्ट इण्डिया कम्पनी नामसे प्रसिद्ध हुईं तथा बम्बई शहर उस समय स्वतन्त्र शासनाधीन बम्बई प्रेसिडेन्सीका प्रधान नगर समझा जाने लगा। १७७३ ई०में बम्बई नगर गवर्नर जेनरलके शासनाधीन हुआ। तभीसे नगरका इतिहास बम्बई प्रदेशके इतिहासके साथ मिला दिया गया है।

१७७४ से १७८२ ई० तक प्रथम महाराष्ट्र-युद्ध हुआ।

इसमें अङ्गरेज कम्पनीकी जीत हुई। इस सूत्रसे बम्बई और उसके चारों ओरके छोटे छोटे द्वीप तथा भारतोपकूलका प्रसिद्ध थाना नगर अङ्गरेजोंके हाथ आये। महाराष्ट्र-अभ्युत्थानके समय उनके शासनसे तंग आ कर कितने लोग बम्बई नगरमें आ कर बस गये। १८१८ ई०में जब पेशवा-शक्तिका अधःपतन हुआ, तब बम्बई नगर भी मराठाधिकृत समस्त पश्चिम भारतकी राजधानी रूपमें गिना जाने लगा। इसी समयसे पश्चिम भारतकी प्रकृत उन्नतिका काल गिना जाता है।

१८१६ से १८३० ई० तक यहां माननीय मनष्टुआर्ट एलफिन्सटन और सर जान माकम नामक दो सुप्रसिद्ध राजनैतिक गवर्नर नियुक्त हुए थे। उनकी ही बुद्धि और अध्यवसायसे यहां शासनशृङ्खला स्थापित हुई थी। महामति एलफिनष्टनने यहांकी शासनपद्धतिका संस्कार किया तथा ख्यातनामा माकमने बोरघाट गिरिसङ्कटको काट कर उपकूलदेशसे दाक्षिणात्य-अधित्यकामें जानेका रास्ता सुगम कर दिया। उसीके फलसे थोड़े ही दिनोंके मध्य दक्षिण भारतमें शासन-विस्तारका रास्ता खुल गया।

बम्बई जब अङ्गरेज-वणिकके भारतीय वाणिज्यका प्रधान केन्द्र हुआ, उसके पहले हीसे यूरोपीय भ्रमणकारी स्वेज केनलको पार कर या पारस्यको राहसे यूरोप यात्रा करते थे। इस प्रकार आने जानेमें बड़ी दिक्कत होती थी। इस दिक्कतको दूर करनेके लिये बड़े यत्न और अध्यवसायसे लेफ्टेनाण्ट वागहर्न "Overland Routs" खोल गये।

इस समय भारतके संवादादि इङ्गलैण्डके डिरेक्टर और यूरोपके अन्यान्य स्थानोंमें भेजनेकी बड़ी असुविधा थी। जहाजसे पत्रादि भेजनेमें बहुत समय लगता था। इस कारण १८३८ ई०में मिस्रकी राहसे संवाद भेजनेकी व्यवस्था हुई तथा प्रथम मासमें सिर्फ एक बार डाक भेजी गई। १८५५ ई०में पेनिनसुलर और ओरियण्टल कम्पनीने संवाद और यात्री वहनके लिये प्रथम बन्दोबस्त किया था। इस समयके बादसे ही बम्बई बन्दर अङ्गरेजो डाक भेजने और यूरोपीय डाक लेनेका केन्द्र हो गया। भारत प्रवासी यूरोपीयगण तभीसे बम्बई शहरसे हो जहाजों पर चढ़ कर स्वदेशको यात्रा करते थे। १८५० ई०में ग्रेट इण्डियन पेनिनसुला रेलवे खुल कर तीन वर्षके भीतर थाना तक फैल गई। १८३६ ई०में यह रेलपथ बोरघाट होता हुआ पूना तक चला गया था। १८७० ई०में कलकत्ता राजधानीके साथ तथा १८७१ ई०में मन्द्राज बन्दरके साथ बम्बई शहरका वाणिज्य सम्बन्ध रखनेके लिये रेलवे लाइन खोली गई। तभीसे इङ्गलैण्ड जानेवाले लोग कलकत्तेसे जहाज द्वारा न जा कर रेलगाड़ीसे बम्बई तक आने लगे। पहले इष्ट इण्डियन रेलवे 'भाया जब्बलपुर'से बम्बई जाती थी। पीछे बङ्गाल-नागपुर रेलवे 'भाया नागपुर' हो कर बम्बई तक चली गई है। इस राहसे रेलगाड़ी जल्दी जाती है। बम्बई शहरका "विक्टोरिया टरमिनस" नामक रेलस्टेशन भारतवर्षके मध्य एक अपूर्व दृश्य है।

बम्बई नगरमें बहुतसे सुन्दर सुन्दर भवन हैं। युनिवर्सीटी सीनेट हाल, क्लाक-टावर, हाईकोर्ट, पबलिक वर्क्स डिपार्टमेण्ट, पोष्ट और टेलिग्राफ आफिस, सेलर्स होम, बम्बई-क्लब, कष्टम हाउस, टाउन हाल, टकसालघर, गिर्जा तथा कैसल, और फोर्ट-सेण्ट जार्ज नामक दुर्गस्थान देखनेलायक है। ग्रीष्मके समय यहांके गवर्नर महाबलेश्वरमें और वर्षाके समय पूनामें आ कर रहते हैं।

ग्राण्टमेडिकल कालेजमें L. M. S. & M. D की डिग्री प्राप्त होती है। यह कालेज १८४५ ई०में स्थापित हुआ है। एलफिनष्टन कालेज जो १८३५ ई०में खोला गया है, वृटिश-सरकारको देखरेखमें है। इसके सिवा और भी कितने प्रसिद्ध कालेज हैं, जैसे विलसन कालेज, सेंट ज़ेवियर्स कालेज, सर जमसेतजी जोजीभाय कला-स्कूल, विक्टोरिया जुबली टेकनीकल स्कूल, मयेशो-कालेज। स्कूल और कालेजके अतिरिक्त १५ अस्पताल, २० औषधालय हैं। म्युनिसिपल कमिश्नर मि० एस, ए, आरथर्च द्वारा स्थापित एक कुष्ठाश्रम है।

बम्बेटिया—जल-डकैत। बम्बई प्रदेशके समुद्रके किनारे नाटे कदके मुसलमान जल-डकैत पण्यवाही नाव चलानेका बहाना करके वणिकोंके पास आते और मौका पा कर उनका यथासर्वस्व लूट लेते हैं। बहुतोंका अनुमान है, कि बम्बे (जनपद) और बेरिया (नाटा) या बम्बईवासी

नामोंसे इस हब्शु-सम्प्रदायका नामकरण हुआ है। किन्तु ये लोग जिस प्रकार नाव ले कर समुद्रमें जाते आते हैं अङ्गरेजोंमें उसे Bum-boat कहते हैं। अधिक सम्भव है, कि इस 'बम्बोट' शब्दसे ही भ्रमहब्शु सम्प्रदायका बम्बेटे नाम हुआ है।

वम्म (सं० पु०) दंश, डांस।

वम्भारव (सं० पु०) हम्भारव, गाय या बैल आदिके बोलनेका शब्द, रंभानेका आवाज।

वम्माल (सं० स्त्री०) जनपदभेद।

वम्र (सं० पु०) १ उपजिह्व। (ऋक् ८।६१।२१) वम्र स्त्रियां ङीप्। २ वल्मीकिका। ३ एक वैदिक ऋषि। आप ऋग्वेदके १०।९९ सूक्तके मन्त्रद्रष्टा ऋषि थे।

वम्रक (सं० पु०) छोटी पिपीलिका।

वम्री (सं० स्त्री०) वल्मीक, दीमक।

वम्रीकूट (सं० स्त्री०) वल्मीक, विमौट।

वय (सं० पु०) १ तन्तुवाय, जुलाहा। २ वया पक्षी। ३ वयन देखो। (स्त्री०) ४ जुलाहोंके करघेमें सूतका एक जाल।

वयन् (सं० क्ली०) वयनकार्य, बुननेका काम।

वयन (सं० पु०) ऋग्वेदवर्णित व्यक्तिभेद। (ऋक् ७।३३।२)

वयन (सं० क्ली०) वस्त्रादिका सूत्रग्रहणरूप कार्यविशेष, बुननेकी क्रिया या भाव।

वयनविद्या—ऊन या कपासादि सूतमात्र वस्त्रनिर्माणरूप शिल्पविद्याविशेष। पाश्चात्य विज्ञानमें इसे Art of weaving कहते हैं। किस तरह कितने परिमाणमें रूई ले कर किसी नम्बरका मोटा तथा पतला सूता तैयार किया जाता है, इसके बाद वह सूता किस तरह नलियोंमें लपेटा जाता है एवं किस तरह उन सूतोंसे कपड़ा तैयार किया जाता है, इत्यादि बातें जिस क्रियाके द्वारा सीखी जाती हैं, उसे वयनविद्या कहते हैं।

वर्त्तमान समयमें पाश्चात्य जगत्‌वासी सभ्य जातियोंने अपनी प्रखर बुद्धिके प्रभावसे इस देशीय तांतोंका अनुकरण करके मीटकलका आविष्कार किया है। इन कलोंके द्वारा सूत-निकालने से ले कर वस्त्रवयन पर्यन्त जिसके सभी कार्य एक बार ही सम्पन्न हो जाते हैं। वस्त्रवयनमात्रमें सूता कातना, सूता रंगना, कपड़ा बुनना आदि सभी प्रकारके कार्य सीखे जाते हैं। विभिन्न प्रकारके तांतोंका विवरण तथा कामका एवं उनकी शिक्षा प्रणाली नीचे लिखी जाती है।

अति प्राचीनकालसे ही हम लोग यथा प्राच्य एवं पाश्चात्य सभी सभ्य देशोंमें वयनका प्रचलन देखते हैं। प्राचीन कालमें भी लोग वस्त्र बुननेकी कला अच्छी तरह जानते थे। ऋक्संहिताके १।१४०।१, १।१५२।१, २।१४।३, ३।८।६, ३।६६।१ प्रभृति मन्त्रोंकी आलोचना करनेसे मालूम होता है, कि वेदी तथा रंगस्थानको आच्छादित करनेमें बहुतसे कपड़ोंका व्यवहार किया जाता था। ये कपड़े प्रधानतः शुक्लवर्णके होते थे। (ऋक् १।११५।४) ये कपड़े उस समय जनसाधारणमें बहुमूल्य समझे जाते थे (ऋक् ५।४७।२१)। माता अपने पुत्रादिके पहनने योग्य कपड़े तैयार करती थीं। (ऋक् ५।४७।५), उनके कपड़े गाढ़े होते थे। अथर्ववेदके ५।१।३, ४।५।२५, १४।२।६२, १४।२।५१ मन्त्रोंमें वस्त्रका उल्लेख पाया जाता है। इसके अतिरिक्त कात्यायन श्रौतसूत्र (१४।१।२०), आश्वलायन-गृह्यसूत्र (१।८।१२), गोभिलगृह्य (३।२।४२) एवं पारस्करगृह्य (३।१०) सूत्रोंमें वस्त्रकी आवश्यकता तथा व्यवहारादि बातें लिखी हुई हैं। कौषीतकी ब्राह्मणमें (२।२१) काले वस्त्रका प्रचलन देख कर जान पड़ता है, कि उसके कपड़ेको काले रंगमें रंग कर व्यवहारमें लाते थे एवं वे रङ्गप्रणालीमें भी निपुण थे, इस मन्त्र द्वारा इसका भी पता चलता है।

पौराणिक समय नाना प्रकारके रंगोंसे रंगे हुए कपड़ेका खूब ही प्रचार था। इसीसे श्रीवृन्दावन-विहारी वनमाली अपने श्यामवर्ण शरीरको पीले कपड़ेसे ढके रहते थे। देवदेवियोंको भी लाल तथा नीले कपड़े पहनाये जाते थे। श्रीरामचन्द्र भगवान्‌ने ब्राह्मणोंको कौषेय वस्त्र (रामायण २।३२।१६) दान दिया था। अयोध्याकाण्डके ३७वें अध्यायमें श्रीराम तथा लक्ष्मणको राजकीय कपड़ोंका त्याग करके वल्कवसन धारण करनेकी कथा है। फिर २।५२।८२ श्लोकमें सीताके द्वारा ब्राह्मणोंको नाना प्रकारके वस्त्र तथा अन्न प्रदान किये जानेका उल्लेख देख कर मालूम होता है, कि

उस समय तरह तरहके रंगोंसे रंगे हुए ऊनी तथा सूती कपड़े पहननेकी चाल थी। महाभारतके विभिन्न राजाओंके वेशभूषा तथा द्रौपदीके वस्त्रहरणके प्रसंगमें वस्त्रोंकी विभिन्नताका निदर्शन पाया जाता है। रामायणके आदिकाण्डके ७७वें अध्यायमें लिखा है, कि अयोध्याधिपति दशरथ जब अपने पुत्र तथा पुत्रवधूको ले कर जनकके घरसे अपने राज्यमें लौट आये, तब उनके स्वजनवर्गोंने नाना प्रकारकी रम्य वस्तुओंसे उनकी पूजा की। उस समय कौशल्या, सुमित्रा, कैकेयी एवं दूसरी दूसरी राजपत्नियां क्षौम्यवस्त्र धारण करके पुत्रवधूके साथ मङ्गल आलाप करती हुई देवालयमें पूजा करने चलीं। इन सबों पर आलोचना करनेसे मालूम होता है, कि रामायणीय युगमें शुक्ल, काषायरञ्जित वस्त्र एवं शुभकार्यमें क्षौम्यवस्त्र व्यवहारमें लाये जाते थे।

भगवान् मनुरचित स्मृतिग्रन्थके ३।५२, ६।२१६ तथा ११।१८१ श्लोकोंमें वस्त्रका उल्लेख किया गया है। ये परिधेय वस्त्र उस समय भी सम्पत्तिमें गिने जाते थे एवं वस्त्रकी चोरी करनेवालोंको प्राणदण्ड दिया जाता था (८।३२१ श्लोक)। उक्त ग्रन्थमें अन्यान्य सम्पत्तिकी तरह वस्त्रविभागकी भी व्यवस्था देखी जाती है।

जब कोई ऊन, पटसन अथवा कपासादिका सूता चुराता था, तब उसे उस सूतेके दूने मूल्य आदाय करने पड़ते थे (मनु० ८।३२६)। जब कोई सूता बुननेवाला किसी व्यक्तिका १० पल सूता चुरा लेता था एवं पकड़े जाने पर जब वह उस व्यक्तिको ११ पल सूता नहीं लौटा देता था, तब वह राजदण्डानुसार १२ पल आदाय करनेको बाध्य होता था।

मनु ८।३९७ सूक्त द्वारा पता चलता है, कि उस समय जो पहननेके वस्त्र तैयार किये जाते थे, वे लम्बाई तथा चौड़ाईमें वर्त्तमान वस्त्रके समान ही होते थे।

उस समय कपास, रेशम तथा पशमी वस्त्र बहुत प्रचलित थे। वे जलप्रक्षालन द्वारा सूती कपड़े एवं क्षारजमृत्तिका द्वारा रेशमी तथा पशमी कपड़े साफ करते थे—

"अद्भिस्तु प्रोक्षणं शौचं बहूनां धान्यवाससाम्।
प्रक्षालनेन त्वल्पानामद्भिः शौचं विधीयते॥
चेलवत् कर्म्मणां शुद्धिर्वल्कलानां तथैव च।
शाकमूलफलानां च धान्यवत् शुद्धिरिष्यते॥
कौषेयाविकयारूषैः कुतपानामरिष्टकैः।
श्रीफलैरंशुपट्टानां क्षौमानां गौरसर्षपैः॥
क्षौमवत् शङ्खशृङ्गानां अस्थिदन्तमयस्य च।
शुद्धिर्विजानता कार्य्या गोमूत्रेणोदकेन वा॥"

(मनुसंहिता ५।११८-१२१)

उक्त ग्रन्थके दशम अध्यायके अन्दर ३५ तथा ५२वें श्लोकोंमें निषादचण्डालादिमें मृतवस्त्र पहननेकी रीति पाई जाती है, किन्तु अन्य जातिके लोग मृतवस्त्र तो दूर रहे, धोबीकी भूलसे दिये हुए दूसरेके कपड़े भी नहीं पहनते थे। मनुसंहितामें इसका भी निषेध किया गया है—

"शाल्मलीफलके श्लक्ष्णे नेनिज्यान्नेजकः शनैः।
न च वासांसि वासोभिर्निर्हरेन्न च वासयेत्॥" (८।३९६)

उस समय फूलोंके रंगमें रंगे हुए शानक्षौमाजिनादि निर्मित वस्त्र बेचना ब्राह्मणोंके पक्षमें बिलकुल ही मना था। (मनु० १०।८७)

इन सबों पर आलोचना करनेसे अच्छी तरह जाना जाता है, कि वैदिक युगसे ले कर स्मृतियुग पर्यन्त भारतीय आर्यसमाजमें वयनयन्त्र तथा वयनविद्याका बहुत ही प्रचार था। परवर्त्ती पौराणिक युगमें उसका और भी अधिक प्रचार हुआ। रामायण तथा महाभारतादि ऐतिहासिक ग्रन्थोंमें, महाकाव्य एवं पुराणादि शास्त्रग्रन्थोंमें नाना प्रकारके रंगोंमें रंगे हुए कपड़ेके व्यवहारका पूरा प्रमाण है।

यदि जगत्के प्राचीन वस्त्रशिल्पका निदर्शन देखना हो, यदि जगत्के सर्वप्राचीन तांतोंका अस्तित्व प्राप्त करनेकी आवश्यकता हो, तो एक बार प्राचीन मिस्रराज्यकी ओर दृष्टि निक्षेप करें, आपके सभी सन्देह मिट जायंगे। वहांके ममि-गह्वरके मध्य (Mummy pits of Egypt) अनुसन्धान करनेसे आज भी शवाच्छादित वस्त्रोंके कितने ही निदर्शन परिलक्षित होंगे। रोजेटाकी प्रस्तरलिपिसे जाना जाता है, कि वहांकी राजसरकारसे पुरोहितोंको उनके चिरप्रिय कपास वस्त्र दिये जाते थे। वहांके उच्च

धेणोंमें सम्भ्रान्त लोग कपास तथा पशमीने कपड़े पहनते थे एवं दरिद्र लोग पश्मास पशमीने कपड़ोंसे अपने अङ्ग ढकते थे। पशमीने कपड़ेको यहांके पुरोहित सम्प्रदाय महा पद कर मिसेन वस्त्रका ही अधिक पक्षपात करते थे।

हिब्रु जातिके धर्मयाजक तथा पदस्थ सम्भ्रान्त लोग उत्तम मिसेन कपड़े ही व्यवहारमें लाते थे। बाइबिल ग्रन्थके यहूदी अनुवादमें उनके जो रेशमी वस्त्र व्यवहार करनेकी बातें लिखी हैं, वे बिलकुल ही अप्रामाणिक हैं, क्योंकि, प्राचीन हिब्रु या आसीरीय लोगोंके अन्दर रेशमी वस्त्र व्यवहारका कोई पक्का प्रमाण पाया नहीं जाता। इङ्गलैंडके British Museum नामक जादूघरमें प्राचीन सूक्ष्म मिसेन वस्त्रके सूते थे। १०० लच्छे (Hank) एवं १ इंच स्थानके मध्य तानेमें १४० धागे तथा पेटे (woof) में ६४ धागे सूता विद्यमान है।

पेरिस नगर तथा दूसरे दूसरे स्थानोंमें जो प्राचीन मिस्रीय तानोंके नमूने रखे हुए हैं, उनकी वयन-प्रणाली अविकल भारतीय तांतोंके समान ही है, मगर प्रभेद है, भी तो बहुत थोड़ा। पाश्चात्य पण्डितोंका विश्वास है, कि स्मरणातीत समयसे भारतीय आर्य लोग जिस रीतिसे वस्त्र वयन करते आ रहे हैं, वही चिरन्तन प्रथा प्राचीन कालमें आरम्भ हो कर यूरोपमें प्रविष्ट हुई था। मांटिफानके आङ्किल ग्रन्थमें मण्टफाकोन (Montfaucon) कर्तृक जो मध्ययुगी तांतोंके चित्र अंकित है, लोगोंका अनुमान है, कि ये खृष्टीय ६वीं शताब्दीके ही तांतोंके चित्र। ये भारतीय तांतोंसे बहुत मिलते जुलते हैं, सब ही एक दो स्थानमें सामान्य परिवर्त्तन भी दृष्टिगोचर होता है। चीन जातियोंके रेशमी वस्त्र बुननेके तांत बिलकुल स्वतन्त्र एवं स्वकपोलकल्पित हैं, उनमें वस्त्र-परिपाटी नहीं अधिक है। सम्भवतः इन तांतोंका अनुकरण करके ही वर्त्तमान ईङ्गलूम तैयार किये गये हैं। अरिष्टटलमें रेशमका उल्लेख देख कर मालूम पड़ता है, कि चीन तथा भारत लोगोंकी सुख समृद्धिके समय उनको विलास वासना पूरी करनेके लिये चीनसे रेशम तथा तांत यूरोप भेजे गये थे। अरिष्टटलके पहले यूरोपमें रेशमका ऐतिहासिक उल्लेख नहीं देखा जाता।

वयनयन्त्र।

वस्त्र बुनना सीखनेमें शिक्षार्थीको निपुणता, धैर्य, शीलता, हस्त-संचालनादिकी पटुता सीखना अत्यन्त आवश्यक है। सहस्रों सूक्ष्म सूते ले कर उनके प्रत्येक सूतेको नियमानुसार नियमित स्थान पर रखना चाहिये। उसमें किसी तरहकी अव्यवस्था करनेसे या भ्रमांगुल्य हो उठनेसे और भी विलम्ब होता है।

हम लोगोंके देशके हिन्दू तांती एवं मुसलमान जुलाहे हैं, वे अभी भी ऐसे बारीक सूतोंसे चादर तैयार कर सकते हैं, जो चादर साथ इंच चौड़े एक फुट लम्बे चोंगेके अन्दर आसानीसे रखे जा सकते हैं। मैंचेष्टरके वस्त्रवयन-शिल्पके निर्माण होनेके कारण धीरे धीरे हमारे देशकी शिल्पनिपुणता जाती रही। मैंचेष्टरके शुभागमनसे ही हमारे वयनशिल्पकी क्षति हुई एवं अन्नाभावसे जुलाहों तथा तांतियोंकी शक्ति क्षीण हो गई। स्थूल बुद्धि तांतीने लाभकी आशासे सूक्ष्म सूतेका आश्रय लिया एवं सूक्ष्म-बुद्धि तांतियोंने मोटे सूतेका कार्य आरम्भ किया। आश्चर्यका विषय है, कि इन दोनों जातियोंका व्यवसाय एक होने पर भी कपड़ा बुननेके सम्बन्धमें सभी विषयोंमें ही जुलाहों तथा हिन्दू तांतियोंने परस्पर विभिन्न पंथोंका अवलम्बन किया है। नीचे दोनों पक्षके वयनोपयोगी यन्त्रोंका परिचय दिया जाता है।

१ तांत (लूम)—तांत भारतवर्षमें कितने दिनोंसे प्रचलित है, इसका पता नहीं चलता। किन्तु प्राचीन शास्त्रीय ग्रन्थोंमें उसका उल्लेख मिलता है। जो तांत बहुत दिनोंसे इस देशमें चला आ रहा है, वह 'हाथका तांत' या 'बंगला तांत' कहलाता है। यह तांत काष्ठसे तैयार किया जाता है, यहां तक, कि एक ही तांत तीन चार पीढ़ी तक कामयाबी रहता है। इसकी ढरकीको एक हाथसे चला कर दूसरे हाथसे पकड़ना होता है। इससे अधिक चौड़ा कपड़ा बुननेमें सुविधा नहीं होती; किन्तु इस तांतके द्वारा इच्छानुसार मोटे एवं बारीक सब तरहके कपड़े बुने जा सकते हैं। इससे अधिक सूते नहीं टूटते। जिस तरह इससे बारीक कपड़े तैयार किये जा सकते हैं, उस तरह ईंग्लूमसे तैयार

करना कठिन है। किन्तु हाँ, इस बंगला ताँतमें उतनी शीघ्रतासे काम नहीं हो सकता। एक सुदक्ष ताँती इस ताँतमें एक मिनटमें ३१।३२ बार ढरकी चला सकता है। इसमें सबसे बड़ा दोष यह है, कि इसमें ढरकीके ठहरनेका स्थान नहीं होता; इसलिये जरा-सा चूक जानेसे ही ढरकी नीचे गिर जाती है।

कलका ताँत (Fly shuttle loom)—१८वीं शताब्दीके शेष भागमें जान् के नामक साहबने इसका पहले पहल आविष्कार किया था। यह बिल्कुल विदेशी नहीं है; बंगला तांतको ही कुछ नये ढंगसे सुधार कर यह तैयार किया गया है। असलमें उसके साथ इसकी पूरी समानता है। उत्तम शागवान तथा शालके काष्ठसे ही ये दोनों प्रकारके ताँत तैयार किये जाते हैं। लकड़ी खूब मजबूत एवं सूखी होनी चाहिये; नहीं तो थोड़े ही दिनोंमें उसके बेकार हो जानेकी सम्भावना रहती है। इसके कितने ही अंग प्रत्यंग होते हैं; किसी एक अंशके बिगड़ जानेसे ही काम स्थगित हो जाता है।

वयन-प्रक्रिया।

वस्त्र बुननेकी प्रथम सीढ़ी सूता तैयार करना है। सबसे पहले सूताको वयनोपयोगी बना लेना पड़ता है। प्रायः कारीगर-घरकी स्त्रियां ही सूता तैयार करती हैं एवं उसे सोंट कर बुननेके योग्य बनाती हैं। इसके बाद कारीगर उसे ताँत पर चढ़ा कपड़ा बुनना शुरू करता है। जब तक कारीगर उस तैयारी तानीको बुन लेता है तब तक उसकी स्त्रियां दूसरी तानी तैयार कर देती हैं।

पहले इस देशमें उच्च श्रेणीके हिन्दुओंके घरकी अर्थात् ब्राह्मण कायस्थ परिवारकी स्त्रियां चर्खा चलाया करती थीं। ब्राह्मण कुमारियोंके हाथका काता हुआ सूता आज भी विवाहादि शुभ कार्यमें व्यवहार किया जाता है। कवचादि धारण करनेमें भी कुमारीके हाथका काता हुआ सूता न होनेसे काम नहीं चलता। वे चर्खा कातनेके लिये बारीक एवं मोटे सूतेके हिसाबसे मेहनताना पाती थीं। उस समय एक पोले सूतेकी मजूरी छः आने तक थे। उस समय चर्खा होनेसे इस देशमें अन्न वस्त्रका दुःख नहीं था। सभी दीन दुःखिनी स्त्रियाँ चर्खा चला कर कुछ न कुछ रोजगार कर लेती थी। बूढ़ोंके मुखसे अभी भी चर्खाकी प्रभावज्ञापक इस तरहकी एक किम्वदन्ती सुनी जाती है—

"चरखा मेरा प्यारा बेटा, चरखा मेरा नाती।
चरखेकी दौलतसे मेरे, द्वारे झूमे हाथी॥"

लोगोंसे पता चलता है, कि उस समय चर्खेसे सूता तैय्यार करके कारीगरको देनेमें वह छः आने मजूरी ले कर जो कपड़ा बुन देता था, वह एकसाल तक ठहरता था। इसका कारण यह था, कि उस समयके चर्खेसे काता हुआ सूता खूब पक्का होता था, उससे कपड़े भी आसानीसे बुने जाते थे। इससे गृहस्थोंको कपड़ेमें बहुत कम खर्च पड़ता था। चर्खाके बन्द हो जानेसे हमारे देशमें बहुत क्षति हुई है। कलका सूता बहुत कमजोर होता है। सुतरां उसे वयनोपयोगी बनानेमें बहुत मजूरी देने पड़ता है। सूतेको सख्त चिकने एवं श्रृंखलायद्ध नहीं कर लेनेसे कपड़ा नहीं बुना जा सकता। कपड़ेकी लम्बाईके सूतेको तानी (Warp) एवं चौड़ाईके सूतेको भरनी (Weft thread) कहते हैं।

तानीका सूता (Warp) तैयार करनेके समय विशेष मनोयोगकी आवश्यकता है। तानीका सूता अच्छी तरह सोंट (मज) लेना चाहिये; भरनीका सूता (weft thread) कुछ कमजोर रहने पर भी उतनी क्षति नहीं होती, किन्तु तानीके सूतेका खूब सख्त एवं विछिन्न होना अत्यन्त आवश्यक है।

सूता-खोलना (Unfastening)—सूता खरीदनेके समय सूतेमें अधिक खण्ड हैं या नहीं, इसकी परीक्षा कर लेनी चाहिये। प्रति पोलेमें ४०० सौ लच्छे होते हैं। सूते दो लच्छे करके पोलेसे अलग करना चाहिये। ढेंकुनेके ऊपर पोला लगा कर लच्छा निकालनेमें सुविधा होती है। इसे ही सूता-खोलना कहते हैं।

सूताभिगाना (Wetting)—एक बाल्टीके अन्दर स्वच्छ जलमें सूता-भींगनेके लिये रख देना चाहिये। तानेका सूता इस तरहसे तीन दिन तक भींगनेसे वयनोपयोगी होता है। उसका पानी प्रत्येक दिन बदल देना चाहिये। भरनीके सूतेको एक दिनसे ज्यादा भिगोनेकी आवश्यकता नहीं होती। सूता भिगानेसे मजबूत होता

है, किन्तु इसलिये इसे अधिक दिनों तक पानीमें भीगने देना उचित नहीं। रंगीन सूतेको ज्यादे भिगोनेकी जरूरत नहीं।

सूता लपेटना (winding the reels)—चौथे दिन जलसे सूता निकाल कर उसके गिरे पड़े लच्छोंको ठीक कर लेना चाहिये। इसके बाद उसे एक चरखी पहना कर उस चरखीको डेढ़ दो हाथकी दूरी पर रखना चाहिये (चरखीके सूतेको दोनों हाथोंसे मोड़ कर लच्छे-को खिला खिला कर देना चाहिये। उन सूतेका जब एकसे ज्यादा छोर निकल पड़े तब उनमेंसे सिर्फ एक एकको पकड़ कर बाकीको एक धागेसे एवं दूसरे दूसरे छोरोंको नलीको एक ओर बाँध देना चाहिये, नहीं तो चरखीके घूमनेके समय सूतेके बार बार टूटनेकी सम्भावना रहती है। इसके बाद 'घुरनी काटके' मध्य स्थित दण्डके सुराखमें नारेके हत्थेका अगला हिस्सा रख कर एवं उसके दूसरे छोरको दाहिने हाथसे पकड़ कर वृद्धांगुली द्वारा बाँयेसे दाहिनी ओर तथा अन्यान्य उंगलियों द्वारा दाहिनेसे बाँई ओर ऐंठनेसे नारा खूब जोरोंसे घूमने लगता है। उस समय बाँये हाथकी वृद्धांगुली तथा तर्जनी द्वारा सूतेको आसानीसे पकड़े रहना चाहिये। इससे सूतेमें किसी तरह की गड़बड़ी नहीं मचती।

पौयन्द लगाना (Piecing)—बीच बीचमें सूता टूट जानेसे उन्हें नीचेकी ओर या ऊपरकी ओर धागेसे बाँध देनेके बजाये निम्नलिखित रीतिसे जोड़ लेना चाहिए। दो सूतोंके अग्रभागको बाँयें हाथकी वृद्धांगुली तथा तर्जनी द्वारा पकड़ कर दाहिने हाथकी उन्हीं अंगुलियों द्वारा दबा कर बाँये हाथकी अंगुलियोंसे ऐंठना चाहिए, फिर उसे नीचेकी ओर घुमा कर दाहिने हाथके सूतेमें मिला कर एक बार ऐंठ देना उचित है। इस तरह जोड़ने से सूतेमें ग्रन्थि नहीं पड़ती, अथच ये दोनों इस तरहसे जुट जाते हैं, कि दूसरी जगह भले ही टूट जाय किन्तु यह जोड़ नहीं बिखर सकता। सूतेको खूब अच्छी तरह नहीं जोड़नेसे कपड़ा बुननेके समय बहुत टूटते हैं।

सूता जोड़नेमें भी जुलाहों एवं तांतियोंमें भेद है। उन-की प्रणाली परस्पर विपरीत होती है। ऊपर जुलाहे-के सूता जोड़नेकी बातें लिखी गई हैं। किन्तु तांती बाँये हाथकी वृद्धांगुली तथा तर्जनीके मध्य दोनों सूतों-के अग्रभाग ले कर नीचेकी ओर ऐंठ कर ऊपरकी ओर जोड़ते हैं। बारीक सूता जोड़नेमें तांतियोंकी सूता जोड़ने-की अच्छी रीति होती है एवं मोटा सूता जोड़नेमें जुलाहों की।

सूता पर सरेस चढ़ाना (Sizing)—मोटे सूतेमें भातका मांड़ अथवा चूड़े तथा लावेका मिला हुआ मांड़ एवं बारीक सूतेमें लावेका मांड़ व्यवहारमें लाते हैं। कठौतमें मांड़ रख कर बाँये हाथसे सूतके लच्छे पकड़ कर दाहिने हाथसे उसे घिसाते हुए मांड़में इस तरह डुबोते हैं, कि सूता मांड़में अच्छी तरह तरबतर हो जाय और विशृङ्खल भी न होने पावे। इसके बाद छोटी चरखीके सिरे पर सूतेके लच्छे लगा कर ढेकुआ के द्वारा पूर्ववत् भराई करनी चाहिये। केवल भातके मांड़से सूत पर सरेस दिया जाता था, इसलिये आज भी कितने कारीगर इस कार्यको 'भातान' कहते हैं।

तंतुको सुखाना (Drying)—भराई हो जानेके बाद उन्हें धूपमें सुखाना पड़ता है। सूख जानेके बाद पहलेकी तरह सूतेको खोल कर एक बांस पर लगा कर रख देना चाहिये। इस सब कार्योंमें जितनी शृंखला रखी जायगी उतनी ही जटिलता कम होगी। यदि आकाश बादलोंसे आच्छन्न रहे अर्थात् धूपमें सूता सुखानेकी सुविधा न रहे, तब अग्निके तापसे सूता सुखाया जा सकता है। वर्षाके दिनोंमें कारीगर लोग प्रायः सूतेमें सरेस (मांड़ी) नहीं देते।

छोछी (नरी) भरना (Winding the bobbins)—सूतेके सूख जाने पर उसके लच्छेको बाँयें हाथके अंगूठे-से दबा कर एवं दाहिने हाथसे धीरे धीरे ऐंठ कर अच्छी तरह उलटा देवें, इससे मांड़से चिपके हुए सूत परस्पर बिखर जायेंगे। इसके बाद उन लच्छोंको चरखीमें पहना देवें। फिर सूतके लच्छेमें जहां छोर बंधा रहता है, उसे खोल कर नाटेकी नरीमें (छोछी) में लिपटा देवें एवं दाहिने हाथसे चर्खी चलावें और बाँये हाथकी दोनों अंगुलियोंसे सूत पकड़े हुए नरी भरें। नरीके मध्य भागको मोटा एवं दोनों किनारे पतला करके

सूत लपेटनेसे अच्छा होता है। नरियेमें उतना ही मोटा करके सूत लपेटना चाहिये जितनेसे वह सुगमतासे ढरकी-में प्रवेश किया जा सके।

तानेका फ्रेम सजाना और बार गूंथना—जितने जोड़ कपड़े एक बारमें तैयार करते हों, उनकी आवश्यकता-नुसार नरियाँ (Bobbins) भर कर ताना कल मध्य-स्थित सींकोंमें पहनाये। इसके बाद प्रत्येक नरीके सूत-के छोरको बाहर करके एक बारके दो छरोंके मध्यस्थ छेदोंके बीचसे हो कर खींच लेवें। इस तरहसे जितने नरियां हों, उनमेंसे आधी तो बारके छेदोंमें एवं आधी छरोंके छेदोंमें प्रवेश कराके एक साथ गाँठ बाँध देनी पड़ती है।

ताना करना (Warping)—तांती लोग एक साथ ४ जोड़ेसे ले कर १२ जोड़े तकका ताना जितने हाथ लम्बे कपड़े बुननेकी इच्छा हो, उससे डेढ़ दो हाथ अधिक लम्बा ताना करना चाहिये। ताना चौकोन किया जाता है। १०+५ हाथके स्थानमें ४० हाथ लम्बा ताना किया जा सकता है। पहले दो नियमित स्थानोंमें ३ या ३॥० हाथके दो खूंटे गाड़ने चाहिये। पहले खूंटेकी बाँई ओर ६ या ७ इंचका दूरी पर एवं दाहिनी ओर ३ छड़े, इसके बाद प्रत्येक २॥ या ३ हाथकी दूरी पर एक एक लाइनमें दो दो छड़ें गाड़नी चाहिये। इसके बाद प्रत्येक २॥ या ३ हाथकी दूरी पर एक एक लाइनमें दो दो छड़ें गाड़नी चाहिये। इसके बाद तानेकी कल (Bobbin frame) एवं बार ले आवें, सूतके छोरोंको ग्रन्थि खोल कर पहले खूंटेमें बाँध देवें एवं बारको दाहिने हाथसे पकड़ कर घसकाते ही सूता बाहर होगा। बाँये हाथसे उसका एक प्रस्थ सूता पहली छड़के मध्य और दूसरीके बाहर कर देवें एवं दूसरा प्रस्थ सूता पहली छड़के बाहर और दूसरीके मध्य कर देवें। इस तरहसे सभी छड़ोंमें सूता पहना कर पहले खूंटेके पास आना होता है अर्थात् आधे सूत प्रत्येक छड़के बाहरकी ओरसे एवं आधे भीतरकी ओरसे छड़ोंमें पहनाने पड़ते हैं। किन्तु दोनों ओरके दोनों खूंटोंमें इस तरहसे सूता न लपेट कर सिर्फ बाहरकी ओरसे ही घुमाना पड़ता है।

जिस ओर दो शरें गाड़े गये हैं, उस ओर ताना आरम्भ एवं जिस ओर तीन शरें गाड़े गये हैं, उस ओर समाप्त करना होता है। कपड़ा जितना ही चौड़ा करना हो, एवं जितना घना या पतला बुनना हो, उसी हिसाबसे सूतेकी संख्या भी ठीक करनी होगी। फिर कपड़ेके दोनों पाढ़ोंके लिये सूते ठीक करके कल पर ताना चढ़ाना चाहिये, कारण यह है, कि कपड़ा बुननेके समय सूते कम बेश हो जाते हैं, इसलिये ताना करनेके समय ही सूते गिन लेने चाहिये एवं १०० सूतको एकत्र कर गाँठ बाँध देनी चाहिये। कलकी सहायतासे पाढ़का ताना न करके अलग ही करना उचित है, क्योंकि पाढ़ों-के तानेमें दोहरा सूता दिया जाता है अर्थात् दो छड़ों-को एक साथ करके नारेमें लगा कर एवं उस दोहरे सूतेको एक 'बावमा" चरखीमें लगा कर, चरखीको बाँये हाथसे पकड़ दाहिने हाथमें एक "हलकी" लेवें, फिर चरखीसे दोहरे सूतेका छोर बाहर करके "हलकी" की अंटीके मध्यसे पहले खूंटेमें बांधना होता है। इसके बाद हलकीकी सहायतासे ये सूत एक छड़के भीतरसे हो कर एवं दूसरी छड़के बाहरसे घुमावें। एक ओर पाढ़का ताना समाप्त होने पर छड़ोंको क्रम क्रमसे उलटा कर गाड़ देवें एवं दूसरी ओरके कार्य भी उक्त रूपसे सम्पन्न करना चाहिये।

पहले एक ओरके पाढ़का ताना करके कपड़ेके शान्तिपाढ़ या रंगीनपाढ़का ताना समाप्त करेंगे, फिर दूसरी ओरके पाढ़का ताना करनेके लिए छड़ोंको घुमाना नहीं पड़ता। आज कल ताना करनेकी कल हो जानेसे यह काम बहुत सहज हो गया है एवं थोड़े ही समयमें ताना करनेका काम समाप्त होता है, नहीं तो दो जोड़े कपड़े-का ताना करनेमें डेढ़ दिन लग जाते थे। तानेके शेष हो जाने पर मोटे शरोंके बदले पतले 'जो शर' गाड़ने चाहिए एवं पहले खूटेमें लपेटे हुए सूतेको काट कर जिस ओर दो शर हैं, उस ओरसे सावधानीके साथ 'जो शर' में बांध देवें। जहां तीन शर हैं, वहां आ कर लगभग डेढ़ हाथ सूता बाहर रखें और उन सूतोंको फैलाते हुए ऊपर तथा नीचे दोनों "चियड़" से एक बार फिर लपेट कर 'दड़ी' द्वारा 'चियड़' के साथ शरोंको बांध देवें। इसके

बाद जो तांत "ओ डार" बाहर रह जाते हैं, उन्हें भी 'दुड्डी' के एक ओर पेंच दे कर जिस स्थान पर जैसा तार है, उसे उसी आपसे पेंच दे देवें, जिसमें वह गिर न जाय। वंचन ये तांत 'ओ' रखना ही यथेष्ट होगा, किन्तु किसी कारण बोजसे सूता कट जानेसे भी असुविधा न होने पाये; इसलिये जोलो लोग अधिक "ओ डार" रखे रहते हैं।

रांच भरना—ऊपर लिखे हुए तरीकेसे ताना तैयार कर लेने पर एक ऊंचे स्थान पर सूता बांध कर जिस ओर तांत पड़े हैं उस ओर लटका देवें। इसके बाद एक साथ २०।२५ सूत एकत्रित मोटी बांधो आपसी एवं इन मोटियोंके मध्य एक 'पालाबाड़ी' लगा देनेसे सूतेके फांक अलग अलग हो जायेंगे। इसके बाद कपड़ेकी चौड़ाईको विवेचना करके रांच तथा कपड़े के मध्य स्थान ठीक करके 'पालाबाड़ी' के साथ 'रांच' लगा देवें। एक ओरसे मोटी खोल कर एक एक जोड़ा सूत रांचके प्रत्येक छिद्रमें पिरो देवें। इसमें दो आदमियोंकी आवश्यकता होती है। एक आदमी सूतेको रांचके छिद्रके पास रखता है और एक आदमी दूसरी ओरसे सुतरी द्वारा सूतेको रांचमें पिरोता है। इस तरह विशेष सतर्कताके साथ रांच भरना होता है। रांचमें २०।३० सूत पिरोनेके बाद उन्हें एकत्रित कर बांध दिया करें। कलमें भी (Mills) रांच भरनेमें इसी तरह दो आदमियोंकी आवश्यकता होती है। उन्हें Beacher in एवं Drawer in कहते हैं। जोलाहोंके नियमसे रांच भरना आसान है, क्योंकि ये सिरा नहीं काटते, एक साथ जोड़ा सूत मिले रहनेसे एक आदमी ही रांच भर सकता है।

नराज भरना (Beaming)—यह विशेष सावधानी[illegible] अवलम्बन करना चाहिये। रांच भर लेनेके बाद [illegible] मोटी बांध कर बाहरके नराज तथा रांच [illegible] ठीक किया देवें, फिर इसके बाद एक [illegible] नराजके पास एक टट लगा [illegible] दूसरी ओर एक 'पालाबाड़ी' दे कर [illegible] देवें। नराजके छिद्रमें एक [illegible] सुतरी [illegible]

परीक्षा करते रहें, बीचमें सूत ढीले न पड़ जाएं या बिल्कुल कस हो न जांय, इसलिये एक एक पत्तो या समय समय पर लगा दिया करें, अथवा स्थान स्थान पर पत्ता या कागज रख दिया करें, जिससे तानेके सूत ऊंचे नीचे न हो जांय, उसी तरहकी व्यवस्था करें। जुलाहे लोग जिस ओरसे रांच भरते हैं, उसी ओरसे नराजका सूता लगाते हैं और साथ ही साथ रांच दूसरी ओर ले जाते हैं। इस पद्धतिसे नराज लगानेमें अधिक सुविधा होती है, किन्तु तांती लोग जिस ओरसे रांच भरते हैं, उसकी विपरीत दिशामें नराज लगाते हैं।

"ब" बांधनेकी प्रणाली—नराजमें सूता लगानेके बाद नराजके दोनों ओर दो खूंटाके साथ कुछ ऊंचा कर के बांधना पड़ता है एवं उसकी दूसरी ओर जो सिरे पड़े हुए हैं, उनके दोनों ओर ६।१० इंच लम्बे दो खूंटे गाड़ कर इस तरहसे बांध देना चाहिये, जिससे सब सूत समान भावसे कसे रहें। ऊपर लिखे हुए स्थानोंके तांतों 'ओ डारो'के द्वारा दो "ओ" (Leave) होते हैं, उनके बीच हो कर 'ब' बांधना पड़ता है। पहले तानोंके 'ओ'के अन्दर एक 'लिपट' पहना कर घुमा देनेसे ही सूतोंमें फांक बन पड़ेगा। एक 'हाथकी करनी'में 'ब' बांधने का सूता पहना कर उस करनीको १॥ या २ हाथकी दूरी पर मिट्टीमें गाड़ देवें। करनीके सूतका अग्रभाग एक लकड़ी टुकड़ेके सिरेसे बांध एवं "ओ" के अन्दर घुसा कर सावधानीसे दूसरी ओर खींच लेवें। गुल्टके पतले हिस्सेके सिद्रमें ३।४ हाथ लम्बा एक मोटा सूता बांध देवें सामनेवाले 'ओ'के अन्दर "ब" बंधे हुए सूतको बाहिने हाथसे इस तरह उठावें जिससे 'लिपट'के ऊपर तानेका एक एक गुच्छा सूत लिपट जाय। 'ब' सूता उलटा कर गुल्टके ऊपर वाले डंडेके मांझेसे घुमावें एवं डंडेके साथ एक पेंच दे कर सूतेको गुल्टके मांझेमें दो कर सामनेकी ओर ले आनेसे एक सूतेका 'ब' बांधा जायगा। इस तरहसे एक एक करके 'लिपट'के ऊपरी सभी सूतों के "ब" बांधने चाहिये। समूचे डंडेमें "ब" बांध चुकने पर गुल्टके पतले हिस्सेके पास संलग्न सूतेसे गुच्छा एक मोटी लकड़ीके साथ बांध कर डंडेके मांझेमें 'ब' के भीतर रखें। 'ब' के अन्दर हाथ पहना कर उसके दोनों छोरोंके।

डंडेके साथ बाँध देवें, इसके बाद ऊपर लिखे हुए तरीके-से दूसरे 'जो' के भीतर उक्त 'चिपड़' को पहनानेसे नीचे-वाले 'जो'के सूत ऊपरको उठ जायेंगे एवं इस तरहसे इन सूतोंको भी 'व' बाँधना होंगे। इस तरह एक तरफके 'व' बाँध चुकनेपर नराज उल्टा कर दूसरी ओर 'व' बाँधे। इस ओर 'व' बाँधनेके समय तंतु इस तरहसे 'जो'के अन्दर पहनाना पड़ता है कि, यही तंतुगुच्छा पहलेके बँधे हुए 'व' के अन्दर दिया जा सके। तानेके वस्से अधिक तंतु 'व' के अन्दर प्रवेश न कर जाय, उस पर विशेष ध्यान देनेकी आवश्यकता है।

इसके बाद तानेको करघे पर चढ़ा कर कपड़ा बुनना चाहिये। पहले पैडल (पाँव दान) दबा कर तानेमें फाँक उठानी पड़ती है। प्रत्येक बार ढरकी चलानेके बाद भरनीके तंतुओंको राँचसे कस देना चाहिये। करघे दो प्रकारके होते हैं, पहला वह जिसमें कुर्सी पर बैठ कर कपड़ा बुना जाता है और दूसरा वह जिसमें भूमि पर ही बैठ कर ढरकी चलानी पड़ती है। इन दोनोंको 'हाईलूम' तथा 'पिटलूम' भी कहते हैं। 'पिटलूम' के कारीगर पाँव-दान रखनेके लिये करघेके नीचे गड्ढे खोद रखते हैं। उसी गड्ढेमें पांव लटका कर वे कपड़ा बुनने बैठते हैं। 'हाईलूम' की अपेक्षा यह लूम सुविधाजनक होता है। इसमें तन्तु अधिक नहीं टूटते।

नवाविष्कृत तांत तथा यन्त्रादि।

वर्त्तमान समय स्वदेशी आन्दोलनसे स्वदेशी वस्त्रोंका अधिक व्यवहार होनेके कारण देशी बंगला तांतोंकी यथेष्ट उन्नति हुई है। अनेकों विदेशी तांतोंका अनुकरण करके देशी तांतोंका किसी किसी विषयमें सुधार किया गया है उनमें एक ही समय ५ या १२ नटाइयोंमें सूता लपेटनेके लिये वर्त्तमान आविष्कृत तारिणीयन्त्र; एक ही बार एक ही पुरुष द्वारा ६, १२ वा २४ तानाओंकी नरियोंमें मर्पेकी सहायतासे सूता लपेटनेके लिये सरलायन्त्र (इसके द्वारा भरनी नरियोंमें भी सूता लपेटा जाता है) एवं साधु मिस्त्री-प्रवर्त्तित ताना करनेकी सुन्दर कल उल्लेखनीय हैं।

सूताचक्र या New spinning wheel—इसमें ठीक सिलाईकी कलकी तरह चेयर पर बैठ कर पाँव चलाना पड़ता है। तूलासे एक बारमें दो सूते भी तैय्यार किये जा सकते हैं।

आज तक जितने नये तांत (Improved Handloom) तैय्यार किये गये हैं, नीचे उनका संक्षिप्त परिचय दिया जाता है।

१ जापानी तांत—(Japanese Handloom)—विलायती तांतोंकी अपेक्षा जापानी तांत अधिक कार्यकारी होते हैं। व्यक्तिगत हिसाबसे ये कार्य चलानेके उपयुक्त नहीं हैं।

२ हैटर्सली तांत—(Hattersly Domestic Handloom) देखने सुनने एवं मजबूतीमें यह तांत बहुत अच्छा होता है। आज कल इसका दाम सस्ता करके १२० रु० कर दिया गया है। परन्तु इसके यान्त्रिक अंश उतने आसान नहीं हैं, हठात् बिगड़ जानेसे विपद् टूट पड़ती है, कार्य भी बन्द हो जाता है। इस कलसे दैनिक ८ घंटे काम करनेसे ४५ गज, ४४ इञ्च लंबे चौड़े कपड़े तैय्यार किये जा सकते हैं। इसकी परिचालनाके लिये शक्तिशाली पुरुषकी जरूरत होती है। कोई भी तीन घंटेसे अधिक काम करनेमें समर्थ नहीं होता। एंजिन द्वारा चलाये जाने पर ये विशेष उपयोगी होते हैं।

३ लाहोरका उन्नत तांत (Lahore Improved Hand loom)—इसका निर्माणकौशल उतना जटिल नहीं है। हमारे देशके जलवायुके लिये बहुत उपयोगी है।

विभिन्न प्रकारके विदेशी तांतोंका संक्षिप्त परिचय,—

४ Jacquard Looms of reed space 82″=इसके द्वारा टेबिल ढकनेके नाना प्रकारके कपड़े तैय्यार किये जाते हैं।

५ Drop Box Looms 85″ with I shuttle=इसके द्वारा चेक, खोल, डोरिया, साड़ी प्रभृति बने जाते हैं।

६ *Drill* mations Looms 60″ with I shuttle=जिन तथा ड्रिल प्रभृति कपड़े बुने जाते हैं।

७ Doby Looms 48″ with I shuttle=किनारी (पाड़) में अक्षर, फूल तथा बेल बूटे काढ़े जाते हैं।

८ Dhuty Looms 48″ with I shuttle=इससे धोती तथा साड़ी तैय्यार की जाती है।

बाद जो तार "डी तार" बाहर रह जाते हैं, उन्हें भी 'दफ्ती' के एक ओर पेंच दे कर जिस स्थान पर डीला जाता है, उसे इसी जगहमें पेंच दे देवें, जिससे वह गिर न जाय। वैसे भी तार 'डी' रखना ही पसंद होता, किन्तु किसी कारणवश सूता कट जानेसे भी असुविधा न होने पावे; इसलिये तांती लोग अधिक "डी तार" रखे रहते हैं।

रांच भरना—ऊपर लिखे हुए तरीकेसे ताना तैयार कर लेने पर एक ऊँचे स्थान पर मूठा बाँध कर जिस ओर बीम रहते हैं उस ओर लटका देवें। इसके बाद एक साथ २०।२५ सूत एकत्रित छोटी छोटी आँटियों एवं इन आँटियोंके मध्य एक 'पाताबाटी' लगा देनेसे सूतके छोर अलग अलग हो जावेंगे। इसके बाद कपड़ेकी चौड़ाईको विवेचना करके रांच तथा कपड़ेके मध्य स्थान ठीक करके 'पाताबाटी' के साथ 'रांच' लगा देवें। एक ओरसे आँटी खोल कर एक एक छोटा सूत रांचके प्रत्येक छिद्रमें पिरो देवें। इसमें दो आदमियोंकी आवश्यकता होती है। एक आदमी सूतेको रांचके छिद्रके पास रखता है और एक आदमी दूसरी ओरसे सुआरी द्वारा सूतेको रांचमें पिरोता है। इस तरह विशेष सावधानीके साथ रांच भरना होता है। रांचमें २०।३० सूत पिरोनेके बाद उन्हें एकत्रित कर बांध दिया करें। कलमें भी (Mills) रांच भरनेमें इसी तरह दो आदमियोंकी आवश्यकता होती है। उन्हें Reacher in एवं Drawer in कहते हैं। जोलाहोंके नियमसे रांच भरना आसान है, क्योंकि वे गिरा नहीं काटते, एक साथ थोड़ा सूत मिले रहनेसे एक आदमी ही रांच भर सकता है।

नराज लगाना (Beaming)—यह विशेष सावधानीके साथ सम्पादन करना चाहिये। रांच भर लेनेके बाद सूतके छोरोंको छोटी छोटी बाँध कर बाहरके नराज तथा रांच का मध्यस्थान ठीक मिला देवें, फिर उसके मध्य एक पतली छड़ दे कर बाहरके नराजके बीच एक छड़ लगा देवें एवं एक आदमी दूसरी ओर एक पाताबाटी दे कर सूतेको कस कर रखें। तब नराजके छिद्रमें एक लाठी अथवा डंडा लगा कर घुमावें और एक आदमी सूत यथास्थान पर बैठता जाता है कि नहीं, इसकी परीक्षा करते रहें। बीचमें सूत ढीले न पड़ जायँ एवं कि इधर उधर कम हो न जाय, इसलिये एक एक पतली छड़ समय समय पर लगा दिया करें, अथवा स्थान स्थान पर पत्ता या कागज रख दिया करें, जिससे तागे सूत ऊँचे नीचे न हो जायँ, उसी तरहकी व्यवस्था करें। जुलाहे लोग जिस ओरसे रांच भरते हैं, उसी ओरसे नराजका मूठा लगाते हैं और साथ ही साथ रांच दूसरी ओर ले जाते हैं। इस तरह स्थान पर तंतु स्थापन करनेसे अधिक सुविधा होती है, किन्तु तांती लोग जिस ओरसे रांच भरते हैं, उसको विपरीत दिशासे नराज लगाते हैं।

"ब" बाँधनेकी प्रणाली—नराजमें सूता लपेटनेके बाद नराजके दोनों ओर दो खूंटाके माथे कुछ ऊँचा कर के बाँधना पड़ता है एवं उसकी दूसरी ओर जो सिरे रहे हुए हैं, उनके दोनों ओर ११।० इंच लम्बे दो खूंटे गाड़ कर इस तरहसे बाँध देना चाहिये, जिससे सब सूत समान भावसे कसे रहें। ऊपर लिखे हुए स्थानोंके तांती 'जो जागे'के द्वारा ये "जो" (Lease) होते हैं, उनके बीच हो कर 'ब' बाँधना पड़ता है। पहले तागेके 'जो' के अन्दर एक 'लिपट' पहना कर घुमा देनेसे ही सूतों में फाँक उठ पड़ेगा। एक 'हाथकी पतली' में 'ब' बाँधने का सूता पहना कर उस पतलीको १½ या २ हाथकी दूरी पर मिट्टीमें गाड़ देवें। पतलीके सूतका अग्रभाग एक लम्बी छड़के सिरेमें बाँध एवं "जो" के अन्दर घुमा कर सावधानीसे दूसरी ओर खींच लेवें। दुबरके पहले हिस्सेके सिरे ३।४ हाथ लम्बा एक मोटा सूता बाँध देवें सावधानीसे 'जो'के अन्दर "ब" बँधे हुए सूतेको दाहिने हाथसे इस तरह उठावें जिससे 'लिपट' के ऊपर वाले का एक एक गुच्छा सूत लिपट जाय। 'ब' सूता उलटा कर गुच्छके ऊपर वाले छड़के नीचेसे घुमावें एवं छड़के साथ एक पेंच दे कर सूतेको गुच्छके नीचेसे हो कर सामनेकी ओर ले आनेसे एक सूतेका 'ब' बँधा जायगा। इस तरहसे एक एक करके 'लिपट' के ऊपरी गली सूतों के "ब" बाँधने चाहिये। सम्पूर्ण छड़में "ब" बाँध चुकने पर गुच्छके पहले हिस्सेके पास संलग्न सूतेसे गुच्छा एक मोटा छड़के साथ बाँध कर छड़के नीचेसे 'ब' के भीतर रखें। 'ब' के अन्दर तार पहना कर उसके दोनों छोरोंको

डंडेके साथ बाँध देवे, इसके बाद ऊपर लिखे हुए तरीकेसे दूसरे 'जो' के भीतर उक्त 'चिपड़' को पहनानेसे नीचेवाले 'जो' के सूत ऊपरको उठ जायेंगे एवं इस तरहसे इन सूतोंको भी 'व' बाँधना होगे। इस तरह एक तरफके 'व' बाँध चुकनेपर तराज उलटा कर दूसरी ओर 'व' बाँधे। इस ओर 'व' बाँधनेके समय तंतु इस तरहसे 'जो' के अन्दर पहनाना पड़ता है कि, यही तंतुगुच्छा पहलेके बँधे हुए 'व' के अन्दर दिया जा सके। तानेके एकसे अधिक तंतु 'व' के अन्दर प्रवेश न कर जाय, उस पर विशेष ध्यान देनेकी आवश्यकता है।

इसके बाद तानेको करघे पर चढ़ा कर कपड़ा बुनना चाहिये। पहले पैडल (पाँव दान) दबा कर तानेमें फाँक उठानी पड़ती है। प्रत्येक बार ढरकी चलानेके बाद भरनीके तंतुओंको राँचसे कस देना चाहिये। करघे दो प्रकारके होते हैं, पहला वह जिसमें कुर्सी पर बैठ कर कपड़ा बुना जाता है और दूसरा वह जिसमें भूमि पर ही बैठ कर ढरकी चलानी पड़ती है। इन दोनोंको 'हाईलूम' तथा 'पिटलूम' भी कहते हैं। 'पिटलूम' के कारीगर पाँवदान रखनेके लिये करघेके नीचे गड्ढे खोद रखते हैं। उसी गड्ढेमें पाँव लटका कर वे कपड़ा बुनने बैठते हैं। 'हाईलूम' की अपेक्षा यह लूम सुविधाजनक होता है। इसमें तन्तु अधिक नहीं टूटते।

नवाविष्कृत तांत तथा यन्त्रादि।

वर्त्तमान समय स्वदेशी आन्दोलनसे स्वदेशी वस्त्रोंका अधिक व्यवहार होनेके कारण देशी बंगला तांतोंकी यथेष्ट उन्नति हुई है। अनेकों विदेशी तांतोंका अनुकरण करके देशी तांतोंका किसी किसी विषयमें सुधार किया गया है। उनमें एक ही समय ५ या १२ नटाइयोंमें सूता लपेटनेके लिये वर्त्तमान आविष्कृत तारिणीयन्त्र; एक ही बार एक ही पुरुष द्वारा ६, १२ या २४ तानाओंकी नरियोंमें चर्खेकी सहायतासे सूता लपेटनेके लिये सरलायन्त्र (इसके द्वारा भरनी नरियोंमें भी सूता लपेटा जाता है) एवं साधु मिस्त्री-प्रवर्त्तित ताना करनेकी सुन्दर कल उल्लेखनीय हैं।

सूताचक्र या New spinning wheel—इसमें ठीक सिलाईकी कलकी तरह चेयर पर बैठ कर पाँव चलाना पड़ता है। तूलासे एक बारमें दो सूते भी तैय्यार किये जा सकते हैं।

आज तक जितने नये तांत (Improved Handloom) तैय्यार किये गये हैं, नीचे उनका संक्षिप्त परिचय दिया जाता है।

१ जापानी तांत—(Japanese Handloom)—विलायती तांतोंकी अपेक्षा जापानी तांत अधिक कार्यकारी होते हैं। व्यक्तिगत हिसाबसे वे कार्य चलानेके उपयुक्त नहीं हैं।

२ हैटर्सली तांत—(Hattersly Domestic Handloom) देखने सुनने एवं मजबूतीमें यह तांत बहुत अच्छा होता है। आज कल इसका दाम सस्ता करके १२० रु० कर दिया गया है। परन्तु इसके यान्त्रिक अंश उतने आसान नहीं हैं, हठात् बिगड़ जानेसे विपद् टूट पड़ती है, कार्य भी बन्द हो जाता है। इस कलसे दैनिक ८ घंटे काम करनेसे ४५ गज, ४४ इञ्च लंबे चौड़े कपड़े तैय्यार किये जा सकते हैं। इसको परिचालनाके लिये शक्तिशाली पुरुषकी जरूरत होती है। कोई भी तीन घंटेसे अधिक काम करनेमें समर्थ नहीं होता। एंजिन द्वारा चलाये जाने पर ये विशेष उपयोगी होते हैं।

३ लाहोरका उन्नत तांत (Lahore Improved Hand loom)—इसका निर्माणकौशल उतना जटिल नहीं है। हमारे देशके जलवायुके लिये बहुत उपयोगी है।

विभिन्न प्रकारके विदेशी तांतोंका संक्षिप्त परिचय,—

४ Jacquard Looms of reed space 82″=इसके द्वारा टेबिल ढकनेके नाना प्रकारके कपड़े तैय्यार किये जाते हैं।

५ Drop Box Looms 85″ with I shuttle=इसके द्वारा चेक, डोल, डोरिया, साड़ी प्रभृति बने जाते हैं।

६ *Drill* mations Looms 60″ with I shuttle=जिन तथा ड्रिल प्रभृति कपड़े बुने जाते हैं।

७ Doby Looms 48″ with I shuttle=किनारी (पाड़) में अक्षर, फूल तथा बेल बूटे काढ़े जाते हैं।

८ Dhuty Looms 48″ with I shuttle=इससे धोती तथा साड़ी तैय्यार की जाती हैं।

९ Calico cloth Loom 14" with 1 shuttle—पेलिको कपड़े तैयार करनेके लिये।

१० Plain Loom 12" with 1 shuttle—इसमें समान रंगवाले प्रभृति बुने जाते हैं।

११ Dobby motion 12" with 1 shuttle—इसमें बर्राट तथा कोटके रंग बिरंगके कपड़े तैयार किये जाते हैं।

एक रैसी लाममें कितना व्यय पड़ता है एवं उपरोक्त प्रकारसे काम चलानेसे कितनी आय होती है, जनसाधारणकी जानकारीके लिये उसके आयव्ययकी तालिका नीचे दी जाती है—

व्यय—रैसी फ्लाइशटल लोम फ्रेम तथा सरंजाम ४० रु० एवं अतिरिक्त तंतु इत्यादि १० रु० कुल जमा ५० रु०।

आय—१ जोड़ा ४० स० धोती तैयार करनेमें तीन पौंड तंतु लगते हैं, प्रति पौन्ड छः आनेके हिसाबसे एक रुपये दो आने, मांड इत्यादि एक आने, रंगीन तंतुके लिये इसके अतिरिक्त दो आने, हर एक जोड़ेका खर्चा तीन आने, कुल जमा एक रुपये छः आने।

प्रति महीनेमें ४से ले कर १२ जोड़े तक कपड़े बुने जा सकते हैं। ४ जोड़े तंतुकी सरंजाम नियमसे पाइनीमें लगाते करीब ४ या ५ दिन लगते हैं। देहाती कारीगरोंके तंतु देने पर जोलहा प्रति १० हाथ १५ पैसे खर्च पड़ते हैं। उस हिसाबसे ४।५ रु० वेतन पर कारीगर-मजदूर भी मिलता है। तब भी हम यहां डेढ़ रुपयेके हिसाबसे वेतन जोड़ते हैं। दो रुपये जोड़ा (हम लोगोंके यहां ३।० रु० जोड़ा बिकता है) बेचनेसे प्रति जोड़ा छः आने अर्थात् मासिक ११।४० या १२ रु० बचते हैं। किन्तु पक्का कारीगर न रहने पर प्रति दिन एक जोड़ा तैयार नहीं हो सकता। प्रति दिन तीन रैगर तैयार किये जा सकते हैं, इन लोगोंके तैयार करनेमें ४ घंटेसे ज्यादा लगेगी। प्रति रैगरका दाम ८ आनेके हिसाबसे २) रु० हुए। तंतुके अलावे मांड़ एवं रंग खर्च १—१ ० रैगर एक घण्टामें तैयार होते हैं। इसके तैयार होनेमें ५ दिन लगते हैं। इस हिसाबसे—... कुल जमा ६३—० प्रति जोड़ा रैगर ३) रु० के हिसाबसे बेचनेसे तीन रैगर का दाम ८।) रु० होता है। इस हिसाबसे ११) रैगर अर्थात् मासिक ११।।—) आने होते हैं। ऊपर लिखे हुए नियमके अनुसार धन्द तथा रैगर बुननेवालोंकी मासिक आय १२। रुपयेसे ले कर २३) रु० तक होती है। किन्तु कुलीहा काम सब रोज समान भावसे नहीं चलता एवं कारीगरोको और और कार्य भी देखने पड़ते हैं, इसलिये इस हिसाबसे आय कुछ कम होती है। इसके अतिरिक्त रैगरकी बिक्री तीन चार मासमें अधिक नहीं चलती, इस कारण सब कारीगर इस तरह आय नहीं कर सकते। किन्तु हां, अध्यवसायी व्यक्तियोंके पक्षमें इस नियमसे आय करना कुछ असम्भव नहीं।

शिल्प तथा वाणिज्य।

यद्यपि कलिंग देशी तांतोंका विशेष किसी प्रकारका सुधार न होने एवं उससे कपड़े बुनना अत्यन्त परिश्रमसाध्य होने पर भी अति प्राचीनकालसे ही भारतके लोग वस्त्रशिल्पकी पराकाष्ठा तक पहुंच चुके थे, इसमें कुछ सन्देह नहीं। भारतवासियोंके अध्यवसाय, प्रचुर परिश्रम तथा हस्तकौशल द्वारा बहुत दिन पहलेसे ही जिस तरहके बारीक, सुन्दर तथा बहुमूल्य कपड़ोंका प्रचार जनसाधारणमें हो चुका है, संसारमें और भी किसी देशमें इस तरहके शिल्पका निदर्शन पाया नहीं जाता। भारतमें प्रायः प्रत्येक घरमें अत्यावश्यकतासे तांत दिखाई देता है। यहांकी रमणियां भी पैत्रिक मार्गानुगामिनी हो कर अपने स्वामी पुत्र तथा स्वजन परिजनके लिये कपास तथा रेशमी कपड़े, कनात तथा ओढ़नी प्रभृति बुना करती हैं, किन्तु दुःखकी बात है कि, ये कपड़े उतने परिष्कार परिच्छन्न नहीं होते, उनमें कितने बहुत मोटे होते हैं। अंग्रेजी शासनमें इस समय ढाकाकी 'शिल्पकला' बहुत कुछ नष्ट हो गया है, किन्तु यह आज तक भारतके शिल्पका मुकाबिला नहीं कर सके हैं।

यद्यपि भारतवर्षसे वस्त्रशिल्प एक प्रकारसे लुप्त हो गया है, तथापि आज भी बंगाल, [illegible] प्रान्तके किस तरह वस्त्रशिल्पोंका विशेष विवरण है, [illegible] पड़ता है एवं उनके शिल्पचातुर्यका विशेष अनुशीलन करनेसे इसमें तरह तरहके आनन्द होता है।

दुःखका विषय है कि, अङ्गरेज कम्पनीकी अनुकम्पासे ऐसा सुन्दर शिल्प भारतसे लुप्त प्रायः हो गया। मैञ्चेस्टरकी वणिक्-समितिके प्रयत्नसाध्य धोती तथा साड़ीके वाणिज्यकी रक्षा करनेमें धीरे धीरे इस देशकी ताँती जातिके चिरपोषित वाणिज्यकी जड़में कुठाराघात किया गया है। इस समय ये ताँती लोग हताश हो कर उस तरहका उद्यम नहीं कर सकते। प्राचीन शिल्पिगण इस संसारसे अपसृत हो चुके, सुतरां उनके साथ ही साथ भारतीय वस्त्रशिल्प भी एक प्रकारसे जाता रहा। इस समय जो पुरुष अत्यन्त चेष्टा करके उस प्राचीन शिल्पकीर्त्तिको जीवित रखनेमें यत्नवान् हैं, वे भी विदेशी वस्त्रकी तुलनामें लाभसे हानिका अंश ही अधिक देख कर अपने अपने व्यवसायसे हताश हो रहे हैं। इस समय वस्त्रशिल्पमें पूर्वापेक्षा कहीं अधिक दीनता आ घुसी है। फिर भी इस श्रीहीन वाणिज्यके गौरवको स्थिर रखनेवाले अभी भी अनेकों पुरुष विद्यमान हैं।

काशीके सुविख्यात जरीके फीते, सोने वा चांदीके तन्तु द्वारा प्रस्तुत गुलबहार साड़ी, जामदानी कामदानी तथा संसारके अनुलनीय किनाप वस्त्र अभी भी शिल्प चातुर्य्यकी पराकाष्ठा दिखा रहे हैं। इन सब कपड़ोंमें प्रधानतः कपास वा रेशमी सूतोंके ऊपर जरीके फूल तथा बेलबूटे खिंचे रहते हैं। बुर्हानपुर, महिसूर, अर्काट, दिल्ली तथा औरंगाबाद प्रभृति स्थानोंमें इस समय भी तन्तुशिल्पके यथेष्ट आदर तथा विस्तार देखे जाते हैं। मन्वादि लिखित उसी सुप्राचीन युगसे आज पर्य्यन्त भारतवासी सभी वर्णोंकी रमणियोंके मध्य चर्खा कातनेकी प्रथा देखी जाती है। इस समय भी ऊपर कहे हुए स्थानोंमें स्त्रियां चर्खेसे बारीक सूता तैयार करती हैं। १९वीं शताब्दीसे भारतवर्षमें इङ्गलैण्ड आदि कई एक पाश्चात्य तथा प्राच्य देशजात द्रव्योंकी आमदनी होनेसे देशी चर्खे द्वारा सूतेके प्रस्तुत तथा प्रचारमें अत्यन्त अवनति हुई है। किन्तु तब भी जिन जिन स्थानोंमें रेशमी वस्त्र तैयार होते हैं, उन सब स्थानोंमें चर्खेका पूरा प्रचार है।

बङ्गालके अन्तर्गत मुर्शिदाबाद जिलेके बहरमपुर शहरमें देशी ताँतोंसे रेशमी गरद वस्त्र एवं मानभूम जिलेके रघुनाथपुरमें इस समय भी कोयेसे चर्खा द्वारा सूता कात कर तसर- वस्त्र बुने जाते हैं। वीरभूम, बांकुड़ा प्रभृति स्थानोंमें भी कोयेसे सूता तैयार करके नाना प्रकारके कपड़े बुने जाते हैं।

इस समय मैञ्चेस्टरकी कलसे काते हुए सूतेकी आमदनी अधिक होनेके कारण भारतकी रमणियोंने चर्खा चलाना बन्द कर दिया है। देशी सूतोंके भावसे विलायती सूतोंका भाव सस्ता देख कर यहांके सभ्यसमाज अपनी कुलकामिनियोंको चर्खा चलानेका कष्ट नहीं देते, वस्तुतः उसी विलासिताके प्रभावसे आज भारतमें विरद्रोनता आ उपस्थित हुई है। आज भारतवासियोंको अपने शरीर ढकनेके कपड़ेके लिये भी दूसरोंका मुंह जोहना पड़ता है। उच्च श्रेणीके शिक्षित तथा विलासी भारतियोंने अपनी कुलकामिनियोंको चर्खा कातनेके कष्टसे उद्धार करके उनकी कमर ढकनेके कपड़े तकका भी अभाव कर दिया है। ताँतियोंने स्वार्थहानि देख कर जातीय व्यवसायको जलांजलि दे दी। वे भी अब व्यर्थ परिश्रम करके स्वदेश विरागी विदेश-भक्त भारतियोंके अनुग्रहकी आशा प्रत्याशा नहीं रखते, यही कारण है कि, इस देशमें इतने समयके बाद वस्त्र-वयन-शिल्पका इस तरह अधःपतन हुआ है। पहले जिन शिल्पोंके लिये सारा भारत, इतना ही नहीं सारे सभ्य जगत् लालायित होते थे, आज वे शिल्प भारतसे विलुप्त हो गये। उनके बदलेमें एवं उन्हींके अनुकरणसे अङ्गरेज वणिक्-समितिके अनुग्रह द्वारा आज भी सादा तथा धोरादार डोरिया, मलमल, अबवानि, तुरस, मद्धो प्रभृति सुन्दर बारीक कपड़े बङ्गालसे प्रेरित होते हैं।

ढाकाके उस सुविख्यात मसलिन कपड़ेकी बात याद करनेसे एवं बङ्गालकी गौरवकीर्त्तिका इतिहास पढ़नेसे ज्ञान पड़ता है,- कि एक समय बङ्गालकी ताँती-जाति वस्त्र-वयन-शिल्पकी सबसे ऊंची सीढ़ी तक पहुंच गई थी। १९वीं सदीके मध्यभागमें अङ्गरेज यात्री रल्फ फिच् सुवर्णग्राममें आ कर यहांके कपास-वस्त्र-वाणिज्यकी भूरि-भूरि प्रशंसा कर गये हैं। उस समयकी बंग-राजधानी ढाका शहरमें जो कपासके बारीक कपड़े तैयार किये जाते थे, वे 'ढाका-मसलिन' के नामसे पुकारे जाते थे। ये कपड़े मुगलोंके नगरके मसलिन कपड़ोंसे भी कहीं अच्छे होते थे। अभी भी यूरोपके

विभिन्न नामोंसे इन्हीं ही सबसे बढ़ मसलिन तैयार किये जाते हैं एवं शासकवर्गमें भेजे जाते हैं। इसको 'ढाका मसलिन' बहुत कीमती होता था, धनिकोंके सिवा कोई इसे नहीं खरीद सकता था। सुना जाता है, कि मुगल-सुलतान 'ढाका मसलिन' की ही पगड़ी पहनते थे।

ढाकाके सूक्ष्म मसलिनके तंतुको पर्यवेक्षण करके पाश्चात्य पण्डित लोग नाना प्रकारके मत प्रकाश करते हैं। इसकी आलोचना करनेसे हम लोग आसानीसे प्राचीन वस्त्रोंकी सूक्ष्मता तथा उस समयके कारीगरोंकी कार्यनिपुणताका परिचय पा सकते हैं। मि० टेलर लिखते हैं, कि ढाकेके कारीगर पूरे पचास वर्षोंसे काम कर जो बारीक तंतु तैयार करते थे, उसका [illegible] वजनका एक पौंड तंतु लम्बा करनेसे १५० मीलकी दूरी तक चला जा सकता था। स्वाभाविक शीत तथा आर्द्रताप्रधान स्थानोंमें कपासका तंतु कातनेमें शीघ्र बढ़ता है, देखा जाता है कि ढाकाके तांती लोग सुबहके समय सूर्योदयके पहले ही चर्खा काता करते थे। जिस समय वायु अपेक्षाकृत शुष्क हो जाती थी उस समय वे लोग जलके ऊपर [illegible] रख कर काते करते थे। इससे वायु आर्द्रमिश्र हो कर रूईके धागेको नर्म कर देती थी। इसके बाद प्रातःकालसे ले कर ९ या १० बजे तक उनकी स्त्रियां तंतु कातती थीं। तीसराके समय ३ या ४ बजेसे ले कर सूर्यास्त होनेके बाद [illegible] तंतु काता जाता था। डा० वाट्सनने ढाकाई, फरासी तथा इङ्गलिश तंतुको अच्छी तरह परीक्षा करके लिखा है, कि इन सबोंकी अपेक्षा ढाका-मसलिनके तंतुके व्यास कहीं कम होता था एवं यूरोपीय तंतुकी अपेक्षा बारीक ढाकाई तंतुके ऐंठे भी कहीं कम देने जाते थे, किन्तु ढाकाई तंतुके ऐंठे का व्यास यूरोपीय तंतुकी अपेक्षा बड़ा होता था। इन सबों कारणोंसे ही ढाकेके तंतुसे मुलायम तथा [illegible] देशोंके तंतुको [illegible] किया है। और भी विचित्रता यह है, कि [illegible] होनेके कारण एवं [illegible] तंतु [illegible] तंतुओंकी अपेक्षा कहीं [illegible]

बहुत [illegible]

[illegible]

वस्त्र बुननेकी विस्तृत व्याख्या है। [illegible] नकाशके तंतु पर अनेक काम की हुई पगदार या गुलबदार साड़ी तैयार होती है। वर्त्तमान ढाका साड़ीमें भी [illegible] सूक्ष्म कलाके वस्त्र तथा नाना प्रकारके [illegible] कपड़ेके ऊपर जरीके फूलदार चादरें कपड़े तैयार होते हैं।

इसके अतिरिक्त मन्द्राज तथा बम्बई प्रेसिडेन्सीके कई स्थानोंमें वस्त्रवयनके बड़े बड़े कारखाने हैं। मुरशिदाबाद, सूरत तथा अहमदाबादमें नाना प्रकारकी छींटकी साड़ियां तैयार होती हैं। [illegible] एक प्रकारका सुन्दर छींट तैयार किया जाता है, उसमें नाना प्रकारके पौराणिक चित्र दिये जाते हैं। पूना, बेलगांव, नासिक तथा धारवाड़में नाना प्रकारकी रंगीन तंतुकी साड़ियां तैयार होती हैं जो महाराष्ट्रकी स्त्रियोंके लिये बड़े आदरकी वस्तु हैं। [illegible] तथा [illegible] ढाकाके समान ही मसलिन तैयार किये जाते हैं। [illegible], किनखाब प्रभृति कपड़ोंके लिये पैठन, बुरहानपुर, नारायणपेठ, [illegible] प्रभृति स्थानोंमें भी कपड़े तैयार किये जाते हैं। काश्मीर, नूरपुर, लुधियाना, अमृतसर प्रभृति स्थानोंमें पशमी [illegible] बुने जाते हैं। रंगपुर, भागलपुर, वाराणसी, आगरा, [illegible], बरेली, [illegible], लाहौर, मुलतान, हिसार प्रभृति स्थानोंमें कपास तथा पशमके कार्पेट तैयार होते हैं। साधारणतः कपासके कार्पेट आकृति तथा [illegible] दरी तथा [illegible] (Cotton pile carpet) के नामसे पुकारे जाते हैं। पशमी रोंयें ऊपर होनेसे गलीचा (Woollen pile carpet) कहलाता है। [illegible] कार्पेट एवं [illegible] कहे जाते हैं। [illegible] कपड़े बुने नहीं जाते। [illegible] लिये [illegible] हैं। [illegible] तैयार करके नहीं भेजते हैं। [illegible] है, [illegible]

आज भी भारतवर्षके कितने ही स्थानोंमें वयन-शिल्पका यथेष्ट समादर है। कहीं उत्तम कार्पेट, कहीं उत्कृष्ट गलीचा, कहीं कपास तथा रेशमके बारीक कपड़े कहीं पशमीने शाल तथा कम्बल एवं किसी किसी स्थानमें जरी सलमा प्रभृतिके पाड़ तैयार किये जाते हैं। नीचे उत्पन्नवस्त्रादि तथा उनके स्थान और विभागोंके नाम निर्देश किये गये हैं।

अजमेर, अलाई, अलीगढ़, इलाहाबाद, अलवर, अम्बाला, अमृतसर, अनन्तपुर, अन्धगाँव, अर्काट, अद्दोनी, आगरा, अहमदाबाद, अरनी, आरा, आसाम, औरंगाबाद, आजमगढ़, बगरू, बहावरी, बराइच, बंगलूर, बांकुड़ा, बन्नू, बाराबंकी, बराहनगर, बराड़, बर्द्धमान, बरेली, बहरमपुर, मन्द्राज, बरहमपुर, मुर्शिदाबाद, बड़ोदा, बसहर, बस्ती, बताला, बक्सर, बेलगाम, वाराणसी, मथुरा, भागलपुर, भण्डारा, बहवलपुर, भेरा, बिकानेर, वीरभूम, विष्णुपुर, बगुड़ा, बम्बई, भरोच, बुलन्दशहर, बुर्हानपुर, कलकत्ता, कालीकट, काम्बे, कानपुर, चम्बा, चम्पारण, चम्झ, चन्देरी, छत्तिसगढ़, चिंगलपत, काकनाड़ा, काञ्चीपुर, कड़ापा, कटक, ढाका, दरभंगा, दतिया, दिल्ली, डेरागाजीखां, डेरास्माइलखां, धरवार, दिनाजपुर, दीननगर, दोगाछी, एलम्बर, इलोरा, फरुखाबाद, फिरोजपुर, गोदावरी, राजमहेन्द्री, गोलकराडा, गुण्डद, गुमेरा, गुजरानवाला, गुजरात, गुलबर्गा, गुरुदासपुर, ग्वालियर, गया, हैदराबाद, (दक्षिणात्य) हैदराबाद, (सिन्ध) हमामकुंड, हर्दा, हसनअबदल, हजारा, हिसार, होसंगाबाद, हबड़ा, हुसियारपुर, इन्दाना, इन्दोरा, इन्दुर, आवेमपेट, जब्बलपुर, जाफरगंज, जहानाबाद, जहांगीराबाद, जयपुर, जलालपुर, जालन्धर, जम्मलमदुगू, झंग, झांसी, झीलम, जोधपुर, खेड़ा, कालादागी, कालहस्ती, कलमी, कनोज, कांगड़ा, करांची, करौली, कर्णाल, कर्णूल, काश्मीर, श्रीनगर, कसूर, काठियावाड़, कंजवाना, कृष्णा, कोहाट, कोटा, कोट कमालिया, कुम्भघोनम्, लाहोर, ललितपुर, लोहारडगा, लखनऊ, लुधियाना, मन्द्राज, मथुरा, मलबार, मालदह, मालेगाम, मानभूम, मणिपुर, मछलीपट्टम, मऊ, (आजमगढ़) मऊ (झांसी) मेदरपाक, मीरट, मेदनीपुर, मिर्जापुर, मोरादाबाद, मल्हारी, मन्दसोर, मथुरा, मुजफ्फरगढ़, मुजफ्फरनगर, महिसुर, नाभा, नदिया, नागपुर, नेपाल, नूरपुर, उच्छो, पावना, पालमकोट, पटियाला, पटना, पौनी, पेशावर, पूना, प्रतापगढ़, पूरी, रतलाम, रत्नगिरि, रावलपिंडी, रेवादंड, रीवा, राहतक, (पंजाब) सालेम, संबलपुर, संबर, (काश्मीर) सादनेर, शान्तिपुर, सारण, शारंगपुर, सातक्षीरा, सावन्तवाड़ी, शिउनी, शाहपुरमिशौली, शियालकोट, सिकन्दराबाद, शिकारपुर, शोलापुर, सिमला (पंजाब), सिंहभूम, शीर्पा (पंजाब), सीतामढ़ी, सुलतानपुर (पंजाब), सूरत, ताञ्जोर, थाना, तिलोयानाथ (पंजाब), त्रिरूपपिलियम, तीड़गढ़, टाएरा, वसिरहाट, त्रिचिनपल्ली, उज्जैनी, रंगवाड़ो (मन्द्राज), विशाखपाटम, वृद्धाचलम्, वल्लाज (मन्द्राज), जेवला, वरंगल, जेरोवदा, जेलगण्डल।

रेशमी वस्त्रके मध्य अंडी, मूंगा, टसर तथा गरदकी धोती, साड़ी, चादर, पीताम्बर, मसरू, सतरंजी दोपट्टा, गुलबदन, रूमाल, ओढ़ना, हवाके कपड़े, लुंगी, खेश, मेखला, पड़ा, बड़ाकपड़ा, दुकाठिया, रिहा, गमछा, तोयाले इत्यादि कपड़े हैं। पशमी वस्त्रके मध्य रामपुरी तथा काश्मीरी शाल, रामपुरी चादर, अलवान, एकतारा, मलीदा, लुंगी प्रभृति हैं।

कपास एवं रेशमका पशमादिमिश्रित वस्त्र—गर्म सूती (बांकुड़ा तथा मानभूम), आसमानी (बांकुड़ा), बाफाता (भागलपुर), मेखली (रंगपुर), अजीजउल्ला वा अजीज (ढाका), सेराज (ढाका), सादा तथा लाल असमानी सेराज, मछलीकांटा, सबजीकतार, लालकतार, बुलबुल चासम, लालकदमफूली, सादा कदमफूली, कालापाड़दार, लाल पाढ़दार, सर्वार, सेराज, सादा-बड़ाकदमफूली, सफेद-करदार, लाल करदार, काला मछलीकांटा, कैदलीमस्तरू, सुजाखानि, इलाइछा, लुंगी, चन्द्रकला, दुपट्टा, सूती इत्यादि हैं।

छीटके कपड़े—गाजि, गाढ़ा, धोतीजोड़ा, फर्द, रजाई, लिहाफ, पलंगपोष, बुन्दुदी, बन्दसूर्ल, जाजिम, फरास, सामियाना, छींट जरदा, तोशक, छींट-कन्दी, छींट बूटेदार, खेरूआ, नथनी, चपेटा, छोट आम्रावाला, गोल बूटी, तौलिया, शाल्ठ, चुनरी, अब्रा, कलमदार, धूपछांह, मयूर-

विभिन्न राज्योंमें उनकी ही नकल पर मसलिन तैयार किये जाते हैं एवं भारतवर्षमें भेजे जाते हैं। असली 'ढाका मसलिन' बहुत किमती होता था, धनिकोंके सिवा कोई उसे नहीं खरीद सकता था। सुना जाता है, कि तुर्की-सुल्तान 'ढाका-मसलिन' की ही पगड़ी पहनते थे।

ढाकाके सूक्ष्म मसलिनके तंतुको पर्यवेक्षण करके पाश्चात्य पण्डित लोग नाना प्रकारके मत प्रकाश करते हैं। इनकी आलोचना करनेमें हम लोग आसानीसे प्राचीन वस्त्रोंकी सूक्ष्मता तथा उस समयके कारीगरोंको कार्यनिपुणताका परिचय पा सकते हैं। मि० टेलर लिखते हैं, कि ढाकेके कारीगर पूरे यत्नसे चर्खोंको कात कर जो बारीक तंतु तैयार करते थे, उसका ७॥ छटांक वजन-का एक पोला तंतु लम्बा करनेसे १५० मीलकी दूरी तक चला जा सकता था। स्वाभाविक शीत तथा जलीयवाष्प-प्रधान स्थानोंमें कपासका तंतु कातनेसे शीघ्र बढ़ता है, ऐसा कह कर ढाकाके तांती लोग सुबहके समय सूर्यो-दयके पहले ही चर्खा काता करते थे। जिस समय वायु अपेक्षाकृत शुष्क हो जाती थी उस समय वे लोग चर्खेके नीचे जल रख कर कार्य करते थे। उससे वायु जलसिक्त हो कर रुईके अंशको नर्म कर देती थी। इसके बाद प्रातःकालसे ले कर ९ या १० बजे तक उनकी स्त्रियां तंतु कातती थीं। सन्ध्याके समय ३ या ४ बजेसे ले कर सूर्यास्त होनेके आध घण्टा पूर्व पर्यन्त तंतु काता जाता था। डा० वाट्सनने ढाकाई, फरासी तथा इङ्गलिश तंतु-की अच्छी तरह परीक्षा करके लिखा है, कि उन सभोंकी अपेक्षा ढाका-मसलिनके तंतुके व्यास कहीं कम होता था एवं यूरोपीय तंतुकी अपेक्षा प्रत्येक ढाकाई तंतुके रेशे भी कहीं कम देखे जाते थे, किन्तु ढाकाई तंतुके रेशे-का व्यास यूरोपीय तंतुकी अपेक्षा बड़ा होता था। इन दो कारणोंसे ही ढाकेके तंतुने सूक्ष्मता तथा दृढ़तामें अन्यान्य सभी देशोंके तंतुको परास्त किया है। और भी विशेषता यह है, कि रुईके रेशे मोटे होनेके कारण एवं चर्खेसे तंतु काते जानेसे ढाकाई तंतुमें यूरोपीय तंतुओंकी अपेक्षा कहीं अधिक ऐंठन रहता है। अभी भी फरास-डङ्गा (चन्दननगर), सिमला (कलकत्ता), वगड़ी, यशोर, शान्तिपुर, कर्ना, राधानगरभद्र प्रभृति स्थानोंमें कपास-वस्त्र बुननेकी विस्तृत आढ़तें हैं। काशीमें रेशमी तथा कपासके तंतु पर जरीका काम की हुई फूलदार या गुलबहार साड़ी तैयार होती है। वर्त्तमान ढाका शहरमें भी एकमात्र सूक्ष्म कपास वस्त्र तथा नाना प्रकारके नीलाम्बरी कपड़ेके ऊपर जरीके फूलदार पाड़के कपड़े तैयार होते हैं।

इनके अतिरिक्त मन्द्राज तथा बम्बई प्रेसिडेन्सीके कई स्थानोंमें वस्त्रवयनके बड़े बड़े कारखाने हैं। गुज-रात अहमदाबाद, सूरत तथा भरोंचमें नाना प्रकारकी छींटकी साड़ियां तैयार होती हैं। रंगपुरमें लाल तथा काले तंतुमें एक प्रकारका सुन्दर छींट तैयार किया जाता है, उसमें नाना प्रकारके पौराणिक चित्र देखे जाते हैं। पूना, येवकला, नासिक तथा धारवारमें नाना प्रकारकी रंगीन तंतुकी साड़ियां तैयार होती हैं जो महाराष्ट्रकी रम-णियोंके लिये बड़े आदरकी चीजें हैं। नन्देर, मुदकल, धनवरम्, अमरचिन्ता तथा अरनीमें आज भी ढाकाके समान ही मसलिन तैयार किये जाते हैं। बनारसी साड़ी धोती, किंखाब प्रभृति कपड़ोंके समान पैठान, बुर्हानपुर नारायणपेट, धनवरम्, येवकला प्रभृति स्थानोंमें भी कपड़े तैयार किये जाते हैं। काश्मीर, नूरपुर, लुधियाना, अमृतसर प्रभृति स्थानोंमें पशमी शाल बुने जाते हैं। रंग-पुर, भागलपुर, वाराणसी, आगरा, लखनऊ, बरेली, फत-हगढ़, लाहौर, मुलतान, हिसार प्रभृति स्थानोंमें कपास तथा पशमके कार्पेट तैयार होते हैं। साधारणतः कपास-के कार्पेट आकृति तथा वयनप्रक्रियाके भेदसे गलीचा तथा दुलीचा (Cotton pile carpet) के नामसे पुकारे जाते हैं। पशमी रोयें ऊंचे होनेसे गलीचा (Woolen pile carpet) कहलाता है। मछलीपट्टमके छींट, वल्ल-पोर तथा कार्पेट एवं गोदावरी डिस्ट्रिक्टस्थित मायव-पलम नामक स्थानजात माद्रापालम आज कल 'मृदिन-गुड्स' रूपमें भारतमें आते हैं। मायवपलममें अब वे कपड़े बुने नहीं जाते। अङ्गरेज वणिक लोग तो इन वस्त्रोंको इङ्गलैंड भेजनेके लिये यहां कोठी खोली थी। पीछे वस्त्रोंका नमूना ले कर अपने देशसे माद्रापा-लम वस्त्र तैयार करके यहां भेजते हैं। दुःखका विषय है, कि उन्हीं लोगोंके जरिये इस स्थानका वस्त्रवाणिज्य लुप्त हो गया है।

आज भी भारतवर्षके कितने ही स्थानोंमें वयन-शिल्पका यथेष्ट समादर है। कहीं उत्तम कार्पेट, कहीं उत्कृष्ट गलीचा, कहीं कपास तथा रेशमके बारीक कपड़े कहीं पशमीने शाल तथा कम्बल एवं किसी किसी स्थान में जरी सलमा प्रभृतिके पाड़ तैयार किये जाते हैं। नीचे उत्पन्नवस्त्रादि तथा उनके स्थान और विभागोंके नाम निर्देश किये गये हैं।

अजमेर, अलाई, अलीगढ़, इलाहाबाद, अलवर, अम्बाला, अमृतसर, अनन्तपुर, अन्धगाँव, अर्कट, अद्दोनी, आगरा, अहमदाबाद, अरनी, आरा, आसाम, औरंगाबाद, आजमगढ़, बगरू, बहावरी, बराइच, बंगलूर, बांकुड़ा, बन्नू, बारावंकी, बराहनगर, बराड, वर्द्धमान, बरेली, बहरमपुर, मन्द्राज, बरहमपुर, मुर्शिदाबाद, बड़ोदा, बमहर, बस्ती, बताला, बक्सर, बेलगाम, वाराणसी, मथुरा, भागलपुर, भण्डारा, बहवलपुर, भेरा, विकानेर, वीरभूम, विष्णुपुर, बगुड़ा, बम्बई, भरोच, बुलन्दशहर, बुर्हानपुर, कलकत्ता, कालीकट, काम्बे, कानपुर, चम्बा, चम्पारण, चन्दा, चन्देरी, छत्तिसगढ़, चिंगलपत, काकनाड़ा, काञ्चीपुर, कड़ापा, कटक, ढाका, दरभंगा, दतिया, दिल्ली, डेरागाजीखाँ, डेराइसमाइलखाँ, धरवार, दिनाजपुर, दीनगर, डोगांछी, एलम्बर, इलोरा, फर्रुखाबाद, फिरोजपुर, गोदावरी, राजमहेन्द्री, गोलकुण्डा, गुण्डर, गुंगेरा, गुजरानवाला, गुजरात, गुलबर्गा, गुरुदासपुर, ग्वालियर, गया, हैदराबाद, (दक्षिणात्य) हैदराबाद, (सिन्ध) हमामकुंड, हर्दा, हसनअबदल, हजारा, हिसार, होसंगाबाद, हवड़ा, हुसिंगारपुर, इन्द्राना, इन्दोरा, इन्दुर, आयेमपेट, जब्बलपुर, जाफरगंज, जहानाबाद, जहांगीराबाद, जयपुर, जलालपुर, जालन्धर, जम्मलमदुगू, झंग, झांसी, झीलम, जोधपुर, खेड़ा, कालादागी, कालहस्ती, कलमी, कनोज, कांगड़ा, कराची, करौली, कर्णाल, कर्णूल, काश्मीर, श्रीनगर, कसूर, काठियावाड़, खजवाना, कृष्णा, कोहाट, कोटा, कोट कमालिया, कुम्भघोनम्, लाहोर, ललितपुर, लोहारडगा, लखनऊ, लुधियाना, मन्द्राज, मथुरा, मलबार, मालदह, मालेगाम, मानभूम, मणिपुर, मछलीपट्टम, मऊ, (आजमगढ़) मऊ (झांसी) मेदरपाक, मीरट, मेदनीपुर, मिर्जापुर, मोरादाबाद, मलारी, मन्दसोर, मथुरा, मुजफ्फरगढ़, मुजफ्फरनगर, महिसुर, नाभा, नदिया, नागपुर, नेपाल, नूरपुर, उच्छो, पावना, पालमकोट, पटियाला, पटना, पौनी, पेशावर, पूना, प्रतापगढ़, पुरी, रत्लाम, रत्नगिरि, रावलपिंडी, रेवादंड, रीवा, रोहतक, (पंजाब) सालेम, संबलपुर, संबर, (काश्मीर) सादनेर, शान्तिपुर, सारण, शारंगपुर, सातक्षीरा, सावन्तवाडी, शिउनी, शाहपुरमिश्रौली, शियालकोट, सिकन्दराबाद, शिकारपुर, शोलापुर, सिमला (पंजाब), सिंहभूम, शीर्पा (पंजाब), सोतामढ़ी, सुलतानपुर (पंजाब), सूरत, ताञ्जोर, थाना, तिलोयानाथ (पंजाब), तिरूपतिलियम, तौङ्गढ़, टाण्टा, बसिरहाट, त्रिबंकोर, त्रिचिनपल्ली, उज्जैनी, रंगवाड़ी (मन्द्राज), विशाखपाटम, वृद्धाचलम्, वल्लाज (मन्द्राज), जेवला, वरंगल, जेरोवदा, जेलगण्डल।

रेशमी वस्त्रके मध्य अंडी, मूंगा, टसर तथा गरद की धोती, साड़ी, चादर, पीताम्बर, मसरू, सतरंजी दोपट्टा, गुलबदन, रूमाल, ओढ़ना, हवाके कपड़े, लुंगी, खेश, मेखला, पट्टा, बड़ाकपड़ा, दुकाठिया, रिहा, गमछा, तोयाले इत्यादि कपड़े हैं। पशमी वस्त्रके मध्य रामपुरी तथा काश्मीरी शाल, रामपुरी चादर, अलवान, एकतारा, मलीदा, लुंगी प्रभृति हैं।

कपास एवं रेशमका पशमादि मिश्रित वस्त्र—गर्भसूती (बांकुड़ा तथा मानभूम), आसमानी (बांकुड़ा), वापता (भागलपुर), मेघली (रंगपुर), अजीजउल्ला या अजीज (ढाका), सेराज (ढाका), सादा तथा लाल असमानी सेराज, मछलीकांटा, सबजीकतार, लालकतार, बुलबुल छामम, लालकदमफूली, सादा कदमफूली, कालापाड़दार, लाल पाड़दार, सवार, सेराज, सादा-बड़ाकदमफूली, सफेद-करदार, लाल करदार, काला मछलीकांटा, कबमीमस्तरू, सुजाखानि, इलाइछा, लुंगी, चन्द्रकला, दुपट्टा, सूती इत्यादि हैं।

छींटके कपड़े—गाजि, गाढ़ा, धोतीजोड़ा, फर्द, रजाई, लिहाफ, पलंगपोष, बुन्दुकी, बन्दसूर्लि, जाजिम, फरास, सामियाना, छींट जरदा, तोशक, छींट-कन्दी, छींट बूटेदार, खेरूआ, नथनी, चपेटा, छोट आम्राचाला, गोल बूटी, तौलिया, शाल्ह, चुनरी, अब्रा, कलमदार, धूपछांह, मयूर-

विभिन्न राज्योंमें उनकी ही नकल पर मसलिन तैयार किये जाते हैं एवं भारतवर्षमें भेजे जाते हैं। असली 'ढाका मसलिन' बहुत कीमती होता था, धनियोंके सिवा कोई उसे नहीं खरीद सकता था। सुना जाता है, कि तुर्की-सुलतान 'ढाका-मसलिन' की ही पगड़ी पहनते थे।

ढाकाके सूक्ष्म मसलिनके तंतुको पर्यवेक्षण करके पाश्चात्य पण्डित लोग नाना प्रकारके मत प्रकाश करते हैं। उनकी आलोचना करनेसे हम लोग आसानीसे प्राचीन वस्त्रोंकी सूक्ष्मता तथा उस समयके कारीगरोंकी कार्यनिपुणताका परिचय पा सकते हैं। मि० टेलर लिखते हैं, कि ढाकेके कारीगर पूरे यत्नसे चर्खोंको कात कर जो बारीक तंतु तैयार करते थे, उसका आध छटांक वजन-का एक पोला तंतु लम्बा करनेसे १५० मीलकी दूरी तक चला जा सकता था। स्वाभाविक शीत तथा जलीयवाष्प-प्रधान स्थानोंमें कपासका तंतु कातनेसे शीघ्र बढ़ता है, ऐसा कह कर ढाकाके तांती लोग सुबहके समय सूर्यो-दयके पहले ही चर्खा काता करते थे। जिस समय वायु अपेक्षाकृत शुष्क हो जाती थी उस समय वे लोग चर्खेके नीचे जल रख कर कार्य करते थे। उससे वायु जलसिक्त हो कर रूईके अंशको नर्म कर देती थी। इसके बाद प्रातःकालसे ले कर ९ या १० बजे तक उनकी स्त्रियां तंतु कातती थीं। सन्ध्याके समय ३ या ४ बजेसे ले कर सूर्यास्त होनेके आध घण्टा पूर्व पर्यन्त तंतु काता जाता था। डा० वाट्सनने ढाकाई, फरासी तथा इङ्गलिश तंतु-की अच्छी तरह परीक्षा करके लिखा है, कि उन सबोंकी अपेक्षा ढाका-मसलिनके तंतुके व्यास कहीं कम होता था एवं यूरोपीय तंतुकी अपेक्षा प्रत्येक ढाकाई तंतुके रेशे भी कहीं कम देखे जाते थे, किन्तु ढाकाई तंतुके रेशे-का व्यास यूरोपीय तंतुकी अपेक्षा बड़ा होता था। इन दो कारणोंसे ही ढाकेके तंतुने सूक्ष्मता तथा दृढ़तामें अन्यान्य सभी देशोंके तंतुको परास्त किया है। और भी विशेषता यह है, कि रूईके रेशे मोटे होनेके कारण एवं चर्खेसे तंतु काते जानेसे ढाकाई तंतुमें यूरोपीय तंतुओंकी अपेक्षा कहीं अधिक ऐंठन रहता है। अभी भी फराश-डङ्गा (चन्दननगर), सिमला (कलकत्ता), वरसी, यशोर, शान्तिपुर, कल्ना, राधानगर, मधुर प्रभृति स्थानोंमें कपास-वस्त्र बुननेकी विस्तृत आढ़तें हैं। काशीमें रेशमी तथा कपासके तंतु पर जरीका काम की हुई फूलदार या गुलबहार साड़ी तैयार होती है। वर्तमान ढाका शहरमें भी एकमात्र सूक्ष्म कपास वस्त्र तथा नाना प्रकारके नीलाम्बरी कपड़ेके ऊपर जरीके फूलदार पाड़के कपड़े तैयार होते हैं।

इनके अतिरिक्त मन्द्राज तथा बम्बई प्रेसिडेन्सीके कई स्थानोंमें वस्त्रवयनके बड़े बड़े कारखाने हैं। गुज-रात अहमदाबाद, सूरत तथा भरोंचमें नाना प्रकारकी छींटकी साड़ियां तैयार होती हैं। रंगपुरमें लाल तथा काले तंतुसे एक प्रकारका सुन्दर छींट तैयार किया जाता है, उसमें नाना प्रकारके पौराणिक चित्र देखे जाते हैं। पूना, येवकला, नासिक तथा धारवारमें नाना प्रकारकी रंगीन तंतुकी साड़ियां तैयार होती हैं जो महाराष्ट्रकी रम-णियोंके लिये बड़े आदरकी चीजें हैं। नन्देर, मुदकल, धनवरम्, अमरचिन्ता तथा अरनीमें आज भी ढाकाके समान ही मसलिन तैयार किये जाते हैं। बनारसी साड़ी धोती, किंखाब प्रभृति कपड़ोंके समान पैठाण, बुर्हानपुर नारायणपेट, धनवरम्, येवकला प्रभृति स्थानोंमें भी कपड़े तैयार किये जाते हैं। काश्मीर, नूरपुर, लुधियाना, अमृतसर प्रभृति स्थानोंमें पशमी शाल बुने जाते हैं। रंग-पुर, भागलपुर, वाराणसी, आगरा, लखनऊ, बरेली, फत-हगढ़, लाहौर, मुलतान, हिसार प्रभृति स्थानोंमें कपास तथा पशमके कार्पेट तैयार होते हैं। साधारणतः कपास-के कार्पेट आकृति तथा वयनप्रक्रियाके भेदसे सतरंजी तथा दुलीचा (Cotton pile carpet) के नामसे पुकारे जाते हैं। पशमी रोयें ऊंचे होनेसे गलीचा (Woolen pile carpet) कहलाता है। मछलीपट्टमके छींट, पलम-कोट तथा कार्पेट एवं गोदावरी डिस्ट्रिक्टके मायम-पल्लम नामक स्थानजात माडापालम नाम कल 'पुलिका-बुड्स' रूपमें भारतमें आते हैं। माधवपल्लममें अब वे कपड़े बुने नहीं जाते। अङ्गरेज वणिक् लोग तो इन वस्त्रोंको इङ्गलैंड पर लेनेके लिये यहां कोठी खोली थी। पीछे वस्त्रोंका नमूना ले कर अपने देशसे माडापा-लम वस्त्र तैयार करके यहां भेजते हैं। दुःखका विषय है, कि उन्हीं लोगोंके जरिये इस स्थानका वस्त्रवाणिज्य लुप्त हो गया है।

आज भी भारतवर्षके कितने ही स्थानोंमें वयन-शिल्पका यथेष्ट समादर है। कहीं उत्तम कार्पेट, कहीं उत्कृष्ट गलीचा, कहीं कपास तथा रेशमके बारीक कपड़े कहीं पशमीने शाल तथा कम्बल एवं किसी किसी स्थान में जरी सलमा प्रभृतिके पाड़ तैयार किये जाते हैं। नीचे उत्पन्नवस्त्रादि तथा उनके स्थान और विभागोंके नाम निर्द्देश किये गये हैं।

अजमेर, अलाई, अलीगढ़, इलाहाबाद, अलवर, अम्बाला, अमृतसर, अनन्तपुर, अन्धगाँव, अर्काट, अदोनी, आगरा, अहमदाबाद, अरनी, आरा, आसाम, औरंगाबाद, आजमगढ़, बगरू, बहावरी, बराइच, बंगलूर, बांकुड़ा, बन्नू, बाराबंकी, बराहनगर, बरोड़, बर्द्धमान, बरेली, बहरमपुर, मन्द्राज, बरहमपुर, मुर्शिदाबाद, बडोदा, बमहर, बस्ती, बताला, बक्सर, बेलगाम, वाराणसी, भड़ुआ, भागलपुर, भण्डारा, बहवलपुर, भेरा, बिकानेर, वीरभूम, विष्णुपुर, वगुड़ा, बम्बई, भरोच, बुलन्दशहर, बुर्हानपुर, कलकत्ता, कालीकट, काम्बे, कानपुर, चम्बा, चम्पारण, चन्दा, चन्देरी, छत्तिसगढ़, चिंगलपत, काकनाड़ा, काञ्चीपुर, कड़ापा, कटक, ढाका, दरभंगा, दतिया, दिल्ली, डेरागाजीखाँ, डेरास्माइलखाँ, धरवार, दिनाजपुर, दीनगर, दोगाछी, एलम्बइ, इलोरा, फर्रुखाबाद, फिरोजपुर, गोदावरी, राजमहेन्द्री, गोलकराडा, गुण्डर, गुमेरा, गुजरानवाला, गुजरात, गुलबर्गा, गुरुदासपुर, ग्वालियर, गया, हैदराबाद, (दक्षिणात्य) हैदराबाद, (सिन्ध) हमामकुंड, हर्दा, हसनअबदल, हजारा, हिसार, होसंगाबाद, हबड़ा, हुसियारपुर, इन्दाना, इन्दोरा, इन्दुर, जावेमपेट, जब्बलपुर, जाफरगंज, जहानाबाद, जहांगीराबाद, जयपुर, जलालपुर, जालन्धर, जम्मलमडुगु, झंग, झांसी, झीलम, जोधपुर, खेड़ा, कालादागी, कालहस्ती, कलमी, कनोज, कांगड़ा, करांची, करौली, कर्णाल, कर्णूल, काश्मीर, श्रीनगर, कसूर, काठियावाड़, खजयाना, कृष्णा, कोहाट, कोटा, कोट कमालिया, कुम्भघोनम्, लाहोर, ललितपुर, लोहारडगा, लखनऊ, लुधियाना, मन्द्राज, मथुरा, मलवार, मालदह, मालेगाम, मानभूम, मणिपुर, मछलीपट्टम, मऊ, (आजमगढ़) मऊ (झांसी) मेदरपाक, मीरट, मेदनीपुर, मिर्जापुर, मोरादाबाद, मलारी, मन्दसोर, मथुरा, मुजफ्फरगढ़, मुजफ्फरनगर, महिसुर, नाभा, नदिया, नागपुर, नेपाल, नूरपुर, उरछा, पाबना, पालमकोट, पटियाला, पटना, पौनी, पेशावर, पुना, प्रतापगढ़, पूरी, रतलाम, रत्नगिरि, रावलपिंडी, रेवादंड, रीवा, राहतक, (पंजाब) सालेम, संबलपुर, संबर, (काश्मीर) सादनेर, शान्तिपुर, सारण, शारंगपुर, सातक्षीरा, सावन्तवाड़ी, शिउनी, शाहपुरमिशोली, शियालकोट, सिकन्दराबाद, शिकारपुर, शोलापुर, सिमला (पंजाब), सिंहभूम, शीर्पा (पंजाब), सीतामढ़ी, सुलतानपुर (पंजाब), सूरत, ताञ्जोर, थाना, तिलोवानाथ (पंजाब), तिरुपपिलियम, तीड़गढ़, टाटरा, वसिरहाट, त्रिवांकोर, त्रिचिनपल्ली, उज्जैनी, रंगवाड़ी (मन्द्राज), विशाखपाटम, वृद्धाचलम्, वल्लाज (मन्द्राज), जेवला, वरंगल, जेरोचदा, जेलगण्डल।

रेशमी वस्त्रके मध्य अंडी, मूंगा, टसर तथा गरद की धोती, साड़ी, चादर, पीताम्बर, मसरू, सतरंजी दोपट्टा, गुलबदन, रूमाल, ओढ़ना, हवाके कपड़े, लुंगी, खेश, मेखला, पड़ा, बड़ाकपडा, दुकाठिया, रिहा, गमछा, तोयाले इत्यादि कपड़े हैं। पशमी वस्त्रके मध्य रामपुरी तथा काश्मीरी शाल, रामपुरी चादर, अलवान, एकतारा, मलीदा, लुंगी प्रभृति हैं।

कपास एवं रेशमका पशमादि मिश्रित वस्त्र—गर्म सूती (बांकुड़ा तथा मानभूम), आसमानी (बांकुड़ा), बाफता (भागलपुर), मेखली (रंगपुर), अजीजउल्ला या अजीज (ढाका), सेराज (ढाका), सादा तथा लाल असमानी सेराज, मछलीकांटा, सबजीकतार, लालकतार, बुलबुल छासम, लालकदमफूली, सादा कदमफूली, कालापाड़दार, लाल पाढ़दार, सबोर, सेराज, सादा-बड़ाकदमफूली, सफेद-करदार, लाल करदार, काला मछलीकांटा, फेकनीमस्तरू, सुजाखानि, इलाइछा, लुंगी, चन्द्रकला, दुपट्टा, सूती इत्यादि हैं।

छोटके कपड़े-गाजि, गाढ़ा, घोतीजोड़ा, फर्द, रजाई, लिहाफ, पलंगपोष, बुन्दुदी, बन्दसूर्त, आजिम, फरास, सामियाना, छींट जरदा, तोशक, छींट-कन्दी, छींट बूटेदार, खेरुआ, नगनी, चपेटा, छोट आम्रावाला, गोल बूटी, तौलिया, शालू, चुनरी, अबा, कलमदार, धूपछांह, मयूर-

वरंगरा (सं० स्त्री०) वरं वृणोतीति वृ-अच्-मुमन्। मकपर्णी, पिठवन।

वरक (सं० क्ली०) व्रियतेऽनेन इति वृ-अप् ततः संज्ञायां कन्। १ पोताच्छादन, नावका आच्छादन। २ साधारण वस्त्र। व्रियते लोकैरिति वृ-अप्, ततः कन्। (पु०) ३ वनमुद्ग, वनमूंग। ४ पर्पटक, पित्तपापड़। ५ प्रियंगु नामक तृणधान्यभेद, काकुन। पर्याय—स्थूलकंगु, रूक्ष और स्थूल प्रियंगु। गुण—मधुर, रूक्ष, कषाय और वात पित्तकर। ६ ह्रस्वबदरीफल, जंगली बेर। ७ प्रार्थनाविशेष।

वरक (अ० पु०) १ पत्र। २ पुस्तकोंका पन्ना। ३ सोने, चांदी आदिके पतले पत्तर जो कूट कर बनाये जाते हैं और मिठाइयों पर लगाने और औषधमें काम आते हैं।

वरकल्याण (सं० पु० क्ली०) रागभेद।

वरकन्दा (सं० स्त्री०) क्षीरीश वृक्ष, खिरनीका पेड़।

वरकाष्ठुका (सं० स्त्री०) १ वृक्षभेद, एक प्रकारका पेड़। २ टिट्टिका, टिटहिरी नामकी छोटी चिड़िया।

वरकीर्त्ति (सं० स्त्री०) पञ्चतन्त्रोक्त व्यक्तिविशेष।

वरक्रतु (सं० पु०) वरा, श्रेष्ठा, क्रतवो यस्य शताश्वमेधित्वात् तथात्वं, यद्वा वर, क्रतुर्यस्मात् शतक्रतुत्वात् तथात्वं। इन्द्र।

वरकोद्रुम (सं० पु०) कोविदार वृक्ष, कचनारका पेड़।

वरगा (सं० स्त्री०) नगरभेद।

वरघण्टिका (सं० स्त्री०) वृक्षभेद। इसे वरघंटी भी कहते हैं।

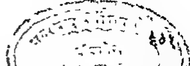
वरङ्गल—दाक्षिणात्यमें हैदराबाद राज्यान्तर्गत एक प्राचीन नगर। यह हैदराबादसे ४२ कोस उत्तर-पूर्वमें अवस्थित है और अक्षा० १७° ५८' उ० तथा देशा० ७९° ४०' पू०के बीच पड़ता है। यह नगर निजामके शासनाधीन है। इससे पश्चिम करीमाबाद (४५६५ जनसंख्या) तथा एक मील उत्तर पश्चिममें मतवार (८८१५ जनसंख्या) नगर आज भी वरंगलकी प्राचीन समृद्धिका परिचय दे रहा है।

प्राचीन तैलिंग राज्यके अभ्युदयशील हिन्दू राजाओंकी समृद्धिके समय यह नगर उन लोगोंकी राजधानी था। दुःखका विषय है, कि उस राजवंशका कोई प्रकृत इतिहास नहीं मिलता। १३०३ ई०में अल्लाउद्दीनने तैलिंग पर आक्रमण किया। किन्तु वे सफलीभूत न हो सके। इस लड़ाईमें उनको बड़ी क्षति हुई। पीछे वे लाचार हो कर लौट गये। इस समयसे ही मुसलमानोंके इतिहासमें वरंगलका प्रकृत इतिहास पाया जाता है। १३०९ ई०में मालिक काफुरने वरंगल दुर्ग पर अधिकार कर लिया एवं वहांके हिन्दू राजाको कर देनेके लिये बाधित किया। गयासुद्दीन तुगलकके शासनकालमें मुसलमानोंने पुनः वरंगल पर अधिकार तो कर लिया पर अधिक दिनों तक वे राज्यपालन न कर सके। क्योंकि, महम्मद तुगलकके शासनकालमें हिन्दुओंने पुनः अपने नष्ट राज्यका उद्धार किया।

इसके बाद दाक्षिणात्यमें जब बाह्मनी राजवंशका प्रभाव फैल गया तब दोनों देशवासी हिन्दू तथा मुसलमानोंमें घोर संघर्ष उपस्थित हुआ। १५३८ ई०में वरङ्गलके राजाने अपने हृतराज्यकी पुनःप्राप्तिके लिये आन्दोलन किया इस पर फिरसे दोनों पक्षोंमें लड़ाई शुरू हो गई। इस युद्धमें वरङ्गलके राजा गोलकोण्डा राज्यसे हाथ धो बैठे और उनका पुत्र बाह्मनी राजाके यहां बन्दी हो कर मारा गया। उक्त हिन्दू राज्यका जो अंश शेष बचा था वह भी १५१२ ई०से ले कर १५४३ ई०के अन्दर ही कुली कुतुबशाहके हाथमें चला गया। इसने कुतुबशाही वंशकी प्रतिष्ठा की। गोलकोण्डामें उसकी राजधानी स्थापित हुई थी। यहां अभी हिन्दुओंकी कीर्त्तिका ध्वंसावशेष दृष्टिगोचर होता है।

वरङ्गाउन—बम्बईप्रदेशके खान्देश जिलान्तर्गत एक नगर। यह भुसावल उपविभागके सदरसे ८ मील पूर्वमें अवस्थित है। पहले यह स्थान वाणिज्यकी खूब चढ़ा बढ़ा था। भुसावलमें विभागीय सदर उठ कर चले आनेसे यह स्थान श्रीहीन हो रहा है। १८६१ ई०में सिन्धियाने यह स्थान अङ्गरेजोंके हाथ सौंप दिया। इसके पहले यह नगर यथाक्रम मुगल, निजाम और पेशवाओंके अधिकारमें था। म्युनिसपलिटी रहनेसे शहरकी शोभा और सुन्दरता नष्ट नहीं हुई है।

वरचन्दन (सं० क्ली०) वरं श्रेष्ठं चन्दनं। १ काला चन्दन। २ देवदारु।



वरज (सं० त्रि०) ज्येष्ठ, बड़ा।

वरज—भोजराज्यके अन्तर्गत एक ग्राम।
(भविष्य ब्रह्मख० २०।४७।१५४)

वरजानुक (सं० पु०) ऋषिभेद।

वरजीवी (सं० पु०) १ वर्णसंकर जाति जो स्मृतियोंमें गोप और तन्तुवायके संयोगसे उत्पन्न कही गई है। २ ब्राह्मणका औरस पुत्र जो शूद्राके गर्भसे उत्पन्न हो।

वरट (सं० क्ली०) व्रियते इति वृ-अटन्, (शकादिभ्योऽटन्। उण् ४।८१) १ कुन्दपुष्प, कुन्दका फूल। वरति सेवते सरोवरमिति वृञ् सेवायां अटन्। (पु०) २ हंस। ३ वेधिका, भिड़, बरें। पर्याय—गन्धोली, वरटा, गन्धोलि, वरला, वरली, क्षुद्रा, क्रूरा, क्षुद्रवर्णा। (राजनि०)

वरटक (सं० पु०) कुसुम्भबीज।

वरटा (सं० स्त्री०) वरट् टाप्। १ हंसी। २ कुसुम्भबीज। ३ अग्निप्रकृति कीटभेद, बरें नामका उड़नेवाला कीड़ा। ४ वङ्ग, राँगा नामकी धातु। ५ गंधिया कीड़ा।

वरटी (सं० स्त्री०) वरट जातौ ङीप्। १ हंसी। २ गन्धोली, गंधिया कीड़ा।

वरट्टिका (सं० स्त्री०) कुसुम्भबीज। पर्याय—वरटा। गुण—मधुर, स्निग्ध, गुरु, अवृष्य और वायुहर। (भावप्र०)

वरण (सं० क्ली०) वृ भावे ल्युट्। १ किसीको पसन्द करके किसी कार्यके लिये नियुक्त करना, किसीको किसी कामके लिये चुनना या मुकर्रर करना। २ मङ्गल कार्यके विधानमें होता आदि कार्य-कर्त्ताओंको नियत करके दान आदिसे उनका सत्कार करना। ३ मङ्गल कार्यमें नियत किये हुए होता आदिके सत्कारार्थ दी हुई वस्तु या दान। ४ कन्याके विवाहमें वरको अङ्गीकार करनेकी रीति।

होमसाध्य जिस किसी विहित कर्ममें होम आरम्भ करनेके पहले यजमान अपना शिष्ट और विनीतभाव दिखानेके लिये आचार्य प्रभृतिको स्वयं वरण कर देवें। आचार्य प्रभृति वरणीय ब्राह्मणोंको गन्धादि द्वारा प्रसन्न करके कर्म करनेके लिये प्रेरणा करनेका नाम ही वरण है। दानवाचन, अन्वारम्भ, वरण और मन आदि स्थानोंमें यजमान-कर्त्ताको ही बोध होगा। वरणकालीन यजमानको पूर्वमुख तथा आचार्य आदिको उत्तरमुख बैठना होगा।

"सर्वत्र प्राङ्मुखो दाता ग्रहीता च उदङ्मुखः।" (स्मृति)

कात्यायनने वरणको विधि इस प्रकार बतलाई है। पहले यजमान आसन ला कर कहें,—'साधु भवान् आस्तामर्च्चयिष्यामो भवन्तं।' वरणीय ब्राह्मण उत्तर दें 'साध्वहमासे' हरिशर्मा इस प्रकार कहें—'अर्च्चयिष्यामो भवन्त' इसके बाद 'अर्च्चय' ऐसा प्रतिवचन कहना होगा। (संस्कारतत्त्व)

जिस कर्ममें वरण करना होगा, उसमें निम्नलिखित प्रकारसे संकल्प करके वस्त्र और उपवीतादि देने होंगे।

जिसे वरण करना होगा, उसका दाहिना जानु स्पर्श कर 'विष्णुरोम् तत्सदोमद्य अमुके मासि अमुके पक्षे अमुक तिथौ अमुकगोत्रं अमुकप्रवरं श्रीअमुकदेवशर्माणं अमुक कर्मकरणाय एभिर्वस्त्रपुष्पमाल्यादिभिरभ्यर्च्च्य भवन्तमहं वृणे" एवं ऋत्विक् 'वृतोऽस्मि' कहें। पीछे यजमान कहें—"यथाविहित अमुक कर्म कुरु।" इसके बाद ऋत्विक्को 'यथाज्ञानं करवाणि' ऐसा कहना होगा।

इस प्रकार ऋत्विक्का वरण हो जाने पर वह अपने सङ्कल्पित कर्म आरम्भ कर दें। यजमान यदि अपना कर्म न कर सके, तो पुरोहित आदिको वरण कर सकते हैं। पीछे पुरोहितको चाहिये, कि वे पूजादि कर्मोंमें व्रती हो कर उसे समाप्त कर डालें। विवाहमें भी जमाईका पहले वरण कर पीछे कन्यासम्प्रदान करना होता है। विवाहमें वरणकी जगह वर और कन्याके तीन पुरुषोंका नाम उल्लेख कर वरण करना होता है।

विवाहमें वरणवाक्य इस प्रकार होगा। सम्प्रदाता वरका दाहिना जानु छू कर यों कहें—'विष्णुरोम् तत्सदोमद्य अमुके मासि अमुके पक्षे अमुकतिथौ अमुकगोत्रः श्रीअमुकदेवशर्मा अमुकगोत्रस्य अमुकप्रवरस्य अमुकदेवशर्मणः प्रपौत्रं अमुकगोत्रस्य अमुकप्रवरस्य अमुकदेवशर्मणः पौत्रं अमुकगोत्रस्य अमुकप्रवरस्य अमुकदेवशर्मणः पुत्रं अमुकगोत्रं अमुकप्रवरं श्रीअमुकदेवशर्माणं वरं, अमुकगोत्रस्य अमुकप्रवरस्य अमुकदेवशर्मणः प्रपौत्रीं अमुकगोत्रस्य अमुकप्रवरस्य अमुकदेवशर्मणः पौत्रीं अमुकगोत्रस्य अमुकप्रवरस्य अमुकदेवशर्मणः पुत्रीं अमुकगोत्रां अमुकप्रवरां श्रीअमुकीदेवीं कन्यां दातुमेभिर्गन्धादिभिरभ्यर्च्च्य वरत्वेन भवन्तमहं वृणे" पीछे जामाता 'वृतोऽस्मि' कहें।

यथाविधि वरण कर देनेके बाद इसे कार्यमें अधिकार होता है, इसी कारण यज्ञादिमें पुरोहित आदिको वरण करना पड़ता है।

प्रतिनिधि या उपयुक्त व्यक्तिनियोगका नाम ही वरण है। जैसे राजपद पर वरण। इसी कारण माङ्गलिक कार्यादिमें नियुक्त व्यक्तिके सम्मानार्थ कुछ माङ्गलिक द्रव्य द्वारा उसकी सम्बर्द्धना की जाती है।

५ वेष्टन, ढकने या लपेटनेकी वस्तु। ६ पूजा, अर्चना, सत्कार। ७ प्राकार, किसी स्थानके चारों ओर घेरी हुई दीवार। ८ उष्ट्र, ऊंट। ९ वरुणवृक्ष। १० सेतु, पुल।

वरणक (सं० त्रि०) १ वरणकारी, वरण करनेवाला। (पु०) २ आच्छादन, आवरण।

वरणमाला (सं० स्त्री०) वरणाय या माला। वरणस्रज्, वह पुष्पमाला जो वरणके समय पहनाई जाती है।

वरणसी (सं० स्त्री०) वाराणसी। (शब्दरत्ना०)

वरणस्रज् (सं० स्त्री०) वरणमाला। (राजतर० ११६१)

वरणा—१ एक छोटी नदी। यह पञ्जाब देशसे निकल कर सिन्धुनदमें दक्षिण ओरसे अटकको विपरीत दिशासे आ कर मिलती है। प्राचीन ग्रीक भौगोलिकोंने इसका Aornos नामसे उल्लेख किया है। २ एक छोटी नदी। यह काशीके उत्तरमें बहती है और वाराणसीक्षेत्रकी उत्तरीय सीमा है। इस नदीमें स्नान करनेसे ब्रह्महत्यादि पाप दूर होते हैं। विष्णुके दाहिने पादसे असि नामक नदी निकली है, इसी कारण दोनों नदियां पुण्यवर्त्तिनी और पापनाशिनी मानी गई हैं। इन्हीं दोनों नदियोंका मध्यवर्त्ती स्थान वाराणसी कहलाता है। इसके समान पुण्य स्थान स्वर्ग, मर्त्य और रसातलमें दूसरा नहीं है। (वामनपु० ९ अ०)

वरणा (सं० स्त्री०) तुवरी, अरहर।

वरणीय (सं० त्रि०) वृ-अनीयर्। १ वरणके योग्य, जिसे वरण किया जाय। २ प्रार्थनीय, जिसे प्रार्थना की जाय। ३ श्रेष्ठ, बड़ा।

वरण्ड (सं० पु०) वृणोतीति वृ (वृन्दारकनागकुञ्जराः। उण् १।१२८) इति अण्डन्। १ आवरणवेदि, बरामदा। २ समूह। ३ मुंहासाभेद, मुंहासा। ४ पंजीकी ढेर, निस्त। ५ घासका गट्ठर। ६ फीलवानों आदिकी एक दीवार जो दो लड़ाके हाथियोंके बीचमें लड़ाई बचानेके लिये बनाई जाती है।

वरण्डक (सं० पु०) वरण्ड स्वार्थे संज्ञायां वा कन्। १ मातङ्गवेदि, हाथीकी पीठ पर कसा जानेवाला हौदा। २ युध्यमान दो गजोंकी मध्यवर्त्तिनी भित्ति, दो लड़ाके हाथियोंके बीचकी दीवार। ३ यौवनकण्टक, मुंहासा। (त्रि०) ४ वर्त्तुल, गोल। ५ विशाल, बड़ा। ६ भीत, डरा हुआ। ७ कृपण, कंजूस।

वरण्डा (सं० स्त्री०) वरण्ड टाप्। १ सारिका, मैना। २ वर्त्ति, बत्ती। ३ शस्त्रभेद, कटारी।

वरण्डालु (सं० पु०) वरण्ड इव आलुरस्य। एरण्डवृक्ष, रेंड़ीका पेड़।

वरतनु (सं० त्रि० १ सुन्दरी स्त्री। २ छन्दोभेद। इसके प्रत्येक चरणमें १२ अक्षर रहते हैं जिनमेंसे १, २, ३, ४, ६, ७, ९, ११वां अक्षर लघु और बाकी सभी गुरु होते हैं।

वरतन्तु—एक प्राचीन ऋषिका नाम।

वरतिक्त (सं० पु०) वरः श्रेष्ठस्तिक्तस्तिक्तरसोऽस्य। १ कुटज, कोरैया। २ निम्बवृक्ष, नीमका पेड़। ३ पर्पट, पापड़ा। ४ रोहितक, रोहनका पेड़।

वरतिक्तिका (सं० स्त्री०) वरतिक्त स्वार्थे कन् टाप् अत इत्वं। पाठा।

वरतोया (सं० स्त्री०) नदीभेद।

वरत्करी (सं० स्त्री०) रेणुका नामक गन्धद्रव्य।

वरत्रा (सं० स्त्री०) व्रियतेऽनेनेति वृ (वृञश्चित्। उण् ३।१०७) इति अत्रन् टाप्। १ हस्तिकक्ष्या-रज्जु, हाथी कसनेका रस्सा। पर्याय—चूषा, कक्ष्या, कक्षा। २ चर्मरज्जु, चमड़ेका तसमा। ३ बरेत, बरेता।

वरत्वच (सं० पु०) वरा त्वक् यस्य। निम्बवृक्ष, नीमका पेड़।

वरद (सं० त्रि०) वरं ददातीति दा (आतोऽनुपसर्गे कः। पा ३।२।३) इति क। १ अभीष्टदाता, वर देनेवाला। पर्याय—समर्द्धक, अभिमतार्थद। २ प्रसन्न।

वरद—१ विन्ध्यपार्श्वस्थित भोजनदीतीरवर्त्ती एक गढ़-

ग्राम। (भविष्य ब्रह्मख० ८।३७) २ वङ्गका एक प्राचीन विभाग। (भविष्य ब्रह्मख० १०।३)

वरद—दाक्षिणात्यवासी एक संस्कृत शास्त्रवित पण्डित। ये तोण्डीरमण्डलमें रहते थे। इनके पिताका नाम था श्रीनिवास। इन्होंने अनङ्गजीवन नामक एक भाण लिखा।

वरदकवि—कारिकादर्पणके प्रणेता।

वरदक्षिणा (सं० स्त्री०) १ वह धन जो वरको विवाहके समय कन्याके पितासे मिलता है, दहेज। २ वह वृथा खर्च जो नष्टवस्तुके सुधारनेमें लगता है।

वरदचतुर्थी (सं० स्त्री०) वरदाचतुर्थी, माघमासकी शुक्ला-चतुर्थी।

वरदत्त (सं० त्रि०) वर या अनुग्रह रूपमें प्राप्त।

वरददेशिकाचार्य—१ काञ्चीवासी सुदर्शनके पुत्र। इन्होंने 'वसन्ततिलक' नामक एक भाणकी रचना की। २ एक दार्शनिक। इन्होंने तत्त्वत्रय और वेदान्तकारिकावली नामक दो ग्रन्थ बनाये।

वरदनाथ—तत्त्वत्रयचुलुकार्थसंग्रह नामक संस्कृत ग्रन्थके प्रणेता। इनके पुत्रने इस ग्रन्थके आधार पर रहस्य-त्रयचुलुक नामक एक पुस्तक लिखी।

वरदनायकसूरि—दाक्षिणात्यके एक प्रसिद्ध पण्डित। ये तत्त्वनिरूपण नामक एक ग्रन्थ बना गये।

वरदमूर्त्ति—वाजपेयादि सङ्ख्यनिर्णय नामक वैदिक ग्रन्थके रचयिता।

वरदयोग—बंगालके अन्तर्गत एक प्राचीन स्थान। (भविष्य ब्रह्मख० १८।२२) इसका वर्त्तमान नाम वज्रयोगिनी है। वज्रयोगिनी देखो।

वरदराज—१ एक विख्यात तार्किक। इन्होंने तर्ककारिका, तार्किकरक्षा तथा सारसंग्रह नामक तार्किकरक्षाकी टीका लिखी। २ एक विख्यात वैयाकरण। इनके पिताका नाम दुर्गातनय था। पाणिनि व्याकरणके आधार पर इन्होंने गीर्वाणपदमञ्जरी, मध्यसिद्धान्तकौमुदी, लघुकौमुदी तथा सारसिद्धान्तकौमुदी या सारकौमुदी नामक संस्कृत व्याकरण प्रणयन किया। ३ एक विख्यात वेदज्ञ पण्डित। ये वामनाचार्यके पुत्र और अनन्तनारायणके पौत्र थे। इन्होंने ऋग्वेदभाष्य, तैत्तिरीयारण्यकभाष्य, निदानसूत्र-वृत्ति, प्रतिहारसूत्रवृत्ति, मशककल्पसूत्रभाष्य एवं वरद-राजदीक्षितीय नामक श्रौतग्रन्थ लिखा। ४ एक मीमांसक, इनके पुत्रका नाम रङ्गराज और पौत्रका देवराज था। ये सुदर्शनाचार्यके शिष्य थे। इन्होंने मीमांसानयविवेक-दीपिका लिखी। ५ एक नैयायिक। ये रामदेव मिश्रके पुत्र और हरिदासकी न्यायकुसुमाञ्जलीटीकाके एक टिप्पणी-कार थे। ६ शिवसूत्रवार्त्तिकके रचयिता। ७ व्यवहार-काण्ड या व्यवहारनिर्णयके प्रणेता। ८ यागप्रायश्चित्त व्याख्याकार। ९ आनन्दतीर्थ-रचित महाभारततात्पर्य-निर्णयकी मन्दसुबोधिनी नामकी टीकाके रचयिता। १० भाषामञ्जरी और प्रमाणपदार्थ नामक व्याकरण ग्रन्थ के प्रणेता। ११ न्यायदीपिकाके रचयिता। १२ तत्त्व-निर्णय नामक वैदान्तिक ग्रन्थकार। १३ किरणावलीके एक टीकाकार। १४ पुरुषसूक्तके एक भाष्यकार। १५ कविजनविनोद नामक संस्कृत ग्रन्थके रचयिता।

वरदराज आचार्य—नाममातृकानिघण्टुके रचयिता।

वरदराज चोलपण्डित—विवेकतिलक नामधेय रामायणके एक टीकाकार।

वरदराज भट्ट—सामान्यपदमञ्जरी नामक वैदान्तिक ग्रन्थ-के रचयिता।

वरदराज भट्टारक— कामन्दकीय नीतिशास्त्रके टीकाकार।

वरदराजीय (सं० त्रि०) वरदराजका लिखा हुआ।

वरदर्शिनी (सं० स्त्री०) देखनेमें सुलक्षण या सुन्दरी।

वरदविष्णुसूरि—एक जैनसूरि।

वरदा (सं० स्त्री०) वरद-टाप्। १ कन्या। २ आदित्यभक्ता। ३ अश्वगन्धा। ४ प्रसन्न चिह्नसूचक हस्तादि विन्यास-रूप मुद्राविशेष। ५ सुवर्चला, अड़हुल। ६ वराहीकन्द। (त्रि०) ७ अभीष्टफलदात्री, वर देनेवाली।

वरदा—हिमपादविनिःसृत नदीभेद। (हिमवत्ख० ४।६) यहां अष्टादशभुजा देवीमूर्त्ति विराजित हैं।

(हिम० ४१।३६-४४)

वरदाचतुर्थी (सं० स्त्री०) वरदाख्या चतुर्थी। माघ महीने-के शुक्लपक्षकी चतुर्थी, वरदा चौथ। इस दिन गौरीपूजा करनी होती है और वे वर देती हैं, इसीसे इस चतुर्थीको वरदा चतुर्थी कहते हैं। इस तिथिमें पूजा करनेसे सौभाग्य और अतुल श्रीलाभ होता है। इस चतुर्थीमें

गौरीपूजा करके पश्चात्‌में सरस्वतीपूजा करनी पड़ती है।

वरदाचार्य—बहुतेरे प्राचीन संस्कृत ग्रन्थकारोंके नाम। यथा—१ अनङ्गब्रह्मविद्याविलास और अध्यात्मशास्त्र नामक भाणके रचयिता। २ अधिकरणसंग्रह-व्याख्याकार। ३ तत्त्वत्रय और तत्त्वत्रयसारके प्रणेता। ४ उत्प्रेक्षामञ्जरी नामक अलङ्कार-ग्रन्थके रचयिता। ५ कालमालोकदण्डवण्डनकार। ६ तत्त्वत्रयनिर्णयकार। ७ कारिकादर्पणके प्रणेता। ८ प्रमेयमाला नामक वैदान्तिक ग्रन्थके रचयिता। ९ भगवद्ध्यानसुभाषितकार। १० मङ्गलमयूरमालिका नामक अलङ्कार-ग्रन्थके रचयिता। ११ यतिराजविजय या वेदान्तविलासनाटककार। १२ विरोधपरिहारकार। १३ व्याकरण लघुवृत्तिके प्रणेता। १४ श्वेताश्वतरोपनिषद्भाष्यकार। १५ सावित्रीपरिणय नामक काव्यके रचयिता।

वरदाता (सं० त्रि०) वरदातृ देखो।

वरदातु (सं० पु०) ददातीति दा-तुन वरश्च दातुः। वृक्षविशेष, सागवानका पेड़। पर्याय—भूमिसह, द्वारदातु, शाकवृक्ष। गुण—शिशिर और रक्तपित्तप्रसादन।

वरदातृ (सं० त्रि०) दा-तृण, वरस्य दाता। अभीष्टफलप्रदाता, वर देनेवाला।

वरदात्री (सं० स्त्री०) वर देनेवाली।

वरदाधीश यज्वन्—एक प्रसिद्ध स्मार्त्त वेङ्कटाधीशके पुत्र। इन्होंने प्रयोगवृत्ति और प्रायश्चित्तप्रदीपिका लिखी।

वरदान (सं० क्ली०) वरस्य दानं। १ अभिलषित विषय प्रदान, किसी देवता या बड़ेका प्रसन्न हो कर कोई अभिलषित वस्तु या सिद्धि देना। २ किसी फलका लाभ जो किसीकी प्रसन्नतासे हो।

वरदानमय (सं० त्रि०) वरदान स्वरूपे मयट्। वरदानस्वरूप।

वरदानिक (सं० त्रि०) वरदान सम्बन्धी।

वरदानी (सं० पु०) वर प्रदान करनेवाला, मनोरथ पूर्ण करनेवाला।

वरदाभूमि—जनपदभेद। (भविष्य ब्रह्मख० ६।२७)

वरदावीतिनी—बंगालकी एक प्राचीन राजधानी। यहां गौड़ाधिप राज्य करते थे। वर्त्तमान नाम बड़दोनगी है।

वरदारु (सं० पु०) १ वृक्षविशेष (Tectona Grandis)। २ श्रेष्ठदारु, पीपल वट आदि बड़ा पेड़।

वरदारुक (सं० पु०) वृक्षभेद। इसके पत्ते विषैले होते हैं।

वरदाश्रम (सं० त्रि०) वरद, वर देनेवाला।

वरदी (अ० स्त्री०) वह परिधान जो किसी विशेष विभागके कर्मचारियोंके लिये नियत हो, वह पोशाक या पहनावा जो किसी खास महकमेके अफसरों और नौकरोंके लिये मुकर्रर हो। जैसे—पुलिसकी वरदी, फौजकी वरदी।

वरदेव—राठोर राजवंशके प्रतिष्ठाता। ये कामध्वज उपाधिधारी तेरह महात्माओंके एक आदिपुरुष थे। अपने जेठे भाईके द्वारा वाराणसी और ८४ नगरोंका आधिपत्य पाने पर भी उन सबोंको छोड़ कर इन्होंने पावकपुरमें स्वतन्त्र राजधानी कायम की। इनके वंशधरगण पावककामध्वज नामसे प्रसिद्ध हैं।

वरद्रुम (सं० पु०) बृहदाकार वृक्षभेद, एक प्रकारका अगर जिसका वृक्ष बहुत बड़ा होता है। अङ्गरेजीमें इसे Agallochum कहते हैं।

वरधर्म (सं० पु०) श्रेष्ठ कार्य, बड़ा काम।

वरधर्मकृत् (सं० त्रि०) दूसरोंकी भलाई करनेवाला।

वरन् (सं० अव्य०) ऐसा नहीं, बल्कि। इस शब्दका प्रयोग अब उठता जा रहा है।

वरना (फा० अव्य०) नहीं तो, यदि ऐसा न होगा तो। जैसे—आप बैठिये, वरना मैं भी उठ कर चला जाऊंगा।

वरनारी (सं० स्त्री०) सुन्दरी स्त्री।

वरनिश्चय (सं० पु०) पतिनिर्वाचन, पति चुनना।

वरपक्ष (सं० पु०) वरयात्र, बरात।

वरपक्षिणी (सं० स्त्री०) तन्त्रोक्त देवीभेद।

वरपक्षीय (सं० त्रि०) वरका तरफदार या वरपक्षसम्बन्धी।

वरपण्डित—कथाकौतुक नामक संस्कृतग्रन्थके रचयिता।

वरपर्णाख्य (सं० पु०) वराणि पर्णान्याख्या, वरपर्णाख्या यस्य। छोकंचुकी वृक्ष, छोकड़ार।

वरपीत (सं० पु०) हरिताल, हरताल।

वरपीतक (सं० पु०) वरपीत देखो।

वरपुत्र (सं० पु०) वह जिसने वर पाया है। जैसे—कालिदास सरस्वतीके वरपुत्र थे।

वरपोत (सं० पु०) श्रेष्ठ शाक।

वरप्रद (सं० त्रि०) वरं प्रददातीति-दा-क। १ वरदाता, वरदेनेवाला। २ प्रसन्न।

वरप्रदा (सं० स्त्री०) लोपामुद्रा।

वरप्रदान (सं० क्ली०) वरस्य प्रदानं। वरदान, मनोरथ पूर्ण करना, कोई फल या सिद्धि देना।

वरप्रभ (सं० त्रि०) १ अति प्रभाविशिष्ट, खूब चमक-दमक वाला। (पु०) २ बोधिसत्त्वभेद।

वरप्रस्थान (सं० क्ली०) वरयात्रा।

वरफल सं० पु०) वरं फलमस्य। १ नारिकेल वृक्ष, नारियलका पेड़। (क्ली०) २ नारिकेल, नारियल। ३ श्रेष्ठफल।

वरम (सं० पु०) वर्म देखो।

वरमेली (हिं० पु०) एक प्रकारका लाल चन्दन जो मलय द्वीपसे आता है।

वरयात्रा (सं० स्त्री०) वरस्य यात्रा। विवाह करनेके लिये वरका कन्याके घर जाना। पृथिवीके सभ्य असभ्य सभी सम्प्रदायकी सभी जातियोंके मध्य वरयात्रा प्रचलित है। परन्तु विवाह-पद्धति सभी जाति-की समान नहीं है। आधुनिक शिक्षा और सभ्यता-विस्तारके साथ साथ प्राचीन उत्सव तथा हम लोगोंकी रीति-नीतिमें बहुत कुछ हेर-फेर हो गया है। यह परिवर्त्तन केवल उच्च सम्प्रदायके भीतर ही हुआ है, सो नहीं, उच्च सम्प्रदायका यथासम्भव आदर्श ले कर धीरे धीरे निम्न सम्प्रदायमें भी हो गया है। फिर किसी जातिने इन सब कामोंमें अपने अपने धर्मोज्ज्वल कर्मको छोड़ा है, ऐसा भी नहीं कह सकते।

यात्रा करनेके पहले अवस्थानुसार वरको सजाया जाता है। कोई कोई वर तो किरीट-कुण्डल कञ्चुकादि-मण्डित हो यात्रा करते हैं। फिर किसीको साधारण धोती और अंगरखा पहन कर जाना पड़ता है। यह सब मनुष्यकी अवस्था पर निर्भर करता है, पर धनीकी तो बात ही नहीं, गरीब वरयात्रामें कुछ धूमधाम अवश्य करता है, चाहे उसे ऋण भी क्यों न हो जाय।

वर उपवासी रह कर यथासमय यात्रा करता है। यात्रा करनेसे पहले वरके ललाटमें चन्दन लगाया जाता है। यह काम घरकी स्त्रियां ही करती हैं। वरके विघ्न-नाशके लिये उसके चन्दनाङ्कित ललाटमें 'दुर्गा या हरि' आदि नाम लिख देती हैं। यात्राकालमें एक दधि-मधु-लाञ्छित सफलपल्लव पूर्णकुम्भ वरके सामने रखा जाता है। वर उसकी ओर देख कर 'दुर्गा गणेश माधव' आदि भगवत् नाम लेता हुआ यात्रा करता है। इस समय गुरु-पुरोहित अथवा कोई दूसरे शास्त्रज्ञ ब्राह्मण 'धेनुर्वत्स-प्रयुक्ता' आदि यात्रामङ्गल मन्त्र पाठ करते हैं। वर यात्रा करके पहले देव, ब्राह्मण और पितामाता आदि अन्यान्य श्रेष्ठ व्यक्तियोंको प्रणाम करता है। वे सब उसे आशीर्वाद करते हैं। इस समय शङ्खकी ध्वनि भी होती है। कहीं कहीं दश पांच स्त्रियां मिल कर माङ्ग-लिक सङ्गीत गाती हैं। पूर्णकुम्भकी बगलमें एक वरण-डाला रहता है। इस वरणडालेमें स्वस्तिक, सिन्दूर, धान्य, दूर्वा, प्रदीप आदि अनेक माङ्गलिक द्रव्य सजे रहते हैं। वर जब यात्रा करता है, तब कोई स्त्री दूधसे उसका हाथ धो देती है।

देशभेदकी प्रथाके अनुसार वर बांयें हाथमें छुरी, कटारी, सरौता, दर्पणादि ले कर घरसे निकलता है। इस समय वरके साथ उसके ज्ञाति-कुटुम्ब भी चलते हैं। अवस्थाभेदसे वर गाड़ी, नाव, पालकी या घोड़े पर चढ़ कर जाता है। जो खूब धनी हैं वह पथका सुगम और सुयोग होनेसे हाथी, चतुर्दोल या मूल्यवान् अश्व-यान पर यात्रा करते हैं।

राजा जमींदारोंका तो पूछना ही क्या है, जो धनी और शहरवासी हैं, उनकी बारात सचमुच देखने लायक होती है। जिसके धन है, वे चाहे दूसरे कामोंमें भले ही खर्च न करें, पर वरयात्रामें घरकी गृहिणी या अन्यान्य सम्बन्धियोंसे बाध्य हो कर उन्हें खुले हाथसे खर्च करना पड़ता है। श्वेत, पीत, नील, लोहित या मिश्रवर्ण-के चन्द्रातप-राजित रौप्य या पित्तल दण्डमण्डित अनेक वादक वादित झालर-झलमलोहत सुन्दर चतुर्दोलकी लोहित मखमल-मण्डित वेदिका पर चढ़ कर किरीट-कुण्डल-कञ्चुक पहन कर किसी राजपुत्र या नवाब पुत्र-की तरह वर चलते हैं। दोनों बगल दो श्वेतवेशधारी बालक चामरसे उसे हवा करते हैं। अन्यान्य वरयाति-

गान वगैरहके अनुसार 'परिवार' परिच्छन्न वेशभूषा करके वरके साथ साथ पैदल चलते हैं। साथमें तरह तरहके बाजे और रोशनी रहती है। धनीकी बारातमें भाला-मोरा बल्लम बर्छा लिये, ढाल तलवार लटकाये, सिर पर भिन्न भिन्न रंगकी पगड़ी बांधे, कतार लगाये, बाजेके ताल पर पैर उठाते अनेक सुसज्जित अनुचर चलते हैं। कागजका हाथी, कागजका घोड़ा, कागजकी नाव और उसके ऊपर डांड़-माझ, रोमटा-नाच आदि रंग बिरंगके तमाशे बारातकी शोभा बढ़ाते हैं। भिन्न भिन्न तरहकी रोशनी लोगोंकी चकाचौंध कर देती है। इस प्रकारका जुलूस देखनेके लिये रास्तेके दोनों किनारे लोगोंकी भीड़ लग जाती है।

बारात जब कन्याके घरके पास पहुंचती है, तब कन्या-पक्षके लोग बड़े आदर-सत्कारसे उन्हें दरवाजे पर लाते हैं।

बङ्गालके ब्राह्मण, कायस्थ, वैश्य और शूद्रादि जो धनी हैं, उनकी बारात इसी प्रकार सजधज कर जाती है। पर जिनकी अवस्था कुछ खराब है, वे खर्चमें किफायत कर देते हैं।

भारतकी, केवल भारत ही क्यों कहें—पृथ्वीकी सभ्य असभ्य समुन्नत अनुन्नत सभी जातियोंकी वरयात्रा व्यापार इसी प्रकार थोड़े बहुत आमोद उत्सव और समारोह आडम्बरसे परिपूर्ण रहता है। परन्तु जातिविशेष या सम्प्रदाय विशेषकी रीति-पद्धतिमें बहुत पृथक्ता देखी जाती है। विवाह देखो।

वरयात्रिन् (सं० त्रि०) वरयात्रा-अस्त्यर्थे इनि। वह भीड़ भाड़ जो दूल्हेके साथ चलती है, बरात।

वरयितव्य (सं० त्रि०) वर-णिच्-तव्य। वरणके योग्य।

वरयितृ (सं० पु०) वर-णिच्-तृच्। १ भर्त्ता, पति। २ वर-कारयिता, वरण करनेवाला।

वरयु (सं० पु०) महाभारत वर्णित एक व्यक्ति। (भारत उद्योगपर्व)

वरयुवति (सं० स्त्री०) १ छन्दोभेद। इसके प्रत्येक चरणमें ११ अक्षर होते हैं। उनमेंसे १, ४, ५, ८, ९ और ११ अक्षर गुरु और बाकी वर्ण लघु होते हैं। इसके लक्षण—

"भो नगना नौ च यस्या वसुधीतिरेः।"

(छन्दोमञ्जरी)

२ रूपयौवनसम्पन्ना स्त्री।

वरयोग्य (सं० त्रि०) १ वर, आशीर्वाद या उपहार पानेके लायक। २ वरणीय, वरण करनेके योग्य।

वरयोनिक (सं० पु०) केसर।

वररुचि (सं० पु०) वरा रुचिर्यस्य। एक प्राचीन वैयाकरण और प्रसिद्ध कवि। इनका दूसरा नाम पुनर्वसु है। अष्टाध्यायीवृत्ति, एकाक्षरकोष, एकाक्षरनिघण्टु, एकाक्षरनाममाला, एकाक्षराभिधान, पैन्द्रनिघण्टु, कारकचक्रकारिका, गणगणकारिका, तत्त्वकौमुदी, प्रयोगविवेक, प्रयोगविवेकसंग्रह, प्राकृतप्रकाश, पुष्पसूत्र (पुष्पसूत्र), योगशतक, राक्षसकाव्य, राजनीति, लिङ्गविशेषविधि, लिङ्गवृत्ति, लिङ्गानुशासन, वररुचिवाक्यकाव्य, वाक्तरङ्गिणी, वार्त्तिक, शब्दलक्षण, श्रुतबोध और समासपटल आदि ग्रन्थ इन्हींके बनाये हैं। किन्तु वस्तुतः इन्होंने उक्त सभी ग्रन्थोंकी रचना की थी या नहीं इसमें बहुतोंको सन्देह है। क्योंकि, अपने अपने ग्रन्थ प्रचारके लिये बहुतोंने वररुचिका नाम छाप दिया है। महाकवि कालिदासके नाम पर भी दूसरोंके रचित अनेक ग्रन्थोंका प्रचार देखा जाता है। एकमात्र पाण्डित्यपूर्ण प्राकृतप्रकाश तथा वाक्यप्रदीप आदि वररुचिकी रचना है, ऐसा बहुतेरोंका विश्वास है। भोजप्रबन्धमें इनके रचित अनेक श्लोक उद्धृत हैं।

सोमदेव भट्टके कथासरित्सागरमें लिखा है, कि वररुचिका दूसरा नाम कात्यायन है। ये वैयाकरण पाणिनिके सहपाठी थे। इसी कारण हो अथवा इनके नामसे प्रचलित या इनसे प्रकाशित अष्टाध्यायी पाणिनिसूत्रकी वृत्ति और वार्त्तिकादि नाना व्याकरण ग्रन्थ देख कर ही पण्डितसमाज इन्हें ब्राह्मण-वंशोद्भव सोमदत्तके पुत्र कात्यायन मानते हैं। किन्तु पाणिनिके सूत्र और वार्त्तिककी आलोचना करनेसे सूत्रकार और वार्त्तिककारको कभी भी एक समयका आदमी नहीं कह सकते। वरं सूत्रके सैकड़ों वर्ष बाद वार्त्तिक रचा गया है ऐसा प्रतीत होता है। कात्यायन देखो।

वार्त्तिक और प्राकृतप्रकाशकारको भी हम दो व्यक्ति

नहीं मानते। प्राकृत-प्रकाशमें वररुचिका असाधारण कृतित्व देख कर मालूम होता है, कि प्राकृत और पाली-भाषामें इनकी अच्छी व्युत्पत्ति थी। उक्त ग्रन्थके छपते समय उसकी भूमिकामें अध्यापक ई, बी, कावेलने लिखा है, कि वररुचि १ली सदीके आदमी थे। गारेट साहब के मतसे वे ईसाजन्मसे पहले ४थी शताब्दीमें तथा चन्द्रगुप्तसे भी पहले विद्यमान थे। अभिधानकार हेम चन्द्रविरचित स्थविरावलीचरितमें लिखा है, कि नन्द-वंशीय राजा ६म नन्दके राजत्वकालमें मगधके अन्तर्गत पाटलीपुत्र नगरमें वररुचिने जन्मग्रहण किया। ४६६ ई०सन्से पहले नन्दवंशका आविर्भाव हुआ। इस देशके बहुतोंका विश्वास है, कि वररुचि महाराज विक्रमादित्यके नौ रत्नोंमेंसे एक थे। इस सम्बन्धमें वे लोग ज्योतिर्विदाभरणका एक श्लोक उद्धृत करते हैं;—

"धन्वन्तरिः क्षपणकामरसिंह-शङ्कु-
वेतालभट्ट-घटकर्परकालिदासाः।
ख्यातो वराहमिहिरो नृपतेः सभायां
रत्नानि वै वररुचिर्नव विक्रमस्य॥" (नवरत्न)

किन्तु उक्त नवरत्न जो एक समयके आदमी नहीं थे, यह श्लोक कविकी कल्पनामात्र है, ऐसा प्रमाणित हुआ है। वराहमिहिर देखो।

नन्दवंशके उपाख्यानमें वररुचिका दूसरा दूसरा विवरण लिखा जा चुका है। नन्द देखो।

२ शिव, महादेव।

वररुचितीर्थ—प्राचीन तीर्थभेद। (स्कान्द नागरख० १२५ अ०)

वररूप (सं० त्रि०) १ सुन्दररूपविशिष्ट, खूबसूरत। (पु०) २ बुद्धभेद।

वरल (सं० पु० स्त्री०) वृणातीति वृ अलच्। वरट, हंस।

वरलब्ध (सं० पु०) वरः उत्कर्षो लब्धः पुष्पेषु येन। १ चम्पकवृक्ष, चम्पाका पेड़। २ रक्तकाञ्चन, कचनाल। ३ नागकेसर चम्पक। (त्रि०) वरेण लब्धः। ४ वर-प्राप्त, जिसे वर मिला हो।

वरला (सं० स्त्री०) वरल-टाप्। १ हंसी। २ वरटा, गंधिया कीड़ा।

वरली (सं० स्त्री०) वरल ङीप्। वरटा।

वरवत्सला (सं० स्त्री०) वरे जामातरि वत्सला। श्वसुर-भार्या, सास।

वरवाह (सं० पु०) बर्ब्बर, घुंघराले बालोंवाला जंगली आदमी। भाषाविद्गण अनुमान करते हैं, कि इस शब्दसे ग्रीक Barbaros, रोमक Barbarus और अङ्गरेजी Barbarian शब्दकी उत्पत्ति हुई है।

वरवर्ण (सं० पु०) १ सुवर्ण, सोना। २ श्रेष्ठ वर्ण, बढ़िया रंग।

वरवर्णिन् (सं० त्रि०) सुन्दर वर्णशाली, बढ़िया रंग-वाला।

वरवर्णिनी (सं० स्त्री०) वरः श्रेष्ठो वर्णः प्रशस्तः पीता-दिर्वास्त्यस्या इति वरवर्ण-इनि ङीप्। १ अत्युत्तमा स्त्री। पर्याय—वरारोहा, मत्तकामिनी, उत्तमा, मत्त-काशिनी। २ लाक्षा, लाख। ३ हरिद्रा, हल्दी। ४ रोचना। ५ फलिनी, प्रियंगु। ६ साध्वी स्त्री। ७ गौरी। ८ लक्ष्मी। ९ सरस्वती।

वरवारण (सं० पु०) १ जाङ्गल जीवविशेष, जङ्गली जान-वर। २ सुन्दर हस्ती, बढ़िया हाथी।

वरवासि (सं० पु०) जातिविशेष।

वरवाह्लीक (सं० क्ली०) कुङ्कुम, केशर।

वरवृत (सं० त्रि०) वर या आशीर्वादरूपसे प्राप्त।

वरवृद्ध (सं० पु०) वरः श्रेष्ठो वृद्धः। १ पुरातन, पुराना। २ शिव।

वरशठ—स्वर्णग्रामके अन्तर्गत एक प्रसिद्ध स्थान। (भविष्य ब्र०ख० ८।४१)

वरशिख (सं० पु०) एक असुर। इसे इन्द्रने सपरिवार मारा था।

वरशीत (सं० क्ली०) त्वच्, दारचीनी।

वरश्रेणी (सं० स्त्री०) ह्रस्वमूर्वा, छोटी मरोड़फली।

वरस् (सं० क्ली०) तेज।

वरसद (सं० पु०) आदित्य, सूर्य।

वरसान (सं० पु०) वृ (ऋन्दस्यशानच्वृजुभ्याम्। उण् २।८६) इति शानच्। दारिक, पुत्र।

वरसुन्दरी (सं० स्त्री०) १ सुन्दरी स्त्री। २ छन्दोभेद।

इसके प्रति चरणमें १४ अक्षर होते हैं जिनमेंसे १, ५, ६, १३, १४ वर्ण गुरु और बाकी लघु होते हैं।

वरसुरत (सं० त्रि०) सुरतक्रियाभिज्ञ, उत्कृष्ट।

वरसीन (सं० पु०) तिरिमङ्गुटभेद।

वरस्त्री (सं० स्त्री०) सुन्दरी नारी, खूबसूरत औरत।

वरस्या (सं० स्त्री०) वरणीया, वरणके योग्य स्त्री। "वरस्या यास्वधिगुर्दु यें" (ऋक् ५।८७।१२) 'वरस्या वरणीया'। (सायण)

वरस्रज् (सं० स्त्री०) वह माला जो कन्या वरके गलेमें डालती है।

वरहर (सं० क्ली०) एक जनपदका नाम।

वरहि—एक पहाड़ी जाति।

वरही (हिं० पु०) १ सोनेकी एक लम्बी पट्टी जो विवाहके समय वधूको पहनाई जाती है, टीका। २ बरही देखो।

वरा (सं० स्त्री०) वृ-अच्-टाप्। १ त्रिफला। २ रेणुका नामक गन्धद्रव्य। ३ गुडूची, गुरुच। ४ मेदा। ५ ब्राह्मी। ६ विडङ्ग। ७ पाठा। ८ हरिद्रा, हल्दी। ९ श्रेष्ठा। १० ब्रह्मपुत्री। ११ वातिङ्गन, बैंगन। १२ मोटपुष्प, महद्दुम। १३ पश्चात्कर्कटी। १४ मद्य। १५ श्वेतापराजिता। १६ सोमराजी। १७ जलमूली।

वराक (सं० पु०) वृणोति सम्भक्तोत् इति ("जल्पभिक्षकुट्टलुण्टवृङः षाकन्।" पा ३।२।१५५) इति षाकन्। १ शिव। २ युद्ध, लड़ाई। ३ पर्पटक, पापड़ा। (त्रि०) ४ शोचनीय। ५ नीच।

वराकपुर—एक प्राचीन नगर। बारिकपुर देखो।

वराखास—बम्बई प्रदेशके महीकांठा विभागान्तर्गत एक छोटा सामन्तराज्य और उसका प्रधान नगर। यहांके ठाकुर उपाधिधारी सामन्तराज रायसिंह चैहवाड़ वंशीय राजपूत हैं, ज्येष्ठपुत्र ही सम्पत्तिका अधिकारी होता है; किन्तु दत्तक लेनेका अधिकार नहीं है। यहांका राजस्व १५०० रु० है।

वराङ्ग (सं० क्ली०) वरमङ्गम्। १ मस्तक। २ गुह्य, गुप्त। ३ योनि। ४ श्रेष्ठ अवयव। ५ चोच, दालचीनी। ६ पत्ता। ७ हरिद्रा, हल्दी। ८ मेदा। ९ पेड़की टहनीका सिरा। (पु०) वराणि श्रेष्ठानि अङ्गानि यस्य। १० हस्ती, हाथी। ११ विष्णुका एक नाम। १२ एक प्रकारका नक्षत्र वत्सर। यह ३२४ दिनोंका होता है।

वराङ्गक (सं० क्ली०) वरमङ्गमस्य कप्। १ गुडत्वक्, दारचीनी। (त्रि०) २ श्रेष्ठावयवयुक्त।

वराङ्गल (सं० क्ली०) विपंगुल, चंगनीका पत्ता।

वराङ्गना (सं० स्त्री०) वरा श्रेष्ठा अङ्गना स्त्री। अति प्रशस्ताङ्गयुक्ता स्त्री, सर्वाङ्गसुन्दरी स्त्री।

वराङ्गरूपोपेत (सं० त्रि०) अङ्गानां रूपाणि अङ्गरूपाणि वराणि अङ्गरूपाणि तैरुपेतः। श्रेष्ठरूपयुक्त, सुन्दर। पर्याय—सिंहसंहनन।

वराङ्गिन् (सं० त्रि०) वराङ्गमस्यास्तीति वराङ्ग-इनि। १ श्रेष्ठाङ्गयुक्त, वराङ्गविशिष्ट। (पु०) २ अम्लवेतस, अमलबेत। ३ गज, हाथी।

वराङ्गिनी (सं० स्त्री०) श्रेष्ठाङ्गयुक्ता, वराङ्गविशिष्टा।

वराङ्गी (सं० स्त्री०) वरमङ्गमस्त्यस्याः गौरा। १ हरिद्रा, हल्दी। २ नागदन्ती। ३ मञ्जिष्ठा, मजीठ।

वराजीवी (सं० पु०) ज्योतिषी, गणक।

वराज्य (सं० क्ली०) उत्तमघृत, बढ़िया घी।

वराट (सं० पु०) वरमल्पमटतीति अट कर्मणि अण्। १ कपर्दक, कौड़ी। श्रेष्ठ, मध्य और कनिष्ठके भेदसे यह तीन प्रकारका होता है। पीतवर्णकी गांठदार छः माशेकी कौड़ी श्रेष्ठ चार माशेकी मध्य और तीन माशेकी कौड़ी कनिष्ठ मानी गई है। वैद्यकके मतसे इसी प्रकारकी कौड़ीको वराटक कहा है।

वराट या कौड़ीकी शोधनप्रणाली—कौड़ीको एक पहर तक कांजीमें स्वेद देनेसे यह शुद्ध होती है। दूसरा तरीका—अग्निमें कड़ाहा तपा कर पका लिया है। पीछे उसको भूसीमें भर कर उसके ऊपर रख 'वालिका' नामक यन्त्रमें गोइठेकी आग जलानेसे कौड़ी भस्म वा विशुद्ध होती है। यह शोधी हुई कौड़ी सब रोगोंको हरनेवाली है। दूसरेके मतसे—आंवलेका नीबू अथवा किसी दूसरे अम्लरसमें कौड़ीको भिगो रखे। जब यह पीली हो जाय, तब उसे निकाल कर धो डाले। इससे कौड़ी विशुद्ध हो जायगी। शोधित कौड़ीका गुण परिणामशूल, क्षय और ग्रहणीनाशक, कटु, तिक्त, अग्निदीपक, शुक्रवर्द्धक तथा वात और कफहर माना गया है।

२ रज्जु, रस्सी। ३ पद्मबीज।

वराटक (सं० पु० स्त्री०) वराट स्वार्थे कन्। १ कपर्दक, कौड़ी। लीलावतीमें वराटककी संख्याके भेदसे इस प्रकार नामनिरुक्ति देखनेमें आती है—बीस कौड़ीका नाम काकिणी, चार काकिणीका एक पण, सो वह पणका एक द्रम्य और सोलह द्रम्यका नाम निष्क है। (लीलावती)

प्रायश्चित्ततत्त्वमें लिखा है, कि अस्सी वराटकका एक पण, सोलह पणका एक पुराण और सात पुराणका एक रजत होता है।

दक्षिणमें वराटक देनेकी व्यवस्था है। नीच ब्राह्मणको दान और दक्षिणाहीन यज्ञ नष्ट हो जाता है, इस कारण एक कौड़ी या एक पण कौड़ी अथवा एक फल या एक पुष्प भी कमसे कम दक्षिणामें देनी चाहिये।

(पु०) २ रज्जु, रस्सी। ३ पद्मबीज।

वराटकरजस् (सं० पु०) वराटक इव रजो यत्र। नागकेसरका पेड़।

वराटकविष (सं० क्ली०) वराटक नामक त्वक्सारनिर्यास विष। (सुश्रुत-कल्प० २ अ०)

वराटकी (सं० त्रि०) वराटक सम्बन्धी।

वराटिका (सं० स्त्री०) वराट-स्वार्थे कन्, ततष्टाप्, अत इत्वञ्च। १ कपर्दक, कौड़ी। २ तुच्छ वस्तु। ३ नागकेसरका पेड़।

वराड़ी (सं० स्त्री०) रागिणीभेद। राग और रागिणी देखो।

वराण (सं० पु०) व्रियते इति वृ-युच्, पृषोदरादित्वमुक्त दीर्घ। १ इन्द्र। २ वरुणका वृक्ष, वरना।

वराणस (सं० त्रि०) वरणा और असिसम्बन्धी।

वराणसी (सं० स्त्री०) काशी, वाराणसी।

वाराणसी वा काशी देखो।

वरातुष (सं० क्ली०) बौद्धभेद।

वरादन (सं० क्ली०) वरैः राजभिरद्यते इति अद ल्युट्। राजादन, ऊँख।

वरानना (सं० स्त्री०) वरं आननं यस्याः। सुन्दरी स्त्री।

वरान्न (सं० क्ली०) वरं अन्नं। भर्जितधान्य, भुना हुआ उत्तम अन्न। शमीधान अथवा मूँग, मसूर, उड़द आदि को अच्छी तरह भून कर उसको दल ले। पीछे जलमें अच्छी तरह पाक करके सुसिद्ध होने पर वह वरान्न कहलाता है।

वराम्ल (सं० पु०) अम्लवेतस, अमलवेत।

वराबर बिहारप्रदेशके अन्तर्गत एक बड़ी शैलश्रेणी। यह गया जिलेके जहानाबाद उपविभागमें अवस्थित है। इस शैलके ऊपर एक प्राचीन मन्दिर है जिसमें सिद्धेश्वर नामक शिवलिङ्ग प्रतिष्ठित है। प्रवाद है, कि दिनाजपुरके श्रीकृष्णविद्वेषी असुरराजने यहां यह देवमूर्त्ति स्थापन की थी। इनके दक्षिण पर्वतके नीचे 'सातघरा' नामक एक बड़ी गुहा देखी जाती है। उनमेंसे चार गुहामें कर्णछोपर, सुदामा, लोमशऋषि और विश्वामित्रके नाम देखे जाते हैं। उसमें जो पाली अक्षरमें लिखित शिलालिपि है, उससे जाना जाता है, कि सबसे प्राचीन गुहा ईसा-जन्मसे पहले ४थी शताब्दीमें और सबसे आधुनिक २६० ई०में उत्कीर्ण हुई थी। इसके पास दो पातालगङ्गा और नागार्जुनी नामक जलधारा है। उस धाराके निकट गोपी, वापीय और वार्षिथी नामकी दूसरी तीन गुहाएं हैं। ये तीनों गुहाएं ई०सन्‌से पहले ३री सदीमें अशोकके पुत्र दशरथ द्वारा प्रतिष्ठित हुई हैं। गोपी गुहामें सम्राट् अशोकके समयकी प्राचीन पाली अक्षरमें उत्कीर्ण एक शिलालिपि है। बराबर देखो।

वराम्ल (सं० पु०) श्रेष्ठोऽम्लोऽत्र, रस्य लत्वम्। करमर्द, करौंदा।

वरारक (सं० क्ली०) वरं श्रेष्ठं धनिनम् ऋच्छति गच्छति ऋ ण्वुल्। हीरक, हीरा।

वरारक्षक—विन्ध्यपर्वतपार्श्वस्थित एक ग्राम।

(भविष्य ब्रह्मख० ८।४१)

वरारणि (सं० पु०) माता।

वरारोह (सं० पु०) हस्तिनः उच्चत्वात् आसनपृष्ठत्वाच्च वरः आरोहो यत्र। १ विष्णु। २ एक प्रकारका पक्षी। (त्रि०) २ श्रेष्ठ सवारीवाला।

वरारोहा (सं० स्त्री०) वरः आरोहः नितम्बो यस्याः। १ उत्तम स्त्री, खूबसूरत औरत। २ कटि, कमर। ३ सोमेश्वरस्थित दाक्षायणी मूर्तिभेद।

वरार्थिन् (सं० त्रि०) आशीर्वादाकाङ्क्षी, ईप्सित वस्तुके पानेकी इच्छा करनेवाला।

वरार्द्धक (सं० क्ली०) पूजाकी एक सामग्री। इसमें चन्दन, कंकुम और जल समभाग होता है।

वरार्ह (सं० त्रि०) वरदानके उपयुक्त।

वराल (सं० पु० क्ली०) लवङ्ग, लौंग।

वरालक (सं० पु०) वराल देखो।

वरालि (सं० पु०) १ चन्द्रमा। २ वराकी रागिनी।

वरालिका (सं० स्त्री०) वरा श्रेष्ठा आलिका सखी अस्याः। दुर्गा।

वराशि (सं० पु०) स्थूल वस्त्र, मोटा कपड़ा। पर्याय—स्थूलशाटक, वराशि, स्थूलशाटिका, स्थूलपट्टक। अरा-घरके मतसे यह शब्द क्लीबलिङ्ग है।

वरासन (सं० क्ली०) वराये दुर्गाये आस्यते क्षिप्यते दीयते इति यावत्, आस-ल्युट्। १ ओड्रपुष्प, अड़हुल। वरं श्रेष्ठमासनं। २ श्रेष्ठ आसन, ऊँचा आसन, सिंहासन। (पु०) वरां स्त्रीणां श्रेष्ठां अस्यति क्षिपतीति अस-ल्यु। ३ विट्, छिनड़ा, लौंडा। वरानपि जनान् अस्यति दूरीकरोति। ४ द्वारपाल।

वरासन—एक प्राचीन नगर। यह दुर्गापर्वतके दक्षिण-पूर्व कोणमें अवस्थित है। इसके दक्षिणमें सानक नामक महाशैल और लौनक नगर पड़ता है। (कालिकापु० ७०।२६१)

वरासि (सं० पु०) वरो श्रेष्ठः असिः अस्यते क्षिप्यते इति अस-इन्। १ स्थूलशाटक, मोटा कपड़ा। वरोऽसिर्यस्य। २ खड्गधर, तलवारधारी।

वरासी (सं० स्त्री०) स्थूलवस्त्र, मैला कपड़ा।

वराह (सं० पु०) १ विष्णु। २ सूअर, एक माप। ३ एक पर्वतका नाम। ४ मुस्त, मोथा। ५ शिशुमार, सूँस। ६ वाराहीकन्द। ७ अठारह द्वीपोंमेंसे एक छोटा द्वीप।

वराह (अवतार)—विष्णुका तृतीय अवतार। भगवान्-ने विष्णु वराहरूपमें अवतीर्ण हो कर पृथिवीका उद्धार किया। इस अवतारका विवरण भागवतमें इस प्रकार लिखा है—प्रलयपयोधिजलमें पृथिवी जब निमग्न हुई, तब स्वायम्भुव मनुने ब्रह्माके पास आ कर स्थानके लिये प्रार्थना की। तब ब्रह्मा अत्यन्त चिन्तित हो कर भगवान् विष्णुका ध्यान करने लगे। इसी समय भगवान् ब्रह्माके नासारन्ध्रसे अङ्गुष्ठ प्रमाण एक वराहपोत निकला। निकलते ही वह क्षणभरमें बढ़ने लगा, यहां तक कि आकाश को ढक लिया। उसका अङ्ग प्रत्यङ्ग पर्वतके समान प्रभूत हो गया। ब्रह्मादि देवगण भगवानका अवतार समझ कर उनका स्तव करने लगे। भगवान् उन लोगोंके स्तवसे परितुष्ट हो पृथिवीका उद्धार करनेके लिये प्रलय-पयोधि-जलमें घुसे और पृथिवीका अन्वेषण करने लगे। पीछे रसातलमें जा कर वहां पृथिवीको देख पाया। अनन्तर उन्होंने प्रलयजलमें मग्नप्राय हो सर्वजीवाधार उस धराको अपने अङ्कमें धारण कर लिया। इसके बाद वे अपनी दांतोंसे पृथिवीको पकड़ कर थोड़े ही समयके मध्य रसातलसे बाहर निकल आये। वराहदेवने पृथिवीका उद्धार किया है, देख कर देवगण उनका स्तव करने लगे। अनन्तर उन्होंने दैत्यराज हिरण्याक्षका उनके मध्य वध किया। हिरण्याक्ष देखो। (भागवत ३।१३-२० अ०)

कालिकापुराणमें लिखा है, कि भगवान् वराहदेव पृथिवीका उद्धार कर पृथिवी पर यथेच्छ विचरण करने लगे। पृथिवी उनका भार सहन न कर सकी और महादेवकी शरणमें पहुंची। महादेवने वराहरूपी विष्णुसे कहा था, 'देव! आपने जिस उद्देशसे वराहदेहको धारण किया है, वह सिद्ध हो चुका। अभी पृथिवी आपका भार सहन न कर सकनेके कारण विशीर्ण हो रही है, इसलिये आप वराह शरीरको छोड़ दीजिये। विशेषतः आपने असमय प्रदेशमें कामिनी पृथिवीकी कामना पूरी की है। रजो-धर्मिणी पृथिवीने आपके तेजसे दारुण गर्भधारण किया है। उस गर्भसे जिसकी उत्पत्ति होगी, वह पुत्र देवताओंके असुरभावापन्न होगा। अतः प्रार्थना है, कि रजस्वला-सङ्गमसे पुत्र अनिष्टकारक इस कामुक वराहदेहका त्याग कीजिये।'

वराहदेवने महादेवका वचन सुन कर उनसे कहा था, 'महादेव! तुम्हारे वाक्यानुसार मैं इस वराहदेहका त्याग करता हूं और जिससे लोकहितके लिये आपने वराह-देह धारण करूंगा।' इतना कह कर वराहदेव अन्तर्हित हो गये। महादेव भी वहांसे चल दिये।

वराहदेव उस स्थानसे आ कर लोकालोक पर्वत पर वराहरूपिणी मनोरमा पृथिवीके साथ रमण करने लगे। बहुत समय क्रीड़ा करके भी वराहरूपी विष्णु तृप्त न हुए। अनन्तर वराहदेवके वीर्यसे पृथिवीके गर्भसे महा-बलिष्ठ सुवृत्त, कनक और घोर नामक तीन पुत्र उत्पन्न हुए। वराहदेव इन सब पुत्रोंसे परिवृत्त हो लाड़ लड़ा-

की क्रीड़ा करने लगे। उस भारसे पृथिवीका बिचला हिस्सा धँस गया। अनन्तदेव कूर्मको आक्रमण करके पृथिवी मध्यस्थायी वराहदेवकी वहनव्यथासे भग्नमस्तक और आतङ्कित हो गये। इस प्रकार पुत्रसे परिवृत वराहदेवके भारसे पृथिवी पर तरह तरहका उत्पात होने लगा, सुमेरुके सभी शृङ्ग टूट फूट गये, मानसादि सरोवर उछल पड़ा और कल्पवृक्ष नष्ट हो गया।

अनन्तर देवगण लोकहितके लिये देवेन्द्र और देवयोनिके साथ मन्त्रणा करके भगवान् विष्णुका स्तव करने लगे। भगवान् देवताओंके स्तवसे संतुष्ट हो बोले, 'तुम लोग जिस भयसे भयभीत हो मेरे निकट आये हो, मुझसे किस प्रकार उस भयकी शान्ति होगी, यह मुझसे जल्द कहो।' देवताओंने कहा, 'वराहकी क्रीड़ाके कारण पृथिवी दिन-पर-दिन शीर्ण हो रही है। मनुष्य इस उद्वेगसे शान्तिलाभ करने नहीं पाते। सूखे वट् पर आघात करनेसे वह जिस प्रकार टूट जाता है, वराहके खुरके आघातसे पृथिवी भी उसी प्रकार विदीर्ण हो रही है। आप सृष्टिस्थितिके लिये अपना यह भयङ्कर रूप छोड़ देवें'।'

जनार्दनने देवताओंकी यह बात सुन कर ब्रह्मा और महादेवसे कहा, 'जगत्‌के दुःखकारणस्वरूप इस वराहदेहका मैं त्याग करूंगा, किन्तु सुखात्मक इस देहका मैं स्वेच्छापूर्वक त्याग नहीं कर सकता। इसलिये हे ब्रह्मन्! तुम महादेवको अपने तेजसे पुष्ट करो, देवगण महादेवको भी अप्यायत करें। रजस्वलाके सङ्गम तथा ब्राह्मणादिके कारण पापपूर्णप्राणको मैं खुशीसे छोड़ दूंगा।' इसके बाद भगवान् विष्णु देवताओंके आदेशसे वराहदेवसे अपना तेज खींचने लगे। तेजके खींच जानेसे वराहदेह सत्वहीन हो गई। पीछे महादेव देवताओंके साथ तेजरहित वराहदेवके समीप गये। ब्रह्मादि देवगण महादेवका तेज बढ़ानेके लिये उनके पीछे पीछे चले। उन सबोंके तेज देनेसे महादेव अत्यन्त बलवान् हो उठे। अनन्तर महादेवने ऊर्द्धर्व तथा अधोदेशमें अष्टचरणसमन्वित भयानक शरभरूप धारण किया। वराह और शरभमें तुमुल युद्ध होने लगा। पीछे शरभरूपी महादेवसे वराहदेव मारा गया। पीछे इसके महाबलिष्ठ पुत्र पौत्रादि भी शरभके दारुण आघातसे विनष्ट हुए।

इस प्रकारके कौशलसे वराहदेवके मारे जाने पर उसके शरीरसे सभी यज्ञ उत्पन्न हुए। शरभने वराहदेहको फाड़ दिया और ब्रह्मा, विष्णु तथा प्रमथोंके साथ महादेव जलसे इस देहको ले कर आकाश चले गये। विष्णुने सुदर्शनचक्र द्वारा उस देहको खण्ड खण्ड कर डाला। इसी वराहदेवके दोनों भ्रू और नाकका सन्धिभाग ज्योतिष्टोम नामक यज्ञरूपमें परिणत हुआ। कपोलदेशके उच्च स्थानसे कर्णमूलके मध्यस्थित सन्धिभाग वह्निष्टोमयज्ञ, चक्षु और दोनों भ्रूका सन्धिभाग पौनर्भवस्तोम यज्ञ, जिह्वामूलीय सन्धिभाग वृद्धस्तोम तथा वृहत्स्तोम, जिह्वादेशके अधोभागसे अतिरात्र तथा वैराज यज्ञ हुआ। अश्वमेध, महामेध तथा नरमेध आदि प्राणिहिंसाकर जो सब यज्ञ हैं, हिंसाप्रवर्त्तक वे सब यज्ञ चरणसन्धिसे। राजसूय, वाजपेय और सभी पृथग्यज्ञ पृष्ठसन्धिसे; प्रतिष्ठा, उत्सर्ग, दान, श्रद्धा और सावित्री आदि यज्ञ हृदयसन्धिसे; उपनयनादि संस्कारक यज्ञ तथा प्रायश्चित्तविधायक यज्ञ मेढ्रसन्धिमें; राक्षसयज्ञ, सर्पयज्ञ आदि सभी प्रकारका अभिचार यज्ञ, गोमेध एवं वृक्षजाप आदि यज्ञ खुरसे; मायेष्टि, परमेष्टि, गोव्रति, भोगज और अग्निष्टोम यज्ञ लांगूलसन्धिसे; तीर्थप्रयाग, मास, सङ्कर्षण, आर्क और आथर्वण नामक यज्ञ नाड़ीसन्धिसे; भूलोत्कर्ष, सेतुयज्ञ, पञ्चमार्ग, लिङ्गसंस्थान और हेरम्ब यज्ञ जानुदेशसे उत्पन्न हुआ। इस प्रकार वराहकी देहसे आठ हजारसे ऊपर यज्ञ उत्पन्न हुए।

वराहके ओष्ठसे स्रुक्, नासिकासे स्रुव, ग्रीवासे प्राक्वंश (होमगृहका पूर्वभागस्थ गृह), कर्णरन्ध्रसे इष्टापूर्त्त, दन्तसे यूप, रोमसे कुश, दक्षिण और वाम पादसे अध्वर्यु और होता, मस्तिष्कसे पुरोडाश, मध्यदेशसे यज्ञवेदी, मेढ्रसे यज्ञकुण्ड, पृष्ठदेशसे यज्ञगृह और हृत्पद्मसे यज्ञकी उत्पत्ति हुई। वराहका आत्मा यज्ञपुरुष हुए। उसकी रक्षासे मुद्राकी उत्पत्ति हुई। इस प्रकार वराहकी देहसे भाण्ड हविः आदि यज्ञीय सभी प्रकारके द्रव्य उत्पन्न हुए थे। यज्ञरूपमें सर्वजगत्‌को आप्यायित करनेके लिये वराहदेवकी देह यज्ञरूपमें परिणत हुई।

ब्रह्मा, विष्णु और महेश्वर इस प्रकार यज्ञकी सृष्टि करके वराहदेवके सुवृत्त, कनक और घोर नामक मृत

पृथ्वीमें विचरण करे। ब्रह्माने यज्ञरूपके शरीरको मुखवायुसे भर दिया। जिससे दक्षिणाग्निकी उत्पत्ति हुई। केशवने वराहके शरीरको मुखवायु द्वारा पूर्ण किया जिससे गार्हपत्य अग्निकी और महादेवने यज्ञके शरीरको वायुसे पूर्ण कर दिया जिससे आहवनीय अग्निकी उत्पत्ति हुई। इस प्रकार वराहदेवसे यज्ञ और यज्ञांग सभी हुए तथा वराहरूपसे यज्ञीय अग्निकी उत्पत्ति हुई थी।

(कालिकापु० ३१ २२)

वराहमूर्त्तिकी प्रतिष्ठा करनेमें उसके लक्षणादिका विषय हरिभक्तिविलासमें इस प्रकार लिखा है—वराहमूर्त्तिके मुखका विस्तार अष्टकला, कर्ण द्विगोलक, हनुदेश सात अंगुल, मुखमें दो अंगुल, ग्रीवा सात अंगुल, दोनों दांत ईषद्वक्र, नासिकाग्रभाग गोल हो, दोनों नेत्र एक अंगुल परिमाण, सुन्दर सुगन्धयुक्त हुआ, दोनों कान दो अंगुल समान होने चाहिये। कंधेका परिमाण चार कला और उसकी ऊंचाई दो कला होगी। पीठ आठ अंगुल, ऊंचाई नेत्रके समान, अवशिष्ट सभी अंग मूर्त्तिदेहके समान होंगे। केवलमात्र भू-वराहदेवके चरण चार हुए हैं। वराह अपनी बाहुसे वसुन्धराको धारण कर अवस्थित हैं। इनके वाम भागमें शङ्ख और पद्म, दक्षिण भागमें गदा और चक्र है। इस प्रकार वराहदेवकी मूर्त्ति प्रतिष्ठा करनेसे समस्त पाप दूर होता है तथा इस लोकमें तरह तरहका सुख सम्पद् प्राप्त होती है।

वराह (सं० पु०) वरान् आहन्ति वर-आ-हन-ड। पशुविशेष। पर्याय—शूकर, घृष्टि, कोल, पोत्री, किरि, किटि, दंष्ट्री, घोणी, स्तब्धरोमा, क्रोड़, भूदार, किर, मुखलाङ्गल, गृष्टि, स्थूलनासिक, दन्तायुध, वक्रदंष्ट्र, दंष्ट्रायुध, भूक्षित्, भूदन्, बहु। (शब्दरत्नाकर) इसके मांसका गुण—वातनाशक, श्रमनाशक, बलपुष्टिकारक, वीर्यवर्द्धक। ग्राम्य वराहके मांसका गुण—मेद, बल और वीर्यवर्द्धक। (राजनि०)

इसका मांस हिन्दुओंका खाद्य नहीं है। आयुर्वेदमें इसका गुणदोष सभी वर्णन किया है। किन्तु वराहके देवता भगवान्‌के सम्बन्ध होने पर भी ग्राम्य वराहका मांस अभक्ष्य माना गया है। वराहका मांस खा कर भी हिन्दुओंको पूजा नहीं कर सकते, उसका मांस खानेसे अधोगति होती है। वराहका मांस खानेवाला वराहयोनिमें जन्म ले कर १० वर्ष तक जंगलोंमें मारा मारा फिरता है। इसके बाद वह व्याध हो कर ७ वर्ष, कृमि रूपमें ७ वर्ष, गृहकी योनिमें १४ वर्ष, शृगालका शरीर धारण कर १५ वर्ष, यहां बाधक जन्तु बन कर ८ वर्ष, फिर व्याध हो कर ३० वर्ष तक जीवन बिताता है। इसके बाद वराह-मांस ग्रहण करनेका पाप मिटता है।

भूल कर वराहका मांस खा लेनेसे उसका प्रायश्चित्त करना पड़ता है। प्रायश्चित्तका विषय इस तरहसे लिखा है। पहले पांच दिनों तक गोबर भोजन, पीछे ७ दिन पायसका कण खा कर एवं सात दिन केवल जलपान करके रहना पड़ता है। इसके बाद ७ दिनों तक यज्ञावशिष्टभोजन, तीन दिन सत्तू भोजन, ७ दिन तिलभोजन, सात दिन पायसभोजन, फिर ७ दिनों तक सिर्फ दुग्धपान, इस तरहसे ५६ दिनों तक आहार संयम तथा जितेन्द्रिय हो कर रहनेसे वह पाप दूर हो जाता है। इस तरह प्रायश्चित्त द्वारा पापमुक्त होनेसे वह विष्णुपूजाका अधिकारी हो सकता है। विष्णुभक्तोंके लिये वराहमांस खाना बिलकुल ही निषेध है, यहां तक कि, उन्हें किसी तरहके मांस भक्षण एवं मद्यादिका व्यवहार नहीं करना चाहिये।

जंगली वराहका मांस श्राद्धादिमें भोजन कराना लिखा है। श्राद्धमें जंगली वराहके मांससे ब्राह्मण भोजन कराया जा सकता है, इससे पाप नहीं होता। विष्णुकी उपासना करनेवाले भूल कर भी इस मांसका ग्रहण न करें।

इस पशुओंके जीवनकी आलोचना करनेवाले प्राणितत्त्वविदोंने Suidae नामक पशुका ही एक अंग कल्पना किया है। जंगली तथा पालतू भेदसे वराह भी दो भागोंमें विभक्त है। अंग्रेजीमें जंगली वराहको Sus Indicus (wild boar) तथा स्त्री वराहको Swine कहते हैं। शूकर आदि भी इसी श्रेणीके अन्तर्गत हैं, किन्तु शूकर वराहकी अपेक्षा कुछ छोटा होता है। साधारणतः अंग्रेजों का पालतू सभी वराह शूकरके नामसे प्रसिद्ध हैं। इस श्रेणीके किसी भी पशुओंको भी दांत नहीं दिखते। यह बहुतेरे जानवर है,

इसके चारों पावोंमें खुर होते हैं। जंगली वराहोंके दांत हाथीकी तरह बाहर निकले होते हैं, किन्तु उसके कुछ छोटे होते हैं। दन्तविहीन वराह ही प्रधानतः शूकर कहलाता है।

भारतके कई स्थानोंमें एवं यूरोपमें जिस तरहके वराह देखे जाते हैं, उनकी अपेक्षा भारतीय द्वीपोंके शूकर कहीं छोटे होते हैं। जंगली वराह प्रायः दिनके समय जंगलमें छिपे रहते हैं एवं रात्रिमें अन्धेरा हो जाने पर अपने अपने आश्रय स्थानका परित्याग करके बाहर निकलते हैं और निकटवर्त्ती ग्रामोंके अनाजसे भरे हुए खेतोंमें घुस कर मनमाना अनाज खा कर पेट भर लेते हैं। वराह खेतमें प्रवेश करके वहांकी मिट्टी उखेल डालते हैं, जिससे अनाजके पौदे बहुत नष्ट हो जाते हैं एवं काफी अनाजके उत्पन्न होनेमें आघात पहुंचता है। कहीं कहीं वराह मिट्टी खोद कर मानकच्चू, आलू इत्यादि कन्द खा जाते हैं। जिस स्थानमें इन सब अङ्कुर आदिका अभाव रहता है एवं जहां उन्हें इच्छानुसार कन्दमूल खानेको नहीं मिलते, वहां वे मरे हुए ऊंट आदि पशुओंके मांससे भी अपने पेटकी अग्नि बुझाते हैं। भूखसे अत्यन्त पीड़ित होनेसे वे निकटवर्त्ती ग्रामोंमें जा कर ग्रामवासियोंके फेंके हुए कूड़े कर्कटसे अपना खाद्य पदार्थ निकाल कर उदरपोषण करते हैं। मानव विष्ठामें भी उनकी विलक्षण रुचि देखी जाती है।

एशियाके कई एक स्थानोंमें भिन्न भिन्न प्रकारके वन्यवराह देखे जाते हैं। प्राणितत्त्वविदोंने उन्हें सात श्रेणियोंमें विभक्त किया है। वे कहते हैं कि भारतीय वन्यवराहकी एक शाखा जो इस समय यूरोप तथा उत्तर-अफ्रिकामें फैल गई है एवं हिन्दुस्तानके बीच जिसके अनुरूप वराह जाति विद्यमान है, उसे यूरोपीय समाज 'चाइनीज ब्रीड' (Chinese breed)-के नामसे पुकारते हैं। विभिन्न शाखायुक्त होने पर भी यह शूकरजाति देश-भेदानुसार भिन्न भिन्न नामसे परिचित है। नीचे विभिन्न देशीय नाम तथा उनकी जातिगत पृथकता निर्देश की गई है—

विभिन्न देशीय नाम,— अरबी तथा पारसी—खान्जिर, खानकर; संस्कृत तथा बङ्गला—वराह; कनाड़ी—हण्डी, सिक्का, जेवाड़ी; डेनमार्क—Svun; ओलन्दाज—Varken, Zwijn; फरासी—Verrat, Cochon. Pourceau; जर्मन—Eber, Schwein; गोंड—पद्दी; ग्रीक—Choiros; हिन्दी—सूअर, बनैला सूअर; इटली तथा पुर्त्तगाल—Verro, Porco; लैटिन—Sus porcus;—मलय—बवि, बवि आलस, बविउटान; महाराष्ट्र—डुकर; रूस—Svinza; स्पेन—Verraco, Puerco; स्वाडेन—svin; तेलगू—आदावि-कोकु, पण्डि; वेल्स—Hweh Hweh; हिब्रु—हाजिर, छजिर; शिङ्गापुर—बलुर।

एशियाके कई स्थानोंमें एवं भारत-समीपवर्त्ती कितने ही देशोंमें जो विभिन्न श्रेणी देखी जाती हैं, वे साधारणतः ७ भागोंमें विभक्त हैं। इन सातों शाखाओंका संक्षिप्त विवरण नीचे दिया जाता है—

sus-Indicus या S scrofa भारतीय साधारण वन्यवराह—जर्मनीके वन्यवराहसे इस जातिकी बहुत पृथकता है, किन्तु उससे इनकी एक स्वतन्त्र शाखा कायम नहीं की जा सकती। भारतीय वराहोंका मस्तक बड़ा तथा कोनाकार एवं कपाल चिपटा होता है, किन्तु यूरोपीय वराहके कुबड़े। भारतीय वराहके कान छोटे तथा नुकीले और पाश्चात्य वराहोंके बड़े तथा नीचेकी ओर झुके होते हैं। भारतीय वराह बड़ और तीव्र चालवाले होते हैं, किन्तु जर्मन देशीय वराह बड़े होने पर भी उतनी तेजीसे दौड़ नहीं सकते। इन दोनों देशोंके वन्यवराहोंको छोड़ कर पालतू वराहोंके मध्य भी कितने ही विषयोंमें इस तरहकी पृथकता देखी जाती है।

भारतमें उक्त श्रेणीके वराह ही प्रधान हैं। बङ्गालके कई स्थानोंमें इस श्रेणीके वराह देखे जाते हैं। जब भोजनकी खोजमें वराहसमूह जङ्गलसे निकल कर ग्राममें प्रवेश करते हैं, तब ग्रामवासी दन्ताघातसे आहत होनेके भयसे सशंकित हो उठते हैं और सबके सब एकत्र हो कर उन्हें मारनेको तैयारी करते हैं। देहाती लोग जङ्गलमें जा कर कुत्तेकी सहायतासे वराहोंका शिकार करते हैं, किन्तु यूरोपीय शिकारी प्रधानतः घोड़े पर सवार हो कर

बहुधा हाथमें लिये हुए शिकारको छोड़ते हैं। इसे अङ्गरेजोंमें Pig-sticking कहते हैं।

प्राणितत्त्वविदोंकी धारणा है, कि इस श्रेणीके वराहके यौगिकेतावश इन्होंसे यूरोप तथा अफ्रिकाके शूकरकुलकी उत्पत्ति हुई है। उत्तर पश्चिम भारतमें इस श्रेणीका शूकर कभी भी ३६ इञ्चसे बड़ा देखा नहीं जाता, किन्तु यहांपर साधारणतः ४० इञ्च पर्यन्त बड़ा होता है। रोमराज्यमें जितने शूकर देखे जाते हैं, वे प्रधानतः चीन, कोचीन-चीन तथा श्यामराज्यजात वन्योंसे उत्पन्न हुए हैं। अल्जीरिया, इटली, तुर्क, स्विटजरलैण्ड तथा हालैण्ड एवं यूरोपके शूकर इस शाखाके ही अन्तर्भुक्त हैं। बङ्गालमें एक दूसरी श्रेणीके शूकर (S. Bengalensis) पाये जाते हैं। पूर्वोक्त श्रेणीके साथ इस श्रेणीकी शारीरिक गठनमें बहुत ही अन्तर देखा जाता है। अण्डामन द्वीपके शूकरसमूह S. Andamensis एवं मलयप्रायद्वीप तथा उसके समीपवर्ती स्थानजात शूकरवंश S. Malayensis नामसे विख्यात है। जावा द्वीपके कई स्थानोंमें S. verrucosus श्रेणीके शूकर पाये जाते हैं। इसके दोनों कपोलोंका पार्श्वस्थ मांसपिण्ड अपेक्षाकृत स्थूल तथा दीर्घ होता है, मुखाकृति देखते ही इसमें भयका संचार होता है; किन्तु दूसरी दूसरी वराह श्रेणियों की अपेक्षा ये स्वभावतः भीरु होते हैं। सिंहल, बार्नियो प्रभृति द्वीपोंकी S. barbatus श्रेणीके शूकर S. Indicus से भांति बिलकुल विभिन्न होते हैं। बार्नियो द्वीपवासी लोगोंकी स्थूलता तथा अन्यान्य अंग प्रत्यंगकी पृथक्ता देख कर मि० ग्रेने S. Zeylanensis नामक एक दूसरी शाखाका उल्लेख किया है। न्यूगिनीद्वीपजात वराह S. Papuensis नामसे पुकारे जाते हैं। दक्षिण आफ्रिकाके अरण्यमें एक प्रकारके छोटे शूकर देखे जाते हैं। देशी लोग उन्हें छोटे शूकर या स्थानीय नामसे पुकारते हैं। वे अनाहार रहमें दुर्बल हो कर वास करते हैं। उसके पुत्र शूकर स्वभावतः इनकी रक्षा करते हैं। Guinea-pig नामक एक और भी शूकर जाति देखी जाती है। ये शूकर बहुत ही छोटे होते हैं। ये स्वभावतः निर्जीवसे दांतसे खाद्य वस्तु पकड़ एवं दूसरी झाड़ी हुए मैदानमें वास करते हैं एवं मूल कन्द आदि खा कर जीवन धारण करते हैं।

जापान तथा फर्मोसा द्वीपमें Sus leucomystax नामक और भी एक श्रेणीके शूकर देखे जाते हैं। इसके अलावे जापानमें एक दूसरी जातिके विलक्षण नाक लम्बे लम्बे सिरवाले शूकर होते हैं। प्राणितत्त्वविदोंने उन्हें S. pliciceps नामाभूक्त किया है। इनके कानके चमड़े लम्बे, मोटे तथा सिकुड़े हुए होते हैं। अङ्गरेजोंमें इन्हें masked pig कहते हैं। अफ्रिकामें भी Masked Boar का अभाव नहीं है।

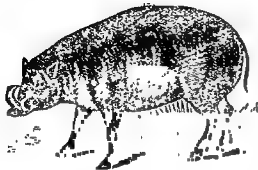
प्राणितत्त्वविद् F. Cuvier ने विशेष पर्यवेक्षण करके Babirussa नामक एक दूसरी वराहश्रेणीका उल्लेख किया है। उन्होंने मलय भाषाके 'बबि' शब्दसे वराह और 'रूसा' शब्दसे हरिण ग्रहण करके, इन दोनों शब्दोंके मध्य इस श्रेणीका नामकरण किया है। साधारण Sus scrofa से इस श्रेणीके कई विषयोंमें पृथक्ता देखी जाती है। नीचे उक्त दोनों श्रेणीकी दन्तपंक्ति लिखी गई है—

S. scrofa—कर्त्तक $\frac{६}{६}$, छेदक $\frac{१—१}{१—१}$, चर्वण $\frac{७—७}{७—७}$=४४, किन्तु Babirussa वराहमें—कर्त्तक $\frac{४}{६}$, छेदक $\frac{१—१}{१—१}$ चर्वण $\frac{५—५}{५—५}$=३२।

सेलेबिस द्वीपके किसी किसी अंशमें, बोरु द्वीपमें एवं सिलेबस तथा टार्नेट द्वीपोंमें B. alfurus नामके वराह देखे जाते हैं। इनके शरीर अत्यन्त स्थूलकाय, किन्तु चारों पैर अपेक्षाकृत पतले होते हैं। इनके शरीर पर रोएं नहीं होते। ये धूसरवर्णके होते हैं। इनके ऊपरके बड़े बड़े दांत मुखगह्वरसे ऊपर उठ कर घूमाव लिये आंखें की ओर झुकते हुए पुनः मुखके ऊपरी भागको स्पर्श करते हैं। इसके नीचे और भी दो छोटे छोटे दांत होते हैं। स्त्री वराहोंके दांत अपेक्षाकृत छोटे होते हैं। किसी किसी को तो बिलकुल ही नहीं होते। इस जातिके एक पुरुषवराहका चित्र दूसरे पृष्ठमें दिया गया है।

भारतीय प्रोशवासियोंका विश्वास है कि, यह वराह भी छोटे हरिण और वराहोंके योगसे उत्पन्न हुए हैं। वे लोग एवं द्वीपवासी विदेशी व्यापारी लोग बड़े आनन्द के साथ इनका मांस खाते हैं। इनके शरीरका स्वाद अच्छा

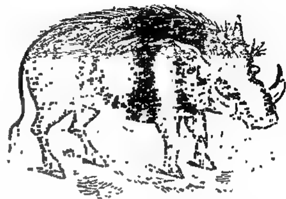
होता है। ये अपने छोटे छोटे दाँतोंसे शत्रुओं पर आक्रमण करके उन्हें घायल तो कर सकते हैं, किन्तु भारतीय बड़े बड़े दाँतवाले वराहके समान भयङ्कर नहीं होते। इनके बड़े दाँत विशेष कार्यकारी नहीं होते। जिस समय ये तेजीके साथ घने जंगलमें प्रवेश करते हैं, उस समय ये दाँत लता गुल्मोंको हटा कर इनकी आँखोंकी रक्षामात्र करते हैं॥



Phacochœrus और Aeliani P, Aethiopicus नामक काले रंगके बड़े बड़े दाँतवाले एवं स्थूलमुखो दो प्रकारके वराह देखे जाते हैं; उनमें प्रथमोक्त श्रेणीको अपेक्षा शेषोक्त श्रेणीके वराह बड़े और भयंकर मुख वाले होते हैं। अङ्गरेजोंमें इस श्रेणीको Wart-hog कहते हैं। इनकी दन्तपंक्ति दूसरी तरहकी होती है। इनके दोनों बड़े दाँत मुखके पार्श्व भागमें फैले हुए रहते हैं। इनके ऊपरके दो कर्त्तन-दन्त शिथिल होते हैं, किन्तु नीचेके छः दाँत छोटे और सरल। बड़े दाँत सरल और कुछ ऊपरकी ओर झुके हुए, किन्तु अन्यान्य सभी प्रकारके वराहोंको अपेक्षा बड़े और मोटे होते हैं। दोनों गाल मांससे भरे हुए एवं स्थूल पिंडवत् (Wart), पूंछ छोटी एवं पाँव भारतीय वराहोंकी तरह मजबूत होते हैं। इनकी पीठ सख्त और लम्बे लम्बे बालोंसे आच्छादित रहती है। इनके दाँतोंकी पंक्ति—

कर्त्तक $\frac{२ \text{ या } ०}{६ \text{ या } ०}$, शौवन $\frac{१—१}{१—१}$, चर्वन $\frac{३—३}{३—३}$=६ या २४।

कुभियेरका कहना है, कि केपकोलनी (Cape Colony) में जो वार्ट हाग् देखे जाते हैं, उनकी ऊपरी तथा नीचेकी दाढ़ोंमें तीन चर्व्वणदन्त होते हैं। इसके अतिरिक्त P. Aeliani और Aape Wart hogमें और भी कई विषयोंकी विभिन्नता देखी जाती है। नीचे अफ्रिकाके स्थूलमुख वराह (P. Aeliani) का चित्र दिया गया है—



दक्षिण अमेरिकाके आर्कन्सस्से ले कर ब्रेजिल पर्यन्त विस्तीर्ण भूखण्डमें एक श्रेणीके छोटे शूकर (Dicotyles) देखे जाते हैं उनमें जिनके गलेमें सादा दाग होता है, वे D torquatus और जिनके ओंठ उजले होते हैं, वे D. labiatus कहलाते हैं। अंग्रेजोंमें प्रथमोक्त श्रेणीके वराहको the Coloured Peccary एवं शेषोक्त श्रेणीको The white lipped Peccary कहते हैं। मेक्सिको तथा वेस्ट इण्डियाके द्वीपोंमें जो शूकर देखे जाते हैं, वे प्रथमोक्त श्रेणीके अन्तर्गत है, वे कितने विषयोंमें भारतीय Sus श्रेणीके वराहोंसे मिलते जुलते हैं, सिर्फ पाँव, दाँत और शारीरिक गठनमें कुछ अन्तर रहता है। इनकी हथेली हड्डी (Metacarpus) तथा तलवेकी हड्डी (Metatarsus) परस्पर मिली रहती है।

इस श्रेणीके वराहकी कमरके ऊपर एक छेद रहता है, जिससे सब्वदा एक प्रकारका दुर्गन्धमय रस निकलता रहता है।

D, torquatus तथा D, labiatus श्रेणीके शूकर एक साथ दल बाँध कर घूमने निकलते हैं। कभी कभी एक एक दलमें सैकड़ों वराह देखे जाते हैं। सज्जित सेनाकी तरह ये कतार बाँध कर चलते हैं और एक या अधिक वराह उनके नेता बन कर आगे आगे चलते हैं। सामनेमें नदी या खाई इत्यादि देख कर वे किनारे पर ठहर जाते हैं। इसके बाद वे थोड़ी देर तक सोच विचार कर एक एक करके नदीके गर्भमें

वराहकल्प (सं० पु०) एक कल्पका नाम। इस कल्पमें भगवान्‌ने वराहमूर्त्ति धारण की थी।

वराहकवच—धारणीय मन्त्रौषधविशेष। स्कन्दपुराणमें इसका उल्लेख है।

वराहकान्ता (सं० स्त्री०) वराहस्य कान्ता प्रिया। वाराही-वृक्ष।

वराहकालिन् (सं० पु०) सूर्य्यमणि पुष्पवृक्ष। पर्याय—सूर्यावर्त्ता।

वराहकाली (सं० स्त्री०) आदित्यभक्ता, हुरहुर।

वराहक्रान्ता (सं० स्त्री०) वराहेण क्रान्ता। अतिप्रियत्वात्। १ क्षुपविशेष, लजालू। पर्याय—लज्जालु, समङ्गा, लजकारिका, वराहनामा, वद्रा, शूकरी, तिक्तगन्धिका, नमस्कारी, गण्डकाली, खादिरी, लज्जालुका, अञ्जलिकारिका, कृताञ्जलि, गण्डकारी, समोच्छरा। २ वाराही।

वराहग्राम—बम्बई प्रेसिडेन्सीके बेलगांव जिलान्तर्गत एक गण्डग्राम।

वराहतीर्थ—एक तीर्थका नाम (कूर्मपु०)

वराहदंष्ट्र (सं० पु०) क्षुद्ररोगविशेष, वराहदन्त।

वराहदन्त (सं० स्त्री०) वराहदन्त।

वराहदत्त—वणिक्भेद। (कथासरित्सा० ३७।१००)

वराहदन्त (सं० त्रि०) १ वराहदन्तविशिष्ट, जिसके दांत वराहके दांतके समान हों। (पु०) २ वराहका दांत।

वराहदेव स्वामी—गृह्यसूत्रव्याख्याके रचयिता।

वराहद्वादशी (सं० स्त्री०) वह कृत्य जो माघ मासकी शुक्ला द्वादशीमें वराहरूपी विष्णुके लिये किया जाय।

वराहद्वीप (सं० क्ली०) एक द्वीपका नाम। वराह देखो।

वराहनगर—बङ्गालके २४-परगनेके अन्तर्गत एक प्राचीन और प्रसिद्ध नगर। यह गङ्गानदीके बायें किनारे अवस्थित है। यह स्थान पहले वाणिज्य-प्रधान था। गङ्गाभक्ति-तरङ्गिणी आदि प्राचीन ग्रन्थोंमें इसका उल्लेख आया है। यहां पहले करघेकी धोतीका जोरों वाणिज्य चलता था, अभी उतना नहीं है। पहले ओलन्दाज वणिकों की यहां एक कोठी थी। चुंचड़ा आनेके समय ओलन्दाज सौदागरी जहाज यहीं पर लंगर डाल कर रहता था।

इस नगरका जो वराहनगर नाम पड़ा है, इस विषयमें बहुत-सी किंवदन्तियां सुनी जाती हैं। उस समयके एक कागज-पत्रमें लिखा है, कि ओलन्दाजगण यहां वराहको हत्या किया करते थे, इसी कारण इस स्थानका वराहनगर नाम पड़ा है। स्थानीय किंवदन्ती है, कि विष्णुको वराहमूर्त्तिसे यह स्थान देव-नाम पर कीर्तित हुआ है। फिर बहुतोंका कहना है, कि यहां एक दस्यु-सरदार रहता था। उसने वराह अवतारके उद्देश्यसे इस नगरको बसाया। जो हो, वराहनगरका स्थान और नाम नितान्त आधुनिक नहीं है। महाप्रभु चैतन्यदेवने आ कर यहां भागवताचार्य पर दया की थी। आज भी वराहनगरमें भागवताचार्यका आसन है। भागवताचार्य देखो।

यहांके ओलन्दाज कार्तिनिदर्शन-स्वरूप आज भी अनेक स्खलित खपड़ेके टूटे फूटे टुकड़े नजर आते हैं। १७९५ ई०में ओलन्दाज गवर्मेण्टने यह स्थान अंगरेजोंके हाथ सौंप दिया। ओलन्दाजोंके आनेसे पहले यहां एक पुर्त्तगीज उपनिवेश स्थापित हुआ था। अंगरेजी शासनमें यहां म्युनिसपलिटी स्थापित हुई है जो 'नार्थसुवर्बन म्युनिसपलिटी आव कलकत्ता' नामसे प्रसिद्ध है। यहां गङ्गाके किनारे अनेक धनी और वणिकोंके बागान हैं। कई एक देवालय भी गङ्गा-तटकी शोभा बढ़ा रहे हैं। आलमबाजारकी रेंड़ी तेलकी कल और उसका वाणिज्य तथा बोर्नियो कम्पनीकी चटकल यहांका प्रसिद्ध वाणिज्य-केन्द्र है। आलमबाजारके उत्तर सुप्रसिद्ध दक्षिणेश्वरका काली-भवन है। पूज्यपाद परमहंस रामकृष्णदेव यहां रहते थे।

वराहनामन् (सं० पु०) वराहस्य नामेव नाम यस्य वाराहीकन्द।

वराहनिर्यूह (सं० पु०) वराहमांसरस, वराहके मांसका शोरबा।

वराह पण्डित—प्रयोगसंग्रहविवेक नामक व्याकरणके रचयिता।

वराहपत्री (सं० स्त्री०) अश्वगन्धा, असगंध।

वराहपित्त (सं० क्ली०) शूकरपित्त। इसके शोधनेका तरीका—शूकरपित्तको सुखा लेने पर पीछे नीमके रसमें भावना देनेसे एक दिनमें ही विशुद्ध हो जाता है। मछली आदिका भी पित्त इसी प्रकार शोधा जाता है।

मत्स्यपित्त देखो।

[illegible] साफ कर नहीं पान करते हैं एवं पुनः सुरक्षित स्थानकी तरह कतार बाँध कर अपने गन्तव्य पथकी ओर अग्रसर होते हैं। यदि रास्तेमें कोई अनाजसे भरा हुआ खेत दिखाई पड़ता है, तो ये सैनिकोंकी तरह उसको समूल नष्ट करके किसानके परिश्रमका सर्वनाश कर डालते हैं। जब चलते समय किसी प्रकारकी अस्वाभाविक घटना होनेसे ये चकित हो उठते हैं एवं भयसे विह्वल हो कर ये अपने अपने दाँतोंको कटकटा कर उस भयावनी वस्तुको देखनेकी प्रतीक्षा करते हैं। जब उनको कोई कारण दृष्टिगोचर नहीं होता तब शीघ्र ही उस स्थानका परित्याग करके दूसरी ओरको गमन करते हैं। यदि कोई शिकारी ऐसे समय उनके सामने आ जाय तो ये उन्हें चारों ओरसे घेर कर अपने तीखे दाँतोंके आघातसे टुकड़े टुकड़े कर डालते हैं। O. Labiatus वराह साधारणतः ३से ३॥ फीट तक लम्बा एवं १०० पौंड भारी होता है, किन्तु P. torquatus वराह ३ फीटसे अधिक लम्बा तथा ५० पौंडसे अधिक भारी नहीं होता। रिजेंट पार्कके चिड़ियाखानेमें Choeropotamus Africanus नामक और भी एक प्रकारका वराह रखा गया है।

बहुत प्राचीनकालसे ही संसारमें वराहका शिकार पाया जाता है। हिन्दू शास्त्रमें विष्णुके तृतीय अवतारमें वराहमूर्ति धारण करने और पृथ्वीके उद्धार करनेकी कथा वहाँ ही वर्णन की गई है। इनको देखो।

पुरावृत्तकी आलोचना करनेसे जाना जाता है कि, हार्डिवाकि भूस्तरविज्ञ जानकारोंके शरीरकी हड्डियोंके मध्य प्राचीनतम युगके द्वितीय विभागमें तथा प्लिओसिन युगके तृतीय और चतुर्थ विभागमें वराहका अस्थिकङ्काल पाया जाता है। ग्रीक जातियोंके इतिहासमें भी हाक्यॉन देवके वर्णित वराहका उल्लेख है। ओलम्पियाके एक स्थानमें ४४०० वर्ष पहलेके वराहका वृत्तान्त लिखा हुआ है। मनुसंहितामें भी वराह मांसकी निषिद्धविधि लिखी है। महाभारतमें वराहके आकारसे स्तम्भोंमें जैसा रचना किया हुई है। मुसलमान अंग्रेजसंयोग राजसिंह लोग वराहमांसका व्यवहार करते थे। इस शासनकालमें मारते हुई कर्तुम्पुराणोंमें वराहके लिए कर्तुम रहते थे। यह कर्तुम्पुर कहलाती थी। भारतीय राजपूत भारतीय वसन्तकी महोत्सवमें मत्त हो कर जंगली वराहों का शिकार करते थे। इस दिन वे प्रातःकाल और घर छोड़ कर वराहका शिकार करने जंगलमें जाते थे; वराहका शिकार न कर सकने पर राजपूत-जातिका अमङ्गल होगा, ऐसी ही इन लोगोंकी धारणा थी। इस दिन घटनासे वे समझते थे कि, जगन्माता हमारे इन लोगों पर क्रुद्ध हो गई। राजपूत जातिके अंदर उत्सवमें भी गौरीके सामने वराहकी बलि चढ़ानेकी रीति है।

वसन्तकालमें वराह-शिकार शकजातियोंकी एक प्राचीन प्रथा है। ककेशसवासी जातियोंके मध्य वसन्त-ऋतुके समय "फिरा" देवीके महोत्सवमें वराहके बलि-प्रदानकी रीति देखी जाती है। उस देशके स्त्रीपुरुष इस महोत्सवके दिन मैदे तथा नाना प्रकारके मसालोंसे तैयार किये हुए वराहका मांस ग्रहण करते थे। इस तरह फारस देशमें भी नववर्षके प्रथम दिन "Go Chelie" (वराह) भून कर खानेकी प्रथा है। हेरोडोतसके विवरणोंमें मिस्रदेशवासियोंके मसालोंसे तैयार किये हुए सूअरमांस खानेका उल्लेख है।

भारतके पूर्वांश जातिके लोग सूअर पालते थे। वे लोग प्रत्येक पूजामें सूअरकी बलि देते थे। इसका मांस भी वे खाया करते थे। किन्तु उनके नेताने उन्हें राजपूतवंशी बना कर सूअर पालने तथा उसका मांस खानेसे रोका, अतः अब वे लोग इसका मांस ग्रहण नहीं करते।

वराह—एक अग्निवंशके प्रवर्तक। ये ब्राह्मणके राज्यपालक-शिष्य थे।

वराहक (सं० पु०) १ हीरक, हीरा। २ शिशुमार, सूँस।

वराहकन्द (सं० पु०) वराहप्रिया कन्द। वाराहीकन्द।

वराहकर्ण (सं० पु०) १ एक यक्षका नाम। २ एक प्रकारका बाण।

वराहकर्णिका (सं० स्त्री०) युद्धास्त्रभेद, प्राचीनका एक हथियार।

वराहकर्णी (सं० स्त्री०) अश्वगन्धा, असगंध। (Phy-salis flexuosa)

वराहकल्प (सं० पु०) एक कल्पका नाम। इस कल्पमें भगवान्‌ने वराहमूर्त्ति धारण की थी।

वराहकवच—धारणीय मन्त्रौषधविशेष। स्कन्दपुराणमें इसका उल्लेख है।

वराहकान्ता (सं० स्त्री०) वराहस्य कान्ता प्रिया। वाराही-वृक्ष।

वराहकालिन् (सं० पु०) सूर्यमणि पुष्पवृक्ष। पर्याय—सूर्यावर्त्त।

वराहकाली (सं० स्त्री०) आदित्यभक्ता, हुरहुर।

वराहक्रान्ता (सं० स्त्री०) वराहेण क्रान्ता। अतिप्रियत्वात्। १ क्षुपविशेष, लज्जालू। पर्याय—लज्जालु, समङ्गा, लज्जकारिका, वराहनामा, वदरा, शूकरी, तिकगन्धिका, नमस्कारी, गण्डकाली, खादिरी, लज्जालुका, अञ्जलिकारिका, कृताञ्जलि, गण्डकारी, समीच्छदा। २ वाराही।

वराहग्राम—बम्बई प्रेसिडेन्सीके बेलगांव जिलान्तर्गत एक गण्डग्राम।

वराहतीर्थ—एक तीर्थका नाम (कूर्मपु०)

वराहदंष्ट्र (सं० पु०) क्षुद्ररोगविशेष, वराहदन्त।

वराहदत् (सं० स्त्री०) वराहदन्त।

वराहदत्त—वणिकभेद। (कथासरित्सा० ३७।१००)

वराहदन्त (सं० त्रि०) १ वराहदन्तविशिष्ट, जिसके दांत वराहके दांतके समान हो। (पु०) २ वराहका दांत।

वराहदेव स्वामी—गृह्यसूत्रव्याख्याके रचयिता।

वराहद्वादशी (सं० स्त्री०) वह कृत्य जो माघ मासकी शुक्ला द्वादशीमें वराहरूपी विष्णुके लिये किया जाय।

वराहद्वीप (सं० क्ली०) एक द्वीपका नाम। वराह देखो।

वराहनगर—बङ्गालके २४-परगनेके अन्तर्गत एक प्राचीन और प्रसिद्ध नगर। यह गङ्गानदीके बायें किनारे अवस्थित है। यह स्थान पहले वाणिज्य-प्रधान था। गङ्गाभक्ति-तरङ्गिणी आदि प्राचीन ग्रन्थोंमें इसका उल्लेख आया है। यहां पहले करघेकी धोतीका जोरों वाणिज्य चलता था, अभी उतना नहीं है। पहले ओलन्दाज वणिकों को यहां एक कोठी थी। चुंचड़ा आनेके समय ओलन्दाज सौदागरी जहाज यहीं पर लंगर डाल कर रहता था।

इस नगरका जो वराहनगर नाम पड़ा है, इस विषयमें बहुत-सी किंवदन्तियां सुनी जाती हैं। उस समयके एक कागज-पत्रमें लिखा है, कि ओलन्दाजगण यहां वराहको हत्या किया करते थे, इसी कारण इस स्थानका वराहनगर नाम पड़ा है। स्थानीय किंवदन्ती है, कि विष्णुको वराहमूर्त्तिसे यह स्थान देव-नाम पर कीर्त्तित हुआ है। फिर बहुतोंका कहना है, कि यहां एक दस्यु-सरदार रहता था। उसने वराह अवतारके उद्देश्यसे इस नगरको बसाया। जो हो, वराहनगरका स्थान और नाम नितान्त आधुनिक नहीं है। महाप्रभु चैतन्यदेवने आ कर यहां भागवताचार्य पर दया की थी। आज भी वराहनगरमें भागवताचार्यका आसन है। भागवताचार्य देखो।

यहांके ओलन्दाज कीर्त्तिनिदर्शन-स्वरूप आज भी अनेक चित्रित खपड़ेके टूटे फूटे टुकड़े नजर आते हैं। १७९५ ई०में ओलन्दाज गवर्मेण्टने यह स्थान अंगरेजोंके हाथ सौंप दिया। ओलन्दाजोंके आनेसे पहले यहां एक पुर्त्तगीज उपनिवेश स्थापित हुआ था। अंगरेजी शासनमें यहां म्युनिसपलिटी स्थापित हुई है जो 'नार्थसुवर्वन म्युनिसपलिटी आव कलकत्ता' नामसे प्रसिद्ध है। यहां गङ्गाके किनारे अनेक धनी और वणिकोंके बागान हैं। कई एक देवालय भी गङ्गा-तटकी शोभा बढ़ा रहे हैं। आलमबाजारकी रेंड़ी तेलकी कल और उसका वाणिज्य तथा बोर्नियो कम्पनीकी चटकल यहांका प्रसिद्ध वाणिज्य-केन्द्र है। आलमबाजारके उत्तर सुप्रसिद्ध दक्षिणेश्वरका काली-भवन है। पूज्यपाद परमहंस रामकृष्णदेव यहां रहते थे।

वराहनामन् (सं० पु०) वराहस्य नामेव नाम यस्य वाराहीकन्द।

वराहनिर्यूह (सं० पु०) वराहमांसरस, वराहके मांसका शोरबा।

वराह पण्डित—प्रयोगसंग्रहविवेक नामक व्याकरणके रचयिता।

वराहपत्री (सं० स्त्री०) अश्वगन्धा, असगंध।

वराहपित्त (सं० क्ली०) शूकरपित्त। इसके शोधनेका तरीका—शूकरपित्तको सुखा लेने पर पीछे नीमके रसमें भावना देनेसे एक दिनमें ही विशुद्ध हो जाता है। मछली आदिका भी पित्त इसी प्रकार शोधा जाता है।

मत्स्यपित्त देखो।

वराहपुराण (सं॰ क्ली॰) अष्टादशोंमेंसे एक महापुराण।

वराहमूल (वराहमूलि)—काश्मीर जिलान्तर्गत एक पहाड़ और पुण्यस्थान। इस नामका एक नगर भी है।

वराहमांस (सं॰ क्ली॰) शूकरमांस, शूकरका गोश्त। भावप्रकाशके मतसे ... वराहके मांसका गुण गुरु, वातहर, वृष्य तथा बल और स्वेदकर और ग्रामीण वराहके मांसका गुण गुरु, स्निग्ध, बल और वीर्यवर्द्धक माना गया है।

वराहमिहिर—भारतवर्षमें जितने ज्योतिर्विदोंने जन्म लिया है, उनमें वराहमिहिरको ही सबसे सर्वप्रधान समझते हैं। सर्वसाधारणका विश्वास है, कि वराहमिहिर राजा विक्रमादित्यके नवरत्नोंमें एक थे।

बहुतोंका कहना है, कि रघुवंश, कुमारसम्भव आदिके प्रणेता कवि कालिदासने स्वयं ज्योतिर्विदाभरणकी रचना की है। अतएव वे वराहमिहिरके समसामयिक थे। प्रमाणके लिये बहुतोंने ज्योतिर्विदाभरणसे यह श्लोक भी उद्धृत किया है—

"वर्षैः सिन्धुरदर्शनाम्बरगुणैः (३०६८) याते कलौ सम्मिते।
मासे माधवसंज्ञिते च विहितो ग्रन्थक्रियोपक्रमः॥"

इस श्लोकानुसार ३०६८ गत कल्यब्दमें या विक्रम-संवत्‌में ज्योतिर्विदाभरणका रचनाकाल होता है। किन्तु नीचे ज्योतिर्विदाभरणके मध्य ही—

"शाके शराम्भोधियुगोनितो हतो मानं खतर्कैरयनांशकाः स्मृताः॥"

इत्यादि श्लोकमें ४४५ शकका उल्लेख है तथा "अस्या वराहमिहिरादिमते" इत्यादि प्रसङ्ग रहनेके कारण ज्योतिर्विदाभरणको ... समझते। यही नहीं, इस ग्रन्थके प्रमाणानुसार वराहमिहिरको नवरत्न ... नहीं कह सकते।

फिर कोई कोई नवरत्नोंके ... छोड़ते हैं और यह श्लोक उद्धृत करते हैं—

"धन्वन्तरिक्षपणकामरसिंहशङ्कु- ... [illegible]
... वराहमिहिरो ... [illegible]

धीर	[illegible]	[illegible]
[illegible]	[illegible]	[illegible]
[illegible]	[illegible]	

नामों या भास्कराचार्यको छोड़के इनका कोई चिह्न ही नहीं है।

फिर इनमेंसे किसीको छोड़कर कोई कोई बृहत् ज्योतिर्विद् निम्नलिखित वचनका पाठ किया करते हैं,—

"... [illegible]
... [illegible] ॥"
"... [illegible]
... [illegible] ॥"

अर्थात् ४४७ ... विक्रमादित्यके ... बीच मालवे आदित्यदासके औरसमें सूर्यके अंशसे वेदाङ्गनिपुण वराहमिहिरने जन्मग्रहण किया। दुःखका विषय है, कि यह श्लोक भी किसी प्राचीन ज्योतिर्ग्रन्थमें न रहनेके कारण विश्वासयोग्य नहीं है।*

अब देखना चाहिये, कि वराहमिहिरने अपने सम्बन्धमें कैसा परिचय दिया है। उनके बृहज्जातकके उपसंहाराध्यायमें लिखा है—

"आदित्यदासतनयस्तदवाप्तबोधः कापित्थके सवितृलब्धवरप्रसादः।
आवन्तिको मुनिमतान्यवलोक्य सम्यग्घोरां वराहमिहिरो रुचिरां चकार॥"

उक्त श्लोकानुसार वराहमिहिरके पिताका नाम आदित्यदास था। वे अवन्तीवासी थे। कापित्थ नामक स्थानमें उन्होंने सूर्यदेवको प्रसन्न कर वर लाभ किया था। पञ्चसिद्धान्तिकाके ... वराहमिहिरने लिखा है—

"सप्ताश्विवेदसंख्यं शककालमपास्य चैत्रशुक्लादौ।
अर्धास्तमिते भानौ यवनपुरे सौम्यदिवसाद्ये॥"

उक्त श्लोकके अनुसार ४२७ शकमें ... माना जाता है। ... ही ज्योतिर्विद्गण अनुमान किया करते हैं।

इस देशमें वराहमिहिर और उनके ... सम्बन्धमें अनेक गल्प प्रचलित हैं। कोई कोई उनको वराहमिहिरको ब्राह्मण, कोई ... और कोई ... कहते हैं। किन्तु

* महामहोपाध्याय सुधाकर द्विवेदी रचित "गणकतरङ्गिणी" ...

उन सब अनुमान वा प्रवादके मूलमें कुछ भी ऐतिहासिक सत्य है, मालूम नहीं होता।

वराहमिहिरने तत्पूर्ववर्त्ती पांच सिद्धान्तोंका आश्रय ले कर पञ्चसिद्धान्तिकाकी रचना की। उन पञ्चसिद्धान्त के नाम ये हैं—

'पौलिश-रोमक वासिष्ठ-सौर-पैतामहास्तु पञ्चसिद्धान्ताः।

पौलिश, रोमक, वासिष्ठ, सौर और पैतामह।

वासिष्ठ और पैतामह इन दोनों सिद्धान्तोंकी आलोचना करके ज्योतिःशास्त्रके इतिवृत्तलेखकगण उन्हें खृ० पूर्व १३वीं शताब्दीके सिद्धान्त मानते हैं। किन्तु पौलिश और रोमक इन दोनोंके नाम देख कर बहुतेरे अनुमान करते हैं, कि वराहमिहिरने प्राचीन पाश्चात्य ज्योतिषसे सहायता ली थी।

पौलिशसिद्धान्तमें यवनपुर वा आलेकजन्द्रियासे देशान्तर लिया गया है। फिर इधर रोमकसिद्धान्तमें गत दिनसंख्याका निर्णय करनेके लिये यवनपुरका मध्याह्न माना गया है (१)।

प्रसिद्ध मुसलमान पण्डित अलबीरुणीने लिखा है, कि पौलिशसिद्धान्त यूनानीके पौलसकी रचना है। तदनुसार कोई कोई अनुमान करते हैं, कि ग्रीक भाषामें Paulus Alexandrinus-का जो ज्योतिग्रन्थ है, पौलिश-सिद्धान्त उसीका संस्कृत अनुवाद है, किन्तु जिन्होंने उक्त ग्रीकग्रन्थ मिला कर देखा है वे कहते हैं, कि ग्रीक ग्रन्थके साथ उसका कुछ भी मेल नहीं खाता। विशेषतः पौलिशसिद्धान्त एक नहीं था। ब्रह्मसिद्धान्तके टीकाकार पृथूदक और भट्टोत्पलने पौलिशसिद्धान्तसे कुछ श्लोक उद्धृत किये हैं। उन सब श्लोकोंके साथ पञ्चसिद्धान्तिकाके अन्तर्गत पौलिशसिद्धान्तकी कुछ भी एकता नहीं है सौर और आर्यभटसिद्धान्तके मतके साथ मेल भले ही खाता है।

रोमकसिद्धान्त नाम सुन कर भी बहुतोंने स्थिर किया है, कि आलेकजन्द्रियाके प्रसिद्ध ज्योतिर्विद् टलेमीके मूल ग्रन्थके आधार पर संस्कृत भाषामें रोमकसिद्धान्त रचा गया था। किन्तु ब्रह्मगुप्तका ब्रह्मसिद्धान्त पढ़नेसे वैसा मालूम नहीं होता। लाट, वशिष्ठ, विजयनन्दी और आर्यभट इन चारोंकी गणनाके आधार पर श्रीषेणने रोमकसिद्धान्तकी रचना की। भट्टोत्पल और अलबेरुणीने भी वैसा ही कहा है।

वराहमिहिरने जिन पांच सिद्धान्तोंकी आलोचना की हैं, उनमें सौर वा सूर्यसिद्धान्तकी समालोचना करके ज्योतिषियोंने साबित किया है, कि यह सिद्धान्त शकाब्दारम्भके समय सङ्कलित हुआ था। उसके पहले पौलिश और पौलिशके पहले रोमक सिद्धान्त रचा गया। ग्रीक ज्योतिषी हिपार्कस प्रायः ५० वर्ष पहले जीवित थे। उनका ग्रन्थ अभी नहीं मिलता। उनका परिदर्शन काल ले कर टलेमीने प्रायः १५० ई०में अपने ग्रन्थकी रचना की। उनके ग्रन्थके साथ रोमकसिद्धान्तका मेल नहीं है। इस हिसाबसे उनके बहुत पहले रचित रोमकसिद्धान्त हिपार्कसका ग्रन्थ देख कर सङ्कलित हुआ है ऐसा भी नहीं कह सकते।

परन्तु इतना जरूर कह सकते हैं, कि वराहमिहिरने यवनाचार्योंके मतकी भी उपेक्षा नहीं की वरन् उनका मत ग्रहण किया है। पञ्चसिद्धान्तिकाको छोड़ कर ये बृहत्संहिता, बृहज्जातक, लघुजातक आदि अनेक ज्योतिग्रन्थ भी रच गये हैं।

एतद्भिन्न आरूढ़जातक-कालचक्र, क्रियाकैरवचन्द्रिका, जातककलानिधि, जातकसरसी, जातकसार, वा लघुजातक, दैवज्ञवल्लभा, प्रश्नचन्द्रिका, बृहत्षट्वर्ग, बृहद्यात्रा, मयूरचित्रक, मुहूर्त्तग्रन्थ, योगयात्रा, योगार्णव, षट्पञ्चाशिका, सारावली और वराहमिहिरीय नामक कई ग्रन्थ इन्हींके बनाये हुए हैं।

वराहमुक्ता (सं० स्त्री०) मुक्ताभेद, एक प्रकारका मोती। जैसे—'गजमुक्ता' हाथीसे उत्पन्न मानी जाती है, वैसे ही यह सूअरसे उत्पन्न मानी जाती है। मुक्ता देखो।

वराहमूल (सं० क्ली०) काश्मीरका एक जनपद। यहां वराहरूपी विष्णुमूर्त्ति प्रतिष्ठित थी। काश्मीर देखो।

वराहयु (सं० त्रि०) वराह-इच्छुक, वह कुत्ता जो शूकराभिलाषी हो।

(१) "यवनाचरजा नाड्यः सप्तावन्त्यास्त्रिभागसंयुक्ताः।
वाराणस्यां त्रिकृतिः साधनमन्यत्र वक्ष्यामि ॥"
(पञ्चसिद्धान्तिका पौलिश)

वराहपुराण (सं० क्ली०) अष्टादशपुराणान्तर्गत एक महापुराण।

वराहमूल (वराहमूलि)—काश्मीर राज्यान्तर्गत एक ग्राम और पुलिस थाना। यहां [illegible] एक सराय भी है।

वराहशालि (सं० पु०) शूकरशालि, [illegible] धान। [illegible] वराहके [illegible] गुण, [illegible] तथा [illegible] और [illegible] वराहके मांसका गुण [illegible], [illegible] और [illegible] माना गया है।

वराहमिहिर—भारतवर्षमें जितने ज्योतिर्विदोंने जन्म लिया है, उनमें वराहमिहिरको ही सभी सर्वोत्तम समझते हैं। जनसाधारणका विश्वास है, कि वराहमिहिर राजा विक्रमादित्यके नवरत्नोंमेंसे एक थे।

बहुतोंका कहना है, कि रघुवंश, कुमारसम्भव आदिके प्रणेता कवि कालिदासने एक ज्योतिर्विदाभरणकी रचना की है। उसमें भी वराहमिहिरके नवरत्नमें थे। प्रमाणके लिये बहुतोंने ज्योतिर्विदाभरणसे यह श्लोक उद्धृत किया है—

“वर्षैः सिन्धुरदर्शनाम्बरगुणैः (३०६८) याते कलौ सम्मिते।
मासे माधवसंज्ञिते च विहितो ग्रन्थक्रियोपक्रमः॥”

इस श्लोकानुसार ३०६८ गत कलाब्दमें या विक्रमसंवत्‌में ज्योतिर्विदाभरणका रचनाकाल होता है, किन्तु पीछे ज्योतिर्विदाभरणमें कहा है—

“[illegible] वराहमिहिर [illegible] ॥”

इत्यादि [illegible] उल्लेख है तथा “अथवा वराहमिहिरादिकृति” इत्यादि प्रमाण रहनेके कारण ज्योतिर्विदाभरणको [illegible] वराहमिहिरको [illegible] नहीं कह सकते।

फिर कोई कोई अमरराजटीकाकार [illegible] दोहाई देकर यह वचन उद्धृत करते हैं—

“नवाधिकपञ्चशतसंख्यशाके वराहमिहिराचार्यो दिवं गतः॥”

[illegible] वराहमिहिरका [illegible] लिखते। [illegible] साहित्यके [illegible] ग्रन्थ [illegible] दिवंगत हुए हैं [illegible] उद्धृत किया है। किन्तु [illegible] विषय है, कि गुरु इसके [illegible] दोहाई देकर [illegible] कोई भी निश्चित हो नहीं है।

फिर [illegible] दोहाई देकर कोई कोई महाराष्ट्र ज्योतिर्विद् निम्नलिखित वचनका पाठ किया करते हैं,—

“स्वस्ति श्रीनृपसूर्यसूनुजशके याते द्विवेदाम्बर-
त्रैमानाब्दमिते त्वनेहसि जये वर्षे वसन्तादिके।
चैत्रे श्वेतदले शुभे वसुतिथावादित्यदासादभूद्
वेदाङ्गे निपुणो वराहमिहिरो विप्रो रवेराशिभिः॥”

अर्थात् ३०४२ युधिष्ठिरके शक या ७ विक्रमसंवत्‌के चैत्र मासकी शुक्लाष्टमीको आदित्यदासके औरससे सूर्यके आशीर्वादसे वेदाङ्गनिपुण वराहमिहिरने जन्मग्रहण किया। दुःखका विषय है, कि यह श्लोक भी किसी प्राचीन ग्रन्थमें नहीं रहनेके कारण विश्वासयोग्य नहीं है।

अब देखना चाहिये, कि वराहमिहिरने अपने सम्बन्धमें क्या परिचय दिया है। उन्होंने बृहज्जातकके उपसंहाराध्यायमें लिखा है—

“आदित्यदासतनयस्तदवाप्तबोधः कापित्थके सवितृलब्ध-
वरप्रसादः।
आवन्तिको मुनिमतान्यवलोक्य सम्यक् होरां वराहमिहिरो
रुचिरां चकार॥”

उक्त श्लोकानुसार वराहमिहिरके पिताका नाम आदित्यदास था। वे अवन्तीवासी थे। कापित्थ नामक स्थानमें उन्होंने सूर्यदेवसे वरप्राप्त कर यह ग्रन्थ लिखा था। पञ्चसिद्धान्तिकामें ग्रन्थरचनाके समयका निर्णय करते हुए वराहमिहिरने लिखा है—

“सप्ताश्विवेदसंख्यं शककालमपास्य चैत्रशुक्लादौ।
अर्धास्तमिते भानौ यवनपुरे सौम्यदिवसाद्ये॥”

इस श्लोकके अनुसार ४२७ शकमें ग्रन्थ [illegible] पाया जाता है। अतएव [illegible] ही ज्योतिर्विद्गण [illegible] किया करते हैं।

इस देशमें वराहमिहिर और उनके [illegible] अनेक [illegible] प्रचलित हैं। कोई कोई उनको वराहमिहिरको [illegible], कोई [illegible] और कोई [illegible] मानते हैं। किन्तु

---

* [illegible]

उन सब अनुमान या प्रवादके मूलमें कुछ भी ऐतिहासिक सत्य है, मालूम नहीं होता।

वराहमिहिरने तत्पूर्ववर्त्ती पांच सिद्धान्तोंका आश्रय ले कर पञ्चसिद्धान्तिकाकी रचना की। उन पञ्चसिद्धान्त के नाम ये हैं—

'पौलिश-रोमक वासिष्ठ-सौर-पैतामहास्तु पञ्चसिद्धान्ताः।

पौलिश, रोमक, वासिष्ठ, सौर और पैतामह।

वासिष्ठ और पैतामह इन दोनों सिद्धान्तोंकी आलोचना करके ज्योतिःशास्त्रके इतिवृत्तलेखकगण उन्हें खृ० पूर्व १३वीं शताब्दीके सिद्धान्त मानते हैं। किन्तु पौलिश और रोमक इन दोनोंके नाम देख कर बहुतेरे अनुमान करते हैं, कि वराहमिहिरने प्राचीन पाश्चात्य ज्योतिषसे सहायता ली थी।

पौलिशसिद्धान्तमें यवनपुर या आलेकजन्द्रियासे देशान्तर लिया गया है। फिर इधर रोमकसिद्धान्तमें गत दिनसंख्याका निर्णय करनेके लिये यवनपुरका मध्याह्न माना गया है (१)।

प्रसिद्ध मुसलमान पण्डित अल्बीरुणीने लिखा है, कि पौलिशसिद्धान्त यूनानीके पौलसकी रचना है। तदनुसार कोई कोई अनुमान करते हैं, कि ग्रीक भाषामें Paulus Alexandrinus-का जो ज्योतिर्ग्रन्थ है, पौलिश-सिद्धान्त उसीका संस्कृत अनुवाद है, किन्तु जिन्होंने उक्त ग्रीकग्रन्थ मिला कर देखा है वे कहते हैं, कि ग्रीक ग्रन्थके साथ उसका कुछ भी मेल नहीं खाता। विशेषतः पौलिशसिद्धान्त एक नहीं था। ब्रह्मसिद्धान्तके टीकाकार पृथूदक और भट्टोत्पलने पौलिशसिद्धान्तसे कुछ श्लोक उद्धृत किये हैं। उन सब श्लोकोंके साथ पञ्चसिद्धान्तिकाके अन्तर्गत पौलिशसिद्धान्तकी कुछ भी एकता नहीं है सौर और आर्यभटसिद्धान्तके मतके साथ मेल भले ही खाता है।

रोमकसिद्धान्त नाम सुन कर भी बहुतोंने स्थिर किया है, कि आलेकजन्द्रियाके प्रसिद्ध ज्योतिर्विद् टलेमीके मूल ग्रन्थके आधार पर संस्कृत भाषामें रोमकसिद्धान्त रचा गया था। किन्तु ब्रह्मगुप्तका ब्रह्मसिद्धान्त पढ़नेसे वैसा मालूम नहीं होता। लाट, वशिष्ठ, विजयनन्दी और आर्यभट इन चारोंकी गणनाके आधार पर श्रीषेणने रोमकसिद्धान्तकी रचना की। भट्टोत्पल और अलबेरुणीने भी वैसा ही कहा है।

वराहमिहिरने जिन पांच सिद्धान्तोंकी आलोचना की हैं, उनमें सौर या सूर्यसिद्धान्तकी समालोचना करके ज्योतिषियोंने साबित किया है, कि यह सिद्धान्त शकाब्दारम्भके समय सङ्कलित हुआ था। उसके पहले पौलिश और पौलिशके पहले रोमक सिद्धान्त रचा गया। ग्रीक ज्योतिषी हिपार्कस प्रायः ५० वर्ष पहले जीवित थे। उनका ग्रन्थ अभी नहीं मिलता। उनका पदिदर्शन काल ले कर टलेमीने प्रायः १५० ई०में अपने ग्रन्थकी रचना की। उनके ग्रन्थके साथ रोमकसिद्धान्तका मेल नहीं है। इस हिसाबसे उनके बहुत पहले रचित रोमकसिद्धान्त हिपार्कसका ग्रन्थ देख कर सङ्कलित हुआ है ऐसा भी नहीं कह सकते।

परन्तु इतना जरूर कह सकते हैं, कि वराहमिहिरने यवनाचार्यों के मतकी भी उपेक्षा नहीं की वरन् उनका मत ग्रहण किया है। पञ्चसिद्धान्तिकाको छोड़ कर ये वृहत्संहिता, वृहज्जातक, लघुजातक आदि अनेक ज्योतिर्ग्रन्थ भी रच गये हैं।

एतद्भिन्न आरूढ़जातक-कालचक्र, क्रियाकैरवचन्द्रिका, जातककलानिधि, जातकसरसी, जातकसार, या लघुजातक, दैवज्ञवल्लभा, प्रश्नचन्द्रिका, वृहद्दयर्ग, वृहद्यात्रा, मयूरचित्रक, मुहूर्त्तग्रन्थ, योगयात्रा, योगार्णव, षटर्पञ्चाशिका, सारावली और वराहमिहिरीय नामक कई ग्रन्थ इन्हींके बनाये हुए हैं।

वराहमुक्ता (सं० स्त्री०) मुक्ताभेद, एक प्रकारका मोती। जैसे—'गजमुक्ता' हाथीसे उत्पन्न मानी जाती है, वैसे ही यह सूअरसे उत्पन्न मानी जाती है। मुक्ता देखो।

वराहमूल (सं० क्ली०) काश्मीरका एक जनपद। यहां वराहरूपी विष्णुमूर्त्ति प्रतिष्ठित थी। काश्मीर देखो।

वराहयु (सं० त्रि०) वराह-इच्छुक, वह कुत्ता जो शूकराभिलाषी हो।

(१) "यवनाचरजा नाड्यः सप्तावन्त्यास्त्रिभागसंयुक्ताः।
वाराणस्यां त्रिकृतिः साधनमन्यत्र वक्ष्यामि॥"
(पञ्चसिद्धान्तिका पौलिश)

वराहवपु (सं० क्ली०) 'वराहवपुस्', वराहके समान।

वराहवसु (सं० पुं०) १ वराहकी देह। (त्रि०) २ वराहदेहधारी, जिसका शरीर वराहके समान हो।

वराहव्यूह (सं० पुं०) प्राचीनकालका एक प्रकारका व्यूह या सेनाकी रचना। इसमें सामनेका अगला और बीचका भाग चौड़ा रखा जाता था।

वराहक्षेत्र—उत्तराखण्डके अन्तर्गत।

वराहशिम्बी (सं० स्त्री०) शूकरशिम्बि, शिम्बी।

वराहशिला (सं० स्त्री०) एक विशिष्ट पवित्र शिला जो हिमालयके शिखर पर है।

वराहशृङ्ग (सं० पुं०) शिव।

वराहशैल (सं० पुं०) एक पर्वतका नाम।

वराहसंहिता (सं० स्त्री०) १ वराहमिहिर-विरचित ज्योतिःशास्त्रीय, बृहत्संहिता। २ बौद्धधर्मके सूत्रपिटकान्तर्गत एक पुस्तक।

वराहस्वामिन् (सं० पुं०) पौराणिक राजभेद।

वराहाङ्गी (सं० स्त्री०) दन्तीवृक्ष।

वराहाद्रि (सं० पुं०) वराहपर्वत।

वराहावतार (सं० पुं०) विष्णुका एक अवतार।
　　　　　　　　　　　　　वराह देखो।

वराहाश्व (सं० पुं०) एक दैत्यका नाम।

वराहिका (सं० स्त्री०) कपिकच्छु, केवाँच।

वराही (सं० स्त्री०) वराहो अस्त्यस्या इति वराह-अच् गौरादित्वात् ङीष्। १ अश्वगन्धा, असगंध। २ शूकरकन्द, वाराहीकन्द। ३ काकजंघा। ४ एक प्रकारका पक्षी जो गौरैयासे बड़ा और काले रंगका होता है। ५ मुस्ता, मोथा। ६ वाराही देखो।

वरिष्ठ (सं० त्रि०) १ प्रधान श्रेष्ठ, सबसे उत्तम। २ अत्यन्त गुरु, बहुत भारी। ३ अतिविस्तीर्ण।

वरिय—एक प्राचीन जाति।

वरियस् (सं० त्रि०) १ अत्यन्त उरुतर, बहुविस्तृत। २ अतिशय श्रेष्ठ।

वरिवस् (सं० पुं०) स्वायंभुव मन्वन्तरके सप्तर्षियोंमेंसे एक देवता।
　　　　　　　　　　　　　(हरिवंश)

वरिष्ठ (सं० त्रि०) १ विस्तृत, बड़ा भारी। २ प्रधान, श्रेष्ठ, सर्वश्रेष्ठ, वरिष्ठ।

बरिया—बम्बईप्रदेशके गुजरात प्रान्तके रेवाकांठा विभागके अन्तर्गत एक देशी राज्य। यह अक्षा० २२° २१' से २२° ५८' उ० तथा देशा० ७३° ४१' से ७४° १८' पू०के मध्य विस्तृत है। इसके पूर्व और पश्चिममें बम्बईप्रान्तीय पञ्चमहाल जिला, उत्तरमें सन्तरामपुर और लूनावाड़ा राज्य तथा दक्षिणमें छोटा उदयपुर है। इसका भूपरिमाण ८१३ वर्गमील है। इस राज्यका दक्षिण और पूर्वभाग पर्वतमय है तथा रतनपुर, दुधिया, … , … , … और रामपुर आदि ७ विभागोंमें यह विभक्त है। ये सब रेवाकांठा एजेन्सीके अधीन हैं। यहाँका जलवायु अच्छा नहीं है, इस कारण लोगोंको अक्सर रोग हुआ करता है। … यहाँकी प्रधान उपज … है।

यहाँके राजवंश चौहानवंशीय राजपूत हैं। १४८४ ई०में मुसलमान-सेनाके आक्रमणसे इन्होंने चाम्पानेर दुर्गको छोड़ दिया। वहाँ इन्होंने करीब … वर्ष तक राज्य किया। पीछे १४८४ ई०में सुलतान महमूद बेगड़ाके राज्यच्युत होने पर वे वनप्रदेशमें चले गये। आखिर एक शाखाने छोटे उदयपुरमें और दूसरेने बरियामें राजपाट स्थापन किया। १८०३ ई०में सिन्धिया-के विरुद्ध सहायता करनेसे यहाँके राजाका अंगरेजोंके निकट अनुग्रह-भाजन हुए। इस उपकारके बदलेमें गायकवाड़ने … … राज्यको (१८२०) ई०में … कर दी। यहाँके राजवंशधर … … महाराज कहलाते हैं।

वर्तमान राजामात्र … को … का अधिकार है। …

१८३० ई०का … यहाँका राजस्व … … है। यहाँ … विद्यालय और … चिकित्सालय प्रतिष्ठित हुए हैं।

कुछ अंश तथा और भी कुछ सड़कें पक्की बना दी गई हैं।

२ उक्त सामन्तराज्यका प्रधान नगर। यह अक्षा० २२° ४४′ उ० तथा देशा० ७३° ५६′ ३०″ पू०के मध्य अवस्थित है। बड़ोदा राजधानीसे यह २५ कोस उत्तर-पूर्वमें पड़ता है।

वरियु—मर्त्तावानवासी एक वणिक्। इसका असल नाम मगदू है। श्यामराजको अनुग्रह लाभ करके ये धीरे धीरे वहांके एक अमात्य हो गये। एक दिन राजा इन्हें राजधानीका शासनकर्त्ता बना कर किसी काममें बाहर चले गये। इसी समय ये श्यामराजकन्याको चुरा कर मर्त्तावान ले आये तथा वहांके शासनकर्त्ता आलेहनमाका विनाश कर मर्त्तावानके शासनकर्त्ता बन बैठे। १२८१ ई०में श्यामराजने उनका पदाधिकार स्वीकार किया। इस समयमें इतिहासमें ये राजा वरियु नामसे प्रसिद्ध हुए। इसके बाद वरियुने कानपलानी राज्यको जीत कर राजकन्याका पाणिग्रहण किया और अपनी शासनशक्तिको फैलाया। इन्होंने चीनसेनाके अत्याचारसे पेगूराजको बचानेके लिये अपनी सेनासे मदद पहुंचाई थी, किन्तु थोड़े ही दिनोंमें मनमुटाव हो गया जिससे ये पेगूराज्यको अधिकार कर बैठे। १२८२ ई०में इन्होंने मर्त्तावान नगरमें 'मचथिरेनमा' पगोडा स्थापन किया।

वरिवस् (सं० त्रि०) १ अन्तरीक्ष। (पु०) २ धन। ३ पूजा, शुश्रूषा।

वरिवस्कृत् (सं० त्रि०) धनकर्त्ता।

वरिवस्या (सं० स्त्री०) वरिवसः पूजायाः करणम्, वरिवस्-क्यच्। (नमोवरिवसश्चित्रङः क्यच्। पा ३।१।१९) ततः अ, ततष्टाप्। शुश्रूषा, सेवा।

वरिवस्यित (सं० त्रि०) वरिवस्या सञ्जाता अस्य तारकादित्वादितच्, अथवा वरिवस्य-क्त, (यस्यविभाषा। पा ६।४।५०) पक्षे यलोपाभावः। उपासित, जिसको उपासना की गई हो।

वरिवोद (सं० त्रि०) वरिवः धनं ददातीति वरिवस्-दा-क। धनदाता। (शुक्लयजुः १७।१४)

वरिवोधा (सं० त्रि०) धनदाता।

वरिवोविद् (सं० त्रि०) धनलम्भयिता, जो धन मिलवा दे।

वरिशी (सं० स्त्री०) वड़िशी, कंटिया।

वरिष (सं० क्ली०) वृ-सः बाहुलकात् इट्। वत्सर, वर्ष।

वरिषा (सं० स्त्री०) वृ-सः बहुवचनात् इट्। वर्षा।

वरिषाप्रिय (सं० पु०) वरिषा वर्षा प्रिया यस्य। चातक पक्षी।

वरिष्ठ (सं० त्रि०) अयमेषामतिशयेन वरः उरुर्वा इष्ठन्, प्रियस्थिरेति वरादेशः। १ वरतम, श्रेष्ठ। २ उरुतम, विस्तीर्ण। (क्ली०) ३ ताम्र, तांबा। ४ मिर्च। (पु०) ५ तित्तिरपक्षी, तीतर। ६ नागरङ्ग वा नारङ्ग वृक्ष, नारंगी नीबूका पेड़। ७ चाक्षुष मनुके पुत्रका नाम। धर्म-सावर्णि मन्वन्तरके सप्त ऋषियोंमेंसे एक। ९ उरु-तमस् ऋषिका एक नाम। १० दैत्यविशेष।

वरिष्ठक (सं० त्रि०) वरतम, श्रेष्ठ, पूजनीय।

वरिष्ठा (सं० स्त्री०) १ आदित्यभक्ता, हुरहुर। २ हरिद्रा, हल्दी। ३ गुल्मभेद। (Polasina Icosandra)

वरिष्ठाश्रम (सं० पु०) स्थानविशेष।

वरिहिष्ठ (सं० क्ली०) १ उशीर, खश। २ सुगन्धवाला।

वरिहिष्ठमूल (सं० क्ली०) उशीर मूल, खसकी जड़।

वरी (सं० स्त्री०) वृणोतीति वृपचाद्यच् गौरादित्वात् ङीष्। १ शतावरी, सतावर। २ वाजीकामाग्निसन्दीपनरस। ३ सूर्यकी पत्नी।

वरीताक्ष (सं० पु०) एक दैत्यका नाम। (महाभारत)

वरीतृ (सं० त्रि०) आच्छादनकारी, ढकनेवाला।

वरीदास (सं० पु०) गन्धर्व नारदके पिता।

वरीधरा (सं० स्त्री०) छन्दोभेद। इसके १, २ और ४थे चरणमें ११ अक्षर होते हैं जिनमेंसे १, २, ४, ५, ८, १०, ११वां वर्ण गुरु और बाकी लघु होते हैं। तीसरे चरणमें १, ३, ६, ७ और ९वां लघु और बाकी वर्ण गुरु होते हैं।

वरीमन् (सं० त्रि०) वरिमन् देखो।

वरीयान् (सं० त्रि०) अयमनयोरतिशयेन उरुर्वरो वा ईयसुन्, प्रियस्थिरेति वरादेशः। १ श्रेष्ठ, बड़ा। "वरीयानेषते प्रश्नः कृतो लोकहितो नृप!" (भागवत २।१।१) २ वरिष्ठ, पूजनीय। ३ अति युवा। (पु०) ४ फलित-ज्योतिषमें विष्कम्भ आदि सत्ताईस योगोंमेंसे अठारहवां योग। इस योगमें जन्म लेनेवाला मनुष्य दयालु, दाता, सुन्दर, सत्कर्म करनेवाला, मधुर स्वभावका एवं धन-जन-

वरुणको सहस्रको साधं ऋ ए, राजा और सर्वज्ञान्, तथा अन्तरिक्षमें देखना पड़ता है। अथर्ववेदमें भी इन्हें देवताओंका मुख्य बतलाया है।

"[illegible]"

(अथर्ववेद ६।२।१२)

ऋग्वेदसंहिताके ८।४१ और ८।४२ सूक्तमें वरुणदेवकी स्तुति है। ८।४१ सूक्तके नाभाकनामके ऋषिने वरुण देवताका इस प्रकार वर्णन किया है, वे निखिल भुवनके अधिपति हैं और बुद्धिमान द्वारा पृथिवी, अन्तरिक्ष और स्वर्गको धारण करते हैं।' इस सूक्तके साथ पढ़नेसे स्पष्ट ज्ञात पड़ता है, कि सर्वज्ञानित्वान् वहीश्वर हो सकता है। ईश्वरकी कालोंकी सकल अभिमानी नाम होकर वरुणसे आरोपित हुई है। ऋग्वेदके ऋषियोंने सृष्टिकी निकटतम [illegible] देख कर वरुण [illegible] कल्पना की थी। न कि उन्होंने [illegible] वरुणको स्थापन कर ईश्वरका वरुणत्व सूचकी अनुमान किया। वे सूर्य द्वारा अन्तरिक्षका परिमाण लेते हैं (५।८५।५), वे ही सभी नदियोंका जल समुद्रमें प्रेरण करते हैं, फिर भी वह समुद्र नहीं भरता (५।८५।६), फिर वे ही मनुष्यका पाप विनाश और अपराध मार्जन करते हैं। उन्होंने सूर्यके [illegible] तथा वृक्षोंके ऊपर आकाशको विस्तारित किया है, वे [illegible] बल है, धेनुगणको दूध और हृदयमें संकल्प प्रदान करते हैं। उन्होंने ही जलमें अग्निको, आकाशमें सूर्यको और पर्वत पर सोमलताको स्थापन किया है।' इत्यादि स्तुति देख कर अनुमान होता है, कि [illegible] वैदिक ऋषिगण वरुण और ईश्वरको एक और अभिन्न समझते थे।

इस वरुणके कारण ही १।१२२-१३६ सूक्तमें परुच्छेप ऋषिने, १।१५१-१५३ सूक्तमें दीर्घतमा ऋषिने तथा ऋग्वेदके ७।८१-८९ सूक्तमें वसिष्ठ ऋषिने उपासनाके मित्र और वरुणका स्तुतिगान गाया है। वे [illegible] के लिए भिन्न भिन्न अनुग्रह किया करते हैं, [illegible] सूक्तमें [illegible] ईश्वरको छोड़ कर और कुछ भी नहीं है [illegible] जाना जाता है। यही कारण है, कि इस ऋग्वेदसंहिताके १।१६४।४६ मन्त्रमें विष्णु और वरुण तथा दोनों अंशको एकत्र समाविष्ट हो कर उन्हें निखिल देख पाते हैं। अथर्ववेद [illegible] (७।२५।१) [illegible] विष्णु वरुणका संयोग और [illegible] है। [illegible] ३।४।१६ सूक्तमें [illegible] तथा [illegible] १०।१० और [illegible] (१०।८।२८)-में अग्नि-वरुणका [illegible] मन्त्र है। [illegible] अभिषेकका [illegible] और [illegible] आरोपित है*।

अथर्ववेदके 'इन्द्रं [illegible]' (अथर्व ३।४।६) मन्त्रमें इन्द्र और वरुणके [illegible] किया गया है। इस प्रकार [illegible] संहितामें इन्द्र और वरुणका एकत्व देखा जाता है। वे सब देवताओंके सम्राट् हैं, अतएव वे इन्द्रादिरूप भिन्न वरुणकी तरह ईश्वरको छोड़ कर और कोई भी नहीं हो सकते। परन्तु [illegible] मित्र, अग्नि, इन्द्र, यम या वायुके साथ [illegible] देख कर [illegible] मौलिक ईश्वरत्वका कुछ विपर्यय सिद्ध हुई है, ऐसा नहीं कहा जा सकता है।

ऋग्वेदके १।१२२-१३६ सूक्तके साथ पढ़नेसे इनकी कुछ भी भिन्नता मालूम नहीं होती वरं इनका ऐक्य ही प्रतिपादित होता है। ऋक् १।१३६।६-७ मन्त्रमें लिखा है कि, "मैं सूर्य, पृथिवी, आकाश, मित्र और वरुण तथा इन्द्रको नमस्कार करता हूं। वे सभी अभिमत फलदाता और सुखदायी हैं। इन्द्र, अग्नि, अर्यमा और भग [illegible] करो। • • • इन देवोंसे इन्द्रको [illegible] है, • • • इन्द्र अग्नि, मित्र और वरुण हम सबोंके सुखद होवें, इनहींसे [illegible] हो कर [illegible] सुखभोग करें। १।१५२ सूक्तमें इन्द्र और वरुणका

* [illegible]
[illegible]
[illegible]
[illegible]
[illegible]
[illegible]

साहचर्य सूचित हुआ है। इसके द्वारा इस देवतामण्डली-का एकत्व और ईश्वरत्व स्पष्ट प्रतिपादित होता है, फिर, शुक्ल यजुर्वेदके ८।३७ मन्त्रमें "इन्द्रश्च सम्राड्वरुणश्च राजा तौ ते भक्षं चक्रतुरग्र एतम्।" पढ़नेसे मालूम होता है, कि दोनों एक ही हैं। उसके भाष्यमें महीधरने लिखा है,—'तौ देवौ इन्द्रवरुणौते तव एतं सोममग्रे प्रथमं भक्षं चक्रतुः। तौ कौ इन्द्रो वरुणश्च चकारो समुच्चये, किम्भूत इन्द्रः सम्राट् परमैश्वर्ययुक्तः वाजपेययाजीत्यर्थः। किंभूतो वरुणः राजा राजसूययाजी राजा वै राजसूयेनेष्ट्वा भवति सम्राड्वाजपेयेनेति श्रुतेः।'

ऋक्संहिताके १।१३६।२ मन्त्रमें उषा कर्त्तृक वरुणके घर प्रकाशित होनेकी बात लिखी है। शुक्लयजुर्वेदका "पस्त्यासु चक्रे वरुणः सधस्थमपां शिशुर्मातृतमास्वन्तः" (१०।७) मन्त्र पढ़नेसे जाना जाता है, कि समुद्र या जलगर्भ ही वरुणका घर है। वे जलके शिशु हैं, जल ही उनका निवासस्थान है। उस मन्त्रके भाष्यमें महीधरने लिखा है—'या एवम्विधा आपस्तासु अन्तर्मध्ये वरुणो देवः सधस्थं सहस्थानं चक्रे कृतवान् सह स्थीयते यस्मिन् तत् सधस्थं। किम्भूतो वरुणः अपां शिशुः बालक अपां वा एव शिशुर्भवति यो राजसूयेन यजत इति श्रुतेः किम्भूतास्वप्सु पस्त्यासु। पस्त्यमिति गृहनामसु पठितम्। गृहरूपासु सर्वेषामाधारत्वात् तथा मातृतमासु अतिशयेन जगन्निर्मात्रीषु।'

उक्त संहिताके ६।२२ मन्त्रमें वरुणके पाशसमन्वित स्थानके भयभीत मानवकी मुक्तिप्रार्थनाकी बात इस प्रकार लिखी है,—"धाम्नो धाम्नो-राजंस्ततो वरुण नो मुञ्च। यदापो अघ्न्या इति वरुणेति शपामहे ततो वरुण नो मुञ्च।" फिर शुक्लयजुः ९।३९ मन्त्रमें लिखा है—"बृहस्पतिर्वाचमिन्द्रो ज्यैष्ठ्याय रुद्रः पशुभ्यः मित्रः सत्यो वरुणो धर्मपतीनाम्।" यहां मन्त्रांशमें वरुणको धर्मपति कहा है। उसके भाष्यमें महीधरने अच्छी तरह समझा दिया है, 'धर्मपतीनां धर्मेश्वराणां धर्मशीलानामाधिपत्यैरवां सुवतां। सवित्रादयोऽष्टौ देवास्तु हविषां देवतास्त्वां नानाधिपत्यानि ददत्विति वाक्यार्थः।' उसके परवर्ती मन्त्रमें (९।४०) वरुणादि देव द्वारा राजाओंका महती क्षत्रपदवी पर नियोग की प्रार्थना देखी जाती है। तैत्तिरीय ब्राह्मणके ३।१।२।७ मन्त्रके "ऋतस्य राजा वरुणोऽधिराजः" पदमें यह वाक्य समर्थित हुआ है*।

अथर्ववेदके १।१०।१ मन्त्रमें वरुणको दीप्तिशाली और सत्यभाषणशील कहा है। अनृतादि बोलनेके कारण उनके कोपमें पड़नेसे मनुष्य थोड़े ही दिनोंमें जलोदरादि रोगसे आक्रान्त होते हैं। ब्रह्ममन्त्र द्वारा वा वरुणविषयक स्तुतिरूप हविः द्वारा वा अति तीक्ष्ण स्तोत्रादि द्वारा उन्हें प्रसन्न करनेसे रोग दूर होता तथा बलकी वृद्धि होती है।

ऐतरेयब्राह्मण (१।४४) पढ़नेसे जान पड़ता है, कि जलाधिपति देवराज वरुण दिक्पालरूपमें असुरोंके साथ लड़े थे। आदित्योंने उनके साथ अग्रसर हो कर देवताओंका भय दूर किया था। उक्त ग्रन्थ (७।१४-१५) के हरिश्चन्द्र उपाख्यानमें लिखा है, कि ऐक्ष्वाकु राजा हरिश्चन्द्रने नारदके आदेशसे पुत्रकामी हो वरुण देवकी तपस्या की। आराधनासे तृप्त हो कर वरुणदेवने उन्हें अपना दर्शन दे कर कहा, "राजन्! वर मांगो, तुम्हारी तपस्यासे मैं संतुष्ट हो गया हूं।" राजाने पुत्रके लिये प्रार्थना की। इस पर वरुणदेवने कुछ मुसकुरा कर कहा, 'तुम्हारे एक पुत्र होगा, किन्तु उस पुत्रको तुम निःशङ्क चित्तसे यज्ञीय पशुरूपमें मुझे प्रसन्न करनेके लिये बलि देना।' राजाने इसे स्वीकार कर लिया। कुछ समय

* ऋग्वेदमें कई जगह वरुणको सुक्षत्र वा क्षत्रिय कहा है। किन्तु वहां क्षत्रियका अर्थ बलवान् है। तब क्षत्रिय नामक किसी स्वतन्त्र वर्णकी सृष्टि हुई थी या नहीं, सन्देह है। वे बलके अधिपति हैं, इस कारण परवर्त्ती मध्ययुगमें क्षत्रिय (बलशाली) राजाओंके वर्णनिर्णयके साथ साथ वरुणको भी क्षत्रियके राजाओंके अधिपति दण्डदाता और रक्षाकर्त्ता कहा है। ऋक्संहिताके ७।६४।२ मन्त्रमें—

"आराजानामह ऋतस्य गोपा सिन्धुपती क्षत्रिया यातमर्वाक्।"

मन्त्रका वरुणको सिन्धुपति और क्षत्रिय कहा है। किन्तु इसका अर्थ दूसरा है।

† "अयं देवानामसुरो वि राजति वशा हि सत्या वरुणस्य राज्ञः। ततस्परि ब्रह्मणा शाशदान उग्रस्य मन्योरुदिमं नयामि॥"
(अथर्व० १।१०।१)

कल्पमें वरुणको सर्वश्रेष्ठ, राजा और शक्तिमान् तथा ज्योतिविशिष्ट देवता कहा है अथर्ववेदमें भी इन्हें देवताओंका मुख्य बतलाया है।

"ब्रह्मोमनं इव कोष्ठेषु देवेषु वरुणो यथा।"

(अथर्ववेद ६।८१।२)

ऋक्संहिताके ८।४१ और ८।४२ सूक्तमें वरुणदेवकी स्तुति है। ५।८५ सूक्तके मन्त्रनिचयमें अत्रि ऋषिने वरुण देवताका इस प्रकार स्तव किया है, ये निखिल भुवनके अधिपति है और वृष्टिपात द्वारा पृथिवी, अन्तरीक्ष और स्वर्गको आर्द्र करते हैं।' इस ऋक्के मन्त्र पढ़नेसे स्पष्ट ज्ञान पड़ता है, कि सर्वशक्तिमान् परमेश्वर ही वरुण है। ईश्वरकी कार्यावली स्वतन्त्र अभिधाको प्राप्त हो कर वरुणमें आरोपित हुई है। ऋग्वेदके ऋषियोंने प्रकृतिकी विस्मयकर कार्यपरम्परा देख कर वरुण इन्द्रादिदेवके स्वातन्त्र्यकी कल्पना की थी। पीछे उन्होंने वस्तुकार्यपरम्पराकी एकता समझ कर ईश्वरका एकत्व हृदयमें अनुभव किया। 'वे सूर्य द्वारा अन्तरीक्षका परिमाण लेते हैं (५।८५।५), वे ही सभी नदियोंको एक महासमुद्रमें प्रेरण करते हैं, फिर भी यह महासमुद्र नहीं भरता (५।८५।६), फिर वे ही मनुष्यका पाप विनाश और अपराध खण्डन करते हैं। उन्होंने सूर्यके अन्तरमार्गमें तथा वृक्षोंके ऊपर अन्तरीक्षको विस्तारित किया है, वे अश्वगणके बल हैं, धेनुगणको दूध और हृदयमें संकल्प दान करते हैं। उन्होंने ही जलमें अग्निको, अन्तरीक्षमें सूर्यको, और पर्वत पर सोमलताको स्थापन किया है।' इत्यादि स्तुति देख कर अनुमान होता है, कि कालेश्वरवश वैदिक ऋषिगण वरुण और ईश्वरको एक और अभिन्न बतला गये हैं।

इस एकत्वके कारण ही १।१२६-१२७ सूक्तमें परुच्छेप ऋषिने, १।१५१-१५२ सूक्तमें दीर्घतमा ऋषिने तथा ऋग्वेदके ७।६३-६६ सूक्तमें वशिष्ठ ऋषिने प्रातःकालमें मित्र और वरुणका स्तुतिगान गाया है। ये आमपार्श्वमें जगत्के भिन्न भिन्न मङ्गलजनक क्रिया करनेवाले हैं। सही, पर मूलमें एक महान् ईश्वरको छोड़ कर और कुछ भी नहीं है यह स्पष्ट जाना जाता है। यही कारण है, कि हम लोग ऋक्संहिताके १।१५६।४ मन्त्रमें विष्णु और वरुण तथा दोनों अश्विको एकत्र समाविशिष्ट हो कर यज्ञमें मिलित देख पाते हैं। शाङ्खायन श्रौतसूत्र (७।२०।४) में इसी प्रकार विष्णु-वरुणका संयोग और एकाधारत्व वर्णित है। गोभिल ३।६।१२ सूत्रमें यमवरुणका एकयोगत्व तथा शाङ्खायनब्राह्मण १८।१० और कात्यायन श्रौतसूत्र (१०।८।२७) में अग्नि-वरुणका एकाधारत्व बतलाया गया है। ऋक् ४।१।२ मन्त्रमें अग्निवरुणका सखित्व और भ्रातृत्वसम्बन्ध आरोपित है†।

अथर्ववेदके 'इन्द्रेन्द्र मनुष्याः परेहि सं ह्यज्ञास्था वरुणैः संविदानः।" (अथर्व ३।४।६) मन्त्रमें इन्द्र और वरुणका एकमतित्व स्थिर किया गया है। इस प्रकार वाजसनेय संहितामें इन्द्र और वरुणका एकत्व देखा जाता है। ये सब देवताओंके सम्राट् हैं, अतएव ये इन्द्रावरुण मित्रावरुणकी तरह ईश्वरको छोड़ कर और कोई भी नहीं हो सकते। परन्तु स्थानविशेषमें उन्हें मित्र, अग्नि, इन्द्र, यम या वायुके साथ ऐकार्थ्य सम्पादन करते देख उनके मौलिक ईश्वरत्वकी कुछ विशेषता निर्दिष्ट हुई है, केवल यही आ सकता है।

ऋग्वेदके १।१२६-१३६ सूक्तके मन्त्र पढ़नेसे उनमें कुछ भी विशेषता मालूम नहीं होती वरं उनका एकत्व ही निष्पादित होता है। ऋक् १।१३६।६-७ मन्त्रमें लिखा है कि, "मैं सूर्य, पृथिवी, आकाश, मित्र और वरुण तथा रुद्रको नमस्कार करता हूं। ये सभी अभिमत फलदायी और सुखदायी हैं। इन्द्र, अग्नि, अर्यमा और भग स्तव करो। * * * हम लोगोंने इन्द्रको पाया है, * * * इन्द्र अग्नि, मित्र और वरुण हम सबोंके सुखप्रद होवें, हमलोग अन्नवान् हो कर चिरकाल तक सुखभोग करें। १।१५३ सूक्तमें इन्द्र और वरुणका

† "स भ्रातरं वरुणमग्न आ ववृत्स्व
देवाँ अच्छा सुमती यज्ञवनसं ज्येष्ठं यज्ञवनसम्।
ऋतावानमादित्यं चर्षणीधृतं राजानं चर्षणीधृतम् ॥
सखे सखायमभ्या ववृत्स्वाशुं न चक्रं
रथ्येव रंह्यास्मभ्यं दस्म रंह्या।
अग्ने मृळीकं वरुणे सचा विदो मरुत्सु विश्वभानुषु ॥"

(ऋक् ४।१।२-३)

साहचर्य सूचित हुआ है। इसके द्वारा इस देवतामण्डली-का एकत्व और ईश्वरत्व स्पष्ट प्रतिपादित होता है, फिर, शुक्ल यजुर्वेदके ८।३७ मन्त्रमें "इन्द्रश्च सम्राड्वरुणश्च राजा तौ ते भक्षं चक्रतुरग्र एतम्।" पढ़नेसे मालूम होता है, कि दोनों एक ही हैं। उसके भाष्यमें महीधरने लिखा है,—'तौ देवी इन्द्रवरुणौते तव एतं सोममग्रे प्रथमं भक्षं चक्रतुः। तौ कौ इन्द्रो वरुणश्च चकारौ समुच्चये, किम्भूत इन्द्रः सम्राट् परमैश्वर्ययुक्तः वाजपेययाजोत्यर्थः। किंभूतो वरुणः राजा राजसूययाजी राजा वै राजसूयेनेष्ट्वा भवति सम्राड्वाजपेयेनेति श्रुतेः।'

ऋक्संहिताके १।१२३।१२ मन्त्रमें उषा कर्तृक वरुणके घर प्रकाशित होनेकी बात लिखी है। शुक्लयजुर्वेदका "परवासु चक्रे वरुणः सधस्थमपाꣳ शिशुर्मातृतमास्वन्तः" (१०।७) मन्त्र पढ़नेसे जाना जाता है, कि समुद्र या जलगर्भ ही वरुणका घर है। वे जलके शिशु हैं, जल ही उनका निवासस्थान है। उस मन्त्रके भाष्यमें महीधरने लिखा है—'या पर्यास्विषा आपस्तासु अन्तर्मध्ये वरुणो देवः सधस्थं सहस्थानं चक्रे कृतवान् सह स्थीयते यस्मिन् तत् सधस्थं। किम्भूतो वरुणः अपां शिशुः बालक अपां वा एव शिशुर्भवति ये राजसूयेन यजत इति श्रुतेः किम्भूतास्वप्सु पस्त्यासु। पस्त्यमिति गृहनामसु पठितम्। गृहरूपासु सर्वेपामाधारत्वात् तथा मातृतमासु अतिशयेन जगन्निर्म्मात्रीषु।'

उक्त संहिताके ६।२२ मन्त्रमें वरुणके पाशसमन्वित स्थानके भयभीत मानवकी मुक्तिप्रार्थनाकी बात इस प्रकार लिखी है,—"धाम्नो धाम्नो-राजंस्ततो वरुण नो मुञ्च। यदाहुरघ्न्या इति वरुणेति शपामहे ततो वरुण नो मुञ्च।" फिर शुक्लयजुः ९।३९ मन्त्रमें लिखा है—"बृहस्पतिर्वाचमिन्द्रो ज्यैष्ठाय रुद्रः पशुभ्य मित्रः सत्यो वरुणो धर्मपतीनाम्।" यहां मन्त्रांशमें वरुणको धर्मपति कहा है। उसके भाष्यमें महीधरने अच्छी तरह समझा दिया है, 'धर्मपतीनां धर्मेश्वराणां धर्मशीलानामाधिपत्यैत्वां सुवतां। सवित्राद्योऽष्टौ देवसु हविषां देवतास्त्वां नानाधिपत्यानि ददत्विति वाक्यार्थः।' उसके परवर्ती मन्त्रमें (९।४०) वरुणादि देव द्वारा राजाओंका महती क्षत्रपदवी पर नियोग की प्रार्थना देखी जाती है। तैत्तिरीय ब्राह्मणके ३।१।२।७ मन्त्रके "क्षत्रस्य राजा वरुणोऽधिराजः" पदमें यह वाक्य समर्थित हुआ है*।

अथर्ववेदके १।१०।१ मन्त्रमें वरुणको दीप्तिशाली और सत्यभाषणशील कहा है। अनृतादि बोलनेके कारण उनके कोपमें पड़नेसे मनुष्य थोड़े ही दिनोंमें जलोदरादि रोगसे आक्रान्त होते हैं। ब्रह्ममन्त्र द्वारा वा वरुणविषयक स्तुतिरूप हविः द्वारा वा अति तीक्ष्ण स्तोत्रादि द्वारा उन्हें प्रसन्न करनेसे रोग दूर होता तथा बलकी वृद्धि होती है†।

ऐतरेयब्राह्मण (१।४४) पढ़नेसे जान पड़ता है, कि जलाधिपति देवराज वरुण दिक्पालरूपमें असुरोंके साथ लड़े थे। आदित्योंने उनके साथ अग्रसर हो कर देवताओंका भय दूर किया था। उक्त ग्रन्थ (७।१४-१५) के हरिश्चन्द्र उपाख्यानमें लिखा है, कि ऐक्ष्वाकु राजा हरिश्चन्द्रने नारदके आदेशसे पुत्रकामा हो वरुण देवकी तपस्या की। आराधनासे तृप्त हो कर वरुणदेवने उन्हें अपना दर्शन दे कर कहा, "राजन्! वर मांगो, तुम्हारी तपस्यासे मैं संतुष्ट हो गया हूं।" राजाने पुत्रके लिये प्रार्थना की। इस पर वरुणदेवने कुछ मुसकुरा कर कहा, 'तुम्हारे एक पुत्र होगा, किन्तु उस पुत्रको तुम निःशङ्क चित्तसे यज्ञीय पशुरूपमें मुझे प्रसन्न करनेके लिये बलि देना।' राजाने इसे स्वीकार कर लिया। कुछ समय

---

* ऋग्वेदमें कई जगह वरुणको मुख्य या क्षत्रिय कहा है। किन्तु यहां क्षत्रियका अर्थ बलवान है। तब क्षत्रिय नामक किसी स्वतन्त्र वर्णकी सृष्टि हुई थी या नहीं, सन्देह है। वे बलके अधिपति हैं, इस कारण परवर्त्ती वा मध्ययुगमें क्षत्रिय (बलशाली) राजाओंके वर्णनिर्णयके साथ साथ वरुणको भी क्षत्रियके राजाओंके अधिपति दण्डदाता और रक्षाकर्त्ता कहा है। ऋक्संहिताके ७।६४।२ मन्त्रमें—

"आराजानामह ऋतस्य गोपा सिन्धुपती क्षत्रिया यातमर्वाक्।"

मन्त्रका वरुणको सिन्धुपति और क्षत्रिय कहा है। किन्तु इसका अर्थ दूसरा है।

† "अयं देवानामसुरो वि राजति वशा हि सत्या वरुणस्य राज्ञः। ततस्परि ब्रह्मणा शाशदान उग्रस्य मन्योरुदिमं नयामि॥"

(अथर्व० १।१०।१)

बाद उन्हें रोहित नामक एक पुत्र उत्पन्न हुआ। यथासमय वरुणने आ कर राजासे पुत्र माँगा। राजा अनुरोध, विनय तथा नाना आपत्ति दिखलाते हुए पुत्रकी प्राणरक्षाका उपाय ढूंढने लगे। इस प्रकार टालमटोल करते करते जब रोहितने पन्द्रहवें वर्षमें कदम बढ़ाया, तब वरुणदेवने आ कर कहा, 'आपका पुत्र यज्ञीय पशु होनेके योग्य हो गया, अपना वचन पूरा कीजिये।' राजाने उन्हें समावर्तनके बाद नरमेधयज्ञकी कामना जताते हुए विदा किया और पुत्रको बुला कर कहा, 'हे प्रिय! जिनने तुमको मुझे दिया है, मैं यज्ञीय पशुरूपमें तुम्हें मार कर उनके हाथ समर्पण करूंगा।' पिताका ऐसा वचन सुन कर पुत्र नहीं नहीं कहता हुआ और धनुष ले जंगलको भाग गया। यथासमय वरुणदेव राजाके निकट आये और 'महाराज! यज्ञ कीजिये' कह कर खड़े हो गये। राजाने पुत्रके जंगल चले जानेका सारा हाल कह सुनाया। वरुणके शापसे राजा जलोदरी रोगसे आक्रान्त हो बड़े चिन्तित हो गये।

पिताके इस रोगका हाल जब रोहितको मालूम हुआ, तब वह जङ्गलको छोड़ कर घर आये। यहां ब्राह्मणरूपी इन्द्रने अपना दर्शन दे कर उनसे कहा, 'तुम भारी मूर्ख हो, राजसंसारकी दुःखयन्त्रणाका भोग क्यों करना चाहते हो। मैं सलाह देता हूं, कि तुम हमेशा बाहरमें घूमा करो, भविष्यमें तुम्हारा कल्याण होगा।'

इस प्रकार इन्द्र ब्राह्मणके रूपमें लगातार छः वर्ष आये और रोहितको युक्तियुक्त वचनोंसे निषेध कर गये। छठें वर्षके अन्तमें राजपुत्रने सुयवसके पुत्र अजीगर्त ऋषिके आश्रममें आ कर कहा, 'हे ऋषिश्रेष्ठ! मैं आपको सौ गाय प्रदान करूंगा। आप अपने तीन पुत्रोंमेंसे एक पुत्र दीजिये और मुझे पशुरूपमें यज्ञमें बलि होनेसे बचाये।' ऋषिने अपने मध्यम पुत्र शुनःशेफको दे दिया। राजकुमार ऋषिको सौ गाय दे कर ब्राह्मणकुमार शुनःशेफको साथ ले पिताके निकट आये और बोले, 'इस बालकको ले कर मुझे छुटकारा दीजिये।' इसके बाद राजाने जब यज्ञ ठाना, तब वरुणने स्वयं राजसूययज्ञका अभिषेचनीय कर दिया था।

वरुणने कहा—क्षत्रिय पशु होनेकी अपेक्षा ब्राह्मणका ही यज्ञमें पशु होना अच्छा है। इतना कह कर यज्ञ आरम्भ हुआ। विश्वामित्र होता, जमदग्नि अध्वर्यु, वशिष्ठ ब्रह्म और अयास्य उद्गाता हुए। शुनःशेफने जब देखा, कि पशुरूपमें यज्ञमें निहत होंगे, तब उन्होंने यथाक्रम प्रजापति (ऋक् १।२४।१), अग्नि (ऋक् १।२४।२), सविता (ऋक् १।२४।३-५) और इसके बाद वरुण (ऋक् १।२४।६-१५, १।२५।१-२१) की स्तुति की थी।

देवीभागवतके ७म स्कन्धके १४-१७ अध्यायमें इस घटनाका विस्तृत उल्लेख है।

(शुनःशेफ और विश्वामित्र शब्दमें देखो।)

तैत्तिरीय ब्राह्मणके १।१।४।८, १।४।१०।१ और शतपथ ब्राह्मणके १२।८।३।१० और १३।३।४।५ स्थलमें वरुणदेव की पूजा लिखी है।

इस उपाख्यानसे वरुण प्रजाप्रद, प्रजापालक और प्रजासंहारक देवता ही समझे जाते हैं। अतएव ये सृष्टि, स्थिति और लयकर्त्ताके परम पुरुष हैं। ये राजाओंके राज्यमें वास करते हैं।

"वरेण राजा वरुणस्त्वयाह स त्वायमह्वत् स उपेदमेहि।"
(अथर्व० ३।४।५)

फिर मनुसंहितामें इन्हें राजाओंका दण्डदाता कहा है। (मनु० ९।२४५)

वेदमें वरुणको देवताओंमें श्रेष्ठ बतलाया है। ये जल देवता हैं। जब सभी अन्धकारसे ढके और प्रसुप्तकी तरह थे, तब भगवानकी इच्छासे महाभूतादिका विकास हुआ। आदिमें अप्‌की सृष्टि हुई अर्थात् जल ही ईश्वरत्व का आदि विकास है, अतएव जलाधिपतिको ईश्वर और देवताओंमें श्रेष्ठ मानना कोई अत्युक्ति न होगी।

महाभारतके उद्योग और शल्यपर्वमें ये जलपतिरूपमें वर्णित हुए हैं। उन्होंने इस आधिपत्यको सर्वलोक पितामहसे पाया था। "अपां राज्ये सुराणाञ्च विदधे वरुणं प्रभुम्।" (भारत शौल्य)

भागवतमें वरुणदेव कश्यपपत्नी अदितिके पुत्ररूपमें कीर्तित हुए हैं।

हरिवंशके ३य अध्यायमें वरुणादि देवताओंकी उत्पत्तिके सम्बन्धमें एक एक कर लिखा है। फिर ऋक् संहिताके १०।७२।८ मन्त्रमें अदितिके आठ पुत्रोंकी आख्या है। अदिति अपने आठ पुत्रोंमेंसे मार्त्तण्डको फेंक

कर बाकी सात पुत्रोंके साथ स्वर्ग गई थीं। ऋग्वेदके २।२७।१ मन्त्रमें छः आदित्य तथा ६।११४।३ मन्त्रमें सात आदित्यका वर्णन है। तैत्तिरीय-ब्राह्मणमें धाता, अर्य्यमा, मित्र, वरुण, अंश, भग, इन्द्र और विवस्वान् इन आठ आदित्योंका हाल है। किन्तु महाभारत और विष्णु आदि पुराणोंमें बारह आदित्यके नाम देखे जाते हैं। शतपथ-ब्राह्मणके ११।६।३।८ मन्त्रमें बारह महीनोंके सूर्यको बारह आदित्य कहा है। ऋक्संहिताके २।२७।१ मन्त्रमें दक्ष अदितिके पुत्ररूपमें उल्लिखित हुए हैं। निरुक्तमें (११।२३) यास्कने लिखा है,—"अदितेर्दक्षो अजायत दक्षाद्‌ अदितिः परि" अर्थात् दक्षसे ही अदितिकी उत्पत्ति है। फिर ऋक् ६।५०।२ मन्त्रमें सूर्यको दक्षसे उत्पन्न बतलाया है। इस हिसाबसे कुछ भी स्थिर नहीं किया जा सकता। परन्तु उक्त सूक्तके १म मन्त्रमें लिखा है, 'हे देवगण! मैं तुम्हारे लिये स्तोत्रके साथ अदिति, वरुण, मित्र, अग्नि, अर्यमा, भग और सभी रक्षाकारी देवताओंको आह्वान करता हूं।' इन सबकी आलोचना करनेसे पता चलता है, कि वरुण आदित्योंमेंसे एक हैं।

मनुसंहितामें वरुणको अद्वितीय तेजसम्पन्न और पाशहस्त कहा है। उनके पाशसे बद्ध व्यक्ति यदि पाप-प्रशमनार्थ वारुण व्रताचरण करे, तो मुक्ति पाता है। वरुण-मन्त्रके द्वारा सलिल विकारमें वरुणकी पूजा तथा उसके द्वारा नाभिजलमें खड़े रह कर जप और होम करनाहोता है।

"सलिलविकारे कुर्यात् पूजां वरुणस्य वारुणमन्त्रैः।"

(बृहत्सं ४६।५१)

हरिवंशके ४५वें अध्यायमें वरुणदेवका रूपवर्णन लिखा है। वे हंस पर बैठे हैं। हाथमें पाश अस्त्र है। (बृहत्सं ५८।५७) यह पाश अस्त्र काल या वरुण पाश कहलाता है। (रामायण १।२७।६) यही अस्त्र धारण कर वे देवासुरसंग्राममें देवपक्षीय दिक्‌पतिरूपमें अवतीर्ण हुए थे। ऐतरेय ब्राह्मणमें (१।२४) इस युद्धका हाल लिखा है। रामायणमें भी वरुणकी युद्धकुशलताका परिचय दिया गया है।

ऋग्वेदमें विष्णु और वरुणके सखित्व या अभेदत्वका जो आभास दिया गया है, गीतामें वह पूर्णरूपसे परिव्यक्त देखा जाता है। स्वयं भगवान्‌ने कहा है—

"अनन्तश्चास्मि नागानां वरुणो यादसामहम्।
पितृणामर्य्यमा चास्मि यमः संयमतामहम्॥"

(गीता १०।२६)

फिर महाभारतमें कृष्ण और वरुणके विरोधकी कथा लिखी है। श्रीकृष्णने जलजन्तुसमाकीर्ण समुद्रगर्भमें प्रवेश कर सलिलान्तर्गत वरुणको परास्त किया था।

(भारत द्रोणपर्व ११ अ०)

भागवतमें इस कृष्ण और वरुणका विद्वेषका वर्णन उपाख्यानकी तौर पर किया गया है। एक दिन नन्दने एकादशीके दिन उपवास रह कर जनार्दनकी अभ्यर्च्चना की। द्वादशी तिथिको वे आसुरी कालमें कालिन्दीजलमें स्नान करने गये। ज्यों ही वे जलमें घुसे त्यों ही वरुण-का नौकर उन्हें वरुणालयमें घसीट ले गये। भगवान् श्रीकृष्णको जब इसकी खबर लगी, तब उन्होंने वरुणके पास जा कर पिताका उद्धार किया। वरुणने इस समय श्रीकृष्णकी पदवन्दना की थी। (१०।२८।५)

स्कन्दपुराणके सह्याद्रिखण्डके अन्तर्गत वरुणपुरी-माहात्म्यमें लिखा है,—

एक दिन शौनकने सूतसे वरुणपुरका माहात्म्य कहनेके लिये प्रार्थना की। सूतने कहा, नाना रत्नराजिविराजिता मनोरमा वरुणकी एक पुरी थी। वहांके लोग धर्मपरायण और वेदार्थतत्त्वज्ञ थे। उन लोगोंने ज्योतिष्टोम विधि द्वारा रामकी आराधना की थी। इस यज्ञसे देव और पितृगण सभी संतुष्ट हुए। पीछे वहां उपस्थित हो कर रामने वरुणसे कहा था, 'हे जलाधिप वरुण! तुम अपने भवनके सदृश मेरा भी एक भवन निर्माण करो। यह भवन नाना रत्न-विभूषित होगा और उसमें मुनिगण वास करेंगे। वरुणदेवने परशुरामको यह बात सुन कर एक भवन बनवाया और उसे परशुरामको दे दिया। परशुरामने वह नाना रत्नादि खचित सुरम्य भवन देख कर कहा था, कि यह भवन आजसे वरुणपुर कहलायगा तथा परशुराम इस पुरके अधिपति होंगे। एक दिन मधुमासकी शुक्र-वार नवमी तिथिको सभी मनुष्य एकत्र हो कर सप्तदिन-व्यापी रामका महोत्सव कर रहे थे। इसी समय एक महादैत्य वहां पहुंचा और राम-महोत्सवकारी लोगोंको

बाद उन्हें रोहित नामक एक पुत्र उत्पन्न हुआ। यथासमय वरुणने आ कर राजासे पुत्र मांगा। राजा अनुरोध, विनय तथा नाना भांतिके बहाने दिखलाते हुए पुत्रको आपरक्षाका उपाय ढूंढ़ने लगे। इस प्रकार टालमटोल करते करते जब रोहितने क्षत्रिय धर्ममें कदम बढ़ाया, तब वरुणदेवने आ कर कहा, 'आपका पुत्र यज्ञीय पशु होनेके योग्य हो गया, अपना वचन पूरा कीजिये।' राजाने उन्हें समादरोंके बाद नरमेधयज्ञकी कामना जताते हुए विदा किया और पुत्रको बुला कर कहा, 'हे प्रिय! जिनने तुमको मुझे दिया है, मैं यज्ञीय पशुरूपमें तुम्हें मार कर उनके हाथ समर्पण करूंगा।' पिताका ऐसा वचन सुन कर पुत्र नहीं नहीं कहता हुआ और धनुष ले जंगलको भाग गया। यथासमय वरुणदेव राजाके निकट आये और 'महाराज! यज्ञ कीजिये' यह कह खड़े हो गये। राजाने पुत्रके जंगल चले जानेका सारा हाल कह सुनाया। वरुणके शापसे राजा जलोदरी रोगसे आक्रान्त हो बड़े चिन्तित हो गये।

पिताके इस रोगका हाल जब रोहितको मालूम हुआ, तब वह जङ्गलको छोड़ कर घर आये। यहां ब्राह्मणरूपी इन्द्रने अपना दर्शन दे कर उनसे कहा, 'तुम भारी मूर्ख हो, राजसंसारके दुःखदायक भोग क्यों करना चाहते हो। मैं सलाह देता हूं, कि तुम हमेशा बाहरमें घूमो करो, भविष्यमें तुम्हारा कल्याण होगा।'

इस प्रकार इन्द्र ब्राह्मणके रूपमें लगातार छः वर्ष आये और रोहितको युक्तियुक्त वचनोंसे निषेध कर गये। छठे वर्षके अन्तमें राजपुत्रने सुयवसके पुत्र अजीगर्त ऋषिके आश्रममें आ कर कहा, 'हे महर्षि! मैं आपको सौ गाय प्रदान करूंगा। आप अपने तीन पुत्रोंमेंसे एक पुत्र दीजिये जो मुझे पशुरूपमें यज्ञमें बलि होनेसे बचाये।' ऋषिने अपने मध्यम पुत्र शुनःशेफको दे दिया। राजकुमार ऋषिको सौ गाय दे कर ब्राह्मणकुमार शुनःशेफको साथ ले पिताके निकट आये और बोले, 'इस बालकको ले कर मुझे छुटकारा दीजिये।' इसके बाद राजाने जब देखा, तब वरुणने स्वयं राजसूययज्ञका अभिषेचनीय कर दिया था।

वरुणने कहा—क्षत्रिय पशु होनेकी अपेक्षा ब्राह्मणका ही यज्ञमें पशु होना अच्छा है। इतना कह कर जब आरम्भ

हुआ। विश्वामित्र होता, जमदग्नि अध्वर्यु, वशिष्ठ ब्र[ह्मा] और अयास्य उद्गाता हुए। शुनःशेफने जब देखा, कि पशुरूपमें यज्ञमें निहत होंगे, तब उन्होंने यथाक्रम प्रजा[पति] (ऋक् १।२४।१), अग्नि (ऋक् १।२४।२), सविता (ऋ[क्] १।२४।३-५) और इसके बाद वरुण (ऋक् १।२४।६-१[५], १।२५।१-२१) की स्तुति की थी।

देवीभागवतके ७म स्कन्धके १४-१७ अध्यायमें [इस] घटनाका विस्तृत उल्लेख है।

[शुनःशेफ और विश्वामित्र शब्दमें देखो।]

तैत्तिरीय ब्राह्मणके १।१।४।८, १।४।१०।६ और शत[पथ] ब्राह्मणके १२।८।३।१० और १३।३।४।५ स्थलमें वरुण[देव]की पूजा लिखी है।

इन उपाख्यानसे वरुण प्रजाप्रद, प्रजापालक [और] प्रजासंहारक देवता ही समझे जाते हैं। अतएव वे सृ[ष्टि,] स्थिति और लयकर्त्ताके परम पुरुष हैं। वे राजा[ओंके] राज्यमें वास करते हैं।

"तदेव राजा वरुणस्तथाह स त्वायमह्वत् स उपेदमेहि।"

(अथर्व० ३।४।५)

फिर मनुसंहितामें इन्हें राजाओंका 'दण्डदाता' [कहा] है। (मनु० ९।२४५)

वेदमें वरुणको देवताओंमें श्रेष्ठ बतलाया है। वे अ[पां] देवता हैं। जब सभी भावपदार्थ ढके और प्रसुप्त [की] तरह थे, तब भगवानकी इच्छासे महाभूतादिका विक[ास] हुआ। आदिमें अप्की सृष्टि हुई अर्थात् जल ही ईश्वर[की सृष्टि]का आदि विकाश है, अतएव जलाधिपतिको ईश्वर [और] देवताओंमें श्रेष्ठ मानना कोई अत्युक्ति न होगी।

महाभारतके उद्योग और शल्यपर्वमें वे उदकाधिक[ारी] में वर्णित हुए हैं। उन्होंने इस आधिपत्यको सर्वलो[क]पितामहसे पाया था। "अपां राज्ये सुराणाञ्च विद[धे] वरुणं प्रभुम्।" (भारत शल्य)

भागवतमें वरुणदेव कश्यपपत्नी अदितिके पुत्ररू[पसे] कीर्त्तित हुए हैं।

हरिवंशके ३५ अध्यायमें वरुणादि देवताओं[की] उत्पत्तिके सम्बन्धमें एक एक कर लिखा है। फिर ऋक्[्]संहिताके १० ७२।८ मन्त्रमें अदितिके आठ पुत्रोंका उल्लेख [कि]या है। अदिति अपने आठ पुत्रोंमेंसे मार्त्तण्डको फें[क]

वरुणतीर्थ (सं० क्लो०) तीर्थभेद। कालिकापुराणमें लिखा है, कि दर्पटनदके पूरव अग्निमान नामक पर्वत है। उसके सम्मुखभागमें कंसकर पर्वतके नीचे वरुण कुण्ड नामका पवित्र सरोवर है। यहां जलाधिप वरुण सर्वदा वास करते हैं। कंसकर पर्वत पर वरुण-देवकी पूजा करके वारुणकुण्डमें स्नान करनेसे वरुण-लोककी प्राप्ति होती है। म-से पञ्चम वर्ण 'व'-कारमें अनुस्वार लगानेसे वरुणबीज होता है। उसी बीज-मन्त्रसे वरुणदेवको पूजा करनी होती है। (कालिका० ७६।१० १७)

वरुणत्व (सं० क्लो०) वरुणका भाव या धर्म।

वरुणदत्त (सं० पु०) पाणिनि-वर्णित एक व्यक्ति। (पा० ५।३।८४)

वरुणदेव (सं० त्रि०) १ वरुण जिसके देवता हों। (पु०) २ शतभिषा नक्षत्र। (वृहत्स० ३२।२०) ३ वरुण-देवता।

वरुणदैवत (सं०पु०) शतभिषा नक्षत्र।

वरुणध्रुत् (सं० त्रि०) १ वरुणको प्रवञ्चना या लोभ दिखानेवाला। २ वरुण द्वारा हिंसित, वरुणसे मारा हुआ।

वरुणपाश (सं० पु०) १ वरुणका अस्त्र पाशका फंदा। २ नक्र, नाक नामक जल-जंतु।

वरुणपुरुष (सं० पु०) वरुणका भृत्य या नौकर। (आश्व० गृह्य १।१।५)

वरुणप्रघास (सं० पु०) एक व्रत या कृत्य। यह आषाढ़ या श्रावणकी पूर्णिमाके दिन किया जाता है। इसमें लोग जौका सत्तू खा कर रहते हैं। इस व्रतका फल यह कहा गया है कि, व्रत करनेवाला जलमें डूबता नहीं और उसे मगर, घड़ियाल आदि जलजंतु नहीं पकड़ता।

वरुणप्रशिष्ट (सं० त्रि०) वरुणके द्वारा शासित या परि-चालित।

वरुणप्रस्थ (सं० पु०) एक प्राचीन नगर जो कुरुक्षेत्रके पश्चिममें था। (म० ब्रह्मख० ५७।११४)

वरुणभट्ट (सं० पु०) एक प्रसिद्ध ज्योतिषी।

वरुणमण्डल (सं० पु०) नक्षत्रोंका एक मंडल। इसमें रेवती, पूर्वाषाढ़ा, आर्द्रा, अश्लेषा, मूला, उत्तराभाद्रपदा और शतभिषा हैं।

वरुणमति (सं० पु०) एक बोधिसत्त्वका नाम।

वरुणमित्र (सं० पु०) गोभिलभेद।

वरुणमेनि (सं० स्त्री०) वरुणका क्रोध। (तैत्तिरीयस० ५।१।५।३)

वरुणराजन् (सं० त्रि०) वरुण जहां राजरूपमें अधिष्ठित हैं। (तैत्तिरीयस० ३।५।८।१)

वरुणलोक (सं० पु०) १ एक लोक। (कौषिकी उप० १।५) काशीखण्डके १०८वें अध्यायमें इसका विवरण है। २ वरुणका अधिकारस्थान या जल। (तर्कसंग्रह ७ अ०)

वरुणशर्मन् (सं० पु०) देवता और असुरकी लड़ाईमें देवपक्षीय एक सेनापतिका नाम।

वरुणशेषस् (सं० त्रि०) १ वरुणका अपत्य। (ऋक् ५।६५।५ सायण) २ रक्षाकारी पुत्रादिविशिष्ट।

वरुणश्राद्ध (सं० क्लो०) श्राद्धकल्पभेद।

वरुणसव (सं० पु०) वरुणका अभिप्रेत यज्ञ।

वरुणसेन (सं० पु०) शिलालिपि-वर्णित एक राजाका नाम।

वरुणसेना (सं० स्त्री०) राजकन्याभेद। (कथासरित्सा० ४४।४४)

वरुणस्रोतस् (सं० पु०) पर्वतभेद।

वरुणाङ्गरुह (सं० पु०) १ वरुणका वंशधर। २ अगस्त्य ऋषिके गोत्रमें उत्पन्न पुरुष।

वरुणात्मजा (सं० स्त्री०) वरुणस्य जनस्य आत्मजा; तदुद्भवत्वात्। वारुणी, मदिरा, शराब।

वरुणादिक्वाथ (सं० क्लो०) वरुणकी छाल, सोंठ, गोखरू कुल मिला कर २ तोला, जल ॥० सेर, शेष आध पाव, प्रक्षेपार्थ यवक्षार २ माशा, पुराना गुड़ २ माशा। इस क्वाथका पान करनेसे पुरानी वायुज अश्मरीकी शान्ति होती है।

वृहद्वरुणादि—वरुणकी छाल, सोंठ, गोखरूका बीज, तालमूली, कुलथी, कलाय, कुशादि तृणपञ्चमूल कुल मिला कर २ तोला, जल ॥० सेर, शेष आध पाव, प्रक्षेपार्थ चीनी २ माशा, यवक्षार २ माशा। इससे अश्मरी, मूत्रकृच्छ्र, वस्तिशूल और लिङ्गशूल जाता रहता है।

वरुणकी छालके काढ़े या कल्कके साथ पुराना गुड़

दंग करने लगा। वरुणालयवासी बहुत डर गये और परशुरामका ध्यान करने लगे। ध्यानसे संतुष्ट हो कर परशुराम वहां उपस्थित हुए और उन्हें सम्बोधन कर कहा, 'हे ब्राह्मण! यदि मेरे कथनानुसार कार्य करो, तो तुम लोगोंका दैत्यभय दूर हो जायगा। मैंने दैत्यनाशनके लिये वरुण-निर्मित पुरीमें महामायाको स्थापन किया है, तुम सभी जा कर यदि उनकी शरण लो, तो तुम्हारे भय दूर हो जायेंगे।' वरुणालयवासी विप्रोंने परशुरामके आदेशानुसार महालक्ष्मी नामक महामायाकी शरण ली। वहां वे उनका स्तव और पूजादि करने लगे। महामायाने ब्राह्मणादिके स्तवसे संतुष्ट हो कर उनसे कहा '*हे विप्रगण! तुम लोग भय न करो, मैं इस दैत्यका* विनाश करती हूं।' इस प्रकार उन्हें अभय दे कर वे दैत्यके साथ युद्ध करने लगीं। घोर युद्ध करनेके बाद महामायाने उसका सिर काट डाला और उसे बायें हाथमें ले कर वह अपने स्थानको लौटीं। इस प्रकार दैत्य-भय दूर हुआ। देवगण आकाशसे पुष्पवृष्टि और गन्धर्व-गण गान करने लगे। रामभद्रोत्सव निर्विघ्नपूर्वक सम्पन्न हुआ। भाद्रों मास मासकी शुक्ला षष्ठी तिथिको कामना करके तथा भक्तिपरायण हो कर जो सब व्यक्ति त्रिभुवनेश्वरी देवी महामायाकी पूजा करते हैं, देवी उन-की अभिलाषा पूर्ण करती हैं।

(स्कन्दपु० सह्याद्रि० वरुणपुरीमाहात्म्य १-२ अ०)

जिस अन्तरीक्षको देख कर वैदिक युगके आर्योंके हृदयमें ईश्वरकी अभिव्यक्ति उदय हुई थी, वेदमें उन्हींको वरुणदेव कहा है। उस अन्तरीक्षव्यापी देवताओंके राजा वरुणके साथ ग्रीक पुराणोक्त उरेनसकी अनेक समता देखी जाती है। वैदिक उपाख्यानमें यीन् कर्तृक जिस प्रकार वरुणकी पदच्युति और अलौकिक कर्मसे वियोगकी कथा है, उसी प्रकार ग्रीसके पुराणमें ज्यूस कर्तृक उरेनसकी पदच्युतिका हाल लिखा है। वरुण वृष्टि-दाता और जलवृष्टिदाता हैं, उरेनस भी उन्हीं उन्हीं कार्योंके अधिपति हैं। किन्तु यथार्थमें मित्र और अग्निको तथा ग्रीक और वरुणके साथ अन्यान्य विषयोंमें बहुत प्रभेद देखा जाता है, पर जन्दावेस्तामें मैनुसके साथ वरुणका विशेष सादृश्य है। मैनुस देखो।

३ तमालपत्रवत् वृक्षविशेष, वरुनका पेड़। पर्याय वरुण, सेतु, तिक्तशाक, कुमारक, श्वसनरोग, सेतुक, गन्ध-शिखिमण्डल, दीर्घवृक्ष, दीर्घद्रुम, साधुवृक्ष, मारुत, मारुतापह। इसका गुण—कटु, उष्ण, रक्तदोष और शीतवातहर, स्निग्ध, दीपन तथा विद्रधिनाशक।

(राजनि०)

भावप्रकाशके मतसे इसका गुण—वायु और कफ-हर, भेदक, उष्ण और अश्मरीनाशक। वरुनका फूल गुण—पित्तघ्न और आमवातहर। (राजवल्लभ)

४ जल, पानी। ५ सूर्य। ६ मुनि-गर्भजात कश्यपके एक पुत्रका नाम। (भारत १।६५।४३)

वरुणक (सं० पु०) वरुणवृक्ष, वरनाका पेड़। (Crataeva Roxburghii)

वरुणगुड़—औषधविशेष।

वरुणगृहीत (सं० त्रि०) १ वरुण द्वारा आक्रान्त। २ जलोदरादि रोगाक्रान्त।

वरुणग्रस्त (सं० त्रि०) वरुणग्रस्त, जलमें डूबा हुआ।

वरुणग्रह (सं० पु०) घोड़ोंका एक रोग जो भयानक हो जाता है। इस रोगमें घोड़ेका तालु, ओठ, आँख और लिङ्गेन्द्रिय आदि अंग काले रंगके हो जाते हैं। उसका शरीर भारी हो जाता है और पसीना छूटता है। यह रोग भयानक होता है और बहुत यत्न करनेसे घोड़ेके प्राण बचते हैं।

वरुणग्राम—एक प्राचीन ग्राम। (भविष्य ब्रह्म० ५३।२५६)

वरुणग्राह (सं० पु०) वरुण द्वारा आक्रमण या बन्धन।

(तैत्तिरीय० १।६।५।४)

वरुणघृत—अश्मरीका एक औषध। घी ४ सेर, काढ़ेके लिये कूटी हुई वरुणकी छाल १२। सेर, जल ६४ सेर, शेष १६ सेर। कल्कके लिये वरुण मूलकी छाल, केले की जड़, बेलके पेड़की छाल, कुशादि पञ्चतृणका मूल, गुरुच, शिलाजित, ककड़ीका बीज, मूल, तिल्वकका क्षार, पलाशक्षार, जूहीका मूल प्रत्येक २ तोला। अग्निके बलानुसार मात्रा स्थिर करनी होगी। रोग पुराना होनेसे उसके साथ पहले दवाका पानी मिला कर सेवन करना चाहिये। इससे अश्मरी, शर्करा और मूत्रकृच्छ्र रोग दूर होते हैं।

वरुणतीर्थ (सं॰ क्लो॰) तीर्थभेद। कालिकापुराणमें लिखा है, कि दर्पटनदके पूरब अग्निमान नामक पर्वत है। उसके सम्मुखभागमें कंसकर पर्वतके नीचे वरुण कुण्ड नामका पवित्र सरोवर है। यहां जलाधिप वरुण सर्वदा वास करते हैं। कंसकर पर्वत पर वरुणदेवकी पूजा करके वारुणकुण्डमें स्नान करनेसे वरुणलोककी प्राप्ति होती है। म-से पञ्चम वर्ण 'ब'-कारमें अनुस्वार लगानेसे वरुणबीज होता है। उसी बीजमन्त्रसे वरुणदेवको पूजा करनी होती है। (कालिका॰ ७६।१० १७)

वरुणत्व (सं॰ क्ली॰) वरुणका भाव या धर्म।

वरुणदत्त (सं॰ पु॰) पाणिनि-वर्णित एक व्यक्ति। (पा॰ ५।३।८४)

वरुणदेव (सं॰ त्रि॰) १ वरुण जिसके देवता हों। (पु॰) २ शतभिषा नक्षत्र। (वृहत्स॰ ३२।२०) ३ वरुणदेवता।

वरुणदैवत (सं॰पु॰) शतभिषा नक्षत्र।

वरुणध्रुत् (सं॰ त्रि॰) १ वरुणको प्रवञ्चना या लोभ दिखानेवाला। २ वरुण द्वारा हिंसित, वरुणसे मारा हुआ।

वरुणपाश (सं॰ पु॰) १ वरुणका अस्त्र पाशका फंदा। २ नक्र, नाक नामक जल-जंतु।

वरुणपुरुष (सं॰ पु॰) वरुणका भृत्य या नौकर। (आश्व॰ यथ १।१।१५)

वरुणप्रघास (सं॰ पु॰) एक व्रत या कृत्य। यह आषाढ़ या श्रावणकी पूर्णिमाके दिन किया जाता है। इसमें लोग जौका सत्तू खा कर रहते हैं। इस व्रतका फल यह कहा गया है कि, व्रत करनेवाला जलमें डूबता नहीं और उसे मगर, घड़ियाल आदि जलजंतु नहीं पकड़ता।

वरुणप्रशिष्ट (सं॰ त्रि॰) वरुणके द्वारा शासित या परिचालित।

वरुणप्रस्थ (सं॰ पु॰) एक प्राचीन नगर जो कुरुक्षेत्रके पश्चिममें था। (म॰ ब्रह्मख॰ ५७।११४)

वरुणभट्ट (सं॰ पु॰) एक प्रसिद्ध ज्योतिषी।

वरुणमण्डल (सं॰ पु॰) नक्षत्रोंका एक मंडल। इसमें रेवती, पूर्वाषाढ़ा, आर्द्रा, अश्लेषा, मूला, उत्तराभाद्रपदा और शतभिषा हैं।

वरुणमति (सं॰ पु॰) एक बोधिसत्त्वका नाम।

वरुणमित्र (सं॰ पु॰) गोभिलभेद।

वरुणमेनि (सं॰ स्त्री॰) वरुणका क्रोध। (तैत्तिरीयस॰ ५।१।५।३)

वरुणराजन् (सं॰ त्रि॰) वरुण जहां राजरूपमें अधिष्ठित हैं। (तैत्तिरीयस॰ ३।५।८।१)

वरुणलोक (सं॰ पु॰) १ एक लोक। (कौशिकी उप॰ १।५) काशीखण्डके १०८वें अध्यायमें इसका विवरण है। २ वरुणका अधिकारस्थान या जल। (तर्कसंग्रह ७ प॰)

वरुणशर्मन् (सं॰ पु॰) देवता और असुरकी लड़ाईमें देवपक्षीय एक सेनापतिका नाम।

वरुणशेपस् (सं॰ त्रि॰) १ वरुणका अपत्य। (ऋक् ५।६५।५ सायण) २ रक्षाकारी पुत्रादिविशिष्ट।

वरुणश्राद्ध (सं॰ क्ली॰) श्राद्धकृत्यभेद।

वरुणसव (सं॰ पु॰) वरुणका अभिप्रेत यज्ञ।

वरुणसेन (सं॰ पु॰) शिलालिपि-वर्णित एक राजाका नाम।

वरुणसेना (सं॰ स्त्री॰) राजकन्याभेद। (कथासरित्सा॰ ४४।६४)

वरुणस्रोतस् (सं॰ पु॰) पर्वतभेद।

वरुणाङ्गरुह (सं॰ पु॰) १ वरुणका वंशधर। २ अगस्त्य ऋषिके गोत्रमें उत्पन्न पुरुष।

वरुणात्मजा (सं॰ स्त्री॰) वरुणस्य जनस्य आत्मजा, तदुद्भवत्वात। वारुणी, मदिरा, शराब।

वरुणादिक्वाथ (सं॰ क्ली॰) वरुणकी छाल, सोंठ, गोखरू कुल मिला कर २ तोला, जल ॥॰ सेर, शेष आध पाव, प्रक्षेपार्थ यवक्षार २ माशा, पुराना गुड़ २ माशा। इस कषायका पान करनेसे पुरानी वायुज अश्मरोकी शान्ति होती है।

वृहद्वरुणादि—वरुणकी छाल, सोंठ, गोखरूका बीज, तालमूली, कुलथी, कलाय, कुशादि तृणपञ्चमूल कुल मिला कर २ तोला, जल ॥॰ सेर, शेष आध पाव, प्रक्षेपार्थ चीनी २ माशा, यवक्षार २ माशा। इससे अश्मरी, मूत्रकृच्छ्र, वस्तिशूल और लिङ्गशूल जाता रहता है।

वरुणकी छालके काढ़े या कल्कके साथ पुराना गुड़

भंग करने लगा। सदनालयवासी बहुत डर गये और परशुरामका ध्यान करने लगे। ध्यानसे संतुष्ट हो कर परशुराम वहां उपस्थित हुए और उन्हें सम्बोधन कर कहा, 'हे ब्राह्मण! यदि मेरे कथनानुसार कार्य करो, तो तुम लोगोंका दैत्यभय दूर हो जायगा। मैंने दैत्यनाशन-कामके लिये वरुण-निर्मित पुरीमें महामायाको स्थापन किया है, तुम सभी जा कर यदि उनकी शरण लो, तो तुम्हारे भय दूर हो जायेंगे।' सदनालयवासी विप्रोंने परशुरामके आदेशानुसार महालक्ष्मी नामक महामायाकी शरण ली। वहां वे उनका स्तव और पूजादि करने लगे। महामायाने ब्राह्मणादिके स्तवसे संतुष्ट हो कर उनसे कहा 'हे विप्रगण! तुम लोग भय मत करो, मैं इस दैत्यका विनाश करती हूं।' इस प्रकार उन्हें अभय दे कर वे दैत्यके साथ युद्ध करने लगीं। घोर युद्ध करनेके बाद महामायाने उसका सिर काट डाला और उसे बायें हाथमें ले कर वह अपने घरको लौटीं। इस प्रकार दैत्य-भय दूर हुआ। देवगण आकाशसे पुष्पवृष्टि और गन्धर्व-गण गान करने लगे। रामहोत्सव निर्विघ्नपूर्वक समाप्त हुआ। तभीसे माघ मासकी शुक्ला षष्ठी तिथिको कामना करके तथा भक्तिपरायण हो कर जो सब व्यक्ति त्रिभुवनेश्वरी देवी महामायाकी पूजा करते हैं, देवी उन-की अभिलाषा पूर्ण करती हैं।

(स्कन्दपु० सह्याद्रिखं० वरुणपुरीमाहात्म्य १-२ अ०)

जिस अन्तरीक्षको देख कर वैदिक युगके आर्योंके हृदयमें ईश्वरका अभिव्यक्ति उदय हुई थी, वेदमें उन्हींको वरुणदेव कहा है। इस अन्तरीक्षव्याप्त देवताओंके राजा वरुणके साथ ग्रीक पुराणोक्त उरेनसकी अनेक सदृशता देखी जाती है। वैदिक उपासनामें भक्त जिस प्रकार वरुणकी स्तवस्तुति और प्रार्थना करनेमें नियोजित रहा है, उसी प्रकार ग्रीकके पुराणमें अपुत भक्त उरेनसकी स्तवस्तुतिका हाल लिखा है। वरुण वृष्टि-दाता और अमृतवर्षिदाता हैं, उरेनस भी उसी उसी कार्यके अधिपति हैं। किन्तु वरुणमें जैसा और जितनी सदा जल और वरुणके साथ अन्यान्य विषयोंमें बहुत प्रभेद देखा जाता है, परन्तु अन्यान्य विषयोंमें मैत्र्युसके साथ वरुणका विशेष सादृश्य है। मित्र देखो।

३ स्वनामख्यात वृक्षविशेष, वरनाका पेड़। पर्याय वरण, सेतु, तिक्तशाक, कुमारक, अश्मरीघ्न, सेतुक, श्वेत-शिखिमण्डल, श्वेतपुष्प, श्वेतद्रुम, साधुवृक्ष, गन्धक, मारुतापह। इसका गुण—कटु, उष्ण, रक्तदोष और शीतवातहर, स्निग्ध, दीपन तथा विद्रधिनाशक।

(राजनि०)

भावप्रकाशके मतसे इसका गुण—वायु और कृमि-हर, भेदक, उष्ण और अश्मरीनाशक। वरुणका पुष्प गुण—पित्तघ्न और आमवातहर। (राजवल्लभ)

४ जल, पानी। ५ सूर्य। ६ मुनि-गणोंमेंसे कश्यपके एक पुत्रका नाम। (भारत १।६५।४३)

वरुणक (सं० पु०) वरुणवृक्ष, वरनाका पेड़। (Crataeva Roxburghii)

वरुणगुड़—औषधविशेष।

वरुणगृहीत (सं० त्रि०) १ वरुण द्वारा आक्रान्त। २ जलोदरादि रोगग्रस्त।

वरुणग्रस्त (सं० त्रि०) वरुणग्रस्त, जलमें डूबा हुआ।

वरुणग्रह (सं० पु०) घोड़ोंका एक रोग जो भयानक हो जाता है। इस रोगमें घोड़ेका नाक, ओठ, आंख और लिङ्गेन्द्रिय आदि अंग काले रंगके हो जाते हैं। उसका शरीर भारी हो जाता है और पसीना छूटता है। यह रोग भयानक होता है और बहुत यत्न करनेसे घोड़ेके प्राण बचते हैं।

वरुणग्राम—एक प्राचीन ग्राम। (भविष्य ब्रह्मख० ५७।२५१)

वरुणग्राह (सं० पु०) वरुण द्वारा आक्रमण या बन्धन।

(तैत्तिरीयब्रा० १।६।५।४)

वरुणाद्यघृत—अश्मरीका एक औषध। घी ४ सेर, काढ़ेके लिये कूटी हुई वरुणकी छाल १२॥ सेर, जल ६४ सेर, शेष १६ सेर। कल्कके लिये वरुण वृक्षकी छाल, केले की जड़, बेलके पेड़की छाल, तृणादि पञ्चमूलका मूल, गुलञ्च, शिलाजित, ककड़ीका बीज, गुड़, तिलनालका क्षार, पलाशक्षार, जुहीका मूल प्रत्येक २ तोला। अग्निके बलानुसार मात्रा स्थिर करनी होगी। रोग पुराना होनेसे उसके साथ पहले दहीका पानी मिला कर सेवन करना चाहिये। इससे अश्मरी, शर्करा और मूत्रकृच्छ्र रोग दूर होते हैं।

वरुणतीर्थ (सं० क्ली०) तीर्थभेद। कालिकापुराणमें लिखा है, कि दर्पटनदके पूरब अग्निमान नामक पर्वत है। उसके सम्मुखभागमें कंसकर पर्वतके नीचे वरुण कुण्ड नामका पवित्र सरोवर है। यहां जलाधिप वरुण सर्वदा वास करते हैं। कंसकर पर्वत पर वरुणदेवकी पूजा करके वारुणकुण्डमें स्नान करनेसे वरुणलोककी प्राप्ति होती है। म-से पञ्चम वर्ण 'व'-कारमें अनुस्वार लगानेसे वरुणबीज होता है। उसी बीजमन्त्रसे वरुणदेवको पूजा करनी होती है।

(कालिका० ७६।१० १७)

वरुणत्व (सं० क्ली०) वरुणका भाव या धर्म।

वरुणदत्त (सं० पु०) पाणिनि-वर्णित एक व्यक्ति।

(पा० ५।३।८४)

वरुणदेव (सं० त्रि०) १ वरुण जिसके देवता हों। (पु०) २ शतभिषा नक्षत्र। (बृहत्स० ३२।२०) ३ वरुणदेवता।

वरुणदैवत (सं० पु०) शतभिषा नक्षत्र।

वरुणध्रुत् (सं० त्रि०) १ वरुणको प्रवञ्चना या लोभ दिखानेवाला। २ वरुण द्वारा हिंसित, वरुणसे मारा हुआ।

वरुणपाश (सं० पु०) १ वरुणका अस्त्र पाशका फंदा। २ नक्र, नाक नामक जल-जंतु।

वरुणपुरुष (सं० पु०) वरुणका भृत्य या नौकर।

(आश्व० गृह्य ११।१।५)

वरुणप्रघास (सं० पु०) एक व्रत या कृत्य। यह आषाढ़ या श्रावणकी पूर्णिमाके दिन किया जाता है। इसमें लोग जौका सत्तू खा कर रहते हैं। इस व्रतका फल यह कहा गया है कि, व्रत करनेवाला जलमें डूबता नहीं और उसे मगर, घड़ियाल आदि जलजंतु नहीं पकड़ता।

वरुणप्रशिष्ट (सं० त्रि०) वरुणके द्वारा शासित या परिचालित।

वरुणप्रस्थ (सं० पु०) एक प्राचीन नगर जो कुरुक्षेत्रके पश्चिममें था। (म० अनुशा० ५७।११४)

वरुणभट्ट (सं० पु०) एक प्रसिद्ध ज्योतिषी।

वरुणमण्डल (सं० पु०) नक्षत्रोंका एक मंडल। इसमें रेवती, पूर्वाषाढ़ा, आर्द्रा, अश्लेषा, मूला, उत्तराभाद्रपदा और शतभिषा हैं।

वरुणमति (सं० पु०) एक बोधिसत्त्वका नाम।

वरुणमित्र (सं० पु०) गोभिलभेद।

वरुणमेनि (सं० स्त्री०) वरुणका क्रोध।

(तैत्तिरीयस० ५।१।५।३)

वरुणराजन् (सं० त्रि०) वरुण जहां राजरूपमें अधिष्ठित हैं। (तैत्तिरीयस० ३।५।८।१)

वरुणलोक (सं० पु०) १ एक लोक। (कौशिकी उप० १।५) काशीखण्डके १०८वें अध्यायमें इसका विवरण है। २ वरुणका अधिकारस्थान या जल।

(तत्त्वसंग्रह ७ अ०)

वरुणशर्मन् (सं० पु०) देवता और असुरकी लड़ाईमें देवपक्षीय एक सेनापतिका नाम।

वरुणशेषस् (सं० त्रि०) १ वरुणका अपत्य। (ऋक् ५।६५।५ सायण) २ रक्षाकारी पुत्रादिविशिष्ट।

वरुणश्राद्ध (सं० क्ली०) श्राद्धकृत्यभेद।

वरुणसव (सं० पु०) वरुणका अभिप्रेत यज्ञ।

वरुणसेन (सं० पु०) शिलालिपि-वर्णित एक राजाका नाम।

वरुणसेना (सं० स्त्री०) राजकन्याभेद।

(कथासरित्सा० ४४।४४)

वरुणस्रोतस् (सं० पु०) पर्वतभेद।

वरुणाङ्कुरह (सं० पु०) १ वरुणका वंशधर। २ अगस्त्य ऋषिके गोत्रमें उत्पन्न पुरुष।

वरुणात्मजा (सं० स्त्री०) वरुणस्य जनस्य आत्मजा, तदुद्भवत्वात्। वारुणी, मदिरा, शराब।

वरुणादिक्वाथ (सं० क्ली०) वरुणकी छाल, सोंठ, गोखरू कुल मिला कर २ तोला, जल ॥० सेर, शेष आध पाव, प्रक्षेपार्थ यवक्षार २ माशा, पुराना गुड़ २ माशा। इस कषायका पान करनेसे पुरानी वायुज अश्मरीकी शान्ति होती है।

बृहद्वरुणादि—वरुणकी छाल, सोंठ, गोखरूका बीज, तालमूली, कुलथी, कलाय, कुशादि तृणपञ्चमूल कुल मिला कर २ तोला, जल ॥० सेर, शेष आध पाव, प्रक्षेपार्थ चीनी २ माशा, यवक्षार २ माशा। इससे अश्मरी, मूत्रकृच्छ्, वस्तिशूल और लिङ्गशूल जाता रहता है।

वरुणकी छालके काढ़े या कल्कके साथ पुराना गुड़

और वरिश्रमके मूत्रका उष्ण क्वाथ सेवन करनेसे अश्मरी और मूत्रकृच्छ्र दगतना दूर होती है।

वरुणादिगण (सं० पु०) पेड़ों और पौधोंका एक वर्ग। इसके अन्तर्गत वरुण, नीलझिण्टी, सहिजन, जयन्ती, मेढासिंगी, पूतिका, नाटाकरञ्ज, अग्निमन्थ (अरणी), चीता, शतमूली, बेल, अजशृंगी, डाभ, बृहती और कट-कटैला है। (सुश्रुत सू० ३८ अ०)

वरुणाद्रि (सं० पु०) पर्वतभेद।

वरुणानी (सं० स्त्री०) वरुणस्य पत्नी वरुण (इन्द्रवरुण-भवेति। पा ४।१।४९) इति ङीष्, आनुगागमश्च। वरुण-की पत्नी।

वरुणापुर—सह्याद्रिपर्वतस्थ एक प्राचीन तीर्थक्षेत्र। वरुण देखो।

वरुणालय (सं० पु०) समुद्र, सागर।

वरुणावास (सं० पु०) समुद्र, सागर।

वरुणावि (सं० स्त्री०) लक्ष्मी।

वरुणिक (सं० पु०) वरुणदत्तका संक्षिप्त नाम।

वरुणेश (सं० पु०) शतभिषा नक्षत्र, वरुण जिसके अधि-पति हैं।

वरुणेश्वरतीर्थ (सं० क्ली०) एक तीर्थका नाम।

वरुणोद (सं० क्ली०) सागर, समुद्र।

वरुणोपनिषद् (सं० स्त्री०) एक उपनिषद्का नाम।

वरुणोपपुराण (सं० पु०) एक उपपुराण। कूर्मपुराण और रेवामाहात्म्यमें इसका उल्लेख है।

वरुण्य (सं० त्रि०) वरुण-सम्बन्ध, वरुणसे उत्पन्न।

वरुत्र (सं० क्ली०) वृणोति आवृणोत्यनेनेति वृ-उत्र (अशित्रादिभ्य इत्रोत्रौ। उण् ४।१७२) उत्तरीय वस्त्र, चादर, दुपट्टा।

वरुटी (सं० स्त्री०) वाग्वरके अन्तर्गत एक नदी। (भविष्य ब्रह्म० १६।५०)

वरूट (सं० पु०) वृ-ऊट। ....

वरूड (सं० पु०) व्याधभेद। पुराणमें 'वरुड' नामसे विख्यात है।

वरूतृ (सं० त्रि०) रक्षिता, रक्षक।

वरूथ (सं० पुं०) व्रियते अनेनेति वृ-वरणे ऊथन् (जृवृञ्भ्यामूथन्। उण् २।६) १ तनुत्राण, कवच। २ चर्म, ढाल। ३ गृह, घर। ४ सैन्य, सेना, फौज। व्रियते परोऽनेनेति वृ-वृ वरणे ऊथन्। (पु०) ५ लोहेके चद्दर या लोहकड़ियोंका बना हुआ आवरण या झूल जो लड़ाईके समयमें रथको रक्षित करनेके लिये उसके ऊपर डाली जाती थी। ६ एक प्राचीन ग्राम। (ऋग्वेद १।५८।११)

वरूथशस् (सं० अव्य०) समूहशः, बहुत सा।

वरूथाधिप (सं० पु०) वरूथानां सैन्यानामधिपः, रक्षिता। सेनापति।

वरूथाधिपति (सं० पु०) सेनानी, सेनानायक।

वरूथिन् (सं० पु०) वरूथं अस्त्यस्येति वरूथ इनि। १ रथोपरिस्थ गृहाकार काष्ठ या रथगुप्तियुक्त, हाथीके काठी। २ वरूथार्थक चर्मसमन्वितयुक्त।

वरूथिनी (सं० स्त्री०) सेना।

वरूथ्य (सं० त्रि०) १ वरणीय, वरणके योग्य। २ परि-वृत, वेष्टित। ३ गृहार्ह, घरके योग्य। ४ शीतवातातप-निवारक। ५ गृहोचित धन।

वरेण (सं० पु०) बोलता, वरोल।

वरेणा (सं० स्त्री०) वरेण्या शब्दका अपभ्रंश।

वरेण्य (सं० पु०) व्रियते लोकैरिति वृ-एण्य, (वृञ एण्यः। उण् ३।९८) १ भृगुके एक पुत्रका नाम। २ महादेव। ३ कुंकुम, केसर। ४ पितृगणोंमेंसे एक। (त्रि०) ५ प्रधान, मुख्य। ६ वरणीय, पूजनीय।

वरेण्यक्रतु (सं० त्रि०) वरणीय, प्रज्ञायुक्त होना। (ऋक् ८।४३।१३)

वरेन्द्र (सं० पु०) १ राजा। २ सामन्तराज। ३ इन्द्र। ४ बङ्गालका एक विभाग। यह वरेन्द्रभूमि नामसे विख्यात है। देवपालोंसे लिखा है, कि एक समय गौड़ ही वरेन्द्रभूमिकी राजधानी थी। बारेन्द्र देखो।

वरेन्द्रगिरि—पदवाक्यप्रमाणिका नामक वेदान्तिक ग्रन्थके रचयिता।

वरेन्द्री (सं० स्त्री०) गौड़ देश, वरेन्द्रभूमि।

वरेय (सं० पु०) दूल्हा।

वरेयु (सं० त्रि०) प्रणयप्रार्थी, विवाहके लिये कन्याका याचना करनेवाला।

वरेश (सं० पु०) सर्वेश्वर, वर देनेवाले। भगवान्।

वरेश्वर (सं० पु०) शिव।

वरोट (सं० क्ली०) वराणि श्रेष्ठानि अटानि दलानि अस्य। मरुवक, मरुवा।

वरोत्पल (सं० क्ली०) श्वेत रक्तपद्म।

वरोद—१ बम्बई प्रेसिडेन्सीके झालावार प्रान्तस्थ एक सामन्तराज्य। यहांके सामन्तराजका राजस्व २१ हजार रु० है जिनमें उन्हें जूनागढ़के नवाबको सालाना २७८) रु० और बड़ौदा-पतिको १२५२) रु० कर देना पड़ता है।

२ उक्त प्रेसिडेन्सीके गोहेलवाड़ प्रान्तस्थ एक छोटा सा सामन्त राज्य। अभी यह दो भागोंमें बंट गया है। यहांके अधिकारी लोग बड़ौदा गायकवाड़ और जूनागढ़के नवाबको कर देते हैं।

वरोरु (सं० त्रि०) वरः ऊरुः कर्मधा०। १ श्रेष्ठ ऊरु, सुन्दर जांघ। (त्रि०) २ श्रेष्ठ उरुशाली, सुन्दर जांघोंवाला। ३ सुन्दरी।

वरोल (सं० पु० स्त्री०) वृ-उलच्। १ वरट। २ भृङ्गरोल।

वरोहशाखी (सं० पु०) प्लक्षवृक्ष, पाकरका पेड़।

वरौषधी (सं० स्त्री०) १ आदित्यभक्ता, हुरहुर। २ ब्राह्मी शाक।

वर्कट (सं० पु०) १ हाथीका बंधन जो लकड़ीका बना हुआ और कांटेदार होता है। २ कांटा, कील। ३ अर्गल, अगरी।

वर्कणा (सं० स्त्री०) तरुण छागी, जवान बकरी, पठिया।

वर्कर (सं० पु०) वृणयते गृह्यते इति वृक-भावे बहुलवचनात् अर। १ युव पशु, जवान पशु। २ मेषशावक, भेड़का बच्चा, मेमना। ३ छाग, बकरा। ४ परिहास, आमोद-प्रमोद।

वर्करकर्कर (सं० त्रि०) बहुत तरहका।

वर्करीट (सं० पु०) वर्करं परिहासं अटति गच्छतीति अच्-टाप्। १ कटाक्ष। २ तरुण तपनप्रभा, मध्याह्नके सूर्यकी प्रभा। ३ स्त्रीके कुचके किनारे लगा हुआ नखक्षत।

वर्करीकुण्ड (सं० क्ली०) काशीके एक सरोवरका नाम। यह एक पुण्यतीर्थ है। काशी देखो।

वर्करीतीर्थ—एक तीर्थका नाम। (कुमारीका १०७।१७)

वर्किंग कमिटी (अं० स्त्री०) कार्यकारिणी समिति। जैसे—कांग्रेस वर्किंग कमिटी।

वर्ग (सं० पु०) वृज्यते इति वृजि वर्जने घञ्। १ सजातीय समूह, एक ही प्रकारकी अनेक वस्तुओंका समूह। २ आकार प्रकारमें कुछ भिन्न, पर कोई एक सामान्य धर्म रखनेवाले पदार्थोंका समूह। ३ शब्दशास्त्रमें एक स्थानसे उच्चरित होनेवाले स्पर्श व्यञ्जनवर्णोंका समूह व्याकरणके मतसे वर्ग पांच हैं, यथा—कवर्ग, चवर्ग, टवर्ग तवर्ग और पवर्ग। कवर्ग कहनेसे क, ख, ग, घ, ङ, चवर्ग कहनेसे च, छ, ज, झ, ञ, इसी प्रकार टवर्ग कहनेसे ट से 'ण' तक, तवर्ग कहनेसे 'त' से 'न' तक तथा पवर्ग कहनेसे 'प' से 'म' तक पाया जायगा। क च ट त प आदि पांच पांच वर्ण ले कर ही व्याकरणका वर्ग बना है। "कचटतपाः पञ्चवर्गा" ते वर्गाः पञ्च पञ्च पञ्च इत्यादि।

अभिधानमें इस समष्टि या समार्थमें स्वर्गपातालादि वर्ग, नानार्थवर्ग, भूमिवनौषधि वर्ग, अव्यय वर्ग, ब्रह्म वर्ग, क्षत्रविट् शूद्रादि वर्गका भी उल्लेख देखा जाता है। (अग्निपु० ३६६ ३७५ अ०)

फलित ज्योतिषमें लिखा है, कि अवर्गके अधिपति सूर्य, कवर्गके अधिपति मङ्गल, चवर्गके शुक्र, टवर्गके बुध, तवर्गके बृहस्पति, पवर्गके शनि, य और श वर्गके अधिपति चन्द्र हैं। इसके द्वारा गणना करनेसे नामादि जाने जाते हैं।

४ ग्रन्थ परिच्छेद, ग्रन्थका विभाग, प्रकरण, अध्याय। ५ आयुर्वेदोक्त गण। ६ वह चौखूंटा क्षेत्र जिसकी लम्बाई चौड़ाई बराबर और चारों कोण समकोण हों। ७ दो समान अंकों या राशियोंका घात या गुणनफल। लीलावतीमें इसका विषय लिखा है। इसका उद्देशक या मन्तव्य निम्नोक्त विधि द्वारा स्पष्ट किया गया है—

"सखे नवानाञ्च चतुर्दशानां ब्रूहि त्रिहीनस्य शतत्रयस्य।
पञ्चोत्तरस्याप्ययुतस्य वर्गं जानासि चेद्वर्गविधानमार्गम्॥"
(लीलावती)

इस सूत्रका अवलम्बन कर ६, १४, २९७ और १०००५ का वर्गफल निर्णय करनेमें यथाक्रम पूर्वोक्त प्रक्रिया द्वारा ८१, १९६, ८८२०९ और १००१०००२५ राशि पाई जाती अथवा अन्यप्रक्रियामें ९ संख्याका खण्ड ४ और ५ ले

और वटिक्रमके सुपका रस खाथ सेवन करनेसे अश्मरी और शर्करा दमस्तका दूर होती है।

वरुणादिगण (सं० पु०) पेड़ों और पौधोंका एक वर्ग। इसके अन्तर्गत वरुण, श्योनाक, मेढ़शृङ्गी, सहिजन, अपामार्ग, मेढ़ासीगी, पूतिका, नारायणी, अग्निमन्थ (अरणी), चीता, शतमूली, बेल, मरुवा, दाभ, बृहती और कटकटैला है। (सुश्रुत सू० ३८ अ०)

वरुणाद्रि (सं० पु०) पर्वतभेद।

वरुणानी (सं० स्त्री०) वरुणस्य पत्नी वरुण (इन्द्रवरुण-भवेति। पा ४।१।४९) इति ङीष्, आनुगागमश्च। वरुण-की पत्नी।

वरुणापुर—सह्याद्रिवर्णित एक प्राचीन तीर्थस्थान।

वरुण देखो।

वरुणालय (सं० पु०) समुद्र, सागर।

वरुणावास (सं० पु०) समुद्र, सागर।

वरुणानि (सं० स्त्री०) लक्ष्मी।

वरुणेश (सं० पु०) वरुणवृक्षका संक्षिप्त नाम।

वरुणेश (सं० पु०) शतभिषा नक्षत्र, वरुण जिसके अधि-पति हैं।

वरुणेश्वरतीर्थ (सं० क्ली०) एक तीर्थका नाम।

वरुणोद (सं० क्ली०) सागर, समुद्र।

वरुणोपनिषद् (सं० स्त्री०) एक उपनिषद्का नाम।

वरुणोपपुराण (सं० पु०) एक उपपुराण। कूर्मपुराण और रेवामाहात्म्यमें इसका उल्लेख है।

वरुण्य (सं० त्रि०) वरुण-सम्बन्ध, वरुणसे उत्पन्न।

वरुत्र (सं० क्ली०) वृणोति आवृणोत्यनेनेति वृ उत्र (अर्त्तिकम्बिभ्य इति। उण् ५।७२) उत्तरीय वस्त्र, दुपट्टा, दुपट्टा।

वरुनी (सं० स्त्री०) पाटलवर्मे अन्तर्गत एक नदी।

(भविष्य ब्रह्म० ११।५०)

वरुल (सं० पु०) वृ-उल। भक्त।

वरुष (सं० पु०) देशभेद। पुराणमें 'उरुष' नामसे विख्यात है।

वरूथ (सं० त्रि०) रक्षक, रक्षक।

वरूथ (सं० क्ली०) व्रियते आवृणोत्यनेनेति वृ-ऊथन् प्रत्यय (जृवृभ्यामूथन्। उण् २।६) १ तनुत्राण, कवच। २ चर्म, ढाल। ३ गृह, घर। ४ सैन्य, सेना, फौज। व्रियते अनेनेति वृ-ऊथन् प्रत्यय। (पु०) ५ लोहे की चद्दर या चमड़ेका बना हुआ आवरण जो युद्धमें आघातसे रथको रक्षित करनेके लिये उसके ऊपर डाला जाता था। ६ एक प्राचीन ग्राम।

(रामायण २।७१।११)

वरूथवत् (सं० अव्य०) बहुता, बहुत सा।

वरूथाधिप (सं० पु०) वरूथानां सैन्यानामधिपः, सेना-सेनापति।

वरूथाधिपति (सं० पु०) सेनानी, सेनानायक।

वरूथिन् (सं० पु०) वरूथ अस्त्यस्मिन्निति वरूथ इन्। १ रथोपरिस्थ गृहाकार काष्ठ या रथगुप्तियुक्त, हाथियों काठी। २ वरूथयुक्त, चर्मयुक्त।

वरूथिनी (सं० स्त्री०) सेना।

वरूथ्य (सं० त्रि०) १ वरणीय, वरणके योग्य। २ परि-वृत, वेष्ठित। ३ गृहार्ह, घरके योग्य। ४ शीतवातातप-निवारक। ५ गृहोचित धन।

वरेण (सं० पु०) योग्यता, वरेण्य।

वरेणा (सं० स्त्री०) वरेण्या शब्दका नामान्तर।

वरेण्य (सं० पु०) व्रियते लोकैरिति वृ-एण्य, (वृञ् एण्यः। उण् ३।९८) १ भृगुके एक पुत्रका नाम। २ महादेव। ३ कुंकुम, केसर। ४ पितृगणोंमेंसे एक। (त्रि०) ५ प्रधान, मुख्य। ६ वरणीय, पूजनीय।

वरेण्यक्रतु (सं० त्रि०) वरणीय, प्रज्ञायुक्त होना।

(ऋक् ८।४।१२)

वरेन्द्र (सं० पु०) १ राजा। २ सामन्तराज। ३ इन्द्र। ४ बङ्गालका एक विभाग। यह वरेन्द्रभूमि नामसे विख्यात है। देशावलीमें लिखा है, कि एक समय गौड़ेश्वर ही वरेन्द्रभूमिकी राजधानी थी। बारेन्द्र देखो।

वरेन्द्रगाति—वरतरवस्वर्णादिका नामक वैद्यनिक ग्रन्थके रचयिता।

वरेन्द्री (सं० स्त्री०) गौड़ देश, वरेन्द्रभूमि।

वरेय (सं० पु०) सूर्य।

वरेयु (सं० त्रि०) प्रार्थनाकारी, विवाहके लिये कन्याका प्रार्थना करनेवाला।

वरेश (सं० पु०) सर्वेश्वर, वर देनेवाले। भगवान्।

वरेश्वर (सं० पु०) शिव।

वरोट (सं० क्ली०) वराणि श्रेष्ठानि उटानि दलानि अस्य। मरुवक, मरुवा।

वरोत्पल (सं० क्ली०) श्वेत रक्तपद्म।

वरोद—१ बम्बई प्रेसिडेन्सीके झालावार प्रान्तस्थ एक सामन्तराज्य। यहांके सामन्तराजका राजस्व २१ हजार रु० है जिनमें उन्हें जुनागढ़के नवाबको सालाना २७८) रु० और बड़ौदा-पतिको १२५२) रु० कर देना पड़ता है।

२ उक्त प्रेसिडेन्सीके गोहेलवाड़ प्रान्तस्थ एक छोटा सा सामन्त राज्य। अभी यह दो भागोंमें बंट गया है। यहांके अधिकारी लोग बड़ौदा गायकवाड़ और जूनागढ़-के नवाबको कर देते हैं।

वरोरु (सं० त्रि०) वरः ऊरुः कर्मधा०। १ श्रेष्ठ ऊरु, सुन्दर जांघ। (त्रि०) २ श्रेष्ठ उरुशाली, सुन्दर जांघों-वाला। ३ सुन्दरी।

वरोल (सं० पु० स्त्री०) वृ-उलच्। १ वरट। २ भृङ्गरोल।

वरोहशाखी (सं० पु०) प्लक्षवृक्ष, पाकरका पेड़।

वर्षाधी (सं० स्त्री०) १ आदित्यभक्ता, हुरहुर। २ ब्राह्मी शाक।

वर्कट (सं० पु०) १ हाथीका बंधन जो लकड़ीका बना हुआ और कांटेदार होता है। २ कांटा, कील। ३ अर्गल, भगरी।

वर्कणा (सं० स्त्री०) तरुण छागी, जवान बकरी, पठिया।

वर्कर (सं० पु०) वृश्यते गृह्यते इति वृक-आदाने बहुल-वचनात् अर। १ युव पशु, जवान पशु। २ मेषशावक, भेड़का बच्चा, मेमना। ३ छाग, बकरा। ४ परिहास, आमोद-प्रमोद।

वर्करकर्कर (सं० त्रि०) बहुत तरहका।

वर्करीट (सं० पु०) वर्करं परिहासं अटति गच्छतीति अच्-टाप्। १ कटाक्ष। २ तरुण तपनप्रभा, मध्याह्नके सूर्यकी प्रभा। ३ स्त्रीके कुचके किनारे लगा हुआ नख-क्षत।

वर्करीकुण्ड (सं० क्ली०) काशीके एक सरोवरका नाम। यह एक पुण्यतीर्थ है। काशी देखो।

वर्करीतीर्थ—एक तीर्थका नाम। (कुमारीका १०७।१।७)

वर्किंग कमिटी (अं० स्त्री०) कार्यकारिणी समिति। जैसे—कांग्रेस वर्किंग कमिटी।

वर्ग (सं० पु०) वृज्यते इति वृजि वर्जने घञ्। १ सजातीय समूह, एक ही प्रकारकी अनेक वस्तुओंका समूह। २ आकार प्रकारमें कुछ भिन्न, पर कोई एक सामान्य धर्म रखनेवाले पदार्थोंका समूह। ३ शब्दशास्त्रमें एक स्थान-से उच्चरित होनेवाले स्पर्श व्यञ्जनवर्णोंका समूह व्याकरणके मतसे वर्ग पांच हैं, यथा—कवर्ग, चवर्ग, टवर्ग तवर्ग और पवर्ग। कवर्ग कहनेसे क, ख, ग, घ, ङ, चवर्ग कहनेसे च, छ, ज, झ, ञ, इसी प्रकार टवर्ग कहनेसे ट से 'ण' तक, तवर्ग कहनेसे 'त' से 'न' तक तथा पवर्ग कहनेसे 'प' से 'म' तक पाया जायगा। क च ट त प आदि पांच पांच वर्ण ले कर ही व्याकरणका वर्ग बना है। "कचतपाः पञ्चपर्गा" ते वर्गाः पञ्च पञ्च पञ्च इत्यादि।

अभिधानमें इस समष्टि वा समार्थमें स्वर्गपातालादि वर्ग, नानार्थवर्ग, भूमिवनौषधि वर्ग, अव्यय वर्ग, ब्रह्म वर्ग, क्षत्रविट् शूद्रादि वर्गका भी उल्लेख देखा जाता है। (अग्निपु० ३६६ ३७५ अ०)

फलित ज्योतिषमें लिखा है, कि अवर्गके अधिपति सूर्य, कवर्गके अधिपति मङ्गल, चवर्गके शुक्र, टवर्गके बुध, तवर्गके बृहस्पति, पवर्गके शनि, य और श वर्गके अधि-पति चन्द्र हैं। इसके द्वारा गणना करनेसे नामादि जाने जाते हैं।

४ ग्रन्थ परिच्छेद, ग्रन्थका विभाग, प्रकरण, अध्याय। ५ आयुर्वेदोक्त गण। ६ वह चौखूंटा क्षेत्र जिसकी लम्बाई चौड़ाई बराबर और चारो कोण समकोण हों। ७ दो समान अंकों या राशियोंका घात या गुणनफल। लीलावतीमें इसका विषय लिखा है। इसका उद्देशक या मन्तव्य निम्नोक्त विधि द्वारा स्पष्ट किया गया है—

"सखे नवानाञ्च चतुर्दशानां ब्रूहि त्रिहीनस्य शतत्रयस्य।
पञ्चोत्तरस्याप्ययुतस्य वर्गं जानासि चेद्वर्गविधानमार्गम्॥"
(लीलावती)

इस सूत्रका अवलम्बन कर ६, १४, २९७ और १०००५ का वर्गफल निर्णय करनेमें यथाक्रम पूर्वोक्त प्रक्रिया द्वारा ८१, १९६, ८८२०९ और १००१०००२५ राशि पाई जाती अथवा अन्यप्रक्रियामें ९ संख्याका खण्ड ४ और ५ ले

पर निःशेष रूपसे अङ्कराज सिद्ध होता है। उक्त दोनों राशिका गुणनफल २० है। उसका दूना ४० होता है। उसमेंसे प्रत्येक खण्डका वर्गफल समष्टि है—

४×४=१६ ; ५×५=२५ ; १६+२५=४१ ; अतएव ४०+४१=मिलानेसे ८१ होता है। यही ९ वर्ग मूलका वर्गफल है। इसी प्रकार १४ का खण्ड ६ और ८ है। इसके गुणनफल ४८ को दूनेसे गुणा करनेसे ९६ होता है। इसके प्रत्येक खण्डके वर्गफलकी समष्टि ३६+६४=१०० है। दोनोंको मिलानेसे ९६+१००=१९६ होता है, अथवा १० और ४=१४ राशिका खण्ड मान कर उक्त प्रकारसे हिसाब करनेसे यही फल निकलेगा।

दूसरा उपाय—२९७ राशिसे तीन घटा कर जो घटावशेष होता उसे २९४×३०० द्वारा गुणा करनेसे ८८२०० गुणनफल होता है। पीछे उसमें पूर्ववत ३ संख्याका वर्गफल ९ योग करनेसे ८८२०९ वर्गफल पाया जाता है। इसी नियमसे सभी राशिका वर्गफल निकाला जा सकता है।

(स्त्री॰) ८ अप्सरा विशेष। यह अप्सरा मुनिके शापसे ग्राह हो गई थी। पाण्डु पुत्र अर्जुनसे इसका उद्धार हुआ।

(विस्तृत विवरण महाभारतके १।२१७ अध्यायमें देखो।)

वर्गकर्म (सं॰ क्ली॰) गणितोक्त वर्गफलनिर्णायक अङ्क-प्रक्रिया समाधानकार्य।

वर्गचर (सं॰ पु॰) पाठीनमत्स्य, पहना या पहिना मछली।

वर्गघन (सं॰ क्ली॰) किसी वर्गराशिका घनफल।

वर्गघनघात (सं॰ पु॰) अङ्कशास्त्रोक्त राशिका पाँचवाँ वर्गघात (Fifth power)।

वर्गणा (सं॰ स्त्री॰) गुणन, घात। (Multiplication)

वर्गपद (सं॰ क्ली॰) वह अंक जिसके घातसे कोई वर्गाङ्क बना हो, वर्गमूल। (Square-root)

वर्गपाल (सं॰ पु॰) दलपालक, जातियोंका नायक।

वर्गप्रकृति (सं॰ स्त्री॰) गणितमें ... अङ्कक्रिया-विशेष। (Unaffected ...)

वर्गपद (सं॰ पु॰) वर्गि ...

वर्गप्रशंसिन् (सं॰ त्रि॰) अपने वर्गकी प्रशंसा करनेवाला।

वर्गफल (सं॰ क्ली॰) वह गुणनफल जो दो समान राशियोंके घातसे प्राप्त हो, वह अंक जो किसी संख्याको उसी अंकके साथ गुणा करनेसे आवे। जैसे—५का वर्गफल २५ होता है।

वर्गमूल (सं॰ क्ली॰) वर्गस्य मानासाधकत्वात् 'मूल' आख्या। किसी वर्गाङ्कका वह अंक जिसे यदि उसीसे गुणन करें, तो गुणन वही वर्गाङ्क हो। जैसे—२ वर्गमूल ४ का है और ३ वर्गमूल ९ का।

अङ्गरेजीमें इसे Square-root कहते हैं। किसी संख्याका वर्गमूल इस √ चिह्नसे प्रकट किया जाता है। यह चिह्न उसके पहले रखा जाता है।

उस संख्याको जिसका वर्गमूल पूर्णाङ्क राशि या भिन्न द्वारा ठीक प्रकट किया जा सके, पूर्णवर्ग कहते हैं। इस बात पर ध्यान रखना चाहिये, कि जिस संख्याके अन्तमें २ या ३ या ७ या ८ हो वह संख्या पूर्णाङ्क हो या दशमलव, वह पूर्णवर्ग नहीं होगी।

जब किसी पूर्णाङ्क राशिका, जो पूर्णवर्ग है वर्गमूल २०से अधिक न हो, तो उसको गुणनपाटी द्वारा जान सकते हैं; जैसे—पाटीसे हम जानते हैं, कि ८१ का वर्गमूल ९ है, १४४ का १२ है; परन्तु एक नियम है जिसके द्वारा किसी संख्याका जिसमें २से अधिक अङ्क हों वर्गमूल निकाल सकते हैं।

अब कल्पना करो, कि हमको ३१३६ का वर्गमूल निकालना होता है। प्रथम इकाईके अङ्कसे आरम्भ करके प्रत्येक दूसरे अङ्कके ऊपर बिन्दु रखते जाओ, इस प्रकार संख्याको दो दो अङ्कोंके अंशोंमें बाँट लो।

```
     ३१'३६' ( ५६
     २५
     ------
१०६ ) ६३६
      ६३६
     ------
```

फिर यह विदित होता है, कि सबसे बड़ी संख्या ५० है जिसका वर्ग ... अतिक्रमित है, यह वर्गमूलका पहला अङ्क ... वही अंशोंमें ...

प्रकार नया भाज्य ६३६ हो गया। फिर इस संख्याके अन्तिम अङ्कको छोड़ कर उसे इस निकले हुए वर्गमूलके दूनेसे भाग दो और भागफल ६ को निकले हुए वर्गमूलको दाहिनी ओर रखो और जांच भाजक १०में लगा दो जो १०६ हो गया। फिर भाजक १०६को वर्गमूलके उस अङ्कमें जो पीछे रखा है गुणा करो। जब इस गुणनफलको ६३६मेंसे घटानेसे शेष कुछ नहीं रहता है, इससे ज्ञात हुआ कि ५६ वर्गमूल ३१३६ का है।

यदि अधिक अंश उतारने हों, तो पूर्व विधिके अनुसार क्रिया करते जाओ जैसे अगले उदाहरणमें की गई है।

```
      १'५६'२५' ( १२५
      १
      ------
२२ )  ५६
      ४४
      ------
२४५ ) १२२५
      १२२५
```

इसमें जब दो अङ्क वर्गमूलमें निकल आये तो शेष १२ रह गये। इसमें तीसरे अंशको मिलानेसे १२२५ भाज्य बन गया।

इस संख्याके दाहिने अन्तिम अङ्कको छोड़ कर प्रथम निकले हुए मूलके दुगने से भाग दो (अर्थात् १२२को २४ से) ५ भागफल निकला। फिर ५को वर्गमूल और जांच भाजक दोनों ओरको रख दो, इत्यादि।

भाग द्वारा वर्गमूलके दूसरे अङ्क निकालनेमें कभी ऐसा भागफल प्राप्त होता है जो ठीक उत्तरसे कहीं अधिक होता है। ऐसी हालतमें वर्गमूलका अङ्क जांचसे प्रतीत होता है।

अब जांच भाजक उस संख्यासे बड़ा हो जिसको इससे भाग देना है (या अब भागफल १ हो, परन्तु उत्तर अधिक हो जाय) तो वर्गमूलमें शून्य बढ़ा देते हैं और दूसरे अंशको उतार लेते हैं तथा साधारण रीतिसे क्रिया करते हैं।

दशमलव भिन्नका वर्गमूल निकालनेकी रीति—दशमलव भिन्नके वर्गमूल निकालनेमें वही क्रिया की जाती है, जो पूर्ण राशिके वर्गमूल निकालनेमें। बिन्दु रखनेमें पहला बिन्दु इकाईके अङ्क पर रखना चाहिये या रखा हुआ कल्पना कर लेना चाहिये। वर्गमूलमें दशमलव बिन्दु पूर्णाङ्क भागके वर्गमूलके पश्चात् ही रख देना चाहिये।

यह ज्ञात होगा, कि यदि किसी दशमलवका वर्ग निकाला जाय, तो फलमें दशमलव स्थानोंकी संख्या सम होगी। इस कारण दशमलव भिन्नमें वर्गराशि होनेके लिये दशमलव स्थानोंकी समसंख्या होनी चाहिये और वर्गमूलमें दशमलव स्थानोंकी संख्या वर्गसंख्यासे आधी होनी चाहिये।

यदि दी हुई दशमलव भिन्न पूरी वर्गराशि न हो, तो वर्गमूल अनन्त दशमलव होगा और वर्गमूल जितने दशमलव अङ्कों तक चाहें निकाला जा सकता है।

दशमलवके वर्गमूल निकालनेमें दशमलव अङ्कोंकी संख्या सम होनी चाहिये और यदि आवश्यकता हो तो शून्य बढ़ा देना चाहिये।

वर्गमूलघन (सं० क्ली०) सजातीयाङ्कत्रयस्य घातः घनः। सजातीय तीन अङ्कोंका परस्पर गुणनफल अथवा किसी एक राशिके वर्गफलके साथ उस राशि द्वारा फिर गुणन। इसीको मूलराशिका घनफल (Cubic root) कहते हैं। लीलावतीमें यह घनमूल प्रकरण स्वतन्त्र है। इसका करणसूत्र त्रिसूत्रात्मक है।

९, २७, १२५ इन तीन राशियोंके यथाक्रम गुणन द्वारा घनफल ७२९, १९६८३ और १९५३१२५ होता है। अथवा ९ राशिको ४ और ५ खण्ड मान कर हिसाब करनेसे दूसरे उपायसे यह सिद्ध होता है। अर्थात् ९ तथा ४ और ५ राशि, इन तीनों राशियोंका परस्पर गुणनफल १८० होता है। इसका तिगुना ५४० हुआ। दोनों खण्ड राशिमेंसे एक एकको घन समष्टि=४×४×४=६४, ५×५×५=१२५. ६४+१२५=१८९। दोनों लब्ध राशिका योगफल ५४०+१८९=७२९। यही ९ राशिका घनफल है। अथवा २७ राशिका खण्ड २० और ७ होता है। इनका परस्पर गुणनफल तथा त्रिगुण संख्या २७×२०×७=३७८०×३=११३४०, दोनों खण्डराशिके घनफलकी समष्टि—२०×२०×२०=८०००+७×७×७=३४३=८३४३। इस घनसमष्टि तथा पूर्वोक्त राशिका योगफल ११३४०+८३४३=१९६८३ है।

अथवा ४ राशि—इसका वर्गमूल २ और घनफल ८ होता है। इनका घात अर्थात् परस्परके गुणनफलका ४

कर निम्नोक्त प्रकारका अङ्कफल सिद्ध होता है। उक्त दोनों राशिका गुणनफल २० है। उसका दूना ४० होता है। उनमेंसे प्रत्येक खण्डको वर्गफल समष्टि है—

४×४=१६ ; ५×५=२५ ; १६+२५=४१ ; अतएव ४०+४१=मिलनेसे ८१ होता है। यही ९ वर्ग मूलका वर्गफल है। इसी प्रकार १४ का खण्ड ६ और ८ है। इसके गुणनफल ४८ को दोसे गुना करनेसे ९६ होता है। उनके प्रत्येक खण्डके वर्गफलकी समष्टि ३६+६४=१०० है। दोनोंको मिलानेसे ९६+१००=१९६ होता है, अथवा १० और ४=१४ राशिका खण्ड मान कर उक्त प्रथासे हिसाब करनेसे यही फल निकलेगा।

दूसरा उपाय—२९७ राशिमें तीन घटा कर जो घटाफल होगा उसे २९४×३०० द्वारा गुणा करनेसे ८८२०० गुणनफल होता है। पीछे उसमें पूर्वत्यक्त ३ संख्याका वर्गफल ९ योग करनेसे ८८२०९ वर्गफल पाया जाता है। इसी नियमसे सभी राशिका वर्गफल निकाला जा सकता है।

(स्त्री०) ८ अप्सरा विशेष। यह अप्सरा मुनिके शापसे ग्राह हो गई थी। पाण्डु-पुत्र अर्जुनसे इसका उद्धार हुआ।

विस्तृत विवरण महाभारतके १।१२७ अध्यायमें देखो।

वर्गकर्मन् (सं० क्ली०) गणितोक्त वर्गफलनिर्णायक अङ्क-प्रक्रिया समाधानकार्य।

वर्गचर (सं० पु०) पाठीनमत्स्य, पढ़ना या पहिना मछली।

वर्गघन (सं० क्ली०) किसी वर्गराशिका घनफल।

वर्गघनघात (सं० पु०) अङ्कशास्त्रोक्त राशिका पांचवां वर्गघात (Fifth power)।

वर्गणा (सं० स्त्री०) गुणन, घात। (Multiplication)

वर्गपद (सं० क्ली०) वह अंक जिसके घातसे कोई वर्गाङ्क बना हो, वर्गमूल। (Square-root)

वर्गपाल (सं० पु०) दलरक्षक, पालियोंका नायक।

वर्गप्रकृति (सं० स्त्री०) गणितके अनुसार अङ्कप्रक्रिया-विशेष। (an affected square in arithmatic)

वर्गप्रथम (सं० पु०) कादि वर्गका प्रथम वर्ण।

वर्गप्रशंसिन् (सं० त्रि०) अपने अपने दलकी प्रशंसा करनेवाला।

वर्गफल (सं० क्ली०) वह गुणनफल जो दो समान राशियों के घातसे प्राप्त हो, वह अंक जो किसी अंकको उसी अंकके साथ गुणा करनेसे आये। जैसे—५का वर्गफल २५ होता है।

वर्गमूल (सं० क्ली०) वर्गस्य समानाङ्कद्वयस्य मूलं आद्याङ्कः। किसी वर्गाङ्कका वह अंक जिसे यदि उसीसे गुणन करें, तो गुणन वही वर्गाङ्क हो। जैसे—२ वर्गमूल ४ का है और ३ वर्गमूल ९ का।

अङ्गरेजीमें इसे Square-root कहते हैं। किसी संख्याका वर्गमूल इस √ चिह्नसे प्रकट किया जाता है। यह चिह्न उसके पहले रखा जाता है।

उस संख्याको जिसका वर्गमूल पूर्णाङ्क राशि या भिन्न द्वारा ठीक प्रकट किया जा सके पूर्णवर्ग कहते हैं। इस बात पर ध्यान रखना चाहिये, कि जिस संख्या-के अन्तमें २ या ३ या ७ या ८ हों वह संख्या पूर्णाङ्क हो या दशमलव, वह पूर्णवर्ग नहीं होगी।

अब किसी पूर्णाङ्क राशिका, जो पूर्णवर्ग है वर्गमूल २०से अधिक न हो, तो उसको गुणनपाटी द्वारा जान सकते हैं; जैसे—पाटीसे हम जानते हैं, कि ८१ का वर्ग-मूल ९ है, १६९ का १३ है; परन्तु एक नियम है जिसके द्वारा किसी संख्याका जिसमें २से अधिक अङ्क हों वर्ग-मूल निकाल सकते हैं।

अब कल्पना करो, कि हमको ३१३६ का वर्गमूल निकालना होता है। प्रथम इकाईके अङ्कसे आरम्भ करके प्रत्येक दूसरे अङ्कके ऊपर विन्दु रखते जाओ, इस प्रकार संख्याको दो दो अङ्कोंके अंशोंमें बांट लो।

```
    ३१३६ ( ५६
    २५
   -----
१०६ ) ६३६
      ६३६
   -----
```

फिर यह विदित होता है, कि सबसे बड़ी संख्या ५० है जिसका वर्ग पहले अंशमें सम्मिलित है, यह वर्गमूलका पहला अङ्क है, इस ५ के वर्ग २५ को पहले अंशमेंसे घटाओ और शेष ६ पर दूसरे अंशको उतारो ।B१

प्रकार नया भाज्य ६३६ हो गया। फिर इस संख्याके अन्तिम अङ्कको छोड़ कर उसे इस निकले हुए वर्गमूलके दूनेसे भाग दो और भागफल ६ को निकले हुए वर्गमूलकी दाहिनी ओर रखो और जांच भाजक १०में लगा दो जो १०६ हो गया। फिर भाजक १०६को वर्गमूलके उस अङ्कमें जो पीछे रखा है गुणा करो। अब इस गुणनफलको ६३६मेंसे घटानेसे शेष कुछ नहीं रहता है, इससे ज्ञात हुआ कि ५६ वर्गमूल ३१३६ का है।

यदि अधिक अंश उतारने हों, तो पूर्व विधिके अनुसार क्रिया करते जाओ जैसे अगले उदाहरणमें की गई है।

```
      १'५६'२५' ( १२५
      १
      ———
२२ )  ५६
      ४४
      ———
२४५ ) १२२५
      १२२५
```

इसमें जब दो अङ्क वर्गमूलमें निकल आये तो शेष १२ रह गये। इसमें तीसरे अंशको मिलानेसे १२२५ भाज्य बन गया।

इस संख्याके दाहिने अन्तिम अङ्कको छोड़ कर प्रथम निकले हुए मूलके दुगने से भाग दो (अर्थात् १२२को २४ से) ५ भागफल निकला। फिर ५को वर्गमूल और जांच भाजक दोनों ओरको रख दो, इत्यादि।

भाग द्वारा वर्गमूलके दूसरे अङ्क निकालनेमें कभी ऐसा भागफल प्राप्त होता है जो ठीक उत्तरसे कहीं अधिक होता है। ऐसी हालतमें वर्गमूलका अङ्क जांचसे प्रतीत होता है।

जब जांच भाजक उस संख्यासे बड़ा हो जिसको इसमें भाग देना है (या जब भागफल १ हो, परन्तु उत्तर अधिक हो जाय) तो वर्गमूलमें शून्य बढ़ा देते हैं और दूसरे अंशको उतार लेते हैं तथा साधारण रीतिसे क्रिया करते हैं।

दशमलव मिश्रका वर्गमूल निकालनेकी रीति—दशमलव मिश्रके वर्गमूल निकालनेमें वही क्रिया की जाती है, जो पूर्ण राशिके वर्गमूल निकालनेमें। बिन्दु रखनेमें पहला बिन्दु इकाईके अङ्क पर रखना चाहिये या रखा हुआ कल्पना कर लेना चाहिये। वर्गमूलमें दशमलव बिन्दु पूर्णाङ्क भागके वर्गमूलके पश्चात् हो रख देना चाहिये।

यह ज्ञात होगा, कि यदि किसी दशमलवका वर्ग निकाला जाय, तो फलमें दशमलव स्थानोंकी संख्या सम होगी। इस कारण दशमलव मिश्रमें वर्गराशि होनेके लिये दशमलव स्थानोंकी समसंख्या होनी चाहिये और वर्गमूलमें दशमलव स्थानोंकी संख्या वर्गसंख्यासे आधी होनी चाहिये।

यदि दी हुई दशमलव मिश्र पूरी वर्गराशि न हो, तो वर्गमूल अनन्त दशमलव होगा और वर्गमूल जितने दशमलव अङ्को तक चाहें निकाला जा सकता है।

दशमलवके वर्गमूल निकालनेमें दशमलव अङ्कोंकी संख्या सम होना चाहिये और यदि आवश्यकता हो तो शून्य बढ़ा देना चाहिये।

वर्गमूलघन (सं० क्ली०) सजातीयाङ्कत्रयस्य घातः घनः। सजातीय तीन अङ्कोंका परस्पर गुणनफल अथवा किसी एक राशिके वर्गफलके साथ उस राशि द्वारा फिर गुणन। इसीको मूलराशिका घनफल (Cubic root) कहते हैं। लीलावतीमें यह घनमूल प्रकरण स्वतन्त्र है। इसका करणसूत्र त्रिवृत्तात्मक है।

९, २७, १२५ इन तीन राशियोंके यथाक्रम गुणन द्वारा घनफल ७२९, १९६८३ और १९५३१२५ होता है। अथवा ९ राशिको ४ और ५ खण्ड मान कर हिसाब करनेसे दूसरे उपायसे यह सिद्ध होता है। अर्थात् ९ तथा ४ और ५ राशि, इन तीनों राशियोंका परस्पर गुणनफल १८० होता है। इसका तिगुना ५४० हुआ। दोनों खण्ड राशिमेंसे एक एककी घन समष्टि=४×४×४=६४, ५×५×५=१२५. ६४+१२५=१८९। दोनों लब्ध राशिका योगफल ५४०+१८९=७२९। यहा ९ राशिका घनफल है। अथवा २७ राशिका खण्ड २० और ७ होता है। इनका परस्पर गुणनफल तथा त्रिगुण संख्या २७×२०×७=३७८०×३=११३४०, दोनों खण्डराशिके घनफलकी समष्टि—२०×२०×२०=८०००+७×७×७=३४३=८३४३। इस घनसमष्टि तथा पूर्वोक्त राशिका योगफल ११३४०+८३४३=१९६८३ है।

अथवा ४ राशि—इसका वर्गमूल २ और घनफल ८ होता है। इनका साथ अर्थात् परस्परके गुणनफलका ४

गुना=६४ वर्गराशिका घनफल होता है। इस प्रकार ९ राशि—इसका मूल ३ और घन २७ है। इसका वर्ग—९ का घन ७२९ अर्थात् ३×२७×९=७२९। इससे ज्ञात पड़ता है, कि जो वर्गराशिघन है, वही वर्गमूलघन वर्ग=३×३×३=२७×२७=७२९ घनमूल निकालनेके लिये करणसूत्र विस्तृत भी है। घन और घनमूल शब्द देखो।

वर्गलाना (क्रि० क्रि०) १ कोई काम करनेके लिये उभारना, उकसाना। २ बहकाना, फुसलाना।

वर्गवर्ग (सं० पु०) वर्गका वर्गफल (Biquadratic number)।

वर्गशस् (सं० अव्य०) दल दलमें।

वर्गस्थ (सं० त्रि०) दल मध्यस्थ, स्वदलानुरक्त।

वर्गा (वर्गाह, वर्गाहि)—उत्तर-पश्चिम प्रान्तकी एक नीच जाति। इस जातिके लोग खास कर राजपूतोंके यहां नौकरी करके अपनी जीविका चलाते हैं। इस जातिकी रमणियां भी गृहस्थोंके परिवारमें विशेषतः राजपूत सर्दारोंके घर राजकुमारोंकी धाय बन कर वास करती एवं अपने स्तनका दूध पिला कर उनका लालन पालन करती हैं। इस जातिके लोग अपनेको कन्नौजके आदि-निवासी बताते हैं। उनका कहना है कि, वे गहरवाड़ राजपूतोंके साथ आदिनिवासस्थान परित्याग कर कई स्थानोंमें आ गये हैं। ये ग्वाल, अहीर आदिके सम्बन्धी गिने जाते हैं।

ये अपनी जातिके अन्दर ही आदान प्रदान करते हैं। गोत्र विभाग न रहनेके कारण पिण्डदोष होनेकी सम्भावना रहती है। इसलिये ये लोग कई पुश्ते बाद दे कर अर्थात् जितने दिनों तक किसी परिवारकी पूर्व आत्मीयता की स्मृति विलुप्त नहीं हो जाती है, उतने दिनों तक ये लोग उस परिवारसे अपने लड़के लड़कियोंका विवाह नहीं करते। उनकी विवाह-प्रथा साधारण हिन्दुओंकी तरह ही होती है। इन लोगोंमें पूर्ण यौवनप्राप्त लड़के लड़कियोंका विवाह होता है। तीन दिनों तक विवाह-का उत्सव मनाया जाता है। तृतीय दिन वरके यहांसे बरात सजधज कर कन्याके घरकी ओर यात्रा करती है।

वरके घर आने पर कन्याके आत्मीयजन शुभलग्नमें वर और कन्याको मण्डप नामक छतके नीचे बैठाते हैं। इसके बाद कन्याके पिता आते हैं, और वरके पांवों पर हाथ रख कर कन्या सम्प्रदानका अनुरोध करते हैं एवं दानके दक्षिणास्वरूप जामाताके हाथमें एक फल देते हैं। इसके पश्चात् वर तथा कन्याके वस्त्रोंके खूंटोंका 'गैंठबन्धन' करते हैं एवं वर और कन्या मण्डपके चारों ओर सात बार घूमते हैं। इसके बाद कन्याके पिता वरके ललाटमें हल्दी और चावल छुलाते हैं। इसके उपरान्त जामाता तथा कन्याको कोहबर घरमें ले जाते हैं। वहां बहुत-सी दूसरी दूसरी रमणियां उपस्थित रहती हैं। ये वरके साथ नाना प्रकारके हास्य परिहास करती हैं। इस जातिमें विधवा तथा देवर-विवाहकी प्रथा नहीं है। महावीर और पाँचपीर इनके प्रधान उपास्य देव हैं। इस जातिके बहुतसे लोग कृषिकार्य करके अपनी जीविका चलाते हैं।

वर्गाइयाँ—राजपूत जातिकी एक शाखा। गाजीपुरमें इन-लोगोंका वासस्थान है। ये लोग अपनेको मैनपुरी जिला-वासी चौहान जातिकी एक दूसरी शाखा बतलाते हैं।

वर्गाला—बुलन्दशहर जिलावासी राजपूत जातिकी एक शाखा। ये लोग अपनेको चन्द्रवंशी बताते हैं। इस जातिके अन्दर विधवा-विवाहकी प्रथा है। इस कारण ये लोग अपनेको गौड़िया जातिकी समश्रेणी कहते हैं। इन लोगोंका कहना है, कि ये लोग दिक्पाल तथा भट्टिपालके वंशधर हैं। इनके वंशतिहासमें लिखा है कि, ये दोनों भाई इन्दौरसे मालवा आ कर बस गये। जिस समय महम्मद गोरीने पृथ्वीराज पर आक्रमण किया था, उस समय इन दोनों भाइयोंने दिल्लीकी सेनाओं-के अधिनायक बन रणक्षेत्रमें बड़ी वीरताके साथ युद्ध किया था। सम्राट् औरंगजेबके राज्यकालमें इस जाति-के बहुतसे लोगोंने इस्लाम धर्म स्वीकार कर लिया।

वर्गिन् (सं० त्रि०) दलभुक्त।

वर्गी—मथुराके आस पास रहनेवाली एक जाति। इस जातिके लोग दासवृत्ति, कृषि अथवा जंगली पशुओंका शिकार कर अपनी जीविका चलाते हैं।

वर्गीण (सं० त्रि०) दलभुक्त, वंशगत।

वर्गीय (सं० त्रि०) वर्गसम्बन्धीय। जैसे,—कवर्गीय, चवर्गीय आदि।

वर्गोत्तम (सं० पु०) वर्गेषु उत्तमः। फलित ज्योतिषमें राशियोंके वे श्रेष्ठ अंश जिनमें स्थित ग्रह शुभ होते हैं। चरराशि (मेष, कर्कट, तुला, मकर)का प्रथम अंश, स्थिर राशि (वृष, सिंह, वृश्चिक, कुम्भ)का पञ्चम अंश और द्वात्मक राशि (मिथुन, कन्या, धनु, मीन)का नवम अंश वर्गोत्तम कहा जाता है। इसके अतिरिक्त राशियों-का नवांश भी वर्गोत्तम कहा जाता है।

वर्ग्य (सं० त्रि०) १ वर्गसम्बन्धीय। (पु०) २ सभाका सभ्य, सहयोगी।

वर्चटी (सं० स्त्री०) १ धान्यभेद। २ वेश्या, रंडी।

वर्चस् (सं० क्ली०) वर्चते इति वर्च (सर्वधातुभ्योऽसुन्। उण् ४।१८८) इति असुन्। १ रूप। २ विष्ठा। ३ तेज। ४ अन्न। (पु०) ५ चन्द्रमाके पुत्र।

वर्चस्क (सं० पु० क्ली०) वर्चस् स्वार्थे कन्। १ विष्ठा। २ दीप्ति, तेज।

वर्चःस्थान (सं० पु०) पाखाना।

वर्चस्य (सं० त्रि०) वर्चसे हितं यत्। तेजवर्द्धक।

वर्चस्वत् (सं० त्रि०) १ जीवशक्तिसम्पन्न। २ समुज्ज्वल तेजवान्।

वर्चस्विन् (सं० पु०) वर्चोऽस्यास्तीति वर्चस् (अस्मायामेधेति। पा ५।२।१२१) इति विनि। १ चन्द्रमा। (त्रि०) २ तेजस्वी, दीप्तियुक्त।

वर्चिन् (सं० पु०) ऋग्वेदके अनुसार एक असुरका नाम। इन्द्रने इसे समूल संहार किया था। (ऋक् २।१४।६) फिर ऋग्वेदमें (७।९९।५) दूसरी जगह लिखा है, कि इन्द्र और विष्णुने इसे निहत किया था।

वर्चोग्रह (सं० पु०) मलरोध।

वर्चोदा (सं० त्रि०) शक्तिद, बल देनेवाला।

वर्जक (सं० त्रि०) वर्जयतीति वृज-ण्वुल्। वर्जनकारी, त्याग करनेवाला।

वर्जन (सं० क्ली०) वृज ल्युट्। १ त्याग, छोड़ना। २ हिंसा, मारण। ३ ग्रहण या आचरणका निषेध, मनाही, मुमानियत।

वर्जनीय (सं० त्रि०) वृज-अनीयर्। १ वर्जनयोग्य, छोड़ने योग्य, न ग्रहण करने योग्य, त्याज्य। २ निषेधके योग्य, निषिद्ध, मना।

राजाका अन्न, नर्त्तकका अन्न, बढ़ईका अन्न, कुम्हारका अन्न, गणान्न, वेश्याका अन्न एवं शूद्रका अन्न वर्ज्जनीय हैं।

मनुसंहितामें लिखा है कि उदय या अस्त अवस्थामें सूर्यका दर्शन वर्ज्जनीय है। राहुग्रस्त सूर्य, जल-प्रतिबिम्बित सूर्य एवं आकाशमण्डलके मध्यगत सूर्यका दर्शन नहीं करना चाहिये। बछड़ा बांधनेकी रस्सीको लांघना, वर्षाके समय दौड़ कर रास्ता चलना एवं जलमें अपनी छाया देखना त्याज्य है। कामपीड़ित होने पर भी रजस्वला स्त्रीके साथ दिनमें सहवास करना; भोजन करती हुई रजस्वला स्त्रीका दर्शन करना, अट्टहास करते समय, आह भरते समय एवं असावधान बैठी हुई भार्याकी ओर लक्ष्य करना, आँखोंमें कज्जल प्रदान करते समय, देहमें तेल लगाते समय, सन्तान प्रसव करते समय स्त्री पर दृष्टिनिक्षेप करना पाप है। एक वस्त्र पहन कर अन्नभोजन; नंगे स्नान; रास्ते पर, भस्मके ऊपर, गोचरभूमिमें, हल जोते हुए खेतमें, जलमें, अग्निमें, श्मशानस्थ चिताओंमें, पर्वतों पर, पुराने मन्दिरोंमें, कीड़े द्वारा लगाये हुए मिट्टीके ढेर पर, जिन बिलोंमें जीवोंका वास हो, उनके अन्दर मूत्रत्याग करना निषेध है। चलते चलते खड़े हो कर अग्नि, ब्राह्मण, सूर्य, जल और देखते हुए पेशाब नहीं करना चाहिये। मुखसे फूंक मार कर अग्नि प्रज्वलित करना, भार्याको नंगी देखना तथा अग्निमें अपवित्र वस्तु डालना वर्ज्जनीय है। पाँव पसार कर आग तापना नहीं चाहिये। शय्याके नीचे आग रखना निषिद्ध है। जिस कार्यके करनेसे आत्माको आघात पहुंचे, उसे करना उचित नहीं। सन्ध्याके समय भोजन करना, भ्रमण करना एवं शयन करना पाप है। पृथ्वी पर रेखा नहीं खींचनी चाहिये। मलमूत्रादिसे लिप्त वस्त्रोंका पहनना, वासशून्यगृहमें अकेला शयन करना, श्रेष्ठ पुरुषोंको निद्रावस्थामें जगाना, रजस्वला स्त्रीके साथ बातचीत करना तथा बिना निमन्त्रणके यज्ञशालामें जाना निषेध है।

जल या दुग्धपान करते समय गायको हाँकना पाप है। जिस ग्राममें विधर्मियोंकी संख्या अधिक हो उस

ग्राममें वास करना निषिद्ध है। जिस स्थानके लोग बहुत दिनोंसे किसी रोगसे आक्रांत हों, उस स्थान पर भी वास करना उचित नहीं। अकेला अधिक दूरकी यात्रा करना, अधिक समय तक पर्वत पर वास करना, शूद्रके अधीन राज्यमें बसना एवं नास्तिकोंके द्वारा आक्रांत देशमें वास करना निषेध है। जिन सब पदार्थों-का सार निकाल लिया गया हो, उनका भोजन तथा अति प्रातःकाल या सन्ध्याकालमें भोजन करना वर्ज-नीय है। जिस कार्यके करनेसे किसी तरहका फल न निकले, उस कार्यका करना मना है। अंजलि द्वारा पानी पीना तथा जांघे पर रख कर कोई वस्तु भोजन करना वर्जनीय है। बिना प्रयोजनके अधिक उतावला न होना चाहिये।

शास्त्रविरुद्ध नाच गान करना निषेध है। कांख बजाना या ऊपर हथेली रख कर ध्वनि करना, दांत किटकिटाना, अथवा गधेकी तरह चिल्लाना निषिद्ध है। कांसेके बर्तनमें पाँव धोना, टूटे फूटे बर्तनोंमें भोजन करना वर्जनीय है। दूसरेके व्यवहार किये हुए जूते, कपड़े, जनेऊ, माला तथा अलंकार नहीं पहनना चाहिये। बदमाश, भूखे, रोगी, टूटे हुए सिंघवाले, अंधे, या फटे खुरवाले किसी भी पशु पर सवारी नहीं करनी चाहिये। प्रथमोदित सूर्यकी धूप, चिताका धुआँ और टूटे फटे आसनोंका परित्याग करना चाहिये। अपने हाथसे नख या बाल काटना तथा दाँतोंसे नख कुतरना दोष माना गया है। मिट्टी या ढेलेका व्यर्थ मर्द्दन करना, नख द्वारा तृण खोटना निष्फल कार्य करना एवं जिस कार्यके करनेसे भविष्यमें दुःख प्राप्त होनेकी सम्भावना हो, उसे करना पाप बताया गया है। क्या लौकिक, क्या शास्त्रीय किसी तरहकी बात सौगन्ध खा कर नहीं कहनी चाहिये। गलेकी माला चादर आदि किसी कपड़ेके ऊपर पहनना, गो या बैलकी पीठ पर सवारी करना, दिवारोंसे घिरे हुए ग्राम या घरमें दरवाजे-को छोड़ कर दूसरी ओरसे प्रवेश करना, रात्रिके समय वृक्षोंके नीचे सोना, बैठना या गमनागमन करना, व्यव-हार किये हुए जूतेको हाथमें ले कर रास्ता चलना, शय्या पर बैठ कर भोजन करना, रात्रिके समय तिल या तिल दे कर तैयार किये हुए पदार्थोंका भोजन करना, नंगे सोना एवं जूठे मुंह कहीं जाना वर्जनीय है।

पतित, चंडाल, पुक्कश, मूर्ख, धनके मदसे मत्त तथा धोबी आदि नीच जातिके लोगोंके साथ ब्राह्मणोंको एक क्षणके लिये भी नहीं बैठना चाहिये।

वर्जनीयअन्न—मत्त, क्रुद्ध तथा रोगी व्यक्तियोंका अन्न नहीं खाना चाहिये। केशकीटादियुक्त अन्न, इच्छा-नुसार पाँवसे स्पर्श किया हुआ अन्न, भ्रूणघातीका देखा हुआ अन्न, रजस्वला स्त्री द्वारा छुआ हुआ अन्न, पक्षियों-का खाया हुआ अन्न, कुत्तोंसे छुआ अन्न, गायका सूंघा हुआ अन्न, आगन्तुकोंके लिये तैयार किया हुआ अन्न, मठवासियोंका अन्न, वेश्याका अन्न, इन सब प्रकारके अन्नोंका भोजन करना निषेध है। इनके अतिरिक्त चोर, गवैया, बढ़ई, सूदसे जीविका चलानेवाला, इन सबोंके अन्न, कंजूसका अन्न; महापातकी, द्विजद्वेषी, व्यभिचारिणी स्त्री तथा ढोंगीका अन्न, ये सब अन्न त्याज्य हैं। बासी अन्न, शूद्रका अन्न, निर्दयका अन्न, जूठा अन्न, वैद्यका अन्न, व्याधका अन्न, जूठा खानेवालेका अन्न, निष्ठुर कर्मचारीका अन्न, अशौचान्न, ये सब अन्न कदापि भोजन नहीं करना चाहिये। पतिपुत्रविहीना स्त्रीका अन्न, द्वेषकारीका अन्न, शत्रुका अन्न, पतित व्यक्तिका अन्न, जो आदमी परोक्षमें दूसरेकी निन्दा करता है, जो झूठी गवाही देता है, जो धनके लालचमें यज्ञका विक्रय करता है,* उनका अन्न; नटवृत्त्युपजीवीका अन्न; दर्जी, कृतघ्न, लोहार, निषाद, रंगरेज, सोनार, बाँस काटने-वाला, लोहेका व्यापारी, कुत्ता पालनेवाला, शौण्डिक, वधकारक तथा निष्ठुर व्यक्तियोंका अन्न नहीं खाना चाहिये। जिस पुरुषकी स्त्री उपपति रखती है, उसका अन्न वर्जनीय है। (मनु० ४।५ अ०)

वर्जयितव्य (सं० पु०) वृज णिच्-तव्य। वर्जनीय, छोड़ने-के योग्य।

वर्जयितृ (सं० त्रि०) वृज् णिच् तृच्। वर्जनकारी, त्यागनेवाला।

वर्जित (सं० त्रि०) वृज क्त। १ त्यक्त, त्यागा हुआ, छोड़ा हुआ। २ जो ग्रहणके अयोग्य ठहराया गया हो, निषिद्ध। जैसे कलिमें नियोग वर्जित है।

वर्ज्जिन् (सं॰ त्रि॰) त्यज्य, त्यागा हुआ, छोड़ा हुआ।
वर्ज्य (सं॰ त्रि॰) वृज-ण्यत्। वर्जनीय, छोड़नेके लायक।
वर्ण (सं॰ क्ली॰) वर्णयतीति वर्ण-अच्। कुंकुम, केसर।
वर्ण (सं॰ पु॰) व्रियते (इति वृ कृवृजृसिद्रुपन्यनिस्वपिभ्यो नित्। उण् ३।१०) स च नित्। १ जाति।

जाति चार हैं, ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र। इन चार वर्णों या चार जातियोंकी उत्पत्तिके सम्बन्धमें वेदमें इस प्रकार लिखा है,—जब भगवान् पुरुषरूपमें सृष्टि करनेको तैयार हुए, तब उनके शरीरसे चार वर्णोंकी उत्पत्ति हुई। भगवान्‌के मुखसे ब्राह्मण, बाहुसे क्षत्रिय, ऊरुसे वैश्य और पादसे शूद्र उत्पन्न हुए थे।

शास्त्रमें इन चार वर्णोंका पृथक् पृथक् धर्मकर्म बतलाया है। ब्राह्मण क्षत्रियादि चारों वर्णोंको शास्त्रके आदेशसे चलना होता है।

भगवान् मनुने चारों वर्णोंका पृथक् पृथक् कर्म निर्दिष्ट किया है—ब्राह्मणका धर्म अध्ययन, अध्यापन, यजन, याजन, दान और प्रतिग्रह। क्षत्रियका धर्म—प्रजारक्षा, दान, यज्ञानुष्ठान, अध्ययन तथा नृत्य गीत और वनितोपभोगादिमें आत्यन्तिक अनासक्ति। वैश्यका धर्म पशुपालन, दान, यज्ञ, अध्ययन, वाणिज्य, कुसीदवृत्ति और कृषिकर्म। शूद्रका धर्म—असूयाहीन हो कर उक्त तीनों वर्णोंकी शुश्रूषा।

ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र सभी वर्णोंको शास्त्र-शासनमें यथाविधि आश्रमी होना पड़ता है। उनमेंसे ब्राह्मणके आश्रम चार हैं, ब्रह्मचर्य, गार्हस्थ्य, वानप्रस्थ और संन्यास। उपनयनके बाद जितेन्द्रिय हो कर गुरुगृहमें वास और साङ्गवेदका अध्ययन करना होता है, इसीका नाम ब्रह्मचर्याश्रम है। वेदाध्ययन समाप्त करके विवाह करनेके बाद स्वधर्माचरणपुरःसर गृहस्थ होना पड़ता है। इस आश्रमका नाम गार्हस्थ्य है। अनन्तर पुत्रोत्पादनके बाद वनमें वास करना, अकृष्टपच्य फलादि खाना और ईश्वरकी आराधना करना, यही हुआ वानप्रस्थाश्रम। इसके बाद गृहादि सभी वस्तुओंका परित्याग कर मुण्डित मस्तक पर गैरिक कौपीन बांध कर दण्डकमण्डलु ले कर भिक्षावृत्तिका अवलम्बन, वनप्रदेशमें या तीर्थादिमें वास तथा एकमात्र परमेश्वरकी आराधना। इसीका नाम संन्यास आश्रम है।

द्वितीय और तृतीय वर्ण क्षत्रिय और वैश्य हैं। इनके लिये शेषोक्त संन्यास आश्रमको छोड़ कर प्रथमोक्त ब्रह्मचर्य, गार्हस्थ्य और वानप्रस्थ ये तीनों ही आश्रम प्रशस्त हैं। पतद्भिन्न शूद्रके लिये केवल गृहस्थाश्रम ही बतलाया गया है। दूसरे किसी भी आश्रममें शूद्रका अधिकार नहीं है।

ईश्वरकी आराधना करना सभी वर्णोंका सभी आश्रमोंका साधारण धर्म है। इनमेंसे जो विष्णुके उपासक हैं वे वैष्णव, शिवोपासक शैव, दुर्गा प्रभृति शक्तिसाधक शाक्त, सूर्योपासक सौर तथा गणेशोपासक गाणपत्य नामसे प्रसिद्ध हैं। यह पौराणिक मत है।

चार वर्णोंके विभिन्न कर्म सम्बन्धमें विष्णुपुराणमें कहा है, कि ब्राह्मण दान करें, वेदाध्ययनपरायण होवें तथा यज्ञादि द्वारा देवताओंकी अर्चना करें। ब्राह्मणको नित्योदकी होना पड़ेगा तथा अग्निपरिग्रह करना होगा। जीविकाके लिये वे याजन और अध्यापन करें तथा जिस व्यक्तिने वैध उपायसे धन उपार्जन किया है। उसीसे न्यायतः प्रतिग्रह लेवें। ब्राह्मण सबोंके उपकारी बने, कभी भी किसीका अहित या अनिष्टाचरण न करें। सब भूतों पर मैत्रीस्थापन करना ही ब्राह्मणका परम धर्म है। दूसरेके पत्थर अथवा रत्न दोनों ही वस्तुको समान समझें। ऋतुकालमें पत्नीगमन करें।

ब्राह्मण उपनीत हो कर वेदाभ्यासमें तत्पर होवें। इस समय उन्हें ब्रह्मचर्यका अवलम्बन कर एकाग्रमनसे गुरुगृहमें वास करना होगा। इस समय वे शौच और आचारवान् हो कर गुरुकी शुश्रूषा करें तथा नियमस्थ हो कर पवित्र बुद्धिसे वेद पढ़ें। दोनों ही शाम समाहित हो कर अग्नि और सूर्यकी उपासना तथा गुरुको अभिवादन करना होगा। गुरु यदि खड़े हों, तो आप भी खड़े हो जाँय, यदि वे बैठें, तो आप भी निम्नासन पर बैठ जावें। कभी भी गुरुके प्रतिकूलाचरण न करें। गुरुके आदेशसे गुरुकी ओर बैठ कर अनन्यचित्तसे वेदपाठ करें। उनकी अनुमति ले कर भिक्षान्न भक्षण करें। आचार्यके स्नान करने पर पीछे आप स्नान करें। गुरु-

इस प्रश्नके उत्तरमें नारदने कहा था, 'राजन्! वर्णोंमें कुछ विशेषता नहीं है। यह समस्त जगत् ब्रह्ममय है। ब्रह्मा सबोंके सृष्टिकर्त्ता हैं। ब्रह्मसृष्ट सभी एक ब्राह्मण हैं, परन्तु कर्मानुसार एक एक सम्प्रदाय एक एक वर्ण हो गया है। जो सब ब्राह्मण स्वधर्मका परित्याग कर कामभोगमें रत रहते थे, जिनका स्वभाव कठोर था, जो क्रोधी, प्रियसाहसी और लोहिताङ्ग थे, वे ही क्षत्रिय हुए थे। जो कृषिकर्ममें लिप्त रह कर उसीसे जीविका चलाने लगे, गवादि पशुपालनमें आसक्त हुए, जिन्होंने स्वधर्मका परित्याग किया, जिनका शरीर पीतवर्णका था, उन्हींकी वैश्यजातिमें गिनती हुई थी। फिर जिन्होंने हिंसा और असत्यका आश्रय लिया, जो किसी भी कर्मसे जीविका निर्वाह करने लगे, जिन्होंने शौचाचार त्याग किया तथा जो अत्यन्त लुब्धस्वभावके हो उठे, जिनका वर्ण कृष्ण था, वे द्विज होते हुए सभी शूद्र कहलाये।

इस प्रकार कर्मानुसार ब्राह्मण ही विभिन्न वर्णोंमें विभक्त हुए। चारों वर्णके लिये ही वेदवाणी कही गई थी। लोभ और अज्ञानमें पड़ कर बहुतोंने उस ब्राह्मी वाणीको खो दिया था। जो धर्मतन्त्रमें एकान्त आसक्त थे, वे ब्राह्मी वाणीको भूले नहीं तथा जो वेदावलम्बन वेदविहित नित्य नैमित्तिक व्रतनियम और शौच सदाचारादि साधुसेवित पथमें रह कर ब्रह्मस्वरूप देवपतिपदि परब्रह्मज्ञानको प्राप्त हुए थे, वे ही ब्राह्मण हुए।

नारदने मान्धाताके प्रश्नोत्तरमें चारों वर्णोंका इस प्रकार लक्षण बतलाया, जैसे—जो जातकर्मादि दश प्रकारके संस्कारसे संस्कृत हैं, जो शुचि और वेदाध्ययनसम्पन्न हैं, जो सांध्याचारमें रत रह कर यजन याजनादि षट्कर्ममें अवस्थित हैं, जो नित्य गुरुप्रिय, नियमतो और सत्यरत हैं, वे ही ब्राह्मण कहलाते हैं। सत्य, दान, आनृशंस्य, अद्रोह, दया, घृणा और तपस्या ये सब जिनके निरन्तर सर्वदा विद्यमान हैं, उन्हींको ब्राह्मण कहते हैं।

जो वेदाध्ययन समाप्त करके क्षत्रियोचित कर्मोंको सर्वदा किया करते हैं, जो दान नहीं लेते, पर दान देते हैं उन्हें क्षत्रिय कहते हैं। जो पवित्र भावमें वेदाध्ययन समाप्त करके पशुपालन और कृषिकर्ममें रत हैं, उन्हींका नाम वैश्य है।

जिन्हें खाद्य अखाद्यका कोई विचार नहीं है, जो सर्वदा अपवित्र अवस्थामें रह कर जिस किसी कर्मसे जीविका निर्वाह करते हैं, जो वेदवर्जित हैं, सदाचारहीन हैं, वे ही शूद्र हैं। (महाभा० और पद्मपु० स्वर्गखण्ड)

चतुर्वर्णके धर्मकर्म सम्बन्धीय विधि व्यवस्था मन्वादि स्मृतिसंहितामें तथा सभी पुराणोंमें सविस्तार वर्णित हैं, बहुत बढ़ जानेके कारण उनका उल्लेख यहां पर नहीं किया गया। नरसिंहपुराणके ५६वें अध्यायमें, मार्कण्डेयपुराणके मदालसा उपाख्यानमें, कूर्मपुराणके २२ और ३२ अध्यायमें, पद्मपुराणके स्वर्गखण्ड २५,२६ और २७वें अध्यायमें, वामनपुराणके १४वें तथा गरुड़पुराणके ४९वें अध्यायमें चतुर्वर्णका विस्तृत विवरण देखा जाता है।

वर्ण (सं० पु०) १ गजपृष्ठकम्बल, हाथीकी झूल। पर्याय—प्रवेणी, आस्तरण, परिस्तोम। २ कुथ, कथरी, कंथा। ३ पदार्थोंके लाल, पीले आदिका भेद, रंग।

यह वर्ण या रंग अनेक प्रकारका होता है, जैसे—श्वेत पाण्डु, धूसर, कृष्ण, पीत, हरित, रक्त, शोण, अरुण, पाटल श्याव, धूम्र, पिङ्गल तथा कर्बुर। (अमर) सुश्रुतके मतसे छठें महिनेमें गर्भस्थ बालकका वर्ण होता है।

४ यश, कीर्त्ति। ५ गुण। ६ स्तुति। ७ स्वर्ण, सोना। ८ व्रत। वर्ण्यते क्रियते इति वर्ण घञ् (पु० क्ली०) ९ भेद, प्रकार। १० गीतक्रम। ११ चित्र, तसवीर। १२ तालविशेष। १३ अङ्गराग। वर्ण्यते क्रियते अनेनेति वर्ण घञ्। १४ रूप। वर्णयति वर्ण-अच्। १५ अक्षर। वर्ण्यते रच्यते इति वर्ण-घञ्। १६ विलेपन। १७ कुङ्कुम, केसर।

वर्ण दो प्रकार होता है, ध्वन्यात्मक तथा अक्षरात्मक। प्राणियोंके मूलाधारमें एक नाड़ी है। यह नाड़ी सांपकी तरह कुण्डलीभूत है। यह सर्वदा मूलाधारके मध्य कुण्डलाकारमें रहता है, इस कारण उसका कुण्डली नाम पड़ा है। कुण्डली चन्द्र सूर्य और अनलरूपिणी, त्रिस्वारिंशद्वर्णमयी अर्थात् मूर्त्तादिविसर्गशालिनी तथा पञ्चाशद्वर्णमयी अर्थात् मातृकावर्णस्वरूपिणी है। यह

कुण्डली सभी वर्णोंमें मिल कर मन्त्रमय जगत्‌को प्रकाश करती है। यह कुण्डली शब्द और शब्दार्थको प्रवर्त्तिनी तथा त्रिपुष्कर अर्थात् ज्येष्ठ, मध्य और कनिष्ठके भेदसे तीन तीर्थ एवं उदात्त अनुदात्त प्रभृति स्वर-समाहारका प्रकाशक है। तन्त्रशास्त्रमें कुण्डलीको परम देवता कहा है।

वक्त्र और श्रोतपक्ष अपरिष्कार रहता है, इस कारण यह कुण्डली जब अस्पष्ट वर्णमें अर्थात् अस्फुट ध्वनिमें आलापादि करनेको उद्यत होती है, तब मूलाधारमें, आ कर ध्वनित होता है तथा सुषुम्ना नाड़ी भी उस ध्वनिसे बार बार आलोड़ित होती रहती है।

पहले जो तन्त्रोक्त परदेवता कुण्डलीकी बात कही गई है, वह द्विचत्वारिंशद्वर्णमें मिल कर इस प्रकार क्रम-परम्परासे अकारसे ले कर सकार तक द्विचत्वारिंशदात्मक वर्णमालाका उद्भावन करती है। यह द्विचत्वारिंशदात्मक वर्णमाला ही भूतलिपि मन्त्र है। कुण्डलिनी सर्वशक्तिमयी और शब्दब्रह्मरूपिणी है। वह जिस क्रमसे वर्णमाला प्रसव करती है, वह इस प्रकार है, जैसे—पहले कुण्डलीसे शक्तिका विकाश, शक्तिसे ध्वनि, ध्वनिसे नाद, नादसे निरोधिका, निरोधिकासे अर्द्धेन्दु, अर्द्धेन्दुसे विन्दु, विन्दुसे अन्यान्य सभी उत्पन्न होते हैं। समस्त अक्षरोंकी उत्पत्तिके सम्बन्धमें ही परम्परा इसी प्रकार है।

चिच्छक्ति-सत्त्वसम्वलित हो कर शब्दपदवाच्य होती है। वह फिर जब उस सत्त्वसम्वलित अवस्थामें आकाशस्थ हो कर रजोगुणसे अनुविद्ध होती है, तब ध्वनि शब्द कहलाती है। ध्वनि अक्षर अवस्थामें तमोगुणसे अनुविद्ध हो नादशब्दवाच्य होती है। यह अव्यक्तावस्था तमोगुणकी अधिकताके कारण निरोधिका शब्दमें पुकारी जाती है। यह निरोधिका फिर रज और मल दोनों गुणकी अधिकतासे अर्द्धेन्दु हो जाती है। अलङ्कारकौस्तुभ और पदार्थादर्श आदि ग्रन्थोंमें लिखा है,—

परा, पश्यन्ती, मध्यमा और वैखरी, अवस्थाभेदसे ये सब संज्ञासङ्केत हैं। वर्ण जब नादरूपमें मूलाधारसे पहले पहल उत्पन्न होता है, तब उसे परा कहते हैं। पीछे जब वह वर्ण नादरूपमें मूलाधारसे उठ कर क्रमशः हृदयगत होता है, तब वह पश्यन्ती है। इसके बाद जब हृदयसे उठ कर क्रमशः बुद्धि या सङ्कल्पके साथ संयुक्त होता है, तब वह मध्यमा तथा उसके बाद बुद्धिसे उठ कर क्रमशः कण्ठगत हो मुख द्वारा अभिव्यक्त होता है, तब वह वैखरी है। यह वैखरी जब अवस्थापन्न नादसे ही पवन प्रेरित होती है, तब वर्णसमूह सबोंके गोचरीभूत होते हैं। परा और पश्यन्ती दशापन्न वर्ण योगियोंके प्रत्यक्ष होते हैं, दूसरेके पक्षमें यह प्रत्यक्ष होना असम्भव है।

व्याकरणके मतसे वर्णोंके उत्पत्तिस्थान आठ हैं। जैसे—हृदय, शिर, जिह्वा, दन्त, नासिका, दोनों ओष्ठ और तालु। इनमेंसे अ, क, ख, ग, घ, ङ, [illegible] और विसर्ग (:), इन सब वर्णोंका उच्चारणस्थान कण्ठ; इ, च, छ, ज, झ, ञ य, श, इनका उच्चारणस्थान तालु; ऋ, ट, ठ, ड, ढ, ण, र, ष, इनका उच्चारणस्थान मूर्द्धा; लृ, लॄ, त, थ, द, ध, न, ल, स, इनका उच्चारणस्थान दन्त; उ, ऊ, प, फ, ब, भ, म और उपध्मानीय इत्यादिका उच्चारणस्थान ओष्ठ; 'व' दन्त और ओष्ठ, 'ए ऐ' कण्ठ और तालु तथा जिह्वा-मूलीयका उच्चारणस्थान जिह्वामूल है।

प्रपञ्चसारके तृतीय पटलमें देहमध्यसे पच स वर्णों या अक्षरोंकी उत्पत्तिके सम्बन्धमें इस प्रकार लिखा है—वर्ण समीर सञ्चालित हो सुषुम्ना नाड़ीके रन्ध्रके मध्यसे निकलते हैं। पीछे कण्ठादि स्थानको आलोड़ित कर वदन-विवरसे बाहर होते हैं। उस उन्मार्ग वायु उदात्त स्वर उत्पादन करती है। वह वायु नीचगत हो कर अनुदात्त तथा तिर्य्यग् भावमें जा कर स्वरित अक्षरको उत्पादक होती है। इस प्रकार पकार्द्ध, एक, द्वि और त्रिसंख्यक मात्रामें सभी लिपियोंकी सृष्टि हुई। यह क्रमशः ह्रस्व, दीर्घ और प्लुत कहलाने लगी।

वर्णाभिधानमें अ से ह पर्य्यन्त प्रत्येक वर्णके स्वरूप और अर्थादिका विस्तृत विवरण लिखा है। 'अ' से 'ह' पर्य्यन्त प्रति वर्णकी उत्पत्ति, स्वरूप और अर्थादिका विवरण दिया गया है।

वर्णाङ्क (सं० क्ली०) वर्णयतीति वर्ण-ण्वुल्। १ हरिताल, हरताल। २ अनुलेपन, उबटन। ३ चन्दन। (पु०) ४ विलेपन। वर्णयति नृत्यादीन् विस्तारयति। ५ चरण। ६ मण्डल। (पु० स्त्री०) वर्ण्यते रज्यतेऽनेनेति,

होती है। हीनवर्णोंसे शूद्रादि १५ हीनतर वर्ण पैदा होते हैं। अगम्यागमनसे वर्णसंकरकी उत्पत्ति होती है। चारों वर्णोंसे बहिर्भूत वर्णोंके मध्य सैरन्ध्री तथा मागध जातिसे राजाओंके प्रसाधन-कार्यमें एवं उनके दिव्य अंग-रागदर्शन तथा स्नपनादि द्वारा दासजीवन जातिकी सृष्टि होती है। मागध जाति द्वारा सैरन्ध्र योनिसे वागुरावन्ध जीवी आयोगव जाति उत्पन्न होती है। मागधोंसे वैदेह द्वारा मधुकर मैरेयक नामक पुत्र पैदा होते हैं। निषाद-जाति मद्गुर अर्थात् मद्गु नामक मत्स्योपजीवी तथा नौका-जीवी दास सन्तान पैदा करती है और चाण्डाल श्वपाक नामक मृतप अर्थात् श्मशानाधिकारी सन्तान उत्पन्न करता है। मागधी वागुरोपजीवी क्रूर चार पुत्र पैदा करते हैं, मांसविक्रय तथा मांस-संस्कार ही उनके प्रधान कार्य होते हैं। इनमें दो मांस तथा स्वादुकर कहलाते हैं; बाकी दोके नाम क्षौद्र तथा सौगन्ध नामसे कथित है। इस तरहसे मागध जातिकी चारों वृत्तियाँ निर्दिष्ट की गई हैं। आयोगवोंसे पापिष्ठ, वैदेहसे मांसोपजीवी क्रूर, निषादसे अरण्यगामी मद्रनाभ एवं चाण्डालसे शवभक्षक भोजी पुल्कसजाति जन्म ग्रहण करती है, ये लोग मृतकको वस्त्र ढकते एवं भिन्न पात्रमें भोजन करते हैं। निषादी से वैदेह द्वारा क्षुद्र, अन्ध्र तथा आरण्यपशु-हिंसोपजीवी कारावर नामक चर्मकार ये तीन पुत्र पैदा होते हैं। ये लोग ग्रामके बाहर वास करते हैं। निषादोंसे चर्मकार द्वारा कारावर तथा चाण्डालसे वेणुव्यवहारोपजीवी पाण्डुसौपाक जाति जन्म ग्रहण करती है। वैदेहीसे निषाद द्वारा आहिण्डक नामक पुत्र पैदा होता है। चाण्डाल द्वारा सौपाकसे चाण्डालसम-व्यवहार-विशिष्ट पुत्र उत्पन्न होता है। निषादी चाण्डाल द्वारा बाह्यवर्णोंके बहि-ष्कृत श्मशानवासी अन्त्यवसायी संतान पैदा होती है। पिता माताके व्यतिक्रम वशतः ये सब संकरजाति उत्पन्न होती हैं, ये लोग प्रच्छन्नभावसे रहें या प्रकाशभावसे, किन्तु अपने धर्म द्वारा ही पहचाने जाते हैं। शास्त्रोंमें ब्राह्मणादि चारों वर्णोंका धर्म लिखा है, दूसरे दूसरे धर्म हीन जातियोंके मध्य किसीके धर्मका नियम अथवा इयत्ता नहीं है। ब्राह्मणादि चारों वर्णोंमें अनुलोमजात ६ एवं विलोमजात ६, ये १२ प्रकारके संकीर्ण वर्ण पैदा होते हैं, फिर इन १२ संकीर्ण वर्णोंसे ६६ अनुलोमजात एवं ६६ प्रतिलोमजात, इस तरहसे १३२ प्रकारकी वर्णसंकर जातियाँ उत्पन्न होती हैं, फिर उनके अनुलोम तथा प्रतिलोमकी गणना द्वारा अनन्त भेद पैदा हो जाते हैं, अतएव इस समुदायके पहले कहे गये १५ भेदोंके मध्य अन्तर्भाव हो गया है, इसलिये सबकी प्रतिसंख्या प्रदर्शित नहीं की गई है। स्वेच्छाचरणसे अर्थात् जातिगत कोई नियम न रहनेके कारण मनमाना समागम करनेसे साधु आदिके द्वारा उत्पन्न बाह्य वर्णसंकरजाति अपने अपने कर्मोंके अनुसार जीविका और जाति प्राप्त करती है। ये लोग चतुष्पथ, श्मशान, पर्वत तथा दूसरी दूसरी वनस्प-तियोंके निकट वास और नियत कृष्णवर्ण लौहमय अलंकार पहन कर अपने कर्म द्वारा अपनी जीविका चलावेंगे एवं अलंकार तथा गृहोपकरण वस्तुसे तैयार करेंगे। ये लोग गो-ब्राह्मणोंकी सहायता करेंगे, इसमें सन्देह नहीं। आनृशंस्य, दया, सत्य, क्षमा एवं अपने शरीर द्वारा विपन्नोंकी रक्षा आदि ही बाह्यवर्णोंकी सिद्धिके कारण होंगी; हे नरश्रेष्ठ! इसमें मुझे संशय नहीं। बुद्धिमान् मनुष्य उपदेशानुसार परिकीर्तित हीनजातिकी विवे-चना करके पुत्रोत्पादन करें, जिस तरह जलमें तैरनेकी इच्छा करनेवाले मनुष्यको प्रस्तर अवसन्न कर देता है, उस तरह नितान्त हीन जातिसे उत्पन्न पुत्र वंशका नाश कर डालता है। इस संसारमें रमणियां विद्वान् अथवा मूर्ख व्यक्तिको काम-क्रोधके वशीभूत कर नितान्त कुपथमें खींच लेती हैं। नारियोंका स्वभाव ही दोषकी खान है, अतएव विपश्चित् व्यक्ति स्त्रियों पर अत्यन्त आसक्त नहीं होते।

युधिष्ठिर बोले—पाप योनिज हीनवर्ण व्यक्ति जो आर्यके गृहमें जन्मग्रहण करनेके कारण आर्यरूप हो गया है, किन्तु उत्पत्तिके कारण अनार्य है, उसे हम किस प्रकार पहचान सकेंगे?

भीष्मने कहा—अनार्योंके पृथक् पृथक् भाव तथा चेष्टा-समन्वित मनुष्यको संकरयोनिज समझना चाहिये एवं उनके सज्जनाचरित कर्म द्वारा योनिशुद्धता विज्ञात होगी। इस संसारमें अनार्यता, अनाचार, क्रूरता तथा निष्क्रियात्मता कलुषयोनिज पुरुषमें ही देखी जाती है। संकीर्ण

जातिकी संतान पिताके अथवा माताके चरित्र किंवा पिता माता दोनोंके स्वभाव प्राप्त करती है, वह कभी भी अपनी प्रकृति गुप्त नहीं रख सकती ! तिर्यक् योनिजात व्याघ्र प्रभृति जिस तरह विचित्र वर्णके साथ माता पिताके समान रूपसे ही पैदा होते हैं, ठीक उसी तरह मनुष्य अपने पिताके वर्णमें ही पैदा होता है। वंशस्रोत संच्छन्न होने पर योनिसंकर होता है, वह मनुष्य जिस व्यक्तिके औरससे पैदा होता है, उसका कुछ न कुछ चरित्र अवश्य ही आश्रय करता है। कृत्रिम पथसे विचरनेवाला व्यक्ति शोभनवर्ण है या निकृष्ट, इसका निश्चय उसके स्वभावसे ही हो जायगा। सुवर्ण जिस तरह बाह्यतः कठिन होने पर भी कार्यके समय मृदु होता है एवं सुवर्ण अर्थात् चाँदी जिस तरह नियम मृदु होने पर भी कार्यके समय कठिन है, सुजात तथा दुर्जात पुरुषोंके जन्म और चरित्र भी उसी तरह होते हैं। संकरजात वर्णका शरीर शास्त्रीय बुद्धि द्वारा मोक्ष मार्ग-से आकृष्ट नहीं होता, बीजगुणको प्रबलता वशतः कालभेदसे बुद्धिवृत्तिकी प्रधानता होने पर भी शरीरा-रम्भक स्वत्वके उपेक्षत्व, मध्यमत्वके अनुसार जो समान होता है, वही प्रमुदित हुआ करता है। दूसरा स्वत्व उत्पन्न होते ही शरत्कालके मेघकी तरह पुनः विलीन हो जाता है। ऊंचे वर्णका लड़का जब सदाचारसे दूर हो जाय, तब उसका सम्मान नहीं करना चाहिये और शूद्र यदि सदाचारसम्पन्न तथा धर्मज्ञ हो, तो उसका सम्मान करना चाहिये। मनुष्य शुभाशुभकर्म, सुशीलता, सच्चरित्र तथा कुल द्वारा अपनेको प्रकाश करता है, कुल नष्ट हो जाने पर पुरुष अपने कर्म द्वारा पुनः अपना उद्धार कर लेता है। इन सब संकीर्ण तथा इतर योनियोंमें पुत्रोत्पादन नहीं करना चाहिये, पंडित लोग इस तरह-की स्त्रियोंका त्याग करें। (महाभारत अनुशासन ४८ अ०)

वर्णधातु (सं० स्त्री०) गेरू, ईंगुर आदि रंगके काममें आनेवाली धातु।

वर्णन (सं० क्ली०) वर्णस्तुतौ विस्तारे रञ्जनादौ ल्युट्। १ स्तवन, गुणकीर्त्तन। २ विस्तरण, किसी बातको सविस्तर कहना, कथन। ३ चित्रण, रंगना।

वर्णनष्ट (सं० पु०) पिङ्गल या छन्दःशास्त्रमें एक क्रिया। इसके द्वारा यह जाना जाता है, कि प्रस्तारके अनुसार इतने वर्णोंके वृत्तोंके अमुक संख्यक भेदका रूप लघु गुरुके हिसाबसे कैसा होगा। जितने वर्णके प्रस्तारके किसी भेदका रूप निकालना हो, उतने लघुके चिह्न लिख कर उनके सिरे पर क्रमशः वर्णोद्दिष्ट अंक (१ से आरम्भ करके क्रमशः दूने दूने अंक) लिखे। फिर अंतिम अंक का दूना करके उसमेंसे पूछी हुई संख्याको घटावे। जो अंक बाकी बचे, वह जिन जिन उद्दिष्टोंके योगसे बना हो उनके नीचेकी लघु मात्राओंके चिह्नोंको गुरु कर दे। जो रूप सिद्ध होगा, वही उत्तर होगा।

वर्णना (सं० स्त्री०) वर्ण-णिच्-युच् टाप्। गुणकथन। पर्याय—इड़ा, स्तव, स्तोत्र, स्तुति, नुति, श्लाघा, प्रशंसा, अर्थवाद। "विदग्धा अपि वर्ण्यन्ते विदग्धवर्णनया स्त्रियः"
(कथासरित्सा० ३२।१६६)

वर्णनाश (सं० पु०) वर्णस्य नाशः ६-तत्। निरुक्त-कारके अनुसार शब्दमें किसी वर्णका नष्ट हो जाना।

वर्णनीय (सं० त्रि०) वर्ण कर्मणि अनीयर्। १ वर्ण्य, वर्णितव्य, वर्णनाके योग्य। २ स्तवार्ह, स्तवके योग्य।

वर्णपताका (सं० स्त्री०) पिङ्गल या छन्दःशास्त्रमें एक क्रिया। इसके द्वारा यह जाना जाता है, कि वर्णवृत्तोंके भेदोंमेंसे कौन सा (पहला, दूसरा या तीसरा आदि)ऐसा है, जिसमें इतने लघु और इतने गुरु होंगे।

वर्णपात (सं० पु०) वर्णस्य पातः। उच्चारणके समय शब्दान्तर्गत वर्णका पतन।

वर्णपाताल (सं० पु०) पिंगल या छन्दःशास्त्रमें एक क्रिया। इसके द्वारा यह जाना जाता है, कि अमुक संख्याके वर्णोंके कुल कितने वृत्त हो सकते हैं और उन वृत्तोंमेंसे कितने लघ्वादि और कितने लघ्वन्त, कितने गुर्वादि और कितने गुर्वान्त तथा कितने सर्वगुरु और कितने सर्वलघु होंगे। जितने वर्णोंका पाताल बनाना हो, उतनी ही खड़ी रेखाएं और उन्हें काटती हुई पांच आड़ी रेखाएं खींचे। इस प्रकार कोष्ठ बन जाने पर कोष्ठोंकी पहली पंक्तिमें क्रमसे १, २, ३, ४, आदि अंक भरे। दूसरी पंक्तिमें २, ४, ८, १६ आदि वर्णसूचीके अंक लिखे। तीसरी पंक्तिमें सूचीके अंकोंके आधे लिखे और चौथी पंक्तिमें पहली और तीसरी पंक्तिके अंकोंका गुणनफल लिखे।

वर्णपात्र (सं० क्लो०) वर्णस्य पात्रं। चित्रकारका रंग रखनेका बरतन।

वर्णपुर (सं० पु०) शुद्ध रागका एक भेद।

वर्णपुष्प (सं० पु०) वर्णयन्ति पुष्पाणि यस्य कप्। राजतरुणी पुष्पवृक्ष।

वर्णपुष्पक (सं० पु०) वर्णपुष्प देखो।

वर्णपुष्पी (सं० स्त्री०) वर्णयन्ति पुष्पाणि यस्याः ङीष्। उष्ट्रकाण्डी पुष्पवृक्ष।

वर्णप्रकर्ष (सं० पु०) वर्णकी अधिकता।

वर्णप्रत्यय (सं० पु०) छन्दःशास्त्र या पिंगलमें वे क्रियाएं जिनके द्वारा यह जाना जाता है, कि अमुक संख्याके वर्णवृत्तोंके कितने भेद हो सकते हैं, उनके स्वरूप क्या होंगे इत्यादि। जिस प्रकार मात्रिक छन्दोंमें ६ प्रत्यय होते हैं, उसी प्रकार वर्णवृत्तोंमें भी ६ प्रत्यय होते हैं,—प्रस्तार, सूची, पाताल, उद्दिष्ट, नष्ट, मेरु, खण्ड-मेरु, पताका और मर्कटी।

वर्णप्रसादन (सं० क्ली०) वर्णस्य प्रसादनं यस्मात्। अगुरुचन्दन।

वर्णप्रस्तार (सं० पु०) पिंगल या छन्दःशास्त्रमें वह क्रिया जिसके द्वारा यह जाना जाता है, कि इतने वर्णों-के वृत्तोंके इतने भेद हो सकते हैं और उन भेदोंके स्वरूप इस प्रकार होंगे। जितने वर्णोंका प्रस्तार बढ़ाना हो, उतने वर्णोंका पहला भेद (सर्वगुरु) लिखे। फिर गुरुके नीचे लघु लिख कर शेष ज्योंका त्यों लिखे। फिर सबसे बाईं ओरके गुरुके नीचे लघु लिख कर आगे ज्योंका त्यों लिखे और बाईं ओर जितनी न्यूनता रहे, उतने गुरुसे भरे। यह क्रिया अन्त तक अर्थात् सर्व लघु भेदके आने तक करे।

वर्णभेद (सं० पु०) वर्णस्य भेदः। १ वर्णका भेद, ब्राह्मणादि वर्णोंकी भिन्नता। २ रंगका भेद।

वर्णभेदिनी (सं० स्त्री०) लताविशेष।

वर्णमय (सं० त्रि०) वर्णविशिष्ट।

वर्णमर्कटी (सं० स्त्री०) पिंगल छन्दःशास्त्रमें एक क्रिया। इससे यह जाना जाता है, कि इतने वर्णोंके इतने वृत्त हो सकते हैं, जिनमें इतने गुर्वादि, गुर्वन्त और इतने लघ्वादि लघ्वन्त होंगे तथा सब वृत्तोंमें मिला कर इतने वर्ण, इतने गुरु लघु, इतना कलाएं और इतने पिण्ड (=दो कल) होंगे। जितने वर्ण हों, उतने खाने बाएंसे दाहिने बनावे। फिर उन खानोंके नीचे उतने ही खानों की छः पंक्तियां और बनावे। कोष्ठोंकी पहली पंक्तिमें १, २, ३ आदि अंक लिखे; दूसरीमें वर्ण सूचोंके अंक (२, ४, ८, १६ आदि) लिखे; तीसरी पंक्तिमें दूसरी पंक्ति-के अंकोंके आधे अंक भरे; चौथीमें पहली और दूसरी पंक्तिके अंकोंके गुणनफल लिखे; पांचवीमें चौथी पंक्ति के आधे अंक भरे, छठी पंक्तिमें चौथी और पांचवीं पंक्तिके अंकोंका योग लिखे और सातवीं पंक्तिमें छठी पंक्तिके आधे अंक भरे।

वर्णमातृ (सं० स्त्री०) वर्णस्य मातेव ककाराद्यक्षरप्रसू-त्वात्। लेखनी, कलम।

वर्णमातृका (सं० स्त्री०) वर्णानां वर्णमालानां मातृेव। सरस्वती।

वर्णमात्रा (सं० स्त्री०) वर्णस्य मात्रा। ककारादि वर्णोंकी ह्रस्वदीर्घादि मात्रा।

वर्णमाला (सं० स्त्री०) वर्णानां माला। १ जातिमाला, वर्णश्रेणी। २ अक्षरोंके रूपोंकी यथा श्रेणी लिखित सूची, किसी भाषामें आनेवाले सब हरफ जो ठीक सिल सिलेसे रखे हों। संस्कृतमें ५० और अथर्ववेदमें ५१ वर्णमाला है। तन्त्रमें ५१ वर्णमालाका निर्देश और उसके जपका विधान है। अङ्गरेजी वर्णमाला २६, फारसी २३, अरबी २८, पारसी ३१, तुर्की ३३, हिब्रू २२, रूसीय ४१, ग्रीक २४, लाटिन २२, डच २६, स्पेनिश २७, इटाली २०, तातार २०२, ब्रह्म १६। चीन देशमें वर्णमाला शब्दात्मक है, इन शब्दोंकी संख्या प्रायः अस्सी हजार होगी। अक्षरलिपि देखो।

वर्णवितस्य (सं० स्त्री०) वर्णनीय, वर्णन करनेके योग्य।

वर्णराशि (सं० पु०) वर्णसमूह, वर्णमाला।

वर्णरेखा (सं० स्त्री०) वर्णं लिख्यतेऽनयेति लिख करणे घञ् यलयोरैक्यं। कठिनी, खड़ी।

वर्णलिपि (सं० स्त्री०) वर्ण या अक्षरप्रकाशक लेखन प्रणाली (Alphabetic writing)।

विशेष विवरण अक्षरलिपि शब्दमें देखो।

वर्णलेखिका (सं० स्त्री०) वर्णलेखा स्वार्थे कन्, टापि अत इत्वं । खड़ी ।

वर्णवत् (सं० त्रि०) वर्णोऽस्त्यस्य वर्ण (रसादिभ्यश्च । पा ५।२।९५) इति मतुप् मस्य वः । वर्णविशिष्ट ।

वर्णवती (सं० स्त्री०) हरिद्रा, हल्दी ।

वर्णवर्त्ति (सं० स्त्री०) लेखनी, कलम ।

वर्णवर्त्तिका (सं० स्त्री) वर्णवर्त्ति देखो ।

वर्णवादी (सं० पु०) प्रशंसाकारो, बड़ाई करनेवाला ।

वर्णविकार (सं० पु०) निरुक्तके अनुसार शब्दोंमें एक वर्णका बिगड़ कर दूसरा वर्ण हो जाना । जैसे—'हल्दी' शब्दमें 'हरिद्रा'के 'र' का 'ल' हो गया है । 'द्वादश'के 'द' का 'बारह' शब्दमें 'र' हो गया है ।

वर्णविचार (सं० पु०) आधुनिक व्याकरणका वह अंश जिसमें वर्णोंके आकार, उच्चारण और सन्धि आदिके नियमोंका वर्णन हो । प्राचीन वेदाङ्गमें यह विषय 'शिक्षा' कहलाता था और व्याकरणसे बिलकुल स्वतन्त्र माना जाता था ।

वर्णविपर्य्यय (सं० पु०) निरुक्तके अनुसार शब्दोंमें वर्णों-का उलट फेर हो जाना । जैसे—'हिंस' शब्दसे बने 'सिंह' शब्दमें हुआ है ।

वर्णविलासिनी (सं० स्त्री०) हरिद्रा, हल्दी ।

वर्णविलोडक (सं० पु०) वर्णान् विलोडयतीति विलोडि-ण्वुल् । १ श्लोकस्तेन, वह जो दूसरेका लिखा विषय चोरी करके उसे अपना बतलाता है । २ सन्धिचौर, सेंधिया चोर ।

वर्णवृत्त (सं० क्लो०) वह पद्य जिसके चरणोंमें वर्णोंको संख्या और लघु गुरुके क्रमोंमें समानता हो ।

वर्णव्यवस्थिति (सं० स्त्री०) वर्णस्य व्यवस्थितिः । चातु-र्वर्ण्य विभाग ।

वर्णशिक्षा (सं० स्त्री०) वर्णाभ्यास ।

वर्णश्रेष्ठ (सं० पु०) वर्णेषु श्रेष्ठः । चार वर्णोंमेंसे श्रेष्ठ, ब्राह्मण ।

वर्णसंघार (सं० पु०) वर्णमाला ।

वर्णसंघात (सं० पु०) वर्ण समूह ।

वर्णसंयोग (सं० पु०) सवर्ण विवाह ।

वर्णसंसर्ग (सं० पु०) असवर्ण विवाह ।

वर्णसंहार (सं० पु०) प्रतिमुख सन्धिके तेरह अंगोंमेंसे एक ; ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र इन चारों वर्णों-के लोगोंका एक स्थान पर सम्मेलन । अभिनव गुप्ताचार्यका मत है, नाटकके भिन्न भिन्न पात्रोंके एक स्थान पर सम्मेलनको वर्णसंहार कहना चाहिए ।

वर्णस (सं० त्रि०) वर्णयुक्त ।

वर्णसङ्कर (सं० पु०) वर्णतो ब्राह्मणादिभ्यः वर्णानां वा सङ्करो मिश्रणं यत्र । मिश्रित जाति, ब्राह्मणादि वर्णके अनुलोम या प्रतिलोमसे उत्पन्न जाति ।

गीतामें लिखा है, कि जब अधर्मका अत्यन्त प्रादु-र्भाव होता है, तब कुल-ललनायें दूषित होती हैं । जब वे दूषित होती हैं, तब उन्हींसे वर्णसङ्कर जातिकी उत्पत्ति होती है । वर्णसङ्कर होनेसे देव और पितृकार्य लोप तथा कुलधर्म और जातिधर्मका नाश होता है । उस देशमें सबोंको नरक जाना पड़ता है ।

(भगवद्गीता १ अ०)

ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र यही चार वर्ण हैं । इनके अतिरिक्त और कोई वर्ण नहीं है । उक्त चार वर्णोंके अतिरिक्त जो सब जातियां देखनेमें आती हैं, वे ही सङ्कर जाति हैं । इन चार वर्णों हो से सङ्कर जाति-की उत्पत्ति हुई है । शास्त्रमें लिखा है, कि स्त्रियोंको अति सामान्य कुसंगसे यत्नपूर्वक बचाना चाहिये ; नहीं तो वह स्त्री पिता और स्वामी दोनोंके कुलमें कालो लगाती है । पत्नीकी सर्वतोभावमें रक्षा करना सभी धर्मोंसे श्रेष्ठ है । क्या दुर्बल, क्या सबल, क्या अन्ध, क्या खञ्ज, सभीको अपनी अपनी भार्याकी रक्षा करनी चाहिये । एक भार्याकी रक्षा करने होसे कुल और धर्म पवित्र होता है ।

भार्याके सुरक्षिता नहीं होनेसे उनमें व्यभिचार फैल जाता है । उसीसे जो सन्तान पैदा होती है । वह वर्ण-सङ्कर कहलाती है । वर्णसङ्कर होनेसे धर्म और कुल नष्ट हो जाता है । धर्म और कुलके नष्ट होनेसे ऐहिक और पारत्रिक किसी भी प्रकारके मङ्गलकी सम्भावना नहीं रहती । अतः जिससे वर्णसङ्करत्व न हो सके तथा वर्णसङ्करका मूल कारण जो स्त्री जाति है, उसकी यत्नपूर्वक रक्षा करनी होगी । यही शास्त्रका उपदेश है ।

इसके अतिरिक्त ब्राह्मणादि तीन वर्ण यदि स्वधर्म-का त्याग करें, तो वे भी वर्णसङ्कर कहलाते हैं। मनुमें लिखा है, कि अन्योन्य स्त्रीगमन, सगोत्रमें विवाह तथा उपनयनादि स्वधर्मका त्याग, इन सब कारणोंसे ब्राह्मणादि तीन वर्णोंमें वर्णसङ्करत्व होता है।

"व्यभिचारेण वर्णानामवेद्यावेदनेन च।
स्वकर्मणाञ्च त्यागेन जायन्ते वर्णसङ्कराः॥"

(मनु १०।२४)

शास्त्रानुसार देखा जाता है, कि दो प्रकारसे वर्ण-सङ्कर हुआ करता है, एक स्त्रियोंके व्यभिचारसे और दूसरे ब्राह्मणादि तीन वर्णोंके स्वधर्म त्यागसे। स्त्रियोंके व्यभिचारसे चार वर्णोंके अतिरिक्त जो सब जातियां उत्पन्न होती हैं, वह प्रथम वर्णसङ्कर और स्वधर्म त्याग द्वितीय वर्णसङ्कर है।

चार वर्णोंसे अनुलोम और प्रतिलोमक्रमसे वर्ण-सङ्करजातिके मध्य परस्पर आसक्तिवशतः अनुलोम और प्रतिलोम क्रमसे यह वर्णसङ्कर उत्पन्न होता है।

"सङ्कीर्णयोनयो ये तु प्रतिलोमानुलोमजाः।
अन्योन्यव्यतिषक्ताश्च तान् प्रवक्ष्याम्यशेषतः॥"

(मनु० १०।२५)

ब्राह्मणादि चार वर्णोंसे परिणीता स्त्रीसे उत्पन्न सन्तान ब्राह्मणादि वर्ण होती है। इसके सिवा अस-वर्ण पत्नीसे उत्पन्न सन्तान पिताके समानवर्ण नहीं होती, उनकी दूसरी जाति होती है। मन्वादि ऋषियोंने कहा है, कि तीन द्विजवर्णोंसे अनुलोमक्रमसे अनन्तर-वर्णजा पत्नीके गर्भमें उत्पन्न पुत्र माता यदि नीच जातिकी भी क्यों न हो, तो भी पिताकी जातिका होता है। यह यथाक्रम मूर्द्धावसिक्त, माहिष्य तथा करण इन तीन नामोंसे पुकारा जाता है।

ब्राह्मण कर्तृक एकान्तर या वैश्यागर्भसम्भूत सन्तान अम्बष्ठ और द्व्यन्तरज शूद्रागर्भसम्भूत सन्तान निषाद या पारशव तथा क्षत्रिय कर्तृक शूद्रागर्भसम्भूत सन्तान उग्र कहलाती है। क्षत्रिय कर्तृक ब्राह्मणीगर्भसम्भूत सन्तानको सूत, वैश्य कर्तृक क्षत्रियागर्भसम्भूतको मागध तथा ब्राह्मणीगर्भसम्भूतको वैदेह कहते हैं। शूद्र कर्तृक वैश्यागर्भज सन्तानका नाम आयोगव, क्षत्रिया-गर्भजका क्षत्ता और ब्राह्मणीगर्भज सन्तानका नाम चण्डाल है। शूद्र कर्तृक प्रतिलोमक्रमसे उत्पन्न ये तीनों जाति अति निकृष्ट हैं। ब्राह्मण कर्तृक उग्रकन्या-गर्भसम्भूत सन्तान आवृतकी, अम्बष्ठकन्यासम्भूत आभीर तथा आयोगव कन्यागर्भज सन्तान धिग्वण-की उपाधि पाती है।

चण्डाल, सूत, वैदेह, आयोगव, मागध तथा क्षत्ता ये छः प्रतिलोमज वर्णसङ्कर हैं। चण्डालादि छः प्रकार-की वर्णसङ्कर जातियोंके परस्पर अनुलोम या प्रतिलोम क्रमसे परस्पर जातिकी कन्याके गर्भसे जो सब सन्तान उत्पन्न होती है, वह अपने माता पितासे सर्वतोभावमें हीन, निन्दार्ह और सत्क्रियावहिर्भूत है। शूद्र कर्तृक ब्राह्मणीगर्भजात चण्डालादि सन्तान जिस प्रकार अप-कृष्ट समझी जाती है, चण्डालादि छः प्रकारके सङ्करों द्वारा ब्राह्मणादि चार वर्णोंसे उत्पन्न सन्तान उनसे हजार गुणा हीन और निन्दार्ह है। आयोगवादि छः प्रकारकी हीन जातियां परस्पर मिलभावमें परस्पर वर्णजा पत्नीके गर्भसे जो सन्तान उत्पादन करती हैं, उनकी संख्या पन्द्रह है। ये लोग पितासे भी कहीं हीन हैं। दस्युजाति कर्तृक आयोगव स्त्रीके गर्भसे जो सन्तान उत्पन्न होती है, उनका नाम सैरिन्ध्र है। ये सब केशरचनादि कार्योंमें कुशल होती हैं। यद्यपि यह प्रकृत दास नहीं हैं तथापि दासकार्योपजीवी हैं तथा पाश द्वारा मृगादिका वध कर जीविका निर्वाह करते हैं। वैदे-हक जाति कर्तृक आयोगवी स्त्रीगर्भसे जो सन्तान पैदा होती है, उनका नाम मैत्रेय है। ये लोग स्वभावतः मधुर-भाषी होते हैं। प्रातःकालमें घंटा बजा कर राजा आदि का स्तुतिपाठ करना इनका कार्य है। निषाद कर्तृक आयोगव स्त्रीके गर्भसे उत्पन्न सन्तानको मार्गव या दास कहते हैं। ये लोग नाव चलानेमें बड़े चतुर होते हैं। आयोगवी स्त्रीके गर्भमें अनार्योंसे सैरिन्ध्र, मैत्रेय और मार्गव ये तीन जातियां जन्म ग्रहण करती हैं। निषाद कर्तृक वैदेहीगर्भसम्भूत सन्तानका नाम कारावर है। चमड़ा काटना इनका काम है। वैदेह जाति कर्तृक कारावर स्त्रीसे अन्ध्र और निषाद स्त्रीसे मेद जाति, चण्डाल कर्तृक वैदेहीसे वेणुव्यवहारजीवी

पाण्डुसोपाक, निषाद वैदेहीसे आहिण्डिक और चण्डाल कर्त्तृक पुक्कसी स्त्रीके गर्भसे सोपाक जाति उत्पन्न होती है। यह सोपाक जाति जल्लादका काम करके जीविका चलाती है। चण्डालसे निषादीगर्भसम्भूत सन्तानका नाम अन्त्यावसायी (गङ्गा पुत्र) है। श्मशानकार्य्य इनकी उपजीविका है। यह सब वर्णसङ्कर जाति निन्दनीय और निन्द्यकर्मकारी हैं। (मनु १० अ० और कुल्लूकभट्ट)

वर्णसङ्करिक (सं० त्रि०) वर्णसङ्कर सम्बन्धीय।

वर्णसमाम्नाय (सं० पु०) वर्णमाला।

वर्णसि (सं० पु०) वृणोति स्थलमिति वृञ् आवरणे (धान विवनसि पर्वतीति। उण् ४।१०७) इति असि धातोर्नुक् च। जल।

वर्णसूची (सं० स्त्री०) छन्दःशास्त्र या पिंगलमें एक क्रिया। इसके द्वारा वर्णवृत्तोंकी संख्याकी शुद्धता, उनके भेदोंमें आदि अन्त लघु और आदि अन्त गुरुकी संख्या जानी जाती है। जितने वर्णों की सूची देखनी हो, उतने वर्णों की संख्या तक क्रमसे २, ४, ८ इत्यादि अर्थात् उत्तरोत्तर दूने अङ्क लिखे। इस क्रियाके अन्तम जो संख्या आयेगा, वह सूचनभेदकी संख्या होगी। अन्तके अङ्कके बाईं ओर जो अङ्क होगा, उतने आदि लघु और अन्तलघु तथा आदिगुरु और अन्तगुरु होंगे। फिर उसके भी बाईं ओर अर्थात् अन्तमें तोसरे कोष्ठमें जो अङ्क होगा, उतने ही आदि अन्तलघु और आदि अन्त गुरुयुक्त होंगे।

वर्णस्थान (सं० क्लो०) वर्ण या शब्द आदिका उच्चारणस्थान।

वर्णस्वरोदय (सं० पु०) ज्योतिषोक्त शुभाशुभ ज्ञानका प्रकार या नियमविशेष।

नरपतिजयचर्य्या स्वरोदयभूत ब्रह्मयामलमें स्वरकी संख्या सोलह बताई है। इन सोलह स्वरोंमें अन्त्यस्वर दो हैं—अं, अः। यह दोनों स्वर छोड़ कर लेना होगा। सोलह स्वरोंमेंसे चार स्वर क्लीव हैं, जैसे—ऋ, ॠ लृ, ॡ, अतएव ये चार स्वर भी त्याज्य हैं।

अवशिष्ट दश स्वरोंमें दो दो करके पांच युग्म होंगे। इन पांच युग्मोंके आदि पांच स्वर हैं—अ, इ, उ, ए, ओ। ये सब ह्रस्व स्वरोंमें गिने जाते हैं। अतः ये पांचों स्वर ही स्वरोदयमें अवलम्बनीय हैं।

इस स्वरोदयसे लाभालाभ, सुख-दुःख, जीवन मरण, जय-पराजय और सान्ध ये सब विषय जाने जाते हैं।

मातृका वर्णमें ही चराचर परिव्याप्त है, किन्तु मातृका वर्ण विना स्वरके उच्चारण करना असम्भव है। सुतरां यह चराचर निखिल जगत् स्वरसे उत्पन्न हुआ, इस कारण स्वरोदय द्वारा ही सभी जाना जा सकता है।

अकारादि पांच स्वर ब्रह्मादि पांच देवता माने गये हैं। जैसे—अकारमें ब्रह्मा, इकारमें विष्णु, उकारमें रुद्र, एकारमें पवन, ओंकारमें सदाशिव हैं। इसी प्रकार उन अकारादि पांच स्वरोंमें निवृत्ति, प्रतिष्ठा, विद्या, शान्ति और शान्त्यतीता ये पांच कला तथा इच्छा, प्रज्ञा, प्रभा, श्रद्धा और मेधा ये पांच शक्ति निर्दिष्ट हैं।

इन पञ्च स्वरके अकारादि क्रमसे चतुरस्र, अर्द्धचन्द्र, त्रिकोण, षड्विन्दुयुत, गोलाकार और शुद्ध गोलाकार ये पांच चक्र; पृथिवी, जल, तेज, वायु, आकाश ये पञ्चभूत; गन्ध रस रूप स्पर्श शब्द ये विषयपञ्चक तथा सम्मोहन, उन्मादन, शोषण, तापन और स्तम्भन ये पांच पञ्चवाणके वाणरूपमें निर्णीत हैं।

अकारादि पञ्चस्वर आठ भागोंमें विभक्त हैं। यथा-मात्रा, वर्ण, ग्रह, जीव, राशि, नक्षत्र, पिण्ड और योगस्वर।

जब मात्रास्वर बलवान् रहे, तब मन्त्रसाधन, यन्त्रसाधन और अन्यान्य सभी शुभ कार्य करने चाहिये।

वर्णस्वरके प्रबल रहनेसे शुभाशुभ कर्म करे। वर्णस्वर सभी समय विशेषतः युद्धकालमें सिद्धप्रद है।

ग्रहस्वरके बलवान् रहनेसे मारण, मोहन, स्तम्भन, विद्वेषण, उच्चाटन, वशीकरण, विवाद, युद्ध, प्रदाह और संहार ये सब कार्य्य कर्त्तव्य हैं।

जीवस्वरके बलवान् रहनेसे यज्ञ, अलङ्कार, भूषण, विद्यारम्भ, विवाह, यात्रा और पानादि कार्य्य करे।

राशिस्वरके बलवान् रहनेसे प्रासाद, हर्म्य, उद्यान, देवतास्थापन, राजसिंहासन पर अभिषेक और दीक्षाकार्य करे।

नक्षत्रस्वरके बलवान् होनेसे शान्तिक, पौष्टिक, गृहादि प्रवेश, बीजवपन, विवाह और यात्रा कार्य विधेय हैं।

निरुद्धदयमें प्रबल होनेसे शत्रुपक्षका देशभङ्ग, सेनापति और मन्त्रिवियोग ये सब कार्य करे।

फिर पोषिदावर्ग प्रबल होनेसे शान्तस्वभाव मानव अर्थात् अणिमादि अष्टैश्वर्यप्राप्तिविषयक, शान्तय और शान्तेय इत्यादि शारीरिक योग साधन करे।

जिस नामसे निद्रित व्यक्तिको पुकारा जाता है, जिस नामसे पुकारने पर मनुष्य गमन करते हैं, उस नामके आदि वर्णमें जो मात्रा अर्थात् स्वर होगा उसीका नाम मात्रास्वर है। जिस प्रकार रत्नाकान्त, इस नामका आदि अक्षर हुआ 'र' और 'र' वर्णमें अ संयुक्त है। अतएव मात्रास्वर होगा 'अ'। स्वरोदय शब्दमें देखो।

मात्रास्वरचक्र।

अ	इ	उ	ए	ओ
क	कि	कु	के	को
ख	खि	खु	खे	खो
ग	गि	गु	गे	गो
घ	घि	घु	घे	घो
च	चि	चु	चे	चो
छ	छि	छु	छे	छो
ज	जि	जु	जे	जो
झ	झि	झु	झे	झो
ट	टि	टु	टे	टो

वर्णा (सं० स्त्री०) वृणोति आवृणोति इति वृणु आवरणे अच्, ततष्टाप्। आढ़की, अरहर।

वर्णाङ्का (सं० स्त्री०) वर्णा अङ्क्यतेऽनयेति अकि लक्षणे, घञ्, ततष्टाप्। लेखनी, कलम।

वर्णाट (सं० पु०) वर्णान् अटतीति अट-अण्। १ गायक, गवैया। २ चित्रकार। ३ स्त्रीकृताजीव, वह जिसकी जीविका स्त्रीसे चलती हो।

वर्णात्मन् (सं० पु०) वर्णः अक्षरम् आत्मा स्वरूपं यस्य। शब्द।

वर्णाधिप (सं० पु०) वर्णानां ब्राह्मणादीनामधिपः। फलितज्योतिषके अनुसार ब्राह्मणादि वर्णोंके अधिपति ग्रह। ब्राह्मणके अधिपति बृहस्पति और शुक्र, क्षत्रियके भौम और रवि, वैश्यके चन्द्र, शूद्रके बुध और अन्त्यजके शनि माने जाते हैं।

वर्णान्यत्व (सं० क्ली०) दूसरे वर्णका भाव, वर्णका परिवर्त्तन।

वर्णापेत (सं० त्रि०) वर्णादपेतः। वर्णहीन, नीचजाति।

वर्णाश्रम (सं० पु०) वर्णानां चातुर्वर्ण्यानां आश्रमः। चातुर्वर्ण्याश्रम, चारों वर्णोंका आश्रम।

वर्णाश्रमधर्म (सं० पु०) चारों वर्णका आश्रमधर्म। ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र ये चार वर्ण आश्रममें रह कर जिस वृत्ति द्वारा जीविका और जिस कर्म द्वारा ऐहिक और पारत्रिक कल्याण लाभ कर सकते हैं, उसको आश्रमधर्म कहते हैं। भिन्न भिन्न वर्णका भिन्न भिन्न आश्रम है। महाभारतमें लिखा है, कि युधिष्ठिरने भीष्मदेवसे पूछा था, कि सब वर्णोंका साधारण धर्म क्या है? तथा चार वर्णोंका पृथक् पृथक् धर्म ही क्या है? किस किस वर्णका किस किस आश्रममें अधिकार है? भीष्मदेवने उत्तरमें कहा था, कि चार वर्णके आश्रमधर्मका विषय कहता हूं, सुनो। क्रोध-परित्याग, सत्यवाक्यप्रयोग, न्यायतः धनविभाग, क्षमा, अपनी पत्नीसे पुत्रोत्पादन, पवित्रता, अहिंसा, सरलता और भृत्यवर्ग भरणपोषण ये ही सभी वर्णोंके साधारण धर्म हैं।

इन्द्रियदमन और वेदाध्ययन ही ब्राह्मणका प्रधान धर्म है। शान्तस्वभाव और ज्ञानवान् ब्राह्मण यदि असत् कार्य न करके सत्पथसे धन लाभ कर सकें, तो विवाह करके सन्तान उत्पादन, दान और यज्ञानुष्ठान करना उनका कर्त्तव्य है। ब्राह्मण चाहे दूसरे कार्यका अनुष्ठान करें चाहें न करें, पर उनके वेदाध्ययननिरत और सदाचारसम्पन्न होनेसे ही उनके वर्णाश्रम धर्मकी रक्षा होती है।

धनदान यज्ञानुष्ठान, अध्ययन और प्रजापालन ही क्षत्रियका प्रधान धर्म है। याचना, याजन या अध्यापन क्षत्रियोंके लिये निषिद्ध है। चोर डकैतोंका वध करनेके लिये सर्वदा तैयार रहना, समराङ्गणमें विक्रम दिखलाना क्षत्रियोंका कर्त्तव्य है। और डकैतोंके नाश करनेके सिवा

क्षत्रियका प्रधान धर्म और कुछ भी नहीं है। दान, अध्ययन और यज्ञ द्वारा ही क्षत्रियोंका कल्याण होता है। राजा दूसरा कोई काम करें चाहे न करें, पर आचारनिष्ठ हो कर उन्हें प्रजापालन करना ही पड़ेगा। इसीसे क्षात्रधर्मकी रक्षा होती है।

दान, अध्ययन, यज्ञानुष्ठान, सदुपाय द्वारा धन-सञ्चय तथा पुत्रके समान पशुपालन करना ही वैश्यका नित्य धर्म है। इसके सिवा दूसरे किसी कार्यका अनुष्ठान करनेसे वैश्यका अधर्ममें लिप्त होना पड़ता है।

भगवान् प्रजापतिने ब्राह्मणादि तीन वर्णोंका दास होना कह कर शूद्रकी सृष्टि की है। अतएव तीन वर्णोंकी परिचर्या करना ही शूद्रका प्रधान धर्म है। शूद्र यदि धनोपार्जन कर धनी हो जाये, तो ब्राह्मण आदि उत्कृष्ट जातियां उसके वशीभूत हो सकती हैं, इसलिये शूद्रको चाहिये कि खाने पीनेके सिवा वह अधिक अर्थसञ्चय न करे, करनेसे उसको पापग्रस्त होना पड़ता है। किंतु राजाके आदेशानुसार शूद्र धर्मकार्यके अनुष्ठानार्थ अर्थसञ्चय कर सकता है। ब्राह्मणादि तीन वर्ण शूद्रको भरण, पोषण तथा छत्र, वेष्टन, शयन, आसन, उपानत्‌युगल, चामर और वस्त्र आदि प्रदान करें। यह सब द्रव्य शूद्रोंका धर्मलब्ध धन है। अर्थसञ्चय करना शूद्रका अधिकार नहीं है।

यज्ञ नाना प्रकारका है तथा उसके फल भी अनेक हैं। ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र ये चारों वर्ण सभी यज्ञ कर सकते हैं। शूद्रका यज्ञमें अधिकार रहने पर भी मन्त्रमें उसे अधिकार नहीं है। चार वर्णोंके सभी यज्ञोंमें सबसे पहले श्रद्धायज्ञका अनुष्ठान करना कर्त्तव्य है। श्रद्धा महद्देवता स्वरूप है। यह याज्ञिकोंको पवित्रता सम्पादन करती है। चार वर्णोंके मध्य अत्यन्त श्रद्धासम्पन्न होने हीसे यज्ञानुष्ठानका अधिकार होता है। मनुष्य चोरी आदि पापकार्योंमें आसक्त हो कर भी यदि यज्ञानुष्ठान करे, तो भी उसे साधु कहा जा सकता है तथा महर्षिगण भी उसकी प्रशंसा करते हैं। त्रिलोकके मध्य यज्ञके समान दूसरा कोई कार्य नहीं है। अतएव चारों वर्णोंको असूयाशून्य हो कर श्रद्धापूर्वक साध्यानुसार यज्ञानुष्ठान करना चाहिये।

मनुष्य वानप्रस्थ, भैक्ष्य, गार्हस्थ्य और ब्रह्मचर्य इन चार आश्रमोंका अवलम्बन करते हैं। ब्रह्मचर्य आश्रममें केवल ब्राह्मणका ही अधिकार है। आत्मज्ञान-सम्पन्न जितेन्द्रिय ब्राह्मण पहले उपनयनादि संस्कारसे संस्कृत हो कर ब्रह्मचर्य ग्रहण, अग्न्याधानादि कार्य समाधान, वेदाध्ययन और पीछे वे गार्हस्थ्य धर्मका प्रतिपालन कर केवल पत्नीके साथ वानप्रस्थ अवलम्बन करें। इस आश्रममें वे आरण्यक शास्त्रोंका अध्ययन कर ऊर्द्ध्वरेता हो अनायाससे ब्रह्ममें लीन हो सकते हैं। ब्रह्मचर्य समाप्त करके ही मोक्षलाभार्थ भैक्ष्य धर्मका आश्रय लेना ब्राह्मणोंके लिये दोषावह नहीं है। इस आश्रममें वे सुखदुःखरहित, निकेतन विहीन, यदृच्छालब्धजीवी, दान्त, जितेन्द्रिय, सबोंके प्रति समदृष्टिसम्पन्न, भोगकामनाशून्य और निर्विकारचित्त हो अन्तमें ब्रह्म पदको प्राप्त होते हैं।

क्षत्रियादि वर्ण भी ब्राह्मणोंके दृष्टान्तानुसार ही वानप्रस्थादि आश्रमका अवलम्बन करें। स्वधर्मनिरत क्षत्रिय, वैश्य और शूद्रका भी भैक्ष्यधर्मग्रहणमें अधिकार है। कृतकार्य परिणतवयस्क वैश्य भी राजाकी अनुमति ले कर दूसरा आश्रम ग्रहण कर सकते हैं। क्षत्रिय वेद और राजनीति अध्ययन, सन्तानोत्पादन, सोमरसपान, राजसूय और अश्वमेध आदि यज्ञोंका अनुष्ठान, वेदपाठ करा कर ब्राह्मणको दक्षिणा-दान और श्राद्धादि द्वारा पितरोंको तृप्त कर शेषावस्थामें दूसरा आश्रम ग्रहण कर सकते हैं। क्षत्रिय गृहस्थधर्मका परित्याग कर अपनी जीवन-रक्षाके लिये ही भिक्षावृत्तिका अवलम्बन कर सकते हैं। भिक्षावृत्तिका अवलम्बन क्षत्रियादि तीन वर्णोंका काम्यधर्म है, नित्यधर्म नहीं।

मानवमण्डलीके मध्य एक क्षत्रियवर्ण ही श्रेष्ठतर धर्मकी सेवा करते हैं। वेदमें कहा है, कि अन्य तीन वर्णोंके सभी धर्म तथा समस्त उपधर्म क्षात्रधर्मके आयत्त हैं। जिस प्रकार सभी प्राणियोंके पदचिह्न हाथीके पदचिह्नमें लीन हो जाते हैं, उसी प्रकार सभी धर्म राजधर्ममें लीन हो गये हैं। पण्डितोंने अन्यान्य धर्मोंको अल्पफलप्रद तथा क्षत्रिय-धर्मको आश्रमका सारभूत और कल्याणका एकमात्र निदान बतलाया है।

वर्णार्ह (सं० पु०) वर्णमर्हतीति अर्ह-अण्। मुद्ग, मूंग।

वर्णि (सं० स्त्री०) वर्ण्यते स्तूयते इति वर्ण स्तुतौ इन्। १ स्वर्ण, सोना। (पु०) २ वर्णि।

वर्णिक (सं० पु०) वर्णान् लेखनत्वेन अस्ति अस्येति वर्ण-ठन्। लेखक।

वर्णिकवृत्त (सं० पु०) वह वृत्त या छन्द जिसके प्रत्येक चरणके वर्णोंकी संख्या और लघु गुरुके स्थान समान हों।

वर्णिका (सं० स्त्री०) वर्णान् अक्षराणि लेखनत्वेन सन्त्यस्याः इति वर्ण-ठन्-टाप्। १ कठिनी, खड़िया। २ मसि, स्याही। ३ सोनेका पानी। ४ चन्द्रमा। ५ विलेपन।

वर्णित (सं० त्रि०) वर्ण-क्त। १ स्तुतियुक्त। पर्याय—ईलित, शस्त, पणायित, पनायित, प्रणुत, पणित, गीर्ण, अभिष्टुत, ईडित, स्तुत, नुत। २ जिसका वर्णन हो चुका हो, बयान किया हुआ। ३ कथित, कहा हुआ।

वर्णिन् (सं० पु०) वर्णान् अक्षराणि लेखनत्वेन सन्त्यस्येति वर्ण-इनि। १ लेखक। वर्णाः नीलपीतादयः लेखनत्वेन सन्त्यस्येति। २ चित्रकार। वर्ण (वर्णाद्ब्रह्मचारिणि। पा ५।२।१३४) इति इनि। ३ ब्रह्मचारी। (त्रि०) ४ वर्णविशिष्ट। वर्णोऽस्त्यस्य (धर्मशीलवर्णान्ताच्च। पा ५।२।१३२) इति इनि। ५ ब्राह्मण।

वर्णिनी (सं० स्त्री०) वर्णिन्-ङीप्। १ हरिद्रा, हलदी। २ वनिता।

वर्णिल (सं० त्रि०) वर्ण-(लोमादि पामादिपिच्छादिभ्यः शनेलचः। पा ५।२।१००) इति प्रशस्तार्थे इलच्। प्रशस्तवर्णविशिष्ट, वर्णयुक्त।

वर्णी (सं० पु०) वर्णिन् देखो।

वर्णु (सं० पु०) वृङ् संभक्तौ (भृमृशीभ्यो नित्। उण् १.१८) इति णु-स्य-णित्। १ एक नदीका नाम, वन्नू, आदित्य। २ वन्नू नामक देश।

वर्णोद्दिष्ट (सं० पु०) छन्दःशास्त्रमें एक क्रिया। इसके द्वारा यह जाना जाता है, कि अमुक संख्यक वर्णवृत्तका कौन-सा भेद है। जो भेद दिया गया हो, उसमें लघु गुरुके ऊपर क्रमसे दूने अंक अर्थात् १, २, ४, ८ इत्यादि लिखे। फिर लघुके ऊपर जितने अंक हों, उन्हें जोड़ कर उसमें १ और जोड़ दे।

वर्ण्य (सं० क्ली०) वर्ण-ण्यत्। १ कुंकुम, केसर। (पु०) २ वनतुलसी, बबई। ३ गन्धक। ४ प्रस्तुत विषय। ५ उपमेय। (त्रि०) ६ वर्णनके योग्य। ७ जो वर्णनका विषय हो।

वर्त्तक (सं० क्ली०) वर्त्तते इति वृत ण्वुल्। १ वर्त्तलौह, बिदरी। २ बटुआ। (पु०) ३ पक्षिविशेष, वट बटेर। ४ घोड़ेका खुर। (त्रि०) ५ पृथक्।

वर्त्तका (सं० स्त्री०) वर्त्तक-टाप्, 'वर्त्तका शकुनौ प्राच्याम्' इति वार्त्तिकोक्त्या-न-अत इत्वं। वर्त्तक पक्षी, बटेर।

वर्त्तकी (सं० स्त्री०) वर्त्तका देखो।

वर्त्तिजन्मन् (सं० पु०) वर्त्तिनि आकाशपथे जन्म यस्य। मेघ।

वर्त्तितीक्ष्ण (सं० क्ली०) वर्त्तलोह, बिदरी।

वर्त्तन (सं० क्ली०) वर्त्ततेऽनेनेति वृत करणे ल्युट्। १ वृत्ति, रोजी, जीवनोपाय, व्यवसाय। २ साधारण वर्त्तुल। ३ तकुआ, चरखेकी वह लकड़ी जिसमें तकला लगा रहता है। ४ जीवन। ५ वामन। (त्रि०) ६ वर्त्तिष्णु, वर्त्तनशील। (क्ली०) ७ परिवर्त्तन, फेरफार। ८ फेरना, घुमाना, बटना। ९ शल्यतन्त्रमतसे, घावमें सलाई डाल कर हिलाना डुलाना जिससे घाव या नासूरकी गहराई और फैलाव आदिका पता लगता है। १० स्थिति, ठहराव। ११ स्थापन, रखना। १२ व्यवहार, बरताव। १३ कोना। १४ वर्त्तलोई, बटुआ। १५ पेषण, सिलबट्टेसे पीसना, बटना। १६ पात्र, बरतन। १७ वर्त्तमान।

वर्त्तना (हिं० क्रि०) बरतना देखो।

वर्त्तनि (सं० पु०) १ पूर्वदेश, पूर्वदिशा। २ बाट, रास्ता। ३ शुद्ध रागका एक भेद।

वर्त्तनिन् (सं० त्रि०) पथिक, बटोही।

वर्त्तनी (सं० स्त्री०) वर्त्तनि कृदिकारादिति पक्षे ङीष्। १ पेषण, बटनेकी क्रिया, पिसाई। २ बाट, रास्ता।

वर्त्तनीय (सं० त्रि०) वर्त्तनयोग्य।

वर्त्तमान (सं० पु०) वर्त्तते इति वृत शानच्। १ प्रारब्धापरिसमाप्तिभूत काल, व्याकरणमें क्रियाके तीन कालोंमेंसे एक। इससे यह सूचित होता है, कि क्रिया अभी चली

चलती है, समाप्त नहीं हुई है। यह वर्त्तमान चार प्रकारका है, प्रवृत्तोपरत, वृत्ताविरत, नित्यप्रवृत्त और सामीप्य।

इन चार प्रकारके वर्त्तमानमेंसे सामीप्य दो प्रकारका होता है,—भूतसामीप्य और भविष्यत्सामीप्य। इन चारों वर्त्तमानका उदाहरण, यथा—'मांसं न खादति' इस वाक्यमें 'प्रवृत्तोपरता' पाई जाती है अर्थात् वह जन्मसे ही मांस नहीं खाता। 'इह कुमाराः क्रीड़न्ति' इस वाक्यसे यह मालूम होता है, कि चाहे कहनेके समय लड़के न खेलते रहे हों, पर उसके पूर्व कई बार खेल चुके हैं और आगे भी बराबर खेलेंगे। इसलिये इसे वृत्ताविरत वर्त्तमान कहते हैं। 'पर्वतास्तिष्ठन्ति' इस वाक्यसे पर्वतों पर भूत और भविष्यत्कालमें रहनेका सम्बन्ध सूचित होता है, अतः यह नित्यप्रवृत्त वर्त्तमान है।

'कदा आगतोऽसि इति प्रश्ने अव्यवधेयादेव समानत्यात् एषोऽहं आगच्छामि इति आगतोऽपि वदति' अर्थात् कब आये हो? ऐसा प्रश्न करने पर आया हुआ व्यक्ति 'यही मैं आया' उत्तर देता है। यहां यद्यपि उसका आना समाप्त हो गया है, तो भी उसकी मौजूदगी रहनेके कारण यहां भूतसामीप्य वर्त्तमान हुआ। 'कदा गमिष्यसि इति प्रश्ने 'एषोऽहं गच्छामि इति गमनक्रियमाणोद्यमोऽपि वदति' कब जाओगे? यह प्रश्न करने पर जानेवाला व्यक्ति 'अभी हो जाता हूं' यह उत्तर देता है। यहां उसका जाना शुरू न होने पर भी भविष्यत्की समीपताके कारण यहां भविष्यत्सामीप्य वर्त्तमान हुआ। यही चार प्रकारका वर्त्तमान है। धातु और काल शब्द देखो।

वर्त्तमान कालमें लट् विभक्ति होती है। २ वृत्तान्त, समाचार। ३ चलता व्यवहार। (त्रि०) ४ चलता हुआ, जो जारी हो, जो चल रहा हो। ५ विद्यमान, उपस्थित, मौजूद। ६ साक्षात्। ७ आधुनिक, हालका।

वर्त्तमानता (सं० स्त्री०) वर्त्तमानस्य भावः तल्-टाप्। वर्त्तमानत्व, मौजूदगी।

वर्त्तरूक (सं० पु०) वर्त्तों वर्त्तनं राति गृह्णातीति या बाहुलकात् ऊक। १ एक नदीका नाम। २ काकनीड़, कौवेका घोसला। ३ द्वारपाल।

वर्त्तलोह (सं० क्ली०) वर्त्तते इति वृत् अच्, ततः कर्मधारयः। लोहविशेष, एक प्रकारका लोहा। पर्याय—वर्त्ततीक्ष्ण, वर्त्तक, लोहसङ्कर, नीलक, नीललोह, नीलज, वर्त्तलोहक। वैद्यकमें शोधे हुए वर्त्तलोहको कफ, दाह और पित्तका नाशक और उसके स्वादको कटु, मधुर और तिक्त लिखा है। यह वही लोहा है जिसके विदरी बरतन बनते हैं।

वर्त्तस् (सं० क्ली०) पञ्चपंक्ति। ["यावा पृथिवी वर्त्तोभर्वा विद्युतं" (शुक्लयजु० २५।१) 'वर्त्ता पंक्तिः नाम्ना'। (महीधर)

वर्त्ति (सं० स्त्री०) वर्त्ततेऽनयेति वृत (अर्चिशुचि हुसृपिछादिछर्दिभ्य इसिः। उण् ४।११८) इति इन्। १ दीपदशा, बत्ती। २ भेषजनिर्माण, औषध बनाना। ३ अंजन। ४ लेप। ५ वह बत्ती जो वैद्य घावमें देता है। ६ अनुलेपन, उबटन। ७ गोली, वटी। ८ दीप, दीया।

गरुड़पुराणमें लिखा है, कि रीठा, शंख, सैन्धव, सुवर्ण, वच, फेन, रसाञ्जन, मधु, विड़ङ्ग और मनःशिला, इन सब द्रव्योंकी वर्त्ति कास, तिमिर और पटल रोगका नाश करती है। (गरुड़पु० १६८ अ०)

भावप्रकाशमें रोपणी और स्नेहनी वर्त्तिका विषय यों है—

रोपणीवर्त्ति—तिलपुष्प ८०, पीपर ६०, जातीफूल ५० तथा मिर्च १६ इन सबोंको जलमें अच्छी तरह पीस कर वर्त्ति बनावे और इस वर्त्तिसे आंखमें अंजन लगावे। इससे कास, तिमिर, अर्जुन शुक्र और मांसवृद्धि नष्ट होती है। इसकी मात्रा उड़द भर है।

स्नेहनीवर्त्ति—आंवलेका बीज १ तोला, बहेड़ेका ३ तोला और हरीतकीका ३ तोला, इन सबोंको जलमें पीस कर उड़द भरकी वर्त्ति बनावे और उससे आंखमें अंजन करे। ऐसा करनेसे अश्रुस्राव और वातरक्तसे जो पीड़ा होती है, उसका नाश होता है। (भावप्र० द्वितीय० ६।०)

वर्त्तिक (सं० पु०) पक्षिविशेष, बटेर। पर्याय—वार्त्तिक, वर्त्तो, गात्रिकाय। इसके मांसका गुण निर्दोष, वीर्य तथा पुष्टिवर्द्धक, मधुर, रुक्ष, कफ और वायुनाशक माना गया है। (राजनि०)

"[illegible] नैव [illegible] विशेष।
[illegible] न बर्द्धकिन ॥"
(बृहस्प० ४२।१२)

वर्त्तमान समय बढ़ई, (बढ़ि, बढ़ि, बढ़िक या बढ़ि नामसे विख्यात हैं। उत्तर-पश्चिममें ये लोग अपनेको शिल्पकर्त्ताका सन्तान बताते हैं। इस समय प्रकृत बढ़ईकी जाति नहीं देखी जाती। मध्ययुग कई श्रेणियोंके लोगोंके बढ़ईका काम करनेसे इस नामकी एक स्वतन्त्र श्रेणी पैदा हो गई है।

बिहारके बढ़ईको लोग छः दलमें विभक्त हैं। ये लोग परस्पर आदान-प्रदान नहीं करते। इनमें कनौजिया दलके लोग काठका काम करते हैं एवं मगहिया लोहे तथा काठकी सिटकी, किवाड़ प्रभृति तैयार करते हैं। भागलपुरमें इस जातिका लोहार नामक एक दल है। ये लोग प्रकृत लोहार जातिसे पृथक् हैं। कनारकल्ला दलके बढ़ई लोग काठके पुतले तथा कर या तमाशा दिखा कर अपनी जीविका चलाते हैं।

उत्तर-पश्चिम भारतके हिन्दू तथा मुसलमान बढ़ई जातिके मध्य कई शाखाएं हैं। उनमें हिन्दू विभागके पांच छः दल हैं। उनमें निम्नोक्त दल स्थानभेदसे विद्यमान हैं।

सहारनपुर—चन्द्रौया, ढोली, मुलतानी, नागर, तरलोइया; मुजफ्फरनगर—दलवाल, लोटा; मेरठ—जंघार; बुलन्दशहर—मोल; अलीगढ़—चौहान; मथुरा—बाम्हन, गोलसिया; आगरा—नागर, जंघार तथा उपरौत; फर्रुखाबाद—धारीसिया; मैनपुरी—उमरिया; एटा—अगवारया, बरनसिया, सिनारी, अलोवारिया; बलिया—मालुवंशा; बस्ती जिलेमें—दक्षिणाहय, सरवरिया, सरयूपारी; गोरखा—दैरासी या खाती, लोहार, बढ़ई, कोकसवंशी, तथा मन्दो; बाराबंकी—जैसवार; मिर्जापुर—कोकनवंशी, मगधिया या मगहिया, पूर्विया, दखिया और राजो या माटी इहमाल, मथुरिया, महोनी इत्यादि। इनके अतिरिक्त महर, ढील, ओझा बढ़ई तथा चमार बढ़ई प्रभृति दल देखे जाते हैं। इनकी विभागमें अजोध्यावासी नामक एक दल है। ये यज्ञोपवीत धारण करते हैं [illegible] मांस प्रभृति

पदार्थोंको छूते तक नहीं। ओझा दलके लोग जनेऊ पहनते हैं।

सेतुबन्ध-रामेश्वर नामक बढ़ईकी लोग केवल काठको देवमूर्त्ति बना कर बेचते हैं। जातीय व्यवसायमें उच्च स्थानके अधिकारी होने पर भी समाजके मध्य शिल्पके नामसे नीच श्रेणीमें गिने जाते हैं। खाती लोग सिर्फ गाड़ीके पहिये बनाते हैं एवं शिलावासी कोकन लोग टेबिल, कुर्सी प्रभृति तैयार करते हैं। ढोल, डकार, दिमान तथा जंघार, राजपूत जातिकी एक दूसरी शाखा गिनी जाती है। कुनिबास, कुल्ला तथा कुंहा प्रभृति पर्वतवासी बढ़ई लोग डोम जातिके समान हैं।

मगहिया जातिके अन्दर ३से ५ वर्षके भीतर ही बालिकाओंका विवाह हो जाता है। किन्तु उत्तर-पश्चिम अञ्चलमें बालिकाका ७से ११ वर्षके अन्दर एवं बालकका १२से १३ वर्षके मध्य विवाह हो जाता है। उनमें धनियोंके यहां 'चारहौवा' प्रथासे, निर्धनोंके यहां 'डोला' प्रथासे एवं 'अदल बदल' तथा सगाईकी प्रथासे विवाह होता है। इस समाजमें विधवा-विवाह भी प्रचलित है। विधवा स्त्रियां देवरके अतिरिक्त दूसरे व्यक्तिको द्वितीय बार पतिरूपसे ग्रहण कर सकती हैं। स्त्रियोंके आचरण भ्रष्ट होने पर समाज उन्हें जातिसे बाहर कर देते हैं। यदि ये इस समाजदण्डके बाद पुनः धर्म तथा सम्मानकी रक्षा करते हुए जीवन व्यतीत करती हैं, तो लोग उन्हें फिर समाजमें स्थान देते हैं। समाजमें मिल जानेके बाद ये स्त्रियां सगाईकी रीतिसे फिर विवाह कर सकती हैं। पुरुषोंके पापोंका प्रायश्चित्त ब्राह्मण-भोजन करानेसे, अयोध्यादि जानेसे अथवा गङ्गा या सरयूमें स्नान करनेसे होता है।

ये लोग शिवशक्ति शैव हैं। ये मद्य मांस नहीं खाते। पांचपीर, महावीर, देवी, दुल्हादेव, विन्ध्याचल, विश्वकर्मा प्रभृति देवताओंकी पूजा ये लोग बड़ी भक्तिसे [illegible] लोग विवाहके अन्दरकी बनी गुर्गी भूनकर [illegible] या [illegible] में फेंक आते [illegible] महात्मा-

पर चावल तथा दूध चढ़ा कर ब्राह्मणोंको कुछ खाद्य पदार्थ दान करते हैं। वसन्त तथा विसूचिका रोगसे मृत्यु होने पर ये लोग शवको गाड़ते हैं अथवा नदीके जलमें बहा देते हैं। विदेशमें किसी आत्मीय वा स्वजनकी मृत्यु होने पर ये लोग कुशपुत्तलिका बना कर उसे ही जलाते हैं।

बिहारके बढ़ई लोग जलाचरणीय हैं। ये लोग उग्र-महाराज, बन्दी, गोरैया तथा पांचपीर प्रभृति ग्राम्य-देवताओंकी पूजा करते हैं। ग्वाला, कोइरी, हज्जाम इत्यादिकी तरह ये लोग भी समाजमें बराबर आसन प्राप्त करते हैं। काठके कामके अलावे ये लोग खेती बारी भी करते हैं।

वर्द्धन (सं० त्रि०) वर्द्धयतीति वृध नन्द्यादित्वात् ल्यु, यद्वा वर्द्धते तच्छील इति वृध-पूर्णौ (अनुदात्तेतश्चेति। पा ३।२।१४६) इति युच्। १ वर्द्धिष्णु, बढ़नेवाला। २ वृद्धि, उन्नति। (पु०) ३ बढ़ाना। ४ छेदन, काटना, छीलना, तराशना। ५ पूरण, पूर्त्ति।

वर्द्धनकोट (वर्द्धनकुटी)—बगुड़ा जिलान्तर्गत एक जमीं-दारी। यह अक्षा० २५° ८' २५" उ० तथा देशा० ८६° २८' पू०के मध्य गोविन्दपुरके निकट करतोया नदीके किनारे अवस्थित है। अभी यह राजबाटी नामसे विख्यात है। कोई कहते हैं, कि यहां एक समय प्राचीन पौण्ड्-वर्द्धन राज्यकी राजधानी थी। संस्कृत भविष्यब्रह्मखण्ड-के मतसे वर्द्धनकोट निवृत्ति देशके अन्तर्गत है। यहां प्राचीन राजबाड़ीका खंडहर दिखाई पड़ता है। इस समय भी वर्द्धनकोटमें एक वारेन्द्र कायस्थ राजवंश विद्यमान हैं। एक समय सुविस्तीर्ण वर्द्धनकुटीराज्य जिनके अधिकारमें था, जिन्हें लाखसे अधिक रु० राजस्व देना पड़ता था, आज उनकी अवस्था बड़ी ही सोचनीय हो गई है, दो सौ रुपयेसे अधिक राजस्व देना नहीं पड़ता।

वर्द्धनगढ़—१ बम्बई प्रदेशके सातारा जिलान्तर्गत एक गिरिदुर्ग। यह कोरेगांव और खटाव उपविभागकी सीमाके बीच महादेव शैलमालाकी एक शाखाके ऊपर सातारा शहरसे १७ मील उत्तर पूर्वमें अवस्थित है।

खटाव या पूर्व हो कर एक कुञ्ज होता हुआ इस गढ़ पर चढ़ना होता है। इसके समीप हो कर सातारा पुरन्दर रास्ता चला गया है। इस रास्तेसे दो सौ गज दूर पर एक प्राचीन सरोवर है।

नवजित राज्यकी पूर्वी सीमाकी रक्षा करनेके लिये १७६३ ई०में महाराष्ट्र केशरी शिवाजीने यह दुर्ग बनवाया था। १८०० ई०में महादजी सिन्दियाने २५०० सेना ले कर प्रतिनिधिसे यह दुर्ग छीन लिया। इस समय सिन्दियाकी बहन सर्जीवत घोड़पड़ेको स्त्रीने कुछ अधिक उपद्रव न मचाया। १८०३ ई०में दुर्गाध्यक्ष बलवन्त राव बकसोने यहां आ कर जेसाई तिरन्दीके साथ लड़ाई छेड़ दी। १८०५ ई०में फतेसिंहमानने दुर्ग पर आक्र-मण किया और साथमें बहुत घोड़े ले गये। उनके फेंके हुए गोलकका चिह्न आज भी दुर्गके फाटककी छत पर दिखाई पड़ता है।

१८०६ ई०में वसन्तगढ़की लड़ाईके बाद बापू गोखले पर दुर्ग सौंपा गया। उन्होंने १८११ ई० तक उसकी देखरेख की, पीछे पेशवाने उसका भार अपने हाथ लिया। १८१८ ई०में बिना किसी झंझटके ही यह दुर्जय दुर्ग वृटिश-सरकारके मातहतमें चला गया।

आज कल दुर्गकी अवस्था बड़ी ही खराब हो गई है। इसके अधिकांश भवन ही खंडहरोंमें परिणत हो गये हैं।

२ सातारा जिलेमें महादेव शैलमालाके पूर्वांशमें उन्नत एक शाखा। यह खटाव मीलसे चन्दनवन्दन-शृङ्ग पर्यन्त करीब १६ मील विस्तृत है। इस विस्तृत शैलमालाके ऊपर उत्तरमें वर्द्धनगढ़, कराड़के निकट सदाशिवगढ़ तथा सदाशिवगढ़से १२ मील दक्षिणमें महिन्द्रगढ़ अवस्थित है।

वर्द्धमसूरि (सं० पु०) एक प्रसिद्ध जैनाचार्य।

वर्द्धनिका (सं० स्त्री०) वह पात्र या बरतन जिसमें यज्ञादिका पवित्र जल रखा जाता है।

वर्द्धनी (सं० स्त्री०) १ जलपात्रविशेष, जल रखनेका एक बरतन। २ सम्मार्जनी, झाड़ू। ३ सनाल पात्रविशेष, कमण्डलु।

वर्द्धनीय (सं० त्रि०) वर्द्ध-अनीयर्। वर्द्धनयोग्य, बढ़ानेके लायक।

"करमंरो दलमेरो नेम्या नाशो वलस्य विग्रेयः।
मर्षद्वयोऽन्तमंरो तुंवयानिमंगे च वर्द्धकिनः॥"
(बृहत्स० ४३।२२)

वर्त्तमान समय बढ़ई, [वर्द्धि, वर्द्धि, वर्द्धिक या वर्हि नामसे विख्यात हैं। उत्तर-पश्चिममें ये लोग अपनेको विश्वकर्माको सन्तान बताते हैं। इस समय प्रकृत वर्द्धकी जाति नहीं देखी जाती। मध्यवृत्त कई श्रेणियोंके लोगोंसे बढ़ईका काम करनेसे इस नामकी एक स्वतन्त्र श्रेणी पैदा हो गई है।

विहारके वर्द्धकी लोग छः दलमें विभक्त हैं। ये लोग परस्पर आदान-प्रदान नहीं करते। इनमें कनौजिया दलके लोग काठका काम करते हैं एवं मगहिया लोहे तथा काठकी खिड़की, किवाड़ प्रभृति तैयार करते हैं। भागलपुरमें इस जातिका लोहार नामक एक दल है। वे लोग प्रकृत लोहार जातिसे पृथक् हैं। कमारकल्ला दलके वर्द्धकी लोग काठके पुतले नचा कर या तमाशा दिखा कर अपनी जीविका चलाते हैं।

उत्तर-पश्चिम भारतके हिन्दू तथा मुसलमान बढ़ई जातिके मध्य कई शाखाएं हैं। उनमें हिन्दू विभागके बीच ७६ दल हैं। उनमें निम्नोक्त दल स्थानभेदसे विख्यात हैं।

सहारनपुर—धन्द्रीया, छोली, मुलतानी, नागर, तरलोइया; मुजफ्फरनगर—ढलवाल, लोटा; मेरठ—जंघार; बुलन्दशहर—भोल; अलीगढ़—चौहान; मथुरा—वाम्हन, सोशनिया; आगरा—नागर, जंघार तथा उपरीत; फर्रुखाबाद—पारीतिया; मैनपुर—उमरिया; एटा—अगवारया, वरमनिया, विशारो, जलेश्वरिया; बलिया—गोकुलवंशी। बस्ती जिलेमें—दक्षिणात्य, सरवरिया, सरयूपारी; गोण्डा—फैराती या दाण्डी, लोहार, बढ़ई, कोकशवंशी, तथा सन्दो; शाहाबादमें—जैसवार; मिर्जापुर—कोकशवंशी, मगधिया या मगहिया, पूर्वीया, उत्तरिया और खत्री या खाटी रहमान, मथुरिया, लहोरी, कोकश इत्यादि। इनके अतिरिक्त महूर, ढौंक, ओझा, वामन बढ़ई तथा चमार बढ़ई प्रभृति दल देखे जाते हैं। वाराणसी विभागमें जनेऊधारी नामक एक दल है। ये लोग यज्ञोपवीत धारण करते हैं और मद्य, मांस प्रभृति पदार्थोंको छूते तक नहीं। ओझा दलके लोग जनेऊ पहनते हैं।

सेतुबन्ध-रामेश्वर नामक वर्द्धकी लोग केवल काठको देवमूर्त्ति बना कर बेचते हैं। जातीय व्यवसायमें उच्च स्थानके अधिकारी होने पर भी समाजके मध्य भिक्षुकके नामसे नीच श्रेणीमें गिने जाते हैं। खाटी लोग सिर्फ गाड़ीके पहिये बनाते हैं एवं दिल्लीवासी कोकश लोग टेबिल, कुर्सी प्रभृति तैयार करते हैं। ढौंक, उकाट, दिमान तथा जंघार,राजपूत जातिकी एक दूसरी शाखा गिनी जाती है। सुनिशास, कुला तथा कुंदा प्रभृति पर्वतवासी बढ़ई लोग डोम जातिके समान हैं।

मगहिया जातिके अन्दर ३से ५ वर्षके भीतर] ही बालिकाओंका विवाह हो जाता है। किन्तु उत्तर-पश्चिम अञ्चलमें बालिकाका ७से ११ वर्षके अन्दर एवं बालकका ९से १३ वर्षके मध्य विवाह हो जाता है। उनमें धनियोंके यहां 'चारहौवा' प्रथासे, निर्धनोंके यहां 'दोला' प्रथासे एवं 'अदल बदल' तथा सगाईकी प्रथासे विवाह होता है। इस समाजमें विधवा-विवाह भी प्रचलित है। विधवा स्त्रियां देवरके अतिरिक्त दूसरे व्यक्तिको द्वितीय बार पतिरूपसे ग्रहण कर सकती हैं। स्त्रियोंके आचरण भ्रष्ट होने पर समाज उन्हें जातिके बाहर कर देते हैं। यदि वे इस समाजदण्डके बाद पुनः धर्म तथा सम्मानकी रक्षा करते हुए जीवन व्यतीत करती हैं, तो लोग उन्हें फिर समाजमें स्थान देते हैं। समाजमें मिल जानेके बाद वे स्त्रियां सगाईकी रीतिसे फिर विवाह कर सकती हैं। पुरुषोंके पापोंका प्रायश्चित्त ब्राह्मण-भोजन करानेसे, अयोध्यातीर्थ जानेसे अथवा गङ्गा या सरयूमें स्नान करनेसे होता है।

ये लोग धीराचारी शैव हैं। ये मद्य मांस नहीं खाते। पांचपीर, महावीर, देवी, दुल्हादेव, विविधादेव, विश्वकर्मा प्रभृति देवताओंकी पूजा ये लोग बड़ी भक्तिसे करते हैं। ये लोग चिताके अन्दरकी बची खुची मृतककी हड्डियां बटोर कर गङ्गा या और किसी नदीमें फेंक आते हैं। साधु पुरुषोंके समाधिस्थानों पर ये लोग महालयाके दिन अन्न चढ़ाते हैं तथा त्रयोदशी तिथिको उन स्थानों

पर चावल तथा दूध चढ़ा कर ब्राह्मणोंको कुछ खाद्य पदार्थ दान करते हैं। वसन्त तथा विसूचिका रोगसे मृत्यु होने पर ये लोग शवको गाड़ते हैं अथवा नदीके जलमें बहा देते हैं। विदेशमें किसी आत्मीय वा स्वजनकी मृत्यु होने पर ये लोग कुशपुत्तलिका बना कर उसे हो जलाते हैं।

बिहारके बढ़ई लोग जलाचरणीय हैं। ये लोग उग्र महाराज, बन्दी, गोरैया तथा पांचपीर प्रभृति ग्राम्य-देवताओंको पूजा करते हैं। ग्वाला, कोइरी, हजाम इत्यादिकी तरह ये लोग भी समाजमें बराबर आसन प्राप्त करते हैं। काठके कामके अलावे ये लोग खेती-बारी भी करते हैं।

वर्द्धन (सं० त्रि०) वर्द्धयतीति वृध नन्द्यादित्वात् ल्यु, यद्वा वर्द्धते तच्छील इति वृध-पूर्त्तौ (अनुदात्तेतश्चेति। पा ३।२।१४९) इति युच्। १ वर्द्धिष्णु, बढ़नेवाला। २ वृद्धि, उन्नति। (पु०) ३ बढ़ाना। ४ छेदन, काटना, छीलना, तराशना। ५ पूरण, पूर्त्ति।

वर्द्धनकोट (वर्द्धनकुटी)—बगुड़ा जिलान्तर्गत एक जमींदारी। यह अक्षा० २५° ८' २५" उ० तथा देशा० ८९° २८' पू०के मध्य गोविन्दपुरके निकट करतोया नदीके किनारे अवस्थित है। अभी यह राजबाटी नामसे विख्यात है। कोई कहते हैं, कि यहां एक समय प्राचीन पौण्ड्र-वर्द्धन राज्यकी राजधानी थी। संस्कृत भविष्यब्रह्मखण्डके मतसे वर्द्धनकोट निवृत्ति देशके अन्तर्गत है। यहां प्राचीन राजबाड़ीका खंडहर दिखाई पड़ता है। इस समय भी वर्द्धनकोटमें एक वारेन्द्र कायस्थ राजवंश विद्यमान हैं। एक समय सुविस्तीर्ण वर्द्धनकुटीराज्य जिनके अधिकारमें था, जिन्हें लाखसे अधिक रु० राजस्व देना पड़ता था, आज उनकी अवस्था बड़ो ही सोचनीय हो गई है, दो सौ रुपयेसे अधिक राजस्व देना नहीं पड़ता।

वर्द्धनगढ़—१ बम्बई प्रदेशके सातारा जिलान्तर्गत एक गिरिदुर्ग। यह कोरेगां और खटाव उपविभागकी सीमाके बीच महादेव शैलमालाकी एक शाखाके ऊपर सातारा शहरसे १७ मील उत्तर-पूर्वमें अवस्थित है।

खटाव या पूर्व हो कर एक कुञ्ज होता हुआ इस गढ़ पर चढ़ना होता है। इसके समीप हो कर सातारा पुरन्दर रास्ता चला गया है। इस रास्तेसे दो सौ गज दूर पर एक प्राचीन सरोवर है।

नवजित राज्यकी पूर्वी सीमाकी रक्षा करनेके लिये १७६३ ई०में महाराष्ट्र केशरी शिवाजीने यह दुर्ग बनवाया था। १८०० ई०में महादजी सिन्धियाने २५०० सेना ले कर प्रतिनिधिसे यह दुर्ग छीन लिया। इस समय सिन्धियाकी बहन सर्जीवत घोड़बड़ेकी स्त्रीने कुछ अधिक उपद्रव न मचाया। १८०३ ई०में दुर्गाध्यक्ष बलवन्त राव बकसीने यहां आ कर जेसाई तिरन्दीके साथ लड़ाई छेड़ दी। १८०५ ई०में फतेसिंहमानने दुर्ग पर आक्रमण किया और साथमें बहुत घोड़े ले गये। उनके फेंके हुए गोलकका चिह्न आज भी दुर्गके फाटककी छत पर दिखाई पड़ता है।

१८०६ ई०में बसन्तगढ़की लड़ाईके बाद बापू गोखले पर दुर्ग सौंपा गया। उन्होंने १८११ ई० तक उसकी देखरेख की, पीछे पेशवाने उसका भार अपने हाथ लिया। १८१८ ई०में बिना किसी झंझटके ही यह दुर्भेद्य दुर्ग वृटिश सरकारके मातहतमें चला गया।

आज कल दुर्गकी अवस्था बड़ी ही खराब हो गई है। इसके अधिकांश भवन ही खंडहरोंमें परिणत हो गये हैं।

२ सातारा जिलेमें महादेव शैलमालाके पूर्वांशमें उन्नत एक शाखा। यह खटाव मोलसे चन्दनवन्दन-शृङ्ग पर्यन्त करीब १६ मील विस्तृत है। इस विस्तृत शैलमालाके ऊपर उत्तरमें वर्द्धनगढ़, कराड़के निकट सदाशिवगढ़ तथा सदाशिवगढ़से १२ मील दक्षिणमें महिन्द्रगढ़ अवस्थित है।

वर्द्धनसूरि (सं० पु०) एक प्रसिद्ध जैनाचार्य।

वर्द्धनिका (सं० स्त्री०) वह पात्र या बरतन जिसमें यज्ञादिका पवित्र जल रखा जाता है।

वर्द्धनी (सं० स्त्री०) १ जलपात्रविशेष, जल रखनेका एक बरतन। २ सम्मार्जनी, झाड़ू। ३ सनाल पात्रविशेष, कमण्डलु।

वर्द्धनीय (सं० त्रि०) वर्द्ध-अनीयर्। वर्द्धनयोग्य, बढ़ानेके लायक।

"शतधा वर्द्धनीयास्तेयं इच्छत्वात्मनः शुभम् ।"

(उद्योगप०)

वर्द्धमान (सं० पु०) वर्द्धते इति वृध-वृद्धौ शानच् । १ एरण्डवृक्ष, रेड़ीका पेड़। २ वसुमेद। ३ शराव। ४ विष्णु। ५ जिनविशेष, पर्याय—वीर, चरमतीर्थकृत, महावीर, देवार्य, ज्ञातनन्दन। महावीर देखो। ६ धनी मनुष्यों के घर। वृहत्संहितामें लिखा है, कि इस घरका दरवाजा दक्षिणकी ओर नहीं बनाना चाहिये। ७ मद्राभ्रपर्वके अन्तर्गत कुलपर्वतविशेष। मद्राभ्रपर्वके सात कुलपर्वत हैं, 'जिनमेंसे वर्द्धमान' सातवाँ कुलपर्वत है। ८ मिट्टीका प्याला, सकोरा। ९ एक वर्णवृत्त। इसके चारों चरणोंमें वर्णों की संख्या भिन्न होती है अर्थात् १४, १३, १८ और १५। (त्रि०) १० वृद्धिविशिष्ट, वर्द्धनशील, बढ़नेवाला। ११ बढ़ता हुआ, जो बढ़ता जा रहा हो।

वर्द्धमान—बंगालके छोटा लाटके शासनाधीन एक विभाग, यह एक कमिश्नरके अधीन परिचालित होता है। यह अक्षा० २१° ३६´ से ले कर २४° ३५´ उ० तथा देशा० ८६° ३३´ से ले कर ८८° ३०´ पू० तक विस्तृत है। वर्द्धमान, हुगली, हवड़ा, मेदिनीपुर, बांकुड़ा और वीरभूम जिलेको ले कर यह विभाग गठित हुआ है। इसकी उत्तरी सीमा पर संथाल परगना और मुर्शिदाबाद, पूर्वमें नदीया और २४ परगना जिला या गंगानदी, दक्षिणमें बङ्गोपसागर और बालेश्वर जिला तथा पश्चिममें मयूरभञ्ज राज्य एवं सिंहभूम और मानभूम जिले हैं। इस विभागमें २७ शहर और २४८३६ गाँव लगते हैं।

वर्द्धमान—बंगालके अन्तर्गत एक जिला। यह लाटकी देख रेखमें है। यह अक्षा० २२° ५६´ से ले कर २३° ५३´ उ० तथा देशा० ८६° ४८´ से ले कर ८८° २५´ पू०के मध्य अवस्थित है। भूपरिमाण २६८९ वर्गमील है। इस जिलेके उत्तरमें वीरभूम, सन्थाल परगना और मुर्शिदाबाद, पूर्वमें भागीरथी तीरवर्त्ती नदीया जिला, दक्षिणमें हुगली, मेदिनीपुर और बांकुड़ा जिला एवं पश्चिममें मानभूम है। जनसंख्या १५३२४७५ है।

इस जिलेकी भूमि प्रायः सर्वत्र ही समतल है, केवल संथाल परगनाके समीपवर्त्ती उत्तर-पश्चिम कोणांश क्रमोच्च निम्न पार्व्वत्य ढालू भूमिसे तथा जंगलोंसे पूर्ण है। इस वनभागमें भेकड़े, चीते तथा अन्यान्य हिंस्र जन्तुओंका वास है। दूसरे दूसरे स्थान श्यामल शस्यक्षेत्रोंसे परिपूर्ण हैं। बीच बीचमें ताल, आम्र, कदली तथा बाँसवन समाच्छन्न बड़े बड़े ग्राम, प्रकृतिकी निर्ज्जनताको विदूरित कर जनकोलाहलसे अपने अपने समीपवर्त्ती स्थानोंको परिपूर्ण करते हैं। किसी किसी स्थानसे हो कर खलकिशोर या द्वारिकेश्वर, दामोदर, अजय, खारी, बाँका प्रभृति नदियाँ मन्द मन्द चलती, इतराती, इठलाती स्वच्छसलिला भागीरथीसे आ मिली हैं। इनके अतिरिक्त बराकर नदी इस जिलेके उत्तरपश्चिमांशमें दामोदरनदसे आ मिली है, खड़ेन नदी दामोदर तथा बाँकाको मिलाती है। दक्षिणमें 'काना' नदी प्रवाहित है।

इस तरहसे नदीमालासमाच्छन्न होने एवं विस्तीर्ण श्यामल प्रान्तरके बीच बीचमें तालवृक्षपरिशोभित दिग्घियोंके रहनेके कारण यहां खेती करनेमें बड़ी सुविधा होती है। इन सब नदियोंके द्वारा कालना, काँटोया, दाँईहाट, भावसिंह, मिल्लीपुर, उपणपुर प्रभृति गंगातीरवर्त्ती प्रसिद्ध नगरोंमें व्यापार होता है। इन सब बन्दरगाहों द्वारा लवण, वस्त्र तथा पाटके व्यवसाय ही अधिकतर होते हैं। रानीगंज उपविभागमें कोयला, लोहा, पत्थरका चूना प्रभृति यथेष्ट पाया जाता है।

रानीगंज और कोयला देखो।

पौराणिक।

खृष्टीय १६ वीं शताब्दीमें लिखे गये ब्रह्मखंड नामक संस्कृत भौगोलिक ग्रन्थमें लिखा है—

वर्द्धमान मंडलका विस्तार २० योजन है। यहां चारों वर्णोंके लोग खेती करते हैं। कलियुगके ४४०० वर्ष बीत जाने पर दामोदरके निकट हेमसिंह नामक एक प्रबल पराक्रान्त राजा होंगे, उनके सात राजमहल होंगे। इनके पुत्रका नाम वीरसिंह होगा। वे अपने बाहुबलसे ताम्रलिप्त, कर्णदुर्ग, वरदाभूमि, सुह्मदेश तथा वीरदेश जिआयत्त करेंगे। इस वीरसिंहके चार पुत्र और विद्या नामक एक कन्या होगी। कन्या प्रतिज्ञा करेगी कि, जो पुरुष उसे शास्त्रार्थमें परास्त करेगा, उसीके साथ वह

विवाह करेगी। इस संवादके कांचीपुर पहुंचने पर वहांके राजा गुणसिन्धुके पुत्र सुन्दर वर्द्धमान आयेंगे। वे दामोदरके तीर एक मालीके घर आश्रय लेंगे। कुटनी मालिनकी सहायतासे तपोबलसे एक सुरंग खोद कर वे विद्याको हरण करेंगे। केवल कालीदेवीके प्रसादसे सुन्दर यहांसे सुरक्षित हो घर लौटेंगे। गौड़ादिके लोग उसी विद्यासुन्दरके चरित्रका गान करेंगे। भ०ब्रह्मखंडमें लिखी हुई कहानीसे ऐसा ज्ञान पड़ता है कि, खृष्टीय १६-वीं शताब्दीसे पहले ही विद्यासुन्दरके गान प्रचलित थे। उस समय भी वर्त्तमान राजवंशका अभ्युदय नहीं हुआ था।

ब्रह्मखंडकी तरह प्राचीन संस्कृत ग्रन्थ दिग्विजय-प्रकाशमें भी हम लोग विद्यासुन्दर तथा वर्द्धमानका विवरण इस तरह पाते हैं।

अजयनदके दक्षिण, शिलावतीके उत्तरकी ओर गंगाके पश्चिम एवं दारिकेशीके पूर्व एक अत्यन्त सुन्दर साधारणभोग्य भूभाग है। हे राजन्! इस भूभागका नाम वर्द्धमान है। इस वर्द्धमान देशसे हो कर कितनी ही नदनदियां प्रवाहित होती हैं। इसकी लम्बाई ११ योजन एवं चौड़ाई ८ योजन है। इस देशके मध्य हो कर दामोदर नदी प्रवाहित होती है। इसके पूर्वकी ओर जितनी नदियां हैं, उनमें मुंडेश्वर, बकुला तथा सरस्वती ये तीन प्रधान हैं। इनके अति रेक इसके दक्षिण-की ओर अनेकों नदियां बहती हैं। तृणधान्यादि-भेदसे १७ प्रकारके धान इस देशमें उत्पन्न होते हैं। रक्त, श्वेत तथा पाटलवर्ण कपास यहां बहुत पैदा होती है। इसके अलावे एक प्रकारके इक्षुवृक्षकी खेती यहां हर एक ऋतुमें होती है। कहनेका अभिप्राय यह है, कि सभी वस्तुओं-की यहां वृद्धि अर्थात् उत्पत्ति होती है, इसीलिये इसका नाम वर्द्धमान पड़ा है। दामोदरका जल विष्णुके पादपद्मसे सम्भूत है। सुतरां दामोदर नदीके दोनों पार्श्वव्यापी, वर्द्धमानके अधिवासियोंकी विभिन्न देश-वासी बहुत प्रशंसा करते हैं।

अघोर नामक एक क्षत्रिय राजा वर्द्धमानवासी प्रजाओं पर धर्मानुसार शासन करते थे। हे राजन्! कलिके चार हजार वर्ष बीत जाने पर इस वंशीय राजा वीरसिंहके घरमें एक विचित्र घटना घटी।

कांचीपुरमें गुणसिन्धु नामक एक राजा राज करते थे। उनके पुत्रका नाम था सुन्दर। सुन्दर एक समय वर्द्धमान आये। वर्द्धमानके राजा वीरसिंहकी विद्या नामक एक परमा सुन्दरी दुहिता थी। विद्याने उपनिषद् शास्त्रको छोड़ और सभी शास्त्रोंमें अच्छी ख्याति प्राप्त की थी। सुन्दरने रात्रिके समय सुरंग द्वारा आ कर विद्याके साथ विवाह किया। विद्या शास्त्र विचारमें सुन्दरसे पराजित हुई। इसके बाद सुन्दरने उसके साथ सम्भोग किया। हे नृपवर! इस विद्या सुन्दरका वृत्तांत 'चौरपंचाशत्' ग्रन्थमें बहुत बढ़ा चढ़ा कर वर्णन किया गया है।

राजा अघोरके पुत्रका नाम श्रीमान् चन्द्रांगद था। ये भी राजा थे। गणेशपुराणमें इनका विस्तृत वर्णन लिपिबद्ध है।

श्रीमान् कान्तिचन्द्र सूर्यवंशी राजा थे। ये कुशके वंशमें उत्पन्न हुए थे। कांतिचन्द्र एक समय वर्द्धमान-का शासन करते थे।

कुश द्वारा सुकन्याके गर्भसे अतिथि नामक एक पुत्र पैदा हुआ। अतिथि द्वारा ०ंगुराके गर्भसे महाबली पुंडरीकका जन्म हुआ। अमोघवीर्य पुंडरीक द्वारा उलूपीके गर्भसे क्षेमधर्मा नामक एक पुत्र उत्पन्न हुआ। क्षेमधर्मा योगी पुरुष थे। इन्होंने एक मुनिसे वर प्राप्त किया था। इस वरप्रभावसे उनकी पत्नी रतिदाके देवधर्म नामक एक पुत्र हुआ। देवधर्म द्वारा देवानीक-का जन्म हुआ। इन सबोंकी जन्मभूमि वर्द्धमान है।

देवानीक द्वारा फुल्लाके गर्भसे पारिजात नामक एक पुत्र उत्पन्न हुआ। ये राज कार्यमें चतुर एवं युद्धविद्यामें निपुण थे। इनका जन्म घट्टशैलस्थ चक्र-चक्री-नदीके तटवर्त्ती स्थानमें हुआ था। पारिजातसे बढ़ कर प्रतापी राजा उस समय यहां और कोई न था। इस पारिजात द्वारा खंजनीके गर्भसे नातुंग नामक एक पुत्र पैदा हुआ। निर्मोकचित्त नातुंग हिमालकाननमें वास करते थे। नातुंग द्वारा मारिषाके गर्भसे अर्कपुत्र, अर्कपुत्र द्वारा प्रमीलाके गर्भसे दिक्पति उत्पन्न हुए। दिक्पति और सुदर्शाके संयोगसे दो बड़े बलवान् पुत्र पैदा हुए। इनके बाद वज्रनाभ, रथाकलि, वामन तथा

छत्रमस्तक नामक चार पुत्र उत्पन्न हुए। गोवर्द्धन देशमें जीमूत नदीके किनारे यज्ञनामको स्त्री मेनकाके गर्भसे स्वगन तथा गणचूर नामक अति सुन्दर दो पुत्र पैदा हुए। गणचूरने पाटली ग्रामके निकट यमकर नदीके तीर वासस्थापन किया। ये अत्यन्त लुब्धस्वभावके थे। स्वगणके औरस तथा मोदामतीके गर्भसे विभूति, सुभूति तथा रामभूति नामक तीन पुत्र पैदा हुए। रामभूतिने कीकट देशमें अपनी राजधानी बनाई। यह देश उस समय जंगलों तथा पहाड़ोंसे भरा था। बहुसंख्यक नीच जातीय प्रजा उनके शासनाधीन हुई थी। सुभूति पलासनगढ़में राज्य करते थे। उनका राज्य उदय अस्त तक फैला हुआ था। विभूति अत्यन्त प्रतापी राजा थे। उन्होंने युवावस्थामें ही केरल तथा शतशृंग प्रदेशमें राज्य स्थापन किया। उनके राज्यमें बहुत-सी शूद्रजातीय प्रजा वास करती थी। यही पौराणिक मत है। इसके बाद द्विजकन्या तुंगलेखाके गर्भसे पुष्पांकुरका जन्म हुआ। पुष्पांकुरके पुत्र हटाश्व हुए। ये बड़े कोमल प्रकृतिके राजा थे। इन्होंने तपस्याका अनुष्ठान किया था। अगस्त्यने इनको वरदान दिया था। उसी वरके प्रतापसे ये उत्कलकी अन्तिम सीमा पर जगन्नाथक्षेत्रके समीपवर्ती एकाम्रकाननके राजा हुए। गंडकी नामक स्त्रीके गर्भसे चन्दनवनमें चन्दन नामक इनके एक सुन्दर पुत्र उत्पन्न हुआ। चन्दनके छोटे भाईका नाम अघोर था। ये तुल्लादेशके चन्दनवनमें राज्य करते थे। अघोर द्वारा उसकी पत्नी देशिकाके गर्भसे करणकी उत्पत्ति हुई। करण असाधारण विक्रमसम्पन्न थे। ये वर्द्धमानका परित्याग करके कलावर्क ग्राममें चले गये। पुष्करानन नामक एक क्षत्रिय राजा यहांकी राजगद्दी पर अभिषिक्त हुए। संक्षेपमें वर्द्धमानाधिपति राजाओंके विवरण लिपिबद्ध हुए। अन्यान्य साधारण देशोंके मध्य वर्द्धमान एक श्रेष्ठतम देश है। यहांके राजाओंका विवरण पुराणमें वर्णन किया गया है। पुष्कराननके वंशधर राजे मंगलदेवीकी पूजाके प्रतापसे वर्द्धमानमें राज्य करते आ रहे हैं। (दिग्विजय प्र०)

पुरातत्त्व।

मार्कण्डेयपुराणमें इस वर्द्धमानका उल्लेख है। जैनियोंके मतसे महावीर या वर्द्धमानस्वामीने राढ़देशके जिस अंशमें असभ्य जातियोंके मध्य धर्मप्रचार किया था, उनके नामानुसार वही स्थान पीछे वर्द्धमान नामसे विख्यात हुआ। इस समय वर्द्धमान मध्यराढ़ नामसे मशहूर है। इस जिलेमें एक समय अनेक सुप्राचीन राजवंश राज्य करते थे। इस समय भी उनकी कितनी ही प्राचीन कीर्त्तियां कई स्थानोंमें विद्यमान हैं। शेरगढ़ परगनाकी सिंहारण्य नामक नदीके किनारे सिंहपुर नामक एक प्राचीन राजधानी थी। यहां सिंहबाहु नामक राजा राज्य करते थे। जब सिंहपुर नगर ध्वंस हो गया, तब वह स्थान सिंहारण्यके नामसे प्रसिद्ध हुआ। इसी सिंहारण्यसे वर्द्धमान सिंहारण नदीका नामकरण हुआ है। इस जिलेके अन्तर्गत सातशैका परगना सप्तशती ब्राह्मणोंका आदिउपनिवेश है। इस जिलेमें उन्होंने जिन सब ग्रामोंको प्राप्त किया था, उन सभी ग्रामोंके नामसे ही सप्तशतियोंकी विभिन्न उपाधियोंकी सृष्टि हुई। गौड़ाधिप आदिशूर जयन्तके अभ्युदयके पूर्व यहां सप्तशती ब्राह्मणोंका ही आधिपत्य था। नारायणके छन्दोगपरिशिष्टप्रकाशसे जाना जाता है, कि किसी राढ़ीय ब्राह्मणके पूर्व पुरुषने उनसे ही कितने कुलस्थान प्राप्त किया था; उनसे कई राढ़ीय ब्राह्मणोंकी उपाधियां प्राप्त हुई हैं। गौड़में पालवंशी राजाओंका आधिपत्य विस्तृत होने पर आदिशूरवंशीय शूरनरपतियोंने बहुत समय तक इस जिलेमें राज्य किया था, उन्होंने भी राढ़ीय श्रेणीके ब्राह्मणोंको इस जिलेके बहुतसे ग्राम दान दिये थे। इन सब ग्रामोंसे ही राढ़ीय ब्राह्मणोंके पूर्वपुरुषोंने बहुत सी उपाधियां प्राप्त की थी।

पालवंशीय राजे जिस समय वारेन्द्रमें बौद्धधर्म प्रचार करनेमें उद्यत थे, उस समय राढ़देशमें शूरराजे यहांके बौद्ध समाजको हस्तगत करनेके लिये आवश्यकतानुसार शैव तथा शाक्त धर्मप्रचार कर रहे थे। गौड़में बौद्धाधिकारके समय यहांके ढेकुर नामक स्थानमें सोमघोषके पुत्र इच्छाई घोष नामक एक शाक्त राजा अत्यन्त प्रबल हो उठे थे। उनका प्रतिष्ठित श्यामरूपागढ़ ही इस समय सेनपहाड़ीगढ़के नामसे प्रसिद्ध है। इसके समान प्राचीन और कोई दूसरा गढ़ इस

प्रदेशमें नहीं है। गौड़ेश्वर उनसे कई बार परास्त हुए थे। अन्तमें धर्मात्मा लाउसेनसे वे पराजित हुए। इच्छाई घोषके गढ़का भग्नावशेष आज भी सेनपहाड़ीमें वर्त्तमान है।

इस जिलेके अन्तर्गत वर्त्तमान भूरसुट परगनेमें भूरिश्रेष्ठी नामक एक समृद्धशाली नगर था। यहां खृष्टीय ६वीं शताब्दी तक कायस्थ राजे राज्य करते थे। यहांके पाण्डुआ हिंदू तथा मुसलमान दोनों ही राजाओंके समय प्रसिद्ध थे। सेनवंशीय राजाओंके मध्य विजयसेनने विजयपुर नामक एक नगर बसाया था।

यहां बहुत दिनोंसे मुसलमानोंका संश्रव चला आता था। मेमारीके उत्तर-पश्चिम श्रीकृष्णनगर नामक ग्राममें सैयद जलाल उद्दीन तात्रिजीने कुछ समय तक अवस्थान किया था। ५४२ हिजरी या १२४४-४५ ई०में पांडुआमें उनकी मृत्यु हुई। उक्त श्रीकृष्णनगरमें जलाल उद्दीनके नाम पर 'मदरसा ई-जलालिया' नामक एक मदरसा प्रतिष्ठित है। वर्द्धमान जिलेके कई स्थानोंमें प्राचीन दुर्गोंका ध्वंसावशेष दृष्टिगोचर होता है। छुटीपुर परगनेमें मेमारी स्टेशनके दक्षिण कुलीन ग्रामके निकट कई प्राचीन गढ़ोंका भग्नावशेष विद्यमान है। अजमतशाही परगनेमें भाराकुल ग्रामके निकट रामचन्द्रगढ़ एवं अजयनदके निकट शेरगढ़ परगनेमें रानीगञ्जके उत्तर और भी कई एक गढ़ नजर आते हैं। वर्द्धमान शहरमें ही प्रसिद्ध बहराम सक्का नामक प्रसिद्ध मुसलमान कविकी कब्रगाह दिखाई पड़ती है, यह कब्रगाह ठीक दुर्गके समान ही है। आगरासे सिंहलद्वीपकी यात्राके समय कविवरने १५७४ ई०में वर्द्धमानमें ही जीवनयात्रा समाप्त की। इस वर्षके मुसलमान-इतिहासमें प्रथम उल्लेख वर्द्धमानका ही देख पड़ता है। राजमहलमें दाउद खाँको पराजय तथा मृत्यु हो जानेके बाद अकबरकी सेना वर्द्धमान पहुंच कर दाउदके परिवारवर्ग पर आक्रमण किया। इसके बाद दस वर्ष तक दाउदके पुत्र कुतलू खाँ मुगलोंके विरुद्ध वर्द्धमानमें समरानल प्रज्वलित करते रहे। कुतलू खां देखा।

उनकी कब्रके पास ही नूरजहांके स्वामी शेर अफगान तथा बङ्गालके शासनकर्त्ता कुतबुद्दीनके मकबरे देख पड़ते हैं। दिल्लीश्वरके आदेशसे कुतबुद्दीनने नूरजहांको दिल्ली भेजनेके लिये शेर अफगानके साथ युद्ध किया था। वर्द्धमान स्टेशनके दक्षिण स्वाधीनपुर नामक ग्राममें जिस स्थान पर दोनों वीरोंने युद्ध किया था, आज भी वह स्थान देखनेमें आता है।

१६२४ ई०में शाहजादा खुर्रम (शाहजहां)ने वर्द्धमान दुर्ग तथा शहर अपने अधिकारमें कर लिया। बादशाह औरङ्गजेबके पौत्र आजिम उस्मानने १६९७ ई०से ले कर १७०४ ई०के मध्य वर्द्धमानमें एक सुन्दर मसजिद निर्माण की, आज भी वह देखनेकी चीज है।

वर्त्तमान वर्द्धमान राजवंश।

पञ्जाब-प्रदेशान्तर्गत लाहोर नगरके कोटली महल्ला-निवासी संगम राय वर्द्धमान-राजवंशके आदिपुरुष थे। खृष्टीय १६वीं शताब्दीके शेष भागमें सङ्गम राय अपने परिवारके साथ जगन्नाथ दर्शन करनेके उद्देशसे श्रीक्षेत्रधाम गये। लौटते समय वे वर्द्धमानके निकट रांईपुर ग्राममें व्यवसाय करनेके अभिप्रायसे बस गये। यहांसे अनाज खरीद कर दूसरे दूसरे स्थानोंमें बेचना ही उनका व्यवसाय था। धीरे धीरे उनके रोजगारमें बड़ी उन्नति हुई।

सङ्गम रायकी मृत्युके बाद उनके पुत्र बङ्कुविहारी राय भी रांईपुरमें अपने पिताकी तरह व्यवसाय करने लगे एवं सौभाग्यवश इनके व्यापारमें भी धीरे धीरे उन्नति होने लगी।

बङ्कुविहारी रायकी मृत्युके बाद उनके पुत्र आबूराय रांईपुरसे वर्द्धमान आ कर बस गये। ये इस देशमें एक विख्यात व्यापारी थे। एक समय दिल्लीश्वरकी सेना वर्द्धमान पहुंची, आबूरायने उन लोगोंको नाना प्रकारके भोजनकी सामग्रियां प्रदान की। इस पर उक्त सेनाके अध्यक्षने खुश हो कर इन्हें १०६४ हिजरी (१६५७ ई०)में वर्द्धमानके फौजदारके अधीन रेकाबी बाजार, इब्राहिमपुर और मुगलटोलीके कोतवाल एवं चौधरीके पद पर नियुक्त किया। उस समय इन तीनों स्थानोंमें वार्षिक राजस्व सिर्फ ५३२) रुपये थे। सुविशाल समृद्धिशाली वर्द्धमान राज्यका इस तरह सूत्रपात हुआ।

आबूरायकी मृत्युके बाद उनके लड़के बाबूराय पैतृक-पद तथा सम्पत्तिके अधिकारी हुए। धीरे धीरे उन्होंने

भी वर्द्धमान परगनान्तर्गत और भी कई स्थान प्राप्त किये।

बाबूरायकी मृत्युके बाद उनके पुत्र घनश्याम राय पैतृक पद तथा सम्पत्तिके उत्तराधिकारी हुए। वर्द्धमानके सुप्रसिद्ध श्यामसागर नामक सुविशाल सरोवर घनश्याम रायकी अतुल कीर्त्ति है।

घनश्याम रायकी मृत्युके बाद उनके पुत्र कृष्णराम रायने पैतृक पद एवं सम्पत्ति प्राप्त की। १६९४ ई० (११०७ हिजरी) की २४वीं रबियल आयल तारीखको दिल्लीश्वर औरंगजेब बादशाहके राजत्वके ३८वें वर्षमें उन्होंने उनसे वर्द्धमानके जमींदार तथा चौधरी पदकी सनद प्राप्त की। इस राजकीय आज्ञापत्र द्वारा उन्होंने और भी कई एक जमींदारी प्राप्त की, उनमें सेनपहाड़ीगढ़ विशेष उल्लेखनीय है। उक्त कृष्णरामरायके प्रपौत्र महाराजाधिराज तिलकचन्द्र बहादुरके राजत्वकालमें भी यह दुर्ग ज्योंका त्यों वर्त्तमान था।

कृष्णरामरायके जीवितकालमें बरदा तथा चितुआके जमींदार शोभासिंह, विष्णुपुरके जमींदार गोपाल सिंह एवं चन्द्रकोनाके जमींदार रघुनाथ सिंहने विद्रोही हो बड़े प्रतापसे मुगलसम्राट्के विरुद्ध अस्त्र धारण कर मुर्शिदाबाद, वीरभूम तथा वर्द्धमान पर आक्रमण किया। शोभासिंहने वर्द्धमान पर आक्रमण करके कृष्णरामरायके साथ युद्ध किया एवं उसी समय कृष्णरामराय मारे गये। शोभासिंहने जब कृष्णराम रायके राजमहल पर आक्रमण किया, तब उनके परिवारकी १३ रमणियोंने विष खा कर प्राण त्याग किया। कृष्णरामरायकी कन्या शोभासिंहके हाथोंमें पड़ गई। शोभासिंहने उसे अपनी अंकशायिनी बनानेके अभिप्रायसे जिस समय अपने दोनों हाथोंको उसकी ओर बढ़ाया, उसी समय वीरबालाने अंगरखेसे छुरी निकाल कर उस दुराचारी शोभासिंहके उदरमें घुसेड़ दिया। शोभासिंहके पापमय जीवनका अन्तिम पर्दा गिर गया। शीघ्र ही उस बालिकाने अपने वक्षस्थलमें भी छुरी भोंक ली, देखते देखते उस ज्योतिर्मयीकी आत्मा भी सर्वदाके लिये इस असार संसारसे कूच कर गई।

कृष्णरामरायकी शोचनीय मृत्युके बाद उनके पुत्र जगत्राम राय पैतृक पद और सम्पत्तिके अधिकारी हुए। ११११ हिजरीकी ५वीं जमादियल अव्वल तारीखको, तथा दिल्लीश्वरका ४२ वर्ष राज्यकाल व्यतीत होने पर जगत्राम रायने दिल्लीश्वर औरंगजेब बादशाहसे ५० महल जमींदारी एवं जमींदार तथा चौधरीकी उपाधि प्राप्त की। उनकी स्त्रीका नाम ब्रजकिशोरी था, उसके गर्भसे कीर्त्तिचन्द्र तथा मित्रसेन नामक दो पुत्र पैदा हुए। १७०२ ई०को कृष्णसागर-सरोवरमें स्नान करनेके समय एक गुप्त हत्याकारीके छुरिकाघातसे उन्होंने प्राण त्याग किया। उस दिनसे राजपरिवारके कोई व्यक्ति कृष्णसागरके जलको दूषित समझ कर न तो उसका जल पीते हैं न उसमें स्नान ही करते हैं। वर्द्धमान-राजवंशकी जितनी अतुल कीर्त्तियां दशों दिशाओंको समुज्ज्वल बना रही हैं, उन्हें प्रधानतः कीर्त्तिमती ब्रजकिशोरीने ही स्थापन किया था। वर्द्धमानके सुविस्तृत सागरके समान कृष्णरामकी अतुल कीर्त्ति है।

जगत्राम रायकी शोचनीय मृत्युके बाद उनके ज्येष्ठ पुत्र कीर्त्तिचन्द्र पिताके पद तथा सम्पत्तिके उत्तराधिकारी हुए। कीर्त्तिचन्द्रने छोटे भाईके लिये मासिक वृत्ति नियुक्त कर दी। १११५ हिजरी २० सवाल ४८ जुलुसको दिल्लीश्वर औरंगजेब बादशाहसे कीर्त्तिचन्द्रने पैतृक पद तथा सम्पत्ति प्राप्तिका अनुशासन प्राप्त किया। उन्होंने अपने बाहुबलसे बरदा तथा चितुआके जमींदार शोभासिंहके भाई हिम्मत सिंहको पराजय करके वहांकी जमींदारी पर अधिकार कर लिया। चन्द्रकोनाके जमींदार रघुनाथसिंहने शोभासिंहके साथ मिल कर वर्द्धमान पर आक्रमण किया था, इसका बदला लेनेके लिये ही कीर्त्तिचन्द्रने रघुनाथ सिंहको परास्त करके उनकी जमींदारी छीन ली थी। पीछे उन्होंने विष्णुपुरके जमींदार गोपाल सिंहको युद्धमें परास्त तो किया, किन्तु वे उनकी कोई सम्पत्ति ले नहीं सके। भुरसुट, मायरा तथा बेल्घरके जमींदारोंको परास्त करके उनकी जमींदारी हस्तगत कर ली।

कीर्त्तिचन्द्रने दिल्लीश्वर अबुल फतेह नसरुद्दीन महम्मद शाहसे १५ रमजान १० जुलुस तारीखको एक दानपत्र प्राप्त किया। उस दानपत्र द्वारा उन्हें उक्त

विजित सम्पत्ति तथा फतहपुर परगनेका अधिकार मिला था। कीर्त्तिचन्द्र अत्यन्त युद्धकुशल थे। उन्होंने बंगालके नवाब बहादुरके आज्ञानुसार विष्णुपुरके राजाके साथ मिल कर कांटोयासे दुर्द्धान्त मरहट्ठोंको निकाल बाहर किया था। कीर्त्तिचन्द्र बादशाह द्वारा राजाकी उपाधि न प्राप्त करने पर भी देशमें महाराजके नामसे ही विख्यात थे। श्रीधर्ममंगल काव्यमें कविवर घनरामने उन्हें महाराज कह कर ही उल्लेख किया है।

बंगालके नवाब बहादुरके यहां कीर्त्तिचन्द्रकी बड़ी इज्जत थी। एक बार उनकी माताकी श्रीक्षेत्रयात्राके समय बंगेश्वरने उड़िष्या प्रदेशस्थ फौजदारों तथा कोतवालोंको उनकी देख रेख अच्छी तरह करनेकी आज्ञा दी थी।

वर्द्धमानके पास कांचननगर नामक जो महा समृद्धिशाली जनपदका ध्वंसविशेष वर्त्तमान है, कीर्त्तिमान् कीर्त्तिचन्द्रने उसका स्थापन किया था। १७४० ई०में कीर्त्तिचन्द्रने परलोककी यात्रा की। उनके हाथकी अनुपम तलवार अभी तक राजकोषमें यत्नपूर्वक रखी है। उन्हें लोग 'कीर्त्तिचन्द्रका तेगा' कहते हैं। कीर्त्तिचन्द्रकी अनेकों कीर्त्तियां अभी तक वर्द्धमान राजवंशके मुखको उज्ज्वल बना रही हैं।

कीर्त्तिचन्द्रके परलोक वास करने पर उनके पुत्र चित्रसेन रायने वर्द्धमानकी जमींदारी प्राप्त की। उन्होंने बादशाहसे परगना मंडलघाट, भारसा, ब्राह्मणभूमि प्रभृति कई एक जमींदारी प्राप्त की। दिल्लीश्वर अबुल फतेह नसरुद्दीन् महम्मदशाह बादशाह द्वारा १५ सवाल १२ जुलुस तारीखको उन्हें राजाकी उपाधि तथा 'परचे खिलअत' प्राप्त हुई एवं एक जोड़ा मुक्ता भी मिली। इस समय कीर्त्तिचन्द्र जीवित थे।

उक्त बादशाहके २१वें वर्ष राजत्वकालमें २० रमजान तारीखको (१७४० ई०) चित्रसेनको राजाकी उपाधिके साथ साथ चाकले वर्द्धमानकी जमींदारीकी सनद प्राप्त हुई। १७४२ ई०में पुनः दिल्लीश्वरके यहांसे छत्र, आसफो, नकारा, अड़ानोकी खिलअतोंके साथ एक सनद भी मिली। इस समय भी कीर्त्तिचन्द्र जीवित थे। इस तरहसे राजा चित्रसेनको सब मिला कर १२ दानपत्र तथा सनद प्राप्त हुई थी। वे वार्षिक २२७०४७२) रु० राजस्व दिया करते थे।

उनकी दो पत्नियां थीं, किन्तु दोनों ही वन्ध्या। १७४४ ई०में चित्रसेनकी मृत्यु हुई। कालनामें उनका निर्माण किया हुआ देवालय वर्त्तमान है। इनके राजत्वकालके कितने ही धनुष अभी तक राजमहलमें वर्त्तमान हैं। उन सबों पर पारसी भाषामें उनका नाम खोदा हुआ है।

राजा चित्रसेनकी मृत्युके बाद उनके चचा मित्रसेनके पुत्र तिलकचन्द्र वर्द्धमानके राजा हुए। सन ११४० साल १२ अग्रहणको महाराज तिलोकचन्द्रका जन्म हुआ था। इन्होंने १७४४ ई० २४ जुलुस ६ जमादियल अव्वल तारीखको दिल्लीश्वर अबुल फतेह नसरुद्दीन महम्मदशाह बादशाहसे वर्द्धमान प्रभृति जमींदारीकी राजोपाधिके साथ प्रथम सनद प्राप्त की। पीछे अबुल नसर मुजाउद्दीनने अहमदशाह बादशाह गाजीसे ७ जुलुस ७ रजब तारीखको पुनः एक दानपत्र प्राप्त किया। दिल्लीश्वर आलमगीर बादशाहसे इन्हें ७ जुलुस २६ महरम तारीखको एक हाथी उपहार मिला।

दिल्लीश्वर शाह आलम बादशाहने इन्हें ७ फिदवी खास नामसे एक पत्र एवं उनके प्रधान सेनापतिने (४ हजार जात तथा २ हजार सवार) चार हजार जात तथा राजा बहादुरके खिताबके साथ एक अनुशासनपत्र दिया था। फिदवी खासके अर्थसे बादशाहके खास कर्म्मचारी, इस तरहका सम्मान राज्यके प्रधान कर्म्मचारीके सिवा और किसीको प्राप्त नहीं होता था एवं बंगदेशके दूसरे किसी राजाने भी उक्त उपाधि न प्राप्त की थी ईष्ट इण्डिया कम्पनीके तदानीन्तन गवर्नर जेनरल बहादुर 'फिदवी खास' शब्द व्यवहार करते थे। इसके साथ साथ तिलकचन्द्रको नहवत तथा झालरदार पालकी भी मिली थी। फिर दिल्लीश्वरसे (१७६८ ई०) ९ जुलुस ८वें रमजानको ५ हजार जात, ३ हजार सवार (पंचहजार जात), महाराजाधिराज खिताब, तोप, नकारा तथा पताका प्राप्तिका पत्र प्राप्त हुआ।

१७५५ ई०में ईष्ट-इण्डिया कम्पनीके तदानीन्तन गवर्नर मि० हेनरी रिसबेट्ने दिल्ली-सम्राट्के आदेशानुसार महाराज तिलकचन्द्रको एक खिलअत तथा एक हाथी प्रदान किया। पलासीके युद्धके समय तिलक-

चन्द्रने घोड़े प्रदान कर अङ्गरेजोंकी पूर्ण सहायता की थी। १७६० ई०में इष्ट-इण्डिया कम्पनीने महाराज तिलक-चन्द्र तथा इनके दीवान एवं प्रधान कर्मचारियोंको ७५२५) रु०की खिलअत भेजी।

इष्ट-इण्डिया कम्पनीको महाराज तिलकचन्द्रने सहायता भी की, किन्तु अल्पकालके बाद ही कम्पनी महाराजके किये हुए उपकारको भूल गई। यहां तक कि, कुछ ही दिनोंके बाद संगनगोलामें अंग्रेजी सेनाके साथ राज-सेनाओंका एक युद्ध हुआ एवं सेनपहाड़ी तथा इष्ट इण्डिया कम्पनीकी कोठोकी सेनाओंके साथ भी दो बार युद्ध हुआ। इस समय वृटिश सरकारकी १५ सहस्र सेना मौजूद रहती है। उस समय वर्द्धमान एक करद्राज्य था। राज्यकी दिवानी तथा फौजदारी विचार महाराजकी अपनी अदालतमें ही हुआ करता था। दस्यु तथा तस्कर आदि दुष्ट अपराधियोंको महाराज अपने हाथसे दण्ड दिया करते थे। महाराज तिलकचन्द्र बहादुरके अधीन १२ दुर्ग थे, अभी उन बारहों दुर्गोंका ध्वंसावशेष वर्तमान है। १७६७ ई०को वृटिशराजको तालिकासे पता चलता है, कि उपरोक्त १२ दुर्गोंमें २६ घुड़सवार एवं ११६१ पैदल सेना मल्लोदा किलेकी रक्षाके लिये नियुक्त रहती थी, इनके अतिरिक्त और भी कितने ही देशी सिपाही तथा पैदल सेना भी नियुक्त थी। १७६५ ई०में महाराज तिलकचन्द्रने इष्ट-इण्डिया कम्पनीको ४०६४८६३॥/) रु० राजस्व प्रदान करके जो दाखिला प्राप्त की थी, यह अब तक राजप्रासादमें सुरक्षित है।

तिलकचन्द्रने बहुत सी कीर्त्तियां स्थापित की थीं, बहुतसे देवोत्तर तथा ब्रह्मोत्तर प्रदान किये थे। उनके राजत्वकालमें सब मिला कर ४ लाख ६७ हजार बीघे सिर्फ ब्रह्मोत्तर प्रदान किये गये थे। ११५७ सालमें (१७७० ई०) महाराज तिलकचन्द्रने परलोककी यात्रा की। उनकी दो भार्याएं थीं, जिनमें महाराणी विषण-कुमारी ही पुत्रवती हुई थीं, इनके गर्भसे महाराज तेज-चन्द्रने इस संसारमें पदार्पण किया।

सन् ११७१ सालके ५वें माघको (१७६४ ई०की १७वीं जनवरी) तेजचन्द्रका जन्म हुआ था। पांच वर्षकी अवस्थामें ही इनके पिताकी मृत्यु हो गई एवं ये इसी छोटी अवस्थामें पैतृक पद तथा सम्पत्तिके उत्तराधिकारी हुए, किन्तु उस समय नितान्त शैशवावस्थाके कारण उनकी असाधारण बुद्धिमती माता महाराणी विषणकुमारी ही अभिभाविका हो कर राजकार्यकी देख-भाल करती थीं। १७७१ ई०में तेजचन्द्र बहादुरने दिल्लीश्वर शाहआलम बादशाहके आज्ञानुसार उनके प्रधान सेनापति द्वारा महाराजाधिराज बहादुरका खिताब, पांच हजार जात एवं तीन हजार सवार, नकारा, तोप, प्रभृति रखनेका अनुशासनपत्र प्राप्त किया। तेजचन्द्र बालिग हो कर अत्यन्त विलासी हुए, इसलिये उनके राज्यकार्य उचित रीतिसे सम्पन्न नहीं होते थे। अतएव थोड़े ही समयमें उनकी जमींदारीके कितने ही हिस्से खजाना खाली हो जानेके कारण निलाम हो गये। उन्हीं सब जमींदारीको खरीद कर इस देशीय बहुतसे जमींदारोंकी सृष्टि हुई। १७६३ ई०में दशसाला बन्दोबस्तके समय महाराज तेजसिंह बहादुरको वार्षिक ४०१५१०६) रु० राजस्व एवं १६३७२१) रु० पुलबन्दि कर्ज हो गये। दशसाला बन्दोबस्तके बाद तक महाराजकी कितनी जमींदारी बिक चुकी थी, किन्तु इसके बाद ही सहसा उनके स्वभावमें परिवर्त्तन हुआ। वे स्वयं राज्यकार्य देखने लगे। उन्होंने सारी जमींदारीकी पत्तनी बन्दोबस्त करके एक बार ही बहुतसे रुपये इकट्ठे कर लिये। ये विपुल धनराशि ही वर्द्धमान राजधनागारकी नींव हुई। तबसे इस समय तक राजवंशमें बचे हुए धन उसी धनागारमें सुरक्षित होती चली आ रही है। १७६० ई०में इष्ट इण्डिया कम्पनीने महाराजके हाथसे दिवानी तथा फौजदारीकी क्षमता, जेलखाना एवं १७६३ ई०में पुलिस-विभाग अपने हाथमें कर लिया। उसके पहले तक इन सब विषयोंकी क्षमताके तथा उनके पूर्वपुरुष पूर्ण रूपसे उपभोग करते थे।

महाराज तेजचन्द्र बहादुरने [illegible] शादियाँ की थीं, उनमें महाराणी नानकीकुमारी ही पुत्रवती हुई थीं। सन् ११६८ सालमें उनके गर्भसे महाराज प्रतापचन्द्रका जन्म हुआ। शेषावस्थामें महाराज तेजचन्द्र बहादुरने प्रताप-चन्द्रको राज्यभार सौंप कर निश्चिन्त होनेकी प्रतिज्ञा

की थी, अतः महाराज प्रतापचन्द्रकी अवस्था पूरी प्राप्त होने पर उन्होंने उन्हें युवराजके पद पर अभिषिक्त किया। महाराज प्रतापचन्द्र अत्यन्त बुद्धिमान् तथा कार्यपटु थे। राज्यभार पड़ने पर उन्होंने विशेष यत्नसे ८वीं आईन प्रणयन करके अपने राज्यकी रक्षा करने लगे। सन १२२८ सालके पौष मासमें २६ वर्षकी अवस्थामें महाराज प्रतापचन्द्रने परलोककी यात्रा की। इसी प्रतापचन्द्रको ले कर ही जाली प्रतापचन्द्रकी सृष्टि हुई। महाराज तेजचन्द्र बहादुर पुत्रके परलोक गमन करनेके उपरान्त पुनः राजकार्य सम्भालने लगे। इन्होंने श्यालक पराणचन्द्र कापूरके पुत्र चुन्नीलाल बाबूको दत्तकपुत्र ग्रहण करके उनका नाम महताबचन्द्र रखा। तेजचन्द्रको अनेकों कीर्त्तियोंसे वर्द्धमान राजवंश समुज्ज्वल हो रहा है। सन् १२३६ सालके भाद्रमासमें महाराज तेजचन्द्र परलोकवासी हुए।

१८२० ई०की १७वीं नवम्बरको महाराज महताबचन्द्र बहादुरका जन्म हुआ था। १८२७ ई०की ११वीं फरवरीको तेजचन्द्र बहादुरके परलोकवासी होने पर उनकी पत्नी महाराणी कमलकुमारी (पराणचन्द्र कापुरकी भगिनी)ने पुत्रकी राजोपाधि प्राप्तिके लिये भारतवर्षमें तदानीन्तन गवर्नर जेनरल लार्ड विलियम वेंटिक बहादुरके पास एक पत्र लिखा। थोड़े ही समयके अन्दर उन्होंने (१८३३ ई० ३० अगस्त) गवरनर जेनरल बहादुरसे महाराजाधिराजका खिताब तथा खिलअत प्राप्त की। उनकी नाबालिगावस्थामें उनकी माता महाराणी कमलकुमारी तथा पराणचन्द्र कापुर उनके अभिभावक रूपसे राज्यकार्यकी देखभाल करते थे। १८३६ ई०की ८वीं फरवरीको महताबचन्द्रने पहली शादी की। उनकी पहली स्त्रीके गर्भसे राजकुमारी श्रीमती धनदेवी देवीकी पैदाइश हुई। दुःखका विषय है, कि कुमारीके जन्मके सात दिनके बाद ही महाराणी परलोकवासिनी हुई। शैशवकालमें ही मातृहीना राजकुमारी विवाहके कुछ ही दिन बाद विधवा हो गई। सन् १२६२ ई०में सालके दूसर आषाढ़को राजकुमारीने लाला अवलोनाथ मेहरा बाबूको दत्तकपुत्र ग्रहण किया। १८४४ ई०को २४वीं जूनको महताबचन्द्र बहादुरने श्रीमती नारायणकुमारी देवीका पाणिग्रहण किया। महाराणीके गर्भसे संतानादि न होनेके कारण १८६८ ई०को १९वीं मार्चको महाराजने अपने साला लाला वंशगोपालचन्द्र बाबूके ज्येष्ठ पुत्रको दत्तकपुत्र ग्रहण करके उनका नाम कुमार आफतावचन्द्र महताब बहादुर रखा।

१८३६ ई०में महाराजने पुनः गवरनर जेनरल बहादुरसे खिलअत प्राप्त की।

१८५५ ई०में सन्थालोंके विद्रोहके समय एवं १८५७ ई०में सिपाही-विद्रोहके समय महाराजने गवरमेण्टकी बड़ी सहायता की। इसलिये गवरमेण्टने इनकी भूरि भूरि प्रशंसा की थी।

१८६४ ई०में महताबचन्द्रने भारतवर्षकी व्यवस्थापक सभाका सदस्य-पद प्राप्त किया। इस देश-वासियोंके मध्य इन्होंने ही सबसे पहले इस पदकी प्राप्ति की थी। उक्त पदके आवश्यकीय व्ययके लिये गवर्नमेण्टने इन्हें १० सहस्र रुपये प्रति वर्ष मिलनेका नियम ठीक हुआ। महाराजने तीन वर्ष तक उक्त पद पर समासीन रह कर एक बाद ३० सहस्र रुपये प्राप्त किये। उन सब रुपयोंको इन्होंने अलीपुरमें पशुशाला निर्माण करनेके लिये दान कर दिया।

१८६६ ई०में भीषण दुर्भिक्षके समय महाराजकी असाधारण दानशीलता देख कर भारतवर्षके तदानीन्तन गवर्नर जेनरल सर जान लारेन्सने अपने हाथसे एक पत्र लिख कर अत्यन्त धन्यवाद दिया। १८६८ ई०में महाराजको वंशानुक्रमसे महामान्या सम्राज्ञीके राजचिह्न (Armour and supporters) धारण करनेकी क्षमता प्राप्त हुई।

१८६६ ई०में वर्द्धमान प्रदेशमें भयङ्कर मलेरिया महामारीके प्रादुर्भाव होने पर उसके प्रतिकारके लिये बङ्गाल गवर्नमेण्टको ५० सहस्र रुपये दे कर वर्द्धमान महाराज गवर्नमेण्टके धन्यवाद-भाजन हुए।

१८७० ई०में महामान्या सम्राज्ञीके पुत्र ड्यूक आव एडिनबराने वर्द्धमानके राजभवनमें पदार्पण करके वर्द्धमानाधिपतिको सम्मानित किया था।

१८७४ ई०में भीषण दुर्भिक्षके समय महाराजने अपने खर्चसे चुंचुड़ा, कलना तथा वर्द्धमानके दुर्भिक्षपीड़ित

चन्द्रने घोड़े प्रदान कर अङ्गरेजोंकी पूरी सहायता की थी। १७६० ई०में इष्ट-इण्डिया कम्पनीने महाराज तिलकचन्द्र तथा इनके दीवान एवं प्रधान कर्मचारियोंको ७५२५) रु०की खिलअत भेजी।

इष्ट-इण्डिया कम्पनीको महाराज तिलकचन्द्रने महायता भी की, किन्तु अल्पकालके बाद ही कम्पनी महाराजके किये हुए उपकारको भूल गई। यहां तक कि, कुछ ही दिनोंके बाद संगतगोलामें अंग्रेजी सेनाके साथ राजसेनाओंका एक युद्ध हुआ एवं सेनपहाड़ी तथा इष्ट इण्डिया कम्पनीकी कोठीकी सेनाओंके साथ भी दो बार युद्ध हुआ। इस समय बृटिश सरकारकी १५ सहस्र सेना मौजूद रहती थी। उस समय वर्द्धमान एक करदराज्य था। राज्यका दिवानी तथा फौजदारी विचार महाराजकी अपनी अदालतमें ही हुआ करता था। दस्यु तथा तस्कर आदि दुष्ट अपराधियोंको महाराज अपने हाथसे दण्ड दिया करते थे। महाराज तिलकचन्द बहादुरके अधीन १२ दुर्ग थे, अभी उन बारहों दुर्गोंका ध्वंसावशेष वर्तमान है। १७६७ ई०की बृटिशराजकी तालिकासे पता चलता है, कि उपरोक्त १२ दुर्गोंमें २६ सुदक्ष सवार एवं ११६१ पैदल सेना सब्जोंडा किलेकी रक्षाके लिये नियुक्त रहती थी, इनके अतिरिक्त और भी कितने ही देशी सिपाही तथा पैदल सेना भी नियुक्त थी। १७६५ ई०में महाराज तिलकचन्द्रने इष्ट-इण्डिया कम्पनीको ४०६४८६३॥।∂) रु० राजस्व प्रदान करके जो दाखिला प्राप्त की थी, वह अब तक राजप्रासादमें सुरक्षित है।

तिलकचन्द्रने बहुत सी कीर्त्तियां स्थापित की थीं, बहुतसे देवोत्तर तथा ब्रह्मोत्तर प्रदान किये थे। उनके राजत्वकालमें सब मिला कर ४ लाख ६७ हजार बीघे सिर्फ ब्रह्मोत्तर प्रदान किये गये थे। ११५७ सालमें (१७७० ई०) महाराज तिलकचन्द्रने परलोकको यात्रा की। उनकी दो भार्यायें थीं, जिनमें महाराणी विषणकुमारी ही पुत्रवती हुई थीं, इनके गर्भसे महाराज तेजचन्द्रने इस संसारमें पदार्पण किया।

सन् ११७१ सालके ५वें माघको (१७६४ ई०की १७वीं जनवरी) तेजचन्द्रका जन्म हुआ था। पांच वर्षकी अवस्थामें ही इनके पिताकी मृत्यु हो गई एवं ये इसी छोटी अवस्थामें पैतृक पद तथा सम्पत्तिके उत्तराधिकारी हुए, किन्तु उस समय नितान्त शैशवावस्थाके कारण उनकी असाधारण बुद्धिमती माता महाराणी विषणकुमारी ही अभिभाविका हो कर राजकार्यकी देख-भाल करती थीं। १७७१ ई०में तेजचन्द्र बहादुरने दिल्लीश्वर शाहआलम बादशाहके आज्ञानुसार उनके प्रधान सेनापति द्वारा महाराजाधिराज बहादुरका खिताब, पांच हजार जात एवं तीन हजार सवार, नकारा, तोप, प्रभृति रखनेका अनुशासनपत्र प्राप्त किया। तेजचन्द्र बालिग हो कर अत्यन्त विलासी हुए, इसलिये उनके राज्यकार्य उचित रीतिसे सम्पन्न नहीं होते थे। अतएव थोड़े ही समयमें उनकी जमींदारीके कितने ही हिस्से खजाना खाली हो जानेके कारण निलाम हो गये। उन्हीं सब जमींदारोंको खरीद कर इस देशीय बहुतसे जमींदारोंकी सृष्टि हुई। १७९३ ई०में दशसाला बन्दोबस्तके समय महाराज तेजसिंह बहादुरको वार्षिक ४०१५१०६) रु० राजस्व एवं १६३७२१) रु० पुलबन्दि कर्ज़ा हो गये। दशसाला बन्दोबस्तके बाद तक महाराजकी कितनी जमींदारी बिक चुकी थी, किन्तु इसके बाद ही सहसा उनके स्वभावमें परिवर्त्तन हुआ। वे स्वयं राज्यकार्य देखने लगे। उन्होंने सारी जमींदारीकी पत्तनी बन्दोबस्त करके एक बार ही बहुतसे रुपये इकट्ठे कर लिये। ये विपुल धनराशि ही वर्द्धमान राजधनागारकी नींव हुई। तबसे इस समय तक राजकार्यमें बचे हुए धन उसी धनागारमें सुरक्षित होती चली आ रही है। १७६० ई०में इष्ट इण्डिया कम्पनीने महाराजके हाथसे दिवानी तथा फौजदारीकी क्षमता, जेलखाना एवं १७९३ ई०में पुलिस-विभाग अपने हाथमें कर लिया। उसके पहले तक इन सब विषयोंकी क्षमताके तथा उनके पूर्वपुरुष पूर्ण रूपसे उपभोग करते थे।

महाराज तेजचन्द्र बहादुरने ६ शादियां की थीं, उनमें महाराणी नानकीकुमारी ही पुत्रवती हुई थीं। सन् ११९८ सालमें उनके गर्भसे महाराज प्रतापचन्द्रका जन्म हुआ। शेषावस्थामें महाराज तेजचन्द्र बहादुरने प्रतापचन्द्रको राज्यभार सौंप कर निश्चिन्त होनेकी प्रतिज्ञा

को थी, अतः महाराज प्रतापचन्द्रको अवस्था पूरी प्राप्त होने पर उन्होंने उन्हें युवराजके पद पर अभिषिक्त किया। महाराज प्रतापचन्द्र अत्यन्त बुद्धिमान् तथा कार्यपटु थे। राज्यभार पड़ने पर उन्होंने विशेष यत्नसे ८वाँ आईन प्रणयन करके अपने राज्यकी रक्षा करने लगे। सन १२२८ सालके पौष मासमें २६ वर्षकी अवस्थामें महाराज प्रतापचन्द्रने परलोककी यात्रा की। इसी प्रताप-चन्द्रको ले कर ही जाली प्रतापचन्द्रकी सृष्टि हुई। महाराज तेजचन्द्र बहादुर पुत्रके परलोक गमन करनेके उपरान्त पुनः राजकार्य सम्भालने लगे। इन्होंने श्यालक पराणचन्द्र कापूरके पुत्र चुन्नीलाल बाबूको दत्तकपुत्र ग्रहण करके उनका नाम महताबचन्द्र रखा। तेजचन्द्रको अनेकों कोशिशोंसे वर्द्धमान राजवंश समुज्ज्वल हो रहा है। सन् १२३६ सालके भाद्रमासमें महाराज तेजचन्द्र परलोकवासी हुए।

१८२० ई०को १७वीं नवम्बरको महाराज महताबचन्द्र बहादुरका जन्म हुआ था। १८२७ ई०को ११वीं फरवरी-को तेजचन्द्र बहादुरके परलोकवासी होने पर उनकी पहली महारानी कमलकुमारी (पराणचन्द्र कापुरकी भगिनी)-ने पुत्रकी राजोपाधि प्राप्तिके लिये भारतवर्षा के तदानीन्तन गवर्नर जेनरल लार्ड विलियम वेंटिंक बहादुरके पास एक पत्र लिखा। थोड़े ही समयके अन्दर उन्होंने (१८३३ ई० ३० अगस्त) गवरनर जेनरल बहादुरसे महाराजाधिराजका खिताब तथा खिलअत प्राप्त की। उनकी नाबालिगावस्थामें उनकी माता महारानी कमलकुमारी तथा पराणचन्द्र कापुर उनके अभिभावक स्वरूप राज्यकार्यको देखभाल करते थे। १८२६ ई०को ८वीं फरवरीको महताबचन्द्रने पहली शादी की। उनकी पहली स्त्रीके गर्भसे राजकुमारी श्रीमती धनदेवी देवीकी पैदाइश हुई। दुःखका विषय है, कि कुमारीके जन्मके सात दिनके बाद ही महारानी परलोकवासिनी हुई। शैशवकालमें ही मातृहीना राजकुमारी विवाहके कुछ ही दिन बाद विधवा हो गई। सन् १२६२ ई०में सालके दूसर आषाढ़को राजकुमारीने लाला अमनीनाथ मेहरा बाबूको दत्तकपुत्र ग्रहण किया। १८४४ ई०की २४वीं जूनको महताबचन्द्र बहादुरने श्रीमती नारायणकुमारी देवीका पाणिग्रहण किया। महारानीके गर्भसे संतानादि न होनेके कारण १८६८ ई०को १६वीं मार्चको महाराजने अपने साला लाला वंशगोपालचन्द्र बाबूके ज्येष्ठ पुत्रको दत्तकपुत्र ग्रहण करके उनका नाम कुमार आफताबचन्द्र महताब बहादुर रखा।

१८३६ ई०में महाराजने पुनः गवरनर जेनरल बहादुरसे खिलअत प्राप्त की।

१८५५ ई०में सन्थालोंके विद्रोहके समय एवं १८५७ ई०में सिपाही-विद्रोहके समय महाराजने गवर्मेण्टकी बड़ी सहायता की। इसलिये गवर्मेण्टने इनकी भूरि भूरि प्रशंसा की थी।

१८६४ ई०में महताबचन्द्रने भारतवर्षकी व्यवस्थापक सभाका सदस्य-पद प्राप्त किया। इस देश-वासियोंके मध्य इन्होंने ही सबसे पहले इस पदकी प्राप्ति की थी। उक्त पदके आवश्यकीय व्ययके लिये गवर्नमेण्टने इन्हें १० सहस्र रुपये प्रति वर्ष मिलनेका नियम ठीक हुआ। महाराजने तीन वर्ष तक उक्त पद पर समासीन रह कर एक बार ३० सहस्र रुपये प्राप्त किये। उन सब रुपयोंको इन्होंने अलीपुरमें पशुशाला निर्माण करनेके लिये दान कर दिया।

१८६६ ई०में भीषण दुर्भिक्षके समय महाराजकी असाधारण दानशीलता देख कर भारतवर्षके तदानीन्तन गवर्नर जेनरल सर जान लारेन्सने अपने हाथसे एक पत्र लिख कर अत्यन्त धन्यवाद दिया। १८६८ ई०में महाराजको वंशानुक्रमसे महामान्या सम्राज्ञीके राजचिह्न (Armour and supporters) धारण करनेकी क्षमता प्राप्त हुई।

१८६६ ई०में वर्द्धमान प्रदेशमें भयङ्कर मलेरिया महामारीके प्रादुर्भाव होने पर उसके प्रतिकारके लिये बङ्गाल गवर्नमेण्टको ५० सहस्र रुपये दे कर वर्द्धमान महाराज गवर्नमेण्टके धन्यवाद-भाजन हुए।

१८७० ई०में महामान्या सम्राज्ञीके पुत्र ड्यूक आव एडिनबराने वर्द्धमानके राजभवनमें पदार्पण करके वर्द्धमानाधिपतिको सम्मानित किया था।

१८७४ ई०में भीषण दुर्भिक्षके समय महाराजने अपने खर्चसे चुंचड़ा, कलना तथा वर्द्धमानके दुर्भिक्षपीड़ित

लोगोंको अन्न वस्त्र प्रदान कर असंख्य दीनोंकी जीवन-रक्षा की थी। बङ्गालके तत्कालीन लेफ्टिनेण्ट गवरनर सर आर्ज काम्बेल बहादुरने स्वयं इन सब अन्नसत्रोंको दान करते देख कर वर्द्धमान-नरेशकी दानपरायणताकी भूरि भूरि प्रशंसा करते हुए अपने हाथसे एक पत्र लिखा था। १८७७ ई०में मन्द्राज प्रदेशके दुर्भिक्षके लिये वर्द्धमान-नरेशने १० सहस्र रुपये प्रदान किये थे।

१८७७ ई०में दिल्ली-दरबारसे वर्द्धमानपतिने His Highness-की उपाधि एवं आजीवन सम्मान-स्वरूप १३ तोपें प्राप्त की। १८७८ ई०में वर्द्धमानके महाराजने भारत-सम्राज्ञीकी एक प्रस्तरमयी प्रतिमूर्त्ति कलकत्तेके म्यूजियममें स्थापन की।

वर्द्धमान तथा कालनाके अवैतनिक विद्यालय, दातव्य-चिकित्सालय, बालिका-विद्यालय प्रभृति बहुत सी देश-हितैषिणी कीर्त्तियां स्थापन कर महतावचन्द्र बहादुर इस देशवासियोंके चिरस्मरणीय हो रहे हैं। इसके अतिरिक्त वे अपनी नूतन तीन विशाल जमींदारी उड़ीस्यामें कुजङ्ग-दुर्ग, मेदनीपुर जिलान्तर्गत सुजामुठा परगनेमें दो अवैतनिक विद्यालय तथा दो दातव्य-चिकित्सालय स्थापन कर गये हैं।

सन् १२६५ सालमें उन्होंने महर्षि वाल्मीकिकृत मूल तथा सरल टीका सहित रामायण एवं महर्षि वेदव्यास-कृत मूल तथा व्याख्या सहित महाभारत छाप कर जन-साधारणमें बांटना शुरू किया। किन्तु दुःखका विषय है कि आरब्ध कार्य सम्पूर्ण होनेके पहले ही वे परलोक-वासी हो गये। सन् १८७९ ई०की २६वीं अक्तूबरको ५६ वर्षकी अवस्थामें भागलपुर नगरमें उनकी मृत्यु हुई।

उन्नीस वर्षकी अवस्थामें महाराजाधिराज आफताव महताब बहादुर वर्द्धमानके राजसिंहासन पर बैठे। उस समय उनकी अवस्था छोटी होनेके कारण वर्द्धमान राज्य कोर्ट आफ वार्डके अधीन होनेका प्रस्ताव हुआ, किन्तु महाराज महतावचन्द्र बहादुरके राजकार्य ऐसे सुप्रबन्धके साथ सम्पन्न होते थे एवं उनके भ्रातुष्पुत्र तत्कालीन दीवान ई राज बनविहारी कापूर साहेब ऐसी योग्यताके साथ राज्यकार्य परिचालना करते थे, कि गवर्नर सर आस्ली एडेन बहादुर, वर्द्धमान राज्य कुछ समय तकके लिये कोर्ट आफ वार्डके अधीन न करके, जिस तरह राज्यकार्य चलता था, उसी तरह चलानेकी आज्ञा प्रदान की।

महाराज आफतावचन्दने भी राजकार्यमें स्वयं हस्तक्षेप न करके राजमन्त्री बनविहारी कापूर साहबके ऊपर ही सारे राज्यकार्यका भार सौंप रखा था। १८८१ ई०में आफताव बहादुरको महासमारोहके साथ गवर-मेण्टसे खिलअत सहित राज-सनद प्राप्त हुई। उन्होंने अति अल्प काल तक राज्य किया था, किन्तु इसी अल्प समयमें ही उन्होंने कई एक महान् कीर्त्तियां स्थापन कर इस देशकी बड़ी भलाई की थी। १८८१ ई०में दार्जिलिङ्गमें यूरोपीय दातव्य-चिकित्सालय स्थापित होने पर उसकी सहायताके लिये उन्होंने एक मुश्त १० हजार रुपये तथा वर्द्धमान नगरमें जलकी कल तैयार करनेके लिये वर्द्धमान म्यूनिसिपलिटीको एक मुश्त १ लाख रुपये प्रदान किये थे।

महाराज महतावचन्द बहादुरने जो विद्यालय स्थापन किया था, उसमें सिर्फ एन्ट्रेन्स तक पढ़ाई होती थी। आफतावचन्दने इस स्कूलको दो श्रेणीय कालेजमें उन्नीत करके बिना वेतन दिये ही एल० ए० की परीक्षा पर्य्यन्त पाठ करनेकी सुविधा कर दी थी। इस कार्यमें उनके ८० हजार रुपये खर्च हुए थे।

वे वर्द्धमानमें जनसाधारणके लिये पुस्तकालय स्थापन कर गये हैं। इस पुस्तकालयकी स्थापना करनेमें उनके ६ हजार रुपये व्यय हुए थे। इन सब लोक-हितैषी कार्योंको देख कर गवर्मेंटने उन्हें बहुत ही धन्यवाद दिया।

संस्कृत शिक्षाकी उन्नतिके लिये उन्होंने गवर्मेंटको एक मुश्त ५ हजार रुपये दान दिये थे। महतावचन्द बहादुरके स्मरणार्थ वर्द्धमान गवर्मेंटने दातव्य चिकित्सालय तथा चक्षुःपीड़ाग्रस्त रोगियोंके वासोपयोगी एक गृह निर्माण किया था। महतावचन्द बहादुरने अपने पिताकी पुण्यतम कीर्त्ति रामायण तथा महाभारत सम्पूर्ण मुद्रित कर जनसाधारणमें बांट दिया।

सन् १२९१ सालके १३वें चैत्रको २४ वर्ष की

अवस्थामें ही आफताब चन्दमहताब बहादुरने इस असार संसारसे प्रस्थान किया।

आफतावचन्द महताब बहादुरकी परलोकयात्राके उपरान्त उनकी नाबालिग पत्नी महाराणी अधिराणी बेनदेयी देवी वर्द्धमान राज्यकी उत्तराधिकारिणी हुई। महाराज आफतावचन्द बहादुरके विलमें महाराणीको दत्तकपुत्र ग्रहण करनेकी अनुमति दी गई थी, एवं महाराणीने राजा बनविहारी कापुर महाशयके पुत्र श्रीमान् विजयविहारी (विजयचन्द) कापूरको १८८७ ई० की ३१वीं जुलाईको वंशेश्वरके आदेशानुसार दत्तक पुत्र ग्रहण किया। इस दत्तकपुत्र ग्रहण करनेके सम्बन्धमें उनकी सास श्रीमती महाराणी नारायणकुमारी देवीने आपत्ति करके बड़ी अदालतमें अभियोग चलाया, किन्तु मुकद्दमेका विचार होनेसे पहले ही आपसमें झगड़ेका निबटेरा हो गया। दत्तकपुत्र ग्रहण करनेके थोड़े ही दिनोंके बाद १८८८ ई०को १३वीं मईको महाराणीने परलोककी यात्रा की।

१८८१ ई०की १६वीं अक्टूबरको महाराजाधिराज विजयचन्द महताब बहादुरका जन्म हुआ था। महाराणी बेनदेयीकी मृत्युके समय महाराज विजयचन्द नाबालिग थे, इसलिये राज्य कोर्ट आफ वार्डके अधीन हो गया एवं अपने पिता वर्द्धमान राज्यके सुयोग्य मैनेजर श्रीयुक्त राजा बनविहारी कपूर साहेबकी देखरेखमें सुशिक्षित हो कर १८६२ ई०की १६वीं अक्टूबरको बालिग हो कर महाराजाधिराज विजयचन्द महताब बहादुर वर्द्धमानकी गद्दी पर बैठे।

राजा बनविहारीकापुर साहबने १८५३ ई०की २१वीं नवम्बरको वर्द्धमान जिलान्तर्गत सोनाई ग्राममें जन्म ग्रहण किया। उनके उद्योगसे वर्द्धमानराज्यकी बड़ी उन्नति हुई। उन्होंने वृटिश गवरमेण्टसे १८६३ ई०को २री जनवरीको राजाकी उपाधि प्राप्त की। विगत १६०१ ई०की मर्दुमसुमारीके समय उन्होंने अपनी जातिकी पद-मर्य्यादाकी रक्षाके लिये बरेलीमें एक क्षत्रिय सभा की। भारतवर्षके सभी स्थानोंसे स्वजातिवृन्द उस सभामें पदार्पण करके उनका यथेष्ट सम्मान किया। उनके ही उद्योग तथा अध्यवसायसे वृटिश गवरमेण्ट वर्द्धमान नरेश तथा उनके स्वजातिवृन्दको क्षत्रिय माननेको बाध्य हुई।

प्राचीन स्थान।

ब्रह्मखंडके मतानुसार वर्द्धमानमें बहुतसे नगर तथा ग्राम हैं, उनमें ये सब प्रधान हैं—

माटुल, द्वारिकेशी नदीके तीर जहानाबाद, मायापुर, शंकरसरित्के किनारे गरिष्ट ग्राम, मुंडेश्वरीके निकट श्रीकृष्णनगर, दामोदरके पास राजवल्लभ, भागीरथी-तट विद्यास्थान नवद्वीप (गौरांगका जन्मस्थान), माला-ओड़, एकलक्षक, राघववाटिका, अम्बिका, शाल्मग्राम, मोरग्राम, भूरिश्रेष्ठिक, सेनापि, जनाई, स्फुरण, अङ्कुन, तट, स्वर्णटोक। वर्द्धमानके दक्षिणमें पावन (यहां विजयामिनन्दन राजा होंगे), कुमार वीथिका, कुलक्षिता, कपल, लौहपुर, गोवर्द्धन, हस्तिक, श्रीरामपुर, वेलुन, अग्रद्वीप, पाटली, कर्णग्राम, जोतिवनी, चन्द्रपुर, वलिहारीपुर, वच्छिकवाला, कुशमान, गंगवारि, जावट, चन्द्रलेन। जंगलके निकट रसग्राम इसके अतिरिक्त और ८ शहरोंके नाम, जैसे—वैद्यपुर (यह तैलीके अधिकारमें भागीरथीसे दो योजन पश्चिममें हैं), पाटली (यह कायस्थ राजाके अधिकारमें गंगाके निकट है), शिलावती नदीके पास लोहदा, दामोदरके निकट क्षत्रिय राजाके अधिकारमें चन्द्रवाटी, वर्द्धमानके पूर्व वृश्चिकपत्तन, दामोदरके तीर, विवकासरितके निकट हाटकनगर, भागीरथीके पश्चिम बिल्वपत्तन, वर्द्धमानसे तीस कोसकी दूरी पर सामन्तपत्तन (यहां करतोया नदी बहती है)।

उद्धृत ग्रामनगरादिके नामसे बोध होता है, कि वर्तमान हुगली, नदीया तथा पावना जिलेके कितने ही अंश वर्द्धमान प्रदेशके अन्तर्गत थे।

वर्त्तमान समय वर्द्धमान जिलेमें जनाकीर्ण नगरोंके मध्य वर्द्धमान, कालना, श्यामबाजार, रानीगंज, जहानाबाद, वाली, काँटोया, दाँईहाट ये ८ शहर प्रधान हैं। इन आठोंके मध्य वर्द्धमानमें प्रायः ४० हजार एवं दाँईहाटमें प्रायः १० हजार लोगोंका वास है। वर्त्तमान बड़े ग्रामोंके मध्य खंडघोष, इन्दास, सलीमाबाद, गाँगुरिया, माहयगंज, मातुरिया, मन्तेश्वर, माऊसिह, मगचनीपुर, मंगलकोट, उद्धानपुर, बुदबुद, औसग्राम, सोनामुखी, कसबा, दिगनगर, मानकर, काकसा, नियामतपुर,

गोगाट, कोतलपुर, रायना तथा सलीमपुर ये २४ ग्राम प्रधान हैं। इन सब ग्रामोंमें लोगोंकी घनी आबादी है।

उक्त नगर तथा ग्रामोंके मध्य कलना वाणिज्यका केन्द्रस्थान है। मुसलमानी अमलदारीमें भी यह स्थान बहुत समृद्धिशाली था। उस समय कालनाके पास हो कर गंगा नदी बहती थी। प्राचीन कलनामें इस समय वाणिज्यका केन्द्र न होने पर भी बहुतसे सम्भ्रान्त लोगोंका वास है। बहुतसे दूकानोंसे परिपूर्ण नये कालनेका निर्माण वर्त्तमान नरेशने बड़े यत्नसे किया है। रानीगंज की कोयलेकी खान सारे संसारमें विख्यात है।

रानीगंज देखो।

जहानाबाद द्वारिकेश्वरके तीरस्थित है। यहां महकुमा तथा बहुतसे सम्भ्रान्त लोगोंका वास है। बालीग्राम भी द्वारिकेश्वरके तीर वाम है। पहले यह स्थान ब्राह्मण तथा कायस्थोंका वासस्थान हो रहा था। भागीरथी तथा अजयनदके संगम पर कांटोया नगरी अवस्थित है, यहां बहुतसे धनियोंका वास है। बहुत पहलेसे ही कांटोयाकी समृद्धिका परिचय पाया जाता है। नवाब अलिवर्दी खांके समय मराठोंके उत्पातसे कांटोयाकी बड़ी क्षति हुई थी। इस समय भी यह नगर वाणिज्यका एक प्रधान स्थान गिना जाता है। कांटोया देखो।

दाँइहाट भागीरथीके तीर पर विद्यमान है। पहले यह स्थान भी बहुत उन्नति पर था। इस समय भी यहां अनेक प्रकारके व्यवसायियोंका वास देखा जाता है। यह स्थान वाणिज्यके लिये प्रसिद्ध है।

वर्त्तमान जिलेमें परती जमीन दृष्टिगोचर नहीं होती, यहां प्रायः सर्वत्र ही खेती होती है।

यहां वन्य-पशुओंके मध्य रानीगंजके जंगलमें अल्प संख्यक व्याघ्र, भालू तथा चीते देखे जाते हैं। यहां विषधर सांपोंकी कमी नहीं। पक्षियोंके मध्य वनकुक्कुट, राजहंस, मयूर, वन्यकपोत, तित्तिर तथा बटेर देखे जाते हैं।

अधिवासी तथा अवस्था।

इस जिलेमें सैकड़े ८० हिन्दू, १८ मुसलमान एवं शेष भिन्न धर्मावलम्बी हैं। हिन्दुओंके मध्य बाग्दी तथा सद्गोपकी संख्या ही अधिक है। इसके बाद संख्यानुसार यथाक्रमसे ब्राह्मण, बाउरी, ग्वाला, चमार, डोम, बनिया, कायस्थ, कैवर्त्त, तेली, कलवार, हाड़ी, तन्तुवा, कर्मकार, सूड़ी, नाई, चंडाल, कुम्हार, मोची, बढ़ई। मुसलमानोंके मध्य सभी प्रायः सुन्नी हैं, सियाकी संख्या बहुत ही कम है। खृस्तान-सम्प्रदायकी संख्या एक हजारसे अधिक न होगी। उनमें यूरोप तथा यूरेसियनों की संख्या ही अधिक है। देशी खृस्तानोंकी संख्या विशेष नहीं है।

पहले वर्द्धमानकी आबादी बहुत घनी थी। १८६९ ई०में यहां मलेरिया ज्वरका प्रादुर्भाव हुआ। उस समयसे यहांके लोगोंकी संख्या धीरे धीरे कम होती जा रही है। थोड़े दिनोंसे कुछ कुछ उन्नति होने लगी है। माघसे ले कर आषाढ़के प्रथमान्त पर्यन्त यह जिला खूब स्वास्थ्यकर रहता है, इसके बाद वर्षा शुरू होनेके साथ ही ज्वरका भी प्रादुर्भाव होता है। जलके निकासकी वैसी सुविधा न रहनेके कारण सर्दी तथा भोजनके दोषसे बहुतसे लोग पीड़ित हो उठते हैं। किसी किसी वर्षमें इस जिलावासियोंके ऊपर भीषण विपत्ति टूट पड़ती है। जनसाधारणका विश्वास है कि, रेलवेका बाँध हो जानेसे ही जलनिकासकी असुविधाके कारण बड़ी बड़ी नदियोंकी गति परिवर्त्तित हो जाती है एवं बाढ़ न आनेके कारण इस जिलेके पूर्वसंचित कूड़े कर्कट यथास्थान ज्योंके त्यों रह जाते हैं, छोटी छोटी नदियोंकी धारायें शुष्क पड़ जाती हैं, जिससे यहांका पानी दूषित हो कर इस जिलेको अस्वास्थ्यकर बना डालता है। इसीसे इस जिलेकी आबहवा शुद्ध करनेके निमित्त दामोदर नदीसे एडेन खाई खोद कर इस जिलेमें शुद्ध पानीका प्रादुर्भाव किया गया है। वर्द्धमान शहरमें जलकी कलें तैयार की गई हैं तथा दूसरे दूसरे स्थानोंमें भी विशुद्ध सरोवर इत्यादि खोदे गये हैं और खोदे जा रहे हैं।

रेलवेकी सुविधाके लिये दामोदर नदीका बांध तैयार होनेके पहले वर्द्धमान जिलेमें नियत समय पर बाढ़ आया करती थी। १७७०, १८२३ तथा १८५५ ई०की बाढ़ोंमें बहुतसे लोगोंकी हानि तथा प्राणोंका संहार हुआ। बांध हो जानेके दिनसे बाढ़का प्रकोप कम हो गया है।

१८६६ ई०में वर्द्धमानमें दुर्भिक्ष पड़ा। इस समय यहां मोटे चावलका भाव १॥०) रु० मनसे ले कर ५॥०) रु० तक हो गया था।

वाणिज्य।

यहां देशी लोगोंके उद्योगसे धोती साड़ी तैयार हो कर कई स्थानोंमें भेजी जाती हैं। सोना, चांदी, पीतल तथा कांसाके बरतन यथेष्ट तैयार होते हैं। यहांकी जमीन खूब उपजाऊ है, इसलिये इस जिलेमें परती जमीन दृष्टिगोचर नहीं होती। यहां फसल भी अच्छी उपजती है। यहांसे चावल, तमाकू, पाट, चीनी, लवण, देशी धोती, रुई प्रभृति पदार्थ दूसरे दूसरे स्थानोंमें भेजे जाते हैं एवं यहां विलायती कपड़े, विलायती चीजें, लोहे, लवण, गरम मसाला, नारियल तथा अंडीका तेल दूसरे दूसरे स्थानोंसे आते हैं।

इस जिलेमें इष्ट-इण्डिया रेलवेके मैमारी, शक्तिगढ़, वर्द्धमान, कानूजंक्सन, पानागढ़, दुर्गापुर, अंडाल, रानीगंज, सियारसोल, निमचा, आसनसोल, सीतारामपुर, बराकर, गुसकरा तथा मेढ़िया प्रभृति स्टेशनोंसे ही अधिकांश वस्तुएं आती तथा भेजी जाती हैं। रानीगंजमें कम्पनीका एक बड़ा कारखाना है। इसमें पाइप, ईंटा तथा नाना प्रकारकी सुन्दर सुन्दर चीजें तैयार होती हैं।

इस जिलेमें चार जेलखाने तथा १७ थाने हैं। इनमेंसे ८ थाने सदरके अधीन हैं, जैसे—वर्द्धमान, साहेबगञ्ज, खंडघोष, रायना, गांगुड़, सलीमाबाद, बुदबुद तथा औसग्राम। ३ थाने रानीगञ्जके अधीन हैं, जैसे—रानीगञ्ज, आसनसोल तथा ककसा। तीन थाने काँटोयाके अधीन केतूग्राम, काँटोया तथा मङ्गलकोट एवं तीन थाने कालनाके अधीन जैसे—कालना, पूर्वस्थली और मन्तेश्वर। ये सब फिर ७१ परगनेमें विभक्त हैं। इनके अलावा १० अस्पताल हैं।

२ उक्त जिलेका सदर महकुमा। यह अक्षा० २२° ५६′ से ले कर २३° ३७′ उ० तथा देशा० ८७° २६′ से ले कर ८८° १४′ पू० तक विस्तृत है। भूपरिमाण १२६८ वर्गमील है। यहांकी जनसंख्या ६७१७१२ है। महकुमेमें एक शहर वर्द्धमान और १६८८ गांव लगते हैं।

उक्त जिलेका प्रधान नगर और सदर। यह अक्षा० २३° १४′ तथा देशा० ८७° ५१′ पू०के मध्य बाँका नदीके किनारे अवस्थित है। जनसंख्या ३५०२२ है, जिनमें हिन्दूकी ही संख्या ज्यादा है। यहां तेलकी दो कलें हैं। १८८४ ई०में यहां पानी कल बनाई गई है। इसके बनानेमें दो लाख रुपये खर्च हुए थे जिसमें एक लाख महाराजकी ओरसे मिला था। यहां एक कैदखाना है जिसमें ८५६ कैदी रखे जाते हैं। यहांका प्रधान वाणिज्य सुरकी, तेल और नेवार है। यहां एक वर्द्धमानराज कालेज है जिसमें निःशुल्क शिक्षा दी जाती है। इनके अलावा यहां एक टेकनिकल स्कूल भी है जिसका खर्च डिस्ट्रिक्टबोर्डसे चलता है।

१८६३ ई०से इस शहरमें एक अनर्थकर ज्वरका प्रादुर्भाव हुआ है। इस समय म्युनिसपलिटीका प्रबन्ध हो जानेके कारण वर्द्धमान शहरकी बहुत कुछ उन्नति हुई है। पहले यहां वर्द्धमान विभागके कमिश्नर साहब रहते थे। यहांके वर्द्धमान नरेशका सुवृहत् प्रासाद, उनके बनाये हुए १०८ शिव मन्दिरें तथा पीरवहराम मसजिद् देखनेयोग्य हैं। १६२४ ई०में शाहजादा खुर्रम (शाहजहां) ने वर्द्धमान पर अधिकार जमाया। १६९५ ई०में शोभासिंहने वर्द्धमानाधिपतिको मार कर वर्द्धमान पर अधिकार कर लिया था। अन्तमें वर्द्धमानकी राजकुमारीके हाथसे उनकी आयु शेष हुई; वर्द्धमान जिलेके इतिहासप्रसंगमें यह बात पहले ही लिखी जा चुकी है। यहां इष्ट इण्डिया रेलवेका बड़ा स्टेशन है। यहांका सीताभोग तथा मीतीचूर प्रसिद्ध है।

वर्द्धमान (मरुवर्द्धमान)—उत्तर भारतकी काश्मीर उपत्यकाके पूर्व एक सुदीर्घ उपत्यका। ये दोनों उपत्यकायें एक ऊंचे पर्वत द्वारा परस्पर अलग हैं। यह उत्तर दक्षिण प्रायः ४० मील लम्बा एवं चौड़ाई प्रायः आधा मील। इसके चारों सीमाओं पर पर्वत-श्रेणियां तुषारावृत शिखरसे स्थित हैं। चारों ओर ऊंचे ऊंचे पर्वतोंके रहनेके कारण इसकी निम्नभूमि तक सूर्यकी किरणें नहीं पहुंच सकतीं। वर्द्धमान नदी इस पर्वतमालाको पार करती हुई चन्द्रभागासे आ मिली है। यहां कई एक ग्रामोंमें बहुत कम लोगोंका वास है। ये लोग यहांकी घोर सर्दी बर्दाश्त नहीं कर सकते।

गोघाट, कीर्तिपुर, रायना तथा सलीमपुर ये २४ ग्राम प्रधान हैं। इन सब ग्रामोंमें लोगोंकी घनी आबादी है।

उक्त नगर तथा ग्रामोंके मध्य कालना वाणिज्यका केन्द्रस्थान है। मुसलमानी अमलदारीमें भी यह स्थान बहुत समृद्धिशाली था। उस समय कालनाके पास हो कर गंगा नदी बहती थी। प्राचीन कालनामें इस समय वाणिज्यका केन्द्र न होने पर भी बहुतसे सम्भ्रान्त लोगोंका वास है। बहुतसे दूकानोंसे परिपूर्ण नये कालनेका निर्माण वर्द्धमान महाराजने बड़े यत्नसे किया है। रानीगंजकी कोयलेकी खान सारे संसारमें विख्यात है।

रानीगंज देखो।

जहानाबाद द्वारिकेश्वरके तीर स्थित है। यहां महकुमा तथा बहुतसे संभ्रान्त लोगोंका वास है। चालीग्राम भी द्वारिकेश्वरके तीर बसा है। पहले यह स्थान ब्राह्मण तथा कायस्थोंका वासस्थान हो रहा था। भागीरथी तथा अजयनदके संगम पर कांटोया नगरी अवस्थित है, यहां बहुतसे धनियोंका वास है। बहुत पहलेसे ही कांटोयाकी समृद्धिका परिचय पाया जाता है। नवाब अलिवर्दी खांके समय मराठोंके उत्पातसे कांटोयाकी बड़ी क्षति हुई थी। इस समय भी यह नगर वाणिज्यका एक प्रधान स्थान गिना जाता है। कांटोया देखो।

दाँइहाट भागीरथीके तीर पर विद्यमान है। पहले यह स्थान भी बहुत उन्नति पर था। इस समय भी यहां अनेक प्रकारके व्यवसायियोंका वास देखा जाता है। यह स्थान वाणिज्यके लिये प्रसिद्ध है।

वर्द्धमान जिलेमें परती जमीन दृष्टिगोचर नहीं होती, यहां प्रायः सर्वत्र ही खेती होती है।

यहां वन्य पशुओंके मध्य रानीगंजके जंगलमें अल्प संख्यक व्याघ्र, भालू तथा चीते देखे जाते हैं। यहां विषधर सांपोंकी कमी नहीं। पक्षियोंके मध्य वन्यकुक्कुट, राजहंस, मयूर, वन्यकपोत, तित्तिर तथा बटेर देखे जाते हैं।

अधिवासी तथा जनसंख्या।

इस जिलेमें सैकड़े ८० हिन्दू, १८ मुसलमान एवं शेष भिन्न धर्मावलम्बी हैं। हिन्दुओंके मध्य बाग्दी तथा सद्गोपकी संख्या ही अधिक है। इसके बाद संख्यानुसार यथाक्रमसे ब्राह्मण, बाउरी, ग्वाला, चमार, डोम, वनिया, कायस्थ, कैवर्त्त, तेली, कलवार, हाड़ी, तन्तुवा, कर्मकार, सूंड़ी, नाई, चंडाल, कुम्हार, मोदी, बढ़ई। मुसलमानोंके मध्य सभी प्रायः सुन्नी हैं, सियाकी संख्या बहुत ही कम है। ख्रस्तान-सम्प्रदायकी संख्या एक हजारसे अधिक न होगी। उनमें यूरोप तथा यूरेसियंकी संख्या ही अधिक है। देशी ख्रस्तानोंकी संख्या विशेष नहीं है।

पहले वर्द्धमानकी आबादी बहुत घनी थी। १८६१ ई०में यहां मलेरिया ज्वरका प्रादुर्भाव हुआ। उस समयसे यहांके लोगोंकी संख्या धीरे धीरे कम होती जा रही है। थोड़े दिनोंसे कुछ कुछ उन्नति होने लगी है। माघसे ले कर आषाढ़के प्रथमान्त पर्यन्त यह जिला खूब स्वास्थ्यकर रहता है, इसके बाद वर्षा शुरू होनेके साथ ही ज्वरका भी प्रादुर्भाव होता है। जलके निकासकी वैसी सुविधा न रहनेके कारण सर्दी तथा भोजनके दोषसे बहुतसे लोग पीड़ित हो उठते हैं। किसी किसी वर्षमें इस जिलावासियोंके ऊपर भीषण विपत्ति टूट पड़ती है। जनसाधारणका विश्वास है कि, रेलवेके बांध हो जानेसे ही जलनिकासकी असुविधाके कारण बड़ी बड़ी नदियोंकी गति परिवर्त्तित हो जाती है एवं बाढ़ न आनेके कारण इस जिलेके पूर्वसंचित कूड़े कर्कट यथास्थान ज्योंके त्यों रह जाते हैं, छोटी छोटी नदियोंकी धारायें शुष्क पड़ जाती हैं, जिससे यहांका पानी दूषित हो कर इस जिलेको अस्वास्थ्यकर बना डालता है। इसीसे इस जिलेकी आबहवा शुद्ध करनेके निमित्त दामोदर नदीसे एडेन खाई खोद कर इस जिलेमें शुद्ध पानीका प्रादुर्भाव किया गया है। वर्द्धमान शहरमें जलकी कलें तैयार की गई हैं तथा दूसरे दूसरे स्थानोंमें भी विशुद्ध सरोवर इत्यादि खोदे गये हैं और खोदे जा रहे हैं।

रेलवेकी सुविधाके लिये दामोदर नदीका बांध तैयार होनेके पहले वर्द्धमान जिलेमें नियत समय पर बाढ़ आया करती थी। १७७०, १८२३ तथा १८५५ ई०की बाढ़ोंमें बहुतसे लोगोंका हानि तथा प्राणोंका संहार हुआ। बांध हो जानेके दिनसे बाढ़का प्रकोप कम हो गया है।

परगनेके पर्वत शाल तथा सेगुन वृक्षोंके जंगलसे परिपूर्ण हैं। इन सब पर्वत श्रेणियोंके बीचकी उपत्यका बहुत उपजाऊ है।

इस ज़िलेके उत्तर विभागसे तलेग्राम, चिचली, घामकुण्ड तथा खानग्राम नामक पहाड़ी रास्ता नागपुरकी ओर गया है। इन सब पर्वतमालाओंके मध्य मालेगाँव, नन्दगाँव तथा जैलगढ़का (२०८६ फीट) शिखर सबसे ऊँचा है। उन्हींके मध्य हो कर फिर पर्वतगात्रप्रसुत जलराशिकी अववाहिका भूमि है। कई एक छोटी छोटी नदियाँ कल-कल गीत गाती उन गिरिकन्दराओंको पार करती हुई पर्वत पार्श्वस्थित निम्नप्रदेशके समतल प्रान्तसे प्रवाहित हो कर, वर्द्धासलिलमें आ कर मिल गई हैं। इन सबोंमें धाम, बोर, अशोड़ा तथा बसा नामक कई शाखाएँ वर्द्धाका कलेवर पुष्ट कर रही हैं। बड़े बड़े वृक्षोंमें यहां आम, इमली, वटवृक्ष तथा पीपल देखे जाते हैं। पूर्वविभागके अंचलोंमें उस तरहके दीर्घाकार वृक्ष नहीं पाये जाते। हिंगनघाट-तहसील तथा गिराड़नगर के आस पासकी भूमिके नीचे मीठे जलका प्रवाह है।

विगत छः शताब्दीसे पूर्व शेख ख्वाजा फरीद नामक एक मुसलमान साधु यहाँके पर्वतशिखर पर वास करते थे। प्रवाद है, कि एक समय कई एक व्यापारी लोग नारियल ले कर व्यापार करनेके निमित्त उस स्थानसे हो कर जा रहे थे। उस मुसलमान-साधुको आडम्बरी समझ कर उन्हें कुछ तीखे वचन सुनाये। इससे साधुके हृदयमें क्रोधका संचार हुआ एवं उनके अभिशापसे सभी नारियल पत्थररूपमें परिणत हो कर पर्वतके चट्टानोंमें मिल गये। अभी इस पर्वतके शिखर पर बहुतसे मुसलमान साधु रहते हैं।

यहां विशेष कोई खनिज पदार्थ नहीं पाया जाता। पर्वतोंसे जो कई प्रकारके पत्थर पाये जाते हैं, वे घर बनानेके अलावे किसी काममें नहीं आते। किसी स्थानमें चूनेके पत्थर पाये जाते हैं, उन पत्थरोंको भस्म करके चूना तैयार किया जाता है। यहां फ्लैगस्टोन तथा ब्लैकबेसल्ट नामक पत्थरोंका अभाव नहीं है।

यहांके जङ्गलोंमें चीता, भेकड़ा, वनवराह तथा वनशृगाल इत्यादि जानवर बहुत देखे जाते हैं। यहांके पर्वतभागमें हिरण, नीलगाय तथा भेड़ प्रभृति जन्तु दृष्टिगोचर होते हैं। पक्षियोंके मध्य तित्तिर, टिट्टिभ, बटेर, पार्वत्य कपोत आदि प्रधान हैं। सभी प्रकारके सर्प तथा शतपदी एवं वृहत्काय विच्छू रेंगते नज़र आते हैं।

यद्यपि यहांके प्राचीन इतिहासके सम्बन्धमें विशेष बातें पाई नहीं जातीं, तथापि महाभारतकी उक्ति तथा स्थानीय प्रवादोंसे जाना जाता है, कि यहांका उत्तर-पश्चिम अंश विदर्भराज भीष्मकके शासनाधीन था। भगवान् श्रीकृष्णने इसी भीष्मक राजाकी बेटी रुक्मिणी देवीका पाणिग्रहण किया था।

दक्षिण-पूर्वांशमें गौली जातिका निवास था। सूर्यवंशी क्षत्रिय राजा पवन गौलीने पवनी तथा पहुना नामक स्थानोंमें अपना अधिकार जमा लिया था। प्रवाद है, उनको एक पारस पत्थर था। जब प्रजा राजकर अदाय नहीं कर सकती थी, तब राजाको राजकरमें लोहेकी फाल ही दिया करती थी। वे लोहेकी फाल उस पारस पत्थरके स्पर्शसे सोनेमें परिणत हो जाती थी।

अन्तमें सैयद सालार कबीर नामक एक मुसलमान जादूगर यहां पहुंचा। उसने जादू बलसे राजाके शिरके समान एक दूसरा शिर तैयार कर एवं अपने शिरको एक गुप्त स्थानमें रख राजाके भेषसे नगरमें प्रवेश किया। राजाने कबीरका प्रभाव देख, लांछनाके भयसे पौनरगढ़की सामनेवाली धाम पुष्करिणीके जलमें प्रवेश किया। उस दिनसे जलके अन्दर नाना प्रकारके भौतिक चित्र दिखाई पड़ते हैं।

किम्वदन्ती है कि, एक समय एक चरवाहा उसी नदीके किनारे गाय चरा रहा था। अपनी गौओंके झुण्डमें एक काले बछड़ेको घूमते देख कर उसने सोचा—यह बछड़ा किसका है। बहुत दिनोंसे यह हमारे गो झुण्डमें सम्मिलित हो कर चरने आता है, किन्तु कभी इसे अपने मालिकके पास जाते नहीं देखता। इसका कारण क्या है? ऐसा सोच कर वह धीरे धीरे उस बछड़ेके पास गया और पूछा—तुम किसके बछड़े हो? उस बछड़ेने इस प्रश्नका कुछ

वर्द्धमान—अनामकशात बहुतसे ग्रन्थकर्त्ता। १ कातन्त्रविस्तरके रचयिता। २ क्रियागुप्तक, सिद्धराजवर्णन और गणरत्नमहोदधिके प्रणेता। इन्होंने ११४० ई०में दीपोक्त ग्रन्थकी एक टीका लिखी थी। सुप्रसिद्ध पण्डित गोविन्द सूरि इनके गुरु थे। ३ नानानार्थनिर्णयके रचयिता। ४ धातुप्रदीपके प्रणेता। ५ एक प्राचीन कवि। ६ एक विख्यात ज्योतिषी। वराहमिहिरने इनका नामोल्लेख किया है।

वर्द्धमान उपाध्याय—१ एक ग्रन्थकार। इन्होंने किरणावली प्रकाश, खण्डनखण्डखाद्यप्रकाश, तत्त्वचिन्तामणिप्रकाश, न्यायकुसुमाञ्जलिप्रकाश, न्यायनिबन्धप्रकाश, न्यायलीलावतीप्रकाश, न्यायलीलावती प्रकाश तथा प्रमेयतत्त्वबोध आदि ग्रन्थोंकी रचना की। ये गङ्गेश या गङ्गेश्वरके पुत्र थे।

२ एक विख्यात पण्डित। ये कविश्रेष्ठ और महाधर्माधिराज भवेशके पुत्र थे। इन्होंने अपने पितासे पढ़ा था। ये गङ्गाकृत्यविवेक, दण्डविवेक, धर्मप्रदीप, परिभाषाविवेक, स्मृतितत्त्वविवेक, स्मृतिनरयामृत, स्मृतितत्त्वामृत, सारोद्धार और स्मृति परिभाषा आदि ग्रन्थ बना गये। रघुनन्दन, कमलाकर और केशवने इनका मत उद्धृत किया है।

वर्द्धमानक (सं० त्रि०) वर्द्धमान स्वार्थे संज्ञायां वा कन्। १ वृद्धिविशिष्ट, बढ़ानेवाला। (पु०) २ शराव। ३ एरण्डवृक्ष, रेड़ीका वृक्ष। ४ आरतिक, आरती।

वर्द्धमानगणि—कुमारप्रशस्तिकाव्यके रचयिता। ये हेमचन्द्रके शिष्य थे।

वर्द्धमानद्वार (सं० स्त्री०) १ वर्द्धमानका प्रवेशद्वार। २ हस्तिनापुर राज्यका प्रवेशद्वार।

वर्द्धमानपुर (सं० स्त्री०) ग्रामविशेष, गुजरातका एक प्रधान नगर।

वर्द्धमानपुरीय (सं० त्रि०) वर्द्धमान नगर-सम्बन्धीय।

वर्द्धमानपति (सं० पु०) वर्द्धमानस्य पतिः। वर्द्धमानपुरके अधिपति।

वर्द्धमानमति (सं० पु०) बोधिसत्त्वभेद।

वर्द्धमान मिश्र—एक पुस्तक-प्रणेता। इन्होंने वर्द्धमानप्रक्रिया नामक एक व्याकरण लिखा।

वर्द्धमानमट्टक (सं० स्त्री०) मट्ठाभेद, जीरा मिला हुआ मट्ठा। इसके बनानेका तरीका—दही मथ कर उसमें यथा प्रमाण गुड़, मिर्च, सोंठ, पीपर, जीरा इन सबोंका चूर्ण मिलावे। उसके बाद अच्छी तरह हाथसे घोंटे। पीछे पके अनारका रस उसमें मिला कर उसे कपड़ेसे छान ले। इस तरह जो मट्ठा तैयार किया जाता है, उसीको वर्द्धमानमट्टक कहते हैं। यह मट्टक गुरु, अग्निदीप्तिकर, बलकारी, तृप्तिकारक, कफ, वात, पित्त, श्रम, ग्लानि और तृष्णानाशक होता है। (वैद्यकनि० द्रव्यगु०)

वर्द्धमानसूरि—एक जैनसूरिका नाम। ये अभयदेवके शिष्य तथा १०३२ ई०में विद्यमान थे। इन्होंने कथाकोष या शरणरत्नावली तथा उपमितिभव-प्रपञ्चनामसमुच्चय ११८८ संवत्में लिखा था।

वर्द्धमान स्वामी—एक जैन तीर्थङ्करका नाम। महावीर देखो।

वर्द्धमानेश (सं० पु०) वर्द्धमानस्य ईशः। १ वर्द्धमानपुरके राजा। २ शिवलिङ्ग और मन्दिरभेद।

वर्द्धयितृ (सं० त्रि०) वर्द्धि-णिच् तृच्। वर्द्धनकारक, बढ़ानेवाला।

वर्द्धा—मध्यप्रदेशके नागपुर कमिश्नरके अधीनस्थ एक जिला यह अक्षा० २०° १८´से ले कर २१° २२´ उ० तथा देशा० ७८° ३´से ले कर ७९° १४´ पू० तक विस्तृत है। यह जिला त्रिकोणाकृति है। इसके पादमूलमें चान्दा जिला, पूर्वमें नागपुर तथा पश्चिममें वर्द्धानदी बहनेके कारण बेरारसे यह अलग है। इसका भूपरिमाण २४२८ वर्गमील और जनसंख्या ३८५१०३ है। इस जिलेमें ६०६ शहर और गाँव लगते हैं। जिलेके अन्दर ४ सिकिन्ड इंगलिश स्कूल, ८ वर्नाक्यूलर मिडिल स्कूल और ८८ प्रायमरी स्कूल हैं। इनके अलावे १० अस्पताल और १ मवेशी अस्पताल है।

इस जिलेकी अधिकांश भूमि पर्वतोंसे भरी है। सतपुरा पर्वतमालाकी एक शाखा उत्तरसे ले कर इस जिलेकी दक्षिण-पूर्वकी भूमि तक फैली हुई है। इसकी ढालोंपर निम्न तथा पथरीली भूमिमें विशेष कोई वृक्ष लता तथा शस्यादि उत्पन्न नहीं होता। ग्रीष्मऋतुमें पर्वतके ढाल पर जंगलमें थोड़े बहुत झाड़-झंखाड़ पैदा होते हैं। वर्षाऋतुके बाद ये सब स्थान पूर्णरूपसे तृणाच्छन्न हो जाते हैं। उस समय गो, महिष आदि पशु दल बाँध कर यहाँ तृण इत्यादि चरने आते हैं। यहाँ तथा अन्यान्य

परगनेके पर्वत शाल तथा सेगुन वृक्षोंके जंगलसे परिपूर्ण हैं। इन सब पर्वत श्रेणियोंके बीचकी उपत्यका बहुत उपजाऊ हैं।

इस जिलेके उत्तर विभागसे तलेग्राम, चिचली, धामकुण्ड तथा ब्राह्मग्राम नामक पहाड़ी रास्ता नागपुरकी ओर गया है। इन सब पर्वतमालाओंके मध्य मालेगाँव, नन्दगाँव तथा जैतगढ़का (२०८६ फीट) शिखर सबसे ऊँचा है। उन्हींके मध्य हो कर फिर पर्वतमालाप्रसुत जलराशिकी अववाहिका भूमि है। कई एक छोटी छोटी नदियाँ कल-कल गीत गाती उस गिरिकन्दराओंको पार करती हुईं पर्वत पार्श्वस्थित निम्नप्रदेशके समतल प्रान्तसे प्रवाहित हो कर, वर्द्धासलिलमें आ कर मिल गई हैं। इन सबोंमें धाम, बोर, अज्ञोड़ा तथा वसा नामक कई शाखाएं वर्द्धाका कलेवर पुष्ट कर रही हैं। बड़े बड़े वृक्षोंमें यहां आम, इमली, वटवृक्ष तथा पीपल देखे जाते हैं। पूर्वविभागके जंगलोंमें उस तरहके दीर्घाकार वृक्ष नहीं पाये जाते। हिंगनघाट-तहसील तथा गिराइनगर के आस पासकी भूमिके नीचे मीठे जलका प्रवाह है।

विगत छः शताब्दीसे पूर्व शेख ख्वाजा फरीद नामक एक मुसलमान साधु यहांके पर्वतशिखर पर वास करते थे। प्रवाद है, कि एक समय कई एक व्यापारी लोग नारियल ले कर व्यापार करनेके निमित्त उस स्थानसे हो कर आ रहे थे। उस मुसलमान-साधुको आडम्बरी समझ कर उन्हें कुछ तीखे वचन सुनाये। इससे साधुके हृदयमें क्रोधका संचार हुआ एवं उनके अभिशापसे सभी नारियल पत्थररूपमें परिणत हो कर पर्वतके चट्टानोंमें मिल गये। अभी इस पर्वतके शिखर पर बहुतसे मुसलमान साधु रहते हैं।

यहां विशेष कोई खनिज पदार्थ नहीं पाया जाता। पर्वतोंसे जो कई प्रकारके पत्थर पाये जाते हैं, वे घर बनानेके अलावे किसी काममें नहीं आते। किसी स्थानमें चूनेके पत्थर पाये जाते हैं, उन पत्थरोंको भस्म करके चूना तैयार किया जाता है। यहां फ्लैगस्टोन तथा ब्लैकथेसल्ट नामक पत्थरोंका अभाव नहीं है।

यहांके जङ्गलोंमें चीता, भेकड़ा, वनवराह तथा वन-शृगाल इत्यादि जानवर बहुत देखे जाते हैं। यहांके पर्वतमालमें हिरण, नीलगाय तथा भेंड़ प्रभृति जन्तु दृष्टिगोचर होते हैं। पक्षियोंके मध्य तित्तिर, टिट्टिभ, बटेर, पार्वत्य कपोत आदि प्रधान हैं। सभी प्रकारके सर्प तथा शतपदी एवं वृहत्काय बिच्छू रेंगते नजर आते हैं।

यद्यपि यहांके प्राचीन इतिहासके सम्बन्धमें विशेष बातें पाई नहीं जातीं, तथापि महाभारतकी उक्ति तथा स्थानीय प्रवादोंसे जाना जाता है, कि यहांका उत्तर-पश्चिम अंश विदर्भराज भीष्मकके शासनाधीन था। भगवान् श्रीकृष्णने इसी भीष्मक राजाकी बेटी रुक्मिणी देवीका पाणिग्रहण किया था।

दक्षिण-पूर्वांशमें गोली जातिका निवास था। सूर्यवंशी क्षत्रिय राजा पवन पौनारने पवनी तथा पहुआ नामक स्थानोंमें अपना अधिकार जमा लिया था। प्रवाद है, उनको एक पारस पत्थर था। जब प्रजा राजकर आदाय नहीं कर सकती थी, तब राजाको राजकरमें लोहेकी फाल दी दिया करती थी। वे लोहेकी फाल उस पारस पत्थरके स्पर्शसे सोनेमें परिणत हो जाती थी।

अन्तमें सैयद सालार कबीर नामक एक मुसलमान जादूगर यहां पहुंचा। उसने जादू बलसे राजाके शिरके समान एक दूसरा शिर तैयार कर एवं अपने शिरको एक गुप्त स्थानमें रख राजाके भेषसे नगरमें प्रवेश किया। राजाने फकीरका प्रभाव देख, लांछनाके भयसे पौनारगढ़की सामनेवाली धाम पुष्करिणीके जलमें प्रवेश किया। उस दिनसे जलके अन्दर नाना प्रकारके भौतिक चिह्न दिखाई पड़ते हैं।

किम्वदन्ती है कि, एक समय एक चरवाहा उसी नदीके किनारे गाय चरा रहा था। अपनी गौओंके झुण्डमें एक काले बछड़ेको घूमते देख कर उसने सोचा—यह बछड़ा किसका है? बहुत दिनोंसे यह हमारे गोझुण्डमें सम्मिलित हो कर चरने आता है, किन्तु कभी इसे अपने मालिकके पास जाते नहीं देखता। इसका कारण क्या है? ऐसा सोच कर वह धीरे धीरे उस बछड़ेके पास गया और पूछा—तुम किसके बछड़े हो? उस बछड़ेने इस प्रश्नका कुछ

है। भवानीकी सेविका यक्षांगनागण इस रसका सेवन करती हैं, इसीलिये उनके शरीर अत्यन्त सुगन्धमय होते हैं। उनके अङ्गका अङ्गराग लगा कर वायु चारों ओर दश योजन तकके जीव जन्तुओंको आमोदित करती है।

जम्बूवृक्षके फल हाथीके बराबर स्थूल होते हैं। उनके बीज बहुत ही छोटे होते हैं। वे सब फल बहुत ही ऊँचे से गिरनेके कारण फट जाते हैं, उस समय उनके रससे जम्बू नदी नामक एक नदी निकलती है। वही नदी मेरु मन्दर पर्वतकी शिखरसे होती हुई अयुत योजन चल कर भूमण्डल पर आती है। यह जिस स्थान पर गिरती है, उस स्थानसे अपनी दक्षिण ओर सारे इलावृत वर्षमें प्रवाहित होती है। इस नदीकी मिट्टी उसके जलसे अनुविद्ध हो कर वायु तथा सूर्यके संयोगसे विशेष पकवना पा कर जाम्बूनद अर्थात् सुवर्णमें परिणत हो जाती है। यह सुवर्ण ही अमर तथा अमरकामिनियोंके अलंकार हैं।

सुपार्श्व पर्वतके पास महा कदम्ब नामक एक वृक्ष है। इसके कोटरैसे पंच व्याम परिमित पांच मधु धाराएं निकलती हैं एवं पर्वत शिखर पर गिर कर पश्चिमस्थ इलावृतवर्षको अपनी सुगन्धसे आमोदित करती हैं। जो लोग इस पर्वतकी मधुधाराका सेवन करते हैं, उनके मुखकी हवासे चारों ओरका शत योजनव्यापी भूभाग सुवासित होता है।

कुमुद पर्वत पर शतवल्श नामक एक वटवृक्ष है। उसके स्कन्धभागसे दधि, दुग्ध, घृत, गुड़, अन्न प्रभृति तथा वसन, भूषण, शयन, आसनादि अभीप्सित वस्तु दोहनकारी नद इस पर्वतके अग्रभागसे होता हुआ उत्तरकी ओर चल कर इलावृतवासियोंका बहुत ही उपकार करता है। यहांके अधिवासी इन सब सामग्रियोंका सेवन करनेके कारण कभी भी अङ्गवैवर्ण्य, क्लान्ति, घर्म, जरा, रोग, अपमृत्यु, शीत आदि कुछ भी उपसर्ग भोग नहीं करते। इसलिये इस वर्षके अधिवासी आजन्म केवल सुखका ही उपभोग करते हैं।

अग्नीध्रके जिन ९ पुत्रोंके नामसे ९ वर्षोंका नामकरण हुआ है, उन पुत्रोंमें नाभि सबसे बड़े थे। यद्यपि नाभि ही वर्षके अधिपति थे तथापि उनके पौत्र भरतके नाम पर ही यह वर्ष प्रसिद्ध है। नाभिके पुत्र ऋषभ थे। ऋषभके द्वारा ही प्रसिद्ध भरतराजका जन्म हुआ। भरतके नामानुसार ही इस वर्षका नाम भारतवर्ष हुआ। भरतके पिता ऋषभने अजनाभ नामक एक विशिष्ट प्रदेश पर अधिकार कर लिया था, इसीलिये उनके अधिकृत सभी वर्ष अजनाभ नामसे विख्यात थे। पीछे उनके पुत्र भरत राजा हुए, उन्हींके नामसे यह वर्ष विख्यात है।

इस भारतवर्षमें बहुतसी नदियाँ तथा पर्वत श्रेणियां हैं। पर्वतोंके मध्य मलय, मंगलप्रस्थ, मैनाक, त्रिकूट, ऋषभ, कूटक, कोल्ल, सह्य, देवगिरि, ऋष्यमूक, श्रीशैल, वेंकट, महेन्द्र, वारिधार, विन्ध्य, शुक्तिमान, ऋक्षगिरि, पारियात्र, द्रोण, चित्रकूट, गोवर्द्धन, रैवतक, ककुभ, नील, कोकामुख तथा इन्द्रकील तथा कामगिरि ये कितने ही पर्वत अत्यन्त प्रसिद्ध हैं। इनके अलावे और भी कई सौ पर्वत हैं, जिनकी गिनती नहीं हो सकती।

उक्त पर्वतोंसे कितनी ही नदियां निकल कर भारतवर्षकी भूमिको सींच रही हैं, उन सबोंकी संख्या करना भी असम्भव है। इन सब नदनदियोंके जलसे भारतकी सन्तान पानावगाहन समाधान करती है। उनमें चन्द्रवसा, ताम्रपर्णी, अवटोदा, कृतमाला, वैहायसी, कावेरी, वेणा, पयस्विनी, शर्करावर्त्ता, तुङ्गभद्रा, कृष्णावेणा, भीमरथी, गोदावरी, निर्विन्ध्या, पयोष्णी, तापी, रेवा, सुरसा, नर्मदा, चर्मण्वती, अन्धनद (ब्रह्मपुत्र), शोणनद, महानदी, वेदस्मृति, त्रिसोमा, कौशिकी, मन्दाकिनी, यमुना, सरस्वती, दृषद्वती, गोमती, सरयू, ओघवती सप्तवती, सुषोमा, शतद्रु, चन्द्रभागा,
असिक्नी तथा विपाशा
नदियोंके नाम
हैं। परन्तु भारतव
करते हैं। मनुष्य
सात्त्विक, राजसिक
मानुषी तथा नारकी
वर्णोंको जिस तरह
उसी प्रकार
प्राप्त होते हैं।

कर्मक्षेत्र कहते हैं। दूसरे दूसरे आठों वर्ष स्वर्गीय लोगोंके पुण्यका फल उपभोग करनेके स्थान हैं।

जम्बूद्वीप भारतवर्षके अतिरिक्त अन्यान्य आठों वर्षोंमें जो पुरुष वास करते हैं, उनकी पुरुष परिमाणसे अयुत-वर्ष परमायु, अयुत हस्तीके तुल्य बल एवं वज्रवत् सुदृढ़ शरीर गठन होती है। उनका शरीर इस तरह बल, यौवन तथा आनन्दसे परिपूर्ण है कि, उनके द्वारा महासुरत व्यापारसे स्त्रीपुरुष अत्यन्त आनन्दित होते हैं एवं सम्भोगके अन्तमें एक वर्ष आयु शेष रहने पर उनकी स्त्रियाँ सिर्फ एक बार गर्भ धारण करती हैं। इस तरहसे विषम सुखकी उन्नतिके कारण इन सब वर्षोंके लोग त्रेतायुगकी तरह अत्यन्त आमोदप्रमोदमें जीवन बिताते हैं।

इन सब वर्षोंमें देवाधिपतिगण अपने अपने अनुचर तथा परिचारकोंके द्वारा पूजित होते हैं। वे स्वेच्छा-नुसार आश्रमोंमें एवं गिरिगह्वर तथा अमल जलाशयादिमें क्रीड़ा करके समय बिताते हैं। यहांकी सुरसुन्दरियोंकी जलक्रीड़ा तथा अन्यान्य कामोन्मादिनियोंके सविलास हास्य एवं लीलाललित दृष्टिनिक्षेपसे यहांके पुरुषोंका चित्त तथा नेत्र आकृष्ट हो जाते हैं।

इन सब वर्षस्थित आश्रमायतनोंमें जिन पुरुषोंके विहार करनेकी बातें लिखी गई हैं, उनकी शोभा अवर्णीय है। यहांके वृक्षोंकी शाखा प्रशाखाएं सभी ऋतुओंमें पुष्प कलि फलों तथा नये पल्लवके बोझसे झुकी रहती हैं। उन शाखाओं पर बहुत-सी लताएं लहलहा रही हैं। फिर यहांके जलाशयोंकी शोभा देख कर आँखें तृप्त नहीं होतीं। इनके स्वच्छ सुमिष्ट सलिलके मध्य नये नये कमल खिलते हैं, उनके स्वर्गीय सौरभसे यह स्थान सुवासपूर्ण हो उठता है। राजहंस, जलकुक्कुट तथा कारण्डव प्रभृति पक्षियोंके कलालाप एवं भ्रमरोंकी मधुर झंकारसे यहां विहार करनेवाले देवाधिपतियोंके मन अनायास ही मुग्ध हो जाते हैं।

उल्लिखित नवों वर्षोंमें भगवान् नारायण विभिन्न मूर्त्तियोंमें विराजमान हैं। उनमें इलावृत वर्षमें भगवान् 'भव' ही एकमात्र पुरुष हैं। यहां और कोई दूसरा पुरुष नहीं है। कारण यह है, कि जो पुरुष भवानीके शापसे जानकार हैं, वे यहां कभी नहीं जाते। जो पुरुष भूल कर यहां जाते हैं, वे स्त्री-रूपमें परिणत हो जाते हैं। इस वर्षमें भगवान् भवकी सेवा भवानी तथा उनके अधीन बहुसंख्यक स्त्रियाँ किया करती हैं।

भद्राश्व वर्षमें धर्मपुत्र भद्रश्रवा नामक वर्षपति एवं उनके प्रधान प्रधान सेवकोंका वास है। ये लोग भग-वान् हयग्रीव मूर्त्तिकी आराधना करते हैं।

हरिवर्षमें भगवान् नृसिंह मूर्त्तिमें अवस्थित हैं। परम भक्त प्रह्लाद इस वर्षवासी प्रजाओंके साथ अत्यन्त भक्ति-से उनकी उपासना करते हैं।

केतुमाल वर्षमें भगवान् कामदेवरूपमें विराजमान हैं। लक्ष्मी, संवत्सर एवं उनकी कन्या रात्र्यभिमानिनी देवता तथा उनके पुत्र दिवसाभिमानी देवोंका प्रियसाधन ही उनकी इच्छा है। उन सब दिवसाभिमानी देवोंकी संख्या ३३६ सहस्र है। इन वर्षके अधिपति महापुरुष-के चक्रतेजसे दिवसाभिमानिनी कन्याओंके मन उद्विग्न होते हैं, उससे उनके गर्भ नष्ट हो कर संवत्सरके अन्तमें पतित हो जाते हैं।

रम्यकवर्षके अधिपति मनु हैं। भगवान् उन्हें मत्स्य-मूर्त्तिसे दर्शन देते हैं। मनु अभी भी अत्यन्त भक्तिसे उसी मूर्त्तिकी उपासना करते हैं।

हिरण्मय वर्षमें भगवान् हरि कूर्मशरीर धारण करके विद्यमान हैं। पितृगणके अधिपति अर्य्यमा इस वर्ष-वासी प्रजाओंके साथ निरन्तर उनकी उपासना करते हैं।

उत्तर कुरुवर्षमें भगवान् यज्ञपुरुष ही वराहमूर्त्ति धारण करके विराजमान हैं। देवीपृथ्वी कुरुगणके साथ अत्यन्त भक्तिसे उनकी पूजा करती हैं। किम्पुरुषवर्षमें परम भक्त हनुमान् इस वर्षवासी प्रजाओंके साथ भगवान् श्रीरामचन्द्रजीकी उपासना करते हैं।

(भागवत ५ स्कन्ध १-१६ अ०)

जम्बूद्वीपस्थ वर्षविभागोंका संक्षिप्त विवरण वर्णन किया गया। अब भागवत मतानुसार अन्यान्य द्वीपस्थ वर्षविभागोंका संक्षिप्त वृत्तान्त वर्णन किया जाता है।

जम्बूद्वीपके बाद प्लक्षद्वीप है। प्लक्षद्वीप जम्बूद्वीप-की अपेक्षा दो गुणा बड़ा है। इस द्वीपमें एक सुवर्णमय प्लक्षवृक्ष है। प्रियव्रतके द्वितीय पुत्र इध्मजिह्व इस द्वीप-के राजा हैं। उन्होंने उस द्वीपको सात भागोंमें विभक्त

करके अपने एक एक पुत्रको एक एक वर्षका अधिपति बनाया। उनके सातों पुत्रोंके नामानुसार ही उन सातों वर्षोंका नामकरण हुआ। यथा—शिव, यवस, सुभद्र, शान्त, क्षेम, अमृत तथा अभय। इन सातों वर्षोंमें भी यद्यपि बहुतसी नदनदियां तथा पर्वत श्रेणीयां हैं तथा सात नदियां एवं सात पर्वत ही यहां विख्यात हैं। उन सात नदियोंके नाम—अरुणा, नृम्णा, आङ्गिरसी, सावित्री, सुप्रभाता, ऋतम्भरा तथा सत्यम्भरा। यहांके उन सातों सीमापर्वतोंके नाम—वज्रकूट, मणिकूट, इन्द्रसेन, ज्योतिष्मान, सुवर्ण, हिरण्यष्ठीव एवं मेघमाल। इन सब वर्षोंके अधिवासी त्रिवेदमूर्त्ति सूर्यकी उपासना करते हैं।

शाल्मलद्वीपके अधिपति थे प्रियव्रतात्मज यज्ञबाहु। उन्होंने इस द्वीपको अपने सातों पुत्रोंके बीच सात वर्षोंमें विभक्त करके बांट दिया। उन पुत्रोंके नामानुसार ही इन सातों वर्षोंका नामकरण हुआ। उन सातों वर्षोंके नाम—सुरोचन, सौमनस्य, रमणक, देववर्ह, पारिभद्र, आप्यायन तथा अभिज्ञात। इन सातों वर्षोंके सात प्रधान सीमापर्वतोंके नाम—सुरस, शतशृङ्ग, वामदेव, कुन्द, कुमुद, पुष्पवर्ण एवं सहस्रश्रुति। सात प्रधान नदियोंके नाम—अनुमति, सिनीवाली, सरस्वती, कुहू, रजनी, नन्दा एवं राका। इस वर्षवासी लोग श्रुतिधर, वीर्यधर, वसुन्धर एवं इषुन्धर नामक चार वर्णोंमें विभक्त हैं। ये लोग वेदमय सोमदेवकी उपासना करते हैं।

कुशद्वीप सुरोदसागरके पश्चिममें है। यह पूर्वोक्त द्वीपकी अपेक्षा दो गुना बड़ा है। प्रियव्रतके पुत्र हिरण्यरेता कुशद्वीपके राजा थे। उन्होंने अपने अधिकृत द्वीपका सात भाग करके अपने सातों पुत्रोंमें बांट दिया इन सातों पुत्रोंके नामसे ही ये सातों वर्ष प्रसिद्ध हैं। यथा—वसु, वसुदान, दृढरुचि, नाभिगुप्त, सत्यव्रत, विप्र तथा देवनाम। इन सातों वर्षोंमें सात पर्वत एवं सात नदियां प्रसिद्ध हैं। इस वर्षके अधिवासी कोविद, अभियुक्त तथा कुलक प्रभृति नामसे पुकारे जाते हैं। ये लोग अपने अपने कर्मकौशलसे अग्निदेवकी उपासना करते हैं।

क्रौञ्चद्वीपके अधिपति प्रियव्रत-पुत्र घृतपृष्ठ थे। उन्होंने इस द्वीपको अपने सातों पुत्रोंके नामसे सात वर्षोंमें विभक्त कर दिया। ये सातों पुत्र इन सातों वर्षोंके अधिपति हुए। उन वर्षोंके नाम—आत्मा, मधुरुह, मेघपृष्ठ, सुधामा, भ्राजिष्ठ, लोहितवर्ण तथा वनस्पति। इन सातों वर्षोंके मध्य सात प्रसिद्ध पर्वत तथा नदियां हैं। इस वर्षके अधिवासी पुरुष, ऋषभ, द्रविण तथा देवक इन चार वर्णोंमें विभक्त हैं।

शाकद्वीपके राजा प्रियव्रतके पुत्र मेधातिथि थे। इस द्वीपका विस्तार ३२ लाख योजन है। मेधातिथिने इस द्वीपको सात वर्षोंमें विभक्त कर अपने सातों पुत्रोंके बीच बाँट दिया। उन सातों पुत्रोंके नामानुसार इन सातों वर्षोंके नाम यथाक्रमसे पुरोजव, मनोजव, वेपमान, धूम्रानीक, चित्ररेफ, बहुरूप तथा विश्वाधार हुए। इन सातों वर्षोंमें भी सात सात पर्वत एवं सात प्रसिद्ध नदियां हैं। उक्त वर्षवासी लोग ऋतव्रत, सत्यव्रत, दानव्रत तथा अनुव्रत इन चारों वर्णोंमें विभक्त हैं।

पुष्करद्वीपके अधिपति प्रियव्रतके पुत्र वीतिहोत्र थे। उनके रमणक तथा धातक नामक दो पुत्र हुए। वीतिहोत्र राजाने इस द्वीपको दो वर्षोंमें विभक्त करके अपने दोनों पुत्रको वहांके अधिपति नियुक्त किया।

(भागवत ५।१।२९।१६ तथा २० अ०)

पृथ्वीके मध्यस्थ एवं विभागोंका संक्षिप्त वर्णन भागवतके मतानुसार किया गया। मार्कण्डेय, वराह, वामन कूर्म प्रभृति यावतीय पुराणग्रन्थोंमें ही कुछ विस्तार पूर्वक यह विवरण देखा जाता है। विस्तार हो जानेके भयसे वे सभी बातें यहां वर्णन नहीं की गई।

वर्षतीति वृष अच्। ५ मेघ, बादल। (त्रि०) ६ वर्ष व्यापार।अवसर। प्रभवादि छः संवत्सरोंका विवरण एवं उन वत्सरोंमें पूज्य या प्रकारके देवताओंके नामादि।

(संवत्सर शब्दमें देखो।)

वर्षक (सं० त्रि०) १ वर्षणशील, बरसनेवाला। २ वत्सर सम्बन्धी।

वर्षंकर (सं० पु०) १ मेघ, बादल। (त्रि०) २ वृष्टिदान कारी, वर्षा करनेवाला।

वर्षकरी (सं० स्त्री०) वर्षं तत्सूचनं रवेण करोतीति वर्ष-कृ-ट, ङीप्। झिल्लिका, झींगुर।

वर्षकर्मन् (सं० क्ली०) १ वर्षणकार्य। २ वत्सरकृत्य।

वर्षकाम (सं० पु०) वृष्टि प्रार्थनाकारी, वृष्टिकी कामना करनेवाला।

वर्षकामेष्टि (सं० पु०) एक यज्ञ जो वर्षाके लिये किया जाता था। (आश्व० श्रौ० २।१३।१)

वर्षकाली (सं० स्त्री०) जीरक, जीरा।

वर्षकृत्य (सं० पु०) वत्सरमें आचरणीय शास्त्रविहित कार्य आदि।

वर्षकेतु (सं० पु०) वर्षस्य वृष्टेः केतुरिव सति वर्षे भूरिश उत्पन्नत्वादस्य तथात्वं। १ रक्त पुनर्नवा, लाल गदहपूरना। २ अलर्कवंशीय केतुमालका पुत्र। (हरिवंश ३२।४०)

वर्षकोष (सं० पु०) वर्षस्य वत्सरस्य कोष इव सर्व-वर्षाज्ञानवत्वात् तथात्वमस्य। १ दैवज्ञ, ज्योतिषी। २ मास।

वर्षगांठ (हिं० स्त्री०) वह कृत्य जो किसी पुरुषके जन्म-दिन पर किया जाता है। बरसगांठ देखो।

वर्षगिरि (सं० पु०) वर्ष पर्वत। वर्ष शब्द देखो।

वर्षघ्न (सं० पु०) १ ग्रहोंका वह योग जिससे वर्षा नष्ट हो जाती है। २ पवन।

वर्षज (सं० त्रि०) वर्षात् जातमिति जन ड। १ वृष्टिजात। २ वत्सरजात, जम्बूद्वीपजात। ३ द्वीपांशजात। ४ मेघ-जात।

वर्षण (सं० क्ली०) वृष ल्युट्। १ वृष्टि, बरसना। २ वर्षो-पल।

वर्षणि (सं० स्त्री०) वृष-अनि। १ वर्त्तन। २ कृति। ३ क्रतु। ४ वर्षण, बरसना।

वर्षधर (सं० पु०) १ मेघ, बादल। २ अन्तःपुररक्षक, नपुं-सक, खोजा।

वर्षधर्ष (सं० पु०) अन्तःपुर-रक्षक, खोजा।

वर्षधार (सं० पु०) नागासुरभेद।

वर्षधाराधर (सं० पु०) मेघ, बादल।

वर्षनिर्णिज् (सं० त्रि०) वर्षणकारी, वर्षा करनेवाला। 'निर्णिक्शब्दो रूपवाची निर्णिग्वव्रिरिति तन्नामसु पाठात्, वर्षणं रूपं स्वभावो येषां ते वर्षनिर्णिजो वर्षकाः।' (ऋक् १।२६।४ सायण)

वर्षप (सं० पु०) वर्षपति, वर्षके अधिपति ग्रह।

वर्षपति (सं० पु०) वर्षस्य पतिः। १ वर्षके अधिपति। वर्षप्रवेश होने पर कोई न कोई ग्रह उस वर्षका अधिपति या राजा माना जाता है। किस ग्रहके आधि-पत्यमें कौन वर्ष कैसा फलप्रद होगा, इसका विस्तृत विवरण वर्षाधिप शब्दमें देखो। २ वर्षाधिपति राजगण। पृथ्वी सात द्वीपोंमें विभक्त है। इन सब द्वीपोंका भू-विभाग भिन्न भिन्न नामोंसे बहुत वर्षों से परिचित है तथा इन सब वर्षों के अधिपति वर्षपति कहलाते हैं। वर्ष देखो।

वर्षपद (सं० क्ली०) पञ्जिका।

वर्षपर्वत (सं० पु०) वर्षाणां भारतादीनां विभाजकः पर्वतः, मध्यपदलोपी समासः। वर्षविभाजक गिरि।

वर्षपाकिन् (सं० पु०) वर्षे वर्षाकाले पाकोऽस्यास्तीति वर्षपाक इनि। आम्रातक, आमड़ा।

वर्षपुरुष (सं० पु०) पृथ्वीको यावतीय वर्षवासी विभिन्न श्रेणीकी प्रजा।
(भागवत ५ स्कन्ध, १८, २४, २६, २० और २२ अध्याय)

वर्षपुष्प (सं० पु०) एक व्यक्तिका नाम। (संस्कारकौ०)

वर्षपुष्पा (सं० स्त्री०) वर्षे वर्षणकाले पुष्पं यस्याः। सहदेवी लता। विस्तृत विवरण सहदेवी शब्दमें देखो।

वर्षप्रवेश (सं० पु०) वर्षस्य प्रवेशः। नीलकण्ठताजिक-के अनुसार एक गणना। इस गणनाके द्वारा वर्षका प्रवेश स्थिर किया जाता। जातकने जिस लग्नमें जन्म लिया है, दूसरे वर्ष अब उसका वर्ष पूरा हो कर नये वर्षका आरम्भ हुआ, यह इसके द्वारा सहजमें जाना जाता है।

वर्षप्रवेश द्वारा जातकके वर्षका शुभाशुभ फल निर्णय किया जाता है, वर्षप्रवेश लग्न स्थिर करके बारह महीनों-मेंसे किस महीनेमें शुभाशुभ क्या फल होगा, यह इसके द्वारा अच्छी तरह बोध होता है। ताजिकमें वर्षप्रवेश-की प्रणाली इस प्रकार दी हुई है।

जन्मके समय रवि जिस राशिके जितने अंशोंमें अवस्थिति करते हैं, पुनः रवि जिस समय उस राशिके

करके अपने एक पुत्रको एक एक वर्षका अधिपति बनाया। उनके सातों पुत्रोंके नामानुसार ही उन सातों वर्षोंका नामकरण हुआ। यथा—शिव, यवस, सुभद्र, शान्त, क्षेम, अमृत तथा अभय। इन सातों वर्षोंमें भी यद्यपि बहुतसी नदनदियां तथा पर्वतश्रेणियां हैं तथा सात नदियां एवं सात पर्वत ही यहां विख्यात हैं। उन सात नदियोंके नाम—अरुणा, नृम्णा, आङ्गिरसी, सावित्री, सुप्रभाता, ऋतम्भरा तथा सत्यम्भरा। यहांके उन सातों सीमापर्वतोंके नाम—वज्रकूट, मणिकूट, इन्द्रसेन, ज्योतिष्मान, सुवर्ण, हिरण्यष्ठीव एवं मेघमाल। इन सब वर्षोंके अधिवासी त्रिवेदमूर्ति सूर्यकी उपासना करते हैं।

शाल्मलद्वीपके अधिपति थे प्रियव्रतात्मज यज्ञबाहु। उन्होंने इस द्वीपको अपने सातों पुत्रोंके बीच सात वर्षोंमें विभक्त करके बांट दिया। उन पुत्रोंके नामानुसार ही इन सातों वर्षोंका नामकरण हुआ। उन सातों वर्षोंके नाम—सुरोचन, सौमनस्य, रमणक, देववर्ष, पारिभद्र, आप्यायन तथा अभिज्ञात। इन सातों वर्षोंके सात प्रधान सीमापर्वतोंके नाम—सुरस, शतशृङ्ग, वामदेव, कुन्द, कुमुद, पुष्पवर्ष एवं सहस्रश्रुति। सात प्रधान नदियोंके नाम—अनुमति, सिनीवाली, सरस्वती, कुहू, रजनी, नन्दा एवं राका। इन वर्षवासी लोग श्रुतिधर, वीर्यधर, वसुन्धर एवं इषुन्धर नामक चार वर्णोंमें विभक्त हैं। ये लोग वेदमय सोमदेवकी उपासना करते हैं।

कुशद्वीप सुरोदसागरके बहिर्भागमें है। यह पूर्वोक्त द्वीपसे अपेक्षा दो गुना बड़ा है। प्रियव्रतके पुत्र हिरण्यरेता कुशद्वीपके राजा थे। उन्होंने अपने अधिकृत द्वीपका सात भाग करके अपने सातों पुत्रोंमें बांट दिया इन सातों पुत्रोंके नामसे ही ये सातों वर्ष प्रसिद्ध हैं। यथा—वसु, वसुदान, दृढ़रुचि, नाभिगुप्त, सत्यव्रत, विप्रनाम तथा देवनाम। इन सातों वर्षोंमें सात पर्वत एवं सात नदियां प्रसिद्ध हैं। इन वर्षोंके अधिवासी कुशल, कोविद, अभियुक्त तथा कुलक प्रभृति नामसे पुकारे जाते हैं। ये लोग अपने अपने कार्यकौशलसे अग्निदेवकी उपासना करते हैं।

क्रौञ्चद्वीपके अधिपति प्रियव्रत-पुत्र घृतपृष्ठ थे। उन्होंने इस द्वीपको अपने सातों पुत्रोंके नामसे सात वर्षोंमें विभक्त कर दिया। ये सातों पुत्र इन सातों वर्षोंके अधिपति हुए। उन वर्षोंके नाम—आम, मधुरुह, मेघपृष्ठ, सुधामा, भ्राजिष्ठ, लोहितार्ण तथा वनस्पति। [redacted] सातों वर्षोंके मध्य सात प्रसिद्ध पर्वत तथा नदियां हैं। इन वर्षके अधिवासी पुरुष, ऋषभ, द्रविण तथा देवक इन चार वर्णोंमें विभक्त हैं।

शाकद्वीपके राजा प्रियव्रतके पुत्र मेधातिथि थे। इस द्वीपका विस्तार ३२ लाख योजन है। मेधातिथिने इस द्वीपको सात वर्षोंमें विभक्त कर अपने सातों पुत्रोंके बीच बांट दिया। उन सातों पुत्रोंके नामानुसार उन सातों वर्षोंके नाम यथाक्रमसे पुरोजव, मनोजव, वेपमान, धूम्रानीक, चित्ररेफ, बहुरूप तथा विश्वाधार हुए। इन सातों वर्षोंमें भी सात सीमा पर्वत एवं सात प्रसिद्ध नदियां हैं। उक्त वर्षवासी लोग ऋतव्रत, सत्यव्रत, दानव्रत तथा अनुव्रत इन चारों वर्णोंमें विभक्त हैं।

पुष्करद्वीपके अधिपति प्रियव्रतके पुत्र वीतिहोत्र थे। उनके रमणक तथा धातकि नामक दो पुत्र हुए। वीतिहोत्र राजाने इस द्वीपको दो वर्षोंमें विभक्त करके अपने दोनों पुत्रको वहांके अधिपति नियुक्त किया।

(भागवत ५।१।२।१६।१९ तथा २० अ०)

पृथ्वीके अवस्थान एवं विभागोंका संक्षिप्त वर्णन भागवतके मतानुसार किया गया। मार्कण्डेय, वराह, वामन, कूर्म प्रभृति यावतीय पुराणग्रन्थोंमें ही कुछ विस्तार पूर्वक वर्षविवरण देखा जाता है। विस्तार हो जानेके भयसे वे सभी बातें यहां वर्णन नहीं की गईं।

वर्षतीति वृष अच्। ५ मेघ, बादल। (त्रि०) ६ वर्षकमात्र। ७ वत्सर। प्रभवादि ६० संवत्सरोंका विवरण एवं उन वत्सरोंमें पूज्य या प्रभावके देवताओंके नामादि।

संवत्सर शब्दमें देखो।

वर्षक (सं० त्रि०) १ वर्षणशील, बरसनेवाला। २ [illegible]

वर्षंकर (सं० पु०) १ मेघ, बादल। (त्रि०) २ वृष्टिकारी, वर्षा करनेवाला।

फलको पलके स्थानमें रखे। उसके बाद इन सब वारों आदिके साथ जन्मवार आदि जोड़ने होसे उस उस अंक द्वारा वर्षप्रवेशके वार आदि निकलते हैं।

जो कई नियम दिये गये, उन्हीं द्वारा वर्षप्रवेशकी गणना की जाती है।

नीचे एक तालिका दी गई है, इसके देखनेसे सुगमतासे ही विना गणना किये वर्षप्रवेशका वार, दण्ड आदि आना जायगा।

वयस	वार	दण्ड	पल	विपल	वयस	वार	दण्ड	पल
१	१	१५	३१	३०	१०	५	३५	१५
२	२	३१	३	०	२०	४	१०	३०
३	३	४६	३४	३०	३०	२	४५	४५
४	५	२	६	०	४०	१	२१	०
५	६	१७	३७	३०	५०	६	५६	१५
६	७	३३	९	०	६०	५	३१	३०
७	९	४८	४०	३०	७०	४	६	४५
८	३	४	१२	०	८०	१	४२	०
९	४	१९	४३	३०	९०	१	१७	१५
					१०२	६	५२	४०

उल्लिखित तालिकामें वर्षके अंकके संलग्नमें जो वार और दण्ड आदि लिखा है, उसमें जन्मवार और दण्ड आदि जोड़नेसे वर्षप्रवेशका वार और दण्ड आदि निकल जायगा। १० और २०, २० और ३०, ३० और ४०, इत्यादि वर्षोंके मध्य यथाक्रमसे १०, २०, ३० इत्यादि वर्षके संलग्नमें जो अंक है, उसमें १, २, ३ इत्यादि वर्षका संलग्न अंक तथा जन्मवार और दण्डादि जोड़नेसे अभीष्ट वयसका वर्षप्रवेशवार और दण्डादि होगा। इस हिसाबसे यह कहना है, कि कभी कभी जन्मकी तारीखके पहले और बादके दिन वर्षप्रवेश हुआ करता है।

उक्त प्रणालीके अनुसार जब वर्षप्रवेशका वार और दण्डादि निर्द्धारित हो जाय, तब यह समय अवलम्बनपूर्वक जन्मपत्रिकाके समान एक वर्षपत्रिका बना कर उसमें वर्षलग्न और तात्कालिक ग्रहस्फुट संस्थापन करें। अन्तमें जन्मकालसे जातलग्नमें जितना अंतर था, वर्षप्रवेशकालमें वृहस्पतिसे उक्त स्थान सञ्चालन करके उतना ही अंतर रखे। इसका कारण यह है, कि वृहस्पति जीवकारक है, इसलिये उसका दूसरा एक नाम जीव तथा मानवके जन्म लग्नके ऊपर उसकी ऐसी आश्चर्य आकर्षण शक्ति है, कि जहां कहीं वह हट क्यों न जाय, यह लग्न उसका अनुवर्त्ती हो कर रहेगा। सुतरां प्रति वत्सर वृहस्पति जिस प्रकार एक राशि करके हटता है, जन्मलग्न भी उसी प्रकार एक राशिसे हट कर दूसरी राशिमें चला जाता है तथा यावज्जीवन काल तक इसी तरह दोनोंको समदूरता कायम रहती है। किन्तु वृहस्पतिकी कभी शीघ्र और कभी वक्रगति होती है; अतएव सूक्ष्मरूपसे गणना किये जाने पर जन्मकालमें वृहस्पतिकी स्फुट राशि आदिसे वाम या दक्षिणावर्त्तके जन्मलग्नका जितना अंतर था, वर्षप्रवेशकालमें वृहस्पतिकी स्फुट राशि आदि निर्णय करके उससे जातलग्न हटा कर उतना अंतर संस्थापन करें तथा इस सञ्चालित लग्नमें शुभाशुभ ग्रहके योग या दृष्टिके अनुसार वर्षफलका विचार करना होगा। वृहस्पतिके स्फुटके अभावमें जन्मकालमें वृहस्पतिसे वाम या दक्षिणावर्त्तके जन्मलग्नका जितना अंतर था, वर्षप्रवेशकालमें वृहस्पतिसे यह उतनी ही राशि अंतर रखे अथवा वर्षप्रवेशकालमें जितना वयस होगा, जन्मलग्न उतनी ही राशि हटा करके अतीत वयसका अङ्क जिस राशिमें शेष होगा उसके बादकी राशिमें उसे रखे अर्थात् एक वर्ष अतीत हो कर दूसरे वर्षमें पदार्पण करनेसे जन्मलग्नसे दूसरी राशिमें, दो वर्ष बीत कर तीसरे वर्षमें पैर रखनेसे जन्मलग्नसे तीसरी राशिमें, इस प्रकार नियमपूर्वक जन्मलग्नका संचार हुआ करता है। किन्तु इस भांति स्थूल गणनासे जब वर्षप्रवेशके पहले वृहस्पति अतिचारी हो कर दूसरी राशिमें किंवा वक्र गतिसे पहली राशिमें जाता है, तब गणनाके व्यतिक्रम होनेकी सम्भावना होती है। इस प्रकार कहे गये संचालित जन्मलग्नको मुन्था कहते हैं।

उनमें अंशोंमें आगमन करते हैं—वही समय वर्षप्रवेश समय है। रवि स्फुटस्थिर करके भी वर्षप्रवेशका समय निर्णय किया जाता है, किन्तु यह अति आयाससाध्य है। इस रविस्फुट द्वारा वर्षप्रवेशका समय स्थिर करनेसे बहुत सहजमें समय स्थिर होता है।

ग्रहोंके गोचरफलका जो तारतम्य है, वह प्रतिवत्सर वर्षप्रवेशकालीन लग्न और ग्रहोंकी स्थिति द्वारा निरूपण किया जाता है। प्रत्येक व्यक्तिके जन्म मासमें नया वर्ष आरम्भ होता है। साधारणतः ३६५ दिनोंमें एक सौर वत्सर लिया जाता है, किन्तु यथार्थ सौर वत्सर उसकी अपेक्षा और भी १५ दण्ड, ३१ पल, ३१ विपल, २४ अनुपल अधिक होता है। जिस दिन वर्ष आरम्भ होता है, उसके दूसरे दिन दूसरा वर्ष होता है। अतएव जन्म दिनसे जितना वर्ष बीतेगा, उससे १ दिन, १५ दण्ड, ३१ पल, ३१ विपल २४ अनुपल गुणा करे तथा उस गुणनफलमें जन्मदिन और दण्डादि जोड़ दे। इस प्रकार जो योगफल होगा, वही वर्षप्रवेशका दिन और दण्डादि जानना होगा। उक्त रूपसे योग करनेसे यदि दिनका अङ्क सातसे अधिक हो, तो उसमें ७ घटा दे। घटा कर अगर १ बाकी बचे तो रविवार और यदि २ बाकी बचे, तो सोमवार समझना होगा।

जिसका जिस वर्षमें वर्षप्रवेश करना होगा, उसका उस वर्षके पहले जितना वर्ष बीत गया है उसमें अपना चौथाई जोड़ कर एक जगह रखे। पीछे पुनः बीते हुए वर्षको २१से गुणा करके गुणनफलको ४०से भाग दे, जो भागफल होगा उसे पहलेके रखे अंकोंमें जोड़ दे। इस प्रकार जोड़नेसे जो उत्तर होगा उसका वार, दण्ड और पलको विभिन्न कर उसमें जन्मवार, दण्ड और पल योग कर दे। ऐसा करनेसे जो वार, जितना दण्ड और जितना पल होगा, जन्मदिनमें उसी वारमें उतना ही दण्ड और उतना ही पल समयमें वर्षप्रवेश हुआ है, स्थिर करना होगा।

दिनका अंक यदि सातसे अधिक हो, तो उसको ७ से भाग दे कर अवशिष्ट अंक लेना होगा। इस अंकसे १ रविवार २ सोमवार ३ मंगलवार इत्यादि जानना होगा। वर्षप्रवेशकी गणना करनेके बहुत-से नियम हैं। नीचे लिखी प्रणाली द्वारा भी वर्षप्रवेश स्थिर किया जाता है।

दूसरा तरीका—पहले १, १५, ३१ और ३० को गत वर्षाङ्क द्वारा गुणा करके चार जगह रखना होगा। इस तरह गुणा करनेसे जो चार गुणनफल होगा, उसके पहले अंकका वार, दूसरेको दण्ड, तीसरेको पल और चौथे अंकको विपल समझ कर उसके साथ जन्मवार, दण्डपल, और विपल जोड़ दे। इसके बाद विपलके अंकको ६०से भाग दे कर भागफलको पलमें जोड़ दें। जो अंक बचता जाय यथास्थान रख दे। इस भांति फिर पलके अङ्कको ६०से भाग दे कर भागफलको दण्डाङ्कमें और दण्डाङ्कको ६० से भाग करके लब्धांकको वारांकमें जोड़ कर बचा हुआ अंक पहलेकी तरह यथास्थान पर रख दे।

इस तरह गणना द्वारा जो अवशिष्ट अंक रहेगा, उससे वर्षप्रवेशका वार, दंड, पल और विपल जाना जा सकेगा।

अन्य प्रकार—५, २ और ६ को गत वर्षाङ्कसे गुणा करके जो तीन गुणनफल होगा, उसे तीन जगह रख दे। पीछे पहले अंकको वार, दूसरेको दंड और तीसरे अंकको पल जान कर उसमें जन्मवार, दंड और पल जोड़ दे। तदनन्तर पलके अंकको चारसे भाग करना होगा और भागफलको दण्डमें तथा दण्डको ४से भाग दे कर भागफलको वारमें जोड़ दे और वारांकको ७ से भाग देना होगा। अवशिष्ट अंक यथाक्रमसे वर्षप्रवेशका वार, दंड और पल होगा।

अन्य विधि—गत वर्षाङ्कको १००३से गुणा करके उस गुणनफलको ८०० से भाग देनेसे जो भागफल होगा वही वर्षप्रवेशका वार, अवशिष्ट अंकको ६० से गुणा करके पुनः ८०० से भाग देनेसे जो भागफल होगा वही दण्ड होगा। इस प्रकार प्रणालीसे पल आदि भी जाना जाता है। पीछे उसमें जन्मवार, दण्ड और पल जोड़नेसे वर्षप्रवेशका वार, दण्ड और पल आदि निकाला जाता है।

नीचे लिखे तरीकेसे भी वर्षप्रवेश स्थिर किया जाता है। गत वर्षाङ्कमें उसका चौथाई योग करके वारके स्थानमें तथा इस गत वर्षाङ्कका ४० से भाग करके भागफलको दण्डके स्थानमें और ६०से गुणा करके गुणन-

फलको पलके स्थानमें रखे। उसके बाद इन सब वारों आदिके साथ जन्मवार आदि जोड़ने होसे उस उस अंक द्वारा वर्षप्रवेशके वार आदि निकलते हैं।

जो कई नियम दिये गये, उन्हीं द्वारा वर्षप्रवेशकी गणना की जाती है।

नीचे एक तालिका दी गई है, इसके देखनेसे सुगमतासे ही बिना गणना किये वर्षप्रवेशका वार, दण्ड आदि जाना जायगा।

वयस	वार	दण्ड	पल	विपल	वयस	वार	दण्ड	पल
१	१	१५	३१	३०	१०	५	३५	१५
२	२	३१	३	०	२०	४	१०	३०
३	३	४६	३४	३०	३०	२	४५	४५
४	५	२	६	०	४०	१	२१	०
५	६	१७	३७	३०	५०	६	५६	१५
६	७	३३	९	०	६०	५	३१	३०
७	१	४८	४०	३०	७०	४	६	४५
८	३	४	१२	०	८०	१	४२	०
९	४	१९	४३	३०	९०	१	१७	१५
					१०२	६	५२	४०

उल्लिखित तालिकामें वर्षके अंकके संलग्नमें जो वार और दण्ड आदि लिखा है, उसमें जन्मवार और दण्ड आदि जोड़नेसे वर्षप्रवेशका वार और दण्ड आदि निकल जायगा। १० और २०, २० और ३०, ३० और ४०, इत्यादि वर्षोंके मध्य यथाक्रमसे १०, २०, ३० इत्यादि वर्षके संलग्नमें जो अंक हैं, उसमें १, २, ३ इत्यादि वर्षका संलग्न अंक तथा जन्मवार और दण्डादि जोड़नेसे अभीष्ट वयसका वर्षप्रवेशवार और दण्डादि होगा। इस हिसाबसे यह कहना है, कि कभी कभी जन्मकी तारीखके पहले और बादके दिन वर्षप्रवेश हुआ करता है।

उक्त प्रणालीके अनुसार जब वर्षप्रवेशका वार और दण्डादि निर्द्धारित हो जाय, तब वह समय अवलम्बनपूर्वक जन्मपत्रिकाके समान एक वर्षपत्रिका बना कर उसमें वर्षलग्न और तात्कालिक ग्रहस्फुट संस्थापन करें। अन्तमें जन्मकालसे जातलग्नमें जितना अंतर था, वर्षप्रवेशकालमें वृहस्पतिसे उक्त स्थान सञ्चालन करके उतना ही अंतर रखे। इसका कारण यह है, कि वृहस्पति जीवकारक है, इसलिये उसका दूसरा एक नाम जीव तथा मानवके जन्म लग्नके ऊपर उसकी ऐसी आश्चर्य आकर्षण शक्ति है, कि जहां कहीं वह हट क्यों न जाय, वह लग्न उसका अनुवर्त्ती हो कर रहेगा; सुतरां प्रति वत्सर वृहस्पति जिस प्रकार एक राशि करके हटता है, जन्मलग्न भी उसी प्रकार एक राशिसे हट कर दूसरी राशिमें चला जाता है तथा आजीवन काल तक इसी तरह दोनोंको समदूरता कायम रहती है। किन्तु वृहस्पतिकी कभी शीघ्र और कभी वक्रगति होती है; अतएव सूक्ष्मरूपसे गणना किये जाने पर जन्मकालमें वृहस्पतिकी स्फुट राशि आदिसे वाम या दक्षिणावर्त्तके जन्मलग्नका जितना अंतर था, वर्षप्रवेशकालमें वृहस्पतिकी स्फुट राशि आदि निर्णय करके उससे जातलग्न हटा कर उतना अंतर संस्थापन करे तथा इस सञ्चालित लग्नमें शुभाशुभ ग्रहके योग या दृष्टिके अनुसार वर्षफलका विचार करना होगा। वृहस्पतिके स्फुटके अभावमें जन्मकालमें वृहस्पतिसे वाम या दक्षिणावर्त्तके जन्मलग्नका जितना अंतर था, वर्षप्रवेशकालमें वृहस्पतिसे वह उतनी ही राशि अंतर रखे अथवा वर्षप्रवेशकालमें जितना वयस होगा, जन्मलग्न उतनी ही राशि हटा करके अतीत वयसका अङ्क जिस राशिमें शेष होगा उसके बादकी राशिमें उसे रखे अर्थात् एक वर्ष अतीत हो कर दूसरे वर्षमें पदार्पण करनेसे जन्मलग्नसे दूसरी राशिमें, दो वर्ष बीत कर तीसरे वर्षमें पैर रखनेसे जन्मलग्नसे तीसरी राशिमें, इस प्रकार नियमपूर्वक जन्मलग्नका संचार हुआ करता है। किन्तु इस भांति स्थूल गणनासे जब वर्षप्रवेशके पहले वृहस्पति अतिचारी हो कर दूसरी राशिमें किंवा वक्र गतिसे पहली राशिमें जाता है, तब गणनाके व्यतिक्रम होनेकी सम्भावना होती है। इस प्रकार कहे गये संचालित जन्मलग्नको मुन्था कहते हैं।

एक उदाहरण दिया जाता है। उदाहरण १७५३ शकको ७वीं आश्विन बृहस्पतिवार १७।३५ पलके समय धनुर्लग्नमें किसी व्यक्तिका जन्म हुआ। १८०४ शककी ७वीं आश्विनको ५१ वर्ष अतिक्रम कर जिस व्यक्तिने ५२ वर्षमें पदार्पण किया था, वर्षतालिका इस अनुसार ५१ वर्षमें ध्रुव—

	वार,	दण्ड,	पल,	विपल,	अनुपल,
५० वर्ष—	६।	५६।	१५।	१०।	०
१ वर्ष—	१।	१५।	३१।	३१।	२४
५१ वर्ष—	८।	११।	४६।	४१।	२४

होता है।

उसमें उसका जन्मवार और दण्डादि ५।१७।३५ जोड़नेसे १३ वार, २९ दण्ड, २१ पल, ४१ विपल, २४ अनुपल होता है। किन्तु वारका अंक सातसे अधिक है, इसलिये इस अंकको ७से भाग दिये जाने पर ६ बाकी बचता है। सुतरां ७वीं आश्विन शुक्रवार २९ दण्ड, २१ पल, ४१ विपल, २४ अनुपल समयमें उसका वर्षप्रवेश हुआ था। इस समय गणना करके देखनेसे पता चलता है, कि उस समय मीन राशिका पूर्व ओर उदय हुआ है, अतएव यही मीनराशि वर्षलग्न है।

पूर्व ही कह आये हैं, कि उक्त समयमें इस व्यक्तिने ५१ वर्ष पार कर ५२ वर्षमें कदम बढ़ाया था। उसका जन्मलग्न धनु, ५१ राशि हटानेसे शेष कुम्भ होता है तथा उसके बादकी राशि मीन अतएव ५२ वर्षके आरम्भमें पूर्वोक्त नियमानुसार मीन राशिमें उसका जन्मलग्न संचार हुआ था। किन्तु १८०४ शकाब्दके आश्विन महीनेमें बृहस्पति अतिचारी हो कर मिथुन राशिमें था, इसलिये इस भांति जन्मलग्न संचालन करनेसे गणनामें व्यतिक्रम होता है। यहां सूक्ष्म गणनाकी आवश्यकता है। इस व्यक्तिके जन्मकालमें बृहस्पति धनुके प्रायः २२ अंशमें अवस्थित था तथा उसका जन्मलग्नस्फुट ८।११।४० अर्थात् बृहस्पतिसे हरिनारायणके जन्मलग्नका प्रायः ४० अंशका अन्तर था। उसके वर्षप्रवेशकालमें बृहस्पतिस्फुट २।८।१० था, अतएव यहांसे हरिनारायणके ४० अंश आगेमें अर्थात् मेषराशिके २७ अंशमें जन्मलग्न संचालित था।

इस तरह प्रतिवत्सर जन्मलग्नका संचार होता है, इसलिये जन्मराशिसे ग्रहयोगादिका फल विचार किया जाता है। आगे इस संचालित लग्न और वर्षलग्नसे जैसे पारस्परिक शुभाशुभ फल निर्णीत होता है, वह बहुत संक्षेपमें नीचे लिखा जाता है।

ग्रहगण जन्मकालमें शुभ हो कर वर्षप्रवेशकालमें भी शुभ होनेसे शुभफलकी अधिकता होती है; किन्तु जन्मकालमें शुभ हो कर वर्षप्रवेशकालमें अशुभ होनेसे वर्षके प्रथमार्द्धमें शुभ तथा शेषार्द्धमें अशुभ होता है और यदि जन्मकालमें अशुभ हो कर वर्षप्रवेशकालमें शुभ होता है, तो वर्षके प्रथमार्द्धमें अशुभ तथा शेषार्द्धमें शुभ हुआ करता है।

वर्षलग्न, जन्मलग्न, संचालित जन्मलग्न और जन्मराशिमें शुभग्रहका योग या दृष्टि रहनेसे अथवा उनके अधिपति ग्रहगण शुभग्रहगत हो कर शुभयुक्त या दृष्ट होनेसे उस वर्षमें तरह तरहका सुख होता है।

जन्मलग्न या जन्मराशिसे अष्टम राशिमें अथवा जन्मकालमें जिस राशिमें शनि किंवा राहु था, उस राशिमें, वर्षलग्न किंवा संचालित जन्मलग्न होनेसे उस वर्षमें विशेषतः इस लग्नमें यदि पापग्रहका योग या दृष्टि रहे तो मानव पीड़ायुक्त और विपद्ग्रस्त होता है।

जन्मकालीन अष्टमस्थ पापग्रह वर्षलग्नमें रहनेसे विशेष अशुभफल होता है। यदि वर्षप्रवेशके थोड़े दिन पहले या पीछे पापग्रहगण वक्री हों तथा वर्षलग्नमें पापग्रहका योग या दृष्टि रहे, तो उस वर्षमें नाना प्रकारका कष्ट और व्याधि होती है।

वर्षप्रवेशकालमें चन्द्र जन्मराशिमें समागत-शुभ हो कर वर्षलग्नके चतुर्थ, दश, सप्तम, अष्टम किंवा द्वादश स्थानको छोड़ अन्य स्थानमें अवस्थान करनेसे तथा उसके प्रति शुभग्रहकी दृष्टि रहनेसे उस वर्ष विविध शुभफल होता है। अन्यथा विपरीत फल होता है। वर्षलग्नाधिपति, जन्मलग्नाधिपति, संचालित जन्मलग्नाधिपति और जन्मकालीन चन्द्रमा यदि वर्षप्रवेशकालमें नीचस्थ अथवा दुर्बल होनेसे रोग, शोक और अर्थनाश होता है।

वर्षप्रवेशकालमें चतुर्थस्थ शुभग्रहयुक्त या दृष्ट होनेसे धनलाभ, किन्तु पापग्रहयुक्त या दृष्ट होनेसे धननाश होता

है। जन्म और वर्ष लग्नमें चतुर्थ, षष्ठ, सप्तम, अष्टम, किंवा द्वादशमें संचालित लग्न होनेसे अथवा उसमें पापग्रहका योग या दृष्टि रहनेसे अशुभ होता है।

जन्म और वर्ष इन दोनों लग्नोंमें उक्त स्थानको छोड़ अन्य किसी गृहमें जन्मलग्न संचालित होनेसे शुभफलका आधिक्य होता है। किन्तु यह संचालित लग्न जन्मलग्नसे शुभभावस्थ हो कर वर्षलग्नसे अशुभ गृहगत होनेसे वर्षके प्रथमार्द्धमें शुभ एवं शेषार्द्धमें अशुभ होता है और यदि वह जन्मलग्नसे अशुभभावस्थ हो कर वर्षलग्नसे शुभगृहगत हो, तो वर्षके प्रथमार्द्धमें अशुभ एवं शेषार्द्धमें शुभ होता है। संचालित जन्मलग्न चतुर्थ किंवा सप्तम गृहगत हो कर यदि कोई शुभ ग्रहयुक्त हो, तो पूर्वोक्तभावसे अशुभ न हो कर वर्ष शुभ होता है। यह लग्न रवियुक्त होने पर भी शुभफललाभ होता है।

वर्षलग्नमें जन्मलग्नका संचार होनेसे सम्मान, अपत्य, राजप्रसाद और धनलाभ, प्रतापकी वृद्धि, शरीरकी पुष्टि तथा शत्रुका नाश; द्वितीय स्थानमें होनेसे सम्मान, यश, अर्थ, बन्धु, सुख एवं स्वास्थ्य लाभ; तृतीय स्थानमें होनेसे अपने उत्साहसे धन, यश और सुखलाभ, धर्मकी वृद्धि, शरीरकी पुष्टि एवं राजसम्मान लाभ; चतुर्थ स्थानमें होनेसे पीड़ा, शत्रुभय, स्वजनोंके साथ कलह, मनस्ताप, अपवाद और मनःकष्ट; पञ्चम स्थानमें होनेसे आत्मज, धन और राजप्रसाद लाभ, प्रतापवृद्धि तथा धर्मोन्नति; षष्ठ स्थानमें होनेसे शत्रुवृद्धि, रोग, चोर या राजभय, कार्य और अर्थनाश तथा दुर्बुद्धिवशतः अनुताप; सप्तम स्थानमें होनेसे पुत्र, कलत्र, मित्र और अर्थनाश, शत्रुवृद्धि, कलह, दूरयात्रा एवं उत्साहभङ्ग; अष्टम स्थानमें होनेसे शत्रुभय, धर्म और अर्थक्षय, बलहानि, रोग, शोक, विपद् या मृत्यु; नवम स्थानमें होनेसे अर्थप्राप्ति, धर्मोन्नति, पुत्र, कलत्र, बन्धु, यशोलाभ एवं भाग्योदय; दशम स्थानमें होनेसे सौभाग्य, पद और कीर्तिलाभ तथा पराक्रमकी वृद्धि; एकादश स्थानमें होनेसे मनस्तुष्टि, स्वास्थ्य, सम्मित्र, पुत्र, राजाश्रय, हर्षवृद्धि, सौभाग्य और वाहनादि लाभ और द्वादश स्थानमें होनेसे व्ययाधिक्य, ऋण या कारावास, रोग, सज्जनके साथ कलह और गुप्त शत्रुकी वृद्धि होती है; किन्तु शत्रुसे अर्थलाभ होनेकी सम्भावना होती है।

जन्मकालमें ग्रहगण तन्वादि द्वादश भावस्थ हो कर जैसा फल उत्पन्न करता है, वर्षप्रवेशकालमें भी वह सब वैसा ही फल देता है। अर्थात् शुभग्रहोंके केन्द्रमें या त्रिकोणमें रवि और मङ्गलके उपचयमें एवं शनिके तृतीय षष्ठ, एकादश और द्वादश स्थानमें रहनेसे शुभफलप्रद होता है।

वर्षलग्नसे आरम्भ करके द्वादश राशिके द्वारा द्वादश मासका फल स्थिर होता है। जो जो ग्रह वर्षलग्नमें रहता अथवा वर्षलग्नको देखता है, प्रथम मासमें उसका दिया हुआ फल भोग होता है। इस प्रकार जो जो ग्रह द्वितीय, तृतीय इत्यादि गृहमें रहता है अथवा उसी सब गृहको देखता है, द्वितीय, तृतीय इत्यादि मासमें उन सब ग्रहोंका दिया हुआ फल हुआ करता है। जिस गृहमें किसी ग्रहका योग या दृष्टि नहीं रहता उस मासमें उसी गृहाधिपतिकी स्थिति और शुभाशुभ सम्बन्ध अनुयायी फल होता है।

वर्षलग्नसे द्वादश गृहके जिस जिस गृहमें मङ्गल और शनि रहता है, उसी संख्यक मासमें पीड़ा या मनःकष्ट होता है। जन्मकालीन चन्द्रसे ग्रहदत्त शुभाशुभ फलका निरूपण करके देखना होगा, कि कौन कौन वर्ष रिष्टदायक है। उनमेंसे यदि किसी वर्षमें वर्षलग्न सञ्चालित जन्मलग्न और उसके अधिपतिगण पापयुक्त या दृष्टि किंवा अशुभ गृहगत हो, तो उस वर्ष मृत्युकी सम्भावना रहती है।

वर्षाधिपानयन वर्षप्रवेशके वर्षका अधिपति कौन ग्रह है, यह स्थिर करके फलाफलका निर्णय करना होता है। वर्षाधिप स्थिर करने आनेमें त्रिराशिपति कौन कौन ग्रह एवं उसमेंसे कौन ग्रह बलवान् है, यह निर्णय करना पड़ता है। जब दिनमें वर्षप्रवेश होता है, तब वर्षप्रवेशलग्न मेष होनेसे रवि, वृष होनेसे शुक्र, मिथुन होनेसे शनि, कर्कट होनेसे शुक्र, सिंह होनेसे वृहस्पति, कन्या होनेसे चन्द्र, तुला होनेसे बुध और वृश्चिक होनेसे मङ्गल त्रिराशिपति होता है। रात्रिमें वर्षप्रवेश होनेसे वर्षप्रवेश लग्न यदि मेष हो, तो वृहस्पति तथा वृष, वर्ष-

प्रवेश लग्न होनेसे मन्द, मिथुन होनेसे मन्द, कर्कट होनेसे मङ्गल, सिंह होनेसे रवि, कन्या होनेसे बुध, तुला होनेसे शनि एवं वृश्चिक होनेसे शुक्र त्रिराशिपति होता है।

दिन वा रातमें वर्षप्रवेश होनेसे धनुका शनि, मकरका मङ्गल, कुम्भका बृहस्पति और मीनका मन्द त्रिराशिपति होता है।

जन्मलग्नका अधिपति, वर्षप्रवेशलग्नका अधिपति, मुन्थाधिपति और त्रिराशिपति, दिनमें वर्षप्रवेश होनेसे सूर्याश्रयी राशिका अधिपति और रातमें वर्षप्रवेश होनेसे चन्द्राश्रयी राशिका अधिपति, इन पांच ग्रहों द्वारा वर्षाधिपतिका विचार करना होता है।

इन पांच ग्रहोंमें पञ्चवर्गी बल द्वारा बलवान् हो कर जो ग्रह लग्नको देखता है, वही ग्रह वर्षाधिपति होता है। जो ग्रह लग्नको नहीं देखता है, वह ग्रह वर्षाधिपति नहीं होता। उक्त पांच ग्रहोंके समान बली होनेसे जिस ग्रहकी दृष्टि अधिक होती है, वही ग्रह वर्षाधिपति होता है। उक्त पांच ग्रह तुल्यबल हो कर यदि समान दृष्टि करे, तो मुन्थाधिपति ग्रह वर्षाधिपति होता है और उक्त पांच ग्रह यदि लग्नको दृष्टि न करे, तो बलाधिक ग्रह वर्षपति होता है। इसमें किसी किसीका कहना है, कि बल और दृष्टिकी समानता और अभाव होनेसे दिनमें सूर्याश्रय राशि राशिपति और रातमें चन्द्राश्रय राशिपति वर्षाधिप होता है।

वर्षप्रवेशमें सोलह प्रकारके योग निर्दिष्ट हुए हैं। इन सब योगोंके द्वारा शुभाशुभ स्थिर किया जाता है। योगोंके नाम यथा—इक्कबालयोग, इन्दुवारयोग इत्थशालयोग, ईशराफयोग, नक्तयोग, यमयायोग, मणऊयोग, कम्बूलयोग, गैरिकम्बूलयोग, खल्लासरयोग, रद्दयोग, दुफालिकुत्थयोग, दुत्थोत्थदवीरयोग, तम्बीरयोग, कुत्थयोग, दुरुफयोग।

इन सब योगोंका विशेष विवरण नीलकण्ठीय ताजिकमें वर्णित है। यह सब योग स्थिर कर सहम स्थिर करना होता है। सहम भी ५० प्रकारका होता है। पीछे वर्षप्रवेशका फल निरूपण कर शुभाशुभ स्थिर करना होता है। वर्षप्रवेशमें वर्षकुण्डली और जन्मकुण्डली इन दोनोंको देख कर फल स्थिर करना पड़ता है, सिर्फ वर्षकुण्डली देख कर फल निश्चय करनेसे वह नहीं मिलेगा, जन्मकुण्डलीके साथ सामञ्जस्य स्थिर करके फल निरूपण करना होगा। (नीलकण्ठताजिक)

वर्षप्लावन (सं० त्रि०) अत्यधिक वृष्टिपात, बहुत जोर पानी बरसना।

वर्षप्रिय (सं० पु०) वर्षो वर्षणं प्रियं यस्य। चातक, पपीहा।

वर्षफल (सं० क्लो०) फलितज्योतिषमें जातकके अनुसार वह कुण्डली जिससे किसीके वर्ष भरके ग्रहोंके शुभाशुभ फलोंका विवरण जाना जाता है। वर्ष और जन्मपत्र देखो।

वर्षभुज् (सं० पु०) चन्द्रमण्डलपति, पृथक् पृथक् अब्दका अधिपति। (भागवत १०।८७।२८)

वर्षमर्यादागिरि (सं० पु०) वर्ष समूहका सीमापर्वत। (भागवत ५।२०।२१)

वर्षमात्र (सं० अव्य०) वत्सर वत्सर।

वर्षमेदस् (सं० पु०) वृष्टिधार। (भट्टि ।२।१४२)

वर्षवर (सं० पु०) वरतीति वर आवरको मत्, वर्षस्य रेतो वर्षणस्य वर आवरकः। षण्ढ, खोजा।

वर्षवर्धन (सं० क्लो०) वत्सरकी वृद्धि।

वर्षवृद्ध (सं० त्रि०) वयोवृद्ध, जो उमरमें बड़ा हो।

वर्षवृद्धि (सं० स्त्री०) वर्षस्य वृद्धिरात्विषयं यत्र। १ जन्मतिथि। विशेष विवरण जन्मतिथि शब्दमें देखो। २ वयोवृद्धि।

वर्षशत (सं० क्लो०) शताब्द।

वर्षशताधिक (सं० त्रि०) शताब्दसे भी अधिक।

वर्षसहस्र (सं० त्रि०) सहस्र वत्सर।

वर्षांश (सं० पु०) वर्षस्य वत्सरस्य अंशः। मास, महीना।

वर्षांशक (सं० पु०) वर्षांश देखो।

वर्षा (सं० स्त्री०) वर्षो वर्षणं सन्त्यास्याम् इति वर्ष अर्श-आदित्वादच्, टाप्, यद्वा त्रिदन्ते इति (इगुपधेति। पा ३।१।१३५) इति कः, ततष्टाप्। १ एक ऋतु। पर्याय—प्रावृट्, घनकाल, जलार्णव, मयूर, मेघागम, घनागम, घनाकर। (शब्दरत्ना०) और श्रावण मास और भाद्र इन दोनों महीनोंको वर्षाकाल कहते हैं। "नभाश्च नभस्यश्च वार्षिकावृतू" (मलमासतत्त्वधृत श्रुति) यह वर्षाकाल दक्षिणायन है, यह देवताओंकी रात्रि है।

आषाढ़ादि मास चतुष्टयात्मक कालको भी वर्षा कहते हैं। आषाढ़, श्रावण, भाद्र तथा आश्विन मास। चातुर्मास्य विधानस्थलमें आषाढ़ माससे ले कर इस व्रतका विधान है एवं ये चारों मास वर्षा ही कहलाते हैं।

भावप्रकाशमें लिखा है कि, वर्षाऋतु शीतल, विदाहपाकजनक, मन्दाग्निकारक एवं वायुवर्द्धक होता है। वर्षाकालमें पित्तकी उत्पत्ति होती है, वायु प्रबल होती है, अतएव इस वायुको शान्त करनेके लिये मधुर, अम्ल तथा लवण रसयुक्त पदार्थ विशेषरूपमें सेवन करना चाहिये। इस समय शरीर क्लिन्न हो जाता है, इस क्लिन्नताके निवारणार्थ कड़ुआ, तीता तथा कषायरसका सेवन करना चाहिये। वर्षाकालमें स्वेदकर द्रव्य सेवन तथा अंगमर्द्दन करना चाहिये। इस ऋतुमें दधि, उष्णद्रव्य, जङ्गली पशुओंके मांस, गोधूम, शालितण्डुलके अन्न, माषकलाय, कूपका जल तथा चूतफल सेवनीय हैं। पूर्वीय वायु, वृष्टि, धूम, हिम, परिश्रम, नदीके किनारे भ्रमण, दिनमें सोना, रूक्षद्रव्य तथा नित्य मैथुन ये सब वर्ज्जनीय हैं।

घृत, मधुर, कषाय तथा तिक्त रसयुक्त द्रव्य, लघुपाक द्रव्य, दुग्ध स्वच्छ तथा शुक्लवर्ण इक्षुविकार, लवण, थोड़ा जङ्गली पशुका मांस, गोधूम, जव, मूंग, शालितण्डुल, कर्पूर, रक्तचन्दन, रात्रिके प्रथम भागके चन्द्रकी ज्योत्स्ना, माल्यधारण, निर्मलवस्त्रधारण, सुहृद्पुरुषोंके साथ मधुर वार्त्तालाप, सरोवरमें जलक्रीड़ा एवं व्यायामराहित्य वर्षाके अवसान समय हितकर हैं। दधि, व्यायाम, अम्ल तथा कटु द्रव्य, उष्णद्रव्य, तीक्ष्ण द्रव्य, दिनकी निद्रा, हिम एवं धूप ये सब वर्षाके अवसान समय वर्ज्जनीय हैं।

(भावप्र०)

वाभटमें लिखा है कि, वर्षा, शरत् तथा हेमन्तकाल दक्षिणायन है, यह दिन दिन लोगोंका बल विसर्जन अर्थात् बलदान करता है, इसीलिये इसे विसर्जनकाल कहते हैं। इस समय चन्द्र बलवान तथा सूर्य हीनबल होते हैं और शीतल मेघ वृष्टि तथा वायुयोगसे पृथ्वीके अन्दरकी गर्मी शान्त होती है। इसलिये सभी द्रव्य स्नेहयुक्त होते हैं। अम्ल, लवण तथा मधुर रस प्रबल होते हैं। वर्षामें अम्ल, शरत्में लवण एवं हेमन्तमें मधुर रस प्रबल होते हैं।

वर्षाकालमें कालधर्मवश मनुष्यके पेटकी पाचनशक्ति कम हो जाती है। इससे शरीर खिन्न हो जाता है। उस समय आकाश जलभारावनत तथा जलदजालसे व्याप्त होनेके कारण सहसा शीतल तुषारसिक्त पवन, भूतलोत्थित वाष्प तथा अम्ल विपाकवारिसे एवं अग्नि मन्द होनेके कारण वात, पित्त तथा कफ प्रबल हो उठते हैं। वात, पित्त तथा कफ परस्पर एक दूसरेको दूषित करता है, जिससे पाचनशक्ति नष्ट हो जाती है। इस समय साधारणतः पाचनशक्ति बढ़ानेवाली वस्तुओंका व्यवहार करना चाहिये। इस समय शरीर शोधन करके स्नेहवस्ति, पुरातनधान्य, सुसंस्कृत मांसरस, जंगली पशुओंके मांस, मुद्गादिके जूस, पुराना मधु तथा अरिष्ट, सौवर्च्चलयुक्त वस्तु या पंचकोलचूर्ण एवं आकाश जल, कूपजल या अग्निसिद्ध जल सेवन करनेसे बहुत लाभ पहुंचता है। अत्यन्त बदलीके दिन तीक्ष्ण अम्ल, लवण तथा स्नेह सेवन, शुष्क तथा हलका भोजन एवं मधुपान करना चाहिये।

वर्षाकालमें पैदल चलना निषेध है। इस समय सुगंध सेवन तथा धूपित वसन धारण एवं वाष्पशीत शीकर वर्जित हर्म्यपृष्ठ पर वास करना अच्छा है। नदीजल, उदमन्थ (घृत प्रक्षेप किया हुआ जलसिक्त आटा द्वारा जो खाद्य वस्तु तैयार होती है, उसे उदमन्थ कहते हैं) दिवानिद्रा, परिश्रम तथा आतप सेवन वर्ज्जनीय है।

(वाभट सूत्रस्था० ३ अ०)

वर्षाकालमें इन सब वैद्यकोक्त विधियोंके अनुकरण करनेसे किसी तरहकी व्याधिका प्रकोप नहीं होता, स्वास्थ्य अच्छा रहता है।

सुश्रुतमें लिखा है कि, इस समय रात्रिदिवसके मध्य भी संवत्सरकी तरह शीत, ग्रीष्म तथा वर्षादिके समान छः ऋतुओंके लक्षण देखे जाते हैं एवं संध्या समय वर्षाऋतुके लक्षण भी स्पष्टरूपमें पाये जाते हैं। इसलिये वर्षाकालको निषिद्ध वस्तुएं सन्ध्या समय नहीं खानी चाहिये।

कविकल्पलतामें लिखा है कि, वर्षावर्णन करनेके समय शिखी, स्मय, हंसागम, पंक, कन्दल, उद्भेद,

ज्वरों, कफज्वर, पेचश, अंत्रशिल, तिल्ली तथा यकृतवृद्धि इन सबोंका प्रकोप भी अधिक होता है।

यह शब्द सदा बहुवचनान्त है। '[illegible]' इस सूत्रके अनुसार दार, असु, वर्षा ये तीन शब्द सर्वदा ही बहुवचन होते हैं। इन सब शब्दोंके आगे एकवचन या द्विवचन नहीं होता।

६ पानी बरसनेकी क्रिया या भाव, वृष्टि।

वर्षाकाल (सं० पु०) वर्षाऋतु, बरसात।

वर्षाकालीन (सं० त्रि०) वर्षासमयोपयोगी, बरसातके लायक।

वर्षागम (सं० पु०) वर्षारम्भ, वर्षा ऋतुका आगमन।

वर्षाघोष (सं० पु०) वर्षासु घोषो महान् शब्दोऽस्य। महामण्डूक।

वर्षाभू (सं० पु०) वर्षासु भवति [illegible] अभिधानात् पुंस्त्वम्। भेक, मेढक।

वर्षाभ्वी (सं० स्त्री०) वर्षासु भवति [illegible]। पुनर्नवा।

वर्षाचर (सं० त्रि०) वर्षामें विचरण करनेवाला। 'वर्षाचरोऽन्यभृतः' (भाग० १३ स०)

वर्षार्य (सं० त्रि०) वर्षाकालोद्भव पूजनीयजन्मी। (अथर्व १२।१।४०)

वर्षाति (सं० त्रि०) १ वर्षाकाल-सम्बन्धी। (पु०) २ वह रोग जो वर्षाकालमें पड़ता आता है। ३ वह रोग जो वर्षाके कारण गाय और घोड़ेको होता है।

वर्षाधिप (सं० पु०) वर्षाणामधिपः १ सम्वत्सर। २ वर्ष-समूहके अधिपति। वर्ष देखो।

३ वर्षाधिप ग्रहगण। प्रत्येक नव वर्षके बाद एक एक ग्रह अधिपति होता है। तदनुसार वर्षका फलाफल स्थिर करना होता है। इस वर्षके फलाफलके ऊपर ही पृथ्वीका मंगलामंगल निर्भर करता है।

वराहमिहिरने इस सम्बन्धमें बृहत्संहितामें लिखा है,—सूर्य जिस समय वर्षाधिपति, मासाधिपति या दिनाधिपति होते हैं, उस समय वृक्षोंके सतेज भावसे सार कम होते हैं। वनविभाग कुसुम दुर्गन्धसे पूर्ण हो रहता है, चौपायोंको अस्वाभाविक दुःख पहुंचता है, औषधियोंकी शक्ति [illegible] होते हैं। [illegible] सूर्य करनेमें व्यापक सामर्थ्य नहीं होती। ग्रीष्मकालमें भी सूर्य अपनी प्रखर किरणोंसे दिग्दिगन्तको नष्ट कर रखते हैं। दर्शनीय मेघराशिसे अधिक वर्षा नहीं होती। आकाशमें टिमटिमानेवाले तारागण, यहां तक कि, तारोंके पति चन्द्रदेव भी श्रीहीन हो जाते हैं। गौ तथा तापसी विषादमग्न होते हैं। हस्ती, अश्व, पदाति प्रभृति चतुरङ्ग वाहिनीके साथ नरपतिगण अनुचर सहचर सामन्तिकाहारमें बहुत बाण, धनुष तथा तलवार प्रभृति अस्त्र शस्त्र ले कर दैन्य ध्वंस करनेको तैयार हो जाते हैं।

चन्द्रमाके वर्षाधिप होने पर दर्शनीय मेघराशि, कृष्ण सर्प, कज्जल, भ्रमर या महिषके समान कृष्णवर्ण हो कर आकाशमण्डलको आच्छादित कर देती है। निर्मल जलसे पृथ्वी परिपूरित हो जाती है। सरोवरसमूह पद्म, उत्पल तथा कुमुद पुष्पोंसे जगमगा उठते हैं। उद्यानोंमें पुष्पवृक्षकी शाखाएं फूलोंके भारसे झुक जाती हैं, उन कुसुमोंके सौरभसे भ्रमरसमुदाय मतवाले हो कर नाना-विमिश्रित स्वरमें गान प्रारम्भ करते हैं, उनकी मधुर झंकारसे दिशाएं गूंज उठती हैं। गौ स्तनोंसे दुग्धकी धारा बहने लगती है। सुन्दरी रूपयौवनसम्पन्ना कामिनियां अत्यन्त अनुरागसे अपने पतिके साथ विहार करती हैं। पृथ्वी गोधूम, शालि, यव, इक्षु धान्य तथा [illegible]से परिपूर्ण हो कर अनेकों नगर तथा मन्दिरोंसे सुशोभित होती है, उस समय चारों ओर होमकी धूम छायी पड़ती है। नरपतिगण सदय हो कर अपनी प्रजाओंका लालन पालन करते हैं।

मंगल वर्षाधिपति होने पर वनमें अग्नि पैदा हो कर ग्राम, वन तथा नगर दग्ध करनेको उद्यत होती है। पृथ्वी पर मनुष्यगण दस्युभयसे आहत हो कर हाहाकार कर उठते हैं, पशुकुलका नाश होता है, मेघराशि जलहीन हो जाती है, कहीं भी अधिक वर्षा नहीं करती, उपज मारी जाती है। मंगलके वर्षमें राजाओंके चित्त प्रजापालनकी ओर अनुरक्त नहीं होते। [illegible] त्रिदोषोंका प्रकोप होने लगता है। [illegible] जाने लगता है। [illegible] विरक्त तथा उदास हो जाते हैं।

बुधके वर्षाधिपति होनेसे माया, [illegible]

कुहककारी नागरगण एवं गान्धर्व, लेख्य, गणित तथा अस्त्रविदोंकी वृद्धि होती है। राजा लोग परस्परकी प्रीति-कामनासे अद्भुत दर्शन तथा तुष्टिकर द्रव्य एक दूसरेको दान करनेके अभिलाषी होते हैं। कर्त्ता तथा त्रयीशास्त्र संसारमें अविकल एवं सत्य रहते हैं। किसी किसीकी बुद्धि शास्त्रदानमें अभिनिविष्ट होती है एवं कोई कोई आन्वीक्षिकी शास्त्रमें परमपद लाभ करनेकी चेष्टा करता है। बुध ग्रहके वर्ष तथा मासमें इस तरहसे पृथ्वी हास्यज्ञ, दूत, कवि, बालक, नपुंसक, युक्तिज्ञ, सेतुजल तथा पर्वतवासियोंको तृप्ति एवं चारों ओर ओषधियों ो तृप्ति एवं प्रचुरता सम्पादन करती है।

बृहस्पतिके वर्षाधिपति होनेसे, यज्ञोच्चारित विपुल आकाशगामी वेदध्वनि यज्ञद्रोहियोंके मन विदीर्ण करती है तथा द्विजवर एवं यज्ञांशभागियोंके हृदयमें आनन्दकी धारा बहाती है। पृथ्वी अति शस्यवती होती है एवं अनेक हस्ती, अश्व, चतुरङ्ग सेना, गो धन-सम्पत्तिसे परिपूर्ण हो कर राजाओं द्वारा पालित तथा वर्द्धित होती है। मनुष्य स्वर्गीय लोगोंकी तरह स्पर्द्धाके साथ जीवन यापन करते हैं। गगनोन्नत कई वर्णोंके पयोदगण तृप्तिकर जल द्वारा पृथ्वीको परिपूर्ण करते हैं। सुरगुरु बृहस्पतिके शुभवर्षमें इस तरहसे पृथ्वी अति शस्यपूर्ण तथा समृद्धिशालिनी होती है।

शुक्रके वर्षाधिपति होनेसे, धराधर तुल्य जलदपटल वारिधारा वर्षण करती है। उससे पृथ्वी परिपूर्ण हो जाती है, सरोवरोंका जल सुन्दर कमलों से आच्छादित हो जाता है। पृथ्वी नये अलंकारोंसे अलंकृत हो कर उज्ज्वलाङ्गी नारीकी तरह शोभा पाती है एवं बहुतो शाली तथा इक्षु उत्पादन करती है। राजाओंकी जय-ध्वनिसे दिशाएं गूंज उठती हैं। शत्रुओंका नाश होता है, राजा लोग दुष्टदमन तथा शिष्टपालन करके नगर तथा पृथ्वीकी रक्षा करते हैं। वसन्त ऋतुमें मनुष्य कामिनियोंके साथ मधुपान करते हैं एवं मधुर वीणा बजा कर गान करते हैं। अतिथि सुहृद् तथा सज्जनगणके साथ मिल कर अन्न भोजन करते हैं। शुक्रके वर्षमें इस तरहसे मंगलकी प्रधानता ही सूचित होती है।

शनिके वर्षाधिपति होनेसे दुर्वृत्त दस्युओंके उपद्रवसे तथा संग्राममें सारा राष्ट्र व्याकुल हो उठता है। अनेकों नर तथा पशुओंके प्राण विनष्ट होते हैं, मनुष्य अपने आत्मीय जनोंके वियोगमें आंसू बहाते हैं। क्षुधा तथा संक्रामक रोगके प्रकोपसे मनुष्य व्यस्त हो उठते हैं। अन्तरीक्षमें वायु विक्षिप्त मेघ और देखा नहीं जाता। आकाशमें चन्द्र तथा सूर्यकिरण अत्यधिक धूलिपतनसे छिप जाती है। जलाशय जल-हीन हो जाता है। नदियोंकी जलधारायें शुष्क पड़ जाती हैं। कहीं कहीं जलके अभावसे फसल नष्ट हो जाती हैं। कहीं कहीं जलसिक्त भूभागमें उपज भी होती है। इस तरहसे सूर्यके वंशधर शनिके वर्षमें इन्द्र पञ्च-शस्यप्रद जल बरसाते हैं।

फलतः जो ग्रह क्षुद्र, अपटुकिरण, नीचगामी या अन्य द्वारा विजित होते हैं, वे शुभ फल तथा पुष्टिदाता नहीं हो सकते। अशुभ ग्रहके वर्षाधिपति तथा मासाधिपति होनेसे उसीके मासजात फलों ो वृद्धि होती है।

(बृहत्सं० १९ अ०)

वर्षाभूत (सं० त्रि०) वर्षाकालमें लब्ध, वर्षाप्राप्त।

(कात्यायन श्रौ० ४,६ १६)

वर्षाप्रमञ्जन (सं० पु०) झटिका।

वर्षाप्रिय (सं० पु०) चातक, पपीहा।

वर्षाबीज (सं० क्ली०) मेघ, बादल।

वर्षाभव (सं० पु०) वर्षासु भवतीति भू अच् वर्षासु भव उत्पत्तिर्यस्य वा। १ रक्त पुनर्नवा। २ पुनर्नवा। (त्रि०) ३ वर्षामें उत्पन्न।

वर्षाभू (सं० पु० स्त्री०) वर्षासु भवतीति भू क्विप्। १ भेक, मेंढ़क। २ इन्द्रगोप, ग्वालिन नामका कीड़ा। ३ कोड़े मकोड़े। ४ लाल रंगकी पुनर्नवा। (त्रि०) ५ वर्षामें उत्पन्न होनेवाला।

वर्षाभूशाक (सं० पु०) पुनर्नवा शाक।

वर्षाभ्वी (सं० स्त्री०) वर्षाभू ङीप्। १ भेकी, मेंढ़की। २ पुनर्नवा।

वर्षामद (सं० पु०) वर्षासु माद्यति इति मद-अच्। मयूर, मोर।

वर्षाम्बु (सं० क्ली०) वृष्टिजल, वर्षाका पानी।

जाती, चकोर, केतक, मंदानिल, विद्युत् तथा इन्द्रगोप इन वर्षों का वर्णन भी करना होता है।

यह शब्द सदा बहुवचनान्त है। 'दारादेर्नित्यं' इस सूत्रके अनुसार दार, अप्, वर्षा ये तीन शब्द सर्वदा ही बहुवचन होते हैं। इन सब शब्दोंके आगे एकवचन या द्विवचन नहीं होता।

२ पानी बरसनेकी क्रिया या भाव, वृष्टि।

वर्षाकाल (सं० पु०) वर्षाऋतु, बरसात।

वर्षाकालीन (सं० त्रि०) वर्षासमयोपयोगी, बरसातके लायक।

वर्षागम (सं० पु०) वर्षारम्भ, वर्षा ऋतुका आगमन।

वर्षाघोष (सं० पु०) वर्षासु घोषो महान् शब्दोऽस्य। महामण्डूक।

वर्षाङ्ग (सं० पु०) वर्षस्य वत्सरस्य अङ्गमिव अभिधानात् पुंस्त्वम्। मास, महीना।

वर्षाङ्गी (सं० स्त्री०) वर्षासु अङ्गं यस्याः तत्र जाताङ्कुरदर्शनात् तस्यास्तथात्वम्। पुनर्नवा।

वर्षाचर (सं० त्रि०) वर्षामें विचरण करनेवाला। 'वर्षाचरोऽम्बु भूनरः' (भारत १३ पर्व)

वर्षाढ्य (सं० त्रि०) वर्षाकालोद्भव पुष्पसम्बन्धी। (अथर्व १२।१।८७)

वर्षाति (सं० त्रि०) १ वर्षाकाल-सम्बन्धी। (पु०) २ वह वस्त्र जो वर्षाकालमें पहना जाता है। ३ वह रोग जो वर्षाके कारण गाय और घोड़ेको होता है।

वर्षाधिप (सं० पु०) वर्षाणामधिपः ६-तत्पुरुषः। १ वर्ष-समूहके अधिपति। वर्ष देखो।

२ वर्षाधिप ग्रहगण। प्रत्येक नव वर्षके बाद एक एक ग्रह अधिपति होता है। ग्रहानुसार वर्षका फलाफल स्थिर करना होता है। इस वर्षके फलाफलके ऊपर ही पृथ्वीका मंगलामंगल निर्भर करता है।

वराहमिहिरने इस सम्बन्धमें बृहत्संहितामें लिखा है,—सूर्य जिस समय वर्षाधिपति, मासाधिपति या दिनाधिपति होते हैं, उस समय पृथ्वीके प्रत्येक भागमें उपद्रव होता है। वनविभाग सुसुप्त, दावाग्निसे पूर्ण हो उठता है, नदियोंकी जलधाराएं सूख पड़ जाती हैं, औषधियोंकी शक्ति ह्रास हो जाती है। वे रोग दूर करनेमें प्रायः समर्थ नहीं होती। शीतकालमें भी सूर्य अपनी प्रखर किरणोंसे दिग्दिगन्तको तप्त कर रखते हैं। पर्वतोपम मेघराशिसे अधिक वर्षा नहीं होती। आकाशमें टिमटिमानेवाले तारागण, यहां तक कि, ताराके पति चन्द्रदेव भी दीप्तिहीन हो जाते हैं। गौ तथा तपस्वी विपद्ग्रस्त होते हैं। हस्ती, अश्व, पदाति प्रभृति बल-वाहनोंके साथ नरपतिगण अनुचर सहचर सम्मिलित हारसे बहुत बाण, धनुष तथा तलवार प्रभृति अस्त्र शस्त्र ले कर देश ध्वंस करनेको तैयार हो जाते हैं।

चन्द्रमाके वर्षाधिप होने पर पर्वतोपम मेघराशि, कृष्ण सर्प, कज्जल, भ्रमर या महिषके समान कृष्णवर्ण हो कर आकाशमंडलको आच्छादित कर देती है। निर्मल जलसे पृथ्वी परिपूरित हो जाती है। सरोवरसमूह पद्म, उत्पल तथा कुमुद पुष्पोंसे जगमगा उठते हैं। उद्यानोंमें पुष्पवृक्षकी शाखाएं फूलोंके भारसे झूम जाती हैं, वन कुसुमोंके सौरभसे भ्रमरसमुदाय मदमत्त हो कर नाना-विनिन्दित स्वरमें गान प्रारम्भ करते हैं, उनकी मधुर झंकारसे दिशाएं गूंज उठती हैं। गौ स्तनोंसे दुग्धकी धारा बहने लगती है। सुन्दरी रूपयौवनसम्पन्ना कामिनियां अत्यन्त अनुरागसे अपने पतिके साथ विहार करती हैं। पृथ्वी गोधूम, शालि, यव, उत्तम धान्य तथा इक्षुसे परिपूर्ण हो कर अनेकों नगर तथा मन्दिरोंसे सुशोभित होती है, उस समय चारों ओर होमकी ध्वनि सुनाई पड़ती है। नरपतिगण तन्मय हो कर अपनी प्रजाओंका लालन पालन करते हैं।

मंगल वर्षाधिपति होने पर पवनसे अग्नि पैदा हो कर ग्राम, वन तथा नगर दग्ध करनेको उद्यत होती है. पृथ्वी पर मनुष्यवर्ग दस्युदलसे आहत हो कर हाहाकार कर उठते हैं, पशुकुलका नाश होता है, मेघराशि जलहीन हो जाती है, कहीं भी अधिक वर्षा नहीं करती, उपज मारी जाती है। मंगलके वर्षमें राजाओंके चित्त प्रजापालनकी ओर अनुरक्त नहीं होते। घर घरमें पित्तरोगका प्रकोप होने लगता है। सर्प द्वारा बहुतसे लोग कराल कालके गालमें समा जाते हैं। इस तरहसे प्रजाएं शस्यहीन, विपन्न तथा उपद्रुत हो उठती हैं।

बुधके वर्षाधिपति होनेसे माया, इन्द्रजाल तथा

कुहककारी नागगण एवं गान्धर्व, लेख्य, गणित तथा मन्त्रविदोंकी वृद्धि होती है। राजा लोग परस्परकी प्रीति-कामनासे अनुभुत दर्शन तथा तुष्टिकर द्रव्य एक दूसरेको दान करनेके अभिलाषी होते हैं। कर्त्ता तथा नयोगाख्य संसारमें अविकल एवं सत्य रहते हैं। किसी किसीकी बुद्धि शास्त्रदानमें अभिनिविष्ट होती है एवं कोई कोई आन्वीक्षिकी शास्त्रमें परमपद लाभ करनेकी चेष्टा करता है। बुध ग्रहके वर्ष तथा मासमें इस तरहसे पृथ्वी हास्यज्ञ, दूत, कवि, बालक, नपुंसक, युक्तिज्ञ, सेतुजल तथा पर्वतवासियोंकी तृप्ति एवं चारों ओर ओषधियों ने तृप्ति एवं प्रचुरता सम्पादन करती है।

बृहस्पतिके वर्षाधिपति होनेसे, यज्ञोच्चारित विपुल आकाशगामी वेदध्वनि यज्ञद्रोहियोंके मन विदीर्ण करती है तथा द्विजवर एवं यज्ञांशभागियोंके हृदयमें आनन्दकी धारा बहाती है। पृथ्वी अति शस्यवती होती है एवं अनेक हस्ती, अश्व, चतुरङ्ग सेना, गो धन-सम्पत्तिसे परिपूर्ण हो कर राजाओं द्वारा पालित तथा वर्द्धित होती है। मनुष्य स्वर्गीय लोगोंकी तरह स्पर्द्धाके साथ जीवन यापन करते हैं। गगनोन्नत कई वर्णोंके पयोदगण तृप्तिकर जल द्वारा पृथ्वीको परिपूर्ण करते हैं। सुरगुरु बृहस्पतिके शुभवर्षमें इस तरहसे पृथ्वी अति शस्यपूर्ण तथा समृद्धिशालिनी होती है।

शुक्रके वर्षाधिपति होनेसे, धराधर तुल्य जलदपटल वारिधारा वर्षण करती है। उससे पृथ्वी परिपूर्ण हो जाती है, सरोवरोंका जल सुन्दर कमलोंसे आच्छादित हो जाता है। पृथ्वी नये अलंकारोंसे अलंकृत हो कर उज्ज्वलांगी नारीकी तरह शोभा पाती है एवं बहुतो शाली तथा इक्षु उत्पादन करती है। राजाओंकी जय-ध्वनिसे दिशाएं गूंज उठती हैं। शत्रुओंका नाश होता है, राजा लोग दुष्टदमन तथा शिष्टपालन करके नगर तथा पृथ्वीकी रक्षा करते हैं। वसन्त ऋतुमें मनुष्य कामिनियोंके साथ मधुपान करते हैं एवं मधुर वीणा बजा कर गान करते हैं। अतिथि सुहृद् तथा सज्जनगणके साथ मिल कर अन्न भोजन करते हैं। शुक्रके वर्षमें इस तरहसे मंगलकी प्रधानता ही सूचित होती है।

शनिके वर्षाधिपति होनेसे दुर्वृत्त दस्युओंके उपद्रव-से तथा संग्रामसे सारा राष्ट्र व्याकुल हो उठता है। अनेकों नर तथा पशुओंके प्राण विनष्ट होते हैं, मनुष्य अपने आत्मीय जनोंके वियोगमें आंसू बहाते हैं। क्षुधा तथा संक्रामक रोगके प्रकोपसे मनुष्य व्यस्त हो उठते हैं। अन्तरीक्षमें वायु विक्षिप्त मेघ और देखा नहीं जाता। आकाशमें चन्द्र तथा सूर्यकिरण अधिक धूलिपतनसे छिप जाती है। जलाशय जल-हीन हो जाता है। नदियोंकी जलधाराएं शुष्क पड़ जाती हैं। कहीं कहीं जलके अभावसे फसल नष्ट हो जाती है। कहीं कहीं जलसिक्त भूभागमें उपज भी होती है। इस तरहसे सूर्यके वंशधर शनिके वर्षमें इन्द्र पञ्च-शस्यप्रद जल बरसाते हैं।

फलतः जो ग्रह क्षुद्र, अपटुकिरण, नीचगामी या अन्य द्वारा विजित होते हैं, वे शुभ फल तथा पुष्टिदाता नहीं हो सकते। अशुभ ग्रहके वर्षाधिपति तथा मासाधिपति होनेसे उसीके मासजात फलों की वृद्धि होती है।

(बृहत्सं० १९ अ०)

वर्षाभूत (सं० लि०) वर्षाकालमें लब्ध, वर्षाप्राप्त।

(कात्यायन श्रौ० ४।६।१६)

वर्षाप्रभञ्जन (सं० पु०) झटिका।

वर्षाप्रिय (सं० पु०) चातक, पपीहा।

वर्षाबीज (सं० क्ली०) मेघ, बादल।

वर्षाभव (सं० पु०) वर्षासु भवतीति भू-अच्, वर्षासु भव उत्पत्तिर्यस्य वा। १ रक्त पुनर्नवा। २ पुनर्नवा। (लि०) ३ वर्षामें उत्पन्न।

वर्षाभू (सं० पु० स्त्री०) वर्षासु भवतीति भू क्विप्। १ भेक, मेढ़क। २ इन्द्रगोप, ग्वालिन नामका कीड़ा। ३ कीड़े मकोड़े। ४ लाल रंगकी पुनर्नवा। (लि०) ५ वर्षमें उत्पन्न होनेवाला।

वर्षाभूशाक (सं० पु०) पुनर्नवा शाक।

वर्षाभ्वी (सं० स्त्री०) वर्षाभू-ङीप्। १ भेकी, मेढ़की। २ पुनर्नवा।

वर्षामद (सं० पु०) वर्षासु माद्यति इति मद-अच्। मयूर, मोर।

वर्षाम्बु (सं० क्ली०) वृष्टिजल, वर्षाका पानी।

शाली, कदम्ब, केतक, कंझानिल, निम्नगा तथा हलियोंके इन सबोंका वर्णन भी करना होता है।

यह शब्द सदा बहुवचनान्त है। 'दाराद्वैर्नित्यं' इस सूत्रके अनुसार दार, अप्, वर्षा ये तीन शब्द सर्वदा ही बहुवचन होते हैं। इन सब शब्दोंके आगे एकवचन या द्विवचन नहीं होता।

२ पानी बरसनेकी क्रिया या भाव, वृष्टि।

वर्षाकाल (सं॰ पु॰) वर्षाऋतु, बरसात।

वर्षाकालीन (सं॰ लि॰) वर्षासमयोपयोगी, बरसातके लायक।

वर्षागम (सं॰ पु॰) वर्षारम्भ, वर्षा ऋतुका आगमन।

वर्षाघोष (सं॰ पु॰) वर्षासु घोषो महान् शब्दोऽस्य। महामण्डूक।

वर्षाङ्ग (सं॰ पु॰) वर्षेन्य वत्सरस्य अङ्गमिव अभिधानात् पुंस्त्वम्। मास, महीना।

वर्षाङ्गी (सं॰ स्त्री॰) वर्षासु अङ्गं यस्याः तत्र जाताङ्कुरदर्शनात् तस्यास्तथात्वम्। पुनर्नवा।

वर्षाचर (सं॰ लि॰) वर्षामें विचरण करनेवाला। 'वर्षाचरोऽस्तु भूतकः' (भारत १३ पर्व)

वर्षाज्य (सं॰ लि॰) वर्षाकालोत्पन्न घृतसम्बन्धी। (अथर्व १२।१।४७)

वर्षाति (सं॰ लि॰) १ वर्षाकाल-सम्बन्धी। (पु॰) २ वह वस्त्र जो वर्षाकालमें पहना जाता है। ३ वह रोग जो वर्षाके कारण गाय और घोड़ेका होता है।

वर्षाधिप (सं॰ पु॰) वर्षाणामधिपः ६ तत्पुरुषः। १ वर्षसमूहके अधिपति। वर्ष देखो।

२ वर्षाधिप ग्रहगण। प्रत्येक नव वर्षके बाद एक एक ग्रह अधिपति होता है। ग्रहानुसार वर्षका फलाफल स्थिर करना होता है। इस वर्षके फलाफलके ऊपर ही पृथ्वीका मंगलामंगल निर्भर करता है।

वराहमिहिरने इस सम्बन्धमें बृहत्संहितामें लिखा है,—सूर्य जिस समय वर्षाधिपति, मासाधिपति या दिनाधिपति होते हैं, उस समय पृथ्वीके प्रत्येक भागमें उपज कम होती है। वनविभाग धुधु दावाग्निसे पूर्ण हो उठता है, नदियोंकी जलधारायें शुष्क पड़ जाती हैं, औषधियोंकी शक्ति ह्रास हो जाती है। ये रोग दूर करनेमें अधिक समर्थ नहीं होतीं। शीतकालमें भी सूर्य अपनी प्रखर किरणोंसे दिग्दिगन्तको तप्त कर रखते हैं। पर्वतोपम मेघराशिसे अधिक वर्षा नहीं होती। आकाशमें टिमटिमानेवाले तारागण, यहां तक कि, ताराके पति चन्द्रदेव भी दीप्तिहीन हो जाते हैं। गो तथा तपस्वी विपद्ग्रस्त होते हैं। हस्ती, अश्व, पदाति प्रभृति बलवाहनोंके साथ नरपतिगण अनुचर सहचर सममिव्याहारसे बहुत बाण, धनुष तथा तलवार प्रभृति अस्त्र शस्त्र ले कर देश ध्वंस करनेको तैयार हो जाते हैं।

चन्द्रमाके वर्षाधिप होने पर पर्वतोपम मेघराशि, कृष्ण सर्प, कज्जल, भ्रमर या महिषके समान कृष्णवर्ण हो कर आकाशमंडलको आच्छादित कर देती है। निर्मल जलसे पृथ्वी परिपूरित हो जाती है। सरोवरसमूह पद्म, उत्पल तथा कुमुद पुष्पोंसे जगमगा उठते हैं। उद्यानोंमें पुष्पवृक्षकी शाखायें फूलोंके भारसे झूम जाती हैं, उन कुसुमोंके सौरभसे भ्रमरसमुदाय मदमत्त हो कर नानाविनिन्दित स्वरमें गान प्रारम्भ करते हैं, उनकी मधुर झंकारसे दिशायें गूंज उठती हैं। गो स्तनोंसे दुग्धकी धारा बहने लगती है। सुन्दरी रूपयौवनसम्पन्ना कामिनियां अत्यन्त अनुरागसे अपने पतिके साथ विहार करती हैं। पृथ्वी गोधूम, शालि, यव, उत्तम धान्य तथा इक्षुसे परिपूर्ण हो कर अनेकों नगर तथा मन्दिरोंसे सुशोभित होती है, उस समय चारों ओर होमकी ध्वनि सुनाई पड़ती है। नरपतिगण तन्मय हो कर अपनी प्रजाओंका लालन पालन करते हैं।

मंगल वर्षाधिपति होने पर पवनसे अग्नि पैदा हो कर ग्राम, वन तथा नगर दग्ध करनेको उद्यत होती है। पृथ्वी पर मर्त्यवर्ग दस्युदलसे आहत हो कर हाहाकार कर उठते हैं, पशुकुलका नाश होता है, मेघराशि जलहीन हो जाती है, कहीं भी अधिक वर्षा नहीं करती, उपज मारी जाती है। मंगलके वर्षमें राजाओंके चित्त प्रजापालनकी ओर अनुरक्त नहीं होते। घर घरमें पित्तरोगका प्रकोप होने लगता है। सर्प द्वारा बहुतसे लोग कराल कालके गालमें समा जाते हैं। इस तरहसे प्रजायें शस्यहीन, विपन्न तथा उपद्रुत हो उठती हैं।

बुधके वर्षाधिपति होनेसे माया, इन्द्रजाल तथा

वर्ष्मल (सं० त्रि०) वर्ष्म मत्वर्थे (सिध्मादिभ्यश्च । पा ५।२।९७) इति लच् । वर्ष्मयुक्त, वर्ष्मविशिष्ट ।

वर्ष्मवत् (सं० त्रि०) शरीरके समान ।

वर्ष्मवीर्य (सं० क्ली०) शारीरिक शक्ति ।

वर्ष्मा (सं० क्ली० त्रि०) वर्ष्मन् देखो ।

वर्ष्माम (सं० त्रि०) आकार या गठनविशिष्ट ।

वर्ष्य (सं० त्रि०) वर्षासम्बन्धीय ।

वर्ह (सं० क्ली०) वर्हयति शोभ्यते इति वर्ह-अच् । १ मयूरपुच्छ, मोरको पंख । २ ग्रन्थिपर्ण, गंठिवन । ३ पत्र, पत्ता । ४ परीवार ।

वर्हण (सं० क्ली०) वर्हतीति वृह-वृद्धौ ल्युट्, वर्हयति शोभते इति वर्ह दीप्तौ ल्युर्वा । पत्र, पत्ता ।

वर्हस् (सं० पु०) वृंहति वर्द्धते इति वृहि वृद्धौ (वृहेर्नलोपश्च । उण् २।११०) इति इसि नलोपश्च । १ अग्नि । २ दीप्ति । ३ यश । (हेम) "मा लोपर्हिः पुरुषता" (ऋक् ७।७५।८) ४ चितक, चीतेका पेड़ । ५ एक राजाका नाम ।

वर्हस (सं० क्ली०) वृहतीति वृहि वृद्धौ इसौ नलोपश्च । १ ग्रन्थिपत, गंठिवन । २ कुश ।

वर्हा (सं० क्ली०) वर्हस् देखो ।

वर्हिःपुष्प (सं० क्ली०) वर्हिर्दीप्तिस्तद्युक्तं पुष्पमस्य । ग्रन्थिपर्ण, गंठिवन ।

वर्हिःशुष्म (सं० पु०) वर्हिषा कुशेन वर्हिषि यज्ञे वा शुष्कतेजो यस्य । अग्नि, आग ।

वर्हिष्ठ (सं० क्ली०) वर्हिरिव तिष्ठतीति स्था-क । ह्रीवेर

वर्हिकुसुम (सं० क्ली०) वर्हिर्वर्हयुक्तं कुसुमं यस्य । ग्रन्थिपर्ण, गंठिवन ।

वर्हिण (सं० पु०) वर्हमस्त्यस्येति वर्ह 'फलवर्हाभ्यामिनच्' इति इनच् । १ मयूर, मोर । (क्ली०) २ तगर ।

वर्हिणवाहन (सं० पु०) वर्हिणो मयूरो वाहनं यस्य । कार्त्तिकेय ।

वर्हिध्वजा (सं० स्त्री०) वर्हौ ध्वजो वाहनं यस्याः । चण्डी ।

वर्हिन् (सं० पु०) वर्हमस्यास्तीति वर्ह-इनि । १ मयूर, मोर । २ प्रधाके गर्भसे उत्पन्न कश्यपके एक पुत्रका नाम । (भारत १।६५।४७) ३ तगर ।

वर्हिषद् (सं० पु०) एक पितरका नाम ।

वर्ही (सं० पु०) वर्हिन् देखो ।

वलंघ्न (सं० पु०) मेघनाशकारी, वह जो बादलको नष्ट करता है ।

वल (सं० पु०) १ मेघ । २ एक असुरका नाम । यह देवताओंकी गौएं चुरा कर एक गुहामें जा छिपा था । इन्द्र उस गुहाको छेंक कर उसमेंसे गौओंको छुड़ा लाये थे । फिर वलने बैलका रूप धारण किया और वह बृहस्पतिके हाथसे मारा गया ।

वलक (सं० पु०) १ वल नामक दानव । (हरिवंश) २ पुराणानुसार तामस मन्वन्तरके सप्तर्षियोंमेंसे एक ऋषिका नाम । (मार्क०पु० ७४।५६)

वलकेश्वरतीर्थ (सं० क्ली०) एक तीर्थका नाम ।

वलक्रम (सं० पु०) पर्यायिक वल ।

वलक्ष (सं० पु०) श्वेतवर्ण, सफेद ।

वलक्षगु (सं० पु०) शुभ्रांशु चन्द्र ।

वलग (सं० क्ली०) वध्य व्यक्तिके प्रति आचरित कृत्याविशेष । पराजित राक्षस लोग भाग कर इन्द्र आदि देवताओंका वध करनेके लिये अस्थि, केश और नखादि भूगर्भमें निखात करके जो जो आभिचारिक कृत्या करते थे, उन्हीका नाम वलग है ।

वलगहन् (सं० त्रि०) वलगान् हन्तीति वलग-हन-क्विप् । कृत्याहननकारी । (शुक्लयजु० ५।२३)

वलगिन् (सं० त्रि०) वलगसमन्वित । (अथर्व० ५।३१।१२)

वलङ्गिमान—मान्द्राज प्रेसिडेन्सीके तञ्जोर जिलेके कुम्भकोणम् तालुकके अन्तर्गत एक नगर । यह अक्षा० १०°५३' उ० तथा देशा० ७९° २५' पू०में अवस्थित है । यहांकी उपजका कारबार यहां जोरों चलता है ।

वलती (सं० स्त्री०) वह मंडप जो घरके ऊपर शिखर पर बना हो, रावटी ।

वलतेरु—मान्द्राज-प्रेसिडेन्सीके विशागापट्टम् जिलान्तर्गत एक नगर । यह अक्षा० १७° ४४' ३० तथा देशा० ८३° २२' ३६" पू० तक विस्तृत है । वर्त्तमान अंगरेजी मानचित्र या भूगोलमें यह वालटेयार (Waltair) नामसे परिचित है । बङ्गोपसागरके तट पर पड़नेके कारण यह स्थान बड़ा: स्वास्थ्यप्रद है । यहां सिविल और

वर्षाम्बुप्रवाह (सं० पु०) वर्षाके पानीकी धारा।

वर्षाम्भःपारणव्रत (सं० पु०) वर्षाम्भो वृष्टिजलं तस्य पारणं उपवासान्ते पानं व्रतमिव व्रतं यस्य। चातक, पपीहा।

वर्षायम (सं० त्रि०) अतिवृद्ध, नब्बे वरससे ऊपरकी अवस्थावाला।

वर्षारात्र (सं० पु०) वर्षाणां रात्रिः ततः समासान्तोऽच्। १ वर्षाकालीन रात्रि। २ वर्षाऋतु।

वर्षार्चिस् (सं० पु०) वर्षासु अर्चिर्दीप्तिरस्य। मङ्गलग्रह।

वर्षाल (सं० पु०) पतंग, फतिंगा।

वर्षालङ्कायिका (सं० स्त्री०) वृन्ता, पिंड़ि साग।

वर्षाली—पाणिनीय ऊर्यादिगणोक्त एक शब्द। (पा १।४।६१)

वर्षावत् (सं० त्रि०) वर्षासदृश, वर्षाके समान।

वर्षाभ्वी (सं० स्त्री०) १ इन्द्रगोप, ग्वालिन नामका कीड़ा। २ भेकपर्णी। ३ पुनर्नवा।

वर्षावसान (सं० पु०) वर्षाणामवसानमत्र। १ शरत् काल। (स्त्री०) २ वर्षाका शेष।

वर्षाशाटी (सं० स्त्री०) वह वास या कपड़ा जो वर्षाऋतुमें बौद्ध लोग पहनते हैं।

वर्षाशरदी (सं० स्त्री०) वर्षा और शरत्काल।

वर्षासमय (सं० पु०) वर्षाकाल।

वर्षासुज (सं० त्रि०) वर्षामें उत्पन्न होनेवाला।

वर्षाहिक (सं० पु०) विषविहीन सर्पभेद, बरसाती साँप जिसमें विष नहीं होता। (सुश्रुत कल्प० ४ अ०)

वर्षाह (सं० स्त्री०) वर्षाभू, मेढ़की।

वर्षाह्वा (सं० स्त्री०) पुनर्नवा।

वर्षिक (सं० त्रि०) १ वर्षासम्बन्धीय। २ वर्षसम्बन्धीय। वर्षा और वर्ष इन दोनों शब्दोंके उत्तर ठिनक् प्रत्यय करनेसे वर्षिक पद होता है।

वर्षित (सं० स्त्री०) वृष्टि।

वर्षिता (सं० स्त्री०) वर्षिन् भावे तल् ततष्टाप्। वर्षणकर्त्ता, बरसानेवाला।

वर्षिष्णु (सं० त्रि०) वर्षणकर्त्ता, बरसानेवाला। (निरुक्त ४।८)

वर्षिन् (सं० त्रि०) वर्षणकारी, धाविन्।

वर्षिमन् (सं० पु०) वृद्धका भाव, दीर्घजीवित्व। (शुक्लयजु० १८।४)

वर्षिष्ठ (सं० त्रि०) १ अतिशय वृद्ध, बड़ा बूढ़ा। २ अत्यन्त बलवान।

वर्षिष्ठक्षत्र (सं० त्रि०) १ अतिशय क्षमता या शक्तिशाली। २ मित्रावरुण।

वर्षीका (सं० स्त्री०) एक प्रकारका छन्द।

वर्षीण (सं० त्रि०) वर्षणसम्बन्धीय।

वर्षीय (सं० त्रि०) वत्सर या वर्ष-सम्बन्धीय।

वर्षीयस् (सं० त्रि०) अयमनयोरतिशयेन वृद्धः, वृद्ध ईयसुन् ततो वर्षादेशः। अति वृद्ध, बड़ा बूढ़ा। पर्याय—दशमी, ज्यायान्।

स्मृतिशास्त्रमें लिखा है, कि सोलह वर्ष तक बालक, उसके बाद तरुण या युवक होता है। तब सत्तर वर्षके बाद वृद्ध एवं नब्बेके बाद वर्षीयान् कहलाता है।

वर्षु (सं० त्रि०) वर्षणम तृणादि, वर्षाकालोत्पन्न।

वर्षुक (सं० त्रि०) वर्षति तच्छील इति वृष (लष पतपद-स्थाभू-वृष-हन-कम-गम-शृभ्य उकञ्। पा ३।२।१५४) इति उकञ्। वर्षणकर्त्ता, बरसानेवाला।

वर्षुकाब्द (सं० पु०) वर्षुकश्चासौ अब्दश्चेति कर्मधारय। बरसनेवाला मेघ।

वर्षेज (सं० त्रि०) वर्षे जायते इति जन-ड, सप्तम्या अलुक्। १ वर्षाकाल जात। २ वत्सरजात।

वर्षेश (सं० पु०) वर्षस्य ईशः। वर्षाधिप।

वर्षौघ (सं० पु०) झड़, प्रभञ्जन।

वर्षोपल (सं० पु०) वर्षाणामुपलः। मेघजात शिला, करका।

वर्ष्टृ (सं० त्रि०) वृष्टिकारी, वर्षा करनेवाला।

वर्ष्म (सं० क्ली०) शरीर। (द्विरूपको०) "वर्ष्मोऽस्मि समानानाम्।" (पारस्करगृह्य० १।३)

वर्ष्मन् (सं० क्ली०) वर्षति वृष्यते येन वृष-मनिन्। १ शरीर। २ प्रमाण। ३ इयत्ता। ४ जलरोधक, बाँध। (त्रि०) ५ उन्नत। ६ स्थिर। ७ अति सुन्दराकृति। ८ वर्षीयान्, अतिशय वृद्ध।

वर्म्मल (सं० त्रि०) वर्म्म मत्वर्थे (सिध्मादिभ्यश्च। पा ५।२।९७) इति लच्। वर्म्मयुक्त, वर्म्मविशिष्ट।

वर्म्मवत् (सं० त्रि०) शरीरके समान।

वर्म्मवीर्य (सं० क्ली०) शारीरिक शक्ति।

वर्म्मा (सं० क्ली० त्रि०) वर्म्मन् देखो।

वर्म्माम (सं० त्रि०) आकार वा गठनविशिष्ट।

वर्ष्य (सं० त्रि०) वर्षासम्बन्धीय।

वर्ह (सं० क्ली०) वर्हयति दीप्यते इति वर्ह-अच्। १ मयूरपुच्छ, मोरको पंख। २ ग्रन्थिपर्ण, गंठिवन। ३ पत्र, पत्ता। ४ परीवार।

वर्हण (सं० क्ली०) वर्हतीति वृह-वृद्धौ ल्युट्, वर्हयति शोभते इति वर्ह दीप्तौ ल्युर्वा। पत्र, पत्ता।

वर्हस् (सं० पु०) वृंहति वर्द्धते इति वृहि वृद्धौ (वृहेर्नलोपश्च। उण् ४।२२०) इति इसि नलोपश्च। १ अग्नि। २ दीप्ति। ३ यज्ञ। (हेम) "मा मोवर्हिः पुरुषता" (ऋक् ७।७५।८) ४ चितक, चीतेका पेड़। ५ एक राजाका नाम।

वर्हस (सं० क्ली०) वृहतीति वृहि वृद्धौ इसी नलोपश्च। १ ग्रन्थिपत्र, गंठिवन। २ कुश।

वर्हा (सं० क्ली०) वर्हस् देखो।

वर्हिःपुष्प (सं० क्ली०) वर्हिर्दीप्तिस्तद्युक्तं पुष्पमस्य। ग्रन्थिपर्ण, गंठिवन।

वर्हिःशुष्म (सं० पु०) वर्हिषा कुशेन वर्हिर्वि वर्हे वा शुष्कतेजो यस्य। अग्नि, आग।

वर्हिष्ठ (सं० क्ली०) वर्हिरिव तिष्ठतीति स्था-क। होवेर

वर्हिकुसुम (सं० क्ली०) वर्हिर्वर्हयुक्तं कुसुमं यस्य। ग्रन्थिपर्ण, गंठिवन।

वर्हिण (सं० पु०) वर्हमस्त्यस्येति वर्ह 'फलवर्हाभ्यामिनच्' इति इनच्। १ मयूर, मोर। (क्ली०) २ तगर।

वर्हिणवाहन (सं० पु०) वर्हिणो मयूरो वाहनं यस्य। कार्त्तिकेय।

वर्हिर्ध्वजा (सं० स्त्री०) वर्ही ध्वजो वाहनं यस्याः। चण्डी।

वर्हिन् (सं० पु०) वर्हमस्यास्तीति वर्ह-इनि। १ मयूर, मोर। २ प्रधाके गर्भसे उत्पन्न कश्यपके एक पुत्रका नाम। (भारत १।६५।४७) ३ तगर।

वर्हिषद् (सं० पु०) एक पितरका नाम।

वर्ही (सं० पु०) वर्हिन देखो।

वलंकज (सं० पु०) मेघनाशकारी, वह जो बादलको नष्ट करता है।

वल (सं० पु०) १ मेघ। २ एक असुरका नाम। यह देवताओंकी गौएं चुरा कर एक गुहामें जा छिपा था। इन्द्र उस गुहाको छेद कर उसमेंसे गौओंको छुड़ा लाये थे। फिर वलने बैलका रूप धारण किया और वह बृहस्पतिके हाथसे मारा गया।

वलक (सं० पु०) १ वल नामक दानव। (हरिवंश) २ पुराणानुसार तामस मन्वन्तरके सप्तर्षियोंमेंसे एक ऋषिका नाम। (मार्कं०पु० ७४।५६)

वलकेश्वरतीर्थ (सं० क्ली०) एक तीर्थका नाम।

वलक्रम (सं० पु०) पर्यायिक वल।

वलक्ष (सं० पु०) श्वेतवर्ण, सफेद।

वलक्षगु (सं० पु०) शुभ्रांशु चन्द्र।

वलग (सं० क्ली०) वध्य व्यक्तिके प्रति आचरित कृत्याविशेष। पराजित राक्षस लोग भाग कर इन्द्र आदि देवताओंका वध करनेके लिये अस्थि, केश और नखादि भूगर्भमें निखात करके जो जो आभिचारिक कृत्या करते थे, उसीका नाम वलग है।

वलगहन् (सं० त्रि०) वलगान् हन्तीति वलग-हन-क्विप्। कृत्याहननकारी। (शुक्लयजु० ५।२३)

वलगिन् (सं० त्रि०) वलगसमन्वित। (अथर्व० ५।३१।१२)

वलङ्गिमान—मान्द्राज प्रेसिडेन्सीके तञ्जोर जिलेके कुम्भकोणम् तालुकके अन्तर्गत एक नगर। यह अक्षा० १०°५३´ उ० तथा देशा० ७९° २५´ पू०में अवस्थित है। यहांकी उपजका कारवार यहां जोरों चलता है।

वलती (सं० स्त्री०) वह मंडप जो घरके ऊपर शिखर पर बना हो, रावटी।

वलतेरु—मान्द्राज-प्रेसिडेन्सीके विजागापट्टम् जिलान्तर्गत एक नगर। यह अक्षा० १७° ४४´ उ० तथा देशा० ८३° २२´ ३६″ पू० तक विस्तृत है। वर्त्तमान अंगरेजी मानचित्र वा भूगोलमें यह वाल्टेयार (Waltair) नामसे परिचित है। वङ्गोपसागरके तट पर पड़नेके कारण यह स्थान बड़ा स्वास्थ्यप्रद है। यहां सिविल और

मिलिटरी विभागके बहुतसे अंगरेज-कर्मचारी रहते हैं। विलापत्तनसे यह स्थान तीन मील उत्तरमें अवस्थित है एवं उक्त नगरके युरोपियोंकी वासभूमि भी उपकण्ठ रूपमें परिगणित है। समुद्रकी तहसे यह स्थान २३० फीट ऊंचा एवं पहाड़ीमालासे परिवृत है। इष्टर्णिद्र रेलपथ इस नगरके पास हो कर मान्द्राजकी ओर दौड़ गया है। इस कारण आज कल यहांकी श्रीवृद्धि बहुत कुछ बढ़ गई है। पहले यहां पीनेके जलका बड़ा अभाव था, अब उसकी उतनी शिकायत नहीं रह गई है; परन्तु फलमूल और खानेकी चीजका अब भी अभाव है। यहांके अंगरेज टोलासे बंगाली-टोला बहुत ही खराब है।

वलदवुर—मान्द्राज प्रेसिडेन्सीके दक्षिण आर्कट जिलेके विलपुरम् तालुकके अन्तर्गत एक गण्डग्राम। यह अक्षा० ११° ५८´ ५०´´ उ० तथा देशा० ७९° ४४´ ३०´´ पू० पंडिचेरीसे ६ मील उत्तर-पश्चिममें अवस्थित है। फरासीसियोंने पंडीचेरी राजधानी सुदृढ़ करनेके लिये यहां पहले दुर्ग बना कर सेनानिवास स्थापन किया था। १७६० ई०में अङ्गरेज सेनापति कूटने पंडीचेरी पर आक्रमण कर इसे अङ्गरेजाधिकृत कर लिया।

१८८२ ई०की ३०वीं जून तक स्थलपथगामी पण्यद्रव्य पर शुल्क आदाय करनेके लिये यहां फरासीसियोंका एक शुल्क-कार्यालय था।

वलद्विष् (सं० पु०) इन्द्र।

वलन (सं० क्ली०) ज्योतिष शास्त्रानुसार ग्रह, नक्षत्रादिका स्वाभाविक [illegible] हट कर चलना या विचलन (deflection)।

वलनवल्लभा (सं० स्त्री०) [illegible] अयनच्युति प्रतिपादन

वलनांश (सं० पु०) ज्योतिषके अनुसार, अयनांशसे किसी प्रकार [illegible] अर्थात् हट कर चलने या वक्रगतिकी [illegible] (degree of deflection)।

[illegible] (सं० पु०) १ [illegible]। २ [illegible]।

[illegible] (सं० पु०) इन्द्र।

[illegible] (सं० स्त्री०) [illegible]।

[illegible] (सं० स्त्री०) एक [illegible]।

[illegible] (सं० स्त्री०) [illegible]।

[illegible] (सं० स्त्री०) [illegible]

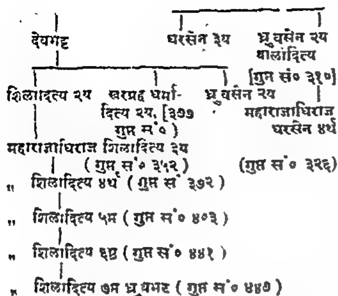
१ [illegible]। २ [illegible]।

वलभीराजवंश—सुराष्ट्रका एक प्राचीन राजवंश। सुराष्ट्रके (वर्त्तमान काठियावाड़के) अन्तर्गत, भावनगरसे १८ मील उत्तर पश्चिममें अवस्थित है। वर्त्तमान वाला नामक स्थान पहले वलभी नामसे विख्यात था। प्राचीन वलभी-राजधानीका ध्वंसावशेष उक्त वाला नामक स्थानमें विद्यमान है। यहांके प्राचीन नरपतिवंश वलभी-राजवंश-के नामसे इतिहासमें परिचित हैं।

खृष्टीय ५वीं शताब्दीमें भटार्क नामक एक सेनापतिका अभ्युदय हुआ। ये मैत्रक या मिहिरवंशीय थे। भटार्क सम्भवतः सुराष्ट्रके गुप्तवंशीय राजाओंके किसी सेनापतिके वंशधर थे। वलभी राजाओंकी बहुत सी शिलालिपि तथा ताम्रशासनसे जाना जाता है, कि भटार्कके अनुसार ही उनके ज्येष्ठ पुत्र प्रथम धरसेन भी सेनापतिकी उपाधिसे भूषित थे। पाश्चात्य ऐतिहासिक लोग इन्हें विदेशी ही समझते हैं। हम लोगोंको भी ऐसा ज्ञान पड़ता है कि, भटार्क भी एक शाकद्वीपी क्षत्रियवंशी थे। अति प्राचीनकालमें जो शाकद्वीपी लोग भारतमें आये थे, वे मिहिर नामक सूर्योपासक थे। इसी कारण कितने ही मैत्रक या मिहिर उपाधि धारण करते थे। अन्तमें वे लोग ही वंशोपाधि रूपमें गिने जाने लगे। भटार्क भी इसी तरहसे किसी मैत्रक-कुलमें उत्पन्न हुए थे, उनके वंशधर भी मैत्रक कहलाते हैं। इस वंशके बहुतसे ताम्रशासन पाये गये हैं। उनसे ही वंशावली निकली है।

सेनापति भटार्क

- धरसेन (सेनापति)
- द्रोणसिंह (महाराज)
- ध्रुवसेन (महाराज प्रभृति पञ्च महाशब्दयुक्त) [गुप्त सं० २०७]
- धरपट्ट (महाराज)
  - गुहसेन महाराज [गुप्त सं० २३७]
    - धरसेन सामन्त महाराज [गुप्त सं० २५२]
      - [illegible] [गुप्त सं० [illegible]]
      - [illegible]



सेनापति भटार्क यद्यपि इस वंशके बीजपुरुष थे, तथापि उनके पुत्र प्रथम ध्रुवसेनने ही स्वभावतः "पंच-महाशब्द" युक्त राजोपाधि ग्रहण की एवं इस वंशीय राजाओंके जितने ताम्रशासन आविष्कृत हुए हैं, उनमें इस ध्रुवसेनका ताम्रशासन ही सर्वप्राचीन है, उसके २०७ अंक दृष्टिगोचर होते हैं। इस अंकको किसी किसी प्रत्नतत्त्वविद्‌ने "वलभीसंवत्" नामसे निर्देश किया है। सुप्रसिद्ध मुसलमान पंडित अलबेरुणी खृष्टीय १०वीं शताब्दीके शेष भागमें लिख गये हैं कि, वल्लभवंश ध्वंस होने पर २४१ शकाब्दमें यह संवत् प्रचलित हुआ। किन्तु हम लोग देखते हैं, कि सेनापति भटार्क द्वारा ही वलभीवंशका अभ्युदय हुआ। इस हालतमें उनके जन्मके शताधिक वर्ष पहले ही किस तरह वलभीराजवंशके ध्वंसकी बात स्वीकार की जा सकती है। हम लोगोंका विश्वास है कि, एक समय वलभी सुराष्ट्रके शक-राजाओंके अधिकारमें था। २४१ शक वा ३१९ खृष्टाब्दमें शक राज्य ध्वंस तथा गुप्त साम्राज्य स्थापित हुआ। २४१ शकाब्दमें ही गुप्तसंवत्सर आरम्भ हुआ। उसके बहुत वर्षों के बाद सेनापतिवंशका अभ्युदय होने पर भी वलभीराजगण गुप्त सम्राटोंका संवत् ग्रहण करनेको वाध्य हुए। ऐसी दशामें वलभीराज्य ध्वंस होनेसे ही वलभी-संवत् आरम्भ होने-का प्रवाद प्रचलित होना कुछ असम्भव नहीं है। उक्त २०७ अंक+२४१=४४८ शक (वा ५२६ ई०) में १म ध्रुवसेन राज्य करते थे। उनके तथा उनके बादके राजाओं के ताम्रशासनसे जाना जाता है, कि वे राजे "पंच-महाशब्द" व्यवहार करते थे। महाराज, महासामन्त, महाप्रतीहार, महादण्डनायक तथा महाकार्त्ताकृत्य ये सब उपाधियां सम्भवतः उनके पूर्वपुरुषोंके राजकीय पद-निर्देशक थीं, परवर्ती वंशधरने उस स्मृतिका लोप करना कर्त्तव्य नहीं समझा। १म ध्रुवसेन अपने बौद्धधर्मावलम्बी होने पर भी अन्यान्य धर्मविद्वेषी नहीं थे। बहुतसे ताम्रशासनोंमें उनकी बहन दुड्डा "परमो-पासिका" नामसे सम्मानित हुई हैं। वलभीराज शिला-दित्य प्रथम धर्मादित्य सम्राट् हर्षदेवसे पराजित हुए।

बालादित्य द्वितीय ध्रुवसेनका ३१० संवत् चिह्नित (६२९ खृ० अ०) ताम्रशासन पाया गया है। इस ध्रुव-सेनको चीन-परिव्राजक यूएनसियांने 'तु-लु-हो पो-टै' या ध्रुवभटके नामसे परिचित किया है।

उन्होंने वलभीपतिको मालवपति शिलादित्यका भानजा, कान्यकुब्ज हर्षवर्द्धनके पुत्रका जामाता एवं क्षत्रिय जातीय कह कर उल्लेख किया है। वे वलभीराज पहले हिन्दूधर्मावलम्बी होने पर भी इस समयके बौद्ध त्रिरत्नका उपासक हो कर बौद्धधर्म अवलम्बनके साथ साथ अत्यन्त दयालु, विद्योत्साही तथा धार्मिक हो गये थे। प्रति वर्ष ही वे महाधर्मसभा करते थे, श्रोताओं-को बहुतसे धनरत्न तथा उत्कृष्ट खाद्य पदार्थ दान देते थे, आचार्योंको वस्त्र, भैषज्यादि तथा मूल्यवान् मणि-रत्नादि बाँटते थे। दूरदेशीय आचार्यगण जो सभामें उपस्थित होते थे, वे राजाके निकट विशेष सम्मानित होते थे। उस समय वलभीराज्यका आयतन ६००० ली या हजार मील था और इसकी राजधानीका परिमाण ० ली था। इस देशकी आबादी, जलवायु तथा भूसंस्थान मालव-राज्यके समान था। यह स्थान बहुत जनाकीर्ण था, राजधानी धनी लोगोंके उन्नत प्रासादोंसे समाच्छन्न थी एवं इस स्थानमें बहुतसे करोड़पतियोंका निवास था। अनेकों दूर-दूर देशोंकी रत्नराशि यहाँ संचित थी। यहाँ शताधिक संघाराम विद्यमान थे एवं उनमें प्रायः ३००० आचार्योंका वास था। वे सभी प्रायः सम्मतीय शाखा-के हीनयान थे। यहां सैकड़ों मन्दिरें विद्यमान थे। चीनपरिव्राजकने इस तरहसे वलभीका परिचय दे कर

मिलिटरी विभागके बहुतसे अंगरेज-कर्मचारी रहते हैं। विजगापत्तनसे यह स्थान तीन मील उत्तरमें अवस्थित है, एवं उक्त नगरके यूरोपियोंकी वासभूमि भी उपकण्ठ रह कर परिगणित है। समुद्रकी तहसे यह स्थान २३० फीट ऊंचा एवं गण्डशैलमालासे परिवृत है। इष्टकोष्ट रेलवे इस नगरके पास हो कर मान्द्राजकी ओर दौड़ गया है। इस कारण आज कल यहांकी श्रीवृद्धि बहुत कुछ बढ़ गई है। पहले यहां पीनेके जलका बड़ा अभाव था, अब उसकी उतनी शिकायत नहीं रह गई है; परन्तु फलमूल और खानेकी चीजका अब भी अभाव है। यहांके अंगरेज टोलासे बंगाली-टोला बहुत ही खराब है।

वलदपुर—मान्द्राज प्रेसिडेन्सीके दक्षिण आरकट जिलेके विलुपुरम् तालुकके अन्तर्गत एक गण्डग्राम। यह अक्षा० ११° ५८´ ५०´´ उ० तथा देशा० ७९° ४४´ ३०´´ पू० पंडिचेरीसे ६ मील उत्तर-पश्चिममें अवस्थित है। फरासिसीने पंडीचेरी राजधानी सुदृढ़ करनेके लिये यहां पहले दुर्ग बना कर सेनानिवास स्थापन किया था। १७६० ई०में अङ्गरेज सेनापति कूटने पंडीचेरी पर आक्रमण कर इसे अङ्गरेजाधिकृत कर लिया।

१८८२ ई०की ३०वीं जून तक स्थलपथगामी पण्य-द्रव्य पर शुल्क आदाय करनेके लिये यहां फरासिसीका एक शुल्क-कार्यालय था।

वलद्विष् (सं० पु०) इन्द्र।

वलन (सं० क्ली०) ज्योतिष शास्त्रानुसार ग्रह, नक्षत्रादिका स्वायनांशसे हट कर चलना या विचलन (deflection)।

वलनवासना (सं० स्त्री०) ग्रहादिका अयनच्युति प्रतिपादन।

वलनांश (सं० पु०) ज्योतिषके अनुसार अपनांशसे किसी ग्रहका वलन अर्थात् हट कर चलने या चक्रगतिको सूचक अंश (degree of deflection)।

वलनाशन (सं० पु०) १ बलध्वंसक। २ इन्द्र।

वलनिषूदन (सं० पु०) इन्द्र।

वलभिका (सं० स्त्री०) संगीतशास्त्रोक्त स्वरप्रभेद।

वलपुर (सं० क्ली०) वल नामक दानवकी पुरी।

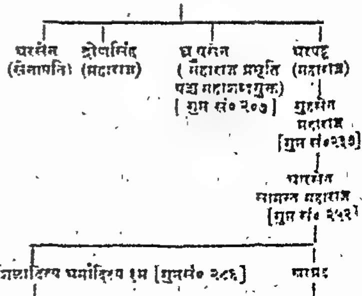
वलभि (सं० स्त्री०) वलभी देखो।

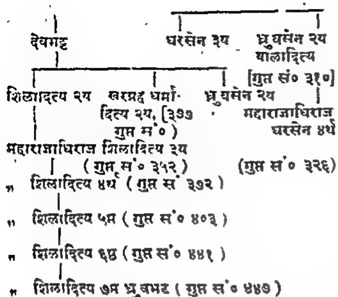
वलभी (सं० स्त्री०) वलभि कृदिकारादिति वा ङीप्

१ वह मकान जो घरके ऊपर शिखर पर बना हो, रावटी। २ छाजन। ३ गृहचूड़ा, घरकी चोटी। ४ पुरीविशेष।

वलभीराजवंश—सुराष्ट्रका एक प्राचीन राजवंश। सुराष्ट्रके (वर्त्तमान काठियावाड़के) अन्तर्गत, भावनगरसे १८ मील उत्तर पश्चिममें अवस्थित है। वर्त्तमान वाला नामक स्थान पहले वलभी नामसे विख्यात था। प्राचीन वलभी-राजधानीका ध्वंसावशेष उक्त वाला नामक स्थानमें विद्यमान है। यहांके प्राचीन नरपतिगण वलभी-राजवंश-के नामसे इतिहासमें परिचित हैं।

खृष्टीय ५वीं शताब्दीमें भटार्क नामक एक सेनापतिका अभ्युदय हुआ। ये मैत्रक या मिहरवंशीय थे। भटार्क सम्भवतः सुराष्ट्रके गुप्तवंशीय राजाओंके किसी सेनापतिके वंशधर थे। वलभी राजाओंकी बहुत सी शिलालिपि तथा ताम्रशासनसे जाना जाता है, कि भटार्कके अनुसार ही उनके ज्येष्ठ पुत्र प्रथम धरसेन भी सेनापतिकी उपाधिसे भूषित थे। पाश्चात्य ऐतिहासिक लोग इन्हें विदेशी ही समझते हैं। हम लोगोंको भी ऐसा जान पड़ता है कि, भटार्क भी एक शाकद्वीपी क्षत्रियवंशी थे। अति प्राचीनकालमें जो शाकद्वीपी लोग भारतमें आये थे, वे मित्र नामक सूर्योपासक थे। इसी कारण कितने ही मैत्रक या मिहिर उपाधि धारण करते थे। अन्तमें ये लोग ही वंशोपाधि रूपमें गिने जाने लगे। भटार्क भी इसी तरहसे किसी मैत्रक-कुलमें उत्पन्न हुए थे, उनके वंशधर भी मैत्रक कहलाते हैं। इस वंशके बहुतसे ताम्रशासन पाये गये हैं। उनसे ही वंशावली निकली है।





सेनापति भटार्क यद्यपि इस वंशके बीजपुरुष थे, तथापि उनके पुत्र प्रथम ध्रुवसेनने ही स्वभावतः "पंच-महाशब्द" युक्त राजोपाधि ग्रहण की एवं इस वंशीय राजाओंके जितने ताम्रशासन आविष्कृत हुए हैं, उनमें इस ध्रुवसेनका ताम्रशासन ही सर्वप्राचीन है, उसके २०७ अंक दृष्टिगोचर होते हैं। इस अंकको किसी किसी प्रत्नतत्त्वविद्‌ने "वलभीसंवत" नामसे निर्देश किया है। सुप्रसिद्ध मुसलमान पंडित अलबेरुणी खृष्टीय १०वीं शताब्दीके शेष भागमें लिख गये हैं कि, वल्लभवंश ध्वंस होने पर २४१ शकाब्दमें यह संवत् प्रचलित हुआ। किन्तु हम लोग देखते हैं, कि सेनापति भटार्क द्वारा ही वलभीवंशका अभ्युदय हुआ। इस हालतमें उनके जन्मके शताधिक वर्ष पहले ही किस तरह वल्भीराजवंशके ध्वंसकी बात स्वीकार की जा सकती है। हम लोगोंका विश्वास है कि, एक समय वलभी सुराष्ट्रके शक-राजाओंके अधिकारमें था। २४१ शक या ३१९ खृष्टाब्दमें शक राज्य ध्वंस तथा गुप्त साम्राज्य स्थापित हुआ। २४१ शकाब्दमें ही गुप्तसंवत्सर आरम्भ हुआ। उसके बहुत वर्षोंके बाद सेनापतिवंशका अभ्युदय होने पर भी वलभीराजगण गुप्त सम्राटोंका संवत् ग्रहण करनेको बाध्य हुए। ऐसी दशामें वलभीराज्य ध्वंस होनेसे ही वलभी-संवत् आरम्भ होनेका प्रवाद प्रचलित होना कुछ असम्भव नहीं है। उक्त २०७ अंक+२४१=४४८ शक (या ५२६ ई०) में १म ध्रुवसेन राज्य करते थे। उनके तथा उनके बादके राजाओंके ताम्रशासनसे जाना जाता है, कि वे राजे "पंच-महाशब्द" व्यवहार करते थे। महाराज, महासामन्त, महाप्रतीहार, महादण्डनायक तथा महाकार्त्ताकृत्य ये सब उपाधियां सम्भवतः उनके पूर्वपुरुषोंके राजकीय पद-निर्देशक थीं, अपस्तन वंशधरने उस स्मृतिका लोप करना कर्त्तव्य नहीं समझा। १म ध्रुवसेन अपने बौद्धधर्मावलम्बी होने पर भी अन्यान्य धर्मविद्वेषी नहीं थे। बहुतसे ताम्रशासनोंमें उनको बहुत दृढ़ता "परमोपासिका" नामसे सम्मानित हुई है। वलभीराज शिलादित्य प्रथम धर्मादित्य सम्राट् हर्षदेवसे पराजित हुए।

बालादित्य द्वितीय ध्रुवसेनका ३१० संवत् चिह्नित (६२९ खृ० अ०) ताम्रशासन पाया गया है। इस ध्रुवसेनको चीन-परिव्राजक यूएनसियांने 'तु-लु-हो पो-टो' या ध्रुवभटके नामसे परिचित किया है।

उन्होंने वलभीपतिको मालवपति शिलादित्यका भानजा, कान्यकुब्ज हर्षवर्द्धनके पुत्रका जामाता एवं क्षत्रिय जातीय कह कर उल्लेख किया है। ये वलभीराज पहले हिन्दूधर्मावलम्बी होने पर भी इस समयके बौद्ध त्रिरत्नका उपासक हो कर बौद्धधर्म अवलम्बनके साथ साथ अत्यन्त दयालु, विद्योत्साही तथा धार्मिक हो गये थे। प्रति वर्ष ही वे महाधर्मसभा करते थे, श्रोताओंको बहुतसे धनरत्न तथा उत्कृष्ट खाद्य पदार्थ दान देते थे, आचार्योंको वस्त्र, भैषज्यादि तथा मूल्यवान् मणिरत्नादि बाँटते थे। दूरदेशीय आचार्यगण जो सभामें उपस्थित होते थे, वे राजाके निकट विशेष सम्मानित होते थे। उस समय वल्भीराज्यका आयतन ६००० ली या हजार मील था और इसकी राजधानीका परिमाण ० ली था। इस देशकी आबादी, जलवायु तथा भूसंस्थान मालव-राज्यके समान था। यह स्थान बहुत जनाकीर्ण था, राजधानी धनी लोगोंके उन्नत प्रासादोंसे समाच्छन्न थी एवं इस स्थानमें बहुतसे करोड़पतियोंका निवास था। अनेकों दूर-दूर देशोंकी रत्नराशि यहाँ संचित थी। यहाँ शताधिक संघाराम विद्यमान् थे एवं उनमें प्रायः ३००० आचार्योंका वास था। वे सभी प्रायः सम्मतीय शाखाके हीनयान थे। यहां सैकड़ों मन्दिरें विद्यमान थे। चीनपरिव्राजकने इस तरहसे वलभीका परिचय दे कर

जनमें लिखा है, कि ये अनेकों बार यहाँ आया करते थे इसलिये अशोकराजने उनके स्मरणार्थ इस स्थान पर कई एक स्तूपस्तूपें निर्माण किये थे। वलभीनगरके समीप योगपरिव्राजक अर्हत् आचार्यके प्रतिष्ठित गुणमती तथा स्थिरमतीके स्मृतिचिह्न-स्वरूप वृहत् संघाराम बने गये हैं।

सम्राट् हर्षवर्द्धनकी मृत्युके बाद जिस समय वर्द्धन-साम्राज्य ले कर गोलयोग उपस्थित हुआ था, उस सुअवसर पर ४र्थ धरसेनने बहुत-से राज्य जीत कर "परम-भट्टारक परमेश्वर चक्रवर्त्ती महाराजाधिराज"-की उपाधि ग्रहण की थी। ये स्त्री-पुरुष दोनोंको ही राजकार्यमें समान अधिकारी समझते थे। उनके ३२० वलभी-संवत् (६४६-५० ई०) में उत्कीर्ण ताम्रशासनमें उनकी प्रिय दुहिता भूपा दूतक अर्थात् शासनपत्रके कार्य संपादनमें प्रधान राजपुरुष कह कर परिचित हैं। उन्होंने भरुकच्छ-में (वर्त्तमान भरोच शहरमें) अपनी राजधानी स्थापित की थी।

वलभी-राजवंशके ध्वंस हो जाने पर भी बहुत समय तक वलभी-संवत्‌का प्रचलन था। वेरावलमें आविष्कृत चौलुक्यराज अर्जुनदेवकी शिलालिपिमें ६४५ वलभी-संवत् अङ्क (=१२६४ ई०) देखा जाता है। वलभीके ध्वंस हो जानेके बाद वलभी वंशीय कितने किसी व्यक्तिने राजपुतानेमें आश्रय लिया। वल्लभ देखो।

वलम्ब (सं० पु०) अवलम्ब, सरल रेखाकी उपरस्थ लम्ब-रेखा। (Perpendicular)।

वलक्ष (सं पु०) एक प्राचीन जनपदका नाम।

वलय (सं० पु० क्ली०) वलते आवृणोति हस्तादिकमिति-वल (वलिमलितनिभ्यः कयन्। उण् ४।९९) इति कयन्। १ स्वर्णादिरचित भोगाभरण, चूड़ी। पर्याय—आवापक, पारिहार्य, अङ्गद, कम्बु, कुण्डल। २ मण्डल। ३ कण्ठ-विरोग। (सुश्रुत शारीरस्था० ५ अ०) ४ वृक्षस्कन्धका एक भेद। ५ वेष्टन। ६ कंकण। (पु०) वलयवदाकृतिरस्त्य-स्येति अर्श आदित्वादच्। ७ अठारह प्रकारके गलरोग रोगोंमेंसे एक। इसमें कफके कारण गलेके अन्दर उस मार्गमें स्रिग्धोंसे हो कर अन्न जाता है वैसी जाता है, एक गांठ उत्पन्न हो जाती है। वह गांठ ऊंची और बड़ी होती है और अन्न जलके जानेका मार्ग रोक देती है। वैद्य लोग इसे असाध्य मानते हैं।

वलयवत् (सं० त्रि०) वलय अस्त्यर्थे मतुप मस्य वः। वलयविशिष्ट।

वलयित (सं० त्रि०) वलयवत् कृतमिति वलय तत्करोति णिच् ततः क्तः, यद्वा वलयं सञ्जातमस्येति वलय इतच्। वेष्टित, परिवृत, घेरा हुआ।

वलयिन् (सं० त्रि०) वलय या कुण्डलाकारसे शोभित।

वलयीकृत (सं० त्रि०) १ वलयाकारमें वेष्टित। २ कृत-वलय। ३ कुण्डलीकृत।

वलयीकृतवासुकी (सं० पु०) शिव।

वलयीभूत (सं० त्रि०) १ वलयाकारमें स्थित। २ वेष्टित।

वलरामी—वैष्णव सम्प्रदायभेद। वलराम हाड़ी इस सम्प्र-दायके प्रवर्त्तक थे, इसलिये यह सम्प्रदाय वलरामी कह-लाता है। नदी या जिलेके अन्तर्गत मेहेरपुर ग्रामके मालोपाड़ामें इनका जन्म हुआ था। उनके पिताका नाम गोविन्द हाड़ी एवं माताका नाम गौरमणि था। १२०३ सालकी ३०वीं अग्रहायणको लगभग ६५ वर्षकी अवस्था-में उनकी मृत्यु हुई।

वलराम इस ग्रामके मल्लिक बाबुओंके घर चौकीदारी का काम करते थे। उनके भवनमें आनन्द विहारी नामक एक विग्रह है। एक समय इस विग्रहका स्वर्णालंकार चोरी जाने पर बाबुओंने वलराम पर कुछ शासन किया। उसने वे घर छोड़ गेरुआ वस्त्र धारण कर उदासी हो गये। उन्होंने अपने नाम पर उपासक सम्प्रदाय प्रवर्त्तन किया। वल-रामके शिष्यगण उन्हें श्रीरामचन्द्रजीका अवतार मानते थे। किन्तु वलरामने स्वयं ऐसा अभिप्राय प्रकाश किया था, ऐसा ज्ञान नहीं पड़ता। सुना जाता है कि, वे स्वयं अपनेको सृष्टिस्थिति प्रलयकर्त्ता कह कर अपना परिचय देते थे। उनके शिष्य लोग कहते हैं कि, वलराम उपदेशक थे एवं वे सत्य व्यवहार करनेका उपदेश दिया करते थे।

वलराम वाक्पटु थे। वे संसारके यावतीय व्यापारों-के निगूढ़ भावोंकी व्याख्या आसानीसे कर सकते थे, इसीलिये वे वाग्मीके नामसे प्रसिद्ध हैं। एक दिन उनके किसी शिष्यने पूछा—पृथ्वी कहांसे पैदा हुई?

उन्होंने उत्तर दिया—'क्षय' से पैदा हुई है। शिष्योंने फिर पूछा—'क्षय' से किस तरह पैदा हुई? वे विशेषरूपसे कहने लगा—आदिकालमें कुछ भी नहीं था, मैंने अपना शरीर 'क्षय' करके अर्थात् अपने शरीरसे इस पृथ्वीकी सृष्टि की। इसीलिये इसका नाम क्षिति है। क्षय, क्षिति तथा क्षेत्र एक ही पदार्थ है। लोग मुझे नीच हाड़ी जाति समझते हैं, किन्तु तुम लोग जो हाड़ी जाति सर्वत्र देखते हो, मैं वह हाड़ी नहीं हूं। मैं कुतदार गढ़नदार हाड़ी हूं, अर्थात् जो व्यक्ति घर तैयार करते हैं, वे घरामी कहलाते हैं, उसी तरह मैं हाड़की सृष्टि करनेके कारण हाड़ी कहलाता हूं।

एक दिन बलराम नदीमें स्नान करने गये। वहां उन्होंने देखा—कई एक ब्राह्मण वहां पितृतर्पण कर रहे हैं। वे भी उन लोगोंकी तरह नदीके किनारे जल उछालने लगे। उनको अंगभंगी देख कर एक ब्राह्मणने उनसे पूछा—बलराम! तुम यह क्या कर रहे हो? इस पर बलरामने उत्तर दिया—मैं शाकके खेतमें जल पटा रहा हूं। इस पर ब्राह्मण देवता कहने लगे—यहां शाकका खेत कहां है? बलरामने जवाब दिया—आप लोग जो पितरोंका तर्पण करते हैं, वे सब यहां कहां हैं? जब नदीका जल नदीमें ही निक्षेप करनेसे पितृदेवको प्राप्त होता है, तब नदीके किनारे जल सिंचन करनेसे शाकके खेतमें क्यों नहीं पहुंचेगा?

होलिकाके समय बलराम स्वयं होलिकामंच पर जा बैठते थे और शिष्यगण अबीर तथा पुष्पादिसे उनको पूजा करते थे।

इस सम्प्रदायके अनुयायियोंमें जातिविचार नहीं है। इनके अधिकांश गृहस्थ हैं तथा कोई कोई उदासी हैं। उदासी ब्याह नहीं करते, अथच इन्द्रिय दोषमें भी लिप्त नहीं होते। गृहस्थ लोग अपने अपने कुलाचारानुसार विवाह संस्कार सम्पन्न करते हैं।

इनका कोई साम्प्रदायिक ग्रन्थ नहीं है। ये लोग विग्रहकी सेवा भी नहीं करते, गुरु नहीं कहने पर भी होता है। ब्रह्म मालोनी नामक एक स्त्री थी। बलराम उसे प्यार करते थे। इसीलिये उसने कुछ दिनों तक गुरुका कार्य किया था।

बलरामी सम्प्रदाय दो शाखाओंमें विभक्त है। एक शाखाके लोगोंने बलरामके मृत्युस्थान पर एक छोटा-सा घर बना रखा है। ये लोग सन्ध्या समय वहां पर दीप दिखाते हैं और प्रणाम करते हैं। द्वितीय शाखाके लोग बलरामको ऐसी आस्था न समझ कर उनके मृत्युस्थानका कोई गौरव नहीं करते।

बलवत् (सं० त्रि०) बल अस्त्यर्थे मतुप् मस्य वः। बलयुक्त, बलवान्।

बलवत्ता (सं० स्त्री०) बलवतो भावः तल्-टाप्। अतिशय बल, शक्ति, सामर्थ्य।

बलवनूर—मान्द्राज-प्रेसिडेन्सीके दक्षिण और आर्कट जिलेमें विल्लपुरम् तालुकके अन्तर्गत एक समृद्धिशाली गण्डग्राम। यह अक्षा० ११° ५५' उ० तथा देशा० ७९° ४८' पू० पंडीचेरीसे ढ़ाई कोस दक्षिण-पश्चिममें अवस्थित है। यहां स्थानीय उपजको खरीद-बिक्रीके लिये एक बड़ी हाट लगती है।

बलवला (अ० पु०) उमंग, आवेश।

बलवृत्रघ्न (सं० पु०) बल और वृत्रनाशक इन्द्र।

बलवृत्रनिसूदन (सं० पु०) बलवृत्रौ निसूदयति सूद-ल्यु। बलवृत्रहन्ता इन्द्र।

बलसूदन (सं० पु०) बलं सूदयति सूद-ल्यु। इन्द्र।

बलसन—बम्बई प्रेसिडेन्सीके महिकान्था विभागान्तर्गत एक क्षुद्र सामन्तराज्य। यहांके सरदार ठाकुर मानसिंहजी राठोरवंशीय राजपूत हैं। उन्हें दत्तक लेनेका अधिकार नहीं है; किन्तु राज-नियमसे ज्येष्ठ पुत्र ही राजतख्तके अधिकारी होते हैं। राजस्व ७२४०) रु० है, जिसमें वार्षिक २८०) रुपया कर-स्वरूप बड़ोदाके गायकवाड़को देना होता है।

बलहन्तृ (सं० पु०) बल नामक असुरको संहार करनेवाले इन्द्र।

बलाका (सं० पु०) बगला।

बलाट (सं० पु०) बलेन अट्यते प्राप्यते इति अट-घञ्। मुद्ग, मूंग।

बलाराति (सं० पु०) बलस्य अरातिः। इन्द्र।

बलाहक (सं० पु०) बलेन हीयते इति बल-हा-क्वुन्, यद्वा वारीणां वाहकः पृषोदरादित्वात् साधुः। १ मेघ, बादल। २ मुस्तक, मोथा। ३ पर्वत। ४ एक दैत्यका

नाम। ५ मरीचीका एक जाति जो बृहस्पतिके अन्तर्गत मानी जाती है। ६ रमाके गर्भसे उत्पन्न कल्किदेवका पुत्र। ७ श्रीकृष्णके रथके एक घोड़ेका नाम। ८ एक नदीका नाम। ९ कुशद्वीपके एक पर्वतका नाम।

वलि (सं० पु०) १ रेखा, लकीर। २ पेटके दोनों ओर पेटीके सिकुड़नेसे पड़ी हुई रेखा, बल। जैसे—त्रिवली। ३ चन्दन आदिसे बनाई हुई रेखा। ४ पूजोपहार, देवताको चढ़ानेकी वस्तु। ५ राजकर। ६ एक दैत्य जो प्रह्लादका पौत्र था और जिसे विष्णुने वामन अवतार ले कर छला था। बलि देखो। ७ एक प्रकारका बाजा। ८ श्रेणी, पंक्ति। ९ राजकर। १० गंधक। ११ छाजनकी ओलती। १२ बवासीरका मस्सा।

वलिक (सं० पु०) घरकी छत या छाजनकी ढालका अंत जहांसे पानी गिरता है, ओलती।

वलिक्रिया (सं० स्त्री०) १ उपहार दान। २ किसी व्यक्तिके गलेमें लपेट बांधना।

वलित (सं० त्रि०) १ बल खाया हुआ, लचका हुआ। २ झुकाया हुआ, मोड़ा हुआ। ३ लिपटा हुआ, लगा हुआ। ४ परिवृत, आवेष्टित। ५ युक्त, सहित। ६ जिसमें झुर्रियां पड़ी हों, जो जगह जगहसे सुकड़ा हो। ७ आच्छादित, ढका हुआ। (पु०) ८ काली मिर्च। ९ नृत्यमें हाथ मोड़नेकी एक मुद्रा।

वलिन् (सं० त्रि०) १ बलशाली। (पु०) २ सिकुड़ा हुआ गात्र-मांस।

वलिभ (सं० त्रि०) वलि अस्त्यर्थे (तुन्दिवलिवटेर्भः। पा ५।२।१३९) वलियुक्त, वलिविशिष्ट।

वलिमुख (सं० पु०) १ वानर, बंदर। २ गरम दूधमें मट्ठा मिलनेसे उत्पन्न छेना विकार।

वलिर (सं० त्रि०) वलते संवृणोति चक्षुस्तारामिति वल-बाहुलकात् किरच्। केकर या टेरा अक्षिविशिष्ट, जो भेंगा हो।

वलिवक्ष (सं० पु०) राजपुत्रभेद।

वलिश (सं० क्ली०) वलिना मत्स्यबन्धनसाधनपदार्थेन श्यति छिनत्ति मत्स्यानिति शो-क। बड़िश, बंसी।

वलिसद्म (सं० पु०) मेघ, बादल।

वलिशि (सं० स्त्री०) वलिना आहारोपकरणेन मत्स्यादीन् श्यति, चित्तानयतीति शो बाहुलकात् कि। बड़िश, बंसी।

वली (सं० स्त्री०) १ श्रेणी, आवली। २ रेखा, लकीर। ३ शिकन, झुर्री। ४ पेटके दोनों ओर पेटीके सुकड़नेसे पड़ी हुई लकीर। ५ चन्दन आदिसे बनाई हुई लकीर।

वली (अ० पु०) १ स्वामी, मालिक। २ शासक, अधिपति। ३ साधु, फकीर।

वलीअहद (अ० पु०) युवराज, टिकैत।

वलीक (सं० क्ली०) वलति संवृणोतीति वल संवरणे (अलीकादयश्च। उण् ४।२५) इति कीकन्। १ शर, सरकंडा। २ घरकी छत या छाजनकी ओलती।

वलीदपुर—युक्तप्रदेशके आजमगढ़ जिलान्तर्गत एक नगर। यह अक्षा० २६° ३' ३५" उ० तथा देशा० ८३° २५' ३०" पू०, तौंस नदीके किनारे आजमगढ़से ६ कोस दूर पर अवस्थित है। नगर तो छोटा है, पर बड़ा ही समृद्धिशाली है। सप्ताहमें दो बार हाट लगती है। उस हाटमें आसपासके गांवोंसे चीजें बिकने आती हैं। यहां करीब २५० घर जुलाहे हैं जो कपड़ा बुनते हैं। जौनपुरवासी मखदूम शेख मुहेयियोंके वंशधर लोग यहांके जमींदार हैं। उन्होंने १५वीं सदीके शेषमें जौनपुरके शेष राजा सुलतानसे यह जमीन जागीर-स्वरूप पाई थी।

वलीमत् (सं० त्रि०) वलीयुक्त।

वलीमुख (सं० त्रि०) वली युक्तं मुखं यस्य। वानर।

वलीवाक (सं० पु०) एक ऋषिका नाम। वलिवाक देखो।

वलूक (सं० क्ली०) वलते इति वल संवरणे ((उलूकादयश्च। उण् ४।४०) इति ऊक। १ पद्ममूल, कमलकी जड़, भिस्सा। (पु०) २ पक्षिविशेष।

वल्क (सं० पु०) वलते वल संवरणे (शुल्कवल्कोल्का। उण् ३।४२) इति कप्रत्ययान्तो निपातितः। वक्कल, छाल।

वल्कस (सं० पु०) पुराणानुसार एक जाति।

वल्कतरु (सं० पु०) वल्कप्रधानस्तरुरिति कर्मधारयः। पूगवृक्ष, सुपारीका पेड़।

वल्कद्रुम (सं० पु०) वल्कप्रधानो द्रुमः। भूर्जवृक्ष, भोजपत्रका पेड़।

वल्कल (सं० क्ली०) वलते संवृणोतीति वल बाहुलकात् कलन्। १ त्वक्, छालकी। (पुं क्ली०) २ वृक्ष-

त्वक्, वृक्षकी छाल। पर्य्याय—त्वक्, वल्क, त्वच्, चोच, चोलक, शल्क, छवकल, छल्लि, चोतक। (शब्दरत्नाकर)

अत्यन्त प्राचीनकालसे ही वल्कल पहननेकी प्रथा प्रचलित थी। रामायणीय युगमें हम लोग रामचन्द्रको सीता तथा लक्ष्मणके साथ (रामा० १।११) एवं महाभारतीय युगमें पांचों पाण्डवोंको अजिन वल्कल धारण करके माता कुन्तीदेवीके साथ (महाभारत १।१५७।१ ८) वनान्तर-भ्रमणकार्यमें नियुक्त देख पाते हैं। साधु संन्यासी लोग उस प्राचीनकालमें सूत्रनिर्मित वस्त्रोंके बदले वल्कल-निर्मित कौपीन व्यवहार करते थे। वस्तुतः यह परिधेय 'वल्कल' पर्णाच्छादनके मूल (Leaf wearing) की तरह वृक्षछालके रूपमें ही व्यवहार किया जाता था। अथवा अभ्यन्तरभागस्थ 'नाड़' या सूक्ष्म तन्तुमय रेसेके सूक्ष्मतम सूत द्वारा वस्त्रके रूपमें बुना जाता था इसका कोई प्रमाण नहीं मिलता।

वर्त्तमान समय हम लोग देखते हैं, कि वृक्ष-छालके इन कोषमय नाड़ों (Cellular tissue) को कूट कर सूक्ष्म सूक्ष्म सूते (Fibrous material) तैयार किये जाते हैं। उन्हीं तन्तुओंसे सूत्र या मछली पकड़नेका 'कड़' (Cordage) एवं गलीचा, आजिम प्रभृति बुने जाते हैं। ब्रह्मदेशमें यह छालतन्तु 'प' कहलाता है। अङ्गरेजीमें इसे Bast कहते हैं। रूसदेशजात Linden श्रेणीके वृक्षोद्भव छालतंतु द्वारा विनिर्मित वल्कलवस्त्र सारे यूरोपके वल्कल वस्त्रोंसे अच्छा होता है। इसके अतिरिक्त Tilia Europea नामक और एक स्वतंत्र श्रेणीका वृक्ष देखा जाता है। उसकी छालके रेसोंसे टेबिल ढकनेके गलीचे तथा जूतेके कपड़े तैय्यार किये जाते हैं।

भारतवर्ष तथा पूर्वभारतीय द्वीपोंमें Grewia, Libiscus तथा Malberry श्रेणीके वृक्षोंकी छालमें उत्कृष्ट तन्तु पाया जाता है। तूंत फलके पेड़ोंकी छालसे मूगा नामक एक प्रकारका तन्तु निकाला जाता है। यह रेशमकी अपेक्षा सख्त और बहुकालस्थायी होता है। मछली पकड़नेकी बड़शि (बंसी) इस सूत्रमें बांधी जाती है। आराकान देशके थेम्-थम् प, प-थ जो, प क्यू, औलसी-म् प, प नो तथा पम्-बोत्-प नामक वृक्षोंमें बहुतायत वल्कलतन्तु पाये जाते हैं। आकयाब तथा ब्रह्मविभागमें इन्-क्यू प, दम् प, मत्तोत् प, वामोल् प, प-गीत्व प्रभृति कई जातिके वृक्षोंसे इस तरहके तन्तु निकाले जाते हैं। उनसे नौका बांधनेकी रस्सी तथा मछली पकड़नेके जाल प्रभृति तैयार किये जाते हैं।

आकयाबके गुयान्द योन-प वृक्षकी छालके तन्तुओंसे सुदृढ़ जाल तथा जहाज बांधनेकी रस्सी तैयारकी जाती हैं। मलक्का द्वीपके मास वृक्ष Melaleuca Viridiflora तथा ताली वृक्षकी छालके Artocarpus सूत्र द्वारा मछली पकड़नेके जाल बुने जाते हैं।

शिंगापुरके ताली तरासके तन्तुओंसे एवं श्यामदेशके वृक्षोंकी छालके तन्तुओंसे सुतली (Twine) तैयारी की जाती है।

मलय प्रायद्वीप तथा केदा नामक स्थानोंमें सेमल जातिके वृक्षोंके छालसूत्र द्वारा एक प्रकारका वल्कलवस्त्र तैयार किया जाता है। सिलेबिस् द्वीपके काइली विभागमें एक प्रकारके तूत वृक्षकी छालसे जो सूते तैयार किये जाते हैं, उनसे तैयार वस्त्र भी 'वल्कलवस्त्र' ही कहलाते हैं। १८५७ ई०की मान्द्राज-प्रदर्शनीमें जनसाधारणके सामने मि० जाफरीने Eriodendron anfractnosum नामक वृक्षकी छालसे सूत्र निकाल कर उसकी दृढ़ता तथा वस्त्रवयनोपयोगिता सिद्ध कर दी थी।

वर्त्तमान समय 'छालटी' नामसे एक प्रकारका सुन्दर रेशमी कपड़ा तैयार किया जाता है। यह केवल वृक्षतंतुओंसे ही बुना जाता है। बनारसी सिल्कके नामसे जो शरीर ढकनेके मोटे कपड़े पाये जाते हैं, वे Rhea-fibre से तैयार किये जाते हैं। इन (Rhea fibre) तन्तुओंसे सिल्ककी चादरके समान पतले तथा शीतकालोपयोगी मोटे गात्रवस्त्र एवं कोट प्रभृति तैयार किये जाते हैं।

वस्त्रोंके अतिरिक्त इस वल्कलसे अनेकों प्रकारकी ओषधियां तथा चमड़ा साफ करनेके लिये एक प्रकारका 'कस' तैयार किया जाता है। सिनकोना वृक्ष (Cinchona) की छालसे कुनेन औषध तैयार की जाती है। बाकसछाल, नीमछाल, जामुनछाल, बकुलछाल प्रभृति सभी छालें औषधरूपमें व्यवहृत होती हैं। आयुर्वे-

रोग, औषधरूपमें इसके अतिरिक्त और भी कई प्रकारके पेड़ोंकी छालका रस औषध या अनुपानरूपमें व्यवहार करनेकी विधि बताई गई है। Oaks, Rhus, Eucalyptus तथा बबूल (Acacia Arabica) प्रभृति वृक्षोंकी छाल चमड़ा परिष्कार करनेमें tanning विशेष उपयोगी होती है। Acacia leucophloeo या सफेद कीकर नामक वृक्षकी छालसे मद्य चुआ कर काममें लाते हैं। इस Acacia श्रेणीभुक्त अष्ट्रेलियाके wattle वृक्षकी छाल भी चमड़ा परिष्कार करनेमें काम आती है। एक प्रकारके ओक वृक्षकी छाल बाजारमें बिकी होती है।

भोजपत्र नामक और भी जो एक प्रकारके वृक्षकी छालका सूक्ष्म स्तर देखा जाता है, उसकी भी गिनती वल्कलमें ही होती है। उस पर पापग्रहोंकी अशुभ दृष्टि दूर करनेके लिये रक्षाकवच आदि लिख कर शरीरमें धारण किया जाता है। प्राचीन शास्त्र ग्रन्थादि भी भोजपत्रमें लिखे जाते थे। इस समय इसका विशेष प्रचार नहीं है। पाट, शन प्रभृति भी वल्कलज तन्तुओंमें गिने जाते हैं।

वल्कलतीर्थ (सं० पु०) एक पवित्र स्थानका नाम। ब्रह्माण्डपुराण और अध्यात्म-रामायणके अन्तर्गत वल्कलतीर्थ माहात्म्यमें इसका विस्तृत विवरण है।

वल्कलवत् (सं० त्रि०) वल्कल अस्त्यर्थे मतुप् मस्य वः। वल्कलविशिष्ट, वल्कलधारी।

वल्कलसंवीत (सं० त्रि०) वल्कलावृत।

वल्कला (सं० स्त्री०) वल्कल-टाप्। १ शिलावल्का, सफेद रंगका एक प्रकारका पत्थर। इसका गुण—शीतल और शान्तिकारक माना जाता है। २ शैलेय।

वल्कलिन् (सं० पु०) १ श्वेत लोध्रवृक्ष, सफेद लोधका पेड़। (त्रि०) २ वल्कलधारी, वल्कल या पेड़की छाल पहननेवाला।

वल्कलोध्र (सं० पु०) वल्कप्रधानो लोध्रः। पट्टिका लोध, पठानी लोध।

वल्कवत् (सं० पु०) वल्कः त्वगस्त्यस्येति वल्क मतुप् मस्य वः। १ मत्स्य, मछली। (त्रि०) २ वल्कयुक्त।

वल्कूप—पञ्जाबके अन्तर्गत एक छोटा हृद।

वल्कान—काश्मीर स्कार्दोनगरके पूर्वदिक्‌स्थ शैलमाला। यह समुद्रपृष्ठसे प्रायः तीन हजार फीट ऊँचा है तथा अक्षा० ३६° ३०′ उ० तथा देशा० ५४° ३० पू० पर अवस्थित है। यहाँ नाना प्रकारका खनिज पदार्थ मिलता है।

वल्कित (सं० पु०) वल्कोऽस्यास्तीति वल्क इतच्। कण्टक, काँटा।

वल्कुल (सं० क्ली०) वल्कल, छाल।

वल्ख (बाल्ख)—अफगान तुर्किस्तानके अन्तर्गत एक सुप्राचीन नगर। यह अक्षा० ३६° ४८′ उ० काबुल राजधानीसे २५३ मील उत्तर पश्चिम, कुन्दुजसे १२० मील पश्चिम एवं हिरातसे ३७० मील उत्तर-पूर्वमें अवस्थित है। इस नगरके उत्तर पूर्वमें वंक्षुनदी, पूर्वमें कुन्दुज, पश्चिममें खुरासान एवं दक्षिण-पश्चिममें हजारा तथा मैमुनार पर्वतमाला है।

रामायणादि प्राचीन संस्कृत ग्रन्थोंमें वाह्लीक नामसे इस सुविस्तृत नगरका उल्लेख है। उस समय आर्य हिन्दुओंके साथ वाह्लीक-नगरवासियोंका जो घनिष्ठ सम्बन्ध था, वह भारतयुद्ध पाठ करनेसे स्पष्ट मालूम होता है। पीछे इसी नगरसे भारतमें शकका अभ्युदय हुआ था। वाह्लीक तथा शक शब्दोंमें विस्तृत वर्णन देखो।

इस जनपदका दक्षिण-पूर्व भाग शीतप्रधान तथा पर्वतमय है एवं उत्तर-पश्चिम भाग बालुकापूर्ण होनेके कारण अपेक्षाकृत उष्णप्रधान तथा समतल है। यहाँ ग्रीष्मकालमें अत्यन्त गर्मी पड़ती है। यहाँ उजबेक, अफगान, मुगल, तुर्क तथा ताजक जातिके लोगोंकी संख्या बहुत कम है। कितने लोग छोटे छोटे ग्रामोंमें दलबद्ध हो कर वास करते हैं। अनेकों कुत्ते गौ आदि पशुओंको एक स्थानसे दूसरे स्थानमें ले जा कर चराते हैं। इन लोगोंका परिवार भी इन लोगोंके साथ ही रहता है। उजबेक जातिके लोग सरलचित्त, साधु प्रकृति एवं दयालु होते हैं। ताजक लोग शराबी तथा चालाक, दुर्दर्ष, वज्र-हृदय एवं झगड़ालू होते हैं।

वर्त्तमान वल्ख नगरमें १० हजार अफगान, ५ हजार ताजक एवं कितने ही उजबेक, हिन्दू तथा यहूदी लोगों का निवास है। वल्ख नगर उतना शोभायमान नहीं है। इस नगरसे थोड़ी दूर पर २० मील परिधिविशिष्ट

सुप्राचीन वाह्लीक राजधानीका ध्वंसावशेष दृष्टिगोचर होता है। इसके ही बाहर भागमें प्रत्नतत्त्वानुसन्धित्सु मूर-क्राफ्ट तथा गुथ्योका समाधिस्तम्भ विद्यमान है। पहले ही कहा गया है कि, रामायणीय तथा महाभारतीय युगमें यह नगर बहुत उन्नति पर था। केवल हिन्दुओंके निकट ही नहीं, पश्चिम एशियाखंडवासियोंके निकट भी इस स्थानका यथेष्ट गौरव था। वे लोग इस राजधानीको आम-उल-बालाद या नगरमाता कह कर उल्लेख करते थे। पारसवासी इसे प्राचीन धर्मका केन्द्रस्थान तथा ज्ञानभंडार समझते थे। प्रवाद है, कि पारसवासी काइयन्मूर्ज़ने यह नगर स्थापित किया एवं प्रसिद्ध दार्शनिक तथा धर्मप्रचारक जवथुस्तने दूसरा अंश स्थापन करके उसकी श्रीवृद्धि की।

माकिदनवीर एलेकसेण्डरने इस स्थान पर अधिकार करके बक्त्रिया राज्यमें मिला लिया। इस समय यह नगर स्थानीय पर्वतश्रेणीसे तीन कोसकी दूरी पर समतलक्षेत्रमें बसा है। यहांका जलवायु वैसा अच्छा नहीं है। नगरमें जल पहुंचानेके लिये नदी-तटसे जल-नालियां (Aqueducts) लगी हैं।

एक समय दुर्द्धर्ष बक्त्रियाराजाओंने सेनादलके साथ रणक्षेत्रमें युद्धकौशलका विशेष परिचय दिया था। बाल्खराज १म अर्सकेश पह्लववंशीय थे। छोरेनीवासी मोजेसने उनकी वीरताका परिचय दिया है, मतभेदसे अर्सकेश सोग्द्-जनपदाधीश्वर कहलाते हैं।

चंगेज खांके समय तक बाल्खनगरी अपने सौन्दर्य समृद्धिसे एशियाके दूसरे दूसरे नगरोंके मध्य सर्वश्रेष्ठ गिनी जाती थी। तैमूरने राज्यविजयकी वासनासे अपनी विस्तृत मुगल-सेनाके साथ समय समय पर आ कर इस नगरको मिट्टीमें मिला दिया। विख्यात परिव्राजक मार्कोपोलो इस स्थानको प्राचीन समृद्धि कितने ही निदर्शन प्रत्यक्ष कर गये हैं। १७३६ ई०में पारसके राजा नादिरशाहने बल्ख तथा कुन्दज पर अधिकार कर लिया। उनकी मृत्युके बाद यह स्थान दुरानीवंशी राजाओंके अधिकारमें चला गया। १८२० ई०में कुन्दजपति शाह मुरादने स्वाधीनता अवलम्बन करके इस स्थानको अफगान शासनसे अलग कर दिया। उसके बाद इस स्थान पर बुखाराका अधिकार हुआ। इसके बाद फिर अफगानिस्तानके सीमाभुक्त हो गया है।

बल्गन (सं० क्ली०) बल्ग-ल्युट्। १ प्लुतगमन, घोड़ेका कूदते या उछलते हुए चलना, दुलकी। २ बहुभाषण, बहुत सी इधर उधरकी बातें कहना।

बल्गा (सं० स्त्री०) बल्ग्यतेऽनयेति बल्ग-करणे घञ्, टाप्। दण्डालिका, लगाम, बाग। पर्याय—अवश्येणी, रश्मि, कुशा।

बल्गित (सं० क्ली०) बल्ग-भावे क्त। बल्गन देखो।

बल्गु (सं० पु०) बलते इति बल प्राणने बल-उ, (बलेर्गुकच् उण्। ११२०) धातुरूत्तर गुगागमः। १ छाग, बकरा। २ बौद्धोंके बोधिद्रुमके चार अधिष्ठाता देवताओंमेंसे एक। (त्रि०) ३ सुन्दर, खूबसूरत।

बल्गुक (सं० क्ली०) बल्गु संज्ञायां,स्वार्थे वा कन्। १ चन्दन। २ विपिन, वन। ३ पण, बाजी। ४ सौदा। (त्रि०) ५ रुचिर, सुन्दर।

बल्गुज (सं० पु०) छाग, बकरा।

बल्गुजङ्घ (सं० त्रि०) १ सुन्दर जङ्घाविशिष्ट, जिसकी जांघ सुन्दर हो। (पु०) २ विश्वामित्रके एक पुत्रका नाम।

बल्गुपत्र (सं० पु०) बल्गु मनोज्ञं पत्रं यस्य। वनमुद्ग, वनमूंग।

बल्गुपोदकी (सं० स्त्री०) १ लहसुआ नामका साग। २ एक प्रकारकी लता।

बल्गुल (सं० पु०) शृगाल, गीदड़।

बल्गुला (सं० स्त्री०) बल्गु लातीति ला-क-टाप्। १ बकुची। २ पक्षिविशेष, चमगादड़। इस अर्थमें व्यवहृत बल्गु शब्दका पर्याय—चर्मचिटा, दिवान्धा, निशाचरी, स्वैरिणी, दिवालाया, मांसेष्टा, मातृहारिणी।

बल्गुलिका (सं० स्त्री०) बल्गु संज्ञायां कन्, टापि अत-इत्वञ्च। १ कत्थई रंगका पतंग जातिका कीड़ा, चपड़ा। इसे तैलपायी भी कहते हैं। २ मंजूषा, झावा, पिटारा।

बल्गुली (सं० स्त्री०) १ रात्रिचर पक्षिविशेष, चमगादड़। २ मंजूषा, झाबा, पिटारा।

बल्गुसोम—एक प्राचीन ग्रन्थकर्त्ता। गोभिलगृह्यसूत्रभाष्यमें इनका उल्लेख है।

वल्द (अ० पु०) औरस बेटा, पुत्र। किसी मनुष्यके पूरे परिचयके लिये उसके नामके आगे इस शब्दका व्यवहार करके उसके पिताका नाम रखा जाता है। जैसे—'गोकुल वल्द बलदेव' अर्थात् "गोकुल, बेटा बलदेवका"। दस्तावेजों और सरकारी कागजों आदिमें जिनकी भाषा उर्दू होती है, इस शब्दका प्रयोग होता है।

वल्दियत (अ० स्त्री०) पिताके नामका परिचय, बापके नामका पता। जैसे—अपनी 'वल्दियत और सकूनत लिखाओ।

वल्मन (सं० क्ली०) वल्म शब्दे भावे ल्युट्। भक्षण, खाना।

वल्मिक (सं० पु० क्ली०) वल्मीक।

वल्मीक (सं० पु० क्ली०) वलते इति वल संवरणे (अली-कादयश्च। उण् ४।२५) सुमागमः कीकनाश्चो निपातः। १ उपजिह्वाकृत मृत्तिकास्तूप, दीमकोंका लगाया हुआ मिट्टी-का ढेर, बिमौट। इसका पर्याय—वामलूर, नाकु, वल्मिक, वाल्मीक, वाल्मीकि, वा मेकि, पुत्तक, वामलूरी, कृमि, शीलक। (शब्दरत्ना०)

हम लोग मकानों दीवार तथा काठके बने सामान प्रभृतिमें एक प्रकारका पुत्तिकाकीट (Termites) देखते हैं। ये दीवार या काठके ऊपर मिट्टीका ढेर लगा कर उसके अन्दर आवागमन करते हैं, फिर कभी कभी काठ-खण्डके अन्दर सुरङ्ग बना कर काठकी बड़ी हानि करते हैं। किसी काठके अन्दर एक बार दीमक लग जानेसे फिर उसका उद्धार नहीं। अलकतरा, साबुन तथा चूना बराबर बराबर मात्रामें जलके साथ आगमें उबाल कर काठ पर मल देनेसे दीमक नहीं लगते। कभी कभी मोम तथा तारपिन लगा कर दीमक नाश किये जाते हैं। साल साल वर्षाके पहले काठखण्डमें क्रियोजोट मिट्टीका तेल लगानेसे दीमक नहीं पकड़ते।

ईखके खेतमें भी बहुत दीमक पैदा होते हैं। ये ईखकी जड़ काट कर उसको नष्ट कर डालते हैं। इसलिये ईखके खेतसे इसे दूर करनेके लिये कितने ही उपाय अवलम्बन किये जाते हैं। हींग ८ छटाक, सरसों ८ सेर, गन्धकी पत्तियाँ ५ सेर, अर्कविषाकृत चूर्ण ३ सेर काठको अलगसे सिद्ध करके काढ़ा तैयार करना चाहिये। उस काढ़ेको खेतमें छिड़क देनेसे दीमक तो मर जाते हैं, किन्तु इससे कुछ पौधे नष्ट हो जाते हैं एवं यह पौधेके खाद्यद्रव्योंको शक्ति क्षीण करता है। मैदा या सत्तूके साथ संखिया मिला कर गुड़ मिलावें, इसके बाद उन मिश्रित पदार्थका पिण्ड बना कर दीमकके टीलोंके पास रख देवें। उन पिण्डके खानेसे दीमक निर्मूल हो जाते हैं। दामूर-निर्यास (Dammer oil) १२ अंश तथा गाम्बीके वृक्ष-निर्यास (Uncaria gambir), दोनोंको मिला कर काठमें लगा देनेसे दीमक नहीं लग सकते। संखियाचूर्णके साथ तूतिया मिला कर काठ पर मल देनेसे दीमक मर जाते हैं अथवा संखिया, मुरदासंख, साबुन तथा सफेदा इन सब-को जलके साथ अग्निमें उबाल कर उस जलसे काठको धो देनेसे भी दीमकोंका नाश हो जाता है।

ये पुत्तिका कीट (White Ant) मैदान, वन तथा जङ्गलके रास्तोंके किनारे एक एक मिट्टीका स्तूप बना कर उसमें वास करते हैं।

भारतवर्षमें, विशेषतः निम्न बङ्गके प्रान्तर प्रदेशोंमें एवं सिंहल द्वीप, उत्तमाशा अन्तरीप तथा सेनेगेम्बिया प्रदेशमें बहुतसे दीमक देखे जाते हैं। उनके स्तम्भ तथा कोणा-कार गृहस्तूपोंकी आकृति देख कर स्वतः ही मनमें विस्मय पैदा होता है। कहीं कहीं उनके मृत्तिकास्तूप ३ से १६-१७ फीट तक ऊँचे देखे गये हैं।

गुयना प्रभृति स्थानमें जानेवालोंने नदीके किनारे किनारे एवं उसके आस पासके खेतोंमें ३०४ फीट ऊँचे अनेक [वल्मीकस्तम्भ देखे जाते हैं]। ये वल्मीक कीट जिस परिमाणमें मृत्तिकास्तूप ऊँचा करते हैं, उसी परिमाणमें वे पृथ्वीके अन्दर गड्ढा खोद कर वहाँकी मिट्टी ऊपर उठा देते हैं एवं उसी मिट्टीके द्वारा वे अति सुचारुरूपसे एवं विशेष निपुणताके साथ उसके अन्दर अपनी आवश्यकतानुसार गृहादि बना लेते हैं; अर्थात् यदि पहाड़ोंकी तरह एक गृहकोष्ठविशिष्ट शिखराकार स्तूप ३ फीट ऊँचा है, तो समझना चाहिये, कि मिट्टीके नीचे उतना ही फीट गहरा गड्ढा खोद कर इन कीड़ोंने अपूर्व

निर्म्माणकौशल द्वारा एक वल्मीकगृह निर्म्माण कर लिया है।

सिर्फ इतना ही नहीं, इस मृदाच्छादित अदृश्य वाटिकाके मध्य उन्होंने रानी-कीटके रहनेके लिये एक सुविस्तृत राजप्रासाद तैयार कर लिया है एवं उनके चारों पार्श्वमें असंख्य शिशुकीट-भवन हैं। ये सब भवन सुन्दर सोपानश्रेणी द्वारा परस्पर संलग्न हैं। इनके अतिरिक्त एक स्थानसे दूसरे स्थानमें जानेके लिये सोपान पथ, बरण्डा, दालान, प्रवेशद्वार प्रभृति सुचारुरूपमें विन्यस्त हैं। इनकी गठन निपुणता देख कर चमत्कृत होना पड़ता है। नीचे अफ्रिका देशजात एक प्रकारके दीमकका वर्णन किया जाता है। ये दीमक सामरिक-पुत्तिकाके नामसे विख्यात हैं।

अफ्रिकाकी सामयिक पुत्तिकाएं जो वल्मीक-गृह प्रस्तुत करती हैं, उसका ऊर्ध्वभाग छेदन करनेसे देखा जाता है, कि वह वल्मीक गृह अपूर्व गठन कौशलसे उनके द्वारा निर्म्माण किया गया है। जो सब सामरिक पुत्तिकाएं वल्मीक गृह निर्म्माण करती हैं, उनके शरीरकी लम्बाई १ युरुलके चतुर्थांशसे भी कम होती है, किन्तु उनके द्वारा निर्म्माण किये गये वासगृह प्रायः ७।८ हाथ ऊँचे होते हैं। कितने ही वल्मीक-गृह उनकी अपेक्षा भी बड़े होते हैं।

उल्लिखित वल्मीक-गृह जितने ऊँचे होते हैं, उनकी निर्म्माण-परिपाटी भी उसी अनुसार होती है। उन वल्मीक-गृहोंका भीतरी हिस्सा देखनेसे सामरिक पुत्तिकाओंकी निपुणता तथा विचक्षणताका सुस्पष्ट प्रमाण देख कर चमत्कृत होना पड़ता है। उनके आहार विहार सम्पादन करनेके लिये वासगृहकी जिस तरहकी शृंखला आवश्यक होती है, वे उसी तरह सुचारुरूपमें उसे सम्पन्न किये रहती हैं। वे राजप्रासाद, भंडार-गृह, शिशु-शाला, पथ, सेतु, सोपान प्रभृति अति चतुरतासे तैयार किये रहती हैं। इनके भवन खिलान द्वारा छाये रहते हैं। एक प्रकोष्ठसे दूसरे प्रकोष्ठ पर गमन करनेके निमित्त सुगमपथ तैयार रहता है। एक प्रान्तसे दूसरे प्रान्तमें गमन करनेके लिये जिन जिन स्थानोंमें पेचीले रास्तेसे घुम कर जाना पड़ता है, उन सभी स्थानोंमें एक एक खिलान किये हुए बाँधोंका निर्म्माण करके आने जानेकी सुविधा किये रहती हैं। इस तरहसे अपने वासभवनको सर्वांगसुन्दर बना कर उनके मध्य सुखसे वास करती हैं। इनके गृहका ऊपरी भाग ऐसा सुदृढ़ तथा कठिन होता है, कि इसके ऊपर एक साथ चार पाँच मनुष्यके चढ़नेसे भी वह नष्ट नहीं हो सकता।

सामरिक पुत्तिकाओंकी कार्यप्रणाली भी बहुत ही अच्छी होती है। इनकी कार्यप्रणाली ऐसी सुन्दर होती है, कि उसे एक उत्कृष्ट राजाकी व्यवस्था-प्रणाली कह सकते हैं। इनकी तीन श्रेणियाँ होती हैं—श्रमजीवी पुत्तिका, सैनिक पुत्तिका तथा विशिष्ट पुत्तिका। श्रमजीवी पुत्तिकाएं गृह, पथ, बाँध प्रभृति तैयार करती हैं। सैनिकपुत्तिकाएं गृहकी रक्षणावेक्षण करती हैं एवं आवश्यकता पड़ने पर शत्रुओंसे युद्ध किया करती हैं। उनका शरीर श्रमजीवी पुत्तिकाओंकी अपेक्षा १५ गुना बड़ा होता है। आश्चर्यका विषय यह है, कि श्रमजीवी-पुत्तिकाएं किसी समय सैनिक पुत्तिकाओंके कर्ममें प्रवृत्त नहीं होती, इसी तरह सैनिक पुत्तिकाएं भी कभी श्रमजीवीपुत्तिकाओंके कार्यमें नियुक्त नहीं होतीं।

विशिष्ट पुत्तिकाएं नहीं तो गृहादि ही निर्म्माण करती हैं, न युद्धमें ही प्रवृत्त होती हैं, यहां तक, कि वे अपनी रक्षा करनेमें भी समर्थ नहीं होतीं। किन्तु उनका शरीर सर्वापेक्षा बड़ा एवं उत्कृष्ट होता है। वे सैनिकपुत्तिकाओंसे दो गुना एवं श्रमजीवी पुत्तिकाओंसे ३० गुना बड़ी होती हैं। दूसरी दूसरी पुत्तिकाएं उन्हें प्रधान मानती हैं एवं उन्हें प्रधानके पद पर अभिषिक्त करती हैं। ये विशिष्ट पुत्तिकाएं इस पद पर अभिषिक्त होनेके बाद कई सप्ताहके मध्य ही परयुक्त हो कर वहांसे उड़ जाती हैं। किन्तु उड़नेके कुछ ही समयके बाद उनके पंख झड़ जाते हैं, तब पक्षी पतङ्गादि आ कर उन्हें खा जाते हैं। अफ्रिका-निवासी उन पुत्तिकाओंको भुन कर खाते हैं। इस तरहसे प्रायः सभी विशिष्ट पुत्तिकाएं नष्ट हो जाती हैं। यदि किसी तरह दो चार बच जाती हैं, तो पूर्वोक्त श्रमजीवी पुत्तिकाएं उन्हें राजा तथा रानीके पद पर अभिषिक्त करती हैं एवं एक मृत्तिकामय प्रकोष्ठका स्थापन कर यत्नपूर्वक उनका पालन पोषण करती हैं। पीछे जब रानीकी

सम्भावनान्तर्गत उत्पन्न होता है, तब वे एक कागजमय प्रकोष्ठ तैयार करनेमें प्रवृत्त होती हैं। रानी जितने अण्डे देती है, वे श्रमजीवी पुलिकाएं उन्हें शीघ्र ही उठा कर उसी प्रकोष्ठमें स्थापन करती हैं।

आरम्भमें साधारणतः सपक्ष नवीन पक्षयुक्त पुलिकाएं उड़ती देखी जाती हैं। उन्हें बादल-कीड़ा कहते हैं। जिस समय वे भूगर्भस्थ निवास स्थान त्याग कर कर बादलकी तरह आकाशमार्गमें उड़ती हैं, उस समय काक, बादुर प्रभृति नाना जातिके पक्षी आ कर उनका आहार करना आरम्भ करते हैं। पंखके नष्ट हो जानेसे जो विशिष्ट पुलिकाएं पृथ्वी पर गिर जाती हैं वे दूसरे दिन प्रातःकाल काकके उदरस्थ होती हैं, कहीं कहीं निकृष्ट श्रेणीके लोग उनका संग्रह कर घीमें भुन कर खाते हैं।

गर्भिणी पुलिका-महिषी जिस तरह अवस्थान्तर तथा रूपान्तरको प्राप्त होती है, उसे सुन कर विस्मित होना पड़ता है। उस समय उसका शरीर क्रमशः फूल कर अन्य पुलिकाओंके शरीरकी अपेक्षा १५०० डेढ़ हजार अथवा २००० दो हजार गुना बड़ा हो जाता है। उसका शरीर उसके स्वामीके शरीरकी अपेक्षा १००० एक हजार गुना भारी हो जाता है एवं श्रमजीवी पुलिकाओंके शरीरकी अपेक्षा २०।३० हजार गुना विस्तृत हो जाता है। एक पण्डितने गणना करके देखा था—एक पुलिका-महिषीने एक समय ५०।६० दण्डमें ८०००० अस्सी हजार अण्डे दिये थे। प्रसवके समय कई एक श्रमजीवी पुलिकाएं उसके पास नियुक्त रहती हैं। वे उन अण्डोंको उठा कर पूर्वोक्त कागजमय प्रकोष्ठमें स्थापन करती हैं। इन सब अण्डोंसे जितने बच्चे पैदा होते हैं, उन सबका लालन-पालन श्रमजीवी पुलिकाएं करती हैं। उनकी रक्षाके लिये जिस समय जिन चीजोंकी आवश्यकता होती है, उस समय वे उन चीजोंको ला कर आवश्यकता पूरी करती हैं। वे जब बच्चे इस प्रकार पल कर शक्ति सम्पन्न तथा बलवान होते तब वल्मीकका सुदृढ़ रखनेके कार्यमें नियुक्त होते हैं।

पण्डितोंने प्रत्यक्ष देखा है—यदि किसी प्रकार वल्मीकका कोई स्थान तोड़ कर दिया जाय, तो उसी समय सैनिक पुलिकाएं उस भग्न स्थान पर आ उपस्थित होती हैं। कुछ देरमें पहले और दो तीन पुलिकाएं आ जाती हैं। इसके बाद झुण्डकी झुण्ड पुलिकाएं उस वल्मीकसे बाहर निकल पड़ती हैं। इस तरहसे जितनी देर तक वल्मीकके ऊपर आघात किया जाय, उतनी देर तक सैनिक पुलिकाएं बाहर निकलती रहेंगी। इसके बाद वे सब मिल कर एक प्रकारकी आवाज करती, आघातकारी पर आक्रमण करती हैं, आघातकारीके पांवोंसे लिपट कर दंशन करती हैं एवं उसे दूर भगानेकी यथासाध्य चेष्टा करती हैं। जब वल्मीकके ऊपर फिर आघात नहीं होता, तब वे उसी क्षण वल्मीकके अन्दर घुस जाती हैं। इसके बाद झुण्ड झुण्ड श्रमजीवी पुलिकाएं बाहर निकल कर वल्मीकके भग्न स्थानको पुनः तैयार करनेमें प्रवृत्त होती हैं। आश्चर्यका विषय यह है, कि सब तरह पुलिकाएं एक साथ ही कार्य करती हैं अथवा कोई किसीके कार्यमें बाधा नहीं डालती एवं एक क्षणके लिये भी अपने कार्यसे मुख नहीं मोड़ती। प्रायः एक सैनिक पुलिका दस दस श्रमजीवी पुलिकाओंके दलके साथ रहता है, मालूम पड़ता है, कि वे पुलिकाएं उन श्रमजीवी पुलिकाओंके अध्यक्ष या प्रहरी-स्वरूप उनके साथ रहती हैं। विशेषतः एक पुलिका भग्नस्थानके समीप खड़ी रहती है, यह बार एक बार शब्द करती है और सभी पुलिकाएं उसी क्षण एक प्रकारका ऊंची आवाज करती हुई पहलेसे अधिक दूने उत्साहसे काम आरम्भ करती हैं।

सेनेगल नामक स्थानके समीपवर्ती किसी किसी स्थानमें बहुतसे वल्मीक एक साथ देखे जाते हैं, मालूम पड़ता है, कि उन स्थानोंमें एक एक ग्राम बस गया है। सिंहल, सुमात्रा, तथा चीनके द्वीपोंमें एवं भारतके किसी किसी स्थानमें Termes taprobanes नामक एक जातीय पुलिका देखी जाती है। सिंहलद्वीपमें T. monoceros श्रेणीकी पुलिकाएं वृक्षके कोटरमें वास करती हैं। कभी कभी उस स्थानमें गोखुरा सांपका वास देखा जाता है। मन्द्राज प्रेसिडेन्सीके बलवन्त नामक स्थानमें जो वल्मीक देखे जाते हैं, उनमेंसे बहुतोंके अन्दर बहुसंख्यक विषधर सर्प रहते हैं। [illegible] समाचार [illegible] एक मीलकी दूरी पर [illegible] नामके ११ फीट ऊंचे बहुतसे वल्मीक विद्यमान

वल्मीककी मिट्टीसे सौच करना निषेध है। विष्णु-पुराणमें लिखा है, कि वल्मीक तथा मूसोंके द्वारा खोदी हुई मिट्टीसे शौचक्रिया नहीं करनी चाहिये।

किसी देवविग्रहको प्रतिष्ठाके पहले शिल्पि व्यक्तिके स्पर्शदोषको शान्तिके लिये वल्मीक मृत्तिका, गोमय तथा भस्म इन तीनों वस्तुओं द्वारा विग्रहका मार्जन कर लेना होता है। उक्त तीनों वस्तुओंके द्वारा स्नान करानेका कोई पृथक् मन्त्र नहीं है। इसलिये शूलपाणि गायत्री या उसी देवताके मूलमन्त्र द्वारा ही स्नान करानेकी विधि बताई गई है।

(पु०) २ वल्मीकि मुनि। रोगविशेष।

जिस रोगमें त्रिदोषके प्रकोपके कारण ग्रीवा, अंस, कक्ष, हस्त, पद तथा सन्धिस्थानोंमें एवं गलेके मध्य वल्मीकको तरह गाढ़मूल अथच प्रचुर शिखरयुक्त तथा उन्नत ग्रन्थि उत्पन्न होती है एवं जब उनकी उचित चिकित्सा नहीं की जाती है, तब वे धीरे धीरे बहुत बढ़ जाती हैं और उनमें सूचीवेधवत् वेदना होने लगती है। इनमें कई छिद्र हो कर मवाद निकलने लगता है। इन्हें वल्मीकरोग कहते हैं। इसकी उपयुक्त चिकित्सा न होने पर यह रोग धीरे धीरे असाध्य हो जाता है।

इसकी चिकित्सा—वल्मीकरोग पहले शस्त्र द्वारा उत्पाटन करके क्षार तथा अग्निकर्म द्वारा व्रण एवं अर्व्वुद रोगकी तरह शोधन करना चाहिये। जिसके मर्म-स्थानके अतिरिक्त अन्य स्थानोंमें वल्मीक रोग हो जाय और वह यदि बहुत बढ़ा न हो, तो उसका पहले संशोधन एवं इसके बाद रक्तमोक्षण करके उसकी चिकित्सा करनी चाहिये।

कुलथीकी जड़, गुडूची, सैन्धव, दन्तिमूल, श्याम-लताको जड़, गूदा तथा सत्तू, इन सबको पोस लेवें एवं इस चूर्णमें थोड़ा-सा घी मिला कर अग्नि पर चढ़ावे। जब यह मिश्रित पदार्थ कुछ गर्म हो जाय, तब वल्मीक रोग पर इसका पुलटिश चढ़ावें। इससे इस रोगमें बहुत लाभ पहुंचता है।

वल्मीक रोगके पक जाने पर यदि उसमें छिद्र हो जाय तो उसके सभी छिद्रोंका अन्वेषण करके उसका छेदन करना चाहिये एवं इसके बाद पुलटिशका चढ़ानी चाहिये। यदि इस रोगमें मांस दूषित हो जाय, तो उस पर क्षार मलना चाहिये, पीछे फोड़ेके विशुद्ध होने पर औषधके प्रयोगकी विधि है। मनःशिला, हरताल, मिलावां, छोटी इलायची, अगर, रक्तचन्दन, जातीपत्र तथा इन्द्रजौ इन सबको मिला कर एक सेर लेवें, फिर ४ सेर नीमके तेलमें इन सब चीजोंका यथाविधि पाक करके वल्मीक रोगमें प्रयोग करें। इससे इस रोगका बहुत उपकार होता है। इस तेलको मनःशिलाद्यतेल कहते हैं। हाथ या पांवमें बहु छिद्रविशिष्ट अथच शोथ-युक्त वल्मीक रोग होने पर असाध्य हो जाता है। चिकित्सक ऐसे रोगीका त्याग करें। (भावप्र० क्षुद्ररोगाधि०)

वल्मीक मिट्टीके प्रलेपसे भी इस रोगमें बहुत लाभ पहुंचता है।

४ वह मेघ जिस पर सूर्यकी किरणें पड़ती हों।

वल्मीकमात्र (सं० त्रि०) वल्मीकस्तूपके आकारका।

वल्मीकसर (सं० पु०) कलवभेद।

वल्मीकशीर्ष (सं० क्ली०) वल्मीकस्य शीर्षमिव शीर्षमस्य। स्रोताञ्जन, लाल सुरमा।

वल्मीकसम्भवा (सं० स्त्री०) अलावुविशेष।

वल्मीकि (सं० पु०) वल्मीक।

वल्मीकूट (सं० क्ली०) वल्मीकस्य वल्मीकसञ्चितं वा कूटं। वल्मीक।

वल्य (सं० पु०) वल-यत्। १ ताक्ष्य, तक्ष मुनिके गोत्रज। (क्ली०) २ गुड़त्वक्। (त्रि०) ३ बलकर।

वल्शा (सं० स्त्री०) पातालगरुड़ी लता।

वल्ल (सं० पु०) वलते संवृणोति वल्ल-अच्। १ परिमाण-विशेष, एक मान। यह तीन गुञ्जा या रत्तीके बराबर तौलमें होता है। वैद्यकमें दो गुञ्जाका एक 'वल्ल' माना गया है। राजनिघण्टु १॥ घुंघचीका ही वल्ल मानता। २ खलियानमें भूसा मिले हुए अनाजके दानेको ऊपरसे गिराना जिसमें हवाके जोरसे भूसा अलग हो जाय, ओसाना, बरसाना। ३ सलको वृक्ष, सलईका पेड़। ४ वौरा। ५ आवरण। ६ निषेध।

वल—प्राचीन शकजातिकी एक शाखा। पहले ये लोग सौराष्ट्रमें राजत्व करते थे। ये राजपूतानेके राजकुलके एक हैं। भट्टकवियोंकी वर्णनासे जाना जाता है; कि ये एक समय सिन्धुनदके तीरवर्त्ती ठट्ट और मूलतान प्रदेशोंके

राज थे। किन्तु अब ये लोग अपनेको शक नहीं मानते हैं। सूर्यवंशीय अयोध्यापति रामचन्द्रके पुत्र लवके वंशमें उत्पन्न बल्ल या बल्ल नामक किसी पूर्वपुरुषकी कल्पना कर अपनेको सूर्यवंशीय बताते हैं। पहले ये लोग सुराष्ट्रके अन्तर्गत प्राचीन बाल्हू नगरमें आ कर बस गये एवं आस-पासके स्थानोंको जीत कर अपनी राजशक्ति दिखाई थी। उनका यह राज्य बल्लभीय और राजधानी बल्लभपुर नामसे प्रतिष्ठित हो गया तथा यहांके राजवंशने बल्लभराज उपाधि धारण कर अपना प्रभाव फैलाया था।

बल्लभपुर राजशक्तिकी प्रतिष्ठाके बाद बल्लगण अपनेको मेवाड़के गहलोतवंशियोंकी शाखा भी मानने लगे। किन्तु राज इतिहास पढ़नेसे पता चलता है, कि गहलोतगण शिवके उपासक थे, पहले सूर्यकी उपासना करते थे, अतः बल्लभपुर बल्ल लोग अपनेको रघुवंशोद्भव और क्षत्रिय पुत्र मानते हैं। बल्लभपुरगण सिन्धुतीरवर्ती बाहर नामक स्थानमें राजत्व करते थे। ११वीं सदीमें बल्लगण बड़े दुर्धर्ष हो उठे तथा उपर्युपरि मेवाड़ पर चढ़ाई कर दी। राणा हमीरने एक लड़ाईमें गोहिलावंके एक सरदारको मारा था। बाहूके बल्ल-सरदारवंश आज भी आत्म-गौरवकी रक्षा कर रहे हैं।

बल्लभीराजवंश देखो।

वल्लर (सं० पु०) समुद्रमें रहनेवाला एक प्रकारका जंतु।

वल्लवज (सं० पु०) एक प्रकारका वृक्ष।

वल्लकी (सं० स्त्री०) वल्लते इति वल्ल-क्वुन्, गौरादित्वात् ङीष्। १ वीणा। २ शल्लकीवृक्ष, सलईका पेड़।

वल्लगुल्लक (सं० क्ली०) चूर्णविशेष, एक प्रकारकी खुराक।

वल्लबाहु—एक प्राचीन कवि। सुभाषितावली ग्रन्थमें इनका उल्लेख किया है।

वल्लभदास—एक कवि।

वल्लभ—एक प्राचीन कवि।

वल्लपुर—राजपूतानेके अन्तर्गत एक प्राचीन नगर। बल्लपुरके ... ... ४ कोसकी दूरी पर ...

भाटी द्वारा ध्वंस होनेके पहले यह नगर बहुत समृद्धशाली तथा धन-जन पूर्ण था। निकटवर्ती बल्लपुरका अब वह उतना कुछ नहीं है। यहां गोरस पर्वतके निकट जिनमें दो हलियावाले जातियोंका निवास है। ये लोग अपने दाहिने हाथकी दो अंगुलियोंका छेदन करना जीवनका कर्त्तव्य समझते हैं, इसलिये उक्त वस्तु शास्त्रानुसार रमणियाँ अपने पतिका ... के लिये अपनी कन्याओंके विवाह समय कर्णवेधनके साथ साथ दाहिने हाथकी दो अंगुलियोंका छेदन कर देती हैं। उस समय वे यथाशास्त्र पूजा अनुष्ठान करती हैं एवं ग्रामके चमारको बुलाती हैं और उन्हें कुछ कौड़ी मजूरी दे कर कन्याओंकी दो अंगुलियोंका ऊपरका भाग कटा देती हैं। यह आईन निषिद्ध होने पर भी १८०४के ... में राजपूतानेके अन्तर्गत देव सहोली ग्राममें एक रमणीके कर्त्तव्यानुरोधसे दो अंगुलियां काटी गई थीं। ... नामक यन्त्र द्वारा एक ही आघातसे अंगुली काटनेकी रीति है।

इस अङ्गुलछेद क्रियाके सम्बन्धमें उन लोगोंके बीच एक किंवदन्ती चली आती है—प्राचीन कालमें भूक नामक एक राक्षस था। उसने कई सहस्र वर्षों कठिन तपस्यासे महादेवको प्रसन्न किया था। उसकी तपस्यासे सन्तुष्ट हो कर महादेवने उस राक्षसको दर्शन दिया और कहा— वत्स! हम तुम्हारी तपस्यासे प्रसन्न हैं, इस समय यथाभिलषित वर मांगो। राक्षस देवाधिदेव महादेवकी ऐसी बातें सुन कर बोला—देव! यदि इस दास पर कृपा कर दर्शन दिया है, तो मुझे ऐसा वरदान दीजिये, जिससे मैं जिसके मस्तक पर 'हाथ रखूं', वह तत्काल भस्म हो जाय। आशुतोषने राक्षसका मनःकामना ... सम्बन्ध 'तथास्तु' कह कर वहांसे प्रस्थान किया। दुर्मति भूकने देवदत्त इस असाधारण शक्तिकी परीक्षाके लिये महादेवका पीछा किया। शिव कोई उपाय न देख कर बड़ी तेजीसे भाग चले। राक्षस भी उनके पीछे दौड़ा। महादेवने राक्षसको ... देख कर ... भूक ... राक्षस भी वहीं ... वहां आये

तुमने इस रास्तेसे किसीको आते देखा है? उस राक्षसके भीषण रूपको देख कर कृषक मन ही मन सोचने लगा, 'यदि मैं इस राक्षसको महेश्वरका पता नहीं बताता हूं, तो इसी समय यह दुष्ट क्रोधके आवेशमें निश्चय ही मेरा संहार करेगा और यदि शिव इस विषयको जान पावेंगे तो मुझे उनके कोपानलमें दग्ध होना पड़ेगा, सुतरां किस कर्त्तव्यका अनुसरण करनेसे इस दारुण विपद्से छुटकारा पाऊंगा।' कृषकको चिन्तानिमग्न देख कर राक्षसको विश्वास हुआ कि, कृषक निश्चय ही महादेवका पता जानता है। तब वह बार बार हुंकार द्वारा कृषकको भय दिखाने लगा। कोई उपाय न देख कर कृषकने चिल्ला कर कहा—"मैं महादेवका कुछ भी पता नहीं जानता।" फिर पीछे उसने धीरे धीरे महादेवके गुप्त स्थानका सारा भेद उस राक्षसको कह सुनाया।

तब वह राक्षस धूक उस वनमें जा कर महादेवको पकड़नेके लिये अग्रसर हुआ, ऐसे समय भगवान् विष्णु महादेवका उद्धार करनेके निमित्त मोहिनी रूप धारण कर उस राक्षसके सामने उपस्थित हुए। युवतीके सुन्दर रूपको देखते ही उस राक्षसके हृदयसे महादेवका ध्यान जाता रहा। वह धीरे धीरे उस सुन्दरीकी ओर बढ़ा, किन्तु वह लाख चेष्टा करने पर भी उसे स्पर्श न कर सका। राक्षसकी प्रेमविह्वलता देख कर सुन्दरीने बड़े मीठे स्वरमें कहा—मैं ब्राह्मणकी कन्या हूं, किस तरह तुम्हारे ऐसे अपवित्र शरीरवाले राक्षसकी प्रार्थना पूरी करूं? तुम पहले सन्ध्यावन्दनादि द्वारा अपने शरीरको पवित्र करो, तब तुम्हारी वासना पूरी होगी और तभी तुम मुझे स्पर्श कर सकोगे।

विष्णुकी छलना राक्षस नहीं समझ सका। नारीके रूप पर मुग्ध हो कर वह अपने हाथका प्रभाव भूल गया। सन्ध्या करनेके समय वह राक्षस अंगन्यासकालमें अपने अंगादिको यथाक्रमसे दाहिने हाथकी अंगुलियों द्वारा स्पर्श करने लगा एवं जिस समय अपने दाहिने हाथको मस्तक पर रखा, उसी समय वह भस्म हो गया। इसके बाद महादेव अपने गुप्तस्थानका परित्याग कर बाहर निकले एवं उन्होंने विष्णुके पास जा कर अपनी कृतज्ञता प्रकट की। फिर वे उस विश्वासघातक तथा अकृतज्ञ कृषकके अपराध पर विचार करने लगे। अन्तमें उन्होंने दण्ड स्थिर कर कृषकसे कहा,—तुमने जिस अंगुली द्वारा निर्देश कर मेरा पता राक्षसको दिया था, मैं उस अंगुलीको नष्ट कर दूंगा। ऐसा कह कर महादेव उसकी अंगुली काटनेको तैयार हो गये। इसी समय अकस्मात् उस कृषककी स्त्री भोजनकी सामग्रियां ले कर उस क्षेत्रमें उपस्थित हुई। वह महादेवको अपने पतिकी अंगुली काटनेके लिये उद्यत देख उनके चरणों पर गिर पड़ी एवं बहुत ही अनुनय विनयके साथ बोली—"नाथ! जब आप मेरे पतिकी अंगुली नष्ट कर देंगे, तो मेरा दरिद्र परिवार अन्नाभावसे करालकालके गालमें समा जायगा, सुतरां उसके बदले मैं अपनी दो अंगुलियां देनेको तैयार हूं।" महादेव कृषक-रमणीकी इस प्रकार पतिभक्ति देख कर बोले—"तुम्हारी पतिभक्ति देख कर मैं अति प्रसन्न हुआ। आज दिनसे तुम्हारे वंशमें जितनी रमणियां पैदा होंगी, वे हमारे मन्दिरके सामने अपनी दो अंगुलियां बलि चढ़ा कर तुम्हारी पतिभक्तिकी घोषणा करेंगी। इसीलिये उसके वंशकी कन्याएं अपनी अंगुलियां बलिदान करती आ रही हैं। वे राजनियमका उलंघन करके राजदंड ग्रहण करती हैं, किन्तु तथापि देवताकी आज्ञा उल्लंघन करनेकी इच्छा नहीं करतीं। अभी भी महिसुरके प्रायः दो सहस्र परिवारकी रमणियां इस तरह अंगुलियोंका बलिदान करती हैं।

वल्लपुर—मान्द्राज प्रेसिडेन्सीके सलेम जिलान्तर्गत एक बड़ा ग्राम। यह कोल्लिमल पर्वतके ऊपर स्थापित नामकल नगरसे १६॥ मील पश्चिम-उत्तरमें अवस्थित है। यहां तोरियूर उपत्यकाके सम्मुखस्थ कन्दरके सामने आरपलेश्वरस्वामीका मन्दिर तथा पोखर है। इस पोखरमें बहुत-सी मछलियां हैं। प्रतिदिन घंटा बजा कर उन मछलियोंको भोजन दिया जाता है। घंटाका शब्द सुन कर मछलियां बांधके ऊपर चली आती हैं। इसलिये कितने ही इस मन्दिरको मत्स्यमन्दिर कहते हैं। उस मन्दिरमें अनेकों शिलालिपियां उत्कीर्ण हैं। उनमेंसे एक १३५० ई०में उत्कीर्ण हुई थी।

वल्लभ (सं० त्रि०) वल्ल-अभच्। १ प्रिय, प्यारा। (पु०) २ अध्यक्ष, मालिक। ३ अत्यन्त प्यारा व्यक्ति, प्रिय मित्र,

करते थे। किन्तु अब ये लोग और अपनेको शाक नहीं समझते वरं सूर्यवंशीय अयोध्यापति रामचन्द्रके पुत्र लवके वंशमें अपने वल्ल वा बल्ल नामक किसी पूर्वपुरुषकी उत्पत्तिकी कल्पना कर अपनेको सूर्यवंशीय बताते हैं। पहले ये लोग सुलिमानके अन्तर्गत प्राचीन घाडू नगरमें आ कर बस गये एवं आस पासके स्थानोंको जीत कर अपनी राजशक्ति फैलाई थी। उनका यह राज्य बालहीक और राजधानी बल्लीपुर नामसे प्रतिष्ठित हो गया तथा यहांके राजवंशने महाराजकी उपाधि धारण कर अपना प्रभाव फैलाया था।

सौराष्ट्रमें राजशक्तिकी प्रतिष्ठाके बाद बल्लगण अपनेको मेवाड़के गहलोतवंशियोंका समकक्षी मानने लगे। किन्तु राज इतिहास पढ़नेसे पता चलता है, कि गहलोतगण शिवकी उपासनाके पहले सूर्यकी उपासना करते थे, तथा सौराष्ट्रके बल्ल लोग अपनेको रघुवंशोद्भव और बालिक पुत्र मानते हैं। बालिकपुत्रगण सिन्धुतीरवर्ती आरोर नामक स्थानमें राजत्व करते थे। १३वीं सदीमें बल्लगण बड़े दुर्द्धर्ष हो उठे तथा उपर्युपरि मेवाड़ पर चढ़ाई कर दी। राणा हमीरने एक लड़ाईमें चोनियाके बल्ल-सरदारको मारा था। घाडूके बल्ल-सरदारवंश आज भी जातीय-गौरवकी रक्षा कर रहे हैं।

बल्लभीराजवंश देखो।

बल्लक (सं० पु०) समुद्रमें रहनेवाला एक प्रकारका जंतु।

बल्लकरञ्ज (सं० पु०) एक प्रकारका करञ्ज।

बल्लकी (सं० स्त्री०) बल्लते इति बल्ल-क्वुन्, गौरादित्वात् ङीष्। १ वीणा। २ सल्लकीवृक्ष, सलईका पेड़।

बल्लगुलपूग (सं० क्ली०) पूगविशेष, एक प्रकारकी सुपारी।

बल्लदत्त—एक प्राचीन कवि। सुभाषितावलीमें क्षेमेन्द्रने इसका उल्लेख किया है।

बल्लदमानन्द—एक कवि।

बल्लभ—एक प्राचीन कवि।

बल्लपुर—हाजिहाजारके अन्तर्गत दो प्राचीन नगर, सिन्धु तथा दौर, बल्लपुरके नामसे विख्यात हैं। ये दोनों नगर परस्पर ७ कोसकी दूरी पर अवस्थित हैं। हैदर-अली द्वारा ध्वंस होनेके पहले यह नगर धन सम्पत्तिशाली तथा धन-जन पूर्ण था। सिन्धबल्लपुरका जलवायु उतना बुरा नहीं है। यहां मोरसु वल्लियवंशीय कितने ही कृषिजीवी जातियोंका निवास है। ये लोग अपने दाहिने हाथकी दो अंगुलियोंका छेदन करना अपने जीवनका कर्त्तव्यकर्म समझते हैं, इसलिये उक्त वल्लूजातिकुल रमणियां अपने घरोंकी रक्षाके लिये अपनी अपनी कन्याओंके विवाह समय कर्णवेधनके साथ साथ दाहिने हाथकी दो अंगुलियोंका छेदन कर देती हैं। इस समय वे यथासाध्य पूजा अनुष्ठान करती हैं एवं ग्रामके कमारको बुलाती हैं और उन्हें कुछ कौड़ीकी मजूरी दे कर कन्याओंकी दो अंगुलियोंका ऊपरका भाग कटा देती हैं। यह आईन विरुद्ध होने पर भी १८३४के प्रारम्भमें बल्लूरके अन्तर्गत देव सहोली ग्राममें एक रमणीके कर्णवेधानुरोधसे दो अंगुलियां काटी गई थीं। गोनम नामक यन्त्र द्वारा एक ही आघातमें अंगुली काटनेकी रीति है।

इस अद्भुत क्रियाके सम्बन्धमें उन लोगोंके बीच एक किंवदन्ती चली आती है—प्राचीन कालमें मूक नामक एक राक्षस था। उसने कई सहस्र वर्षोंकी कठिन तपस्यासे महादेवको प्रसन्न किया था। उसकी तपस्यासे सन्तुष्ट हो कर महादेवने उस राक्षसको दर्शन दिया और कहा—वत्स! हम तुम्हारी तपस्यासे प्रसन्न हैं, इस समय यथाभिलषित वर मांगो। राक्षस देवादिदेव महादेवकी ऐसी वाणी सुन कर बोला—देव! यदि इस दास पर कृपा कर दर्शन दिया है, तो मुझे ऐसा वरदान दीजिये, जिससे मैं जिसके मस्तक पर हाथ रखूं, वह तत्काल भस्म हो जाय। आशुतोषने राक्षसका आन्तरिक भाव न समझ 'तथास्तु' कह कर वहांसे प्रस्थान किया। दुर्वृत्त पुरुषने देवप्रदत्त इस असाधारण शक्तिकी परीक्षाके लिये महादेवका पीछा किया। शिव कोई उपाय न देख कर बड़ी तीव्रतासे भाग चले। राक्षस भी उनके पीछे दौड़ा। महादेवने राक्षसको बहुत समीप देख कर पासके जंगलमें एक वनमें प्रवेश किया। राक्षस भी बड़ी तेजीसे दौड़ता हुआ उनके समीप पहुंचा। वहां उसने एक खेतमें एक कृषकको देख कर पूछा—शीघ्र बोलो

तुमने इस रास्तेसे किसीको आते देखा है? उस राक्षसके भीषण रूपको देख कर कृषक मन ही मन सोचने लगा, 'यदि मैं इस राक्षसको महेश्वरका पता नहीं बताता हूं, तो इसी समय यह दुष्ट क्रोधके आवेशमें निश्चय ही मेरा संहार करेगा और यदि शिव इस विषयको जान पायेंगे तो मुझे उनके कोपानलमें दग्ध होना पड़ेगा, सुतरां किस कर्त्तव्यका अनुसरण करनेसे इस दारुण विपदुसे छुटकारा पाऊंगा।' कृषकको चिन्तानिमग्न देख कर राक्षसको विश्वास हुआ कि, कृषक निश्चय ही महादेवका पता जानता है। तब वह वार वार हुंकार द्वारा कृषकको भय दिखाने लगा। कोई उपाय न देख कर कृषकने चिल्ला कर कहा—"मैं महादेवका कुछ भी पता नहीं जानता।" फिर पीछे उसने धीरे धीरे महादेवके गुप्त स्थानका सारा भेद उस राक्षसको कह सुनाया।

तब वह राक्षस एक उस वनमें आ कर महादेवको पकड़नेके लिये अग्रसर हुआ, ऐसे समय भगवान् विष्णु महादेवका उद्धार करनेके निमित्त मोहिनी रूप धारण कर उस राक्षसके सामने उपस्थित हुए। युवतीके सुन्दर रूपको देखते ही उस राक्षसके हृदयसे महादेवका ध्यान जाता रहा। वह धीरे धीरे उस सुन्दरीकी ओर बढ़ा, किन्तु वह लाख चेष्टा करने पर भी उसे स्पर्श न कर सका। राक्षसकी प्रेमविह्वलता देख कर सुन्दरीने बड़े मीठे स्वरमें कहा—मैं ब्राह्मणकी कन्या हूं, किस तरह तुम्हारे ऐसे अपवित्र शरीरवाले राक्षसकी प्रार्थना पूरी करूं! तुम पहले सन्ध्यावन्दनादि द्वारा अपने शरीरको पवित्र करो, तब तुम्हारी वासना पूरी होगी और तभी तुम मुझे स्पर्श कर सकोगे।

विष्णुकी छलना राक्षस नहीं समझ सका। नारीके रूप पर मुग्ध हो कर वह अपने हाथका प्रभाव भूल गया। सन्ध्या करनेके समय वह राक्षस अंगन्यासकालमें अपने अंगादिको यथाक्रमसे दाहिने हाथकी अंगुलियों द्वारा स्पर्श करने लगा एवं जिस समय अपने दाहिने हाथको मस्तक पर रखा, उसी समय वह भस्म हो गया। इसके बाद महादेव अपने गुप्तस्थानका परित्याग कर बाहर निकले एवं उन्होंने विष्णुके पास जा कर अपनी कृतज्ञता प्रकट की। फिर वे उस विश्वासघातक तथा अकृतज्ञ कृषकके अपराध पर विचार करने लगे। अन्तमें उन्होंने दण्ड स्थिर कर कृषकसे कहा,—तुमने जिस अंगुली द्वारा निर्देश कर मेरा पता राक्षसको दिया था, मैं उस अंगुलीको नष्ट कर दूंगा। ऐसा कह कर महादेव उसकी अंगुली काटनेको तैयार हो गये। इसी समय अकस्मात् उस कृषककी स्त्री भोजनकी सामग्रियां ले कर उस क्षेत्रमें उपस्थित हुई। वह महादेवको अपने पतिकी अंगुली काटनेके लिये उद्यत देख उनके चरणों पर गिर पड़ी एवं बहुत ही अनुनय विनयके साथ बोली—"नाथ! जब आप मेरे पतिकी अंगुली नष्ट कर देंगे, तो मेरा दरिद्र परिवार अन्नाभावसे करालकालके गालमें समा जायगा, सुतरां उसके बदले मैं अपनी दो अंगुलियां देनेको तैयार हूं।" महादेव कृषक-रमणीकी इस प्रकार पतिभक्ति देख कर बोले—"तुम्हारी पतिभक्ति देख कर मैं अति प्रसन्न हुआ। आज दिनसे तुम्हारे वंशमें जितनी रमणियां पैदा होंगी, वे हमारे मन्दिरके सामने अपनी दो अंगुलियां बलि चढ़ा कर तुम्हारी पतिभक्तिकी घोषणा करेंगी। इसीलिये उसके वंशकी कन्याएं अपनी अंगुलियां बलिदान करती आ रही हैं। वे राजनियमका उल्लंघन करके राजदंड ग्रहण करती हैं, किन्तु तथापि देवताकी आज्ञा उल्लंघन करनेकी इच्छा नहीं करतीं। अभी भी महिसुरके प्रायः दो सहस्र परिवारकी रमणियां इस तरह अंगुलियोंका बलिदान करती हैं।

वल्लपुर—मान्द्राज प्रेसिडेन्सीके सलेम जिलान्तर्गत एक बड़ा ग्राम। यह कोल्लिमल पर्वतके ऊपर स्थापित नामकल नगरसे १६॥ मील पश्चिम-उत्तरमें अवस्थित है। यहां तोरियूर उपत्यकाके सम्मुखस्थ कन्दरके सामने आरपलेश्वरस्वामीका मन्दिर तथा पोखर है। इस पोखरेमें बहुत-सी मछलियां हैं। प्रतिदिन घंटा बजा कर उन मछलियोंको भोजन दिया जाता है। घंटाका शब्द सुन कर मछलियां बांधके ऊपर चली आती हैं। इसलिये कितने ही इस मन्दिरको मत्स्यमन्दिर कहते हैं। उस मन्दिरमें अनेकों शिलालिपियां उत्कीर्ण हैं। उनमेंसे एक १३५० ई०में उत्कीर्ण हुई थी।

वल्लभ (सं० त्रि०) वल्ल-अभच्। १ प्रिय, प्यारा। (पु०) २ अध्यक्ष, मालिक। ३ अत्यन्त प्यारा व्यक्ति, प्रिय मित्र,

नायक। ४ कुलशाखाकांत मध्य, सुन्दर मसलोंसे युक्त घोड़ा। ५ पति, स्वामी। ६ कृष्णागुरु। ७ राजजिन्वी, एक प्रकारकी बेल।

वल्लभ—१ एक राजा। ये हस्तभिराजके पिता थे। २ एक राजकुमारका नाम। ये सुप्रसिद्ध रूप और सनातन गोस्वामीके भाई थे। सनातन देखो।

वल्लभ—कईएक सुप्रसिद्ध ग्रन्थकर्त्ता—१ वल्लभाचार्य। २ एक वैयाकरण। मल्लिनाथ और रायमुकुटने इनका मत ग्रहण किया है। ३ मोक्षकल्पीगिन्नासके प्रणेता। ४ सिद्धाज्ञानवल्लभ नामक ज्योतिर्ग्रन्थके रचयिता। ५ अर्धेन्दुशेखरटीकाके प्रणेता। इनका प्रकृत नाम था हरिवल्लभ। ६ मन्त्रगणार्थके रचयिता। ७ वैद्यवल्लभ नामक ग्रन्थकार।

वल्लभकपूर (सं० पु०) हृद्रोगमें फायदा पहुंचानेवाली एक प्रकारकी औषध। इसके बनानेकी तरकीब—हरीतकी ५०, गवर्नं लवण २ पल एकत्र गुलपाक करके सेवन करनेसे हल्लास, शूल, उदररोग और वायुनाश होता है। (भैषज्यरत्ना० हृद्रोगाधिका०)

वल्लभगढ़—बम्बई प्रेसिडेन्सीके बेलगाम जिलान्तर्गत एक गिरिदुर्ग। यह चिकोडीसे १५ मील दक्षिण-पश्चिममें अवस्थित है। शैलशिखरके ऊपरका दुर्गांश प्रायः गोलाकार (२७५×२००) है तथा कहीं कृत्रिम और कहीं स्वाभाविक दृढ़ प्राचीरसे घेरा गया है। उसके दो प्रवेशद्वार, चार घरमें, एक बड़ा कूआं जो अभी प्रायः नष्ट हो गया है, मौजूद है। मरम्मत न होनेके कारण दुर्गका भी अधिकांश ध्वंस होनेका उपक्रम हो गया है। वल्लभगढ़ दुर्ग १६८० ई०में महाराष्ट्रकेशरी शिवाजीके शासनमें था। यह बेलगामके १० प्रसिद्ध दुर्गोंमेंसे एक है। १७८९ ई०में मराठोंके नायक सरदारने कोल्हापुर-राजके विरुद्ध आक्रमण कर उनसे वल्लभगढ़, गन्धर्व-गढ़ और भीमगढ़ ले लिया। किन्तु कोल्हापुरपतिने दूसरे वर्ष ही विद्रोही मराठोंको हरा कर दुर्ग पुनः अपने कब्जेमें कर लिया। १८१६ ई०में जब परशुराम भाऊ पूनामें रहते थे, तब कोल्हापुरराजके साथ उन्होंने सन्धिसूत्रमें फिर वल्लभगढ़-दुर्ग छीन लिया।

वल्लभगणक—गणितसारके प्रणेता।

वल्लभगणि—हेमचन्द्रकृत अभिधानचिन्तामणिके सारोद्धार तथा शेषसंग्रहकी टीकाके प्रणेता। ये ज्ञानविमलके शिष्य थे।

वल्लभदास—१ हस्तप्रदीपके रचयिता। २ भागवतके सारश्लोक और अध्यायानुक्रमणि, महाभारताध्यायानुक्रमणि, महाभारतश्लोकसमाहार तथा पुराणादिके सङ्कलयिता।

वल्लभदास गोस्वामी—एक प्रसिद्ध पण्डित।

वल्लभभवन (सं० क्ली०) अतिशय प्रिय, बड़ा प्यारा।

वल्लभभाव (सं० पु०) वल्लभस्य भावः धर्म वा त्व, टाप्। प्रियता, वल्लभका भाव वा धर्म।

वल्लभमन्त्रीविधा—महाराष्ट्रका एक प्रधान व्यक्ति। ये निग्रहराजके प्रधान अमात्य थे। १७७५ ई०में पेशवा मधुरावकी मृत्युके बाद पेशवाकी गद्दीके लिये गोलमाल उपस्थित हुआ। इस समय विधवा रानीने अपने भाई यशोदाबाईने दत्तक-पुत्र ग्रहण करनेका संकल्प किया। वल्लभ उसमें बाधा दे कर भी कुछ कर न सके। आखिर उन्होंने १७७६ ई०के अन्तमें बाजीरावके पक्षमें योग दे कर उन्हें ही राजा बनानेकी व्यवस्था की। किन्तु बाजीरावके पूना आ कर नाना-फड़नवीससे मिलने पर दोनोंका पूर्वमनोमालिन्य मिट गया एवं नई राजनीतियोंके सामने बाजीरावके पेशवा होनेकी बात पक्की हुई। इस सम्मिलनको विशेष आनन्ददायक देख कर वल्लभमन्त्रीने दोनोंके गुप्त परामर्शसे विपरीताचरण करनेकी चेष्टा की। उन्होंने अपने बुद्धिबलसे सिन्धियाको अपने पक्षमें कर लिया, दौलतराव सिंधियाको अपने बल पर नर्तक बनवाया और चिमणाजी अप्पाको मसनद पर बिठाया। इसके बाद ये सब मिल कर बाजीरावके सर्वनाश-साधनमें प्रवृत्त हुए। नाना फड़नवीस भी छुप गए एवं परशुरामने राज्य चलानेका भार ग्रहण किया। इसी समय दौलतराव सिंधिया राजविद्रोही हो उठे। इसके प्रतिविधानके लिये एक दूसरे नानाके परामर्शानुसार दोनों पक्षसे मिल कर सेना भेजी गई।

इस समय सिन्धियाके अनुचर, बाजीराव तथा नाना फड़नवीस और परशुराम भाऊकी ले कर महाराष्ट्र राज-कार्यमें जो घोर राजविप्लव उपस्थित हुआ था, वह महाराष्ट्रके

इतिहासमें स्पष्टरूपसे लिखा है। चिमनाजी अप्पाको नया पेशवा बनानेके अभिप्रायसे नानाफड़नवीशने सतारा जा कर राजसनद ग्रहण की, इधर परशुरामके कौशलसे बाजीरावको वल्लभके हाथमें देख कर उन्हें सन्देह पैदा हुआ, उन्होंने उन लोगोंके साथ न मिल कर बाई द्वारा राजसनद प्रेरण की। २६वीं मईको चिमनाजी पेशवा पद पर अभिषिक्त हुए।

इसके बाद परशुरामने नाना फड़नवीशको पूना बुला कर वल्लभतातियाके साथ मेल करानेकी चेष्टा की, किन्तु इसका कुछ भी फल नहीं हुआ। दोनों पक्षमें शत्रुता वृद्धिके साथ निश्चय युद्ध होनेके लक्षण दिखाई पड़े। नानाने विशेष कौशलसे रघुजी भोंसलाको अपने हाथमें किया। सिन्देराज तथा होल्करपति एवं पेशवाके सेनापति मि० वेड सज्जित हुए। ८वीं अक्तूबरको बाजीराव गद्दी पर बैठे और २७वीं अक्तूबरको वल्लभतातिया सिन्दे राजके द्वारा पकड़े गये। इसके बाद सिन्देराजने उन्हें बन्धनमुक्त कर फिर मंत्रीका पद दिया। किन्तु १८०० ई०में नानाफड़नवीशकी मृत्युके बाद पेशवा बाजीराव-के साथ सिन्देराजकी घोर शत्रुता हो गई। उस समय सिंधियाजने फिर विद्रोह होनेकी आशंकासे वल्लभको मार डाला। महाराष्ट्र शब्द देखो।

वल्लभदास—वैष्णवाह्निकके प्रणेता।

वल्लभ दीक्षित (सं० पु०) वल्लभाचार्य। वल्लभाचार्य देखो।

वल्लभदेव—सुभाषितावलिके प्रणेता। ये १६वीं सदीमें विद्यमान थे। इनके यत्नसे शार्ङ्गधरपद्धतिका सङ्कलन कार्य आरब्ध हुआ। २ योगमुक्तावलीके रचयिता। ३ एक कवि। ४ कुमारसम्भवकी अष्टाध्यायटीका, मेघदूत टीका, रघुवंशपञ्जिका, वक्रोक्तिपञ्चाशिकाटीका, शिशुपाल वधकी टीका और सूर्यशतकटीकाके प्रणेता। मल्लिनाथ-ने इनका मत उद्धृत किया है। ये आनन्ददेवके पुत्र और आनन्दवर्द्धनकृत देवीशतकके टीकाकार कय्यटके (९७७-ई०) पितामह थे।

वल्लभन्यायाचार्य (सं० पु०) न्यायलीलावतीके प्रणेता। गङ्गेशतत्त्वचिन्तामणिमें इनका उल्लेख है।

वल्लभपालक (सं० त्रि०) वल्लभानां अश्वविशेषाणां पालकः। अश्वरक्षक।

वल्लभपुर—कलकत्तेके उत्तर गङ्गातीरवर्त्ती एक गण्डग्राम। यहां वल्लभजीका मन्दिर विद्यमान है। प्रति वर्ष रथयात्रा उपलक्षमें यहां द्वादशगोपालका उत्सव होता है। यह स्थान इष्ट-इण्डिया रेलपथके श्रीरामपुर स्टेशनसे आध कोस पर है। माहेश देखो।

वल्लभराज—अनहिलगढ़के एक राजा तथा चामन्दराजके पुत्र।

वल्लभशक्ति (सं० स्त्री०) एक राजपुत्र।

(कथासरित्सा० १०।१७)

वल्लभस्वामी (सं० पु०) वल्लभाचार्य।

वल्लभा (सं० स्त्री०) १ प्रिय स्त्री, प्यारी जोरू। (त्रि०) २ प्रिया, प्यारी।

वल्लभाचारी—वैष्णवसम्प्रदायभेद। इसका दूसरा नाम रुद्रसम्प्रदाय है। वल्लभाचार्य इसके प्रवर्त्तक थे, इस कारण लोग इन सम्प्रदायी वैष्णवोंको वल्लभाचारी कहा करते हैं। भारतवर्षके उत्तरपश्चिममें रामसीताकी उपासना ही प्रचलित देखी जाती है, किन्तु उस स्थानके पश्चिम भागमें ऐश्वर्य्यवान् और भोगवान गृहस्थके मध्य प्रायः राधा-कृष्णकी उपासना ही प्रचलित है। उस प्रदेशमें वल्लभा-चार्य प्रवर्त्तित बालगोपालकी सेवा, कुछ दिन हुए खूब प्रबल हो उठी है। गोकुलस्थ गोस्वामी इस धर्मका उप-देश देते हैं, इस कारण यह गोकुलस्थ गोस्वामियोंका धर्म कहलाता है।

प्रवाद है, कि सबसे पहले वेदभाष्यकार विष्णुस्वामी-ने इस मतका भारतव्य प्रचार किया। ये संन्यासाश्रमी ब्राह्मणको छोड़ कर दूसरेको शिष्य नहीं बनाते थे। उनके शिष्यका नाम ज्ञानदेव था। ज्ञानदेवके दो शिष्य थे,—नामदेव और त्रिलोचन। उनके कुछ समय बाद तैलङ्ग-देशीय लक्ष्मणभट्टके पुत्र वल्लभाचार्य गुरुपद पर अभि-षिक्त हो १५वीं सदीके शेष भागमें बड़े यत्नसे इस मत-के प्रचारमें लग गये। पहले ये गोकुलमें¶ रहते थे। यहां कुछ समय रह कर ये तीर्थ पर्यटनको निकले। भक्त-मालमें लिखा है, कि उन्होंने भारतवर्षके दक्षिणखण्डमें

¶ यमुनाके वामतट पर मथुरासे प्रायः तीन कोस पूर्वमें गोकुल ग्राम है।

विलक्षणगर्भिणीरिति कृष्णदेवकी समाधि पहुंच कर यहांके स्मार्त ब्राह्मणोंको तर्कमें परास्त किया। पीछे ये यहांके वैष्णवोंके आचार्य पद पर अभिषिक्त हुए। यहांसे उज्जयिनी नगरी आ कर शिप्रा-तट पर पीपल वृक्षके नीचे रहने लगे। यह स्थान आज भी उनकी बैठक कह कर प्रसिद्ध है।

मथुराके घाट पर इसी प्रकारकी उनकी एक और बैठक देखी जाती है। गुजरातसे एक कोस दूर उनके नाम पर एक मठ और मन्दिर विद्यमान है। उस मठके प्राङ्गणमें जो कूप है वह आचार्य कुआं कहलाता है। उज्जयिनीमें कुछ दिन रह कर ये वृन्दावन लौटे। श्रीकृष्ण उनकी अचला भक्ति देख कर बड़े संतुष्ट हुए और अति मनोहर रूपमें दर्शन दे कर उन्हें बालगोपालकी सेवाका प्रचार करनेका आदेश दिया।

वल्लभाचार्यका गुरुपरम्पराविवरण आख्यान बड़ा ही विस्मयकर है। ये वैराग्यरूपमें कुछ दिन वाराणसीके जेठनवड़में ठहरे थे। उस जेठनवड़के निकट आज भी उनका एक मठ दृष्टिगोचर होता है। मर्त्यलीला शेष करके ये एक दिन हनुमान्घाटके गङ्गाजलमें स्नान करने बैठे। कहते हैं, कि गोता लगाते ही ये अन्तर्हित हो गये। इसके बाद उस स्थानसे एक देदीप्यमान अग्नि-शिखा प्रदीप्त हो उठी। यह शिखा अनेक दर्शकोंके सामने स्वर्गारोहण करने लगी और आखिर आकाशमें लीन हो गई।

यद्यपि महाभारतादि ग्रन्थोंमें विष्णु और कृष्णके माहात्म्यका वर्णन है तथा श्रीमद्भागवतमें उनकी केलि-कौतुकपूर्ण जीवनलीलाका सविस्तार विवरण पाया जाता है तथापि विष्णुकी अपेक्षा कृष्णका प्राधान्य वर्णन इन दोनों ग्रन्थोंमें कहीं भी नहीं देखा जाता। किन्तु कहीं कहीं श्रीकृष्णके बालरूपकी उपासनाकी सुस्पष्ट विधि पाई जाती है।

ब्रह्मवैवर्त्तपुराणमें लिखा है, कि वृन्दावनवासी [illegible] हीसे यह चराचर विश्व उत्पन्न हुआ है। उनके दक्षिण पार्श्वसे नारायण, वाम पार्श्वसे महादेव, नाभि-पद्मसे ब्रह्मा, वक्षःस्थलसे धर्म, मुखसे सरस्वती, [illegible], बुद्धिसे दुर्गा, जिह्वासे सावित्री, मानससे कामदेव तथा वामाङ्गसे रति और राधिकाकी उत्पत्ति हुई। राधाके लोमकूपसे तीस कोटि गोपाङ्गनाओं तथा श्रीकृष्णके लोमकूपसे तीस ही कोटि गोपोंने जन्म ग्रहण किया। पहले गोलोकवासी, पीछे वृन्दावनवासी, गाय और बछड़े तक भी उनके लोमकूपसे उत्पन्न हुए। श्रीकृष्णने अनुग्रह करके उनमेंसे एक गाय महादेवको दी थी। इस पुराणके सृष्टि प्रकरणमें श्रीकृष्णके किशोररूपको ही सृष्टिकर्त्ता बतलाया है।

वल्लभाचार्य कह गये हैं, कि परमेश्वरकी उपासनाके उपवासकी आवश्यकता नहीं, अतः शरीरको क्लेश पहुंचानेका भी प्रयोजन नहीं, वनमें कठोर तपस्याकी भी आवश्यकता नहीं। अतएव उत्तम वस्त्र परिधान तथा सुस्वादु अन्न-भोजनादि सभी विषय-सुखोंका सम्भोग कर उनकी सेवा करो। यथार्थमें यह सम्प्रदायी वैष्णव अतिशय विलासी और भोगविलासी होते हैं। सभी गोस्वामी गृहस्थ हैं। सम्प्रदाय-प्रवर्त्तक वल्लभाचार्य यद्यपि पहले संन्यासी थे, पर लोगोंका कहना है, कि पीछे उन्होंने फिरसे गार्हस्थ्य-आश्रमका अवलम्बन किया था। सेवकगण गोस्वामियोंको उत्तमोत्तम बहुमूल्य वस्त्र पहनने देते हैं तथा चबाने, चूसने, चाटने, पीने योग्य सुस्वादु द्रव्य भोजन कराते हैं।

शिष्योंके ऊपर गोस्वामियोंका अत्यन्त प्रभुत्व देखनेमें आता है। यहां तक, कि शिष्य लोग उन्हें तन, मन और धन ये तीनों ही समर्पण करेंगे, ऐसा स्पष्ट नियम है। बहुतेरे सेवक व्यवसायी हैं। गोस्वामी भी विस्तृत वाणिज्य व्यवसायमें व्याप्त रहते हैं तथा तीर्थभ्रमणके बहाने दूर दूर देश जा कर वाणिज्य-व्यवसाय करते हैं।

देव-सेवाके विषयमें अन्यान्य सम्प्रदायोंके साथ इन लोगोंकी विशेष विभिन्नता नहीं है। इनके मठमें, मन्दिरमें गोपाल और राधाकृष्ण तथा कृष्णावतार सम्बन्धीय अन्यान्य प्रतिमूर्त्ति प्रतिष्ठित रहती है। ये सब प्रतिमूर्त्ति धातुकी बनी होती हैं। ये लोग दिनमें आठ बार करके श्रीकृष्णकी सेवा करते हैं।

१ मङ्गलारति। सूर्योदयके साथ घण्टा बाद श्रीकृष्णको शय्या परसे उठा कर आसन पर बिठाते और ताम्बूल [illegible] जलपानकी सामग्री उन्हें देते हैं। इस समय [illegible] रखा जाता है।

२ शृङ्गार। दिनके चौथे दण्डमें श्रीकृष्ण तैल, चन्दन और कर्पूर द्वारा सुगन्धित तथा वस्त्रालङ्कारसे विभूषित हो बाहर देने बैठते हैं।

३ ग्वाला। छठें दण्डमें श्रीकृष्ण मानो गाय चराने जा रहे हैं, ऐसे वेशभूषासे उन्हें सजाना पड़ता है।

४ राजभोग। मध्याह्नकालमें श्रीकृष्ण गोष्ठसे मानो घर लौट कर भोजन कर रहे हैं। ऐसा समझ कर देवालयके परिचारक विग्रहके सामने नाना प्रकारके मिष्टान्न तथा अन्यान्य सुखाद्य सामग्री रखते हैं। भोग समाप्त होने पर प्रसादी द्रव्य और अन्यान्य सामग्री उपस्थित सेवकोंके बीच बांट देते हैं। कभी कभी यह प्रसाद धनी और ज्ञानी शिष्यके यहां भी भेज दिया जाता है।

५ उत्थापन। भोगके बाद विग्रहको निद्रा होती है, पीछे छः दण्ड रहते उन्हें उठाया जाता है।

६ भोग। उत्थापनके आध घण्टा बाद वैकालिक भोग होता है।

७ सन्ध्या। सूर्यास्तके समय श्रीकृष्णकी सायंकालिक सेवा होती है। इस समय दिनके पहने सभी अलङ्कार उतार कर फिरसे तैल और गन्ध द्रव्यादि द्वारा अङ्गसेवा करनी होती है।

८ शयन। करीब छः दण्ड रात्रिके समय विग्रहको शय्या पर स्थापन कर उनके समीप पानीय जल, ताम्बूलाधार और अन्यान्य श्रान्तिहर द्रव्य रख कर परिचारक देवालयका दरवाजा बन्द कर चले जाते हैं।

इन सभी समयोंमें प्रायः एक ही प्रकारकी सेवा होती है, जैसे—पुष्प, गन्ध और भोगदान तथा स्तोत्रपाठ और साष्टाङ्ग प्रणाम। विग्रहसेवक तथा अन्यान्य मनुष्य भी इन सबोंका अनुष्ठान करते हैं; किन्तु हव्यस्तोत्र प्रायः सेवकगण ही किया करते हैं।

नित्यसेवाके अतिरिक्त कुछ सांवत्सरिक महोत्सव भी हैं। काशीधाममें और पश्चिम प्रदेशीय अन्यान्य स्थानोंमें जन्माष्टमी और रासयात्राके उत्सवमें बहुत आमोद-प्रमोद होता है। ग्रामसन्निहित किसी चत्वरमें बड़ी धूमधामसे रासयात्रा बनाई जाती है। कितने मनुष्य सफेद, पीत, लोहितादि उत्कृष्ट वस्त्र पहन कर रासभूमिमें इकट्ठे होते हैं, कितने प्रकारका मनोहर नृत्य, गीत और वाद्यका अनुष्ठान होता है तथा श्यामसुन्दरके सुललित लीलानुरूप कितने ही कौतुक दिखलाये जाते हैं। जगह जगह गायक, वादक और नर्त्तक स्वेच्छानुसार उपस्थित हो कर अपना अपना गुण दिखलाते हुए लोगोंको मनोरञ्जन करते हैं तथा दर्शकगण बड़े सन्तुष्ट हो कर उन्हें पुरस्कार देते हैं। कहीं कहीं तृण-गृह, वस्त्रगृह और पण्यशाला बनाई जाती है। उसमें हिंडोले आदि लटका कर लोगोंको अति आमोदित करते हैं। अपर्याप्त फल मूल और नाना प्रकारकी मिष्टान्न सामग्री परिपाटीक्रमसे सजी रहती है। दर्शकगण परम कौतूहलाविष्ट हो कर हर्षोत्फुल्ल चित्तसे चारों ओर विचरण करते हैं। असंख्य लोगोंका समागम! विचित्र वसन! विचित्र भूषण! विविध कौतुक परमाश्चर्य सुदृश्य व्यापार! यह सब देख कर लोगोंके आनन्दका पारावार नहीं रहता। वृन्दावनमें भी चान्द्र आश्विन मासमें दशमीसे ले कर पूर्णिमा तक इसका उत्सव होता है। वहां नदीके किनारे पाषाणमय कृत्रिम वेदीके ऊपर श्रीकृष्णकी रासलीलाका अविकल प्रतिरूप दिखलाया जाता है।

वल्लभाचारी ललाट पर दो ऊर्द्ध्व पुण्ड्र खींच कर नासामूलमें अर्द्धचन्द्राकृति बना कर मिला देते हैं। उन दोनों पुण्ड्रके मध्यस्थलमें एक लाल गोल तिलक रहता है। इस सम्प्रदायके भक्त श्रीवैष्णवोंकी तरह बाहु और वक्षःस्थल पर शङ्ख, चक्र, गदा और पद्मकी प्रतिकृति अंकित करते हैं। कोई कोई श्यामवन्दी नामक काली मिट्टी अथवा काली धातुसे उल्लिखित गोल तिलक लगाता है। ये लोग गलेमें तुलसीकी माला पहनते तथा हाथमें तुलसी काष्ठकी जपमाला रखते हैं और 'श्रीकृष्ण' तथा 'जयगोपाल' कह कर परस्पर अभिवादन करते हैं।

वल्लभाचार्यने श्रीमद्भागवतकी जो टीका लिखी है, वह इन लोगोंका प्रधान साम्प्रदायिक ग्रन्थ है। उसमें भागवतकी कैसी व्याख्या है, उसीका अवलम्बन कर ये लोग चलते हैं। इसके सिवा ये ब्रह्मसूत्रभाष्य, सिद्धान्तरहस्य, भागवतलीलारहस्य, एकान्तरहस्य आदि अनेक संस्कृत ग्रन्थ भी रच गये हैं। वल्लभाचार्य देखो।

इसके अतिरिक्त सामान्य सेवकोंके मध्य भी कृष्ण-

गोंका प्रतिपादक भाषामें लिखित बहुतों साम्प्रदायिक ग्रन्थ प्रचलित हैं। यथा,—

विष्णुपद—यह ग्रन्थ भाषामें लिखा है। वल्लभाचार्य द्वारा रचित है। इसमें विष्णुगुण प्रतिपादक कितने पद हैं।

सर्वनिर्णय—ब्रजवासीदासने इस ग्रन्थको भाषामें लिखा। इसमें श्रीकृष्णकी वृन्दावनलीलाका वर्णन है।

अष्टछाप—इस ग्रन्थमें वल्लभाचार्यके आठ प्रधान शिष्योंके उपाख्यान हैं।

वार्ता—इस भाषा ग्रन्थमें वल्लभाचार्य और उनके मतानुवर्ती ८४ भक्तोंके अति अद्भुत चरित वर्णित हैं। उन ८४ भक्तोंमें स्त्री-पुरुष तथा सभी वर्णोंके आदमी थे। इस साम्प्रदायिक ग्रन्थमें जीव और ब्रह्मका अभेद भाव स्थान स्थान दिखलाया गया है। सिद्धान्तरहस्यको गद्यानुवाद या आत्मनिवेदन नामक ग्रन्थ प्रसङ्ग भी वार्ता नामक ग्रन्थमें एक जगह ऐसा ही लिखा है। वल्लभाचार्य श्रीकृष्णके साथ इस विषयमें कथोपकथन करके उसका मर्म अच्छी तरह समझ गये थे। यथा,—

"तब आचार्यजी महाप्रभु आप कहे जो जीवको स्वरूप तो तुम जानत हो ही, दोषवन्त है, सो तुम सों सम्बन्ध कैसे होय? तब श्रीठाकुरजी आप कहे जो तुम जीवको ब्रह्मसम्बन्ध करावोगे तिन को हौं अङ्गीकार करूँगो तुम जीवको नाम देओगे तिनके सकल दोष निवृत्त होवेंगे।"

अर्थात्—तब आचार्यने कहा,—तुम जीवका स्वभाव जानते हो ही, वे सभी दोषी हैं, तब फिर किस प्रकार तुम्हारे साथ उनका संयोग होगा? इस पर ठाकुरजी (अर्थात् श्रीकृष्ण) ने कहा तुम जिनके साथ जीवका ब्रह्मसंयोग कर दोगे, मैं उनीको स्वीकार कर लूंगा।"

इस ग्रन्थके अलावा और भी कितने साम्प्रदायिक ग्रन्थ प्रचलित हैं, किन्तु उनका वैसा प्रचार नहीं है। भक्तमालमें भी इस सम्प्रदायके अनेक उपाख्यान हैं, किन्तु वल्लभाचारी दूसरे दूसरे सम्प्रदायकी तरह इसे कुछ उतना नहीं मानते। उपर्युक्त वार्ता ही इन लोगोंका सर्वस्व है। भक्तमालकी तरह इन सब ग्रन्थोंमें भी श्रीकृष्णके प्रसाद और आविर्भावमूलक अनेक अलौकिक और असम्भावित उपाख्यान सन्निवेशित हुए हैं।

इन ग्रन्थोंके अन्तर्गत एक राजपुत्रानी या राजपूत-जातीय स्त्रीका उपाख्यान पढ़नेसे मालूम होता है, कि इस सम्प्रदायमें सहमरणका विधान न था। जगन्नाथ और रामाध्यास नामक दो शिष्योंके साथ वे वल्लभाचार्य कभी मार्गमें स्नान कर रहे थे। इसी समय वह स्त्री अपने स्वामीके साथ सती होनेके लिये वहां उपस्थित हुई। यह देख कर जगन्नाथने रामाध्याससे पूछा, 'स्त्रियोंमें सतीत्वधर्म दिखलानेकी जो प्रथा प्रचलित है, उसका क्या मतलब?' रामाध्यासने सिर हिला कर कहा, 'उसके साथ सौन्दर्यका सम्बन्ध संयोगमात्र है।' राजपुत्रानी उसके सिर हिलानेका तात्पर्य समझ कर स्वामीके साथ सती न हुई और घर लौट आई। कुछ दिन बाद इस राजपुत्रानीकी इन दोनोंसे अकस्मात् मुलाकात हो गई और वह क्यों नहीं सती हुई, इसका कारण उसने कह सुनाया, पीछे उसीने दोनोंसे प्रार्थना की 'उस दिन आप दोनोंमें मेरे लिये क्या बातचीत हुई थी, सो कृपया कहिये।' रामाध्यास अच्छी तरह समझ गये, कि इस राजपुत्रानी पर श्रीआचार्यकी कृपा हुई है। जगन्नाथके साथ उनका जो कथोपकथन हुआ था, उसे सुना कर कहा कि, 'अपना कण्ठ-आयत्त श्रीठाकुरजीकी सेवामें समर्पित न करके, अपनेके ऊपर जो निर्भर करती रही, वह सम्पूर्ण अतिशय अनुचित और अत्यन्त दुःखका विषय था।' अनन्तर राजपुत्रानीने रामाध्याससे इस प्रकार उपदिष्ट हो कर श्रीठाकुरजीके परिचर्या कार्यमें नियुक्त रह अपना जीवन बिताया।

वल्लभाचार्यके पुत्र विट्ठलनाथ विशुद्ध पद पर अधिष्ठित हुए। इस सम्प्रदायके लोग उन्हें श्रीगोसाईंजी कहते हैं। विट्ठलनाथके सात पुत्र थे,—गिरिधरराय, गोविन्दराय, बालकृष्ण, गोकुलनाथ, रघुनाथ, यदुनाथ और घनश्याम। ये सभी धर्मोपदेशक थे। इनके मतानुवर्ती यद्यपि पृथक् पृथक् मतावलम्बी हैं, पर प्रधान प्रधान विषयोंमें प्रायः सभी सम्प्रदायका एक मत है। केवल

* मालूम होता है, कि यह राजपूत स्त्रियोंकी [illegible] अंश है।

गोकुलनाथके शिष्योंमें कुछ विभिन्नता देखी जाती है। ये लोग बाकी छः समाजके मठोंके प्रति जरा भी श्रद्धा नहीं रखते, अपने समाजके गोस्वामीको छोड़ कर और किसीका भी सम्मान नहीं करते और न किसीको अपना शास्त्रविहित गुरु ही मानते हैं। विट्ठलनाथके और किसी भी पुत्रके मतानुवर्त्तियोंमें ऐसा पक्षपात नहीं देखा जाता।

नाना स्थानोंके, विशेषतः गुजरात और मालवदेशके कितने स्वर्णवणिक् और व्यवसायी वल्लभाचार्यके मतावलम्बी हैं। इसी कारण इस सम्प्रदायमें अनेक धनाढ्य मनुष्य देखे जाते हैं। भारतवर्षके सभी स्थानोंमें, विशेषतः मथुरा और वृन्दावनमें, इन लोगोंके अनेक मठ और देवालय हैं। काशीमें इस सम्प्रदायके दो प्रसिद्ध मन्दिर हैं,—लालजीका मन्दिर और पुरुषोत्तमजीका मन्दिर*। इन दोनों मन्दिरोंके विग्रह अति विख्यात और बहु सम्पत्तिशाली हैं। इस सम्प्रदायके अनेक पवित्र तीर्थ हैं। जगन्नाथक्षेत्र और द्वारका तथा अजमेरके श्रीनाथद्वारकामठ सबसे महिमान्वित और समृद्धिसम्पन्न हैं। प्रवाद है, कि इस मठके विग्रह पहले मथुरामें थे। औरङ्गजेब बादशाहने जब वहांका मन्दिर ढाहनेका हुक्म दिया, तब वह सर्वान्तर्यामी विग्रह वहांसे अजमेरको चले गये। वहांका वर्त्तमान मन्दिर बहुत दिनोंका नहीं है, किन्तु सेवकके दिये हुए धनसे उस विग्रहको प्रचुर सम्पत्ति हो गई है†। वल्लभाचारियोंको कमसे कम एक बार भी श्रीनाथके दर्शन करने होते हैं तथा कुछ कुछ दान देना पड़ता है।

साम्प्रदायिक बालकोंको गोसाईं लोग गलेमें तुलसीकी माला पहना कर "श्रीकृष्णः शरणं मम" यह अष्टाक्षर मन्त्र पढ़ कर धर्म सम्प्रदायभुक्त कर लेते हैं तथा बारह या उससे अधिक वर्षों में जब वह बालक जीवनका कर्त्तव्याकर्त्तव्य और गुरुत्व अनुभव कर दैनन्दिन क्रियाकलापका आचरण करनेमें समर्थ होते हैं, तब गोसाईं लोग उन्हें दीक्षा देते हैं। दीक्षाके बाद वह बालक श्रीगोपालके चरणोंमें अपना सर्वस्व अर्थात् तन मन और धन समर्पण करना सीखते हैं।

* काश्मीरके पोद्दार प्रत्येक हुंडीमें एक एक पैसा देवालयके नामसे देते हैं तथा वहांके वस्त्र-व्यवसायी प्रति थानके क्रय-विक्रयमें दो दो पैसे करके।

† प्रत्येक मन्दिरमें तीन जगह दान देना होता है, जैसे विग्रहके समीप, प्रवर्त्तककी गद्दीमें और श्रीनाथद्वारके खजानेमें।

वल्लभाचार्य—वल्लभाचारी नामक वैष्णवमतके प्रतिष्ठाता एक आचार्य। इन्होंने लक्ष्मणभट्ट नामक एक तैलङ्ग ब्राह्मणके द्वितीय पुत्ररूपमें १४७९ ई० (विक्रम संवत् १५३५ वैशाख कृष्णा एकादशी) को जन्मग्रहण किया। लक्ष्मणभट्टकी सातवीं पीढ़ीसे ले कर सभी पुरुष सोमयज्ञ करते चले आये थे। जिसके वंशमें १०० सोमयज्ञ पूरे होते हैं, उसके कुलमें साक्षात् भगवान्‌का प्रादुर्भाव होता है, इस शास्त्रीय नियमानुसार लक्ष्मणभट्टजीके समयमें सोमयज्ञकी शत संख्या पूर्ण हुई और भगवान्‌ने 'वल्लभ' इस नामसे आपके यहां जन्म लिया। सोमयज्ञके उपलक्ष्यमें एक लाख ब्राह्मण भोजन काशीमें आ कर करानेके अभिप्रायसे आपके मातापिता चले। रास्तेमें चम्पारण्यमें (जिला रायपुर सी० पी०) श्रीवल्लभका प्रादुर्भाव हुआ था।

वल्लभके पिता विष्णुस्वामी सम्प्रदायभुक्त थे। वाराणसी-धाममें रहते समय धर्माचार ले कर वहांके अधिवासियोंके साथ तन्मतावलम्बियोंका घोर विरोध उपस्थित हुआ। इस कारण उन्हें वाराणसी छोड़ कर अन्यत्र जाना पड़ा था। उस समय उनकी पत्नी पूर्णगर्भा थी। थोड़ी दूर तक भी न गये थे कि अकालमें अष्टम मासमें उनकी पत्नीने इस नवकुमारको प्रसव किया। मातापिता चाहे अपने जीवनको विपद्संकुल जान कर हो अथवा पुत्रके देवाश्रय लाभके आश्वाससे हो, उस सद्यःप्रसूत तनयको एक वृक्षके नीचे फेंक चले गये। इस प्रकार कुछ दिन बीत जानेके बाद जब उनका प्राणभय जाता रहा, तब वे दोनों धीरे धीरे उसी राहसे वृक्षके समीप आये और पुत्रको उसी अवस्थामें अर्थात् शरीर और जीवित देख फूले न समाये, गोदमें उठा कर प्रेमाश्रु बहाने लगे। इसके बाद पुत्रको साथ ले वे वाराणसी आये और वहां कुछ समय रहनेके अनन्तर श्रीवृन्दारण्यके समीपवर्त्ती गोकुल नगरमें आ कर बस गये।

[illegible] लाभ की थी। [illegible] में सुप्रतिष्ठित हो गये। प्रवाद है, कि इन्होंने [illegible] संस्कृत साहित्य और दर्शनशास्त्रमें [illegible] व्युत्पत्ति लाभ की थी।



श्रीवल्लभाचार्य महाप्रभु।

[illegible] हुआ। [illegible] प्रवृत्त हुए। [illegible]

[illegible]

उपासनारूप अपना मत प्रचार किया। उत्तर-भारतमें अपना मत फैलानेके पहले ही इन्हें एक बार मातृभूमिके दर्शन करनेके लिये दाक्षिणात्यमें जाना पड़ा था। वहां थोड़े ही दिनोंमें इनका कीर्त्तिस्तम्भ सुप्रतिष्ठित हुआ। वहां दामोदर दास नामक एक प्रतिष्ठित व्यक्तिने सबसे पहले इनसे दीक्षित हो कर इनके धर्ममतका आश्रय लिया। इसके बाद ये विजयनगरमें अपने मामाके घर गये। वहां राजा कृष्णदेव इस मतलबसे कि "सर्वधर्मवादियोंका शास्त्रार्थ करा कर जिसकी जय हो उस सम्प्रदायका मैं अनुयायी बनूं" सर्वधर्मके प्रतिनिधियोंको मानपूर्वक बुलवा कर शास्त्रार्थ करवा रहे थे। उस सभामें जब आप पधारे उस समय समग्र सभा आपकी तेजोराशिसे चकित हो उठी। सबोंने आपको सर्वोच्च स्थान पर विराजमान किया। राजाको प्रार्थनासे सर्ववादियोंको आपने पराजित किया और राजा कृष्णदेवको अपना शिष्य बनाया। अनन्तर इन्होंने सर्ववादियोंसे तथा राजासे बड़े ही मान और समारोहके साथ दी गई 'आचार्य' उपाधिको स्वीकार कर दिग्विजय करनेकी इच्छासे भारतभ्रमण प्रारम्भ किया। छः वर्षमें एक बार भारतकी परिक्रमा और एक बार दिग्विजय करना इस हिसाबसे बीस वर्षकी अवस्थामें आपने तीन बार भारतको परिक्रमा तथा तीन बार सब तरहके वादियोंसे शास्त्रार्थ कर दिग्विजय किया था। जब आप तृतीय बार परिक्रमा कर रहे थे उस समय पंढरपुरमें विराजमान श्रीविट्ठलनाथ पाण्डुरङ्ग भगवान्‌ने आपको आज्ञा दी, "आप विवाह करिये, मैं आपके यहां पुत्ररूपसे प्रकट होना चाहता हूं।" इस आज्ञाको शिरोधार्य कर काशीनिवासी एक स्वजातीय कर्मकाण्डी ब्राह्मणकी महालक्ष्मी नामक कन्याके साथ आपने ब्राह्मविवाह-विधिसे विवाह किया। १५११ ई०में गोपीनाथ तथा १५१६ ई०में विट्ठलनाथ नामक इनके दो पुत्र हुए।

इन्होंने शेष जीवनमें प्रायः ब्रजभूमिका त्याग नहीं किया। यहां १५२० ई०में इन्होंने गोवर्द्धनशैलके पार्श्वमें श्रीनाथका सुप्रसिद्ध और सुवृहत् मन्दिर बनवाया। एक दिन वृन्दावनमें भगवद्ध्यानमें निरत रह कर इन्हें श्रीकृष्णके दर्शन हुए थे। भगवान्‌ने इन्हें अपनी पूजा वा उपासनाकी एक अभिनव प्रथा चलानेका हुकुम दिया और कहा, कि उस प्रथामें उनकी बालकमूर्त्तिकी ही उपासनाकी व्यवस्था जानना। तदनुसार बालकृष्ण वा बालगोपाल नामसे वह उपासनापद्धति प्रचलित हुई है।

आपके शिष्य लोग गुजरात, मारवाड़, मेवाड़, सिन्ध, पञ्जाब, उज्जयिनी, वाराणसी, हरिद्वार, प्रयाग आदि प्रसिद्ध और पवित्र धर्मक्षेत्रमें हैं। इनके मतानुसार आजीवन ब्रह्मचर्यावलम्बन न्यायसङ्गत वा धर्मप्रणोदित नहीं है। इसी कारण इन्होंने विवाह कर लिया था।

वाराणसीमें इनका वासभवन था। वहां ये रहते थे और बीच बीचमें श्रीकृष्णकी लीलाभूमि श्रीवृन्दावनमें आ कर अपने धममय प्राणको भगवत्-प्रेमसलिलमें निषिक्त कर ले जाते थे। वाराणसीमें रहते समय इन्होंने अपने मतप्रतिष्ठापक बहुतसे धर्मग्रंथ लिखे। उनमेंसे सुबोधिनी नामकी सुविस्तृत भगवद्गीताटीका बहुत प्रसिद्ध है। १५३१ ई०में वल्लभाचार्य परलोकवासी हुए। ये जनसाधारणमें वैश्वानर कह कर पूजित थे। ग्रंथादिमें उनका वल्लभदीक्षित नाम भी पाया जाता है।

उनकी रचित ग्रंथावली—अन्तःकरणप्रबोध और उसकी टीका, आचार्यकारिका, आनन्दाधिकरण, आर्या, एकान्तरहस्य, कृष्णाश्रय, चतुःश्लोकिभागवतटीका, जलभेद, जैमिनिसूत्रभाष्य (मीमांसा), तत्त्वदीप वा तत्त्वार्थदीप और उसकी टीका, विविधलीलानामावली, नवरत्न और उसकी टीका, निरोधलक्षण और विवृत्ति, पत्रावलम्बन, पद्यपरित्याग, परिवृढाष्टक, पुरुषोत्तमसहस्रनाम, पुष्टिप्रवाहमर्यादाभेद और टीका, पूर्वमीमांसाकारिका, प्रेमामृत और टीका, प्रौढ़चरितनामन्, बालचरितनामन्, बालबोध, ब्रह्मसूत्रवृत्ति, ब्रह्मसूत्राणुभाष्य, भक्तिवर्द्धिनी और टीका, भक्तिसिद्धान्त, भगवद्गीताभाष्य, भागवततत्त्वदीप नामकी टीका, निबन्ध और भागवतपुराणटीका सुबोधिनी। इनके अलावे भागवतपुराण दशमस्कन्धानुक्रमणिका, भागवतपुराण पञ्चम स्कन्धटीका, भागवतपुराणैकादशस्कन्धार्थनिरूपणकारिका, भागवतसारसमुच्चय, मङ्गलवाद, मथुरामाहात्म्य, मधुराष्टक, यमुनाष्टक, राजलीलानामन्, विवेकधैर्याश्रय, वेदस्तुतिकारिका, श्राद्धप्रकरण, श्रुतिसार, संन्यासनिर्णय और उसकी टीका, सर्वोत्तमस्तोत्रटिप्पण और टीका, साक्षात् पुरुषोत्तम-

स्तव, सिद्धान्तमुक्तावली, सिद्धान्तरहस्य, सेवाफल स्तोत्र और उसकी टीका, स्वामिन्यष्टक।

वल्लभाचार्यके मृत्युके बाद उनके द्वितीय पुत्र विट्ठलनाथ गद्दी पर बैठे। गुजरात देश और उत्तर-में मालविदेश आदिके मध्य में दक्षिण और पश्चिम-भारतमें अपने पिताके चलाये धर्ममत प्रचारमें उन्होंने सफल हुए थे। इस धर्मप्रचारमें उन्हें लगभग २५२ साधुओंसे सहायता मिली थी। यह सब वर्णित चरित वैष्णवोंके जीवनी "वार्तावालकथायें" नामक हिन्दी भाषामें लिखित है।

विट्ठलनाथ १५६५ ई०में गोकुल आ कर बस गये। यहां ७० वर्षकी उमरमें गोवर्द्धनके शैल शिखर पर उनकी जगलीला शेष हुई। उनकी दो पत्नी तथा गिरिधर, गोविन्द, बालकृष्ण, गोकुलनाथ, रघुनाथ, यदुनाथ, और घनश्याम नामक सात लड़के थे। इन सातों पुत्रोंमें गोसाईं गोकुलनाथ विद्या और बुद्धिमें सबोंसे बढ़े चढ़े थे। गोकुलनाथने अपने पितामह वल्लभाचार्यके लिखे सिद्धान्तरहस्यकी टीका लिखी थी। वल्लभाचार्यके वंशधर गोसाईं उपाधिसे परिचित हैं। अभी सात गोसाईं उनके एक प्रधान प्रतिनिधि हैं।

वल्लभाचार्यका दर्शन।

वल्लभाचार्य प्रवर्तित धर्ममतका मूलमन्त्र ब्रह्म-सम्बन्ध है। यह मन्त्र उन्होंने भगवान्‌से प्राप्त की थी एवं यह ही उन्होंने सिद्धान्तरहस्यमें लिख गये हैं।

विशेष विवरण वल्लभाचार्य शब्दमें देखो।

वल्लभानन्द—[illegible] नामक ज्योतिषके प्रणेता।

वल्लभी (सं० पु०) वल्लभीराजवंश देखो।

वल्लभेन्द्र—१ [illegible], शिवगुणार्णव और [illegible]के प्रणेता। इनकी उपाधि सरस्वती थी। २ वैराग्यशतकटीकाके रचयिता। ये [illegible] के पुत्र थे। इनके पिताका नाम चन्द्रेश्वर भट्ट था।

वल्लभेश्वर (सं० पु०) रामानुजाचार्य।

वल्लम—मन्द्राज प्रेसिडेन्सीके उत्तर आर्कट जिलेके [illegible] एक ग्राम। यह [illegible] अवस्थित है। यहां प्राचीन चोलराजवंशके द्वारा प्रति-ष्ठित एक प्राचीन मन्दिर है। मन्दिरकी शिलालिपियोंमें

सन् १८५१ ई०में दक्षिणदेशीय महाराज नामक राजाके [illegible] लिखी है।

वल्लर (सं० क्ली०) वल्लते इति वल्ल-अरन्। १ कुञ्ज, गुल्म। २ मंजरी। ३ गहन। ४ कुञ्ज।

वल्लरि (सं० स्त्री०) वल्ल-किप्, वल्ल संवरणे वृक्ष-मोति ऋ-अच् ङ, हलदन्तादिति वा ङीष्। १ मंजरी। २ लता, लता। ३ मेथिका, मेथी। ४ वचा, वच। ५ एक प्रकारका बाजा।

वल्लरी (सं० स्त्री०) वल्लरि देखो।

वल्लव (सं० पु०) वल्ल गौओं किप् वल्ल प्रीति वाति वा क। १ गोप। २ भीमसेन। विराटनगरमें अज्ञातवास कालमें रहते थे, उस समय ये इसी नामसे परिचित थे। ३ सूपकार, सुआर, रसोइया।

वल्लवी (सं० स्त्री०) वल्लव ङीष्। वल्लवजाति स्त्री, वल्लवपत्नी। पर्याय—आभीरी, गोपिका, गोपी, महाशूद्री, गोपालिका।

वल्लापुर (सं० क्ली०) एक नगरका नाम। (राजतर० ७।२२०)

वल्लाह (अ० अव्य०) ईश्वरकी शपथ, सचमुच।

वल्लि (सं० स्त्री०) वल्लते संवृणोति वल्ल सर्वधातुभ्य इन्। १ लता। २ पृथिवी।

वल्लिकण्टकारिका (सं० स्त्री०) वल्लिरूपा कण्टकारिका। अग्निदमनी, डोंडा। (राजनि०)

वल्लिकण्टकिका (सं० स्त्री०) अग्निदमनी, डोंडा।

वल्लिजा (सं० स्त्री०) १ [illegible], जैरा। २ कालमी, कोई नामकी लता। इसका पत्तियोंका साग बना कर खाया जाता है। वल्लिज शाके सन स्यात्। ३ लता।

वल्लिज (सं० क्ली०) १ मरिच, मिर्च। (त्रि०) २ वल्लिजातमात्र।

वल्लिदूर्वा (सं० स्त्री०) वल्लिरूपा दूर्वा। श्वेतदूर्वा, सफेद दूब। इस दूबका गुण तिक्त, मधुर, शीत, पित्त तथा कफ, वमि और तृष्णाहर माना गया है। (राजनि०)

वल्मिषत् (सं० त्रि०) वल्मीकयुक्त।

वल्मिषद—मन्द्राज प्रेसिडेन्सीके उत्तर आर्कट जिलेके चित्तूर तालुकके अन्तर्गत एक बड़ा ग्राम। यहां एक दुर्ग

आदि बड़े बड़े प्रासादोंसे पूर्ण एक सुन्दर नगर था। यह धेयासी नदीके तीरवर्ती मालपाड़ी ग्रामसे १ मील पश्चिम तथा विस्तारसे १७ मील दक्षिण पूर्वमें अवस्थित है। पहले यहां जैनधर्मका बहुत प्रचार था। इसके बाद शैवगणोंने प्रबल हो कर यहां लिंगोपासनाका प्रभाव फैलाया। उन्होंने पर्वतोपरिस्थ प्राचीन जैनमन्दिर पर अधिकार जमा कर उसे सुब्रह्मण्य-मन्दिरमें परिणत कर दिया। पर्वत पर जैनियोंकी कीर्त्तिका निदर्शनस्वरूप अनेकों मूर्त्तियां तथा शिलालिपियां उत्कीर्ण हैं। मन्दिरकी गठननिपुणता देख कर मालूम होता कि, ४०×२० फीट परिसरयुक्त एक पर्वत-कन्दराके मध्य यह मन्दिर बनाया गया है। प्रवाद है, चोलवंशके किसी राजाने इस मन्दिरका निर्माण किया था। पर्वतके दक्षिणांशमें पर्वतखण्ड काट कर समतल भूमिमें परिणत कर दिया गया है। उसके चारों ओर दुर्गका ध्वंसावशेष देख कर लोग कहते हैं, कि जैन-प्रादुर्भावके समय यहां एक छोटा-सा गिरिदुर्ग स्थापित था। नगरके प्रधान रास्तेसे पूर्व एक सुदृढ़ दुर्गका ध्वस्तनिदर्शन आज भी दृष्टिगोचर होता है।

वल्लियूर—मन्द्राज प्रेसिडेन्सीके तिन्नेवल्ली जिलान्तर्गत एक बड़ा ग्राम। यह नाङ्गुनेरी तालुकके सदरसे ४ कोस दक्षिण पश्चिम एवं कुमारिका अन्तरीपसे तिन्नेवल्ली सदर आनेके रास्तेकी पश्चिम ओर अवस्थित है। यहां एक पुष्करिणीमें बहुतसे पत्थरोंके टुकड़े पड़े हैं। उनका शिल्पनैपुण्य तथा उनमें अङ्कित प्रतिकृति प्रभृति पर्य्यवेक्षण करनेसे अनायास ही मालूम पड़ता है, कि वे पत्थरके टुकड़े जैन-मन्दिरके ध्वंसावशेष हैं। उन पत्थरोंके मध्य बहुत-सी शिलालिपियां उत्कीर्ण हैं। यहां जो जिनमूर्त्ति पाई गई थी, उसे बिशप सर्जेण्ट ले कर रख कर रहे हैं।

इसके अतिरिक्त यहां कुलशेखर पांड्यका स्थापित किया हुआ एक विशाल मन्दिर है। विष्णु तथा सुब्रह्मण्य मन्दिर भी बहुत प्राचीन है। पांड्य-राजवंशके स्थापित किये हुए एक सुदृढ़ दुर्गका ध्वंसावशेष अब भी दृष्टिगोचर होता है।

वल्लिराष्ट्र (सं० पु०) जनपदवासी लोकभेद। दूसरा नाम मल्लराष्ट्र है।

वल्लिशाकटपोतिका (सं० स्त्री०) वल्लिप्रधाना शाकटपोतिका। मूलपोडी।

वल्लिशूरण (सं० पु०) वल्लिप्रधानः शूरणः। अत्यम्लपर्णी, रामचना।

ववल्ली (सं० स्त्री०) ल्लि-ङीप्। १ लता। २ कैवर्त्तमुस्ता, केवटी मोथा। ३ अजमोदा। ४ नव्य, चई। ५ अग्निदमनी, शोला। ६ काली अपराजिता।

वल्लीकर्ण (सं० पु०) सम विषमाहतपालि कर्ण।

वल्लीखदिर (सं० पु०) आरक नामक एक प्रकारका खैर। इसका गुण—तिक्त, कटु, उष्ण, कषाय, अम्लरस तथा श्वास-कासघ्न और पित्त रक्त त्रिदोषहर। (वैद्यकनि०)

वल्लीगड (सं० पु०) वल्लिरूपा गडः। मत्स्यभेद, एक प्रकारकी मछली। यह लघु, रूक्ष, अनभिष्यन्दी, वायुकर और कफनाशक मानी गई है।

वल्लीज (सं० क्ली०) वल्यां लतानां जायते इति जन-ड। मरिच, मिर्च।

वल्लीपञ्चमूल (सं० क्ली०) लतापञ्चमूल। परिभाषाप्रदीपके अनुसार यह पञ्चमूल कफनाशक माना गया है।

वल्लीपलाशकन्दा (सं० स्त्री०) भूमिकुष्माण्ड, भुंई कुम्हड़ा।

वल्लीफल (सं० क्ली०) कर्कटिकादि।

वल्लीवट (सं० क्ली०) वटवृक्षभेद।

वल्लीवदरी (सं० स्त्री०) वल्लीरूपा वदरी। भूवदरी, मोटा बेर।

वल्लीमुद्ग (सं० पु०) वल्लीषु जातो मुद्गः। मुकुष्ठक, मोठ।

वल्लीवृक्ष (सं० पु०) वल्लीवत् दीर्घो वृक्षः। शालवृक्ष।

वल्लुर (सं० क्ली०) वल्लयते आव्रियते लतादिनेति वल्लबाहुल्कात् उरच्। १ कुञ्ज। २ मंजरी। ३ क्षेत्र। ४ निर्जल स्थान, सूखी जगह। ५ शाद्वल, हराभरा। ६ गहन, दुर्गम स्थान।

वल्लूर (सं० क्ली०) वल्ल्यते संब्रियते इति वल्ल उरच् (खर्जिपिञ्जादिभ्य ऊरोलचौ। उण् ४।९०) १ आतपादि द्वारा शुष्क मांस, धूपमें सुखाया हुआ मांस। मनुने ऐसा मांस खाना निषेध बताया है। २ शूकरका मांस। ३ वनक्षेत्र, जंगल। ४ वीरान, उजाड़। ५ ऊपर, ऊसर।

बन्नूर (बनूर)—पटियाला राज्यान्तर्गत एक प्राचीन नगर। यह अम्बाला नगरसे दक्षिण-पश्चिम ... स्थित है। यह पूर्व-पश्चिम ३१ मील एवं उत्तर-दक्षिण ... मील तक फैला हुआ है। इस के ... अक्षा० ३०° ३३' उ० एवं देशा० ७६° ४३' पू० है। इसके मध्यभागमें एक टीला देखा जाता है, इसके ऊपर एक प्राचीन बौद्धविहारका ध्वंसावशेष विद्यमान है। यह बौद्धविहार एक समय इस स्थानकी उन्नतिको प्रकाशित कर रहा था, इसमें सन्देह नहीं। आधुनिक मन्दिरों तथा इसके निकटकी भूमिको ... बना रखा है। यहाँ प्रायः ... कपड़ा तैयार किया जाता है।

बंगलूर (बैंगलोर)—१. मद्रास में मैसूर राज्यके जिलोंमें सबसे पूर्वी जिला। क्षेत्रफल ३०७४ वर्गमील है। इस जिलेका अधिकांश भाग पठार पर स्थित है। इसका अधिकांश समतल भाग ढेर सारी झाड़ियों और छोटे छोटे पहाड़ोंसे परिपूर्ण है। यहाँ ६ तालुके हैं।

२. इस जिलान्तर्गत एक नगर। यह अक्षा० १२° ५८' १०'' उ० तथा देशा० ७७° ३४' ४३'' पू० पठारके शिखरपर अवस्थित है। यातायातकी सुविधाके लिये यहाँ रेलों तथा पक्की सड़कें बनायी गयी हैं। यह नगर म्युनिसिपैलिटीके अधीन है। यहाँ एक सब कलेक्टर साहब रहते हैं। यहाँ सेनाओं तथा सरकारी कर्मचारियोंके निवासके लिये भवन आदि निर्मित हैं। इसके अतिरिक्त ग्लासहाउस, लालबाग, अजायबघर प्रभृति राजकीय अट्टालिकाएँ इस नगरकी शोभा बढ़ा रही हैं। मद्रासकी दक्षिण पश्चिम शाखा इस नगरमें होकर गई है। यहाँ एक स्टेशन है।

१५३७ ई० में मागडीके सरदार केम्पेगौड द्वारा यह किला बनवाया गया था। कहते हैं, कि मद्रास-विजयकी एक शताब्दी बाद यह किला तथा नगर विजयनगरके राजाको उपहारमें दिया गया। पुनः १६३८ ई० में बीजापुरके सेनापति रनदुल्लाखाँने इस नगरको अधिकारमें कर लिया था। इसके बाद १६८७ ई० में मुगलोंने इसपर अधिकार कर लिया, बादमें मराठोंसे छीन लेनेके बाद इस दुर्ग पर फिर अधिकार किया गया। १६८७ ई० में चिक्कदेवराज ओडयरने तीन लाख रुपयेमें इसे खरीदा, तबसे मैसूर राज्यके दुर्ग-प्राकारमें और अधिक दृढ़ता हुई। इसके परवर्ती राजाओंके समयमें इसको बहुत सजाया गया और इसमें बहुत सुधार किया गया। १७५८ ई० में इस दुर्गको अपने अधिकारमें लानेके बाद हैदरअलीने इसे सुदृढ़ किया। अंग्रेजोंके युद्ध शुरू होने पर १७९१ ई० तक हैदरअली और उसके पुत्र टीपू सुल्तानने बड़ी तत्परतासे इसकी रक्षा की। १७५९ ई० के बाद हैदरअली यहाँका अधिपति बना रहा। उस वर्षसे एक बार अंग्रेजोंकी सेना दुर्गके सम्मुख आ कर गोला बरसाने लगी। इस समय विजयवासियोंको विजेता अंग्रेजोंके प्रति अपने शत्रुके साथ युद्धमें [redacted] गया।

इसके कुछ दिन बाद बंगलूर अंग्रेजोंके हस्तगत होने पर यहाँ अंग्रेजोंकी सेना-छावनीकी स्थापना हुई। १७६८ ई० में ईस्टइंडिया कम्पनी सेनाके साथ मिलकर मराठोंने इस पर अधिकार जमानेकी चेष्टा करने लगा। इसके बाद हैदरने फिर इस नगर पर चढ़ाई की। प्रायः तीन महीने तक हैदरअली इस नगरको घेरे रहा। अन्तमें हैदरअलीकी मृत्युके बाद इसकी सेना यहाँसे हट गई।

१७९१ ई० में लार्ड कार्नवालिस यहाँसे बंगलूर पर आक्रमण करनेके लिये अग्रसर हुए। १७९१ ई० में श्रीरंगपट्टनके पतनके बाद टीपू सुल्तान कुछ दिनों तक इस स्थानको घेरे रहा। इस समय अंग्रेजोंकी सेनाके सदर राजनैतिक केन्द्र एक महत्वका नगर बन गया। १८३२ ई० में यहाँ एक सामान्य सिपाही विद्रोहकी घटना हुई। इसमें कई एक यूरोपियन निहत हुए। अंग्रेज ब्रिटेनोंने विद्रोहदमन करनेके बाद शीघ्र ही महिसुरके राजकुमारको राज्य प्रत्यावर्तित कर अंग्रेज लोग शासन-भारसे मुक्त हुए।

इस दुर्गके अतिरिक्त और भी यहाँ अनेक अट्टालिकाएँ तथा मन्दिर हैं। गुफाके समान गविगंगाधरेश्वर प्राचीन मन्दिर अभी भी सुन्दर अवस्थामें सुरक्षित है। यहाँके लोगोंका कहना है, कि यह मन्दिर १६०० ई० में निर्मित हुआ था। किन्तु किसीका कहना है, कि १७९५ ई० में यह दुर्ग बननेके बाद यह बनाया गया था। कोई कोई कहते हैं, कि विजयनगरके राजा कृष्णदेवरायके राज्यारोहणके कुछ पूर्व सम्भवतः १५२० ई० में यह दुर्ग प्रतिष्ठित हुआ था। राजा कृष्णदेवरायके पहलेसे

सूर्यगुण्ठ पुष्करिणी एवं उनकी महिषी कृष्णाजोने अर्मा नदीके तीर दो मन्दिरें स्थापन किये थे। यहांके विष्णु-मन्दिर तथा चाँदसाहबकृत जुमामसजिद, हैदरवंशीयका समाधिक्षेत्र एवं और भी कितने ही हिन्दुओंको कीर्त्तिके निदर्शन देखने योग्य है।

वल्लूर—मन्द्राज प्रेसिडेन्सीके कृष्णा जिलेके बेजवाड़ा तालुकान्तर्गत एक नगर। यह वल्लूर जमींदारीकी राजधानी है। यह नगर बेजवाड़ासे १५ मील दक्षिण कृष्णा नदीके तीर पर बसा है।

वल्लूर—मन्द्राज प्रेसिडेन्सीके बापट्ला तालुकान्तर्गत एक बड़ा ग्राम। यह बापट्लासे १५ मील उत्तरमें अवस्थित है। यहाँ गोपालस्वामीका मन्दिर तथा मण्डपके स्तम्भमें दो शिलालिपियाँ उत्कीर्ण हैं। उसके पढ़नेसे जाना जाता है, कि १५७३ ई०में यह मंडप बनाया गया था।

वल्लूरक (सं० पु०) वल्लूर-कन्। वल्लूर देखो।

वल्लूवर—एक जाति।

वल्लेरू—मान्द्राज प्रेसिडेन्सीके उत्तर विभागस्थ एक धांगड़ जाति। ये लोग येर-वल्लेरू नामसे भी परिचित हैं।

वल्वग (सं० स्त्री०) वल्व-भावे घञ्, वल्वाय संवरणाय माधुः, वल्व-यत्। धात्रीवृक्ष, आँवलाका पेड़।

वल्वज (सं० पु०) वल्वे पर्वते जायते इति जन ड। उपल, ओखली।

वल्वजा (सं० स्त्री०) वल्वज-टाप्। एक प्रकारका तृण या घास। पर्याय—दृढ़पत्री, तृणेक्षु, तृणवल्वजा, मौञ्जी पत्रा, दृढ़तृणा, पार्णीयाश्रा, दृढ़क्षुरा। वैद्यकमें यह मधुर, शीतल, पित्त, दाह और तृष्णानाशक, वातवर्द्धक, रुचिकर और कण्ठशुद्धिकारक कही गई है।

वल्वल (सं० पु०) एक दैत्य जिसे बलरामजीने मारा था, इल्वल।

वल्श (सं० पु०) शाखा।

वल्हिक (सं० पु०) जातिविशेष, सम्भवतः वाह्रीक जाति।

वव (सं० पु०) फलित ज्योतिषके अनुसार ग्यारह करणों में एक करण। इसमें जन्म लेनेवाले मनुष्यका बलवान्, धीर, हठी और विलक्षण होना माना जाता है।

ववाङ्ग (सं० क्ली०) वराङ्ग।

ववर्तुषी (सं० स्त्री०) कृतप्रायश्चित्त, वह जिसने पापका प्रायश्चित्त किया हो।

वव्र (सं० त्रि०) १ वेष्टित, घेरा हुआ। (पु०) २ अन्धकारावारक। ३ गर्त्त, गड्ढा। ४ कूप, कुआँ।

वव्रि (सं० पु०) १ शरीरावरक जरा। 'वव्रिं कृत्स्नं शरीरमावृत्यावस्थितां जराम्" (ऋक् १।१।६।१०) २ रूप।

वव्रिवासस् (सं० त्रि०) रूपयुक्त वसनशाली। 'वव्रिवाससं वव्रिः रूपनाम रूपोपेतवसनयन्तम्।'

(अथर्व ८।६।२ भाष्य)

वव्वूल (सं० पु०) वव्वूर, बबूल।

वव्वूलनिर्यास (सं० पु०) वव्वूल वृक्षका निर्यास या गोंद। इसका गुण—ग्राही, पित्त और वायुघ्न तथा रक्तातिसार, पित्तास्र, मेह और प्रदरनाशक।

वव्वूलाद्यरिष्ट (सं० पु०) प्रह्णरोगाधिकारोक्त औषधभेद। बबूलकी छाल २५ सेर, पाकार्थ जल २५६ सेर, शेष ३४ सेर, गुड़ ३७॥ सेर, धौका फूल १६ सेर, पीपल २ पल, जायफल, गुड़त्वक्, इलायची, तेजपत्र, नागेश्वर, लवंग, मरिच, प्रत्येक १ पल, इन सबोंको एक साथ मिला कर एक महिना तक आवृत बरतन रख छोड़े। उसके बाद इसका सेवन करनेसे अतिसार आदि रोगोंमें फायदा पहुंचाता है। (भैषज्यरत्नावली ग्रहण्यधिकार)

वशंवद (सं० त्रि०) वशं तवाहं, वश इति वाक्यं वदतीति वशंवद (प्रियवशे वदः खच्। पा ३।२।३८) इति खच्। (अरुर्द्विष दन्तस्य मुम्। पा ६।३।६७) इति मुम्। १ वशीभूत, वशवर्त्ती। (पु०) २ आज्ञाकारी, दास।

वशंवदत्व (सं० क्ली०) वशंवदस्य भावः त्व। वशंवदका भाव या धर्म।

वश (सं० पु०) वश (वशिरण्योरुपसंख्यानात्। पा ३।३।५८) इत्यस्य वार्त्तिकोक्त्या अप्। १ इच्छा, चाह। २ एक व्यक्ति पर दूसरेका ऐसा प्रभाव कि, दूसरा, उसके साथ जो चाहे कर सके या उससे जो चाहे करा सके, काबू, इख्तियार। ३ किसी वस्तु या बातको अपने अनुकूल घटित करनेकी सामर्थ्य, शक्तिकी पहुंच। ४ अधीन

करनेका मन्त्र, मन्त्रप्रयोग, अभिचार। ५ स्त्रियोंको वशमें करनेका [illegible], वशकर्म। ६ [illegible]।

वशंवद (सं० त्रि०) वशं वदतीति। वशीभूत, जिसे वश किया जाय, वश्य।

वशक्रिया (सं० स्त्री०) परोक्ष आत्मवश्यता कार्यते जिससे [illegible]। [illegible], यह अर्थ भी सनमें कहा गया है।

वशक्रिया (सं० स्त्री०) वशमें करने की क्रिया; वशीकरण। वशं शब्द देखो।

वशग (सं० त्रि०) वशं गच्छतीति गम-ड। वशगत, वशीभूत।

वशगत (सं० त्रि०) वशंगतः। वशीभूत।

वशगमन (सं० क्ली०) वशगमन भावः [illegible]। १ वशगमन भाव या धर्म, वशता।

वशगमन (सं० क्ली०) वश होना, वशीभूत होना।

वशगा (सं० स्त्री०) वशीभूता स्त्री।

वशवर्तिन (सं० त्रि०) वशे वर्त्तते इति वृत णिनि। जो वशीभूत हुआ हो, वशमें आया हुआ।

वशता (सं० स्त्री०) वशस्य भावः तल् टाप्। वशत्व, वशका भाव या धर्म।

वशनीय (सं० त्रि०) वशीकरणीय, वश्य।

वशवर्तिन (सं० त्रि०) वशे वर्त्तते वृत णिनि। वशी-भूत, जो दूसरेके वशमें रहे, आधीन।

वशवर्ती (सं० त्रि०) वशवर्तिन देखो।

वशानुग (सं० त्रि०) वशे तिष्ठतीति स्था-क। वशवर्ती।

वशा (सं० स्त्री०) वश-अच् टाप् । [illegible] । [illegible]) इति अच् वा। १ बन्ध्या स्त्री, बाँझ। २ हथिनी, हाथी। ३ [illegible], [illegible] गाय, बहिन। ४ पतिकी बहन, ननद। ५ दुहिता। ६ [illegible]। ७ वशीभूता।

वशाकु (सं० पु०) एक प्रकारकी चिड़िया।

वशानुग (सं० पु०) वशस्य अनुगः, [illegible]। [illegible], गुंजन।

वशावाप (सं० पु०) [illegible]।

वशानुग (सं० त्रि०) वशस्य अनुगः। १ वशवर्ती, वशानुग। (पु०) २ आज्ञाकारी, दास, सेवक।

वशाय (सं० त्रि०) १ वशानुग भव। २ [illegible]। (ऋक् [illegible])

वशार्थिन् (सं० पु०) वशो विद्यतेऽस्य इति। कुक्कुट, कुत्ता।

वशावत् (सं० त्रि०) वशानुग।

वशावाप (सं० त्रि०) वशं आपन्नः। वशीभूत, वशगत।

वशि (सं० स्त्री०) वश-भावे इन्। वशित्व, वशता।

वशिक (सं० त्रि०) शून्य।

वशिकर (सं० स्त्री०) वशी वशीकरणं [illegible] इति वश तन टाप्। [illegible], [illegible]।

वशिता (सं० स्त्री०) वशिनो भावः वशिन् तल् टाप्। १ वशित्व, अधीनता, ताबेदारी। २ मोहनेकी क्रिया या भाव, मोहन।

वशिनु (सं० त्रि०) वश गृध्। स्वतन्त्र, स्वाधीन।

वशित्व (सं० क्ली०) वशिन् भावे त्व। १ आयत्तत्व, [illegible]। २ योगके अणिमादि आठ प्रकारके ऐश्वर्यों मेंसे एक। कहते हैं, कि इस सिद्धिसे साधक सबको अपने वशमें कर लेता है।

वशिन् (सं० त्रि०) वश इनि। १ जितेन्द्रिय, इन्द्रियोंको वशमें रखनेवाला। २ वशमें किया हुआ, काबूमें लाया हुआ, अधीन।

वशिनी (सं० स्त्री०) वशो वशीकरणं [illegible] इति वश-इनि-ङीप्। १ [illegible]। २ शमीका पेड़।

वशिमा (सं० स्त्री०) योगकी आठ सिद्धियोंमेंसे एक, वशित्व।

वशिर (सं० क्ली०) [illegible] इति [illegible]। [illegible], यथा [illegible]। १ [illegible], [illegible]। २ गजपिप्पली। ३ एक प्रकारका पौधा। ४ एक प्रकारका [illegible]। ५ [illegible]। ६ [illegible], [illegible]।

वशिष्ठ (सं० पु०) [illegible] वशिनो श्रेष्ठः, [illegible] ([illegible]) इति [illegible], यथा वशिष्ठ [illegible]। १ [illegible]। [illegible], [illegible], [illegible]। (देव०) वशिष्ठ [illegible] उत्पन्न हुए थे। [illegible] [illegible] नहीं [illegible] हैं। (महाभारत) सूर्यवंशके

भतसे इनके सात पुत्र और एक कन्या थी। वसिष्ठ देखो।
२ मित्रावरुणके पुत्र। (अग्निपु०)

वशा (सं० स्त्रि०) वशिन देखो।

वशीकरण (सं० क्ली०) वश-कृ भावे ल्युट्, अभूततद्भावेच्वि मणि, मन्त्र या औषध आदिके द्वारा किसीको अपने वशमें करनेका प्रयोग, आथर्व्वणक्रियाभेद। जिस क्रिया द्वारा सबको वश किया जाता है, उसको वशीकरण कहते हैं। मणि आदि धारण करने तथा मन्त्र और औषधका प्रयोग करनेसे वशीकरण होता है। तन्त्रमें वशीकरणकी मन्त्रोषधिका विशेष विवरण लिखा जा चुका है, विस्तार हो जानेके भयसे यहां उसका विषय बहुत संक्षेपमें दिया जाता है।

जो मारण, उच्चाटन और वशीकरणादि कार्य करें, उन्हें मन्त्रसिद्ध होना पड़ेगा, बिना मन्त्रसिद्ध हुए यह सब प्रक्रिया करनेसे वह सिद्ध नहीं होगा। साधकको चाहिये, कि वे स्थिरचित्तसे बीस हजार मन्त्र जप कर यह वशीकरण करें। वशीकरणकार्य करनेसे उनके दर्शनमात्रसे त्रिभुवन क्षुब्ध हो जाता है।

भूमिकुष्माण्ड और बरगदकी जड़ जलमें पीस कर उसका तिलक लगा कर जिसकी ओर देखा जाय, वही वशीभूत हो जाता है। पुष्या नक्षत्रमें पुनर्णवाकी जड़ और रुद्रदन्तीकी जड़ उखाड़ कर इसके साथ यवबीज बांधनेके समय 'ओं ऐं पुरं क्षोभ्य भगवति गम्भीरय ब्लुं स्वाहा' इस मन्त्रसे सात बार अभिमन्त्रण करे। इसके बांधनेके पहले यह मन्त्र बीस हजार जप करे, इससे सभी मनुष्य वशीभूत हो जाते हैं। पद्म, भजीठ, अर्जुनवृक्ष, तगरकाष्ठ, इनका सम भाग ले कर जिसको खिलाया तथा शरीरसे छुआ दिया जाय, वही वशीभूत होता है।

पुष्या नक्षत्रमें कंटकारीकी जड़ उखाड़ कर कमरमें बांधने तथा कृष्णपक्षकी चतुर्दशीकी रातमें श्मशानस्थित महा नील वृक्षकी जड़ उखाड़ कर नरतैलका अञ्जन करनेसे जगत् वशीभूत होता है।

श्मशानमें उत्पन्न महानील वृक्षकी जड़ और स्वीय शुक्र एकत्र पीस कर अञ्जन करनेसे वशीकरण किया जा सकता है तथा उक्त जड़ हाथमें बांधनेसे वह व्यक्ति सर्वलोकप्रिय होता है। पुष्या नक्षत्रमें प्रहदन्तीका मूल उखाड़ करके जिसको खिलाया जाता है, वह वशमें हो जाता है। पेचकका कलेजा, घृतकुमारी और गोरोचना, इन सबोंका बराबर बराबर भाग ले कर आँखमें अञ्जन लगानेसे त्रिभुवन वशीभूत होता है। अञ्जन लगानेके पहले "ओं नमो महायक्षिणी अमुकं मे वशमानय स्वाहा" इस मन्त्रसे दश हजार जप करना होता है। मृगशिरा नक्षत्रमें लाल कनेरकी जड़ उखाड़ कर उसका नौ अंगुलका खूंटा—'ओं ऐं स्वाहा' इस मन्त्रसे सात बार अभिमन्त्रित कर जिसके नामसे जमीनमें गाड़ा जायगा, वह अवश्य वशीभूत हो जायगा। यह मन्त्र पहले दश हजार जपना चाहिए।

अपामार्गकी जड़ उखाड़ कर उसका तीन अंगुलका खूंटा सात बार अभिमन्त्रित कर जिसके घर फेंका जाय, वह वशीभूत हो जाता है। 'ओं मदन कामदेवाय स्वाहा' यह मन्त्र १०८ बार जप कर सिद्ध होनेसे यह कार्य करे। अभिमन्त्रण भी इसी मन्त्र द्वारा होगा। अपामार्गकी जड़का तिलक लगानेसे भी वशीकरण होता है।

स्वयम्भूकुसुम कपड़ेमें ले कर तिराहेके बीच शनि या मंगलवारको जलाये। जला कर जो भस्म होगा, उसका कपालमें तिलक करे। इससे राजा भी वशीभूत होते हैं। जलानेके समय 'ओं नमो भैरवीतरे आज्ञाकाले कमलमुखे राजमोहने प्रजावशीकरणे स्त्रीपुरुषरञ्जनिलोक वश्यमोहनि मे सोहं 'ओं गुरुप्रसादेन' यह मन्त्र पढ़ना होता है।

कृष्णपक्षकी चतुर्दशीकी रातमें रुपलाङ्गलियाकी जड़, नरतैल, मधु और हरताल, इन सबोंको एक साथ कर कपालमें तिलक लगानेसे सबोंको वशीभूत किया जा सकता है।

यमानी वृक्षका मूल और हरताल एकत्र पीस कर गोली बनावे। यह गोली मुंहमें रख कर जिससे जो चीज मांगी जायगी, वह वशवर्त्ती हो कर तत्काल ही दे देगा। 'ओं अश्मकर्णेश्वरि दुर्बले अहि केशिक जटाकलापे हक्कार फत्कारिणी स्वाहा' यह मन्त्र पढ़ कर इसका अनुष्ठान करना होता है।

वटपत्र और मयूरशिखा समभाग ले घस कर तिलक लगानेसे सर्वलोग वशीभूत होता है एवं कृष्णा अपरा-

लिया, मनुष्यकी जड़, गोरोचना, सिन्दूर और श्वेत [illegible] इन सब वस्तुओंको एकत्र पीस कर [illegible] तिलक लगाने हेतु रखे। पीछे इस पीसी हुई वस्तुको अपने ललाट पर तिलक लगानेसे सर्वलोक वशीभूत होता है।

भांग, कसेरा, कूठ, कुन्द, सफेद सरसों, सफेद [illegible] जड़, तगर, सफेद घुंघची और नागकेशर, इन वस्तुओंको पुष्यनक्षत्रयुक्त रविवारको या गुरुवारको मिलाकर एकत्र कर पीसे। इसका तिलक लगानेसे सब लोक वशीभूत होता है।

अपामार्गकी जड़ और गोरोचना एक साथ पीस कर ललाटमें तिलक करनेसे त्रिभुवन वशीभूत होता है। 'ओं नमो [illegible] सर्वलोकवशंकराय [illegible] स्वाहा' यह मन्त्र आठ हजार जप करके [illegible]। पीछे और तिलक कर इसके साथ गोरोचना मिला कर जिसको अपने साथ पावे, वही वशीभूत हो जायगा।

[illegible] दो [illegible] तथा [illegible] वस्तुको और इन दोनोंका एकत्र चूर्ण करे। इस चूर्णका ललाटमें तिलक लगानेसे जगत् वशीभूत किया जा सकता है। फिर [illegible] यह चूर्ण जिस मनुष्यके [illegible] और पानके साथ खिला कर दिया जाय अथवा [illegible] और फूल [illegible] जाय या [illegible] के मस्तक पर दिया जाय, तो वह व्यक्ति वशीभूत होता है।

[illegible] अगर, केसर, कपूर, [illegible] और गोरोचना [illegible] सब द्रव्योंको बराबर बराबर भाग एक साथ पीस कर [illegible] जिसके साथ देवें त्रिभुवन वशीभूत होता है। इसके पहले 'ओं ह्रीं [illegible] स्वाहा' यह मन्त्र [illegible] जप करना होता है। इसी प्रकार [illegible] पुरुष स्त्री वशीभूत हो जाता है। [illegible] कर गोरोचनके साथ [illegible]। इसके बाद [illegible] हो [illegible]। पीछे यह जड़ और [illegible] के मूलके साथ पीस कर [illegible] तिलक कर [illegible] और [illegible] वही वशीभूत हो जायेगा।

पूर्वोक्त सरसों, देवदारु और सफेद [illegible] कर [illegible] पीस कर जिसको [illegible] दिया जाता है, वह वशीभूत हो जाता है।

पूर्वोक्त [illegible] और गोरोचना इनका [illegible] साथ पीस कर ललाटमें तिलक लगावे, तो वह व्यक्ति सबका प्यारा होगा। 'ओं नमो [illegible] स्वाहा' यह मन्त्र [illegible] जप कर इसका अनुष्ठान करना होता है।

कृष्ण चतुर्दशी या कृष्णाष्टमी तिथिमें [illegible] देवताकी [illegible] विधिपूर्वक [illegible] कर चूर्ण करे। यह चूर्ण [illegible] जिसके मस्तक पर डाले जाएं, वह वशीभूत हो जायगा।

गोरोचना और [illegible] एकत्र पीस कर तिलक लगानेसे [illegible] वशीभूत होता है। [illegible] और [illegible] जड़ एकत्र पीस कर [illegible] लोक वशीभूत होता है। [illegible] जड़ [illegible] राजा भी वशीभूत हो जाते हैं। [illegible] जड़ [illegible] करनेसे [illegible] होता है। [illegible] साथ, वह भी वशीभूत हो जाता है। इसके पहले 'ओं नमो [illegible] स्वाहा' यह मन्त्र जप कर [illegible] करना होता है।

[illegible] और [illegible] जड़, एकत्र कर [illegible] जाय, वह व्यक्ति [illegible] वशीभूत हो जायगा। मनुष्यकी [illegible], गोरोचना, [illegible] इन वस्तुओंको [illegible] मिला कर जिसको [illegible] जाता है, वह व्यक्ति [illegible] होता है। [illegible] कर ललाटमें तिलक [illegible] भूत होता है। [illegible] जड़ [illegible] वशीकरण किया जा सकता है अथवा [illegible] जाता है। [illegible] एक साथ [illegible] कर [illegible] दिया जाय, वही वशीभूत हो जायगा। इस [illegible] वशीभूत किया जा सकता है।

मनःशिला, गोरोचना और श्वेत अपराजिताको जड़ एकत्र कर पीसे। पीछे उसका कपालमें तिलक कर जिससे बातचीत की जाती है, वही वशीभूत हो जाता है। स्वर्ण वेष्टित श्वेत अपराजिताकी जड़ तावीजमें रख कर जो व्यक्ति पहनता है, उसके वचनसे सभी वशीभूत होता है। श्वेत अपराजिताको जड़ चबा कर उसका तिलक करनेसे नारी अथवा नर यदि उसकी ओर देखे, तो देखनेसे ही उसके वशमें हो जाता है। इस प्रक्रियाके करनेके पहले 'ओं वज्रकिरणे शिवे रक्ष रक्ष भगवति ममाङ्ग अमृतः कुरु कुरु स्वाहा' यह मन्त्र सहस्र वार जप करना होता है।

पुष्या नक्षत्रयुक्त कृष्णपक्षकी अष्टमी तिथिमें साधक उपवास रह कर पुष्प, धूप, वलि और घृतप्रदीप दे कर 'ओं श्वेतवर्णे सितपर्वतवासिनी अप्रतिहते मम कार्यं कुरु कुरु ठः ठः स्वाहा' एक हजार आठ वार जप करे, उसके बाद श्वेत गुञ्जाफल और उसी जगहकी मिट्टी ले कर इस फलमें घृत लेप दे। तदनन्तर वह बीज और मिट्टी एक नये वरतनमें रख कर कृष्णाचतुर्दशी या अष्टमी तिथिमें गाड़ रखे। जब तक इस बीजसे वृक्ष हो कर फल न हो, तब तक 'ओं श्वेतवर्णे सितवासिनि श्वेतपर्वतवासिनि सर्वकार्याणि कुरु कुरु अप्रतिहते नमो नमः स्वाहा' इस मन्त्रसे जल सींचना होगा। इस वृक्षमें फल लगनेसे पुनः पुष्या नक्षत्रमें शुचि हो कर उपवासी रह धूपादि दे, पीछे 'ओं श्वेतहृदयाय नमः' ओं वज्रमुखे शिरसि स्वाहा, ओं सर्वज्ञानमय्यै शिखायै वषट्, ओं नमः सर्वशक्तिमयी कवचाय हुं, ओं नमः नेत्रत्रयाय वौषट्, ओं परमन्त्रभेदने अस्त्राय फट्, इस मन्त्रसे न्यास करके श्वेतगुंजाकी जड़ उपारे। इसके पहले 'ओं नमो भगवति ह्रीं श्वेतवासे नमः नमः स्वाहा' श्वेतगुंजाकी जड़ उठा कर यह मन्त्र दश हजार जपना तथा घृत मिश्रित तिल और श्वेत-दूर्वा द्वारा सहस्र होम करना होगा। इसके बाद गुंजाकी जड़ और श्वेतचन्दन एकत्र पीस कर शरीरमें लगानेसे उत्तम वशीकरण होता है, गुंजाकी जड़के साथ लेपन करनेसे भी सब वशीभूत होता है।

मनःशिला, कहे गये तरीकेसे उखाड़ा हुआ श्वेतगुञ्जाका मूल और श्वेतचन्दन इन तीनोंको एकत्र जलमें घीस कर तिलक लगानेसे सर्वलोक वशीभूत होता है।

पूर्वरूप श्वेतगुञ्जाकी जड़, सफेद सरसों और प्रियंगु इन तीनों द्रव्योंका समभाग ले कर चूर्ण करे। यह चूर्ण जिसके सिर पर निक्षेप किया जायगा, वह व्यक्ति वशीभूत होगा। 'ओं नमः श्वेतगात्रे सर्वलोक वशङ्करि दुष्टान् वशं कुरु कुरु मे वशमानय स्वाहा' यह मन्त्र १०८ बार जप कर सिद्ध करे। जब तक यह मन्त्र सिद्ध न होगा, तब तक वशीकरण हो ही नहीं सकता।

अडूसकी जड़, प्रियंगु, कुन्द, इलायची, नागकेशर और सफेद सरसों इन सबोंको एकत्र कर जिसके अंगमें धूप दिया जाता है, वह व्यक्ति वशीभूत होता है। 'ओं कामिनि माधवि माधवि नमः' इस मन्त्रसे धूप अभिमन्त्रित कर देना होगा। इस मन्त्रसे एक फूल ले कर सौ बार अभिमन्त्रित कर जिसे दिया जाता है वही वशीभूत हो जाता है। खानेके समय इस मन्त्रसे अन्न अभिमन्त्रित कर जिसे वशीभूत करना होगा, उसके नामसे सात दिन भोजन करनेसे वह व्यक्ति वशीभूत होता है। खानेके पहले 'ओं कटे कटे घोररूपिणि ठः ठः' यह मन्त्र सहस्र बार जप करे।

साधक 'क्लीं जनके स्वाहा' यह मन्त्र दो लाख बार जप करके घृताक्त गुग्गुलसे जपका दशांश होम करे। इस प्रकार जप होम करनेसे देवी सौभाग्य प्रदान करती एवं स्पर्शमात्रसे ही साधक त्रिभुवन वशीभूत कर सकता है।

पीपलके पेड़ पर चढ़ कर 'ओं नमो भगवते रुद्राय सिद्धरूपिणे शिखिवन्ध सर्वेषां शिवमस्तु शिवमस्तु हन हन रक्ष रक्ष सर्वभूतेभ्यश्च नमः' यह मन्त्र दश हजार जप करके पीछे पञ्च कनेरका फूल उक्त मन्त्रसे सात बार अभिमन्त्रित कर जिसको दिया जाता है, वह उसी क्षण वशीभूत हो जाता है।

'ओं नमो भूतनाथाय थं भूपान् वशं कुरु कुरु भुवनक्षोभक सर्वलोकान् क्षोभय क्षोभय स्फें ब्लों ब्लों ब्लुं स्वाहा' यह मन्त्र एक लाख जप करनेसे साधकके प्रति भूतनाथ अर्थात् महादेव सन्तुष्ट होते हैं एवं साधक जिसे स्मरण करता है, वह व्यक्ति तत्क्षणात् ही वशीभूत हो जाता है।

राजवशीकरण—केसर, रक्तचन्दन, गोरोचना और कपूर

इस मन्त्रका [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] तिलक [illegible] [illegible] [illegible] होता है। [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] होगा।

[illegible], [illegible], [illegible], [illegible], [illegible] और [illegible], इन्हें एकत्र कर [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] वशीभूत होता तथा वह [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] वशीभूत होते हैं। [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] होता है।

[illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] वशीभूत हो जाता है। [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] होता है। [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] होता है।

[illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] वशीभूत हो जाते हैं। [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] वशीभूत होते हैं। [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] वशीभूत होते हैं। [illegible] [illegible] [illegible] होता है।

[illegible] [illegible] [illegible] और [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] है। [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] जाते हैं।

स्त्रीवशीकरण—कुङ्कुम, [illegible] और [illegible] अपने शरीरका रक्त, गोरोचना और [illegible] [illegible] इन सबोंको एकत्र कर तिलक करनेसे स्त्री वशीभूत होती है।

गोरोचना, [illegible], [illegible] और [illegible] इन्हें एक साथ पीस कर तिलक [illegible] किया जाय, तो स्त्री [illegible] वशीभूत हो जायगी।

[illegible], [illegible], धूप, [illegible] और [illegible] इन्हें [illegible] कर चूर्ण करे। यह चूर्ण जिस स्त्रीके सिर पर और पुरुषके पैर पर फेंका जाता है, वह स्त्री और पुरुष वशीभूत होते हैं।

[illegible] [illegible], [illegible] [illegible], [illegible], [illegible], [illegible], [illegible] और [illegible] एकत्र करके [illegible] [illegible] [illegible] वशीभूत हो जायगी। [illegible] [illegible], [illegible] और [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] तिलक करनेसे [illegible] भी वशीभूत हो जाती है।

[illegible], [illegible], गोरोचना, [illegible] और [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] तिलक करनेसे [illegible] वशीभूत होती है। [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] और गोरोचना [illegible] कर तिलक करनेसे स्त्री वशीभूत होती है।

[illegible], [illegible], [illegible], [illegible] और [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] तिलक करनेसे स्त्री वशीभूत हो जाती है। [illegible] [illegible], [illegible], [illegible] और [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] वशीभूत हो जाती है।

[illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] वशीभूत हो जायगा। [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] स्त्री वशीभूत होती है।

[illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] वशीभूत होती है। [illegible]

दुम्बरकी जड़ मृगशिरा नक्षत्रमें हाथमें बांध कर जिसके अंगमें स्पर्श कराओगे, वह कामिनी वशीभूत हो जायगी। धनिष्ठा नक्षत्रमें शिरीष पेडका मूल तथा स्वाती-नक्षत्रमें धातकीमूल ला कर हाथमें बांधनेसे नारियाँ वशीभूता होती हैं। रेवती नक्षत्रमें वटकी कली ला कर हाथमें बाँधनेसे सबको वशीभूत कर सकते हो तथा मूला नक्षत्रमें बेरकी जड़ उखाड़ जिस स्त्रीको खिलाओगे वह स्त्री वशीभूत हो जायगी।

स्वर्णपात्रमें कुन्दवृक्षका मूल पीस कर जिस स्त्रीको पीठ पर दिया जाता है, वह स्त्री निश्चय ही वशीभूत हो जाती है। अगहन मासकी पूर्णिमा तिथिमें अपामार्गकी जड़ उपाड़ कर जिस स्त्रीको खिलाया जायगा, वह स्त्री वशमें हो जायगी। श्वेतगुञ्जाकी जड़ एवं पञ्चमल, जिह्वा, दन्त, चक्षु, कर्ण और नासामल इनको एकत्र कर चण्डमन्त्र पढ़ कर जिस स्त्रीको खिलाया जाता है, वह स्त्री वशीभूत हो जाती है।

यह जितने स्त्रीवशीकरण लिखे गये, इन सबोंको करते जानेमें चण्डमन्त्र जप और मन्त्र पढ़ना होगा; नहीं तो सब निष्फल हो जाता है। सबेरे दाँत साफ कर जिस स्त्रीका नाम ले और 'ओं नमः क्षिप्र' कामिनी अमुकीं वशमानय हुं फट् स्वाहा' इस मन्त्रसे सात बार अभिमन्त्रित कर सात गण्डूष (चुल्लू) जल पान करे, वह स्त्री वशीभूत हो जाती है।

नागकेशरका फूल, प्रियंगु, तगरकाष्ठ, पद्मकेशर, वच, जटामांसी, इन्हें एकत्र चूर्ण कर जो व्यक्ति 'ओं मूलि मूलि महामूलि रक्ष रक्ष सर्वासां क्षेतयेभ्ये परेभ्यः स्वाहा' यह मन्त्र पढ़ कर उक्त चूर्ण द्वारा अपने शरीरमें धूप देता है, उस व्यक्तिको कामदेवको तरह जान कर स्त्रियाँ उसके वशमें हो जाती हैं।

स्वीय जिह्वामल, नासामल और कर्णमल एकत्र कर 'ओं नमः सवायै नमः सवाण्यै च अमुकीं मे वशमानय स्वाहा' यह मन्त्र पाठ करके सुराके सहित जिस स्त्रीको खिलाया जाय, वह स्त्री अवश्य ही वशीभूता हो जायगी।

अपामार्ग वृक्षके मध्यभागका चार अंगुलका काष्ठ 'ओं द्राविणि स्वाहा ओं हर्मिले स्वाहा' इस मन्त्रसे सात बार अभिमन्त्रण करके वेश्याके घर फेंक देनेसे वह वेश्या वशीभूत हो जाती है।

पेचककी आँख और मांस, रक्तचन्दन, गोरोचना, केसर तथा मछलीका तेल इन सबोंको एकत्र करके 'ह्रीं, ह्रीं प्लें प्लें फट् नमः' इस मन्त्रसे अपने शरीरमें लगानेसे स्त्रीको वशीभूत किया जाता है। एक गिरगिटका दाहिना पैर मुखमें रख कर जिस स्त्रीके साथ सम्भोग किया जाता है वह स्त्री वशीभूत हो जाती है एवं गिरगिटकी बाईं आंख मधु और तेलके साथ एकत्र करके आंखमें अञ्जन लगानेसे अगर किसी स्त्रीको देखा जाय वह स्त्री वशीभूत हो जायगी। स्त्रीको देखनेके समय 'ओं आनन्द ब्रह्म स्वाहा ओं ह्रीं क्लीं प्लां कालि कपालि स्वाहा' यह मन्त्र पढ़ना होता है। गिरगिटकी दाहिनी आंख, काँजि और मधु एकत्र करके दाहिनी आंखमें अञ्जन दे 'ओं पूजिताय स्वाहा' यह मन्त्र पढ कर जिस स्त्रीको देखा जाता है, वह स्त्री वशीभूत होती है।

'ओं नमः कामदेवाय महकल सहदश सहाम सहालिमे वहे धूननमनं ममदर्शनं उत्कण्ठितं कुरु कुरु दक्षदण्डधर कुसुमवाणेन हन हन स्वाहा' यह मन्त्र जिस नारीके उद्देशसे एक सप्ताह तक जप किया जायगा, वह नारी समीप आ कर उसके वशमें हो जायगी।

रात्रिकालमें कामाक्रान्त चित्तसे जिसका नाम ले कर 'ओं महयल्लीं यल्लीं करयल्लीं कामपिशाच अमुकीं कामं ग्राहय स्वपेन मम रूपेण नखैर्विदारय द्रावय स्वेदेन बन्धय श्रीफट' यह मन्त्र जप किया जायगा, वह नारी वशीभूत होगी।

इस वशीकरण कार्यमें भी पूर्वोक्त चण्डमन्त्र दश सहस्र जप करना होगा। बिना चण्डमन्त्रका जप किये कोई फल नहीं होता।

लवण, तिल, दुग्ध, मधु और घृत इन्हें एकत्र करके एक सप्ताह तक होम करते रहनेसे कुरूप व्यक्ति भी तिलोत्तमाको वशीभूत कर सकता है। सरसों, लवण, दुग्ध, मधु, घृत इनका एक सप्ताह तक होम करते रहनेसे स्त्रियां वशीभूत होती हैं।

चार अंगुलकी अंडीको लकड़ीसे मन्त्र पाठपूर्वक कड़ुआ तेल और लवणके साथ १०८ होम करे। होम

[illegible] होता है। [illegible]

[illegible] और [illegible] वशीभूत [illegible] होते हैं। [illegible]

[illegible] होता है।

[illegible] वशीभूत हो जाता है। [illegible] होता है। [illegible]

[illegible] वशीभूत हो जाते हैं। [illegible]

[illegible] और [illegible] वशीभूत हो जाते हैं।

[illegible] वशीभूत होता है।

[illegible] और [illegible] वशीभूत हो जाएगी।

[illegible] और [illegible] वशीभूत होते हैं।

[illegible] और [illegible] वशीभूत हो जाता है। [illegible] वशीभूत हो जाती है।

[illegible] और [illegible] वशीभूत होती है। [illegible] वशीभूत होती है।

[illegible] और [illegible] वशीभूत हो जाती है।

[illegible] और [illegible] वशीभूत होता है।

[illegible] वशीभूत होती है। [illegible]

दुग्धरकी जड़ मृगशिरा नक्षत्रमें हाथमें बांध कर जिसके अंगमें स्पर्श कराओगे, वह कामिनी वशीभूत हो जायगी।

घनिष्ठा नक्षत्रमें शिरीष पेड़का मूल तथा स्वाती नक्षत्रमें धातकीमूल ला कर हाथमें बांधनेसे नारियाँ वशीभूता होती हैं। रेवती नक्षत्रमें वटकी कली ला कर हाथमें बाँधनेसे सबको वशीभूत कर सकते हो तथा मूला नक्षत्रमें बेरकी जड़ उखाड़ जिस स्त्रीको खिलाओगे वह स्त्री वशीभूत हो जायगी।

स्वर्णपात्रमें कुन्दवृक्षका मूल पीस कर जिस स्त्रीको पीठ पर दिया जाता है, वह स्त्री निश्चय ही वशीभूत हो जाती है। अगहन मासकी पूर्णिमा तिथिमें अपामार्गकी जड़ उखार कर जिस स्त्रीको खिलाया जायगा, वह स्त्री वशमें हो जायगी। श्वेतगुञ्जाकी जड़ एवं पञ्चमल जिह्वा, दन्त, चक्षु, कर्ण और नासामल इनको एकत्र कर चण्डमन्त्र पढ़ कर जिस स्त्रीको खिलाया जाता है, वह स्त्री वशीभूत हो जाती है।

यह जितने स्त्रीवशीकरण लिखे गये, इन सबोंको करते जानेमें चण्डमन्त्र जप और मन्त्र पढ़ना होगा, नहीं तो सब निष्फल हो जाता है। सवेरे दाँत साफ कर जिस स्त्रीका नाम ले और 'ओं नमः क्षिप्र' कामिनी अमुकीं वशमानय हुं फट् स्वाहा' इस मन्त्रसे सात बार अभिमन्त्रित कर सात गण्डूष (कुल्ला) जल पान करे, वह स्त्री वशीभूत हो जाती है।

नागकेशरका फूल, प्रियंगु, तगरकाष्ठ, पद्मकेशर, वच, जटामांसी, इन्हें एकत्र चूर्ण कर जो व्यक्ति 'ओं मूलि मूलि महामूलि रक्ष रक्ष सर्वासां क्षेत्रपेभ्यो परेभ्यः स्वाहा' यह मन्त्र पढ़ कर उक्त चूर्ण द्वारा अपने शरीरमें धूप देता है, उस व्यक्तिको कामदेवको तरह जान कर स्त्रियाँ उसके वशमें हो जाती हैं।

स्वीय जिह्वामल, नासामल और कर्णमल एकत्र कर 'ओं नमः सवाये नमः सवाण्ये च अमुकीं मे वशमानय स्वाहा' यह मन्त्र पाठ करके सुराके सहित जिस स्त्रीको खिलाया जाय, वह स्त्री अवश्य ही वशीभूता हो जायगी।

अपामार्ग वृक्षके मध्यभागका चार अंगुलका काष्ठ 'ओं द्राविणि स्वाहा ओं ह्रमिले स्वाहा' इस मन्त्रसे सात बार अभिमन्त्रण करके वेश्याके घर फेंक देनेसे वह वेश्या वशीभूत हो जाती है।

पेचककी आँख और मांस, रक्तचन्दन, गोरोचना, केसर तथा मछलीका तेल इन सबोंको एकत्र करके 'ह्रीं, ह्रौं प्लं प्लं फट् नमः' इस मन्त्रसे अपने शरीरमें लगानेसे स्त्रीको वशीभूत किया जाता है। एक गिरगिटका दाहिना पैर मुखमें रख कर जिस स्त्रीके साथ सम्भोग किया जाता है वह स्त्री वशीभूत हो जाती है एवं गिरगिटकी बाईं आंख मधु और तेलके साथ एकत्र करके आंखमें अञ्जन लगानेसे अगर किसी स्त्रीको देखा जाय वह स्त्री वशीभूत हो जायगी। स्त्रीको देखनेके समय 'ओं आनन्द ब्रह्म स्वाहा ओं ह्रीं क्लीं प्लां कालि कपालि स्वाहा' यह मन्त्र पढ़ना होता है। गिरगिटकी दाहिनी आंख, काँजि और मधु एकत्र करके दाहिनी आंखमें अञ्जन दे 'क्लीं' पूजिताय स्वाहा' यह मन्त्र पढ़ कर जिस स्त्रीको देखा जाता है, वह स्त्री वशीभूत होती है।

'ओं' नमः कामदेवाय सहकल सद्दश सहाम सहालिमे वहे धूननजनं ममदर्शनं उत्कण्ठितं कुरु कुरु दक्षदण्डधर कुसुमबाणेन हन हन स्वाहा' यह मन्त्र जिस नारीके उद्देशसे एक सप्ताह तक जप किया जायगा, वह नारी समीप आ कर उसके वशमें हो जायगी।

रात्रिकालमें कामाक्रान्त चित्तसे जिसका नाम ले कर 'ओं' सहवल्लीं वल्लीं करवल्लीं कामपिशाच अमुकीं कामं ग्राहय स्वपेन मम रूपेण नखैर्विदारय द्रावय स्वेदेन बन्धय श्रीफट्' यह मन्त्र जप किया जायगा, वह नारी वशीभूत होगी।

इस वशीकरण कार्यमें भी पूर्वोक्त चण्डमन्त्र दश सहस्र जप करना होगा। बिना चण्डमन्त्रका जप किये कोई फल नहीं होता।

लवण, तिल, दुग्ध, मधु और घृत इन्हें एकत्र करके एक सप्ताह तक होम करते रहनेसे कुरूप व्यक्ति भी तिलोत्तमाको वशीभूत कर सकता है। सरसों, लवण, दुग्ध, मधु, घृत इनका एक सप्ताह तक होम करते रहनेसे स्त्रियां वशीभूत होती हैं।

चार अंगुलकी अंडीको लकड़ीसे मन्त्र पाठपूर्वक कड़ुआ तेल और लवणके साथ १०८ होम करे। होम

इन सबोंका बराबर बराबर भाग ले कर गायके दूधके साथ मिला कर तिलक करनेसे राजवशीकरण होता है। तिलक लगानेके पहले 'ओं ह्रीं नमः अमुकं मे वशं कुरु कुरु स्वाहा' यह मन्त्र एक हजार जप करना होगा।

अखरोट, केसर, अमलताश, घृतकुमारी, चिताभस्म और अपने शरीरका रक्त, इन्हें एकत्र कर अपने शुक्र द्वारा भावना दे, पीछे पुष्य नक्षत्रमें उसकी गोली बनावे। यह गोली जिसे खाद्यवस्तु या पीनेके जलमें दे कर खिलावेंगे, वह व्यक्ति निश्चय ही वशीभूत होगा तथा यह गोली माथेमें छुआनेसे चण्डमन्त्रके प्रभावसे राजा भी वशीभूत होते हैं। चण्डमन्त्र 'ओं ह्रीं रक्तचामुण्डे कुरु कुरु अमुकं मे वशमानय स्वाहा' यह मन्त्र एक हजार जप करना होता है।

चन्द्रग्रहणके समय श्वेत अपराजिताकी जड़ उखाड़ कर गाभिकको भोजन करानेसे चण्डमन्त्रयन्त्रसे वह तुरत वशीभूत हो जाता है। इसमें भी उक्त चण्डमन्त्र सहस्र बार जप तथा भोजनकालमें भी यह मन्त्र पढ़ना होता है। उत्तरफल्गुनी, उत्तराषाढ़ा, किंवा उत्तरभाद्रपद नक्षत्रोंमें प्रातःकाल पावलके पेड़की जड़ उखाड़ कर हाथमें रखनेसे राज-दरबारमें या अन्यान्य स्थानोंमें जयलाभ होता है।

भरणी नक्षत्रमें आँवलेकी जड़, विशाखा नक्षत्रमें आम पेड़का मूल एवं पूर्वफल्गुनी नक्षत्रमें अनार वृक्षकी जड़ हाथमें रखनेसे देवराज इन्द्र भी उस पर वशीभूत हो जाते हैं। अश्लेषा नक्षत्रमें नागकेशरकी जड़ हाथमें बांधनेसे राजा वशीभूत होते हैं। श्वेतार्ककी जड़ अङ्कोट फलोंके तेलमें घर्षण करके पूर्वोक्त चण्डमन्त्रसे सात बार अभिमन्त्रित कर कपालमें तिलक करनेसे राजा वशीभूत होते हैं। इसमें भी चण्डमन्त्र सहस्र बार जप करना होता है।

रक्तचन्दन, सफेद सरसों और कटु तेलके साथ चण्डमन्त्रसे सहस्र होम करनेसे फौरन ही राजाको वशीभूत किया जा सकता है। रात्रिकालमें अपने घर बकरेके मूत्रके साथ सरसों द्वारा उक्त चण्डमन्त्रसे सहस्र होम करनेसे राजाको वशीभूत किया जा सकता है। रातमें मधुके साथ सरसोंके फूल द्वारा चण्डमन्त्रसे सहस्र होम करनेसे समस्त पृथ्वीके अधिपति भी फौरन वशीभूत हो जाते हैं।

स्त्रीवशीकरण—कबूतरका कलेजा और जीभ तथा अपने शरीरका रक्त, गोरोचना और ओसकी मला (गमछा), इन सबोंको एकत्र कर अञ्जन करनेसे स्त्री वशीभूता होती है।

गोरोचना, चिताभस्म, मनुष्यनेत्र और अपना शुक्र इन्हें एक साथ पीस कर जिस स्त्रीको दिया जाय, वह स्त्री फौरन वशीभूत हो जायगी।

चिताभस्म, वचा, कुट, तगरकाष्ठ और केसर इनका समभाग ले कर चूर्ण करे। यह चूर्ण जिस स्त्रीके सिर पर और पुरुषके पैर पर फेंका जाता है, वह स्त्री और पुरुष वशीभूत होते हैं।

धतूरेका बीज, टाभा नीबूका बीज, जिह्वामल, दन्तमल, चक्षुमल, कर्णमल और नासामल एकत्र करके जिस स्त्रीको खिलाओगे वही वशीभूत हो जायगी। वचा ३०, इन्द्रजौ १६, गोदन्त और मदनफल तेलके साथ पीस कर ललाटमें तिलक करनेसे तिलोत्तमा भी वशीभूत हो जाती है।

सोहागा, जेठीमधु, गोरोचना, चिताभस्म और काकजिह्वा इनका समपरिमाण ले कर एकत्र मधुके साथ तिलक लगानेसे स्त्रियाँ वशीभूत होती हैं। पुष्यनक्षत्रमें काला धतूरेकी जड़, भरणी नक्षत्रमें फल, विशाखानक्षत्रमें पत्र, मूलानक्षत्रमें मूल उखाड़ कर एकत्र पीसे। इसके साथ केसर, कपूर और गोरोचना मिला कर तिलक करनेसे स्त्री वशीभूत होती है।

काकजङ्घा, वच, कुट, विमाश, केसर और अपना रक्त एक साथ मिला कर कपालमें तिलक करनेसे स्त्री वशमें हो जाती है। काकजंघा वच, कुट, शुक्र और शोणित इनको एकत्र करके जिस स्त्रीको खिलाया जायगा, वह स्त्री यावज्जीवन उसके वशीभूत हो जायगी।

चटक पक्षीका मस्तक, श्वेत आकन्दकी जड़, अखरोट और घी यह सब जिसको खिलाओगे, वही स्त्री वशीभूत हो जायगी। सांपकी केंचुल, मसानकी लकड़ी और रेहीका तेल सम भाग ले कर धूप देनेसे स्त्री वशीभूत होती है।

अभिजित्‌नक्षत्रमें पलाशवृक्षकी जड़ संग्रह करके हाथमें बांधनेसे नायिका वशीभूत होती है। कहीं-

दुम्बरकी जड़ मृगशिरा नक्षत्रमें हाथमें बांध कर जिसके अंगमें स्पर्श कराओगे, वह कामिनी वशीभूत हो जायगी।

धनिष्ठा नक्षत्रमें शिरीष पेड़का मूल तथा स्वाती नक्षत्रमें धातकीमूल ला कर हाथमें बांधनेसे नारियाँ वशीभूता होती हैं। रेवती नक्षत्रमें वटकी कली ला कर हाथमें बाँधनेसे सबको वशीभूत कर सकते हो तथा मूला नक्षत्रमें बेरकी जड़ उखाड़ जिस स्त्रीको खिलाओगे वह स्त्री वशीभूत हो जायगी।

सर्पकालमें कुन्दवृक्षका मूल पीस कर जिस स्त्रीको पीठ पर दिया जाता है, वह स्त्री निश्चय ही वशीभूत हो जाती है। अगहन मासकी पूर्णिमा तिथिमें अपामार्गकी जड़ उपाड़ कर जिस स्त्रीको खिलाया जायगा, वह स्त्री वशमें हो जायगी। श्वेतगुञ्जाकी जड़ एवं पञ्चमल, जिह्वा, दन्त, चक्षु, कर्ण और नासामल इनको एकत्र कर चण्डमन्त्र पढ़ कर जिस स्त्रीको खिलाया जाता है, वह स्त्री वशीभूत हो जाती है।

यह जितने स्त्रीवशीकरण लिखे गये, इन सबोंको करते जानेमें चण्डमन्त्र जप और मन्त्र पढ़ना होगा; नहीं तो सब निष्फल हो जाता है। सवेरे दाँत साफ कर जिस स्त्रीका नाम ले और 'ओं नमः क्षिप्र' कामिनीं अमुकीं वशमानय हुं फट् स्वाहा' इस मन्त्रसे सात बार अभिमन्त्रित कर सात गण्डूष (कुल्ला) जल पान करे, वह स्त्री वशीभूत हो जाती है।

नागकेशरका फूल, प्रियंगु, तगरकाष्ठ, पद्मकेशर, बच, जटामांसी, इन्हें एकत्र चूर्ण कर जो व्यक्ति 'ओं मूलि मूलि महामूलि रक्ष रक्ष सर्वासां क्षे त्रयेभ्यो परेभ्यः स्वाहा' यह मन्त्र पढ़ कर उक्त चूर्ण द्वारा अपने शरीरमें धूप देता है, उस व्यक्तिको कामदेवकी तरह जान कर स्त्रियाँ उसके वशमें हो जाती हैं।

स्वीय जिह्वामल, नासामल और कर्णमल एकत्र कर 'ओं नमः सवायै नमः सवाण्यै च अमुकीं मे वशमानय स्वाहा' यह मन्त्र पाठ करके सुराके सहित जिस स्त्रीको खिलाया जाय, वह स्त्री अवश्य ही वशीभूता हो जायगी।

अपामार्ग वृक्षके मध्यभागका चार अंगुलका काष्ठ 'ओं द्राविणि स्वाहा ओं हर्मिले स्वाहा' इस मन्त्रसे सात बार अभिमन्त्रण करके वेश्याके घर फेंक देनेसे वह वेश्या वशीभूत हो जाती है।

पेचककी आँख और मांस, रक्तचन्दन, गोरोचना, केसर तथा मछलीका तेल इन सबोंको एकत्र करके 'ह्रीं, ह्रीं प्लं प्लं फट् नमः' इस मन्त्रसे अपने शरीरमें लगानेसे स्त्रीको वशीभूत किया जाता है। एक गिरगिटका दाहिना पैर मुखमें रख कर जिस स्त्रीके साथ सम्भोग किया जाता है वह स्त्री वशीभूत हो जाती है एवं गिरगिटकी बाईं आंख मधु और तेलके साथ एकत्र करके आंखमें अञ्जन लगानेसे अगर किसी स्त्रीको देखा जाय वह स्त्री वशीभूत हो जायगी। स्त्रीको देखनेके समय 'ओं आनन्द ब्रह्म स्वाहा ओं ह्रीं क्लीं प्लां कालि कपालि स्वाहा' यह मन्त्र पढ़ना होता है। गिरगिटकी दाहिनी आंख, काँजि और मधु एकत्र करके दाहिनी आंखमें अञ्जन दे 'ओं' पूजिताय स्वाहा' यह मन्त्र पढ़ कर जिस स्त्रीको देखा जाता है, वह स्त्री वशीभूत होती है।

'ओं' नमः कामदेवाय सहकल सहदश सहाम सहालिमे वह्ने धूनजनं ममदर्शनं उत्कण्ठितं कुरु कुरु दक्षदण्डधर कुसुमबाणेन हन हन स्वाहा' यह मन्त्र जिस नारीके उद्देशसे एक सप्ताह तक जप किया जायगा, वह नारी समीप आ कर उसके वशमें हो जायगी।

रात्रिकालमें कामाक्रान्त चित्तसे जिसका नाम ले कर 'ओं' महवल्लीं वल्लीं करवल्लीं कामपिशाच अमुकीं कामं ग्राहय स्वपेन मम रूपेण नखैर्विदारय द्रावय स्वेदेन बन्धय श्रीफट' यह मन्त्र जप किया जायगा, वह नारी वशीभूत होगी।

इस वशीकरण कार्यमें भी पूर्वोक्त चण्डमन्त्र दश सहस्र जप करना होगा। बिना चण्डमन्त्रका जप किये कोई फल नहीं होता।

लवण, तिल, दुग्ध, मधु और घृत इन्हें एकत्र करके एक सप्ताह तक होम करते रहनेसे कुरूप व्यक्ति भी तिलोत्तमाको वशीभूत कर सकता है। सरसों, लवण, दुग्ध, मधु, घृत इनका एक सप्ताह तक होम करते रहनेसे स्त्रियां वशीभूत होती हैं।

चार अंगुलकी अंडीकी लकड़ीसे मन्त्र पाठपूर्वक कड़ुआ तेल और लवणके साथ १०८ होम करे। होम

शरीरके समान जिसका नाम लेगा, वह व्यक्ति वशीभूत होगा। महानिम्बके फूलमें घृत मिला कर प्रति दिन १०८ होम करे, इस प्रकार समूचा सप्ताह होम करने रहनेसे वशीभूता नारी वशीभूत होती है। 'ओं ह्रीं रक्तचामुण्डे एवं कुरु अमुकीं मे वशमानय स्वाहा' यह मन्त्र पाठ कर होम करे।

शोन गोमुण्ड ला कर उसका चूर्ण बनाये, उसमें मालकंगनी सीसकतीमें प्राप्त ई कर उसे भूने। भूननेके समय जो गोंद (लासा) उस खोपड़ीमें हो कर बाहर निकलेगी, उसका चूर्ण कर एक स्थानमें रख दे और खोपड़ी भी सम्यगन गोंद चूर्ण कर दूसरी जगह रखे। पहलेको निकाले हुए गोंदका चूर्ण जिस स्त्रीके मस्तक पर दिया जाता है, वह स्त्री वशीभूत हो जाती है। सम्यगन गोंदके चूर्णसे वशीकरण सिद्ध होता है। इस योगमें मन्त्र की आवश्यकता नहीं, यह बिना मन्त्र ही सिद्ध होता है।

मानव मस्तकका मध्यभाग, गर्दभका मस्तक मध्यगत मज्जा द्वारा पूर्ण कर उससे मृत्तिकाके रस द्वारा सात दिन भावना दे कर सुखाये। पीछे रूईका पलीता बना कर वह मज्जा पात्रमें दे दीया जलाये, नरनारीका इस दीयेसे नरकपालमें कज्जल बनाये। यह कज्जल आंखमें लगा कर जिस स्त्रीको ओर दृष्टि फेरी जायगी, वह स्त्री वशीभूत हो जायगी।

मनःशिला, हरताल, नील कुष्ठ, भाकंड़ फलका तेल तथा हाथीके गण्डका मद, इन सबोंको एकत्र मिला कर कपालमें तिलक करनेसे स्त्री वशीभूत होता है। मनःशिला, प्रियंगु, नागकेसरका फूल और गोरोचना इन्हें एकत्र कर आंखमें अञ्जन करनेसे मनोरमा कामिनीको भी वशीभूत किया जा सकता है।

प्रियंगु, पद्म, तेजपत्र, गोरोचना, रसाञ्जन और रक्तचन्दन इन सब द्रव्योंको मिला कर आंखमें अंजन लगा कर जिस स्त्रीको ओर देखा जायगा, वह स्त्री वशीभूता होती है। गोरोचना, आकन्दका मूल या पिठवनकी जड़ जिस स्त्री या पुरुषके मस्तक पर रखी जाती है, वह स्त्री या पुरुष वशमें हो जाता।

हस्तानक्षत्रमें या हस्तानक्षत्रमें तिमिर उखाड़ा हुई पीछे धतूरेको जड़, कुट और देवदार इनका समान भाग ले कर चूर्ण करे। यह चूर्ण जिस स्त्री या पुरुषके मस्तक पर फेंका जाता है, वह स्त्री या पुरुष वशीभूत होता है। फल सहित भालकी वृक्षकी जड़ घस कर आंखमें अञ्जन कर, किंवा कपालमें तिलक लगा कर जिस स्त्री और पुरुष पर दृष्टिपात होता है, वह स्त्री और पुरुष वशीभूत होता है।

गोपालकर्कटीकी जड़ पुष्या नक्षत्रमें नंगे हो कर उखाड़े। पीछे इस जड़के साथ मिर्च, पीपल और सोंठको गायके दूधमें पीस कर गोली बनाये। इस गोली को पीस कर रक्तचन्दनके साथ कपालमें तिलक लगा कर स्त्रियोंको देखनेसे स्त्रियां वशीभूत हो जाती हैं। स्वातीनक्षत्रमें वरवटीका मूल एवं अनुराधा नक्षत्रमें बेरका मूल उखाड़ कर हाथमें ले स्त्रियोंको अवलोकन करनेसे वे वशीभूत होती हैं। ऊर्ध्वपुष्पी, अधःपुष्पी, लज्जावती और अपराजिता इन सब पौधोंका फूल ला कर एक सप्ताह तक अपने मुखमें भावना दे। पीछे उसमें जिह्वा, दन्त, कर्ण और नासा, इन सबोंका मल एकत्र करके जिस नारीको खाद्य पदार्थ या पीनेके जलमें खाने होंगे, वह नारी वशीभूत हो जायगी।

शुक्लपक्षके पुष्यानक्षत्रमें सम्भोगके समय परस्परके योनिलिप्त दोनोंका वीर्य बायें हाथमें ग्रहण कर स्त्रीको बाईं हथेलीसे छुआनेसे वह स्त्री वशीभूत होती है। कृष्णपक्षके पुष्यानक्षत्रमें भी ऐसा करनेसे वशीकरण होता है। (सिद्धनागार्जुन०)

श्वेत आकन्द, लाङ्गलिया, वच, लज्जावती, सब इन सबोंका बराबर बराबर भाग ले चूर्ण कर कुत्तीके दूधके साथ मिलाये। उसके बाद यह धतूरा फलके बीचमें रखे, यह कामबाण स्वरूप होता है, जिस स्त्रीको यह औषध खिलायेंगे, वह स्त्री वशीभूत हो जायगी। इन सब वशीकरणोंमें षट्‌कमल दश सहस्र जप करनेसे सिद्ध होगा। पूर्वोक्त षट्‌कमलके अलावा वशीकरण सफल नहीं होता।

सात बार जलाञ्जलि दे कर 'ओं' पिशाचपशुमांस गंधर्व कामदानागविधायिनः सुकृत्या सारङ्गार्था देहि मे सर्वमने पिशाचमयं स्वाहा' यह मन्त्र एक मास तक जप करते रहनेसे सुन्दरी स्त्री वशीभूत होती है।

षट्कर्मदीपिकामें मारण, उच्चाटन और वशीकरणादिका विस्तार विवरण वर्णित है। इस मतसे वशीकरणका विषय संक्षेपमें आलोचना कर देना जाय।

इसके बाद वशीकरणका विषय लिखा जाता है। इसका ज्ञान हो जानेसे नर और नारी दोनोंको वशीभूत किया जा सकता है। लज्जालु लता, अपामार्गकी जटा, बहेड़ा, अपराजिता और चाण्डाली लता इन सबोंको एक साथ गायके दूधमें पीस कर कीचड़की तरह करे। पीछे इसे एक पट्टवस्त्रके टुकड़ेमें लेप कर उससे बत्ती बनावे। यह बत्ती पद्मनालके मध्यगत सूतेसे घेर दे। उसके बाद एकवर्णा गायके दूधसे घी तैयार कर उसी घीसे पहलेकी बनाई बत्ती आर्द्र कर दे। तदनंतर यह बत्ती जला कर उसकी शिखाका कज्जल बनावे। पीछे चतुर्दशी रातको भैरवकी पूजा करके यह कज्जलपात करे। इस कज्जल द्वारा स्त्री पुरुष जिसको इच्छा की जाय, वही वशीभूत हो जायगा। यह वशीकरण सर्वोत्तम है, स्वयं महादेवने इस वशीकरणका उपदेश दिया है। साधकको उचित है, कि वे इसे यत्नपूर्वक गोपन कर रखें। क्रूर, अवश्यविद, निन्दक और चपल, इनके निकट प्रकाश न करें।

यह मन्त्र जब तक सिद्ध न हो, तब तक साधक 'ओं ह्रीं मोहिनी स्वाहा' जप करे। मन्त्र सिद्ध होनेके बाद चन्दन, पुष्प, वस्त्र अथवा कोई उत्तम फल उक्त मन्त्रसे १०८ बार अभिमन्त्रित कर जिसके हाथ दिया जायगा, वह व्यक्ति वशीभूत होगा।

साधक 'ओं चिटि चिटि चाण्डालि महाचाण्डालि अमुक मे वशमानय स्वाहा' यह मन्त्र ताड़के पत्ते पर लिख कर पत्तेको दूध मिले हुए पानीमें फेंक दे और पाक करे। इस मन्त्रमें जिसका नाम लिखा जायगा, वह व्यक्ति अवश्य ही वशीभूत होगा। किसी किसीका कहना है, कि उक्त मन्त्र बेरके कांटेसे लिखना होगा एवं इस पत्तेको दूधमें पाक कर तीन दिन तक कीचड़में रख दे। पीछे उसे कीचड़से निकाल कर दुर्गोत्सव मण्डपद्वार पर गाड़ कर रख दे। ऐसा करनेसे भी वशीकरण होता है।

पूर्वोक्त ओं चिटि चिटि इत्यादि मन्त्र बेलके कांटेसे ताड़के पत्ते पर लिख कर यथाविधान भद्रकालीकी पूजा करके उसी घरमें उसे ढक कर रख दे। इससे भी वशीकरण होता है। 'रं सर्वलोकं वशमानय स्वाहा' इस मन्त्रसे जप और पूजा करनेसे अभिलषित व्यक्ति वशीभूत किया जा सकता है।

'ओं राजमुखि राजाभिमुखि वश्यमुखि ह्रीं श्रीं क्लीं देवि देवि महादेवि देवाधिदेवि सर्वजनस्य मुखं वश्यं कुरु स्वाहा।'

'ह्रीं नमो महाश्रीराजिते राजपूजिते जये विजये गौरि गान्धारि त्रिभुवनवशङ्करि सर्वलोकवशङ्करि सर्वस्त्रीपुरुषवशङ्करि सदुर्घोर सदुर्घोर ह्रीं स्वाहा' यह दो मन्त्र दश हजार जप करके पीछे घृतसंयुक्त पायस द्वारा जपका दशांश होम करना होगा। होम खतम होनेके बाद अङ्गदेवता, अष्टमातृका, और दश दिक्पालकी पूजा करके फिर स्वादुयुक्त तिलतण्डुल, मधुर फल तथा घृतयुक्त रक्तपद्म द्वारा होम करे। इस तरह तीन दिन तक होम करके सूर्यमण्डलाधिष्ठात्री देवताकी आराधना कर सूर्याभिमुख १०८ जप करे। इससे थोड़े दिनमें ही वशीकरण सिद्ध होता है। मन्त्रमें अभिलषित व्यक्तिका नाम लेना होता है। इस मन्त्रके अजऋषि, त्रिवृट् छन्द और गौरी देवता हैं इस प्रकार कराङ्गन्यास करना होता है। 'ह्रीं नमो महाश्रीराजिते राजपूजिते अङ्गुष्ठाभ्यां नमः, जये विजये गौरि गान्धारि तर्जनीभ्यां स्वाहा, त्रिभुवन वशङ्करि मध्यमाभ्यां वषट्, सर्वलोकवशङ्करि अनामिकाभ्यां हुं, सर्वस्त्रीपुरुषवशङ्करि कनिष्ठाभ्यां वौषट्, सदुर्घोर, सदुर्घोर ह्रीं स्वाहा करतलपृष्ठाभ्यां फट्।' इस प्रकार हृदय आदिमें न्यास करना पड़ता है। इस देवताकी पूजा करनेके समय निम्नोक्त मन्त्रसे ध्यान करनेकी विधि है—

"अमलशशिविराजन्मौलिराबद्धपाशा-
ङ्कशरुचिरकराब्जा बन्धुजीवारुणाङ्गी।
अमरनिकरवन्द्या त्रीक्षणा शोणवर्णा
शुभकुसुमयुता स्यात् सम्पदे पार्वतीव॥"

इस प्रणालीके अनुसार वशीकरण करनेसे सबोंको वशीभूत किया जा सकता है।

'मद मद मादय मादय ह्रीं वशय अमुकं स्वाहा' इस मन्त्रका नाम मदनमन्त्र है।

"चन्द्रार्कवह्निमूर्त्तिः कुसुमशरधनुर्बाणी
कुर्य्याद्धृदयमध्ये निखिलजनमिदं ।"

मदनदेवका शरीर कुसुम-रंजित है। ये आकर्ण पर्यन्त धनुर्बाण-धारण एवं युवतियोंके हृदयमें निरन्तर मायाके बाण आरोपित किये हुए हैं। ऐसा मदनदेवका ध्यान कर मदनमन्त्र दस हजार जप और मदनदेवको सहस्र रक्तपुष्प चढ़ाना होता है। इससे मन्त्र सिद्ध होता है। इस मन्त्रबलसे समस्त जगत्को वशीभूत किया जा सकता है।

'ओं चामुण्डे जय चामुण्डे मोहय वशमानय अमुकं स्वाहा' यह मन्त्र लाख बार जप कर शिरीष-पुष्पके समिध् द्वारा दस सहस्र होम करे। निम्नोक्त ध्यानसे देवताकी पूजा होती है।

ध्यान यथा—

"दंष्ट्राकोटिविकटास्या सुवदना सान्द्रान्धकारे स्थिता
खट्वाङ्गासिनिकृन्तदक्षिणकरा वामेन पाशं शिरः।
श्यामा पिङ्गलमूर्द्धजा भयकरी शार्दूलचर्मावृता
चामुण्डा शवमर्दिनी जयविधौ ध्येया सदा साधकैः॥"

नियमपूर्वक इस ध्यानसे पूजा करनेसे मन्त्र सिद्ध होता है। इस मन्त्रका ऐसा प्रभाव है, कि इससे वशीभूत होता है।

'ओं नमः कामाय सर्वजनप्रियाय सर्वजनसम्मोहनाय ज्वल ज्वल प्रज्वलय प्रज्वलय सर्व-जनस्य हृदयं मम वशं कुरु कुरु स्वाहा' यह मन्त्र जपनेसे नर और नारीको वशीकरण किया जा सकता है।

'ओं नमः भगवति मुखिमाण्डालिनी नमः स्वाहा' इस मन्त्रसे मधूच्छिष्ट (मोम) द्वारा अभिलषित व्यक्तिकी एक प्रतिकृति बनानी होगी। प्रतिमूर्ति बना कर उसकी प्राण-प्रतिष्ठा करनी होती है। पीछे इस प्रतिकृतिके ऊपर पूर्वोक्त 'ओं नमः भगवति' इत्यादि मन्त्र जप करके अङ्गाराग्नि द्वारा इस मूर्तिको तपाना होगा। ऐसा करनेसे अभिलषित व्यक्ति वशीभूत हो जाता है। (षट्कर्मदीपिका)

वृहद्गौतमीय, डड्डीश आदि तन्त्रमें वशीकरणादिका विस्तृत विवरण लिखा है। विस्तार हो जानेके भयसे यहां यह और नहीं लिखा गया।

वशीकरणकार्य वसन्त ऋतुमें या पूर्वाह्नकालमें करना होता है। इसके करनेमें आसनों और मुद्राकी विधि प्रशस्त मानी गई है।

पृथ्वी आदि तत्त्वके दोनों कालमें वशीकरणादि कार्य करने होते हैं। ज्येष्ठा, उत्तराषाढ़ा, अनुराधा, रोहिणी, यह सब नक्षत्र पृथ्वीतत्त्व हैं। इसका निरूपण कर वशीकरण करना होता है।

यह जो वशीकरणकी सभी प्रक्रियाएं वर्णित हुईं, इसके करनेके पहले साधकको मन्त्र-सिद्ध होना होगा। जब तक मन्त्र सिद्ध नहीं होगा, तब तक सफलीभूत हो ही नहीं सकते। सुतरां साधक पहले मन्त्रकी आराधना कर सिद्धिलाभ करें। पीछे मारण, उच्चाटन, वशीकरण आदि जो आभिचारिक क्रिया करेंगे, उसमें वे तत्काल ही सफलकाम होंगे।

वशीकार (सं० पु०) वशीकरण। वशीकरण देखो।

वशीकृत (सं० त्रि०) १ किसी प्रकार वशमें किया हुआ। २ मोहित, मुग्ध। ३ मन्त्रमुग्ध, मन्त्र द्वारा वशमें किया हुआ।

वशीक्रिया (सं० स्त्री०) वशीकरण, वशमें लानेका काम।

वशीभू (सं० त्रि०) वशीभूत किया हुआ।

वशीभूत (सं० त्रि०) अवशो वशीभूत इत्यर्थे च्विः। १ वशमें आया हुआ, अधीन, ताबे। २ दूसरेकी इच्छाके अधीन।

वशीर (सं० पु०) वश-ईरन्। १ गजपिप्पली। २ मर्वाक, मई। ३ अपामार्ग। (क्ली०) ४ सामुद्र लवण, समुद्री नमक।

वश्चिक (सं० पु०) अम्लारोद।

वश्य (सं० क्ली०) वशाय वशीकरणाय साधु इति वश यत् (तत्र साधुः। पा ४।४।९८) १ लवङ्ग, लौंग। (सम्प्र०) वश-मधीनत्वं गत इति वश-यत् (गतो गतः। पा ४।४।८६) (त्रि०) २ आयत्ततापन्न, वशमें आनेवाला, ताबे होनेवाला। ३ किसीकी इच्छाके अधीन, दूसरेकी आज्ञा या कहनेमें रहनेवाला। (पु०) ४ दास, सेवक। ५ मानदण्ड। ६ अग्निध्रका पांचवां पुत्र। (मार्कण्डेयपु० ५३।१४)

वश्यक (सं० त्रि०) वश्य स्वार्थे कन्। १ वशीभूत, वशगा।

वश्यकर (सं० त्रि०) वश करनेके योग्य।

वश्यकर्मन् (सं० क्ली०) वशीकार्य, वशमें लानेका काम।

वश्यता (सं० स्त्री०) वशमें होनेकी अवस्था या भाव, अधीनता।

वश्यत्व (सं० क्ली०) वश्यता देखो।

वश्या (सं० स्त्री०) वश्य-टाप्। १ वशीभूता नारी। पर्याय—वशगा, वशात्या और वश्यका। २ नीलापराजिता। ३ गोरोचना। ४ लगाम।

वश्यात्मन् (सं० पु०) वश्यः आत्मा कर्मधा०। १ वशीभूत आत्मा। (पु० स्त्री०) २ वशीकृत चित्तेन्द्रिय, वह जिसकी चित्तेन्द्रिय वशानुग हो। (चरक० सू० ८ अ०)

वषट् (सं० अव्य०) १ एक शब्द। इसका उच्चारण अग्निमें आहुति देते समय यज्ञोंमें होता है। अङ्गन्यास और करन्यासमें शिखा और मध्यमाके साथ इसका व्यवहार होता है। यह प्रयुक्त मन्त्र जो तान्त्रिक पूजादिमें द्रव्यविशेष देनेके समय पढ़ा जाता है।

अमरटीकाकार भरत कहते हैं—केवल वषट् ही क्यों स्वाहा, श्रौषट्, वौषट्, वषट् और स्वधा इन पाँच शब्दोंसे ही देवोंद्देशसे आहुति देनी होती है। इस देव-शब्दसे इन्द्रादि देवगण समझना होगा। (ऋक् १०।११५।९)

वषट्कार (सं० पु०) वषट् इत्यस्य कारः करणं यत्र। १ देवताओंके उद्देश्यसे किया हुआ यज्ञ, होम, होत्र। २ वेदोक्त तेंतीस देवताओंमेंसे एक। यथा—अष्टवसु, एकादश रुद्र, द्वादश आदित्य, प्रजापति और वषट्कार।

वषट्कारनिधन (सं० क्ली०) सामभेद।

वषट्कारिन् (सं० त्रि०) वषट् मन्त्रयोगसे होम करनेवाला।

वषट्कृत (सं० त्रि०) वषडिति मन्त्रेण कृतं। देवताओंके निमित्त अग्निमें डाला हुआ होम, होम किया हुआ, हुत।

वषट्कृत्य (सं० क्ली०) होम।

वषट्क्रिया (सं० स्त्री०) होमकार्य।

वषट्फल (सं० क्ली०) कक्कोल, कंकोल।

वष्कय (सं० पु०) वष्कते इति वष्क-गतौ बाहुलकात् अयन्। एकहायन वत्स, बकेना बछड़ा।

वष्कयणी (सं० स्त्री०) वष्कय एकहायनो वत्सः तेन नीयते इति. नी-क्विप्, गौरादित्वात् ङीष्, णत्वम् (पूर्वपदात् संज्ञायामगः। पा.८।४।३) वष्कयिणीति पाठे वष्कयोऽस्त्यस्या इति। 'अत इनि ठनौ' इति इनिः, अट् कुप्वाङिति णत्वम्। चिरप्रसूता गामो, बकेनी गाय।

वष्कयिणी (सं० स्त्री०) वष्कयणी देखो।

वष्टि (सं० त्रि०) कामयमान, प्रार्थनाकारी। "परिचिद्वष्टयो दधुः" (ऋक् ५।७९।५) 'वष्टयः अस्मानेव कामयमाना।' (सायण)

वसंता (हि० पु०) हरे रंगकी एक सुन्दर चिड़िया। इसका कंठ और सिर लाल होता है।

वसंती (हि० पु०) १ एक रंग जो हलका पीला होता है, सरसोंके फूलके रंगका, वसंती। (वि०) २ वसंती रंगका। वसन्तोत्सवमें इस रंगके कपड़े पहने जाते हैं।

वसअत (अ० स्त्री०) १ विस्तार, फैलाव। २ समाई, अँटनेकी जगह। ३ चौड़ाई। ४ सामर्थ्य, शक्ति।

वसई द्वीप—बम्बई प्रेसिडेन्सीके अन्तर्गत, बम्बई शहरसे ३२ मीलकी दूरी पर अवस्थित एक द्वीप। अक्षा० १९°२४ से १९°२८ उ० तथा देशा० ७२°४८ से ६४°५४ पू० पर्यन्त विस्तृत है। इसकी लम्बाई ११ मील, चौड़ाई ५ मील, भूपरिमाण ३५ वर्गमील है। इस छोटे द्वीपके उत्तरमें वन्तपरा खाड़ी, दक्षिणमें वसई प्रणाली, पश्चिममें अरब समुद्र एवं पूर्वमें समुद्रकी पतली खाड़ी भारतवर्षसे इस द्वीपको पृथक् करती है।

यह छोटा द्वीप अतिप्राचीन कालसे ही क्या पाश्चात्य, क्या प्राच्य, दोनों ही जगत्वासियोंके निकट परिचित है। किसी किसीका मत है, कि यह द्वीप संस्कृत 'वसति' मुसलमानी अमलमें 'वसई' पुर्त्तगीजोंके निकट 'वसईम' (Bacaim) एवं अङ्गरेजोंके निकट 'बेसिन' *Bassein* नामसे प्रसिद्ध है। हिन्दू पौराणिकोंके मतसे यह पुण्य भूमि परशुरामक्षेत्रान्तर्गत सप्तकोङ्कणके मध्य वरलाटके शामिल है। सह्याद्रिखंडमें केरल, तुलुव, गोराष्ट्र, कोङ्कण, करहाट, वरलाट और वर्व्वर, इन्हीं सप्त द्वीपोंको परशुरामक्षेत्र अथवा सप्तकोङ्कन कहते हैं।

उनमें वसईद्वीप वरलाटके अन्तर्गत है। इसकी आयत छोटी होने पर भी तुंगारि, निर्मल, इस द्वीपके कल्याण श्रीस्थान और शूर्पारक नामक सुप्राचीन तीर्थस्थान रहनेके कारण भव्य ऐतिहासिक तथा प्रत्नतत्त्व विदोंके जाननेके लिये यहां अनेक निदर्शन वर्त्तमान है।

तुंगारि प्रभृति पंचक्षेत्र, दाक्षिणात्यके हिन्दुओंके निकट अतिपुण्य तीर्थ तथा मोक्षधाम गिने जाते हैं। किस

"कन्दर्पादिमूर्त्तिः कुटिलमाहवाणो
दुर्गेन्द्रहृदयमध्ये निष्कलोऽसितवः ॥"

मदनदेवका शरीर सुवर्णरचित है। ये भावरूपं वर्द्धन मनुष्योंस-माइये एवं युवतियोंके हृदयमें निरन्तर भावसे यथा आरोपित किये हुए हैं। ऐसा मदनदेवको ध्यान कर मदनमन्त्र दश हजार जप और मदनदेवको महुए फूल चढ़ाना होता है। इससे मन्त्र सिद्ध होता है। इस मन्त्रप्रभावसे सामान्य जगत्को वशीभूत किया जा सकता है।

'ॐ चामुण्डे जय चामुण्डे मोहय वशमानय अमुकं स्वाहा' यह मन्त्र लाख बार जप कर शिरीष-वृक्षके समिध् द्वारा दश सहस्र होम करे। निम्नोक्त ध्यानसे देवताकी पूजा होती है।

ध्यान यथा—

"दंष्ट्राकोटिविकटा सुवदना सान्द्रान्धकारे स्थिता
खट्वाङ्गासिनिशूलकलितकरा वामेन पाशं शिरः।
श्यामा पिङ्गलमूर्धजा भयकरी शार्दूलचर्मावृता
चामुण्डा शववाहिनी जपविधौ ध्येया सदा साधकैः॥"

विधिपूर्वक इस ध्यानसे पूजा करनेसे मन्त्र सिद्ध होता है। इस मन्त्रका ऐसा प्रभाव है, कि इससे वशीभूत होता है।

'ॐ नमः कामाय सर्वजनप्रियाय सर्वजनसम्मोहनाय ज्वल ज्वल प्रज्वल प्रज्वल सर्वजनस्य हृदयं मम वशं कुरु कुरु स्वाहा' यह मन्त्र जपनेसे नर और नारीको वशीकरण किया जा सकता है।

'ॐ नमः भगवति पुंसि गारुडानिली नमः स्वाहा' इस मन्त्रसे मधूच्छिष्ट (मोम) द्वारा अभिलषित व्यक्तिकी एक प्रतिमूर्ति बनानी होगी। प्रतिमूर्ति बना कर उसकी प्राण-प्रतिष्ठा करनी होती है। पीछे इस प्रतिमूर्तिके ऊपर पूर्वोक्त 'ॐ नमः भगवति' इत्यादि मन्त्र जप करके खदिराग्नि द्वारा इस मूर्त्तिको तपाना होगा। ऐसा करनेसे अभिलषित व्यक्ति वशीभूत हो जाता है। (षट्कर्मदीपिका)

इन्द्रजाल, उड्डीश आदि तन्त्रमें वशीकरणादिका विस्तृत विवरण लिखा है। विस्तार हो जानेके भयसे यहां वह और नहीं लिखा गया।

वशीकरणकार्य करना चाहे तो पूर्वाह्णकालमें करना होता है। इसके करनेमें वसन्तऋतु और ... तिथि प्रशस्त मानी गई है।

पृथ्वी आदि तत्त्वके होनेसे कालमें वशीकरणादि कार्य करने होते हैं। ज्येष्ठा, उत्तराषाढ़ा, अनुराधा, रोहिणी, यह सब नक्षत्र पृथ्वीतत्त्व हैं। इनका निरूपण कर वशीकरण करना होता है।

यह जो वशीकरणकी सभी प्रक्रियाएं वर्णित हुईं, इनके करनेके पहले साधकको मन्त्र-सिद्ध होना होगा। जब तक मन्त्र सिद्ध नहीं होगा, तब तक सब वशीभूत हो ही नहीं सकते। सुतरां साधक पहले मन्त्रकी आराधना कर सिद्धिलाभ करें। पीछे मारण, उच्चाटन, वशीकरण आदि जो आभिचारिक क्रिया करेंगे, उसमें वे तत्काल ही सफलकाम होंगे।

वशीकार (सं० पु०) वशीकरण। वशीकरण देखो।

वशीकृत (सं० त्रि०) १ किसी प्रकार वशमें किया हुआ। २ मोहित, मुग्ध। ३ मन्त्रमुग्ध, मन्त्र द्वारा वशमें किया हुआ।

वशीक्रिया (सं० स्त्री०) वशीकरण, वशमें लानेका काम।

वशीभू (सं० त्रि०) वशीभूत किया हुआ।

वशीभूत (सं० त्रि०) अवशो वशीभूत इत्यर्थे च्वि। १ वशमें आया हुआ, अधीन, ताबे। २ दूसरेकी इच्छाके अधीन।

वशीर (सं० पु०) वश-ईरन्। १ गजपिप्पली। २ चविक, चई। ३ अपामार्ग। (क्ली०) ४ सामुद्र लवण, समुद्री नमक।

वशिक (सं० पु०) अमड़ाभेद।

वश्य (सं० क्ली०) वशाय वशीकरणाय साधु इति वश-यत् (तत्र साधुः। पा ४।४।९८) १ लवङ्ग, लौंग। (अमरटी०) वशं-अधीनत्वं गत इति वश-यत् (वशं गतः। पा ४।४।८६) (त्रि०) २ आयत्त, अधीन, वशमें आनेवाला, ताबे होनेवाला। ३ किसीकी इच्छाके अधीन, दूसरेकी आज्ञा या कहनेमें रहनेवाला। (पु०) ४ दास, सेवक। ५ [illegible]। ६ अग्निध्रका पाँचवाँ पुत्र। (मार्कण्डेयपु० ५३।१४)

वश्यक (सं० त्रि०) वश्य स्वार्थे कन्। १ वशीभूत, वशगा।

वश्यकर (सं० त्रि०) वश करनेके योग्य।

वश्यकर्म (सं० क्ली०) वशीकार्य, वशमें लानेका काम।

वश्यता (सं० स्त्री०) वशमें होनेको अवस्था या भाव, अधोनता।

वश्यत्व (सं० क्लो०) वश्यता देखो।

वश्या (सं० स्त्री०) वश्य-टाप्। १ वशीभूता नारी। पर्याय—वशगा, वशाख्या और वश्यका। २ नीलापराजिता। ३ गोरोचना। ४ लगाम।

वश्यात्मन् (सं० पु०) वश्यः आत्मा कर्मधा०। १ वशीभूत आत्मा। (पु० स्त्री०) २ वशीकृत चित्त न्द्रिय, वह जिसको चित्तेन्द्रिय वशानुग हुई है। (चरक० सूत्र० ८ अ०)

वषट् (सं० अव्य०) १ एक शब्द। इसका उच्चारण अग्निमें आहुति देते समय यज्ञोंमें होता है। अङ्गन्यास और करन्यासमें शिखा और मध्यमाके साथ इसका व्यवहार होता है। यह प्रयुक्त मन्त्र जो तान्त्रिक पूजादिमें द्रव्यविशेष देनेके समय पढ़ा जाता है।

अमरटीकाकार भरत कहते हैं—केवल वषट् ही क्यों स्वाहा, श्रौषट्, वौषट्, वषट् और स्वधा इन पांच शब्दोंसे ही देवोद्देशसे आहुति देनी होती है। इस देव-शब्दसे इन्द्रादि देवगण समझना होगा। (ऋक् १०।१९।५।६)

वषट्कार (सं० पु०) वषट् इत्यस्य कारः करणं यत्र। १ देवताओंके उद्देश्यसे किया हुआ यज्ञ, होम, होत। २ वेदोक्त तेंतीस देवताओंमेंसे एक। यथा—अष्टवसु, एकादश रुद्र, द्वादश आदित्य, प्रजापति और वषट्कार।

वषट्कारनिधन (सं० क्लो०) सामभेद।

वषट्कारिन् (सं० त्रि०) वषट् मन्त्रयोगसे होम करनेवाला।

वषट्कृत (सं० त्रि०) वषड़िति मन्त्रेण कृतं। देवताओंके निमित्त अग्निमें डाला हुआ होम, होम किया हुआ, हुत।

वषट्कृत्य (सं० क्लो०) होम।

वषट्क्रिया (सं० स्त्री०) होमकार्य।

वषट्फल (सं० क्लो०) कक्कोल, कंकोल।

वष्कय (सं० पु०) वष्कते इति वष्क-गतौ बाहुलकात् अयन्। एकहायन वत्स, बछेना बछड़ा।

वष्कयणी (सं० स्त्री०) वष्कय एकहायनो वत्सः तेन नीयते इति. नी-क्विप्, गौरादित्वात् ङीष्, णत्वम्. (पूर्वपदात् संज्ञायामगः। पा ८।४।३) वष्कयिणीति पाठे वष्कयोऽस्त्यस्या इति। 'अत इनि ठनौ' इति इनिः, अट् कुप्वाङिति णत्वम्। चिरप्रसूता गामो, बकेनी गाय।

वष्कयिणी (सं० स्त्री०) वष्कयणी देखो।

वष्टि (सं० त्रि०) कामयमान, प्रार्थनाकारी। "परिचिद्वष्टयो दधुः" (ऋक् ५।७६।५) 'वष्टयः अस्मानेव कामयमानाः।' (सायण)

वसंता (हि० पु०) हरे रंगको एक सुन्दर चिड़िया। इसका कंठ और सिर लाल होता है।

वसंती (हि० पु०) १ एक रंग जो हलका पीला होता है, सरसोंके फूलके रंगका, वसंती। (वि०) २ वसंती रंगका। वसन्तोत्सवमें इस रंगके कपड़े पहने जाते हैं।

वसअत (अ० स्त्री०) १ विस्तार, फैलाव। २ समाई, अंटनेकी जगह। ३ चौड़ाई। ४ सामर्थ्य, शक्ति।

वसई द्वीप—बम्बई प्रेसिडेन्सीके अन्तर्गत, बम्बई शहरसे ३२ मीलकी दूरी पर अवस्थित एक द्वीप। अक्षा० १९°२४ से १९°२८ उ० तथा देशा० ७२°४८ से ६४°५४ पू० पर्यन्त विस्तृत है। इसकी लम्बाई ११ मील, चौड़ाई ५ मील, भूपरिमाण ३५ वर्गमील है। इस छोटे द्वीपके उत्तरमें दन्तवरा खाड़ी, दक्षिणमें वसई प्रणाली, पश्चिममें अरब समुद्र एवं पूर्वमें समुद्रकी पतली खाड़ी भारतवर्षसे इस द्वीपको पृथक् करती है।

यह छोटा द्वीप अतिप्राचीन कालसे ही क्या पाश्चात्य, क्या प्राच्य, दोनों ही जगत्वासियोंके निकट परिचित है। किसी किसीका मत है, कि यह द्वीप संस्कृत 'वसति' मुसलमानी अमलमें 'वसई' पुर्त्तगीजोंके निकट 'वसईम' (Bacaim) एवं अङ्गरेजोंके निकट 'बेसिन' *Bassein* नामसे प्रसिद्ध है। हिन्दू पौराणिकोंके मतसे यह पुण्य भूमि परशुरामक्षेत्रान्तर्गत सप्तकोङ्कणके मध्य वरलाटके शामिल है। सह्याद्रिखंडमें केरल, तुलुव, गोराष्ट्र, कोङ्कण, करहाट, वरलाट और बर्व्वर, इन्हीं सात द्वीपोंको परशुरामक्षेत्र अथवा सप्तकोङ्कन कहते हैं।

उनमें वसईद्वीप वरलाटके अन्तर्गत है। इसको आयत छोटी होने पर भी तुंगारि, निर्मल, इस द्वीपके कल्याण श्रीस्थान और शूर्पारक नामक सुप्राचीन तीर्थस्थान रहनेके कारण मध्य ऐतिहासिक तथा प्रत्नतत्त्व विदोंके जाननेके लिये यहां अनेक निदर्शन वर्त्तमान है।

तुंगारि प्रभृति पंचक्षेत्र, दाक्षिणात्यके हिन्दुओंके निकट अतिपुण्य तीर्थ तथा मोक्षधाम गिने जाते हैं। किस

प्रकार इन सब लोगोंकी उत्पत्ति हुई, इसका संक्षिप्त परिचय पद्मपुराण तथा स्कन्दपुराणमें दिया गया है।

पद्मपुराणीय शुंगाद्रि-माहात्म्यमें लिखा है—असुर लोग परशुरामके ब्राह्मणोंके ऊपर बहुत अत्याचार करते थे। ब्राह्मण लोग परशुरामकी शरणमें गये। ब्राह्मणोंकी रक्षाके लिये परशुराम वहां पर आये। असुरगण उनके आक्रमणसे विह्वल हो उठे। उन लोगोंने समुद्रमें छिप कर अपनी आत्मरक्षा की। असुरपति विमल शुंग नामक एक पर्वत समुद्रसे उत्पन्न कर उसी पर निवास करने लगा। वहां वह महादेवकी तपस्यामें निरत हुआ। शिवने सन्तुष्ट हो कर उसे वर दिया। शिवके प्रसादसे यह स्थान तीर्थस्थान हो गया। विमलने यहां शिवलिंग स्थापित किया, उसीका नाम शुंगेश्वर पड़ा।

शुंगाद्रि वर्तमान 'शुंगार' पर्वत एवं वायुसेवनके लिये एक अच्छा तथा प्रसिद्ध स्थान है। इसके पास हो कर रेलवे लाइन गई है।

पद्मपुराणीय निर्मल माहात्म्यमें लिखा है—असुरपति विमलने शुंग पर्वतमें ऋषियोंके मुखसे परशुरामका गुणानुकीर्तन श्रवण किया। अपने शत्रुकी प्रशंसा सुन कर उसे बहुत क्रोध हुआ। उसने ऋषियोंके हवनकुण्ड पर एक बड़ा-सा पत्थर ला कर रख दिया। ऋषियोंने महादेवके निकट विमल पर अभियोग लगाया। शिवजीने अपनी प्रतिमूर्ति मून कर विमलको दमन करनेके लिये परशुरामको भेजा। परशुरामके साथ विमलका भीषण युद्ध हुआ। विमल शिवके वरदानसे अजेय था। विमलका मस्तक परशुराम द्वारा बार बार काटे जाने पर भी उसके धड़से जुट जाता था। अन्तमें शिवके परामर्शसे परशुरामने परशु द्वारा विमलको पराजय किया। विमल होमाग्निमें पतित हो कर परशुरामकी स्तुति करने लगा। विमलके मुखसे अपनी स्तुति सुन कर परशुरामको दया आई। उन्होंने उसके पतित होनेके स्थान पर उसके स्मरणार्थ 'विमलेश्वर' नामक एक शिवलिंगकी स्थापना की। परशुरामने उसके विमल नामके बदले उसका नाम निर्मल रखा। उसी दिनसे यह क्षेत्र निर्मल नामसे प्रसिद्ध हुआ।

निर्मल माहात्म्यके अष्टम अध्यायमें लिखा है—निर्मल तीर्थमें वैशाखी पूर्णिमा और कार्त्तिक कृष्णपक्षकी एकादशीको स्नान करनेसे, उनका सारा पाप दूर हो जाता है।

पुर्तगीजोंके द्वारा विमलेश्वरके प्राचीन मन्दिर तथा लिंग विध्वस्त हो गये हैं, अब उनका निदर्शन भी नहीं देख पड़ता। इसके पूर्व वर्तमान विमलेश्वर कलारसपालियाका एक प्रधान तीर्थस्थानके नामसे प्रसिद्ध था। ११८३ शक (१२६१ ई०)-में उत्कीर्ण यादववंशीय सोमेश्वरदेवके ताम्रशासन पाठ करनेसे जाना जाता है, कि उस समय भी विमलतीर्थ अति प्रसिद्ध था और यहां लिंगकी पूजा होती थी। यादवराजने विमलेश्वर लिंगके उद्देशसे आमलेश्वर नामक एक ग्राम दान किया था। निर्मल माहात्म्यमें यहांके बहुतसे छोटे छोटे तीर्थ और कुण्डोंका उल्लेख है। पुर्तगीजोंके अधिकारकालमें इन सब तीर्थोंका लोप हो गया था। उसके बाद मराठोंने इस स्थान पर अधिकार करके विमलेश्वर मन्दिरका पुनः संस्कार किया एवं लिंगके स्थानमें वामनदेवकी चरणपादुका स्थापित की। उस समय कितने ही तीर्थोंका पुनरुद्धार हुआ। यहांके अधिवासियोंके दिये हुए धनके द्वारा गुरु शंकराचार्य स्वामीके मठस्थापनके देवसेवाका खर्च चलता था। शंकरस्वामी यहां महीने महीने आया करते थे। इस मन्दिरके पास ही यहांके प्रथम शंकराचार्यकी समाधि है। यहां ब्राह्मणोंके लिये भोजनालय है। कार्त्तिक मासके कृष्णपक्षकी एकादशीको यहां एक यात्रा या मेला लगता है। दूर दूर देशोंके यात्री लोग इस मेलेमें सम्मिलित होते हैं।

इतिहास।

यहांका प्राचीन इतिहास अस्पष्ट है। अरिकमन्सके भारतके पश्चिम उपकूल ग्रीक् ऐतिहासिकगण शास्त्रका जो संक्षिप्त परिचय दे गये हैं, उसके पढ़नेसे मालूम होता है, कि उस समय यह द्वीप सुराष्ट्र या लारके अन्तर्भुक्त था। पेरिप्लसमें लिखा है—गोदागमके बहुत पहलेसे ही कल्याणमें वाणिज्य करनेके लिये आते थे। इतना ही नहीं, किन्तु किसी ऐतिहासिकोंने लिखा है, कि यवनोंने ज्ञातारोहो द्वीपमें भी अधिवेशन करनेकी चेष्टा की थी। उनका उद्देश्य था पूर्तिस्थान पर अधिकार करना एवं उन्होंने सोचा था, कि ज्ञातारोहो

स पर अधिकार करनेमें पूरी सुविधा होगी। रोमकों ने इजिप्ट पर अधिकार कर लेनेके बाद भारतीय वाणिज्य पर अपना एकमात्र अधिकार जमा लिया था। इस समय अरब समुद्रमें प्रवेश करनेका अधिकार विदेशियोंका बिल्कुल ही नहीं रहा। ग्रीक ऐतिहासिकने लिखा है, कि उस समय 'सारगनस' (Saraganos) सारंग नामक एक राजा कल्याण, वसई तथा बम्बई प्रभृति स्थानोंके अधिपति थे। ग्रीकोंके साथ उनकी मित्रता थी, किन्तु 'सन्दनेस्' (Sandanes) या चन्दनेशने उनके राज्य पर अधिकार जमा कर विदेशियोंके प्रति वाणिज्य निषेधाज्ञाकी घोषणा की, यहां तक कि कितने ही विदेशियोंको कैद कर कड़े पहरेके साथ भरोच भेज दिया। इस प्रकार ग्रीकोंके निर्वासित होने पर भी रोमकोंने भारतसे वाणिज्य-संसर्ग त्याग नहीं किया। जष्टिनियसके राजत्वकालमें भी कल्याणका वाणिज्यप्रभाव संसार भरमें प्रसिद्ध था। मिस्रका प्रसिद्ध वणिक् 'कसमस' (Kosmos Indikopleustes) प्रायः ५४७ ई०में कल्याण आये। वे वहांके बहुसंख्यक खृष्टानोंको देख कर बहुत विस्मित हुए। ये सब खृष्टान लोग पारसके नेष्टोरियन बिशपके धर्मशासनाधीन थे। इसके बाद खृष्टीय ७वीं शताब्दीमें चीन परिव्राजक यूएनचुयंग आ कर यहांकी वाणिज्य-समृद्धि ओजस्विनी भाषामें वर्णन कर गये हैं।

इस द्वीपके अन्तर्गत श्रीस्थान या ठाना बहुत पहलेसे ही राजधानीमें गिना जाता था। खृष्टीय ६वीं शताब्दीके शेषभागमें यहां शिलाहार-राजवंशका अभ्युदय हुआ। उनके समयमें श्रीस्थान लक्ष्मी-सरस्वतीका प्रियस्थान था। यहां ही अशेष-शास्त्रविद् जीमूतवाहन राज्य करते थे।

खृष्टीय १३वीं शताब्दी पर्य्यन्त वरलार शिलाहारवंशके अधिकारमें था, उसके बाद यह यादवराजवंशके अधिकारमें चला गया। वसईसे ११६४ तथा १२१२ ई०में उत्कीर्ण यादवराजवंशका शासनपत्र पाया गया है। यादवोंके मुसलमानोंकी अधीनता स्वीकार करने पर कोङ्कणका यह अंश खण्ड खण्डमें विभक्त हो कर महिमके भीमराज, देवगिरिके रामदेव एवं नायक, वंगोलि तथा भंडारी उपाधिधारी सामन्तोंके शासनाधीन हो गया था।

१२६४ ई०में दिल्लीश्वर अलाउद्दीनके निकट रामदेवके पराजित होने पर थोड़े ही दिनोंके मध्य समस्त दाक्षिणात्य मुसलमानोंके अधिकारमें चला गया था सही, किन्तु उस समय भी वसईद्वीपपति अपनी स्वाधीनताकी रक्षा कर रहे थे। भिनिसके प्रसिद्ध पर्य्यटक मार्को पोलो १२६५ ई०में श्रीस्थान आये। वे यहांकी समृद्धि देख कर चमत्कृत हो उठे थे। उन्होंने लिखा है, कि यह स्थान प्रतीच्यके एक सुविस्तृत जनपदकी राजधानी था। यहांके राजा स्वाधीन थे। यहांके अधिवासी पौत्तलिक कहलाते थे। वे लोग देशीभाषामें बातें करते थे। उनके समयमें यहां उत्कृष्ट चर्म तथा कपासके साज, मसलिन एवं सोना चांदीका व्यापार होता था। श्रीस्थानमें नदीसे जलदस्युगण बाहर हो कर यथेष्ट अत्याचार करते थे।

१३११ ई०में मुसलमान विजेतृगणकी लोभदृष्टि इस अञ्चल पर पड़ी। उनके उपद्रव तथा अत्याचारसे बहुत दिनों तक यहांके अधिवासीगण विपत्ति-सागरमें गोता लगाते रहे। उस समय केवल यहांके बाशिन्दे ही नहीं वरन् कितने ही विदेशी धर्मप्रचारकगण भी अपने जीवनसे हाथ धो बैठे। १३३० ई०में प्रिउली-निवासी संन्यासी ओदेरिक (Friar Oderic of Priuli) वर्णन कर गये हैं, कि १३२० ई०में फ्रान्सिस्कान् खृष्टीय सम्प्रदायभुक्त जर्डनस् (Jordanus) नामक एक संन्यासीने अपने साथी चार यतियोंको समाभिव्य करनेके बाद मुसलमानोंके हाथसे जीवन विसर्जन किया था। ओदेरिक अपनी स्वदेशयात्राके समय उस सब खृष्टान साधुओंकी हड्डियाँ जहाजमें भर कर अपने साथ ले गये। वे कुछ दिनोंके बाद फिर भारतमें आये। वे बहुत-से सहचरोंके साथ वसईद्वीपमें ही कालयापन करने लगे। उस समय मुसलमान काजीगण विदेशियोंके ऊपर किस तरह अत्याचार करते थे, 'ओदेरिक्' उसे लिपिबद्ध कर गये हैं। बिशप जेरोनिमो ओजेरियो (Jeronimo Ozrio) ने लिखा है, कि उन सब फ्रान्सिस्कान साधुओंने करञ्ज द्वीपमें एक सुवृहत् खृष्टमन्दिरकी स्थापना की थी। लेवनार्दो पायस (Leonardo Paes) नामक खृष्टान लेखकके वर्णनसे जाना जाता है, कि करञ्जद्वीपमें नीले

दरवाजे पर कुमारी मेरी की एक सुन्दर मूर्ति थी। पुर्तगीज इसे "Nossa Senhora da Penha" कहते थे। यहीं पुर्तगीजोंके अधिकारकालमें नरश्रेष्ठ उक्त पुर्तगीज नामसे ही विख्यात हुआ।

१५०९ ई०में पुर्तगीज सेनिकगण बसई बन्दरमें दिखाई पड़े। इसके १० वर्षके बाद यहीं पुर्तगीजोंने व्यापारकी कोठियाँ बनाईं। मुसलमान ऐतिहासिक फिरिश्तासे माना जाता है, कि उस समय बसई शहर गुजरातके मुसलमान राजाके अधिकारभुक्त एक वाणिज्यकेन्द्र था। दूर दूरके देशोंके जहाज आ कर यहाँ ठहरते थे। मालवके अरबकुलमें मालिक गया नामा विजारतके साथ मसाले यहाँ आते थे।

१५३० ई०में पुर्तगीजोंने बसई द्वीप, था कर थाना तथा कल्याण पर आक्रमण किया एवं उन पर अधिकार जमा कर कर वसूल किया। इससे गुजरातपति बहादुरशाहके साथ उनकी लड़ाई हुई। बहादुर शाह अनिष्ट प्रतिविधान देख कर सन्धि करनेको बाध्य हुए। इस सन्धिमें बहादुरशाहसे बसई, महीम, डोऊ, बमन, बेडन तथा बसई द्वीप पुर्तगीजोंके हस्तगत हुए एवं अरब-समुद्रमें वाणिज्यकर वसूल करनेका अधिकार प्राप्त हुआ।

१५३६ ई०में नूनू दा कुन्हाने बसईद्वीपके दक्षिणांशमें एक दुर्ग निर्माण कर अपने शाला गार्सिया डीसाको दुर्गाध्यक्ष बनाया। उन्हीं दीवानकी मृत्युके बाद उक्त दुर्गाध्यक्ष ही १५४८ ई०में पुर्तगीज अधिकारके गवर्नर-जेनरल हुए।

पुर्तगीजोंके लिखे हुए इतिहाससे जाना जाता है, कि बसईदुर्ग सुदृढ़ पत्थरकी दीवारोंसे घिरा था। यह किला ११ बुर्जोंसे सुशोभित था एवं उनमें ९० कमान संयोजित थे। इसके अलावे इस द्वीपमें और भी कितने छोटे छोटे किले थे उनमें १२० कमान रहते थे। यहाँके बन्दरगाहकी रक्षा करनेके लिये २१ कमानवाले समुद्रपोत हमेशा तय्यार रहते थे, एक एक पोतमें १६ से १८ तक कमान रहते थे।

पुर्तगीज अधिकारमें भी बसईद्वीप बहुत उन्नति पर था। यहाँ बड़े बड़े धनी व्यक्तियोंका निवास था। उस समय यहाँ जितने गिर्जे, धर्मालय तथा सेवक-मन्दिर निर्मित हुए थे, उनके निशान अभी तक पाये जाते हैं, कि यहाँके मकानोंमें यथेष्ट कीमती थी, जिनमेंसे ऊँचे ऊँचे भवन बने थे। नगरके चारों ओर साफ, स्वच्छ प्रफुल्लित उद्यान था, सामनेके चारों तरफ हरे भरे शस्यक्षेत्र थे। कृस्तान, मुसलमान तथा हिन्दू इन तीनों जातियोंकी प्रजाके उद्योगसे यहाँका वाणिज्य व्यवसाय होता था। यहाँ गृह-निर्माणोपयोगी उत्कृष्ट काष्ठ तथा पत्थर उत्पन्न होते हैं। कहते हैं, गोआके सुवृहत् गिर्जाघर एवं प्रासादादि यहींके पत्थरोंसे ही बने हुए हैं। वर्तमान समयमें जिस तरह लोग बम्बईको मानते हैं, ठीक १७ वीं शताब्दीके प्रारम्भमें इसी तरहका गौरव बसईद्वीपने दिखाई दिया था, बसई पूर्व ही देशोंके अन्दर बसई-शहर एक समय प्रायः जन शून्य हो गया था। उसके बाद फिर इस शहरमें लोगोंके समागम होने पर भी इसका उत्तर भाग (समस्त नगरका प्रायः तिहाई अंश) बहुत समय तक जनशून्य था।

पुर्तगीजोंकी अधिकारवृद्धिके साथ साथ कृस्तान धर्मकी भी यथेष्ट उन्नति हुई। वे अपने धर्मावलम्बी व्यक्तियोंके अतिरिक्त सभी जातियोंके लोगोंको घृणाकी दृष्टिसे देखते थे। कृस्तानोंके मध्य भी जो लोग धर्म-पालन नहीं करते थे, उन्हें वे लोग कारागार कर बहुत कष्ट देते थे। बसई कारागारमें इस प्रकार बहुतेरे कृस्तान तथा अन्य धर्मावलम्बी लोग कष्ट भोगते थे। इससे यहाँके शासनकर्त्ताओंने नियम बना दिया, कि कृस्तानके सिवाय और किसी जातिके लोग इस शहरमें वास नहीं कर सकते। फलतः हिन्दू मुसलमानोंको भी इस शहरमें प्रवेश करनेका अधिकार नहीं रहा। यहाँ तक कि कृस्तानके अतिरिक्त और किसीके साथ पुर्तगीजकी शादी तथा अन्यान्य सम्बन्ध एवं खान पान आदान-प्रदान या किसी प्रकार वैवाहिक अथवा राजनैतिक कार्य कोई नहीं कर सकता था। कृस्तान लोग सुविधा पा कर क्या हिन्दू क्या मुसलमान, दोनोंको बलपूर्वक कृस्तान बना लेते थे। जो कृस्तानधर्मको आचार-विधि पालन नहीं करता था, उसे दण्ड देते थे। यहाँके अधिवासियोंने इस प्रकार पीड़ित हो कर विदेशियोंके विरुद्ध मराठोंसे अभियोग चलाया। पेशवाने इस अभियोग पर पुर्तगीजोंको दण्ड देनेका भार मराठोंको दिया।

मराठों सेनाने पहले अपने भाईके नायकत्वमें आक्रमण

एक छोटे किले पर अधिकार कर लिया। इस समय करञ्जकी रक्षाके लिये शालसेटीके शासनकर्त्ता लुई-डी-चरेलहो, वसई दुर्गकी रक्षाके लिये कप्तान पेरिरा एवं बन्दोराके सेनावासकी रक्षाके लिये कप्तान वेराज नियुक्त हुए। इधर भोंसलेने गोआ पर आक्रमण किया। महाराष्ट्र-सेनापति चिमनाजी अप्पा बहुतसे सैन्य-सिपाहियोंके साथ दुर्ग भेद कर पुर्त्तगीजों-के सम्मुख युद्धके लिये अग्रसर हुए। दूसरी ओर मराठी सेनाने शालसेटीको घेर लिया एवं वरसोआ तथा धरावी द्वीप दखल कर वसईके पूर्वांशकी खाड़ीका रास्ता रोक रखा। किलेके चारों ओरसे घिर जानेके कारण पुर्त्तगीजों-को बाहरी सहायताकी भी आशा न रही। १७३९ ई०की १७वीं फरवरीको मराठी सेनाने वसई दुर्गको घेर लिया। लगभग तीन महीने तक किलेके घिरे रहनेके बाद पुर्त्तगीज लोग आत्म-समर्पण करनेको बाध्य हुए। इस पराजयके साथ ही पुर्त्तगीजोंके गौरव-सूर्यका अस्त हुआ। थोड़े ही दिनोंके अन्दर पुर्त्तगीजोंने अपने धनके साथ चिरकालके लिये इस नगरीका परित्याग किया।

वसई मराठोंके हस्तगत होने पर भी यहांकी राज-धानीका सौन्दर्य नष्ट नहीं हुआ। कुछ ही दिनोंके अन्दर एक 'सरसूबा' नियुक्त हुए एवं वाणकोट नदीसे ले कर दमन पर्य्यन्त सारे देश उनके शासनाधीन हुए। इस समय वसई नगरमें सम्भ्रान्त हिन्दुओंका वास नहीं था, यहांके अधिकांश अधिवासी पुर्त्तगीजोंके अत्या-चारके भयसे खृस्तान हो गये थे। पेशवा माधवरावने उन्हें फिर हिन्दू समाजमें लानेके लिये कितने ही ब्राह्मण नियुक्त किये। उन ब्राह्मणोंके भरणपोषणके लिये प्रजा पर एक कर लगाया। पेशवाकी इस सहृदयतासे बहुतसे जातिच्युत हिन्दू प्रायश्चित्त कर फिर हिन्दू समाजमें आ गये। क्रम क्रमसे महाराष्ट्र तथा गुर्जरसे बहुतों सम्भ्रान्त लोग यहां आ कर बस गये। उनमें प्रभुकायस्थ लोग ही प्रधान थे। इस समय भी वसई शहरमें प्रभुकायस्थ लोग हो धन जनमें श्रेष्ठ हैं।

वर्त्तमान वसई शहर बाजीरावके नामानुसार बाजीपुरके नामसे विख्यात है। इस वसई जिलेके अन्त-र्गत १६१ मौजे हैं। इन सब ग्रामोंके मध्य खानिवड़े ममें एक छोटा-सा बन्दर है, दक्षिण-पूर्व माणिकपुर महलमें एक रेलवे स्टेशन है, उत्तरमें अघनासी या अगासी महाल, सथवनमें प्रसिद्ध दुर्ग, पर्वतमय तुंगारिमें प्रसिद्ध तुंगा-रेश्वर मंदिर, निर्मलमें प्रसिद्ध विमलेश्वरतीर्थ, सुपारमें प्राचीन तीर्थ तथा प्रसिद्ध बन्दर है। बाजीपुरके निकट-वर्त्ती पापरग्राममें बहुतसे चित्पावन, कराढ और देशस्थ ब्राह्मण एवं पलसा, सोनार प्रभृति दूसरे दूसरे निम्न श्रेणीके लोगोंका वास है। वार्षिक राजस्व प्रायः १८०३०) रुपये हैं।

१७८० ई०में अंग्रेज सेनापति गडार्डने १२ दिन घेरा डाल कर वसई पर अधिकार जमाया। इसके बाद १७८२ ई०में सलबाईकी सन्धिके अनुसार इष्ट-इंडिया कम्पनीने मराठोंका यह स्थान छोड़ दिया। अन्तमें १८१८ ई०में पेशवाको पदच्युत करके उनके दूसरे दूसरे अधिकारके साथ साथ वसई द्वीपको भी बम्बई प्रेसिडेन्सीके अन्तर्भुक्त किया।

१८४० ई०में वसईके पार्श्ववर्त्ती कल्याण-खाड़ीमें बांध तैयार करनेके लिये कोर्ट आव डाइरेक्टरने हुक्म जारी किया। इस बांधके होनेसे अब समुद्रका पानी ऊपर नहीं आता, इससे बहुत-से जमीनका उद्धार हुआ है। १८७२ ई०में रेलवे कम्पनीने लोहेका एक सुदृढ़ पुल तैयार कर वसईको बम्बईके साथ संयोजित कर दिया है। महाराष्ट्रके अधिकारमें आने पर जिस तरह यहांके बहुतसे प्राचीन हिन्दूतीर्थोंका उद्धार हुआ, उसी तरह पुर्त्तगीजोंकी अनेकों कीर्त्तियां नष्ट हो गईं, उनमें १० प्राचीन गिर्जोंका पुनरुद्धार खृस्तान पादरियों द्वारा हुआ। इन सब गिर्जोंके कारुकार्य्य तथा शिल्पनैपुण्य देखने योग्य है।

डिपो डो कोटोने लिखा है, कि पुर्त्तगीजोंने वसई पर अधिकार करके वहांके मन्दिर (एलीफण्टा)का विध्वंस किया। उन लोगोंने मन्दिरके सिंहद्वार पर एक पत्थर-लिपि खोदी देखी। वहांसे ला कर पुर्त्तगीज गवर्नरने हिन्दू मुसलमान द्वारा उसे पढ़ानेकी चेष्टा की। किन्तु जब कोई पढ़ न सका, तब उन्होंने उसे पुर्त्तगालके राजाके पास भेज दिया। पुर्त्तगीजपति डो जोआँवने उसे पढ़ाने-की बड़ी चेष्टा की, परन्तु चेष्टा व्यर्थ हुई। अन्तमें १७६५

ईसाके [illegible] 'कुशीनगर-स्तूप' [illegible] प्रतिकृति प्रकाशित की है। उनके इस पुस्तक द्वारा पता चलता है, कि उस समय यह बम्बई-द्वीप बहुत ही उन्नत दशामें था। इस समय भी बम्बई [illegible] स्थान मालूम किया जाता है। यहाँ [illegible] साधुओंके दर्शन होते हैं।

[illegible] स्थान होनेके कारण बहुत से लोग साधु [illegible] दर्शनोंके लिये यहाँ आते हैं।

वसति (सं० स्त्री०) वस निवासे आधारादिकरणे अति। (उणादि० ४।६०) १ वास, रहना। २ निवेशन, घर। ३ जैनसाधुओंका मठ। ४ यामिनी, रात। ५ बस्ती, आबादी।

वसतिद्रुम (सं० पु०) वृक्षभेद।

वसती (सं० स्त्री०) वसति कृदिकारादिति ङीष्। १ वास, रहना। २ यामिनी, रात। ३ निवेशन, घर।

वसतीवरी (सं० स्त्री०) सोम बनानेके समय काममें आनेवाला पानी।

वसन (सं० क्ली०) वस्यते आच्छाद्यतेऽनेनेति वस-ल्युट्। १ वस्त्र। २ आच्छादन, आवरण, ढकनेकी वस्तु। वस-आधारे ल्युट्। ३ निवास। ४ स्त्रियोंकी कमरका एक आभूषण। (पुं०) ५ तेजपत्र, तेजपत्ता। (स्त्री०) ६ [illegible] कपास।

वसनमय (सं० त्रि०) वसनयुक्त। (शतपथब्रा० ३।१।२।१३)

वसनवत् (सं० त्रि०) वस्त्रवाला, कपड़ेवाला।

वसनदीपपुर—बम्बई प्रेसिडेन्सीके रेवाकान्था विभागके अंतर्गत [illegible] एक छोटा सामन्तराज्य। यहाँके सरदार [illegible] परिचित हैं। राजस्व [illegible] हजार रुपया है जिसमेंसे सालाना [illegible] रु० ये बड़ौदाके गायकवाड़को करस्वरूप देते हैं।

वसनसंवड़ा—बम्बई प्रेसिडेन्सीके रेवाकान्था विभागके अंतर्गत एक छोटा सामन्तराज्य। यहाँके सरदारोंका [illegible] आमदनी [illegible] है। (७८०) रु० सालाना बड़ौदाराजको करमें देना होता है।

वसना (सं० स्त्री० [illegible] वस-युच्-टाप्) स्त्रीकटीभूषण, स्त्रियोंकी कमरका एक आभूषण।

वसनार्णवा (सं० स्त्री०) वसन बहुत [illegible]

वसनार्णवा (सं० स्त्री०) भूमि, पृथ्वी।

वसनासद् (सं० त्रि०) १ वसन चोर। (पु०) २ [illegible] या [illegible] भक्षि।

(ऋक् १।११९।३)

वसन्त (सं० पु०) वसन्त्यत्र मदनोत्सवा इति वस-झच्। (सुवस्वहिं [illegible] उण् ३।१२८) इति झच्। ऋतुविशेष। [illegible] "मधुश्च माधवश्च वासन्तिकावृतू" अर्थात् चैत्र और वैशाख, ये दो महीने वसन्तऋतु हैं। कोई कोई फाल्गुन तथा चैत्रको वसन्तऋतु कहते हैं।

इसका पर्याय—पुष्पसमय, सुरभि, मधु, माधव, फल्गु, ऋतुराज, पुष्पमास, पिकानन्द, काम तथा कामसख।

केवल कविकी कल्पना अथवा वर्णनासे ही वसन्तकी रमणीयता नहीं पाई जाती, वसन्तके आगमनसे प्रकृतिका रूप-लावण्य ही मनोहर, अत्यन्त ही रम्य एवं नयनाभिराम हो उठता है। ज्यों ही वसन्तका आगमन हुआ, कि सारा संसार सौन्दर्य-छटाके विकाससे भर गया। ऐसा कोई मानव प्राणी नहीं, ऐसा कोई कीट पतंग नहीं, ऐसा कोई [illegible] नहीं देखा, जिसने इसमें वसन्तके आगमन समय प्रकृतिका [illegible] एवं सुविकसित नूतन कलिकाके समान सुन्दर, सुधामधुर [illegible] आत्मतृप्ति या आनन्द प्रकाशके [illegible] प्रवल प्रवाह [illegible] । और तो क्या, वसन्तमें प्रकृतिकी ऐसी महिमा होती है, कि विरक्त, विराग, [illegible] प्राणियोंके मनमें भी आनन्दकी ज्योति जगमगा उठती है। पुष्पकुञ्जोंकी भी बात ही क्या, बूढ़े से बूढ़े व्यक्ति भी वसन्तमें प्रकृतिकी चारु-वर्णनासे अपने आपको भूल जाते हैं।

हाय वसन्त-देव! तुम्हारी महिमाको बलिहारी है। तुम्हारे आगमनसे अब कोमलोंको [illegible] और [illegible] प्रकाश नहीं रहता एवं सौन्दर्यमें [illegible] भी दोनोंमें नहीं पड़ते। [illegible] आनन्द तथा [illegible] प्रकाश हो रहा है। [illegible]

यामिनी प्रमादनी एवं ऊषा मधुरहासिनी होती हैं। जल निर्मल एवं पथ सुगम हो जाते हैं। स्थलमें स्थल-पद्म तथा जलमें जल-पद्म प्रस्फुटित होते हैं। कलियां चटक जाती हैं। वनस्थली अलि समुदायकी मधुर झंकारसे गूंज उठती है। मलय-समीर मन्द मन्द चालसे प्रवाहित होती है। स्निग्ध-मधुर तरुलताकुल नाना जातीय प्रचुरतर कुसुमभारसे झूम जाती हैं। कुसुमोंके सौरभसे वन, उपवन, उद्यान प्रभृति आमोदित हो उठते हैं। लताओंके नये नये पल्लव, फल, फूल, एवं कलियोंसे वासन्ती वनभूमि नवीन साज, नवीन वेषमें सुसज्जित हो कर सदैव हास्यमयी बनी रहती है। चन्द्रदेवकी दुग्धस्निग्ध ज्योत्स्ना, पक्षियोंके कलकूजन, कोकिलकी 'कुहू—कुहू' मलय समीरका मृदु-मन्द हिल्लोल, सुमनोंका सौरभ, अशोककी शोकहर सुषमा, सभी इस समय हृदयमें अपार आनन्द पहुंचाती हैं। इसीलिये भारतके प्राचीन कवियोंने अपनी अपनी वर्णनामें वसन्तऋतुको सर्वालंकार-सुसज्जिता एवं रूप यौवन सम्पन्ना ऋतुराणी कहा है।

यह भारतवर्ष ही वसन्तऋतुकी माधुरी महिमा पूर्ण लीलाभूमि है। इसीलिये मदनोत्सव वा वसन्तोत्सवादि वसन्तऋतुके अनुरूप अनुष्ठानादि इस भारतवर्षमें ही सर्वप्रथम प्रचलित हुई, किन्तु धीरे धीरे कालके उलट फेरसे उन उत्सव अनुष्ठानादिके लुप्तप्राय हो जाने पर भी इस सर्वप्राचीन सभ्यदेशके कई स्थानोंमें वसन्तोत्सव मनाया जाता है। मदनमहोत्सव देखो।

वसन्तकालके अधिष्ठातृ देवकी उत्पत्ति सम्बन्धमें पौराणिक उपाख्यान इस तरह है—

एक समय विधाताके आह्वानसे मन्मथ उनके समीप आकर बोला—विभो! मैं आपके आदेशानुसार त्रिपुरहर हरके मोहविधानमें समर्थ हूं, किन्तु कामिनी ही मेरा महास्त्र है। यही महास्त्र कामिनी आप सृष्टि करें। जिस समय मैं शम्भुको सम्मोहित करूंगा, उस समय यह कामिनी महादेवको बीच बीचमें और भी मुग्ध कर रखेगी सुतरां इस कठोर तपस्वी शिवको सम्मोहन करनेके लिये कामिनीकी बड़ी आवश्यकता है। किन्तु इस समय जितनी कामिनियां हैं, उनमें हरके मनको मोहनेवाली एक भी कामिनी मैं नहीं देखता। अतएव हे विधाता! मद कर्त्तव्य सम्पादनके लिये आपको ही कोई उपाय विधान करना होगा।

कन्दर्पकी बातें सुन कर किस तरह शिवको सम्मोहित किया जायगा, इसकी चिन्तासे विधाता व्याकुल हुए। चिंता करते करते उनका एक निश्वास निर्गत हुआ, उसी निश्वाससे कुसुमसमूह-भूषित वसंतकी उत्पत्ति हुई। चूता-ङ्कुर, चुनकलिका, भ्रमरसमुदाय एवं किंशुक प्रभृति वसन्तके हाथमें विराजमान थे। उस समय वसन्त एक प्रफुल्ल पादपवत् शोभित हुआ। उसकी आकृति रक्त कोक-नदनिभ, दोनों नयन प्रफुल्ल पंकजवत् सुशोभित, मुखमंडल सन्ध्योदित पूर्ण शशाङ्ककी तरह समुज्ज्वल, नासिका सुन्दर, कर्णविवर शंख सदृश, केशकलाप कुञ्चित एवं श्यामवर्ण, कर्ण कुण्डल अस्तोन्मुख अंशुमालीकी तरह समुज्ज्वल एवं वक्षस्थल विस्तीर्ण था। इनके अतिरिक्त उसकी गति मत्त मातंगवत्, दोनों भुजदंड पीन स्थूल तथा आयत, करद्वय कठिनस्पर्श, कटि एवं जंघा सुवृत्त, ग्रीवा कम्बुवत्, स्कन्ध उन्नत, अंगदेश गूढ़ एवं हृदय-देश-सर्व सुलक्षणसे परिपूर्ण था।

इस तरह सर्व सुलक्षणयुक्त सुकुमाराकृति वसन्त के उद्भव होते ही शीतल मन्द सुगन्ध समीर प्रवाहित होने लगा, द्रुमराजि कुसुमित हो उठी, कलकंठ कोकिल-समूह पंचम सुरसे गाने लगी, सरोवरोंका जल स्वच्छ मोतीके समान झलक उठा एवं उस स्वच्छ सलिलमें करोड़ों शतदल (पद्म) प्रस्फुटित हुए।

(कालिकापु० ४ अ०)

हरसम्मोहनके समय वसन्तने किस तरह कन्द-र्पकी सहायता की थी, इसके सम्बन्धमें उक्त पुराणोंके सातवें अध्यायमें लिखा है कि मदन जिस समय हरका धैर्यहरण करनेको उद्यत हुआ, उस समय वसन्तने हरके एकान्त आश्रमके चारों ओर किंशुक, केतक, वकपुन्नाग, नागकेशर, माधवी, मल्लिका, पर्णसार तथा कुरवक प्रभृति पुष्पोंको प्रस्फुटित कर दिया। वसन्त-की सहायतासे स्वच्छ सरोवरोंमें कमलवृन्द मुस्कुरा पड़े, शीतल मन्द सुगन्ध पवन प्रवाहित होने लगी, उससे शंकरका समूचा आश्रम सुगन्धमय हो उठा।

अशोकादिके नव पल्लव, नये कुसुम तथा नई नई कलियोंसे सुशोभित हो कर चारों तरफ पुष्प हुलोंसे नये प्रकट किये, जहांसे पुष्प, मिट्टी तथा [illegible] नवयुवतियोंके हृदय कामातुरतासे परिपूर्ण हो जाते, किन्तु क्रोध [illegible] महादेवका आसन तक भी नहीं टला।

(कालिकापुराण ७ अ०)

वसन्तकालके कविवर्णनीय विषय ये हैं—

"सुरभौ दोलाकोकिलमारुतसूर्य्यगतितरुदलोद्भेदाः ।
जातीतरपुष्पचयाम्रमञ्जरीभ्रमरझङ्काराः ॥"

(कविकल्पलता १ स्तबक)

वसन्तकालके गुण—कषाय, मधुर तथा रूक्ष। (राजनि०) हेमन्तकालमें श्लेष्मा उत्पन्न होता है, वसन्तकाल आने पर वह प्रकोपित हो उठती है। इस समय वायु एक तरहसे प्रशमित हो जाती है।

हारीतसंहितामें लिखा है—वसन्तके समय प्रमुदित कोकिलोंके कूजनसे आम्र, उद्यान गूंज उठते हैं, सुन्दर किंशुक कुसुम कलिकायें मदनागमनकी सूचना देती हैं। वन, उपवन तथा पर्वतमें खिले फूलोंके सुवाससे सुवासित हो उठता है। मत्त मधुकरसमुदाय मधुके लोभसे फूलोंमें गूंजते हुए विटपों लताओं तथा छोटे छोटे वनस्पतियों पर गुञ्जार लगाया करते हैं। पशु पक्षी तथा मनुष्य सभी प्राणी मदनावेगमें पड़ते जाते हैं, स्वास्थ्यकर मलय-समीर प्रवाहित होता है, कहनेका तात्पर्य यह है, कि सारा संसार ही इस समय प्रफुल्लित हो उठता। किन्तु वसन्त-ऋतु कफवर्द्धक होती है इसलिये इस समय कफ प्रकोपसे बचाये रखनेके लिये वमनादि तथा व्यायाम आचरण प्रयोजनीय है। इसके अतिरिक्त [illegible] जलाना, कोष्ठशोधन परिश्रम करना इत्यादि भी कफनिवारणका प्रधान उपाय है। कफके उपशमके लिये कटु, क्षार तथा कषाय पदार्थ सेवन करना उचित है। इस समय व्यायामादि शारीरिक परिश्रम करनेसे भी स्वास्थ्यकी बड़ी वृद्धि होती है।

चरकसूत्रमें लिखा है, कि हेमन्तकालमें श्लेष्मा सञ्चित होता है, वसन्तऋतुमें वह सूर्य्यकिरणोंसे दूषित हो कर जठराग्निको मन्द कर देता है। इसलिये इस समय वमनादि द्वारा श्लेष्माको नाश कर देना चाहिये। इस समय गुरुपाक, कटु तिक्त कषाय लवण रसयुक्त यवादि, गोधूम, [illegible] शाली तथा भी, ईख एवं [illegible] होने पर [illegible], पुराना मद्यादिपान एवं स्नान, पान, [illegible] तथा [illegible] कार्य्यमें कुछ [illegible] व्यवहार करना चाहिये। चन्दन-कस्तूरादि अनुलेपन एवं [illegible] तथा [illegible] हेमन्तकालकी तरह व्यवहार करना उचित है। [illegible] साथ [illegible] तथा [illegible] करना इस समय अच्छा है। गुरुपाक, स्निग्ध एवं अम्ल तथा मधुर रसयुक्त पदार्थ भोजन तथा दिवानिद्रा प्रभृति वसन्तकालमें अनिष्टकारक हैं।

इसके अतिरिक्त सुश्रुत [illegible] अध्याय तथा वाग्भटसूत्रस्थान तृतीय अध्यायमें भी वसन्तचर्याका विषय लिखित है, विस्तार हो जानेके भयसे वे सब बातें यहां नहीं लिखी गईं।

वसन्त (सं० पु०) १ अतिसार। २ छः रागोंके अन्तर्गत द्वितीय राग। संगीतदामोदरमें लिखा है, कि ६ राग एवं ३६ रागिनी हैं। पूर्वोक्त ६ रागोंके मध्य वसन्त एक राग है।

संगीतदर्पणके मतानुसार पंचवक्त्र शिवके वामदेव नामक द्वितीय वक्त्रसे इस रागकी उत्पत्ति हुई थी।

श्रीराग, वसन्त, भैरव, पंचम, मेघराग तथा वृहन्नाट ये ६ राग पुरुषवाचक हैं। इन सब रागोंके मध्य प्रत्येक रागकी अनुगामिनी छः छः रागिनी हैं। जैसे—देशी देवगिरी (देवकिरी), वैराटी, तोडिका, ललिता तथा हिन्दोला। इसी तरह दूसरे दूसरे रागोंकी भी रागिनी हैं। कल्लिनाथके मतानुसार वसन्तरागकी अनुगामिनी छः रागिनीके नाम पृथक् हैं। जैसे—आन्ध्री, गमकी, पटमंजरी, गौडकरी, धामकरी तथा देवशाख।

संगीतदामोदरमें वसन्तरागकी अनुगामिनी पांच रागिनियोंका उल्लेख देखा जाता है।

वसन्तरागका स्वरक्रम जैसे—

"सा, रे, ग, म, प, ध, नी, सा"।

इस रागके गानेके समय-सम्बन्धमें संगीतदर्पणमें लिखा है, कि पंडितोंने [illegible] करके इसके

शयन पर्य्यन्त जितना समय है, उतने समयके अन्दर ही संगीततत्त्वविदोंने वसन्तराग गानेका समय निर्द्धारण किया है।

संगीतदर्पणके मतानुसार वसन्तानुगामिनी रागिणीके साथ वसन्तराग वसन्तऋतुमें ही गाना चाहिये।

दिन रातके मध्य वसन्तराग गान करनेका समय प्रभातसे आरम्भ होता है।

वसन्त रागके आकार, ताल, लय, सुर-क्रम तथा समयादिके सम्बन्धमें बंगाली संगीत-कवि राधामोहन-सेन दास कृत संगीततरंग ग्रन्थमें संक्षेपसे वर्णन किया गया है।

वसन्त (सं० पु०) १ पुराण तथा नाटकोक्त प्रसिद्ध ऋतु-पति देवताभेद। ये कामदेव तथा मदनके चिर सहचर हैं। वसन्तदेवके आगमनसे पृथ्वी सचमुच ही माधुरी-मालासे परिप्लावित हो कर हर्षोत्फुल्ल हो उठती है। नवीन श्यामल शस्यक्षेत्रनिचय चूतमुकुल-कलिकाकीर्ण नव किशलय समूह कोमलपत्रवल्लियोंके मध्य नवीन रागसे रञ्जित हो कर मानों उन्हींकी दयासे अपूर्व श्री धारणा कर रहे हैं। उसी वसन्तऋतुकी प्रेरणासे धराबासी वसन्तकालकी महिमा अनुभव करते हैं।

२ रोगभेद (Small pox) [मसूरिका देखो।] ३ एक तालका नाम। ४ फूलोंका गुच्छा।

वसन्तक (सं० पु०) वसन्त संज्ञायां कन्। १ पृथु-शिम्ब, श्योनाक, सोनापाढ़ो। २ कथासरित्सागर-वर्णित कम-ण्यानके नर्मसुहृदके पुत्र।

वसन्तकाल (सं० पु०) वसन्तः कालः कर्मधा०। वसन्त ऋतु, वसन्तका समय।

वसन्तकुसुम (सं० पु०) वसन्ते कुसुमं यस्य। वृक्षविशेष।

वसन्तकुसुमाकर (सं० पु०) वृक्षविशेष।

वसन्तकुसुमाकर (सं० पु०) एक प्रकारकी औषध। इसके बनानेका तरीका—मूंगा, रससिन्दूर, मुक्ता, अभ्र प्रत्येक ४ भाग, लोहा, सीसा, रांगा प्रत्येक ३ भाग इन सबोंको एक साथ अड़ूस, हल्दी, ईख, प.., चन्दन और कदलीमूलके रसमें, दूध तथा मृगनाभिके काढ़ेमें यथा क्रमसे सात बार भावना दे कर दो रत्तीकी गोली बनानी होती है। दोषानुसार अनुपान स्थिर करना होता है। इसका सेवन करनेसे विविध रोगोंकी शान्ति होती है।

वसन्तकुसुमाकररस (सं० पु०) १ कासाधिकारमें एक प्रकारकी औषध। प्रस्तुत प्रणाली—सोना २ भाग, चांदी २ भाग (चांदीके बदले कोई कोई कपूर व्यवहार करते हैं), रांगा, सीसा, लोहा प्रत्येक ३ भाग, अभ्र, मूंगा, मुक्ता प्रत्येक ४ भाग, इन सबोंको एक साथ मल कर यथाक्रमसे गायका दूध, ईक्षुरस, अड़ूसकी छालका रस, लाक्षाका काढ़ा, पथरचूरका काढ़ा, कदलीमूलका रस, मोचाका रस, पद्मका रस, मालती फूलका रस और मृगनाभि इन सब द्रव्योंसे भावना दे कर दो रत्तीकी गोली बनावे। अनुपान घी, चीनी और मधु है। यह मेहरोगकी सबसे फायदेमन्द औषध है। इससे बहुत रोग दूर होते हैं। चीनी और चन्दनके साथ सेवन करनेसे अम्लपित्त आदि अनेक पीड़ा दूर होती है।

२ सोमरोगाधिकारमें एक प्रकारकी दवा। इसके बनानेकी तरकीब—वैक्रान्त (चुन्नी) १ भाग, सोना, अभ्र, मुक्ता, मूंगा प्रत्येक २ भाग, रांगा ३ भाग, रस-सिन्दूर ४ भाग इन्हें नीबूके रसमें, गायके दूधमें, खस-खसकी जड़के काढ़ेमें, अड़ूसकी छाल और इक्षुरसमें सात बार भावना दे कर दो रत्तीकी गोली तैयार करे। इसका अनुपान मधु है। इससे सोमरोग, बहुमूत्र, प्रमेह, तृष्णा, दाह तथा अन्यान्य रोग प्रशमित होते और बलकी वृद्धि होती है। यह उत्कृष्ट रसायन औषध है।

वसन्तगढ़—दाक्षिणात्यके बम्बई प्रेसिडेन्सीके अन्तर्गत एक प्राचीन दुर्ग। प्रवाद है, कि ११९२ ई०में पनाला-राज-वंशके किसी एक राजाने यह दुर्ग बनवाया था। पीछे महाराष्ट्रीय अभ्युदयमें यह शिवाजी महाराजके अधीन चला गया। फिर १६९८ ई०में राजारामके निकटसे मुगल-सम्राट् औरङ्गजेबने तीन दिन घोर युद्ध करनेके बाद यह दुर्ग अपने मातहतमें कर लिया। बहुत दिनोंसे यह दुर्ग दुर्मेद्य कह कर ख्यात थो। सम्राट् दुर्गजयके बाद उसका नाम "कुलीद ई-फते" रखा गया।

वसन्तगन्धिन् (सं० पु०) बुद्धभेद। (ललितविस्तर)

वसन्तघोषिन् (सं० पु०) वसन्ते वसन्तकाले घोषति विरौति, यद्वा, वसन्तं घोषयति विज्ञापयतीति वसन्त-घुष-णिनि। कोकिल।

वसन्तज (सं० त्रि०) वसन्ते जायते इति जन-ड । वसन्त-कालोत्पन्न ।

वसन्तजा (सं० स्त्री०) १ वासन्ती लता । २ मुद्र यूथिका, सफेद जुही । ३ वसन्तोत्सव ।

वसन्ततिलक (सं० पु०) वसन्तस्य तिलकमिव । १ पुष्प-विशेष । २ एक वर्णवृत्त । इसके प्रत्येक चरणमें तगण, भगण, जगण, जगण, और दो गुरु, इस प्रकार कुल चौदह वर्ण होते हैं ।

उदाहरण—

"फुल्लं वसन्ततिलकं तिलकं वनाल्या
लीलापरं पिककुलं कलमत्र रौति ।
वात्येष पुष्पसुरभिर्मलयाद्रिवातो
यातो हरिः स मथुरां विधिना हताः स्मः ॥"

(छन्दोम०)

वसन्ततिलक (सं० पु०) १ औषधविशेष । यह औषध सुरच रोगमें प्रयोग की जाती है । २ एक दूसरी औषध, यह श्वास कास आदि कितने रोगोंमें इस्तेमाल होती है । इसके बनानेका तरीका—सोना १ तोला, अभ्र २ तोला, लोहा ३ तोला, रांगा २ तोला, पारा, गंधक, मुक्ता, मूंगा प्रत्येक ४ तोला ले कर गोखरू, अडूस और ईखके रसमें भावना दे कर अंगली हाथीके [illegible] भावनेमें साथ कर पुटपाक करे और कस्तूरी और कपूर उसमें मिला दे । इससे वात, श्वास, कास, पित्त, कफ, क्षय, शूल, पाण्डु, मूर्छा, बीस प्रकारका प्रमेह, पित्त, हृद्रोग और उदर आदि रोग नष्ट होते हैं । मृत्यु-ञ्जयके अनुसार यह औषध पुष्ट, बलकर तथा पुष्टिकर मानी गई है । (रसेन्द्रसारसं०)

वसन्ततिलकतन्त्र (सं० क्ली०) तन्त्रभेद ।

वसन्ततिलकरस (सं० पु०) कासरोगका एक प्रसिद्ध औषध । इसकी प्रस्तुत प्रणाली—सोना १ तोला, अभ्र २ तोला, लोहा ३ तोला, पारा ४ तोला, गंधक ४ तोला, रांगा २ तोला, मुक्ता ४ तोला, मूंगा ४ तोला, इन सबों को गोखरू, अडूस और ईखके रसमें भिगो कर रख देवे । फिर [illegible] अच्छी तरह खरल करे । पीछे औषध निकाल कर उसमें कस्तूरी ४ माशा और कपूर ४ माशा मिला कर मर्दन कर ले । यह दवा कास और श्वास रोगमें बहुत फायदा पहुंचाती है । इसकी मात्रा २ रत्ती है ।

वसन्ततिलका (सं० स्त्री०) एक वर्णवृत्त ।

वसन्ततिलक देखो ।

वसन्तदूत (सं० पु०) वसन्तस्य दूत इव । १ आम्रवृक्ष, आमका पेड़ । २ कोकिल, कोयल । ३ पञ्चमराग । ४ चैत्र मास ।

वसन्तदूती (सं० स्त्री०) वसन्तस्य दूतीव । १ पाटली-वृक्ष । २ पाडरि, पाडर । ३ कोकिला । ४ माधवीलता ।

वसन्तदेव—एक प्राचीन कवि ।

वसन्तद्रु (सं० पु०) वसन्तस्य द्रुः श्रेष्ठः । आम्रवृक्ष, आमका पेड़ ।

वसन्तपञ्चमी (सं० स्त्री०) वसन्तस्य पञ्चमी । श्रीपञ्चमी । मत्स्यसूक्तके ५५वें पटलमें लिखा है, कि पूर्वं [illegible] होनेसे शुक्लपक्षीय पञ्चमीमें [illegible] स्नान करा कर पूजा करनी होती है । स्नान करके मरकतमय पुष्पसे नहीं अर्चना करावे । यह वसन्तपञ्चमी सर्वपापनाशिनी है । इस दिन वसन्तको सखा रति-सह कन्दर्पकी भी पूजा करनी चाहिये । इसके अति-रिक्त इस दिन वसन्तराग सुननेसे अतीव मंगल होता है । किसी किसी मुनिने इस वसन्तपञ्चमीको श्रीपञ्चमी नामसे उल्लेख किया है । जो पुत्र हो, इस दिन एकाहारी रहना उचित है । इससे लक्ष्मी सर्वदा ही प्रसन्न रहती हैं । (मत्स्यसूक्त ५५ पटल)

हरिभक्तिविलासमें लिखा है, कि माघमासकी शुक्ल-पञ्चमीके दिन महापूजा करनी होती है । इस पूजाकी विधि यह है, कि इसमें नव सहकार, नव पुष्प और [illegible] विन्यास एकान्त आवश्यक है । इसके बाद [illegible] श्रीकृष्ण, [illegible] वसन्तरागमय गीत और नृत्यादि करे । कहते हैं, कि [illegible] आरम्भ करके [illegible] वसन्तराग गानेका समय है, दूसरा समय निषेध बताया है । वसन्तपञ्चमीके दिन इस प्रकार [illegible] पूजा करनेसे वसन्तके समान फिर [illegible] हैं । श्रीपञ्चमी देखो ।

वसन्तपाल—[illegible]

वसन्तपुर—१ एक प्राचीन विशाल जनपदके अन्तर्गत एक नगर। (भविष्य ब्रह्मख०३६।२३) २ मल्लभूमिके अन्तर्गत एक गण्डग्राम। यह विष्णुपुरके उत्तर उपकण्ठमें अवस्थित है।

वसन्तपुष्प (सं० पु०) १ धूलिकदम्ब। (क्ली०)२ वसंतकालोत्पन्न कुसुम।

वसन्तबन्धु (सं० पु०) कामदेव।

वसन्तभानु (सं० पु०) राजपुत्रभेद।

वसन्तभैरवी (सं० स्त्री०) एक रागिणीका नाम।

वसन्तमण्डल, (सं० स्त्री०) १ सिन्दूर। २ रक्तपद्म, लाल कमल।

वसन्तमहोत्सव (सं० पु०) वसन्तोत्सव। इस दिन जगत्के यावतीय देशवासी मनुष्यसमाज शीतकी जड़ता परित्याग कर वसन्तका आगमन ज्ञापनार्थ आनन्दसे उत्फुल्ल हो इधर उधर घूमते हैं। प्राचीनकालमें हिंदू समाजमें मदनमहोत्सव प्रचलित था। आज कल वह वासंतिक होलीपर्वमें पर्यवसित हो गया है, किन्तु यथार्थमें यह श्रीपञ्चमी पूजाके दूसरे दिन ही प्रथम वसंतोत्सव होता है। इस दिन सभी प्रदेशोंमें शीतवास परित्याग कर शुभ्र या वसंती रंगमें रंगा हुआ कपड़ा पहन कर सभी इधर उधर परिभ्रमण करते हैं। वृन्दावनमें आज भी ऐसा दृश्य देखा जाता है। इस दिन एवं होलीपर्वके दिन रातमें भोजन और आमोदकी ज्यादती भी नितान्त कम नहीं है। राजपूत जातिके मध्य वसंतोत्सवके दिन उमा या गौरीकी पूजा और मृगयाकी रीति है। मदनमहोत्सव देखो।

वसन्तमारु (सं० पु०) सम्पूर्ण जातिका एक राग। इसमें सब शुद्ध स्वर लगते हैं।

वसन्तमालतीरस (सं० पु०) एक प्रकारकी औषध। इसके बनानेका तरीका—सोना १ भाग, मुक्ता २ भाग, हींग ३ भाग, मिर्च ४ भाग एवं कपूर ८ भाग इन सबोंको पहले थोड़ा मक्खनके साथ मर्दन कर पीछे नीबूके रसमें अच्छी तरह घोटे जिससे मक्खन एकदम मिल जाय। इस तरह बना कर २ रत्ती परिमाणमें मधु और पीपलके चूर्णके साथ सेवन करे। इसका सेवन करनेसे जीर्णज्वर, विषम ज्वर, उदरामय और कास आदि रोग जल्द जाते रहते हैं। यह पश्चिम प्रदेशकी नामी दवा है।

वसन्तमालिका (सं० स्त्री) छन्दोभेद।

वसन्तयात्रा (सं० स्त्री०) वसन्तोत्सव।

वसन्तयोध (सं० पु०) कामदेव।

वसन्तराज—एक प्रसिद्ध वैयाकरण। इन्होंने प्राकृतसञ्जीवनी नामक प्राकृतप्रकाशकी एक टीका लिखी।

वसन्तराज—कुमारगिरिके एक राजा। ये काटयवेम नामक पण्डितवरके प्रतिपालक थे। इनका लिखा वसन्तराजीय नाट्यशास्त्र नामक एक ग्रन्थ मिलता है। मल्लिनाथने शिशुपालवधटीकामें इस ग्रन्थका उल्लेख किया है।

वसन्तराजभट्ट—शकुनार्णव या शाकुनशास्त्रके प्रणेता। इन्होंने मिथिलाधीश्वर चन्द्रदेवके अनुरोधसे यह ग्रंथ रचा। इनके पिताका नाम विजयराज और जेठे भाईका शिवराज था।

वसन्तराजीय (सं० क्ली०) वसंतराजका बनाया हुआ एक नाट्यशास्त्र।

वसन्तराय (राजा)—बङ्गके स्वाधीन बंगाली-वीर प्रतापादित्यके चचा। बंगज कायस्थकुलमें गुहवंशमें गुणानंदके औरससे ये पैदा हुए थे। इनका प्रकृत नाम जानकीवल्लभ था, किंतु ये वसंतराय नामसे ही साधारणमें परिचित थे। गुणानंदके जेठे भवानंदके पुत्र विक्रमादित्य ही प्रतापके पिता थे।

बचपनसे ही विक्रम और वसंतरायमें बड़ा सद्भाव था। राजमंत्री-पद पर नियुक्त होनेके बाद दोनों भाई गौड़में रहने लगे। इस समय विक्रमने चांद खाँ नामक जागीर पा कर वहां यमुना और इच्छामतीके संगम पर नगर और गढ़ स्थापन किया एवं वहां पुत्र और परिवारादिको भेज दिया। लेकिन दोनों भाई राजधानीमें ही रहे मुनाइम खाँके बंगाल पर आक्रमणके समय यद्यपि गौड़वासी राजधानी छोड़ चले गये, तो भी दोनों भाई छद्मवेशमें वहीं ठहरे रहे। दाउदकी मृत्युके बाद टोडरमल्लको बंगालका राजस्व-विषयक कागज पत्र समर्पण कर देने पर वे दोनों ही मुगल सरकारके अनुगृहीत हुए। दिल्लीश्वरकी ओरसे राजा टोडरमलने विक्रमादित्यको महाराजकी एवं वसंतरायको राजाकी उपाधि मंजूर करा

रहता है। मृतशरीरके कई स्थानोंमें अर्थात् चमड़े, गले, आँख, नासिका अन्त्र तथा पाकाशयके मध्य स्फोटक देखा जाता है। हृत्पिण्ड, मूत्रयन्त्र, यकृत् तथा स्वाधीनपेशी, सभी कोमल एवं वसापकृष्टताविशिष्ट होता है। प्लीहा विवर्द्धित तथा कोमल हो जाता है। स्थान स्थान पर रक्तस्रावका चिन्ह दिखाई पड़ता है। मृतदेह बहुत जल्द सड़ जाती है।

लक्षण

१ गुप्तावस्था—संक्रमण द्वारा रोगोत्पन्न होने पर १२ दिनों तक एवं टीका द्वारा होने पर ७ दिनों तक इस अवस्थामें रोगी कुछ असुस्थ रहता है।

२ आक्रमणावस्था—शीत तथा कम्प द्वारा अकस्मात् पीड़ा आरम्भ होती है एवं रोगीको ज्वरके सभी लक्षण अनुभव होते हैं। स्फोटक निकलनेके पहले तापपरिमाण क्रमशः १०४से १०६ डिग्री तक बढ़ जाता है। इसके अलावे पेंडू तथा कमरमें पीड़ा होना एवं बहुत उछाल होना, ये कई लक्षण देखे जाते हैं। अन्यतम लक्षणोंके मध्य शिरोवेदना, मुखमंडल आरक्तिम, हस्तपदादिके स्पन्दन, आलस्य, अत्यन्त दुर्वलता, प्रलाप, अस्थिरता तथा अचैतन्यादि लक्षण भी वर्त्तमान रहते हैं। इसे प्राथमिक ज्वर (*Primary Fever*) कहते हैं। उक्त अवस्था दो दिनों तक वर्तमान रहनेके बाद स्फोटकावस्थामें परिणत हो जाती है।

३ स्फोटकावस्था—ज्वरके तीसरे दिन मुंह, कपाल तथा हाथोंमें छोटे छोटे लाल दाग देखे जाते हैं। ये लाल दाग बहुसंख्यक उत्पन्न हो कर दो एक दिनके भीतर ही सारे शरीरमें व्याप्त हो जाते हैं। इन स्फोटकोंकी संख्या प्रायः १०० से ले कर ३०० तक रहती है। कभी २ रोगीके शरीरमें १००० एक हजार स्फोटक देखे जाते हैं। मुखमंडलमें ही इसकी संख्या अधिक होती है। टीका देनेके बाद अथवा संक्रामक रूपमें वसन्तरोग उपस्थित होने पर स्फोटकावस्थाके पहले पेट तथा छातीमें वृहदाकार लाल दाग बाहर होते देखे गये हैं, उसे प्रोड्रोमल एक्जेन्थेम (*Prodromal Exanthem*) कहते हैं। वसन्तरोगकी गोटियां स्वतंत्र, संश्लिष्ट या दूसरे प्रकारकी हो सकती हैं। गोटी होनेके पहले छोटे छोटे लाल दाग उत्पन्न होते हैं। स्फोटकके दूसरे दिन कंडुप सर्पकी तरह ऊंचे देख पड़ते हैं, इसे अंगरेजोमें पैप्युल कहते हैं। तृतीय दिन स्पर्श करनेसे कुछ कठिन मालूम पड़ता है। चौथे दिन गोटियोंके अन्दर रस (सिरम्) पैदा होनेके कारण वे गोटियां नर्म हो जाती हैं एवं मुक्ताकी तरह भेसिकेल देख पड़ते हैं। पांचवें दिन उनके ऊपरी भाग कुछ निम्न हो जाते हैं, इसे अम्बिलाकेटेड् कहते हैं। स्फोटककी परिधि रेटिम्युकोसम (Retemucosum) सिरम द्वारा स्फीत एवं मध्यस्थ सब कोष पपिड़ामें सबके साथ मिल जानेसे इसका नया भाव उपस्थित होता है। स्फोटकके मध्यसे हो कर एक हेयर किंवा ग्लैण्ड डक्ट प्रवेश करने पर भी उक्त प्रकारसे चिपक जा सकता है। छठेसे सातवें दिन पर्यन्त स्फोटकके मध्यस्थलमें स्वच्छ तथा तरल सिरम् रहता है एवं चारों तरफ क्रमशः मवाद एकत्र होते देखा जाता है। इन स्वच्छ रस तथा मवादके अन्दर एक प्रकारका आवरण रहता है, जब मवाद बढ़ जाता है तब यह अदृश्य हो जाता है, इस अवस्थाको पष्टिउल कहते हैं, इस समय गोटीके चारों ओर लाल रेखा दिखाई देती है। आठवें दिन स्फोटक मवादसे परिपूर्ण हो जानेके कारण वे गोल तथा ऊंचे दिखाई पड़ते हैं। ११से १८ दिनके मध्य गोटियोंके ऊपरके चमड़े सूख कर झड़ जाते हैं। इसके बाद गोटियोंके स्थान पर लाल लाल दाग मालूम पड़ते हैं। जब स्फोटक कुछ बड़े बड़े रहते हैं, तब वे दाग कुछ गहरे दिखाई पड़ते हैं; इन्हें Pits कहते हैं।

गोटियोंकी संख्यानुसार साधारण लक्षणोंमें भी बहुत कुछ परिवर्त्तन दिखाई पड़ता है। गोटियोंकी संख्या अधिक होने पर मस्तक, गले तथा शरीरके कई स्थान स्फीत हो उठते हैं, चमड़ा अधिक लाल एवं उसमें कण्डुयन रहनेके कारण नखाघात द्वारा बड़े बड़े फोड़े निकल आते तथा कईस्थानोंमें श्लैष्मिक झिल्लियां देखी जाती हैं, गलेके भीतर गोटियां हो जानेसे बड़ी वेदना होती है एवं खाने पीनेके समय अत्यन्त कष्ट होता है। नासिकामें गोटियां निकलनेसे नाक बहने लगती है एवं श्वास रुक रुकके चलता है। लैरिंस, ट्रेकिया या ब्रंकाई आक्रान्त होने पर खांसी, स्वरभंग प्रभृति उपस्थित होते हैं। मूत्रमार्गमें श्लैष्मिक

करने पर गोटियोंकी गति मृदु हो जाती है। कई बार देखा गया है, कि वसन्त संक्रामक होने पर गौवोंके पयोधरमें भी मैक्सिना या गो-वसन्त होता है। मानव-वसंत बीज गौवोंके उदरके निकट इनोक्युलेट करने पर शरीर के मध्य विशेष परिवर्त्तन होनेके कारण वसन्त-गोटी न निकल कर गो-वसन्त बहिर्गत होता है। उसकी क्रियायें वसन्तकी क्रियाओंकी अपेक्षा मृदु होती हैं। इस गो-वसन्त की लसिका द्वारा टीका दी जाती है।

गौके स्तनों पर गोटियां निकलनेसे उन्हें भैक्सिना (Vaccina) या गो-वसन्त कहते हैं। इस प्रकारकी गोटीके रसको काउ लिम्फ अर्थात् गो बीज कहते हैं। इसीके द्वारा टीका दी जाती है। जिस प्रणालीसे इस बीज द्वारा मनुष्यके शरीरमें टीका दी जाती है, उसे भैक्सिनेसन् कहते हैं एवं उसके द्वारा मनुष्यके शरीरमें जो गोटियां उत्पन्न होती हैं, उन्हें भैक्सिन वेसिकुल कहते हैं। सातवें दिनकी गोटीमें जो रस पाया जाता है, वह लसिका या लिम्फ् कहलाता है। वह निम्न-लिखित उपाय द्वारा रक्षा की जाती है (१) अति सूक्ष्म ग्लास्-टयुबमें, (२) दो जवड़ काचोंके मध्य, (३) लसिका कम होने पर उसके साथ गिलसिरिन् मिला कर रखते हैं। सातवें या आठवें दिन अर्थात् एरिओला होनेके पहले स्फोटकके शीर्षस्थानमें अस्त्र बेध कर लसिका ग्रहण करें। पार्श्वमें विद्ध करनेसे मध्य प्राचीरका भेद कर लसिका अस्त्रके ऊपर नहीं आ सकती, एवं उससे लसिकामें रक्त मिश्रित हो जानेकी सम्भावना रहती है। शीतकालमें ६।७ एवं ग्रीष्मकालमें ५।६ दिनोंकी गोटियोंसे बीज ग्रहण करना उचित है। एक व्यक्तिके हाथसे बीज ले कर दूसरेके हाथमें टीका देनेसे विशेष लाभ होता है। नीरोग बालककी टीकासे बीज लेनेकी विधि है। किसी बच्चेके चर्मरोग अथवा गुह्यद्वार या जननेन्द्रियमें उपदंशजनित उग्र स्फोटक किंवा सर्दी तथा गलेमें क्षत रहनेसे उसका बीज लेना उचित नहीं। परिष्कृत लैन्सेट (Lancet)का व्यवहार करना उचित है, अपरिष्कृत अस्त्र व्यवहार करनेसे चमड़ेकी उत्तेजना बढ़ जाती है। ३से ४ मासकी उम्रवाले बच्चोंको टीका देनेसे बड़ा लाभ होता है। शिशुके ज्वराक्रान्त होने पर अथवा चर्मरोग, उदरामय या दंतोद्गमकी सम्भावना रहने पर टीका नहीं देनी चाहिये। विशेष आवश्यक न होने पर १॥ वा २ वर्षके बच्चेको टीका देना उचित है। इसके अतिरिक्त कई ग्रंथकार काफ्‌लिम्फ अर्थात् गौके बछड़ेसे जो भैक्सिना उत्पन्न होता है, उसीकी लसिका द्वारा टीका देनेका परामर्श देते हैं। इसके द्वारा बच्चोंको एक बार तथा परिणत वयस्कोंको दो बार टीका देनेसे विशेष लाभ होता है।

टीका देनेका स्थान—साधारणतः जिस स्थान पर डेल्टेड् पेशी शेष होती है, उसके बीच तथा नीचे परस्पर एक या डेढ़ इंच अन्तरित स्थानका चमड़ा आकृष्ट करके अस्त्र द्वारा उपत्वक्के निम्नांश पर्य्यन्त बीज प्रवेश कराना होता है। प्रत्येक हाथमें दो टीका देना उचित है। निम्न-लिखित चार प्रणालियोंसे टीका देनेकी विधि है— (१) लैन्सेटके अग्रभागमें बीज लिप्त करके उसे वक्रभावसे महत्त चर्म पर्य्यन्त विद्ध करना चाहिये; इस तरह अस्त्राघात करना चाहिये, कि केवल विन्दुमात्र रक्त बाहर निकले। ५।६ सेकेंड तक छिन्न स्थानमें अस्त्र रख कर इसको बाहर करना चाहिये। (२) अस्त्र द्वारा समान्तराल-भावसे ५।६ छिद्र करके उसके ऊपर लिम्फ लगाना चाहिये। (३) उल्की देनेके तरीकेसे सूई द्वारा उक्त स्थान विद्ध करके उसके ऊपर लिम्फ संलग्न करेंगे। (४) अस्त्र किंवा लाइकर एमोनिया द्वारा ऊपरका चमड़ा उन्मोचन करके बीज देना चाहिये।

गोटीको गति—टीका देनेके बाद तीसरे दिन छेदे हुए स्थानमें लाल एवं कुछ ऊंचा पैप्युल नजर आता है। दिन दिन उसकी ऊंचाई तथा लाली क्रमशः बढ़ती जाती है। ५।६ दिनके मध्य पैप्युल-समूह भेसिकेलमें परिणत हो जाते हैं। वे देखनेमें गोले या अण्डाकार होते हैं। उनके बीचका अंश चिपटा हुआ रहता है एवं रंग कुछ नीलापन लिये हुए उजला होता है। सातवें दिनके शेष भागमें उनके चारों ओर लाल रंगकी एक रेखा दिखाई पड़ती है, उसे एरिओला (Areola) कहते हैं एवं उस समय गोटियां पूरी तरह निकल आती हैं। ८वें दिनसे गोटियां क्रमशः बढ़ते बढ़ते पूर्णरूपसे परिपुष्ट हो जाती हैं। ये गोटियाँ देखनेमें गोल एवं कुछ ऊपर उठी हुई मालूम पड़ती हैं। इनका रंग मुक्ताकी तरह उज्ज्वल तथा इनके

आँखोंको धुलाते रहना चाहिये। इस कामके लिये बोरिक् लोशन, ... आदि देना आवश्यक है। ... होने पर कोई कोई ... देना चाहिये। किन्तु ... रहने पर ... करना ठीक नहीं। ... देखा जाता है।

(५) ... चिकित्साके समय ... कार्बोलिक, ... तथा ... कार्बोलिक, ... प्रयोग करनेकी विधि है। कोई कोई ... इत्यादि देनेको कहते हैं।

(६) उपसर्गोंकी चिकित्सा—... होने पर आँखों के ऊपर ... कार्बोलिक ... (१ औंस ... १ ड्राम) ... देना उचित है। ... होने पर ... लगाना चाहिये। ... होने पर ... प्रयोग करना चाहिये। ... होने पर ... कार्बोलिक ... 'लिम्फ' ... देना चाहिये।

(७) पृथक्करण—जब तक रोगी ... तब तक ... नहीं देना चाहिये। ... किसी ... वसन्तरोगके ... होने पर ... नहीं रहने ... वसन्तरोगाक्रान्त रोगीके ... करने पर उसके ... देना चाहिये। ... जला देना चाहिये। इस रोगके ... होने पर ... टीका लेना चाहिये। ... वसन्तरोगके ... होने पर ... टीका देना चाहिये।

कारण यह है, कि टीका लेने पर वसन्तरोग होने पर ... अधिक हानिकारी नहीं होता। वसन्तरोगको ... लिम्फ ... प्रयोग करना उचित है
... १० ग्रेन।
... १५ बूंद।
... १ औंस।
... एक खुराक।
टीकाका (Inoculation)

इसमें ... द्वारा टीका देना होता है। टीका देनेके दूसरे दिन ... दिखाई पड़ता है। ... दिन यह स्थान ... होता है एवं इस स्थान पर एक ... उत्पन्न होता है। ... इसके चारों ओर ... जाता है। इस समय ... होता है एवं ... दिनके अन्दर ही ... दिखाई देना जाती है। ... हो जाती है। ... प्रायः ... होते जाते हैं सही, किन्तु कभी कभी ... हो सकता है।

वैरिओलोइड् (Varioloid)—टीका देनेके बाद वसन्तरोग होने पर उसे वैरिओलोइड् कहते हैं। इसमें दूसरे ... प्रकाशित नहीं होते। ... एवं ... होनेके साथ ही ... जाता है। ... होने पर भी ... सूख जाता है। ... नहीं होता। ... रोगीके ... दिखाई पड़ते हैं, उसे रैश (Rash) कहते हैं।

चेचकका टीका (Vaccination)

बहुत दिन पहले ... लोगोंका ... था, कि गाय के ... लोगोंको ... होता है। १७९६ ईस्वी ... १७९८ ईस्वी ... जेनर (Dr. Jenner) ने ... किया था। ... इस बातका ... किया था, कि मनुष्यके शरीरमें ...

करने पर गोटियोंको गति मृदु हो जाती है। कई बार देखा गया है, कि वसन्त संक्रामक होने पर गौवोंके पयोधरमें भी भैक्सिना या गो वसन्त होता है। मानव-वसंत बीज गौवोंके उदरके निकट इनोक्युलेट करने पर शरीर के मध्य विशेष परिवर्त्तन होनेके कारण वसन्त-गोटी न निकल कर गो-वसन्त वहिर्गत होता है। उसकी क्रियाएं वसन्तको क्रियाओंकी अपेक्षा मृदु होती हैं। इस गो-वसन्त की लसिका द्वारा टीका दी जाती है।

गौके स्तनों पर गोटियां निकलनेसे उन्हें भैक्सिना (Vaccina) या गो-वसन्त कहते हैं। इस प्रकारकी गोटीके रसको काउ लिम्फ अर्थात् गो बीज कहते हैं। इसीके द्वारा टीका दी जाती है। जिस प्रणालीसे इस बीज द्वारा मनुष्यके शरीरमें टीका दी जाती है, उसे भैक्सिनेसन् कहते हैं एवं उसके द्वारा मनुष्यके शरीरमें जो गोटियां उत्पन्न होती हैं, उन्हें भैक्सिन पेष्ट्यु कहते हैं। सातवें दिनकी गोटीमें जो रस पाया जाता है, वह लसिका या लिम्फ् कहलाता है। वह निम्न-लिखित उपाय द्वारा रक्षा की जाती है (१) अति सूक्ष्म ग्लास् ट्यूबमें, (२) दो जगह कांचोंके मध्य, (३) लसिका कम होने पर उसके साथ गिलसिरिन् मिला कर रखते हैं। सातवें या आठवें दिन अर्थात् परिवोला होनेके पहले स्फोटकके शीर्षस्थानमें अस्त्र वेध कर लसिका ग्रहण करें। पार्श्वमें विद्ध करनेसे मध्य प्राचीरका भेद कर लसिका अस्त्रके ऊपर नहीं आ सकती एवं उससे लसिकामें रक्त मिश्रित हो जानेको सम्भावना रहती है। शीतकालमें ६।७ एवं ग्रीष्मकालमें ५।६ दिनोंकी गोटियोंसे बीज ग्रहण करना उचित है। एक व्यक्तिके हाथसे बीज ले कर दूसरेके हाथमें टीका देनेसे विशेष लाभ होता है। नीरोग बालकको टीकासे बीज लेनेकी विधि है। किसी बच्चेके चर्मरोग अथवा गुह्यद्वार वा जननेन्द्रियमें उपदंशजनित उग्र स्फोटक किंवा सर्दी तथा गलेमें क्षत रहनेसे उसका बीज लेना उचित नहीं। परिष्कृत लैन्सेट (Lancet)का व्यवहार करना उचित है, अपरिष्कृत अस्त्र व्यवहार करनेसे चमड़ेकी उत्तेजना बढ़ जाती है। २से ४ मासकी उम्रवाले बच्चोंको टीका देनेसे बड़ा लाभ होता है। शिशुके ज्वराक्रान्त होने पर अथवा चर्मरोग, उदरामय या दंतोद्गमको सम्भावना रहने पर टीका नहीं देनी चाहिये। विशेष आवश्यक न होने पर १॥ वा २ वर्षके बच्चेको टीका देना उचित है। इसके अतिरिक्त कई ग्रंथकार काफ्लिम्फ अर्थात् गौके बछड़ेसे जो भैक्सिना उत्पन्न होता है, उसीकी लसिका द्वारा टीका देनेका परामर्श देते हैं। इसके द्वारा बच्चोंको एक बार तथा परिणत वयस्कोंको दो बार टीका देनेसे विशेष लाभ होता है।

टीका देनेका स्थान—साधारणतः जिस स्थान पर डेलटेड् पेशी शेष होती है, उसके बीच तथा नीचे परस्पर एक वा डेढ़ इंच अन्तरित स्थानका चमड़ा आकृष्ट करके अस्त्र द्वारा उपत्वक के निम्नांश पर्य्यन्त बीज प्रवेश कराना होता है। प्रत्येक हाथमें दो टीका देना उचित है। निम्नलिखित चार प्रणालियोंसे टीका देनेको विधि है—(१) लैन्सेटके अग्रभागमें बीज लिप्त करके उसे वक्रभावसे प्रकृत चर्म पर्य्यन्त विद्ध करना चाहिये; इस तरह अस्त्राघात करना चाहिये, कि केवल विन्दुमात्र रक्त बाहर निकले। ५।६ सेकेंड तक छिन्न स्थानमें अस्त्र रख कर इसको बाहर करना चाहिये। (२) अस्त्र द्वारा समान्तरालभावसे ५।६ छिद्र करके उसके ऊपर लिम्फ लगाना चाहिये। (३) उल्की देनेके तरीकेसे सूई द्वारा उक्त स्थान विद्ध करके उसके ऊपर लिम्फ संलग्न करेंगे। (४) अस्त्र किंवा लाइकर एमोनिया द्वारा ऊपरका चमड़ा उन्मोचन करके बीज देना चाहिये।

गोटीको गति—टीका देनेके बाद तीसरे दिन छेदे हुए स्थानमें लाल एवं कुछ ऊंचा पैप्युल नजर आता है। दिन दिन उसकी ऊंचाई तथा लाली क्रमशः बढ़ती जाती है। ५।६ दिनके मध्य पैप्युल-समूह भेसिकेलमें परिणत हो जाते हैं। वे देखनेमें गोले या अण्डाकार होते हैं। उनके बीचका अंश चिपटा हुआ रहता है एवं रंग कुछ नीलापन लिये हुए उजला होता है। सातवें दिनके शेष भागमें उनके चारों ओर लाल रंगकी एक रेखा दिखाई पड़ती है, उसे परिवोला (Areola) कहते हैं एवं उस समय गोटियां पूरी तरह निकल आती हैं। ८वें दिनसे गोटियां क्रमशः बढ़ते बढ़ते पूर्णरूपसे परिपुष्ट हो जाती हैं। ये गोटियां देखनेमें गोल एवं कुछ ऊपर उठी हुई मालूम पड़ती हैं। इनका रंग मुक्ताकी तरह उज्ज्वल तथा इनके

बच्चे पर आक्रमण करता है, किन्तु कभी कभी युवक व्यक्ति तथा वयस्क स्त्रियोंको भी आक्रान्त होते देखा जाता है। कोई कोई कहते हैं, कि यह भी एक प्रकारका वसन्तरोग है; किन्तु परीक्षा करके देखनेसे अनुमान होता है, कि यह एक स्वतंत्र रोग है। कारण यह है, कि प्रकृत-वसंत तथा पान-वसन्तमें मूलतः बहुत पृथक्ता देखी जाती है। अणुवीक्षण द्वारा विशेष पर्य्यवेक्षण करके देखा गया है, कि इसकी लसिका तथा मवादके मध्य एक प्रकारका सूक्ष्म उद्भिज विद्यमान है।

किसी किसी समय यह १० से १८ दिन पर्य्यन्त गुप्तावस्थामें रहता है, उस समय उसमें कोई विशेष लक्षण नहीं देखे जाते। फिर किसी समय ज्वरका कोई लक्षण उपस्थित न हो कर ही पहले कण्डु बहिर्गत होते देखा जाता है। किंतु कभी कभी कण्डु बहिर्गत होनेके २४ या ३६ घंटा पहले शिरोवेदना, आलस्य तथा सामान्य ज्वर उपस्थित होता है एवं सामान्य खांसी तथा वायु-नलीके प्रदाहके सभी लक्षण वर्त्तमान रहते हैं। ज्वरके प्रथम या द्वितीय दिवस सहसा स्फोटकें निकल आते हैं। ये पहले वक्षस्थल तथा स्कन्धमें दिखाई पड़ते हैं, इसके बाद ४।५ रात्रिके मध्य ही क्रमशः सारे शरीरमें फैल जाते हैं एवं मुखमण्डल, सामान्य भावमें आक्रान्त होता है। किसी किसी ग्रन्थकारके मतानुसार पहलेसे ही स्फोटकोंके मध्य जलके समान थोड़ा थोड़ा रस वर्त्तमान रहता है, किन्तु अधिक समय किंचित् उच्च तथा उज्ज्वल लाल वर्ण दाग बाहर होता है। यह दाग चार पाँच घंटेके भीतर ही रस गोटियोंमें परिणत होते देखा जाता है। उस समय गोटियोंके देखनेसे मालूम पड़ता है, मानो खौले हुए पानीका छींटा दे कर रोगीकी देहमें फफोले उत्पन्न किये गये हों। २४ घंटेके मध्य भेसिकेल्के भीतरका रस कुछ गदला हो जाता है एवं तीसरे दिन कई एक भेसिकेल् मवादसे भरी हुई गोटियोंकी तरह देखे जाते हैं। भेसिकेलसमूह देखनेमें गोल अथवा अंडाकार एवं वसन्तकी गोटीके समान होते हैं। इनका ऊपरी हिस्सा चिपटा किंवा इनका कोटर विभक्त नहीं रहता। छेद कर देनेसे गोटियाँ बिलकुल सिकुड़ जाती हैं और परिचोला नहीं रहता। २४ घंटेके अन्दर उक्त गोटियाँ कुछ गाढ़ा तथा अस्वच्छ हो पड़ती हैं। चौथे तथा पाँचवें दिन कण्डु शुष्क हो जाता है एवं उस पर बारीक झिल्ली पड़ जाती है। इसके बाद धीरे धीरे ऊपरका शुष्क चमड़ा गिर जाता है। इस तरह पपरीके स्खलित हो जाने पर कुछ दिनों तक शरीरमें सामान्य लाल दाग रहता है; किसी किसी स्थानमें गहरे दाग देखे जाते हैं। साधारण लक्षणोंके मध्य सामान्य ज्वर, सर्दी तथा चमड़ेमें कंडुए वर्त्तमान रहते हैं एवं शरीर-से एक प्रकारकी गंध निकलती रहती है।

निर्णयतत्त्व—टीका देनेके बाद वसन्तरोग होने पर कभी कभी जल-वसंत होनेका भ्रम हो सकता है। वसंत-की गोटी निकलनेके पहले कमरमें दर्द, उछाल, शिरमें पीड़ा आदि कई लक्षण दिखाई पड़ते हैं, किन्तु इस पीड़ा-में ये लक्षण प्रगट नहीं होते। जल-वसन्तका आवरण वसन्तकी तरह दृढ़ नहीं होता। भेसिकेल् अवस्थामें परिणत होने पर निम्नभागमें वसन्तकी गोटियोंके समान इसकी गोटियाँ ऊंची या कठिन नहीं होतीं। सूईसे छिद्र करने पर भिकेल्पाक्स पूर्णतया संकुचित हो जाता है।

भावीफल—इसमें रोगीको अधिक कष्ट भोगना नहीं पड़ता, यह रोग आसानीसे आराम होता है; किन्तु आरोग्य लाभ करने पर भी रोगी कुछ दिनों तक दुर्बल रहता है।

चिकित्सा—इसमें किसी प्रकारके औषधिके प्रयोग करनेकी आवश्यकता नहीं होती। इस रोगमें सर्वदा पेट साफ रखना चाहिये एवं हलका भोजन देना चाहिये। ज्वर तथा खांसी रहने पर उसके निवारणार्थ उपयुक्त औषधियोंका प्रयोग करना चाहिये। साधारणतः गृहस्थ लोग रोगीको पाचक खिलाते हैं, उसे वसंतकी "झाड़ी" कहते हैं। बनियेकी दूकान पर वसंतकी 'झाड़ी' खोजनेसे पूरे-परिमाणमें मिलती है।

वसंतऋतुमें हम लोगोंके देशमें वसंत रोगका प्रादु-र्भाव होता है। इस रोगके उपद्रवकी शांतिके लिये हम लोगोंके देशमें शीतलाकी पूजा तथा स्तवकवचादि पाठ होता है। माँ शीतला ही वसंतरोगकी अधिष्ठात्री देवी हैं एवं ज्वरासुर उनका सहकारी है।

स्वतंत्र है। वसन्तरोगकी चिकित्सा कर किसी डोम पंडितने गवर्नमेंटसे डिप्लोमा प्राप्त किया है।

शीतलाके पंडित लोग कहते हैं एवं देवकीनन्दन, कविवल्लभ तथा नित्यानन्दके शीतला-मंगलग्रन्थमें लिखा भी है, कि मालकुशी, घुकुडिया, चामदल प्रभृति ६४ प्रकारके वसन्तरोग होते हैं।

चौदह प्रहर अर्थात् डेढ़ दिन ज्वर भोग करनेके बाद प्रायः वसन्त दिखलाई देता है एवं शिरमें पीड़ा तथा जड़ैया बुखार हो वसंतरोगके आरम्भ होनेका प्रधान लक्षण है। विभिन्न प्रकारके वसंतके नाम तथा वसंतरोग मुक्तिके निदानभूत शीतलास्तव एवं शीतलाके गान शीतलादेवीके प्रसंगमें वर्णन किया गया है। शीतला देखो।

वसन्तलता (सं० स्त्री०) नायिकाभेद।

वसन्तललना (सं० स्त्री०) शुक्लयूथी, सफेद जुही।

वसन्तलेखा (सं० स्त्री०) राजकन्याभेद। (राजतर० ७।६५७)

वसन्तवाक् (सं० पु०) चौदह तालोंमेंसे एक। (संगीत-दामोदर)

वसन्तवितल (सं० पु०) विष्णुकी एक मूर्त्ति।

वसन्तव्रण (सं० क्ली०) वसंत नामक रोगजनित व्रण, मसूरिका।

वसन्तव्रत (सं० पु०) कोकिल।

वसन्तशेखर (सं० पु०) किन्नरभेद।

वसन्तसख (सं० पु०) वसन्तस्य सखा (राजाहःसखि-भ्यष्टच् । पा ५।४।९१) इति टच्। कामदेव।

वसन्तसखा (सं० पु०) वसन्तसख देखो।

वसन्तसमयोत्सव (सं० पु०) वसंतसमयस्य उत्सवः। वसंत समयका उत्सव, वसंतोत्सव, वह उत्सव जो फाल्गुन मासकी पूर्णिमा तिथिमें श्रीकृष्णके उद्देशसे होता है।

वसन्तसेन (सं० पु०) राजपुत्रभेद। (कथासरित्सा० ३३।६१)

वसन्तसेना (सं० स्त्री०) महाकवि राजा शूद्रक प्रणीत मृच्छकटिक नामक प्रकरणकी एक नायिका। अवन्ती-पुरीमें चारुदत्त नामके एक सार्थवाह ब्राह्मण युवक थे। वसंतसेना वेश्यवनिता होने पर भी इस दरिद्र युवककी गुणानुरागिणी हो गई। कविकी वर्णनासे वसंतसेना वसंतशोभाकी तरह रमणीया है।

वसन्ताख्य (सं० पु०) विभीतकवृक्ष, बहेड़ा।

वसन्ताध्ययन (सं० क्ली०) वसंतसहाचरित अध्ययन।

वसन्तिका (सं० स्त्री०) एक अप्सराका नाम।

वसन्तोत्सव (सं० क्ली०) वसन्तस्य उत्सवः। फाल्गुनो-त्सव, होलीका उत्सव। फाल्गुनमासकी पूर्णिमाके दिन वैष्णवोंके साथ श्रीकृष्णके प्रिय भक्तको वसंतका पूजो-त्सव करना होता है। इस उत्सवकी विधिव्यवस्था आदि भविष्योत्तरखण्डमें भगवान्‌ने स्वयं ही युधिष्ठिर-को कही है। इसकी फलश्रुतिको ले कर ऐसा कहा है, कि जो मनुष्य शास्त्रानुसार इस फाल्गुनोत्सवका अनुष्ठान करेगा, मेरे प्रसादसे उसके सभी मनोरथ सिद्ध होंगे। जाड़ा बीतते ही वसंतकालमें जो वासंती-पूर्णिमाके दिन सवेरे चन्दन सहकृत हुआ चूतकुसुम खायेगा, वह निश्चय ही सौ वर्ष तक सुखसे अपना जीवन बिता-येगा। (हरिभक्तिवि० २४ वि०)

२ एक उत्सव जो प्राचीनकालमें वसंतपञ्चमीके दूसरे दिन होता था। इसे मदनोत्सव भी कहते थे। इसमें उद्यानोंमें जा कर लोग वसंत और कामदेवका पूजन करते थे। होलीका उत्सव इसीकी परंपरा है।

वसन्तोत्सवमण्डल (सं० क्ली०) हरिताल, हरताल।

वसमा (अ० पु०) १ नीलका पत्ता। २ उबटन। ३ खिजाब। ४ एक प्रकारका छपा कपड़ा जो चांदीके वर्क लगा कर छापा जाता है।

वसह न (सं० पु०) १ नाना वेशधारी। २ अग्नि।

वसव (वृषभ शब्दका कनाड़ी अपभ्रंश)—दाक्षिणात्यके वीरशैव या लिङ्गायत-सम्प्रदायके प्रवर्त्तक। वीरशैवोंके निकट ये शिवके अनुचर नंदीके अवतार समझे जाते हैं। दाक्षिणात्यमें आज भी लाखों मनुष्य इस वसवके मतानुसार चलते हैं, इसलिये ये एक सामान्य व्यक्ति नहीं थे। इनका माहात्म्य और धर्ममत वीरशैवोंके 'वसव-पुराण' और 'छन्नवसवपुराण' में वर्णित है।

वसवपुराणमें लिखा है,—जैन, बौद्ध और चार्वाकों के प्रभावसे भारतभूमिसे शैवधर्म एक प्रकारसे विलुप्त होनेका उपक्रम हो गया। उस समय नारद ऋषिने

[illegible] हुआ। [illegible] [illegible]

[illegible] [illegible] कहा,—मैं [illegible] [illegible] किया, जिससे [illegible]

[illegible] किया। [illegible] किंतु वे [illegible] क्योंकि कहा—मैं [illegible]

इस समय [illegible] हुआ। [illegible] [illegible]

[illegible]

[illegible] हो गया।

[illegible] किया। [illegible]

[illegible] कर दिया। [illegible]

[illegible] किया। [illegible]

[illegible]

तक हैं, तब तक मुझे किस बातकी चिंता है?' यह कह कर उन्होंने राजाका धनागार दिखा विस्मित कर दिया।

एक दिन राजसभामें वसवने भस्म लगानेका माहात्म्य कहा, राजा जैन धर्मावलम्बी थे। भस्म लगाने या लिङ्गकी उपासना पर उनको तनिक भी श्रद्धा न थी। वसवके मुखसे भस्मका माहात्म्य सुन राजा हँस पड़े और एक नीच जातिकी स्त्रीको दिखा कर उनसे पूछा, 'यह देखो भस्मावृत हंडीमें कैसी पवित्र सुरा ले कर जा रही।' वसवने उसी समय उत्तर दिया—ऐसे पवित्र बरतनमें सुरा कदापि नहीं रह सकती। यह कह कर राजाको हंडीमें सुराके बदले दूध दिखा दिया। सब कोई चमत्कृत हो गये। कुछ दिन बाद एक वैदांतिक कल्याणकी राजसभामें आ उपस्थित हुए। उनके साथ बहुत-से शिष्य और दश हाथी पर लदी हुई पोथियां थीं। सभामें जितने सभ्य बैठे थे, सबोंने तो वैदान्तिकका सम्मान किया, पर वसवने उनकी ओर आंख भी टेढ़ी न की। वैदान्तिकने यह देख लिया। उन्होंने उनकी ओर बता कर राजासे पूछा 'ये भस्मोभूत मूर्त्ति कौन हैं?' राजाने वसवकी बड़ाई करते हुए अपना मंत्री बताया। अनन्तर वैदांतिक उनसे शास्त्रालाप करने लगे। वसव एक एक करके उनके तर्कों को काटने गये। अन्तमें वैदांतिक शिवकी निन्दा करने लगे। तब वसवने कहा,—शिवकी निन्दा करते जानेमें ब्रह्माका एक सिर गया था। उस प्रकार शिवनिन्दकका भी सिर लेना उचित है, ऐसे व्यक्तिके साथ शास्त्रार्थ करनेमें शोभा नहीं होती। खड़का पुतला ऐसे अर्वाचीनके साथ शास्त्रार्थ कर सकता है। वैदांतिकने खड़का एक पुतला बना कर वसवको दिखाया। क्या आश्चर्य! वसवने उसी खड़में जीवनदान कर उसीसे वैदांतिकका दर्प चूर्ण किया। पीछे वैदांतिकने हार खा कर अपने शिष्योंके सहित वसवका शिष्यत्व ग्रहण किया।

एक दिन बहुत लोगोंके कोलाहलसे विज्जलराजकी नींद टूट गई। वे उस गभीर रात्रिमें प्रासादकी छत पर चढ़ कर क्या देखते हैं, कि चारों ओर लोकारण्य है, आलोकमालासे समस्त पथ ऐसा हो गया है मानों दिवाकर दिनके बदले आज रातहीमें अपनी सारी ज्योति खतम कर देंगे। इनके अलावे और क्या देखते हैं, कि लाखों लिङ्गायत शैव उनकी राजधानी घेरे हुए हैं और मन्त्री उन्हें धन बांट रहे हैं। यह देखते ही उनको क्रोधाग्नि धधक उठी। दूसरे दिन उन्होंने वसवको खूब डांट डपट की। वसव यह डांट-डपट कब सुननेवाले थे। उन्होंने कान पर हाथ रखा, पराधीनता उन्हें असह्य जान पड़ी। उसी समय उन्होंने राजाका जो कुछ था उसे अर्पण कर कल्याण राजधानी छोड़ चले।

प्रखर रौद्रतापमें अनाहार चलते चलते जब बारह कोस आये, तब एक पुरोहितसे उनकी मुलाकात हुई। पुरोहित बड़े यत्नसे उन्हें अपने घर लिवा गये। वहां भगवान्‌ने उन्हें स्वप्न दिया, 'वत्स! चिन्ता मत करना! अमुक स्थानके गर्त्तमें तुम एक हार पाओगे, उसीसे तुम्हारी सारी तकलीफें दूर होंगी।' सबेरा होने पर वे उस गर्त्तके पास गये। गर्त्तमें हाथ देते ही एक विषधर सांप निकल पड़ा। भगवान्‌की लीला अपार है, छूते ही वह सांप मूल्यवान् हार हो गया। यह हार बेच कर वसवने प्रभूत धन पाया एवं उसीसे महासमारोहके साथ फिर जङ्गमकी सेवा करने लगे। विज्जलराजने उनकी अपूर्व क्षमता पर विमुग्ध हो फिर उन्हें मन्त्रित्व प्रदान किया। वसवकी क्षमता और भी बढ़ गई, हजारों मनुष्य आ कर उनके भक्त हो गये।

छन्नवसवपुराणमें लिखा है, कि वसवके चरित्रबल, ज्ञानप्रभाव और अलौकिक शक्तिके फलसे शैवसम्प्रदाय प्रतिष्ठित हुआ। उस समय वसवकी ज्येष्ठा भगिनी नागलाम्बिकाके गर्भमें स्वयं भगवान् शिव अवतीर्ण हुए। नागलाम्बिका चिरकुमारी अथच तपस्या थी। उनका गर्भ देख नाना आदमी नाना तरहकी बातें बोलने लगे। यहां तक, कि राजाके पास भी इसकी शिकायत हुई। नाना विचार करनेके लिये नागलाम्बिकाको बुलवा कर इस गर्भके होनेका कारण पूछा। साध्वी कुमारीने अकुण्ठितभावसे राजासे कहा, 'स्वयं भगवान् मेरे गर्भमें आये हैं। यह उनकी देवपरिचर्याका फल है।' राजाने इतनेमें ही उनकी बातका विश्वास न किया; किन्तु क्या आश्चर्य नागलम्बिकाके गर्भसे स्वयं भगवान्‌ने हुंकार किया। सभी अचम्भेमें पड़ गये। यथा-

[illegible]

[illegible]

[illegible]

[illegible]

[illegible] है —

[illegible]

([illegible])

[illegible]

[illegible]

[illegible]

[illegible]

[illegible]

[illegible] है —

[illegible]

[illegible] है ।

जीवहत्याके बाद रसायनकार्य शीघ्र ही सम्पादन करना चाहिए; कारण शवदेहसे तुरत चरवी अलग न करनेसे उसके साथ संयुक्त तन्तु और मांससूत्रके साथ साथ चरवी भी सड़ जाती है।

समूचे संसारके मध्य सिर्फ रूसराज्यमें ही सर्वापेक्षा अधिक परिमाणमें वसा उत्पन्न होती है। उस देशके बाशिन्दे प्रायः प्रति वर्ष २५ करोड़ पौंड वजनको वसा विभिन्न देशोंमें भेजते हैं। इसके अतिरिक्त वे लोग अपने देशवासियोंके व्यवहारके लिये वसा तैयार करते हैं। इतनी वसा साधारणतः यूरोपीय रूसराज्यके दक्षिणस्थ पोण्टाइन ष्टेपी (Pontine steppes) नामक सुविस्तृत तृणप्रान्तके मध्य ही संगृहीत होती है। वहां जितने सुवृहत् वसाके कारखाने हैं, उन्हें Salgans कहते हैं। ये कारखाने केवल ग्रेट-रूसके अधिवासियों की ही देख-रेखमें परिचालित होते हैं। वहांके कर्मचारी लोग हजारों गवादि पशु एक साथ खरीदते और एक वर्ष तक अच्छी तरह खिला कर उसका शरीर चरबीसे भरा देते हैं। जब वे लोग इन पशुओंको चरवी निकालनेके उपयुक्त समझते, तब सबोंको कसाई-वाड़ामें भगा ले जाते और वहीं उन्हें मारते हैं।

इन सब कसाई-वाड़ोंमें कसाई लोगोंके बहुत-से घर हैं। उनके बीच एक निहत गोमांस-विक्रयस्थान, कितने में मांससिद्ध करनेके लिये वायलर प्रतिष्ठित और किसी घरमें चमड़े रहते हैं। दूसरे कई घर दफतरखाने और कर्मचारियोंके वासभवन हैं। ग्रीष्मकालमें कोई भी कसाई-वाड़ामें नहीं रहता, केवल कुत्ते और शिकारी पक्षिगण वहां मांसकी गंध ले विचरते रहते हैं। ग्रीष्म बीत जाने पर वे पहले थोड़ा मोटा ताजा बैल वहां ला कर वध करते हैं। इसके बाद वर्षा ऋतुमें वे लोग यथार्थरूपसे कार्यारम्भ करते हैं। तब दलके दल कसाई-वाड़ामें पशु ला कर नृशंसभावसे निहत किया करते हैं। पशु-हत्याके बाद पशुका चमड़ा उतारते और बिना चरवीवाला मांस बाजारमें बेचनेके लिये भेजते हैं। निष्ठुरतासे मारनेके कारण वह मांस इतना खराब होता, कि कोई भद्र पुरुष वह मांस नहीं खरीदते। सिर्फ दरिद्र ही खरीदता है।

अवशिष्ट शवदेहको वे लोग टुकड़ा टुकड़ा करते एवं उसे वायलर (Boiler)-में डाल कर चरवी बाहर करते हैं। एक एक वायलरमें १० से १५ बैलों तकका मांस अंट सकता है। हर एक कसाई-वाड़ामें ऐसे ५ या ६ वायलर होते हैं। तदनन्तर कड़ाहेके गालमें मांस लग कर जल उठता है, उस वायलरके मध्य वे लोग थोड़ा जल देते हैं। कड़ाहस्थित मांसास्थिको मज्जा (Soup) कहते हैं। जब कड़ाहके ऊपर चरवी गल कर उठती है, तब हत्थेसे काट कर उसे पीपेमें रखते हैं। उसके बाद वह कस कर वैदेशिक वणिकोंके हाथ भिन्न देशोंमें भेजी जाती है। पहले जो वसा उबलाती है, वह सबोंसे सफेद और अच्छी तथा पीछेवाली वसा कुछ हल्दी रंगकी होती है। पीपेके अभावमें चमड़ेको सिलाई करके एक एक थैली बनाई जाती है। दूसरी श्रेणीकी वसा उत्थित होने पर वायलर पात्रस्थ अवशिष्ट मांस और अस्थि-कलको भयानक चापसे एक प्रकारकी निकृष्ट वसा निकाली जाती है। यह मैली गंदी वसा साधारणतः कलके चक्केमें व्यवहृत होती है।

एक मोटे ताजे बैलसे साधारणतः २५० से २१० पौंड वसा निकलती है, जिसका मूल्य १५० रुबुलसे कम नहीं होता।

इन सब पशुओंकी आंत भी बरबाद होने नहीं पाता। वसाके व्यवसाय करनेवाले सूअर भी रखते हैं, सूअर वह आंत खाते हैं। इसके खानेसे सूअरकी भी चरबी बढ़ती है। पीछे इन सूअरोंको भी चरवी निकाली जाती है।

वसाके व्यवसायी लोग सफेद और हल्दी रंगकी वसाके मध्य जो पीपा बत्तीमें और जो साबुन बनानेके काममें आता है, उसे अलग कर बेचते हैं।

जीव-शरीरकी स्थान विशेषजात चरवी कड़ी और मुलायम होती है। वृक्क (गुरदा) की पार्श्वस्थ चरवी स्वभावतः ही कड़ी होती है, लेकिन अस्थिगह्वरके मध्य जहां जहां चरवी उत्पन्न होती है, वह उससे बहुत मुलायम होती है। इसके अलावे मांसपेशी और अन्यान्य कमनीय देहांशमें जो चरवी रहती है, वह सबोंसे कोमल होती है और उसमें आधा तेल मिला हुआ रहता है। इस तरह जीवदेहके भी तारतम्यानुसार वसा कड़ी और मुलायम होती

बाद स्वयं भगवान शिव भूमिष्ठ हुए, इनका नाम वसु-प्रभ्रय था। वसव और उनके मतानुवर्ती भक्तोंने पहले होसे रास्ता साफ कर रखा था। अब भगवान्ने भग-वासी हो कर उसने मतकी प्रतिष्ठा की। वसव और लिङ्गायत शब्दोंमें ब्सका विवरण देखो।

वसवास (अ० पु०) १ भ्रम, दुबिधा, संदेह। २ भुलावा, बहकावा, भ्रमोत्पादन या मोह।

वसवासी (अ० वि०) १ विश्वास न करनेवाला, संशयात्मा, वहमी। २ भुलावेमें डालनेवाला, बहकानेवाला।

वसश (सं० स्त्री०) वश, अर्थ समाप्ति।

वसा (सं० स्त्री०) वसते वस्ते या वस-निवासे वस-आच्छादने वा वस अच्। स्त्रियामाप्। १ मांसरोहिणी २ मेदो धातु। (राजनि०) ३ शुद्ध मांसमय स्नेह, चरबी।

वसा और स्नेहकी पृथकता बतलाते हुए महीधरने लिखा है—

"शुद्धमांसस्य यः स्नेहः मेदसः सा वसा मता॥"

(शुक्लयजु० २५।६ भाष्य)

वैद्यक शास्त्रमें वसाके बहुत-से गुणोंका उल्लेख है। बहुत प्राचीन कालसे ही वसाका प्रचलन है। तैत्ति-रीय संहितामें 'वसा होम' (६।३।११।१) की व्यवस्था देखी जाती है। सुश्रुतमें वराहवसाकी उपकारिता दिख-लाई गई है। चर्मरोगमें शूकर-वसानिर्मित प्रलेप शरीर-के चमड़ेका विशेष उपकारी होता है। वातरोगमें शूकर-का वसाकी मालिश करनेसे बड़ा उपकार होता है।

इस वराहवसा या शूकरकी चरबीकी ऐतिहासिकताके सम्बन्धमें हम भारतके सुविख्यात सिपाही विद्रोहका उल्लेख कर सकते हैं। जिस टोटाको ले कर १८५७ ई०में हिन्दू तथा मुसलमान सिपाही-दल अंग्रेज कम्पनीके विपक्षमें अभ्युत्थित हुआ था, वह टोटा उक्त दोनों जाति-योंके निषिद्ध गो तथा शूकरकी वसाके योगसे तैयार किया गया था, ऐसा उनका विश्वास था।

प्राणियोंके शरीरके मेद या चरबी अग्निके योगसे गला कर उसके सिल्लिक्त पदार्थ (Membranous matters) अलग कर देनेसे घीके समान तथा दानेदार वसा पाई जाती है। इस वसामें किसी तरहका स्वाद नहीं पाया जाता, इसे एक प्रकारका स्वादहीन पदार्थ भी कह सकते हैं। वाणिज्यके लिये देशदेशान्तरमें जो वसा भेजी जाती है, वह बहुत कुछ मललिप्त और कुछ हल्दी रंगकी होती है। प्राणियोंके भेदानुसार एवं पदार्थ-के तारतम्यानुसार यह साधारणतः बहुत प्रकारकी होती है। इनमेंसे जो वसा अच्छी होती है, वह औषध (मल-हम ointment आदि) और बत्ती (Candles) बनानेके काममें आती है। वसाका मलहम या प्रलेप बना कर फोड़े पर लगानेसे फोड़ा जल्द ही आराम हो जाता है। Tallow candles या चरबीकी बत्ती जो झाड़ फानूस, सेज, समादान आदिमें जलाई जाती है, वह भी उत्तम श्रेणीकी वसासे बनती है। खराब वसासे साबुन (Soap) तैयार होता है। चमड़ेको पालिश (Leather dressing) और नरम करनेमें चरबीकी बड़ी ही आवश्यकता होती है। कल-कब्जोंमें (Machinery) और गाड़ी आदिके चक्के-में चरबी न लगानेसे काममें बड़ा व्याघात पहुंचता है।

इंगलैण्ड, फ्रान्स, जर्मनी, स्काण्डिनेविया, इटली, रूस आदि अंगरेजी राज्योंमें साबुन और बत्ती बनानेके लिये चरबी प्रचुर परिमाणमें गलाई जाती है। अभी अमेरिका, जापान और भारतके नाना स्थानोंमें जीव-देहकी चरबीसे वसा गला कर साबुन, बत्ती आदि बनाने-के बहुत-से कारखाने हो गये हैं। इन सब जगहोंमें जिस तरह वसा गलाई जाती है वह नीचे लिखा जाता है—

कसाई लोग जानवरोंका मांस ... चरबीमिश्रित (fast and suit) कारखानेमें ... (Renderer) इस वसाको ... फेंक देते और उसे आगसे ... धीरे धीरे गला कर सिझीमें ... उसके ऊपर आंचसे लगाते हैं। ... हाथमें उठा कर ... भी सिझीमें ... सहायतासे ... है। यह सिझीविध ... कहलाता है। ... नरम हो जाता है। ... दूसरे दूसरे पशुओंको ...

जीवहत्याके बाद रसायनकार्य शीघ्र ही सम्पादन करना चाहिए; कारण शवदेहसे तुरत चरबी अलग न करनेसे उसके साथ संयुक्त तन्तु और मांससूत्रके साथ साथ चरबी भी सड़ जाती है।

समूचे संसारके मध्य सिर्फ रूसराज्यमें ही सर्वापेक्षा अधिक परिमाणमें वसा उत्पन्न होती है। उस देशके बाशिन्दे प्रायः प्रति वर्ष २५ करोड़ पौंड वजनकी वसा विभिन्न देशोंमें भेजते हैं। इसके अतिरिक्त वे लोग अपने देशवासियोंके व्यवहारके लिये वसा तैयार करते हैं। इतनी वसा साधारणतः यूरोपीय रूसराज्यके दक्षिणस्थ पोण्टाइन ष्टेपी (Pontine steppes) नामक सुविस्तृत तृणप्रान्तके मध्य ही संगृहीत होती है। वहां जितने सुवृहत् वसाके कारखाने हैं, उन्हें Salgans कहते हैं। ये कारखाने केवल ग्रेट-रूसके अधिवासियोंकी ही देख-रेखमें परिचालित होते हैं। वहांके कर्मचारी लोग हजारों गवादि पशु एक साथ खरीदते और एक वर्ष तक अच्छी तरह खिला कर उसका शरीर चरबीसे भरा देते हैं। जब वे लोग इन पशुओंको चरबी निकालनेके उपयुक्त समझते, तब सबोंको कसाई-वाड़ामें भगा ले जाते और वहीं उन्हें मारते हैं।

इन सब कसाई-वाड़ोंमें कसाई लोगोंके बहुत-से घर हैं। उनके बीच एक निहत गोमांस-विक्रयस्थान, कितनेमें मांससिद्ध करनेके लिये बायलर प्रतिष्ठित और किसी घरमें चमड़े रहते हैं। दूसरे कई घर दफ्तरखाने और कर्मचारियोंके वासभवन हैं। ग्रीष्मकालमें कोई भी कसाई-वाड़ामें नहीं रहता, केवल कुत्ते और शिकारी पक्षिगण यहां मांसकी गंध ले विचरते रहते हैं। ग्रीष्म बीत जाने पर वे पहले थोड़ा मोटा ताजा बैल यहां ला कर वध करते हैं। इसके बाद वर्षा ऋतुमें वे लोग यथार्थरूपसे कार्यारम्भ करते हैं। तब दलके दल कसाई-वाड़ामें पशु ला कर नृशंसभावसे निहत किया करते हैं। पशुहत्याके बाद पशुका चमड़ा उतारते और बिना चरबीवाला मांस बाजारमें बेचनेके लिये भेजते हैं। निष्ठुरतासे मारनेके कारण वह मांस इतना खराब होता, कि कोई भद्र पुरुष वह मांस नहीं खरीदते। सिर्फ दरिद्र ही खरीदता है।

अवशिष्ट शवदेहको वे लोग टुकड़ा टुकड़ा करते एवं उसे बायलर (Boiler)-में डाल कर चरबी बाहर करते हैं। एक एक बायलरमें १० से १५ बैलों तकका मांस अंट सकता है। हर एक कसाई-वाड़ामें ऐसे ५ या ६ बायलर होते हैं। तदनन्तर कड़ाहेके गालमें मांस लग कर जल उठता है, उस बायलरके मध्य वे लोग थोड़ा जल देते हैं। कड़ाहस्थित मांसास्थिको मज्जा (Soup) कहते हैं। जब कड़ाहके ऊपर चरबी गल कर उठती है, तब हत्थेसे काट कर उसे पीपेमें रखते हैं। उसके बाद वह कस कर वैदेशिक वणिकोंके हाथ भिन्न देशोंमें भेजी जाती है। पहले जो वसा उबलाती है, वह सबोंसे सफेद और अच्छी तथा पीछेवाली वसा कुछ हल्दी रंगकी होती है। पीपेके अभावमें चमड़ेकी सिलाई करके एक एक थैली बनाई जाती है। दूसरी श्रेणीकी वसा उत्थित होने पर बायलर पात्रस्थ अवशिष्ट मांस और अस्थि-कलकी भयानक चापसे एक प्रकारकी निकृष्ट वसा निकाली जाती है। यह मैली गंदी वसा साधारणतः कलके चक्कोंमें व्यवहृत होती है।

एक मोटे ताजे बैलसे साधारणतः २५० से २१० पौंड वसा निकलती है, जिसका मूल्य १५० रुबुलसे कम नहीं होता।

इन सब पशुओंकी आंत भी बरबाद होने नहीं पाता। वसाके व्यवसाय करनेवाले सूअर भी रखते हैं, सूअर यह आंत खाते हैं। इसके खानेसे सूअरकी भी चरबी बढ़ती है। पीछे इन सूअरोंकी भी चरबी निकाली जाती है।

वसाके व्यवसायी लोग सफेद और हल्दी रंगकी वसाके मध्य जो पीपा बत्तीमें और जो साबुन बनानेके काममें आता है, उसे अलग कर बेचते हैं।

जीव-शरीरकी स्थान विशेषजात चरबी कड़ी और मुलायम होती है। वृक्क (गुरदा) की पार्श्वस्थ चरबी स्वभावतः ही कड़ी होती है, लेकिन अस्थिगह्वरके मध्य जहां जहां चरबी उत्पन्न होती है, वह उससे बहुत मुलायम होती है। इसके अलावे मांसपेशी और अन्यान्य कमनीय देहांशमें जो चरबी रहती है, वह सबोंसे कोमल होती है और उसमें आधा तेल मिला हुआ रहता है। इस तरह जीवदेहके भी तारतम्यानुसार वसा कड़ी और मुलायम होती

है। बैल और घोड़ेकी चरबीसे बकरे, हरिण आदि कोमल पशुओंकी चरबी मुलायम होती है और थोड़े तापसे गल जाती है। ७२° से ९२° डिग्री तापसे सभी चरबी गल जाती है।

भौतिक कार्य सम्पादन करने जानेसे भी ग्रामीण पशु पक्षी आदिकी वसाका आवश्यक होता है।

मनुष्य, नाना जातिके पक्षी तथा जलचर मत्स्य-कच्छपादिके शरीरसे विभिन्न प्रकारकी वसा उत्पन्न होती है। इन सब वसाओंके गुण और माहात्म्य वैद्यकशास्त्र-में लिखे हैं।

वसाकेतु (सं० पु०) एक प्रकारके धूमकेतु जो पश्चिममें उदय होते हैं और जिनकी पूंछका विस्तार उत्तरकी ओर होता है। ये देखनेमें स्निग्ध जान पड़ते हैं और इनके उदयसे सुभिक्ष होता है। (बृ० सं० ११।२६)

वसाढ्य (सं० पु०) वसया आढ्यः प्रचुरवसायत्वादस्य तथात्वं। शिशुमार, सूंस। शुशुक देखो।

वसाढ्यक (सं० पु०) शिशुमार, सूंस। (Dolphinus Gangeticus)

वसाति (सं० स्त्री०) १ उत्तरके एक जनपदका नाम। (पु०) २ वसाति नामक जनपदका अधिवासी। ३ जन्मे-जयके एक पुत्रका नाम। (भारत आदिप०) ४ इक्ष्वाकु-के एक पुत्रका नाम। (हरिवंश)

वसातिक (सं० पु०) वसाति नामक उत्तर जनपदका अधिवासी। (बृ० सं० १४।२५)

वसातीय (सं० त्रि०) १ वसाति जाति-सम्बन्धीय। (पु०) २ वसातिराज।

वसादनी (सं० स्त्री०) पीतशिंशपा, पीला सीसम।

वसापायिन् (सं० पु०) वसां पिबतीति पा-णिनि। कुक्कुर, कुत्ता।

वसापावन (सं० पु०) एक प्रकारके वैदिक देवता, पशु-भाग। (शुक्लयजु० ६।१९)

वसामय (सं० त्रि०) वसा स्वरूपे मयट्। वसास्वरूप।

वसासुर (सं० पु०) एक जनपदका नाम।

वसामेह (सं० पु०) एक प्रकारका मेहरोग जिसमें मूत्र-के साथ चरबी मिल कर निकलती है। आधुनिक डाक्टरी चिकित्सामें यह बहुमूत्रका भेद है। इसमें मूत्रके साथ शरीरका सत्त्व निकलता है और रोगी विकृत क्षीण हो जाता है।

वसामेहिन् (सं० त्रि०) वसामेहविशिष्ट व्यक्ति, वह जिसे वसामेह रोग हुआ हो।

वसार (सं० स्त्री०) १ इच्छा। २ पन। ३ अभिप्राय।

वसारोह (सं० पु०) छत्रिका, कुकुरमुत्ता, खुमी।

वसावि (सं० स्त्री०) वसुसमूह। "वसाव्यामिन्द्र धारय" (ऋक् १०।७३।४) 'वसाव्यां वसुसमूहं' (सायण)

वसि (सं० पु०) वस्ते आच्छादयत्यनेन वस्यते आच्छादन-पूर्वकध्रियते इति वा वस आच्छादने (वसिवप्यजि। उण् ४।१२६) इति इ। वसन, वस्त्र।

वसिक (सं० त्रि०) शून्य। वशिक देखो।

वसितव्य (सं० त्रि०) परिधानयोग्य, पहननेके काबिल।

वसितृ (सं० त्रि०) आच्छादयितृ, वस्त्रसे ढकनेवाला।

वसिन (सं० पु०) वसा, मेद।

वसिर (सं० स्त्री०) वस किरच्। १ सामुद्र-लवण। २ गज-पिप्पली। (पु०) ३ लाल रंगका अपामार्ग, लाल चिचड़ा। ४ वारिनिम्ब, जलनीम।

वसिष्ठ—एक प्रसिद्ध मन्त्रद्रष्टा ऋषि। ऋग्वेदके ७वें मण्डलका अधिकांश सूक्त ही वसिष्ठ रचित वा वसिष्ठोक्त हुए है। वसिष्ठके जन्म-सम्बन्धमें बृहद्देवता नामक वैदिकग्रंथमें इस प्रकार लिखा है—

यज्ञस्थलमें उर्वशीको देख कर मित्र और वरुण इन दोनों आदित्योंका रेतःस्खलित हुआ। वह रेत वस-तीवर नामक यज्ञीय कुम्भमें गिरा। उससे इस जगह अगस्त्य और वसिष्ठ नामक दो वीर्यवान् तपस्वी ऋषि आविर्भूत हुए। यह रेत कलसमें, जलमें और स्थलमें गिरा था। अतिसत्तम वसिष्ठमुनि स्थलमें, अगस्त्य कुम्भसे और महाद्युति मत्स्य जलसे उत्पन्न हुए थे। जलके द्वारा लिये जाने पर वसिष्ठ पुष्करमें (जलमें) थे, उस समय देवताओंने सभी दिशाओंसे उस जलमें उनको धारण किया था। शाकसंहितामें वसिष्ठकी उत्पत्तिके सम्बन्धमें इस प्रकार लिखा है—

हे वसिष्ठ! तुम मित्र और वरुणके पुत्र हो। हे ब्रह्मन्! उर्वशीके मनसे तुम उत्पन्न हुए हो। जब (मित्र और वरुणका) रेतःस्खलन हुआ था, उस समय

विश्वदेवोंने दैव्यस्तोत्र द्वारा पुष्करमें तुमको धारण किया था। प्रकृष्ट ज्ञानसम्पन्न वसिष्ठने दोनों (लोक)-को जान कर सहस्र दान किये थे। यम द्वारा विस्तीर्ण बस्त्रवयन करनेकी इच्छासे वसिष्ठने उर्वशीसे जन्मग्रहण किया था। सत्रसे प्रार्थित हो कर मित्र और वरुणने कुम्भके मध्य युगपत् रेतःसेक किया था। अनन्तर मध्यसे मानका प्रादुर्भाव हुआ। लोग कहते हैं, कि वसिष्ठऋषि भी उसीसे उत्पन्न हुए थे।

(ऋग्वेद ७।३३।११-१३)

वसिष्ठ किस प्रकार ऋषि हुए, इस सम्बन्धमें ऋग्वेद-(७।८८।३-४) में इस प्रकार लिखा है—

जब मैं (वसिष्ठ) और वरुण दोनों नाव पर चढ़े थे, जब समुद्रके मध्य नाव बड़ी तेजीसे जा रही थी, उस समय शोभा बढ़ानेके लिये मैं हिंडोले पर बड़े आनन्दसे खेल करता था। वरुण वसिष्ठको नाव पर ले गये थे, अपने महातेजसे उन्होंने निज सुकर्म द्वारा वसिष्ठको ऋषि बनाया था। उनका दिन और उषा वर्द्धित होवें, इस प्रकार स्तव करेंगे, इसीसे सुदिनमें उन्हें स्तोता किया था।

ऋग्वेदसे मालूम होता है, कि वसिष्ठ और उनके वंशधरगण सुदास-राजके पुरोहित थे। सुदास पिजवनके पुत्र, देववतके पौत्र और दिवोदासके वंशधर थे। वसिष्ठ-ने पैजवन सुदासके पौरोहित्य कालमें राजासे प्रचुर धन-रत्न पाया था। ऋग्वेदमें सुदास पैजवनके दानस्तुति-विषयक सूक्त देखे जाते हैं, वसिष्ठ ही उस सूक्तके ऋषि हैं। (ऋग्वेदमें ७ मण्डल१८ सूक्त)

ऋग्वेदके ७ म मण्डलके ३३वें सूक्तमें लिखा है—

तृष्णातुर राजाओंसे परिवृत वृष्टिप्रार्थी वसिष्ठोंने दश राजाओंके साथ संग्राममें आदित्यकी तरह इन्द्रको ऊपर उठाया था। इन्द्रने स्तुतिकारी वसिष्ठका स्तोत्र सुना था तथा राजाओंके लिये विस्तीर्ण लोक प्रदान किया था। गोवके दण्डकी तरह भरतगण (शत्रुगण) परिच्छिन्न और अल्पसंख्यक थे। अनन्तर वसिष्ठ उन्हींके पुरोहित हुए तथा तृत्सुओंकी प्रजा वृद्धि होने लगी। यहां वसिष्ठ भरतोंके भी पुरोहित होते हैं।

ऐतरेय ब्राह्मण (८।२१)-में लिखा है,—वसिष्ठने ऐन्द्र महाभिषेक द्वारा सुदास पैजवनको अभिषिक्त किया था। इसीसे सुदास पैजवनने समस्त पृथ्वी जय कर अश्वमेध यज्ञ किया था।

वसिष्ठ सुदासके पुरोहित होने पर भी सौदास या सुदासके पुत्रोंने उनके सौ पुत्रोंका प्राणसंहार किया था। इस विषयको ले कर वृहद्देवतामें लिखा है,—

महात्मा वसिष्ठके सौ पुत्रोंका निधन कर एक जिघांसु राक्षसने वसिष्ठका रूप धारण कर उनसे कहा था, 'तुम राक्षस हो, मैं वसिष्ठ हूं।' इस उपलक्षमें वसिष्ठने बहुत-से ऋक् देखे थे। वही ऋक्संहिताके ७म मण्डलमें १०४ सूक्तमें १२से १६ संख्यक मन्त्र है। इनमेंसे १६वें ऋक में स्पष्ट लिखा है—

"यो मायातुं यातुधानेत्याह यो वा रक्षाः शुचिरस्मीत्याह।
इन्द्र स्तं हन्तु महता वधेन विश्वस्य जन्तोरधमस्पदीष्ट॥"

जो 'यातुधान' (राक्षस) कह कर मेरा सम्बोधन करता है तथा जो राक्षस 'मैं शुचि हूं' यह बात कहता है, इन्द्र महा आयुध द्वारा उसका विनाश करें, वे सब अधम हो कर पतित होवें।

वसिष्ठका वेदमें इस प्रकार उल्लेख देख कर अध्यापक मुइर साहबने लिखा है—"वसिष्ठ परवर्त्ती वैदिक-ग्रंथमें ब्राह्मण कह कर गण्य तो हुए हैं, परन्तु यथार्थमें वे ब्राह्मण नहीं थे। उनके जन्मके सम्बन्धमें गोलमाल था, इसी कारण कहीं तो वे ब्रह्माके मानसपुत्र, कहीं मित्रावरुण और कहीं उर्वशीके पुत्र कह कर अभिहित हुए हैं।"

अध्यापक मोक्षमूलरने वेदका प्रमाण उद्धृत कर इन्हें आर्य ब्राह्मण ही बतलाया है। उनके मतसे वेदमें वसिष्ठ मित्रावरुणके पुत्ररूपमें वर्णित होने पर भी मित्र वा सूर्य ही समझे जाते हैं।

कृष्ण यजुर्वेद वा तैत्तिरीय संहितासे मालूम होता है, कि सौदाससे जब वसिष्ठके पुत्र मारे गये, तब उन्होंने बदला लेनेके लिये चेष्टा की।

कौषीतकी ब्राह्मण (४थे अध्याय) में भी इसी प्रकार वसिष्ठके पुत्रनाश और सौदास-पराभवकी बात लिखी है। मनुसंहिता (८।११०)में लिखा है, कि महर्षि-गण और देवगण कार्यसम्पादनके लिये शपथ खाया करते थे। इस प्रकार वसिष्ठ ऋषिने भी पैजवनराजाके लिये

है। भेड़ और घोड़ेकी चर्बीसे बकरे, हरिण आदि कोमल पशुओंकी चर्बी मुलायम होती है और घोड़े तापमें गल जाती है। ७२° से ८२° डिग्री तापमें सभी चर्बी गल जाती है।

बौद्धिक कार्य सम्पादन करने जानेमें भी जातीय पशु पक्षी आदिकी वसाका आवश्यक होता है।

मनुष्य, नाना जातिके पक्षी तथा जलचर मत्स्य-कच्छपादिके शरीरसे विभिन्न प्रकारकी वसा उत्पन्न होती है। इन सब वसाओंके गुण और व्यवहार वैद्यकशास्त्रमें लिखे हैं।

वसाकेतु (सं० पु०) एक प्रकारके धूमकेतु जो पश्चिममें उदय होते हैं और जिनकी पूंछका विस्तार उत्तरकी ओर होता है। ये देखनेमें स्निग्ध जान पड़ते हैं और इनके उदयसे सुभिक्ष होता है। (बृ० सं० ११।२८)

वसाढ्य (सं० पु०) वसया आढ्यः प्रचुरवसायुक्तत्वादस्य तथात्वं। शिशुमार, सूंस। शुशुक देखो।

वसाढ्यक (सं० पु०) शिशुमार, सूंस। (Dolphinus Gangeticus)

वसाति (सं० स्त्री०) १ उत्तरके एक जनपदका नाम। (पु०) २ वसाति नामक जनपदका अधिवासी। ३ जनमेजयके एक पुत्रका नाम। (भारत आदिप०) ४ इक्ष्वाकुके एक पुत्रका नाम। (हरिवंश)

वसातिक (सं० पु०) वसाति नामक उत्तर जनपदका अधिवासी। (बृ० सं० १४।२५)

वसातीय (सं० त्रि०) १ वसाति जाति-सम्बन्धीय। (पु०) २ वसातिराज।

वसादनी (सं० स्त्री०) चीतसिंशपा, पीला सीसम।

वसापायिन् (सं० पु०) वसां पिबतीति पा-णिनि। कुक्कुर, कुत्ता।

वसापावन (सं० पु०) एक प्रकारके वैदिक देवता, पशुगाथा। (शुक्लयजु० ६।१६)

वसामय (सं० त्रि०) वसा स्वरूपे मयट्। वसास्वरूप।

वसामूर (सं० पु०) एक जनपदका नाम।

वसामेह (सं० पु०) एक प्रकारका मेहरोग जिसमें मूत्रके साथ चर्बी मिल कर निकलती है। आधुनिक डाक्टरी चिकित्सामें यह बहुमूत्रका भेद है। इसमें मूत्रके साथ शरीरका सत निकलता है और रोगी बहुत क्षीण हो जाता है।

वसामेहिन् (सं० त्रि०) वसामेहविशिष्ट व्यक्ति, वह जिसे वसामेह रोग हुआ हो।

वसार (सं० क्ली०) १ इच्छा। २ धन। ३ अभिप्राय।

वसारोह (सं० पु०) छत्रिका, कुकुरमुत्ता, खुमी।

वसावि (सं० स्त्री०) वसुसमूह। "वसावक्षामिन्द्र धारय" (ऋक् १०।७३।४) 'वसाव्यां वसुसमूह' (सायण)

वसि (सं० पु०) वस्ते आच्छादयत्यनेन वसयते आच्छादन पूर्वक छिपते इति वा वस आच्छादने (वसिवपियजीति। उण् ४।१२६) इति इ। वसन, वस्त्र।

वसिक (सं० त्रि०) शून्य। वशिक देखो।

वसितव्य (सं० त्रि०) परिधानयोग्य, पहननेके काबिल।

वसितृ (सं० त्रि०) आच्छादयितृ, पहननेसे ढकनेवाला।

वसिन (सं० पु०) वसा, मेद।

वसिर (सं० क्ली०) वस किरच्। १ सामुद्र-लवण। २ गज-पिप्पली। (पु०) ३ लाल रंगका अपामार्ग, लाल चिचड़ा। ४ वारिनिम्ब, जलनीम।

वसिष्ठ—एक प्रसिद्ध मन्त्रद्रष्टा ऋषि। ऋग्वेदके ७म मण्डलका अधिकांश सूक्त इन्हीं वसिष्ठ रचित या वसिष्ठोंका दृष्ट है। वसिष्ठके जन्म-सम्बन्धमें वृहद्देवता नामक वैदिकग्रन्थमें इस प्रकार लिखा है—

यज्ञस्थलमें उर्वशीको देख कर मित्र और वरुण इन दोनों आदित्योंका रेतःस्खलित हुआ। वह रेत वसतीवर नामक यज्ञीय कुम्भमें गिरा। उसमें उसी समय अगस्त्य और वसिष्ठ नामक दो तेजस्वी ऋषि आविर्भूत हुए। वह रेत कलसमें, जलमें और स्थलमें गिरा था। ऋषिसत्तम वसिष्ठमुनि स्थलमें, अगस्त्य कुम्भसे और महाद्युति मत्स्य जलसे उत्पन्न हुए थे। जन्मके बाद लिये जाने पर वसिष्ठ पुष्करमें (जलमें) थे, उस समय देवताओंने सभी दिशाओंसे उन्हें जलमें धारण किया था। ऋक्संहितामें वसिष्ठकी उत्पत्तिके सम्बन्धमें इस प्रकार लिखा है—

हे वसिष्ठ! तुम मित्र और वरुणके पुत्र हो। हे ब्रह्मन्! उर्वशीके मनसे तुम उत्पन्न हुए हो। जब (मित्र और वरुणका) रेतःस्खलन हुआ था, उस समय

गये और उनसे कहा 'मैंने नीलपर्वत पर हविष्याशी तथा संयमी हो देवी तारिणीकी आराधना की। परन्तु जब कृपा मुझ पर न हुई, तब सिर्फ एक गण्डूष जल पी कर अयुत वर्ष तक फिरसे देवीकी कठोर आराधना की। किन्तु जब देखा, कि इतने पर भी देवी प्रसन्न न हुई, तब मैंने नीलपर्वत पर एक पदसे दण्डायमान हो परम समाधि अवलम्बन कर निराहार रह देवीके ध्यानमें हजार वर्ष बिताया। इतना ही नहीं, उसी प्रकार कठोर भावमें दश हजार वर्ष कामाख्यामें भी बिताया; किन्तु आज तक कोई अनुग्रह मुझे देखनेमें नहीं आता। अतएव दुःसाध्या इस विद्याको मैं बड़े दुःखके साथ त्याग करता हूं। ब्रह्माने वशिष्ठको सान्त्वना देते हुए कहा, 'वशिष्ठ! तुम फिरसे नीलाचल पर जाओ, वहां रह कर कामाख्या योनिमें उस परमेश्वरीकी आराधना करो। अति शीघ्र तुम्हारा मनोरथ सिद्ध हो जायगा।' मुनिवर वशिष्ठने पिताके वचन सुन कर हजार वर्ष तक ताराकी आराधना की, परन्तु इतने पर भी महेश्वरी ताराकी उन पर कृपा न हुई। अनन्तर मुनिवरने क्रुद्ध हो कर देवीको शाप देनेके लिये जल ग्रहण किया। वशिष्ठका क्रोध देख कर वन-कानन पर्वतादिके साथ सारी पृथ्वी कांपने लगी, समस्त देव और देवियोंके मध्य हाहाकारकी ध्वनि होने लगी। तब संसारतारिणी तारादेवी वशिष्ठ मुनिके पुरोभागमें आविर्भूत हुई। मुनिवर वशिष्ठने उन्हें देख कर बहुत कठोर शाप दिया। अनन्तर कष्टसिद्धिदात्री तारिणीने वशिष्ठ मुनिसे कहा, 'मुनिवर! क्रोधके आवेगमें क्यों मुझे अभिशाप देते हो। मेरी आराधनाक्रम एकमात्र बुद्ध-रूपी जनार्दनके सिवा और कोई नहीं जानते। तुमने विरुद्धाचारका आश्रय कर व्यर्थ ही मेरी आराधनामें हजारों वर्ष बिताये, वास्तविक तत्त्वका तुम्हें कुछ भी पता नहीं। अतएव अभी बुद्धरूपी विष्णुके निकट जाओ और उनसे मेरा आराधनाक्रम अच्छी तरह जान कर फिरसे मेरी आराधनामें लग जाओ, तब निश्चय ही मैं तुम पर सन्तुष्ट हूंगी।'

वशिष्ठ देवीको प्रणाम कर महाचीन देशको चल दिये। हिमालयके पार्श्वदेशमें लोकेश्वरसेवित तथा मद-मत्त सहस्र कामिनियोंसे परिवेष्टित मदिरापानसे मद-मन्थरलोचन बुद्धदेवको देखते ही वे विस्मित हो गये। उन्होंने मन ही मन संसारतारिणी ताराको स्मरण कर कहा, कि बुद्धरूपी विष्णुने यह कौन-सा आचार अवलम्बन किया? यह तो देव और देवाचारविरुद्ध है। इसी समय दैववाणी हुई, 'हे मुने! तारिणीका परमार्थिन यह आचार है, इसके विरुद्धाचारसे वे प्रसन्न नहीं होतीं; अतएव यदि तुम उनका अनुग्रह चाहते हो, तो इसी आचारसे उनका भजन करो।' यह आकाशवाणी सुन कर मुनिवर वशिष्ठ दण्डवत् भूमि पर गिर पड़े, पीछे उठ कर कृताञ्जलिपुटसे बुद्धरूपी विष्णुके निकट गये। मदमत्त प्रसन्नात्मा बुद्धने उन्हें देख कर पूछा, 'तुम किस लिये यहां आये हो?' मुनिने भक्तिपूर्वक प्रणाम कर तारिणीकी आदेशवाणी कह सुनाई। भगवान् बुद्धने कहा, 'मुनिवर! यद्यपि यह आचार अप्रकाश्य है, तथापि मैं तुम्हें जो कहता हूं, सुनो,—तारादेवीका आचारानुष्ठान करनेसे संसारमें फिर आना नहीं पड़ता। इस आचारसे स्नानादि सभी मानसिक तथा सभी काल शुभ है, अशुभ काल कोई भी नहीं। इस आचारमें शुद्धि आदिकी अपेक्षा तथा मन्त्रादिका दोष नहीं है। सर्वदा क्या स्नात क्या अस्नात, क्या भुक्त क्या अभुक्त सभी समय देवीकी पूजा कर सकते हो, इत्यादि प्रकारसे अनेक महाचीनाचार-क्रमका उन्हें उपदेश दिया।' पीछे महामुनि वशिष्ठने बुद्धरूपी हरिका वाक्य सुन कर फिरसे उन्हें पूछा, 'प्रभो! तुम तत्त्वज्ञानमय हो, इस महाचीनाचारक्रममें स्त्री और मद्य दोनों ही सम्मत है; किन्तु [illegible] दोनोंमें कौन प्रधान है?' बुद्धदेवने उत्तर दिया, 'मुने! इस आचारमें दोनों समान होने पर भी स्त्रीके शरीरमें अनेक देवताका वास है, इस कारण स्त्री ही प्रधान है।' तत्त्वज्ञ भगवान्ने इन दोनोंके बहु गुणकीर्त्तन तथा कौलिकोंके मांस और कुलाचार द्रव्यके लक्षण और माहात्म्य तथा समग्र महाचीनाचारक्रमका वर्णन किया।

मुनिवर वशिष्ठने यह सब जान कर उसी आचारका अवलम्बन किया तथा संयतचित्तसे वे देवीका आरा-धनामें लग गये। कुछ दिन बाद नीलाचल पर देवी-महामाया ताराने दर्शन दे कर कहा, 'वत्स वशिष्ठ! वर

शपथ खाई थी। शपथ क्यों खाई थी मनुटीकामें कुल्लूक-ने इस प्रकार लिखा है,—

विश्वामित्रने जब वसिष्ठके सौ पुत्रोंको मार डाला, तब उन्होंने क्रुद्ध हो अपनी परिशुद्धिके लिये पिजवनके पुत्र सुदामन् राजाके निकट शपथ की थी।

यहां कुल्लूकने विश्वामित्रको राक्षस बतलाया है और सुदामन् राजाका नाम लिया है; किन्तु वेदमें ऐसी बात नहीं है। विश्वामित्रने सौ पुत्र भक्षण नहीं किये थे, वरं राक्षसने उन्हें भक्षण कर अपनेको वसिष्ठ बतलानेकी चेष्टा की थी। ७।१०४।१२ ऋक्के भाष्यमें सायणाचार्यने बृहद्देवताका मत उद्धृत कर दिखलाया है, पहले यह बात कही जा चुकी है। फिर पिजवनके पुत्रका नाम सुदामन नहीं, सुदास था।

शाट्यायन ब्राह्मणमें लिखा है, कि (वसिष्ठके पुत्र) शक्ति-ने सौदास कर्तृक अग्निमें निक्षिप्त होनेके समय प्रगाथ-का शेषांश पाया था। अनुक्त ऋक् बोलनेके अन्तिम समयमें वे दग्ध हुए तथा वसिष्ठने पुत्रोक्त ऋक्को सम्पूर्ण उच्चारण किया था। इस प्रकार वसिष्ठने अपनी शपथकी रक्षा की थी।

काठकमें लिखा है, कि ऋषिगण इन्द्रको प्रत्यक्ष देख न सके। एकमात्र वसिष्ठने ही उन्हें देखा था। पीछे वसिष्ठ कहीं ऋषियोंके सामने उन (इन्द्र)-का विषय वर्णन न करें, इस भयसे उन्होंने वसिष्ठके निकट आ कर एकान्तमें कहा, 'मैं तुमको ब्राह्मण स्वीकार करता हूं, तुम मेरा विषय इन ऋषियोंके सामने न कहना। पीछे जो जन्म लेंगे, वे ही तुम्हें पौरोहित्यमें वरण करेंगे।' यही कारण है, कि इन्द्रने वसिष्ठको स्तोमभाग कह दिया था।

षड्विंश-ब्राह्मण (१।५१)-में लिखा है, कि इन्द्रने विश्वामित्रको उक्थ और वसिष्ठको ब्रह्म कहा है। उक्थ ही वाक् है यही विश्वामित्र हैं तथा ब्रह्म ही मन है, यही वसिष्ठ हैं। यही कारण है, कि यह मनन ही वसिष्ठका निदर्शन है।

पुराणमें वसिष्ठ।

वेदमें विश्वामित्र और वसिष्ठका प्रसङ्ग रहने पर भी कहीं भी वसिष्ठके आश्रममें राजा विश्वामित्रके जाने और दोनोंके विवादका स्पष्ट उल्लेख नहीं मिलता।

बृहद्देवता (४।२२)-में लिखा है, कि परवर्त्ती विश्वामित्रोक्त चार ऋक् हैं, वसिष्ठगण उन चारों मन्त्रोंको न सुनेंगे, यही उन लोगोंके आचार्यका मत है।

इस प्रकार विश्वामित्र और वसिष्ठके मध्य परस्पर विद्वेषका आभास रहने पर भी वसिष्ठका ऐश्वर्य देख कर विश्वामित्रकी ईर्षा तथा उससे उनके ब्राह्मणत्व-लाभकी बात भी वेदसंहितामें नहीं मिलती। रामायण, महाभारत और पुराणादिमें इसका विस्तृत विवरण देखनेमें आता है। विश्वामित्र शब्दमें विस्तृत विवरण देखो।

विष्णुपुराणमें लिखा है, कि इनकी कन्या ऊर्जाके गर्भसे रज, गात्र, ऊर्ध्वबाहु, सवन, अनघ, सुतपा और शुक्र ये सात सप्तर्षि उत्पन्न हुए। भागवतपुराणके मतसे वसिष्ठकी दूसरी स्त्रीके गर्भसे शक्ति नामक एक पुत्रने जन्मग्रहण किया। मनुसंहितामें वसिष्ठकी अक्षमाला नाम्नी एक और पत्नीका उल्लेख मिलता है। अक्षमाला निम्न कुलकी होने पर भी भर्त्ताके गुणसे उन्नत हो गई थी।

"यादृग्गुणेन भर्त्रा स्त्री संयुज्येत यथाविधि।
तादृग्गुणा सा भवति समुद्रेणेव निम्नगा।
अक्षमाला वसिष्ठेन संयुक्ताऽधमयोनिजा॥"

(मनु ९।२२-२३)

महाभारतमें वसिष्ठकी प्रधान पत्नीका नाम अरुन्धती कहा है। रामायणमें लिखा है, कि वसिष्ठके हुङ्कारसे विश्वामित्रके सौ पुत्र दग्ध हुए थे। रामायण और महाभारतसे मालूम होता है, कि इक्ष्वाकु-पुत्र निमिसे सूर्यवंशीय राजाओंके वंशपरम्परा पुरोहित वसिष्ठ थे। विष्णु और ब्रह्माण्डपुराणके मतसे ८म द्वापरमें वसिष्ठ व्यासरूपमें अवतीर्ण हुए थे। उसी पुराणमें एक जगह लिखा है, कि वसिष्ठ आषाढ़ मासमें सूर्यके रथ पर रहते थे।

तन्त्रमें वसिष्ठ

महाचीनाचारक्रम तन्त्रमें इस प्रकार लिखा है—

पूर्वकालमें ब्रह्माके मानस पुत्र (जितेन्द्रिय) वसिष्ठ मुनिने नीलाचल पर तारादेवीकी आराधना की थी। बहुत वर्ष आराधना करने पर भी तारा देवी प्रसन्न न हुईं। अनन्तर मुनिवर अत्यन्त क्रुद्ध हो ब्रह्माके निकट

ध्रुव, सोम, विष्णु, अनिल, अनल, प्रत्यूष और प्रभास। ये आठ प्रसिद्ध अष्टवसु हैं।

ऋग्वेदसंहितामें वसुओंका उल्लेख देखा जाता है। पुराणादि शास्त्रग्रन्थोंमें इनकी संख्या आठ बतलाई गई है। इन देवताओंके प्रभाव तथा कार्यकारिताके सम्बन्धमें महाभारतके भीष्मोपाख्यानमें यथेष्ट वर्णन किया गया है, किन्तु वैदिक विवरणके अनुसरण करनेसे मालूम होता है, कि ये एक एक प्रकृतितत्त्वके निवासभूत देवता थे। हम लोग ऋक्संहिताके किसी किसी स्थानमें वसुओंको आप, ध्रुव, सोम, धर, अनिल, अनल, प्रभास तथा प्रत्यूष प्रभृति प्रकृतिपुञ्जके नियामक कर्त्तृरूपमें देखते हैं। रामायणमें इन वसुओंका वर्णन अदिति-पुत्र कह कर किया गया है। ऋक्संहिताके २।२७।११,७।५२।१ २, ८।१८।१५में वे आदित्य कह कर वर्णन किये गये हैं। फिर कहीं कहीं ये अग्नि ५।६।१,५।२४।२,५।५१।१३, कहीं पर मरुद्गण ५।५५।८,६।५०।४,७।३६।१७, कहीं इन्द्र १।११०।७, ४।३२।१४,७।३१।३, कहीं पर ऊषा ५।६४।१, कहीं अश्विद्वय १।१५८।१, कहीं पर रुद्र १।४३।५ एवं कहीं पर वायु ४।४०।५ रूपमें वर्णित हैं। उक्त संहिताके १।१६३।२ मन्त्र से मालूम होता है, कि वसुओंने सूर्यसे अश्वका निर्माण किया था। २।३।४ मन्त्रमें इनके घृताक्त बर्हिमें (अग्नि स्वरूप) उपवेशन करनेका आह्वान किया है। वाजसनेय संहिताके ५।११ मन्त्रमें ये अष्ट संख्यक गणदेवता, २।५ तथा ११।५५, मन्त्रोंमें आदित्य तथा रुद्र, ८।१८ मंत्रमें निवासप्रद देवगण एवं अथर्ववेदके "अस्मिन् वसु वसवो धारयन्त्विन्द्रः पूषा वरुणो मित्रो अग्निः। इममादित्या उत विश्वे च देवा उत्तरस्मिन् ज्योतिषि धारयन्तु" (१।९।१) मंत्र पाठ करनेसे जाना जाता है, कि उक्त गणदेवता पृथ्वीके नियन्ता थे। ये धनरक्षक एवं इन्द्र तथा अग्नि प्रभृतिके अनुगत सहकारी थे। सायणाचार्यने उक्त मन्त्रके भाष्यमें वसुओंकी इस प्रकार व्युत्पत्ति की है :—

'अस्मिन् जने सर्वसम्पदाति फलकामे वसतः निवासहेतुभुता एतत्संज्ञा देवा। वसु अभिलषितं धनं धारयन्तु स्थापयन्तु। धृण् धारणे अस्मात् णिच् वसव इति। वस निवासे। श स्वृ स्निहित्रप्यसिवसिहनिक्लिदिबन्धिमनिभ्यश्च (उण् १।११) इति उप्रत्ययः'। तत्र धान्ये णित (उण् १।१०) इत्यनुवृत्तेः ञित्यादिर्नित्यम् इति आद्युदात्तत्वम्।" वसुओंके इस धनाधिपत्यके कारण वे परवर्त्ति कालमें विष्णु तथा कुवेरके रूपमें कल्पित हुए हैं।

ये वसुगण पितृविशेष हैं। मनुसंहितामें लिखा है, कि श्राद्धकालमें पितृगणका वस्वादिरूपमें ध्यान करना होता है।

श्रीमद्भागवतमें लिखा है—दक्ष प्रजापतिने षष्ठमन्वन्तरमें द्वितीय जन्ममें असिक्नीके गर्भसे ६ कन्याएं उत्पन्न कीं। ये सब कन्याएं प्रजापतिगणको प्रदत्त हुई थीं। उनमें धर्मको दश कन्याएं दान की गईं। उन दश कन्याओंके नाम जैसे—भानु, लम्बा, ककुद्, यामि, विश्वा, साध्या, मरुत्वती, वसु, मुहूर्त्ता तथा संकल्पा। इनके मध्य वसुनाम्नी कन्याके गर्भसे ८ पुत्र उत्पन्न हुए। ये आठों पुत्र ही अष्टवसु हैं। इन अष्टवसुके नाम जैसे—द्रोण, प्राण, ध्रुव, अर्क, अग्नि, दोष, वास्तु तथा विभावसु। द्रोणकी अभिमती नाम्नी पत्नीके गर्भसे हर्ष, शोक तथा भय प्रभृति पुत्र पैदा हुए। ऊर्ज्जस्वतीके गर्भसे प्राणके दो पुत्र हुए। उनके नाम सहायु तथा पुरोजव। धारणी पत्नीसे ध्रुवके पुर नामक एक पुत्र हुआ। वासना नाम्नी पत्नीसे अर्कके तर्षादि पुत्र पैदा हुए। अग्नि द्वारा वसुधाराके गर्भसे द्रविणक प्रभृति पुत्र उत्पन्न हुए। शर्व्वरीके गर्भसे दोष द्वारा एक पुत्र पैदा हुआ। यह पुत्र हरिका अंशस्वरूप था, इसका नाम शिशुमार पड़ा। वास्तुकी आङ्गिरसी नाम्नी पत्नीसे विश्वकर्माकी उत्पत्ति हुई। विश्वकर्मा चाक्षुष नामधारी, मनु द्वारा उत्पन्न हुए थे। मनुके पुत्र विश्वदेवगण तथा साध्यगण थे। विभावसु द्वारा ऊषा नाम्नी पत्नीके गर्भसे तीन पुत्र पैदा हुए। उनके नाम—व्युष्ट, रोचिष तथा तप।

महाभारतके दानधर्ममें अष्ट वसुओंके नाम इस प्रकार निर्दिष्ट किये गये हैं। जैसे—धर, ध्रुव, सोम, सावित्र, अनिल, अनल, प्रत्यूष तथा प्रभास।

अग्निपुराणमें अष्टवसुओंकी नामनिरुक्ति तथा वंशविवृति इस प्रकार देखी जाती है। नाम जैसे—आप, ध्रुव, सोम, धर, अनिल, अनल, तथा प्रभास। इनमें आपके पुत्रोंके शान्त

मांगो।' वशिष्ठ बोले, 'महामाये! यदि आपकी मुझ पर कृपा हुई, तो मुझे यही वर दीजिये, 'जो इस आचार-का आश्रय कर तुम्हारी आराधना करेगा, तुम अवश्य उसके प्रति सुप्रसन्न होगी।' देवी 'तथास्तु' कह कर बोली, 'वत्स! अणिमादि सिद्धियां तुम्हारी सर्वदा सेवा करेंगी।' मुनिवर वशिष्ठ महामायासे इस प्रकार वर पा कर ब्रह्मलोकको चले गये और तभीसे आज तक वहीं दीप्ति पा रहे हैं। (चीनाचारक्रम)

वसिष्ठ (सं० पु०) वसिष्ठ पृषोदरादित्वात् शस्य सः। वसिष्ठ मुनि। (द्विरूपको०)

वसिष्ठ—एक प्रसिद्ध पण्डित। इन्होंने इतिहास, गण्डान्तादि दोष विचार, ग्रहशान्तिपद्धति और शान्तिविधि नामक कितने ग्रन्थ लिखे। यह शेषोक्त ग्रन्थ वासिष्ठी-शान्ति नामसे परिचित है।

वसिष्ठक (सं० पु०) वसिष्ठ ऋषि वा तत्सम्बन्धी।

वसिष्ठतन्त्र (सं० क्ली०) तन्त्रभेद।

वसिष्ठत्व (सं० क्ली०) वसिष्ठके भाव या धर्म।

वसिष्ठनिह (सं० पु० क्ली०) साममेद। (कात्या० ३।६।१२)

वसिष्ठपुत्र (सं० पु०) वसिष्ठके पुत्र या वंशधरगण। ये लोग ऋग्वेदके ७।३३।१०-१४ मन्त्रद्रष्टा कहलाते हैं। गरुड़-पुराणके पांचवें अध्यायमें वसिष्ठपुत्रोंका विवरण मिलता है।

वसिष्ठपुराण (सं० पु०) एक उपपुराण। इसका उल्लेख देवीभागवतमें है। कुछ लोगोंका कहना है, कि लिङ्गपुराण ही वसिष्ठपुराण है।

वसिष्ठप्रमुख (सं० त्रि०) वसिष्ठपुरतः। वसिष्ठ ऋषि जिस कार्यमें अग्रणी हों।

वसिष्ठप्राची (सं० स्त्री०) एक जनपदका नाम।

वसिष्ठशफ (सं० पु० क्ली०) साममेद। (कात्या० ११।६।३२)

वसिष्ठसंसर्प (सं० पु०) एक प्रकारका संन्यासी। (शाम्ब० श्री० १०।२।२५)

वसिष्ठसंहिता (सं० स्त्री०) १ एक स्मृतिका नाम, उन्नीस संहिताओंमेंसे एक संहिता। वसिष्ठ मुनिने यह संहिता प्रणयन की है इसीसे इसका नाम वसिष्ठ-संहिता पड़ा है। यह संहिता बीस अध्यायमें समाप्त है। इसमें पहले धर्म और धर्मके लक्षण, वर्णाश्रमधर्म, सदाचार आदि अनेक विषय वर्णित हैं। २ योगवासिष्ठ। योगवासिष्ठ भी वसिष्ठसंहिता ही कहलाता है।

वसिष्ठसिद्धान्त (सं० पु०) ज्योतिषका एक सिद्धान्त ग्रन्थ।

वसिष्ठाङ्कुश (सं० पु०) साममेद।

वसिष्ठानुपद (सं० पु०) साममेद।

वसिष्ठापवाह (सं० पु०) सरस्वती नदीके किनारेका एक प्राचीन स्थान। कहते हैं, कि जब वसिष्ठ और विश्वामित्र-के बीच घोर युद्ध हुआ था, तब सरस्वती नदीने वसिष्ठ-को विश्वामित्रसे बचानेके लिये इसी स्थान पर छिपा लिया था।

वसिष्ठोपपुराण (सं० क्ली०) एक उपपुराण। देवीभाग-वतमें इस पुराणका उल्लेख है। कोई कोई इसे वासिष्ठ लैङ्गपुराण कहा करते हैं।

वसीका (अ० पु०) १ मुसलमानी धर्मशास्त्रके अनुसार वह धन जो विधर्मी या काफ़िरसे नकद रुपयेके मुनाफे-के तौर पर लिया जाय। २ वह धन जो इस उद्देश्यसे सरकारी खजानेमें जमा किया जाय कि उसका सूद जमा करनेवालेके सम्बन्धियोंको मिला करे अथवा किसी धर्म-कार्य, मकानकी मरम्मत आदिमें लगाया जाय। ३ ऐसे धनसे आया हुआ सूद। ४ एकरारनामा, इकरारनामा।

वसीयत (अ० स्त्री०) १ वह अंतिम आदेश जो विदेश जानेवाला या मरणासन्न पुरुष इस उद्देश्यसे करता है कि मेरी अनुपस्थितिमें अमुक काम इस प्रकार किया जाय। २ अपनी सम्पत्तिके विभाग और प्रबन्ध आदिके सम्बन्ध-में की हुई वह व्यवस्था जो मरनेके समय कोई मनुष्य लिख जाता है, विल।

वसीयतनामा (अ० पु०) वह लेख जिसके द्वारा मनुष्य यह व्यवस्था करता है कि मेरी सम्पत्तिका विभाग और प्रबन्ध मेरे मरनेके पीछे किस प्रकार हो, विल।

वसीयस् (सं० त्रि०) धनवान्, दौलतमंद। (काठक २४।६)

वसीला (अ० पु०) १ सम्बन्ध। २ किसी कार्यकी सिद्धिका मार्ग, जरिया, द्वारा। ३ आश्रय, सहायता।

वसु (सं० पु०) वसतीति वस-उ। १ बकवृक्ष, अगस्तका पेड़। २ अनल, अग्नि। ३ रश्मि, किरण। ४ देवताओंका एक गण। इसके अन्तर्गत आठ देवता हैं। यथा—धर,

ध्रुव, सोम, विष्णु, अनिल, अनल, प्रत्यूष और प्रभास। ये आठ प्रसिद्ध अष्टवसु हैं।

ऋग्वेदसंहितामें वसुओंका उल्लेख देखा जाता है। पुराणादि शास्त्रग्रन्थोंमें इनकी संख्या आठ बतलाई गई है। इन देवताओंके प्रभाव तथा कार्यकारिताके सम्बन्धमें, महाभारतके भीष्मोपाख्यानमें यथेष्ट वर्णन किया गया है; किन्तु वैदिक विवरणके अनुसरण करनेसे मालूम होता है, कि ये एक एक प्रकृतितत्त्वके नियासभूत देवता थे। हम लोग ऋक्संहिताके किसी किसी स्थानमें वसुओंको आप, ध्रुव, सोम, धर, अनिल, अनल, प्रभास तथा प्रत्यूष प्रभृति प्रकृतिपुञ्जके नियामक कर्त्तृरूपमें देखते हैं। रामायणमें इन वसुओंका वर्णन अदिति-पुत्र कह कर किया गया है। ऋक्संहिताके २।२७।११,७।५२।१ २, ८।१८।१५में ये आदित्य कह कर वर्णन किये गये हैं। फिर कहीं कहीं ये अग्नि ५।६।१,५।२४।२,५।५१।१३, कहीं पर मरुद्गण ५।५५।८,६।५०।४,७।३६।१७, कहीं इन्द्र १।११०।७, ४।३२।१४,७।३१।३, कहीं पर ऊषा ५।६४।१, कहीं अश्विद्वय १।१५८।१, कहीं पर रुद्र १।४३।५ एवं कहीं पर वायु ४।४०।५ रूपमें वर्णित हैं। उक्त संहिताके १।१६३।२ मन्त्र से मालूम होता है, कि वसुओंने सूर्यसे अश्वका निर्माण किया था। २।३।४ मन्त्रमें इनके घृताक्त वर्हिमें (अग्नि स्वरूप) उपवेशन करनेका आवाहन किया है। वाजसनेय संहिताके ५।११ मन्त्रमें ये अष्ट संख्यक गणदेवता, २।५ तथा ११।५५ मन्त्रोंमें आदित्य तथा रुद्र; ८।१८ मंत्रमें निवासप्रद देवगण एवं अथर्ववेदके "अस्मिन् वसु वसवो धारयन्त्विन्द्रः पूषा वरुणो मित्रो अग्निः। इममादित्या उत विश्वे च देवा उत्तरस्मिन् ज्योतिषि धारयन्तु" (१।६।१) मंत्र पाठ करनेसे जाना जाता है, कि उक्त गणदेवता पृथ्वीके नियन्ता थे। ये धनरक्षक एवं इन्द्र तथा अग्नि प्रभृतिके अनुगत सहकारी थे। सायणाचार्यने उक्त मन्त्रके भाष्यमें वसुओंकी इस प्रकार व्युत्पत्ति की है :—

'अस्मिन् जने सर्वसम्पदाति फलकामे वसवः निवासहेतुभुता एतत्संज्ञा देवा। वसु अभिलषितं धनं धारयन्तु स्थापयन्तु। धृण् धारणे अस्मात् णिच् वसव इति। वस निवासे। शस्वृ स्निहित्रप्यसिवसिहनिक्लिदिबन्धिमनिभ्यश्च (उण् १।११) इति उप्रत्ययः। तत धान्ये णित् (उण् १।१०) इत्यनुवृत्तेः ञित्यादिर्नित्यम् इति आद्युदात्तत्वम्।" वसुओंके इस धनाधिपत्यके कारण ये परवर्त्तिकालमें विष्णु तथा कुबेरके रूपमें कल्पित हुए हैं।

ये वसुगण पितृविशेष हैं। मनुसंहितामें लिखा है, कि श्राद्धकालमें पितृगणका वसादिरूपमें ध्यान करना होता है।

श्रीमद्भागवतमें लिखा है—दक्ष प्रजापतिने षष्ठमन्वन्तरमें द्वितीय जन्ममें असिक्नीके गर्भमें ६ कन्याएं उत्पन्न की। ये सब कन्याएं प्रजापतिगणको प्रदत्त हुई थीं। उनमें धर्मको दश कन्याएं दान की गई। उन दश कन्याओंके नाम जैसे—भानु, लम्बा, ककुत्, यामि, विश्वा, साध्या, मरुत्वती, वसु, मुहूर्त्ता तथा संकल्पा। इनके मध्य वसुनाम्नी कन्याके गर्भसे ८ पुत्र उत्पन्न हुए। ये आठों पुत्र ही अष्टवसु हैं। इन अष्टवसुके नाम जैसे—द्रोण, प्राण, ध्रुव, अर्क, अग्नि, दोष, वास्तु तथा विभावसु। द्रोणकी अभिमती नाम्नी पत्नीके गर्भसे हर्ष, शोक तथा भय प्रभृति पुत्र पैदा हुए। ऊर्ज्जस्वतीके गर्भसे प्राणके दो पुत्र हुए। उनके नाम सनायु तथा पुरोजव। धारणी पत्नीसे ध्रुवके पुर नामक एक पुत्र हुआ। वासना नाम्नी पत्नीसे अर्कके तर्षादि पुत्र पैदा हुए। अग्नि द्वारा वसुधाराके गर्भसे द्रविणक प्रभृति पुत्र उत्पन्न हुए। शर्व्वरीके गर्भसे दोष द्वारा एक पुत्र पैदा हुआ। यह पुत्र हरिका अंशस्वरूप था, उसका नाम शिशुमार पड़ा। वास्तुको आङ्गिरसी नाम्नी पत्नीसे विश्वकर्माको उत्पत्ति हुई। विश्वकर्मा चाक्षुष नामधारी मनु द्वारा उत्पन्न हुए थे। मनुके पुत्र विश्वदेवगण तथा साध्यगण थे। विभावसु द्वारा ऊषा नाम्नी पत्नीके गर्भसे तीन पुत्र पैदा हुए। उनके नाम—व्युष्ट, रोचिष तथा तप।

महाभारतके दानधर्ममें अष्ट वसुओंके नाम इस प्रकार निर्दिष्ट किये गये हैं। जैसे—धर, ध्रुव, सोम, सावित्र, अनिल, अनल, प्रत्यूष तथा प्रभाष।

अग्निपुराणमें अष्टवसुओंकी नामनिरुक्ति तथा वंशविवृति इस प्रकार देखी जाती है। नाम जैसे—आप, ध्रुव, सोम, धर, अनिल, अनल, प्रत्यूष तथा प्रभास। इनमें आपके पुत्रोंके नाम जैसे—वैतण्ड्य, श्रम, शान्त

मांगो।' वशिष्ठ बोले, 'महामाये! यदि आपकी मुझ पर कृपा हुई, तो मुझे यही वर दीजिये, 'जो इस आचार-का आश्रय कर तुम्हारी आराधना करेगा, तुम अवश्य उसके प्रति सुप्रसन्न होगी।' देवी 'तथास्तु' कह कर बोलीं, 'वत्स! अणिमादि सिद्धियां तुम्हारी सर्वदा सेवा करेंगी।' मुनिवर वशिष्ठ महामायासे इस प्रकार वर पा कर नक्षत्रलोकको चले गये और तभीसे आज तक वहीं दीप्ति पा रहे हैं। (चीनाचारक्रम)

वसिष्ठ (सं० पु०) वसिष्ठ पृषोदरादित्वात् शस्य सः। वसिष्ठ मुनि। (द्विरूपको०)

वसिष्ठ—एक प्रसिद्ध पण्डित। इन्होंने इतिहास, गण्डा-न्तादि दोष विचार, ग्रहशान्तिपद्धति और शान्तिविधि नामक कितने ग्रन्थ लिखे। यह शेषोक्त ग्रन्थ वासिष्ठी-शान्ति नामसे परिचित है।

वसिष्ठक (सं० पु०) वसिष्ठ ऋषि या तत्सम्बन्धी।

वसिष्ठतन्त्र (सं० क्ली०) तन्त्रभेद।

वसिष्ठत्व (सं० क्ली०) वसिष्ठके भाव या धर्म।

वसिष्ठनिह्व (सं० पु० क्ली०) साममेद। (लाट्या० ३।६।१२)

वसिष्ठपुत्र (सं० पु०) वसिष्ठके पुत्र या वंशधरगण। ये लोग ऋग्वेदके ७।३३।१०-१४ मन्त्रद्रष्टा कहलाते हैं। गरुड़-पुराणके पांचवें अध्यायमें वसिष्ठपुत्रोंका विवरण मिलता है।

वसिष्ठपुराण (सं० पु०) एक उपपुराण। इसका उल्लेख देवीभागवतमें है। कुछ लोगोंका कहना है, कि लिङ्गपुराण ही वसिष्ठपुराण है।

वसिष्ठप्रमुख (सं० त्रि०) वसिष्ठपुरतः। वसिष्ठ ऋषि जिस कार्यमें अग्रणी हों।

वसिष्ठप्राची (सं० स्त्री०) एक जनपदका नाम।

वसिष्ठशफ (सं० पु० क्ली०) साममेद। (लाट्या० १।६।३२)

वसिष्ठसंसर्प (सं० पु०) एक प्रकारका संन्यासी। (आश्व० श्रौ० १०।२।२५)

वसिष्ठसंहिता (सं० स्त्री०) १ एक स्मृतिका नाम, उन्नीस संहिताओंमेंसे एक संहिता। वसिष्ठ मुनिने यह संहिता प्रणयन की है इसीसे इसका नाम वसिष्ठ-संहिता पड़ा है। यह संहिता बीस अध्यायमें समाप्त है। इसमें पहले धर्म और धर्मके लक्षण, वर्णाश्रमधर्म, सदाचार आदि अनेक विषय वर्णित हैं। २ योगवासिष्ठ। योगवासिष्ठ भी वसिष्ठसंहिता ही कहलाता है।

वसिष्ठसिद्धान्त (सं० पु०) ज्योतिषका एक सिद्धान्त ग्रन्थ।

वसिष्ठाङ्कुश (सं० पु०) साममेद।

वसिष्ठानुपद (सं० पु०) साममेद।

वसिष्ठापवाह (सं० पु०) सरस्वती नदीके किनारेका एक प्राचीन स्थान। कहते हैं, कि जब वसिष्ठ और विश्वामित्र-के बीच घोर युद्ध हुआ था, तब सरस्वती नदीने वसिष्ठ-को विश्वामित्रसे बचानेके लिये इसी स्थान पर छिपा लिया था।

वसिष्ठोपपुराण (सं० क्ली०) एक उपपुराण। देवीभाग-वतमें इस पुराणका उल्लेख है। कोई कोई इसे वासिष्ठ लैङ्गपुराण कहा करते हैं।

वसीका (अ० पु०) १ मुसलमानी धर्मशास्त्रके अनुसार वह धन जो विधर्मी या काफ़िरसे नक़द रुपयेके मुनाफे के तौर पर लिया जाय। २ वह धन जो इस उद्देश्यसे सरकारी खज़ानेमें जमा किया जाय कि उसका सूद जमा करनेवालेके सम्बन्धियोंको मिला करे अथवा किसी धर्म-कार्य, मकानकी मरम्मत आदिमें लगाया जाय। ३ ऐसे धनसे आया हुआ सूद। ४ वफ़कनामा इक़रारनामा।

वसीयत (अ० स्त्री०) १ वह अंतिम आदेश जो विदेश जानेवाला या मरणासन्न पुरुष इस उद्देश्यसे करता है कि मेरी अनुपस्थितिमें अमुक काम इस प्रकार किया जाय। २ अपनी सम्पत्तिके विभाग और प्रबन्ध आदिके सम्बन्ध-में की हुई वह व्यवस्था जो मरनेके समय कोई मनुष्य लिख जाता है, विल।

वसीयतनामा (अ० पु०) वह लेख जिसके द्वारा मनुष्य यह व्यवस्था करता है कि मेरी सम्पत्तिका विभाग और प्रबन्ध मेरे मरनेके पीछे किस प्रकार हो, विल।

वसीयस् (सं० त्रि०) धनवान्, दौलतमंद। (काठक २४।६)

वसीला (अ० पु०) १ सम्बन्ध। २ किसी कार्यकी सिद्धिका मार्ग, ज़रिया, द्वारा। ३ आश्रय, सहायता।

वसु (सं० पु०) वसतीति वस-उ। १ बकवृक्ष, अगस्तका पेड़। २ अनल, अग्नि। ३ रश्मि, किरण। ४ देवताओंका एक गण। इसके अन्तर्गत आठ देवता हैं। यथा—धर,

ध्रुव, सोम, विष्णु, अनिल, अनल, प्रत्यूष और प्रभास। ये आठ प्रसिद्ध अष्टवसु हैं।

ऋग्वेदसंहितामें वसुओंका उल्लेख देखा जाता है। पुराणादि शास्त्रग्रन्थोंमें इनकी संख्या आठ बतलाई गई है। इन देवताओंके प्रभाव तथा कार्यकारिताके सम्बन्धमें महाभारतके भीष्मोपाख्यानमें यथेष्ट वर्णन किया गया है; किन्तु वैदिक विवरणके अनुसरण करनेसे मालूम होता है, कि ये एक एक प्रकृतितत्त्वके नियासभूत देवता थे। हम लोग ऋक्संहिताके किसी किसी स्थानमें वसुओंको आप, ध्रुव, सोम, धर, अनिल, अनल, प्रभास तथा प्रत्यूष प्रभृति प्रकृतिपुञ्जके नियामक कर्त्तृरूपमें देखते हैं। रामायणमें इन वसुओंका वर्णन अदिति-पुत्र कह कर किया गया है। ऋक्संहिताके १।२७।११,७।५२।१ २, ८।१८।१५में ये आदित्य कह कर वर्णन किये गये हैं। फिर कहीं कहीं ये अग्नि ५।६।१,५।२४।२,५।५१।१३, कहीं पर मरुद्गण ५।५५।८,६।५०।४,७।३६।१७, कहीं इन्द्र १।११०।७, ४।३२।१४,७।३१।३, कहीं पर ऊषा ५।६४।१, कहीं अश्विद्वय १।१५८।१, कहीं पर रुद्र १।४३।५ एवं कहीं पर वायु ४।४७।५ रूपमें वर्णित हैं। उक्त संहिताके १।१६३।२ मन्त्र से मालूम होता है, कि वसुओंने सूर्यसे अश्वका निर्माण किया था। २।३।४ मन्त्रमें इनके घृताक्त वर्हिमें (अग्नि स्वरूप) उपवेशन करनेका आवाहन किया है। वाजसनेय संहिताके ५।११ मन्त्रमें ये अष्ट संख्यक गणदेवता, २।५ तथा ११।५५ मन्त्रोंमें आदित्य तथा रुद्र; ८।१८ मंत्रमें निवासप्रद देवगण एवं अथर्ववेदके "अस्मिन् वसु वसवो धारयन्त्विन्द्रः पुषा वरुणो मित्रो अग्निः। इममादित्या उत विश्वे च देवा उत्तरस्मिन् ज्योतिषि धारयन्तु" (१।९।१) मंत्र पाठ करनेसे जाना जाता है, कि उक्त गणदेवता पृथ्वीके नियन्ता थे। ये धनरक्षक एवं इन्द्र तथा अग्नि प्रभृतिके अनुगत सहकारी थे। सायणाचार्यने उक्त मन्त्रके भाष्यमें वसुओंकी इस प्रकार व्युत्पत्ति की है :—

'अस्मिन् जने सर्वसम्पदाति फलकामे वसवः निवासहेतुभुता एतत्संज्ञा देवा। वसु अभिलषितं धनं धारयन्तु स्थापयन्तु। धृञ् धारणे अस्मात् णिच् वसव इति। वस निवासे। श स्वृ स्निहित्रप्यसिवसिहनिक्लिदिबन्धिमनिभ्यश्च (उण् १।११) इति उप्रत्ययः। तत्र धात्ये णित् (उण् १।१०) इत्यनुवृत्तेः ञित्यादिर्नित्यम् इति आद्युदात्तत्वम्।" वसुओंके इस धनाधिपत्यके कारण वे परवर्त्ति कालमें विष्णु तथा कुवेरके रूपमें कल्पित हुए हैं।

ये वसुगण पितृविशेष हैं। मनुसंहितामें लिखा है, कि श्राद्धकालमें पितृगणका वसादिरूपमें ध्यान करना होता है।

श्रीमद्भागवतमें लिखा है—दक्ष प्रजापतिने षष्ठमन्वन्तरमें द्वितीय जन्ममें असिक्नीके गर्भसे ६ कन्याएं उत्पन्न कीं। ये सब कन्याएं प्रजापतिगणको प्रदत्त हुई थीं। उनमें धर्मको दश कन्याएं दान की गईं। उन दश कन्याओंके नाम जैसे—भानु, लम्बा, ककुद्, यामि, विश्वा, साध्या, मरुत्वती, वसु, मुहूर्त्ता तथा संकल्पा। इनके मध्य वसुनाम्नी कन्याके गर्भसे ८ पुत्र उत्पन्न हुए। ये आठों पुत्र ही अष्टवसु हैं। इन अष्टवसुके नाम जैसे—द्रोण, प्राण, ध्रुव, अर्क, अग्नि, दोष, वास्तु तथा विभावसु। द्रोणको अभिमती नाम्नी पत्नीके गर्भसे हर्ष, शोक तथा भय प्रभृति पुत्र पैदा हुए। ऊर्ज्जस्वतीके गर्भसे प्राणके दो पुत्र हुए। उनके नाम स्वायु तथा पुरोजव। धारणी पत्नीसे ध्रुवके पुर नामक एक पुत्र हुआ। वासना नाम्नी पत्नीसे अर्कके तर्षादि पुत्र पैदा हुए। अग्नि द्वारा वसुधाराके गर्भसे द्रविणक प्रभृति पुत्र उत्पन्न हुए। शर्व्वरीके गर्भसे दोष द्वारा एक पुत्र पैदा हुआ। यह पुत्र हरिका अंशस्वरूप था, इसका नाम शिशुमार पड़ा। वास्तुकी आङ्गिरसी नाम्नी पत्नीसे विश्वकर्माकी उत्पत्ति हुई। विश्वकर्मा चाक्षुष नामधारी मनु द्वारा उत्पन्न हुए थे। मनुके पुत्र विश्वदेवगण तथा साध्यगण थे। विभावसु द्वारा ऊषा नाम्नी पत्नीके गर्भसे तीन पुत्र पैदा हुए। उनके नाम—व्युष्ट, रोचिष तथा तप।

महाभारतके दानधर्ममें अष्ट वसुओंके नाम इस प्रकार निर्दिष्ट किये गये हैं। जैसे—धर, ध्रुव, सोम, सावित्र, अनिल, अनल, प्रत्यूष तथा प्रभाष।

अग्निपुराणमें अष्टवसुओंकी नामनिरुक्ति तथा वंशविवृति इस प्रकार देखी जाती है। नाम जैसे—आप, ध्रुव, सोम, धर, अनिल, अनल, प्रत्यूष तथा प्रभास। इनमें आपके पुत्रोंके नाम जैसे—वैतण्ड्य, श्रम, शान्त

तथा मुनि। ध्रुवके पुत्र लोकान्तकारी काल ; सोमके पुत्र वर्च्चाः ; धरके पुत्र द्रविण, हुत, हव्यवह, शिशिर, प्राण तथा रमण ; अनिलके पुत्र पुरोजव तथा अविज्ञात ; अग्नि या अनलके पुत्र कुमार ; इन सबोंने शरस्तम्बमें जन्म ग्रहण किया था। शाख, विशाख तथा नैगमेय ये तीन कुमारके पृष्ठज थे। उक्त कार्त्तिकेय तथा यति सनत्कुमार कृत्तिका द्वारा उत्पन्न हुए। प्रत्यूषसे देवल एवं प्रभाससे विश्वकर्माका जन्म हुआ। ये विश्वकर्मा ही देवशिल्पी हैं। इनके द्वारा नाना प्रकारके शिल्पोंका आविष्कार हुआ है।

देवीभागवतमें अष्टवसुओंका विवरण इस तरह पाया जाता है—एक समय अष्टवसु अपनी अपनी पत्नियोंके साथ स्वेच्छाविहारमें बाहर हो कर घटनाक्रमसे वसिष्ठके आश्रममें पहुंचे। पृथु प्रभृति वसुओंके मध्य द्यौ नामक प्रधान वसुकी पत्नीने वसिष्ठकी नन्दिनी धेनुको देख कर अपने पतिसे उसका परिचय पूछा। स्वामी द्यौने उत्तर दिया—प्रिये ! इस प्रधाना धेनुके स्वामी महर्षि वसिष्ठ हैं। नारी हो या पुरुष, जो कोई इस धेनुका दूध पीता है, उसकी आयु अयुत वर्षकी हो जाती है। उसकी जवानी कभी नष्ट नहीं होती, दुग्धपानके गुणसे यौवन चिर दिनों तक एक-सा बना रहता है।

वसुकी बात सुन कर वसुपत्नी बोली—महाभाग ! इस धेनुके दूधका जब ऐसा गुण है, तब मर्त्त्यलोकमें मेरी एक सुन्दरी सखी है, वह राजर्षि उशीनरकी तनया है ; उसके लिये इस नन्दिनी धेनुको ले चलो। इसके दूधको पी कर मर्त्त्यलोकमें एकमात्र मेरी वही सखी जरारोगहीन हो कर सुख-स्वच्छन्दतापूर्वक कालयापन करेगी। पत्नीके अनुरोधसे अन्यान्य वसुओंकी सहायता द्वारा वसु द्यौने चुपकेसे वसिष्ठकी धेनु चुरा ली।

इधर तपोधन वसिष्ठ वनसे फल ले कर आश्रममें लौटे। आश्रममें उन्होंने नन्दिनी तथा उसके बच्चेको न देखा। वसिष्ठ सोचने लगे इन दोनोंको कौन हर ले गया ? वे उसी समय जंगल, पहाड़ तथा कन्दरामें नन्दनीकी खोज करने लगे। बहुत अनुसंधान करने पर भी नन्दिनीका पता न चला। उस समय उस शांत दांत जितेन्द्रिय महर्षिके मनमें क्रोधकी अग्नि धधक उठी। उन्होंने ध्यान करके मालूम किया, कि वसुओंने उनके आश्रमकी धेनु नन्दिनीको अन्याय पूर्वक हरण किया है। इस पर मुनिके मुखसे अमोघ अभिशाप निर्गत हुआ। ऋषिने कहा—मेरी अवज्ञा करके वसुओंने जब मेरे आश्रमकी धेनुको चुरा कर ले गया है, तब उन्हें बहुत जल्द मनुष्य योनिमें जन्म लेना पड़ेगा।

वसिष्ठने इस तरह शाप दिया। उस समय इस शापका विवरण मालूम होने पर अभिशप्त वसुगण दुःखित मनसे वसिष्ठके आश्रममें आ कर उनके चरणों पर गिर गये एवं ऋषिके शरणापन्न हो कर अनुनय विनय कर उन्हें खुश करनेकी चेष्टा करने लगे। तब ऋषिने उनसे कहा—'मेरे प्रसादसे सम्वत्सरके मध्य ही तुम लोग शापसे मुक्त हो जाओगे। किन्तु तुम लोगोंके मध्य जिस वसुने मेरी नन्दिनीका हरण किया था, उसे दीर्घकाल तक मनुष्य-लोकमें वास करना पड़ेगा।'

ऋषिकी बातोंमें फिर वसुओंने आपत्ति नहीं की। उन्होंने ऋषिवाक्य अंगीकार कर वसिष्ठाश्रमसे प्रस्थान किया। जाते जाते रास्तेमें उन्हें सरित्-प्रवरा गंगा मिली। इस समय ऋषिके अभिशापसे वसुओंकी महिमा विलुप्त हो गई थी एवं हृदय चिन्ताज्वरसे जर्जरित हो रहा था। उन्होंने पावनी गङ्गाको देखते ही प्रणाम करके कहा—'देवि ! हम लोग ऋषिके शापसे हतमाहात्म्य हो गये हैं। हाय ! हम लोग सुधाभोजी देव हो कर किस तरह मनुष्ययोनिमें जन्मग्रहण करेंगे, हमें इसकी बड़ी चिन्ता लग रही है। इसीलिये हम लोग निवेदन करते हैं, हे सरित्श्रेष्ठे ! मानुषी हो कर आप ही हम लोगोंका उत्पादन करें। हे निष्पापे ! राजर्षि शान्तनु इस समय भूमंडलके नायक हैं। आप जा कर उनकी भार्य्या होवें। हम लोग आपके गर्भसे एक एक करके जन्मधारण करेंगे। जन्म लेनेके साथ ही आप हम लोगोंको जलमें फेंक देंगी। इस तरहसे थोड़े ही दिनोंमें हम लोग ऋषिके शापसे मुक्त हो जायेंगे।' गङ्गासे इस प्रकार अनुरोध कर वसुगण अपने अपने स्थानको चले गये। गङ्गादेवी भी इस विषयकी बार बार चिंता करती हुई वहांसे चली गईं। (देवीभागवत २।३।२४-४४)

५ योक्त्र, ओत। ६ राजा। ७ धनाधिप, कुबेर।

८ साधु पुरुष, सज्जन। ९ पीतमुद्ग, पीली मूंग। १० वृक्ष, पेड़। ११ पुष्करिणी, सरोवर। (सिद्धान्तकौ० उणादि वृत्ति) १२ शिव। १३ सूर्य। १४ विष्णु। (महाभा० १३।१४९।८३)

'वसन्ति भूतान्यत्र एतेषु स्वयमपीति वसुः।' (शाङ्करभाष्य)

१५ कुलीन कायस्थकी पद्धतिविशेष। १६ शब्दों द्वारा संख्या सूचित करनेकी रीतिके अनुसार आठकी संख्या। १७ बकुल, मौलसिरी। १८ राजा नृगके एक पुत्रका नाम। १९ छप्पयके हो सकनेवाले भेदोंमेंसे ६९वाँ भेद।

(क्ली०) वसत्यनेनेति वस (शृ स्तृ स्निहीति। उण् १।११) इति उ। २० रत्न। २१ धन। २२ वृद्धोषध। २३ श्याम। २४ हाटक, सोना। २५ जल। (स्त्री०) २६ दीप्ति, आभा। २७ दक्ष प्रजापतिकी एक कन्या। यह धर्मको व्याही थी और इससे द्रोण आदि आठ वसुओंका जन्म हुआ था। (विष्णुपु० १।१५।१०५) (त्रि०) २८ मधुर। २९ शुष्क। ३० जो सबमें वास करता हो। ३१ जिसमें सबका वास हो।

वसुक (सं० क्ली०) वसुवत् कायतीति कै-क। १ साम्भर लवण। २ पांशु लवण। ३ वास्तूक, बथुआ। ४ कृष्णागुरु, काला अगर। ५ क्षार लवण। (भावप्र०) (पु०) वसुः सूर्यस्तमात्मना कायतीति कै आतोऽनुपेति कः। ६ मदारका पेड़। ७ बनहुला वृक्ष, बड़ी मौलसिरी। ८ पुष्पविशेष। यह पुष्प सफेद और लाल दो प्रकारका होता है। पर्याय—वसु, शैव, बक, शिवमल्लिका, पाशुपत, शिवमत, सुरेष्ट, शिवशेखर। गुण—कटु, तिक्त, उष्ण, पाकमें शीतल, दीपन, अजीर्ण, वात और गुल्मनाशक। श्वेत पुष्प—रसायन। (राजनि०) ९ पीतमुद्ग, पीली मूंग

वसुकर्ण (सं० पु०) वसुक गोत्रमें उत्पन्न एक मन्त्रद्रष्टा ऋषि।

वसुकल्प—एक प्राचीन कवि। इन्होंने अपने ग्रन्थमें केशव, बाण, योगेश्वर और राजशेखर कविका उल्लेख किया है।

वसुकल्पदत्त—एक प्राचीन कवि।

वसुकीट (सं० पु०) वसुनि धने कीट इव प्राधकत्वात्। याचक।

वसुकृत (सं० पु०) वसुकके गोत्रमें उत्पन्न एक मन्त्रद्रष्टा ऋषि।

वसुकीदर (सं० क्ली०) तालीशपत्र।

वसुक्र (सं० पु०) एक मन्त्रद्रष्टा ऋषिका नाम। इस नामके दो ऋषि हुए हैं। एक इन्द्रके गोत्रमें उत्पन्न हुए थे, दूसरे वशिष्ठके गोत्रके थे।

वसुक्रश्री—एक वैयाकरण। गणरत्नमहोदधिमें इनका उल्लेख है।

वसुगुप्त—सिद्धांतचन्द्रिका, स्पन्दसूत्र और स्पन्दकारिकाके रचयिता। ये भट्ट कल्लट और राजानक श्रीरामके गुरु थे। सर्वदर्शनसंग्रहमें इनका उल्लेख देखा जाता है। ये वसुगुप्ताचार्य नामसे विख्यात थे।

वसुचन्द्र (सं० पु०) महाभारतके अनुसार एक व्यक्तिका नाम। (भारत द्रोणपर्व)

वसुचरण (सं० पु०) डगणके चौथे भेदका नाम। इसके आदिमें गुरु और फिर दो लघु होते हैं।

वसुचारुक (सं० क्ली०) स्वर्ण, सोना।

वसुच्छिद्रा (सं० स्त्री०) महामेदा।

वसुजित् (सं० त्रि०) वसुजयकारी, वसुको जीतनेवाला। (अथर्व ५।२०।१६)

वसुता (सं० स्त्री०) वसुसत्त्रा, धनवत्ता। (ऋक् ६।१।१३)

वसुताति (सं० स्त्री०) धनविस्तार। (ऋक् १।१२२।१२ सायण)

वसुत्ति (सं० स्त्री०) धनलाभ।

वसुत्व (सं० क्ली०) वसोर्भावः त्व। वसुका भाव या धर्म। (ऋक् १०।६१।१२)

वसुत्वन (सं० क्ली०) वासक, वसुत्वयुक्त।

वसुद (सं० पु०) वसूनि ददातीति दा-क। १ कुबेर। वसु धनं ददातीति दा-क। २ विष्णु। (भारत १३।१४९।४२) (त्रि०) ३ धनदाता।

वसुदत्त (सं० पु०) कथासरित्सागरोक्त एक व्यक्तिका नाम। (कथास० २१।५३)

वसुदत्तपुर (सं० क्ली०) एक नगरका नाम।

वसुदा (सं० स्त्री०) १ स्कन्द माताओंमेंसे एक। २ पृथ्वी। ३ माली राक्षसकी पत्नी। यह नर्मदा नामकी गन्धर्वीकी पुत्री थी। इसके अनल, निल, हर और ... नामक चार पुत्र थे, जो विभीषणके अमात्य थे।

वसुदान (सं० पु०) १ धनदान। २ विदेहराजके एक पुत्रका नाम। (भारत २।४।२६) ३ वृहद्रथके एक पुत्रका नाम। ४ हिरण्यरेताके एक पुत्रका नाम।
(भागवत ५।२०।१४)

वसुदामन् (सं० पु०) बृहद्रथके एक पुत्रका नाम।

वसुदामा (सं० स्त्री०) स्कन्द माताओंमेंसे एकका नाम।
(महाभारत शल्यपर्व)

वसुदायन (सं० त्रि०) वसुदा, धन देनेवाला।

वसुदेय (सं० क्ली०) अभिमत धनप्रदान।

वसुदेव (सं० पु०) वसुना धनेन दीव्यतीति दिव्-अच्। १ श्रीकृष्णके पिता। पर्याय—आनकदुन्दुभि, शूर, कृष्ण-पिता। वसुदेवने पूर्वपुण्यके फलसे श्रीकृष्णको पुत्र-रूपमें पाया था। ये चन्द्रवंशीय यदुकुलोद्भव देवमीढ़ुष-तनय शूरके पुत्र थे। यदुकुलपति भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रके पिता एवं पांडवमाता कुन्तीदेवीके भ्राता थे। इनके जन्म समय स्वर्गमें दुन्दुभि बजनेकी आवाज सुनाई पड़ी थी, इसलिये इनका दूसरा नाम आनकदुन्दुभि रखा गया। इनकी माताका नाम महिषी था। वसुदेव अपने पिताके सबसे बड़े पुत्र थे। ये अत्यन्त सुन्दर, यथेष्ट बली एवं चन्द्रमाके समान कान्तिशाली थे।

वसुदेवकी पौरवी, रोहिणी, मदिरा, धरा, वैशाखी, भद्रा, सुनाम्नी, सहदेवा, शान्तिदेवा, सुदेवा, देवरक्षिता, वृकदेवी तथा देवकी नामक चौदह स्त्रियां एवं सतनु तथा वड़वा नामक दो परिचारिकाएं थीं। उनकी पहली तथा सबसे बड़ी पत्नी बाह्लीककी कन्या रोहिणी थीं। उपरोक्त पत्नियोंके मध्य शेष आहुकके पुत्र देवकका कन्याएं थीं। उनमें सबसे छोटी देवकी ही भगवान् कृष्णकी माता थीं। देवकके भाई उग्रसेनका पुत्र कंस मथुराका राजा था। इस तरहसे वसुदेव कंसके बहनोई थे।

एक समय महर्षि नारदने कंसके पास आ कर कहा-'महाराज! मैं ब्रह्मादि देवताओंको मन्त्र द्वारा जान सका हूं, कि तुम्हारी बहिन देवकीके गर्भसे जो आठवां पुत्र पैदा होगा, उसीके हाथसे तुम्हारी मृत्यु होगी।' नारदके मुखसे अपने मरनेकी बात सुन कर असुर कंसने देवकी-के गर्भच्छेदन करनेका संकल्प किया। तदनुसार उसने देवकी तथा वसुदेवको कैद कर रखा। एक एक करके कंसने देवकीके ६ प्रसूत बच्चेको मार डाला। सप्तम गर्भ योगमाया द्वारा रोहिणीके गर्भमें संचारित हुआ। अष्टम गर्भसे भगवान् श्रीकृष्णका जन्म हुआ। इसी समय गोकुलमें नन्दकी स्त्री यशोदाके गर्भसे विष्णु-शरीरसम्भवा योगनिद्राका जन्म हुआ था। योगनिद्रा-के पैदा होनेकी बात यशोदा तकको मालूम नहीं हुई।

इधर वसुदेव अपने आठवें पुत्रको श्रीवत्सलांछित तथा दिव्यलक्षणसम्पन्न देख कर कंसके भयसे बोले—हे अधोक्षज! इस रूपका परित्याग करो। तुमसे पहले पैदा होनेवाले मेरे छः पुत्रोंको दुर्धर्ष कंसने मार डाला है। वसुदेवकी बातें सुन कर भगवानने अपना यह रूप संहार करके कहा—पिता! मुझे शीघ्र गोपपति नन्दके यहां ले चलें। भगवान् कृष्णको ऐसी बात सुन कर वसुदेव उसी समय उन्हें गोदमें उठा कर बड़ी शीघ्रतासे गोकुलकी ओर बढ़े एवं यमुना नदी पार कर गोकुल पहुंचे। इस समय तक भी यशोदाको अपनी पुत्री होनेकी खबर मालूम न हुई थी। वसुदेवने चुपकेसे यशोदा के शयनागारमें प्रवेश किया एवं भगवान् कृष्णको उसके समीप लिटा दिया। इसके बाद वे यशोदाकी तत्का-लीन प्रसूत पुत्रीको गोदमें उठा कर वहांसे अपने स्थान-को लौट आये। पीछे कंसके पास जा कर उन्होंने अपनी लड़की होनेकी सूचना दी। कंस तथा कृष्ण देखो।

२ स्वनामप्रसिद्ध कलियुग-राजविशेषके अमात्य। ये देवभूतिको मार कर स्वयं राजा हुए थे।

"शुङ्गं हत्वा देवभूतिं कण्वोऽमात्यस्तु कामिनम्।
स्वयं करिष्यते राज्यं वसुदेवो महामतिः॥"
(भाग० १२।१।१८)

(क्ली०) वसवो देवता यस्य। ३ धनिष्ठा नक्षत्र।

वसुदेव—मलमासनिर्णयतन्त्रके प्रणेता।

वसुदेवत (सं० क्ली०) १ धनिष्ठा नक्षत्र। (वृहत्सं० ८।२२) पु०) २ वसुदेव।

वसुदेवता (सं० स्त्री०) वसवो देवता यस्याः। धनिष्ठा नक्षत्र।

वसुदेव प्रसाद—सच्चिदानन्दानुभवप्रदीपिकाके प्रणेता।

वसुदेवब्रह्मप्रसाद (सं० पु०) एक ग्रंथकारका नाम।
वसुदेवभू (सं० पु०) वसुदेवात् भवतीति भू क्विप्। श्रीकृष्ण।
वसुदेवात्मज (सं० पु०) वसुदेवस्यात्मजः। श्रीकृष्ण।
वसुदेव्या (सं० स्त्री०) धनिष्ठा नक्षत्र।
वसुदैव (सं० क्ली०) धनिष्ठा नक्षत्र। (बृहत्स० ७।११)
वसुदैवत (सं० क्ली०) धनिष्ठा नक्षत्र। (बृहत्स० १५।३०)
वसुद्रुम (सं० पु०) उडुम्बर वृक्ष, गूलरका पेड़।
वसुधर—एक प्राचीन कवि।
वसुधरा (सं० स्त्री०) बौद्ध भिक्षुकभेद।
वसुधर्मा (सं० पु०) महाभारतके अनुसार एक राजाका नाम।
वसुधर्मिका (सं० स्त्री०) स्फटिक, बिल्लौर।
वसुधा (सं० स्त्री०) वसूनि रत्नानि दधाति धारयतीति धा-क, सुवर्णादीनामाकरस्यात् तथात्वं। १ पृथ्वी। वसु-धनं दधाति धत्ते इति धा-क्विप्। (त्रि०) २ धनदाता, वसु अर्थात् धन देनेवाला।
वसुधाखर्ज्जूरिका (सं० स्त्री०) वसुधा-जाता खर्ज्जूरिका। भूखर्ज्जूरिका, खजूरोका पेड़।
वसुधाधर (सं० पु०) १ पर्व्वत। २ विष्णु।
वसुधाधिप (सं० पु०) वसुधायाः अधिपः। राजा, पृथिवीपति।
वसुधाधिपत्य (सं० क्ली०) वसुधायाः आधिपत्यं। वसुधा-का आधिपत्य, राजत्व।
वसुधान (सं० पु०) पृथ्वी।
वसुधापति (सं० पु०) वसुधायाः पतिः। पृथिवीपति।
वसुधापरिपालक (सं० पु०) वसुधायाः परिपालकः। वसुधापालनकारी, राजा।
वसुधापाल (सं० पु०) वसुधापालनकारी, राजा।
वसुधार (सं० पु०) पुराणानुसार एक पर्वतका नाम। (मार्क० पु० ५५।७)
वसुधारा (सं० स्त्री०) वसुवत् रत्नस्येव धारा यशो यस्याः। १ बौद्धशक्तिविशेष। पर्याय—तारा, महाश्री, ओंकार, स्वाहा, श्री, मनोरमा, तारिणी, जया, अनन्ता, शिवा, लोकेश्वरी, आत्मजा, खदूरवासिनी, भद्रा, वैश्या, नीलसरस्वती, शंखिनी, महातारा, धनदाता, त्रिलोचना। (हेम) वसूनां रत्नानां धारा सन्ततिर्यत्र। २ कुबेरपुरी। (शब्दरत्नमाला) ३ तीर्थविशेष। (भारत ३।८२।७२)

वसोश्चेदिराजस्य प्रिया धारा, वसुनो घृतस्य वा धारा। ४ चेदिराज वसुके उद्देशसे घीको जो धारा दी जाती है, उसे वसुधारा कहते हैं। नान्दीमुख श्राद्धमें वसु-धारा देनी होती है। यह धारा चेदिराज वसुको अति प्यारी है, इसीलिये इसे वसुधारा कहते हैं। दीवारको नोवँमें इसको धारा दी जाती है। नान्दीमुख श्राद्धमें पहले षष्ठीमार्कण्डेयादिकी पूजा करके वसुधारा देनी चाहिये। वसुधाराके बाद श्राद्ध किया जाता है।

वसु शब्दसे घृत, चेदिराज वसुको प्रीतिकामनासे घृतके द्वारा पांच वा सात धाराएं दी जाती हैं। यह धारा न तो बहुत लम्बी और न बहुत छोटी ही होनी चाहिये। दीवार पर नाभि परिमित स्थानसे यह धारा दी जाती है। यह वसुधारा साम, ऋक् तथा यजुर्वेदियों-के पृथक् पृथक् होती है।

पहले दीवारके नाभिपरिमित स्थानमें ७ सिंदूरको एवं ७ चन्दनकी लकीर खींच कर घृतकी धारा देनी होती है। सामवेदी लोगोंको चाहिये, कि पहले कोशीमें घृत ले कर निम्नोक्त मन्त्रका पाठ करें, इसके बाद वसुधारा देवें। मन्त्र यथा—

"यद्वर्च्चो हिरण्यस्य यद्वा वर्च्चो गवामुत।
सत्यस्य ब्रह्मणो वर्च्चस्तेन मांस संसृजामसि॥"

यजुर्वेदीगण निम्नोक्त मन्त्रसे वसुधारा देवें—
"वसोः पवित्रमसि शतधारं वसोः पवित्रमसि सहस्र-धारं देवस्त्वा सविता पुनातु वसोः पवित्रेण शतधारेण सुप्वा कामधुक्ष्व।"

इस मन्त्रका पाठ करके एक एक धारा देवें। प्रत्येक धारा देनेके समय इस मन्त्रका पाठ करना चाहिये। किन्तु ऋग्वेदियोंको पृथक् सात मन्त्रों द्वारा सातधाराएं देनी होती हैं। ऋग्वेदियोंके मन्त्र—

अप संचर आगच्छन्तो भूरिधारे पयस्वती। घृत-प्रधारैसुकृते सुचिवते। राजन्म यस्य यस्य भुवनस्य रोदसः आसम रेत सिंचितं. यन्मनुष्यतम्।

स्मन्या इव यनुत्तमे तवासुब्रता अभिचाकसीमि। यत्र सोमः श्रूयते यत्र यज्ञो पठते घृतस्य धारा मधुमत्सु-वघन्ते

तीनों ही पुत्रोंका नाम वसुबन्धु रखा था। तृतीय पुत्र सर्वास्तिवाद-शाखाध्यायी हो कर एवं अर्हद्धर्म आचरण करके ज्ञानमार्गानुगामी हो गये थे। वे अपनी माताके नामानुसार विलञ्चीवत्स नामसे विख्यात हुए। ज्येष्ठ वसुबन्धुने कनिष्ठकी तरह ज्ञानमार्गानुगामी हो कर भी प्रकृत ज्ञान या मोक्ष लाभसे वञ्चित हो कर आत्महत्या करनेकी चेष्टा की। किन्तु पीछे उन्होंने मैत्रेयके निकट महायान-मतविवृत्ति लाभ कर उस संकल्पका त्याग किया। इसके बाद वे जम्बूद्वीपमें लौट आये एवं एकान्त मनसे ज्ञानालोचनामें प्रवृत्त हुए। इसलिये वे असंग वसुबन्धुके नामसे प्रसिद्ध हुए। जम्बूद्वीपमें वास करनेके समय उन्होंने महायानसूत्रका अवलम्बन करके उपदेशकी रचना की थी।

द्वितीय भ्राताने सर्वास्तिवाद शाखाध्यायी हो कर अन्य दो भ्राताओंकी तरह आत्मज्ञान प्राप्त किया था। उनके समान दूरदर्शी तथा ज्ञानवान उस समय कोई न था। वे सिर्फ वसुबन्धुके नामसे विख्यात हुए थे।

बुद्धनिर्वाणकी ९वीं शताब्दीके बाद विन्ध्याचल पार्श्ववासी विन्ध्याकर तीर्थक नामक एक पंडित एक समय अयोध्या नगरके राजा विक्रमादित्यके राजदरबारमें उपस्थित हुए। उन्होंने राजसभामें बैठ कर वहांके बौद्ध-पुरोहितोंके साथ शास्त्रार्थ करनेकी प्रार्थना की। उस समय मणिरात, वसुबन्धु प्रभृति बौद्ध मनीषिगण कोई वहां उपस्थित नहीं थे। वे कार्योपलक्षमें राज्यके बाहर वास करते थे। उस समय केवल वसुबन्धुके गुरु अतिवृद्ध बुद्धमित्र वहां उपस्थित थे। वे राजाकी आज्ञासे शास्त्रार्थ करनेके लिये राजसभामें आये सही, पर वृद्धावस्थाके कारण कोई विशेष तर्क नहीं कर सके। बात बातमें उन्हें पराजय होना पड़ा। राजासे पुरस्कार प्राप्त कर पंडित तीर्थकने अपनी वासभूमि विन्ध्याचलको प्रस्थान किया।

वसुबन्धु जब लौट कर आये, तब उन्हें मालूम हुआ, कि उनके गुरु बुद्धमित्र एक तीर्थक नामक प[ण्डि]तसे शास्त्रार्थमें पराजय हुए हैं। यह सुन कर वे बहुत [दुःखि]त हुए एवं उन्होंने उस तीर्थकके साथ फिर शास्त्रार्थ [क]रनेके लिये उसकी बहुत खोज की, किन्तु दुर्भाग्यवश दोनोंमें भेंट न हुई।

वसुबन्धु अन्य कोई उपाय न देख कर उस तीर्थकके मतका खंडन करते हुए एक बड़े ग्रंथको रचनामें प्रवृत्त हुए। इस ग्रंथके समाप्त होने पर राजाने वसुबन्धुको तीन लाख स्वर्णमुद्रा पारितोषिक रूपमें दी थी। इस धनसे वसुबन्धुने बुद्धकी तीन मूर्त्तियोंका निर्माण किया। उनमें एक भिक्षुणियोंके लिये एवं अन्यान्य दो मूर्त्तियाँ सर्वास्तिवाद शाखाध्यायी तथा महायान साम्प्रदायिक लोगोंके लिये निर्दिष्ट हुई थीं।

इसके बाद वसुबन्धुने पवित्र बुद्धधर्म पुनः संस्थापन करनेके लिये बहुत यत्नके साथ वैभाषिक तत्त्वका अभ्यास किया। इसके बाद उन्होंने इस मतके प्रचार करनेका संकल्प किया। इस तरहसे वे मूलग्रंथसे अपनी दैनिक वक्तृता या उपदेशके विषयीभूत अंशोंका सारसंग्रह करके उसकी रचना करते थे एवं उस रचनाको एक ताम्रपत्र पर लिख कर ढिंढोरेके साथ सर्वत्र उपदेश किया करते थे। उनकी गाथाका अर्थविकाश तथा मीमांसा देख कर कोई उनके विरुद्ध मतप्रकाश करनेमें साहसी नहीं होता था। इस तरह ६ सौसे भी अधिक गाथाएं रचित हो कर समस्त वैभाष्यकी व्याख्या निष्पन्न हुई। इन सब गाथाओंका संग्रह ग्रंथ कोष या कोषकार नामसे विख्यात है।

व्याख्याग्रंथ समाप्त होने पर वसुबन्धुने ५०० स्वर्णमुद्रा पुरस्कारमें पाई एवं उस ग्रंथको काबुलराज्यके अभिधर्ममतानुवर्त्ती बड़े बड़े पंडितोंके समीप भेज दिया एवं उन्हें कहला भेजा, कि जो पंडित उनके मतका खंडन करेंगे, वे ही उक्त पुरस्कार पावेंगे। उस ग्रंथको पढ़ कर बौद्ध-यतिगण बहुत संतुष्ट हुए। उस ग्रंथमें बौद्धधर्मका इस तरह विस्तार देख कर वे पंडित लोग बहुत चकित हुए। उस ग्रंथमें किसी किसी स्थल पर पद्य बहुत ही कठिन था, इसलिये उन पंडितोंने उन दुर्बोध पद्योंका गद्यानुवाद करनेके लिये वसुबन्धुसे प्रार्थना की एवं पुरस्कारस्वरूप ५०० स्वर्णमुद्राएं और भेज दीं।

इसके बाद वसुबंधु अभिधर्मकोष लिखने लगे। इस ग्रंथमें इन्होंने सर्वास्तिवादमतका यथेष्ट समर्थन किया था एवं सूत्रपथभ्रष्ट मतोंकी निंदा की थी। इससे काबुलके बौद्ध पंडितोंके साथ इनका घोर विरोध उपस्थित

पूर्वोक्त अयोध्याराज विक्रमादित्यके पुत्र प्रादित्य तथा उनकी माताने वसुबन्धुसे बौद्धधर्मकी दीक्षा ली। पिताकी मृत्युके बाद जब प्रादित्य पितृसिंहासन पर बैठे, तब उन्होंने अपनी माताके अनुरोधसे अपने गुरुदेवको अयोध्या बुला लिया। यहां तीर्थक-सम्प्रदायभुक्त तथा प्रादित्यके बहनोई ब्राह्मण-तनय वसुरातने व्याकरणके मतानुसार वसुबन्धुकृत कोषग्रन्थका प्रतिवाद प्रचार किया। वसुबन्धुने भी अपने पक्षका समर्थन करनेके लिये उस प्रतिवादका खंडन करते हुए एक ग्रंथकी रचना की थी। उसके लिये बौद्धधर्मके आस्थावान् राजाने उस महापंडित वसुबन्धुको एक लाख एवं धर्मशीला राजमाताने दो लाख स्वर्णमुद्राएं पारितोषिकमें दी थीं। इस धनसे वसुबन्धुने काबुल, पुरुषपुर एवं अयोध्यामें तीन बुद्धमूर्त्ति स्थापन की थी।

वसुबन्धुके इस तरह प्रतिपत्तिविस्तारसे तीर्थकगण अप्रतिभ हो पड़े। उनको परास्त करनेके लिये तीर्थकगण सिंहभद्र नामक एक महापंडितको अयोध्या बुला लाये। उक्त पंडितने वसुबन्धुकृत कोषका मत खंडन करनेके लिये दो ग्रंथोंकी रचना की। उनमेंसे १० सहस्र गाथायुक्त एक ग्रंथमें वैभाषिककी व्याख्या प्रतिपादित हुई थी। दूसरा ग्रंथ १२ हजार गाथाओंमें लिखा गया था, उसमें तीर्थक राजाने अपना पक्ष समर्थन करते हुए अभिधर्मकोषका विपरीत अर्थ किया था।

इन दोनों ग्रंथोंकी रचना करनेके बाद सिंहभद्रने वसुबन्धुको तर्क करनेके लिये ललकारा, किंतु वसुबंधु फिर व्यर्थके वादानुवादमें प्रवृत्त नहीं हुए। उन्होंने उन्हीं पण्डितोंके निकट दोनोंके विभ्यस्त मतका मीमांसाभार अर्पण किया।

कहा जाता है, कि वसुबन्धु पहले अष्टादश शाखाके धर्ममतकी आलोचनामें प्रवृत्त हो कर हीनयानमतके ही पक्षपाती हो गये थे। पहले उन्हें महायानमतमें विश्वास नहीं होता था। वे कहते थे,—प्रकृत प्रस्तावसे इसमें बौद्धमतकी कोई बात नहीं है। पीछे वे कहीं महायानमतका खंडन करते हुए किसी ग्रन्थकी रचना न कर बैठें, इसलिये उनके भाईने उन्हें पुरुषपुर बुला कर महायानमतकी दीक्षा दी। उस समय उनके मनमें महायान मतकी अयौक्तिक समालोचनाके परिताप उपस्थित हुआ, वे अपनी जीभ काट देनेको तैयार हुए। उनके भाईने इस समय विशेष अनुरोध करके उन्हें इस दुर्विपाक कार्यसे रोका और कहा, इसके बदले तुम महायानमतके प्रतिपोषक दो एक ग्रन्थ लिख कर साम्प्रदायिक उन्नतिकी चेष्टा करो। अपने भाईके मुखसे ऐसी बात सुन कर वसुबन्धुने अवन्तसक, निर्वाणसूत्र, सद्धर्म-पुंडरीक, प्रज्ञापारमिता, विमलकीर्त्ति तथा अन्यान्य सूत्र ग्रन्थोंकी टीकाकी रचना की थी। इनके अतिरिक्त उन्होंने महायान मतके विस्तारार्थ कई एक शास्त्रग्रन्थोंकी रचना की थी।

अयोध्यानगरमें अस्सी वर्षकी अवस्थामें वसुबन्धुने मर्त्यलीला सम्वरण की। तिब्बतके तारानाथकृत मगधराजवंशीतिवृत्त पाठ करनेसे जाना जाता है, कि पूर्वजनपदाधीश्वर (वंगराजेश्वर) श्रीचन्द्रके पुत्र राजा धर्मचन्द्रकी सभामें वसुबन्धु विद्यमान थे।